श्री शखेश्वरपार्श्वनाथाय नम: 卐

सकलागमरहस्यवेदिपरमज्योतिर्विच्छ्रीमद्विजयदानसूरीश्वरसद्गुरुभ्यो नम ।

भारतीय-प्राच्यतत्त्व-प्रकाशन-समिति-पिण्डवाडा-सचालितायां

आचार्यदेवश्रीमद् विजयप्रेमसूरीश्वरकर्मसाहित्यजैनग्रन्थमालाया एकादशमो (११) ग्रन्थ

बन्धविहाणे

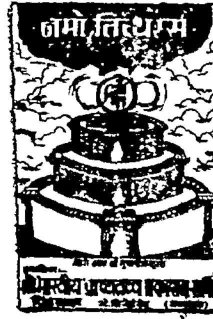
तत्थ

स्वोपज्ञ-

'प्रेमप्रभा' टीका-समलङ्कृता

पसत्थी

(स्ति:)



प्रेरका मार्गदर्शकाः

सिद्धान्तमहोदधि-कर्म निष्णाता आचार्यदेवाः

श्रीमद् विजयप्रेमसूरीश्वराः

प्रकाशिका—भारतीय-प्राच्यतत्त्व-प्रकाशन-समितिः, पिण्डवाड़ा ।

प्रथम आवृत्ति: }
प्रति- ५५० }

राजसंस्करण-४०) रु० ६०.
राजाधिराज संस्करण-५०) रु० ८०

वीर संवत् २५०२
विक्रम संवत् २०३२

※ प्राप्तिस्थान ※

भारतीय-प्राच्यतत्त्व प्रकाशन-समिति
C/o रमणलाल लालचंद शाह
१३५/१३७ झवेरी बाजार, बम्बई २

•

भारतीय-प्राच्यतत्त्व-प्रकाशन-समिति
C/o शा समरथमल रायचंदजी
पिंडवाडा, (राज०)
स्टे० सिरोही रोड (W. R.)

•

भारतीय-प्राच्यतत्त्व-प्रकाशन-समिति
शा. रमणलाल वजेचन्द,
C/o दिलीपकुमार रमणलाल,
सरकती मार्केट,
अहमदाबाद २.

•

मुद्रक—
ज्ञानोदय प्रिंटिंग प्रेस, पिंडवाड़ा

मूलग्रन्थकृद् वृत्तिकारः सम्पादकश्च-

प्रवचनकौशल्याधार-सिद्धान्तमहोदधिसुविशालगच्छाधिपति--परमशासनप्रभावक-
कर्मसाहित्यनिष्णात-परमपूज्य-स्वर्गताचार्यदेवेश-श्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वर
विनिताऽन्तेवासि-निःस्पृहतासलिलनिधि-परमगीतार्थ-परम
पूज्याऽऽचार्यदेव-श्रीमद्विजयहीरसूरीश्वर-
विनेयरत्न मुनि-श्रीललितशेखरविजय-
शिष्यरत्न मुनि-राजशेखरविजय-
शिष्यः

मुनि **श्रीवीरशेखरविजयः**

First Edition Copies 550 — DELUXE EDITION RS. 40 / SUPER DELUXE „ RS. 50 — A. D. 1976

AVAILABLE FROM

1. Bharatiya Prachya Tattva Prakashan Samiti
C/o. Shah Ramanlal Lalchand,
135/137 Zaveri Bazzar
BOMBAY-2.
(INDIA)



2 Bharatiya Prachya Tattva Prakashan Samiti
C/o. Shah Samarathmal Raychandji,
PINDWARA, (Rajasthan)
St. Sirohi Road (W. R)
(INDIA)



3. Bharatiya Prachya Tattva Prakashan Samiti
Shah Ramanlal Vajechand,
C/o Dilipkumar Ramanlal,
Maskati Market,
AHMEDABAD- 2.
(INDIA)



Printed by :
Gyanodaya Printing Press
PINDWARA (Raj.)
St. Sirohi Road, (W.R)
(INDIA)

संपादकीय निवेदन

जेम मेघने जोइने चातकपक्षी अने चन्द्रने जोइने चकोर पक्षी आनन्द पामे, तेम वर्षो पहेलां तैयार करेल आ बन्धविधान-प्रशस्तिग्रन्थ आ प्रमाणे साङ्गोपाङ्ग छपाइने तैयार थयेलो जोइने प्रमोद थाय छे.

'श्रेयांसि बहुविघ्नानि' ए न्याये हंमेशां शुभकार्योमां घणां विघ्नो रहेलां होय छे. आ बन्धविधानप्रशस्ति ग्रन्थ माटे पण तेम ज बन्युं. २०२५ नी सालमां छपाववानुं मुहूर्त कर्युं अने संयोगवशात् मुलतवी राखवुं पड्युं. तेथी तेनी सम्पूर्ण लखावीने तैयार करावेली प्रेसकोपी, तेनी मूलकोपी अने एने लगती नोटबुको वगेरे एक लोखंडनी पेटीमां व्यवस्थित मूकी राखेल. त्यार बाद २०२६ नी सालमां मारुं चोमासुं पाटण हतुं. त्यारे ते पेटी अमदावाद सुश्रावक कवरलाल हीरालालना बंगले मूकी हती. ते चोमासामां अतिवृष्टिना कारणे अमदावाद साबरमती नदीमां भयंकर घोडापूर आववाथी अने अमदावाद पालडी विस्तारना केटलाक भागमां तेनुं पाणी फरी वळवाथी एमना बंगलामां पण माणस डुबी जाय एटलुं पाणी भराइ गयुं। आथी ए लोखंडनी पेटीमा पण कादव सहित पाणी पेसी जतां तेमां रहेल बन्धविधानप्रशस्ति ग्रन्थनी सम्पूर्ण प्रेसकोपी वगेरे भीजाइ गयुं, अने कादवथी खरडाइ गयुं.

ए वखते प. पू. परमगुरुदेवश्री आचार्य भगवंत श्रीमद् वि य हीरसूरीश्वरजी म. सा. तथा पू० मुनिवर्य हेमचन्द्र विजय म० सा० वगेरे लक्ष्मीवर्धक जैनसंघना उपाश्रये चोमासुं हता. तेओश्री पण पूरना कारणे त्यांथी नीकळी अश्विनसोसायटीमां सुश्रावक मनुभाइना बंगले पधार्या. त्या सुश्रावक कवरलालभाई पूर उतर्या बाद ए पेटी लइ गया. प. पू. आचार्य भगवंते पोते जाते तेम ज प० पू० मुनिवर्य श्री हेमचन्द्रवि० म० सा० वगेरे मुनि भगवंतोए एक एक पानुं छुटुं पाडीने भीजायेलां पानां खुल्ली जग्यामां सुकव्यां. त्यार बाद ते पेटी मने पाटण मोकलावी आपी त्यां में वेरविखेर थइ गयेलां प्रेसकोपीनां बधा पानाओने छूटां पाडीने व्यवस्थित फरीथी गोठव्यां. आम नदीना पूरना कारणे नुकशान थवा छतां देव गुरुनी कृपा साथे शासनदेवनी सहायथी अने लखाण पाकी शाहीथी करेलुं होवाथी लगभग बधुं बची गयुं. पाणीथी भीजाइ जवाना कारणे ज्यां खुटतुं हतुं त्यां फरीथी तैयार करीने सुधारी लीधुं.

त्यार बाद २०३१नी सालमां प० पू० गुरुदेव श्री आचार्य भगवंत श्रीमद् विजय हीरसूरीश्वरजी म. सा. राजस्थान पिंडवाडा पधारता मारे पण त्यां आववानुं थयुं. चोमासुं पण त्या नक्की थता प्रस्तुत ग्रंथनुं मुद्रण शरू थयुं. लगभग १ वर्षनी सखत महेनतथी पूर्ण थयुं.

अत्यन्त तत्त्वथी भरपुर एवा आ 'बन्धविधान ग्रन्थनुं' तेमज तेना आ सटीक प्रशस्ति ग्रन्थनुं सर्जन मारी शक्ति बहारनुं कार्य होवा छतां प०पू० सिद्धान्त महोदधि कर्मसाहित्य निष्णात स्वर्गत आचार्य भगवंत श्रीमद् विजय प्रेमसूरीश्वर म० सा० नी सतत प्रेरणा अने कृपादृष्टिथी ज करी शक्यो छुं. तेथी खरेखर तो आना सर्जक तेओश्री ज छे. तेथी तेओ-

श्रीना आ उपकार नो बदलो हुं कोइ रीते वाळी शकुं तेम नथी.

प० पू० परमगुरुदेवश्री परमगीतार्थ परमनिःस्पृह आचार्यदेव श्रीमद् विजय हीरसूरीश्वरजी म० सा० नो उपकार कोइ रीते भूली शकाय तेम नथी तेओश्री पोतानी वृद्धावस्था होवा छतां पोतानी वैयावच्च वगेरेथी निरपेक्ष रहीने लगभग १५ वर्ष थी आ कर्मसाहित्यना काममा मने अनुकूलता आपी रह्या छे. ते सिवाय पोते जाते आ प्रशस्ति ग्रन्थनो घणो भाग तपासीने मारा उपर बीजो एक वधारे उपकार कर्यो छे. प० पू० परमगुरुदेवश्री ललितशेखरवि० म० सा० तथा प० पू० गुरुदेवश्री राजशेखर वि० म० सा० पण मने आ काममां अनुकूलता आपवा आदिथी मारा उपर उपकार कर्यो छे.

प. पू. गीतार्थ मुनिवर्यश्री जयघोष वि. म. सा. (हाल गणिवर्य) अने प. पू. गीतार्थ मुनिवर्यश्री धर्मानन्द वि. म. सा (हाल गणिवर्य) आ बन्धविधान ग्रन्थना पदार्थोनी विचारणा करवामां अने कठिन स्थानो मां निर्णय करवामां अथ थी इति सुधी अगत्यनो फालो आपेलो छे. घणा स्थलोए पदार्थनी भूलो सुधारी छे. आ रीते एमना कर्म साहित्य विषयक ऊंडा बोधनो मने घणो लाभ मल्यो छे. तेओश्रीए पोताना आवा बोधनो मने लाभ न आप्यो होत तो हुं आ रीते ग्रंथ तैयार करी शकत के केम ए एक प्रश्नरूप बनी रहे छे- आथी ते बने महात्माओनो उपकार भूली शकाय तेम नथी. तथा मारा रचेला बन्धविधान ग्रन्थना जुदा जुदा विभागो उपर परम पूज्य गुरुदेवश्री आचार्य भगवंत श्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वरजी म. सा. नी आज्ञाथी अनेक पूज्य ▽मुनिराजोए वृत्ति रचीने बन्धविधान ग्रन्थने समृद्ध बनाव्यो छे तथा टीका लखतां लखतां कोइ कोइ स्थले रही गयेल पदार्थ संबंधी क्षति तरफ मारुं लक्ष्य दोर्युं छे जो पू. मुनिराजोए टीका न रची होत तो आ ग्रन्थ आ रीते समृद्ध बन्यो न होत आथी पू. टीकाकार मुनिभगवंतोनो उपकार पण चिरस्मरणीय बनी रहेशे.

अंते आ ग्रन्थमां जे कोइनी जे कोइ रीते जे कंइ पण सहाय मली होय ते सर्वेनो आभार मानुं छे. अने छद्मस्थताना कारणे जे कंइ क्षति थइ होय ते बदल मिच्छामि दुक्कडं. जे कोइ महानुभावने जे कंइ क्षति जणाय ते सुधारी ले. अने मने जणाववा कृपा करे एवी विनंति करुं छु. आ ग्रंथमां (प्राकृत संस्कृत भाषामां) प पू. गुरुदेवश्री आचार्य भगवंत प्रेमसूरीश्वरजी म. सा. ना जीवननुं विस्तृत कवन करवानी भावना हती. पण संयोग वशात् ते थइ शक्युं नथी. भविष्यमां आ कार्य करवानी आशा साथे तथा प्रस्तुत ग्रंथनुं भविष्यमां सुधारा-वधारा साथे पुनः प्रकाशन थाय तेवी आशा साथे विरमुं छु.

प्रेमसूरीश्वर ज्ञानमंदिर पिंडवाडा (राज.)
महा वद ११ बुधवार

–मु. वीरशेखरविजय

▽ पेज न म मा विषयवार नाम जणावेल छे.

बंधविधान ग्रन्थ के पदार्थ संग्रहकारों के नाम

(१) पू० मु० जयघोषविजय गणिवर्य म० (२) पू० मु० धर्मानंदविजय गणिवर्य म०
(३) पू० मु० वीरशेखरविजय म०

बंधविधानमूलग्रन्थ के प्रणेता

पू० मु० वीरशेखर विजय म०

बन्धविधान ग्रन्थ के वृत्तिकारों के नाम

विषय		वृत्तिकार
मूल प्रकृतिबन्ध		पू. मु. गुणरत्न विजय म.
उत्तर ,, ,,	प्रथमाधिकार	,, ,, विचक्षण ,, ,,
,, ,, ,,	स्थान प्ररूपणा	,, ,, अक्षय ,, ,,
,, ,, ,,	भूयस्कारादि	,, ,, जयघोष ,, ,,
मूल प्रकृतिस्थिति बन्ध		,, ,, जगच्चन्द्र ,, ,,
उत्तर ,, ,, ,,	प्रथमाधिकार	,, ,, ,, ,, ,,
,, ,, ,, ,,	भूयस्कारादि	,, ,, कीर्तिचन्द्र ,, ,, }
		,, ,, जिनचन्द्र ,, ,, }
मूल प्रकृति रसबन्ध		,, ,, जयशेखर ,, ,,
उत्तर ,, ,, ,,	प्रथमाधिकार	,, ,, जितेन्द्र ,, ,,
,, ,, ,, ,,	भूयस्कारादि	,, ,, जयघोष ,, ,,
मूल प्रकृति प्रदेशबन्ध		,, ,, राजशेखर ,, ,,
उत्तर ,, ,, ,,	प्रथमाधिकार	,, ,, जयघोष ,, ,,
,, ,, ,, ,,	भूयस्कारादि	,, ,, मुनिचन्द्र ,, ,,

सकलागमरहस्यवेदि—सुरिपुरन्दर—बहुश्रुतगीतार्थ—परमज्योतिर्विद—परमगुरुदेव



स्व. परमपूज्य आचार्यदेवेश श्रीमद्‌विजयदानसूरीश्वरजी महाराजा

प्रकाशकीय निवेदन

भारतीय प्राच्य-तत्त्व प्रकाशन समिति के द्वारा सन १९६६ में अहमदाबाद मे कर्म साहित्य के प्रथम दो ग्रन्थरत्नो का विशाल समारोह पूर्वक उद्घाटन किया गया। उस समारोह में दोनों ग्रन्थरत्नों को गजराज पर विराजमान कर जुलुस निकाला-गया तथा प्राचीन और अर्वाचीन जैन साहित्य का प्रदर्शन भी आयोजित किया गया। जिससे सामान्य जनता व बुद्धिजीवी लोगो का ध्यान जैन साहित्य की ओर काफी आकृष्ट हुआ एवं समिति के सदस्यों में भी कर्म साहित्य के ग्रन्थों के प्रकाशन में तेजी का संचार हुआ जिससे आज आपके करकमलों में हम यह ११-१२ वां ग्रन्थ समर्पित करते हैं।

आज तक प्रकाशित ११-१२ ग्रन्थरत्नो के आधार स्तम्भ स्वर्गीय आचार्यदेव **श्रीमद्-विजयप्रेमसूरीश्वरजी** महाराज को हम करोडों वन्दना करते हुए आपश्रीका आभार मानते है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के रचयिता बन्धविधानमूलग्रन्थकार पू. मुनिराजश्री **वीरशेखरविजय** म. सा. का सवन्दन आभार मानते हैं, आपके अथाग परिश्रम के फलस्वरूप यह ग्रन्थ पाठकों के हस्तकमलों में हम समर्पित कर रहे है।

इस ग्रन्थरत्न की प्रेसकोपी बनवाने में महेसाणा के मास्टर **शान्तिभाई** तथा **वसंत-भाई** सहायक बने हैं।

इस ग्रन्थरत्न के मुद्रण होने के बाद में छद्मस्थता, अन्यमनस्कता, शीघ्र मुद्रण, दृष्टिदोष, प्रेस दोष, मशीन दोष, टाइप दोष वगेरे अनेक कारणों से हुई अशुद्धियों का शुद्धिपत्रक बनाने में महेसाणा के मास्टर **वसतभाई** सहायक बने हैं और मास्टर **चपकलालजी** (महेसाणा पाठशाला के भूतपूर्व विद्यार्थी तथा वर्त्तमान में पिण्डवाडा पाठशाला के अध्यापक) का भी हिस्सा रहा है। प. पू. म सा ने भी सम्पूर्ण ग्रन्थ देखने का समय न मिलने पर भी मशीन प्रुफ के साथ छपे हुए फार्मो का मीलान करने में, परिशिष्ट बनाना आदि में छपे हुए फार्मो को देखने से नजर में आयी हुई अशुद्धियों का शुद्धिपत्रक बनाया जिसको ग्रन्थ के अन्त भाग में रखा है। तदनुसार सुधार कर पढने के लिए वाचक वर्ग को विनंति करते हैं।

मुद्रण काल में प्रुफ रीडींग में **चंपकलालजी** सहायक बने हैं।

मुद्रण करने में संस्था के निजी ज्ञानोदय प्रेस के व्यवस्थापक फतेहचन्दजी जैन व अन्य कर्मचारीगण शंकरदास, ईशाक खां, रफीक, रघु, बाबुसींग वगेरे भी स्मृति पथ पर आते हैं, जिनके सहयोग से समिति अपने ग्रन्थ सुचारु रूप से प्रकाशित कर रही है ।

द्रव्यसहायकः—

इस ग्रन्थ के पूर्वार्ध के प्रकाशन में शेठ मोतीशा लालबाग जैन चेरीटीज भूलेश्वर लालबाग मुम्बई नं० ४ की ओर से रु. १००००) की सहाय मिली है ।

इस ग्रन्थ के उत्तरार्ध के प्रकाशन में दशापोरवाड जैन संघ, (दशापोरवाड) पालडी अहमदाबाद ७ की ओर से रु. १००००) की सहाय मिली है ।

अतः इनका भी हम आभार मानते हैं ।

भविष्य में और अधिक ग्रन्थों के प्रकाशन की आशा में ।

भवदीय-

शा. समरथमल रायचन्दजी (मंत्री)

शा. लालचन्द छगनलालजी (मंत्री)

भारतीय-प्राच्य-तत्त्व प्रकाशन समिति

(1) पिंडवाडा
स्टे. सिरोहीरोड (राजस्थान)

(11) १३५/१३७ जौहरी बाजार
बम्बई-२



धावलाणं

तत्थ

स्वोपज्ञ-

'प्रेमप्रभा' टीका-समलङ्कृता

पसत्थी

(प्रशस्तिः)

समर्पण

जेओश्रीए आ संसाररूपी अटवीमांथी उद्धार करी मने मोक्षरूपी नगरीमां जवा माटे संयमरूपी सन्मार्गमां चढावीने ग्रहणशिक्षा अने आसेवनशिक्षा द्वारा सतत बार बार वर्ष सुधी भोमियापणुं बजाव्युं,

जेओश्रीनी अपार वात्सल्य पूर्ण कृपादृष्टिथी ज हुं अतिगहन अने गंभीर एवा कर्म-साहित्यनुं सर्जन सम्पादन अने प्राचीन कर्म साहित्यनुं सम्पादन करी शक्यो छुं,

ते परम पूज्य परमोपकारी प्रातःस्मरणीय परमशासनप्रभावक कर्मसाहित्यसूत्रधार, सिद्धान्तमहोदधि सुविशाल गच्छाधिपति परमाराध्यपाद स्वर्गत आचार्यदेवेश–

श्रीमद् विजयप्रेमसूरीश्वरजी महाराजा नी

परम पवित्र स्मृतिमां

आपनो कृपाभिलाषी
–मुनि वीरशेखरविजय

※ विषयानुक्रमः ※

※ विषयानुक्रमः ※

॥ ॐ ह्रीँ अर्हँ नमः ॥

॥ श्रीशङ्खेश्वरपार्श्वनाथाय नमः ॥

॥ सकलागमरहस्यवेदिपरमज्योतिर्विच्छ्रीमद्विजयदानसूरीश्वरसद्गुरुभ्यो नमः ॥

बंधविहाणं

तत्र

स्वोपज्ञ–

प्रेमप्रभाटीकासमलङ्कृता

परमश्री

(प्रशस्ति)

प्रेमप्रभावृत्तिः–

भव्यानन्दति वासुपूज्य ऋषभः, पद्मप्रभः सम्भवः;
श्रेयान्नेम्यभिनन्दनश्च सुविधिः, चन्द्रप्रभः शीतलः ।
पार्श्वः कुन्थुररश्च शान्तिरजितो, मल्लिः सुपार्श्वो नमिः;
श्रीवीरः सुमतिर्जिनोऽत्र विमलो, धर्मो ह्यनन्तो मुनिः ॥१॥ ★

[शार्दूलविक्रीडितम्] ●

★ श्लेषेणैकैकमृषभादिजिनेन्द्रं जिनसामान्यं वा प्रधानीकृत्य चतुर्विंशतिजिनेश्वरस्तुत्यात्मकं जिनसामान्यस्तुत्यात्मकं वा शार्दूलविक्रीडितम् ।

तत्रादिजिनपक्षे अत्र=अस्मिन् जम्बुद्वीपसत्के भरते, यद्वा अत्र=अस्यामवसर्पिण्याम् । यद्वा श्लेषेण द्विरावृत्त्याऽर्थद्वयमपि कार्यम् । ऋषभः=ऋषभजिनेशितुरूर्वोर्वृषभलाञ्छनस्य सद्भावात्, तज्जनन्या मरुदेव्याश्चतुर्दशानां स्वप्नानामादावृषभस्य दृष्टत्वाच्च ऋषभनामा । यदुक्तमावश्यकनिर्युक्तौ— 'ऊरूसु उसभलंछण उसभं सुमिणंमि तेण उसभजिणो' । इति । तथा चात्र हारिभद्रीयवृत्तिः–'जेण भगवओ

● शार्दूलविक्रीडितम्-लक्षणम् 'अतिधृत्या-म्सौ ज्सौ तौ गः शार्दूलविक्रीडितं ठैः' हैमच्छन्दो० २ अध्या० ३२१ सूत्रम् ।

'मानूद्यचति मात्सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्' जयकीर्तिच्छन्दो० २ अधि०-२२८सूत्रम् । SSS॥SIS॥IS,SS SIS, ।

दोसु वि ऊरुसु उसभा उप्पराहुत्ता जेण च मरुदेवाए भगवईए चोद्दसण्ह महासुमिणाण पढमो उसभो सुमिणो दिट्ठोऽत्ति तेण तस्स उसभो त्ति णामं कय, इति । एवमभिधानचिन्तामणिवृत्त्यादिष्वपि । तत ऋषभनामा प्रथमो जिन=जयति रागद्वेषमोहानिति 'जीण्-शी-दी-बुध्यवि-मीभ्य कित्' (सि०-उणा०-२६१) इत्यनेन जिधातो किद् नप्रत्यय, जिनोऽर्हन् जगत्प्रभुस्तीर्थकर इत्यादय पर्याया', तथा चोक्तमभिधानचिन्तामणौ—'अर्हन् जिन पारगत० ~ ' इत्यादि । भव्यान्=भवितुमर्हान् 'भव्य-गेय जन्य-रम्या-ऽऽपात्या ऽऽप्लाव्य न वा' (सि०-५-१-७) इत्यनेन निपात, ततो भव्यान्=सिद्धिगमनयोग्यान् प्राणिनो नन्दति=बोधिरत्नादिदानेना-ऽऽह्लादयतीति क्रियान्वय । किम्भूत ? । वासुपूज्य =वसव =देवविशेषास्तेषा पूज्यो वसुपूज्य, स एव वासुपूज्य, 'प्रज्ञादिभ्योऽण्' (सि०-७-२-१६५) इत्यनेन स्वार्थेऽण्प्रत्यय, तथा चोक्तमावश्यकहारिभद्रीयवृत्तौ-'तत्र वसूना पूज्यो वसुपूज्य', वसवो देवा, तत्थ सव्वे वि तित्थगरा इदाईण पुज्जा," इति । तथैवाभिधानचिन्तामणिवृत्त्यादिष्वपि । श्रीमदावश्यकमलयगिरिवृत्तौ पुन -'साम्प्रत वासुपूज्य -वासवो देवा, तेषा पूज्य वासुपूज्य, सर्व एव भगवन्त ईदृशा' इति । तथैवान्यत्रा-ऽपि । पद्मप्रभ =निष्पङ्कतया पद्मस्येव प्रभा यस्यासौ पद्मप्रभ, तथा चन्यगादि श्रीमदावश्यकवृत्तौ श्रीहरिभद्रसूरिभि-'इयाणिं पउमप्पहो-तस्स सामान्यतोऽभिधानकारणम्-इह निष्पङ्कतामङ्गीकृत्य पद्मस्येव प्रभा यस्यासौ पद्मप्रभ, सर्व एव जिना यथोक्तस्वरूपा०' इति । एवमभिधानचिन्तामणिवृत्त्यादिष्वपि । सम्भव =सम्भवन्ति=प्रकर्षेण भवन्ति चतुस्त्रिंशदतिशयगुणा अस्मिन्निति सम्भव, तथा च प्रतिपादितमावश्यकवृत्तौ श्रीमद्धरिभद्रसूरिपादै -'सम्भवो-तस्यौघतोऽभिधाननिबन्धन सम्भवन्ति प्रकर्षेण भवन्ति चतुस्त्रिंशदतिशयगुणा अस्मिन्निति सम्भव, सर्व एव भगवन्तो यथोक्तस्वरूपा' इति । एवमन्यत्रापि । यद्वा 'शम्भव' इति पाठान्तरम्, तत शम्=सुखं भवत्यस्मिन् स्तुते शम्भव, तथैवाभिधानचिन्तामणिवृत्त्यादौ प्रतिपादितम् । श्रेयान्=निखिलविश्वस्य कल्याणकाङ्क्षित्वात् प्रशस्यतर इति श्रेयान् । तथा च भणितमावश्यकवृत्तौ पूज्यै श्रीहरिभद्रसूरिभि -'इयाणिं सेज्जसो, तत्र श्रेयान् =समस्तभुवनस्यैव हितकर, प्राकृतशैल्या छान्दसत्वाच्च श्रेयास इत्युच्यते, तत्थ सव्वेऽपि तेलोगस्स सेया, इति । नेमी=इकारान्तवदिन्नन्तोऽपि नेमिशब्दोऽस्ति-यथा च गदितम्-'वन्दे सुव्रतनेमिनौ' इति । धर्मचक्रस्य नेमिवन्नेमी, यदुक्तमावश्यकहारिभद्रीयवृत्तौ-'इदाणीं णेमी, तत्र धर्मचक्रस्य नेमिवन्नेमि, सव्वे वि धम्मचक्कस्स णेमीभूयत्ति सामण्ण,' इति । अभिनन्दन =अभिनन्द्यते देवेन्द्रादिभिरित्यभिनन्दन, 'भुजि पत्यादिभ्य कर्म्मा-ऽपादाने' (सि०-५-३-१२८) इत्यनेन कर्मण्यनट्प्रत्यय । तथा च प्रत्यपादि श्रीमद्धरिभद्रमुनिनाथैरावश्यकवृत्तौ-इयाणिं अभिणदणो, तस्य सामान्येनाभिधानान्वर्थ -अभिनन्द्यते देवेन्द्रादिभिरित्यभिनन्दन, सर्व एव यथोक्तस्वरूपा' इति । एवमभिधानचिन्तामणिवृत्तिप्रभृतिष्वपि । सुविधि =शोभनो विधि विधानमस्येति सुविधि, तथैव दर्शितमावश्यक-श्रीमलयगिरिकृतवृत्ति-श्रीहरिभद्रसूरिनिर्मितटीका-ऽभिधानचिन्तामण्यादिष्विति । चन्द्रप्रभ =चन्द्रस्येव प्रभा ज्योत्स्ना सौम्यमस्येति चन्द्रप्रभ, तथा च कथितमभिधानचिन्तामणे स्वोपज्ञाया तत्त्वाभिधायिन्या वृत्तौ श्रीहेमचन्द्रसूरिभि —'चन्द्रस्येव प्रभा ज्योत्स्ना सौम्यलेश्याविशेषोऽस्य चन्द्रप्रभ,' इति । तथैव श्रीआवश्यकहारिभद्रीयवृत्ति-मलयगिरिकृतवृत्त्यादिष्वपि । शीतल =समस्तप्राणिसन्तापहरणादाह्लादजननाच्च शीतल । यदुक्तं श्रीआवश्यकहारिभद्रीयवृत्तौ-"इयाणिं सीयलो, तत्र सकलसन्तापकरणविरहादाह्लादजनकत्वाच्च शीतल इति, तत्थ सव्वेऽपि अरिस्स मित्तस्स वा उवरिं सीयलधरसमाणा०" इति । एव श्रीमन्मलयगिरिरचितवृत्तावपि-तथा च तद्ग्रन्थ — सम्प्रति शीतल, सकलसत्त्वसन्तापकरणविरहादाह्लादजननाच्च शीतल, तत्र सर्वेऽपि भगवन्त शत्रूणा मित्राणा चोपरि शीतगृहसमाना' इति ।

एवमन्यत्राऽभिधानचिन्तामणिवृत्तिप्रमुखेष्वपि । पार्श्व =स्पृशति ज्ञानेन सर्वभावानिति पार्श्वः, 'स्पृशे श्व पार्श्च' (सि० उणा० ५२२) इति सूत्रेण साधु तथैवाभिधानचिन्तामणिस्वोपज्ञवृत्तौ दर्शितम् । यद्वा पश्यति सर्वभावानिति निरुक्तात्पार्श्वः । तथा च भणितमावश्यकवृत्तौ श्रीहरिभद्रसूरिभि —'इयाणीं पासो त्ति, तत्र पूर्वोक्तयुक्तिकलापादेव पश्यति सर्वभावानिति पार्श्वः, पश्यक इति चान्ये, तत्थ सव्वेऽवि सव्व-भावाणं जाणगा पासगा य त्ति सामण्ण.' इति । कुन्थु =कु =पृथिवी, तस्यां स्थितवान् कुन्थु पृषोदरादय' (सि०-३-२-१५५) इति सूत्रेणेष्टरूपनिष्पत्ति, तथा चोक्त श्रीमन्मलयगिरिपादैरावश्यकवृत्तौ-'सम्प्रति कुन्थु, कु =पृथिवी तस्यां स्थितवान् कुन्थु, पृषोदरादित्वादिष्टरूपनिष्पत्ति, तत्र सर्वेऽपि भगवन्त एव-विधा, इति । एवमेवावश्यकहारिभद्रीयवृत्तौ, तथान्यत्रा-ऽप्यभिधानचिन्तामणिवृत्तिप्रमुखेषु । अर = सर्वोत्तमकुले वृद्धिकरत्वाद् अर, तथा चोक्तम्-'सर्वोत्तमे महासत्त्वकुले य उपजायते । तस्याभिवृद्धये वृद्धैरसावर उदाहृत ॥१॥' इति । तथैव प्रतिपादितमावश्यकहारिभद्रीयवृत्तौ, तदक्षराणि त्वेवम् 'इदानीं अरो, तत्र सर्वोत्तमे महासत्त्वकुले य उपजायते । तस्याभिवृद्धये वृद्धैरसावर उदाहृत ॥१॥" इति । अभिधानचिन्तामणिस्वोपज्ञवृत्तौ च 'सर्वो नाम महासत्त्व' कुले य उपजायते । तस्याभिवृद्धये वृद्धैरसावर-उदाहृत.॥१॥' इति । शान्ति =शान्तियोगात् तदात्मकत्वात् तत्कर्तृकत्वाच्चाय शान्ति तथैवावश्यक-वृत्त्यभिधानचिन्तामणिवृत्त्यादिषु निरूपितम् । अजित =परीषहोपसर्गादिभिर्न जित इत्यजित । एवमेवा-ऽऽवश्यकवृत्त्यादिषु निगदितम् । मल्लि =परीषहादिमल्लजयान्मल्लि निरुक्ताद् रूपसिद्धि । तथा चाभाणि-'इह परीषहादिमल्लजयात्प्राकृतशैल्या छान्दसत्वाच्च मल्लि, तत्थ सव्वेहि पि परीषहमल्लरागदोसा य णिहय-त्ति सामण्ण, इति । सुपार्श्व =शोभनानि पार्श्वाणि यस्यासौ सुपार्श्व, । एवमावश्यकवृत्त्यादिष्वभिहितम् । तथा चोदितमावश्यकमलयगिरीयवृत्तौ- सम्प्रति सुपार्श्व तस्यायमोघतो नामान्वर्थ, शोभनानि पार्श्वाणि यस्यासौ सुपार्श्व., तत्र सर्व एव भगवन्त एवम्भूता ' इति । नमिः=परीषहोपसर्गादिनामनात्,' नमेस्तु वा' (सि०उणा०-६१३) इत्यनेनेष्टरूपनिष्पत्ति । तथैवाभिधानचिन्तामणिवृत्त्यादिषूदितम् । नन्वजितशब्दार्थेन सहास्य पुनरुक्ततेति चेत्, न, तत्र ते स्वय न जित इत्यर्थ, अत्र तु तेषां नम्रकरणारूपोऽर्थभेदोऽस्ति । यद्वा स्तुतिविषये पुनरुक्ताऽपि न दोषाय, यत उक्तम्—'सज्झायझाणतवओसहेसु उवएसथुइपयाणेसु । सतगुणकित्तणेसु य न हौंति पुणरुत्तदोसाओ ॥१॥' इति । श्रीवीर =श्रिया=केवलज्ञानलक्षणया-ऽऽत्म-गुणरूपया चतुस्त्रिंशदतिशयात्मकया वा लक्ष्म्या युत' स चासौ वीर =कर्मणां विशेषेणेरणात् श्रीवीर', तथैवाभिधानचिन्तामणिवृत्त्यादिषु दर्शितमस्ति । सुमति =शोभना मतिरस्येति सुमति'. एवमन्यत्रापि भणितम् । विमल =विगतो मलोऽस्येति विमलज्ञानादियोगाद्वेति विमल, तथा च स्यगाद्यावश्यकहारि-भद्रीयवृत्तौ—'इयाणिं विमलो, तत्र विगतमलो विमल विमलानि वा ज्ञानादीनि यस्य, सामण्णलक्खण सव्वेसिं पि विमलाणि णाणदसणाणि सरीरं च' इति । एव श्रीमन्मलयगिरिकृतावश्यकवृत्त्यभिधानचिन्ता-मणिस्वोपज्ञवृत्त्यादिषु । धर्म =दुर्गतौ प्रपतन्त सत्त्वसङ्घात धारयतीति धर्म, एवमावश्यकवृत्त्यादिष्वपि व्याकृतम् । अनन्त =अनन्तकर्मांशजयाद् अनन्तानि वा ज्ञानादीन्यस्येति यद्वा न विद्यते ज्ञानादिगुणानाम-न्तोऽस्येत्यनन्त । एवमावश्यकवृत्त्यभिधानचिन्तामणिवृत्त्यादिषु । मुनि =मन्यते जगतस्त्रिकालावस्था-मिति मुनि 'मनेरुदेतौ चास्य वा'(सि० उणा० ६१२)इत्यनेन इप्रत्यये उपान्त्याकारस्य उत्वे चेष्टरूपसिद्धि ।

एव शेषेषु त्रयोविंशतावजितादिजिनेन्द्रेषु जिनसामान्ये चापि भाव्यम्, किन्तु ऋषभ =ऋषति-गच्छति परमपदमित्यृषभ, 'ऋषि-वृषि-लुसिभ्य कित्' (सि०-उणा०३३१) इत्यनेन किदभप्रत्यय, यद्वा समग्रसयमभारोद्वहनाद् ऋषभ इव ऋषभ ।

तथाऽजितनाथपक्षे- अजित =अस्मिन् गर्भस्थे भगवतो जननी राज्ञा द्यूते न जितेत्यजित । यदुक्त-मावश्यकनिर्युक्तौ—'अक्खेसु जेण अजिआ जणणी अजितो जिणो तम्हा ॥१०८२॥' इति । तथा चात्र

श्रीमलयगिरीयवृत्ति —'अक्षेषु-अक्षविषयेषु येन कारणेन भगवतो जननी अजिता गर्भस्थे भगवत्यभून् तस्मादजितो जिन', अत्र वृद्धसम्प्रदाय —भयवतो अम्मापियरो जूय रमंति, पढम राया जिणियाइतो, जाहे भयव आयातो ताहे देवी जिणाइ, नो राया, ततो अक्खेसु कुमारणभावा देवी अजिय त्ति अजिओ नाम कय ॥' इति । सम्भवनाथपक्षे-सम्भव =अस्मिन्भगवति गर्भगतेऽभ्यधिकशस्यसम्भवात्सम्भव । यदभाणि श्रीमन्मलयगिरीयावश्यकवृत्तौ—'अभिसम्भूतानि-सम्यक् भवन्ति स्म सस्यानि तस्मिन् गर्भजाते तेन कारणे भगवान् सम्भव इत्युच्यते, 'पुन्नाम्नी' इत्यधिकरणे घप्रत्यय, तथा च वृद्धसम्प्रदाय - गब्भगए जेण अहिगा सस्सनिप्फत्ती जाया तेण सभवो इति ॥' इति । एवमन्यत्रापि । **अभिनन्दनस्वामि-पक्षे-अभिनन्दनः**=गर्भात्प्रभृत्येवाभीक्ष्णं शक्रेणाभिनन्दनादभिनन्दन 'बहुल' (सि०-५-१-२) इति सूत्रेण बाहुलकात्कर्मण्यनट्प्रत्यय, यदवाचि **श्रीमदावश्यकनिर्युक्तौ**—'अभिनंदेइ अभिक्खं सक्को अभि-णदणो तेण ॥' इति । **सुमतिप्रभुपक्षे—सुमति** =गर्भस्थे भगवति जनन्या सुनिश्चिता मतिरभूदिति हेतो सुमति, शोभना मतिरस्मादिति व्युत्पत्तेः । **तथा च प्रतिपादितमावश्यनिर्युक्तौ**-जणणी सव्वत्थ विणि-च्छएसु सुमइत्ति तेण सुमइजिणो ।' इति । **तथा चात्र हारिभद्रीयवृत्ति** — जणणी गब्भगए सव्वत्थ विणि-च्छएसु अईव मइसपण्णा जाया, दोण्ह सवत्तीण मयपइयाण ववहारो छिन्नो, ताओ भणिआओ—मम पुत्तो भविस्सइ सो जोव्वणत्थो एयस्स असोगवरपायवस्स अहे ववहार तुब्भ छिंदिहि, ताव एगाइयाओ भवह, इयरी भणइ—एव भवतु, पुत्तमाया णेच्छइ, ववहारो छिज्जउ त्ति भणणइ, णाऊण तीए दिण्णो एवमाई-गब्भगुणेण ति सुमई ॥" इति । **पद्मप्रभजिनपक्षे पद्मप्रभ** =पद्मशयनदोहदो जनन्या सूरेण पूरित इति पद्मवर्णश्च भगवानिति वा पद्मप्रभ, यदुक्तम्—'पउमसयणम्मि जणणीए दोहलो तेण पउमाभो ॥' इति । **सुपार्श्वनाथपक्षे—सुपार्श्व** =गर्भस्थे भगवति तत्प्रभावाद् जननी सुपार्श्वाऽभूदिति सुपार्श्व । **तथा च सनिर्युक्तिमलयगिरिकृतावश्यकवृत्ति** —'गब्भगए ज जणणी जायसुपासा तओ सुपासजिणो । यतो गर्भगते भगवति तत्प्रभावतो जननी जाता सुपार्श्वा ततो जिन सुपार्श्व इति नामविषयीकृत,' इति । **चन्द्रप्रभस्वामिपक्षे-चन्द्रप्रभ** =भगवति गर्भगते मातुश्चन्द्रपाने दौहृदमजायत चन्द्रसमवर्णश्च भग-वानिति वा चन्द्रप्रभ । **तथा च प्रत्यपादि सनिर्युक्तिहारिभद्रीयावश्यकवृत्तौ**—'जणणीए चदपियणमि डोहलो तेण चदाभो ॥१०८३॥ व्याख्या-पच्छद्ध । देवीए चदपियणमि डोहलो चदसरिसवण्णो य भगव तेण चदप्पभो त्ति गाथार्थ ॥१०८३॥' इति । **सुविधिनाथपक्षे-सुविधि** =गर्भस्थे प्रभौ जननी सर्वविधिषु कुशलाऽभवदिति सुविधि । **यदुक्तमावश्यकनिर्युक्तौ** —'सव्वविहीसु अ कुसला गब्भगए तेण होइ सुविहिजिणो' इति । **शीतलनाथपक्षे—शीतल** =गर्भगतेऽस्मिन् पितु पूर्वोत्पन्नोऽसद्दशो-ऽचिकित्स्यपित्त-दाहो जननीकरस्पर्शादुपशान्त इति शीतल । **तथा चोदितमावश्यकनिर्युक्तौ**—'पिउणो दाहोवसमो गब्भगए सीयलो तेण ॥' इति । **तथैवाभिधानचिन्तामणिवृत्तौ** 'गर्भस्थे भगवति पितु पूर्वोत्पन्नाचिकित्स्य-पित्तदाहो जननीकरस्पर्शादुपशान्त इति शीतल ' इति । **श्रेयांसप्रभुपक्षे-श्रेयान्**=गर्भस्थे विभौ केना-प्यनाक्रान्तपूर्वदेवताधिष्ठितशय्या जनन्याक्रान्तेति श्रेयोहेतुत्वात् श्रेयान् । **यदुक्तमावश्यकनिर्युक्तौ** — 'महरिहसिज्जारुहणम्मि डोहलो तेण होइ सिज्जसो ।' इति । **अस्य श्रीमन्मलयगिरिकृतवृत्ति** — 'तस्य राज्ञ पितृपरम्परागता देवतापरिगृहीता शय्या अर्च्यते, यस्तामाश्रयति तस्योपसर्ग देवता करोति, गर्भगते च भगवति देव्या दौर्हृदमजायत—शय्यामारोहामि, तत्रोपविष्टा, देवता समारसितुमपक्रान्ता सा हि तीर्थकरनिमित्त देवतया रक्षिता, एव गर्भप्रभावतो देव्या श्रेयो जातमिति श्रेयास इति नाम कृतम् ।' इति । श्रेयान्-श्रेयास इति पर्यायौ 'श्रेयान् श्रेयास ' इत्यभिधानचिन्तामणिवचनात् **वासुपूज्य-स्वामिपक्षे-वासुपूज्य** =वसुपूज्यनृपतेरयं वासुपूज्य, यद्वा गर्भगते प्रभौ वासव इन्द्रोऽभीक्ष्ण जननी पूज-

यतीति वासुपूज्य', 'पृषोदरादय.' (सि०-३।२।१५५) इति सूत्रेण निपातनादिष्टरूपसिद्धि, यद्वा गर्भस्थे-ऽस्मिन् वासव'=कुबेरस्तद् राजकुलमभीक्ष्णं वसुभी-रत्नै पूजयति-पूरयतीति वासुपूज्य । तथा च निर्युक्तिसहितश्रीमद्धरिभद्रसूरिकृतावश्यकवृत्ति —'पूएइ वासवो ज अभिक्खण तेण वसुपुज्जो ॥१०८१॥ व्याख्या-पच्छद्ध ॥ वासवो देवराया, तस्स गब्भगयस्स अभिक्खण अभिक्खण जणणीए पूय करेइ, तेण वासुपुज्जो त्ति, अहवा वसूणि-रयणाणि वासवो-वेसमणो सो गब्भगए अभिक्खण अभिक्खण त रायकुल रयणेहिं पूरेइत्ति वासुपुज्जो ॥' इति । एव मलयगिरीयवृत्त्यादिष्वपि । विमलनाथपक्षे-विमल =गर्भगतेऽस्मिन् जनन्यास्तनुर्मतिश्च विमला जातेति विमल । यदुक्तमावश्यकनिर्युक्तौ — 'विमलतणुबुद्धि-जणणी गब्भगए तेण होइ विमलजिणो ।' इति । अनन्तनाथपक्षे-अनन्त =गर्भस्थे भगवति जनन्या अनन्तम्-अतिमहत्प्रमाण नानारत्नखचित दाम स्वप्ने दृष्टमतोऽनन्त । यदाह—'रयणविचित्तमणत दाम सुमिणे तओऽणतो ॥ ॥' इति । धर्मनाथपक्षे—धर्म =गर्भस्थे प्रभौ जननी दानादिधर्मपरायणा जातेति धर्म । यदुक्तम्—'गब्भगए ज जणणी जायसुधम्म त्ति तेण धम्मजिणो ।' इति । शान्तिनाथपक्षे-शान्ति =गर्भगते भगवति पूर्वोत्पन्ना ऽशिवशान्तिरभूदिति शान्ति । प्रतिपादितश्चावश्यकनिर्युक्तौ-'जाओ असिवोवसमो गब्भगए तेण सतिजिणो ॥' इति । कुन्थुनाथपक्षे—गर्भस्थे प्रभौ जननी स्वप्ने रत्नाना कुन्थुराशिं दृष्ट्वा प्रतिबुद्धेति कुन्थु । यदभाणि-'थूभ रयणविचित्त कुथु सुमिणम्मि तेण कुथु-जिणो ।' इति । अरनाथपक्षे-अर =गर्भगते स्वामिनि जनन्या स्वप्ने सर्वरत्नमयोऽरो दृष्ट इत्यर । तथा चाह—'सुमिणे अर महरिह पासइ जणणी अरो तम्हा ॥ ॥' इति । मल्लिनाथपक्षे—मल्लि गर्भस्थे भगवति जनन्या सुरभिकुसुममाल्यशयनदोहदो देवतया पूरित इति मल्लि । तथा च निगदितम्-'वर सुरहिमल्लसयणमि डोहलो तेण होइ मल्लिजिणो ।' इति । मुनिसुव्रतस्वामिपक्षे-मुनि =पदैकदेशे पद-समुदायस्योपचारात् 'ते लुग्वा'(सि०-३।२।१०८) इति सूत्रेणोत्तरपदस्य लोपाद्वा मुनिसुव्रत =गर्भस्थे भगवति माता मुनिवत्सुव्रता जातेति मुनिसुव्रत । तथा चोक्तम्-'जाया जणणी ज सुव्वयत्ति मुणिसुव्वयो तम्हा इति । नमिनाथपक्षे-नमि =गर्भस्थे भगवति परचक्रनृपैरपि प्रणति कृतेति नमि । यतश्चाह—'पणाया पच्चतणिवा दसियमित्ते जिणमि तेण णमी ।' इति । अस्य च हरिभद्रसूरिकृता वृत्ति —'उल्ललिएहिं पच्चतपत्थिवेहिं णयरे रोहिज्जमाणे अण्णराईहिं देवीए कुच्छिए णमी उववण्णो, ताहे देवीए गब्भस्स पुण्णसत्तीचोइयाए अट्टालमारोढु सद्धा समुप्पण्णा, आरूढा य दिट्ठा परपत्थिवेहिं, गब्भप्पभावेण य पणया सामतपत्थिवा, तेण से णमित्ति णाम कय ।' इति । नेमिनाथपक्षे-नेमि =गर्भगते प्रभौ जनन्या स्वप्ने रिष्टरत्नमयो महानेमिर्दृष्ट इति नेमी-मि । यदाह-'रिट्ठरयण च नेमि उप्पयमाण तओ नेमी ।' इति । पार्श्वनाथपक्षे-पार्श्व =गर्भगते प्रभौ जनन्या स्वप्ने सर्पो दृष्ट इति पार्श्व, तथा गर्भस्थे भगवति मात्रा निशि शयनीयस्थयाऽन्धकारे सर्पो दृष्ट इति गर्भानुभावोयमिति मत्वा पश्यतीति निरुक्तात्पार्श्व । तथा च भणितमावश्यकनिर्युक्तौ-'सप्प सयणे जणणी त पासइ तमसि तेण पासजिणो ।' इति । तथा चावश्यकहारिभद्रीयवृत्तौ—'गब्भगए भगवते तेलोक्कबधवे सत्तसिरं णाग सयणिज्जे णिविज्जते माया से सुविणे दिट्ठ त्ति, तहा अधकारे सयणिज्जगयाए गब्भप्पभावेण य एत सप्प पासिऊण रण्णो सय-णिज्जे णिग्गया बाहा चडाविया भणिओ य-एस सप्पो वच्चइ, रण्णा भणिय-कह जाणसि ?, भणइ-पेच्छामि, दीवएण पलोइओ, दिट्ठो य सप्पो, रण्णा चिंता गब्भस्स एसो अइसयप्पहावो जेण एरिसे तिमिराधयारे पासइ, तेण पासो त्ति णाम कय ।' इति । वीरप्रभुपक्षे श्रीवीर:=श्रिया=केवललक्ष्म्या युक्तो वीर =वीरनामाऽन्तिमतीर्थकृत वीरो महावीरो वर्द्धमानो देवार्यो ज्ञातनन्दनश्चरमतीर्थकृदित्यादि-पर्याया, यदुक्तमभिधानचिन्तामणौ-'वीरश्चरमतीर्थकृत् । महावीरो वर्द्धमानो देवार्यो ज्ञातनन्दन ॥३०॥' इति श्रीवीर । जिनसामान्यपक्षे-तु गतार्थ ।

मोहारिघ्नैकवीरं, मदनमलसरि, क्रोधदावाग्निनीरं;
मायाच्चिकूखल्लसीरं, मदकरटिहरिं, लोभधूलीसमीरम् ।
मेरुप्रख्यं हि धीरं, भवजलधितरि, तीर्णसंसारमीरं;
स्तौमि श्रीसार्ववीरं, चरणहरिदरिं, तीर्थकोटीरहीरम् ॥२॥ [स्रग्धरा] △

अतिशयकमलाढ्या, कीर्तिनीरप्रपूर्णा; भविकुमुदसमूहा, विश्वलोकप्रमोदा ।
भवपृथुविपिनाट-श्रान्तदुःखापहारी; भवतु चरमतीर्थ-स्वामिपादाब्जखानी ॥३॥
[मालिनी] 卐

संहृत्य वीरविभुतः स्वमनःस्थशङ्कां, यैर्द्वादशाङ्ग्य उदितास्त्रिपदीमवाप्य ।
वीरप्रभोर्गणधरान् प्रणमामि पूज्या-नेकेन तान्समधिकान् दश **गौतमादीन्** ॥४॥
[वसन्ततिलका] ★

यैरीत्यादिहरैः कृतं युगवरै-र्दीप्रं प्रभोः शासनं; सूरीशैश्च ▽प्रभावकैः श्रुतधनैः, स्याद्वादिभिर्वाचकैः ।
यैरूढा-ऽऽप्तजना-ऽऽप्तकीर्तिमुनिपैः, श्रीवीरपट्टस्य धूः; ते सर्वे भविपद्मबोधरवयः, क्षेमंकराः सन्तु नः॥
॥५॥ [शार्दूलविक्रीडितम्)

स्वायत्तीकृतचञ्चलेन्द्रियगणो, वैराग्यवारांनिधि-र्मायापर्वतभङ्गवज्रसदृश-श्चारित्रचूडामणिः ।
ईहावृक्षविनाशनैककरटी, साधुक्रियासंवृतो; दोषाणामनुशासको गुणिगुण-श्लाघाविधौ तत्परः ॥६॥
[शार्दूलविक्रीडितम् ।]

निःशेषागमसारपूर्णहृदयः, संवेगिवृन्देश्वरो; ज्योतिःशास्त्ररहस्यविद्गुणनिधि-र्गीतार्थमौलीश्वरः ।
स श्रीपाठकवीरशिष्यकमला-ऽऽख्याचार्यपट्टेश्वरो; भव्यानां कुशलं सदा वितरतु, श्री**दानसूरीश्वरः**॥
॥७॥ [शार्दूलविक्रीडितम्] (युग्मम्)

अन्तेवासिशिलीमुखावलिकृत-स्वाध्यायगुञ्जारव-श्चारित्रादिसुगन्धसारकलितो, वैराग्यनालान्वितः ।
स श्रीदानमुनीशपट्टसरसि, श्री**प्रेमसूर्यम्बुजः**; स्याच्चारित्रगुणादिगन्धगणदो, भव्यासुमत्प्रीतये ॥८॥
[शार्दूलविक्रीडितम्] ●

△ स्रग्धरा लक्षणम्-'भ्रकतौ म्रौ भ्नौ यि स्रग्धरा छेः' हैमछन्दोऽनु० २ अध्याय० ३४५ सूत्रम् । 'म्रौ भ्नौ यौ य प्रकृत्या स्वरगिरिविरति स्रग्धरा नाम वृत्तम्' जयकीर्तिच्छन्दो-ऽनु० २ अधि-२३८ सूत्रम् । SSSS।SS,।।।।।।S,S।SS।SS, ।

मालिनी-लक्षणम्- नौ म्यौ यो मालिनी' (जैरिति वर्तते) हैमछन्दोनुशासने २ अध्याये २४६ सू, । 'लसति वसुविरामा मालिनी नौ मयौ य' जयकीर्तिच्छन्दो ऽनु० २ अधि० १८३ सूत्रम् ॥।।।।SS,S।SS।SS,

★ वसन्ततिलका लक्षणम् 'त्भौ जौ गौ वसन्ततिलका' हैमछन्दो ऽनु० २ अध्या० २३१ सू० । 'प्राहुर्वसन्ततिलका तभजा जगौ ग' जयकीर्तिच्छन्दो०-२ अधि०-१६९ सूत्रम् । SS।S।।।S।।S।SS,

▽ रेफसंयोगत्वेन तत्पूर्ववर्ती चकारस्थोऽकारो गुरुर्न गण्यते ।

यो ह्यन्तेवासिलब्ध्या-ऽघगणधरसम-स्तीर्णसिद्धान्तवार्द्धि-र्यः कर्मग्रन्थशास्त्र-प्रमथनचतुरः,प्रेमपीयूषवार्द्धिः।
संधत्ते ह्यद्वितीयां, परमपटुमतिं, गच्छसंचालने यो; देयात्स प्रेमसूरि-श्चरणगुणमणिः, श्रेष्ठरत्नत्रयीं नः॥
॥९॥ [स्रग्धरा] △

मां गुर्वादींश्च मेऽन्या-नपि शिशुतरुण-प्रौढलोकाननेकान्;
दत्त्वा रत्नत्रयीं यो, गहनभववना-न्न्यस्तवान् क्षेममार्गे ।
यः शिष्यान् पाठयित्वा-ऽकृत पृथुयशसः, सेव्यपादान् बुधानां;
स श्रीमान्प्रेमसूरि-र्जयतु गुरुवरो, विश्ववात्सल्यमूर्तिः ॥१०॥
[स्रग्धरा] △ (त्रिभिर्विशेषकम्)

विस्तीर्णे गच्छराज्ये, निजगुरुनृपते-र्वीरतीर्थाङ्गभूते;
नीतिज्ञः कार्यदक्षो, गुरुनयनसमो, यो महामात्यकल्पः ।
गच्छे चारित्ररक्षा-ऽऽदिकरणविषये, योऽद्वितीयः सहायः;
सोढुं यस्य प्रतापं, शुचिचरणभवं, खेऽक्षमोऽदृत्यहस्कृत् ॥११॥ [स्रग्धरा]△

यो वैराग्यमहाब्धिरुज्ज्वलयशा, ईहालतापर्श्वषः;
संवेगी गुणरत्नरोहणगिरि--र्गीतार्थचूडामणिः ।
⊙पन्न्यासाऽऽख्यपदाङ्कितः सविजयो, ⊙हेमन्तनामा गणी;
भूयान्मे प्रगुरोर्गुरुः स भविक-प्राण्योघरक्षाकरः ॥१२॥
[शार्दूलविक्रीडितम्] (युग्मम्)

व्याकरणागमप्रकरणा-ऽऽदिबोधनिपुणः प्रशान्तवदनो;
ज्योतिषशास्त्रविद्गुणनिधिः, परोपकृतिहृद्वचस्तनुधरः ।
आत्मवशीकृतेन्द्रियगणो, गुरुप्रमुखभक्तिलम्पटमना:;
पित्रनुजो गुरोरपि गुरुः, स मे ललित ° रो विजयताम् ॥१३॥ [मद्रकम्] ★

धापानादरकक्रियादरकर-स्तत्त्वस्पृहो निःस्पृहः; संवेगी मथिताग करण-ग्रन्थाद्यगाधोदधिः ।
बुद्धव्याकृतितर्ककर्कशमति-र्विज्ञातषड्दर्शनो; जीयात् श्रीयुतराजशेखरमुनि-स्तातानुजो मे गुरुः
॥१४॥ [शार्दूलविक्रीडितम्] ●॥

★ मद्रकम्-'आकृतौ भ्रौ त्रौ त्रौ न्गौ मद्रकं भ्रौ" हैमछन्दो० ३ अ० ३५३ सूत्रम् । SIISISIIISI,SIIISISIIIS

⊙ एतच्च ग्रन्थप्रणयन-वृत्तिकरणकालापेक्षया-ऽधुना मुद्रणकालापेक्षया पुनराचार्यपदारूढत्वाद् आचार्यदेवेशश्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वरपट्टालङ्कारा आचार्यदेवश्रीमद्विजयहीरसूरीश्वरा इति व्यपदेशभाग् बभूव।

तथा मुद्रणकालापेक्षयाऽयं श्लोकोऽत्र योज्यः-

पट्टे साम्प्रतमश्वघोटकमिते, श्रीवर्धमानप्रभो ; श्रीप्रेमाभिधसूरिचक्रिसुगुरो-र्गच्छाधिराष्ट्राधिप + ।
जात पञ्चमपट्टभृत्खलु तथा, शिष्यो यथा पञ्चमो, गीतार्थप्रवरो जयेत्स जगति, श्रीहीरसूरीश्वर ॥ ॥

+ "गच्छाधिराष्ट्राधिपा" शब्दस्य षष्ठ्येकवचनम् ।

मोहारिघ्नैकवीरं, मदनमलसरिं, क्रोधदावाग्निनीरं;
मायाचिक्खल्लसीरं, मदकरटिहरिं, लोभधूलीसमीरम् ।
मेरुप्रख्यं हि धीरं, भवजलधितरिं, तीर्णसंसारसीरं;
स्तौमि श्रीसार्वचीरं, चरणहरिदरिं, तीर्थकोटीरहीरम् ॥२॥ [स्रग्धरा] △

अतिशयकमलाढ्या, कीर्तिनीरप्रपूर्णा; भविकुमुदसमूहा, विश्वलोकप्रमोदा ।
भवपृथुविपिनाट-श्रान्तदुःखापहारी; भवतु चरमतीर्थ-स्वामिपादाब्जखानी ॥३॥
[मालिनी] 卐

संहृत्य वीरविभुतः स्वमनःस्थशङ्कां, यैर्द्वादशाङ्ग्य उदितास्त्रिपदीमवाप्य ।
वीरप्रभोर्गणधरान् प्रणमामि पूज्या-नेकेन तान्समधिकान् दश गौतमादीन् ॥४॥
[वसन्ततिलका] ★

यैरीत्यादिहरैः कृतं युगवरै-र्दीप्रं प्रभोः शासनं; सूरीशैश्च ▽प्रभावकैः श्रुतधनैः, स्याद्वादिभिर्वाचकैः ।
यैरूढा-ऽऽप्तजना-ऽऽप्तकीर्तिमुनिपैः, श्रीवीरपट्टस्य धूः; ते सर्वे भविपद्मबोधरवयः, क्षेमंकराः सन्तु नः॥
॥५॥ [शार्दूलविक्रीडितम्)

स्वायत्तीकृतचञ्चलेन्द्रियगणो, वैराग्यवारांनिधि-र्मायापर्वतभञ्जवज्रसदृश-श्चारित्रचूडामणिः ।
ईहावृक्षविनाशनैककरटी, साधुक्रियासंवृतो; दोषाणामनुशासको गुणिगुण-श्लाघाविधौ तत्परः ॥६॥
[शार्दूलविक्रीडितम् ।]

निःशेषागमसारपूर्णहृदयः, संवेगिवृन्देश्वरो; ज्योतिःशास्त्ररहस्यविद्गुणनिधि-र्गीतार्थमौलीश्वरः ।
स श्रीपाठकवीरशिष्यकमला-ऽऽख्याचार्यपट्टेश्वरो; भव्यानां कुशलं सदा वितरतु, श्रीदानसूरीश्वरः॥
॥७॥ [शार्दूलविक्रीडितम्] (युग्मम्)

अन्तेवासिशिलीमुखावलिकृत-स्वाध्यायगुञ्जारव-श्चारित्रादिसुगन्धसारकलितो, वैराग्यनालान्वितः ।
स श्रीदानमुनीशपट्टसरसि, श्रीप्रेमसूर्यम्बुजः; स्याच्चारित्रगुणादिगन्धगणदो, भव्यासुमत्प्रीतये ॥८॥
[शार्दूलविक्रीडितम्] ●

△ स्रग्धरा लक्षणम्-'प्रकृतौ म्रौ भ्नौ यि स्रग्धरा छ्छै ' हैमछन्दोऽनु० २ अध्याय० ३४५ सूत्रम् । 'म्रौ भ्नौ यौ य प्रकृत्या स्वरगिरिविरति स्रग्धरा नाम वृत्तम्' जयकीर्तिच्छन्दो-ऽनु० २ अधि-२३८ सूत्रम्। SSSS।SS,।।।।।।S,S।SS।SS, ।

मालिनी-लक्षणम्- नौ म्यौ यो मालिनी' (जैरिति वर्तते) हैमछन्दोनुशासने २ अध्याये २४६ सू, । 'लसति वसुगिरामा मालिनी नौ मयौ य ' जयकीर्तिच्छन्दो ऽनु० २ अधि० १८३ सूत्रम् ।।।।।।SS,S।SS।SS,

★ वसन्ततिलका लक्षणम् 'त्भौ जौ गौ वसन्ततिलका' हैमछन्दो-ऽनु० २ अध्या० २३१ सू० । 'प्राहुर्वसन्ततिलका तभजा जगौ ग ' जयकीर्तिच्छन्दो०-२ अधि०-१६६ सूत्रम् । SS।S।।।S।।S।SS,

▽ रेफसयोगत्वेन तत्पूर्ववर्ती चकारस्थोऽकारो गुरुर्न गण्यते ।

यो ह्यन्तेवासिलब्ध्या-द्यगणधरसम-स्तीर्णसिद्धान्तवार्द्धि-र्यः कर्मग्रन्थशास्त्र-प्रमथनचतुरः,प्रेमपीयूषवार्द्धिः
संधत्ते ह्यद्वितीयां, परमपटुमतिं, गच्छसंचालने यो; देयात्स प्रेमसूरि-श्चरणगुणमणिः, श्रेष्ठरत्नत्रयीं नः।
॥९॥ [स्रग्धरा] △

मां गुर्वादींश्च मेऽन्या-नपि शिशुतरुण-प्रौढलोकाननेकान् ;
दत्त्वा रत्नत्रयीं यो, गहनभववना-न्न्यस्तवान् क्षेममार्गे ।
यः शिष्यान् पाठयित्वा-ऽकृत पृथुयशसः, सेव्यपादान् बुधानां;
स श्रीमान्प्रेमसूरि-र्जयतु गुरुवरो, विश्ववात्सल्यमूर्तिः ॥१०॥
[स्रग्धरा] △ (त्रिभिर्विशेषकम्)

विस्तीर्णे गच्छराज्ये, निजगुरुनृपते-र्वीरतीर्थाङ्गभृते;
नीतिज्ञः कार्यदक्षो, गुरुनयनसमो, यो महामात्यकल्पः ।
गच्छे चारित्ररक्षा-ऽऽदिकरणविषये, योऽद्वितीयः सहायः;
सोढुं यस्य प्रतापं, शुचिचरणभवं, खेऽक्षमोऽरत्यहस्कृत् ॥११॥ [स्रग्धरा]△

यो वैराग्यमहाब्धिरुज्ज्वलयशा, ईहालतापर्शुषः;
संवेगी गुणरत्नरोहणगिरि-र्गीतार्थचूडामणिः ।
⊙पन्न्यासाऽऽख्यपदाङ्कितः सविजयो, ⊙हेमन्तनामा गणी;
भूयान्मे प्रगुरोर्गुरुः स भविक-प्राण्योघरक्षाकरः ॥१२॥
[शार्दूलविक्रीडितम्] (युग्मम्)

व्याकरणागमप्रकरणा-ऽऽदिबोधनिपुणः प्रशान्तवदनो;
ज्योतिषशास्त्रविद्गुणनिधिः, परोपकृतिहृद्वचस्तनुधरः ।
आत्मवशीकृतेन्द्रियगणो, गुरुप्रमुखभक्तिलम्पटमना:;
पित्रनुजो गुरोरपि गुरुः, स मे ललित शे विजयताम् ॥१३॥ [मद्रकम्] ★

धापानादरकक्रियादरकर-स्तत्त्वस्पृहो निःस्पृहः; संवेगी मथिताग करण-ग्रन्थाद्यगाधोदधिः ।
बुद्धव्याकृतितर्ककर्कशमति-र्विज्ञातषड्दर्शनो; जीयात् श्रीयुतराजशेखरमुनि-स्तातानुजो मे गुरुः
॥१४॥ [शार्दूलविक्रीडितम्]

★ मद्रकम्-'आकृतौ भ्रौ त्रौ त्रौ न्गौ मद्रकं भ्रौ" हैमछन्दो० २ अ० ३५३ सूत्रम् । S॥S।S।॥S।,S॥S।S।

⊙ एतच्च ग्रन्थप्रणयन-वृत्तिकरणकालापेक्षया-ऽधुना मुद्रणकालापेक्षया पुनराचार्यपदारूढत्वा आचार्यदेवेशश्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वरपट्टालङ्कारा आचार्यदेवश्रीमद्विजयहीरसूरीश्वरा इति व्यपदेशभाग् ब तथा मुद्रणकालापेक्षयाऽयं श्लोकोऽत्र योज्यः-

पट्टे साम्प्रतमश्वघोटकमिते, श्रीवर्धमानप्रभो; श्रीप्रेमाभिधसूरिचक्रिसुगुरो-र्गच्छाधिराष्ट्राधिप +
जात पञ्चमपट्टभृत्खलु तथा, शिष्यो यथा पञ्चमो; गीतार्थप्रवरो जयेत्स जगति, श्रीहीरसूरीश्वरः ॥

+ "गच्छाधिराष्ट्राधिपा" शब्दस्य षष्ठ्येकवचनम् ।

सम्पूर्णः सकलो भूयाद्, विद्वच्चेतोऽब्धिचन्द्रमाः ।
मूर्खोऽपि यत्प्रसादेन, तां वागीशां स्मृतिं नये ॥१५॥
[अनुष्टुप्] ⊙

बन्धविधान ग्रन्थस्य, स्वोपज्ञस्य समासतः ।
प्रशस्तिं विवृणोम्यहं, स्वोपज्ञां वर्णनात्मका ॥१६॥ [अनुष्टुप्] ⊙
पट्टेशादिमहापुंसां, किञ्चिदैतिह्यलक्षणां ।
यथाऽऽप्तश्रुतवृत्ता-ऽऽद्य-नुसारेण यथामति ॥१७॥ [,,] ⊙
(युग्मम्)

इह खलु रागद्वेषादिविकरालश्वापदवृन्दभयैरतिभयानके महाभीषणक्रोधादिकषायलुण्टाकव्रजत्राससंपूरितेऽज्ञानघोराऽन्धकारकज्जलीभूते मिथ्यात्वदर्शनकर्दमपरिपूर्णे विषयवृक्षघनघटागहने प्रमादा-ऽविरत्यादिकण्टककलापाकीर्णे नरकगतिजनितदुःखशैलपङ्क्तिव्याप्त एकेन्द्रियादितिर्यग्गतिविषमगर्ताकुले मदनदावानलप्रजाज्वल्यमानमहाज्वालाकरालिते संयोगवियोगादिफूत्काराऽन्वितजन्मजरामरणादिरजोवृष्टियुतकर्ममहाविकटझञ्झावातैर्दुरवस्थानेऽनाद्यनन्तसंसारमहाविपिने मार्गभ्रष्टभव्यप्राणिपथिकमोक्षपुर्यध्वैकदर्शिनं केवलज्ञानालोकालोकितलोकालोकैः प्ररूपितं यथाऽवस्थिततत्त्वज्ञापकं समस्तविघ्ननाशकरं मनुष्यजन्मादिसामग्र्यन्वितमतिदुर्लभं जिनधर्मं कथमपि समासाद्य तत्र सदोद्यमशीलेन भवितव्यम्, **तथा चोक्तमुपदेशपदे—**

'लद्धूण माणुसत्तं कहचि अइदुल्लहं भवसमुद्दे। सम्मं निउंजियव्वं कुसलेहिं सया वि धम्मम्मि ॥३॥" इति

तत्राऽपि जिनोपदिष्टायां परोपकृतौ सविशेषेण प्रयतनीयम्, सा च परोपकृतिर्द्विविधा द्रव्यभावभेदात्, तत्र द्रव्योपकार ऐहिकपीडाहरणधनधान्यवस्त्राद्यैहलौकिकसुखसाधनादिप्रदानलक्षणः कनिष्ठोऽनात्यन्तिक ऐहिकदुःखोच्छेदेऽपि नाऽलम्, दुःखबीजनाशकरणस्य सामर्थ्याऽभावात्, भावोपकारस्तु मोक्षहेतुसर्वज्ञोक्तधर्मप्रदानरूप इहलोकपरलोकसकलविघ्नोन्मूलनक्षमो भूयिष्ठ आत्यन्तिकः, पारम्पर्येण दुःखबीजदहनेन परमानन्दपदप्राप्तिहेतुत्वात्, अतो भावोपकारो वास्तविको मन्यते बुधैः सदसद्वेदिभिः। सोऽपि द्विधा श्रुतचारित्रभेदात्, तत्राऽपि श्रुतस्य प्राधान्यं समस्ति, श्रुतं विना हि स्वीकृतसंयमस्य निरतिचारपालनाऽसंभवात्। **तथा चोदितं सिद्धान्ते—**

'पढमं णाणं तओ दया एव चिट्ठइ सव्वसजए। अन्नाणी किं काही किं वा नाहीइ छेअपावग ॥१॥' इति।

तथा चान्यैरपि प्रतिपादितम्—

⊙ अनुष्टुप्-'श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं, सर्वत्र लघु पञ्चमम्। द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं, सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥१०॥ पञ्चमं लघु सर्वत्र, सप्तमं द्विचतुर्थयोः। षष्ठं गुरु विजानीया-देतत्पद्यस्य लक्षणम् ॥११॥' इति श्रुतबोधः। रेफस्य सयोगत्वेन तत्पूर्ववर्ती स्वरो दीर्घो न गण्यते।

विज्ञप्तिः फलदा पुंसां न क्रिया फलदा मता । मिथ्याज्ञानात् प्रवृत्तस्य फलासंवाददर्शनात् ॥१॥

श्रुतप्राधान्यकारणं हि--

'पावाओ विणियत्ती पवत्तणा तह य कुसलपक्खम्मि ।
विणयस्स वि पडिवत्ती तिन्नि वि नाणे समप्पंति ॥ ॥

अत एव च--

गीयत्थो य विहारो बीओ गीयत्थमीसिओ (प्र० निस्सिओ) भणिओ ।
एत्तो तइयविहारो नाणुन्नाओ जिणवरेहिं ॥ ॥

तच्छ्रुतमप्यनेकविधं श्रुतविषयाणामनेकविधत्वात्, तेषां विविधविषयकश्रुतानां मध्ये दुःखबीजदहनविषयप्रतिपादकं श्रुतं प्राधान्यभावं भजते, यतोऽस्मिञ्जीवलोके सर्वेऽपि प्राणिनः सुखेप्सवो दुःखद्विषः, तथाऽपि ते दुःखबीजज्ञानाऽभावेन दुःखं दूरीकर्तुं यथा यथा प्रयतन्ते तथा तथा भृशं दुःखं प्राप्नुवन्ति । **तथा च प्रतिपादितम्**—

"दुःखद्विट् सुखलिप्सुर्मोहान्धत्वाददृष्टगुणदोषः । यां यां करोति चेष्टां तया तया दुःखमादत्ते" इति ।
दुःखस्य मौलं बीजं रागद्वेषादयः, पारम्पर्येण कर्मबन्धः तद्यथा–रागद्वेषादिभिः कर्मबन्धो भवति, कर्मबन्धेन जीवा गहनभवाऽटव्यां भ्रमन्तो दुःखदावानलेन परितपन्ति। दुःखबीजस्याऽवगमेन पुनस्ते दुःखबीजं सन्दह्याऽचिरेण चिदानन्दरूपमनन्तमव्याबाधसुखास्पदं निःशेषकर्मक्षयलभ्यं शिवं प्राप्तुं समर्थीभवन्ति । प्रकृताऽभिधास्यमानग्रन्थस्याऽपि दुःखबीजभूतरागद्वेषादिजन्यकर्मबन्धविषयकप्रतिपादकत्वेन तद्ग्रन्थनेनाऽत्यन्तश्रेष्ठश्रुतज्ञानदानविषयोपकृतौ गरीयान् प्रयत्नः कृतो भवेदित्यतः प्रेरितश्च कर्मसाहित्यनदीष्णैर्मार्गणाद्वारविवरणसंक्रमकरणाद्यनेकग्रन्थनिर्मातृभिः सुविशालगच्छाऽधिपतिभिर्वर्तमानकाले सर्वाधिकसाधुपरिवारैर्वात्सल्यनिधिभिः सिद्धान्तमहोदधिभिः परमपूज्यगुरुवर्यैः श्रीमद्विजय**प्रेमसूरीश्वर**नामधेयैर्ग्रन्थकारः **"बन्धविहाणविमुक्कं"** इत्यादिना मङ्गलादिपूर्वकेन **बन्धविधान**संज्ञकं महाशास्त्रं प्रारब्धवांस्तत्र विघ्नविनायकविनाशाय शिष्यजनप्रवर्तनाय शिष्टाचारणपरिपालनाय च भावमङ्गलं कर्तव्यम् ।

मङ्गलं हि नामादिभेदेन चतुर्भेदम् । तद्यथा-नाममङ्गलम्, स्थापनामङ्गलम्, द्रव्यमङ्गलम्, भावमङ्गलं च । तदुक्तं **विशेषाऽवश्यकभाष्ये श्रीमज्जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणपूज्यैः**–'नामं ठवणा दविए भावम्मि य मंगलं भवे चउहा ।" इति तत्र जीवद्रव्यस्य वाऽजीवद्रव्यस्य वा, एकस्य वा, अनेकेषां वा, यन्मङ्गलमिति नाम=संज्ञा नियमितं तद् "नामनामवतोरभेदोपचारात्" नाममङ्गलम् । या सद्भूताकारस्य घटादेरसद्भूताऽऽकारस्य वाऽक्षवराटकादेर्मङ्गलमिति स्थापना विहिता सा स्थापनामङ्गलम् । तदपि द्विविधं । यावत्कथिकं=शाश्वतं नन्दीश्वरचैत्यप्रतिमादिः, इत्वरमल्पकालीनं चित्राऽक्षादिकस्थम् ।

2

द्रव्यमङ्गलं द्विविधम्, आगमतो नोआगमतश्च, तत्राऽऽगमतो मङ्गलपदार्थस्य ज्ञाताऽनुपयुक्तश्च "अनुपयोगो द्रव्यम्" इति वचनात्। नोआगमतः पुनस्त्रिविधम्। तद्यथा—ज्ञशरीरद्रव्यमङ्गलम्, भव्यशरीरद्रव्यमङ्गलम्, तद्व्यतिरिक्तद्रव्यमङ्गलम्। तत्र मङ्गलपदार्थज्ञातुर्यद् व्यपगतजीवं शरीरं तज्ज्ञशरीरद्रव्यमङ्गलम्, अतीतकालनयानुवृत्त्याऽतीतमङ्गलपदार्थज्ञानाऽऽधारत्वात् भव्यस्य=मङ्गलपदार्थज्ञानयोग्यस्य यत्सचेतन शरीरं तद्भव्यशरीरद्रव्यमङ्गलम्, भविष्यत्कालनयानुवृत्त्या भविष्यन्मङ्गलपदार्थज्ञाना-ऽऽधारत्वात्। उभयत्राऽपि नोशब्दस्य सर्वनिषेधपरत्वादिदानी वर्तमानकाले सर्वथैवाऽऽगमाऽभावः। यदि वा नोशब्दो देशनिषेधपरो विवक्ष्यते तदाऽचेतनाऽपि ज्ञभव्यतनुर्यथासङ्ख्यमतीतमङ्गलपदार्थज्ञानलक्षणस्य भविष्यन्मङ्गलपदार्थज्ञानरूपस्याऽऽगमस्य हेतुत्वात्, आगमैकदेशे वर्तत एव, कारणस्य कार्यैकदेशवर्तित्वात्, यथा मृत्तिका घटस्य।

तदिति ताभ्याम्=ज्ञशरीरभव्यशरीराभ्यां व्यतिरिक्तं=भिन्नमनुपयोगेन प्रत्युपेक्षणादिमङ्गलक्रियालक्षणम्, यद्वा स्वस्तिकश्रीवत्साद्यष्टमङ्गललक्षणम्, सुवर्णरत्नदध्यक्षतकुसुममङ्गलकलशादिलक्षणं वा मङ्गलं तद्व्यतिरिक्तद्रव्यमङ्गलम्, इदं द्रव्यमङ्गलमनैकान्तिकमनात्यन्तिकं च भवति। तथा हि—चौरस्य कर्षकस्य च शकुनतया रिक्तो घट उक्तः शकुनज्ञैरतो न पूर्णकलश एकान्तेन सर्वेषां मङ्गलाय। **तथा चोक्तम्—**

"चौरस्स करिसगस्स य, रित्त कुडय जणो पससेइ। गेहपवेसे मन्नइ पुन्नो कुभो पसत्थो उ ॥१॥"

इत्यतोऽनैकान्तिकम्। नाऽप्यात्यन्तिकं यथा कोऽपि शोभनैर्द्रव्यमङ्गलैर्विनिर्गतस्तेन चाऽग्रे किञ्चिदशोभनं दृष्टं तेन तानि सर्वाण्यपि प्राक्कृतानि प्रतिहतानि, तत एवमनात्यन्तिकमिति।

भावमङ्गलं तु तद्विपरीतमैकान्तिकमात्यन्तिकं च भवति, तद्यथा—न तद्भावमङ्गलं कस्यचिद्भवति कस्यचिन्न भवतीति, किन्तु सर्वस्या ऽप्यविशेषेण भवत्येवेत्यैकान्तिकम्, न च केनाऽप्यन्येन प्रतिहन्यते, इत्यात्यन्तिकम्।

तदपि भावमङ्गल द्विविधमागमतो नोआगमतश्च। तत्राऽऽगमतो भावमङ्गलं मङ्गलपदार्थस्य ज्ञाता तज्ज्ञानोपयुक्तश्च, नोआगमतस्तु सर्वनिषेधवाचक नोशब्दमाश्रित्य प्रशस्तः क्षायिकक्षायोपशमिकादिको भावः, भाव एव मङ्गलम्=भावमङ्गलमिति व्युत्पत्त्या, उपलक्षणादागमवर्जज्ञानचतुष्टय-दर्शन-चारित्राणि च वाच्यानि। यदा मिश्रवचनो नोशब्दो गृह्यते तदाऽऽगमपाठ-जिनेन्द्रदर्शन-प्रतिक्रमण--प्रत्युपेक्षणादिक्रियां कुर्वाणस्य यो ज्ञान-दर्शन--चारित्रोपयोगपरिणामः, स भावो भावमङ्गलं यतो नाऽसौ ज्ञान-दर्शन-चारित्रोपयोगपरिणामः केवल एवाऽऽगमः, चारित्रादेरपि सद्भावान्नाऽप्यनागम एव ज्ञानस्याऽपि विद्यमानत्वादिति मिश्रता। अथवै-

कदेशार्थो नोशब्दः प्रतिपाद्यते तदा चैत्यवन्दनाद्यवस्थायां यो नमस्कारादिज्ञान-क्रिया-मिश्रितपरिणामः, सोऽपि नोआगमतो भावमङ्गलम् । यतः परिणामस्यैकदेशे नमस्कारादिज्ञानोपयोगलक्षण आगमो वर्तते । इत्याद्यन्यदपि नामादिविषये विस्तरोऽस्ति तत्त्वनुयोगद्वार-विशेषावश्यका ऽऽवश्यक-निशीथादिवृत्तिग्रन्थतो विशेषाऽर्थिना द्रष्टव्यः ।

तथा चेह श्रेयोभूते वस्तुनि प्रवर्तमानानां प्रायो विघ्नः संभवति, श्रेयोभूतत्वादेव । श्रेयोभूतं चेदं महाशास्त्रं निर्जराहेतुत्वात्पारम्पर्येण मोक्षहेतुत्वाच्च, विघ्नोपहतशक्तेश्च शास्त्र-कर्तुश्चिकीर्षितशास्त्राऽसंसिद्ध्याऽभिप्रेतपुरुषार्थस्याऽनिष्पत्तिर्मा भूदिति विघ्नसमूहोपशमनाय मङ्गलमुपादेयम् , आह च–

"बहुविग्घाइ सेयाइ तेण कयमगलोवयारेहिं । सत्थे पयट्टिअव्व-विज्जाएँ महानिहीएव्व ॥१॥" इति ।

ननु मानसादिनमस्कारतपश्चरणादिना मङ्गलमन्तरेणैव विघ्नोपघातसद्भावादिष्टसिद्धिर्भविष्य-तीत्यतः किमनेन ग्रन्थगौरवकारिणा वाचनिकनमस्कारेणेति चेत् ? सत्यम् , किन्तु श्रोतृ-प्रवृत्त्यर्थमिदं भविष्यति । तथा हि–यद्यप्युक्तन्यायेन कर्तुरविघ्नेनेष्टसिद्धिः स्यात्तथाऽपि प्रमाद-वतः शिष्यस्येष्टदेवतानमस्काररूपं मङ्गलं विना प्रक्रान्तग्रन्थाऽध्ययनश्रवणादिषु प्रवर्तमानस्य विघ्नसंभवादप्रवृत्तिः स्यात् । मङ्गलवाक्योपन्यासे तु मङ्गलप्रवचनाऽभिधानपूर्वकं प्रवर्तमानस्य मङ्गलरचनाऽऽपादितदेवताविषयशुभभावव्यपोदितविघ्नत्वेन शास्त्रे प्रवृत्तिरप्रतिहतप्रसरा स्यात् । तथा देवताविशेषनमस्कारोपादाने सति देवताविशेषगदितागमानुसारीदं शास्त्रमत उपादेयमित्येवं-विधबुद्धिनिबन्धनत्वेन शिष्यप्रवृत्त्यर्थमिदं भवति, उक्तञ्च–

"मगलपुव्वपवत्तो पमत्तसीसो वि पारमिह जाइ । सत्थिविसेसण्णाणा तु गोरवादिह पयट्टिज्जा ॥१॥"

ननु मङ्गलविकलानामपि बहुतमशास्त्राणां दृश्यते संसिद्धिस्तत्र श्रोतृजनप्रवृत्तिश्च । ततः कि-मनेनाऽनैकान्तिकेन शास्त्रगौरवकारिणा च मङ्गलेनाऽभिहितेनेति ? सत्यम् , किं तु शिष्टजना-चारपरिपालनार्थमिदं भविष्यति । तथा हि–शिष्टाः क्वचिदभीष्टे वस्तुनि प्रवर्तमाना इष्टदेवता-नमस्कारपूर्वकं प्रायः प्रवर्तन्ते । शिष्टश्चाऽयं ग्रन्थकार इति शिष्टसमाचारपरिपालितो भवत्विति मङ्गलमभिधेयम् । आह च-

'शिष्टा शिष्टत्वमायान्ति, शिष्टमार्गाऽनुपालनात् । तल्लङ्घनादशिष्टत्वं, तेषां समनुपद्यते'' इति तत्राऽऽदौ मध्येऽवसाने च मङ्गलं कर्तव्यम् , "त मगलमाईए मज्झे पज्जतए य सत्थस्स ।" इति वचन-प्रामाण्यात् , अस्य च बन्धविधानसंज्ञकस्य महाकायग्रन्थस्य चतुरः खण्डग्रन्थान् प्रकल्प्य प्रकृतिबन्धे बन्धविधानग्रन्थेऽपि च "बंधविहाणविमुक्क' इत्याद्याद्यमङ्गलम् , उत्तरप्रकृतिबन्धा-ऽऽरम्भे 'अह थभिअकम्मारिं थोउ'' इत्यादिमध्यममङ्गलम् , उत्तरप्रकृतिबन्धाऽन्ते 'सिरि उज्जइणी-मडण०'' इत्याद्यन्तिममङ्गलम् , स्थितिबन्धे "अह जीराउलनाह''इत्यादिप्रथममङ्गलम् , उत्तरप्रकृति-

द्रव्यमङ्गलं द्विविधम्, आगमतो नोआगमतश्च, तत्राऽऽगमतो मङ्गलपदार्थस्य ज्ञाताऽनुपयुक्तश्च "अनुपयोगो द्रव्यम्" इति वचनात्। नोआगमतः पुनस्त्रिविधम्। तद्यथा—ज्ञशरीरद्रव्यमङ्गलम्, भव्यशरीरद्रव्यमङ्गलम्, तद्व्यतिरिक्तद्रव्यमङ्गलम्। तत्र मङ्गलपदार्थज्ञातुर्यद् व्यपगतजीवं शरीरं तज्ज्ञशरीरद्रव्यमङ्गलम्, अतीतकालनयानुवृत्त्याऽतीतमङ्गलपदार्थज्ञानाऽऽधारत्वात् भव्यस्य=मङ्गलपदार्थज्ञानयोग्यस्य यत्सचेतनं शरीरं तद्भव्यशरीरद्रव्यमङ्गलम्, भविष्यत्कालनयानुवृत्त्या भविष्यन्मङ्गलपदार्थज्ञाना-ऽऽधारत्वात्। उभयत्राऽपि नोशब्दस्य सर्वनिषेधपरत्वादिदानीं वर्तमानकाले सर्वथैवाऽऽगमाऽभावः। यदि वा नोशब्दो देशनिषेधपरो विवक्ष्यते तदाऽचेतनाऽपि ज्ञभव्यतनुर्यथासङ्ख्यमतीतमङ्गलपदार्थज्ञानलक्षणस्य भविष्यन्मङ्गलपदार्थज्ञानरूपस्याऽऽगमस्य हेतुत्वात्, आगमैकदेशे वर्तत एव, कारणस्य कार्यैकदेशवर्तित्वात्, यथा मृत्तिका घटस्य।

तदिति ताभ्याम्=ज्ञशरीरभव्यशरीराभ्यां व्यतिरिक्तं=भिन्नमनुपयोगेन प्रत्युपेक्षणादिमङ्गलक्रियालक्षणम्, यद्वा स्वस्तिकश्रीवत्साद्यष्टमङ्गललक्षणम्, सुवर्णरत्नदध्यक्षतकुसुममङ्गलकलशादिलक्षणं वा मङ्गलं तद्व्यतिरिक्तद्रव्यमङ्गलम्, इदं द्रव्यमङ्गलमनैकान्तिकमनात्यन्तिकं च भवति। तथा हि—चौरस्य कर्षकस्य च शकुनतया रिक्तो घट उक्तः शकुनज्ञैरतो न पूर्णकलश एकान्तेन सर्वेषां मङ्गलाय। तथा चोक्तम्—

"चौरस्स करिसगस्स य, रित्त कुडय जणो पससेइ। गेहपवेसे मन्नइ पुन्नो कुंभो पसत्थो उ ॥१॥"

इत्यतोऽनैकान्तिकम्। नाऽप्यात्यन्तिकं यथा कोऽपि शोभनैर्द्रव्यमङ्गलैर्विनिर्गतस्तेन चाऽग्रे किञ्चिदशोभनं दृष्टं तेन तानि सर्वाण्यपि प्राक्कृतानि प्रतिहतानि, तत एवमनात्यन्तिकमिति।

भावमङ्गलं तु तद्विपरीतमैकान्तिकमात्यन्तिकं च भवति, तद्यथा—न तद्भावमङ्गलं कस्यचिद्भवति कस्यचिन्न भवतीति, किन्तु सर्वस्याऽप्यविशेषेण भवत्येवेत्यैकान्तिकम्, न च केनाऽप्यन्येन प्रतिहन्यते, इत्यात्यन्तिकम्।

तदपि भावमङ्गलं द्विविधमागमतो नोआगमतश्च। तत्राऽऽगमतो भावमङ्गलं मङ्गलपदार्थस्य ज्ञाता तज्ज्ञानोपयुक्तश्च, नोआगमतस्तु सर्वनिषेधवाचकं नोशब्दमाश्रित्य प्रशस्तः क्षायिकक्षायोपशमिकादिको भावः, भाव एव मङ्गलम्=भावमङ्गलमिति व्युत्पत्त्या, उपलक्षणादागमवर्जज्ञानचतुष्टय-दर्शन-चारित्राणि च वाच्यानि। यदा मिश्रवचनो नोशब्दो गृह्यते तदाऽऽगमपाठ-जिनेन्द्रदर्शन-प्रतिक्रमण--प्रत्युपेक्षणादिक्रियां कुर्वाणस्य यो ज्ञान-दर्शन--चारित्रोपयोगपरिणामः, स भावो भावमङ्गलं यतो नाऽसौ ज्ञान-दर्शन-चारित्रोपयोगपरिणामः केवल एवाऽऽगमः, चारित्रादेरपि सद्भावान्नाऽप्यनागम एव ज्ञानस्याऽपि विद्यमानत्वादिति मिश्रता। अथवै-

कदेशार्थो नोशब्दः प्रतिपाद्यते तदा चैत्यवन्दनाद्यवस्थायां यो नमस्कारादिज्ञान-क्रिया-मिश्रितपरिणामः, सोऽपि नोआगमतो भावमङ्गलम् । यतः परिणामस्यैकदेशे नमस्कारादिज्ञा-नोपयोगलक्षण आगमो वर्तते । इत्याद्यन्यदपि नामादिविषये विस्तरो-ऽस्ति तच्चानुयोगद्वार-विशेषावश्यका ऽऽवश्यक-निशीथादिवृत्तिग्रन्थतो विशेषाऽर्थिना द्रष्टव्यः ।

तथा चेह श्रेयोभूते वस्तुनि प्रवर्तमानानां प्रायो विघ्नः संभवति, श्रेयोभूतत्वादेव । श्रेयोभूतं चेदं महाशास्त्रं निर्जराहेतुत्वात्पारम्पर्येण मोक्षहेतुत्वाच्च, विघ्नोपहतशक्तेश्च शास्त्र-कर्तुश्चिकीर्षितशास्त्राऽसंसिद्ध्याऽभिप्रेतपुरुषार्थस्याऽनिष्पत्तिर्मा भूदिति विघ्नसमूहोपशमनाय मङ्गलमुपादेयम्, आह च–

"बहुविग्घाइं सेयाइं तेण कयमंगलोवयारेहिं । सत्थे पयट्टिअव्व-विज्जाएँ महानिहीएव्व ॥१॥" इति ।

ननु मानसादिनमस्कारतपश्चरणादिना मङ्गलमन्तरेणैव विघ्नोपघातसद्भावादिष्टसिद्धिर्भविष्य-तीत्यतः किमनेन ग्रन्थगौरवकारिणा वाचनिकनमस्कारेणेति चेत् ।? सत्यम्, किन्तु श्रोतृ-प्रवृत्त्यर्थमिदं भविष्यति । तथा हि–यद्यप्युक्तन्यायेन कर्तुरविघ्ने नेष्टसिद्धिः स्यात्तथाऽपि प्रमाद-वतः शिष्यस्येष्टदेवतानमस्काररूपं मङ्गलं विना प्रक्रान्तग्रन्थाऽध्ययनश्रवणादिषु प्रवर्तमानस्य विघ्नसंभवादप्रवृत्तिः स्यात् । मङ्गलवाक्योपन्यासे तु मङ्गलप्रवचनाऽभिधानपूर्वकं प्रवर्तमानस्य मङ्गलवचनाऽपादितदेवताविषयशुभभावव्यपोदितविघ्नत्वेन शास्त्रे प्रवृत्तिरप्रतिहतप्रसरा स्यात् । तथा देवताविशेषनमस्कारोपादाने सति देवताविशेषगदितागमानुसारीदं शास्त्रमत उपादेयमित्येवं-विधबुद्धिनिबन्धनत्वेन शिष्यप्रवृत्त्यर्थमिदं भवति, उक्तञ्च–

"मंगलपुव्वपवत्तो पमत्तसीसो वि पारमिह जाइ । सत्थिविसेसण्णाणा तु गोरवादिह पयट्टेज्जा ॥१।"

ननु मङ्गलविकलानामपि बहुतमशास्त्राणां दृश्यते संसिद्धिस्तत्र श्रोतृजनप्रवृत्तिश्च । ततः कि-मनेनाऽनैकान्तिकेन शास्त्रगौरवकारिणा च मङ्गलेनाऽभिहितेनेति ? सत्यम्, कि तु शिष्टजना-चारपरिपालनार्थमिदं भविष्यति । तथा हि–शिष्टाः क्वचिदभीष्टे वस्तुनि प्रवर्तमाना इष्टदेवता-नमस्कारपूर्वकं प्रायः प्रवर्तन्ते । शिष्टश्चाऽयं ग्रन्थकार इति शिष्टसमाचारपरिपालितो भवत्विति मङ्गलमभिधेयम् । आह च-

'शिष्टा शिष्टत्वमायान्ति, शिष्टमार्गाऽनुपालनात् । तल्लङ्घनादशिष्टत्व, तेषा समनुमन्यते" इति तत्राऽऽदौ मध्येऽवसाने च मङ्गलं कर्तव्यम्, "त मगलमाईए मज्झे पज्जतए य सत्थस्स ।"इति वचन-प्रामाण्यात्, अस्य च बन्धविधानसंज्ञकस्य महाकायग्रन्थस्य चतुरः खण्डग्रन्थान् प्रकल्प्य प्रकृतिबन्धे बन्धविधानग्रन्थेऽपि च "बंधविहाणविमुक्क' इत्याद्याद्यमङ्गलम्, उत्तरप्रकृतिबन्धा-ऽऽरम्भे 'अह थभिअकम्मारिं थोउ" इत्यादिमध्यममङ्गलम्, उत्तरप्रकृतिबन्धाऽन्ते 'सिरि उज्जइणी-मंडण०" इत्याद्यन्तिममङ्गलम्, स्थितिबन्धे "अह जीराउलनाह"इत्यादिप्रथममङ्गलम्, उत्तरप्रकृति-

द्रव्यमङ्गलं द्विविधम्, आगमतो नोआगमाच्च, तत्राऽऽगमतो मङ्गलपदार्थस्य ज्ञाताऽनुपयुक्तश्च "अनुपयोगो द्रव्यम्" इति वचनात् । नोआगमतः पुनस्त्रिविधम् । तद्यथा–ज्ञशरीरद्रव्यमङ्गलम्, भव्यशरीरद्रव्यमङ्गलम्, तद्व्यतिरिक्तद्रव्यमङ्गलम् । तत्र मङ्गलपदार्थज्ञातुर्यद् व्यपगतजीवं शरीरं तज्ज्ञशरीरद्रव्यमङ्गलम् । अतीतकालनयानुवृत्त्याऽतीतमङ्गलपदार्थज्ञानाऽऽधारत्वात् भव्यस्य=मङ्गलपदार्थज्ञानयोग्यस्य यत्सचेतनं शरीरं तद्भव्यशरीरद्रव्यमङ्गलम्, भविष्यत्कालनयानुवृत्त्या भविष्यन्मङ्गलपदार्थज्ञाना-ऽऽधारत्वात् । उभयत्राऽपि नोशब्दस्य सर्वनिषेधपरत्वादिदानीं वर्तमानकाले सर्वथैवाऽऽगमाऽभावः । यदि वा नोशब्दो देशनिषेधपरो विवक्ष्यते तदाऽचेतनाऽपि ज्ञभव्यतनुर्यथासङ्ख्यमतीतमङ्गलपदार्थज्ञानलक्षणस्य भविष्यन्मङ्गलपदार्थज्ञानरूपस्याऽऽगमस्य हेतुत्वात्, आगमैकदेशे वर्तत एव, कारणस्य कार्यैकदेशवर्तित्वात्, यथा मृत्तिका घटस्य ।

तदिति ताभ्याम्=ज्ञशरीरभव्यशरीराभ्यां व्यतिरिक्तं=भिन्नमनुपयोगेन प्रत्युपेक्षणादिमङ्गलक्रियालक्षणम्, यद्वा स्वस्तिकश्रीवत्साद्यष्टमङ्गललक्षणम्, सुवर्णरत्नदध्यक्षतकुसुममङ्गलकलशादिलक्षणं वा मङ्गलं तद्व्यतिरिक्तद्रव्यमङ्गलम्, इदं द्रव्यमङ्गलमनेकान्तिकमनात्यन्तिकं च भवति । तथा हि–चौरस्य कर्षकस्य च शकुनतया रिक्तो घट उक्तः शकुनज्ञैरतो न पूर्णकलश एकान्तेन सर्वेषां मङ्गलाय । **तथा चोक्तम्–**

"चोरस्स करिसगस्स य, रित्त कुडय जणो पससेइ । गेहपवेसे मन्नइ पुन्नो कुंभो पसत्थो उ ॥१॥"

इत्यतोऽनेकान्तिकम् । नाऽप्यात्यन्तिकं यथा कोऽपि शोभनैर्द्रव्यमङ्गलैर्विनिर्गतस्तेन चाऽग्रे किञ्चिदशोभनं दृष्टं तेन तानि सर्वाण्यपि प्राक्कृतानि प्रतिहतानि, तत एवमनात्यन्तिकमिति ।

भावमङ्गलं तु तद्विपरीतमैकान्तिकमात्यन्तिकं च भवति, तद्यथा––न तद्भावमङ्गलं कस्यचिद्भवति कस्यचिन्न भवतीति, किन्तु सर्वस्या ऽप्यविशेषेण भवत्येवेत्यैकान्तिकम्, न च केनाऽप्यन्येन प्रतिहन्यते, इत्यात्यन्तिकम् ।

तदपि भावमङ्गल द्विविधमागमतो नोआगमतश्च । तत्राऽऽगमतो भावमङ्गलं मङ्गलपदार्थस्य ज्ञाता तज्ज्ञानोपयुक्तश्च, नोआगमतस्तु सर्वनिषेधवाचक नोशब्दमाश्रित्य प्रशस्तः क्षायिकक्षायोपशमिकादिको भावः, भाव एव मङ्गलम्=भावमङ्गलमिति व्युत्पत्त्या, उपलक्षणादागमवर्जज्ञानचतुष्टय-दर्शन-चारित्राणि च वाच्यानि । यदा मिश्रवचनो नोशब्दो गृह्यते तदाऽऽगमपाठ-जिनेन्द्रदर्शन-प्रतिक्रमण--प्रत्युपेक्षणादिक्रियां कुर्वाणस्य यो ज्ञान-दर्शन--चारित्रोपयोगपरिणामः, स भावो भावमङ्गलं यतो नाऽसौ ज्ञान-दर्शन-चारित्रोपयोगपरिणामः केवल एवाऽऽगमः, चारित्रादेरपि सद्भावान्नाऽप्यनागम एव ज्ञानस्याऽपि विद्यमानत्वादिति मिश्रता । अथवै-

कदेशार्थो नोशब्दः प्रतिपाद्यते तदा चैत्यवन्दनाद्यवस्थायां यो नमस्कारादिज्ञान-क्रिया-मिश्रितपरिणामः, सोऽपि नोआगमतो भावमङ्गलम् । यतः परिणामस्यैकदेशे नमस्कारादिज्ञा-नोपयोगलक्षण आगमो वर्तते । इत्याद्यन्यदपि नामादिविषये विस्तरो-ऽस्ति तत्त्वनुयोगद्वार-**विशेषावश्यका ऽऽवश्यक-निशीथादिवृत्तिग्रन्थतो** विशेषाऽर्थिना द्रष्टव्यः ।

तथा चेह श्रेयोभूते वस्तुनि प्रवर्तमानानां प्रायो विघ्नः संभवति, श्रेयोभूतत्वादेव । श्रेयोभूतं चेदं महाशास्त्रं निर्जराहेतुत्वात्पारम्पर्येण मोक्षहेतुत्वाच्च, विघ्नोपहतशक्तेश्च शास्त्र-कर्तुश्चिकीर्षितशास्त्राऽसंसिद्ध्याऽभिप्रेतपुरुषार्थस्याऽनिष्पत्तिर्मा भूदिति विघ्नसमूहोपशमनाय मङ्गलमुपादेयम्, आह च-

"बहुविग्घाइं सेयाइं तेण कयमंगलोवयारेहिं । सत्थे पयट्टिअव्व-विज्जाएँ महानिहीएव्व ॥१॥" इति ।

ननु मानसादिनमस्कारतपश्चरणादिना मङ्गलमन्तरेणैव विघ्नोपघातमङ्गाद्यादिष्टसिद्धिर्भविष्य-तीत्यतः किमनेन ग्रन्थगौरवकारिणा वाचनिकनमस्कारेणेति चेत् ।? सत्यम्, किन्तु श्रोतृ-प्रवृत्त्यर्थमिदं भविष्यति । तथा हि-यद्यप्युक्तन्यायेन कर्तुरविघ्ने नेष्टसिद्धिः स्यात्तथाऽपि प्रमाद-वतः शिष्यस्येष्टदेवतानमस्काररूपं मङ्गलं विना प्रक्रान्तग्रन्थाऽध्ययनश्रवणादिषु प्रवर्तमानस्य विघ्नसंभवादप्रवृत्तिः स्यात् । मङ्गलवाक्योपन्यासे तु मङ्गलप्रवचनाऽभिधानपूर्वकं प्रवर्तमानस्य मङ्गलवचनाऽऽपादितदेवताविषयशुभभावव्यपोदितविघ्नत्वेन शास्त्रे प्रवृत्तिरप्रतिहतप्रसरा स्यात् । तथा देवताविशेषनमस्कारोपादाने सति देवताविशेषगदितागमानुसारीदं शास्त्रमत उपादेयमित्येवं-विधबुद्धिनिबन्धनत्वेन शिष्यप्रवृत्त्यर्थमिदं भवति, उक्तञ्च-

"मंगलपुव्वपवत्तो पमत्तसीसो वि पारमिह जाइ । सत्थविसेसणणाणा तु गोरवादिह पयट्टेज्जा ॥१॥"

ननु मङ्गलविकलानामपि बहुतमशास्त्राणां दृश्यते संसिद्धिस्तत्र श्रोतृजनप्रवृत्तिश्च । ततः कि-मनेनाऽनैकान्तिकेन शास्त्रगौरवकारिणा च मङ्गलेनाऽभिहितेनेति ? सत्यम्, किं तु शिष्टजना-चारपरिपालनार्थमिदं भविष्यति । तथा हि-शिष्टाः क्वचिदभीष्टे वस्तुनि प्रवर्तमाना इष्टदेवता-नमस्कारपूर्वकं प्रायः प्रवर्तन्ते । शिष्टश्चाऽयं ग्रन्थकार इति शिष्टसमाचारपरिपालितो भवत्विति मङ्गलमभिधेयम् । आह च-

'शिष्टा शिष्टत्वमायान्ति, शिष्टमार्गाऽनुपालनात् । तल्लङ्घनादशिष्टत्वं, तेषां समनुषज्यते" इति तत्राऽऽदौ मध्येऽवसाने च मङ्गलं कर्तव्यम्, "तं मंगलमाईए मज्झे पज्जतए य सत्थस्स ।" इति वचन-प्रामाण्यात्, अस्य च बन्धविधानसंज्ञकस्य महाकायग्रन्थस्य चतुरः खण्डग्रन्थान् प्रकल्प्य प्रकृतिबन्धे बन्धविधानग्रन्थेऽपि च "बंधविहाणविमुक्क' इत्याद्याद्यमङ्गलम्, उत्तरप्रकृतिबन्धा-ऽऽरम्भे 'अह धमिअकम्मारिं थोउं" इत्यादिमध्यममङ्गलम्, उत्तरप्रकृतिबन्धाऽन्ते 'सिरि उज्जइणी-मंडण०' इत्याद्यन्तिममङ्गलम्, स्थितिबन्धे "अह जीराउलनाहं" इत्यादिप्रथममङ्गलम्, उत्तरप्रकृति-

स्थितिबन्धाऽऽरम्भे "अह पणमिय सिरिभीलडि०" इत्यादिमध्यममङ्गलम्, उत्तरप्रकृतिस्थिति-बन्धाऽन्ते "सिरिमहीसरमडण०" इत्यादि चरममङ्गलम्, रसबन्धे "अह झाउ सखीसर०" इत्याद्यादिममङ्गलम्, उत्तरप्रकृतिरसबन्धारम्भे "अह चिंतामणिपास" इत्यादिमध्यममङ्गलम् उत्तरप्रकृतिरसबन्धाऽन्ते "सिरिपचासरमडण०" इत्याद्यन्त्यमङ्गलम्, प्रदेशबन्धे च पुनः "अह णिरुवममाहप्प०" इत्याद्यादिमङ्गलम्, उत्तरप्रकृतिप्रदेशबन्धाऽऽरम्भे "अह सिरिमामापास" इत्यादि मध्यममङ्गलम्, उत्तरप्रकृतिप्रदेशबन्धाऽन्ते बन्धविधानग्रन्थे ऽपि चाऽधुना गुरुपर्व-क्रमादिस्तुत्यात्मकप्रशस्तिग्रन्थलक्षणं चाऽन्तिममङ्गलं क्रियते, यद्वा बन्धविधानग्रन्थे "बन्धविहाणविमुक्क" मित्याद्याद्यमङ्गलत्वेन, मध्यममङ्गलत्वेन तु पुनरन्तरालवर्तिमङ्गलदशकम्, तथा चाऽन्त्यमङ्गलत्वेनेदं वक्ष्यमाणगुरुपर्वक्रमादिस्तुत्यात्मकप्रशस्तिग्रन्थलक्षण च मङ्गलत्रयं ज्ञेयम्।

तत्राद्यं मङ्गलं निर्विघ्नग्रन्थसमाप्त्यर्थम्, तथा चोक्तं विशेषाऽवश्यकभाष्ये **श्रीमज्जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणपादैः** "पढम सत्थत्थाऽविग्घपारगमनाय निद्दिट्ठ ॥१३॥" इति।

ननु न मङ्गलं समाप्तिजनकं कादम्बरी-नाऽस्तिकाऽनुष्ठितयोरन्वयतिरेकाभ्यां व्यभि-चारात्। न च स्वसमसंख्यविघ्नस्थलीयसमाप्तौ तत् कारणम्, नाऽस्तिकानुष्ठितस्थले च जन्माऽन्तरीयमङ्गलादेव च समाप्तिरिति **वाच्यम्**, विघ्नाऽधिकसंख्यमङ्गलस्थले समाप्त्यभावप्रसङ्गात् न च स्वानधिकन्यूनसङ्ख्यविघ्नस्थलीयत्वं निवेश्यम्, यत्र दश विघ्नाः, पञ्च प्रायश्चित्तेन नाशिताः, पञ्च च मङ्गलानि, तत्र समाप्त्यभावप्रसङ्गात्, न च प्रायश्चित्ताद्यनाश्यस्वानधिक-सङ्ख्यविघ्नस्थलीयत्वं निवेश्यम्, बलवतो विघ्नस्य बहुभिरपि मङ्गलैरनाशाद्बलवता मङ्गलेन बहू-नामपि विघ्नानां नाशाच्च। किञ्च विघ्नः समाप्तौ विशेषणम्, उपलक्षणं वा ? नाऽऽद्यः, विघ्न-स्याऽपि जन्यत्वापत्तेः। नाऽन्त्यः, नियतोपलक्ष्याऽवच्छेदकाऽभावादिति दिक्।

आवश्यकत्वाद्विघ्नध्वंस एव मङ्गलफलम्, समाप्तिस्त्वसति प्रतिबन्धके स्वकारणादेव भवति, कारीरीतो ऽवग्रहनिवृत्तौ वृष्टिरिव। 'निर्विघ्न परिसमाप्यता' इति **कामनाऽपि** 'सविशेषणे हि विधिनिषेधौ" इति न्यायाद्विघ्नध्वंसमात्राऽवगाहिनी, इत्यपि मतं न रमणीयम्। मङ्गलं विनाऽपि विघ्नध्वंसस्य प्रायश्चित्तादितो भावेन व्यभिचारात्। **न च** प्रायश्चित्ताद्यनाश्यविघ्नध्वंसे मङ्गलं हेतुरतो न दोष इति **वाच्यम्**, प्रायश्चित्तादीनामपि मङ्गलाद्यनाश्यविघ्नध्वंसं प्रति हेतु-त्वेऽन्योन्याश्रयात्। "विघ्नो मा भूत्" इति कामनया प्रवृत्तेर्विघ्नप्रागभाव एव मङ्गलफलमित्यपि न पेशल वचनम्, प्रागभावस्याऽनादित्वेनाऽसाध्यत्वात्, स्वत आगन्तुकस्य समयविशेषस्य सम्बन्धरूपस्य तत्परिपालनस्याऽपि मङ्गलाऽसाध्यत्वात्। शिष्टाचारपरिपालनं मङ्गलफलमित्यपि वार्तम्, तत्परिपालनस्याऽदृष्टद्वाराऽभीप्सितसिद्धिहेतुत्वे मङ्गलस्यैवाऽदृष्टार्थत्वौचित्यात् विघ्न-मविनाश्य धर्मविशेषस्य शिष्टाचारपरिपालनरूपस्य समाप्त्यहेतुत्वे मङ्गलफलतया विघ्ननाश-

स्यैवाऽऽवश्यकत्वाच्च। किञ्च शिष्टाचारेण विधिबोधितकर्तव्यत्वमनुमाय मङ्गले प्रवृत्तिरेव तत्परिपालनम्, न सा तत्फलम्, किन्तु तज्जनिकेति। न चाचारप्राप्ताऽतिलङ्घने प्रत्यवायस्मरणात् प्रत्यवायित्वपर्यवसन्नाशिष्टत्वशङ्कानिरास एव तत्फलम् तत्परिपालनमिति वाच्यम्, तादृश शङ्कायाः शिष्याऽवधानप्रतिपक्षत्वेऽपि समाप्त्यप्रतिपक्षत्वात्, 'कामनाविशेषनियतकर्तव्यताकस्य मङ्गलस्य तदभावेनाऽकरणेऽपि न प्रत्यवायः' इति विशेषदर्शनेन तच्छङ्कानिवृत्तेश्च तस्मान्मङ्गलं निष्फलमिति चेत्।

अत्र प्रतिविधीयते-विघ्नध्वंस एव मङ्गलं हेतुः, न चोक्तव्यभिचारः, प्रायश्चित्तादीनामपि मङ्गलत्वात्, "प्रारिप्सितप्रतिबन्धकदुरितनिवृत्त्यसाधारणकारणं मङ्गलम्" इति हि तल्लक्षणं परैर्गीयते तत्र लाघवात् "प्रारिप्सितप्रतिबन्धक" इति विशेषणं त्यज्यत इति। तदिदमुक्तमाकरे-"स्वाध्यायादेरपि मङ्गलत्वाविरोधात्"इति तथाऽपि नानेन रूपेण हेतुत्वम्, आत्माश्रयात्, किन्तु नतित्वादिना प्रातिस्विकरूपेणैव इति व्यभिचार एवेति चेत्? न नत्याद्यभिव्यङ्ग्यभावविशेषस्यैव निश्चयतो दुरितक्षयहेतुत्वात्, न कोऽपि दोष इति सर्वमवदातम्॥

परे तु-विघ्नध्वंसतत्प्रागभावपरिपालन-समाप्तिप्रचयगमन-शिष्टाचारपरिपालनानां सर्वेषामेवाऽविनिगमान्मङ्गलफलत्वम्, तत्तत्कामनया मङ्गलेन तत्तत्फलकत्वोन्नयनात् "अनुमानव्यवस्थानात् तत्संयुक्तं प्रमाणं स्यात्" (जैमि.१-३-१५) इति न्यायेन यथाचारमेव श्रुतिकल्पनात् न चैकमङ्गलप्रयोगादनेकफलापत्तिः, अनेकफलबोधकश्रुतावुद्देश्यसाहित्याविवक्षणात्, अन्यथा "सर्वेभ्यो दर्शपूर्णमासौ" इत्यत्राऽपि तत्प्रसङ्गात्, कादम्बर्यादौ समाप्तिकामनया मङ्गलाचारे मानाभावान्न दोष इत्याहुः।

अनेकफलकात्कर्मण उद्देश्यानुद्देश्य-प्रधानाऽप्रधानबहुविधफलदर्शनान्नेतद्युक्तमित्यपरे।

अथ मध्यमङ्गलं प्रथममङ्गलकरणसामर्थ्यादविघ्नेन समाप्तस्य शास्त्रस्य स्थिरतापादनार्थम्, अन्तिममङ्गलञ्च मध्यममङ्गलेन स्थिरीभूतस्य शास्त्रस्य शिष्यप्रशिष्यादिवंशेऽव्यवच्छित्तिनिमित्तम्।

तथैव प्रतिपादितं विशेषावश्यकभाष्ये-

"तस्सेव थेज्जत्थं, मज्झिमयं अंतिमं पि तस्सेव। अव्वोच्छित्तिनिमित्तं सिस्सपसिस्साइवंसस्स ॥" इति।

अत्र पुनरपि कश्चिन्नोदकः प्राह-ननु मङ्गलं शास्त्राद् भिन्नमाहोस्विदभिन्नम्? भिन्नमिति चेत्, (भण्यते) शास्त्रस्याऽमङ्गलत्वप्रसङ्गः, मङ्गलभिन्नत्वात्, यच्च स्वरूपतोऽमङ्गलं तदन्यमङ्गलकदम्बकेनाऽपि मङ्गलीकर्तुं न शक्यते स्वभावस्य च्यावयितुमशक्यत्वान्न हि खलु जडः स्वरूपेणाऽचेतनः सन् केनाऽपि चेतनीकर्तुं कथमपि शक्यते, अतो मङ्गलोपन्यासो निरर्थकः स्वकार्याऽकरणात्, तथाऽपि मङ्गलोपादान आग्रहश्चेदनवस्थाऽऽपत्तिर्दुर्वारा, तथाहि-

यथा प्रागमङ्गलस्य सतः शास्त्रस्य मङ्गलमुक्तं तथैव मङ्गलाऽन्तरमपि वक्तव्यम्, आद्यमङ्गलाऽभिधानेऽपि तस्यामङ्गलत्वात् प्राक्शास्त्रवत्, एवं मङ्गलान्तराऽभिधानेऽप्यन्यन्मङ्गलमभिधातव्यम्, न्यायस्य तुल्यत्वात्, इत्थं पुनरपि मङ्गलं वक्तव्यमिति समापतन्त्यनवस्था केन निवार्यते ? अथाऽभिन्नमिति पक्षस्तदा शास्त्रस्यैव मङ्गलत्वादन्यमङ्गलोपादान व्यर्थमेव, अमङ्गले हि मङ्गलमुपादीयते यच्च स्वत एव मङ्गलं तत्र किं मङ्गलविधानेन न हि धवलं धवलीक्रियते नाऽपि स्निग्धं स्निह्यतेऽथ यदि मङ्गलभूतस्याऽप्यन्यमङ्गलमुपादीयते तर्हि तस्याऽप्यन्यमङ्गलमुपादेयम्, मङ्गलरूपत्वाऽविशेषात्, पुनस्तस्याऽपि मङ्गलाऽन्तरमुपादेयमित्यनवस्थाप्रसङ्गः।

अत्रोच्यते–प्रथमपक्षस्तावन्नाङ्गीक्रियते, अतो न तत्रोक्तदोषाऽवकाशः, यदि वा 'तुष्यन्तु दुर्जना' इति न्यायेन स्वीकृतेऽपि तस्मिन्न प्रागुक्तदोषाऽऽपत्तिः, यतोऽस्मिन् जगति द्रव्याणि द्विविधानि, तद्यथा-भावुकानि अभावुकानि च. तत्र यानि द्रव्याण्यन्यद्रव्येण स्वरूपतया परिणमयितुं शक्यन्ते तानि भावुकानि यथाऽऽम्रशाखी, स हि निम्बनगसंसर्गेण निम्बत्वं याति। एवं पुष्पैः सह स्थितास्तिलास्तद्गन्धवासिता भवन्ति। यदुक्तम्–

"अंबस्स य निंबस्स य दोण्ह पि समागयाइ मूलाइं। ससग्गीऍ विणट्ठो अंबो निंबत्तणं पत्तो ॥
कुसुमेहि सह वसता तिला वि तग्गंधिया हुंति।' इति। यानि द्रव्याणि परद्रव्येण स्वभावतया परिणमयितुं न शक्यन्ते तान्यभावुकानि, यथा वैडूर्यमणिः, स हि चिरकालं यावत्काचयुक्तोऽपि स्वकीयप्राधान्यगुणेन काचभावं नैति। तदुक्तम्—

"भावुगअभावुगाणि अ लोए दुविहाणि होंति दव्वाणि। वेरुलिओ तत्थ मणी, अभावुगो अण्णदव्वेहिं ॥ ॥
सुचिरं पि अच्छमाणो वेरुलिओ कायमणिअउम्मीसो। न हवेइ कायभावं पाहण्णगुणेण निअएण ॥ ॥"
इति। परं शास्त्राणि तु भावुकानि, ततस्तानि स्वरूपेणाऽमङ्गलान्यपि मङ्गलेन मङ्गलरूपतया परिणस्यन्ते, लवणप्रदीपादिवन्मङ्गलस्य स्वरूपतद्रूपताऽऽपादने समर्थत्वात्, यथा हि प्रदीपः स्वपरप्रकाशनसमर्थत्वात्स्वं परं च प्रकाशयति, एवं मङ्गलमपि स्वपरमङ्गलकरणसमर्थत्वात्स्वं परं च मङ्गलयतीति प्रथमपक्षाऽभ्युपगमेऽपि न कश्चिद्दोषोऽवतिष्ठते। परमार्थतस्तु शास्त्रं मङ्गलमेव।

द्वितीयपक्षे तु न मङ्गलोपादाना-ऽऽनर्थक्यम्, शिष्यबुद्धिमङ्गलपरिग्रहाय शास्त्रस्यैव मङ्गलत्वाऽनुवादात्, अय भावः–कथं नु नाम विनेयो मङ्गलमिदं शास्त्रमित्येवं गृह्णीयादिति मङ्गलोपन्यासेन मङ्गलमिदं शास्त्रमनूद्यते। ननु शास्त्रं स्वतो मङ्गलत्वाच्छिष्यो मङ्गलमिदं शास्त्रमित्येवं न गृह्णीयात् तथाऽपि स्वकार्यसाधनाय शक्तमेव, तस्य तथास्वभावत्वात्, तत्कथमन्यमङ्गलोपादानं निरर्थकं नेति चेद्, न, वस्तुतत्त्वाऽपरिज्ञानात्, विश्वेऽस्मिन्वस्तूनां शक्तयो विचित्राः, किञ्चिद्वस्तु तथास्वरूपेण गृह्यमाणं स्वकार्यप्रसाधनाय प्रभु, यथा मणिः, मणिर्हि मणिरूपतया गृह्यमाणः स्वफलप्रदानसमर्थः, न काचशकलतया, किञ्चिद्वस्तु स्वरूपेणाऽगृह्यमाण-

मपि स्वकार्यं प्रसाधयति, यथा विषं तद्धि तथास्वरूपेणाऽज्ञातमपि भुक्तं सत्पञ्चत्वं प्रापयति, परं शास्त्रं तु मङ्गलं सदपि मङ्गलबुद्ध्या परिगृह्यमाणमेव प्रशस्तचेतोवृत्तेर्भव्यस्य मङ्गलकार्यं प्रसाधयति, अमङ्गलबुद्ध्या गृह्यमाणं शास्त्रं मङ्गलभूतमपि स्वकार्यं न करोति यथा मङ्गलभूतोऽपि साधुः कालुष्योपहतचित्तवृत्तेरभव्यस्य मङ्गलकार्यं न विदधाति । नन्वेवं सत्यमङ्गलमपि वस्तु मङ्गलमत्या परिगृह्यमाणं मङ्गलकार्यं करिष्यति, न्यायस्य साम्यान्न चैतत् क्वाऽपि दृष्टमिति चेद्, भण्यते,—स्वरूपेण मङ्ग' सत् वस्तु मङ्गलमत्या परिगृह्यमाणं तत्कार्याय शक्तम्, न पुनरमङ्गलवस्तु । अमङ्गलं वस्तु तु स्वभावेनाऽमङ्गलभूतत्वाद् मङ्गलमत्या परिगृह्यमाणमपि मङ्गलकार्यं न विदधाति । लोकप्रसिद्धमेवेदम् । तथाहि—यदि कश्चित्सुवर्णं सुवर्णतया परिगृह्य प्रवर्तते तर्हि दरिद्रताविनाशादि तत्फलमासादयति, न पुनरसुवर्णं सुवर्णतया परिगृह्य प्रवर्तमानस्तत्फलमासादयति ।

अत्राऽन्यदपि बहु वक्तव्यं मङ्गलविषयेऽवशिष्यते किन्तु तदत्र ग्रन्थगौरवभयादन्यत्र च पूर्वसूरिभिर्विस्तरेणोक्तत्वाच्चेह नोच्यते ।

अथ मङ्गलशब्दस्य व्युत्पत्तिः प्रतिपाद्यते । तथा हि—"उख, नख · अगु वगु, मगु गतौ" मङ्ग्यते=अधिगम्यते=साध्यते हितमनेनेति मङ्गलम्, "मृदिकन्दि०"(सि० उणा० ४६५) इति सूत्रेणा-ऽलप्रत्ययः । यद्वा मङ्ग्यते=प्राप्यते स्वर्गो-ऽपवर्गो वा-ऽनेनेति मङ्ग इति धर्मस्याख्या, पूर्ववैयाकरणप्रसिद्धेः, "लाक् आदाने" मङ्गं लाति=समादत्त इति मङ्गलम्, "आतो डोऽह्वावाम." (सि० ५-१-७६) इति सूत्रेण कर्तरि डप्रत्ययः, धर्मोपादानहेतुरित्यर्थः । अथवा निपातनादभीष्टार्थप्रकृतिप्रत्ययेन मङ्गलशब्दः साध्यते । तद्यथा—"मकुङ् मण्डने" मङ्क्यतेऽलङ्क्रियते शास्त्रमनेनेति मङ्गलम्, यद्वा "मडु भूषायाम्." मण्ड्यते=शास्त्रमलङ्क्रियतेऽऽनेति मङ्गलम्, यद्वा "मनिंच् ज्ञाने" मन्यते=ज्ञायते=निश्चीयते विघ्नाभावोऽनेनेति मङ्गलम्, यद्वा 'मदैच् हर्षे" माद्यन्ति=हृष्यन्ति=मदमनुभवन्ति विघ्नाभावेन शिष्या अनेनेति मङ्गलम्, यद्वा "मदुङ् स्तुतिमोद-मद-स्वप्न-गतिषु" मन्दन्ते=मोदन्ते, शेरते विघ्नाऽभावेन निष्प्रकम्पतया सुप्ता इव जायन्ते, शास्त्रस्य पारं गच्छन्त्यनेनेति मङ्गलम्, यद्वा 'महीङ् वृद्धौ पूजायाञ्च' मह्यते=पूज्यते शास्त्रमनेनेति मङ्गलम्, सर्वत्र अलप्रत्ययो विधीयते । ततो मङ्गलमिति रूपं निपातनात्पृषोदरादित्वात्साधु । अथवा मां गालयति भवात्=संसारादपनयतीति मङ्गलम् । यद्वा मलं=पापं गालयति=स्फेटयतीति मङ्गलम् । यदि वा शास्त्रस्य मा भूद् गलो=विघ्नोऽस्मादिति मङ्गलम् । यद्वा शास्त्रस्य मा भूद् गलो=नाशोऽस्मिन्निति मङ्गलम् । सम्यग्दर्शनादिमार्गलयनादिति मङ्गलम् ।

यथा ग्रन्थकर्तुः श्रोतॄणां चाऽविघ्नार्थं मङ्गलं वक्तव्यम्, तथा प्रेक्षावतां प्रवृत्त्यर्थमभिधेयादित्रयमपि वक्तव्यम् । तथा चोक्तम्—

"प्रेक्षावतां प्रवृत्त्यर्थं, फलादित्रितयं स्फुटम् । मङ्गलं चैव शास्त्रादौ, वाच्यमिष्टार्थसिद्धये ॥१॥" इति ।

तथा चाऽत्राऽभिधेयादित्रयं बन्धविधानग्रन्थारम्भे 'बंधविहाण०" इत्यादिकायां प्रथमगाथायामेव "गुरुकिवाए। भणिमु सपरसेयत्थ बधविहाण जहासुत्त ॥१॥" इत्यनेन साक्षात्तथाऽर्थापत्तिगम्यं प्रतिपादितमेव । तद्यथा-"बधविहाण" इत्यनेनाऽभिधेयम् । "सपरसेयत्थ" इत्यनेन ग्रन्थकर्तृश्रोत्रोर्द्वयोरपि परम्परप्रयोजनं परमपदप्राप्तिलक्षणं साक्षादुक्तम् । ग्रन्थकर्तुरनन्तरप्रयोजनं तु सत्त्वानुग्रहः, श्रोतृणां च प्रकृतग्रन्थज्ञानम् , तच्च सामर्थ्याज्ज्ञायते । सम्बन्धस्तु "गुरुकिवाए" इत्यनेन यद्वा "जहासुत्त" इत्यनेन वा गुरुपर्वक्रमलक्षणः श्रद्धानुसारिणः प्रति शब्दतः साक्षात्प्रतिपादित एव । तर्काऽनुसारिणः प्रति वाच्यवाचकरूप उपायोपेयलक्षणो वाऽर्थतो गम्यते ।

अथवा बन्धविधानग्रन्थस्य तथा तदेकदेशरूपप्रदेशबन्धलक्षणखण्डग्रन्थस्याऽप्येकदेशभूतोऽपि गुरुस्तुत्यात्मकप्रशस्तिलक्षणो बृहत्प्रमाणत्वेन खण्डग्रन्थतया भिन्नग्रन्थ एव यदि कल्प्यते, तदा तत्राऽभिधेयादित्रयं यद्यपि साक्षात्शब्दतो न वक्ष्यते ग्रन्थकृता, तथाप्यर्थतो गम्यत एव । तद्यथा-गुरुपरम्परादिकवर्णनमभिधेयम् । तच्च प्रेक्षावत्प्रवृत्त्यर्थमभिधातव्यम् । अन्यथा किमत्र शास्त्रेऽभिधेयमिति संदिग्धमनसो न तत्र प्रवृत्तिं कुर्युः, कथयेयुश्च नारब्धव्योऽयं ग्रन्थः, निरभिधेयत्वात् , काकदन्तपरीक्षावत् । **तथा चोक्तम्—**

"श्रुत्वाऽभिधेय शास्त्रादौ, पुरुषार्थोपकारकम् । श्रवणादौ प्रवर्तन्ते, तज्जिज्ञासादिनोदिता ॥१॥ नाश्रुत्वा विपरीत वा, श्रुत्वाऽऽलोचितकारिण । काकदन्तपरीक्षादौ प्रवर्तन्ते कदाचन ॥२॥" इति।

अभिधेये ज्ञातेऽपि न प्रयोजनमविदित्वाऽल्पधीरपि प्रवर्तते । **यदुक्तम्—**

"प्रयोजनमनुदिश्य, न मन्दोऽपि प्रवर्तते । एवमेव प्रवृत्तिश्चेच्चैतन्येनाऽस्य किं भवेत ॥१॥" इति ।

प्रेक्षावन्तस्तु नैव प्रवर्तेरन् , अन्यथा प्रेक्षावत्त्वहानिप्रसङ्गात् । ते वदेयुश्च नारभ्योऽयं ग्रन्थः प्रयोजनशून्यत्वात् , कण्टकशाखामर्दनवदिति । ततो ग्रन्थारम्भप्रयत्ननिष्फलताशङ्कानिरासाय प्रयोजनं दर्शनीयम् । तत् पूर्ववद् द्विधा-ऽपि द्विप्रकाराऽन्वितं बोध्यम् ।

तत्रेह परम्परप्रयोजनं कर्तृश्रोत्रोरित्थमवसातव्यम्-ग्रन्थकर्ता भव्यसत्त्वानुग्रहप्रवृत्तोऽचिरान्मोक्षलक्ष्मीं प्राप्नोति । **यदाहुर्वाचकमिश्राः—**

"सर्वज्ञोक्तोपदेशेन, य सत्त्वानामनुग्रहम् । करोति दु खतप्ताना स प्राप्नोत्यचिराच्छिवम् ॥१॥" इति ।

श्रोतारो हि ज्ञातमहापुरुषचरित्रा अपवर्गप्राप्त्यर्थं समस्तप्रयत्नं कुर्वाणा परमपदं प्राप्स्यन्ति ।

तथा चोक्तम्—

"सम्यग्भावपरिज्ञाना द्विरक्ता भवतो जना । क्रियाऽऽसक्ता ह्यविघ्नेन, गच्छन्ति परमा गतिम् ॥१॥" इति।

विदितेऽपि प्रयोजनेऽतीन्द्रियपदार्थनिरूपकस्य ग्रन्थस्य सर्वज्ञमूलताज्ञानं विना न तत्र प्रेक्षावन्तः प्रवर्तेरन् भणेयुश्च ते नारब्धव्योऽयं ग्रन्थः, सम्बन्धशून्यत्वात्स्वेच्छाविरचितशास्त्रवदिति ।

ततः सम्बन्धो दर्शनीयः, सोऽपि पूर्ववद् द्विविधो द्रष्टव्यः ।

अथ बन्धविधानग्रन्थस्याऽन्तिममङ्गलरूपं प्रशस्तिग्रन्थं कर्तुकामो ग्रन्थकार आदौ ताव-च्चतुर्विंशतिजिनस्तुतिविषयां पथ्या-ऽऽर्यामाह—

इह भरहे चउवीसा, अरहा अवसप्पिणीअ एआए ।
जाआ धम्माइगरा, अउलबला ते जयन्तु जगे ॥१॥ (पच्छाआ)

(प्रे०) "इह" इत्यादि, 'इह' त्ति, अलोकमध्ये गगने केनाऽप्यकृतोऽधृतश्च स्वयं-सिद्धो निराधारः सर्वदिक्षु वृत्ताकारो वैशाखसंस्थानस्थकटीतटन्यस्तहस्तद्वयनराकृतिनिभो यद्वा-ऽधोमुखस्थायिमहाशरावपृष्ठगतलघुसरावसंपुटसन्निभ उत्पत्तिव्ययध्रौव्यगुणधर्माऽस्तिकायादिषड्-द्रव्यसंपूरित ऊर्ध्वत्वेन चतुर्दश(१४)रज्जुप्रमाणो वृत्तत्वेनाऽऽयामविष्कम्भाभ्यां सदृशोऽधोलोके सप्त(७)रज्जुप्रमाणः क्रमेण हीयमानस्तिर्च्छालोक एक(१)रज्जुप्रमाणस्ततो वर्धमानः क्रमेणोर्ध्वलोकस्य मध्यभागे पञ्च(५)रज्जुप्रमाणस्ततो हीयमानो लोकाऽग्र एक(१)रज्जु-प्रमाणो लोकोऽस्ति । तादृशलोकस्य मध्यभाग उच्चस्त्वेन चतुर्दश (१४) रज्जुप्रमाणा वृत्त-त्वेन विस्तीर्णदैर्ध्याभ्यां तुल्यैक(१)रज्जुप्रमाणा त्रसनाड्यस्ति । तस्यामेव त्रसनाड्यां त्रसजीवाः सन्ति, नाऽन्यत्र; यतस्तत्र केवलाः स्थावरा एव, तेषां सर्वलोकव्यापित्वात् । साधिकसप्त(सा-७)रज्जुमिते तप्राकारेऽधोलोके सप्तविधानां नरकाणां प्रत्येकं स्वरूपप्रतरनरका-वाऽऽसादिसंख्यादेहमानायुष्कप्रमाणाहारविधिवेदनादिकं भवनपतिदेवादिसत्कभवनादिकं च तथा किञ्चिन्न्यूनसप्तरज्जुप्रमाण ऊर्ध्वीकृतमृदङ्गसन्निभ ऊर्ध्वलोके द्वादशकल्पनवग्रैवेयकपञ्चाऽनुत्त-राणां प्रत्येकं स्वरूपप्रतरविमानादिसंख्यादिदेहमानायुष्यप्रमाणाहारविधिसातवेदनीयतारतम्या-दिकं सिद्धशिलास्वरूपं च तथा मेरुमध्यव्यवस्थितादष्टप्रदेशाद् रूचकाख्यादधो नवशतयोजन-प्रमाण ऊर्ध्वमपि शतयोजननवकमिते तिर्च्छालोके तिर्यग्नरादीनां व्यन्तरदेवानाञ्चावासादिकं द्वीपसमुद्रक्षेत्रपर्वतनद्युद्यानादिकमित्यादिकं ज्योतिश्चक्रादिकं च बहुवक्तव्यं समुपस्थितं भवति, किन्तु तत्सर्वकथने सत्यन्य एव नूतनग्रन्थः स्यात्ततो ग्रन्थबाहुल्यभयाद् ग्रन्थाऽन्तरेषु विस्तरेण प्रतिपादितत्वाच्च नेह तन्यते विशेषाऽर्थिना तु **श्रीमन्महामहोपाध्यायविनयविजय-गणिकृतक्षेत्रलोकप्रकाश-श्रीमच्चन्द्रसूरिविहितबृहत्संग्रहणी--श्रीमद्रत्नशेखरसूरि-विरचितक्षेत्रसमासादयो ग्रन्था अवलोकनीयाः** । तिर्च्छालोकेऽसंख्या द्वीपसमुद्राः सन्ति; तेषु मध्यभागे जम्बूद्वीपधातकीखण्डपुष्करवरद्वीपार्धरूपे लवणसमुद्रकालोदधिसमुद्रद्वयाऽन्त-रिते मानुषोत्तरपर्वताऽर्वाग्भागवर्तिनि सार्धद्वीपद्वये मनुष्यक्षेत्रे समयक्षेत्रे वा पञ्चदश (१५) कर्मभूमयस्त्रिंशद् (३०)अकर्मभूमयश्च सन्ति; तत्र पञ्चदश (१५) कर्मभूमयस्त्वेवं एको जम्बू-

द्वीपस्य द्वौ धातकीखण्डस्य द्वौ च पुष्करवरद्वीपार्धस्येत्येवं पञ्च महाविदेहाः, पञ्चैरवतानि पञ्च भरतानिः तत्राऽपि जम्बूद्वीपसम्बन्धिनीतीहशब्दार्थः ।

"भरहे" त्ति भरते=भरतक्षेत्रे सामान्येनोक्तेऽपि दक्षिणार्धभरतस्य मध्यखण्डे तत्त-न्नगर्यामिति ज्ञेयम् । अत्राऽपि भरतक्षेत्रविषया बहुवक्तव्यता स्यात्, किन्तु तदन्यत्र ग्रन्थे-षूक्तत्वादिह पिष्टपेषणं मा भूदिति नोच्यते ।

"अवसप्पिणीअ एआए" त्ति, 'एतस्यामवसर्पिण्याम्'-एतस्यामिति वर्तमानकाल-सम्बन्धिन्यां न तु भूतभविष्यत्कालसम्बन्धिन्यामिति, अवसर्पति हीयमानारकतया, अवसर्पयति वा=ऽऽयुष्कशरीरादिभावान् ह्रापयतीत्यवसर्पिणी, यद्वा अवसर्पो=भावानां पतत्प्रकर्षता, सोऽस्यामस्ति साऽवसर्पिणी । तथा चोक्तं जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्रे- अणतेहिं वण्णपज्जवेहिं गंधपज्जवेहिं यावत्परिहायमाणेहिं ओसप्पिणी पडिवज्जइ" । महामहोपाध्यायविनयविजयगणिपादैस्तु लोकप्रकाशग्रन्थस्य काललोकप्रकाशएकोनत्रिंशत्तमसर्गे "यस्यां सर्वे शुभा भावाः, क्षीयन्ते-ऽनुक्षणं क्रमात् । अशुभाश्च प्रवर्द्धन्ते, सा भवत्यवसर्पिणी ।।४४।। इति ज्योतिष्करण्डवृत्त्यभिप्राय" इति ।

अयम्भावः-अस्मिञ्जन्मजरामरणादिदुःखाकुलेऽनाद्यनन्तसंसारे भूतकालेऽनन्ताः पुद्गलपरावर्ताः संजाताः, भविष्यति काले चाऽनन्ता भविष्यन्ति । तेषां स्वरूपं ग्रन्थगौरवभयादत्र नोच्यते । विशेषजिज्ञासुना जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिकाललोकप्रकाशप्रवचनसारोद्धारादितो ज्ञातव्यम् । तादृशे चैकस्मिन् पुद्गलपरावर्तेऽनन्तानि कालचक्राणि भवन्ति, एकैकस्य कालचक्रस्याऽव-सर्पिण्युत्सर्पिणीलक्षणौ द्वौ विभागौ कालविशेषरूपौ भवतः, तादृश एकस्मिन् विभागे षडराः भवन्ति, तेषां विस्तरेण प्रत्यरगतप्राणिनां देहमानायुष्कादिकं, पल्योपमसागरो-पमादिकं, त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्रादिकमित्येवमादिके स्वरूपे भण्यमाने सति ग्रन्था-ऽन्तरो जायत इत्यतोऽन्यत्र च प्रपञ्चेन कथितत्वान्नेह भूयो विस्तरेण व्याख्यायते । तदर्थिना तु काललोकप्रकाशजम्बूप्रज्ञप्तिप्रमुखा ग्रन्था अवलोकनीयाः । किन्तु यत्किञ्चिद् दिग्दर्शनमात्रं प्रदर्श्यते । तत्र चतुःकोटिकोटिसागरोपमप्रमितः प्रथमोऽरः सुषमसुषमाऽ-भिधः, त्रिकोटाकोटिसागरोपममानो द्वितीयः सुषमाख्यः, द्विकोटीकोटिसागरोपममितस्तृतीयः सुषमदुष्षमाह्वः, द्विचत्वारिंशद्वर्षसहस्रन्यूनैककोटाकोटिसागरोपमप्रमाणस्तुर्यो दुष्षमसुषमसंज्ञकः, एकविंशतिवर्षसहस्रमितः पञ्चमो दुष्षमाऽभिधः, तावन्मानः षष्ठो दुष्षमदुष्षमनामा- इत्येवं दश-कोटाकोटीसागरोपमप्रमाणाऽवसर्पिणी, तद्विपरीतक्रमेण तावन्मानोत्सर्पिणी च तयोर्द्वयोर्मीलने विंशति(२०)कोटिकोटीसागरोपमप्रमाणं कालचक्रं भवति । तत्रोत्सर्पिणी नाम-उत्सर्पो=भावाना-मेव रोहत्प्रकर्षता सोऽस्यामस्ति सोत्सर्पिणी । लोकप्रकाशे तु "शुभा भावा विवर्द्धन्ते क्रमाद्यस्यां प्रतिक्षणम् । हीयन्ते चाऽशुभा भावा, भवत्युत्सर्पिणीति सा ।" इति । अवसर्पिण्याः प्रथमारकत्रिके

युगलिका भवन्ति। तृतीयाराकस्याऽन्तिमपल्याऽष्टमांशे शेषे सप्त मताऽन्तरेण पञ्चदश कुलकरा भवन्ति। सैकोननवतिपक्षेषु चतुरशीतिपूर्वेषु शेषेषु लोकव्यवहारस्य लोकोत्तरधर्मतीर्थस्य च प्रवर्तकस्य प्रथमजिनपतेर्जन्म, एकोननवतिपक्षेषु शेषेषु च निर्वाणं भवति, अस्मिन्नेवारके प्रथम-चक्रवर्त्यपि जायते। शेषास्त्रयोविंशतिर्जिनास्तथैकादश चक्रवर्त्तिनो नव बलदेवा नव वासुदेवा नव प्रतिवासुदेवाश्चेति चतुर्थारके एकषष्टिः, द्वौ च तृतीयार इति सर्वसङ्ख्यया त्रिषष्टिशलाकाः पुमांसो भवन्ति। चतुर्थारस्यैकोननवतिपक्षाऽधिकद्वासप्ततिवर्षे शेषे चरमतीर्थकरस्य जनिः, एकोननवतिपक्षेषु शेषेषु निर्वाणं च भवति। तस्य च धर्मतीर्थं पञ्चमारकं यावत्प्रवर्तते पञ्चमारकान्त्यदिवसे प्रथमप्रहरे धर्मस्य व्यवच्छेदो जायते। द्वितीयप्रहरेऽर्थान्मध्याह्ने व्यवहारविच्छेदोऽन्त्यप्रहरान्तिमभागेऽग्निनाशो जायते। तथा चोक्तं कालसप्ततिकायाम्-

"सुअसूरिसंघधम्मो, पुव्वण्हे छिज्जिही अगणि साय। निवविमलवाहणो सुहमंमंतिनय धम्म मज्झण्हे॥५४॥"

इति। ततो धर्मतीर्थरहितो लोकव्यवहारोज्झितश्च षष्ठोऽरो भवति। ततः षष्ठारकवदुत्सर्पिण्यां प्रथमारको भवति, पञ्चमारकवत्तीर्थं विना द्वितीयोऽरः स्यात्, तृतीयारस्यैकोननवतिपक्षेषु व्यतीतेषु प्रथम-जिनेशितुर्जननं सैकोननवतिपक्षेषु द्वासप्ततिहायनेषु गतेषु मोक्षः। तथा च प्रतिपादितं काल-सप्ततिकाप्रकरणे-"कालदुगे तिचउत्थारएसु एगूणणवइपक्खेसु। सेसगएसु सिज्झन्ति हुन्ति पढमतित्थ-जिणिंदा॥३१॥" इत्येवमवसर्पिणीचतुर्थारकवद् व्युत्क्रमेणाऽन्येऽपि द्वाविंशतिर्जिनेन्द्राः, एका-दश चक्रिणः, नव बलदेवाः, नव वासुदेवाः, नव प्रतिवासुदेवाश्चाऽस्मिन्नेवारे स्युः, चतु-र्थारकस्यैकोननवतिपक्षेषु व्यतिक्रान्तेषु चतुर्विंशतितमस्याऽर्हत उद्भवः, सैकोननवतिपक्षेषु चतु-रशीतिलक्षपूर्वेषु समाक्रान्तेषु सत्सु (अर्थात्सैकोननवतिपक्षे त्रुटिताङ्के समाक्रान्ते सति) पुनर्निर्वाणम्, तस्य तीर्थं संख्येयपूर्वलक्षानि यावत्प्रवर्तते तथा चोक्तं प्रवचनसारोद्धारे 'ओसप्पिणिअंतिम-जिणतित्थं सिरिरिसहणाणपज्जाया। संखेज्जा जाव इमा तावयमाणं धुवं भविही॥१४३८॥" इति तत-स्तीर्थविच्छेदो भवति, युगलिकभावश्च भजत इत्येवमस्मिंश्चतुर्थारकेऽवसर्पिणीतृतीयारवत्प्रतिलोम्येन सर्वं ज्ञेयम्, परन्त्वादिजिनवद्व्यवहारप्रवर्तकत्वं, कुलकरांश्च विहाय। मतान्तरेण पुनः कुलकराणां संभवोऽस्ति। तत्त्वं पुनस्तद्विदो विदुः। तथा चोक्तं लोकप्रकाशे काललोके-"एवं चात्राऽवसर्पिणी-प्रातिलोम्यौचित्येनोत्सर्पिणीषु चतुर्थारकस्यादौ चतुर्विंशतितमजिननिर्वाणानन्तरं पञ्चदश कुलकरा उक्ता, परमेतन्निर्णेतुं न शक्यते यदुत्सर्पिण्यां द्वितीयारकपर्यन्ते कुलकरा भवन्ति उत चतुर्थारकस्यादौ भवन्ति, यत एष निर्णयो ह्यनन्तरभविष्यदुत्सर्पिण्यनुसारेण कर्तुं शक्यते भविष्यदुत्सर्पिण्यां च कुलकरानाश्रित्य शास्त्रे भूयान् विसंवादो दृश्यते, तथाहि-कालसप्ततिकादीपालिकाकल्पादिषु च द्वितीयारकपर्यन्ते विमल-वाहनाद्यः सप्त कुलकरा उक्ता, स्थानाङ्गे तु सप्तमे स्थानके सप्त कुलकरा उक्ता, तत्र सुमति-नामापि नोक्तम्, दशमे तु सीमङ्करादयो दशोक्ता, स्थानाङ्गनवमस्थानके च सुमतिपुत्रत्वेन पद्म-नाभोत्पत्तिरुक्ता। तथा जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्रे च द्वितीयारके कुलकरा मूलत एव नोक्ता चतुर्थारके तु एकस्मिन् पक्षे मूलत उक्ता, पक्षान्तरे च पञ्चदशोक्तास्तथाहि-"जा चेव ओसप्पिणीए पच्छिमे

बलदेववासुदेवानां प्रत्येकं विंशतिरन्ये पुनर्दशैव मन्यन्ते, ते हि पूर्वापरलक्षणे महाविदेहक्षेत्र एकैकमिति प्रत्येकमहाविदेहक्षेत्रे द्वे द्वे एव जिनादीनी स्वीकुर्वन्ति । ततः संक्षेपतः प्रदर्शितकाल विशेषलक्षणायामत्रसर्पिण्यामेतस्यां "चउवीसा अरहा"त्ति. 'चतुर्विंशतिरर्हन्तः' चतुर्विंशतिः= चतुर्विंशतिसङ्ख्याकाः, चतुस्त्रिंशतमतिशयान परमभक्तिपरसुरासुरनरेन्द्रादिकृतामशोकाद्यष्टमहाप्रातिहार्यादिरूपा पूजामभ्युत्थानादिमंभ्रमलक्षणं सत्कारं वाऽर्हन्तीत्यर्हन्तः "सुगृद्विषार्हः सत्रिशत्रुस्तुत्ये" (सि० ५-२- २६) इत्यतृश्प्रत्ययस्ते चाऽर्हन्त', विषयकषायवेदनापरिषहोपसर्गादिरूपाणामष्टकर्मलक्षणानां वाऽरीणां हन्तार इत्यर्हन्तः, रजसो=वध्यमानकर्मणो हन्तार इति वाऽर्हन्तः, न विद्यते रह एकान्तो=गोप्यं येषाम् , सकलसन्निहितव्यवहितस्थूलसूक्ष्मपदार्थसाक्षात्कारित्वादिति वा तेऽर्हन्तः, सर्वत्र पृषोदरादित्वादिष्टरूपनिष्पत्तिः । **यद्वा** नाऽस्ति रहः=प्रच्छन्नं किञ्चिदपि येषां प्रत्यक्षज्ञानित्वात्तेऽरहसः । **यद्वा** सिद्धिगमनं प्रत्यर्हन्तीत्यर्हाः=योग्याः 'अच्' (सि० ५ १-४९) इत्यनेन कर्तर्यच्प्रत्ययः । चतुर्विंशतेरप्यर्हतां प्रत्येकं कल्याणतिथिजननीजनकयक्षयक्षिणीगणधरकेवलिमनःपर्यवज्ञान्यादिसङ्ख्यादिस्वदेहप्रमाणवर्णस्वायुष्कपूर्वभवोपसर्गतपस्यादिकं चतुस्त्रिंशदतिशयादिकञ्च बहुवक्तव्यमस्ति किन्तु गौरवभयादिह नोच्यते । ते पुनः कीदृशा इत्याह-

"**धम्माइगरा**" त्ति, धरतीति धर्मः "अर्त्तीरि०" (सि० उणा० ३३८) इति सूत्रेण कर्तरि मप्रत्ययः । **यदुक्तम्**-"दुर्गतिप्रपतत्प्राणिधारणाद् धर्म उच्यते" इति **तथैव पञ्चाशकवृत्त्यादावपि प्रतिपादितम् , यद्वा** दुर्गतौ प्रपतन्तं सत्त्वसंघातं धारयतीति धर्मः, पूर्वेणैव सूत्रेण शब्दसिद्धिः । **यद्वा** दुर्गतौ प्रपततः प्राणिनो धारयति सुगतौ च तान् स्थापयतीति धर्मः, पूर्ववद् मप्रत्ययः । **तथा चोक्तं धर्मसग्रहे धर्मबिन्दुग्रन्थे च** "दुर्गतिपतज्जन्तुजातधारणात्स्वर्गादिसुगतौ धानाच्च धर्म" इत्येवमन्यत्राऽप्युक्तम्-"दुर्गतिप्रसृताञ्जन्तून् यस्माद्धारयते पुन । धत्ते चैतान् शुभे स्थाने तस्माद्धर्म इति स्मृत" इति, तथा **धर्मरत्नप्रकरणेऽपि साक्षितयोक्तम्**-'दुर्गतिप्रसृतान् जन्तून् यस्माद्धारयते तत । धत्ते चैतान् शुभे स्थाने, तस्माद्धर्म इति स्मृत ॥' इति । आदिं कुर्वन्तीति, आदिकराः= स्थापकाः सङ्ख्या (सि० ५—१—१०२) इत्यनेन कर्तर्यच्प्रत्ययः, धर्मस्यादिकराः=धर्मादिकराः= धर्मतीर्थस्थापका इत्यर्थः, अनेन च चत्वारोऽतिशया द्योतिता भवन्तिः तद्यथा—धर्मतीर्थस्य स्थापनोपदेशमृते न भवतीति वचनातिशयः, उपदेशरूपं हि वचनं च ज्ञानेन विना न भवतीति ज्ञानाऽतिशयः, स चाऽपायाऽपगमेन विना नेत्यपायापगमाऽतिशयोऽपि द्योतितः, पूजातिशयस्तु धर्मतीर्थस्थापकत्वेनैव सिद्धः; **यद्वा** ज्ञानाद्यतिशयत्रययुक्तोऽवश्यं पूजार्हो भवतीति पूजातिशयो गम्यते; **अथवा**ऽर्हत्शब्दव्युत्पत्त्यैव पूजाऽतिशयोऽपायापगमाऽतिशयो वा द्योतितस्तत एकस्मिन द्योतितेऽन्ये द्योतिता एव, यतस्तेषां चतुर्णामपि सहचारित्वात् ; **यद्वा**ऽर्ह- [illegible]त्या चतुस्त्रिंशदप्यतिशयाः कथिताः सन्ति ।

तिभागे वत्तव्वया सा भाणियव्वा कुलकरवज्जा उसभसामिवज्जा, अण्णे पढंति तीसे ण समाए पढमे तिभाए इमे पण्णरस कुलगरा समुप्पज्जिस्सति, तंजहा–सुमइ जाव उसभे, सेस त चेव, दंडनीईओ पडिलोमाओ णेयव्वाओ" अत्र च ऋषभनामा कुलकरो, न तु ऋषभस्वामिनामा तीर्थकृदिति तद्वृत्तौ ॥ एवं च कुलकरानाश्रित्य दुष्षमाकालानुभावाद् वाचनाभेदजनितेषु उत्सर्पिणीकालभाविकुलकराणां भिन्न-भिन्ननामता-व्यस्तनामता-न्यूनाधिकनामता-भिन्नारकभाविता-ऽभिधायकेषु शास्त्रवाक्येषु सत्सु तत्त्वं सर्वविद्वेद्यमिति ज्ञेयम् ।" इति । ततः पुनः पञ्चमषष्ठारका अवसर्पिण्या द्वितीयप्रथमारकवत्पश्चानुपूर्व्या ज्ञेयौ । अवसर्पिण्युत्सर्पिण्योश्चरमजिनाधिपस्य तीर्थकालो दर्शितः शेषाणामर्हतां स्वतीर्थोत्पत्तेरारभ्य तावांस्तीर्थकालो ज्ञेयो यावत्स्वोत्तरवर्त्तितीर्थपतेस्तीर्थं नोत्पद्यते । यदुक्तं **महामहोपाध्याय-विनयविजयगणिना लोकप्रकाशग्रन्थे काललोक एकोनत्रिंशत्तमे सर्गे** 'यावदुत्पद्यते तीर्थमग्रिमस्य जिनेशितु । तावत्पूर्वस्य पूर्वस्य भवेत्तीर्थमखण्डितम् । १०१८॥" किन्त्वस्यामवसर्पिण्या-मस्मिन् भरतक्षेत्रे सुविधिजिनपतेः शान्तिनाथप्रमुखपर्यन्तं यावत्सप्तस्वऽन्तरेषु मध्य एव तीर्थविच्छेदो जातः, **तथैव प्रतिपादितं लोकप्रकाशे काललोक एकोनत्रिंशत्तमे सर्गे** अस्यामवसर्पिण्यां तु-आद्यात्सुविधिपर्यन्तम् शान्तेश्चाऽन्त्यजिनाऽवधि । अष्टस्वष्टस्वन्तरेषु तीर्थमासीन्निरन्तरम् ॥१०१९। मध्ये सप्तस्वन्तरेषु नवमात्षोडशाऽवधि । यावत्कालमभूत्तीर्थविच्छेद स निरूप्यते ॥१०२०॥" इति ।

एवं पञ्चभरतपञ्चैरवतेषु ज्ञेयम्, यतस्तेष्वेकस्मिन्क्षेत्रे यस्मिन्काले यादृशं स्वरूपं विद्यते तद्वत्तस्मिन्कालेऽन्येषु नवस्वपि क्षेत्रेषु भवति । केवलं यथाऽस्यामवसर्पिण्यामस्मिन् भरते दशा-ऽऽश्चर्याणि भूतानि तथा कालसाम्याच्छेषेष्वपि चतुर्षु भरतेषु पञ्चस्वैरवतेषु च **प्रकारा-न्तरेण** दशा-ऽऽश्चर्याणि बोद्धव्यानि । **तथा चोक्तं श्रीकल्पसूत्रसुबोधिकाख्यवृत्तौ**–"इमानि दशा ऽपि आश्चर्याणि अनन्तकालाऽतिक्रमे अस्या अवसर्पिण्या जातानि, एवं कालसाम्यात् शेषेष्वपि चतुर्षु भरतेषु पञ्चसु ऐरवतेषु च प्रकारान्तरेण दश आश्चर्याणि ज्ञेयानि । इति पञ्चसु महाविदेहेषु तु सदा चतुर्थारकनिभोऽवस्थितकालोऽस्ति, तथा चोक्तं लोकप्रकाशे काललोके– 'भरतैरावता-न्येषु क्षेत्रेषु स्याद् दशस्वय । काल परावर्त्तमान', सदा शेषेष्ववस्थित. ॥४३॥" इति । अतः पञ्चमहाविदेहेषु सिद्धिगमनयोग्यताऽपि सर्वदा भवति । प्रत्येकमहाविदेहक्षेत्रे द्वात्रिंशद्विजयाः सन्ति तेषु द्वात्रिंशद्विजयेषु मध्ये जघन्यतश्चतुर्षु विजयेषु तीर्थंकरास्तथैव चक्रिबलदेववासुदेवा-श्चाऽवश्य भवन्ति । उत्कृष्टतः पुनरेकस्मिन्काले द्वात्रिंशद्विजयेष्वपि तीर्थकराः चक्रवर्तिनस्त्वष्टा-विंशतिविजयेषु सन्ति, यतो जघन्यतश्चतुर्षु विजयेषु वासुदेवानां सद्भावात्, चक्रिवासुदेवा-नामेकस्मिन क्षेत्रे युगपदभावात् । अनयैव रीत्याऽष्टाविंशतिविजयेषूत्कृष्टतो बलदेववासुदेवा भवन्ति । सर्वक्षेत्राण् पञ्चमहाविदेहपञ्चभरतपञ्चैरवतलक्षणपञ्चदशकर्मभूमिगतानाश्रित्योत्कृष्टत एकस्मिन् काले जिनानां सप्तत्यधिकशतं सङ्ख्या भवति, चक्रिणां तु सार्धशतं तदानीमपि विंशतिविजयेषु वासुदेवानां सत्त्वात् । एवमेव बलदेववासुदेवानामपि । जघन्यतः पुनर्जिनचक्रि-

बलदेववासुदेवानां प्रत्येकं विंशतिरन्ये पुनर्दशैव मन्यन्ते, ते हि पूर्वापरलक्षणे महाविदेहक्षेत्र एकैकमिति प्रत्येकमहाविदेहक्षेत्रे द्वे द्वे एव जिनादीनी स्वीकुर्वन्ति । ततः संक्षेपतः प्रदर्शितकाल विशेषलक्षणायामवसर्पिण्यामेतस्यां "**चउवीसा अरहा**"त्ति 'चतुर्विंशतिरर्हन्तः' चतुर्विंशतिः= चतुर्विंशतिसङ्ख्याकाः, चतुस्त्रिंशतमतिशयान परमभक्तिपरसुरासुरनरेन्द्रादिकृतामशोकाद्यष्टम-हाप्रातिहार्यादिरूपां पूजामभ्युत्थानादिसंभ्रमलक्षणं सत्कारं वाऽर्हन्तीत्यर्हन्तः 'सुगृद्विषार्हः सत्रि-शत्रुस्तुत्ये" (सि० ५-२- २६) इत्यतृशप्रत्ययस्ते चाऽर्हन्त , विषयकषायवेदनापरिषहोपसर्गादिरूपा-णामष्टकर्मलक्षणानां वाऽरीणां हन्तार इत्यर्हन्तः, रजसो=बध्यमानकर्मणो हन्तार इति वाऽर्हन्तः, न विद्यते रह एकान्तो=गोप्यं येषाम् , सकलसन्निहितव्यवहितस्थूलसूक्ष्मपदार्थसाक्षात्कारित्वादिति वा तेऽर्हन्तः, सर्वत्र पृषोदरादित्वादिष्टरूपनिष्पत्तिः । **यद्वा** नाऽस्ति रहः=प्रच्छन्नं किञ्चि-दपि येषां प्रत्यक्षज्ञानित्वात्तेऽरहसः । **यद्वा** सिद्धिगमनं प्रत्यर्हन्तीत्यर्हाः=योग्याः 'अच्' (सि० ५ १-४९) इत्यनेन कर्तर्यच्प्रत्ययः । चतुर्विंशतेरप्यर्हतां प्रत्येकं कल्याणतिथिजननीजनकयक्ष-यक्षिणीगणधरकेवलिमनःपर्यवज्ञान्यादिसङ्ख्यादिस्वदेहप्रमाणवर्णस्वायुष्कपूर्वभवोपसर्गतपस्यादिकं चतुस्त्रिंशदतिशयादिकञ्च बहुवक्तव्यमस्ति किन्तु गौरवभयादिह नोच्यते । ते पुनः कीदृशा इत्याह-

"**धम्माइगरा**" त्ति, धरतीति धर्मः "अर्त्तीरि०" (सि० उणा० ३३८) इति सूत्रेण कर्तरि मप्रत्ययः । **यदुक्तम्**-"दुर्गतिप्रपतत्प्राणिधारणाद् धर्म उच्यते" इति **तथैव पञ्चाशकवृत्त्यादावपि प्रतिपादितम् , यद्वा** दुर्गतौ प्रपतन्तं सत्त्वसंघातं धारयतीति धर्मः, पूर्वेणैव सूत्रेण शब्दसिद्धिः । **यद्वा** दुर्गतौ प्रपततः प्राणिनो धारयति सुगतौ च तान् स्थापयतीति धर्मः, पूर्ववद् मप्रत्ययः । **तथा चोक्तं धर्मसग्रहे धर्मबिन्दुग्रन्थे च** "दुर्गतिपतज्जन्तुजातधारणात्स्वर्गादिसुगतौ धानाच्च धर्म" इत्येवमन्यत्राऽप्युक्तम्-"दुर्गतिप्रसृताञ्जन्तून् यस्माद्धारयते पुन । धत्ते चैतान् शुभे स्थाने तस्माद्धर्म इति स्मृत " इति, तथा **धर्मरत्नप्रकरणेऽपि साक्षितयोक्तम्**-'दुर्गतिप्रसृतान् जन्तून् यस्माद्धारयते तत । धत्ते चैतान् शुभे स्थाने, तस्माद्धर्म इति स्मृत ॥' इति । आदि कुर्वन्तीति, आदिकराः= स्थापकाः सङ्ख्या (सि० ५—१—१००) इत्यनेन कर्तर्यच्प्रत्ययः, धर्मस्यादिकराः=धर्मादिकराः= धर्मतीर्थस्थापका इत्यर्थः, अनेन च चत्वारोऽतिशया द्योतिता भवन्तिः तद्यथा—धर्मतीर्थस्य स्थापनोपदेशमृते न भवतीति वचनातिशयः, उपदेशरूपं हि वचनं च ज्ञानेन विना न भवतीति ज्ञानाऽतिशयः, स चाऽपायाऽपगमेन विना नेत्यपायापगमाऽतिशयोऽपि द्योतितः, पूजातिशयस्तु धर्मतीर्थस्थापकत्वेनैव सिद्धः; **यद्वा** ज्ञानाद्यतिशयत्रययुक्तोऽवश्यं पूजार्हो भव-तीति पूजातिशयो गम्यते; **अथवा**ऽर्हत्शब्दव्युत्पत्त्यैव पूजाऽतिशयोऽपायापगमाऽतिशयो वा द्योतितस्तत एकस्मिन द्योतितेऽन्ये द्योतिता एव, यतस्तेषां चतुर्णामपि सहचारित्वात् ; **यद्वा**ऽर्ह-त्शब्दव्युत्पत्त्या चतुस्त्रिंशदप्यतिशयाः कथिताः सन्ति ।

"अउलबला" त्ति, न विद्यते तुला=उपमा यस्य बलस्य तदतुलम्, अर्थाद् मर्यादा-रहितं बलं=वीर्यं येषां तेऽतुलबला अनन्तवीर्यभाजो=वीर्यान्तरायरहिता इत्यर्थः, यत्तदोर्नित्य-साक्षेपत्वाद् 'ये' इति आक्षिप्यते, 'जाआ' त्ति, जाता=अभूवन्नित्यर्थः ।

'ते' त्ति; ते पूर्वव्याख्यातविशेषाश्चतुर्विंशतिसङ्ख्याका अर्हन्तः, 'जगे' त्ति, गच्छति ताँस्तान्नारकादिभावानिति जगत्, "गमेर्डित् द्वे च" (सि० उणा० ८८५) इत्युणादिसूत्रेण डित्कत्-प्रत्यये द्विरुक्तौ सत्यां सिध्यति, यद्वा "दिद्युद्दद्दज्जगज्जुहू-" (सि० ५-२-८३) इत्यनेन क्विप्-प्रत्ययान्तो जगच्छब्दः शीलाद्यर्थे निपात्यते, अनेन सूत्रेण जङ्गमलक्षणक्रियाशीलादिवाचकोऽपि जगच्छब्दः सिध्यति, किन्तु स स्त्र्यादिलिङ्गवर्ती, प्रस्तुते विष्टपवाचकस्तु क्लीबलिङ्गः, तथा चाऽत्र गौडः-"स्याज्जगद्विष्टपे क्लीबं वायौ ना जङ्गमे त्रिषु । छन्दोविशेषे जगती क्षितौ च भुवने जने" इति । तथैव स्वार्थोदाहरणेनाऽनेकार्थसङ्ग्रहे-"जगल्लोकेङ्गवायुषु" लोके=विष्टप तत्र क्लीबे । इङ्ग=जङ्गम तत्र वाच्यलिङ्ग । वायौ पुंसि । तत्र लोके यथा 'परस्पर स्त्रीधनलोलुप जगत्' । इङ्गे यथा 'त्वं मुनीन्द्र जगत्तीर्थं' । वायौ यथा 'जगज्जयति भ्रमतीति वित्तम् ।"इति । तस्मिन्=जगति=त्रिविष्टपे=सकललोके 'जयन्तु' जिधातोः 'आशिष्याशीःपञ्चम्यौ' (सि० ५-४-३८) इत्यनेनाशीर्विषये पञ्चमीविभक्तिः, ततो जयन्तु=जयनशीला भवन्तु ॥१॥

इदानीं चतुर्विंशतितीर्थकृतां मध्येऽन्यतमतीर्थपतेः स्तुतिलक्षणां पथ्यार्या प्रतिपादयति—

सिरिणाहुब्भववंसव्वोमाइच्चो अणाणतमघाई ।
जयउ कुणयपंकहरो जिणीसरो बोहिअभवज्जो ॥२॥

(प्रे०) "सिरि" इत्यादि, "सिरिणाहुब्भववंसव्वोमाइच्च" त्ति, नाभेः=नाभि-नामकुलकरादुद्भवो=जन्म यस्य स नाभ्युद्भवः,=ऋषभदेवस्तस्य वंशो=ऽन्वयः, नाभ्युद्भववंशः=इक्ष्वाकुवंशः, स एव व्योम=गगनं विस्तीर्णत्वान्नाभ्युद्भववंशव्योम, तस्मिन्नादित्यो=रविः प्रकाशक-त्वात्=शोभाकारित्वाद्वा नाभ्युद्भववंशादित्यः=कुलविभूषक इत्यर्थः, श्रिया=चतुस्त्रिंशदतिशय-लक्षणया युक्तो नाभ्युद्भववंशव्योमादित्यः श्रीनाभ्युद्भववंशव्योमादित्यः । अयं च विग्रहो मुनि-सुव्रतनेमिनाथवर्जानां द्वाविंशतिजिनानामन्यतमजिनपक्षे तेषां हीक्ष्वाकुवंशोत्पन्नत्वात् । श्री-ऋषभप्रभुस्तु तद्वंशस्य प्रवर्तकत्वेन शोभाकारित्वाद्वा । मुनिसुव्रतनेमिजिनेन्द्रयोरन्यतरतीर्थकृत्पक्षे तु श्रियो=लक्ष्म्या नाथः स्वामी श्रीनाथः=कृष्णवासुदेवस्तस्योद्भवो=जन्म यस्मिन्वंशे सः श्रीनाथोद्भवः, स चाऽसौ वंशो=ऽभिजनः श्रीनाथोद्भववंशो=यादववंशः (ततः पूर्ववत्), स एव व्योम=अम्बरो विशालत्वाच्छ्रीनाथोद्भववंशव्योम, तस्मिन्नादित्यो=ऽशुमाली प्रकाशकत्वा-द्विभूषकत्वाद्वा श्रीनाथोद्भववंशव्योमादित्यः=कुलप्रकाशक इत्यर्थः । यथा चादित्यस्तमो-

घातकः, पङ्कशोषकः, कमलबोधकश्च भवति तथाऽयमपीति दर्शयन्नाह--"अणाणतमघाई" त्ति, अज्ञान एव तमो=ऽन्धकार आवरणत्वादज्ञानतमस्तद्धन्ति=नाशयतीत्येवंशीलः "अजाते शीले' (सि० ५-१-१५४) इत्यनेन णिन्प्रत्यये सति "ञ्णिति घात्" (सि० ४-३-१००) इत्यनेन च हन्-धातोर्घात् इत्यादेशस्ततोऽज्ञानतमोघाती=अज्ञाननाशक इत्यर्थः । "कुणयपंकहर" त्ति कुत्सिता नयाः कुनयाः=पाखण्डिदर्शनानि त एव पङ्काः=कर्दमा आत्ममलिनकारित्वात् आत्मकर्मलेपकारित्वाद्वा ते कुनयपङ्काः, हरति=शोषयतीति हरः, "अच्" (सि०५-१-४९) इत्यनेन कर्तर्यच्-प्रत्ययः, कुनयपङ्कानां हरः=कुनयपङ्कहरः=कुमतविदारक इति भावः । "बोहिअभव्वज" त्ति; भव्या विमलनिजगुणमाहात्म्येन मुक्तिगमनयोग्या जीवास्त एवाऽप्सु जातानि "सप्तम्या" (सि० ५।१।१६९) इत्यनेन डप्रत्ययेऽब्जानि = कमलानि भव्याऽब्जानि बोधितानि=विकासितानि भव्याऽब्जानि येन स बोधितभव्याऽब्जः=भव्यप्राणिगणबोधक इत्यर्थः । "जिणीसरो" त्ति, जयन्ति रागद्वेषादिरिपुगणानिति "जीणृशीदीबुध्यविमीभ्य क्नित्" (सि० उणा० २६१) इत्युणादिक्नित्नप्रत्यये सति जिना=दुर्जयरागद्वेषादिरिपुगणजेतारः सामान्यकेवलिनः, 'ईशिक्-ऐश्वर्ये' ईष्टे इत्येवंशीलः "स्थेशभासपिसकसो वर" (सि० ५-२-८१) इत्यनेन वरप्रत्यय ईश्वरः, तेषां तेषु वेश्वरो जिनेश्वरः=तीर्थकृदित्यर्थः, जयउ' त्ति, पूर्ववज्जिधातोः पञ्चमीविभक्तिः=जयतु=जयकरो भवतु ॥२॥

सम्प्रति श्रीऋषभदेव-शान्तिनाथ-नेमिनाथ-पार्श्वप्रभु-वीरविभुलक्षणस्यादिमषोडशद्वाविंशतितमत्रयोविंशतितमचरमजिनरूपजिनपञ्चकस्य स्तुतिं कर्तुकाम आदौ तावदृषभजिनेन्द्रस्य स्तुत्यात्मकां वसन्ततिलकां प्राह--

★विस्सेऽखिले पहिअविस्सठिईअ कत्ता,
लोगीसरो चउमुहो सिरिणाहिजम्मो ।
से दाउ सोक्खमजिओ पुरिसुत्तमो सो,
कंदप्पदप्पजइसव्वविऊ विसंको ॥ ३ ॥ (वसंततिलका)

★ (टी०) अथाऽप्रस्तुतमुच्यते-ब्रह्मपक्षे नाभेर्देहाऽवयवविशेषाज्जन्म=उद्भवो यस्य स नाभिजन्मा=ब्रह्मा=विधाता, इत्यादय पर्याया, श्रिया शोभया युक्तो नाभिजन्मा श्रीनाभिजन्मा, पुन' किंभूत 'विस्सेऽखिले पहिअविस्सठिईअ कत्ता" त्ति, अखिले=समस्ते विश्वे=विष्टपे प्रथिता=विख्याता या विश्वस्य=जगत. स्थिति =सृष्टिस्तस्या प्रथितविश्वस्थिते कर्ता=विधाता, अत एव विश्वसृट्=जगत्कर्ता इत्यादिनाऽपि स व्यवह्रियते-' लोगीसरो" त्ति भूरादीन् सप्त लोकानीष्टे इत्येवशीलो लोकेश्वर', 'चउमुहो' त्ति, चत्वारि मुखान्यस्य स चतुर्मुख, 'अजिओ' त्ति, न जित केनाऽपि सो ऽजित, शेष पूर्व(वृत्ति)वद् व्याख्येयम् ।

(प्रे०) "विस्से" त्यादि, 'स' त्ति स=विश्वविख्यातः सिरिणाहिजम्मो' त्ति, नाभेः नाभिवंशककुलकराज्जन्म=उत्पत्तिर्यस्य स नाभिजन्मा=आदिनाथः, श्रिया चतुस्त्रिंशदतिशय-लक्षणया, अष्टमहाप्रातिहार्यरूपया पञ्चत्रिंशद्वाग्गुणस्वरूपया केवलज्ञानलक्ष्म्यात्मकया शोभया वा युक्तो नाभिजन्मा श्रीनाभिजन्मा 'मे' त्ति मेमह्यं 'सोक्ख' मिति सौख्यं=सच्चि-दानन्दस्वरूपं "दाउ" त्ति ददातु=दानविषयीकरोतु । स पुनः किंभूतः । 'ऽखिले' त्ति, नास्ति खिलं यस्येत्यखिलं तस्मिन् अखिले=समस्ते 'विस्से" त्ति, 'विशत प्रवेशने' विशन्त्यस्मिञ्जीवा इति विश्वम्, "निघृषीष्यति (सि० उणा० ५११) इत्युणादिः किद् वप्रत्ययः, तस्मिन् विश्वे स्थावरजङ्गमलोके "पहिअविस्सठिईअ कत्ता" त्ति, विश्वस्य= लोकस्य 'ष्ठा गतिनिवृत्तौ' स्थीयतेऽनया "स्त्रियां क्तिः" (सि० ५-३-९१) इति सूत्रेण क्तिप्रत्यये स्थिति=र्व्यवहारो विश्वस्थितिः=लोकमर्यादा, 'प्रथिप् प्रख्याने' इति प्रथ्धातोः कर्मणि क्तप्रत्ययः प्रथिता=प्रसिद्धा विश्वस्थितिः प्रथितविश्वस्थितिः=प्रसिद्धलोकव्यवस्था, तस्याः प्रथितविश्व-स्थितेः 'डुकृग् करणे' करोतीति 'णकतृचौ' (सि० ५-१-४८) इत्यनेन कर्तरि तृचि प्रत्यये कर्ता= विधाता । यतोऽवसर्पिण्यामादितीर्थेशस्य कल्पत्वेन लोकानामुपकाराय व्यवहारस्योपदेशकत्वात् ।

तथा चोक्तं लोकप्रकाशे काललोके—

"सैकोननवतिपक्षे शेषेऽस्य त्रुटिताङ्के । उदेत्यादिमतीर्थेशो जगच्चक्षुरिवोत्तम ॥१०३॥ लोकानामुपकाराय व्यवहारं दिशत्यसौ । अज्ञानतिमिरच्छेदी सदसन्मार्गदेशक ॥१०४॥ इत्यारभ्य दशानामपि वर्षाणां याम्यस्यार्द्धस्य मध्यमे । खण्डे प्रथमतीर्थेशो, व्यवस्थामिति दर्शयेत् ॥१२७॥' इत्यन्तं यावदिति ।

'लोगीसरो' 'लोकृङ् दर्शने" लोकतेऽवलोकतेऽनन्तज्ञानो भावाभावानस्मिन्निति "भावा-कर्त्रो" (सि० ५-३-१८) इत्यनेनाधारे घञ्प्रत्यये सति लोकः=जगत् यद्वा लोकन्ते=पश्यन्ति व्यवहारान् "अच्" (सि० ५-१-४९) इत्यनेन कर्तर्यच्प्रत्यये लोकाः=भव्यजनाः, इष्ट इत्येवं-शीलः "स्थेश ' (सि० ५-२ ८०) इति वरप्रत्यये=ईश्वरः, तस्यः तेषां वेश्वरो लोकेश्वरः ।

"चउमुहो" त्ति, चत्वारि मुखानि=वदनानि देशनाकाले समवसरणे स्वमाहात्म्यादेव देवकृतानि यस्य स चतुर्मुखः । अनेन च नोआगमतो भावजिनस्तवो बोधितः ।

अथवा ब्रह्मादित्रयमाश्रित्याय श्लोको व्याख्येय, तद्यथा—आद्यद्विचरणौ ब्रह्मसम्बन्धिनौ पूर्ववदेव व्याख्येयौ । विष्णुमतकस्तृतीयचरण तुर्यचरणस्तु शङ्करविषय । तत्र तृतीयपादो विष्णुपक्ष इत्थं व्या-ख्येय, "पुरिसुत्तमो" त्ति, पुरुषेषूत्तम =पुरुषोत्तमो=विष्णुरित्यादय पर्याया "अजिओ" त्ति न जित-श्चाणूरादिभिरित्यजित शेष सुगम पूर्व(वृत्ति वत्। शङ्करपक्षे तुर्यचरण एव विज्ञेय,—"विसको" त्ति, वृषोऽङ्कश्चिह्नमस्य वृष ङ्को=हर =शङ्कर इत्यादय पर्याया. "कदप्पदप्पजई" त्ति, विग्रह. पूर्व(वृत्ति)वत्, तस्य तृतीयनेत्राऽग्निना कामस्य दग्धत्वात् ।

"अजिओ" त्ति, न जितः परीषहादिभिरित्यजितः, "नञ्" (सि० ३-१ ५१) इत्यनेन नञ्तत्पुरुषसमासः, "नञत्" (सि० ३ २-१२५) इति नञोऽकारादेशश्च ।

"पुरिसत्तमो" त्ति, पुरि=देहे शेते पुरुषः, पृषोदरादित्वात्साधुः, यद्वा पृणाति पुमर्थानिति पुरुषः, 'विदिपृभ्या कित्" (सि० उणा० ५५८) इति किद् उषप्रत्ययः, तेषां तेषु वाऽतिशयेनोद्गतम् "प्रकृष्टे तमप्" (सि० ७ ३-५) इति तमप्रत्ययः, उत्तमः=श्रेष्ठः, पुरुषोत्तमः=तीर्थंकरत्वेन सर्वश्रेष्ठः पुमान् , "कदप्पदप्पजइसव्वविओ" त्ति, 'क अव्यय कुत्सायाम्' कं=कुत्सितो दर्पो=गर्वो यस्य स कन्दर्पः=मन्मथः, तस्य दर्पोऽभिमानस्तं जयतीत्येवंशीलः 'जी दृ-क्षि विश्रिपरिभूवमाऽभ्यमव्यथ" (सि० ५ २-७२) इत्यनेन इन्प्रत्ययः, कन्दर्पदर्पजयी=हतमदन इत्यर्थः, सरतीति सर्वम् , "लटिखटि " (सि० उणा० ५०५) इति वप्रत्यये यद्वा सर्वतीति सर्वम् = अशेषम् , तद् वेत्ति=जानातीति सर्वविद्=केवलज्ञानी, "क्विप्" (सि० ५-१-१४८) इत्यनेन क्विप्प्रत्ययः, कन्दर्पदर्पजयी चासौ सर्वविद् कन्दर्पदर्पजयिसर्वविद्; "विसंको" त्ति, अङ्क्यते=लाञ्छ्यतेऽनेनेत्यङ्कः, वृष=ऋषभोऽङ्को=लाञ्छनं यस्य स वृषाङ्कः=श्रीऋषभप्रभुः, तस्य लाञ्छनस्य वृषभत्वात् ॥३॥

साम्प्रतं श्रीशान्तिनाथविभोः षोडशजिनेशितुः स्तुतिलक्षणां स्रग्धरां वक्ति—

कामग्घो रित्तदोसो अहतरुदहणो जो मिअङ्को वि सामी,
जेणेगस्सिं भवेऽत्तं परमपयदुगं चक्कितित्थंयरक्खं ।
माहप्पा जस्स संतं पुरगयमसिवं गब्भआयायमेत्ता,
कम्मारी जेण संता स खलु हवउ वो संतिदो संतिणाहो ॥४॥(स्रग्धरा)

(प्रे०) "कामग्घो" इत्यादि, "स" त्ति, स प्रसिद्धनामा "संतिणाहो" त्ति, "शमू-दमूच् उपशमे" शम्यादिति शमनं वा शान्तिः, "तिक्कृतौ नाम्नि" (सि० ५-१ ७१) इत्यनेन संज्ञायां तिक्प्रत्ययः, "अहन्पञ्चमस्य क्विक्ङिति" (सि० ४-१-१०७) इति दीर्घश्च । उपशमसंवेगनिर्वेदानुकम्पाऽऽस्तिक्याभिव्यक्तिलक्षणसम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रकलापैः शान्तिर्भण्यते, तस्य निराबाधमोक्षाख्यशान्तिप्राप्तिहेतुत्वात् अशेषकर्मोपरमात्कर्मदाहोपशमात् समस्तद्वन्द्वाऽपगमाच्च शान्तिः । शान्तियोगात्तदात्मकत्वात्तत्कर्तृकत्वाद्वा शान्तिः, तथा गर्भस्थे पूर्वोत्पन्नाशिवशान्तिरभूदिति शान्तिः । "नाथृङ् उपतापैश्वर्याशीःषु च" नाथति=ईष्टे=ऐश्वर्यवान् भवतीति नाथः, "अच्" (सि० ५ १-४९) इत्यनेन कर्तर्यच्प्रत्ययः, प्रभोरेव नाथत्वं परमार्थतः संगच्छते, न त्वैहिकनृपत्यादीनां यतो घनघातिकर्ममलापगमनेन सर्वजनमनोमहाश्चर्यकार्यष्टमहापातिहार्यैश्वर्यत्वात्तस्य । यद्वा धातूनामनेकार्थत्वात् नाथति=योगक्षेमौ करोतीति नाथः,

(प्रे०) "विस्से" त्यादि, 'स' त्ति स=विश्वविख्यातः सिरिणाभिजम्मो' त्ति, नाभेः नाभिवंशककुलकराज्जन्म=उत्पत्तिर्यस्य स नाभिजन्मा=आदिनाथः श्रिया चतुस्त्रिंशदतिशय-लक्षणया, अष्टमहाप्रातिहार्यरूपया पञ्चत्रिंशद्वाग्गुणसम्पया केवलज्ञानलक्ष्म्यात्मकया शोभया वा युक्तो नाभिजन्मा श्रीनाभिजन्मा 'मे' त्ति ममत्व' 'सोक्खं' मिति सौख्यं=सच्चि-दानन्दस्वरूपं "दाउ" त्ति ददातु=दानविषयीकरोतु । स पुनः किंभूतः । 'ऽखिले' त्ति, नास्ति खिलं यस्येत्यखिलं तस्मिन् अखिले=समस्ते ' विस्से" त्ति, 'विशत प्रवेशने' विशन्त्यस्मिञ्जीवा इति विश्वम्, "निघृषीण्वनि (सि० उणा० ५११) इत्युणादिः किद् वप्रत्ययः, तस्मिन् विश्वे स्थावरजङ्गमलोके "पहिअविस्सठिईअ कत्ता" त्ति, विश्वस्य= लोकस्य 'ष्ठा गतिनिवृत्तौ' स्थीयतेऽनया "स्त्रिया क्ति" (सि० ५-३-९१) इति सूत्रेण क्तिप्रत्यये स्थिति=व्यवहारो विश्वस्थितिः=लोकमर्यादा, 'प्रथिष् प्रख्याने' इति प्रथ्धातोः कर्मणि क्तप्रत्ययः प्रथिता=प्रसिद्धा विश्वस्थितिः प्रथितविश्वस्थितिः=प्रसिद्धलोकव्यवस्था, तस्याः प्रथितविश्व-स्थितेः 'डुकृग् करणे' करोतीति 'णकतृचौ' (सि० ५-१-४८) इत्यनेन कर्तरि तृचि प्रत्यये कर्ता= विधाता । यतोऽवसर्पिण्यामादितीर्थेशस्य कल्पत्वेन लोकानामुपकाराय व्यवहारस्योपदेशकत्वात् ।

तथा चोक्तं लोकप्रकाशे काललोके-

"सैकोननवतिपक्षे शेषेऽस्य त्रुटिताङ्कके । उदेत्यादिमतीर्थेशो जगच्चक्षुरिवोत्तम ॥१०३॥
लोकानामुपकाराय व्यवहार दिशत्यसौ । अज्ञानतिमिरच्छेदी सदसन्मार्गदेशक ॥१०४॥ इत्यारभ्य
दशानामपि वर्षाणा याम्यस्यार्द्धस्य मध्यमे । खण्डे प्रथमतीर्थेशो, व्यवस्थामिति दर्शयेत् ॥१२७॥'
इत्यन्तं यावदिति ।

'लोगीसरो' 'लोकृङ् दर्शने" लोकतेऽवलोकतेऽनन्तज्ञानो भावाभावानस्मिन्निति "भावा-कर्त्रो" (सि० ५-३-१८) इत्यनेनाधारे घञ्प्रत्यये सति लोकः=जगत् यद्वा लोकन्ते=पश्यन्ति व्यवहारान् "अच्" (सि० ५-१-४९) इत्यनेन कर्तर्यच्प्रत्यये लोकाः=भव्यजनाः, इष्ट इत्येवं-शीलः "स्थेश ' (सि० ५-२ ८१) इति वरप्रत्यये=ईश्वरः, तस्यः तेषां वेश्वरो लोकेश्वरः ।

"चउमुहो" त्ति, चत्वारि मुखानि=वदनानि देशनाकाले समवसरणे स्वमाहात्म्यादेव देवकृतानि यस्य स चतुर्मुखः । अनेन च नोआगमतो भावजिनस्तवो घोषितः ।

अथवा ब्रह्मादित्रयमाश्रित्याय श्लोको व्याख्येय, तद्यथा-आद्यद्विचरणौ ब्रह्मसम्बन्धिनौ पूर्ववदेव व्याख्येयौ । विष्णुपरकस्तृतीयचरण तुर्यचरणस्तु शङ्करविषय । तत्र तृतीयपादो विष्णुपक्ष इत्थं व्याख्येय, "पुरिसुत्तमो" त्ति, पुरुषेषूत्तम =पुरुषोत्तमो=विष्णुरित्यादय पर्याया "अजिओ" त्ति न जित-श्चाणूरादिभिरित्यजित शेष सुगम पूर्व(वृत्ति वत् । शङ्करपक्षे तुर्यचरण एव विज्ञेय,-"विसको" त्ति, वृषोऽङ्कश्चिह्नमस्य वृष ङ्को=हर =शङ्कर इत्यादय पर्याया. "कदप्पदप्पजई" त्ति, विग्रह पूर्व(वृत्ति)वत्, तस्य तृतीयनेत्राऽग्निना कामस्य दग्धत्वात् ।

"अजिओ" त्ति, न जितः परीषहादिभिरित्यजितः, "नञ्" (सि० ३-१-५१) इत्यनेन नञ्तत्पुरुषसमासः, "नञत्" (सि० ३-२-१२५) इति नञोऽकारादेशश्च ।

"पुरि त्तमो" त्ति, पुरि=देहे शेते पुरुषः, पृषोदरादित्वात्साधुः, यद्वा पृणाति पुमर्थानिति पुरुषः, 'विदिपृभ्या कित्' (सि० उणा० ५५८) इति किद् उषप्रत्ययः, तेषां तेषु वाऽतिशयेनोद्गतम् "प्रकृष्टे तमप्" (सि० ७-३-५) इति तमप्रत्ययः, उत्तमः=श्रेष्ठः, पुरुषोत्तमः=तीर्थकरत्वेन सर्वश्रेष्ठः पुमान्, "कदप्पदप्पजइसव्वविओ" त्ति, 'क अव्ययं कुत्सायाम्' कं=कुत्सितो दर्पो=गर्वो यस्य स कन्दर्पः=मन्मथः, तस्य दर्पोऽभिमानस्तं जयतीत्येवंशीलः 'जी इ-क्षि विश्रिपरिभूवमाऽभ्यमव्यथः' (सि० ५-२-७२) इत्यनेन इन्प्रत्ययः, कन्दर्पदर्पजयी=हतमदन इत्यर्थः, सरतीति सर्वम्, "लटिखटि" (सि० उणा० ५०५) इति वप्रत्यये यद्वा सर्वतीति सर्वम्=अशेषम्, तद् वेत्ति=जानातीति सर्वविद्=केवलज्ञानी, "क्विप्" (सि० ५-१-१४८) इत्यनेन क्विप्प्रत्ययः, कन्दर्पदर्पजयी चासौ सर्वविद् कन्दर्पदर्पजयिसर्वविद्; "विसंको" त्ति, अङ्क्यते=लाञ्छ्यतेऽनेनेत्यङ्कः, वृष=ऋषभोऽङ्को=लाञ्छनं यस्य स वृषाङ्कः=श्रीऋषभप्रभुः, तस्य लाञ्छनस्य वृषभत्वात् ॥३॥

साम्प्रतं श्रीशान्तिनाथविभोः षोडशजिनेशितुः स्तुतिलक्षणां स्रग्धरां वक्ति—

कामग्घो रित्तदोसो अहतरुदहणो जो मियङ्को वि सामी,
जेणोगस्सि भवेऽत्तं परमपयदुगं चक्कितित्थंयरक्खं ।
माहप्पा जस्स संतं पुरगयमसिवं गब्भआयायमेत्ता,
कम्मारी जेण संता स खलु हवउ वो संतिदो संतिणाहो ॥४॥(स्रग्धरा)

(प्रे०) "कामग्घो" इत्यादि, "स" त्ति, स प्रसिद्धनामा "संतिणाहो" त्ति, "शमू-दमूच् उपशमे" शम्यादिति शमनं वा शान्तिः, "तिक्कृतौ नाम्नि" (सि० ५-१-७१) इत्यनेन संज्ञायां तिक्प्रत्ययः, "अहन्पञ्चमस्य क्विक्ङिति" (सि० ४-१-१०७) इति दीर्घश्च । उपशमसंवेगनिर्वेदानुकम्पाऽऽस्तिक्याभिव्यक्तिलक्षणसम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रकलापैः शान्तिर्भण्यते, तस्य निराबाधमोक्षाख्यशान्तिप्राप्तिहेतुत्वात् अशेषकर्मोपरमात्कर्मदाहोपशमात् समस्तद्वन्द्वाऽपगमाच्च शान्तिः । शान्तियोगात्तदात्मकत्वात्तत्कर्तृकत्वाद्वा शान्तिः, तथा गर्भस्थे पूर्वोत्पन्नाशिवशान्तिरभूदिति शान्तिः । "नाथृङ् उपतापैश्वर्याशीःषु च" नाथति=ईष्टे=ऐश्वर्यवान् भवतीति नाथः, "अच्" (सि० ५-१-४८) इत्यनेन कर्तर्यच्प्रत्ययः, प्रभोरेव नाथत्वं परमार्थतः संगच्छते, न त्वैहिकनृपत्यादीनां यतो घनघातिकर्ममलापगमनेन सर्वजनमनोमहाश्चर्यकार्यष्टमहाप्रातिहार्यैश्वर्यत्वात्तस्य । यद्वा धातूनामनेकार्थत्वात् नाथति=योगक्षेमौ करोतीति नाथः,

पूर्ववदच्प्रत्ययः। तत्राऽप्राप्तानां सम्यक्त्वादीनां प्राप्तिर्योगः प्राप्तानां सम्यग्दर्शनादीनां संरक्षणं क्षेमः, तथाहि—तीर्थकृतामनिर्वचनीयप्रभावादेव भव्या अलब्धपूर्वसम्यक्त्वादीन् प्राप्नुवन्ति, लब्धसम्यग्दर्शनादयस्तु रागाद्युपद्रवाद्यभावेन स्थिरीभवन्तीति तीर्थकृतां योगक्षेमकरत्वम् । शान्तिः=शान्तिनामा चाऽसौ नाथश्च=स्वामी शान्तिनाथः=षोडशो जिनेशः 'वो" त्ति युष्माकं "**सतिदो**" त्ति, शमनं शान्तिः, "स्त्रियां क्तिः" (सि० ५-३-९१) इत्यनेन क्तिन् तिप्रत्ययः, यद्वा पूर्ववत्तिक्प्रत्ययः, सर्वकर्मोपशमनेन मोक्षलक्षणैहिकामुष्मिकदुःखोपशमलक्षणा वा शान्तिः, तां शान्तिं ददाति=प्रयच्छतीति 'आतो डोऽह्वावामः" (सि० ५ १ ७६) इत्यनेन शान्तिकर्मणः परात् दाधातोर्डप्रत्यये शान्तिदः=सिद्धिप्रापको दुःखोच्छेदकरो वा "हवउ" त्ति भवतु । यत्तदो-र्नित्याऽभिसम्बन्धात् स कः? इत्याकाङ्क्षायामाह—'जो' त्ति, यः 'सामी' त्ति, स्वं=रत्नत्रय-लक्षणमस्यास्तीति "स्वामिन्नीशे" (सि० ७-२-४६) इत्यनेन मिनप्रत्ययो दीर्घश्च स्वामी=नायकः शान्तिनाथो भगवान् , विरोधाभासमुद्भावयन्नाह—"**मिअंको** " त्ति, मृगो=हरणो-ऽङ्को=लाञ्छनं यस्य स मृगाऽङ्कः, षोडशजिनेन्द्रस्य मृगलक्ष्मत्वाच्चन्द्रस्य च हरणकलङ्कत्वात् शान्तिनाथो विभुश्चन्द्रश्च । चन्द्रो हि कामवर्धकः सदोषः शीतलश्च भवति किन्त्वयं न तथा इत्याह—"**वि**" त्ति, अपि=यथा चन्द्रो मृगाऽङ्कस्तथाऽयं मृगाङ्को भवन्नपि "**कामघो**" त्ति, कामं=मदनं हन्तीति "ब्रह्मादिभ्यः" (सि० ५-१-८५) इत्यनेन कर्तरि टक्प्रत्ययः, 'गमोऽस्य' (सि० २-१-१०८) इत्यनेना-ऽकारस्य लोपः, ततः "हो ह्नो घ्न" सि० २ १-११२) इति सूत्रेण 'घ्न' इत्यादेशे कामघ्नः=पुष्प-धन्वविनाशी । पुनः किं विशिष्टः? इत्याह—"**रित्तदोसो**" त्ति, रिक्तः=शून्यो जातो दोषो= अपलक्षणरूपो यस्माद् यस्य वा स रिक्तदोषः=कलङ्कवर्जितः ।

"**अहतरुदहणो**" त्ति, अघानि=पापानि एव तरवो=वृक्षाः=अघतरवस्तेषां दहतीति दहनः 'रुत्पसि...सि " (सि० उणा २६१) इत्यनेन अनप्रत्ययः, अघतरूणां दहनः=अघतरु-दहनः, पुनः किम्भूतः? इत्याह—' **जेण**"त्ति येन श्रीशान्तिनाथेन विभुना '**एगम्मि**"ति, एक स्मिन्=एकस्मिन्नेव इत्यर्थः, "**भवे**" त्ति भवन्ति कर्मपाशग्रस्ता जन्तवोऽस्मिन्निति भवः= संसारो नरकादिचतुर्विधगतिलक्षणः, "पुन्नाम्नि घ" (सि० ५-३ १३०) इति सूत्रेणाऽऽधारे घ-प्रत्ययः, यद्वा "अ" (सि० उणा० २) इति अप्रत्ययः, तस्मिन्भवे "**परमपयदुग**" ति, परमं=श्रेष्ठं तच्च तत्पदं च=स्थानविशेषः, तस्य द्विकं=परमपदद्विकं किं सञ्ज्ञकमित्याह—"**चक्कि-तित्थकरक्ख** " ति, क्रियते तत् "कृगो द्वे च" (स०उणा०७) कित् अप्रत्यये चक्रम्= समस्तायुधातिशायिदुर्दमारिविजयिरत्नभूतप्रहरणविशेषः, तदस्यास्तीति चक्री, "अतोऽनेकस्वरात्" (सि० ९-२ ६) इत्यनेन मत्वर्थे इन्प्रत्ययः, तीर्यते संसारसमुद्रोऽनेन, अस्मात् अस्मिन्निति वा तीर्थं=साध्व्यादिचतुर्विधसङ्घलक्षणं गणिपिटकलक्षणं प्रथमगणधररूपं वा तत्करोत्यानुलोम्येन

हेतुत्वेन तच्छीलतया चेति तीर्थकरः "हेतुतच्छीलानुकूले०" (सि०५-१-१०३) इति सूत्रेण टप्रत्ययः, यद्वा" कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु' (पाणि०-३-२-२०) इति पाणिनीयसूत्रेण टप्रत्ययः, ततः प्राकृतत्वाद् मागमः, यद्वा मतान्तरेण तीर्थङ्करशब्दोऽपि विकल्पेन भवति, तदर्थं पूर्वेण सूत्रेण टप्रत्यये सति "नवाऽखित्कृदन्ते रात्रे" (सि० ३-२ ११८) इत्यत्र योग-विभागव्याख्यानान्मोऽन्तः, अथवा "तीर्थात्खे" इति वचनात्खप्रत्यये तीर्थशब्दान् मुमागमे सति तीर्थङ्करः, चक्री च तीर्थङ्करश्च चक्रितीर्थङ्करावित्याख्ये=संज्ञे यस्य=परमपदद्विकस्य तत् चक्रितीर्थङ्कराख्यं 'अत्तं'' ति, आप्तं=लब्धम् । पुनः किं विशिष्टः ? इत्याह-'जस्स'' त्ति, यस्य शान्तिजिनेशितुः "महप्प" त्ति महानात्मा=स्वभाव आशयो वा यस्य स महात्मा तस्य महात्मनो भावः "पतिराजान्तगुणाङ्गराजादिभ्यः कर्मणि च" (सि० ७-१-६०) इति सूत्रेण भावे त्यण्प्रत्ययः, माहात्म्यम्=अपूर्वप्रभावं तस्मात् माहात्म्यात् 'हा'' त्ति, 'हो' इत्यव्ययं विस्मये "गब्भआयायमेत्ता" अत्र "जस्स" त्ति पुनरपि सम्बध्यते ततो यस्याऽऽयात=आगत एव= आयातमात्रः, गर्भे=जननीकुक्षा आयातमात्रः=गर्भायातमात्रस्तस्माद्=गर्भायातमात्रात् "पुर-गयमसिव" ति, पुरे=नगर्यां गतम्=स्थितम्=पुरगतम्, शेतेऽशुभमनेनेति शिवं=कल्याणं "शीङापो ह्रस्वश्च वा "(सि० उणा ५०६) इति वप्रत्ययः, न शिवं=श्रेयः=अशिवं=क्षुद्रदेवता-कृतज्वराद्युपद्रवं मारिसंज्ञकं 'संतं'' ति, शान्तम्=अदृश्यभावमापन्नम् । पुनः कीदृक् ? इत्याह-'जेण' त्ति' येन विश्वसेनकुलनभोमणिना षोडशेन जिनेन्द्रेण "कम्मारी" ति, कर्माण्येवाऽरयः= शत्रवः कर्माऽरयः=कर्मरिपवः, 'सता'' त्ति, शान्ता "णौ दान्त-शान्त०" (सि०४-४-७४) इत्यनेन विकल्पेन-इडाभावो निपात्यते शान्ताः = शमिताः=क्षयं नीताः ॥४॥

इदानीं श्रीनेमिनाथं द्वाविंशतितमं जिनाऽधिपं स्तोतुकामः शार्दूलविक्रीडितवृत्तं भणति—

जेणं पाणिगहच्छला णवभवीपीईअ राईमई,
संकेअं करिऊण मुत्तिगमणे मुक्खा कया साहुणी ।
जाओ जस्स हरि त्ति सत्थगऽभिहो बाहासिहाए हरी,
भव्वाणं वितरेउ मंगलसिरिं सो नेमिणाहो जिणो ॥५॥(सद्दुलविक्कीडियं)

(प्रे०)"जेणं" इत्यादि, "जेणं"ति, येन नेमिनाथविभुना "नवभवीपीईअ" त्ति, नराणां नवसङ्ख्याकानां भवानां समाहारो नवभवी तस्याः, प्रीयत इति प्रीतिः = स्नेहः, "स्त्रियां क्तिः" (सि० ५-३ ९१) इत्यनेन कित् तिप्रत्ययः, तया, नवभव्याः प्रीत्या नवभवीप्रीत्या = नवभवीसत्कस्नेहहेतुना 'पाणिगहच्छला'' त्ति, पाणेः=करस्य ग्रहः=पाणिग्रहः=उद्वाहस्तस्य छलात्=व्याजात् पाणिग्रहछलात् 'मुक्तिगमणे'' त्ति मुच्यते सर्वकर्मभिरत्रेति मुक्तिः=

परमपदम्, पूर्ववत् कित् तिप्रत्ययः, तस्या गमने=प्रापणे मुक्तिगमने "सकेअं" ति, संपूर्वकः "कित निवासे" इति भ्वादिधातुः, "केतण् आमन्त्रणे" इति चुरादिधातुर्वा, संकेतति संकेतयति वा = चिह्नयति अनेनेति सङ्केतः=इङ्गितम्, "भावाकर्त्रोः"(सि०५-३-१८) इत्यनेन घञ्प्रत्ययः, तम् सङ्केतम् = आकारं 'करिऊण" ति, कृत्वा = विधाय "राईमई" त्ति, राजीमतीनाम्नी उग्रसेनभूपतनया "मुक्खा" त्ति मुख्या=प्रधाना = श्रेष्ठेति यावत् "साहुणी" त्ति, साध्वी=व्रतिनी "कया" त्ति कृता। तद्यथा—नेमिनाथप्रभुबलजितो विषण्णचित्तः कृष्णवासुदेवः "नेमिनामा द्वाविंशस्तीर्थंकर कुमार एव प्रव्रजिष्यति" इति सुरगिरा निश्चिन्तोऽपि निश्चयार्थं कथमपि राजीमत्या सह प्रभोर्विवाहोत्सवः कारितः। तस्मिंश्चोत्सवे प्राणिवधं दृष्ट्वा करुणानिधिना प्रभुणा पशून्मोचयित्वा रथो वारितः प्रतिपन्ना च प्रव्रज्या। तथा चाऽत्रोत्प्रेक्षा कल्पसूत्रवृत्तौ दर्शिता, यथा "मन्येऽङ्गनाविरक्त परिणयनमिषेण नेमिरागत्य राजीमतीं पूर्वभवप्रेम्णा समकेतयत् मुक्त्यै॥" इति।

ततः पश्चाद्राजीमत्यपि विरक्ता जगाद यदि स्वामिनो हस्तोपरि हस्तो न दत्तः, तथाऽपि दीक्षासमये तमेव हस्तं शिरस्यहं लप्स्ये। तथा चोक्तम्,—

"जइवि हु एअस्स करो मज्झ करे नो अ आसि परिणयणे। तह वि सिरे मह सुचिअ, दिक्खासमए करो होही॥"

इति। तत उत्पन्नकेवले प्रभौ तत्र पुनरागते सा प्रव्रजिता।

"जस्स" त्ति, यस्य नेमिनाथस्वामिनः "बाहासिहाए" त्ति, बाहोरात्' (सि०८-१ ३६) बाहुः=भुजः, स एव शिखा=शाखा बाहुशिखा तस्यां बाहुशिखायां "हरि" त्ति, हरिर्विष्णुःकृष्णो वासुदेव इत्यादयः पर्यायाः, "हरि" त्ति सत्थगऽभिहो" त्ति, हरिरिति = कपिरिति सार्थका— साऽन्वयाऽभिधा = संज्ञा यस्य स स।ऽर्थकाऽभिधः = साऽन्वर्थनामा "जाओ" त्ति, जातः=बभूव। तथाहि—कुतूहलरहितोऽपि प्रभुरेकदा वयस्यप्रेरितो विष्णवायुधशालायां जगाम। तत्र च विनोदोत्सुकैः सहचरैः प्रार्थितो भगवानङ्गुल्यग्रभागे चक्रं कुलालचक्रवद् भ्रामितवान्, शाङ्ग च धनुर्नेत्रलतामिव नामितवान, कौमुदिकी गदां यष्टिवदुत्पाटितवान, पाञ्चजन्यं शङ्खं च मुखे धृत्वाऽऽपूरि, तदा समस्तनगरं शब्दमयं बधिरं च जातं मदोन्मत्तगजव्रजादयो गृहपङ्क्तिं खण्डयन् धावन्ति स्म, तं च शब्दं श्रुत्वा कोऽपि रिपुः सञ्जात इति व्यग्रचित्तः कृष्णो झटित्यायुधशालामागमत्, स्वामिनं द्रष्ट्वा बलपरिक्षायै प्रभुमकथयत्, भगवताऽपि "आवयोर्बलपरीक्षण य भुजवालन भवतु" इत्युक्तं तथैवाऽङ्गीकृतस्य केशवस्य भुजं मृणालदण्डवच्छीघ्रं नामितवान्नाथः, हरिश्च भगवतः प्रसारितबाहुं मनागपि नामयितुमशक्तः प्रभोर्बाहौ कपिवद्विलग्न इति। यत्तदोर्नित्याऽभिसम्बन्धात् "सो" त्ति, स=पूर्वव्यावर्णितविशेषः "णेमिणाहो" त्ति, धर्मचक्रस्य नेमिवन्नेमिः स चासौ नाथश्च=नेमिनाथः, पदैकदेशे पदसमुदायस्योपचारादरिष्टनेमिनाथः, तथा च प्रभौ गर्भस्थे माता रिष्टरत्नमयं महानेमि=चक्रधारां

स्वप्नेऽद्राक्षीत्ततोऽरिष्टनेमिः, अकारस्याऽमङ्गलपरिहारार्थत्वाच्चाऽरिष्टनेमिरिति रिष्टशब्दो ह्यमङ्गल-वाचीति। श्रीआवश्यके पुनरेवमुक्तम्-सव्वे धम्मचक्कस्स णेमीभूय त्ति सामन्न.विसेसो गब्भगते तस्स मायाए अरिट्ठरयणमयो महालयो नेमी उप्पिज्जमाणो सुमिणे दिट्ठोऽत्ति तेण सोऽरिट्ठणेमि त्ति' इति। यद्वा-ऽरिष्टस्याऽशुभस्य नेमिरिव प्रध्वंसकत्वादरिष्टनेमिः, स चाऽसौ नाथः=प्रभुः=अरिष्टनेमि-नाथः=द्वाविंशतितमस्तीर्थपतिः, "जिणो" त्ति, जयति=रागद्वेषमोहरूपानन्तरङ्गानरीन्निरा-करोतीति जिनः=तीर्थकरः, "जीणशी (सि० उणा० २६१) इत्यनेन कित् नप्रत्ययः, "भव्वाण" त्ति, भव्याः=मुक्तिगमनयोग्यास्तेषां भव्यानां "मंगलसिरिं" ति, मङ्गला=कल्याण-कारिणी चैषा श्रीः=लक्ष्मीः-मोक्षलक्षणा चारित्ररूपा सम्यग्ज्ञानादिस्वरूपा वा मङ्गलश्रीस्तां मङ्गलश्रियं "वितरेउ" त्ति, वितरतु=ददातु ॥५॥

एतर्हि श्रीपार्श्वनाथं त्रयोविंशतितमं जिनं स्तुतिविषयीकुर्वन् स्रग्धरां निरूपयति—

जेणं झाणाउहेणा-ऽमिअबलवइणा णासिओ कम्मपासो,
भाही जो सव्ववेई सुरअसुरणरस्सामिसंघातपासो ।
जक्खो पायज्जजुग्गं भवजलहितरिं जस्स सेवीअ पासो,
भव्वाणं विग्घवुंदं हरउ दुहयरं तित्थणाहो स पासो ॥६॥(स्रग्धरा)

(प्रे०) "जेण" इत्यादि, 'स' त्ति, स प्रसिद्धनामा "पासो" त्ति, स्पृशति ज्ञानेन सर्व-भावानिति पार्श्वः स्पृशे श्व पार् च' (सि०उणा० ५२३) इति सूत्रेण साधुः, यद्वा प्रभौ गर्भस्थे जनन्या रात्रौ शयनीयस्थयाऽन्धकारे सर्पो दृष्ट इति गर्भाऽनुभावोऽयमिति मत्वा पश्यतीति निरुक्तात्पार्श्वः, पृषोदरादित्वात्साधुः, अथवा पार्श्वः=पार्श्वसंज्ञको यक्षोऽस्य वैयावृत्यकरः, तस्य नाथः=पार्श्वनाथः, "ते लुग्वा" (स० ३ २१०८) इत्यनेन नाथशब्दस्य लोपात् "भीमो भीमसेन" इति न्यायाद्वा पार्श्वनामा "तित्थणाहो" त्ति तीर्थस्य=साध्व्यादिचतुर्विधसङ्घस्य गणिपिटकस्य प्रथमगणधरस्य वा नाथः=स्वामी तीर्थनाथस्त्रयोविंशतितमस्तीर्थकर इत्यर्थः, "भव्वाणं" ति, भवन्ति परमपदयोग्यतामासादयन्तीति भव्याः=शिवगतियोग्याः, "भव्यगेय (५-१ ७) इति सूत्रेण कर्तरि विकल्पेन यप्रत्ययान्तो निपातः, तेषां भव्यानां "विग्घवुंद" ति वि=विशेषेण हन्यन्ते=विनाश्यन्तेऽनेनेति विघ्नः, "स्थादिभ्य क" (सि० ५-३-८२) इत्यनेन लक्षणेन करणे कप्रत्ययः, विघ्नाः=प्रत्यूहाः, तेषां व्रियते वृन्दं=समूहः, 'वृतुकुसुभ्यो नोन्तश्च' (सि० उणा० २४०) इत्यनेन किद् दप्रत्ययो नागमश्च, विघ्नानां=व्यपायानां वृन्दम्=व्रजो विघ्नवृन्दम्=अपायगणः तद्विघ्नवृन्दं किम्भूतमित्याह-"दुहयर" ति, दुःखयतीति यद्वा दुःखनतीति यद्वा दुष्टानि खान्यत्रेति दुःखं=बाधा, तत्करोतीत्येवंशीलं दुःखकरम्=अर्तिजनकं "हेतुतच्छीला .. (सि

परमपदम्, पूर्ववत् कित् तिप्रत्ययः, तस्या गमने=प्रापणे मुक्तिगमने "सकेअं" ति, संपूर्वकः "कित निवासे" इति स्वादिधातुः, "केतण आमन्त्रणे" इति चुरादिधातुर्वा, संकेतति संकेतयति वा = चिह्नयति अनेनेति सङ्केतः=इङ्गितम्, "भावाकर्त्रोः"(सि०५-३-१८) इत्यनेन घञ्प्रत्ययः, तम् सङ्केतम् = आकारं "करिऊण" ति, कृत्वा = विधाय "राईमई" त्ति, राजीमतीनाम्नी उग्रसेनभूपतनया "मुक्खा" त्ति मुख्या=प्रधाना = श्रेष्ठेति यावत् "साहुणी" त्ति, साध्वी=व्रतिनी "कया" त्ति कृता । तद्यथा-नेमिनाथप्रभुबलजितो विषण्णचित्तः कृष्णवासुदेवः "नेमिनामा द्वाविंशस्तीर्थंकर कुमार एव प्रव्रजिष्यति" इति सुरगिरा निश्चिन्तोऽपि निश्चयार्थं कथमपि राजीमत्या सह प्रभोर्विवाहोत्सवः कारितः। तस्मिंश्चोत्सवे प्राणिवधं दृष्ट्वा करुणानिधिना प्रभुणा पशून्मोचयित्वा रथो वारितः प्रतिपन्ना च प्रव्रज्या। तथा चाऽत्रोत्प्रेक्षा कल्पसूत्रवृत्तौ दर्शिता, यथा "मन्येऽङ्गनाविरक्त परिणयनमिषेण नेमिरागत्य राजीमतीं पूर्वभवप्रेम्णा समकेतयत मुक्त्यै ॥" इति । ततः पश्चाद्राजीमत्यपि विरक्ता जगाद यदि स्वामिनो हस्तोपरि हस्तो न दत्तः, तथाऽपि दीक्षासमये तमेव हस्तं शिरस्यहं लप्स्ये । तथा चोक्तम्,—

"जइवि हु एअस्स करो मज्झकरे नो अ आसि परिणयणे। तह वि मिरे मह सुचिअ, दिक्खासमए करो होही॥" इति । तत उत्पन्नकेवले प्रभौ तत्र पुनरागते सा प्रव्रजिता ।

"जस्स" त्ति, यस्य नेमिनाथस्वामिनः "बाहासिहाए" त्ति, बाहोरात्' (सि०८-१ ३६) बाहुः=भुजः, स एव शिखा=शाखा बाहुशिखा तस्यां बाहुशिखायां "हरि" त्ति, हरिर्विष्णुःकृष्णो वासुदेव इत्यादयः पर्यायाः, "हरि" त्ति सत्थगऽभिहो" त्ति, हरिरिति = कपिरिति सार्थका — साऽन्वयाऽभिधा = संज्ञा यस्य स स।ऽर्थकाऽभिधः = साऽन्वर्थनामा "जाओ" त्ति, जातः=बभूव। तथाहि–कुतूहलरहितोऽपि प्रभुरेकदा वयस्यप्रेरितो विष्णवायुधशालायां जगाम । तत्र च विनोदोत्सुकैः सहचरैः प्रार्थितो भगवानङ्गुल्यग्रभागे चक्रं कुलालचक्रवद् भ्रामितवान्, साङ्गं च धनुर्नेत्रलतामिव नामितवान, कौमुदिकीं गदां यष्टिवदुत्पाटितवान, पाञ्चजन्यं शङ्खं च मुखे धृत्वाऽऽपूरि, तदा समस्तनगरं शब्दमयं बधिरं च जातं मदोन्मत्तगजव्रजादयो गृहपङ्क्तिं खण्डयन् धावन्ति स्म, तं च शब्दं श्रुत्वा कोऽपि रिपुः सञ्जात इति व्यग्रचित्तः कृष्णो झटित्यायुधशालामागमत्, स्वामिनं दृष्ट्वा बलपरिक्षायै प्रभुमकथयत्, भगवताऽपि "आवयोर्बलपरीक्षणाय भुजबालन भवतु" इत्युक्तं तथैवाऽङ्गीकृतस्य केशवस्य भुजं मृणालदण्डवच्छीघ्रं नामितवान्नाथः, हरिश्च भगवतः प्रसारितबाहुं मनागपि नामयितुमशक्तः प्रभोर्बाहौ कपिवद्विलग्न इति । यत्तदोर्नित्याऽभिसम्बन्धात् "सो" त्ति, स=पूर्वव्यावर्णितविशेषः "णेमिणाहो" त्ति, धर्मचक्रस्य नेमिवन्नेमिः स चासौ नाथश्च=नेमिनाथः, पदैकदेशे पदसमुदायस्योपचारादरिष्टनेमिनाथः, तथा च प्रभौ गर्भस्थे माता रिष्टरत्नमयं महानेमिं=चक्रधारां

स्वप्नेऽद्राक्षीत्ततोऽरिष्टनेमिः, अकारस्याऽमङ्गलपरिहारार्थत्वाच्चाऽरिष्टनेमिरिति रिष्टशब्दो ह्यमङ्गलवाचीति। श्रीआवश्यके पुनरेवमुक्तम्-सव्वे धम्मचक्कस्स णेमीभूय त्ति सामन्न,विसेसो गब्भगते तस्स मायाए अरिट्ठरयणमयो महालयो नेमी उप्पिज्जमाणो सुमिणे दिट्ठोऽत्ति तेण सोऽरिट्ठणेमि त्ति'इति। यद्वाऽरिष्टस्याऽशुभस्य नेमिरिव प्रध्वंसकत्वादरिष्टनेमिः, स चाऽसौ नाथः=प्रभुः=अरिष्टनेमिनाथः=द्वाविंशतितमस्तीर्थपतिः, "जिणो" त्ति, जयति=रागद्वेषमोहरूपानन्तरज्ञानरीन्निराकरोतीति जिनः=तीर्थंकरः, "जीणशी (सि० उणा० २६१) इत्यनेन कित् नप्रत्ययः, "भव्वाण" त्ति, भव्याः=मुक्तिगमनयोग्यास्तेषां भव्यानां "मंगलसिरिं" त्ति, मङ्गला=कल्याणकारिणी चैषा श्रीः=लक्ष्मीः-मोक्षलक्षणा चारित्ररूपा सम्यग्ज्ञानादिस्वरूपा वा मङ्गलश्रीस्तां मङ्गलश्रियं "वितरेउ" त्ति, वितरतु=ददातु ॥५॥

एतर्हि श्रीपार्श्वनाथं त्रयोविंशतितमं जिनं स्तुतिविषयीकुर्वन् स्रग्धरां निरूपयति—

जेणं झाणाउहेणा-ऽमिअबलवइणा णासिओ कम्मपासो,
भाही जो सव्ववेई सुरअसुरणरस्सामिसंघातपासो ।
जक्खो पायज्जजुग्गं भवजलहितरि जस्स सेवीअ पासो,
भव्वाणं विग्घवुंदं हरउ दुहयरं तित्थणाहो स पासो ॥६॥(सग्धरा)

(प्रे०) "जेणं" इत्यादि, 'स' त्ति, स प्रसिद्धनामा "पासो" त्ति, स्पृशति ज्ञानेन सर्वभावानिति पार्श्वः स्पृशे श्व पार् च" (सि०उणा० ५२३) इति सूत्रेण साधुः, यद्वा प्रभौ गर्भस्थे जनन्या रात्रौ शयनीयस्थयाऽन्धकारे सर्पो दृष्ट इति गर्भाऽनुभावोऽयमिति मत्वा पश्यतीति निरुक्तात्पार्श्वः, पृषोदरादित्वात्साधुः, अथवा पार्श्वः=पार्श्वसंज्ञको यक्षोऽस्य वैयावृत्यकरः, तस्य नाथः=पार्श्वनाथः, "ते लुग्वा" (स० ३-२१०८) इत्यनेन नाथशब्दस्य लोपात् "भीमो भीमसेन" इति न्यायाद्वा पार्श्वनामा "तित्थणाहो" त्ति तीर्थस्य=साध्वादिचतुर्विधसङ्घस्य गणिपिटकस्य प्रथमगणधरस्य वा नाथः=स्वामी तीर्थनाथस्त्रयोविंशतितमस्तीर्थकर इत्यर्थः, "भव्वाणं"ति, भवन्ति परमपदयोग्यतामासादयन्तीति भव्याः=शिवगतियोग्याः, "भव्यगेय (५-१७) इति सूत्रेण कर्तरि विकल्पेन यप्रत्ययान्तो निपातः, तेषां भव्यानां "विग्घवुंदं" ति वि=विशेषेण हन्यन्ते=विनाश्यन्तेऽनेनेति विघ्नः, "स्थादिभ्यः क" (सि० ५-३-८२) इत्यनेन लक्षणेन करणे कप्रत्ययः, विघ्नाः=प्रत्यूहाः,तेषां व्रियते वृन्दं=समूहः,'वृतुकुसुभ्यो नोन्तश्च' (सि० उणा० २४०)इत्यनेन किद् दप्रत्ययो नागमश्च, विघ्नानां=व्यपायानां वृन्दम्=व्रजो विघ्नवृन्दम्=अपायगणः तद्विघ्नवृन्दं किम्भूतमित्याह-"दुहयर" ति, दुःखयतीति यद्वा दुःखनतीति यद्वा दुष्टानि खान्यत्रेति दुःखं=बाधा, तत्करोतीत्येवंशीलं दुःखकरम्=अर्तिजनकं "हेतुतच्छीला . .. (सि०-

"राजृग् टुभ्राजि दीप्तौ" इति विपूर्वस्य राजधातोर्विराजते = शोभतेऽनन्याऽनुभूतमहातपःश्रिया घनघातिकर्मसंघातविदारणाऽनन्तरं प्राप्ताऽतुलकेवललक्ष्म्या वेति वीरः । तथा चोक्तम्– 'विदारयति यत्कर्म तपसा च विराजते । तपोवीर्येण युक्तश्च तस्माद्वीर इति स्मृत ॥१॥' इति । अथवा "अज् क्षेपणे च" अजति = क्षिपति मोहादिरिपुवर्गमिति वीरः, यद्वाऽजति = गच्छति स्वयं शिवमिति वीरः, "ऋज्यजि, .. (सि० उणा० ३८८) इत्यनेन क्रिद्रप्रत्ययः, अज्धातोश्च "अघञ्क्यबलच्यजेर्वी" (सि ४-४-२) इत्यनेन 'वी' इत्यादेशः । अथवा "सर्वे गत्यर्था ज्ञानार्था' इति वचनाद् वि = विशिष्टः, ईरणमीरः = ज्ञानं यस्य स वीरः । अथवा 'रा‌क् दाने" इत्यदादिधातुः, वि = विशिष्टा विश्वविश्वजनचेतश्चमत्कारिणी, ईः = लक्ष्मीस्तां राति = भव्येभ्यः प्रयच्छतीति वीरः, "आतो डोऽह्वावाम" (सि० ५-१-७६) इत्यनेन लक्षणेन कर्तरि डप्रत्ययः ।

श्रिया = शोभया समग्रप्राणिगणमनोविस्मयजनन्यष्टमहाप्रातिहार्यलक्षणया चतुस्त्रिंशदतिशयसमृद्धचतुर्भवात्मकभावाऽर्हन्त्यरूपया सङ्क्रान्तलोकालोककेवलज्ञानदर्पणलक्ष्म्या वा युक्तो वीरः = श्रीवीरः, किम्भूत इत्याह-"उप्पण्णमेत्तो" त्ति, उत्पन्न एवोत्पन्नमात्रोऽपि = जातमात्रोऽपि "जणिमहे" त्ति, जने = जन्मसम्बन्धी महः = क्षणः, जनिमहः = जन्ममहोत्सवप्रसङ्गस्तस्मिञ्जनिमहे = जन्माऽभिषेकाऽवसरे "हरिसंक" ति हरेः = सौधर्मेन्द्रस्य शङ्का = 'अधुनैव जातमात्रो लघुकायो भगवानेतादृशानां महत्तमानां कलशानामभिषेकं कथं सहिष्यते' इत्येवंरूपा सा हरिशङ्का ताम्, हरिशङ्काम्, 'अवणोइउं' त्ति अपनोदितुं = दूरीकर्तुम् चरणंगुलेण' त्ति, चरणस्य = पादस्याङ्गुलः = अङ्गुष्ठस्तेन चरणाङ्गुलेन "फुसिअ" ति स्पृष्टं 'देवायल" ति, देवानाम् = अमराणामचलः = शैलो देवाचलो = मेरुगिरिस्त देवाचलं = हेमाद्रिम्, "कम्पीअ" त्ति, कम्पयामास = दोलयामास । "जस्स" त्ति, यस्य वीरप्रभोः "सासणं" त्ति, शिष्यते = प्रतिपाद्यत इति शासनम्, "अनट्" (सि० ५ ३-१२४) इत्यनेन भावेऽनट्प्रत्ययः, शासनं = द्वादशाङ्गं प्रवचनम् । शास्यन्ते सन्मार्गे स्थाप्यन्ते जीवा अनेनेति शासनं = द्वादशाङ्ग प्रवचन तीर्थो वा । तत् किं विशिष्टम्? इत्याह–"णिव्वाणद' त्ति, निर्वाति = सिध्यति स्थिरीभवति वाऽऽत्माऽत्रेति निर्वाणं = मुक्तिः श्रेयो वा "निर्वाणमवाते" (सि० ४-२ ७९)इति साधुः, तं ददाति = यच्छतीति निर्वाणदं = कल्याणकारकं "कलिजुगे" त्ति, कलियुगे = पञ्चमकाले पञ्चमारके कीदृश इत्याह–"दुहाकुले" त्ति, दुःखेन जन्मजरामरणादिलक्षणेना--ऽऽकुले = व्याप्ते दुःखाकुले "जयए" त्ति, जयति = अपरिभवशीलो भवति, यत्तदोर्नित्याऽभिसम्बन्धात् "स" त्ति स = विश्वविश्वविदितनामा वीरप्रभुः, पुनः किं विशिष्टः? इत्याह–"तूहेसरो अतिमो"त्ति तीर्थस्य साधुसाध्वीश्रावकश्राविकारूपचतुर्विधसङ्घलक्षणस्य जङ्गमतीर्थस्येश्वरः = स्वामी = तीर्थेश्वरः, अन्तिमः = चरमः = चरमतीर्थपतिरित्यर्थः, पुनरपि किंभूतः,?-"भवज्जतरणी" त्ति, भविष्यन्तीति "वत्स्यति

गम्यादि" (सि० ५-३-१) इतीन्प्रत्ययान्तनिपाते भविन एवाऽब्जानि=कमलानि=भव्यब्जानि तेषु तरणिः=सूर्यः, बोधकारित्वाद्भव्यब्जतरणिः, "मम" त्ति, मम सिवं ति, शिवं=मुक्तिं कल्याणं वा 'दाउ' त्ति, ददातु = दानविषयीकरोतु ।

इदन्त्वत्राऽवधेयम्—इत आरभ्य श्रीमदाचार्यविजयप्रेमसूरि यावत्पट्टधरसत्कश्लोकानामाद्यश्लोकाद्याक्षरैः सप्तमभक्त्या ग्रन्थ ग्रन्थकर्तृ-तद्गुर्वादिनामानि दर्शितानि सन्ति । तद्यथा—

"सिरिमंतविजअदाणसूरिसीससिरिमंतविजअपेमसूरिसीस △ पंणासहेमंतविजअगणिसीसललितसेहरविजअसीसराअसेहरविजअसीसवीरसेहरविजएण रइअं बंधविहाणं।" इति ।

तच्छाया—"श्रीमद्विजयदानसूरिशिष्यश्रीमद्विजयप्रेमसूरिशिष्य △ पन्न्यासहेमन्तविजयगणिशिष्यललितशेखरविजयशिष्यराजशेखरविजयशिष्यवीरशेखरविजयेन विरचितं बन्धविधानम्।" इति।

तथा चाऽग्रे वक्ष्यते—

"वीरा पट्टहराण अज्जसिलोगाण अक्खराऽऽज्जा जे । गथस्स कत्तुणो से से गुरुआईण पच्चया तेऽत्थि ॥"

(गीति) इति ॥७॥

एकादशानामिन्द्रभूत्यादिगणाधिपानां सामान्यस्तुतिलक्षणां मन्दाक्रान्तामाह—

वीरा जेहिं, गहिअ तिवइं, गुम्हिआ बारसंगी,
णट्ठो वीर-ज्जुमणिउदये, जाणऽणाणंधयारो ।
अंगं जेसिं, पणमइ पहुं, कम्मसत्तू णसन्ति,
कल्लाणत्थं, मइ गणहरा, ते होंतु गोअमाई ॥८॥ (मंदक्कंता)

"वीरा" इत्यादि, "जेहिं" त्ति, यैर्बुद्धिनिधानैरेकादशगणनाथैः "वीरा" त्ति, वीरप्रभुसकाशात् "तिवइं" ति, त्रयाणामुत्पादव्ययध्रौव्यलक्षणानां पदानां समाहारस्त्रिपदी, तां त्रिपदीम्, "गहिअ" त्ति, गृहीत्वा = प्राप्य "बारसंगी" त्ति द्वादशानामाचाराङ्गादीनामङ्गानां समाहारो द्वादशाङ्गी=गणिपिटकम्, "गुम्हिआ" त्ति गुम्फिता = रचिता । "जाण"त्ति, येषां गणभृताम्, "अणाणंधयार" त्ति अज्ञानमेवाऽन्धकारः = तमोऽज्ञानान्धकारः "वीरज्जुमणिउदये" त्ति वीर एव द्युमणिः = सूर्यो वीरद्युमणिस्तस्योदये वीरद्युमण्युदये सति "णट्ठो" त्ति, नष्टः = क्षयं गतः "जेसिं" ति, येषां गणेशानाम्, "अंगं" ति, अङ्गं = वपुः "पहुं" ति, प्रभुं = महावीरस्वामिनं "पणमइ" त्ति प्रणमति = प्रकर्षेण निम्नं भवति, 'णसन्ति' त्ति, नश्यन्ति = पलायन्ते । के पुनः "कम्मसत्तू" त्ति, कर्माणि मोहादीनि, ननु मूलाष्टकर्मसु ज्ञानावरणस्यैव प्रथमतया कर्मग्रन्थादिषूक्तत्वात्तं क्रममुल्लङ्घ्य कथं मोहनीयं कर्मादितया भवता गृहीतमिति

△ अधुना पुनर्मुद्रणसमये श्रीमदाचार्यदेवविजयप्रेमसूरीश्वरपट्टप्रभावका-ऽऽचार्यश्रीमद्विजयहीरसूरीश्वर इति नामालङ्करोति स्म ।

चेत्, सत्यम्, किन्त्वत्राऽष्टस्वपि कर्मसु मोहनीयस्य प्राधान्यमस्तीति ख्यापनार्थम्। कथ?-मिति चेदुच्यते, नैव मोहनीयस्य क्षयं विनाऽन्येषां क्षयो भवति, मोहनीयस्य क्षये सत्यन्येषां क्षयोऽवश्यं भाव्यतस्तस्य प्राधान्यमस्ति तान्येव शत्रवः=प्रतिपक्षाः कर्मशत्रवः।

अत्र च प्रणमनरूपस्य हेतोर्वैयधिकरणादसंगत्यलङ्कृतिः, तथा चोक्तं चन्द्रालोके "आख्याते भिन्नदेशत्वे, कार्यहेत्वोरसंगतिः" तथैव काव्यप्रकाशे दशम उल्लासे (सू० १९१) "भिन्नदेशतयाऽत्यन्तं कार्यकारणभूतयोः। युगपद्धर्मयोर्यत्र, ख्यातिः सा स्यादसंगतिः ॥१८४" इतीह यद्देशं कारणं तद्देशमेव कार्यमुत्पद्यमानं दृष्टम् यथा धूमादि। यत्र तु हेतुफलोभयोरपि धर्मयोः केनाऽप्यतिशयेन नानादेशतया युगपदभासनम् सा तयोः स्वभावोत्पन्नपरस्परसंगति-त्यागाद् असंगतिः।

"ते" त्ति, यत्तदोर्नित्याऽभिसम्बन्धात्पूर्वोक्तविशेषणविशिष्टा "गोअमाई" त्ति, गौतमादयः, गौतमः=इन्द्रभूतिरत्रादिपदेनाऽग्निभूति-वायुभूति-व्यक्त-सुधर्मस्वामि-मण्डित मौर्य-पुत्रा-ऽकम्पिता-ऽचलभ्रातृ-मेतार्य प्रभासा इति दश ग्राह्यास्तत एकादश गौतमादयः' गणहरा" त्ति गणाः=मुनिसमूहास्तेषाम्, धरन्ति=पालयन्तीति धराः, "अच्' (सि०५-१४९) इत्यच्-प्रत्ययः, गणानां धराः गणधराः गणाधिपा इत्यर्थः, "मइ" त्ति, मम 'कल्लाणत्थ" ति कल्याणार्थं=शिवाय "होन्तु" त्ति भवन्तु=सन्तु=कल्याणकरास्सन्तु इत्यर्थः, एकादशानां गणेश्वराणां संक्षेपतस्स्वरूपं किञ्चिदुच्यते-इन्द्रभूत्यग्निभूतिवायुभूतयोऽमी त्रयः सहोदरा वसुभूति-सुताः पृथ्वीकुक्षिजा गोतमगोत्रीया गोर्बरग्रामवास्तव्याः। तुर्यो धनमित्रपुत्रो वारुणीतनुजो भारद्वाजगोत्रीयः कोल्लाकाख्यसन्निवेशवासी। पञ्चमो धम्मिलवात्को भद्दिलाभूरग्निवेश्यान-गोत्रीयः कोल्लाकाख्यसन्निवेशवास्तव्यः। षष्ठो वासिष्ठगोत्रीयो धनदेवसूनुः, सप्तमः काश्यप-गोत्रीयो मौर्यदारकः, एतौ द्वावपि देशाचाराविरुद्धत्वादेकमातृकौ विजयाङ्गजौ, तस्मिन्देशे, तत्कुल एकस्मिन्भर्त्तरि मृते द्वितीयपतिकरणस्याचीर्णत्वात्, मौर्यसन्निवेशवासिनौ। अष्टमो देवनन्दनो जयन्तीकुक्षिसंभवो गोतमगोत्रीयो मिथिलापुरवास्तव्यः। नवमो वसुतनयो नन्दाकुक्षिरत्नं हरित-गोत्रीयः कोशलवासी। दशमो दत्तपितृको वरुणीदेवीमातृकः कौडिन्यगोत्रीयस्तुङ्गिकाख्यसन्नि-वेशवास्तव्यः। एकादशः श्रीबलात्मजोऽतिभद्रागर्भसमुद्भवः कौडिन्यगोत्रीयः।

तेषामेकादशानां जन्मनक्षत्राणि क्रमेणैतानि ज्येष्ठाकृतिकास्वातिश्रवणोत्तरफाल्गुनी-मघामार्गोत्तराषाढामृगशीर्षाश्विनीपुष्यलक्षणानि। राशयस्तु वृश्चिकवृषभतुलामकरकन्यासिंहवृषभ-मकरमिथुनमेषकर्कस्वरूपाः। एत एकादशाऽपि वेदवेदाङ्गपारङ्गता द्विजकुलावतंसाः प्रत्येकं शिष्याणां पञ्चशतैराद्याः पञ्च, सार्धशतत्रयेण षष्ठसप्तमौ द्वौ, शेषास्तु चत्वारस्त्रिभिः शतैः सह महसेननाम्न्युद्याने वीरविभोः पार्श्वे क्रमेण (१) आत्माऽस्ति नवा? (२) कर्माऽस्ति नवा?

(३) शरीरमेव जीवः ? (४) पञ्च भूतानि सन्ति नवा ? (५) यो यादृशः स परभवे तादृशः ? (६) बन्धमोक्षौ न स्तः ? (७) देवाः सन्ति नवा ? (८) नारकाः सन्ति नवा ? (९) पुन्यपापे स्तो नवा ? (१०) परलोकोऽस्ति नवा ? (११) निर्वाणमस्ति नवा ? इति स्वस्वशङ्कां निराकृत्य महावीरस्वामिपार्श्वे माधवमासैकादश्यां शुक्लतिथौ समवसरणे प्रव्रजिताः, तदानीमेव प्रभुणा दत्तामुत्पादव्ययध्रौव्यलक्षणा त्रिपदीमवाप्य स्वीया स्वीया द्वादशाङ्गी रचिता तैः, ततो वीरप्रभुणा ते गणधरपदे स्थापिताः, सुधर्मस्वामिनं पुरस्कृत्य गणोऽनुज्ञातश्च, यतस्तस्य दीर्घायुष्कत्वाच्छ्रीसुधर्मस्वामिसन्तानानामेव दुष्प्रसहसूरि यावत्प्रवर्तनाच्च । तथा चोक्तमावश्यकचूर्णौ – ताहे सामी पुव्व तित्थ गोयमसामिस्स दव्वेहिं गुणेहिं पज्जवेहिं अणुजाणामित्ति भणति, चुण्णाणि य से सीसे छुहइ ततो देवा वि चुण्णवास पुप्फवास च उवरिं वासति, गण च सुधम्मसामिस्स धुरे ठवेऊण अणुजाणइ । 'इति ।

तथा कल्पसूत्र बोधिकावृत्तावपि– 'तत्र मुख्यानामेकादशाना त्रिपदीग्रहणपूर्वकमेकादशाङ्ग-चतुर्दशपूर्वरचना गणधरप्रतिष्ठा च, तत्र द्वादशाङ्गीरचनाऽनन्तरं भगवास्तेषा तदनुज्ञा करोति, शक्रश्च दिव्य वज्रमयस्थाल दिव्यचूर्णाना भृत्वा त्रिभुवनस्वामिन सन्निहितो भवति, तत. स्वामी रत्नमयसिंहासनादुत्थाय सपूर्णां चूर्णमुष्टि गृह्णाति, ततो गौतमप्रमुखा एकादशाऽपि गणधरा ईषदवनता अनुक्रमेण तिष्ठन्ति, देवास्तूर्यध्वनिगीतादिनिरोध विधाय तूष्णीका शृण्वन्ति, ततो भगवान पूर्व तावत् भणति–'गौतमस्य द्रव्य-गुण-पर्यायैस्तीर्थं अनुजाणामि' चूर्णांश्च तन्मस्तके क्षिपति ततो देवा अपि चूर्णपुष्पगन्धवृष्टिं तदुपरि कुर्वन्ति, गण च भगवान् सुधर्मस्वामिन धुरि व्यवस्थाप्यानुजानाति ।" इति ।

तथा तपागच्छपट्टावल्यामपि महोपाध्यायश्रीधर्मसागरगणिभिरप्युक्तम्—
"गणधरपदस्थापनावसरे श्रीवीरेण श्रीसुधर्मस्वामिन पुरस्कृत्य गणोऽनुज्ञात, दुष्प्रसह यावत् श्रीसुधर्मस्वाम्यपत्यानामेव प्रवर्तनात्" ति ।

अष्टमनवमगणभृतोर्दशमैकादशगणनाथयोश्चैकवाचनात्वान्नवैव गणा वीरनाथस्याऽभूवन् ।

एत एकादशाऽपि राजगृहाऽभिधे पुरे वैभारगिरौ मासं यावद् विहिताऽनशनाः सिद्धि प्राप्ताः, तेभ्यो नव वीरस्वामिनि विद्यमाने सति शिवं गताः, तेषां नवानामिह गृहपर्यायादिकमुच्यते, द्वयोरग्रे ग्रन्थकृता स्वयमेव वक्ष्यमाणत्वात् । तत्राऽग्निभूतेः षट्चत्वारिंशद्घायना गृहस्थपर्याये, छद्मस्थे द्वादश वत्सराः, सर्वज्ञत्वे षोडश शरदः, सर्वायुश्चतुःसप्ततिर्वर्षाणि । वायुभूतेर्द्विचत्वारिंशदब्दा गार्हस्थ्ये, दश शारदाः छाद्मस्थ्ये, अष्टादशाब्दानि केवलित्वे सर्वायुः सप्ततिः समाः । व्यक्तस्वामिनो गृहस्थत्वादिषु क्रमेण पञ्चाशद् द्वादशाष्टादश संवत्सराः, सर्वायुश्चाशीतिर्वत्सराः । षष्ठगणेशितुस्त्रिपञ्चाशच्चतुर्दश षोडश क्रमाद् गृहित्वादिषु समाः, सर्वजीवितं च त्र्यशीतिशब्दाः । सप्तमस्य त्रिषु क्रमेण पञ्चषष्टिश्चतुर्दश षोडश वत्सराः, अखिल युश्च पञ्चनवतिर्हायनानि । अष्टमस्य त्रिषु पर्यायेषु क्रमशोऽष्टचत्वारिंशन्नवैकविंशतिः संवत्सराः, संवद् ष्टसप्ततिर्निखिलजीवनम् । नवमस्य गृहवासादिषु क्रमेण षट्चत्वारिंशद् द्वादश चतुर्दश वर्षाः,

चेत्, सत्यम्, किन्त्वत्राऽष्टस्वपि कर्मसु मोहनीयस्य प्राधान्यमस्तीति ख्यापनार्थम्। कथ?-मिति चेदुच्यते, नैव मोहनीयस्य क्षयं विनाऽन्येषां क्षयो भवति, मोहनीयस्य क्षये सत्यन्येषां क्षयोऽवश्य भाव्यतस्तस्य प्राधान्यमस्ति तान्येव शत्रवः=प्रतिपक्षाः कर्मशत्रवः।

अत्र च प्रणमनरूपस्य हेतोर्वैयधिकरण्यादसंगत्यलङ्कृतिः, तथा चोक्तं चन्द्रालोके "आख्याते भिन्नदेशत्वे, कार्यहेत्वोरसंगतिः" तथैव काव्यप्रकाशे दशम उल्लासे (सू० १९१) "भिन्नदेशतयाऽत्यन्त कार्यकारणभूतयोः। युगपद्धर्मयोर्यत्र, ख्यातिः सा स्यादसंगतिः ॥१२४" इतीह यद्देशं कारणं तद्देशमेव कार्यमुत्पद्यमानं दृष्टम् यथा धूमादि। यत्र तु हेतुफलोभयोरपि धर्मयोः केनाऽप्यतिशयेन नानादेशतया युगपदभासनम् सा तयोः स्वभावोत्पन्नपरस्परसंगति-त्यागाद् असंगतिः।

"ते" त्ति, यत्तदोर्नित्याऽभिसम्बन्धात्पूर्वोक्तविशेषणविशिष्टा "गोअमाई" त्ति, गौतमादयः, गौतमः=इन्द्रभूतिरत्रादिपदेनाऽग्निभूति-वायुभूति-व्यक्त-सुधर्मस्वामि-मण्डित मौर्य-पुत्रा-ऽकम्पिता-ऽचलभ्रातृ-मेतार्य-प्रभासा इति दश ग्राह्यास्तत एकादश गौतमादयः 'गणहरा" त्ति गणाः=मुनिसमूहास्तेषाम्, धरन्ति=पालयन्तीति धराः, "अच्" (सि०५-१४९) इत्यच्-प्रत्ययः, गणानां धराः गणधराः गणाधिपा इत्यर्थः. "मह" त्ति, मम 'कल्लाणत्थ" ति कल्याणार्थं=शिवाय "होन्तु" त्ति भवन्तु=सन्तु=कल्याणकरास्सन्तु इत्यर्थः, एकादशानां गणेश्वराणां संक्षेपतस्स्वरूपं किञ्चिदुच्यते-इन्द्रभूत्यग्निभूतिवायुभूतयोऽमी त्रयः सहोदरा वसुभूति-सुताः पृथ्वीकुक्षिजा गोतमगोत्रीया गोर्बरग्रामवास्तव्याः। तुर्यो धनमित्रपुत्रो वारुणीतनुजो भारद्वाजगोत्रीयः कोल्लाकाख्यसन्निवेशवासी। पञ्चमो धम्मिलपितृको भद्दिलाभूरग्निवेश्यायन-गोत्रीयः कोल्लाकाख्यसन्निवेशवास्तव्यः। षष्ठो वासिष्ठगोत्रीयो धनदेवसूनुः, सप्तमः काश्यप-गोत्रीयो मौर्यदारकः, एतौ द्वावपि देशाचाराविरुद्धत्वादेकमातृकौ विजयाङ्गजौ, तस्मिन्देशे, तत्कुल एकस्मिन्भर्त्तरि मृते द्वितीयपतिकरणस्याचीर्णत्वात्, मौर्यसन्निवेशवासिनौ। अष्टमो देवनन्दनो जयन्तीकुक्षिसंभवो गोतमगोत्रीयो मिथिलापुरवास्तव्यः। नवमो वसुतनयो नन्दाकुक्षिरत्नं हारित-गोत्रीयः कोशलवासी। दशमो दत्तपितृको वरुणीदेवीमातृकः कौडिन्यगोत्रीयस्तुङ्गिकाख्यसन्नि-वेशवास्तव्यः। एकादशः श्रीबलात्मजोऽतिभद्रागर्भसमुद्भवः कौडिन्यगोत्रीयः।

तेषामेकादशानां जन्मनक्षत्राणि क्रमेणैतानि ज्येष्ठाकृत्तिकास्वातिश्रवणोत्तरफाल्गुनी-मघामार्गोत्तराषाढामृगशीर्षाश्विनीपुष्यलक्षणानि। राशयस्तु वृश्चिकवृषभतुलामकरकन्यासिंहवृषभ-मकरमिथुनमेषकर्कस्वरूपाः। एत एकादशाऽपि वेदवेदाङ्गपारङ्गता द्विजकुलावतंसाः प्रत्येकं शिष्याणां पञ्चशतैराद्याः पञ्च, सार्धशतत्रयेण षष्ठसप्तमौ द्वौ, शेषास्तु चत्वारस्त्रिभिः शतैः सह महसेननाम्न्युद्याने वीरविभोः पार्श्वे क्रमेण (१) आत्माऽस्ति नवा? (२) कर्माऽस्ति नवा?

(३) शरीरमेव जीवः ? (४) पञ्च भूतानि सन्ति नवा ? (५) यो यादृशः स परभवे तादृशः ? (६) बन्धमोक्षौ न स्तः ? (७) देवाः सन्ति नवा ? (८) नारकाः सन्ति नवा ? (९) पुन्यपापे स्तो नवा ? (१०) परलोकोऽस्ति नवा ? (११) निर्वाणमस्ति नवा ? इति स्वस्वसंशयान् निराकृत्य महावीरस्वामिपार्श्वे माधवमासैकादश्यां शुक्लतिथौ समवसरणे प्रव्रजिताः, तदानीमेव प्रभुणा दत्तामुत्पादव्ययध्रौव्यलक्षणां त्रिपदीमवाप्य स्वीया स्वीया द्वादशाङ्गी रचिता तैः, ततो वीरप्रभुणा ते गणधरपदे स्थापिताः, सुधर्मस्वामिनं पुरस्कृत्य गणोऽनुज्ञातश्च, यतस्तस्य दीर्घायुष्कत्वाच्छ्रीसुधर्मस्वामिसन्तानानामेव दुष्प्रसहसूरिं यावत्प्रवर्तनाच्च । **तथा चोक्तमावश्यकचूर्णौ**- ताहे सामी पुव्वं तित्थं गोयमसामिस्स दव्वेहिं गुणेहिं पज्जवेहिं अणुजाणामित्ति भणति, चुण्णाणि य से सीसे छुहइ ततो देवा वि चुण्णवास पुप्फवासं च उवरिं वासंति, गणं च सुधम्मसामिस्स धुरे ठवेऊण अणुजाणइ । 'इति ।

तथा कल्पसूत्र बोधिकावृत्तावपि- 'तत्र मुख्यानामेकादशानां त्रिपदीग्रहणपूर्वकमेकादशाङ्ग-चतुर्दशपूर्वरचना गणधरप्रतिष्ठा च, तत्र द्वादशाङ्गीरचनाऽनन्तरं भगवांस्तेषां तदनुज्ञां करोति, शक्रश्च दिव्यं वज्रमयस्थालं दिव्यचूर्णानां भृत्वा त्रिभुवनस्वामिनं सन्निहितो भवति, ततः स्वामी रत्नमयसिंहासनादुत्थाय संपूर्णां चूर्णमुष्टिं गृह्णाति,ततो गौतमप्रमुखा एकादशाऽपि गणधरा ईषदवनता अनुक्रमेण तिष्ठन्ति, देवास्तूर्यध्वनिगीतादिनिरोधं विधाय तूष्णीकाः शृण्वन्ति, ततो भगवान् पूर्वं तावत् भणति-'गौतमस्य द्रव्य-गुण पर्यायैस्तीर्थं अनुजाणामि'चूर्णांश्च तन्मस्तके क्षिपति ततो देवा अपि चूर्ण-पुष्पगन्धवृष्टिं तदुपरि कुर्वन्ति, गणं च भगवान् सुधर्मस्वामिनं धुरि व्यवस्थाप्यानुजानाति ।" इति ।

तथा तपागच्छपट्टावल्यामपि महोपाध्यायश्रीधर्मसागरगणिभिरप्युक्तम्—

"गणधरपदस्थापनावसरे श्रीवीरेण श्रीसुधर्मस्वामिनं पुरस्कृत्य गणोऽनुज्ञातः, दुष्प्रसहं यावत् श्रीसुधर्मस्वाम्यपत्यानामेव प्रवर्तनात्" इति ।

अष्टमनवमगणभृतोर्दशमैकादशगणनाथयोश्चैकवाचनात्वान्नवैव गणा वीरनाथस्याऽभूवन् ।

एत एकादशाऽपि राजगृहाऽभिधे पुरे वैभारगिरौ मासं यावद् विहिताऽनशनाः सिद्धिं प्राप्ताः, तेभ्यो नव वीरस्वामिनि विद्यमाने सति शिवं गताः, तेषां नवानामिह गृहपर्यायादिकमुच्यते, द्वयोरग्रे ग्रन्थकृता स्वयमेव वक्ष्यमाणत्वात् । तत्राऽग्निभूतेः षट्चत्वारिंशद्धायना गृहस्थपर्याये, छद्मस्थे द्वादश वत्सराः, सर्वज्ञत्वे षोडश शरदः, सर्वायुश्चतुःसप्ततिर्वर्षाणि । वायुभूतेर्द्विचत्वारिंशदब्दा गार्हस्थ्ये, दश शारदाः छाद्मस्थ्ये, अष्टादशाब्दानि केवलित्वे सर्वायुः सप्ततिः समाः । व्यक्तस्वामिनो गृहस्थत्वादिषु क्रमेण पञ्चाशद् द्वादशाष्टादश संवत्सराः, सर्वायुश्चाशीतिर्वत्सराः । षष्ठगणेशितुस्त्रिपञ्चाशच्चतुर्दश षोडश क्रमाद् गृहित्वादिषु समाः, सर्वजीवितं च त्र्यशीतिशब्दाः । सप्तमस्य त्रिषु क्रमेण पञ्चषष्टिश्चतुर्दश षोडश वत्सराः, अखिलं पुनश्च पञ्चनवतिर्हायनानि । अष्टमस्य त्रिषु पर्यायेषु क्रमशोऽष्टचत्वारिंशन्नवैकविंशतिः संवत्सराः, संवदष्टसप्ततिर्निखिलजीवनम् । नवमस्य गृहवासादिषु क्रमेण षट्चत्वारिंशद् द्वादश चतुर्दश वर्षाः,

सकलजन्तुर्द्धिमप्रतिसमाः । दशमस्य त्रिषु भावेषु क्रमात् षट्त्रिंशद् दश षोडशाब्दाः, सर्वमायुर्द्वाषष्टिः शरदः । एकादशस्य गार्हस्थ्यादिषु त्रिषु पर्यायेषु क्रमशः षोडशाऽष्टौ षोडश समाः, अखिलं जीवितं चत्वारिंशत्संवत्सरा इति ॥८॥

इदानीं श्रीज्ञातनन्दनजिनेन्द्रस्यैकादशानां गणधराणां मध्य आद्यं गणभृतं श्रीइन्द्रभूति श्लोकत्रयेणाचिख्यासुरादौ तावल्लयग्राहिं "विध्यङ्गमाला" इत्यपराह्वं छन्द आह—

माणो वि चारित्तलाहस्स जस्स, रागोवि णाहस्स सेवाअ जस्स ।
सोगो वि केवल्लणाणस्स जस्स, चित्तं चरित्तं अहो गोअमस्स ॥१॥(लयग्गाहि)

(प्रे०) "**माणो वि**" इत्यादि, "**गोअमस्स**"त्ति, गोतमस्याऽपत्यं वृद्धं "ऋषिवृष्ण्यन्धककुरुभ्यः"(सि ६-१-६१)इत्यनेनाऽण्प्रत्यये गौतमो = गोतमवंशजस्तस्य गौतमस्य = गोतमाख्यस्य प्रथमगणाधिपस्य"**चरित्त**"त्ति, चरित्रं = जीवनं '**अहो चित्तं**'ति, अहो चित्रं = विस्मयजनकम् , कथम् ? इत्याह-"**जस्स**" त्ति, यस्य गौतमस्वामिनः '**माणो वि**" त्ति, मत्समो ऽस्मिञ्जगति कोऽपि नास्तीति मननं मानो=दर्पोऽपि संयमस्य विनयशीलानां सुप्रापकत्वेन मानिनां दुष्प्राप्यत्वेऽपि "**चारित्तलाहस्स**" त्ति चारित्रं = संयमस्तस्य लाभः = प्राप्तिस्तस्मै चारित्रलाभाय संयमप्राप्त्यर्थमभूदिति क्रियापदोऽध्याहार्यः । एवमुत्तरत्राऽपि । तथाहि-यदैत एकादशाऽपि द्विजा अपापापुर्यां सोमिलब्राह्मणगृहे यज्ञं कुर्वाणा आसंस्तदानीमपापापुर्यां तीर्थस्थापनार्थं वीरप्रभव आगताः,वीरविभुसमवसरणगमनार्थमाकाशादवतीर्णान् देवानालोक्येन्द्रभूत्यादयो विप्रास्तत्रस्थान् लोकाञ्जगदुः "**अहो यज्ञस्य माहात्म्यं यदाकर्षणाद्देवा अप्यायान्ति**" इति, किन्तु यज्ञं त्यक्त्वा समवसरणगतांस्तान् विलोक्य लोकमुखाच्च महावीरविभोर्व्यतिकरं श्रुत्वा कोऽप्ययं मायावी येन देवा अपि वञ्चितास्ततोऽहं तं वादे जित्वा स्ववशमानयामीति "**नह्येकस्मिन् कोशे द्वौ खड्गौ तिष्ठतः**" "**नह्येकस्यां गुहायां द्वौ केसरिणौ तिष्ठतः**" तद्वदहं च स चेति द्वौ सर्वज्ञा इत्येवं साऽहङ्कारो यावद्वीरनेतुरन्तिके गतस्तावद्वीरप्रभुणा तस्य मनोगतसंशयशल्यं दूरीकृत्य तस्मै चारित्रं दत्तमिति, '**जस्स**" त्ति, यस्य गौतमप्रभोः "**रागो वि**" त्ति, रागः = स्नेहोऽपि रागिजनानां वीतरागसेवायाः प्रायोऽसंभवेऽपि "**णाहस्स सेवाअ**" त्ति, नाथस्य = वीतरागस्य चरमजिनेशितुः सेवायै = भक्त्यै बभूव । अन्तिमसमये प्रभुणा देवशर्माणं नाम ब्राह्मणं प्रतिबोधयितुं गौतमस्वामी प्रेषितस्ततः प्रत्यागच्छन् पथि वीरनिर्वाणं निशम्य प्रभुरागवशेन जातशोकः प्रभोर्वीतरागत्वं चिन्तयन्सोऽपि वीतरागः केवली संजात इत्यस्य शोकोऽपि कैवल्यज्ञानाय जातः । तथा चोक्तमुपदेशपदवृत्तौ—

"छट्ठट्ठमाइतवमुग्गरूवमेसो सया निसेवंतो । मज्झिमपुरीए पत्तो विहरंतो भगवया सद्धिं ॥२५॥

कयवासावासाण तत्थ दुवेण्ह पि वोलिए सते । पकवाण सत्तगे तस्स मोहवोच्छेयणनिमित्त ॥२६॥
कत्तियअमावसाए समीवगामम्मि पेसिओ पहुणा । गोयम ? इमम्मि गामे सनोहमु सावग अमुग ॥२७॥
तत्थ गयस्स वियालो जाओ तत्थेव त निसि वुत्थो । जा नवरि पेक्खइ सुरे निवयते उप्पयते य ॥२८॥
उवउत्तेणोवगय भयव काल गओ जहा अज्ज । तेण पुण विरहभीरुयमणेण न कयाइ चित्तम्मि ॥२९॥
विरहदिणो परिभावियपुव्वो सो तक्खण विचिंतेइ । भगवमहो निन्नेहो जिणाहिवा परिमा हुति ॥३०॥
ज नेहरागपरिगयचित्ता जीवा पडति ससारे । एत्थावसरे णाण उप्पन्न गोयमपहुम्म ॥३१॥" इति ।

तथैव श्रीकल्पसूत्रसुबोधिकावृत्तावपि—

'[1]स्वनिर्वाणसमये देवशर्मण' प्रतिबोधनाय क्वापि ग्रामे स्वामिना प्रेषित श्रीगौतम त प्रतिबोध्य पश्चादागच्छन् श्रीवीरनिर्वाण श्रुत्वा वज्राहत इव क्षण तस्थौ वमाण च-'प्रसरति मिथ्यात्वतमो गर्जन्ति कुतीर्थकौसिका अद्य । दुर्भिक्षडमरवैरादि-राक्षसा प्रसरमेष्यन्ति ॥१ । राहुग्रस्तनिशाकरमिव गगन दीपहीनमिव भवनम् । भरतमिद गतशोभ त्वया विनाऽद्य प्रभो ! जज्ञे ।२॥ कस्याङ्घ्रिपीठे प्रणत पदार्थान् पुन पुन प्रश्नपदीकरोमि ? । क वा भदन्तेति वदामि? को वा मा गौतमेत्याप्तगिराऽथ वक्ता ? ॥३॥ हा ! हा ! हा ! वीर ! किं कृतम् ? यदीदृशेऽवसरेऽह दूरीकृत . किं मण्डक मण्डयित्वा बालवत्त्वाञ्चलेऽलगिष्यम् ? किं केवलभागममार्गयिष्यम् ? किं मुक्तौ सकीर्णमभविष्यत् ? यदेवं मा विमुच्य गत , एष च 'वीर ! वीर !' इति कुर्वतो [2]'वीर (वी वी) इति मुखे लग्न गौतमस्य, तथा च हु ज्ञात-वीतरागा नि स्नेहा भवन्ति, ममैवायमपराधो यन्मया तदा श्रुतोपयोगो न दत्त , धिगिमम् एकपाक्षिक स्नेहम्, अल स्नेहेन, एकोऽस्मि, नास्ति कश्चन मम, एव सम्यक् साम्य भावयतस्तस्य केवलमुत्पदे । मुक्खमग्गपवण्ण ण,सिणेहो वज्जसिंखला । वीरे जीवतए जाओ,गोअमो ज न केवली।१॥प्रात काले इन्द्राद्यै र्महिमा कृत । अत्र कवि - अहङ्कारोऽपि बोधाय , रागोऽपि गुरुभक्तये । विषाद केवलायाभूत् , चित्र श्रीगौतमप्रभो. ॥२॥" इति ।

तमेवा-ऽऽह-"सागोऽवि" इत्यादि गतार्थम् ॥९॥

अथ पुनरपि तमेव विशेषयन्भुजङ्गप्रयातम् "अप्रमेया" इत्यपरनाम छन्दो निर्वक्ति—

स कप्पद्दुमाईहि ओमिज्जए किं, मणोवंछिआ पूरए जस्स णामं ।
सहत्थेण दिक्खाकुलेणं विवाहो, कओ जेण मुत्तीअ सद्धं भवीणं ॥१०॥ (भुजंगप्पयायं)

(प्रे०) "स" इत्यादि, "स" त्ति, स=गौतमप्रभुः "कप्पद्दुमाईहि" त्ति सामान्यकल्पित-फलदायित्वेन कल्पना-कल्पस्तत्प्रधानो द्रुमःकल्पद्रुमः=कल्पवृक्षः, स आदिर्येषां ते कल्पद्रुमादयः, अत्रादिपदेन चिन्तामणिप्रभृतयो ग्राह्याः, ततः कल्पद्रुमचिन्तामणिप्रमुखैः 'किं' ति, किं प्रश्ने "ओमिज्जए" त्ति, उपमीयते ? काक्वा नोपमीयते । कुतः ? इत्यत आह—"जस्स" त्ति, यस्येन्द्रभूतेः "णाम" ति नाम = अभिधानमात्रमपि = नामस्मरणमात्रमपीति यावत् , "मणोवंछिआ" त्ति, मनसि=चेतसि वाञ्छिता = इच्छिता मनोवाञ्छितास्तन्मनोवाञ्छितानप्यर्थान् "पूरए" त्ति, पूर्यते पूरयति-ते वा । तथा च स्तुत पूर्वाचार्यैः- "यस्याऽभिधान मुनयोऽपि सर्वे गृहणन्ति भिक्षा-

---

पाठान्तरे पुनरेवम्-१ स्वकीयनिर्वाणसमये २. वी वी

श्रमणस्य काले । मिष्टान्नपानाम्बरपूर्णकामा स गौतमो यच्छतु वाञ्छितं मे" इति । तथा गृहस्था अपि व्यापारादिकार्यं कुर्वाणा गौतमस्वामिनो लब्धिर्भवत्विति भणन्तीति । न तथा कल्पद्रुमादीनां नामग्रहणेन किमपि कार्यं जायते, अतस्तैर्नोपमाविषयो भवेत् । "जेण" त्ति येन गौतमस्वामिना "सहत्थेण" त्ति, स्वहस्तेन = निजकरेण "दिक्खाछलेणं" ति, दीक्षा = प्रव्रज्या तस्याः छलेन = व्याजेन दीक्षाछलेन 'भवीणं' ति, भविनां = भव्यजनानां 'मुत्तीअ' त्ति, मुक्त्या = मुक्तिवध्वा = सिद्धिस्त्रिया 'सद्ध' ति, सार्धं = सह "विवाहो" त्ति, विवाहः = करग्रहः "कयो" त्ति कृतः = चक्रे । अयम्भावः—गौतमस्वामिना दीक्षिताः प्रायः सर्वेऽपि तद्भव एव मुक्तिं गताः । प्रायोग्रहणं हि वीरविभुना त्रिपृष्ठवासुदेवभवे मारित त्रिपृष्ठसारथिगौतमजीवेन सान्त्वितं सिंहजीवं हालिकं प्रबोध्य दीक्षां दत्त्वा गौतमस्वामी वीरप्रभुसमवसरणाऽन्तिकं आनीतवान् , तत्र प्रभुं दर्शयित्वाऽस्माकमेते गुरवस्सन्तीत्युक्ते सति स प्रभुं दृष्ट्वा पूर्वभववैरकारणात्किमेते नो गुरव इत्युक्त्वा साधुनैपथ्यं गौतमस्वामिने दत्त्वा गतस्ततः स गौतमस्वामिना दीक्षितोऽपि न तद्भव एव शिवं गतः, अतः प्रायोग्रहणं कृतम् ॥१०॥

अथाऽऽद्यगणभृतो जन्मादिपर्यायकालमानं निर्दिदिक्षुः पथ्या ऽऽर्यामाचष्टे—

स गिहत्थे पण्णासं, वासा तीसं वयम्मि सव्वविए ।
बारस ठाउं सिद्धो, वीरसिवाऽद्दे दुवालसमे ॥११॥ (पथ्याऽऽर्या)

(प्रे०) 'स" इत्यादि, "स' त्ति, स = गौतमगणधरः "गिहत्थे" त्ति, गृहस्थे = गृहावासे "पण्णास" ति, पञ्चाशत् "वासा" त्ति, वर्षान् = वत्सरान् "वयम्मि" त्ति, व्रते = छद्मस्थदीक्षापर्याये "तीस" ति, त्रिंशद् वर्षाणि, "सव्वविए" त्ति, सर्वविदि = सर्वज्ञपर्याये "बारस" त्ति, द्वादश वर्षान् "ठाउ" ति, स्थित्वा = उषित्वा, यदुक्तमुपदेशपदवृत्तौ–एत्थावसरे णाण उप्पन्नं गोयमपहुस्स ३२। केवलिकालो बारस वासा जाओ ' इति । "वीरसिवा" त्ति, वीरशिवाच्चरमजिननिर्वाणाद् "दुवालसमे" त्ति द्वादशे "अद्दे" त्ति, अब्दे = हायने गते गच्छति वेत्यध्याहारः 'सिद्धो" त्ति, सिद्धः = मुक्तिं गतः ।

तथा चाऽऽह स्थविरावल्यां श्रीहिमवदाचार्यैः–

ज रयणिं च णं वद्धमाणो तित्थयरो णिव्वुओ, तम्मि य रयणीए जिट्ठस्स इदभूइस्स अणगारस्स गोयमस्स केवलवरनाणदसणे समुप्पण्णे । तओ थेरस्स णं अज्जसुहुम हम्म)स्स अग्गिवेसायणगुत्तस्स निग्गथगण समप्प इदभूई वीराओ दुवालसवासेसु विइक्कतेसु निव्वुओ" इति । एवमन्यबहुस्थलेष्वपि ।

अथ प्रसङ्गतस्तत्कालभाविनीं प्रथमनिह्नवोत्पत्तिं वक्ष्ये । तथाहि–प्रभोर्भागिनेयो जामाता च जमालिनामा राजपुत्रः पञ्चशतपुरुषपरिवृतः प्रव्रज्यां जग्राह, तदनु तत्प्रिया भगवतो दुहिता

च प्रियदर्शनाऽभिधा सहस्रस्त्रीयुता प्रव्रजिता, ततश्चाऽधीतैकादशाङ्गेन जमालिना विहारार्थं द्वित्रिः पृष्टे भगवति मौनस्थितेऽपि पञ्चशतमुनिकलितो विजहार, विहरंश्चैकदा श्रावस्तीनगरीं प्राप्तः, तत्र च तस्यान्तःप्रान्ताहारैस्तीव्रो व्याधिः समुत्पन्नः, ततः स्थातुमशक्येन तेन मुनयः संस्तारककरणाय कथिताः, तैरपि बहुकृतत्वादर्धकृतमपि कृतमिति कथिते वेदनाऽभिभूतः स तमर्धकृतं वीक्ष्य क्रुद्धः "**क्रियमाणं कृतम्**"इति सिद्धान्तमपलपन् "क्रियमाणमकृतम्""**कृतमेव कृतम्**" इति प्ररूपयति स्म । ततः स्थविरैर्युक्तिभिः प्रबोधितोऽपि न प्रबुद्धः, ततस्ते तं त्यक्त्वा प्रभोः पार्श्वे गताः, तदा प्रियदर्शना तत्रैवाऽऽसीत्, जमाल्यनुरागेण तन्मताश्रिता साऽपि सहस्रसाध्वीपरिवारा ढङ्केन श्रावकेण प्रतिबोधिता तथा शेषाः श्रमणा अपि तमेकाकिनं मुक्त्वा प्रभोः समीपे गताः । निरोगीभूतः स पश्चाद् गौतमस्वामिना वादे निरुत्तरीकृतोऽपि भगवता प्रतिबोधितोऽप्यश्रद्धानो बहुरतमतस्थापको जमालिः प्रथमो निह्नवः प्रभुकेवलतश्चतुर्दशे वर्षे जातः । स चाऽनालोचितपापकर्मा दीर्घश्रामण्यपर्यायं पालयित्वा प्रभोर्विद्यमान एव कालं कृत्वा त्रयोदशसागरोपमस्थितिकः किल्बिषिको देवो जातः । स तिर्यग्नरसुररूपान् पञ्चदश भवान् कृत्वा सिध्यति । विशेषाऽर्थिना **विशेषाऽऽवश्यकवृत्ति-श्रीयशोदेवोपाध्यायकृत-नवपदप्रकरणबृहद्वृत्ति-प्रमुखा** ग्रन्था अवलोकनीयाः ।

अथ द्वितीयनिह्नवस्वरूपं प्रकटयति—

प्रभुकेवलतः षोडशे वर्षे चतुर्दशपूर्वविदो वसुदेवाचार्यस्य तिष्यगुप्तनामा शिष्यः "**एकोऽन्त्यप्रदेशो जीव**" इति मतस्य स्थापको द्वितीयो निह्नव ऋषभपुरे जातः । तथा **आत्मप्रवादपूर्वस्य** "एगे भंते ? जीवपएसे जीवेऽत्ति वत्तव्वं सिआ । नो इणट्ठे समट्ठे । एवं दो तिण्णि० जाव दस संखेज्जा । असंखेज्जा भंते ? जीवपएसा जीव त्ति वत्तव्वं सिआ ? नो इणट्ठे समट्ठे । एगपएसूणे वि णं जीवे नो जीवे त्ति वत्तव्वं सिआ । से केणं अट्ठेणं ? जम्हा णं कसिणे पडिपुन्ने लोगागासपएसतुल्ले जीवे जीवे त्ति वक्तव्वं सिआ, से तेण अट्ठेणं" इत्यालापकमधीयानः सोऽस्मिन्नालापक एवमादिदेशे तथैकदेशन्यूनेऽपि जीवस्य निषिद्धत्वात्ततो येन केनाऽपि चरमप्रदेशेन स जीवः परिपूर्णः क्रियते, स एव प्रदेशो जीवः, न शेषप्रदेशा इति विप्रतिपन्नः, गुरुणा यथाऽन्त्यप्रदेशो जीवस्तथादिमप्रदेशः कुतो न शेषप्रदेशतुल्यपरिणामत्वादित्यादिभिरनेकयुक्तिप्रयुक्तिभिर्बोधितोऽप्यमन्यमानो गच्छबाह्यः कृतः, पश्चादामलकल्पायां नगर्यां मित्रश्रीनाम्ना श्रावकेण कूरपक्वाऽन्नवस्त्रादीनामन्त्यावयवदानेन प्रतिबोधितः सपरिवारः स गुर्वन्तिके गत्वा प्रतिक्रम्य विशुद्धो जातः । तथा चोक्तमावश्यके **भाष्यकृद्भिः पूर्वधरप्राचीनाचार्यैः**—

'सोलसवासाणि तया जिणेण उप्पाडियस्स णाणस्स । जीवपएसिअदिट्ठी उसभपुरम्मी समुप्पण्णा । १२७॥ रायगिहे गुणसिलए वसु चोद्दसपुव्वि तीसगुत्ताओ । आमलकप्पा णयरी मित्तसिरी कूरपिंडाई॥१२८॥"इति ।

विशेषावश्यके पुनरिदमेव गाथाद्विकं निर्युक्तिरूपेण गृहीतम्, तथाच तद्ग्रन्थः-

"सोलस वासाइं तया, जिणेण उप्पाडियस्स णाणस्स। जीवपएसियदिट्ठी तो उसभपुरे समुप्पन्ना ॥२३३३॥
रायगिहे गुणसिलए वसु चउदसपुव्वि तीसगुत्ते य। आमलकप्पा नयरी मित्तसिरी कूरपिडमाई ॥२३३४॥"
इति।

विशेषार्थिना त्वस्यैव निर्युक्तिगाथाद्वयस्य विशेषाऽऽवश्यके सटीकभाष्यगाथाः २३३५ आरभ्य २३५५ पर्यन्ता विलोकनीयाः ॥११॥

अथ वीरविभोः पट्टपरम्परायां प्रथमपट्टधरमाद्ययुगप्रधानञ्च सुधर्मस्वामिनं श्लोकद्वयेन विवर्णयिषुः शोभां प्राह—

रिसिंदू गच्छीसो पढमजुगवरो वीरपट्टाहिसित्तो,
सुहम्मो सो आसी कयभविपयाजोगखेमो णिवोव्व।
सुई जम्हा जाया इह खलु भरहे संतई सासणा जा,
सुविच्छिण्णाऽग्गेऽग्गे भविविमलयरी रायए जणहइव्व ॥१२॥ सोहा)

(प्रे०) "रिसिंदू" इत्यादि, "सो" त्ति, सः "सुहम्मो" त्ति, शोभनो धर्मो यस्य "द्विपदाद्धर्मादन्" (सि०७-३-१४१) इत्यनेनाऽन्समासान्तः, सुधर्मा सुधर्माऽभिधोऽग्निवेश्यगोत्रजः पञ्चमगणभृत् "आसी" त्ति, आसीत्=अभूदित्यर्थः, किं विशिष्टः स इत्याह-"रिसिंदू" त्ति, ऋषिषु=मुनिष्विन्दुरिवाह्लादकत्वादिन्दु ऋषीन्दुः, पुनः किं विशिष्टः? "गच्छीसो" त्ति, गम्धातो "तुदिमदि " (सि० उणा०१२४) इति छक्प्रत्यये गच्छस्तस्य गच्छस्य = साधुसमुदायरूपस्येशः = स्वामी गच्छेशः = गणधरः, पुनः किंभूतः? इत्याह-"पढमजुगवरो" त्ति, युगे=कालविशेषे वरः श्रेष्ठः = युगवरः, प्रथमः=आद्यश्चासौ युगवरः = प्रथमयुगवरः = प्रथमयुगप्रधानः, तथाहि-अस्या अवसर्प्पिण्याः पञ्चमारके त्रयोविंशतिरुदया भविष्यन्ति, तत्राऽस्मिन्गतप्रथमोदये प्रथमो युगप्रधानो बभूव। पुनरपि किं विशिष्टः? इत्याह-"वीरपट्टाहिसित्तो" त्ति, वीरस्याऽन्तिमतीर्थपतेः पट्टे चतुर्विधसङ्घनायकलक्षणेऽधिकारविशेषेऽभिषिक्तः=विधिना स्थापितः = वीरपट्टाऽभिषिक्तः, "कयभविपयाजोगखेमो" त्ति, भविनः = स्वगुणगणमाहात्म्येन मुक्तिगमनयोग्यास्त एव प्रजा = जनगणो = लोको वा भविप्रजा तस्या योगः = अप्राप्तसम्यग्दर्शनादिगुणाधानं, क्षेमं = प्राप्तसम्यग्दर्शनादिरक्षणं योगश्च क्षेमं च योगक्षेमे भविप्रजाया योगक्षेमे = भविप्रजायोगक्षेमे कृते भविप्रजायोगक्षेमे येन स कृतभविप्रजायोगक्षेमः। क इव? इत्याह-"णिवोव्व" त्ति, नन् = मनुष्यान् पाति = रक्षति नृपः = राजा इव। राजा राज-

सिंहासनेऽभिषिच्यते, स च प्रजाया योगक्षेमकरो भवति, यत्तदोर्नित्याऽभिसम्बन्धात्स कः ? इति जिज्ञासायामाह–"जम्हा" त्ति, यस्माच्छ्रीसुधर्मस्वामिनः "जाया" त्ति, जाता = संभूता "सन्तई" त्ति, सन्ततिः = मुनिपरम्परा कीदृशीत्याह-"सुई" त्ति, शुचिः = पवित्रा "ऽग्गेऽग्गे" त्ति, अग्रेऽग्रे = पुरः पुरः " वितिण्णा" त्ति, शोभना विस्तीर्णा सुविस्तीर्णा "सु पूजायाम्" (सि० ३-१-४४) इति समासः, सुविस्तीर्णा = अतिविशाला "भविविमलयरा" त्ति, विगतो मलो पापलक्षणो यस्माद्यस्य वा स विमलः, विमलकरोतीत्येवंशीला सा विमलकरी "हेतुतच्छील०" (स०५ १ १०३ इति टप्रत्ययः टित्वात्स्त्रियां ङीप्रत्ययः। भविनां = सिद्धयर्हाणां विमलकरी भविविमलवरी = भव्यजनानां पापपङ्कहारिणीत्यर्थः। कुत्र ? इति "इह" त्ति, अस्मिन् "खलु" त्ति खलु-अवधारणे वाक्याऽलङ्कारे पादपूर्तौ वा–अस्मिन्नेव "भरहे" त्ति, भरते = भरतनाम्नि क्षेत्रे "रायए" त्ति राजते शोभते का इव ?– 'जण्हइव्व" जह्नुना सगरतनुजेनाऽवतारितत्वाज्जह्नोरियं जाह्नवी, लौकिके पुनर्जह्नुना पीता श्रोत्रेण मुक्ता चेति जाह्नवी, जह्नुतनया = जाह्नवीत्यपि तद्वत्-जाह्नवीवत् = गङ्गावत्, यथा गङ्गा पुरस्तात् अतिपृथुला जनानां विशुद्धिकारी भवति, तद्वत्।

तथा चोक्तं श्रीहिमवदाचार्यैः स्थविरावल्याम्–

"सोहम्मं मुणिनाहं पढमं वंदे सुमत्तिसजुत्तो। जस्सेसो परिवाओ(रो)कप्परुक्खुव्व वित्थरिओ॥२॥" इति॥१२॥

इदानीं श्रीसुधर्मस्वामिनो गृहस्थपर्यायादिकमुच्यते पथ्यागीत्या—

सो गिहवासे वासा पण्णासं तह वये दुआलीसा।
अड केवलिम्मि ठाउं वीरसिवा सिवमिओ णहमिअऽद्दे ॥१३॥ (पच्छागीई)

(प्रे०) "सो" इत्यादि, "सो" त्ति, स सुधर्मस्वामी "गिहवासे" त्ति, गृहावासे = गृहस्थपर्याये "पण्णास" त्ति, पञ्चाशत् "वासा" त्ति, वर्षाणि "तह" त्ति, तथा समुच्चये "वये" त्ति, व्रते छद्मस्थप्रव्रज्यापर्याये "दुआलीसा" त्ति, द्वाचत्वारिंशद्वर्षाणि "केवलिम्मि" त्ति, केवलिपर्याये "अड" त्ति, अष्टौ वर्षाणि। यदुक्तं विचारसारप्रकरणे– 'जाय केवलणाणं अज्जसुहम्मस्स अट्ठवासाणि। सोऽविय गणं ठवित्ता जम्बूनामे गओ सिद्धिं॥४८८॥" इति उपदेशपदवृत्तौ श्रीमुनिचन्द्रसूरिभिरपि भणितम्–' पच्छा केवलणाणं असुज्जहम्मस्स उप्पण्णं॥१३॥ अट्ठवरिसाणि सो विअ विहरित्त केवलित्तणपहाणे। तो अज्जजंबूणामे गणं ठवित्त गओ सिद्धिं।।" इति॥ 'ठाउं"ति स्थित्वा = उषित्वा "वीरसिवा" त्ति, वीरस्य = सिद्धार्थात्मजस्य शिवात्॥ मोक्षगमनकालात् "णहमिअद्दे" त्ति, नखाः = विंशतिस्तैर्मितं = नखमितम्, तच्च तदब्दं = नखमिताब्दं तस्मिन्नखमिताऽब्दे = विंशतितमवर्षे गते गच्छति वेत्यर्थः "सिवमिओ"

विशेषावश्यके पुनरिदमेव गाथाद्विकं निर्युक्तिरूपेण गृहीतम्, तथाच तद्ग्रन्थः-

"सोलस वासाइं तया, जिणेण उप्पाडियस्स णाणस्स। जीवपएसियदिट्ठी तो उसभपुरे समुप्पन्ना ॥२३३३॥ रायगिहे गुणसिलए वसु चउदसपुव्वि तीसगुत्ते य। आमलकप्पा नयरी मित्तसिरी कूरपिउमाई ॥२३३४॥'

इति।

विशेषार्थिना तस्यैव निर्युक्तिगाथाद्वयस्य विशेषाऽऽवश्यके सटीकभाष्यगाथाः २३३५ आरभ्य २३५५ पर्यन्ता विलोकनीयाः ॥११॥

अथ वीरविभोः पट्टपरम्परायां प्रथमपट्टधरमाद्ययुगप्रधानञ्च सुधर्मस्वामिनं श्लोकद्वयेन विनिर्णयिषुः शोभां प्राह—

रिसिंदू गच्छीसो पढमजुगवरो वीरपट्टाहिसित्तो,
सुहम्मो सो आसी कयभविपयाजोगखेमो णिवोव्व।
सुई जम्हा जाया इह खलु भरहे संतई सासणा जा,
सुविहियसमणाऽग्गेऽग्गे भविविमलयरी रायए जगहइव्व ॥१२॥ सोहा)

(प्रे०) "रिसिंदू" इत्यादि, "सो" त्ति, सः "सुहम्मो" त्ति, शोभनो धर्मो यस्य "द्विपदाद्धर्मादन्" (सि०७-३-१४१) इत्यनेनाऽन्समासान्तः, सुधर्मा सुधर्माऽभिधोऽग्निवेश्यगोत्रजः पञ्चमगणभृत् "आसी" त्ति, आसीत्=अभूदित्यर्थः, किं विशिष्टः स इत्याह-"रिसिंदू" त्ति, ऋषिषु= मुनिष्विन्दुरिवाह्लादकत्वादिन्दु ऋषीन्दुः, पुनः किं विशिष्टः? "गच्छीसो" त्ति, गम्धातो "तुदिमदि " (सि० उणा०१२४) इति छक्प्रत्यये गच्छस्तस्य गच्छस्य = साधुसमुदायरूपस्येशः = स्वामी गच्छेशः = गणधरः, पुनः किंभूतः? इत्याह-"पढमजुगवरो" त्ति, युगे=कालविशेषे वरः श्रेष्ठः = युगवरः, प्रथमः=आद्यश्चासौ युगवरः = प्रथमयुगवरः = प्रथमयुगप्रधानः,तथाहि-अस्या अवसर्पिण्याः पञ्चमारके त्रयोविंशतिरुदया भविष्यन्ति, तत्राऽस्मिन्गतप्रथमोदये प्रथमो युगप्रधानो बभूव। पुनरपि किं विशिष्टः? इत्याह-"वीरपट्टाहिसित्तो" त्ति, वीरस्याऽन्तिमतीर्थपतेः पट्टे चतुर्विधसङ्घनायकलक्षणेऽधिकारविशेषेऽभिषिक्तः=विधिना स्थापितः = वीरपट्टाऽभिषिक्तः, "कयभविपयाजोगखेमो" त्ति, भविनः = स्वगुणगणमाहात्म्येन मुक्तिगमनयोग्यास्त एव प्रजा = जनगणो = लोको वा भविप्रजा तस्या योगः = अप्राप्तसम्यग्दर्शनादिगुणाधानं, क्षेमं = प्राप्तसम्यग्दर्शनादिरक्षणं योगश्च क्षेमं च योगक्षेमे भविप्रजाया योगक्षेमे = भविप्रजायोगक्षेमे कृते भविप्रजायोगक्षेमे येन स कृतभविप्रजायोगक्षेमः। क इव? इत्याह-"णिवोव्व" त्ति, नन् = मनुष्यान् पाति = रक्षति नृपः = राजा इव। राजा राज-

सिंहासनेऽभिषिच्यते, स च प्रजाया योगक्षेमकरो भवति, यत्तदोर्नित्याऽभिसम्बन्धात्स कः ? इति जिज्ञासायामाह–"जम्हा" त्ति, यस्माच्छ्रीसुधर्मस्वामिनः "जाया" त्ति, जाता = संभृता "सन्तई" त्ति, सन्ततिः = मुनिपरम्परा कीदृशीत्याह-"सुई" त्ति, शुचिः = पवित्रा "ऽग्गेऽग्गे" त्ति, अग्रेऽग्रे = पुरः पुरः " वितिण्णा" त्ति, शोभना विस्तीर्णा सुविस्तीर्णा "सु पूजायाम्" (सि० ३-१-४४) इति समासः, सुविस्तीर्णा = अतिविशाला "भविविमलयरा" त्ति, विगतो मलो पापलक्षणो यस्माद्यस्य वा स विमलः, विमलकरोतीत्येवंशीला सा विमलकरी "हेतुतच्छील ०" (स०५ १ १०३ इति टप्रत्ययः टित्वात्स्त्रियां ङीप्रत्ययः । भविनां = सिद्धयर्हाणां विमलकरी भविविमलकरी = भव्यजनानां पापपङ्कहारिणीत्यर्थः । कुत्र ? इति "इह" त्ति, अस्मिन् "खलु" त्ति खलु-अवधारणे वाक्याऽलङ्कारे पादपूर्तौ वा–अस्मिन्नेव "भरहे" त्ति, भरते = भरतनाम्नि क्षेत्रे "रायए" त्ति राजते शोभते का इव ?– 'जण्हइव्व" जह्नुना सगरतनुजेनाऽवतारितत्वाज्जह्नोरियं जाह्नवी, लौकिके पुनर्जह्नुना पीता श्रोत्रेण मुक्ता चेति जाह्नवी, जह्नुतनया = जाह्नवीत्यपि तद्वत्-जाह्नवीवत् = गङ्गावत् , यथा गङ्गा पुरस्तात् अतिपृथुला जनानां विशुद्धिकारी भवति, तद्वत् ।

तथा चोक्तं श्रीहिमवदाचार्यैः स्थविरावल्याम्–

"सोहम्म मुणिनाह पढम वदे सुभत्तिसजुत्तो । जस्सेसो परिवाओ(रो)कप्परुक्खुव्व वित्थरिओ ॥ २ ॥" इति ॥ १२ ॥

इदानीं श्रीसुधर्मस्वामिनो गृहस्थपर्यायादिकमुच्यते पथ्यागीत्या—

सो गिहवासे वासा पराणासं तह वये दुग्रालीसा ।
ग्रड केवलिम्मि ठाउं वीरसिवा सिवमिग्रो राहमिग्रऽद्दे ॥ १३ ॥ (पच्छागीई)

(प्रे०) "सो" इत्यादि, "सो" त्ति, स सुधर्मस्वामी "गिहवासे" त्ति, गृहावासे = गृहस्थपर्याये "पण्णास" त्ति, पञ्चाशत् "वासा" त्ति, वर्षाणि "तह" त्ति, तथा समुच्चये "वये" त्ति, व्रते छद्मस्थप्रव्रज्यापर्याये "दुआलीसा" त्ति, द्वाचत्वारिंशद्वर्षाणि "केवलिम्मि" त्ति, केवलिपर्याये "अड" त्ति, अष्टौ वर्षाणि । यदुक्तं विचारसारप्रकरणे– 'जाय केवलणाण अज्जसुहम्मस्स अट्ठवासाणि । सोऽविय गण ठवित्ता जम्बूनामे गओ सिद्धिं ॥ ४८८ ॥" इति उपदेशपदवृत्तौ श्रीमुनिचन्द्रसूरिभिरपि भणितम्–' पच्छा केवलणाण असुज्जहम्मस्स उप्पण्ण ॥ १३ ॥ अट्ठवरिसाणि सो विअ विहरित्त केवलित्तणपहाणे । तो अज्जजंवूणामे गण ठवित्त गओ सिद्धिं ॥" इति ॥ 'ठाउं" ति स्थित्वा = उषित्वा "वीरसिवा" त्ति, वीरस्य = सिद्धार्थात्मजस्य शिवात् ॥ मोक्षगमनकालात् "णहमिअद्दे" त्ति, नरवाः = विंशतिस्तैर्मितं = नखमितम् , तच्च तदब्दं = नखमिताब्दं तस्मिन्नखमिताऽब्दे = विंशतितमवर्षे गते गच्छति वेत्यर्थः "सिवमिओ"

त्ति, शिवं=सिद्धिमितः = गतः प्राप्तः । तथा चोक्तं श्रीतिमचक्षाचार्यैः स्थविरावल्याम्-
"वीराओ ण वीसेसु वासेसु विइक्कतेसु अज्जसुहम्मा णिव्वुआ।।" इति। श्रमनसप्पयप्रकरणे-ऽप्युक्तम्-
" तह वीराओ सोहम्मो वीसवरिसेहि सिद्धगओ ।।२६६।।" इति ।।१३।।

साम्प्रतं वीरविभो र्द्वितीयपट्टागतं जम्बूस्वामिनं श्लोकत्रयेण द्विवर्णयितुकामः प्रथमं स्रग्धरां प्रतिपादयन्नाह—

मंडित्था इंदुवत्तं तिलयमिव पयं तस्स सो जंबुसामी,
सोहम्मक्केण फुल्लं पवयणवसुणा जस्स वेरग्गपोम्मं ।
रम्मा कन्ना णवोढा अड णवणवति हेमकोडी य जो हि,
चिच्चा सप्पव्व कासी वसममिअरमं काणुइं पंसुलं पि ।।१४।। (सद्धग)

(प्रे०) "मडित्था" इत्यादि, "सो" त्ति, स = जगत्ख्यातः "जंबुसामी" त्ति गुणरत्नमयत्वेन जम्बूद्वीपे जम्बूरिव जम्बूः, स चासौ स्वामी = नाथः जम्बूस्वामी जम्बूनामा स्वामीत्यर्थः, जम्बूशब्दो दीर्घ इव ह्रस्वोऽप्यस्ति, यदुक्तं कल्पसूत्रवृत्तौ मत्कृते जम्बुना त्यक्ता नवोढा नव कन्यका" इति, पञ्चमस्वर्गाच्च्युत ऋषभदत्तसुतो धारणीकुक्षिसंभूतो राजगृहवास्तव्यः काश्यपगोत्रीय आजन्मब्रह्मचारी "तस्स" त्ति तस्य सुधर्मप्रभोः "पय" त्ति पद=पट्टं "मडित्था" त्ति, अमण्डयत्=अदीपयत्=किमिव ?। "तिलयमिव" त्ति तिलकमिव=पुण्ड्र इव यथा तिलकं "इंदुवत्तं" ति इन्दुरिव=चन्द्र इव वक्त्रं= मुखं यस्य स इन्दुवक्त्रः, यस्याः सा इन्दुवक्त्रा, 'उष्ट्रमुखादय' (सि० ३-१२३) इति समास, ताम् ,नाम् , इन्दुवक्त्रे-त्रां = शशिवदनां नां मण्डयति ।

स क ? इति जिज्ञासायामाह– "जस्स" त्ति यस्य जम्बुस्वामिनः वेरग्गपोम्म' ति रञ्जनं रागः यद्वा रज्यतेऽनेन जीव इति, यद्वा रज्यतेऽस्मिन् सति क्लिष्टसत्त्वाः=प्राणिनः स्त्र्यादिष्विति रागः = सुखविषयगृद्धिः, "भावाकर्त्रो" (सि०५-३-१८) इत्यनेन घञ्, विगतो रागो =(मन्मथभावो) सुखोपाये तृष्णा = सुखस्य सुखानुस्मृतिपूर्वो लोभपरिणामो वा यस्य यस्माद्वा स विरागस्तस्य भावः "पतिराजान्तगुणाङ्गराजादिभ्य कर्मणि च" (सि०७ १-६०) इत्यनेन गुणाङ्गत्वात् टयण्प्रत्ययः, वैराग्यं तदेव पद्म = सूर्यविकाशिकमलं वैराग्यपद्म "सोहम्मक्केण" त्ति प्राकृतत्वात्सुधर्मशब्दस्योकारस्यौकारः, यद्वा 'प्रज्ञादिभ्योऽण्" (सि० ७ २-१६५) इत्यत्र बहुवचनस्याकृतिगणत्वेन स्वार्थेऽण्प्रत्ययः सौधर्मः, अर्च्यते = स्तूयत इति यद्वा अर्च्यत इति 'मीण्शलिवलिकल्य " (सि०उणा० ८१) इति कप्रत्यये अर्को = रविः, सुधर्मा एव सौधर्म एव वा

अ " इति सुधर्मार्कः सौधर्मार्को वा तेन, सुधर्मार्केण सौधर्मार्केण वा किम्भूतेन ? इत्याह– "पवयणव णा" त्ति प्रकर्षेणात्महितानुसारेणोच्यते यत्तत्प्रवचनं = देशना । 'अमत्यर्के इति वसुः, 'भृमृतृत्सरि ' (उणा०-७१६) इति उप्रत्ययः, वसुः = किरणः प्रवचनमेव = उपदेशव्याख्यान्येव वसवः = रश्मयो यस्य स प्रवचनवसुस्तेन प्रवचनवसुना "फुल्लं" ति 'ञिफला विशरणे' फल्धातोः क्तप्रत्ययान्तः "अनुपसर्गाः क्षीबोल्लाघकृश " (सि०४-२-८०) इत्यनेन निपातः फुल्लं = विकसितम् ।

पुनः किंविशिष्टः ? इत्याह–"जो" त्ति यः – जम्बूस्वामी "हि" त्ति विस्मये खल्वर्थे "कन्ना" त्ति कनन्ति = दीप्यन्ते कन्याः=स्त्रियः 'स्थाछा " (सि० उणा ३५७)इति यप्रत्ययः, श्रीसुधर्मस्वामिसमीपे प्रतिपन्नशीलसम्यक्त्वेनाऽपि पित्रोर्दृढाग्रहवशात्परिणीताः, कीदृशीः ? इत्याह "रम्मा" त्ति रमयन्ति मनो, रम्यते वा "मव्यगेयजन्यरम्य " (सि० ५-१-७) इति निपातनाद् रम्याः = मनोहराः, पुनः किम्भूताः?–"णवोढा" त्ति नूयते नवं = नवीनमूढा नवोढाः = नूतनविवाहिताः = "अट्ठ" त्ति अष्टौ अष्टसंख्याकाः "य" त्ति चः समुच्चयार्थस्तथा "नवनवतिं" ति नवनवतिं = नवनवतिप्रमिता "हेमकोडी" त्ति हेम्नां = सुवर्णानां कोटीः-हेमकोटीः "चिच्चा" त्ति त्यक्त्वा क इव ? इत्याह–"सप्पव्व" त्ति सर्पवत् = अहिरिव यथा भोगी कञ्चुकं निर्मोकं त्यजति, तद्वत् , ततः किम् ?, इत्याह–"अमियरम" ति अमृताभिधा = सिद्धिनाम्नी रमा = कान्ता अमृतरमा, ताम् , अमृतरमां किम्भूतामित्याह–'कामुइ" ति कामुकी कमनशीलां "माङ्गोणा० " (सि० २-४-३०) इत्यनेन रिरंसायां ङीप्रत्ययः, "पसुलं पि" त्ति पांसुर्मालिन्यहेतुरस्त्यस्याः "सिध्मादिक्षुद्रजन्तुरुग्भ्यः " (सि० ७-२-११) इत्यनेन सिध्मादित्वान्मत्वर्थी लप्रत्ययस्ततः 'आत्" (सि० २-४-१८) इत्यनेन स्त्रियामाप्प्रत्ययः, पांसुलां = कुलटां स्वैरिणी "पांसुला स्वैरिणी कुलटा" इति हैमवचनात् "वस" ति वशं=स्वाधीन "कासी" त्ति अकार्षीत् स्वायत्तं कृतवानित्यर्थः । चरमकेवली चरममोक्षगामी च बभूवेति भावः ।

तथा चोक्त श्रीमद्धिमवदाचार्यैः स्थविरावल्याम्–

'तप्पयलकरण तं, जम्बूणाम महामुणिं वंदे । चरम केवलिण खु जिणमयगगणगणे मित्त ।।३।।" इति ।।१४।।

अथ पुनरपि जम्बुस्वामिनं स्तुवन् निन्दाव्याजेन स्तुतिरूपया व्याजस्तुत्यलङ्कृत्यालङ्कृतां पथ्यार्यामाह—

णत्थि विवेगो को वि य जंबूसामिस्स जं अदासी जो ।
संजमसिरि सिवयर चोराण वि दंडजोग्गाणं ।।१५।। (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "णत्थि" इत्यादि, 'जंबूसामिस्स" त्ति जम्बूस्वामिनो = महावीरप्रभुप्रशिष्यस्य सुधर्मस्वामिशिष्यस्य 'को वि य" त्ति कोऽपि च=कश्चिदपीत्यर्थः' विवेगो' त्ति विवेकः = सारासारवस्तुपरामर्शलक्षणः 'णत्थि" त्ति नास्ति, कुतः ? इत्याह–"ज" ति यत् = यस्मात् कारणात् "जो" त्ति, यो = जम्बूस्वामी ' चोराण वि" त्ति चोरेभ्योऽपि यद्वा चोरेभ्योऽपि = तस्करेभ्योऽपि चोरा हि दण्डयितुं योग्या भवन्तीत्यत आह–किम्भूतेभ्य ? इत्याह–'दण्डजोग्गाणं' ति दण्डस्य = शिक्षाया योग्येभ्यः = अर्हेभ्यः "संजमसिरिं" ति संयमश्रियं = चारित्रलक्ष्मीं किम्भूतामित्याह–"सिवयर" त्ति शिवस्य = कल्याणस्य यद्वा शिवस्य = परम्परया मुक्तेः करां = कारिकां प्रापिकां "अदासी" त्ति अदासीत् = ददौ ।

इयं च निन्दाव्याजेन स्तुतिरूपा ✡ व्याजस्तुत्यलङ्कृतिः–अत्र च दण्डयोग्येभ्योऽपि चौरेभ्यः श्रिया दानेन जम्बूस्वामिनः कोऽपि विवेको नास्तीति निन्दाव्याजेन जम्बूस्वामिनो यद्येतादृशानपि तारयति तर्ह्यन्येषां का वार्ता ? इत्येवं महात्म्यरूपा स्तुतिर्ज्ञायते ।।१५।।

जम्बूस्वामिनो गृहवासादिकालमानं प्ररूपयितुः पथ्यागीतिमाह–

सो घरवासे सोलस वासा वीसं वये जुगपहाणे ।
अजपयवण्णा पूरिअ वीरसिवाउ सिवमजपयंगद्दे ।।१६।। (पच्छागीई)

(प्रे०) "सो" इत्यादि, सो = जम्बूस्वामी ' घरवासे" त्ति गृहवासे = गृहस्थपर्याये "सोलस" त्ति षोडश "वासा" त्ति वर्षाणि = हायनान् ' वये ' त्ति व्रते = सामान्यदीक्षापर्याये "वीस" ति विंशतिं वर्षाणि, ' जुगपहाणे" त्ति युगप्रधाने = युगप्रधानपर्याये "अजपयवण्णा" त्ति, अजपदानि = छागचरणानि चत्वारि, तेन चतुरङ्कः, वर्णाः = ब्राह्मणक्षत्रिय-वैश्य-शुद्रलक्षणाश्चत्वारः, तेनाऽपि चतुरङ्कः, एतावङ्कौ = ४४ सङ्ख्या यत्र वर्षेषु तानि अजपदवर्णानि वर्षाणि = चतुश्चत्वारिंशतं वर्षाणि यावद्युपलक्षणात्केवलिपर्यायेऽपि, यदुक्तं विचारसारप्रकरणे–"जंबूसामी य तओ चउवालिसवच्छराणि पालित्ता । केवलणाण पभवे गण ठवित्ता गओ सिद्धिं ।।४८९।।" 'पूरिअ" त्ति पूरयित्वा = सर्वायुः समाप्य = परिपूर्णं कृत्वा "वीर सिवा ' त्ति वीरस्य = वर्धमानस्वामिनः शिवात् = मोक्षात् वीरशिवात्-वीरविभुमुक्तिगमनतः "अजपयगद्दे" त्ति अजपदाः = छगलकपादाश्चत्वारः, तेन चतुरङ्कः, अङ्गानि = शिक्षादीनि वेदाङ्गानि षट् , तेन् षडङ्कः, "अङ्कानां वामतो गति " इति वचनाद् वामगतिन्यस्तावेतावङ्कौ = चतुष्षष्टि(६४)सङ्ख्या यस्मिन्नब्दे तद् अजपदाङ्गम् , तच्च तदब्दं च = वर्षम् अजपदाङ्गाब्दम् ,

✡ इयं च चन्द्रालोकादौ यस्यैव निन्दा तस्यैव स्तुतिरिति समानविषयैव । कुवलयानन्दादौ तु भिन्नविषयापि वैधर्म्येणाऽप्यङ्गीकृता दृश्यते ।

तस्मिन् अजपदाङ्काब्दे = चतुःषष्टितमे वर्षे गते गच्छति वेत्यध्याहार्यः, "सिवं" त्ति शिवं = मुक्तिं गत इत्यप्यध्याहार्यः ।

उक्त परिशिष्टपर्वणि—

"श्रीवीरमोक्षदिवसादपि हायनानि, चत्वारि षष्टिमपि च व्यतिगम्य जम्बूः ।
कात्यायिन प्रभवमात्मपदे निवेश्य कर्मक्षयेण पदमव्ययमाससाद ॥" इति ।

श्रीहिमवदाचार्यैः–पुनः स्थविरावल्यां वीरात्सप्ततिवर्षेषु व्यतीतेषु जम्बूस्वामिनो निर्वाणं दर्शितम् । तदपेक्षया-ऽमुष्य युगप्रधानकालः पञ्चाशद्वर्षमितः, प्रभवस्वामिनश्च पञ्च-वर्षमानः स्यात् । मतान्तरेण पुनस्तत्रा ऽपि यथोक्तकाल एव । तथा च तद्ग्रन्थः—

'वीराओ सत्तरिवासेसु वइक्कतेसु मयतरे चउसट्ठीवासेसु चिइक्कतेसु पभवसामिण गण समप्प अज्ज-जबू निव्वुओ।" इति ।

ततः श्रीहिमवदाचार्योक्तमतान्तरसंग्रहार्थं पुनर्गाथोत्तरार्धमित्थं व्याख्येयम्—"अजपय-वण्णा" त्ति अजपदं = विष्णुपदम् = आकाशं = शून्यम् , तेन शून्याङ्कः, वर्णानि = शुक्ल-हारिद्र-लोहि -नील-कृष्णरूपाणि पञ्च, एतावङ्कौ वामगतिन्यस्तौ = पञ्चाशत् (५०) सङ्ख्या यत्र वर्षेषु तानि अजपदवर्णानि = पञ्चाशतं वर्षाणि यावद्युगप्रधानपर्याये इत्येवं ' पूरिअ" त्ति, पूर-यित्वा = सम्पूर्णायुः परिपाल्य = सम्पूर्णं विधाय "वीरसिवाउ" त्ति वीरशिवात् = महावीर-प्रभुनिर्वाणगमनदिनादारभ्य 'अजपयगदे' त्ति, "अजपदम्" इत्यनेन प्राग्वच्छून्याङ्कः, अङ्गानि राज मन्त्रि-मित्र-कोश राष्ट्र-दुर्ग-सेनालक्षणानि राज्याङ्गानि सप्त । उक्त ।मरकोशे—

स्वाम्यमात्यसुहृत्कोशराष्ट्रदुर्गबलानि च ॥ राज्याङ्गानि " इति । कामन्दकीये ऽपि—

' स्वाम्यमात्यश्च राष्ट्रं च, दुर्गं कोशो बल सुहृत । परस्परोपकारीद, सप्ताङ्ग राज्यमुच्यते ।।" इति ।

तेन सप्ताङ्कः, एतावङ्कौ वामगतिस्थापितौ = सप्तति ७० सङ्ख्या यत्राब्दे तद् अजपदाङ्गम् , तच्च तदब्दं चा-ऽजपदाङ्गाब्दम् , तस्मिन् अजपदाङ्गाब्दे = सप्ततितमे वर्षे गते गच्छति वा "सिव" ति शिवं = मोक्षं प्राप्त इति ।

श्रीजम्बूस्वामिनश्चरित्रं विस्तरतः पुनः परिशिष्टपर्वादिग्रन्थतो ज्ञेयम् ॥१६॥

अथ जम्बूस्वामिनिर्वाणानन्तरं मनःपर्यवज्ञानादीनि दशवस्तूनि व्यच्छिन्नानि तद् दिदर्शयिषुः पथ्या-ऽऽर्यामाह—

तत्तो मणपरमावहिपुलागआहारखवगुवसमा य ।
कप्पतिसंजमकेवलिसिवगमणां ति दस वुच्छिराणा ॥१७॥ (पच्छांजा)

(प्रे०) "तत्तो" इत्यादि, "तत्तो" त्ति ततो जम्बूस्वामिनो मुक्तिगमनानन्तरं "मण-परमावहि" इत्यादि, एते कृतेतरेतरद्वन्द्वाः प्रथमया निर्दिष्टाः "मण" त्ति पदैकदेशे पदसमुदाय-

(प्रे०) "णत्थि" इत्यादि, 'जंबूसामिस्स" त्ति जम्बूस्वामिनो = महावीरप्रभुप्रशिष्यस्य सुधर्मस्वामिशिष्यस्य 'को वि य" त्ति कोऽपि च=कश्चिदपीत्यर्थः' 'विवेगो' त्ति विवेकः = सारासारवस्तुपरामर्शलक्षणः 'णत्थि" त्ति नास्ति, कुतः ? इत्याह-"ज" ति यत्=यस्मात् कारणात् "जो" त्ति, यो = जम्बूस्वामी 'चोराण वि" त्ति चोरेभ्योऽपि यद्वा चोरेभ्योऽपि = तस्करेभ्योऽपि चोरा हि दण्डयितुं योग्या भवन्तीत्यत आह-किम्भूतेभ्य ? इत्याह-'दण्डजोग्गाणं' ति दण्डस्य = शिक्षाया योग्येभ्यः = अर्हेभ्यः "संजमसिरि" ति संयमश्रियं = चारित्रलक्ष्मीं किम्भूतामित्याह-"सिवयर" त्ति शिवस्य = कल्याणस्य यद्वा शिवस्य = परम्परया मुक्तेः करां = कारिकां प्रापिकां "अदासी" त्ति अदासीत् = ददौ ।

इयं च निन्दाव्याजेन स्तुतिरूपा ✲ व्याजस्तुत्यलङ्कृतिः'-अत्र च दण्डयोग्येभ्योऽपि चौरेभ्यः श्रिया दानेन जम्बूस्वामिनः कोऽपि विवेको नास्तीति निन्दाव्याजेन जम्बूस्वामिनो यद्येतादृशानपि तारयति तर्ह्यन्येषां का वार्ता ? इत्येवं महात्म्यरूपा स्तुतिर्ज्ञायते ॥१५॥

जम्बूस्वामिनो गृहवासादिकालमानं प्ररूपयिषुः पथ्यागीतिमाह-

सो घरवासे सोलस वासा वीसं वये जुगपहाणो ।
अजपयवण्णा पूरिअ वीरसिवाउ सिवमजपयंगद्दे ॥१६॥ (पच्छागीई)

(प्रे०) "सो" इत्यादि, सो = जम्बूस्वामी 'घरवासे" त्ति गृहवासे = गृहस्थपर्याये "सोलस" त्ति षोडश "वासा" त्ति वर्षाणि = हायनानि ' वये ' त्ति व्रते = सामान्यदीक्षापर्याये "वीस" ति विंशतिं वर्षाणि, ' जुगपहाणो" त्ति युगप्रधाने = युगप्रधानपर्याये "अजपयवण्णा" त्ति, अजपदानि = छागचरणानि चत्वारि, तेन चतुरङ्कः, वर्णाः = ब्राह्मणक्षत्रिय-वैश्य-शुद्रलक्षणाश्चत्वारः, तेनाऽपि चतुरङ्कः, एतावङ्कौ = ४४ सङ्ख्या यत्र वर्षेषु तानि अजपदवर्णानि वर्षाणि = चतुश्चत्वारिंशतं वर्षाणि यावदुपलक्षणात्केवलिपर्यायेऽपि, यदुक्त विचारसारप्रकरणे-"जंबूसामी य तओ चउवालिसवच्छराणि पालित्ता । केवलणाण पभवे गण ठवित्ता गओ सिद्धिं ॥४८९॥" "पूरिअ" त्ति पूरयित्वा = सर्वायुः समाप्य = परिपूर्णं कृत्वा "वीरसिवा' त्ति वीरस्य = वर्धमानस्वामिनः शिवात् = मोक्षात् वीरशिवात्-वीरविभुमुक्तिगमनतः "अजपयगद्दे" त्ति अजपदाः = छगलकपादाश्चत्वारः, तेन चतुरङ्कः, अङ्गानि = शिक्षादीनि वेदाङ्गानि षट्, तेन षडङ्कः, "अङ्कानां वामतो गतिः" इति वचनाद् वामगतिन्यस्तावेतावङ्कौ = चतुष्षष्टि(६४)सङ्ख्या यस्मिन्नब्दे तद् अजपदाङ्गम्, तच्च तदब्दं च = वर्षम् अजपदाङ्गाब्दम्,

✲ इयं च चन्द्रालोकादौ यस्यैव निन्दा तस्यैव स्तुतिरिति समानविषयैव । कुवलयानन्दादौ तु भिन्नविषयापि वैधर्म्येणाऽप्यङ्गीकृता दृश्यते ।

रूपिष्वेव द्रव्येषु परिच्छेदकतया प्रवृत्तिरूपा, तदुपलक्षितं ज्ञानमप्यवधिः, अवधिश्च तज्ज्ञानं चावधिज्ञानम्. कर्मधारयतत्पुरुषसमासः, **यद्वा**-ऽवधिना रूपिपुद्गलविषयलक्षणया मर्यादया सह वर्तमानं ज्ञानमवधिज्ञानम्, तृतीयातत्पुरुषसमासः, **नचा**ऽनया व्युत्पत्त्या मूर्तस्यैव वस्तुनः परिच्छेदकमवधिज्ञानं स्यात्, तेन चातीतानागतवर्तमानपुद्गलसत्कामूर्तपर्यायाणां परिच्छेदकं न भवेदिति **वाच्यम्**, मूर्तपुद्गलपर्यायाणामपि द्रव्यपर्यायभेदयोर्भेदाभेदाङ्गीकारेण मूर्तत्वप्राप्तेः। **अथवा**ऽवधीयतेऽननेनास्मादस्मिन् वेत्यवधिरवधिश्च तज्ज्ञानञ्चावधिज्ञानं परमं = सर्वश्रेष्ठञ्च तदवधिज्ञानञ्च परमावधिज्ञानम् = उत्कृष्टावधिज्ञानमित्यर्थः। यस्मिन्नुत्पन्नेऽन्तर्मुहूर्तान्तः केवलोत्पत्तिः। **तथा चोदित विशेषावश्यके** "परमोहिन्नाणविओ केवलमतोमुहुत्तमित्तेण" इति।

परमावधिज्ञानस्य विषयो द्रव्यतो निखिलपुद्गलास्तिकायः, क्षेत्रतोऽसंख्येयानि लोकमात्राणि खण्डानि, तानि च सर्वोत्कृष्टप्रमाणाग्निकायजीवानां सूचिश्रेण्या भ्रमणेन यावत्क्षेत्रं व्याप्तं स्यात्, तावन्मितानि। **तथा चोक्त विशेषावश्यके**–

'सव्वबहुअगणिजीवा निरंतर जत्तिय भरिज्जसु। खेत्त सव्वदिसाग परमोहीखेत्तनिद्दिट्टो ॥५९८॥' **इति।**

कालतोऽसङ्ख्येया अतीतानागतकालसत्का उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः। भावतः पुनस्तेषामेव रूपिद्रव्याणामसङ्ख्याताः = सङ्ख्यातीताः पर्याया भवन्ति।

एतद्विषयप्रतिपादिका श्रीविशेषावश्यके भाष्यगाथा चेयम्—

"खित्तमसखेज्जाइ लोगसमाइ समाउ काल च। दव्व सव्व एव पासइ तेसिं य पज्जाए ॥६८६॥" **इति।**

तथैव निर्युक्तिगाथाऽपि–

"परमोहि असखेज्जा लोगमित्ता समा असखेज्जा। रूवगय लहइ सव्व खेत्तोवमिय अगणिजीवा ॥६८५॥" **इति।**

"**पुलाग**" त्ति पुलाकः= पूर्ववद् 'भीमो भीमसेन' इतिन्यायस्याश्रयणात् पुलाकलब्धिः, यया लब्ध्या संघादिकार्ये सबलवाहनस्य चक्रवर्त्यादेरपि चूर्णने समर्थो भवति। **तथा च न्यगादि**-

सघाइआण कज्जे चुण्णेज्जा चक्कवट्टिमवि जोए। तीए लद्धीएँ जुओ लद्धीपुलाओ मुणेयव्वो ॥ ॥" **इति।**

अन्यत्रापि–

"जिणसासणपडिणीय चुन्निज्जा चक्कवट्टिसिन्नं पि। कुविओ मुणी महप्पा पुलायलद्धीइ संपन्नो ॥" **इति।**

अनया च लब्ध्या सकलसंयमसारगलनात् पुलाकवत्=निःसारधान्यवत् साधोश्चरणं भवति, अतः स साधुः पुलाक उच्यते, पुलाक इव पुलाक इति कृत्वा। **तथा चोक्तम्**–

'धन्नमसार भन्नइ पुलायसद्दे ण तेण जस्स सम। चरण सो हु पुलाओ लद्धीसेवाहिं सो य दुहा ॥७३०॥' **इति।**

तस्य=तत्सत्का लब्धिः पुलाकलब्धिः। "**आहार**" त्ति आहारकः=आहारकशरीरलब्धिः, आह्रियते = चतुर्दशपूर्वविदा तीर्थकरस्फीत्यवलोकनादितथाविधकार्योत्पत्तौ विशिष्टलब्धिवशाद् निर्वर्त्यते इत्याहारकम्। **अथवा**ऽऽह्रियन्ते = गृह्यन्ते तीर्थकरादिसमीपे सूक्ष्मजीवादयः पदार्था

स्योपचाराद् मनःशब्देन मनःपर्यायज्ञानं, मनःपर्ययज्ञानं, मनःपर्यवज्ञानं वेति ग्राह्यम्, "मनसि=मनोद्रव्यसमुदाये ग्राह्ये, मनसो ग्राह्यस्य "परि सर्वतो भावे" इति परिसमन्तादयन-मायः "अयि गतौ" इति अयिधातोः 'भावाकर्त्रोः' (सि० ५-३-१८) इति घञ् प्रत्यये (१). अयनम्-अयः "इ गतौ" इति "इणक् गतौ" इति वा इधातोः "युवर्ण०" (सि० ५-३-२८) इत्यनेनाल् प्रत्ययः (२), अवनम्-अवः "अव रक्षणगति " इति गत्यर्थादवधातोः "अ" (सि०-उणा २) इत्य-नेन अप्रत्यये (३), क्रमेण मनःपर्यायः (१) मनःपर्ययः (२) मनःपर्यवो (३) वेति स चासौ ज्ञानं चेति मनःपर्यायज्ञानम्, मनःपर्ययज्ञानम्, मनःपर्यवज्ञानं वेति। अथवा मनसो ग्राह्य-सम्बन्धिनः पर्यायाः पर्ययाः पर्यवा वा=भेदा बाह्यवस्त्वालोचनात्मकास्तेषां तेषु वा ज्ञानम्='इद मित्थम्भूतमनेन चिन्तितम्" इत्येवंरूपं, मनःपर्यायज्ञानम् (१), मनःपर्ययज्ञानम् (२), मनः पर्यवज्ञान वेति। **तथा चोक्त विशेषावश्यके—**

"पज्जवण पज्जयण पज्जाओ वा मणम्मि मणसो वा। तस्स व पज्जायादिन्नाण मणपज्जव णाणं ८३।" इति।

तथा च द्रव्यतः संज्ञिभिर्जीवैः काययोगेन गृहीत्वा मनोयोगेन मनस्त्वेन परिणामितानि द्रव्याणि मनोद्रव्याणि मनश्चिन्ताप्रवर्तकद्रव्याणीत्यर्थः, तानि मनांस्यभिधीयन्ते, तेषां पर्यायाः पर्ययाः पर्यवाः=परगतज्ञेयविषयाध्यवसायाः, क्षेत्रतः समयक्षेत्रे=नरलोके समुद्रद्वययुक्तसार्ध-द्वीपद्वयलक्षणे स्थिताः, कालतः पल्योपमासङ्ख्यभागरूपभूतभाविकालगताः, भावतः सर्वपर्यायरा-श्यनन्तभागरूपा अनन्ताश्चिन्तानुगुणा रूपादयः पर्यायाः पर्ययाः पर्यवा वा, तेपु तेषां वा सम्ब-न्धि ज्ञान मनःपर्यायज्ञानं मनःपर्ययज्ञानं मनःपर्यवज्ञानं विशिष्टर्द्धिप्राप्तस्याप्रमत्तसंयतस्य भवति।

तथैव प्रतिपादितं विशेषावश्यके—

"त संजयस्स सव्वप्पमायरहियस्स विविहरिद्धिमतो। समयक्खेत्तऽब्भितरमण्णिमणोगयपरिण्णाणं ॥८१०॥
मुणइ मणोदव्वाइ णरलोए सो मणिज्जमाणाइं काले भूयमविस्से पलियासंखिज्जभागम्मि ॥८१३॥
दव्वमणोपज्जाए जाणइ पासइ य तग्गएऽणंते। तेणावभासिए उण जाणइ बज्झेऽणुमाणेण ॥८१४॥" इति।

"**परमावहि**" त्ति परमावधिः=पूर्ववद् "भ मो भीमसेन" इति न्यायात् परमावधिज्ञानम् = अवधानमवधिः, "उपसर्गाद् द कि" (सि०५-३-८७) इति सूत्रेणावोपसर्गपूर्वकधाधातोर्भावे किप्रत्ययः। इन्द्रियाद्यनपेक्षमात्मनः साक्षादर्थग्रहणमित्यर्थः। अत एवेदं प्रत्यक्षज्ञानम्।

यदुक्त नन्द्यध्ययने—

"नोइंदियपच्चक्ख तिविहिं पन्नत्तं, त जहा-ओहिनाणपच्चक्खं मणणाणपच्चक्खं केवलणाणपच्चक्खं" इति।

यद्वा अव=अधोऽधो विस्तृतं वस्तु धीयते=परिच्छिद्यतेऽनेनेत्यवधिः, अत्रावशब्दाऽधोऽर्थे यथाऽधःक्षेपणमवक्षेपणमिति। **यद्वा** अधो गौरवधर्मत्वात्पुद्गलोऽवाङ् इति भण्यते, तं दधाति-परिच्छिनत्तीत्यवधिः; अवधिरेव ज्ञानं=विशेषार्थग्रहणमवधिज्ञानम्। **अथवाऽवधिः**=मर्यादा

"**केवलि**" त्ति केवली=केवलज्ञानी यद्वा केवली=सयोगिकेवल्ययोगिकेवली च केवलं= परिपूर्णं शुद्धमनन्तं वा ज्ञानादित्रयमस्यास्तीति केवली, सत्यमनोयोगादिलक्षणेन योगेन सह वर्तत इति सकरणवीर्यः सयोगी, यद्वा योगो=वीर्यपरिस्पन्दः, सह योगेन वर्तन्त इति सयोगा मनोवाक्कायाः, ते सन्त्यस्येति सयोगी, 'अतोऽनेकस्वरात्' सि०७-२ ६) इत्यनेन इन्प्रत्ययः, सयोगी चासौ केवली च सयोगिकेवली=त्रयोदशगुणस्थानवर्ती । न विद्यन्ते योगा अस्येत्ययोगी, यद्वा न योगीति वा यो सोऽयोगी, स चासौ केवली चायोगिकेवली=चतुर्दशगुणस्थानवर्ती ।

"**सिवगमणं**" ति शिवगमनं=मुक्तिप्राप्तिः । '**त्ति**'' त्ति इति = एवं "**दस**" त्ति दश= दशसङ्ख्याकाः पदार्थाः "**वुच्छिन्ना**" त्ति व्युच्छिन्ना व्यवच्छिन्ना वा=व्यवच्छेदं गताः = विनाशं प्राप्ता इत्यर्थः ।

तथा च न्यगादि कल्पसूत्र बोधिकाख्यवृत्तौ—

"बारस वरिसेहि गोअमु सिद्धो वीराओ वीसहिं सुहम्मो । चउसट्ठीए जम्बू वुच्छिन्ना तत्थ दस ठाणा ॥३॥ [1]मण[2]परमोहि[3]पुलाए[4]आहार[5]खवग[6]उवसमे[7] कप्पे । [8]संजमतिअ[9]केवल[10] सिज्झणा य जम्बूम्मि वुच्छिन्ना ॥४॥" इति ।

एवं श्रीरत्नसंचयप्रकरणेऽपि—

"सिद्धिगए वीरजिणे चउसट्ठिवरिसेहिं जंबुणा मुत्ति केवलणाणेण समं वुच्छिन्ना दस इमे ठाणा ॥ ॥ मणपरमोहिपुलाए आहारखवगउवसमे कप्पे । संजमतिगकेवलसिद्धि जंबुम्मि वुच्छिन्ना । ॥" इति ।

विचारसारप्रकरणेऽपि—

"सिद्धम्मि जंबुनामे केवलणाणस्स होइ वुच्छेओ । केवलणाणेण समं छिज्जइ मणपज्जवं णाणं ॥४९०॥ △मणपरमोहिपुलाए आहारगखवगउवसमे कप्पे । संजमतियकेवलिसिज्झणाओ जंबुम्मि वुच्छिन्ना ॥४९१॥ इति ।

विविधतीर्थकल्पे कल्पप्रदीपापरनाम्नि—

पुनर्जम्बुस्वामिनः स्वर्गगमनानन्तरं द्वादशानां वस्तूनां विच्छेदो भणितः । तथा च तद्ग्रन्थः—

"मह मुक्खगमणाओ वासाण चउसट्ठीए अपच्छिमकेवली जंबुसामी सिद्धिं गमिही । तेण समं [1]मणपज्जवनाणं, [2]परमोही, [3]पुलायलद्धी, [4]आहारगसरीरं, [5]खवगसेढी, [6]उवसामगसेढी [7]जिणकप्पो, [8]परिहारविसुद्धि–[9]सुहमसंपराय–[10]अहक्खायचरित्ताणि, [11]केवलनाणं [12]सिद्धिगमणं च त्ति दुवालसठाणाइं भारहे वासे वुच्छिज्जिहिंति ।" इति

किन्तु नायं मतान्तरः, अपि तु विवक्षाभेद एव, यतो दशवस्तुप्रतिपादकैः संयमत्रयस्य समुदितविवक्षयैकमङ्ख्यैव विवक्षिता, द्वादशवस्त्वभिधायकैः श्रीजिनप्रभसूरिभिः संयमत्रयस्य पृथग्विवक्षया त्रीणि वस्तूनि गृहीतानीति ॥१७॥

△एषैव गाथा श्रीतपागच्छपट्टावल्यामपि समुद्धृता दृश्यते ।

"**केवलि**" त्ति केवली=केवलज्ञानी यद्वा केवली=सयोगिकेवल्ययोगिकेवली च केवलं=परिपूर्णं शुद्धमनन्तं वा ज्ञानादित्रयमस्यास्तीति केवली, सत्यमनोयोगादिलक्षणेन योगेन सह वर्तत इति सकरणवीर्यः सयोगी, यद्वा योगो=वीर्यपरिस्पन्दः, सह योगेन वर्तन्त इति सयोगा मनोवाक्कायाः, ते सन्त्यस्येति सयोगी, 'अतोऽनेकस्वरात्' सि॰७-२६) इत्यनेन इन्प्रत्ययः, सयोगी चासौ केवली च सयोगिकेवली=त्रयोदशगुणस्थानवर्ती । न विद्यन्ते योगा अस्येत्ययोगी, यद्वा न योगीति वा यो सोऽयोगी, स चासौ केवली चायोगिकेवली=चतुर्दशगुणस्थानवर्ती ।

"**सिवगमणं**" ति शिवगमनं=मुक्तिप्राप्तिः । '**त्ति**"त्ति इति = एवं "**दस**" त्ति दश=दशसङ्ख्याकाः पदार्थाः "**वुच्छिन्ना**" त्ति व्युच्छिन्ना व्यवच्छिन्ना वा=व्यवच्छेदं गताः = विनाशं प्राप्ता इत्यर्थः ।

तथा च न्यगादि कल्पसूत्र बोधिकाख्यवृत्तौ—

"बारस वरिसेहिं गोअमु सिद्धो वीराओ वीसहिं सुहम्मो । चउसट्ठीए जम्बू वुच्छिन्ना तत्थ दस ठाणा ॥३॥ [1]मण[2]परमोहि[3]पुलाए[4]आहार[5]खवग[6]उवसमे[7] कप्पे । [8]संजमतिअ[9]केवल[10] सिज्झणा य जम्बूम्मि वुच्छिन्ना ॥४॥" इति ।

एवं श्रीरत्नसंचयप्रकरणेऽपि—

"सिद्धिगए वीरजिणे चउसट्ठिवरिसेहिं जंबुणा मुत्ति केवलणाणेण समं वुच्छिन्ना दस इमे ठाणा ॥ ॥ मणपरमोहिपुलाए आहारखवगउवसमे कप्पे । संजमतिगकेवलसिद्धि जंबुम्मि वुच्छिन्ना । ॥" इति ।

विचारसारप्रकरणेऽपि—

"सिद्धम्मि जंबुनामे केवलणाणस्स होइ वुच्छेओ । केवलणाणेण समं छिज्जइ मणपज्जवं णाणं ॥४६०॥ △मणपरमोहिपुलाए आहारगखवगउवसमे कप्पे । संजमतियकेवलिसिज्झणाओ जंबुम्मि वुच्छिन्ना ॥४६१॥ इति ।

विविधतीर्थकल्पे कल्पप्रदीपापरनाम्नि—

पुनर्जम्बुस्वामिनः स्वर्गगमनानन्तरं द्वादशानां वस्तूनां विच्छेदो भणितः । तथा च तद्ग्रन्थः—

"मह मुक्खगमणाओ वासाणं चउसट्ठीए अपच्छिमकेवली जंबुसामी सिद्धिं गमिही । तेण समं [1]मणपज्जवनाणं, [2]परमोही, [3]पुलायलद्धी, [4]आहारगसरीरं, [5]खवगसेढी, [6]उवसामगसेढी [7]जिणकप्पो, [8]परिहारविसुद्धि-[9]सुहुमसंपराय-[10]अहक्खायचरित्ताणि, [11]केवलनाणं [12]सिद्धिगमणं च त्ति दुवालसठाणाइं भारहे वासे वुच्छिज्जिहिंति ।" इति

किन्तु नायं मतान्तरः, अपि तु विवक्षाभेद एव, यतो दशवस्तुप्रतिपादकैः संयमत्रयस्य समुदितविवक्षयैकसङ्ख्यैव विवक्षिता, द्वादशवस्त्वभिधायकैः श्रीजिनप्रभसूरिभिः संयमत्रयस्य पृथग्विवक्षया त्रीणि वस्तूनि गृहीतानीति ॥१७॥

△एषैव गाथा श्रीतपागच्छपट्टावल्यामपि समुद्धृता दृश्यते ।

"केवलि" त्ति केवली=केवलज्ञानी यद्वा केवली=सयोगिकेवल्ययोगिकेवली च केवलं= परिपूर्णं शुद्धमनन्तं वा ज्ञानादित्रयमस्यास्तीति केवली, सत्यमनोयोगादिलक्षणेन योगेन सह वर्तत इति सकरणवीर्यः सयोगी, यद्वा योगो=वीर्यपरिस्पन्दः, सह योगेन वर्तन्त इति सयोगा मनोवाक्कायाः, ते सन्त्यस्येति सयोगी, 'अतोऽनेकस्वरात्' सि०७-२ ६) इत्यनेन इन्प्रत्ययः, सयोगी चासौ केवली च सयोगिकेवली=त्रयोदशगुणस्थानवर्ती । न विद्यन्ते योगा अस्येत्ययोगी, यद्वा न योगीति वा यो सोऽयोगी, स चासौ केवली चायोगिकेवली=चतुर्दशगुणस्थानवर्ती ।

"सिवगमण" ति शिवगमनं=मुक्तिप्राप्तिः । 'त्ति' त्ति इति = एवं **"दस"** त्ति दश= दशसङ्ख्याकाः पदार्थाः "वुच्छिन्ना" त्ति व्युच्छिन्ना व्यवच्छिन्ना वा=व्यवच्छेदं गताः = विनाशं प्राप्ता इत्यर्थः ।

तथा च न्यगादि कल्पसूत्र बोधिकाख्यवृत्तौ—

"बारस वरिसेहिं गोअमु सिद्धो वीराओ वीसहिं सुहम्मो । चउसट्ठीए जम्बू वुच्छिन्ना तत्थ दस ट्ठाणा ॥३॥ [1]मण [2]परमोहि [3]पुलाए [4]आहार [5]खवग [6]उवसमे [7]कप्पे । [8]सजमतिअ [9]केवल [10]सिज्झणा य जम्बूम्मि वुच्छिन्ना ॥४॥" इति ।

एव श्रीरत्नसंचयप्रकरणेऽपि–

"सिद्धिगए वीरजिणे चउसट्ठिवरिसेहिं जबुणा मुत्ति केवलणाणेण सम वुच्छिन्ना दस इमे ठाणा ॥ ॥ मणपरमोहिपुलाए आहारखवगउवसमे कप्पे । सजमतिगकेवलसिद्धि जबुम्मि वुच्छिन्ना । ॥" इति ।

विचारसारप्रकरणेऽपि–

"सिद्धमि जबुनामे केवलणाणस्स होइ वुच्छेओ । केवलणाणेण सम छिज्जइ मणपज्जव णाण ॥४६०॥ △मणपरमोहिपुलाए आहारगखवगउवसमे कप्पे । सजमतियकेवलिसिज्झणाओ जबुम्मि वुच्छिन्ना ॥४६१॥ इति ।

विविधतीर्थकल्पे कल्पप्रदीपापरनाम्नि–

पुनर्जम्बुस्वामिनः स्वर्गगमनानन्तरं द्वादशानां वस्तूनां विच्छेदो भणितः । तथा च तद्ग्रन्थः–

"मह मुक्खगमणाओ वासाण चउसट्ठीए अपच्छिमकेवली जबुसामी सिद्धिं गमिही । तेण सम [1]मणपज्जव-नाण, [2]परमोही, [3]पुलायलद्धी, [4]आहारगसरीर, [5]खवगसेढी, [6]उवसामगसेढी [7]जिणकप्पो, [8]परिहार-विसुद्धि-[9]सुहमसपराय-[10]अहक्खायचरित्ताणि, [11]केवलनाण [12]सिद्धिगमण च त्ति दुवालसठाण इ भारहे वासे वुच्छिज्जिहिंति ।" इति

किन्तु नायं मतान्तरः, अपि तु विवक्षाभेद एव, यतो दशवस्तुप्रतिपादकैः संयमत्रयस्य समुदितविवक्षयैकसङ्ख्यैव विवक्षिता, द्वादशवस्त्वभिधायकैः श्रीजिनप्रभसूरिभिः संयमत्रयस्य पृथग्विवक्षया त्रीणि वस्तूनि गृहीतानीति ॥१७॥

△एषैव गाथा श्रीतपागच्छपट्टावल्यामपि समुद्धृता दृश्यते ।

साम्प्रतं श्रीज्ञातपुत्रस्य तीर्थपतेस्तृतीयपट्टभूतं श्रीप्रभवस्वामिनं श्लोकत्रयेण व्याख्याय-न्नादौ प्रदर्शिणीमाह—

तप्पट्टं पहवपहू णयीअ सोहं, भूवालो णिअपिउणो णिवासणं व्व ।
चोरेसो वि भविजणाण दावसी जो, सत्थेसो इव सिवलच्छिमेत्थ चित्तं॥१८॥
(पहस्सिणी)

(प्रे०)"तप्पट्टं" इत्यादि, "पहवपहू" त्ति प्रभवन्त्यस्मात् श्रुतमिति 'भूश्र्यदोऽल्' (सि०-५ ३ ३३) इत्यल्प्रत्यये सति प्रभवः, स चासौ प्रभुः=स्वामी प्रभवप्रभुः=प्रभवस्वामी जयपुरपुरेश-विन्ध्यराजसुतः कात्यायनगोत्रीयः "तप्पट्ट" ति तस्य जम्बूस्वामिनः पट्टं=पदम् "सोहं" ति शोभां=भूषां 'णयीअ" त्ति अनयत्=प्रापयदित्यर्थः। क इव? भूवालो व्व" त्ति भुवं= धरां पालयति=रक्षतीति भूपालः, "कर्मणोऽण्" (सि०५ १-७२) इत्यनेन अण्प्रत्ययः, भूपाल इव=नृप इव यथा नवाभिषिक्तपृथ्वीशः, "णिअपिउणो निवासणं" ति निजपितुः=स्वजनक-स्य नृपस्य=राज्ञो योग्यमासनं रूप्यादिमयं सिंहासनं=नृपासनं भूपा प्रापयति, तद्वत्। "जो" त्ति यः प्रभवस्वामी "चोरेसो" त्ति चोरयतीति चोरः, 'अच्" (सि०५-१ ४९) इत्यनेन अच्प्रत्ययः, अथवा चोर एव चौरः, "प्रज्ञादिभ्योऽण्" (सि०७-२ ६५)इत्यण्प्रत्ययः, चोराणां चौराणां वा= तस्कराणामीशः=अधिपतिश्चोरेशश्चौरेशो वाऽपि=स्तेननायकीभूतोऽपि "सत्थेसो इव" त्ति सरतीति 'सर्तेर्णित्" (उणा०१३८) इति णित्थप्रत्यये सति सार्थः=अध्वगवृन्दम्, यद्वाऽर्थेन सह वर्तन्ते सार्थाः=सधनाः, तस्य तेषां वेशः=नेता सार्थेशः=सार्थवाह इव 'भविजणाण" त्ति भविनः सिद्धिगमनार्हास्ते चामी जनाश्च=प्राणिनो भविजनास्तेभ्यो भविजनेभ्यः "सिवलच्छि" ति शिवलक्ष्मी=मुक्तिश्रियं "दावसी" त्ति अदापयत्= भविजनान् मोक्षलक्ष्मी प्रापयदित्यर्थः। "एत्थ" त्ति अत्र=प्रभवस्वामिनि "चित्तं" ति, चित्रम्=शिवलक्ष्मीप्रदापनं विस्मयजनकमस्ति ॥१८॥

अथ तमेव स्तुवन् प्रहर्षणालङ्कृतिविभूषितां पथ्यागीतिमाचष्टे—

थुव्वइ पभवपहुस्स किमपुव्वभग्गणिहिणो अहोभग्गं ।
हरिउं गओ जडसिरिं, जा ता लहइ स अपुव्वचरणसिरिं ॥१९॥ (पच्छागीई)

(प्रे०)"थुव्वइ" इत्यादि, "अपुव्वभग्गणिहिणो" त्ति न पूर्वं दृष्टमित्यपूर्वं=अद्भूत-मसाधारणमद्वितीय वा तच्च तद्भाग्यम्, भज्यत इति भाग्यम्, यद्यपि "शकि तकि . ',

(सि०५-१ २१) इत्यनेन यप्रत्यये मति ध्यण्प्रत्ययस्य बाधेऽपि ,बहुलम्" (सि०५-१-२) इत्यनेन ध्यण्प्रत्ययोऽपि भवति, यद्वा भज्यत इति भागः, "भावाकर्त्रो" (सि०५-३-१८ इति घञ्प्रत्ययः, भाग एव भाग्यम्, "भर्तादिभ्यो य" (सि०७-२ १५६) इति स्वार्थे यप्रत्ययः, भाग्यं = दैवम्, "नियती विधि दैव भाग्य भागधेय दिष्ट च" इति हैमवचनादपूर्वभाग्यम्, तस्य निधानं निधिः, नियतं धीयते वा निधिः, "उपसर्गाद्‌ द कि." (सि०५ ३-८७) इत्यनेन कित् इप्रत्ययः, निधिः = शेवधिः "निधान तु कुनाभिः शेवधिर्निधि" (१९२) इत्यभिधानवचनादपूर्वभाग्यनिधिस्तस्यापूर्वभाग्यनिधेः । कस्येत्याह ?–"**पभवपहुस्स**" त्ति प्रभवप्रभोः = जम्बूस्वामिशिष्यस्य "**अहो**" त्ति अहो विस्मये "ऽहो ही च विस्मये" (१०२) इति **हैमशेषवचनात्** "**भग्गं**" ति भाग्यं = विधिम् "**किं**" ति किम् प्रश्ने "**थुव्वइ**" त्ति स्तूयते = स्तोतुं शक्यते कात्वा नहि वर्णयितुं शक्यमित्यर्थः । "**स**" त्ति स- प्रभवप्रभुः "**जा**" त्ति यावत् "**जडसिरि**" ति जडश्रियम् = अचेतनलक्ष्मीं "**हरिउ**" ति हर्तुं = चोरयितुम् (आनेतुं वा) "**गओ**" त्ति गतः = यातः (गृहं प्रविष्ट इति यावत्) "**ता**" त्ति तावत् "**अपुव्वचरणसिरिं** त्ति चरणं = संयमः, तदेव श्रीः = लक्ष्मीश्चरणश्रीः, अपूर्वा = अनिर्वचनीया, सा चासौ चरणश्रीश्चाऽपूर्वचरणश्रीस्तामपूर्वचरणश्रियम् = अनुपमचारित्रसंपत्तिम् "**लहइ**" त्ति लभते = प्राप्नोति (प्राप्तवानिति यावत् ।

तथा चाभाणि गुर्वावल्याम्—

"प्रभु स जीयात् प्रभवो महामतिर्जम्बूगुरो कोशहर सुचोरराट् ।
यो रत्नकोटीः परिमुक्य गेहगा रत्नत्रय मामम भूस्थमप्यलात् ॥१६॥" **इति** ॥१६॥

अथ श्रीप्रभवस्वामिनो गृहस्थादिपर्यायमान स्वर्गमनकालश्च दर्शयन् पथ्यार्यामाह—

सगिहेऽणंगदसाऽद्दा, कहंगपमिआ वये जुगपहाणो ।
अंगमिआ ठाउं खं, वीरमिवाऽद्दे सरिसिसंखे ॥२०॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "**स**" इत्यादि, "**स**" स प्रभवविभु' ' **गिहे**" त्ति गृहे = गृहावासे "**ऽणंगदस**" त्ति अनङ्गम् = गगनम् = शून्यम्,

यदुक्तं नपुंसकलिंगप्रकरणे द्वितीयश्लोकव्याख्याने नभोवाचीशब्दानां नपुंसकत्व दर्शयद्भिः श्रीहेमचन्द्रसूरिभिः स्वोपज्ञहैमलिङ्गानुशासनविवरणे–

"नभानाम—नभ — अम्बरम् अनङ्गम्, कामे तु दृहिनामत्वात्पु सि ॥" इति ।

दशाः = बाल-युव-वृद्धलक्षणास्तिस्रः, एतावङ्कौ पश्चानुपूर्विमिलितौ येषां तान्यनङ्गदशानि = त्रिंशत् "**ऽद्दा**" त्ति वर्षाणि = अब्दानि, "**वये**" त्ति व्रते = प्रव्रज्यायां = सामान्यव्रतपर्याये "**कहंगपमिआ**" त्ति कथाः = स्त्री–भक्त देश नृपभेदाच्चतस्रः, अङ्गानि = सेनाङ्गानि [illegible]

(सि०५-१-२९) इत्यनेन यप्रत्यये सति ध्यण्प्रत्ययस्य बाधेऽपि "बहुलम्" (सि०७-१-२) इत्यनेन ध्यण्प्रत्ययोऽपि भवति, यद्वा भज्यत इति भागः, "भावाकर्त्रो" (सि०५-३-१८ इति घञ्प्रत्ययः, भाग एव भाग्यम्, "भर्तादिभ्यो य" (सि०७-२ १५६) इति स्वार्थे यप्रत्ययः, भाग्यं = दैवम्, "नियती विधि दैव भाग्य भागधेय दिष्ट च" इति हैमवचनादपूर्वभाग्यम्, तस्य निधानं निधिः, नियतं धीयते वा निधिः, "उपसर्गाद् व कि" (सि०५ ३-८७) इत्यनेन कित् इप्रत्ययः, निधिः = शेवधिः "निधान तु कुनाभि. शेवधिर्निधिः" (१९०) इत्यभिधानवचनादपूर्वभाग्यनिधिस्तस्यापूर्वभाग्यनिधेः। कस्येत्याह ?–"पभवपहुस्स" त्ति प्रभवप्रभोः = जम्बूस्वामिशिष्यस्य "अहो" त्ति अहो विस्मये "ऽहो ही च विस्मये" (१०२) इति हैमशेषवचनात् "भग्गं" ति भाग्यं = विधिम् "किं" ति किम् प्रश्ने "थुव्वइ" त्ति स्तूयते = स्तोतुं शक्यते कात्स्न्या नहि वर्णयितुं शक्यमित्यर्थः। "स" त्ति स-प्रभवप्रभुः "जा" त्ति यावत् "जडसिरिं" ति जडश्रियम् = अचेतनलक्ष्मीं "हरिउं" ति हर्तुं = चोरयितुम् (आनेतुं वा) "गओ" त्ति गतः = यातः (गृहं प्रविष्ट इति यावत्) "ता" त्ति तावत् "अपुव्वचरणसिरिं त्ति चरणं = संयमः, तदेव श्रीः = लक्ष्मीश्चरणश्रीः, अपूर्वा = अनिर्वचनीया, सा चासौ चरणश्रीश्चाऽपूर्वचरणश्रीस्तामपूर्वचरणश्रियम् = अनुपमचारित्रसंपत्तिम् "लहइ" त्ति लभते = प्राप्नोति (प्राप्तवानिति यावत् ।

तथा चाभाणि गुर्वावल्याम्—

"प्रभु स जीयात् प्रभवो महामतिर्जम्बूगुरो कोशहर सुचोरराट्।
यो रत्नकोटी परिमुक्य गेहगा रत्नत्रय मासमभूस्थमाग्यलात् ॥१९॥" इति ॥१९॥

अथ श्रीप्रभवस्वामिनो गृहस्थादिपर्यायमान स्वर्गमनकालञ्च दर्शयन् पथ्यार्यामाह—

सगिहेऽणंगदसाऽद्दा, कहंगपमिआ वये जुगपहाणे ।
अंगमिआ ठाउं सं, वीरमिवाऽद्दे सरिसिसंखे ॥२०॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "स" इत्यादि, "स" स प्रभवविभुः "गिहे" त्ति गृहे = गृहावासे "ऽणंगदस" त्ति अनङ्गम् = गगनम् = शून्यम्,

यदुक्तं नपुंसकलिंगप्रकरणे द्विनोपश्लोकव्याख्याने नभोवाचीशब्दानां नपुंसकत्वं दर्शयद्भिः श्रीहेमचन्द्रसूरिभिः स्वोपज्ञहैमलिङ्गानुशासनविवरणे–
"नभानाम—नभ · — अम्बरम् · अनङ्गम्, कामे तु देहिनामत्वात्पुंसि ॥" इति।

दशाः = बाल-युव-वृद्धलक्षणास्तिस्रः, एतावङ्कौ पश्चानुपूर्विमिलितौ येषां तान्यनङ्गदशानि = त्रिंशत् "ऽद्दा" त्ति वर्षाणि = अब्दानि, "वये" त्ति व्रते = प्रव्रज्यायां = सामान्यव्रतपर्याये "कहंगपमिआ" त्ति कथाः = स्त्री–भक्त देश नृपभेदाच्चतस्रः, अङ्गानि = सेनाङ्गानि हय-गज-रथ-पदाति

(सि०५-१ २६) इत्यनेन यप्रत्यये सति ध्यण्प्रत्ययस्य बाधेऽपि "बहुलम्" (सि०७ १-२) इत्यनेन ध्यण्प्रत्ययोऽपि भवति, यद्वा भज्यत इति भागः, "भावाकर्त्रो" (सि०५-३-१८ इति घञ्प्रत्ययः, भाग एव भाग्यम्, "भर्तादिभ्यो य" (सि०७-२ १५६) इति स्वार्थे यप्रत्ययः, भाग्यं = दैवम्, "नियती विधि दैव भाग्य भागधेय दिष्ट च" इति हैमवचनादपूर्वभाग्यम्, तस्य निधानं निधिः, नियतं धीयते वा निधिः, "उपसर्गाद् द कि" (सि०५ ३-८७) इत्यनेन कित् इप्रत्ययः, निधिः = शेवधिः "निधान तु कुनाभि शेवधिर्निधिः" (१६०) इत्यभिधानवचनादपूर्वभाग्यनिधिस्तस्यापूर्वभाग्यनिधेः। कस्येत्याह ?–"पभवपहुस्स" त्ति प्रभवप्रभोः = जम्बूस्वामिशिष्यस्य "अहो" त्ति अहो विस्मये 'ऽहो ही च विस्मये" (१०२) इति हैमशेषवचनात् "भग्ग" ति भाग्यं = विधिम् "किं" ति किम् प्रश्ने "थुव्वइ" त्ति स्तूयते = स्तोतुं शक्यते कावत्रा नहि वर्णयितुं शक्यमित्यर्थः। "स" त्ति स-प्रभवप्रभुः "जा" त्ति यावत् "जडसिरि" ति जडश्रियम् = अचेतनलक्ष्मीं "हरिउ" ति हर्तुं = चोरयितुम् (आनेतुं वा) "गओ" त्ति गतः = यातः (गृह प्रविष्ट इति यावत्) 'ता" त्ति तावत् "अपुव्वचरणसिरिं त्ति चरणं = संयमः, तदेव श्रीः = लक्ष्मीश्चरणश्रीः, अपूर्वा = अनिर्वचनीया, सा चासौ चरणश्रीश्चाऽपूर्वचरणश्रीस्तामपूर्वचरणश्रियम् = अनुपमचारित्रसंपत्तिम् "लहइ" त्ति लभते = प्राप्नोति (प्राप्तवानिति यावत् ।

तथा चाभाणि गुर्वावल्याम्—

"प्रभु स जीयात् प्रभवो महामतिर्जम्बूगुरो कोशहर सुचोरराट्।
यो रत्नकोटी परिमुच्य गेहगा रत्नत्रय मामममभूस्थमत्यलात् ॥१६॥" इति ॥१६॥

अथ श्रीप्रभवस्वामिनो गृहस्थादिपर्यायमान स्वर्गमनकालञ्च दर्शयन् पथ्यार्यामाह—

सगिहेऽणंगदसाऽद्दा, कहंगपमिआ वये जुगपहाणे ।
अंगमिआ ठाउं खं, वीरसिवाऽद्दे सरिसिसंखे ॥२०॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "स" इत्यादि, "स" स प्रभवविभुः "गिहे" त्ति गृहे = गृहावासे "ऽणंगदस" त्ति अनङ्गम् = गगनम् = शून्यम्,

यदुक्तं नपुंसकलिंगप्रकरणे द्वितीयश्लोकव्याख्याने नभोवाचीशब्दानां नपुंसकत्व दर्शयद्भिः श्रीहेमचन्द्रसूरिभिः स्वोपज्ञहैमलिङ्गानुशासनविवरणे–

"नभानाम—नभ — अम्बरम्, अनङ्गम्, कामे तु दहिनामत्वात्पुंसि ॥" इति।

दशाः = बाल-युव-वृद्धलक्षणास्तिस्रः, एतावङ्कौ पश्चानुपूर्व्या मिलितौ येषां तान्यनङ्गदशानि = त्रिंशत् "ऽद्दा" त्ति वर्षाणि = अब्दानि, "वये" त्ति व्रते = प्रव्रज्यायां = सामान्यव्रतपर्याये "कहगपमिआ" त्ति कथाः = स्त्री–भक्त देश नृपभेदाच्चतस्रः, अङ्गानि = सेनाङ्गानि हय गज-रथ-पदाति

रूपाणि चत्वारि, एताभ्यामङ्काभ्यां वामगतिमीलिताभ्यां प्रमितानि- कथाङ्कप्रमितानि=चतुश्चत्वारिंशन्मानानि वर्षाणि, "जुगपहाणे" त्ति युगप्रधाने=युगप्रधानपर्याये "अगमिआ" त्ति,अङ्गानि=आचारादीन्येकादश, तैर्मितानि=अङ्गमितानि=एकादश हायनानि, "ठाउ"ति, स्थित्वा इत्थ सर्वायुः पञ्चाशीतिं संवत्सरान् परिपाल्य "वीरसिवा" त्ति वीरस्य=चरमार्हतः शिवाद्=निर्वृतेः "सरिसिसंखे" त्ति शराः=बाणा अरविन्दाशोकचूतनवमल्लिकानीलोत्पललक्षणाः पञ्च, मदनस्य बाणानां पञ्चत्वात् । तथा चोक्तम्-

"अरविन्दमशोकं च, चूतं च नवमल्लिका । नीलोत्पलं च पञ्चैते, पञ्चबाणस्य सायका ॥'
यद्वा "उन्मादन शोषणश्च,तापन स्तमनस्तथा मारणश्चेति विज्ञेया, कामस्य पञ्चसायका ॥" इति ।

उन्मादशोपणतापनस्तम्भनमारणलक्षणाः पञ्च शराः,यद्वा शब्द रूप रस-गन्ध स्पर्शाख्याः पञ्च शराः यदुक्तम्---

धनुर्माला मौर्वी क्वणदलिकुल लक्ष्यमबला, मनो भेद्य शब्दप्रभृतय इमे पञ्चविशिखा ।
इयाञ्जेतुं यस्य त्रिभुवनमनङ्गस्य विभव, स व काम कामान्दिशतु दयितापाङ्गवसति ॥" इति ।

ऋषयो=मुनयो मरीच्यत्र्यङ्गिरःपुलस्त्यपुलहक्रतुवसिष्ठमहातेजोलक्षणाः सप्त, तथा चात्र लौकिकोक्तिः---

"मरीचिरत्रि पुलह, पुलस्त्य क्रतुरगिरा । वसिष्ठश्च महाभाग, सप्तैते ब्रह्मण सुता ॥" इति ।

एतयोरङ्कयोर्वामगतिमीलितयोः (७५) सङ्ख्या यत्र वर्षे तत्र शरर्षिसङ्ख्ये "ऽब्दे" त्ति अब्दे=वत्सरे "ख" ति खं=स्वर्गं गत इति क्रियापदस्याध्याहारः ।

तथा चोक्त श्रीहिमवदाचार्यैः स्थविरावल्याम्---

"पभवसामी वि सेज्जभवायरिअं णियपए ठाविता वीराओ पचहत्तरिवासेसु विइक्कतेसु सग्ग पत्तो"इति ।

एव तपागच्छपट्टावल्यादिष्वपि । तथा च श्रीहीरसौभाग्येऽलङ्कारिभाषयाऽस्य प्रभोः स्वर्गगमन दर्शितम् । तदित्थम्—

"किं वण्यते वर्ण्यगुणस्य चौर्य-चातुर्यमस्य प्रभवस्य भर्तु ।
अहार्यमप्येष मनोऽभिधानमपाहरद्यत्त्रिदिवेन्दिरायाः ॥२०।" इति ।

प्रव्रज्यायुगप्रधानयोः काल एतावन्नेव महामहोपाध्यायश्रीधर्मसागरगणिरचितश्रीतपागच्छपट्टावल्यादिषु दृश्यते । स च कालो यदा कल्पसूत्रवृत्त्याद्यनुसारेण जम्बूस्वामिना सह प्रभवप्रभोर्व्रतग्रहणं प्रतिपाद्यते तदा न घटामटाट्यते । तथा चोक्त कल्पवृत्तौ—

"तत प्रात पञ्चशतचोरप्रियाष्टकतज्जनकजननीस्वजनकजननीभि सह स्वय पञ्चशतसप्तविंशतितमो नवनवतिकनककोटी परित्यज्य प्रव्रजित ।"इति । तथा च सति तत्रैव पट्टावल्यामुक्तमपि कथं सङ्गतं भवेद् ,

यतो जम्बूस्वामिनि विद्यमान एव तस्य स्वर्गभाक्त्वं संपनीपद्येत । अतो जम्बूस्वामिनो दीक्षायाः पश्चात् कियद्वर्षैः प्रभवप्रभोर्दीक्षा सम्भाव्येत तदा न कोऽपि विरोधः स्यात् ।

तथा चोक्तं परिशिष्टपर्वणि तृतीयसर्गे—

"पञ्चम श्रीगणधरो ऽप्येवमभ्यर्थितस्तदा । तस्मै सपरिवाराय ददौ दीक्षां यथाविधि ॥२८९॥ पितृनापृच्छ्य चान्येद्युः प्रभवोऽपि समागत । जम्बूकुमारमनुयान् परिव्रज्यामुपाददे ॥२९०॥" इति ।

अथवा यदा जम्बुस्वामिना सहैव प्रभवविभोः संयमग्रहणं कल्पसूत्रवृत्तिकृदाद्यभिप्रायेण मन्यते तदा यदि प्रभवस्वामिनः सामान्यव्रतपर्यायवर्षाणि चतुःषष्टिं कृत्वा सर्वायुश्च पञ्चोत्तरवर्षशतं = स्वीक्रियेत तर्हि सङ्गच्छेत । तदर्थं मूलोक्तं "**कहगपमिआ**" त्ति पदमित्थं व्याख्येयम्- कथाः भक्त-देश-राज-स्त्रीरूपाश्चतस्रः, अङ्गानि = शिक्षा-कल्प-व्याकरण-छन्दो-ज्योति-निरुक्ति-लक्षणानि वेदाङ्गानि षट्, **यदुक्तमभिधानचिन्तामणौ—**

"शिक्षा कल्पो व्याकरणं छन्दो ज्योतिर्निरुक्तयः ॥२५॥ षडङ्गानि" इति । **यद्वा** गृहस्थपर्यायं दशाब्दमितं, सामान्यसंयमपर्यायश्च पूर्ववच्चतुषष्टिः समा अङ्गीक्रियन्ते तदा सर्वायुः पञ्चाशीति-संवत्सराः सम्पद्यते । किन्त्वयं सम्यग् न भाति, यतो दशवर्षायुष्कोऽसौ चोराधिपः स्यात् । यदि संभाव्येत तर्हि तदर्थम्-मूलगाथास्थितं '**ऽणंगद** ' त्ति पदस्यार्थोऽयं विधेयः- अनङ्गदशाः=कामावस्थाः = कम्प-स्वेदादयो दश, **यद्वा**-ऽभिलाषादयो दश, **यदुक्तम्—**

"अभिलाषश्चिन्तास्मृतिगुणकथनोद्वेगसप्रलापाश्च ।
उन्मादोऽथ व्याधिर्जडता मृतिरिति दशात्र कामदशाः ॥" इति ।

यद्वा-ऽङ्गासौष्ठवादयो दश, **तथा चाह—** अङ्गेष्वसौष्ठवं तापः, पाण्डुताकृशताऽरुचिः । अधृतिः स्यादनालम्बस्तन्मयोन्मादमूर्च्छना । मृतिश्चेति क्रमाज्ज्ञेया दश स्मरदशा इह ॥"इति ।

यद्वा चिन्तनादयो दश, **तथा चोक्तम्—**

"चिंतइ[1] दट्ठुमिच्छइ[2] दीहं नीससइ[3] तह जरे[4] दाहे[5] ।
भत्तअरोअग[6] मुच्छा[7] उम्माय[8] न याणई[9] [10]मरणं ॥" इति ।

ततश्चायमर्थः-स प्रभवस्वामी गृहस्थपर्याये दश संवत्सरान् यावदस्थात् ।

श्रीमद्धिमवदाचार्यनिर्मितस्थविरावल्यपेक्षया पुनरमुष्य युगप्रधानकालः पञ्चवर्षमानोऽपि स्यात्, यतस्तत्रैकमतमधिकृत्य जम्बूस्वामिनो निर्वाणं वीरात्सप्ततिवर्षेषु व्यतिक्रान्तेषु निरूपितम्, प्रभवस्वामिनस्तु यथोक्तवर्ष एव स्वर्गगमनं भणितम्, तदपेक्षयाऽल्प व्रतपर्यायोऽपि यथार्हः पञ्चाशद्वर्षप्रमाणः सप्ततिवर्षमितो वा स्यात् । **तत्पाठस्त्वेवम्-**
"वीराओ सत्तरिवासेसु विइक्कतेसु मयतरे चउसट्ठीवासेसु विइक्कतेसु ॥ पभवसामिण गण समप्प

रूपाणि चत्वारि, एताभ्यामङ्काभ्यां वामगतिमीलिताभ्यां प्रमितानि- कथाङ्कप्रमितानि=चतुश्चत्वारिंशन्मानानि वर्षाणि, "जुगपहाणे" त्ति युगप्रधाने=युगप्रधानपर्याये "अगमिआ" त्ति,अङ्गानि=आचारादीन्येकादश, तैर्मितानि=अङ्गमितानि=एकादश हायनानि, "ठाउ" ति, स्थित्वा इत्थ सर्वायुः पञ्चाशीतिं संवत्सरान परिपाल्य "वीरसिवा" त्ति वीरस्य=चरमार्हतः शिवाद्=निर्वृतेः "सरिरिसिसंखे" त्ति शराः=बाणा अरविन्दाशोकचूतनवमल्लिकानीलोत्पललक्षणाः पञ्च, मदनस्य बाणानां पञ्चत्वात् । तथा चोक्तम्-

"अरविन्दमशोक च, चूत च नवमल्लिका । नीलोत्पल च पञ्चैते, पञ्चबाणस्य सायका ॥"
यद्वा "उन्मादन शोषणञ्च,तापन स्तम्भनस्तथा मारणश्चेति विज्ञेया, कामस्य पञ्चसायका ॥" इति ।

उन्मादशोषणतापनस्तम्भनमारणलक्षणाः पञ्च शराः,यद्वा शब्द रूप रस-गन्ध स्पर्शाख्याः पञ्च शराः यदुक्तम्--

धनुर्माला मौर्वी क्वणदलिकुल लक्ष्यमबला, मनो भेद्य शब्दप्रभृतय इमे पञ्चविशिखा ।
इयाञ्जेतु यस्य त्रिभुवनमनङ्गस्य विभव, स व काम कामान्दिशतु दयितापाङ्गवसति ॥" इति ।

ऋषयो=मुनयो मरीच्यत्र्यङ्गिरःपुलस्त्यपुलहक्रतुवसिष्ठमहातेजोलक्षणाः सप्त,
तथा चात्र लौकिकोक्तिः--

"मरीचिरत्रि पुलह, पुलस्त्य क्रतुरगिरा । वसिष्ठश्च महाभाग, सप्तैते ब्रह्मण सुता ॥" इति ।

एतयोरङ्कयोर्वामगतिमीलितयोः (७५) सङ्ख्या यत्र वर्षे तत्र शरर्षिसङ्ख्ये "ऽब्दे" त्ति अब्दे=वत्सरे "ख" ति खं=स्वर्गं गत इति क्रियापदस्याध्याहारः ।

तथा चोक्त श्रीहिमवदाचार्यैः स्थविरावल्याम्---

"पभवसामी वि सेज्जभवायरिअ णियपए ठावित्ता वीराओ पचहत्तरिवासेसु विइक्कतेसु सग्ग पत्तो" इति ।

एव तपागच्छपट्टावल्यादिष्वपि । तथा च श्रीहीरसौभाग्येऽलङ्कारिभाषयाऽस्य प्रभोः स्वर्गगमन दर्शितम् । तदित्थम्—

"किं वण्यते वर्ण्यगुणस्य चौर्य-चातुर्यमस्य प्रभवस्य भर्तु ।
अहार्यमप्येष मनोऽभिधानमपाहरद्यस्त्रिदिवेन्दिराया ॥२०॥" इति ।

प्रव्रज्यायुगप्रधानयोः काल एतावन्नेव महामहोपाध्यायश्रीधर्मसागरगणिरचितश्रीतपागच्छपट्टावल्यादिषु दृश्यते । स च कालो यदा कल्पसूत्रवृत्त्याद्यनुसारेण जम्बूस्वामिना सह प्रभवप्रभोर्व्रतग्रहणं प्रतिपाद्यते तदा न घटामटाट्यते । तथा चोक्त कल्पवृत्तौ—

"तत प्रात पञ्चशतचोरप्रियाष्टकतज्जनकजननीस्वजनकजननीभि सह स्वय पञ्चशतसप्तविंशतितमो नवनवतिकनककोटी परित्यज्य प्रव्रजित ।" इति । तथा च सति तत्रैव पट्टावल्यामुक्तमपि कथं सङ्गतं भवेद् ,

यतो जम्बूस्वामिनि विद्यमान एव तस्य स्वर्गभाक्त्वं संपनीपद्येत । अतो जम्बूस्वामिनो दीक्षायाः पश्चात् कियद्वर्षैः प्रभवप्रभोर्दीक्षा सम्भाव्येत तदा न कोऽपि विरोधः स्यात् ।

तथा चोक्तं परिशिष्टपर्वणि तृतीयसर्गे—

"पञ्चम श्रीगणधरो ऽप्येवमभ्यर्थितस्तदा । तस्मै सपरिवाराय ददौ दीक्षां यथाविधि ॥२८६॥ पितृनापृच्छ्य चान्येद्यु, प्रभवोऽपि समागत । जम्बूकुमारमनुयान् परिव्रज्यामुपाददे ॥२६०॥" इति ।

अथवा यदा जम्बुस्वामिना सहैव प्रभवविभोः संयमग्रहणं कल्पसूत्रवृत्तिकृदाद्यभिप्रायेण मन्यते तदा यदि प्रभवस्वामिनः सामान्यव्रतपर्यायवर्षाणि चतुःषष्टिं कृत्वा सर्वायुश्च पञ्चोत्तरवर्षशतं = स्वीक्रियेत तर्हि सङ्गच्छेत । तदर्थं मूलोक्तं "**कहङ्गपमिआ**" त्ति पदमित्थं व्याख्येयम्– कथाः भक्त-देश-राज-स्त्रीरूपाश्चतस्रः, अङ्गानि = शिक्षा-कल्प-व्याकरण-छन्दो-ज्योति-निरुक्ति-लक्षणानि वेदाङ्गानि षट्, **यदुक्तमभिधानचिन्तामणौ—**

"शिक्षा कल्पो व्याकरण छन्दो ज्योतिर्निरुक्तय ॥२५०॥ षडङ्गानि" इति । **यद्वा** गृहस्थपर्यायं दशाब्दमितं, सामान्यसंयमपर्यायश्च पूर्ववच्चतुषष्टिः समा अङ्गीक्रियन्ते तदा सर्वायुः पञ्चाशीति-सवत्सराः सम्पद्यते । किन्त्वयं सम्यग् न भाति, यतो दशवर्षायुष्कोऽसौ चोराधिपः स्यात् । यदि संभाव्येत तर्हि तदर्थम्–मूलगाथास्थितं '**ऽणंगदसा**' त्ति पदस्यार्थोऽयं विधेयः– अनङ्गदशाः=कामावस्थाः = कम्प-स्वेदादयो दश, **यद्वा**-ऽभिलाषादयो दश, **यदुक्तम्—**

"अभिलाषश्चिन्तास्मृतिगुणकथनोद्वेगसप्रलापाश्च ।
उन्मादोऽथ व्याधिर्जडता मृतिरिति दशात्र कामदशाः ॥" इति ।

यद्वा-ऽङ्गासौष्ठवादयो दश, **तथा चाह—** अङ्गेष्वसौष्ठव तापः, पाण्डुताकृशताऽरुचि । अधृति स्यादनालम्बस्तन्मयान्मादमूर्च्छना । मृतिश्चेति क्रमाज्ज्ञेया दश स्मरदशा इह ॥"इति ।

यद्वा चिन्तनादयो दश, **तथा चोक्तम्—**

"चिंतइ[1] दट्ठुमिच्छइ[2] दीहं नीससइ[3] तह जरे[4] दाहे[5] ।
भत्तअरोअग[6] मुच्छा[7] उम्माय[8] न याणई[9] [10]मरणं ॥" इति ।

ततश्चायमर्थः–स प्रभवस्वामी गृहस्थपर्याये दश संवत्सरान् यावदस्थात् ।

श्रीमद्धिमवदाचार्यनिर्मितस्थविरावल्यपेक्षया पुनरमुष्य युगप्रधानकालः पञ्च-वर्षमानोऽपि स्यात्, यतस्तत्रैकमतमधिकृत्य जम्बूस्वामिनो निर्वाणं वीरात्सप्ततिवर्षेषु व्यति-क्रान्तेषु निरूपितम्, प्रभवस्वामिनस्तु यथोक्तवर्ष एव स्वर्गगमनं भणितम्, तदपेक्षया-ऽल्प व्रतपर्यायोऽपि यथार्हः पञ्चाशद्वर्षप्रमाणः सप्ततिवर्षमितो वा स्यात् । **तत्पाठस्त्वेवम्**-"वीराओ सत्तरिवासेसु विइक्कंतेसु मयतरे चउसट्ठीवासेसु विइक्कंतेसु ॥ पभवसामिण गण समप्प

रूपाणि चत्वारि, एताभ्यामङ्काभ्यां वामगतिमीलिताभ्यां प्रमितानि- कथाङ्कप्रमितानि=चतुश्चत्वारिंशन्मानानि वर्षाणि, "जुगपहाणे" त्ति युगप्रधाने=युगप्रधानपर्याये "अगमिआ" त्ति,अङ्गानि=आचारादीन्येकादश, तैर्मितानि=अङ्गमितानि=एकादश हायनानि, "ठाउ"ति, स्थित्वा इत्थं सर्वायुः पञ्चाशीतिं संवत्सरान् परिपाल्य "वीरसिवा" त्ति वीरस्य=चरमार्हतः शिवाद्=निर्वृतेः "सरिसिसंखे" त्ति शराः=बाणा अरविन्दाशोकचूतनवमल्लिकानीलोत्पललक्षणाः पञ्च, मदनस्य बाणानां पञ्चत्वात् । तथा चोक्तम्-

"अरविन्दमशोकं च, चूतं च नवमल्लिका । नीलोत्पलं च पञ्चैते, पञ्चबाणस्य सायका ॥" यद्वा "उन्मादनं शोषणञ्च,तापनं स्तमनस्तथा मारणश्चेति विज्ञेया, कामस्य पञ्चसायका ॥" इति ।

उन्मादशोषणतापनस्तम्भनमारणलक्षणाः पञ्च शराः,यद्वा शब्द रूप रस-गन्ध स्पर्शाख्याः पञ्च शराः

यदुक्तम्--

धनुर्माला मौर्वी क्वणदलिकुलं लक्ष्यमबला, मनो भेद्यं शब्दप्रभृतय इमे पञ्चविशिखाः । इयाञ्जेतुं यस्य त्रिभुवनमनङ्गस्य विभवः, स वः कामं कामान्दिशतु दयितापाङ्गवसतिः ॥" इति ।

ऋषयो=मुनयो मरीच्यत्र्यङ्गिरःपुलस्त्यपुलहक्रतुवसिष्ठमहातेजोलक्षणाः सप्त,

तथा चात्र लौकिकोक्तिः--

"मरीचिरत्रिः पुलहः, पुलस्त्यः क्रतुरङ्गिराः । वसिष्ठश्च महाभागः, सप्तैते ब्रह्मणः सुताः ॥" इति ।

एतयोरङ्कयोर्वामगतिमीलितयोः (७५) सङ्ख्या यत्र वर्षे तत्र शरर्षिसङ्ख्ये "ऽब्दे" त्ति अब्दे=वत्सरे "ख" ति खं=स्वर्गं गत इति क्रियापदस्याध्याहारः ।

तथा चोक्तं श्रीहिमवदाचार्यैः स्थविरावल्याम्---

"पभवसामी वि सेज्जंभवायरिअं णियपए ठावित्ता वीराओ पचहत्तरिवासेसु विइक्कंतेसु सग्गं पत्तो"इति ।

एवं तपागच्छपट्टावल्यादिष्वपि । तथा च श्रीहीरसौभाग्येऽलङ्कारिभाषयाऽस्य प्रभोः स्वर्गगमनं दर्शितम् । तदित्थम्—

"किं वर्ण्यते वर्ण्यगुणस्य चौर्य-चातुर्यमस्य प्रभवस्य भर्तुः ।
अहार्यमप्येष मनोऽभिधानमपाहरद्यस्त्रिदिवेन्दिरायाः ॥२०॥" इति ।

प्रव्रज्यायुगप्रधानयोः कालः एतावन्नेव महामहोपाध्यायश्रीधर्मसागरगणिरचितश्रीतपागच्छपट्टावल्यादिषु दृश्यते । स च कालो यदा कल्पसूत्रवृत्त्याद्यनुसारेण जम्बूस्वामिना सह प्रभवप्रभोर्व्रतग्रहणं प्रतिपाद्यते तदा न घटामटाट्यते । तथा चोक्तं कल्पवृत्तौ—

"ततः प्रातः पञ्चशतचौरप्रियाष्टकतज्जनकजननीस्वजनकजननीभिः सह स्वयं पञ्चशतसप्तविंशतितमो नवनवतिकनककोटीः परित्यज्य प्रव्रजितः ।"इति । तथा च सति तत्रैव पट्टावल्यामुक्तमपि कथं सङ्गतं भवेद् ,

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धि
४८३	१६	०सुन्द०	०सुन्दर०
४८४	७	दीक्षयात	दीक्षयत्
४८४	१५	०पादितम्	०पादितम्
४८४	१६	०धीरा	०धीरा
४८४	३०	क्रुद्धा	क्रुद्धा
४८५	२७	१३\५५	१४\६९
४८६	७	सक्कस्स	सक्कस्सस्स
४८६	१८	०घर	धर
४८७	५	०र्मिते	०र्मिते
४८७	८	०सुन्द०	०सुन्दर०
४८७	२१	०दुर०	०दूर०
४८७	२२	जगृदु०	जगृहु०
४८९	३	मुगुटानि	मुकुटानि
४८६	८	पज्ञाश०	प्रज्ञाश०
४८९	६	राजेन्द्र	राजेन्द्रा
४८९	१२	०क प्रदर्वी०	०का पदवी
४९०	२	०धानानी०	०धानी०
४६०	११	०णिभि·	०गणिभिः
४६०	२२	३६३	२६३
		साम्थ्यीना	सामर्थ्याना
४९२	१०	०विश्वम्मि	०विस्सम्मि
४६२	१५	आचार्ये	आचार्यो
४६२	१६	०सर्पिद०	०सर्पिर्द०
४६२	२४	०श्चत्वारो	०श्चतस्रो
४६३	१६	आचारङ्ग	आचाराङ्ग
४९३	२१	दष्टि०	दृष्टि०
४९३	२३-२४	ऽष्टादशमे	ऽष्टादशे
४६३	२६	०वृत्य०	०भृत्य०
४९३	२६	०दशे०	०र्दशे०
४९४	२०	दन्ता\०त्वेन	दन्ताना\०त्वेन
४६५	१४	०द्रम०	०द्रुम०
४९५	१८	०विष्कु०	०विष्कुर्व०
४६५	२४	०नामा	०नामा
४९५	२८	मस्नि	मस्ति,
४६६	१	०वणनम्	०वर्णनम्

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धि	शुद्धि
४६७	६	अमन	अभूत
४९८	११	०कला०	०कल०
४६८	१४	०उवज्भाय०	०उवज्झय०
४९८	१५	०कला)	०अलो)
४६६	२६	१४७७	१४७०
५०१	५	ता तदनु०	ता(ऽ)तदनु०
५०१	२६	०क्षणीया	०क्षणीया
५०२	१३	तीर्थाणि=	तीर्थानि=
		विशिष्टि०	विशिष्ट०
५०४	२४	खोणिसये	खोणीसये
५०५	५	वामेतरो	वामेतरौ
५०५	७	विवक्ष्यते	विवक्ष्येते
५०५	२२	त्र्यङ्क-ष्टाङ्क-लक्षणै	त्र्यङ्का-ऽष्टाङ्क-लक्षणैर्वामगतिमीलितै
५०६	३	मायाति	मायान्ति
५०७	८	०वान्नि०	०वानि०
५०७	१४	सश्री०	स श्री०
५०७	१८	०जययिनि	०जयिनि
५०७	१९	रौल०	रोल०
५०७	२२	०दर्श०	०दर्शय०
५०७	२६	महिम्रा	महिम्ना
५०८	१	वणनम्	वर्णनम्
५०८	७	०चन्द्रन०	०चन्दन०
५०८	१३	१५४७	
५०८	२२	१०३१	१-१०३
५०९	४	चेतो	चेता
५१०	२६ २७	दधार=दधौ	दध्रु=दधु
५११	२८	५	६
५१४	६	०विशेषणाम्	०विशेषाणाम्
५१५	४	०मिहनु०	०मिहाऽनु०
५१५	१०	०लक्षणा	०लक्षणा·
५१६	१३	निजिगिदिषु०	निजिगदिषु०
५१७	३	चासौ	चाऽसौ
५१७	४	०वान्नि०	०वानि०
५१७	८	स०	सि०

पृष्ठम्	पङ्क्ति	अशुद्धि	शुद्धिः
५१७	१४	१६८८	१६२८
५१७	२०	सररसइ	सरस्सइ
५१७	२३	औत्पात्तिकी	औत्पत्तिकी
५१७	२५	निदिट्ठा	निद्दिट्ठा
५१९	१३	सानिध्य०	सान्निध्य०
५२०	६	ञ्याचिकीर्पु	व्याचिकीर्पु
५२१	१४	'सस्त्रमहमन्दि०	०सहस्त्रमहमून्दि०
५२१	२६	प्रतिग्राम	प्रतिग्राम
५२२	१७	चैकोन०	चैकोना०
५२४	१६	वीभस्सा	बीभत्सा
५२५	१७	षष्ट्या	षष्ठ्या
५२५	२५	गार्हस्थे	गार्हस्थ्ये
५२७	५	लब्धा हरित्कुनामि	लब्धा
५२७	६	तत्र=वि०	तत्र हरित्कुनामि-चन्द्रकले=वि०
५२७	११	पर्वता	पर्वता॰
५२७	२०	२८६	२९०
५२७	२२	२६०	२६१
५३०	१६	मुखचपला	
५३०	१९	(मुहचवला-पच्छाज्जा)	(पच्छाज्जा)
५३१	५	०ऽष्टादशम०	०ऽष्टादश०
६३१	६	निबध्नीयत्	निबध्नीयात्
५३१	२७	पडेस०	पिंडेस०
५३२	२३	०णादि	०णदी
५३२	२४	०कु भि०	०दति०
५३२	२५	(पच्छाज्ज	(पच्छाज्जा)
५३३	२०	०मुति०	०मुनि०
५३४	२	१७३६	१७९६
५३४	२४	वारा०	वाहा०
५३५	३	दशादश	दशशत
५३५	२०	०विमाण०	०सुपव्व०
५३५	२६	०विमानानि	०सुपर्वाण.
५३५	२७	०णानि	०णा
५३६	३	उत्तरागाथास्थ	उत्तरगाथास्थ

पृष्ठम्	पङ्क्ति	अशुद्धि	शुद्धि
५३६	१६	०वीगइकु जर०	०दसणकरटि०
५३६	१६	०विकृतिकुञ्जर०	०दर्शनकरटि०
५३६	२३	०सिद्धार्थ०	०सिद्धार्थ०॥
५३७	५	०वान्नि०	०वानि०
५३७	१२	॥३०४॥	॥३०४॥(पच्छाज्जा)
५३७	२१	०निकाय०	०णिकाय०
५३८	५	॥३०६॥	॥३०६॥ (पच्छाज्जा)
५३९	१५	०वान्नि०	०वानि०
५३९	२६	कृणाणा०	कृपाण०
५४०	१४-१५	व्रताम्रिशयन-गुणकौ	वचोगुणशयन-गुणकौ व्रतगुण-शयनगुणकौ वा
५४०	२४	०वान्नि०	०वानि०
५४०	२८	ऽन्तचपलया	
५४१	४	(जहणचवला-पच्छाज्जा)	(पच्छाज्जा)
५४२	१	जनन्मादि	जन्मादि
५४२	६	तत्प	तत्प
५४४	१४	(चदुज्जोअ)	(चदुज्जोओ
५४४	२८	जनां	जनाना
५४५	३\८	लोगेग०	लोगेस०
५४५	४	०गुणेहिं	०सुगेहिं
५४५	१७	सवेगि	सवेगि
५४६	२७	तथौ०	तथो०
५४७	२	अह	अर्ह
५४८	५	(पच्छागीई)	(जहणचवला पच्छागीई)
५४८	६	(पच्छाज्जा)	(अतचवला पच्छाज्जा)
५४८	१०	०वासस्सि	०वासम्मि
५४८	१५	शुद्धि०	शुद्ध
५४८	१८	पथ्यागीत्या	जघनचवला-पथ्यागीत्या
५४९	८	पथ्यार्या०	जघनचपला-पथ्यार्या०

अज्जजंबू णिव्वूओ । पभवसामी वि सेज्जमवायरिअ णिअपए ठाविता वीराओ पंचहत्तरिवासेसु विइक्कतेसु सग्ग पत्तो" इति ।

एतदर्थं पुनः "अगमिआ" इति गाथार्थं पदमित्थ व्याख्येयम्–

अङ्गानि=शरीराण्यौदारिकादीनि पञ्च, तैर्मितानि=अङ्गमितानि, अर्थात् पञ्च वर्षाणि युगप्रधानपर्याये स्थित्वा वीरनिर्वाणाच्च सप्ततिवर्षेषु व्यतिक्रान्तेषु स्वर्गलोकमितः ।

तदत्र तत्त्वं पुनस्तद्विदो विदुः ॥२०॥

अधुना श्रीसिद्धार्थनन्दनजिनपतिचतुर्थपट्टधरं श्रीप्रभवप्रभुशिष्यञ्च श्रीशय्यम्भवसूरिं श्लोकत्रयेणाभिधातुकामः पूर्वं शार्दूलविक्रीडितं वक्ति–

विस्सक्खायवरो पएऽस्स स पहू, सोहीअ सय्यंभवो;
णिक्कासीअ मुणिंदुसेअवयसा, सच्चेसणे तप्परो ।
जूवाहत्थिअसंतिणाहपडिमं, वेरग्गसमंभुहिं;
मोक्खाऽद्धादरिसं धराअहठिअं, गुत्तं णिहाणं व जो॥२१॥(सद्दुलविक्कीडिअं)

(प्रे०)"**विस्सक्खाय...**" इत्यादि, "**स**" त्ति स "**सय्यंभवो**" त्ति शय्याया भवतीति पृषोदरादित्वात् शय्यम्भवः=शय्यम्भवनामा राजगृहवास्तव्यो वत्सगोत्रीयः "**पहु**" त्ति प्रभुः =स्वामी, पुनः किंविशिष्टः ? इत्याह–"**विस्सक्खायवरो**" त्ति विश्वे=त्रिविष्टपे ख्याताः = प्रसिद्धास्ते विश्वख्यातास्तेषु तेषां वा वरः=श्रेष्ठ (=अग्रणीः) विश्वख्यातवरः = सकलजगति ख्यातकीर्तिरित्यर्थः । "**ऽस्स**" त्ति अस्य प्रभवस्वामिनः "**पए**" त्ति पदे = पट्टे "**सोहीअ**" त्ति अशोभत् = राजते स्म । यत्तदोर्नित्याभिसम्बन्धात् स कः ? इत्याह–"**जो**"त्ति चतुर्थचरण-स्थोऽप्यत्र सम्बध्यते । यः शय्यम्भवस्वामी किम्भूतः ? इत्याह–"**सच्चेसणे तप्परो**" त्ति सति साधु "तत्र साधौ" (सि०७ १ १५) इत्यनेन यप्रत्यये सत्यं = तथ्यम् , तस्यैषणे = गवेषणे-ऽन्वेषणे सत्यैषणे तत्परमस्य तत्परः = तन्निष्ठः परायण आसक्तो वा, यदुक्त **हैम्याम्**– 'अथ तत्पर ॥ आसक्त प्रवण प्रह्व, प्रसतिश्च परायण ।' इति । "**मुणिंदुसेअवयसा**" त्ति मुनीनां = साधूनां मध्ये इन्दुरिवाऽऽनन्दजनकत्वाच्छोभाकारित्वाद्वा,इन्दुः=चन्द्रो मुनीन्दुस्तस्य मुनीन्दोः= प्रभवस्वामिनः श्रेयः = कल्याणकरं वचो = गिरा श्रेयोवचस्तेन श्रेयोवचसा=प्रभवस्वामिप्रेषित-साधुमुखाद् "अहो **महोकष्टं तत्त्वं न ज्ञायते परम्**" इत्येवंरूपेण, मुनीन्दुश्रेयोवचसा तद्यथा साधोर्वचनश्रवणानन्तरं पृष्टतत्त्वस्योपाध्यायस्य यत्तदुत्तरदाने सति सरोषेण शय्यम्भव-

पृष्ठम्	पङ्क्ति	अशुद्धि	शुद्धि
५४८	४/२०	स०वसहा०	अतररि३०
५४८	२०	सर्वसहा= पृथिव्येका,	आन्तररिपव = कामक्रोधादय षट्
५४८	२२/२३	१६४१	१६४६
५४८	२७	वपुदा०	वपुर्द्दा०
५४९	४	०द्वारो०	०द्वारो०
५४९	१८	०पमाण०	०प्रमाण०
५४९	२९	०सत्काणा	०सत्काना
५५०	२६	स्थित्वादा०	स्थितत्वादा०
५५२	१२	७-२-	७-१-
५५२	१९	०श्चया०	०श्चर्या०
५५३	२४	०वाञ्चि०	०वानि०
५५३	२८	महा०	महा०
५५४	५	क्षमानाम	क्षमाण.म
५५४	१३	बाढ-अत्यन्त उप०	बाढ मत्यन्तमुप०
५५४	१७	०मुल्ला०	०नामुल्ला०
५५४	२२	त्ति	ति
५५५	१०	स्तोतु	स्तोतुं
५५५	१७	(प्रो०)	(प्रे०)
५५५	२६	०णा अ०	०णाम०
५५६	१९	५२	५१
५५६	२६	०त्रैवे	०त्रैव
५५७	३	०मपि०	०मणि०
५५७	४	नेका	नैका
५५७	१०	कमर्णि	कर्मणि
५५७	१४	०मना	०मनस
५५७	१९	प्रकृष्टानान्	प्रकृष्टान्
५५८	२	०विशेषणा०	०विशेषाणा०
५५८	६-६	०सूरि०	०सूरी०
५५८	११	सहस्रानि	सहस्राणि
५५८	१७	त्ति	
५५९	७	नाडिया	नांदिया
५५९	६	०श्वाश्वा	०श्वाश्वा'
५५९	१७	भोमा०	भौमा०
५५९	२०	चदस्मि	चदम्मि

पृष्ठम्	पङ्क्ति	अशुद्धि	शुद्धि
५६१	१७	०ऽऽदिचपला०	
५६२	३	(मुहचवला- पच्छाज्जा)	(पच्छाज्जा)
५६२	११	जघनचपला०	
५६२	१४	अतचवला०	
५६२	१५	(पच्छागीई)	(जघनचपलापच्छागीई)
५६३	२३	मुखचपला०	
५६३	५	आइचवला०	
५६४	६	जघनचपला०\मुखचपला०	
५६४	९	अतचपला०	
५६४	११	आदिचवला०	
५६४	१६	०मुगट/०मुगट	०मुकुट/०मुकुट
५६४	२१	०सकप्पो	०सक्रप्पो
५६५	६-७	प्रमाण०	प्रणाम०
५६६	८	०स्थाना०	०स्थापना०
५६७	११	षष्ट्या	षष्ठ्या
५६७	१९	चक्षपी	चक्षुपी
५६८	८	सौभ्या०	सौम्या०
५६८	९	वैराग्येन	वैराग्येण
५६८	११	शुश्रुषा०	शुश्रूषा०
५६८	१३	०नेक०	०नैक०
५६८	१५	०चतुष्केन	०चतुष्केण
५६९	६२	०पाति०	०प्राति०
५६९	२७	सव०	सव०
५७१	८	०तिमत्थय०	०तिमत्थयलोयण०
५७१	१९	ग्रैवयक०	ग्रैवेयक०
५७२	६	०स्थाना०	०स्थापना०
५७२	७	०न्नेवाऽदे	०न्नेवाऽऽदे
५७४	९	प्रणीत	प्रणीतम्
५७४	२४	नरवे	नखे
५७५	१	प्राथनादि	प्रार्थनादि
५७५	७	ग्रन्कार:	ग्रन्थकार:
५७५	१३	साहय्य	साहाय्य
५७६	८	विणासणे	विनाशने
५७६	१५	७६	७६

दसजुअं कयं, जेण वेआलियं; मनकसूणुणो, सत्थमोगाहिउं ।
जह णारायणो, अंबुहि मंथिउं; अमररासिणो, उद्धरीअ्रामयं ॥२२॥(मेहावली)

(प्रे०) "दसजुअ" इत्यादि, "जेण" त्ति येन=गणाधिपेन श्रीशय्यम्भवसूरिणा "मनकसूनुणो" त्ति मनकः=मनकसंज्ञकः, स चासौ सूनुः= स्वतनयः= मनकसूनुस्तस्मै मनकसूनवे=मनकनाम्नो निजात्मजस्य परभवसाधनकृते "सत्थं" ति शास्त्र = अङ्गोपाङ्गान्वितचतुर्दशपूर्वलक्षणं सम्पूर्णश्रुतं "ओगाहिउ" ति अवगाह्य = परिशीलनं कृत्वा "दसजुअ" ति दशेति शब्दावयवेन युतं = संयुक्तं = दशयुतं दशपूर्वकं "वेआलिय" ति वैकालिकं दशवैकालिकमित्यर्थः, तथाहि–दशानामध्ययनानां विकाले = दिवसावसानलक्षणे सन्ध्यासमये कृतत्वाज्जातत्वाद्वा विकाले कृत जात वा वैकालिकं "तत्र कृत-लब्ध-क्रीतसम्भूते" (सि०६ ३-६४) इत्यनेन कृतेऽर्थे, यद्वा "जाते' (सि०६-३-६८) इत्यनेन जातेऽर्थे शेपार्थप्रत्ययविधायकेन "वर्षा-कालेभ्य" (सि०-६-३-८०) इति सूत्रेण इकण्प्रत्ययस्ततो "वृद्धि स्वरेष्वादेर्ञ्णिति तद्धिते' (सि० ७४-१) इति सूत्रेण वृद्धिस्ततो दशयुतं वैकालिकं "मयूरव्यसकेत्यादय" (सि०३ १-११६) इति समासः, दशवैकालिकं = तन्नामकं शास्त्र "कय" ति कृतं = रचितम् , क इव ? इत्याह- "जह" इत्यादि, "जह" त्ति यथा "णरायणो" त्ति नारायणः = विष्णुः "अमररासिणो" त्ति अमराणां = सुराणां राशिः = समूहोऽमरराशिस्तस्मै अमरराशये = सुरगणार्थं 'अंबुहिं" ति अम्बुधिं = समुद्र "मन्थिउ" ति मन्थित्वा = विलोड्य "अमय" ति अमृत = सुधा = पीयूषं लोककल्पितदेवभोज्यलक्षण "उद्धीरअ"त्ति उद्धृतवान् । अयञ्च दशवैकालिकनामा ग्रन्थः संहर्तुकामेनाऽपि श्रीशय्यम्भवसूरिणा सङ्घाग्रहादल्पमेधसामुपकाराय तथैव स्थापितः । यदुक्तम्–

"कृत विकालवेलायां, दशाऽध्ययनगर्भितम् । दशवैकालिकमिति-नाम्ना शास्त्र बभूव तत् ॥१॥
अत पर भविष्यन्ति प्राणिनो ह्यल्पमेधस । कृतार्थास्ते मनकवत् भवतु त्वत्प्रसादत ॥२॥
श्रुताम्भोजस्य किञ्जल्क दशवैकालिक ह्यदः । आचम्याचम्य मोदन्ता मनगारमधुव्रता ॥३॥
इति सङ्घोपरोधेन श्रीशय्यम्भवसूरिभि । दशवैकालिको ग्रन्थो न संवव्रे महात्मभि ॥४॥"इति ॥२२॥

इदानी श्रीशय्यम्भवसूरेर्जन्मादिसमयं पथ्यार्यया प्ररूपयति—

वीरसिवाऽस्स जणी रस-विस्स(३६)मिएऽद्दे वयं जुगंग(६४)मिए ।
स जुगपहाणो भूइसि-(७५)मिए गओ दिवमिहणिहि(६८)मिए ॥२३॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "ऽस्स" ति अस्य शय्यम्भवस्वामिनः "जणी" त्ति जनिः=जन्म "वीरसिवा" त्ति वीरस्य=चरमस्य महावीरजिनेशितुः शिवाद्=अपवर्गात् 'रसविस्समिए" त्ति रसास्तिक्तादयः षड्, विश्वाः = स्वर्गलोकमृत्युलोकपाताललोकलक्षणास्त्रयः, एताभ्यां वामगतिविन्यस्ताभ्या-

॥ परिशिष्टसत्कं शुद्धिपत्रकम् ॥

पृष्ठम्	पङ्क्ति	अशुद्धि	शुद्धि
४	१८	०इगओ	०इगाओ
४	२३	सघेण	सघेण
५	३१	णदु०	णदू०
७	१३	(पच्छापुव्विगा सव्वचवलाज्जा)	(पच्छाज्जा)
७	२०	वुड्ढडेण	वुड्ढेण
७	३४	(पच्छापुव्विगा महाचवलाज्जा)	(पच्छापुव्विगा जहणचवलाज्जा)
९	२६	(पच्छापुव्विगा अनचवलाज्जा)	(पच्छाज्जा)
९	३२	(पच्छापुव्विगा। जहणचवलाज्जा)	(पच्छाज्जा)
१०	३१	(पच्छापुव्विगा) मुहचवलाज्जा)	(पच्छाज्जा)
११	१०	(पच्छापुव्विगाइ-चवलाज्जा)	(पच्छाज्जा)
१२	३	गवरो	जुगवरो
१२	४	(पच्छापुव्विगात-चवलाज्जा)	(पच्छाज्जा)
१२	३१	(कोल)	(कोलो)
१३	६	०अयोगर०	०ओगयर०
१३	१२	०गोविज्जयविमाणे	०गेविज्जयसुपव्वे
१३	१५	०वूह०।९९५	०वूह०।६६४
१३	२४	६४४	९५४
१३	२८	(पच्छापुव्विगा मुहचवलाऽज्जा)	(पच्छाज्जा)
१४	६	०सूरी सो विबुह-पहुपए। अगाध-मज्झो समयद्धी विच्छिण्णो, अभग-भगो गहणो जेणुत्तिण्णो ॥	०गुरू स विबुहप्प-हुप्पए। उत्तिण्णो हि जेण सिद्धान्त-सागरो, विउल-अगाधसतिदगुण-रयणागरो ॥
१४	२४	(पच्छापुव्विगा मुहचवला अज्जा)	(पच्छा अज्जा)
१५	२१	(मुहचवलाप-च्छाज्जा)	(पच्छाज्जा)
१६	१५	(पच्छापुव्विगा मुहचवलाऽज्जा)	(पच्छाज्जा)
१७	१९	(पच्छापुव्विगा जहणचवलागीई)	(पच्छागीई)
१७	२५	(मुहचवला पच्छाज्जा)	(पच्छाज्जा)
१८	५	सिरिधम्मधोस०	सिरिधम्मघोस०
१८	२८	(पच्छापुव्विगा मुहचवलाऽज्जा)	(पच्छाज्जा)
१९	११	दट्ठि०	दिट्ठि०
१९	१६	(पच्छापुव्विगा इचवलाज्जा)	(पच्छाज्जा)
१९	३०	(पच्छापुव्विगा मुहचवलाऽज्जा)	(पच्छाज्जा)
२०	४	(पच्छापुव्विगा-तचवलाज्जा)	(पच्छाज्जा)
२०	२५,२७	१६१३।१६५४	१५५३।१६८४
२१	९	(पच्छापुव्विगा जहणचवलाज्जा)	(पच्छाज्जा)
२२	३	धस्से	घस्से
२३	१७	(मुहचवला)	(मुहचवला)
२४	१८,१९	विट्ठभमव०।१४३३	विट्ठभमय०,१४२३
२४,२७	३१,२४	(दण्डकला)	(दण्डअलो)
२६	१९	१३५७।१४५५	१४५७।१४१६
२६	२७	०व्वज्जा	०व्वजा
२७	२६	१४७७	१४७०
२८	११	०खोणि०	०खोणी०
२८	२६	दट्टा	दट्ठा
३०	२८	(मुहचवलापच्छाज्जा)	(पच्छाज्जा)
३१	५।११	कु मि।१७३६	दति।१७६६
३१	१३	(अणुश्टुभ)	(अणुट्टुभ)
३१	१७	०विमाण०	०सुपव्व०
३२	१६	(जहणचवला-पच्छाज्जा)	(पच्छाज्जा)
३३	१६	(पच्छाज्जा)	(जहणचवलापच्छा-गीई)

पृष्ठम्	पङ्क्ति	अशुद्धिः	शुद्धि
३३	२२	(पच्छाज्जा)	(अतचवला-पच्छाज्जा)
३५	२५	(मुहचवला-पच्छाज्जा)	(पच्छाज्जा)
३५	२८	(अतचवला-पच्छाज्जा)	(पच्छाज्जा)
३५	३५	(पच्छागीई)	(जहणाचवला-पच्छ गीई)
३६	७	(अतचवला-पच्छागीई)	(पच्छागीई)
३६	१०	(आइचवला-पच्छाज्जा)	(पच्छाज्जा)
३९	१४	२१४	११४
३९	१७	११७	१७७
४०	६	७।२ ८६	८।२।८६
४०	२२	६८	५८
४०	२५	'न्तु	'बहुषु न्तु
४१	६	८।२।४	८।१।४
४१	१६	५४८	४४८
४१	२१	८।७।१५७	८।१।१७७
४१	२२	८ २।१२	८।२।१३
४१	२७	८।१।२१८	८।१।२ ८
४२	६	पूवो	पूर्वो
४२	२३	३।२।	८।२।
४२	२५	२२	११
४३	६	डेरादि	डेरदादि
४३	१८	८।२।	८।१।
४३	२१	ख-ख	ख-घ
४३	२६	८३।१ २३	८ ३।११३
४३	२८	८३।१।७३	८।३।१७३
४४	४	८।२।०४	८।१।८४
४४	१२	०ञ्जन०	०व्यञ्जन०
४५	१७	दीर्घ	दीर्घ
४५	२६	(८।	(सि०-८।
४५	२६	सि०	(सि०
४६	२	त्ति	ति
४६	१७	(सि-८।३।९	(सि०-८।३।८
४६	२८	मात्राटि	मात्रटि

पृष्ठम्	पङ्क्ति	अशुद्धि	शुद्धि
४६	२८	८।२।८१	८।१।८१
४७	४	८।२।	८ ३।
४७	५	८ १।	८।३।
४७	७/२१	८	सि०-८
४७	१५	स.	सि०
४८	४	८।१।	८।३।
८४	१३	६८	६७
४९	२१	पूर्वत	पूर्ववत्
५०	७	८।३।	८।३।१७३
५०	१९	पूर्वोक्त०	पूर्वोक्त०
५१	१७	सङ्घे०	सन्धे०
५१	२२	विभक्त	विभक्ति.
५२	५	जत्त०	जत०
५३	११	८।१।	८ ४।
५३	१५/२६	८ ३।तुम०	८ ३।०तुम्०
५५	६	८।१।	८।३
५६	२	गुम्फ०	गुम्फ्०
५६	६	०यौर०	०योरे०
५६	१६	८।३।	८।२
५७	७	१२४	११४
५७	१५	८।१।	८।२।
५७	१६	२२१	२२९
५७	२६	षष्ठ्यै क	षष्ठ्ये क
५८	५	८।३।	८।१।
५८	२०	२३१	२४५
५८	२८	गत्वम	गत्वम्
५९	१४	०विभक्त	०विभक्ति
५९	२०	०सग०	०सर्ग०
६०	४	४५	४४५
६०	५	८।४।	८।३।
६०	१४	९	९०
६०	२६	८।१।२)	८।१।२७)
६०	२६	ति	त्ति
६१	८	स्त्रि०	स्त्री०
६१	१६	त्रिंशत्छ०	त्रिंशाच्छ०
६२	२२	'ह्रस्व	ह्रस्व

इति

—धावल्लारो

स्वोपज्ञ–

'प्रेमप्रभा' टीका-समलङ्कृता

पसत्थी

(प्रशस्तिः)

पञ्चदश परिशिष्टयुता

स्त I I

॥ परिशिष्टसत्कं शुद्धिपत्रकम् ॥

पृष्ठम्	पङ्क्ति	अशुद्धि	शुद्धि
४	१८	०इगओ	०इगाओ
४	२३	सघेण	सघेण
५	३१	णदु०	णदू०
७	१३	(पच्छापुव्विगा सव्वचवलाज्जा)	(पच्छाज्जा)
७	२०	वुड्ढडेण	वुड्ढेण
७	३४	(पच्छापुव्विगा महाचवलाज्जा)	(पच्छापुव्विगा जहणचवलाज्जा)
९	२६	(पच्छापुव्विगा अनचवलाज्जा)	(पच्छाज्जा)
९	३२	(पच्छापुव्विगा, जहणचवलाज्जा)	(पच्छाज्जा)
१०	३१	(पच्छापुव्विगा) मुहचवलाज्जा)	(पच्छाज्जा)
११	१०	(पच्छापुव्विगाइ- चवलाज्जा)	(पच्छाज्जा)
१२	३	गवरो	जुगवरो
१२	४	(पच्छापुव्विगात- चवलाज्जा)	(पच्छाज्जा)
१२	३१	(कोल)	(कोलो)
१३	६	०अयोगर०	०ओगयर०
१३	१२	०गेविज्जयविमाणे	०गेविज्जयसुपव्वे
१३	१५	०वूह०।९९५	०वूह०।९९४
१३	२४	९४४	९५४
१३	२८	(पच्छापुव्विगा मुहचवलाऽज्जा)	(पच्छाज्जा)
१४	९	०सूरी सो विवुह- पहपए। अगाध- मज्झो समयद्धी वित्तिण्णो, अभग- भगो गहणो जेणुत्तिण्णो ।।	०गुरू स विवुहप्प- हप्पए। उत्तिण्णो हि जेण सिद्धान्त- सागरो, विउल- अगाधसतिदगुण- रयणागरो ॥
१४	२४	(पच्छापुव्विगा मुहचवला अज्जा)	(पच्छा अज्जा)
१५	२१	(मुहचवलाप- च्छाज्जा)	(पच्छाज्जा)
१६	१५	(पच्छापुव्विगा मुहचवलाऽज्जा)	(पच्छाज्जा)
१७	१९	(पच्छापुव्विगा जहणचवलागीई)	(पच्छागीई)
१७	२५	(मुहचवला पच्छाज्जा)	(पच्छाज्जा)
१८	५	सिरिधम्मघोस०	सिरिधम्मघोस०
१८	२८	(पच्छापुव्विगा मुहचवलाऽज्जा)	(पच्छाज्जा)
१९	११	दट्ठि०	दिट्ठि०
१९	१६	(पच्छापुव्विगा इचवलाज्जा)	(पच्छाज्जा)
१९	३०	(पच्छापुव्विगा मुहचवलाऽज्जा)	(पच्छाज्जा)
२०	४	(पच्छापुव्विगा- तचवलाज्जा)	(पच्छाज्जा)
२०	२५,२७	१६१३।१६५४	१५५३।१६८४
२१	९	(पच्छापुव्विगा जहणचवलाज्जा)	(पच्छाज्जा)
२२	३	घस्से	घस्से
२३	१७	(मुहचवला)	(मुहचवला)
२४	१८।१९	विट्ठवभव०।१४३३	विट्ठवभय०,१४२३
२४,२७	३१,२४	(दण्डकला)	(दण्डअलो)
२६	१९	१३५७।१४५५	१४५७।१४९६
२६	२७	०ववज्जा	०ववजा
२७	२६	१४७७	१४७०
२८	११	०खोणि०	०खोणी०
२८	२६	दट्टा	दट्ठा
३०	२८	(मुहचवलापच्छाज्जा)	(पच्छाज्जा)
३१	५।११	कुभि।१७३६	दति।१७६६
३१	१३	(अणुट्टुभ)	(अणुट्ठुभ)
३१	१७	०विमाण०	०सुपव्व०
३२	१६	(जहणचवला- पच्छाज्जा)	(पच्छाज्जा)
३३	१६	(पच्छाज्जा)	(जहणचवलापच्छा- गीई)

प्रतिपदादयः प्रसिद्धाः पञ्चदश, आभ्यामङ्काभ्यां वामगतिविन्यस्ताभ्यां षट्पञ्चाशदुत्तरशतेन १५६ मिते रसतिथिमिते = श्रीरसंवत्षट्पञ्चाशदुत्तरशततमे शरदि गते गच्छति वा "ख"ति खं = सुरालयं "इओ" त्ति इतः = जगाम ।

तथा च निगदित श्रीएिमवदाचार्यैः स्थविरावल्याम्—

"सम्भूइविजयो वि वीराओ सयाहियछावन्नवासेसु विइक्कतेसु सग्ग पत्तो ।" इति ।

इत्थञ्च श्रीसम्भूतसूरिर्गार्हस्थ्ये द्विचत्वारिंशद् ४२ वर्षाणि, सामान्यव्रतपर्याये चत्वारिंशद् ४० वर्षाणि युगप्रधानत्वेऽष्टौ ८ वर्षाणि चेति सर्वायुर्नवति९०वर्षाणि समाप्य देवलोकं भजते स्म ।

अमुष्य प्रधानाः शिष्या द्वादशाभूत् । तद्यथा—श्रीनन्दनभद्रः १ श्रीउपनन्दः २, श्रीतिष्यभद्रः ३, श्रीयशोभद्रः ४, श्रीसुमनोभद्रः ५, श्रीमणिभद्रः, ६, श्रीपूर्णभद्रः ७, श्रीस्थूलभद्रः ८,श्रीऋजुमतिः ६, श्रीजम्बुः १०, श्रीदीर्घभद्रः ११, श्रीपाण्डुभद्रः १२, इति ।

तथा सप्तार्याः ख्यातिमत्यः श्रीस्थूलभद्रस्वामिनश्च भगिन्योऽभवन् । ताश्चेमाः—

यक्षा १, यक्षदत्ता २, भूता ३, भूतदत्ता ४, Hसेना ५, वेणा ६, रेणा ७, इति ।

तथा चोक्तं श्रीकल्पसूत्रे—"थेरस्स णं अज्जसंभूइविजयस्स माढरसगुत्तस्स इमे दुवालस थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया हुत्था, त जहा—'नंदणभद्द १, वनदण-भद्दे २,तह तीसभद्द ३, जसभद्दे ४,। थेरे य सुमणभद्दे ५,मणिभद्दे ६ पुण्णभद्दे य ।।१।।थेरे य थूलभद्दे ८ उज्जुमई६ जंबुनामधिज्जे१० य। थेरे अ दीहभद्दे ११थेरे तह पंडुभद्दे १२ य ।।२।।'—थेरस्स णं अज्जसंभूइविजयस्स माढरसगुत्तस्स इमाओ सत्त अंतेवासिणीओ अहावच्चाओ अभिण्णायाओ हुत्था, त जहा— 'जक्खा य १ जक्खदिण्णा २, भूआ ३ तह चेव भूअदिण्णा य ४। सेणा ५वेणा ६रेणा ७भइणीओ थूलभद्दस्स, ।।१।।'' इति' ।।२७।।

इदानीं श्रीत्रैशलेयतीर्थराजः षष्ठे पट्ट एव जातस्य द्वितीयस्य श्रीभद्रबाहुस्वामिनः श्लोकत्रयेण पिपठिषया पूर्वं चन्द्रलेखां भाषते—

भद्दबाहू सतित्थो, सो तस्स बीओ जयेउ;
गोरसाओ जहऽज्जं, पुव्वुद्धिओ जेण कप्पो ।
भव्वलोगाण जेणं, सिद्धंतसोहं गमेउं;
णिम्मिआओ अणेगा, दारव्व णिज्जुत्तिकाओ ।।२८।।(चंदलेहा)

(प्रे०) "भद्दबाहू" इत्यादि,"तस्स पए" त्ति पदद्वयी मण्डूकप्लुतिन्यायेन सम्बध्यते ततो यशोभद्रमुनिनाथस्य पट्टे "बीओ" त्ति द्वितीयो=द्वितीयपट्टभृत् "सो" त्ति स=प्रसिद्धाह्वः "तस्स" त्ति तस्य=श्रीसम्भूतसूरेः "सतित्थो" त्ति सतीर्थ्यः = तीर्यतेऽनेन

H रुढनामत्वेन 'सेणा" इत्यपि । अन्यथा सेना इत्येवाभिधा ज्ञेया ।

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धि	शुद्धि
३३	२२	(पच्छाज्जा)	(अतचवला-पच्छाज्जा)
३५	२५	(मुहचवला-पच्छाज्जा)	(पच्छाज्जा)
३५	२८	(अतचवला-पच्छाज्जा)	(पच्छाज्जा)
३५	३५	(पच्छागीई)	(जहणाचवला-पच्छ गीई)
३६	७	(अतचवला-पच्छागीई)	(पच्छागीई)
३६	१०	(आइचवला-पच्छाज्जा)	(पच्छाज्जा)
३९	१४	२१४	११४
३९	१७	११७	१७७
४०	६	७।२ ८६	८।२।८६
४०	२२	६८	५८
४०	२५	'न्तु	'बहुपु न्तु
४१	६	८।२।४	८।१।४
४१	१६	५४८	४४८
४१	२१	८।२।१७७	८।१।१७७
४१	२२	८ २।१२	८।२।१३
४१	२७	८।१।२१८	८।१।२ ८
४२	६	पूर्वो	पूर्वो
४२	२३	३।२।	८।२।
४२	२५	२२	११
४३	६	डेरादि	डेरदादि
४३	१८	८।२।	८।१।
४३	२१	ख-ख	ख-घ
४३	२६	८३।१ २३	८ ३।११३
४३	२८	८३।१।७३	८।३।१७३
४४	४	८।२।०४	८।१।८४
४४	१२	०ञ्जन०	०ठ्यञ्जन०
४५	१७	दीर्घ	दीर्घ
४५	२६	(८।	(सि०-८।
४५	२६	सि०	(सि०
४६	२	त्ति	ति
४६	१७	(सि-८।३।९	(सि०-८।३।८
४६	२८	मात्राटि	मात्रटि
४६	२८	८।२।८१	८।१।८१
४७	४	८।२।	८ ३।
४७	५	८ १।	८।२।
४७	७/२१	८	सिः-८
४७	१५	स.	सि०
४८	४	८।१।	८।३।
८४	१३	६८	६७
४९	२१	पूर्वत्	पूर्ववत्
५०	७	८।३।	८।३।१७३
५०	१९	पूत्रोक्त०	पूर्वोक्त०
५१	१७	सङ्घे०	सन्धे०
५१	२२	विभक्त	विभक्ति.
५२	५	जत्त०	जत०
५३	११	८।१।	८ ४।
५३	१५/२६	८ ३।तुम०	८ ३।०तुम०
५५	६	८।१।	८।३
५६	२	गुम्फ०	गुम्फ०
५६	६	०यौर०	०योरे०
५६	१६	८।३।	८।२
५७	७	१२४	११४
५७	१५	८।१।	८।२।
५७	१९	२२१	२२९
५७	२६	पष्ठ्यैक	षष्ठ्येक
५८	५	८।३।	८।१।
५८	२०	२३१	२४५
५८	२८	गत्वम्	गत्वम्
५९	१४	०विभक्त	०विभक्ति
५९	२०	०सग०	०सर्ग०
६०	४	४५	४४५
६०	५	८।४।	८।३।
६०	१४	९	९०
६०	२६	८।१।२)	८।१।२७)
६०	२६	ति	त्ति
६१	८	स्त्रि०	स्त्री०
६१	१६	त्रिशत्छ०	त्रिशाच्छ०
६२	२२	'ह्रस्व	ह्रस्व

नाम यस्य स्तोत्रस्य तदुपसर्गहराख्यम् , तच्च तत्स्तोत्रश्चोपसर्गहराख्यस्तोत्रम् ,तदुपसर्गहराख्य-स्तोत्रम्=उपसर्गहर इति संज्ञकं श्रीपार्श्वप्रभोः स्तवनं "कीरीअ" त्ति अक्रियत=व्यधीयत।

प्रतिपादितश्च गुर्वावल्याम्-

"अपश्चिम. पूर्वभृता द्वितीय. श्रीभद्रबाहुश्च गुरु शिवाय।
कृतोपसर्गादिहरस्तव यो ररक्ष सङ्घ धरणार्चिताहि ॥१३॥" इति।

तथाहीरसौभाग्येऽपि-

"उपप्लवो मन्त्रमयोपसर्गहरस्तवेनावधि येन सङ्घात्।
जनुष्मतो जाङ्गुलिकेन त्राश्रद्वरस्य वेग किल जाङगुलिमि ॥२१॥" इति। **अन्यत्राऽपि—**
"उवसग्गहर थुत्त काऊण जेण सघकल्लाण। करुणापरेण विहिय सो भद्दबाहुगुरु जयइ॥" इति।

सक्षेपतस्तद्व्यतिकरश्चैवम्-श्रीभद्रबाहुस्वामिना सार्द्धं तद्भ्राता वराहमिहिरनामा प्रव्रजितोऽभूत्। स चायोग्य इति कृत्वा गुरुणा पश्चात्तद्भ्रात्रा भद्रबाहुस्वामिनाऽपि सूरिपदेऽस्थापितः क्रुद्धः सन् प्रव्रज्यां विहाय मिथ्यादृष्टीभूतो वाराहीसंहितां पूर्वाधीतज्योतिष्कश्रुतानुसारेण रचितवान् , लोके च सूर्यदेवताप्रसादेनेदं ज्ञानं लब्धमिति ज्ञापयामास, राजपुरोहितश्च संजातः, ततो मत्स्य-राजपुत्रसत्कभविष्यद्वक्तव्यतायां श्रीभद्रबाहुस्वामिना पराजये कृते कुपितः स्वरचितसमस्तज्योतिषग्रन्थान् दग्धुमुपक्रमितो भद्रबाहुस्वामिप्रमुखैर्वारितः शान्तः, तथाऽपि गुरोः सङ्घस्य चोपरि प्रद्वेषमजहत् शोकान्मृतो व्यन्तरसुरो जातः, पूर्ववैरं स्मृत्वा सङ्घे मरकोपद्रवं ततान। ज्ञातव्यतिकरेण भद्रबाहुस्वामिना सङ्घवात्सल्येन तदुपद्रवनाशाय सङ्घस्य च रक्षणायोपर्युक्तमुपसर्गहराख्यं स्तोत्रं निर्मितवान्।

यत्तदोर्नित्याभिसम्बन्धादाह-"**स**"त्ति स "**अकेवलिभद्दबाहू**"त्ति श्रुतेन केवली श्रुतकेवली स चासौ भद्रबाहुः श्रुतकेवलिभद्रबाहुः=चतुर्दशपूर्वधरो भद्रबाहुस्वामी "**मे**" त्ति मह्यम् "**स**"ति शमू दमूच् उपशमे' इति शम् धातोः'गमिजमिक्षमिकमिशमिसमिभ्यो डित् (सि०उणा० ६३७) इत्यनेन डिदम्प्रत्यये शं=सुख चिदानन्दलक्षणं "**दाउ**" त्ति ददातु=दानविषयीकरोतु ॥२९॥

अथ श्रीभद्रबाहुसत्कान्-जन्मादिसमयवर्षान् दिदिक्षुः पथ्यायां पठति-

जम्मोऽस्स जुगंक९४मिए वासे वीरा वयं च णिहिविस्से१३९।
स जुगपहाणो रसेतिहि-१५६मिए खसंजम१७०पमाणे खं ॥३०॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०). "**जम्मो**" इत्यादि, "**ऽस्स**" त्ति अस्य=श्रीभद्रबाहुस्वामिनः "**जम्मो**"त्ति जन्म=उत्पत्तिः "**वीरा**"त्ति वीरात्=वीरनिर्वाणकालात्"**जुगंकमिए**"त्ति युगानि=चत्वारि,अङ्काः=प्रसिद्धा एकादयो नव, आभ्यामङ्काभ्यां वामगत्या मीलिताभ्यां चतुर्नवत्या ९४ मिते युगाङ्कमिते=चतुर्नवतितमे "**वासे**" त्ति वर्षे=संवत्सरे वीरसवत् ९४ तमे वर्षे गते गच्छति वा

परिशिष्टसत्क शुद्धिपत्रकम्

पृष्ठम्	पङ्क्ति	अशुद्धि	शुद्धि
६३	१७	८।१।	८।२।
६३	२२	अवणो	अवर्णा
६४	१३	२३६	१३६
६४	१५	८।२	८।१
६५	३	सस्कृन•	सस्कृत०
६५	४	२१४	११४
६५	५	शस्-	जस्-
६५	२३	२	२५
६५	२७	०पुसक०	०पु सक०
६६	६	२५६	१५६
६६	१२	१८	१८०
६७	२०	'कामुइ'	'का मुइ'
६७	२२	ष्वारे	स्वारे
६७	२७	२४८	१४८
६७	३०	४६	४५
६८	१०	इत्ययेव	इत्येव
६८	१५'	सिवयर'	'सिवयर'
६८	१८	११६	१५६
६८	२४	तत प०	तत ए०
६९	१०	८ २	८।१
७०	१०	२२४	१२४
७०	२१	२२८	१०८
७०	३०	पूव०	पूर्व०
७१	३	रिस	रिस
७१	७ १६	दीअ	दीअ
७१	७	०सोअ	०सीअ
७१	१५	२३२	१३१
७१	१८	०तुऽया	०तुर्घ्या
७२	२२	ङसौ	ङसो.
७२	२८	०धातोर्रेफ०	०धातो रेफ०
७२	३०	तुम०	तुम्०
७३	१४	९८	९४
७३	१८	८।२।२५७	८।३।१५७
७४	१७	इणइ-णमो'	इण-इणमो'
७४	२५	आ/२२४	आ /२१४
७६	२६	बाहुकात्	बाहुलकात्
८०	१७	१२१	१३१
८२	२०	'विता'	'विता' त्ति
८५	२८	८।१।	८।२।६७
८६	१८	८।३।२।	८।३ २१।
८६	२०	८ १।	८।३।
८६	२२	०मूर्गे०	०मूर्वा०
८६	२३	८।१।	८।२।
८६	३०	८।११८	८।१।१८
८७	१२	१८	७८
८८	१६	(हें०)	(हे०)
८८	२१	२२८	२२६
८९	२५	भतिम०	अतिम०
८९	२६	पच्छाज्ज	पच्छाज्जा
९०	२६	मतिमदा	मतिमदा
९१	१	हेमन्तभा	हेमन्तप्रभा
९१	१२	१५६	५६
९१	२७	८।२	८।२।७८
९२	१२	शब्दयो	शब्दयो'
९२	२१	८।३।१५	८।३।१६
९३	७	०श्मस्म०	०श्मष्मस्म०
९३	२३	८।१।	८।२।
९४	५	२२४	१२४
९४	२०/२६	दीर्घा०	दीर्घा०
९४	२२	ब्राह्यत्वात	बाह्यत्वात्
९५	४	८५	८१
९५	८	दीर्घानु०	दीर्घानु०
९६	१५	६२	१६२
९९	६	०ऽनुपवंते	०ऽनुवर्तते
१०१	८	शादूल०	शार्दूल०
१०३	२	०धाषा	०धाशा
१०६	२२	४४ सव्वसहा	सर्वसहा ३२०
१०७	२३	२६७,२७७,२७७	२६७,२७७
१०८	१४	३१	३२
१०८	१७	सध	सघ
१०९	१४	२८६	२८६
११०	१७		७B रिउ रिपु २६८
११०	३३		२३ B अतररिउ आन्तररिपु ३२०

आर्यगोदासस्य गोदासगणात् चतस्रः शाखा निर्गताः, तद्यथा—तामलिप्तिका १, कोटिवर्षिका २ पुण्ड्रवार्द्धनिका ३ दासीखर्वटिका ४ इति ।

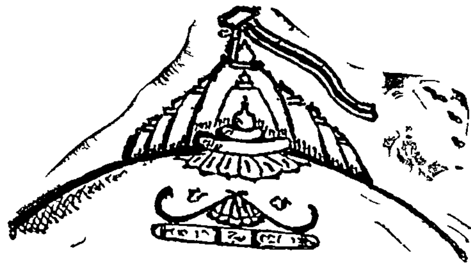
तथा चोक्तं कल्पसूत्रे—"थेरस्स णं अज्जभद्दबाहुस्स पाईणसगुत्तस्स इमे चत्तारि थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया हुत्था, त जहा-थेरे 'गोदासे १, थेरे 'अग्गिदत्ते'२, थेरे 'जण्णदत्ते' ३, थेरे 'सोमदत्ते'४, कासवगुत्ते णं॥ थेरेहिंतो गोदासेहिंतो कासवगुत्तेहिंतो इत्थ णं गोदासगणे नाम गणे निग्गए, तस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ 'एवमाहिज्जंति, तजहा-तामलित्तिया १, कोडिवरिसिया २ पुंडवद्धणिया ३, दासीखब्बडिया ४।" इति ॥ ३० ॥

साम्प्रतं श्रीवर्धमानस्वामिनः सप्तमपट्टधरत्वेनायातं श्रीसम्भूतसूरिशिष्यं श्रीस्थूलभद्रस्वामिनमष्टमयुगप्रधानं वर्णयन् स्रग्धरामाह—

दाया सिद्धीअ मे सो, हवउ गुणणिही, थुल्लभद्दो गणिंदो;
तप्पट्टारामभाली, गुणकुसुमजुआ, भव्वदू जो कुणीअ ।
वीरो एगो च्च एसो, मयणजयवरो, णेमिणाहाइगाओ;
जेणं काउं पवेसं, मयणअहिबिले, कामसप्पो जिओ जं ॥३१॥(सद्धरा)

(प्रे०) "दाया"इत्यादि, "सो" त्ति स = विश्रुतिभाक् "थुल्लभद्दो"त्ति स्थूलम् = उपचितं भद्रं = कल्याणमस्य स स्थूलभद्रः = श्रीस्थूलभद्रस्वामी गौतमगोत्रीयः "मे"त्ति मह्यम् "सिद्धोअ" त्ति, सिद्धे = मुक्तेः "दाया" त्ति दाता=दानकरः "हवउ" त्ति भवतु इति क्रियासम्बन्धः, किम्भूतोऽसौ ?—"गुणणिही" त्ति गुणानां = ज्ञानादीनां निधिः = शेवधिः गुणनिधिः = अनेकगुणविभूषित इत्यर्थः, "गणिंदो" त्ति गणस्य = श्रमणवृन्दस्येन्द्रः = स्वामी गणेन्द्रो = गणाधिपतिः । स कः? "जो"त्ति यः = श्रीस्थूलभद्रस्वामी "तप्पट्टारामभाली"त्ति तयोः = आर्यसम्भूतिविजयभद्रबाहुस्वामिनोः पट्ट एव आरमन्त्यस्मिन् "भावाकर्त्रोः"(सि०५-३-१८) इति घञि आराम=उद्यानं तप्पट्टारामस्तस्मिन् "माक् माने माधातोः मान्ति पुष्पाण्यस्यां 'श्यामाश्या०" (सि० उणा० ४६४)इति लप्रत्यये, यद्वा 'मलि-मल्लि धारणे' इति मल्धातोर्माल्यते=धार्यते 'भावाकर्त्रोः" (सि० ५-३ १८) इति घञ्प्रत्यये माला, माला शिल्पमस्या-ऽस्तीति 'शिखादिभ्य इन्' (सि० ७-२ ४) इति इन्प्रत्यये माली=उद्यानपालः तप्पट्टाराममाली, 'भव्वदू' त्ति भव्याः=सिद्धिवध्वर्हास्त एव द्रवो=वृक्षा भव्यद्रवस्तान् भव्यद्रून्=भव्यजनरूपतरून् "गुणकुसुमजुआ" त्ति गुणाः=सम्यग्दर्शनादयो ज्ञानादयो वा ते एव कुसुमानि = पुष्पाणि, तैर्युतान्=संघटितान् "कुणीअ" त्ति अकरोत् । पुनरपि स कः ? इत्याह—"णेमिणाहाइगाओ" त्ति, नेमिनाथो=द्वाविंशतितमो जिनेश्वरः, स आदौ येषां ते नेमिनाथादयोऽत्रादिपदेन जम्बूस्वामि-

पृष्ठम्	पङ्क्ति	अशुद्धि	शुद्धि
१११	३२	३८	८३
११३	६	स०\स०	स०\स०
११३	७	द्वादर्शन्	द्वादशन्
११४	१७	स०	स०
११४	२०	०स्कृता	सस्कृता
११५	१६ २८	प०\५१	पण०/५७
११६	२१	४२ स०त्रसहा सर्वसहा ३२०	
११७	२	१	२
११८	३३	पहर	प्रहर
१२०	६		१ B अतररिउ अन्तररिपु ३२०
१२०	३२		२२ B रिउ रिपु २६८
१२२	३५	ब्राह्य०	वाह्य०
१२३	३८	सभू शम्भू	सभु शम्भु
१२७	६	चन्दालोक	चन्द्रालोक
१२७	१२	(भाग्भटीया)	(वाग्भटीया)
१२७	१२	०भिग०	धिग०
१२८	१६	०भाग्य	०भाग्यम्
१२९	२६	०नुशान०	०नुशासन०
१३०	१४	१७५, १३६	१३६, १७५
१३२	१४	१५	१५४
१३२	२१	०स्य	०स्या०
१३२	२५	डी	डी॰
१३२	३५	साधु	सावौ
१३३	१६	४-४-४१)	५-४-४१)
१३३	१७	५-३-३३)	५-३-२३)
१३३	१६	(सि०-उणा०	(सि०
१३३	२६	७-३-६५)	७ ३-१५)
१३४	२	०क्क	०क्क
१३४	६	५-३-११)	५-३-३१)
१३४	१६	स्वामि०	स्वाम्मि०
१३४	१८	२-१-२१२)	२-१-११२)
१३६	७	शय०	शय्य०
१४०	२२	०सूरि	०सूरि
१४३	१३	११८	
१४३	१४	११६	११८-११६
१४७	१५		१०६६
१४६	१८	६३	
१४९	३४	वर्पे	वर्गे



संक्षेपतश्चास्य वृत्तान्त एवम्—पाटलिपुरे नवमनन्दराज्ये कल्पकवंशजो गौतमगोत्रीयः शकटालमन्त्रिपुत्रो द्वादश वर्षाणि कोशागृहे स्थितो वररुचिद्विजकूटप्रयोगात्पितरि मृते नन्दराजेनाऽऽहूय मन्त्रिमुद्राग्रहणायाभ्यर्थितः सन् पितृमरणं निजान्तःकरणे विचिन्त्य ससाराज्जातवैराग्यः स श्रीस्थूलभद्रो दीक्षामलात्, पश्चाच्च सम्भूतविजयगुरुपार्श्वे व्रतान्यङ्गीकृत्य तदादेशपूर्वकं कोशावेश्यागृहे पूर्वोपभुक्तचित्रशालायां नित्यं तस्या एव गृहे षड्रसभोजनस्य ग्रहणं कुर्वंश्चातुर्मासीमस्थात् ।

नन्वत्र शय्यातरपिण्डः कथं कल्पत इति चेद्, उच्यते–आगमव्यवहार्यनुज्ञातत्वेन यथा कोशावेश्यागृहे चातुर्मासी नानुचिता तथा शय्यातरपिण्डग्रहणमपीति, आगमव्यवहारिणो हि सातिशयज्ञानवत्तया त्रैकालविदितं विमृश्यैव सर्वमप्यनुजानते ।

तदन्ते च बहुहावभावादिविधायिनीं निजानुरक्तामपि तां प्रबोध्य गुरुसमीपमागतः सन्नत्यन्तबहुमानेन गुरुभिर्दुष्करदुष्करकारक इति सङ्घसमक्षं प्रोक्ते सति तद्वचसा पूर्वायाताः सिंहगुहा-सर्पबिल-कूपकाष्ठस्थायिनस्त्रयो मुनयो दूनाः, तेषु सिंहगुहास्थायी मुनिर्गुरुणा निवार्यमाणोऽपि द्वितीयचातुर्मास्यां कोशागृहे गतः । **उपदेशपदवृत्तौ** तु तल्लघुस्वसोरुपकोशाया गृहे गत इत्युक्तमस्ति । **किन्तु परिशिष्टपर्व--कल्पसूत्रसुबोधिकाख्यवृत्त्यादिषु** तस्य कोशावेश्यावेश्मनि गमनं कथितम् । तत्र च तां दिव्यरूपां दृष्ट्वा चलचित्तोऽजनि, तदनु तया नेपालदेशाऽऽनायितरत्नकम्बलं खाते क्षिप्त्वा प्रतिबोधितः सन्नागत्य श्रीस्थुलभद्रमुनिं प्रशशंस ।

तथा चोक्तमुपदेशपदवृत्तौ विस्तरतः **मुनिचन्द्रसूरिणा—**

सद्दाविओ य रण्णा वुत्तो य मयाहि मतिपयविं ति । तेण भणिय चितेमि राइणा पेसिओ ताहे ॥३९॥
सन्निहियअसोगवणे तत्थ य सो चिंतिउ समाढत्तो । परकज्जवावडाण के भोगा किं च सोक्खं ति ? ॥४०॥
भोगेहिं वि गतव्व नरएऽवस्स अल तदेतेहिं । इय चिंतिऊण वेरग्गमुवगओ भवविरत्तमणो ॥४१॥
काऊण पचमुट्ठियलोय सयमेव गहियमुणिवेसो । गतूण भणइ निव इम मए चिंतिय राय ? ॥४२॥
उववूहिओ निवेण नीहरिओ मदिराउ स महप्पा । गणियाइ गिहे जाहि त्ति पेहिओ राइणा जतो ॥४३॥
दट्ठूण मयकलेवरदुग्गधपहेण वच्चमाणं त । रन्ना नाय निव्विन्नकामभोगो धुवमिमो त्ति ॥४४॥
ठविओ पयम्मि सिरिओ इयरो सभूयविजयपामूले । पव्वइओ अच्चुग्ग करेइ विविह तवच्चरणं ॥४५॥
अह विहरतो कइयावि पाडलीपुत्तमागओ एसो । सभूयविजयगुरुणा सद्धि सद्धम्मनिरयमणो ॥४६॥
पत्ते वासारत्ते तिण्णि मुणी तिव्वभवभउव्विग्गा । गिण्हंति कमेणेए अभिग्गहे दुग्गहसरूवे ॥४७॥
एगो सीहगुहाए अन्नो दारुणविसाहिवसहीए । कूवफलयम्मि अन्नो चाउम्मास कयाणसणा ॥४८॥
भयव स थूलभद्दो कोसागेहम्मि अतवकम्मरओ । निवसिस्सामि स गुरुणा अहिगयसत्तेणऽणुन्नाओ ॥४९॥
सपत्तो घरदारे तुट्ठाए उट्ठिऊण जह भग्गो । एसो परीसहेहिं भणाहि ज काहमेत्ताहे ॥५०॥
पुव्वोवभुत्तरइमदिरम्मि उज्जाणमज्झयारम्मि । देसु निवास, दिन्नो भुत्तो सव्वेहिं वि रसेहिं ॥५१॥
ण्हाणगुणसुइसरीरा सव्वालकारभूसिया राओ । पत्ता दीवयहत्था कयत्थमप्पाणमिच्छती ॥५२॥

परिशिष्टमत्क शुद्धिपत्रकम्

पृष्ठम्	पङ्क्ति	अशुद्धि	शुद्धि
६३	१७	८।१।	८।२।
६३	२२	अवणो	अवर्णा
६४	१३	२३६	१३६
६४	१५	८।२	८।१
६५	३	सस्कृत०	सस्कृत०
६५	४	२।४	१।४
६५	५	शस्-	जस्-
६५	२३	२	२५
६५	२७	०पुसक०	०पु सक०
६६	६	२५६	१५६
६६	१२	१८	१८०
६७	२०	'कामुइ'	'कामुइ'
६७	२०	स्वारे	स्वारे
६७	२७	२४८	१४८
६७	३०	४६	४५
६८	१०	इत्ययेवं	इत्येव
६८	१५'	सिवयर'	'सिवयरं'
६८	१८	१९६	१५६
६८	२४	तत ए०	तत ए०
६९	१०	८ २	८।१
७०	१०	२२४	१२४
७०	२१	२२८	१०८
७०	३०	पूव०	पूर्व०
७१	३	रिस	स्सि
७१	७ १६	दीअ	दीअ
७१	७	०सोअ	०सीअ
७१	१५	२३२	१३१
७१	१८	०तुध्या	०तुर्थ्या
७२	२२	ङसौ	ङसो.
७२	२८	०धातोर्रेफ०	०धातो रेफ०
७२	३०	तुम०	तुम्०
७३	१४	९८	९४
७३	१८	८।२।२५७	८।३।१५७
७४	१७	इणइ-णामो'	इण-इणामो'
७४	२५	आ/२२४	आ /२१४
७६	२६	बाहुकात्	बाहुलकात्
८०	१७	१२१	१३१

पृष्ठम्	पङ्क्ति	अशुद्धि	शुद्धि
८२	२०	'त्विता'	'त्विता' त्ति
८४	०८	८।१।	८।२।६७
८६	१८	८।३।२।	८।३ २९।
८६	२०	८ १।	८।३।
८६	२२	०मू र्ग०	०मूर्वा०
८६	२३	८।१।	८।२।
८६	३०	८।११८	८।१।१८
८७	१२	१८	७८
८८	१६	(हें०)	(हे०)
८८	२९	२०८	२२६
८९	२५	अतिम०	अतिम०
८९	२६	पच्छाज्ज	पच्छाज्जा
९०	२६	मतिमदा	मतिमदा
९१	१	हेमन्तभा	हेमन्तप्रभा
९१	१२	१५६	५६
९१	२७	८।२	८।२।७८
९२	१२	शब्दयो	शब्दयो.
९२	२१	८।३।१५	८।३।१६
९३	७	०श्मस्म०	०श्मष्मस्म०
९३	२३	८।१।	८।२।
९४	५	- २२४	१२४
९४	२०/२६	दीर्घा०	दीर्घा०
९४	२२	व्राह्यत्वात	बाह्यत्वात्
९५	४	८५	८१
९५	८	दीर्वानु०	दीर्घानु०
९६	१५	६२	१६२
९९	६	०ऽनुपर्वते	०ऽनुवर्तते
१०१	८	शादूल०	शार्दूल०
१०३	२	०याषा	०याशा
१०६	२२	४४ सव्वसहा सर्वसहा ३२०	
१०७	२३	२६७,२७७,२६७ २६७,२७७	
१०८	१४	३१	३२
१०८	१७	सध	सघ
१०९	१४	२८६	२८६
११०	१७		७B रिउ रिपु २६८
११०	२३		२३ B अतररिउ आन्तररिपु ३२०

ततो गुरुभिरुदितम्–"सङ्घेन ममोपरि कृपां विधाय नैव कर्तव्यम्, किन्तु प्राज्ञाः शिष्याः प्रेषणीयाः, तेभ्योऽह्नि सप्त वाचना दास्ये" ततः सङ्घेन तथैव कृतम्।

अथ श्रीभद्रबाहुस्वामिना साधुपञ्चशत्या सह प्रत्यहं वाचनासप्तकेन दृष्टिवादे पाठ्यमाने सप्तभिर्वाचनाभिरन्येषु साधुषूद्विग्नेषु श्रीस्थूलभद्रस्वामी वस्तुद्वयोनां दशपूर्वी पपाठ। अत्रान्तरे पाटलिपुत्रनगरे वन्दनार्थमागतानां स्वभगिनीनां यक्षाप्रमुखसाध्वीनां सिंहरूपदर्शनेन दूनमनाः श्रीभद्रबाहुस्वामिनो "वाचनायामयोग्यस्त्वम्" इति कथयामासुः। "नैतत्पुनः करिष्यामि" इति भूयः क्षामिते सति सङ्घाग्रहात्स्वत एव पूर्वज्ञानविच्छेदाभावाच्च "अथान्यस्मै वाचना न देया" इति गदित्वा सूत्रतो वाचनां ददौ। तथा चोक्तं गुर्वावल्याम्–

तयोर्विनेयः कृतविश्वभद्रः श्रीस्थूलभद्रश्च स ददातु शर्म ॥१४॥
श्रीसङ्गवह्नावपि यस्य शीलद्रुमोऽभवत् पल्लवपेशलश्री।
सूत्राच्च पूर्वाणि चतुर्दशापि बभार यो दर्शितलब्धिलील ॥१५॥" इति।

अर्थतश्च पुनरन्तिमपूर्वचतुष्कस्य वेत्ता श्रीभद्रबाहुस्वाम्येवाऽभूत्। तदनन्तरमर्थतश्चतुष्पूर्वविच्छेदात्।

△उक्तं च श्रीतित्थोगालीपइन्नये–"चोदसपुव्वच्छेदो वरिससते सत्तरे विणिद्दिट्ठो।" इति।

^तथैव कालसप्ततिकायामपि–"सत्तरिसएहिं थक्का चउ पुव्वा भद्दबाहुम्मि ॥३७॥" इति।

केचित्पुनरर्थतोऽप्यन्तिमपूर्वचतुष्टयस्योच्छेदः श्रीस्थूलस्वामिनोऽनन्तरं मन्यते।

तथा चात्रोक्तार्थदर्शिन्युपदेशपदटीका–

"जाओ य तम्मि समए दुक्कालो दोय दस य वरिसाणि। सव्वो साहुसमूहो गओ जलहितीरेसु ॥८९॥
तदुवरमे सो पुणरवि पाडलिपुत्ते समागओ विहिया। सघेण सुयविसया चिंता किं कस्स अत्थित्ति ॥९०॥
ज जस्स आसि पासे उद्दे सज्झयणमाइ संघडिउ। त सव्व एक्कारस अगाइ तहेव ठवियाइ ॥९१॥
परिकम्म सुत्ताइ पुव्वगय चूलियाऽणुओगो य। दिट्ठीवाओ इय पचहावि नो अत्थि तत्थत्ति ॥९२॥
नेपालवत्तिणीए विसए किल भद्दबाहवो गुरवो। विहरति दिट्ठिवायं धरंति इय चिंतियं तेण ॥९३॥
सघेण साहुजुयल पहिय तस्सतिए पवाएहिं। दिट्ठीवाय ज सति अत्थिणो साहुणो एत्थ ॥९४॥
कहियम्मि सघकज्जे पडिभणिय तेण सपइ पयट्टो। साहेउ महापाणज्झाण पुव्वि च दुक्कालो ॥९५॥
ज आसि पयट्टो तेण नाहमेयम्मि उवरए सते। दाहामि वायणं ज न जाइ एवम्मि सा दाउ ॥९६॥
आगम्म तेण सघस्स साहिय तो पुणोवि सघाडो। तस्सतिए विसट्ठो सघाण जो न मन्नेइ ॥९७॥

△ "अत एवार्थतश्चतुष्पूर्वविच्छेदो भद्रबाहुस्वामिकाले दर्शित, तत्प्रतिपादिका गाथा चेमा–
"चउपुव्वीवुच्छेओ वरिसए सित्तरम्मि अहियम्मि। भद्दबाहुमि जाओ वीरजिणिंदे सिव पत्ते ॥ ॥" इति।
तीर्थोद्गारप्रकीर्णके चापि–
"अह भणइ भद्दबाहू अणगार अलाहि एत्तिय तुज्झ। परियट्ट तो अट्ठ(च्छ)सु एत्तियमेत्त वियत्तमे ॥७९८॥
अह भणइ थूलभद्दो पच्छायावेण तावियसरीरो। . . — ॥७९९॥
अह भणइ थूलभद्दो अण्ण रूव न किंचि काहामो। इच्छामि जाणिउ जे अहम चत्तारि पुव्वाइ ८००॥
नाहिसि त पुव्वाइ सुयमेत्ताइ विमुग्गहाहिं ति। दस पुण ते अणुजाणे जाण पणट्ठाइ, चत्तारि ॥८०१॥
एतेण कारणेण उ पुरिसजुगे अट्ठमम्मि वीरस्स। सयराहेण पणट्ठाइ, जाण चत्तारि पुव्वाइ ॥८०२॥" इति।

भट्टेन कृतस्य प्रश्नस्योत्तदाने उक्तवृहद्‌यज्ञवृत्तान्तस्त्रोपाध्यायोक्त्या "जूवाहत्थिअसतिणाह-पडिम" ति यूयते पशुरनेन "यूमुकुरुतुन्युम्स्वादेरुच" (सि० उणा० २६७) इति पप्रत्यय ऊत्वे च यूपो =यज्ञकीलिकः = यज्ञे पशुबन्धनाय काष्ठमयः स्तम्भविशेषः = स्वप्रारब्धयज्ञस्तम्भस्तस्मादधः-स्थिता = अधोदशभागगता अधस्तादेशवर्तिनी, 'शमू दमूच् उ शमे" शम्याद् इति शान्तिः, "तिक्कृतौ नाम्नि" सि०-५ १-७१) इत्यनेनाऽऽशीर्विषये संज्ञायां तिक्प्रत्ययः, शान्तियोगात् तदात्मकत्वात् तत्कर्तृत्वाच्चायं शान्तिः, तथा प्रभौ गर्भस्थे पूर्वोत्पन्नाऽशिवशान्तिरभूद् इति शान्तिः. स चासौ नाथश्च=स्वामी प्रभुर्वा शान्तिनाथः, तस्य प्रतिमा=बिम्बं शान्तिनाथप्रतिमा, यूपाधःस्थिता चैषा शान्तिनाथप्रतिमा, ताम् यूपाधःस्थितशान्तिनाथप्रतिमाम् , किदृशीम् ? इत्याह-"वेरग्गसोम्मंबुहिं" ति रज्यन्ते तेन तस्मिन् वा सति क्लिष्टसत्त्वाः=प्राणिनः स्त्र्यादिष्विति रागः = अभिष्वङ्गलक्षणः, विगतः =नष्टो रागः=प्रीतिलक्षणो यस्य यस्माद्वेति विरागः, तस्य भावः "पतिराजान्तगुणाङ्गराजादिभ्य कर्मणि च (सि० ७-१-६०) इत्यनेन गुणा-ङ्गत्वात् ट्यणप्रत्यये सति वैराग्यम् , "षम ष्टम वैक्लव्ये' समतीति "अच्" (सि० ५-१ ४९) इत्य-नेनाचि समः = तुल्यः समानो वा तस्य भावः "पतिराजान्त " (सि० ७-१-६०) इत्यनेन ट्यणप्रत्यये सति साम्यं= समता=शत्रौ मित्रे च समानभावः, वैराग्यं च साम्यं च वैराग्यसाम्ये तयोरम्बुधिः=वारांनिधिर्वैराग्यसाम्याम्बुधिस्तम् , वैराग्यसाम्याम्बुधिम् । पुनः किंविशिष्टामित्याह-"मोक्खद्धादरिस" त्ति "मुच्लृ ती" मोक्षणे" मुच्यते सर्वकर्मभिरत्रेति, मोक्ष्यन्ते=त्यज्यन्ते दुःखान्यत्रेति वा 'भावाव्यमिकमि " (सि० उणा० ५६४) इति सप्रत्यये मोक्षः = मुक्तिरपवर्ग-स्तस्याध्वा= मार्गो मोक्षाध्वा तस्या-ऽऽदृश्यते=चक्षुर्विषयीक्रियतेऽनेनेत्यादर्शः=प्रतिकः; (यद्वा-ऽऽदृश्यते रूपमस्मिन्नित्यादर्शः= दर्पणः) "भ वाकर्त्रो "(सि०५-३-१८) इति घञ्, तम् , मोक्षाध्वादर्शम् ,-यद्वा आ = समन्ताद् दर्शयतीत्यादर्शो "अच्" (सि० ५-१-४९) इत्यच् , आदर्शिकेत्यर्थः, ताम् , मोक्षाध्वादर्शाम् "णिक्कासीअ" त्ति निरकासीत् = निष्कासयति स्म, किमिव, "णिहाण व्व" त्ति निधानं=निधिः-कोशम् ,इव=यथा निधानं "धराअहठिअ" ति धरा = पृथ्वी = क्षमा, तस्या अधःस्थितं अधोभूमिभागगतं 'गुत्तं" ति गुप्तं = प्रच्छन्नं निष्कासयति, तद्वत् । तथा चोक्तं श्रीहीरसौभाग्ये-

"यूपादधस्त प्रतिमा जिनेन्दो र्वाचा स वाचयमपुङ्गवस्य ।
दृक्सज्ञयेव स्वगुरो किरीटी, नाराचगङ्गा प्रकटीचकार ॥२२॥" इति ॥२१॥

अथ तमेवाल्पायुष्कस्वपुत्रशिष्याराधनार्थं दशवैकालिकसूत्रकारित्वेन कथयन् मेघावलीं ब्रूते—

द्वादशवर्षदुष्कालात् "**मुणिगणस्स**" त्ति मुनिगणस्य=साधुसमुदायस्य "**इओ तओ गमणा**" त्ति इतस्ततो गमनात् "**सुत्तज्झयणे**" सूत्राध्ययने=सूत्रपाठे "**महई**" त्ति महती "**खलना**" त्ति स्खलना "**जाआ**" त्ति जाता, "**तदुवसते**" त्ति तस्य=दुष्कालस्योपशान्ते सति "**संघेण**" त्ति सङ्घेन=साधुप्रमुखचतुर्विधेन '**सिरिथूलभद्दस्स**' त्ति श्रीस्थूलभद्रस्य=श्रीस्थूलभद्रस्वामिनः "**गुरुणो**" त्ति गुरोः "**समये**" त्ति समये = काले "**पाडलिपुत्ते** त्ति पाटलिपुत्रे=पाटलिपुत्र-नगर्यां "**सुअअवणत्थ**' ति श्रुतावनार्थं=श्रुतरक्षार्थं "**पढमा**" त्ति प्रथमा "**सुत्तवायणा**" त्ति सूत्रवाचना सूत्रसंकलनरूपा "**कारिआ**" त्ति कारिता = विधापिता ॥३२-३३॥

अथ श्रीस्थूलभद्रस्वामिनो जन्मादिसत्काब्दान् पथ्यार्यया प्रदर्शयति—

से जणणं णिवकु११६मिए, वीरसिवाऽद्दे वयं रसिंद१४६मिए ।
जुगपवरो स खसंजम१७०-मिए गओ खं तिहिसम२१५मिए ॥३४॥

(पथ्याऽऽर्या)

(प्रे०) "**से**" इत्यादि, "**से**" त्ति तस्य=श्रीस्थूलभद्रस्वामिनः "**जणण**" त्ति जननं = जन्म "**वीरसिवा**" त्ति वीरस्य = चरमतीर्थस्वामिनः = शिवात् = मुक्तिसमयात् '**णिवकु११६-मिए**" त्ति नृपाः = षोडश. कु = भूमिरेका, आभ्यां = विपरीतविन्यस्ताभ्यां११६ इति सङ्ख्यया मिते नृपकु११६मिते = वीरसंवदि षोडशोत्तरशत११६तमे "**ऽद्दे**" त्ति अब्दे = शरदि जातम् । "**वयं**" ति व्रतं = दीक्षा "**रसिंद१४६मिए**" त्ति रसाः तिक्तादयः षड्, इन्द्राः = शक्राश्चतुर्दश, आभ्या वामक्रमोदिताभ्यामङ्काभ्यां षट्चत्वारिंशदुत्तरशत१४६सङ्ख्यया मिते रसेन्द्र१४६मिते = वीरसंवदि षट्चत्वारिंशदुत्तरशत१४६तमे हायनेऽभवत् । "**स**"त्ति स = श्रीस्थूलभद्रप्रभुः "**खसंजम१७०मिए**" त्ति खसंयमैः = शून्याङ्कसप्तदशाङ्कलक्षणैः पश्चानुपूर्व्या मिते = खसंयममिते=वीरसंवदि सप्तत्यधिकशत१७०तमे संवत्सरे "**जुगपवरो**" त्ति युगप्रवरो = युगप्रधानोऽजायत । "**तिहिसम२१५मिए**" त्ति तिथयः = प्रसिद्धाः प्रतिपदादयः पञ्चदश, शमौ = पाणी द्वौ, आभ्या मिते तिथिसम२१५मिते = वीरसंवदि पञ्चदशोत्तरशतद्वय-२१५ तमे वत्से "**ख**" ति खं = त्रिदशालयं "**गओ**" त्ति गतः = ययौ । **यदुक्तम्**—

तिथिद्विसङ्ख्ये २१५ त्रिदिव गतस्य तस्याब्दके वीरजिनेन्द्रमुक्ते ।" इति ।

एवञ्च श्रीस्थूलभद्रस्वामी त्रिंशद्(३०)वर्षाणि गृहवासपर्याये, चतुर्विंशति२४वर्षाणि सामान्यव्रतपर्याये, पञ्चचत्वारिंशत् ४५ वर्षाणि युगप्रधानपर्याये स्थित्वा सकलायुष्कर्म नवनवति-९९वर्षमितं सम्पूर्यामरगतिं गच्छति स्म ॥३४॥

पन्न्यासश्रीकल्याणविजयानामभिप्रायेण त्वमुनो जन्मादिपर्याया क्रमेण वीरसंवत् १६८-११८-२२२-२६७ वर्षेषु सजाता ।

मङ्काभ्यां मितं यस्मिन्नब्दे तस्मिन् रसविश्व(३६)मिते=षट्त्रिंशत्तमे "ऽद्दे" त्ति अब्दे=वर्षे अभूदित्यर्थः "जुगगमिए"त्ति युगानि=कृतादीनि चत्वारि, अङ्गानि वेदस्य शिक्षाकल्पव्याकरणछन्दोज्योतिर्निरुक्तिलक्षणानि षट्, तथा चोक्तम्–

"शिक्षा-कल्पो व्याकरण-निरुक्त ज्योतिष तथा । छन्दश्चेति षडङ्गानि, प्राहुरेतानि कोविदा ॥" इति,

यद्वा शरीरस्य द्विजङ्घाद्विबाहुमौलिकटिलक्षणानि षट्, तद्वाचकैरङ्कैर्वामगत्या विन्यस्तैर्मितं यस्मिन्नब्दे तस्मिन् युगाङ्ग(६४)मिते=चतुःषष्टितमे हायने "वय" ति व्रतं=परिव्रज्या बभूवेत्यर्थः। "स" त्ति स शय्यम्भवप्रभुः "भूइसिमिए" त्ति भूतानि=पृथ्व्यप्तेजोवाय्वाकाशलक्षणानि पञ्च, ऋषयो=मुनयो मरिच्यादिलक्षणाः सप्त, इत्यङ्कौ=वामगत्या पञ्चसप्तति सङ्ख्या, ताभ्यां मिते भूतर्षि(७५)मिते=पञ्चसप्ततितमे संवत्सरे "जुगपहाणो" त्ति युगप्रधानो जात इत्यर्थः। "इहणिहि(९८)मिए"त्ति इभा=गजा=दिग्गजा एरावतपुण्डरीकवामनकुमुदाञ्जनपुष्पदन्तसार्वभौमसुप्रतीकलक्षणा अष्टौ, तथा चाम "ऐरावत पुण्डरीको, वामन कुमुदोऽञ्जन । पुष्पदन्त, सार्वभौम, सुप्रतीकश्च दिग्गजा ॥१७०॥" इति हैमवचनादमरकोशवचनाच्च "(अमरकोशश्लोक ७६), निधयः=निधानानि नैसर्पपाण्डुकपिङ्गलसर्वरत्नकमहापद्मकालमहाकालमाणवशङ्खकलक्षणा नव, इत्यार्हत्सिद्धान्ते, लौकिकमते तु महापद्मपद्मशङ्खमकरकच्छपमुकुन्दकुन्दणीलचर्चोलक्षणा नव, आभ्यामङ्काभ्यां प्रातिलोम्येन विन्यस्ताभ्यां(९८) अष्टनवत्या मिते अब्दे दिवं=सुरधाम "गओ" त्ति गतः=प्राप्तः। यदाह स्थविरावल्याम्–

"सेज्जमवो वि णियपए जसोभद्दायरियं ठा[व]इत्ता वीराओ ण अडहियनवइवासेसु वइक्कतेसु सग्ग पत्तो ।" इति। एवं तपागच्छपट्टावल्यादिष्वपि कथितम्।

तथा च सत्यसा अष्टाविंशति(२८)वर्षाणि गृहस्थपर्याये, एकादश (११) व्रते, त्रयोविंशति(२३)युगप्रधाने चेति सर्वायुर्द्वाषष्टि(६२)वर्षाणि परिपाल्य स्वर्गभाग् जातः ॥२३॥

एतर्हि श्रीचरमार्हत्प्रभोः पञ्चमस्य पट्टभृतः श्रीशय्यम्भवसूरिपट्टविभूषकस्य श्रीयशोभद्रगणाधिपस्य श्लोकद्वयेन विभणिषयाऽऽदावाह शिखरिणीम्–

जसोभद्दो सूरी, स जयउ पए से गणवई;
जसोचरणोणं से, सइ सयललोगे धवलिए ।
हरी अद्धि संभू, रययगिरिमिंदो करिवरं;
विहुं राहू हंसं, विसमविसिहो मग्गइ अहो ॥२४॥ (सिहरिणी)

द्वादशवर्षदुष्कालात् "**मुणिगणस्स**" त्ति मुनिगणस्य=साधुसमुदायस्य "**इओ तओ गमणा**" त्ति इतस्ततो गमनात् "**सुत्तज्झयणे**" सूत्राध्ययने=सूत्रपाठे "**महई**" त्ति महती "**खलना**" त्ति स्खलना "**जाआ**" त्ति जाता, "**तदुवसते**" त्ति तस्य=दुष्कालस्योपशान्ते सति "**संघेण**" त्ति सङ्घेन=साधुप्रमुखचतुर्विधेन '**सिरिथूलभद्दस्स**' त्ति श्रीस्थूलभद्रस्य=श्रीस्थूलभद्रस्वामिनः "**गुरुणो**" त्ति गुरोः "**समये**" त्ति समये = काले "**पाडलिपुत्ते** त्ति पाटलिपुत्रे=पाटलिपुत्र-नगर्यां "**सुअअवणत्थ**" ति श्रुतावनार्थं=श्रुतरक्षार्थं "**पढमा**" त्ति प्रथमा "**सुत्तवायणा**" त्ति सूत्रवाचना सूत्रसंकलनरूपा "**कारिआ**" त्ति कारिता = विधापिता ॥३२-३३॥

अथ श्रीस्थूलभद्रस्वामिनो जन्मादिसत्काब्दान् पथ्यार्यया प्रदर्शयति—

से जणणं णिवकु११६मिए, वीरसिवाऽद्दे वयं रसिंद१४६मिए ।
जुगपवरो स खसंजम१७०-मिए गओ खं तिहिसम२१५मिए ॥३४॥

(पच्छाज्जा)

(प्रे०) "**से**" इत्यादि, "**से**" त्ति तस्य=श्रीस्थूलभद्रस्वामिनः "**जणण**" त्ति जननं = जन्म "**वीरसिवा**" त्ति वीरस्य = चरमतीर्थस्वामिनः = शिवात् = मुक्तिसमयात् '**णिवकु११६-मिए**" त्ति नृपाः = षोडश. कु = भूमिरेका, आभ्यां = विपरीतविन्यस्ताभ्यां११६ इति सङ्ख्यया मिते नृपकु११६मिते = वीरसंवदि षोडशोत्तरशत११६तमे "**ऽद्दे**" त्ति अब्दे = शरदि जातम् । "**वय**" ति व्रतं = दीक्षा "**रसिंद१४६मिए**" त्ति रसाः तिक्तादयः षड्, इन्द्राः = शक्राश्चतुर्दश, आभ्या वामक्रमोदिताभ्यामङ्काभ्यां षट्चत्वारिंशदुत्तरशत१४६सङ्ख्यया मिते रसेन्द्र१४६मिते = वीरसंवदि षट्चत्वारिंशदुत्तरशत१४६तमे हायनेऽभवत् । "**स**"त्ति स = श्रीस्थूलभद्रप्रभुः "**खसंजम१७०मिए**" त्ति खसंयमैः = शून्याङ्कसप्तदशाङ्कलक्षणैः पश्चानुपूर्व्या मिते = खसंयममिते=वीरसंवदि सप्तत्यधिकशत१७०तमे संवत्सरे "**जुगपवरो**" त्ति युगप्रवरो = युगप्रधानोऽजायत। "**तिहिसम२१५मिए**" त्ति तिथयः = प्रसिद्धाः प्रतिपदादयः पञ्चदश, शमौ = पाणी द्वौ, आभ्या मिते तिथिसम२१५मिते = वीरसवदि पञ्चदशोत्तरशतद्वय-२१५ तमे वत्से "**ख**" ति खं = त्रिदशालयं "**गओ**" त्ति गतः = ययौ । **यदुक्तम्—**

तिथिद्विसङ्ख्ये २१५ त्रिदिव गतस्य तस्याब्दके वीरजिनेन्द्रमुक्ते ।" **इति** ।

एवञ्च श्रीस्थूलभद्रस्वामी त्रिंशद्(३०)वर्षाणि गृहवासपर्याये, चतुर्विंशति२४वर्षाणि सामान्यव्रतपर्याये, पञ्चचत्वारिंशत् ४५ वर्षाणि युगप्रधानपर्याये स्थित्वा सकलायुष्कर्म नवनवति-९९वर्षमितं सम्पूर्यामरगतिं गच्छति स्म ॥३४॥

पन्न्यासश्रीकल्याणविजयानाममभिप्रायेण त्वमुनो जन्मादिपर्याया क्रमेण वीरसवत् १६८-१९८-२२२-२६७ वर्षेषु सजाता ।

मङ्काभ्यां मितं यस्मिन्नब्दे तस्मिन् रसत्रिंश(३६)मिते=षट्त्रिंशत्तमे "ऽद्दे" त्ति अब्दे=वर्षे प्रभृतिरित्यर्थः "जुगगमिए" त्ति युगानि=कृतादीनि चत्वारि, अङ्गानि वेदस्य शिक्षाकल्पव्याकरणछन्दोज्योतिर्निरुक्तिलक्षणानि षट्, तथा चोक्तम्–

"शिक्षा-कल्पो व्याकरण-निरुक्त ज्योतिष तथा । छन्दश्चेति षडङ्गानि, प्राहुरेतानि कोविदाः ॥" इति,

यद्वा शरीरस्य द्विजङ्घाद्विबाहुमौलिकटिलक्षणानि षट्, तद्वाचकैरङ्कैर्वामगत्या विन्यस्तैर्मितं यस्मिन्नब्दे तस्मिन् युगाङ्ग(६४)मिते=चतुःषष्टितमे हायने "वय" त्ति व्रतं=परिव्रज्या बभूवेत्यर्थः । "स" त्ति स शय्यम्भवप्रभुः "भूइरिसिमिए" त्ति भूतानि=पृथ्व्यप्तेजोवाय्वाकाशलक्षणानि पञ्च, ऋषयो=मुनयो मरिच्यादिलक्षणाः सप्त, इत्यङ्कौ=वामगत्या पञ्चसप्तति सङ्ख्या, ताभ्यां मिते भूतर्षि(७५)मिते=पञ्चसप्ततितमे संवत्सरे "जुगपहाणो" त्ति युगप्रधानो जात इत्यर्थः । "इहणिहि(९८)मिए" त्ति इभा=गजा=दिग्गजा ऐरावतपुण्डरीकवामनकुमुदाञ्जनपुष्पदन्तसार्वभौमसुप्रतीकलक्षणा अष्टौ, तथा चात्र "ऐरावत पुण्डरीको, वामन कुमुदोऽञ्जन । पुष्पदन्त सार्वभौम, सुप्रतीकश्च दिग्गजा ॥१७०॥" इति हैमवचनादमरकोशवचनाच्च "(अमरकोशश्लोक ७६), निधयः=निधानानि नैसर्पपाण्डुकपिङ्गलसर्वरत्नकमहापद्मकालमहाकालमाणवशङ्खकलक्षणा नव, इत्यार्हत्सिद्धान्ते, लौकिकमते तु महापद्मपद्मशङ्खमकरकच्छपमुकुन्दकुन्दणीलचर्चोलक्षणा नव, आभ्यामङ्काभ्यां प्रातिलोम्येन विन्यस्ताभ्यां(९८) अष्टनवत्या मिते अब्दे दिवं=सुरधाम "गओ" त्ति गतः=प्राप्तः । यदाह स्थविरावल्याम्–

"सेज्जभवो वि णियपए जसोभद्दायरियं ठा[वि]इत्ता वीराओ ण अडहियनवइवासेसु वइक्कतेसु सग्गं पत्तो ।" इति । एवं तपागच्छपट्टावल्यादिष्वपि कथितम् ।

तथा च सत्यसा अष्टाविंशति(२८)र्वर्षाणि गृहस्थपर्याये, एकादश (११) व्रते, त्रयोविंशति(२३)र्युगप्रधाने चेति सर्वायुर्द्वाषष्टि(६२)वर्षाणि परिपाल्य स्वर्गभाग् जातः ॥२३॥

एतर्हि श्रीचरमार्हत्प्रभोः पञ्चमस्य पट्टभृतः श्रीशय्यम्भवसूरिपट्टविभूषकस्य श्रीयशोभद्रगणाधिपस्य श्लोकद्वयेन विभणिषयाऽऽदावाह शिखरिणीम्–

जसोभद्दो सूरी, स जयउ पए से गणवई;
जसोवासोणं से, सइ सयललोगे धवलिए ।
हरी अद्धि संभू, रययगिरिमिंदो करिवरं;
विहुं राहू हंसं, विसमविसिहो मग्गइ अहो ॥२४॥ (सिहरिणी)

त्यसौ संयतो वा देवो वा" इति शङ्कितमनाः परस्परं न वन्दन्ते, ततः स्थविरैर्युक्तिभिः प्रज्ञापिता अपि न प्रबुद्धास्ततो सङ्घबाह्याः कृतास्ते चान्यदा राजगृहं समाययुः। तत्र च ज्ञात-व्यतिकरेण श्राद्धेन मौर्यवंशिना बलभद्राख्येण नृपेण त आहूता मारणाय चादिष्टास्तदा त ऊचुः **"राजन् श्रावकस्त्वमित्थं श्रमणान् मारयसि"** ततो नृपेणोक्तं-**"युष्मत्सिद्धान्तेनैव को जानात्यहं श्रावकोऽन्यो वा, 'यूयमपि श्रमणा वा चोराद्यन्यतमा वा"** इत्यादिवचनैः प्रतिबोधिताः पश्चाद्राज्ञा क्षमिताश्च सन्मार्गं प्रतिपन्नाः।

अयञ्चाव्यक्तवादी तृतीयो निह्नव आषाढाचार्यशिष्यगणो वीरसंवत् २१४वर्षे जातः।

तथा चोक्तम्-

"चोद्दा दो वाससया तइआ सिद्धिं गयस्स वीरस्स। तो अव्वत्तियदिट्ठी सेसवियाए समुप्पन्ना॥ ॥"

इति ॥३५॥

एतर्हि श्रीअन्तिमतीर्थशास्तुरनन्तिमस्याष्टमपट्टधारितया सम्भूतयोर्नवम दशमयुगप्रधानयो-रार्यश्रीमहागिरि-आर्यश्रीसुहस्तिसूर्योः श्लोकपञ्चकेण वर्णयन्नादाविन्दुवदना प्राह-

णट्ठजिणकप्पविहिसंतुलणयरो, णिप्पिहसिरोरयणअज्जमहगिरी।
रंकणिवकारगसुहत्थिमुणिवई, से रविविहू विव सहीअ पयणहे ॥३६॥

(इंदुवयणा)

(प्रे०) "णट्ठ" इत्यादि, 'से" त्ति तस्य=आर्यश्रीस्थूलभद्रस्वामिनः "पयणहे" त्ति पदं= पट्ट एव नभः=गगनं पदनभस्तस्मिन् पदनभसि **"रविविहू विव"** त्ति रविश्च विधुश्च रविविधू इव **"सहीअ"** त्ति अराजताम्=अशोभताम् काविति चेदाह-**णिप्पिहसिरोरयणअज्जमह-गिरी"** त्ति आर्यः=श्रेष्ठः पूज्यो वा, यद्वाऽऽद्यः, स चासौ महागिरिः=तन्नामाऽऽचार्यः, श्री-स्थूलभद्रस्वामिशिष्य आर्यमहागिरिरेलापत्यगोत्रो दशपूर्वी, निःस्पृहेषु=विविधप्रकारस्पृहारहितेषु मुनिपुङ्गवेषु शिरोरत्नः=शिरोभूषणो निःस्पृहशिरोरत्नः, स चासावार्यमहागिरिर्निःस्पृहशिरोरत्ना-र्यमहागिरिः। पुनः किम्भूतः? **"णट्ठजिणकप्पविहिसंतुलणयरो"** त्ति जिनकल्पस्य=पूर्वोक्त-शब्दार्थस्य साध्वाचारविशेषस्य विधानं-विधिः=शास्त्रोक्तविशिष्टाचारपालनरूपा जिनकल्पविधिः नष्टा=विच्छिन्ना चासौ जिनकल्पविधिश्चेति नष्टजिनकल्पविधिस्तस्याः, सम्=सम्यक्प्रकारेण तुलेवाऽऽचर्यते=तुल्यते=प्रमीयते आत्मा वस्तु वाऽनेनेति संतुलनम्, तुलाशब्देन निष्पन्नान्नाम-धातोः करणेऽनट्प्रत्ययः, तस्य करोतीति "अच्" (सि० ५-१-४९) इत्यनेनाचि करः= संतुलनकरः, नष्टजिनकल्पविधेः संतुलनकर इति नष्टजिनकल्पविधिसंतुलनकरः।

(प्रे०) "तस्स" इत्यादि, तस्य = श्रीयशोभद्रसूरेः "जनी" त्ति जनि = जन्म "वीरा" त्ति वीरात् = वीरविभुमुक्तिगमनकालात् "दोचक्कि६२मिए" त्ति दोषौ = भुजौ द्वौ तेन द्वयङ्कः, चक्रिणः = लौकिकाश्चक्रवर्तिनो [1]मान्धातृ- [2]धुन्धुमार- [3]हरिश्चन्द्रो- [4]शचीपति- [5]भरता-[6]ऽजुनलक्षणाः षट्, तेन षडङ्कः, एतयोरङ्कयोर्वामगत्या द्वाषष्टि६२सङ्ख्याया मितं= प्रमाणं यस्मिन्नब्दे तस्मिन् दोश्चक्रिमिते द्विचक्रिमिते वा=द्वाषष्टितमे "ऽद्दे" त्ति अब्दे=वर्षेऽभूत्। "वयं" ति व्रतं=संयमग्रहणं "जुगिह ८४ सखे" त्ति युगानि=पूर्ववच्चत्वारि, इभा=हस्तिनोऽष्टौ, दिग्गजानामष्टत्वादेतयोरङ्कयोः प्रातिलोम्येन मीलितयोश्चतुरशीति८४रूपा सङ्ख्या यस्मिंस्तस्मिन् युगेभ८४सङ्ख्ये = चतुरशीतितमे हायने बभूव। "स" त्ति स = श्रीयशोभद्रगणेशः च णिहि९८मिए त्ति वसवो = धरध्रुवसोमाहानिलानलप्रत्यूषप्रभासलक्षणा अष्टौ, यदुक्तम्–
"धरो ध्रुवश्च सोमश्च अहश्चैवानिलोऽनल। प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवाऽष्टाविति स्मृता॥ ॥" इति लोकोक्त्या निधयो महापद्मादयो नैसर्पादयो वा नव, आभ्यामङ्काभ्यां वामगतिगणिताभ्याम् अष्टनवत्या९८ मितं = प्रमितं यत्र तत्र वसुनिधि९८मिते = अष्टनवतितमे संवत्सरे "जुगपहाणो" त्ति युगप्रधानोऽजायत। गयमणु १४८मिए" त्ति गजाः = कुम्भिनोऽष्टौ, तेनाष्टाङ्कः मनवश्चतुर्दश, तेन चतुर्दशाङ्कः, आभ्यामङ्काभ्यां वामगतिन्यस्ताभ्याम् = अष्टचत्वारिंशदधिकशतेन मिते गजमणु१४८मिते = अष्टचत्वारिंशदधिकशततमे हायने "दिवं" त्ति दिवं = स्वर्लोकं 'इओ" त्ति इतः = गतः। यदुक्तं गुर्वावल्याम्—

'गजाब्धिचन्द्र१४८प्रमिते गुरुर्यो, बभूव वर्षे जिनमोक्षकालात् ॥११॥" इति।

तथा श्रीहिमवदाचार्यैः स्थविरावल्यामपि–

"जसोभद्दो वि णं वीराओ सयाहियडयालीवासेसु विइक्कतेसु सग्ग पत्तो।" इति।

एवं तपागच्छपट्टावल्यादिष्वपि।

एतावताऽसौ श्रीयशोभद्रसूरिर्द्वाविंशति२२वर्षाणि गृहे, चतुर्दश १४ वर्षाणि सामान्यव्रतपर्याये, पञ्चाशत् ५० वर्षाणि युगप्रधानत्वे चेति सकलायुः षडशीति८६वर्षाणि सम्पूर्य स्वर्गतिमाश्रयते स्म ॥२५॥

सम्प्रति श्रीमहावीरप्रभोः षष्ठपट्टभृत्त्वेन संजातमाद्यं श्रीसम्भूतसूरिं श्लोकद्वयेन निरूपयन्नादौ तावच्छार्दूलविक्रीडितेनाह—

अज्जो तस्स पए हवीअ विजओ, [x] संभूअपुव्वो गुरू,
अम्हेणं अमुणो पयाव यमी-कत्तुं कयो तावणो।

त्यसौ संयतो वा देवो वा" इति शङ्कितमनाः परस्परं न वन्दन्ते, ततः स्थविरैर्युक्तिभिः प्रज्ञापिता अपि न प्रबुद्धास्ततो सङ्घबाह्याः कृतास्ते चान्यदा राजगृहं समाययुः । तत्र च ज्ञात-व्यतिकरेण श्राद्धेन मौर्यवंशिना बलभद्राख्येण नृपेण त आहूता मारणाय चादिष्टास्तदा त उचुः **"राजन् श्रावकस्त्वमित्थं श्रमणान् मारयसि"** ततो नृपेणोक्तं–**"युष्मत्सिद्धान्तेनैव को जानात्यहं श्रावकोऽन्यो वा, 'यूयमपि श्रमणा वा चोराद्यन्यतमा वा"** इत्यादिवचनैः प्रतिबोधिताः पश्चाद्राज्ञा क्षमिताश्च सन्मार्गं प्रतिपन्नाः ।

अयश्चाव्यक्तवादी तृतीयो निह्नव आषाढाचार्यशिष्यगणो वीरसंवत्२१४वर्षे जातः ।

तथा चोक्तम्–

"चोद्दा दो वाससया तइआ सिद्धिं गयस्स वीरस्स । तो अव्वत्तियदिट्ठी सेसवियाए समुप्पन्ना ।। ।।"
इति ।।३५।।

एतर्हि श्रीअन्तिमतीर्थशास्तुरनन्तिमस्याष्टमपट्टधारितया सम्भूतयोर्नवम दशमयुगप्रधानयो-रार्यश्रीमहागिरि-आर्यश्रीसुहस्तिसूर्योः श्लोकपञ्चकेण वर्णयन्नादाविन्दुवदना प्राह–

णट्ठजिणकप्पविहिसंतुलणयरो , णिप्पिहसिरोरयणअज्जमहगिरी ।
रंकणिवकारगसुहत्थिमुणिवई, से रविविहू विव सहीअ पयणहे ।।३६।।
(इंदुवयणा)

(प्रे०) **"णट्ठ"** इत्यादि, ' **से"** त्ति तस्य=आर्यश्रीस्थूलभद्रस्वामिनः **"पयणहे"** त्ति पदं=पट्ट एव नभः=गगनं पदनभस्तस्मिन् पदनभसि **"रविविहू विव"** त्ति रविश्च विधुश्च रविविधू इव **"सहीअ"** त्ति अराजताम्=अशोभताम् काविति चेदाह–**णिप्पिहसिरोरयणअज्जमहगिरी"** त्ति आर्यः=श्रेष्ठः पूज्यो वा, यद्वाऽऽद्यः, स चासौ महागिरिः=तन्नामाऽऽचार्यः, श्रीस्थूलभद्रस्वामिशिष्य आर्यमहागिरिरैलापत्यगोत्रो दशपूर्वी, निःस्पृहेषु=विविधप्रकारस्पृहारहितेषु मुनिपुङ्गवेषु शिरोरत्नः=शिरोभूषणो निःस्पृहशिरोरत्नः, स चासावार्यमहागिरिर्निःस्पृहशिरोरत्नार्यमहागिरिः । पुनः किम्भूतः ? **"णट्ठजिणकप्पविहिसंतुलणयरो"** त्ति जिनकल्पस्य=पूर्वोक्तशब्दार्थस्य साध्वाचारविशेषस्य विधानं-विधिः=शास्त्रोक्तविशिष्टाचारपालनरूपा जिनकल्पविधिः नष्टा=विच्छिन्ना चासौ जिनकल्पविधिरिति नष्टजिनकल्पविधिस्तस्याः, सम्=सम्यक्प्रकारेण तुलेवाऽऽचर्यते=तुल्यते=प्रमीयते आत्मा वस्तु वाऽनेनेति संतुलनम् ,तुलाशब्देन निष्पन्नान्नामधातोः करणेऽनट्प्रत्ययः, तस्य करोतीति "अच्" (सि० ५-१-४९) इत्यनेनाचि करः=संतुलनकरः, नष्टजिनकल्पविधेः संतुलनकर इति नष्टजिनकल्पविधिसंतुलनकरः ।

तेहिं तओ पडिभणियं भद्द पहू सूरिणो परं एत्थ । अम्हमुचिय न दाउं सूरिसमीवं सम चेव ॥२२॥
गन्तूण जाव जायइ मग्गो अम्हेऽवि मग्गिया आसि । साहूहि कहियमत्तो तह भिक्खा लाभवुत्तान्तो ॥२३॥
भणइ गुरू न गिहीणं कप्पइ दाउं करेसि पव्वज्जं । जइ ता गिण्हहि(ण)तण्हा भवाहि पडिवन्नमेयं ति ॥२४॥
एसो कि आराहणमुवलहिही जा गुरू निरूवेइ । ता निन्छिय पह णो पवयणपुरिसो इमो होही ॥२५॥
तत्तोऽव्वत्तगसामइयदिक्खमारोविऊण पज्जत्त भुजाविओ स भत्त त चिय जाओ समाहिपरो ॥२६॥
अव्वो दयावरत्त मज्झ जमेए पसन्नपरिणामा । पियबधवस्स वऽट्ठ सव्वे वट्टंति कज्जम्मि ॥२७॥
एमाइ चित्तचिन्ता सुहारसासिच्चमाणसव्वगो । लग्गो नेउं तद्दिणसेस बहुजायगुरुभत्ती ॥२८॥
पत्तम्मि निसासमए अणुचियभोयणगुणाओ सम्पत्ता । तिव्वा विसूइगा लद्धसुद्धभावो मओ एत्तो ॥२९॥
पाडलिपुत्ते नयरे मोरियवसम्मि बिन्दुसारस्स । नरवइणो पुव्वनिवेइयस्स पुत्तो असोयसिरी ॥३०॥
राया तस्स वि पुत्तो बालत्ते च्चिय पवन्नजुवरज्जो । आसि कुणालो नामेण जीवियाओ वि अब्भहिओ॥३१॥
उज्जेणी नाम पुरी दिन्ना तस्स य कुमारभुत्तीए । सहिओ परिवारजणेण वसइ सो तत्थ सतुट्ठो ॥३२॥
सयलकलाकलणखम णाउ पिउणा तमण्णया लेहो । लिहिओ नियहत्थेण जहा अहिज्जउ कुमारो त्ति॥३३॥
तमणुज्झाण मोत्तु तहाविहे नरवई खण कज्जे । जावुट्ठिओ सवत्तीजणणीए ताव पावाए ॥३४॥
नयणग्गओ नहग्गेण कज्जल घेत्तुमुवरिभागम्मि । किरियापयस्स दिन्नं अधिज्जउ तो कुमारो त्ति ॥३५॥
सज्झायमपडिवाइयमुस्सुयभावाउ मुद्दिओ लेहो । पत्तो कुमरसमीवे सयमेव य वाइओ तेण ॥३६॥
अवधारिओ तदत्थो तत्त काऊणमयसलाग जा । अजेइ दोवि अच्छीणि ताव भणिओ परियणेण ॥३७॥
कुमर ? न एसा आणा पिउणो मन्निज्जए तए कइवि । दिवसे विभव(लव)लम्भइ परमत्थो जेण एयस्स॥३८॥
कुमरो वज्जरइ तओ अम्हाण मुरियवसजायाण । सव्वनिवईण मुज्झे आणा तिक्खा समक्खाया ॥३९॥
ता कह विचारमेयं खोऊण कुलं कलकमारोमि । पव्वेंदुबिम्बधवल अच्छेरकरेहिं चरिएहिं ॥४०॥
अगणियपरिवारनिवारणेण जाव जियाणि अच्छीणि । ताव पउत्ती पत्ता पिउणा सोगो कओ गरुओ॥४१॥
णाय जणणिसवत्तीचरियमिण चिंतिय गए कज्जे । किं कीरउ, उज्जेणी हरिउ एगो तओ पिउणा ॥४२॥
दिन्नो मणाभिरामो गामो तत्थ ट्ठिओ परिहरित्ता । ववसाए सेसे गीयविज्जमणवज्जमाढत्तो ॥४३॥
सिक्खिअमइ दक्खत्ता लहुमेव पर गओ स तप्पार । मिलियापरगधव्वियलोगो महिमण्डल भमिउ ॥४४॥
लग्गो गवव्वियगव्वसेलमेसो पविव्व विदलतो । एतोच्चिय उच्छलियातुच्छजसो सोहमणुपत्तो ॥४५॥
कालेण कुसुमनयरे गओ तओ गाइउ समाढत्तो । नगरपहाणजणाण सह सु अइभूरिभेय सु ॥४६॥
जाओ पुरे पवाओ जह सुगधव्विओ धुवं एसो । न सुओ ज न सुणिज्जइ कहिंचि एयारिसो अन्नो॥४७॥
कहिओ अत्थाणीए एस पवाओ निवस्स मतीहिं । ता कोऊहलतरलेण तेण नियपरियणो भणिओ ॥४८॥
सद्दाविज्जउ एसो तेणुत्त देव ! नयणरहिओ सो । णो तुम्ह दट्ठुमुचिओ तो ठविओ जवणिअंतरिओ॥४९॥
आपूरियसुद्धसरो जाव पगीओ नराहिवो ताव । हरिणोव्व गोरीगीएण तक्खणाहयमणो जाओ ॥५०॥
अइतोसमुव्वगएण तेणुत्तो सो वर वरेहि त्ति । लद्धावसरेण तओ पढिओ एसो सिलोगो त्ति ॥५१॥
चदगुत्तपपुत्तो उ, बिंदुसारस्स नत्तुओ । असोगसिरिणो पुत्तो, अधो जायइ कागिणिं ॥५२॥
तो सवियक्कमणेण नरवइणा भणियमह तुमं होसि । किं मम सुओ कुणालो आमं ति तओ जवणियाओ॥५३॥
आकड्ढिऊण सव्वगसगमालिगिओ निउच्छगे । आरोविय स लत्तो वि भिन्नित्तिय मग्गिय तुमए ? ॥५४॥
पासट्ठियमतिजणेण भासिय देव ! मुरियवसम्मि । रज्ज कागिणिसद्देण वुच्चई मग्गइ तमेसो ॥५५॥
पुत्त ! तमधो रज्जस्स नोचिओ ता किमत्थि ते पुत्तो ? । अत्थि च्चिय, के वइओ ? सपइ जाओ तओ नाम ॥५६॥

विद्याम्भोधिरिति "नीतुरमि० (उणा०-२२७) इत्यनेन कित् थप्रत्यये तीर्थं=गुरुः, समाने तीर्थे =गुरौ वसति "सतीर्थ्ये" (सि० ६-४-७८) इत्यनेन यान्तो निपातः सतीर्थ्य=एकगुरुः "भद्दबाहू" त्ति भद्रौ=कल्याणकरौ बाहू=भुजौ यस्य स भद्रबाहुः=भद्रबाहुनामा प्राचीन-गोत्रीयः "जयेउ" त्ति जयतु=जयनशीलोऽस्तु । स कः ?–"जेण" त्ति येन=श्रीभद्रबाहु-स्वामिना "पुव्वा"त्ति पूर्वात्=प्रत्याख्यानाभिधनवमपूर्वदशाश्रुतस्कन्धाध्ययनात् "कप्पो" त्ति कल्पः = कल्पनाम सूत्रं "उद्धिओ"ति उद्धृतः, किमिवेत्याह–"जह"त्ति यथा 'गोरसाओ" त्ति गोरसात्=दधितः "ऽऽज्ज" त्ति आज्यं=घृतमुद्धरति, तद्वत् ।"जेणं" त्ति येन=श्रीभद्रबाहुना "भव्वलोगाण" त्ति भव्याः=सिद्धिगमनयोग्यस्ते चामी लोका भव्यलोकास्तेभ्यो भव्यलोके-भ्यो=भव्यलोकार्थं "सि तसोहं" ति सिद्धान्त=आगमः स एव सौधः=प्रसादः सिद्धान्त-सौधस्तम् सिद्धान्तसौधं "गमेउं" ति गमयितुं=प्रवेशयितुम् , गन्तुं=प्रवेशितुं वा"द्दारव्व"त्ति द्वारवत् "स्यादेरिवे" (सि०-७-१-५२) इत्यनेन इवार्थे वत्प्रत्ययः द्वारवत् = द्वाराणीव = द्वार-समाना "अणेगा" त्ति न एका अनेका, ता अनेकाः "णिज्जुत्तिकाओ" त्ति निर्युक्तिरेव निर्युक्तिका "यावादिभ्यः कः" (सि० ७-३-१५) इत्यनेन स्वार्थे कप्रत्ययस्ता निर्युक्तिका, यद्वा प्राकृतत्वात् "स्वार्थे कश्च वा"(सि ८-२-१६४) इत्यनेन कप्रत्ययस्ततो निर्युक्तयः "णिम्मिआओ" त्ति निर्मिता=विरचिताः ।।२८।।

अथ भद्रबाहुस्वामिन उपसर्गहरस्तवकार्तृत्वं प्रख्यापयन्नाह वसन्ततिलकाम्—

कीरीअ जेण उवसग्गहरक्खथोत्तं,
घायस्स देवकयमारिउवद्दवस्स ।
संघावणस्सऽखिलविग्घविणासकारि,
सं दाउ मे स सुअकेवलिभद्दबाहू ।।२९।। (वसंततिलया)

"कीरीअ" इत्यादि, "जेण" त्ति येन=श्रीभद्रबाहुस्वामिना "देवकयमारिउवद्दवस्स त्ति देवेन कृतस्य विहितस्य मारेः=मारिसंज्ञकस्योपद्रवस्य=उत्पातस्य देवकृतमायुपद्रवस्य =व्यन्तरभूतस्वभ्रातृवराहमिहिरजनितमरकोपद्रवस्य "घायस्स"त्ति घाताय=नाशाय उपशमना-येति यावत् 'सघावणस्स" त्ति सङ्घस्य=साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविकात्मकस्य चतुर्विध-स्यावनाय=रक्षणाय सङ्घावनाय=सङ्घरक्षाकृते "ऽखिलविग्घविणासकारि" विनाशं=विघातं करोतीत्येवंशील यद् "अजाते शीले" (सि० ५-१-१५४)इत्यनेन णिन्प्रत्यये विनाशकारि=नाश-करणशीलं अखिला=समस्ता ते च ते विघ्नाश्च=उपद्रवविशेषाश्चाखिलविघ्नास्तेषाम् अखिलविघ्नानां विनाशकारि तद् अखिलविघ्नविनाशकारि "उवसग्गहरक्खथोत्तं"ति उपसर्गहर इत्याख्या=

रहजत्तासगुजती पुप्फारुहणाइं उक्किरणगाइ । पूइ च चेइयाइं ते वि सरज्जेसु कारेंति ॥९३॥
अह फइयाइ सुहत्थी सपइरन्ना नमतसीसेण । पुट्ठो भयवमणारियदेसेसु न साहुणो कीस ? ॥९४॥
विहरति तुम्ह मुणिपु गवेण पण्णत्तमज्जदेसेसु । स हू न विहरता लहति गुणमाह ज वीरो ।९५॥
एत्थ किल सन्निसावय जाणति अभिग्गहं सुविहियाणं । आरियदेसम्मि गुणा णाणचरणगच्छवुड्ढी य ।९६॥
लद्धामिप्पाएणं निरूविया तेण साहुनेवत्था । नियपुरिसा साहुसमायारीदसावणनिमित्त ॥९७॥
गंतुण जहा साहू भत्त पाण उवस्सयाई य । गिण्हति य भासति य जहा तहा तेहिं ववहरिय ॥९८॥
समणभडभाविएसु तेसु देसेसु एसणाईहिं । साहू सुह विहरिया तेण ते भद्दया जाया ॥९९॥

उदिण्णजोहाउलसिट्ठसेणो, स पत्थिवो निज्जियसत्तुसेणो ।
समतओ साहुसुहप्पयारे, अकासि अधे दमिले य घोरे ॥१००॥
स पुव्वजम्मोदरियत्तदोस, सरित्तु दारेसु पुरस्स तत्तो ।
सत्ते करावेइ महतचित्तो, भत्त दयावेइ य भिक्खुयाण ॥१०१॥
जे तेसु सत्तेसु करेंति तत्तिं, सगोरव ते भणिया निवेण ।
तुम्हाण देंताण जमुव्वरेइ, देज्जाह साहूण तमायरेण ॥१०२॥
त तुम्ह सत जमिमेसि जोग्ग, म रायपिंडोत्ति ममच्चय तु ।
ज तस्स मोल्ल तमह दलामि, मणोवियप्पोऽत्थ कोइ कज्जो ॥१०३॥
ते देंति भत्त तह पाणग च, पज्जत्तभावेण मुणीण तेसिं ।
अन्नोऽवि जो कदवियाइलोगो, निरूविओ सो नरनायगेण ॥१०४॥
ज जत्थ साहूण भवेइ जोग्ग, त सव्वमेएसि जहोवओग ।
तहा तहा सप्पणिहाणचित्ता, करेह मग्गेज्जइ तस्स मोल्ल ॥१०५॥
एव सुभिक्खे गरुयम्मि जाए, महागिरी अज्जसुहत्थिपासे ।
समागओ गामपुरागराई-विहारमाणाएँ समायरतो ॥१०६॥
भिक्खासरूवं सयलपि नाउ, कओवओगेण मणेण सम्म ।
सूरी सुहत्थी भणियो किमेव, निवस्स पिंडो तहऽणेसणिज्जो ॥१०७॥
निक्कारण घेप्पइ ?, सोवि आह, निवम्मि भत्तम्मि न भत्तिमतो ।
को नाम ? अज्जो पउरत्तणेण, सव्वत्थ भिक्ख मुणिणो लहति ॥१०८॥
सिस्साणुराएण निवारमेसो, जया सुहत्थी न करेइ ताव ।
माइत्ति नाऊण स भिन्नवासी, होउ विसभोगपरो पयाओ ॥१०९॥ अत पठ्यते,-

करिकप्पे सरिछदे तुल्लचरित्ते विसिट्ठतरए वा । साहूहिँ सथव कुज्ज णाणीहिं चरित्तजुत्तेहिं ॥११०॥
सरिकप्पे सरिछंदे तुल्लचरित्ते विसिट्ठतरए वा । आएज्ज भत्तपाण सएण लाभेण वा तुस्से ॥१११॥
तयणु विसभोगविही इमम्मि तित्थे मुणीण सजाओ । पच्छायावपरद्धो महागिरीण गुरूण तओ ॥११२॥
मिच्छादुक्कडमज्जसुहत्थी वदिय कमुप्पले देइ । सभोग उवणीओ जहपुव्व विहरिउ लग्गा ॥११३॥
जह मज्झम्मि महतो होइ जवो तह इमो मुरियवसो । तवति रइरज्जमाणो सपइणा भूमिणाहेण ॥११४॥
सो सुस्सावयधम्म सम्म काऊण भूमिवलय च । जिणभवणसेणिरमणिज्जमुवगओ देवलोगम्मि ॥११५॥
पत्तम्मि पच्छिमवए महागिरी विहियगच्छकायव्वो । अज्जसुहत्थिम्मि गण ठविऊण इम विचिंतेइ ॥११६॥
परिवालिओ सुदीहो परिआओ वायणा तहा दिन्ना । णिप्फाइया य सीसा सेय मे अप्पणो काउ ॥११७॥
किंतु विहारेणऽब्भुज्जुएण विहरामणुत्तरगुणेण । किंवा अब्भुज्जुयस हणेण विहिणा अणुमरामि ॥११८॥

बभूव इत्यर्थः । "**णिहिविस्से**" त्ति निधयः = पूर्ववद् नव, पदैकदेशे पदसमुदायस्योपचाराद् 'विश्वदेवास्त्रयोदश, **यदुक्तम्**- "वसुमत्यौ क्रतुदक्षौ कालकामौ धुरिः कुरु । पुरुरवा माद्रवाश्च विश्वे देवा' प्रकीर्तिता ॥ ॥" इति, एतयोरङ्कयोः प्रातिलोम्येन स्थापितयोर्नवत्रिंशदधिकशतं १३९ सङ्ख्या यस्मिंस्तस्मिन् निधिविश्वे = वीरसंवत् १३९ तमे वर्षे गते गच्छति वा "**वय**" ति व्रतं=प्रव्रज्याऽभूत् । "**स**" त्ति स=श्रीभद्रबाहुस्वामी "**रसतिहिमिए**" त्ति रसाः षट्, तिथयः पञ्चदश, आभ्यामङ्काभ्यां पश्चानुपूर्व्या विन्यस्ताभ्यां षट्पञ्चाशदुत्तरशतेन १५६ मिते रसतिथि-१५६ मिते = वीरसंवदि षट्पञ्चाशदधिकशत१५६तमे हायने गते गच्छति वा "**जुगपहाणो**" त्ति युगप्रधानो जातः । "**खसंजमपमाणे**" त्ति खम् = आकाशं शून्यम् , संयमाः सप्तदश, संयमस्य पञ्चाश्रवविरमणपञ्चेन्द्रियनिग्रहचतुष्कषायजयत्रिदण्डविरतिरूपत्वेन सप्तदशविधत्वाद् ।

यदुक्त प्रशमरतौ-

X"पञ्चास्रवाद्विरमण पञ्चेन्द्रिय△निग्रह कषायजय । दण्डत्रयविरतिश्चेति सयम सप्तदशभेद ॥१७२॥" इति ।

यद्वाऽन्यथाऽपि सयमः सप्तदशविधो-ऽस्ति, एताभ्यां वामक्रमोदिताभ्यां सप्तत्यधिकशतं१७० संख्या प्रमाणं = मानं यत्र तत्र खसंयमप्रमाणे = वीरसंवत्सप्तत्युत्तरशत१७०तमे संवत्सरे गते गच्छति वा "**खं**' ति खम् = अमरलोकं "**गओ**" त्ति गतः=इयाय ।

तथा चाभाणि मुनि न्दरसूरिभिः-"स्वर् यश्च वीरात् खनगेन्दुवर्षे १७० ।" इति ।

तथैव स्थविरावल्याम्-

"थेरे णं अज्जभद्दबाहू वि चरमचउदसपुव्विणो सगडालपुत्तं अज्जथूलभद्दं णियपए ठावइत्ता वीराओ णं सयाहियसत्तरि वासेसु विइक्कतेसु पक्खेण भत्तेण अपाणएणं कुमारगिरिम्मि कलिङ्गे पडिम ठिओ सग्गं पत्तो । " इति ।

परिशिष्टपर्वणि नवमे सर्गे श्रीहेमचन्द्रसूरिभिरपि-

"वीरमोक्षाद्वर्षशते सप्तत्यग्रे गते सति । भद्रबाहुरपि स्वामी ययौ स्वर्गं समाधिना ॥११२॥" इति ।

एवं तपागच्छपट्टावल्यादिष्वपि ।

तथा च सति श्रीभद्रबाहुस्वामी गृहवासे पञ्चचत्वारिंशत्४५वर्षाणि, सामान्यव्रतपर्याये सप्तदश १७ वर्षाणि, युगप्रधानत्वे चतुर्दश १४ वर्षाणि चेति सम्पूर्णायुः षट्सप्तति ७६ वर्षाणि परिपाल्य सुरलोकमभजत् ।

भद्रबाहुस्वामिनो मुख्याः शिष्याश्चत्वारोऽभवन् । तद्यथा-आर्यगोदासो गोदास-संज्ञकस्य गणस्य तंकः१ आर्याग्निदत्तः२ आर्ययज्ञदत्तः३ आर्यसोमदत्तः४ इति ।

△ निर्जय ,' इत्यपि पाठ । X (पथ्या)

इतिहासवेत्तृणा पन्न्यासश्रीकल्याणविजयानामाभिप्रायेण श्रीभद्रबाहुस्वामिनो जन्म-दीक्षायुगप्रधानत्व-स्वर्गगमनानि क्रमेण वीरसंवत् १४६-१६१-२०८ २२२ तमे वर्षे जातानि ।

सव्वसढभावमुक्को समोसढो सुदिढरूढपोढजसो। तेसिं च पारितोसियदाणं दाउं विचिंतइ ॥१५१॥
सुरअसुरवंदणिज्जो तहा मए मव्वपरियणजुत्तेण। नमणिज्जो जह पुव्विं णमिओ केणावि न कया वि ॥१५२॥
आणत्तो नयरजणो उग्घोसणपुव्वग तहा चउरो। सेण ' तेउरजणो य जह सव्वरिद्धीए ॥१५३॥
नमणिज्जो जिणनाहो कयम्मि पगुणम्मि व त्ति सव्वम्मि। तम्मि स ण्हाओ सतो सव्वालंकारपरिकलिओ।
हिमसेलुद्धरकुंजरमारूढो सेयछत्तछन्ननहो। हिमरयरययसमुज्जलचउचामरवीइयसरीरो ॥१५४-१५५॥
गरुडमयरायगयसरभचिंधसयवधुरग्गमग्गो य। चारणसहस्सगिरिगिज्जमाणहरहारसरिसजसो ॥१५६॥
तूररवापरिपूरियनिस्सेसदियंतनहयलाभोओ। पलयानिलसंखोहियजलनिहिमलिराणुकारेण ॥१५७॥
पुरपरियणेण सव्वायरेण अणुगम्ममणमग्गो सो। सग्गाओ वज्जपाणि व्व फत्ति लीलाए निक्खतो ॥१५८॥
जा नगराओ सुरिंदो ता तस्स मणोगय वियाणित्ता। सरयब्भसमतणु अट्ठहिं दसणेहिं मणोरम तुंग ॥१५९॥
पइदसणमट्ठवावीजुत्त पइवावि अट्ठकमलजुयं। अट्ठट्ठदले कमले एक्केक्के नाडएहिं जुयं ॥१६०॥
बत्तीसपत्तबद्धेहिं पउमपत्तप्पमाणमिणिएहिं। एरावण विलग्गो सुरसेणाछन्नदिसिचक्को ॥१६१॥
पत्तो जिणस्स पासे आगासे च्चिय पयाहिणं काउ। अग्गपउण्णामियनिययकुंजरो वंदिउं लग्गो ॥१६२॥
दिट्ठो तह समागएण रन्ना दसन्नभद्देणं। अव्वो अब्भुयमेयमेरिस मे न दिट्ठ त्ति ॥१६३॥
णूणमणेण महंतो धम्मो विहिओ जओ सिरी जाया। अम्हाणमकयपुन्नाण को णु गव्वो नियसिरीए? ॥१६४॥
ता उज्जमेमि धम्मं काउ जेणिच्छिय लहु घडइ। तक्खणमेव विरत्तो सव्व संग परिच्चयइ ॥१६५॥
तस्स तया पन्नास सहस्स आसी रहाण पवराणं। निज्जियरइरूवाण सत्त सया सुदरीण च ॥१६६॥
तह ऽणेगसहस्सा हयगयाण पत्तीण पुण अणेगाओ। कोडीओ उब्भडरिउभडेसु सोंडीरचरियाओ ॥१६७॥
धणधन्नमणुन्नाइं गामागरखेडकब्बडपुराइं। सीसारोविय तस्साणाइ सयसहस्ससखाइं ॥१६८॥
इय एवविहरिद्धीरेहिल्लं तेण उब्भड रज्जं। मुक्क तणं व विन्नायभवसरूवेण धीरेण ॥१६९॥
सव्वजगजीवखेमकरिं च दिक्ख खणेण पडिवन्न। दट्ठु तं सजियक्को सक्को परिचिन्तए एवं ॥१७०॥
जमणेण पुन्नपुरिसेण चितियं जह मए भुवणवधू। तह नमणिज्जो जह नो केणावि कयावि नमिओ त्ति॥१७१॥
त सव्व सपाडियमेएण महाणुभावचरिएण। को अन्नो एयाओ एव दिक्ख पवज्जेइ ॥१७२॥
सो सुद्धचरणसंसेवणेण संपत्तकेवलालोओ। सिवमपुणागममपुणब्भव च निव्वाणमणुपत्तो ॥१७३॥
सुरवारणग्गपयपडिबिंबपभावाओ तप्पभी सेलो। सो लोए सव्वत्थ वि गयग्गपयनामगो जाओ ॥१७४॥
तम्मि पवित्ते खित्ते महागिरी सुत्तवुत्तविहिसारो। काऊण कालमकलंकमुवगओ देवलोगम्मि ॥१७५॥' इति।

अथ श्रीसुहस्तिसूरिप्रतिबोधितः सम्प्रतिनृपो यदकरोत्तच्छ्लोकद्वयेनाविष्कुर्वन् प्रथममुपजातिमाह—

जो संपई भूमिवई विहारं। मुणीण कारीअ अणज्जदेसे।
तिखंडभूमि जिणमंदिराणं। सेपाअलक्खेण अलंकरीअ ॥३७॥ (उवजाई)

(प्रे०) "**जो**" इत्यादि, "**जो**" त्ति यः=श्रीसुहस्तिसूरिणा प्रबुद्धः '**संपइ**" त्ति सम्प्रतिः=तन्नामा "**भूमिवई**" त्ति भूमिपतिः=भूपालः "**अणज्जदेसे**" त्ति अनार्यदेशे=आर्यसंस्कारोज्झितदेशेऽपि "**मुणीण**" त्ति मुनीनां यतिजनानां "**विहार**" ति विहारं=गमनागमनरूपं "**काराअ**" त्ति अकारयत्=अनार्यदेशे हि पूर्वं साधुवेशभृतां स्ववण्ठपुरुषाणां प्रेषणेन तत्क्षेत्रे साधूनां विहारस्य योग्यतामानयति स्म।

प्रभृतयो ग्राह्यास्तेभ्यो नेमिनाथादिभ्यः "एसो", त्ति एष श्रीस्थूलभद्रस्वामी "एगोच्च" त्ति, एक एव=अन्य एव=अद्वितीय इति यावत्। "वीरो" त्ति "शूर वीर विक्रान्तौ" इति वीरयतीति "अच्" (सि० ५-१-४९) इत्यचि वीरो=भट्टो योद्धा, "मयणजययरो" त्ति, मदनस्य=कामस्य जयः=स्वायत्तीकरणं मदनजयस्तस्य करोतीति "अच्" (सि०५-१-४९) इत्यचि करः मदनजयकरः=कामविजेताऽस्ति। कस्मादित्याह "ज" ति, यत्=यस्मात् कारणात् "जेण" ति येन=श्रीस्थूलभद्रस्वामिना "मयणअहिविले" त्ति, मदनः=अनङ्गः स चैवाहिः=सर्पश्चारित्रभ्रष्टकारित्वाद् मदनाहिस्तस्य बिले=आवासे मदनाहिबिले "पवेसं" ति प्रवेशं=गमनं "काउ" ति कृत्वा=विधाय प्रविश्येति यावत् "कामसप्पो" त्ति कामो=रतिपतिः, स एव सर्पः=भुजगः कामसर्पः=अनङ्गाहिः, "जिओ" ति जितः=पराभवीकृतः।

अयम्भावः—सरागरतिसमानकोशावेश्यालक्षण मुख्यशस्त्रं चक्रम्, षड्रसभोजनरूपाः सेनापतयः, चित्रशालास्वरूपो महाबलाधिकृतः, वर्षर्तु समानं कवचम्, युवावस्थादिलक्षणमनेकसुभटगणमित्याद्यनेकविधशस्त्रास्त्रसैन्यादिस्वस्वानुकूलसमग्रसामग्रीयुतस्याऽपि मदननृपस्यैक एवायं विजयी भटः। **तथा चोदितम्**—

"वेश्या रागवती सदा तदनुगा, षड्भी रसैर्भोजनं,
शुभ्रं धाम मनोहरं वपुरहो, नव्यो वय सङ्गम।
कालोय जलदाविलस्तदपि य, काम जिगायादरात्;
तं वन्दे युवतिप्रबोधकुशलं, श्रीस्थूलभद्रं मुनिम् ॥२॥" इति

यदुक्तमुपदेशपदवृत्तौ–

'न दुक्कर अबयलु बिनोडण, न दुक्कर नच्चय सिक्खियाए।
त दुक्कर त च महाणुभाव, जं सो मुणी पमयवणम्मि वुत्थो ॥८७॥" इति।

कल्पसूत्रसुबोधिकाख्यवृत्तावपीदमुक्तम्। तद्यथा—

"न दुक्करं अबयलुम्बितोडणं, न दुक्कर सरिसवनच्चिआइ।
त दुक्कर त च महानुभाव, ज सो मुणी पमयवणमि वुच्छो ॥३॥" इति।

तथा-ऽन्यत्रापि–

"गिरौ गुहाया विजने वनान्तरे, वास श्रयन्तो वशिन' सहस्र।
हर्म्येऽतिरम्ये युवतीजनान्तिके, वशी स एक' शकटालनन्दन ॥ ॥
योऽग्नौ प्रविष्टो-ऽपि हि नैव दग्ध-श्छिन्नो न खड्गाग्रकृतप्रचार।
कृष्णाहिरन्ध्रे-ऽप्युषितो न दष्टो, नाक्तो-ऽञ्जनागारनिवास्यहो य ॥ ॥" इति।

येन श्रीस्थूलभद्रस्वामिनो नाम चतुरशीतिचतुर्विंशतीर्यावत्स्थास्यति। अयमपि कवेरुत्प्रेक्षा; यतोऽर्हतां केनचिदपि केनाऽपि प्रकारेण स्वव्रताच्च्यावितुमशक्यमस्ति; एवं तथाविधान्येषामपि।

यदुक्तं हिमवदाचार्यैः स्थविरावल्याम्—

"इइ सोच्चा सपइ-णवेण तत्थ अवतीणयरीए बहुणिग्गठ-णिग्गठीणं परिसा मेलिया", इति।

तत्रैव स्थविरावल्यामग्रेऽपि भिक्षुराजकारितागमवाचनां दर्शयन्—'सम्प्रतिवद्' इत्यतिदेशः कृतः।

तथा च तद्ग्रन्थः—

"पुव्वि तित्थयर-गणहर-परूविय पवयण वि बहुसो विणट्ठपाय ण ऊण तेण भिक्खुरायणिवेण जिणागवयण-सगहट्ठ जिणधम्मवित्थरट्ठ च सपइणिव्वुव्व समणाण णिग्गठाण णिग्गठीणं य एगा परिसा तत्थ कुमारी-पव्वय-तित्थम्मि मेलिया" इति ॥३८॥

अथ श्रीआर्यमहागिरेर्जन्मादिकालमानमेकया पथ्यार्ययाह—

महगिरिणो बाणिदे (१४५) वीरसिवाऽद्दे जणी सरिसिकु१७५मिए।
दिक्खा स जुगपहाणो, तिहिहत्थे२१५दिव मिसुजिण२४५मिए॥ ३९॥(पच्छाज्जा)

(प्रे०) "महागिरिणो" इत्यादि, "महगिरिणो" त्ति, महागिरेः = श्रीआर्यमहागिरिसूरेः "जणी" त्ति, जनि=जन्म "वीरसिवा" त्ति, वीरशिवात्=चतुर्विंशतितमार्हन्मोक्षगमनकालात् "बाणिंदे" त्ति, वाणाः=शराः पञ्च, इन्द्राः=शक्राश्चतुर्दश, एता अङ्कौ वामगत्या मीलितौ १४५। इति सङ्ख्याकौ यत्र तत्र वाणेन्द्रे=वीरसंवत् पञ्चचत्वारिंशशत १४५ तमे "ऽद्दे" त्ति, अब्दे=शारदे जायते स्म। "दिक्खा" त्ति, दीक्षा=श्रीमहागिरिसूरेर्व्रतग्रहणं "सरिसिकुमिए" त्ति, शराः=सायकाः पञ्च, ऋषयो=मुनयः सप्त ऋषीणां सप्तत्वात्, कु=भूमिरेका, इत्येतैरङ्कैः प्रातिलोम्यगत्या स्थापितैः १७५ मिते शरर्षिकुमिते=वीरसंवत्पञ्चसप्तत्यधिकशत१७५वर्षेऽभवत्। "स" त्ति स=श्रीआर्यमहागिरिः "तिहिहत्थे" त्ति तिथयः=पञ्चदश, हस्तौ=करौ प्रसिद्धौ वामेतरौ द्वौ, एता अङ्कौ पश्चानुपूर्व्या मिलितौ यत्र तत्र तिथिहस्ते=वीरसंवत्पञ्चदशोत्तरशतद्वये २१५ हायने 'जुगपहाणो" त्ति युगप्रधानो जातः। "इसुजिणमिए" त्ति इषवो=वाणाः पञ्च, जिना=ऋषभादयश्चतुर्विंशतिः, आभ्यामङ्काभ्यां वामगतिगदिताभ्यां २४५ मिते इषुजिनमिते=वीरसंवत्पञ्चचत्वारिंशदुत्तरद्विशततमेऽब्दे "दिव" त्ति दिवं=त्रिदशालयं जगाम।

एवञ्च श्रीआर्यमहागिरिपादास्त्रिंशद्३०वर्षाणि गृहपर्याये, चत्वारिंशद्४०वर्षाणि सामान्यव्रते, त्रिंशद्३०वर्षाणि युगप्रधानत्वे चेति निखिलायुः शत१००वर्षाणि परिभुज्य सुधाभुक्स्थानं जग्मुः।

पन्न्यासश्रीकल्याणविजयानामभिप्रायेण श्रीआर्यमहागिरिसूरेर्जन्मादिपर्याया क्रमेण वीरसवत्—१६७-२२७-२६७-२९७ सवत्सरेषु भवन्ति स्म।

चाडुपइं पारद्धा सा त रमिउं न सक्किया जाव। तत्तो पसतमोहा सुयधम्मा साविया जाया ॥५३॥
रायाभिओगविरहेण कोइ पुरिसो मए न रमियव्वो। इय सा अवभविरती पडिवज्जइ वज्जियवियारा ॥५४॥
उवसमियसीहसप्पा चउमासोवासिया गुरुसयासे। कयकूवफलावासो तइओवि मुणी समायाओ ॥५५॥
अब्भुट्ठिया मणाग दुक्करकारीण सागय तुब्भ। आभासिया कया जा गुरुणा ता थूलभद्दो वि ॥५६॥
गणियागिहम्मि पइवासरम्मि गिण्हिय मणुन्नमाहारं। भुंजंतो रम्मतणू समाहिगुणओ य सपन्नो ॥५७॥
अइदुक्करदुक्करकारयस्स अब्भुट्ठिऊण सप्पणय। भणिय गुरुणा तय सागय ति ते मच्छर पत्ता ॥५८॥
तिन्नि वि भणति खमगा? पेच्छह सूरी कहं इम भणइ। एस अमच्चस्स सुओ अतओ वि पससिओ एव॥५९॥
मणमज्झठवियरोसेण पाउसम्मी समागए दुइए। सीहगुहाखमगेण भणिओ सूरी अह जामि ॥६०॥
उवकोसाइ गिहम्मी कोसावेसाइ लहुगभइणीए। त बोहेमि किमूणो कोवि इह थूलभद्दाओ ॥६१॥
उवउत्तेणं गुरुणा णाय पार न पाविही एसो। पडिसिद्धो तह वि गओ तो मग्गियलद्धवसहीओ ॥६२॥
लग्गो वासारत्त काउं सा महिगा सुणइ धम्म। अइफारसरीरा भूसिया य अविभूसिया चेव ॥६३॥
सो मयणगोलगो इव जलणसमीवे तओ पलोयंतो। जाओ अईवदढभाववज्जिओ फुरियकामसरो ॥६४॥
वज्जियलज्जो अज्झोववण्णओ मग्गिउ तओ लग्गो। निउणमईए तीए भणिओ किं देसि त अम्ह ?॥६५॥
सो भणइ नत्थि मे किंचि जेण णिग्गथओ अहं भद्दे। तह वि य भणसु किमिच्छसि लक्ख निसुय च तेणेव ॥६६॥

नेवालजणवए जइ रायाऽपुव्वस्स साहुणो देइ। कबलरयण सयसहस्समोल्लमेसो तहिं जाइ ॥६७॥
लद्ध तं तत्थ महापमाणवंमस्स नूमिय मज्झ। ठइय छिद्दे जइ त न को वि किंचि वि वियाणाइ ॥६८॥
नगिगणप्पाओ जा एइ एक्कओ विस्सम अकुणमाणो। ता कत्थवि य पएसे सउणो वासइ जहा लक्खो ॥६९॥
एसो इहेति वुत्त चोरवई सउणरुयवियारं तु। जा पासइ ता पासइ एक्क चिय इतय समणं ॥७०॥
अवहीरियसउणरुओ जा चिट्ठइ ता पुणोवि वाहरइ। हत्थगओ सयसहसो एसो तुब्भं अइगओ त्ति ॥७१॥
सजायकोउगेण भणिओ चोराहिवेण सो गंतु। ज इत्थमत्थि तत्त भयरहियो तं कहेसु तुम ॥७२॥
कहिंय कबलरयण वसतो एत्थ अत्थि तो मुक्को। आगतु गणियाए समप्पई जाव ता तीए ॥७३॥
गिहखालम्मि निहित्त निरिक्खमाणस्स तक्खण तस्स। भणइ तओ कहमेय रयणमिण मइलिय तुमए? ७४॥
मुद्धो सि तुम सोयसि जमेयमप्पाणग न उण समण ! । पयाओ वि विलीण रयणसमो भ जमणुसरसि॥७५॥
अइनिप्पिवासमेसो तीए पडिचोइओ पडिनियत्तो। इच्छामो अणुसट्ठिं भणिय गओ गुरुसमीवम्मि ॥७६॥
अइदुक्करदुक्करकारगो त्ति एव स थूलभद्दमुणी। चिरपरिचिया अभद्दी सम्म अहियासिया इमिणा ॥७७॥
तुमए अदिट्ठदोसा उक्कोसा जाइया क्यवया य। निब्भच्छिओ पवन्नो पच्छित्त चित्तसारंति ॥७८॥" इति।

तस्मिंश्च काले द्वादशवर्षमितो दुष्कालो जातः। ततो मुनिगणस्येतस्ततो गमनात् सूत्राध्ययने महती स्खलना [illegible]ाता। ततो दुष्कालोपरमे सति श्रीसङ्घेन पाटलीपुत्रनगरमध्ये श्रीस्थूलभद्रप्रमुखानां मुनीनां प्रथमागमवाचना श्रुतरक्षार्थं कारिता। तस्यां वाचनायां मुनिभिरेकादशाङ्गानि व्यवस्थापितानि। द्वादशं दृष्टिवादं न कोऽपि वेत्ति। ततस्तद्रक्षणार्थं तदानी द्वादशाङ्गविदो नेपालदेशस्थिता भद्रबाहुस्वामिनः साधुसङ्घाटकं प्रेष्य मुनीनां दृष्टिवादाध्यापनार्थं श्रीसङ्घेनाऽऽहूता अभणन् "महाप्राणध्यान प्रविष्टोऽस्मि [illegible]ोऽधुना वाचनां दातुं न [illegible]मः" इति, ततः पुनरपि सङ्घेन मुनिसङ्घाटकं प्रेष्योचे 'सङ्घाज्ञाविलोपने को दण्डः" इति।

यदुक्तं हिमवदाचार्यैः स्थविरावल्याम्—

"इइ सोच्चा सपइ,णवेण तत्थ अवतीणयरीए बहुणिग्गंठ-णिग्गंठीण परिसा मेलिया", इति।
तत्रैव स्थविरावल्यामग्रेऽपि भिक्षुराजकारितागमवाचनां दर्शयन्–'सम्प्रतिवद्'इत्यतिदेशः कृतः।

तथा च तद्ग्रन्थः–

"पुव्वि तित्थयर-गणहर-परूविय पवयण त्ति वहुसो विणट्ठपाय णाऊण तेण भिक्खुरायणिवेण जिणागयण-सगहट्ठ जिणधम्मवित्थरट्ठ च संपइणिवुव्व समणाण णिग्गंठाण णिग्गंठीणं य एगा परिसा तत्थ कुमारी-पव्वय-तित्थम्मि मेलिया" इति ॥३८॥

अथ श्रीआर्यमहागिरेर्जन्मादिकालमानमेकया पथ्यार्ययाह–

महगिरिणो बाणिंदे (१४५) वीरसिवाऽद्दे जणी सरिसिकु१७५मिए।
दिक्खा स जुगपहाणो,तिहिहत्थे२१५दिवमिसुजिण२४५मिए॥ ३९॥(पच्छाज्जा)

(प्रे०) "**महागिरिणो**" इत्यादि, "**महगिरिणो**" त्ति, महागिरेः = श्रीआर्यमहागिरिसूरेः "**जणी**" त्ति, जनि=र्जन्म "**वीरसिवा**" त्ति, वीरशिवात्=चतुर्विंशतितमार्हन्मोक्षगमनकालात् "**बाणिंदे**" त्ति, बाणाः=शराः पञ्च, इन्द्राः=शक्राश्चतुर्दश, एता अङ्कौ वामगत्या मीलितौ १४५। इति सङ्ख्याकौ यत्र तत्र बाणेन्द्रे=वीरसंवत् पञ्चचत्वारिंशशत १४५ तमे "ऽद्दे"त्ति, अब्दे=शारदे जायते स्म। "**दिक्खा**" त्ति, दीक्षा=श्रीमहागिरिसूरेर्व्रतग्रहणं "**सरिसिकुमिए**" त्ति, शराः=सायकाः पञ्च, ऋषयो=मुनयः सप्त ऋषीणां सप्तत्वात्, कु=भूमिरेका, इत्येतैरङ्कैः प्रातिलोम्यगत्या स्थापितैः १७५ मिते शरर्षिकुमिते=वीरसंवत्पञ्चसप्तत्यधिकशत१७५वर्षेऽभवत्। "**स**" त्ति स=श्रीआर्यमहागिरिः "**तिहिहत्थे**"त्ति तिथयः = पञ्चदश, हस्तौ=करौ प्रसिद्धौ वामेतरौ द्वौ, एता अङ्कौ पश्चानुपूर्व्या मिलितौ यत्र तत्र तिथिहस्ते=वीरसंवत्पञ्चदशोत्तरशतद्वये २१५ हायने। '**जुगपहाणो**" त्ति युगप्रधानो जातः। "**इसुजिणमिए**" त्ति इषवो = बाणाः पञ्च, जिना = ऋषभादयश्चतुर्विंशतिः, आभ्यामङ्काभ्यां वामगतिगदिताभ्यां २४५ मिते इषुजिनमिते = वीरसंवत्पञ्चचत्वारिंशदुत्तरद्विशततमेऽब्दे "**दिव**" त्ति दिवं = त्रिदशालयं जगाम।

एवञ्च श्रीआर्यमहागिरिपादास्त्रिशद्३०वर्षाणि गृहपर्याये,चत्वारिंशद्४०वर्षाणि सामान्यव्रते, त्रिंशद्३०वर्षाणि युगप्रधानत्वे चेति निखिलायुः शत१००वर्षाणि परिभुज्य सुधाभुक्स्थानं जग्मुः।

पन्न्यासश्रीकल्याणविजयानामभिप्रायेण श्रीआर्यमहागिरिसूरेर्जन्मादिपर्याया क्रमेण वीरसवत्–१६७-२२७-२६७-२९७ सवत्सरेषु भवन्ति स्म।

आर्यभद्रयशोभ्यो भारद्वाजगोत्रेभ्य उडुपालितगणो निर्गतः, तस्य चेमा चतस्रः शाखाः–१ चम्पार्जिका, २ भद्रार्जिका, ३ काकन्दिका, ४ मेखलार्जिका चेति ।

तस्य चेमानि त्रीणि कुलानि–१ भद्रयशस्कम्, २ भद्रगुप्तकम्, ३ यशोभद्रक चेति ।

आर्यकामर्द्धिभ्यः कोडालगोत्रेभ्यो वेशपालितगणो निर्गतः, तस्य चेमाश्चतस्रः शाखाः–१ श्रावस्तिका, २ राज्यपातिता, ३ अन्तरार्निका, ४ क्षेमलार्जिका चेति ।

तस्य चत्वारि कुलानि पुनरिमानि–१ गणिकम्, २ मेघालिकम्, ३ कामर्द्धिकम्, ४ इन्द्रपुरकं चेति ।

आर्यसुस्थितसुप्रतिबुद्धेभ्यः कोटिककाकन्दिकेभ्यो व्याघ्रापत्यगोत्रेभ्यः कोटिकाख्यो गणो निर्यातः । तस्य चतस्रः शाखाश्चेमाः–१. उच्चनागरी, २. विद्याधरी ३. वज्री, ४, माध्यमिका चेति ।

तस्य चत्वारि कुलानि पुनरिमानि–१. ब्रह्मलिप्यम्, २. वस्त्रलिप्यम्, ३ वाणिज्यम्, ४. प्रश्नवाहनकं चेति ।

आर्यर्षिगुप्तेभ्यो वाशिष्टगोत्रेभ्यो मानवाभिधो गणो निर्ययौ । तस्य चेमाश्चतस्रः शाखाः–१. काश्यपार्जिका २. गौतमार्जिका, ३. वाशिष्ठिका, ४. सौराष्ट्रिका चेति ।

तस्य त्रीणि कुलानि पुनरिमानि–१. ऋषिगुप्तकम्, २. ऋषिदत्तिकम् ३. अभिजयन्तं चेति ।

आर्यश्रीगुप्तेभ्यो हारितायगोत्रेभ्यश्चारणगणो निर्गतः । तस्येमाश्चतस्रः शाखाः–तद्यथा १. हारितमालाकारी २. सांकाश्यिका, ३. गवेधुका, ४. विद्यनागरी चेति ।

तस्य सप्त कुलानि पुनरिमानि–१. वस्त्रलेप्यम्, २. प्रीतिधार्मिकम्, ३. हारित्यम् ४. पौष्यमित्रेयम् ५. मालिद्यम्, ६. आर्यवेटकम्, ७. कृष्णसखं चेति ।

तथा चोक्तं श्रीकल्पसूत्रे–

"थेरस्स ण अज्जसुहत्थिस्स वासिट्ठसगुत्तस्स इमे दुवालस थेरा अतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया हुत्था, त जहा–थेरे अ अज्जरोहणे १ भद्दजसे२ मेहगणी ३ य कामिड्ढी ४ । सुट्ठिय ५सुप्पडिबुद्धे ६ रक्खिय ७ रोहगुत्ते ८ आ॥१॥इसिगुत्ते ९ सिरिगुत्ते१०,गणी य बभे११गणी य तह सोमे१२ । दस दो अ गणहरा खलु, एए सीसा सुहत्थिस्स ॥२॥थेरेहिंतो ण अज्जरोहणेहिंतो ण कासवगुत्तेहिंतो ण तत्थ उद्देहगणे नाम गणे निग्गए, तस्सिमाओ चत्तारि साहाओ निग्गयाओ,छच्च कुलाइ एवमाहिज्जति।से कि त साहाओ ? साहाओ एवमाहिज्जति, त जहा उदु वरिज्जिया १, मासपूरिआ२,मइपत्तिया३ पुण्णपत्तिया४,से त साहाओ॥ से किं त कुलाइ ?कुलाइ एवमाहिज्जति तजहा पढम च नागभूय१,बिअ पुण सोमभूइयर २ होइ। अह उल्लगच्छ तइअ ३ चउत्थय हत्थलिज्ज ४ तु॥१॥ पचमग नदिज्ज छट्ठ पुण पारिहासय ६ होइ । उद्देहगणस्सेए छच्च कुला हुति नायव्वा ।।२।। थेरेहिंतो ण सिरिगुत्तहिंतो हारियायसगुत्तेहिंतो इत्थ ण चारणगणे नाम गणे निग्गए, तस्स ण इमाओ चत्तारि साहाओ,सत्त य कुलाइ एवमाहिज्जति,से किं त साहाओ ? साहाओ एवमाहिज्जति,

अथ श्रीस्थूलभद्रस्वामिनः स्वर्गगतेरनन्तरं व्युच्छिन्नानि वस्तूनि प्रकटयन् पथ्यायां दर्शयति-

तत्तो चउरो अंतिमपुव्वाइं च महपाणज्झाणं च ।
समचउरंसं च वइररिसहणारायं च वुच्छिन्नं ॥३५॥ (पथ्या)

(प्रे०) "तत्तो" इत्यादि, "तत्तो" त्ति ततः=श्रीस्थूलभद्रस्वामिनः स्वर्गवासानन्तरं "चउरो अंतिमपुव्वाइ च" त्ति चत्वारि=चतुःसङ्ख्याकान्यन्तिमपूर्वाणि=कल्याणप्रवाद-प्राणावायप्रवाद-क्रियाविशाल बिन्दुसारलक्षणानि-इहोत्तरत्र च चकारः समुच्चयार्थः,' महपाण-झाणं च" महाप्राणध्यानं= पदैकदेशे ऽपि पदसमुदायो वर्तते ।, इति न्यायेन सूक्ष्ममहाप्राण-संज्ञकं ध्यानम् । यद्वशेनान्तर्मुहूर्तमात्रे काले चतुर्दशाऽपि पूर्वाणि परावर्तयितुं शक्यन्ते । "समचउरसं" ति समचतुरस्रं=पदैकदेशे पदसमुदायस्योपचारात् समचतुरस्रसंस्थानम्=प्रथमाकृतिः, "वइररिसहणराय च" ति वज्रर्षभनाराचं=' भीमो भीमसेन " इति न्यायाद् वज्रर्षभनाराचसंहननम्=आद्यसंहननं "वुच्छिन्नं" त्ति व्युच्छिन्नम् = विच्छेदं गतम् ।

तथा चोक्त विचारसारप्रकरणे-

"चउदसपुव्वुच्छेओ संघयण पढमयं य सठाणं । सुहुममहापाणाणि य छिन्नाइ थूलभद्द मि॥५२३॥" इति ।

कालसप्ततिकाप्रकरणे-ऽपि-

'तुट्टिंसु थूलभद्दे, दो सयपनरेहिं पुव्वअणुओगो । सुहुममहापाणाणि अ आइमसघयणसंठाणा॥ ॥" इति ।

एवम यत्रा-ऽपि । **यदुक्तम्-**

पुव्वाण अणुओगो सघयण पढमय च सठाणं । सुहुममहापाणझाण वुच्छिन्ना थूलभद्दम्मि॥ ॥"(२०स८-:६६)

श्रीप्रभवस्वामिन आरभ्य श्रीस्थूलभद्रस्वामिनं यावत् षट् श्रुतकेवलिनोऽभूत् । सुधर्मस्वामि-जम्बुस्वामिनौ च सिद्धिगामिनौ । **यदुक्तमभिधानचिन्तामणौ-**

"केवली चरमो जम्बूस्वाम्यथ प्रभवप्रभु । शय्यम्भवो यशोभद्र सम्भूतविजयस्तत ॥३३॥
भद्रबाहु स्थूलभद्र, श्रुतकेवलिनो हि षट् ।" इति ।

अथान्तरे तृतीयोऽव्यक्ताभिधानो निह्नवो बभूव । तद्व्यतिकरस्तु संक्षेपत एवम्-

श्वेतविकायां पुर्यां पौलापाढचैत्ये बहुशिष्यवृत आषाढचार्यो वाचनां ददाति । चैकस्यां रात्रौ हृदयशूलेन काल कृत्वा सौधर्मसुरालये नलिनीगुल्मविमान उत्पन्नः । गच्छमध्ये केनाऽपि न ज्ञातः । ततोऽवधिना पूर्वव्यतिकर ज्ञात्वा शिष्यानुकम्पया पूर्वशरीरमधिष्ठाय वाचनां समाप्य सत्यव्यतिकरं शिष्यान् वेदयित्वा क्षमयित्वा च स्वर्गं गतः । ततस्तस्य शिष्याः "को जाना-

वोच्छिज्जिस्ससि एवं जाव वेमाणिय त्ति । एवं बीआइसमएसु वि वत्तव्वं" इत्यालापकं पठन्नस्यालापकस्य प्रत्युत्पन्नसमयनारकाः सर्वेऽपि तावद्व्यवच्छेदं प्राप्स्यन्ति, ततश्च कुतः सुकृतदुष्कृत-(शुभाऽशुभ)कर्मफलवेदनम्, उत्पादाऽनन्तरं सर्वजीवानां नाशादित्येवमादि स्वमतिचिन्तितं स्वमतिविकल्पितश्चाऽर्थं प्ररूपयन् गुरुणा युक्तिभिः प्रबोधितोऽपि यावत्कथमपि न प्रबुद्धस्तत उद्घाट्य सङ्घबाह्यः कृतः सः काम्पिल्यपुरनगरं (राजगृहनगरी)गतस्तत्र च सपरिवारः स खण्डरक्षाख्येन श्रावकेण ज्ञातनिह्नवेन मारयितुमारब्धः । ततो भीतैस्तैरुक्तम् "त्वं श्रावकः **श्रमणान् कथं मारयसि" ततोऽसौ न्यगदत्-"ये श्रमणास्ते युष्मत्सिद्धान्तेन समुच्छिन्नाः, यूयन्तु चौराद्यन्यतराः केचिदिति मारयामि"** । ततश्च सम्बुद्धास्ते दत्तमिथ्यादुष्कृता गुरुचरणं गताः ।

तथैव प्रतिपादितं विशेषावश्यके २३९० गाथावृत्तौ ।

अयञ्चाश्वमित्रनामा चतुर्थनिह्नवः समुच्छेदवादी वीरसंवत् २२० वर्षे जातः ।

तथा चोक्तं विशेषावश्यके—

"वीसा दो वाससया तइआ सिद्धिं गयस्स वीरस्स । सामुच्छेइयदिट्ठी मिहिलपुरीए समुप्पन्ना ॥२३८९॥" इति ।

अमुष्य मतस्य शङ्कासमाधानादिविशेषजिज्ञासुना तु **विशेषावश्यके सटीकभाष्यगाथाः** २३९१ तः प्रारभ्य २४३३ पर्यन्ता द्रष्टव्या । ततोऽपि विस्तरार्थिना पुनः **सम्मतितर्क**प्रमुखाः प्रमाणग्रन्था आलोचनीयाः ।

अथ युगपत्क्रियाद्वयाऽनुभववादिपञ्चमनिह्नवोत्पत्तिं वक्ष्ये । तथाहि—

आर्यमहागिरिशिष्यस्य धनगुप्तस्य शिष्य आर्यगङ्गाभिध आचार्य उल्लुकानद्याः पूर्वतटे स्थितः । तद्गुरवश्चाऽपरतटे सन्ति । ततोऽन्यदा सूरिवन्दनार्थं शरत्समये नदीमुत्तरन् खल्वाटः स शीर्षे तापेनोष्णतां, पादौ च शीतलजलेन शैत्यमनुभवंस्तदानीञ्च मिथ्यात्वोदयाद्विचारितवान्— शास्त्रे एकस्मिन्समये युगपत्क्रियाद्वयवेदनं निषिद्धमप्यहन्तु क्रियाद्वयं साक्षादनुभवामि ततो नेदं सम्यगिति विचिन्त्य गुरुं ज्ञापयामास गुरुणा युक्तिभिः प्रज्ञाप्यमानोऽपि यदा कथमपि कदाग्रहं नाऽमुञ्चत्तदा सङ्घबाह्यो विहितः स विहरश्चैकदा राजगृहनगर्यां मणिनागचैत्यसमीपे स्थितः सभासमक्षं युगपत्क्रियाद्वयवेदनं प्ररूपयामास । तच्च श्रुत्वा रुष्टो मणिनागस्तमकथयत् । **"अरे दुष्ट ! इमां कूटप्ररूपणां त्यजाऽन्यथा त्वां नाशयिष्यामि । यतोऽत्रैव समवसृतेन वीरविभुनैकसमय एकस्या एव क्रियाया वेदनं प्ररूपितम्, तच्च मयेहस्थितेन श्रुतम्, भवान् किं ततोऽप्यधिकः"** इत्यादिकथनेन भीतः प्रतिबुद्धश्च स मिथ्यादुष्कृतं दत्त्वा गुरुसमीपे प्रतिक्रान्तः ।

स द्विक्रियवादी पञ्चमनिह्नव आर्यगङ्गनामा सूरिर्वीरसंवत् २२८ वर्षे सञ्जातः ।

तथा च न्यगादि गुर्वावल्याम्–

"महागिरिस्तत्प्रथमो विनेय' श्रियेऽमवद्यो जिनकल्पिकल्प ॥१६॥"इति। **तथा चान्यत्राऽप्युक्तम्–**

△'वुच्छिन्ने जिणकप्पे काही जिणकप्पतुलणमिह धीरो न वंदे मुणिवसह महागिरिं परम-चरणधरं ॥१॥ जिणकप्पपरीकम्मं जो कासी जस्स सथवमकासी। सिट्ठिघरम्मि सुहत्थी त अज्जमहागिरिं वंदे॥२॥' इति।

अन्यः कः ? इत्याह–**रंकणिवकारग हत्थिमुणिवई**" त्ति सुहस्ती = तन्नामा चासौ मुनिपति=राचार्यः सुहस्तिमुनिपतिः = आर्यमहागिरेर्लघुभ्राता वासिष्ठगोत्रः, नृपस्य=राज्ञः करोतीति कारको नृपकारकः, रङ्कस्य = पूर्वभवद्रमकस्य नृपकारकः = नृपतेर्विधायको रङ्कनृपकारकः, रङ्कान्नृपतेर्विधातेत्यर्थः।

तथाहि–पूर्वभवे द्रमकं हि भोजनार्थं दीक्षादानेनैकदिवससत्काव्यक्तसामायिकफलरूपेणोद्भवे सम्प्रतिनामानं त्रिखण्डराज्यश्रियोऽधिपतिं कारितवान्। रङ्कनृपकारकः चासौ सुहस्तिमुनिपतिः, रङ्कनृपकारकसुहस्तिमुनिपतिः। **तथा चोक्तम्–**

"वंदे अज्जसुहत्थि मुणिपवरं जेण सपई राया। रिद्धिं सव्वपसिद्धिं चारित्ता पाविओ परम ॥१।"इति।

तथैव श्रीहीरसौभाग्येऽपि निगदितम्–

'मरुद्‌गृहादार्यसुहस्तिमूर्तिर्भूमौ मरुद्‌वृक्ष इवोत्ततार।
कृपार्णवेन द्रमकोऽपि येन त्रिखण्डभूमिप्रभूतामलम्भि ॥ ३८ ॥" इति।

तथा चाभाणि श्रीउपदेशपदवृत्तावमुनोर्विस्तरतो वृत्तान्तः–

"एगो महागिरी विव विसमपरीसहसमीरणगणाए सूरी महागिरी गरुयगरिमगुणजियनहाभोगो ॥७॥ सव्वजियाण सुहत्थी सुहत्थिगइगमणपरजियजणोहो। दुइओ अज्जसुहत्थी होत्था मुणिपुंगवो तस्सो ॥८॥ दुद्धोदहिजलसारिच्छकित्ति पब्भारपूरियदियता। दोन्निवि हरहारतुसारतारयाकारसीलगुणा ॥९॥ णाणाविहगामागरपुरसठियभव्वकमलसडाण। मायडमडलसमा दोण्णिवि पडिबोहकरणम्मि ॥१०॥ अगणियमाहप्पाण सुयरयणाण जणम्मि दुलहाणं। ते दोन्नि वि रोहणसेलव णिभूया गुणाभूया ॥११॥ पत्तम्मि चरमकाले भयव सिरिथूलभद्दगणनाहो। जु त्रमणुओगणुन्न दुभागकयगच्छणुन्न च ॥१२॥ दाऊणमेसिमेत्तो खमित्तु खामियसमत्तजियवग्गो। परिसुद्धाणसणाओ परासु दिव्व समुप्पन्नो ॥१३॥ अणहीयसेससुत्तस्स सूरिणो अह सुहत्थिनामस्स। पत्ता उवज्झायत्तं महागिरी विणयनयनिहिणो ॥१४॥ अह अन्नया सुहत्थी मुणिवसहो भिवपयट्टमत्थाहो। कोसबीएँ पुरीए विहरित्था समणसघजुओ ॥१५॥ तत्थ पहाणो लोओ नरनाहाई पभूयभत्तीए। पइदिवस वंदणधम्मसवणगुणणपरो जाओ ॥१६॥ एगो य तत्थ दमगो सो सूरिसमीवमागओ सतो। पुरलोएण सहुग्गयरोमचे तोसमुव्वहइ ॥१७॥ अइतिक्ख दुब्भिक्ख देसे सव्वत्थ वट्टए तइया। पाएण जणो सयलो अइदुल्लहभोयणो जाओ ॥१८॥ एगत्थ घणवइगिहे भिक्खट्ठा साहुसूरिसघाडो। दिट्ठो तेण पविट्ठो दमगेण कह वि चिरकाला ॥१९॥ तम्मग्गेणऽणुलग्गो ते साहू सिंहकेसराईहिं। पडिलाभियासपणय निरिक्खमाणस्स तस्स तओ ॥२०॥ तग्गिहनिग्गयमित्ता ते तेण पणामपुव्वग भणिया। एतो लद्धाओ भोयणाओ देहेह मे किंचि ॥२१॥

△ इद च श्लोकद्वय हिमवदाचार्यनिर्मितस्थविरावल्या कल्पसूत्रसुबोधिकावृत्तौ च दृश्यते।

त्ति सुहस्तिनः=श्रीसुहस्तिसूरेः "पट्टवत्तम्मि"त्ति पट्ट एव वक्त्रम्=आस्यम्=पट्टवक्त्रम् तस्मिन् पट्टवक्त्रे "लोअणाइं मिव" त्ति, प्राकृतत्वाद् द्विवचनस्थाने बहुवचनं लोचने = अक्षिणी इव "जे"त्ति, बहुवचनं पूर्ववद् ,यौ "सोहीअ"त्ति, अशोभताम् "ते"त्ति, तौ कोटिशः सूरिमन्त्र-जापात् कौटिकौ, काकन्द्यां नगर्यां जातत्वाच्च काकन्दिकौ "सुट्ठिअचग्वो" त्ति, सुस्थिताख्यः= श्रीसुस्थितनामा "+सुपडिबुद्धगो"त्ति, ▽ सुप्रतिबुद्ध एव सुप्रतिबुद्धकः,स्वार्थे कप्रत्ययः सुप्रति-बुद्धाऽभिधः। अन्ये कल्पवृत्तिकारादयस्तु कोटिक काकन्दिकाविति नामनी सुस्थितौ=सुविहितक्रिया-निष्ठौ, सुप्रतिबुद्धौ=सुज्ञाततत्त्वौ, इमे विशेषणे मन्यन्ते । "गुरू" त्ति गुरू=आचार्यौ "भव्वाण" त्ति भव्यानां=जिनमतरतानां "स" ति श=शर्म "दिंतु" त्ति दत्ताम्=दानविषयीकुरुताम् ।

आर्यसुस्थित=सुप्रतिबुद्धयोः प्रधानाः शिष्याः पञ्चाभवन् । तद्यथा-१ * आर्येन्द्र-दिन्नः, २ आर्यप्रियग्रन्थो मध्यमायाः शाखायाः प्रवर्तकः, ३ आर्यविद्याधरगोपालः काश्यपगोत्रो विद्याधर्याः शाखायाः प्रवर्तकः, ४. आर्यऋषिदत्तः, ५ △ आर्यार्हद्दत्तश्चेति ।

तथा च गदितं श्रीकल्पसूत्रे-

"थेराणं सुट्ठियसुप्पडिबुद्धाणं कोडियकाकंदगाणं वग्घावच्चसगुत्ताणं इमे पंच थेरा अंतेवासी अहा-वच्चा अभिण्णाया हुत्था,तं जहा-थेरे अज्जइंददिन्ने १पियग्गथेरे थेरे विज्जाहरगोवाले कासवगुत्ते णं ३ थेरे इसिदिन्ने ४ थेरे अरिहदत्ते ५ थेरेहिंतो णं पियग्गथेरेहिंतो इत्थ णं मज्झिमा साहा निग्गया, थेरेहिंतो णं विज्जाहरगोवालेहिंतो कासवगुत्तेहिंतो इत्थ णं विज्जाहरी साहा निग्गया ॥" इति ॥४२॥

अथ श्रीसुस्थितसूरेर्जन्मादिपर्यायकालमानं दर्शयन् पथ्यागीतिमाह—

वीराऽग्गिजुगकर२४३मिए-ऽद्दे सुट्ठिअसूरिणो जणी दिक्खा ।
गइणक्खत्ते२७४ सूरी,कुणिहिकरे२९१ स खगवणिहविस्से३३१ खं ॥४३॥

(पच्छागीई)

(प्रे०) "वीरा" इत्यादि, "सुट्ठिअसूरिणो" त्ति, सुस्थितसूरेः "जणी" त्ति जनिः =उद्भवः "वीरा" त्ति, वीराद्=वीरप्रभुनिर्वाणसमयात् "अग्गिजुगकरमिए" त्ति अग्न-यस्त्रयः, युगानि चत्वारि, करौ=हस्तौ द्वौ, एभिरङ्कैर्वामगत्या स्थापितैः २४३ इति संख्यया मिते अग्नियुगकरमिते "ऽद्दे"त्ति अब्दे=वर्षेऽभूत् ।"गइणक्खत्ते"त्ति, गतयो नारक तिर्यग्-नर-सुरलक्षणाश्चतस्रस्तेन चतुरङ्कः, नक्षत्राणि-अश्विनी-भरणी-कृत्तिका-रोहिणी-पुनर्वसु-मृगशीर्षा-ऽऽर्द्रा-पुष्या-श्लेषा मघा-पूर्वफाल्गुन्यु त्तरफाल्गुनी हस्ता-चित्रा स्वाती-विशाखा-ऽनुराधा- ज्येष्ठा--मूल-पूर्वाऽषाढो-त्तराषाढा श्रवण-धनिष्ठा शतभिषक्-पूर्वभद्रपदो-त्तरभद्रपदा-रेवतीलक्षणानि सप्तविंशतिः, तेन सप्तविंशत्यङ्कः । एतौ अङ्कौ यस्मिन्नब्दे तस्मिन् गतिनक्षत्रे वामगतिलब्धे वीरसंवत्२७४वर्षे

* आर्येन्द्रदत्त" इत्यपि । △ "आयार्हद्दत्त" इत्यपि ।

तथा च न्यगादि गुर्वावल्याम्—

"महागिरिस्तत्प्रथमो विनेय' श्रियेऽभवद्यो जिनकल्पिकल्प ॥१६॥" इति। **तथा चान्यत्राऽप्युक्तम्—**

△'वुच्छिन्ने जिणकप्पे काही जिणकप्पतुलणमिह धीरो न वंदे मुणिवसह महागिरिं परम-चरणधर ॥१॥ जिणकप्पपरीकम्मं जो कासी जस्स सथवमकासी। सिट्ठिघरम्मि सुहत्थी त अज्जमहागिरिं वंदे॥२॥" इति। अन्यः कः ? इत्याह—**रंकणिवकारग हत्थिमुणिवई"** त्ति सुहस्ती = तन्नामा चासौ मुनि-पति=राचार्यः सुहस्तिमुनिपतिः = आर्यमहागिरेर्लघुभ्राता वासिष्ठगोत्रः, नृपस्य=राज्ञः करोतीति कारको नृपकारकः, रङ्कस्य = पूर्वभवद्रमकस्य नृपकारकः = नृपतेर्विधायको रङ्कनृपकारकः, रङ्कान्नृपतेर्विधातेत्यर्थः।

तथाहि—पूर्वभवे द्रमकं हि भोजनार्थं दीक्षादानेनैकदिवसत्काव्यक्तसामायिकफल-रूपेणेहभवे सम्प्रतिनामानं त्रिखण्डराज्यश्रियोऽधिपतिं कारितवान्। रङ्कनृपकारकः चासौ सुहस्तिमुनिपतिः, रङ्कनृपकारकसुहस्तिमुनिपतिः। **तथा चोक्तम्—**

"वंदे अज्जसुहत्थि मुणिपवर जेण सपई राया। रिद्धिं सव्वपसिद्धिं चारित्ता पाविओ परमं ॥१॥" इति।

तथैव श्रीहीरसौभाग्येऽपि निगदितम्—

'मरूद्गृहादार्यसुहस्तिमूर्तिर्भूमौ मरूद्वृक्ष इवोत्ततार।
कृपार्णवेन द्रमकोऽपि येन त्रिखण्डभूमिप्रभूतामलम्भि ॥ ३८ ॥ " इति।

तथा चाभाणि श्रीउपदेशपदवृत्तावमुणोर्विस्तरतो वृत्तान्तः—

"एगो महागिरी विव विसमपरीसहसमीरणगणाण सूरी महागिरी गरुयगरिमगुणजियनहाभोगो ॥७॥ सव्वजियाण सुहत्थी सुहत्थिगइगमणरजियजणोहो। दुइओ अज्जसुहत्थी होत्था मुणिपुंगवो तत्तो ॥८॥ दुद्धोदहिजलसारिच्छकित्ति पब्भारपूरियदियंता। दोन्निवि हरहारतुसारतारयाकारसीलगुणा ॥९॥ णाणाविहगामागरपुरसंठियभव्वकमलसंडाण। मायंडमंडलसमा दोण्णिवि पडिबोहकरणम्मि ॥१०॥ अगणियमाहप्पाण सुयरयणाण जणम्मि दुलहाण। ते दोन्नि वि रोहणसेलख णिभूया गुणरभूया ॥११॥ पत्तम्मि चरमकाले भयवं सिरिथूलभद्दगणनाहो। जुगवमणुओगणुन्न दुभागकयगच्छणुन्नं च ॥१२॥ दाऊणमेसिमेत्तो खमित्तु खामियसमत्तजियवग्गो। परिसुद्धाणसणपरो परासु दिव्वं समुप्पन्नो ॥१३॥ अणहीयसेससुत्तस्स सूरिणो अह सुहत्थिनामस्स। पत्त उवज्झायत्त महागिरी विणयनयनिहिणो ॥१४॥ अह अन्नया सुहत्थी मुणिवसहो सिवपयट्टमत्थाहो। कोसंबीएँ पुरीए विहरित्था समणसंघजुओ ॥१५॥ तत्थ पहाणो लोओ नरनाहाई पभूयभत्तीए। पइदिवस वंदणधम्मसवणपुयणपरो जाओ ॥१६॥ एगो य तत्थ दमगो सो सूरिसमीवमागओ सतो। पुरलोएण सहुग्गयरोमचे तोसमुव्वहइ ॥१७॥ अइतिक्ख दुब्भिक्ख देसे सव्वत्थ वट्टए तइया। पाएण जणो सयलो अइदुल्लहभोयणो जाओ ॥१८॥ एगत्थ धणवइगिहे भिक्खट्ठा साहुसूरिसंघाडो। दिट्ठो तेण पविट्ठो दमगेण कह वि चिरकाला ॥१९॥ तम्मग्गेणऽणुलग्गो ते साहू सिंहकेसराईहिं। पडिलाभियासपणयं निरिक्खमाणस्स तस्स तओ ॥२०॥ तग्गिहनिग्गमित्ता ते तेण पणामपुव्वग भणिया। एतो लद्धाओ भोयणाओ देहेह मे किंचि ॥२१॥

△ इद च श्लोकद्वय हिमवदाचार्यनिर्मितस्थविरावल्यां कल्पसूत्रसुबोधिकावृत्तौ च दृश्यते।

दीनां शतत्रिकम्, आर्यापोइणीयादिप्रभृतीनामार्याणां त्रीणि शतानि भिक्षुराज-श्रीचन्द्र-चूर्णक-शैलकादयः श्रमणोपासकाः सप्त शतानि, सप्तशतानि च भिक्षुराजनृपपत्नीपूर्णमित्रादयः श्रमणोपासिका आसन् ।

तथा चोक्तं श्रीहिमवदाचार्यैरचितस्थविरावल्याम्-

"एसो ण भिक्खुराओ अईव परक्कमजुओ गयाइसेणक्कतमहियलमंडलो मगहाहिव पुप्फमित्त णिव अहिणिक्किवत्ता णियाणम्मि ठाइत्ता पुव्वि णदणिग्गहियुसभेसम्मोवण्णपडिम पाडलिपुत्ताओ पच्छा घित्तूण णियरायहाणिं सपत्तो । तयणतर तेण भिक्खुरायणिवेण तत्थ ण कुमरगिरितित्थे पुव्वि सेणियणिवेण कारिय जिणपासाय पुणो उद्धू(द्ध)त्तए सेव (स+एव) ण उसमजिणिंदस्स सोवण्णिया पडिमा अज्जसुहत्थीण थेराण अतेवासेहिं सुट्ठियसुपडिवुद्धा(पडिवुद्धा)यरिएहिं पइट्ठाइया । पुव्वि ण दुवालसवासदुब्भिक्खे काले अज्जमहागिरि-अज्जसुहत्थीण थेराणमणेगे अतेवासिया सुद्धाहारमलहिज्जमाणा तत्थ ण कुमरगिरिम्मि तित्थे कयाणसणा चत्तदेहा सग्ग पत्ता। पुव्वि तित्थयर गणहर-परूविय पवयण वि बहुसो विणट्ठपाय णाऊण तेण भिक्खुरायणिवेण जिणपवयणमगहट्ठ जिणधम्मवित्थरट्ठ च सपइणिवुव्व समणाण णिग्गठाण णिग्गठीण य एगा परिसा तत्थ कुमारीपव्वयतित्थम्मि मेलिया । तत्थ ण थेराण अज्जमहागिरीणमणुपत्ताण वलिस्सह बोहिलिङ्ग देवायरिय-धम्मसेण नक्खत्तायरियाइ जिणकप्पितुलणत्त कुणमाणाण दुन्नि सया णिग्गथाण समागया । अज्जसुट्ठिय-सुपडिवुद्ध(पडिवुद्ध)-उमसाइ सामज्जाईण थेरकप्पियाण वि तिन्नि सया णिग्गथाण समागया । अज्जापोइणीयाईण अज्जाण णिग्गठीण तिन्नि सया समेया । भिक्खुराय सीचद चुण्णय-सेलगाइसमणोवासगाण सत्त सया तत्थ समागया । भिक्खुरायणिवभज्जापुण्णमित्ताइ-साविथाण वि सत्त सया समागया । णियभज्जापुत्त णत्तुअपभिइसमलकियो भिक्खुराओ ण सव्वाण णिग्गथाण णिग्गथीण य नमसित्ता एव वयासी-भो महानुभावे ! अह तुम्हे वद्धमाणतित्थयरपरूवियधम्मप्पभावणावित्थरट्ठा ण सव्वपरक्कमत्ताए उज्जमह । इइ तेणुत्ता सव्वे वि ण णिग्गठा णिग्गठीओ य सम्मया तयणतर लद्धट्ठेण तेण भिक्खुरायणिवेण णाणाविहभत्तिजुत्तो णं पूइया सक्कारि(या)सम्माणिया ते ण णिग्गठा णिग्गठीओ य मगह-महुरा वगाइजणवएसु तित्थयरपरूवियजिणधम्मप्पभावणट्ठा णिग्गया । तयणतर तेण भिक्खुरायणिवेण तत्थ कुमर-कुमारीगिरिजुयलुप्पि जिण पडिमालकिया णेगे लेणा उक्किणाइया । तत्थ ण जिणकप्पितुलत्त कुणमाणा णिग्गथा कुमारीगिरिलेणेसु वासावास णिवसति । कुमरगिरिम्मि य थेरकप्पिया णिग्गट्ठा वासावास णिवसति । इइ ताण सव्वाण णिग्गठाण विभाइत्ता कयट्ठो भिक्खुरायणिवो कयजलिपुडो बलिस्सहु-मसाइ-सामज्जाईण थेराण णमसित्ता जिणपवयणमउडकप्पायस्य दिट्ठिवायस्स सगहट्ठा विण्णवेइ । इइ तेण णिवेण चोइएहिं तेहिं थेरेहिं अज्जेहिं य अवसिट्ठ जिणपवयण दिट्ठिवाय णिग्गठगणाओ थोव थोव साहिइत्ता भुज्ज-तल वक्कलाइपत्तेसु अक्खरसन्निवायोवय कारइत्ता भिक्खुरायणिवमणोरह पूरित्ता अज्जसोहम्मुवएसिय-दुवालसगीरक्खआ ते सजाया । समणाण णिग्गठाण णिग्गठीण य जिणपवयणसुलहबोहट्ठ ण अज्जसामेहिं थेरेहिं य तत्थ पण्णवणा परूविया । उमसाइहिं य थेरेहिं तत्तत्थमुत्त सणिज्जुत्तय परूविय । थेरेहिं अज्जबलिस्सहेहिं य विज्जापवायपुव्वाओ अगविज्जाइ-सत्थे परूविए । एसो ण जिणसासणप्पभावगो भिक्खुरायणिवो णेगे धम्मकज्जाणि किच्चा सुज्झाणोवेओ वीराओ ण तीसाहियतिसयवासेसु विइक्कतेसु सग्ग पत्तो । " इति ।

धिज्ज णयरिं ठावइत्ता तत्थ रज्जं कुणइ से वि य णं णियपिउव्व जिणधम्माराहणट्ठो उक्किट्ठो समणोवासओ आसी। तेण वि तित्थभूए कलिंगट्ठे तम्मि य कुमर-कुमारीगिरिजुयले णियणामकिया पच लेणा उक्किणाइया। परं पच्छा-ऽईचलोद्दाहिमाणहिद्ओ सय चक्कवट्टित्तमहिलसंतो कयमालदयमारिआ णरय पत्तो। वीराओ ण सयरिवासेसु विइक्कतेसु पासस्स ण अरहाओ छट्ठे पए थेरे रयणप्पहणामधिज्जे आयरिया सजाया। तेहिं ण उवएसपुरिम्मि एगलक्खाहियअसीइसहस्सा खत्तियपुत्ता पडिबोहिया, जिणधम्म पडिवन्ना उवएसणामधिज्जे वसे ठाइया। वीराओ णं इगतीसाइवासेसु विइक्कतेसु कोणियपुत्तो उदाइणिवो पाडलिपुत्त णयर ठाइत्ता तत्थ ण मगहाहिवत्त्च पालेमाणे चिट्ठइ। तेण कालेण तेण समएण केणावि तस्स सत्तुणा त जिणधम्मम्मि दढ सुमड्ढ नाऊण णिग्गठवेस धित्तूण धम्मकहा-सावणमिसेणेगतेण तस्सावास गतूण सो उदाइणिवो मारिओ। समणे भगव महावीरे णिव्वुए सट्ठिवासेसु विइक्कतेसु पढमो णदणामधिज्जो णाइपुत्तो पगइहिं पाडलिपुत्तम्मि रज्जे ठाइओ। तस्स ण वसम्मि कमेण णदणामधिज्जा णव णिवा जाया। अट्ठमो य णदो अईवलोहाहिक्कतो मिच्छत्तधो णियवेरोयणमाहणमतिपेरिओ कलिंगविसय पाडिऊण पुव्वि तत्थ तित्थभूअकुमरपव्वयुवरिं सेणियणिवकारियरिसहेसजिणपासाय भजिऊण तओ सोवण्णीयउसमजिणपडिम धित्तूण पाडलिपुत्तम्मि णियणगरे समागओ। तयणतर वीराओ इगसयाहियचउवन्नवासेसु विइक्कतेसु चाणिगाणुणीयो मोरियपुत्तो चदगुत्तो णवम णदणिव पाडलिपुत्ताओ णिक्कासीय सय मगहाहिवो जाओ। से ण पुव्वि मिच्छत्तरत्तो सोगयाणुओ समणाण णिग्गठ ण उव्वि त्ति दोसी आसी. पच्छा ण चाणिगाणुणीओ जिणधम्मम्मि दढसड्ढो अईवपरक्कमजुओ जुण(व)णाहिवसिलीकसेण सद्धिं मित्तिभूओ सय णियरज्जवित्थरं कुणमाणो विअरइ। तेण णियमोरियसवच्छरो णियरज्जम्मि ठाइओ वीराओ ण इगसयाहियचउरासीइवासेसु विइक्कतेसु चदगुत्तो णिवो परलोअ पत्तो। तेण कालेण तेण समएण तस्स पुत्तो बिंदुसारो पाडलिपुत्तम्मि रज्जे ठिओ। से णं जिणधम्माराहगो पवरसड्ढो जाओ। पणवीसवासा जाव रज्ज पाउणित्ता वीराओ णवाहियदुसयवासेसु विइक्कतेसु धम्माराहणपरो सग्ग पत्तो। तओ वीराओ णवाहियदुसयवासेसु विइक्कतेसु तस्स पुत्तो असोओ पाडलिपुत्तम्मि रज्जे ठिओ। से वि य ण पुव्विं जिणधम्माणुणीओ आसी। पच्छा रज्जलाहाओ चउवासाणतर सुगयसमणपक्ख काऊण णिय दुव्च पियदसीणामधिज्ज ठाइत्ता सुगयपरूवियधम्माराहणपरो जाओ अईवविक्कमाक्करमहीयलमडलो से कलिंगमरहट्ठ-सुरट्ठाइ-जणवयाणि साहीणाणि किच्चा तत्थ णं सुगयधम्मवित्थर काऊणाणेगे सुगयविहारा ठाइया जाव पच्छिमगिरिम्मि विज्झ यलाइसु सुगयाइसमण-समणीण वासावासट्ठमणेगे लेणा उक्किणाइया अणगे सुगयपडिमाओ विविहासणट्ठिआ तत्थ ठाइआ। उज्जितसेलाइणाणाठाणेसु णियणामकिया अणालेहा थूभसिलाईसु उक्किणाइया। सीहल-चीण-बंभाइदीवेसु सुगयधम्मवित्थरट्ठ पाडलिपुत्तम्मि णयरे सुगयसमणाण गणमेलावग किच्चा तस्स णं सम्मय णुमारेण अणगे सोगयसमणा तत्थ तेण पेसिया। जिणधम्मि णं णिग्गठ-णिग्गठीण वि सम्माण कुणमाणो से ताण पइ कया त्ति दोस ण पत्ता। इम्मस्सासोगणिवस्साणेगाण पुत्ताण मज्झे कुणालणामधिज्जो पुत्तो रज्जारिहो हुत्था। त ण विमाउओ अहिखिज्जमाण णाऊणाऽसोएण णिवेण णियपणिहिजुओ से अवतीणयरीए ठाइओ। पर विमाउपओगेण तत्थ से अधीभूओ। तमट्ठ सोच्चा असोअणिवेण कोहाक्कतेण तं णियअज्ज मारित्ता दोसपराऽवरे वि अणेगे रायकुमारा मारिया। पच्छा कुणालपुत्त सपइणामधिज्ज रज्जे ठाइत्ता से ण असोगणिवो वीराओ चत्तालीसाहियदोसयवासेसु विइक्कतेसु परलोअ पत्तो। सपइणिवो वि पाडलिपुत्तम्मि णि.य.णेगसत्तुभय मुणि,त्ता त रायहाणिं तच्चा पुव्वि णियपिउभुत्तिलद्धावतीणयरी(रि)म्मि ठिओ सुहसुहेण रज्ज कुणइ। से ण

ठविय संपइ इय तक्खणम्मि सो पुण दमगनरजीवो । मरिऊण समुप्पन्नो वुत्तम्मि दसाहववहारे ॥५७॥
रज्जाभिसेयसारं ठविओ रज्जम्मि मतिपमुहाणं । उवणित्तु असोगसिरी जाओ परलोयकज्जपरो ॥५८॥
पुव्वावज्जियपुन्नाणुभावओ पइदिणं पवड्ढतो । देहेण रायलच्छीएँ चेव जोव्वणमणुप्पत्तो ॥५९॥
अप्पडिबद्धविहारो विहरंतो अह कयाइ मुणिनाहो । अज्जसुहत्थी पत्तो पाडलिपुत्ते पवित्तगुणो ॥६०॥
बहिमुज्जाणम्मि ठिओ पभूयवरसाहुनियरपरियरिओ । दिट्ठो कयाइ पासायसट्ठिएण निवेणेसो ॥६१॥
ओइन्नो रायपहं चउविहसंघाणुगो जहा गयणे । गहतारागणमज्झे जणियपमोओ सरयसोमो ॥६२॥
अवलोइयपुव्वो एस मज्झ इय माणसे वियक्कतो । सहसा महीएँ पडिओ सित्तो य जलेण सिसिरेण ॥६३॥
वीयणगपवणपरिवीइओ य मुच्छाविरामसमयम्मि । जाओ जाइस्सरणो मुणिओ पुव्वो य वुत्ततो ॥६४॥
तक्खणमेव समीवे मुणिवइणो आगओ परं हरिसं । रोमचुक्केरकर सव्वगेसु वि परिवहतो ॥६५॥
वंदित्ता विन्नत्तो सूरी किं जिणवराण धम्मस्स । फलमत्थि । सग्गमोक्खो मुणिवइणा भासिए एवं ॥६६॥
सामाइयस्स किं फलमाह मुणी जं पगिट्ठपयपत्त । तं सग्गनिव्वुइफलं रज्जाइफलं जमव्वत्तं ॥६७॥
सजायपच्चओ एवमेयमिह नत्थि संसओ भणइ । किं भयवं । परियाणह मुणिवइणा सोवओगेणं ॥६८॥
आमन्ति वोत्तुमुत्तो कोसम्बीवइयरो तओ सव्वो । जह दिन्नो आहारो विसूइगाए जहा मरणं ॥६९॥
उप्फुल्लवयणकमलो हरिसुग्वाहउल्लनयणिल्लो । धरणियलमिलियमउली पुणो पुणो पणमइ मुणिंदं ॥७०॥
सजलजलवाहमालानिग्घोसमणोहरेण सद्देण । पारद्धो जिणधम्मो कहेउ निम्महियमिच्छत्तो ॥७१॥
दुग्गयनराण व निही जच्चधाण व निसाकरालोओ । वाहिविहुराण परमोसहं व भीयाण सरणं व ॥७२॥
जलहिजलंतो वुड्डाण झत्ति निच्छिड्डपोयलाभोव्व । पुन्नेहिं अणन्नसमेहिं कहवि जइ घडइ जिणधम्मो ॥७३॥
ता एयम्मुवलद्धे सुद्धं सद्धं मणे धरतेण । मोक्खेक्कफला दिक्खा दक्खेण णरेण कायव्वा ॥७४॥
इय जंपियावसाणे भालयलनिवेसियजली राया । भणइ ममऽत्थि न सत्ती सा जीए दिक्खिओ होउ ॥७५॥
तुहपयपकयभमरायमाणसीसो भवामि निच्चमहं । ता जं एयावत्थाजोग्गं ते देह आएसं ॥७६॥
तो गिण्ह सावयवए जिणचेइयसाहुसावयजणाणं । अइसच्छातुच्छमणो वच्छल्लपरो सया भवसु ॥७७॥
कुणसु य सव्वपयत्तेण खीरसायरजलुज्जलं कित्तिं । परमत्थबंधुणो भगवओ तुमं समणसंघस्स ॥७८॥
तह गामागरपुरपट्टणेसु सव्वत्थ वट्टमाणाणं । धम्मारंभा धम्मियजणाण पसरंति तह कज्जं ॥७९॥
उग्घडिउब्भडसावगधम्मो मुणिवइपए पणमिऊण । नियपासायमुवगओ परं मुणेंतो कयत्थत्तं ॥८०॥
तप्पभिई जिणबिंबे उदारपूयापुरस्सरविहीए । वंदेइ पज्जुवासइ गुरुणा विणएण गुरुचलणे ॥८१॥
दीणाणाहाइजणाण देइ दाणं कुणेइ जीवदयं । हिमगिरिसिहरुत्तुंगे कारवइ जिणालए रम्मे ॥८२॥
पच्चंतियरायाणो सव्वे सद्धाविऊणमह कहिओ । तेणमिमेसिं धम्मो केई पत्ता य सम्मत्तं ॥८३॥
समणाण सुविहियाणं अरहंताण च विविहबहुमाणा । ते जाया भायारहियमाणसा परियणसमेया ॥८४॥
अह अन्नया जिणहरे महामहो वरविभूइजोगेण । पारद्धो रन्ना घन्नपुण्णजणपेच्छणिज्जो जो ॥८५॥
नियसिहरुल्लिहियनहो रहो समूसियमहल्लझयमालो । जत्तानिमित्तमखिलम्मि पुरवरे भमिउमारद्धो ॥८६॥
भेरीभकाररवापूरियनहमंडलो रवमय व । कुणमाणो जियलोयं तिरोहियाऽसेसलोयरवो ॥८७॥
अग्घे दूरमहग्घे पइगेहमणेगहापडिच्छंतो । पत्तो कमेण नरवइगिहंगणे आयरपरेण ॥८८॥
अच्चुत्तमपूयापुव्वमेव इमिणा पडिच्छिओ लग्गो । अणुमग्गेणं भमिउं नियपरियणपरिगओ राया ॥८९॥
समए सम्माणित्ता सामंता पणयगब्भवयणेहिं । भणिया मन्नह जइ मं सामंता । नियरज्जेसुं ॥९०॥
कारावेह जिणहरे जिणरहजत्ताउ तहा महंतीउ । अत्थेण मे न कज्जं एयं खु मम पियं णवरं ॥९१॥
वीसज्जिया य तेणं गमणं घोसावणं सरज्जेसु । साहूण सुहविहारा जाया पच्चंतिया देसा ॥९२॥

इदानीं श्रीसुस्थितसूरि श्रीसुप्रतिबुद्धसूर्योगसमयसमये सम्भूतान् प्रभावकाचार्यान् स्तोतु-काम आदौ तावदेकादशं युगप्रधानं श्रीगुणसुन्दरसूरिं वदितुमिच्छुः पद्यार्यद्वयमाह—

सिरिगुणसुन्दरसूरी एगारसमो तया जुगपहाणो।
वीरसिवाऽद्दे जिणवयगुणथणसंखेऽस्स आसि जणी ॥४५॥ (पच्छाज्जा)
णंदुज्झायगुणमिए स दिक्खिओ भूमिगहभुजपमाणे ।
होसी जुगप्पहाणो सग्गमिओ विसयसुइकाले ॥४६॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "सिरि" इत्यादि, "तया" त्ति, तदा, श्रीसुस्थित-सुप्रतिबुद्धसूरिकाले "सिरि-गुणसुन्दरसूरी" त्ति श्रिया=शोभया=गुणलक्ष्म्या वा युक्तो गुणसुन्दरः=तन्नामा सूरिः=आचार्यः श्रीगुणसुन्दरसूरिर्दशपूर्वविद् "एगारसमो जुगपहाणो" त्ति श्रीयुगप्रधानपरम्पराया श्रीआर्यसुहस्तिसूरेः पश्चादेकादशो युगप्रधानो=युगोत्तमोऽभूत् ।

अथ जन्मादिपर्यायसत्कान् वर्षान् सार्धगाथयाऽऽह–"अस्स" त्ति श्रीगुणसुन्दरसूरेः "जणी" त्ति, जनि=जन्म "वीरसिवा" त्ति, वीरशिवात्=वीरमोक्षगमनकालात् "जिणवय-गुणथणसंखे" त्ति, जिनवचोगुणाः पञ्चत्रिंशत् , "यदुक्तमभिधानचिन्तामणौ—

"संस्कारवत्त्वमौदात्त्यमुपचारपरीतता । मेघगम्भीरघोषत्व प्रतिनादविधायिता ॥६५॥
दक्षिणत्वमुपनीत-रागत्व च महार्थता । अव्याहतत्व शिष्टत्वं, संशयानामसंभव ॥६६॥
निराकृतान्योत्तरत्व, हृदयङ्गमताऽपि च । मिथ साकाङ्क्षता प्रस्तावौचित्य तत्त्वनिष्ठता ॥६७॥
अप्रकीर्णप्रसृतत्वमस्वश्लाघान्यनिन्दिता । आभिजात्यमतिस्निग्धमधुरत्व प्रशस्यता ॥६८॥
अमर्मवेधितौदार्यं धर्मार्थप्रतिबद्धता । कारकाद्यविपर्यासो, विभ्रमादिवियुक्तता ॥६९॥
चित्रकृत्त्वमद्भुतत्व तथाऽनतिविलम्बिता । अनेकजातिवैचित्र्यमारोपितविशेषता ॥७०॥
सत्त्वप्रधानता वर्णपदवाक्यविविक्तता । अव्युच्छित्तिरखेदित्व पञ्चत्रिंशच्च वाग्गुणा ॥७१॥" इति ।

स्तनौ-प्रसिद्धौ सव्येतरलक्षणौ द्वौ, एतयोरङ्कयोर्वामक्रमलब्धयोः २३५ इति संख्या यस्य तादृशे जिनवचोगुणस्तनसङ्ख्ये "ऽद्दे" त्ति, अब्दे=वर्षे = वीरसवदि द्विशताऽधिकपञ्चत्रिंशत्तमे वत्सरे-ऽजायत । "स" त्ति, स=श्रीगुणसुन्दरसूरिः "णंदुज्झायगुणमिए" त्ति, नन्दा – नन्दवंशो-त्पन्ना राजानस्तेषां नवत्वान्नव उपाध्यायगुणाः–आचाराङ्ग-सूत्रकृताङ्ग-स्थानाङ्ग-समवायाङ्ग-व्याख्याप्रज्ञप्त्यङ्ग-ज्ञाताधर्मकथाङ्गो-पासकदशाङ्गा--ऽन्तकृद्दशाङ्गा-ऽनुत्तरोपपातिकदशाङ्ग-प्रश्न-व्याकरणाङ्ग विपाकश्रुताङ्ग-[११]रूपैकादशाङ्गौ-पपातिक--राजप्रश्नीय-जीवाभिगम-प्रज्ञापना-जम्बू--द्वीपप्रज्ञप्ति-चन्द्रप्रज्ञप्ति-सूर्यप्रज्ञप्ति-निरयावलिका--कल्पावतंसिका पुष्पिका--पुष्पचूलिका वृष्णिदशा-[२३]रूपद्वादशोपाङ्गपठन-पाठन-[२४]चरणसप्तति-[२५]करणसप्ततिपालनरूपाः पञ्चविंशतिः, आभ्या-

सक्को न ताव काउं जिणकप्पो संपयं तयब्भासो। जुज्जइ विहेउमेत्तो सत्तीए गच्छपडिबद्धो ॥११९॥
पारद्धो जिणकप्पाणुट्ठाणं णिट्ठुरं तवो काउं। विहरंतो कुसुमपुरे वरे गया दोऽवि कइया वि ॥१२०॥
सपत्ता साहुजणा बियम्मि ठाणे ठिया नवरं सेट्ठी। वसुभूई नाम सुहत्थिसूरिणा तत्थ पण्णविओ ॥१२१॥
पत्तो बोहिं नियगेहलोयसंबोहणत्थमह सूरी। भणियो भयवं! मह मंदिरम्मि धम्मं कह कुणइ ॥१२२॥
कइया तह च्चिय तीए तत्थ किज्जतियाएँ भिक्खट्ठा। पत्तो महागिरी सममेण अब्भुट्ठिओ झत्ति ॥१२३॥
मुणिवइणा अज्जसुहत्थिणा, तओ सेट्ठिणा स तुट्ठेण। पुट्ठो भयवं को एस जेण अब्भुट्ठिया तुम्हे ? ॥१२४॥
भणियं सो अम्ह गुरू विसेसकिरियापरो परं जाओ। उज्झिज्जमाणमन्नं गिण्हइ पाणं च नो अन्नं ॥१२५॥
एमाइगुणनिहाण वुत्तंत तस्स समणमीहस्स। अइवित्थरेण कहिउं समए नियवसहिमणुपत्तो ॥१२६॥
तत्तो बीयम्मि दिणे सव्वो वसुभूइणा निओ लोओ। पन्नविओ जह भत्तं पाणं च अणायरपरेहिं ॥१२७॥
ववहरणिज्जं देज्ज अणिच्छमाणस्स अन्नमन्नस्स। जइया स गुरूण गुरू एज्जा भिक्खाकए कहवि ॥१२८॥
पत्तम्मि (तम्मि)तम्मंदिरम्मि तं तह विहेउमारद्धा। परिचिंतिय न एसो सब्भावोऽलद्धभत्तो सो ॥१२९॥
वसहिं तेण नियत्तो सज्झासमए सुहत्थिणो कहियं। अज्जो ? अणेसणा कीस अज्ज मज्झ तए विहिया ? ॥१३०॥

कहमेयं सभंतो पुच्छइ ससाहियं जहा तुमए। अब्भुट्ठाणं जं मे विहियं कहिओ य वुत्तंतो ॥१३१॥
तत्तो कुसुमपुराओ उज्जेणीए पुरीएँ संपत्तो। जीयंतसामिणीए पडिमाए वंदणनिमित्तं ॥१३२॥
सिरिमं महागिरी परिमिएहिं समणेहिं समणुगम्मंतो। अभिवंदियजिणबिंबो संबोहियसाहुसंघाओ ॥१३३॥
तत्तो दसण्णदेसे नगरं नामेण एलगच्छं ति। तत्थ गओ स महप्पा अणसणविहिणा मरणहेउ॥१३४॥
तं आसि दसन्नपुरं पुरा जहा एलगच्छमुप्पन्नं। तह संपइ भन्नइ मिच्छदिट्ठिणा साविया एगा ॥१३५॥
दुट्ठाभिसंधिणा कह वि तत्थ केणावि कुलपसूएण। परिणीया जिणधम्मं विमलं सम्मं च सा कुणइ ॥१३६॥
सूरत्थमणम्मि सया पच्चक्खाणं पवज्जमाणिं तं। भत्ता उवहसइ जहा किं कोइ निसाएँ भुंजेइ ? ॥१३७॥
पच्चक्खाणपरा जं तमेवमप्पाणयं किलिस्सेसि। न हु निप्फलकज्जारंभमाइणो होंति बुद्धिधणा ॥१३८॥
अह अन्नया पलत्तं तेण जहा होइ जइ इह धम्मो। ता मज्झवि पच्चक्खाणमत्थु एयाएँ रयणीए ॥१३९॥
भणियो सो तीए सावियाएँ मा गिण्ह भंजसि तुमं ति। मुद्धे! किं रयणीए भुंजतोऽहं तए दिट्ठो ॥१४०॥
तो पवयणदेवीए अमरिसमाणाइ तस्स उवहासं। भगिणीनेवत्थधराएँ भक्खभाणं करेऊण ॥१४१॥
जा उवणीयं ता तक्खणेण सो भुंजिउं जया लग्गो। भणियं भज्जाए किमेयमप्पणा नियमुहेण कयं ॥१४२॥
भंजसि पच्चक्खाणं ?, अलाहि एएणाऽसप्पलावेणं जा भणइ ताव पहओ तलप्पहारेण देवीए ॥१४३॥
पडियाणि दोवि अच्छीणि दट्ठुमसमंजसं तया झत्ति। विच्छायत्तमुवगया भमेस दोसो जणो भणिही ॥१४४॥

इय भावेंती एसा सासणदेविं पडुच्च उस्सग्गे। परिसट्ठिया न पवयणदोसो जह होइ तह जयसु ॥१४५॥
तक्खणमरमाणस्सेलगस्स अच्छीणि सजियदेसाणि। तस्सच्छिपएसनिवेसियाणि विहियाणि तीएँ तया ॥१४६॥

पेच्छइ जणो पभाए तमेलगच्छं सचिम्हओ सतो। तप्पभिई तन्नगरं विक्खायं एलगच्छं ति ॥१४७॥
तत्थ य दसण्णकूडो सेलो सिहरग्गभग्गरविमग्गो। जह सो गयग्गपयनामगो त्ति जाओ तहा सुणह ॥१४८॥
किल एगया जिणवरो वीरो विहरंतओ तहिं पत्तो। विहियं च समोसरणं सरणं जीवाण तियसेहिं ॥१४९॥
वीरपउत्तिनिउत्तयनरेहिं वद्धाविओ पुरे राया। सिरिमं दसण्णभद्दो दसण्णकूडे जहा भयवं ? ॥१५०॥

'तो'त्ति, ततः=आर्यश्रीबहुलबलिस्सहयोः पश्चात् मथुरावाचनानुगतश्रीनन्दीसूत्रवाचकक्रमानुसारतः "वायगवरसाइसूरीसो"त्ति.वाचकेषु=वाचनादातृषु वरः=श्रेष्ठः=वाचकवरः=वाचनाचार्यः यद्वा वाचकशब्दः पूर्वविद्वाचकस्ततो वाचकेषु=पूर्ववित्सु वरः=श्रेष्ठो वाचकवरः=पूर्वज्ञानभृत्, स चासौ स्वातिश्च=स्वातिनामा सूरीशः=वाचकवरस्वातिसूरीशो बलिस्सहशिष्यो हारीतगोत्रीयो बभूव । महामहोपाध्यायश्रीधर्मसागरगणिभिस्तु तपागच्छपट्टावल्यां तत्त्वार्थप्रमुखग्रन्थाना कर्तृत्वेनामुष्यैव श्रीस्वातिसूरेः सम्भावना कृता, तथा च तद्ग्रन्थः–

"तस्स बलिस्सहस्स शिष्य स्वाति तत्त्वार्थादयो ग्रन्थास्तु तत्कृता एव सम्भाव्यन्ते।" इति।

तथा श्रीहिमवदाचार्यैस्तु तत्त्वार्थसूत्रस्य कर्तृत्वेन साक्षात्स्वातिसूरिर्दर्शितः ।

तदक्षराणि त्वेवम्–

'बलिस्सहशिष्या स्वात्याचार्या श्रुतसागरपारगास्तत्त्वार्थसूत्राख्य शास्त्र विहितवन्त ।" इति।

तस्यामेव स्थविरावल्याञ्च पूर्वमपि भिक्षुराजविज्ञप्त्योमास्वातिसूरिभिः सनिर्युक्तिकं तत्त्वार्थसूत्रं रचितमिति दर्शितम् । तथा च स्थविरावलिः–

"भिक्खुराय णिवो कयजलिपुडो बलिस्सहुमासाइ-सामज्जाईण थेराणं णमसित्ता जिणपवयणमउडकप्पस्स दिट्ठिवायस्स सगहट्ठा विण्णवेइ । उमासाईहि य थेरेहिं तत्तत्थसुत्त सणिज्जुइय परूविय" इति ॥४७॥

अथ युगप्रधानं वाचनाचार्यञ्च श्रीश्यामाचार्यं निरूपयितुमिच्छुः पथ्यार्यात्रयेण वक्ति—

तत्तो जुगप्पहाणो, बारसमो आसि वायणायरिओ ।
सामायरिओ कत्ता, पराणवणाऽक्खस्स सुत्तस्स ॥४८॥ (पच्छाज्जा)
इंदग्गे सीमंधर-पहू वि संसीअ जस्स सुअणाणं ।
सो जाओ वीराऽद्दे, सुरपहसिद्धगुणमवसङ्खे ॥४९॥ (पच्छाऽज
तिसये वासे दिक्खं, गिरहीअ समिइकिसाणुवेअमिए ।
जुगपवरो तिदसमिओ, लेसारज्जंगजोगमिए ॥५०॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "तत्तो' इत्यादि, ततः=श्रीयुगप्रधानपरम्परायां श्रीगुणसुन्दरसूरेर्युगप्रधानस्याऽनु तथा मथुरावाचनाऽनुसारिश्रीनन्दीसूत्रोदितवाचकस्थविपरम्पराया वाचनाचार्यश्रीस्वातिसूरेः पश्चाद् "जुगप्पहाणो बारसमो आसि वायणायरिओ" त्ति, द्वादशो युगप्रधानो वाचनाचार्यश्च "सामायरिओ" त्ति, श्यामाचार्यः=श्यामाचार्याऽभिधो गुरुः स्वातिसूरिशिष्यो हारितगोत्रीयोऽभूत्, किं विशिष्टः ? इत्याह ..."कत्ता पण्णवणाऽक्खस्स सुत्तस्स" त्ति,

"जिणमंदिराणं" ति जिनानां=रागद्वेषाद्यान्तरशत्रुजेतॄणामर्हतां मन्दिराणि=चैत्यानि=जिन-मन्दिराणि तेषां जिनमन्दिराणां=जिनेश्वरप्रासादानां "सपादलक्खेण" त्ति सङ्ख्यावाची लक्ष-शब्दः स्त्रीनपुंसकलिङ्गोऽस्ति, तथा चोक्तं स्त्रीनपुंसकलिङ्गप्रकरणं दर्शयद्भिः श्रीहेमचन्द्र-सूरिभिर्हैमलिङ्गानुशासने-"स्त्रीक्लीबयो — माने लक्षा .. . ॥१॥" इति।

तथैव गौडोऽपि, तथा च तद्ग्रन्थः-"सङ्ख्यायां तु न ना लक्षा क्लीव व्याजशङ्ख्ययो" इति।

तेनाऽत्र नपुंसकलिङ्गो गृहीतः पादेन=चतुर्थभागेन पञ्चविंशतिसहस्रप्रमाणेन सहितं=सपादं तच्च तल्लक्षं च=शतसहस्ररूपं=सपादलक्षं तेन सपादलक्षेण=पञ्चविंशतिसहस्रयुतलक्षप्रमाणजिनचैत्यै-रित्यर्थः, "तिखण्डभूमिं" त्रयो = त्रिसङ्ख्याकाः खण्डाः = अवयवा यस्या भूमेः सा त्रिखण्डा सा चासौ भूमिश्च=पृथ्वी च त्रिखण्डभूमिस्तां=त्रिखण्डभूमिं "अलंकरीअ" त्ति अलङ्कार=शोभ-याम्बभूव। उक्तञ्च श्रीगुर्वावल्याम्-

"जीयात्सुहस्ती च गुरुर्द्वितीयो योऽबूबुधत् सम्प्रतिभूविभुं तम्।
अचीकरद्यो जिनसद्मरम्या, पृथ्वीं त्रिखण्डाधिपतिं सुदाता ॥१७॥" इति।

तथा श्रीहीरसौभाग्येऽपि—

"भूसुभ्रुवो भर्तृतया प्रगल्भभूषाविशेषानिव शातकौम्भान्।
सपादलक्षानिह सम्प्रतिर्यो निर्मापयामास महाविहारान् ॥३९॥" इति।

तथा चाऽस्य सपादकोटेर्जिनबिम्बानां कारितमपि श्रूयते।

तथा च प्रत्यपादि श्रीहीरसौभाग्ये-

'य सम्प्रतिक्षोणिपतिं सपादकोटीर्नु पेटीः स्वयशोनिधीनाम्।
स्याद्वादिना सद्मसु शिल्पिसङ्घैरचीकरत्पारगतीयमूर्तीः ॥४०॥" इति ॥३७॥

अथ सम्प्रतिनृपतिना कारितामागमवाचनां प्रख्यापयन्नाह पथ्यार्याम्—

कारावित्रा णिवेणं बीआगमवायणा अवंतीए।
णिग्गंथाणं परिसं मेलिय तेण सुअरक्खत्थं ॥३८॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "काराविआ" इत्यादि, "तेण" त्ति तेन "णिवेणं" ति सम्प्रतिनाम्ना नृपेण "अवंतोए" त्ति अवन्त्याम्=उज्जयन्यां नगर्यां "णिग्गंथाणं परिसं मेलिय" त्ति निग्रन्थानां=साधूनामुपलक्षणात्साध्वीनाञ्च परिषदं=सभां मेलयित्वा 'सुअरक्खत्थं' ति श्रुतस्य = द्वादशाङ्गीरूपस्य रक्षार्थं = रक्षणनिमित्तं बीआगमवायणा" त्ति द्वितीयागमवाचना=बहुषु वाचनासु जातास्वपि श्रीस्थूलभद्रस्वामिकाले संभूतविशिष्टवाचनापेक्षयेयं द्वितीया विशिष्टा वाचना "काराविआ" त्ति कारिता = विधापिता।

'तो' त्ति, ततः=आर्यश्रीबहुलबलिस्सहयोः पश्चात् मथुरावाचनानुगतश्रीनन्दीसूत्रवाचकक्रमानुसारतः "वायगवरसाइसूरीसो" त्ति वाचकेषु=वाचनादातृषु वरः=श्रेष्ठः=वाचकवरः=वाचनाचार्यः यद्वा वाचकशब्दः पूर्वविद्वाचकस्ततो वाचकेषु=पूर्ववित्सु वरः=श्रेष्ठो वाचकवरः=पूर्वज्ञानभृत्, स चासौ स्वातिश्च=स्वातिनामा सूरीशः=वाचकवरस्वातिसूरीशो बलिस्सहशिष्यो हारीतगोत्रीयो बभूव । महामहोपाध्यायश्रीधर्मसागरगणिभिस्तु तपागच्छपट्टावल्यां तत्त्वार्थप्रमुखग्रन्थानां कर्तृत्वेनामुष्यैव श्रीस्वातिसूरेः सम्भावना कृता, तथा च तद्ग्रन्थः–

"तस्स बलिस्सहस्स शिष्य स्वाति तत्त्वार्थादयो ग्रन्थास्तु तत्कृता एव सम्भाव्यन्ते।" इति।

तथा श्रीहिमवदाचार्यैस्तु तत्त्वार्थसूत्रस्य कर्तृत्वेन साक्षात्स्वातिसूरिर्दर्शितः ।

तदक्षराणि त्वेवम्–

"बलिस्सहशिष्या स्वात्याचार्या श्रुतसागरपारगास्तत्त्वार्थसूत्राख्य शास्त्र विहितवन्त ।" इति।

तस्यामेव स्थविरावल्याश्च पूर्वमपि भिक्षुराजविज्ञप्त्योमास्वातिसूरिभिः सनिर्युक्तिकं तत्त्वार्थसूत्रं रचितमिति दर्शितम् । तथा च स्थविरावलिः–

"भिक्खुराय णिवो कयजलिपुडो बलिस्सहुमासाइ-सामज्जाईण थेराण णमसित्ता जिणपवयणमउडकप्पस्स दिट्ठिवायस्स सगहट्ठा विण्णवेइ । उमासाईहिं य थेरेहिं तत्तत्थसुत्त सणिज्जुइय परुविय" इति ॥४७॥

अथ युगप्रधानं वाचनाचार्यश्च श्रीश्यामाचार्यं निरूपयितुमिच्छुः पथ्यार्यात्रयेण वक्ति—

तत्तो जुगप्पहाणो, बारसमो आसि वायणायरिओ ।
सामायरिओ कत्ता, पण्णवणाऽक्खस्स सुत्तस्स ॥४८॥ (पच्छाज्जा)
इंदग्गे सीमंधर-पहू वि संसीअ जस्स सुअणाणं ।
सो जाओ वीराऽद्दे, सुरपहसिद्धगुणमवसङ्खे ॥४९॥ (पच्छाज्जा)
तिसये वासे दिक्खं, गिराहीअ समिइकिसाणुवेअमिए ।
जुगपवरो तिदसमिओ, लेसारज्जंगजोगमिए ॥५०॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "तत्तो" इत्यादि, ततः=श्रीयुगप्रधानपरम्परायां श्रीगुणसुन्दरसूरेर्युगप्रधानस्याऽनु तथा मथुरावाचनाऽनुसारिश्रीनन्दीसूत्रोदितवाचकस्थविपरम्पराया वाचनाचार्यश्रीस्वातिसूरेः पश्चाद् "जुगप्पहाणो बारसमो आसि वायणायरिओ" त्ति, द्वादशो युगप्रधानो वाचनाचार्यश्च "सामायरिओ" त्ति, श्यामाचार्यः=श्यामाचार्याऽभिधो गुरुः स्वातिसूरिशिष्यो हारितगोत्रीयोऽभूत्, किं विशिष्टः ? इत्याह ... "कत्ता पण्णवणाऽक्खस्स सुत्तस्स" त्ति,

श्रीआर्यमहागिरेः प्रसिद्धाः शिष्या अष्टावभवन् । तद्यथा—१ आर्योत्तरः, २ आर्यबलिस्सहः, ३ आर्यधनाढ्यः, ४ आर्यश्रीभद्रः, ५ आर्यकौडिन्यः, ६ आर्यनागः, ७ आर्यनागमित्रः, ८ आर्यरोहगुप्तः षडुलूकस्त्रैराशिकस्य प्ररूपक इति ।

अत्र च यदार्यरोहगगुप्तस्यार्यमहागिरिशिष्यत्वेन प्रतिपादितम्, तत्तु श्रीकल्पसूत्रापेक्षया बोध्यम्, अन्यथोत्तराध्ययनसूत्रवृत्ति-स्थानाङ्ग सूत्रवृत्ति-तपागच्छपट्टावल्यादिषु श्रीगुप्तशिष्यत्वेन भणितत्वात् ।

तत्रार्योत्तरबलिसहेभ्यं उत्तरबलिसहसंज्ञको गणो निर्गतः, तस्येमाश्चतस्रः शाखा अभवन् । तद्यथा-१ कौशाम्बिका, २ सुप्तवर्तिका, ३ कौटुम्बायनी, ४ चन्द्रनागरीति ।

तथा च प्रतिपादितं कल्पसूत्रे—

"थेरस्स णं अज्जमहागिरिस्स एलावच्चसगुत्तस्स इमे अट्ठ थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया हुत्था, तं जहा-थेरे 'उत्तरे' १, थेरे 'बलिस्सहे' २, थेरे, 'धणड्ढे' ३, थेरे 'सिरिभद्दे' थेरे कोडिन्ने ५, थेरे 'नागे' ६, थेरे 'नागमित्ते' ७ थेरे छडुलूए 'रोहगुत्ते' कोसियगुत्ते णं ८॥ थेरेहिंतो णं छडुलूएहिंतो रोहगुत्तेहिंतो कोसियगुत्तेहिंतो तत्थ णं तेरासीया निग्गया। थेरेहिंतो णं उत्तरबलिस्सहेहिंतो तत्थ णं उत्तरबलिस्सहे नामं गणे निग्गए-तस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ एवमाहिज्जति, तंजहा-कोसंबिया १, सुत्तिवत्तिया २, कोडंबाणी ३, चंदनागरी ४।" इति ॥३९॥

अथ श्रीसुहस्तिसूरेर्जन्मादिसत्कवत्सरान् दिदर्शयिषुः पथ्यार्यामाह—

जम्मो सुहत्थिणोऽद्दे णिहिविहु१९१मिए वयं खगकरथणे ।
युगपवरत्तं सरजिण२४५मिए दिवं भूणिहिसय२९१मिए ॥४०॥ (पथ्यार्या)

(प्रे०) "**जम्मो**" इत्यादि, "**हत्थिणो**" त्ति सुहस्तिनः=श्रीसुहस्तिसूरेः "**जम्मो**" त्ति, जन्म=उद्भवः, "**णिहिविहु१९१मिए**" त्ति, वीरादिति गम्यते, कुनिधिविधुभिः तद्वाचकैरेक-नवै-करूपैरङ्कैर्वामगतिप्राप्तैरेकनवत्यधिकशत१९१संख्यया मिते=कुनिधिविधुमिते=वीरसंवदेकनवत्यधिकशत१९१तमे "ऽद्दे" त्ति, अब्दे=शारदेऽभूत् । "**वय**" ति, व्रतं-श्रीसुहस्तिसूरेः प्रव्रज्या "**खगकरथणे**" त्ति खे गच्छतीति खगः = सूर्यश्चन्द्रो वैकः, करौ प्रसिद्धौ वामेतरौ द्वौ, स्तनौ=कुचौ प्रसिद्धौ द्वौ, एतेऽङ्काः पश्चानुपूर्विक्रमेण मीलिताः २२१ इति संख्या, यद्वा खे गच्छन्ति खगाः=शराः पञ्च, करः=शुण्डा हस्तिनासैकः, स्तनौ=पयोधरौ सव्येतरौ द्वौ, एतेऽङ्का वामक्रमलब्धा२१५इति सङ्ख्या यत्र तत्र खगकरस्तने=वीरसंवदेकविंशत्युत्तरद्विशत२२१तमे यद्वा पञ्चदशद्विशत २१५ तमे वर्षेऽजायत । यद्वा "खगकरथणे" इति पदमन्यथा व्याख्यातुमपि शक्यते ततो यथासंभवं व्याख्येयम् ।

पन्यासश्रीकल्याणविजयानामभिप्रायेण श्रीसुहस्तिसूरिणो जन्मादिपर्याया क्रमेण वीरसंवत् २४३-२७३-२९७-३४३ संवत्सरेष्वभवन् ।

एतेषामङ्कानां पश्चानुपूर्व्या मीलितानां २८० इति प्रमाणा सङ्ख्या यत्र तत्र सुरपथसिद्धगुण-श्रव:सङ्ख्ये "ऽद्दे" त्ति, अब्दे=हायने वीरसंवत्२८०वर्षे "जाओ" त्ति, जात:=उत्पन्न-=जन्मभाक् बभूवेति यावत् ।

तिसये वासे दिक्ख गिण्हीअ" त्ति, वीरसंवदि त्रिशते=त्रिशततमे वर्षे=शारदे दीक्षां=प्रव्रज्यामगृह्णात्=जग्राह=अग्रहीत् ।

[२]"समिइकिसाणुवेअमिए" त्ति समितय:=[१]ईर्या[२]भाषै[३]षणा[४]ऽऽदाननिक्षेप[५]परि-ष्ठापनलक्षणा पञ्च, कृशानवो=ऽग्नयस्त्रय:, वेदा:=स्त्री-पुरुष-नपुंसकलक्षणास्त्रय:, यद्वा..

ऋग्-यजु:-सामरूपास्त्रय:, एभिरङ्कैर्विपरीतक्रमविन्यस्तै:३३५ इति सङ्ख्यया मिते =समितिकृशानुवेद (३३५) मिते = वीरसंवदि पञ्चत्रिंशे त्रिशते वर्षे "जुगपवरो" त्ति युगे = कालविशेषे प्रवर: = श्रेष्ठ: = युगप्रवर: = युगप्रधानो बभूव । "लेसारज्जंगजोगमिए"त्ति, लेश्या: = कृष्ण-नील-कापोत-तेज-पद्म-शुक्लभेदात् षट्, राज्याङ्गानि = स्वाम्यमात्यसुहृत्कोशराष्ट्रदुर्गसैन्यलक्षणानि सप्त, यदुक्तममरकोशेऽष्टादशे क्षत्रियवर्गे–"स्वाम्यमात्यसुहृत्कोश-राष्ट्रदुर्गबलानि च ॥१७। राज्याङ्गानि"इति । योगा: = मनोवचनकायलक्षणास्त्रय:, एतैरङ्कैर्वाम-गत्या स्थापितै: ३७६ इति सङ्ख्यया मिते लेश्याराज्याङ्गयोगमिते = षट्सप्तत्यधिकत्रिशततमे वीरसंवदि 'तिदसमिओ" त्ति, त्रिदशं=सुपर्वधाम इत:=यात: ।

तथा चोक्तं श्रीतपागच्छपट्टावल्याम्–

"तच्छिष्य श्यामाचार्य प्रज्ञापनाकृत् । श्रीवीरात् षट्सप्तत्यधिकशतत्रये ३७६ स्वर्गभाक् " इति ।

इत्थञ्च श्रीश्यामचार्यस्य विंशति२०वर्षाणि गार्हस्थ्ये, पञ्चत्रिंशद्३५वर्षाणि सामान्य-व्रतपर्याये, एकचत्वारिंशद्४१वर्षाणि युगप्रधानत्वे चेति सर्वायुश्च षण्णवति९६वर्षाणि परि-

---

[२]विचारश्रेणौ वीरात् ३२० वर्षे श्रीकालकसूरिर्जात इति प्रतिपादितम् । तदक्षराणि त्वेवम्–
"सिरिवीरजिणिंदाओ वरिससया तिन्नि वीस(३२०)अहियाओ । कालयसूरी जाओ,सक्को पडिबोहिओ जेण ॥ ॥" इति ।

प्रकरणरत्नसचये पुनर्वीरात् ३३५ वर्षेषु गतेषु कालकसूरिर्दर्शित ।तथा च तद्ग्रन्थ –
"सिरिवीराओ गएसु पणतीसहिएसु तिसयवरिसेसु । पढमो कालगसूरी, जाओ सामज्जनामुत्ति ॥ 'इति ।

तथाऽपि नान्यग्रन्थयो परस्पर विरोध उद्भावनीय, वीरात् ३२० वर्षेषु व्यतीतेषु सूरित्वस्य वीरात् ३३५ वर्षे युगप्रधानत्वस्य निर्वाहेण समन्वयस्य सम्भवात् ।

पन्न्यासश्रीकल्याणविजयाना वालभवाचनानुगताभिप्रायेण वाचनाचार्यकाल उपलक्षणतश्च युगप्रधानकालो वीरसवत् ३४३त प्रारभ्य ३८४ पर्यन्त , एतावता युगप्रधानत्व-स्वर्गमन क्रमेण वीरसवत ३४३-३८४ वर्षेऽभूताम् ।

श्रीआर्यमहागिरेः प्रसिद्धाः शिष्या अष्टावभवन् । तद्यथा—१ आर्योत्तरः, २ आर्यबलिस्सहः, ३ आर्यधनाढ्यः, ४ आर्यश्रीभद्रः, ५ आर्यकौडिन्यः, ६ आर्यनागः, ७ आर्यनागमित्रः, ८ आर्यरोहगुप्तः षडुलूकस्त्रैराशिकस्य प्ररूपक इति ।

अत्र च यदार्यरोहगगुप्तस्यार्यमहागिरिशिष्यत्वेन प्रतिपादितम् , तत्तु श्रीकल्पसूत्रापेक्षया बोध्यम् , अन्यथोत्तराध्ययनसूत्रवृत्ति-स्थानाङ्ग सूत्रवृत्ति-तपागच्छपट्टावल्यादिषु श्रीगुप्तशिष्यत्वेन भणितत्वात् ।

तत्रार्योत्तरबलिसहेभ्यं उत्तरबलिसहसंज्ञको गणो निर्गतः, तस्येमाश्चतस्रः शाखा अभवन् । त [illegible] ा—१ कौशाम्बिका, २ [illegible] वर्तिका, ३ कौडुम्बायनी, ४ चन्द्रनागरीति ।

तथा च प्रतिपादितं कल्पसूत्रे—

"थेरस्स ण अज्जमहागिरिस्स एलावच्चसगुत्तस्स इमे अट्ठ थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया हुत्था, त जहा-थेरे 'उत्तरे' १, थेरे 'बलिस्सहे २, थेरे, 'धणड्ढे'३, थेरे 'सिरिभद्दे' थेरे कोडिन्ने ५, थेरे 'नागे' ६, थेरे 'नामित्ते' ७ थेरे छडुलूए 'रोहगुत्ते' कोसियगुत्ते ण ८॥ थेरेहिंतो ण छडुलूएहिंतो रोहगुत्तेहिंतो कोसियगुत्तेहिंतो तत्थ ण तेरासीया निग्गया। थेरेहिंतो ण उत्तरबलिस्सहेहिंतो तत्थ ण उत्तरबलिस्सहे नामं गणे निग्गए-तस्स ण इमाओ चत्तारि साहाओ एवमाहिज्जंति, तजहा-कोसंबिया १, सुत्तिवत्तिया २, कोडंबाणी ३, चंदनागरी ४॥" इति ॥३९॥

अथ श्रीसुहस्तिसूरेर्जन्मादिसत्कवत्सरान् दिदर्शयिषुः पथ्यार्यामाह—

जम्मो सुहत्थिणोऽद्दे णिहिविहु१९१मिए वयं खगकरथणे ।
युगपवरत्तं सरजिण२४५मिए दिवं भूणिहिसय२९१मिए ॥४०॥ (पच्छाज्ञा)

(प्रे०) "**जम्मो**" इत्यादि, "**हत्थिणो**" त्ति सुहस्तिनः=श्रीसुहस्तिसूरेः "**जम्मो**" त्ति, जन्म=उद्भवः, "**णिहिविहु१९१मिए**"त्ति, वीरादिति गम्यते, कुनिधिविधुभिःतद्वाचकैरेक--नवै- करूपैरङ्कैर्वामगतिप्राप्तैरेकनवत्यधिकशत१९१संख्यया मिते=कुनिधिविधुमिते=वीरसंवदेकनवत्यधिकशत१९१तमे "ऽद्दे"त्ति, अब्दे=शारदेऽभूत् । "**वय**"ति, व्रतं-श्रीसुहस्तिसूरेः प्रव्रज्या "**खगकरथणे**"त्ति खे गच्छतीति खगः = सूर्यश्चन्द्रो वैकः, करौ प्रसिद्धौ वामेतरौ द्वौ, स्तनौ=कुचौ प्रसिद्धौ द्वौ, एतेऽङ्काः पश्चानुपूर्विक्रमेण मीलिताः २२१ इति संख्या, यद्वा खे गच्छन्ति खगाः=शराः पञ्च, करः=शुण्डा हस्तिनासैकः, स्तनौ=पयोधरौ सव्येतरौ द्वौ, एतेऽङ्का वामक्रमलब्धा२१५इति सङ्ख्या यत्र तत्र खगकरस्तने=वीरसंवदेकविंशत्युत्तरद्विशत२२१तमे यद्वा पञ्चदशद्विशत २१५ तमे वर्षेऽजायत। यद्वा "खगकरथणे" इति पदमन्यथा व्याख्यातुमपि शक्यते ततो यथासंभवं व्याख्येयम् ।

पन्यासश्रीकल्याणविजयानामभिप्रायेण श्रीसुहस्तिसूरिणो जन्मादिपर्याया क्रमेण वीरसंवत् २४३-२७३-२९७-३४३ संवत्सरेष्वभवन् ।

श्रीआर्यमहागिरेः प्रसिद्धाः शिष्या अष्टावभवन् । तद्यथा—१ आर्योत्तरः, २ आर्यबलिस्सहः, ३ आर्यधनाढ्यः, ४ आर्यश्रीभद्रः, ५ आर्यकौडिन्यः, ६ आर्यनागः, ७ आर्यनागमित्रः, ८ आर्यरोहगुप्तः षडुलूकस्त्रैराशिकस्य प्ररूपक इति ।

अत्र च यदार्यरोहगगुप्तस्यार्यमहागिरिशिष्यत्वेन प्रतिपादितम्, तत्तु श्रीकल्पसूत्रापेक्षया बोध्यम्, अन्यथोत्तराध्ययनसूत्रवृत्ति-स्थानाङ्ग सूत्रवृत्ति-तपागच्छपट्टावल्यादिषु श्रीगुप्तशिष्यत्वेन भणितत्वात् ।

तत्रार्योत्तरबलिसहेभ्यं उत्तरबलिसहसंज्ञको गणो निर्गतः, तस्येमाश्चतस्रः शाखा अभवन् । त ा—१ कौशाम्बिका, २ वर्तिका, ३ कौडुम्बायनी, ४ चन्द्रनागरीति ।

तथा च प्रतिपादितं कल्पसूत्रे—

"थेरस्स ण अज्जमहागिरिस्स एलावच्चसगुत्तस्स इमे अट्ठ थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया हुत्था, त जहा-थेरे 'उत्तरे' १, थेरे 'बलिस्सहे' २, थेरे, 'धणड्ढे'३, थेरे 'सिरिभद्दे' थेरे कोडिन्ने ५, थेरे 'नागे' ६, थेरे 'नामित्ते' ७ थेरे छडुलूए 'रोहगुत्ते' कोसियगुत्ते ण ८॥ थेरेहिंतो ण छडुलूएहिंतो रोहगुत्तेहिंतो कोसियगुत्तेहिंतो तत्थ ण तेरासीया निग्गया। थेरेहिंतो ण, उत्तरबलिस्सहेहिंतो तत्थ ण उत्तरबलिस्सहे नामं गणे निग्गए-तस्स ण इमाओ चत्तारि साहाओ एवमाहिज्जति, तजहा-कोसबिया १, सुत्तिवत्तिया २, कोडंबाणी ३, चदनागरी ४॥" इति ॥३९॥

अथ श्रीसुहस्तिसूरेर्जन्मादिसत्कवत्सरान् दिदर्शयिषुः पथ्यार्यामाह—

जम्मो सुहत्थिणोऽद्दे णिहिविहु१९१मिए वयं खगकरथणे ।
युगपवरत्तं सरजिण२४५मिए दिवं भूणिहिसय२९१मिए ॥४०॥ (पच्छाज्ञा)

(प्रे०) "**जम्मो**" इत्यादि, " **हत्थिणो**" त्ति सुहस्तिनः=श्रीसुहस्तिसूरेः "**जम्मो**" त्ति, जन्म=उद्भवः, " **णिहिविहु१९१मिए**"त्ति, वीरादिति गम्यते, कुनिधिविधुभिःतद्वाचकैरेक--नवै- करूपैरङ्कैर्वामगतिप्राप्तैरेकनवत्यधिकशत१९१संख्यया मिते=कुनिधिविधुमिते=वीरसंवदेकनवत्यधिकशत१९१तमे "ऽद्दे"त्ति, अब्दे=शारदेऽभूत् । "**वय**"ति, व्रतं-श्रीसुहस्तिसूरेः प्रव्रज्या "**खगकरथणे**"त्ति खे गच्छतीति खगः = सूर्यश्चन्द्रो वैकः, करौ प्रसिद्धौ वामेतरौ द्वौ, स्तनौ=कुचौ प्रसिद्धौ द्वौ, एतेऽङ्काः पश्चानुपूर्विक्रमेण मीलिताः २२१ इति संख्या, यद्वा खे गच्छन्ति खगाः=शराः पञ्च, कराः=शुण्डा हस्तिनास्रैकः, स्तनौ=पयोधरौ सव्येतरौ द्वौ, एतेऽङ्का वामक्रमलब्धा२१५इति सङ्ख्या यत्र तत्र खगकरस्तने=वीरसंवदेकविंशत्युत्तरद्विशत२२१तमे यद्वा पञ्चदशद्विशत २१५ तमे वर्षेऽजायत । यद्वा "खगकरथणे" इति पदमन्यथा व्याख्यातुमपि शक्यते ततो यथासंभवं व्याख्येयम् ।

पन्यासश्रीकल्याणविजयानामभिप्रायेण श्रीसुहस्तिसूरिणो जन्मादिपर्याया क्रमेण वीरसवत् २४३-२७३-२९७-३४३ सवत्सरेष्वभवन् ।

भूतः ? "गुरुबंधू" त्ति गुरुबन्धुः = गुरुभ्राता प्रत्यासत्त्याऽऽर्येन्द्रदत्तसूरेर्गुरुबान्धवः, पुनः कीदृग् ? "पहावगो" त्ति, प्रभावकः = शासनोन्नतिकारकः, पुनरपि किं विशिष्टः "कयबम्हण-पडिबोहो" त्ति, कृतो ब्राह्मणानां = द्विजानां प्रतिबोधः = सम्यग्ज्ञानस्य दानं येन स कृत-ब्राह्मणप्रतिबोधः = द्विजानामुपदेशक इत्यर्थः । पुनरपि किं विशिष्ट इत्याह—"सच्चरणगुण-निलयो" त्ति, सत् = सम्यग्, तच्च तच्चरणश्च = संयमश्चारित्रं वा सच्चरणम्, तस्य गुणाः = क्षान्त्यादयः सच्चरणगुणाः, तेषां निलयः = गृहम् = मन्दिरम् = आवासस्थानमिति यावत् सच्चरणगुणनिलयः = सम्यक्चारित्रगुणभृदित्यर्थः ।

तथा चाऽत्र कप्पसूत्रसुबोधिकाटीकाः—

"'विप्पगथे' त्ति, एकदा त्रिशतजिनभवन-चतुःशतलौकिकप्रसादा-ऽष्टादशशतविप्रगृह-षट्त्रिंशच्छत-वणिग्गेह-नवशताराम-सप्तशतवापी-द्विशतकूप-सप्तशतसत्रागारविराजमाने अजमेरुनिकटवर्त्तिनि सुभट-पालराजसम्बन्धिनि हर्षपुरे श्रीप्रियग्रन्थसूरयोऽभ्येयुः तत्र चाऽन्यदा द्विजैर्यागे छागो हन्तुमारेभे, ते श्राद्ध-करार्पितवासक्षेपे अम्बिकाऽधिष्ठितः स छागो नभसि भूत्वा बभाण—

हनिष्यथ नु मा हुत्यै, बध्नीताऽऽयात मा हत । युष्मद्वन्निर्दयः स्या चेत्, तदा हन्मि क्षणेन वः ॥१॥
यत्कृतं रक्षसां दङ्गे कुपितेन हनूमता । तत्करोम्येव वः स्वस्थ कृपा चेन्नान्तरा भवेत् ॥२॥
यावन्ति रोमकूपानि पशुगात्रेषु भारत ! । तावद्वर्षसहस्राणि, पच्यन्ते पशुघातकाः ॥३॥
यो दद्यात्काञ्चनं मेरुं, कृत्स्नां चैव वसुन्धराम् । एकस्य जीवितं दद्या-न्न च तुल्यं युधिष्ठिर ! ॥४॥
महतामपि दानानां कालेन क्षीयते फलम् । भीताभयप्रदानस्य, क्षय एव न विद्यते ॥५॥
इत्यादि, कस्त्वं प्रकाशयात्मानं तेनोक्तं पावकोऽस्म्यहम् । ममैनं वाहनं कस्मा-ज्जिघांसथ पशुं वृथा ? ॥६॥
इहास्ति श्रीप्रियग्रन्थः, सूरीन्द्रः समुपागतः । तं पृच्छत शुचिं धर्मं समाचरत शुद्धितः ॥७॥
यथा चक्री नरेन्द्राणां, धानुष्काणां धनञ्जयः । तथा धुरि स्थितः साधुः, स एकः सत्यवादिनाम् ॥८॥

ततस्ते तथा कृतवन्त इति ॥" इति ॥५२॥

साम्प्रतं श्रीज्ञातसुनोस्तीर्थस्वामिन एकादशे पट्टे जातमार्यश्री★दिन्नसूरिमनुष्टुबाऽऽह—

सोसे मोलिव्व सोहीअ इंददिण्णस्स सूरिणो ।
पट्टम्मि सिरिदिण्णक्खो, गणिंदो सूरिपुंगवो ॥५३॥ (अणुट्टुभं)

(प्रे०) "**सोसे**" इत्यादि, सुगमा, अक्षरार्थस्त्वेवम्—"**इंददिण्णस्स सूरिणो पट्टम्मि**" इन्द्रदिन्नस्य = इन्द्रदिन्नाऽभिधस्य सूरेः = आचार्यस्य पट्टे = पदे "**सिरिदिण्णक्खो गणिंदो सूरिपुंगवो**" त्ति, श्रिया = ज्ञानादित्रिकलक्ष्म्या युक्तो ★दिन्नाख्यः = ★दिन्ननामा गौतमगोत्रो गणेन्द्रः = गच्छाधिपः सूरिषु = आचार्येषु पुङ्गवः = श्रेष्ठः, सूरिपुङ्गवः "**सोहीअ**" त्ति, शुशुभे ।

★ "दत्त०" इत्यपि पाठान्तरमूह्यम्, तथाविधनामपाठस्याप्युपलम्भात् । एवमन्यत्रा-ऽपि बोध्यम् ।

तं जहा-हारिअमालागारी १, संकासीआ गवेधुया, ३ विज्जनागरी ४, से त साहाओ ।। से किं त कुलाइं ? कुलाइ एवमाहिज्जति त जहा-"पढमित्थ वत्थलिज्ज १,बीय पुण पीइधम्मिअ २ होइ । तइअ पुण हालिज्जं, ३ चउत्थय पुसमित्तिज्ज४ ॥१॥ पचमग मालिज्ज ५, छट्ठ पुण अज्जवेडय ६ होइ । सत्तमग कण्हसह ७, सत्त कुला चारणगणस्स ॥२॥ थेरेहिंतो ण भद्दजसेहिंतो भारद्दायसगुत्तेहिंतो इत्थ णं उडुवाडियगणे नाम गणे निग्गए तस्स ण इमाओ चत्तारि साहाओ, तिण्णि कुलाइ एवमाहिज्जति, से किं त साहाओ ? साहाओ एवमाहिज्जति, त जहा चंपिज्जिया १, भद्दिज्जिया२, काकंदिया ३, मेहलिज्जिया ४, से त साहाओ ॥ से किं त कुलाइ ? कुलाइं एवमाहिज्जति, त जहा-भद्दजसिय, २, तह भद्दगुत्तिय तइअ च होइ जसभद्दं ३ । एयाइं उडुवाडिय गणस्स तिण्णेव य कुलाइ ॥१॥ थेरेहिंतो ण कामिड्ढीहिंतो कोडालसगुत्तेहिंतो इत्थ ण वेसवाडियगणं नामं गणे निग्गए, तस्स ण इमाओ चत्तारि साहाओ, चत्तारि कुलाइं एवमाहिज्जति । से किं त साहाओ ? साहाओ एवमाहिज्जति तंजहा-सावित्थया १ रज्जपालिआ २ अतरिज्जिया ३ खेमलिज्जिया ४ से त साहाओ, से किं त कुलाइ कुळाइ एवमाहिज्जति, तजहा-"गणिय १ हिअ २ कामड्ढियं ३ च तह होइ इदपुरग ४ च । एयाइ वेसवाडिय-गणस्स चत्तारि उ कुलाइ ॥१॥ थेरेहिंतो ण इसिगुत्तेहिंतो वासिट्ठसगुत्तेहिंतो इत्थ ण माणवगणे नाम गणे निग्गए, तस्स ण इमाओ चत्तारि साहाओ, तिण्णि य कुलाइ एवमाहिज्जंति,से किं त साहाओ । एवमाहिज्जति त जहा-कासविज्जिया १ गोयमिज्जिया २ वासिट्ठिया ३ सोरट्ठिया ४ से त साहाओ ।। से किं त कुलाइ । कुलाइ एवमाहिज्जति त जहा-'इसिगुत्ति इत्थ पढमं ' बीअं इसिदत्तिअ मुणेयव्व २ तइअ च अभिजयत ३ तिण्णि कुला माणवगणस्स ।।१।। थेरेहिंतो सुट्ठिय-सुप्पडिबुद्धेहिंतो कोडियकाकदएहिंतो वग्धावच्चसगुत्तेहिंतो इत्थ ण कोडियगणे नाम गणे निग्गए, तस्स ण इमाओ चत्तारि साहाओ चत्तारि कुलाइ च एवमाहिज्जति । से किं त साहाओ ? साहाओ एवमाहिज्जति, त जहा-उच्चानगरी १, विज्जाहरी य २ वइरी य ३ मज्झिमिल्ला ४ य । कोडियगणस्स एया हवति चत्तारि साहाओ ॥१॥ से त साहाओ ॥ से किं त कुलाइ ? कुलाइ एवमाहिज्जति, त जहा-पढमित्थ बभलिज्ज १ बिइय नामेण वत्थलिज्ज तु ।तइय पुण वाणिज्ज ३ च उत्थय पण्हवाहणय ४ ।।१।।" इति ॥४०॥

अथ श्रीआर्यसुहस्तिसूरिं यावद्गच्छनायकानामेव युगप्रधानत्वं वाचनादातृत्वञ्चाऽऽसीदिति दर्शयन् पथ्यार्यामाह—

> अज्जसुहत्थि गुरुं जा हवीअ गच्छाहिवा च आयरिआ।
> सव्वे जुगप्पहाणा पुव्वहरा वायणादाऊ ॥४१॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "अज्ज" इत्यादि, सुगमा । तथाऽप्यक्षरगमनिका लिख्यते-आर्यसुहस्तिं गुरुं यावत्सर्वे गच्छाऽधिपा आचार्या एव युगप्रधानाः पूर्वधरा वाचनादातारश्चाऽभवन् ।

अथ तदानीं णिकवादी चतुर्थनिह्नवः समुत्पन्नस्तत्सत्का वक्तव्यता समासतो दर्श्यते । तद्यथ –

आर्यमहागिरिशिष्यस्य कौडिन्यस्य शिष्योऽश्वमित्रो मिथिलापुर्यां लक्ष्मीगृहे चैत्येऽनुप्रवादपूर्वे नैपुणकनाम्नि वस्तुनि छिन्नछेदनकनयवक्तव्यतायां "पडुप्पन्नसमयनेरइया सव्वे

(प्रे०) "आसि" इत्यादि, "तयाणि" त्ति, तदानीम्=आर्यश्रीदिन्नसूरिनिकटकाले 'भणेगा पहावगात्ति, अनेकाः=बहवः प्रभावकाः=शासनोन्नतिकारकाः "आसि"त्ति, बभूवुः "तेसु" त्ति, तेषु=प्रभावकेषु "वायणायरिओ तेरसमो जुगपवरो ★'सडिलसूरी य" त्ति, मथुरावाचनानुगामिन्यां श्रीनन्दिसूत्रोक्तवाचकस्थविरपरम्परायां हिमवतस्थविरावल्युक्तवाचक-स्थविरपरम्परायाश्च तथा युगप्रधानपरम्परायाश्च श्रीआर्यश्यामाचार्यस्य पश्चाद्वाचनाचार्यस्त्रयोदशो युगप्रवरः=युगप्रधानः ☆ 'शाण्डिल्यसूरिः=श्रीशाण्डिल्यनामा आचार्यः कौशिकगोत्रः सञ्जातः। पुनः कीदृक् सः? इत्याह "[2]अज्जजीअहरो" त्ति, 'आगत् = सर्वहेयधर्मेभ्योऽर्वाक् यातं = गतम्-आर्य यद्वा "अज्जं" ति, आद्यम्, तथा चोक्त श्रीनन्दीचूर्णौ-'अज्ज" ति, मार्य-माद्य वा जीतं = तन्नाम सूत्रम्, जीतं मर्यादा व्यवस्था स्थितिः कल्प इति पर्यायाः ततो मर्यादा-दिकारणं सूत्रमपि जीतमित्युच्यते आर्यश्च तज्जीतश्चार्यजीतं तस्य [3]'धृग् धारणे' इति भ्वादिपत्को-भयपदी हैमधातुस्ततो धरति-ते वेति 'लिहादिभ्य' सि० ५-१-५०)इत्यनेन' अच्"(सि० ५-१-४९) इत्यनेन वाऽच्प्रत्ययः=धरः, आर्यजीतस्य धरः=आर्यजीतधरः।

अन्ये पुनः शाण्डिल्यस्याऽपि शिष्यः, आर्यगोत्रो जीतधरनामा जीवधरनामा वा सूरि-रासीदिति वदन्ति। तथाहि-

श्रीहिमवदाचार्यैः स्थविरावल्यामार्यशाण्डिल्यसूरेर्द्वौ शिष्य आर्यजीतधरा-ऽऽर्य-समुद्राख्यौ दर्शितौ। तथा च तद्ग्रन्थः- 'तेषां शाण्डिल्याचार्याणा आर्यजीतधरा-ऽऽर्यसमुद्राख्यौ द्वौ शिष्यावभूताम्।"इति। तदपेक्षयार्यजीतधरनामा सूरिः श्रीशाण्डिल्यसूरिशिष्यो बभूवेति बोध्यम्।

तथा चोक्तं श्रीनन्दीसूत्रस्य वंदे कोसियगोत्तं संडिल्लं अज्जजीअधरं ॥२६॥" इति षड्विंशतितमगाथोत्तरार्धवृत्तौ श्रीमलयगिरिपादैः—

"तथा श्यामाचार्यशिष्य कौशिकगोत्र 'शाण्डिल्य' शाण्डिल्यनामान वन्दे, किम्भूतमित्याह-'आर्यजीत-धरं' आरात् सर्वहेयधर्मेभ्योऽर्वाक् यातमार्यं "जीत" मिति सूत्रमुच्यते, जीतं=स्थिति कल्पो मर्यादा व्यवस्थेति हि पर्याया, मर्यादादिकारणञ्च सूत्रमुच्यते तथा [4]'धृङ् धारणे' ध्रियते=धारयतीति धर "लिहादिभ्य" इत्यच्प्रत्यय आर्यजीतस्य धर =आर्यजीतधरस्तम्, अन्ये तु व्याचक्षते शाण्डिल्यस्या-ऽपि शिष्य आर्यगोत्रो जीतधरनामा सूरिरासीत् त वन्दे इति॥" इति।

---

२ "स्थादिभ्य क"(सि०५ ३-८२) इत्यनेन यद्वा 'तुदादिविषिगुहिभ्य' कित्,(सि०उणा०सू०५) इत्यनेन त्रिदू=अप्रत्यये सति 'इडेत् पुसि चातो लुक्' (सि०४-३ ९४) इति सूत्रेण याधातोराकारस्य लोपे तथा 'पृषोदरादय' (सि०३-२ १५५) इत्यनेन आरात्शब्दस्याल्लोपे रूपनिष्पत्ति। यद्वा अर्यते= अभि-गम्यते इति ऋधातोर्ण्यणि सति आर्यशब्दनिष्पत्ति।

३ उक्तधात्वतिरिक्तो भ्वादेरेव केवलात्मनेपदी 'धृङ् अविध्वंसने' इति, तथा तुदादिगणसत्कात्मनेपदी 'धृङत् स्थाने' इति, चुरादिसम्बन्धी च परस्मैपदी 'धृण' स्रवणे' इत्यपि "धृ" धातुर्हैमधातुपाठेऽस्ति।

४-धातुपारायणगतोऽयं धातु।

तथा चोक्तं विशेषावश्यके—

"अट्ठावीसा दो वाससया(तइआ) सिद्धिं गयस्स वीरस्स ।
दो किरियाण दिट्ठी उल्लुगतीरे समुप्पन्ना ॥२४२८॥" इति ।

विशेषार्थिना तु **सटीकभाष्यगाथा २४२६ त आरभ्य २४५०** पर्यन्ता गाथा विलोकनीया ॥४१॥

सम्प्रति श्रीचरमतीर्थकृतो नवमपट्टे संजातयोः श्रीसुहस्तिशिष्ययोः श्रीसुस्थित-श्री▽सुप्रतिबुद्धसंज्ञकयोः श्लोकद्वयेन व्याजिहीर्षया प्रथमं वल्लकीमाह—

सूरिमंतस्स जवकोडिओ, गच्छणामो जओ कोडिओ;
णिग्गओ इक्खुगहणा जिणा, आइमिक्खागुवंसो जहा ।
लोअणाइं मिव सुहत्थिणो, पट्टवत्तम्मि सोहीअ जे;
सुट्ठिअक्खो +सुपडिबुद्धगो, ते गुरू दिन्तु भव्वाण सं ॥४२॥ (वल्लकी)

(प्रे०) **"सूरि०"** इत्यादि, **"जओ"** त्ति यतः,याभ्यां श्रीसुस्थितसुप्रतिबुद्धाभ्यां '**सूरिमतस्स**"त्ति, सूरिमन्त्रस्य **"जवकोडिओ"** त्ति जपानां = मनसि रटनानां "जप स्यादक्षरावृत्तिमानसोपांशुवाचकै" इति वचनात्, कोटिः = शतलक्षाः = जपकोटिस्ततो जपकोटितः कोटिजापात् = कोटिशो जपनादिति यावत् शतलक्षाणि तथा कोट्यंशसूरिमन्त्रधारणादित्यपि ज्ञेयम् ।

यदुक्तं गुर्वावल्याम्—

"तस्याभूतां चोभौ कोटिकनामाऽभवच्च तद्गच्छ । △कोट्यंश श्रीवज्र यावदभूत् सूरिमन्त्रो यत् ॥१६॥

'गच्छणामो'त्ति गच्छस्य = गणस्य नाम = सञ्ज्ञा श्रीसुधर्मस्वामिनमारभ्य श्रीसुहस्तिसूरिं यावत् निर्ग्रन्थ इत्यभिधाऽऽसीत्तस्य द्वितीयं नाम **'कोडिओ'**त्ति कौटिक इति **"णिग्गओ"** त्ति निर्गतः= प्रादुर्बभूव । क इव **"जहा** त्ति यथा **"इक्खागुवंसो"** त्ति इक्ष्वाकुवंशः **'आइमा'** त्ति आदिमात् =आद्यात् **"जिणा"**त्ति जिनात्=अर्हतः=ऋषभस्वामित इत्यर्थः । **"इक्खुगहणा"** त्ति इक्षोर्ग्रहणाद् = आदानात् **"णिग्गओ"**त्ति निर्गतः = प्रादुर्बभूव,तद्वत् । **तथाहि**—प्रभौ किञ्चिदूनवर्षे सञ्जाते प्रथमजिनवंशस्थापनं स्वजीतमिति विचिन्त्य सौधर्मेन्द्रः कथं रिक्तहस्तस्वामिसमीपं गच्छामीति महतीमिक्षुयष्टिमादाय नाभिकुलकराङ्कस्थस्य प्रभोरग्रे आगतस्तां च दृष्ट्वा प्रफुल्लितास्येन प्रभुणा हस्तेऽवलम्बित इक्षुं भक्षयमीति भणित्वा तां दत्त्वेक्ष्वभिलाषात्स्वामिनो वंश इक्ष्वाकुनामा भवतु, इत्युदित्वेन्द्रेण प्रभोर्वंशः स्थापित इतीक्ष्वाकुवंशोत्पत्तिः । **"सुहत्थिणो"**

▽ "सुप्रतिबद्ध" इति नामापि केचिन्मन्यन्ते + 'सुपडिबद्धगो" इत्यपि । △ 'कोटीश' इत्यपि पाठः ।

लभ्यन्ते तत्र अङ्कनिरयरामे = वीरसंवदि ३७६ वर्षे "जुगवरो" त्ति, युगवरः = युगप्रधानो बभूव । "वेअकुजुगम्मि दिव" ति, वेदकुयुगाः = चतु-रेक-चतूरूपा वेद्य -कु युगाः = द्वये -क-चतुर्लक्षणा वा यस्य तादृशे वेदकुयुगे वेद्यकुयुगे वा प्रतिलोमक्रमभणिते वीरसंवदि ४१४। ४१२ वर्षे दिवं = स्वर्गं प्राप्तः ।

इत्थञ्चाऽसौ द्वादश १२ वर्षाणि गृहपर्याये, अष्टापञ्चाशद ५८ वर्षाणि सामान्यव्रतपर्याये मताऽन्तरेण पुनर्द्वाविंशति २२ वर्षाणि गृहवासे, अष्टचत्वारिंशद४८वर्षाणि सामान्यव्रतित्वे, अष्टात्रिंशद् ३८ वर्षाणि युगप्रधानत्वे चेति सर्वायुश्चाऽष्टोत्तरशत१०८वर्षाणि अथवा मताऽन्त-रेण षट्त्रिंशद् ३६ वर्षाणि युगप्रधानत्वे चेति निखिलायुश्च षडधिकशतवर्षमितमुपभुज्याऽमरालय भूषयामास ।।५६।।

साम्प्रतं श्रीस्कन्दिलसूरेरनन्तरभाविनं चतुर्दशं युगप्रधानं तथा वलभीवाचनानुसारेण वाचनाचार्यं श्रीरेवतीमित्रसूरिमभिधातुमिच्छया पथ्यार्याद्वय प्राह—

तो आसि जुगपहाणो चउदसमो सूरिरेवतीमित्तो ।
वीराऽस्स जणी वारणरयणविसिहगुत्ति३५२संखेऽद्दे ।।५७।। (पच्छाज्जा)
णरखेत्तेगदिसारविसल्ल३६६पमाणे वयं जुगपहाणो ।
सुअभेअसुरिहदसणो४१४स गओ खविसयगइम्मि४५०दिवं ।।५८।। (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "तो" इत्यादि, "तो ' त्ति ततः = श्रीस्कन्दिलसूरेर्युगप्रधानस्यानन्तरं "सूरि-रेवतीमित्तो" सूरिश्चासौ रेवतीमित्रः = तन्नामा सूरिरेवतीमित्रः = रेवतीमित्राख्य आचार्यो दशपूर्ववित् "आसि जुगपहाणो चउदसमो" त्ति युगप्रधानपरम्परायां चतुर्दशो युगप्रधानो वलभीवाचनामनुसृत्य वाचनाचार्यश्च बभूव ।

अथाऽमुष्य जन्मादिसंवत्सरान् शेषया सार्द्धया ऽऽर्यया-ऽऽह—"वीरा" इत्यादि, "ऽस्स" त्ति अस्य श्रीरेवतीमित्रसूरेः "वीरा ' त्ति वीरात्=वीरप्रभुमुक्तिगमनात् वारण-रयणविसिहगुत्तिसंखेऽद्दे" त्ति वारणरदनौ=गजदन्तौ द्वौ, विशिखाः=बाणाः पूर्ववत् पञ्च, गुप्तयः=मनोवचनकायभेदभिन्नास्तिस्रः, एतेषामङ्कानां वामगत्या ३५२ इति प्रमाणं सङ्ख्या यस्य तादृशे वारणरदनविशिखगुप्तिसङ्ख्ये ' ऽद्दे" त्ति अब्दे=वर्षे वीरसंवदि ३५२ तमे शरदि "जणी" त्ति जनिः=उत्पत्तिरभूत् । "णरखेत्तेगदिसारविसल्लपमाणे" त्ति नरक्षेत्रैकदि-ग्रवयः = षट्षष्टिः, शल्या=मनोवाक्कायभेदात्त्रयः, एतयोरङ्कयोः पश्चानुपूर्व्या ३६६ इति सङ्ख्या प्रमाणं यत्र तत्र नरक्षेत्रैकदिग्रविशल्यप्रमाणे=वीरसंवदि ३६६ हायने "वय" ति

"दिक्खा"त्ति त्ति, दीक्षा बभूव । "स"त्ति, स=सुस्थितसूरिः "कुनिहिकरे" त्ति. कुनिधिकराः क्रमेणैकाङ्क नवाङ्क-द्व्यङ्का यस्मिंस्तस्मिन् कुनिहिकरे वीरसंवत् २९१ हायने "सूरि" त्ति सूरिः सूरी वा=आचार्यो जातः "खगवण्हिविस्से" त्ति, खगा नव, वह्नयस्त्रयः, विश्वास्त्रयः, एतेऽङ्का यत्र तत्र खगवण्हिविश्वे=वीरसंवत् ३३९ वत्सरे ' ख" ति, खं=स्वर्गं प्राप्तः ।

एवञ्च श्रीसुहस्तिसूरेकत्रिंशद् ३१ वर्षाणि गार्हस्थ्ये, सप्तदश १७ वर्षाणि श्रमणव्रतपर्याये, अष्टचत्वारिंशद् ४८ वर्षाणि सूरित्वे चेति सर्वायुः षण्णवति ९६ वर्षाणि परिपाल्य सुपर्वधाम भजते स्म ।।४३ ।

अथ श्रीसुस्थित-श्रीसुप्रतिबुद्धसूरिकाले संजातां तृतीयाऽऽगमवाचनामाविष्कुर्वन् जघनविपुलापूर्विकामन्तचपलां गीतिमाह–

मरगिरिम्मि णीणं तइआगमवायणा उ सिं काले।
सुअसंगहस्स काराविआ कलिंगणिवभिक्खुराएणं ।।४४।।

(अंतविपुलाजहणंचवलागीई)

(प्रे०)"कुमर०" इत्यादि, "सिं काले" त्ति तयोः = आर्यश्रीसुस्थित सुप्रतिबुद्धयोः काले = समये "कुमरगिरिम्मि" त्ति कुमरगिरौ = कुमरगिरिसंज्ञके तीर्थरूपे पर्वते "सुअसंगहस्स"ति. श्रुतस्य =श्रुतागमस्य=संग्रहाय=संग्रहार्थं "मुणीण"त्ति मुनीनां = साधूनां "तइआ-ऽऽगमवायणा" त्ति यद्यपि बहुष्वागमवाचनासु भूतास्वपि श्रीसुहस्तिसूरिसमयजातविशिष्टद्वितीयागमवाचनाऽपेक्षया तृतीयविशिष्टाऽऽगमवाचना "कलिंगणिवभिक्खुराएण ति, कलिङ्गस्य = तन्नामदेशस्य नृपः = राजा = कलिङ्गनृपः, स चासौ भिक्षुराजः=तन्नामा कलिङ्गनृपभिक्षुराजस्तेन कलिङ्गनृपभिक्षुराजेन = कलिङ्गदेशाऽधिपतिना भिक्षुराजसंज्ञकेन महामेघवाहन-खारवेलाधिपनीत्यपरनामद्वयभृता नृपतिना "काराविआ" त्ति कारिता= विधापिता ।

तत्सम्बन्धश्चैवम्–तदानीं राजद्रोहं कृत्वा पट्टणाराज्यसिंहासनागतः [1]पुष्पमित्रः सेनापतिर्धर्मान्धीभूय जैनबौद्धश्रमणादीनां शिरच्छेदादिकमकरोत्तदा जैनश्रमणाः कलिङ्गदेशं जग्मुः । इतश्च कलिङ्गाधिपेन भिक्षुराजखारवेलेन पराजितः [1]पुष्पमित्रः पाश्चालदेशे पलायितः । ततः पश्चादियं वाचना तेन कारिता ।

तस्याश्च वाचनायां जिनकल्पतुलनां कुर्वतामार्यबलिस्सह-बोधिलिङ्ग-देवाचार्य-धर्मसेननक्षत्राचार्यप्रमुखानां शतद्वयम् , स्थविरकल्पाणामार्यसुस्थित-सुप्रतिबुद्धो–मास्वाति-श्यामाचार्या-

१ "पुष्यमित्र" इत्यपि ।

लभ्यन्ते तत्र अङ्गनिरयरामे = वीरसंवदि ३७६ वर्षे "जुगवरो" त्ति, युगवरः = युगप्रधानो बभूव । "वेअकुजुगम्मि दिव" ति, वेदकुयुगाः = चतु-रेक-चतूरूपा वेद्य -कु युगाः = द्वये-क-चतुर्लक्षणा वा यस्य तादृशे वेदकुयुगे वेद्यकुयुगे वा प्रतिलोमक्रमभणिते वीरसंवदि ४१४। ४१२ वर्षे दिवं = स्वर्गं प्राप्तः ।

इत्थञ्चाऽसौ द्वादश १२ वर्षाणि गृहपर्याये, अष्टापञ्चाशद ५८ वर्षाणि सामान्यव्रतपर्याये मताऽन्तरेण पुनर्द्वाविंशति २२ वर्षाणि गृहवासे, अष्टचत्वारिंशद्४८वर्षाणि सामान्यव्रतित्वे, अष्टात्रिंशद् ३८ वर्षाणि युगप्रधानत्वे चेति सर्वायुश्चाऽष्टोत्तरशत१०८वर्षाणि, अथवा मताऽन्तरेण षट्त्रिंशद् ३६ वर्षाणि युगप्रधानत्वे चेति निखिलायुश्च षडधिकशतवर्षमितमुपभुज्याऽमरालयं भूषयामास ॥५६॥

साम्प्रतं श्रीस्कन्दिलसूरेरनन्तरभाविनं चतुर्दशं युगप्रधानं तथा वलभीवाचनानुसारेण वाचनाचार्यं श्रीरेवतीमित्रसूरिमभिधातुमिच्छया पथ्यार्याद्वय प्राह—

तो आसि जुगपहाणो चउदसमो सूरिरेवतीमित्तो ।
वीराऽस्स जणी वारणरयणविसिहगुत्ति[३५२]संखेऽद्दे ॥५७॥ (पच्छाज्जा)
णरखेत्तेगदिसारविसल्ल[३६६]पमाणे वयं जुगपहाणो ।
सुअभेअसुरिहदसणो[४१४]स गओ खविसयगइम्मि[४५०]दिवं ॥५८॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "तो" इत्यादि, "तो" त्ति ततः = श्रीस्कन्दिलसूरेर्युगप्रधानस्यानन्तरं "सूरिरेवतीमित्तो" सूरिश्चासौ रेवतीमित्रः = तन्नामा सूरिरेवतीमित्रः = रेवतीमित्राख्य आचार्यो दशपूर्ववित् "आसि जुगपहाणो चउदसमो" त्ति युगप्रधानपरम्परायां चतुर्दशो युगप्रधानो वलभीवाचनामनुसृत्य वाचनाचार्यश्च बभूव ।

अथाऽमुष्य जन्मादिसंवत्सरान् शेषया सार्द्धया ऽऽर्यया-ऽऽह—"वीरा" इत्यादि, "ऽस्स" त्ति अस्य श्रीरेवतीमित्रसूरेः "वीरा" त्ति वीरात्=वीरप्रभुमुक्तिगमनात् "वारणरयणविसिहगुत्तिसंखेऽद्दे" त्ति वारणरदनौ=गजदन्तौ द्वौ, विशिखाः=बाणाः पूर्ववत् पञ्च, गुप्तयः=मनोवचनकायभेदभिन्नास्तिस्रः, एतेषामङ्कानां वामजुषां ३५२ इति प्रमाणं सङ्ख्या यस्य तादृशे वारणरदनविशिखगुप्तिसङ्ख्ये 'ऽद्दे" त्ति अब्दे=वर्षे वीरसंवदि ३५२ तमे शरदि "जणी" त्ति जनिः=उत्पत्तिरभूत् । "णरखेत्तेगदिसारविसल्लपमाणे" त्ति नरक्षेत्रैकदिग्रवयः = षट्षष्टिः, शल्या=मनोवाक्कायभेदात्त्रयः, एतयोरङ्कयोः पश्चानुपूर्व्या ३६६ इति सङ्ख्या प्रमाण यत्र तत्र नरक्षेत्रैकदिग्रविशल्यप्रमाणे=वीरसंवदि ३६६ हायने "वय" ति

मगधाधिपतेः पुष्पमित्रसेनापतेस्तथा कलिङ्गदेशाधिपस्य भिक्षुराजस्य हिमवदाचार्यरचित-स्थविरावल्यपेक्षया कालसम्बन्धश्चैवम्—

वीरप्रभुनिर्वाणात् षष्टिवर्षेषु व्यतिक्रान्तेषु वीरप्रभोः परमभक्तस्य प्रसेनजिन्नृपात्मज-श्रेणिकभूपतेः पौत्रोऽजातशत्रुकोणिकभूपालस्य पुत्र उदायिनृपो मगधाधिपतिः कालं गतः । ततो नव नन्दनृपतयः पञ्चनवति वर्षाणि यावत् मगधदेशस्य राज्यमकरोत् । वीराच्चतुःपञ्चाशदधिक-शतवर्षेषु व्यतिक्रान्तेषु वीरसंवत् २५५वर्षे नवमं नन्दनृपं पाटलिपुत्राद् नगराद् निष्काश्य मौर्य-पुत्रः चन्द्रगुप्तो मगधाधिपो जातः । स च वीरात् चतुरशीत्यधिकशतवर्षेष्वतीतेषु परलोकं प्राप्तः । ततश्च तत्सुतो बिन्दुसारो मगधाधिपतिर्बभूव । सोऽपि वीराद् नवोत्तरशतद्वयहायनेषु व्यतीतेषु परलोकस्यातिथिरजायत । ततस्तत्तनयोऽशोकाभिधो मगधदेशाधिपोऽभूत् । स च वीरात् द्विशताधिकचतुश्चत्वारिंशद्वर्षेषु गच्छत्सु परलोकं प्राप्तः । ततस्तस्य पौत्रः कुणालपुत्रो मगध-देशस्याधिपत्यमलभत । स च राजधानी पाटलिपुत्रं त्यक्त्वा-ऽवन्त्यामकरोत् । तेन पाटलि-पुत्रेऽशोकपुत्रः पूर्णरथाभिधो राज्यमकरोत् । स च वीरादशीत्यधिकशतद्वयवर्षाणां व्यतीते सति निजतनयं वृद्धरथाख्यं राज्ये स्थापयित्वा कालं गतः । सम्प्रतिनृपश्च वीराद् द्विशतोत्तरत्रिनवति-समानां व्यतिक्रमे सति स्वर्गभागभूत् । ततो वीरात् चतुरुत्तरशतत्रयसंवत्सराणामतीते सति वृद्धरथ नृपं मारयित्वा पुष्पमित्राख्यः सेनाधिपतिर्मगधदेशाधिपो जातः ।

इतश्च वीरप्रभुपरमोपासको वैशालीनगराधिपतिश्चेटकाभिधो नृपो निजभागिनेयेण कोणिकेण नृपेण यद्धेऽभिनिक्षप्तोऽनशनं कृत्वा-ऽमरो जातः । तत्सुतः शोभननामा स्वश्वशुरस्य कलिङ्गाधिपतेः सुलोचनाख्यस्य नृपस्य शरणं गतः तेन सुलोचननृपेणा-ऽपि निष्पुत्रत्वेन स स्वराज्ये स्थापितः, तस्य वंशे दशमो भिक्षुराजाख्यो नृपो वीरात् त्रिशतवत्सरेषु व्यतीतेषु कलिङ्गदेशाधिपति-रजायत । इदञ्च श्रीहिमवदाचार्यनिर्मितस्थविरावल्यपेक्षयोक्तम् ।

तथा चोक्तं किञ्चिद्विस्तरतः श्रीहिमवदाचार्यैः स्थविरावल्याम्—

'तेण कालेण तेण समएण समणे भगव महावीरे विअरइ रायगिहम्मि णयरे । सेणिओ बिंबिसारावरणाम-धिज्जो णिवो समणस्स, भगवओ महावीरस्स समणोवासगो (ण)योवेओ सुसड्ढो आसी । पुव्वि ण पासा-रहाइचलणजुअलपूए खोगणिग्गठणिग्गठीहिं पडिसेविए कलिंगणामधिज्जजणवयमडण-तित्थभूअ-कुमर कुमारीणामधिज्ज-पव्वयजुगले तेण सेणियवरणिवेण सिरिरिसहेसजिणाहिवस्साईवमणोहरो जिण-पासाओ णिम्माइओ होत्था । तम्मि य ण सुवण्णमयी रिसहेसपडिमा सिरिसोहम्मगणहरेहिं पइट्ठिआ आसी । पुणो वि तेण कालेण तेण समएण तेणेव सेणियवरणिवेण णिग्गट्ठाण णिग्गट्ठीण य वासावासट्ठं तम्मि य पव्वयजुअलम्मि अणेगे लेणा उक्किणाइया तत्थ ठिआ खोगे णिग्गठा णिग्गठीओ ण वासासु वम्मजागरण कुणमाणा झाणज्झयणजुआ सुहसुहेण णाणाविहतवकम्मट्ठिया वासावास कुणति । सेणियणिव-पुत्तो अजायसत्तू कोणियावरणामधिज्जो णियपिउस्स ण सत्तुभूओ पिउ पजरम्मि णिक्खिवइत्ता चपेऽणाम

लभ्यन्ते तत्र अङ्गनिरयरामे=वीरसंवदि ३७६ वर्षे "जुगवरो" त्ति, युगवरः=युगप्रधानो बभूव । "वेअकुजुगम्मि दिव" ति, वेदकुयुगाः=चतु-रेक-चतूरूपा वेद्य -कु युगाः= द्व्ये-क-चतुर्लक्षणा वा यस्य तादृशे वेदकुयुगे वेद्यकुयुगे वा प्रतिलोमक्रमभणिते वीरसंवदि ४१४। ४१२ वर्षे दिवं=स्वर्गं प्राप्तः ।

इत्थञ्चाऽसौ द्वादश १२ वर्षाणि गृहपर्याये, अष्टापञ्चाशद् ५८ वर्षाणि सामान्यव्रतपर्याये मताऽन्तरेण पुनर्द्वाविंशति २२ वर्षाणि गृहवासे, अष्टचत्वारिंशद४८वर्षाणि सामान्यव्रतित्वे, अष्टात्रिंशद् ३८ वर्षाणि युगप्रधानत्वे चेति सर्वायुश्चाऽष्टोत्तरशत१०८वर्षाणि· अथवा मताऽन्त-रेण षट्त्रिंशद् ३६ वर्षाणि युगप्रधानत्वे चेति निखिलायुश्च षडधिकशतवर्षमितमुपभुज्याऽ मरालयं भूषयामास ।।५६।।

साम्प्रतं श्रीस्कन्दिलसूरेरनन्तरभाविनं चतुर्दशं युगप्रधानं तथा वलभीवाचनानुसारेण वाचनाचार्यं श्रीरेवतीमित्रसूरिमभिधातुमिच्छया पथ्यार्याद्वयं प्राह—

तो आसि जुगपहाणो चउदसमो सूरिरेवतीमित्तो ।
वीराऽस्से जणी वारणरयणविसिहगुत्ति[352]संखेऽद्दे ।।५७।। (पच्छाज्जा)
णरखेत्तेगदिसारविसल्ल[366]पमाणे वयं जुगपहाणो ।
सुअभेअसुरिहदसणो[414]स गओ खविसयगइम्मि[450]दिवं ।।५८।। (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "तो" इत्यादि, "तो' त्ति ततः=श्रीस्कन्दिलसूरेर्युगप्रधानस्यानन्तरं "सूरि-रेवतीमित्तो" सूरिश्चासौ रेवतीमित्रः=तन्नामा सूरिरेवतीमित्रः=रेवतीमित्राख्य आचार्यो दशपूर्ववित् "आसि जुगपहाणो चउदसमो" त्ति युगप्रधानपरम्परायां चतुर्दशो युगप्रधानो वलभीवाचनामनुसृत्य वाचनाचार्यश्च बभूव ।

अथाऽमुष्य जन्मादिसंवत्सरान् शेषया सार्द्धया ऽऽर्यया-ऽऽह–"वीरा" इत्यादि, "ऽ " त्ति अस्य श्रीरेवतीमित्रसूरेः "वीरा' त्ति वीरात्=वीरप्रभुमुक्तिगमनात् वारण-रयणविसिहगुत्तिसंखेऽद्दे" त्ति वारणरदनौ=गजदन्तौ द्वौ, विशिखाः=बाणाः पूर्ववत् पञ्च, गुप्तयः=मनोवचनकायभेदभिन्नास्तिस्रः, एतेषामङ्कानां वामजुषां ३५२ इति प्रमाणं सङ्ख्या यस्य तादृशे वारणरदनविशिखगुप्तिसङ्ख्ये "ऽद्दे" त्ति अब्दे=वर्षे वीरसंवदि ३५२ तमे शरदि "जणी" त्ति जनिः=उत्पत्तिरभूत् । "णरखेत्तेगदिसारविसल्लपमाणे" त्ति नरक्षेत्रैकदि-ग्रवयः=षट्षष्टिः, शल्या=मनोवाक्कायभेदात्त्रयः, एतयोरङ्कयोः पश्चानुपूर्व्या ३६६ इति सङ्ख्या प्रमाण यत्र तत्र नरक्षेत्रैकदिग्रविशल्यप्रमाणे=वीरसंवदि ३६६ हायने "वय" ति

सपइणिवजीवो पुव्वम्मि भवे एगो दरिद्दो दु(द)मगो आसी। मोयणट्ठा अज्जसुहत्थिसमीवे दिक्खिऊणा भत्तमामाइयजुओ जावेग दिण सामण्ण पाउणित्ता कुणालपुत्तत्ताए समुप्पण्णो आसी। इओ थेरे अज्जसुहत्थि-आयरिया विहार कुणमाणा णिग्गंठपरिवारजुआ अवतीए णयरीए पत्ता। तत्थ ण जिण-पडिमारहजत्तम्मि चलमाणा णियपासायगवक्खवट्टिएण सपइणा वेण ते दिट्ठा। खिप्प मेव जायजाइसरो से सपइणिवो तेसिं णं अज्जसुहत्थीणं समीवे समेओ। आयरियाण य वंदिऊण कयंजलिपुडो णियपुव्व-जम्मकह भणित्ता-ऽईवविणयोवगओ वहइ-भयव! तुम्ह पसाएण मए दु(द)मगेणावि एय रज्ज लद्ध, अह णं किं सुकय करेमि? एय णिववयण सोच्चा सुयोवयोगोवेएहिं अज्जेहि वुत्त-अह तु मि पहावणापुव्व पुणो वि जिणधम्माराहणं आगमेसिसग्गमुक्खफलदायग भविस्सइ इह सोच्चा सपइणिवेण तत्थ अवती-णयरीए बहुणिग्गंठ-णिग्गंठीण परिसा मेलिया, णियरज्जम्मि जिणधम्मप्पभावणवित्थरट्ठा णाणाविहगाम-णयरेसु समणा पेसिया,अणज्जजणवए वि जिणधम्म-वित्थरो-कारिओ.अणेगजिणाडिमोवेय-पासायालंकिया पुढवी कारिया। अह वीराओ दोसयतेणउइवासेसु विइक्कतेसु जिणधम्माराहणपरो सपइणिवो सग्ग पत्तो। पाडलिपुत्तम्मि य णयरे असोअणिवपुत्तो पुण्णरहो वि वीराओ तेयालीसाहिय-दोसयवासेसु विइक्कतेसु सुगयधम्माराहगो रज्जम्मि ठिओ। से वि य ण वीराओ दोसयअसीइवासेसु विइक्कतेसु णियपुत्त वुड्ढरह रज्जे ठावइत्ता परलोअ पत्तो। त वि सुगयधम्माणुग वुड्ढरहं णिव मारित्ता तस्स सेणाहिवइ-पुप्फमित्तो वीराओ ण तिसयाहियचउवासेसु विइक्कतेसु पाडलिपुत्तरज्जे ठिओ। अह वेसालीय-णयराहिवो चेडओ णिवो सिरिमहावीरतित्थयरस्सुक्किट्ठो समणोवासओ आसी। से ण णियमाइणिज्जेण चपाहिवेणं कूणिगेणा सगामे अहिणिक्खित्तो अणसण किच्चा सग्ग पत्तो। तस्सेगो सोहणरायणामधिज्जो पुत्तो तओ उवलिओ णियससुरस्स कलिंगाहिवस्स सुलोयणणामधिज्जस्स सरण गओ। सुलोयणो वि णिपुत्तो त सोहणराय कलिंगरज्जे ठावइत्ता परलोअतिही जाओ। तेण कालेण तेण समएण वीराओ अट्ठारसवासेसु विइक्कतेसु से सोहणराओ कलिंगविसए कणगपुरम्मि रज्जे अभिसित्तो। से वि य ण जिणधम्मरओ तत्थ तित्थभूए कुमरगिरिम्मि कयजत्तो उक्किट्ठो समणोवासगो होत्था। तस्स वसे पचमो चडरायणामधिज्जो णिवो वीराओ ण इगसयाहिय-अउणपन्नासेसु वासेसु विइक्कतेसु कलिंगरज्जे ठिओ। तया ण पाडलिपुत्ताहिवो अट्ठमो णदणिवो मिच्छत्तधो अईवलोहाक्कतो कलिंगदेस पाडिऊण पुव्वि तित्थ-रूवकुमरगिरिम्मि सेणियणिवकारियजिणपासायं भजित्ता सोवण्णिय-उसभजिणपडिमं घित्तूण पाडलि-पुत्त पत्तो। तयणतर तत्थ कलिंगे जणवए तस्स ण सोहणरायस्स वसे अट्ठमो खेमरायणामधिज्जो णिवो वीराओ ण सत्तवीसाहियदोयसवासेसु विइक्कतेसु मगहाहिवो कलिगरज्जे ठिओ। तयणतर वीराओ दोस-याहिय-अउण चत्तारिवासेसु विइक्कंतेसु मगहाहिवो असोअणिवो कलिंग जणवयमाक्कम्म खेमराय णिव णियाण मन्नावेइ, तत्थ ण से णियगुत्तसवच्छर पवत्तावेइ। तओ ण वीराओ दोसयपणइत्तरिवासेसु विइ-क्कतेसु खेमरायपुत्तो वुड्ढरायो जिणधम्माराहगो अईवसद्धालुओ कलिंगविसयाहिवो सजाओ। तेण वि तत्थ कुमर-कुमारीगिरिजुअलोवरि समणाण णिग्गठाण णिग्गठीण य वासावासट्ठ इक्कारस लेणा उक्किणाइया। तयणतर वीराओ ण तिसयवासेसु विइक्कतेसु रायपुत्तो भिक्खुरायो कलिंगाहिवो सजाओ। तस्स ण भिक्खुरायणिवस्स तिण्णि णामधिज्जे एवमाहिज्जति-एग ण णिग्गथाण भिक्खूण भत्ति कुणमाणो भिक्खु-राय त्ति, दुच्च णियपुव्वयाणुयमहामेहणामधिज्जगयवाहणत्ताए महामेहवाहण त्ति, तीय ण तस्स सायर-तडरायहाणित्ताए खारवेलाहिव त्ति। एसो य भिक्खुरायो अईवपरक्कमजुओ गयाइसेणा'क्कतमहियल-मडलो मगहाहिव पुप्फमित्त णिव अहिणिक्खित्ता णियाणम्मि ठाइत्ता पुव्वि णदणिवग्गहियउसभेस-सोवण्णपडिम पाडलिपुत्ताओ पच्छा घित्तूण णियरायहाणिं सपत्तो।" इति ॥४४॥

पेयालं = प्रमाणं सारं रहस्यं वा येन स गृहीतपेयालः = अतिशयेन द्वीपसागरप्रज्ञप्तिविज्ञायक इति भावः ।卐

यदुक्तं श्रीहिमवदाचार्यरचितस्थविरावल्याम्–

○ 'तिसमुद्दखायकित्तिं दीवसमुद्देसु गहियपेआलं । वंदे अज्जसमुद्दं अक्खुभियसमुद्दगंभीरं ॥" इति ॥५६॥

अथ कषायप्राभृतकारं श्रीगुणधरसूरिं पथ्यागीत्या प्रतिपादयति—

जेण तइअपाहुडओ पंचमपुव्वस्स दसमवत्थुस्स ।
रइअं कसायपाहुडसुत्तं जयउ खलु स गुणधरसूरी ॥६०॥ (पच्छागीई)

(प्रे०) "जेण" इत्यादि, "स" त्ति स = प्रसिद्धनामा "गुणधरसूरी" त्ति गुणधरनामा आचार्यः "जयउ" त्ति जयतु = अतिशयवान् भवतु । स क इत्याह-"जेण" इत्यादि, "जेण" त्ति, येन=श्रीगुणधरसूरिणा "पंचमपुव्वस्स दसमवत्थुस्स" त्ति पञ्चमपूर्वस्य ज्ञानप्रवादाख्यस्य दशमवस्तोः "तइअपाहुडओ" त्ति तृतीयप्राभृततो दोषप्राभृतसंज्ञात "कसायपाहुडसुत्त" ति कषायप्राभृतसूत्रं दोषप्राभृतापरसञ्ज्ञकं "रइअ" ति रचितं = प्रणीतम् ॥६०॥

अथ श्री*कालकसूरिं शासितुमिच्छुः पथ्यार्या व्याकरोति—

स भवउ *कालअसूरी मम सिवदो गद्दभिल्लछेअयरो ।
जेण कयं महपव्वं चोत्थीए पंचमीहिन्तो ॥६१॥

(प्रे०) "स" इत्यादि, "स" त्ति स = विश्वविख्यातः *"कालअसूरी" त्ति कालकसूरिः = कालकनामाऽऽचार्यो धारावासनृपवैरिसिंहात्मजः सुरसुन्दरी कुक्ष्युद्भूतो गुणाकरसूरिशिष्यः, अयं च श्रीहिमवत्स्थविरावली प्रभावकचरित्रानुसारेणोक्तम् । श्रीबारसासूत्रप्रान्तप्रदर्शितकालकसूरिकथायां पुनर्वज्रसिंहात्मजस्तथा श्रीगुणसुन्दरसूरिशिष्य उक्तस्तथा प्रभावकचरितेऽपि श्रीविजयसिंहसूरिप्रबन्धे पुनर्गुणसुन्दरशिष्यत्वेनापि श्रीकालिकसूरिर्दर्शितः ।

तथा च तद्ग्रन्थः– 'श्रीगुणसुन्दरशिष्यैर्निवारित स्ते च कालिकाचार्यैः ॥" इत्यादि ।

ततस्तदपेक्षया द्वादशो युगप्रधानः प्रथमकालिकाचार्योऽप्यसावेव सम्भाव्येत ।

卐 पन्न्यासश्रीकल्याणविजयाना वलभीवाचनानुगामिनाऽभिप्रायेणाऽयं श्रीसमुद्रसूरेर्वाचनाचार्यकालो युगप्रधानकालश्च वीरसंवत् ४२० त प्रारभ्य ४२९ वर्षपर्यन्तो बोध्य । तेनाऽमुष्य वाचनाचार्यत्वं युगप्रधानत्वञ्च वीरसंवत् ४२० वर्षे स्वर्गतिश्च वीरसंवत् ४२६ वर्षेऽभूत् ।

○ एषैव गाथा नन्दीसूत्रेऽपि भणिता ।

* "कालिअसूरी" इत्यपि पाठान्तरो बोध्य, तेन 'कालिकसूरि' इति । तथाविधपाठस्यापि दर्शनात् । तथा "कालयसूरी" 'कालगसूरी" "कालियसूरी" "कालिगसूरी" इत्यादिपाठान्तराण्यप्यूह्यानि ।

मङ्काभ्यां पश्चानुपूर्व्या स्थापिताभ्यां २५६ इति सङ्ख्यया मिते नन्दोपाध्यायगुणमिते=वीरसंवदि एकोनषष्ट्यधिकद्विशत२५६तमे शारदे "दिक्खिओ" त्ति, दीक्षितः = प्रव्रज्यां प्रतिपन्नः। "भुमिगहभुजपमाणे" त्ति, भूमिः = भूरेका, ग्रहाः = सूर्य-सोम-मङ्गल-बुध-गुरु-शुक्र-शनि-राहु-केतुलक्षणा नव, भुजौ = बाहू प्रसिद्धौ वामेतरौ द्वौ, एतैरङ्कैर्विपरीतस्थापितैरेकनवत्यधिक-द्विशत२९१ सङ्ख्यं प्रमाणं यत्र तत्र भूमिग्रहभुज२९१प्रमाणे संवत्सरे वीरसंवदि द्विशताऽधि-कैकनवते २९१ वर्षे "जुगप्पहाणो"त्ति, युगप्रधानो भवति स्म। "विसयभुइकाले" त्ति, विषयाः=शब्द-रूप गन्ध-रस-स्पर्शाख्याः पञ्च, भुजयोऽग्नयस्त्रयः, काला अतीताऽनागत-वर्तमानलक्षणास्त्रयः, एतेऽङ्का वामगतिगदिता यस्मिंस्तस्मिन् विपयभुजिकाले = वीरसंवत्-पञ्चत्रिंशत्त्रिशत ३३५ तमे शरदि " गमिओ" त्ति, स्वर्गं = त्रिदशालयमितः = गतः ॥४५-४६॥

अथ श्रीसुहस्तिसूरेः स्वर्गमनाऽनन्तरं श्रीसुस्थित-सुप्रतिबुद्धसूर्योरवसरे सञ्जातान् माथुर वाचनानुगमिनन्दीसूत्रोदितान् वाचनाचार्यान् प्रकटयन् पथ्यार्यामाह—

अज्जमहागिरिसीसा बहुलबलिसहा उ वायणायरिआ।
आसि जमलभाऊ तो वायगवरमाइसूरीसो ॥४७॥ (पच्छाजा)

(प्रे०) "अज्ज" इत्यादि, "तया" त्ति, च पदं पूर्वगाथातोऽनुवर्तते ततस्तदा = श्रीआर्य-सुहस्थित- सुप्रतिबद्धसूरिकाले आर्यसुहस्तिसूरेः स्वर्गमनाऽनन्तरं "अज्जमहागिरिसीसा" त्ति, आर्यमहागिरेः शिष्यौ = विनेयौ "बहुलबलिसहा" त्ति, बहुलश्च बलिस्सहश्च बहुलबलिस्सहौ= तदाख्यौ कौशिकगोत्रौ "जमलभाऊ" त्ति, यमलभ्रातरौ = युगलजन्मिनौ वायणारिआ" त्ति, माथुरवाचनानुयायिन्यां श्रीनन्दीसूत्रोक्तवाचकस्थविरावल्यां श्रीआर्यसुहस्तिसूरेरनु, अन्ये केचनाः पुनः श्रीस्थूलभद्रस्वामिशिष्यद्वयाच्छाखाद्वयमङ्गीकुर्वन्ति, तथा चोक्तं विचारश्रेणौ—

अत्र चाय वृद्धसम्प्रदाय–स्थूलभद्रस्य शिष्यद्वयम्-१आर्यमहागिरि, २ आर्यसुहस्ती च। तत्र आर्यमहागिरेर्या शाखा सा मुख्या। सा चैव स्थविरावल्यामुक्ता–
"सूरिबलिस्सहसाई सामज्जो सडिलो य जीयधरो। अज्जसमुद्दो मगू नदिल्लो नागहत्थी य॥" इत्यादि।

ततस्तेषामभिप्रायेणा-ऽऽर्यमहागिरेरेवानु वाचनाचार्यो "आसि" त्ति, आस्ताम्= अभूताम्। "उ" त्ति तुकारो विशेषार्थद्योतकः, विशेषश्चायम्–आर्यबलिस्सहैर्विद्याप्रवादा-भिधानात्पूर्वाद् अङ्गविद्यादिशास्त्राणि निर्मितानि।

तथा च प्रतिपादितं श्रीहिमवदाचार्यैः स्थविरावल्याम्–

"थेरेहिं य अज्जबलिस्सहेहिं य विज्जापवायपुव्वाओ अगविज्जाइसत्थे परूविए।" इति।

जं पुण अणतभवसायरम्मि भमिहिसि अणेयदुक्खमीमे । त भुंजिहिसि फल पि हु ता अन्ज वि गिण्ह जिणदिक्ख ॥६५॥
पावाउ किंपि नित्थरसि जिणपव्वज्जाएँ जाव करुणाए । पमणइ सूरी दूमिज्जाण णिवो ताव अहिययरं॥६६॥
तो सूरी भणइ तहि समुवज्जियगरुयदुसहभवदुक्खा । तुम्हारिसा वि को सोयगमायण सक्कइ विहेउ ।॥६७॥
जीवदयामूलो च्चिय धम्मो अम्हाण तेण न हओ सि । इच्चाइ बहु निब्भत्थिऊण मोगाविओ गमो ॥६८।
सगपत्थिवेहिँ विसया ताडिओ ममइ तो इमो दीणो । रुसार च अणत भमिही तक्कम्मदोसेण ॥६९॥" इति॥

"मम" त्ति मे 'सिवदो" त्ति शिवं = कल्याणं मुक्तिं वा ददातीति "आतो डोऽह्वा-वाम" (सि० ५।१।७६) इति डप्रत्यये शिवदः = सिद्धः कल्याणानां वा दायकः "भवउ" त्ति, भवतु=अस्तु । स क इत्याह-"जेण" इत्यादि, 'जेण' त्ति येन=श्रीकालकसूरिणा 'महपव्वं" ति महापर्व = पर्युषणाख्यं संवत्सरीनामकं वा 'पंचमीहिन्तो" त्ति पञ्चम्याः = पञ्चमीतिथितः 'चोत्थीए" त्ति चतुर्थ्यां = चतुर्थीतिथौ 'कय' ति कृतं = विहितम् ।

तद्यथा-प्रतिष्ठानपुरे पर्युषणापर्वणि समीप आगते तद्देशनृपः △सालिवाहनाभिधो जैनो दृढव्रतः श्रीकालकसूरिं व्यज्ञपयत्-'प्रभो ! अस्मिन् देशे प्रोष्ठपदशुक्लपञ्चम्यां तिथौ लौकिकः शक्रध्वजमहोत्सवो भावी, ततः पर्युषणाराधनां भाद्रपदश्वेतषष्ठ्यां यदि कुर्यात्, तर्हि वयं तत्पर्व सम्यगाराध्येम', सूरिः प्राह-'नेदं पर्व पञ्चमीरजनी ध्रुवमतिक्रामतीत्यस्मद्गुरुवचः', ततः पुनश्चतुर्थ्यां विधीयतामिति राज्ञोक्ते सति युगप्रधानसमेन सङ्घमान्येन श्रीगुरुणा कथितस्तथास्तु । ततः प्रभृति सांवत्सरं पर्वेदं चतुर्थ्यां प्रवर्तते ।

तथा चोक्तं श्रीनिशीथचूर्णिदशमोद्देशके—

"तत्थ य सालिवाहणो राया सो अ सावगो सो अ कालगज्ज त इत सोऊण निग्गओ अभिमुहो समणसघो अ, महाविभूइए पविट्ठो कालगज्जो, पविट्ठे हि अ भणिअ-भद्दवयसुद्धपचमीए पज्जोसविज्जइ, समणसघेण पडिवण्ण, ताहे रण्णा भणिअ-तद्दिवस मम लोगाणुवत्तीए इदो अणुजाणेअव्वो होहित्ति साहुचेइए ण पज्जुवासिस्स, तो छट्ठीए पज्जोसवणा किज्जउ, आयरिएहिं भणिअ-न वट्टति अइक्कमिउ, ताहे रण्णा भणिअ-ता अणागयचउत्थीए पज्जोसविति, आयरिएहिं भणिअ एव भवउ, ताहे चउत्थीए पज्जोसवित, एव जुगप्पहाणेहिँ कारणे चउत्थी पवत्तिआ, सा चेवाणुमया सव्वसाहूण ।" इति । (पत्र० ६३२-६३३)

तथैव पर्युषणाकल्पचूर्णावपि-

"अन्नया पज्जोसवणादिवसे आसन्ने आगए अज्जकालगेण सालिवाहणो भणिओ भद्दवयजुण्हपचमीए पज्जोसवणा ... "इत्यादि।

तथा श्रीपुष्पमालावृत्तावपि- "कालगसूरी उण लाडविसयभरुयच्छपमुहेसु ॥७५॥

△प्रभावचरिते पुन सातवाहनाभिध । यदुक्तम्-
श्रीकालकप्रभु प्राप शनैस्तन्नगर तत । श्रीसातवाहनस्तस्य प्रवेशोत्सवमातनोत ॥११६॥" इत्यादि ।

'प्रज्ञापनाख्यस्य सूत्रस्य=प्रज्ञापनासूत्रस्य कर्ता=रचयिता ।

यदुक्तं श्रीहिमवदाचार्यैः स्थविरावल्याम्–'तेषां शिष्यैरार्यश्याम प्रज्ञापना प्ररूपिता इति। **पुनः किम्भूतः? "इंदग्गे सीमंधरपहू वि ससीअ जस्स सुअणाण"** ति, यस्य=श्रीश्यामाचार्यस्य श्रुतज्ञानमिन्द्राऽग्रे=हरेः समीपे सीमन्धरप्रभुरपि=वर्तमानकाले विहरमाणानां विंशतेर्जिनेश्वराणां मध्यादेकोऽन्यजिनेन्द्राऽपेक्षया भरतक्षेत्रनिकटवर्तिविजयस्थः श्रीसीमन्धरस्वाम्यपि **"ससीअ"** त्ति, अशंसत् ।

तथाहि–सीमन्धरस्वामिना व्याख्यातं निगोदस्वरूपमाकर्ण्येन्द्रेण प्रभुः पृष्टः–'अधुना भरतक्षेत्र एतादृशो निगोदस्वरूपस्य व्याख्याता कोऽप्यस्ति न वा?' तदा सीमन्धरस्वामिनाऽयं श्यामाचार्यो तद्व्याख्यातृत्वेन दर्शितः। इन्द्रश्चागत्य वृद्धब्राह्मणरूपेण तत्समीपे निगोदस्वरूपं श्रुत्वा स्वायुरपृच्छत्, ततश्च श्रुतोपयोगात्सागरोपमद्वयस्थितिकोऽसाविन्द्रोऽस्तीति श्यामाचार्येर्ज्ञातः । श्चेन्द्रो निजरूपं प्रदर्श्य गोचरीगतसाधूनां स्वागमनज्ञानार्थं वसतिद्वारं परावृत्य गतः ।

उक्तञ्च विचारश्रेणौ–

"तत ३३५ अनुनिगोदव्याख्याता कालकाचार्य । **'किलास्मद्वत् सप्रति भरते कालकाचार्यो निगोदव्याख्यातेति'**। श्रीसीमन्धरवाच श्रुत्वा वृद्धविप्ररूपेणेन्द्र कालकाचार्यपार्श्वे निगोदव्याख्याश्रवणादनु निजमायुरपृच्छत् तेश्च श्रुतोपयोगादिन्द्रोऽसाविति ज्ञात । भिक्षागतयतीना स्वागमज्ञप्त्यै वसतिद्वार परावृत्त्य स्वस्थानमगमदिति"। **इति**।

बारससूत्रप्रान्तदर्शितकालकाचार्य यां पुनः सरस्वतीसाध्वीभ्रातृ-गर्दभिल्लोच्छेदककालकाचार्येऽयं प्रसङ्गो दर्शितः ।

" " त्ति, स=श्रीश्यामाचार्यः **"वीरा"** त्ति, वीरात्=चरमजिनराट्सिद्धिकालात् **"सुरपहसिद्धगुण** **ड्ढवे"** त्ति, सुरपथः=आकाशं शून्यम्, सिद्धगुणाः=अनन्तज्ञान-दर्शन-चारित्र-वीर्या-ऽव्याबाधसुखा-ऽक्षयस्थित्य-रूपित्वा-ऽगुरुलघुत्वलक्षणा अष्टौ, श्रवसी=श्रवणे द्वे,

---

'इदञ्च श्रीहिमवदाचार्यनिर्मितस्थविरावली-तपागच्छपट्टावल्याद्यभिप्रायेणा-ऽन्यथा श्रीप्रज्ञासूत्रान्तर्गताऽन्यकर्तृकप्रक्षेपगाथाद्वयाऽपेक्षयेत पश्चाद्भाविनोऽन्यस्यैव श्यामाचार्यस्य तत्कर्तृत्व सम्भाव्यते, यतस्तत्र वाचकवशे श्रीसुधर्मस्वामितस्त्रयोविंशतितम' श्रीश्यामाचार्यो दर्शित, ।

तथा चेमे श्रीप्रज्ञापनासूत्रान्तर्गतेऽन्यकर्तृके द्वे प्रक्षेपगाथे—

"वायगवरवसाओ तेवीइसमेण धीरपुरिसेण। दुद्धरधरेण मुणिणा पुव्वसुयसमिद्धबुद्धिणा ॥१॥
सुयसागरा विणेऊण जेण सुयरयणमुत्तम दिन्न। सीसगणस्स भगवओ तस्स नमो अज्जसामस्स॥२।"**इति**।

तथा विचारश्रेणावपि-"अय च प्रज्ञापनोपाङ्गकृत् सिद्धान्ते श्रीवीरादन्वेकादशगणभृद्भि सह त्रयोविंशतितम पुरुष श्यामाचार्य **इति** व्याख्यात.।" इति ।

एतदपेक्षया त्वयमेव श्यामाचार्यस्त्रयोविंशतितम पुरुषो भवति, गौतमादिगणधराणामप्यत्र समहात्। ततो नन्दीसूत्रोक्तप्रक्षेपगाथाद्वये ऽपि नास्ति कश्चिद्विरोध.। किन्तु विवक्षाभेद एवेति।

¹प्रज्ञापनाख्यस्य सूत्रस्य=प्रज्ञापनासूत्रस्य कर्ता=रचयिता ।

यदुक्तं श्रीहिमवदाचार्यैः स्थविरावल्याम्–'तेषां शिष्यैरार्यश्याम प्रज्ञापना प्रस्पिता इति। पुनः किम्भूतः? **"इंदग्गे सीमंधरपहू वि ससीअ जस्स सुअणाणं"** ति, यस्य=श्रीश्यामाचार्यस्य श्रुतज्ञानमिन्द्राऽग्रे=हरेः समीपे सीमन्धरप्रभुरपि=वर्तमानकाले विहरमाणानां विंशतेर्जिनेश्वराणां मध्यादेकोऽन्यजिनेन्द्राऽपेक्षया भरतक्षेत्रनिकटवर्तिविजयस्थः श्रीसीमन्धरस्वाम्यपि **"ससीअ"** त्ति, अशंसत् ।

तथाहि–सीमन्धरस्वामिना व्याख्यातं निगोदस्वरूपमाकर्ण्येन्द्रेण प्रभुः पृष्टः–'अधुना भरतक्षेत्र एतादृशो निगोदस्वरूपस्य व्याख्याता कोऽप्यस्ति न वा?' तदा सीमन्धरस्वामिनाऽयं श्यामाचार्यो तद्व्याख्यातृत्वेन दर्शितः। इन्द्रश्चागत्य वृद्धब्राह्मणरूपेण तत्समीपे निगोदस्वरूपं श्रुत्वा स्वायुरपृच्छत्, ततश्च श्रुतोपयोगात्सागरोपमद्वयस्थितिकोऽसाविन्द्रोऽस्तीति श्यामाचार्येर्ज्ञातः। ततश्चेन्द्रो निजरूपं प्रदर्श्य गोचरीगतसाधूनां स्वागमनज्ञानार्थं वसतिद्वारं परावृत्य गतः।

उक्तश्च विचारश्रेणौ–

"तत ३३५ अनुनिगोदव्याख्याता कालकाचार्य । '**किलास्मद्वत् सप्रति भरते कालकाचार्यो निगोदव्याख्यातेति'।** श्रीसीमन्धरवाच श्रुत्वा वृद्धविप्ररूपेणेन्द्र कालकाचार्यपार्श्वे निगोदव्याख्याश्रवणादनु निजमायुरपृच्छत् तेश्च श्रुतोपयोगादिन्द्रोऽसाविति ज्ञात । भिक्षागतयतीना स्वागमज्ञप्त्यै वसतिद्वार परावृत्त्य स्वस्थानमगमदिति", **इति** ।

बारससूत्रप्रान्तदर्शितकालकाचार्यकथायां पुनः सरस्वतीसाध्वीभ्रातृ-गर्दभिल्लोच्छेदककालकाचार्येऽयं प्रसङ्गो दर्शितः।

" " त्ति, स=श्रीश्यामाचार्यः **"वीरा"** त्ति, वीरात्=चरमजिनराट्सिद्धिकालात् **"सुरपहसिद्धगुणसवसङ्खे"** त्ति, सुरपथः=आकाशं शून्यम्, सिद्धगुणाः=अनन्तज्ञान-दर्शन-चारित्र-वीर्या-ऽव्याबाधसुखा-ऽक्षयस्थित्य-रूपित्वा-ऽगुरुलघुत्वलक्षणा अष्टौ, श्रवसी=श्रवणे द्वे,

---

¹**इदञ्च** श्रीहिमवदाचार्यनिर्मितस्थविरावली–तपागच्छपट्टावल्याद्यभिप्रायेणा-ऽन्यथा श्रीप्रज्ञासूत्रान्तर्गताऽन्यकर्तृकप्रक्षेपगाथाद्वयाऽपेक्षयेत पश्चाद्भाविनोऽन्यस्यैव श्यामाचार्यस्य तत्कर्तृत्व सम्भाव्यते, यतस्तत्र वाचकवशे श्रीसुधर्मस्वामितस्त्रयोविंशतितम· श्रीश्यामाचार्यो दर्शित,।

तथा चेमे श्रीप्रज्ञापनासूत्रान्तर्गतेऽन्यकर्तृके द्वे प्रक्षेपगाथे—

"वायगवरवसाओ तेवीइसमेण धीरपुरिसेण। दुद्धरधरेण मुणिणा पुव्वसुयसमिद्धबुद्धिणा ॥१॥
सुयसागरा विणेऊण जेण सुयरयणमुत्तम दिन्न। सीसगणस्स भगवओ तस्स नमो अज्जसामस्स॥२॥"**इति**।

तथा विचारश्रेणावपि–"अय च प्रज्ञापनोपाङ्गकृत् सिद्धान्ते श्रीवीरादन्वेकादशगणभृद्भिः सह त्रयोविंशतितम पुरुष· श्यामाचार्य **इति** व्याख्यात·।" इति।

एतदपेक्षया त्वयमेव श्यामाचार्यस्त्रयोविंशतितम· पुरुषो भवति, गौतमादिगाधराणामप्यत्र समहात्। ततो नन्दीसूत्रोक्तप्रक्षेपगाथाद्वयेऽपि नास्ति कश्चिद्विरोध·। किन्तु विवक्षाभेद एवेति।

प्रवेशितश्च विज्ञप्ते प्रतीहारेण सोऽवदत् । प्राचीनरूठितो भक्त्या गृह्यता राजशासनम् ॥४९॥
असिधेनु च भूपाऽथ तद्गृहीत्वाशु मस्तके । उदुर्ध्वीभूयाथ सयोज्य वाचयामास च स्वयम् ॥५०॥
इति कृत्वा विवर्णास्यो वक्तुमप्यक्षमो नृप. । विलीनचित्त श्यामाङ्गो नि शब्दापाटमेपवन् ॥५१॥
पृष्टश्चित्रान्मुनीन्द्रेण प्रसादे स्वामिन स्फुटे । आयाते प्राभृते हर्षस्थाने किं चिररोनता ॥५२॥
तेनोचे मित्र ! कोपोऽय न प्रसाद प्रमोर्ननु । प्रेष्य मया शिरश्छित्त्वा स्वीय शस्त्रिस्यानथा ॥५३॥
एव कृते च वशे न प्रभुत्वमवतिष्ठते । नो चेद् राज्यस्य राष्ट्रस्य विनाश समुपस्थित ॥५४॥
शस्त्रिकायामथैतस्या षण्णवत्यङ्कदर्शनात् । मन्ये षण्णवते सामन्ताना क्रुद्धो धराधिप ॥५५॥
सर्वेऽपि गुप्तमाहूय सूरिभिस्तत्र मेलिता । तरीभि सिन्धुमुत्तीर्य सुराष्ट्रा ते समायपु ॥५६॥
घनागमे समायाते तेषा गतिविलम्बके । विभज्य षण्णवत्यशैस्त देश तेऽत्रतस्थिरे ॥५७॥
राजानस्ते तथा सूरा वाहिनीव्यूहवृद्धिना । राजहसद्रुहा भूयस्तरवारितरङ्गिणा ॥५८॥
बलभिद्धनुरुल्लासवता चाशुगभीभृता । समारुध्यन्त मेघेन बलिष्ठेनेव शत्रुणा ॥५९॥
निर्गमय्यासनादुग्रमुपसर्गमुपस्थितम् । प्रापुर्घनात्यय मित्रमिवाब्जास्यविकाशकम् ॥६०॥
परिपक्त्रिमवाकुशालि प्रसीदत्सर्वतोमुख । अभूच्छरन्तुस्तेषामानन्दाय सुधीरिव ॥६१॥
सूरिणाथ सुहृद्राजा प्रयाणेऽजल्प्यत स्फुटम् । स प्राह शबल नास्ति येन नो भावि शबलम् ॥६२॥
श्रुत्वेति कुम्भकारस्य गृह एकत्र जग्मिवान् । वह्निना पच्यमान चेष्टकापाक ददर्श च ॥६३॥
कनिष्ठिकानख पूर्णं चूर्णयोगस्य कस्यचित् । आक्षेपान् तत्र चिक्षेपाक्षेप्यशक्तिस्तदा गुरु ॥६४॥
विध्यातेऽत्र यथावग्रे राज्ञ प्रोवाच यत्सखे ॥ विभज्य हेम गृह्णीत यात्रासवाहहेतवे ॥६५॥
तथेत्यादेशमाधाय तेऽकुर्वन् पर्व सर्वत । प्रास्थानिक राजाश्वादिसैन्यपूजनपूर्वकम् ॥६६॥
पञ्चाल-लाटराष्ट्रेश भूपान् जित्वाऽथ सर्वत । शका मालवसन्धि ते प्रापुराक्रान्तविद्विष ॥६७॥
श्रुत्वाऽपि बलमागच्छद् विद्यासामर्थ्यगर्वित । गर्दभिल्लनरेन्द्रो न पुरीदुर्गमसज्जयत् ॥६८॥
अथाप शाखिसैन्य च विशालातलमेदिनीम् । पतङ्गसैन्यवत् सर्वप्राणिवर्गभयङ्करम् ॥६९॥
मध्यस्थो भूपति सोऽथ गर्दभीविद्यया बल । नादयुन्मादरीतिस्थ सैन्य सज्जयति स्म न ॥७०॥
कपिशीर्षेषु नो ढिंबा कोट्टकोणेषु न ध्रसा । विद्याधरीषु नो काण्डपूरण चूर्ण द्विषाम् ॥७१॥
न वा भटकपाटानि पूःप्रतोलीष्वसज्जयत् । इति चारै परिज्ञाय सुहृद्भूप जगौ गुरु ॥७२॥
अनावृत समीक्ष्येद दुर्गं मा भूस्तुद्यम । यदष्टमीचतुर्दश्योरर्चयत्येष गर्दभीम् ॥७३॥
अष्टोत्तरसहस्र च जपत्येकाग्रमानस । शब्द करोति जापान्ते विद्या सा रासभीनिभम् ॥७४॥
त धूत्कारस्वर घोर द्विपदो वा चतुष्पद । य शृणोति स वक्त्रेण फेन मुञ्चन् विपद्यते ॥७५॥
अर्द्धतृतीयगव्यूतमध्ये स्थेय न केनचित् । आवासान विरलान् दत्त्वा स्थातव्य सबलैर्नृपै ॥७६॥
इत्याकर्ण्य कृते तत्र देशे कालकसद्गुरु । सुभटाना शत साष्ट प्रार्थयच्छब्दवेधिनाम् ॥७७॥
स्थापिता स्वसमीपे ते लब्धलक्षा सुशिक्षिता । स्वरकाले मुख तस्या बभ्रुर्बाणैर्निषङ्गवत् ॥७८॥
सा मूर्ध्नि गर्दभिल्लस्य कृत्वा विण्मूत्रमीष्यया । हत्वा च पादघातेन रोषेणान्तर्दधे खरी ॥७९॥
अबलोऽयमिति ख्यापयित्वा तेषा पुरो गुरु । समग्रसैन्यमानीय मानी त दुर्गमाविशत् ॥८०॥
पातयित्वा धृतो बद्ध्वा प्रपात्य च गुरो पुर । गर्दभिल्लो भटैर्मुक्त प्राह त कालकप्रभु ॥८१॥
साध्वी साध्वी त्वया पाप ! श्येनेन चकटेव यत् । नीता गुरुविनीताऽपि तत्कर्मकुसुम ह्यद ॥८२॥
फल तु नरक प्रेत्य तद् विबुध्याधुनापि हि । उपशान्त समादत्स्व प्रायश्चित शुभावहम् ॥८३॥
आराधक पर लोक भविता रुचित निजम् । विधेहीति श्रुतेर्दूनस्त्यक्तोऽरण्ये ततोऽभ्रमत् ॥८४॥

पाल्याऽमरलोकमलञ्चक्रे । तथा च दर्शितं प्रथमोदययुगप्रधानयन्त्रे-"१२ श्यामाचार्य२०गृह-वास (व०) ३५व्रतपर्याय (व०) ४१युगप्रधान (व० ९६सर्वायु (व०) १मास १दिन" । इति ॥४८ ४९-५०॥

एतर्हि श्रीवीरविभोर्दशमपट्टभृतं श्री□इन्द्रदिन्नसूरिं प्ररूपयन्नुपजातिं प्रतिपादयति—

रिसिंदुणा पट्टसिरी विभासी । ताणिंददिन्नेण स ताअ भासी ।
जहा णिसा भाइ णिसायरेणं । णिसाअ भाएइ णिसायरो वि ॥५१॥ (उवजाई)

(प्रे०) "रिसिंदुणा" इत्यादि, "ताण" त्ति, तयोः=श्रीसुस्थित-सुप्रतिबुद्धाख्ययोरार्ययोः "पट्टसिरि" त्ति पट्टः=पदमेव श्रीः=लक्ष्मीः=पट्टश्रीः :"रिसिंदुणा" त्ति, ऋषीणां मुनीनां मध्ये इन्दुरिवाऽऽह्लादकत्वादिन्दुस्तेन=ऋषीन्दुना=गणनायकेन "इंददिण्णेण" त्ति □इन्द्रदिन्नेन=□इन्द्रदिन्नाख्येन गुरुणा "विभासी" त्ति, व्यभात्=अशोभत "स" त्ति स श्री-□इन्द्रदिन्नसूरिः "ताअ" त्ति, तया=पट्टश्रिया "भासी"त्ति, अभात्=अराजत परस्परमशोभयदित्यर्थः, अयञ्चाऽन्योऽन्याऽलङ्कारः । अन्योन्यं नामालङ्कारो यत्र द्वयोः परस्परमुपकारत्वं भवेत् ।

तथा चोक्तं चन्द्रालोके "अन्योन्य नाम यत्र स्यादुपकार परस्परम्" इति ।

हित्यदर्पणे तु—उभयोर्मिथैकक्रियाकारकत्वं यस्मिन् सोऽन्योऽन्याभिधा-ऽलङ्कारो भवति । तथा च तद्ग्रन्थः—"अन्योऽन्यमुभयोरेकक्रियया करण मिथ" इति ।

हैमकाव्यानुशासने पुनरस्य दीपकनाम्न्यलङ्कार एव समावेशः कृतः ।

कथम् ? "जहा" इत्यादि, यथा 'णि त्ति, निशा=रात्रिः "णिसायरेण" ति, निशाचरेण=चन्द्रेण "भाइ" त्ति, भाति=राजते "णिसायरो" त्ति, निशाचरोऽपि=विधुरपि "णि अ" त्ति, निशया=त्रियामया 'भाएइ' त्ति, भाति=शोभते । परस्परं राजयति ।

अयमन्योऽन्यालङ्कारगर्भितोपमालङ्कारः ॥५१॥

अथ तत्कालभाविनं शासनप्रभावकं श्रीप्रियग्रन्थाख्यसूरिं भणन् पथ्यार्यामाह—

तस्समये गुरुबंधू पिअगंथक्खो पहावगो सूरी ।
कयबम्हणपडिबोहो जयेउ सच्चरणगुणनिलयो । ५२॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "तस्समये" इत्यादि, तस्य=श्रीआर्येन्द्रदत्तस्य समये=कालेऽवसरे "पिअगंथक्खो" प्रियग्रन्थ इति आख्या=नाम यस्य स प्रियग्रन्थाख्यः=प्रियग्रन्थनामा "सूरी" त्ति, सूरिः=आचार्यः "जयेउ" त्ति, जयतु=जयनशीलो भवतु इति क्रियासम्बन्धः, कि

□ "इन्द्रदत्त०" इत्यपि वा पाठान्तरं ज्ञेयम् ।

प्रवेशितश्च विज्ञप्ते प्रतीहारेण सोऽवदत् । प्राचीनस्थितो भक्त्या गृपता राजशासनम् ॥४६॥
असिधेनु च भूपाऽथ तद्गृहीत्वाशु मस्तके । उदूर्ध्वीभूयाथ मयोज्य वाचयामास च स्वयम् ॥५०॥
इति कृत्वा विवर्णास्यो वक्तुमप्यक्षमो नृप. । विलीनचित्त श्यामाङ्गो नि शब्द पाठमेघयन् ॥५१॥
पृष्टश्चित्रान्मुनीन्द्रेण प्रसादे स्वामिन स्फुटे । आयाते प्राभृते हर्षस्य ने किं विपरीतता ॥५२॥
तेनोचे मित्र ! कोपोऽय न प्रसाद प्रभोर्ननु । प्रेष्य मया शिरश्छित्त्वा स्वीय शस्त्रिकयानया ॥५३॥
एव कृते च वशे न प्रभुत्वमवतिष्ठते । नो चेद् राज्यस्य राष्ट्रस्य विनाश समुपस्थित ॥५४॥
शस्त्रिकायामथैतस्या पण्णवत्यङ्कदर्शनात् । मन्ये पण्णवते सामन्ताना क्रुद्धो धराधिप ॥५५॥
सर्वेऽपि गुप्तमाहूयास्य सूरिभिस्तत्र मेलिता । तरीभि सिन्धुमुत्तीर्य सुराष्ट्रा ते समाययु ॥५६॥
घनागमे समायाते तेषा गतिविलम्बके । विभज्य पण्णवत्यशैस्त देश तेऽवतस्थिरे ॥५७॥
राजानस्ते तथा सूरा वाहिनीव्यूहवृद्धिना । राजहसद्रुहा भूयस्ताराविरतरङ्गिणा ॥५८॥
बलभिद्धनुरुल्लासवता चाशुगभीभृता । समारुध्यन्त मेघेन बलिष्ठेनेव शत्रुणा ॥५९॥
निर्गमय्यासनादुग्रमुपसर्गमुपस्थितम् । प्रापुर्घनात्यय मित्रमिवाब्जास्यविकाशकम् ॥६०॥
परिपक्विमवाकुशालि प्रमोदत्सर्वतोमुख । अभूच्छरत्तुतेषामानन्दाय सुधीरिव ॥६१॥
सूरिणाथ सुहृद्राजा प्रयाणेऽजल्प्यत स्फुटम् । स प्राह शवल नास्ति येन नो भावि शबलम् ॥६२॥
श्रुत्वेति कुम्भकारस्य गृह एकत्र जग्मिवान् । वह्निना पच्यमान चेष्टकाराकं ददर्श च ॥६३॥
कनिष्ठिकानख पूर्णं चूर्णयोगस्य कस्यचित् । आक्षेपान् तत्र चिक्षेपाक्षेप्यशक्तिस्तदा गुरु ॥६४॥
विध्यातेऽत्र यथावग्रे राज्ञ प्रोवाच यत्सखे ।। विभज्य हेम गृह्णीत यात्रासवाहहेतवे ॥६५॥
तथेत्यादेशमाधाय तेऽकुर्वन् पर्व सर्वत । प्रास्थानिक राजाश्वादिसैन्यपूजनपूर्वकम् ॥६६॥
पञ्चाल-लाटराष्ट्रेश भूपान् जित्वाऽथ सर्वत । शका मालवसन्धि ते प्रापुराक्रान्तविद्विप ॥६७॥
श्रुत्वाऽपि बलमागच्छद् विद्यासामर्थ्यगर्वित । गर्दभिल्लनरेन्द्रो न पुरीदुर्गमसज्जयत् ॥६८॥
अथाप शाखिसैन्य च विशालातलमेदिनीम् । पतङ्गसैन्यवत् सर्वप्राणिवर्गभयङ्करम् ॥६९॥
मध्यस्थो भूपति सोऽथ गर्दभीविद्यया बल । नादयुन्मादरीतिस्थ सैन्य सज्जयति स्म न ॥७०॥
कपिशीर्षेषु नो ढिंबा कोट्टकोणेषु न धसा । विद्याधरीपु नो काण्डपूरण चूर्ण द्विणाम् ॥७१॥
न वा भटकपाटानि पू प्रतोलीष्वसज्जयत् । इति चारै परिज्ञाय सुहृद्भूप जगौ गुरु ॥७२॥
अनावृत समीक्ष्येद दुर्गं मा भूत्तुद्यम । यदष्टमीचतुर्दश्योरर्चयत्येष गर्दभीम् ॥७३॥
अष्टोत्तरसहस्र च जपत्येकाग्रमानस । शब्द करोति जापान्ते विद्या सा रासभीनिभम् ॥७४॥
त बूत्कारस्वर घोर द्विपदो वा चतुष्पद. । य शृणोति स वक्त्रेण फेन मुञ्चन् विपद्यते ॥७५॥
अर्द्धतृतीयगव्यूतमध्ये स्थेय न केनचित् । आवासान विरलान् दत्त्वा स्थातव्य सबलैर्नृपै ॥७६॥
इत्याकर्ण्य कृते तत्र देशे कालकसद्गुरु । सुभटाना शत साष्ट प्रार्थयच्छब्दवेधिनाम् ॥७७॥
स्थापिता स्वसर्मापे ते लब्धलक्षा सुशिक्षिता । स्वरकाले मुख तस्या बभ्रु र्बाणैर्निषङ्गवत् ॥७८॥
सा मूर्ध्नि गर्दभिल्लस्य कृत्वा विण्मूत्रमीर्ष्यया । हत्वा च पादघातेन रोषेणान्तर्दधे खरी ॥७९॥
अबलोऽयमिति ख्यापयित्वा तेषा पुरो गुरु । समग्रसैन्यमानीय मानी त दुर्गमाविशत् ॥८०॥
पातयित्वा धृतो बद्ध्वा अपात्य च गुरो पुर । गर्दभिल्लो भटैर्मुक्त प्राह त कालकप्रभु ॥८१॥
साध्वी साध्वी त्वया पाप । श्येनेन चकटेव यत् । नीता गुरुविनीताऽपि तत्कर्मकुसुम ह्यद ॥८२॥
फल तु नरक प्रेत्य तद् विबुध्याधुनापि हि । उपशान्त समादत्स्व प्रायश्चित शुभावहम् ॥८३॥
आराधक. पर लोक भविता रुचित निजम् । विधेहीति श्रुतेर्दूनस्त्यक्तोऽरण्ये ततोऽभ्रमत् ॥८४॥

क इव ? "मोलिव्व" त्ति, मौलिवत्=मुगुटवत्, यथा 'सीसे' त्ति, शीर्षे=मस्तके मौलिः शोभते ॥५३॥

अथाऽऽर्यश्रीशान्तिश्रेणिकाचार्यं निरूपयन् पथ्यायां वक्ति—

तस्स पढमो विणेयो अज्जासिरिसतिसेणिआयरिओ ।
मूलं आसि चउराहं साहाणं सेणिआईणं ॥५४॥ (पच्छाजा)

(प्रे०) "तस्स" इत्यादि, "तस्स" त्ति, तस्य=श्रीदिन्नसूरेः "पढमो विणेयो" त्ति, प्रथमः=आद्यः विनेयः=शिष्य. श्रीआर्यसिंहसूरेगुरुभ्राता 'अज्जसिरिसतिसेणिआयरिओ" आर्यश्रीशान्तिश्रेणिकाचार्य उच्चानागरीशाखायाः प्रवर्तको माढरगोत्रः "मूल आसि चउण्ह साहाण सेणिआईण" ति, चतुर्णां=चतुःसङ्ख्याकानां श्रेणिकादीनामत्राऽऽदिपदेन तापसा-कुबेरा-ऋषिपालिका ज्ञेयाः, ततः श्रेणिका-तापसा कुबेर-षिपालिकानां शाखानां मूलमभूत् ।तद्यथा—अमुष्य चत्वारः शिष्याः श्रीआर्यश्रेणिक तापसकुबेरर्षिपालितनामान आसन्, तेभ्यश्चतुरन्तेवासिभ्यः स्वस्वनामानश्चतस्रः शाखा निर्गताः ।

तथा चोक्त श्री ल्पसूत्रे स्थविरावल्याम्—

"थेरस्स ण अज्जसतिसेणियस्स माढरसगुत्तस्स इमे चत्तारि थेरा अन्तेवासी अहावच्चा अभिण्णाया हुत्था त जहा-थेरे अज्जसेणिए १, थेरे अज्जतावसे २, थेरे अज्जकुबेरे ३, थेरे अज्जइसिपालिए ४। थेरेहिंतो ण अज्जसेणिएहिंतो एत्थ णं अज्जसेणिया साहानिग्गया, थेरेहिंतो ण अज्जतावसेहिंतो इत्थ ण अज्ज तावसी साहा निग्गया, थेरेहिंतो ण अज्जकुबेरेहिंतो एत्थ ण अज्जकुबेरा (अज्जकुबेरी) साहा णिग्गया, थेरेहिंतो ण अज्जइसिपालिएहिंतो एत्थ ण अज्जइसिपालिया साहा निग्गया ।" इति ॥५४॥

अथ युगप्रधानं वाचनाचार्यञ्च मथुरावाचनानुयायिनन्दीसूत्रोक्तवाचकस्थविरावल्यपेक्षया श्रीशाण्डिल्यसूरिं श्रीस्कन्दिलसूरिं वा श्लोकद्वयेन वक्तुमिच्छयाऽऽदौ पथ्यागीतिमभिदधाति—

आसि तयाणि अणेगा पहावगा तेसु वायणायरिओ ।
तेरसमो जुगपवरो ★[1]संडिलसूरी य अज्जजीअहरो ॥५५॥ (पच्छागीई)

★खडिलसूरीति, पाठो वा । एतत्पाठान्तरमाश्रित्य युगप्रधानपरम्परायामार्यस्कन्दिलसूरि=आर्यस्कन्दिलनामाचार्य इत्यर्थ ।

१ प्रभावकचरिताऽनुसारेण श्रीवृद्धवादिसूरेगुरुत्वेनाऽसौ तदानुमीयेत यदा दीर्घायुष्कत्वेन वृद्धावस्थागृहीतदीक्षस्याऽपि श्रीवृद्धवादिसूरेर्दीक्षापर्याय पञ्चाशतो वर्षेभ्योऽधिकवर्षमान स्याद्, यत श्रीस्कन्दिलसूरे स्वर्गमन वीरसवत् ४१४वर्षेऽभूत्, तथा श्रीवृद्धवादिसूरे सत्ता वीरसवत् ४६७ वर्षेऽपि श्रीतपागच्छपट्टावली-श्रीगुरुपट्टावल्याद्यनुसारेण श्रूयते । अन्यथा 'स्कन्दिल' इति सदृशनामाऽस्मादन्य आचार्यो ज्ञेय ।

राजाऽवदच्चतुर्थ्यां तत् पर्व पर्युषणं ततः । इत्थमस्तु गुरुः प्राह पूर्वं पञ्चमीत इदं ॥१२१॥
अर्वागपि यतः पर्युषणं कार्यमिति श्रुतिः । महीनाथस्ततः प्राह हर्षादितत् प्रियं प्रियम् ॥१२२॥
यतः कुहूदिने पर्वोपवासे पौषधस्थिता । अन्तःपुरपुरन्ध्र्यो मे पक्षादौ पारणाकृतः ॥१२३॥
तत्राष्टमं विधातॄणां निर्ग्रन्थानां महात्मनाम् । भवतु प्रासुकाहारैः श्रेष्ठमुत्तरपारणम् ॥१२४॥
उवाच प्रभुरप्येतन्महादानानि पञ्च यत् । निःतारयन्ति दत्तानि जीवं दुष्कर्मसागरात् ॥१२५॥
पथश्रान्ते तथाग्लाने कृतलोचे बहुश्रुते । दानं महाफलं दत्तं तथा चोत्तरपारणे ॥१२६॥
ततः प्रभृति पञ्चम्याश्चतुर्थ्यामागतं ह्यद । कषायोपशमे हेतुः पर्व सांवत्सरं महत् ॥१२७॥
श्रीमत्कालकसूरीणामेवं कत्यपि वासराः । जग्मुः परमया तुष्ट्या कुर्वतां शासनोन्नतिम् ॥१२८॥
अन्येद्युः कर्मदोषेण सूरीणां तादृशामपि । आसन्नऽविनया शिष्या दुर्गतौ दोहदप्रदाः ॥१२९॥
अथ शय्यातरं प्राहुः सूरयोऽवितथं वचः । कर्मबन्धनिषेधाय यास्यामो वयमन्यतः ॥१३०॥
त्वया कथ्यममीषां च प्रियकर्कशवाग्भरैः । शिक्षयित्वा विशालायां प्रशिष्यान्ते ययौ गुरुः ॥१३१॥
इत्युक्त्वाऽगात् प्रभुस्तत्र तद्विनेयाः प्रगे ततः । अपश्यन्तो गुरूनूचुः परस्परमवाङ्मुखाः ॥१३२॥
एष शय्यातरः पूज्यशुद्धिं जानाति निश्चितम् । एष दुर्विनयोऽस्माकं शाखाभिविस्तृतोऽधुना ॥१३३॥
पृष्टस्तैः स यथौचित्यमुक्त्वोवाच प्रभुस्थितिम् । ततस्ते सचरन्ति स्मोज्जयिनीं प्रति वेगतः ॥१३४॥
गच्छन्तोऽध्वनि लोकैश्चानुयुक्ता अवदन् मृषा । पश्चादग्रस्थिता अग्रे पश्चात्स्था प्रभवो ननु ॥१३५॥
यान्तस्तन्नामशङ्कारात् पथि लोकेन पूजिताः । नारीसेवकशिष्याणामवज्ञा स्वामिनं विना ॥१३६॥
इतः श्रीकालकः सूरिर्वस्त्रवेष्टितरत्नवत् । यत्याश्रमे विशालायां प्राविशच्छन्नदीधितिः ॥१३७॥
प्रशिष्यः सागरः सूरिस्तत्र व्याख्याति चागमम् । तेन नो विनयः सूरेरभ्युत्थानादिको दधे ॥१३८॥
ततः ईर्यां प्रतिक्रम्य कोणे कुत्रापि निर्जने । परमेष्ठिपरावर्तं कुर्वंस्तस्थावसङ्गधीः ॥१३९॥
देशनानन्तरं आगम्य स तत्रत्यं सूरिराह च । किंचित्तपोनिधे जीर्ण ! पृच्छ सन्देहमात्मनः ॥१४०॥
अकिंचिज्ज्ञो जरत्त्वेन नावगच्छामि ते वचः । तथापि पृच्छ येनाहं संशयापगमक्षमः ॥१४१॥
अष्टपुष्पीमथो पृष्टो दुर्गमां सुगमामिव । गर्वाद् यत्किंचन व्याख्यादनादरपरायणः ॥१४२॥
दिनैः कैश्चित्ततो गच्छ आगच्छत् तदुपाश्रयम् । सूरिणाऽभ्युत्थितोऽवादीद् गुरवोऽग्रे समाययुः ॥१४३॥
वास्तव्या अवदन् वृद्धं विनैकं कोऽपि नाययौ । तेष्वागच्छत्सु गच्छोऽभ्युदस्थात् सूरिश्च सत्रपः ॥१४४॥
गुरूनक्षमयद् गच्छः पल्लग्नः सूरिरप्यमून् । तं च तं चानुशिष्यैते सूरिमित्थमबोधयन् ॥१४५॥
सिकताभृतः प्रस्थः स्थाने स्थाने विरेचितः । रिक्ते तत्राबदद् वत्स ! दृष्टान्तं विद्धि चागूहृशम् ॥१४६॥
श्रीसुधर्मा ततो जम्बूः श्रुतकेवलिनस्ततः । पदस्थाने पतितास्ते च श्रुते न्यूनत्वमाययुः ॥१४७॥
ततोऽप्यनुप्रवृत्तेषु न्यूनं न्यूनतरं श्रुतम् । अस्मद्गुरुषु यादृक्षं तादृग न मयि निष्प्रभे ॥१४८॥
यादृग्मे त्वद्गुरोस्तन्न यादृक् तस्य न तेऽस्ति तत् । सर्वथा मा कृथा वत्स गर्वं सर्वंकष ततः ॥१४९॥
अष्टपुष्पीं च तत्पृष्टः प्रभुर्व्याख्यानयत् तदा । अहिंसासूनृतास्तेयब्रह्माकिंचनता तथा ॥१५०॥
रागद्वेषपरीहारो धर्मध्यानं च सप्तमम् । शुक्लध्यानमष्टमं च पुष्पैरात्मार्चनाच्छिवम् ॥१५१॥
एवं च शिक्षयित्वा तं मार्दवातिशये स्थितम् । आपृच्छ्य व्यचरत् सङ्गहीनोऽन्यत्र पवित्रधीः ॥१५२॥
श्रीसीमंधरतीर्थेशनिगोदाख्यानपूर्वतः । इन्द्रप्रश्नादिकं ज्ञेयमार्यरक्षितकक्षया ॥१५३॥
श्रीजैनशासनक्षोणीसमुद्धारकच्छपः । श्रीकालकप्रभुः प्रायात् प्रायादेवभुवं शमी ॥१५४॥
श्रीमत्कालसूरिसंयमनिधेर्वृत्तं प्रवृत्तं श्रुतात् । श्रुत्वात्मीयगुरोर्मुखादवितथख्यातप्रभावोदयम् ।
सद्भव्य मयका तपस्ततिहरं श्रेयःश्रियै जायताम् । श्रीसंघस्य पठन्तु तच्च विबुधा नन्द्यान्च कोटीः समाः ॥१५५॥

एवं श्रीहरिभद्रसूरिकृतवृत्तौ । तथा श्रीजिनदासगणिमहत्तरवर्यविरचित-चूर्णावपि । अत्र च "अज्जजीअहरो" त्ति, पदस्यार्यजीवधर इत्यर्थोऽपि कर्तव्यः, प्राकृतत्वेन तथासम्भवात्, तथैव पाठान्तरस्य नन्दीचूर्ण्यामुक्तत्वाच्च यदुक्तं नन्दीचूर्णौ–

"पाठतर वा जीवधर' ति, आर्यत्वात् जीव धरति=रक्षतीत्यर्थ ।
अण्णे पुण भणति-सडिल्लस्स अतेवासी जीव(त)धरो.अणगारो,सो य अज्जसगोत्तोत्ति ।।"इति ।।५५।।

अथ श्रीस्कन्दिलसूरेर्जन्मादिसत्कान् वत्सरान् पर्यायपर्ययाऽऽह—

तस्संगखदंडऽद्दे जणी वयं हत्थिहत्थवरिहमिए ।
अंगणिरयरामे जुगवरो स वेअकुजुगम्मि दिवं ॥५६॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "**तस्स**" इत्यादि, "**तस्स**" त्ति, तस्य = श्रीआर्यस्कन्दिल(शाण्डिल्य)सूरेः "**अगखदडेऽद्दे**" त्ति, अङ्ग-ख दण्डैः = षडङ्क-शून्याङ्क-त्र्यङ्कलक्षणैर्वामगतिव्यवस्थितैर्यो वत्सरो भवति तस्मिन् अङ्गखदण्डेऽब्दे = वीरसंवदि षडुत्तरे त्रिशते ३०६ वर्षे "**जणी**" त्ति, जनिः = उद्भवो जातः । "**हत्थिहत्थवण्हिमिए**" त्ति, △हस्तिहस्तवह्निभिः = अष्ट-द्वि-त्र्यङ्करूपैरष्टैक-त्र्यङ्कलक्षणैर्वा पश्चानुपूर्विक्रमलब्धैः ३२८/३१८ वा इति सङ्ख्यया मिते हस्तिहस्तवह्निमिते= वीरसवदि ३२८।३१८ वर्षे "**वय**" ति, व्रतं = दीक्षाऽभवत् ।

"**स**" त्ति, स = श्रीस्कन्दिलसूरिः "**अगणिरयरामे**" अङ्गानि=शिक्षादीनि षट्, निरयाः= नारकाः सप्त, रामाः = परशुराम-दाशरथिराम बलरामरूपास्त्रयः,एतेऽङ्का वामगत्या यत्राऽब्दे

△३१८ इति सङ्ख्याग्रहणे हस्तिपद श्लेषद्वारेण द्विरुच्यते ततो हस्तिनाऽष्टौ, हस्तिहस्त एक इत्यादि व्याख्येयम् ।

यदि पुन समस्तायु षडुत्तरशतवर्षमान युगप्रधानकालः षट्त्रिंशद् ३६ वर्षाणि स्वर्गगमनञ्च वीरसंवदि ४१४ वर्षे मन्यन्ते । तदपेक्षयाऽमुष्य गृहवासो द्वादश १२। २२ वर्षाणि, सामान्यव्रतपर्याय ५८ ४८ वर्षाणि, युगप्रधानपर्याय षट्त्रिंशद् ३६ वर्षाणि भवति । तदर्थं 'अगखदडे' 'अगणिरयरामे' इति पदद्वय्या वर्तमानोऽङ्गशब्दो देहाऽवयवभूतशिरउरउदराद्यङ्गाष्टकवाचको बोध्य , तथा दीक्षासवदि वर्षद्वयेनाभिकत्व भाव्यम्, तेन अस्य प्रभोर्वीरसंवदि ३०८ वर्षे जन्म, वीरसवदि ३२०।३३० वर्षे दीक्षा, वीरसंवदि ३७८ वर्षे युगप्रधानत्वम्, वीरसवदि ४१४ वर्षे स्वर्गोऽभवत् ।

यदि चाऽमुष्य सकलायु षडुत्तरशतवर्षमान स्वर्गगमनञ्च वीरसवदि ४१४ वर्षे स्वीकुर्वता गृहवासपर्याय १०,२० वर्षाणि, सामान्यव्रतपर्याय ५८।४८ वर्षाणि, युगप्रधानपर्यायश्चाऽष्टात्रिंशद्वर्षाणि मन्यन्ते, तदा टीकाव्याख्यात सर्वं तथैव वाच्यम् । नवरं जन्मसवत्सूचके "अगखदडे" त्ति, पदेऽङ्गशब्दोऽष्टाङ्कवाचको ज्ञेयस्तथा स्वर्गगतिवर्षप्रतिपादके "वेअकुयुगे" त्ति, पदे वेदबोधको 'वेअ' इति प्राकृतशब्दो नाऽभिधेय , किन्तु वेदाभिधायक एव ग्राह्य । तेनाऽमुष्य ३०८ वर्षे जन्म वीरसंवदि ३१८। ३२८ वर्षे दीक्षा, वीरसवत् ३७६ वर्षे युगप्रधानत्वम्, वीरसवदि ४१४ वर्षे स्वर्गगमनञ्च ।

राजाऽवदच्चतुर्थ्यां तत् पर्व पर्युषणं ततः । इत्थमस्तु गुरुः प्राह पूर्वैर्व्याख्यात ह्यद ॥१२१॥
अर्वागपि यतः पर्युषणं कार्यमिति श्रुतिः । महीनाथस्ततः प्राह हर्षादेतत् प्रियं प्रियम् ॥१२२॥
यतः कुहूदिने पर्वोपवासे पौषधस्थिताः । अन्तःपुरपुरन्ध्र्यो मे पक्षादौ पारणाकृतः ॥१२३॥
तत्राष्टमविधातॄणां निर्ग्रन्थानां महात्मनाम् । भवतु प्रासुकाहारैः श्रेष्ठमुत्तरपारणम् ॥१२४॥
उवाच प्रभुरप्येतन्महादानानि पञ्च यत् । निस्तारयन्ति दत्तानि जीवं दुष्कर्मसागरात् ॥१२५॥
पथश्रान्ते तथाग्लाने कृतलोचे बहुश्रुते । दानं महाफलं दत्तं तथा चोत्तरपारणे ॥१२६॥
ततः प्रभृति पञ्चम्याश्चतुर्थ्यामागतं ह्यद । कषायोपशमे हेतुः पर्व सांवत्सरं महत् ॥१२७॥
श्रीमत्कालकसूरीणामेवं कत्यपि वासराः । जग्मुः परमया तुष्ट्या कुर्वतां शासनोन्नतिम् ॥१२८॥
अन्येद्युः कर्मदोषेण सूरीणां तादृशामपि । आसन्नऽविनया शिष्या दुर्गतौ दोहदप्रदाः ॥१२९॥
अथ शय्यातरं प्राहुः सूरयोऽवितथं वचः । कर्मबन्धनिषेधाय यास्यामो वयमन्यतः ॥१३०॥
त्वया कथ्यममीषां च प्रियकर्कशवाग्भरैः । शिक्षयित्वा विशालायां प्रशिष्यान्ते ययौ गुरुः ॥१३१॥
इत्युक्त्वाऽगात् प्रभुस्तत्र तद्विनेयाः प्रगे ततः । अपश्यन्तो गुरूनूचुः परस्परमवाङ्मुखाः ॥१३२॥
एष शय्यातरः पूज्यशुद्धिं जानाति निश्चितम् । एष दुर्विनयोऽस्माकं शाखाभिर्विस्तृतोऽधुना ॥१३३॥
पृष्टस्तैः स यथौचित्यमुक्त्वोवाच प्रभुस्थितिम् । ततस्ते सञ्चरन्ति स्मोज्जयिनीं प्रति वेगतः ॥१३४॥
गच्छन्तोऽध्वनि लोकैश्चानुयुक्ता अवदन् मृषा । पश्चादग्रस्थिता अग्रे पश्चात्स्थाः प्रभवो ननु ॥१३५॥
यान्तस्तन्नामशङ्कारात् पथि लोकेन पूजिताः । नारी-सेवक शिष्याणामवज्ञा स्वामिनं विना ॥१३६॥
इतः श्रीकालकः सूरिर्वस्त्रवेष्टितरत्नवत् । यत्याश्रये विशालायां प्राविशच्छन्नदीधितिः ॥१३७॥
प्रशिष्यः सागरः सूरिस्तत्र व्याख्याति चागमम् । तेन नो विनयः सूरेरभ्युत्थानादिको दधे ॥१३८॥
ततः ईर्यां प्रतिक्रम्य कोणे कुत्रापि निर्जने । परमेष्ठिपरावर्तं कुर्वंस्तस्थावसङ्गधीः ॥१३९॥
देशनानन्तरं प्राग्वत्तत्रत्यः सूरिराह च । किंचित्तपोनिधे जीर्णः पृच्छ सन्देहमान्तरं ॥१४०॥
अभिज्ञो जरत्त्वेन नावगच्छामि ते वचः । तथापि पृच्छ येनाहं संशयापगमक्षमः ॥१४१॥
अष्टपुष्पीमथो पृष्टो दुर्गमां सुगमामिव । गर्वाद् यत्किंचन व्याख्यादनादरपरायणः ॥१४२॥
दिनैः कैश्चित्ततो गच्छ आगच्छत् तदुपाश्रयम् । सूरिणाऽभ्युत्थितोऽवादीद् गुरवोऽग्रे समाययुः ॥१४३॥
वास्तव्या अवदन् वृद्धं विनैकं कोऽपि नाययौ । तेष्वागच्छ सु गच्छोऽभ्युदस्थात् सूरिश्च सत्रपः ॥१४४॥
गुरूनक्षमयद् गच्छः पल्लग्नः सूरिरप्यमून् । तं च तं चानुशिष्यैनं सूरिरित्थमबोधयत् ॥१४५॥
सिकतापूर्णभृतं प्रस्थं स्थाने स्थाने विरेचितम् । रिक्ते तत्राब्रवद् वत्स ! दृष्टान्तं विद्धयमूदृशम् ॥१४६॥
श्रीसुधर्मा ततो जम्बूः श्रुतकेवलिनस्ततः । षट्स्थाने पतितास्ते च श्रुते न्यूनत्वमाययुः ॥१४७॥
ततोऽप्यनुप्रवृत्तेषु न्यूनं न्यूनतरं श्रुतम् । अस्मद्गुरुषु यादृक्षं तादृग् न मयि निष्प्रभे ॥१४८॥
यादृग्मे त्वद्गुरोस्तत्र यादृक् तस्य न तेऽस्ति तत् । सर्वथा मा कृथा वत्स ! गर्वं सर्वंकषं ततः ॥१४९॥
अष्टपुष्पीं च तत्पृष्टः प्रभुर्व्याख्यानयत् तदा । अहिंसासूनृतास्तेयब्रह्माकिंचनता तथा ॥१५०॥
रागद्वेषपरीहारो धर्मध्यानं च सप्तमम् । शुक्लध्यानमष्टमं च पुष्पैरात्मार्चनाच्छिवम् ॥१५१॥
एवं च शिक्षयित्वा तं मार्दवातिशये स्थितम् । आपृच्छ्य व्यचरत् सङ्गहीनोऽन्यत्र पवित्रधीः ॥१५२॥
श्रीसीमंधरतीर्थेशनिगोदाख्यानपूर्वतः । इन्द्रप्रश्नादिकं ज्ञेयमार्यरक्षितकक्षया ॥१५३॥
श्रीजैनशासनक्षोणीसमुद्धारैककच्छपः । श्रीकालकप्रभुः प्रायात् प्रायाद् वसुनः शर्मणी ॥१५४॥
श्रीमत्कालसूरिसंयमनिधेर्वृत्तं प्रवृत्तं श्रुतात् । श्रुत्वात्मीयगुरोर्मुखादवितथख्यातप्रभावोदयम् ।
सद्दृब्धं मयका तमस्ततिहरं श्रेयःश्रिये जायताम् । श्रीसंघस्य पठन्तु तच्च विबुधा नन्द्याच्च कोटी समाः ॥१५५॥

व्रतं=प्रव्रज्याऽभवत् । "स" त्ति सः=श्रीरेवतीमित्रसूरिः "सुअभेअसुरिहदसणे ' त्ति श्रुतभेदाः=अक्षरादयश्चतुर्दश, तथा चोक्तम्–

"अक्खरसन्नी सम्म साईअ खलु सपज्जवसिअ च । गमियं अंगपविट्ठ, सत्त वि एए सपडिवक्खा ।।" इति ।

सुरेभदशनाः=ऐरावणहस्तिरदाश्चत्वारः, एतावङ्कौ विपरीतक्रमलब्धौ ४१४ इति सङ्ख्या यत्र तत्र श्रुतभेदसुरेभदशने=वीरसंवदि ४१४ वर्षे "जुगपहाणो" त्ति युगप्रधानः सञ्जातः । 'खविसयगइम्मि" खविषयगतयः=शून्य-पञ्च-चतुरङ्कलक्षणा उत्क्रममीलिता यस्य तत्र खविषयगतौ=वीरसंवदि ४५०तमे शारदे "दिव" ति दिवममरपुरिं "गओ" त्ति गतः=गमनविषयीकृतः ।

एवञ्चामुष्य चतुर्दश १४ वर्षाणि गृहे, अष्टचत्वारिंशद् ४८ वर्षाणि सामान्यव्रतपर्याये, षट्त्रिंशद् ३६ वर्षाणि युगप्रधानत्वे चेति सर्वायुश्चाष्टनवति ९८ वर्षाणि भवति स्म ।। ५७-५८।।

अथ माथुरीवाचनानुगतनन्दीसूत्रोक्तवाचकस्थविरपरम्परायां श्रीशाण्डिल्यसूरेरनन्तरं जातं वाचनाचार्यं श्रीसमुद्रसूरिं निर्देष्टुकामः पथ्यागीति प्रकटयति––

आसी अज्जसमुद्दो समुद्दगंभीरवायणायरिओ ।
तिसमुद्दखायकित्ती दीवसमुद्देसु गहिअपेआलो ॥५९॥ (पञ्छागीई)

(प्रे०) 'आसी" इत्यादि, 'अज्जसमुद्दो" त्ति आरात्=सर्वहेयधर्मेभ्यो यातः=प्राप्तो गुणैरित्यार्यः स चासौ समुद्रश्च आर्यसमुद्रः = आर्यशाण्डिल्य(स्कन्दिल)सूरिविद्याशिष्य आर्यसमुद्रनामाऽऽचार्यो 'आसी" त्ति बभूव । किं विशिष्टः ? "समुद्दगभीरवायणायरिओ" समुद्रवद् गम्भीरः समुद्रगम्भीरः, स चासौ वाचनाचार्यश्च=श्रुतज्ञानस्य दाता मथुरावाचनानुसारिनन्दीसूत्रोक्तवाचकस्थविरक्रमेण श्रीशाण्डिलसूरेः पश्चाद्भावी वाचनाचार्यः समुद्रगम्भीरवाचनाचार्यः, पुनः किम्भूतः ?, 'तिसमुद्दखायकित्ती" पूर्वपश्चिमदक्षिणदिग्वर्तिनस्त्रयः समुद्रास्त्रिसमुद्रम्, उत्तरतस्तु हिमवान् वैताढ्यो वा. त्रिसमुद्रे = उक्तक्षेत्रान्तरे ख्याता = प्रसिद्धा कीर्तिर्यस्यासौ त्रिसमुद्रख्यातकीर्तिः=भरतक्षेत्रविश्रुत इत्यर्थः । पुनरपि कीदृक् ? "दीवसमुद्दे गहिअपेआलो"त्ति द्वीपाश्च समुद्राश्च द्वीपसमुद्रास्तेषु द्वीपसमुद्रेषु विषयसप्तमी ततो द्वीपसमुद्रविषय गृहीतं=धारितं पेआल इति देशीयशब्दः प्रमाण-विचार-सार-रहस्यमुख्यादिष्वर्थेषु वर्तते ततः

❁ पन्न्यासश्रीकल्याणविजयानामभिप्रायेण वलभीवाचनानुयातेन वाचनाचार्यकाल उपलक्षणतो युगप्रधानकालश्च वीरसंवत् ३५४ त प्रभृते ४२० वर्ष यावद्भवत्यस्य प्रभोस्ततस्तदनुसारेण श्रीरेवतीमित्रसूरेर्युगप्रधानत्वं वीरसंवत् ३८४ वर्षे, स्वर्गगमनञ्च वीरसंवत् ४२० वर्षेऽजायत ।

दायस्योपचारात् सिद्धः = सिद्धप्राभृतविद् = सिद्धप्राभृतं = सिद्धाधिकारप्रतिपादक पूर्वगतश्रुत-विशेषं वेत्तीति भावः । यद्वा "भामा सत्यभामा" इति न्यायात् । सिद्ध इति विद्यासिद्धः= साधितविद्य इत्यर्थः, स चासावुपाध्याय इति प्रसिद्धं गतः सिद्धोपाध्यायः । अथवा सिद्धस्य सिद्धप्राभृतस्योपाध्यायः ॥ अध्यापको वाचनदाता सिद्धोपाध्यायः । अथवा यस्य विद्यामन्त्रादि सिद्धम्, सोऽपि सिद्ध इत्युच्यते शेषं पूर्ववत् ।

अथ तयोः सक्षेपतो व्यतिकरस्त्वित्थम्–गुडशस्त्रपुरे पुरा स्याद्वादिना साधुना निर्जितः परिव्राडनशनीकृत्य पराभवान्मृतस्तत्रैव वड्डकराभिधो यक्षो जातः । स्मृतप्राग्वैरेण तेन साधूनामुपसर्गाः कृतास्तदा तत्रत्येन श्रीसङ्घेन भृगुकच्छपुरादाहूताः श्रीआर्यखपुटसूरयो भृगुकच्छ एव समग्रगच्छं स्वस्रीयश्च क्षुल्लकशिष्य मुक्त्वाऽल्पपरिच्छास्तत्र गत्वा शिष्यांश्च पुर्यां प्रेष्य स्वयं यक्षमन्दिरे यक्षस्य कर्णयोरुपरि पादौ न्यस्य सुप्ताः, प्रातर्यक्षार्चकः समायातः, तान् दृष्ट्वा जनानाचख्यौ, जना अपि तान् यतो यत उद्घाट्यैक्षन्त तत्र तत्राधिष्ठानं निरीक्ष्य राज्ञे व्यजिज्ञपत् कुपितो राजाऽपि तद् दृष्ट्वा लेष्टुयष्ट्यादिभिरताडयत्, गुरवस्तान् प्रहारांस्तस्यान्तःपुरे संचारयन्ति स्म । ततो विद्यासिद्धोऽसाविति ध्यात्वा नृपेण भक्तिवचोभिस्स्तुताः स्वमदर्शयन्, क्षमिताः प्रणताश्च ते स्वेन सार्द्धं यक्षमपराणि देवरूपकाणि नरसहस्रचाल्यं द्रोणिद्विकमचालयन् कौतुकेनेत्थं तत्प्रभावमद्भुतं वीक्ष्य जनेशो जनोऽपि च जिनशासनभक्तो जातस्तत्प्रवेशोत्सवश्च महान् कारितः । भूपेन जनैश्च विज्ञप्तास्ते यक्षमपराणि देवरूपकाणि स्वस्थानं न्यविशन्, द्रोणिद्वयं तत्रैव स्थापितम् ।

इतश्च भगिनीपुत्रो विनेयः स बलात्कापलिकात एकं **पत्रमुन्मोच्यावाचयत्**, ततः पाठसिद्धा महाविधा तस्य सिद्धा, तत्प्रभावाद् वराहारमानीयास्वादयत्, स्थविरैः शिक्षितः कोपात्सौगतेषु मिलितस्तदुपासकवेश्मसु भोज्यपूर्णपात्राणि प्रेषयतीत्यादिव्यतिकरं तत्रस्थः सङ्घो गुरूनज्ञापयत् । गुरवस्तत्रागत्य तैः कृतयाऽदृश्यशिलया व्योमाध्वनाऽऽयान्ति भोज्यपूर्णानि पात्राणि गगने पुस्फुटुः । ततश्चाऽनेन लिङ्गेन गुरूनागतान् ज्ञात्वा भीतः स प्रणष्टः । गुरवश्च बौद्धायतन आगता बुद्धमूचिरे "एहि शौद्धादने वत्स ! वन्दस्वास्मानिहागतान्" ततो बुद्धप्रतिमाऽऽगत्य गुरुपादयोः पतिता, प्रेषिता, स्वस्थान गता, एवं **स्तूपोऽप्यवन्दत**, "तिष्ठ स्वस्थाने किञ्चिन्नम्रः" इत्युक्त्या तथास्थितो निर्ग्रन्थनामित इति तस्य ख्यातिरभूत् । तथैव प्रतिपादितमावश्यके ।

दाहडाभिधानेन मिथ्यादृशा पाटलिपुत्रनृपेण ब्राह्मणान् नन्तुं जैनमुनयः प्रोक्तास्तत्रत्य सङ्घेन तद्व्यतिकरमुक्त्वा प्रार्थिता आर्यखपुटाचार्याः स्वशिष्याग्रणी विद्यानिधिं महेन्द्रसूरि-

व्रतं=प्रव्रज्याऽभवत् । "स" त्ति सः=श्रीरेवतीमित्रसूरिः "सुअभेअसुरिहदसणे' त्ति श्रुतभेदाः=अक्षरादयश्चतुर्दश, **तथा चोक्तम्–**

"अक्खरसन्नी सम्म साईअ खलु सपज्जवसिअ च । गमियं अगपविट्ठ, सत्त वि एए सपडिवक्खा ।।" इति ।

सुरेभदशनाः=एरावणहस्तिरदाश्चत्वारः, एतावङ्कौ विपरीतक्रमलब्धौ ४१४ इति सङ्ख्या यत्र तत्र श्रुतभेदसुरेभदशने=वीरसंवदि ४१४ वर्षे "**जुगपहाणो**" त्ति युगप्रधानः सञ्जातः । "**खविसयगइम्मि**" खविषयगतयः=शून्य-पञ्च-चतुरङ्कलक्षणा उत्क्रममीलिता यस्य तत्र खविषयगतौ=वीरसंवदि ४५०तमे शारदे "**दिव**" ति दिवममरपुरिं "**गओ**" त्ति गतः=गमनविषयीकृतः ।

एवञ्चामुष्य चतुर्दश १४ वर्षाणि गृहे, अष्टचत्वारिंशद् ४८ वर्षाणि सामान्यव्रतपर्याये, षट्त्रिंशद् ३६ वर्षाणि युगप्रधानत्वे चेति सर्वायुश्चाष्टनवति ९८ वर्षाणि भवति स्म ।। ५७-५८।।

अथ माथुरीवाचनानुगतनन्दीसूत्रोक्तवाचकस्थविरपरम्परायां श्रीशाण्डिल्यसूरेरनन्तरं जातं वाचनाचार्यं श्रीसमुद्रसूरिं निर्देष्टुकामः पथ्यागीति प्रकटयति––

आसी अज्जसमुद्दो समुद्दगंभीरवायणायरिओ ।
तिसमुद्दखायकित्ती दीवसमुद्देसु गहिअपेआलो ।।५९।। (पच्छागीई)

(प्रे०) '**आसी**" इत्यादि, '**अज्जसमुद्दो**" त्ति आरात्=सर्वहेयधर्मेभ्यो यातः=प्राप्तो गुणैरित्यार्यः स चासौ समुद्रश्च आर्यसमुद्रः=आर्यशाण्डिल्य(स्कन्दिल)सूरिविद्याशिष्य आर्यसमुद्रनामाऽऽचार्यो 'आ ˆ" त्ति बभूव । किं विशिष्ट ? "**समुद्दगंभीरवायणायरिओ**" समुद्रवद् गम्भीरः समुद्रगम्भीरः, स चासौ वाचनाचार्यश्च=श्रुतज्ञानस्य दाता मथुरावाचनानुसारिनन्दीसूत्रोक्तवाचकस्थविरक्रमेण श्रीशाण्डिलसूरेः पश्चाद्भावी वाचनाचार्यः समुद्रगम्भीरवाचनाचार्यः, पुनः किम्भूतः ?, '**तिसमुद्दखायकित्ती**" पूर्वपश्चिमदक्षिणदिग्वर्तिनस्त्रयः समुद्रास्त्रिसमुद्रम्, उत्तरतस्तु हिमवान् वैताढ्यो वा. त्रिसमुद्रे=उक्तक्षेत्रान्तरे ख्याता=प्रसिद्धा कीर्तिर्यस्यासौ त्रिसमुद्रख्यातकीर्तिः=भरतक्षेत्रविश्रुत इत्यर्थः । पुनरपि कीदृक् ? "**दीवसमुद्देसु गहिअपेआलो**"त्ति द्वीपाश्च समुद्राश्च द्वीपसमुद्रास्तेषु द्वीपसमुद्रेषु विषयसप्तमी ततो द्वीपसमुद्रविषयं गृहीतं=धारितं पेआल इति देशीयशब्दः प्रमाण-विचार-सार-रहस्यमुख्यादिष्वर्थेषु वर्तते ततः

---

❼ पन्न्यासश्रीकल्याणविजयानामभिप्रायेण वलभीवाचनानुयातेन वाचनाचार्यकाल उपलक्षणतो युगप्रधानकालश्च वीरसवत् ३८४ त प्रभृते ४२० वर्षं यावद्भवत्यस्य प्रभोस्ततस्तदनुसारेण श्रीरेवतीमित्रसूरेर्युगप्रधानत्वं वीरसवत् ३८४ वर्षे, स्वर्गगमनञ्च वीरसवत् ४२० वर्षेऽजायत ।

दायस्योपचारात् सिद्धः = सिद्धप्राभृतविद् = सिद्धप्राभृतं = सिद्धाधिकारप्रतिपादकं पूर्वगतश्रुतविशेषं वेत्तीति भावः । यद्वा "भामा सत्यभामा" इति न्यायात् । सिद्ध इति विद्यासिद्धः= साधितविद्य इत्यर्थः, स चासावुपाध्याय इति प्रसिद्धं गतः सिद्धोपाध्यायः । अथवा सिद्धस्य सिद्धप्राभृतस्योपाध्यायः ॥ अध्यापको वाचनदाता सिद्धोपाध्यायः । अथवा यस्य विद्यामन्त्रादि सिद्धम् , सोऽपि सिद्ध इत्युच्यते शेषं पूर्ववत् ।

अथ तयोः सक्षेपतो व्यतिकरस्त्वित्थम्–गुडशस्त्रपुरे पुरा स्याद्वादिना साधुना निर्जितः परिव्राडनशनीकृत्य पराभवान्मृतस्तत्रैव वड्डकराभिधो यक्षो जातः । स्मृतप्राग्वैरेण तेन साधूनामुपसर्गाः कृतास्तदा तत्रत्येन श्रीसङ्घेन भृगुकच्छपुरादाहूताः श्रीआर्यखपुटसूरयो भृगुकच्छ एव समग्रगच्छं स्वस्रीयश्च क्षुल्लकशिष्य मुक्त्वाऽल्पपरिच्छास्तत्र गत्वा शिष्यांश्च पुर्यां प्रेष्य स्वयं यक्षमन्दिरे यक्षस्य कर्णयोरुपरि पादौ न्यस्य सुप्ताः, प्रातर्यक्षार्चकः समायातः, तान् दृष्ट्वा जनानाचख्यौ, जना अपि तान् यतो यत उद्घाट्यैक्षन्त तत्र तत्राधिष्ठानं निरीक्ष्य राज्ञे व्यजिज्ञपत् कुपितो राजाऽपि तद् दृष्ट्वा लेष्टुयष्ट्यादिभिरताडयत् , गुरवस्तान् प्रहारांस्तस्यान्तःपुरे संचारयन्ति स्म । ततो विद्यासिद्धोऽसाविति ध्यात्वा नृपेण भक्तिवचोभिस्स्तुताः स्वमदर्शयन्, क्षमिताः प्रणताश्च ते स्वेन सार्द्धं यक्षमपराणि देवरूपकाणि नरसहस्रचाल्यं द्रोणिद्विकमचालयन् कौतुकेनेत्थं तत्प्रभावमद्भुतं वीक्ष्य जनेशो जनोऽपि च जिनशासनभक्तो जातस्तत्प्रवेशोत्सवश्च महान् कारितः । भूपेन जनैश्च विज्ञप्तास्ते यक्षमपराणि देवरूपकाणि स्वस्थानं न्यविशन् , द्रोणिद्वयं तत्रैव स्थापितम् ।

इतश्च भगिनीपुत्रो विनेयः स बलात्कापलिकात एकं पत्रमुन्मोच्यावाचयत् , ततः पाठसिद्धा महाविधा तस्य सिद्धा, तत्प्रभावाद् वराहारमानीयास्वादयत् , स्थविरैः शिक्षितः कोपात्सौगतेषु मिलितस्तदुपासकवेश्मसु भोज्यपूर्णपात्राणि प्रेषयतीत्यादिव्यतिकरं तत्रस्थः सङ्घो गुरूनज्ञापयत् । गुरवस्तत्रागत्य तैः कृतयाऽदृश्यशिलया व्योमाध्वनाऽऽयान्ति भोज्यपूर्णानि पात्राणि गगने पुस्फुटुः । ततश्चाऽनेन लिङ्गेन गुरूनागतान् ज्ञात्वा भीतः स प्रणष्टः । गुरवश्च बौद्धायतनआगता बुद्धमूचिरे "एहि शौद्धोदने वत्स ! वन्दस्वास्मानिहागतान्" ततो बुद्धप्रतिमाऽऽगत्य गुरुपादयोः पतिता, प्रेषिता, स्वस्थान गता, एव स्तूपोऽप्यवन्दत, "तिष्ठ स्वस्थाने किञ्चिन्नम्रः" इत्युक्त्या तथास्थितो निर्ग्रन्थनामित इति तस्य ख्यातिरभूत् । तथैव प्रतिपादितमावश्यके ।

दाहडाभिधानेन मिथ्यादृशा पाटलिपुत्रनृपेण ब्राह्मणान् नन्तुं जैनमुनयः प्रोक्तास्तत्रत्य सङ्घेन तद्व्यतिकरमुक्त्वा प्रार्थिता आर्यखपुटाचार्याः स्वशिष्याग्रणी विद्यानिधिं महेन्द्रसूरि-

व्रतं=प्रव्रज्याऽभवत् । "स" त्ति सः=श्रीरेवतीमित्रसूरिः "सुअभेअसुरिहदसणे" त्ति श्रुतभेदाः=अक्षरादयश्चतुर्दश, **तथा चोक्तम्–**

"अक्खरसन्नी सम्म साईअ खलु सपज्जवसिअ च । गमियं अगपविट्ठ, सत्त वि एए सपडिवक्खा ।।" इति ।

सुरेभदशनाः=एरावणहस्तिरदाश्चत्वारः, एतावङ्कौ विपरीतक्रमलब्धौ ४१४ इति सङ्ख्या यत्र तत्र श्रुतभेदसुरेभदशने=वीरसंवदि ४१४ वर्षे "**जुगपहाणो**" त्ति युगप्रधानः सञ्जातः । '**खविसयगइम्मि**" खविषयगतयः=शून्य-पञ्च-चतुरङ्कलक्षणा उत्क्रममीलिता यस्य तत्र खविषयगतौ=वीरसंवदि ४५०तमे शारदे "**दिव**" ति दिवममरपुरिं "**गओ**" त्ति गतः=गमनविषयीकृतः ।

एवञ्चामुष्य चतुर्दश १४ वर्षाणि गृहे, अष्टचत्वारिंशद् ४८ वर्षाणि सामान्यव्रतपर्याये, षट्त्रिंशद् ३६ वर्षाणि युगप्रधानत्वे चेति सर्वायुश्चाष्टनवति ९८ वर्षाणि भवति स्म ।। ५७-५८।।

अथ माथुरीवाचनानुगतनन्दीसूत्रोक्तवाचकस्थविरपरम्परायां श्रीशाण्डिल्यसूरेरनन्तरं जातं वाचनाचार्यं श्रीसमुद्रसूरिं निर्देष्टुकामः पथ्यागीति प्रकटयति––

आसी अज्जसमुद्दो समुद्दगंभीरवायणायरिओ ।
तिसमुद्दखायकित्ती दीवसमुद्देसु गहिअपेआलो ।।५९।। (पच्छागीई)

(प्रे०) '**आसी**" इत्यादि, '**अज्जसमुद्दो**" त्ति आरात्=सर्वहेयधर्मेभ्यो यातः=प्राप्तो गुणैरित्यार्यः स चासौ समुद्रश्च आर्यसमुद्रः=आर्यशाण्डिल्य(स्कन्दिल)सूरिविद्याशिष्य आर्यसमुद्रनामाऽऽचार्यो 'आसी" त्ति बभूव । किं विशिष्ट: ? "**समुद्दगंभीरवायणायरिओ**" समुद्रवद् गम्भीरः समुद्रगम्भीरः, स चासौ वाचनाचार्यश्च=श्रुतज्ञानस्य दाता मथुरावाचनानुसारिनन्दीसूत्रोक्तवाचकस्थविरक्रमेण श्रीशाण्डिलसूरेः पश्चाद्भावी वाचनाचार्यः समुद्रगम्भीरवाचनाचार्यः, पुनः किम्भूतः ?, '**तिसमुद्दखायकित्ती**" पूर्वपश्चिमदक्षिणदिग्वर्तिनस्त्रयः समुद्रास्त्रिसमुद्रम् , उत्तरतस्तु हिमवान् वैताढ्यो वा. त्रिसमुद्रे=उक्तक्षेत्रान्तरे ख्याता=प्रसिद्धा कीर्तिर्यस्यासौ त्रिसमुद्रख्यातकीर्तिः=भरतक्षेत्रविश्रुत इत्यर्थः । पुनरपि कीदृक् ? "**दीवसमुद्देसु गहिअपेआलो**"त्ति द्वीपाश्च समुद्राश्च द्वीपसमुद्रास्तेषु द्वीपसमुद्रेषु विषयसप्तमी ततो द्वीपसमुद्रविषय गृहीतं=धारितं पेआल इति देशीयशब्दः प्रमाण-विचार-सार-रहस्यमुख्यादिष्वर्थेषु वर्तते ततः

---

❶ पन्न्यासश्रीकल्याणविजयानामभिप्रायेण वलभीवाचनानुयातेन वाचनाचार्यकाल उपलक्षणतो युगप्रधानकालश्च वीरसवत् ३८४ त प्रभृते ४२० वर्षं यावद्भवत्यस्य प्रभोस्ततस्तदनुसारेण श्रीरेवतीमित्रसूरेर्युगप्रधानत्वं वीरसवत् ३८४ वर्षे, स्वर्गगमनञ्च वीरसवत् ४२० वर्षेऽजायत ।

स्थविरै शिक्षित कोपात् सौगतान्तः स्वयं गतः । अतीव भोजने गृद्ध स्वविद्यागर्वनिर्भर ॥१७२॥
तत्प्रभावेण पात्राणि गतानि गगनाध्वना । भोज्यपूर्णान्युपायान्ति बौद्धोपासकवेश्मत ॥१७३॥
पात्राणा पुरत श्राद्धगृहे याति पतद्ग्रह । स प्रधानासने न्यस्य ध्रियते सह पात्रकै ॥१७४॥
प्रातिहार्यमिद दृष्ट्वा श्राद्धा अपि तदानता । ततोऽपभ्राजनामेता हरतागत्य वेगत ॥१७५॥
गुडशस्त्रपुरात् ते च भृगुकच्छ समाययु । भुवनेन च पात्राणि प्रेष्यन्त श्राद्धवेश्मनि ॥१७६॥
पूर्णानि तानि भोज्यानामायान्ति गगनाध्वना । गुरुभि कृतयाऽदृश्यशिलया व्योम्नि पुस्फुटु ॥१७७॥
स प्रभूतागतान् ज्ञात्वा चिह्नानेन भीतिभृत् । प्राणेशदथ पश्चाच्च बौद्धानामालये ययु ॥१७८॥
बौद्धैर्बुद्धनतावुक्तै सूरिभिर्जल्पित तथा । वत्स शुद्धोदनसुत । वन्दस्वागतं हि माम् ॥१७९॥
प्रतिमास्थस्ततो बुद्ध आगत्याह्निपुरोऽपतत । तद्द्वारे चास्ति बुद्धाण्ड प्रोक्तस्तै स पदो पत ॥१८०॥
समेत्य प्रणत सोऽपि प्रभुपादाम्बुजद्वये । उत्तिष्ठेति गिरा सूरेरेर्धोऽर्द्धावनत स्थित ॥१८१॥
अद्यापि स तथैवास्ति 'निर्ग्रन्थनमिता'भिध । बुद्धस्थाने तदादेशादेकपार्श्वेन तु स्थित ॥१८२॥
अथो महेन्द्रनामाऽस्ति शिष्यस्तेषा प्रभावभू । सिद्धप्राभृतनिष्णातस्तद्वृत्त प्रस्तुवीमहि ॥१८३॥
नगरी पाटलीपुत्रत्रारिपुरसप्रभम् । दाहडो नाम राजाऽत्र मिथ्यादृष्टिनिकृष्टधी ॥१८४॥
दर्शनव्यवहाराणा विलोपेन वहन्मुदम् । बौद्धानां नग्नता शैवव्रजे निर्जटता च स ॥१८५॥
वैष्णवाना विष्णुपूजात्याजन कौलदर्शने । धम्मिल्ल मस्तके नास्तिके नास्तिकानामास्तिकता तथा ॥१८६॥
ब्राह्मणेभ्य प्रणाम च च जैनर्षीणा स पापभू । तेषा च मदिरापानमभिवच्छन धर्मनिह्नवी ॥१८७॥
आज्ञा ददौ च सर्वेषामाज्ञाभङ्गे स चादिशत । तेषा प्राणहर दण्डमत्र प्रतिविधिर्हि क ॥१८८॥
नगरस्थितसघाय समादिष्ट च भूभुजा । प्रणम्या ब्राह्मणा पुण्या भवद्भिर्वोऽन्यथा वध ॥१८९॥
धन-प्राणादिलोभेन मेने तद्वचन परे । निष्किचना पुनर्जैना पर्यालोच प्रपेदिरे ॥१९०॥
देहत्यागान्न नो दु ख शासनस्याप्रभावना । तन् पीडयति को मोहो देहे यायावारे पुन' ॥१९१॥
विमृश्य गुरुभि प्रोचे श्रीआर्यखपुटप्रभो । शिष्याग्रणी महेन्द्रोऽस्ति सिद्धप्राभृतसभृत ॥१९२॥
भृगुक्षेत्रे ततः सघो गीतार्थं स्थविरद्वयम् । प्रहिणोतु स चामुष्मिन्नर्थे प्रतिविधास्यति ॥१९३॥
तथाकृते च सघेन तत्पूज्यै प्रहितोऽथ स । अभिमन्त्रितमानैषीत् करवीरलताद्वयम् ॥१९४॥
उवाच च नृपादेश प्रमाण गणकै पुन । वीक्षणीयो मुहूर्त्तोऽसौ य आयसिद्धिमावह ॥१९५॥
इति स ज्ञापयामास भूपालाय कृतीश्वर । स चोत्सेक दधौ शक्तितरपूर्वकरणे मम १९६॥
दैवज्ञैश्चर्चिते लग्ने स्वीयप्रज्ञानुमानत । महेन्द्राधिष्ठिता जग्मु सूरयस्तन्नरै सद ॥१९७॥
याज्ञिका दीक्षिता वेदोपाध्याया होमशालिन । सायप्रातर्व्रता आवसथीया स्मार्तऋत्विज ॥ १९८॥
गाङ्गमृच्चन्दनालेपतिलकौघपवित्रिता । काषायधौतपोताढ्या सोपवीतपवित्रिका ॥१९९॥
सिंहासनेषु चित्रेषु गब्दिकाद्यास्तृतेषु ते । उपविष्टास्तदा दृष्टा महेन्द्रेण मनीषिणा । २०० । विशेषकम्
ऊचे तेन क्षितेर्नाथ ? यदपूर्वमिद हि न । पूर्वं पूर्वामुखान् किं वा नमाम पश्चिमामुखान् ।.२०१॥
जल्पन्निति करेणासौ करवीरलता किल । समुखीना परावृत्य पृष्ठे चाभ्राम्यत् तत ॥२०२॥ युग्मम् ।
आसन् लुठितशीर्षास्ते निश्चेष्टा मृतसन्निभा । अभूच्च भूपतेर्वक्त्र विच्छाय शशिवद्दिने ॥२०३॥
स्म्पन्नाश्च तथा सम्बन्धिनस्तेषा कृपाभुव । जल्पयन्त्यभिधामाह को हि जल्पत्यचेतन ॥२०४॥
क्रन्दन्ति स्वजना सर्वे विकर्म फलित हि न । अदृष्टश्रुतपूर्वा हि जैनर्षीणा नति परे ॥२० ॥
भूपरूपेण कालोऽय दर्शनानामुपस्थित । पुस्तकस्थपुराणेषु कथापीदृग् न हि श्रुता ॥२०६॥
उत्थायाथासनाद् भूप पश्चातापमुपागत । महेन्द्रस्य महेन्द्रस्य घोरेषु न्यपतत् पदो ॥२०७॥

किम्भूतः ? "गद्दभिल्लछेअयरो" त्ति गर्दभिल्लस्य=गर्दभिल्लसंज्ञकस्यावन्तिपतेः छेदकरः= नाशकरो गर्दभिल्लछेदकरः । यदुक्तम्-

"तह गद्दभिल्लरज्जस्स छेयगो कालगायरिओ होही । छत्तीसगुणोवेओ गुणसयकलिओ पहाजुत्तो ॥" इति ।

तथाहि-गुणाकरसूरेरुपदेशात् कालककुमारेण सार्द्धं तस्य भगिनी सरस्वत्यपि यथार्थनामवती प्रव्रजिताऽऽसीत् । ततश्चाधीतसर्वशास्त्रं कालकमुनिं योग्यं ज्ञात्वा गुरुः स्वपदे न्यस्तवान् । कालकसूरिर्विचरन्नुज्जयिनीमन्यदा गतस्तत्र वन्दनार्थं तस्य भगिनी साध्व्यप्यागता कदाचित्तत्पुरस्वामी गर्दभिल्लो राजपाटिकां कुर्वन् स्थण्डिलभूमेरागच्छन्ती रतिरूपां सरस्वतीं साध्वीमैक्षत, तां च स कामान्धो जग्राह, स च सूरिणा बहुभिरुपायैर्विज्ञापितोऽपि तां न मुञ्चति तदा सूरिभिः शाखिदेशे गत्वा तत्रस्थाः क्रुद्धस्वस्वामितः स्वात्मरक्षणैकचित्ताः षण्णवतिर्माण्डलिका राजानः शाखयः शकाभिधा वाऽऽत्मना सार्द्धं गृहीताः सिन्धुमुत्तीर्य सुराष्ट्र-पञ्चाल-लाटराष्ट्रान् विजित्य क्रमादुज्जयिनीं प्राप्ता गुरुयुक्त्या गर्दभिल्लनृपस्य गर्दभी विद्यां निष्फलीकृत्य युद्धे पातयित्वा धृतो गुरोः पुरः प्रपात्य भटैर्मुक्तः स गुरुणा विशुद्धिं कर्तुं भणितोऽप्यनिच्छन् वने त्यक्तो व्याघ्रेण भक्षित इति । प्रभावकचरिताद्यनुसारेण ।

एवं हिमवदाचार्यरचितस्थविरावल्यामपि दर्शितम् । किन्तु तत्र भीषणे युद्धे जायमाने गर्दभिल्लो नृपः कालं कृत्वा नरकातिथिर्बभूवेत्येव दर्शितम् ।

तथा च तद्ग्रन्थः-"तओ तस्स पुत्ता गद्दहीविज्जोवेओ गद्दहिल्लो णिवो अवतीणयरे रज्जं पत्तो। अह धारावासम्मि णयरे वेरिसीहणामधिज्जस्स णिवस्स कालिगाभिखेदा(भिधो) कुमारो **गुणायर**णामणिग्गंठस्सोवएसं सुच्चा जिणधम्मं पत्तो णिक्खमित्ता अणगारो जाओ । तस्स ण सरस्सइणामधिज्जा भइणी वि णिक्खमित्ता णिग्गंठी जाया । अह-ऽणतरं विहारं कुणमाणे णिग्गंठ-णिग्गंठीगणोवेए ते दुन्नि वि भइणी भाया अवतीणयरुज्जाणे समागए । तत्थ ण आसखेलिज्जतो गद्दहिल्लो णिवो समेओ । तत्थ ण से सरस्सइणिग्गंठीरूवमईव मणोहरं पासित्ता मयणबाणाक्कतो ता बलत्ताए घित्तूण णियतेउरम्मि ठाविइत्ता भुंजेइ । कालिगज्जेहिं बहुपत्थिओ वि से दुब्भग्गो ता ण मुंचेइ । कोहाक्कतो कालिगज्जो तओ विहारं किच्चा सिंधुजणवए पत्तो । तत्थ ण रज्जं कुणमाणं सामंतणामधिज्जं सगरायं सुवण्णसिद्धित्ता वज्जहय-गयाइपचंडसेणोवेयं कालिगज्जो अवतीणयरीसमीवे ठावेइ । गद्दहिल्लो वि णियसेणोवेओ वहिं समागओ । तत्थ णं भीसणे जुज्झे जायमाणे गद्दहिल्लो णिवो कालं किच्चा णेरइयातिहिओ जाओ ।" इति ।

किन्तु पुष्पमालावृत्तावपि-सूर्यादेशात्शकनृपैर्जीवन्नेव गर्दभिल्लनृपो मुक्त इत्येवाभिहितम्-

तथा च तद्ग्रन्थः- "अह तेहिं पुरी भग्गा राया वि हु बंधिउं गहिओ ॥६२॥
तो भणिओ सूरीहिं रे पाव हठेण तीएँ समणीए । जं चुक्कोसि अलज्जिर । इहपरभवदुक्खनिरवेक्खो॥६३॥
तित्थयराण वि पुज्जो अणज्ज । आसाइओ तए सघो । तस्सावराहतरुणो पत्तो कुसुमुग्गमो तुमए॥६४॥

(प्रे०) "सिरि" इत्यादि, "सिरिरुद्ददेवसूरी" त्ति श्रिया=चारित्रलक्ष्म्या शोभया वा युक्तो रुद्रदेवः=रुद्रदेवाभिधः सूरिः=आचार्यः=श्रीरुद्रदेवसूरिः "जगे" त्ति, जगति=त्रिविष्टपे "जयउ" त्ति जयतु=अपराभवी भवतु। किम्भूतः? "जोणिपाहुडसुअण्णू" त्ति योनिप्राभृतं=जीवयोनिभेदस्वरूपप्रतिपादकः पूर्वगताधिकारविशेषः, तच्च तत्श्रुतञ्च=श्रुतज्ञानञ्च योनिप्राभृतश्रुतम्, तज्जानातीति 'आतो डोऽह्वा-वा म" (सि० ५-१-७६) इति डप्रत्यये योनिप्राभृतश्रुतज्ञः।

तथा चैकदाऽमुना स्वशिष्याणां पुरतो मत्स्योत्पत्तिर्व्याख्याता, ताञ्च कुडयान्तरितो धीवरस्स्फुटं श्रुत्वा दुर्भिक्षे तत्प्रयोगेण स्वकुटुम्बं निरवाहयत्। ततोऽन्यदा भक्त्या नत्वा सूरिं तन्न्यवेदयत्। करुणाधीगुरू रत्नोत्पत्तिं दर्शयित्वा सकुटुम्बकं तं मांसभक्षणमत्याजयत्।

अन्ये तु वदन्ति-सिंहप्रयोगमशिक्षयत तत्प्रयोगेण कैवर्त्तो नष्ट इति।

तथा चाभाणि प्रभावकचरित्ते श्रीपादलिप्तसूरिप्रबन्धे—

तत्र पांशुपुरात् प्राप्ता श्रीरुद्रदेवसूरयः। ते चावबुद्धतत्त्वार्था श्रीयोनिप्राभृते श्रुते ॥११५॥
अन्येद्युर्निजशिष्याणां पुरस्तस्माच्च शास्त्रतः। व्याख्याता शफरोत्पत्तिः पापसंतापसाधिका ॥११६॥
सा कैवर्तेन कुडयान्तरितेन प्रकटं श्रुता। अनावृष्टिस्तदा चासीत् विश्वलोकभयङ्करी ॥११७॥
मीनानुत्पत्तिरत्रासीत् तत्र श्रौतप्रयोगतः। मत्स्यान् कृत्वा बहूनेषोऽजीवयद् बन्धुमण्डलम् ॥११८॥
कदापि ह्युपेतस्तत्र प्रभूपकृतिरञ्जितः। आययौ धीवरो भक्त्या नत्वा च प्रोचिवानिति ॥११९॥
युष्मत्कथितयोगेनादानो मीनान् व्यधामहम्। खादित्वा तांश्च दुर्भिक्षे कुटुम्बं निरवाहयम् ॥१२०॥
श्रुत्वेति सूरयः पश्चादतप्यन्त कृतं हि किम्। यतो वधोपदेशेनास्माभिः कल्मषमर्जितम् ॥१२१॥
जीवन् जीववधात् पापमयं बह्वर्जयिष्यति। तस्मात् किमपि तत्कार्यं येनाधत्ते न स त्वयम् ॥१२२॥
इति ध्यात्वोचिवान् सूरिर्निष्पत्तौ रत्नसन्ततेः। प्रयोगं शृणु दारिद्र्यं कदापि न भवेद् यथा ॥१२३॥
स च स्फुरति नो मांसाशन-जीवविघातयोः। विधीयमानयोस्तत् त्वममू वर्जयसे यदि ॥१२४॥
कथयामि तदा तत् ते श्रुत्वेत्याहेदमप्यहम्। जाने जीववधात् पापं कुटुम्बं तु न वर्तते ॥१२५॥
नाथ! प्रसादतश्चेत् ते विना पापं धनं भवेत्। सद्गतिः प्रेत्य तन्मे स्यात् प्रमाणं पूज्यवाक् ततः ॥ २६॥
अतः परं गृहे गोत्रे न मे पिशितभक्षणम्। इत्युक्ते रत्नयोगस्तैरुक्तः सोऽभूच्च धार्मिकः ॥१२७॥

तथा केचिदिति वदन्ति-

शिक्षितः सिंहयोगं च चक्रे तं तेन भक्षितः। यतोऽल्पदोषतः पुण्यं बहु किं न समर्ज्यते ॥१०८॥" इति।

"सिरिसमणसिंहसूरी" त्ति श्रीश्रमणसिंहसूरिः=श्रीश्रमणसिंहाख्य आचार्यः 'जयउ" त्ति जयतु=जयनशीलोऽस्तु किं विशिष्टः? "णिमित्तविज्जापडू" त्ति निमिनोतीति "पुलपित्त-निमित्तो०" (सि० उणा० २०४) इति निपातनात् निमित्तं=त्रैकालिकशुभाशुभविषयम्, अतीताद्यर्थपरिज्ञानहेतुर्वा, शुभाशुभचेष्टादि तद्धेतुकं ज्ञानमप्युपचारान्निमित्तं, स्तस्य विद्या=ज्ञानं-श्रुतज्ञानं वा यद्वा तच्चासौ विद्या च निमित्तविद्या तस्यां पटुः=कुशलो-निमित्तविद्यापटुः।

तद्यथा-स चाचार्योऽन्येद्युर्विलासनगरे समागच्छत्, तत्रत्यनृपः प्रजापतिस्तमाहूयाह-किमपि चित्रं दर्श्यताम्, सूरिर्मुहूर्तं ज्ञात्वैकस्मिन्नश्मनि सूचिं क्षिप्त्वा ज्योतिर्विदं न्यवेदयत्,

ठाणेसु विहरमाणो पत्तो कालेण पुरपइट्ठाणे । तत्थ य राया सिरिसालवाहणो सावओ परमो ॥७६॥
सूरीण कुणइ गरुय भत्तिं तत्थ वि य भद्दवयमासे । सुद्धाएँ पचमीए इदमहो हवइ तो राया ॥७७॥
विण्णवइ भणइ सूरिं पज्जोसवण करेह छट्ठीए । ज पचमीएँ लोयाणुवित्तिनिरयस्स महपूया ॥७८॥
कायव्वा होइ न चेइयाण सूरी उ भणइ न कयाइ । पज्जोसवणा पचमिरयणि अइक्कमइ नरनाह ? ॥७९॥
तो कुणह चउत्थीए इय भणिए सूरिणा वि पडिवन्न । ज कारणेण भणिय आरेणऽवि पज्जुसवियव्व ॥८०॥
तप्पभिई सजाया पज्जोसवणा चउत्थिदियहम्मि । पासंगिय च एय सगविक्कमवसकहण च ॥८१॥" इति ।

एवमन्यत्रापि बहुष्वागमेषु प्रतिपादितम् ।

इदश्च बारसासूत्र प्रभावकचरिताद्यनुसारेणोक्तम् । श्रीतपागच्छपट्टावली-गुरुपट्टावली-पट्टावलीसारोद्धाराद्यपेक्षया पुनः श्रीभूतदिन्नसूरेः पश्चाद्भावी सप्तविंशो युगप्रधानः श्रीकालिकसूरिर्वीरसंवत् ९९३ वर्षे पञ्चमीतश्च चतुर्थ्यां पर्वाकृतेति ।

तथा चोक्त तपागच्छपट्टावल्याम्-

"एषु च युगप्रधानशक्राभिवन्दितप्रथमानुयोगसूत्रणासूत्रधारकल्पश्रीकालिकाचार्यै श्रीवीरात् त्रिनवत्यधिकनवशत ९९३ वर्षातिक्रमे पञ्चमीतश्चतुर्थ्यां पर्युषणापर्वाऽऽनीतमिति" इति ।

तथैव दुष्षमाकालश्रीश्रमणसङ्घस्तोत्रावचूर्यामपि । तथा च तद्ग्रन्थः-

'तेणउय नवसएहिं समइक्कतेहिं वद्धमाणाओ । पज्जोसवणाचउत्थी कालगसूरि(री)हिं तो ठविआ ॥' इति ।

एषैव गाथा कालसप्ततिकाप्रकरण-विचारश्रेणिपरिशिष्टादिष्वपि दृश्यते ।

तथा विचारसारप्रकरणेऽपि-

"सिरिवीरजिणवरंमि मुक्खे पत्तम्मि गुरुदुरियदलणे । नवसयनऊहिं अहिए कालियसूरी समुप्पण्णो॥५२९॥
तेण पज्जुस्सवण चउत्थि तह चउदसीएँ पडिकमण । विहिय सघसमक्ख दसासुयक्खधनिद्दिट्ठ ॥५३०॥
(भद्दवय)चउत्थीए पज्जुस्सवण च कालयसुरीहिं । सिरिसालवाहणकए कयमणुमयमेव सघस्स। ५३१।।"इति।

एवं रत्नसञ्चयप्रकरणेऽपि । तत्र हि चत्वारः कालिकाचार्याः कालमानादिना सह पठिताः, तथा तपागच्छपट्टावल्यादिवद् वीरात् त्रिनवत्यधिकनवशतवर्षे व्यतीते पञ्चमीतश्चतुर्थ्यां पर्युषणापर्व चतुर्थस्य कालिकाचार्यस्य काले जातमिति दर्शितम् । तथा च तद्ग्रन्थः—

'सिरवीराउ गएसु पणतीसहिए तिसयवरिसेसु । पढमो कालगसूरी जाओ सामुज्जण मुत्ति ॥२७२॥
चउसयतिपन्नवरिसे कालिगगुरुणा सरस्सती गहिया । चिहु(उ)सयसत्तरिवरिसे वीराओ विक्कमो जाओ ॥२७३॥
पचेव य वरिससए सिद्धसेणदिवायरो पयडो । सत्तसय वीस अहिए कालिकगुरू सक्कसथुणिओ ॥२७४॥
नयसयतेणउएहिं समइक्कतेहिं वद्धमाणाओ । पज्जूसणा चउत्थी कालिगसूरीहि ता ठविया ॥२७५॥' इति । X

Xतथैव विचारश्रेणिपरिशिष्टेऽपि-केवल प्रकरणरत्नसचये वीरसवत् ७२० वर्षे निगोदव्याख्याता कालकाचार्यो भणित । इह पुन वीरसवत् ३२० वर्षे इति । तथा च तद्ग्रन्थ -'श्रीवीरनिर्वाणात् ३३५वर्षे कालकाचार्यं प्रथम -उमास्वातिवाचकशिष्य श्यामाचार्या-ऽपरनाम्ना प्रज्ञापनोपाङ्गकारक. ॥१॥ श्रीवीरात्

पश्चाद्वाचनाचार्यः पुनः किं विशिष्टः "भणगो" त्ति भणति=कालिकादिसूत्रार्थमनवरतं प्रतिपादयतीति "अच्" (सि० ५-१-४९) इत्यचि भणः, भण एव भणकः 'स्वार्थे कश्च वा" (सि० ८-२-१६४) इति प्राकृतलक्षणेन स्वार्थे कप्रत्ययः "करगो" त्ति करोति कारयति वा कालिकादि-सूत्रोक्तमेवोपधिप्रत्युपेक्षणादिरूपक्रियाकलापमिति कारकः ' झरगो" त्ति ध्यायति धर्मध्यानमिति ध्याता, अत एव "पहावगो" त्ति प्रभावकः=प्रवचनमाहात्म्यसम्पादकः । पुनरपि कीदृक् ? 'उत्तीण्णागाहसुअजलही" त्ति उत्तीर्णः=पारं नीतोऽगाधः=अतलस्पृक् गभीरं वा श्रुतं= पूर्वगतज्ञान प्रवचनं वा तदेव जलधिः=समुद्रो येन स उत्तीर्णागाधश्रुतजलधिः ।

तथा चोक्तं श्रीहिमवदाचार्यकृतस्थविरावल्याम्—

○ भणग करग झरग पभावग नाणदसणगुणाण । वदामि अज्जमगु सुअसागरपारग धीर ॥ ॥

स चर्द्धिरसशातगारवप्रतिबद्धो मथुरायां पुर्यां नित्यवास्यभूत् । ततो मृत्वा तत्रैव पुर्यां यक्षो जातः । सोऽवधेर्ज्ञात्वा स्वशिष्यान् विचारभूमिगतान् प्रतिबोधयितुं तेषामध्वनि दीर्घां जिह्वां निःसार्य स्थितः । तं विलोक्य तैः पृष्टेन स्वपूर्वभवकथनपूर्वकेन तेन ते प्रतिबोधिताः ।

उक्तं च श्रीनिशीथचूर्णौ दशमोद्देशके—

'अज्जमगू आयरिआ बहुस्सुया अज्झागमा बहुसिस्सपरिवारा उज्जयविहारिणो ते विहरता महुर णगरीं गता. ते 'वेरग्गिय' त्ति काउ सड्ढेहिं वत्थादिएहिं पूइता, खीरदधिघयगुलातिएहिं दिणे दिणे पज्जत्तीएण पडिलाभयति । सो आयरिओ लोभेण सातासोक्खपडिबद्धो ण विहरति । णितिओ जातो । सेसा साहू विहरिता । सो वि अणालोइयपडिक्कतो विराहियसामण्णो वतरो णिद्धवणाजक्खो जातो, तेण य पदेसेण जदा साहू णिग्गमणपवेस करेंति ताहे सो जक्खो पडिम अणुपविसित्ता महापमाण जीह णिल्लालेति । साहूहिं पुच्छितो भणति-अह सायासोक्खपडिबद्धो जीहादोसेण अप्पिड्ढिओ इह णिद्धमणाहो भोमेज्जे णगरे वतरो जातो, तुज्झ पडिबोहणत्थमिहागतो त मा तुब्भे वि एव काहिहा अण्णे कहेति-जदा साहू भुजति तदा सो महप्पमाण हत्थ सव्वालकार विउव्विऊण गवक्खदारेण साधूण पुरतो पसारेति । साहूहिं पुच्छितो भणति सो ह अज्जमगू इड्ढिरससादगरुओ मरिऊण णिद्धम्मणे जक्खो जातो त मा तुब्भ कोइ एव लोभदोस करेज्जा ॥५०॥' इति ॥ (पत्र०-६५० ६५१)

श्रीआर्यमङ्गुसूरिकथा किञ्चिद् विस्तरतो धर्मरत्नप्रकरणवृत्तौ श्रीदेवेन्द्र-सूरिभिरित्थं प्रतिपादिता—

इह अज्जमगुसूरी, ससमयपरसमयकणयकसवट्टो । बहुभत्तिजुत्तसुस्सूससिस्ससुत्तत्थदाणपरो ॥१॥
सद्धम्मदेसणाए पडिबोहियभवियलोयसन्दोहो । कइयावि विहारेण, पत्तो महुराइ नयरीए ॥२॥
सो गाढरमायविसायगहियहियओ विमुक्कनवचरणो । गारवतिगपडिबद्धो, सड्ढेसु ममत्तसजुत्तो ॥३॥
अणवरयभत्तजणादिज्जमाणरुइरन्नवत्थलोभेण । वुत्थो तहिं चिय चिरं, दूरुज्झियउज्जुयविहारो ॥४॥
दढसिढिलियसामन्नो, निस्सामन्न पमायमचइत्ता । कालेण मरिय जाओ, न ो तत्थेव निद्धमणे ॥५॥
मुणिउ नियनाणेण, पुव्वभव तो विचिंतिए एव । हा ! हा ! पावेण मए, पमायमयमत्तचित्तेण ॥६॥

● एषा गाथा नन्दीसूत्रेऽपि पठिता दृश्यते ।

व्यजिज्ञपत् स विज्ञाय नाथ! सूरिर्गुणाकरः । प्रशान्तपावनीं मूर्तिं बिभ्रद् धर्मं दिशन्यसौ ॥१३॥
विश्राम्यद्भिर्नृपारामे श्रूयतेऽस्य वचोऽमृतम् । अस्त्वेवमिति सर्वानुज्ञाते तत्राभ्यगादसौ ॥१४॥
गुरुं नत्वोपविष्टं च विशेषादुपचक्रमे । धर्माख्या योग्यतां ज्ञात्वा तस्य ज्ञानोपयोगतः ॥१५॥
धर्मार्हद्गुरुतत्त्वानि सम्यग् विज्ञाय सश्रयः । ज्ञान-दर्शन-चारित्ररत्नत्रयविचारकः ॥१६॥
धर्मो जीवदयामूलः, सर्वविद् देवता जिनः । ब्रह्मचारी गुरुः सङ्गभङ्गभूः रागभङ्गभित् ॥१७॥
व्रतपञ्चकसंवीतो यतीनां संयमाश्रितः । दशप्रकारसंस्कारो धर्मः कर्मच्छिदाकरः ॥१८॥
य एकदिनमप्येकचित्त आराधयेदमुम् । मोक्षं वैमानिकत्वं वा स प्राप्नोति न संशयः ॥१९॥
अथो गृहस्थधर्मश्च व्रतद्वादशकान्वितः । दानशीलतपोभावभङ्गीभिरभितः शुभः ॥२०॥
स सम्यक्पाल्यमानश्च शनैर्मोक्षप्रदो नृणाम् । जैनोपदेश एकोऽपि संसाराम्भोनिधेस्तरी ॥२१॥
श्रुत्वेत्याह कुमारोऽपि भगिनीमगिनि दिश । दीक्षां मोक्षं यथाज्ञानवेलाकूलं लभे लघु ॥२२॥
पितरौ स्वावनुज्ञाप्यागच्छ तत् तेऽस्तु चिन्तितम् । अत्यादरेण तत्कृत्वागाज्जाम्या सहितस्ततः ॥२३॥
प्रव्रज्याऽदायि तैस्तस्य तया युक्तस्य च स्वयम् । अधीतिं सर्वशास्त्राणि स प्रज्ञातिशयादभूत् ॥२४॥
स्वपट्टे कालकं योग्यं प्रतिष्ठाप्य गुरुस्ततः । श्रीमान् गुणाकरः सूरिः प्रेत्यकार्याण्यसाधयत् ॥२५॥
अथ श्रीकालकाचार्यो विहरन्नन्यदा ययौ । पुरीमुज्जयिनीं बाह्यारामेऽस्या समवासरत् ॥२६॥
मोहान्धतमसे तत्र मग्नानां भव्यजन्मिनाम् । सम्यगर्थप्रकाशेऽभूत् प्रभूष्णुर्मणिदीपवत् ॥२७॥
तत्र श्रीगर्दभिल्लाख्यः पुर्यां राजा महाबलः । कदाचित् पुरबाह्योर्व्यां कुर्वाणो राजपाटिकाम् ॥२८॥
कर्मसंयोगतस्तत्र व्रजन्तीमैक्षत स्वयम् । जामिं कालकसूरीणां काको दधिघटीमिव ॥२९॥ युग्मम् ।
हा रक्ष रक्ष सोदर्य! क्रन्दन्तीं करुणस्वरम् । अपाजीहरदत्युग्रकर्मभिः पुरुषैः स ताम् ॥३०॥
साध्वीभ्यस्तत् परिज्ञाय कालकप्रभुरप्यथ । स्वयं राजसमज्यायां गत्वागादीत् तदग्रतः ॥३१॥
वृत्तिर्विधीयते कच्छे रक्षायै फलसंपदः । फलानि भक्षयेत् सैवाख्येयं कस्याग्रतस्तदा ॥३२॥
राजन्! समग्रवर्णानां दर्शनानां च रक्षकः । त्वमेव तन्न ते युक्तं दर्शनिव्रतलोपनम् ॥३३॥
उन्मत्तकश्रसोन्मत्तवदुन्मत्तो नृपाधमः । न मानयति गामस्य म्लेच्छवद् ध्वंसते तथा ॥३४॥
संघेन मन्त्रिभिः पौरैरपि विज्ञापितो दृढम् । अवाजीगणदारूढो मिथ्यामोहे गलन्मतिः ॥३५॥
प्राक्क्षात्रतेज आचार्य उज्जिद्रमभजत् ततः । प्रतिज्ञां विदधे घोरां तदा कातरतापनीम् ॥३६॥
जैनापभ्राजिनां ब्रह्मबालप्रमुखघातिनाम् । अर्हद्बिम्बविहन्तॄणां लिप्येऽहं पाप्मना स्फुटम् ॥३७॥
न चेदुच्छेदये शीघ्रं सपुत्रपशुबान्धवम् । अन्यायकर्दमक्रोडं विभ्रवन्तं नृपब्रुवम् ॥३८॥ युग्मम् ।
असंभाव्यमिदं तत्र सामान्यजनदुष्करम् । उक्त्वा निष्क्रम्य दम्भेनोन्मत्तवेषं चकार सः ॥३९॥
एकाकी भ्रमति स्माय चतुष्के चत्वरे त्रिके । असम्बद्धं वदन् द्वित्रिश्चेतनाशून्यवत् तदा ॥४०॥
गर्दभिल्लो नरेन्द्रश्चेत् ततस्तु किमतः परम् । यदि देशः समृद्धोऽस्ति ततस्तु किमतः परम् ॥४१॥
वदन्तमिति तं श्रुत्वा जना प्राहुः कृपाभरात् । स्वसुर्विरहितः सूरिस्तादृग्ग्रहिलतां गतः ॥४२॥ युग्मम् ।
दिनैः कतिपयैस्तस्मान्निर्ययावेक एव सः । पश्चिमां दिशमाश्रित्य सिन्धुतीरमगाच्छनैः ॥४३॥
शाखिदेशश्च तत्रास्ति राजानस्तत्र शाखयः । शकापराभिधाः सन्ति नवति षड्भिरर्गला ॥४४॥
तेषामेकोऽधिराजोऽस्ति सप्तलक्षतुरङ्गमः । तुरङ्गायुतमानाश्चापरेऽपि स्युर्नरेश्वराः ॥४५॥
एको माण्डलिकस्तेषां प्रैक्षि कालकसूरिणा । अनेककौतुकप्रेक्षाहृतचित्तः कृतोऽथ सः ॥४६॥
असौ विश्वासतस्तस्य वयस्यति तथा नृपः । तं विना न रतिस्तस्य तं वहूक्तैर्यथा क्षणम् ॥४७॥
सभायामुपविष्टस्य मण्डलेशस्य सूरिणा । सुखेन तिष्ठतो गोष्ठ्या राजदूतः समाययौ ॥४८॥

"पालित्त" इत्युक्तस्ततः प्रभृत्यस्य नाम 'पादलिप्त" इति प्रसिद्धिमागतम, "जयउ" त्ति जयतु=अपराभवशीलो भवतु इति क्रियान्वयः। किम्भूतः सः ? "बालवयसूरी" त्ति बाल-वयसि=शैशवे दशवर्षवयसि सूरिः=आचार्यो बालवयःसूरिः। तथा बुद्धिधनिधानं तं दृष्ट्वा गुरु-भिर्दशवार्षिकोऽप्यसौ स्वपट्टे न्यस्तः। पुनः किं विशिष्टः ? "महाविज्जासिद्धो" त्ति महाँश्चासौ विद्यासिद्धश्च=साधितविद्यो महाविद्यासिद्धः=विद्याचक्रवर्ती, यद्वा महती चामौ विद्या च महाविद्या तया सिद्धः=निष्पन्नकार्यो महाविद्यासिद्धः।

"अपुव्वसुयसायरो" त्ति श्रुतं=सिद्धान्त आगमः, तस्य सागरो=वारांनिधिः श्रुत-सागरः, न दृष्टः पूर्वः अपूर्वः=अद्वितीयोऽसाधारणो वा स चासौ श्रुतसागरः, अपूर्वश्रुतसागरः=अद्वितीयसिद्धान्तविदित्यर्थः, "णहोगामी" त्ति, गमिष्यतीति "वर्त्स्यति गम्यादि "(सि० ५ ३-१) इति वचनाद्भविष्यत्यर्थे "आङ्श्च णित्" (सि० उणा० ९२०) इत्यनेन णिद् इन्प्रत्यये गामी=विहारी, ततः "धातो सम्बन्धे प्रत्यया" (सि० ५।४।४१) इति वचनात् नभसि=व्योम्नि गामी नभोगामी =गगनचारीत्यर्थः। "महगुणी" महांश्चासौ गुणी=गुणवान् महागुणी=गुणनिधिः "पण्णु" त्ति प्राज्ञः=कुशलः। तथाहि-प्राज्ञत्वेन नृपादिसभादिगूढवक्त्रकन्दुकादिप्रज्ञापरीक्षायामुत्तीर्णोऽसौ।

विस्तरं लिप्सुभिः प्रभावकचरितमवलोकनीयम्। तथा च तद्ग्रन्थः-

जयन्ति पादलिप्तस्य प्रभोश्चरणरेणवः। श्रियः संवनने वश्यचूर्णं तत्प्रणतात्मनाम् ॥१॥
गुणैकदेशमप्यस्य किमहं वर्णितुं क्षमः। जडस्तथापि तद्भक्तिर्लोकयुग्मोपकारिणी ॥२॥
विमृश्यैव भणिष्यामि पूज्यैर्मस्तकहस्तितः। खण्डखण्डश्रुतं वृत्तं चित्रं शृणुत कौतुकात् ॥३॥
सरयू-जाह्नवीवारिसेवाहेवाकिमानवा। अस्ति विस्तारकुशला कोशला नामतः पुरी ॥४॥
तत्रासीद् हास्तिकाश्वीयाहस्तितरिपुव्रजः। विजयब्रह्म इत्याख्याविख्यातः क्षितिनायकः ॥५॥
सफुल्लमल्लिकावल्लीकुसुमप्रोल्लसद्यशाः। फुल्लाह्वः फुल्ललक्ष्मीकः श्रेष्ठी श्रेष्ठगुणावनिः ॥६॥
रूपेणाप्रतिमा तस्य प्रतिमाख्याऽतिवल्लभा। सुधा मुधाकृता यस्या गिरयाऽगाद् रसातलम् ॥७॥
अपत्यीयितचित्तायास्तस्या हस्तनिरीक्षणम्। होराविद्यामहामन्त्रावन्ध्यागर्भकराण्यपि ॥८॥
औषधानि प्रयुक्तानि क्षेत्रपद्रादिदेवताः। उपयाचितलक्षैश्चाराद्धा आसंश्च निष्फलाः ॥९॥ युग्मम्।
तीर्थस्नानप्रयोगाश्च यथाकथनतः कृताः। अपत्यार्थमहो! मोहः स्त्रीणां सौहृत्यवञ्जने ॥१०॥
अस्ति श्रीपार्श्वनाथस्य चैत्ये शासनदेवता। वैरोट्या तामटाट्या या निर्विण्णा सा समाश्रयत् ॥११॥
कर्पूरमृगनाभ्यादिसोगैः सपूज्य तामसौ। उपवासैर्व्यधादष्टाह्निकामेकाग्रमानसा ॥१२॥
अष्टमेऽह्नि तुष्टा सा प्रत्यक्षं भूय तां जगौ। वरं वृणु तया पुत्रो ययाचे कुलदीपकः ॥१३॥
अथो फणीन्द्रकान्ताऽसावादिदेश सुते शृणु। पुरा नमिविनम्याख्यविद्याधरवरान्वये ॥१४॥
आसीत् कालिकसूरिः श्रीश्रुताम्भोनिधिपारगः। गच्छे विद्याधराख्यस्यार्यनागहस्तिसूरयः ॥१५॥
खेलादिलब्धिसम्पन्ना सन्ति त्रिभुवनार्चिताः। पुत्रमिच्छसि चेत्तेषां पादशौचजलं पिबेः ॥१६॥
त्रिभिर्विशेषकम्।
श्रुत्वेति चैत्यतः प्रातस्तेषामागादुपाश्रये। प्रविशन्ती च साऽपश्यत् साधुमेकं तटस्थितम् ॥१७॥

व्याघ्रेण भक्षितो भ्राम्यन् दुर्गतौ दुर्गतिं गत । तादृक्साधुद्रुहामीदृक् गतिरत्यल्पकं फलम् ॥८५॥
सुरेरादेशतो मित्र भूप स्वामी ततोऽभवत् । विभज्य देशमन्येऽपि तस्थु शाखिनराधिपा ॥८६॥
आरोपिता व्रते साध्वी गुरुणाऽथ सरस्वती । आलोचितप्रतिक्रान्ता गुणश्रेणिमवाप च ॥८७॥
विद्यादेव्यो यत. सर्वा अनिच्छुस्त्रीव्रतच्छिद । कुप्यन्ति रावणोऽपीदृग् सीताया न दधौ हठम् ॥८८॥
एतादृक् शासनोन्नत्या जैनतीर्थं प्रभावयन् । बोधयन् शाखिराजांश्च कालक सूरिराट् बभौ ॥८९॥
शकाना वंशमुच्छेद्य कालेन कियताऽपि हि । राजा श्रीविक्रमादित्य सार्वभौमोपमोऽभवत् ॥९०॥
स चोन्नतमहासिद्धि सौवर्णपुरुषोदयात् मेदिनीमनृणा कृत्वाऽचीकरद् वत्सर निजम् ॥९१॥
ततो वर्षशते पञ्चत्रिंशता साधिके पुनः । तस्य राज्ञोऽन्वय हत्वा वत्सर स्थापित शकै ॥९२॥
ति प्रसङ्गतोऽजल्पि, प्रस्तुत प्रोच्यते त्वद' । श्रीकालकप्रभुर्देशे विजह्रे राजपूजित ॥९३॥
इतश्चास्ति पुरं लाटललाटतिलकप्रभम् । भृगुकच्छ नृपस्तत्र बलमित्रोऽभिधानत ॥९४॥
भानुमित्रोऽग्रजन्मासीत् स्वस्रीय कालकप्रभो । स्वसा तयोश्च भानुश्री, बलभानुश्च तत्सुत ॥९५॥ युग्मम् ।
अन्यदा कालकाचार्यवृत्त तैर्लोकत श्रुतम् । तोषादाहूतये मन्त्री तैर्निज प्रेष्यत प्रभो' ॥९६॥
विहरन्तस्ततस्ते चाप्रतिबद्ध विबुद्धये । आययुर्नगरे तत्र बहिश्च समवासरन् ॥९७॥
राजा श्रीबलमित्रोऽपि ज्ञात्वाभिमुखमभ्यगात् । उत्सवातिशयात् सूरिप्रवेश विदधे मुदा ॥९८॥
उपदेशामृतैस्तत्र सिञ्चन् भव्यानसौ प्रभु । पुष्करावर्तवत्तोषा विश्वं तापमनीनशत् ॥९९॥
श्रीमच्छकुनिकातीर्थस्थित श्रीमुनिसुव्रतम् । प्रणम्य तच्चरित्राख्यादिभिर्नृपमबोधयत् ॥१००॥
अन्येद्यु स्तत्पुरोधाश्च मिथ्यात्वग्रहसद्ग्रह । कुविकल्पवितण्डाभिर्वदन् वादे जित स तैः ॥१०१॥
ततोऽनुकूलवृत्त्याथ त सूरिमुपसर्गयन् । उवाच दम्भभक्त्या स राजानमृजुचेतसम् ॥१०२॥
नाथामी गुरवो देवा इव पूज्या जगत्यपि । एतेषा पादुका पुण्या जनैर्धार्या स्वमूर्धनि ॥१०३॥
किञ्चिद् विज्ञप्यते लोकभूपालाना हित मया । अवधारय तच्चित्ते भक्तिश्चेत् मातुले गुरौ ॥१०४॥
विशला नगरान्तर्येच्चरणा बिम्बिता पथि । उल्लङ्घयन्ते जनैरन्यै सामान्यैस्तदघ बहु ॥१०५॥
धर्मार्जिन तनीयोऽत्रापर कुरु महामते । प्रतीत आर्जवाद् राजा प्राहास्ते संकट महत् ॥१०६॥
विद्वासो मातुलास्तीर्थरूपा सर्वार्चिता इमे । तथा वर्षा अवस्थाप्य पार्यन्ते प्रेषितु किमु ॥१०७॥
द्विज' प्राह महोनाथ । मन्त्रये ते हित सुखम् । तव धर्मो यशस्ते च प्रयास्यन्ति स्वय सुखात् ॥१०८॥
नगरे डिण्डिमो वाद्य सर्वत्र स्वामिपूजिताः । प्रतिलाभ्या वस्त्राहारैर्गुरवो राजशासनात् ॥१०९॥
आहारमाधाकर्मादि दृष्ट्वानेषणयान्वितम् । स्वय ते निर्गमिष्यन्ति काप्यश्लाघा न ते पुन ॥११०॥
अस्त्वेवमिति राज्ञोक्ते स तथेति व्यधात् पुरे । अनेषणा च ते दृष्ट्वा यतयो गुरुमभ्यधु ॥१११॥
प्रभो । सर्वत्र मिष्टआहार सप्राप्यतेतराम् । गुरुराहोपसर्गोऽथ प्रत्यनीकादुपस्थित. ॥११२॥
गन्तव्य तत् प्रतिष्ठानपुरे सयमयात्रया । श्रीसातवाहनो राजा तत्र जैनो दृढव्रत ॥११३॥
ततो यतिद्वय तत्र प्रैपि सघाय सूरिभि । प्राप्तेष्वस्मासु कर्त्तव्य पर्वपर्युषण ध्रुवम् ॥११४॥
तौ तत्र सगतौ सघमानितौ वाचिकं गुरो. । तत्राकथयता मेने तेनैतत् परया मुदा ॥११५॥
श्रीकालकप्रभु प्राप शनैस्तन्नगर तत । श्रीसातवाहनस्तस्य प्रवेशोत्सवमातनोत् ॥११६॥
उपपर्युषण तत्र राजा व्यज्ञपयद् गुरुम् । अत्र देशे प्रभो । भावी शक्रध्वजमहोत्सव' ॥११७॥
नभस्यशुक्लपञ्चम्या तत षष्ठया विधीयताम् । स्व पर्व नैकचित्तत्वं धर्मे नो लोकपर्वणि ॥११८॥
प्रभुराह प्रजापाल । पुरार्हद्गण । पञ्चमीं नात्यगादेतत् पर्वास्मद्गुरुगीरिति ॥११९॥
कम्पते मेरुचूलापि रविर्वा पश्चिमोदय. । नातिक्रमति पर्वेद पञ्चमीरजनी ध्रुवम् ॥१२०॥

"पालित्त" इत्युक्तस्ततः प्रभृत्यस्य नाम 'पादलिप्त" इति प्रसिद्धिमागतम्, "जयउ" त्ति जयतु=अपराभवशीलो भवतु इति क्रियान्वयः। किम्भूतः सः? "बालवयसूरी" त्ति बालवयसि=शैशवे दशवर्षवयसि सूरिः=आचार्यो बालवयःसूरिः। तथा बुद्धिधनिधानं तं दृष्ट्वा गुरुभिर्दशवार्षिकोऽप्यसौ स्वपट्टे न्यस्तः। पुनः किं विशिष्टः? "महाविज्जासिद्धो" त्ति महांश्चासौ विद्यासिद्धश्च=साधितविद्यो महाविद्यासिद्धः=विद्याचक्रवर्ती, यद्वा महती चासौ विद्या च महाविद्या तया सिद्धः=निष्पन्नकार्यो महाविद्यासिद्धः।

"अपुव्वसुयसायरो" त्ति श्रुतं=सिद्धान्त आगमः, तस्य सागरो=वारांनिधिः श्रुतसागरः, न दृष्टः पूर्वः अपूर्वः=अद्वितीयोऽसाधारणो वा स चासौ श्रुतसागरः, अपूर्वश्रुतसागरः=अद्वितीयसिद्धान्तविदित्यर्थः, "णहोगामी" त्ति, गमिष्यतीति "वत्स्यति गम्यादि "(सि० ५ ३-१) इति वचनाद्भविष्यत्यर्थे "आङश्च णित्" (सि० उणा० ९२०) इत्यनेन णिद् इन्प्रत्यये गामी=विहारी, ततः "धातोः सम्बन्धे प्रत्ययाः" (सि० ४।४।४१) इति वचनात् नभसि=व्योम्नि गामी नभोगामी =गगनचारीत्यर्थः। "महगुणी" महांश्चासौ गुणी=गुणवान् महागुणी=गुणनिधिः "पण्णु" त्ति प्राज्ञः=कुशलः। तथाहि—प्राज्ञत्वेन नृपादिसभादिगूढवक्त्रकन्दुकादिप्रज्ञापरीक्षायामुत्तीर्णोऽसौ।

विस्तरं लिप्सुभिः प्रभावकचरितमवलोकनीयम्। तथा च तद्ग्रन्थः—

जयन्ति पादलिप्तस्य प्रभोश्चरणरेणवः। श्रिय सवनने वश्यचूर्णं तत्प्रणतात्मिनाम् ॥१॥
गुणैकदेशमप्यस्य किमहं वर्णितुं क्षमः। जडस्तथापि तद्भक्तिर्लोकयुग्मोपकारिणी ॥२॥
विमृश्यैव भणिष्यामि पूज्यैर्मेस्तकहस्तितः। खण्डखण्डश्रुतं वृत्तं चित्रं शृणुत कौतुकात् ॥३॥
सरयू-जाह्नवीवारिसेवाहेवाकिमानवा। अस्ति विस्तारकुशला कोशला नामतः पुरी ॥४॥
तत्रासीद् हास्तिकाश्वीयावहस्तितरिपुव्रजः। विजयब्रह्म इत्याख्याविख्यातः क्षितिनायकः ॥५॥
सफुल्लमल्लिकावल्लीकुसुमप्रोल्लसद्यशाः। फुल्लाख्यः फुल्ललक्ष्मीकः श्रेष्ठी श्रेष्ठगुणावनिः ॥६॥
रूपेणाप्रतिमा तस्य प्रतिमाख्याऽतिवल्लभा। सुधा मुधाकृता यस्या गिरयाऽगाद् रसातलम् ॥७॥
अपत्यीयितचित्ताया।स्तस्या हस्तनिरीक्षणम्। होराविद्यामहामन्त्रावन्ध्यागर्भकराण्यपि ॥८॥
औषधानि प्रयुक्तानि क्षेत्रपद्रादिदेवताः। उपयाचितलक्षैश्चाराद्धा आसंश्च निष्फलाः ॥९॥ युग्मम्।
तीर्थस्नानप्रयोगाश्च यथाकथनतः कृताः। अपत्यार्थमहो! मोहः स्त्रीणां सौहृत्यवञ्जने ॥१०॥
अस्ति श्रीपार्श्वनाथस्य चैत्ये शासनदेवता। वैरोट्या नामटाट्या या निर्विण्णा सा समाश्रयत् ॥११॥
कर्पूरमृगनाभ्यादिसोगैः सपूज्य तामसौ। उपवासैर्व्यधादष्टाह्निकामेकाग्रमानसा ॥१२॥
अष्टमेऽह्नि तुष्टा सा प्रत्यक्षी भूय तां जगौ। वरं वृणु तया पुत्रो ययाचे कुलदीपकः ॥१३॥
अथो फणीन्द्रकान्ताऽसावादिदेश सुते शृणु। पुरा नमिविनम्याख्यविद्याधरवरान्वये ॥१४॥
आसीत् कालिकसूरिः श्रीश्रुताम्भोनिधिपारगः। गच्छे विद्याधराख्यस्यार्यनागहस्तिसूरयः ॥१५॥
खेलादिलब्धिसम्पन्ना सन्ति त्रिभुवनार्चिताः। पुत्रमिच्छसि चेत्तेषां पादशौचजलं पिबेः ॥१६॥
त्रिभिर्विशेषकम्।
श्रुत्वेति चैत्यतः प्रातस्तेषामागादुपाश्रये। प्रविशन्ती च साऽपश्यत् साधुमेकं तटस्थितम् ॥१७॥

व्याघ्रेण भक्षितो भ्राम्यन् दुर्गतो दुर्गतिं गत । तादृक्साधुद्रुहामीदृक् गतिरस्त्यल्पकं फलम् ॥८५॥
सुरेरादेशतो मित्र भूप स्वामी ततोऽभवत् । विभज्य देशमन्येऽपि तस्थु शाखिनराधिपा· ॥८६॥
आरोपिता व्रते साध्वी गुरुणाऽथ सरस्वती । आलोचितप्रतिक्रान्ता गुणश्रेणिमवाप च ॥८७॥
विद्यादेव्यो यत सर्वा अनिच्छुस्त्रीव्रतच्छिद । कुप्यन्ति रावणोऽपीदृग् सीताया न दधौ हठम् ॥८८॥
एतादृक् शासनोन्नत्या जैनतीर्थं प्रभावयन् । बोधयन् शाखिराजाश्च कालक· सूरिराट् बभौ ॥८९॥
शकाना वशमुच्छेद्य कालेन कियताऽपि हि । राजा श्रीविक्रमादित्य सार्वभौमोपमोऽभवत् ॥९०॥
स चोन्नतमहासिद्धि सौवर्णपुरुषोदयात् मेदिनीमनृणा कृत्वाऽचीकरद् वत्सरं निजम् ॥९१॥
ततो वर्षशते पञ्चत्रिंशता साधिके पुन· । तस्य राज्ञोऽन्वयं हत्वा वत्सर स्थापित शकै ॥९२॥
ति प्रसङ्गतोऽजल्पि, प्रस्तुत प्रोच्यते ह्यद· । श्रीकालकप्रभुर्देशे विजह्रे राजपूजित ॥९३॥
इतश्चास्ति पुरं लाटललाटतिलकप्रभम् । भृगुकच्छ नृपस्तत्र बलमित्रोऽभिधानत ॥९४॥
भानुमित्रोऽग्रजन्मासीत् स्वस्त्रीय कालकप्रभो । स्वसा तयोश्च भानुश्री, बलभानुश्च तत्सुत ॥९५॥ युग्मम् ।
अन्यदा कालकाचार्यवृत्त तैर्लोकत श्रुतम् । तोषादाहूतये मन्त्री तैर्निज· प्रेष्यत प्रभो· ॥९६॥
विहरन्तस्ततस्ते चाप्रतिबद्ध विबुद्धये । आययुर्नगरे तत्र बहिश्च समवासरन् ॥९७॥
राजा श्रीबलमित्रोऽपि ज्ञात्वाभिमुखमभ्यगात् । उत्सवातिशयात् सूरिप्रवेश विदधे मुदा ॥९८॥
उपदेशामृतैस्तत्र सिञ्चन् भव्यानसौ प्रभु । पुष्करावर्तवद्दोषा विश्व तापमनीनशत् ॥९९॥
श्रीमच्छकुनिकातीर्थस्थित श्रीमुनिसुव्रतम् । प्रणम्य तच्चरित्राख्यादिभिर्नृपमबोधयत् ॥१००॥
अन्येद्युस्तत्पुरोधाश्च मिथ्यात्वग्रहसद्ग्रह· । कुविकल्पवितण्डाभिर्वदन् वादे जित स तै· ॥१०१॥
ततोऽनुकूलवृत्त्याथ त सूरिमुपसर्गयन् । उवाच दम्भभक्त्या स राजानमृजुचेतसम् ॥१०२॥
नाथामी गुरवो देवा इव पूज्या जगत्यपि । एतेषां पादुका पुण्या जनैर्धार्या स्वमूर्धनि ॥१०३॥
किञ्चिद् विज्ञप्यते लोकभूपालाना हित मया । अवधारय तच्चित्ते भक्तिरस्त्वेत् मातुले गुरौ ॥१०४॥
विशता नगरान्तर्येच्चरणा बिम्बिता पथि । उल्लङ्घ्यन्ते जनैरन्यै सामान्यैस्तदघ बहु ॥१०५॥
धर्मार्जन तनीयोऽत्रापर कुरु महामते । प्रतीत आर्जवाद् राजा प्राहास्ते संकट महत् ॥१०६॥
विद्वासो मातुलास्तीर्थरूपा सर्वार्चिता इमे । तथा वर्षा अवस्थाप्य पार्यन्ते प्रेषितु किमु ॥१०७॥
द्विज प्राह महोनाथ । मन्त्रये ते हित सुखम् । तव धर्मौ यशस्ते च प्रयास्यन्ति स्वय सुखात् ॥१०८॥
नगरे डिण्डिमो वाद्य, सर्वत्र स्वामिपूजिताः । प्रतिलाभ्या वस्त्राहारैर्गुरवो राजशासनात् ॥१०९॥
आहारमाधाकर्मादि दृष्ट्वानेषणयान्वितम् । स्वय ते निर्गमिष्यन्ति काप्यश्लाघा न ते पुन· ॥११०॥
अस्त्वेवमिति राज्ञोक्ते स तथेति व्यधात् पुरे । अनेषणा च ते दृष्ट्वा यतयो गुरुमभ्यधु· ॥१११॥
प्रभो । सर्वत्र मिष्ट आहार सम्प्राप्यतेतराम् । गुरुराहोपसर्गोऽयं प्रत्यनीकादुपस्थित· ॥११२॥
गन्तव्य तत् प्रतिष्ठानपुरे संयमयात्रया । श्रीसातवाहनो राजा तत्र जैनो दृढव्रत ॥११३॥
ततो यतिद्वय तत्र प्रैषि सघाय सूरिभि । प्राप्तेष्वस्मासु कर्त्तव्यं पर्वपर्युषण ध्रुवम् ॥११४॥
तौ तत्र सगतौ सघमानितौ वाचिक गुरो· । तत्राकथयता मेने तेनैतत् परया मुदा ॥११५॥
श्रीकालकप्रभु प्राप शनैस्तन्नगर तत । श्रीसातवाहनस्तस्य प्रवेशोत्सवमातनोत् ॥११६॥
उपपर्युषण तत्र राजा व्यज्ञपयद् गुरुम् । अत्र देशे प्रभो । भावी शक्रध्वजमहोत्सवः ॥११७॥
नभस्यशुक्लपञ्चम्या तत षष्ठ्या विधीयताम् । स्व पर्व नैकचित्तत्वं धर्मे नो लोकपर्वणि ॥११८॥
प्रभुराह प्रजापाल । पुराऽर्हद्गण । पञ्चमीं नात्यगादेतत् पर्वास्मद्गुरुगीरिति ॥११९॥
कम्पते मेरुचूलापि रविर्वा पश्चिमोदयः । नातिक्रमति पर्वेद पञ्चमीरजनी ध्रुवम् ॥१२०॥

भूपाहूतः स आगत्योज्जग्रन्थ च यतीश्वरः । मुरण्डनृपतिस्तत्राक्षिप्रश्चिन्तियते तदा ॥५४॥
बालाचार्योऽयमीदृक्षे खेलनीय कुहेतुभिः । दध्यावहमयं किंत्वधृष्य केसरिवच्छिशुः ॥५५॥
'वयस्तेजसि नो हेतु'रिति सत्यं पुरा वचः । को हि सिंहार्भकं सत्रेऽगुरुरूपमपि लङ्घयेत् ॥५६॥
शिरोवेदनयाक्रान्तः सोऽन्यदा भूपतिः प्रभुम् । व्यजिज्ञपत् प्रधानेभ्यः श्रुते नष्टे स्मृती रवे ॥५७॥
तर्जनीं प्रभुरप्येष त्रिः स्वजानावचालयत् । भूपतेर्वेदना शान्ता तस्य किं दुष्करं प्रभोः ॥५८॥

तथाहि—

जह जह पएसिणिं जाणुयंमि पालित्तउ भमाडेइ । तह तह से सिरवियणा पणस्सई मुरण्डरायस्स ॥५९॥
मन्त्ररूपामिमां गाथां पठन् शिरः स्पृशेत् । शाम्येत् वेदना तस्याद्यापि मूर्ध्नोऽतिदुर्धरा ॥६०॥
स तत्कालोपकारेण हृनान्तःकरणो नृपः । सूरेर्बालस्य पादानां प्रणामेच्छू रवेरिव ॥६१॥
समाययौ ययौ श्रेष्ठे द्रागारुह्य तदाश्रयम् । सकर्णः को न गृह्णीत गुणैर्मर्त्यर्लघोरपि ॥६२। युग्मम् ।
प्रभोरुपान्तमासीनो रहः पप्रच्छ भूपतिः । भृत्या कृत्यानि न कुर्युर्वेतनस्यानुसारतः ॥६३॥
तद्विनामी विनेयाश्च युष्माकं तु कथं विभो ! । भिक्षैकवृत्तिमात्राणां ते कार्यकरणोद्यताः ॥६४॥ युग्मम् ।
सूरयः प्राहुरस्माकं विना दानं सदोद्यताः । कार्याणि भूप ! कुर्वन्ति लोकद्वयहितेच्छया ॥६५॥
भूपः प्राह न मन्येऽहं द्रव्यस्था हि जनस्थितिः । निःस्वस्त्याज्यः पुमाँल्लोकेऽरण्यं दग्धं मृगैरिव ॥६६॥
अथाह-सूरिरुर्वीश ! त्वद्भृत्या बहुवृत्तयः । तादृगुक्तं न कुर्वन्ति यादृङ्मे दानमन्तरा ॥६७॥
इहार्थे प्रत्ययो भूप ! कौतुकादवलोक्यताम् । दक्षः शुचिर्गुणी कश्चित् प्रतिष्ठां प्रापितः सदा ॥६८॥
ताम्बूलाभरणक्षौमैरात्मतुल्यः सदेक्षितः । विश्वासस्य पराभूमिर्मूर्त्यन्तरमिवापरम् ॥६९॥
आहूयतां पुमान् प्रष्ठः सौष्ठवी कोऽपि भृत्यराट् । यथा प्रतीतिसम्पत्तिर्मद्वाक्यस्य भवेत्तत ॥७०॥ त्रिभिर्विशेषकम्
क्ष्मात्राक्षत्रपतिस्तत्राहूतवान् प्राग्गुणान्वितम् । प्रधानमाजगामाय मूर्धन्यस्तकरद्वयः ॥७१॥
स प्रोवाच प्रसादं मे स्वामिन् ! आदेशतः कुरु । सुदुष्करतरेऽप्यर्थे भृत्यलेशे निजे मयि ॥७२॥
राजा प्राह-सखे ? गङ्गा वहतीह कुतोमुखी ?, इत्युक्तेऽन्तः स्मितं सोपहासं चिन्तयति स्म सः ॥७३॥
अहो ! बालर्षिसंसर्गाद् राज्ञः शैशवमागतम् । 'गङ्गा कुतोमुखी ।'' बालाङ्गनाख्यातमिदं वचः ॥७४॥
ततः प्रमाणमादेशः इत्युक्त्वा स ययौ बहिः । ऐश्वर्यग्रहिलो राजा नाहमप्यस्मि तादृशः ॥७५॥
फल्गुवाग्भिस्ततः स्वीयं सुखं परिहरामि किम् । ध्यात्वेति व्यसनी तत्र प्रायः प्रायाद् दुरोदरे ॥७६॥
खेलन्निर्वाह्य तत्रासौ चतस्रः पञ्च नाडिकाः । गत्वा स्वामिपुरः 'पूर्वामुखी'त्युत्तरमाह सः ॥७७॥
अपसर्प्यैः प्रसर्पद्भिस्तद्वृत्तं भूपतेः पुरः । न्यवेद्यथ यतिस्वामी स्मितं कृत्वाऽभ्यधादिति ॥७८॥
भूपाल ! चेष्टितं दृष्टं धनवानातिशायिनः । निजप्रसादचित्तस्यापरेषां तु कथापि का ॥७९॥
अद्यश्वीनविनेयस्य शिक्षितस्य व्यवस्थितिम् । पश्य नश्यन्मदस्येह चित्तान्तश्चित्रकारिणीम् ॥८०॥
आगच्छाभिनवचुल्ल ! व्याहृते चेति सूरिभिः । इच्छामीति वदन् शीघ्रमुत्तस्थौ स्वरजोहृति ॥८१॥
विनयानम्रमौलिश्च मेदिनीं प्रतिलेखयन् । पुर आगाद् गुर्वोर्जानू भुव्यास्ये न्यस्य पोतिकाम् ॥८२॥
प्रभो ! ऽनुशास्तिमिच्छामीत्युक्ते तेनावदन् प्रभुः । गङ्गा कुतोमुखी वत्स ? वहत्याख्याहि निर्णयम् ॥८३॥
तदा चावश्यकीपूर्वं निर्गच्छन्नाश्रयाद् बहिः । विन्यस्य कम्बलं स्कन्धे कृत्वा दण्डं करे निरैत् ॥८४॥
प्रश्नानुचिततां जानन् बालवृद्धयुवस्त्रियाम् । अपृच्छन् मध्यवयसः प्रवीणं पुरुषं ततः ॥८५॥
'गङ्गा कुतोमुखी ?' 'पूर्वामुखी' ति प्रापितोत्तरः । तेनेति त्रिः कृते प्रश्ने सर्वत्रासीत् समोत्तरः ॥८६॥
तथापि निश्चिकीर्षुः स स्वर्धुनीजलसन्निधौ । प्रत्युपेक्ष्य ततो दण्डं करस्थितं तदग्रकं ॥८७॥
जलान्तरेऽमुचत् तं च स्रोतसाऽतिरयात् ततः । प्राग्वाहिते करे दण्डसहिते प्रत्ययं ययौ । ८८॥ युग्मम् ।

श्रीचन्द्रप्रभसूरिपट्टसरसीहंसप्रभ श्रीप्रभाचन्द्र सूरिरनेन चेतसि कृते श्रीरामलक्ष्मीसुता । श्रीपूर्वर्षिचरित्ररोहणगिरौ श्रीकालकाख्यानक श्रीप्रद्युम्नमुनीन्दुना विशदित शृङ्गश्चतुर्थोऽभवत् ॥१५६॥" इति ॥६१॥

एवं बारसासूत्रादिष्वपि दर्शितम् ।

अथार्यश्रीखपुटसूरिं तच्छिष्यश्च महेन्द्रसूरिश्च ब्रुवन् पथ्यागीतिमाह–

विज्जासिद्धो जेआ, बंभणबोद्धाण खउटसूरी सो ।
जयउ जगे तस्सीसो, महिंदसूरी वि सिद्धवज्झायो ॥६२॥ (पच्छागीई)

(प्रे०) "**विज्जा०**" इत्यादि, "**सो**" त्ति स = प्रसिद्धिभाक् "**खउटसूरी**" त्ति खपुटसूरिः = खपुटनामा आचार्यः "**जगे**" त्ति जगति = विश्वे "**जयउ**" त्ति, जयतु = अतिशय्यस्तु इति क्रियासण्टङ्कः । स किम्भूतः । "**विज्जासिद्धो**" त्ति विद्यासिद्धः = साधितविद्यः, विद्यानां चक्रवर्ती वा । यद्वा यस्यैकाऽपि महाविद्या महापुरुपदत्ता सिध्येत् स विद्यासिद्धः ।

तथा चोक्तम्––

"विज्जाण चक्कवट्टी विज्जासिद्धो स जस्स वेगाऽपि । सिज्जेज्ज महाविज्जा विज्जासिद्धोऽज्जखउडोव्व ।" इति । पुनः किं विशिष्टः । "**जेआ बम्भणबोद्धाण**" त्ति ब्राह्मणाः = द्विजाः, बौधाः = बुद्धोक्तमतानुयायिनः, ब्राह्मणाश्च बौद्धाश्च ब्राह्मणबोधास्तेषाम्, "**जेआ**" त्ति जयतीति "ण्वुल्तृचौ" इत्यनेन तृच्प्रत्यये सति जेता = स्वपक्षसमर्थनेन परपक्षखण्डनेन चान्येषां पराभवकारी । X

"**तस्सीसो**" त्ति तस्य = आर्यखपुटसूरेः शिष्यः = विनेयः तच्छिष्यः "**महिंदसूरी**" त्ति महेन्द्रसूरिः = महेन्द्राभिध आचार्यः "**वि**" त्ति अनुकर्षणार्थेनापिशब्देन यद्वा डमरुकमणिन्यायेनाऽत्रापि "**जयउ**" "**जगे**" त्ति पदद्वयी सम्बध्यते ततो जगति = लोके जयतु = जयनसमर्थो भवतु इति क्रिया सम्बन्धः, कीदृगसौ ? । "**सिद्धवज्झायो**" त्ति पदैकदेशे पदसमु-

---

X अस्य च वीरसंवत् ४५३ वर्षे, पट्टावल्याद्यनुसारेण, प्रभावकचरिताद्यनुसारेण तु वीरसंवत् ४८४ वर्षे सत्ताऽस्ति । तथा चोक्तं तपागच्छपट्टावल्याम्-'श्री वी० त्रिपञ्चाशदधिकचतुःशतवर्षातिक्रमे ४५३ भृगुकच्छे आर्यखपुटाचार्य इति पट्टावल्या प्रभावकचरिते तु चतुरशीत्यधिकचतुःशत ४८४ वर्षे आर्यखपुटाचार्य ॥' इति । तथा चोक्तं श्रीप्रभावकचरिते श्रीविजयसिंहसूरिप्रबन्धे–

"श्रीवीरमुक्तितः शतचतुष्टये चतुरशीतिसंयुक्ते । वर्षाणां समजायत श्रीमानाचार्यखपुटगुरुः ॥७६॥' इति ।

अस्माकमपि पट्टावलीमतं सुष्ठु भाति, यत श्रीपादलिप्तसूरिस्तेषां समीपेऽधीतवानिति प्रभावकचरिते प्रतिपादितमस्ति, तथा श्रीपादलिप्तसूरेर्विद्यमानता श्रीतपागच्छपट्टावल्यां गुरुपट्टावल्यादिषु च वी० सं० ४६७ वर्षे दर्शिताऽस्ति, ततः पादलिप्तसूरेः प्रागस्य विद्यमानता सम्भाव्यते । यद्वा श्री-आर्यखपुटसूरेर्विद्यमानताया प्रारम्भिकमन्तिमं च क्रमशः श्रीपट्टावलीसत्कं श्रीप्रभावकचरितसत्कं च संवत्सरं सम्भाव्य समन्वयं कर्तुं यदि शक्यते तर्हि स कार्यः । तत्त्वं पुनरत्र बहुश्रुता जानीयुः ।

कियन्त्यपि दिनान्यत्रावतिष्ठध्व सुखय न । प्राहु पूज्याश्च युक्तैवावस्थितिर्भवदन्तिके ।२४३॥
सधादेशो ह्यनुल्लङ्घ्य स्नेहश्च नृपतेरपि । पुरस्तस्यापराह्णे चागमन प्रतिशुश्रुवे ॥२४४॥
तत शत्रुञ्जये रैवतके समेतपर्वते । अष्टापदे च कर्तव्या तीर्थयात्रा ममाधुना ॥२४५॥
आपृष्टोऽपि महाराज । तज्जैने भव भक्तिमान् । इत्युक्त्वाऽऽकाशमार्गेण यथारुचि ययौ प्रभु ॥२४६॥
तीर्थयात्रा प्रकुर्वाण, पादचारेण सोऽन्यदा । सुराष्ट्राविषय प्रापदपारश्रुतपारग ॥२४७॥
तत्रास्ति विगतातङ्का ढकानाम महापुरी । श्रीपादलिप्तस्तत्रायाद् विहरन् व्रतलील्या ॥२४८॥
तत्र नागार्जुनो नाम रससिद्धिविदा वर । मान्त्रिशिष्यो गुरोस्तस्य तदवृत्तमपि कथ्यते ॥२४९॥
अस्ति क्षत्रियमूर्धन्यो धन्य समरकर्मसु । सग्रामनामा विख्यातस्तस्य भार्याऽस्ति सुव्रता ॥२५०॥
सहस्रफणशेषाहिस्वप्नससूचितस्थिति । कृतनागार्जुनाभिख्यस्तयो पुत्रोऽस्ति पुण्यभू ॥२५१॥
स वर्षत्रयदेशीयोऽन्यदा क्रीडन् शिशुव्रजे । सिंहार्भक विदार्यागात् तस्मात् किञ्चिच्च भक्षयन् ॥२५२॥
पित्रा निवारित क्षात्रे कुले भक्ष्यो नखी नहि । तदागतेन चैकेन सिद्धपुसेति वर्णितम् ॥२५३॥
मा विषीद स्वपुत्रस्य विहितेन नरोत्तम! अशक्यास्वादतस्तस्यास्वाद प्राप्स्यत्यसौ सुत ॥२५४॥
विनिद्र उद्यमी भास्वानाबाल्यादपि तेजसा । प्रवृद्धपुरुषे सङ्गमङ्गीचक्रे कलाद्भुते ॥२५५॥
गिरय सरितो यस्य गृहाङ्गणमिवाभवन् । दूरदेशान्तर गेहान्तर भूरिकलादरात् ॥२५६॥
नागवर्गीकृताभ्यासस्तारस्तरङ्गस्य रङ्गभू । सग्रही चौषधीना यो रससिद्धिकृतामिह २५७॥
य सत्त्व तालक पिष्ट गन्धके द्रावमभ्रके । जारण मारण सूते वेत्ता छेत्ता सुदु स्थिते ॥२५८॥
सहस्रलक्षकोट्यशधूमवेधान् रसायनम् । पिण्डबद्धान चकाराथ नदीष्णो रससाधने ॥२५९॥
स महीमण्डल भ्रान्त्वाऽन्यदा स्वपुरमासदत् । पादलिप्त च तत्रस्थ जज्ञे निसख्यसिद्धिकम् ॥२६०॥
पर्वताश्रितभूमौ च कृतावास स्वशिष्यत । अकार्षीत् पादलेपार्थी ज्ञापन गणभृत्पते ॥२६१॥
तृणरत्नमये पात्रे सिद्ध रसमढौकयत् । छात्रो नागार्जुनस्य श्रीपादलिप्तप्रभो पुर ॥२६२॥
स प्राह रससिद्धोऽय ढौकने कृतवान् रसम् । स्वान्तर्द्धनमहो स्नेहस्तस्येत्येव स्मितोऽभ्यधात् ॥२६३॥
पात्र हस्ते गृहीत्वा च भित्तावास्फाल्य खण्डश । चक्रे तन्नरो दृष्ट्वा व्यपीदद् वक्रवक्त्रभृत् ॥२६४॥
मा विषीद तव श्राद्धपार्श्वतो भाजन वरम् । प्रदापयिष्यते चैवमुक्त्वा समान्य भोजित ॥२६५॥
तस्मै चापृच्छ्यमानाय काचामत्र प्रपूर्य स । प्रश्रावस्य ददौ तस्मै प्राभृत रसवादिने ॥२६६॥
नूनमस्मद्गुरुर्मूर्खो योऽनेन स्नेहमिच्छति । विमृशन्निति स स्वामिसमीप जग्मिवास्तत ॥२६७॥
पूज्यै सहाद्भुता मैत्री तस्येति स्मितपूर्वकम् । सम्यग् विज्ञप्य वृत्तान्त तदमत्र समार्पयत् ॥२६८॥
द्वारमुन्मुद्रय यावत् स सन्निधत्ते दृशो पुर । आजिघ्रति तत क्षारविश्रगन्ध स बुद्धवान् ॥२६९॥
अहो निर्लोभतामेष मूढता चास्पृशेदथ । विमृश्येति विषादेन बभजाश्मनि सोऽपि तत् ॥२७०॥
दैवसंयोगतस्तत्रैकेन वह्नि प्रदीपित । भक्ष्यपाकनिमित्त च क्षुत् सिद्धस्यापि दुसहा ॥२७१॥
पक्ता नृजलवेधेन वह्नियोगे सुवर्णकम् । सुवर्ण सिद्धमुत्प्रेक्ष्य सिद्धशिष्यो विसिष्मिये ॥२७२॥
व्यजिज्ञपद् गुरु सिद्ध सिद्धिस्तस्याद्भुता प्रभो ? । ग्रावा हैमी भवेद् यस्य मलमूत्रादिसङ्गमे ॥२७३॥
ततो नागार्जुन सिद्धो विस्मयस्मेरमानस । दध्यौ स मम का सिद्धिर्दारिद्र्य कुर्वत सदा ॥२७४॥
क्वास्तेऽत्र चित्रको रक्त कृष्णमुण्डी च कुत्र सा । शाकम्भर्याश्च लवण वज्रकन्दश्च कुत्र च ॥ ७५॥
इत्येव दूरदेशस्थौषधपिण्डान् प्रपिण्डयन् । भिक्षाभोजनतो म्लानदेहोऽह सर्वदाऽभवम् ॥२७६। युग्मम् ।
आचार्योऽय शिशुत्वादप्यारभ्य प्राप्तपूजन । सुखी विहायोगामिन्या सिद्धया साध्यानि साधयन् ॥२७७॥
तथा यद्देहमध्यस्था मलमूत्रादयो वसु । साधयन्ति मृदश्मादिद्रव्यैस्तस्यास्तु का कथा ॥२७८॥

श्रीचन्द्रप्रभसूरिपट्टसरसीहंसप्रभ श्रीप्रभाचन्द्र सूरिरनेन चेतसि कृते श्रीरामलक्ष्मीभुवा ।
श्रीपूर्वर्षिचरित्ररोहणगिरौ श्रीकालकाख्यानक श्रीप्रद्युम्नमुनीन्दुना विशदित शृङ्गश्चतुर्थोऽभवत् ॥१५६॥"
इति ॥६१॥

एवं वारसासूत्रादिष्वपि दर्शितम् ।

अथार्यश्रीखपुटसूरिं तच्छिष्यश्च महेन्द्रसूरिश्च ब्रुवन् पथ्यागीतिमाह–

विज्जासिद्धो जेआ, बंभणबोद्धाण खउडसूरी सो ।
जयउ जगे तस्सीसो, महिंदसूरी वि सिद्धवज्झायो ॥६२॥ (पच्छागीई)

(प्रे०) "**विज्जा०**" इत्यादि, "**सो**" त्ति स = प्रसिद्धिभाक् "**खउडसूरी**"त्ति खपुटसूरिः = खपुटनामा आचार्यः "**जगे**" त्ति जगति = विश्वे "**जयउ**" त्ति, जयतु = अतिशय्यस्तु इति क्रियासण्टङ्कः । स किम्भूतः । "**विज्जासिद्धो**"त्ति विद्यासिद्धः = साधितविद्यः, विद्यानां चक्रवर्ती वा । यद्वा यस्यैकाऽपि महाविद्या महापुरुषदत्ता सिध्येत् स विद्यासिद्धः ।

तथा चोक्तम्–

"विज्जाण चक्कवट्टी विज्जासिद्धो स जस्स वेगाऽपि । सिज्जेज्ज महाविज्जा विज्जासिद्धोऽज्जखउडोव्व ।
इति । पुनः किं विशिष्टः । "**जेआ बम्भणबोद्धाण**" त्ति ब्राह्मणाः = द्विजाः, बौधाः = बुद्धोक्तमतानुयायिनः, ब्राह्मणाश्च बौद्धाश्च ब्राह्मणबोधास्तेषाम्, "**जेआ**" त्ति जयतीति "णकृत्चौ" इत्यनेन तृच्प्रत्यये सति जेता = स्वपक्षसमर्थनेन परपक्षखण्डनेन चान्येषां पराभवकारी । X

"**तस्सीसो**"त्ति तस्य = आर्यखपुटसूरेः शिष्यः = विनेयः तच्छिष्यः "**महिंदसूरी**"त्ति महेन्द्रसूरिः = महेन्द्राभिध आचार्यः "**वि**" त्ति अनुकर्षणार्थेनापिशब्देन यद्वा डमरुकमणिन्यायेनाऽत्रापि "**जयउ**" "**जगे**" त्ति पदद्वयी सम्बध्यते ततो जगति = लोके जयतु = जयनसमर्थो भवतु इति क्रिया सम्बन्धः, कीदृगसौ ? । "**सिद्धवज्झायो**" त्ति पदैकदेशे पदसमु-

---

Xअस्य च वीरसंवत् ४५३ वर्षे, पट्टावल्याद्यनुसारेण, प्रभावकचरिताद्यनुसारेण तु वीरसंवत् ४८४ वर्षे सत्ताऽस्ति । तथा चोक्तं तपागच्छपट्टावल्याम्-'श्री वी० त्रिपञ्चाशदधिकचतुःशतवर्षातिक्रमे ४५३ भृगुकच्छे आर्यखपुटाचार्य इति पट्टावल्यां प्रभावकचरिते तु चतुरशीत्यधिकचतुःशत ४८४ वर्षे आर्यखपुटाचार्य ॥' इति । तथा चोक्तं श्रीप्रभावकचरिते श्रीविजयसिंहसूरिप्रबन्धे–
"श्रीवीरमुक्तितः शतचतुष्टये चतुरशीतिसंयुक्ते । वर्षाणां समजायत श्रीमानाचार्यखपुटगुरुः ॥७६॥" इति ।

अस्माकमपि पट्टावलीमतं सुष्ठु भाति, यतः श्रीपादलिप्तसूरिस्तेषां समीपेऽधीतवानिति प्रभावकचरिते प्रतिपादितमस्ति, तथा श्रीपादलिप्तसूरेर्विद्यमानता श्रीतपागच्छपट्टावल्यां गुरुपट्टावल्यादिषु च वी० सं० ४६७ वर्षे दर्शिताऽस्ति, ततः पादलिप्तसूरेः प्रागस्य विद्यमानता सम्भाव्यते । यद्वा श्री-आर्यखपुटसूरेर्विद्यमानताया प्रारम्भिकमन्तिमं च क्रमशः श्रीपट्टावलीसत्कं श्रीप्रभावकचरितसत्कं च संवत्सरं सम्भाव्य समन्वयः कर्तुं यदि शक्यते तर्हि स कार्यः । तत्त्वं पुनरत्र बहुश्रुता जानीयुः ।

धर्म्मस्थानानि मज्यन्ते वहिर्यन्त्राश्मगोलकैः । समारचयते राजा तस्य धर्मोपदेशतः ॥३१५॥
पौनःपुन्येन मज्यन्ते निष्पाद्यन्ते पुनः पुनः । एवं च बलमित्रस्य सर्वस्वं निष्ठितं तदा ॥३१६॥
श्रीसातवाहनो दुर्गं मन्त्रिबुद्ध्या ततोऽग्रहीत् । बन्दिगृह्य महीपालं नगरं स्वं ययौ मुदा ॥३१७॥
अन्यदा तस्य राजेन्द्रो राज्यं विदधतः सतः । चत्वारः शास्त्रसंक्षेपकवयो द्वारमभ्ययुः ॥३१८॥
प्रतीहारेण ते राज्ञो विज्ञाप्य भवनान्तरा । मुक्ता एकैकपादं च श्लोकस्याहुर्नृपाग्रतः ॥३१९॥ तथाहि–
जीर्णे भोजनमात्रेयः कपिलः प्राणिनां दया । बृहस्पतिरविश्वासः पाञ्चालः स्त्रीषु मार्दवम् ॥३२०॥
पूर्वं प्रशस्य तेषां स महादानं ददौ प्रभुः । परिवारो न किं स्तौतीत्युक्ते तेनाह भूपतिः ॥३२१॥
भोगवत्यभिधां वारवनितां त्वं स्तुतिं कुरु । पादलिप्तं विना नान्यं स्तौनत्या मम साऽब्रवीत् ॥३२२॥
आकाशमार्गजङ्घालो विद्यासिद्धो महाक्रियः । पादलिप्ताद् ऋते कोऽन्य एवंविधगुणावनिः ॥३२३॥
सांधिविग्रहिको राज्ञः शंकरो नाम मत्सरी । असहिष्णुः स्तुतिं तस्यावादीदादीनवस्थितिः ॥३२४॥
मृतो जीवति यस्तस्य पाण्डित्यं प्रकटं वयम् । मन्यामहेऽपि ते कीरा विद्वांसो गगने चराः ॥३२५॥
भोगवत्याह तत्रेदमपि समाव्रते ध्रुवम् । अतुल्यप्रभावा जैना देवा इव महर्षयः ॥३२६॥
मानखेटपुरात् कृष्णभापृच्छच्य स भूपतिः । श्रीपादलिप्तमाह्वामीदेतस्मादेव कौतुकात् ॥३२७॥
आययौ नगराद्बाह्योद्याने जैनो मुनीश्वरः । विद्वान् बृहस्पतिर्ज्ञात्वा परीक्षामस्य चक्रिवान् ॥३२८॥
विलीनसर्पिषा पूर्णं रौप्यकच्चोलकं ततः । प्रेषितवान् निपुणेनैष स प्रमोस्तददर्शयत् ॥३२९॥
धारिणीविद्यया सूचामवस्थाप्योद्धर्वेसस्थितिं । प्रेषयत् तेन नद् दृष्टं विषण्णोऽथ बृहस्पतिः ॥३३०॥
अथाभ्यागत्य भूपालः प्रवेशोत्सवमादधे । गुरोरुपाश्रयस्तस्य महार्हश्च प्रदर्शितः ॥३३१॥
कथा तरङ्गलोलाख्या व्याख्याताऽभिनवा पुरः । भूपस्य तत्र पाञ्चालः कविर्भृशमसूयितः ॥३३२॥
प्रशंसति कथां नैव दूषयेत् प्रत्युताधिकम् । रासभस्य मुखात् किं स्यात् शान्तिपानीयनिर्गमः ॥३३३॥
मद्ग्रन्थेभ्यो मुषित्वार्थबिन्दुः कन्थेयमग्रथि । बालगोपाङ्गनारङ्गसङ्गि ह्येतद्वचः सदा ॥३३४॥
विदुषां चित्तरङ्गं नोत्पादयेत् प्राकृतं हि तत् । स्तौति भोगवती ह्येतत् तादृशा तादृगैचिनी ॥३३५॥
अन्यदा कपटात् स्वस्य मृत्युमैक्षयत प्रभुः । हा हा ! पूत्कारपूर्वं च जनस्तत्रामिलद् घनः ॥३३६॥
शिबिकान्तस्ततु साधूत्क्षिप्ता यावत्समाययौ । वादित्रैर्वाद्यमानैश्च पञ्चालभवनाग्रतः ॥३३७॥
तावद् गेहाद् विनिष्क्रामन् जज्ञेऽसौ शोकपूरितः । आह हाहा ! महासिद्धिपात्रं सूरिर्ययौ दिवम् ॥३३८॥
मादृशोऽसूययाक्रान्तः सत्पात्रे सूनृतव्रते । अकुर्वन् दृशो रक्ता मोक्षो नास्ति तदेनसः ॥३३९॥
यत उक्तम्-आकरः सर्वशास्त्राणां रत्नानामिव सागरः । गुणैर्न परितुष्यामो यस्य मत्सरिणो वयम् ॥३४०॥
तथा–सीसं कहवि न फुट्टं जमस्स पालित्तयं हरंतस्स । जस्स मुहनिज्झराओ तरंगलोला नई वूढा ॥३४१॥
पञ्चालसत्यवचनाज्जीवितोऽहमिति ब्रुवन् । उत्तस्थौ जनताहर्षारावेण सह सूरिराट् ॥३४२॥
जनैराक्रुश्यमानश्च ततोऽसौ गुणिमत्सरी । निर्वास्यमानो न्यक्कारपूर्वमुर्वीपतेर्गिरा ॥३४३॥
रक्षितो मानितश्चाथ बन्धुबन्धुसौहृदैः । श्रीपादलिप्तगुरुभिर्गुरुविद्यामदोज्झितैः ॥३४४॥
श्रावकाणां यतीनां च प्रतिष्ठा दीक्षया सह । उत्थापना प्रतिष्ठार्हद्बिम्बानां भूसदामपि ॥३४५॥
यदुक्तविधितो बुद्ध्वा विधीयेतात्र सूरिभिः । निर्वाणकलिकाशास्त्रं प्रभुश्चक्रे कृपावशात् ॥३४६॥
प्रश्नप्रकाश इत्याख्यं ज्योतिःशास्त्रं च निर्ममे । लाभालाभादिपृच्छासु सिद्धादेशः प्रवर्तते ॥३४७॥
अन्यदायुः परिज्ञाय सह नागार्जुनेन ते । विमलाद्रिमुपाजग्मुः श्रीनाभेयं ववन्दिरे ॥३४८॥
सिद्धिक्षेत्रशिरःसारशिलां सिद्धिशिलातुलाम् । शमसंवेगनिधय एकामासेदुरादरात् ॥३४९॥
प्रायोपवेशनं सद्य आस्थाय शशिरोचिषा । धर्मध्यानाम्भसा विध्यापितरागादिवह्नयः ॥३५०॥
मनोवचनकायानां चेष्टाः संहृत्य सर्वतः । शुक्लध्यानसमानान्तःकरणावस्थितिस्थिराः ॥३५१॥

मभिमन्त्रितं करवीरलताद्वयं दत्त्वा प्रजिघ्युस्तत्र गत्वा तेन राजसभायां नृपं प्रति कान् दिश्यान् ब्राह्मणान् पूर्वं नमामीति प्रश्नपूर्वकेण करवीरलताभ्रमणेन लुठितवदना मृतसन्निभा निश्चेष्टा ब्राह्मणाः कृताः पश्चाद्देवीगिरा प्रव्रज्याग्रहणवचनेन सज्जीकृता गुरुभिर्दीक्षिताः । नृपश्च भक्तो जातः ।

तथा च विस्तरेण प्रभावकचरिते पादलिप्तसूरिप्रबन्धे प्रदर्शितचरितमनयोस्त्वेवम्-

अथार्यखपुटा सन्ति, विद्याप्रभृतसभृता । तद्वृत्तमिह जैनेन्द्रमतोल्लासि प्रतन्यते ॥१४२॥
विन्ध्योदधिकृताघात लाटदेशललाटिका । पुरं श्रीभृगुकच्छाख्यमस्ति रेवापवित्रितम् ॥१४३॥
यानपात्र भवाम्भोधौ यत्र श्रीमुनिसुव्रत' । पातकातङ्कत पाति स्वभुर्वोभूर्भव जनम् ॥१४४॥
तत्रास्ति बलभित्राख्यो राजा बलभिदा सम. । कालिकाचार्यजामेय स्थेय श्रेयधियां निधि ॥१४५॥
भवाध्वनीनभव्याना सन्ति विश्रामभूमय । तत्रार्यखपुटा नाम सूरयो विद्ययोदिता ॥१४६॥
तेषा च भागिनेयोऽस्ति विनेयो भुवनाभिध । कर्णश्रुत्याप्यसौ प्राज्ञो विद्या जग्राह सर्वत ॥१४७॥
बौद्धान् वादे पराजित्य यैस्तीर्थं सङ्घसाक्षिकम् । तद्ग्रहध्वान्ततो भानुप्रतिरूपैरमोच्यत ॥१४८॥
तदा च सौगताचार्य एको वडुकराभिध । गुडशस्त्रपुरात् प्राप्तो जिगीषुर्जैनशासनम् ॥१४९॥
गुडपिण्डै पुरा तत्र शत्रुशैन्यमभज्यत । गुडशस्त्रमिति ख्यातिरतोऽस्याजनि विश्रुता ॥१५०॥
सर्वानित्यप्रवादी स चतुरङ्गसभापुर । जैनाचार्यस्य शिष्येण जित. स्याद्वादवादिना ॥१५१॥
कादिशीकस्ततो मन्युपूरपूरितमानस । कोपादनशन कृत्वा मृत्वा यक्षो बभूव स ॥१५२॥
निजस्थानेऽवतीर्यासौ सकोप श्वेतभिक्षुषु । अवजानाति तांस्तेषामुपसर्गान् दधाति च ॥१५३॥
तत्पुरस्थेन सङ्घेन तदार्यखपुटप्रभु । तत्र व्रतिद्वयं प्रेष्य ज्ञापितस्तत्पराभवम् ॥१५४॥
एषा कपलिका वत्स ! नोन्मोच्या कौतुकादपि । कदापि शिक्षयित्वेति जामेयमचलत् तत ॥१५५॥
पुरे तत्र गतस्तस्या यक्षस्यायतनेऽवसत् । उपानहौ निधायास्य कर्णयो शयन व्यधात् ॥१५६॥
यक्षार्चक समायानस्त तथा वीक्ष्य भूपते । व्यजिज्ञपदथो तस्मै कुपित कुपतिस्तत ॥१५७॥
समेत्य शयित बाढ पट प्रावृत्य सर्वत' । निजैरुत्थापयामास तेऽप्राचु' परित पुतौ ॥१५८॥
तैराख्याते पुन क्रुद्धो नृपस्त लेष्टुयष्टिभि. । अघातयत् स घाताना प्रवृत्तिमपि वेत्ति न ॥१५९॥
क्षणेन तुमुलो जज्ञे पुरेऽप्यन्त पुरेऽपि च । पूत्कुर्वन्त समाजग्मु सौविदा अवदंस्तथा ॥१६०॥
रक्ष रक्ष प्रभो ? न्यक्ष शुद्धान्तो लेष्टुयष्टिभि । अदृष्टविहितै कैश्चित् प्रहारैर्जर्जरीकृत ॥१६१॥
तदाकर्ण्य नृपो दध्यौ विद्यासिद्धोऽसकौ ध्रुवम् । सचारयति शुद्धान्ते प्रहारान् स्व तु रक्षति ॥१६२॥
तदय माननीयो मे ध्यात्वेति तमसान्त्वयत् । चटुभि पटुभिर्भूप साधिष्ठायकदेववत् ॥१६३॥
अथार्यखपुटाचार्य कृत्वा कपटनाटकम् । उत्थित' प्रणतो भूमिभुजा भून्यस्तमस्तकम् ॥१६४॥
यक्ष प्रोचे मया सार्द्धं चलेति स ततोऽचलत् । तमनुप्राचलन् देवरूपकाण्यपराण्यपि ॥१६५॥
चाल्य नरसहस्रेण तत्र द्रोणीद्वय तथा । चालित कौतुकेनेत्थ तत्प्रवेशोत्सवोऽभवत् ॥१६६॥
तत्प्रभावाद्भुत वीक्ष्य जनेशोऽपि जनोऽपि च । जिनशासनभक्तोऽभून्महिमानं च निर्ममे ॥१६७॥
सूरिर्नृपेण विज्ञप्तो यक्ष स्थाने न्ययोजयत् । स शान्तो द्रोणियुगल तत्रैव स्थापित पुन' ॥१६८॥
इतश्च श्रीभृगुक्षेत्रात् यतिद्वितयमागमत् । तेन प्रोचे प्रभो ! प्रैषीत् सघो नौ भवदन्तिके ॥१६९॥
स्वस्रीय स विनेयो व बलात् कपलिका तत । उन्मोच्य पत्रमेक सोऽवाचयद्वारितप्रिय ॥१७०॥
नत्राकृष्टिर्महाविद्या पाठसिद्धाऽस्य सगता । तत्प्रभावाद् वराहारमानीय स्वादतेतराम् ॥१७१॥

विजितः, स तत्रैव शिष्यत्वं स्वीकृतवान, तथापि गुरुभिः पुना राजसभायामपि वादे विजितः ॥६६॥

अथ △श्रीसिद्धसेनदिवाकरसूरिं पथ्यागीति-मुखचपलापथ्यार्या पथ्यार्यारूपेण श्लोकत्रयेणाह--

सीसो तस्स गुणणिही महाकवी विततसासणपहावो ।
उत्तिणणसमयजलही पवोहगो विक्कमाइभूवाणं ॥६७॥(पच्छागीई)
सिवलिंगफोडणं जो विहाय कल्लाणमंदिरथवेणं ।
पयडीअ महपहावगमवंतिपासपहुणो विंवं ॥६८॥ (मुहचवलापच्छाज्जा)
सम्मइतक्काइगणायगंथाणं कारगो अणेगाणं ।
जयउ जगम्मि स सूरी दिवायरो △सिद्धसेनगुरू ॥६९॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "सीसो" इत्यादि, "तस्स" त्ति तस्य=श्रीवृद्धवादिसूरेः "सीसो" त्ति शिष्यो=विनेयः, अस्य च पदद्वयस्याऽपि तृतीयगाथोत्तरार्धेन सार्द्धमन्वयस्ततः "स" त्ति स=विश्रुतख्यातिः "दिवायरो" त्ति दिवाकरः पञ्चमकालेऽप्यज्ञानतमोविध्वंसकारित्वात् ।

तद्वृत्तान्तश्चैवम्-एकदा विचरन् स सूरिः चित्रकूटगिरिं प्राप, तत्र चैकं विचित्रमौषधक्षोदमयं स्तम्भमपश्यत् , बुद्धिबलेन तस्मिन् स्तम्भे छिद्रं कृत्वा तन्मध्ये पुस्तकानां सहस्राणि समैक्षन्त, तस्मादेकं पुस्तकं गृहीत्वा पत्रमेकं वाचयन् , सुवर्णसिद्धिं तथा सर्षपैः सुभटनिष्पत्तिं प्रैक्षत, ततो विस्मितः सावधानीभूय यावत्पुरो वाचयितुं लग्नस्तावच्छासनदेव्यास्तत्पुस्तकमदृश्यञ्चक्रे, यतः कालदोषेणैतादृशामपि सत्त्वहानिप्रसङ्गस्य सम्भवः, ततः स प्रभुर्विद्याद्वयान्वितः कर्मारपुरीं ययौ, तां च नगरीमन्यदा कामरूपनृपो विजयवर्माभिधो रुरोध, ततस्तद्देशनृपः सूरिभक्तो देवपालः सूरिं विज्ञपयामास-"अल्पसैन्याल्पकोशबलस्य मे नाशो भविष्यती स्वामिन्नत्र त्वं मे शरणम्" इदं तद्वचः श्रुत्वा विद्याद्विकेनासङ्ख्यद्रव्यमनेकसुभटान् व्यधात् , ततो देवपालेन युद्धे रिपुः पराजितः, तस्माद्भूपेनारिभयान्धतमसो रक्षितत्वाद् "दिवाकर" इति बिरुदं दत्तम् , ततः प्रभृति दिवाकर इति ख्यातिमान् बभूव । इतश्च स प्रभुस्तेन राज्ञा भक्त्या बलात्सुखासनगजादिष्वारोप्य नृपालयमानयति स्म । तद्व्यतिकरं जनश्रुतेः श्रुत्वा वृद्धवादिगुरुः प्रच्छन्नवेशे तत्र

△ असावपि वी स ४६७ वर्षे आसीदिति गुरुपट्टावल्यादिषु प्रदर्शितमस्ति ।

रक्ष रक्ष महाविद्य ! प्रसीद त्वं ममोपरि । क्षमस्वैकं व्यलीकं मे सन्तो हि नतवत्सलाः ॥२०८॥
सजीवय द्विजानेतान् रुद्रसम्बन्धियोषितः । कस्ते माहात्म्यसात्म्यस्य पारं प्राप्तं सुधीरपि ॥२०९॥
इत्याकर्ण्य गिरं प्राह महेन्द्रः शमिनां पतिः । अनात्मज्ञ धराधीश ! कस्ते मिथ्याग्रहोऽजगत् ॥२१०॥
निर्वाणमधितस्थुश्चेज्जिना आनन्दचिन्मयाः । तदधिष्ठायकाः सन्ति प्रत्ययाढ्यास्तथाप्यहो ! ॥२११॥
एवं मृष्यति को नाम प्राकृतोऽपि विडम्बनम् । ब्राह्मणानां गृहस्थानां प्रणामो यद् व्रतस्थितैः ॥२१२॥
दैवतैः शिक्षिता एते त्वदन्यायप्रकोपिभिः । न मे कश्चित् प्रकोपोऽस्ति मादृशां मण्डनं शमः ॥२१३॥
पुनर्बाढं नृपः प्राह त्वमेव शरणं मम । देवो गुरुः पिता माता किमन्यैर्लल्लिभाषितैः ॥२१४॥
अमून् जीवय जीवातो ! जीवानां करुणां कुरु । अथाघोचत् कृती देवान् सान्त्वयिष्ये प्रकोपिनः ॥२१५॥
विद्यादेव्यः षोडशाऽपि चतुर्विंशतिसंख्यया । जैना यक्षास्तथा यक्षिण्यश्च वोऽभिदधाम्यहम् ॥२१६॥
अज्ञानादस्य भूपस्यापराद्धं जिनशासने । द्विजैरमीभिस्तत् क्षम्यं मानवाः स्युः कियद्दृशः ॥२१७॥
इत्युक्ते तेन दैवीवाक् प्रादुरासीद् दुरासदा । एषां प्रव्रज्यया मोक्षोऽन्यथा नास्त्यपि जीवितम् ॥२१८॥
अभिषेकेण तेषां गीर्मुत्कला च व्यधीयत । पृष्टा अङ्गीकृतं तैश्च को हि प्राणान् न वाञ्छति ॥२१९॥
उत्तिष्ठतेति तेनोक्त्वाऽभ्राम्यताथापरा लता । सज्जीभूवुः प्राग्वत् ते जैना ह्यमितशक्तयः ॥२२०॥
सघेन सह रोमाञ्चाङ्कुरकन्दलितात्मना । राज्ञा कृतोत्सवेनाथ स्वं विवेशाश्रयं मुनिः ॥२२१॥
प्रव्रज्योत्सवमाधास्यन् संघस्तेन द्विजन्मनाम् । न्यषेध्यतार्यखपुटप्रभुः कर्त्तेति जल्पता ॥२२२॥
एवं प्रभावभूमेस्ते कीदृगस्ति गुरुः प्रभो ! । इत्युक्तः श्रीमहेन्द्रोऽसौ प्राह कोऽहं तदग्रतः ॥२२३॥
मार्जारेभ्य इव क्षीरं सौगतेभ्यो व्यमोच्यत । अश्वावबोधतीर्थं श्रीभृगुकच्छपुरे हि यैः ॥२२४॥
श्रीआर्यखपुटाख्यानां प्रभूणां महिमाद्भुतम् । तेषां स्तोतुमलं कः स्याद् वादिद्विपहरिश्रियाम् ॥२२५॥युग्मम्॥
चारित्राग्निनि सम्प्रपीष्य मदनं पात्रे वरिष्ठात्मके, वृद्धस्नेहभरे तपोऽनलमिलज्ज्वाले विपक्वः स्फुरन् ।
रोदः कुञ्जरकुण्डके सितरुचिज्योत्स्नाम्लके यद्यशो-राशिः स्यादवसेकिमोऽभ्रविवरं स्वाद्यः सतां-सोऽवतात् ॥२२६॥
अथासौ ब्राह्मणैः सार्द्धं संघेनानुमतो ययौ । उपपूज्य दीक्षिताश्च वाडवाः प्रभुभिस्ततः ॥२२७॥
इत्यार्यखपुटश्चक्रे शासनस्य प्रभावनाम् । उपाध्यायो महेन्द्रश्च प्रसिद्धिं प्रापुरद्भुताम् ॥२२८॥
अश्वावबोधतीर्थे च प्रभावकपरम्परा । अद्यापि विद्यते यस्य सन्ताने सूरिमण्डली ॥२२९॥
सूरिः श्रीपादलिप्तः प्रागाख्यातगुरुसन्निधौ । प्रतीतप्रातिहार्याणि तानि शास्त्राण्यधीतवान् ॥२३०॥
पादलिप्ताख्याभाषा च विद्वत्सङ्केतसंस्कृता । कृता तैरपरिज्ञेयोऽन्येषां यात्रार्थं इष्यते ॥२३१॥
आवर्जितश्च भूपालः कृष्णाख्यः ससदा सह । न ददात्यन्यतो गन्तुं गुणगृह्यो मुनीशितुः ॥२३२॥
अथार्यखपुटः सूरिः कृतभूरिप्रभावनः । अन्तेऽनशनमाधाय दैवीभुवमशिश्रियत् ॥२३३॥
श्रीमहेन्द्रस्ततस्तेषां पट्टे सूरिपदेऽभवत् । तीर्थयात्रां प्रचक्राम शनैः संयमयात्रया ॥२३४॥" इति ॥६२॥

अथ श्रीरुद्रदेवसूरिं श्रीश्रमणसिंहसूरिश्च प्ररूपयन् पथ्यापूर्विकां महाचपलामार्यामाह —

सिरिरुद्ददेवसूरी जगे जयउ जोणिपाहुडसुअण्णू ।
सिरिसमणसिंहसूरी णिमित्तविज्जापहू जयउ ॥६३॥

(पच्छापुव्विगा सव्वचवलाज्जा)

"अयश्चात्र सम्बन्धः—गुरुणा श्रीवृद्धवादिसूरिणा योग्यं ज्ञात्वा स्वपदे न्यस्तः स सूरिरेकदागमं संस्कृतं कर्तुमिच्छन् सङ्घं व्यजिज्ञपत् तदा सङ्घप्रधानपुरुषैरुक्तम्—"पूज्यैरनेन वचनदोषेण भूरि पापमर्जितं श्रुतस्थविरा अस्य प्रायश्चित्त प्रजानन्ते" ततः सत्त्वशाली स सङ्घमनुज्ञाप्य स्थविरदर्शितं द्वादशवर्षावधिकगुप्तवेशगच्छत्यागलक्षण (अद्भुत शासनप्रभावनाकरणान्न्यूनावधिकमपि) पाराञ्चितकाख्यं प्रायश्चितमङ्गीकृत्य विहरन् सप्तमे वर्षेऽन्यदाऽवन्तिपुर्यामागमत् । तत्र च विक्रमादित्यभूपमन्दिरद्वारे द्वारपालमकथयत्—

"दिदृक्षुर्भिक्षुरायातो द्वारि तिष्ठति वारितः ।
हस्तन्यस्तचतुःश्लोकः किमागच्छतु गच्छतु ॥"

इति मद्वचो भूपतिं न्यवेदय ततो नृपेण समाहूतः स तस्य सभायामिदं श्लोकचतुष्टयमाह—

"अपूर्वेयं धनुर्विद्या, भवता शिक्षिता कुतः ।
मार्गणौघः समभ्येति गुणो याति दिगन्तरम् ॥१॥
अमी पानकरङ्काभाः सप्ताऽपि जलराशयः ।
यद्यशोराजहंसस्य पञ्जरं भुवनत्रयम् ॥२॥
सर्वदा स ोऽसीति मिथ्या संस्तूयसे बुधैः ।
नारयो लेभिरे पृष्ठं न वक्षः परयोषितः ॥३॥
भयमेकमनेकेभ्यः शत्रुभ्यो विधिवत् । ।
ददासि तच्च ते नास्ति राजन् चित्रमिदं महत् ॥४॥

इति श्लोकचतुष्कं श्रुत्वा सन्तुष्टेन भूपालेन बहुसन्मानितः स्वपार्श्वे स्थातुमभ्यर्थितः सन् स तत्र स्थितः । एकदा नृपेण सार्द्धं शिवालये गतः स द्वारत एव व्यावृत्तो राज्ञा पृष्टो "देवस्यावज्ञां किं करोषि ?" तेनोदितम् , 'नह्ययं मत्प्रणाम सोढुमलं, ये मत्प्रणामसोढारस्त एव देवा नापरे" ततो राज्ञा भणितं त्वत्प्रणम्यान् देवान् दर्शय, ततो गुरुणा कल्याणमन्दिराभिधः स्तवो भणितस्तेन समाकृष्टो धरणेन्द्र एकादशमे श्लोके समायातस्तत्प्रभावेण शिवलिङ्गाद् भयङ्करो धूमो निर्गतस्ततो ज्वाला निर्यातास्ततः पश्चात्श्रीपार्श्वप्रभोः प्रतिमा प्रकटिता, ततः प्रभुं प्रणम्य स्तुत्वा च रागादिजेतारो मुक्तात्मनो हि देवाः सन्तीति भूपं प्रतिबोध्य शासनस्य प्रभावना कृता ततः सङ्घेनाप्यस्य पञ्च वर्षाणि मुक्त्वा श्रीसिद्धसेनसूरयः प्रकटीकृताः ।

अयश्च प्रभावकचरित्र सारेणान्यत्रा-ऽन्यथाऽपि दृश्यते—

तद्यथा—सिद्धान्तं संस्कृतं कर्तुमिच्छन् श्रीसिद्धसेनदिवाकरसूरिः गुरुं व्यजिज्ञपत् , गुरुभिर्निषिद्धेनाऽपि तेनोक्तम्, प्रभो ! ममैकं पद्यं शृणु "नमोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्व-

रक्ष रक्ष महाविद्य ! प्रसीद त्वं ममोपरि । क्षमस्वैक व्यलीकं मे सन्तो हि नतवत्सला ॥२०८॥
सञ्जीवय द्विजानेतान् रुद्रत्सर्वन्धियोषित । कस्ते माहात्म्यमात्म्यस्य पारं प्राप्त सुधीरपि ॥२०९॥
इत्याकर्ण्य गिरं प्राह महेन्द्र. शमिनां पतिः । अनान्मज्ञ धराधीश ! कस्ते मिथ्याग्रहोऽभवत् ॥२१०॥
निर्वाणमधितस्थुस्चेज्जिना आनन्दचिन्मया । तदधिष्ठायका. सन्ति प्रत्ययादद्यापनयाप्यहो । ॥२११॥
एवं मृष्यति को नाम प्राकृतोऽपि विडम्बनम् । ब्राह्मणा ना गृहस्थाना प्रणामो यद् व्रतस्थितै ॥२१२॥
दैवतं शिक्षिता एते त्वदन्यायप्रकोपिभिः । न मे कश्चित् प्रकोपोऽस्ति मादृशां मण्डनं शम ॥२१३॥
पुनर्बाढं नृप प्राह त्वमेव शरणं मम । देवो गुरु पिता माता क्षिमन्यैर्लैल्लिभाषिते ॥२१४॥
अमून् जीवय जीवातो । जीवाना करुणा कुरु । अथावोचत् कृती देवान् सान्त्वयिष्ये प्रकोपिन ॥२१५॥
विद्यादेव्य षोडशाऽपि चतुर्विंशतिसख्यया । जैना यक्षास्तथा यक्षिण्यश्च चोऽमिदधाम्यहम् ॥२१६॥
अज्ञानादस्य भूपस्यापराद्ध जिनशासने । द्विजैरमीभिस्तत् क्षम्य मानवा स्यु कियद्दृश ॥२१७॥
इत्युक्ते तेन दैवीवाक् प्रादुरासीद् दुरासदा । एषा प्रव्रज्यया मोक्षोऽन्यथा नास्त्यपि जीवितम् ॥२१८॥
अभिषेकेण तेषा गीर्मुक्ता च व्यधीयत । पृष्टा अङ्गीकृत तैश्च को हि प्राणान् न वाञ्छति ॥२१९॥
उत्तिष्ठतेति तेनोक्त्वाऽभ्राम्यताथापरा लता । सञ्जीवमूवु प्राग्वत् ते जैना ह्यमितशक्तय ॥२२०॥
सघेन सह रोमाञ्चाङ्कुरकन्दलितात्मना । राज्ञा कृतोत्सवेनाथ स्व विवेशाश्रय मुनिः ॥२२१॥
प्रव्रज्योत्सवमाधास्यन् सघस्तेन द्विजन्मनाम् । न्यपेध्यताथखपुटप्रभु कर्तेति जल्पता ॥२२२॥
एव प्रभावभूमेस्ते कीदृगस्ति गुरू प्रभो ! । इत्युक्त श्रीमहेन्द्रोऽसौ प्राह कोऽह तदग्रत ॥२२३॥
मार्जारेभ्य इव क्षीरं सौगतेभ्यो व्यमोच्यत । अश्वावबोधतीर्थं श्रीभृगुकच्छपुरे हि यै ॥२२४॥
श्रीआर्यखपुटाख्याना प्रभूणां महिमाद्भुतम् । तेषां स्तोतुमल क स्याद् वादिद्विपहरिश्रियाम् ॥२२५॥युग्मम्।
चारित्रारनि सम्प्रपीष्य मदनं पात्रे वरिष्ठात्मके, वृद्धस्नेहभरे तपोऽनलमिलज्ज्वाले विपक्व: स्फुरम् ।
रोदः कुञ्जरकुण्डके सितरुचिज्योत्स्नाम्लके यद्यशो-राशि स्यादवसेकिमोऽभ्रविवरं स्वाद्य सता-
सोऽव्रतात् ॥२२६॥
अथासौ ब्राह्मणै सार्द्धं सघेनानुमतो ययौ । उपपूज्य दीक्षिताश्च वाडवा प्रभुभिस्तत' ॥२२७॥
इत्यार्यखपुटश्चक्रे शासनस्य प्रभावनाम् । उपाध्यायो महेन्द्रश्च प्रसिद्धिं प्रापुरद्भुताम् ॥२२८॥
अश्वावबोधतीर्थे च प्रभावकपरम्परा । अद्यापि विद्यते यस्य सन्ताने सूरिमण्डली ॥२२९॥
सूरि श्रीपादलिप्त प्रागाख्यातगुरुसन्निधौ । प्रतीतप्रातिहार्याणि तानि शास्त्राण्यधीतवान् ॥२३०॥
पादलिप्ताख्यभाषा च विद्वत्सङ्केतसस्कृता । कृता तैरपरिज्ञेयोऽन्यैर्या यात्रार्थं इष्यते ॥२३१॥
आवर्जितश्च भूपाल कृष्णाख्य ससदा सह । न ददात्यन्यतो गन्तु गुणगृह्यो मुनीशितु' ॥२३२॥
अथार्यखपुट सूरि कृतभूरिप्रभावन । अन्तेऽनशनमाधाय दैवीभुवमशिश्रियत् ॥२३३॥
श्रीमहेन्द्रस्ततस्तेषा पट्टे सूरिपदेऽभवत् । तीर्थयात्रा प्रचक्राम शनै. सयमयात्रया ॥२३४॥' इति ॥६२॥

अथ श्रीरुद्रदेवसूरिं श्रीश्रमणसिंहसूरिंश्च प्ररूपयन् पथ्यापूर्विकां महाचपलामार्यामाह—

सिरिरुद्ददेवसूरी जगे जयउ जोणिपाहुडसुअणू ।
सिरिसमणसिहसूरी णिमित्तविज्जापहू जयउ ॥६३॥

(पच्छापुव्विगा सव्वचवलाज्जा)

"अयश्चात्र सम्बन्धः–गुरुणा श्रीवृद्धवादिसूरिणा योग्यं ज्ञात्वा स्वपदे न्यस्तः स सूरिरेकदागमं संस्कृतं कर्तुमिच्छन् सङ्घं व्यजिज्ञपत् तदा सङ्घप्रधानपुरुषैरुक्तम्–"पूज्यैरनेन वचनदोषेण भूरि पापमर्जितं श्रुतस्थविरा अस्य प्रायश्चित्तं प्रजानन्ते" ततः सत्त्वशाली स सङ्घमनुज्ञाप्य स्थविरदर्शितं द्वादशवर्षावधिकगुप्तवेशगच्छत्यागलक्षणं (अद्भुतशासनप्रभावनाकरणान्न्यूनावधिकमपि) पाराश्चिताख्यं प्रायश्चितमङ्गीकृत्य विहरन् सप्तमे वर्षेऽन्यदाऽवन्तिपुर्यामागमत् । तत्र च विक्रमादित्यभूपमन्दिरद्वारे द्वारपालमकथयत्–

"दिदृक्षुर्भिक्षुरायातो द्वारि तिष्ठति वारितः ।
हस्तन्यस्तचतुःश्लोकः किमागच्छतु गच्छतु ॥"

इति मद्वचो भूपतिं न्यवेदय ततो नृपेण समाहूतः स तस्य सभायामिदं श्लोकचतुष्टयमाह–

"अपूर्वेयं धनुर्विद्या, भवता शिक्षिता कुतः ।
मार्गणौघः समभ्येति गुणो याति दिगन्तरम् ॥१॥
अमी पानकरङ्काभाः सप्ताऽपि जलराशयः ।
यद्यशोराजहंसस्य पञ्जरं भुवनत्रयम् ॥२॥
सर्वदा स[illegible]ोऽसीति मिथ्या संस्तूयसे बुधैः ।
नारयो लेभिरे पृष्ठं न वक्षः परयोषितः ॥३॥
भयमेकमनेकेभ्यः शत्रुभ्यो विधिवत्सदा ।
ददासि तच्च ते नास्ति राजन् चित्रमिदं महत् ॥४॥

इति श्लोकचतुष्कं श्रुत्वा सन्तुष्टेन भूपालेन बहुसन्मानितः स्वपार्श्वे स्थातुमभ्यर्थितः सन् स तत्र स्थितः । एकदा नृपेण सार्द्धं शिवालये गतः स द्वारत एव व्यावृत्तो राज्ञा पृष्टो "देवस्यावज्ञां किं करोषि ?" तेनोदितम्, 'नह्ययं मत्प्रणामं सोढुमलं, ये मत्प्रणामसोढारस्त एव देवा नापरे" ततो राज्ञा भणितं त्वत्प्रणम्यान् देवान् दर्शय, ततो गुरुणा कल्याणमन्दिराभिधः स्तवो भणितस्तेन समाकृष्टो धरणेन्द्र एकादशमे श्लोके समायातस्तत्प्रभावेण शिवलिङ्गाद् भयङ्करो धूमो निर्गतस्ततो ज्वाला निर्यातास्ततः पश्चात्श्रीपार्श्वप्रभोः प्रतिमा प्रकटिता, ततः प्रभुं प्रणम्य स्तुत्वा च रागादिजेतारो मुक्तात्मनो हि देवाः सन्तीति भूपं प्रतिबोध्य शासनस्य प्रभावना कृता ततः सङ्घेनाप्यस्य पञ्च वर्षाणि मुक्त्वा श्रीसिद्धसेनसूरयः प्रकटीकृताः ।

अयञ्च प्रभावकचरित्रे सारेणान्यत्रा-ऽन्यथाऽपि दृश्यते–

तद्यथा–सिद्धान्तं संस्कृतं कर्तुमिच्छन् श्रीसिद्धसेनदिवाकरसूरिः गुरुं व्यजिज्ञपत्, गुरुभिर्निषिद्धेनाऽपि तेनोक्तम्, प्रभो ! ममैकं पद्यं शृणु "नमोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्व-

अमुकस्मिन् सङ्क्रान्तिसमये सूचिरियं त्वया निष्कासनीया यस्मात्सर्वं जलमय भवेत्, तथाभूतं दृष्ट्वा नृपतिर्विस्मतः पुनर्वृष्टिविधौ राज्ञा पृष्टो दोपभीरुः प्रभुः स्वशिष्यपार्श्वाद् विसंवादि वचोऽकथयत्, ततो मन्दादरो नृपो जातः सन्नन्यत्र विजहार इति ।

प्रतिपादितश्च प्रभावकचरिते श्रीपादलिप्तसूरिप्रबन्धेऽनयोर्ऽर्यनिकरः—

विलासनगरे पूर्वं प्रजापतिरभूत् तत । तत्र श्रमणसिंहाख्या सूरयश्च समाययु ॥१२६॥
तानाहूय नृप प्राह चित्र किम्पि दर्शयेताम् । सूरय प्राहुरकस्य कोऽपि वेत्तीह सक्रमम् ॥१३०॥
भूपति सिद्धदैवज्ञानाहूय वदति स्म स । रविसङ्क्रान्तिसमयमाख्यातास्मत्पुर मरम् ॥१३१॥
नाडिकापलसङ्ख्याभिस्तं स्फुटं वीक्ष्य तेऽब्रुवन् । आचार्या स्माहुरेकोऽस्मा ससूचिर्न समर्प्यताम् ॥१३२॥
सांवत्सरस्य च ततो नृपस्तदकरोदरम् । सूरिस्त समय सूक्ष्म ज्ञात्वाऽश्मन्यक्षिपच्च ताम् ॥१३३॥
उवाच सूचिकामेना मौहूर्त्तिक। विनि कष । सक्रान्तिसमये यस्मात् सर्वं जलमय भवेत् ॥१३४॥
गणकोऽपि तत प्राह ज्ञान मे नेयतीदशाम् । प्राप्त तत्सूरिविज्ञान दृष्ट्वा भूपो विसिष्मये ॥१३५॥
एकदा सूरयो राज्ञा पृष्टा वृष्टिविधौ पुन । विचिन्त्य कथयिष्याम प्रोच्येति स्वाश्रये ययु ॥१३६॥
तैर्देवेन्द्राभिध. शिष्य प्रैक्ष्यत क्षितिपाग्रत । कथ्य किंचिद् विसवादि यथासौ स्यादनादर ॥१३७॥
इति तच्छिक्षित. प्राज्ञो ययौ तत्र जगौ च स । उत्तरस्या दिशो वृष्टिरसुत पञ्चमेऽहनि ॥१३८॥
सजज्ञे वर्षण पूर्वदिशस्तत्र दिने स्फुटम् । दिग्विसवादतो राजा किंचिन्मन्दादरोऽभवत् ॥१३९॥
कर्मबन्धनिषेधाय तदुपेत्य कृत च तै । अभीक्ष्ण राजकार्याणा कथन कलमषावहम् ॥१४०॥" इति ॥६३॥

अथ माथुरवाचनानुगामि श्रीनन्दीसूत्रगदितस्थविरावल्यनुसारेण श्रीसमुद्रसूरेरनु वाचनाचार्यं △❀ श्रीआर्यमङ्गुसूरिं स्तुवन् पथ्यार्या व्यनक्ति—

भणगो करगो झरगो पहावगो जयउ वायणायरिओ ।
△❀सिरिअज्जमंगुसूरी उत्तीणागाहसुअजलही ॥६४॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "भणगो" इत्यादि, "सिरिअज्जमगुसूरी" त्ति श्रिया=शोभया सम्यग्रत्नत्रयलक्ष्म्या वा युक्तः; आर्यश्चासौ मङ्गुः=मङ्गुनामा सूरिः=आचार्यः श्रीमङ्गुसूरिः=ज्ञानादिलक्ष्मीभागार्यमङ्गुनामाऽऽचार्यः "जयउ" त्ति जयतु=जयनशीलोऽस्तु । किम्भूतः "वायणायरिओ" त्ति मथुरावाचनानुयायिनन्दीसूत्रोक्तवाचकस्थविरपरम्परायां श्रीआर्यसमुद्रसूरेः

△ स च वीरसवद् ४६७ वर्षेऽभूत् । तथा चोक्त श्रीतपागच्छपट्टावल्या श्रीमहोपाध्यायधर्मसागरगणिभि —"सप्तपञ्चाशदधिक चतु शत ४६७ वर्षे आर्यमङ्गु ।

❀ केचना आचार्या आर्यमङ्गुधर्मयोरैक्य स्वीकुर्वन्ति । उक्त विचारश्रेणौ-'इह के पि मङ्गुधर्मनाम्नैव भेदमाहु' इति ।

❀ पन्न्यासश्रीकल्याणविजयानामभिप्रायेण वालभवाचनानुकूलेन श्रीआर्यमङ्गुसूरेर्वाचनाचार्यकालो युगप्रधानकालश्च वीरसवत् ४२१ त ४४९ वर्षं यावद् ज्ञेय ।

पुनः किं विशिष्टः "सम्मइतक्काइगणयगंथाणं कारगो अणेगाणं"ति न एकोऽने तेषामनेकानां=बहुसङ्ख्याकानां सम्मतितर्क आदौ येषां ते सम्मतितर्कादयः, यद्वा सम्मतितर्क आदिः=प्रधानो येषु ते सम्मतितर्कादयस्ते एव सम्मतितर्कादिकाः स्वार्थे कप्रत्ययः । यद्वो-

भि △ दधे-भो भगवन् ! आश्रितमौनो द्वादशवार्षिकं पाराञ्चित नाम प्रायश्चित्त गुप्तमुखवस्त्रिकारजोहरणादिलिङ्ग प्रकटितावधूतरूपश्चरिष्यामीति, 'आवश्यक मुपयुक्त' इति गुरुभिरभिहितमाकर्ण्य देशान्तरग्रामनगरादिषु पर्यटन द्वादशे वर्षे श्रीमदुज्जयिन्या कुदुम्बेश्वरदेवालये शेफालिकाकुसुमरञ्जिता+म्बरालङ्कृतशरीर समागत्यासाञ्चक्रे । ततो देव कस्मान्न Hनमस्यसीति लोकै जल्प्यमानोऽपि नाऽजल्पत् । एवञ्च जनपरम्परया श्रुत्वा सर्वत्राऽनृणीकृतविश्वविश्वम्भराङ्कितनिजवत्सर श्रीविक्रमादित्यदेव समागत्य जल्पयाञ्चकार जजल्प),क्षीरलिलिक्षो ! भिक्षो ! किमिति त्वया देवो न नमस्यते । ततस्त्विदमवादि-वादिना मया नमस्कृते देवे लिङ्गभेदो भवतामप्रीतये भविष्यति । राज्ञोचे-भवतु क्रियता नमस्कार । तेनोक्तम्-श्रूयतां तर्हि । तत पद्मासनेन भूत्वा द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिकाभिर्देव स्तोतुमुपचक्रमे । तथाहि-"स्वयभुव भूतसहस्रनेत्रमनेकमेकाक्षरभावलिङ्गम् । अव्यक्तमव्याहतविश्वलोकमनादिमध्यान्तमपुण्यपापम् ।।१।।" इत्यादि प्रथम एव श्लोके प्रासादस्थितात् शिखिशिखाग्रादिव लिङ्गाद् धूमवर्तिरुदस्थात् ततो जनैर्वचनमिदमूचे-अष्टविद्येशाधीश कलाग्निरुद्रोऽय भगवांस्तृतीयनेत्रानलेन भिक्ष भस्मसात् करिष्यति ततस्तडित्तेज इव सतडत्कार प्रथम ज्योतिर्निर्गत्याप्रतिचक्राताड्यमानमिथ्यादृष्टिदैवतमामूलाल्लिङ्ग द्विधा भित्त्वा प्रादुरास पद्मासनासीन स्वयभूर्भगवान् नाभिसूनु । तदनया दर्शनप्रभावनया तीर्णं पाराञ्चिताम्भोनिधिरिति विमुच्य रक्ताम्बराणि प्रकटीकृत्य मुखवस्त्रिकारजोहरणादिलिङ्गानि महाराज धर्माक्षरैराशीर्वादयाञ्चक्रे वादीन्द्र । ततो विनयपुरस्सर "सूरये सिद्धसेनाय, दूरादुच्छितपाणये । धर्मलाभ इति प्रोक्ते, ददौ कोटिं नराधिप" ।।१।। तत प्रभून् क्षमयित्वा नृपति स्तुतिमकार्षीत । यथा "उद्व्यूढपाराञ्चितसिद्धसेन-दिवाकराचार्यकृतप्रतिष्ठ ।श्रीमान् कुडुङ्गेश्वरनाभिसूनुर्देव शिवायास्तु जिनेश्वरो 卐 वः ।।१।।"ततो भगवतो भट्टश्रीदिवाकरसूरेर्देशनया सञ्जीवनीचारि×चरकन्यायेन स्वाभाविकभद्रतया विशेषत सम्यक्त्वमूला देशविरतिं प्रत्यपादि श्रीविक्रमादित्य । ततश्च गोहृदमण्डले ▽ साबद्राप्रभृतिग्रामाणामेकनवतिम्, चित्रकूटमण्डले वसाडप्रभृतिग्रामाणा चतुरशीतिं तथा ❀घुण्टारसीप्रभृतिग्रामाणा चतुर्विंशतिं मोहडवासकमण्डले ईसरोडाप्रभृतिग्रामाणा पट्पञ्चाशत श्री कुडुङ्गेश्वरऋषभदेवाय शासनेन स्वनि श्रेयसार्थमदात् । तत शासनपट्टिका श्रीमदुज्जयिन्या सवत् १,चैत्र सुदि १ □गुरौ ⚠ भाटदेशीयमहाक्षपटलिकपरमार्हत श्वेताम्बरोपासकब्राह्मणगौतमसुतकात्यायनेन राजाऽलेखयत् , तत श्री कुडुङ्गेश्वरऋषभदेव' प्रकटीभव N नदिनात्प्रभृति सर्वात्मना मिथ्यात्वोच्छेदेन सर्वानपि जटाधरादीन् दर्शनिन श्वेताम्बरान् कारयित्वा परिमुक्तमिथ्यादृष्टिदेवगुरु सकलामप्यवन्तीं जैनमुद्राङ्किता चकार । ततः परितुष्टै श्रीसिद्धसेनसूरिभिरभिदधौ वसुधाधव-'पुण्णे वाससहस्से, सयम्मि अहियम्मि नवनवइकलिए। होही कुमरनरिंदो तुह विक्कमराय ! सारिच्छो'' ।।१।। इत्थ ख्यातिं सर्वजगत्पूज्यता चोपगत श्री कुडुङ्गेश्वरो युगादिदेव इति ।

कुडुङ्गेश्वरदेवस्य कल्पमेत्त यथाश्रुतम् । रुचिर रचयाञ्चक्रु, श्रीजिनप्रभसूरय ' ।।१।।" इति ।

△ "दधेऽसौ-भगवन् ! आश्रीयमाणो" इत्यपि । 'चोलपट्टालङ्कृत " इत्यपि । H "नमसीति" इत्यपि । "कुटुम्बेश्वर०" इत्यपि पाठ. । 卐 न " इत्यपि । × वरकन्यायित०" इत्यपि ▽ सावडा" इत्यपि, "साबद्रा" इत्यपि "सावद्रा" इत्यपि वा पाठ ❀"घुण्टरेसी" इत्यपि "घटारसी" इत्यपि वा पाठ । □ "गुरुभाद्र०" इत्यपि । ⚠ "भाद" इत्यपि । N"ति तर्हि०" इत्यपि ।

पडिपुन्नपुन्नलब्भं, दोगच्चहरं महानिहाणं व । लद्धं पि जिणमयमिणं, कह नु विहलत्तमुवणीयं ? ॥७॥
माणुस्सखित्तजाईपमुहं लद्धं पि धम्मसामग्गिं । हा ! हा ! पमायमट्ठ इत्तो, कत्तो सहिस्सामि ? ॥८॥
हा ! जीव ! पाव ! तइया इड्ढीरसगारवाण विरसत्तं । सत्थत्थजाणगेण वि इयास ! नहु लक्खियं तइया । ९॥
चउदसपुव्वधरा वि हु, पमायओ जंति णतकाएसु । एयं पि हहा ! हा ! पावजीव ! न तए तया सरियं ? ॥१०॥
धिद्धी मइसुहमत्तं, धिद्धी मह बहुयसत्थकुसलत्तं । धिद्धी परोवएसप्पहाणपडिबन्धमञ्चन्तं ॥११॥
एवं पमायदुव्विलसियं नियं जायपरमनिव्वेओ । निंदन्तो दिवसाइं गमेइ सो गुत्तिखित्तु व्व ॥१२॥
अह तेण पएसेणं, वियारभूमीइ गच्छमाणे ते । दट्ठूण नियविणेए, तेसिं पडिबोहणनिमित्तं ॥१३॥
जक्खपडिमामुहाओ, दीहं निस्सारिउं ठिओ जीहं । तं च पलोइय मुणिणो, आसन्ना होउ इय बिंति ॥१४॥
जो कोइ इत्थ देवो, जक्खो रक्खो व किंनरो वा वि । सो पयडं चिय पभणउ, न किंपि एवं वयं मुणिमो ॥१५॥
तो सविसायं जक्खो, जंपइ भो ! भो ! तवस्सिणो ! सो हं । तुम्ह गुरु किरियाए सुपमत्तो अज्जमंगु त्ति॥
साहूहिं वि पडिभणियं, विसन्नहियएहिं हा सुयनिहाण ! । किह देवदुग्गइमिमं, पत्तो सि अहो ! महच्छरियं ।
जक्खो वि आह न इमं, चुज्जं इह साहुणो महाभागा ! । एसच्चिय होइ गई, पमायवससिढिलचरणाण ॥१८॥
ओसन्नविहारीणं, इड्ढीरससायगारवगुरूणं । उम्मुक्कसाहुकिरियाभराण अम्हारिसाण फुडं ॥१९॥
इय मज्झ कुदेवत्तं, भो भो मुणिणो ? वियाणिउं सम्मं । जइ सुगईए कज्जं, जइ भीया कुगइगमणाओ ॥२०॥
ता गयसयलपमाया, विहारकरणुज्जुया चरणजुत्ता । गारवरहिया अममा होह सया तिव्वतवकलिया ॥२१॥
भो ! भो ! देवाणुप्पिय सम्मं पडिबोहिया तए अम्हे ! इय जंपिय ते मुणिणो, पडिवन्ना सजमुज्जोयं ॥२२॥
इति सूरिरार्यमङ्गुर्मङ्गुलफलमलभत प्रमादवशात् । तत् सद्य शुभमतय, सदोद्यता भवत चरणभरे । २३॥"

इति ॥६४॥

अथ वीरप्रभुतीर्थप्रभावकं बालवयःसूरिं △श्रीपादलिप्ताख्यमाचार्यं शंसन् पथ्यार्या प्राह–

स महाविज्जासिद्धो अपुव्वसुयसागरो णहोगामी ।
जयउ महगुणो पगुणू △पालित्तो बालवयसूरी ॥६५॥ (पच्छाजा)

(प्रे०) "स" इत्यादि, "स" त्ति स=विश्वविश्रुतनामा 'पालित्तो' पादलिप्तः=पादलिप्ताख्यः सूरिः श्रेष्ठिनः फुल्लाख्यस्य सूनुः, प्रतिमाभूर्नागेन्द्रस्वप्नसूचितो नागेन्द्राभिधो गर्भाष्टमवार्षिको नागहस्तिसूरेरादेशात् तद्गुरुभ्रात्रा संगमसिंहसूरिणा दीक्षितस्तद्गच्छमण्डलेन मण्डनगणिना पाठितश्च वर्षमध्य एव विज्ञो जातो–ऽन्यदा गुरुभिर्बालमुनिरारनालाय प्रहितः स आगत्यालोचयन्निमां गाथामाह–

"अबं तंबच्छीए अपुप्फिअं पुप्फदंतपंतीए ।
नवसालिकजिअ नववहूअ कडुएण मे दिन्न ॥" इति ।

ततो गुरुभिरुक्तः 'वच्छ ! पलित्तो सि' इति, ततः स गुरुं प्राह–"ममोपरि प्रसादीकृत्याऽऽकारो विधीयताम्, येनाहं नभोगामी स्याम्" ततः प्रसन्नीभूय गुरुणा

△ अमुष्य च विद्यमानता वीरसंवत् ४६७ वर्षे श्रीतपागच्छपट्टावली-श्रीगुरुपट्टावल्यादिषूदिताऽस्ति ।

पुनः किं विशिष्टः "सम्मइतक्काइगणयगंथाणं कारगो अणेगाणं"ति न एकोऽनेकस्तेषामनेकानां=बहुसङ्ख्याकानां सम्मतितर्क आदौ येषां ते सम्मतितर्कादयः, यद्वा सम्मतितर्क आदिः=प्रधानो येषु ते सम्मतितर्कादयस्ते एव सम्मतितर्कादिकाः स्वार्थे कप्रत्ययः। यद्वो-

भि△दधे-भो भगवन्! आश्रितमौनो द्वादशवार्षिकं पाराञ्चितं नाम प्रायश्चित्तं गुप्तमुखवस्त्रिकारजोहरणादिलिङ्गः प्रकटितावधूतरूपश्चरिष्यामीति, 'आवश्यमुपयुक्त' इति गुरुभिरभिहितम्। कर्ण्य देशान्तरग्रामनगरादिषु पर्यटन् द्वादशे वर्षे श्रीमदुज्जयिन्यां कुडुम्बेश्वरदेवालये शेफालिकाकुसुमरञ्जितां+म्बरालङ्कृतशरीरः समागत्यासाञ्चक्रे। ततो देवं कस्मान्न Hनमस्यसि लोकैर्जल्प्यमानोऽपि नाऽजल्पत्। एवञ्च जनपरम्परया श्रुत्वा सर्वत्राऽनृणीकृतविश्वविश्वम्भराङ्कितनिजसंवत्सरः श्रीविक्रमादित्यदेवः समागत्य जल्पयाञ्चकार जजल्प),क्षीरलिलिक्षो! भिक्षो! किमिति त्वया देवो न नमस्यते। ततस्त्विदमवादि वादिना मया नमस्कृते देवे लिङ्गभेदो भवतामप्रीतये भविष्यति। राज्ञोचे-भवतु क्रियतां नमस्कारः। तेनोक्तम्-श्रूयतां तर्हि। ततः पद्मासनेन भूत्वा द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिकाभिर्देवं स्तोतुमुपचक्रमे। तथाहि-"स्वयंभुवं भूतसहस्रनेत्रमनेकमेकाक्षरभावलिङ्गम्। अव्यक्तमव्याहतविश्वलोकमनादिमध्यान्तमपुण्यपापम्॥१॥" इत्यादि प्रथम एव श्लोके प्रासादस्थितात् शिखिशिखाग्रादिव लिङ्गाद् धूमवर्तिरुदस्थात् ततो जनैर्वचनमिदमूचे-अष्टविद्येशाधीशः कलाग्निरुद्रोऽयं भगवांस्तृतीयनेत्रानलेन भिक्षुं भस्मसात् करिष्यति ततस्तडित्तेज इव सतडत्कारं प्रथमं ज्योतिर्निर्गत्याप्रतिचक्रातापत्यमानमिथ्यादृष्टिदैवतमामूलाल्लिङ्गं द्विधा भित्त्वा प्रादुरास पद्मासनासीनः स्वयम्भूर्भगवान् नाभिसूनुः। तदनया दर्शनप्रभावनया तीर्णपाराञ्चितपयोनिधिरिति विमुच्य रक्ताम्बराणि प्रकटीकृत्य मुखवस्त्रिकारजोहरणादिलिङ्गानि महाराजधर्माक्षरैराशीर्वादयाञ्चक्रे वादीन्द्रः। ततो विनयपुरस्सरं "सूरये सिद्धसेनाय, दूरादुच्छ्रितपाणये। धर्मलाभ इति प्रोक्ते, ददौ कोटिं नराधिपः"॥१॥ ततः प्रभून् क्षमयित्वा नृपतिः स्तुतिमकार्षीत्। यथा "उद्व्यूढपाराञ्चितसिद्धसेन-दिवाकराचार्यकृतप्रतिष्ठः। श्रीमान् कुडुङ्गेश्वरनाभिसूनुर्देवः शिवायास्तु जिनेश्वरो卐वः॥१॥"ततो भगवतो भट्टश्रीदिवाकरसूरेर्देशनया सञ्जीवनीचारि×चरकन्यायेन स्वाभाविकभद्रतया विशेषतः सम्यक्त्वमूलां देशविरतिं प्रत्यपादि श्रीविक्रमादित्यः। ततश्च गोह्रदमण्डले ▽साबद्राप्रभृतिग्रामाणामेकनवतिम्, चित्रकूटमण्डले वसाडप्रभृतिग्रामाणां चतुरशीतिं तथा卍घुण्टारसीप्रभृतिग्रामाणां चतुर्विंशतिं मोहडवासकमण्डले ईसरोडाप्रभृतिग्रामाणां पट्पञ्चाशतं श्री●कुडुङ्गेश्वरऋषभदेवाय शासनेन स्वनिःश्रेयसार्थमदात्। ततः शासनपट्टिका श्रीमदुज्जयिन्यां संवत् १, चैत्र सुदि १□गुरौ▲भाटदेशीयमहाक्षपटलिकपरमार्हतश्वेताम्बरोपासकब्राह्मणगौतमसुतकात्यायनेन राजाऽलेखयत्, ततः श्री कुडुङ्गेश्वरऋषभदेवः प्रकटीभवNन्दिनात्प्रभृति सर्वात्मना मिथ्यात्वोच्छेदेन सर्वानपि जटाधरादीन् दर्शनिनः श्वेताम्बरान् कारयित्वा परिमुक्तमिथ्यादृष्टिदेवगुरु सकलमप्यवन्तीं जैनमुद्राङ्कितां चकार। ततः परितुष्टैः श्रीसिद्धसेनसूरिभिरभिदधौ वसुधाधवः-'पुण्णे वाससहस्से, सयम्मि अहियम्मि नवनवइकलिए। होही कुमरनरिंदो तुह विक्कमराय! सारिच्छो'॥१॥ इत्थं ख्यातिं सर्वजगत्पूज्यतां चोपगतः श्री कुडुङ्गेश्वरो युगादिदेव इति।

कुडुङ्गेश्वरदेवस्य कल्पमेतं यथाश्रुतम्। रुचिरं रचयाञ्चक्रुः, श्रीजिनप्रभसूरयः'॥१॥" इति।

△ "दधेऽसौ-भगवन्! आश्रीयमाणो" इत्यपि। + 'चोलपट्टालङ्कृत" इत्यपि। H "नमसीति" इत्यपि। ● "कुदुम्बेश्वर०" इत्यपि पाठः। 卐 "न" इत्यपि। × वरकन्यायित०" इत्यपि ▽ साबडा" इत्यपि, "साबद्रा" इत्यपि "सावद्रा" इत्यपि वा पाठः 卍"घुण्टरेसी" इत्यपि "घटारसी" इत्यपि वा पाठः। □ "गुरुभाद्र०" इत्यपि। ▲"माद" इत्यपि। N"ति तद्दि०" इत्यपि।

करस्थप्रभुपादाब्जक्षालनोदकपात्रकम् । ततगार्श्वे प्रार्थनापूर्वं तत्पय साऽपिबन्मुदा ॥१८॥ युग्मम् ।
अथ तत्राग्रतो गत्वा नमश्चक्रे प्रभो पदौ । धर्मलाभाशिष दत्त्वा निमित्त चाह सद्गुरु ॥१९॥
अस्मत्तो दशभिर्हस्तैर्दूरे पीत त्वयोदकम् । दशभिर्योजनैरन्तरितो वर्धिष्यते सुन ॥२०॥
यमुना परतीरेऽत्र मथुरायां प्रभावभू । भविष्यन्ति तथान्ये ते नवपुत्रा महागुन ॥२१॥
साह्राथ प्रथम पुत्रो भवतामर्पितो मया । अस्तु श्रीपूज्यपार्श्वेभ्यो दूरस्थस्यास्य को गुण ॥२२॥
श्रुत्वेत्याह प्रभु सद्ज्ञानन्तोद्धारादिशूकर । स भविष्यति ते पुत्र सुत्रामसचिवो धिया ॥२३॥
इत्यादाय प्रभोर्वाक्य शकुनग्रन्थिबन्धिनी । गृह ययौ गृहेशस्य तुष्टा वृत्त न्यवेदयत् ॥२४॥
गर्भोऽभूत् तह्निलेऽमुष्या नागेन्द्रस्वप्नसूचित । तदौचित्यकृतश्चास्या पूर्ण साधै मनोरथै ॥२५॥
दिनेषु परिपूर्णेषु सुतो जज्ञे सुलक्षण । रूपेणातिस्मर श्रीमांस्तेजसा चातिभानुमान् ॥२६॥
वैरोट्यायास्तत पूजा कृत्वा तत्पादयो पुर । न्यस्यातो गुरुपादान्ते मुक्तस्तैर्पा तयार्पित ॥२७॥
वर्द्धतामस्मदायत्त इति प्रत्यर्पित स तै । प्रवर्धितोऽतिवात्सल्यात् तथा तद्गुरुगौरवात् ॥२८॥
नागेन्द्राख्या ददौ तस्मै फुल्ल उत्फुल्ललोचन । आत्तो गुरुभिरागत्य स गर्भाष्टमवार्षिक ॥२९॥
तद्गुरुभ्रातर सन्ति सगमसिंहसूरय । आदेश प्रददुस्तेषा प्रभव शुभमायतौ ॥३०॥
प्रव्रज्या प्रददुस्तस्य शुभे लग्ने स्वरोदये । उपादान गुरोर्हस्त शिष्यस्य प्राभवेन तु ॥३१॥
गणिश्च मण्डनो नाम तदीयगणमण्डन । आदिष्ट प्रभुभिस्तस्य शुश्रूषाध्यापनादिषु ॥३२॥
वैदग्ध्यातिशयादन्यपाठकाना पुरोऽपि यत् । ख्यात तदपि गृह्णाति स्वपाठ्येषु तु का कथा ॥३३॥
लसल्लक्षण साहित्य-प्रमाण समयादिभि । शास्त्रैरनुपमो जज्ञे विज्ञेयो वर्षमध्यत ॥३४॥
गुणैरुत्तमता प्राप्य नृषु प्रथमरेखया । धूनत्रवनवाविभ्वलक्षरोभ्योऽधिकस्तत ॥३५॥
अन्येद्युरारनालाय प्रहितो गुरुभिस्तदा । विधिना तत् समादायोपाश्रये पुनराययौ ॥३६॥
तदीर्यापथिकी पूर्वमालोचयदनाकुल । गाथया कोविदश्रेणीहृदयोन्माथया तत ॥३७॥ तथाहि -
अव तवच्छीए अपुप्फिय पुप्फदतपतीए । नवसालिकजिय नववहूइ कुडएण मे दिन्न ॥३८॥
श्रुत्वेति गुरुभि प्रोक्त शब्देन प्राकृतेन सः । पलित्तो इति शङ्काराग्निप्रदीप्ताभिधायिना ॥३९॥
स च व्यजिज्ञपत् पूज्ये शिष्य कर्णात्प्रसाद्यताम् । श्रुत्वेति प्रज्ञया तस्य तुतुपुर्गुरवो भृशम् ॥४०॥
विस्मयेत्यनिह्लासपूरितास्ते तदग्रत । पादलिप्तो भवान् व्योमयानसिद्ध्या विभूषित ॥४१॥
इत्यसौ दशमे वर्षे गुरुभिर्गुरुगौरवात् । प्रत्यष्ठाप्यन पट्टे स्वे कषपट्टे प्रभावताम् ॥४२॥
मथुराया गुरु प्रैसीदसख्यातिशयाश्रयम् । तेजोविस्तारसघोपकारहेतोस्तमन्यदा ॥४३॥
दिनानि कतिचित् तत्र स्थित्वाऽसौ पाटलीपुरे । जगाम तत्र राजाऽस्ति मुरण्डो नाम विश्रुत ॥४४॥
केनापि तस्य चित्राय सूत्रग्रथितवृत्तक । गूढवक्त्रमिलत्तन्तुचयाज्ञातावसानकः ॥४५॥
ढौकित कन्दुक पादलिप्तस्य च गुरो पुर । राज्ञा प्राहीयत प्रज्ञापरीक्षावीक्षणोद्यमात् ॥४६॥-युग्मम् ।
अथोत्पन्नधिया सूरिविलाल्योष्णोदकाप्लवै । सिक्थक निपुण प्रेक्ष्य तत्तन्तुप्रान्तमाप स ॥४७॥
उन्मोच्य प्रहितो राज्ञे तद्बुद्ध्यासौ चमत्कृत । प्रज्ञाविज्ञाततत्त्वाभि कलाभि को न गृह्यते ॥४८॥
तथा गङ्गातरोर्यष्टि समा श्लक्ष्णा समर्पिता । तन्मूलामपरिज्ञातहेतवे स्वामिना गुरु ॥४९॥
तारयित्वा जले मूले गुरुत्वात् तन्निमज्जनात् । अग्रे मूले परिज्ञाय चख्यौ राज्ञ पुरस्तत ॥५०॥
तथा समुद्गकोऽनीक्ष्यसन्धि सूरे प्रदर्शित । उष्णोदकात् समुद्घाट्य तच्चित्र प्रकटीकृतम् ॥५१॥
श्रीपादलिप्ताचार्येण तन्तुग्रथिततुम्बकम् । पेशीकोशायित वृत्त प्रहित राजपर्षदि ॥५
उन्मोचित न तत् तत्र केनापि मुमुचे तत । तद्गुरु तेन मोच्येत नान्यैरित्यभिभाषिभि ॥५

इत्याकर्ण्य समुत्तस्थौ देवताया गिर गिर । ददर्श मुशल प्राप्त कस्यापि गृहिणो गृहे ॥२८॥
पूर्वोक्तयतिसोत्प्रासवाक्यश्रुत्यपमानत । प्राह श्लोक श्रुतश्लोकप्रतिज्ञापरिपूर्तये ॥२९॥ स चाय-
अस्मादृशा अपि यदा भारती। त्वत्प्रसादत भवेयुर्वादिन प्राज्ञा मुशलं पुष्प्यता तत. ॥३०॥
इत्युक्त्वा प्रासुकैर्नीरै सिषेच मुशलं मुनि सद्य पल्लवित पुष्पैर्युक्तं तारैर्यथा नम. ॥३१॥ तथा-

मदगो शृङ्ग शक्रयष्टिप्रमाण शीतो वह्निर्मारुतो निष्प्रकम्प ।
यद्वा यस्मै रोचते तन्न किंचित् वृद्धो वादी भाषते क किमाह ॥३२॥

इति प्रतिज्ञयैवास्य तदाकालीयवादिन. । हता पराहतप्रज्ञा कादिशीका इवाभवन ॥३३॥
तत सूरिपदे चक्रे गुरुभिर्गुरुवत्सलै । वर्द्धिष्णवो गुणा अर्था इव पात्रे नियोजिता ॥३४॥
प्रवया वादमुद्राभृद् यत ख्यातो जगत्यपि । सान्वया वृद्धवादीति प्रसिद्धिं प्राप स प्रभु ॥३५॥
श्रीजैनशासनाम्भोजवनभासनभास्कर. । अग्त श्रीस्कन्दिलाचार्य प्राप प्रायोपवेशनात् ॥३६॥
वृद्धवादिप्रभुर्गच्छाचलोद्धारादिकच्छप । विजहार विशालाया शालाया गुणसन्तते ॥३७॥
तदा श्रीविक्रमादित्यभूपाल पालितावनि । दारिद्र्यान्धतमोभारसभारेऽभवदंशुमान् ॥३८॥
श्रीकात्यायनगोत्रीयो देवर्षिब्राह्मणाङ्गज । देवश्रीकुक्षिभूर्विद्वान् सिद्धसेन इति श्रुत ॥३९॥
तत्रायात् सर्वशास्त्रार्थपारगममतिस्थिति । अन्येद्युर्मिलित श्रीमद्वृद्धवादिप्रभो स च ॥४०॥
अद्य श्वो वृद्धवादीह विद्यते पुरि नाथवा । इति पृष्ट स एवाह सोऽहमेवास्मि लक्षय ॥४१॥
विद्वद्व ष्टीमह प्रेप्सुरित्यतोऽत्रैव जल्प्यते । सङ्कल्पो मे चिरस्थायी सखे सपूर्यते यथा ॥४२॥
न गम्यते कथ विद्वत्पर्षदि स्वान्ततुष्टये । सम्प्राप्तौ शातकुम्भस्य पित्तला को जिघृक्षति ॥४३॥
इत्युक्तेऽपि यदात्रैव स नौज्झद् विग्रहाग्रहम्। ओमित्युक्त्वा तदा सूरिर्गोपान् सभ्यान् व्यधात् तदा ॥४४॥
सिद्धसेन प्रागवादीत्-'सर्वज्ञो नास्ति निश्चितम् । य प्रत्यक्षानुमानाद्यै प्रमाणैर्नोपलभ्यते ॥४५॥
नभ कुसुमदृष्टान्तादित्युक्त्वा व्यरमच्च स । उवाच वृद्धवादी च गोपान् सान्त्वनपूर्वकम् ॥४६॥
भवद्भिरेतदुक्त भो ! किमप्यधिगत न वा ? । ते प्राहु पारसीकाभमप्यक्त बुद्धयते कथम् ॥४७॥
वृद्धवाद्याह्-भो गोपा ! ज्ञातमेतद्वचो मया। जिनो नास्तीत्यसौ जल्पे तत् सत्य ? वदतात्र भो ! ॥४८॥
भवद्ग्रामे वीतराग सर्वज्ञोऽस्ति न वा ? तत । आहुस्तेऽस्य वचो मिथ्या जैनचैत्ये जिने सति ॥४९॥
न चानवगतेष्वत्रादरो द्विजवचस्सु नः ।सूरिराह पुनर्विप्र ! तथ्या शृणु गिर मम ॥५०॥
मनीषातिशयस्तारतम्यं विश्राम्यति क्वचित् । अस्ति चातिशयेयत्ता परिमाणेष्विव स्फुटम् ॥५१॥
लघौ गुरुतरे वापि परमाणौ वियत्यपि । प्रज्ञाया अवधिर्ज्ञान केवल सिद्धमेव तत् ॥५२॥
ज्ञान गुणस्तदाधारो द्रव्य किंचिद् विचिन्त्यताम् । योऽसौ स एव सर्वज्ञ एषाऽभूत् सिद्धिरस्य च ॥५३॥
ईदृग्वाचा प्रपञ्चेन जिग्येऽसौ वृद्धवादिना। ब्राह्मण पण्डितमन्यस्तस्य कास्था हृद्यमूदृशाम् ॥५४॥
हर्षाश्रुप्लुतनेत्रश्च सिद्धसेनोऽप्यभाषत। प्रभो ! त्वमेव सर्वज्ञ पूर्व सत्यो जिनस्त्वया ॥५५॥
शिष्यत्वेनानुमन्यस्व मा प्रतिज्ञातपूर्विणम् । समर्थो नोत्तरं दातु यस्य तस्यास्मि शैक्षक ॥५६॥
अदीक्षयत जैनेन विधिना तमुपस्थितम् । नाम्ना कुमुदचन्द्रश्च स चक्रे वृद्धवादिना ॥५७॥
अशु चाशुगवत्तीक्ष्णप्रवरप्रतिभाभरात् । पारदृश्वा तदाकालसिद्धान्तस्य स चाभवत् ॥५८॥
तृतीयपरमेष्ठित्वे गुरुभिर्विदधे मुदा । पुरा ख्याताऽभिधैवास्य तदा च प्रकटीकृता ॥५९॥
तन्निधाय गणाधारे विजह्रे स्वयमन्यत । शिष्यप्रभावो दूरस्थैर्गुरुभिर्वीक्ष्यते यत ॥६०॥
श्रीसिद्धसेनसूरिश्चान्यदा बाह्यभुवि व्रजन् । दृष्ट श्रीविक्रमार्केण राज्ञा राजाध्वगेन स ॥६१॥
अलक्ष्य भूप्रणाम स भूपस्तस्मै च चक्रिवान् । त धर्मलाभयामास गुरुरुच्चतरस्वर ॥६२॥

करस्थप्रभुपादाब्जक्षालनोदकपात्रकम् । तत्पार्श्वे प्रार्थनापूर्वं तत्पय साऽपिबन्मुदा ॥१८॥ युग्मम् ।
अथ तत्राग्रतो गत्वा नमश्चक्रे प्रभोः पदौ । धर्मलाभाशिष दत्त्वा निमित्त चाह सद्गुरु ॥१९॥
अस्मत्तो दशभिर्हस्तैर्दूरे पीत त्वयोदकम् । दशभिर्योजनैरन्तरितो वर्धिष्यते सुत ॥२०॥
यमुना परतीरेऽत्र मथुरायां प्रभावभू । भविष्यन्ति तथान्ये ते नवपुत्रा महाद्युत ॥२१॥
साहाथ प्रथम' पुत्रो भवतामर्पितो मया । अस्तु श्रीपूज्यपार्श्वस्थो दूरस्थस्यास्य को गुण ॥२२॥
श्रुत्वेत्याह प्रभु सद्धानन्तोद्धारादिशूकर । स भविष्यति ते पुत्र सुत्रामसचिवो धिया ॥२३॥
इत्यादाय प्रभोर्वाक्य शकुनग्रन्थिबन्धिनी । गृहं ययौ गृहेशस्य तुष्टा वृत्त न्यवेदयत् ॥२४॥
गर्भोऽभूत् तद्दिनेऽमुष्या नागेन्द्रस्वप्नसूचित । तदौचित्यकृतश्चास्या वृद्ध साधं मनोरथै ॥२५॥
दिनेषु परिपूर्णेषु सुतो जज्ञे सुलक्षण । रूपेणातिस्मर श्रीमाँस्तेजसा चातिभानुमान् ॥२६॥
वैरोट्यायास्तत पूजा कृत्वा तत्पादयो पुर । न्यस्यातो गुरुपादान्ते मुक्तस्तेषां तथार्पित ॥२७॥
वर्द्धतामस्मदायत्त इति प्रत्यर्पित स तै । प्रवर्धितोऽतिवात्सल्यात् तथा तद्गुरुगौरवात् ॥२८॥
नागेन्द्राख्या ददौ तस्मै फुल्ल उत्फुल्ललोचन । आत्तो गुरुभिरागत्य स गर्भाष्टमवार्षिक ॥२९॥
सद्गुरुभ्रातर सन्ति सगमसिंहसूरय । आदेश प्रददुस्तेषा प्रभव शुभमायतौ ॥३०॥
प्रव्रज्या प्रददुस्तस्य शुभे लग्ने स्वरोदये । उपादान गुरोर्हस्त शिष्यस्य प्राभवेन तु ॥३१॥
गणिश्च मण्डनो नाम तदीयगणमण्डन' । आदिष्ट प्रभुभिस्तस्य शुश्रूषाध्यापनादिषु ॥३२॥
वैदग्ध्यातिशयादन्यपाठकाना पुरोऽपि यत् । ख्यात तदपि गृह्णाति स्वपाठ्येषु तु का कथा ॥३३॥
लसल्लक्षण साहित्य-प्रमाण समयादिभि । शास्त्रैरनुपमो जज्ञे विज्ञेयो वर्षमध्यत ॥३४॥
गुणैरुत्तमता प्राप्य नृषु प्रथमरेखया । धूननवनवाविभ्वलक्षणेभ्योऽधिकस्तत ॥३५॥
अन्येद्युरारनालाय प्रहितो गुरुभिस्तदा । विधिना तत् समादायोपाश्रये पुनरायया ॥३६॥
तदीर्यापथिकी पूर्वमालोचयदनाकुल । गाथया कोविदश्रेणीहृदयोन्माथया तत ॥३७॥ तथाहि -
अब तबच्छीए अपुप्फिय पुप्फदतपतीए । नवसालिकजिय नववहूइ कुडएण मे दिन्नं ॥३८॥
श्रुत्वेति गुरुभि प्रोक्त शब्देन प्राकृतेन सः । पलित्तो इति शृङ्गाराग्निप्रदीप्ताभिधायिना ॥३९॥
स च व्यजिज्ञपत् पूज्यै शिष्य कर्णात्प्रसाद्यताम् । श्रुत्वेति प्रज्ञया तस्य तुतुषुर्गुरवो भृशम् ॥४०॥
विमृश्येत्यनिहल्लासपूरितास्ते तदग्रत । पादलिप्तो भवान् व्योमयानसिद्ध्या विभूषित ॥४१॥
इत्यसौ दशमे वर्षे गुरुभिर्गुरुगौरवात् । प्रत्यष्ठाप्यत पट्टे स्वे कषपट्टे प्रभावताम् ॥४२॥
मथुराया गुरु प्रैसीदसख्यातिशयाश्रयम् । तेजोविस्तारसघोपकारहेतोस्तमन्यदा ॥४३॥
दिनानि कतिचित् तत्र स्थित्वाऽसौ पाटलीपुरे । जगाम तत्र राजाऽस्ति मुरण्डो नाम विश्रुत ॥४४॥
केनापि तस्य चित्राय सूत्रग्रथितवृत्तक । गूढवक्त्रमिलत्तन्तुचयाज्ञातावसानकः ॥४५॥
ढौकित कन्दुक पादलिप्तस्य च गुणे' पुर । राज्ञा प्राहीयत प्रज्ञापरीक्षावीक्षणोद्यमात् ॥४६॥-युग्मम् ।
अथोत्पन्नधिया सूरिर्विलाल्योष्णोदकाप्लवे । सिक्थक निपुण प्रेक्ष्य तत्तन्तुप्रान्तमाप स ॥४७॥
उन्मोच्य प्रहितो राज्ञे तद्बुद्ध्यासौ चमत्कृतः । प्रज्ञाविज्ञाततत्त्वाभि' कलाभि को न गृह्यते ॥४८॥
तथा गङ्गातरोर्यष्टि समा श्लक्ष्णा समर्पिता । तन्मूलाग्रपरिज्ञानहेतवे स्वामिना भुव ॥४९॥
तारयित्वा जले मूले गुरुत्वात् तन्निमज्जनात् । अग्रे मूले परिज्ञाय चख्यौ राज्ञ पुरस्तत ॥५०॥
तथा समुद्गकोऽनीक्ष्यसन्धि सूरे प्रदर्शित । उष्णोदकात् समुद्घाट्य तच्चित्र प्रकटीकृतम् ॥५१॥
श्रीपादलिप्ताचार्येण तन्तुग्रथिततुम्बकम् । पेशीकोशायित वृत्त प्रहित राजपर्षदि ॥५२॥
उन्मोचित न तत् तत्र केनापि मुमुचे तत । तद्गुप्तं तेन मोच्येत नान्यैरित्यभिभाषिभिः ॥५३॥

नानि जातिलाभादीनि निर्गतानि यस्य स निरञ्जन–सिद्धिपदप्राप्तस्त ध्यायतु । 'हिण्डत' भ्रमत 'कथ वनेन वन' मोहादितरुगहनेनारण्यमिव ससाररूप गहनमित्येकोऽर्थ ॥१॥

अथवा–अणुर्नामाल्पधान्य तस्य पुष्पाण्यल्पविषयत्वान्मानवतनो, सा अणुपुप्पी, तस्या पुप्पाणि महाव्रतानि शीलाङ्गानि च तानि मा त्रोटयत मा विनाशयत । 'मन आराम मोटयत' चित्तविकल्पजाल स्हरत । तथा 'निरञ्जन' देव मुक्तिपदप्राप्त,'म न'इत्यनेन द्वौ निपेधकशब्दौ मा च नश्च, ततो मा कुसुमैरर्चय निरञ्जन वीतरागम् । गार्हस्थ्योचितदेवपूजादौ पड्जीवनिकायविराधके मोद्यम कुरु, सावद्यत्वात् । 'वनेन' शब्देन कीर्त्या हेतुभूतया, 'वन' चेतनाशून्यत्वादरण्यमिव भ्रमहेतुतया मिथ्यात्वशास्त्रजात, 'कथ भ्रमसि' अवगाहसे लक्षणया, तस्मान्मिथ्यावाद परिहृत्य सत्ये तीर्थकृदादिष्टे आदरमाधेहि । इति द्वितीयोऽर्थ ॥२॥

अथवा–अणरणेति धातोरण शब्द स एव पुष्पमभिगम्यत्वाद्यस्या सा 'ऽणपुष्पा' कीर्त्ति । तस्या पुष्पाणि सद्वोधवचासि तानि मा त्रोटयत–मा सहरत । तथा 'मनस आरा' वेधकरूपत्वात् अध्यात्मोपदेशरूपास्तान् मा त्रोटयत–कुत्याख्यामिर्मा विनाशयत । मनो निरञ्जन रागादिलेपरहित कुसुमैरिव कुसुमै सुरभिशीतलै सद्गुरूपदेशैरर्चय पूजित श्लाघ्य कुरु । तथा वनस्योपचारात् ससारारण्यस्य तस्येन स्वामी परमसुखित्वात् तीर्थकृत्, तस्य वन शब्दसिद्धान्तस्तत्र कथ हिण्डत भ्रान्तिमादधत । यतस्तदेव सत्य । तत्रैव भावना रति कार्या । इति तृतीयोऽर्थ ॥३॥

इत्यादयो ह्यनेकार्था व्याख्याता वृद्धवादिना । मतिप्रतिविधान तु वय विद्मस्तु किं जडा ॥९५॥
इति तज्जल्पपर्जन्यगर्जिवर्षणडम्बरै । बोधेनाङ्कुरिता सिद्धसेनमानसमेदिनी ॥९६॥
ईदृक् शक्तिर्हि नान्यस्य मद्धर्माचार्यमन्तरा । स ध्यात्वेति समुत्तीर्य तस्याह्री प्राणमद् गुरो ॥९७॥
प्राह चान्तरविद्वेषिजिनेन मयका भृशम् । आशातिता प्रभो पादा' क्षम्यता तन्महाशयै ॥९८॥
श्रुत्वेति गुरुराह स्म क्षूण वत्स । न ते क्षणम् । प्राणिना दुष्षमाकाल· शत्रु सद्वृतिनाशन ॥९९॥
कणेहत्य मया जैनसिद्धान्तात्तर्पितो भवान् । तवापि यन्न जार्येत मन्दाग्ने स्निग्धभोज्यवत् ॥१००॥
अन्येषा जडतावातरीनसाश्लेष्मवद्हृदाम् । का कथाऽल्पसत्त्वाग्निभृता विद्यान्नजारणे ॥१०१॥
सन्तोषौषधसवृद्धसद्ध्यानान्तरवह्निना । श्रुत स्वाद्य हि जीर्येत्त्व मद्दत्तमशनायित ॥१०२॥
स्तम्भात्तपुस्तक पत्र जह्रे शासनदेवता । साम्प्रत साम्प्रतीना किं तादृक्शक्तिव्रजोचिता ॥१०३॥
इत्याकर्ण्य गुरोर्वाच वाचयमशिरोमणि । प्राह चेद् दु कृत नैव कुर्यु शिष्या भ्रमोदयात् ॥१०४॥
तत्प्रायश्चित्तशास्त्राणि चरितार्थानि नाथ । किम् । भवेयुरविनीत मा प्रायश्चित्तै प्रशोध्यत ॥१०५॥
वृद्धवादी विमृश्यादादस्य चालोचनातप । स्वस्थाने न्यस्य च प्राय स्वय लात्वा दिव ययौ ॥१०६॥
मुनीन्द्र सिद्धसेनोऽपि शासनस्य प्रभावनाम् । विदधद् वसुधाधीशस्तुतो व्यहरतावनौ ॥१०७॥
अन्यदा लोकवाक्येन जातिप्रत्ययस्तथा । आबाल्यात् सस्कृताभ्यासी कर्मदोषात् प्रबोधित ॥१०८॥
सिद्धान्त सस्कृत कर्तुमिच्छन् सघ व्यजिज्ञपत् । प्राकृते केवलज्ञानिभाषितेऽपि निरादर ॥१०९॥
तत्प्रभावगरीयस्त्वानभिज्ञस्तत्र मोहित: । सघप्रधानैरूचे च चेत'कालुष्यकर्कशै ॥११०॥
युगप्रधानसूरीणामलकरणधारिणाम् । अद्यश्वीनयतिव्रातशिरोरत्नप्रभाभृताम् ॥१११॥
पूज्यानामपि चेच्चित्तवृत्तावज्ञानशात्रव । अवस्कन्द ददात्यद्य का कथाऽस्मादृशा तत ॥११२॥
यदिति श्रुतमस्माभि पूर्वेषा सम्प्रदायत । चतुर्दशापि पूर्वाणि सस्कृतानि पुराऽभवन् ॥११३॥
प्रज्ञातिशयसाध्यानि तान्युच्छिन्नानि कालत: । अधुनैकादशाङ्ग्यस्ति सुधर्मस्वामिभाषिता ॥११४॥

आगत्याश्रयमत्रेर्यापथिकीपूर्वकं तत । आलोचयद् यथावृत्त प्रवृत्तश्च स्वकर्मणि ॥८९॥

उक्त च श्रीजिनभद्रगणिक्षमाश्रमणभाष्यकारेण—

निवपुच्छिएण भणिओ गुरुणा गगा कुओमुही वहइ । सपाइयवं सीसो जह तह सव्वत्थ कायव्व ॥९०॥
प्राग्वच्चारैर्यथाख्याते सत्य एव निवेदिते । प्रनीत प्राह भूपालस्त्वद्वृत्त हि कथातिगम् ॥९१॥
इति प्रभुकृतैश्चित्रै सर्वलोकोपकारकै । नृगो विभ्रच्चमत्कारं काल यान्त न बुध्यते ॥९२॥
अन्यदा मथुरायां स सूरिर्गत्वा महायशा । श्रीसुपार्श्वजिनस्तूपेऽनमत् श्रीपार्श्वमञ्जसा ॥९३॥
ततोऽसौ लाटदेशान्तश्चोङ्काराख्यपुरे प्रभु । आगत स्वागतान्यस्य तत्राधाद् भीमभूपति ॥९४॥
शरीरस्थस्य बाल्यस्य माहात्म्यं वितरन्निव । स क्रीडत्यन्यदा डिम्भैर्विजने विश्ववत्सल ॥९५॥
भरेण रमते यावत् श्राद्धकास्तावदाययुः । देशान्तरात् तदाकुण्ठोत्कण्ठास्तद्वन्दनोत्सुका ॥९६॥
कलौ युगप्रधानस्य पादलिप्तप्रभो कुतः । उपाश्रयोऽस्ति शिष्याभ पप्रच्छुश्च तमेव ते ॥९७॥
तत्रोत्पन्नमति सूरिर्दूरभ्रमणहेतुभि । प्रकटैस्तदभिज्ञानैस्तेषामकथयत् तदा ॥९८॥
स्वय पटी च प्रावृत्य सवृत्याकारमात्मन । आचार्यासन्युपाविक्ष(श द् दक्ष स क्षिप्रमुन्नते ॥९९॥
श्राद्धाश्च तावदाजग्मु प्रणेमुरनिमक्तित । क्रीडन् दृष्ट स एवाय तैरुपालक्षि दाद्यतः ॥१००॥
विद्या श्रुत-वयोवृद्धसदृशीं धर्मदेशनाम् । विधाय तत्पुरोऽवादीत् तद्विकल्पापलापकृत् ॥१०१॥
अवकाश शिशुत्वस्य दातव्यश्चिरसंगते । इति सत्यवचो भङ्ग्या जहृपुस्ते शिशुप्रभो ॥१०२॥
गते विहर्तुमन्येद्यु प्रौढसाधुकदम्बके । विजने स ययौ रथ्या गच्छत्सु शकटेपु च ॥१०३॥
कुर्वन् मर्कटकीक्रीडां पृष्ट पूर्ववदाश्रयम् । परप्रवादिभिर्दूरदेशेनैषामुदाहरत् ॥१०४॥
चिरेणायान्ति यावत् ते सम्पन्नातिभ्रमश्रमाः । गुरु सिंहासने तावत् सुष्वापासौ पटीवृतः ॥१०५॥
ताम्रचूडस्वरश्चक्रे तै प्राल क्षणाशसक । ओतुस्वर ततोऽधासीत् सूरिस्तत्परिपन्थिनम् ॥१०६॥
तेषा द्वारमपवृत्य तस्थौ सिंहासने प्रभु । नस्य ते विस्मयस्मेरा ददृशुर्मूर्तिमद्भुताम् ॥१०७॥
तर्कोषितभिर्जितास्ते च प्रश्नमेक च गाथया । एतज्जिगीषवः सन्तो विदधुर्दुर्घट तदा ॥१०८॥ तथाहि-
पालित्तय कहसु फुड सयल महिमडल भमतेण । दिट्ठो सुओ व कत्थ वि चदणरससीयलो अग्गी ॥१०९॥
सूरि श्रीपादलिप्तोऽपि तत्क्षणं प्राह गाथया । उत्तर द्राग् विलम्बो हि प्रज्ञा-बलवता कुत ॥११०॥ सा च-
अयसाभिओग सदूमियस्स पुरिसस्स सुद्धहिययस्स । होइ वहन्तस्स फुडं चदणरससीअलो अग्गी ॥१११॥
इत्युत्तरेण ते सूरेर्मुदमापुर्जिता अपि । पराजयोऽपि सत्पात्रै कृतो महिमभूर्भवेत् ॥११२॥
तत सघेन विज्ञप्ते सद्गुणेषु प्रमोदिना । शत्रुञ्जयगिरौ यात्रां पादलिप्तप्रभुर्व्यधात् ॥११३॥
मानखेटपुर प्राप्ता कृष्णभूपालरक्षितम् । प्रभव पादलिप्ताख्या राज्ञाभ्यर्च्यंत भक्तित ॥११४॥
पुरा ये पाटलीपुत्रे द्विजा प्रव्रजिता बलात् । जातिवैरेण तेनात्र ते मत्सरमधारयन् ॥२३५॥
सघेन पादलिप्तस्य विज्ञैर्विज्ञापित नरै । ततस्तेषां समादिक्षत् स विमृश्य प्रभुस्तदा ॥२३६॥
कार्त्तिक्यामहमेष्यामीत्युक्त्वा तान् स व्यसर्जयत् । ततो राजानमापृच्छ्य भृगुकच्छ समाययौ ॥२३७॥
पूर्वाह्णे व्योममार्गेण रत्नवद्भास्वराकृति । अवतीर्णो विशीर्णैना श्रीसुव्रतजिनालये ॥२३८॥
तत्रागत तमुत्प्रेक्ष्य भास्वन्तमिव भूगतम् । लोक कोक इवानन्द प्राप दुष्रापदर्शनम् ॥२३९॥
चित्रात् तत्रागमद् राजा नमश्चक्रे च त गुरुम् । महादान ददौ तत्र भक्त्या सघसमन्वितः ॥२४०॥
तत् प्रदापितमर्थिभ्यो द्रव्य गुरुभिरद्भुतम । द्विजा व्योमाध्वग त च दृष्ट्वाऽतिभयतोऽनशन् ॥२४१॥
राजाह सुकृती कृष्ण पूज्यैर्यो न विमुच्यते । दर्शनस्यापि नार्हा स्मो मूले जाता वय कथम् ? ॥२४२॥

तत परमया भक्त्या स्तुत्वा नाथ प्रणम्य च । मुक्तात्मानो ह्यमी देवा मत्प्रणाम सहिष्णव ॥१४९॥
प्रतिबोध्येति त भूप शासनस्य प्रभावना । व्यधीयत विशालाया प्रवेशान्नुत्सवान् पुरि ॥१५०॥ युग्मम् ।
वत्सराणि तत पञ्च सघोऽमुष्य मुमोच च । चक्रे च प्रकट श्रीमत्सिद्धसेनदिवाकरम् ॥१५१॥
शिवलिङ्गादुदैच्चात्र कियत्काल फणावलि । लोकोऽघर्षच्च ता पश्चान्मिथ्यात्वदृढरङ्गम् ॥१५२॥
एकदाऽपृच्छ्य राजान बलादप्रतिबद्धधी । विजहार प्रभुस्तस्मात् सघकासारवारिजम् ॥१५३॥
गीतार्थैर्यतिभि सार्द्ध दक्षिणस्या स सञ्चरन् । भृगुकच्छपुरोपान्ते प्रदेशभुवमाप स. ॥१५४॥
तत्रासन्नतरग्रामगोव्रजारक्षकास्तदा । सूरे समिलितास्तत्र धर्मश्रवणसस्पृहा ॥१५५॥
कुत्राप्यवस्थितानस्मान् यूय प्रश्रयत स्थिरम् । मार्गश्रमश्रमायस्ता किं ब्रूम कल्मषापहम् ॥१५६॥
ते प्रोचुराग्रहादत्र तरुच्छायासु विश्रमम् । विधाय धर्म व्याख्यात दास्यामो गोरसानि च ॥१५७॥
सूरयस्तत्सदभ्यस्तगीतह्रस्वकैस्तदा । भ्रान्त्वा भ्रान्त्वा ददानाश्च तालमेलेन तालिका ॥१५८॥
प्राकृतोपनिबन्धेन सद्य सम्पाद्य रासकम् । ऊचुस्तत्प्रतिबोधार्थ तादृशामीदृगौचिती ॥१५९॥

तथाहि- नवि मारिअइ नवि चोरिअइ पर-दारह अत्थु निवारिअइ ।
थोवाह वि थोव दाइअइ तउ सग्गि दुगुदुगु जाइयइ ॥१६०॥

तद्वाग्भि प्रतिबुद्धास्ते तत्र ग्राम न्यवेशयन् । धनधान्यादिसम्पूर्ण तत् तालारासकाभिधम् ॥१६१॥
अस्थापयश्च तत्र श्रीनाभेयप्रतिमान्वितम् । अभ्रलिह जिनाधीशमन्दिर सूरयस्तदा ॥१६२॥
अचलस्थापन तच्च तत्राद्यापि प्रणम्यते । भव्यैस्तादृक् प्रतिष्ठा हि शक्रेणापि न चाल्यते ॥१६३॥
एव प्रभावना तत्र कृत्वा भृगुपुर ययु । तत्र श्रीबलमित्रस्य पुत्रो राजा धनञ्जय ॥१६४॥
भक्त्या चाभ्यर्हितास्तेनान्यदासावरिभिद्रुत । अवेष्टयत पुर चैभिरमर्यादाम्बुधिप्रभै ॥१६५॥
भीत स चाल्पसैन्यत्वात् प्रभु शरणमाश्रयत । तैलकूपेऽभिमन्त्र्यासौ सर्षपप्रस्थमक्षिपत् ॥१६६॥
ते सर्षपा भटीभूयासख्या. कूपाद् विनिर्ययु । तै शत्रूणा बले भग्ने हतास्ते परिपन्थिन ॥१६७॥
सिद्धसेन इति श्रेष्ठा तस्यासीत् सान्वयाऽभिधा । राजा तु तत्र वैराग्यात् तत्पार्श्वे व्रतमग्रहीत् ॥१६८॥
एव प्रभावनास्तत्र कुर्वन्तो दक्षिणापथे । प्रतिष्ठानपुर प्रापु प्राप्तरेखा कविव्रजे ॥१६९॥
आयु क्षय परिज्ञाय तत्र प्रायोपवेशनात् । योग्य शिष्य पदे न्यस्य सिद्धसेनदिवाकर ॥१७०॥
दिव जगाम सघस्य ददानोऽनाथताव्यथाम् । तादृशा विरहे को न दु खी यदि सचेतन ॥१७१॥
वैतालिको विशालाया ययौ कश्चित्तत पुरात् । सिद्धश्रीत्यभिधानाया मिलितोऽसौ प्रभुस्वसु ॥१७२॥
तत्राह स निरानन्द पदद्वयमनुष्टुभ । उत्तरार्ध च स प्रादीत् स्वमतेरनुमानत ॥ ७३॥
स्फुरन्ति वादिखद्योता साम्प्रत दक्षिणापथे । नूनमस्तगतो वादी सिद्धसेनो दिवाकर ॥१७४॥
सापि सापायता काये विमृश्यानशन व्यधात् । गीतार्थविहिताराधनयासौ सद्गतिं ययौ ॥१७५॥
प्रभो श्रीपादलिप्तस्य वृद्धवादिगुरोस्तथा । श्रीविद्याधरवश्यत्वनिर्यामकमिहोच्यते ॥१७६॥
सवत्सरशते पञ्चाशता श्रीविक्रमार्कत । साध्रे जाकुटिनोद्धारे श्राद्धेन विहिते सति ॥१७७॥
श्रीरैवताद्रिमूर्धन्यश्रीनेमिभवनस्य च । वर्षास्त्रस्तमठात तत्र प्रशस्तेरिद मुद्धृतम् ॥१७८॥

इत्थ पुराणकविनिर्मितशास्त्रमध्यादाकर्ण्य किंचिदुभयोरनयोश्चरित्रम् ।
श्रीवृद्धवादि-कविवासवसिद्धसेनवादीन्द्रयोरुदितमस्तु धिये मुदे व ॥१७९॥
श्रीचन्द्रप्रभसूरिपट्टसरसीहसप्रभ श्रीप्रभा-चन्द्र सूरिरनेन चेतसि कृते श्रीरामलक्ष्मीभुवा ।
श्रीपूर्वर्षिचरित्ररोहणगिरौ प्रद्युम्नसूरीक्षित, शृङ्गोऽभूदमलोऽष्टम सुचरित श्रीवृद्ध-सिद्धाश्रितम् ॥१८०॥

इति ॥६७-६८-६९॥

रसोपकरणं मुक्त्वा ततोऽसौ प्रभुसन्निधौ । जगाम विनयानम्रमौलिर्मदभरोज्झितः ॥२७९॥
प्रणम्य चावदन्नाथ ! सिद्धिगर्वं स सर्वतः । समागलत् प्रभौ दृष्टे देहसिद्धे जिनस्पृहे ॥२८०॥
ततः प्रभुपदाम्भोजं सदाप्यवलगाम्यहम् । मिष्टान्नं लभमानस्य कदन्नं कस्य रोचते ॥२८१॥
इति श्रीपादलिप्तस्य चरणाक्षालनादिकम् । देहशुश्रूषणं नित्यं विदधाति प्रशान्तगीः ॥२८२॥
सूरयश्च मुनिव्राते गते विचरितुं तदा । प्रागुक्तपञ्चतीर्थ्यां ते गत्वा व्योम्ना प्रणम्य च ॥२८३॥
समायान्ति मुहूर्तस्य मध्ये नियमपूर्वकम् । विद्याचारणलब्धीनां समानास्ते कलौ युगे ॥२८४॥
आयातानामथैतेषां चरणक्षालनं ध्रुवम् । जिज्ञासुरौषधानीह निर्विकारश्चकार सः ॥२८५॥
स जिघ्रन् विमृशन् पश्यन् स्वादयन् संस्पृशन्नपि । प्रज्ञाबलादौषधानां जज्ञे सप्ताधिकं शतम् ॥२८६॥
विधायौषधसंयोगं ततः कल्कं चकार सः । पादमालेपयत् तेनोच्छलितो गगनं प्रति ॥२८७॥
स ताम्रचूडसंपातं कृत्वा च न्यपतद् गुणी । उच्चैः प्रदेशात् पातेन जानौ गुल्फे च पीडितः ॥२८८॥
रक्ताभ्यक्तव्रणक्लिन्नजङ्घो दृष्टः शमीश्वरैः । उक्तं च किमहो ! पादलेपः सिद्धो गुरुं विना ? ॥२८९॥
सोऽब्रवीच्च स्मितं कृत्वा नास्ति सिद्धिर्गुरुं विना । निजप्रज्ञाबले किंतु परीक्षां चक्रिवानहम् ॥२९०॥
प्राह श्रीपादलिप्तोऽपि प्रसन्नस्तस्य सत्यतः । शृणु नाहं नतेस्तुष्टो रससिद्ध्या न तेऽनया ॥२९१॥
शुश्रूषयानया नापि परं प्रज्ञाबलेन ते । तोयौंहिक्षालनात् को हि वस्तुनामानि बुध्यते ॥२९२॥
ततो दास्यामि ते विद्यां परं मे गुरुदक्षिणाम् । कां दास्यसि स चोवाच यामादिशसि मे प्रभो ! ॥२९३॥
ऊचे च गुरुणा सिद्ध ! त्वयि स्निग्धं मनो मम । उपदेक्ष्यामि ते पथ्यं तथ्यं गाथां ततः शृणु ॥२९४॥
दीहरफणिंदनाले महिहरकेसरदिसाबहुदलिल्ले । ओपियइ कालभमरो जणमयरन्दं पुहइपउमे ॥२९५॥
ततो विश्वहितं धर्ममाद्रियस्व जिनाश्रयम् । तथेति प्रतिपन्ने च तेन तद् गुरुरादिशत् ॥२९६॥
आरनालविनिर्धौततन्दुलामलवारिणा । पिष्ट्वौषधानि पादौ च लिप्त्वा व्योमाध्वगो भव ॥२९७॥
तथैव विहितेऽसौ च जगाम गमनाध्वना । पक्षिराजवदुड्डीय यथाभिलषितां भुवम् ॥२९८॥
कृतज्ञेन ततस्तेन विमलाद्रेरुपत्यकाम् । गत्वा समृद्धिभाक् चक्रे पादलिप्ताभिधं पुरम् ॥२९९॥
अधित्यकायां श्रीवीरप्रतिमाधिष्ठितं पुरा । चैत्यं विधापयामास स सिद्धः साहसीश्वरः ॥३००॥
गुरुमूर्तिं च तत्रैवास्थापयत् तत्र च प्रभुम् । प्रत्यष्ठापयदाहूयार्हद्बिम्बान्यपराण्यपि ॥३०१॥
श्रीपादलिप्तसूरिश्च श्रीवीरपुरतः स्थितः । स्तवं चक्रे वरं 'गाहाजुअलेण' ति संज्ञितम् ॥३०२॥
गाथाभिश्चेति सौवर्णं व्योमसिद्धी सुगोपिते । प्रभुर्जजल्प नामाग्या प्रबुध्यन्तेऽधुनातनाः ॥३०३॥
तथा रैवतकक्ष्माभृदधोदुर्गसमीपतः । श्रीनेमिचरित्रं श्रुत्वा तादृशात्प्रभोर्मुखात् ॥३०४॥
कौतुकात् तादृशं सर्वमावासादि व्यधादसौ । दशार्हमण्डपं श्रीमदुग्रसेननृपालयम् ॥३०५॥
विवाहादिव्यवस्था च वेदिकायां व्यधात् तदा । अद्यापि धार्मिकैस्तत्र गतैस्तत् प्रेक्ष्यतेऽखिलम् ॥३०६॥
इतः पृथ्वीप्रतिष्ठाने नगरे सातवाहनः । सार्वभौमोपमः श्रीमान् भूप आसीद् गुणावनिः ॥३०७॥
तथा श्रीकालकाचार्यस्वस्रीयः श्रीयशोनिधिः । भृगुकच्छपुरं पाति बलमित्राभिधो नृपः ॥३०८॥
अन्येद्युः पुरमेतच्च रुरुधे सातवाहनः । द्वादशाब्दानि तत्रास्थाद् बहिर्न व्याहतं तु तत् ॥३०९॥
अथाशक्यग्रहे दुर्गे निर्विण्णश्चिरकालतः । श्रीपादलिप्तशिष्यस्तन्मन्त्री नाथं व्यजिज्ञपत् ॥३१०॥
ग्राहयिष्याम्यहो दुर्गं भेदात् तत् प्रेषयस्व माम् । एवमस्त्विति तेनोक्ते निर्ययौ शिबिरात्ततः ॥३११॥
स भागवतवेषेण प्राविशन्नगरान्तरा । भूपालमन्दिरे गत्वा तन्नाथं च व्यलोकयत् ॥३१२॥
जीर्णदेवगृहोद्धारो महादानानि सत्क्रिया । 'पुण्याय स्युर्यतो दुर्गरोधाद्यापन्निवर्तते ॥३१३॥
सोऽपि सरोधनिर्विण्णस्तदाक्षिप्तो व्यधादद । धर्मोपदेश आपत्सु कार्यपक्षे हि जायते ॥३१४॥

नवत्युत्तरे चतुःशते ४९४ वर्षे "**गओ सग्ग**" ति, स्वर्गं=सुपर्वधाम गतः=प्राप्तः ।卐

इत्थञ्च श्रीधर्मसूरिश्चतुर्दश १४ वर्षाणि गृहवासे, चतुश्चत्वारिंशद् ४४ वर्षाणि सामान्यव्रतपर्याये, मताऽन्तरेणाऽष्टादश १८ वर्षाणि गृहे, चत्वारिंशद् ४० वर्षाणि मुनिव्रते, चतुश्चत्वारिंशद् ४४ वर्षाणि युगप्रधानत्वे चेति सम्पूर्णायुश्च द्व्युत्तरशतं १०२ वर्षाणि परिपाल्य स्वर्गतिमाप्नोत् ॥७०-७१॥

इदानीं श्रीचरमशासननायकस्य द्वादशं पट्टधरं श्रीसिंहगिरिसूरिमुपजात्या निगदति—

स सीहसूरी गुरुदिराणपट्टे, सोहीअ इंदूमिव अंतरिक्खे ।
भवीण अराणाणरिउस्स सीसं, छिदीअ खग्गो इव जस्स वाणी ॥७२॥
(उवजाई)

(प्रे०) "**स**" इत्यादि, "**गुरुदिण्णपट्टे**" त्ति, गुरुः=आचार्यः, स चासौ दिन्नश्च=दिन्नाख्यश्च गुरुदिन्नस्तस्य पट्टे=पदे गुरुदिन्नपट्टे यत्तदोर्नित्यसापेक्षत्वेनाऽनन्तरयत्पदेनाऽभिधास्यमानत्वादाह—"**स**" त्ति, स प्रसिद्धनामा "**सीहसूरी**" त्ति पदैकदेशे पदसमुदायस्याऽपि व्यवह्रीयमाणत्वात् सिंहः=सिंहगिरिः=तन्नामा गुरुः स चासौ सूरिः=आचार्यः सिंहगिरिसूरिः कौशिकगोत्र आर्यवज्रस्वामिगुरुर्जातिस्मृतिभाक्, **तथा च भणितमुपदेशपदे द्वाचत्वारिंशदधिकशततमश्लोकवृत्तौ वज्रस्वामिचरित्रं प्रतिपादयद्भिः श्रीमन्मुनिचन्द्रसूरिभिः**—
'गुरुणो य सीहगिरिणो नियथिरयाविजयमेरुणो पासे "जाईसरस्स" माया तीए समिओ गहिअदिक्खो ॥१२१॥' इति । "**सोहीअ**"त्ति, शुशुभे=राजते स्म । क इव ? '**इन्दूमिव**"त्ति, इन्दुरिव=चन्द्र इव=यथेन्दुः"**अंतरिक्खे**"त्ति, अन्तरिक्षे=आकाशे शोभते । यत्तदोर्नित्यसम्बन्धादाह—'**जस्स**' त्ति, यस्य=श्रीसिंहगिरिसूरेः "**वाणी**" त्ति, वाणी=सरस्वती=मुखनिर्गतवचनरूपा "**खग्गो इव**" त्ति, खड्ग इव=असिरिव "**भवीण**" त्ति, भविनाम्=अभव्य-जातिभव्यव्यतिरिक्तानां=मुक्तिगमनशीलानां प्राणिनां "**अण्णाणरिउस्स**" अज्ञानं=ज्ञानभिन्नं=मिथ्याज्ञानम्=अतथ्यज्ञानं=विपरीतज्ञानं तदेव रिपुः=शत्रुः=अज्ञानरिपुस्तस्य=अज्ञानरिपोः "**सीस**" ति, शीर्षं=मस्तकं=वराङ्गं "**छिदीअ**" त्ति=अच्छिनत् । भव्यानामज्ञाननाशक इत्यर्थः ।

卐पन्न्यासश्रीकल्याणविजयानामभिप्रायेण वलभीवाचनानुयायिना श्रीधर्मसूरेर्वाचनाचार्यकालो युगप्रधानकालश्च वीरसंवत् ४४६ वर्षत आरभ्य वीरसंवत् ४९३ वर्षपर्यन्तो दर्शित , स चोपलक्षणाद्युगप्रधानस्याऽपि बोध्यस्तत श्रीधर्मसूरेर्युगप्रधानत्व वीरसंवत् ४४६ वर्षे स्वर्गमनञ्च ४९३ वर्षे बभूव । अतस्तदपेक्षयेत आरभ्य सप्तविंशतितम युगप्रधान यावद् द्वादशानां युगप्रधानानां युगप्रधानत्वस्य स्वर्गमनस्य च सत्रदि एकेन वर्षेण न्यूनत्वं भाव्यम् । तच्च यथास्थान टीप्पणौ दर्शयिष्यतेऽपि ।

द्वात्रिंशद् वासरान् सम्यग् लयलीनमनःक्रमाः । देहं जीर्णकुटीतुल्यमुज्झित्वा प्रकटप्रभाः ॥३५२॥
द्वितीयकल्पे देवेन्द्रसामानिकतनूभृतः। अभूवन्नर्चिता भूपैः श्रीपादलिप्तसूरयः॥३५३॥" चतुर्भिः कलापकम्॥६५॥

अथ 卐श्रीवृद्धवादिसूरेर्जिगदिषया पथ्यार्या विवृणोति—

वुड्ढेण वि जेण किवं सरस्सईअ लहिऊण कुसुमजुअं ।
मुसलं पि कयं खाओ सो सूरी वुड्ढवाइ त्ति ॥६६॥ (पच्छाआ)

(प्रे०) "वुड्ढेण" इत्यादि, "जेण" त्ति येन=श्रीवृद्धवादिसंज्ञकेन सूरिणा, किम्भूतेन । "वुड्ढेण वि" त्ति वृद्धेनाऽपि=जरावस्थापन्नेनाऽपि "सरस्सईअ" त्ति सरस्वत्याः=भारत्या ब्रह्म्याः "किवं" ति कृपां=प्रसादं "लहिऊण" त्ति लब्ध्वा=प्राप्य 'मुसलं पि" त्ति मुसलमपि=अयोग्रमपि "कुसुमजुअं" ति कुसुमैः=पुष्पैर्युक्तं=सहितं कुसुमयुतं=पुष्पान्वितं "कयं" ति कृतं=विहितं, मुशलमपि पुष्पितमित्यर्थः ।

तथाहि-विद्याधराम्नाये पादलिप्तप्रभोः कुले श्रीस्कन्दिलाचार्योऽभूत्, स चान्यदा गौडदेशेषु विजहार तत्र च कोशलग्रामवासी द्विजकुञ्जरः मुकुन्दाभिधो गुरुदेशनाश्रवणात् संसारविषण्णचित्तो गुरुणा प्रव्रजितः, स च निशायामप्युच्चैर्घोषैः श्रुतं पठन् केनचिन्मुनिना बोधितोऽपि वृद्धत्वेन विस्मरणात् पुनरपि तथैव घोषयन्, तेन मुनिनोक्तम् "यद्वृद्धोऽपि त्वं महाघोषैः श्रुतं पठन् किं मुशलं फुल्लयिष्यति" तद्वचसा दूनेन तेन नालिकेराख्यस्य पाठकस्य जिनालये चतुर्विधाहारप्रत्याख्यानेनाराधितैकविंशतितमे दिने सत्त्वसंतुष्टा भारती देवी साक्षाद्भूता, ततस्तत्प्रसादेन स मुशलमप्यपुष्पयदिति । 'सो' त्ति यत्तदोर्नित्यसम्बन्धादाह— स=श्रीमुकुन्दर्षिः "सूरी" त्ति सूरिः=आचार्यः, गुरुणा तं योग्यं ज्ञात्वा स्वपदे न्यस्तत्वात् । 'वुड्ढवाइ' त्ति यो वृद्धोऽपि वादिवृन्दस्य जेतृत्वाद् वृद्धवादीति "खाओ" त्ति ख्यातः=सान्वर्था प्रसिद्धिं प्राप्तः । तद्यथा—"मद्गो शृङ्ग शक्रयष्टिप्रमाण शीतो वह्निर्मारुतो निष्प्रकम्पः ।
यद्वा यस्मै रोचते तन्न किञ्चिद् वृद्धो वादी भाषते क इमाह ।" इति
प्रतिज्ञया तत्कालवर्तिनो वादिनो जित्वा वृद्धवादीति ख्यातिं प्राप्ता गुरवश्चैकदा विहरन्तो विशालायामागतास्तत्र चान्येद्युर्बहिर्भूमौ गतानां तेषां पाण्डित्याभिमानेन स्वोदरं भित्वा ज्ञानं बहिर्न गच्छेदिति विमृश्य न्यस्तस्वोदरलोहमयपटो व्योम-पाताल-समुद्रादिगतवाद्यन्वेषणार्थधृत-निःश्रेणि-परशु-जाल इत्येवं विचित्रवेशो देवर्षिदेवश्रीतनयः कात्यानगोत्रीयः सिद्धसेनाख्यः सर्वशास्त्रपारङ्गतो द्विजपुङ्गवो मिलितः । तेन प्रश्नान्तरं ज्ञाता वृद्धवादिनो वादार्थं भणिताः । गुरुभी 'राजसभायां वाद करिष्याम" इत्युक्तेऽपि तदत्याग्रहात्तत्रैव गोपसभायां वादे

卐 असौ वीरसं० ४६७ वर्षे बभूव । तथैव गुरुपट्टावल्यादिषु दर्शितमस्ति ।

(प्रे०) "**तस्स**" इत्यादि, "**तस्स**" त्ति, तस्य=श्रीभद्रगुप्तसूरेः "**वीरा**" त्ति, वीरात्=वीरप्रभुनिर्वाणगमनकालात् "**विअड्ढसुरयावसाणजमजामे**" त्ति, विदग्धसुरतावमानान्यष्टौ. **तथा चोक्त श्रीकाव्यशिक्षायां विजयचन्द्रसूरिभिः**—"अष्टविध विदग्धाना सुरतावसानम्=आलिङ्गन चुम्बन धावन केशोद्धरण रागादिवेशन सीत्कारदिमुञ्चन नखस्पर्शन मृदुकुट्टन चेति" इति। यमौ=द्वौ, यामाः=प्रहराश्चत्वारः एतेऽङ्का वामगतिलब्धा यत्र तत्र विदग्धसुरतावसानयमयामे "ऽद्दे" त्ति, अब्दे=हायने=वीरसंवत्४२८वर्षे "जणी" त्ति, जनिः=उद्भवोऽभूत्। क्रियापदस्याऽध्याहारत्वात् यद्वोत्तरार्धस्थस्य "आसि" त्ति, क्रियापदस्येहाऽपि सम्बन्धात्। "**स**" त्ति, स=श्रीभद्रगुप्तसूरिः "**णक्खत्तवीहिसायरजोयणकोसे**" त्ति, नक्षत्रवीथयो नव, सागराः=समुद्राश्चत्वारः, योजनक्रोशाश्चत्वारः. एतेऽङ्का विपरितक्रमगदिता ४४९ इति सङ्ख्या यस्य तादृशे नक्षत्रवीथिसागरयोजनक्रोशे=वीरसंवदेकोनपञ्चाशदधिके शतचतुष्के४४९वर्षे "**आसि वयी**" त्ति, व्रती=साधुरभवत्। "**स**" त्ति, पदं पूर्वगाथातो द्वितीयगाथापूर्वार्धे स्थानद्वयेऽनुवर्तते ततः स=श्रीभद्रगुप्तसूरिः "**अभिणयसत्तिदिसे**" त्ति, अभिनयाः=आङ्गिक-वाचिका-ऽऽहार्य—सात्त्विकलक्षणाश्चत्वारः, शक्तयः=प्रभा-माया जया-सूक्ष्मा-विशुद्धि—नन्दिनी सुप्रभा विजया-सर्वसिद्धिदारूपा नव, **यद्यपि** शक्तिशब्देन प्रभूत्साहमन्त्रलक्षणशक्तित्रयस्याऽपि ग्रहणं संभवति **तथाऽप्यत्र** तस्य ग्रहणं नैव भवति, पूर्वोक्तदीक्षापर्यायेण सहाऽस्य विरोधप्रसङ्गात्, विरोधश्चैवम्, दीक्षायाः पूर्वमेव युगप्रधानत्वं प्रसज्यते। एवमन्यत्राऽपि स्वयं भाव्यम्।दिशाः=पूर्वो-त्तर-पश्चिम-दक्षिणलक्षणाश्चतस्र, अत्राऽपि पूर्ववद् घटमानत्वे दिशाशब्देन दशसङ्ख्याया अष्टसङ्ख्याया वा (अष्टादशसङ्ख्या अपि वा) ग्रहणं न कार्यम्। एतेऽङ्का वामक्रमस्थापिता ४९४ इति सङ्ख्या यस्य तादृशेऽभिनयशक्तिदिशे=वीरसंवत् चतुर्नवत्यधिकचतुःशत४९४ तमेऽब्दे "**जुगपवरो**" त्ति, युगप्रवरः=युगप्रधानो बभूव। "**आसायणिदिये**" त्ति, आशातना=अर्हदाद्याशातनास्त्रयस्त्रिंशत्, तद्यथा— अर्ह[1]त्सि[2]द्धा[3]चार्यो[4]पाध्याय-साधु-[5]साध्वी-[6]श्रावक-[7]श्राविका—[8]देव[9]देवी-[10]हलोक—[11]परलोक-[12]केवलि—प्रणीत-धर्म-[13]सदेवमनुष्यासुरलोक-[14]सर्वसत्त्व[15]काल-[16]श्रुत-[17]श्रुतदेवता,[18]वाचनाचार्यविषया एकोनविंशतिस्तथा व्याविद्धाक्षर[1]-व्यत्याताम्रेडित-[2]हीनाक्षरा[3]ऽत्याक्षर[4]पद[5]विनय-[6]घोष[7]योगाहीनाध्यन-[8]सुष्ठुदत्त-[9]दुष्ठुप्रतीच्छिता[10]ऽकालस्वाध्यायकरण-[11]कालस्वाध्यायाकरणा[12]ऽस्वाध्यायिकस्वाध्यायित-[13]स्वाध्यायिकास्वाध्यायितलक्षणाश्चतुर्दश सूत्रविषया इति सर्वसङ्ख्यया त्रयस्त्रिंशदाशातनाः।

यद्वा रत्नाधिकविषयास्त्रयस्त्रिंशदाशातना ज्ञेयाः। तथा चोक्तम्—

"पुरओ पक्खासन्ने गन्ता चेट्ठण-निसीअणायमणे १०।
आलोयण ११ पडिसुणणे १२, पुव्वालवणे य १३ आलोए १४ ॥१॥

गत्वैकेन श्लोकेन बोधयति स्म । "सिद्धसेनगुरू" त्ति सिद्धसेनगुरुः=दीक्षावसरे कुमुदचन्द्र-संज्ञा कृताऽपि सूरिपदप्रदानसमये पूर्वख्यात एव सिद्धसेन इत्याख्या विहिता स चासौ गुरुः= सिद्धसेनगुरुः 'सूरी" त्ति सूरिः=आचार्यः, गुरुभिः स्वपदे स्थापितत्वात् "जगम्मि" त्ति जगति=लोके "जयउ" ति जयतु=अतिशयवान् भवतु इति क्रियासण्टङ्कः। स किं विशिष्टः ? "गुण-णिही" त्ति गुणानां=सम्यग्दर्शनादीनां निधिः=शेवधिः गुणनिधिः । पुनः किम्भूतः ? "महा-कवी" त्ति महांश्चासौ कविर्महाकविः=कविषु श्रेष्ठ इत्यर्थः । तथा चोक्तं कलिकालसर्वज्ञ-हेमचन्द्रसूरिभिः "उत्कृष्टेऽनूपेन" सि०२ २-३९) इति सूत्रवृत्तौ अनुसिद्धसेन कवय ।" इति ।

पुनरपि किम्भूतः ? 'विततसासासणपहावो' त्ति विततः=विस्तीर्णः शासनस्य=चर-मार्हत्प्रभोस्तीर्थस्य प्रभावः=महात्म्यं येन स विततशासनप्रभावः "उत्तिण्णसमयजलही" त्ति समयः=सिद्धान्तः स एव जलधिः=सागरः, समयजलधिः, उत्तीर्णः=पारङ्गतः=पारं नीतः=पारं प्राप्तः । समयजलधिर्येन स उत्तीर्णसमयजलधिः=सर्वसिद्धान्तज्ञायक इति भावः । "पबोहगो विक्कमाइभूवाण ति विक्रमः='भीमो भीमसेन' इति न्यायाद् विक्रमादित्यः स आदौ येषां भूपानां ते=विक्रमादित्यादयः, अत्रादिपदेन देवपालादयो ग्राह्याः, ते चामी भूपाश्च=विक्रमा-दित्यादिभूपास्तेषां विक्रमादित्यादिभूपाना प्रबोधकः=उपदेशेन जैनमते स्थापकः । पुनः किं विशिष्टः ? "जो' त्ति, यः श्रीसिद्धसेनदिवाकरसूरेः "कल्लाणमंदिरथवेणं" ति कल्याणमंदिर-स्तवेन="कल्याणमन्दिर" इत्याख्येन स्तोत्रेण "सिवलिंगफोडणं" ति शिवस्य=महा-देवस्य लिङ्गं=पुरुषचिह्नलक्षणं शिवलिङ्गं पाषाणमयमूर्तिरूप तस्य स्फोटनं=विदारणं "विहाय" त्ति विधाय=कृत्वा "अवंतिपासपहुणो" त्ति अवन्तेः=अवन्तिनामनगर्या उज्जयनीत्यपरसंज्ञकाया: पुर्याः पार्श्वप्रभुर्वर्तमानावसर्पिण्यां सञ्जातस्त्रयोविंशतितमो जिनेन्द्रो-ऽवन्तिपार्श्वप्रभुस्तस्याऽवन्तिपार्श्वप्रभोः "बिंब" ति, बिम्बं= प्रतिमां, किम्भूतम् ! "महापहा-वग" ति; महाप्रभावकम्=अचिन्त्यप्रभावशालि "पयडीअ" त्ति प्राकटयत्=अनावरणमकरोत् ।

---

❶ तत्र प्रभावकचरितानुसारेण-

"अणुहुल्लीय फुल्ल म तोडहु, मन आरामा म मोडहु ।
मणकुसुमेहिं अच्चि निरञ्जणु हिण्डह काइ वर्णेण वणु ॥६१॥ इति श्लोकेन ।

अन्यग्रन्थानुसारेण पुन -

"भूरिभारभराक्रान्त, स्कन्ध किं तव बाधति ? ।
न तथा बाधते स्कन्ध, यथा बाधति बाधते ॥ ॥इति श्लोकेन ।

(प्रे०) "जयउ" इत्यादि, 'सत्तरसमो जुगपहाणो'त्ति, श्रीभद्रगुप्तसूरेः पश्चाज्जातः सप्तदशो युगप्रधानस्तथा तस्यैवाऽनु वलभीवाचकस्थविरक्रमेण वाचनाचार्यः 'सिरिगुत्तसूरी' त्ति, श्रीगुप्तसूरिः=श्रीमान् गुप्तनामा मुनिपतिः 'लोए' त्ति, लोके=विश्वे जयउ' त्ति, जयतु=रागादिशत्रुजयनशीलोऽस्तु ।

अथाऽमुष्य जन्मादिपर्यायसत्कान् वत्सरानाह–"वीरा" इत्यादि, "ऽस्स" त्ति अस्य=श्रीगुप्तसूरेः "वीरा" त्ति, वीरात्=वीरमुक्तिकालतः 'करिजलधियुगेऽद्दे" त्ति, करिणः=हस्तिनोऽष्टौ, करि-जलधि-युगानि=अष्ट-चतु-श्चतुरङ्कलक्षणानि वामगत्या विन्यस्तानि ४४८ इति सङ्ख्या यस्य तादृशे करि-जलधि-युगेऽब्दे=शारदे=वीरसंवदष्टचत्वारिंशदधिकचतु शते ४४८ वर्षे 'जम्मो' त्ति, जन्म=जनिरभूत् । "अग्गिवसुवेए" त्ति, अग्निवसुवेदाः=त्र्य ष्ट-चतुरङ्करूपाः पश्चानुपूर्व्या ४८३ इति सङ्ख्या यत्र तत्राऽग्निवसुवेदे=वीरसंवत् ४८३ तमेऽब्दे "वय" ति, व्रतं=प्रव्रज्या बभूव। 'स" त्ति, स=श्रीगुप्तसूरिः "लिंगऽग्गिसरे" त्ति, लिङ्गानि=पुं-स्त्री-नपुंसकलक्षणानि त्रीणि, अग्नयस्त्रयः, शराः पञ्च, एतेऽङ्काः प्रातिलोम्येन स्थापिताः ५३३ इति सङ्ख्या यस्मिंस्तस्मिन् लिङ्गाऽग्निशरे वीरसंवत् ५३३ वर्षे "जुगपहाणो" त्ति, युगप्रधानः "हवीअ" त्ति, अभवत् । "गयऽद्दिसरे" त्ति, गजाऽब्धिशरैः=अष्ट-चतु-पञ्चाङ्कलक्षणैः पश्चानुपूर्व्या ५४८ इति सङ्ख्या यत्र तत्र गजाऽब्धिशरे=वीरसंवत् ५४८ वर्षे "दिव" ति, दिवं=सुपर्वालयं प्राप्तः ।

एवं च श्रीगुप्तसूरिः पञ्चत्रिंशद् ३५ वर्षाणि गृहस्थत्वे, पञ्चाशद् ५० वर्षाणि सामान्यव्रतित्वे पञ्चदश १५ वर्षाणि युगप्रधानत्वे चोषित्वा सकलायुश्च शतं १०० वर्षाणि परिपाल्य देवलोकं भजते स्म ।

अत्रान्तरालेऽस्य शिष्यो रोहगुप्तनामा सूरिस्त्रैराशिकमतस्थापकः षष्ठो निह्नवो वीरसंवत् ५४४ वर्षे जातः संक्षेपतस्तस्य व्यतिकरो यथा—

अन्तरञ्जिकापुर्यां भूतगृहव्यन्तरचैत्यस्थश्रीगुप्ताचार्यवन्दनार्थं ग्रामान्तरादागच्छंस्तच्छिष्य रोहगुप्तः परवादिप्रदापितपटहोद्घोषणां श्रुत्वा तं पटहं स्पृष्ट्वा गुरोस्तज्ज्ञापयित्वा वृश्चिक-सर्प-मूषक मृगी वराही--काकी-शकुनिकाख्यपरिव्राजकविद्याप्रतिपक्षभूता मयूरी-नकुली--बिडाली-व्याघ्री-सिंही-उलुकी-श्येनीसंज्ञाः सप्त विद्यास्तथाऽशेषोपद्रवशमकमभिमन्त्रितरजोहरणं गुरुभ्य आदाय बलश्रीनाम्नो नृपस्य पर्षद्यागत्य वादे पोट्टशालाख्येन परिव्राजकेन जीवा-ऽजीव सुख-दुःखादिरूपे राशिद्वये स्थापिते जीवाऽ-जीव-नोजीवेत्यादिराशित्रयं स्थापयित्वा परिव्राजकमजयत् ।

पन्न्यासश्रीकल्याणविजयानां बालभवाचनानुयायिनाऽभिप्रायेणाऽमुष्य वाचनाचार्यकाल उपलक्षणेन युगप्रधानकालश्च वीरसंवत् ५३२ त. ५४७ वर्षपर्यन्त उक्तस्तेनास्य युगप्रधानत्व स्वर्गगमनञ्च क्रमेण वीरसंवत् ५३२-५४७ वर्षे जायते स्म ।

साधुभ्यः" इति, ततो गुरुणोदितम्, शास्त्रविरुद्धमिदं तव वचनमतः प्रायश्चित्ताऽर्हस्त्वम्, ततस्तेन गदितम्, यत्प्रायश्चित्तं स्यात्तन्मे भवान् ददातु. गुरुणा पाराश्चितं दत्तम्, तदङ्गीकृत्य विहरन् सप्तमे वर्षे उज्जयिन्यामागत्य "दिदृक्षुर्भिक्षुरायातो द्वारि तिष्ठति वारितः । हस्तन्यस्तचतुःश्लोकः किमागच्छतु गच्छतु ॥ ॥" इति श्लोकं लिखित्वा नृपं प्रति प्रेषितः, तेन तुष्टो नृपो जगाद " वर्णमुद्राणां लक्षं गृह्णातु यद्वा राजसभामलङ्करोतु" ततो राजसभायां गत्वा पूर्वोक्तश्लोकचतुष्कमपठत्, तच्छ्रुत्वैकैकस्मिन् श्लोके क्रमेण पूर्व-पश्चिम-दक्षिणो-त्तरदिग्राज्यप्रदानकरणेन समग्रं राज्यं समर्प्यान्ते सिंहासनादुत्थाय भणितम्, "प्रभो! इदं समग्र राज्यं युष्माकं दत्तमस्ति" तदा स उदितवान् "वयमकिञ्चनाः साधवः स्मः" नृपेणापूर्वभक्त्या बहुमानपुरस्सरं नित्यं राजसभायामागमने आमन्त्रितोऽपि गुरुरन्यत्र जगाम । कतिपये दिनेऽवन्त्यामवधूतवेशे पुनरागतं महाकालेश्वरमन्दिरे महादेवस्य सन्मुखं पादौ कृत्वा सुप्तं तं दृष्ट्वा प्रातस्तदर्चको विविधोपायैस्तदुत्थाने निष्फले सति नृपं ज्ञापयामास, नृपोऽपि भटान् प्रेषयति, भटैरपि साम-दामनीत्या निष्फलीभूतैः प्रतोदमार आरब्धोऽन्तःपुरे सङ्क्रान्तस्ततो नृपः प्रतोदमारं निषिध्य तं विनयेनोवाच– 'प्रभो! भवादृशां महात्मानामिदं न शोभते, भवता हि विश्ववन्द्यो महादेवो नमस्करणीयः" इति, तत उत्थितः स नृपमाचख्यौ–"भवता यो विश्ववन्द्यो महादेवः प्रोक्तः स नार्हः" कथमिति प्रश्नोत्तरे भणितम्–" प्रणाममसहिष्णुः स" तत्साक्षाद् दर्शयेति राज्ञा कथिते स कल्याणमन्दिरस्तवमप्रणयत् तत्प्रभावेणैकादशमे श्लोके शिवलिङ्गाद् धूमः प्रादुरभवत्, ततस्तेजः प्रकटितं □षोडशे श्लोके शिवलिङ्गं स्फोटित्वाऽत्यन्तचमत्कारिणी पार्श्वप्रभोः प्रतिमा निर्गता द्वात्रिंशत्तमे श्लोके स्वस्थाने स्थिरीभूता, तद्विलोक्य भूपः सर्वजनोऽपि च विस्मितः । तदुपदेशेन विक्रमादित्यभूपोऽर्हदुपासको जातः । ततः पश्चात्संघेनामुष्य पञ्च वर्षाणि विसृष्टानि । 卐

□पट्टावलीसारोद्धारे ११ तमे श्लोके गदितम् । तथा च तद्ग्रन्थ –' लिङ्गस्फोटनं विधाय स्तुत्या ११ काव्ये श्रीपार्श्वबिम्बं प्रकटीकृतम्' इति ।

卐 अत्र श्रीजिनप्रभसूरयस्तु प्रायश्चित्तस्य द्वादशमे वत्सरेऽवन्त्यां श्रीऋषभदेवप्रभोः प्रतिमा प्रकटीकृतेत्यादिकमाहुस्तथा च तैरुक्त विविधतीर्थकल्पे–

"पूर्वं लाटदेशमण्डनभृगुकच्छपुरालङ्कारे शकुनिकाविहारे स्थिता श्रीवृद्धवादिसूरयो' यो येन निर्जीयते तेन तस्य शिष्येण भाव्य"मिति प्रतिज्ञां विधाय वादकरणार्थं दक्षिणपथाय.त कर्णाटभट्टदिवाकर निर्जित्य व्रत ग्राह्याञ्चक्रिरे सिद्धसेनदिवाकरेत्यभिधयाऽभ्यधु । तत कतिचिद्दिनैर्नि शेषानप्यागमानध्यजीगपत् । अन्यदा तु सकलानप्यागमान् संस्कृतानह करोमीति तेन वचनमिदमूचे। तत पूज्या अ‍ीदमभिदधिरे किं सस्कृत कर्तुं न जानन्ति श्रीमन्तस्तीर्थङ्करा गणधरा वा यदर्द्धमागधे△नाम्नायमकुर्वन् । तदेव जल्पतस्तव महत्प्रायश्चित्तमापन्नम्। किमेतत्तवाग्रत. कथ्यते । स्वयमेव जानन्नसि । ततो विमृश्या-

---

△"°नागमानकृपत" इत्यपि पाठ ।

भयत्राऽपि बहुव्रीहिसमाससत्कः कप्प्रत्ययः नयस्य=ग्रन्थाः=शास्त्राः नयग्रन्थाः=नयसम्बन्धिनो ग्रन्था इत्यर्थः सम्मतितर्कादिकाश्चामी नयग्रन्थाः सम्मतितर्कादिकनयग्रन्थास्तेषां सम्मतितर्कादिनयग्रन्थानां करोतीति कारकः=प्रणेता ।

श्रीवृद्धवादिसूरि-श्रीसिद्धसेनदिवाकरसूरिसत्कचरित्रं विस्तरेण प्रभावकचरित एव दर्शितम्—

सारसारस्वतश्रोत पारावारसमश्रिये । वृद्धवादिमुनीन्द्राय नम शमदमोर्मये ॥१॥
सिद्धसेनोऽस्तु स्वामी विश्वनिस्तारकत्वकृत । ईशहृद्भेदक दध्रे योऽर्हद्ब्रह्ममय मह. ॥२॥
कलिकालाचलप्लोषदम्भोलिकलयोस्तयोः । चरित्रं चित्रचारित्रामत्र प्रस्तावयाम्यहम् ॥३॥
पारिजातोऽपारिजातो जैनशासननन्दने । सर्वश्रुतानुयोगद्रुकन्दकन्दलनाम्बुद ॥४॥
विद्याधरवराम्नाये चिन्तामणिरिवेष्टद । आसीच्छ्रीस्कन्दिलाचार्य. पादलिप्तप्रभो कुले ॥५॥ युग्मम् ।
असख्यशिष्यमाणिक्यरोहणाचलचूलिका । अन्यदा गौडदेशेषु विजह्रे स मुनीश्वर ॥६॥
तत्रास्ति को ग्रामसवासी विप्रपुङ्गव । मुकुन्दाभिधया साक्षान्मुकुन्द इव सत्त्वत ॥७॥
प्रसङ्गादमिलत् तेषा बाह्यावनिविहारिणाम् । सर्वस्य सर्वकार्येषु जागर्ति भवितव्यता ॥८॥
तेभ्यश्च शुश्रुवे धर्म्मं शर्म्मद प्राणिना दया । सुकर सयमारुढैर्गतवैराग्यरङ्गितै' ॥९॥
स प्राह कारिताकार्यैरनार्यैर्दुर्जनैरिव । चित्रैरिव भ्रमिभ्रान्भिविषयैर्मुषितोऽस्म्यहम् ॥१०॥
तेभ्यस्त्रायस्व नि सङ्गस्वामिन् विध्वस्तशात्रव ? । पलायनेऽपि मा क्लीव विश्वसावैशमद्रुतम् ॥११॥
इत्यूचिवासमेन तेऽन्वगृह्णान् जैनदीक्षया। स्वरैव श्रेयसि श्रेष्ठा विलम्बो विघ्नकृद् ध्रुवम्॥१२॥ 'त्रिभिर्विशेषकम्'
अपरेद्युर्विहारेण लाटमण्डलमण्डनम् । प्रापु श्रीभृगुकच्छ ते रेवासेवापवित्रितम् ॥१३॥
श्रुतपाठमहाघोषैरम्बर प्रतिशब्दयन् । मुकुन्दर्षि समुद्रोर्म्मिध्वानसापत्न्यदु खद: ॥१४॥
भृश स्वाध्यायमभ्यस्यन्नय निद्राप्रमादिन' । विनिद्रयति वृद्धत्वादामही सन्नहर्निशम् ॥१५॥ (युग्मम्)
यतिरेको युवा तस्मै शिक्षामक्षामधीर्ददौ। मुने ! विनिद्रिता हिंस्रजीवा भूतद्रुहो यत ॥१६॥
तस्माद्ध्यानमय साधु विधेह्याभ्यन्तर तप' । अर्हं सकोचितु साधोर्वाग्योगो निध्वनिक्षणे ॥१७॥
इति श्रुत्वाऽपि जीर्णत्वोदितजाड्यचयान्वित । नावधारयते शिक्षा तथैवाघोषति स्फुटम् ॥१८॥
(त्रिभिर्विशेषकम्।)
तारुण्योचितया सूक्ताकरणासूयया तत । अनगार खरां वाचमाददे नादरार्दित ॥१९॥
अजानन् वयसोऽन्त यदुच्चपाठादरार्दित । फुल्लयिष्यसि तन्मल्लीवलीवन् मुशलं कथम् ॥२०॥
इति श्रुत्वा विषेदेऽसौ जरच्चारित्रकुञ्जर । दध्यौ च मे धिगुत्पत्ति ज्ञानावरणदूषिताम् ॥२१॥
तत आराधयिष्यामि भारतीं देवतामहम् । अथोग्रतपसा सत्य यथासूयावचो भवेत् ॥२२॥
इति ध्यात्वा नालिकेरवसत्याख्यजिनालये । सकलां भारतीं देवीमाराद्धुमुपचक्रमे ॥२३॥
चतुर्धाहारमाधार शरीरस्य दृढव्रत' । प्रत्याख्याय स्फुरद्ध्यानवह्निनिहुतजाड्यभी ॥२४॥
गलद्विकल्पकालुष्यशुद्धधी समताश्रय । निष्प्रकम्पतनुन्यस्तदृष्टिर्मूर्तिपदाम्बुजे ॥२५॥
मुहूर्तमिव तत्रास्थाद् दिनानामेकविंशतिम् । सत्त्वतुष्टा तत साक्षाद् भूत्वा देवी तमब्रवीत् ॥२६॥
त्रिभिर्विशेषकम् ।
समुत्तिष्ठ ! प्रसन्नास्मि पूर्यन्ता ते मनोरथाः। स्खलना न तवेच्छासु तद्विधेहि निजे हितम् ॥२७॥

अत्र मुखमेव पङ्कज तदेव रङ्ग । भ्रूरेव लता सेव नर्तकी,लीलेव नाट्य तदेवामृतमिति रूपितानामपि रूपणेन समासेन रूपकरूपक नामाय विकृतरूपकेषु शब्दभूयिष्ठरूपकभेद । " इति ।

तथा चास्य श्रीजगद्धरकृता टीका—

" ... लीलाविलास एव नाट्य नृत्य तदेवामृतम् । इह मुख पङ्कजेन रूपयित्वा रङ्गत्वेन रूपितम्, एव भ्रुवौ लतात्वेन रूपयित्वा नर्तकीत्वेन रूपिते। लीलेव नाट्य तदेवामृतमिति रूपितरूपणाद्रूपकरूपकम ॥" इति ।

तथाऽलङ्कारचिन्तामणौ चतुर्थपरिच्छेदेऽपि--

"सुभ्रूवल्ली नटी वक्त्रपद्मरङ्गे तव प्रिये । सलील नटतीत्येतन्मत रूपकरूपकम् ॥१२३॥"इति ।

वाग्भटकविविरचितकाव्यानुशासनेऽपि—'सादृश्याद्भेदेनारोपो रूपकम् ।"इत्यस्य **स्वोपज्ञायां व्याख्यायाम्—**"सादृश्याद्धेतोभेदेन विषयविषयिणोर्निर्देशेनारोपोऽतथाभूतेऽपि वस्तुनि तथात्वेना-ऽध्यवसायो रूपकम । तच्चैकानेकमालासमस्तव्यस्तखण्डाखण्डयुक्तायुक्तविषमविशेष हेतुश्लेषोपमाव्यतिरेकाक्षेपसमाधानरूपकत्वापहवरसनापरम्परितादिभेदैरनेकधा ॥" इति

किञ्च रूपकस्योपमायाश्च भेदानामियत्ता नास्ति, अनेकविधत्वात् ।

उक्तञ्च काव्यादर्शेऽपि--

न पर्यन्तो विकल्पाना रूपकोपमयोरत । दिङ्मात्र दर्शित धीरैरनुक्तमनुमीयतामिति ॥९६॥" इति ।

एवमन्यत्रा-ऽलङ्कारचिन्तामणि-हैमकाव्यानुशासन-वाग्भटीयकाव्यानुशासनप्रबन्धेषु बहुषु स्थानेषु दर्शितम् ।

चन्द्रालोके पुना रूपितरूपणानां हि रूपितरूपकसंज्ञकामलङ्कृतिमाहुः ।

तथा च तद्ग्रन्थः---"अङ्गयष्टिधनुर्वल्लीत्यादि रूपितरूपकम् ॥२१॥' इति ।

तथा चास्य पौर्णमासीव्याख्या--

"रूपितरूपक व्याचष्टे-अङ्गेति । अङ्गमेव यष्टि , धनुरेव वल्ली, अङ्गयष्टिरेव धनुर्वल्लीत्य दि-रूपितरूपक भवति । रूपितेनारोपेण रूपक रूपितरूपकम् । अङ्गे यष्टित्वारोपेण धनुषि वल्लीत्वारोपेण चाङ्गयष्टया धनुर्वल्लीत्वारोपो रूपितरूपकमिति लक्षणसमन्वय ।" इत्यादि ॥७८॥

अथ वज्रस्वामिनमेव स्तुवन्नुपजातिमाह.....

हिंडोलगत्थो वि छमासियो जो एगादसंगि सुअपुव्वजम्मो।
पढीअ बालो वि अबालतेजो,कि दुक्करं अत्थि महापुमाणं॥७९॥(उवजाई)

(प्रे०) "हिंडो०" इत्यादि, "जो" त्ति यः=श्रीवज्रस्वामी किम्भूतः ? "सुअपुव्व-" त्ति, स्मृतं स्वमनसि=निजहृदये वा साक्षात्कृतं पूर्वं=प्राक्तनं जन्म=भवो रो वा

भयत्राऽपि बहुव्रीहिसमाससत्कः कप्रत्ययः नयस्य=ग्रन्थाः=शास्त्राः नयग्रन्थाः=नयसम्बन्धिनो ग्रन्था इत्यर्थः सम्मतितर्कादिकाश्चामी नयग्रन्थाः सम्मतितर्कादिकनयग्रन्थास्तेषां सम्मतितर्कादिनयग्रन्थानां करोतीति कारकः=प्रणेता ।

श्रीवृद्धवादिसूरि-श्रीसिद्धसेनदिवाकरसूरिसत्कचरित्रं विस्तरेण प्रभावकचरित एव दर्शितम्—

सारसारस्वतश्रोत पारावारसमश्रिये । वृद्धवादिमुनीन्द्राय नम' शमदसोमये ॥१॥
सिद्धसेनोऽवतु स्वामी विश्वनिस्तारकत्वकृत् । ईशहृद्भेदक दध्रे योऽर्हद्ब्रह्ममय मह. ॥२॥
कलित्रालाचलप्लोषदम्भोलिकलयोस्तयो. । चरित्र चित्रचारित्रामत्र प्रस्तावयाम्यहम् ॥३॥
पारिजातोऽपारिजातो जैनशासननन्दने । सर्वश्रुतानुयोगद्रुकन्दकन्दलनाम्बुद ॥४॥
विद्याधरवराम्नाये चिन्तामणिरिवेष्टद । आसीच्छ्रीस्कन्दिलाचार्य. पादलिप्तप्रभो' कुले ॥५॥ युग्मम् ।
असङ्ख्यशिष्यमाणिक्यरोहणाचलचूलिका । अन्यदा गौडदेशेषु विजह्रे स मुनीश्वर ॥६॥
तत्रास्ति को ग्रामसवासी विप्रपुङ्गव । मुकुन्दामिधया साक्षान्मुकुन्द इव सत्त्वत ॥७॥
प्रसङ्गादमिलत् तेषा बाह्यावनिविहारिणाम् । सर्वस्य सर्वकार्येषु जागर्ति भवितव्यता ॥८॥
तेभ्यश्च शुश्रुवे धर्म्म शर्म्मद प्राणिना दया । सुकर सयमारुढैर्गतवैराग्यरङ्गिते ॥९॥
स प्राह कारिताकार्यैरनार्यैर्दुर्जनैरिव । चित्रैरिव भ्रमिभ्राभिर्विषयैर्मुषितोऽस्म्यहम् ॥१०॥
तेभ्यस्त्रायस्व नि सङ्गस्वामिन् विध्वस्तशात्रव ? । पलायनेऽपि मा क्लीव विश्वसावेशमद्गतम ॥११॥
इत्यूचिवासमेन तेऽन्वगृह्णान् जैनदीक्षया । त्वरैव श्रेयसि श्रेष्ठा विलम्बो विघ्नकृद् ध्रुवम् ॥१२॥ 'त्रिभिर्विशेषकम् '
अपरेद्युर्विहारेण लाटमण्डलमण्डनम् । प्रापु श्रीभृगुकच्छ ते रेवासेवापवित्रितम् ॥१३॥
श्रुतपाठमहाघोषैरम्वर प्रतिशब्दयन् । मुकुन्दर्षि समुद्रोर्म्मिध्वानसापत्न्यदुःखदः ॥१४॥
भृश स्वाध्यायमभ्यस्यन्नय निद्राप्रमादिन' । विनिद्रयति वृद्धत्वादामही सन्नहर्निशम् ॥१५॥ (युग्मम्)
यतिरेको युवा तस्मै शिक्षामक्षामधीर्ददौ । मुने ! विनिद्रिता हिंस्रजीवा भूतद्रुहो यत' ॥१६॥
तस्माद्ध्यानमय साधु विधेह्याभ्यन्तर तप । अर्ह सकोचितु साधोर्वाग्योगो निध्वनिक्षणे ॥१७॥
इति श्रुत्वाऽपि जीर्णत्वोदितजाड्यचयान्वित । नावधारयते शिक्षा तथैवाघोषति स्फुटम् ॥१८॥
(त्रिभिर्विशेषकम् ।)

तारुण्योचितया सूक्ताकरणासूयया तत । अनगार खरां वाचमाददे नादरार्दित ॥१९॥
अजानन् वयसोऽन्त यदुच्चपाठादरार्दित । फुल्लयिष्यसि तन्मल्लीवलीवन् मुशलं कथम् ॥२०॥
इति श्रुत्वा विषेदऽसौ जरच्चारित्रकुञ्जर । दध्यौ च मे धिगुत्पत्ति ज्ञानावरणदूषिताम् ॥२१॥
तत आराधयिष्यामि भारतीं देवतामहम् । अथोग्रतपसा सत्य यथासूयावचो भवेत् ॥२२॥
इति ध्यात्वा नालिकेरवसत्याख्यजिनालये । सकलां भारतीं देवीमाराद्धुमुपचक्रमे ॥२३॥
चतुर्धाहारमाधार शरीरस्य दृढव्रत' । प्रत्याख्याय स्फुरद्ध्यानवह्निनिर्हुतजाड्यभी. ॥२४॥
गलद्विकल्पकालुष्यशुद्धधी समताश्रय । निष्प्रकम्पतनुर्न्यस्तदृष्टिर्मूर्तिपदाम्बुजे ॥२५॥
मुहूर्तमिव तत्रास्थाद् दिनानामेकविंशतिम् । सत्त्वतुष्टा तत साक्षाद् भूत्वा देवी तमब्रवीत् ॥२६॥
त्रिभिर्विशेषकम् ।

समुत्तिष्ठ ! प्रसन्नास्मि पूर्यन्ता ते मनोरथा' । स्खलना न तवेच्छासु तद्विधेहि निजे हितम् ॥२७॥

अत्र मुखमेव पङ्कज तदेव रङ्ग , भ्रूरेव लता सैव नर्तकी,लीलेव नाटय नदेवामृतमिति रूपितानामपि रूपणेन समासेन रूपकरूपक नामाय विकृतरूपकेपु शब्दभूयिष्ठरूपकभेद । " इति ।

तथा चास्य श्रीजगद्धरकृता टीका—

" ....लीलाविलास एव नाटय नृत्य तदेवामृतम । इह मुख पङ्कजेन रूपयित्वा रङ्गत्वेन रूपितम् , एव भ्रुवौ लतात्वेन रूपयित्वा नर्तकीत्वेन रूपिते । लीलेव नाटय तदेवामृतमिति रूपितरूपणाद्रूपकरूपकम् ॥' इति ।

तथाऽलङ्कारचिन्तामणौ चतुर्थपरिच्छेदेऽपि--

"सुभ्रवल्ली नटी वक्त्रपद्मरङ्गे तव प्रिये । सलील नटतीत्येनन्मत रूपकरूपकम् ॥१२३॥ 'इति ।

वाग्भटकविविरचितकाव्यानुशासनेऽपि–'सादृश्याद्भेदेनारोपो रूपकम् ।"इत्यस्य स्वोपज्ञायां व्याख्यायाम्–"सादृश्याद्वैताभेदेन विषयविषयिणोर्निर्देशेनारोपोऽतथाभूतेऽपि वस्तुनि तथात्वेना-ऽध्यवसायो रूपकम् । तच्चैकानेकमालासमस्तव्यस्तखण्डाखण्डयुक्तायुक्तविषमविशेष हेतुश्लेषोपमाव्यतिरेकाक्षेपसमाधानरूपकत्वापह्नवस्मेतापरम्परितादिभेदैरनेकधा ॥" इति

किञ्च रूपकस्योपमायाश्च भेदानामियत्ता नास्ति, अनेकविधत्वात् ।

उक्तञ्च काव्यादर्शेऽपि--

न पर्यन्तो विकल्पाना रूपकोपमयोरत । दिङ्मात्र दर्शित धीरैरनुक्तमनुमीयतामिति ॥९६॥' इति ।

एवमन्यत्रा-ऽलङ्कारचिन्तामणि-हैमकाव्यानुशासन-वाग्भटीयकाव्यानुशासनग्रन्थेषु बहुषु स्थानेषु दर्शितम् ।

चन्द्रालोके पुना रूपितरूपणानां हि रूपितरूपकसंज्ञकामलङ्कृतिमाहुः ।

तथा च तद्ग्रन्थः--"अङ्गयष्टिधनुर्वल्लीत्यादि रूपितरूपकम् ॥२१॥' इति ।

तथा चास्य पौर्णमासीव्याख्या--

"रूपितरूपक व्याचष्टे-अङ्गेति । अङ्गमेव यष्टि धनुरेव वल्ली, अङ्गयष्टिरेव धनुर्वल्लीत्य दि-रूपितरूपक भवति । रूपितेनारोपेण रूपक रूपितरूपकम् । अङ्गे यष्टित्वारोपेण धनुषि वल्लीत्वारोपेण चाङ्गयष्ट्यां धनुर्वल्लीत्वारोपो रूपितरूपकमिति लक्षणसमन्वय ।' इत्यादि ॥७८॥

अथ वज्रस्वामिनमेव स्तुवन्नुपजातिमाह... .

हिंडोलगत्थो वि छमासियो जो एगादसंगि सुअपुव्वजम्मो।
पदीअ बालो वि अबालतेजो,किं दुक्करं अत्थि महापुमाणं॥७९॥(उवजाई)

(प्रे०) "हिंडो०" इत्यादि, "जो" त्ति यः=श्रीवज्रस्वामी किम्भूतः ? "सुअपुव्व-जम्मो" त्ति, स्मृतं स्वमनसि=निजहृदये वा साक्षात्कृतं पूर्वं=प्राक्तनं जन्म=भवोऽवतारो वा

अत्राऽपि बहुव्रीहिसमाससत्कः कच्प्रत्ययः नयस्य=ग्रन्थाः=शास्त्राः नयग्रन्थाः=नयसम्बन्धिनो ग्रन्था इत्यर्थः सम्मतितर्कादिकाश्चामी नयग्रन्थाः सम्मतितर्कादिकनयग्रन्थास्तेषां सम्मतितर्कादिनयग्रन्थानां करोतीति कारकः=प्रणेता ।

श्रीवृद्धवादिसूरि-श्रीसिद्धसेनदिवाकरसूरिसत्कचरित्रं विस्तरेण प्रभावकचरित एव दर्शितम्–

सारसारस्वतश्रोतःपारावारसमश्रिये । वृद्धवादिमुनीन्द्राय नमः शमदमोर्मये ॥१॥
सिद्धसेनोऽवतु स्वामी विश्वनिस्तारकस्त्वकृत् । ईशद्भेदकं दध्रे योऽर्हद्ब्रह्ममयं महः ॥२॥
कलिकालाचलप्लोषदम्भोलिकल्पयोस्तयोः । चरित्रं चित्रचारित्रामत्र प्रस्तावयाम्यहम् ॥३॥
पारिजातोऽपारिजातो जैनशासननन्दने । सर्वश्रुतानुयोगद्रुकन्दकन्दलनाम्बुदः ॥४॥
विद्याधरवराम्नाये चिन्तामणिरिवेष्टदः । आसीच्छ्रीस्कन्दिलाचार्यः पादलिप्तप्रभो कुले ॥५॥ युग्मम् ।
असंख्यशिष्यमाणिक्यरोहणाचलचूलिका । अन्यदा गौडदेशेषु विजह्रे स मुनीश्वरः ॥६॥
तत्रास्ति को ग्रामसवासी विप्रपुङ्गवः । मुकुन्दाभिधया साक्षान्मुकुन्द इव सत्त्वतः ॥७॥
प्रसङ्गादमिलत् तेषां बाह्यावनिविहारिणाम् । सर्वस्य सर्वकार्येषु जागर्ति भवितव्यता ॥८॥
तेभ्यश्च शुश्रुवे धर्म्मं शर्म्मदं प्राणिनां दया । सुकरं संयमारुढैर्रतवैराग्यरङ्गितैः ॥९॥
स प्राह कारिताकार्यैरनार्यैर्दुर्जनैरिव । चित्रैरिव भ्रमिभ्राभिर्विषयैर्मुषितोऽस्म्यहम् ॥१०॥
तेभ्यस्त्रायस्व निःसङ्गस्वामिन् विध्वस्तशात्रव ! । पलायनेऽपि मा क्लीबं विश्वसावेशमद्रुतम् ॥११॥
इत्यूचिवांसमेन तेऽन्वगृह्णन् जैनदीक्षया । त्वरैव श्रेयसि श्रेष्ठा विलम्बो विघ्नकृद् ध्रुवम् ॥१२॥ 'त्रिभिर्विशेषकम् '
अपरेद्युर्विहारेण लाटमण्डलमण्डनम् । प्रापुः श्रीभृगुकच्छं ते रेवासेवापवित्रितम् ॥१३॥
श्रुतपाठमहाघोषैरम्बरं प्रतिशब्दयन् । मुकुन्दर्षिः समुद्रोर्म्मिध्वानसापत्न्यदुःखदः ॥१४॥
भृशं स्वाध्यायमभ्यस्यन्नयं निद्राप्रमादिनः । विनिद्रयति वृद्धत्वादात्मही सन्नहर्निशम् ॥१५॥ (युग्मम्)
यतिरेको युवा तस्मै शिक्षामक्षामधीर्ददौ । मुने ! विनिद्रिता हिंस्रजीवा भूतद्रुहो यतः ॥१६॥
तस्माद्ध्यानमयं साधु विधेह्याभ्यन्तरं तपः । अर्हं संकोचितुं साधोर्वाग्योगो निध्वनिक्षणे ॥१७॥
इति श्रुत्वाऽपि जीर्णत्वोदितजाड्यचयान्वितः । नावधारयते शिक्षां तथैवाघोषति स्फुटम् ॥१८॥
(त्रिभिर्विशेषकम् ।)
तारुण्योचितया सूक्ताकरणासूयया ततः । अनगारः खरां वाचमाददे नादरार्दितः ॥१९॥
अजानन् वयसोऽन्तः यदुग्रपाठादरार्दितः । फुल्लयिष्यसि तन्मल्लीवलीवन् मुशलं कथम् ॥२०॥
इति श्रुत्वा विषेदेऽसौ जरच्चारित्रकुञ्जरः । दध्यौ च मे धिगुत्पत्तिं ज्ञानावरणदूषिताम् ॥२१॥
ततः आराधयिष्यामि भारतीं देवतामहम् । अथोग्रतपसा सत्यं यथासूयावचो भवेत् ॥२२॥
इति ध्यात्वा नालिकेरवसत्याख्यजिनालये । सकलां भारतीं देवीमाराद्धुमुपचक्रमे ॥२३॥
चतुर्धाहारमाधारं शरीरस्य दृढव्रतः । प्रत्याख्याय स्फुरद्ध्यानवह्निनिर्हुतजाड्यभीः ॥२४॥
गलद्विकल्पकालुष्यशुद्धधीः समताश्रयः । निष्प्रकम्पतनुन्यस्तदृष्टिर्मूर्तिपदाम्बुजे ॥२५॥
मुहूर्तमिव तत्रास्थाद् दिनानामेकविंशतिम् । सत्त्वतुष्टा ततः साक्षाद् भूत्वा देवी तमब्रवीत् ॥२६॥
त्रिभिर्विशेषकम् ।
समुत्तिष्ठ ! प्रसन्नास्मि पूर्यन्तां ते मनोरथाः । स्खलना न तवेच्छासु तद्विधेहि निजे हितम् ॥२७॥

तिर्यग्जृम्भकदेवेन 'वेउव्वलद्धी''त्ति, वैक्रियलब्धिः=नवीनरूपादिनिर्माणशक्तिः "णहगामि-विज्जा" त्ति, नभोगामिविद्या=गगनविहारिणी मन्त्रविशेषरूपा विद्या "दत्ता' त्ति, दत्ता = अदायि ॥८०॥

अथ वज्रस्वामिसम्बन्धिन्योपजात्याऽऽह—

संघो ठवेऊण पटम्मि णीओ दुब्भिक्खदेसाउ सुभिक्खदेस ।
दयाऽद्धिणा जेण भवाउ मोक्खं खित्ता विमाणे विणिणीसुणा व्व ॥८१॥ (उवजाई)

(प्रे०) "संघो"इत्यादि, 'जेण''त्ति, येन, श्रीवज्रस्वामिना किम्भूतेन ? "दयाद्धिणा" त्ति, दयाब्धिना=कृपासागरेण: "संघो" त्ति रङ्घः=साधु-साध्वी श्रावक-श्राविकारूपश्चतुर्विध-सङ्घः "पटम्मि" त्ति, पटे=वमने 'स्वदेहाच्छादनवस्त्रे = कल्पे "ठवेऊण" त्ति, स्थापयित्वा "णीओ दुब्भिक्खदेसाउ सुभिक्खदेस' ति, दुर्भिक्षदेशात्=द्वादशाब्दान् यावत् कालानुभावाद् बिन्दुमात्रजलवृष्टेरभावेनाऽन्नपानदौर्लभ्याद्दुःखकालविपयात् सुभिक्षदेशं= प्रभूतसस्यनिष्पन्नत्वेन सुकालजनपद नीतः=प्रापितः। कथम् ? "विमाणे"त्ति विमाने=व्योम-गामिनि देवयाने "खित्ता" त्ति, क्षिप्त्वा=स्थापयित्वा "भवाउ मोक्ख" ति, भवात् संसारान्मोक्षम्=अपवर्गं 'विणिणीसुणा व्व" त्ति, विनिनीषुणेव प्रापयितुकामेनेव ।८१॥

अथ वज्रप्रभुमेवोपजात्या वर्णयति—

सुवरणकोडीजुअरुप्पिणि जो, दिक्खीअ संबुज्झ सरागकरणं ।
पबोहिओ बोद्धमयाणुसारी, भूवो वि जेणं पउरेहि सद्धं ॥८२॥ (उवजाई)

(प्रे०) "सुवण्ण०" इत्यादि, 'जो" त्ति, यः श्रीवज्रस्वामी प्रभुः "सुवण्णकोडी-जुअरुप्पिणि" ति, सुवर्णानां=काञ्चनानां कोटी=शतलक्षाणि सुवर्णकोटी, ताभिर्युतां=सहितां रुक्मिणी=तन्नाम्नीं सुवर्णकोटिभिर्महाढ्यस्य महाव्यवहारिणः सुताम् । किम्भूताम् ? "सराग-णं" ति, सह रागेण वर्तते इति सरागा=सस्नेहा, यद्वा स्वे=श्रीवज्रस्वामिनि रागो यस्याः सा स्वरागा=निजस्योपरि स्नेहवती=प्रेमवती; तद्यथा—निजप्रसादनिकटवसतिसंस्थितसाध्वी-गीयमानवज्रस्वामिगुणश्रवणोत्पन्नाऽनुरागवशेन '**अस्मिन् भवे मम प्राणनाथो वज्रस्वाम्येव नाऽन्यः**' इति कृतनिश्चया सा चासौ कन्या सरागकन्या स्वरागकन्या वा तां सरागकन्यां स्व-रागकन्यां वा 'सबुज्झ''त्ति, सम्बोध्य संबुध्य वा "दिक्खीअ''त्ति, अदीक्षयत्=प्राव्रिव्रजत् ।

"जेणं" ति, येन=श्रीवज्रस्वामिना "` मताऽनुसारी" त्ति, बौद्धमतस्य=सौगता-नुशासनस्याऽनुसारी=अनुयायी जैनद्विषतया पर्यूषणापर्वाष्टाह्निकादिमहोत्सवकृतपुष्पनिषेधः

तस्य दक्षतया तुष्टः प्रीतिदाने ददौ नृपः । कोटिं द्वारकटङ्कानां लेखकः पत्रकेऽलिखत् ॥६३॥ तद्यथा-
धर्मलाभ इति प्रोक्ते दूरादुद्धृतपाणये । सूरये सिद्धसेनाय ददौ कोटिं नराधिपः ॥६४॥
(नृपेण सिद्धमाकार्य गृहीष्यामि धनं त्वया । उवाच सिद्धो नोऽस्माकं यथारुचि तथा कुरु)
तेन द्रव्येण चक्रेऽसौ साधारणमसुद्धकम् । दुःस्थसाधर्मिकस्तोम-चैत्योद्धारादिहेतवे ॥६५॥
अन्यदा चित्रकूटाद्रौ विजहार मुनीश्वरः । गिरेर्नितम्ब एकत्र स्तम्भमेकं ददर्श च ॥६६॥
नैव काष्ठमयो ग्रावमयो न नच मृण्मयः । विमृशन्नौपधक्षोदमयं निरचिनोच्च तम् ॥६७॥
तद्रस-स्पर्श-गन्धादिनिरीक्षाभिर्मतेर्बलात् । औषधानि परिज्ञाय तत्प्रत्यर्थीन्यमीमिलत् ॥६८॥
पुनः पुनर्निघृष्याथ स स्तम्भे छिद्रमातनोत् । पुस्तकानां सहस्राणि तन्मध्ये च समैक्षत ॥६९॥
एकं पुस्तकमादाय पत्रमेकं ततः प्रभुः । विवृत्य वाचयामास तदीयामालिमेककाम् ॥७०॥
सुवर्णसिद्धियोगं स तत्र प्रैक्षत विस्मितः । सर्षपैः सुभटानां च निष्पत्तिं श्लोक एककें ॥७१॥
सावधानः पुरो यावद् वाचयत्येष हर्षभूः । तत्पत्रं पुस्तकं चाथ जह्रे श्रीशासनामरी ॥७२॥
तादृक्पूर्वगतग्रन्थवाचने नास्ति योग्यता । सत्त्वहानियंतः कालदौःस्थ्यादेतादृशामपि ॥७३॥
स पूर्वदेशपर्यन्ते व्यहार्षीच्च परेद्यवि । कर्मारनगरं प्राप विद्यागुणयुतः सुधीः ॥७४॥
देवपालनरेन्द्रोऽस्ति तत्र विख्यातविक्रमः । श्रीसिद्धसेनसूरिं स नन्तुमभ्याययौ रयात् ॥७५॥
आक्षेपण्यादिधर्माख्याचतुष्टयवशात् प्रभुः । तं प्रत्यबोधयत् सख्ये चास्थापयदिलापतिम् ॥७६॥
श्रीकामरूपभूपालः सरुरोध तमन्यदा । नाम्ना विजयवर्मेति धर्मेतरमतिस्थितः ॥ ॥७७॥
स आटविकलासीरैरसङ्ख्यैर्विद्रुतोऽधिकम् । देवपालो महीपालः प्रभुं विज्ञापयत् ततः ॥७८॥
अमुष्य शलभश्रेणिसन्निभैरद्भुतैर्बलैः । विद्रावयिष्यते सैन्यमल्पकोशबलस्य मे ॥७९॥
अत्र त्वं शरणं स्वामिन्निदमाकर्ण्य स प्रभुः । प्राह प्रतिविधास्यामि मा भैषीरत्र सङ्कटे ॥८०॥
सुवर्णसिद्धियोगेनासंख्यद्रव्यं विधाय सः । तथा सर्षपयोगेन सुभटानकरोद् बहून् ॥८१॥
युद्ध्वा पराजितः शत्रुर्देवपालेन भूभृता । प्रभोः प्रसादतः किं हि न स्यात् तादृगुपासनात् ॥८२॥
राजाह शत्रुमीत्यन्धतमसेऽहं निपेतिवान् । उदभ्रे भास्वता नाथ भवता भवतारक ॥ ॥८३॥
ततो दिवाकर इति ख्याताख्या भवतु प्रभो । ततः प्रभृति गीतः श्रीसिद्धसेनदिवाकरः ॥८४॥
तस्य राज्ञो दृढं मान्यः सुखासनगजादिषु । बलादारोपितो भक्त्या गच्छति क्षितिपालयम् ॥८५॥
इति ज्ञात्वा गुरुर्वृद्धवादी सूरिर्जिनश्रुते । शिष्यस्य राजसत्कारदर्पभ्रान्तमतिस्थिते ॥८६॥
शिक्षणेन क्षणेनैवापासितुं दुर्ग्रहाग्रहम् । समाजगाम कर्मारपुरे रूपापलापतः ॥८७॥ युग्मम्।
ततः सुखासनासीनमपश्यन् तं प्रभुस्तदा । राजनमिव राजाध्वान्तरे बहुजनावृतम् ॥८८॥
प्राह च प्राप्तरूप ! त्वं सन्देहं मे निवर्तय । आयातस्य तव ख्यातिश्रुतेर्दूरदिगन्तरात् ॥८९॥
पृच्छेति सिद्धसेनेन सूरिणोक्ते जगाद सः । तारस्वरं समीपस्थविदुषां विस्मयावहम् ॥९०॥ तद्यथा-
अणुहुल्लीय फुल्ल म तोडहु मन आरामा म मोडहु । मणकुसुमेहिं अच्चि निरञ्जणु हिण्डह काइ वणेण वणु
अज्ञातेऽत्र विमृश्यापि कदुत्तरमसौ ददौ । अन्यत् पृच्छेति स प्राहैतदेव हि विचारय ॥९२॥
अनादरादसम्बद्धं यत्किंचित् तेन चाकथि । अमानितेऽत्र तर्हि त्वं कथयेति जगाद सः ॥९३॥
वृद्धवादिप्रभुः प्राह कर्णयावहितो भव । अस्य तत्त्वं यथामार्गभ्रष्टोऽपि लभसे पुनः ॥९४॥

तथाहि-'अणु' अल्पमायुरूपं पुष्पं यस्याः सा'ऽणुपुष्पिका'-मानुषतनुः, तस्याः पुष्पाण्यायुःखण्डानि तानि मा त्रोटयत, राजपूजागर्वाद्यकुटीभिः । 'आरामान्' आत्मसत्कान् यमनियमादीन् सन्तापापहारकान् मा मोटयत-मञ्जयत । 'मन कुसुमैः' क्षमामार्दवार्जवसन्तोषादिभिरर्चय, निरञ्जनम्-अञ्जनान्यहङ्कारस्था-

भणिओ जणण्ण तओ, रयहरण नियकरे धरेत्तण। कमलदलामललोयणजुयलो ससिमण्डलमुहो य ॥१६६॥
जइ सुकयज्झवसाओ धम्मज्झयभूसिय इम वइर। गेण्ह लहु रयहरण कम्मरयपमज्जण वीर ॥१७०॥
तूरियमरोण गतु गहिय लोगेण जयइ धम्मोऽत्ति। उक्किट्ठमीहनाओ कओ तओ चिंतए जणणी ॥ ७१॥
मम भत्ता पुत्तो भाउओ य एए पवन्नपव्वज्जा। कस्स कए गिहवासे वसामि तो मापि पव्वइआ ॥१७२॥
परिवज्जिअथणपाणा दव्वेण वि समणओ स मजाओ। अन्न वि विहारकिरियाणुच्चिओ सो साहुणीपासे
ठविओ पुनरपि तासिं समीवओ सो सुणेइ अगाइ। एक्कारस वि पढतीण ताण तेणेव लद्धाणि ॥१७४॥
एगपयाओ पयसयमणुसरइ मई तहा मया तस्स। जाओ य अट्ठवरिसो ठविओ गुरुणा नियसमीवे॥१७५॥' इति।

तथैव परिशिष्टपर्वण्यपि-'इतश्च वज्रस्तत्रस्थ क्रमेणाभूत्त्रिहायन ।— ॥१००॥
.. व्रतेच्छुर्न पपौ स्तन्य वज्रस्तावद्वया अपि। इत्याचार्यै परिव्राज्य साध्वीना पुनरार्प्यत॥१२५॥" इति।

किन्तु विचारश्रेणि-पट्टावल्यादिषु वज्रप्रभोर्दीक्षाऽष्टमवर्षे प्रतिपादिता। **तथा च भणित गच्छपट्टावल्याम्** —"अष्टौ ८ वर्षाणि गृहे" इत्यादि। तदर्थं 'बलखअगे' त्ति, पदमित्थं व्याख्येयम्—बलानि=सैन्यानि१ हस्ति २हय -३रथ-४पदातिलक्षणानि चत्वारि, **तथा चोक्तम्**—
''बल'चउव्विह पाइक्कबल-आसवबल हत्थिबल रहबल' इति। एवमन्यत्राऽपि बहुषु स्थलेषु।
यद्वा बलानि—युद्ध व्यापार-भिक्षा-विप्रसेवनलक्षणानि चत्वारि, **तथा चोक्तं ब्रह्मवैवर्त-पुराणे**—"क्षत्रियाणां बल युद्ध, व्यापारश्च बल विशा। भिक्षा बल भिक्षुकाणा शूद्राणा विप्रसेवनम्॥" इति।
खं=शून्यम्, यदुक्तमनेकार्थकोषे-". खं स्व सविदि व्योमनीन्द्रिये ॥५॥ शून्ये विन्दौ सुखे "
इति। **यद्वा** खम्=अन्तरिक्षम्=शून्यम्, अङ्गाः=देहा औदारिकादयः पञ्च, एतेऽङ्गा वामगति-मीलिता यत्र तत्र बलखाङ्गे=वीरसंवत् ५०४ वर्षे 'वय'ति,व्रतं=तपस्या वज्रस्वामिनोऽभूत्।

तथा सति वज्रप्रभोः पूर्वमेव तच्छिष्यः प्रव्रजितः स्यात्। यतः श्रीवज्रसेनप्रभोः स्वर्ग-
• श्रीगुर्वावल्यां तथा श्रीतपागच्छपट्टावल्यादिषु वीरसंवद्विंशत्युत्तरशतषट्क६२०वर्षे दर्शितमस्ति, सर्वायुश्च श्रीयुगप्रधानयन्त्र-पट्टावल्यादिष्वष्टाविंशत्यधिकशत१२८वर्षाणि, गृह-वासश्च नव ९ वर्षाणि प्रतिपादितं विद्यते, ततो वीरसंवदेकोत्तरपञ्चशत ५०१ वर्षे वज्रसेनप्रभोः प्रव्रज्या जायते स्म। एवञ्च विरोधस्यापत्तिः प्रादुर्भवति। किन्तु वज्रविभोर्जन्मतस्तृतीये वर्षे व्रतग्रहणे सति न कश्चिद्विरोधः। न च गर्भाष्टकवर्षन्यूनवयसो दीक्षा न भवतीति वाच्यम्, यतो ज्ञानातिशयशालिनां व्यवहारतोऽन्यथाऽपि प्रवृत्तेः संभवः, ज्ञानातिशयाद्यथा श्रीसम्भूतसूरिणा श्रीस्थूलभद्रस्वामिने वेश्यागृहचातुर्मास्याद्यर्थमाज्ञा दत्ता।

विचारसारप्रकरणे पुनर्वज्रस्वामी वीराच्चचतुश्चत्वारिंशदधिके चतुरशीत्यधिके वा वर्ष(चतु शतेऽतीते दर्शित,तच्चास्माभिर्न ज्ञायते केनाभिप्राय दिनोक्तमिति। **तथा च तद्ग्रन्थः**—चरिमजिणे मुक्खगए चालीसेहिं (चउरासीइहिं) चउहिं वरिससए। वइरो दसपुव्वधरो वइरमुणी तस्स साहाए ॥६२४॥" इति।

बाल स्त्री मूढ मूर्खादिजनानुग्रहणाय सः । प्राकृतां तामिहाकार्षीदनास्थाऽत्र कथं हि व ॥११५॥
बाल स्त्री मूढ मूर्खादिजनानुग्रहणाय सः । प्राकृतां तामिहाकार्षीदनास्थाऽत्र कथं हि व ॥११६॥
पूज्यैर्वचनदोषेण भूरि कल्मषमर्जितम् । अनेन स्थविरा अत्र प्रायश्चित्त प्रजानते ॥११७॥
तैरूचे द्वादशाब्दानि गच्छत्यागं विधाय य । निगूढजैनलिङ्ग सन् तप्यते दुस्तर तप ॥११८॥
इति पाराञ्चिकाभिख्यात् प्रायश्चित्तान्महाहस । अस्य शुद्धिर्जिनाज्ञाया अन्यथा स्यात् तिरस्कृति ॥११९॥
जैनप्रभावना काचिदद्भुतां विदधाति चेत । तदुक्तावधिमध्येऽपि लभते स्व पद भवान् ॥१२०॥
तत श्रीसंघमापृच्छ्य स सात्त्विकशिरोमणि । स्वव्रत बिभ्रदव्यक्त सिद्धसेनो गण व्यहात् ॥१२१॥
इत्थ च भ्राम्यतस्तस्य बभूवु सप्त वत्सरा । अन्यद्यु विहरन्नुज्जय(यि)न्या पुरि समागमत् ॥१२२॥तथा हि-
स भूपमन्दिरद्वारि गत्वा क्षत्तारमभ्यधात् । स्वं विज्ञापय राजान मद्वाचा विश्वविश्रुतम् ॥१२३॥
दिदृक्षुर्भिक्षुरायातो द्वारि तिष्ठति वारितः । हस्तन्यस्तचतु श्लोकः किमागच्छतु गच्छतु ॥१२४॥तद्यथा-
ततो राज्ञा समाहूतो गुणवत्पक्षपाततः । स्वामिनाऽनुमते पीठे विनीरस्यात्रवीदिति ॥१२५॥
अपूर्वेय धनुर्विद्या भवता शिक्षिता कुत । मार्गणौघ समभ्येति गुणो याति दिगन्तरम् ॥१२६॥
अमी पानकरङ्काभा सप्तापि जलराशय । यद्यशोराजहंसस्य पञ्जर भुवनत्रयम् ॥१२७॥
सर्वदा सर्वदोऽसीति मिथ्या संस्तूयसे बुधै. । नारयो लेभिरे पृष्ठ न वक्षः परयोषित ॥१२८॥
भयमेकमनेकेभ्य शत्रुभ्यो विधिवत्सदा । ददासि तच्च ते नास्ति राजन् । चित्रमिद महत् ॥१२९॥
इति श्लोकैर्गुरुश्लोका स्तुतो राजा तमब्रवीत् । यत्र त्व सा सभा धन्याऽवस्थेय तन्ममान्तिके ॥१३०॥
इति राज्ञा ससन्मानमुक्तोऽभ्यर्णे स्थितो यदा । तेन साक ययौ दक्ष स कुडगेश्वरे कृती ॥१३१॥
व्यावृत्य दूरतस्तस्य पश्चादागच्छत सत । प्रश्न कृतोऽन्यदा राज्ञा देवेऽवज्ञां करोषि किम् ॥१३२॥
नति किं न विधत्से च सोऽवादीद् भूपते । शृणु । महापुण्यस्य पुमस्ते पुर एवोच्यते मया ॥१३३॥
ज्वलितात् प्राकृतै सार्द्धं क शोषयति थूत्कृतम् । असहिष्णु प्रणाम मेऽमकी कुर्वे तत कथम् ॥१३४॥
ये मत्प्रणामसोढारस्ते देवा अपरे ननु । किं भावि ?, प्रणम त्व द्राक् प्राह राजेति कौतुकी । १३४॥
देवान्निजप्रणम्याश्च दर्शय त्व वदन्निति । भूपतिर्जल्पितस्तेनोत्पाते दोषो न मे नृप ! ॥१३५॥
राजाह देशान्तरिणो भवन्त्यद्भुतवादिन । देवा किं धातुमूर्द्ध हि प्रणामेऽप्यक्षमा ऋषे ! ॥१३६॥
श्रुत्वेति पुनरासीन शिवलिङ्गस्य स प्रभु । उदाजह्रे स्तुतिश्लोकान् तारस्वरकरस्तदा ॥१३७॥

तथाहि—

प्रकाशितं त्वयैकेन यथा सम्यग्जगत्त्रयम् । समस्तैरपि नो नाथ वीरतीर्थाधिपैस्तथा ॥१३८॥
विद्योतयति वा लोक यथैकोऽपि निशाकरः । समुद्गतः समग्रोऽपि तथा कि तारकागण ॥१३९॥
त्वद्वाक्यतोऽपि केषाचिदबोध इति मेऽद्भुतम् । भानोर्मरीचय कस्य नाम नालोकहेतव ॥१४०॥
नो वाद्भुतमुलूकस्य प्रकृत्या क्लिष्टचेतस स्वच्छा अपि तमस्त्वेन भासन्ते भास्वत करा ॥१४१॥ इत्यादि ।

तथा-

न्यायावतारसूत्र च श्रीवीरस्तुतिमप्यथ । द्वात्रिंशच्छ्लोकमानाश्च त्रिंशदन्या स्तुतीरपि ॥१४२॥
ततश्चतुश्चत्वारिंशद्वृत्ता स्तुतिमसौ जगौ । 'कल्याणमन्दिरे'त्यादिविख्याता जिनशासने ॥१४३॥
अस्य चैकादश वृत्त पठतोऽस्य समाययौ । धरणेन्द्रो दृढा भक्तिर्न साध्य तादृशां किमु ॥१४ ॥
शिवलिङ्गात् ततो धूमस्तत्प्रभावेण निर्ययौ । यथान्धतमसस्तोमैर्मध्याह्नेऽपि निशाऽभवत् ॥१४५॥
यथा विह्वलितो लोको नष्टुमिच्छन् दिशो न हि । अज्ञासीदाश्मनस्तम्भभित्तिष्वास्फालितो भृशम् ॥१४६॥
ततस्तत्क्षयेऽस्माद् ज्वालामाला विनिर्ययौ । मध्येसमुद्रमावर्त्तावृत्तिसवर्त्तकोपमा ॥१४७॥
ततश्च कौस्तुभस्येव पुरुषोत्तमहृत्स्थिते । प्रभो श्रीपार्श्वनाथस्य प्रतिमा प्रकटाऽभवत ॥१४८॥

'जुगगयसरे'' त्ति, युगगजशराः=चतुरङ्का-ऽष्टाङ्क पञ्चाङ्कलक्षणा विपरीतक्रमोदिता ५८४ इति सङ्ख्या यत्र तत्र युगगजशरे=वीरसंवत् ५८४ वर्षे "दिव" ति, दिवं सुरधाम प्राप्तः । तथा चोक्तं गुर्वावल्याम्-"स्ववेदद्न्तीषुमिते ५८४ स वर्षे यातो जिनात्प्रेष्य निजं विनेयम्' इति।

इत्थश्च श्रीवज्रस्वामी त्रीणि ३ वर्षाणि गृहवासे, एकोनपञ्चाशद् ४९ वर्षाणि सामान्य-व्रते, पट्टावल्याद्यभिप्रायेणाऽष्टौ ८ वर्षाणि गृहे, चतुश्चत्वारिंशद् ४४ वर्षाणि व्रते षट्त्रिंशद् ३६ वर्षाणि युगप्रधानत्वे चेति सर्वायुश्चाऽष्टाशीति ८८ वर्षाणि परिपाल्याऽमरलोकं भूषयामास।

अमुष्य प्रधानशिष्यास्त्रय आसन्-तद्यथा-आर्यवज्रसेन आर्यनागिलायाः शाखायाः प्रवर्तकः १, आर्यपद्म आर्यपद्मायाः शाखायाः प्रवर्तकः २, आर्यरथ आर्यवत्स्यगोत्र आर्य-जयन्त्याः शाखायाः प्रवर्तकः ३, आर्यरथस्य च परम्परायां श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणोऽभूत्। तथा चोक्त श्रीकल्पसूत्रे-"थेरस्स णं अज्जवइरस्स गोयमसगुत्तस्स इमे तिण्णि थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया हुत्था, तं जहा-थेरे अज्जवइरसेणिए थेरे अज्जपउमे थेरे अज्जरहे। थेरेहिंतो णं अज्जवइरसेणिएहिंतो इत्थ णं अज्जनाइली साहा निग्गया, थेरेहिंतो णं अज्जपउमेहिंतो इत्थ णं अज्ज-पउमा साहा निग्गया, थेरेहिंतो णं अज्जरहेहिंतो इत्थ णं अज्जजयन्ती साहा निग्गया ॥" इति।

विस्तरतः श्रीवज्रस्वामिचरित्रन्तूपदेशपदवृत्ताविंत्थम्—

वंदित्ता भगवंतं गओ तओ तत्थ जंभगो देवो। एगो वेसमणसमो पुंडरियज्झयणमुच्चरिय ॥११४॥
नायाधम्मकहासु सिट्ठं पंचसयगंधपरिमाणं। अवधारेइ लहेइ य सुद्धं सम्मत्तमह एसो ॥११५॥
पंचसु सएसु वरिसाणमइगएसु जिणाओं वीराओ। किंचूणेसु स जंभगदेवो चविऊण सुरलोगा ॥११६॥
तुंबवणसन्निवेसे अवंतिविसयम्मि धणगिरी नाम इब्भसुओ आसि नियगचगिमाविजियसुररूवो ॥११७॥
सो सुयजिणिंद धम्मो बालत्ताओ वि सावगो जाओ। भवभीरू पव्वइउं वछइ निच्छिन्नविसयतिसो ॥११८॥
संपत्तजोयणभरस्स तस्स कण्णं वरंति जं पियरो। तं तं सो पडिसेहइ अह जहा पव्वइउकामो ॥११९॥
धणपालो नाम पुरे इब्भो तत्थत्थि तस्सुया भणइ। देहमहं धणगिरिणो जेणाहं तं वसे नेमि ॥१२०॥
गुरुणो य सीहगिरिणो नियधिरियाविजियमेरुणो पासे। जाईसरस्स भाया तीए समिओ गहियदिक्खो १२१
भणिया अणेण अलियं न किंचि भद्दे। जहा अहं समणो। होहामि खिप्पमेव जं रोयइ तं तुमं कुणसु ॥१२२॥
पारद्धो वीवाहो धणविच्छड्डेण अइमहंतेण। उवरोहेण जणगाण पाणिगहणं कयं तीए ॥१२३॥
पेच्छइ महाणुभावा दूरविरत्ता य विसयसंगेसु। अणुरत्ता इव उवरोहवसगया होंति कज्जकरा ॥१२४॥
सवखणवत्तविवाहो भणइ सुनंद समागयाणंद। भद्दे। मुंच विचिंतसु वयणं पुव्वं पि मे भणियं ॥१२५॥
सा तम्मि पोढपणया सो पुण तीए विरत्तओ धणियं। बहवो रत्तविरत्ताण ताण जाया समुल्लावा ॥१२६॥
ता जाव तीएँ भणियं पिउगेहपरमुहाए मे ठाणं। तं वा तज्जायं वा न को वि अन्नो विचिंतेसु ॥१२७॥
जम्हा कुमरीण पिया जोव्वणभरभारियाण भत्तारो। थेरत्ते पुण पुत्तो नारीण रक्खओ भणिओ ॥१२८॥
इय निसुणिय तव्वयणेण बधुलोएण तह य इयरेण। तह उवरुद्धो सो जह नंदणलाभामुहो जाओ ॥१२९॥
बोलीणेसु दिणेसु केवइएसु पहाणसुविणेण। सो सुरजीवो तीसे गब्भम्मि सुओ समुप्पन्नो ॥१३०॥
निच्छियपसत्थसुयलाभमगलं धणगिरी सुनंदमिमं। भणइ सहाओ होही तुह एस सलक्खणो पुत्तो ॥१३१॥
कहवि विमुक्को तीए उग्घोसियसव्वजीववहविरई। चेईहरेसु कारियबहुविभवपयाणुरूवमहो ॥१३२॥

इदानीं युगप्रधानपरम्परायां श्रीरेवतीमित्रसूरेः पश्चाज्जातस्य पञ्चदशस्य युगप्रधानस्य वलभीवाचनापेक्षया वाचनाचार्यस्य च श्रीधर्मसूरेर्व्याचिख्यासया महाचवलापथ्यार्या-पथ्यार्यारूपार्याद्वयमाह—

ताउ सिरिधम्मसूरी हवीअ पंचदसमो जुगपहाणो ।
जम्मोऽस्स वीरमोक्खा सयंकपावगपमाणेऽद्दे ॥७०॥ (पच्छापुव्विगा महाचवलाज्जा)
विगइजुएऽद्दिसयमिए गेणहीअ वयं स खऽक्खगइमाणे ।
जुगपवरो आसि गओ सग्गं गोत्थणखगकसाये ॥७१॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "**ताउ**" त्ति, तस्मात्=श्रीरेवतीमित्रसूरेरनु "**सिरिधम्मसूरी**" त्ति श्रिया=शोभया चरणलक्ष्म्या वा युक्तः धर्मः=धर्मनामा सूरिः=आचार्यः श्रीधर्मसूरिर्दशपूर्वधरः "**हवीअ पचदसमो जुगपहाणो**" त्ति, पञ्चदशो युगप्रधानोऽभूत्, तथा वालभवाचनाऽपेक्षया वाचनाचार्योऽजायत ।

अस्यैव जन्मादिपर्यायसम्बन्धिनो वर्षान् दिदिक्षुराह—व्याख्यातशेषसार्द्धामार्याम् "**जम्मो**" इत्यादि, "**ऽस्स**" त्ति, अस्य=श्रीधर्मसूरेः " **म्मो**" त्ति, जन्म=उद्भवः "**वीरमोक्खा**" त्ति, वीरमोक्षात्=चरमार्हन्मुक्तिगमनकालात् '**सयंकपावगपमाणेऽद्दे**" त्ति, शयौ=हस्तौ द्वौ, अङ्का=एकादयो नव, पावकाः=वह्नयस्त्रयः, एतेषामङ्कानां पश्चानुपूर्व्या स्थापितानां द्विनवत्युत्तरत्रिशत ३९२ सङ्ख्यं प्रमाणं यस्य तादृशे शयाङ्कपावकप्रमाणेऽब्दे=वर्षे=वीरसंवद्द्विनवत्यधिकशतत्रय ३९२ तमे वत्सरेऽजायत । "**स**" त्ति, स=श्रीधर्मसूरिः "**विगइजुएऽद्दिसयमिते**" विकृतयः=घृत-पक्वान्न-तैल-गुड दधि-दुग्धनामानः षट्, यद्वा एते मधु-मद्य-मांस-नवनीताख्याभिश्चतसृभिः सहिता दश ताभियु ते=विकृतियुते=षड्भिर्दशभिर्वा सहित इत्यर्थः, अब्धयश्चत्वारः, तावन्मितैः शतैर्मितेऽब्धिशतमिते वीरसंवत् ४०६।४१० वर्षे '**गेण्हीअ वयं**" ति, व्रतं=प्रव्रज्यां जग्राह । "**खऽक्खगइमाणे**" त्ति, खं=शून्यम् अक्षाणि=इन्द्रियाणि, श्रोत्र चक्षु-घ्राण-रस-स्पर्शनाख्यानि पञ्च, गतयः=नारक तिर्यङ्-मनुष्य-देवलक्षणाश्चतस्रः, एतैरङ्कैर्विपरीतक्रमविन्यस्तैः पञ्चाशदधिकचतुःशत४५०सङ्ख्य मानं यत्र तत्र खाऽक्षगति४५०माने=वीरसंवत्पञ्चाशदधिकचतुः-शतेऽब्दे "**जुगपवरो**" त्ति, युगप्रवरः=युगप्रधानः "**आसि**" त्ति, अभवत् "**गोत्थणखगकसाये**" त्ति, गोस्तनाः प्रसिद्धाश्चत्वारः खगा नव, कषायाः=क्रोध-मान-माया-लोभरूपाश्चत्वारः, एतेऽङ्काः प्रातिलोम्येन स्थापिताः ४९४ यस्य तत्र गोस्तनखगकषाये=वीरसंवच्चतु-

● इचना आचार्या आर्यमङ्गुसूरिमेव श्रीधर्मसूरितया मन्यन्ते । यदुक्तं श्रीविचारश्रेणिवृत्तौ इह केऽपि मङ्गुधर्मनाम्नेव भेदमाहु । तन्मते आर्यधर्मस्य वर्षाणि ४४ इति ।

भणिओ जणएण तओ रयहरणं नियकरे धरेत्तण । कमलदलामललोयणजुयलो ससिमंडलमुहो य ॥१६९॥
जहा ॥ जइ सुकयज्झवसाओ धम्मज्झयमूसियं इम वइर । । गेण्ह लहु रयहरण कम्मरयपमज्जण धीर ॥१७०॥
तूरियमणेण गतु गहिय लोगेण जयइ धम्मोत्ति । अक्किट्ठसीहनाओ कओ तओ चिंतए जणणी ॥१७१॥
मम मत्ता पुत्तो भाउओ य एए पवन्नसव्वज्जा । कस्स कए गिहवासे वसामि तो सावि पव्वइया ॥१७२॥
परिवज्जियथणणाणा दव्वेण वि समणओ स संजाओ । अज्जवि विहारकिरियाणुचिओ सो साहुणीपासे ॥
ठविओ पुणरवि तासिं समीवओ सो सुणेइ अगाइ । एक्कारसवि पढतीण ताण तेणेव लद्धाणि ॥१७४॥
एगपयाओ पयसयमणुसरइ मई तहा सया तस्स । जाओ य अट्ठवरिसो ठविओ गुरुणा नियसमीवे ॥१७५॥
विहरता उज्जेणिं गया ठिया वाहिरम्मि उज्जाणे । कइयावि तिव्वधार सुदुन्निवार पडइ वास ॥१७६॥
भिक्खायरियाइपओयण इ न तरंति साहुणो काउ । जा ता जमगदेवा वइरस्स परिक्खिया पुव्व ॥१७७॥
जाया कहिंचि तद्दे सचारिणो पेच्छिऊण सो ज्झत्ति । परियाणिओऽणुकपा मत्ती वि य तम्मि सजाया ॥१७८॥
तप्परिणामपरिक्खाहेउ ताहे भवित्तु वाणियगा । सत्थवइल्ले नद्दे सभूमिभागे निवेसति ॥१७९॥
ससिद्धभत्तपाणाण ताहे ते वइरखुड्डग पणया । आमति ते पयट्टो गुरुणो आमतिओ सतो ॥१८०॥
मद मंद वास पडइत्ति नियट्टिओ तओ तंपि । जावच्चिय सद्दाविंति ताव विहियायरा दूर ॥१८१॥
वइरो वि गओ ताहे तद्दं सं कुणइ तिव्वमुवओग । दव्वाइगोयर तत्थ दव्वओ पुस्सफलमेय ॥१८२॥
खेत्त पुण उज्जेणी कालो वहुलो य पाउसो एस । भावेण धरणिरयछिवणनयणसकोयरहियत्ति ॥१८३॥
अच्चतपहिट्ठमणा ताहे नाय जहा इमे देवा । कहमन्नहा इमेरिसरूवत्तमिमेसु जाइज्जा ॥१८४॥
नो पडिवन्न त भत्तपाणमइतुट्ठमाणसा जाया । पभणति तओ त दट्ठुमागया कोउगवसेण ॥१८५॥
देंति य ते वेउव्वियविज्ज तीए बसाओं रूवाणि । दिव्वाणि माणुसाणि य कज्जंति अणेयरूवाणि ॥१८६॥
पुणरवि य जेट्ठमासे सण्णाभूमीगय निमतिंति । घयपुन्नेहिं ते च्चिय देवा पुव्व व उवओगे ॥१८७॥
विहिए सब्भावे अवगयम्मि पडिसेहियम्मि दिज्जते । विज्ज वियरंति नहगणम्मि गमणावहमबाह ॥१८८॥
तीए किल विज्जाए चलिओ जा माणुसुत्तर सेल । न खलिज्जइ अइबलिणावि देवदाणवसमूहेण ॥१८९॥
एव स बालकालेवि ठाणमच्चब्भुयाणऽणेगाण । विहरइ गुरुणा सहिओ गामागररेहिर वसुह ॥१९०॥
समणीमज्झम्मि ठिएण तेण गहियाणि जाणि अगाणि । एगपयाओ पयसयमणुसरतस्स ताणि पुणो ॥१९१॥
साहुसमीवे जायाइ फुडयराइ पढेइ पुव्वगय । जो कोइ त पि गहिउ कण्णाहेडेण तंपि लहु ॥१९२॥
अकिलेसेण च्चिय सो पाएण बहुस्सुओ तओ जाओ । अज्झावगेण अमुणियतब्भावेण जया भणिओ ॥१९३॥
पढसु इम सुयमेसो त चेवालावग विकुट्टतो । अच्छइ अन्नम्मि दढ कओवओगो पढिज्जते ॥१९४॥
अह अन्नम्मि अवसरे दिणद्धसमयम्मि सूरिसु गएसु । बाहिं वियारभूमिं साहूसु य भिक्खणट्ठाए ॥१९५॥
वइरो वसहीरक्खगोत्ति सठाविओ तओ तेण । बालत्तवससमुप्पन्नकोउगेण निहित्ताओ ॥१९६॥
साहूण वेंटियाओ मडलिपरिवाडिमणुसरतेण । मज्झे ठिच्चा सयमेव वायण दाउमारद्धो ॥१९७॥
अगाण पुव्वगयस्स जलहिसखोहगहिरसद्देण । एत्थतरम्मि गुरवो विणियट्टा सुणिय निग्घोस ॥१९८॥
चिंतंति लहु मुणिणो समागया अण्णहा कह रवोऽय । चिट्ठ ति जाव निहुया पच्छिट्ठिया अवगय ताव ॥१९९॥
णूण न साहुसद्दो एसो वइरस्स किंतु ओसरिया । तस्सखोहभएण णिसीहियाइ य कओ सद्दो ॥२००॥
अइदक्खत्तगुणाओ त सद्द सुणिय ठाविय सठाणे । सव्वाओं विंटियाओ गहिओ गुरुहत्थओ दडो ॥२०१॥
विहिय पायपमज्जणमह सीहगिरी विचिंतए एव । अइसयसुयरयणनिही एसो, मा परिभव कुणउ ॥२०२॥
एयस्स साहुलोओ ता जाणावेमि एयगुणगरिमा । जेण एयगुणोच्चियमेए विणय पउजंति ॥२०३॥

अस्य मुख्याश्चत्वारः शिष्या आसन्' तद्यथा–आर्यधनगिरिः १, आर्यवज्रस्वामी वज्र्याः शाखायाः प्रर्वतकः २, आर्यसमितो ब्रह्मदीपिकायाः शाखायाः प्रवर्तकः ३, आर्यार्हद्दत्तः ४ इति ।

तथा चोक्तं कल्प त्रे वि रवाचनायाम्–"थेरस्स णं अज्जसीहगिरिस्स जाइस्सरस्स कोसीयगुत्तस्स इमे चत्तारि थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया हुत्था, त जहा-थेरे धणगिरी थेरे अज्ज-वइरे थेरे अज्जसमिए थेरे अरिहदिन्ने ॥ थेरेहिंतो णं अज्जसमिएहिंतो गोयमसगुत्तेहिंतो इत्थ ण बमदीविया साहा निग्गया थेरेहिंतो णं अज्जवइरेहिंतो गोयमसगुत्तेहिंतो इत्थ ण अज्जवइरी साहा निग्गया।" इति ॥७२॥

अथ तत्समयवर्तिनं युगप्रधानं तथा वलभीवाचनानुगतस्थविरावल्यपेक्षया वाचनाचार्यमपि श्रीभद्रगुप्तसूरि सार्धश्लोकद्वयेनाऽभिधातुकामः पूर्वं पथ्यार्यया निदर्शयति—

विज्जागुरू सिरिवइरसामिस्स य भद्दगुत्तसूरिंदो ।
जयउ जगे दसपुव्वी ता सोलसमो जुगपहाणो ॥७३॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "**विज्जा**" इत्यादि "**ता**" त्ति तदा=श्रीसिंहगिरिसूरेः समये "**भद्दगुत्तसूरिंदो**" त्ति, भाति=शोभते स्वगुणैस्तथा ददाति=प्रेरयितुश्चित्तनिर्वृत्तिं प्रयच्छतीति भद्रः स चासौ गुप्तः= असंयमस्थानेभ्यो रक्षितः भद्रगुप्तः=तन्नामा गुरुः सूरिणाम्=आचार्याणामिन्द्रः=स्वामी सूरीन्द्रः= सूरीश्वरः भद्रगुप्तश्चासौ सूरीन्द्रो=भद्रगुप्तसूरीन्द्रः=भद्रगुप्तनामा आचार्यः"**जगे**" त्ति, जगति= त्रिविष्टपे "**जयउ**"त्ति, जयतु=केनाऽप्यपराभवशीलो भवतु इति क्रियासण्टङ्कः ।

किम्भूतः ? "**विज गुरू सिरिवइरसामिस्स य**" त्ति, श्रीवज्रस्वामिनो विद्यागुरुः= वाचनादाता, पुनः किं विशिष्टः ? " **पुव्वी**" त्ति. दशपूर्वी=दशपूर्वविद् "**सोलसमो जुग-पहाणो**" त्ति, युगप्रधानस्य श्रीधर्मसूरेरनु षोडशो युगप्रधानस्तथा वालभवाचनाऽपेक्षया वाचनाचार्योऽपि ॥७३॥

अथ सार्धपथ्यार्यया श्रीभद्रगुप्तसूरेर्जन्मादिवर्षान् द्वितीयपथ्यार्योत्तरार्धेन च श्रीतोसलि-पुत्रसूरि प्रकटयन्नाह—

तस्स जणी वीराऽद्दे विअद्धसुरयावसाणजम्मामे ।
णक्गत्तवीहिसायरजोयणकोसे स आसि वयी ॥७४॥ (पच्छाज्जा)
अभिणयसत्तिदिसे जुगपवरो आसायणादिये खमिओ ।
वंदे हं विज्जहिं सिरितोसलिपुत्तमायरिअं ॥७५॥ (पच्छाज्जा)

उवलद्धमुणिवइपओ सारयरविमंडलं व अहियियरं । फुरियपयावो जाओ भवियमोरुहपमोयकरो ॥२४०॥जओ ॥
वासावज्जविहारी जइवि हु नवि वत्थए गुरू नियए । अकहंतो वि मुणिज्जइ पगई एसा गुणगणाण ॥
भमरेहिं महुरेहिं य सूइज्जइ अप्पणो य गंधेण । पाउसकालकयंबो जइवि निगूढो वणनिगुंजे ॥२४३॥
कत्थ व न जलइ अग्गी कत्थ व चंदो न पायडो लोए ? । कत्थ व वरलक्खणधरा न पायडा हुंति सप्पुरिसा ॥
सीहगिरी दिन्नगणो वइरस्स समागयम्मि समयम्मि । कयभत्तपरिच्चाओ जाओ देवो महिड्ढीओ ॥२४४॥
भयवं पि वइरसामी सएहिं पंचहिं मुणीण परियरिओ । कुणइ विहारं सो जत्थ(तत्थ)तं सुन्दलति रवा॥२४५॥
ओराला सयलं वियक्खणाण सजणियमणपसाणंदा । जह अच्चब्भुयगुणाण्णमायण सवइ इमो त्ति ॥२४६॥
अह अत्थि कुसुमनयरे धणसिट्ठी सुट्ठुवावियपइट्ठो । मज्जा तस्स मणुज्जा लज्जासोहग्गगुणगेहं ॥२४४॥
अह ताण सुया नियदेहरूवलच्छीएँ छिन्नमाहप्पा । सुरसुंदरीण वि नव जोव्वणमोरालमणुपत्ता ॥२४८॥
जाणाण साळाए तस्स ठिया साहुणीओ पइदिवसं । वइरस्स गुणे सरउदुनिम्मले सथुणंति जहा ॥२४ ॥
एस अखंडियसीलो बहुस्सुओ एस गम पसमड्ढो । गमो य गुणनिहाणं ग्यसरिच्छो परो नत्थि ॥२५०॥
"द्वावेतौ पुरुषौ लोके परप्रत्ययकारकौ । स्त्रियः कामितकामिन्यो लोकः पूजितपूजकः ॥१॥"
इय वयणमणुसरंती सा दढमणुरागतप्परा जाया । वइरम्मि वइरदढमाणसम्मि पियरं भणइ एवं ॥२५१॥
जइ मे वइरो भत्ता होज्ज तो ह भयामि वीवाहं । अन्नह पजलियजलणोवमेहिं भोगेहिं नो कज्जं ॥२५२॥
उत्तमकूलसभूया उवेंति वरगा न इच्छई सा उ । साहंति साहुणीओ जहा न घइरो विवाहेइ ॥२५३॥
सा भणइ जइ न वीवाहमेस कुणए अहं पि पव्वज्जं । घेच्छामि निच्छओ तीएँ एस ठविओ नियमणम्मि ॥
भयवंपि वइरसामी पाडलिपुत्तं कमेण संपत्तो । तुहिणुज्जलतज्जसपसरसवणरंजियमणो राया ॥२५५॥
नियपरियणसंजुत्तो समागओ समुहो निभालेइ । फड्डगपड्डगरूवेण साहुणो नगरमभिइंते ॥२५६॥
तत्थोरालसरीरा बहवे पासइ मुणी मणुयनाहो । पुच्छइ किमेस भयवं इमो व ते बिंति न हु अन्नो ॥२५७॥
एवं पुप्फुल्लविलोयणेण रन्ना पुरस्स लोएण । दूरमुदिक्खिज्जंतो कइवयमुणिपरिगओ पच्छा ॥२५८॥
पत्तो ससमसारं महिमंडलमिलिअमउलिणा रण्णो । अभिवंदिओ समाणंदिओ य सप्पणयवयणेहिं ॥२५६॥
नयरुज्जाणम्मि ठिओ खीरासवलद्धिणा तओ तेण । पारद्धा धम्मकहा एवं समोहनिम्महणी ॥२६०॥
लद्धे माणुसजम्मे रम्मे निम्मलकलाइगुणकलिए । घडियव्वं मोक्खकए नरेण बहुबुद्धिणा धणियं ॥२६१॥
धम्मो अत्थो कामो जओ न परिणामसुंदरा एए । किंपागपागखललोयसंगविसभोयणसमाणा ॥२६२॥
जम्मि न संसारभयं जम्मि न मोक्खाभिलाससलेसो वि । इह धम्मो सो णेओऽविणाकओ जो जिणाणाए ॥
पावाणुबंधिणोच्चिय मायाइमहल्लसल्लदोसेण । एत्तो भोगा भुयगव्व भीसणा वसणसयहेऊ ॥२६४॥
जो पुण खमापहाणो परूविओ पुरिसपुंडरीएहिं । सो धम्मो मोक्खो च्चिय जमक्खओ तप्फलं मोक्खो ॥
पच्चक्खमेव अत्थो कामो य अणत्थहेउभावेण । दीसंति परिणमंता किमहियमिह भाणियव्वमओ ॥२६६॥
इय विवरीओ मोक्खो जमेत्थ नो मच्चुकेसरिकिसोरो । हिंडइ उद्दडमकडखंडियासेसजीवमिओ ॥२६७॥
जोव्वणवणदावानलजालामाला न इत्थ अत्थि जरा । नो दुद्धरो समुद्धरमयरद्धयसधरसरपसरो ॥२६८॥
नो लोभभुयगमसंगमो वि नो कोहमोहउच्छालो । तह नो अन्नकसाओ न विसाओ नो भयपिसाओ ॥२६९॥
वल्लहलोगवियोगो दुहमूलं जत्थ नत्थि तह रोगो । किं बहुणा जो दोसो सव्वो जत्थाकयपवेसो ॥२७०॥
लोयालोयविलोयणलोयणसमणाणदंसणालोया । साहीणाऽणोवमसोक्खसंगया हुंति जत्थ जिया ॥२७ ॥
जह खज्जोओ पज्जोयणाण तह जदभिलाससमेत्ताओ । भुवणब्भुयावि विभवा न किंचि तेणुत्तमो मोक्खो ॥
तह सणणाणाइकज्जसज्जा जओ पवज्जंति । तो तुब्भे एएसु गुणेसु सत्तीएँ वट्टेह ॥२७३॥
निच्चं तिकालचीवंदणेण सइविविहूपूयपुव्वेण । चेइयकज्जाण बहुविहाणभइनिउणकरणेण ॥२७४॥

तह उवदंस १५ निमतण १६ खद्धा १७ ययणे तहा १८ आडिसुणणे १९ ।
खद्धत्ति य २० तत्थगए २१ किं २२ तुम २३ तज्जाय २४ नोसुमणे २५ ॥२॥
नो सरसि २६ कह छित्ता २७ परिस भित्ता २८ अणुट्ठियाएँ कहे २९ ।
सथारपायघट्टण ३० चिट्ठु ३१ च्च ३२ समासणे आवि ३३ ॥३॥" इति ।

इन्द्रयाणि=करणानि श्रोत्रादीनि पञ्च, एतावङ्कौ वामगतिर्मीलितौ ५३३ इति सङ्ख्या यत्र तत्राऽशातनेन्द्रिये=वीरसंवत् ५३३ वर्षे "खमिओ" त्ति, खम्=अमरलोकं गतः=प्राप्तः । *

इत्थञ्च श्रीभद्रगुप्तसूरिरेकविंशति२१वर्षाणि गृहवासे, पञ्चचत्वारिंशद्४५वर्षाणि सामान्यव्रते, एकोनचत्वारिंशद्३९वर्षाणि युगप्रधानत्वे चेति सर्वायुश्च पञ्चोत्तरशतं १०५वर्षाणि परिभुज्य स्वर्गधामाऽलञ्चकार ।

अथ आर्यतोसलिपुत्रसूरिं भणन्नार्याधमाह-"वंदे" इत्यादि, "सिरितोसलिपुत्त-सायरिअ" त्ति, श्रिया=ज्ञानादिलक्ष्म्या युक्तस्तोसलिपुत्रः=तन्नामा गुरुः श्रीतोसलिपुत्र-स्तं श्रीतोसलिपुत्रमाचार्यं=सूरिं, किम्भूतम् ? "विज्जब्धिं" ति, विद्यानां=नानाविधशास्त्रादि-लक्षणानामब्धिः=समुद्रस्तं विद्याब्धि "वंदे हं" ति, अहं=ग्रन्थकृद् (मुनिवीरशेखरविजयः) वन्दे=नमस्कारं करोमि ॥७४-७५॥

अथ श्रीयुगप्रधानं तथा वालभवाचनाऽपेक्षया वाचनाचार्यमपि श्रीगुप्तसूरिं पथ्यागीति-पथ्यार्यापूर्वाधलक्षणया सार्धगाथया तथा पथ्यार्योत्तरार्धेन श्रीसमितसूरिमाख्यातुमिच्छुः पथ्यागीतिपथ्यार्यात्मकं श्लोकद्वयं वक्ति . . . .

जयउ सिरिगुत्तसूरी लोए सत्तरसमो जुगपहाणो ।
वीरा करिजलधिजुगेऽद्दे जम्मोऽस्स वयअग्गिवसुवेए ॥७६॥ (पच्छागीई)
स हवीअ जुगपहाणो लिगऽग्गिसरे दिवं गयऽद्दिसरे ।
हवउ मम मंतविज्जा सलो सिवदो समिअसूरी ॥७७॥ (पच्छाज्जा)

---

*पन्यासश्रीकल्याणविजयानामभिप्रायेण वलभीवाचनाश्रितेनाऽमुष्य वाचनाचार्यकाल उपलक्षणेन युगप्रधानकालश्च वीरसवत् ४९२ त प्रारभ्य ५३२ सवत्सर यावद्गणितस्तत श्रीभद्रगुप्तसूरेर्युगप्रधानत्वं वीरसवत् ४९३ वर्षे स्वर्गमनञ्च वीरसवत् ५३२ वर्षेऽभूत्

अत्र च श्रीआर्यरक्षितसूरिणा सह भद्रगुप्तसूरेर्निर्यामणकालस्य सङ्गतिमिच्छव. पन्यासश्रीकल्याण-विजया स्वगणनाऽभिप्रायेण श्रीआर्यरक्षितसूरेर्जन्म वीरसवत् ५०८ वर्षे प्रव्रज्या वीरसवत् ५३० वर्षे, तत स्वगुर्वन्तिक पठितेन सता श्रीआर्यरक्षितसूरिणा श्रीआर्यवज्रस्वामिनः समीपे गच्छता मध्ये वीरसवत् ५३२ वर्षे, श्रीभद्रगुप्तसूरिर्निर्यामित इति मन्यन्ते ।

साहम्मियवच्छल्लम्मि उज्जया उज्जया य सज्झाए । चरणकरणेसु य रया तित्थस्स पभावणाए य ॥३११॥
पत्तो पुरिय नामेण नयरमिह दक्खिणावहे तत्थ । अत्थि सुभिक्खं बहुगा य सावगा धणकणसमिद्धा ॥३१२॥
तव्वन्नियसड्ढाण अम्हच्चाण च पाडिसिद्धीए । वड्ढइ मल्लारूढेण निए निए चेइयघरम्मि ॥३१३॥
सव्वत्थ भिक्खुगाण सड्ढा इयरेहिं परिभविज्जंति । राया भिक्खुगभत्तो अहन्नया आयए सते ॥३१४॥
सवच्छरियम्मि निवो निवारणाकारगो कओ तेहिं । पुप्फाण पुरे सयले किल चेइयभुवणजोग्गाण ॥३१५॥
अच्चंतवाउलमणो जाओ सव्वो वि सावगो लोगो । ताहे सबालवुड्ढो उवट्ठिओ वइरसामिं सो ॥३१६॥
तुब्भेहिं सामि ! तित्थाहिवेहिं जइ पवयण लहू होइ । ता को अन्नो तम्मुन्नईएँ सपाडगो होज्जा ? ॥३१७॥
एव बहुप्पयार भणिओ तस्समयमेवमुप्पइओ । माहेसरिं वरपुरिं दाहिणकूलम्मि रेवाए ॥३१८॥
मालवमंडलमज्झे पत्तो तत्थ य हुयासणगिहम्मि । वतरमंदिरमत्थी मणोरमारामपरिकलिय ॥३१९॥
आमोयभरायड्ढियभमरसलझयजालमलियमज्झाण । पइवासरम्मि कुम्भो निप्पज्जइ तत्थ पुप्फाण ॥३२०॥
सड्ढीएँ असीईए सएण किल अ ढगाण जहसख । एम जहन्नो मज्झो पगिड्ढओ मासिओ कु भो ॥३२१॥
दट्ठूण सभतो तडिओ मालागरो पइवयसो । अब्भुट्ठिओ भणइ भणह केणइ तुम्ह अज्जोत्ति ॥३२२॥
भणइ इमेहिं कज्ज पुप्फेहिं अणुग्गहो मह एसो । तडिएण भणित्ता पणयसारमाढोइयाणित्ति ॥३२३॥
तुब्भे जहापवत्ता गु फेह हुयासधूमसगेण । फासुययायाणि हवतु तायघेत्थ पडिनियत्तो ॥३२४॥
चुल्लहिमवनपउमद्दहम्मि पत्तो सिरीएँ पासम्मि । तस्समय देवच्चणनिमित्तमेईएँ सियपउम ॥३२५॥
छिण्ण सहस्सपत्त गधुद्धायमागय तय दट्ठु । वदित्ता तीएँ निमतिओ इमो तेण पउमेण ॥३२६॥
घेत्तु त जलणघर समागओ तत्थ दिव्वसिंदाण । ऊसियझयचिंघसहस्ससकुल किंकिणीरम्म ॥३२७॥
विहिय विमाणमतो निक्खित्तसुयंधिपुप्फसभार । जभगसुरपरियरिओ दिव्वेण गेयसद्देण ॥३२८॥
पूरेंतो गयणयल निओयरिं ठवियउद्धमहपउमो । सपट्ठिओ स भयव खणेण पत्तो पुरीदेसे ॥३२९॥
तो तव्विहकोऊहलमवलोइय लोयणाण सुहजणय । सजायसभमा भिक्खुगाण सड्ढा भणतेव ॥३३०॥
अम्हाण पाडिहेर सुरेहिं उवणीयमायरेण तओ । तूररवबहिरियदिसा अग्घ घेत्तु पुराहिंतो ॥३३१॥
जा निग्गया पडिच्छति ताव तेसिं विहारमइसरिय । अरहतघर पत्तो देवेहिं कओ महो तत्थ ॥३३२॥
तह सणणा[ओ] जाओ बहुबहुम णो जणो पवयणम्मि । रायावि समाणदियचित्तो सुस्सावगो जाओ ॥३३३॥
इय पण्णया बुद्धी वइरसामिणो णाणुवत्तिया माया । ज मा होज्जा सघो अवमाणपय समाहिंतो ॥३३४॥
वेउव्वियलद्धीए लाभोऽवतीएँ जो समुप्पण्णो । पाडलिपुरे मा होज्ज परिभवा विक्किया विहिया ॥३३५॥
पुरियापुरीएँ तित्थुब्भावणमच्चब्भुय कय ज च । एत्तोच्चिय परतित्थियमानमिलाणी य सजाया ॥३३६॥
तथा । तोसलिपुत्तायरियसयासे जह रक्खिओ दसपुरम्मि । पव्वइओ मिरिसाले पुरम्मि जइवइरमणुपत्तो ॥
पढिया जह नव पुव्वा भिन्नो वासयठिएण तेण जओ । एव कहा कहिज्जइ सत्थेसु पुराणपुरिसेहिं ॥३३८॥
त किंपि अन्नन्नमम सोहग्ग आसि वइरसामिस्स । मरइ मरतेण सम जो वुत्थो एगराइपि ॥३३९॥
दसमे पुव्वम्मि जहा जविएसु य भग्गगहणससमत्थो । पुच्छिज्जतो केवइयमत्थि अग्गे भणइ वइरो ।
बिंदुसमाणमहीय समुद्दसरिस समत्थि अणहिगय । भुज्जो भुज्जो पुच्छउ एम पहिओ गुरुसयासे ॥३४१॥" इति।

तथाऽत ऊर्ध्वं चरितमभिधानराजेन्द्रकोशसङ्गृहीतावश्यककथायामित्थम्–

'वज्रस्वामी तु याति स्म, विहरन् दक्षिणापथम् । श्लेष्मार्त्याऽऽनायिता शुण्ठीमेकदा श्रवणे न्यधत् ।११८॥
मुखे क्षेप्स्यामि भुक्त्वेति, भोजनान्ते स्मृता न सा । विकाले च प्रतिक्रान्तौ मुखपोतीहताऽपतत् ॥११९॥
उपयोगादथ ज्ञात-मा 'प्रमादोऽन्तिके मृति । प्रमादे सयमो नाऽस्ति युज्यतेऽनशन तत ॥१२०॥

ततश्च स्वविनाशाय तत्प्रयुक्तासु विद्यासु स्वविद्याभिर्विजितासु तन्मुक्तां रासभीविद्यां रजोहरणेन विजित्य महोत्सवपूर्वकमागत्य गुरुभ्यः सर्वव्यतिकरं व्यज्ञपयत् । ततो गुरुभिरुक्तम् ,–'वत्स ! ... कृतम् , किन्तु जीवा-ऽजीव नोजीवरूपराशित्रयस्थापनमुत्सूत्रमतस्तत्र गत्वा मिथ्यादुष्कृतं देहि' । तेनोत्पन्नाऽभिमानेन न तथा कृतम् , ततो गुरुभिस्तेन सह तस्यामेव सभायां षण्मासीं यावद्वादं विधायाऽन्ते कुत्रिकापणान्नोजीवे याचिते तस्याऽप्राप्तौ चतुश्चत्वारिंशदधिकशतेन पृच्छानां निगृहीतोऽपि स दुराग्रहं न मुक्तवान् , ततः कुपितगुरुभिः खेलमात्र-भस्मप्रक्षेपेण शिरोमुण्डनपूर्वकं सङ्घबाह्यश्चक्रे । ततश्च तेनाऽभिनिवेशात्स्वमतिकल्पितान् द्रव्यादि-षट्पदार्थानाश्रित्य वैशेषिकं दर्शनं प्रणीतम् । ततो द्रव्य गुण-कर्म-सामान्य-विशेष-समवाय-लक्षणषट्पदार्थप्ररूपकत्वाद् उलूकगोत्रसम्भूतत्वाच्चाऽस्य षडुलूक इत्यपराख्याऽभूत् ।

अयञ्च वीरात् ५४४ वर्षेऽभूत् । तथा चोक्तं विशेषावश्यके–

"पञ्च सया चोयाला तइआ सिद्धिं गयस्स वीरस्स । पुरिमंतरजियाए तेरासियदिट्ठिउप्पन्ना ॥२४५१॥
पुरिमंतरजिभुयगहबलसिरिसिरिगुत्तरोहगुत्तो य । परिवायपोट्टसाले घोसणपडिसेहणा वाए ॥२४५२॥"

इत्यादि । विशेषार्थं ज्ञातुमिच्छुभिर्विशेषावश्यकसटीकगाथाः २४५१ त आरभ्य २५०८ पर्यन्ता द्रष्टव्याः ।

अयञ्च गुप्तसूरिशिष्यो विशेषावश्यकोत्तराध्ययनवृत्तिस्थानाङ्गवृत्त्याद्यभिप्रायेण प्रोक्तः, किन्तु कल्पसूत्रे आर्यश्रीमहागिरेः शिष्यो भणितः । तथा च तद्ग्रन्थः–

"थेरस्स णं अज्जमहागिरिस्स एलावच्चसगुत्तस्स इमे अट्ठ थेरा अन्तेवासी अहावच्चा अभिण्णाया हुत्था तं जहा-थेरे 'उत्तरे' १ थेरे 'बलिस्सहे' २, थेरे 'धणड्ढे' ३ थेरे 'सिरिमद्दे' ४, थेरे 'कोडिन्ने' ५ थेरे 'नागे' ६ थेरे 'नागमित्ते' ७,थेरे छडुलूए' 'रोहगुत्ते' कोसियगुत्ते णं ८ ॥थेरेहिंतो णं छडुलूएहिंतो रोहगुत्तेहिंतो तत्थ णं तेरासी निग्गया" इति । तदत्र तत्त्वं बहुश्रुता विदन्ति ।

उक्तं च श्री मेरुतुङ्गाचार्यैरपि विचारश्रेणौ—

"ततो यदि षडुलूको रोहगुप्त आर्यमहागिरिशिष्यः, तत श्रीवीरात ५४४ वर्षाणि कथं स्युः ? । यत –आर्यमहागिरिः स्थूलभद्रशिष्य स चोक्तयुक्त्या वीरमोक्षात २४५ वर्षान्तर्जातः । तच्छिष्यश्चेत षडुलूक तत- ५४४ वर्षे कथमिति सन्देह , ततो बहुश्रुता प्रमाणम्' इति ।

अथोत्तरार्धेन श्रीसमितसूरिं प्रकटयति-''हवउ'' इत्यादि,''समिअसूरी'' त्ति समितसूरिः= समितनामाऽऽचार्यः श्रीवज्रस्वामिमातुल आर्यसिंहगिरिशिष्यो ब्रह्मद्वीपशाखामूलः ''मम''त्ति, मे ''सिवदो'' त्ति, शिवदः=सिद्धेर्दायकः ''हवउ'' त्ति, भवतु इत्यन्वयः । कीदृशः ? । 'मंत-विज्जाकुसलो'' त्ति, मन्त्रः=पुरुषदेवताऽधिष्ठितोऽसाधनो वाऽक्षररचनाविशेषः पाठमात्र-सिद्धः, विद्या=स्त्रीरूपदेवताधिष्ठिता ससाधना वाऽक्षरपद्धतिः, मन्त्रश्च विद्या च मन्त्रविद्ये

हारस्तु बहुव्रीहिसमासस्याऽऽश्रयकरणेन ज्ञेयः । तद्यथा–न विद्यते चरमो=ऽन्तिमो यस्मात् सोऽचरम इति विग्रहस्ततो न कश्चिद्विरोध इति । तथा चोक्त चन्द्रालोके–

श्लेषादिभूर्विरोधश्चेद्विरोधाभासता मता । अत्यन्तकारिणाऽनेन जगदेतत्प्रकाश्यते ॥७४॥" इति ।

अयश्च हैमकाव्यानुशासनाऽपेक्षया विरोधाऽभिध एवाऽलङ्कारः, तथा चोक्तम्—
"अर्थानां विरोधाभासो विरोध" (हे० का० अ० सू० २१) इति । यतस्ते वैचित्र्यमात्रभेदेनाऽलङ्कारभेदं नेच्छन्ति, अलङ्कारानन्त्यप्रसङ्गभयात्, अत एव विभावना विशेषोक्त्य-ऽसंगति-विषमा-ऽधिक-व्याघातनाम्न्योऽलङ्कृतयोऽप्यत्रैवाऽन्तर्भूताः स्वीक्रियन्ते, न पुनस्तासां पृथग्गणनं भण्यते ।

अनेन च श्रीआर्यमहागिरित आरभ्यैतत्पर्यन्तानां दशानां युगप्रधानानां दशपूर्वित्वं सूचितम् । न चार्यमहागिरेः प्रागपि चतुर्दशपूर्विणामपि सम्भवेन दशपूर्विणामपि सद्भावात्, कथमार्यमहागिरित आरभ्येत्युक्तमिति वाच्यम्, तदानीं चतुर्दशपूर्वविदां सद्भावेन तेषां प्राधान्यत्वे सति दशपूर्वविदां गौणत्वेनाऽविवक्षणात् । तथा श्रीवज्रस्वामिनः पश्चात्कस्याऽपि दशपूर्वित्वस्याऽभावात् श्रीआर्यमहागिर्यादयः श्रीवज्रस्वामिपर्यन्ता दशपूर्विणो ज्ञेयाः ।

तथा चोक्तमभिधानचिन्तामणौ–"महागिरिसुहस्त्याद्या वज्रान्ता दशपूर्विण ॥३४॥" इति ।

ते च श्रीआर्यमहागिरि-श्रीआर्यसुहस्ति-श्रीगुणसुन्दरसूरि- श्रीश्यामाचार्य -श्रीस्कन्दिलाचार्य -श्रीरेवतीमित्रसूरि -श्रीधर्मसूरि श्रीभद्रगुप्तसूरि-श्रीगुप्तसूरि--श्रीवज्रस्वामिरूपा दश युगप्रधाना बोद्धव्याः ।

न्यगादि च कल्पसूत्रस्य सुबोधिकाख्यायां वृत्तौ—

"महागिरि सुहस्ती च सूरि श्रीगुणसुन्दर । श्यामाचार्य स्कन्दिलाचार्यो रेवतीमित्रसूरिराट् ॥१॥
श्रीधर्मो भद्रगुप्तश्च श्रीगुप्तो वज्रसूरिराट् । युगप्रधानप्रवरा दशैते दशपूर्विण ॥२॥" इति ।

अथ श्रीवज्रस्वामिनः कालकरणाऽनन्तरं विच्छेदगतानि वस्तूनि निदर्शयन्नाह–"तो" इत्यादि, "तो" त्ति तत=श्रीवज्रस्वामिनः स्वर्गमनस्य पश्चात् 'तुरिअआगिइसंघयण' दसमपुव्वाणि' त्ति, 'तूर्य" इति प्रथमपदं द्वाभ्यामभिसम्बध्यते ततश्च तूर्याकृतिः=चतुर्थसंस्थानं-कुब्जाख्यम्, तूर्यसंहननमर्धनाराचसञ्ज्ञकम्, दशमपूर्वं विद्याप्रवादाऽभिधञ्चेति त्रीणि वस्तूनि "वुच्छिन्नानि" त्ति, व्युच्छिन्नानि=विच्छेदं प्राप्तानि ।

अधुना श्रीत्रिशलाङ्गरुहो जिनेशितुस्त्रयोदशस्य पट्टधारकस्य तथा युगप्रधानपरम्परायां वलभीवाचनानुगतस्थविरपरम्परायाञ्च श्रीगुप्तसूरेरन्वष्टादशस्य युगप्रधानस्य वाचनाचार्यस्य च श्रीवज्रस्वामिनः श्लोकषट्केन विविवरीषयाऽऽदौ तावच्चित्रलेखां व्याकरोति—

सिअयरो भविकुमुदविकासे स जयेउ वइरविहू ।
वइरसाहा जम्हा पहवीअ जहिसिणेत्ता विहू ।
जं ससुअमालिगिउमुल्लसीअ साहुरयणेहि ।
जुओ सिहगिरिगुरुपयऽद्धी सिरिवेलाकरेहि ॥७८॥ (चित्तलेहा)

(प्रे०) "सिअयरो" इत्यादि, "स" त्ति, स=विश्वविश्वविश्रुतः "वइरविहू" त्ति, वज्र-विधुः=वज्रस्वामी आर्यसिंहगिरिसूरिशिष्यो गौतमगोत्रो धनगिरिसुतः सुनन्दाभूस्तुम्बवनसंनिवेशवासी समितसूरिभागिनेयो जातिस्मृतिभाक् 'जयउ" त्ति, जयतु किम्भूतः ? । "सिअयरो भविकुमुदविकासे" त्ति, भविनः=सिद्धिगतियोग्यास्त एव कुमुदानि=चन्द्रविकासिकमलानि भविकुमुदानि तेषां विकाशे=विकसितकरणे भविकुमुदविकाशे. सिताः=श्वेताः कराः=रश्मयो यस्य स सितकरः=चन्द्रः। "जम्हा" त्ति, यस्मात्=श्रीवज्रस्वामिनः "वइरसाहा" त्ति, वज्रशाखा वज्र-नाम्नी शाखा "पहवीअ" त्ति, प्राभूत्=प्रकटिता । एतावता वज्रशाखायाः प्रवर्तकः । कथमिवेत्याह-"जह" त्ति, यथा 'इसिणेत्ता' त्ति, ऋषेः=अत्रिनाम्नो मुनेर्नेत्रात्=नयनात् "विहू" त्ति, विधुः=चन्द्रः प्रादुरभवत् । "जं" ति, यं=सितकरं वज्रस्वामिनं कीदृशम् ? 'ससुअ' स्वसुतं=निजतनयं यतो हि लौकिकशास्त्रे लक्ष्मी-चन्द्रौ अब्धिजौ उक्तौ । वज्रस्वामिपक्षे च सिंहगिरिशिष्यत्वेन तत्पट्टाब्धितनयत्व भाव्यम् । "आलिंगिउ" ति, आलिङ्गितुम्=आश्लेषितुम् "साहुरयणेहिं' साधवो=मुनय एव रत्नानि=साधुरत्नानि तैः=साधुरत्नैः "जुओ ' युतः=सहितः ' सिहगिरिगुरुपयद्धी" त्ति, सिंहगिरिगुरोः पदमेव=पट्ट एवाऽब्धिः=सागरः सिहगिरिगुरुपयाब्धिः "सिरिवेलाकरेहि' ति, श्री=सम्यग्ज्ञानादिगुणलक्ष्मीः सा एव वेला=ऊर्मिः=वीचिः श्रीवेला, सा एव करौ=हस्तौ श्रीवेलाकरौ ताभ्यां=*श्रीवेलाकराभ्यां "उल्लसीअ" त्ति, उदलसत्

*"श्री वेलाकराभ्याम्" इत्यत्र रूपितरूपणाद्रूपकरूपकनामालङ्कारः ।
तथा चोक्तं धारानरेश्वरभोजराजविरचितसरस्वतीकण्ठाभरणे—रूपकरूपक यथा—
'मुखपङ्कजरङ्गेऽस्मिन् , भ्रूलता नर्तकी तव । लीलानाट्यामृत दृष्टौ, सखि यूना निषिञ्चति ॥३२॥'

तत्र कालिकश्रुतं चरणकरणानुयोगः, ऋषिभाषितानि उत्तराध्ययनादीनि धर्मकथानुयोगः, सूर्यप्रज्ञप्त्यादिर्गणितानुयोगः, दृष्टिवादस्तु द्रव्यानुयोगः । उक्तञ्च—

"कालियसुअ च इसिभासियाइ तइओ य सूरपन्नत्ती । सव्वो य दिट्ठिवाओ चउत्थओ होइ अणुओगो ॥१॥ इति ।

तथा च श्रीधर्मरत्नप्रकरणवृत्तावपि निगदितं श्रीदेवेन्द्रसूरिपादैः—

"चरणकरणाणुओगे कालियसुयछेअसुत्तमाईणि । धम्मकहा अणुओगे इसिभासियाइसुय ।।३१॥
रविससिपन्नत्तीओ करेइ गणियाणुओगविसयाओ । सव्वो वि दिट्ठिवाओ ठविओ दव्वाणुओगम्मि॥३२ ।"
इति ।

इयञ्च चतुर्विधानुयोगस्थापनरूपचतुर्थ्यागमवाचना पाटलीपुत्रा ऽवन्ती-कुमरगिरिभूत-वाचनात्रयाऽपेक्षया विज्ञेया ॥८५॥

अथ श्रीआर्यरक्षितसूरेर्जन्मादिपर्यायाणामब्दान् पथ्यार्यया-ऽऽह—

वीरा सवसमखेऽब्दे जम्मोऽस्स वयं च वेअवेअसरे ।
थंभिहसरे जुगवरो स गओ दिवमस्सणिहिभूए ॥८६॥ (पच्छाज्ञा)

(प्रे०) "**वीरा**" इत्यादि, "**ऽस्स**" त्ति, अस्य=श्रीआर्यरक्षितसूरेः "**जम्मो**" त्ति, जन्म=उत्पत्तिः '**वीरा**' त्ति, वीरात्=ज्ञातनन्दनशिवगमनसमयात् "**सवसमखे**" त्ति, श्रवौ श्रवसी वा=कर्णौ द्वौ, शमौ=हस्तौ द्वौ, खानि=इन्द्रियाणि पञ्च, एतेऽङ्का वामगतिस्थापिता ५२२ इति सङ्ख्या यत्र तत्र श्रवशमखे श्रवःशमखे वा "ऽब्दे" त्ति, अब्दे=वर्षे वीर॰ संवत् ५२२ वर्षेऽभूत् । "वेअवेअसरे" त्ति, वेदाः= ऋग्वेद-यजुर्वेद-सामवेदा-ऽथर्ववेदलक्षणाश्चत्वारः, वेदाः पूर्ववच्चत्वारः, शराः पञ्च, एतेऽङ्का यत्र तत्र वेदवेदशरे वामगतिगदिते वीरसंवत् ५४४ वर्षे "**वयं**" ति, व्रतं=संयमादानं श्रीआर्यरक्षितसूरेरजायत । अयञ्च श्रीदुष्षमासङ्घस्तवयन्त्रकाद्यनुसारेण व्याख्यातः । तत्र हि सर्वायुः पञ्चसप्तति ७५ वर्षाणि, गृहस्थपर्यायश्च द्वाविंशति२२वर्षाणि भणितोऽस्ति । तथा पट्टावल्यादिषु वीरसंवत् ५९७ वर्षे स्वर्गभाक्त्वं प्रदर्शितमस्ति किन्तु आर्यरक्षितेन वीरसवत् ५३३वर्षे श्रीभद्रगुप्तसूरिर्निर्यामित इति पट्टावल्यादिषु दृश्यते । ततश्च विरोधो भवति तत्परिहारायैकादशवर्षमितं गृहस्थपर्यायं केचिन्मन्यन्ते तेषामभिप्रायेण "वेअवेअसरे" इति पदस्य व्याख्यैवं कर्तव्या । तद्यथा—वेदाः=स्त्रीपुरुषनपुंसकलक्षणास्त्रयः, यद्वा ऋग्युजुःसामरूपास्त्रयः, अथर्ववेदो हि न पृथग्गण्यते, एभ्य एव तस्योद्धृतत्वात् । वेदा=अनन्तरोक्तवत्त्रयः, शराः पञ्च, एतेऽङ्का यत्र तत्र वेदवेदशरे=वीरसंवत् ५३३ वर्षे चतुर्दशविद्यापारङ्गतस्यार्यरक्षितस्यैकादशवार्षिकस्य "वय" ति, [illegible]=दीक्षाऽभूत् स च गुरुपार्श्वे यच्छ्रुतं विद्यते तदचिरादपठत् । ततोऽपि श्रुतप[illegible]र्थं गुरुणा दीक्षावर्षे

येन स स्मृतपूर्वजन्मा=जातिस्मरणज्ञानेन विदितप्राग्भव इत्यर्थः, 'छम्मासिगो' त्ति षण्मासान् भूतः "षण्मासाद् य-यणिकण्"(सि० ६-४-११५) इत्यनेनेकण्प्रत्यये षाण्मासिकः=षण्मासवया अपि 'हिंडोलगत्थो वि" त्ति, हिण्डोलके=पालनके=बालानामन्दोलनस्थानकविशेषे तिष्ठतीति स्थः हिण्डोलकस्थोऽपि=पालनकवर्त्यपीत्यर्थः, 'एगादसंगि" त्ति, समाहृतान्येकादशाङ्गानि= आचाराङ्ग-सूत्रकृदङ्ग-स्थानाङ्ग समवायाङ्ग-व्याख्याप्रज्ञप्त्यङ्ग-ज्ञाताधर्मकथाङ्गो-पासकदशाङ्गा-ऽन्त-कृद्दशाङ्गा-ऽनुत्तरोपपातिकदशाङ्ग-प्रश्नव्याकरणाङ्ग--विपाकश्रुताङ्गलक्षणानि -एकादशाङ्गी ताम्= एकादशाङ्गीं "पढीअ" त्ति, अपठत्=अध्यैष्ट=कण्ठस्थमकरोदिति यावत् । किम्भूतः ? "बालो वि अबालतेजो" त्ति बालोऽपि=शिशुरपि अबालतेजाः=अबालदीप्यमान=अत्यन्ततेजस्वीत्यर्थः, "महापुमाणं" ति, महापुंसां=महात्मनां प्रशस्तवीर्यभाजां 'दुक्कर' ति दुष्करं=कठिनं "किं" ति, किं प्रश्ने "अत्थि" त्ति अस्ति, काक्वा उत्तमजनानां न किमपि दुष्करं दुर्लभं वाऽस्ति।

अत्र अर्थान्तरन्यासालङ्कृतिः—महापुरुषसम्बन्धिसर्वकार्यसुकरताप्रतिपादेन सामान्येन बालस्याऽपि वज्रस्वामिनः एकादशाङ्गी नरूपस्य विशेषार्थस्य समर्थनात् ।

तथा चोक्तं चन्द्रालोके—"भवेदर्थान्तरन्यासोऽनुषक्तार्थान्तराभिधा ।" इति ।

वाग्भटालङ्कारे चतुर्थपरिच्छेदेऽपि—

"उक्तसिद्धयर्थमन्यार्थन्यासो व्य प्तिपुर सर । कथ्यतेऽर्थान्तरन्यासः श्लिष्टोऽश्लिष्टश्च स द्विधा ॥९२॥" इति ।

तथा हैम व्यानुशासनेऽपि-'विशेषस्य सामान्येन साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां समर्थनमर्थान्तर-न्यास."॥ इति । (अ.६ सू.१९) ॥७९॥

पुनरपि वज्रस्वामिसत्कामुपजातिं प्रकटयति ....

अक्खोहिओ रायसहाअ माउप्पलोहणेहि मुणिसत्तमो जो ।
परिक्खिउं जस्स सुरेण दत्ता वेउव्वलद्धी णहगामिविज्जा॥८०॥(उवजाई)

(प्रे०) "अक्खोहिओ" इत्यादि, "जो" त्ति, यः=श्रीवज्रस्वामी "रायसहाअ" त्ति, राजसभायां=नृपपर्षदि "माउप्पलोहणेहिं" ति, मातुः=सुनन्दाख्याया निजजनन्याः प्रलोभनैः=विविधक्रीडनक-भक्ष्यभोज्यप्रमुखरूपैः "अक्खोहिओ" त्ति, अक्षोभितः=त्रिवार्षि-कोऽप्यसौ मनश्चञ्चलतारहितोऽभूत्, किम्भूतः ? 'मुणिसत्तमो" त्ति, मुनिषु=ऋषिजनेषु सत्तमः= श्रेष्ठो=मुनिसत्तमः=यतिवृषभः=साधुपुङ्गवः, "जस्स" त्ति, यस्मै=श्रीवज्रस्वामिने "परिक्खिउ" ति, परीक्ष्य=जलवृष्टयादिनैपणादिसत्कां परीक्षां कृत्वा 'सुरेण" त्ति, सुरेण=पूर्वभवमित्रेण

प्रधानपर्याये चेति सर्वायुश्च पञ्चसप्तति७५वर्षाणि सपूर्य त्रिदिवं जगाम ।

मताऽन्तरेण पुनरेकादश११वर्षाणि गृहे, एकपञ्चाशद्५१वर्षाणि व्रते, त्रयोदश १३वर्षाणि युगप्रधाने चेति सर्वायुश्च पञ्चसप्तति७५वर्षाण्यनुभूय स्वर्गं ययौ ।

अपरेषां मतेन तु द्वाविंशति२२वर्षाणि गृहित्वे, षष्टि६०वर्षाणि संयमे, त्रयोदश १३ वर्षाणि युगप्रधानत्वे चेति सर्वायुश्च पञ्चनवति९५ वर्षाणि परिपाल्योर्ध्वलोकमलञ्चकार ।

तथा चाऽऽर्यरक्षितसूरेश्चरित्रं विस्तरेणेत्थं दर्शितं विद्यतेऽभिधानराजेन्द्र-कोशे प्रथमभागे---

उत्पन्नो रक्षितस्तत्र शास्त्रं यावद्भूतिपतु । तत्रैवाऽधीतवांस्तावदथागात् पाटलीपुरम् ॥७६॥
चतुर्दशापि तत्रासौ, विद्यास्थानान्यधीतवान् । अथागच्छद्दशपुरं राजाऽगात्तस्य सम्मुखम् ॥७७॥
उत्तम्भितपताकेऽत्र, ब्रह्मेति ब्राह्मणैः स्तुतः । अधिरूढः करिस्कन्धे प्रविवेशोत्सवेन सः ॥७८॥
स्वगृहे बाह्यशालायां, स्थितो लोकार्थमग्रहीत् । पुरोगमः सूनुरिति, न वा कैः कैरपूज्यत ? ॥७९॥
सुवर्णरत्नवस्त्राद्यैस्तद्गृहं प्राभृतैर्भृतम् । अथाऽन्तर्भवनं गत्वा, जननीमभ्यवादयत् ॥८०॥
वत्स ! स्वागतमित्युक्त्वा, मध्यस्थेव स्थिता प्रसूः । सोऽवदत् किं न ते मातस्तुष्टिर्मद्विद्ययाऽभवत् ॥८१॥
सत्त्वानां वधकृद्वत्साऽधीतं बह्वपि पाप्मने । तुष्याम्यहं दृष्टिवादं पठित्वा चेत्त्वमागमः ॥८२॥
स दध्यौ तमधीत्याम्बां तोषये किं ममापरैः ? दृष्टिवादस्य नामाऽपि, तावदाह्लादयत्यलम् ॥८३॥
अस्य क्वाऽध्यापको मातः !, साऽऽख्यदिक्षुगृहे निजे । सन्ति तोसलिपुत्राख्या, आचार्याः श्वेतवाससः ॥८४॥
तं प्रगेऽध्येतुमारप्से मातर्मैवाधृतिं कृथाः । अथोत्थाय प्रभातेऽपि, नत्वाऽम्बां प्रस्थितः सुधीः ॥८५॥
रक्षितं द्रष्टुमागच्छत्, ग्रामात्प्रियसुहृत्पितुः । नवेक्षुयष्टिकाः सार्द्धा बिभ्रत्प्राभृतहेतवे ॥८६॥
पुरस्तं प्रेक्ष्य सोऽप्राक्षीत्, कस्त्वं भोः ! रक्षितोऽस्म्यहम् । तमथालिङ्ग्य सस्नेहमूचे त्वां द्रष्टुमागमम् ॥८७॥
सोऽवदद्याम्यहं कार्यायायास्त्वं मद्गृहे पुनः । रक्षितं प्रेक्षतादौ मामिति मातुर्निवेदये ॥८८॥
तेन तत्कथितं गत्वा माता दध्याविदं ततः । नवपूर्वाणि सार्द्धानि मत्पुत्रोऽध्येष्यते स्फुटम् ॥८९॥
सोऽपि दध्यौ नवाऽध्यायान् शकलं दशमस्य तु । अध्येष्ये दृष्टिवादस्य, ज्ञायते शकुनादतः ॥९०॥
ततः सेक्षुगृहे यातो, दध्यौ यामि किमज्ञवत् ? । एतद्भक्तेन केनाऽपि समं गत्वा नमामि तान् ॥९१॥
इति यावद्बहिः सोऽस्थात् तावदागादुपाश्रयम् । ढड्डरश्रावको गाढं व्यधान्नैषेधिकीत्रयम् ॥९२॥
ईर्यादिवन्दनं सर्वं, स चकार खरस्वरम् । अनुगस्तस्य तत्सर्वं, मेधावी सोऽपि निर्ममे ॥९३॥
श्राद्धेनाऽवन्दि तेनेति, ज्ञातो नव्यः स सूरिभिः । पृष्टोऽथ भोः ? कुतो धर्मा-ऽऽप्तिस्ते सोऽ(तो-ऽ)ब्रवीदिति ॥
साधुभिः कथितं पूज्याः ! रक्षितः श्राविकासुतः । ह्यः प्रवेशोऽभवद्यस्य, विमर्देन महीयसा ॥९५॥
आचार्याः स्माहुरस्माकं, दीक्षयाऽधीयते हि सः । परिपाट्या च सोऽवादी-दस्त्वेवं, नाहमुत्सुकः ॥९६॥
किं त्वत्र स्यान्न मे पूज्याः !, प्रव्रज्या यन्नृपादयः । बलान्मां मोचयेयुस्तां, यामो देशान्तरं ततः ॥९७॥
अथाऽऽख्यद्रक्षितस्तेषां, जनन्या प्रेषितो प्रभो ! । युष्माकं संनिधौ दृष्टिवादमध्येतुमागमम् ॥९८॥
सोऽदीक्ष्यत तथा कृत्वा, पाठ्याऽसौ शिष्यचौरिका । तेनाऽथैकादशाङ्गानि पठितान्यचिरादपि ॥९९॥
दृष्टिवादो गुरोः पार्श्वे, योऽभूत्तमपि सोऽपठत् । सोऽथाऽध्येतुं दशपूर्वी वज्रस्वाम्यन्तिकेऽचलत् ॥१००॥
याते तेनाऽन्तराले च, श्रीभद्रगुप्तसूरयः । अवन्त्यां वन्दितास्तैः स धन्य इत्युपबृंहितः ॥१०१॥

येन स स्मृतपूर्वजन्मा=जातिस्मरणज्ञानेन विदितप्राग्भव इत्यर्थः, 'छम्मासिगो' त्ति षण्मासान् भूतः "षण्मासाद् य-यणिकण्"(सि० ६-४-११५) इत्यनेनेकण्प्रत्यये षाण्मासिकः=षण्मासवया अपि 'हिंडोलगत्थो वि'' त्ति, हिण्डोलके=पालनके=बालानामन्दोलनस्थानकविशेषे तिष्ठतीति स्थः हिण्डोलकस्थोऽपि=पालनकवर्त्यपीत्यर्थः, 'एगादसंगिं'' त्ति, समाहृतान्येकादशाङ्गानि= आचाराङ्ग-सूत्रकृदङ्ग-स्थानाङ्ग समवायाङ्ग-व्याख्याप्रज्ञप्त्यङ्ग-ज्ञाताधर्मकथाङ्गो-पासकदशाङ्गा-ऽन्त-कृद्दशाङ्गा-ऽनुत्तरोपपातिकदशाङ्ग-प्रश्नव्याकरणाङ्ग--विपाकश्रुताङ्गलक्षणानि -एकादशाङ्गी ताम्= एकादशाङ्गीं "पढीअ" त्ति, अपठत्=अध्यैष्ट=कण्ठस्थमकरोदिति यावत् । किम्भूतः ? "बालो चि अबालतेजो" त्ति बालोऽपि=शिशुरपि अबालतेजाः=अबालदीप्तमान्=अत्यन्ततेजस्वीत्यर्थः, "महापुमाणं" ति, महापुंसां=महात्मनां प्रशस्तवीर्यभाजां 'दुक्कर' ति दुष्करं=कठिनं "किं" ति, किं प्रश्ने "अत्थि" त्ति अस्ति, का उत्तमजनानां न किमपि दुष्करं दुर्लभं वाऽस्ति।

अत्र अर्थान्तरन्यासालङ्कृतिः—महापुरुषसम्बन्धिसर्वकार्यसुकरताप्रतिपादेन सामान्येन बाल-स्याऽपि वज्रस्वामिनः एकादशाङ्गीपठनरूपस्य विशेषार्थस्य समर्थनात् ।

तथा चोक्तं चन्द्रालोके—"भवेदर्थान्तरन्यासोऽनुषक्तार्थान्तराभिधा ।" इति ।

वाग्भटालङ्कारे चतुर्थपरिच्छेदेऽपि—

"उक्तसिद्धयर्थमन्यार्थन्यासो व्याप्तिपुरःसरः । कथ्यतेऽर्थान्तरन्यासः श्लिष्टोऽश्लिष्टश्च स द्विधा ॥१२॥" इति ।

तथा हैम काव्यानुशासनेऽपि—'विशेषस्य सामान्येन साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां समर्थनमर्थान्तर-न्यासः" ॥ इति । (अ.६ सू.१९) ॥७६॥

पुनरपि वज्रस्वामिसत्कामुपजातिं प्रकटयति ....

अक्खोहिओ रायसहाअ माउप्पलोहणेहिं मुणिसत्तमो जो ।
परिक्खिउं जस्स सुरेण दत्ता वेउव्वलद्धी णहगामिविज्जा॥८०॥(उवजाई)

(प्रे०) "अक्खोहिओ" इत्यादि, "जो" त्ति, यः=श्रीवज्रस्वामी "रायसहाअ" त्ति, राजसभायां=नृपपर्षदि "माउप्पलोहणेहिं" ति, मातुः=सुनन्दाख्याया निजजनन्याः प्रलोभनैः=विविधक्रीडनक-भक्ष्यभोज्यप्रमुखरूपैः "अक्खोहिओ" त्ति, अक्षोभितः=त्रिवार्षि-कोऽप्यसौ मनश्चञ्चलतारहितोऽभूत्, किम्भूतः ? 'मुणिसत्तमो"त्ति,मुनिषु=ऋषिजनेषु सत्तमः= श्रेष्ठो=मुनिसत्तमः=यतिवृषभः=साधुपुङ्गवः, "जस्स"त्ति,यस्मै=श्रीवज्रस्वामिने "परिक्खिउ" ति, परीक्ष्य=जलवृष्टयादिनैषणादिसत्कां परीक्षां कृत्वा 'सुरेण" त्ति, सुरेण=पूर्वभवमित्रेण

कुटुम्बमिति साधूना लाभ स प्रथम ददौ। आनीयादात्स्वयं पश्चात् सखण्डाज्य सपायसम् ॥१५९॥
स एव लब्धिसपन्नोऽभूद् बालाद्युपकारक: । तदा दुर्बलिकापुष्प, पुष्पौ च घृतवस्त्रयो ॥१६०॥
गुर्विण्या धिग् यया पड्भिर्मासैर्यन्मीलित घृतम् । घृतपुष्पस्य तद्दानात्, माऽपि तल्लब्धिवरीदृशी ॥१६१॥
निर्वीरा क्वाऽपि कष्टेन, कर्तनात् शाटक व्यधात् । वस्त्रपुष्पस्य तद्दानात्, साऽप्यन्येपा किमुच्यते ॥१६२॥
तत्र दुर्बलिकापुष्पोऽधिगतां नवपूर्विकाम् । दुर्बलेऽभूत्स्मरन्नित्य, विस्मारयति चास्मरन् ॥१६३॥
सौगतैर्भावितास्तस्य· स्वजना गुरुमूचिरे । अस्माक भिक्षवो ध्यानपरा न ध्यानमस्ति व ॥१६४॥
ध्यानाद्दुर्बलिकापुष्पो, दुर्बलोऽय गुरुर्जगौ । तान्याहुर्गृहवासेऽभूत् स्निग्धाहारादसौ बली ॥१६५॥
न स वोऽस्ति गुरु स्माह घृतपुष्पाद्बहु म न । प्रत्ययश्चेन्नो वो नीत्वा स्वगृहे पोष्यतामयम् ॥१६६॥
ततस्तै· पोपितोऽत्यन्त पूर्वध्यानात्तथैव स' । अथाऽध्यान कृत पूर्ये, प्रान्तभोज्योऽप्यभूद्बली ॥१६७॥
ततस्तानि प्रबुद्धानि, श्रावकत्व प्रपेदिरे । तत्र गच्छे च चत्वारो मुख्यास्तिष्ठन्ति साधव ॥१६८॥
आद्यो दुर्बलिकापुष्पो द्वितीय फल्गुरक्षित । विन्ध्यस्तृतीयको गोष्ठामाहिलश्च चतुर्थक ॥१६९॥
विन्ध्यस्तेष्वपि मेधावी सूत्रग्रहणधारणे । गुरुनुवाच मण्डल्यामालापाऽऽप्तिश्चिरान्मम ॥१७०॥
गुरुर्दुर्बलिकापुष्प, ततोऽस्यालापक ददौ । दिनानि कतिचिद्दत्त्वा, वाचना तस्य सोऽभ्यधात् ॥१७१॥
वाचना ददतोऽमुष्य, पूर्वं मे नवम प्रभो । । विस्मरिष्यत्यत पूज्यादेशोऽस्तु मम कीदृश ॥१७२॥
अथैव दध्युराचार्या, यद्यमुष्याऽपि विस्मृति । भविष्यति ध्रुव प्रज्ञादीना हानिरतः परम् ॥१७३॥
चतुर्ष्वेकैकसूत्रार्थाख्याने स्यात्कोऽपि न क्षम' । ततोऽनुयोगाश्चतुर पार्थक्येन व्यधात्प्रभु ॥१७४॥

चातुर्विध्यमाह--

'कालिअसुअ च इसिभासिआइं तइयो अ सूरपन्नत्ती । सव्वो उ दिट्ठिवाओ, चउत्थओ होइ अणुओगो"

कालिकश्रुतमेकादशाङ्गरूप करणचरणानुयोग, ऋषिभाषितानि उत्तराध्ययनानि धर्मकथानुयोग, सूर्यप्रज्ञप्त्यादीनि गणितानुयोग, दृष्टिवादश्च सर्वोऽपि द्रव्यानुयोग । दृष्टिवादादुद्धृत्य ऋषिभिर्भाषितत्वात् कल्पादीनामपि तर्हि धर्मकथानुयोगत्वम्, तन्नेत्याह--

"ज स महाकप्पसुअ जाणि अ सेसाणि छेअसुत्ताणि । चरणकरणाणुओगो त्ति कालिअत्थे उवगयाणि॥१॥"

यच्च महाकल्पश्रुतमेकादशाङ्गरूपम्, यानि च शेषाणि निशीथादीनि छेदसूत्राणि चरणकरणानुयोग इति चरणकरणानुयोगलक्षणे कालिकाऽर्थे कालिकश्रुतसक्तेऽर्थे उपगतानि सम्बद्धानीत्यर्थ ।

अथार्यरक्षिताचार्या:, मथुरा नगरीं गता· । तत्र यक्षगुहया च, व्यन्तरायतने स्थिता ॥१७५॥
तत शक्रो विदेहान्त, श्रीसीमन्धरसन्निधौ । निगोदजीवानप्राक्षीद् भगवान व्याचकार तान् ॥१७६॥
अथोचे भरतेऽप्येव, निगोदान् वक्ति कश्चन ? भगवानूचिवानार्यरक्षिता· सन्ति सूरय ॥१७७॥
भिक्षागे साधुवृन्दे च· वृद्धब्राह्मणरूपभाक् शक्रोऽभ्यागत्य पप्रच्छ, कियदायु प्रभो ! मम ॥१७८॥
भणित यवकेष्वायुर्ज्याथ प्राप्तेषु तेषु ते । यावत्तदायुरीक्षन्ते, तावद् द्वे सागरे गते ॥१७९॥
अथोत्पाट्य भ्रुवावूचे· शक्रस्त्व सोऽब्रवीत्तत । हेतु स्वागमने तेऽथ, निगोदान् स्वामिवज्जगु ॥१८०॥
ततस्तुष्ट' प्रणम्योचे· शक्रो यामीति तेऽभ्यधु । तावदागमयस्त्व· यावदायान्ति साधव ॥१८१॥
ये चला निश्चलास्ते स्युर्येन त्वा वीक्ष्य दीक्षिता । स ऊचेऽल्पा करिष्यन्ति, निदान वीक्ष्य मामसौ॥१८२॥
तेऽभ्यधु कुरु तच्चिह्नमथ यक्षगुहामुखम् । शक्रो ऽन्यथा विधायागादाजग्मुश्च तपोधना ॥१८३॥
ते च द्वार न वीक्षन्ते, गुरवस्तानथाऽभ्यधु । शक्रो द्वार व्यधादित्थमित एव ततोऽधुना ॥१८४॥
ऊचुस्ते किं मुहूर्तं न, धृतोऽस्माक निरीक्षितुम् । शक्रोक्तमथ ते तेषामाख्यन् दु खमथ स्थिता ॥१८५॥
अथाऽन्यदा दशपुर· यान्ति स्म गुरव क्रमात् । मथुरा नास्तिकस्त्वागात् सर्वं नास्तीति स ब्रुवन् ॥१८६॥

"भूवो वि"त्ति, भूपोऽपि=नृपोऽपि 'पबोहिओ" त्ति, प्रबोधितः=मित्रतिर्यग्जृम्भकदेवरचित-विमानेन पुष्पानयनेनाऽर्हच्छासनप्रभावनाया उपदेशदानाच्च जैनीचकार; कथम्? 'सद्धं' त्ति, सार्द्धं=साकम्; कैः? "पउरेहिं" त्ति, पौरैः=नागरिकजनैः सह ॥८२॥

अथ △वज्रस्वामिनो जन्मादिपर्यायाऽब्दान् वक्तुकाम आर्यामाह—

वीराऽद्दे △रसणिहिजुग (४९६)-मिए जणी से वयं बलखग्गंगे (४९६।५०४) ।
मइगुणसंघसरे ५४८) जुग-पवरो स दिवं जुगगयसरे(५८४) ॥८३॥ (८च्छाज्जा)

(प्रे०) "वीरा" इत्यादि, "से" त्ति, तस्य=श्रीवज्रस्वामिनः "जणी"त्ति, जनि=र्जन्म "वीरा" त्ति, वीरात्=महावीरप्रभुमोक्षकालात् 'रसणिहिजुगमिए" त्ति; रसनिधियुगैः=षडङ्क-नवाङ्क-चतुरङ्करूपैर्वामगत्या विन्यस्तैः ४९६ इति सङ्ख्या मिते=रसनिधिजुगमिते "ऽद्दे" त्ति, अब्दे=वर्षे=वीरसंवत् ४९६ वर्षेऽभूत्△'बलखअंगे' त्ति, बला'=बलदेवा नव, 'क-ग-च० — ' (सि० ८-१-१७७) इति गस्य 'लुक्' (सि ८-१ १०) इत्यकारस्य च लोपात् खगा=ग्रहा नव, उक्तश्चानेकार्थकोषे—"खगोऽर्कग्रहपक्षिषु॥२०॥ शरे देवेऽपि' इति। अङ्गानि=सेनाङ्गानि हस्ति-हय-रथ-पदातिलक्षणानि चत्वारि, यदुक्तमभिधानचिन्तामणौ—'गजो वाजी रथ पत्ति सेनाङ्ग स्याच्चतुर्विधम्।' इति। एतेऽङ्का वामगत्या ४९९ इति सङ्ख्या यस्मिंस्त-स्मिन् बलखगाङ्गे=सव्येतरक्रममीलिते=४९९ वर्षे=नवनवत्यधिकचतुःशततमे वीरसंवदि "वय" ति, श्रीवज्रस्वामिनो व्रतं=प्रव्रज्या बभूव। अयञ्चावश्यककथा-प्रभावकचरिता-द्यनुसारेण बोध्यः। यतस्तत्र त्रिवार्षिकस्य वज्रप्रभोर्दीक्षा गदिताऽस्ति। तथा चाऽऽवश्यक-कथायाम्—

"आगमन्गुरवस्तत्र वज्रे जाते त्रिवार्षिके। सुनन्दा याचते सूनु गुरवस्त्वर्पयन्ति न ॥६२॥ इत्यारभ्य ..
तच्छ्रुत्वा तत्क्षणादेव स रजोहृतिमाददे। तदैवादीक्षि गुरुणा सपौरोऽप्यबुधन्नृप ॥७०॥" इति।

तथैव प्रभावकचरितेऽपि—

त्रिवार्षिकोऽपि न स्तन्य, पपौ व्रजो व्रतेच्छया। दीक्षित्वा गुरुभिस्तेन तत्र मुक्त ममातृक ॥६२॥ 'इति।

एवमेवोपदेशपदटीकायामपि मुनिचन्द्रसूरिभिर्दर्शितमस्ति। तथा च तद्ग्रन्थः—

" . .. . .. • एव जाओ तिवरिसेसो ॥१४६॥
तत्थागयम्मि सूरिम्मि अह अन्नया सा विवायमारूढा। न समप्पति जया त ववहारे राउले जाओ ॥१४७॥

. .. इत्यारभ्य

△विचारश्रेणिपरिशिष्टे पुनर्वीरात ५०१ वर्षातिकान्ते गर्भोत्पत्तिर्दर्शिता, तदक्षराणि त्वेवम्—'पचसएसु वरिसाण अइगएसु जिणाओ वीराओ। वइरो सोहग्गनिही सुनदगब्भे समुप्पण्णो ॥ एवमुपदेशपदवृत्तावपि।

विपयिमाने "ऽद्दे" त्ति, अव्दे=वर्षे=वीरसंवत् ५५० हायने "जम्मो" त्ति, जन्म=उत्पत्ति-र्बभूव। "स" त्ति सः=श्रीदुर्वलिकापुष्पमित्रसूरिः "सायरपज्जत्तिहरमुहपमाणे" त्ति, सागराः सप्त. पर्याप्तयः=आहार-शरीरे न्द्रिय-श्वासोच्छ्वास-भाषा-मनोरूपाः षट्, हरमुखानि=शम्भुवदनानि पञ्च, एतेपामङ्कानां पश्चानुपूर्व्या ५६७ इति सङ्ख्या प्रमाणं यस्य तादृशे सागर-पर्याप्तिहरमुखप्रमाणे=वीरसंवत् ५६७ वर्षे "पव्वज्ज" ति, प्रव्रज्यां=सर्वविरतिं "गेण्हीअ" त्ति, अगृह्णात्=जग्राह, "ऽस्साणिहिसरे" त्ति, अश्वनिधिशराः=सप्त-नव-पञ्चाङ्करूपा यत्र तत्रा-ऽश्वनिधिशरे व्युत्क्रमस्थापिते वीरसंवत् ५९७ वर्षे "जुगपवरो" त्ति, युगप्रवरः=युगप्रधानो 'हवीअ' त्ति, बभूव ।

"संजमरिउम्मि" त्ति, संयमाः=पञ्चमहाव्रत[५]पञ्चेन्द्रियनिग्रह[१०]कपायचतुष्कजय-[१४]दण्डत्रयविरति[१७]रूपाः सप्तदश, यद्वा संयमाः=पृथ्व्यप्तेजोवायुवनस्पतिकायरूपस्थावरकायपञ्चक-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पञ्चेन्द्रियलक्षणत्रसकायचतुष्करक्षण[९]प्रेक्ष्यो-[१०]पेक्ष्या-[११]ऽपहृत्य[१२] [१३]प्रमृज्य-[१४]मनो[१५]वचन[१६]कायो[१७]पकरणात्मकाः सप्तदश, अथवा संयमा दश, पृथ्व्यप्तेजोवायु वनस्पतिरूपस्थावरकायपञ्चक-द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पञ्चेन्द्रियरूपत्रसकायचतुष्का-ऽजीव-भेदभिन्नसंयमस्य दशविधत्वात्, ऋतवः=हेमन्त-शिशिर-वसन्त-ग्रीष्म वर्षा-शरद्रूपाः षट्, एतावदङ्कौ वामगतिमीलितौ यस्य तादृशे वीरसंवत् ६१७ वर्षे मताऽन्तरेण पुनः ६१० वर्षे 'दिव' ति, दिवं=सुरालयं ययौ ।

एवञ्च श्रीदुर्वलिकापुष्पमित्रसूरेः सप्तदश १७ वर्षाणि यावद्गृहवासः, त्रिंशद् ३० वर्षाणि यावत्सामान्यव्रतम्, विंशति २० वर्षाणि यावन्मतान्तरेण पुनस्त्रयोदश १३ वर्षाणि यावद्युग-प्रधानत्वमभूत्।

श्रीदुर्वलिकापुष्पमित्रसूरेः कालकरणानन्तरं सार्द्धनवपूर्वविदामप्यभावो जातः ।

यदुक्तं श्रीकालसप्ततिकाग्रन्थे-'छस्सोलेहिं अ थक्का दुब्बलिए सड्ढनवपुव्वा ॥३६॥' इति । △

अथ तदानीं सञ्जातं सप्तमनिह्नवं सङ्क्षेपतो निरूपयिष्यामि-तद्यथा=श्रीआर्य-रक्षितसूरिणा मथुरानगर्यामन्यतीर्थिक वादे जेतुं निजमातुलो गोष्ठामाहिलः प्रेषितः, स वादे तं नास्तिकमजयत्, सङ्घेन तत्रैव चातुर्मासी कारितः, तदनु दशपुरे समायातो 'घृत-तैल वल्ल-

---

पन्न्यासश्रीकल्याणविजयानामभिप्रायेण वालभवाचनाऽनुगामिनाऽमुष्य वाचनाचार्य उपलक्षण-तश्च युगप्रधानकालो वीरसंवत् ५९६ त आरभ्य ६१६ अब्द यावदभूत्, ततोऽस्य युगप्रधानत्व स्वर्गतिश्च क्रमेण वीरसंवत् ५९६-६१६ वर्षेऽभूत् ।

△ अन्यत्रार्यरक्षितकाले सार्धनवपूर्वविच्छेद उक्त, तथा च तद्ग्रन्थ -
'तह अज्जरक्खियम्मि वोच्छिण्णा एत्थ सड्ढनवपुव्वा कालकमेण हाणी दूसमसमयाणुसारेण ॥' इति ।

तथा चाऽत्र भगवान् श्रीवज्रस्वामी षाण्मासिकोऽपि भावतः प्रतिपन्नसर्वसावद्यविरति-रित्यपि श्रूयते।

तथा च प्रतिपादितमावश्यकनियुक्तौ श्रीभद्रबाहुस्वामिना-

"छम्मासिय छसु जय माऊ अ समन्निय वंदे ॥७६४॥" इति।

तथैवोदितमुपदेशपदवृत्तौ मुनिचन्द्रसूरिभिरपि-

"धणगिरिणा सो बालो पत्तो बयम्मि सगहिओ॥ १४८॥

तयणतर न रोयइ जाणइ जाओ जहा अह समणो॥" इति।

तथा पञ्चसङ्ग्रहवृत्तौ मलयगिरिसूरिपादैरप्युक्तम्-

भगवान् वज्रस्वामी षाण्मासिकोऽपि भावतः प्रतिपन्नसर्वसावद्यविरति श्रूयते, तथा य सूत्रम्-'छम्मासिय छसु जय माऊएँ समन्निय वंदे' इति। सत्यमेतत्, किन्त्विय शैशवेऽपि भगवद्वज्रस्वामिनो भावतश्चरणप्रतिपत्तिराश्चर्यभूता कादाचित्कीति न तया व्यभिचारः। अथ कथमवसीयते येय वज्रस्वामिन· शैशवेऽपि चरणप्रतिपत्ति, सा कादाचित्कीति? उच्यते-पूर्वसूरिकृतव्याख्यानात्। तथा च पञ्चवस्तुके प्रव्रज्याप्रतिपत्तिकालनियमविचाराधिकारे गाथा-'तयहो परिहवक्खेत्त न चरणभावो वि पायमेएसिं। आहच्च भावकहग सुत्त पुण होइ नायव्व॥१॥' अस्या व्याख्या तेषामष्टाना वर्षाणामधो वर्तमाना मनुष्य.. परिभवक्षेत्र भवन्ति, येन तेन वातिशिशुत्वात्परिभूयन्ते, तथा चरणभावोऽपि चरणपरिणामोऽपि प्राय एतेषा वर्षाष्टकादधो वर्त्तमानाना न भवति, यत्पुन सूत्र छम्मासिय छसु जय माऊए समन्निय वन्दे' इत्येवरूप तत् 'आहच्चभावकहग' कादाचित्कभावकथक, ततो व वर्षाष्टकादध परिभवक्षेत्रत्वाच्चरण-परिणामाभावाच्च न दीक्ष्यन्ते इति।' इति।

"स" त्ति, सः=श्रीवज्रप्रभुः 'मइगुणसंघसरे" त्ति, मतिगुणाः=बुद्धिगुणाः-शुश्रुषा[1]श्रवण[2]ग्रहण[3]धारणे[4]हा[5]ऽपोहा[6]ऽर्थज्ञान[7]तत्त्वज्ञानलक्षणा[8] अष्टौ, तथा चोक्तम्-

"शुश्रूषा श्रवणं चैव, ग्रहण धारण तथा। ईहापोहोऽर्थविज्ञान तत्त्वज्ञान च धीगुणा ॥१॥" इति।

सङ्घाः=चत्वारः, संघस्य साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविकारूपचतुर्विधत्वात्, शराः=पञ्च, एतेऽङ्का यस्मिंस्तस्मिन् मतिगुणसङ्घसरे पश्चानुपूर्विक्रमेण लब्धे वीरसंवदष्टचत्वारिंशदधिकपञ्चशत ५४८ वर्षे "जुगपवरो" त्ति, युगप्रवरः=युगप्रधानस्तथा वलभीवाचनाऽपेक्षया वाचनाचार्यो जातः।△

●छाया-षाण्मासिक षट्सु यत मात्रा समन्वित वन्दे।

△ पन्न्यासश्रीकल्याणविजयानामभिप्रायेणाऽमुष्य वालभवाचनानुसारेण वाचनाचार्यकाल उपलक्षणतो युगप्रधानकालश्च वीरसवत ५४७ त. ५८३ वर्षं यावदस्ति तेनाऽस्य युगप्रधानत्व स्वर्गगमनञ्च क्रमेण वीरसवत् ५४७-५८३ वर्षे भवति स्म।

श्रीमद्गुप्तसूरिनिर्यामण-आर्यश्रीरक्षितसूरि-निह्नवगोष्ठामाहिलाप्रभृतिसत्कालविषमस्थलसङ्गतिकारिण्या स्वाभिप्रायगणनायां पुनर्वज्रस्वामिनो जन्म वीरसवत् ४८२ वर्षे, दीक्षा वीरसवत् ४९० वर्षे, युगप्रधानत्वञ्च वीरसवत् ५३४, वर्षे, स्वर्गवासश्च वीरसंवत् ५७० वर्षेऽभूत्।

विपयिमाने "ऽद्दे" त्ति, अब्दे=वर्षे=वीरसंवत् ५५० हायने "जम्मो" त्ति, जन्म=उत्पत्ति-र्बभूव। "स" त्ति सः=श्रीदुर्वलिकापुष्पमित्रसूरिः "सायरपज्जत्तिहरमुहपमाणे" त्ति, सागराः सप्त, पर्याप्तयः=आहार-शरीरेन्द्रिय-श्वासोच्छ्वास-भाषा-मनोरूपाः षट्, हरमुखानि=शम्भुवदनानि पञ्च, एतेषामङ्कानां पश्चानुपूर्व्या ५६७ इति सङ्ख्या प्रमाणं यस्य तादृशे सागर-पर्याप्तिहरमुखप्रमाणे=वीरसंवत् ५६७ वर्षे "पव्वज्ज" ति, प्रव्रज्यां=सर्वविरतिं "गेण्हीअ" त्ति, अगृह्णात्=जग्राह, "ऽस्साणिहिसरे" त्ति, अश्वनिधिशराः=सप्त-नव-पञ्चाङ्करूपा यत्र तत्राऽश्वनिधिशरे व्युत्क्रमस्थापिते वीरसंवत् ५९७ वर्षे "जुगपवरो" त्ति, युगप्रवरः=युगप्रधानो 'हवीअ' त्ति, बभूव ।

"संजमरिउम्मि" त्ति, संयमाः=पञ्चमहाव्रत[५]पञ्चेन्द्रियनिग्रह[१०]कषायचतुष्कजय-[१४]दण्डत्रयविरति[१७]रूपाः सप्तदश, यद्वा संयमाः=पृथ्व्यप्तेजोवायुवनस्पतिकायरूपस्थावरकायपञ्चक-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पञ्चेन्द्रियलक्षणत्रसकायचतुष्करक्षण[९]प्रेक्ष्यो-[१०]पेक्ष्या-[११]ऽपहृत्य[१२] [१३]प्रमृज्य-[१४]मनो[१५]वचन[१६]कायो[१७]पकरणात्मकाः सप्तदश, अथवा संयमा दश, पृथ्व्यप्तेजोवायु वनस्पतिरूपस्थावरकायपञ्चक-द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पञ्चेन्द्रियरूपत्रसकायचतुष्का-ऽजीव-भेदभिन्नसंयमस्य दशविधत्वात्, ऋतवः=हेमन्त-शिशिर-वसन्त-ग्रीष्म वर्षा-शरद्रूपाः षट्, एतावङ्कौ वामगतिमीलितौ यस्य तादृशे वीरसंवत् ६१७ वर्षे मताऽन्तरेण पुनः ६१० वर्षे 'दिव' ति, दिव=सुरालयं ययौ ।

एवञ्च श्रीदुर्वलिकापुष्पमित्रसूरेः सप्तदश १७ वर्षाणि यावद्गृहवासः, त्रिंशद् ३० वर्षाणि यावत्सामान्यव्रतम्, विंशति २० वर्षाणि यावन्मतान्तरेण पुनस्त्रयोदश १३ वर्षाणि यावद्युग-प्रधानत्वमभूत्।

श्रीदुर्वलिकापुष्पमित्रसूरेः कालकरणानन्तरं सार्द्धनवपूर्वविदामप्यभावो जातः ।

यदुक्त श्रीकालसप्ततिकाग्रन्थे-'छस्सोलेहिं अ थक्का दुब्बलिए सड्ढनवपुव्वा ॥३६॥' इति । △

अथ तदानीं सञ्जात सप्तमनिह्नवं सक्षेपतो निरूपयिष्यामि-तद्यथा=श्रीआर्य-रक्षितसूरिणा मथुरानगर्यामन्यतीर्थिक वादे जेतुं निजमातुलो गोष्ठामाहिलः प्रेषितः, स वादे तं नास्तिकमजयत्, सङ्घेन तत्रैव चातुर्मासी कारितः, तदनु दशपुरे समायातो 'घृत-तैल वल्ल-

---

पन्न्यासश्रीकल्याणविजयानामभिप्रायेण वालभवाचनाऽनुगामिनाऽमुष्य वाचनाचार्य उपलक्षण-नश्च युगप्रधानकालो वीरसवत् ५६६ त आरभ्य ६१६ अब्द यावदभूत्, ततोऽस्य युगप्रधानत्व स्वर्गतिश्च क्रमेण वीरसवत् ५६६-६१६ वर्षेऽभूत् ।

△ अन्यत्रार्यरक्षितकाले सार्धनवपूर्वविच्छेद उक्त, तथा च तद्ग्रन्थ -
'तह अज्जरक्खियम्मि वोच्छिण्णा एत्थ सड्ढनवपुव्वा कालकमेण हाणी दूसमसमयाणुसारेण ॥' इति ।

दीणाणाहाइजणाण दिन्नदाणो सवधुलोग च । समाणिय जहजोग तहा समाहीए ठविऊण ॥१३३॥
उचियपडिवत्तिसार तित्थयरथुय च चउविहं सघ । समाणिय वत्थाईण दाणओ विणयमाराओ ॥१३४॥
सीहगिरिणो सयासे नवखत्तमुहुत्तलग्गसुद्धीसु । सपत्तासु महानिहिग्गहणुत्रमाणेण लेइ वय ॥१३५॥
नवमासाणं अइरित्तयाण तीए सुह सुहेण तो । बेलीणाण पुरदरदिसि व्व रविमुज्जल जणइ ॥१३६॥
पुत्त मिलिओ महिलालोओ एव परोप्पर भणइ । जह न पिया पव्वइओ होंतो ता उच्छवो गरुओ ॥१३७॥
होंतो आसि स सण्णी तिव्वसमणणाणसगओ सुणइ । महिलाण समुल्लाव जाईसरणो तओ जाओ ॥१३८॥
चितेइ न पव्वज्ज मज्झमणुव्विग्गमाणसा एसा । घेत्तु दाही उव्वेयकारण होमि एईए ॥१३९॥
तिव्वपसारियवयणो रोवेउ लग्गओ जह न एसा । आसइ भु जइ सुयइ सुहेण गिहकम्ममायरइ ॥१४०॥
एव जा छम्मासा अइगया सीहगिरिगुरू तत्थ । नयरुज्जाणम्मि ठिया विहिए सज्झायजोगम्मि ॥१४१॥
पत्तो भिक्खावसरे धणगिरिसमिया भणति सीहगिरिं । भगव सन्नायगलोगदसणत्थ गिहे जामो ॥१४२॥
गुरुणा ऽणुमण्णिया ते सउणिहाणा कुणति उवओग । जा ता उत्तमफलय किंचि निमित्त समुप्पण्ण ॥१४३॥
गुरुराह गया सता सचित्तमियर व ज लहेज्जाह । त सव्वमुवादेज्जह जमज्ज सउणो मह जाओ ॥१४४॥
तो दोवि सुनदाए गिहे गया सावि निग्गया तत्तो । उभयकरधरियपुत्ता कुलमहिलाओ तहा मिलिया ॥१४५॥
पणमिय पाए भासइ मए चिर पालिओ इमो बालो । सपइ पुण पडिगाहसु जओ समत्था न एत्तो ह ॥१४६॥
इय भणियम्मि स पभणइ पच्छायाव करेसि जइ कहवि । तइया किं कायव्व सा पभणइ इमो जणो सक्खी ॥
जइ किंचि सणामि अह इय दढबध करेत्तु तीएँ सम । धणगिरिणा सो बालो पत्तो बधम्मि सगहिओ ॥१४८॥
तयणतर न रोयइ जाणइ जाओ जहा अह समणो । नीओ गुरुपयमूले सलक्खणत्तेण सो गरुओ ॥१४९॥
धणगिरिणो बाहू नामिऊण जा नेइ भूमिमह सूरी । भरिय भार्ण परिभाविऊण हत्थ पसारेइ ॥१५०॥
सो विय भूमीपत्तो जा जाओ ताव सूरिणा भणिय । अव्वो किं वइरमिमु ज भारियभारमुव्वहइ ॥१५१॥
जा पेच्छइ सुरकुमरोवमाणमेय सविम्हओ भणइ । सारक्खह सुयमेय ज पवयणपालगो होही ॥१५२॥
वइरो त्ति य से नाम विहिय समणीण सो वसे विहिओ । ताहे सेज्जायरमदिरम्मि निहिओ तओ तत्थ ॥१५३॥
जइया तच्चेडाण ण्हाण थणाराणमडणाईय । कीरइ तदा इमस्सावि फासुएण विहाणेण ॥१५४॥
एव सो सवड्ढइ सव्वेसिमईव चित्तसतोसी । सूरी बाहिं विहरइ त जणणी मग्गिउं लग्गा ॥१५५॥
निक्खेवओ इमम्ह न समप्पामो दिणे दिणे सा उ । थणपाण कारेई एव जाओ तिवरिसेसो ॥१५६॥
तत्थागयम्मि सूरिम्मि अह अन्नया सा विवायमारूढा । न समप्पति जया त ववहारो राउले जाओ ॥१५७॥
पुट्ठो य धणगिरी दडिएण सो भणइ मे सहत्थेण । दिन्नो इमीएँ नवर पुर सुनदाएँ पक्खम्मि ॥१५८॥
रन्ना भणिय पुत्त मम पुरो ठाविऊण उल्लवइ । ज सरइ तस्स एसो पडिवन्नमिमेहिं एयति ॥१५९॥
बालजणस्सुचियाइ खेल्लावणयाइ णेगरूवाइ । गिण्हइ जणणी सिसुलोयलोयणाणददाईणि ॥१६०॥
पत्ते पसत्थदिवसे दोन्नि वि वग्गा उवट्ठिया निवइ । राया पुव्वाभिमुहो दाहिणओ सठिओ सघो ॥१६१॥
वामेण सुनदा परियणेण सव्वेण अणुगया ठाइ । राया भणइ पमाण तुम्हाण अह सुय तेहिं ॥१६२॥
जाए दिसाएँ एसो निमतिओ जाति तेसिमेवेसो । धम्मो जं पुरिसवरो ता जणओ वाहरउ पुव्वि ॥१६३॥
एव भणियम्मि रन्ना नागरयजणो भणाइ कयनेहो । एसो पढम च्चिय एसु भणासु ता अम्बया पुव्व ॥१६४॥
तह माया दुक्करकारिणित्ति अइतुच्छसत्तजुत्ता य । तो सा बसेव सेहे करिकरहे रयणमणिखचिए ॥१६५॥
दो एत्ता कोमलभासिएहिं कारुण्णय पदसती । अइदीणमुही त वइर ? एहि एत्तो इम भणइ ॥१६६॥
सो त पलोयमाणो अच्छइ जाणइ य जइ इम सघ । अवमन्नामि सुदीह तो ससार परिभमामि ॥१६७॥
एमा वि य पव्वज्ज मइ पव्वइयम्मि नियमओ काही । इय चिततो तीए वारतिगं सहिओ नेइ ॥१६८॥

विजहार। पुनरन्यदा रथवीरपुर आगतस्तदा तन्नृपेण शिवभूतये बहुमूल्यं रत्नकम्बलं दत्तम्, तन्मूर्च्छितोऽसौ गुरुणा "मूर्च्छा न कर्त्तव्या" इत्युक्तोऽपि तं संभालयति न तु व्यापारयति। ततोऽन्यदा बहिर्गतस्य तस्य कम्बलरत्नं पाटयित्वा साधूनां पादप्रोञ्छनकानि कृतानि। ततो ज्ञातवृत्तान्तः स सकषायो यदा गुरुणा जिनकल्पो वर्ण्यते तदा चाहाऽधुना किं न क्रियते। ततो गुरुणोक्तम्–संहननोऽभावाज्जम्बूस्वामिनि व्युपरते व्युच्छिन्नोऽसौ, साम्प्रतं न शक्यत एव कर्तुम्। तदा च प्राह–तत्कर्तुमहं समर्थोऽतः स एव निष्परिग्रहो जिनकल्पो मया कर्तव्यः। ततो गुरुणा स्थविरैरपि बहुयुक्तिभिः प्रज्ञापितोऽपि तथाविधकर्मोदयात् दुष्टाग्रहमत्यजन् वस्त्राणि त्यक्त्वा बहिरुद्याने गतः।

एतद्विषयसत्कचर्चाऽर्थिना तु विशेषावश्यके सटीकभाष्यगाथाः २५५३ तः प्रभृति २६०६ पर्यन्ताः प्रेक्षणीयाः।

तद्वन्दनार्थमुत्तराख्या तद्भगिनी गता, त्यक्ताम्बरं भ्रातरं दृष्ट्वा स्वयमपि वस्त्राणि तत्याज। किन्तु नगरमध्ये प्रविशन्ती तां निर्वस्त्रां वीक्ष्य गणिकया सा चीवरं परिधापिता। तज्ज्ञात्वा नग्ना स्त्री बीभत्साऽतिलज्जनीया भवतीति विचिन्त्य च तेन योषितां वस्त्रवर्जनं निषिद्धम्, ततः परम्परया यावन्मुक्तिरपि निषिद्धा।

एतत्सर्वञ्च विशेषावश्यके २५५१-२५५२ गाथाद्वयवृत्तौ विस्तरेण प्रतिपादितमस्ति। विस्तरं जिज्ञासुभिस्ततो द्रष्टव्यम्।

अनेन शिवभूतिमुनिना वीरसंवत् ६०९ वर्षे बोटिकाख्यं मतं प्रवर्तितम्।

तथा चोक्तं विशेषावश्यके–

छव्वाससयाइं णवुत्तराइं (तइआ) सिद्धिं गयस्स वीरस्स। तो बोडियाण दिट्ठी रहवीरपुरे समुप्पण्णा॥२५५०॥" इति।

एषैव गाथा विचारसारप्रकरणादिष्वपि। ▽

श्रीदुर्बलिकापुष्पमित्रो हि प्रथमोदयेऽन्तिमो युगप्रधानो बभूव। एतत्पर्यन्तसञ्जातानां युगप्रधानादीनां यथोक्तकालमानं राजकालमानेन सह दुष्षमा [illegible] श्रीश्र [illegible] संघ [illegible] त्रस्यावचूर्यामपि भणि[illegible]म्।

तथा च तद्ग्रन्थः–"सिरिजिणनिव्वाणगमणरयणीए उज्जोणीए चण्डपज्जोअमरणे पालओ राया अहिसित्तो। तेण य अपुत्तउदाइमरणे कोणिअरज्ज पाडलिपुरं पि अहिट्ठिअं॥

य वरिस ६० रज्जे–गोयम १२ सुहम्म ८ जंबू ४४ जुगप्पहाणा॥

▽ श्रीकालसप्ततिकाप्रकरणेऽपि—

'छव्वाससएहिं नवुत्तरेहिं सिद्धिं गयस्स वीरस्स। रहवीरपुरे नयरे [illegible]णा [illegible]डिया जाया॥४०॥' इति।

रयणीकाले मिलिया गुरुणा साहू निरूविया एवं । जह अम्हे वच्चामो गामे दिवसाणि दो तिण्णि ॥२०४॥
अच्छिहामो तो जोगवाहिणो भासिउ समाढत्ता । अम्ह वायणदाया को होज्ज गुरू भणइ वइरो ॥२०५॥
पयईएँ विणयलच्छीकुलगेह विहियगुरुजणाएसा । ते त वयण गुरुणो तहत्ति मण्णंति मुणिमीहा ॥२०६॥
पत्ते पभायसमए कयवसहिपमज्जणा य कायव्वा । काललिवेयणमाईविणयं वइरस्स पकरेंति ॥२०७॥
सीहागुगगुरुणो समुचिया उ कप्पेहिं साहुनणएहिं । तस्स निसेज्जा रइया सो सुसिलिट्ठं समुवविट्ठो॥२०८॥
ते वि जहा गुरुणो वंदणाइ विणयं तहा पउंजंति । सो वि दढकयपयन्नो कमेण अह वायणं देइ ॥२०९॥
जे तत्थ मदमइणो तेवि य तस्साणुभावओ खिप्पं । लग्गा ठवेउमालावगे मणे विम्हयरुवे वि ॥२१०॥
जाया सविम्हयमणा ते साहू पुव्वमहिगए तत्तो । विन्नासणत्थमालावगे य सोगे य पुच्छंति ॥२११॥
जह पुच्छं सो तक्खणमाचक्खइ दक्खयागुणसमेओ । ताहे सतोसचित्ता भणंति जइ कइवयदिणाणि॥२१२॥
तत्थेव गुरू चिट्ठंति ता लहु एस अम्ह सुयखंधो । पाविज्ज समत्ति ज चिरेण लब्भइ गुरुसयासे ॥२१३॥
एक्काएँ पोरिसीए एसो विअरेइ त तओ तेसिं । सो अच्चंतबहुमओ चिंतारयणाहिओ जाओ ॥२१४॥
वइरगुणे जाणाविय समागया सूरिणा वर सेस । अज्झाविज्जउ एसो त्ति ठवियनियमाणसविगप्पा ॥२१५॥
पुच्छंति पायवडिया साहू सरिओ सुहेण सज्झाओ । तुम्हाणमाममेव भणंति सुपसन्नमुहनयणा ॥२१६॥
एसो च्चिय ता कीरउ वाणायरिओ तओ गुरू भणइ । एसो होही नियमा मणोरहापूरगो तुम्ह ॥२१७॥
तुब्भेहिं तो मा लहउ परिभव छन्नगुणगणो एसो । इय जाणावणहेउं एयस्स वयं गया गामं ॥१२८॥
सपइ न एस जोग्गो वट्टइ सुयवायणापयाणस्स । जम्हा कन्नाहेडगवसेण गहियं सुयमणेण ॥२१९॥
उस्सारकप्पजोगो एसो ता त करेमि सो य इमो । पढमाएँ पोरिसीए जावइयमहिज्जिउ तरइ ॥२२०॥
अच्चंत मेहावी तावइय दिज्जई न दिणमाण । एत्थ विहिज्जइ तह चेव सूरिणा काउमारद्धं ॥२२१॥
बीयाएँ पोरिसीए कहेइ अत्थं स जेण दोण्हंपि । कप्पाणं समुचिओ काउमेवमेसिं दिणा जंति ॥२२२॥
चत्तारि होंति सीसा अइजाय-सुजाय-हीणजायत्ति । सव्वाहमचरियपरो तह य चउत्थो कुलिंगालो ॥२२३॥
गुरुगुणगणाउ अहिओ पढमो बीओ समाणओ तस्स । ऊणो किंची तइओ सनामसरिसो चउत्थो उ ॥२२४॥
एवं खु वियाण पुत्ता वि भवंति तत्थ सो जाओ । अइजाओ सीहगिरिं पडुच्च तेण तओ अत्था ॥२२५॥
जे आसि संकिया तस्स तेवि दूर पयासिया विहिया । गहिओ य दिट्ठिवाओ जावइओ आसि किल गुरुणो ॥
दुरियाइ हरंता भूमिमडले नगरगाममाईण । विहरंता सपत्ता नयरं सिरिदसउर नाम ॥२२७॥
तइया उज्जेणीए आयरिया भद्दगुत्तनामाणो । वुड्ढा वासेण ठिया वट्टंति दसावि पुव्वाणि ॥२२८॥
तेसिं सति सयासे पहिओ संघाडओ तदत्तम्मि । सो सुमिण रयणीए पासइ जह खीरपडिपुण्णो ॥२२९॥
पीओ केण वि आगतुगेण एसो पडिग्गहो मज्झ । पत्ते पभायसमए कहिओ साहूण सो गुरुणा ॥२३०॥
ते वि अलद्धे लक्खम्मि अन्नमन्न कहेउमारद्धा । सुविणफल गुरुणा भणियमेयमत्थं न याणेह ॥२३१॥
कोवज्ज महामेहो पडिच्छओ एहिहिन्ति सो मज्झ । सव्वं पुव्वगयसुयं घेच्छी फलनिच्छओ एस ॥२३२॥
भयव पि वइरसामी तं रयणिं तप्पुरीएँ बाहिम्मि । वुत्थो उक्कठियमाणसाण पत्तो वसहिमेसिं ॥२३३॥
कुमुयवणेण व चंदो मेहो व्व सिहंडिमंडलेण मणे। सतुट्ठेण स दिट्ठो सुयपुव्वो सूरिणा तेण ॥२३४॥
नाओ जहेस वइरो महिमंडलमज्झगसरियजसोहो । भुयजुयपसारपुव्वं सव्वंगालिंगिओ विहिओ ॥२३५॥
पाहुणगविणयविहाणपुव्वग सो मुणीहिं पडिवन्नो । पढियाणि कमेण दसाणि(त्रि)तेण पुव्वाणि सव्वाणि ॥
जत्थुद्देसो-ऽणुन्नात्रि तत्थ किज्जइ इमो कमो अत्थि । किल दिट्ठिवायसुत्तत्थतदुभयस्सा तओ पत्तो॥२३७॥
सीहगिरी वइरो वि य सिरिदसपुरनगरमह समाढत्ता । आयरियपयपइट्ठा वइरस्सा सीहगिरिगुरुणा ॥२३८॥
ते पुव्वसगया जंभगा सुरा कहवि तत्थ सपत्ता । विहिओ महामहो तेहिं पवरसुरपुप्फगंधेहिं ॥२३९॥

विजहार। पुनरन्यदा रथवीरपुर आगतस्तदा तन्नृपेण शिवभूतये बहुमूल्यं रत्नकम्बलं दत्तम्, तन्मूर्च्छितोऽसौ गुरुणा "मूर्च्छा न कर्त्तव्या" इत्युक्तोऽपि तं संभालयति न तु व्यापारयति। ततोऽन्यदा बहिर्गतस्य तस्य कम्बलरत्नं पाटयित्वा साधूनां पादप्रोञ्छनकानि कृतानि। ततो ज्ञातवृत्तान्तः स सकषायो यदा गुरुणा जिनकल्पो वर्ण्यते तदा चाहाऽधुना किं न क्रियते। ततो गुरुणोक्तम्—**संहननोग्रभावाज्जम्बूस्वामिनि व्युपरते व्युच्छिन्नोऽसौ, साम्प्रतं न शक्यत एव कर्तुम्।** तदा च प्राह—तत्कर्तुमहं समर्थोऽतः स एव निष्परिग्रहो जिनकल्पो मया कर्तव्यः। ततो गुरुणा स्थविरैरपि बहुयुक्तिभिः प्रज्ञापितोऽपि तथाविधकर्मोदयात् दुष्टाग्रहमत्यजन् वस्त्राणि त्यक्त्वा बहिरुद्याने गतः।

एतद्विषयसत्कचर्चाऽर्थिना तु विशेषावश्यके सटीकभाष्यगाथाः २५५३ तः प्रभृति २६०६ पर्यन्ताः प्रेक्षणीयाः।

तद्वन्दनार्थमुत्तराख्या तद्भगिनी गता, त्यक्ताम्बरं भ्रातरं दृष्ट्वा स्वयमपि वस्त्राणि तत्याज। किन्तु नगरमध्ये प्रविशन्ती तां निर्वस्त्रां वीक्ष्य गणिकया सा चीवरं परिधापिता। तज्ज्ञात्वा नग्ना स्त्री बीभत्साऽतिलज्जनीया भवतीति विचिन्त्य च तेन योषितां वस्त्रवर्जनं निषिद्धम्, : परम्परया यावन्मुक्तिरपि निषिद्धा।

एतत्सर्वञ्च विशेषावश्यके २५५१-२५५२ गाथाद्वयवृत्तौ विस्तरेण प्रतिपादितमस्ति। विस्तरं जिज्ञासुभिस्ततो द्रष्टव्यम्।

अनेन शिवभूतिमुनिना वीरसंवत् ६०९ वर्षे बोटिकाख्यं मतं प्रवर्तितम्।

तथा चोक्तं विशेषावश्यके—

छव्वाससयाइं णवुत्तराइं (तइआ) सिद्धिं गयस्स वीरस्स। नो बोडियाण दिट्ठी रहवीरपुरे समुप्पण्णा॥२५५०॥" इति।

एषैव गाथा विचारसारप्रकरणादिष्वपि। ▽

श्रीदुर्बलिकापुष्पमित्रो हि मोदयेऽन्तिमो युगप्रधानो बभूव। एतत्पर्यन्तसञ्जातानां युगप्रधानादीनां यथोक्तकालमानं राजकालमानेन सह **दुष्षमा ल श्रीश्र सघ गोत्रस्यावचूर्यामपि भणितम्।**

च तद्ग्रन्थः—"सिरिजिणनिव्वाणगमणरयणीए उज्जेणीए चण्डपज्जोअमरणे पालओ राया अहिसित्तो। तेण य अपुत्तउदाइमरणे कोणिअरज्जं पाडलिपुरं पि अहिट्ठिअं॥

य वरिस ६० रज्जे—गोयम १२ सुहम्म ८ जंबू ४४ जुगप्पहाणा॥

▽ श्रीकालसप्ततिकाप्रकरणेऽपि—

'छव्वाससएहिं नवुत्तरेहिं सिद्धिं गयस्स वीरस्स। रहवीर पुरे नयरे णा पाखण्डिया जाया॥४०॥' इति।

आयारपराण बहुस्सुयाण सुमुणीण वंदणेणं च । बहुणा बहुमाणेण गुणीसु तह वच्छलत्तेण ॥२७५॥
संकाइसल्लपडिपेल्लणेण सइ दंसण विसोहेज्जा । तह जिणजम्मणठाणाइदंसणेण जओ भणियं ॥२७६॥
जम्मणनिक्खमणाइसु तित्थयराण महाणुभावाण । एत्थ किर जिणवराणं आगाढं दंसण होइ ॥२७७॥
णाणं च पुण सुतित्थे विहिणा सिद्धंतसारसवणेण । नवनवसुयपढणेण गुणणेण पुव्वपढियस्स ॥२७८॥
कालाइविवज्जयवज्जणेण तच्चाणुपेहणेण च । परियाणियसमणाण संगेण समाणधम्माणं ॥२७९॥
साहिज्ज चरित्तंपि हु आसवदारदढसंनिरोहेण । सइ उत्तरुत्तराणं गुणाणमभिलासकरणेण ॥२८०॥
इय गुणरयणपहाणा संकयत्था एत्थ चेव जम्मम्मि । सरयससिसरिसजसभरभरियदियंता जियंति सुहं ॥२८१॥
परलोए पुण कल्लाणमालियामालिया कमेणेव । अणुभूय चोक्खसोक्खा लहंति मोक्खंपि खीणरया ॥२८२॥
अच्चंत हयहियओ चिहिओ राया समं पुरजणेण । नियमंदिरमणुपत्तो वइरस्स ल्व पयासेइ ॥२८३॥
अंतेउरीण अह ता विम्हइयमणा निवं भणंतेवं । अम्हेवि तस्स रूवं दट्ठुं ईहामहे नाह ॥२८४॥
अइतिव्वभत्तिपरवसमणेण रण्णाणुमन्निया सव्वा । अंतेउररमणीओ नगराओ निग्गया सा य ॥२८५॥
सिट्ठिसुया अइसुसिलिट्ठदंसणा निसुयवइरवुत्तंता । उम्माहिया सुदूरं कह पेच्छामित्ति चिंतंती ॥२८६॥
विन्नविओ नियजणओ सुभगसिरोमणिसमस्स एयस्स । मं देहि अन्नहा जेण नत्थि मे जीवियव्वमिमं ॥२८७॥
सव्वालंकारविभूसिया कया अच्छरव्व पच्चक्खा । गहिया य अणेगाओ धणकोडीओ तओ तेण ॥२८८॥
पत्तो वइरसमीवे कहिओ धम्मो सवित्थरो गुरुणा । भणइ जणोऽमरसोहग्गमग्गलं न उण रूवं पि ॥२८९॥
जइ नाम रूवलच्छी हुन्ता एयस्स ता न तियलोए । असुरो सुरो व विज्जाहरो व इमिणा समो होज्जा ॥२९०॥
भयवं नाऊण समाए माणसं तक्खणा विउव्वेइ । पउमं सहस्सपत्तं कंचणमयमुज्जलुज्जोयं ॥२९१॥
तस्सोवरिं निविट्ठो विज्जुपुंजोव्व संतियं रूवं । निम्मवइ मईव स्सो निम्मललायण्णसलिलनिहिं ॥२९२॥
आउट्टो भणइ जणो रूवं साभाविय इमस्स इमं । इत्थिजणपत्थणिज्जो मा होमि न दंसियं पढमं ॥२९३॥
भणियं भूवइणा वि य अहो । इमस्सेरिसो अइसउत्ति । ताहे अणगारगुणे इमेरिसे पन्नवइ तस्स ॥२९४॥
तवगुणओ अणगारा जंबुद्दीवाइए असंखेज्जे । भरिए कुणंति वेउव्वियाण रूवाण इय सत्ती ॥२९५॥
जं होइ ता किमेयं अच्चब्भुयमेत्थ तुम्ह पडिहाइ । एत्थंतरम्मि धणनामसेट्ठिणा भासिओ सामी ॥२९६॥
तं निज्जियजगरूवो एसा वि य महिलियाण सव्वाण । मम धूया धुणइ धुवं सोहग्गमडप्फरमणग्घ ॥२९७॥
ता कुण पाणिग्गहणं समुचियकमवत्तिणो महासइणो । होति तओ सो विसए विसोवमे कहिउमाढत्तो ।
जहा॥ विसया विसं व विसमा विसया बिडिसामिसं व मरणकरा । विसया सेविज्जंता छलबहुला तह मसाणं वा॥
निसियग्गखग्गपंजरघरं व सव्वंगछेइणो विसया । किंपागपागसरिसा विसया सुहमहुरभावेण ॥३००॥
खणदिट्ठा खणनट्ठा खलजणमणमीलणोवमा विसया । किं बहुणा सव्वेसिं विसया मूलं अणत्थाण ॥३०१॥
एईए जइ पओअणमत्थि मम ते तओ वयं लेउ । अह बिच्छड्डसणाहा पव्वज्जा तीए पडिवण्णा ॥३०२॥
भयवं पयाणुसारी अज्झयणाओ महापरिण्णाओ । पव्वायरियपमुहा गयणंगणगामिणी विज्जा ॥३०३॥
उद्धरिया तीय वसा जंभगदेवोवलद्धवसओ य । इच्छासंचारपरो संजाओ सो महाभागो ॥३०४॥
पुव्वाओ देसाओ अहण्णया उत्तरावहं भगवं । विहरंतो संपत्तो दुब्भिक्खं तत्थ संजायं ॥३०५॥
नो तत्तो निस्सारो लब्भइ अवहंतगा पहा जाया । कंठसमं गयपाणो भगवंतं भणइ तो संघो ॥३०६॥
तित्थाहिवे तुमम्मि वि कहं संघो वरगुणाण संघाओ अट्टवसट्टोवगओ लहेज्ज मरणं, न जुत्तमिणं ॥३०७॥
ताहे पडिविज्जाए चलिओ संघो ससेइ ता जाव । सेज्जायरो गिहाओ गोचारिकए गओ रन्नं ॥३०८॥
पासइ ते उप्पइए सिहंलविन्तेण छिंदिओ भणइ । भयवं । अहंपि तुब्भ बाढं साहम्मिओ जाओ ॥३०९॥
सोवि लइओ इमं सुयमणुस्सरंतेण संतचित्तेण । सव्वजियगोयरापारसारकरुणानिहाणेण ॥३१०॥

कात्यायिन प्रभवमात्मपदे निवेश्य, कर्मक्षयेण पदमव्ययमाससाद ॥ ॥

तत प्रभव ११, शय्यम्भवस्य २३, यशोभद्रे ५०, सम्भूतिविजयस्स ८, भद्रबाहो १४, एवं श्रीवीर-निर्वाणात् १७०। उक्त च परिशिष्टपर्वणि–श्रीवीरमोक्षाद्वर्षशते सप्तत्यग्रे गते सति ।

भद्रबाहुरपि स्वामी ययौ स्वर्गं समाधिना ॥ ॥

स्थूलभद्रे ४५, एव 'दुपन्नरस' त्ति द्वे शते पञ्चदशाधिके (२१५) श्रीवीरनिर्वाणात् पालकनृप-सर्वनन्दराज्य-कालोऽप्येतावानेव ।

अज्जमहागिरि तीसं अज्जसुहत्थीण वरिसछायाला । गुणसुदर चउआला एव तिसया पणत्तीसा ॥३॥

आर्यमहागिरि ३०, आर्यसुहस्तीना ६, गुणसुन्दर. ४४, एव त्रीणि शतानि पञ्चत्रिंशदधिकानि (३३५)।

तत्तो इगचालीस निगोयवक्खायकालिगायरिओ । अट्ठत्तीस खडिल एव चउदस चउद्दस य ॥४॥

तत ३३५ अनुनिगोदव्याख्याता कालकाचार्य । 'किलास्मद्भूत सप्रति भरते कालकाचार्यो निगोद-व्याख्यातेति' श्रीसीमन्धरवाच श्रुत्वा वृद्धविप्ररूपेणेन्द्र कालकाचार्यपार्श्वे तथैव निगोदव्याख्याश्रवणा-दनु निजमायुरपृच्छत् । तैश्च श्रुतोपयोगादिन्द्रोऽसाविति ज्ञात । भिक्षागतयतीना स्वागमज्ञप्त्यै वसति-द्वार परावृत्त्य स्वस्थानमगमदिति । अय च प्रज्ञापनोपाङ्गकृत् सिद्धान्ते श्रीवीरादन्वेकादशगणभृद्भिः सह त्रयोविंशतितम पुरुष श्यामार्य इति व्याख्यात ।

उक्त चोत्तराध्ययने परीषहाध्ययननिर्युक्तौ परीषहाधिकारे—

उज्जेणि कालखमणा सागरखमणा सुवन्नभूमीसु। पुच्छा आउ य सेस इदो सा दिव्वकरण च ॥ ॥

इति गाथाचूर्णौ 'उज्जेणीए कालगायरिया जाव सक्को निगोयजीवे पुच्छइ सा दिव्व ति शालामुख-परावर्तः।' ततोऽसौ श्यामार्योऽन्यो वेति चिन्त्यम्।

असौ वर्ष ४१, स्कन्दिलसूरिः ३८, एव चत्वारि शतानि चतुर्दश य (४१४)।

अत्र चाय वृद्धसम्प्रदाय –स्थूलभद्रस्य शिष्यद्वयम्–१ आर्यमहागिरि, २ आर्यसुहस्ती य।

तत्र, आर्यमहागिरेर्या शाखा सा मुख्या। सा चैव स्थविरावल्यामुक्ता–

सूरि १० बलिस्सह ११ साई १२ सामज्जो १३ सडिलो य १४ जोयधरो।

१४ अज्जसमुद्दो १५ मगू १६ नदिल्लो १७ नागहत्थी य ॥

१८ रेवइसिंहो १९ खदिल २० हिमव २१ नागज्जुणा य २२ गोविंदा।

सिरिभूइदिन्न-लोहिच्च-दूसगणिणो य देवड्ढी ॥

असौ च श्रीवीरादनु सप्तविंशतितम पुरुषो देवर्द्धिगणि. सिद्धान्तान् अव्यवच्छेदाय पुस्तकाधि-रूढानकार्षीत्। द्वितीयशाखा तु श्रीकल्पसूत्रोक्ता 'एवम्—

अज्जसुहत्थी य सुट्ठिय तहिंददिन्ने य अज्जदिन्ने य। सीहगिरिवइरसामी सोपारग वइरसेणे य ॥ ॥

एव चात्र शाखाद्वयेऽप्यार्यसुहस्तिनोऽनु गुणसुन्दर, श्यामार्यादनु स्कन्दिलाचार्यश्च न दृश्यते, तथाऽप्यत्र संप्रदाये दृष्टावतस्तावेव प्रोक्तौ। एवमग्रेऽपि रेवतिमित्रादौ ज्ञेयम्।

रेवइमित्ते छत्तीस अज्जमगू अ वीस एव तु। चउसय सत्तरि चउसय तिपन्ने कालगो जाओ ॥५॥

चउवीस अज्जधम्मे एगुणचालीस भद्दगुत्ते य। सिरिगुत्ति पनर वइरे छत्तीस एव पण चुलसी ॥६॥

तेरस वासा सिरिअज्जरक्खिए, वीस पूसमित्तस्स। इत्थ य पणहिय छसएसु सागसवच्छरुप्पत्ती ॥७॥

द्वादशाब्दं च दुर्भिक्षं तदा सन्नवहा पथाः । विद्यापिण्डं तदानीय वज्रः साधूनभोजयत् ॥१२१॥
अथोचे तान्न भिक्षाऽस्ति विद्यापिण्डेन वर्तनम् । ऊचुस्ते व्रतहान्या किं, क्रियतेऽनशनं न भो ॥१२२॥
वज्रसेनोऽन्तिषद् ज्ञात्वा, प्रक् प्रैषीत्यनुशिष्य तु । यत्र त्वं लभसे भिक्षां लक्षजातान्नात्तदा मुने ॥१२३॥
गतं दुर्भिक्षमित्येतद्विज्ञाय स्थानमाचरेः । वज्रस्वामी पुनर्भक्तं विमोक्तुं सपरिच्छदः ॥१२४॥
लघु क्षुल्लक एकस्तु, तिष्ठेत्युक्तोऽपि साधुभिः । नास्थादाख्याय भव्यानामथ व्यामोह्य तं गतः ॥१२५॥
शैलमेकमथारुक्षत्, क्षुल्लकोऽप्यनु तत्पदें । नितम्बे तद्गिरेः स्थित्वा, पादपोपगमं व्यधात् ॥१२६॥
तापेन तु क्षणमिव विलीय द्यां स जग्मिवान् । सुरैस्तन्महिमा चक्रे, किमिदं मुनयोऽवदन् ॥१२७॥
आचख्युर्गुरवस्तेषां क्षुल्लः स्वार्थमसाधयत् । ऊचुस्ते दुष्करं तर्हि, नास्माकं स्वार्थसाधनम् ॥१२८॥
प्रत्यनीका अमरी तत्र, श्राविकारूपभाग् मुनीन् । न्यमन्त्रयद्भक्तपानैः, पारणं क्रियतामिति ॥१२९॥
प्रत्यनीकेति तां ज्ञात्वा, गुरवोऽन्यं गिरिं ययुः कायोत्सर्गमधिष्ठात्र्यै चक्रुः साऽऽगत्य तानवक् ॥१३०॥
पूज्या सन्तु सुखेनाऽत्र, ततस्तत्र समाधिना । चक्रुः कालं रथेनैत्य शक्रस्तानानमत् ततः ॥१३१॥
प्रदक्षिणा रथस्थोऽदाद् वृक्षादीनप्यनामयत् । ते तथैवाऽस्थुरद्रिः स तद्रथावर्त्त इत्यभूत् ॥१३२॥" इति ।

तथैव विस्तरतः श्रीआवश्यकसत्कचूर्णि-श्रीमलयगिरिकृतवृत्ति-श्रीहारिभद्रीयवृत्ति प्रभावकचरित्रादिष्वप्यभिहितमस्ति ।

एवमभिधानराजेन्द्रकोश आवश्यकग्रन्थान्तर्गता श्रीवज्रस्वामिकथापद्यभाषायां प्रदर्शिताऽस्ति । (अभिधानराजेन्द्रकोशप्रथमविभागपत्र २१६) ।

अत्राऽन्तराले श्रीवीरमुक्तिगमनकालात् पञ्चविंशत्यधिकापञ्चशत५२५ वत्सरे श्रीशत्रुञ्जयमहातीर्थोच्छेदः सञ्जातः, तस्य च पुनरुद्धारो जावडिनाम्ना श्राद्धपुङ्गवेन वीरसंवत् ५७० व कृतः । तस्मिन्नुद्धारे श्रीवज्रस्वामिना मिथ्यादृष्टीभूतं जीर्णकपर्दियक्षमपाकृत्य तत्स्थाने ।ई दर्पियक्षं स्थापयित्वर्षभदेवप्रभोर्बिम्बस्य प्रतिष्ठा कृता ॥८३॥

अथ श्रीवज्रस्वामिनश्चरमदशपूर्वित्वेन तथा तदनन्तरव्यवच्छिन्नानि वस्तूनि प्रदर्शयन् पथ्यागीतिमाह—

चरमो अवि दसपुव्वी सो दसपुव्वीण अचरमो जाओ ।
तो वुच्छिण्णाणि तुरिअआगिइसंघयणदसमपुव्वाणि ॥८४॥(पच्छागीई)

(प्रे०) "चरमो" इत्यादि, 'सो' त्ति, स=श्रीवज्रस्वामी गुरुः "चरमो अवि दसपुव्वो" त्ति, चरमोऽपि=अन्तिमोऽपि दशपूर्वी=दशपूर्वविद् 'दसपुव्वीण अचरमो जाओ" त्ति, दशपूर्विणां=दशपूर्वधराणामचरमो=अनन्तिमो जातः ।

अत्र च विरोधाभासाख्याऽलङ्कृतिर्द्रष्टव्या-तद्यथा-य एव अत्र चरम उक्तस्तस्यैवाऽचरमत्वेन न चरम=अचरम इति नञ्तत्पुरुषसमासमाश्रित्य भणने विरोधो भवति । परि-

कात्यायिन प्रभवमात्मपदे निवेश्य, कर्मक्षयेण पदमव्ययमाससाद ॥ ॥

तत प्रभव ११, शय्यम्भवस्य २३, यशोभद्रे ५०, सम्भूतिविजयस्स ८, भद्रबाहो १४, एव श्रीवीर-निर्वाणात् १७० । उक्त च परिशिष्टपर्वणि–श्रीवीरमोक्षाद्वर्षशते सप्तत्यग्रे गते सति ।

भद्रबाहुरपि स्वामी ययौ स्वर्गं समाधिना ॥ ॥

स्थूलभद्रे ४५, एव 'दुपन्नरस' त्ति द्वे शते पञ्चदशाधिके (२१५) श्रीवीरनिर्वाणात् पालकनृप-सर्वनन्दराज्य-कालोऽप्येतावानेव ।

अज्जमहागिरि तीस अज्जसुहत्थीण वरिसछायाला । गुणसुदर चउआला एव तिसया पणत्तीसा ॥३॥

आर्यमहागिरि ३०, आर्यसुहस्तीना ६, गुणसुन्दर ४४, एव त्रीणि शतानि पञ्चत्रिंशदधिकानि (३३५) ।

तत्तो इगचालीस निगोयवक्खायकालिगायरिओ । अट्ठत्तीस खंडिल एव चउदस चउद्दस य ॥४॥

तत ३३५ अनुनिगोदव्याख्याता कालकाचार्य । 'किलास्मद्भरत सप्रति भरते कालकाचार्यो निगोद-व्याख्यातेति' श्रीसीमन्धरवाच श्रुत्वा वृद्धविप्ररूपेणेन्द्र कालकाचार्यपार्श्वे तथैव निगोदव्याख्याश्रवणा-दनु निजमायुरपृच्छत् । तैश्च श्रुतोपयोगादिन्द्रोऽमाविति ज्ञात । भिक्षागतयतीना स्वागमज्ञप्त्यै वमति-द्वार परावृत्त्य स्वस्थानमगमदिति । अय च प्रज्ञापनोपाङ्गकृत् सिद्धान्ते श्रीवीरादन्वेकादशगणभृद्भिः सह त्रयोविंशतितम पुरुष श्यामार्य इति व्याख्यात ।

उक्त चोत्तराध्ययने परीषहाध्ययननिर्युक्तौ परीषहाधिकारे--

उज्जेणि कालखमणा सागरखमणा सुवन्नभूमीसु । पुच्छा आउ य सेस इदो सा दिव्वकरण च ॥ ॥

इति गाथाचूर्णौ 'उज्जेणीए कालगायरिया जाव सक्को निगोयजीवे पुच्छइ सा दिव्व ति शालामुख-परावर्त ।' ततोऽसौ श्यामार्योऽन्यो वेति चिन्त्यम् ।

असौ वर्ष ४१, स्कन्दिलसूरि ३८, एव चत्वारि शतानि चतुर्दश य (४१४) ।
अत्र चाय वृद्धसम्प्रदाय –स्थूलभद्रस्य शिष्यद्वयम्-१ आर्यमहागिरि, २ आर्यसुहस्ती य ।
तत्र, आर्यमहागिरेर्या शाखा सा मुख्या । सा चैव स्थविरावल्यामुक्ता–
सूरि १० बलिस्सह ११ साई १२ सामज्जो १३ सडिलो य १४ जीयधरो ।
१४ अज्जसमुद्दो १५ मगू १६ नदिल्लो १७ नागहत्थी य ॥
१८ रेवइसिंहो १९ खदिल २० हिमव २१ नागज्जुणा य २२ गोविंदा ।
सिरिभूइदिन्न-लोहिच्च-दूसगणिणो य देवड्ढी ॥

असौ च श्रीवीरादनु सप्तविंशतितम पुरुषो देवर्द्धिगणिः सिद्धान्तान् अव्यवच्छेदाय पुस्तकाधि-रूढानकार्षीत् । द्वितीयशाखा तु श्रीकल्पसूत्रोक्ता 'एवम्—

अज्जसुहत्थी य सुट्ठिय तहिंददिन्ने य अज्जदिन्ने य । सीहगिरिवइरसामी सोपारग वइरसेणे य ॥ ॥

एव चात्र शाखाद्वये-ऽप्यार्यसुहस्तिनोऽनु गुणसुन्दर, श्यामार्यादनु स्कन्दिलाचार्यश्च न दृश्यते, तथा-ऽप्यत्र संप्रदाये दृष्टावतस्तावेव प्रोक्तौ । एवमग्रेऽपि रेवतिमित्रादौ ज्ञेयम् ।

रेवइमित्ते छत्तीस अज्जमगू अ वीस एव तु । चउसय सत्तरि चउसय तिपन्ने कालगो जाओ ॥५॥
चउवीस अज्जधम्मे एगुणचालीस भद्दगुत्ते य । सिरिगुत्ति पनर वइरे छत्तीस एव पण चुलसी ॥६॥
तेरस वासा सिरिअज्जरक्खिए, वीस पूसमित्तस्स । इत्थ य पणहिय छसएसु सागसवच्छरुप्पत्ती ॥७॥

यदुक्तम्—

△"दसपुव्वविच्छेओ वइरे संघयणमद्धनाराय। पचहिं वाससएहिं चउरासीए समहिएहिं ॥" इति।

एवमन्यत्रा-ऽपि—

△"दस पुव्वा सपुण्णा वोच्छिन्ना सुरभवम्मि सपत्ते। वइरम्मि महासत्ते संघयण अद्धनारायं ॥" इति।

एवञ्च श्रीतपागच्छपट्टावली किरणावल्यादिष्वपि। तथा चोक्तं विचारसारप्रकरणेऽपि—

दसपुव्वस्स य छेओ संघयणचउत्थयस्स तह चेव साहू मि वइरणामे खीरासवलद्धिसम्पन्ने॥६२४॥"इति।

तन्दुलवैचारिकवृत्ति-दीपालिकाकल्पादौ पुनः संहननचतुष्कव्युच्छेद उक्तः।

कालसप्ततिकाप्रकरणे पुनश्चतुर्थ- पञ्चमसंहननयोर्विच्छेद उक्तः।

तथा च तद्ग्रन्थः–'पणचुलसीइसु वइरे दस पुव्वा अद्धकीलिसंघयण।' इति।

अथ युगप्रधानं तथा वलभीवाचनाऽपेक्षया वाचनाचार्यमपि श्रीआर्यरक्षितसूरि गाथा-द्वयेन निर्देष्टुकाम आदौ पथ्यार्या भणति.. .. ...

आसी तयाऽज्जरक्खिअसूरी गुणवीसमो जुगपहाणो।
जेण विहत्तो चउहा अणुओगो कालमासिज्ज ॥८५॥ (पच्छाञ्जा)

(प्रे०) "**आसी**" इत्यादि "**तया**" त्ति, तदा=आर्यश्रीवज्रसेनस्वामिकाले "**अज्जरक्खिअसूरी**" त्ति, आर्यरक्षितसूरिः=सोमदेवद्विजतनयो रुद्रसोमाकुक्षिभवो दशपुरवास्यार्यतोसलिपुत्रशिष्यो भद्रगुप्तसूरेर्निर्यामक आर्यवज्रस्वामिनः पार्श्वे पठितसार्द्धनवपूर्वः प्रतिबोधितनिजाखिलकुटुम्बः "**गुणवीसमो जुगपहाणो**" त्ति, श्रीआर्यवज्रस्वामिनः पश्चादेकोनविंशतितमो युगप्रधानः '**आसी**' त्ति, आसीत्=बभूव। अनुक्तेऽपि तच्छब्दे 'यत्तदोर्नित्यसापेक्षत्वात्तच्छब्दो ग्राह्यस्तेन स क इत्यत्राऽऽह–"**जेण**" त्ति, येन श्रीआर्यरक्षितसूरिपुङ्गवेन "**कालमासिज्ज**" त्ति, कालं=समयं मत्यादिहानिमन्तमाश्रित्य=प्रतीत्य "**अणुओगो**" त्ति, अणु=सूत्रं महानर्थस्ततो महतोऽर्थस्याऽणुना=सूत्रेण योगो=अणुयोगः, अथवाऽनुयोजनमनुयोगः, यद्वाऽनुरूपोऽनुकूलो वा योगः=अनुयोगः=अर्थव्याख्यानम्, "**चउहा**" त्ति, चतुर्धा=चतुर्विधः चरणकरणानुयोग-धर्मकथानुयोग गणितानुयोग-द्रव्यानुयोगरूपश्चतुष्प्रकारः "**विहत्तो**" त्ति, विभक्तः=विभागीकृतः, **तथा चोक्तमनुयोगद्वारे–**

"देविंदविंदएहिं महानुभावेहिं रक्खियऽज्जेहिं। जुगमासज्ज विभत्तो अणुओगो तो कओ चउहा ॥' इति।

△ विचारश्रेणिपरिशिष्टादिष्वपि दृश्येते।

●तथा-ऽपापावृहत्कल्पे-ऽपि–"वासपचसएहिं अज्जवइरे दसम पुव्व, संघयणचउक्कं च अवगच्छिही" इति।

उक्तञ्चा-ऽन्यत्रा-ऽपि–

'दसपुव्वीवुच्छेओ वइरे तह अद्धकीलसंघयणा। पचहि वाससएहिं चुलसी य समयअहियम्मि॥ ॥"इति।

एतदपेक्षया शकटालमन्त्रिमरणं स्थूलभद्रस्वामिदीक्षा च नवमनन्दावसरे न स्यात्, यतः श्रीस्थूलभद्रस्वामिनः स्वर्गमनं **गुर्वावली-तपागच्छपट्टावल्या**दिषु वीरात्पञ्चदशाधिकशतद्वयवर्षे भणितम्, तथा **प्रथमोदययुगप्रधानयन्त्रके** युगप्रधानपर्यायकालः पञ्चचत्वारिंशद्वर्षमानो व्रतपर्यायश्चतुर्विंशतिवर्षप्रमित उदितः, तयोः पर्याययोः समुदितः काल एकोनसप्ततिवर्षाणि भवति, तेषाञ्च पूर्वोदितपञ्चदशाधिकद्विशतवर्षमितस्वर्गगमनकालादपसारे कृते वीरात् षट्चत्वारिंशदधिकवर्षशते व्रतं स्यात्, तस्मिन्नेव वर्षे च शकटालमन्त्रिमरणमभूत् तथा चेह प्रथमनन्दनृपस्य वीरात् षष्टिवर्षे व्यतिक्रान्ते राज्यप्राप्तौ सत्यां नवनन्दानां समुदितकालस्य शताधिकपञ्चाशत्त्वेन नवमनन्दस्य वीरात्पञ्चदशोत्तरशतद्वयवर्षे राज्यान्तः स्यात्, तस्माच्च संवत्सरात् दुष्षमाकालश्रीश्रमणसङ्घस्तोत्रोदितस्य नवमनन्दस्य पञ्चपञ्चाशद्वर्षमितस्य राज्यकालस्यापसारे कृते वीरात्षष्ठ्यधिकवर्षशते नवमनन्दस्य राज्यलाभो भवेत्। तथा च सति नवमनन्दस्य राज्यप्राप्तेः पूर्वमेव शकटालमन्त्रिमरणं स्थूलभद्रस्वामिव्रतग्रहणञ्च स्यात्। एतद्द्वयञ्च **श्रीउपदेशपदवृत्ति-परिशिष्टपर्व-श्रीकल्पसूत्रसुबोधिकावृत्त्यादिषु** नवमनन्दकाले दर्शितम्।

---

१ वीस २ चउच३त्तिगारस ४ तेवीस ५ वीस ६ अट्ठ ७ चउदस य।
८ पणयाल ९ तीस १० छत्तालीसा ११ चउचत्त १२ इगयाला ॥ ॥
१३ अडतीसा १४ छत्तीसा १५ चउच१६त्तिगयाल १७ पनर १८ छत्तीसा।
१९ तेरस २० वीसं सव्वाउय च १ एग सय२मसीई ॥ ॥
३ पणसीई ४ बासट्ठी ५ छासी ६नवई ७ छहुत्तरी चेव।
८ नवनवइ तओ तिण्ह ९-१०-११एगसय १२ छन्नवइ चेव ॥ ॥
अट्ठारसुत्तर १३ सय१४मट्ठनवइ १५ दुगहियसय च नायव्वं।
१६ पणहियसय १७ सय१८ मडसी १९ पणहत्तरि तह य २० सगसट्ठी ॥
तिन्नि पुण दुन्नि चउरो पच य सग पण छ एग तह तिन्नि।
दो पच चउ ति सग सत्त सत्त य मासा कमेणुवरिं॥ ॥

यदि पुनर्वालभवाचनासत्कस्थविरकालदर्शिगाथान्तर्गत 'सम्भूयस्स-ऽट्ठ' इति पाठमपाठत्वेन सम्भाव्य 'सम्भूयसट्ठि' इति पाठोऽङ्गीक्रियते तदा वालभवाचनापेक्षया सगच्छेदपि। यतस्तदपेक्षया श्रीसम्भूतसूरेर्युगप्रधानपर्याये द्विपञ्चाशद्वर्षाणामाधिक्येन तस्य स्वर्गगमनसवदि, भद्रबाहुस्वामि-स्थूलभद्रस्वामिनोरन्येषाञ्च जन्म-दीक्षादिसवत्स्वपि द्विपञ्चाशद्वर्षाणां प्रक्षेप कर्तव्य। तथा सति स्थूलभद्रस्वामिनो दीक्षा वीरात् शतोत्तराष्टनवतिवर्षे भवति। तेन नवमनन्दकाले शकटालमन्त्रिमरण स्थूलभद्रस्वामिदीक्षा च सम्पद्यते, नवमनन्दस्य पञ्चपञ्चाशद्वर्षमितराज्यकालत्वेन वीरात् षष्ट्यधिकशतवर्षादारभ्य शतद्वययुतपञ्चदशवर्षं यावद् राज्यस्य प्रवर्तनात्।

प्रत्यन्तरगत पाठ - ति पण दुन्नि (त्ति)चउर पच य सग पण पणछ इग तिन्नि दो पच।
चउ ति सग सत्त सत्तय सत्त मासा कमेणुवरिं ॥ ॥

एव वज्रस्वामिनः समीपं प्रेषितोऽन्तराले श्रीभद्रगुप्तसूरेर्निर्यामकोऽभूद् इति। अपरेपामत्राप्यस्वरसः, यत एकादशवार्षिको न ह्येतादृशः पठितो भवेदिति मन्यमाना अस्य गृहस्थपर्यायं द्वाविंशति २२ वर्षाणि सर्वायुश्च पञ्चनवति९५वर्षाणि, न पुनरितरेषामिव पञ्चसप्तति ७५वर्षाणि स्वीकुर्वन्ति। तथा सति श्रीआर्यरक्षितसूरेर्जन्म वीरसंवत् ५०२ वर्षे दीक्षा च वीरसंवत् ५२४ वर्षे स्यात् । तदभिप्रायमवलम्ब्य पुनर्गाथासत्कपूर्वार्धमित्थं व्याख्येयम् "अ " त्ति, अस्य=श्रीआर्यरक्षितसूरेः "वीरा" त्ति, वीरात्=श्रीवीरप्रभुमुक्तिगमनकालात् "सव खे" त्ति, श्रवौ श्रवसी वा=श्रोत्रौ द्वौ, समं=गगनं=शून्यम्, तथा चाऽऽकाशपर्यायवाचकान् शब्दान् दर्शयता श्रीमत्यां भगवत्यामुक्तम्–"आगासत्थिकायस्स ण पुच्छा ? गोयमा ! अणेगा अभिवयणा ५०, त०–आगासेति वा आगासत्थिकाये ति वा गगणे ति वा नभेति वा समेति वा विसमेति वा . "इति। खानि=अक्षाणि पञ्च, एतेऽङ्का वामगतिविन्य- ५०२ इति प्रमाणं यत्र तत्र श्रवसमखे श्रवःसमखे वा "ऽद्दे" त्ति, अब्दे=वर्षे वीरसवत् ५०२ हायने "जम्मो" त्ति, जन्म=उद्भवो जातः । "वेअवेअसरे" त्ति, वेदा=ऋग्वेदादयश्चत्वारः, वेद्ये ज्ञाताऽज्ञातरूपे द्वे, शराः पञ्च, एतेऽङ्का यस्मिंस्तस्मिन् वेदवेद्यशरे =वीरसंवत् ५२४ वर्षे "वय" त्ति, व्रतं=तपस्याऽभूत् । अत्र तत्त्वं सर्वविदो बहुश्रुता वा विदन्ति। 'स' त्ति, स=श्रीआर्यरक्षितप्रभुः "थभिइसरे" त्ति, स्तम्भाश्चत्वारः, इभा अष्टौ, शराः पञ्च, एतेऽङ्का प्रातिलोम्येन स्थापिता ५८४ इतिमानं यत्र तत्र स्तम्भेभशरे= वीरसंवत् ५८४ वर्षे "जुगवरो" त्ति, युगवरः=युगप्रधानस्तथावालभवाचनानुगतस्थविरक्रमाऽपेक्षया वाचनाचार्यः समजायत। "अस्सणिहिभूए" त्ति, अश्वनिधिभूताः=सप्त-नव-पञ्चाङ्कलक्षणा वामगतिस्थिता ५९७ यत्र तत्राऽश्वनिधिभूते वीरसवत् ५९७ वर्षे "दिवं" ति, दिव=त्रिदशालयं "गओ" त्ति, गतः=प्राप्तः।

इत्थञ्च श्रीआर्यरक्षितस्वामी श्रीदुष्षमासङ्घस्तवयन्त्र द्यनुसारेण द्वाविंशति२२ वर्षाणि गृहस्थपर्याये, चत्वारिंशद्४०वर्षाणि सामान्य-...पर्याये, त्रयोदश १३ वर्षाणि युग-

● पन्न्यासश्रीकल्याणविजयानामभिप्रायेण वलभीवाचनास्थविरक्रमानुगतेनाऽमुष्य वाचनाचार्यकाल उपलक्षणतस्तत्र युगप्रधानकालो वीरसवत् ५८३ त ५९६ वर्षे यावत् समस्ति, ततस्तदपेक्षया श्रीरक्षितसूरेर्युगप्रधानत्व स्वर्गतिश्च क्रमेण वीरसवत ५८३-५९६ वर्षेऽभूदिति वलभीवाचनाऽनुसारेण।

अथ गोष्ठामहिलस्य सप्तमनिह्नवस्य श्रीआर्यरक्षितसूरे स्वर्गगमनाऽन्तरं वीरसवत ५८४ वर्षे सञ्जातस्याऽसङ्गतिमपास्तुं तथा वीरसवत् ५३३ वर्षे श्रीभद्रगुप्तसूरेर्निर्यामण सङ्घटयितुं स्वगणानाऽभिप्रायेण पुन श्रीआर्यरक्षितसूरेर्जन्म वीरसवत् ५०८ वर्षे, दीक्षा वीरसवत् ५२० वर्षे, भद्रगुप्तसूरेर्निर्यामण वीरसंवत् ५३३ वर्षे, युगप्रधानत्वं वीरसवत् ५७० वर्षे, स्वर्गतिश्च वीरसंवत ५८३ वर्षेऽभवत्। ततो वीरसंवत् ५८४ वर्षे गोष्ठामहिलाख्य सप्तमो निह्नवो जात ।

तामपि । तथैव श्रीआर्यमहागिरिपादानां सम्प्रतिनृपकाले विद्यमानता-ऽपि संघटते तद्यथ **श्रीहिमवदाचार्यकृतस्थविरावल्यपेक्षया** श्रीवीरात् दशाधिकद्विशतवर्षत आरभ्य पञ्चच रिंशदुत्तरशतद्वयवर्षं यावदशोकनृपस्य राज्यं समस्ति, तदानीञ्च श्रीसम्प्रतिनृपस्य युवराजत विद्यमानत्वात् ।

किन्तु **तीर्थोद्गारप्रकीर्णके** तथा **तपागच्छपट्टावली-मेरुतुङ्गाचार्यकृतविचा श्रेण्यादिषु** 'ज रयणि' इत्याद्यवतरणगाथा आश्रित्य तथा **विविधतीर्थकल्पविचारसारप्र रणादिष्वपि** पञ्चपञ्चाशदुत्तरशतवर्षप्रमाणो नवनन्दानां राज्यकालो दर्शित', न तु पञ्चनव वर्षमितः । तदपेक्षया विक्रमादित्यो नृपो वीरात्सप्तत्यधिकशतवर्षचतुष्टयातिक्रमे भवति स्म ।

तद्यथा—वीरनिर्वाणात् षष्टिं वर्षाणि यावत् पालकनृपस्य राज्यमभूत् । ततः शताधि पञ्चपञ्चाशद्वर्षाणि यावन्नवनन्दानाम्, ततोऽष्टोत्तरशतवर्षाणि यावन्मौर्यवंशनृपाणाम्, त स्त्रिंशद्वर्षाणि यावत्पुष्यमित्रस्य, तदनु षष्टिवर्षाणि बलमित्र-भानुमित्रयोः, ततः पञ्चाचत्वारिं द्वर्षाणि यावन्नभोवाहनस्य, तदुत्तरं त्रयोदश वर्षाणि यावद् गर्दभिल्लनृपस्य, ततो वर्षचतु यावत् शकनृपस्येति समुदितः सर्वेषां राज्यकालः सप्तत्यधिकवर्षशतचतुष्टयमानो भवति ।

तेन वीराच्चतुःशतोत्तरसप्ततिवर्षेषु व्यतिक्रान्तेषु विक्रमादित्यो नृपो जायते स्म ।

पालकादिनृपाणां राज्यकालमानस्य प्रतिपादिका गाथाश्चेमाः—

"ज रयणिं कालगओ अरिहा तित्थंकरो महावीरो । त रयणीं अवणिवई (अवन्तीवई) अहिसित्तो पालओ राय सट्ठी पालयरण्णो ६० पणवण्णसय तु होइ नदाण १५५ । ×अट्ठसय मुरियाण तीस च्चिअ पुससमित्तस्स ॥ बलमित्त-भाणुमित्ता सट्ठी ६० वरिसाणि चत्त नहवाहणे ४० । तह गदभिल्लरज्ज तेरस १३ वरिसा सगस्स च इ

एवं विचारसारप्रकरणादिष्वपि पालकादिनृपाणां राज्यकालमानं दर्शितम् । 卐

● तथाऽप्यत्र-**श्रीहिमवदाचार्यापेक्षया** नवमनन्दराज्ये शकटालमृत्यु स्थूलभद्रस्वामिदीक्षे न भवत यतस्तैरष्टमनन्दनृपस्य वीरादेकोनपञ्चाशदधिकशतवर्षेषु व्यतिक्रान्तेषु कलिङ्गदेशपातन स्थविरावल्या दर्शि

तदक्षराणि त्वेवम्—... 'तस्स वसे पचमो चउरायणामधिज्जो णिवो वीराओ ण इगसयंहि अउणपन्नासेसु वासेसु विइक्कतेसु कलिंगरज्जे ठिओ । तया ण पाडलिपुत्ताहिवो अट्ठमो णदणिवो मि त्तधो अईवलोहावक्कतो कलिंगदेस पाडिऊण पुव्वि तित्थरूपकुमरगिरिम्मि सेणियणिवकारियजिणपा भजित्ता सोवण्णिय-उसभजिणपडिम घित्तूण पाडलिपुत्त पत्तो' इति । तेन वीरादेकोनपञ्चाशदधिक वर्षेषु गतेष्वष्टमनन्दनृपस्य विद्यमानत्वात शकटालमन्त्रिमरण-स्थूलभद्रस्वामिदीक्षयोर्वीरात् षट् चत्वारि दधिकशतवर्षेषु व्यतीतेषु भवनाच्च, ते नवमनन्दकाले न भवत. ।

उक्तञ्च विचारश्रेणावपि किञ्चिद्विस्तरत —

'जं रयणिं कालगओ अरिहा तित्थकरो महावीरो । त रयणिमवतिवई अहिसित्तो पालओ राया ॥

तैरुक्तं मम निर्यामो, नास्त्यन्यस्त्वं ततो भव । स तत्प्रति शृणोति स्म, नोल्लङ्घ्य गुरुशासनम् ॥१०२॥
कालं कुर्वद्भिरूचे तैर्मा, वात्सीर्वज्रसंनिधौ । वसेद्यस्तैः सहैकामप्युषां तैः सह तन्मृतिः ॥१०३॥
पठेर्भिन्नाश्रयस्थस्तत्तथेति स्वीचकार सः । तेषां स्वर्गमने सोऽगात्, श्रीवज्रस्वामिसंनिधौ ॥१०४॥
दृष्टश्च तैरपि स्वप्नं किंचित् किन्तूद्धृतं पयः । सावशेषश्रुतग्राही, तत्प्रतिच्छः समेष्यति ॥१०५॥
इति यावद्विमृष्टं तैः, रक्षितस्तावदागतः । पृष्टस्तोसलिपुत्राणां, किं शिष्योऽस्म्यार्यरक्षितः ॥१०६॥
एवमुक्तेऽवदद्वज्रः, स्वागतं तव वत्स ! किम् ? क्व स्थितोऽसि बहिः स्वामिन् ! बहिः स्थोऽध्येष्यसे कथम् १०७
स ऊचे भगवन् ! भद्रगुप्तादेशाद् बहिः स्थितः । वज्रस्वाम्युपयुज्योचे, गुरूक्तं युक्तमाचर ॥१०८॥
ततोऽध्येतुं प्रवृत्तो द्राक्, नवपूर्वाण्यधीतवान् । प्रारेभे दशमं पूर्वमार्यवज्रस्ततोऽभणत् ॥१०९॥
यविकानि त्रिशत्युक्तपरिकर्मसमान्यहो । पठाऽऽदौ जिनसङ्ख्यानि, कष्टात्तान्यथ सोऽपठत् ॥११०॥
इतस्तन्मातापितरौ शोकार्त्ताविति दध्यतुः । उद्द्योतं कर्तुमिष्टे चेदन्धकाराऽन्तरं ह्यरं ॥१११॥
यन्नैत्यद्यापि न पुत्रोऽथाहूतोऽप्यागमेत्तु सः । अथाऽनुजं तमाह्वातुं, प्राहैष्टां फल्गुरक्षितम् ॥११२॥
सोऽभ्यधाद्भ्रातरागच्छ व्रतार्थी ते जनोऽखिलः । स ऊचे सत्यमेतच्चेत्त्वमादौ परिव्रज ॥११३॥
लग्नं प्रव्रज्य सोऽध्येतुमधीयन् रक्षितोऽश्रत । यविकैर्घूर्णितोऽप्राक्षीत्, शेषमस्य कियत्प्रभो ! ? ॥११४॥
स्वाम्यूचे सर्षपं मेरोर्बिन्दुमब्धेस्त्वमग्रहीः । ततो दध्यौ विषण्णात्मा, दुष्प्रापं पारमस्य मे ॥११५॥
अथाऽपृच्छत्प्रभो ! यामि, भ्राता मामाह्वयत्यलम् । आहुस्तेऽधीष्व तस्याऽथ, पौनःपुन्येन पृच्छनं ॥११६॥
उपयुज्य गुरुर्जज्ञे, पूर्वं स्थास्यत्यदो मयि । व्यसृजत्तं दशपुरं सानुजं सोऽथ जग्मिवान् ॥११७॥
इतश्च रक्षिताचार्यैः, गतैर्दशपुरं तदा । प्रव्राज्य स्वजनान्सर्वान् सौजन्यं प्रकटीकृतम् ॥१३९॥
स्नेहात्पिताऽपि तैः, सार्द्धमास्ते गृह्णाति तद्व्रतम् । वक्ति सुतास्नुषादीनां, पुरो नाऽत्रसरस्त्रपे ॥१४०॥
उक्तं पुत्रेण सोऽवादीत्, प्रव्रजिष्याम्यहं परम् । उपानत्कुण्डिकाच्छत्रवस्त्रयुग्मोपवीतभृत् ॥१४१॥
ददिरे पितुराचार्या, प्रपद्येदमपि व्रतम् । स च तत्पालयामास, ब्रह्मवेषं तु नामुचत् ॥१४२॥
अथोचुः शिक्षिता डिम्भाः सर्वान् वन्दामहे मुनीन् । मुक्त्वा छत्रिणमेकं तु, तत्पराभवतोऽथ सः ॥१४३॥
ऊचे पुत्रेण पुत्राऽलं, गुरुरप्याह साम्प्रतम् । तापे दद्यां पट्टीं मौलावेव सर्वाण्यमोच्यत ॥१४४॥
अन्यदोपगते साधौ साधवः पूर्वसंज्ञिताः । अहंपूर्विकया वोढुं, गुरुमूलमुपस्थिताः ॥१४५॥
स्थविरोऽप्यूचिवान् पुत्र ! श्रेयश्चेत्तद्वहाम्यहम् । गुरुः स्माहोपसर्गः स्यात्, स सह्यो मेऽन्यथा क्षितिः ॥१४६॥
तत्रोपक्षिप्ते स सङ्घाना, गच्छता पथि डिम्भकैः । कटयं शुके हृतेऽप्यस्थात्, तूष्णीं माऽभूद्गुरोः क्षितिः ॥१४७॥
साधुभिश्च तदैवास्य, बद्धश्चोलपट पुरः । अथाऽऽगतानां गुरवः शाटकानायनेऽवदन् ॥१४८॥
द्रष्टव्यं दृष्टमेवेदं, स्याच्चोलपट एव तत् । पितुर्भिक्षाटनार्थं च, गुरुः साधून् रहोऽभ्यधात् ॥१४९॥
भिक्षामानीय भुञ्जीध्वं, मा स्म दत्त पितुर्मम । भक्तिः कार्या पितुर्मद्वत् साक्षादुक्त्वा मुनीनिति ॥१५०॥
आपृच्छ्यार्यमगाद् ग्राममागतास्मि पितः ! प्रगे । सर्वेऽप्याहुर्न तस्यादुर्विहृत्यैकैकशोऽथ ते ॥१५१॥
दध्यौ रुष्टोऽथ सम्प्राप्ते, सूनावाख्यास्यतेऽखिलम् । आचार्या प्रातरायाताः, पृष्टस्तातोऽखिलं जगौ ॥१५२॥
किं च त्वं नाऽभविष्यश्चेन्नाजीविष्यमहोऽप्यहम् । ततः सर्वेऽपि गुरुभिर्निर्भर्त्स्यन्त साधवः ॥१५३॥
पात्रमानय तातान्नमानेष्यामि स्वयं तव । अहमप्येतदानीतं भोक्ष्ये नैवाऽद्य हे पितः ! ॥१५४॥
सोऽथ दध्यौ लोकपूज्यो, भिक्षां यास्यत्यसौ कथम् । ततोऽहमेव यास्यामीत्युक्त्वा भैक्ष्याय सोऽगमत् ॥१५५॥
सोऽथैकत्र गृहेऽविक्षदपद्वारेऽवदद् गृही । साधो ! द्वारेण किं नैषि, सोऽवदद् मूर्ख ! वेत्सि नो ॥१५६॥
किं द्वारं किमपद्वारं प्रविशन्त्या गृहे श्रियः । तं गृही शकुनं मत्वा, ददौ स्थालेन मोदकान् ॥१५७॥
आगत्यालोचयत्तान् स, तत्सङ्ख्यात् वीक्ष्य सूरयः । ऊचुः शिष्या भविष्यन्ति, द्वात्रिंशन्निजसन्ततौ ॥१५८॥

तथा सति विक्रमादित्यनृपस्य वीरात् चतुःशताधिकसप्ततिवर्षाणामतिक्रमे सति राज्यलाभः, राज्यकालस्य च षष्टिवर्षमितत्वेन वीरात् त्रिंशत्यधिकपञ्चशतवर्षेषु व्यतीतेषु राज्यान्तश्च स्यात् ।

तथैवाऽनन्तरं दुष्षमाकालश्रीश्रमणसङ्घस्तोत्रावचूर्ण्यन्तर्के पाठे ऽपि दर्शितम् । परन्तु श्रीहिमवदाचार्यैः स्थविरावल्यां विक्रमादित्यनृपते राज्यलाभो वीराद् दशोत्तरवर्षशतचतुष्टये पठितः । तथा च तद्ग्रन्थः—

शेष पञ्चत्रिंशदधिकशत (१३५) विक्रमकाले प्रविष्टम् । विक्रमादित्यात्क्लिन्नसंवत्सरादशाश संवत्सर यावद् य काल स विक्रमकाल । स च पूर्वोक्तयुक्त्या १३५ वर्षमान इति । तत्र प्रविष्ट तत्र स्थितमिति ।

एव च सति किं जातमित्याह—

विक्कमरज्जारम्भा परओ सिरिवीरनिव्वुई भणिया । सुन्न-मुणि-वेय जुत्तो विक्कमकाला उ जिणकालो ॥ ॥

विक्रमकालाज्जिनस्य वीरस्य कालो जिनकाल—शून्य (०) मुनि (७) वेद (४) युक्त चत्वारि शतानि सप्तत्यधिकवर्षाणि श्रीमहावीर-विक्रमादित्ययोरन्तरमित्यर्थ । नन्वय काल श्रीवीरविक्रमयो कथ गणयते, इत्याह-विक्रमराज्यारम्भात्परत पश्चात् श्रीवीरनिर्वृत्तिरत्र भणिता । को भाव ? श्रीवीरनिर्वाणदिनादनु ४७० वर्षैर्विक्रमादित्यस्य राज्यारम्भदिनमिति । तथाहि—

पालक	६०		तदनु विक्रमादित्य	६०
नन्दा	१५५		धर्मादित्य	४०
मौर्या	१०८		माइल्ल	११
पुष्यमित्र	३०		नाइल्ल	१४
बलमित्र-भानुमित्रौ	६०		नाहड	१०
नभोवाहन	४०		एव	१३५
गर्दभिल्ल	१३		उभय	६०५
शका	४	एव ४७०		

तदनु शाकसंवत्सरप्रवृत्ति । उक्त च—

श्रीवीरनिर्वृत्तेर्वर्षैः षड्भि पञ्चोत्तरैः शतैः । शाकसंवत्सरस्यैषा प्रवृत्तिर्भरतेऽभवत् ॥ ॥" इति

तथैव पावापुरीकल्पे श्रीजिनप्रभसूरिभिरप्यभिहितम्—

'मह मुक्खगमणाओ पालय-नन्द-चंदगुत्ताइ-राईसु वोलीणेसु चउसयसत्तरेहिं वासेहिं विक्कमाइच्चो राया होही । तत्थ सट्ठी वरिसाण पालगस्स रज्ज पणपन्नसय नंदाणं, अट्ठोत्तरं सय मोरियवंसाणं, तीसं पूसमित्तस्स सट्ठी बलमित्त-भाणुमित्ताण, चालीस नरवाहणस्स, तेरस गद्दभिल्लस्स चत्तारि सगस्स । तओ विक्कमाइच्चो, सो साहियसुवण्णपुरिसो पुहवि अरिणं काउ नियं संवच्छरं पवत्तेही ।' इति ।

तीर्थोद्गारप्रकीर्णके ऽपि—

'निव्वाणरयणीओ चउपज्जोअपट्टम्मि । उज्जेणीए जाओ पालयनामो महाराया ॥'१॥

सङ्घः सङ्घाटकं प्रैषीद् गुरुं ज्ञापयितुं ततः । तैर्गोष्ठामाहिलः प्रैषि, न्यग्रहीत्तं स वादिनम् ॥१८७॥
श्रावकैरथ तत्रैव, चतुर्मासी स कारितः । इतश्चायुर्निजं ज्ञात्वा, गुरवो गच्छमूचिरे ॥१८८॥
आचार्यः कोऽस्तु वः स्माहुः,स्वजनाः फल्गुरक्षितः । स्याद् गोष्ठामाहिलो वाऽपि पुष्पस्त्वभिमतो गुरोः ॥१८९॥
शब्दयित्वा च निःशेषान्, गुरुर्दृष्टान्तमूचिवान् । निष्पावतैलहव्यानां, क्रियन्ते अधोमुखाः कुटाः ॥१९०॥
सर्वे निर्यान्ति निष्पावास्तैलांशाः सन्ति केचन । तिष्ठत्याज्यं पुनः प्राज्यमेवमेतेष्वहं त्रिपु ॥१९१॥
पुष्पं प्रति श्रुतेनाऽहं, निष्पावकुटसन्निभः । घृतकुम्भः पुनर्गोष्ठामाहिलं मातुलं प्रति ॥१९२॥
फल्गुरक्षितमाश्रित्य, तैलकुम्भसमस्तथा । तदाचार्योऽस्तु वः पुष्पस्तैरपि प्रत्यपद्यत ॥१९३॥
नवाऽऽचार्यं तथा साधूननुशिष्य यथोचितम् । विधायाऽनशनं शुद्धं स्वर्गलोकमगाद् गुरुः ॥१९४॥' इति ।
(पत्र-२१२ तः २१५)

तथैव विस्तरतः श्रीआवश्यकचूर्णि श्रीआवश्यकहरिभद्रसूरिनिर्मितवृत्ति-श्रीआवश्यकमलयगिरिप्रणीतटीका-श्रीप्रभावकचरित-धर्मरत्नप्रकरणवृत्त्यादिष्वपि निरूपितम् । ॥८६॥

अथ युगप्रधानं वलभीवाचनानुगतस्थविरक्रमापेक्षया वाचनाचार्यमपि श्रीदुर्बलिकापुष्पमित्रसूरिमाह पथ्यार्याद्वयेन—

तो वीसमो जुगवरो दुब्बलिआपुप्फमित्तसूरिवरो ।
जम्मोऽस्स वीरमोक्खाऽहे णहसाययविसयिमाणे ॥८७॥
गेण्हीअ स पव्वज्जं सायरपज्जत्तिहरमुहपमाणे ।
जुगपवरोऽस्सणिहिसरे हवीअ संजमरिउम्मि दिवं ॥८८॥

(प्रे०) "तो" इत्यादि "तो" त्ति ततः=श्रीआर्यरक्षितसूरेरनु "वीसमो जुगवरो" त्ति, विंशतितमो युगवरः=युगप्रधानः, तथा वालभवाचनागतस्थविरक्रममाश्रित्य तदन्वेव वाचनाचार्यश्च "दुब्बलिआपुप्फमित्तसूरिवरो" त्ति, दुर्बलिकापुष्पमित्रश्चाऽसौ सूरिवरः=सूरिषु=आचार्येषु वरः= श्रेष्ठ इति कृत्वा दुर्बलिकापुष्पमित्रसूरिवरः=दुर्बलिकापुष्पमित्रनामा सूरिरार्यरक्षितसूरेः शिष्यः सार्द्धनवपूर्वविद्बभूव ।

अथाऽमुष्य जन्मादिपर्यायान् सार्द्धपथ्यार्यया भणति—"जम्मो" इत्यादि, 'ऽस्स' त्ति, अस्य=श्रीदुर्बलिकापुष्पमित्रसूरेः "वीरमोक्खा" त्ति, वीरमोक्षात्=वीरविभुनिर्वाणकालात् "णहसाययविसयिमाणे" त्ति,नभ=आकाशं=शून्यम्,शायकाः=शराः पञ्च,विषयीणि=इन्द्रियाणि पञ्च, एतेषामङ्कानां वामगतिमीलितानां ५५० इति संख्याया मानं यत्र तत्र नभःसायक-

● 'स्वमिओ हविहुरागे' त्ति, पाठाऽन्तरे वा तस्य व्याख्येत्थम्—बहुलाऽधिकाराद्वादेरपि भकारस्य हकरादेशत्वेन भा=पर्वता=सप्त, यद्वा ह=शून्यम्, विधु=चन्द्र=एक, रागाः=भैरवादयः षट्, एतेऽङ्का वामगतिमीलिता यस्मिंस्तस्मिन् सविधुरागे ६१७ हविधुरागे ६१० वा वर्षे-वीरसंवत् ६१७-६१० वर्षे ख=स्वर्गमितः=गतः ।

तथा सति विक्रमादित्यनृपस्य वीरात् चतुःशताधिकसप्ततिवर्षाणामतिक्रमे सति राज्यलाभः, राज्यकालस्य च षष्टिवर्षमितत्वेन वीरात् त्रिंशत्यधिकपञ्चशतवर्षेषु व्यतीतेषु राज्यान्तश्च स्यात् ।

तथैवाऽनन्तरं दुष्षमाकालश्रीश्रमणसङ्घस्तोत्रावचूर्णिमत्के पाठे ऽपि दर्शितम् । परन्तु श्रीहिमवदाचार्यैः स्थविरावल्यां विक्रमादित्यनृपतेः राज्यलाभो वीराद् दशोत्तरवर्षशतचतुष्टये पठितः । **तथा च तद्ग्रन्थः—**

शेष पञ्चत्रिंशदधिकशत (१३५) विक्रमकाले प्रविष्टम् । विक्रमादित्याङ्कितसवत्सरात्शाकसवत्सर यावद् य काल• स विक्रमकाल । स च पूर्वोक्तयुक्तया १३५ वर्षमान इति । तत्र प्रविष्ट तत्र स्थितमिति ।

एव च सति किं जातमित्याह–

विक्कमरज्जारम्भा परओ सिरिवीरनिव्वुई भणिया । सुन्न-मुणि-वेय जुत्तो विक्कमकालाउ जिणकालो ॥ ॥

विक्रमकालाज्जिनस्य वीरस्य कालो जिनकाल –शून्य (०) मुनि (७) वेद (४) युक्त चत्वारि शतानि सप्तत्यधिकवर्षाणि श्रीमहावीर-विक्रमादित्ययोरन्तरमित्यर्थ । नन्वय काल श्रीवीरविक्रमयोः कथ गणयते; इत्याह-विक्रमराज्यारम्भात्परत पश्चात् श्रीवीरनिर्वृत्तिरत्र भणिता । को भाव ? श्रीवीरनिर्वाणदिनादनु ४७० वर्षैर्विक्रमादित्यस्य राज्यारम्भदिनमिति । तथाहि–

पालक	६०		तदनु विक्रमादित्य	६०
नन्दा	१५५		धर्मादित्य	४०
मौर्याः	१०८		माइल्ल	११
पुष्यमित्र	३०		नाइल्ल	१४
बलमित्र-भानुमित्रौ	६०		नाहड	१०
नभोवाहन	४०		एव	१३५
गर्द्भिल्ल	१३		उभय	६०५
शका	४	एव ४७०		

तदनु शाकसवत्सरप्रवृति । उक्तं च–

श्रीवीरनिर्वृत्तेर्वर्षै षड्भि पञ्चोत्तरे शतै । शाकसवत्सरस्यैषा प्रवृत्तिर्भरतेऽभवत् ॥ ॥" इति

तथैव पावापुरीकल्पे श्रीजिनप्रभसूरिभिरप्यभिहितम्—

'मह मुक्खगमणाओ पालय नन्द-चदगुत्ताइ-राईसु वोलीणेसु चउसयसत्तरेहिं वासेहिं विक्कमाइच्चो राया होही । तत्थ सट्ठी वरिसाण पालगस्स रज्ज पणपन्नसय नदाण, अट्ठोत्तर सय मोरियवसाणं, तीसं पूसमित्तस्स सट्ठी बलमित्त-भाणुमित्ताण, चालीस नरवाहणस्स, तेरस गद्दभिल्लस्स चत्तारि सगस्स । तओ विक्कमाइच्चो, सो साहियसुवण्णपुरिसो पुहवि अरिणं काउ नियं सवच्छरं पवत्तेही ।' इति ।

तीर्थोद्गारप्रकीर्णके ऽपि–

'निव्वाणरयणीओ चडपज्जोअपट्टम्मि । उज्जेणीए जाओ पालयनामो महाराया ॥'१॥

घटोदाहरणैः स्वपदे दुर्बलिकापुष्पमित्रं न्यस्य गुरुः स्वर्गे गतः इति ज्ञात्वा पृथक् स्थितः पश्चा-च्चाऽष्टमे कर्मप्रवादपूर्वे स्पृष्टमबद्धं कर्म, तथा नवमे प्रत्याख्यानपूर्वेऽपरिमाणकृतं प्रत्याख्यानं कर्तव्यमिति प्ररूपयन् दुर्बलिकापुष्पमित्रसूरिप्रमुखैर्वारितोऽप्यवगणयन् सङ्घेन कायोत्सर्गेन समाहूता शासनदेवी सीमन्धरप्रभुमापृच्छ्य कथिते सत्यपि कदाग्रहेणाऽश्रद्धानः सङ्घेन तिर-स्कृतः सप्तमो निह्नवो जातः ।

वीरसंवत् ५९७ वर्षे श्रीआर्यरक्षितसूरेः स्वर्गगमनमभूत्, ततोऽयं निह्नवोऽपि तस्मिन् काले बभूव । किन्तु आवश्यकवृत्त्यादौ वीरसंवत् ५८४ वर्षे सप्तमो निह्नवो जात इति भणित-मस्ति । तथा चोक्तं विशेषावश्यके "पचसया चुलसीया तइआ सिद्धिं गयस्स वीरस्स । अब-द्धियाण दिट्ठी दसउरनयरे समुप्पन्ना ॥ ॥" इति । अत्र तत्त्वं बहुश्रुता पूर्वविदा वा जानीयुः ।

एषैव शङ्का श्रीमहोपाध्यायधर्मसागरगणिभिरपि तपागच्छपट्टावल्यां कृताऽस्ति ।

तथा च तद्ग्रन्थः—"तत्र श्रीमदार्यरक्षितसूरि. सप्तनवत्यधिकपञ्चशत ५९७ वर्षान्ते स्वर्ग-भागि" ति पट्टावल्यादौ दृश्यते परमावश्यकवृत्त्यादौ श्रीमदार्यरक्षितसूरीणा स्वर्गगमनाऽन्तरं चतुरशीत्य-धिकपञ्चशत५८४ वर्षान्ते सप्तमनिह्नवोत्पत्तिरुक्ताऽस्ति । तेनैनद्बहुश्रुतगम्यमिति ॥" इति ।

किञ्च यदि "अय असीइमे सवच्छरे काले गच्छइ, वायणतरे पुण अयं तेणउए संवच्छरे काले गच्छइ इति दीसइ ॥१४८॥" इति कल्पसूत्रोक्तं त्रयोदशतारतम्ययुक्तं मतद्वयमिहाऽपि स्वीक्रियते तदा नास्ति कश्चिद्विरोधः, यतो येन मतेना-ऽऽर्यरक्षितसूरेः स्वर्गमनं वीरसंवदि ५९७ वर्षेऽभूत् तन्मते गोष्ठामहिलः सप्तमनिह्नवोऽपि ५९७ वर्षेऽभूत् । तथा येन मतेन गोष्ठामहिलः सप्तम-निह्नवो वीरसंवदि ५८४ वर्षेऽभवत् । तन्मते ही श्रीआर्यरक्षितसूरेः स्वर्गमनमपि वीरसंवदि ५८४ वर्षेऽभवत् । तेनैकेन मतेनैतद्वयमपि वीरसंवदि ५९७ वर्षेऽन्यमतेन च वीरसंवदि ५८४ वर्षे स्यादिति विरोधाभावः । एवं दीक्षा—श्रीभद्रगुप्तनिर्यामणादिष्वपि । तत्त्वं पुनरत्र तद्विदो विदुः ।

अथाऽस्य निह्नवस्य प्रादुर्भावता प्रदर्श्यते—तदा वीरसंवत् ६०९ वर्षेऽष्टमो निह्नवः शिवभूतिर्बोटिकमतस्थापको बभूव । तदुत्पत्तिः समासत एवम्—एकदाऽऽर्यकृष्णाचार्यो विहरन् रथवीरपुरे दीपकाख्योद्याने स्थितः, तत्र रात्रौ तत्पुरवास्तव्यो राजमान्यः सहस्रमल्लो रात्रौ "अस्यां वेलायां यत्र द्वाराणि उद्घाटितानि भवन्ति तत्र गच्छ" इति मातुर्वच-नेन कोपाऽभिमानाभ्यां प्रेरित उद्घाटितद्वारे साधूपाश्रये गतः स साधून् वन्दित्वा व्रतं याचित-वान् राजवल्लभादिहेतुभिर्न दत्तम्, ततस्तेन स्वयमेव लोचश्चक्रे तदा साधुलिङ्गं दत्वाऽन्यत्र च

● अत्राऽस्या असङ्गतेर्निवारणमिच्छव पन्न्यासश्रीकल्याणविजया. श्रीआर्यरक्षितसूरे स्वर्गगमन वीरसवत ५८३ वर्षे मन्यन्ते ।

तथा प्राचीनतमगाथायामपि--

"विक्कमरज्जाणतरतेरसवासेसु वच्छरपवित्ती । सुन्नमुणिवेयजुत्तो विक्कमकालाओ जिणकालो ॥" इति ।

एवञ्च **श्रीहिमवदाचार्यरचितस्थविरावल्यपेक्षया** तथा **तपागच्छपट्टावली-विचारश्रेणि-प्रमुखग्रन्थेषु** दर्शितराज्यकालगणना-ऽपेक्षया-ऽपि श्रीकालकसूरेर्गर्दभिल्लनृप-छेदकारकस्य बलमित्र-भानुमित्राभ्यां भृगुकच्छे मीलनम्, तयोर्भागिनेयरूपः सूरेश्च मातुललक्षणः सम्बन्धोऽपि न स्यात् । किञ्च **श्रीहिमवदाचार्यकृतस्थविरावल्यपेक्षया** वीरात् ४५३ वर्षोक्तो गर्दभिल्लोच्छेदो ऽपि न सङ्घटते । वीरात् ४५३ वर्षे श्रीकालकसूरिणा गर्दभिल्लविच्छेदः कृत इति तु बहुषु ग्रन्थेषु दृश्यते ।

यदुक्तं श्रीजिनप्रभसूरिभिर्विविधतीर्थकल्पे ऽपापावृहत्कल्पे-

'तह गद्दभिल्लरज्जस्स छेयगो कालगायरिओ होही । तेवण्णचउसएहिं गुणमयकलिओ सुअपउत्तो ॥' इति ।

प्रकरणरत्नसंचये-त्वतिस्पष्टं वीरात् ४५३ वर्षे कालकसूरिणा सरस्वती साध्वी गृहीते-त्येवं रूपं भणितम् । **तथा च तत्र प्रत्यपादि-**

'चउसयतिपन्नवरिसे कालगगुरुणा सरस्सई गहिआ । चउसयसत्तरिवरिसे वीराओ विक्कमो जाओ ॥५६॥' इति ।

किञ्च वीरात् ४५३ वर्षे आर्यखपुटाचार्याः श्री**तपागच्छपट्टावल्यादिषु** प्रतिपादिताः, **प्रभावकचरिते** पुनर्वीरात् ४८४ वर्षे तेषामपि **बलमित्र-भानुमित्रयोर्भृ**गुकच्छनगरराज्ये स्थिरता दर्शिता । **तथा चोक्तं प्रभावकचरिते पादलिप्तसूरिचरिते-**

'तत्रास्ति बलमित्राख्यो राजा बलभिदा समः । कालिकाचार्यजामेयः स्थेयः श्रेयधिया निधिः ॥१४५॥
भवाध्वनीनभव्यानां सन्ति विश्रामभूमयः । तत्रार्यखपुटा नाम सूरयो विद्ययोदिताः ॥१४६॥' इति ।

तथैव श्रीपादलिप्तसूरि-सातवाहननृपादीनामपि सम्बन्धः प्रभावकचरितादिषु बलमित्रेण सह दर्शितः, सोऽपि न सङ्गच्छते । यतः श्री**हिमवदाचार्यकृतस्थविराल्यपेक्षा** बलमित्र-भानु-मित्रयो राज्यं वीरात् २९५ त आरभ्य ३५४ वर्षं यावदभूत् । श्री**तपागच्छपट्टावल्यादि-दर्शितराज्यकालगणनापेक्षया** च वीरात् ३५४ त आरभ्य ४१३ वर्षं यावत् भवति स्म ।

तेनोक्त**हिमवदाचार्यकृतस्थविरावल्याद्यपेक्षया** श्रीकालकसूरिप्रमुखानां बलमित्र-[भानु]मित्राभ्यां मीलनादिकं श्रीकालकसूरेर्मातुल-भागिनेयरूपसम्बन्धश्च नासीदित्यङ्गीकर्तव्यं भवति ।

यद्यपि **हिमवदाचार्यकृतस्थविरावल्यां** श्रीकालकसूरिप्रमुखानां बलमित्र-भानु-मित्राभ्यां मीलनादिकं नोक्तं तथा-ऽपि **प्रभावकचरितादिषु** प्रतिपादितमस्ति ।

घटोदाहरणैः स्वपदे दुर्बलिकापुष्पमित्रं न्यस्य गुरुः स्वर्गं गतः इति ज्ञात्वा पृथक् स्थितः पश्चा-त्त्वाऽष्टमे कर्मप्रवादपूर्वे स्पृष्टमबद्धं कर्म, तथा नवमे प्रत्याख्यानपूर्वेऽपरिमाणकृतं प्रत्याख्यानं कर्तव्यमिति प्ररूपयन् दुर्बलिकापुष्पमित्रसूरिप्रमुखैर्वारितोऽप्यवगणयन् सङ्घेन कायोत्सर्गेन समाहूता शासनदेवी सीमन्धरप्रभुमापृच्छ्य कथिते सत्यपि कदाग्रहेणाऽश्रद्धानः सङ्घेन तिर-स्कृतः सप्तमो निह्नवो जातः।

वीरसंवत् ५६७ वर्षे श्रीआर्यरक्षितसूरेः स्वर्गगमनमभूत्, ततोऽयं निह्नवोऽपि तस्मिन् काले बभूव। किन्तु आवश्यकवृत्त्यादौ वीरसंवत् ५८४ वर्षे सप्तमो निह्नवो जात इति भणित-मस्ति। **तथा चोक्तं विशेषावश्यके** "पचसया चुलसीया तइआ सिद्धिं गयस्स वीरस्स। अब-द्धियाण दिट्ठी दसउरनयरे समुप्पन्ना॥ ॥" इति। अत्र तत्त्वं बहुश्रुता पूर्वविदा वा जानीयुः।

एषैव शङ्का श्रीमहोपाध्यायधर्मसागरगणिभिरपि तपागच्छपट्टावल्यां कृताऽस्ति।

तथा च तद्ग्रन्थः—"तत्र श्रीमदार्यरक्षितसूरि सप्तनवत्यधिकपञ्चशत ५६७ वर्षान्ते स्वर्ग-भागि" ति पट्टावल्यादौ दृश्यते परमावश्यकवृत्त्यादौ श्रीमदार्यरक्षितसूरीणां स्वर्गगमनाऽनन्तरं चतुरशीत्य-धिकपञ्चशत५८४ वर्षान्ते सप्तमनिह्नवोत्पत्तिरुक्ताऽस्ति। तेनैतद्बहुश्रुतगम्यमिति॥" इति।

किञ्च यदि "अय असीइमे सवच्छरे काले गच्छइ, वायणतरे पुण अयं तेणउए सवच्छरे काले गच्छइ इति दीसइ॥१६८॥" इति कल्पसूत्रोक्तं त्रयोदशतारतम्ययुक्तं मतद्वयमिहाऽपि स्वीक्रियते तदा नास्ति कश्चिद्विरोधः, यतो येन मतेना-ऽऽर्यरक्षितसूरेः स्वर्गमनं वीरसंवदि ५९७ वर्षेऽभूत् तन्मते गोष्ठामहिलः सप्तमनिह्नवोऽपि ५६७ वर्षेऽभूत्। तथा येन मतेन गोष्ठामहिलः सप्तम-निह्नवो वीरसंवदि ५८४ वर्षेऽभवत्। तन्मते ही श्रीआर्यरक्षितसूरेः स्वर्गमनमपि वीरसंवदि ५८४ वर्षेऽभवत्। तेनैकेन मतेनैतद्वयमपि वीरसंवदि ५९७ वर्षेऽन्यमतेन च वीरसंवदि ५८४ वर्षे स्यादिति विरोधाभावः। एवं दीक्षा—श्रीभद्रगुप्तनिर्यामणादिष्वपि। तत्त्वं पुनरत्र तद्विदो विदुः।

अथाऽस्य निह्नवस्य प्रादुर्भावना प्रदर्श्यते—तदा वीरसंवत् ६०६ वर्षेऽष्टमो निह्नवः शिवभूतिर्बोटिकमतस्थापको बभूव। तदुत्पत्तिः समासत एवम्—एकदाऽऽर्यकृष्णाचार्यो विहरन् रथवीरपुरे दीपकाख्योद्याने स्थितः, तत्र रात्रौ तत्पुरवास्तव्यो राजमान्यः सहस्रमल्लो रात्रौ "अस्यां वेलायां यत्र द्वाराणि उद्घाटितानि भवन्ति तत्र गच्छ" इति मातुर्वच-नेन कोपाऽभिमानाभ्यां प्रेरित उद्घाटितद्वारे साधूपाश्रये गतः स साधून् वन्दित्वा व्रतं याचित-वान् राजवल्लभादिहेतुभिर्न दत्तम्, ततस्तेन स्वयमेव लोचश्चक्रे तदा साधुलिङ्गं दत्त्वाऽन्यत्र च

● अत्राऽस्या असङ्गतेर्निवारणमिच्छव' पन्यासश्रीकल्याणविजया. श्रीआर्यरक्षितसूरे स्वर्गगमन—वीरसवत ५८३ वर्षे मन्यन्ते।

पालगरण्णो सट्ठी पुण पण्णसय वियाणि णंदाण। 卐मुरियाण सट्ठिसय पणतीसा पूसमित्ताण (त्तस्स)॥६२१॥
वलमित्त-भाणुमित्ता सट्ठा चत्ता य होंति नहसेणे। गद्दभसयमेग पुण पडिवन्नो तो सगो राया॥६२२॥
पच य मासा पच य वासा छच्चेव होंति वाससया। परिनिव्वुअस्सऽरिहतो, तो उप्पन्नो (पडिवन्नो) सगो राया॥६२३॥" इति।

अत्र यद्यपि पुष्पमित्रे पञ्चवर्षाण्यधिकानि दर्शितानि तथा-ऽपि नन्दनृपाणां पञ्चवर्ष-न्यूनाभिधानाद् वलमित्र-भानुमित्रयो राज्य यथोक्तकालं यावदेव भवति। किञ्च श्रीविचार-सारप्रकरणादिषु पुनर्नवनन्द पुष्यमित्रमत्को राज्यकालो यथोक्तमान एव दर्शितः।

न्यगादि च विचारसारप्रकरणे–

"सम सिद्धिं गयस्स पुणो पालयराया अवतिनयरीए। होही त रयणीए सट्ठी वासाण पुहवीवई॥४६२॥
तस्स य पुट्ठीएँ नदो पणपन्नसय च होइ वासाण। 卐मुरियाण सट्ठिसय तीसच्चिय पूसमित्तस्स।४६३॥
वलमित्तभानुमित्ता सट्ठी होहिंति वास रायाणो। नरवाहणो य राया होही चत्ता उ वासाण॥४६४॥"इति।

एतदपेक्षया वलमित्र-भानुमित्रयो राज्यं वीरात् षडधिकचतुःशतवर्षादारभ्य पञ्चषष्ट्यु त्तर-चतुःशतवर्षं यावद् भवति स्म। तेन कालिकसूरिभागिनेयरूपसम्बन्धः, वीरात् ४५३ वर्षे गर्द-भिल्लोच्छेदे कालिकसूर्यानीतशकनृपैः सहोज्जयिन्यामागमनमित्यादिकं सङ्गच्छते।

तद्यथा–वीरात्४०६तः४५७वर्षे यावत् द्विपञ्चाशद्वर्षाणि यावद् भृगुकच्छे नगरे राज-युवराज-त्वेन वल-मित्र-भानुमित्रौ राज्यमकुरुताम्। तत्र च वीरसंवत् ४५३ वर्षे तौ कालिकाचार्यजामेयौ कालकसूर्यानीतशकनृपैः सहावन्तीनगर्यां गत्वा गर्दभिल्लनृपमुच्छिद्य शकनृपमुज्जयिनीराज्य-सिंहासनेऽस्थापयताम्। तत उज्जयिन्यां चतुर्वर्षाणि यावत्शकभूपती राज्यमकरोत्। ततः पुनर्वीरसंवत् ४५७ वर्षे वलमित्र-भानुमित्रौ शकनृपं निष्काश्य स्वयमुज्जयिन्यामष्टौ वर्षाणि यावद्राज्यमकरोत्। ततो वीरात्४६५वर्षेषु व्यतीतेषु नभोवाहननृपोऽवन्त्यामजायत। तस्य राज्ये पञ्चवर्षाणां तथा वलमित्र भानुमित्रयोरवन्तीराज्यप्राप्तितस्त्रयोदशवर्षाणां व्यतिक्रमे वीरसंवत् ४७० वर्षेषु व्यतीतेषु विक्रमसंवदभूत्।

यदुक्त प्राचीनगाथायाम्–

'विक्कमरज्जाणतर तेरसवासेसु वच्छरपवित्ती। सुन्नमुणिवेअजुत्तो विक्कमकालाओ जिणकालो॥" इति।

एतदपेक्षया वलमित्रनृप एव विक्रमादित्यनृपः सम्भाव्यते,यतो वलस्यैवा-ऽपरपर्यायो विक्रम'' मित्रस्य चापर्यायदर्शक आदित्यशब्दोऽस्ति,ततो वलमित्रस्यैव विक्रमादित्येत्यपरनाम भवति यद्वा वलमित्र-भानुमित्रयो राज युवराजयोरादिभूतयोर्वल-भानुशब्दयोः क्रमेण पर्यायाभिधायकं

卐 तीर्थोद्‌गारप्रकीर्णके विचारसारप्रकरणे चोभयत्रापि–"मुरियाण अट्ठसय" इति पाठमशुद्ध सम्भाव्य तत्स्थाने 'मुरियाण सट्ठिसय' इति पाठो भणितः।

पुणो पाडलीपुरे ११, १०, १३, २५, २५, ६ ६, ४, ५५, नवनद एव वर्षे १५५ रज्जे-जंबूशेषवर्षाणि ४ प्रभव ११ शय्यभव २३ यशोभद्र ५० संभूतिविजय ८ भद्रबाहु १४ ▽स्थूलभद्र ४५, एवं वीरनिर्वाणात् २१५

मोरिअरज्जं १०८ तत्र-❀महागिरि ३० सुहस्ति ४६ गुणसुन्दर३२, उनवर्षाणि १२ ॥ प्रकृष्टलब्धीनां प्रकीर्णकसहस्राणां व्यवच्छेद ॥ एव वर्षाणि ३२३॥

राजा पुष्यमित्र ३० बलमित्र भानुमित्र ६० । (तत्र)-गुणसुन्दरस्येव शेषवर्षाणि १२ कालिके ४ (४१) खंदिल ३८॥ एवं वर्षाणि ४१३॥

राजा नरवाहन ४० गर्द्दभिल्ल १३ शाक ४ । (तत्र)-रेवतिमित्र ३६ आर्यमगुधर्माचार्य २०॥ एवं वर्षाणि ४७०॥

अत्रान्तरे-बहुल सिरिव्वयस्वामि (स्वाति) हारित श्यामा-ऽऽर्य शांडिल्य आर्य आर्यसमुद्रादयो भविष्यन्ति ।

तह गद्दभिल्लरज्जस्स छेयगो कालगारिओ होही । छत्तीसगुणोवेओ गुणसयकलिओ पहाणुत्तो ॥

वीरनिर्वाणात् ४५३ भरुअच्छे खपुटाचार्या वृद्धवादी पञ्चकल्पविच्छेदो बुद्धबोधिता-ऽल्पता ॥

धर्माचार्यस्येव शेषवर्षाणि २४ भद्रगुप्त ३९ श्रीगुप्त १५ वज्रस्वामी ३६ । एव सर्वाङ्क ५८४॥गर्द्दभिल्ल-निवसुत विक्रमादित्य ६० धर्मादित्य ४० भाइल्ल ११ ॥ एवं ५८१॥

अत्रान्तरे-धर्माचार्यशिष्यश्रीसिद्धसेनप्रभावक. । तथा तोषलिपुत्राचार्यप्रभावक' ॥

आर्यरक्षित: १३॥ राजा भाइल्ल १४ । अत्रातरे-विलासपुरे रुद्रदत्ताचार्यः प्रभावको युगप्रधानसम. ६ ॥ पुष्पमित्र (दुर्बलिका पुष्पमित्र) २०॥ तथा राजा नाहड. ॥१०॥ (एवं) ६०५ शाकसवत्सरः ॥ अत्रांतरे बोटिका निर्गता। इति ६१७ प्रथमोदयः॥"इति ।

अभिहितमन्यत्रापि—

"सिरिवीराउ सुहम्मो, वीस चउचत्तवास जंबुस्स । पभवेगारस सिज्जभवस्स तेवीस वासाणि ॥ ॥
पन्नास जसोभद्दे सभूइस्सट्ठ भद्दबाहुस्स । चउदश य थूलभद्दे पणयालेव दुपन्नस्स ॥ ॥
अज्जमहागिरि तीस, अज्जसुहत्थीण वरिसछायाला । गुणसुंदर चउआला एवं तिसया पणत्तीसा ॥
तत्तो इगचालीस निगोयवक्खायकालिगायरिओ । अट्ठत्तीस खडिल (सडिल) एवं चउसय चउदस य ॥
रेवइमित्ते छत्तीस अज्जमगू अ वीस एव तु । चउसय सत्तरि चउसय, तिपन्ने कालगो जाओ ॥ ॥
चउवीस अज्जधम्मे, एगुणचालीस भद्दगुत्ते अ । सिरिगुत्ति पनर वइरे छत्तीस एव पण चुलसी ॥
तेरस वासा सिरि अज्ज-रक्खिए वीस पूसमित्तस्स । इत्थय पणाहिअ छसयासु सागसंवच्छरुप्पत्ती ॥ इति ।卐

▽ एतदपेक्षया श्रीस्थूलभद्रस्वामिनो दीक्षा नवमनन्दकाले न स्यात् ।

❀ एतदपेक्षया श्रीआर्यमहागिरिपादा. सम्प्रतिनृपकाले विद्यमाना न भवेयु' ।

एता सप्त गाथा विचारश्रेण्यादिग्रन्थेषूपलभ्यन्ते

卐एता सप्तगाथा सटीका विचारश्रेणावित्थम्-'अत्राधिकारात् स्थविराणा पट्टप्रतिष्ठाकालो भण्यते। सिरिवीराउ सुहम्मो वीस चउचत्तवास जबुस्स । पभवेगारस, सिज्जमवस्स तेवीसवासाणि ॥१॥ पन्नास जसोभद्दे सभूइस्सऽट्ठ भद्दबाहुस्स । चउदस य थूलभद्दे पणयालेव दुपन्नस ॥२॥ श्रीवीरनिर्वाणात् सुधर्मस्वामिपट्टवर्षे २० । तदनु जम्बुस्वामिन' पट्टवर्षे ४४। एव ६४। उक्तच परिशिष्टपर्वणि-
श्रीवीरमोक्षदिवसादपि हायनानि, चत्वारि षष्टिमपि च व्यतिगम्य जम्बू ।

बलमित्त भानुमित्ता सट्ठी होंति ति वास रायाणो । नरवाहणो य राया होही चत्ता उ वासाण ॥४९४॥
तह गद्दभिल्लरज्ज वासतेरसय च पचमासमहियं । सगाण अट्ठसागे होही य पुणो सगो राया ॥४९५॥
छव्वाससएहिं सस्स पचहिं वासेहिं पचमासेहिं । सिद्धिगयस्स उ राया सगुत्तिनामेग विक्कमाओ ४९६॥"
इति ।

तदत्र तत्त्वं तु तद्विदो विदुः, अस्माकं तु न सम्यग्ज्ञायते ॥८७-८८॥

अथ माथुरवाचनानुयायिश्रीनन्दीसूत्रोक्तवाचकस्थविरावल्यां श्रीआर्यमङ्गुसूरेरनु सञ्ज्ञातस्य वाचनाचार्यस्य श्रीनन्दिलसूरेरभिधित्सया पद्यार्यामाह—

अइकुसलं रयणत्तय-पंचाचारेसु वायणायरिअं ।
नमिऊणत्थवकारं, वंदे तं णंदिलायरिअं ॥८९॥ (पच्छज्ञा)

(प्रे०) "अइकुसल" इत्यादि, "तं" ति, तं=प्रसिद्धिगत "णदिलायरिअ" ति, नन्दिलाचार्यं=नन्दिलाख्यं सूरिं सार्द्धनवपूर्वधरमार्यरक्षितवशीयं 'वदे" त्ति, वन्दे, किम्भूतमित्याह—"अइकुसल रयणत्तयपचाचारेसु" त्ति, रत्नत्रय=ज्ञान-दर्शन चारित्ररूपम् , पञ्चाचाराः=ज्ञानाचार- दर्शनाचार -चारित्राचार--तपआचार-वीर्याचारलक्षणास्तेषु, अतिक्रान्तः कुशलम् , यद्वा, अतिशयोऽत्यन्तो वा कुशलः=अतिकुशलस्तम्=अतिकुशलम्=उत्कटनिपुणमतिमन्तम्=अत्युपयुक्तम्=अप्रमादिनमिति यावत् । उक्तञ्च—

"णाणम्मि दंसणम्मि य तव विणए णिच्चकालमुज्जुत्त । अज्जाणदिलखमण सिरसा वदे पसण्णमण ॥२६॥"
इति ।

"वायणायरिअ" ति, नन्दीसूत्रानुसारेण वाचकवंशे श्रीआर्यमङ्गुसूरेः पश्चाद्वाचनाचार्यं श्रीआर्यमङ्गुसूरिविद्याशिष्यश्च । पुनः किम्भूतम् ? 'नमिऊणत्थवकार' 'ति, 'नमिऊण' इत्याद्यपदत्वात् तत्संज्ञकम् , तच्च तत्स्तवश्च नमिऊणस्तवम् , तत्करोतीति "कर्मणोऽण्" (सि०५-१-७२) इत्यनेनाऽणि प्रत्यये नमिऊणस्तवकारस्तं नमिऊणस्तवकारम् ।

तद्व्यतिकरस्तु सङ्क्षेपत इत्थम्—पद्मनीखण्डाख्ये पुरे ख्यातकीर्तिः पद्मदत्ताऽभिधः श्रेष्ठी, तस्य कान्ता नाम्ना पद्मयशाः, पुत्रः पद्माख्यः पुत्रवधूश्च वैरोट्याह्वा वरदत्तसार्थवाहसुता श्वश्रूकदर्थिताऽवसत् । अन्यदा च वैरोट्या नागस्वप्नसूचितं शुभं गर्भं बभार । तृतीयमासे पूर्णे पायसभोजनस्य दोहदो जातः । तत्र च विहरन्नार्यनन्दिलसूरिः समायातः, तत्समीपे गत्वा वैरोट्या स्वदुःखं कथयामास । गुरुणाऽपि क्षमादिधर्ममुपदिश्य कथितञ्च—मया ज्ञानात्तव पायस-

पुणो पाडलीपुरे ११, १०, १२, २५, २५, ६ ६, ४, ५५, नवनंद एव वर्षे १५५ रज्जे-जंबूशेषवर्षाणि ४ प्रभव ११ शय्यभव २३ यशोभद्र ५० संभूतिविजय ८ भद्रबाहु १४ ▽स्थूलभद्र ४५, एवं वीरनिर्वाणात् २१५

मोरिअरज्जं १०८ तत्र-❀महागिरि ३० सुहस्ति ४६ गुणसुन्दर ३२, उनवर्षाणि १२ ॥ प्रकृष्टलब्धीना प्रकीर्णकसहस्राणां व्यवच्छेद ॥ एव वर्षाणि ३२३ ॥

राजा पुष्यमित्र ३० बलमित्र भानुमित्र ६० । (तत्र)-गुणसुन्दरस्येव शेषवर्षाणि १२ कालिके ४ (४१) खंदिल ३८ ॥ एवं वर्षाणि ४१३ ॥

राजा नरवाहन ४० गर्दभिल्ल १३ शाक ४ । (तत्र)-रेवतिमित्र ३६ आर्यमंगुधर्माचार्य २० ॥ एव वर्षाणि ४७० ॥

अत्रान्तरे-बहुल सिरिव्वयस्वामि (स्वाति) हारित श्यामा-ऽऽर्य शांडिल्य आर्य आर्यसमुद्रादयो भविष्यन्ति ।

तह गद्दभिल्लरज्जस्स छेयगो कालगारिओ होही । छत्तीसगुणोवेओ गुणसयकलिओ पहाजुत्तो ॥

वीरनिर्वाणात ४५३ भरुअच्छे खपुटाचार्या वृद्धवादी पञ्चकल्पविच्छेदो बुद्धबोधिता-ऽल्पता ॥

धर्माचार्यस्येव शेषवर्षाणि २४ भद्रगुप्त ३९ श्रीगुप्त १५ वज्रस्वामी ३६ । एवं सर्वाङ्क ५८४ ॥ गर्दभिल्ल-निवसुत विक्रमादित्य ६० धर्मादित्य ४० भाइल्ल ११ ॥ एव ५८१ ॥

अत्रान्तरे-धर्माचार्यशिष्यश्रीसिद्धसेनप्रभावक । तथा तोषलिपुत्राचार्यप्रभावकः ॥

आर्यरक्षित' १३ ॥ राजा भाइल्ल १४ । अत्रांतरे-चिलासपुरे रुद्रदत्ताचार्यः प्रभावको युगप्रधानसम' ६ ॥ पुष्पमित्र (दुर्बलिका पुष्पमित्र) २० ॥ तथा राजा नाहड. ॥१०॥ (एव) ६०५ शाकसवत्सरः ॥ अत्रांतरे बोटिका निर्गता । इति ६१७ प्रथमोदय. ॥"इति ।

अभिहितमन्यत्रापि—

"सिरिवीराउ सुहम्मो, वीसं चउचत्तवास जंबुस्स । पभवेगारस सिज्जंभवस्स तेवीस वासाणि ॥ ॥
पन्नास जसोभद्दे सभूइस्सट्ठ भद्दबाहुस्स । चउदश य थूलभद्दे पणयालेवं दुपन्नरस ॥ ॥
अज्जमहागिरि तीसं, अज्जसुहत्थीण वरिसछायाला । गुणसुंदर चउआला एवं तिसया पणतीसा ॥
तत्तो इगचालीस निगोयवक्खायकालिगायरिओ । अट्ठत्तीस खंडिल (सडिल्ल) एवं चउसय चउदस य ॥
रेवइमित्ते छत्तीस अज्जमगू अ वीस एव तु । चउसय सत्तरि चउसय, तिपन्ने कालगो जाओ ॥ ॥
चउवीस अज्जधम्मे, एगुणचालीस भद्दगुत्ते अ । सिरिगुत्ति पनर वइरे छत्तीस एव पण चुलसी ॥
तेरस वासा सिरि अज्ज-रक्खिए वीस पूसमित्तस्स । इत्थय पणाहिअ छसयासु सागसंवच्छरुप्पत्ती ॥ इति ।卐

▽ एतदपेक्षया श्रीस्थूलभद्रस्वामिनो दीक्षा नवमनन्दकाले न स्यात् ।

❀ एतदपेक्षया श्रीआर्यमहागिरिपादा. सम्प्रतिनृपकाले विद्यमाना न भवेयु' ।

एता सप्त गाथा विचारश्रेण्यादिग्रन्थेषूपलभ्यन्ते

卐एता सप्तगाथा सटीका विचारश्रेणावित्थम्-'अत्राधिकारात् स्थविराणां पट्टप्रतिष्ठाकालो भण्यते । सिरिवीराउ सुहम्मो वीस चउचत्तवास जंबुस्स । पभवेगारस, सिज्जंभवस्स तेवीसवासाणि ॥१॥ पन्नास जसोभद्दे सभूइस्स ऽट्ठ भद्दबाहुस्स । चउदस य थूलभद्दे पणयालेवं दुपन्नरसे ॥२॥ श्रीवीरनिर्वाणात् सुधर्मस्वामिपट्टवर्ष २० । तदनु जम्बुस्वामिन' पट्टवर्ष ४४ । एव ६४ । उक्तं च परिशिष्टपर्वणि-

श्रीवीरमोक्षदिवसादपि हायनानि, चत्वारि षष्टिमपि च व्यतिगम्य जम्बूः ।

बलमित्त भाणुमित्ता सट्ठी होंहिं ति वास रायाणो। नरवाहणो य राया होही चत्ता उ वासाण ॥४६४॥
तह गद्दभिल्लऽज्ज बावन्नसय च पचमासहिय। पयाण अवसाणे होही य पुणो सगो राया ॥४६५॥
छव्वाससएहिं सम्म पचहिं वासेहिं पचमासेहि। सिद्धिगयस्स उ राया सगुत्तिनामेण विक्कमाओ ४६६॥"
इति।

तदत्र तत्त्वं तु तद्विदो विदुः, अस्माकं तु न सम्यग्ज्ञायते ॥८७-८८॥

अथ माथुरवाचनानुयायिश्रीनन्दीसूत्रोक्तवाचकस्थविरावल्यां श्रीआर्यमङ्गुसूरेरनु सञ्जातस्य वाचनाचार्यस्य श्रीनन्दिलसूरेरभिधित्सया पथ्यार्यामाह--

अइकुसलं रयणत्तय-पंचाचारेसु वायणायरिअं।
नमिऊणत्थवकारं, वंदे तं णंदिलायरिअं ॥८९॥ (पच्छज्जा)

(प्रे०) "अइकुसल" इत्यादि, "तं" ति, तं=प्रसिद्धिगत "णंदिलायरिअ" ति, नन्दिलाचार्यं=नन्दिलाख्यं सूरिं सार्द्धनवपूर्वधरमार्यरक्षितवंशीयं 'वदे" त्ति, वन्दे, किम्भूतमित्याह-"अइकुसल रयणत्तयपचाचारेसु" त्ति, रत्नत्रय=ज्ञान-दर्शन चारित्ररूपम्, पञ्चाचाराः=ज्ञानाचार--दर्शनाचार -चारित्राचार--तपआचार-वीर्याचारलक्षणास्तेषु, अतिक्रान्तः कुशलम्, यद्वा, अतिशयोऽत्यन्तो वा कुशलः=अतिकुशलस्तम्=अतिकुशलम्=उत्कटनिपुणमतिमन्तम्=अत्युपयुक्तम्=अप्रमादिनमिति यावत्। उक्तञ्च-

"णाणम्मि दसणम्मि य तव विणए णिच्चकालमुज्जत्त। अज्जाणदिलखमण सिरसा वदे पसण्णमण ॥२६॥"
इति।

"वायणायरिअ" ति, नन्दीसूत्रानुसारेण वाचकवंशे श्रीआर्यमङ्गुसूरेः पश्चाद्वाचनाचार्यं श्रीआर्यमङ्गुसूरिविद्याशिष्यश्च। पुनः किम्भूतम्? 'नमिऊणत्थवकार' 'ति, 'नमिऊण' इत्याद्यपदत्वात् तत्संज्ञकम्, तच्च तत्स्तवश्च नमिऊणस्तवम्, तत्करोतीति "कर्मणोऽण्" (सि०५-१-७२) इत्यनेनाऽणि प्रत्यये नमिऊणस्तवकारस्तं नमिऊणस्तवकारम्।

तद्व्यतिकरस्तु सक्षेपत इत्थम्—पद्मनीखण्डाख्ये पुरे ख्यातकीर्तिः पद्मदत्ताऽभिधः श्रेष्ठी, तस्य कान्ता नाम्ना पद्मयशाः, पुत्रः पद्माख्यः पुत्रवधूश्च वैरोट्याह्वा वरदत्तसार्थवाहसुता श्वश्रूकदर्थिताऽवसत्। अन्यदा च वैरोट्या नागस्वप्नसूचितं शुभं गर्भं बभार। तृतीयमासे पूर्णे पायसभोजनस्य दोहदो जातः। तत्र च विहरन्नार्यनन्दिलसूरिः समायातः, तत्समीपे गत्वा वैरोट्या स्वदुःखं कथयामास। गुरुणाऽपि क्षमादिधर्ममुपदिश्य कथितञ्च-मया ज्ञानात्तव पायसभोदनदोहदो ज्ञातः, स पूर्णो भविष्यति। चैत्यपौर्णिमास्यामुपोपिता पद्मयशाः पुण्डरिकतपो व्यधात्, तस्योद्यापने साधर्मिकवात्सल्ये पायसं भोजनं क्रियते स्म। तत्सर्वस्मै दत्त्वा किञ्चिच्छेषं

* एषा गाथा नन्दीसूत्र-हिमवदाचार्यरचितस्थविरावल्यादिषु दृश्यते।

★ श्रीविचारश्रेणावपि प्रथमोदये संजातानां विंशतेर्युगप्रधानानां गृहस्थपर्याय-सामान्य-यतिपर्याययुगप्रधानपर्यायसत्कानां वर्षाणां सर्वायुर्मानस्य च प्रतिपादिका गाथाश्चेमाः—

"१ पंचास २ सोल ३ तीसऽ४ट्ठवीस५बावीस तह य ६ बायाला ।
७ पणयाल ८ तीस ९ तीसा १० तीसा ११ चउवीस १२ वीसा य ॥ ॥
१३बावीस १४चउद १५चउदसि १६-तवीस १७ पणतीस १८अट्ठ १९बावीसा ।
२० सतरस गिहिपरियाओ सामन्नजईण अह एव ॥ ॥
१ तीसा २ वीसा ३ चउचत्ति४गार ५ चउदस य ६ चत्त ७ सत्तरसा ।
८ चउवीस ९ चत्त १० चउवीस ११दुतीस १२ पणतीस १३ अडवन्ना ॥
१४ अट्ठचत्ता १५ चउचत्ता १६ पणचत्ता १७ पन्न तह य १८ चउचत्ता ।
१९ चालीस २० तीस अह जुगपहाणवरिसे भणिस्सामि ॥ ॥
१ वीस २ चउचत्ति ३ गारस ४ तेत्तीसा ५ पन्न ६ अट्ठ ७ चउदस य ।
८ पणयाल ९ तीस १० छत्तालीसा ११ चउचत्त १२ इगयाला ॥ ॥
१३ अडतीसा १४ छत्तीसा १५ चउच१६त्तिगयाल १७ पनर १८ छत्तीसा ।
१९ तेरस २० वीस सव्वाउय च १ एग सय२मसीई ॥ ॥
३ पणसीई ४ बासट्ठी ५ छासी ६ नवई ७ छहुत्तरी चेव ।
८ नवनवइ तओ तिण्हं (९-१०-११) एगसय १२ छन्नवइ चेव ॥ ॥
१३ अट्ठारसुत्तर सय१४मट्ठनवइ १५ दुगहियसयं च नायव्व ।
१६ पणहियसय १७ सय १८ मडसी १९ पणहत्तरि तह य सगसट्ठी ॥ ॥
तिन्नि पुण दुन्नि चउरो पच य सग पण छ एग तह तिन्नि ।
दो पच चउ ति सग सत्त सत्त य मासा कमेणुवरिं ॥ ॥

स्कन्दिलादनु रेवतिमित्रे ३६, आर्यमङ्गु. २०, एव श्रीवीरमोक्षात चत्वारि शतानि- सप्ततिश्च (४७०)। अत्र ४५३ वर्षेषु गर्द्दभिल्लोच्छेत्ता कालकसूरिर्जात ।आर्यधर्मे २४। इह कोऽपि मङ्गुधर्मयोर्नाम्नैव भेदमाहु । तन्मते आर्यधर्मस्य वर्ष ४४, भद्रगुप्ते ३९, श्रीगुप्ते १५, श्रीवज्रस्वामिनि ३६, एव वीर-मोक्षात् पञ्च शतानि चतुरशीति (५८४) तदनु श्रीआर्यरक्षिते २३। पुष्पमित्रस्य २०, येन सूत्रार्थौ प्रतिवल्ल-घटतुल्य आर्यरक्षितोऽकारि। एवं वीराद्वर्षे ६१७। अत्र च ६०५ वर्षेषु शाकसवत्सरोत्पत्ति ।" इति।

★ विचारश्रेणावेव पाठान्तरम्—

"१ पचास २ सोल ३ तीसा ४ वीसय ५ पणवीस तहय ६ बायाला ।
७ पणयाल ८ तीस ९ तीसा १० तीसा ११ चउवीस १२वीसा य ॥ ॥
१३बावीस १४चउद १५चउद१६सिगवीस १७पणतीस १८अह य १९बावीसा ।
२० सतरस गिहिपरियाओ सामन्नजईण अह एव ॥ ॥
१ तीसा २ वीसा ३ चउच४त्तिगार ५ चउवीस ६ चत्त ७ सत्तरसा ।
८ चउवीस ९ चत्त १०चउवीस ११दुतीस १२पणतीस १३अडवन्ना ॥
१४ अडचत्ता १५ चउचत्ता १६ पणचत्ता १७पन्न तह य १८चउचत्ता ।
१९ चालीस २० तीस अह जुगपहाणवरिसे भणिस्सामि ॥ ॥

वलमित्त-भानुमित्ता सट्ठी होहिं ति वास रायाणो । नरवाहणो य राया होही चत्ता उ वासाण ॥४६४॥
तह गद्दभिल्लरज्ज बावन्नसय च पचमासहिय । एयाण अवसाणे होही य पुणो मगो राया ॥४६५॥
छव्वाससएहिं सम्म पचहिं वासेहिं पचमासेहि । सिद्धिगयस्स उ राया सगुत्तिनामेण विक्कमाओ ४६६॥"
इति ।

तदत्र तत्त्वं तु तद्विदो विदुः, अस्माकं तु न सम्यग्ज्ञायते ॥८७-८८॥

अथ माथुरवाचनानुयायिश्रीनन्दीसूत्रोक्तवाचकस्थविरावल्यां श्रीआर्यमङ्गुसूरेरनु सञ्जातस्य वाचनाचार्यस्य श्रीनन्दिलसूरेरभिधित्सया पथ्यार्यामाह--

अइकुसलं रयणत्तय-पंचाचारेसु वायणायरिअं ।
नमिऊणत्थवकारं, वंदे तं णंदिलायरिअं ॥८९॥ (पच्छज्जा)

(प्रे०) "अइकुसलं" इत्यादि, "तं" ति, तं=प्रसिद्धिगत "णंदिलायरिअ" ति, नन्दिलाचार्य=नन्दिलाख्यं सूरिं सार्द्धनवपूर्वधरमार्यरक्षितवंशीयं "वदे" त्ति, वन्दे, किम्भूतमित्याह–"अइकुसल रयणत्तयपचाचारेसु" त्ति, रत्नत्रयं=ज्ञान-दर्शन चारित्ररूपम् , पञ्चाचाराः=ज्ञानाचार--दर्शनाचार -चारित्राचार--तपआचार-वीर्याचारलक्षणास्तेषु, अतिक्रान्तः कुशलम् , यद्वा, अतिशयोऽत्यन्तो वा कुशलः=अतिकुशलस्तम्=अतिकुशलम्=उत्कटनिपुणमतिमन्तम्=अत्युपयुक्तम्=अप्रमादिनमिति यावत् । उक्तञ्च–

"णाणम्मि दसणम्मि य तव विणए णिच्चकालमुज्जत्त । अज्जाणदिलखमण सिरसा वदे पसण्णमण ॥२६॥"
इति ।

"वायणायरिअ" ति, नन्दीसूत्रानुसारेण वाचकवंशे श्रीआर्यमङ्गुसूरेः पश्चाद्वाचनाचार्यं श्रीआर्यमङ्गुसूरिविद्याशिष्यश्च । पुनः किम्भूतम् ? 'नमिऊणत्थवकार' 'ति, 'नमिऊण' इत्याद्यपदत्वात् तत्संज्ञकम् , तच्च तत्स्तवश्च नमिऊणस्तवम् , तत्करोतीति "कर्मणोऽण्" (सि०५-१-७२) इत्यनेनाऽणि प्रत्यये नमिऊणस्तवकारस्तं नमिऊणस्तवकारम् ।

तद्व्यतिकरस्तु सक्षेपत इत्थम्—पद्मनीखण्डाख्ये पुरे ख्यातकीर्तिः पद्मदत्ताऽभिधः श्रेष्ठी, तस्य कान्ता नाम्ना पद्मयशाः, पुत्रः पद्माख्यः पुत्रवधूश्च वैरोट्याह्वा वरदत्तसार्थवाहसुता श्वश्रूकदर्थिताऽवसत् । अन्यदा च वैरोट्या नागस्वप्नसूचितं शुभं गर्भं बभार । तृतीयमासे पूर्णे पायसभोजनस्य दोहदो जातः । तत्र च विहरन्नार्यनन्दिलसूरिः समायातः, तत्समीपे गत्वा वैरोट्या स्वदुःखं कथयामास । गुरुणाऽपि क्षमादिधर्ममुपदिश्य कथितञ्च–मया ज्ञानात्तव पायसभोदनदोहदो ज्ञातः, स पूर्णो भविष्यति । चैत्यपौर्णिमास्यामुपोषिता पद्मयशाः पुण्डरिकतपो व्यधात्, तस्योद्यापने साधर्मिकवात्सल्ये पायसं भोजनं क्रियते स्म । तत्सर्वस्मै दत्त्वा किञ्चिच्छेषं

---

१ एषा गाथा नन्दीसूत्र–हिमवदाचार्यरचितस्थविरावल्यादिषु दृश्यते ।

★ श्रीविचारश्रेणावपि प्रथमोदये संजातानां विंशतेर्युगप्रधानानां गृहस्थपर्याय-सामान्य-यतिपर्याययुगप्रधानपर्यायसत्कानां वर्षाणां सर्वायुर्मानस्य च प्रतिपादिका गाथाश्चेमाः–

"१ पंचास २ सोल ३ तीसऽ४ठ्ठवीस५बावीस तह य ६ बायाला ।
७ पणयाल ८ तीस ९ तीसा १० तीसा ११ चउवीस १२ वीसा य ॥ ॥
१३बावीस १४चउद १५चउदसि १६-गवीस १७ पणतीस १८अट्ठ १९बावीसा ।
२० सतरस गिहिपरियाओ सामन्नजईण अह एव ॥ ॥
१ तीसा २ वीसा ३ चउचत्ति४गार ५ चउदस य ६ चत्त ७ सत्तरसा ।
८ चउवीस ९ चत्त १० चउवीस ११दुतीस १२ पणतीस १३ अडवन्ना ॥
१४ अडचत्ता १५ चउचत्ता १६ पणचत्ता १७ पन्न तह य १८ चउचत्ता ।
१९ चालीस २० तीस अह जुगपहाणवरिसे भणिस्सामि ॥ ॥
१ वीस २ चउचत्ति ३ गारस ४ तेवीसा ५ पन्न ६ अट्ठ ७ चउदस य ।
८ पणयाल ९ तीस १० छत्तालीसा ११ चउचत्त १२ इगयाला ॥ ॥
१३ अडतीसा १४ छत्तीसा १५ चउच१६त्तिगयाल १७ पनर १८ छत्तीसा ।
१९ तेरस २० वीस सव्वाउय च १ एग सय२मसीई ॥ ॥
३ पणसीई ४ बासट्ठी ५ छासी ६ नवई ७ छहुत्तरी चेव ।
८ नवनवइ तओ तिण्हं (९-१०-११) एगसय १२ छन्नवइ चेव ॥ ॥
१३ अट्ठारसुत्तरं सय१४मट्ठनवइ १५ दुगहियसय च नायव्व ।
१६ पणहियसय १७ सय १८ मडसी १९ पणहत्तरि तह य सगसट्ठी ॥ ॥
तिन्नि पुण दुन्नि चउरो पच य सग पण छ एग तह तिन्नि ।
दो पच चउ ति सग सत्त सत्त य मासा कमेणुवरिं ॥ ॥

स्कन्दिलादनु रेवतिमित्रे ३६, आर्यमङ्गु २०, एव श्रीवीरमोक्षात् चत्वारि शतानि सप्ततिश्च (४७०)। अत्र ४५३ वर्षेषु गर्दभिल्लोच्छेत्ता कालकसूरिर्जात ।आर्यधर्मे २४। इह कोऽपि मङ्गुधर्मयोर्नाम्नैव भेदमाहु । तन्मते आर्यधर्मस्य वर्षे ४४, भद्रगुप्ते ३९, श्रीगुप्ते १५, श्रीवज्रस्वामिनि ३६, एव वीरमोक्षात् पञ्च शतानि चतुरशीति (५८४) तदनु श्रीआर्यरक्षिते २३। पुष्पमित्रस्य २०, येन सूत्रार्थौ प्रतिवल्लघटतुल्य आर्यरक्षितोऽकारि। एव वीराद्वर्षे ६१७। अत्र च ६०५ वर्षेषु शाकसवत्सरोत्पत्ति ।" इति।

★ विचारश्रेणावेव पाठान्तरम्—

"१ पचास २ सोल ३ तीसा ४ वीसय ५ पणवीस तहय ६ बायाला ।
७ पणयाल ८ तीस ९ तीसा १० तीसा ११ चउवीस १२वीसा य ॥ ॥
१३बावीस १४चउद १५चउद१६सिगवीस १७पणतीस १८अइ य १९बावीसा ।
२० सतरस गिहिपरियाओ सामन्नजईण अह एवं ॥ ॥
१ तीसा २ वीसा ३ चउच४त्तिगार ५ चउवीस ६ चत्त ७ सत्तरसा ।
८ चउवीस ९ चत्त १०चउवीस ११दुतीस १२पणतीस १३अडवन्ना ॥
१४ अडचत्ता १५ चउचत्ता १६ पणचत्ता १७पन्न तह य १८चउचत्ता ।
१९ चालीस २० तीस अह जुगपहाणवरिसे भणिस्सामि ॥ ॥

अस्याः कथं सुतो भावी निर्भाग्यैकशिरोमणे । सुतैव भाविनी निश्चित्याया दारिद्र्यदीर्घिका ॥२०॥
इत्थं दुर्वचनैर्दूना साऽथ प्रभुपदान्तिकम् । आयाद् विमृश्य यच्चैत्यगृहं पितृगृहं ननु ॥२१॥
अभिवन्द्याऽथ साऽवादीदुदश्रु प्राग्भवे मया । प्रभो ! विराधितामुत्र किं यन्मय्यपि विरोधिनी ॥२२॥
प्रभु प्राह पुराकर्मकृते दुःखसुखे जने । तत्किमन्यस्य दोषो हि दीयतेऽत्र विवेकिभिः ॥२३॥
मानुष्ये दुर्लभे लब्धे सुखदा श्लाघ्यते क्षमा । यदस्यामान्नताया ते सर्वं भावि शुभं शनैः ॥२४॥
ज्ञानाज्ज्ञातो मया वत्से ! दोहदस्तव पायसे । अवतीर्णं सुपुण्येन सोऽपि सम्पूरयिष्यते ॥२५॥
इति वागमृतैस्तस्या विध्यायन्मन्युपावकः । शीतीभूता ययौ गेहं स्मरन्ती तद्वचो हृदि ॥२६॥
पुण्डरीकतपश्चैत्रपौर्णिमास्यामुपोषिता । व्ययात् पद्मयशास्तस्योद्यापनं च प्रचक्रमे ॥२७॥
तद्दिने पायसापूर्णं प्रदीयेत पतद्ग्रहं । गुरूणां समधर्माणां वात्सल्यं क्रियतेऽथ सा ॥२८॥
तस्मिन्कृते समस्तेऽपि कदर्यान्नं ददे तदा । श्वश्रूवज्ञावशाद् वध्वा धिग् दर्पं गुणदूषकम् ॥२९॥
वधूर्दोहदमाहात्म्यात् किंचिच्छेषं च पायसम् । वस्त्रे बद्ध्वा घटे क्षिप्त्वा जलाय च बहिर्ययौ ॥३०॥
कुम्भं मुक्त्वा तरोर्मूले यावद्याति जलाश्रये । अहिशौचाय सद्वृत्ता क्षौरेयीस्वादतन्मना ॥३१॥
ततोऽलिञ्जरनागेन्द्रकान्ताप्यागाद्रसातलात् । भ्रमन्ती पायसे लुब्धा तदैक्षिष्ट घटे च सा ॥३२॥
वस्त्रखण्डात्समाकृष्य बुभुजे चाथ तत्तया । पुनर्यथागतं प्रायात्पातालं नागवल्लभा ॥३३॥
प्रत्यावृत्ता च वैरोटया तदप्रेक्ष्य घटान्तरा । न शुशोच न चाकुप्यन् सा सती किंचिद् जगौ ॥३४॥
येनेदं भक्षितं भक्ष्यं पूर्यतां तन्मनोरथः । यादृग्ममेति शान्तान्तःकरणेत्याशिषं ददौ ॥३५॥
इतश्च पन्नगेन्द्रस्य कान्तया पत्युरग्रतः । निवेदितेऽवधेर्ज्ञात्वा सर्वं तां स विगीतवान् ॥३६॥
सानुतापा ततः सापि तदुपघ्नगृहस्थिते । स्त्रियं स्वप्नं ददौ तस्या क्षमया रञ्जिता सती ॥३७॥
यदलिञ्जरनागस्य प्रियाहं तनया च मे । वैरोटया पायसं दद्या अस्या दोहदपूरकम् ॥३८॥
तथा च मद्वचः कथ्यं तवाहं यत्पितुर्गृहम् । ध्रुवं निवारयिष्यामि श्वश्रूभवपराभवम् ॥३९॥
भोजिता पायसं भक्त्या तया सा पुण्यवर्णिनी । सम्पूर्णदोहदा प्रीताऽजीजनत् सुतमद्भुतम् ॥४०॥
नागकान्तापि सूते स्म नागानां शतमुत्तमम् । वर्द्धन्ते तेजसा तेऽपि तेजःप्रतिनिभप्रभाः ॥४१॥
वैरोटया नागिनीं दध्यौ नामारोपणपर्वणि । नन्दनस्य ततोऽम्बाया आदेशात्पन्नगोत्तमैः ॥४२॥
वयं पितृगृहं तस्याः प्रतिश्रुत्येति मानुषे । लोके तैरेत्य तद्गेहमलञ्चक्रे ससमदैः ॥४३॥-युग्मम् ।
केचिन्मत्तगजारूढा अश्वारुढाश्च केचन । सुखासनगताः केचित् केचिन्नरविमानगाः ॥४४॥
वैक्रियातिशयाद् रूपशलभाजः सुरा अथ । तद्वेश्म सकटं चक्रुः पाटकं चाऽपि पत्तनम् ॥४५॥
केऽपि बाला घटे क्षिप्त्वा अपिधानावृतास्यके । रक्षार्थमम्बया सर्पा वैरोटयाया समर्पिताः ॥४६॥
वधूपितृकुले तस्मिन्नायाते श्रीकलाद्भुते । श्वश्रूः स्नानादिभिस्तेषां सत्कर्तुमुपचक्रमे ॥४७॥
अहो ! लक्ष्मीवतामेव पक्षः श्रेयान् जयी वने । यज्जातेयं विगीता सा तन्निजा गौरवास्पदम् ॥४८॥
कयापि कर्मकर्याऽथ पर्वकर्मविहस्तया । अश्मन्तकस्थितस्थालीमुखे नागघटो ददे ॥४९॥
दृष्ट्वा व्याकुलया वैरोटयया चोत्तारितो घटः । स्नातया जननीवाक्यात् केशाद्भिः सोऽभ्यषिच्यत ॥५०॥
ते तत्प्रभावतः स्वस्था तस्थुरेकः पुनः शिशुः । अस्पर्शाज्जलबिन्दूनां विपुच्छोऽजायत क्षणात् ॥५१॥
स्खलिते यत्र तत्रापि क्षुतादौ वदति स्म सा । बण्डो जीवत्विमां वाचं तस्य स्नेहेन मोहिता ॥५२॥
बन्धवो नागरूपास्ते सर्वेभ्यो ददुरद्भुतम् । क्षौमसौवर्णरत्नौघमुक्ताभरणमण्डलम् ॥५३॥
तत्र पर्वणि सम्पूर्णे यथास्थानं च ते ययुः । नागास्तेन प्रभावेण गौरव्या साऽभवद् गृहे ॥५४॥
अन्यदालिञ्जरः पुत्रान् नागराजो निभालयन् । बण्डं ददर्श कोपश्च चक्रेऽवयवखण्डनात् ॥५५॥
तज्ज्ञात्वाऽवधिना गेहे वैरोटयाया समाययौ । दशमस्या विधास्यामि ध्रुवं मन्नन्दनद्रुहः ॥५६॥

किञ्च नवनन्दानां पञ्चपञ्चाशदधिकवर्षशतमाने समुदितराज्यकाले सति त्वेतद्द्वयं सप्तमाऽष्टमनन्दयोः काले-ऽपि न स्यात्, यतो दुष्षमाकालश्रीश्रमणसङ्घस्तोत्रावचूर्यां तयोः क्रमेण षड्वर्षमितश्चतुर्वर्षप्रमाणश्च राज्यकालो दर्शितः ।

तथैवैतदपेक्षया **श्रीनिशीथबृहत्कल्प-व्यवहार-पञ्चकल्पसूत्रभाष्य-चूर्णि--श्रीउपदेशपदवृत्त्यादिषु** येषां सम्प्रतिनृपकाले विद्यमानता दर्शिता ते श्रीआर्यमहागिरिपादाः सम्प्रतिनृपले विद्यमाना न भवेयुः, यतस्तदानीं श्रीआर्यमहागिरेर्युगप्रधानकालावसानसमये स्वर्गगमनसमये च चन्द्रगुप्तनृपराज्यसमाप्तिः, बिन्दुसारराज्यारम्भश्च संभवति, श्रीआर्यमहागिरेर्युगप्रधान॰ कालमानस्यैव चन्द्रगुप्तस्य मौर्यवंशोद्भवस्य राज्यकालमानस्यापि त्रिंशद्वर्षप्रमाणत्वेन तथा श्रीतपागच्छपट्टावल्यादिषूक्तस्य श्रीस्थूलभद्रस्वामिनो वीरात् २१५ वर्षे स्वर्गगमनस्यैवोक्तनीत्या नवमनन्दस्यापि तस्मिन्नेव वर्षे राज्यान्तस्यापि प्राप्यमानत्वेन श्रीआर्यमहागिरियुगप्रधानकालावसानसमयस्यैव चन्द्रगुप्तनृपते राज्यान्तस्यापि वीरात् २४५ वर्षे जायमानत्वात् ।

तेन भणितप्रकारेण बिन्दुसारराज्यकाले-ऽपि तेषां विद्यमानताया अनिश्चितत्वात् कुतः पुनर्बिन्दुसारप्रपौत्रसम्प्रतिनृपकाले विद्यमानताया वार्ताया अप्यवकाशस्य संभवः ।

अपि चार्यसुहस्तिसूरेरपि सम्प्रतिनृपराज्यकाले विद्यमानताया अभाव उक्तनीत्या भवति ।

श्रीहिमवदाचार्यनिर्मितस्थविरावल्यां दर्शितस्य नवनन्दसमुदितराज्यकालस्य पञ्चनवतिवर्षप्र[illegible]स्य [illegible]णे तु वीरात् पञ्चपञ्चाशदुत्तरवर्षशतेऽर्थात् वीराच्चतुःपञ्चाशदधिकशतवर्षेषु व्यतिक्रान्तेषु नवमनन्दस्य राज्यावसानो भवति ।

यदुक्तं [illegible]हिमवदाचार्यैः स्थविराव[illegible]म्-

'तयणंतर वीराओ इगसयाहियचउवन्नवासेसु विइक्कतेसु चाणिगाखुणीयो मोरियपुत्तो चदगुत्तो णवमं णदणिव पाडलिपुत्ताओ णिकासीय सय मगहाहिवो जाओ' इति ।

श्रीभद्रेश्वरसूरि[illegible]तकथावल्यामपि-

'एव च महावीरमुत्तिसमयाओ पचावन्ने वरिससए । वुच्छिन्ने नंदवंसे चंदगुत्तो राया जाओ त्ति ॥५२६॥' इति ।

श्रीहेमचन्द्रसूरिकृतपरि[illegible]र्वण्यपि-

'एवं च श्रीमहावीरमुक्तेर्वर्षशते गते । पञ्चपञ्चाशदधिके, चन्द्रगुप्तोऽभवन्नृप ॥३३९॥' इति । △

एतदभिप्रायेण पुनः श[illegible]लमृत्यु-स्थूलभद्रस्वामिदीक्षे नवमनन्दकाले घटामटाटचेया

△ तथा हारिभद्रीयावश्यके ३१९ तमे पृष्ठे वीरात् २१४ वर्षेषु व्यतीतेष्वव्यक्तदर्शन्नोत्पत्ति-स्तद्दृष्टिस्थिताना साधूना सम्यग्बोधो मौर्यवंशोत्पन्नेन बलभद्रनृपेण कृत इति दर्शित । यदुक्तम्-"तत्थ मोरियवंसणसूओ बलभद्दो नाम राया समणोवासओ' इत्यादि । एवमन्यत्रा-ऽपि । एतदपि श्रीहिमवदाचार्याद्यपेक्षयैव घटते ।

रिउजयस्स णिवस्स सेणाअ इवंगचउक्कं;
हवीअ जस्स णिजचउविणेआण कुलचउक्कं ।
जयउ वइरसेणो स णिवइणा मिव रज्जधुरा;
ऊढा जेणं पहुणा वज्जसामिपट्टधुरा ॥१०॥ (चंदलेहा)

(प्रे०) "रिउ" इत्यादि, "जस्स" त्ति, यस्य=श्रीवज्रसेनप्रभोः 'णिजचउविणेआण" त्ति, निजाः=स्वीयाः चत्वारः= चतुःसङ्ख्याका विनेयाः=शिष्या नागेन्द्र-चन्द्र-निर्वृत्ति-विद्याधरनामानो निजचतुर्विनेयास्तेषाम्= निजचतुविनेयानाम् 'कुलचउक्क" ति, कुलचतुष्कं "हवीअ" त्ति, अभवत्, तथाहि-श्रीवज्रस्वामिना स्वान्तकाले "यत्र त्व लक्षमूल्यान्नाद्भिक्षां लभसे तदा दुर्भिक्ष गतं जानीहि" इत्यनुशिष्य वंशरक्षार्थं प्रेपितो वज्रसेनप्रभुः सोपारकाख्यं पुर गतस्तत्र जिनदत्ताख्यः श्रेष्ठी, तत्प्रिया चेश्वरी नाम्नी, सुताश्चाऽस्य चत्वारस्सन्ति, ते लक्षमूल्यमन्नमपाक्षीत्, तस्मिन्नन्ने विप निक्षिप्य मुमूर्षवो वज्रसेनविभुना गुरुवचो वेदयित्वा निवारिता प्रतिबोध्य दीक्षिताश्च । तथा चोक्तमावश्यककथायाम्-

"वज्रसेनस्तु य प्रैपि, स सोपार पुर गत । धान्यमादाय लक्षेणाऽपाक्षीत्तत्रेश्वरी तदा ॥१३३॥
दध्यौ चाऽत्र विप क्षिप्त्वा, स्मृत्वा पञ्चनमस्कृतम् । कुर्म समाधिना कालमिति तत्प्रगुणीकृतम् ॥१३४॥
स चाऽगात्तद्गृहे साधुस्तेन त प्रतिलाभ्य सा । स्वमाख्याच्चिन्तित तस्य सोऽब्रवीन्मा कृथा इदम् ॥१३५॥
यत्र लक्षान्नभिक्षाऽप्ति, स्यात्तत्राशु सुभिक्षता । वज्रस्वामीदमूचे मा, नाऽन्यथा भावि तद्वच. ॥१३६॥
तण्डुलाना तदैवाप्पोतास्तत्र समागमन् । सुभिक्ष सहसा जात कुटुम्ब प्रत्यबोधि तत् ॥१३७॥
चन्द्रनागेन्द्रविद्याभृदसुरै सममीश्वरीम् । अदीक्षयद्वज्रसेनस्तेभ्योऽभूद्वज्रसन्तति ॥१३८॥" इति ।

तेभ्यश्चतुःश्रेष्ठिसुतेभ्यो निजनिजाह्वया चत्वारि कुलानि जातानि । तद्यथा-नागेन्द्राख्यस्य विनेयस्य नागेन्द्रकुलम्, चन्द्राभिधशिष्यस्य चान्द्रकुलम्, निर्वृतिनामान्तेषदो निर्वृतिकुलम्, विद्याधरसंज्ञाऽन्तेवासिनो विद्याधरकुलम्, । तथा चोक्त गुर्वावल्याम्-

"श्रीवज्रसेनाच्च ततो बभूवु कुलानि चत्वारि सुविस्तृतानि ।
नागेन्द्र चान्द्रे अथ नैर्वृत च वैद्याधर वादिजसूरिनाम्ना ॥२४॥
विचित्रशाखा कुलगच्छमूल नैके बभूवुर्गुरवश्च तेषु ।" इति ।

तथैव गुरुपर्वक्रमेऽपि निगदितम्-

"श्रीवज्रशाखाधुरिवज्रसेनान्नागेन्द्रचन्द्रादिकुलप्रसूति ।" इति ।

तथा श्रीसोमसौभाग्यकाव्येऽपि-

यस्या रजन्या श्रीअर्हन् तीर्थंकरो महावीर कालगत मुक्ति प्राप्त, तस्या रजन्यामुज्जयिन्या चण्ड-प्रद्योते मृते तस्यैव पुत्र पालको अवन्तिपतिस्तस्य पट्टे-ऽभिषिक्त ।
(वीरनिव्वाणरयणीओ चडपज्जोयरायपट्टम्मि । उज्जेणीए जाओ पालगनामा महाराया ॥ ॥)
सट्ठी पालगरन्नो पणवन्नसय तु होइ नन्दाणं । अट्ठसय मुरियाण तीसच्चिय पूसमित्तस्स ॥ ॥
बलमित्त भाणुमित्ताण सट्ठि वरिसाणि चत्त नहवहणे । तह गद्दभिल्लरज्ज तेरसवासे सगस्स चऊ ॥ ॥

पालकस्य राज्ञ षष्ठि(६०)वर्षाणि राज्यमभूत । तावता पाटलीपुत्रेऽपुत्रे कूणिकपुत्रे उदायिनृपे उदायिनृपमारकेण हते पञ्चदिव्यान्वरिताधिवासित-गजेन्द्रेण नापितो गणिकाङ्गजो नन्दो राज्येऽभि-षिक्त । उक्त च परिशिष्टपर्वणि-
'अनन्तर वर्द्धमानस्वामिनिर्वाणवासरात । गताया पष्ठिवत्सर्यामेष नन्दोऽभवन्नृप ॥ ॥"

नन्दाश्च नव पाटलीपुरे क्रमादभुवन् । तेषा च राज्य पञ्चपञ्चाशदधिक शतं (१५५) वर्षाणि बभूव । एव द्वे शते पञ्चदशाधिके (२१५)यच्च परिशिष्टपर्वण्युक्तम्-
'एव च श्रीमहावीरमुक्तेर्वर्षशते गते । पञ्चपञ्चाशदधिके चन्द्रगुप्तोऽभवन्नृपः ॥ ॥'
तच्चिन्त्यम् । यत -एव ६० वर्षाणि त्रुट्यन्ति, अन्यग्रन्थै सह विरोधश्च । तदनु अष्टोत्तरशत (१०८) वर्षाणि मौर्याणां राज्यम् । मौर्यास्तु नवम नन्दमुत्थाप्य चाणक्येन पाटलीपुत्रे स्थापिताश्चन्द्रगुप्तादय । एवं ३२३ । ततो मौर्यराज्यादनु पुष्यमित्रराज्ञस्त्रिशत (३०) वर्षाणि । ततो बलमित्र-भानुमित्रौ राजानौ षष्ठि(६०)वर्षाणि राज्यमकार्ष्टाम् । यौ तु कल्पचूर्णौ चतुर्थीपर्वकर्तृ कालकाच यनिर्वासकौ उज्जयिन्यां बलमित्र-भानुमित्रौ तावन्यावेव । ततश्चत्वारिंशत् (४०) वर्षाणि नभोवाहने राज्य जातम् । एष क्वापि नरवाहनो राजेत्युच्यते ।

एव वीरनिर्वाणाद् वर्ष ४५३ । अस्मिंश्च वर्षे गर्दभिल्लकोच्छेदकस्य श्रीकालकाचार्यस्य सूरिपद-प्रतिष्ठाऽभूत । तथा नभोवाहनराजानन्तर गर्दभिल्लराज्य द्विपञ्चाशदधिक शत (१५२)वर्षाणि ज्ञातव्यम् । अय भाव - गर्दभिल्लप्रभृतीनां राज्य गर्दभिल्लराज्यम् । इह यदा यो राजा ख्यातिमानभूत्, तदा तस्य राज्य गण्यते, न तु पट्टानुक्रम । ततो नभोवाहनादनु गर्दभिल्लेनोज्जयिन्या १३ वर्षाणि राज्य कृतम् । तावता श्रीकालकाचार्येण स्वसु सरस्वत्या प्रघट्टके गर्दभिल्लमुच्छेद्य उज्जयिन्या शकराजा स्थापिता । ते ४ वर्षाणि तत्र राज्य चक्रे । एव १७ । तदनु गर्दभिल्लस्यैव सुतेन विक्रमादित्येन राज्ञोज्जयिन्या राज्य प्राप्य सुवर्णपुरुषसिद्धिबलात्पृथिवीमनृणा कुर्वता विक्रमसंवत्सर प्रवर्तित । स च वार्षिकदानवर्षाज्जात-श्रीवीरसंवत्सराद् द्वादशाधिकपञ्चशतवर्षेभ्योऽनु ज्ञेय । विक्रमस्य राज्य ६० वर्षाणि ततस्तत्पुत्रस्य विक्रमचरित्रापरनाम्नो धर्मादित्यराजस्य राज्य ४० वर्षाणि । ततो भाइल्लराज्य वर्ष ११ । ततः श्रीनाइल राज्य वर्ष १४ तत श्रीनाहडराज्य १० वर्षाणि जातम् । यस्य वारके नवनवति-लक्षधनपतिभिरप्राप्तनिवासे जालउरपुरससीपस्थे सुवर्णगिरिशृङ्गे श्रीमहावीरसनाथ श्रीयक्षवसत्याख्यो महाप्रासादो निष्पन्न ।

उक्त च—
नवनवइलक्खधणवइ-अलद्धवासे सुवन्नगिरिसिहरे । नाहडनिवकालीण थुणि वीर जक्खवसहीए ॥ ॥

विक्रमादित्यादनु वर्ष १३५, तन्मध्ये १७ वर्षेषु क्षिप्तेषु सर्ववर्ष १५२ । एतदेवाह-
विक्कमरज्जाणतरसत्तरसवासेहिं वच्छरपवित्ती । सेस पुण पणतीससय विक्कमकालम्मि य पविट्ठ ॥ ॥

सप्तदशवर्षैर्विक्रमराज्यानन्तर वत्सरप्रवृत्ति कोऽर्थ ? । नभोवाहनराज्यात १७ वर्षैर्विक्रमादित्यस्य राज्यम् । राज्यानन्तर च तदैव वत्सरप्रवृत्ति । ततो द्विपञ्चाशदधिकशत (१५२) मध्यात् १७ वर्षेषु गतेषु

रिउजयस्स णिवस्स सेणाअ इवंगचउक्कं;
हवीअ जस्स णिजचउविणेआण कुलचउक्कं ।
जयउ वइरसेणो स णिवइणा मिव रज्जधुरा;
ऊढा जेणं पहुणा वज्जसामिपट्टधुरा ॥१०॥ (चंदलेहा)

(प्रे०) "रिउ" इत्यादि, "जस्स" त्ति, यस्य=श्रीवज्रसेनप्रभोः 'णिजचउविणेयाण" त्ति, निजाः=स्वीयाः चत्वारः= चतुःसङ्ख्याका विनेयाः=शिष्या नागेन्द्र-चन्द्र-निर्वृत्ति-विद्याधरनामानो निजचतुर्विनेयास्तेषाम्= निजचतुविनेयानाम् 'कुलचउक्क" ति, कुलचतुष्कं "हवीअ" त्ति, अभवत्, तथाहि-श्रीवज्रस्वामिना स्वान्तकाले "यत्र त्वं लक्षमूल्यान्नाद्भिक्षां लभसे तदा दुर्भिक्ष गतं जानीहि" इत्यनुशिष्य वंशरक्षार्थं प्रेषितो वज्रसेनप्रभुः सोपारकाख्यं पुरं गतस्तत्र जिनदत्ताख्यः श्रेष्ठी, तत्प्रिया चेश्वरी नाम्नी, सुताश्चाऽस्य चत्वारस्सन्ति, ते लक्षमूल्यमन्नमपाक्षीत्, तस्मिन्नन्ने विष निक्षिप्य मुमूर्षवो वज्रसेनविभुना गुरुवचो वेदयित्वा निवारिता प्रतिबोध्य दीक्षिताश्च । तथा चोक्तमावश्यककथायाम्-

"वज्रसेनस्तु य प्रैषि, स सोपार पुर गत । धान्यमादाय लक्षेणाऽपाक्षीत्तत्रेश्वरी तदा ॥१३३॥
दध्यौ चाऽत्र विष क्षिप्त्वा, स्मृत्वा पञ्चनमस्कृतम् । कुर्मः समाधिना कालमिति तत्प्रगुणीकृतम् ॥१३४॥
स चाऽगात्तद्गृहे साधुस्तेन त प्रतिलाभ्य सा । स्वमाख्याच्चिन्तित तस्य सोऽब्रवीन्मा कृथा इदम् ॥१३५॥
यत्र लक्षान्नभिक्षाऽप्ति, स्यात्तत्राशु सुभिक्षता । वज्रस्वामीदमूचे मा, नाऽन्यथा भावि तद्वच ॥१३६॥
तण्डुलाना तदैवाभ्रपोतास्तत्र समागमन् । सुभिक्ष सहसा जात कुटुम्ब प्रत्यबोधि तत् ॥१३७॥
चन्द्रनागेन्द्रविद्याभृदसुरै सममीश्वरीम् । अदीक्षयद्वज्रसेनस्तेभ्योऽभूद्वज्रसन्तति ॥१३८॥" इति ।

तेभ्यश्चतुःश्रेष्ठिसुतेभ्यो निजनिजाह्वया चत्वारि कुलानि जातानि । तद्यथा-नागेन्द्राख्यस्य विनेयस्य नागेन्द्रकुलम्, चन्द्राभिधशिष्यस्य चान्द्रकुलम्, निर्वृतिनामान्तेषदो निर्वृतिकुलम्, विद्याधरसंज्ञाऽन्तेवासिनो विद्याधरकुलम्, । तथा चोक्त गुर्वावल्याम्-

"श्रीवज्रसेनाच्च ततो बभूवु कुलानि चत्वारि सुविस्तृतानि ।
नागेन्द्र चान्द्रे अथ नैर्वृत च वैद्याधर वादिजसूरिनाम्ना ॥२४॥
विचित्रशाखा कुलगच्छमूल नैके बभूवुर्गुरवश्च तेषु ।" इति ।

तथैव गुरुपर्वक्रमेऽपि निगदितम्-

"श्रीवज्रशाखाधुरिवज्रसेनान्नागेन्द्रचन्द्रादिकुलप्रसूति ।" इति ।

तथा श्रीसोमसौभाग्यकाव्येऽपि-

'तओ गद्दहिल्लणिवपुत्तो विक्कमक्कणामधिज्जो त सामतणामधिज्ज सगरायमाक्कम्म वीराओ दसाहिय-चउसयवासेसु अवतीणयरे रज्ज पत्तो ।' इति ।

तेनास्य राज्यकालस्य षष्टिवर्षप्रमाणत्वेन वीरात् सप्तत्यधिकचतुःशतवर्षेषु व्यतिक्रान्तेषु राज्यान्तो मरणञ्च भवति । △ तदपेक्षया विक्रमसंवत्सरस्य प्रवृत्तिर्विक्रमादित्यनृपमरण-कालात्संभवति ।

यदि राज्यारम्भकाले विक्रमसंवत्सरस्य प्रवृत्तिर्मन्येत तर्हि वीरसंवत् ४११ वर्षेऽर्थाद् वीराद् दशाधिकचतुःशतवर्षेषु व्यतीतेषु स्यात् ।

किञ्च वीरनिर्वाणसंवद्विक्रमसंवतोरन्तरालस्य सप्तत्यधिकचतुःशतवर्षप्रमाणत्वेन बहुषु ग्रन्थेषूपलभ्यमानत्वात् सुप्रसिद्धत्वाच्च श्रीहिमवदाचार्यकृतस्थविरावल्यपेक्षया तावदन्तरालस्य विक्रमनृपराज्यावसाने प्राप्यमाणत्वेन तदेव विक्रमसंवदारम्भस्य सम्भव इति △ ।

पूर्वोक्ततपागच्छपट्टावल्याद्यभिप्रायेण पुनर्विक्रमादित्यनृपस्य राज्यप्राप्तितो विक्रम-संवत्सरस्य प्रवृत्तिः सम्पद्यते । नवनन्दानां तत्र पञ्चपञ्चाशदधिकशतवर्षप्रमाणराज्यकालस्याभि-प्रेतत्वेन पञ्चनवतिवर्षमितराज्यकालतः षष्टिवर्षाणामाधिक्येन लाभात् ।

विक्रमसंवतो वीरसंवदि सप्तत्यधिकवर्षशतचतुष्टयस्याधिक्येन वीरसंवत् ४७१ वर्षे-ऽर्थात् वीरनिर्वाणात् सप्तत्यधिकचतुःशतवर्षेषु व्यतिक्रान्तेषु विक्रमसंवत्प्रवर्तते स्म ।

यदुक्तं श्री ालसप्ततिकायाम्-'सुन्नमुणिवेअजुत्तो विक्कमकालाओ जिणकालो ॥४२॥' इति ।

एवं विचारसारप्रकरणादिष्वपि ।

उक्तञ्च विचारसारप्रकरणे ऽपि-'सुन्नमुणिवेअजुत्तं विक्कमकालाओ जिणकालं ॥५२४'इति ।

सट्ठी ६० पालगरन्नो पणवन्नसय च १५५ होइ नंदाण । अट्ठसय मुरियाण १०८, तीसच्चिय पूसमित्तस्स ।२॥
बलमित्त-भानुमित्ता सट्ठी वासाण ६० चत्त नहवहणे ४० । तह गद्दभिल्लरज्ज तेरसवासे १३ सगस्स ४ ॥३॥
विक्कमरज्जारभा परओ सिरिवीरनिव्वुई भणिया । सुन्न मुणि वेद(४७०)जुत्तो विक्कमकालाउ जिणकालो ॥४॥
विक्कमरज्जाणतरतेरसवासेसु वच्छरपवित्ती । सिरिवीरमुक्खओ वा चउसयतेवीससवासाओ ॥५॥' इति ।

△दर्शनसारग्रन्थे दिगम्बराचार्यदेवसेनसूरिणा सुभाषितरत्नसंदोहे दिगम्बराचार्यमितगतिना भावसंग्रहे पण्डितवामदेवेन च विक्रममृत्योरारभ्य संवत्प्रवृत्तिरुक्ता., तथैवा-ऽन्यत्रा-ऽपि ।

यदुक्त श्रीदर्शनसारग्रन्थे-

छसए छत्तीसे विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स । सोरट्ठे वलहीए उप्पण्णो सेवडो संघो ॥ ॥
पंचसये छव्वीसे विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स । दक्खिणमहुराजादो दाविडसघो महामोहो ॥ ॥
सत्तसये तेवण्णे विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स । नदयडे वरगामे कट्ठासघो मुणेयव्वो ॥ ॥' इति ।

सुभाषितरत्नसंदोहेऽपि-

समारूढे पूतत्रिदशवसतिं विक्रमनृपे, सहस्रे वर्षाणां प्रभवति हि पञ्चाशदधिके ।
समाप्तं पञ्चम्यां भवति धरणीं मुञ्जनृपतौ, सिते पक्षे पौषे बुधहितमिदं शास्त्रमनघम् ॥ ॥' इति ।

भावसंग्रहे-'सपट्त्रिंशे शतेऽब्दानां, मृते विक्रमराजनि । सौराष्ट्रे वल्लभीपुर्यामभूत्तत्कथ्यते मया ॥'इति ।

प्रव्रजितः । "संजमरसे" त्ति, संयमरसे=वीरसंवत् ६१७ वर्षे "जुगवरो" त्ति, युगवरः= युगप्रधानः=श्रीवीरप्रभोः शासने त्रयोविंशतिरुदया भाविनः, तेषु प्रथमोदये विंशतियुगप्रधाना जातास्ततः पश्चात्-प्रथमोदये चरमस्य विंशस्य युगप्रधानस्य श्रीदुर्बलिका पुष्पमित्रसूरेरनु एकविंशो युगप्रधानो द्वितीयोदयस्य चाद्यो युगप्रधानः "हवीअ" त्ति, बभूव "णहगुहमुहे" त्ति, नखाः=विंशतिः, गुहस्य=स्कन्दस्य मुखानि=वदनानि गुहमुखानि=गङ्गासुतास्यानि षट् एतावङ्कौ प्रातिलोम्येन स्थापितौ विंशत्यधिकशतषट्क६२०सङ्ख्या यत्र तत्र नखगुहमुखे वीरसंवत् ६२० वर्षे 'ख" ति, खं=नाकं ' इओ" त्ति, इतः=गतः ।△

तथा चोक्तं गुर्वावल्याम्–

'नखतु वर्षेऽथ ६२० जिनाद् दिवं स, श्रीवज्रसेनोऽधिगत श्रियेऽस्तु ।' इति ।

इत्थञ्च श्रीवज्रसेनप्रभुर्नव९वर्षाणि गृहवासे, षोडशोत्तरशत११६वर्षाणि सामान्यव्रते, त्रीणि ३ वर्षाणि युगप्रधानत्वे चेति सर्वायुश्चाऽष्टाविंशत्यधिकशतं१२८वर्षाणि परिपाल्य सुरनिलयं प्रति प्रतितस्थौ ॥६१॥

अथ युगप्रधानपरम्परायां श्रीवज्रसेनसूरेः पश्चात्सञ्जातं युगप्रधानं तथा वलभीवाचनाऽपेक्षया तस्यैवाऽनु वाचनाचार्यं माथुरवाचनामाश्रित्य श्रीनन्दिलसूरेः पश्चाद्भाविनं वाचनाचार्यं श्रीनागहस्तिसूरि पथ्यापूर्विकान्त्यचपलार्या—पथ्यार्यारूपगाथाद्वयेन वक्ति––

ताउ अखिलकम्मविसयणाणहरो णागहत्थिसूरिवरो ।
बावीसमो जुगवरो जयउ जगे वायणायरिओ ॥६२॥

(पच्छापुव्विगा जघनचवलाज्जा)

वीराऽग्गिहयसरे (५७३)ऽद्दे जाओ सो दिक्खिओ करंकसरे (५१२) ।
णहविगइम्मि(६२०)जुगवरो आसि दिवमिओ णिहिगयरसे(६८९)॥६३॥

(पच्छाज्जा)

(प्रे०) "ताउ" इत्यादि, तस्मात्=श्रीआर्यनन्दिलसूरेः श्रीवज्रसेनसूरेश्च पश्चात् क्रमेण माथुरवाचनानुगतश्रीनन्दीसूत्रवाचकस्थविरावलीगतो वलभीवाचनास्थविरावलीगतश्च "वाय-

△पन्न्यासश्रीकल्याणविजयानां वलभीवाचनाभिप्रायेणाऽस्य प्रभोर्युगप्रधानत्व स्वर्गतिश्च क्रमेण वीरसंवत् ६१६-६१९ वर्षे जायते स्म । निजाभिप्रायगणनाया पुन श्रीवज्रसेनविभोर्जन्म वीरसंवत् ४७७ वर्षे, दीक्षा वीरसंवत् ४८६ वर्षे, युगप्रधानत्व वीरसंवत ६०२ वर्षे, स्वर्गमनञ्च वीरसंवत् ६०५ वर्षे जायते स्म । श्रीवज्रसेनप्रभोर्विनेयश्चतुष्कुलेषु मध्ये नागेन्द्रकूलस्य प्रवर्तक इत्यनुमीयन्ते केचित्।

'तओ गद्दहिल्लणिवपुत्तो विक्कमक्कणामधिज्जो त सामतणामधिज्ज सगरायमाक्कम्म वीराओ दसाहिय-चउसयवासेसु अवंतीणयरे रज्ज पत्तो ।' इति ।

तेनास्य राज्यकालस्य षष्टिवर्षप्रमाणत्वेन वीरात् सप्तत्यधिकचतुःशतवर्षेषु व्यतिक्रान्तेषु राज्यान्तो मरणञ्च भवति । △ तदपेक्षया विक्रमसंवत्सरस्य प्रवृत्तिर्विक्रमादित्यनृपमरण-कालात्संभवति ।

यदि राज्यारम्भकाले विक्रमसंवत्सरस्य प्रवृत्तिर्मन्येत तर्हि वीरसंवत् ४११ वर्षेऽर्थाद् वीराद् दशाधिकचतुःशतवर्षेषु व्यतीतेषु स्यात् ।

किञ्च वीरनिर्वाणसंवद्विक्रमसंवतोरन्तरालस्य सप्तत्यधिकचतुःशतवर्षप्रमाणत्वेन बहुषु ग्रन्थेषूपलभ्यमानत्वात् सुप्रसिद्धत्वाच्च श्रीहिमवदाचार्यकृतस्थविरावल्यपेक्षया तावदन्तरालस्य विक्रमनृपराज्यावसाने प्राप्यमाणत्वेन तदैव विक्रमसंवदारम्भस्य सम्भव इति △ ।

पूर्वोक्ततपागच्छपट्टावल्याद्यभिप्रायेण पुनर्विक्रमादित्यनृपस्य राज्यप्राप्तितो विक्रम-संवत्सरस्य प्रवृत्तिः सम्पद्यते । नवनन्दानां तत्र पञ्चपञ्चाशदधिकशतवर्षप्रमाणराज्यकालस्याभि-प्रेतत्वेन पञ्चनवतिवर्षमितराज्यकालतः षष्टिवर्षाणामाधिक्येन लाभात् ।

विक्रमसंवतो वीरसंवदि सप्तत्यधिकवर्षशतचतुष्टयस्याधिक्येन वीरसंवत् ४७१ वर्षे-ऽर्थात् वीरनिर्वाणात् सप्तत्यधिकचतुःशतवर्षेषु व्यतिक्रान्तेषु विक्रमसंवत्प्रवर्तते स्म ।

यदुक्तं श्री [illegible] लसप्ततिकायाम्-'सुन्नमुणिवेअजुत्ता विक्कमकालाओ जिणकालो ॥४२॥' इति ।

एवं विचारसारप्रकरणादिष्वपि ।

उक्तञ्च विचारसारप्रकरणेऽपि-'सुन्नमुणिवेअजुत्ता विक्कमकालाओ जिणकालं ॥५२४'इति ।

सट्ठी ६० पालगरन्नो पणवन्नसय च १५५ होइ नंदाण । अट्ठसय मुरियाण १०८, तीसच्चिय पूसमित्तस्स ।२।
बलमित्त-भानुमित्ता सट्ठी वासाण ६० चत्त नहवहणे ४० । तह गद्दभिल्लरज्ज तेरसवासे १३ सगस्स ४ ॥३॥
विक्कमरज्जारंभा परओ सिरिवीरनिव्वुई भणिया । सुन्न मुणि-वेद(४७०)जुत्तो विक्कमकालाउ जिणकालो ॥४॥
विक्कमरज्जाणतरतेरसवासेसु वच्छरपवित्ती । सिरिवीरमुक्खओ वा चउसयतेवीसवासाओ ॥५।' इति ।

△दर्शनसारग्रन्थे दिगम्बराचार्यदेवसेनसूरिणा सुभाषितरत्नसंदोहे दिगम्बराचार्यामितगतिना भावसंग्रहे पण्डितवामदेवेन च विक्रममृत्योरारभ्य संवत्प्रवृत्तिरुक्ता., तथैवा-ऽन्यत्रा-ऽपि ।

यदुक्तं श्रीदर्शनसारग्रन्थे-

छत्तीसे वरिससए विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स । सोरट्ठे वलहीए उप्पण्णो सेवडो संघो ॥ ॥
पंचसये छव्वीसे विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स । दक्खिणमहुराजादो दाविडसंघो महामोहो ॥ ॥
सत्तसये तेवण्णे विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स । नंदयडे वरगामे कट्ठासंघो मुणेयव्वो ॥ ॥' इति ।

सुभाषितरत्नसंदोहेऽपि-

समारूढे पूतत्रिदशवसतिं विक्रमनृपे, सहस्रे वर्षाणां प्रभवति हि पञ्चाशदधिके ।
समाप्तं पञ्चम्यामवति धरणीं मुञ्जनृपतौ, सिते पक्षे पौषे बुधहितमिदं शास्त्रमनघम् ॥ ॥' इति ।

भावसंग्रहे-'सपट्त्रिंशे शतेऽब्दानां, मृते विक्रमराजनि । सौराष्ट्रे वल्लभीपुर्यामभूत्तत्कथ्यते मया ॥' इति ।

प्रव्रजितः । "संजमरसे" त्ति, संयमरसे=वीरसंवत् ६१७ वर्षे "जुगवरो" त्ति, युगवरः= युगप्रधानः=श्रीवीरप्रभोः शासने त्रयोविंशतिरुदया भाविनः, तेषु प्रथमोदये विंशतियुगप्रधाना जातास्ततः पश्चात्-प्रथमोदये चरमस्य विंशस्य युगप्रधानस्य श्रीदुर्बलिका पुष्पमित्रसूरेरनु एक-विंशो युगप्रधानो द्वितीयोदयस्य चाद्यो युगप्रधानः "हवीअ" त्ति, बभूव "नहगुहमुहे" त्ति, नखाः=विंशतिः, गुहस्य=स्कन्दस्य मुखानि=वदनानि गुहमुखानि=गङ्गासुतास्यानि पट् एतावङ्कौ प्रातिलोम्येन स्थापितौ विंशत्यधिकशतषट्क६२०सङ्ख्या यत्र तत्र नखगुहमुखे वीरसंवत् ६२० वर्षे 'ख" ति, खं=नाकं ' इओ" त्ति, इतः=गतः ।△

तथा चोक्त गुर्वाविल्याम्-

'नखतु वर्षेऽथ ६२० जिनाद् दिवं स, श्रीवज्रसेनोऽधिगत श्रियेऽस्तु ।' इति ।

इत्थञ्च श्रीवज्रसेनप्रभुर्नव९वर्षाणि गृहवासे, षोडशोत्तरशत११६वर्षाणि सामान्यव्रते, त्रीणि ३ वर्षाणि युगप्रधानत्वे चेति सर्वायुश्चाऽष्टाविंशत्यधिकशतं१२८वर्षाणि परिपाल्य सुर-निलयं प्रति प्रतितस्थौ ॥६१॥

अथ युगप्रधानपरम्परायां श्रीवज्रसेनसूरेः पश्चात्सञ्जातं युगप्रधानं तथा वलभीवाचनाऽ-पेक्षया तस्यैवाऽनु वाचनाचार्यं माथुरवाचनामाश्रित्य श्रीनन्दिलसूरेः पश्चाद्भाविनं वाचनाचार्यं श्रीनागहस्तिसूरि पथ्यापूर्विकान्त्यचपलार्या-पथ्यार्यारूपगाथाद्वयेन वक्ति--

ताउ अखिलकम्मविसयणाणहरो णागहत्थिसूरिवरो ।
बावीसमो जुगवरो जयउ जगे वायणायरिओ ॥६२॥

(पच्छापुव्विगा जघनचवलाज्जा)

वीराऽग्गिहयसरे (५७३)ऽहे जाओ सो दिक्खिओ करंकसरे (५१२) ।
णहविगइम्मि(६२०)जुगवरो आसि दिवमिओ णिहिगयरसे(६८९)॥६३॥

(पच्छाज्जा)

(प्रे०) "ताउ" इत्यादि, तस्मात्=श्रीआर्यनन्दिलसूरेः श्रीवज्रसेनसूरेश्च पश्चात् क्रमेण माथुरवाचनानुगतश्रीनन्दीसूत्रवाचकस्थविरावलीगतो वलभीवाचनास्थविरावलीगतश्च "वाय-

△पन्न्यास श्रीकल्याणविजयाना वलभीवाचनाभिप्रायेणाऽस्य प्रभोर्युगप्रधानत्व स्वर्गतिश्च क्रमेण वीर-संवत् ६१६-६१६ वर्षे जायते स्म । निजाभिप्रायगणनाया पुन श्रीवज्रसेनविभोर्जन्म वीरसंवत् ४७७ वर्षे, दीक्षा वीरसंवत् ४८६ वर्षे, युगप्रधानत्व वीरसंवत ६०२ वर्षे, स्वर्गमनञ्च वीरसंवत् ६०५ वर्षे जायते स्म । श्रीवज्रसेनप्रभोर्विनेयश्चतुष्कुलेषु मध्ये नागेन्द्रकुलस्य प्रवर्तक इत्यनुमीयन्ते केचित् ।

हिमवदाचार्यकृतस्थविरावल्यां पुनर्बलमित्र-भानुमित्रावशोकनृपपौत्रावशोकपुत्र-तिष्यगुप्तात्मजाववन्तिनगराधिपौ तथा बलमित्रपुत्रस्य नहोवाहनस्य सुतत्वेन गर्दभिल्लनृपश्च भणितः, तस्या-ऽपि तनयो विक्रमादित्यो नृपो दर्शितः। **तथा च तद्ग्रन्थः—**

अहावतीणयरम्मि सपइणिवस्स णिपुत्तस्स सग्गगमणंतरमसोगणिवपुत्ततिस्सगुत्तस्स बलमित्त-भाणुमित्तणामधिज्जे दुवे पुत्ते वीराओ दोसयचउणवइवासेसु विइक्कंतेसु रज्जं पत्ते। ते ण दुन्नि वि माया जिणधम्माराहगे वीराओ चउवन्नाहियतिसयवासेसु विइक्कंतेसु सग्गं पत्ते। तयणंतरं बलमित्तस्स पुत्तो णभोवाहणो अवंतीरज्जे ठिओ। से वि य णं जिणधम्माणुगो वीराओ तिसयचउणवइवासेसु विइक्कंतेसु सग्गं पत्तो। तओ तस्स पुत्तो गद्दहीविज्जोवेओ गद्दहिल्लो णिवो अवंतीणयरे रज्जं पत्तो।
तओ गद्दहिल्लणिवपुत्तो विक्कमक्कणामधिज्जो त सामंतणामविज्ज सगरायमाकम्म वीराओ दसाहिय-चउसयवासेसु विइक्कंतेसु अवंतीणयरे रज्जं पत्तो।"इति।

तेनावन्तीनगराधिपाभ्यामशोकपौत्ररूपबलमित्र-भानुमित्राभ्यां भृगुकच्छराज्याधीशौ कालिकसूरिस्वस्रीयरूपौ बलमित्र-भानुमित्रावन्यावेव मन्तव्यौ भवतः, अवन्तीनगरेशाभ्यां बल-मित्र-भानुमित्राभ्यां बृहदन्तरत्वात्। यद्वा बलमित्र-भानुमित्राभ्यां कालिकसूरिप्रभृतीनां सम्ब-न्धादिकं न वाच्यम्; **हिमवत्स्थविरावल्या**मदर्शितत्वात्। यद्वा बलमित्र-भानुमित्रयोः कालिकसूरिकाले बलमित्र-भानुमित्रकाले वा कालकसूरेः स्थापना कार्या भवेत्।

अन्ये केचना **तीर्थोद्गारप्रकीर्णके** (तित्थोगालीपयन्ने) राज्यकालमानप्रदर्शिकासु गाथास्वन्तर्गतं 'मुरियाणं अट्ठसयं' इति पाठमपपाठत्वेन भणित्वा 'मुरियाण सट्ठिसयं' इति पाठः शुद्धपाठत्वेनाङ्गीक्रियते, तथा सति **तपागच्छपट्टावली-विविधतीर्थकल्पा-**दिष्वप्युक्तमौर्यनृपाणामट्ठसयवर्षाणां स्थाने षष्टिशतवर्षाणि शताधिकाष्टवर्षाणां स्थाने शतो-त्तरषष्टिवर्षाणि तैरङ्गीकृतानि भवन्ति, तथा गर्दभिल्लनृपाणां द्विपञ्चाशदधिकशतवर्षस्थाने वर्ष-शतमानं राज्यमङ्गीकृतं भवति किञ्च **श्रीहिमवत्स्थविरावल्यां** चन्द्रगुप्त-बिन्दुसारा-ऽशोक-सम्प्रतिसंज्ञकानां चतुर्णां मौर्यनृपाणां क्रमात्त्रिंशत्-पञ्चविंशति-पञ्चत्रिंश-देकोनपञ्चाश-द्वर्षाणां प्रतिपादनेन तेषां चतुर्णामपि मौर्यनृपाणां समुदितकालस्यैकोनचत्वारिंशदधिकशतवर्ष-प्रमाणत्वादष्टोत्तरशतवर्षमानापेक्षया षष्ट्यधिकशतवर्षप्रमाणो मौर्यराज्यकालोऽधिकृतः सम्भा-व्यते। तदपेक्षया बलमित्र-भानुमित्रयो राज्यं वीरनिर्वाणात् पञ्चषष्ट्यधिकचतुःशतवर्षं यावद-भूत्। तद्यथा—वीरनिर्वाणात् षष्टिवर्षं यावत्पालकनृपते राज्यम्, ततः पञ्चपञ्चाशदधिकशतवर्ष-मानं नवनन्दानां राज्यं वीरनिर्वाणात् पञ्चदशाधिकद्विशतवर्षं यावत्, ततः षष्ट्यधिकशत-प्रमितं मौर्यनृपाणां राज्य वीरनिर्वाणपञ्चसप्तत्यधिकशतत्रयवर्षं यावत् ततस्त्रिंशद्वर्षप्रमाणं पुष्प-मित्रस्य राज्यं वीरनिर्वाणात् पञ्चाधिकचतुःशतवर्षं यावदभूत्।

यदुक्तं श्रीतीर्थोद्गारप्रकीर्णके—

'जं रयणिं सिद्धिगओ अरहा तित्थकरो महावीरो। तं रयणिमवंतीए, अभिसित्तो पालओ राया॥६२०॥

प्रव्रजितः । "संजमरसे" त्ति, संयमरसे=वीरसंवत् ६१७ वर्षे "जुगवरो" त्ति, युगवरः= युगप्रधानः=श्रीवीरप्रभोः शासने त्रयोविंशतिरुदया भाविनः, तेषु प्रथमोदये विंशतिर्युगप्रधाना जातास्ततः पश्चात्-प्रथमोदये चरमस्य विंशस्य युगप्रधानस्य श्रीदुर्बलिका पुष्पमित्रसूरेस्तु एकविंशो युगप्रधानो द्वितीयोदयस्य चाद्यो युगप्रधानः "हवीअ" त्ति, वभूव "नहगुहमुहे" त्ति, नखाः=विंशतिः, गुहस्य=स्कन्दस्य मुखानि=वदनानि गुहमुखानि=गङ्गासुतास्यानि षट् एतावङ्कौ प्रातिलोम्येन स्थापितौ निशत्यधिकशतषट्क६२०सङ्ख्या यत्र तत्र नखगुहमुखे वीरसंवत् ६२० वर्षे 'ख" ति, खं=नाकं 'इओ" त्ति, इतः=गतः ।△

तथा चोक्त गुर्वावल्याम्-

'नखतु वर्षेऽथ ६२० जिनाद् दिवं स, श्रीवज्रसेनोऽधिगत श्रियेऽस्तु ।' इति ।

इत्थञ्च श्रीवज्रसेनप्रभुर्नव९वर्षाणि गृहवासे, षोडशोत्तरशत११६वर्षाणि सामान्यव्रते, त्रीणि ३ वर्षाणि युगप्रधानत्वे चेति सर्वायुश्चाऽष्टाविंशत्यधिकशतं१२८वर्षाणि परिपाल्य सुरनिलयं प्रति प्रतितस्थौ ॥६१॥

अथ युगप्रधानपरम्परायां श्रीवज्रसेनसूरेः पश्चात्सञ्जातं युगप्रधानं तथा वलभीवाचनाऽपेक्षया तस्यैवाऽनु वाचनाचार्यं माथुरवाचनामाश्रित्य श्रीनन्दिलसूरेः पश्चाद्भाविनं वाचनाचार्यं श्रीनागहस्तिसूरि पथ्यापूर्विकान्त्यचपलार्या–पथ्यार्यारूपगाथाद्वयेन वक्ति––

ताउ अखिलकम्मविसयणाणाहरो णागहत्थिसूरिवरो ।
बावीसमो जुगवरो जयउ जगे वायणायरिओ ॥६२॥

(पच्छापुव्विगा जघनचवलाज्जा)

वीराऽग्गिहयसरे (५७३)ऽद्दे जाओ सो दिक्खिओ करंकसरे (५१२) ।
णहविगइम्मि(६२०)जुगवरो आसि दिवमिओ णिहिगयरसे(६८१)॥६३॥

(पच्छाज्जा)

(प्रे०) "ताउ" इत्यादि, तस्मात्=श्रीआर्यनन्दिलसूरेः श्रीवज्रसेनसूरेश्च पश्चात् क्रमेण माथुरवाचनानुगतश्रीनन्दीसूत्रवाचकस्थविरावलीगतो वलभीवाचनास्थविरावलीगतश्च "वाय-

△पन्न्यासश्रीकल्याणविजयाना वलभीवाचनाभिप्रायेणाऽस्य प्रभोर्युगप्रधानत्व स्वर्गतिश्च क्रमेण वीरसवत् ६१६-६१६ वर्षे जायते स्म । निजाभिप्रायगणनाया पुन श्रीवज्रसेनविभोर्जन्म वीरसवत् ४७७ वर्षे, दीक्षा वीरसवत् ४८६ वर्षे, युगप्रधानत्व वीरसवत ६०२ वर्षे, स्वर्गमनञ्च वीरसवत् ६०५ वर्षे जायते स्म । श्रीवज्रसेनप्रभोर्विनेयश्चतुष्कुलेषु मध्ये नागेन्द्रकूलस्य प्रवर्तक इत्यनुमीयन्ते केचित् ।

विक्रमादित्यौ शब्दौ भवतः, ततो राज युवराजयोगादिशब्देनापि विक्रमादित्यनाम निष्पद्यते ।

अन्ये तु 'विक्कमरज्जाणंतर तेरसवासेसु वच्छरपवित्ती' इत्यनेन वीरात्त्र्यशीत्यधिकचतुःशतवर्षेषु व्यतीतेषु विक्रमसंवदुत्पत्तिर्व्याचक्षते, ते हि पूर्वोक्त-तीर्थोद्धारप्रकीर्णक-तपागच्छपट्टावली-विचारसारप्रकरण-विचारश्रेणिप्रकरणाद्यभिप्रायवद् वीरात् सप्तत्यधिकचतुःशतवर्षेषु व्यतिक्रान्तेषु विक्रमनृपस्य राज्यारम्भं मन्यन्ते, ततस्त्रयोदशवर्षेषु व्यतीतेषु विक्रमसंवदारम्भमभ्युपगच्छन्ते च । **एतदर्थाभिधायिका गाथा चेमा–**

'विक्कमरज्जाणंतर तेरसवासेसु वच्छरपवित्ती । सिरिवीरमुक्खओ वा चउसयतेसीइवासाओ ॥ ॥' इति ।

यथा **कल्पसूत्रादिषु** 'अय असीइमे संवच्छरे काले गच्छइ' इति **माथुरवाचनापेक्षया वालभवाचनायां** 'वायणतरे पुण अय तेणउए संवच्छरे काले गच्छइ' इत्यनेन त्रयोदशवर्षाणामाधिक्यं दर्शितम्, तद्वदत्रा-ऽपि सम्भाव्यते ।

कथावल्यादिमताभिप्रायेण पुनर्गर्दभिल्लनृपं जित्वा वीरसंवत् ४५३ वर्षेऽवन्तीनगरराज्यसिंहासने शकनृपादिभी राज-युवराजत्वेन बलमित्र-भानुमित्रावभिषिक्तौ । **उक्तञ्च कथावल्याम्–** साहिप्पमुहराणएहिं चाहिसित्तो उज्जेणीए कालगसूरिभाणेज्जो बलमित्तो नाम राया तक्कणिट्ठभाया य भाणुमित्तो नामाहिसित्तो जुवराया' इति । ततः पूर्वोक्तरीत्या बलमित्रस्य बलमित्र-भानुमित्रयोर्वा विक्रमादित्यत्वेन सम्भवे सति राज्यप्राप्तितः सप्तदशवर्षेषु गतेषु विक्रमसंवद्प्रवर्तत । **एतदर्थसूचकश्चाय ग्रन्थः–**'विक्कमरज्जाणंतरसत्तरवासेहिं वच्छरपवित्ती ।' इति ।

अत्रा-ऽपि **केचिदाचार्याः–**गर्दभिल्लनृपाणां द्विपञ्चाशदधिकवर्षशतमानं राज्यं स्वीकृत्य नभोवाहननृपराज्यसमाप्तितः सप्तदशवर्षेषु गर्दभिल्लनृपसत्केषु गतेषु विक्रमराज्यप्राप्तिस्तदेव विक्रमसंवत्प्रवर्तनञ्च ततः शेषेषु गर्दभिल्लनृपसम्बन्धिषु पञ्चत्रिंशदधिकशतवर्षेषु व्यतिक्रान्तेषु गर्दभिल्लनृपराज्यारम्भतः पुनर्द्विपञ्चाशदधिकशतवर्षेषु व्यतीतेषु शकसंवत्प्रवृत्तिश्च स्वीकुर्वन्ति ।

तदर्थप्रतिपादिका चेमा गाथा विचारश्रेणौ–

"विक्कमरज्जाणंतर सत्तरसवासेहिं वच्छरपवित्ती । सेस पुण पणतीससय विक्कमकालम्मि य पविट्ठं ॥"इति ।

तथा चास्य व्याख्या– सप्तदशवर्षैर्विक्रमराज्यानन्तरं वत्सरप्रवृत्तिः । ततो द्विपञ्चाशदधिकशत (१५२) मध्यात् १७ वर्षेषु गतेषु शेषं पञ्चत्रिंशदधिकशत (१३५) विक्रमकाले प्रविष्टम्' इति ।

एतच्च तैर्नन्दानां पञ्चपञ्चाशदधिकवर्षशतमानम्, मौर्यनृपाणामष्टोत्तरशतवर्षप्रमाणञ्चाङ्गीकृत्योक्तमित्यपि ज्ञेयम् । **एतदर्थबोधिका विचारसारप्रकरणगदिता पञ्च गाथाश्चेमाः–**

"मम सिद्धि गयस्स पुणो पालयराया अवंतिनयरीए । होही त रयणीए सट्ठी वासाण पुहवीवई ॥४६२॥
तस्स य पुट्ठीए नंदो पणपन्नसय च होइ वासाण । मुरियाणं अट्ठसयं तीसच्चिय पूसमित्तस्स ॥४६३॥

प्रव्रजितः । "संजमरसे" त्ति, संयमरसे=वीरसंवत् ६१७ वर्षे "जुगवरो" त्ति, युगवरः= युगप्रधानः=श्रीवीरप्रभोः शासने त्रयोविंशतिरुदया भाविनः, तेषु प्रथमोदये विंशतियुगप्रधाना जातास्ततः पश्चात्-प्रथमोदये चरमस्य विंशस्य युगप्रधानस्य श्रीदुर्बलिका पुष्पमित्रसूरेरनु एक-विंशो युगप्रधानो द्वितीयोदयस्य चाद्यो युगप्रधानः "हवीअ" त्ति, बभूव "णहगुहमुहे" त्ति, नखाः=विंशतिः, गुहस्य=स्कन्दस्य मुखानि=वदनानि गुहमुखानि=गङ्गासुतास्यानि षट् एतावङ्कौ प्रातिलोम्येन स्थापितौ विंशत्यधिकशतषट्क६२०सङ्ख्या यत्र तत्र नखगुहमुखे वीरसंवत् ६२० वर्षे 'ख" ति, खं=नाकं ' इओ" त्ति, इतः=गतः ।△

तथा चोक्त गुर्वावल्याम्-

'नखतु वर्षेऽथ ६२० जिनाद् दिव स, श्रीवज्रसेनोऽधिगत श्रियेऽस्तु ।' इति ।

इत्थञ्च श्रीवज्रसेनप्रभुर्नव९वर्षाणि गृहवासे, षोडशोत्तरशत११६वर्षाणि सामान्यव्रते, त्रीणि ३ वर्षाणि युगप्रधानत्वे चेति सर्वायुश्चाऽष्टाविंशत्यधिकशतं१२८वर्षाणि परिपाल्य सुर-निलयं प्रति प्रतितस्थौ ॥६१॥

अथ युगप्रधानपरम्परायां श्रीवज्रसेनसूरेः पश्चात्सञ्जातं युगप्रधानं तथा वलभीवाचनाऽ-पेक्षया तस्यैवाऽनु वाचनाचार्यं माथुरवाचनामाश्रित्य श्रीनन्दिलसूरेः पश्चाद्भाविनं वाचनाचार्यं श्रीनागहस्तिसूरिं पथ्यापूर्विकान्त्यचपलार्या–पथ्यार्यारूपगाथाद्वयेन वक्ति--

ताउ अखिलकम्मविसयणाणहरो णागहत्थिसूरिवरो ।
बावीसमो जुगवरो जयउ जगे वायणायरिओ ॥६२॥

(पच्छापुव्विगा जघनचवलाज्जा)

वीराऽग्गिहयसरे (५७३)ऽहे जाओ सो दिक्खिओ करंकसरे (५१२) ।
णहविगइम्मि(६२०)जुगवरो आसि दिवमिओ णिहिगयरसे(६८९)॥६३॥

(पच्छाज्जा)

(प्रे०) "ताउ" इत्यादि, तस्मात्=श्रीआर्यनन्दिलसूरेः श्रीवज्रसेनसूरेश्च पश्चात् क्रमेण माथुरवाचनानुगतश्रीनन्दीसूत्रवाचकस्थविरावलीगतो वलभीवाचनास्थविरावलीगतश्च "वाय-

---

△पन्न्यासश्रीकल्याणविजयाना वलभीवाचनाभिप्रायेणाऽस्य प्रभोर्युगप्रधानत्व स्वर्गतिश्च क्रमेण वीर-वत् ६१६-६१६ वर्षे जायते स्म । निजाभिप्रायगणनाया पुन श्रीवज्रसेनविभोर्जन्म वीरसवत् ४७७ र्षे, दीक्षा वीरसवत् ४८६ वर्षे, युगप्रधानत्व वीरसवत ६०२ वर्षे, स्वर्गमनञ्च वीरसवत् ६०५ वर्षे जायते स्म । श्रीवज्रसेनप्रभोर्विनेयश्चतुष्कुलेषु मध्ये नागेन्द्रकुलस्य प्रवर्तक इत्यनुमीयन्ते केचित्।

पायसं वध्वै दत्तम् । तद् गृहीत्वा सा बहिर्गता, वृक्षमूले तत्स्थापयित्वा हस्तपादप्रक्षालनाय कासारे गता, तदाऽलिञ्जरनागेन्द्रकान्ता तद्भुक्त्वा पुनः पातालमगात् । इतश्च तत्रागत्य तद्-वीक्ष्याकुपितमनाः सा इदमाशीर्वचो ददौ—"येनेदं भक्षितं भक्ष्यं पूर्यतां तन्मनोरथः।" इति। नागेन्द्रतत्कान्तेऽवधिज्ञानेन तद्गदितं ज्ञात्वा तुष्टे, निशायाश्च नागेन्द्रप्रिया स्वप्ने तत्श्वश्रूं 'नागेन्द्रप्रियाऽहं वैरोट्या मे ना, अस्या दोहदपूरकं पायसं दद्यात्' इत्यकथयत्। ततः संपूर्णदोहदा सा पुत्रमद्भुतं प्राजीजनत् तदा पितृपक्षमर्चकार्यं नागैः कृतम् । नन्दनस्य **नागदत्त**' इति नामाऽकरोत् । पश्चाद्गुरूपदेशतो नागदत्तं स्वपदे न्यस्य प्रियायुतः पद्मदत्तः प्रव्रजितः। गतश्च सौधर्मसुरालये। वैरोट्याऽपि धर्मरता मृत्वा श्रीपार्श्वभक्तस्य धरणेन्द्रस्य देव्यभूत्, साऽपि प्रभुभक्तानामद्भुतं साहाय्यं करोति । तदा श्रीआर्यनन्दिलसूरिणा सर्वविषाद्युपद्रवहरं वैरोट्यायाः "**नमिऊण जिणं पासं**" मिति मन्त्राऽन्वितं स्तवं कृतम् ।

तथा चोक्तं प्रभावकचरिते—

"श्रीआर्यनन्दिलः स्वामी वैरोट्यायाः स्तवं तदा । 'नमिऊण जिणं पासं' मिति मन्त्राऽन्वितं व्यधात् ॥८०॥
एकचित्तः पठेन्नित्यं त्रिसन्ध्यं य इमं स्तवम् । विषाद्युपद्रवाः सर्वे तस्य न स्युः कदाचन ॥८१॥" इति ।

अत्र विस्तरतः प्रभाव रितमेवम्—

आर्यरक्षितवंशीयः, स श्रीमानार्यनन्दिलः । संसाराऽरण्यनिर्वाहसार्थवाहः पुनातु वः ॥१॥
क आर्यनन्दिलस्वामिगुणवर्णने ईशिता । अष्टौ कुलानि नागानां यदाज्ञां शिरसा दधुः ॥२॥
यत्प्रसादेन वैरोट्या क्षमाया उपदेशतः । नागेन्द्रदयिता जज्ञे नाममन्त्राद् विषापहा ॥३॥
किंचित्प्रस्तौमि तद्वृत्तं गुरुणा गुरुणादृतः । प्रसादेन मृगाङ्कस्थो मृगः किं नाश्नुते नभः ॥४॥
अस्ति स्वस्तिनिधिः श्रीमत् पद्मिनीखण्डपत्तनम् । मण्डितं सारकासारैः पद्मिनीखण्डमण्डितैः ॥५॥
तत्र वित्रासिताशेषशत्रुपक्षः क्षमापतिः । पद्मप्रभाभिधः पद्मासद्म पद्मनिभाननः ॥६॥
तस्य पद्मावती कान्ता कान्ताशतशिरोमणिः । यया देहश्रिया जिग्ये कान्ता स्वर्गरतेरपि ॥७॥
तत्राऽमात्रश्रिया पात्रं श्रेष्ठी श्रेष्ठकलानिधिः । अर्थिचातकपाथोदः पद्मदत्तोऽस्ति विश्रुतः ॥८॥
तस्य पद्मयशा नाम वल्लभाऽस्ति रतिप्रभा । पुत्रः सुत्रामपुत्राभरूपः पद्माभिधस्तयोः ॥९॥
कलाकलापसंपूर्णं तं मत्वा सार्थनायकः । वरदत्तः स्वकां पुत्रीं वैरोट्याख्यां व्यवाहयत् ॥१०॥
अन्यदा वन्यदावाग्निदुस्सहे समुपागते । अन्तःप्रतिभुवि न्यक्षपक्षेषु जगतोऽशिवे ॥११॥
युतः स परिवारेण पुण्यनैपुण्यसंक्षयात् । वरदत्तः पुरं प्राप विपापः समवर्त्तिनः ॥१२॥-युग्मम् ।
ततः प्रभृति तुच्छत्वात् श्वश्रूः शुश्रूषिताप्यलम् । वैरोट्यामवजानाति तां निष्पितृगृहामिति ॥१३॥
रूपं राढा धनं तेजः, सौभाग्यं प्रभविष्णुता । प्रभावात्पैतृकादेव नारीणां जायते ध्रुवम् ॥१४॥
ततस्तद्वचनैर्दूना विनीतानां शिरोमणिः । साऽहोरात्रं भजेत् कार्श्यं कर्मोपालम्भतत्परा ॥१५॥
अन्येद्युः साऽथ भोगीन्द्रस्वप्नसंसूचितं तदा । उवाह रत्नगर्भेव रत्नं गर्भं शुभाद्भुतम् ॥१६॥
तृतीये मासि पूर्णेऽथ दोहदं द्रोहदं द्विषाम् । बभार सारसत्त्वाढ्या दृढं पायसभोजने ॥१७॥
अथार्यनन्दिलः सूरिरुद्याने समवासरत् । साधुवृन्दवृतः सार्द्धनवपूर्वधरः प्रभुः ॥१८॥
तस्यामापन्नसत्त्वायामपि श्वश्रूरदक्षिणा । वदन्ती कद्वदा यत्किंचिदपि प्रतिकूलति ॥१९॥

णामो गच्छस्स चंदकुलो खलु जओ जाओ;
भागीरही व सुरणईअ भगीरहणिवाओ ॥१४॥ (ललिता)

(प्रे०) "मंदर०" इत्यादि, "वइरसेणस्स" त्ति, वज्रसेनस्य=श्रीवज्रसेनप्रभोः 'पट्टम्मि'त्ति,पट्टे=पदे "चंदसूरीसरो"त्ति, चन्द्रः=चन्द्रनामा स चाऽसौ सूरीश्वरः=सूरिनायकः चन्द्रसूरीश्वरः=श्रीचन्द्राऽभिधो गच्छनायक आचार्यः "सोहीअ" त्ति, अशोभत। किम्भूतः? "विग्घहरो" त्ति, हरतीति "अच्" (सि० ५-१-४९) इत्यच्प्रत्यये हरः, विघ्नानाम्=अन्तरायाणां हरो=विघ्नहरः, क इव? "सुरतरुव्व" त्ति, सुरतरुः=कल्पद्रुम इव=यथा "मंदरणगे" त्ति, मन्दरनगे=मन्दरनाम्नि पर्वते कल्पशाखी शोभते।

पूर्वं तच्छब्दस्याऽनुक्तेऽपीह यच्छब्दस्य भणिष्यमाणत्वेन यत्तच्छब्दयोर्नित्याऽभिसम्बन्धत्वात्तच्छब्द आक्षिप्यते। ततः स क इत्याह—"णामो" इत्यादि, "जओ" त्ति, यतः= श्रीचन्द्रसूरितः "गच्छस्स" त्ति, गच्छस्य पूर्वं महावीरप्रभुत आरभ्यार्यसुहस्तिसूरिं यावद्गच्छस्य निर्ग्रन्थनामासीत् ततः श्रीसुस्थितसूरेरारभ्य जातकौटिकनाम्नो गच्छस्य "चंदकुलो" त्ति, चन्द्रकुलं=चन्द्रकुलाऽभिधं "णामो" त्ति, नाम=तृतीयं नाम "जाओ" त्ति, जात= प्रवर्तितम्। कस्मात्कस्याः केव?। "भगीरहणिवाओ" त्ति, भगीरथनृपात्=सगरचक्रिज्येष्ठसुतजह्नुकुमारात्मजात् "सुरणईअ" त्ति, सुरनद्याः=गङ्गायाः "भागीरही व" त्ति, भागीरथीव। यथा भगीरथनृपात्सुरनद्या भागीरथीति संज्ञाऽभूत्। तथा श्रीचन्द्रसूरेः कौटिकाख्यस्य गच्छद्वितीयनाम्नस्तृतीयं नाम चन्द्रकुलं प्रादुरभूत्। तथा चोक्तं गुर्वावल्याम्—

"श्रीचन्द्रसूरिश्च पदे तदीयेऽभवद् गुरुश्चन्द्रकुलस्य मूलम् ॥२६॥" इति ॥१४॥

साम्प्रतं श्रीचरमशासनकृतः षोडशं पट्टं धारयतः श्रीसामन्तभद्रसूरेर्विवदिषया मधुकरी शास्ति—

महरो भवियलोगस्स सामंतभद्दसूरी;
जयउ स गुरू चंदसूरीसपट्टवोमसूरी ।
रंगारी व विसया विरत्तो वणे वसीअ;
तओ वणवासी गणस्स जाउ णामो हवीअ ॥१५॥ (महुयरी)

(प्रे०) "महरो" इत्यादि, 'स' त्ति, स="सामंतभद्दसूरी"त्ति, *सामन्तभद्रसूरिः=

*पन्न्यासश्रीकल्याणविजया 'समन्तभद्र' इति इति सञ्ज्ञकं मन्यते। तथाऽन्येऽपि केचित्।

पायसं वध्वै दत्तम् । तद् गृहीत्वा सा वहिर्गता, वृक्षमूले तत्स्थापयित्वा हस्तपादप्रक्षालनाय कासारे गता, तदाऽलिञ्जरनागेन्द्रकान्ता तद्भुक्त्वा पुनः पातालमगात् । इतश्च तत्रागत्य तद्वीक्ष्याकुपितमनाः सा इदमाशीर्वचो ददौ—"येनेद भक्षितं भक्ष्यं पूर्यतां तन्मनोरथः।" इति। नागेन्द्रतत्कान्तेऽवधिज्ञानेन तद्गदितं ज्ञात्वा तुष्टे, निशायाञ्च नागेन्द्रप्रिया स्वप्ने तत्श्वश्रू 'नागेन्द्रप्रियाऽहं वैरोट्या मे सुता, अस्या दोहदपूरक पायस दद्यात्' इत्यकथयत् । ततः संपूर्णदोहदा सा पुत्रमद्भुतं प्राजीजनत् तदा पितृपक्षमर्वकार्यं नागैः कृतम् । नन्दनस्य 'नागदत्त' इति नामाऽकरोत् । पश्चाद्गुरूपदेशतो नागदत्तं स्वपदे न्यस्य प्रियायुतः पद्मदत्तः प्रव्रजितः। गतश्च सोधर्मसुरालये । वैरोट्याऽपि धर्मरता मृत्वा श्रीपार्श्वभक्तस्य धरणेन्द्रस्य देव्यभूत् , साऽपि प्रभुभक्तानामद्भुतं साहाय्यं करोति । तदा श्रीआर्यनन्दिलसूरिणा सर्वविषाद्युपद्रवहरं वैरोट्यायाः "नमिऊण जिणं पास" मिति मन्त्राऽन्वितं स्तवं कृतम् ।

तथा चोक्तं प्रभावकचरिते—

"श्रीआर्यनन्दिल· स्वामी वैरोट्याया स्तव तदा । 'नमिऊण जिण पास' मिति मन्त्राऽन्वितं व्यधात् ॥८०॥
एकचित्त पठेन्नित्य त्रिसन्ध्य य इम स्तवम् । विषाद्युपद्रवा सर्वे तस्य न स्यु कदाचन ॥८१॥" इति ।

अत्र विस्तरतः प्रभावकचरितमेवम्—

आर्यरक्षितवशीय, स श्रीमानार्यनन्दिलः । ससाराऽरण्यनिर्वाहसार्थवाह पुनातु व ॥१॥
क आर्यनन्दिलस्वामिगुणवर्णन ईशिता । अष्टौ कुलानि नागानां यदाज्ञा शिरसा दधु ॥२॥
यत्प्रसादेन वैरोट्या क्षमाया उपदेशत । नागेन्द्रदयिता जज्ञे नाममन्त्राद् विषापहा ॥३॥
किंचित्प्रस्तौमि तद्वृत्त गुरुणा गुरुणाद्दत । प्रसादेन मृगाङ्कस्थो मृग किं नाश्नुते नम ॥४॥
अस्ति स्वस्तिनिधि श्रीमन् पद्मिनीखण्डपत्तनम् । मण्डित सारकासारै पद्मिनीखण्डमण्डितै ॥५॥
तत्र वित्रासिताशेषशत्रुपक्ष क्षमापति· । पद्मप्रभाभिध पद्मासद्म पद्मनिभानन ॥६॥
तस्य पद्मावती कान्ता कान्ताशतशिरोमणि· । यया देहश्रिया जिग्ये कान्ता स्वर्गपतेरपि ॥७॥
तत्रामात्रश्रिया पात्र श्रेष्ठी श्रेष्ठकलानिधि· । अर्थिचातकपाथोद पद्मदत्तोऽस्ति विश्रुत ॥८॥
तस्य पद्मयशा नाम वल्लभाऽस्ति रतिप्रभा । पुत्र सुत्रामपुत्रामरूप पद्माभिधस्तयो ॥९॥
कलाकलापसपूर्णं तं मत्वा सार्थनायकः । वरदत्त स्वका पुत्रीं वैरोट्यख्यां व्यवाहयत् ॥१०॥
अन्यदा वन्यदावाग्निदुस्सहे समुपागते । अन्तप्रतिभुवि न्यक्षपक्षेषु जगतोऽशिवे ॥११॥
युत स परिवारेण पुण्यनैपुण्यसक्षयात् । वरदत्त· पुर प्राय विपापः समवर्त्तिन ॥१२॥-युग्मम् ।
तत प्रभृति तुच्छत्वात श्वश्रू शुश्रूषिताप्यलम् । वैरोट्यामवजानाति ता निष्पितृगृहामिति ॥१३॥
रूप राढा धन तेज, सौभाग्य प्रभविष्णुता । प्रभावात्पैतृकादेव नारीणां जायते ध्रुवम् ॥१४॥
ततस्तद्वचनैर्दूना विनीताना शिरोमणि । साऽहोरात्र भजेत् कार्श्यं कर्मोपालम्भतत्परा ॥१५॥
अन्येद्यु साऽथ भोगीन्द्रस्वप्नससूचित तदा । उवाह रत्नगर्भेव रत्न गर्भं शुभाद्भुतम् ॥१६॥
तृतीये मासि पूर्णेऽथ दोहद द्रोहद द्विषाम् । बभार सारसत्त्वाढ्या दृढ पायसभोजने ॥१७॥
अथार्यनन्दिल सूरिरुद्याने समवासरत् । साधुवृन्दवृतः सार्द्धनवपूर्वधरः प्रभु ॥१८॥
तस्यामापन्नसत्त्वायामपि श्वश्रूरदक्षिणा । वदन्ती कद्वदा यत्किंचिदपि प्रतिकूलति ॥१९॥

25

पायसं वध्वै दत्तम् । तद् गृहीत्वा सा बहिर्गता, वृक्षमूले तत्स्थापयित्वा हस्तपादप्रक्षालनाय कासारे गता, तदाऽलिञ्जरनागेन्द्रकान्ता तद्भुक्त्वा पुनः पातालमगात् । इतश्च तत्रागत्य तद्वीक्ष्याकुपितमनाः सा इदमाशीर्वचो ददौ–"येनेद भक्षितं भक्ष्यं पूर्यतां तन्मनोरथः । " इति । नागेन्द्रतत्कान्तेऽवधिज्ञानेन तदुगदितं ज्ञात्वा तुष्टे, निशायाञ्च नागेन्द्रप्रिया स्वप्ने तच्छ्वश्रूं 'नागेन्द्रप्रियाऽहं वैरोट्या मे ना, अस्या दोहदपूरक पायस दद्यात्' इत्यकथयत् । ततः संपूर्णदोहदा सा पुत्रमद्भुतं प्राजीजनत् तदा पितृपक्षमर्वकार्यं नागैः कृतम् । नन्दनस्य **नागदत्त**' इति नामाऽकरोत् । पश्चाद्गुरूपदेशतो नागदत्तं स्वपदे न्यस्य प्रियायुतः पद्मदत्तः प्रव्रजितः । गतश्च सौधर्मसुरालये । वैरोट्याऽपि धर्मरता मृत्वा श्रीपार्श्वभक्तस्य धरणेन्द्रस्य देव्यभूत् , साऽपि प्रभुभक्तानामद्भुतं साहाय्यं करोति । तदा श्रीआर्यनन्दिलसूरिणा सर्वविषाद्युपद्रवहरं वैरोट्यायाः "नमिऊण जिण पास" मिति मन्त्राऽन्वितं स्तवं कृतम् ।

तथा चोक्तं प्रभावकचरिते—

"श्रीआर्यनन्दिल॰ स्वामी वैरोट्याया स्तवं तदा । "नमिऊण जिण पास' मिति मन्त्राऽन्वितं व्यधात् ॥८०॥
एकचित्त पठेन्नित्य त्रिसन्ध्य य इम स्तवम् । विषाद्युपद्रवा' सर्वे तस्य न स्यु कदाचन ॥८१॥"इति ।

अत्र विस्तरतः प्रभावकचरितमेवम्—

आर्यरक्षितवशीय, स श्रीमानार्यनन्दिलः । ससाराऽरण्यनिर्वाहसार्थवाह पुनातु व' ॥१॥
क आर्यनन्दिलस्वामिगुणवर्णन ईशिता । अष्टौ कुलानि नागानां यदाज्ञा शिरसा दधु ॥२॥
यत्प्रसादेन वैरोट्या क्षमाया उपदेशत । नागेन्द्रदयिता जज्ञे नाममन्त्राद् विषापहा ॥३॥
किंचित्प्रस्तौमि तद्वृत्त गुरुणा गुरुणाहत । प्रसादेन मृगाङ्कस्थो मृग किं नाश्नुते नभ' ॥४॥
अस्ति स्वस्तिनिधि श्रीमत् पद्मिनीखण्डपत्तनम् । मण्डित सारकासारै पद्मिनीखण्डमण्डितै ॥५॥
तत्र वित्रासिताशेषशत्रुपक्ष क्षमापतिः । पद्मप्रभाभिध ;पद्मासद्म पद्मनिभानन ॥६॥
तस्य पद्मावती कान्ता कान्ताशतशिरोमणि' । यया देहश्रिया जिग्ये कान्ता स्वर्गगतेरपि ॥७॥
तत्रामात्रश्रिया पात्र श्रेष्ठी श्रेष्ठकलानिधि॰ । अर्थिचातकपाथोद पद्मदत्तोऽस्ति विश्रुत ॥८॥
तस्य पद्मयशा नाम वल्लभाऽस्ति रतिप्रभा । पुत्र सुत्रामपुत्रामरूप पद्माभिधस्तयो' ॥९॥
कलाकलापसपूर्णं त मत्वा सार्थनायकः । वरदत्त स्वका पुत्रीं वैरोट्याख्यां व्यवाहयत् ॥१०॥
अन्यदा वन्यदावाग्निदुस्सहे समुपागते । अन्तप्रतिभुवि न्यक्षपक्षेपु जगतोऽशिवे ॥११॥
युत स परिवारेण पुण्यनैपुण्यसक्षयात । वरदत्त' पुरं प्राप विपापः समवर्त्तिन ॥१२॥-युग्मम् ।
तत प्रभृति तुच्छत्वात श्वश्रू शुश्रूपिताप्यलम् । वैरोट्यामवजानाति तां निष्पितृगृहामिति ॥१३॥
रूप श्रद्धा धन तेज, सौभाग्य प्रभविष्णुता । प्रभावात्पैतृकादेव नारीणां जायते ध्रुवम् ॥१४॥
ततस्तद्वचनैर्दूना विनीताना शिरोमणि । साऽहोरात्र भजेत् कार्श्यं कर्मोपालम्भतत्परा ॥१५॥
अन्येद्यु साऽथ भोगीन्द्रस्वप्नसमूचित तदा । उवाह रत्नगर्भेव रत्न गर्भं शुभाद्भुतम् ॥१६॥
तृतीये मासि पूर्णेऽथ दोहद द्रोहद द्विषाम् । बभार सारसत्त्वाढ्या दृढ पायसभोजने ॥१७॥
अथार्यनन्दिल सूरिरुद्याने समवासरत । साधुवृन्दवृतः सार्द्धनवपूर्वधर॰ प्रभु ॥१८॥
तस्यामापन्नसत्त्वायामपि श्वश्रूरदक्षिणा । वदन्ती कद्वदा यत्किंचिदपि प्रतिकूलति ॥१९॥

पहदंसी" विमुक्तेः=मोक्षस्य पन्थाः=मार्गः, विमुक्तिपथः "ऋक्पू:पथ्यपोऽत्" (सि०७-३-७६) इत्यनेन अत्समासान्तः, "यद्वा" अकाराऽन्तोऽपि पथशब्दोऽस्ति ततो विमुक्तेः पथो विमुक्ति-पथस्तस्य विमुक्तिपथस्य दर्शी=दर्शको विमुक्तिपथदर्शी यथा केतुर्वायुदिग्दर्शी भवति तथाऽयं सूरिर्मोक्षमार्गदर्श्यासीत् ।

यत्तदोर्नित्याभिसम्बन्धादाह .."स" त्ति, स "वुड्ढदेवसूरी" त्ति, वृद्धदेवसूरिः "जयउ" त्ति, जयतु=जयनशीलो भवतु, किं विशिष्टः? "खनत्तंगेऽद्दे" त्ति, खानि= इन्द्रियाणि, यदुक्तमनेकार्थकोषे–' ख स्व सविदि व्योमनीन्द्रिये॥४॥ शून्ये बिन्दौ सुखे .. .." इति । तानि च स्पर्शनादीनि पञ्च, तत्त्वानि=जीवा-ऽजीव-पुण्य-पापा-ऽऽश्रव संवर-निर्जरा बन्धमोक्षलक्षणानि नव, उक्तञ्च नवतत्त्वप्रकरणे—

'जीवा-जीवा पुण्ण पावा-ऽऽसव-संवरो य निज्जरणा। बंधो मुक्खो य तहा नव तत्ता हुंति नायव्वा॥१॥' इति, अङ्गानि=शरीराणि औदारिकादीनि पञ्च, यद्वा अङ्गानि=व्याकरणाङ्गानि=सूत्र-आदि उणादि-परिभाषा-लिङ्गानुशासनरूपाणि पञ्च, एतेऽङ्का वामगतिस्थापिता यस्य तादृशेऽब्दे खतत्त्वा-ङ्गेऽब्दे=वीरसंवत् ५९५ वर्षे=विक्रमसंवत् १२५ वर्षे "परिठविअकोरंटगवीरच्चो" त्ति, प्रतिष्ठापिता कोरण्टके=कोरण्टकनाम्नि नगरे वीरस्य=चरमतीर्थपतेरर्चा=प्रतिमा-बिम्बं वा येन स प्रतिष्ठापितकोरण्टकवीरार्चः ।

इदञ्च श्रीतपागच्छपट्टावली-गुर्वावल्याद्यनुसारेणोक्तम् ।

तथा चोक्तं गुर्वावल्यनुसारिण्यां श्रीतपागच्छपट्टावल्याम्–

"श्रीसामन्तभद्रसूरिपट्टे सप्तदश श्रीवृद्धदेवसूरि । वृद्धो देवसूरिरितिख्यात । श्रीवीरात्पञ्चनवत्य धिकपञ्चशत ५९५ वर्षाऽतिक्रमे कोरण्टके नाहडमन्त्रिनिर्मापितप्रासादे प्रतिष्ठाकृत् ॥" इति ।

तथा च श्री गुर्वावल्यामपि–

"वृद्धस्ततोऽभूत् किल देवसूरि' १८ शरच्छते विक्रमत सपादे १२५卐।
कोरण्टके यो विधिना प्रतिष्ठां शङ्कोर्व्यधात् नाहडमन्त्रिचैत्ये ॥२६॥" इति ।

तथा च सति श्रीवज्रसेनप्रभोर्विद्यमानायामवस्थायामियं प्रतिष्ठा भवेत्, यतो गुर्वा-वल्यां तथा तदनुसारिण्यां श्रीतपागच्छपट्टावल्यां श्रीवज्रसेनप्रभोः स्वर्गतिवीरसंवत् ६२० वर्षे दर्शिताऽस्ति ।

श्रीवज्रसेनप्रभुतोऽस्य चतुर्थपुरुषत्वेनैतदसंभावनाविषयो यदा भवेत्तदा तदसम्भावनां दूरीकर्तुं गुर्वावल्युक्तस्य सपादशतस्य विक्रमसंवत्सरस्य शकसंवत्सरत्वेन यदि सम्भाव्येत तर्हि मूलगाथासत्कस्याऽनन्तरपूर्वोक्तस्य 'खतत्तंगे' इत्यवयवस्य व्याख्येत्थं विधेया–खम्=शून्यम्,

卐 अत्र पन्न्यासश्रीकल्याणविजया सपादशतस्य शकसंवत्सरस्य सम्भावनां कुर्वन्ति ।

इति संश्रवमाकर्ण्य पत्युस्तद्रक्षणोद्यता । समागान्नागिनी भक्ता वैरोट्या ? (प्र)वादिनी ॥५७॥
गिरेति श्रुतया पत्न्या किञ्चिच्छान्त परीक्षितुम् । अन्तर्गृह कपाटस्य पश्चाद्गूढतनु स्थित ॥५८॥
प्रदोषतामस तु किंचिदरार्रि स्थितमप्रत । अदृष्ट्वा रभसा यान्ती सा गुल्फे पीडिता भृशम् ॥५९॥
बण्डो जीवत्विति ततो वादिनी फणभृत्पतिम् । सद्य सतोषयामास तुष्टोऽसौ नूपुरे ददौ ॥६०॥
यातायात चानुजज्ञे तस्या पातालवेश्मसु । तेन नागाश्च तद्गेहमायान्त्यपि यथा तथा ॥६१॥
ततो बालाबलामुख्योऽभवल्लोको भयभ्रमि । इति ख्यात च तद्गेह दुर्गम नागमन्दिरम् ॥६२॥
विज्ञप्त पद्मदत्तेन गुरूणा तद्यथातथम् । जगदुस्ते च नागाना स्ववध्वा ख्यापयेरिदम् ॥६३॥
अस्मद्गृहे न वस्तव्य जनानुग्रहकाम्यया । वस्तव्य वा न द्रष्टव्यमिति कृत्य मदाज्ञया ॥६४॥
वैरोट्याया समादिष्ट त्वं गच्छाशीविषाश्रये । वक्तव्या नागिनी पुत्रा उल्लङ्घ्याऽऽज्ञा हि मे नहि ॥६५॥
तया गत्वा च पाताले ज्ञापिता फणभृद्वरा । आज्ञां प्रभोस्ततो मान्यामीपामाख्येयमद्भुता ॥६६॥
जीवतान्नागिनी मागशत चास्य स्तथा पिता । अलिञ्जरश्च नागेन्द्रो विषज्वालाप्लुताम्बर. ॥६७॥
अनाथाह च सनाथा कृता येन सनूपुरौ । चरणौ रचिताविल्याशिष प्रादात्सुधोर्मिमाम् ॥६८॥
छत्रध्वजावृतिध्यानाद् देवदेवजिनेशितु । पन्नग-प्रेत-भूताग्नि-चौर-व्याल-भयं नहि ॥६९॥
डाकिनी-शाकिनीवृन्द योगिन्यश्च निरन्तरम् । न विद्रवन्ति जेनाज्ञा यस्य मूर्ध्नि शेखर. ॥७०॥
यश्च तस्य गुरोराज्ञां वैरोट्यायास्तथा स्तवम् । नित्य ध्यायति तस्य स्यान्नैव क्षुद्रभव भयम् ॥७१॥
गुडाज्यपायसै स्वाद्य बलिं ढौकयते च य । जिनस्य जैनसाधोश्च दत्ते सा च त रक्षति ॥७२॥
उपदेश प्रभोरेनमाकर्ण्याऽन्येऽपि भोगिन । उपशान्तास्तथा पूज्या वैरोट्याख्याऽभवत्सती ॥७३॥
नागदत्तश्च तत्पुत्रो भाग्यसौभाग्यभूः । तत्कुलोन्नतिमाधत्त धर्मकर्मणि कर्मठः ॥७४॥
ससारानित्यतामन्यदिने सद्गुरुगीर्भरात् । सभाव्य नागदत्त स्वे पदे न्यास्थद् गुणोज्ज्वलम् ॥७५॥
पद्मदत्त प्रियापुत्रसहितो जगृहे व्रत । उग्रं ततस्तपस्तप्त्वा सौधर्मे ससुतो ययौ ॥७६॥
तथा पद्मयशा पूज्यादेशाद् वध्वा तया सह । मिथ्यादुष्कृतमाधाय देवी तत्रैव साऽभवत् ॥७७॥
वैरोट्यापि फणीन्द्राणा ध्यानाद् धर्मोद्यता सती । मृत्वाऽभूद् धरणेन्द्रस्य देवी श्रीपार्श्वसेवितु ॥७८॥
सापि प्रभौ भक्तिमता चक्रे साहाय्यमद्भुतम् । विषयहन्त्यादिभीताना दधात्युपशम ध्रुवम् ॥७९॥
श्रीआर्यनन्दिल स्वामी वैरोट्याया स्तव तदा 'नमिऊण जिण पास' मिति मन्त्राऽन्वित व्यधात् ॥८०॥
एकचित्त. पठेन्नित्य त्रिसन्ध्य, य इम स्तव । विषाद्युपद्रवा सर्वे तस्य न स्युः कदाचन ॥८१॥

ये वैरोट्याख्यानमेतत्पवित्रम्, क्षान्त्यक्षीणश्रेयसां मूलशाला ।
श्रुत्वा मर्त्या ये क्षमामाद्रियेरन्, तेषा स्वर्गो नाऽपि मोक्षो दुराप ॥८२॥

श्रीचन्द्रप्रभसूरिपट्टसरसीहसप्रभ श्रीप्रभाचन्द्र सूरिरनेन चेतसि कृते श्रीरामलक्ष्मीभुवा ।
श्रीपूर्वर्षिचरित्ररोहणगिरौ श्रीनन्दिलाख्यानकं, श्रीप्रद्युम्नमुनीन्दुना विशदित शृङ्गस्तृतीयोऽजनि ॥८३॥
प्रभो श्रीप्रद्युम्नाभिधनरसधाराधर । विना, भवन्त सद्गुर्वक्षरविषयतृष्णातरलितम् ।
सुलभ्मान्यश्रीमद्भुवननिरपेक्ष विशदनैर्गिरामारै शिष्य ननु धिनु निजं चातकशिशुम् ॥८४॥ 'इति ॥८९॥

सम्प्रति श्रीदेवार्यस्य चरमतीर्थनेतुश्चतुर्दशं पट्टधरमेकविंशं युगप्रधानं द्वितीयोदये प्रथमं युगप्रधानं वलभीवाचनाऽपेक्षया वाचनाचार्यमपि श्रीवज्रसेनप्रभुं श्लोकद्वयेन प्रतिपादितुकाम आदौ तावच्चन्द्रलेखामाह—

(प्र०) 'जगम्मि' इत्यादि, 'जो' त्ति, यः=श्रीप्रद्योतनसूरिः "जगम्मि" त्ति, गच्छति ताँस्तान् नरकादिभावानिति जगत् तस्मिन् जगति=संसारे पञ्चाऽस्तिकायरूपे चराचर-भूतग्रामे वा "अण्णाणतमस्स णासगो" त्ति, अज्ञानमेव तमो=ऽन्धकारोऽज्ञानतमस्तस्य अज्ञानतमसो नाशकः=भेदकः "संसोसगो दुण्णयकद्दमाण" त्ति दुर्नयाः=कुपाक्षिकमतानि मिथ्यादर्शनानीति यावत् त एव कर्दमाः=पङ्का दुर्नयकर्दमास्तेषां दुर्नयकर्दमानां संशोषकः= मूलादुच्छेदकः "भवज्जरासीअ पबोहगा" त्ति, भव्या=मुक्तिगमनयोग्या जन्तवः, त एवा-ऽब्जानि=कमलानि=भव्याऽब्जानि तेषां राशिः=समूहो भव्याऽब्जराशिस्तस्य भव्याऽब्जराशेः प्रबोधकः=सम्यक्त्वादिगुणगणस्य विकासकरः । यत्तदोर्नित्यसापेक्षत्वादाह-"स" त्ति स "पज्जोयणो" त्ति, प्रद्योतनः=प्रद्योतननामा 'गुरु" त्ति, गृणाति यथावस्थित शास्त्रा-ऽर्थमिति गुरुः=आचार्यः "देवपट्टखे" त्ति, "भामा सत्यभामा' इति न्यायाद् देवः=वृद्धदेव-स्तस्य पट्टः=पदम् एव खम्=आकाशं तस्मिन् देवपट्टखे वृद्धदेवसूरेः पट्टगगने "ऽरधीअ" त्ति अराजत ॥१८॥

इदानीं श्रीसिद्धार्थजस्य जिनप्रभोरेकोनविंशतितमपट्टभृत आद्यश्रीमानदेवसूरेः श्लोक-द्वयेन दिदर्शयिषया पूर्वं स्रग्धरां ख्याति. ....

अज्जं तं माणदेवं गुणगणणिलयं पासिऊणं वरीअ ।
णोच्छंती पट्टकरणा इयरपइवरं सूरिपज्जोयणस्स ॥ ॥
अंसुप्पि जंभिलच्छी पयविहिसमये विक्ख से भाविभंसो ।
एवं खिरणं गुरुं जो कलिअ छ विगई भत्तभिक्खं चयीअ ॥१९॥(सद्धरा)

"श्री प्रद्योतनसूरिणाऽजमेराख्ये नगरे ऋषभदेवस्य प्रतिमाया प्रतिष्ठा कृता, तथा स्वर्णगिरौ 'दोशी'धनपतिकृतमन्दिरे भगवतो महावीरस्य प्रतिमा प्रतिष्ठापिता। उक्तञ्च वीरवंशावली-"एहैव विक्र० स० ५९५ (?)वर्षे अजयामेरु नगरे श्रीऋषभबिंब प्रतिष्ठा नीपजावी। पुनः सुवर्णगीरीइ दो० धनपतिइ द्विलक्ष द्रव्य सुकृति करी यक्षवसती नामे श्रीवीरबिंबप्रासादसहित प्रतिष्ठा हुइ। एहीज सुरीइ प्रतिष्ठा कीधी।" इति ।

तथा–'जैन परंपरानो इतिहास' इति सञ्ज्ञके ग्रन्थे-△"वीरसंवत् ६८० वर्षे शकसंवत् १३५(?) वर्षे स्वर्णगिरौ प्रतिष्ठा तथा श्रीप्रद्योतनसूरेः स्वर्गगमनं ❀वीरसंवत् ६६८ वर्षे, विक्रमसंवत् २८८(?)वर्षेऽभूदिति" निरूपितम् ॥ ॥

△ वीरसंवत् ६८० अपेक्षया शकसंवत् ७५ भवति । शकसंवत् १३५ अपेक्षया वीरसंवत् ७४० भवति ।
❀ ,, ,, ६६८ ,, विक्रम ,, २२८ ,, । विक्रम ,, २८८ ,, ,, ,, ७५८ ,, ।

"नागेन्द्र-चन्द्रावपि निर्वृतिश्च विद्याधरश्चेत्यभिधाप्रसिद्धा ।
चत्वार एतस्य सुरार्चितस्य. शिष्या भुवि ख्यातगुणा बभूवुः ॥१७॥
एतेभ्य इश्येन्द्रनतेभ्य आसन् गच्छा अतुच्छा भुवि चाद्धिसङ्ख्या ।
नामानुरूपा विमलस्वरूपा विनम्रभूषा शमवारिकूपा ॥१८॥" इति ।

कल्पसूत्रे पुनर्वज्रसेनप्रभोश्चत्वारः शिष्या आर्यनागिल-पौमिल-जयन्त-तापसनामान उक्ताः, तेभ्यस्तत्तन्नाम्न्यः शाखा निर्गता इत्युक्तमस्ति । तथा च तद्ग्रन्थः-

"थेरस्स णं अज्जवइरसेणस्स उक्कोसिअगुत्तस्स अंतेवासी चत्तारि थेरा. थेरे 'अज्जनाइले' १, थेरे 'अज्जपोमिले' २, थेरे 'अज्जजयंते' ३, थेरे अज्जतावसे' ४. थेराओ अज्जनाइलाओ अज्जनाइला साहा निग्गया १, थेराओ अज्जपोमिलाओ अज्जपोमिला साहा निग्गया, २, थेराओ अज्जजयंताओ अज्जजयंती साहा निग्गया, ३,थेराओ अज्जतावसाओ अज्जतावसी साहा निग्गया ४ इति ॥६॥" इति ।

किमिव ? "सेणाअ इवंगचउक्कं" ति सेनायाः=चम्वोरङ्गचतुष्कं=हस्त्यश्वरथपदातिलक्षणम्, "इव" त्ति, इव=यथा "रिउजयस्स' इत्यादि, "रिउजयस्स" त्ति, रिपूणां=शत्रूणां जयाय=पराभूतकरणाय "णिवस्स" त्ति, नृपस्य=अवनीपतेर्वाहिन्या गज-हय-स्यन्दन-पत्तिरूपमङ्गचतुष्कं भवति । तथा यत्तदोर्नित्याभिसम्बन्धादाह "स" त्ति, स 'वइरसेणो" त्ति; वज्रसेनः=श्रीवज्रसेनाऽभिधो गुरुरुत्कौशिकगोत्रः "जयउ" त्ति, जयतु=जयनशीलो भवतु पुनरपि स कः ? इत्याह-'जेण' ति, येन=श्रीवज्रसेनेन 'पहुणा" त्ति, प्रभुणा=स्वामिना "वज्जसामिपट्टधुरा" त्ति, वज्रस्वामिनः=श्रीवज्रस्वामिगुरोः पट्टस्य =पदस्य धूः=धूर्वी=वज्रस्वामिपट्टधुरा "धुरोऽनक्षस्य" (सि० ७-३-७६) इत्यनेन अत्समासान्तः "ऊढा" त्ति, ऊढा=धृता भृता वा का इव ? "मिव रज्जधुरा" त्ति,राज्यधुरा=राज्यभार इव=यथा "णिवइणा" त्ति, नृपतिना=राज्ञा राज्यधुरोह्यते ॥६०॥

अथ श्रीवज्रसेनसूरेर्जन्मादिसम्बन्धिनः संवत्सरानाह पथ्यापूर्विकया जघनचपलार्यया-

वीराक्खिणिहिजुगे (४९२) ऽब्दे, जाओ सो दिक्खिओ कुगगणसरे(५०१)।
संजमरसे (६१७) जुगवरो, हवीअ खमिओ णहगुहमुहे (६२०) ॥६१॥

(पच्छापुव्विगा अंतचवलाज्जा)

(प्रे०) "वीरा' इत्यादि, "सो" त्ति, स=श्रीवज्रसेनप्रभुः "वीरा" त्ति, वीरात्=वीरापवर्गकालात् "ऽक्खिणिहिजुगे" त्ति, अक्षिनिधियुगानि=द्वि-नव-चतुरङ्करूपाणि वामगतिन्यस्तानि यस्य तादृशे अक्षिनिधियुगे "ऽब्दे" त्ति, अब्दे=वर्षे=द्विनवत्युत्तरचतुःशत ४९२तमे वीरसंवदि "जाओ" त्ति, जातः=उत्पन्नः । 'कुगगणसरे" त्ति, कुगगनशराः एकशून्यपञ्चलक्षणा यत्र तत्र कुगगनशरे=वीरसंवत् ५०१ वर्षे "दिक्खिओ" त्ति, दीक्षितः=

(प्र०) 'जगम्मि' इत्यादि, 'जो' त्ति, यः=श्रीप्रद्योतनसूरिः "जगम्मि" त्ति, गच्छति ताँस्तान् नरकादिभावानिति जगत् तस्मिन् जगति=संसारे पञ्चाऽस्तिकायरूपे चराचर-भूतग्रामे वा "अण्णाणतमस्स णासगो" त्ति, अज्ञानमेव तमो=ऽन्धकारोऽज्ञानतमस्तस्य अज्ञानतमसो नाशकः=भेदकः "ससोसगो दुण्णयकद्दमाण" त्ति दुर्नयाः=कुपाक्षिकमतानि मिथ्यादर्शनानीति यावत् त एव कर्दमाः=पङ्का दुर्नयकर्दमास्तेषां दुर्नयकर्दमानां संशोषकः=मूलादुच्छेदकः "भवज्जरासीअ पबोहगो" त्ति, भव्या=मुक्तिगमनयोग्या जन्तवः, त एवाऽब्जानि=कमलानि=भव्याऽब्जानि तेषां राशिः=समूहो भव्याऽब्जराशिस्तस्य भव्याऽब्जराशेः प्रबोधकः=सम्यक्त्वादिगुणगणस्य विकासकरः । यत्तदोर्नित्यसापेक्षत्वादाह-"स" त्ति स "पज्जोयणो" त्ति, प्रद्योतनः=प्रद्योतननामा 'गुरु" त्ति, गृणाति यथावस्थितं शास्त्राऽर्थमिति गुरुः=आचार्यः "देवपट्टखे" त्ति, "भामा सत्यभामा' इति न्यायाद् देवः=वृद्धदेवस्तस्य पट्टः=पदम् एव खम्=आकाशं तस्मिन् देवपट्टखे वृद्धदेवसूरेः पट्टगगने "ऽरधीअ" त्ति अराजत ॥१८॥

इदानीं श्रीसिद्धार्थजस्य जिनप्रभोरेकोनविंशतितमपट्टभृत आद्यश्रीमानदेवसूरेः श्लोक-द्वयेन दिदर्शयिषया पूर्वं स्रग्धरां ख्याति . ...

अज्जं तं माणदेवं गुणगणणिलयं पासिऊणं वरीअ ।
णोच्छंती पट्टकाणा इयरपइवरं सूरिपज्जोयणस्स ॥ ॥
अंसुप्पि संमिलच्छी पयविहिसमये विक्ख से भाविभंसो ।
एवं खिण्णं गुरुं जो कलिअ छ विगई भत्तभिक्खं चयीअ ॥१९॥(स्रग्धरा)

❀ "श्री प्रद्योतनसूरिणाऽजमेराख्ये नगरे ऋषभदेवस्य प्रतिमायाः प्रतिष्ठा कृता, तथा स्वर्णगिरौ 'दोशी' धनपतिकृतमन्दिरे भगवतो महावीरस्य प्रतिमा प्रतिष्ठापिता । उक्तञ्च वीरवंशावली-"एहैज विक्र० स० ५९५ (?) वर्षे अजयामेरु नगरे श्रीऋषभबिंब प्रतिष्ठा नीपजावी । पुनः सुवर्णगीरीइ दो० धनपतिइ द्विलक्ष द्रव्य सुक्रिति करी यक्षवसती नामे श्रीवीरबिंबप्रासादसहित प्रतिष्ठा हुइ । एहीज सुरीइ प्रतिष्ठा कीधी ।" इति ।

तथा-'जैन परंपरानो इतिहास' इति सज्ञके ग्रन्थे-△ "वीरसवत् ६८० वर्षे शकसवत १३५(?) वर्षे स्वर्णगिरौ प्रतिष्ठा तथा श्रीप्रद्योतनसूरेः स्वर्गगमनं ❀वीरसवत् ६६८ वर्षे, विक्रमसवत् २८८(?) वर्षेऽभूदिति" निरूपितम् ॥ ॥

△ वीरसवत् ६८० अपेक्षया शकसंवत ७५ भवति । शकसवत् १३५ अपेक्षया वीरसवत् ७४० भवति ।
❀ ,, ,, ६६८ ,, विक्रम ,, २२८ ,, । विक्रम ,, २८८ ,, ,, ,, ७५८ ,, ।

"नागेन्द्र-चन्द्रावपि निर्वृतिश्च विद्याधरश्चेत्यभिधाप्रसिद्धाः ।
चत्वार एतस्य सुराचितस्य, शिष्या भुवि ख्यातगुणा बभूवुः ॥१७॥
एतेभ्य इभ्येन्द्रनतेभ्य आसन् गच्छा अतुच्छा भुवि ताद्भिधानाः ।
नामानुरूपा विमलस्वरूपा विनम्रभूपा शमवारिकूपाः ॥१८॥" इति ।

कल्पसूत्रे पुनर्वज्रसेनप्रभोश्चत्वारः शिष्याः आर्यनागिल-पोमिल-जयन्त-तापसनामान उक्ताः, तेभ्यस्तत्तन्नाम्न्यः शाखा निर्गता इत्युक्तमस्ति । तथा च तद्ग्रन्थः-

"थेरस्स णं अज्जवइरसेणस्स उक्कोसिअगुत्तस्स अंतेवासी चत्तारि थेरा, थेरे 'अज्जनाइले' १, थेरे 'अज्जपोमिले' २, थेरे 'अज्जजयंते' ३, थेरे 'अज्जतावसे' ४, थेराओ अज्जनाइलाओ अज्जनाइला साहा निग्गया १, थेराओ अज्जपोमिलाओ अज्जपोमिला साहा निग्गया, २, थेराओ अज्जजयंताओ अज्जजयंती साहा निग्गया, ३, थेराओ अज्जतावसाओ अज्जतावसी साहा निग्गया ४ इति ॥६॥" इति ।

किमिव ? "सेणाअ इवंगचउक्कं" ति सेनायाः=चम्वोरङ्गचतुष्कं=हस्त्यश्वरथपदातिलक्षणम्, "इव" त्ति, इव=यथा "रिउजयस्स" इत्यादि, "रिउजयस्स" त्ति, रिपूणां=शत्रूणां जयाय=पराभूतकरणाय "णिवस्स" त्ति, नृपस्य=अवनीपतेर्वाहिन्या गज-हय-स्यन्दन-पत्तिरूपमङ्गचतुष्कं भवति । तथा यत्तदोर्नित्याभिसम्बन्धादाह "स" त्ति, स "वइर-सेणो" त्ति, वज्रसेनः=श्रीवज्रसेनाऽभिधो गुरुरुत्कौशिकगोत्रः "जयउ" त्ति, जयतु=जयनशीलो भवतु पुनरपि स कः ? इत्याह-'जेण' ति, येन=श्रीवज्रसेनेन "पहुणा" त्ति, प्रभुणा=स्वामिना "वज्जसामिपट्टधुरा" त्ति, वज्रस्वामिनः=श्रीवज्रस्वामिगुरोः पट्टस्य =पदस्य धूः=धूर्वी=वज्रस्वामिपट्टधुरा "धुरोऽनक्षस्य" (सि० ७-३-७७) इत्यनेन अत्समासान्तः "ऊढा" त्ति, ऊढा=धृता भृता वा का इव ? "व्व रज्जधुरा" त्ति, राज्यधुरा=राज्यभार इव=यथा "णिवइणा" त्ति, नृपतिना=राज्ञा राज्यधुरोह्यते ॥९०॥

अथ श्रीवज्रसेनसूरेर्जन्मादिसम्बन्धिनः संवत्सरानाह पथ्यापूर्विकया जघनचपलार्यया-

वीरक्खिणिहिजुगे (४९२) ऽब्दे, जाओ सो दिक्खिओ कुगगणसरे(५०१)।
संजमरसे (६१७) जुगवरो, हवीअ खमिओ णहगुहमुहे (६२०) ॥९१॥

(पच्छापुव्विगा अंतचवलाज्जा)

(प्रे०) "वीरा' इत्यादि, "सो" त्ति, स=श्रीवज्रसेनप्रभुः "वीरा" त्ति, वीरात्=वीरापवर्गकालात् "ऽक्खिणिहिजुगे" त्ति, अक्षिनिधियुगानि=द्वि-नव-चतुरङ्करूपाणि वामगतिन्यस्तानि यस्य तादृशे अक्षिनिधियुगे "ऽब्दे" त्ति, अब्दे=वर्षे=द्विनवत्युत्तरचतुःशत ४९२तमे वीरसंवदि "जाओ" त्ति, जातः=उत्पन्नः । 'कुगगणसरे' त्ति, कुगगनशराः एकशून्यपञ्चलक्षणा यत्र तत्र कुगगनशरे=वीरसंवत् ५०१ वर्षे "दिक्खिओ" त्ति, दीक्षितः=

णायरिओ" त्ति, वाचनाचार्यः, तथा "**ताउ**" त्ति, पदं पुनरपि सम्बध्यते ततः "**ताउ**" त्ति, तस्मात्=श्रीवज्रसेनसूरेरनु युगप्रधानपरम्परायां "**बावीसमो जुगवरो**" त्ति, द्वाविंशतितमो युगवरः=युगप्रधानः "**णागहत्थिसूरिवरो**" त्ति, नागहस्तिसूरिवरः=नागहस्तिनामा सूरिपुङ्गवः "**जगे**" त्ति, जगति=विश्वे "**जयउ**" त्ति, जयतु=सर्वाऽतिशयवान् भवतु। किम्भूतः? "**अखिलकम्मविसयणाणधरो**" त्ति, कर्मणो=ज्ञानावरणादिमूलाष्टकर्मतत्सत्कोत्तराऽष्टापञ्चाशदधिकशतकर्मभेदभिन्नस्य विषयः=अभिधेयः, कर्मविषयः, अखिलश्चासौ कर्मविषयस्तस्य ज्ञानम्=अखिलकर्मविषयज्ञानं तस्य धरतीति धारयतीति वा "अच्" (सि० ५-१-४९) इत्यचि धरः, अखिलकर्मविषयज्ञानधरः=अखिलकर्मशास्त्रज्ञातेत्यर्थः। **तथा चोक्तं नन्दिसूत्रे**—

×"वड्ढउ वायगवंसो जसवंसो अज्जनागहत्थीणं। वागरणकरणभंगिय कम्मप्पयडीपहाणाणं॥३०॥" इति।

अथाऽमुष्य जन्मादिपर्यायकालं द्वितीयया पथ्यार्ययाऽऽह—"**वीरा**" इत्यादि, "**सो**" त्ति, स=श्रीनागहस्तिसूरिः "**वीरा**" त्ति, वीरात्=चरमजिननिर्वाणकालात् "**ऽग्गिहयसरे**" त्ति, अग्निहयशराः=त्र्यङ्क-सप्ताङ्क-पञ्चाङ्कलक्षणा वामगत्या विन्यस्ता यस्य तादृशेऽग्निहयशरे "**ऽब्दे**" त्ति, अब्दे=वर्षे वीरसंवत् ५७३ शरदि '**जाओ**' त्ति, जातः=उत्पन्नः। "**करकसरे**" त्ति, कराङ्कशराः=द्वि-नव-पञ्चाङ्करूपा यत्र तत्र कराङ्कशरे प्रातिलोम्येन मीलिते वीरसंवत् ५९२ वर्षे "**दिक्खिओ**" त्ति, दीक्षितः=सर्वविरतिं प्राप। "**णहविगइम्मि**" त्ति, नखविकृतयः=विंशति षडङ्करूपा उत्क्रमेण भणिता ६२० इति सङ्ख्या यस्य तादृशे नखविकृतौ=वीरसंवत् ६२० वर्षे '**जुगवरो**' त्ति, युगवरः=युगप्रधानः "**आसि**" त्ति, बभूव। "**णिहिगयरसे**" त्ति, निधिगजरसे=वीरसंवत् ६८९ वर्षे "**दिवमिओ**" त्ति, दिवं=स्वर्गमितः=गतः।

इत्थञ्चाऽस्यैकोनविंशति१९वर्षाणि गृहस्थत्वे, अष्टाविंशति२८वर्षाणि सामान्यव्रतित्वे, एकोनसप्तति६९वर्षाणि युगप्रधानत्वे चेति सर्वायुश्च षोडशोत्तरशतवर्षमितमभूत् ॥९२-९३॥

इदानीं श्रीसिद्धार्थतनयस्य तीर्थकृतः पञ्चदशस्य पट्टस्य धारकं श्रीचन्द्रसूरिं ललितया शंसति—

मंदरगो सुरतरुव्व सोहीअ विग्घहरो॥
पट्टम्मि वइरसेणस्स चंदसूरिसरो।

× एषैव गाथा हिमवदाचार्यरचितस्थविरावल्यामप्युपलभ्यते।

卐पन्न्यासश्रीकल्याणविजयानां वालभवाचनानुगतेनाऽभिप्रायेण श्रीनागहस्तिसूरेर्युगप्रधानकालो वाचनाचार्यकालश्च वीरसंवत् ६१९ त आरभ्य ६८८ वर्षपर्यन्तो भवति, तदपेक्षयाऽस्य युगप्रधानत्व स्वर्गतिश्च क्रमेण वीरसंवत् ६१९-६८८ वर्षेऽजायत।

"यस्याशयोर्गी -कमले, समीक्ष्य साक्षात्प्रतिष्ठासमये पदस्य ॥३०॥
भ्रशोऽस्य भावीतिविचारणात्तो विखिन्नचित्तं गुरुमाकलय्य ।
तत्याज यो भक्तकुलाप्तभिक्षामाजीविताऽन्त विकृतीश्च सर्वा ॥३१॥" इति ।

एवं श्रीहीरसौभाग्यकाव्येऽपि । तथा च तद्ग्रन्थः--

"पदप्रदानाऽवसरे समीक्ष्य साक्षात्तदंसोपरि वाणिरद्मे ।
राज्यादिव क्षोणिपुरन्दरस्य भ्रशोऽस्य भावी नियमस्थितेर्हा ॥७२॥
इत्थं गुरुं स्व विमनायमानमालोक्य लोकेश्वरगीतकीर्तिं ।
तत्याज षड्विकृतीर्व्रतीन्द्र षडन्तरारीनिव जेतुकाम ॥७३॥" इति ।

तथा गुरुपर्वक्रमेऽपि । तद्यथा--

"श्रीमानदेवोऽथ पदस्य काले यदंसयोर्वीक्ष्य रमागिरौ द्रू ॥१०॥
भ्रष्टो ह्ययं ही भविनेति खिन्ने, गुरौ विधिज्ञ किल योऽभ्यगृह्णात ।
भक्ताङ्गिभक्ति विकृतीश्च सर्वा आजन्म मोक्ष्ये न हि सर्वथेति॥११॥" इति ॥९९॥

अथ पुनस्तमेव स्तोतुमनाः शार्दूलविक्रीडितं प्राह-

दट्ठुं जं पउमाइसेविअपयं सक्खं थिजुत्तो अयं;
एवं कोऽवि विमूढसंकिअमणो ताहि णरो सिक्खिओ ।
णड्डूलक्खपुरत्थिओ वि सरये वारीअ संतित्थवा;
जो सागंभरिपट्टणुत्थमरयं तत्थुल्लसद्धत्थणा ॥१००॥

(सद्दुलविक्कीडियं)

(प्रे०) "दट्ठु" इत्यादि, "जं"ति, यं=श्रीमानदेवसूरिं, किम्भूतम् । **पउमाइसेविअपयं सक्खं**"ति साक्षात्पद्मादिभिरत्रादिपदेन जया-विजया-ऽपराजिता ग्राह्यास्ताभिः सेवितम्=उपासितं पदं=चरणं यस्य स पद्मादिसेवितपदस्तं पद्मादिसेवितपदं यद्वा **"सक्खं"** ति, साक्षात्=प्रत्यक्ष "दट्ठु" ति, दृष्ट्वा **"थिजुत्तो अय"** ति, स्त्रीयुक्तो=नारिकलितोऽयं=श्रीमानदेवसूरिः "एव"ति, एवम्=अनेन प्रकारेण **"विमूढसंकिअमणो"**त्ति, विमूढो=मुग्धमतिः, शङ्कितं मनो यस्य स शङ्कितमनाः, विमूढश्चासौ शङ्कितमनाश्च विमूढशङ्कितमनाः **"को वि"**त्ति कोऽपि=कश्चिदपि **"णरो"** त्ति नरः=श्राद्धः**"ताहिं"**ति, ताभिः=पद्मादिभिरेव देवीभिः **"सिक्खिओ"** त्ति, शिक्षितः=दण्डितः ।

तथाहि-तक्षशिलापुर्यां म्लेच्छव्यन्तरैरुग्रैर्निर्मितमायुष्प्लवोपद्रुतेन तत्रत्यश्रीसङ्घेन कृतकायोत्सर्गप्रभावादायातया शासनदेव्योक्तं यद्यत्र नडूलपुरस्थितश्रीमानदेवसूरय आयान्ति तदा शान्तिः स्यात् । परमत्र म्लेच्छा आगत्य स्थास्यन्ति ततः सङ्घेन त्रिवर्षीमध्येऽन्यत्र गन्तव्यमिति । ततो मारिरोगोपशमनायोत्सुकेन श्रीसङ्घेन श्रीमानदेवसूर्याह्वानार्थं वीराख्यः श्राद्धः

णायरिओ" त्ति, वाचनाचार्यः, तथा "**ताउ**" त्ति, पदं पुनरपि सम्बध्यते ततः "**ताउ**" त्ति, तस्मात्=श्रीवज्रसेनसूरेरनु युगप्रधानपरम्परायां "**बावीसमो जुगवरो**" त्ति, द्वाविंशतितमो युगवरः=युगप्रधानः "**णागहत्थिसूरिवरो**" त्ति, नागहस्तिसूरिवरः=नागहस्तिनामा सूरिपुङ्गवः "**जगे**" त्ति, जगति=विश्वे "**जयउ**" त्ति, जयतु=सर्वाऽतिशयवान् भवतु। किम्भूतः? "**अखिलकम्मविसयणाणधरो**" त्ति, कर्मणो=ज्ञानावरणादिमूलाष्टकर्मतत्सत्कोत्तराऽष्टापञ्चाशदधिकशतकर्मभेदभिन्नस्य विषयः=अभिधेयः,कर्मविषयः, अखिलश्चासौ कर्मविषयस्तस्य ज्ञानम्=अखिलकर्मविषयज्ञानं तस्य धरतीति धारयतीति वा "अच्" (सि० ५-१-४९)इत्यचि धरः, अखिलकर्मविषयज्ञानधरः=अखिलकर्मशास्त्रज्ञातेत्यर्थः। **तथा चोक्तं नन्दिसूत्रे**—

×"वड्ढउ वायगवंसो जसवंसो अज्जनागहत्थीणं। वागरणकरणभंगिय कम्मप्पयडीपहाणाणं॥२९॥" इति।

अथाऽमुष्य जन्मादिपर्यायकालं द्वितीयया पथ्यार्यया55ह—"**वीरा**" इत्यादि, "**सो**" त्ति, स=श्रीनागहस्तिसूरिः "**वीरा**" त्ति, वीरात्=चरमजिननिर्वाणकालात् "**ऽग्गिहयसरे**" त्ति, अग्निहयशराः=त्र्यङ्क-सप्ताङ्क-पञ्चाङ्कलक्षणा वामगत्या विन्यस्ता यस्य तादृशेऽग्निहयशरे "**ऽब्दे**" त्ति, अब्दे=वर्षे वीरसंवत् ५७३ शरदि '**जाओ**' त्ति, जातः=उत्पन्नः। "**करकसरे**" त्ति, कराङ्कशराः=द्वि-नव-पञ्चाङ्करूपा यत्र तत्र कराङ्कशरे प्रातिलोम्येन मीलिते वीरसंवत् ५९२ वर्षे "**दिक्खिओ**" त्ति, दीक्षितः=सर्वविरतिं प्राप। "**णहविगइम्मि**" त्ति, नखविकृतयः=विंशति षडङ्करूपा उत्क्रमेण भणिता ६२० इति सङ्ख्या यस्य तादृशे नखविकृतौ=वीरसंवत् ६२० वर्षे '**जुगवरो**'' त्ति, युगवरः=युगप्रधानः "**आसि**" त्ति, बभूव। "**णिहिगयरसे**"त्ति, निधिगजरसे=वीरसंवत् ६८९ वर्षे "**दिवमिओ**" त्ति, दिवं=स्वर्गमितः=गतः।

इत्थञ्चाऽस्यैकोनविंशति१९वर्षाणि गृहस्थत्वे, अष्टाविंशति२८वर्षाणि सामान्यव्रतित्वे, एकोनसप्तति६९वर्षाणि युगप्रधानत्वे चेति सर्वायुश्च षोडशोत्तरशतवर्षमितमभूत् ॥९२-९३॥

इदानीं श्रीसिद्धार्थतनयस्य तीर्थकृतः पञ्चदशस्य पट्टस्य धारकं श्रीचन्द्रसूरिं ललितया शंसति—

मंदरगगे सुरतरुव्व सोहीअ विग्घहरोः
पट्टम्मि वइरसेणस्स चंदसूरिसरो।

× एषैव गाथा हिमवदाचार्यरचितस्थविरावल्यामप्युपलभ्यते।

卐पन्न्यासश्रीकल्याणविजयानां वालभवाचनानुगतेनाऽभिप्रायेण श्रीनागहस्तिसूरेर्युगप्रधानकालो वाचनाचार्यकालश्च वीरसंवत् ६१९ त आरभ्य ६८८ वर्षपर्यन्तो भवति, तदपेक्षयाऽस्य युगप्रधानत्वं स्वर्गतिश्च क्रमेण वीरसंवत् ६१९-६८८ वर्षेऽजायत।

तद्वृत्तसिन्धुत किंचिदेकदेशं विभाव्य च । आख्यानपण्यविस्तारात् तरिष्यामि स्वमूढताम् ॥३॥
अस्ति सप्तशतीदेशो निवेशो धर्मकर्मणाम् । यद्दानेशभिया भेजुस्ते राजशरण गजा ॥४॥
तत्र कोरटक नाम पुरमस्त्युन्नताश्रयम् । द्विजिह्वविमुखा यत्र विनतानन्दना जना ॥५॥
तत्राऽस्ति श्रीमहावीरचैत्य श्वैत्य दधद्दृढम् । कैलासशैलवद्भाति सर्वाश्रयतयानया ॥६॥
उपाध्यायोऽस्ति तत्र श्रीदेवचन्द्र इति श्रुत । विद्वद्वृन्दशिरोरत्न तमस्ततिहरो जने ॥७॥
आरण्यकतपस्याया नमस्याया जगत्यपि । सकल शक्तान्तरङ्गारिविजये भवतीरभू ॥८॥
सर्वदेवप्रभु सर्वदेव सद्ध्यानसिद्धिभृत् । सिद्धक्षेत्रे यियासु श्रीवाराणस्या समागमत् ॥९॥ युग्मम्॥
बहुश्रुतपरीवारो विश्रान्तस्तत्र वासरान् । काश्चित्प्रबोध्य त चैत्यव्यवहारममोचयत् ॥१०॥
स पारमार्थिक तीव्र धत्ते द्वादशधा तप । उपाध्यायस्तत सूरिपदे पूज्यै प्रतिष्ठित ॥११॥
श्रीदेवसूरिरित्याख्या तस्य ख्याति ययौ किल । श्रूयन्तेऽद्यापि वृद्धेभ्यो वृद्धास्ते देवसूरय ॥१२॥
श्रीसर्वदेवसूरीश श्रीमच्छत्रुञ्जये गिरौ । आत्मार्थं साधयामास श्रीनाभेयैकवासन ॥१३॥
चारित्र निरतीचार ते श्रीमद्देवसूरय । प्रतिपाल्य निवेश्याथ सूरिं प्रद्योतन पदे ॥१४॥
अन्तेऽनशनमाधाय ते सदाराद्धसयमा । सम्यगाराधनापूर्वं दैवीं श्रियमशिश्रियन् ॥१५॥
अथो विजहुर्नड्डूले श्रीप्रद्योतनसूरय । तेषा परोपकारायाऽवतारो हि भवेत्क्षितौ ॥१६॥
तत्र श्रीजिनदत्तोऽस्ति ख्यातः श्रेष्ठी धनेश्वरः । सर्वसाधारणं यस्य मानस मानदानयो ॥१७॥
धारिणीति प्रिया तस्य धर्मे निबिडवासना । वर्त्तेते व्यवहारेण द्वयोस्तु पुरुषार्थयो ॥१८॥
तत्पुत्रो मानदेवोऽस्ति मानधानव्यमानरुक् । वैराग्यरञ्जितस्वान्त प्रान्तभूरान्तरद्विषाम् ॥१९॥
श्रीप्रद्योतनसूरीणामन्यदोपाश्रयेऽगमत् । ते धर्मं तस्य चाचख्युस्तरण्ड भवसागरे ॥२०॥
ससारासारता बुद्ध्वा गुरुपादान् व्यजिज्ञपत् । मानदेव परिव्रज्या दद्ध्व मे प्रसीदत ॥२१॥
निर्बन्धात्पितरौ चानुज्ञाप्य शुद्धे दिने तत । चारित्रमग्रहीदुग्रमाचचार व्रत च स ॥२२॥
अङ्गैकादशकेऽधीती छेद-मौलेषु निष्ठित । उपाङ्गेषु च निष्णातस्ततो जज्ञे बहुश्रुत ॥२३॥
विज्ञाय सोऽन्यदा विज्ञो योग्य सद्गुरुभिस्तदा । पदप्रतिष्ठितश्चक्रे चान्द्रगच्छाम्बुधे शशी ॥२४॥
प्रभावा ब्रह्मणस्तस्य मानदेवप्रभोस्तदा । श्रीजया विजयादेव्यौ नित्य प्रणमत क्रमौ ॥२५॥
एव प्रभावभूयिष्ठे शासनस्य प्रभावक । सघव्योमाङ्गणोद्योतभास्वानिव स च व्यभात् ॥२६॥
अथ तक्षशिलापुर्यां चैत्यपञ्चशतीभृति । धर्मक्षेत्रे तदा जज्ञे गरिष्ठमशिव जने ॥२७॥
अकालमृत्युसपातिरोगैर्लोक उपद्रुत । जज्ञे यत्रौषध वैद्यो न प्रभुर्गुणहेतवे ॥२८॥
प्रतिजागरणे ग्लानदेहस्येह प्रयाति य । गृहागत स रोगेण पात्यते तल्पके द्रुतम् ॥२९॥
स्वजनः कोऽपि कस्याऽपि नास्तीह समये तथा । आक्रन्दभैरवारावरौद्ररूपाऽभवत् पुरी ॥३०॥
चित्याना च सहस्राणि दृश्यन्तेऽत्र बहि क्षितौ । शबानामर्द्धदग्धाना श्रेणयश्च भयकरा ॥३१॥
सुभिक्षमभवद् गृध्रक्रव्यादाना तदोदितम् । शून्या भवितुमारेभे पुरी लङ्कोपमा तदा ॥३२॥
पूजा च विश्वदेवाना विश्रान्ता पूजकान् विना । गृहाणि शबसघातदुर्गन्धानि तदाऽभवन् ॥३३॥
कियानप्युद्धृत सघश्चैत्ये कृत्वा समागमम् । मन्त्रयामास कल्पान्त किमद्यैवागतो ध्रुवम् ॥३४॥
न कपर्दी न चाम्बा च ब्रह्मशान्तिर्न यक्षराट् । अद्याऽभाग्येन सघस्य नो विद्यादेवता अपि ॥३५॥
भाग्यकाले यत सर्वो देवदेवीगण स्फुट । सप्रत्यय इदानीं तु ययौ कुत्राऽपि निश्चितम् ॥३६॥
इति तेषु निराशेषु समेता शासनाऽमरी । उपादिशत्तदा सघमेव सन्तप्यते कथम् ॥३७॥
म्लेच्छाना व्यन्तरैरुग्रै सर्वे सुरसुरीगण । विद्रुतस्तद्विधीयेत किमत्राऽस्माभिरुच्यताम् ॥३८॥

णायरिओ" त्ति, वाचनाचार्यः, तथा "**ताउ**" त्ति, पदं पुनरपि सम्बध्यते ततः "**ताउ**" त्ति, तस्मात्=श्रीवज्रसेनसूरेस्तु युगप्रधानपरम्परायां "**बावीसमो जुगवरो**" त्ति, द्वाविंशतितमो युगवरः=युगप्रधानः "**णागहत्थिसूरिवरो**" त्ति, नागहस्तिसूरिवरः=नागहस्तिनामा सूरिपुङ्गवः "**जगे**" त्ति, जगति=विश्वे "**जयउ**" त्ति, जयतु=सर्वाऽतिशयवान् भवतु। किम्भूतः? "**अखिलकम्मविसयणाणधरो**" त्ति, कर्मणो=ज्ञानावरणादिमूलाष्टकर्मतत्तत्कोत्तराऽष्टापञ्चाशदधिकशतकर्मभेदभिन्नस्य विषयः=अभिधेयः, कर्मविषयः, अखिलश्चासौ कर्मविषयस्तस्य ज्ञानम्=अखिलकर्मविषयज्ञानं तस्य धरतीति धारयतीति वा "अच्" (सि० ५-१-४९) इत्यचि धरः, अखिलकर्मविषयज्ञानधरः=अखिलकर्मशास्त्रज्ञातेत्यर्थः। **तथा चोक्तं नन्दिसूत्रे—**

×"वड्ढउ वायगवंसो जसवंसो अज्जनागहत्थीणं। वागरणकरणभंगिय कम्मप्पयडीपहाणाणं॥३०॥" इति।

अथाऽमुष्य जन्मादिपर्यायकालं द्वितीयया पथ्यार्ययाऽऽह—"**वीरा**" इत्यादि, "**सो**" त्ति, स=श्रीनागहस्तिसूरिः "**वीरा**" त्ति, वीरात्=चरमजिननिर्वाणकालात् "**ऽग्गिहयसरे**" त्ति, अग्निहयशराः=त्र्यङ्क-सप्ताङ्क-पञ्चाङ्कलक्षणा वामगत्या विन्यस्ता यस्य तादृशेऽग्निहयशरे "**ऽद्दे**" त्ति, अब्दे=वर्षे वीरसंवत् ५७३ शरदि '**जाओ**' त्ति, जातः=उत्पन्नः। "**करकसरे**" त्ति, कराङ्कशराः=द्वि-नव-पञ्चाङ्करूपा यत्र तत्र कराङ्कशरे प्रातिलोम्येन मीलिते वीरसंवत् ५९२ वर्षे "**दिक्खिओ**" त्ति, दीक्षितः=सर्वविरतिं प्राप। "**णहविगइम्मि**" त्ति, नखविकृतयः=विंशति षडङ्करूपा उत्क्रमेण भणिता ६२० इति सङ्ख्या यस्य तादृशे नखविकृतौ=वीरसंवत् ६२० वर्षे '**जुगवरो**" त्ति, युगवरः=युगप्रधानः "**आसि**" त्ति, बभूव। "**णिहिगयरसे**" त्ति, निधिगजरसे=वीरसंवत् ६८९ वर्षे "**दिवमिओ**" त्ति, दिवं=स्वर्गमितः=गतः।

इत्थञ्चाऽस्यैकोनविंशति१९वर्षाणि गृहस्थत्वे, अष्टाविंशति२८वर्षाणि सामान्यव्रतित्वे, एकोनसप्तति६९वर्षाणि युगप्रधानत्वे चेति सर्वायुश्च षोडशोत्तरशतवर्षमितमभूत्॥९२-९३॥

इदानीं श्रीसिद्धार्थतनयस्य तीर्थकृतः पञ्चदशस्य पट्टस्य धारकं श्रीचन्द्रसूरिं ललितया शंसति—

मंदरणागे सुरतरुव्व सोहीअ विग्घहरोऽ
पट्टम्मि वइरसेणस्स चंदसूरिसरो।

× एषैव गाथा हिमवदाचार्यरचितस्थविरावल्यामप्युपलभ्यते।

卐पन्न्यासश्रीकल्याणविजयानां वालभवाचनानुगतेनाऽभिप्रायेण श्रीनागहस्तिसूरेर्युगप्रधानकालो वाचनाचार्यकालश्च वीरसंवत् ६१९ त आरभ्य ६८८ वर्षपर्यन्तो भवति, तदपेक्षयाऽस्य युगप्रधानत्वं स्वर्गतिश्च क्रमेण वीरसंवत् ६१९-६८८ वर्षेऽजायत।

इत्यादेश च सप्राप्य तथैव कृतवान् मुदा । प्राप्तस्तक्षशिलाया स स्तव सघस्य चार्पयत् ॥७४॥
तस्य चाबालगोपाल पठत स्तवन मुदा । दिनै कतिपयैरेव प्रशान्तोऽयमुपद्रव ॥७५॥
कोऽपि कुत्राऽपि चायात प्रणश्य जनमध्यत । गते वर्षत्रये भग्ना तुरुष्कै सा महापुरी ॥७६॥
अद्यापि तत्र बिम्बानि पित्तलाश्ममयानि च । तद्भूगृहेषु सन्तीति ख्याता वृद्धजनश्रुति ॥७७॥
तत प्रभृति सघस्य क्षुद्रोपद्रवनाशक स्तव. । प्रवर्त्ततेऽद्यापि शान्ति शान्त्यादिरद्भूत ॥७८॥
मन्त्राधिराजनामाऽभूत्तस्य मन्त्र प्रसिद्धिभू । चिन्तामणिरिवेष्टार्थप्रद आराधनावशात् ॥७९॥
सूरि' श्रीमानदेवाख्य शासनस्य प्रभावना । विधायाऽनेकशो योग्य शिष्य पट्टे निवेश्य च ॥८०॥
जिनकल्पाभसँल्लेखनया सँल्लिख्य विग्रहम् । आयु प्रान्ते पर ध्यान बिभ्रत् त्रिदिवमाप स ॥८१॥

इत्थ श्रीमन्मानदेवप्रभूणा वृत्त चित्तस्थैर्यकृन्मादृशानाम् ।
विद्याभ्यासैकाग्रहध्यानमन्यव्यासङ्गाना यच्छतादुच्छिद च ॥८२॥

श्रीचन्द्रप्रभसूरिपट्टसरसीहमप्रभ श्रीप्रभा चन्द्र सूरिरनेन चेतसि कृते श्रीरामलक्ष्मीभुवा ।
श्रीपूर्वर्षिचरित्ररोहणगिरौ प्रद्युम्नसूरीक्षित, शृङ्गोऽसावगमत् त्रयोदश इह श्रीमानदेवाश्रय ॥८३॥

सर्वज्ञचिन्तनवशादिव तन्मयत्व-मासादयन् जयति जैनमुनि स एष ।
प्रद्युम्नसूरिरपि भूरिमति' कवीनामर्थेषु काव्यविषयेषु विचक्षणो य ॥८४॥" इति॥१००॥

अथ युगप्रधानपरम्पराया श्रीनागहस्तिसूरेरनन्तर भाविनो युगप्रधानस्य तथा वाचनाद्वयाऽपेक्षयाऽपि तदन्वेव सञ्जातस्य वाचनाचार्यस्य श्रीरेवतीमित्रसूरेः समादिदिक्षया पथ्यापूर्विकादिचपलार्या—पथ्यार्यालक्षणगाथाद्वयं प्राह—

तेवीसमो जुगवरो स वायणायरिअरेवतीमित्तो ।
वीराऽद्दे ऽस्स जणी जिणकमलअवत्थाऽलिपय६३९संखे ॥१०१॥

(पच्छापुव्विगा मुखचवलाज्जा)

गेहीअ स दिक्खं णोकसायमहजागवइरकोण(६५९)मिए ।
जुगपवरो रवगिहरसे(६८९)खमिओ णागलोगपालणये(७४८) ॥१०२॥

(पच्छाज्जा)

(प्रे०) **"तेवीसमो"** इत्यादि, '**स**" स=प्रसिद्धनामा **"वायणारिअरेवतीमित्तो"** त्ति, वाचनाचार्यः=वाचनादाता माथुरवाचनानुयायिश्रीनन्दीसूत्रोक्तवाचकपरम्परायां तथा वलभीवाचनास्थविरावल्यामपि श्रीनागहस्तिसूरेः पश्चाद्वाचनाचार्यः स चाऽसौ रेवतीमित्रः=रेवतीमित्राऽभिध आचार्यो वाचनाचार्यो रेवतीमित्रो माथुरवाचनामाश्रित्य **'रेवतीनक्षत्र'**-नामा, **'रेवतीसिंह'**नामा वा **"तेवीसमो जुगवरो"** त्ति, युगप्रधानपरम्परायां श्रीनागहस्तिसूरेरेवाऽनु त्रयोविंशो युगप्रवरः=युगप्रधानोऽभूत् ।

अथाऽमुष्य जन्मादिपर्यायानाह—'**वीरा**" इत्यादि, 'ऽस्स' त्ति, ऽस्य=श्रीरेवतीमित्रसूरेः **"वीरा"** त्ति, वीरात्=वीरप्रभुमोक्षकालात् **"जिणकमलअवत्थाऽलिपयसखे"** त्ति,

णायरिओ" त्ति, वाचनाचार्यः, तथा "**ताउ**" त्ति, पदं पुनरपि सम्बध्यते ततः "**ताउ**" त्ति, तस्मात्=श्रीवज्रसेनसूरेरनु युगप्रधानपरम्परायां "**बावीसमो जुगवरो**" त्ति, द्वाविंशतितमो युगवरः=युगप्रधानः "**णागहत्थिसूरिवरो**" त्ति, नागहस्तिसूरिवरः=नागहस्तिनामा सूरिपुङ्गवः "**जगे**" त्ति, जगति=विश्वे "**जयउ**" त्ति, जयतु=सर्वाऽतिशयवान् भवतु। किम्भूतः? "**अखिलकम्मविसयणाणधरो**"त्ति, कर्मणो=ज्ञानावरणादिमूलाष्टकर्मतत्सत्कोत्तराऽष्टापञ्चाशदधिकशतकर्मभेदभिन्नस्य विषयः=अभिधेयः,कर्मविषयः, अखिलश्चासौ कर्मविषयस्तस्य ज्ञानम्=अखिलकर्मविषयज्ञानं तस्य धरतीति धारयतीति वा "अच्" (सि० ५-१-४९)इत्यचि धरः, अखिलकर्मविषयज्ञानधरः=अखिलकर्मशास्त्रज्ञातेत्यर्थः। **तथा चोक्तं नन्दिसूत्रे**—

×"वड्ढउ वायगवंसो जसवंसो अज्जनागहत्थीणं। वागरणकरणभंगिय कम्मप्पयडीपहाणाणं॥३०॥" इति।

अथाऽमुष्य जन्मादिपर्यायकालं द्वितीयया पथ्यार्ययाऽऽह–'**वीरा**" इत्यादि, "**सो**" त्ति, स=श्रीनागहस्तिसूरिः "**वीरा**" त्ति, वीरात्=चरमजिननिर्वाणकालात् "**ऽग्गिहयसरे**" त्ति, अग्निहयशराः=त्र्यङ्क-सप्ताङ्क-पञ्चाङ्कलक्षणा वामगत्या विन्यस्ता यस्य तादृशेऽग्निहयशरे "**ऽब्दे**" त्ति, अब्दे=वर्षे वीरसंवत् ५७३ शरदि '**जाओ**' त्ति, जातः=उत्पन्नः। "**करकसरे**" त्ति, कराङ्कशराः=द्वि-नव-पञ्चाङ्करूपा यत्र तत्र कराङ्कशरे प्रातिलोम्येन मीलिते वीरसंवत् ५९२ वर्षे "**दिक्खिओ**" त्ति, दीक्षितः=सर्वविरतिं प्राप। "**णहविगइम्मि**" त्ति, नखविकृतयः=विंशति षडङ्करूपा उत्क्रमेण भणिता ६२० इति सङ्ख्या यस्य तादृशे नखविकृतौ=वीरसंवत् ६२० वर्षे '**जुगवरो**" त्ति, युगवरः=युगप्रधानः "**आसि**" त्ति, बभूव। "**णिहिगयरसे**"त्ति, निधिगजरसे=वीरसंवत् ६८९ वर्षे "**दिवमिओ**" त्ति, दिवं=स्वर्गमितः=गतः।

इत्थञ्चाऽस्यैकोनविंशति१९वर्षाणि गृहस्थत्वे, अष्टाविंशति२८वर्षाणि सामान्यव्रतित्वे, एकोनसप्तति६९वर्षाणि युगप्रधानत्वे चेति सर्वायुश्च षोडशोत्तरशतवर्षमितमभूत् ॥९२–९३॥

इदानीं श्रीसिद्धार्थतनयस्य तीर्थकृतः पञ्चदशस्य पट्टस्य धारकं श्रीचन्द्रसूरिं ललितया शंसति–

मंदरणागे सुरतरुव्व सोहीअ विग्घहरो॥
पट्टम्मि वइरसेणस्स चंदसूरिसरो।

× एषैव गाथा हिमवदाचार्यरचितस्थविरावल्यामप्युपलभ्यते।

卐पन्न्यासश्रीकल्याणविजयानां वालभवाचनानुगतेनाऽभिप्रायेण श्रीनागहस्तिसूरेर्युगप्रधानकालो वाचनाचार्यकालश्च वीरसवत् ६१९ त आरभ्य ६८८ वर्षपर्यन्तो भवति, तदपेक्षयाऽस्य युगप्रधानत्वं स्वर्गतिश्च क्रमेण वीरसवत् ६१९–६८८ वर्षेऽजायत।

इत्यादेश च सम्प्राप्य तथैव कृतवान् मुदा। प्राप्तस्तक्षशिलायां स स्तवं सङ्घस्य चार्पयत् ॥७४॥
तस्य चाबालगोपालं पठत स्तवनं मुदा। दिनैः कतिपयैरेव प्रशान्तोऽयमुपद्रव ॥७५॥
कोऽपि कुत्राऽपि चायात प्रणश्य जनमभ्यत। गते वर्षत्रये भग्ना तुरुष्कै सा महापुरी ॥७६॥
अद्यापि तत्र बिम्बानि पित्तलाश्ममयानि च। तद्भूगृहेषु सन्तीति ख्याता वृद्धजनश्रुति ॥७७॥
तत प्रभृति सघस्य क्षुद्रोपद्रवनाशक स्तव.। प्रवर्त्ततेऽद्यापि शान्ति शान्त्यादिरद्भूत ॥७८॥
मन्त्राधिराजनामाऽभूत्तस्य मन्त्र प्रसिद्धिभू। चिन्तामणिरिवेष्टार्थप्रद आराधनावशात् ॥७९॥
सूरि श्रीमानदेवाख्य शासनस्य प्रभावना। विधायाऽनेकशो योग्य शिष्य पट्टे निवेश्य च ॥८०॥
जिनकल्पाभसँल्लेखनया सँल्लिख्य विग्रहम्। आयु प्रान्ते पर ध्यान बिभ्रत् त्रिदिवमाप स ॥८१॥

इत्थ श्रीमन्मानदेवप्रभूणा वृत्त चित्तस्थैर्यकृन्मान्यशानाम्।
विद्याभ्यासैकाग्रहध्यानमन्यन्यासङ्गाना यच्छताद्दुर्न्छिद च ॥८२॥

श्रीचन्द्रप्रभसूरिपट्टसरसीहसप्रभ श्रीप्रभा चन्द्र सूरिरनेन चेतसि कृते श्रीरामलक्ष्मीभुवा।
श्रीपूर्वर्षिचरित्ररोहणगिरौ प्रद्युम्नसूरीक्षित, शृङ्गोऽसावगमत् त्रयोदश इह श्रीमानदेवाश्रय ॥८३॥

सर्वज्ञचिन्तनवशादिव तन्मयत्व-मासादयन् जयति जैनमुनि स एष।
प्रद्युम्नसूरिरपि भूरिमति कवीनामर्थेषु काव्यविषयेषु विचक्षणो य ॥८४॥" इति॥१००॥

अथ युगप्रधानपरम्परायां श्रीनागहस्तिसूरेरनन्तरं भाविनो युगप्रधानस्य तथा वाचना-द्वयाऽपेक्षयाऽपि तदन्वेव सञ्जातस्य वाचनाचार्यस्य श्रीरेवतीमित्रसूरेः समादिदिक्षया पथ्या-पूर्विकादिचपलार्या-पथ्यार्यालक्षणगाथाद्वयं प्राह—

तेवीसमो जुगवरो स वायणायरिअरेवतीमित्तो।
वीराऽइ्ऽस्स जणी जिणकमलअवत्थाऽलिपय६३१संखे ॥१०१॥

(पच्छापुव्विगा मुखचवलाज्जा)

गेहीअ स दिक्खं णोकसायमहजागवइरकोण(६५१)मिए।
जुगपवरो रवगिहरसे(६८१)खमिओ णागलोगपालणाये(७४८) ॥१०२॥

(पच्छाज्जा)

(प्रे०) "**तेवीसमो**" इत्यादि, '**स**" स=प्रसिद्धनामा "**वायणारिअरेवतीमित्तो**" त्ति, वाचनाचार्यः=वाचनादाता माथुरवाचनानुयायिश्रीनन्दीसूत्रोक्तवाचकपरम्परायां तथा वलभीवाचनास्थविरावल्यामपि श्रीनागहस्तिसूरेः पश्चाद्वाचनाचार्यः स चाऽसौ रेवतीमित्रः= रेवतीमित्राऽभिध आचार्यो वाचनाचार्यो रेवतीमित्रो माथुरवाचनामाश्रित्य '**रेवतीनक्षत्र**'-नामा, '**रेवतीसिंह**'नामा वा "**तेवीसमो जुगवरो**" त्ति, युगप्रधानपरम्परायां श्रीनाग-हस्तिसूरेरेवाऽनु त्रयोविंशो युगप्रवरः=युगप्रधानोऽभूत्।

अथाऽमुष्य जन्मादिपर्यायानाह—'**वीरा**" इत्यादि, 'ऽस्स' त्ति, ऽस्य=श्रीरेवतीमित्र-सूरेः "**वीरा**" त्ति, वीरात्=वीरप्रभुमोक्षकालात् "**जिणकमलअवत्थाऽलिपयसखे**" त्ति,

सामन्तभद्रनामा गणाधिपः "गुरू" त्ति, गुरुः "जयउ" त्ति, जयतु=परमपरमभवशीलो भवतु इति क्रियासम्बन्धः । किम्भूतः ? "चंदसूरीसपट्टवोमसूरो" त्ति, चन्द्रसूरीशस्य पट्टः=पदं स एव व्योम=गगनं तस्मिन्सूरिः=सूर्यः=चन्द्रसूरीशपट्टव्योमसूरिः श्रीचन्द्रसूरिपट्टधर इत्यर्थः । अत एव किं विशिष्टः ? तमहरो भवियलोगस्स" त्ति, भव्यः=मुक्तिगमनयोग्यः,

तथा च प्रत्यपादि—

"भव्वा जिणेहिं भणिया इह खलु जे सिद्धिगमणजोग्गा उ । ते पुण अणाइपरिणामभावओ हुन्ति नायव्वा ॥६६॥" इति । स चासौ लोकः=सत्त्वसमुदायो भव्यलोकस्तस्य हरतीति "अच्" (सि० ५-१-४९) इत्यचि हरः, भव्यलोकस्य तमांसि=पातकानि तिमिराणि वा हरः=तमोहरः । स कः ? "जओ" त्ति, यस्मात्=श्रीसामन्तभद्रसूरेः "गणस्स" गणस्य=गच्छस्य "णामो" त्ति, नाम=संज्ञा चतुर्थ्याख्येति यावत् 'वणवासी' त्ति, वनवासी च "हवीअ" त्ति, बभूव=गच्छस्य चतुर्थी संज्ञा वनवासीति प्रादुरभूदित्यर्थः । कस्मात् ? "कुरंगारी व विसया विरत्तो वणे वसीअ । तओ" त्ति, कुरङ्गाणां=मृगाणामरिः=शत्रुः=कुरङ्गारिः=सिंह इव-यथा सिंहो विषयात्= देशात् जनवासभूमेर्विरक्तः=पराङ्मुखभूतो वने वसति तथाऽय श्रीसामन्तभद्रसूरिः कुत्सितो= मोहजन्यो रङ्गो=रागो यस्मिन्स कुरङ्गः=संसारस्तस्मिन्नरिः=प्रतिपक्षः कुरङ्गारिरिव=संसारद्वेषीव विषयाद्विरक्तो वनेऽवसत् ततः=तस्मात्=श्रीसामन्तभद्रसूरिवनवासात् । **तथा चोक्तं गुरुपर्वक्रमे-**

"चान्द्रे कूले पूर्वगतश्रुताढ्य सामन्तभद्रो विपिनादिवासी ॥९॥" इति । **गुर्वावल्यामपि-**

"अथ गुरुश्चन्द्रकूलेन्दुदेवकुलादिवासोदितनिर्ममत्वः । सामन्तभद्र श्रुतदिष्टशुद्धतपस्क्रिय पूर्वगतश्रुतोऽभूत॥ ॥२८॥" इति ॥९५॥

एतर्हि त्रिशलातनयस्य तीर्थेश्वरस्य सप्तदशस्य पट्टधरस्य श्रीवृद्धदेवसूरेर्विभणिपया नृत्तगतिं वर्णयति—

वि मुत्तिपहदंसी जो झओ व भासी । सामंतभद्दसूरीसपट्टधामे ।
स खतत्तंगेऽद्दे वुड्ढदेवसूरी । जयउ परिठविअकोरंटगवीरच्चो ॥९६॥

(नत्तगई)

(प्रे०) "विमुत्ति०" इत्यादि, "जो" त्ति, यः=श्रीवृद्धदेवसूरिः "सामंतभद्दसूरीसपट्ट-धामे" त्ति, सामन्तभद्रसूरीशस्य पट्टः=पदम्, सामन्तभद्रसूरीशपट्टः, स एव धाम=मन्दिरं वेश्म वा सामन्तभद्रसूरीशपट्टधाम तस्मिन्=सामन्तभद्रसूरीशपट्टधाम्नि "झओ" त्ति, ध्वजः= पताका=केतुः "व" त्ति, इव "भासी" त्ति, अभात्, किम्भूतो ध्वज इव ? 'विमुत्ति-

पेऊसंसुव्व सोम्मो स णयइ हरिसं माणदेवाहिवस्स।
वत्ती पट्टद्दिसिगे भविगणजलहिं माणतुंगक्खसूरी।
भूवं बोहीअ भत्ता तणुठिअणिगडा चित्तिअ पंडिएहिं।
थोत्ता भत्तामरा जो जह मयऽइसया पाअपासा करेणू॥१०३॥(सद्धरा)

(प्रे०) "पेऊसंसुव्व" इत्यादि, "स" त्ति, स=ख्यातकीर्तिः "माणतुंगक्खसूरी" त्ति, मानतुङ्गाख्यसूरिः=मानतुङ्गनामा आचार्यः किं विशिष्टः? "सोम्मो" त्ति, सौम्यः=आकृत्या प्रशान्तः प्रशमरसमग्नो वा "माणदेवाहिवस्स" त्ति, मानदेवनामाऽधिपो=नायकस्तस्य मानदेवाऽधिपस्य=श्रीमानदेवसूरेः 'पट्टद्दिसिगे" त्ति, पट्टः=पदम् एवाद्रिशृङ्गः=पर्वतशिखरस्तस्मिन् पट्टाद्रिशृङ्गे 'वत्ती' त्ति, वर्ती=स्थितः "पेऊसंसुव्व" त्ति, पीयूषमिवाह्लादकाः पीयूषयुक्ता वा अंशवः=किरणा यस्य स पीयूषांशुः=चन्द्रः, स इव=पीयूषांशुवत्। "भविगणजलहिं" ति, भविनः=सिद्धिगमनयोग्यास्तेषां गणः=समुदायः भविगणः, स एव जलधिः=समुद्रो भविगणजलधिस्तं भविगणजलधिं 'हरिसं' ति, हर्षं=प्रमोदं 'णयइ" त्ति, नयति=प्रापयति (स्म) प्राकृतत्वात्तत्कालाऽपेक्षया वा वर्तमानता।

स क? इत्याह-"जो" त्ति, यः=श्रीमानतुङ्गसूरिः स्ववचसैवापादकण्ठं शृङ्खलैर्बद्ध्वाऽपवरके निक्षिप्तः "पंडिएहिं" ति, पण्डिताभ्यां=बाणमयूरसंज्ञकाभ्यां मार्तण्डस्तुतिकरणाऽपगतकुष्ठरोग स्तुतचण्डयवाप्तच्छेदितचतुर्नूतनाङ्गाभ्यां "चित्तिअ" ति, चित्रितं=विस्मितं चमत्कृतं चित्रीकृतम् आश्चर्यीभूतं "भूवं" ति, भूपं=नृपतिं "बोहीअ" त्ति, अबोधयत्, कथम्? "थोत्ता भत्तामरा" त्ति, भक्ताऽमरात्='भक्तामरप्रणतमौलिमणिप्रभाणाम्' इत्यादि श्रीऋषभदेवस्तुत्यात्मकात् "भक्तामर" इत्यादिपदत्वेन भक्तामराऽभिधात् "थोत्ता" त्ति, स्तोत्रात् "तणुठिअणिगडा" त्ति, तनौ=देहे=आपादकण्ठे स्थिताः=बन्धनरूपन्यस्ता निगडाः=हिञ्जीराः तनुस्थितनिगडास्तान् तनुस्थितनिगडान्=चतुश्चत्वारिंशतं लोहमयानापादकण्ठे बद्धान् शृङ्खलान् "भत्ता" त्ति, भक्त्वा=त्रोटित्वा कथमिव? "जह" त्ति, यथा "करेणू" त्ति, करेणुः=हस्ती 'मयऽइसया" त्ति, मदाऽतिशयात्=उत्कटदानवायुर्दयात् "पाअपासा" त्ति, पादपाशान् लोहमयान् पादानां बन्धान् त्रोटयति।

तथा च प्रतिपादितं गुर्वावल्याम्--

"भक्तामराद् बाणमयूरविद्या-चमत्कृत भूपमबोधयद् य॥३५॥" इति।

तत्त्वानि=देव-गुरु-धर्मरूपाणि त्रीणि, अङ्गानि=राज्याङ्गानि=गजादीनि सप्त, एतेऽङ्काः पश्चानुपूर्विलब्धा यत्र तत्र खतत्त्वाङ्गे वीरसंवत् ७३० वर्षे, यतो वीरनिर्वाणात् पञ्चाधिकषट्शत ६०५ तमे वर्षे, विक्रमसंवतश्च पञ्चत्रिंशदुत्तरशत १३५तमे वर्षे शकसंवत्सरः प्रवर्तितः, ततः १२५ शकसंवत्सरे पञ्चोत्तरशतषट्कस्य ६०५ प्रक्षेपे, यद्वा पूर्वोक्तसपादशत१२५ विक्रमसंवत्सराऽनुसारे वीरसंवत्पञ्चनवत्युत्तरपञ्चशत ५९५ संवत्सरे पञ्चत्रिंशदधिकशतस्य १३५ प्रक्षेपे कृते यथोक्तमानो वीरसंवदागच्छति। शेषं पूर्ववत्। अतो विपश्चिद्भिर्यथाघटमानं व्याख्येयम् ॥९६॥ 卐

अथ श्रीजज्जगसूरिं पथ्यार्ययाऽऽह......

तइ सिरिजज्जगसूरी वीरपइट्ठं कुणीअ सच्चउरे ।
णाहडकयजिणभवणे वीरा खहयीइमिअवासे ॥९७॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "तइ" इत्यादि, "तइ" त्ति, तदा, श्रीवृद्धदेवसूरेर्निकटवर्तिनि काले विद्यमानकाले वा "सिरिजज्जगसूरी" त्ति, श्रीजज्जगसूरि=श्रीमान् जज्जगसंज्ञक आचार्यः "वीरा" त्ति, वीरात् चरमजिनपतिमुक्तिकालात् "खहयीइमिअवासे" त्ति, खं=शून्यम्, हयाः=अश्वाः सप्त, ईतयः=अतिवृष्ट्य-वृष्टि-मूषक-शलभ-खग-प्रत्यासन्ननृपलक्षणाः षट्, तथा चोक्तम्-"अतिवृष्टिरनावृष्टिर्मूषकाः शलभाः खगाः। प्रत्यासन्नाश्च राजानः षडेता ईतयः स्मृताः ॥" इति। एतैरङ्कैर्वामगतिन्यस्तैः ६७० इति सङ्ख्यया मितं खहयेतिमितम्, तच्च तद्वर्षञ्च खहयेतिमितवर्षं तस्मिन् खहयेतिमितवर्षे=वीरसंवत्सप्तत्यधिकषट्शते ६७० वर्षे "सच्चउरे" त्ति, सत्यपुरे=सत्यपुरनाम्नि नगरे लोकभाषया "साचोर" इत्याख्ये नगरे "णाहडकयजिणभवणे" त्ति, नाहडेन=नाहडाऽभिधेन नड्डूलदेशनृपेण कृतं=निर्मितं जिनस्य=चरमतीर्थनाथस्य महावीरप्रभोर्भवनं=मन्दिरं वेश्म वा तस्मिन्=नाहडकृतजिनभवने "वीरपइट्ठं" ति, वीरस्य=महावीरस्वामिनो बिम्बस्य प्रतिष्ठां वीरप्रतिष्ठां "कुणीअ" त्ति, अकरोत् ॥९७॥

अधुना श्रीवीरजिनेश्वरस्याऽष्टादशे पट्टे उत्पन्नं श्रीप्रद्योतनसूरिमाख्यातुमिच्छुश्शङ्खनिधि सुनन्दिनी वाऽऽदिशति—

गम्मि अणाणतमस्स णासगो,संसोसगो दुण्णयकद्दमाण जो ।
भवज्जरासीअ पबोहगो गुरू, पज्जोयणोऽग्घीअ स देवपट्टगे ॥९८॥

(संखणिही सुणंदिणी वा)

●कारितमप्युपचारात्कृतमित्युच्यते-यथा राजपुरुषैर्जितोऽपि देशो राज्ञा जित इत्युच्यते।

इत्याद्यनेकधा धर्म्ममार्गाकर्णनतस्तदा । वैराग्यरङ्गितो मानतुङ्गस्य व्रतकाङ्क्षिणः ॥११॥
तन्मातापितरौ पृष्ट्वाऽऽचार्येस्तस्य व्रतं ददौ चारुकीर्तिर्महाकीर्तिरित्यस्याख्या ददौ च सः ॥१२॥
स्त्रीणां न निवृतिर्मान्या भुक्तिः केवलिनोऽपि हि । द्वात्रिंशदन्तरायाणि बुबुधे च बुधेश्वरः ॥१३॥
कृतलोचस्ततो हस्तस्थितनतोयकमण्डलुः । सन्त्यक्तसर्वावरण ईर्यासमितिसंयुतः ॥१४॥
गृहस्थावसथोद्‌वावस्थानकृतभोजनः । मायूरपिच्छिकाहस्तो मौनकालेषु मौनवान् ॥१५॥
सदा निःप्रतिकर्म्माऽसौ प्रतिक्रमणयोद्‌यो । दक्षो गुरुस्तनीयस्त्वे दुष्करं कुरुते व्रतम् ॥१६॥ विशेषकम् ।
अस्य स्वसृपतिर्लक्ष्मीधरो लक्ष्मीवरस्थितिः । आस्तिकानां शिरोरत्नमत्रासीद् विस्फुरद्यशाः ॥१७॥
दृढभक्त्या स चर्यार्थमन्यदोपनिमन्त्रितः । महर्षिस्तेन काले च मध्ये तद्‌गृहमागमत् ॥१८॥
अशोवनप्रमादेनाऽननुसन्धानाज्जलस्य च । नैके समूर्च्छितास्तत्र पूतरास्तत्कमण्डलौ ॥१९॥
गण्डूपार्थमृषिर्यावत्कचुलुके जलमाददे । ददर्श तान् स्वसा प्राह लीना श्वेताम्बरव्रते ॥२०॥
व्रते कृपाभरः सारस्तदमी द्वीन्द्रियास्त्रसाः । विपद्यन्ते प्रमादाद् वस्तज्जैनसदृशं न हि ॥२१॥
लज्जावरणमात्रेऽत्र वस्त्रखण्डे परिग्रहः । ताम्रपात्रे कथं न स्यात् याच्छिकमिदं किमु ॥२२॥
धन्याः श्वेताम्बरा जैनाः प्राणिरक्षार्थमुद्यताः । न सन्निदधते नीरमपि रात्रौ क्रियोद्यताः ॥२३॥
अचेलाश्च सचेलाश्च नावधारणदुर्नयम् । आद्रियन्ते स्म निःसङ्गाः परमार्थकृतादराः ॥२४॥
पञ्चाऽऽश्रवेन्द्रियार्थानां परिहारपरायणाः । गुप्तिभिस्तिसृभिर्गुप्ताः स्थिताः समितिपञ्चके ॥२५॥ त्रिभिर्विशेषकम्
इत्याकर्ण्य मुनिः प्राह प्राञ्जलः शृणु मद्वचः । गृहवासपरित्यागो मया पुण्यार्थिना कृतः ॥२६॥
आस्तामस्य समाचारो यत्र जीवदयाऽपि न । तेन धर्मेण किं कुर्वे श्रीसर्वज्ञविरोधिना ॥२७॥
अत्र देशे समायान्ति तु प्रायाः श्वेतभिक्षवः । सा प्राह मध्यदेशात्ते समायास्यन्ति साम्प्रतम् ॥२८॥
साङ्गत्यं कारयिष्यामि तव तैः सह निश्चितम् । तपसा निर्मलेनाशु भव पावयसे यथा ॥२९॥
इदानीं क्वाऽपि कूपादौ रहो जलमिदं त्यज । शासनस्य यथा म्लानिर्न भवेल्लघुताकरा ॥३०॥
विराधना पुनर्जीवगणस्याऽत्र भवेद्‌ध्रुवम् । अपरापरनीरोत्थजीवा अन्योऽन्यविद्विषः ॥३१॥
श्रुत्वेति तद्वचोऽकार्षीद् भृशं विप्रतिसारतः । भोजितः परया भक्त्या बोधितश्चाऽऽश्रयं ययौ ॥३२॥
अन्यदाऽजितसिंहाख्याः सूरयः पुरमाययुः । पुरा श्रीपार्श्वतीर्थेशकल्याणकपवित्रिताम् ॥३३॥
गङ्गातीरस्थमुद्यानमुद्दाम शिखरीव्रजैः । शिश्रियुर्ज्ञानसंयुक्तास्त्रिदशा इव नन्दनम् ॥३४॥
तया च ज्ञापिते श्राद्धकान्तया सोदरो मुनिः । श्रुत्वा समाययौ तत्र गुरूणां सङ्गतस्तदा ॥३५॥
पूर्वैर्षिभिः समाचीर्णां समाचारीं न्यवेदयत् । तैस्तदग्रे च पीयूषवक्ता सोऽथाद्दतोऽशृणोत् ॥३६॥
गुरुभिर्दीक्षितश्चासौ नदीष्णोऽन्येऽपि क्वचित् । तपस्याविधिपूर्वं चागममध्याप्यतादरात् ॥३७॥
ततः प्रतीतिभृत् सम्यक्तपःश्रुतसमर्जनात् । योग्यः सन् गुरुभिः सूरिपदे गच्छाद्दतः कृतः ॥३८॥
क्लिष्टकाव्यभ्रमिश्रान्ता देवी वाचमधीश्वरी । यद्वचोऽमृतसंसिक्ता परमानन्दभूरभूत् ॥३९॥
न तदातनकालीयलीनज्ञानस्थियोन्नतिः । अभूद्‌भूमिरुन्निद्रोपद्रवान्तरविद्विषाम् ॥४०॥

तत्त्वानि=देव-गुरु-धर्मरूपाणि त्रीणि, अङ्गानि=राज्याङ्गानि=राजादीनि सप्त, एतेऽङ्काः पश्चानुपूर्विलब्धा यत्र तत्र खतत्त्वाङ्गे वीरसंवत् ७३० वर्षे, यतो वीरनिर्वाणात् पञ्चाधिकषट्शत ६०५ तमे वर्षे, विक्रमसंवतश्च पञ्चत्रिंशदुत्तरशत १३५तमे वर्षे शकसंवत्सरः प्रवर्तितः, ततः १२५ शकसंवत्सरे पञ्चोत्तरशतषट्कस्य ६०५ प्रक्षेपे, यद्वा पूर्वोक्तसपादशत१२५ विक्रमसंवत्सरा-ऽनुसारे वीरसंवत्पञ्चनवत्युत्तरपञ्चशत ५९५ संवत्सरे पञ्चत्रिंशदधिकशतस्य १३५ प्रक्षेपे कृते यथोक्तमानो वीरसंवदागच्छति। शेषं पूर्ववत्। अतो विपश्चिद्भिर्यथावद्यमानं व्याख्येयम् ॥९६॥ 卐

अथ श्रीजज्जगसूरिं पथ्यार्यया ऽऽह......

तइ सिरिजज्जगसूरी वीरपइट्ठं कुणीअ सच्चउरे ।
णाहडकयजिणभवणे वीरा खहयीइमिअवासे ॥९७॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "तइ" इत्यादि, "तइ" त्ति, तदा, श्रीवृद्धदेवसूरेर्निकटवर्तिनि काले विद्यमान-काले वा "सिरिजज्जगसूरी" त्ति, श्रीजज्जगसूरि=श्रीमान् जज्जगसंज्ञक आचार्यः "वीरा" त्ति, वीरात् चरमजिनपतिमुक्तिकालात् "खहयीइमिअवासे" त्ति, खं=शून्यम्, हयाः =अश्वाः सप्त, ईतयः=अतिवृष्ट्य-वृष्टि-मूषक-शलभ-खग-प्रत्यासन्ननृपलक्षणाः षट्, तथा चोक्तम्—"अतिवृष्टिरनावृष्टिर्मूषकाः शलभाः खगाः। प्रत्यासन्नाश्च राजानः षडेता ईतयः स्मृताः ॥" इति। एतैरङ्कैर्वामगतिन्यस्तैः ६७० इति सङ्ख्यया मितं खहयेतिमितम्, तच्च तद्वर्षञ्च खहयेतिमितवर्षं तस्मिन् खहयेतिमितवर्षे=वीरसंवत्सप्तत्यधिकषट्शते ६७० वर्षे "सच्चउरे" त्ति, सत्यपुरे=सत्य-पुरनाम्नि नगरे लोकभाषया "साचोर" इत्याख्ये नगरे "णाहडकयजिणभवणे" त्ति, नाहडेन=नाहडाऽभिधेन नड्डूलदेशनृपेण कृतं=निर्मितं जिनस्य=चरमतीर्थनाथस्य महावीर-प्रभोर्भवनं=मन्दिरं वेश्म वा तस्मिन्=नाहडकृतजिनभवने "वीरपइट्ठं" ति, वीरस्य=महावीर-स्वामिनो बिम्बस्य प्रतिष्ठां वीरप्रतिष्ठां 'कुणीअ" त्ति, अकरोत् ॥९७॥

अधुना श्रीवीरजिनेश्वरस्याऽष्टादशे पट्टे उत्पन्नं श्रीप्रद्योतनसूरिमाख्यातुमिच्छुश्शङ्खनिधि सुनन्दिनी वाऽऽदिशति—

रम्मि अणाणतमस्स णासगो, संसोसगो दुणायकद्दमाण जो ।
भवज्जरासीअ पबोहगो गुरू, पज्जोयणोऽभीअ स देवपट्टखे ॥९८॥
(संखणिही सुणंदिणी वा)

●कारितमप्युपचारात्कृतमित्युच्यते—यथा राजपुरुषैर्जितोऽपि देशो राज्ञा जित इत्युच्यते।

इत्याद्यनेकधा धर्म्ममार्गाकर्णनतस्तदा । वैराग्यरङ्गिणो मानतुङ्गस्य व्रतकाङ्क्षिण ॥११॥
तन्मातापितरौ पृष्ट्वाऽऽचार्यस्तस्य व्रत ददौ चारुकीर्तिर्महाकीर्तिरित्यस्याख्या ददौ च स ॥१२॥
स्त्रीणा न निर्वृतिर्मान्या भुक्ति केवलिनोऽपि हि । द्वात्रिंशदन्तरायाणि बुबुधे च बुधेश्वर' ॥१३॥
कृतलोचस्ततो हस्तस्थितनतीर्थकमण्डलु । सन्त्यक्तसर्वावरण ईर्यासमितिसयुत ॥१४॥
गृहस्थावसथोर्द्ध्वावस्थानकृतभोजन । मायूरपिच्छिकाहस्तो मौनकालेषु मौनवान् ॥१५॥
सदा नि प्रतिकर्म्माऽसौ प्रतिक्रमणयोर्द्वयो । दक्षो गुरुकनीयस्त्वे दुष्कर कुरुते व्रतम् ॥१६॥ विशेषकम् ।
अस्य स्वसृपतिर्लक्ष्मीधरो लक्ष्मीवरस्थिति । आस्तिकाना शिरोरत्नमत्रासीद् विस्फुरद्यशा' ॥१७॥
दृढभक्त्या स चर्यार्थमन्यदोपनिमन्त्रित । महर्षिस्तेन काले च मध्ये तदगृहमागमत ॥१८॥
अशोधनप्रमादेनाऽनुसन्धानाज्जलस्य च । नैके समूर्च्छितास्तत्र पूतरास्तत्कमण्डलौ ॥१९॥
गण्डूषार्थमृषिर्यावच्चुलुके जलमाददे । ददर्श तान् स्वसा प्राह लीना श्वेताम्बरव्रते ॥२०॥
व्रते कृपाभर सारस्तदमी द्वीन्द्रियास्त्रसा' । विपद्यन्ते प्रमादाद् वस्तज्जैनसदृश न हि ॥२१॥
लज्जावरणमात्रेऽत्र वात्रखण्डे परिग्रह । ताम्रपात्रे कथ न स्यात् यादृच्छिकमिद किमु ॥२२॥
धन्या श्वेताम्बरा जैना प्राणिरक्षार्थमुद्यता । न सन्निदधते नीरमपि रात्रौ क्रियोद्यता ॥२३॥
अचेलाश्च सचेलाश्च नावधारणदुर्नयम् । आद्रियन्ते स्म नि सङ्गा परमार्थकृतादर ॥२४॥
पञ्चाऽऽश्रवेन्द्रियार्थाना परिहारपरायणा । गुप्तिभिस्तिसृभिर्गुप्ता स्थिता समितिपञ्चके ।२५। त्रिभिर्विशेषकम्
इत्याकर्ण्य मुनि प्राह प्राञ्जल शृणु मद्वच । गृहवासपरित्यागो मया पुण्यार्थिना कृत ॥२६॥
आस्तामन्य समाचारो यत्र जीवदयाऽपि न । तेन धर्मेण किं कुर्वे श्रीसर्वज्ञविरोधिना ॥२७॥
अत्र देशे समायान्ति दु प्रापा श्वेतभिक्षव । सा प्राह मध्यदेशात्ते समायास्यन्ति साम्प्रतम् ॥२८॥
साङ्गत्य कारयिष्यामि तव तै सह निश्चितम् । तपसा निर्मलेनाशु भव पावयसे यथा ॥२९॥
इदानीं क्वाऽपि कूपादौ रहो जलमिद त्यज । शासनस्य यथा म्लानिर्न भवेल्लघुताकरा ॥३०॥
विराधना पुनर्जीवगणस्याऽत्र भवेद्ध्रुवम् । अपरापरनीरोत्थजीवा अन्योऽन्यविद्विष ॥३१॥
श्रुत्वेति तद्वचोऽकार्षीद् भृश विप्रतिसारत । भोजित परया भक्त्या बोधितश्चाऽऽश्रय ययौ ॥३२॥
अन्यदाऽजितसिंहाख्या सूरय' पुरमाययु । पुरा श्रीपार्श्वतीर्थेशकल्याणकपवित्रिताम् ॥३३॥
गङ्गातीरस्थमुद्यानमुद्दाम शिखरीव्रजै । शिश्रियुर्ज्ञानसयुक्तास्त्रिदशा इव नन्दनम् ॥३४॥
तया च ज्ञापिते श्राद्धकान्तया सोदरो मुनि । श्रुत्वा समाययौ तत्र गुरूणां सगतस्तदा ॥३५॥
पूर्वर्षिभि समाचीर्णा समाचारी न्यवेद्यत । तैस्तदग्रे च पीयूषवत्ता सोऽथादृतोऽशृणोत ॥३६॥
गुरुभिर्दीक्षितश्चासौ नदीष्णोऽभूदपि क्वचित् । तपस्याविधिपूर्व चागममध्यापयतादरात् ।३७॥
तत प्रतीतिभृत् सम्यक्तप श्रुतसमर्जनात् । योग्य सन् गुरुभि सूरिपदे गच्छाद्दृत कृत ॥३८॥
क्लिष्टकाव्यभ्रमिश्रान्ता देवी वाचमधीश्वरी । यद्वचोऽमृतससिक्ता परमानन्दभूरभूत् ॥३९॥
न तदातनकालीयलीनज्ञानक्रियोन्नति । अभूदभूमिरुन्निद्रोपद्रवान्तरविद्विषाम् ॥४०॥
इतश्च पुरि तत्रासीत् वेदवेदाङ्गपारग । विरञ्चिरिव मूर्तिस्थो भूदेव पार्थिवार्चित ॥४१॥
कोविदाना शिरोरत्न मयूर इति विश्रुत । प्रत्यर्थिकविसर्प्पाणा मयूर इव दर्प्पहृत् ॥४२॥ युग्मम् ।
दुहिता सुहिता रूपशीलविद्यागुणोदयै । तस्य सत्या उमा-गङ्गा लक्ष्मीदेव्यो यदीक्षणात ॥४३॥
पङ्के पङ्कजगुञ्जित कुवलय चापारनीरे ह्रदे, बिम्बी चापि वृतेर्वहि प्रकटिता क्षिप्त शशी चाम्बरे ।
यस्या पाणिविलोचनाधरमुखान् वीक्ष्य स्वसृष्टिर्विधे-रुच्छिष्टेव पुरातनी समभवद् दैवात् विधायेह ताम् ॥४४॥
अद्भुत कुलरूपाद्यैस्तस्या समुचित वरम् , सर्वत्रालोचयन् सम्यगप्राप्यावार्तिमासदत् ॥४५॥

(प्रे०) "अज्जं" इत्यादि, "त" ति, तं "माणदेव" मानदेवं=मानदेवाऽभिध सूरिं किं भूतम् ? "अज्ज" ति, आद्य=प्रथमं मानदेवसञ्ज्ञकानामाचार्याणां वीरपट्टभृता त्रय त्वात्, वक्ष्यमाणद्वयाऽपेक्षयाऽस्यैवादिमत्वात्, यद्वा "अज्जं" ति, आर्यं=श्रेष्ठं पुनरपि किं विशिष्टम् ? "गुणगणनिलयं" ति गुणानां=सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिलक्षणानां गणः=समुदाय-स्तस्य निलयम्=आवासम्, गुणगणनिलयम्=अपूर्वज्ञान-निर्मलदर्शना-ऽखण्डचारित्र-तप-स्त्याग-प्रतिभादिगुणवर्गस्य निवासस्थानभूतं 'पासिऊण" ति, दृष्ट्वा=अवलोक्य "इयरपइवर" ति, इतरोऽन्यः स चासौ पतिः=स्वामी इतरपतिस्तस्य 'वृञ् वरणे" इति क्र्यादिः 'वृञ् वरणे' इति स्वादिः, तथा चुरादिगणाऽन्तर्गतयुजादिगणस्थः 'वृञ् आवरणे" इत्यपि वृधातोः वरणं वरः "युवर्ण-वृ-दृ वश-रण-गमृद्ग्रह (सि० ५-३-२८) इत्यनेन भावेऽल्प्रत्ययः स च पुंल्लिङ्गे, यतो लिङ्गानुशासनस्य प्रथमश्लोक एवाल्प्रत्ययान्तस्य पुंल्लिङ्गविधान दर्शितम् तथा च तद्ग्रन्थः— "पुंल्लिङ्ग कटणथपभमयरषसस्त्वन्तमिमनलौ किरितव् ।" इति । इतरपतिवरस्तम् इतरपतिवरं "णेच्छंती" त्ति, नेच्छन्ती, "सूरिपज्जोयणस्स" त्ति, सूरिः=आचार्यः, स चाऽसौ प्रद्योतनः=तन्नामा सूरिप्रद्योतनस्तस्य सूरिप्रद्योतनस्य "पट्टकण्णा" त्ति, पट्ट एव कन्या पट्टकन्या 'वरीअ" त्ति,अवृत=तं मानदेवसूरिमवरीष्ट । आचार्यश्रीप्रद्योतनसूरिपट्टभृदिति भावः ।

तथा चोक्त गुर्वावल्याम्—"प्रद्योतन. सूरिरभूत् पदेऽस्य ततोऽपि चासीद् गुरुमानदेव ।" इति ।

"से" त्ति, अस्य=श्रीमानदेवसूरेः "पयविहिसमये" त्ति पदस्य=सूरिपदस्य=गच्छ-नायकपदस्य वाऽधिकारविशेषरूपस्य विधानं विधिः=करणं पदविधिः=पदकरणं पदप्रदान-मित्यर्थः, तस्याः समये=अवसरे पदविधिसमये "अ प्पि" ति 'से" त्ति, पदं पुनरप्यत्र सम्बध्यते ततस्तस्य श्रीमानदेवसूरेरंशयोरंसयोर्वा=स्कन्धयोरुपरि=अंशोपरि अंसोपरि वा स्कन्धो-परिष्टात् "बंभिलच्छी" त्ति, ब्राह्मी=सरस्वती, लक्ष्मीः=श्रीः ब्राह्मी च लक्ष्मीश्च ब्राह्मीलक्ष्म्यौ 'विक्ख" त्ति, वीक्ष्य=दृष्ट्वा पुनरपि तृतीयवारं "से" इति पदं घण्टालालान्यायेनाऽत्राऽपि सम्बध्यते ततः "से" त्ति, अस्य=मम पट्टभृतो मानदेवसूरेः "भाविभंसो" त्ति, भाविनि= भविष्यति काले भ्रंशो=व्रतखण्डनम्, यद्वा भावी=भविष्यत्कालसम्बन्धी च चासौ भ्रंशो= भाविभ्रंशः,"एवं"ति, एवम्=अनेन प्रकारेण विचारेण "रि ण" ति, खिन्नं=विषादीभूतचित्तं "गुरु" ति, गुरुं=श्रीप्रद्योतनाख्यसूरिं निजगुरुं "कलिअ" त्ति कलित्वा = ज्ञात्वा "जो" त्ति, यः=श्रीमानदेवसूरिः "छ विगई" त्ति, षट्संख्याका विकृतीः= घृत-पक्वान्न-तैल-गुड-दधि-दुग्धाख्यास्तथा "भत्तभिक्खं" ति, भक्तानां=भक्तौ तत्पराणां जनानां भिक्षा=विशिष्ट-मिष्टान्नादिदानरूपा भक्तभिक्षा तां भक्तभिक्षां "चयीअ" त्ति, अत्यजत्=त्यागविषयकरोत् ।

तथा चोक्त गुर्वावल्याम्—

सहस्रकिरण कर्मसाक्षी ध्येयो मयास्य यत् । दृश्येते सफले साक्षादाराधनविराधने ॥८०॥
पट्पाद रज्जुयन्त्र सोऽत्रलम्ब्यात्रोपविष्टवान् । गर्त्ते च खदिराङ्गारैरधोऽकिचभिरपूरयत् ॥८१॥
शार्दूलवृत्तमेकैकमुक्त्वा शस्त्रिकयाच्छिनत । पादमेव च काव्येषु पञ्चसूक्तेषु कृष्टिना ॥८२॥
छिन्दत शेषपाद च मार्त्तण्डो व्यक्ततेजसा । आगत्यास्य ददौ देह मक्ष विध्यापितोऽनल ॥८३॥
काव्याना शतत सूर्यस्तुतिं संविदधे तत । देवान्साक्षात्करोति स्म येषामेकमपि स्मृतम् ॥८४॥
श्रीभानुस्तोषतस्तस्य नीरुज देहमातनोत । सार्द्धषोडशवर्णिक्यदीप्यत्कनकभास्वरम् ॥८५॥
प्रात प्रकटदेहोऽसावाययौ राजपर्षदि । श्रीहर्षराज पप्रच्छासीत् ते किं रुग् नवा वद ॥८६॥
आसीत् देव ! पर ध्यात सहस्रकिरणो मया । तुष्टो देह ददावद्य भक्ते किं नाम दुष्करम् ॥८७॥
तदा च बाणपक्षीयै सासूयैरिव पण्डितै । जगदे किंचिदत्युग्र प्राग्वृत्तश्रुतित स्फुटम् ॥८८॥ तथाहि-
यद्यपि हर्षोत्कर्ष विदधति मधुरा गिरो मयूरस्य । बाणविजृम्भणसमये तदपि न परभागभागिन्य ॥८९॥
राजाह सत्यमेवेद गुणी गुणिषु मत्सरी । यूयमत्राऽपि सासूया ब्रूमहेऽत्र वय किमु ॥९०॥
वैद्यौषध विना येन प्राञ्जलेनैव चेतसा । सूर्य आराधितो भक्त्या कविस्त्वैर्देहमातनोत् ॥९१॥
परितोष पर प्राप सविता यद्वच क्रमै । के वय मानुषास्तत्राहारादिकलुषाकुला ॥९२॥
बाण प्राह प्रभो ! प्राय कृतपक्ष किमुच्यते । अस्य क किल शृङ्गारो देवस्यातिशये स्फुटे ॥९३॥
एवजातीयमाश्चर्याऽतिशय कोऽपि दर्शयेत् । अपरो यदि चेच्छक्ति क प्रत्यर्थी शुभायतौ ॥९४॥
इति राज्ञो वच श्रुत्वा बाण प्राहातिसाहसात । हस्तौ पादौ च सछिद्य चण्डिकावासपृष्ठत ॥९५॥
मा परानयतु स्वामी तत्र मुक्तोज्झित स्थिरम् । यथाऽमुष्मादतिप्रौढि प्रातिहार्य प्रदर्शये ॥९६॥ युग्मम् ।
अवादीच्च मयूरोऽपि तथाप्यस्यानुकम्पया । मयि प्रसद्य भूपाल माकार्षीरेनमीदृशम् ॥९७॥
यतो मद्धितु कष्ट व्यङ्गशुश्रूषणाद् भवेत । आजन्म तन्ममाभील विलगेत प्रभो ! दृढम् ॥९८॥
श्रुत्वा च भूपतिर्भक्ति मयूरे बिभ्रदद्भूताम् । बाणे कोप वहन् प्राह तथा कौतूहल महत् ॥९९॥
कर्तव्यमेव बाणस्य गीप्राणस्य कवेर्वच । पाणिपाद नव चेत्स्यादस्य स्फार तदा यश ॥१००॥
अन्यथा चेत्तथास्फारवचसा भज्यते मणि । यदृच्छावचसा नावकाशो राज्ञा हि पर्षदि ॥१०१॥
अथवा सूर्यमाराध्य त्वमेनमपि पण्डितम् । विमद निर्विष नागमिव प्रगुणमाचरे ॥१०२॥
उक्त्वा चैव कृते राज्ञा चण्डीस्तोतु प्रचक्रमे । बाण काव्यैरतिश्रव्यैरुद्दामाक्षरडम्बरै ॥१०३॥
ततश्च प्रथमे वृत्तो निवृत्ते सप्तमेऽक्षरे । सधामा तन्मुखी भूत्वा देवी प्राह वर वृणु ॥१०४॥
विधेहि पाणिपाद मे इत्युक्तिसमनन्तरम् । सपूर्णावयव शोभाप्रत्यग्र इव निर्जर ॥१०५॥
महोत्सवेन भूपालमन्दिर स समीयिवान् । राज्ञा पुरस्कृतौ प्रीतिहार्येऽस्थातामुभावपि ॥१०६॥
ततो विवदमानौ च निवर्त्तेते पुरा क्रुधा । भूप एव तत प्राह निर्णयो नाऽनयोरिह ॥१०७॥
वाग्देवी मूलमूर्त्तिस्था यत्रास्ते तत्र गम्यताम् । उभाभ्यामपि काश्मीरनीवृति प्रवरे पुरे ॥१०८॥
जय पराजयो वाऽस्तु स्वामिन्यैव कृतोऽनयो । प्रत्यवाय सचैतन्य को हि स्वस्यानुषञ्जयेत् ॥१०९॥
य पराभूतिमाप्नोति तद्ग्रन्था प्राङ्गणे मम । प्रज्वाल्य पुस्तकस्तोम विनाश्या अस्त्वसौ पण ॥११०॥
ताभ्यामभ्युपयाते च व्यवहारेऽथ पण्डितै । उभौ तत्र प्रतिस्थाते राजमर्त्यै सहार्हितौ ॥१११॥
तावल्पेनाऽपि कालेन प्रयाणैरविखण्डितै । आसेदाते पुर ब्राह्मी-ब्रह्माद्भुतपवित्रितम् ॥११२॥
आराधयाबभूवाते तपसा दुष्करेण तौ । तुष्टा देवी परीक्षार्थ तौ पृथक्कृत्य दूरत ॥११३॥
समस्यापदमप्राक्षीत् तूर्णमापूरि तेन च । अपरेणाऽपि सपूर्णा तथैवाक्षरपक्तिका ॥११४॥
विलम्बित-द्रुतभेदतया काष्ठार्द्धमानत । जित बाणेन शीघ्रत्वात् विलम्बाच्च जित पर ॥११५॥

(प्रे०) "अज्जं" इत्यादि, "त" ति, तं "माणदेव" मानदेवं=मानदेवाऽभिध सूरिं किं भूतम्? "अज्ज" ति, आद्य=प्रथमं मानदेवगणनामाचार्याणां वीरपट्टभृता त्रय स्वात्, वक्ष्यमाणद्वयाऽपेक्षयाऽस्यैवादिमत्वात्, यद्वा "अज्जं" ति, आर्यं=श्रेष्ठ पुनरपि किं विशिष्टम्? "गुणगणणिलयं" ति गुणानां=सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिलक्षणानां गणः=समुदाय-स्तस्य निलयम्=आवासम्, गुणगणनिलयम्=अपूर्वज्ञान-निर्मलदर्शना-ऽखण्डचारित्र-तप-स्त्याग-प्रतिभादिगुणवर्गस्य निवासस्थानभूतं 'पासिऊण" ति, दृष्ट्वा=अवलोक्य "इयरपइवर" ति, इतरोऽन्यः स चासौ पतिः=स्वामी इतरपतिस्तस्य 'वृञ् वरणे' इति क्र्यादिः वृञ्ट् वरणे" इति स्वादिः, तथा चुरादिगणाऽन्तर्गतयुजादिगणस्थः 'वृञ्ण् आवरणे" इत्यपि वृधातोः वरणं वरः "युवर्ण-वृ-दृ वश-रण-गमृद्ग्रहः (सि० ५-३-२८) इत्यनेन भावेऽल्प्रत्ययः स च पुंल्लिङ्गे, यतो लिङ्गानुशासनस्य प्रथमश्लोक एवाल्प्रत्ययान्तस्य पुंल्लिङ्गविधानं दर्शितम् तथा च तद्ग्रन्थः— "पुंल्लिङ्ग कटणथपभमयरषसस्वन्तमिमनलौ किश्तिव्।" इति । इतरपतिवरस्तम् इतरपतिवरं "णेच्छंती" त्ति, नेच्छन्ती, "सूरिपज्जोयणस्स" त्ति, सूरिः=आचार्यः, स चाऽसौ प्रद्योतनः=तन्नामा सूरिप्रद्योतनस्तस्य सूरिप्रद्योतनस्य "पट्टकण्णा" त्ति, पट्ट एव कन्या पट्टकन्या 'वरीअ" त्ति, अवृत=तं मानदेवसूरिमवरीष्ट । आचार्यश्रीप्रद्योतनसूरिपट्टभृदिति भावः । **तथा चोक्तं गुर्वावल्याम्**—"प्रद्योतन. सूरिरभूत् पदेऽस्य ततोऽपि चासीद् गुरुमानदेव ।" इति ।

"से" त्ति, अस्य=श्रीमानदेवसूरेः "पयविहिसमये" त्ति पदस्य=सूरिपदस्य=गच्छ-नायकपदस्य वाऽधिकारविशेषरूपस्य विधानं विधिः=करणं पदविधिः=पदकरणं पदप्रदान-मित्यर्थः, तस्याः समये=अवसरे पदविधिसमये "अ पिंप" ति 'से" त्ति, पदं पुनरप्यत्र सम्बध्यते ततस्तस्य श्रीमानदेवसूरेरंशयोरंसयोर्वा=स्कन्धयोरुपरि=अंशोपरि अंसोपरि वा स्कन्धो-परिष्टात् "बभिलच्छी" त्ति, ब्राह्मी=सरस्वती, लक्ष्मीः=श्रीः ब्राह्मी च लक्ष्मीश्च ब्राह्मीलक्ष्म्यौ 'विक्ख" त्ति, वीक्ष्य=दृष्ट्वा पुनरपि तृतीयवारं "से" इति पदं घण्टालालान्यायेनाऽत्राऽपि सम्बध्यते ततः "से" त्ति, अस्य=मम पट्टभृतो मानदेवसूरेः "भाविभंसो" त्ति, भाविनि= भविष्यति काले भ्रंशो=व्रतखण्डनम्, यद्वा भावी=भविष्यत्कालसम्बन्धी च चासौ भ्रंशो= भाविभ्रंशः, "एवं" ति, एवम्=अनेन प्रकारेण विचारेण "रि ण" ति, खिन्नं=विषादीभूतचित्तं "गुरु" ति, गुरुं=श्रीप्रद्योतनाख्यसूरिं निजगुरुं "कलिअ" त्ति कलित्वा = ज्ञात्वा "जो" त्ति, यः=श्रीमानदेवसूरिः "छ विगई" त्ति, षट्संख्याका विकृतीः = घृत-पक्वान्न-तैल-गुड-दधि-दुग्धाख्यास्तथा "भत्तभिक्खं" ति, भक्तानां=भक्तौ तत्पराणां जनानां भिक्षा=विशिष्ट-मिष्टान्नादिदानरूपा भक्तभिक्षा तां भक्तभिक्षां "चयीअ" त्ति, अत्यजत्=त्यागविषय्यकरोत् ।

तथा चोक्तं गुर्वावल्याम्—

तन्मया भवतामेवोपदेश संविधीयते । अत पर कटुद्रव्य त्यक्त्वा स्वाद्य हि गृह्यते ॥१५२॥
तत आदेशपीयूषपोषात्तृप्त कुरुष्व माम् । राज्ञो वाचमिति श्रुत्वा सूरि. प्रण्यगदद्गिरम् ॥१५३॥
दीनपात्रौचितीभेदात् त्रिधा दानरुचिर्भव । जीर्णान्युद्धर चैत्यानि बिम्बानि च विधापय ॥१५४॥
आह मन्त्री प्रभो ! विप्रप्रातिभ कज्जलोज्ज्वलम् । जैनवाचयमादेशक्षीरेणैव विलुप्यते ॥१५५॥
इत्थ धर्मोपदेश च प्रदेशमिव सद्गते । तेऽथ प्रणाय भूपाय सययु स्वाश्रय तदा ॥१५६॥
सर्वोपद्रवनिर्नाशी 'भक्तामर' महास्तव. । तदा तैर्विहित ख्यातो वर्त्ततेऽद्यापि भूतले ॥१५७॥
कदापि कर्मवैचित्र्यात् तेषा चित्ररुजाभवत् । कर्मणा पीडिता यस्मात् शलाकापुरुषा अपि ॥१५८॥
धरणेन्द्रस्सूनेरायात पृष्टोऽनशनहेतवे । अवादीदायुरद्यापि स तत्स्ह्रियते कथम् ॥१५९॥
यतो भवादृशामायुर्बहुलोकोपकारकम् । अष्टादशाक्षर मन्त्र ततस्तेषां समार्पयत् ॥१६०॥
ह्रियते स्मृतियोगेन रोगादि नवधा भयम् । अन्तर्दधौ तत श्रीमान् धरणो धरणीतलम् ॥१६१॥
ततस्तदनुसारेण स्तवन विदधे प्रभु । ख्यात 'भयहर' नाम तदद्यापि प्रवर्त्तते ॥१६२॥
हेमन्तशतपत्रश्रीर्देहोऽस्ताघमहोनिधि । सूरेग्जनि तस्याहो सुलभ तादृशा ह्यद ॥१६३॥ युग्मम् ।
साय प्रात पठेदेतत् स्तवन य. शुभाशय । उपसर्गा व्रजन्त्यस्य विविधा अपि दूरत ॥१६४॥
मानतुङ्गप्रभु श्रीमानुद्योत जिनशासने । अनेकधा विधायैव शिष्यान्निष्पाद्य सन्मतीन् ॥१६५॥
द्वेधा गुणाकर शिष्य पदे स्वीये निवेश्य च । इङ्गिनीमथ सप्राप्याऽनशनी दिवमभ्यगात् ॥१६६॥

इत्थ श्रीमानतुङ्गप्रभुचरितमतिस्थैर्यकृज्जैनधर्म-
प्रासादस्तम्भरूप सुकृतभरमहापट्टविष्टम्भहेतु ।
श्रुत्वा कुत्राऽपि किञ्चित् गदितमिह मया सप्रदाय च लब्ध्वा,
शोध्य मेधाप्रधानै सुनिपुणमतिभिस्तच्च नोत्प्रासनीयम् ॥१६७॥

श्रीचन्द्रप्रभसूरिपट्टसरसीहसप्रभ श्रीप्रभा-चन्द्र सूरिरनेन चेतसि कृते श्रीरामलक्ष्मीभुवा ।
श्रीपूर्वर्षिचरित्ररोहणगिरौ श्रीमानतुङ्गाद्भुत, श्रीप्रद्युम्नमुनीन्दुना विशदित शृङ्गोऽभवत् द्वादश ॥१६८॥"

इति ॥१०४॥

अथ युगप्रधानपरम्परायां श्रीरेवतीमित्रसूरेरनुजातं युगप्रधानं वाचनाचार्यमपि तदन्वेव वाचनाद्वयाऽपेक्षयाऽपि भूतं श्रीसिंहसूरिं विवदिषुः पथ्यापूर्विकादिचपलार्या-पथ्यार्यारूपगाथा-द्वयमाह--

चउवीसमो जुगवरो स वायणायरिअसिहसूरिवरो । ।
जम्मोऽस्सऽद्दे वीरा हरवाहुतुरंगम^(७१०)पमाणे ॥१०५॥
(पच्छापुव्विगाइचवलाज्जा)

गेराहीअ संजमं सो आयारपकप्पवाह^(७२८)संखेऽद्दे ।
मंगलुवायहये^(७४८)जुगवरो गओ खं रसकरगये^(८२६)॥१०६॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "चउवीसमो" इत्यादि, "स" त्ति, सः "वायणायरिअसिह रिवरो" त्ति, वाचनाचार्यः=वाचनाया दायकः, माथुरवाचनाऽनुगमिश्रीनन्दीसूत्रोक्तवाचकपरम्परायां

(प्रे०) "अज्जं" इत्यादि, "त" ति, त "माणदेव" मानदेवं=मानदेवाऽभिधं सूरिं किं भूतम्? "अज्जं" ति, आद्य=प्रथमं मानदेवसञ्ज्ञकानामाचार्याणां वीरपट्टभृता त्रय त्वात्, वक्ष्यमाणद्वयाऽपेक्षयाऽस्यैवादिमत्वात्, यद्वा "अज्जं" ति, आर्यं=श्रेष्ठ पुनरपि किं विशिष्टम्? "गुणगणनिलयं" ति गुणाना=सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिलक्षणानां गणः=समुदायस्तस्य निलयम्=आवासम्, गुणगणनिलयम्=अपूर्वज्ञान-निर्मलदर्शना-ऽखण्डचारित्र-तप-स्त्याग-प्रतिभादिगुणवर्गस्य निवासस्थानभूतं 'पासिऊणं" ति, दृष्ट्वा=अवलोक्य "इयरपइवर" ति, इतरोऽन्यः स चासौ पतिः=स्वामी इतरपतिस्तस्य 'वृञ् वरणे' इति क्र्यादिः 'वृञ् वरणे' इति स्वादिः, तथा चुरादिगणाऽन्तर्गतयुजादिगणस्थः 'वृञ् आवरणे" इत्यपि वृधातोः वरणं वरः "युवर्ण-वृ-द वश-रण-गमृद्ग्रह (सि० ५-३-२८) इत्यनेन भावेऽल्प्रत्ययः स च पुंल्लिङ्गे, यतो लिङ्गानुशासनस्य प्रथमश्लोक एवाल्प्रत्ययान्तस्य पुंल्लिङ्गविधानं दर्शितम् तथा च तद्ग्रन्थः—"पुंल्लिङ्ग कटणथपभमयरषसस्त्वन्तमिमनलौ किश्विव्।" इति। इतरपतिवरस्तम् इतरपतिवरं "णेच्छंती" त्ति, नेच्छन्ती, "सूरिपज्जोयण" त्ति, सूरिः=आचार्यः, स चाऽसौ प्रद्योतनः=तन्नामा सूरिप्रद्योतनस्तस्य सूरिप्रद्योतनस्य "पट्टकण्णा" त्ति, पट्ट एव कन्या पट्टकन्या 'वरीअ" त्ति, अवृत=तं मानदेवसूरिमवरीष्ट। आचार्यश्रीप्रद्योतनसूरिपट्टभृदिति भावः।

तथा चोक्त गुर्वावल्याम्—"प्रद्योतन सूरिरभूत् पदेऽस्य ततोऽपि चासीद् गुरुमानदेव।" इति।

"से" त्ति, अस्य=श्रीमानदेवसूरेः "पयविहिसमये" त्ति पदस्य=सूरिपदस्य=गच्छनायकपदस्य वाऽधिकारविशेषरूपस्य विधानं विधिः=करणं पदविधिः=पदकरणं पदप्रदानमित्यर्थः, तस्याः समये=अवसरे पदविधिसमये "अ प्पि" ति 'से" त्ति, पदं पुनरप्यत्र सम्बध्यते ततस्तस्य श्रीमानदेवसूरेरंशयोरंसयोर्वा=स्कन्धयोरुपरि=अंशोपरि अंसोपरि वा स्कन्धोपरिष्टात् "बंभिलच्छी" त्ति, ब्राह्मी=सरस्वती, लक्ष्मीः=श्रीः ब्राह्मी च लक्ष्मीश्च ब्राह्मीलक्ष्म्यौ 'विक्खि" त्ति, वीक्ष्य=दृष्ट्वा पुनरपि तृतीयवारं "से" इति पदं घण्टालालान्यायेनाऽत्राऽपि सम्बध्यते ततः "से" त्ति, अस्य=मम पट्टभृतो मानदेवसूरेः "भाविभंसो" त्ति, भाविनि=भविष्यति काले भ्रंशो=व्रतखण्डनम्, यद्वा भावी=भविष्यत्कालसम्बन्धी च चासौ भ्रंशो=भाविभ्रंशः, "एवं" ति, एवम्=अनेन प्रकारेण विचारेण "खिण्ण" ति, खिन्नं=विषादीभूतचित्तं "गुरु" ति, गुरुं=श्रीप्रद्योतनाख्यसूरिं निजगुरुं "कलिअ" त्ति कलित्वा = ज्ञात्वा "जो" त्ति, यः=श्रीमानदेवसूरिः "छ विगई" त्ति, षट्संख्याका विकृतीः= घृत-पक्वान्न-तैल-गुड-दधि-दुग्धाख्यास्तथा "भत्तभिक्खं" ति, भक्तानां=भक्तौ तत्पराणां जनानां भिक्षा=विशिष्ट-मिष्टान्नादिदानरूपा भक्तभिक्षा तां भक्तभिक्षां "चयीअ" त्ति, अत्यजत्=त्यागविषय्यकरोत्।

तथा चोक्तं गुर्वावल्याम्—

तन्मया भवतामेवोपदेशः संविधीयते । अतः परं कटुद्रव्यं त्यक्त्वा स्वाद्यं हि गृह्यते ॥१५२॥
तत आदेशपीयूषपोषात्तृप्तं कुरुष्व माम् । राज्ञो वाचमिति श्रुत्वा सूरिः प्रण्यगदद्गिरम् ॥१५३॥
दीनपात्रौचितीभेदात् त्रिधा दानरुचिर्भव । जीर्णान्युद्धर चैत्यानि बिम्बानि च विधापय ॥१५४॥
आह मन्त्री प्रभो ! विप्रप्रातिभं कज्जलोज्ज्वलम् । जैनवाचयमादेशक्षीरेणैव विलुप्यते ॥१५५॥
इत्थं धर्मोपदेशं च प्रदेशमिव सद्गतेः । तेऽथ प्रदाय भूपाय सययुः स्वाश्रयं तदा ॥१५६॥
सर्वोपद्रवनिर्नाशी 'भक्तामर' महास्तवः । तदा तैर्विहितः ख्यातो वर्त्ततेऽद्यापि भूतले ॥१५७॥
कदापि कर्मवैचित्र्यात् तेषां चित्ररुजाभवत् । कर्मणा पीडिता यस्मात् शलाकापुरुषा अपि ॥१५८॥
धरणेन्द्रस्मृतेरायातः पृष्टोऽनशनहेतवे । अवादीदायुरद्यापि स तत्स्म्हियते कथम् ॥१५९॥
यतो भवादृशामायुर्बहुलोकोपकारकम् । अष्टादशाक्षरं मन्त्रं ततस्तेषां समार्पयत् ॥१६०॥
ह्रियते स्मृतियोगेन रोगादि नवधा भयम् । अन्तर्धयौ ततः श्रीमान् धरणो धरणीतलम् ॥१६१॥
ततस्तदनुसारेण स्तवनं विदधे प्रभुः । ख्यातं 'भयहर' नाम तदद्यापि प्रवर्त्तते ॥१६२॥
हेमन्तशतपत्रश्रीर्देहोऽस्ताघमहोनिधिः । सूरेर्जनि तस्याहो सुलभं तादृशा ह्यदः ॥१६३॥ युग्मम् ।
सायं प्रातः पठेदेतत् स्तवनं यः शुभाशयः । उपसर्गा व्रजन्त्यस्य विविधा अपि दूरतः ॥१६४॥
मानतुङ्गप्रभुः श्रीमानुद्योतं जिनशासने । अनेकधा विधायैवं शिष्यान्निष्पाद्य सन्मतीन् ॥१६५॥
द्वेधा **गुणाकरं** शिष्यं पदे स्वीये निवेश्य च । इङ्गिनीमथ संप्राप्याऽनशनी दिवमभ्यगात् ॥१६६॥

इत्थं श्रीमानतुङ्गप्रभुचरितमतिस्थैर्यकृज्जैनधर्म-
प्रासादस्तम्भरूपं सुकृतभरमहापट्टविष्टम्भहेतु ।
श्रुत्वा कुत्राऽपि किञ्चित् गदितमिह मया सम्प्रदायं च लब्ध्वा,
शोध्यं मेधाप्रधानैः सुनिपुणमतिभिस्तच्च नोत्प्रासनीयम् ॥१६७॥

श्रीचन्द्रप्रभसूरिपट्टसरसीहंसप्रभः श्रीप्रभा-चन्द्रः सूरिरनेन चेतसि कृते श्रीरामलक्ष्मीभुवा ।
श्रीपूर्वर्षिचरित्ररोहणगिरौ श्रीमानतुङ्गाद्भुतः, श्रीप्रद्युम्नमुनीन्दुना विशदितः शृङ्गोऽभवत् द्वादशः ॥१६८॥"

इति ॥१०४॥

अथ युगप्रधानपरम्परायां श्रीरेवतीमित्रसूरेरनुजातं युगप्रधानं वाचनाचार्यमपि तदन्वेव वाचनाद्वयाऽपेक्षयाऽपि भूतं श्रीसिंहसूरिं विवदिषुः पथ्यापूर्विकादिचपलार्या-पथ्यार्यारूपगाथा-द्वयमाह--

चउवीसमो जुगवरो स वायणायरिअसिंहसूरिवरो । ।
जम्मोऽस्सऽद्दे वीरा हरबाहुतुरंगम७१०पमाणे ॥१०५॥

(पच्छापुव्विगाइचवलाज्जा)

गेराहीअ संजमं सो आयारपकप्पवाह७२८संखेऽद्दे ।
मंगलुवायहये७४८जुगवरो गओ खं रसकरगये८२६॥१०६॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "**चउवीसमो**" इत्यादि, "**स**" त्ति, सः "**वायणायरिअसिंह रिवरो**" त्ति, वाचनाचार्यः=वाचनाया दायकः, माथुरवाचनाऽनुगमिश्रीनन्दीसूत्रोक्तवाचकपरम्परायां

प्रेषितः स च तत्र शीघ्रमागतोऽज्ञातसूरिप्रभावः पद्मादिभिर्देवीभिः सेव्यमानं तं सूरिपुङ्गवमालोक्य "ईदृक्चारित्री किमुपद्रवं शमयति, आगतं मां ज्ञात्वा कपटध्यानं चक्रे" इत्येवं चिन्तयन् संदिग्धचेता गुरुणा ध्याने पारिते सावज्ञं गुरुमानमत्। ज्ञाततत्स्वरूपाभिस्ताभिरेव देवीभिस्ताडित्वा बद्धः, कृपानिधिगुरुगिरा मुक्तः। "यत्रैवंविधाः शङ्काशीलाः श्राद्धा वसन्ति तत्र पूज्यैर्नैव गन्तव्यम्" इति देवीभिर्निषिद्धाः पूज्यपादास्तत्र स्थिता एव तत्सङ्घस्य शान्त्यर्थं "शान्तिं शान्तिनिशान्तम्" इति विजयादिदेवीमन्त्रगर्भितं लघुशान्तिस्तवं विधाय तेन सार्द्धं प्रेषयित्वा मारिरोगं न्यवारयत्। तदारभ्याऽद्याऽवधि स स्तवः सङ्घे प्रवर्तते।

तथा चोक्तं गुर्वावल्याम्—

"पद्मा जया च विजयामपराजिता च, साक्षाद्यदंह्रिसमुपास्तिपरा निरीक्ष्य।
नारीवृतोऽयमितिनिर्मितदुर्विकल्पं, कञ्चिद् नरं लघुविमुग्धमशिक्षयस्ताः ॥३२॥" इति।

तथैव श्रीहीरसौभाग्येऽपि—

"चभूमिरुर्वीन्द्रमिवामरीभि-रुपास्यमानं यमवेक्ष्य कश्चित्।
किं स्त्रीयुतोऽसावतिसंशयानो, नड्डूलकेऽशिक्ष्यत ताभिरेव ॥७४॥" इति।

एवं श्रीप्रभावकचरितादिष्वपि।

"**णड्डूलक्खपुरत्थिओ वि**" त्ति, नड्डूलाख्ये नड्डूलनाम्नि पुरे=नगरे स्थितः=उषितः=नड्डूलाख्यपुरस्थितोऽपि "**जो**" त्ति, यः=श्रीमानदेवसूरिः "**सरये**" त्ति, शरदि=शरदृतौ उपलक्षणाच्चातुर्मास्यां "**सागभरिपट्टणुत्थमरयं**" ति, शाकम्भरीनाम्नि पट्टणे=नगरे उत्थः=उत्पन्नो मरको=मारिरोगस्तं शाकम्भरिपट्टणोत्थमरकं "**तत्थुल्लसड्ढत्थणा**" त्ति, तत्रत्याः=तत्र भवाः श्राद्धाः=श्रावकाः तत्रत्याश्च ते श्राद्धाः तत्रत्यश्राद्धास्तेषामर्थनात्=प्रार्थनात् याञ्चायाः तत्रत्यश्राद्धार्थनात् "**सतिथवा**" त्ति शान्तिस्तवात्=शान्तिनाम्नः स्तोत्रात् "**वारीअ**" त्ति, अवारयत्=निराकरोत्। **तथा चोक्तं गुर्वावल्याम्—**

"वर्षासु नड्डूलपुरस्थितोऽपि, शाकम्भरीनाम्नि पुरे प्रभूताम्।
तदागतश्राद्धगणार्थनात, शान्तिस्तवाद् मारिमपाहरद्य ॥३३॥" इति।

तथैव श्रीगुरुपर्वक्रमेऽपि। तथा च तद्ग्रन्थः—

"पद्माजयादिदेवीभि-र्नतो नड्डूलपूःस्थितः।
शाकम्भरीपुरे मारिं, जह्रे शान्तिस्तवाच्च यः ॥१२॥" इति।

तथा चाऽत्र प्रभावकचरितम्—

"सूरेः श्रीमानदेवस्य प्रभावाम्भोनिधिर्नव। सदा यत्क्रमसेविन्यौ ते जयाविजये श्रियौ ॥१॥
निर्वृतिं यत्क्रमाम्भोजगुणानुचरणाद् दधुः। गतिं मनोहरां हंसा मानदेवः स वः श्रिये ॥२॥

"घोसणंदिपट्टहरो" त्ति, घोपनन्देः=पूर्वविच्छिन्नश्रीवाचनाचार्यशिष्यस्य घोपनन्दिनाम्नः सूरेरेकादशाङ्गविदः पट्टधरः=पट्टभृत् घोपनन्दिपट्टधरः=श्रीघोपनन्दिसूरेः शिष्यः पट्टधारकश्च ।

अमुष्य वाचनागुरुस्तु वाचकमुण्डपादस्य विनेयः पट्टभृच्च वाचनाचार्यो मूलनामा समस्ति ।

तथा चोक्तं तत्त्वार्थाधिगमसूत्रप्रशस्तौ–

"वाचकमुख्यस्य शिवश्रिय प्रकाशयशस प्रशिष्येण । शिष्येण घोपनन्दिक्षमणस्यैकादशाङ्गविद. ॥१॥
वाचनया च महावाचकक्षमणमुण्डपादशिष्यस्य । शिष्येण वाचकाचार्यमूलनाम्न प्रथितकीर्ते ॥२॥"

इत्यादि ॥१०७॥

एतर्हि श्रीचरमतीर्थस्थापकस्य प्रभोरेकविंशतितमं पट्टं बिभ्रतः श्रीवीरसूरेर्विवक्षयाऽनुष्टुब्द्विकमाह—

मउलिव्व वरेणगंगं विभूसीअ पइंदिरं ।
माणतुंगक्खसूरिस्स वीरसूरी गणीसरो ॥१०८॥ (अणुट्ठुभं)
पइट्ठं णमिपासाए णागपुरे करीअ जो ।
वीरा सुरद्धपायाल-क्खेत्त-ऽद्दे किंचिसाहिए ॥१०९॥(अणुट्ठुभं)

(प्रे०) "मउलिव्व" इत्यादि, "वीरसूरी" त्ति, वीरसूरिः=वीरनामाऽऽचार्यः, कीदृक् ? 'गणीसरो' त्ति, गणेश्वरः=गच्छनायकः "माणतुंगक्खसूरिस्स" त्ति, मानतुङ्गाख्यसूरेः "पइंदिरं" ति, पदं=पट्टः तदेव इन्दिरा=लक्ष्मीः पदेन्दिरा तां पदेन्दिराम् "विभूसीअ" त्ति, व्यभूषयत् । क इव ? "मउलिव्व" त्ति मौलिवत्=मुगुटवत् यथा मौलिः "वरेणगं" ति, वरेण्यं=प्रधानं तच्च तदङ्गं वरेण्याङ्गं तद्=वरेण्याङ्गं=मस्तकं विभूषयति ।

अथ द्वितीयश्लोकः–"पइट्ठं" इत्यादि, "जो" त्ति, यः=श्रीवीराचार्यः "वीरा" त्ति, वीरात्=वीरमोक्षतः "सुरद्धपायालक्खेत्तऽद्दे" त्ति, सुराध्वा=गगनं=शून्यम् , पातालानि सप्त, क्षेत्राणि अर्हद्बिम्बादीनि सप्त, एतैरङ्कैर्वामगत्या७७०इति सङ्ख्या यत्राब्दे स सुराध्वपातालक्षेत्रः, स चासावब्दः सुराध्वपातालक्षेत्रस्तस्मिन् सुराध्वपातालक्षेत्रे=वीरसंवत्७७० शारदे "किंचिसाहिए" त्ति किंचित्साधिके वर्षैर्मासैर्वेत्यध्याहारः, "णागपुरे" त्ति, नागपुरे=नागपुरनाम्नि नगरे "णमिपासाए" त्ति, नमेः=नमिनाथविभोः प्रसादे=मन्दिरे "पइट्ठं" ति, प्रतिष्ठां=जिनबिम्बस्थापनां "करीअ" त्ति, अकरोत् । **तथा चोदितम्–**

"नागपुरे नमिभवनप्रतिष्ठया महितपाणिसौभाग्य ।अभवद्वीराचार्यस्त्रिभि शतै. साधिकै राज्ञ ॥" इति ।

अत परं तृतीयेऽत्र वर्षे भङ्गो भविष्यति । तुरुष्कविहित ... कृत्यं ...चितम ॥३९॥
परमेकमुपायं व कथयिष्यामि वस्तुन । शृणुताऽवहिता सन्त ... यथा भवेन ॥४०॥
ततस्तेनाशिवे क्षीणे मुक्त्वा पुरमिद तन । अन्यान्यनगरेष्वेव गन्तव्य वचसा मम ॥४१॥
श्रुत्वा च किञ्चिदाश्वासवन्तस्ते पुनरभ्यधु । समादिश महादेवि । कोऽन्यो न परिरक्षिता ॥४२॥
देवी प्राहाथ नड्डूले मानदेवाख्यया गुरु । श्रीमानस्ति तमानाय्य तत्पादक्षालनोदकं ॥४३॥
आवासानभिषिञ्चध्व यथा शाम्यति डामरम । एवमुक्त्वा तिरोधत्त श्रीमच्छासनदेवता ॥४४॥
श्रावक वीरदत्त ते प्रैषुर्नड्डूलपत्तने । विज्ञप्तिका गृहीत्वा च स तत्र क्षीप्रमागमत ॥४५॥
भूप्र (प्रभू) णामाश्रय दृष्ट्वा व्यधान्नैषेधिकीं तदा । मध्याह्ने सूरिपादाश्च मध्येऽपवरक स्थिता ॥४६॥
उपाविशन् शुभे स्थाने स्थाने सद्ब्रह्मसंविदाम् । पर्यङ्कासनमासीना नासाप्रन्यस्तदृष्टय ॥४७॥ युग्मम ।
समाना कृच्छ्रकल्याणे तृणे मणौ स्त्रैणे मृदि । तेषः प्राप्ते प्रणामाय देव्यौ श्रीविजया-जये ॥४८॥
कोणान्तरुपविष्टे च ते दृष्ट्वा सरल स च । निमग्नात्मा तमस्तोमे दध्यौ चिन्ताविपन्नधी ॥४९॥
ध्रुव प्रतारिकाऽस्माक साऽपि शासनदेवता । ययैतावन्तमध्वान प्रेष्याह क्लेशितो ध्रुवम् ॥५०॥
आचार्योऽयं हि राजर्षिमध्येदिव्याङ्गन स्थित । अहो चारित्रमस्यास्ति शाम्येदस्मादुपद्रव ॥५१॥
मामायान्त च विज्ञाय ध्यानव्याजमिद दधौ । क एव नहि जानीते तस्मादासे क्षण वहि ॥५२॥
ध्याने च पारिते मुष्टिं बद्ध्वासावृजुधार्मिक । प्राविशद् द्वारमध्ये च सावज्ञ गुरुमानमत् ॥५३॥
विज्ञाय चेङ्गितैर्देव्यौ तस्याविप्रतिपन्नताम् । अदृष्टैर्बन्धसम्बन्धैस्त निपात्य ववन्धतु ॥५४॥
आरटन्त च त तारस्वर दृष्टानुकम्पया । प्रभुर्विमोचयामास तदज्ञानप्रकाशनात् ॥५५॥
जयाह रे महापाप । शापयोग्य क्रियाधम । प्रभो श्रीमानदेवस्य चारित्रस्य शरीरिण ॥५६॥
एव विकल्पमाधत्से श्रावकव्यसको भवान् । पु शाप । नाकिचिह्नानामनभिज्ञाज्ञशेखर ॥५७॥ युग्मम् ।
ईक्षस्यानिमिषे दृष्टी चरणावक्षितिस्पृशौ । पुष्पमाला न च म्लाना देव्यावावां न लक्षसे ॥५८॥
प्रागेव मुष्टिघातेन प्रैषयिष्ये यमालयम् । जैनश्रद्धालुदम्भेनाहमपि च्छलिता त्वया ॥५९॥
प्रभोरादेश एव त्वज्जीवने हेतुरग्रिम । पर पातकभू कस्मादीदृशस्त्व समागत ॥६०॥
मुष्टिर्बद्धो लभेताऽत्र लक्षमित्यभिसन्धित । बद्धमुष्टिर्भवानागात् तादृगेव प्रयातु तत् ॥६१॥
स प्राह श्रूयता देव्यौ श्रीसघ प्रजिधाय माम् । पुर्यास्तक्षशिलाख्यायाः शासनेशोपदेशत ॥६२॥
अशिवोपशमार्थं श्रीमानदेवस्य सुप्रभो । आह्वानायाथ मूर्खत्वान्ममैवाशिवमाययौ ॥६३॥
उवाच विजया तत्राशिव किमिव नो भवेत् । तत्र युष्मादृश श्राद्धा दर्शनच्छिद्रवीक्षका ॥६४॥
वराक । न विजानासि प्रभाव त्वममुष्य भो । मेघा वर्षन्ति शस्याना निष्पत्तिश्चाऽस्य सत्त्वत ॥६५॥
श्रीशान्तिनाथतीर्थेशासेविनी शान्तिदेवता । सा मूर्तिद्वितय कृत्वाऽस्मद्व्याजाद् वन्दते ह्यमुम् ॥६६॥
विजयाह त्वयैकेन श्रावकेण ससमदा । प्रहिणोमि कथं पूज्यानकर्णहृदया किमु ॥६७॥
बहवस्त्वादृशाः सन्ति यत्रेदृग्धार्मिकोत्तमा । कथ भवेत्पुनर्दृश्य प्रहितस्तत्र नो गुरु ॥६८॥
सूरय प्राहुरादेश सघस्याधेय एव न । अशिवोपशम कार्यस्तदत्रस्थैर्विधास्यते ॥६९॥
वय तु नागमिष्यामोऽत्रत्यसघानतुज्ञया । सघमुख्ये इमे देव्यौ तयोरनुमतिर्न च ॥७०॥
अमूभ्यामुपदिष्टो य पुरा कमठजल्पित्त । अस्ति मन्त्राधिराजाख्य श्रीपार्श्वस्य प्रभो क्रम ॥७१॥
श्रीशान्तिनाथपार्श्वस्थप्रभुस्मृतिपवित्रितम् । गर्भित तेन मन्त्रेण सर्वाशिवनिषेधिना ॥७२॥
श्रीशान्तिस्तवनामिख्य गृहीत्वा स्तवन वरम् । स्वस्थो गच्छ निज स्थानमशिव प्रशमिष्यति ॥७३॥
त्रिभिर्विशेषकम् ।

नायाः कर्ता=विधाता **तथाहि**–दुष्पमकालानुभावेन महति द्वादशवार्षिके दुर्भिक्षे साधूनां श्रुतपरावर्तनाद्यभावे नाऽतिशायि प्रभूतं श्रुतं व्यनेशत्। ततः सुभिक्षे जाते मथुरानगर्यां स्कन्दिलाचार्यप्रमुखश्रमणसङ्घे नैकत्र मिलित्वा यो यत्स्मरति स तत्कथयतीत्येवं कालिकश्रुतं पूर्वगतञ्च किञ्चिदनुसन्धाय घटितम्। तत्र श्रीस्कन्दिलसूरेः प्राधान्यात्तस्या विधातृत्वेन स एवोच्यते। अन्ये पुनरेवं वदन्ति–न तदानीं किमपि श्रुतं विनष्टम्, किन्तु श्रीस्कन्दिलाचार्यं विना न केऽप्यन्येऽनुयोगधरा आसीरन्, अन्येषामनुयोगधराणां दुर्भिक्षकालेन कवलीकृतत्वात्। ततो द्व्यपेक्षयाऽप्यधुना वर्तमानोऽखिलोऽप्यनुयोगस्तत्सत्क उच्यते, इदमेव दर्शयन्नाह–"**जस्स इमो अणुओगो पयरइ अड्ढभरहेऽज्जा वि** ॥' इति। यस्य=श्रीस्कन्दिलसूरेरयमनुयोगोऽर्धभरते=वैताढ्यादर्वाग्वर्तिनि दक्षिणार्धभरतक्षेत्रेऽद्यापि प्रचरति=व्याप्रियते।

तथा चोक्तं श्रीहिमवदाचार्यकृतस्थविरावल्याम्–

'जेसि इमो अणुओगो पयरइ महुराओ(अज्जावि)अड्ढभरहम्मि। बहुनयरनिग्गयजसे ते वंदे खंदिलायरिए ॥६॥'इति।

तथैव श्रीनन्दिसूत्रेऽपि–

"जेसिं इमो अणुओगो पयरइ अज्जावि अड्ढभरहम्मि बहुनयरनिग्गयजसे ते वंदे खंदिलायरिए। ३३॥"इति।

तथा चाऽत्र श्रीहरिभद्रसूरिकृता व्याख्या–

"जेसि०" गाहा। व्याख्या–येषामयमनुयोग प्रचरत्यद्याप्यर्द्धभरते वैताढ्यादारत बहुनगरेषु निर्गत-प्रसिद्ध यशो येषा ते बहुनगरनिर्गतयशसस्तान् वन्दे सिंहवाचकशिष्यान स्कन्दिलाचार्यान्। कह पुण तेसिं अणुओगो ?, उच्यते-बारससवच्छरिए महते दुब्भिक्खे काले भत्तट्ठा फिडियाणं गहणगुणणाणुप्पेहाभावतो सुत्ते विप्पणट्ठे पुणो सुभिक्खे काले जाते महुराए महते समुदए एव खंदिलायरियप्पमुहसघेण 'जो ज सभरइ' त्ति एवं सघडित कालिय सुय, जम्हा एय महुराते कय तम्हा माहुरा वायणा भण्णति, सा य खदिलायरियसम्मत त्ति काउ तस्संतिओ अणुओगो भण्णति। अन्ने भणति, जहा सुय णो णट्ठ, तम्मि दुब्भिक्खकाले जे अन्ने पहाणा अणुओगधरा ते विणट्ठा एगे खडिलायरिए सठिरे तेण महुराए पुणो अणुओगो पवत्तिओ त्ति, माहुरा वायणा भन्नइ, तस्सतिओ य अणुओगो भन्नइ ॥" इति।

तथैव श्रीजिनदासगणिमहत्तरकृतचूर्णि–श्रीमलयगिरिपादनिर्मितवृत्त्योरपि दर्शितम्।

इयञ्च चतुरनुयोगविभजनरूपचतुर्थ्यागमवाचनाऽपेक्षया पञ्चमी माथुर्यागमवाचना विज्ञेया।

आर्यस्कन्दिलसूरेः किञ्चिद्वृत्तान्तः श्रीहिमवदाचार्यकृतस्थविरावल्यामित्थम्–

"उत्तरमथुरायां मेघरथाभिध परम श्रमणोपासको जिनाज्ञाप्रतिपालको द्विजोऽभवत्। तस्य रूपसेना-ऽभिधा सुशीला भार्याऽऽसीत्। तयो सोमरथाभिध सोमस्वप्नसूचित सुतो बभूव। अथैकदा ते ब्रह्मद्वीपिकशाखोपलक्षिता सिंहाचार्या विहार कुर्वन्त क्रमेणोत्तरमथुरोद्याने समागताः। तेषा धर्मदेशना निशम्य प्राप्तवैराग्येण सोमरथेन चारित्र गृहीतम्। इतोऽनीव भयकरो द्वादशाब्दिको दुष्कालो भरतार्द्धे सजात। अतोऽर्हन्मार्गानुसारिण केचन भिक्षवो भिक्षामलभमाना गृहीतानशना वैभार-कुमारगिर्यादिषु सलेखनया स्वर्जग्मु। पूर्वसकलितान्येकादशाङ्गानि जिनप्रवचनाधारभूतानि नष्टप्रायाणि सजानि।

जिनकमलानि=अर्हद्विहरणकाले देवकृतसुवर्णमयानि पद्मानि नव, अवस्थाः=बाल-युवान-वृद्ध-रूपास्त्रयः, अलिपदाः षट्, चरणवाची पदशब्दः पुंल्लिङ्गोऽपि वर्तते ।

यदुक्तममरकोशे द्वितीयकाण्डे षोडशे वर्गे△"पदोङ्घ्रिश्चरणोऽस्त्रियाम्॥७१॥"इति ।

तथैव श्रीहैमलिङ्गानुशासने नपुंसकलिङ्गप्रकरणे एकोनविंशतितमश्लोकवृत्तौ–

"पदम्-'त्राण'ऽङ्कव्यवसायेषु पादतच्चिह्नयोरपि । वस्तुस्थानाऽपदेशेषु पदं स्याद्वाक्यशब्दयोः'॥ 'पादे तु पुंस्यपि' "इति ।

एतेषामङ्कानां वामगत्या मीलितानामेकोनचत्वारिंशदधिकषट्शत६३९सङ्ख्या यत्र तत्र जिनकमलावस्थाऽलिपदसङ्ख्ये=वीरसंवत्६३९वर्षे **'जणी'** त्ति, जनिः=उद्भवो-ऽभूत्, **"स"** त्ति, सः=श्रीरेवतीमित्रसूरिः **'णोकसायमहजागवइरकोणमिए"** त्ति, नोकषाया=हास्य-रत्य-रति शोक-भय-कुच्छा-स्त्री-पुरुष-नपुंसकरूपा नव, महायागाः=महा-यज्ञाः ब्रह्म देव-पितृ-नृ-भूतसंज्ञकाः पञ्च, वज्रकोणाः षट्, एतैरङ्कैः प्रातिलोम्येनैकोनषष्ट्य-धिकशतषट्क६५९सङ्ख्यया मिते नोकषायमहायागवज्रकोणमिते=वीरसंवत्६५९संवत्सरे **"दिक्ख"**ति दीक्षां=सर्वविरतिसंयमं **"गेण्हीअ"**त्ति जग्राह । **'खगिहरसे'**त्ति, खगे भ-रसाः नवा-ऽष्ट-षडङ्करूपा यत्र तत्र खगेभरसे पश्चानुपूर्विक्रमस्थापिते=वीरसंवत्६८९हायने **'जुग-पवरो'** त्ति, युगप्रवरः=युगप्रधानो बभूव । **'णगलोगपालणये'** त्ति नगा =कुलपर्वता अष्टौ, लोकपालाः=सोम-यम-वरुण कुबेरनामानश्चत्वारः, नयाः = नैगम-सङ्ग्रह-व्यवहार-ऋजुसूत्र-शब्द-समभिरूढै-वम्भूताख्याः सप्त, एतेऽङ्का विपरीतक्रमोदिता ७४८ इति सङ्ख्या यस्य तादृशे नगलोकपालनये = वीरसंवत् ७४८ तमेऽब्दे **"खमिओ"** त्ति, खं=सुरधाम इतः=गतः ।

इत्थञ्चाऽसौ विंशतिर२०वर्षाणि गृहवासपर्याये, त्रिंशद्३०वर्षाणि सामान्यसाधुव्रते, एकोनषष्टि५९वर्षाणि युगप्रधानत्वे चेति सर्वायुश्च नवोत्तरशत १०९ वर्षाणि परिपाल्य शिव-पुराऽध्वविश्रामस्थानेऽमरलोके विशश्रम ॥१०१-१०२॥

सम्प्रति श्रीज्ञातसुतस्य चरमतीर्थनाथस्य विंशे पट्टे जातस्य श्रीमानतुङ्गसूरेः श्लोक-द्वयेन निरूरूपयिषयाऽऽदौ तावत्स्रग्धरां भणति—

""पन्न्यासश्रीकल्याणविजयाना वालभवाचनाऽनुसारिण'ऽभिप्रायेणाऽस्य वाचनाचार्यकाल उप-लक्षणतश्च युगप्रधानकालो वीरसंवत् ६८८ त ७४७ वर्ष यावत्प्ररूपितस्तेन श्रीरेवतीमित्रसूरेर्युगप्रधानत्व स्वर्गगमनञ्च क्रमेण वीरसंवत् ६८८-७४७वर्षे भवति स्म ।△"पदङ्घ्रिश्चरणोऽस्त्रियाम्'इत्यपि पाठान्तरम् ।

वाचकपरम्परायां श्रीस्कन्दिलसूरेः पश्चाद्वाचनाचार्यः **'विक्कंतबहुपएसो'** त्ति, विक्रान्त=विहारक्रमेण व्याप्तो बहुप्रदेशः=प्रभूतक्षेत्रं येन स विक्रान्तबहुप्रदेशः=अनेकदेशेषु कृतविहारः **"कालिअ अधारगो"** त्ति, कालिकश्रुतधारकः=कालिकश्रुतानुयोगनिपुणः **"धीरो"** त्ति, धीरः=धृतिबलवान् । **तथा चोक्तं नन्दीसूत्रे–**

"तत्तो हिमवतमहंतविक्कमे धिइपरक्कममणते । सज्झायमणतधरे हिमवंते वंदिमो सिरसा ॥३४॥
कालियसुयअणुओगस्स धारए धारए य पुव्वाण । हिमवतखमासमणे वंदे .. —— ॥३५॥" इति ।

तथा चैभिरेव श्रीहिमवदाचार्यैं रचितस्थविरावल्यपेक्षया श्रीहिमवदाचार्य-पर्यन्तानां स्थविराणां इत्थैवम्––

१. आर्यसुधर्मस्वामिनः, २तत आर्यजम्बूस्वामिनः, ३ तदनु आर्यप्रभवस्वामिनः ४ ततः शयम्भवसूरयः, ५ ततः श्रीयशोभद्रस्वामिनः, ६ ततः श्रीसम्भूतिविजयसूरयः श्रीभद्रबाहु-स्वामिनश्च, ७ ततः सम्भूतसूरेः शिष्याः श्रीस्थूलभद्रस्वामिनः, ८ ततः श्रीआर्यमहागिरय आर्य-सुहस्तिनश्च सञ्जाताः, आर्यसुहस्तिभ्य आर्यसुस्थिता-ऽऽर्यसुप्रतिबुद्धप्रधानाः स्थविरकल्पाःसञ्जाताः, ९ ततः श्री आर्यमहागिरिशिष्याः श्रीबहुलबलिस्सहाः सञ्जाताः; १० ततः श्रीबलिस्सहशिष्याः स्वातिसूरयः, ११ ततः श्रीश्यामाचार्याः, १२ ततः श्रीशाण्डिल्यसूरयः १३ तत आर्यजीतधरा आर्यसमुद्राश्च, १४ तत आर्यसमुद्रशिष्या आर्यमङ्गुसूरयः १५ ततः श्रीआर्यनन्दिलसूरयः, १६ तत आर्यनागहस्तिनः, १७ तत आर्यरेवतीनक्षत्राः १८ तत आर्यसिंहसूरयः, १९ तत आर्य-मधुमित्रा आर्यस्कन्दिलाऽऽचार्याश्च । २० तत आर्यमधुमित्रशिष्या आर्यगन्धहस्तिन आर्यस्कन्दिल-सूरिविनेया आर्यहिमवदाचार्याश्च सञ्जाताः ।

स्थापना त्वेवम्—

१ आर्यश्रीसुधर्मस्वामिन
२ ,, ,, जम्बू ,,
३ ,, ,, प्रभव ,,
४ ,, ,, शयम्भव ,,
५ ,, ,, यशोभद्र ,, ——
↓
६ ,, ,, सम्भूतिसूरय-आर्यभद्रबाहुस्वामिनश्च
७ ,, ,, स्थूलभद्रस्वामिन ——
↓
८ ,, ,, महागिरिपादा आर्यसुहस्तिनश्च
↓
९ ,, ,, बहुला आर्यबलिस्सहाश्च आर्यसुस्थित-सूरय ।
↓
१० ,, ,, स्वातिसूरय

११ आर्यश्यामाचार्या
१२ आर्यशाण्डिल्याचार्या ——
↓
१३ ,, जीतधरा आर्यसमुद्राश्च
१४ आर्यमङ्गुसूरय
१५ आर्यनन्दिलसूरय
१६ आर्यगन्धहस्तिन
१७ आर्यरेवतीनक्षत्रा
१८ —— आर्यसिंहा
↓
१९ आर्यमधुमित्रा· आर्यस्कन्दिलाचार्या
↓ ↓
२० आर्यगन्धहस्तिन· आर्यहिमवदाचार्या

जिनकमलानि=अर्हद्विहरणकाले देवकृतसुवर्णमयानि पद्मानि नव, अवस्थाः=बाल-युवान-वृद्ध-रूपास्त्रयः, अलिपदाः पट्, चरणवाची पदशब्दः पुंल्लिङ्गोऽपि वर्तते ।

यदुक्तममरकोशे द्वितीयकाण्डे षोडशे वर्गे △"पदोङ्घ्रिश्चरणोऽस्त्रियाम्॥७१॥" इति ।

तथैव श्रीहैमलिङ्गानुशासने नपुंसकलिङ्गप्रकरण एकोनविंशतितमश्लोकवृत्तौ–

"पदम्-'त्राण ऽङ्कव्यवसायेषु पादतच्चिह्नयोरपि । वस्तुस्थानाऽपदेशेषु पदं स्याद्वाक्यशब्दयोः'॥ 'पादे तु पुंस्यपि' "इति ।

एतेषामङ्कानां वामगत्या मीलितानामेकोनचत्वारिंशदधिकपट्शत६३९सङ्ख्या यत्र तत्र जिनकमलावस्थाऽलिपदसङ्ख्ये=वीरसंवत्६३९वर्षे **'जणी'** त्ति, जनिः=उद्भवो-ऽभूत्, **"स"** त्ति, सः=श्रीरेवतीमित्रसूरिः **'णोकसायमहजागवइरकोणमिए"** त्ति, नोकषाया=हास्य-रत्य-रति-शोक-भय-कुच्छा-स्त्री-पुरुष-नपुंसकरूपा नव, महायागाः=महा-यज्ञाः ब्रह्म देव-पितृ-नृ-भूतसंज्ञकाः पञ्च, वज्रकोणाः पट्, एतैरङ्कैः प्रातिलोम्येनैकोनपष्ट्य-धिकशतपट्क६५९सङ्ख्यया मिते नोकपायमहायागवज्रकोणमिते=वीरसंवत्६५९संवत्सरे **"दिक्ख"**ति दीक्षां=सर्वविरतिसंयमं **"गेण्हीअ"**त्ति जग्राह । **'खगिहरसे'**त्ति, खगे भ-रसाः नवा-ऽष्ट-षडङ्करूपा यत्र तत्र खगेभरसे पश्चानुपूर्विक्रमस्थापिते=वीरसंवत्६८९हायने **'जुग-पवरो'** त्ति, युगप्रवरः=युगप्रधानो बभूव । **'णगलोगपालणये'** त्ति नगा=कुलपर्वता अष्टौ, लोकपाला=सोम-यम-वरुण कुबेरनामानश्चत्वारः, नयाः=नैगम-सङ्ग्रह-व्यवहार-र्जुसूत्र-शब्द-समभिरूढै-वम्भूताख्याः सप्त, एतेऽङ्का विपरीतक्रमोदिता ७४८ इति सङ्ख्या यस्य तादृशे नगलोकपालनये=वीरसंवत् ७४८ तमेऽब्दे **"खमिआ"** त्ति, खं=सुरधाम इतः=गतः ।

इत्थञ्चाऽसौ विंशति२०वर्षाणि गृहवासपर्याये, त्रिंशद्३०वर्षाणि सामान्यसाधुव्रते, एकोनषष्टि५९वर्षाणि युगप्रधानत्वे चेति सर्वायुश्च नवोत्तरशत १०९ वर्षाणि परिपाल्य शिव-पुराऽध्वविश्रामस्थानेऽमरलोके विशश्रम ॥१०१-१०२॥

सम्प्रति श्रीज्ञातसुतस्य चरमतीर्थनाथस्य विंशे पट्टे जातस्य श्रीमानतुङ्गसूरेः श्लोक-द्वयेन निरूपयिषयाऽऽदौ तावत्स्रग्धरां भणति—

---

[१] पन्न्यासश्रीकल्याणविजयाना वालभवाचनाऽनुसारिणऽभिप्रायेणाऽस्य वाचनाचार्यकाल उप-लक्षणतश्च युगप्रधानकालो वीरसवत ६८८ त' ७४७ वर्ष यावत्प्ररूपितस्तेन श्रीरेवतीमित्रसूरेर्युगप्रधानत्वं स्वर्गगमनञ्च क्रमेण वीरसवत् ६८८-७४७वर्षे भवति स्म । △"पदङ्घ्रिश्चरणोऽस्त्रियाम् 'इत्यपि पाठान्तरम् ।

अथ युगप्रधानपरम्परायां श्रीसिंहसूरेरनु जातस्य पञ्चविंशस्य युगप्रधानस्य तथा वलभी-वाचनाऽनुसारेण तदन्वेव मथुरावाचनामाश्रित्य पुनः श्रीहिमवत्क्षमाश्रमणस्य पश्चाद्भूतस्य वलभीवाचनाऽपेक्षया तस्याः कारकस्य च श्रीनागार्जुनसूरेश्चिकथयिषया पथ्यार्या-पथ्यापूर्विका-न्तचपलार्याद्वयेन प्राह—

सिरिणागज्जुणसूरी जयेउ पणवीसमो जुगपहाणो ।
ओहसुअसमायारी चरणणिही वायणायरिओ ॥११४॥ (पच्छाज्जा)
वीराऽग्गिणिहिहये७९३ऽद्दे जाओ सो दिक्खिओ हयऽभमये ८०७ ।
रागथणिहे ८२६ जुगवरो हवीअ खमिओ जुगणहंके९०४ ॥११५॥
(पच्छापुव्विगांतचवलाज्जा)

(प्रे०) "**सिरि०**" इत्यादि, "**सिरिणागज्जुणसूरी**" त्ति, श्रिया=ज्ञानादिलक्ष्म्या युक्तो नागार्जुननामा सूरिः=आचार्यः श्रीनागार्जुनसूरिः "**जयेउ**" त्ति, जयतु=अतिशयवान् भवतु । किम्भूतः ? "**पणवीसमो जुगपहाणो**" त्ति, युगप्रधानस्य श्रीसिंहसूरेः पश्चात्पञ्च-विंशतितमो युगप्रधानः, "**ओहसुअसमायारी**" त्ति, ओघश्रुतं समाचरतीत्येवंशीलो यः= स=ओघश्रुतसमाचारी '**चरणणिही**" त्ति, चरणस्य सप्तदशविधस्य संयमस्य निधिः=शेवधिः चरणनिधिः "**वायणायरिओ**" त्ति, माथुरवाचनानुगामिश्रीनन्दीसूत्रभणितवाचकस्थविरपर-म्परायां श्रीहिमवत्क्षमाश्रमणस्य पश्चाद्वालभवाचनानुयायिस्थविरावल्यपेक्षया पुनः श्रीसिंहसूरे-रेवानु वाचनाचार्यो बभूव । तदा च स वलभ्यां दक्षिणापथवर्तिसाधूनां सम्मेलनं कृत्वा वाच-नायाः कर्ताऽभूत्, यदा मथुरायां श्रीस्कन्दिलसूरिरुत्तरापथस्थसाधूनां वाचनायाः कारकोऽभवत् ।

इयमपि पञ्चमी वालभ्यागमवाचना ज्ञेया । माथुरवाचनायाः समानकालत्वेन समीपकाल-त्वेन वा ततः पृथग्गणनात् पञ्चमी, वलभ्यां जातत्वाच्च वालभीत्युच्यते ।

अथाऽमुमेव जन्मादिपर्यायाऽब्दैः प्रकटयितुं द्वितीयां पथ्यार्या वक्ति–"**वीरा**" इत्यादि, "**सो**" त्ति, स=नागार्जुनसूरिः "**वीरा**" त्ति, वीरात्=वीरविभुसिद्धितः "**ऽग्गिणिहिहये**" 'त्ति, अग्नयस्त्रयः, निधयो नव, भयाः=इहलोक-परलोका-ऽऽदाना-ऽकस्माद्-वेदना मरणा ऽयशः-कीर्तिरूपा सप्त, यद्वा हयाः=अश्वाः सप्त, एतेऽङ्का प्रातिलोम्येन न्यस्ता यत्र तत्राऽग्निनिधिभये-ऽग्निनिधिहये वा "**ऽद्दे**" त्ति, अब्दे=वर्षे=वीरसंवत् ७९३ वर्षे "**जाओ**" त्ति जातः=उत्पन्नः । '**हयऽभगये**' त्ति, हयाभ्रगजाः=सप्त-शून्या-ऽष्टाङ्कलक्षणा वामगतिमीलिता यस्य तादृशे हयाभ्रगजे=वीरसंवत् ८०७ हायने "**दिक्खिओ**" त्ति, दीक्षितः=प्रव्रजितः "**रागथणिहे**"

तथा चाऽत्र हीरसौभाग्यकाव्यम्—

"भक्तामराह्वस्तवनेन, सूरि-र्बभञ्ज योऽङ्गान्निगडानशेषान् ।
प्रवर्तितामन्दमदोदयेन, गम्भीरवेदीव करी धरेन्द्रो ॥७६॥
श्रीमानतुङ्ग करखेन भक्ता मरस्तुतेस्त क्षितिशीतकान्तिम् ।
चकार नम्र फलपुष्पपत्र भारेण यद्वत् फलद वसन्त ॥७७॥" इति ॥१०३॥

अथ तमेव *'नमिऊण' स्तवकारित्वेन प्रकटयन्नुपजातिमाचष्टे—

जेणं कओ भीइहरो जणाण रक्खाअ थोत्तो *नमिऊणसण्णो ।
पउट्ठदेवाइकओद्दवेहिं दुग्गोव्व भूवेण रिऊद्दवेहिं ॥१०४॥ (उवजाई)

(प्रे०) "**जेण**" इत्यादि, "**जेण**" त्ति, येन=श्रीमानतुङ्गसूरिणा "**पउट्ठदेवाइकओद्दवेहिं**" त्ति, प्रद्विष्टाः=द्वेषभाजो देवाः=व्यन्तरभवनपत्यादिरूपाः, ते आदौ येषां ते देवादयः, अत्रादिपदेन देव्यादीनां संग्रहो बोध्यः । प्रद्विष्टाश्च ते देवादयश्च प्रद्विष्टदेवादयस्तैः कृताः=विहिता उपद्रवाः=नानाप्रकारा उपप्लवा=उपसर्गा=भीतयः प्रद्विष्टदेवकृतोपद्रवास्तेभ्यः प्रद्विष्टदेवादिकृतोपद्रवेभ्यः=क्रूरव्यन्तरदेवादिनिर्मितविविधोत्पातेभ्यः "**जणाण रक्खाअ**" त्ति, जनानां=भव्यलोकानां रक्षायै=निष्तारणाय "**भीइहरो**" त्ति, हरतीति हरः "अच्" (सि० ५-१-४९) इत्यनेनाऽच्प्रत्ययः, भीतेः=भयस्य हरो भीतिहरः=भयघ्नः "**नमिऊणसण्णो**" त्ति, "**नमिऊण पणय रगण०**" इत्यादिस्तवे "**नमिऊण**" इत्यादिपदत्वेन नमिऊणनामा यथा—"**लोगस्स**"–"**नमुत्थुणं**" इत्यादयो नामानः सन्ति । "**थोत्तो**" त्ति, स्तोत्रः=स्तवः "**कओ**" त्ति, कृतः=निर्मितः । क इव ? "**दुग्गोव्व**" त्ति, दुर्ग इव=कोट्ट इव । यथा "**रिऊद्दवेहिं**" ति, "**भूवेण**" त्ति, भूपेन=नृपतिना रिपूणां=शत्रूणामुपद्रवैः=विपल्लवैः जनरक्षार्थं दुर्गो विधीयते ।

तथा चाऽत्र प्रभावकचरितम्—

प्रभोः श्रीमानतुङ्गस्य देशनाया रदत्विष । जयन्ति ज्ञानपायोधिशारदेन्दुसहोदरा ॥१॥
नित्यं योजनलक्षेण वर्णनीय सुवर्णरुक् । मानतुङ्ग प्रभु पातु मेरु सौमनसाश्रित ॥२॥
अस्यैवाबाह्यमैतिह्यमप्रणाय्य जगत्यपि । निकाय्य तीर्थशृङ्गारप्रकर्षस्य प्रकीर्तये ॥३॥
सदा सुरसरिद्वीचीनिचयान्तकश्मला । पुरी वाराणसीत्यस्ति साक्षादिव दिव पुरी ॥४॥
आसीत्कोविदकोटीरमर्थिदारिद्र्यपारभू । तत्र श्रीहर्षदेवाख्यो राजा नतु कलङ्कभृत् ॥५॥
ब्रह्मक्षत्रियजातीयो धनदेवाऽभिध. सुधी । श्रेष्ठी तत्राऽभवद् विश्वप्रजाभूपार्थसाधकः ॥६॥
तत्सुतो मानतुङ्गाख्यो विख्यात सत्त्वसत्यभू । अवज्ञातपरद्रव्यवनितावितथाग्रह ॥७॥
सन्तीह मुनयो जैना नग्ना भग्नस्मराधय । तच्चैत्ये जग्मिवानन्यदिवसे विवशेतर ॥८॥
वीतरागप्रभु नत्वा गत्वा गुरुपदान्तिकम् । प्रणमद्धर्मवृद्ध्याशीर्वादेन गुरुणाहित ॥९॥
महाव्रतानि पञ्चाऽस्योपादिशन्नग्नता तथा । ऊर्णकार्पासकौशेयशौम्बावृतिनिषेधत ॥१०॥

*श्रीप्रभावकचरित गुर्वावली-हीरसौभाग्याद्यपेक्षया 'भयहर' इति सज्ञक. ।

अथ युगप्रधानपरम्परायां श्रीसिंहसूरेरनु जातस्य पञ्चविंशस्य युगप्रधानस्य तथा वलभी-वाचनाऽनुसारेण तदन्वेव मथुरावाचनामाश्रित्य पुनः श्रीहिमवत्क्षमाश्रमणस्य पश्चाद्भूतस्य वलभीवाचनाऽपेक्षया तस्याः कारकस्य च श्रीनागार्जुनसूरेश्चिकथयिषया पथ्यार्या-पथ्यापूर्विका-न्तचपलार्याद्वयेन प्राह—

सिरिणागज्जुणसूरी जयेउ पणवीसमो जुगपहाणो ।
ओहसुअसमायारी चरणणिही वायणायरिओ ॥११४॥ (पच्छाज्जा)
वीराऽग्गिणिहिहये७९३ऽद्दे जाओ सो दिक्खिओ हयब्भगये ८०७ ।
रागथणिहे ८२६ जुगवरो हवीअ खमिओ जुगणहके९०४ ॥११५॥
(पच्छापुव्विगांतचवलाज्जा)

(प्रे०) "**सिरि०**" इत्यादि, "**सिरिणागज्जुणसूरी**" त्ति, श्रिया=ज्ञानादिलक्ष्म्या युक्तो नागार्जुननामा सूरिः=आचार्यः श्रीनागार्जुनसूरिः "**जयेउ**" त्ति, जयतु=अतिशयवान् भवतु । किम्भूतः ? "**पणवीसमो जुगपहाणो**" त्ति, युगप्रधानस्य श्रीसिंहसूरेः पश्चात्पञ्च-विंशतितमो युगप्रधानः, "**ओहसुअसमायारी**" त्ति, ओघश्रुतं समाचरतीत्येवशीलो यः=स=ओघश्रुतसमाचारी '**चरणणिही**" त्ति, चरणस्य सप्तदशविधस्य संयमस्य निधिः=शेवधिः चरणनिधिः "**वायणायरिओ**" त्ति, माथुरवाचनानुगामिश्रीनन्दीसूत्रभणितवाचकस्थविरपर-म्परायां श्रीहिमवत्क्षमाश्रमणस्य पश्चाद्वालभवाचनानुयायिस्थविरावल्यपेक्षया पुनः श्रीसिंहसूरे-रेवानु वाचनाचार्यो बभूव । तदा च स वलभ्यां दक्षिणापथवर्तिसाधूनां सम्मेलनं कृत्वा वाच-नायाः कर्ताऽभूत्, यदा मथुरायां श्रीस्कन्दिलसूरिरुत्तरापथस्थसाधूनां वाचनायाः कारकोऽभवत् ।

इयमपि पञ्चमी वालभ्यागमवाचना ज्ञेया । माथुरवाचनायाः समानकालत्वेन समीपकाल-त्वेन वा ततः पृथग्गणनात् पञ्चमी, वलभ्यां जातत्वाच्च वालभीत्युच्यते ।

अथाऽमुमेव जन्मादिपर्यायाऽब्दैः प्रकटयितुं द्वितीयां पथ्यार्यां वक्ति—"**वीरा**" इत्यादि, "**सो**" त्ति, स=नागार्जुनसूरिः "**वीरा**" त्ति, वीरात्=वीरविभुसिद्धितः "**ऽग्गिणिहिहये**" त्ति, अग्नयस्त्रयः, निधयो नव, भयाः=इहलोक-परलोका-ऽऽदाना-ऽकस्माद्-वेदना मरणा ऽपयशः-कीर्तिरूपा सप्त, यद्वा हयाः=अश्वाः सप्त, एतेऽङ्का प्रातिलोम्येन न्यस्ता यत्र तत्राऽग्निनिधिभये-ऽग्निनिधिहये वा "**ऽद्दे**" त्ति, अब्दे=वर्षे=वीरसंवत् ७९३ वर्षे "**जाओ**" त्ति जातः=उत्पन्नः । '**हयब्भगये**' त्ति, हयाभ्रगजाः=सप्त-शून्या-ऽष्टाङ्कलक्षणा वामगतिमीलिता यस्य तादृशे हयाभ्रगजे=वीरसंवत् ८०७ हायने "**दिक्खिओ**" त्ति, दीक्षितः=प्रव्रजितः "**रागथणिहे**"

तर्कलक्षणसाहित्यरसास्वादवशैकधी । अनचानो महाविप्रो बाणाख्य प्राग्गुणान्वित ॥४६॥
प्रख्यातवक्तृक कामाभिरामाकारधारक । दृष्टे तत्र मयूरोऽभूद् वारिदाडम्बरे यथा ॥४७॥
समान्योद्वाहयामास ता सुता तेन वैभवात् । अनुरूपवरप्राप्तिमुना पित्रापि दुस्त्यजा ॥४८॥
तत श्रीहर्षपुरस्य दर्शितो दुहितु पति । आशिर्वादितया तस्योदितया तोषमाप च ॥४९॥
तस्यावास पृथक् चक्रे धनधान्यादिसम्भृत । नव राजाहितौ तौ द्वौ माङ्गल्य प्रापतु सदा ॥५०॥
बाणोऽन्यदा सम पत्न्या स्नेहत कलहायित । स्त्रिना हि मरिचक्षोदाद् ऋते भवति दुर्जरा ॥५१॥
पितुर्गृहमगाद् रुष्टा बाणपत्नी मदोद्धुरा । साय तद्गृहमागत्य भर्त्ता प्राहानुनीतये ॥५२॥ तन्वा-मान मुञ्च स्वामिनि । शत्रु जगतो विनाशितस्वार्थम् । सेवक-कामुक परमरसुखेन्छवो नावलेपभृत ॥५३॥
वासगाराद्बहि प्रेष्य पण्डित ता सखी जगौ । वाग्भङ्गीभिस्ततो मानामुचि तस्यामदोऽवदत ॥५४॥
लिखन्नास्ते भूमि वहिरवनत प्राणदयितो, निराहारा सख्य सततरुदितोच्छूननयना । परित्यक्त सर्व हसितपठित पञ्जरशुकै-स्तवावस्था चेय विसृज कठिने मानमधुना ॥५५॥
विलक्षीभूय साप्याह वहिरागत्य कोविदम् । भवने प्रविशामोऽस्यामुक्त्वा वत्रमुपानहौ ॥५६॥
एतस्या मौनमालम्ब्यावस्थितायां पुनस्तत । विद्वानविद्वन्मन्योऽसौ वहुप्रातर्जगाद च ॥५७॥
तद्यथा-गतप्राया रात्रि कृशतनुशशी शीर्यत इव, प्रदीपोऽय निद्रावशमुपगतो घूर्णित इव । प्रणामान्तो मानस्तदपि न जहासि क्रुधमहो, कुचप्रत्यासत्त्या हृदयमपि ते सुभ्रु ! कठिनम् ॥५८॥
तद्भित्तिपरत सुप्तोऽवकाशे तत्पिता तदा । जजागाराऽतिसम्भ्रान्त काव्य श्रुत्वेत्युवाच च ॥५९॥
स्थाने त्व 'सुभ्रु'शब्दस्य 'चण्डी'त्याख्यामुदाहरे । यतोऽस्या दृढकोपाया शब्दोऽयमुचित खलु ॥६०॥
इत्याकर्ण्य पितुर्वाच लज्जाभरनतानना । विममर्श निशावृत्त विश्व मे जनकोऽशृणोत ॥६१॥
धिग्मा मूर्खामविज्ञातकारिणीमित्यकुत्सयत । आत्मान सा ततो वप्तर्यमर्ष च व्यधाद् घनम् ॥६२॥
मद मुक्त्वा च सा प्रेम भर्त्तरि स्थिरमादधे । गङ्गा हिमवतो गर्जे यथा शीतांशुशेखरे ॥६३॥
अह शैशवतो भ्रान्त्वा यद्यसौ विद्वदग्रणी । जनकोऽनुचिताधायी विमन्दाक्ष कथ किल ॥६४॥
इद किमुचित वक्तु कुलीनाना हि तादृशाम् । मातृ-स्वसृ-दुहितॄणामवाच्य न हि वाच्यभू ॥६५॥
शशाप कोपाटोपेन पितर प्रकटाक्षरम् । कुष्ठी भव क्रियाभ्रष्टावज्ञातौरसनात्रक ॥६६॥
तस्या शीलप्रभावेण सद्य श्वेताङ्गचन्द्रके । कलाप्यग्रे मयूरोऽग्रे तदा जज्ञे स चन्द्रकी ॥६७॥
सागान्निजगृह बाणे बिभ्रती सक्तिमादरात् । पितुर्दुर्वचन तस्या सान्त्वनाय तदाऽभवत् ॥६८॥
सद्य कुष्ठ समालोक्य पश्चात्तापार्त्तिविद्रुत । अवाङ्मुखो गृहेऽस्थास्सीन्न ययौ राजपर्षदि ॥६९॥
पञ्चषान् वासरान्नासौ जगाम क्ष्मापमन्दिरे । बाणोऽपि कुपितस्तस्य बहून् दोषानभाषत ॥७०॥
भोगिभोगविनाशैकप्रतिज्ञो मलिनाङ्गभृत । सुहृत्समागमे लज्जास्थान प्रकटयन् सदा ॥७१॥
असौ मेघसुहृन्मेघसुहृच्चन्द्रकितस्तनौ । चित्रश्चित्रात्सभायोग्यो भूपाना नैनसा लिधि ॥७२॥
राजा श्रुत्वेति किं सत्य मयूर कुष्ठदूषित । इति चित्रात्समाहूतवास्त निजनरै प्रभु ॥७३॥
कृतावगुण्ठन पटया स सर्वीताङ्गमण्डन । उपभूपतिभागच्छदनिच्छन् स्थानमत्र च ॥७४॥
बाणेनोचे स्फुट दृष्ट्वा मयूर प्राकृतादथ । शीतरक्षाङ्गसव्यान 'वरकोढो'ति ससदि ॥७५॥
पुनर्निज गृह गत्वा व्यमृशच्चेतसि स्थिरम् । कलङ्कशङ्किताना हि नोचिता सुहृदा सभा ॥७६॥
सहक्रीडितसघोऽस्मिन् ये तिष्ठन्त्यङ्कशङ्किता । भ्रूखड्गच्छिन्नमेते किं स्व मूर्द्धान न जानते ॥७७॥
वैराग्यात् त्यज्यते देह सता तदपि नोचितम् । दुखानामसहिष्णुत्वात् क्लीवत्कातरता हि सा ॥७८॥
सुर सनातनप्रीतिहार्ये कश्चित्कलानिधि । आराध्यते प्रसादेन यस्य देहो नवो भवेत् ॥७९॥

प्रसृतं=विस्तृतं तच्च तत्कीर्त्याच्छादनश्च प्रसृतकीर्त्याच्छादनं तेन प्रसृतकीर्त्याच्छादनेन "छण्णा" त्ति छन्नाः=आच्छादिताः=तिरोभूताः "ऽमरा" त्ति, अमराः=देवाः 'लोगाण चम्मचक्खीण' त्ति, चर्माक्ष्णां=चर्मचक्षुषां=दिव्यज्ञानरहितानामित्यर्थः, लोकानां=जनानां "णयणगोअरा" त्ति, नयनगोचराः=चक्षुर्विषयाः "ण हवन्ति" त्ति, न भवन्ति ॥११६॥

अथ मल्लवादिसूरिं पथ्यापूर्विकयादिचपलयार्ययोपदिशति—

सिरिमल्लवाइसूरी तया हवीअ महवाइजिअबोद्धो ।
कत्ता सम्मइटीगापम्हचरित्तणायचक्काणं ॥११७॥ (पच्छापुव्विगामुहचवलाऽज्जा)

(प्रे०) "सिरि०" इत्यादि, "तया" त्ति, तदा=श्रीदेवानन्दसूरेः समीपकाले "सिरि-मल्लवाइसूरी" त्ति, श्रीमल्लवादिसूरिः=श्रीमल्लवादिनामा मुनिपतिर्जिनानन्दसूरिशिष्यः "हवीअ" त्ति, अभूदिति क्रियान्वयः । किं विशिष्टः ? "महावाइजिअबोद्धो" त्ति, महांश्चासौ वादी च= महावादी जितः=पराभवीकृतो बौद्धः="भीमो भीमसेन" इति **न्यायमा**श्रित्य बौद्धाचार्यः= पुरा भृगुकच्छे वितण्डावादेन स्वगुरोर्जेता नन्दाख्यो बौद्धगुरुर्येन स जितबौद्धः, महावादी चाऽसौ जितबौद्धश्च महावादिजितबौद्धः । पुनः कीदृक् ? "कत्ता सम्मइ-टीगा पम्हचरित्त-णयचक्काण" ति, पदैकदेशेन पदसमुदायोपचारात्, सन्मतिपदेन सन्मति तर्को ग्राह्यस्तस्य टीका=वृत्तिः=सन्मतितर्कटीका च पद्मचरित्रञ्च नयचक्रञ्च तानि सन्मतितर्क-टीका-पद्मचरित्र-नयचक्राणि तेषाम्=सन्मतितर्कटीका-पद्मचरित्र नयचक्राणां कर्ता=रचयिता ।

तत्र **नयचक्रप्रकरणे समासतोऽयं व्यतिकरः**—नन्दाख्यसौगतस्य वितण्डया पराभूतो जयानन्दसूरिर्वलभीं गतः, तत्र तद्भगिनी त्रिसुतयुता प्रबोध्य प्रव्रजिता, त्रयोऽपि भागिनेया गुरुणा पूर्वर्षिभिर्ज्ञानप्रवादनाम्नः पञ्चमपूर्वादुद्धृतं नयचक्रं विना पाठिता विद्याभ्यासेन पण्डित-शेखराः सञ्जाताः । अथ गुरुणा तीर्थयात्रां चिकीर्षुणा महातेजस्वी अतिप्राज्ञः कनिष्ठस्तृतीयो मल्लनामा मुनिर्बाल्यात्स्वयं नयचक्रं पुस्तकमुन्मोच्य वाचयिष्यति तत उपद्रवा भवेयुरतस्तन्मातुः समक्षं तत्पुस्तकवाचनाय निषिद्धोऽपि गुरौ गते सति जनन्या अप्रत्यक्षं तत्पुस्तकमुद्घाट्य निम्नामेकां "**विधिनियमभङ्गवृत्तिव्यतिरिक्तत्वादनर्थकमवोचत् ।**

जैनादन्यच्छासनमनृत भवतोति वैधर्म्यम् ॥१॥ " इत्यार्यामवाचयत्, अस्या आर्याया अर्थं यावद्विचारयति तावत्तद्धस्तात्श्रुतदेवतयाऽदृष्टया सपत्रं तत्पुस्तकं गृहीतम् । तद्विज्ञाय सङ्घोऽपि विषादं प्राप्तः । ततः स मुनिः श्रुतदेवताराधनाय गिरिखण्डलगुहायां षष्ठ-पारणके रुक्षनिष्पात्रभोक्ताऽभवत् । ततोऽपि वात्सल्यात्पीडितेन सङ्घेन '**अमुष्य विद्यानिधेर्मुनेर्नाशो मा भवतु**' इति विचिन्त्य चातुर्मासिकपारणे विकृतिं ग्राहितः । ततः सङ्घसमाराधितया

तर्कलक्षणसाहित्यरसास्वादवशैकधी । अनूचानो महाविप्रो बाणाख्य प्राग्गुणान्वित ॥४६॥
प्रख्यातवाक्तृक कामाभिरामाकारधारक । दृष्टे तत्र मयूरोऽभूद् वारिदाडम्बरे यथा ॥४७॥
समान्योद्वाहयामास तां सुतां तेन वैभवात् । अनुरूपवरप्राप्तिमुदा पित्रापि हृष्यता ॥४८॥
ततः श्रीहर्षपुरस्य दर्शितो दुहितुः पतिः । आशिर्यादितया तस्योदितया तोषमाप च ॥४९॥
तस्यावासं पृथक् चक्रे धनधान्यादिसम्भृतं । एवं राजाहितौ तौ द्वौ साङ्गत्यं प्रापतुः मदा ॥५०॥
बाणोऽन्यदा समं पत्न्या स्नेहतः कलहायितः । सिता हि मरिचक्षोदाद् ऋते भवति दुर्जरा ॥५१॥
पितुर्गृहमगाद् रुष्टा बाणपत्नी मदोद्धुरा । साय तद्गृहमागत्य भर्त्ता प्राहानुनीतये ॥५२॥ नम्रया-
मानं मुञ्च स्वामिनि । शत्रुं जगतो विनाशितस्वार्थम् । सेवक-कामुक परमं सुखेच्छवो नावलेपभृत ॥५३॥
वासगाराद्बहिः प्रेष्य पण्डितं तां सखीं जगौ । वाग्भङ्गीभिस्ततो मानामुचि तस्यामदोऽवदन् ॥५४॥
लिखन्नास्ते भूमिं बहिरवनतः प्राणदयितो, निराहाराः सख्यः सततरुदितोच्छूननयनाः ।
परित्यक्तं सर्वं हसितपठितं पञ्जरशुकै-स्तवावस्था चेयं विसृज कठिने मानमधुना ॥५५॥
विलक्षीभूय साऽप्याह बहिरागत्य कोविदम् । भवने प्रविशामोऽस्यामुक्त्वा वयमुपानहौ ॥५६॥
एतस्या मौनमालम्ब्यावस्थितायां पुनस्ततः । विद्वानविद्वन्मन्योऽसौ बहुप्रातर्जगाद च ॥५७॥
तद्यथा-गतप्राया रात्रिः कृशतनुशशी शीर्यत इव, प्रदीपोऽयं निद्रावशमुपगतो घूर्णित इव ।
प्रणामान्तो मानस्तदपि न जहासि क्रुधमहो, कुचप्रत्यासत्त्या हृदयमपि ते सुभ्रु । कठिनम् ॥५८॥
तद्भित्तिपरतः सुप्तोऽवकाशे तत्पिता तदा । जजागाराऽतिसम्भ्रान्तः काव्यं श्रुत्वेत्युवाच च ॥५९॥
स्थाने त्वं 'सुभ्रु'शब्दस्य 'चण्डी'त्याख्यामुदाहरे । यतोऽस्या दृढकोपाया· शब्दोऽयमुचितः खलु ॥६०॥
इत्याकर्ण्य पितुर्वाच लज्जाभरनताननाः । विममर्श निशावृत्तं विश्वं मे जनकोऽशृणोत् ॥६१॥
धिग्मां मूर्खामविज्ञातकारिणीमित्यकुत्सयत् । आत्मानं सा ततो वल्लभेऽमर्षं च व्यधाद् घनम् ॥६२॥
मदं मुक्त्वा च सा प्रेम भर्त्तरि स्थिरमादधे । गङ्गा हिमवतो गर्जे यथा शीतांशुशेखरे ॥६३॥
अहं शैशवतो भ्रान्ता यद्यसौ विद्वदग्रणी । जनकोऽनुचिताधायी विमन्दाक्ष' कथं किल ॥६४॥
इदं किमुचितं वक्तुं कुलीनानां हि तादृशाम् । मातृ-स्वसृ दुहितॄणामवाच्यं न हि वाच्यभू ॥६५॥
शशाप कोपाटोपेन पितरं प्रकटाक्षरम् । कुष्ठी भव क्रियाभ्रष्टावज्ञातौरसनात्रक ॥६६॥
तस्याः शीलप्रभावेण सद्य श्वेताङ्गचन्द्रके । कलाप्यग्रे मयूरोऽग्रे तदा जज्ञे स चन्द्रकी ॥६७॥
सागान्निजगृहं बाणे बिभ्रती सक्तिमादरात् । पितुर्दुर्वचनं तस्याः सान्त्वनाय तदाऽभवत् ॥६८॥
सद्य कुष्ठं समालोक्य पश्चात्तापार्त्तिविद्रुतः । अवाङ्मुखो गृहेऽस्थात्सौन्न ययौ राजपर्षदि ॥६९॥
पञ्चषान् वासरान्नासौ जगाम क्ष्मापमन्दिरे । बाणोऽपि कुपितस्तस्य बहून् दोषानभाषत ॥७०॥
भोगिभोगविनाशैकप्रतिज्ञो मलिनाङ्गभृत । सुहृत्समागमे लज्जास्थानं प्रकटयन् सदा ॥७१॥
असौ मेघसुहृन्मेघसुहृच्चन्द्रकितस्तनौ । चित्रश्चित्रात्सभायोग्यो भूपानां नैनसां निधिः ॥७२॥
राजा श्रुत्वेति किं सत्यं मयूरः कुष्ठदूषित । इति चित्रात्समाहूतवांस्तं निजनरैः प्रभुः ॥७३॥
कृतावगुण्ठनः पट्या स सवीताङ्गमण्डनः । उपभूपतिमागच्छदनिच्छन् स्थानमत्र च ॥७४॥
बाणेनोचे स्फुटं दृष्ट्वा मयूरं प्राकृतादथ । शीतरक्षाङ्गसव्यानं 'वरकोढो' ति सत्सदि ॥७५॥
पुनर्निजं गृहं गत्वा व्यमृशच्चेतसि स्थिरम् । कलङ्काङ्कितानां हि नोचिता सुहृदां सभा ॥७६॥
सहक्रीडितसर्वोऽस्मिन् ये तिष्ठन्त्यङ्कशङ्किताः । भ्रूखड्गच्छिन्नमेते किं स्वमूर्द्धानं न जानते ॥७७॥
वैराग्यात् त्यज्यते देहः सतां तदपि नोचितम् । दुःखानामसहिष्णुत्वात् स्त्रीवत्कातरता हि सा ॥७८॥
सुरः सनातनप्रीतिहार्यं कश्चित्कलानिधिः । आराध्यते प्रसादेन यस्य देहो नवो भवेत् ॥७९॥

प्रसृतं=विस्तृतं तच्च तत्कीर्त्याच्छादनश्च प्रसृतकीर्त्याच्छादनं तेन प्रसृतकीर्त्याच्छादनेन "छण्णा" त्ति छन्नाः=आच्छादिताः=तिरोभृताः "ऽमरा" त्ति, अमराः=देवाः 'लोगाण चम्मचक्खूण" त्ति, चर्माक्ष्णां=चर्मचक्षुषां=दिव्यज्ञानरहितानामित्यर्थः, लोकानां=जनानां "णयणगोअरा" त्ति, नयनगोचराः=चक्षुर्विषयाः "ण हवन्ति" त्ति, न भवन्ति ॥११६॥

अथ मल्लवादिसूरिं पथ्यापूर्विकयादिचपलयार्ययोपदिशति—

सिरिमल्लवाइसूरी तया हवीअ महवाइजिअबोद्धो ।

कत्ता सम्मइटीगापम्हचरित्तणयचक्काणं ॥११७॥(पच्छापुव्विगामुहचवलाज्जा)

(प्रे०) "**सिरि०**" इत्यादि, "**तया**" त्ति, तदा=श्रीदेवानन्दसूरेः समीपकाले "**सिरिमल्लवाइसूरी**" त्ति, श्रीमल्लवादिसूरिः=श्रीमल्लवादिनामा मुनिपतिर्जिनानन्दसूरिशिष्यः "**हवीअ**" त्ति, अभूदिति क्रियान्वयः । किं विशिष्टः ? "**महावाइजिअबोद्धो**" त्ति, महांश्चासौ वादी च= महावादी जितः=पराभवीकृतो बौद्धः="भीमो भीमसेन" इति **न्यायमा**श्रित्य बौद्धाचार्यः= पुरा भृगुकच्छे वितण्डावादेन स्वगुरोर्जेता नन्दाख्यो बौद्धगुरुर्येन स जितबौद्धः, महावादी चाऽसौ जितबौद्धश्च महावादिजितबौद्धः । पुनः कीदृक् ? "**कत्ता सम्मइटीगा पम्हचरित्त-णयचक्काण**" ति, पदैकदेशेन पदसमुदायोपचारात्, सन्मतिपदेन सन्मतितर्को ग्राह्यस्तस्य टीका=वृत्तिः=सन्मतितर्कटीका च पद्मचरित्रश्च नयचक्रश्च तानि सन्मतितर्कटीका-पद्मचरित्र-नयचक्राणि तेषाम्=सन्मतितर्कटीका-पद्मचरित्र नयचक्राणां कर्ता=रचयिता ।

तत्र **नयचक्रप्रकरणे समासतोऽयं व्यतिकरः**—नन्दाख्यसौगतस्य वितण्डया पराभूतो जयानन्दसूरिर्वलभीं गतः, तत्र तद्भगिनी त्रिसुतयुता प्रबोध्य प्रव्रजिता, त्रयोऽपि भागिनेया गुरुणा पूर्वर्षिभिर्ज्ञानप्रवादनाम्नः पञ्चमपूर्वादुद्धृतं नयचक्रं विना पाठिता विद्याभ्यासेन पण्डितशेखराः सञ्जाताः । अथ गुरुणा तीर्थयात्रां चिकीर्षुणा महातेजस्वी अतिप्राज्ञः कनिष्ठस्तृतीयो मल्लनामा मुनिर्बाल्यात्स्वयं नयचक्रं पुस्तकमुन्मोच्य वाचयिष्यति तत उपद्रवा भवेयुरतस्तन्मातुः समक्षं तत्पुस्तकवाचनाय निषिद्धोऽपि गुरौ गते सति जनन्या अप्रत्यक्षं तत्पुस्तकमुद्घाट्य निम्नामेकां "**विधिनियमभङ्गवृत्तिव्यतिरिक्तत्वादनर्थकमवोचत् ।**

जैनादन्यच्छासनमनृत भवतीति वैधर्म्यम् ॥१॥ " इत्यार्यामवाचयत्, अस्या आर्याया अर्थं यावद्विचारयति तावत्तद्धस्तात्श्रुतदेवतयाऽदृष्टया सपत्रं तत्पुस्तकं गृहीतम् । तद्विज्ञाय सङ्घोऽपि विषादं प्राप्तः । ततः स मुनिः श्रुतदेवताराधनाय गिरिखण्डलगुहायां षष्ठपारणके रुक्षनिष्पावभोक्ताऽभवत् । ततोऽपि वात्सल्यात्पीडितेन सङ्घेन '**अमुष्य विद्यानिधेर्मुनेर्नाशो मा भवतु**' इति विचिन्त्य चातुर्मासिकपारणे विकृतिं ग्राहीतः । ततः सङ्घसमाराधितया

तथाहि-दामोदरकराघातविह्वलीकृतचेतसा । दृष्टं चाणूरमल्लेन शतचन्द्रं नभस्तलम् ॥११६॥
इति गीर्निर्णयं लब्ध्वा प्रधानैः सहितौ कवी । निजं नगरमायातौ तस्थतुर्भूमिपाश्रम ॥११७॥
मयूरश्च निजग्रन्थपुस्तकानि नृपाङ्गणे । आनीयाज्वालयत् खेदात्तानि जातानि भस्मसात् ॥११८॥
भस्मापि यावदुड्डीनं श्रीसूर्यशतपुस्तकम् । तावत्प्रत्यग्रसूर्यांशुप्रकटाक्षरमस्ति च ॥११९॥
ततो राज्ञा प्रसादोऽस्य गौरवेण प्रकाशित । उभयोर्विदुषयोर्मानं साम्ये स समभावयत् ॥१२०॥
तौ भूपालं स्तुवन्नित्यममात्य चान्यदा जगौ । प्रत्यक्षोऽतिशयो भूमिदेवानामेव दृश्यते ॥१२१॥
कुत्राऽपि दर्शनेऽन्यस्मिन् कथमस्ति प्रजल्पत । प्राह मन्त्री यदि स्वामी शृणोति प्रोच्यते तत ॥१२२॥
जैन श्वेताम्बराचार्यो मानतुङ्गाभिध सुधी । महाप्रभावसपन्नो विद्यते तावके पुरे ॥१२३॥
चेत्कुतूहलमत्रास्ति तदाहूयतां त गुरुम् । चित्ते वो यादृशं कार्यं तादृशं पूर्यते तथा ॥१२४॥
इत्याकर्ण्य नृप प्राह तं सत्पात्रं समानय । सन्मानपूर्वमेतेषां निस्पृहाणां नृप क्रियान् ॥१२५॥
तत्र गत्वा पुरो मन्त्री गुरूनानम्य चावदत् । आह्वाययति वात्सल्याद्भूप पादोऽवधार्यताम् ॥१२६॥
गुरुराह महामात्य ! राज्ञा न किं प्रयोजनम् । निरीहाणामिय भूमिर्न हि प्रेत्यमवार्थिनाम् ॥१२७॥
मन्त्रिणोचे प्रभो ! श्रेष्ठा भावनात प्रभावना । प्रभाव्य शासनं पूज्यैस्तद्राज्ञो रञ्जतो भवेत् ॥१२८॥
इति निर्बन्धतस्तस्य श्रीमानतुङ्गसूरय । राजसौधं समाजग्मुरभ्युत्तस्थौ च भूपति ॥१२९॥
धर्मलाभाशिष दत्त्वा निविष्टा उचितासने । नृप प्राह द्विजन्मानं कीदृक्सातिशया क्षितौ ॥१३०॥
एकेन सूर्यमाराध्य स्वाङ्गाद्रोगो वियोजित. । अपरश्चण्डिकासेवावशाल्लेभे करक्रमौ ॥१३१॥
भवतामपि शक्तिश्चेत् काप्यस्ति यतिनायका ! । तदा कञ्चिच्चमत्कारं पूज्या दर्शयताऽधुना ॥१३०॥
इत्याकर्ण्याऽथ ते प्राहुर्न गृहस्था वयं नृप ! । धनधान्यगृहक्षेत्रकलत्राऽपत्यहेतवे ॥१३३॥
राजरञ्जनविद्याभिर्लोकाक्षेरादिका क्रियाः । यद् विदध्मः परं कार्यं शासनोत्कर्ष एव न. ॥१३४॥
इत्युक्ते प्राह भूपालो निगडैरेष यन्त्र्यताम् । आपादमस्तकं ध्वान्ते निवेश्य प्रावदन्निति ॥१३५॥
ततोऽपवरके राजपुरुषै. परुषैस्तदा । निगडैश्च चतुश्चत्वारिंशत्सख्यैरयोमयै ॥१३६॥
नियन्त्रित समुत्पाट्य लोहयन्त्रसमो गुरुः । न्यवेश्यताथ तद्द्वारारारी च पिहितौ तत ॥१३७॥ युग्मम् ।
अतिजीर्णं सनाराचं तालकं प्रददुस्ततः । सूचिभेद्यतमस्काण्ड स पातालनिभो बभौ ॥१३८॥
वृत्तं भक्तामर इति प्राच्य प्राहैकमानस । त्राट्कृत्य निगड तत्र त्रुटित्वापे(पै)ति तत्क्षणात् ॥१३९॥
प्राक्सख्यया च वृत्तेषु भणितेषु द्रुत तत । श्रीमानतुङ्गसूरिश्च मुत्कलो मुत्कलोऽभवत् ॥१४०॥
स्वयमुद्घटिते द्वारयन्त्रे सयमसंयत. । सदानुच्छृङ्खल. श्रीमानुच्छृङ्खलवपुर्बभौ ॥१४१॥
अन्त ससदमागत्य धर्मलाभं नृपं ददौ । प्रात पूर्वाचलान्निर्यन्भास्वानिव महाद्युति ॥१४२॥
नृप प्राह शमस्तादृक् शक्तिश्चाप्यतिमानुषी । देवीदेवकृताधारं विना कस्येदृशं मह ॥१४३॥
देश. पुरमह धन्यं कृतपुण्यश्च वासर । यत्र ते वदनं प्रैक्षि प्रभो ! प्रातिभसप्रभम् ॥१४४॥
आदेशं सुकृतावेश प्रयच्छ स्वच्छतानिधे ! । आजन्मरक्षादक्ष स्याद्यथा मे त्वदनुग्रह ॥१४५॥
श्रुत्वेति भूपतेर्वाच प्राहुस्ते यदकिंचना । लब्धीनामुपयोग न कुत्राऽप्यर्थे विदध्महे ॥१४६॥
परं श्रीमन्गुणाम्भोधे ! प्रशाधि वसुधामिमाम् । जैनधर्मं हताक्षेमं परीक्ष्य परिपालय ॥१४७॥
अथाऽवोचन्महीनाथ पान्थो जैनाहते पथि । अदर्शनादियत्कालं पूज्यानां वञ्चिता वयम् ॥१४८॥
अहो ममाऽवलेपोऽभूत ब्राह्मणा एव सत्कला । देवान्सतोष्य यै. स्वीयो दर्शित प्रत्ययो मम ॥१४९॥
विवदानावहकारान्नैतावुपरतौ क्वचित् । दर्पायैव न बोधाय या विद्या सा मतिभ्रम' ॥१५०॥
येषां प्रभाव. सर्वातिशायी प्रशम ईदृश । सन्तोषश्च तदाख्यातो धर्म्म शुद्ध. परीक्षया ॥१५१॥

प्रसृतं=विस्तृतं तच्च तत्कीर्त्याच्छादनश्च प्रसृतकीर्त्याच्छादनं तेन प्रसृतकीर्त्याच्छादनेन "छण्णा" त्ति छन्नाः=आच्छादिताः=तिरोभृताः "ऽमरा" त्ति, अमराः=देवाः 'लोगाण चम्मचक्खीण" त्ति, चर्माक्ष्णां=चर्मचक्षुषां=दिव्यज्ञानरहितानामित्यर्थः, लोकानां=जनानां "णयणगोअरा" त्ति, नयनगोचराः=चक्षुर्विषयाः "ण हवन्ति" त्ति, न भवन्ति ॥११६॥

अथ मल्लवादिसूरिं पथ्यापूर्विकयादिचपलयार्ययोपदिशति—

सिरिमल्लवाइसूरी तया हवीअ महवाइजिअबोद्धो ।
कत्ता सम्मइटीगापम्हचरित्तणयचक्काणं ॥११७॥(पच्छापुव्विगामुहचवलाज्जा)

(प्रे०) "**सिरि०**" इत्यादि, "**तया**" त्ति, तदा=श्रीदेवानन्दसूरेः समीपकाले "**सिरिमल्लवाइसूरी**" त्ति, श्रीमल्लवादिसूरिः=श्रीमल्लवादिनामा मुनिपतिर्जिनानन्दसूरिशिष्यः "**हवीअ**" त्ति, अभूदिति क्रियान्वयः। किं विशिष्टः ? "**महावाइजिअबोद्धो**" त्ति, महांश्चासौ वादी च= महावादी जितः=पराभवीकृतो बौद्धः="भीमो भीमसेन" इति **न्यायमा**श्रित्य बौद्धाचार्यः= पुरा भृगुकच्छे वितण्डावादेन स्वगुरोर्जेता नन्दाख्यो बौद्धगुरुर्येन स जितबौद्धः, महावादी चाऽसौ जितबौद्धश्च महावादिजितबौद्धः । पुनः कीदृक् ? "**कत्ता सम्मइटीगा पम्हचरित्त-णयचक्काण**" त्ति, पदैकदेशेन पदसमुदायोपचारात्, सन्मतिपदेन सन्मति तर्को ग्राह्यस्तस्य टीका=वृत्तिः=सन्मतितर्कटीका च पद्मचरित्रश्च नयचक्रश्च तानि सन्मतितर्कटीका-पद्मचरित्र-नयचक्राणि तेषाम्=सन्मतितर्कटीका पद्मचरित्र नयचक्राणां कर्ता=रचयिता ।

तत्र **नयचक्रप्रकरणे समासतोऽयं व्यतिकरः**–नन्दाख्यसौगतस्य वितण्डया पराभूतो जयानन्दसूरिर्वलभी गतः, तत्र तद्भगिनी त्रिसुतयुता प्रबोध्य प्रव्रजिता, त्रयोऽपि भागिनेया गुरुणा पूर्वर्षिभिर्ज्ञानप्रवादनाम्नः पञ्चमपूर्वादुद्धृतं नयचक्रं विना पाठिता विद्याभ्यासेन पण्डितशेखराः सञ्जाताः । अथ गुरुणा तीर्थयात्रां चिकीर्षुणा महातेजस्वी अतिप्राज्ञः कनिष्ठस्तृतीयो मल्लनामा मुनिर्बाल्यात्स्वयं नयचक्रं पुस्तकमुन्मोच्य वाचयिष्यति तत उपद्रवा भवेयुरतस्तन्मातुः समक्षं तत्पुस्तकवाचनाय निषिद्धोऽपि गुरौ गते सति जनन्या अप्रत्यक्षं तत्पुस्तकमुद्घाट्य निम्नामेकां "**विधिनियमभङ्गवृत्तिव्यतिरिक्तत्वादनर्थकमवोचत् ।**

जैनादन्यच्छासनमनृत भवतीति वैधर्म्यम् ॥१॥ " इत्यार्यामवाचयत्, अस्या आर्याया अर्थं यावद्विचारयति तावत्तद्धस्तात्श्रुतदेवतयाऽदृष्टया सपत्रं तत्पुस्तकं गृहीतम् । तद्विज्ञाय सङ्घोऽपि विषादं प्राप्तः । ततः स मुनिः श्रुतदेवताराधनाय गिरिखण्डलगुहायां षष्ठपारणके रुक्षनिष्पावभोक्ताऽभवत् । ततोऽपि वात्सल्यात्पीडितेन सङ्घेन '**अमुष्य विद्यानिधेर्मुनेर्नाशो मा भवतु**' इति विचिन्त्य चातुर्मासिकपारणे विकृतिं ग्राहीतः । ततः सङ्घसमाराधितया

गिरिखण्डलनामाऽस्ति पर्वतस्तद्गुहान्तरे । रूक्षनिष्पावभोक्ता स षष्ठपारणकेऽभवत् ॥२६॥
एवमभ्यर्दित सघो वात्सल्याज्जननीयुत । इहक् श्रुतस्य पात्र हि दुष्प्राप मा विशीर्यताम् ॥२७॥
विकृतिं ग्राहितस्तेन चातुर्मासिकपारणे । साधवस्तत्र गत्वाऽस्य प्रायन्छन भोजन मुने ॥२८॥
श्रुतदेवतया सघसमाराधितया तत । ऊचेऽन्यदा परीक्षार्थं 'के मिष्टा' इति भारती ॥२९॥
'वल्ला' इत्युत्तर प्रादान मल्ल फुल्लतपोनिधि । षण्मासान्ते पुन प्राह वाच 'केनेति' तत्पुर ॥३०॥
उक्ते 'गुडघृतेनेति' धारणातस्तुतोष सा । वर वृणिष्वेति च प्राह तेनोक्त यच्छ पुस्तकम् ॥३१॥
श्रुताधिष्ठायिनी प्रोचेऽवहितो मद्वच शृणु । ग्रन्थेऽत्र प्रकटे कुर्युर्देवेपिदेवा, उपद्रवम् ॥३२॥
श्लोकेनैनेन शास्त्रस्य सर्वमर्थ ग्रहीष्यसि । इत्युक्त्वा सा तिरोधत्त गच्छ मल्लश्च सगत ॥३३॥
नयचक्र नव तेन श्लोकायुतमित कृतम् । प्राग्ग्रन्थार्थप्रकाशेन सर्वोपादेयतां ययौ ॥३४॥
शास्त्रस्यास्य प्रवेश च सघश्चक्रे महोत्सवात् । हस्तिस्कन्धाधिरूढस्य प्रौढस्येव महीशितु ॥३५॥
अन्यदा श्रीजिनानन्दप्रमुखस्तत्रागमच्चिरात् सूरित्वे स्थापितो मल्ल श्राद्धैरभ्यर्च्य सद्गुरुम् ॥३६॥
तथाऽजितयशोनामा प्रमाणग्रन्थमादधे । अल्लभूपसभावादिश्रीनन्दकगुरोर्गिरा ॥३७॥
शब्दशास्त्रे च विश्रान्तविद्याधरवराऽभिधे । न्यास चक्रेऽल्पधीवृन्दबोधनाय स्फुटार्थकम् ॥३८॥
यक्षेण सहिता चक्रे निमित्ताष्टाङ्गबोधनी । सर्वान् प्रकाशयत्यर्थान् या दीपकलिका यथा ॥३९॥
मल्ल समुल्लसन्मल्लीफुल्लवेल्लद्यशोनिधि । शुश्राव स्थविराख्यानात् न्यक्कार बौद्धतो गुरो ॥४०॥
अप्रमाणै प्रयाणै स भृगुकच्छ समागमत । सघ प्रभावना चक्रे प्रवेशादिमहोत्सवै ॥४१॥
बुद्धानन्दस्ततो बौद्धानन्दमद्भुतमाचरत् । श्वेताम्बरो मया वादे जिग्ये दर्पं वहन्नमुम् ॥४२॥
यस्योन्नमन्त्यपि भ्रूर्नावलेपभरभारिता । जगद्भ्रष्ट कृपापात्र मन्यते स धरातलम् ॥४३॥
जैनर्षीनागतान् श्रुत्वा विशेषादुपसर्गकृत । सघस्याऽथ महाक्रोशो विशा वृन्दैरवीवदत ॥४४॥
पूर्वज. श्वेतभिक्षूणा वादमुद्राजयोद्धुर । स्याद्वादमुद्रया सम्यगजेय परवादिभि ॥४५॥
पर सोऽपि मयात्मीयसिद्धान्तै प्रकटीकृतै । कलितश्चुलुके कुम्भोद्भवेनेव पयोनिधि ॥४६॥ युग्मम् ।
किं करिष्यति बालोऽसावनालोकितकोविद । गेहेनर्दी सारमेय इवासारपराक्रम ॥४७॥
काचित्तस्यापि चेच्छक्तिस्ततो भूपसभापुर । स्व दर्शयतु येनैण वृकवद् ग्रासमानये ॥४८॥
मल्लाचार्य इति श्रुत्वा लीलया सिंहवत्स्थिर । गम्भीरगीर्भर प्राह ध्वस्तगर्वोऽद्विषन्नृणाम् ॥४९॥
जैनो मुनि शमी कश्चिदविवादावदातधी । जितो जित इति स्वेच्छावादोऽय किं घटापटु ॥५०॥
अथवाऽस्तु मुधा चिन्तावलेप शल्यवद्दृढम् ।अलमुद्धर्तुमेतस्य सज्जोऽस्मि विलसज्जय ॥५१॥
सज्जनो मे सुहृच्चापि ज्ञास्ये स्थास्यति चेत्पुर । तिष्ठन्स्वकीयगेहान्तर्जनो भूपेऽपि कद्वद ॥५२॥
प्रत्यक्ष प्राश्निकाना तन्मध्ये भूपसभ भृशम् । अनुद्यता यथा प्रज्ञाप्रामाण्य लभ्यते ध्रुवम् ॥५३॥
इत्याकर्ण्य वच स्मित्वा बुद्धानन्दोऽप्युवाच च । वावदूक शिशुप्राय कस्तेन सह सगर ॥५४॥
अस्तु वासौ निराकृत्य एव मे द्विषदन्वयी । ऋणस्तोकमिवासाध्य कालेनाऽसौ दुर्जय ॥५५॥
तत क्रूरे मुहूर्ते च तौ वादिप्रतिवादिनौ । ससद्याजग्मतु सभ्या पूर्ववाद लघोदुदु ॥५६॥
मल्लाचार्य. स षण्मासीं यावत्प्राज्ञार्यमावदत् । नयचक्रमहाग्रन्थाभिप्रायेणात्रुटद्वचा ॥५७॥
नावधारयितु शक्त सौगतोऽसौ गतो गृहम् ।मल्लेनाप्रतिमल्लेन जितमित्यभवन्गिर ॥५८॥
मल्लाचार्ये दधौ पुष्पवृष्टिं श्रीशासनामरी । महोत्सवेन भूपाल स्वाश्रये त न्यवेशयत् ॥५९॥
बुद्धानन्दपरीवारमपभ्राजनया तत । राजा निर्वासयन्नत्र वारितोऽर्थनपूर्वकम् ॥६०॥
विरुद तत्र 'वादी' ति ददौ भूपो मुनिप्रभो । मल्लवादी ततो जात सूरिर्भूरिकलानिधि ॥६१॥

तथा वलभीस्थविरावल्यामपि श्रीरेवतीमित्रसूरेरनु वाचनाचार्यः, स चासौ सिंहसूरिवरश्च= सिंहनामा सूरिपुङ्गवो वाचनाचार्यसिंहसूरिवरो ब्रह्मद्वीपिकाशाखामुगटमणिः "चउवीसमो जुगवरो" त्ति, युगप्रधानपरम्परायामपि श्रीरेवतीमित्रसूरेः श्रीरेवतीनक्षत्रसूरेर्वा पश्चाच्चतुर्विंशतितमो युगवरः=युगप्रधानो बभूव ।

अथाऽमुष्य जन्मादिपर्यायानाह–"जम्मो" इत्यादि, "ऽस्स" त्ति, अस्य=श्रीसिंहसूरेः "वीरा." त्ति, वीरात्=श्रीमहावीरप्रभुनिर्वाणकालतः "हरबाहुतुरगमपमाणे" त्ति हरबाहवः=शम्भुभुजो दश, तुरङ्गमाः=अश्वाः सप्त, एतयोरङ्कयोः प्रमाणो यस्य तादृशे हरबाहुतुरङ्गमप्रमाणे "ऽद्दे" त्ति, अब्दे=वर्षे "जम्मो" त्ति, जन्म=उत्पत्तिरभूत् "सो" त्ति, स= श्रीसिंहसूरिः "आयारपकप्पवाहसंखेऽद्दे" त्ति, आचारप्रकल्पा अष्टाविंशतिः, वाहाः=हयाः सप्त, एतयोरङ्कयोः प्रातिलोम्येन ७२८ प्रमाणं सङ्ख्या यस्मिँस्तस्मिन् आचारप्रकल्पवाहसंख्येऽब्दे=वीरसंवत् ७२८शारदे "सजमं"ति, संयमं=चारित्रं "गेण्हीअ" त्ति, अगृह्णात् । "मगलुवायहये"त्ति, मङ्गलानि=स्वस्तिकप्रमुखान्यष्टौ, उपायाः=साम-दाम-भेद दण्डलक्षणाश्चत्वारः, हयाः सप्त, एतेऽङ्काः प्रातिलोम्येन मीलिता ७४८ इति सङ्ख्या यत्र तत्र मङ्गलोपायहये=वीरसंवत् ७४८ वर्षे "जुगवरो" त्ति,=युगवरः=युगप्रधानोऽभवत् । "रसकरगये" त्ति, रसकरगजाः=षट्-द्वय-ऽष्टाङ्का यत्र तत्र रसकरगजे=वीरसंवत् ८२६ हायने "ख" ति, ख= सुरनगरीं "गओ" त्ति, गतः=ययौ ।

एवञ्चाऽस्याऽष्टादश१८वर्षाणि गृहे, विंशति२०वर्षाणि सामान्यव्रते, अष्टसप्तति ७८ वर्षाणि युगप्रधानत्वे चेति सर्वायुश्च षोडशोत्तरशत११६वर्षाणि भवति स्म ॥१०५-१०६॥

अथ वाचकश्रीउमास्वातिसूरिं पथ्यागीत्या शास्ति–

वायगवरो सिरिउमासाई तत्तत्थसुत्तआईणं ।
कत्ता णेगाण जयउ पुव्वविदो घोसणंदिपट्टहरो ॥ १०७॥ (पच्छागीई)

(प्रे०)"वायग०" इत्यादि, "सिरिउमासाई" त्ति, श्रीउमास्वातिः=श्रीउमास्वातिनामा गुरुः "जयउ" त्ति, जयतु=जयशीलोऽस्तु किम्भूतः ? "वायगवरो" त्ति, वाचकेषु= पाठकेषु=उपाध्यायेषु=वाचनादातृषु वरः=श्रेष्ठो वाचकवरः "णेगाण" त्ति, नैकानां=बहूनां "तत्तत्थसुत्तआईण" ति, तत्त्वार्थसूत्रादीनां कर्ता=रचयिता "पुव्वविदो त्ति, पूर्वविद्=पूर्वज्ञः

● पन्यासश्रीकल्याणविजयाना वालभवाचनाऽनुगतेनाऽभिप्रायेण श्रीसिंहसूरेर्युगप्रधानकालो वाचनाचार्यकालश्च वीरसवत् ७४७ वर्षत आरभ्य ८२५ वर्षं यावदर्थात् वीरसवत् ७४७ वर्षे युगप्रधानत्व वाचनाचार्यत्व वीरसवत् ८२५ वर्षे स्वर्गतिश्चाभूत ।

★ अत्राऽन्तरे श्रीवीरात् पञ्चचत्वारिंशदधिकाऽष्टशत८४५वर्षे गते वलभीभङ्गः ।

तथा चोक्त प्रभावकचरित्रे श्रीविजयसिंहसूरिप्रबन्धे—

"श्रीवर्धमानसंवत्सरतो वत्सरशताष्टके ऽतिगते । पञ्चाऽधिकचत्वारिंशताऽधिके समजनि वलभ्या ॥८१॥ भङ्गस्तुरुष्कविहितस्०" इति ।

द्व्यशीत्यधिकेऽष्टशते ८८२ वत्सरेऽतिगते चैत्यस्थितिः ।

षडशीत्युत्तरवर्षाष्टशतेष्वतिक्रान्तेषु ८८४ ब्रह्मद्वीपिका निर्गता ।

श्रीनन्दीसूत्रे प्रक्षिप्तगाथाऽपेक्षया श्रीनागार्जुन-भूतदिन्नयोर्मध्ये वाचनाचार्यश्रीगोविन्दसूरिरभूत् । तद्व्यतिकरस्तूपदेशपद इत्थं प्रतिपादितम्—

गोविन्दवाचकस्याय वृत्तान्त उपलभ्यते । यथासीन्नगरे क्वापि सूरिभिर्दुष्कृतास्पदे ॥१॥
गोविन्दो नाम निःशेषविद्वज्जनमदापह । शाक्यभिक्षुर्महावादी दानवोद्धुरचेष्टित ॥२॥ युग्मम् ।
तत्रायर्यौ विहारेण कदाचिन्मुनिभिर्वृत । सिद्धान्तशब्दसाहित्यच्छन्दस्तर्कविचक्षणः ॥३॥
श्रीगुप्तनामक सूरिर्भूरिभव्यकजांशुमान् । साधुलोकोचितस्थाने तस्थौ स्थाम्नुयशोभर ॥४॥
ग्रहतारागणैरिन्दुरुद्द्योतितनभस्तलै । यथा वभस्त्येष भृश तथान्तेवासिभिर्निजै ॥५॥
यथा सौरभसभारभरिताखिलदिङ्मुखे । भवेयुरलिनो लीना पद्मसद्मनि मानसे ॥६॥
तथा गुणज्ञस्तत्रत्यो जन सम्मदसङ्गत । तस्य सूरे पदाम्भोजमालिल्ये शल्यसूदिन ॥७॥
शुश्राव च जिनैरुक्त धर्म्म कर्मक्षयावहम् । तेनोच्यमानमानन्दध्यानव्याप्तविहायसा ॥८॥
जात प्रवादो नगरे श्रुतरत्नमहोदधि' । न समस्ति जने मन्ये सूरेरस्माद्गतस्मय ॥९॥
यथा सप्तच्छदामोदाद्वारणो मदमश्नुते । तत्प्रवादश्रुतेस्तद्वद्गोविन्दो विह्वलोऽभवत् ॥१०॥
को नाम मयि पाण्डित्यमहासागरपारगे । विजृम्भमाणे लभतामिलायामुज्ज्वल यश ? ॥११॥
गर्वोद्ग्रीवतया सम्यक् किञ्चिदग्रेऽतिभालयन् । सूरे समीपे सप्राप सश्रितो वादसङ्गरम् ॥१२॥
वाचोयुक्तिभिरुच्चाभिश्चित्राभिरचिरादपि । रेणुवद् मेघधाराभि सूरिणा निस्फुरीकृत ॥१३॥
विलक्षभाव भूयास स सम्पन्नो व्यचिन्तयत् न यावदेतत्सिद्धान्तमध्य लब्ध कथञ्चन ॥१४॥
तावन्न जीयते तस्मादपक्रम्य प्रदेशत । दूरदेशान्तरप्राप्तौ सत्या सूर्यन्तरान्तिके ॥१५॥
समुत्पादितविश्वासो दिदीक्षे दक्षभावत । लग्न सिद्धान्तमध्येतु पर सत्वरमानस ॥१६॥
विपर्यासाच्च नो सम्यक्त बोद्धु पारयत्यसौ । कतिचिद्दिनात्यये जाते भूय सम्भूय सौगत ॥१७॥
उपतस्थे तथैवासौ सूरिणाऽनुत्तरीकृत । भूयोऽप्यन्या दिश गत्वा प्रव्रज्याधीत्य चागमम् ॥१८॥
किञ्चित्तथैव समद प्रपेदे वादवाञ्छया । तमेव सूरिं, तेनाऽपि शक्त्या नीतो विलक्षताम् ॥१९॥
भूयस्तृतीयवारा स दूरदेशान्तराश्रयात् । गृहीतदीक्ष आचारे आद्याध्ययनसंश्रिते ॥२०॥
वनस्पतीनामुद्देशे पपाठालापकानिमान् । वनस्पतीना जीवत्वसाधकान् शुद्धयुक्तिभि ॥२१॥
यथा—"इमंपि जाइधम्मय एयपि जाइधम्मय । इमपि वुड्ढिधम्मयं एयपि वुड्ढिधम्मय । इमपि चित्तमतय एयपि चित्तमतय । इमपि छिन्न मिलाइ एयंपि छिन्न मिलाइ । इमपि आहारय एयपि आहारग । इमपि अणियय एयपि अणियय । इमपि असासय एयपि असासय । इमपि चउवचइय एयपि चउवचइय । इमपि विपरिणामय एयपि विप्परिणामयमिति ॥"
स शाक्यमतसस्कारात्पूर्व जीवतया तरून् । न श्रद्दधे तदानीं तु कथञ्चिन्मोहह्रासत ॥२२॥

★ यदुक्तम्- 'पणसयरी वासाइ तिन्नि सयसमन्नियाइ अक्कमिउ । विक्कमकालाओ तओ वलभीभंगो समुप्पन्नो ॥" इति ।

तथैव गुर्वावल्यामपि,तथा च तद्ग्रन्थः–

"जज्ञे चैत्ये प्रतिष्ठाकृन्नेमेर्नागपुरे नृपात् ।
त्रिभिर्वर्षशतैः २००किञ्चिदधिकैर्वीरसूरिराट् ॥३७॥"इति ॥१०८-१०९॥

साम्प्रतं श्रीवर्धमानविभोर्द्वाविंशं पट्टं धारयन्तं श्रीजयदेवसूरिं व्याचिकीर्षुरिन्द्रवज्रां प्रकटयति—

सूरीसरो सो जयदेवसण्णो दूरीकयासेसकुवाइवुंदो ।
भूसीअ वीरायरिअस्स पट्टं जहा सुको चूअतरुस्स साहं ॥११०॥

(इंदवज्जा)

(प्रे०) "सूरीसरो" इत्यादि, "सो" त्ति, सः=ख्यातकीर्तिः "जयदेवसण्णो" त्ति, जयदेवसंज्ञः=जयदेवनामा "सूरीसरो" त्ति, सूरीश्वरः=सूरिराट् "वीरायरिअस्स" त्ति, वीराचार्यस्य=वीराभिधस्य सूरिपुङ्गवस्य "पट्ट" ति, पट्टं=पदं "भूसीअ" त्ति, अभूषयत्=अलङ्करोति स्म । कः कस्य कामिवेत्याह–"जहा" इत्यादि, "जहा" त्ति, यथा "सुको" त्ति, शुकः=रक्ततुण्डः कीरः "चूअतरु साहं" ति, चूततरोः=आम्रशाखिनः शाखां भूषयति । किम्भूतः ? 'दूरीकयासेसकुवाइवुंदो' त्ति, दूरीकृतः=वादे विजित्य निष्प्रभीकृतोऽशेषः=समस्तः, कुत्सितम्=अर्हन्मतविरुद्धं=स्याद्वादविरुद्धं वा वदन्तीत्येवं शीलाः कुवादिनस्तेषां वृन्दः=समुदायो येन स दूरीकृताशेषकुवादिवृन्दः ॥११०॥

अथ मथुरावाचनामाश्रित्य सिंहसूरेः पश्चाद्भाविनं वाचनाचार्यं श्रीस्कन्दिलसूरिं पथ्यार्यया दर्शयति—

महुराअ वायणाए कत्ता सो जयउ खंदिलायरिओ ।
जस्स इमो अणुओगो पयरइ अज्जवि अड्ढभरहे ॥१११॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "महुराअ" इत्यादि, "सो" त्ति, स खंदिलायरिओ"त्ति, स्कन्दिलाचार्यः=श्रीनन्दिसूत्रोदितमाथुरवाचकस्थविरावल्यां श्रीसिंहसूरेरनु वाचनाचार्यः=श्रीस्कन्दिलनामा सूरिरुत्तरमथुरावासिमेघरथसुतो रूपसेनाकुक्षिसमुद्भवः सोमस्वप्नसूचितजन्मा "जयउ" त्ति, जयतु=जयनशीलो भवतु, किम्भूतः ? "महुराअ वायणाए कत्ता" त्ति, मथुराया वाच-

● 'जैनपरम्परानो इतिहास' इति संज्ञके ग्रन्थे प्रथमभागे श्रीवीरसूरेः स्वर्गतिर्वीरात् रामनिधिनिरय-७९३ प्रमिते वत्सरे दर्शिता ।

दिग्गजा अष्टौ, एतैरङ्कैः पश्चानुपूर्विक्रमन्यस्तैर्मिते करिदंशसिद्धिसिन्दुरमिते = वीरसंवत् ८८२ शरदि "वयं" ति, व्रतं = संयमं "लहीअ" त्ति, अलभत=अप्राप्नोत् । "पुरिसत्थ-बिंदुतत्ते" त्ति, पुरुषार्थाः = मोक्ष धर्म्मा-ऽर्थ-कामरूपाश्चत्वारः, बिन्दुः=शून्यम् शून्यवद्बिन्दोरपि वृताकृतित्वात् , तत्त्वाः=जीवादिपदार्था नव, एतेऽङ्का यत्र तत्र पुरुषार्थबिन्दुतत्त्वे प्रातिलोम्य-क्रमस्थापिते वीरसंवत् ९०४ वर्षे "जुगपहाणो" त्ति, युगप्रधानो जातः । "रामाग - विलयाखगे खमिओ" त्ति, रामाः=परशुराम-दाशरथिराम-बलरामरूपास्त्रयः, अगम्यवनिताः= अभोग्यनार्यः=स्वगोत्रजा--गुरुपत्नी--मित्रभार्या वर्णाधिका प्रव्रजिता--कुमारी-पुत्रवधू--लघुभ्रातृ-वधूलक्षणा अष्टौ, खगा नव, एभिरङ्कैर्विपरीतक्रमभणितैर्यः संवत्सरो भवति तस्मिन् रामागम्यवनिताखगे=वीरसंवत् ९८३ वत्सरे खं=स्वर्गम् इतः=ययौ ।★

इत्थश्चाऽसौ अष्टादश१८वर्षाणि गृहे, द्वाविंशति२२वर्षाणि सामान्यश्रमणपर्याये, एकोनाशीति७९वर्षाणि युगप्रधानत्वे चेति सर्वायुश्चैकोनविंशत्यधिकशत११९वर्षाणि परिभुज्य त्रिदशाश्रयमलश्चकार ॥११८ ११९॥

एतर्हि श्रीचरमार्हतश्चतुर्विंशं पट्टधरं श्रीविक्रमसूरिं विवक्षुर्लक्ष्मी व्याहरति—

सीअंसू वासतेइं, सप्पियं णंदए०व्व;
जो देवाणंदसूरि-स्सामिणो पट्टलच्छिं ।
हंतुं किं मोहसेणं, विक्कमो देहधारी;
सो सूरी विक्कमक्खो, दाउ सोक्खं भवाणं ॥१२०॥ (लच्छी)

(प्रे०) "सीअसू" इत्यादि, 'जो' त्ति, यः=श्रीविक्रमसूरिः 'देवाणंदसूरिस्सामिणो च्छि" ति, देवानन्दः=देवानन्दनामा सूरिणाम्=आचार्याणां स्वामी=नाथः= सूरिस्वामी देवानन्दश्चाऽसौ सूरिस्वामी देवान्दसूरिस्वामी तस्य देवानन्दसूरिस्वामिनः पट्टः= पदम् स एव लक्ष्मीः=श्रीः पट्टलक्ष्मीस्तां पट्टलक्ष्मीं नन्दति स्म । कः कामिव ! "सीअसू वासतेइ सप्पियं णदए०व" त्ति, इव=यथा शीतांशुः=चन्द्रः स्वप्रियां=निज भां वासतेयीं= रात्री नन्दति प्रह्लादयति ।

★ पन्न्यासश्रीकल्याणविजयाना वालभवाचनावाचकक्रमानुयायिनाऽभिप्रायेणाऽमुष्य वाचनाचार्य-काल उपलक्षणतश्च युगप्रधानकालो वीरसवत् ९०३ त प्रभृते ९८२ वर्षपर्यन्तोऽस्ति, ततस्तदाश्रित्याऽस्य युगप्रधानत्वं स्वर्गतिश्च क्रमेण वीरसवत् ९०३-९८२ वर्षे समजायत ।

दुर्भिक्षान्ते च विक्रमार्कस्यैकशताधिकत्रिपञ्चाशत्संवत्सरे स्थविरैरार्यस्कन्दिलाचार्यैस्तत्रमथुरायां जैनभिक्षूणां संघो मेलित.। एकशताधिकपञ्चविंशतिर्जैनभिक्षव स्थविरकल्पानुयायिनो मधुमित्र-गन्धहस्त्यादय समिलिता। सर्वेषां सावशेषमुखपाठान् मेलयित्वा-ऽऽर्यस्कन्दिलैर्गन्धहस्त्याद्यनुमतैरेकादशाङ्गी पुनर्ग्रथिता। स्वल्पमतिभिक्षूणामुपकारार्थं चा-ऽऽर्यस्कन्दिलस्थविरोत्तंसैः प्रेरिता गन्धहस्तिन एकादशाङ्गाना विवरणानि भद्रबाहुस्वामिविहितनिर्युक्त्यनुसारेण चक्रु। तत प्रभृति च प्रवचनमेतत् सकलमपि माथुरीवाचनया भारते प्रसिद्ध बभूव। मथुरानिवासिना श्रमणोपासकवरेणोशवंशविभूषणेन पोलाकाभिधेन तत्सकलमपि प्रवचन गन्धहस्तिकृतविवरणोपेतं तालपत्रादिषु लेखयित्वा भिक्षुभ्य स्वाध्यायार्थं समर्पितम् एव श्रीजिनप्रवचनप्रभावना विधाया-ऽऽर्यस्कन्दिलस्थविरा द्व्यधिकद्विशतवैक्रमीयसंवत्सरे मथुरायामेव कृतानशना स्वर्ग प्राप्ता।" इति ॥१११॥

अथ श्रीस्कन्दिलसूरिगुरुभ्रातृश्रीमधुमित्रशिष्यमार्यगन्धहस्तिनं स्तुवन् पथ्यार्यामाह—

तत्तत्थभासकारो जयेउ एगादसंगवित्तिदरो ।
सिरिमहुमित्तविणेयोऽज्जगंधहत्थी तिपुव्वधरणू ॥११२॥

(प्रे०) "तत्तत्थ०" इत्यादि, "ऽज्जगंधहत्थी" त्ति आर्यगन्धहस्ती 'जयेउ' त्ति जयतु=जयनशीलो भवतु इति क्रियान्वयः, किं विशिष्टः ? 'सिरिमहुमित्तविणेयो' त्ति श्रीमधुमित्रस्यार्यसिंहशिष्यस्य विनेयो-ऽन्तिषद् पुनरपि 'तिपुव्वण्णू' त्ति त्रिपूर्वज्ञः=त्रयाणां पूर्वाणां ज्ञानस्य धारकः 'तत्तत्थभासकारो' त्ति तत्त्वार्थभाष्यकारः=तत्त्वार्थस्य=वाचकावतंसश्रीउमास्वातिरचितस्य सूत्रविशेषस्य भाष्यस्य=अशीतिश्लोकसहस्रप्रमाणस्य महाभाष्यस्य कारकः 'एगादसंगवित्तियरो' त्ति एकादशाङ्गवृत्तिकरः=आर्यस्कन्दिलस्थविराणामुपरोधत एकादशानामङ्गानां वृत्तेर्विधायक इति। यदुक्तं तद्रचिताचाराङ्गवृत्तिप्रान्ते—

'थेरस्स महुमित्तस्स सेहेहिं तिपुव्वनाणजुत्तेहिं । मुणिगणविवंदिएहिं ववगयरागाइदोसेहिं ॥१॥
बभद्दीवियसाहामउडेहिं गंधहत्थिविबुहेहिं। विवरणमेयं रइयं दोसयवासेसु विक्कमओ ॥२॥" इति ॥११२॥

अथ मथुरावाचनानुयायिन्यां श्रीनन्दीसूत्रोक्तवाचकस्थविरावल्यां श्रीस्कन्दिलसूरेरनु सञ्जातं वाचनाचार्यं श्रीहिमवन्तमाचार्यं पथ्यार्यया प्ररूपयति—

हिमवंतखमासमणो पुव्वविओ जयउ वायणायरिओ ।
विक्कंतबहुपएसो कासिअसुअधारगो धीरो ॥११३॥

(प्रे०) "हिमवंत०" इत्यादि, "हिमवंतखमासमणो" त्ति, हिमवान्=हिमवन्नामा क्षमाश्रमणः 'जयउ' त्ति, जयतु=जयनशीलो भवतु। किम्भूतः ? 'पुव्वविओ' त्ति, पूर्वविद्=उत्पादादिपूर्वज्ञानधारकः "वायणायरिओ" त्ति, माथुरवाचनाऽपेक्षया श्रीनन्दीसूत्रदर्शित-

"ऽणेगवायलद्धजयो" त्ति, अनेकेषु = बहुषु वादेषु लब्धः = प्राप्तो जयः = विजय-लक्ष्मीर्येन स अनेकवादलब्धजयः = महावादीत्यर्थः॥१२१॥

अथ श्रीपञ्चसङ्ग्रहग्रन्थकारं श्रीचन्द्रर्पिमहत्तरगुरुमाह पथ्यार्यया—

सिरिचंदरिसिमहत्तरगुरू जयउ पंचसंगहक्खं जो।
गंथं रयीअ संगहरूवं पंचसयगाईणं ॥१२२॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "सिरि०" इत्यादि, "सिरिचदरिसिमहत्तरगुरू' त्ति, श्रिया = ज्ञान-लक्ष्म्या शोभया वा युक्तश्चन्द्रर्पिमहत्तरगुरुः श्रीचन्द्रर्पिमहत्तरगुरुः "जयउ" त्ति, जयतु= जयशीलोऽस्तु इति क्रियासम्बन्धः। यत्तदोर्नित्यमापेक्षत्वेन तच्छब्दोऽनुक्तोऽपि आक्षिप्यते= ततः स क इत्याह-"जो" त्ति, यः = श्रीचन्द्रर्पिमहत्तरगुरुः 'पचसगहक्ख' ति, पञ्च-संग्रहाख्यं = पञ्चसंग्रहसंज्ञकं किम्भूतम्? 'सगहरूव' ति, सङ्ग्रहरूपं = सङ्ग्रहात्मकम्, केषाम्? "पंचसयगाईण" त्ति, शतकमादौ येषां सप्ततिकाप्रभृति ग्रन्थानां ते शतकादयः, पञ्च= पञ्चसङ्ख्याकाः ते च ते शतकादयश्च पञ्चशतकादयस्तेषां पञ्चशतकादीनां = पञ्चानां शतका-दीनां-शतक-सप्ततिका कषायप्राभृत-सत्कर्म-कर्मप्रकृतिलक्षणानाम्। अत एव पञ्चानां वस्तूनां सङ्ग्रहरूपत्वेन पञ्चसङ्ग्रह इति सान्वयनामानं "गंथं' ति, ग्रन्थ= शास्त्रं "रयीअ" त्ति, अरचयत्।

केचनाः सप्ततिकाग्रन्थस्य प्रणेताऽप्ययमेवेति मन्यन्ते। तत्त्वं पुनः केवलिनो बहुश्रुता वा विद्युः॥१२२॥

इदानीं श्रीचरमशासनपतेः पञ्चविंशतितमं पट्टं बिभ्रतं श्रीनरसिंहसूरिं निर्देष्टुमिच्छुः कोलमाह—

स आगमविदो णरसिंहसूरी, हवीअ सिरिविक्कमसूरिपट्टे।
असुरस्स उवएसगिराअ जक्खो, चयीअ णरसिंहपुरम्मि मासं॥१२३॥
(कोलं)

(प्रे०) "स" इत्यादि, "स" त्ति, स=विश्रुतिभाक् "णरसिहसूरी" त्ति, नरसिंहसूरिः= नरसिंहाभिध आचार्यः। किम्भूतः? "आगमविओ" त्ति, आगमविद्=सिद्धान्तज्ञः "सिरि-विक्कमसूरिपट्टे" त्ति, श्रीविक्रमस्य=तन्नामानः सूरेः=आचार्यस्य पट्टे=पदे श्रीविक्रमसूरि-पट्टे "हवीअ" त्ति, अभूद्।

यदुक्तं श्रीहिमवदाचार्यैरचितस्थविरावल्याम्--

'नमिऊण वद्धमाणं तित्थयरं तं परं पयपत्तं । इदभूइ गणनाहं कहेमि थेरावलिं कमसो ॥१॥
सोहम्म मुणिनाहं पढमं वंदे सुमत्तिसंजुत्तो । जस्सेसो परिवाओ (रो) सपरकम्मुत्र थित्थरिओ ॥२॥
तप्पयलंकरणं तं जंबूणामं महामुणिं वंदे । चरमं केवलिणं खु जिणमयगयणंगणे मित्तं ॥३॥
पभवं मुणिगणपवरं सुरनरगणवंदियं नमसामि । जस्स कित्तिवित्थारो अज्ज वि माइ निहयणे सयले ॥४॥
सिज्जंभवं मुणिंदं तप्पयगयणे पभायरं वंदे । मणगट्ठं पविरइयं सुयं दसवेआलियं जेण ॥५॥
जसभद्दो मुणिपवरो तप्पयसोहकरो वरो जाओ । अट्ठमणंदो मगहे रज्जं कुणइ तया अइलोही ॥६॥
वंदे संभूइविजयं भद्दबाहुं तहा मुणिं पवरं । चउदसपुव्वीणं खु (खलु) चरमं कयसुत्तनिज्जुत्तिं ॥७॥
थूलभद्दो मुणिंदो पयड (मयण) सिंधुरकुसो जयइ । विउला जस्स य कित्ती (त्ती) तिलोयमज्झे सुवित्थरिआ ॥८॥
अज्जमहागिरिथेरं वंदे जिणकप्पिणं मुणिं पढमं । अज्जसुहत्थिं थेरं थेरकप्पिणं तहा नाहं ॥९॥
सुट्ठिय-सुप्पडिबुड्ढे (बुद्धे) अज्जे दुन्ने वि ते नमसामि । भिक्खुरायकलिंगाहिवेण सम्माणिए जिट्ठे ॥१०॥
...

एलावच्चसगोत्तं वंदामि महागिरिं सुहत्थिं च । तत्तो कोसिअगुत्तं बहुलस्स सरिव्वयं वंदे ॥१॥

अज्जसुहत्थिओ सुट्ठिय सुप्पडिबुड्ढा(बुद्धा)इयावलिया थिरकप्पियाणमावलिया विणिग्गया ।
जिणकप्पितुलत्तं कुणमाणाण अज्जमहागिरीण बहुल-बलिस्सहा भिक्खे दो वे (दोय) पहाणसेहे होत्था ।

हारिअगोत्तं साइं च वंदिमो हारिअं च सामज्जं । वंदे कोसिअगुत्तं संडिल्लं अज्जजीयधरं ॥२॥
तिसमुद्दखायकित्तिं दीवसमुद्देसु गहियपेआलं । वंदे अज्जसमुद्दं अक्खुभियसमुद्दगंभीरं ॥३॥
भणगं करगं झरगं पभावगं णाणदंसणगुणाणं । वंदामि अज्जमंगुं सुअसागरपारगं धीरं ॥४॥
नाणम्मि दंसणम्मि अ तव-विणए निच्चकालमुज्जत्तं । अज्जं नंदिलखमणं सिरसा वंदे पसन्नमणं ॥५॥
वड्ढउ वायगवंसो जसवंसो अज्जनागहत्थीणं । वागरण-करण भंगिअ-कम्मप्पयडीपहाणाणं ॥६॥
जच्चंजणधाउसमप्पहाणमुद्दिअकुवलयनिहाणं । वड्ढउ वायगवंसो रेवइनक्खत्तनामाणं ॥७॥
अयलपुरा णिक्खंते कालिअसुअआणुओगिए धीरे । बंभद्दीवगसीहे वायगपयमुत्तमं पत्ते ॥८॥
जेसि इमो अणुओगो पयरइ महुराओ (अज्ज वि) अड्ढभरहम्मि । बहुनयरनिग्गयजसे ते वंदे खंदिलायरिए ॥९॥

आर्यमहागिरीणां जिनकल्पितुलनां कुर्वतां बहुलाख्यो विनेयवरो जिनकल्पितुलनामकरोत् । बलिस्सहश्च पश्चात् स्थविरकल्पमभजत् । बलिस्सहशिष्याः स्वात्याचार्याः श्रुतसागरपारगास्तत्त्वार्थसूत्राख्यं शास्त्रं विहितवन्तः । तेषां शिष्यैरार्यश्यामैः प्रज्ञापना प्ररूपिता । श्यामार्यशिष्याः स्थविराः शाण्डिल्याचार्याः श्रुतसागरपारगा अभवन् । तेषां शाण्डिल्याचार्याणां आर्यजीतधरा ऽऽर्यसमुद्राख्यौ द्वौ शिष्यावभूताम् । आर्यसमुद्रस्या-ऽऽर्यमङ्गुनामानः प्रभावकाः शिष्या जाताः । आर्यमङ्गूनां चाऽऽर्यनन्दिलाख्याः शिष्या बभूवुः । आर्यनन्दिलानां चार्यनागहस्तिनः शिष्या बभूवुः । आर्यनागहस्तिनां चा-ऽऽर्यरेवतीनक्षत्राख्याः शिष्या अभवन् । आर्यरेवतीनक्षत्राणां आर्यसिंहाख्याः शिष्या अभवन् । ते च ब्रह्मद्वीपिकाशाखोपलक्षिता अभवन् । तेषामार्यसिंहानां स्थविराणां मधुमित्राऽऽर्यस्कन्दिलाचार्यनामानौ द्वौ शिष्यावभूताम् । आर्यमधुमित्राणां शिष्या आर्यगन्धहस्तिनो ऽतीवविद्वांसः प्रभावकाश्चाभवन् । तैश्च पूर्वस्थविरोत्तंसोमास्वातिवाचकरचिततत्त्वार्थोपरि अशीतिसहस्रश्लोकप्रमाणं महाभाष्यं रचितम्, एकादशाङ्गोपरि चाऽऽर्यस्कन्दिलस्थविराणामुपरोधतस्तैर्विवरणानि रचितानि' । इति ॥११३॥

त्ति, नागहृदनाम्नि नगरे "मंदिरं" ति, मन्दिर=पार्श्वनाथप्रभुभवनरूपं तीर्थं 'सवसं' ति. स्वस्य=श्रीश्वेताम्बरजैनसङ्घस्य वशम्=आयत्तं स्ववशं=स्वाधीनं "आणीअं" ति, आनीतं=कृतम् । केनेव ? णिवेणिव" त्ति, नृपेणेव=भूपेनेव-यथा नृपेण "रणे" त्ति, रणे=सङ्ग्रामे "सत्तू" त्ति, शत्रून्=रिपून् "जइत्ता" त्ति, जित्वा=वशीकृत्वा "गढो" त्ति, गढशब्दो देशीयस्ततः कोट्टो दुर्गो वा स्वायत्तीक्रियते । तथा च न्यगादि—

'खोमाणराजकुलजोऽपि समुद्रसूरि-र्गच्छं शशास किल य प्रवणप्रमाणी ।
जित्वा तदा क्षपणकान् स्वयश वितने. नागह्रदे भुजगनाथ नमस्यतीर्थम्।। ।।" इति ।

तथैव गुर्वावल्यामपि प्रतिपादितम् । तथा च तद्ग्रन्थः--

'खोमाणभूभृत्कुलजस्ततोऽभूत समुद्रसूरि स्ववश गुरुर्य ।
चकार नागह्रदपार्श्वतीर्थं विद्याम्बुधिर्दिग्वसनान् विजित्य ॥३९॥' इति।

अथ मथुरावाचनामाश्रित्य वाचकस्थविरावल्यां श्रीभूतदिन्नसूरेरनु जातं वाचनाचार्यं श्रीलोहित्यसंज्ञकमभिदधन्नाह पथ्यार्याम्—

सिरिलोहिच्चायरिओ णाया णायागमाइसत्ताणं ।
तत्तपरूवणकुसलो जयउ जगे वायणायरिओ ॥१२५॥ (पच्छाजा)

(प्रे०) "सिरिलोहिच्चा०" इत्यादि; "सिरिलोहि रिओ" त्ति, श्रीलोहित्याचार्यः= श्रीमान् लोहित्यनामा सूरिः "जयउ जगे" त्ति, जगति=भुवने जयतु=सर्वातिशयवानस्तु इति क्रियान्वयः । किम्भूतः ? "णाया णायागमाइसत्ताणं" ति, न्यायागमादिशास्त्राणां ज्ञाता=न्यायवेदी श्रुतधरश्चेति भावः । पुनः किं विशिष्टः ? "तत्तपरूवणकुसलो" त्ति, तत्त्वानां=सम्यक्सद्भावानां प्ररूपणे=व्याख्याने प्रकाशने वा कुशलः=चतुरो निपुणो वा तत्त्वनिरूपणकुशलः=यथार्थपदार्थप्रकटनदक्षः । पुनरपि कीदृक् ? "वायणायरिओ" त्ति, माथुरवाचनानुसारिश्रीनन्दीसूत्रोदितस्थविरावल्यां श्रीभूतदिन्नसूरेरनु वाचनाचार्यः=वाचनादाता ।

तथा चोक्तं श्रीनन्दीसूत्रे—

"सुमुणियनिच्चानिच्च सुमुणियसुत्तत्थधारय वंदे । सब्भावुब्भावणयातत्थं लोहिच्चनामाणं ॥४०॥" इति ।

अथ माथुरवाचनागतस्थविरक्रमापेक्षया श्रीलोहित्यसूरेः पश्चाद्भाविनं वाचनाचार्यं श्रीदूष्यगणिनं पथ्यार्यया व्याकरोति—

पाडिच्छियसयकलिअं मिउमहुरगिरं णमामि दूसगणिं ।
अणुओगयरपडुं प यणिगवायणायरिअं ॥१२६॥ (पच्छाजा)

त्ति, रागा भैरव-कौशिक-हिण्डोल-दीपक-श्रीराग-मेघरागलक्षणाः षट्, तथा चोक्तम्--
भैरव' कौशिकश्चैव हिंडोलो दीपकस्तथा । श्रीरागो मेघरागश्च रागा षडिति कीर्तिताः ॥ ॥"
इति । स्तनौ द्वौ, इभाः=हस्तिनोऽष्टौ, एतेऽङ्का यत्र तत्र रागस्तनेभे वामगतिन्यस्ते वीरसंवत् ८२६ वर्षे "जुगवरो" त्ति, युगवरः=युगप्रधानः "हवीअ" त्ति, अभवत् । "जुगणहङ्के" त्ति, युगनभाङ्काः=चतुः-शून्य नवाङ्कात्मका यत्र तत्र युगनभाङ्के वीरसंवत् ९०४ वर्षे "खमिओ" त्ति, खं=निर्जरलोकमितः=गतः ।

इत्थञ्चाऽसौ चतुर्दश१४वर्षाणि गृहवासे, एकोनविंशति१९वर्षाणि सामान्यव्रतपर्याये, अष्टसप्तति७८वर्षाणि युगप्रधानत्वे चेति सर्वायुश्चैकादशाधिकशत१११वर्षप्रमितं संपूर्य स्वर्गं जगाम ॥११४-११५॥

अधुना श्रीसिद्धार्थकुलनभोमणेस्त्रयोविंशपट्टभृतः श्रीदेवानन्दसूरेः प्रतिपिपादयिषया कुसुमितां निदर्शयति--

रिद्धिं परं णयीअ सूरिजयदेवपट्टसिरिं ।
देवाणंदसूरिवरो जह वरदुमगणो गिरिं ।
जस्स पसरिअकित्तिअच्छायणेण छणणामरा ।
ण हवन्ति लोगाण चम्मच्छीण णयणगोअरा ॥११६॥(कुसुमिया)

(प्रे०) 'रिद्धिं" इत्यादि, 'देवाणंदसूरिवरो" त्ति, देवानन्दः=देवानन्दनामा, स चासौ सूरिषु=मुनिनायकेषु वरः=श्रेष्ठः सूरिवरो=देवानन्दसूरिवरः, "सूरिजयदेवपट्टसिरिं" ति सूरिः=आचार्यः स चासौ जयदेवः=जयदेवाख्यः सूरिजयदेवस्तस्य पट्टः=पदम् एव श्रीः लक्ष्मीः=सूरिजयदेवपट्टश्रीस्तां सूरिजयदेवपट्टश्रियम् "परं" ति, परां=प्रकृष्टां 'रिद्धिं" ति ऋद्धिं=समृद्धिं शोभां वृद्धिं वा "णयीअ" त्ति, अनयत्=अप्रापयत् । क इव ? "जह वरदुमगणो गिरिं" ति, यथा वराणां=श्रेष्ठानां द्रुमाणां=वृक्षाणां गणः=समुदायो वरदुमगणो गिरिं=पर्वतं प्रकृष्टां शोभां प्रापयति ।

अथाऽस्य कीर्तेरुत्प्रेक्षां करोति "जस्स" इत्यादि, "जस्स" त्ति यस्य=श्रीदेवानन्दसूरेः "पसरिअकित्तिअच्छायणेण" त्ति, कीर्तिरेवाऽऽच्छादनं=वस्त्रमावरणं वा कीर्त्याच्छादानं

●पन्न्यासश्रीकल्याणविजयानां वालभवाचनानुसाराऽभिप्रायेण श्रीनागार्जुनसूरेर्युगप्रधानकालो वाचनाचार्यकालश्च वीरसंवत् ८२५ तः प्रभृति ९०३ वर्षे यावत्ततो युगप्रधानत्वं वाचनाचार्यत्वञ्च वीरसंवत् ... वर्षे स्वर्गतिश्च वीरसंवत् ९०३ वर्षे जायते स्म ।

अथ माथुरवाचनानुगतनन्दीसूत्रोक्तवाचकस्थविरक्रमागतं वाचनाचार्यं तथा श्रीकल्प॰ सूत्रादिदर्शितायां गुरुपरम्परायां श्रीआर्यवज्रस्वामिशिष्यश्रीआर्यरक्षस्य परम्परायां सञ्जातं श्रीदेवर्द्धिगणिनं 'श्रीदेववाचक' इत्यपरनामकं स्तुवन् पथ्यार्याद्वयमाह—

सुत्तत्थरयणरोहणगिरिं खमादमणमद्दवगुणड्ढिं ।
देवड्ढिखमासमणं वंदे तं वायणायरिअं ॥१२९॥ (पथ्याऽऽर्या)
जेण कओ पाढाणं समराणाओ वायणादुगगयाणं ।
वलहीअ वायणाए पहुणा सह कालगज्जेणं ॥१३०॥ (पथ्याऽऽर्या)

(प्रे०) "**सुत्तत्थ०**" इत्यादि, "**त**" ति, तं=प्रसिद्धिभाजं "**देवड्ढिखमासमण**" ति, देवर्द्धिक्षमाक्षमणं देवर्द्धिनामानं क्षमाश्रमणं देववाचक' इत्यपरनामकं काश्यपगोत्रं "**वंदे**" त्ति, वन्दे इति क्रियासम्बन्धः । किं विशिष्टम् ? "**सुत्तत्थरोहणगिरि**" ति, सूत्राणि चाऽर्थाश्च सूत्रार्थास्त एव रत्नानि सूत्रार्थरत्नानि तेषां रोहणगिरिः=रत्नोत्पत्तिस्थानभूतः पर्वतविशेषः सूत्रार्थरत्नरोहणगिरिस्तम्, सूत्रार्थरत्नरोहणगिरिं सूत्रार्थप्राप्तिस्थानभूतमित्यर्थः "**खमादमणमद्दवगुणड्ढि**" ति, क्षमा=क्षान्तिः=क्रोधादिकषायोपशमः, दमनश्च=इन्द्रियनिरोधः, मार्दवश्च=मृदुता=कोमलता, क्षमा च दमनश्च मार्दवश्च=क्षमादमनमार्दवानि तानि चा-ऽमी गुणाश्च क्षमादमनमार्दवगुणास्तेषामब्धिः=समुद्रः क्षमादमनमार्दवगुणाब्धिस्तम्, क्षमादमनमार्दवगुणाब्धिम्=क्षमादिगुणवन्तमित्यर्थः **तथा चोक्तं श्रीकल्पसूत्रे**—

"सुत्तत्थरयणभरिए खमदममद्दवगुणेहिं संपन्ने । देवड्ढिखमासमणे कासवगुत्ते पणिवयामि ॥१२॥" इति ।

उपलक्षणाच्चार्जव--सन्तोषादिगुणानामपि ग्रहणं द्रष्टव्यम्, पुनः किम्भूतमित्याह—'**वायणायरिअं**" ति, माथुरवाचनामाश्रित्य नन्दीसूत्रोक्तवाचकस्थविराभ्यां श्रीदूष्यगणिनः पश्चात्सप्तविंशं वाचनाचार्यं=वाचनादातारम् ।

अथ द्वितीयगाथा—"**जेण**" इत्यादि, यत्तदोर्नित्याऽभिसम्बन्धात् स क इत्याह—"**जेण**" त्ति, येन=माथुरवाचकस्थविरावल्यां सञ्जातेन श्रीदेवर्द्धिनाम्ना "**देववाचक**" इत्यपरसंज्ञकेन च क्षमाश्रमणेन " हीअ" त्ति, वलभ्यां "**वलहीअ**" त्ति, पदं पुनरपि सम्बध्यते ततः "**वलहीअ वायणाए पहुणा**" त्ति, वलभ्यां वलभ्या वा=वलभीविषयाया वलभीसत्काया वा वाचनायाः प्रभुणा=अधिपेन वलभीवाचनादर्शितवाचकस्थविरावल्यां सञ्जातेन वाचनाचार्येणेत्यर्थः, "**सह कालगज्जेणं**" ति, कालकार्येण=आर्यश्रीकालकनाम्नाऽऽचार्येण सह "**वायणादुगगयाणं**" ति, वाचनाद्वि तानां=माथुरवाचना-वालभवाचनालक्षणवाचनाद्वयस्थितानां

त्ति, रागा भैरव-कौशिक-हिण्डोल-दीपक-श्रीराग-मेघरागलक्षणाः षट्, तथा चोक्तम्--
भैरव कौशिकश्चैव हिंडोलो दीपकस्तथा । श्रीरागो मेघरागश्च रागा षडिति कीर्तिता ॥ ॥"
इति । स्तनौ द्वौ, इभाः=हस्तिनोऽष्टौ, एतेऽङ्का यत्र तत्र रागस्तनेभे वामगतिन्यस्ते वीरसंवत् ८२६ वर्षे "जुगवरो" त्ति, युगवरः=युगप्रधानः "हवीअ" त्ति, अभवत् । "जुगणहङ्के" त्ति, युगनभाङ्काः=चतुः-शून्य नवाङ्कात्मका यत्र तत्र युगनभाङ्के वीरसंवत् ९०४ वर्षे "खमिओ" त्ति, खं=निर्जरलोकमितः=गतः ।

इत्थञ्चाऽसौ चतुर्दश१४वर्षाणि गृहवासे, एकोनविंशति१९वर्षाणि सामान्यव्रतपर्याये, अष्टसप्तति७८वर्षाणि युगप्रधानत्वे चेति सर्वायुश्चैकादशाधिकशत१११वर्षप्रमितं संपूर्य स्वर्गं जगाम ॥११४-११५॥

अधुना श्रीसिद्धार्थकुलनभोमणेस्त्रयोविंशपट्टभृतः श्रीदेवानन्दसूरेः प्रतिपिपादयिषया कुसुमितां निदर्शयति--

रिद्धिं परं णयीअ सूरिजयदेवपट्टसिरिं ।
देवाणंदसूरिवरो जह वरदुमगणो गिरिं ।
जस्स पसरिअकित्तिअच्छायणेण छणणामरा ।
ण हवन्ति लोगाण चम्मच्छीण णयणगोअरा ॥११६॥(कुसुमिया)

(प्रे०) 'रिद्धि' इत्यादि, 'देवाणंदसूरिवरो' त्ति, देवानन्दः=देवानन्दनामा, स चासौ सूरिषु=मुनिनायकेषु वरः=श्रेष्ठः सूरिवरो=देवानन्दसूरिवरः, "सिरिजयदेवपट्टसिरिं" त्ति सूरिः=आचार्यः स चासौ जयदेवः=जयदेवाख्यः सूरिजयदेवस्तस्य पट्टः=पदम् एव श्रीः लक्ष्मीः=सूरिजयदेवपट्टश्रीस्तां सूरिजयदेवपट्टश्रियम् "परं" त्ति, परां=प्रकृष्टां 'रिद्धिं' त्ति, ऋद्धिं=समृद्धिं शोभां वृद्धिं वा "णयीअ" त्ति, अनयत्=अप्रापयत् । क इव ? "जह वरदुमगणो गिरिं" ति, यथा वराणां=श्रेष्ठानां द्रुमाणां=वृक्षाणां गणः=समुदायो वरदुमगणो गिरिं=पर्वतं प्रकृष्टां शोभां प्रापयति ।

अथाऽस्य कीर्तेरुत्प्रेक्षां करोति "जस्स" इत्यादि, "जस्स" त्ति यस्य=श्रीदेवानन्दसूरेः "पसरिअकित्तिअच्छायणेण" त्ति, कीर्तिरेवाऽऽच्छादन=वस्त्रमावरणं वा कीर्त्याच्छादानं

●पन्न्यासश्रीकल्याणविजयानां वालभवाचनानुसाराऽभिप्रायेण श्रीनागार्जुनसूरेर्युगप्रधानकालो वाचनाचार्यकालश्च वीरसंवत् ८२५ त प्रभृति ९०३ वर्षं यावत्ततो युगप्रधानत्वं वाचनाचार्यत्वञ्च वीरसंवत् ८२५ वर्षे स्वर्गतिश्च वीरसंवत् ९०३ वर्षे जायते स्म ।

गणेशाः=गणधराः=वीरप्रभोर्गणभृत एकादश, ग्रैवेयकविमानानि नव, एतावङ्कौ वामगति-न्यस्तौ यस्य तादृशे गणेशग्रैवेयकविमाने'ऽद्दे' त्ति, अब्दे=वत्सरे वीरसंवत् ९११ शारदेऽभूत्। "सो" त्ति, स=श्रीकालिकसूरिः 'सूयगडऽज्झयणवले' त्ति, सूत्रकृदध्ययनानि=सोद्देशान्य-धिकारविशेषरूपाणि श्रुतस्कन्धद्वयगतानि 'समय-वैतालीयो-पसर्गपरिज्ञा-स्त्रीपरिज्ञादिनामानि सूत्रकृताङ्गसूत्रस्याऽध्ययनानि त्रयोविंशतिः । तथा चोक्तं-

"दो चेव सुयक्खधा अज्झयणाइं हवंति तेवीसं । तेत्तीस उद्देशा आयारातो दुगुणमेयं ॥१॥" इति।

वलाः=वलदेवा नव, इमावङ्कौ पश्चानुपूर्विस्थापितौ यत्र तत्र सूत्रकृताऽध्ययनवले=वीर-संवत्९२३वर्षे "दिक्खं गेण्हीअ" त्ति, दीक्षां=सर्वविरतिं जग्राह । 'हवणवसुगहे' त्ति, हवनवसुग्रहाः क्रमेण त्र्यष्टनवाङ्करूपाः प्रातिलोम्येन ९८३ इति सङ्ख्या यत्र तत्र हवनवसुग्रहे= वीरसंवत्९८३वर्षे "जुगपहाणो" त्ति, युगप्रधानो जातः। "दिसाविण्हुवूहखगे" त्ति, दिशाः= पूर्वाद्याश्चतस्रः, विष्णूव्यूहा नव, अत एव नवव्यूह इत्यपि विष्णुपर्यायावाचकशब्दोऽपि वर्तते । तथा चोक्तं विष्णुपर्यायाऽभिधानाऽवसरेऽभिधानचिन्तामणौ शेषनाममालायाम्-

"चतुर्व्यूहो नवव्यूहो नवशक्तिः षडङ्गजित् । द्वादशमूलः शतको दशावतार एकनक् ॥६६॥" इति ।

खगा नव, एतेऽङ्का यस्य तादृशे दिशाविष्णुव्यूहखगे वामगतिस्थिते=वीरसंवत् ९९४ वत्सरे 'सग्गं गओ' त्ति, स्वर्गं=त्रिदशधाम गतः=प्राप्तः । ○

एवञ्चाऽस्य सूरेर्द्वादश१२वर्षाणि गृहस्थपर्यायः, षष्टि६०वर्षाणि सामान्यव्रतपर्यायः एकादश११वर्षाणि युगप्रधानपर्यायश्चेति त्र्यशीति८३वर्षाणि च समस्तायुरभवत् ।

तपागच्छपट्टावली-गुरुपट्टावली-पट्टावलीसारोद्धाराद्यपेक्षया पुनरमुना पञ्चमी-तश्चतुर्थ्यां सांवत्सरिके पर्वानीतम् । यदुक्तं श्रीरत्नसंचयप्रकरणेऽपि-

'नवसय तेणुएहिं समइक्कंतेहिं वद्धमाणाओ । पज्जूसणा चउत्थी कालिगसूरीहिं ता ठविया ॥२७५' इति ।

पन्न्यासश्रीकल्याणविजयाना वालभवाचनाऽनुसारिणाऽभिप्रायेण श्रीकालिकाचार्यस्य युगप्रधान-कालो वालभवाचनावाचकस्थविरानुगतवाचनाचार्यकालश्च वीरसंवत ९८२ त आरभ्य ९९३ पर्यन्तो ज्ञेय ।
अयम्भाव -वलभीवाचनाऽपेक्षया युगप्रधानपरम्पराया सप्तविंश युगप्रधान श्रीकालिकसूरिं यावत् य एव युगप्रधाना सञ्जाता त एव सामान्यतो वाचनाचार्या सन्ति किन्तु पन्न्यासश्रीकल्याणविजया हि श्रीआर्य-सुहस्तिसूरे पश्चात्सञ्जातमेकादश युगप्रधान श्रीगुणसुन्दसूरिं तथा त्रयोदश श्रीस्कन्दिलसूरिं न मन्यते । तथा सति द्वादश चतुर्दशञ्च युगप्रधान क्रमेण श्रीकालकसूरिं (श्रीश्यामाचार्य) श्रीरेवतिसूरिं क्रमेणैका-दशत्वेन द्वादशत्वेन स्वीकृत्य त्रयोदश चतुर्दशञ्च क्रमेण श्रीआर्यसमुद्रसूरिं श्रीमङ्गुसूरिञ्चाङ्गीकुर्वन्ति ।

×विचारश्रेणावपि श्रीमेरुतुङ्गसूरिभिरुक्ताचार्यद्वयस्य शाखाद्वयेऽभावे ऽपि सम्प्रदायवशाद्ग्रहण-मुक्तम्। तथा च तद्ग्रन्थ-"एव चात्र शाखाद्वये-ऽप्यार्यसुहस्तिनोऽनु गुणसुन्दर, श्यामार्यादनु स्कन्दिला-चार्यश्च न दृश्यते, तथाऽप्यत्र दृष्टावतस्तावेव प्रोक्तौ" इति ।

श्रुतदेवतया परीक्षार्थं मुनिः पृष्टः–'के मिष्टाः?' मुनिनोत्तरं ददौ 'वल्लाः' पणमासान्ते पुनस्तया पृष्टः 'केन सह?' 'गुडघृतेन' इत्युक्ते तस्य धारणाशक्तितः तुष्टया तया "वरं वृणु" इति भणितेन तेन तत्पुस्तकं याचितम्। ततः सा प्राह–अस्मिन्ग्रन्थे प्रकटिते द्विपत्सुरा उपद्रवं कुर्युस्ततस्त्वमेकेन श्लोकेन शास्त्रस्य सर्वमर्थं ग्रहीष्यसि। ततो लब्धवरेण मल्लमुनिना नूतनं नयचक्रमयुतश्लोकमितं कृतम्। अयञ्च श्रीमल्लवादिसूरिर्वीरसंवत् ८८४ वर्षे बौद्धान् बौद्धव्यन्तरांश्च जिग्ये।

तथा चोक्तं प्रभावकचरिते श्रीविजयसिंहसूरिप्रबन्धे–

"श्रीवीरवत्सरादथ शताष्टके चतुरशीतिसंयुक्ते। जिग्ये स मल्लवादी बौद्धांस्तद्व्यन्तरांश्चाऽपि ॥८३॥" इति।

[स]च विस्तरतो मल्लमुनिप्रबन्धस्तु प्रभावकचरित इत्थम्—

संसारवार्द्धिविस्तारात् निस्तारयतु दुस्तरात्। श्रीमल्लवादिसूरिर्वो यानपात्रप्रभः प्रभुः ॥१॥
गौः सत्तारघना यस्य पक्षाक्षीणलसद्युतिः। अवक्रा लक्षभेत्री च जीवामुक्ता सुपर्वभूः ॥२॥
जडानां निविडाध्यायप्रवृत्तौ वृत्तमद्भुतम्। प्रमाणाभ्यासतः ख्याते दृष्टान्तं किञ्चिदुच्यते ॥३॥
रेणुप्राकारतुङ्गत्वाद्रथेनागच्छतो रवेः। रथाङ्गमिव संलग्नं शकुनीतीर्थनाभिभृत् ॥४॥
हर्म्यारनिकरैर्युक्तं वप्रनेमिविराजितम्। पुरं श्रीभृगुकच्छाख्यमस्ति स्वस्तिनिकेतनम् ॥५॥
चारुचारित्रपाथोधिशमकल्लोलकेलितः। सदानन्दो जिनानन्दः सूरिस्तत्राच्युतः श्रिया ॥६॥
अन्यदा धनदानार्पितमत्तश्चित्ते छलं वहन्। चतुरङ्गसभात्रज्ञामज्ञानमदविभ्रमः ॥७॥
चैत्ययात्रासमायातं जिनानन्दमुनीश्वरम्। जिग्ये वितण्डया बुद्धया नन्दाख्यः सौगतो मुनिः ॥८॥ युग्मम्।
पराभवात् पुरं त्यक्त्वा जगाम वलभीं प्रभुः। प्राकृतोऽपि जितोऽन्येन कस्तिष्ठेत्तत्पुरान्तरा ॥९॥
तत्र दुर्लभदेवीति गुरोरस्ति सहोदरी। तस्याः पुत्रास्त्रयः सन्ति ज्येष्ठोऽजितयशोऽभिधः ॥१०॥
द्वितीयो यक्षनामाभून् मल्लनामा तृतीयकः। संसाराऽसारता चैषां मातुलैः प्रतिपादिता ॥११॥
जनन्या सह ते सर्वे बुद्ध्वा दीक्षामथादधुः। सम्प्राप्ते हि तरण्डे कः पाथोधिं न विलङ्घयेत् ॥१२॥
लक्षणादिमहाशास्त्राभ्यासात् ते कोविदाविपाः। अभूवन् भूरिविख्याता प्रज्ञायाः किं हि दुष्करम् ॥१३॥
पूर्वर्षिभिस्तथा ज्ञानप्रवादादभिधक्रमात्। नयचक्रमहाग्रन्थः पूर्वाचक्रे तमोहरः ॥१४॥
विश्रामरूपास्तिष्ठन्ति तत्राऽपि द्वादशारकाः। तेषामारम्भपर्यन्ते क्रियते चैत्यपूजनम् ॥१५॥
किञ्चित्पूर्वगतत्वाच्च नयचक्रं विनाऽपरम्। पाठिता गुरुभिः सर्वे कल्याणीमतयोऽभवन् ॥१६॥ त्रिभिर्विशेषकम्।
एष मल्लो महाप्राज्ञस्तेजसा हीरकोपमः। उन्मोच्य पुस्तकं बाल्यात् स स्वयं वाचयिष्यति ॥१७॥
तत्तस्योपद्रवेऽस्माकमनुतापोऽतिदुस्तरः। प्रत्यक्षं तज्जनन्यास्तज्जगदे गुरुणा च सः ॥१८॥
वत्सेदं पुस्तकं पूर्वं निषिद्धं मा विमोचयेः। निषिध्येति विजह्रुस्ते तीर्थयात्रां चिकीर्षवः ॥१९॥
मातुरप्यसमक्षं स पुस्तकं वारितद्विषन्। उन्मोच्य प्रथमे पत्रे आर्यामेनामवाचयत् ॥२०॥ तथाहि–
विधिनियमभङ्गवृत्तिव्यतिरिक्तत्वादनर्थकमवोचत्। जैनादन्यच्छासनमनृतं भवतीति वैधर्म्यम् ॥२१॥
अर्थं चिन्तयतोऽस्याश्च पुस्तकं श्रुतदेवता। पत्रं चाच्छेदयामास दुरन्ता गुरुणी क्षतिः ॥२२॥
इतिकर्तव्यतामूढो मल्लश्चिल्ललत्वमासजत्। अरोदीच्छैशवस्थित्या किं बलं दैवतैः सह ॥२३॥
पृष्टः किमिति मात्राह मद्वृत्तात्पुस्तकं ययौ। सद्यो विषादमापेदे ज्ञात्वा तत्तेन निर्मितम् ॥२४॥
आत्मनः स्खलितं साधु समारचयते स्वयम्। विचार्येति सुधीर्मल्ल आराध्नोत् श्रुतदेवताम् ॥२५॥

अथ माथुरवाचनानुगतनन्दीसूत्रोक्तवाचकस्थविरक्रमागतं वाचनाचार्यं तथा श्रीकल्प- सूत्रादिदर्शितायां गुरुपरम्परायां श्रीआर्यवज्रस्वामिशिष्यश्रीआर्यरक्षस्य परम्परायां सञ्जातं श्रीदेवर्द्धिगणिनं 'श्रीदेववाचक' इत्यपरनामकं स्तुवन् पथ्यार्याद्वयमाह—

सुत्तत्थरयणरोहणगिरिं खमादमणमद्दवगुणड्ढिं ।
देवड्ढिखमासमणं वंदे तं वायणायरिअं ॥१२९॥ (पच्छाज्जा)
जेण कओ पाढाणं समराणाओ वायणादुगगयाणं ।
वलहीअ वायणाए पहुणा सह कालगज्जेणं ॥१३०॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "सुत्तत्थ०" इत्यादि, "तं" ति, तं=प्रसिद्धिभाज "देवड्ढिखमासमण" ति, देवर्द्धिक्षमाक्षमणं देवर्द्धिनामानं क्षमाश्रमणं देववाचक' इत्यपरनामकं काश्यपगोत्रं "वंदे" त्ति, वन्दे इति क्रियासम्बन्धः । किं विशिष्टम् ? "सुत्तत्थरोहणगिरिं" ति, सूत्राणि चाऽ- र्थाश्च सूत्रार्थास्त एव रत्नानि सूत्रार्थरत्नानि तेषां रोहणगिरिः=रत्नोत्पत्तिस्थानभूतः पर्वतविशेषः सूत्रार्थरत्नरोहणगिरिस्तम्, सूत्रार्थरत्नरोहणगिरिं सूत्रार्थप्राप्तिस्थानभूतमित्यर्थः "खमादमण- मद्दवगुणड्ढिं" ति, क्षमा=क्षान्तिः=क्रोधादिकषायोपशमः, दमनश्च=इन्द्रियनिरोधः, मार्दवश्च= मृदुता=कोमलता, क्षमा च दमनश्च मार्दवश्च=क्षमादमनमार्दवानि तानि चा-ऽमी गुणाश्च क्षमा- दमनमार्दवगुणास्तेषामब्धिः=समुद्रः क्षमादमनमार्दवगुणाब्धिस्तम्, क्षमादमनमार्दवगुणाब्धिम्= क्षमादिगुणवन्तमित्यर्थः तथा चोक्तं श्रीकल्पसूत्रे—

"सुत्तत्थरयणभरिए खमदममद्दवगुणेहिं संपन्ने । देवड्ढिखमासमणे कासवगुत्ते पणिवयामि ॥१२॥" इति ।

उपलक्षणाच्चार्जव--सन्तोषादिगुणानामपि ग्रहणं द्रष्टव्यम्, पुनः किम्भूतमित्याह— 'वायणायरिअं'' ति, माथुरवाचनामाश्रित्य नन्दीसूत्रोक्तवाचकस्थविराभ्यां श्रीदूष्यगणिनः पश्चात्सप्तविंशं वाचनाचार्यं=वाचनादातारम् ।

अथ द्वितीयगाथा-"जेण" इत्यादि, यत्तदोर्नित्याऽभिसम्बन्धात् स क इत्याह— "जेण" त्ति, येन=माथुरवाचकस्थविरावल्यां सञ्जातेन श्रीदेवर्द्धिनाम्ना "देववाचक" इत्य- परसंज्ञकेन च क्षमाश्रमणेन " हीअ"त्ति, वलभ्यां "वलहीअ"त्ति, पदं पुनरपि सम्बध्यते ततः "वलहीअ वायणाए पहुणा"त्ति, वलभ्या वलभ्या वा=वलभीविषयाया वलभीसत्काया वा वाचनायाः प्रभुणा=अधिपेन वलभीवाचनादर्शितवाचकस्थविरावल्यां सञ्जातेन वाचनाचार्ये- णेत्यर्थः, "सह कालगज्जेणं" ति, कालकार्येण=आर्यश्रीकालकनाम्नाऽऽचार्येण सह "वायणा- दुगगयाणं" ति, वाचनाद्विकगतानां=माथुरवाचना-वालभवाचनालक्षणवाचनाद्वयस्थितानां

श्रुतदेवतया परीक्षार्थं मुनिः पृष्टः—'के मिष्टाः ?' मुनिनोत्तरं ददौ 'वल्लाः' षण्मासान्ते पुनस्तया पृष्टः 'केन सह ?' 'गुडघृतेन' इत्युक्ते तस्य धारणाशक्तितः तुष्टया तया "वरं वृणु" इति भणितेन तेन तत्पुस्तकं याचितम् । ततः सा प्राह—अस्मिन्ग्रन्थे प्रकटिते द्विषत्सुरा उपद्रवं कुर्युस्तस्त्वमेकेन श्लोकेन शास्त्रस्य सर्वमर्थं ग्रहीष्यसि । ततो लब्धवरेण मल्लमुनिना नूतनं नयचक्रमयुत-श्लोकमितं कृतम् । अयश्च श्रीमल्लवादिसूरिर्वीरसंवत् ८८४ वर्षे बौद्धान् बौद्धव्यन्तरांश्च जिग्ये ।

तथा चोक्तं श्रीप्रभावकचरिते श्रीविजयसिंहसूरिप्रबन्धे—

"श्रीवीरवत्सरादथ शताष्टके चतुरशीतिसंयुक्ते । जिग्ये स मल्लवादी बौद्धांस्तद्व्यन्तरांश्चाऽपि ॥८३॥ इति ।

तथा च विस्तरतो मल्लमुनिप्रबन्धस्तु प्रभावकचरित इत्थम्—

संसारवार्द्धिविस्तारात् निस्तारयतु दुस्तरात् । श्रीमल्लवादिसूरिर्वो यानपात्रप्रभः प्रभुः ॥१॥
गौः सत्तारघना यस्य पक्षाक्षीणाऽलसद्भुवि । अवक्रा लक्षभेत्त्री च जीवामुक्ता सुपर्वभूः ॥२॥
जडानां निबिडाध्यायप्रवृत्तौ वृत्तमद्भुतम् । प्रमाणाभ्यासतः ख्याते दृष्टान्तः किञ्चिदुच्यते ॥३॥
रेणुप्राकारतुङ्गत्वाद्रथेनागच्छतो रवेः । रथाङ्गमिव संलग्नं शकुनीतीर्थनाम्भृत् ॥४॥
हर्म्यारनिकरैर्युक्तं वप्रनेमिविराजितम् । पुरं श्रीभृगुकच्छाख्यमस्ति स्वस्तिनिकेतनम् ॥५॥
चारुचारित्रपाथोधिशमकल्लोलकेलितः । सदानन्दो जिनानन्दः सूरिस्तत्राच्युतः श्रिया ॥६॥
अन्यदा धनदानादिमत्तश्चित्ते छलं वहन् । चतुरङ्गसभाक्षामज्ञानमदविभ्रमः ॥७॥
चैत्ययात्रासमायातं जिनानन्दमुनीश्वरम् । जिग्ये वितण्डया बुद्धया नन्दाख्यः सौगतो मुनिः ॥८॥ युग्मम् ।
पराभवात् पुरं त्यक्त्वा जगाम वलभीं प्रभुः । प्राकृतोऽपि जितोऽन्येन कस्तिष्ठेत्तत्पुरान्तरा ॥९॥
तत्र दुर्लभदेवीति गुरोरस्ति सहोदरी । तस्याः पुत्रास्त्रयः सन्ति ज्येष्ठोऽजितयशोऽभिधः ॥१०॥
द्वितीयो यक्षनामाभून् मल्लनामा तृतीयकः । संसाराऽसारता चैषां मातुलैः प्रतिपादिता ॥११॥
जनन्या सह ते सर्वे बुद्धवा दीक्षामथादधुः । सप्रत्ते हि तरण्डेऽकः पाथोधिं न विलङ्घयेत् ॥१२॥
लक्षणादिमहाशास्त्राभ्यासात् ते कोविदा विधा । अभूवन् भूरिख्याता प्रज्ञायाः किं हि दुष्करम् ॥१३॥
पूर्वर्षिभिस्तथा ज्ञानप्रवादादभिधपञ्चमात् । नयचक्रमहाग्रन्थः पूर्वार्कः तमोहरः ॥१४॥
विश्रामरूपास्तिष्ठन्ति तत्राऽपि द्वादशारकाः । तेषामारम्भपर्यन्ते क्रियते चैत्यपूजनम् ॥१५॥
किञ्चित्पूर्वगतत्वाच्च नयचक्रं विनाऽपरम् । पाठिता गुरुभिः सर्वं कल्याणीमतयोऽभवन् ॥१६॥ त्रिभिर्विशेषकम् ।
एष मल्लो महाप्राज्ञस्तेजसा हीरकोपमः । उन्मोच्य पुस्तकं बाल्यात् स स्वयं वाचयिष्यति ॥१७॥
तत्तस्योपद्रवेऽस्माकमनुतापोऽतिदुस्तरः । प्रत्यक्षं तज्जनन्यास्तज्जगदे गुरुणा च सः ॥१८॥
वत्सेदं पुस्तकं पूर्वं निषिद्धं मा विमोचयेः । निषिध्येति विजह्रुस्ते तीर्थयात्रां चिकीर्षवः ॥१९॥
मातुरप्यसमक्षं स पुस्तकं वारितद्विषन् । उन्मोच्य प्रथमे पत्रे आर्यामेनामवाचयत् ॥२०॥ तथाहि—
विधिनियमभङ्गवृत्तिव्यतिरिक्तत्वादनर्थकमवोचत् । जैनादन्यच्छासनमनृतं भवतीति वैधर्म्यम् ॥२१॥
अर्थं चिन्तयतोऽस्याश्च पुस्तकं श्रुतदेवता । पत्रं चाच्छेदयामास दुरन्ता गुरुणी क्षतिः ॥२२॥
इतिकर्तव्यतामूढो मल्लश्चिल्लत्वमासजत् । अरोदीच्छैशवस्थित्या किं बलं देवतैः सह ॥२३॥
पृष्टः किमिति मात्राह मद्वृत्तात्पुस्तकं ययौ । सद्यो विषादमापेदे ज्ञात्वा तत्तेन निर्मितम् ॥२४॥
आत्मनः स्खलितं साधु समारचयते स्वयम् । विचार्येति सुधीर्मल्ल आराध्नोत् श्रुतदेवताम् ॥२५॥

अथ माथुरवाचनानुगतनन्दीसूत्रोक्तवाचकस्थविरक्रमागतं वाचनाचार्यं तथा श्रीकल्प-सूत्रादिदर्शितायां गुरुपरम्परायां श्रीआर्यवज्रस्वामिशिष्यश्रीआर्यरक्षस्य परम्परायां सञ्जातं श्रीदेवर्द्धिगणिनं 'श्रीदेववाचक' इत्यपरनामकं स्तुवन् पथ्यार्याद्वयमाह—

सुत्तत्थरयणरोहणगिरिं खमादमणमद्दवगुणड्ढिं ।
देवड्ढिखमासमणं वंदे तं वायणायरिअं ॥१२९॥ (पच्छाज्जा)
जेण कओ पाढाणं समरणाओ वायणादुगगयाणं ।
वलहीअ वायणाए पहुणा सह कालगज्जेणं ॥१३०॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "सुत्तत्थ०" इत्यादि, "त" ति, तं=प्रसिद्धिभाज "देवड्ढिखमासमण" ति, देवर्द्धिक्षमाक्षमणं देवर्द्धिनामानं क्षमाश्रमणं देववाचक' इत्यपरनामकं काश्यपगोत्रं "वदे" त्ति, वन्दे इति क्रियासम्बन्धः । किं विशिष्टम्? "सुत्तत्थरोहणगिरि" ति, सूत्राणि चाऽर्थाश्च सूत्रार्थास्त एव रत्नानि सूत्रार्थरत्नानि तेषां रोहणगिरिः=रत्नोत्पत्तिस्थानभूतः पर्वतविशेषः सूत्रार्थरत्नरोहणगिरिस्तम्, सूत्रार्थरत्नरोहणगिरि सूत्रार्थप्राप्तिस्थानभूतमित्यर्थः "खमादमण-मद्दवगुणड्ढिं" ति, क्षमा=क्षान्तिः=क्रोधादिकषायोपशमः, दमनश्च=इन्द्रियनिरोधः, मार्दवश्च=मृदुता=कोमलता, क्षमा च दमनश्च मार्दवश्च=क्षमादमनमार्दवानि तानि चा-ऽमी गुणाश्च क्षमा-दमनमार्दवगुणास्तेषामब्धिः=समुद्रः क्षमादमनमार्दवगुणाब्धिस्तम्, क्षमादमनमार्दवगुणाब्धिम्=क्षमादिगुणवन्तमित्यर्थः तथा चोक्तं श्रीकल्पसूत्रे—

"सुत्तत्थरयणभरिए खमदममद्दवगुणेहिं सपन्ने । देवड्ढिखमासमणे कासवगुत्ते पणिवयामि ॥१२॥" इति ।

उपलक्षणाच्चार्जव--सन्तोषादिगुणानामपि ग्रहणं द्रष्टव्यम्, पुनः किम्भूतमित्याह—'वायणायरिअं" ति, माथुरवाचनामाश्रित्य नन्दीसूत्रोक्तवाचकस्थविराभ्यां श्रीदूष्यगणिनः पश्चात्सप्तविंशं वाचनाचार्यं=वाचनादातारम् ।

अथ द्वितीयगाथा—"जेण" इत्यादि, यत्तदोर्नित्याऽभिसम्बन्धात् स क इत्याह—"जेण" त्ति, येन=माथुरवाचकस्थविरावल्यां सञ्जातेन श्रीदेवर्द्धिनाम्ना "देववाचक" इत्य-परसंज्ञकेन च क्षमाश्रमणेन " हीअ" त्ति, वलभ्यां "वलहीअ" त्ति, पदं पुनरपि सम्बध्यते ततः "वलहीअ वायणाए पहुणा" त्ति, वलभ्यां वलभ्या वा=वलभीविषयाया वलभीसत्काया वा वाचनायाः प्रभुणा=अधिपेन वलभीवाचनादर्शितवाचकस्थविरावल्यां सञ्जातेन वाचनाचार्येणेत्यर्थः, "सह कालगज्जेणं" ति, कालकार्येण=आर्यश्रीकालकनाम्नाऽऽचार्येण सह "वायणा-दुगगयाणं" ति, वाचनाद्विकगतानां=माथुरवाचना-वालभवाचनालक्षणवाचनाद्वयस्थितानां

श्रुतदेवतया परीक्षार्थं मुनिः पृष्टः—'के मिष्टाः?' मुनिनोत्तरं ददौ 'वल्लाः' षण्मासान्ते पुनस्तया पृष्टः 'केन सह?' 'गुडघृतेन' इत्युक्ते तस्य धारणाशक्तितः तुष्टया तया "वरं वृणु" इति भणितेन तेन तत्पुस्तकं याचितम्। ततः सा प्राह—अस्मिन्ग्रन्थे प्रकटिते द्विषत्सुरा उपद्रवं कुर्युरतस्त्वमेकेन श्लोकेन शास्त्रस्य सर्वमर्थं ग्रहीष्यसि। ततो लब्धवरेण मल्लमुनिना नूतनं नयचक्रमयुत-श्लोकमितं कृतम्। अयञ्च श्रीमल्लवादिसूरिर्वीरसंवत् ८८४ वर्षे बौद्धान् बौद्धव्यन्तरांश्च जिग्ये।

तथा चोक्तं श्रीप्रभावकचरिते श्रीविजयसिंहसूरिप्रबन्धे—

"श्रीवीरवत्सरादथ शताष्टके चतुरशीतिसंयुक्ते। जिग्ये स मल्लवादी बौद्धांस्तद्व्यन्तरांश्चाऽपि॥८३॥ इति।

...च विस्तरतो मल्लमुनिप्रबन्धस्तु प्रभावकचरित इत्थम्—

संसारवार्द्धिविस्तारात् निस्तारयतु दुस्तरात्। श्रीमल्लवादिसूरिर्वो यानपात्रप्रभः प्रभुः ॥१॥
गौः सत्तारघना यस्य पक्षाक्षीणालसद्युतिः। अवक्त्रा लक्ष्मभेत्त्री च जीवामुक्ता सुपर्वभूः ॥२॥
जडानां निबिडाध्यायप्रवृत्तौ वृत्तमद्भुतम्। प्रमाणाभ्यासतः ख्याते दृष्टान्तः किञ्चिदुच्यते ॥३॥
रेणुप्राकारतुङ्गत्वाद्रथेनागच्छतो रवेः। रथाङ्गमिव संलग्नं शकुनीतीर्थनाम्भृत् ॥४॥
हर्म्यारनिकरैर्युक्तं वप्रनेमिविराजितम्। पुरं श्रीभृगुकच्छाख्यमस्ति स्वस्तिनिकेतनम् ॥५॥
चारुचारित्रपाथोधिशमकल्लोलकेलितः। सदानन्दो जिनानन्दः सूरिस्तत्राच्युतश्रिया ॥६॥
अन्यदा धनदानादितिमत्तश्चित्ते छलं वहन्। चतुरङ्गसभावज्ञामज्ञानमदविभ्रमः ॥७॥
चैत्ययात्रासमायातं जिनानन्दमुनीश्वरम्। जिग्ये वितण्डया बुद्धया नन्दाख्यः सौगतो मुनिः ॥८॥ युग्मम्।
पराभवात् पुरं त्यक्त्वा जगाम वलभीं प्रभुः। प्राकृतोऽपि जितोऽन्येन कस्तिष्ठेत्तत्पुरान्तरा ॥९॥
तत्र दुर्लभदेवीति गुरोरस्ति सहोदरी। तस्याः पुत्रास्त्रयः सन्ति ज्येष्ठोऽजितयशोऽभिधः ॥१०॥
द्वितीयो यक्षनामाभूत् मल्लनामा तृतीयकः। संसाराऽसारता चैषां मातुलैः प्रतिपादिता ॥११॥
जनन्या सह ते सर्वे बुद्ध्वा दीक्षामथाददुः। सम्प्राप्ते हि तरण्डे कः पाथोधिं न विलङ्घयेत् ॥१२॥
लक्षणादिमहाशास्त्राभ्यासात् ते कोविदाविषाः। अभूवन् भूरिख्याताः प्रज्ञायाः किं हि दुष्करम् ॥१३॥
पूर्वर्षिभिस्तथा ज्ञानप्रवादाभिधपञ्चमात्। नयचक्रमहाग्रन्थः पूर्वाच्चक्रे तमोहरः ॥१४॥
विश्रामरूपास्तिष्ठन्ति तत्राऽपि द्वादशारकाः। तेषामारम्भपर्यन्ते क्रियते चैत्यपूजनम् ॥१५॥
किञ्चित्पूर्वगतत्वाच्च नयचक्रं विनाऽपरम्। पाठिता गुरुभिः सर्वं कल्याणीमतयोऽभवन्॥१६॥ त्रिभिर्विशेषकम्।
एष मल्लो महाप्राज्ञस्तेजसा हीरकोपमः। उन्मोच्य पुस्तकं बाल्यात् स स्वयं वाचयिष्यति ॥१७॥
तत्तस्योपद्रवेऽस्माकमनुतापोऽतिदुस्तरः। प्रत्यक्षं तज्जनन्यास्तज्जगदे गुरुणा च सः ॥१८॥
वत्सेदं पुस्तकं पूर्वं निषिद्धं मा विमोचयेः। निषिध्येति विजहुस्ते तीर्थयात्रां चिकीर्षवः ॥१९॥
मातुरप्यसमक्षं स पुस्तकं वारितद्विषन्। उन्मोच्य प्रथमे पत्रे आर्यामेनामवाचयत् ॥२०॥ तथाहि—
विधिनियमभङ्गवृत्तिव्यतिरिक्तत्वादनर्थकमवोचत्। जैनादन्यच्छासनमनृतं भवतीति वैधर्म्यम् ॥२१॥
अर्थं चिन्तयतोऽस्याश्च पुस्तकं श्रुतदेवता। पत्रं चाच्छेदयामास दुरन्ता गुरुगीःक्षतिः ॥२२॥
इतिकर्तव्यतामूढो मल्लश्चिल्लत्वमासजत्। अरोदीच्छैशवस्थित्या किं बलं देवतैः सह ॥२३॥
पृष्टः किमिति मात्राह मद्वृत्तात्पुस्तकं ययौ। सद्यो विषादमापेदे ज्ञात्वा तत्तेन निर्मितम् ॥२४॥
आत्मनः स्खलितं साधु समारचयते स्वयम्। विचार्येति सुधीर्मल्ल आराध्नोत् श्रुतदेवताम् ॥२५॥

अमुष्य गुरुपरम्परा पुनः श्रीकल्पसूत्रे दर्शिताऽस्ति। तत्सूत्रोक्तगुरुपरम्परायामसौ चतुस्त्रिंशत्तमो भवति। तद्यथा–१ श्रीसुधर्मस्वामी, २ ततः श्रीजम्बूस्वामी, ३ तदनु श्रीप्रभवस्वामी, ४ ततः श्रीशय्यम्भवस्वामी, ५ तदनु श्रीयशोभद्रस्वामी, ६ ततः श्रीसम्भूतसूरिः, ७ ततः श्रीस्थूलभद्रसूरिः, ८ तदनु आर्यश्रीसुहस्तिसूरिः, ९ ततः श्रीसुस्थितसूरिः, १० तत आर्यश्रीइन्द्रदिन्नसूरिः, ११ तत आर्यश्रीदिन्नसूरिः, १२ तत आर्यश्रीसिंहगिरिः, १३ तत आर्यश्रीवज्रस्वामी, १४ तत आर्यश्रीरथः, १५ तत आर्यश्रीपुष्यगिरिः, १६ तदनु श्रीफल्गुमित्रसूरिः, १७ तत आर्यश्रीधनगिरिः, १८ तत आर्यश्रीशिवभूतिः, १९ तत आर्यश्रीभद्रः, २० तत आर्यश्रीनक्षत्रः, २१ तत आर्यश्रीरक्षः, २२ तदनु आर्यश्रीनागः, २३ तत आर्यश्रीजेहिलः (जेष्टिलः) २४ तदनु आर्यश्रीविष्णुः, २५ तत आर्यश्रीकालकः, २६ तत आर्यश्रीसंपलित (यशो)भद्रौ, २७ तदनु आर्यश्रीवृद्धः, २८ तत आर्यश्रीसङ्घपालितः, २९ तत आर्यहस्ती, ३० तत आर्यश्रीधर्मः, ३१ तत आर्यसिंहः, ३२ तत आर्यश्रीधर्मः, ३३ तदनु आर्यश्रीशाण्डिल्यः, ३४ ततः श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणः।

तथा चोक्तं श्रीकल्पसूत्रे—'५ समणे भगवं महावीरे कासवगुत्ते णं ॥
समणस्स णं भगवओ महावीरस्स कासवगुत्तस्स अज्जसुहम्मे १ थेरे अंतेवासी अग्गिवेसायणसगुत्ते ॥
थेरस्स णं अज्जसुहम्मस्स अग्गिवेसायणगुत्तस्स अज्जजंबूनामे २ थेरे अंतेवासी कासवगुत्ते ॥
थेरस्स णं अज्जजंबूणामस्स कासवगुत्तस्स 'अज्जप्पभवे' ३ थेरे अंतेवासी कच्चायणसगुत्ते ॥
थेरस्स णं अज्जप्पभवस्स कच्चायणसगुत्तस्स 'अज्जसिज्जंभवे' ४ थेरे अंतेवासी मणगपिया वच्छसगोत्ते॥
थेरस्स णं अज्जसिज्जंभवस्स मणगपिउणो वच्छसगोत्तस्स 'अज्जजसभद्दे' ५, थेरे अंतेवासी तुंगियायणसगोत्ते॥

संखित्तवायणाए अज्जजसभद्दाओ अग्गाओ एवं थेरावली भणिया। तं जहा–
थेरस्स णं अज्जजसभद्दस्स तुंगियायणसगुत्तस्स अंतेवासी दुवे थेरा–
थेरे 'अज्जसंभूइविजए' ६ माढरसगुत्ते, थेरे 'अज्जभद्दबाहू' ६ पाईणसगुत्ते ॥
थेरस्स णं अज्जसंभूइविजयस्स माढरसगुत्तस्स अंतेवासी थेरे अज्जथूलभद्दे' ७ गोयमसगुत्ते ॥
थेरस्स णं अज्जथूलभद्दस्स गोयमसगुत्तस्स अंतेवासी दुवे थेरा–
थेरे 'अज्जमहागिरी', ८एलावच्चसगुत्ते, थेरे 'अज्जसुहत्थी' ८ वासिट्ठसगुत्ते ॥
थेरस्स णं अज्जसुहत्थिस्स वासिट्ठसगुत्तस्स अंतेवासी दुवे थेरा
'सुट्ठियसुप्पडिबुद्धा' ९ कोडियकाकंदगा वग्घावच्चसगुत्ता ॥
सुट्ठियसुप्पडिबुद्धाणं कोडियकाकंदगाणं वग्घवच्चसगुत्ताणं अंतेवासी थेरे 'अज्जइददिन्ने' १० कोसियगुत्ते।
थेरस्स णं अज्जइददिन्नस्स कोसियगुत्तस्स अंतेवासी थेरे 'अज्जदिन्ने' ११ गोयमसगुत्ते ॥
थेरस्स णं अज्जदिन्नस्स गोयमसगुत्तस्स अंतेवासी थेरे 'अज्जसीहगिरी' १२, जाइसरे कोसियसगुत्ते ॥
थेरस्स णं अज्जसीहगिरी(रि)स्स जाइसरस्स कोसियसगुत्तस्स अंतेवासी थेरे 'अज्जवइरे' १३ गोयमसगुत्ते॥

ततो विस्तारवाचनायां श्रीवज्रस्वामित अग्रेतनी स्थविरावलीत्थं प्रतिपादिता–... ..
थेरस्स णं अज्जवइरस्स गोयमसगुत्तस्स इमे तिण्णि थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया हुत्था, तं जहा–थेरे अज्जवइरसेणिए थेरे अज्जपउमे थेरे अज्जरहे १४ ॥ . – –
थेरस्स णं अज्जरहस्स वच्छसगुत्तस्स अज्जपूसगिरी १५ थेरे अंतेवासी कोसियगुत्ते ॥२॥
थेरस्स णं अज्जपूसगिरिस्स कोसियगुत्तस्सअज्जफग्गुमित्ते १६ थेरे अंतेवासी गोयमसगुत्ते ॥३॥

बुद्धानन्दो निरानन्द शुचा निष्प्रतिभो भृशम् । रात्रौ प्रदीपमादाय प्रारेभे लिखितु तत ॥६२॥
तत्रापि विस्मृतिं याते पक्षहेतुकदम्बके । अनुत्तरो मयाल्लज्जावेशमात स्फुटितं हृदि ॥६३॥
मृत्यु प्राप खटीहस्तो राज्ञा प्रातर्व्यलोक्यत । मल्लेन च ततोऽशोचि वाग्मी हा दिव गत ॥६४॥
कस्य प्राणादसौ प्रज्ञा प्रगल्भा स्वा प्रबुद्धवान । अवज्ञाता शिशुत्वान् न स्वयमीदृक् च कातर ॥६५॥
वलभ्या श्रीजिनानन्द. प्रभुरानायितस्तदा । सघमभ्यर्च्य पूज्य स्व सूरिणा मल्लवादिना ॥६६॥
माता दुर्लभदेवीति तुष्टा चारित्रधारिणी । बन्धुना गुरुणाऽभाणि त्व स्थिता पुत्रिणीधुरि ॥६७॥
गुरुणा गच्छभारश्च योग्ये शिष्ये निवेशित । मल्लवादिप्रभौ को हि स्वौचित्य प्रविलङ्घयेत् ॥६८॥
नयचक्रमहाग्रन्थ शिष्याणा पुरतस्तदा । व्याख्यात परवादीभकुम्भभेदनकेसरी ॥६९॥
श्रीपद्मचरित नाम रामायणमुदाहरत् । चतुर्विंशतिरेतस्य सहस्रा ग्रन्थमानत ॥७०॥
तीर्थं प्रभाव्य वादीन्द्रान् शिष्यान् निष्पाद्य चामलान् । गुरु-शिष्यौ गुरुप्रेमबन्धेनेवेयतुर्दिवम् ॥७१॥
बुद्धानन्दस्तदा मृत्वा विपक्षव्यन्तरोऽजनि । जिनशासनविद्वेषिप्रान्तकालमतेरसौ ॥७२॥
तेन प्राग्वैरतस्तस्य ग्रन्थद्वयमधिष्ठितम् । विद्यते पुस्तकस्थ तत् वाचितु स न यच्छति ॥७३॥

श्रीमल्लवादिप्रभुवृत्तमेतन् मच्चेतनावल्लिनवाम्बुदाभम् ।
व्याख्यान्तु शृण्वन्तु कविप्रधाना प्रसन्नदृष्ट्या च विलोकयन्तु ॥७४॥

श्रीचन्द्रप्रभसूरिपट्टसरसीहसप्रभ श्रीप्रभा-चन्द्र सूरिरनेन चेतसि कृते श्रीरामलक्ष्मीभुवा । श्रीपूर्वर्षिचरित्र-रोहणगिरौ श्रीमल्लवाद्यद्भुत, श्रीप्रद्युम्नमुनीन्दुना विशदित शृङ्गो नवाग्रोऽभवत् ।७५।।" इति ।

प्रबन्धचिन्तामणौ पुनरेव प्रतिपादितमस्ति-तद्यथा–

कदाचिच्छिलादित्य समापतीकृत्य चतुरङ्गसभाया 'पराजितेन देशत्यागिना भाव्यमि' ति पणबन्ध-पूर्वं सिताम्बर-सौगतयोर्वादे सञ्जायमाने पराजितान् सिताम्बरान् स्वविषयात्सर्वान् निर्वास्य श्रीशिला-दित्यजामेयममेयगुणं मल्लनामान क्षुल्लक तत्र तस्थिवास समुपेक्ष्य स्वयं जितकाशिन श्रीविमलगिरौ श्रीमूलनायक श्रीयुगादिदेवं बुद्धरूपेण पूजयन्तो बौद्धा यावद्विजयिनस्तिष्ठन्ति तावत्स मल्ल क्षत्त्रकुलो-द्भवत्वात्तस्य वैरम्याऽविस्मरन् कृतपञ्चिकोर्जैनदर्शनाभावात्तेषामेव सन्निधावधीयन् रात्रिन्दिव तल्लीन चत्त कदाचिद्भीष्मग्रीष्मवासरेषु निशीथकाले निद्रामुद्रितलोचने समस्तनागरिकलोके दिवाभ्यस्त शास्त्र महताभियोगेनानुस्मरन् , तत्काल गगने सञ्चरत्या श्रीभारत्या 'के मिष्टा ?' इति शब्द पृष्ट. । स परितो वक्तारमनवलोक्य 'वल्ला ' इति ता प्रति प्रतिवचन प्रतिपाद्य, पुन षण्मासान्ते तस्मिन्नेवावसरे प्रत्यावृत्तया वाग्देवतया 'केन सह ?' इति भूयोऽभिहित । तदा त्वनुस्मृतपूर्ववाक् 'गुडघृतेन' इति प्रत्यु-त्तर ददान तदवधानविधानचमत्कृतया 'अभिमत वर वृणीष्व' इत्यादिष्ट 'सौगतपराजयाय कमपि प्रमाण-ग्रन्थ प्रसादीकुरु' इत्यर्थमभ्यर्थयन्, नयचक्रग्रन्थार्पणेनाऽनुजगृहे । अथ भारतीप्रसादादवागततत्त्व: श्रीशिलादित्यमनुज्ञाप्य सौगतमठेषु तृणोदकप्रक्षेपपूर्वं नृपतिसभाया पूर्वोदितपणबन्धपूर्वक कण्ठपीठा-ऽवतीर्णश्रीवाग्देवताबलेन श्रीमल्लस्तास्तरसैव निरुत्तरीचकार । अथ राजाज्ञया सौगतेषु देशान्तर गतेषु जैनाचार्येष्वाहूतेषु स मल्लो बौद्धेषु जितेषु 'वादी' तदनु भूपाभ्यर्थितैर्गुरुभि पारितोषिके तस्मै सूरिपद ददे श्रीमल्लवादिसूरिनाम्ना । गणभृत्प्रभावकतया नवाङ्गवृत्तिकारकश्रीअभयदेवसूरिप्रकटीकृतस्य श्री-स्तम्भनकतीर्थस्य विशेषोन्नत्यै श्रीसङ्घेन चिन्तायकत्वे नियोजित ।

मल्लवादिनामानोऽनेके सूरयोऽभवन् । तत्राद्योऽनन्तरोदितो विक्रमस्य पञ्चमे शतके, द्वितीयो दशमे शतके, तृतीयस्त्रयोदशे शतके, चेति त्रयोऽपि मल्लवादिनो महातार्किकाऽभवन् । तेषाञ्च समान-नामत्वेनाऽन्योऽन्यचरित्रकथनसङ्क्रान्तिरस्ति स्म ।

इत्येवमेकचत्वारिंशत्तमोऽसौ देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणो भवति। कैश्चित्पुनः श्रीआर्यदुर्जयन्त-श्रीआर्यकृष्णनामानौ द्वौ शिवभूतेर्गुरुभ्रातरौ संभाव्येते तदपेक्षया पुनः श्रीदेवर्द्धिक्षमाश्रमण-श्चत्वारिंशो भवति।

तत्प्रतिपादिता कल्पसूत्रान्ते न्यस्ताश्चतुर्दश गाथाश्चेमाः—

"वन्दामि फग्गुमित्त,१६च गोयम धणगिरिं १७ च वासिट्ठ। कुच्छ सिवभूइ १८ पि य, कोसियदुज्जतकण्हे १९ य।
त वदिऊण सिरसा, भद्द २० वदामि कासव गुत्त। नक्ख २१ कासवगुत्त रक्ख पि य २२ कासव वदे॥२॥
वदामि अज्जनाग, २३ च गोयम जेहिल २४ च वासिट्ठ। विण्हु २५ माढरगुत्त कालगमवि २६ गोयम वदे॥३॥
गोयमगुत्तकुमार सपलिय २७A तहय भद्दय २७B वदे। थेर च अज्जवुड्ढ २८ गोयमगुत्त नमसामि॥४॥
त वदिऊण सिरसा थिरसत्तचरित्तनाणसपन्नं। थेर च सघवालिय२९-गोयमगुत्त पणिवयामि॥५॥
वदामि अज्जहत्थिं ३० च कासव खतिसागर धीर। गिम्हाण पढममासे कालगय चेव सुद्धस्स॥६॥
वदामि अज्जधम्म ३१ च सुव्वय सीललद्धिसपन्न। जस्स निक्खमणे देवो छत्त वरमुत्तमं वहइ॥७॥
हत्थि ३२ कासवगुत्त धम्म ३३ सिवसाहग पणिवयामि। सीह ३४ कासवगुत्त धम्म ३५ पि य कासव वदे॥
त वदिऊण सिरसा थिरसत्तचरित्तनाणसपन्न। थेर च अज्जजम्बु ३६ गोयमगुत्त णमसामि॥९॥
मिउमद्दवसपन्न उवउत्त नाणदसणचरित्ते। थेर च नदिय ३७ पि य कासवगुत्त पणिवयामि॥१०॥
तत्तो य थिरचरित्त उत्तमसम्मत्तसत्तसजुत्त। देसिगणिखमासमण ३८ माढरगुत्त नमसामि॥११॥
तत्तो अणुओगधर धीर मइसागर महासत्त। थिरगुत्तखमासमण ३९ वच्छसगुत्त पणिवयामि॥१२॥
तत्तो य नाणदसण-चरित्ततवसुट्ठियं गुणमहत। थेर कुमारधम्म ४० वंदामि गणिं गुणोवेय॥१३॥
सुत्तत्थरयणभरिए खमदममद्दवगुणेहिं सपन्ने। देवड्ढिखमासमणे ४१ कासवगुत्ते पणिवयामि॥१४॥" इति।

यद्यपि चाऽत्र टीकाकारैः **"गद्योक्तार्थः पुनः पद्यैः संगृहीतः"** इति कथितमस्ति, तथाऽपि पूर्वोदितनामान्यधिकानि सन्ति। तेनार्यदुर्जयन्तकृष्णा-ऽऽर्यहस्त्याऽऽर्यधर्मा-ऽऽर्यजम्ब्वा-ऽऽर्यनन्दितानां पट्टभृत्त्वाऽभावेपि तत्कालेऽनुयोगधरत्वेन तेषां स्मरणं कृतं संभाव्यते। तथा देशिगणि-स्थिरगुप्त कुमारधर्म-देवर्द्धिगणिनां नामानि पश्चात्केनाऽपि विदुषा गाथाबद्धानि कृत्वा सयोजितानि संभाव्यन्ते यद्वा श्रीदेशिगण्यादित्रयाणां तत्कालाऽनुयोगधरत्वेन देवर्द्धिगणिना स्मरणं कृतं स्यादपि, किन्तु देवर्द्धिगणिनस्तु नाम पश्चादेव योजितं विशेषतः सम्भाव्यते, यतः स्वयमेव ग्रन्थकारः स्वस्य नमस्कारं न कुर्याद्, इत्यत एव मूलकल्पसूत्रे श्रीशाण्डिल्य-पर्यन्ता स्थविरावली दर्शिता। तस्याः स्वयमेव कर्तृत्वे स्वस्य नामान्ते न लिखितमस्ति।

अत्र च वीरसंवत् ९८० वर्षे सिद्धान्तः पुस्तकारूढो जातः। **तथा चोक्तम्—**

"वल्लहिपुरंमि नयरे देवड्ढिपमुहसयलसंघेहिं। पुत्थे आगमलिहिओ नवसयअसीआओ वीराओ।" इति।

तथा वीरसंवत् ९९३ वर्षे आनन्दपुरे सङ्घसमक्षं महोत्सवेन सह कल्पसूत्रवाचनं प्रारब्धम्।

यदुक्तं स्तोत्ररत्नकोशे श्रीमुनिसुन्दरसूरिभिः—

● पन्न्यासश्रीकल्याणविजयैरपि श्रीपट्टावलिपरागसंग्रहे तथैव सभावितमस्ति।

जात्यन्ध इव दृष्ट्याऽसौ लग्नो द्रष्टुं वनस्पतीन् । जीवत्वेन स्फुटीभूय स आचख्यौ निजाशयम ॥२३॥
गुरोस्तेनापि दीक्षाऽस्मै पुन प्रादीयनादित । जातो युगप्रधानोऽसौ वाचकत्वोपलक्षित ॥२४॥
एव चाऽस्य पुरा जज्ञे द्रव्याज्ञा केवल परा । तत सैव गता तस्य भावाज्ञामूरूपताम ॥२५॥" इति ।

अथ युगप्रधानपरम्परायां श्रीनागार्जुनसूरेः पश्चाद्भाविनं युगप्रधानं वाचनाद्वयस्याऽप्यपेक्षया तस्यैवाऽनु सञ्जातं वाचनाचार्यश्च श्रीभूतदिन्नसूरि कथितुमना आह पथ्यार्या-पथ्यागीत्यात्मकगाथाद्वयेन—

छव्वीसमो जुगवरो स वायणायरिअभूअदिण्णगुरू ।
वीराऽस्स जोगिणीवसु८६४संखे वासे हवीअ जणी ॥११८॥ (पच्छाज्जा)
करिदंससिद्धिसिंदुर८८२मिए लहीअ स वयं जुगपहाणो ।
पुरिसत्थविदुतत्ते१०४रामागम्मविलयाखगे१८३ खमिओ ॥११९॥ (पच्छागीई)

(प्रे०) "**छव्वीसमो**" इत्यादि, "**स**" त्ति, स = विश्रुताख्यः "**वायणायरिअभूअदिण्णगुरू**" त्ति, वाचनाचार्यः = नन्दीसूत्रप्रतिपादितवाचकस्थविरावल्यां श्रीनागार्जुनसूरेरनु वाचनाचार्यः, स चासौ भूतदिन्नगुरुः = भूतदिन्ननामा आचार्यः = वाचनाचार्यभूतदिन्नगुरुः "**छव्वीसमो जुगवरो**" त्ति, श्रीयुगप्रधानपरम्परायामपि श्रीनागार्जुनसूरेः पश्चात् षड्विंशतितमो युगप्रधानोऽभूत् ।

अथाऽस्य जन्मादिवत्सान् सार्द्धगाथया-ऽऽह—"**वीरा**" इत्यादि, "**ऽस्स**" त्ति, अस्य श्रीभूतदिन्नसूरेः "**जोगिणीवसुसंखे**" त्ति, योगिन्यश्चतुःषष्टिः । वसवोऽष्टौ, एतयोरङ्कयोर्वामगतिन्यस्तयोश्चतुःषष्ट्यधिकाष्टशत८६४प्रमाण सङ्ख्या यस्य तादृशे योगिनीवसुसङ्ख्ये "**वासे**" त्ति, वर्षे=वत्सरे=वीरसंवत् ८६४ वर्षे "**जणी**" त्ति, जनिः=उद्भवः "**हवीअ**" त्ति, अभवत् ।

अथ द्वितीयगाथा—"**करि०**" इत्यादि "**स**" त्ति, स=श्रीभूतदिन्नसूरिः "**करिदससिद्धिसिंदुरमिए**" त्ति, करिदंशौ = हस्तिरदनौ द्वौ, सिद्धयो लघिमादयोऽष्टौ, सिन्दुराः=

❀ तथा चोक्तं काव्यशिक्षायाम् -"चतु षष्टियोगिन्य -वहुडी-वाली कविली कुमारी कागी जलहर। सीयली निलकण्ठ(ण्ठी) पारसी दूनत्री शङ्करा पिङ्गला अनङ्गसीहा दाहूलार श्रीचर्या नन्दा श्रीमङ्गल। श्रीसिद्धा श्रीईसावी श्रीमकरा अमरा सनसा मनसा विषहरा अलोभी अग्रीव वस्त्रकुमारि(री) धवलकुरुदा भिम्भला सङ्कारिणी जालामालिनी महलच्छि(छी) दाहना रसा मरसा क्रदला माणिक्या कालिक। हरसिद्धि वाइणि(णी) कोसला मयूरती अमकुमारी जया विजया नेता विनेता भेलषी महामाया आशापुरा एकल्लवीरी ईश्वरी पिप्पला ऊ विंझवासिणि(णी) हिडम्ब शूनरेखा जालिन्धरी स्वसीपली हिवपाडसी हिवपतङ्गी हिमशालिनी हिमेश्वरी महलव ६४ ॥" इति ।

अथ द्वितीयगाथा–"इत्थी०" इत्यादि, "स" त्ति, स=श्रीसत्यमित्रसूरिः 'इत्थीकलाणिहिमिए" त्ति, स्त्रीकलाश्चतुष्षष्टिः(✿), निधयो नव, आभ्यां चतुःषष्टि-नवाङ्कवाचकाभ्यां पश्चानुपूर्व्या९६४इति संख्यया मिते स्त्रीकलानिधिमिते=वीरसंवत् ९६४ शारदे "वय लहीअ" त्ति, '=सर्वविरतिं लेभे=प्राप। "चउमुहमुहगुत्तिगहे" चतुर्मुखमुखानि=ब्रह्मवदनानि चत्वारि, यद्वा नोआगमतो भावतीर्थंकरप्रभुमाश्रित्य देशनाकाले स्वमाहात्म्यादेव देवकृतानि चत्वारि मुखानि यस्य स चतुर्मुखः=नोआगमतो भावतश्च जिनेश्वरस्तस्य मुखाः=वक्त्राणि चतुर्मुखमुखाश्चत्वारः, मुखशब्दः पुंनपुंसकलक्षण उभयलिङ्गवाची, तथा चोक्तं हेमलिङ्गानुशासने पुन्नपुंसकलिङ्गप्रकरणे द्वादशे श्लोके–"नखमुख " इति। गुप्तयः=ब्रह्मगुप्तयो नव, ग्रहाः=मङ्गलादयो नव, एतैरङ्कैर्योऽब्दो भवति तस्मिन् चतुर्मुखमुखगुप्तिग्रहे=वीरसंवत्९९४वर्षे 'हवीअ जुगपवरो' त्ति, युगप्रवरः=युगप्रधानोऽभवत्। "इगसहस्समिए" त्ति एकश्च सहस्रं च एकसहस्रे ताभ्यां मिते एकसहस्रमिते वीरसंवत् १००१ वत्सरे, यदि चात्रातीतवर्षाऽभिप्रायेणैकस्मिन्वर्षसहस्रे वीरविभुतो व्यतीते इतीष्यते तदा कर्मधारयसमासः कार्यः, तद्यथा-एकश्च तत्सहस्रञ्च एकसहस्रं, तेन मिते=एकसहस्रमिते=वीरप्रभुत एकस्मिन्वर्षसहस्रे गते 'गओ दिव' त्ति, दिवं=स्वर्गं गतः=प्राप्तः।

इत्थञ्चाऽस्य दश१०वर्षाणि गृहवासे, त्रिंशद्३०वर्षाणि सामान्यमुनित्वे, सप्त ७ वर्षाणि युगप्रधानत्वे चेति सर्वायुश्च सप्तचत्वारिंशद् ४७ वर्षप्रमितमभूत्।

श्रीसत्यमित्रसूरेः स्वर्गगमनान्तरं पूर्वज्ञानस्य विच्छेदो जातः। उक्तञ्च श्रीतपागच्छपट्टावल्याम्–"श्रीवीरात् वर्षसहस्रे १००० गते सत्यमित्रे पूर्वव्यच्छेद ॥" इति ॥१३१-१३२॥

अधुना तत्समये सम्भूतस्यैकोनत्रिंशत्तमस्य द्वितीयोदययुगप्रधानयन्त्रक्रमाऽपेक्षया नवमस्य युगप्रधानस्य श्रीहारिलसूरेर्विवर्णयिषया पथ्याऽनन्तचपलापथ्यार्याद्वयं प्राह–

(✿) तथा चोक्तं श्रीकल्पसूत्रसुबोधिकायाम्–'ज्ञेया नृत्यौ१चित्ये २ चित्र ३ वादित्र४मन्त्र५ तन्त्राश्च। ६घनवृष्टि७फलाकृष्टी ८ संस्कृतजल्प ९ क्रियाकल्प १० ॥१॥ ज्ञान११ विज्ञान१२दम्भा१३ वुस्तम्भा१४ गीत१५ तालयो१६ र्मानम् आकारगोपना१७ ऽऽरामरोपणे १८काव्यशक्ति १९ वक्रोक्ती २० ॥२॥ नरलक्षण २१ गज२२हयवरपरीक्षणे २३ वास्तुशुद्धिलघुबुद्धी २४। शकुनविचारो २५ धर्माचारो २६ ऽञ्जन२७चूर्णयोर्योगा २८ ॥३॥ गृहिधर्म २९ सुप्रसादनकर्म३०कनकसिद्धि३१वर्णिकावृद्धी ३२। वाक्पाटव-३३करलाघव३४ललितचरण३५तैलसुरभिताकरणम् ३६ ॥४॥ भृत्योपचार३७ गेहाचारौ ३८ व्याकरण-३९परनिराकरणे ४०। वीणानाद ४१वितण्डावादा४२ऽङ्कस्थिति४३जनाचार। ४४ ॥५॥ कुम्भभ्रम४५सारिश्रम४६रत्नमणिभेद४७लिपिपरिच्छेदा ४८। वैद्यक्रिया च ४९ कामा-ऽऽविष्करण ५० रन्धन ५१ चिकुरबन्ध ५२ ॥६॥ शालीखण्डन५३मुखमण्डने ५४ कथाकथन५५कुसुमसुग्रथने ५६। वरवेष५७सर्वभाषाविशेष५८वाणिज्य५९भोज्ये च ६० ॥७॥ अभिधानपरिज्ञाना६१ऽऽभरणयथास्थानविविधपरिधाने ६२। अन्त्याक्षरिका ६३ प्रश्नप्रहेलिका ६४ स्त्रीकला चतुःषष्टिः ॥८॥" इति।

अस्य नाम्न उत्प्रेक्षां कुर्वन्नाह–"हतुं" इत्यादि, "जो" त्ति, पदमनुवर्तते ततः 'जो' त्ति, यः=श्रीविक्रमसूरिः "किं" त्ति, किं=किमु "मोहसेण" ति, मोहस्य=मोह-नृपस्य मदनजनकस्य प्रधानकर्मणः सेनां=बलं चमूं वा मोहसेनां हतुं' ति, हन्तुं=व्यापादयितुं "देहधारो" त्ति, देहं=तनुं शरीरं वा धरति धारयति ध्रियते वा इत्येवंशीलः 'अजाते शीले" (सि० ५-१-१५४) इत्यनेन णिन्प्रत्ययः देहधारी=तनुभृत्=मूर्तिमानित्यर्थः, "विक्कमो" त्ति, विक्रमः=पराक्रम इव लक्ष्यते, विक्रमस्याऽमूर्तत्वे=ऽप्यत्र मूर्तत्वकल्पना कविकृता।

यत्तदोर्नित्याभिसम्बन्धादाह–"सो" त्ति, स "सूरी विक्कमक्खो" त्ति, विक्रमाख्यः= विक्रमसंज्ञकः सूरिः=आचार्यः "भवाणं" ति, भव्यानां=मुक्तिवध्वर्हाणां प्राणिनां "सोक्खं" ति, सौख्यं=शं "दाउ" त्ति, ददातु=दानविषयीकरोतु ॥१२०॥

अथ श्रीविक्रमसूरिनिकटवर्तिकाले सञ्जातस्य श्रीशिवशर्माचार्यस्य प्रतुष्टूषयाऽऽह पथ्या-गीतिम्—

सिरिसिवसम्मायरिओ कम्मपयडिबंधसयगणिम्माआ।
विज्जाद्दी पुव्वहरो जयउ तयाऽणोगवायलद्धजयो ॥१२१॥ (पच्छागीई)

(प्रे०) "सिरि०" इत्यादि, "तया" त्ति, तदा=श्रीविक्रमसूरिसमीपकाले "सिरिसिवसम्मायरिओ" त्ति, श्रीशिवशर्माचार्यः=ज्ञानादिलक्ष्मी शिवशर्मनामा मुनिपतिः "जयउ" त्ति, जयतु=सर्वातिशयभाग्यस्तु इति सण्टङ्कः। किं विशिष्टः ? "कम्मपयडिबंधसयगणिम्माआ" त्ति, द्वितीयेऽग्रायणीयाख्ये पूर्वेऽनेकवस्तुयुक्ते विंशतिप्राभृतसमन्वितस्य क्षणलब्धिसंज्ञकस्य पञ्चमवस्तोश्चतुर्थप्राभृतात् कर्मप्रकृत्यभिधानादुद्धृता कर्मप्रकृतिः, तस्मादेव प्राभृतादुद्धृतं बन्धश कर्मप्रकृतिश्च बन्धशतकञ्च कर्मप्रकृतिबन्धशतके तयोर्निर्माता=प्रणेता=कर्मप्रकृतिबन्धशतकनिर्माता, अत्र सम्बन्धे षष्ठी, ततः समासः, यद्वा याचकादेराकृतिगणत्वात्तेन समासः।

अनेन च कर्मप्रकृतेर्बन्ध कस्य चैककर्तृत्वं द्योतितम्। तथैव श्रीमन्मलयगिरिपादैः कृतौ बन्धनकरणे प्रतिपादितम्। तद्यथा–"एव बधनकरण परूविए सह हि बन्धसयगेण' इत्यस्य । एतेन किल शतककर्मप्रकृत्योरेककर्तृता आवेदिता द्रष्टव्या" इति।

तथा शतकचूर्णिकारेण महर्षिणाऽपि श प्रथमगाथाचूर्णौ बन्धशतकस्य कर्ता आचार्यशिवशर्मसूरिः कथितः। तथा च तद्ग्रन्थः–" 'केण? कय ति, शब्दतर्कन्यायप्रकरणकर्मप्रकृतिसिद्धान्तविजाणएण अणेगवायसमालद्धविजएण सिवसम्मायरिणामधेज्जेण कय।" इति।

"विज्जद्दो" त्ति, विद्यानां=नानाप्रकारज्ञानानाम् अब्धिः=सागरो विद्याब्धिः, यद्वा विद्यया=ज्ञानेनाऽब्धिरिव=समुद्र इव विद्याब्धिः "पुव्वहरो" त्ति, पूर्वधरः=पूर्वज्ञानवित्।

अथ द्वितीयगाथा-"इत्थी०" इत्यादि, "स" त्ति, स=श्रीसत्यमित्रसूरिः 'इत्थीकलाणिहिमिए" त्ति, स्त्रीकलाश्चतुष्षष्टिः◯, निधयो नव, आभ्यां चतुःषष्टि-नवाङ्कवाचकाभ्यां पश्चानुपूर्व्या९६४इति संख्यया मिते स्त्रीकलानिधिमिते=वीरसंवत् ९६४ शारदे "वय लहीअ" त्ति, व्रतं=सर्वविरतिं लेभे=प्राप। "चउमुहमुहगुत्तिगहे" चतुर्मुखमुखानि=ब्रह्मवदनानि चत्वारि, यद्वा नोआगमतो भावतीर्थंकरप्रभुमाश्रित्य देशनाकाले स्वमाहात्म्यादेव देवकृतानि चत्वारि मुखानि यस्य स चतुर्मुखः=नोआगमतो भावतश्च जिनेश्वरस्तस्य मुखाः=वक्त्राणि चतुर्मुखमुखाश्चत्वारः, मुखशब्दः पुंनपुंसकलक्षण उभयलिङ्गवाची, तथा चोक्तं हेमलिङ्गानुशासने पुन्नपुंसकलिङ्गप्रकरणे द्वादशे श्लोके-"नखमुख " इति। गुप्तयः=ब्रह्मगुप्तयो नव, ग्रहाः=मङ्गलादयो नव, एतैरङ्कैर्योऽब्दो भवति तस्मिन् चतुर्मुखमुखगुप्तिग्रहे=वीरसंवत् ९९४वर्षे 'हवीअ जुगपवरो' त्ति, युगप्रवरः=युगप्रधानोऽभवत्। "इगसहस्समिए" त्ति एकश्च सहस्रं च एकसहस्रे ताभ्यां मिते एकसहस्रमिते वीरसंवत् १००१ वत्सरे, यदि चात्रातीतवर्षाऽभिप्रायेणैकस्मिन्वर्षसहस्रे वीरविभुतो व्यतीते इतीष्यते तदा कर्मधारयसमासः कार्यः, तद्यथा-एकश्च तत्सहस्रश्च एकसहस्रं, तेन मिते=एकसहस्रमिते=वीरप्रभुत एकस्मिन्वर्षसहस्रे गते 'गओ दिव' ति, दिवं=स्वर्गं गतः=प्राप्तः ।

इत्थश्चाऽस्य दश१०वर्षाणि गृहवासे, त्रिंशद्३०वर्षाणि सामान्यमुनित्वे, सप्त ७ वर्षाणि युगप्रधानत्वे चेति सर्वायुश्च सप्तचत्वारिंशद् ४७ वर्षप्रमितमभूत्।

श्रीसत्यमित्रसूरेः स्वर्गगमनान्तरं पूर्वज्ञानस्य विच्छेदो जातः। उक्तञ्च श्रीतपागच्छपट्टावल्याम्-"श्रीवीरात वर्षसहस्रे १००० गते सत्यमित्रे पूर्वव्यच्छेदः॥" इति ॥१३१-१३२॥

अधुना तत्समये सम्भूतस्यैकोनत्रिंशत्तमस्य द्वितीयोदययुगप्रधानयन्त्रक्रमाऽपेक्षया नवमस्य युगप्रधानस्य श्रीहारिलसूरेर्विवर्णयिषया पथ्याऽन्तचपलापथ्यार्याद्वयं प्राह--

---

◯ तथा चोक्त श्रीकल्पसूत्रसुबोधिकायाम्-"ज्ञेया नृत्यौ१चित्ये २ चित्र ३ वादित्र४मन्त्र५ तन्त्राश्च। ६घनवृष्टि७फलाकृष्टी ८ संस्कृतजल्प ९ क्रियाकल्प १० ॥१॥ ज्ञान११ विज्ञान१२दम्भा१३ बुस्तम्भा१४ गीत१५ तालयो१६ र्मानम् आकारगोपना१७ ऽऽरामरोपणे १८काव्यशक्ति १९ वक्रोक्ती २० ॥२॥ नरलक्षण २१ गज२२हयवरपरीक्षणे २३ वास्तुशुद्धिलघुबुद्धी २४। शकुनविचारो २५ धर्माचारो २६ ऽञ्जन२७चूर्णयोर्योगा २८ ॥३॥ गृहिधर्मं २९ सुप्रसादनकर्म३०कनकसिद्धि३१वर्णिकावृद्धी ३२। वाक्पाटव-३३करलाघव३४ललितचरण३५तैलसुरभिताकरणम् ३६ ॥४॥ भृत्योपचार३७ गेहाचारौ ३८ व्याकरण-३९परनिगकरणे ४०। वीणानाद ४१वितण्डावादा४२ऽङ्कस्थिति४३जनाचार ४४ ॥५॥ कुम्भभ्रम४५सारिश्रम४६रत्नमणिभेद४७लिपिपरिच्छेदा ४८। वैद्यक्रिया च ४९ कामा-ऽऽविष्करण ५० रन्धन ५१ विकुरबन्ध ५२ ॥६॥ शालीखण्डन५३मुखमण्डने ५४ कथाकथन५५कुसुमसुग्रथने ५६। वरवेष५७सर्वभाषाविशेष५८वाणिज्य५९भोज्ये च ६० ॥७॥ अभिधानपरिज्ञाना६१ऽऽभरणयथास्थानविविधपरिधाने ६२। अन्त्याक्षरिका ६३ प्रश्नप्रहेलिका ६४ स्त्रीकलाः चतुःषष्टि ॥८॥" इति।

"अमुस्स" त्ति, अमुष्य=नरसिंहसूरेः "उवएसगिराअ" त्ति उपदेशस्य=आत्महित-शिक्षालक्षणस्य गीः=वाणी=उपदेशगीः तया=उपदेशगिरा "जक्खो" त्ति, यक्षः=देवजाति-विशेषोद्भूतोऽभणितनामा वटवासी देवः "णरसिंहपुरम्मि" त्ति, नरसिंहपुरे=नरसिंहनाम्नि नगरे 'मास' ति, मासं=पलं 'चयीअ" त्ति, अत्यजत् ॥१२३॥

साम्प्रतं श्रीमहावीरस्वामिनः षड्विंशस्य पट्टधरस्य श्रीसमुद्रसूरेरभिधित्सया शार्दूल-विक्रीडितेनाऽऽह —

पंचासो तमसिंधुरम्मि तिलगं □खोमाणरायण्णये ।
सो आसी णरसिंहपट्टकमले सूरी समुद्दाभिहो ।
वाए जेण दिगंसुगा विजिइउं ●णागद्दहे मंदिरं ।
आणीअं सवसं णिवेणिव गढो सत्तू जइत्ता रणे ॥१२४॥ (सद्दुलविक्कीडियं)

(प्रे०) "पंचासो" इत्यादि, "णरसिंहपट्टकमले" त्ति, नरसिंहस्य=श्रीनरसिंहनाम्नः सूरेः पट्ट एव=पदमेव कमलं=पद्मं नरसिंहपट्टकमलं तस्मिन्नरसिंहपट्टकमले=श्रीनरसिंहाचार्यपट्टे इति भावः । "सो" त्ति, सः "समुद्दाभिहो" त्ति, समुद्र इति अभिधा=संज्ञा यस्य स समुद्रा-ऽभिधः=समुद्रसंज्ञकः "सूरी" त्ति, सूरिः=आचार्यः सूर्यश्च "आसी" त्ति, आसीत्=बभूव । किम्भूतः ? "पंचासो तमसिंधुरम्मि" त्ति, तमः=अज्ञानं पापं वा तदेव सिन्धुरः=कुञ्जर-स्तमःसिन्धुरस्तस्मिन् तमःसिन्धुरे पञ्चं=विस्तीर्णमास्यं=मुखं यस्य स पञ्चास्यः=सिंहः=केसरी, अज्ञानहस्तिविदारणविषये पापमातङ्गविनाशने वा कण्ठीरवसमान इत्यर्थः । पुनः किं विशिष्टः ? "तिलगं खोमाणरायण्णये" त्ति, राजन्यानां=क्षत्रियाणां समूहः "गोत्रोक्ष"—(सि० ६-२-१२) इत्यनेनाऽकञ्प्रत्यये राजन्यकं खोमाणं पोमाणं वा तच्च तद्राजन्यकं खोमाणराजन्यकं पोमाण-राजन्यकं वा तस्मिन् खोमाणराजन्यके पोमाणराजन्यके वा=खो(पो)माणराजकुले इत्यर्थः तिलकं=भालभूषणम्, पुण्ड्रतुल्य इति भावः ।

स क इत्याह—"जेण" त्ति, येन=श्रीसमुद्रसूरिणा "वाए" त्ति, वादे=शास्त्रार्थचर्चाव-सरे "दिगंसुगा" त्ति, दिगेव=आशैवांशुकम् अम्बरं वस्त्रम्, अंशुकानि वा येषां ते दिगंशु-कास्तान्=दिगंशुकान्=दिगम्बरान् "विजिइउं" त्ति, विजित्य=निरुत्तरीकृत्य णागद्दहे'

□ "पोमाण०" इति वा पाठान्तरम् । ● "नागहद्दे" इत्यपि वा पाठान्तरम् ।

चन्द्रः=एकः, एतेऽङ्का वामगत्या मीलिता १००१ इति सङ्ख्या यस्य तादृशे खनभःशून्यवुधे =वीरसंवत् १००१ वर्षे, यद्वा पूर्ववदतीतमंवद्विवक्षाविपर्यीक्रियते तदा खं=शून्यम्, यदुक्तम्– "खमिन्द्रियस्वर्गशून्यभूयाकाशसुखेपु च ॥" इति । ततः खनभःशून्यवुहाः=शून्थ -शून्य -शून्यैकाङ्कलक्षणा वामगतिन्यस्ता यत्र तत्र खनभःशून्यवुधे=वीरात् सहस्रतमे वर्षे व्यतीते सति **"होसी जुगप्पहाणे'** त्ति, युगप्रधानोऽभवत् ।

यद्वा **"खणह णणवुहे"** इत्यस्य पाठस्य स्थापने **"इगसहस्समिए"** त्ति, पाठं गृहीत्वाऽष्टाविंशतितमयुगप्रधानसत्कगाथायां समासद्वयमाश्रित्य यथाव्याख्यातः, तथाव्याख्येयः ।

"भूइसुग्वचंदे" त्ति, भृताः=पृथ्व्यादयः पञ्च, इपवः=शिलीमुखाः पञ्च, खं=शून्यम्, **यदुक्तमेकाक्षरकोशे-** "शून्ये खशव्द परिकीर्तित चन्द्रः=शश्येकः, एतेऽङ्का वामगत्या १०५५इति सङ्ख्या यत्र तत्र यद्वा एतैरङ्कैर्वामगत्या १०५५ इति सङ्खयया मितो यो वर्षस्तस्मिन् भूतेपुखचन्द्रे=वीरमंवत् १०५५वर्षे **"दिव गओ"** त्ति, दिव=नाकधाम गतः=ययौ ।

इदश्चाऽमुष्य सप्तविंशति२७वर्पाणि गृहपर्यायः, एकत्रिशद्३१वर्षाणि सामान्यव्रतपर्यायः, चतुःपञ्चाशत्५४वर्षाणि युगप्रधानपर्यायश्चेति सर्वायुश्च द्वादशोत्तरवर्पशतमानमित्येधं द्वादशाधिकशतवर्पमितायुरपेक्षया प्रतिपादितम् ।

यदि पुनः समस्तायुरेकाधिकवर्षशतं, गृहस्थपर्यायः सप्तदश१७वर्षाणि, सामान्यव्रतपर्यायश्च त्रिशद्३०वर्षाणीष्यते, तदा तदपेक्षयाऽमुष्य जन्म वीरसंवत् ९५४ वर्षे, व्रतश्च वीरसंवत् ९७१ वर्षे स्यात् । तदर्थं मूलगाथापदानीत्थं व्याख्येयानि–**"तस्स"** त्ति, तस्य=श्रीहारिलसूरेर्जन्म **"अवत्थाजामणिहाणम्मि"** त्ति, अवस्था=जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति-तुरियाख्याश्चतस्रः, यामाः= यमा अहिंसादयः पञ्च, महाव्रतानि वा प्राणातिपातविरमणादिलक्षणानि पञ्च, निधानानि नव, एतेऽङ्का पश्चानुपूर्व्या९५४सङ्ख्या यस्मिंस्तस्मिन् वीरसवत् ९५४ वर्षे जायते स्म । **"खतुरगमणंदे"** त्ति, खः=रविरेकः, **यदुक्तमनेकार्थकोषे–**"खस्तु सूर्यो - -" इति । तुरङ्गमाः= सप्त, नन्दा नव, एतैरङ्कैः प्रातिलोम्यक्रमेण ९३१ इति सङ्खयया प्रमितो योऽब्दो भवति तत्र खतुरङ्गमनन्दे=वीरसवत् ९७१वर्षे दीक्षां गृह्णाति स्म=अगृह्णात् ॥१३३-१३४॥

अधुना श्रीवीरतीर्थाऽधिपस्य सप्तविंशं पटं धारयन्तं द्वितीयं श्रीमानदेवसूरि भणन् वसन्ततिलकामाह––

णाणंबुही मुणिवई हरिभद्दमिरं, पट्टे समुद्दगुरुणो गुरुमाणदेवो ।

(प्रे०) "पाडिच्छिय०" इत्यादि, "दूसगणिं" ति दूष्यगणिनं "णमामि" त्ति, नमामि=शिरोनमनविषयीकरोमि, इति सण्टङ्कः, किम्भूतम् ? "पाडिच्छियसयकलिय" ति, प्रातीच्छिक-शतकलितम्=इह ये गच्छान्तरवासिनः स्वाचार्यं पृष्ट्वा गच्छान्तरेऽनुयोगश्रवणाय समागच्छन्ति अनुयोगाचार्येण च प्रतीच्छ्यन्ते=अनुमन्यन्ते ते प्रातीच्छिका उच्यन्ते, स्वाचार्यानुज्ञापुरःसर-मनुयोगाचार्यप्रतीच्छया चरन्तीति प्रातीच्छिका इति व्युत्पत्तेः, तेषां शतानि=प्रातीच्छिकशतानि तैः कलितम्, प्रातीच्छिकशतकलितम्, पुनः किंभूतम् ? "मिउमहुरगिर" ति मृद्वी च मधुरा च गीर्यस्य तं मृदुमधुरगिरं=स्खलितानां प्रमादिनाञ्च शिष्याणां शिक्षापरो मृदुमधुरभाषावादिनम् । पुनरपि कीदृशम् ? "अणुओगयरपडु" ति, श्रुतस्य=कालिकश्रुतस्याऽनुयोजन-मनुयोगस्तस्य कुर्वन्तीति कराः श्रुतानुयोगकरास्तेषु पटुः=चतुरः=श्रुतानुयोगकरपटुः तं श्रुतानु-योगकरपटुम्=सूत्रार्थस्य व्याख्यातारं "पावयणिगवायणायरिअं" ति प्रवचनं द्वादशाङ्गीं गणिपिटकं वा वेत्तीति प्रावचनिकः यद्वा प्रवचने नियुक्तः प्रावचनिकः स चाऽसौ वाचना-चार्यः=मथुरावाचनामाश्रित्य श्रीलोहित्यसूरेरनु वाचनाचार्यः प्रावचनिकवाचनाचार्यः ।

तथा चोक्तं श्रीनन्दीसूत्रे—

"अत्थमहत्थक्खाणिं सुसमणवक्खाणकहणनिव्वाणिं । पयईइ महुरवाणिं पयओ पणमामि दूसगणिं ॥४१॥
सुकुमालकोमलतले तेसि पणमामि लक्खणपसत्थे । पाए पावयणीण पडिच्छसयएहिं पणिवइए ॥४२॥" इति ।

अथ युगप्रधानपरम्परायां संजातं सप्तविंशं युगप्रधानं तथैव वालभवाचनानुसारेण वाच-नाचार्यं च श्रीकालिकसूरिं पथ्यार्यया ब्रवीति—

सगवीसमो जुगवरो कालिअसूरी स वायणायरिओ ।
तस्स जणी वीराऽइ गणीसगेविज्जयविमाणे[९११] ॥१२७॥ (पच्छाज्जा)
सूयगडऽज्झयणबले[९२३] दिक्खं गेराहीअ सो जुगपहाणो ।
हवणव गहे[९८३] सग्गं गओ दिसाविराहुवूहखगे[९९४] ॥१२८॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "सगवीसमो" इत्यादि, 'स' त्ति, स "लिअसूरी" त्ति, कालिकसूरिः=कालिकसंज्ञक आचार्यः किम्भूतः ? "वायणायरिओ" त्ति, वाचनाचार्यः "सगवीसमो जुगवरो" त्ति, श्रीयुगप्रधानपरम्परायां श्रीभूतदिन्नसूरेः पश्चात्सप्तविंशतितमो युगप्रधानोऽभवत् ॥

अथाऽमुष्य जन्मादिपर्यायैः सार्द्धार्यां पूरयति—'तस्स' इत्यादि, "तस्स" त्ति, तस्य=श्रीकालिकसूरेः 'जणी' त्ति, जनिः=जन्म "वीरा" त्ति, वीरात् सिद्धार्थात्मजमुक्तिगमन-कालात् "गणीसगेविज्जयविमाणे" त्ति, गणेशाः=महादेवाः=रुद्रा एकादश, यद्वा

आगमिकधातुर्नमधातुर्वाऽयम्, अथवा प्रतीष्यन्ते=अनुमन्यन्ते ये ते ।

△ ' विद्यासमुद्रहरिभद्रमुनीन्द्रमित्र, सूरिर्बभूव पुनरेव हि मानदेव ।
मान्द्य'त्प्रयातमपि योऽनवसूरिमन्त्र लेभेऽम्बिकामुखगिरा तपसोज्जयन्ते ।।" इति ।।१३५।।

अथ श्रीद्वितीयमानदेवसूरिकालभाविनं श्रीहरिभद्रसूरिं गाथाद्वयेनाऽभिधातुमिच्छुरादौ तावत्पथ्यार्यामाह—

जयउ हरिभद्दसूरी तया पहावी अपुव्वमइपइहो ।
जलआसयजलआसयमणुगंथयरो विजियवोद्धो ॥१३६॥

(प्रे०) "**जयउ**" इत्यादि, "**तया**" त्ति, तदा=श्रीमानदेवसूर्यवसरे "**हरिभद्दसूरी**" त्ति, हरिभद्रः=हरिभद्रनामा स चाऽसौ सूरिश्च=आचार्यो=हरिभद्रसूरिराचार्यजिनभटाज्ञाधारको विद्याधरकुलभूषणजिनदत्तसूरेशिष्यो याकिनीमहत्तराधर्मापत्यः, **तथा चोक्तमावश्यटीकान्ते**- "कृति' सिताम्बराचार्यजिनभटनिगदानुसारिणो विद्याधरकुलतिलकाचार्यजिनदत्तशिष्यस्य धर्मतो याकिनीमहत्तरासूनोरल्पमतेराचार्यहरिभद्रस्य' इति, अन्यत्र पुनरन्यथा-ऽपि, "**जयउ**" त्ति, जयतु= अस्खलितप्रतापोऽस्तु, कीदृक् ? "**पहावी**" त्ति, प्रभावी=तेजस्वी पुनः किंभूतः ? "**अपुव्वमइपइहो**" त्ति, अपूर्वा=असदृशा मतेः=बुद्धेः प्रतिभा=दीप्तिः=शक्तिविशेषः **तथा चोक्त रूद्रेण**-"प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता" इति ? यस्य स अपूर्वमतिप्रतिभः=अनन्यशक्तिशालीत्यर्थः । "**जलआसयजलआसयमणुगंथयरो**" त्ति, जलाशयाः=समुद्राश्चत्वारः, जलाशयाः पूर्ववच्चत्वारः, मनवश्चतुर्दश, एतेऽङ्का वामगतिमीलिता १४४४ सङ्ख्या, **यद्वा** जलदाशयाः=गगनं=शून्यम् , जलाशयाः=अम्भोनिधयश्चत्वारः, मनवश्चतुर्दश, एतेऽङ्का पश्चानुपूर्विन्यस्ता १४४० सङ्ख्या, **यद्वा** जलदाशयः=व्योम=शून्यम् , जलदाशयः=नभः=शून्यम् , मनवश्चतुर्दश, एतेऽङ्काः प्रातिलोम्येन गदिता १४०० सङ्ख्या तावत्सङ्ख्याकानां ग्रन्थानां करः=कर्ता=जलाशयजलाशयमनुग्रन्थकरो जलदाशयजलाशयमनुग्रन्थकरो जलदाशयजलदाशयग्रन्थकरो वा ।

तथा चाऽमुष्य शतोनसार्द्धसहस्रग्रन्थकर्तृत्वं वहुषु ग्रन्थेषु तथा षष्ठ्यूनसार्द्धसहस्रग्रन्थकर्तृत्वं षट्पञ्चाशदूनसार्द्धसहस्रग्रन्थकर्तृत्वमपि च दर्शितं विद्यते ।

तत्र प्रथममते शतोनसार्द्धसहस्रग्रन्थकर्तृत्वे—

(१) श्रीमुनिचन्द्रसूरिभिरुपदेशपदटीकायाम्-

"य - महत्प्रवचनवात्सल्यमवलम्बमानश्चतुर्दश प्रकरणशतानि चकार, तेन हरिभद्रनाम्नाऽऽचार्येण—इति।

(२) श्रीवादिदेवसूरिभिः स्याद्वादरत्नाकरे

△ एषैव गाथा धर्मसागरगणिभिस्तपागच्छपट्टावल्यामप्युद्धृता दृश्यते ।

"पाठाणं" ति, पाठानां=भणितसूत्राणां "समण्णओ" त्ति, समन्वयः "कओ" त्ति, कृतः=विहितः ।

अयम्भावः—वाचनाद्वयगतभिन्नपाठानामालोचनां कृत्वा निश्चितैकपाठः सूत्रत्वेन निबद्धः, यत्र च पुनर्भिन्नपाठेषु पक्षद्वयस्यामपि स्व-स्वपाठे दृढनिश्चयस्तत्र माथुरवाचनागतं पाठं पुरस्कृत्य वलभीवाचनासत्कः पाठो मताऽन्तरेण 'वायणन्तरे पुण" इत्येवंरूपेण सङ्गृहीतः ।

इयञ्च पञ्चममाथुरी-वालभीलक्षणागमवाचनाद्वयाऽपेक्षया षष्ठागमवाचना ज्ञेया ।

तद्यथा—प्रथमा श्रीस्थूलभद्रस्वामिनः समये पाटलिपुत्रे श्रीसङ्घेन १, द्वितीया श्रीआर्यसुहस्तिसूरेरवसरेऽवन्त्यां सम्प्रतिनृपतिना २, तृतीया श्रीसुस्थित सुप्रतिबद्धाचार्योः काले कुमरगिरौ कलिङ्गभूपतिभिक्षुराजेन ३, चतुर्थी श्रीआर्यरक्षितसूरिणा चतुरनुयोगानां पृथक्करणरूपा दशपुरे ४, पञ्चमी पुनर्मथुरायां श्रीस्कन्दिलसूरेः सान्निध्ये तथा वलभ्यां श्रीनागार्जुनसूरेः सान्निध्ये जाता, तयोश्चागमवाचनयोः क्रमेण माथुरी वालभीति संज्ञाऽभूत् ५, तयोरागमवाचनयोः समन्वयरूपेयं षष्ठ्यागमवाचना बोध्या ।

अयञ्च मथुरावाचनानुगतश्रीनन्दीसूत्रोक्तवाचकस्थविरावल्यां सप्तविंशो वाचनाचार्योऽभूत् ।

तद्यथा—१ श्रीसुधर्मस्वामी, २ तदनु श्रीजम्बूस्वामी, ३ ततः श्रीप्रभवस्वामी, ४ तस्मात् श्रीशय्यम्भवस्वामी, ५ तदनु श्रीयशोभद्रस्वामी, ६ ततः श्रीसम्भूतसूरिः, ७ ततः श्रीभद्रबाहुस्वामी, ८ तदनु श्रीस्थूलभद्रस्वामी, ९ तत आर्यश्रीमहागिरिः, १० तत आर्यश्रीसुहस्तिसूरिः, ११ तदनु आर्यश्रीबहुल-बलिस्सहौ, १२ ततो वाचकश्रीस्वातिसूरिः, १३ तत आर्यश्रीश्यामाचार्यः, १४ तदनु श्रीशाण्डिल्य(स्कन्दिल)सूरिः, १५ तत आर्यश्रीसमुद्रसूरिः, १६ तत आर्यश्रीमङ्गुसूरिः, १७ ततः श्रीनन्दिलसूरिः, १८ तदनु श्रीनागहस्तिसूरिः, १९ ततः△श्रीरेवतिनक्षत्रसूरिः, २० ततः श्रीसिंहसूरिः, २१ तदनु श्रीस्कन्दिलसूरिः, २२ ततः श्रीहिमवत्सूरिः, २३ तदनु नागार्जुनसूरिः २४ ततः श्रीभूतदिन्नसूरिः, २५ तदनु श्रीलोहित्याचार्यः, २६ ततः श्रीदूष्यगणी, २७ तदनु श्रीदेवर्द्धिगणी क्षमाक्षमण इति ।

यदा पुनः श्रीनन्दिसूत्रे प्रक्षिप्तगाथापेक्षया नागार्जुन-भूतदिन्नसूर्योर्मध्ये गोविन्दसूरिमपि मन्यन्ते तदा-ऽष्टाविंशतितमोऽयं श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणो भवति ।

तथा चाऽत्र श्रीबलिस्सहसूरेरारभ्य माथुरवाचनास्थविरक्रमप्रतिपादिके द्वे गाथे चेमे—'सूरिबलिस्सह-साई सामज्जो संडिलो य जीयधरो । अज्जसमुद्दो मंगू नंदिलो नागहत्थी य ॥ ॥ रेवइसिंहो खंडिल-हिमवं नागज्जुणा य ☗गोविंदा । सिरिभूइदिन्न लोहिच्च-दूसगणिणो य देवड्ढी ॥" इति ।

卐 केचिदार्यसुहस्तिसूरिं नाङ्गीकुर्वन्ति, भिन्नावलिकागतत्वात् । △ "रेवति(ती)सिंहो" इत्यपि, "रेवति (ती)मित्रो" इत्यपि वा । ☗ पन्न्यासकल्याणविजया हि 'गोविंदा' इति पदं दूरीकृत्य तत्स्थाने 'तेवीस' इति पद भणन्ति, प्रक्षिप्तगाथापेक्षया गोविंदवाचकस्योपलभ्यमानत्वात् ।

"१४४० ग्रन्था' प्रायश्चित्तपदे कृता" इति।

तृतीयमते षट्पञ्चाशदूनसार्धसहस्रग्रन्थप्रणेतृत्वे—

(१) श्रीरत्नशेखरसूरिभिः श्राद्धप्रतिक्रमणार्थदीपिकावृत्तौ—

"१४४४प्रकरणकृतश्रीहरिभद्रसूरयोऽप्याहुर्ललितविस्तरायाम्" इति।

(२) श्रीलक्ष्मीसागरसूरिभिर्गुणगतिवसुराशि१८४३वैक्रमेऽब्दे रचित उपदेशप्रसादे तृतीयस्तम्भे चतुस्त्रिंशत्तमे व्याख्याने—

"चतुश्चत्वारिंशदधिकचतुर्दशशतग्रन्थान् हरिभद्रसूरि प्रायश्चित्तपदे चकार।" इति।

(३) श्रीगुरुपट्टावल्याम्— विक्रमात्५८५वर्षे चतुश्चत्वारिंशदुत्तरचतुर्दशशत १४४४ प्रकरणकृत् श्रीहरिभद्रसूरि स्वर्गत।

(४) अञ्चलगच्छपट्टावल्याम्—"२९ श्रीहरिभद्रसूरि १४४४ प्रकरणकर्ता" इति।

(५) क्षमाकल्याणमुनिना खरतरगच्छपट्टावल्याम्—"१४४४ पूजापञ्चाशकादिप्रकरणानि कृतानि" इति।

तेष्वधुना कालानुभावतः कियन्त एवाऽनुयोगद्वारसूत्रलघुवृत्त्य ऽनेकान्तजयपताकादयोऽस्मत्कर्णविषया भवन्ति।

ते चाकारादिक्रमेण हरिभद्रसूरिचरित्रे सङ्कलिता एवम्—

"(१) अनुयोगद्वारसूत्रलघुवृत्ति, (२) अनेकान्तजयपताका स्वोपज्ञटीकासहिता (३ अनेकान्तप्रघट्ट (४) अनेकान्तवादप्रवेश (५) अष्टकानि (६) आवश्यकनिर्युक्तेर्लघीयसी अथ च द्वाविंशतिश्लोकसहस्रप्रमाणा टीका (७) तस्या एव चतुरशीतिलोकसहस्रमाना बृहट्टीका (८) उपदेशपदानि (९) कथाकोश (१०) कर्मस्तववृत्ति (११) कुलकानि (१२) क्षमावल्लीबीजम् (१३)क्षेत्रसमासवृत्ति (१४) चैत्यवन्दनभाष्य संस्कृतम् (१५) चैत्यवन्दनावृत्तिः (ललितविस्तराख्या) (१६) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिटीका (१७) जम्बूद्वीपसंग्रहणी (१८) जीवाभिगमलघुवृत्ति (१९) ज्ञानपञ्चकविवरणम् (२०) ज्ञानादित्यप्रकरणम् (२१) तत्त्वतरङ्गिणी (२२) तत्त्वार्थलघुवृत्ति (२३) दर्शनशुद्धिप्रकरणम् (२४) दर्शनसप्ततिका (२५) दशवैकालिकावचूरी (२६) दशवैकालिकबृहद्वृत्ति (२७) देवेन्द्र-नरेन्द्रप्रकरणम् (२८)द्विजवदनचपेटा (२९) धर्मबिन्दु (३०) धर्मलाभसिद्धि (३१) धर्मसङ्ग्रहणी (३२) धर्मसारमूलटीका (३३) धूर्ताख्यानम् (३४) नन्द्यध्ययनवृत्ति (३५) न्यायप्रवेशसूत्रवृत्ति (३६) न्यायविनिश्चय (३७) न्यायावतारवृत्ति' (३८) पञ्चनियंठी (३९) पञ्चलिङ्गी (४०) पञ्चवस्तु स्वोपज्ञटीकासहितम् (४१) पञ्चसङ्ग्रह (४२) पञ्चसूत्रवृत्ति (४३) पञ्चस्थानकम् (४४) पञ्चाशकम् (४५) परलोकसिद्धि (४६) पिण्डनिर्युक्तिवृत्तिः (४७) प्रज्ञापनाप्रदेशव्याख्या (४८) प्रतिष्ठाकल्प (४९) बृहन्मिथ्यात्वमन्थनम् (५०) मुनिपतिचरित्रम् (५१) यतिदिनकृत्यम् (५२) यशोधरचरित्रम् (५३) योगदृष्टिसमुच्चय (५४) योगबिन्दु (५५) योगशतकम् (५६) योगविंशतिः (५७) लग्नशुद्धि (५८) लघुक्षेत्रसमास (५९) लघुसङ्ग्रहणी (६०) लोकतत्त्वनिर्णय (६१) लोकबिन्दु (६२) विंशिका (६३) वीरस्तवः (६४) वीराङ्गदकथा (६५) वेदबाह्यतानिराकरणम् (६६) व्यवहारकल्प (६७) शास्त्रवार्तासमुच्चय स्वोपज्ञटीकासहित (६८)श्रावकप्रज्ञप्तिवृत्ति (६९) श्रावकधर्मतन्त्रम् (७०) षड्दर्शनसमुच्चय

तथा चाऽत्र श्रीवलभीवाचनानुगतस्थविराणा क्रमस्य कालस्य च प्रतिपादिका प्राचीना अपि पन्न्यासश्रीकल्याणविजयै परिमार्जिता स्वाभिप्रायानुसारिण्यो गाथा इमा —

"सिरिवीराउ सुहम्मो वीस चउचत्त वास जबुस्स । पभवेगारस सिज्ज-भवस्स तेवीसवासाणि ॥ १ ॥
पन्नास जसोभद्दे * समूयसट्ठि भद्दबाहुस्स । चउदस य थूलभद्दे पणयालेव दुसगसट्ठी ॥ २ ॥
अज्जमहागिरि तीस अज्जसुहत्थीण वरिस छायाला । इगचालीस जाणसु निगोयवक्खाय सामज्जे ॥ ३ ॥
रेवइमित्ते वासा होंति छत्तीस उदहिनामम्मि । वासाणि नव मगू-थेरमि वीसवासाणि ॥ ४ ॥
चउयाल अज्जधम्मे एगुणचालीस भद्दगुत्ते अ । सिरिगुत्ति पनर वइरे छत्तीस इति वासाणि ॥ ५ ॥
तेरस वासा सिरिअज्ज-रक्खिए वीस पूसमित्तस्स । सिरिवज्जसेणि तिण्णि य गुणसत्तरि नागहत्थिस्स ॥ ६ ॥
रेवइमित्ते गुणसट्ठि सिंहसूरिम्मि अट्ठहत्तरी य । नागज्जुणि अडहत्तरि भूयदिन्ने य इगुणयासी ॥ ७ ॥
एगारस कालगज्जे सिद्धंतुद्धारकारि वलहीए । एव णवसयतिणउइ वासा वालब्भसघस्स ॥ ८ ॥" इति ।

पन्न्यासश्रीकल्याणविजयाणामभिप्रायेण वालवाचनाऽपेक्षया वाचनवाचार्याणा युगप्रधानानाञ्च श्रीसुधर्मस्वाम्यादीना श्रीकालिकसूरिपर्यन्ताना सप्तविंशतेर्वाचनाचार्यकालस्य युगप्रधानकालस्य च प्रदर्शियन्त्रकम्--

		वीरसवत					वीरसवत्		
अनुक्रम	नामानि	आरभ्य	पर्यन्त	वर्षमानम्	अनुक्रम	नामानि	आरभ्य	पर्यन्त	वर्षमानम्
१	श्रीसुधर्मस्वामी	०	२०	२०	१५	श्रीआर्यधर्मसूरि	४४९	४९३	४४
२	श्रीजम्बूस्वामी	२०	६४	४४	१६	श्रीभद्रगुप्तसूरि	४९३	५३२	३९
३	श्रीप्रभवस्वामी	६४	७५	११	१७	श्रीगुप्तसूरि	५३२	५४७	१५
४	श्रीशय्यम्भवस्वामी	७५	९८	२३	१८	श्रीआर्यवज्रस्वामी	५४७	५८३	३६
५	श्रीयशोभद्रसूरि	९८	१४८	५०	१९	श्रीआर्यरक्षितसूरि	५८३	५९६	१३
६	श्रीसम्भूतसूरि	१४८	२०८	६०	२०	श्रीपुष्यमित्रसूरि	५९६	६१६	२०
७	श्रीभद्रबाहुस्वामी	२०८	२२२	१४	२१	श्रीवज्रसेनसूरि	६१६	६१९	३
८	श्रीस्थूलभ स्वामी	२२२	२६७	४५	२२	श्रीनागहस्तिसूरि	६१९	६८८	६९
९	श्रीआर्यमहागि र	२६७	२९७	३०	२३	श्रीरेवतिमित्रसूरि	६८८	७४७	५९
१०	श्रीआर्यसुहस्तिसूरि	२९७	३४३	४६	२४	श्रीसिंहसूरि	७४७	८२५	७८
११	श्रीकालिकाचार्य	३४३	३८४	४१	२५	श्रीनागार्जुनसूरि	८२५	९०३	७८
१२	श्रीरेवतीमित्रसूरि	३८४	४२०	३६	२६	श्रीभूतदिन्नसूरि	९०३	९८२	७९
१३	श्रीआर्यसमुद्रसूरि	४२०	४२९	९	२७	श्रीकालिकसूरि	९८२	९९३	११
१४	श्रीआर्यमङ्गुसूरि	४२९	४४९	२०					

* पन्न्यासश्रीकल्याणविजया 'सभूयस्सऽट्ठ' इति पाठमपपाठ मन्यन्ते, ते हि 'सभूयसट्ठि' इति पाठ शुद्ध स्वीकुर्वन्ति तेन 'दुपनरस' स्थाने 'दुसगसट्ठी ॥२॥' इति पाठस्तै कृत । एवमन्यदपि गुणसुन्दराचार्याद्यऽग्रहणादिक बोध्यम् ।

"१४४० ग्रन्था' प्रायश्चित्तपदे कृता " इति।

तृतीयमते षट्पञ्चाशदूनसार्धसहस्रग्रन्थप्रणेतृत्वे—

(१) श्रीरत्नशेखरसूरिभिः श्राद्धप्रतिक्रमणार्थदीपिकावृत्तौ—

"१४४४प्रकरणकृतश्रीहरिभद्रसूरयोऽप्याहुर्ललितविस्तरायाम् " इति।

(२) श्रीलक्ष्मीसागरसूरिभिर्गुणगतिवसुराशि१८४३वैक्रमेऽब्दे रचित उपदेशप्रसादे तृतीयस्तम्भे चतुस्त्रिंशत्तमे व्याख्याने—

"चतुश्चत्वारिंशदधिकचतुर्दशशतग्रन्थान् हरिभद्रसूरि प्रायश्चित्तपदे चकार ।" इति।

(३) श्रीगुरुपट्टावल्याम्— विक्रमात्५८५वर्षे चतुश्चत्वारिंशदुत्तरचतुर्दशशत १४४४ प्रकरणकृत् श्रीहरिभद्रसूरि स्वर्गत ।

(४) अञ्चलगच्छपट्टावल्याम्—"२९ श्रीहरिभद्रसूरि १४४४ प्रकरणकर्ता" इति ।

(५) क्षमाकल्याणमुनिना खरतरगच्छपट्टावल्याम्—"१४४४ पूजापञ्चाशकादिप्रकरणानि कृतानि" इति ।

तेष्वधुना कालानुभावतः कियन्त एवाऽनुयोगद्वारसूत्रलघुवृत्त्य ऽनेकान्तजयपताकादयोऽस्मत्कर्णविषया भवन्ति ।

ते चाकारादिक्रमेण हरिभद्रसूरिचरित्रे सङ्कलिता एवम्—

" (१) अनुयोगद्वारसूत्रलघुवृत्ति , (२) अनेकान्तजयपताका स्वोपज्ञटीकासहिता (३ अनेकान्तप्रघट्ट (४) अनेकान्तवादप्रवेश (५) अष्टकानि (६) आवश्यकनिर्युक्तेर्लघीयसी अथ च द्वाविंशतिश्लोकसहस्रप्रमाणा टीका (७) तस्या एव चतुरशीतिलोकसहस्रमाना बृहट्टीका (८) उपदेशपदानि (९) कथाकोश (१०) कर्मस्तववृत्ति (११) कुलकानि (१२) क्षमावल्लीबीजम् (१३)क्षेत्रसमासवृत्ति (१४) चैत्यवन्दनभाष्य संस्कृतम् (१५) चैत्यवन्दनावृत्ति॰ (ललितविस्तराख्या) (१६) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिटीका (१७) जम्बूद्वीपसंग्रहणी (१८) जीवाभिगमलघुवृत्ति)१९) ज्ञानपञ्चकविवरणम् (२०) ज्ञानादित्यप्रकरणम् (२१) तत्त्वतरङ्गिणी (२२) तत्त्वार्थलघुवृत्ति (२३) दर्शनशुद्धिप्रकरणम् (२४) दर्शनसप्ततिका (२५) दशवैकालिकावचूरी (२६) दशवैकालिकबृहद्वृत्ति (२७) देवेन्द्र-नरेन्द्रप्रकरणम् (२८)द्विजवदनचपेटा (२९) धर्मबिन्दु (३०) धर्मलाभसिद्धि (३१) धर्मसङ्ग्रहणी (३२) धर्मसारमूलटीका (३३) धूर्ताख्यानम् (३४) नन्द्यध्ययनवृत्ति (३५) न्यायप्रवेशसूत्रवृत्ति (३६) न्यायविनिश्चय (३७) न्यायावतारवृत्तिः (३८) पञ्चनियठी (३९) पञ्चलिङ्गी (४०) पञ्चवस्तु स्वोपज्ञटीकासहितम् (४१) पञ्चसङ्ग्रह (४२) पञ्चसूत्रवृत्ति (४३) पञ्चस्थानकम् (४४) पञ्चाशकम् (४५) परलोकसिद्धि (४६) पिण्डनिर्युक्तिवृत्ति॰ (४७) प्रज्ञापनाप्रदेशव्याख्या (४८) प्रतिष्ठाकल्प (४९) बृहन्मिथ्यात्वमन्थनम् (५०) मुनिपतिचरित्रम् (५१) यतिदिनकृत्यम् (५२) यशोधरचरितम् (५३) योगदृष्टिसमुच्चय (५४) योगबिन्दुः (५५) योगशतकम् (५६) योगविंशति॰ (५७) लग्नशुद्धि (५८) लघुक्षेत्रसमास (५९) लघुसङ्ग्रहणी (६०) लोकतत्त्वनिर्णय (६१) लोकबिन्दु (६२) विंशिका (६३) वीरस्तव (६४) वीराङ्गदकथा (६५) वेदबाह्यतानिराकरणम् (६६) व्यवहारकल्प (६७) शास्त्रवार्तासमुच्चय स्वोपज्ञटीकासहित (६८)श्रावकप्रज्ञप्तिवृत्ति (६९) श्रावकधर्मतन्त्रम् (७०) षड्दर्शनसमुच्चय

"पाठाणं" ति, पाठानां=भणितसूत्राणां "समण्णओ' त्ति, समन्वयः "कओ" त्ति, कृतः=विहितः।

अयम्भावः—वाचनाद्वयगतभिन्नपाठानामालोचनां कृत्वा निश्चितैकपाठः सूत्रत्वेन निबद्धः, यत्र च पुनर्भिन्नपाठेषु पक्षद्वयस्यामपि स्व-स्वपाठे दृढनिश्चयस्तत्र माथुरवाचनागतं पाठं पुरस्कृत्य वलभीवाचनासत्कः पाठो मताऽन्तरेण ' वायणंतरे पुण" इत्येवंरूपेण सङ्गृहीतः।

इयञ्च पञ्चममाथुरी-वालभीलक्षणागमवाचनाद्वयाऽपेक्षया षष्ठागमवाचना ज्ञेया।

तद्यथा–प्रथमा श्रीस्थूलभद्रस्वामिनः समये पाटलिपुत्रे श्रीसङ्घेन १, द्वितीया श्रीआर्य-सुहस्तिसूरेरवसरेऽवन्त्यां सम्प्रतिनृपतिना २, तृतीया श्रीसुस्थित सुप्रतिबद्धाचार्यों काले कुमर-गिरौ कलिङ्गभूपतिभिक्षुराजेन ३, चतुर्थी श्रीआर्यरक्षितसूरिणा चतुरनुयोगानां पृथक्करणरूपा दशपुरे ४, पञ्चमी पुनर्मथुरायां श्रीस्कन्दिलसूरेः सान्निध्ये तथा वलभ्यां श्रीनागार्जुनसूरेः सान्निध्ये जाता, तयोश्चागमवाचनयोः क्रमेण माथुरी वालभीति सञ्ज्ञाऽभूत् ५, तयोरागमवाचनयोः समन्वयरूपेयं षष्ठ्यागमवाचना बोध्या।

अयञ्च मथुरावाचनानुगतश्रीनन्दीसूत्रोक्तवाचकस्थविरावल्यां सप्तविंशो वाचनाचार्योऽभूत्।

तद्यथा—१ श्रीसुधर्मस्वामी, २ तदनु श्रीजम्बूस्वामी, ३ ततः श्रीप्रभवस्वामी, ४ तस्मात् श्रीशय्यम्भवस्वामी, ५ तदनु श्रीयशोभद्रस्वामी, ६ ततः श्रीसम्भूतसूरिः, ७ ततः श्रीभद्रबाहु-स्वामी, ८ तदनु श्रीस्थूलभद्रस्वामी, ९ तत आर्यश्रीमहागिरिः, १० तत आर्यश्रीसुहस्तिसूरिः, ११ तदनु आर्यश्रीबहुल-बलिस्सहौ, १२ ततो वाचकश्रीस्वातिसूरिः, १३ तत आर्यश्रीश्यामा-चार्यः, १४ तदनु श्रीशाण्डिल्य(स्कन्दिल)सूरिः, १५ तत आर्यश्रीसमुद्रसूरिः, १६ तत आर्य-श्रीमङ्गुसूरिः, १७ ततः श्रीनन्दिलसूरिः, १८ तदनु श्रीनागहस्तिसूरिः, १९ ततः △श्रीरेवति-नक्षत्रसूरिः, २० ततः श्रीसिंहसूरिः, २१ तदनु श्रीस्कन्दिलसूरिः, २२ ततः श्रीहिमवत्सूरिः, २३ तदनु नागार्जुनसूरिः २४ ततः श्रीभूतदिन्नसूरिः, २५ तदनु श्रीलोहित्याचार्यः, २६ ततः श्रीदूष्यगणी, २७ तदनु श्रीदेवर्द्धिगणी क्षमाक्षमण इति।

यदा पुनः श्रीनन्दिसूत्रे प्रक्षिप्तगाथापेक्षया नागार्जुन-भूतदिन्नसूर्योर्मध्ये गोविन्दसूरिमपि मन्यन्ते तदा-ऽष्टाविंशतितमोऽयं श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणो भवति।

तथा चाऽत्र श्रीबलिस्सहसूरेरारभ्य माथुरवाचनास्थविरक्रमप्रतिपादिके द्वे गाथे चेमे–' सूरिबलिस्सह-साई सामज्जो संडिल्लो य जीयधरो। अज्जसमुद्दो मङ्गू नंदिल्लो नागहत्थी य ॥ ॥ रेवइसिंहो खंडिल-हिमव नागज्जुणा य ⌒गोविंदा। सिरिभूइदिन्न लोहिच्च-दूसगणिणो य देवड्ढी॥"इति।

卐 केचिदार्यसुहस्तिसूरिं नाङ्गीकुर्वन्ति, भिन्नावलिकागतत्वात्। △ "रेवति(ती)सिंहो" इत्यपि, "रेवति (ती)मित्तो" इत्यपि वा। ⌒ पन्न्यासकल्याणविजया हि 'गोविंदा' इति पदं दूरीकृत्य तत्स्थाने 'तेवीस' इति पद भणन्ति, प्रक्षिप्तगाथापेक्षया गोविंदवाचकस्योपलभ्यमानत्वात्।

भणितां "चक्किदुगं हरिपणगं पणग चक्कीण केसवो चक्की। केसवचक्की केसवदुचक्कि-केसी य चक्की य ॥" इति गाथां श्रुत्वा तदर्थं व्यमृशन यदा नाऽधिगच्छति तदा तामार्या-मपृच्छत्। तद्वचसा * जिनभटगुरोः समीपे गत्वा तदर्थं ज्ञातवान प्रव्रजितश्च। पश्चाच्चाऽधीत-सकलशास्त्ररहस्यः पादलिप्तसूर्यादिसमप्रभावः स्वगुरुणा स्वपदे (सूरिपदे) न्यस्तः। तस्य च श्रीहरिभद्रसूरेर्द्वौ भागिनेयौ हंस-परमहंसनामानौ प्रहरणशतयोधिनौ पितृकुलक्लेशतो विरक्तौ प्रव्रजितौ शिष्यौ जातौ गुरुनिषिद्धावपि बौद्धदर्शनस्य विशेषज्ञानलिप्सयाऽतिगुप्तजैनलिङ्गौ सुगतपुरं गतौ। तत्र च पठन्तौ सुगतैर्यानि जिनमते दूषणानि दर्शितानि तानि निराकर्तुं सौगतमते च दूषणानि प्रकटयितुं दाढर्ययुक्तान् हेतूनन्यपत्रकेष्वलिखताम्। एकदा वायुनाऽपनीतं पत्रयुग्म-मन्यबौद्धविनेयैर्बौद्धगुरवे दत्तम्, ततश्च तेन बौद्धाचार्येणोपायेन लक्षितौ तौ युक्त्या पला-यितौ, वर्त्मनि स्वपृष्ठागतैर्बौद्धभटैः सह युध्यन् हंसो दिवं गतः, परमहंसश्च निकटवर्तिनः शरणागतवत्सलस्य सूरपालभूपस्य पार्श्वे गतः। ततोऽनुपदमागतान् बौद्धान् वादे विजित्य नृपकृतसञ्ज्ञया ततोऽपि पलायितो गुरुसमीपागतश्च स्वयोरपराधक्षमां याचित्वा स्वयोर्वृत्तान्तं गुरुबन्धुमरणं यावत्कथयन् स हृद्भिभेदेन मृतः। ततः शिष्यविरहेण दूनमना बौद्धकृतस्वशिष्य-कदर्थनया रुष्टो गुर्वाज्ञां प्राप्य सुरपालस्य समीप गत्वा तस्य शरणागतरक्षणलक्षणगुण प्रशंसित-वान् बौद्धैः सह वादं कारयितुं कथितवान तथैव जाते वादे पराजितबौद्धाचार्यस्स्वोदित-पणानुसारेण तप्ततैलकुण्डे पतितः। एवमन्येऽपि पञ्चषास्ते निर्जिता मृत्युमवापुः, ततस्तेषु महारवो जातः, किन्तु हंस-परमहंसकदर्थनाकटुफलं ज्ञात्वा तूष्णीभूय ततो निर्गताः।

इतश्च हरिभद्रसूरेर्गुरुणा तद्वृत्तं निशम्य तस्योपशमनाय

"गुणसेणअग्गिसम्मा सीहाणदा य तह पिआपुत्ता। सिहिजालिणिमायसुआ धणधणसिरिमो पइभज्जा ॥१॥
जयविजया य सहोअर धरणो लच्छी अ तह पई भज्जा। सेणविसेणा पित्तियउत्ता जम्मम्मि सत्तमए ॥२॥
गुणचन्दवाणमन्तरसमराइच्चगिरिसेणपाणो अ। एगस्स तओ मोक्खोऽणन्तो अन्नस्स ससारो ॥३॥" इति।

प्रेषितगाथात्रयेण प्रतिबोधितः स गुरुपार्श्वे आगत्य विरतौ स्खलनायाः प्रायश्चित्तं कृत्वा विशुद्धो जातः, तथाऽपि शिष्यविरहेण व्यथितो-ऽम्बिकया प्रियवचोभिर्विज्ञप्तः, यथा—

"यतस्तव नूतना शिष्यसन्ततिर्नास्ति, ततो भव्यानामुपकाराय शास्त्रसन्ततेर्विस्तार कुरु।" इति।

ततः शोकमुत्सृज्य गुरुप्रेषितगाथात्रयस्योपरि समरादित्यकेवलिचरित्रं विरचितवान्। पुनरपि शतोनं षष्ट्यूनं षट्पञ्चाशदूनं वा ग्रन्थसार्द्धसहस्र चक्रे।

---

* प्रभावकचरित-प्रबन्धकोशाद्यपेक्षया—"जिनभटसूरे" उपदेशपदटीकापेक्षया 'जिनभद्राचार्यस्य" अन्यग्रन्थापेक्षया पुन "जिनदत्तसूरे" इत्यपि।

"पाठाणं" ति, पाठानां=भणितसूत्राणां "समण्णओ" त्ति, समन्वयः "कओ" त्ति, कृतः=विहितः।

अयम्भावः-वाचनाद्वयगतभिन्नपाठानामालोचनां कृत्वा निश्चितैकपाठः सूत्रत्वेन निबद्धः, यत्र च पुनर्भिन्नपाठेषु पक्षद्वयस्यामपि स्व-स्वपाठे दृढनिश्चयस्तत्र माथुरवाचनागतं पाठं पुरस्कृत्य वलभीवाचनासत्कः पाठो मताऽन्तरेण 'वायणंतरे पुण" इत्येवंरूपेण सङ्गृहीतः।

इयञ्च पञ्चममाथुरी-वालभीलक्षणागमवाचनाद्वयाऽपेक्षया षष्ठागमवाचना ज्ञेया।

तद्यथा-प्रथमा श्रीस्थूलभद्रस्वामिनः समये पाटलिपुत्रे श्रीसङ्घेन १, द्वितीया श्रीआर्यसुहस्तिसूरेरवसरेऽवन्त्यां सम्प्रतिनृपतिना २, तृतीया श्रीसुस्थित सुप्रतिबद्धाचार्यौः काले कुमरगिरौ कलिङ्गभूपतिभिक्षुराजेन ३, चतुर्थी श्रीआर्यरक्षितसूरिणा चतुरनुयोगानां पृथक्करणरूपा दशपुरे ४, पञ्चमी पुनर्मथुरायां श्रीस्कन्दिलसूरेः सान्निध्ये तथा वलभ्यां श्रीनागार्जुनसूरेः सान्निध्ये जाता, तयोश्चागमवाचनयोः क्रमेण माथुरी वालभीति सञ्ज्ञाऽभूत् ५, तयोरागमवाचनयोः समन्वयरूपेयं षष्ठ्यागमवाचना बोध्या।

अयञ्च मथुरावाचनानुगतश्रीनन्दीसूत्रोक्तवाचकस्थविरावल्यां सप्तविंशो वाचनाचार्योऽभूत्।

तद्यथा-१ श्रीसुधर्मस्वामी, २ तदनु श्रीजम्बूस्वामी, ३ ततः श्रीप्रभवस्वामी, ४ तस्मात् श्रीशय्यम्भवस्वामी, ५ तदनु श्रीयशोभद्रस्वामी, ६ ततः श्रीसम्भूतसूरिः, ७ ततः श्रीभद्रबाहुस्वामी, ८ तदनु श्रीस्थूलभद्रस्वामी, ९ तत आर्यश्रीमहागिरिः, १० तत 卐 आर्यश्रीसुहस्तिसूरिः, ११ तदनु आर्यश्रीबहुल-बलिस्सहौ, १२ ततो वाचकश्रीस्वातिसूरिः, १३ तत आर्यश्रीश्यामाचार्यः, १४ तदनु श्रीशाण्डिल्य(स्कन्दिल)सूरिः, १५ तत आर्यश्रीसमुद्रसूरिः, १६ तत आर्यश्रीमङ्गुसूरिः, १७ ततः श्रीनन्दिलसूरिः, १८ तदनु श्रीनागहस्तिसूरिः, १९ ततः△श्रीरेवतिनक्षत्रसूरिः, २० ततः श्रीसिंहसूरिः, २१ तदनु श्रीस्कन्दिलसूरिः, २२ ततः श्रीहिमवत्सूरिः, २३ तदनु नागार्जुनसूरिः २४ ततः श्रीभूतदिन्नसूरिः, २५ तदनु श्रीलोहित्याचार्यः, २६ ततः श्रीदूष्यगणी, २७ तदनु श्रीदेवर्द्धिगणी क्षमाक्षमण इति।

यदा पुनः श्रीनन्दिसूत्रे प्रक्षिप्तगाथापेक्षया नागार्जुन-भूतदिन्नसूर्योर्मध्ये गोविन्दसूरिमपि मन्यन्ते तदा-ऽष्टाविंशतितमोऽयं श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणो भवति।

तथा चाऽत्र श्रीबलिस्सहसूरेरारभ्य माथुरवाचनास्थविरक्रमप्रतिपादिके द्वे गाथे चेमे-' सूरिबलिस्सह-साई सामज्जो संडिलो य जीयधरो। अज्जसमुद्दो मंगू नंदिलो नागहत्थी य॥ ॥
रेवइसिंहो खंडिल-हिमवं नागज्जुणा य ▬गोविंदा। सिरिभूइदिन्न लोहिच्च-दूसगणिणो य देवड्ढी॥" इति।

卐 केचिदार्यसुहस्तिसूरिं नाङ्गीकुर्वन्ति, भिन्नावलिकागतत्वात्। △ "रेवति(ती)सिंहो" इत्यपि, "रेवति (ती)मित्रो" इत्यपि वा। ▬ पन्न्यासकल्याणविजया हि 'गोविंदा' इति पदं दूरीकृत्य तत्स्थाने 'तेवीस' इति पदं भणन्ति, प्रक्षिप्तगाथापेक्षया गोविंदवाचकस्योपलभ्यमानत्वात्।

तथा चात्र विस्तरतः श्रीहरिभद्रसूरिप्रबन्धस्तु प्रभावकचरित इत्थम्—

स जयति हरिभद्रसूरिरुद्यन्मतिमदतारकभेदबद्धलक्ष ।
शरभव इव शक्तिधिक्कृतारिगुरुबहुलोदयदङ्गसङ्गतश्री ॥१॥
कुसुमविशिखमोहशत्रुपाथोनिधिनिधनाश्रयविश्रुत प्रकामम् ।
स्थिरपरिचयगाढरूढमिथ्याग्रहजलवालकशैलवृद्धिविघ्न ॥२॥
जिनभटमुनिराजराजराजत्कलशभवो हरिभद्रसूरिरुच्चै' ।
वरचरितमुदीरयेऽस्य बाल्यादविगणयन्मतितानव स्वकीयम् ॥३॥ युग्मम् ।
इह निखिलकुहूकृतोपकारादहिमरुचि शशिना निमन्त्रितो नु ।
रुचिरतररुचिप्रकाशिताश प्रभवति यत्र निशासु रत्नराशि· ॥४॥
जगदुपकृतिकारिणोर्वहिष्कृद्रवि-शशिनो शिथिल समैक्षि मेरु ।
शिरसि वसतिदस्तु शिश्रिये यस्त्रिदिविभिरस्ति स चित्रकूटशैलः ॥५॥
बहुतरपुरुषोत्तमेशलीलाभवनमल गुरुसात्विकाश्रयोऽत' ।
त्रिदिवमपि तृणाय मन्यते यन्नगरवर तदिहास्ति चित्रकूटम् ॥६॥
हरिरपरवपुर्विधाय यं स्व क्षितितलरक्षणदक्षमक्षताख्यम् ।
असुरपरिवृढव्रज विभिन्ते स नृपतिरत्र बभौ जितारिनामा ॥७॥
चतुरधिकदशप्रकारविद्यास्थितिपठनोन्नतिरग्निहोत्रशाली ।
अतितरलमति पुरोहितोऽभून्नृपविदितो हरिभद्रनामवित्त ॥८॥
परिभवनमतिर्महावलेपात् क्षितिसलिलाम्बरवासिना बुधानाम् ।
अवदारणजालकाधिरोहण्यपि स दधौ त्रितय जयाभिलाषी ॥९॥
स्फुटति जठरमत्र शास्त्रपूरादिति स दधावुदरे सुवर्णपट्टम् ।
मम सममतिरस्ति नैव जम्बूक्षितिवलये वहते लतां च जम्ब्वा ॥१०॥
अथ यदुदितमत्र नावगच्छाम्यहमिह तस्य विनेयतामुपैमि ।
इति कृतकृतिदुस्तरप्रतिज्ञ' कलिसकलज्ञतया स मन्यते स्वम् ॥११॥ त्रिभिर्विशेषकम् ।
अथ पथि स चरन् सुखासनस्थो बहुतरपाठकवर्णितवर्णकीर्ण ।
अलिकुलकलित कपोलपाल्या मदजलकर्दमदुर्गमीकृतक्ष्माम् ॥१२॥
विपणिगृहसमूहभङ्गभीतभ्रमदतिशोकविहस्तलोकदृश्यम् ।
कुमरणभयभीतमत्तुनश्यद्द्विपदचतुष्पदहीनमार्गहेतुम् ॥१३॥
विधुरविरुतिसन्निपातपूरैरतिपरिखेदितगेहिवासमर्त्यम् ।
गजपरिवृढमैक्षतोत्तमाङ्गत्वरितविधूननधूतसादिवृन्दम् ॥१४॥ त्रिभिर्विशेषकम् ।
प्लवग इव यथा तरूच्चशृङ्गात् कुसुमगणं प्रविचित्य तिग्मभानुम् ।
प्रतिविसृजति चञ्चलस्वभावाज्जिनगृहमेष तथा द्विजोऽध्यरोहत् ॥१५॥
बलजवलयदर्शनोर्ध्वदृष्टि कथमपि तीर्थपतिं ददर्श सोऽथ ।
अवददविदितोत्तमार्थतत्त्वो भुवनगुरावपि सोपहासवाक्यम् ॥१६॥
तथाहि—वपुरेव' तवाचष्टे स्पष्टमिष्टान्नभो ।
न हि कोटरसस्थेऽग्नौ तरुर्भवति शाद्वल. ॥१७॥

थेरस्स णं अज्जफग्गुमित्तस्स गोयमसगुत्तस्स अज्जधणगिरी १७ थेरे अंतेवासी वासिट्ठसगुत्ते ॥४॥
थेरस्स णं अज्जधणगिरिस्स वासिट्ठसगुत्तस्स अज्जसिवभूई १८ थेरे अंतेवासी कुच्छसगुत्ते ॥५॥
थेरस्स णं अज्जसिवभूइस्स कुच्छसगुत्तस्स अज्जभद्दे १९ थेरे अंतेवासी कासवगुत्ते ॥६॥
थेरस्स णं अज्जभद्दस्स कासवगुत्तस्स अज्जनक्खत्ते २० थेरे अंतेवासी कासवगुत्ते ॥७॥
थेरस्स णं अज्जनक्खत्तस्स कासवगुत्तस्स अज्जरक्खे २१ थेरे अंतेवासी कासवगुत्ते ॥८॥
थेरस्स णं अज्जरक्खस्स कासवगुत्तस्स अज्जनागे २२ थेरे अंतेवासी गोयमसगुत्ते ॥९॥
थेरस्स णं अज्जनागस्स गोयमसगुत्तस्स अज्जजेहिले २३ थेरे अंतेवासी वासिट्ठसगुत्ते ॥१०॥
थेरस्स णं अज्जजेहिलस्स वासिट्ठसगुत्तस्स अज्जविण्हू २४ थेरे अंतेवासी माढरसगुत्ते ॥११॥
थेरस्स णं अज्जविण्हुस्स माढरसगुत्तस्स अज्जकालए २५ थेरे अंतेवासी गोयमसगुत्ते ॥१२॥
थेरस्स णं अज्जकालगस्स गोयमसगुत्तस्स इमे दो थेरा अंतेवासी गोयमसगुत्ता
थेरे अज्जसंपलिए २६ थेरे अज्जभद्दे २६ ॥१३॥
एएसि णं दुण्ह थेराण वि गोयमसगुत्ताणं अज्जवुड्ढे २७ थेरे अंतेवासी गोयमसगुत्ते ॥१४॥
थेरस्स णं अज्जवुड्ढस्स गोयमसगुत्तस्स अज्जसंघपालिए २८ थेरे अंतेवासी गोयमसगुत्ते ॥१५॥
थेरस्स णं अज्जसंघपालिअस्स गोयमसगुत्तस्स अज्जहत्थी २९ थेरे अंतेवासी कासवगुत्ते ॥१६॥
थेरस्स णं अज्जहत्थिस्स कासवगुत्तस्स अज्जधम्मे ३० थेरे अंतेवासी सुव्वयगुत्ते ॥१७॥
थेरस्स णं अज्जधम्मस्स सुव्वयगुत्तस्स अज्जसीहे ३१ थेरे अंतेवासी कासवगुत्ते ॥१८॥
थेरस्स णं अज्जसीहस्स कासवगुत्तस्स अज्जधम्मे ३२ थेरे अंतेवासी कासवगुत्ते ॥१९॥
थेरस्स णं अज्जधम्मस्स कासवगुत्तस्स अज्जसंडिले ३३ थेरे अंतेवासी ॥२०॥' इति।

अथ कल्पसूत्रान्ते श्रीआर्यफल्गुमित्रत आरभ्य देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणपर्यन्तः स्थविरक्रमश्चतुर्दशभिर्गाथाभिर्निरूपितः, तत्र च श्रीशिवभूतेरनु श्रीआर्यदुर्जयन्तकृष्णः, श्रीहस्तिसूरेरनन्तरभाविन आर्यधर्मस्य पश्चात्क्रमेण श्रीआर्यहस्ती, श्रीआर्यधर्मश्च, तथा श्रीसिंहसूरेः पश्चाद्भाविनः श्रीधर्मसूरेरनु क्रमादार्यश्रीजम्बूः, आर्यनन्दितः, देशिगणी, स्थिरगुप्तः, कुमारधर्मः, देवर्द्धिगणी चेति पञ्चनामानि सन्ति। तथा आर्यश्रीसिंहसूरेः पश्चाद्भाविनः श्रीधर्मसूरेः पश्चात् श्रीशाण्डिल्यस्य नाम नाऽस्ति। तेन आर्यश्रीदुर्जयन्तकृष्णादिनूतननामाष्टकात् श्रीशाण्डिल्यनाम्नोऽपसारेण सप्त नामान्यधिकानि प्राप्तानि, तेषां पूर्वोदितचतुस्त्रिंशति प्रक्षेपे सत्येकचत्वारिंशद्भवति, ततः श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणस्तदपेक्षयैकचत्वारिंशो भवेत्।

तद्यथा-१८ आर्यश्रीशिवभूतिः, १९ तदनु श्रीदुर्जयन्तकृष्णः, २० तत आर्यश्रीभद्रः, २१ तत आर्यश्रीनक्षत्रः, २२ तदनु आर्यश्रीरक्षः, २३ तत आर्यश्रीनागः, २४ तत आर्यश्रीजेहिलः (जेष्ठिलः), २५ तत आर्यश्रीविष्णुः, २६ तत आर्यश्रीकालकः, २७ तत आर्यश्रीसंपलित-(यशो)भद्रौ, २८ तत आर्यश्रीवृद्धः, २९ तत आर्यश्रीसङ्घपालितः, ३० तत आर्यहस्ती, ३१ तत आर्यश्रीधर्मः, ३२ आर्यश्रीहस्ती, ३३ तत आर्यश्रीधर्मः, ३४ तदनु आर्यश्रीसिंहः, ३५ ततः आर्यश्रीधर्मः, ३६ तत आर्यश्रीजम्बूः, ३७ तत आर्यश्रीनन्दितः, ३८ तदनु श्रीदेशिगणी, ३९ तदनु श्रीस्थिरगुप्तः, ४० ततः श्रीकुमारधर्मः, ४१ तदनु श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणः।

न्यगददथ पुरोहितो विनीतं किमनुपमप्रतिमोऽहमस्मि पूज्या ।
जिनमतजरतीवचो मयैक श्रुतमपि नो विवरीतुमत्र शक्यम् ।।३६।।
अपरसमयवित्तशास्त्रराशिं व्यमृशमह तु न चक्रिकेशवानाम् ।
क्रममुमुदित तथा प्रवुध्ये तदिह निवेदयत प्रसद्य मेऽर्थम् ।।३७।।
अथ गुरुरपि जल्पति स्म साधो । जिनसमयस्य विचारणव्यवस्थाम् ।
शृणु सुकृतमते प्रगृह्य दीक्षा तदनुगता च विधीयते तपस्या ।।३८।।
विहितविनयकर्मणा च लभ्यो मिलदवलातलमौलिनानुयोग ।
इति तदवगमोऽन्यथा तु न स्याद् यदुचितमाचर मा त्वरा विधास्त्वम् ।।३९।।
अथ स किल समस्तसङ्गहानिं सकलपरिग्रहसाक्षिक विधाय ।
गुरुपुरत उपाददे चरित्र परिहृतमन्दिरवेप इष्टलोच ।।४०।।
गुरुरवददथागमप्रवीणा यमि-यतिनीजनमौलिशेखरश्री ।
मम गुरुभगिनी महत्तरेय जयति च विश्रुतजाकिनीति नाम्नी ।।४१।।
अभणदथ पुरोहितोऽनयाह भवभवशास्त्रविशारदोऽपि मूर्ख ।
अतिसुकृतवशेन धर्ममात्रा निजकुलदेवतयेव बोधितोऽस्मि ।।४२।।
अयमवगतसाधुधर्मसार• सकलमहाव्रतधूर्धुरधरश्रीः ।
गुरुमगददथ प्रवर्तमानागमगणसारविचारपारदृश्वा ।।४३।।
अधिकरणिकशास्त्रसुप्रसन्नानुगतिविलोल इयद्दिनानि जज्ञे ।
त्वदपरिचयमूर्छितो मुनीश । प्रचिकटिपुर्निजमासुतीबलत्वम् ।।४४।।
धृतधृतिरधुना शुभानुभावात् श्रुतभरसागरमध्यलीनचित्त ।
अनधिगतविमुक्तपद्मवासाप्रियविरहप्रभृतिव्यथस्त्वभूवम् ।।४५।।
गुरुरिदमवधार्य धर्मशास्त्राध्ययनसुपाठनकर्मलब्धरेखम् ।
सुरचितसुकृतोपदेशलीलं निजपदमण्डनमादधौ सुलग्ने ।।४६।।
अनुचरितपुराणपादलिप्तप्रमुखसमो हरिभद्रसूरिरेष ।
कलिसमययुगप्रधानरूपो विमलयति क्षितिमहिसक्रमेण ।।४७।।
अपरदिवि निजौ स जामिपुत्रौ पितृकुलकर्कशवाक्यतो विरक्तौ ।
प्रहरणशतयोधिनौ कुमारौ बहिरवनाद्युदपश्यदात्तचिन्तौ ।।४८।।
अथ चरणयुग गुरो प्रणम्य प्रबभणतुर्गृहतो विरागमेतौ ।
तदनु गुरुरुवाच वासना चेन् मम सविधे व्रतभारमुद्वहेथाम् ।।४९।।
तदनुमतिमवाप्य चैष हस सपरमहसमदीक्षयत् ततोऽथ ।
व्यचरयत स तौ प्रमाणशास्त्रौपनिषदिकश्रुतपाठशुद्धबुद्धी ।।५०।।
अथ च सुगततर्कशास्त्रतत्त्वाधिगममहेच्छतया गुरुक्रमेभ्य ।
अवनितलमिलल्ललाटपट्टौ सुललितविज्ञपना वितेनतुस्तौ ।।५१।।
दुरधिगमतथागतागमानामधिगमनाय सदाहितोद्यमौ तौ ।
प्रदिशत नगर यथा तदीय प्रति निजबुद्धिपरीक्षणाय याव ।।५२।।
गुरुरपि हृदये निमित्तशास्त्रादधिगतमुत्तरकालमाकलय्य ।
अवददिति शुभ न तत्र वीक्षेऽभ्युपगममेनमतो हि माद्रियेथा ।।५३।।

'वीरात्त्रिनन्दाङ्क(९९३)शरद्यचीकरत, त्वच्चैत्यपूते ध्रुवसेनभूपतिः ।
यस्मिन् महैः ससदि कल्पवाचना-माद्या तदानन्दपुरं न कः स्तुते ?'' इति ।

केचित्तु कल्पसूत्रस्य पुस्तके लिखनमपि वीरसंवत् ९९३वर्षे मन्यन्ते ।

अन्ये पुनः कल्पसूत्रस्य वाचनामपि वीरसंवत् ९८०वर्षेऽङ्गीकुर्वन्ति । यदाहु-

नवशत अशीतिवर्षे, वीरात सेनाङ्गजार्थमानन्दे । सङ्घसमक्षं समहं प्रारब्ध वाचितुं विज्ञैः ॥" इति ।

उक्तमतान्तरसंग्राहकः कल्पसूत्रसत्कः पाठस्त्वेवम्-

"समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव सव्वदुक्खप्पहीणस्स नव वाससयाइं विइक्कंताइं, दसमस्स य वाससयस्स अयं असीइमे संवच्छरे काले गच्छइ, वायणंतरे पुण अयं तेणउए संवच्छरे काले गच्छइ इति दीसइ।" इति ।

तदत्र तत्त्वं पुनस्तद्विदो विदन्ति ॥१२९-१३०॥

अथ श्रीयुगप्रधानमन्तिमपूर्वधरञ्च श्रीसत्यमित्राचार्यं वर्णयितुमनाः पथ्यार्याद्वयेनाऽऽचष्टे-

अडवीसमो जुगवरो अंतिमपुव्वहरसच्चमित्तगुरू ।
से जम्मो वीराऽद्दे दिसक्खविक्कमसहारयणे ९४४ ॥१३१॥ (पच्छाज्जा)
इत्थीकल्लाणेहि १६४मिए वयं लहीअ स हवीअ जुगपवरो ।
चउमुहमुहगुत्तिगहे ११४गओ दिवं इगसहस्समिए १००१ ॥१३२॥
(पच्छापुव्विगा मुहचवलाऽज्जा)

(प्रे०) "अडवीसमो" इत्यादि, "अंतिमपुव्वहरसच्चमित्तगुरू" त्ति, अन्तिमपूर्वधरः=यस्य पश्चान्न कोऽपि पूर्वभृदभूत् तादृशश्चरमपूर्वविद् सत्यमित्रः=सत्यमित्रनामा गुरुः= आचार्यः "अडवीसमो जुगवरो" त्ति, श्रीयुगप्रधानपरम्परायां श्रीकालिकसूरेः पश्चादष्टाविंशतितमो युगप्रधानो जातः ।

अथाऽमुष्य जन्मादिपर्यायसत्कान् वत्सरान् सार्धया पथ्यार्यया दिशति-"से" इत्यादि, "से" त्ति, तस्य=श्रीसत्यमित्रसूरेः "वीरा" त्ति, वीरात्=वीरप्रभुकालतः "दिसक्खविक्कमसहारयणे' त्ति, दिशाः=पूर्वाद्याश्चतस्रः, अक्षाणि=इन्द्रियाणि पञ्च, विक्रमसभारत्नानि धन्वन्तर्यादीनि नव, तथा चोक्तम्-"धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंहशङ्कु-वेतालभट्टघटकर्परकालिदासाः ।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां, रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य ॥" इति ।

एतेऽङ्का वामगतिस्थापिता यस्याऽब्दस्य भवति तादृशे दिशाक्षविक्रमसभारत्ने 'ऽद्दे' त्ति, अब्दे=वर्षे वीरसंवत् ९५४संवत्सरे 'जम्मो' त्ति, जन्म=उत्पत्तिरभूत् ।

गुरुवचनमिदं तथैव बौद्धैः कृतमखिलैरपगृह्णलैः खलैस्तै ।
अथ मनसि महार्तिसंगतौ तौ विममृशतु' प्रकट हि सकट नः ॥७२॥
न विदधिव यदिह क्रमौ सशूकौ प्रतिकृतिमूर्धनि लक्षितौ तदानीम् ।
न हि पुनरपि जीविते किलाशा विकरुणमानसपाठकादमुष्मात् ॥७३॥
बलिमिह पदयोः क्रियावहे सद्गुरुहरिभद्रमुनीश्वरस्य तस्य ।
अतिदुरितमनागत विचार्य व्रजनविधिं प्रतिपेधति स्म य प्राक् ॥७४।
अविनयफलमावयोस्तदुग्र समुदितमत्र विनिश्चित तथैतत् ।
न चलति नियमेन दैवदृष्ट निजजनने सकलङ्कना मृतिर्वा ॥७५॥
नरकफलमिद न कुर्वहे श्रीजिनपतिमूर्द्धनि पादयोर्निवेश ।
परिशटिततरौ वर विभिन्नौ निजचरणौ न तु जैनदेहलग्नौ ॥७६॥
निधनमुपगत यथा तथा वा तदिह साहसमेव सप्रधार्यम् ।
इति दृढतर आवयोर्निबन्ध प्रतिकृतमत्र कृते विधेयमेव ॥७७॥
तदनु च खटिनीकृतोपवीतौ जिनपतिविम्बहृदि प्रकाशसत्त्वौ ।
शिरसि च चरणौ निधाय यातौ प्रयततमैरुपलक्षितौ च बौद्धैः ॥७८॥
प्रतिधवशकडारकेकराक्षैरतिकुशलैरवलोकितौ च तैस्तौ ।
गुरुरवददहो पुन परीक्षामपरतरा सुगतद्विपोर्विधास्ये ॥७९॥
स्थिरतरमनसस्तदाध्वमद्य प्रतिविधये हि न चादरो विधेय. ।
सुरशिरसि च पादपातमुख्य न हि समधीनिधयोऽपि सविदध्यु' ॥८०॥
अथ च कृतमिहोपवीतमेतत प्रतिकृतमत्र कृते दृढत्वचिह्नम् ।
दृढमतिरपरोऽपि कश्चिदीदृग् नहि विदधाति यथा विकर्मभीत ॥८१॥
परनगरसभागताश्च विद्यार्थिन इह नैव मया कदर्थनीया ।
भवति च कुयशोभरस्तदत्र प्रतिकरण कुपरीक्षित न कार्यम् ॥८२॥
इति वचनममुष्य ते निशम्य स्थितिमभजन् गुरुणा जना निरुद्धा ।
शयनभुवि गृहोपरिस्थिताना प्रतिदिशि यामिक एक एव चक्रे ॥८३॥
जिनगुरुशरण विधाय रात्राविह शयितौ परमेष्ठिन. स्मरन्तौ ।
समगत च तयोरनिच्छतोरप्यसुखभरे सुलभा तदा प्रमीला ॥८४॥
प्रततमघटावली तदोद्धर्वावनितलत स विमोचयाबभूव ।
खडखडखडिति स्वरेण शय्या विजहुरमी विरस तदा रटन्तः ॥८५॥
निजनिजकुलदेवताभिधास्तेऽभिदधुरिहाद्भुतसम्भ्रमेण तौ च ।
जगृहतुरथ जैननाम नेषा नरयुगल मतमित्यभूच्च शब्द ॥८६॥
अथ निधनभयेन साहसिक्याद् वरतरमौपयिक तु लब्धवन्तौ ।
अनवरतमहातपत्रवृन्दात् तत उदबध्यत तद्युग स्वदेहे ॥८७॥
तनुरुहयुगवत् तत पृथिव्या मुमुचतुरङ्गमथोद्धर्वभूमितस्तौ ।
मृदुशयनतलादिवोत्थितौ चाप्रहततनू कुशलावुदग्रबुद्धया ॥८८॥
लघुतरचरणप्रचारवृत्त्या द्रुतमपचक्रमतु पुरात तदीयात् ।
मतिविभववशादबुद्धयानौ छलयति क न मतिर्हि सुप्रयुक्ता ॥८९॥ त्रिभिर्विशेषकम् ।

सिरिहारिलसूरिवरो हवीअ गुणतीसमो जुगपहाणो ।
जम्मो तस्स अवत्थाजामणिहाणम्मि १४३-१५४ वीराऽद्दे ॥१३३॥(पच्छाअज्जा)
सो खतुरंगमणंदे ९७१/९७० दिक्खं गेणहीअ खणहसुणणबुहे १००१/१००० ।
होसी जुगप्पहाणो दिवं गओ भूइसुखचंदे १०५५ ॥१३४॥

(पच्छापुव्विगा जवणचवलाज्जा)

(प्रे०) "**सिरिहारिल०**" इत्यादि, "**सिरिहारिलसूरिवरो**" त्ति, श्रिया=षट्त्रिंशदाचार्यगुणलक्षणया युगप्रधानलक्षणया वा युक्तो हारिलः=हारिलनामा चासौ सूरिपु=आचार्यपुवरः=श्रेष्ठः=उत्तमः=श्रीहारिलसूरिवरः=श्रीहारिलाऽभिध आचार्यपुङ्गवः '**हवीअ गुणतीसमो जुगपहाणो**' त्ति, श्रीसत्यमित्रसूरेरन्वेकोनत्रिंशत्तमो द्वितीयोदये नवमो युगप्रधानो बभूव ।

अथाऽमुष्य जन्मादिपर्यायवर्षान् सार्धगाथया दर्शयति-"**जम्मो**" इत्यादि, "**तस्स**" त्ति, तस्य=श्रीहारिलसूरेः "**जम्मो**" त्ति, जन्म "**वीरा**" त्ति, वीरात्=श्रीचरमतीर्थनाथस्य निर्वाणात् "**अवत्थाजामणिहाणम्मि**" त्ति, अवस्थाः=दशा बालयुववृद्धरूपास्तिस्रः, यद्वा जन्मजरामृत्युलक्षणास्तिस्रः, यामाः=प्रहाराश्चत्वारः, यद्वा यामाः=महाविदेहजिनसाधुसत्का भरतैरवतयोर्मध्यमद्वाविंशतिजिनसाधुसत्का वा व्रताः=प्रतिज्ञारूपाः प्रसिद्धाश्चत्वारः, व्रतशब्दो नपुंसकवत्पुंल्लिङ्गेऽपि वर्तते, **तथा चाऽत्राऽमरकोशः**– 'व्रतमस्त्री" त्ति, तथा यामशब्दः प्रहरवत् व्रतार्थाऽभिधायकोऽप्यस्ति, **यदुक्तम्**–"प्रहरे संयमे याम " इति । निधानानि=निधयो नव, **तथा चोक्तमभिधानचिन्तामणौ**–महापद्मश्च पद्मश्च, शङ्खो मकरकच्छपौ । मुकुन्दकुन्दनीलाश्च, चर्चाश्च निधयो नव ॥'९३॥" इति, एते लौकि **शास्त्रानुसारेणाऽर्हच्छासने** पुनर्नैसर्पाद्या नव, **यदाह त्रिषष्टिशलाकाचरित्रे निधिनामानि दर्शयन्**-"नैसर्प पाण्डुकश्चाथ पिङ्गल सर्वरत्नक'। महापद्म कालमहाकालौ माणवशङ्खकौ ॥ ॥" इति । एतेऽङ्का वामगतिन्यस्ता१४३इति सङ्ख्या यत्र तत्रावस्थायामनिधाने "ऽद्दे" त्ति, अब्दे=हायने=वीरसंवत्१४३वर्षेऽभूत् ।

"**सो**" त्ति, सः=श्रीहारिलसूरिः "**खतुरगमणदे**" त्ति, खं=गगनं=शून्यम् , तुरङ्गमाः=अश्वाः=सप्त, नन्दा नव, एतेऽङ्का विपरीतक्रममीलिता यत्र तत्र खतुरङ्गमनन्दे=वीरसंवत्९७०शरदि "**दिक्ख गेण्हीअ**"त्ति, दीक्षां=प्रव्रज्यां जग्राह । "**खणहसुण्णबुहे**" त्ति, खः=सूर्य.=एकः, **तथा चोक्तं श्रीएकाक्षरनाममालायाम्**-"खश्च भास्करे" इति । **तथा चैकाङ्काभिधायकत्वेन सूर्यादिनामानि दर्शयता श्रीअरिसिंहेण काव्यकल्पलतायाम्**–"आदित्यमेरुचन्द्र० ॥२५०॥ अद्वैतवाद एकैक एवामी सुकविभिर्वर्ण्याः ॥२५१॥" इति । नभः=गगनं=शून्यम् , शून्यम् , बुधः=

प्रतिवद च तमद्य दम्भवादिन्नुवमसमानकृतप्रतिश्रवं त्वम् ।
अनुवदनपुर सर प्रजल्प्य भवति कथ तदृते हि वादमुद्रा ॥१०८॥
छलमिदमधुनैव तद्विना स्यात प्रकटतरं तदतो जयस्तवैव ।
अवददथ स मेऽत्र कोऽन्य एव जननि ! विना भवती करोति सारा ॥१०९॥
इति समुचितमुत्तर विधायापरदिवसे विदधौ सुरीनिदेशम् ।
प्रतिवदितरि संश्रिते च मौन स जवनिकाञ्चलमूर्द्ध्वमाततान ॥११०॥
कलशमथ चकार पादपातैर्विशकलमाश्रिनवैपरीत्यमेप ।
अवददथ सदम्भवादमुद्रान्नुघमिह कुष्टिजनाधमा भवन्त ॥१११॥
वधकृतमतयोऽस्य ते ह्यमित्रा समभिहिता ननु तेन भूमिपेन ।
नयविजयमय पराद्ध्यवृत्त किमु वधमर्हति साधुलब्धवर्ण ॥११२॥
अथ कुनयमपीममातनुष्व यदि न सहेऽहमिद निशम्यता तत् ।
रणभुवि परिभूय मा ग्रहीता खलु य इम स तु लात्वपातुकश्री ॥११३॥
तदनु नयनसञ्ज्ञयाऽथ विद्वान् ननु समकेति पलायनाय तेन ।
लघु लघु स पलायन च चक्रे क इव न नश्यति मृत्युभीविहस्त ॥११४॥
द्रुतचरणागतैर्बहि॰ प्रगच्छन स च निर्णेजकमेकमालुलोके ।
तुरगिषु सविधागतेष्ववादीत् तमिह व्रज त्वमिहाययौ प्रपात॰ ॥११५॥
स्वमतिविभवत प्रणाशितेऽस्मिन् वसनविशोधनमादधत् तथासौ ।
तरलतुरगिणा च जल्पितो यन्मनुजोऽनेन पथा जगाम नैक ॥११६॥
रजक इह स तेन दर्शितोऽस्य त्वरिततर स च शीघ्रमेव तेन ।
निजभटनिवहे समार्पि धृत्वा प्रतिववले च बल तदीयवास्यात् ॥११७॥
निजमतिबलतस्तत॰ प्रकाश विभयमनाश्चलितोऽभिचित्रकूटम् ।
अभिसमगत तद्दिने कियद्भिर्गुरुचरणाम्बुरुह समागमोत्क ॥११८॥
इतर इति निजेशकार्य्यसिद्ध्या नृपतिममु किल सान्त्वयाबभूवु ।
अणुतरविषये दृढ सहाय परिहरते हि क उग्रपौरुषोऽपि ॥११९॥
अथ निजगुरुसगमामृतेन प्लुतकरण शिरसा प्रणम्य पादौ ।
दृढतरपरिरब्ध एप तैश्च प्रतिगलदश्रुजलो जगाद सद्य ॥१२०॥
गुरुजनवचसा स्मरामि तेषा परतरदेशगतौ हि यैर्निषिद्धौ ।
निशमयत विभो ! प्रबन्धमेन कुविनयशिष्यजनास्यत प्रवृत्तम् ॥१२१॥
इति चरितमसौ जगाद यावन्निजगुरुबन्धुपरासुतावसानम् ।
अथ निगदत एव हृद्विभेद समजनि जीवहरो बली हि मोह ॥१२२॥
विमृशति हरिभद्रसूरिरीदृक् किमु मम सकटमदभुतं प्रवृत्तम् ।
निरुपचरितवीतरागभक्तेरुदितमिद निरपत्यतामनस्यम् ॥१२३॥
विमलतरकुलोद्भवौ विनीतौ यमनियमोद्यमसगतौ प्रवीणौ ।
मतविजयप्रकाशपण्डापरिमलशोभितविद्वदर्चिताङ्घ्री ॥१२४॥
अपि परतरदेशसस्थशास्त्राधिगमरसेन गतौ च विप्रकृष्टम् ।
मदसुकृतवशेन जीवितान्त ययतुरुभावपि कर्म धिक् दुरन्तम् ! ॥१२५॥

सिरिहारिलसूरिवरो हवीअ गुणतीसमो जुगपहाणो ।
जम्मो तस्स अवत्थाजामणिहाणम्मि ९४३-९५४ वीराऽद्दे ॥१३३॥(पच्छाजा)
सो खतुरंगमणंदे९७१/९७० दिक्खं गेण्हीअ खणहसुणणवुहे १००१/१००० ।
होसी जुगप्पहाणो दिवं गओ भूइसुखचंदे १०५५ ॥१३४॥

(पच्छापुव्विगा जवणचवलाजा)

(प्रे०) "सिरिहारिल०" इत्यादि, "सिरिहारिलसूरिवरो" त्ति, श्रिया=पट्त्रिंशदाचार्यगुणलक्षणया युगप्रधानलक्षणया वा युक्तो हारिलः=हारिलनामा चासौ सूरिषु=आचार्येषु वरः=श्रेष्ठः=उत्तमः=श्रीहारिलसूरिवरः=श्रीहारिलाऽभिध आचार्यपुङ्गवः 'हवीअ गुणतीसमो जुगपहाणो' त्ति, श्रीसत्यमित्रसूरेरन्वेकोनत्रिंशत्तमो द्वितीयोदये नवमो युगप्रधानो बभूव ।

अथाऽमुष्य जन्मादिपर्यायवर्षान् सार्धगाथया दर्शयति-"जम्मो" इत्यादि, "तस्स" त्ति, तस्य=श्रीहारिलसूरेः "जम्मो" त्ति, जन्म "वीरा" त्ति, वीरात्=श्रीचरमतीर्थनाथस्य निर्वाणात् "अवत्थाजामणिहाणम्मि" त्ति, अवस्थाः=दशा बालयुववृद्धरूपास्तिस्रः, यद्वा जन्मजरामृत्युलक्षणास्तिस्रः, यामाः=प्रहाराश्चत्वारः, यद्वा यामाः=महाविदेहजिनसाधुसत्का भरतैरवतयोर्मध्यमद्वाविंशतिजिनसाधुसत्का वा व्रताः=प्रतिज्ञारूपाः प्रसिद्धाश्चत्वारः, व्रतशब्दो नपुंसकवत्पुंल्लिङ्गेऽपि वर्तते, तथा चाऽत्राऽमरकोशः– 'व्रतमस्त्री" त्ति,तथा यामशब्दः प्रहरवत् व्रतार्थाऽभिधायकोऽप्यस्ति, यदुक्तम्–"प्रहरे सयमे याम" इति । निधानानि=निधयो नव, तथा चोक्तमभिधानचिन्तामणौ–महापद्मश्च पद्मश्च शङ्खो मकरकच्छपौ। मुकुन्दकुन्दनीलाश्च, चर्चाश्च निधयो नव ॥१९३॥" इति, एते लौकिकशास्त्रानुसारेणाऽर्हच्छासने पुनर्नैसर्पाद्या नव, यदाह त्रिषष्टिशलाकाचरित्रे निधिनामानि दर्शयन्-"नैसर्प पाण्डुकश्चाथ पिङ्गल सर्वरत्नक'। महापद्म कालमहाकालौ माणवशङ्खकौ॥ ॥" इति । एतेऽङ्का वामगतिन्यस्ता९४३इति सङ्ख्या यत्र तत्रावस्थायामनिधाने "ऽद्दे" त्ति, अब्दे=हायने=वीरसंवत्९४३वर्षेऽभूत् ।

"सो" त्ति, सः=श्रीहारिलसूरिः "खतुरगमणदे" त्ति, खं=गगनं=शून्यम् , तुरङ्गमाः=अश्वाः=सप्त, नन्दा नव, एतेऽङ्का विपरीतक्रममीलिता यत्र तत्र खतुरङ्गमनन्दे=वीरसंवत्९७०शरदि "दिक्खं गेण्हीअ"त्ति, दीक्षां=प्रव्रज्यां जग्राह। "खणहसुणणवुहे" त्ति, खः=सूर्यः=एकः, तथा चोक्तं श्रीएकाक्षरनाममालायाम्-"खश्च भास्करे" इति। तथा चैकाङ्काभिधायकत्वेन सूर्यादिनामानि दर्शयता श्रीअरिसिंहेण काव्यकल्पलतायाम्–"आदित्यमेरुचन्द्र० ॥२५०॥ अद्वैतवाद एकैक एवामी सुकविभिर्वर्ण्या ॥२५१॥" इति। नभः=गगनं=शून्यम् , शून्यम् , बुधः=

इह मम पुरमाजगाम चैको बुध इह बुद्धमताभिजातिरूपः ।
भवति च भुवनत्रयप्रसिद्धे प्रतपति किं नु स एप वादिशब्द. ॥१४४॥
इदमिह महते त्रपाभराय प्रभवति तत् क्रियते तथा यथा स' ।
निधनमविजय स्वय स यायात कुरुतेऽन्योऽपि यथा न कश्चिदित्थम् ॥१४५॥
दशबलमतनायक स मानप्रतिघवशो वदति स्म तं प्रमोदात् ।
इह जगति समस्तदेशनानाविबुधगणस्तमह तिरश्चकार ॥१४६॥
जिनसमयविशारदोऽपि कश्चिन्नवपठितो भविताऽत्र वावदूक ।
वधनमदमहं ततो विनेष्ये गहनविकल्पसमूहकल्पनाभि' ॥१४७॥
स्वयमिह निधने कृतप्रतिज्ञ स किमु भविष्यति तद्वद त्वमेव ।
पटुवच इति जल्पति स्म दूत प्रभुपुरतो मम गी प्रवर्त्तते किम् ॥१४८॥
तव पदकमलप्रसादतो वा किमिव न मे शुभमद्भुत भविष्यत् ।
मतिरिति तु मम प्रकाशतेऽसौ परमिह सुप्रभुणा विचार्य कार्यम् ॥१४९॥
लिखत वच इदं पणे जितो य' स विशतु तप्तवरिष्ठतैलकुण्डे ।
इति भवतु स्ववीप्सया प्रशासामिह विदधेऽस्य गुरुर्विचारहृष्ट' ॥१५०॥
विपुलमतिरथ प्रगल्भदूत' पुनरपि वाचमुवाच दार्ढ्य हेतो' ।
प्रभुचरणयुग तथापि धाष्ट्यात् पुनरपि विज्ञपयामि किञ्चिदत्र ॥१५१॥
शृणुत वसुमतीह रत्नगर्भा भवति कदाचन कोऽपि तत्र विद्वान् ।
अतिशयितमतिर्यतो जिनाना ननु भवतामवमानना हि माऽभूत् ॥१५२॥
असदिह परिकल्पन ममैतद् गगनतले कुसुमोद्गमेन तुल्यम् ।
जयिपु किल भवत्सु यत्सनाथा वयमिह तत्तु दृढ विचारणीयम् ॥१५३॥
गुरुरवददसौ भय किमेतद् भवति तथा भ्रम एव कश्च फल्गुः ।
अपि मयि चिरसेवितेऽपि यद्व स्फुरति परेण विजेयताभिशङ्का ॥१५४॥
क इव मम पुर' स कोऽपि विद्वाननधिगतस्वपरप्रमाणभूमि' ।
मदगदमवमोचये न चेत्त तदहमहो न निज वहामि नाम ॥१५५॥
स्वनृपतिपुरत' प्रशाधि वाच मम विनियन्त्रितवादिपौरुषस्य ।
वयमिह परवादिलाभतुष्टा अनुपदमेव समागमाम ते यत् ॥१५६॥
वचनमिति निशम्य तस्य दूतो मुदितमनाः पुरमाययौ निज सः ।
इति सुविहितबौद्धविप्रलम्भान्नृपतिमवर्द्धयदत्र सूरपालम् ॥१५७॥
त्रिचतुरदिवसान्तरेण सोऽपि प्रभुरिहबौद्धमतस्य तत्र चायात् ।
अतिपरिवृढसेव्यपादपद्मो व्यधित स पूर्वपणेन वादमुद्राम् ॥१५८॥
विबुधपतिरचिन्तयत् तथा चासौ कथमह कृते स्मरामि ताराम् ।
अथ च किमनया स्मृताऽपि याऽसौ जितमदरिव्रजघातिनी म सद्य ॥१५९॥
इति स च परिचिन्त्य वादसंसद्युपहरिभद्रविशारदं समेत्य ।
अवददिदमनित्यमेव सर्वं सदिति वचः परिसंस्कृत यदेतत् ॥१६०॥
इह भवति च पक्ष एव हेतुर्जलधरवन्नतु सन्ति चात्र भावा' ।
निगदति इति मूलपक्षजाते, वदति तत. प्रतिवाद्यनूद्य सम्यक् ॥१६१॥

पावीअ मंदविगयं सुइसूरिमंतं, जो विस्सविस्सुअजसो तवसंबिकास्सा
॥१३५॥ (वसंततिलका)

(प्रे०) "णाणंवुहो" इत्यादि, "समुद्दगुरुणो" त्ति, समुद्रगुरोः=श्रीसमुद्रसूरेः 'पट्टे' त्ति, पट्टे=पदे 'गुरुमाणदेवो" त्ति, गुरुः=आचार्यः, स चाऽसौ मानदेवो गुरुमानदेवः=श्रीमानदेवसूरिः "मुणिवई" त्ति, मुनीनां=साधूनां पतिः=स्वामी=मुनिपतिः=गच्छनायकः, अभूदिति क्रियाध्याहार्यः। किम्भूतः ? "णाणंवुहो" त्ति, ज्ञानेन=सम्यग्ज्ञानेनाऽम्बुधिः=समुद्रः, ज्ञानस्य=सम्यग्ज्ञानस्याऽम्बुधिरिवाऽम्बुधिः=सागरो=ज्ञानाम्बुधिः। पुनः कीदृक् ? "हरिभद्दमित्तं" ति, हरिभद्रस्य=हरिभद्रनाम्नः सूरेर्मित्रं=सखा=हरिभद्रमित्रम्। यदा पुनर्यैः कैश्चिदप्यसौ श्रीहरिभद्रसूरिस्तृतीयमानदेवसूरेर्मित्रं मन्येत, न पुनरमुष्य मानसूरेः तदा तैः △"मुणिवईहरिभद्दमित्तं" इत्येवंरूपः सामासिकः पदो ग्राह्यः, इत्थश्च व्याख्येयः-"मुणिवईहरिभद्दमित्तं" ति, मुनीनाम्=ऋषीणां पतयः=प्रभवो मुनिपतयः=सूरयः तेषां तेषु वा हरिः=इन्द्रः, मुनिपतिहरिः, स चासौ भद्रमित्रं च=कल्याणमित्रं=मुनिपतिहरिभद्रमित्रं 'दीर्घह्रस्वौ मिथो वृत्तौ (सि० ८-१-४) इत्यनेन इकारो दीर्घः। स क ? इत्याह-"जो" त्ति, यः=श्रीमानदेवसूरिः, किं विशिष्टः ? "विस्सविस्सुअजसो" त्ति, विश्वे=लोके विश्रुतं=प्रथितं यशः=कीर्तिर्यस्य स विश्वविश्रुतयशाः "मंदविगयं" ति, मान्द्यात्=ज्वरादिरोगादिनाऽपटुदेहात् विगतं=नष्टं मान्द्यविगतम्=शरीरापाटवाद्विस्मृतं "इसूरिमंत" ति, शुचिः=पवित्रः, स चाऽसौ सूरिमन्त्रश्च शुचिसूरिमन्त्रस्तं शुचिसूरिमन्त्रं "तवसा" त्ति, तपसा=आहारत्यागलक्षणोपवासषोडशकेन "अबिकास्सा" त्ति, अम्बिकायाः=तन्नाम्न्याः शासनदेव्या आस्य=वदनम्=अम्बिकास्यं तस्मात्=अम्बिकास्यात् "पावीअ" त्ति, प्राप्नोत्=लेभे।

तथा चाऽभाणि श्रीमुनि न्दरसूरिभिर्गुर्वावल्याम्—

> अभूद् गुरु श्रीहरिभद्रमित्र, श्रीमानदेव पुनरेव सूरि ३८।
> यो मान्द्यतो विस्मृतसूरिमन्त्र लेभेऽम्बिकास्यात्तपसोज्जयन्ते ॥४०॥" इति।

श्रीगुणरत्नसूरिभिर्गुरुप मेऽपि—

ख्यात श्रीहरिभद्रमित्रमभवत् श्रीमानदेवस्ततो, मान्द्याद्विस्मृतसूरिमन्त्रमिह यो लेभेऽम्बिकाया मुखात्।" इति।

तथैव प्रतिपादित पूर्णिमागच्छपट्टावल्यामपि—

△अमुष्य मित्रत्वेऽपि समासिकपद सघटते-तद्यथा- 'मुणिवईहरिभद्दमित्त" ति मुनीना=साधूना पति=स्वामी मुनिपति=आचार्य, स चासौ हरिभद्रश्च मुनिपतिहरिभद्र, तस्य मित्र=सखा मुनिपतिहरिभद्रमित्रम् प्राकृते दीर्घस्तु वृत्तौ यथाप्रतिपादितस्तथा ज्ञेय.।

इह मम पुरमाजगाम चैको बुध इह बुद्धमताभिजातिरूपः ।
भवति च भुवनत्रयप्रसिद्धे प्रतपति किं नु स एष वादिशब्द. ॥१४४॥
इदमिह महते नृपामराय प्रभवति तत् क्रियते तथा यथा स' ।
निधनमविजय स्वय स यायात कुरुतेऽन्योऽपि यथा न कश्चिदित्थम् ॥१४५॥
दशबलमतनायक स मानप्रतिघवशो वदति स्म तं प्रमोदात् ।
इह जगति समस्तदेशनानाविबुधगणास्तमह तिरश्चकार ॥१४६॥
जिनसमयविशारदोऽपि कश्चिन्नवपठितो भविताऽत्र वावदूक ।
वचनमदमहं ततो विनेष्ये गहनविकल्पसमूहकल्पनाभि' ॥१४७॥
स्वयमिह निधने कृतप्रतिज्ञ स किमु भविष्यति तद्वद त्वमेव ।
पटुवच इति जल्पति स्म दूत प्रभुपुरतो मम गीः प्रवर्त्तने किम् ॥१४८॥
तव पदकमलप्रसादतो वा किमिव न मे शुभमद्भुत भविष्यत् ।
मतिरिति तु मम प्रकाशतेऽसौ परिमिह सुप्रभुणा विचार्य कार्यम् ॥१४९॥
लिखत वच इदं पणे जितो य' स विशतु तप्तवरिष्ठतैलकुण्डे ।
इति भवतु स्ववीप्सया प्रशसामिह विदधेऽस्य गुरुर्विचारहृष्ट' ॥१५०॥
विपुलमतिरथ प्रगल्भदूत' पुनरपि वाचमुवाच दार्ढ्यहेतोः ।
प्रभुचरणयुगं तथापि धाष्टर्यात पुनरपि विज्ञपयामि किञ्चिदत्र ॥१५१॥
शृणुत वसुमतीह रत्नगर्भा भवति कदाचन कोऽपि तत्र विद्वान् ।
अतिशयितमतिर्यतो जिनानां ननु भवतामवमानना हि माऽभूत् ॥१५२॥
असदिह परिकल्पन ममैतद् गगनतले कुसुमोद्गमेन तुल्यम् ।
जयिपु किल भवत्सु यत्सनाथा वयमिह तत्तु दृढ विचारणीयम् ॥१५३॥
गुरुरवददसौ भय किमेतद् भवति तथा भ्रम एव कश्च फल्गुः ।
अपि मयि चिरसेवितेऽपि यद्व स्फुरति परेण विजेयताभिशङ्का ॥१५४॥
क इव मम पुर' स कोऽपि विद्वाननधिगतस्वपरप्रमाणभूमि ।
मदगदमवमोचये न चेत्त तदहमहो न निज वहामि नाम ॥१५५॥
स्वनृपतिपुरत' प्रशाधि वाच मम विनियन्त्रितवादिपौरुषस्य ।
वयमिह परवादिलाभतुष्टा अनुपदमेव समागमाम ते यत् ॥१५६॥
वचनमिति निशम्य तस्य दूतो मुदितमनाः पुरमाययौ निज सः ।
इति सुविहितबौद्धविप्रलम्भान्नृपतिमवर्द्धयदत्र सूरपालम् ॥१५७॥
त्रिचतुरदिवसान्तरेण सोऽपि प्रभुरिहबौद्धमतस्य तत्र चायात् ।
अतिपरिवृढसेव्यपादपद्मो व्यधित स पूर्वपणेन वादमुद्राम् ॥१५८॥
विबुधपतिरचिन्तयत् तथा चासौ कथमह कृते स्मरामि ताराम् ।
अथ च किमनया स्मृताऽपि याऽसौ जितमदरिव्रजघातिनी न सद्य. ॥१५९॥
इति स च परिचिन्त्य वादसंसद्युपहरिभद्रविशारदं समेत्य ।
अवददिदमनित्यमेव सर्वं सदिति वचः परिसंस्कृत यदेतत् ॥१६०॥
इह भवति च पक्ष एव हेतुर्जलधरवन्नतु सन्ति चात्र भावा' ।
निगदति इति मूलपक्षजाते, वदति तत. प्रतिवाद्यनूद्य सम्यक् ॥१६१॥

'प्रकरणचतुर्दशशतीसमुत्तुङ्गप्रासादपरम्परासूत्रणैकसूत्रधारैरगाधससारवारिधिनिमज्जज्जन्तुजात-समुत्तारणप्रवणप्रधानधर्मप्रवहणप्रवर्तनकर्णधारैर्भगवत्तीर्थंकरप्रवचनाविततनत्त्वप्रबोधप्रसृतप्रवरप्रज्ञाप्रकाश-तिरस्कृतसमस्ततीर्थिकचक्रप्रवादप्रचारैः प्रस्तुतनिरतिशयस्याद्वादविचारैः श्रीहरिभद्रसूरिभिः' इति ।

(३) श्रीमुनिरत्नसूरिभिरममस्वामिचरित्रमहाकाव्ये प्रथमसर्गे–

"स्तौमि श्रीहरिभद्रं तं, येनाऽर्हद्धीर्महत्तरा । चतुर्दशप्रकरण-शत्याऽगोप्यत मातृवत् ॥६६॥" इति ।

(४) श्रीप्रद्युम्नसूरिभिः समरादित्यसंक्षेपप्रशस्तौ–

"यावद् ग्रन्थरथाश्चतुर्दशशतो श्रीहारिभद्रा इमे, वर्तन्ते किल पारियात्रिकतया सिद्ध्यध्वयानेऽङ्गिनाम् । तावत्पुष्परथः स एष समरादित्यस्य मन्निर्मितः, संक्षेपस्तदनुप्लवः प्रचरतु क्रीडाकृते धीमताम् ॥६६॥" इति ।

(५) श्रीमुनिदेवसूरिभिः शान्तिनाथचरित्रे–

"चतुर्दशशतग्रन्थग्रन्थनायासलालसम् । हारिभद्रं मनोहारिभद्रं मद्रं करोतु नः ॥४॥" इति ।

(६) श्रीप्रभाचन्द्रसूरिभिः प्रभावकचरिते–

"पुनरिह च शतोनमुग्रधीमान् प्रकरणसार्द्धसहस्रमेष चक्रे ।
जिनसमयवरोपदेशरम्यं ध्रुवमिति सन्ततिमेष तां च मेने ॥२०५॥" इति ।

(७) श्रीगुणरत्नसूरिभिः षड्दर्शनसमुच्चयस्य रहस्यदीपिकानाम्न्यां बृहद्वृत्तौ–

"चतुर्दशशतसङ्ख्यशास्त्ररचनाजनितजगज्जन्तुमहोपकारः श्रीहरिभद्रसूरिः" इति ।

(८) श्रीकुलमण्डनसूरिभिर्विचारामृतसङ्ग्रहे–

"धर्मसंग्रहणी-अनेकान्तजयपताका–पञ्चवस्तुको-पदेशपद-लग्नशुद्धि-लोकतत्त्वनिर्णय–योगबिन्दु धर्म-बिन्दु-पञ्चाशक-षोडशका-ऽष्टकादिप्रकरणानि चतुर्दशशतमितानि श्रीहरिभद्रसूरिभिर्विरचितानि" इति ।

(९) श्रीसमयसुन्दरगणिशिष्यैः श्रीहर्षनन्दनगणिभिर्मध्याह्नव्याख्यानपद्धतौ–

"पालित्तो वृद्धवादी कविकुलतिलकः सिद्धसेनो दिवाकृद्, विद्यासिद्धस्तथार्यः खपुटगुरुरुमास्वातिको मल्लवादी । सूरिः श्रीहारिभद्रः स्वपरसमयविद् बप्पभट्टिः प्रसिद्धः, सिद्धर्षिर्देवसूरिः कुमरनृपनतो हेमसूरिश्च जीयात् ॥१॥"

इत्यमुं महर्षिकुलकनाम्नो ग्रन्थस्य श्लोकं व्याजिहीर्षद्भिः "श्रीहारिभद्रः" इति पदं व्याख्याद्भिः 'हरिभद्रः श्रीवृद्धगच्छे चतुर्दशशतग्रन्थग्रन्थनतत्परः' इति प्ररूपितम् ।

(१०) श्रीमणिभद्रैः षड्दर्शनसमुच्चयलघुटीकायाम्—

"इह हि श्रीजिनशासनप्रभावनाविर्भावकप्रभोदयभूरियशश्चतुर्दशशतप्रकरणकरणोपकृतजिनधर्मो भगवान् हरिभद्रसूरिः" इति ।

(११) श्रीजिनदत्तसूरिभिर्गणधरसार्धशतके—

"चउदससयपयरणगोनिरुद्धदोसो सया हयपओसो । हरिभद्दो हरियतमो हरिव्व जाओ जुगप्पवरो ॥ ५२॥" इति

द्वितीयमते षष्ट्यूनसार्धसहस्रग्रन्थनिर्मातृत्वे—

श्रीराजशेखरसूरिभिः प्रबन्धकोशे–

इह किल कथयन्ति केचिदित्थं गुरुतरमन्त्रजपप्रभावतोऽत्र ।
सुगतमतबुधान् विकृष्य तप्ते ननु हरिभद्रविभुर्जुहाव तैले ॥१८०॥
अथ जिनभटसूरिरत्र कोपाद्भुतमिह शिष्यजने निजे निशम्य ।
उपशमनविधौ प्रवृत्तिमाधादिह हरिभद्रमुनीश्वरस्य तस्य ॥१८१॥
मृदुवचनविधिं च शिक्षयित्वा यतियुगल प्रजिधाय तत्करे च ।
क्रुध उपशमनाय तस्य गाथात्रयमिह समरदिनेशवृत्तवीजम् ॥१८२॥
प्रययतुरथ तेऽपि (तौ हि) तस्य राज्ञो नगरमिद मिलितौ च तस्य सूरे ।
वच इह कथयावभूवतुस्तद् गुरुभिरमु प्रति यन्निदिष्टमिष्टम् ॥१८३॥
प्रतिघगुरुतरोर्भवान् फलोदाहरणमिमा अवधारयस्व गाथाः ।
इति किल वदतोस्तयो स भक्त्या गुरुलिखिता समवाचयत् ततस्ता ॥१८४॥
तथाहि—गुणसेण अग्गिसम्मा सीहाणदा य तह पिआपुत्ता ।
सिहि-जालिणि माइ-सुआ धण-धणसिरिमो य पइ भज्जा ॥१८५॥
जय-विजया य सहोअर धरणो लच्छी अ तह पई भज्जा ।
सेण-विसेणा पित्तिय उत्ता जम्मम्मि सत्तमए ॥१८६॥
गुणचन्द-वाणमन्तर समराइच्च-गिरिसेण पाणो अ ।
एगस्स तओ मोक्खोऽणन्तो अन्नस्स ससारो ॥१८७॥
इति चतुरमतिर्व्यमृक्षदेव हृदि हरिभद्रविभुस्तदेतदीदृक् ।
अपि वनमुनिपारणस्य भङ्गे भवनवकेऽप्यनुवर्तते स्म वैरम् ॥१८८॥
पुनरिह मयका तु कोपदावानलबहलार्चिरुदस्तचेतनेन ।
दशबलमतसङ्गिन प्रपञ्चं विरचयता विनिबर्हिताश्च भूम्नः ॥१८९॥
अतिविरतचिरप्ररूढमिथ्याग्रहसमयैरिव विप्रलब्धचेता ।
अपि जिनमतबोधमाकलय्यासुकृतवशेन तम प्रवेशमाधाम् ॥१९०॥
नरकगमनदोहदं हि जीव ! त्यज ननु दौहृदमायतौ दुरन्तम् ।
निजमिह परिबोध्य जीवमित्थं प्रकटमुवाच तपोधनाग्रतोऽसौ ॥१९१॥
इह गुरुजनवत्सलत्वबुद्धेरनृणविधि किमवाप्यते कथञ्चित् ।
नरकगतिसमीपगामिन मा प्रति घटते भृशमुद्दिधीर्षया य ॥१९२॥
विविधमथ विरोधमौज्झ्य सूरिर्भृशमभिपृच्छ्य च त नृप महेच्छ ।
निरगमदविलम्बितप्रयाणै, समगत शीघ्रमसो गुरुक्रमाणाम् ॥१९३॥
शिरसि च विनिधाय तान् नतास्योऽ गददथ गद्गदगीर्भर स तत्र ।
गुणविशदविनेयमोहतोऽहम् प्रभुचरणाम्बुजसेवया वियुक्त ॥१९४॥
श्रुतविहिततप प्रदाय बाढं मम कलुप परिशोधयध्वमाशु ।
अविनयसदने विनेयपाशे प्रगुणतरा मतिमातनुध्वमुच्चै ॥१९५॥
गुरुरिह परिरभ्य गाढमेनं कृतवृजिनार्हतप प्रदाय चावक् ।
कलुप-सुकृतयोर्विधौ समर्था ननु हरिभद्रसमाः क्व सन्ति शिष्या ॥१९६॥
खरतरतपसा विशोषयन्त तनुमतनु स विनेययोर्वियोग ।
परिदहति भृशं मनस्तदीय जलनिधिमौर्व इव प्रकाशकील ॥१९७॥

(७१) षड्दर्शनी (७२) षोडशकम् (७३) सकितपचासी (७४) सङ्ग्रहणीवृत्ति' (७५) सयच्छासित्तरी (७६) सबोधसित्तरी (७७) सबोधप्रकरणम् (७८) 'ससारदावा' स्तुति (७६) सस्कृतात्मा-ऽऽत्मानुशासनम् (८०) समराइच्चकहा (८१) सर्वज्ञसिद्धिप्रकरण सटीकम् (८२) स्याद्वादकुचोद्यपरिहार.' इति ।

एतदतिरिक्तो महानिशीथसूत्रोद्धारोऽपि श्रीहरिभद्रसूरिणा कृतः, तथा चोक्तं प्रभावकचरिते--

"चिरलिखितविशीर्णवर्णभग्नप्रविवरपत्रसमूहपुस्तकस्थम् ।
कुशलमतिरिहोद्धधारजैनौपनिषदिक स वर्णमहानिशीथशास्त्रम् ॥२१८॥" इति ।

यद्यपि तीर्थकल्पे श्रीजिनप्रभसूरिणा महानिशीथसूत्रोद्धारकत्वेन जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणपादा दर्शिताः । तथाऽपि जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणपादानां चतुरधिकशतवर्षायुष्कत्वेन तत्कालेऽपि सद्भावात्तद्द्वयस्य सम्भूय करणस्य संभवेनोभयनिष्पन्नस्यान्यतरव्यपदेशभाक्त्वेन हरिभद्रसूरेर्जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणस्य चाऽन्यतरस्याऽपि तदुद्धारकत्वोपपद्यमानत्वात् ।

तथैवाऽस्य जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणस्य कृतस्य शतकस्य हरिभद्रसूरिकृतटीकाकरणेऽपि नाऽऽशङ्कावकाशः । तथा चोदितं श्रीतपागच्छपट्टावल्याम्--

"पञ्चदशाधिकैकादशशत १११५ वर्षे श्रीजिनभद्रगणियुगप्रधान । अय च जिनभद्रियध्यानशतकादेर्हरिभद्रसूरिभिर्वृत्तिकरणाद्भिन्न इति पट्टावल्याम् । पर तस्य चतुरुत्तरशतवर्षायुष्कत्वेन श्रीहरिभद्रसूरिकालेऽपि सभवान्ना-ऽऽशङ्कावकाशः इति ।

यदि मतान्तरेण हरिभद्रसूरेः स्वर्गगमनं वीरसंवत्१२५५वर्षे विक्रमसंवत्७८५वर्षे मन्यते तदा जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणस्य पूर्वभवनेन तत्कृतस्य शतकस्य हरिभद्रसूरेष्टीकायाः करणे शङ्कालेशोऽपि न भवति, किन्तु महानिशीथसूत्रोद्धारणे द्वयोः सम्मेलनं न स्यात् ।

तथाऽपि एवं तु सम्भाव्यते-पूर्वं श्रीजिनभद्रगणिक्षमाश्रमणपादैरारब्धः स्यात्, पश्चात्तु तत्कालकरणेन श्रीहरिभद्रसूरिणा स पूर्णः कृतः स्यात् । तत्त्वं तु तद्वेदिनो विदन्ति ।

"विजिअबोद्धो" त्ति, विजिताः=पराभवेनाऽधोमुखीकृता बौद्धाः=बौद्धाचार्या बौद्धमतानुयायिनो येन स विजितबौद्धः ।

तथाहि-सकलजनचित्तचित्रकारिणि चित्रकूटाख्ये नगरे जितारिनाम्नो नृपतेः पुरोहितो हरिभद्राभिधश्चतुर्दशविद्यापारदृश्वा वेदान्तपारंगमी बहुजनमान्यः स "कलिसकलज्ञोऽह"मिति मन्यमानः शास्त्रपूराद् जठरं मा स्फुटदिति उदरे स्वर्णपट्टं बद्धवान् क्षितिसलिलाकाशगतान् विदुषो जेतुकामः क्रमशः कुठारजालनिःश्रेणीन् वहति स्म, "मत्समो विद्वान्नात्र जम्बूद्वीपे समस्ति" इति ख्यापनार्थं हस्ते जम्बूलतां दधौ, तथा "य कश्चित न वेद्मि तस्य शिष्योऽहं भवामि" इति प्रतिज्ञां चक्रे । स चैकदा निशि स्वालयं प्रतिगच्छन् साध्व्या

विहितमिह मया हि शास्त्रवृन्दं ननु भवता भुवि पुस्तकेषु लेख्यम् ।
तदनु यतिजनस्य ढौकनीयं प्रसरति सर्वजने यथा तदुच्चैः ॥२१६॥
सुकृतिजनशिरोमणिस्ततोऽसाविति वचनं विदधे गुरोरलङ्घ्यम् ।
तदनु च तदिदं भवार्णवस्य प्रतरणहेतुतरीसमं प्रवृत्तम् ॥२१७॥
अथ च चतुरशीतिमेकपीठे जिनसदनानि महालयानि तत्र ।
अपरजनमपि प्रबोध्य सूरिः सुमतिरचीकरदुच्चतोरणानि ॥२१८॥
चिरलिखितविशीर्णवर्णभग्नप्रविवरपत्रसमूहपुस्तकस्थम् ।
कुशलमतिरिहोद्दधार जैनोपनिषदिकं स महानिशीथशास्त्रम् ॥२१९॥
श्रुतपरिचयतो निजायुरन्तं सुपरिकलय्य गुरुक्रमागतोऽसौ ।
गणविषयनिराशतोत्थचेतःकदनविरागविशेषसभृताङ्गः ॥२२०॥
अनशनमनघं विधाय निर्यामकवरविस्मृतहार्दभूरिबाधः ।
त्रिदशवन इव स्थितः समाधौ त्रिदिवमसौ समवापदायुरन्ते ॥२२१॥

इत्थं श्रीहरिभद्रसूरिसुगुरोश्चित्रं चरित्राद्भुतम्, स्मृत्वा विस्मयकारणं पटुतरप्रज्ञालहृद्यं बुधाः ।
मादृक्प्राथमकल्पिकावलिधिया जीवातुपाथेयवत्, शृण्वन्तु प्रकटं पठन्तु जयताच्चाचन्द्रसूर्यं स्थिति ॥२२२॥
श्रीचन्द्रप्रभसूरिपट्टसरसीहंसप्रभः श्रीप्रभा-चन्द्रः सूरिरनेन चेतसि कृते श्रीरामलक्ष्मीभुवा ।
श्रीपूर्वर्षिचरित्ररोहणगिरौ श्रीहारिभद्री कथा; श्रीप्रद्युम्नमुनीन्दुना विशदितः शृङ्गोऽयमष्टाधिकः ॥२२३॥
पुरुषोत्तम परमेष्ठिन् गिरीश गणनाथ विबुधवृन्दपते । प्रद्युम्न त्वद्धृते सुमनोमय किमसि न हि तपनः ॥२२४॥' इति ।

अतिसंक्षेपतस्तूपदेशपदमुनिचन्द्रसूरिप्रणीतसुखसम्बोधनीवृत्तिप्रान्तभाग इत्थम्—

"यः किल श्रीचित्रकूटाचलचूलानिवासी प्रथमपर्याय एव स्फुटपठितष्टव्याकरणः सर्वदर्शनानुयायितर्क्क-कर्कशमतिरत एव मतिमतामग्रगण्यः प्रतिज्ञातपरपठितग्रन्थानवबोधे तच्छिष्यभावः, आवश्यकनिर्युक्ति-परावर्त्तनाप्रवृत्तयाकिनीमहत्तराश्रयसमीपगमनोपलब्ध 'चक्किदुगं हरिपणगं' इत्यादिगाथासूत्रः, निज-निपुणोहापोहयोगेऽपि कथमपि स्वयमनुपलब्धतदर्थः, तदवगमाय महत्तरोपदेशात् श्रीजिनभद्राचार्यपाद-मूलमुपसर्पन्नन्तरा जिनबिम्बावलोकनसमुत्पन्नानुत्पन्नपूर्वबहलप्रमोदवशात् समुच्चरित-'वपुरेव तवा-ऽऽचष्टे'-इत्यादिश्लोकः, सूरिसमीपोपगतावदातप्रव्रज्यो ज्यायसीं स्वसमयपरसमयकुशलतामवाप्य महत्-प्रवचनवात्सल्यमवलम्बमानश्चतुर्दशप्रकरणशतानि चकार," इति ।

भद्रेश्वराचार्यकृतकथावल्यादिष्वपि श्रीहरिभद्रसूरिचरितं वर्णितमस्ति ॥१३६॥

इदानीं श्रीहरिभद्रसूरेः स्वर्गमनवत्सरं दर्शयन् पथ्यार्यामाह—

(७१) षड्दर्शनी (७२) षोडशकम् (७३) संकितपचासी (७४) सङ्ग्रहणीवृत्ति. (७५) सम्बोधसित्तरी (७६) सम्बोधसित्तरी (७७) सम्बोधप्रकरणम् (७८) 'संसारदावा' स्तुति (७९) संस्कृतात्मा-ऽऽत्मानुशासनम् (८०) समराइच्चकहा (८१) सर्वज्ञसिद्धिप्रकरण सटीकम् (८२) स्याद्वादकुचोद्यपरिहार,' इति ।

एतदतिरिक्तो महानिशीथसूत्रोद्धारोऽपि श्रीहरिभद्रसूरिणा कृतः, तथा चोक्तं प्रभावकचरिते--

"चिरलिखितविशीर्णवर्णभग्नप्रविवरपत्रसमूहपुस्तकस्थम् ।
कुशलमतिरिहोद्धधारजैनोपनिषदिकं स वर्णमहानिशीथशास्त्रम् ॥२१०॥" इति ।

यद्यपि तीर्थकल्पे श्रीजिनप्रभसूरिणा महानिशीथसूत्रोद्धारकत्वेन जिनभद्रगणि-क्षमाश्रमणपादा दर्शिताः । तथाऽपि जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणपादानां चतुरधिकशतवर्षायु-ष्कत्वेन तत्कालेऽपि सद्भावात्तद्द्वयस्य सम्भूय करणस्य संभवेनोभयनिष्पन्नस्यान्यतरव्यपदेश-भाक्त्वेन हरिभद्रसूरेर्जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणस्य चाऽन्यतरस्याऽपि तदुद्धारकत्वोपपद्यमानत्वात् ।

तथैवाऽस्य जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणस्य कृतस्य शतकस्य हरिभद्रसूरिकृतटीकाकरणेऽपि नाऽऽशङ्कावकाशः । तथा चोदितं श्रीतपागच्छपट्टावल्याम्--

"पञ्चदशाधिकैकादशशत १११५ वर्षे श्रीजिनभद्रगणियुगप्रधानः । अयं च जिनभद्रियध्यानशतकादेर्हरिभद्रसूरिभिर्वृ त्तिकरणाद्भिन्न इति पट्टावल्याम् । परं तस्य चतुरुत्तरशतवर्षायुष्कत्वेन श्रीहरिभद्र-सूरिकालेऽपि संभवान्ना-ऽऽशङ्कावकाश इति ।

यदि मतान्तरेण हरिभद्रसूरेः स्वर्गगमनं वीरसंवत्१२५५वर्षे विक्रमसंवत्७८५वर्षे मन्यते तदा जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणस्य पूर्वभवनेन तत्कृतस्य शतकस्य हरिभद्रसूरेष्टीकायाः करणे शङ्कालेशोऽपि न भवति, किन्तु महानिशीथसूत्रोद्धारणे द्वयोः सम्मेलनं न स्यात् ।

तथाऽपि एवं तु सम्भाव्यते-पूर्वं श्रीजिनभद्रगणिक्षमाश्रमणपादैरारब्धः स्यात्, पश्चात्तु तत्कालकरणेन श्रीहरिभद्रसूरिणा स पूर्णः कृतः स्यात् । तत्त्वं तु तद्वेदिनो विदन्ति ।

"विजिअबोद्धो" त्ति, विजिताः=पराभवेनाऽधोमुखीकृता बौद्धाः=बौद्धाचार्या बौद्ध-मतानुयायिनो येन स विजितबौद्धः ।

तथाहि-सकलजनचित्तचित्रकारिणि चित्रकूटाख्ये नगरे जितारिनाम्नो नृपतेः पुरोहितो हरिभद्राभिधश्चतुर्दशविद्यापारदृश्वा वेदान्तपारंगमी बहुजनमान्यः स "कलिसकलज्ञोऽह" मिति मन्यमानः शास्त्रपूराद् जठरं मा स्फुटदिति उदरे स्वर्णपट्टं बद्धवान् क्षितिसलिलाकाश-गतान् विदुषो जेतुकामः क्रमशः कुठारजालनिःश्रेणीन् वहति स्म, "मत्समो विद्वान् त्र जम्बू-द्वीपे समस्ति" इति ख्यापनार्थं हस्ते जम्बूलतां दधौ, तथा "यं कथितं न वेद्मि तस्य शिष्योऽहं भवामि" इति प्रतिज्ञां चक्रे । स चैकदा निशि स्वालयं प्रतिगच्छन् साध्व्या

तथैव बृहद्गच्छस्य सूरिविद्यायाः प्रशस्तावपि । तथा च तद्ग्रन्थः—

चिरमित्तपीइतोसा दिन्नो हरिभद्दसूरिणा विइओ । विज्जाहरसाहिणो मतो सिरिमाणदेवस्स ॥४॥" इति ।

एवं क्रियारत्नसमुच्चय गुर्वावली-तपागच्छपट्टावल्यादिष्वपि ।

प्रद्युम्नसूरिकृतविचारसारस्यावतरणगाथायां मतान्तरेण हरिभद्रसूरेः स्वर्गगमनं विक्रमसंवत् ५३५ वर्षे दर्शितम् △। तथा च तद्ग्रन्थः—

△"पणसए पणतीए विक्कमभूवाओ झत्ति अत्थमिओ । हरिभद्दसूरिसूरो धम्मरओ देउ मुक्खसुहं ॥ अहवा पणवन्नदससएहिं हरिसूरि आसी तत्थ पुव्वकई । तेरसवरिससएहिं अइएहि वप्पहट्टिपहू ॥" इति ।

इत्थञ्चात्र भिन्नवत्सरद्वयदर्शनेन मतद्वयं प्रकटितम् । किन्त्वत्र 'पणतीए' इति पाठगतस्य तकारस्य स्थाने सकारो मन्येत, तदा मतान्तरो नावतिष्ठेत ।

मतान्तरेण श्रीहरिभद्रसूरेः स्वर्गतिर्विक्रमसंवत्७८५ वर्षे दृश्यते ।

तथा च श्रीहर्षनिधानसूरिकृतरत्नसंचयसत्कावतरणगाथा—

"पणपन्नबारससए हरिभद्दसूरी आसीऽपुव्वकई । तेरससय वीसअहिए, वरिसेहिं वप्पभट्टिपहू ॥२८२॥' इति

तथा विक्रमसंवत्८३५वर्षे विरचितकुवलयमालाप्रशस्तौ श्रीउद्योतनसूरिणा—

"सो★सिद्धंत[म्मि]गुरु❀पमाणनाएण जस्स हरिभद्दो । बहुसत्थगंथवित्थर-⊙पयड[समत्तसुअ]सच्चत्थो॥"

इत्यनेन न्यायशास्त्राणां गुरुर्भणितस्ततोऽनेन विक्रमसंवत्७८५वर्षे श्रीहरिभद्रसूरेः स्वर्गगमनकालः सम्भाव्यते❀ ।

तथा विक्रमसंवत् ६६६ वर्षे जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणविरचितविशेषावश्यकभाष्यान्तर्गतध्यानशतकप्रकरणस्य वृत्तिः श्रीहरिभद्रसूरिणा कृता । तेनाऽपि श्रीहरिभद्रसूरेः समयो विक्रमसंवत् ६६६ वर्षस्य पश्चाद् ज्ञायते । इत्यादिप्रमाणैः पुनः—श्रीहरिभद्रसूरेः स्वर्गो विक्रमसंवत् ७८५ वर्षे संभाव्यते । तदर्थं पूर्वदर्शितायां विक्रमसंवत् ५८५ प्रतिपादिकायां गाथायां 'पंचसए' इत्यस्य स्थाने "सत्तसए" इति क्रियते, तथा प्रद्युम्नसूरिशिष्यस्य तृतीयमानदेवसूरेर्मित्रं सम्भाव्येत, तदा पूर्वदर्शितेन पाठेन सह विरोधो न स्यात् कश्चिदपीति मन्यते ।

तन्मतानुसारेणाऽत्र मूलगाथेत्थं व्याख्येया—तद्यथा-"**वीरा**" त्ति वीरात्=वीरप्रभुनिर्वाणतः "**सरिससमवुहपमाणे**" त्ति पूर्ववत्, नवरं शमौ=हस्तौ द्वौ, ततो वीरसंवत् १२५५ वर्षे श्रीहरिभद्रसूरेर्देवलोकगमनमभूत् । तथा "**भूवा**" त्ति भूपात्=विक्रमादित्यभूपतः "**बाणगया गमिए**" त्ति पूर्ववत्, किन्त्वाशु गच्छन्तीति=आशुगाः=अश्वाः सप्त, ततो विक्रमसंवत् ७८५ वर्षे स्वर्गतिरजायत । अत्र तत्त्वं तु केवलिनो बहुश्रुता वा विदन्ति❀ ॥१३७॥

△एव श्रीसमयसुन्दरगणिभिरपि गाथासहस्र्यामुक्तम् । पृष्ठ२७१गत टिप्पनक द्रष्टव्यम् ।

★ "सिद्धंतेण गुरू जुत्तिसत्थेहिं" इत्यपि पाठान्तरम् । "पत्थारियपयडसच्चत्थो ।" इत्याद्यपि ।

❀ वस्तुत पुन. "पमाणनाएण जस्स हरिभद्दो" इत्यनेन कुवलयमालोक्तश्रीउद्योतनसूरिवचनेन

अत्र केचित्तु-'गुरुतरमन्त्रजपप्रभावतो गगनाध्वना बौद्धान् विकृष्य तप्ततैलकटाहे श्रीहरिभद्रसूरिः प्राक्षिपत्" इति मन्यन्ते

अन्ये पुनरेवं भणन्ति-क्रुद्धेन श्रीहरिभद्रसूरिणाऽग्नावाहोतुं सपरिवारो बौद्धाचार्य आकृष्टस्ततो गुरुणाऽनुकम्पया मोचितः ।

तथा च प्रत्यपादि श्रीउपदेशपदे-तद्विज्ञातवृत्तैर्गुरुभिः सक्रोप तप्ततैले कटाहे चतुश्चत्वारिंशदधिकचतुर्दशशतबौद्धा होतुमाकृष्टा मन्त्रशक्त्या । गुरुभिरय वृत्तान्तो ज्ञात । ततस्तत्प्रतिबोधाय गुरुणा द्वौ साधू सूरिसमीपे प्रेषितौ । ताभ्यामिमा गाथा दत्ता सूरिभ्य । यथा-
"गुणसेणअग्गिसम्मा सीहाणंदी य तह पिआपुत्ता। सिहिजालिणिमाइसुआ धणसिरिमो अ पईभज्जा॥१॥
जयविजया य सहोदर धरणो लच्छी अ तह पई भज्जा। सेणविसेणा पित्तिअउत्ता जम्मि सत्तमए॥२॥
गुणचंदवाणमन्तरसमराइच्चगिरिसेणपाणो अ । एगस्स तओ मुक्खो णंतो बीअस्स संसारो ॥३॥
जह जलजलई लोए कुसत्थपवणाहओ कसायग्गी। तच्चित्तं जिणवयणं, अमिअसित्तो वि पज्जलई ॥४॥
इति श्रुत्वा सूरि पापान्निवृत्त चतुश्चत्वारिंशदधिकचतुर्दशशतग्रन्थान् हरिभद्रसूरि प्रायश्चित्तपदे चकार।"इति।

तथा चान्यत्रापि-'हरिभद्रसूरिभिः सौगताः होतुं खे आकृष्टास्तदनु गुरुभिर्ज्ञातं साधू प्रहितौ ताभ्यां "गुणसेणअग्गिसम्मा सीहाणंदा ये" त्यादिचरित्रकथनमूलगाथात्रयं दत्तम्, ततः प्रबुद्धेन सूरिणा ते मुक्ता' इति ।

'चित्रकूटे बौद्धा बलिन आसन् तैर्गुप्तरीत्या हरिभद्रशिष्यौ मारितौ ततस्तच्छोकवशात् श्रीहरिभद्रसूरिरनशनं कर्तुमुद्यतोऽन्यैर्वारितः' इत्यादि **श्रीभद्रेश्वरसूरिणाऽभिहितम्** ।

'हंसं वर्त्मनि परमहंसं च चित्रकूटस्य दुर्गस्य बहिः सुप्तं बौद्धा आहतवन्तः' इत्यादि **श्रीराजशेखरसूरिणा भणितम्** ।

तथैवोपदेशप्रसादे लक्ष्मीसूरिणा-"एकदा हंसपरमहंसौ सूरिभ्योऽधीतशास्त्रौ प्रोचतु-"भगवन्! बौद्धशास्त्ररहस्य गृहीत्वा बौद्धा जेष्यन्ते, अत आवां तत्र यास्याव"। सूरिराह-'वेषान्तरं कृत्वा व्रजतम्। तौ तथा कृत्वा तत्र गत्वा बौद्धशास्त्रमर्मज्ञावभूताम्। एकदा बौद्धेन तौ क्रियात श्वेताम्बरौ ज्ञात्वा तयोरुपलक्षणाय छात्रेषु पठत्सु नि श्रेण्या सोपानके खटिकया हैद्बिम्ब लिलिखे । ततोऽवतरणसमये सर्वे बिम्बोपरि पादौ दत्वोत्तीर्णा । तौ तु प्रतिमाकण्ठे रेखात्रयाङ्कं कृत्वोत्तीर्णौ । तत सभयौ पुस्तक लात्वा नष्टौ । तत सौगतेन राज्ञ सैन्य तत्पृष्ठे प्रेषितम्। हंसेन बहु सैन्य हतम्। तत सैन्येन बहूभूय हंसो हत । अपरस्तु चित्रकूटासन्ने नष्ट्वा सुप्तो निहत ।" इति ।

तथैव श्रीभद्रेश्वरसूरिणा श्रीहरिभद्रशिष्यौ हंस-परमहंसनामानौ विहाय जिनभद्रवीरभद्रसञ्ज्ञकौ कथितौ ।

● तथा श्रीराजशेखरसूरिणा सिद्धर्षितणि साक्षाद्धरिभद्रसूरिशिष्यो-ऽपि दर्शितः। तथैव साक्षाद्धरिभद्रसूरिशिष्य सिद्धगणिरुपदेशरत्नाकरे श्रीमुनिसुन्दरसूरिभिस्तथा श्राद्धप्रतिक्रमणार्थदीपिकाया रत्नशेखरसूरिभिरपि प्रतिपादित ।

तथैव बृहद्गच्छस्य सूरिविद्यायाः प्रशस्तावपि । तथा च तद्ग्रन्थः--

चिरमित्तपीइतोसा दिन्नो हरिभद्दसूरिणा विइओ । विज्जाहरसाहिणो मत्तो सिरिमाणदेवस्स ॥४॥" इति ।

एवं क्रियारत्नसमुच्चय गुर्वावली तपागच्छपट्टावल्यादिष्वपि ।

प्रद्युम्नसूरिकृतविचारसारस्यावतरणगाथायां मतान्तरेण हरिभद्रसूरेः स्वर्गगमनं विक्रमसंवत् ५३५ वर्षे दर्शितम् △। तथा च तद्ग्रन्थः--

△"पणसए पणतीए विक्कमभूवाओ झत्ति अत्थमिओ । हरिभद्दसूरिसूरो धम्मरओ देउ मुक्खसुहं ॥ अहवा पणवन्नदससएहिं हरिसूरि आसी तत्थ पुव्वकई । तेरसवरिससएहिं अइएहिं वप्पहट्टिपहू ॥" इति ।

इत्थञ्चात्र भिन्नवत्सरद्वयदर्शनेन मतद्वयं प्रकटितम् । किन्त्वत्र 'पणतीए' इति पाठगतस्य तकारस्य स्थाने सकारो मन्येत, तदा मतान्तरो नावतिष्ठेत ।

मतान्तरेण श्रीहरिभद्रसूरेः स्वर्गतिर्विक्रमसंवत्७८५ वर्षे दृश्यते ।

तथा च श्रीहर्षनिधानसूरिकृतरत्नसंचयसत्कावतरणगाथा--

"पणपन्नबारससए हरिभद्दसूरी आसीऽपुव्वकई । तेरससय वीसअहिए, वरिसेहिं वप्पभट्टिपहू ॥२८२॥" इति

तथा विक्रमसंवत्८३५वर्षे विरचितकुवलयमालाप्रशस्तौ श्रीउद्योतनसूरिणा-

"सो★सिद्धत[म्मि]गुरु✽पमाणनाएण जस्स हरिभद्दो । बहुसत्थगथवित्थर-◯पयड[समत्तसुअ]सच्चत्थो॥"

इत्यनेन न्यायशास्त्राणां गुरुर्भणितस्ततोऽनेन विक्रमसंवत्७८५वर्षे श्रीहरिभद्रसूरेः स्वर्गगमनकालः सम्भाव्यते✽ ।

तथा विक्रमसंवत् ६६६ वर्षे जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणविरचितविशेषावश्यकभाष्यान्तर्गतध्यानशतकप्रकरणस्य वृत्तिः श्रीहरिभद्रसूरिणा कृता । तेनाऽपि श्रीहरिभद्रसूरेः समयो विक्रमसंवत् ६६६ वर्षस्य पश्चाद् ज्ञायते । इत्यादिप्रमाणैः पुनः–श्रीहरिभद्रसूरेः स्वर्गो विक्रमसंवत् ७८५ वर्षे संभाव्यते । तदर्थं पूर्वदर्शितायां विक्रमसंवत् ५८५ प्रतिपादिकायां गाथायां 'पंचसए' इत्यस्य स्थाने "सत्तसए" इति क्रियते, तथा प्रद्युम्नसूरिशिष्यस्य तृतीयमानदेवसूरेर्मित्रं सम्भाव्येत, तदा पूर्वदर्शितेन पाठेन सह विरोधो न स्यात् कश्चिदपीति मन्यते ।

तन्मतानुसारेणा-ऽत्र मूलगाथेत्थ व्याख्येया–तद्यथा-"**वीरा**" त्ति वीरात्=वीरप्रभुनिर्वाणतः "**सरि समबुहपमाणे**" त्ति पूर्ववत् , नवरं शमौ=हस्तौ द्वौ, ततो वीरसंवत् १२५५ वर्षे श्रीहरिभद्रसूरेर्देवलोकगमनमभूत् । तथा "**भूवा**" त्ति भूपात्=विक्रमादित्यभूपतः "**बाणगया गमिए**" त्ति पूर्ववत् , किन्त्वाशु गच्छन्तीति=आशुगाः=श्वाः सप्त, ततो विक्रमसंवत् ७८५ वर्षे स्वर्गतिरजायत । अत्र तत्त्वं तु केवलिनो बहुश्रुता वा विदन्ति✽ ॥१३७॥

△एव श्रीसमयसुन्दरगणिभिरपि गाथासहस्त्र्यामुक्तम् । पृष्ठ२७१गतं टिप्पनकं द्रष्टव्यम् ।

★ "सिद्धतेण गुरू जुत्तिसत्थेहिं" इत्यपि पाठान्तरम् । "पत्थारियपयडसच्चत्थो ।" इत्याद्यपि ।

✽ वस्तुत पुन. "पमाणनाएण जस्स हरिभद्दो" इत्यनेन कुवलयमालोक्तश्रीउद्योतनसूरिवचनेन

गजमिह परस्थया प्रबुध्य व्यवहितमत्र वटुव्रजैर्भ्रमद्भि ।
निजमथ निलय ययौ पुरोधास्तृणमिव सर्वमपीह मन्यमान ॥१८॥
परतरदिवसे च राजसौधादवसितमन्त्रविधेयकार्यजात' ।
प्रति निजनिलय प्रयान्निशीथे स्वरमशृणोन्मधुर स्त्रियो जरत्या ॥१९॥
प्रकटतरमति स्थिरप्रतिज्ञो ध्वनिरहितावसरेऽत्रवारयन् स ।
व्यमृशदथ न चाधिगच्छति स्म श्रुतविषमार्थकदर्थित स गाथाम् ॥२०॥
सा चेयम्–चक्किदुग हरिपणग पणग चक्कीण केसवो चक्की।
केसवचक्की केसव दुचक्की केसी य चक्की य ॥२१॥
अवददिति यदम्ब। चाकचिक्य बहुतरमत्र विधापित भवत्या ।
इह समुचितमुत्तर ददौ सा शृणु ननु पुत्रक। गोमयार्द्रलिप्तम् ॥२२॥
इति विहितसदुत्तरेण सम्यक् स च वदति स्म चमत्कृतिं दधान ।
निजपठितविचारण विधेहि त्वमिह सवित्रि। न वेद्म्यहं त्वदर्थम् ॥२३॥
अवददथ च सा यथा गुरोर्नोऽनुमतिरधीतिविधौ जिनागमानाम्।
न विवृतिकरणे विचारमिच्छुर्यदि हि तदा प्रभुसन्निधौ प्रयाहि ॥२४॥
वचनमिति निशम्य सोऽपि दध्यौ परिहृतदर्पभर पुरोहितेश ।
अपि गुरुपुरुषैदुरापमध्ये परिकलना न समस्ति वाङ्मयेऽस्मिन् ॥२५॥
जिनमतगृहिगेहचन्द्रशालां यदियमुपैति ततो हि जैनसाध्वी।
जिनपतिमुनयो गुरुत्वमस्या विदधति तन्मम तेऽपि वन्दनीया ॥२६॥
सकलपरिहृतिर्ममागतेय दुरतिगमा वचनस्य यत् प्रतिष्ठा।
व्यमृशदथ स गेहमागत. स्व तदनु विनिद्रतया निशा च निन्ये ॥२७॥
अथ दिवसमुखे तदेकचित्तोऽगमदिह वेश्मनि तीर्थनायकस्य ।
हृदयवसतिवीतरागबिम्ब बहिरपि वीक्ष्य मुदा स्तुतिं प्रतेने ॥२८॥
तथाहि–वपुरेव तवाचष्टे भगवन् । वीतरागताम् ।
न हि कोटरसस्थेऽग्नौ तरुर्भवति शाड्वल ॥२९॥
दिवसगणमनर्थक स पूर्वं स्वकमभिमानकदर्थ्यमानमूर्ति ।
अमनुत स ततश्च मण्डपस्थ जिनभटसूरिमुनीश्वर ददर्श ॥३०॥
हरिमिव विबुधेशवृन्दवन्द्य शमनिधिसाधुविधीयमानसेवम् ।
तमिह गुरुमुदीक्ष्य तोषपोषात् समजनि जनितकुवासनावसान. ॥३१॥
हृतहृदय इव क्षण स तस्थौ तदनु गुरुर्व्यमृशत् स एव विप्र ।
य इह तु विदित स्वशास्त्रमन्त्रप्रकटमतिर्नृपपूजितो यशस्वी ॥३२॥
मदकलगजरुद्धराजवर्त्मभ्रमवशतो जिनमन्दिरान्तरस्थम् ।
जिनपतिमपि वीक्ष्य सोपहास वचनमुवाच मदावगीतचित्त ॥३३॥ युग्मम्।
इह पुनरधुना ययावकम्माज्जिनपतिबिम्बमथादरात स वीक्ष्य।
अतिशयितरचित्तरङ्गसङ्गीस्तवनमुवाच पुराणमन्यथैव ॥३४॥
भवतु ननु विलोक्यमेतदग्रे तदनु जगाद मुनीश्वरो द्विजेशम् ।
निरुपमधिषणानिधे। शुभ ते ? कथय किमागमने निमित्तमत्र ॥३५॥

एतर्हि तन्निकटकाले जातं त्रिंशं तथा द्वितीयोदययुगप्रधानयन्त्रक्रमापेक्षया दशमं युगप्रधानं श्रीजिनभद्रगणिनं प्रतिपिपादयिषुः पथ्यागीति-पथ्यार्यालक्षणश्लोकद्वयं कथयति–

जुगपवरो तीसइमो जिणभद्दगणी गुरू खमासमणो ।
जयउ तयागमवाई कत्ता झाणमयगाइगंथाणं ॥१३८॥ (पच्छागीई)

मन्मार्गोपदेशक 'सूरि' स निरीक्षते स्म, तथाहि–सद्ध्यानबलेन विमलीभूतात्मन परहितैकनिरतचित्ता भगवन्तो ये योगिन ते पश्यन्त्येव देशकालव्यवहितानामपि जन्तूना छद्मस्थावस्थायामपि वर्तमाना दत्तोपयोगा भगवदवलोकनाया योग्यताम्, पुरोवर्तिना पुन प्राणिना भगवदागमपरिकर्मितमतयोऽपि योग्यता लक्षयन्ति, तिष्ठन्तु विशिष्टज्ञाना इति । ये च मम सदुपदेशदायिनो भगवन्न सूरयस्ते विशिष्टज्ञाना एव, यत कालव्यवहितैरनागतमेव तैर्ज्ञात समस्तोऽपि मदीयो वृत्तान्त । स्वसंवेदनसंसिद्धमेतदस्माकमिति ।"

इति वदता हरिभद्रसूरित स्वस्य कालव्यवधान दर्शितम् । अत्र धर्मबोधकरसूरित्वेन हि श्रीहरिभद्रसूरिरेव ज्ञेय । तथैव सिद्धर्षिगणिभिः स्वकृतप्रशस्तावपि दर्शितत्वात् । तथा च तद्ग्रन्थ – "आचार्यो हरिभद्रो मे, धर्मबोधकरो गुरु । प्रस्तावे भावतो हन्त, स एवाद्ये निवेदित ॥१०१२॥" इति।

श्रीमद्धरिभद्रसूरिभि स्वनिर्मितनन्दीसूत्रवृत्तौ चूर्णिकारजिनदासगणिमहत्तरप्राकृतव्याख्याया अनेकावतरणानि यथायथ समुद्धृतानि दृग्गोचरीक्रियन्ते, चूर्णिश्च शकसंवदि अष्टनवत्यधिकपञ्चशततमे त्रयस्त्रिंशदधिकसप्तशततमे वैक्रमाब्दे समाप्ता बभूवेति तदन्तिमभागत प्रमीयते । ततश्चूर्णिकृदनु तेषा विद्यमानता-ऽष्टमशतविक्रमसंवत्सर्या सम्भाव्यते इत्यपि वदन्ति केचन । परमत्र पूर्वं तावच्चूर्णिकारकाल एव निर्णेतुमशक्य, तेन "शकराज्ञ (जस्य) पञ्चसु वर्षशतेषु व्यतिक्रान्तेष्वष्टनवतिषु नन्द्यध्ययन चूर्णि समाप्ता" इत्यपि केनचित्प्रक्षिप्तमिति सम्भाव्यतेऽन्यत्र प्रत्यन्तरे संवत्सरान्तरस्यापि प्रतिपादनस्य दृश्यमानत्वात् । ततस्तथा श्रीहरिभसूरीश्वरैश्चूर्णिकृता चूर्णिकारेष्टीकाकृताना वा वाक्यानि समद्घृतानीत्यत्राऽपि विगमनाविरहान्न तान्यपि तयो पौर्वापर्यनियामकानि सन्ति । 卐

तथैव श्रीध्यानशतकटीकाकरणेना-ऽपि श्रीहरिभद्रसूरिपादा न जिनभद्रगणिन पश्चाद्भाविन सम्पद्यन्त इति एतत्तु पूर्वमेव वृत्तौ भावितम् । तथाहि–श्रीजिनभद्रगणिक्षमाश्रमणाना चतुरधिकशतवर्षायुष्कत्वेन श्रीहरिभद्रसूरे कालेऽपि तेषा विद्यमानताया सम्भवात्तत्कृतशतकग्रन्थस्य श्रीहरिभद्रसूरेष्टीकाकरणस्याऽपि सम्भव, तथैव श्रीतपागच्छपट्टावल्यामप्यभिहितमस्ति।

एवमुक्तनीत्या यदा श्रीहरिभद्रसूरेर्विक्रमषष्ठशताब्दी सिध्यति, न पुनरष्टमशताब्दी तदा रत्नसंचयप्रकरणप्रतिपादितगाथाया अकिञ्चित्करत्वं बोध्यम् ।

केचित्तु हारिलसूरि-हरिभद्रसूर्योरैक्य कल्पयन्ति ।

तदत्र तत्त्व तद्विदो विदु ।

卐 केचित्तु श्रीहरिभद्रसूरिरचितग्रन्थान्तर्गतो-द्धृत-साक्षि-प्रतिक्षिप्तादि-ग्रन्थ-ग्रन्थकृन्नामाद्यपेक्षया श्रीहरिभद्रसूरेर्विद्यमानता विक्रमाष्टमशताब्द्या सम्भाव्यते, किन्तु तत्रा-ऽप्युद्धृतादिग्रन्थ-ग्रन्थकारादीना सर्वेषा न निश्चितसंवल्लभ्यते, अपितु केषाञ्चिदनुमित, अतस्तदपेक्षया-ऽपि न सम्यग्निर्णय श्रीहरिभद्रसूरे संवतो जायते ।

ननु पठतमिहैव देशमध्ये गुणियतिनायकसन्निधौ तु वत्सौ ।
मतिरतिशयभासुराऽपि केषाञ्चिदपि परागमवेदिनी समस्ति ॥५४॥
गुरुमिह विरहय्य क कुलीन पथि निरपायतमेऽपि बम्भ्रमीति ।
कथमवगतदुर्निमित्तभावे तदिह न नोऽनुमतिर्दुरन्तकार्ये ॥५५॥
अवददथ विहस्य हंसनामा गुरुजनयुक्तमिदं तु वत्सलत्वम् ।
भवदनुचरणात् प्रभाववन्तौ किमु शिशुकौ परिपालितौ न पूज्यैः ॥५६॥
अपशकुनगण करोतु किंवाऽध्वनि परशुर्यपि चेतनायुतानाम् ।
अविरतमभिरक्षति क्षतान्नौ चिरजपितो भवदीयनाममन्त्र ॥५७॥
दुरधिगमदविष्ठदेश्यशास्त्राधिगमकृते गमनादथागमाच्च ।
क इव नु विगुण कृतज्ञतायाः क्षतिकरणात्तदिद विधेयमेव ॥५८॥
अवददथ गुरुर्विनेययुग्म हितकथने हि न औचिती भविष्यत् ।
भवति खलु ततो यथेहित वा विदधतमुत्तममद्य निन्दित वा ॥५९॥
अथ सुगतपुरं प्रतस्थतुस्तावगणितसद्गुरुगौरवोपदेशौ ।
अतिशयपरिगुप्तजैनलिङ्गौ न चलति खलु भवितव्यतानियोग. ॥६०॥
कतिपयदिवसैरवापतुस्ता सुगतमतप्रतिबद्धराजधानीम् ।
परिकलितकलावधूतवेषावतिपठनार्थितया मठ तमाप्तौ ॥६१॥
पठनविधिकृते विहारमाला विपुलतराऽस्ति च तत्र दानशाला ।
सुगतमुनिपतिश्च तत्र शिष्याननवरत किल पाठयेद् यथेच्छम् ॥६२॥
अतिसुखकृतभुक्तित. पठन्तौ सुविषमसौगतशास्त्रजातमत्र ।
परबुधजनदुर्गमार्थतत्त्वं कुशलतया सुखतोऽधिजग्मतुस्तौ ॥६३॥
जिनपतिमतसंस्थितामिसंधि प्रति विहितानि च यानि दूषणानि ।
निहतमतितया यतेर्निरीक्षातिशयवशेन निजागमप्रमाणे ॥६४॥
दृढमिह परिहृत्य तानि हेतून् विशदतरान् जिनतर्ककौशलेन ।
सुगतमतनिषेधदाढर्ययुक्तान् समलिखतामपरेषु पत्रकेषु ॥६५॥ युग्मम् ।
इति रहसि च यावदाददाते गुरुपवमानविलोडित हि तावत् ।
भपगतममुतः परैश्च लब्ध गुरुपुरत समनायि पत्रयुग्मम् ॥६६॥
अवलोकयतोऽस्य हेतुदाढर्यं प्रति निजतर्कसुदम्रदूषणेषु ।
जिनपतिमतभूषणेषु पक्षेष्वजयमभून्मनसि भ्रमो महीयान् ॥६७॥
अभणदथ स विस्मयातिरेकात् पिपठिषुरर्हदुपासकोऽस्ति कश्चित् ।
अपर इह मदीयदूषित क पुनरपि भूषयितुं समर्थबुद्धिः ॥६८॥
स्फुरति च क उपाय ईदृशस्याधिगमविधाविति चिन्तयन् स तस्थौ ।
क्वचिदमलधियामपि स्खलन्ति प्रतिपद ईदृशि कुत्रचिद् विधेये ॥६९॥
उदभिपदथ बुद्धिरस्य मिथ्याग्रहमकराकरपूर्णचन्द्ररोचिः ।
अवददथ निजान् जिनेशबिम्ब बलजपुरो निदधध्वमध्वनीह ॥७०॥
तदनु शिरसि तस्य भो । निधाय क्रमणयुग हि समागमो विधेय. ।
इदमिह न करिष्यति प्रमाणं मम पुरतोऽध्ययनं स मा विधत्ताम् ॥७१॥

"तित्थयर[1] अतित्थयरा[2] तित्थ[3] सलिंग[4] ऽन्नलिंग[5] थी[6] पुरिसा[7]।
गिहिलिंग[8] नपुंसग[9] अतित्थसिद्ध[10] पत्तेयबुद्धा[11] य ॥८४९॥
एग[12] अणेग[13] सयंबुद्ध[14] बुद्धबोहिय[15] पभेयओ भणिया। सिद्धंते सिद्धाण भेया पन्नरस सव्वत्ति ॥८५०॥"

इति गणाः=हरस्य गणाः प्रथमाः पार्षदा वा नन्द्यादय एकादश, एतावङ्कौ वामगतिमीलितौ यत्र तत्र सिद्धगणे=वीरसंवदि पञ्चदशोत्तरे एकादशशतवर्षे ख=सुपर्वालयमितः=गतः ।
यदाह तपागच्छपट्टावल्याम्-पञ्चदशाधिकैकादशशत १११५ वर्षे श्रीजिनभद्रगणियुगप्रधान ॥" इति।

एवमसौ चतुर्दश १४ वर्षाणि गृहे, त्रिंशद् ३० वर्षाणि सामान्यव्रतित्वे, षष्टि ६० वर्षाणि युगप्रधानत्वे चेति सकलायुश्च चतुरुत्तरशत १०४ वर्षमानं परिपाल्य नूनं सुरलोकमुपदेष्टुं तत्र जगाम ॥१३८-१३९॥

सम्प्रति श्रीज्ञातकुलविभूषकस्य जिनेन्द्रस्याष्टाविंशं पट्टधरं श्रीविबुधप्रभाचार्यं जिगदिषु-रुपजातिं वदति—

समाणदेवाभिहसूरिपट्टे, राईअ सूरी विबुहप्पहक्खो ।
भव्वज्जबोधेकविभावरीसो, पावीअ सिट्ठं विबुहप्पहं जो ॥१४०॥ (उवजाई)

(प्रे०) "**स**" इत्यादि, "**माणदेवाभिहसूरिपट्टे**" त्ति, मानदेवाभिधस्य=मानदेवनाम्नः सूरेः=मुनीशितुः पट्टे=पदेऽधिकारविशेषलक्षणे "**स**" त्ति सः "**विबुहप्पहक्खो**" त्ति विबुधप्रभाख्यः=विबुधप्रभसंज्ञकः "**सूरी**" त्ति सूरिः=आचार्यः "**राईअ**" त्ति राजते स्म=अशोभत ।

स क इत्याह-"**जो**" त्ति यः श्रीविबुधप्रभसूरिः "**भव्वज्जबोधेकविभावरीसो**" त्ति भव्याः=सिद्धिगमनयोग्या जना एवाब्जानि=चन्द्रविकासीनि कमलानि भव्याब्जानि, तेषां बोधे=विकासने एकः=अद्वितीयो विभावरीशः=चन्द्रः, भव्याब्जबोधैकविभावरीशः="**सि**ट्ठं **विबुहप्पह**" ति श्रेष्ठां विबुधेषु=देवेषु विद्वत्सु वा प्रथां=ख्यातिं विबुधप्रथां="**पावीअ**" त्ति प्राप=लेभे ॥१४०॥

इदानीं श्रीत्रैशलेयस्य तीर्थेशस्यैकोनत्रिंशत्तमस्य पट्टस्य विभूषकस्य श्रीजयानन्दसूरेः शिशासिषया-ऽऽवलीमाह—

हेमगिरिम्मि पंडुगवणमिव दिप्पए,
जयाणंदगुरू स विबुहप्पहप्पए ।

हृत इत परिभाषिणाम्तयोस्तेऽनुपदमिमे प्रययुर्भटास्तदीयाः ।
अतिसविधमुपागतेषु हंसोऽवदिति तत्र कनिष्ठमात्मबन्धुम् ॥९०॥
व्रज झगिति गुरोः प्रणामपूर्वं प्रकथय मामकदुष्कृतं हि मिथ्या।
अभणितकरणान्ममापराधं कुविनयतो विहितं समर्षणीय ॥९१॥
इह निवसति सूरपालनामा शरणसमागतवत्सल क्षितीशः ।
नगरमिदमिहास्य चक्षुरीक्ष्य निकटतरं व्रज सन्निधौ ततोऽस्य ॥९२॥
इति सपदि विसर्जितोऽपि तस्थौ क्षणमेक स तु तैः सहस्रयोधी ।
गततनुममतस्त्वयुद्धचतैतैर्हठहृतधन्वशरावलीभिर्हंस ॥९३॥
अतिविपुलतया शिलीमुखाना तितउरिवाजनि तस्य विग्रहश्च ।
अपतदथ स वधरक्त उर्व्यामहितनरैरभवत् तत परासु ॥९४॥
अवरज इह मोहतो ह्यमुञ्चन् सविधममुष्य कृपार्द्रमर्त्यवाक्यात्।
त्वरिततरपदप्रचारवृत्त्याऽगमदवनिमतिसुरपालपार्श्वम् ॥९५॥
शरणमिह ययौ च तस्य धीमान् तदनुपद रिपव. पर सहस्रा ।
अवनिपतिमवाप्य चैनमूचुः प्रवितर नः प्रतिपन्थिन समेतम् ॥९६॥
अवददथ स को बलेन नेता मम भुजपञ्जरवर्तिनं किलैनम् ।
अनर्थिनमपि नार्पयाम्यमु तत् किमुत कलाकलितं नयैकनिष्ठम् ॥९७॥
सुगतमतभटास्तथाऽभ्यधुस्त परतरदेशनरस्य हेतवे त्वम् ।
धनकनकसमृद्धराज्यराष्ट्रं गमयसि ह्यस्मदधीशकोपनात् किम् ॥९८॥
अवददिह स चोत्तरं गरीयं पुरुषगणैर्मम यद्व्रतं व्यधायि ।
मरणमथ च जीवितं हि भूयान्न हि शरणागतरक्षणं त्यजामि ॥९९॥
इतरदिह दधामि चैकमेव प्रकटमतिर्विदितप्रमाणशास्त्र ।
तत इममभिभूय वादरीत्योचितमिह धत्त पराजये जये वा ॥१००॥
अथ वचनविचक्षणः स तेषामधिपतिराह वचस्त्विदं प्रियं नः ।
परमिह वदतं न दृश्यमस्य क्रमयुगलं सुगतस्य मूर्ध्नि योऽदात् ॥१०१॥
तदनु च यदि शक्तिरस्ति तस्यान्तरिततरः प्रतिसीरयाशु हेतून् ।
यदि जयति स यातु कौशलात् तन्नियतमसौ विजितस्तु वध्य एव ॥१०२॥
अथ घटमुखवादिनी रहःस्था वदति तथागतशासनाधिदेवी ।
स्वयमिह हरिभद्रसूरिशिष्यः पुनरनयोर्न बभूव दृष्टिमेल. ॥१०३॥
व्यमृशदथ स च च्छलैकनिष्ठां सुगतमते प्रभवन्ति सूरयोऽपि ।
अवितथमिह नो घटेत चैतत् त्रुटति वचो न ममापि यत्पुरस्तात् ॥१०४॥
अथ बहुदिनवादतो विषण्ण स परमहंसकृती विषादमाधात् ।
विभवति गुरुसंकटे विचिन्त्यानिजगणशासनदेवता किलाम्बा ॥१०५॥
स्मृतिवशत इयं तदा समयाज्जिनमतरक्षणनित्यलब्धलक्षा ।
वदति च शृणु वत्स ! मुक्तिमस्मादुरितभराद् गुरुलब्धम्… ॥१०६॥
सुगतमतसुरी समस्ति तारा वदति निरन्तरमत्र…च मा
मनुज इह सुरैः सम विवादी क इव भवन्तमृते समृद्ध… ॥१०७॥

अथामुष्य जन्मादिमत्कान वत्सान् सार्द्धार्यया दर्शयति—"जम्मो" इत्यादि, "ऽस्स" त्ति अस्य=श्रीस्वातिसूरेः "वीरा" त्ति वीरात्=वीरविभुमुक्तिगमनकालात् "खसिद्धिजुए" त्ति खं=गगनं शून्यम्, सिद्धयो लघिमादयोऽष्टौ, यदुक्तमभिधानचिन्तामणौ—

"लघिमा वशितेशित्व प्राकाम्य महिमाऽणिमा। यत्रकामावसायित्व, प्राप्तिरैश्वर्यमष्टधा ॥२०२॥" इति।

आभ्यां वामगतिन्यस्ताभ्यामशीति८०संख्यया युते खसिद्धियुते "सम्भुकण्णसये" त्ति, शम्भुकर्णा.=महादेवश्रवांसि दश तावन्मितानि शतानि यत्र शम्भुकर्णशते=सहस्रतमे "ऽद्दे" त्ति अब्दे=वर्षे वीरसंवत्१०८०वर्षे इति यावत् "जम्मो" त्ति जन्माभूत्। 'सकरसयम्मि दिक्खा" त्ति शङ्कराः=महादेवा एकादश, तावन्मानानि शतानि यस्य तादृशे शङ्करशते=वीरसंवदेकादशशत११००तमे वर्षे दीक्षा=तपस्या बभूव। "स" त्ति सः=श्रीस्वातिसूरिः "परमाहम्मिअमहेसरपमाणे" त्ति परमाधार्मिकाः=नरकजीवदुःखदायिनो देवजातिविशेषाः पञ्चदश,

तन्नामसूचिका सङ्ग्रहकारकृता गाथाद्वयी चेयम्—

'१ अंबे २ अंबरिसी चेव, ३ सामे अ ४ सबले इय। ५ रुद्दो६वरुद्द७काले य ८ महाकाले त्ति आवरे ॥१॥
९ असिपत्ते १० धणु११कुंभे १२ वालु १३वेयरणीइय। १४ खरस्सरे १५ महाघोसे एए पन्नरसाहिया ॥२॥'

इति, महेश्वराः=रुद्रा एकादश, अनयोरङ्कयोर्विपरीतक्रमन्यस्तयोः ११.१५ इति संख्यं प्रमाणं यस्मिंस्तस्मिन परमाधार्मिकमहेश्वरप्रमाणे=वीरसंवत्पञ्चदशोत्तरैकादशशत ११.१५-तमेऽब्दे 'हवीअ जुगपहाणो" त्ति युगप्रधानोऽभवत्। "ऽब्भतत्तसड्ढपडिमे" त्ति अभ्रम्=आकाशं=शून्यम्, तत्त्वानि जीवादीनि नव, श्राद्धप्रतिमाः=श्रावकव्रतविशेषा दर्शनप्रतिमादिरूपा एकादश, तन्नामसङ्ग्रहकारिका गाथा त्वेषा—

"दंसणवयसामाइय-पोसहपडिमा अबंभसच्चित्ते। आरंभपेसउद्दिट्ठवज्जए समणभूए य ॥१॥" इति।

एतेऽङ्का वामगतिमीलिता ११९० इति संख्या यस्य तस्मिन्नभ्रतत्त्वश्राद्धप्रतिमे=वीरसंवन्नवत्यधिकशतोत्तरसहस्र११९०तमे वत्सरे "सग्गिओ" त्ति सं=स्वर्गमितः=प्राप्तः।

आह च श्रीतपागच्छपट्टावल्याम्—

"श्रीवी० नवत्यधिकैकादशशत११९०वर्षे श्रीउमास्वातियुगप्रधान' ॥" इति।

इत्थश्चासौ विंशति२०वर्षाणि गृहवासे, पञ्चदश१५वर्षाणि सामान्यव्रतपर्याये, पञ्चसप्तति ७५ वर्षाणि युगप्रधानत्वे चेति सर्वायुश्च दशोत्तरशत ११०वर्षमानमुपभुज्यामरपुरीमलञ्चक्रे ॥१४२-१४३॥

एतर्हि श्रीत्रिशलाकुक्षिरत्नस्य वीरविभोस्त्रिंशत्तमे पट्टे जातं श्रीरविप्रभसूरि स्तवन्नोपछन्दसकमाह-

मथो तिरक्को सिरीए, जस्संगस्स हवीअ किं अणंगो।
जयउ जयाणन्दसूरिपट्टे, रविपहसूरी सो गणस्स सामी ॥१४४॥

विनयमथ शम स्मरामि किं वा गुरुपदसेवनमद्भुतं किमत्र ।
नहि मम सदृशैस्तु मन्दभाग्यै परिचरण ननु तादृशा विलोक्यम् ॥१२६॥
मुखकृतकवलैर्विवृद्धदेहौ चटकशिशू इव यावजातपक्षौ ।
अवसर इह तौ सपक्षताया भृशमतिगम्य दृशो पथ व्यतीतौ ॥१२७॥
कलुषकुलनिवास एष देहः सुचरितकक्षदवानलार्चिरुग्र ।
इह हि किमधुना प्रधार्यतेऽसौ विरहभरेऽपि सुशिक्षयोरवाप्ते ॥१२८॥
विनिहततमनिर्वृतिप्रकारां कमिव .विशेषमवाप्नुमत्र धार्म्याः ।
सुललितवचनौ विनेयवर्यावसव इमौ हि विना कदर्यधुर्यौ ॥१२९॥
इति विमृशत एव सौगतानामुपरि मह समुदैन्निजान्वयस्थम् ।
सुविहितपरिकर्मणाऽपि साध्य न सहजमाभिजन महत्तमेऽपि ॥१३०॥
अवददथ स सौगता कृतास्ते परिभवपूर्णहृदो गृहस्थितेन ।
अतिविनयविनेयहिंसनेनाद्भुतहतचित्तनिवृत्तिसापराधा ॥१३१॥
श्रुतविहितनयेऽपि युक्तमुक्त सकलबलेन निवारण रिपूणाम् ।
परभवगतिरस्य निर्मला नो य इह सशल्यमना लभेत मृत्युम् ॥१३२॥
इति जिनपतिशासनेऽपि सूक्तं गुरुतरदोषमनुद्धृत हि शल्यम् ।
सुगतमतभृतो निवर्हणीया स्वसृसुतनिर्मथनोत्थरोषपोपात् ॥१३३॥ विशेषकम् ।
इति मतिमति चेतसि प्रकाम गुरुमभिपृच्छ्य ययौ विना सहायम् ।
हृदि विगलितसयमानुकम्पो नगरमवाप च भूमिपस्य तस्य ॥१३४॥
द्रुततरमभिगम्य पार्श्वमस्य प्रकटतरीकृतजैनलिङ्गरूपः ।
वदति च हरिभद्रसूरिरेवं जिनसमयप्रवराशिपाभिनन्द्य ॥१३५॥
शरणसमितवज्रपञ्जर ! त्व शृणु मम वाक्यमशक्यसत्त्वभङ्ग ! ।
इह हि मम विनेय उज्जिजीवे स परमहस इति त्वया प्रसिद्ध ॥१३६॥
किमिव न तव साहसं प्रशस्य क्षितिप ! शरण्यकृते हि लद्द्यसख्यम् ।
बलमवगणित तदेतदभ्युन्नतिकरमूर्जितमस्ति नापरस्य ॥१३७॥
निरगममिह सांयुगीनवृत्ति कृतिजनरीतित उन्नतप्रमाण. ।
अतिशयनिसनिष्टवाक्प्रबन्धान् सुगतमलस्थितकोविदान् जिगीषु ॥१३८॥
अवददथ स सूरपालभूपो मम तव चापि विजेयतापदे ते ।
छलविवदननिष्ठिता अजेया शलभगणा इव ते ह्यमी बहुत्वात् ॥१३९॥
परमिह कमपि प्रपञ्चमग्र्य ननु विदधामि यथा भवद्विपक्ष. ।
स्वयमपि विलय प्रयाति येन प्रतिकूल वचन तु मे न गण्यम् ॥१४०॥
अवहितिपर वाचमेकका मे शृणु तव काचिदजेयशक्तिरस्ति ।
अवददथ च को हि मा विजेता वहति सुरी यदुदन्तमम्बिकाख्या ॥१४१॥
वचनमिति निशम्य तस्य भूप सुगतपुरे प्रजिघाय दूतमेष ।
अपि स लघु जगाम तत्र दूतो वचनविचक्षण आदृतप्रपञ्चः ॥१४२॥
सुगतगुरुमथ प्रणम्य तत्रावददिति भूमिपति स सूरपाल ।
स्फुरिततनुमिवेह भारतीं त्वामिति किल विज्ञपयत्यनल्पभक्ति. ॥१४३॥

उत्तिरागसत्तजलही, स जयउ आयरिअसिद्धसेणगणी।
जो तक्किकमोलिमणी, रईअ तत्तत्थटीगाई ॥१४६॥ (पञ्छाज्जा)

(प्रे०) "उत्तिण्ण०" इत्यादि, "स" त्ति सः=विश्वविश्वविश्रुताख्यः "उत्तिण्णसत्त-जलही" त्ति उत्तीर्ण=पारं नीत शास्त्रम्=आगम एव जलधिः=समुद्रो येन स उत्तीर्णशास्त्रजलधिः=समस्तशास्त्रविदित्यर्थः, 'आयरिअसिद्धसेणगणी' त्ति, आचार्यः=यतीशः, स चासौ सिद्धसेनः=सिद्धसेननामा गणी आचार्यसिद्धसेनगणी 'जयउ" त्ति जयतु=सर्वातिशय-वान् भवतु । स क इत्याह–"जो" त्ति यः=सिद्धसेनसूरिपुङ्गवः किम्भूतः ? । तक्किक-मोलिमणी' त्ति तार्किकेषु=नैयायिकेषु दार्शनिकेषु वा मौलिमणिः=मुकुटमणिः, यद्वा तार्किका=नैयायिका दार्शनिका वा त एव मौलयः=शिरोभूषणा=मुकुटा इति यावत् तेषु मणिरिव मणिर्यः, स तार्किकमौलिमणिः=तर्कशाल्यग्रणीः "तत्तत्थटीगाई" त्ति तत्त्वार्थस्य=तत्त्वार्थाभिधस्य सूत्रस्य टीका=वृत्तिस्तत्त्वार्थटीका, सा आदौ येषां ग्रन्थाना ते तत्त्वार्थटीकादयो ग्रन्थास्तान् तत्त्वार्थटीकादीन् ग्रन्थान् "रईअ" त्ति रचयाञ्चकार=निर्ममे ॥१४६॥

अथ द्वात्रिंशं द्वितीयोदययन्त्रक्रमापेक्षया द्वादशं युगप्रधानं श्रीपुष्पमित्रसूरिं भणितुकामः पथ्यापूर्विकादिचपलार्या-पथ्यार्यालक्षणार्याद्विकमाह––

सिरिपुप्फमित्तसूरी, हवीअ बत्तीसमो जुगपहाणो ।
तस्स जणी वीरा-ऽद्दे, करवयवीरगणहरमाणो[1152] ॥१४७॥
(पच्छापुव्विगाइचवलाज्जा)

वोमविगइगण[1160] संखे, पव्वज्जा सुणवीरगणरुद्दे[1190]।
स हवीअ जुगपहाणो, सग्गमिओ णहसरवक[1250] मिए ॥१४८॥
(पच्छाज्जा)

(प्रे०) "सिरिपुप्फ०" इत्यादि, "सिरिपुप्फमित्तसूरी" त्ति श्रिया=रत्नत्रयलक्षणया युतः पुष्पमित्रः=पुष्पमित्रसंज्ञकश्चासौ सूरिश्च=आचार्यः श्रीपुष्पमित्रसूरिः "हवीअ बत्तीसमो जुगपहाणो" त्ति द्वात्रिंशत्तमो युगप्रधानोऽभूत् ।

अथ श्रीपुष्पमित्रसूरेर्जन्मादिसंवत्सरान् सार्द्धगाथया वक्ति–"तस्स" इत्यादि, "तस्स" त्ति तस्य=श्रीपुष्पमित्रसूरेः "वीरा" त्ति वीरात्=चरमजिनराजनिर्वाणकालात् "करवयवीर-गणहरमाणे" त्ति करौ=हस्तौ द्वौ, व्रतानि=महाव्रतानि प्राणातिपातविरमणादीनि पञ्च, यद्वा अहिंसादयः पञ्च यमाः, वीरगणधराः=त्रैशलेयजिनेन्द्रगणभृत एकादश ...

यदि सकलमिदं विनश्वरं तत् स्मरणविचारणचारिमा कथं स्यात् ।
यदिदमिह पुरावलोकितं यत् कथमियमित्यनुसंहतिर्घटेत ॥१६२॥
वदति स मतिसन्ततिः स्म तुल्या भवति सदैव सनातना मते नः ।
बलमिदमनुसहृतेश्च तस्या व्यवहरणं च तथैव वर्त्तते मे ॥१६३॥
अनुवदति मुदा स्म जैनविद्वानिह मतिसन्ततिरप्रणाशिनी चेत् ।
सदिति सुविदितैव तत ध्रुवत्वात्तुमतिरिदं तव चात्मवाग्विरुद्धम् ॥१६४॥
न विबुधकमनीयमेतदुच्चैः स्वसमयमूढमतिर्भवान् यदिच्छुः ।
ननु सकलविनश्वरत्वसन्धां परिहर तच्चिरकालतो विलग्नाम् ॥१६५॥
इति वचननिरुत्तरीकृतोऽसौ सुगतमतप्रभुराचचार मौनम् ।
जित इति विदिते जनैर्निपेते द्रुततरमेष सुतप्ततैलकुण्डे ॥१६६॥
अथ कलकल उद्बभूव तेषां दशबलविद्वदरीतिमृत्युमावात् ।
इति भवदपमानभारभुग्ना भयतरला अनशंस्त्रमी निरीशाः ॥१६७॥
अथ विशदविशारदस्तदीयो वदनमतिः किल तद्वदेक एकः ।
समगत च तथैव पञ्चषास्ते निधनमवापुरनेन निर्जिताश्च ॥१६८॥
दशबलमतशासनाधिदेवी खरवचनैरुपलम्भिताऽथ सा तैः ।
प्रतिघवशविसर्पिदर्पभङ्गै रणकदिनेषु सुरस्मृतेर्हि कालः ॥१६९॥
ननु शृणु कटपूतनेऽत्र यस्त्वामविरतमर्चयिता सुधी नरेन्द्रः ।
कुमरणविधिना मृतोऽधुना तन्ननु भवती क्व गतासि हन्त तारे ! ॥१७०॥
मलयजघनसारकुङ्कुमादि-प्रकृतिविलेपनधूपसारभोगैः ।
सुरभिकुसुमदामभिश्च सम्यग् ननु तव दृषद इव व्यधायि पूजा ॥१७१॥
दृढतरपरिपूजिता भवादृग् विधुरतरावसरेऽपि सन्निधानम् ।
यदि न वितनुते तत स्वदेहे स किमु नहि क्रियते सुवस्तुभोगः ॥१७२॥
सविधतरभुवि स्थिता च तारा सुकरुणमानसवासना ह्यमीषु ।
अनुचितमपि जल्पतो निशम्याप्रनिधमना मृदुवागिदं जगाद ॥१७३॥
अतिशयशुचि(च)माप्य वद्वराका असदृशमप्यनुवादिनो भवन्तः ।
कुवचनमपि नो मयाऽत्र गण्यं मम वच एकमिदं निशम्यतां च ॥१७४॥
अतिपरतरदेशतः समेतौ परसमयाधिगमाय सङ्गतौ च ।
जिनशिरसि पदप्रदानपापा-भ्युपगमरूपनिभेऽप्यमुक्तसत्त्वौ ॥१७५॥
प्रतिकृतमिह तत्कृते दधानौ झटिति च तेन हतौ पलायमानौ ।
नयपथपथिकौ महामुनी यत्तत्प्रतिकृतिरस्ति तस्य दुष्कृतस्य ॥१७६॥
तत इतिसमुपेक्षितो मया यद्विलयमवाप निजैनसैव तस्मात् ।
विदधति ननु येऽस्य पक्षमुच्चैस्तु मम तेऽपि सदा ह्युपेक्षणीयाः ॥१७७॥
इति शुचमपहाय यूयमेते निजनिजभूमिषु गच्छताद्य धीराः ।
दुरितमरमह हि वो हरिष्ये निजसन्तानसमेषु को हि मन्युः ॥१७८॥
इति वचनमुदीर्य सा तिरोधान्निजनिजदेशगणं ययुश्च तेऽथ ।
अपरवरपुरेषु बौद्धवृद्धा उपशममापुरितिश्रुतप्रवृत्त्या ॥१७९॥

उत्तिण्णसत्तजलही, स जयउ आयरिअसिद्धसेणगणी।
जो तक्किकमोलिमणी, रईअ तत्तत्थटीगाई ॥१४६॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "उत्तिण्ण०" इत्यादि, "स" त्ति सः=विश्वविश्वविश्रुताख्यः "उत्तिण्णसत्त-जलही" त्ति उत्तीर्णं=पारं नीतं शास्त्रम्=आगम एव जलधिः=समुद्रो येन स उत्तीर्णशास्त्रजलधिः= समस्तशास्त्रविदित्यर्थः, 'आयरिअसिद्धसेणगणी' त्ति, आचार्यः=यतीशः, स चासौ सिद्धसेनः=सिद्धसेननामा गणी आचार्यसिद्धसेनगणी 'जयउ" त्ति जयतु=सर्वातिशय-वान् भवतु । स क इत्याह-"जो" त्ति यः=सिद्धसेनसूरिपुङ्गवः किम्भूतः ? । तक्किक-मोलिमणी' त्ति तार्किकेषु=नैयायिकेषु दार्शनिकेषु वा मौलिमणिः=मुकुटमणिः, यद्वा तार्किका= नैयायिका दार्शनिका वा त एव मौलयः=शिरोभूषणा=मुकुटा इति यावत् तेषु मणिरिव मणिर्यः, स तार्किकमौलिमणिः=तर्कशास्त्र्यग्रणीः "तत्तत्थटीगाई" त्ति तत्त्वार्थस्य=तत्त्वार्थाभिधस्य सूत्रस्य टीका=वृत्तिस्तत्त्वार्थटीका, सा आदौ येषां ग्रन्थानां ते तत्त्वार्थटीकादयो ग्रन्थास्तान् तत्त्वार्थटीकादीन ग्रन्थान "रईअ" त्ति रचयाञ्चकार=निर्ममे ॥१४६॥

अथ द्वात्रिंशं द्वितीयोदययन्त्रक्रमापेक्षया द्वादश युगप्रधानं श्रीपुष्पमित्रसूरिं भणितुकामः पथ्यापूर्विकादिचपलार्या-पथ्यार्यालक्षणार्याद्विकमाह--

सिरिपुप्फमित्तसूरी, हवीअ बत्तीसमो जुगपहाणो ।
तस्स जणी वीरा-ऽद्दे, करवयवीरगणहरमाणे११५२ ॥१४७॥

(पच्छापुव्विगाइचवलाज्जा)

वोमविगइगण११६०संखे, पव्वज्जा सुणवीरगणरुद्दे११९०।
स हवीअ जुगपहाणो, सग्गमिओ णहसरवक१२५०मिए ॥१४८॥

(पच्छाज्जा)

(प्रे०) "सिरिपुप्फ०" इत्यादि, "सिरिपुप्फमित्तसूरी" त्ति श्रिया=रत्नत्रयलक्षणया युतः पुष्पमित्रः=पुष्पमित्रसञ्ज्ञकश्चासौ सूरिश्च=आचार्यः श्रीपुष्पमित्रसूरिः "हवीअ बत्तीसमो जुगपहाणो" त्ति द्वात्रिंशत्तमो युगप्रधानोऽभूत् ।

अथ श्रीपुष्पमित्रसूरेर्जन्मादिसंवत्सरान् सार्द्धगाथया वक्ति-"तस्स" इत्यादि, "तस्स" त्ति तस्य=श्रीपुष्पमित्रसूरेः "वीरा" त्ति वीरात्=चरमजिनराजनिर्वाणकालात् "करवयवीर-गणहरमाणे" त्ति करौ=हस्तौ द्वौ, व्रतानि=महाव्रतानि प्राणातिपातविरमणादीनि पञ्च, यद्वा अहिंसादयः पञ्च यमाः, वीरगणधराः=त्रैशलेयजिनेन्द्रगणभृत एकादश, एतेऽङ्काः

अतिशयपरिदूनमेवमम्बा धृतिविधये सुतरामुवाच वाचम् ।
क इव स विरहस्तवार्दनेऽसौ गृहधननन्दनसङ्गवर्जितस्य ॥१९८॥
जिनसमयविचित्रशास्त्रसेवानिपुण ! विशुद्धमते ! स्वकर्मपाक ।
फलवितरणकृन्निज परो वा तदिति विडम्बकमेव कोविदानाम् ॥१९९॥
गुरुपदवरिवस्ययाभिरामं सफलय शुद्धतपस्यया स्वजन्म ।
शरदि घन इव प्रलीनमेतद् भवति विकर्म यथा ननु त्वदीयम् ॥२००॥
अवगथ हरिभद्रसूरिरम्बे ! जडमतिमान्द्यशिष्यकावलम्बे ।
न किमपि मम चेतसो व्यथाकृद् विशदविधेयविनेयमृत्युमुख्यम् ॥२०१॥
इदमिह निरपत्यता हि दुःख गुरुकृतमप्ययमलं मयि क्षत किम् ।
इति गदति जगाद तत्र देवी शृणु वचन मम सूनृत त्वमेकम् ॥२०
न हि तव कुलवृद्धिपुण्यमास्ते ननु तव शास्त्रसमूहसन्ततिस्त्वम् ।
इति गदितवती तिरोदधे सा श्रमणरति. स च शोकमुत्ससर्ज ॥२
मनसि गुरुविरोधवर्द्धिगाथात्रितयमिद गुरुभिर्गुरुप्रसादात् ।
प्रहितमभिसमीक्ष्य सैष पूर्व स च समरार्कचरित्रमाततान ॥२
पुनरिह च शतोनमुग्रधीमान् प्रकरणसार्द्धसहस्रमेष चक्रे ।
जिनसमयवरोपदेशरम्य ध्रुवमिति सन्ततिमेष ता च मेने ॥२०
अतिशयहृदयाभिरामशिष्यद्वयविरहोर्मिभरेण तप्तदेह ।
निजकृतिमिह सव्यधात् समस्ता विरहपदेन युता सता स मुख्य ॥२०६॥
प्रकरणनिकरस्य विस्तरार्थं हृदयविबाधकचिन्तयाभिचान्त ।
अणुतरजिनवासनं स कार्पासिक इति नामकमैक्षताथ भव्यम् ॥२०७॥
शुभशकुनवशात् स्वकीयशास्त्रप्रसरणकारणमेष त व्यमृक्षत् ।
तत इह विरलं च भारतादिश्रवणसतृष्णमुवाच हृद्यविद्यः ॥२०८॥
तथाहि-एय लोइयकव्व गड्डरिलिंडं व बाहिरे मट्ठं ।
अन्तो फोडिज्जतं तुसबुलभुसमीसियं सव्व ॥२०९॥
अवददथ वणिग् विवेचयस्व प्रकटमिद स ततो जगाद सूरि. ।
अनृतभरभृतेष्वहो जनानामितिहासेषु यथा तथा प्रतीति ॥२१०॥
इति विशकलनाय मूढताया कितवकथानकपञ्चकं तदुक्तम् ।
विषभरवति मन्त्रवत् कुमिथ्याग्रहविषविस्तरसहृतिप्रवीणम् ॥२११॥
श्रवणत इह तस्य जैनधर्मे प्रकटमतिर्बुबुधे ततो जगाद ।
वितरणमुख एष जैनधर्मो द्रविणमृते स विधीयते कथ नु ॥२१२॥
गुरुरथ समुवाच धर्मकृत्याद् द्रविणभरो भविता तव प्रभूतः ।
अवददथ स चेदिद तदाऽह सपरिजन प्रभुगीर्विधायक स्याम् ॥२१३॥
वदति गुरुरथ त्वमेकचित्त शृणु वहिरद्यदिनात् तृतीयघस्रे ।
परविषयवणिज्यकारकौघ' स्फुटमिह वस्तुनिधानमेष्यतीति ॥२१४॥
तदुप तव गतस्य वस्तुजात तदथ समोद्धृतित. समर्घमाप्यम् ।
गुरुतरमुतो धन च भावि व्यवहरणात् सुकृतोदयेन भूम्ना ॥२१५॥

कुवाईणं अवजसकद्दमेहि खलु सामीकया,
दिसा जस्स जसोगंगाणीरेहि विमलीकया ॥१४१॥ (चित्तलेहा)

(प्रे०) "तरलुव्व" इत्यादि, "स" त्ति, स "जसोदेवो" त्ति, यशोदेवः=यशोदेवनामा "गुरू" त्ति, गुरुः=आचार्यः "सोहीअ" त्ति, अशोभत । कथम्भूतः ? "रविप्पहसूरिपयहारभूसणो" त्ति, रविप्रभसूरेः=रविप्रभनाम्न आचार्यस्य पद=पट्ट एव हारः=रविप्रभसूरिपदहारस्तस्य, भूषयतीति 'नन्द्यादिभ्योऽन" (सि० ५-१ ५२) इति सूत्रेण कर्तर्यनप्रत्यये भूषणः=शोभाकारको=रविप्रभसूरिपदहारभूषणः, "तरलुव्व" त्ति, तरल इव=हारमध्यमणिरिव पुनरपि किंभूतः ? "सरस्सइकंठभूसणो" त्ति, सरस्वत्याः=वाग्देव्याः कण्ठस्य=गलस्य भूषणः=भूषाकरः=आभरणवद्विभूषकः=सरस्वतीकण्ठभूषणः=श्रुतदेवीग्रीवाभरणसमः, सरस्वतीकण्ठाभरणाख्यबिरुदधर इति यावत् ।

तथा चोदितं गुर्वावल्याम्–

"अजनिरजनिजानिर्नागरब्राह्मणाना, विपुलकुलपयोधौ श्रीयशोदेवसूरि ३२ ।
प्रवरचरणचारी भारतीकण्ठनिष्का-ऽऽभरणबिरुदधारी शासनोद्योतकारी ॥४२॥" इति ।

गुरुपर्वक्रमेऽपि–"सरस्वतीकण्ठसुवर्णभूषणाख्यातियशा देवयतीश्वरोऽसुत ।" इति ।

स क ? इत्याह–"जस्स" त्ति, यस्य=श्रीयशोदेवसूरेः '**जसोगंगाणीरेहिं**" ति, यशांस्येव गङ्गायाः=सुरसरत्कनद्याः नीराणि=जलानि = यशोगङ्गानीराणि तैर्यशोगङ्गानीरैः "**दिसा**" त्ति दिक् = आशा "**विमलीकया**" त्ति, विमलीकृता = अविमला विमला कृतेति विमलीकृता श्वेतीकृता काव्यकृत्सिद्धान्ते यशसो वर्णस्य श्वेतत्वाऽभिमतत्वात् । किम्भूता दिक् ? "**सामीकया**"त्ति अश्यामा श्यामा कृतेति श्यामीकृता = कृष्णवर्णीकृता । कैः "**अवजसकद्दमेहि**" त्ति अप = कुत्सितानि यशांसि = अपयशांसि, कविसमयेऽपयशसः कृष्णवर्णत्वेन तान्येव कर्दमानि=पङ्कान्यपयशःकर्दमानि तैरपयशःकर्दमैः, केषाम् ?–"**कुवाईणं**" ति, कु=कुत्सिताः= मिथ्यात्वमोहितमतित्वेना-ऽप्रशंसनीया अप्रमाणभूता वा वादिनः = कुदर्शनिनस्तेषाम् कुवादिनामिति ।

अत्रान्तराले च श्रीवीराद् द्वासप्तत्यधिकद्वादशशत१२७२वर्षे विक्रमाच्च द्व्यधिकाष्टशत८०२वर्षे अणहिल्लपुरपत्तनस्थापना वनराजेन कृता ॥१४१॥

अथ त्रयस्त्रिंशं द्वितीयोदययन्त्रक्रमाऽपेक्षया च त्रयोदशं युगप्रधानं श्रीसम्भूतसूरिं प्रकटयन् पथ्यार्याद्वयं भणति—

शिरोमणिः "वीरा" त्ति वीरात्=वीरप्रभुमोक्षगमनकालात् "सरिसुसमबुहपमाणे" त्ति शराः पञ्च, इषवः पञ्च, समं=गगनं शून्यम् । तथा चोक्तं भगवत्याम्—
'आगासत्थिकायस्स ण पुच्छा ? गोयमा ! अणेगा अभिवयणा प०, त०- आगासेति वा आगासकायेति वा गगणेति वा नभेति वा समेति वा विसमेति वा .. अणतेति वा जे यावन्ने तहप्पगारा सव्वे ते आगासत्थिकायस्स अभिवयणा' इति । बुधः=चन्द्र एकः, एतैर्वामगत्या विन्यस्तैः पञ्चपञ्चाशदधिकसहस्र(१०५५)संख्यं प्रमाणं यत्र तत्र शरेषुसमबुधप्रमाणे" वासे" त्ति वर्षे "सग्ग" ति स्वर्गं=देवलोकं "लहीअ" त्ति अलभत, "भूवा" त्ति भूपात्=विक्रमादित्यनृपतः पुनः "वाणगयासुगमिए" त्ति वाणाः पञ्चः, गजा अष्टौ, आशुगाः=शराः पञ्च, एतैर्विपरीतैर्विन्यस्तैरङ्कैः पञ्चाशीत्यधिकपञ्चशत५८५संख्यया मिते वाणगजाशुगमिते=विक्रमसंवत्पञ्चाशीत्यधिकपञ्चशततमे वर्षे स्वर्गतिं जगाम । अयञ्च गुरुपट्टावली-तपागच्छपट्टावल्याद्यनुसारेण । तथा चोक्तम्—
"पंचसये पणसीए विक्कमकालाओ झत्ति अत्थमिओ । हरिभद्दसूरिसूरो भवियाणं दिसउ कल्लाण ॥" इति ।

तथा चात्र गुरुपट्टावली—
'विक्रमात् ५८५वर्षे चतुश्चत्वारिंशदुत्तरचतुर्दशशत१४४४प्रकरणकृत् श्रीहरिभद्रसूरिः स्वर्गत" इति ।

तथा श्रीतपागच्छपट्टावलिसत्कपाठः—'श्रीवीरात् पञ्चपञ्चाशदधिकसहस्र१०५५वर्षे वि० पञ्चाशीत्यधिकपञ्चशत५८५वर्षे याकिनीसूनु. श्रीहरिभद्रसूरि स्वर्गभाक्" इति ।

तथा प्रद्युम्नसूरिभिः श्रीविचारसारप्रकरणेऽपि—
"पंचसए पणसीए विक्कमभूवाउ झत्ति अत्थमिओ । हरिभद्दसूरिसूरो धम्मरओ देउ मुक्खपहं ॥५३२॥"
अहवा पणपन्नदससएहिं हरिसूरि आसि ..॥५३३॥" इति ।

तथा च विचारामृतसंग्रहे श्रीकुलमण्डनसूरिभिः—
'श्रीवीरनिर्वाणात् सहस्रवर्षे पूर्वश्रुतं व्यवच्छिन्नं । श्रीहरिभद्रसूरयस्तदनु पञ्चपञ्चाशता वर्षैर्दिवं प्राप्ताः॥" इति ।

तथाऽऽचार्यश्रीधर्मघोषकृतदुस्सम समणसंघथवावचूर्याम्—
"सत्यमित्र ७ हारिल ५४॥ पचसए पणसीए विक्कमकालाओ झत्ति अत्थमिओ ।
हरिभद्दसूरिसूरो भवियाण दिसउ कल्लाण ॥ ॥ जिनभद्रगणि' ३०॥" इति ।

मेरुतुङ्गाचार्यकृतविचारश्रेणावपि—'श्रीवीरमोक्षाद् दशभिः शतैः पञ्चपञ्चाशदधिकैः १०५५ श्रीहरिभद्रसूरेः स्वर्गः । उक्तंच पचसए पणसीए " इति ।

तथा च गुर्वावल्याम्—"अभूद् गुरु श्रीहरिभद्रमित्रं श्रीमानदेवः पुनरेव सूरिः" इत्यनेन मानदेवसूरि-हरिभद्रसूर्योः समानकालीनत्वं दर्शितम् ।

卐 कुत्रचिद् "पणतीए" इति पाठोऽस्ति, किन्त्वस्माभिर्विक्रमसंवत् १९७९ वर्षे मुद्रितपुस्तके तूपर्युक्त "पणसीए" इत्येवरूपपाठोऽपि लब्ध, अतस्तथैव सगृहीतः । अतो वक्ष्यमाणेन विक्रमसंवत् ५३५वर्षसूचकेन पृष्ठ२७२गतेन पाठान्तरेण सहास्य विरोधो नोद्भाव्य. ।

"स" त्ति, सः=श्रीसम्भूतसूरिः "सिद्धाइगुणगिहिवये" त्ति, सिद्धादिगुणाः=सिद्धस्य युगपद्भाविनो गुणा अदेहादिरूपा एकत्रिंशद् , तथा चोक्तम्—

"पडिसेहेण सठाणवण्णगंधरसफासवेए य । पणपणदुपणट्ठतिहा इगतीसमकायसंगरुहा ॥१॥" इति ।

यद्वा कर्मक्षयविषयाः सिद्धादिगुणा एकत्रिंशद्भवन्ति, तद्यथा—पञ्चज्ञानावरण-नवदर्शनावरण-चतुरायुः-पञ्चाऽन्तराय--दर्शनचारित्रलक्षणमोहनीयद्वय—शुभा--ऽशुभरूपवेदनीयद्विक- नामद्विक-गोत्रयुगलक्षयरूपा एकत्रिंशत्सिद्धादिगुणाः । यदुक्तम्—

"अहवा कम्मे णव दरिसणंमि चत्तारि आउए पंच।आइमअंते सेसे दो दो खीणभिलावेण इगतीसं ॥१॥" इति ।

गृहिव्रतानि=श्रावकस्य नियमविशेषलक्षणानि—पञ्चाऽणुव्रत गुणव्रतत्रय शिक्षाव्रतचतुष्कात्मकानि व्रतानि द्वादश, प्रतिपादितञ्च योगशास्त्रे—

"सम्यक्त्वमूलानि पञ्चाणुव्रतानि गुणास्त्रय । शिक्षापदानि चत्वारि व्रतानि गृहमेधिनाम् ॥१॥" इति

एतावङ्कौ पश्चानुपूर्व्या न्यस्तौ १२३१ सङ्ख्या यत्र तत्र सिद्धादिगुणगृहिव्रते=वीरसंवत् १२३१ शरदि 'गेण्हीअ वयं" ति, व्रतं=प्रव्रज्यां जग्राह । 'बिंदुसमिइतवमाणे" त्ति, बिन्दुः=शून्यम् , समितय ईर्यापथिकादयः पञ्च, यदाहुः—

'ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गसञ्ज्ञिकाः । पञ्चाहु समिती ॥३५॥' इति ।

तपांसि-बाह्याभ्यन्तररूपाणि द्वादश, यदुक्तं योगशास्त्रे चतुर्थप्रकाशे—

'अनशनमौनोदर्यं वृत्तेः संक्षेपणं तथा। रसत्यागस्तनुक्लेशो लीनतेति बहिस्तपः ॥८९॥
प्रायश्चित्तं वैयावृत्त्यं स्वाध्यायो विनयोऽपि च । व्युत्सर्गोऽथ शुभं ध्यानं षोढेत्याभ्यन्तरं तपः ॥९०॥' इति।

तथैव श्रीआवश्यकसूत्रे—

"अणसणमूणोअरिआ वित्तीसंखेवणं रसच्चाओ । कायकिलेसो संलीणया य बज्झो तवो होइ ॥ ॥
पायच्छित्तं विणओ वेयावच्चं तहेव सज्झाओ । झाणं उस्सग्गो वि अ, अब्भितरओ तवो होइ ॥ ॥" इति।

एतेषामङ्कानां प्रातिलोम्यक्रमेण १२५० सङ्ख्यं मानं यस्य तस्मिन् बिन्दुसमितितपोमाने=वीरसंवत् १२५० वर्षे "आसि जुगपवरो" त्ति, युगप्रवरः=युगप्रधानोऽभूत् ।

"णदुगविस्से" त्ति, शून्यद्विकम्=बिन्दुद्वयम् , विश्वास्त्रयोदश, एतावङ्कौ यस्य तादृशे शून्यद्विकविश्वे विक्रमसंवत् १३०० हायने "सग्गमिओ" त्ति, स्वर्गम्=अमरालयम् इतः=गतः ॥१५०-१५१॥

अथ तदासन्नकाले जातस्या-ऽऽचार्यश्रीबप्पभट्टिसूरेः संक्षेपतो विवर्णयिषया पथ्यार्याद्वयं पठन्नादौ तावदेकां पथ्यापूर्व्विकामादिचपलामार्यामाह—

सिरिबप्पभट्टिसूरी जगे जयउ आमरायबोहयरो ।
बालो वि अमियतेजो विज्जही लद्धबंभिवरो ॥१५२॥

(चवलापच्छाज्जा)

शिरोमणिः "वीरा" त्ति वीरात्=वीरप्रभुमोक्षगमनकालात् "सरिसुसमवुहपमाणे" त्ति शराः पञ्च, इषवः पञ्च, समं=गगनं शून्यम् । तथा चोक्तं भगवत्याम्—

'आगासत्थिकायस्स ण पुच्छा ? गोयमा ! अणेगा अभिवयणा प०, तं०- आगासेति वा आगासकायेति वा गगणेति वा नभेति वा समेति वा विसमेति वा .. अणतेति वा जे यावन्ने तहप्पगारा सव्वे ते आगासत्थिकायस्स अभिवयणा' इति । बुधः=चन्द्र एकः, एतैर्वामगत्या विन्यस्तैः पञ्चपञ्चाशदधि हस्र(१०५५)संख्यं प्रमाणं यत्र तत्र शरेषुसमबुधप्रमाणे" वासे" त्ति वर्षे "सग्ग" ति स्वर्गं=देवलोकं "लहीअ" त्ति अलभत, "भूवा" त्ति भूपात्=विक्रमादित्यनृपतः पुनः "वाणगयासुगमिए" त्ति बाणाः पञ्चः, गजा अष्टौ, आशुगाः=शराः पञ्च, एतैर्विपरीतैर्विन्यस्तैरङ्कैः प शीत्यधिकपञ्चशत५८५संख्यया मिते बाणगजाशुगमिते=विक्रमसंवत्पञ्चाशीत्यधिकपञ्चशततमे वर्षे स्वर्गतिं जगाम । अयञ्च गुरुपट्टावली-तपागच्छपट्टावल्याद्यनुसारेण । तथा चोक्तम्—

"पंचसये पणसीए विक्कमकालाओ झत्ति अत्थमिओ । हरिभद्दसूरिसूरो भवियाणं दिसउ कल्लाणं ।।" इति ।

तथा चात्र गुरुपट्टावली—

'विक्रमात् ५८५वर्षे चतुश्चत्वारिंशदुत्तरचतुर्दशशत१४४४प्रकरणकृत् श्रीहरिभद्रसूरिः स्वर्गत " इति ।

तथा श्रीतपागच्छपट्टावलिसत्कपाठः—'श्रीवीरात् पञ्चपञ्चाशदधिकसहस्र१०५५वर्षे वि० पञ्चाशीत्यधिकपञ्चशत५८५वर्षे याकिनीसूनु' श्रीहरिभद्रसूरि' स्वर्गभाक्" इति ।

तथा प्रद्यु सूरिभिः श्रीविचारसारप्रकरणेऽपि—

"पंचसए पणसीए विक्कमभूवाउ झत्ति अत्थमिओ । हरिभद्दसूरिसूरो धम्मरओ देउ मुक्खपहं ।।५३२।।"
अहवा पणपन्नदससएहिं हरिसूरि आसि ।।५३३।।" इति ।

तथा च वि रामृतसंग्रहे श्रीकुलमण्डनसूरिभिः—

'श्रीवीरनिर्वाणात् सहस्रवर्षे पूर्वश्रुत व्यवच्छिन्न । श्रीहरिभद्रसूरयस्तदनु पञ्चपञ्चाशता वर्षैर्दिवं प्राप्ताः ।।" इति ।

त ऽऽचार्यश्रीधर्मघोषकृतदु म लसमणसंघथवावचूर्याम्—

"सत्यमित्र ७ हारिल ५४।। पचसए पणसीए विक्कमकालाओ झत्ति अत्थमिओ ।
हरिभद्दसूरिसूरो भवियाण दिसउ कल्लाणं ।। ।। जिनभद्रगणिः ३०।।" इति ।

मेरुतुङ्गाचार्य तविचारश्रेणावपि—'श्रीवीरमोक्षाद् दशभिः शतैः पञ्चपञ्चाशदधिकैः १०५५ श्रीहरिभद्रसूरे स्वर्ग । उक्तंच पचसए पणसीए ." इति ।

तथा च गुर्वावल्याम्—"अभूद् गुरु श्रीहरिभद्रमित्र, श्रीमानदेवः पुनरेव सूरिः" इत्यनेन मानदेवसूरि-हरिभद्रसूर्योः समानकालीनत्वं दर्शितम् ।

卐 कुत्रचिद् "पणतीए" इति पाठोऽस्ति, किन्त्वस्माभिर्विक्रमसंवत् १९७१ वर्षे मुद्रितपुस्तके तूपर्युक्त "पणसीए" इत्येवरूपपाठोऽपि लब्ध , अतस्तथैव सगृहीत' । अतो वक्ष्यमाणेन विक्रमसंवत् ५३५वर्षसूचकेन पृष्ठ२७२गतेन पाठान्तरेण सहास्य विरोधो नोद्भाव्यः ।

प्रमाणन्यायस्याध्यापकतया श्रीहरिभद्रसूरेः प्रकल्पनं प्रकल्पनमिव प्रतिभासते । यतः श्रीहरिभद्रसूरिगुम्फितानेकप्रमाणन्यायग्रन्थस्याध्ययनेन सम्प्राप्तपाण्डित्यवैभवस्य श्रीउद्योतनाचार्यस्य गुरुतुल्यादरतया श्रीहरिभद्रसूरिसस्मरणत्वेनाक्तोक्तेरधिकतरसम्भवात् श्रीउद्योतनसूरिसमकालिकत्वं श्रीहरिभद्रसूरेर्न सिध्यति ।

अन्ये केऽपि-श्रीउपमितिभवप्रपञ्चकथाप्रान्ते प्रशस्तौ श्रीसिद्धर्षिगणिभिः श्लोकत्रयेण △ स्वधर्मगुरुतया प्रशंसितः श्रीहरिभद्रसूरिः, श्रीउपमितिभवप्रपञ्चकथा च दशमशताब्द्यां सदृब्धास्ति ।

तथा च श्रीउपमितिकथासमाप्तिसंवत्सूचकश्लोकः -

"संवत्सरशतनवके द्विषष्टिसहिते ९६२ ऽतिलङ्घिते चास्याः ।
ज्येष्ठे सितपञ्चम्यां पुनर्वसौ गुरुदिने समाप्तिरभूत् ॥१०१६॥" इति । △

अत्र यद्यपि विक्रमसंवदादिविशेषसंवदभिधानं न कृतम्, तथाऽपि तादृग्ज्योतिषशास्त्रगणनापेक्षया विक्रमसंवदेवानुमीयते, तेनासम्भवग्रस्तमेव श्रीहरिभद्रसूरेर्विद्यमानताया विक्रमषष्ठशताब्द्यां प्रतिपादनमिति भणन्ति । तदपि न सम्यक् प्रतिभाति, यतः श्रीसिद्धर्षिगणिभिः सौगतसिद्धान्तमर्मग्रहणार्थं भृशं गमनागमनं कृत्वाऽन्ते श्रीहरिभद्रसूरिविरचितललितविस्तराभिधया प्रौढयुक्तिगम्भीरया शक्रस्तववृत्त्या श्रीमदर्हच्छासने जातनिश्चलचित्तैः श्रीहरिभद्रसूरयो गुर्वधिकबहुमानतया संस्तुता इत्येवार्थ उपमितिभवप्रपञ्चकथाया प्रान्ते प्रशस्तौ प्रोक्तहरिभद्रसूरिसम्बन्धिश्लोकत्रयस्य सम्यगवबुध्यते, न तु तदानीमेव श्रीहरिभद्रसूरिभिः प्रतिबोधितुं (ललितविस्तरा) कृतेति । अन्यथा □'मदर्थैव कृता येन वृत्तिर्ललितविस्तरा' इत्यत्रोक्तेवार्थक एवकारो न सङ्गच्छेत् । सूरिपुङ्गवेन मह्यं तद्वृत्तिर्न कृता । तथाऽपि सा यदा भवपरपराहेतुभूतार्हद्दर्शनत्यागस्य विच्छेदार्थं सम्यग्दर्शनसुदाढर्यार्थं च जाता तदा मदर्था न कृताऽपि मया मदर्थैव कृतेति मन्तव्येति तदर्थत्वात्, तथा च सति तत्रैव श्लोके पूर्वार्धे भणितस्य 'अनागतं परिज्ञाय' इत्यस्य व्यर्थं सघटते भाविनमपि मामेतादृशं विह्वलचित्तं तादृग्ज्ञानशक्त्या परिज्ञाय ललितविस्तरा रचितेत्येवरूपं र्थत्वात्तस्य । अत्र केऽपि 'अनागतम्' इत्यादीत्थं व्याख्यायन्ते शाक्यमतमर्मादानार्थं गतं मां न आगतं दृष्ट्वा ललितविस्तरा निर्मितेति । तन्न यतः कुवलयमालायामपि भवविरहशब्देन हरिभद्रसूरेरुल्लेखस्योपलम्भात्, कुवलयमालायाश्च विक्रमसंवत् ८३५ वर्षे जातत्वात् ।

किञ्च सिद्धर्षिभिः स्वयमेवोपमितिभवप्रपञ्चाया प्रथमप्रस्तावे—

"यथा च तां महाराजदृष्टिं तत्र रोरे निपतन्तीं धर्मबोधकराभिधानो महानसनियुक्तो निरीक्षितवानित्युक्तम्, तया परमेश्वरावलोकना भव्जीवे भवन्तीं धर्मबोधकरणशीलो 'धर्मबोधकर' इति यथार्थाभिधानो

● अन्यच्च सो सिद्धान्त०' इत्यादेस्तु जस्स=यस्य=श्रीवीरभद्राचार्यस्य प्रमाणन्यायेन हरिभद्रोऽस्ति सो वीरभद्राचार्यः सिद्धान्ते=सिद्धान्तपाठने गुरुरित्येवरूपस्य यद्वा ज(अ)स्स=य(अ)स्य=श्रीदाक्षिण्यचिह्नस्योद्योतनस्य सूरेः प्रमाणन्यायेन हरिभद्र=हरिभद्रोपमः स वीरभद्राचार्यः सिद्धान्ते=सिद्धान्तपाठने गुरुरित्येवरूपस्येत्यादेरन्यस्याऽप्यर्थस्य सम्भावनाया अत्यवकाशत्वात् ।

△ प्रबन्धकोषो-पदेशरत्नाकर श्राद्धप्रतिक्रमणार्थदीपिकादिषु पुनः सिद्धर्षिगणिः साक्षाद्धरिभद्रशिष्यो वर्णितः । किन्तु तच्चिन्त्यम्, श्रीसिद्धर्षिगणिभिः स्वयमेव कालव्यधानस्योक्तत्वादन्यत्र गगर्षिशिष्यत्वेनैवोपलम्भाच्च ।

△ श्रीसिद्धर्षिभिरेव पुनः पूर्वर्षिरचितप्राकृतभाषामयतः संस्कृतभाषाया रचिते श्रीचन्द्रकेवलिचरिते संवत् ५९८ वर्षस्य प्रतिपादनं कृतम्, किन्तु तदपि विचारणीयमस्ति ।

□ 'मदर्थेव' इति पाठान्तरस्यापि सम्भवात् । प्रभावकचरिते पुनः 'मदर्थं निर्मिता येन' इति पाठः ।

(★ सिंघीजैनग्रन्थमालाप्रकाशितकुवलयमालाग्रन्थप्रशस्तौ पुनर्गाथैव विद्यते—'सो सिद्धतेण गुरू, जुत्तिसत्थेहिं जस्स हरिभद्दो । बहु सत्थ-गंथ वित्थर-पत्थारिय-पयड सव्वत्थो ॥ ॥" इति ।)

[पाश्वस्थपृष्ठ २७२ पङ्क्ति १४-१५ द्रष्टव्या]

लब्धवम्भीवरः, तद्यथा—गुरुणाऽस्याऽतिशययोग्यतां ज्ञात्वाऽस्मै सारस्वतो महामन्त्रो दत्तः, तं रजन्यां परावर्तयतस्तस्य तन्मन्त्रजापप्रभावात्स्वर्गगङ्गानद्यां स्नान्त्यनावृतप्रावरणा सरस्वती तत्रागमत् । अयश्च तादृशी तां दृष्ट्वा मुखं परावर्तयति स्म । ततो वरनिःस्पृहोऽसौ तद्गुणाकर्षितया देव्या प्रसादीकृतः ॥१५२॥

अथ वप्पभट्टिसूरेर्जन्मादिपर्यायाणां संवत्सरानेकया पथ्यार्यया निरूपयति—

जम्मोऽस्स मयसये ८००ऽद्दे णिवा लहीअ स वयं मुणीहि ८०७जुए।
सम्भूहि ८११ आसि सूरी खमिओ रुद्दास्सगुत्तीहि ८९५ ॥१५३॥

(पच्छाजा)

(प्र०) "जम्मो" इत्यादि. "ऽस्स" त्ति, अस्य=श्रीवप्पभट्टिसूरेः "णिवा" त्ति, नृपात् विक्रमादित्यभूपालतः "मयसयेऽद्दे" त्ति, मदाः=जाति-कुल-लाभै-श्वर्य बल-रूप-तपः-श्रुत-विषया अष्टौ, तावन्मितानि शतानि यत्र तत्र मदशतेऽब्दे=वर्षे विक्रमसंवदष्टशत८००तमे शरदि वीरसंवत् १२७० वत्सरे "जम्मो" त्ति, जन्माऽभूत्, यदुक्त प्रभावकचरिते—

'विक्रमत शून्यद्वयवसु(८००) वर्षे भाद्रपदतृतीयायाम् । रविवारे हस्तर्क्षे जन्माऽभूद् वप्पभट्टिगुरो ॥७३६॥"
इति ।

"स" त्ति, सः=श्रीवप्पभट्टिसूरिः "मुणीहि जुए" त्ति, मुनिभिः=सप्तभिर्युते मद-(८) शतेऽब्दे विक्रमसंवत् ८०७ वर्षे वैशाखमासे शुक्लायां तृतीयाया तिथौ "वय" ति, व्रतं तपस्यां "लहीअ" त्ति, अलभ्यत=प्राप्नोत्, यदुक्तम्—

"शताष्टके च वर्षाणा गते विक्रमकालत. । सप्ताऽधिके राधशुक्लतृतीयादिवसे गुरौ ॥२८॥ " इति ।

"शम्भूहि" त्ति शम्भूभिः=रुद्रैरेकादशभिर्युते मद(८)शतेऽब्दे=विक्रमसंवत् ८११ वर्षे चैत्रे मासे कृष्णाष्टमीदिने "सूरी" त्ति, सूरिः=आचार्यः "आसि" त्ति, अभूत् ।

तथा चोक्त प्रभावकचरिते—

एकादशाधिके तत्र जाते वर्षशताष्टके(८८१)। विक्रमात्सोऽभवत्सूरि कृष्णचैत्राष्टमीदिने ॥११५॥" इति।

"रुद्दास्सगुत्तीहि" ति, रुद्रास्यानि=हरमुखानि पञ्च, गुप्तयः=ब्रह्मचर्यगुप्तयो नव,

यदाह—" १वसहि२कह३निसि४ज्जिदिय५कुड्ड तर६पुव्वकीलिय७पणीए ।
८अइमायाहार९विभूसणा य णववभचेरगुत्तीओ ॥ ॥" इति ।

रुद्रास्यानि च गुप्तयश्च रुद्रास्यगुप्तयस्ताभी रुद्रास्यगुप्तिभिर्वामगत्या पञ्चनवति९५ सङ्ख्यया युते मदशतेऽब्दे=विक्रमसवत् ८९५ वर्षे "खमिओ" त्ति, खं=देवलोकमितः=ययौ ।

हरसवसये जुए ऽद्दे ऽस्स जणी रुद्देहि[१०११]भावणाहि[१०२५]वयं ।
सरिसूहि[१०५५]हवीअ स जुगपवरो खमिओ य सिद्धगणे[१११५]॥१३१॥
(पच्छाज्जा)

(प्रे०) "**जुगपवरो**" इत्यादि, "**तया**" त्ति तदा=श्रीविबुधप्रभसूरिनिकटकाले "**जिणभद्दगणी गुरू खमासमणो**" त्ति क्षमाश्रमणः=क्षमाश्रमणसंज्ञकोपाधिविशेषितो जिणभद्रगणी गुरुः=आचार्यः "**जयउ**" त्ति जयतु=जयनशीलो भवतु । इति क्रियासम्बन्धः । किंविशिष्टः ? "**जुगपवरो तीसइमो**" त्ति श्रीहारिलसूरेः पश्चात् त्रिंशत्तमो युगप्रवरः=युगप्रधानः, पुनः किं विशिष्टः ? "**आगमवाई**" त्ति आगमवादी=सिद्धान्तवादी पुनरपि किम्भूतः ? "**कत्ता झाणसयगाइगथाण**" ति ध्यानशतकमादौ=प्रमुखे येषां ते ध्यानशतकादयः, अत्रादिशब्देन निशीथभाष्य विशेषावश्यकभाष्य-टीका विशेषणवती जीतकल्प-बृहत्संग्रहणी-बृहत्क्षेत्रसमासाद्यानां ग्रहणं द्रष्टव्यम् । ते च ते ग्रन्थाश्च ध्यानशतकादिग्रन्थास्तेषां ध्यानशतकादिग्रन्थानां कर्ता=निर्माता ।

अथामुष्य जन्मादिसत्कान् संवत्सरानेकयैव पथ्यार्यया भणति- "**हर०**" इत्यादि, "**ऽस्स**" त्ति अस्य=श्रीजिनभद्रगणिक्षमाश्रमणगुरोः "**जणी**" त्ति जनिः=जन्म "**रुद्देहि**" त्ति रुद्राः=शम्भव एकादश, उत्सर्पिण्यामवसर्पिण्यां वैकस्यामेकादशानां रुद्राणां भवनात् । तथा **चास्यामवसर्पिण्यां सञ्जातानामेकादशानां रुद्राणां नामानि विचारसारप्रकरणे-**
"भीमावलि[१] जियसत्तू[२] भद्दो[३] विस्साहलो य[४] सुपइट्ठो[५] । अचलो य[६] पुंडरीओ[७] अजियधर[८] अजियनाहो य[९]॥ पेढालु च्चिय दसमो १० इक्कारसमो य सच्चइसुयत्ति ११ । एए रुद्दनामा इक्कारस हुंति अगहरा ॥४७४॥"
इति रुद्रै=शम्भुभिरेकादशभिः "**जुए**" त्ति युते=युक्ते '**हरसवसये**" त्ति, हरश्रवांसि हरश्रवा वा=शम्भुकर्णा दश, तावन्मितानि शतानि यत्र तत्र हरश्रवःशते हरश्रवशते वा "**ऽद्दे**" त्ति अब्दे=वर्षे वीरसंवदेकादशधिकसहस्र१०११मिते शरदि जायते स्मः ।

"**भावणाहि वयं**" ति भावनाभिः=पञ्चमहाव्रतसत्काभिः पञ्चविंशत्या युते हर श्रवःशते हरश्रवशते वाऽब्दे=वीरसंवत् १०२५ वर्षे व्रतं=संयमादानमभूत् ।

"**स**" त्ति सः=श्रीजिनभद्रगणिक्षमाश्रमणः, "**सरिसूहि**" त्ति शराः=कामबाणा अरविन्दाऽशोक-चूत-नवमल्लिका-नीलोत्पललक्षणाः पञ्च इषवः=कामसायकाः पञ्च, शराश्चेषवश्च शरेषवस्तैः शरेषुभिः=पञ्चपञ्चाशता युते हरश्रवःशते हरश्रवशते वाऽब्दे वीरसंवत्पञ्चपञ्चाशदधिकसहस्र१०५५तमे शारदे "**जुगपवरो**" त्ति युगप्रवरः=युगप्रधानः '**हवीअ**" त्ति अभूत् ।

"**खमिओ य सिद्धगणे**" त्ति सिद्धाः तीर्थसिद्धादिभेदभिन्नाः पञ्चदश, **यदुक्तम्-**

निर्वन्धो यदि पूज्याना तदा नावभिधा यदि । विश्रुता वप्पभट्टीति कुरुध्वे तत्सुतोऽस्तु व ॥२६॥
ओमित्युक्ते जगत्पूज्यै श्रद्धालुनिवहस्तयो । आजन्मरसि(शि)पु प्रादान्महदास्था न निष्फला ॥२७॥
शताष्टके च वर्षाणा गते विक्रमकालत । सप्ताधिके राघशुक्लतृतीयादिवसे गुरौ ॥२८॥
मोढेरे ते विहृत्यामु दीक्षित्वा नाम चादधु । स्वाख्या त्रिकैकादशकाद् भद्रकीर्तिरिति श्रुतम् ॥२९॥
तत्पित्रो प्रतिपन्नेन पूर्वाख्या तु प्रसिद्धिभू । शिष्यमौलिमणेरस्य कलासङ्केतवेश्मन ॥३०॥
सघश्च तद्गुणग्रामरामणीयकरञ्जित । विदधेऽभ्यर्थना नेपामत्रावस्थानहेतवे ॥३१॥
योग्यतातिशय चास्य ज्ञात्वा सद्गुरवस्तत । सारस्वत महामन्त्र तत्रस्थास्तस्य ते ददु ॥३२॥
परावर्त्तयतस्तस्य निशीथे त सरस्वती । स्वर्गङ्गा स्रोतसि स्नान्त्यनावृतासीद् रहोभुवि ॥३३॥
तन्मन्त्रजापमाहात्म्यात् तान्गूरूपा समाययौ । ईषद्दृष्ट्वा च ता वक्त्र परावर्त्तयति स्म स ॥३४॥
स्व रूप विस्मरन्ती च प्राह वत्स ! कथ मुखम् । विवर्तसे भवन्मन्त्रजापात् तुष्टाहमागता ॥३५॥
वर वृणिवति तत्प्रोक्तो वप्पभट्टिरुवाच च । मातर ! विसदृश रूप कथ वीक्षे तवेदृशम् ॥३६॥
स्वा तनु पश्य निर्वस्त्रामित्युक्ते स्व ददर्श सा । अहो निविडमेतस्य ब्रह्मव्रतमिति स्फुटम् ॥३७॥
उच्चैश्च मन्त्रमाहात्म्य येनाह गतचेतना । ध्यायन्ती दृढतोपेण त्वत्पुर समुपस्थिता ॥३८॥
वरेऽपि निस्पृहे त्वत्र दृढ चित्रातिरेकत । गत्यागत्योर्मम स्वेच्छा त्वदीया निर्वृतो भव ॥३९॥
अन्यदा तत्र सस्थानां (°नो?, भद्रकीर्तिर्वहिर्गत । वृष्टौ देवकुल श्रित्वा तस्थौ स स्थैर्यसुस्थित ॥४०॥
तत्रस्थस्य पुमानेको नाकिपाकविडम्बक । समगस्त प्रशान्तश्रीवृष्टिव्याकुलितस्तदा ॥४१॥
श्यामाश्मोत्कीर्णवर्णौघा सहारहृदिवाङ्गना । स्वस्तिप्रशस्तिरत्रास्ति विहस्तितजडस्थिति ॥४२॥
काव्यानि वाचयामास महार्थानि सुधीरसौ । सख्याद् व्याख्यापयामास प्रत्यग्राद् बप्पभट्टित ॥४३॥
तदाख्यारञ्जितस्वान्त शान्ते वर्षेऽनिहर्षत । ययौ सहैव वसतौ वसतौ तत्र च स्थित ॥४४॥
ततो गुरुभिराशीर्भिरानन्द्य समपृच्छ्यत । आमुष्यायणता स्वस्याचख्यौ व्रीडावशानत ॥४५॥
वर्यमौर्यमहागोत्रसभूतस्य महाद्युते । श्रीचन्द्रगुप्तभूपालवशमुक्तामणिश्रिय ॥४६॥
कान्यकुब्जयशोवर्मभूपते सुयशोऽङ्गभू । पित्रा शिक्षावशात किंचिदुक्त कोपादिहागमम् ॥४७॥
अलेखीद् आमनाम स्व क्षितौ खटिकया तत । स्वनामाग्रहणेनास्य विवेकात्ते चमत्कृता ॥४८॥
व्यमृशन् सूरयस्तत्र नखच्छोटनपूर्वकम् । पूर्व श्रीरामसैन्येऽसौ दृष्ट षाण्मासिक किल ॥४९॥
पीलुवृक्षमहाजाल्या वस्त्रान्दोलकसस्थित । अचलच्छाययाऽस्माभिर्विज्ञात पुण्यपूरुष ॥५०॥
ततस्तज्जननी वन्यफलवर्ग विचिन्वती । अस्माभिर्गदिता वत्से ! का त्व किं वा भवत्कुलम् ॥५१॥
कथमीदृगवस्था च सर्वमाख्याहि न पुर । विश्वस्ता यद्वय त्यक्तसङ्गा मुक्तपरिग्रहा ॥५२॥
सावादीत् तातपादाना किमकथ्य तत प्रभो ! । श्रीकन्यकुब्जभूपालयशोवर्मकुटुम्बिनी ॥५३॥
अह सुतेऽत्र गर्भस्थे सपत्न्या मत्सरोदयात । पुरा लभ्यवर प्रार्थ्य नृपान्निर्वासितास्म्यहम् ॥५४॥
ततोऽनुशयतो हित्वा पितृ-श्वसुरमन्दिरे । स्थाने व आगम वन्यवृत्त्या वर्ते प्रभोऽधुना ॥५५॥
श्रुत्वेति सान्त्विताऽस्माभिश्चैत्यशुश्रूषया स्थिरा । तिष्ठ बाल प्रवर्द्धस्व जनकस्येत्र वेश्मनि ॥५६॥
तत्सपत्नी च केनाऽपि कालेन व्यनशत् स्वयम् । सा च राज्ञा चरै शोधयित्वा पश्चादनीयत ॥५७॥
प्राच्यासख्यगुणेनाथ मानेन बहुमानिता । वय चात्र ततो देशात् भूमावस्या विजह्रिम ॥५८॥
इति श्रुतश्च वृत्तान्तस्तद्देश्यपुरुषव्रजात् । अनेन साप्रत भाव्य तत्पुत्रेणैव धीमता ॥५९॥
यदाकृति शरीरस्य लक्षणानीदृशानि च । नर्त्ते नृपसुत पूज्या इति ध्यात्वाभ्यधुस्तत ॥६०॥
तत्रास्स्व वत्स ! निश्चिन्तो निजेन सुहृदा समम् । शीघ्र गृहाण शास्त्राणि संगृहाणामला कला ॥६१॥

हरसवसये जुए्ऽद्दे ऽस्स जणी रुद्दे हि[१०११]भावणाहि[१०२५]वयं ।
सरिसूहि[१०५५]हवीत्र स जुगपवरो खमिओ य सिद्धगणे[१११५]॥१२१॥
(पच्छाज्ञा)

(प्रे०) "**जुगपवरो**" इत्यादि, "**तया**" त्ति तदा=श्रीविबुधप्रभसूरिनिकटकाले "**जिणभद्दगणी गुरू खमासमणो**" त्ति क्षमाश्रमणः=क्षमाश्रमणसंज्ञकोपाधिविशेषितो जिणभद्रगणी गुरुः=आचार्यः "**जयउ**" त्ति जयतु=जयनशीलो भवतु । इति क्रियासम्बन्धः । किंविशिष्टः ? "**जुगपवरो तीसइमो**" त्ति श्रीहारिलसूरेः पश्चात् त्रिंशत्तमो युगप्रवरः=युगप्रधानः, पुनः किं विशिष्टः ? "**आगमवाई**" त्ति आगमवादी=सिद्धान्तवादी पुनरपि किम्भूतः ? "**कत्ता झाणसयगाइगथाण**" त्ति ध्यानशतकमादौ=प्रमुखे येषां ते ध्यानशतकादयः, अत्रादिशब्देन निशीथभाष्य विशेषावश्यकभाष्य-टीका विशेषणवती जीतकल्प-बृहत्संग्रहणी-बृहत्क्षेत्रसमासाद्यानां ग्रहणं द्रष्टव्यम् । ते च ते ग्रन्थाश्च ध्यानशतकादिग्रन्थास्तेषां ध्यानशतकादिग्रन्थानां कर्ता=निर्माता ।

अथामुष्य जन्मादिसत्कान् संवत्सरानेकयैव पथ्यार्यया भणति–"**हर०**" इत्यादि, "**ऽस्स**" त्ति अस्य=श्रीजिनभद्रगणिक्षमाश्रमणगुरोः "**जणी**" त्ति जनिः=जन्म "**रुद्दे हि**" त्ति रुद्राः=शम्भव एकादश, उत्सर्पिण्यामवसर्पिण्यां वैकस्यामेकादशानां रुद्राणां भवनात् । तथा **चास्यामवसर्पिण्यां सञ्जातानामेकादशानां रुद्राणां नामानि विचारसारप्रकरणे–**
"भीमावलि[१] जियसत्तू[२] भद्दो[३] विस्साहलो य[४] सुपइट्ठो[५] । अचलो य[६] पुण्डरीओ[७] अजियधर[८] अजियनाहो य[९]॥
पेढालु च्चिय दसमो १० इक्कारसमो य सच्चइसुयत्ति ११ । एए रुद्दनामा इक्कारस हुंति अगहरा ॥४७४॥"
इति रुद्रैः=शम्भुभिरेकादशभिः "**जुए**" त्ति युते=युक्ते '**हरसवसये**" त्ति, हरश्रवांसि हरश्रवा वा=शम्भुकर्णा दश, तावन्मितानि शतानि यत्र तत्र हरश्रवःशते हरश्रवशते वा "**ऽद्दे**" त्ति अब्दे=वर्षे वीरसंवदेकादशाधिकसहस्र१०११मिते शरदि जायते स्मः ।

"**भावणाहि वयं**" ति भावनाभिः=पञ्चमहाव्रतसत्काभिः पञ्चविंशत्या युते हर श्रवःशते हरश्रवशते वाऽब्दे=वीरसंवत् १०२५ वर्षे व्रतं=संयमादानमभूत् ।

"**स**" त्ति सः=श्रीजिनभद्रगणिक्षमाश्रमणः, "**सरिसूहि**" त्ति शराः=कामबाणा अरविन्दाऽशोक-चूत-नवमल्लिका-नीलोत्पललक्षणाः पञ्च इषवः=कामसायकाः पञ्च, शराश्चेषवश्च शरेषवस्तैः शरेषुभिः=पञ्चपञ्चाशता युते हरश्रवःशते हरश्रवशते वाऽब्दे वीरसंवत्पञ्चपञ्चाशदधिकसहस्र१०५५तमे शारदे "**जुगपवरो**" त्ति युगप्रवरः=युगप्रधानः '**हवीअ**" त्ति अभूत् ।

"**खमिओ य सिद्धगणे**" त्ति सिद्धाः तीर्थसिद्धादिभेदभिन्नाः पञ्चदश, **यदुक्तम्–**

श्रुत्वेति तत्पुरोऽवोचद् वाचयमपतिस्तदा । चारित्राचारधौरेय सुधामधुरया गिरा ॥९८॥
रत्नदीपो यथागारे बाह्यान्तरतमोपह । तेजस्वी निश्चलस्थेमा तथा कल्पिरेष न ॥९९॥
भातुनाम्भोरुह यद्वत् शशिनेव विभावरी । शिखण्डीव पयोदेन मन्त्री मुद्रा विना यथा ॥१००॥
स्तम्भेनेवोज्झित गेह देह च प्राणधारिणाम् । म्लायत्येव मनोवृत्तिस्तथास्माकममु विना ॥१०१॥ युग्मम् ।
इत्याकर्ण्य प्रभोर्वाच प्राह कृतधियोऽथ ते । सन्त परोपकारार्थं नात्मार्ति गणयन्ति यत ॥१०२॥
तरवस्तरणेस्ताप स चाभ्रे ल्लङ्घनक्लमम् । पाथोधिर्नौश्रम सोढा वोढा कुर्म क्षितेर्धुरम् ॥१०३॥
वारिदो वर्षणक्लेश क्षितिविश्वासुमत्क्लमम् उपकाराद् ऋतेऽमीषा न फल किञ्चिदीक्ष्यते ॥१०४॥ युग्मम् ।
तत प्रसादप्रावीण्यात् प्रेषयध्व कृतीश्वरम् । एव कृत्वा प्रभुत्वेऽस्मत्स्वामिवाचागिरे पविम् ॥१०५॥
तेषा निर्बन्धसम्बन्धादित्यभ्युपगते गुरु । श्रीमन्त सघमाहूय तत्प्रतिष्ठार्थमादिशत् ॥१०६॥
अथोत्सवेच्छुभि स्वच्छै श्रावकैर्गच्छवत्सलै । सघ समग्रमामन्त्र्या विहिताया जिनालये ॥१०७॥
लग्नेऽथ सौम्यषड्वर्गाधिष्ठिते परमाक्षरम् । सप्तग्रहबलोपेते श्रुतोक्तविधिपूर्वकम् ॥१०८॥
शिष्यस्य विश्वशिष्यस्य कर्णे चन्दनचर्चिते गर्ज्जत्सु तूर्यसघातेष्वर्हत्तत्त्व न्यवीविशत् ॥१०९॥ त्रिभिर्विशेषकम्
बप्पभट्टिस्तत श्रीमानाचार्य कोविदार्यमा । दुर्वादिसिंहशरभोऽभवद् विश्वस्य विश्रुत ॥११०॥
अथानुशिष्टो विधिवद् गुरुभिर्ब्रह्मरक्षणे । तारुण्य राजपूजा च वत्सानर्थद्वय ह्यद ॥१११॥
आत्मरक्षा तथा कार्या यथा न च्छल्यते भवान् । वामकामपिशाचेन यत्य तत्र पुन पुन ॥११२॥
भक्त भक्तस्य लोकस्य विकृतीश्चाखिला अपि । आजन्म नैव भोक्ष्येऽहममु नियममग्रहीत् ॥११३॥
तद्गत्तूर्यध्वनि श्राद्धाङ्गना सङ्गीतमङ्गल । गौरवाभ्यर्थित सघेनाथ प्रायादुपाश्रये ॥११४॥
एकादशाधिके तत्र जाते वर्षशताष्टके (८११) । विक्रमात्सोऽभवत्सूरि कृष्णचैत्राष्टमीदिने ॥११५॥
श्रीमदाममहाभूपश्रेष्ठामात्योपरोधत । अनिच्छतोऽपि सघस्य प्रेषीत्तै सह त गुरु ॥११६॥
प्रयाणै प्रवणै प्राप कन्यकुब्जपुर तत । प्रासुके बहिरुद्देशेऽवतस्थे स वनाश्रिते ॥११७॥
उद्यानपालविज्ञप्ते परिज्ञाय समागतम् मुनीशमवनीशोऽभूद् बद्धरोमाञ्चकञ्चुक ॥११८॥
तत प्रत्यापण हट्टशोभाशोभितरथ्यकम् । प्रतिगेह प्रतिद्वार बद्धवन्दनमालिकम् ॥११९॥
उद्यद्धूपघटीधूमस्तोमै कृष्णाभ्रविभ्रमम् । कुर्वाणमाहितोल्लोचैरेकच्छाय महीतलम् ॥१२०॥
कश्मीरजद्रवै सिक्तधर काश्मीरभूमिवत् । नगर नगभिद्रङ्गतुल्य भूपनिरातनोत् ॥१२१॥-त्रिभिर्विशेषकम् ।
प्ररूढप्रौढसौहार्दवसुधाधीशसस्तुत. । पुर पौरपुरन्ध्रीभिराकुलाट्टालक तत ॥१२२॥
प्रविवेश विशामीश इव सच्छत्रचामर । अभ्रलिहद्विपारूढो विवोढोपशमश्रिय ॥१२३॥ युग्मम् ।
सौधे राजा तत सिंहासने गदिका(कया ?)स्तृते । उपावेशयदानन्दात्सुहृद मुनिनायकम् ॥१२४॥
आशुप्रभावनोद्भूतरङ्ग· सघ प्रभोरथ । परिचर्या परा चक्रे वक्रेतरमना सदा ॥१२५॥
शश्वद्राजसभायामावपि निर्धूतकल्मष । बप्पभट्टि प्रभु श्रीमान् भूपाग्रे सुकृत जगौ ॥१२६॥
कल्याणपादपारामजलवाहजलप्लव । धर्म एव निराधाराधार परपदप्रद ॥१२७॥
तस्यादौ प्रथित दान तच्च क्षेत्रेषु सप्तसु। तेषु च प्रथम विद्धि सिद्धिकृज्जिनमन्दिरम् ॥१२८॥
अपर बिम्बनिर्माणमथ सिद्धान्तलेखनम् । चातुर्वर्ण्यस्य सघस्याभ्यर्चैतानि किल क्रमात् ॥१२९॥
तदन्तरा च सर्वेषामाधारो जैनमन्दिरम् । जिना श्रुतधराश्चाऽत्र स्थिता सघप्रबोधकाः ॥१३०॥
श्रीमता सति सामर्थ्ये विधेय विधिवच्च तत । बहवो यत्प्रभावेन भव्या सद्गतिमाप्नुयु ॥१३१॥
इति तद्वाक्यमाकर्ण्य प्रकर्णाना शिरोमणि । अवोचदामभूपाल प्रालेयाशुस्फुरद्यशा ॥१३२॥
पृथ्वी देश पुर हर्म्यं तिथिर्मास ऋतु समा । धन्यान्येतानि भास्यन्ते यानि त्वद्दर्शनाशुभि ॥१३३॥
इत्युक्त्वादात् तदादेश भूमिलक्षणवेदिनाम् । कोशकर्मनराध्यक्षपुसा च श्रीजिनौकसे ॥१३४॥-युग्मम ।

उत्तिण्णो हि जेण सिद्धान्तसागरो,
विउलअगाधसंतिदगुणरयणागरो ॥१४१॥ (आवली)

(प्रे) "हेम०" इत्यादि, "विबुहप्पहप्पए" त्ति विबुधप्रभस्य=विबुधप्रभनाम्नः सूरेः पदे=पट्टे 'स' त्ति, सः=विख्यातनामा "जयाणदगुरू" त्ति; जयानन्दः=जयानन्दसंज्ञकः, स चासौ गुरुः=सूरिः=साधुधुर्यः 'दिप्पए' त्ति "व्यत्ययश्च" (सि० ८-४ ४४७) इति हैमप्राकृतलक्षणेन भूतार्थे वर्तमाना विभक्तिः, दीप्यते स्म=शुशुभे । कस्मिन् किमिव ? इत्याह-"हेमगिरिम्मि पंडुगवणमिव" त्ति, हेमगिरौ=मेरुशैले पाण्डकवनमिव दीप्यते यथा सुरशीखरिणि पाण्डुकवनं शोभते तथा विबुधप्रभसूरिपट्टे जयानन्दसूरिरशोभत ।

स क ? इत्याह-"उत्तिण्णो" इत्यादि, "जेण" त्ति येन=जयानन्दसूरिणा "सिद्धान्तसागरो" त्ति सिद्धान्तः=समयः, स एव सागरः=समुद्रः, सिद्धान्तसागरः "उत्तिण्णो" त्ति उत्तीर्णः=पारङ्गतः, स च सिद्धान्तसागरः कीदृग् ? इत्याह—"विउलअगाधसतिदगुणरयणागरो" त्ति विपुलः=विस्तीर्णः=विशालः, अगाधः=अतलस्पर्शमध्यभागः, शान्तिद = समाधिकारकः, गुणा एव रत्नानि गुणरत्नानि तेषामाकरः=निधिः=गुणरत्नाकरः, ततो विपुलादिपदचतुष्कस्य कर्मधारयतत्पुरुषसमासः । इदमुक्तं भवति-यथा समुद्रः परतीरस्याऽदृश्यमानत्वेन विपुलः, मध्यतलभागस्य ज्ञातुमशक्यत्वेनाऽगाधः, तापादिना श्रान्तानां शीतलवाय्वादिना शान्तिदो रत्नानामाकरश्च भवति; तथाऽयं सिद्धान्तसागरोऽपि बृहत्त्वाद्विपुलः, अर्थगाम्भीर्यादगाधः, रागादितापशमनकारित्वाच्छान्तिदः, क्षमादिगुणप्रापकत्वाद्गुणलक्षणरत्नानामाकरो भवति ॥१४१॥

साम्प्रतं तदानीं सञ्जातस्यैकत्रिंशस्य युगप्रधानस्य श्रीस्वातिसूरेरभिधित्सया पथ्याऽऽर्यारूपगाथाद्वयं प्रतिपादयति—

आसी स साइसूरी तयाणि इगतीसमो जुगपहाणो ।
जम्मोऽस्स खसिद्धिजुए १०८० वीराऽद्दे संभुकराणसये ॥१४२॥

(पच्छाज्जा)

संकरसयम्मि ११०० दिक्खा परमाहम्मिअमहीसर १११५ पमाणो ।
स हवीअ जुगपहाणोऽमतत्तसद्धपडिमे ११९० खमिओ ॥१४३॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "आसो" इत्यादि "तयाणि" त्ति तदानीं=तस्मिन् समये "स साइसूरी" त्ति, सः=प्रथिताभिधः "साइसूरी" त्ति, स्वातिसूरिः "इगतीसमो जुगपहाणो" त्ति, एकत्रिंशो युगप्रधानः "आसो" त्ति आसीत्=बभूव ।

सुधीभि कथितेऽर्थेऽस्मिन् सूरिणाऽङ्गीकृते सति । तज्ज्ञात्वा धर्मभूपाल परमानन्दमाप्तवान् ॥१७०॥
आमराजप्रवेशाच्च सहस्रगुणित तत । प्रवेशोत्सवमाधत्त पुर्यामाचार्यभूपते ॥१७१॥
धर्मभूपे तदा साक्षादिव धर्म पुर स्थिते । चक्रवर्ती सुधीवृन्दे प्रोचे वृत्तमिद तदा ॥१७२॥ तद्यथा—
रुचिरचरणारक्ता सक्ता सदैव हि सद्गतौ, परमकवय काम्या सौम्या वय धवलच्छदा ।
गुणपरिचयोद्धर्षा सम्यग्गुणातिशयस्पृश, क्षितिप । भवतोऽभ्यर्ण तूर्ण सुमानससश्रिता ॥१७३॥
तत्रापि काव्यवक्तृत्वलीलानन्दितपार्षदा । अवतस्थे सुख सूरिर्दोगुन्दग इवामर ॥१७४॥
ततश्चामनृप प्रातरनायाते प्रभौ तदा । नगरान्तर्बहिर्ग्रामाकरादिष्वगवेषयत ॥१७५॥
अप्राप्तौ बालमित्रस्य पारवश्य गत शुच । वैलक्ष्यमक्षत भेजे च्यवनोन्मुखवन् क्वचित् ॥१७६॥
अन्येद्युर्बहिरारामे गच्छन्नेक ददर्श स । वभ्रु वभ्रु भुजङ्गेन हत चिरञ्जीवितस्तत ॥१७७॥
अस्य मौलौ मणि तत्रालुलोके सम्यगीक्षया । सस्तभ्य तुण्डमादत्त फणीन्द्रमपभीर्नृप ॥१७८॥
तमाच्छाद्याथ सवृत्त्या सगृह्य निलये नृप । आगत्य श्लोकशल्क स जजल्प विदुषा पुर ॥१७९॥
'शस्त्र शास्त्र कृषिर्विद्या अन्यो यो येन जीवति ।'
तै पूरिता समस्येयमभिप्रायैर्निजैर्निजै । बिभेद हृदय नैव तेषामेकोऽपि भूपते ॥१८०॥
सस्मार भारतीपुत्र बप्पभट्टि तदा दृढम् । मालतीकुसुमामोदमसौ रोलम्बबालवत ॥१८१॥
खद्योता इव चन्द्रस्य बालेया इव दन्तिन । मम मित्रस्य विद्वास कला नार्हन्ति षोडशीम् ॥१८२॥
टङ्कलक्ष ददे हेम्नस्तस्य य किल पूरयेत् । समस्या मदभिप्रायात प्रादात् पटहमीदृशम् ॥१८३॥
अथो दुरोदराजीव एक सर्वस्वनाशत । श्रुत्वेति स धनोपायममु श्लोकार्धमाददे ॥१८४॥
ज्ञात्वा कुतोऽपि गौडेषु पुर्यां तत्रागमच्च स । बप्पभट्टिप्रभु नत्वा कथयामास तत्पुर ॥१८५॥
अपरार्द्ध स चाह स्म क्लेशलेश विना यत । सरस्वतीप्रसादो हि विश्वक्लेशाब्धिकुम्भभू ॥१८६॥ तच्च-
'सुगृहीत हि कर्तव्य कृष्णसर्पमुख यथा ॥१८७॥
नागावलोक इत्याख्याया राज्ञस्तत्र प्रभुर्ददौ । तत प्रभृत्यनेनाऽपि नाम्ना विख्यातिमाप स ॥१८८॥
स द्यूतकृत् तदादायागमद् आमनृपाग्रत । मुदा निवेदयामास तच्चमत्कारकारणम् ॥१८९॥
केनाऽपूरीति राज्ञा च पृष्ट प्रोवाच स प्रभो । श्रीबप्पभट्टिनेत्युक्ते ददौ तस्योचित नृप ॥१९०॥
विरहस्य विनोदायान्येद्युर्भूपो बहिर्ययौ । मृत न्यग्रोधवृक्षस्य तले पान्थ ददर्श च ॥१९१॥
शाखाया लम्बमाना च तथा करकपत्रिकाम् । श्च्योतन्ती विप्रुषा व्यूह गाथार्ध लिखित तथा॥१९२॥तच्च-
'तइया मह निग्गमणे पियाइ थोरसुएहि ज रुन्न ।'
प्राग्वत्तदपि नापूरि भूपालस्य मनोहरा । केनाऽपि विदुषा कोऽर्क विना विश्वप्रकाशक ॥१९३॥
अस्यामलक्ष्यलक्ष्याया समस्याया स देवनी । पुनर्ययौ च श्रीबप्पभट्टिपार्श्वेऽवदच्च ताम् ॥१९४॥
स चाऽनायासतो विद्वन्मौलि प्रभुरपूरयत् । गृहीत्वा स पुन प्रायादुत्तरार्धं नृपाग्रत ॥१९५॥ तच्च—
'करवत्तिबिदुनिवडणमिहेण त अज्ज सभरिअ' ॥१९६॥
अन्येन विदुषा केनचिदध्वन्येन तत्र तत् । सर्वं दृष्ट्वा दोधकार्धमभण्यत यथामति ॥१९७॥ तथाहि—
करवत्तयजलबिंदुआ पथिय हियइ निरुद्ध । पथिकोक्ति ।
सा रोअती सभरी नयरि ज मु की मुद्ध ॥१९८॥ श्रीबप्पभट्टेरुक्ति । इति पाठान्तरम् ।
राजा श्रुत्वेति दध्यौ च रसपुष्टिमभूदृशीम् । मम मित्र मुनिस्वामी कविर्ग्रथ्नाति नाऽपर ॥१९९॥
प्रधानान् भूपति प्रैषीदाह्वानाय मुनीशितु । तदुपालम्भगर्भाणि दोधक वृत्तमार्यया ॥२००॥
तैश्चोपान्त प्रभोराप्याप्राप्य विगतचेतनै । वाचिक कथयामासे कुशलप्रश्नपूर्वकम् ॥२०१॥ तद्यथा—

(प्रे०) "**ममथो**" इत्यादि, "**किं**" ति किमित्यव्ययं प्रश्न-वितर्कादिषु वर्तते ततोऽत्रो-त्प्रेक्षाद्योतने वर्तते किं=नूनं "**जस्स**" त्ति यस्य श्रीरविप्रभसूरेः "**अगस्स**" त्ति अङ्गस्य=देहस्य "**सिरीए**" त्ति श्रिया=लक्ष्म्या "**तिरक्कओ**" त्ति तिरस्कृतः=अपमानीकृतः "**मंमथो**" त्ति मन्मथः=कामदेवः "**अणंगो**" त्ति अनङ्गः=तनुरहितः "**हवीअ**" त्ति बभूवः=संजातः ।

यत्तदोर्नित्यसापेक्षत्वादाह-"**सो**" त्ति सः=अनन्तरदर्शितस्वरूपविशेषः "**रविपहसूरी**" त्ति रविप्रभः=रविप्रभसंज्ञासंज्ञित आचार्यः, किम्भूतः ? "**गणस्स सामी**" त्ति, गणस्य=मुनि-समुदायस्य स्वामी=अधिपतिः, "**जयाणन्दसूरिपट्टे**" त्ति जयानन्दसूरिपट्टे=जयानन्दपद-वाच्यमुनिधुरीणपदत्यरतः "**जयउ**" त्ति जयतु=जयनशीलोऽस्तु ।१४४।।

अथ पुनरप्यमुष्यैव विशिष्टतां प्रदर्शयन्पथ्यागीति भणति—

णड्डूलपुरम्मि कया जेणं सिरिणेमिचेइअपइट्ठा ।
भूवा सत्तसयेऽद्दे ७००वीरा गुरुपयजिणाहिअसहस्से ११७०।।१४५।।(पथ्यागीई)

(प्रे०) "**णड्डूलपुरम्मि**" इत्यादि, "**जेण**" ति येन=श्रीरविप्रभसूरिणा "**भूवा**" त्ति भूपात्=विक्रमनृपात् "**सत्तसयेऽद्दे**" त्ति, सप्तशतानि यत्राब्दे तत्र सप्तशतेऽब्दे-विक्रम-सवत्७००वर्षे "**वीरा गुरुपयजिणाहियसहस्से**" त्ति, अत्रापि "ऽद्दे" इति पदं 'डमरुक-मणि'न्यायेन योज्यते ततो वीरात्=श्रीवर्धमानस्वामिमुक्तिगमनकालाद् गुरुपदजिनाः=उत्कृष्ट-पदे तीर्थङ्कराः, युगपदेकस्मिन् काले सर्वाधिकसङ्ख्याका अर्हतः सप्तत्यधिकशतम्, तेनाधिकं सहस्रं=दशशतं यत्र तत्र गुरुपदजिनाधिकसहस्रेऽब्दे वीरसवत्सप्तत्यधिकशतोत्तरसहस्र११७० वर्षे "**णड्डूलपुरम्मि**" त्ति नड्डूलाभिधे नगरे "**सिरिणेमिचेइअपइट्ठा**" त्ति श्रीनेमेः=श्रीनेमिनाथस्य द्वाविंशस्य जिनस्य चैत्यस्य चैत्ये वा=प्रासादस्य प्रासादे वा प्रतिष्ठा श्रीनेमिचैत्यप्रतिष्ठा "**कया**" त्ति कृता=विहिता ।

यदुक्त गुर्वावल्याम्—

"नड्डूलाह्वपुरे प्रतिष्ठितवर श्रीनेमिचैत्यस्ततो-
ऽप्यासीद् वर्षशते रविप्रभगुरु ३१ श्रीविक्रमात् सप्तभि ७०० ।।४१।।" इति ।

तथा श्रीतपागच्छपट्टावल्यामपि—

"श्रीजयानन्दसूरिपट्टे त्रिंशत्तम श्रीरविप्रभसूरि ।। स च श्रीवीरात सप्तत्यधिकैकादशशत११७०वर्षे, वि० सप्तशत७००वर्षे नड्डूलपुरे श्रीनेमिनाथप्रतिष्ठाकृत् ।" इति । ।।१४५।।

अथ तत्कालभाविनं श्रीसिद्धसेनगणिनं व्यावर्णयन्पथ्यार्यां व्याहरति—

प्रातिलोम्येन ११५२ संख्यं मानं यत्र तत्र करव्रतवीरगणधरमाने "दे" त्ति अब्दे=वर्षे वीरसंवत११५२शरदि "जणी" त्ति जनिः=जन्माभवत्।

"वोमविगइगणसंखे पव्वज्जा" त्ति व्योम=आकाशं शून्यम्, विकृतयो घृत-तैलादयः षट्, गणाः=शंकरस्य नन्द्याद्या गणा एकादश, एतेषामङ्कानां वामगतिमीलितानां ११६० प्रमाणा संख्या यस्य तादृशे व्योमविकृतिगणसंख्ये=षष्ट्यधिकैकशतोत्तरसहस्र११६०तमे वीरसंवदि प्रव्रज्या=महाव्रतादानमभूत्।

"स" त्ति सः=श्रीपुष्पमित्रसूरिः "सुण्णवीरगणरुद्दे" त्ति शून्यम्, वीरगणाः=महावीरप्रभोर्गणा नव, अन्तिमगणधरचतुष्के द्वयोर्द्वयोरेकगणत्वात्। रुद्रा एकादश, एतेऽङ्काः पश्चानुपूर्व्या११९० संख्या यत्र तत्र शून्यवीरगणरुद्रे=वीरसंवत्११९०वर्षे "हवीअ जुगपहाणो" त्ति युगप्रधानो बभूव।

"णहसरक्कम्मिए" त्ति नभः=अन्तरिक्षं शून्यम्, शराः पञ्च, अर्काः=सूर्या द्वादश, ते च लौकिकसमयाऽनुसारेण द्वादशोच्यन्ते,

तथा च तत्सङ्ख्याप्रतिपादकं पुराणगतश्लोकचतुष्कम्--

'अरुणो माघमासे तु सूर्यो वै फाल्गुने तथा। चैत्रे मासे तु सविता, भानुर्वैशाखमासि च ॥१॥
ज्येष्ठमासे तु मार्तण्ड, आषाढे तपते रवि। गभस्ति श्रावणे मासि, तथा भाद्रपदे भग ॥२॥
आदित्यश्चा-ऽऽश्विने मासे, कार्तिके तु दिवाकर। मार्गशीर्षे तपेद् मित्र, पौषे मासि सहस्ररुक् ॥३॥
इत्येते द्वादशादित्या काश्यपेया प्रकीर्तिता। नित्य द्वादशमासेषु, तपन्ते द्वादशाऽव्ययमी ॥४॥" इति।

एतैरङ्कैर्वामगत्या न्यस्तैः १२५० इति सङ्ख्यया मिते=नभःशरार्कमिते=वीरसंवदि पञ्चाशदुत्तरद्वादशशत१२५०तमे 'सग्गमिओ' त्ति, स्वर्ग=सुरालयमितः=जगाम।

एवञ्चाऽसौ अष्ट८वर्षाणि गृहस्थत्वे, त्रिशद्३०वर्षाणि सामान्यव्रतित्वे, षष्टि६०-वर्षाणि युगप्रधानत्वे चेति सर्वायुश्चाऽष्टनवति९८वर्षाणि परिपाल्य ननु त्रिदशान् बोधयितुं स्वर्गपुरी ययौ ॥१४७-१४८॥

अधुना श्रीसिद्धार्थकुलप्रासादध्वजस्य तीर्थाधिपतेरेकत्रिंशं पट्टभूतं श्रीयशोदेवसूरिं भाषमाणश्चित्रलेखां भाषते--

तरलुव्व स जसोदेवो सरस्सइकंठभूसणो,
गुरू सोहीअ रविप्पहसूरिपयहारभूसणो।

बप्पभट्टेर्विधेयस्य विनेयस्य मुखाम्बुजम् । दिदृक्षवो मुनिं प्रैपुर्द्धं चाह्वानहेतवे ॥२७५॥ तच्चेदम्-
सारीर सयल बल विगलिअ दिट्ठो वि कट्ठेण मे, दट्ठुव्वेसु पयट्टई परिगयप्पाय तहा आउग।
पाणा पाहुणय,व्व गन्तुमहुणा वट्ट ति वच्छा तुम, म दट्ठु जइ अत्थि ता लहु लहु इज्जाहि निस्ससय॥२७६॥
त दृष्ट्वा बहुमानार्द्रो गुरौ द्रागाजगाम च । राजपु भि सम मोढेरके प्रभुपदान्तिके ॥२७७॥
प्रभो स न्यासविन्यास रुन्धन् प्रथमदर्शने। अतृमम्नस्य वात्सल्ये तेनाऽसौ जल्पित शमी ॥२७८॥तथाहि-
वपु कुब्जीभूत तनुरपि शनैर्यष्टिशरणा, विशीर्णा दन्ताली श्रवणविकल कर्णयुगलम् ।
निरालोक चक्षुस्तिमिरपटलध्यामलमहो, मनो मे निर्लज्ज तदपि विषयेभ्य स्पृहयति ॥२७९॥
ततो वत्स मतिस्वच्छ गच्छवात्सल्यतत्पर । भव त्व कुरु साहाय्य प्रेत्य मे चानृणो भव ॥२८०॥
तत आराधना कृत्वा परलोक समाधिना । ते ययुर्गणशास्ति च चक्रेऽसौ राजपूजित ॥२८१॥
श्रीमद्गोविन्दसूरे श्रीनन्नसूरेश्च स प्रभु । बप्पभट्टि समर्प्याथ गच्छ सव च सोद्यम ॥२८२॥
अनुज्ञाप्य क्षितिस्वामिप्रधानैराद्दतैर्वृत । पुनरप्यायययावामधाम निर्ग्रन्थनायक ॥२८३। युग्मम् ।
सभासीनोऽन्यदा राज्ञ सूरि, प्रेक्षणकक्षणे । प्रवीणपुस्तिकाहरत पुरूपेव सरस्वती ॥२८४॥
द्विधाऽक्षरे पदे स्थास्नुर्दृष्टिस्तत्क्लेशनाशिनी। तदा कदाचिदाधासीन्नीलचण्डातके दृशम् ।२८५॥ युग्मम् ।
त दृष्ट्वा भूपतिस्तत्र जातरागविकल्पत । चित्ताभिसन्धिसम्बद्धा गाथामेनामचिन्तयत् ॥२८६॥ तथाहि-
सिद्धततपारगयाण जोईण जोगजुत्ताण । जइ ताण पि मयच्छी जयति ता ति च्चिय पमाण ॥२८७॥
अमूदृक्कार्यनिर्वाहज्ञानहेतु ततस्तदा । स्नेहादेव निशि प्रैपीत ता पु वेपा तदाश्रये ॥२८८॥
सा निलीना क्वचिद् भव्यगणे स्वस्थानगे तत । रह शुश्रूपितु सूरिं प्रारेभे धैर्यभित्तये ॥२८९॥
स्त्रीकरस्पर्शतो ज्ञात्वाऽत्रोपसर्गमुपस्थितम् । विममर्श नृपाज्ञानतमसञ्चेष्टित ध्रुवम् ॥२९०॥
स सज्जः सज्जयसज्जमनोभूविजये तत । अष्टाङ्गयोगसद्धर्मसवर्म्मितततनुर्मुदा ॥२९१॥
शुभध्यानाश्वमारूढ सन्तोषप्रक्षराक्षतम् । दृढसयमकोदण्डाकृष्टध्यतपआशुग ॥२९२॥
सद्बोधपुष्टिरिष्टिगी· शक्तिशक्तिस्फुरत्कर । अनास्थया समुत्तस्थावन्तरङ्गद्विपज्जये ।२९३॥ त्रिभिर्विशेषकम् ।
अब्रवीद् ब्रूहि काऽत्र त्व किमर्थं समुपस्थिता । ब्रह्मवर्मवतामेषा स्यान्न भूमिर्भवादृशाम् ॥२९४॥
अध्वन्येपु यथा व्याली हारहूर द्विजालये । पल दर्शनशालासु हल राजकुले यथा ॥२९५॥
धर्मे प्राणवधो यद्वद् वेदोच्चारे यथान्त्यज' । नालिकेर कपौ यद्वद् द्विके दधिफलं यथा ॥२९६॥
चन्दने मक्षिका यद्वद् रामठं कुङ्कुमे यथा । कर्पूरे लशुनो यद्वत्तथाऽत्र त्व न चित्तहृत् ॥२९७॥ विशेषकम् ।
विश्वस्रोत श्रवद्विस्रजम्बालत्र लुपाकृतौ । लज्जास्थानेऽबलादेहे रज्यन्ते के कृमीन् विना ।२९८॥
श्रुत्वेति तानुवाचाऽसौ नाह पुज्याभिलाषिणी । आययौ भवतो मार्गभ्रष्टान् बोधयितु स्फुटम् ॥२९९॥
सपत्सपत्तये दानधर्म्म लोकोऽनुरुध्यते । ऐश्वर्याय तपस्तच्च तच्च राज्य विना न हि ॥३००॥
स्वभुवोरपि तत्राऽपि सार सारङ्गलोचना । यया विना नृदेवानामवकेशीव पु जनु ॥३०१॥ उक्तञ्च-
राज्ये सार वसुधा वसुन्धरायां पुर पुरे सौधम् । सौधे तल्प तल्पे वराङ्गनानङ्गसर्वस्वम् ॥३०२॥
जगत्पथि न वर्तन्ते विपरीताग्रहग्रहा । अवाप्तवाञ्छया प्राप्त त्यजन्तो जनहास्यदा ॥३०३॥
दुर्बुद्धिवृद्धितो दैवदण्डिता इव ते प्रभो ।। अवधारय पाखण्डखेदितो मा स्म भूर्जड ॥३०४॥ युग्मम् ।
महाभक्त्याऽऽमराजेन प्रैष्यह प्राणवल्लभा । विज्ञा मनोहरप्रज्ञा गुणरक्तवराधिपा ॥३०५॥
प्रभो । यदूचे बीभत्सरसन्यासवशा तनु । अशुश्रूषाकदर्याङ्गिभूतामेव कुयोपिताम् ॥३०६॥
वय निरन्तरावाप्तकर्पूरादिसया इव । वेधसा विहिता अज्ञा दौर्गन्ध्यादिकथास्वपि ॥३०७॥
ततो नाथेय नाथ । त्वा सफलीकुरु मामकम् । भोगाभोग हि भोगेन भोगिन्या भोगिराडिव ॥३०८॥

प्रातिलोम्येन ११५२ संख्यं मानं यत्र तत्र करव्रतवीरगणधरमाने "द्दे" त्ति अब्दे=वर्षे वीरसंवत११५२शरदि "जणी" त्ति जनिः=जन्माभवत्।

"वोमविगइगणसंखे पव्वज्जा" त्ति व्योम=आकाशं शून्यम्, विकृतयो घृत-तैलादयः षट्, गणाः=शंकरस्य नन्धाद्या गणा एकादश, एतेपामङ्कानां वामगतिमीलितानां ११६० प्रमाणा संख्या यस्य तादृशे व्योमविकृतिगणसंख्ये=षष्ट्यधिकैकशतोत्तरसहस्र११६०तमे वीरसंवदि प्रव्रज्या=महाव्रतादानमभूत्।

"स" त्ति सः=श्रीपुष्पमित्रसूरिः "सुण्णवीरगणरुद्दे" त्ति शून्यम्, वीरगणाः=महावीरप्रभोर्गणा नव, अन्तिमगणधरचतुष्के द्वयोर्द्वयोरेकगणत्वात्। रुद्रा एकादश, एतेऽङ्काः पश्चानुपूर्व्या११९० संख्या यत्र तत्र शून्यवीरगणरुद्रे=वीरसंवत्११९०वर्षे "हवीअ जुगपहाणो" त्ति युगप्रधानो बभूव।

"णहसरक्कमिए" त्ति नभः=अन्तरिक्षं शून्यम्, शराः पञ्च, अर्काः=सूर्या द्वादश, ते च लौकिकसमयाऽनुसारेण द्वादशोच्यन्ते,

तथा च तत्सङ्ख्याप्रतिपादकं पुराणगतश्लोकचतुष्कम्--

'अरुणो माघमासे तु सूर्यो वै फाल्गुने तथा। चैत्रे मासे तु सविता, भानुर्वैशाखमासि च ॥१॥
ज्येष्ठमासे तु मार्तण्ड, आषाढे तपते रवि। गभस्ति श्रावणे मासि, तथा भाद्रपदे भग ॥२॥
आदित्यश्चा-ऽऽश्विने मासे, कार्तिके तु दिवाकर। मार्गशीर्षे तपेद् मित्र, पौषे मासि सहस्ररुक् ॥३॥
इत्येते द्वादशादित्या काश्यपेया प्रकीर्तिता। नित्य द्वादशमासेषु, तपन्ते द्वादशाऽव्ययी ॥४॥" इति।

एतैरङ्कैर्वामगत्या न्यस्तैः १२५० इति सङ्ख्यया मिते=नभःशरार्कमिते=वीरसंवदि पञ्चाशदुत्तरद्वादशशत१२५०तमे "सग्गमिओ" त्ति, स्वर्ग=सुरालयमितः=जगाम।

एवञ्चाऽसौ अष्ट८वर्षाणि गृहस्थत्वे, त्रिशद्३०वर्षाणि सामान्यव्रतित्वे, षष्टि६०-वर्षाणि युगप्रधानत्वे चेति सर्वायुश्चाऽष्टनवति९८वर्षाणि परिपाल्य ननु त्रिदशान् बोधयितुं स्वर्गपुरीं ययौ ॥१४७-१४८॥

अधुना श्रीसिद्धार्थकुलप्रासादध्वजस्य तीर्थाधिपतेरेकत्रिंशं पट्टभृतं श्रीयशोदेवसूरिं भाषमाणश्चित्रलेखां भाषते--

रलुव्व स जसोदेवो सरस्सइकंठभूसणो,
गुरू सोहीअ रविप्पहसूरिपयहारभूसणो।

बप्पभट्टेर्विधेयस्य विनेयस्य मुखाम्बुजम् । दिदृक्षवो मुनिं प्रैषुर्वृत्तं चाह्वानहेतवे ।।२७५।। तच्चेदम्-
सारीर सयल बल विगलिअ दिट्ठो वि कट्ठेण मे, दट्ठव्वेसु पयट्टई परिगयप्पाय तहा आउंग ।
पाणा पाहुणय,व्व गन्तुमहुणा वट्ट ति वच्छा तुम, म दट्ठु जइ अत्थि ता लहु लहु इज्जाहि निस्ससय।।२७६।।
त दृष्ट्वा बहुमानार्द्रो गुरौ द्रागाजगाम च । रात्रपु भि सम मोढेरके प्रभुरदान्तिके ।।२७७।।
प्रभो स न्यासविन्यास रुन्धन् प्रथमदर्शने। अतृप्तमन्य वात्सल्ये तेनाऽसौ जल्पित शमी ।।२७८।।तथाहि-
वपु कुब्जीभूत तनुरपि शनैर्यष्टिशरणा, विशीर्णा दन्ताली श्रवणविकल कर्णयुगलम् ।
निरालोक चक्षुस्तिमिरपटलध्यामलमहो, मनो मे निर्लज्ज तदपि विषयेभ्य स्पृहयति ।।२७९।।
ततो वत्स मतिस्वच्छ गच्छवात्सल्यतत्पर । भव त्व कुरु साहाय्य प्रेत्य मे चानृणो भव ।।२८०।।
तत आराधना कृत्वा परलोक समाधिना । ते ययुर्गणशास्ति च चक्रेऽसौ राजपूजित ।।२८१।।
श्रीमद्गोविन्दसूरे श्रीनन्नसूरेश्च स प्रभु । बप्पभट्टि समार्प्याथ गच्छ सघ च सोद्यम ।।२८२।।
अनुज्ञाप्य क्षितिस्वामिप्रधानैरादृतैर्वृत । पुनरप्यायययावामधाम निर्ग्रन्थनायक ।।२८३ । युग्मम् ।
सभासीनोऽन्यदा राज्ञ सूरि प्रेक्षणकक्षणे । प्रवीणपुस्तिकाहस्त पुरूपेव सरस्वती ।।२८४।।
द्विवाऽक्षरे पदे स्थास्नुर्दृष्टिस्तत्क्लेशनाशिनी। तदा कदाचिदाधासीन्नीलचण्डातके दृशम् ।२८५।।युग्मम् ।
त दृष्ट्वा भूपतिस्तत्र जातरागविकल्पत । चित्ताभिसन्धिसम्बद्धा गाथामेनामचिन्तयत् ।।२८६।। तथाहि-
सिद्धततपारगयाण जोईण जोगजुत्ताण । जइ ताण पि मयच्छी जयति ता ति चिचय पमाण ।।२८७।।
अमूदृक्कार्यनिर्वाहज्ञानहेतु ततस्तदा । स्नेहादेव निशि प्रैषीत ता पु वेषा तदाश्रये ।।२८८।।
सा निलीना क्वचिद् भव्यगणे स्वस्थानगे तत । रह शुश्रूषितु सूरिं प्रारेभे धैर्यभित्तये ।।२८९।।
स्त्रीकरस्पर्शतो ज्ञात्वाऽत्रोपसर्गमुपस्थितम् । विममर्श नृपाज्ञानतमसश्चेष्टित ध्रुवम् ।।२९०।।
स सज्ज सज्जयसज्जमनोभूविजये तत । अष्टाङ्गयोगसद्धर्मसवर्म्मिततनुर्मुदा ।।२९१।।
शुभध्यानाश्वमारूढ सन्तोषप्रक्षराक्षतम् । दृढसयमकोदण्डावष्टब्धतपआशुग ।।२९२।।
सद्बोधपुष्टिरिष्टिगी शक्तिशक्तिस्फुरत्कर । अनास्थया समुत्तस्थावन्तरङ्गद्विपज्जये ।।२९३।। त्रिभिर्विशेषकम् ।
अब्रवीद् ब्रूहि काऽत्र त्व किमर्थं समुपस्थिता । ब्रह्मवर्मव्रतामेषा स्यान्न भूमिर्भवादृशाम् ।।२९४।।
अध्वन्येषु यथा व्याली हारहूर द्विजालये । पल दर्शनशालासु हल राजकुले यथा ।।२९५।।
धर्मे प्राणवधो यद्वद् वेदोच्चारे यथान्त्यज । नालिकेर कपौ यद्वद् द्विके दधिफल यथा ।।२९६।।
चन्दने मक्षिका यद्वद् रामठ कुङ्कुमे यथा । कर्पूरे लशुनो यद्वत्तथाऽत्र त्व न चित्तहृत् ।।२९७।। विशेषकम् ।
विश्वस्रोत श्रवद्विस्रजम्बालकलुषाकृतौ । लज्जास्थानेऽबलादेहे रज्यन्ते के कृमीन् विना ।।२९८।।
श्रुत्वेति तानुवाचाऽसौ नाह पूज्याभिलाषिणी । आययौ भवतो मार्गभ्रष्टान् बोधयितु स्फुटम् ।।२९९।।
सपत्सपत्तये दानधर्म्म लोकोऽनुरुध्यते । ऐश्वर्याय तपस्तप्य तच्च राज्य विना न हि ।।३००।।
स्वर्भुवोरपि तत्राऽपि सार साराङ्गलोचना । यया विना नृदेवानामवकेशीव पु जनु ।।३०१।। उक्तञ्च-
राज्ये सार वसुधा वसुन्धरायां पुर पुरे सौधम् । सौधे तल्प तल्पे वराङ्गनानङ्गसर्वस्वम् ।।३०२।।
जगत्पथि न वर्तन्ते विपरीताग्रहग्रहा । अवाप्तवाञ्छया प्राप्त त्यजन्तो जनहास्यदा ।।३०३।।
दुर्बुद्धिवृद्धितो दैवदण्डिता इव ते प्रभो । । अवधारय पाखण्डखेदितो मा स्म भूर्जड ।।३०४।। युग्मम् ।
महाभक्त्याऽऽमराजेन प्रैष्यह प्राणवल्लभा । विज्ञा मनोहरप्रज्ञा गुणरक्तवराधिपा ।।३०५।।
प्रभो । यदूचे बीभत्सरसन्यासवशा तनु । अशुश्रूषाकदर्य्याङ्गभृतामेव कुयोषिताम् ।।३०६।।
वय निरन्तरावाप्तकर्पूरादिमया इव । वेधसा विहिता अज्ञा दौर्गन्ध्यादिकथास्वपि ।।३०७।।
ततो नाथेय नाथ । त्वा सफलीकुरु मामकम् । भोगाभोग हि भोगेन भोगिन्या भोगिराडिव ।।३०८।।

सिरिसंभूयमुणिंदो हवीअ तेत्तीसमो जुगपहाणो ।
तस्स सबलमुणिपडिमा[१२२१]संखे वासे जणी वीरा ॥१५०॥

(पञ्चाज्झा)

सिद्धाइगुणागिहिवये[१२३१] गेहीअ वयं स आसि जुगपवरो ।
विदुसमिइतवमाणो [१२५०]सग्गमिओ सुराणदुगदिस्से[१३००]॥१५१॥

(पञ्चाज्झा)

(प्रे०) "सिरि०" इत्यादि, श्रिया = रत्नत्रयरूपया युक्तः = संभूतः = संभूतनामा मुनीन्द्रः = आचार्यः = श्रीसम्भूतमुनीन्द्रः "हवीअ तेत्तीसमो जुगपहाणा" त्ति, त्रयस्त्रिंशो युगप्रधानोऽभूत् ।

अथ सार्धार्ययाऽमुष्य जन्मादिपर्यायान् प्रकटयति–"तस्स" इत्यादि, "तस्स" त्ति, तस्य=श्रीसम्भूतसूरेः "वीरा" त्ति, वीरात् = चरमजिनपतेः "सबलमुनिपडिमासंखे" त्ति, शबलाः = एकविंशतिः, शबलानामेकविंशतिविधत्वात् ।[1]

मुनिप्रतिमाः=भिक्षुप्रतिमा द्वादश, यदाह—

'मासाई सत्तंता पढमा बितिसत्तराइदिणा । अहराई एगराई भिक्खूपडिमाण बारसगं ॥१॥' इति ।

एतयोरङ्कयोर्वामगत्या १२२१ प्रमाणा सङ्ख्या यस्य तत्र शबलमुनिप्रतिमासङ्ख्ये= वीरसंवत् १२२१ "वासे" त्ति, वर्षे=वत्सरे "जणी" त्ति, जनिः=जन्माऽभूत् ।

---

[1] तथा चोक्तम्–

"वरिसन्तो दसमासस्स तिण्णि दगवेलमाइठाणाइं । आउट्टिया करेंतो वहालियादिण्णमेहुण्णे ॥१॥
निसिभत्तकम्मणिवपिंडकीयमाई अभिक्खसवदि तु । कदाई भुंजते उदउल्लहत्थाइगहणं च ॥२॥
सचित्तसिलाकोले परविणिवाई ससणिद्ध ससरक्खो। छम्मासतो गणसंकमं च करकम्मिइ सबले ॥३॥"इति।

तथा चाऽन्यत्राऽपि—

"तं जह हत्थकम्मं कुव्वते मेहुणं च सेवते । राइं च भुंजमाणे आहाकम्मं च भुंजते ॥१॥
तत्तो य रायपिंडं कीयं पामिच्चं अभिहडं छेज्जं भुंजते सबले ऊ पच्चक्खियऽभिक्खभुंजइ य ॥२॥
छम्मासऽब्भंतरओ गणा गणं संकमं करेंते य । मासब्भंतर तिण्णि य दगवेला ऊ करेमाणो ॥३॥
मासऽब्भंतरओ वा माइट्ठाणाइं तिण्णि करेमाणे । पाणाइवायउट्टिं कुव्वते मुसं वयते य ॥४॥
गिण्हत्ते य अदिण्णं आउट्टिं तह अणंतरहियाए । पुढवी य ठाणसेज्जं निसीहियं वा वि चेतेइ ॥५॥
एवं ससणिद्धाए ससरक्खाचित्तमतसलिलेलु । कोलावासपइट्ठा कोलं घुणा तेसिं आवासो ॥६॥
सअसपाणसबीओ जाव उ सताणए भवे तहिं य । ठाणाइ चेयमाणो सबले आउट्टिआए उ ॥७॥
आउट्टिमूलकंदे पुप्फे य फले य बीअहरिए य । भुंजते सबलेए तहेव सवच्छरस्सतो ॥८॥
दसदगलेवे कुव्वं तह माइट्ठाण दस य वरिसंतो। आउट्टिय सीउदग वग्घारियहत्थमत्ते य ॥९॥
दव्वीएँ भायणेण व दीयत भत्तपाणं घेत्तूण । भुंजइ सबलो एसो इगवीसो होइ नायव्वो ॥१०॥" इति ।

एव नृपादिभि· सत्यगुणकीर्तनतः स्तुत । ब्रह्मप्रभावप्रागल्भ्याद् बप्पभट्टि प्रभुर्जयी ॥३४४॥
प्राकारबाह्यमन्येद्यु राजाध्वना चरन् । पश्चादोकसि गेहस्येक्षाञ्चके हालिकप्रियाम् ॥३४५॥
पञ्चाङ्गुलबृहत्पत्रसवृतस्तनविस्तराम् वृणुत्रवृतिरन्ध्रेणार्पयित्वा प्रियहस्तयो ॥३४६॥
लवित्र विस्मृत पश्चात्प्रयान्तीं गृहमन्तरा । उरोजविम्बाकाराणि वहि पत्राणि वीक्ष्य च ॥३४७॥
गाथार्द्ध प्रोचिवान् कौतुहलाकृष्टमन क्रम । दृष्टिमेरण्ड उद्दण्डस्कन्धे न्यस्यन् चलाचलाम् । त्रिभिर्विशेषकम् ।
तच्च–वइविवरनिग्गयदलो एरंडो साहइ व्व तरुणाण । तत्प्रात स्वगुरोरग्रेऽवदत्समसदि सस्थित ॥३४९॥
उत्तरार्द्धमवादीच्च तस्यानुपदमेव स । इत्थघरे हलियवहू इद्दहमित्तत्थणी वसई ।॥३५०॥
इति श्रुत्वा यथादृष्टपूरक प्रभुमस्तवीत् । सिद्धसारस्वत कोऽपि कलौ नो मद्गुरु विना ॥३५१॥
सायमैक्षत सोऽन्येद्युरेका प्रोपितभर्तृकाम् । यान्तीं वासालये वक्रग्रीवा दीपकरा तदा ॥३५२॥
उत्तरार्द्ध विधायात्र गाथाया सुहृद पुर । प्रातराह ततोऽसौ च प्राग्दल प्राह सत्वरम् ॥३५३॥ तथाहि–
पिढसभरणपलुट्टतअंसुधारानिवायभीयाए । दिज्जइ वकग्गीवाइ दीवओ पहियजायाए ॥३५४॥
इत्यनेकप्रबन्धाढ्यकाव्यगोष्ठीगरीयसा । काल सुखेन याति स्म गुरु-राज्ञो कियानपि ॥३५५॥
श्रीधर्मभूधनोऽन्येद्युर्दूत प्रेपितवानथ । श्रीमदामस्य वामस्य दुष्कृताना सुधीनिधि ॥३५६॥
तत स भूपमानम्य सभायामुचितासन । सम्यग्व्यजिज्ञपत् सभ्यैर्विस्मितैर्वीक्षितानन ॥३५७॥
मम नाथ प्रभो ! तावकीनच्छेकत्वमङ्गिभि । सन्तुष्ट स्पष्टमाह स्म सविस्मयमन क्रम ॥३५८॥
भवत्कोविदकोटीररत्नश्रीबप्पभट्टिना । सत्यानृतकवित्वस्य व्याख्यानाच्छलिता वयम् ॥३५९॥
यदायातोऽपि गेहान्न आतिथ्यार्होऽपि नार्हित । आमो रामो धिया भूपोऽनुतापातिशय स न ॥३६०॥
हृल्लेखाधायि वैदग्ध्य साहस वाक्यपथातिगम् । वय चमत्कृतेर्हृष्टास्तद्ददाम किमप्यहो ॥३६१॥
राज्ये न सौगतो विद्वान् नाम्ना वर्द्धनकुञ्जर । महावादी दृढप्रज्ञो जितवादिशतोन्नत ॥३६२॥
देशसन्धौ समागत्य वादमुद्रा करिष्यति । सभ्यै सह वय तत्र समेष्याम कुतूहलात् ॥३६३॥ युग्मम् ।
य कोऽपि भवता वादकोविद सोऽपि तत्र च । आयातु सह विद्वद्भिर्घनाघन इवोन्नत ॥३६४॥
तद्वाक् सग्राम एवास्तु यस्य वादी विजीयते । जित एवाऽपरेणाऽसौ किं हतैर्बहुशस्त्रिभि ॥३६५॥
भुजे वाचि च शौर्य ते वादिनोऽप्यपराजिता । यद्यसौ सौगताचार्यो महावादी विजीयते ॥३६६॥
तस्मिन्जिते जिता एवायासबाह्य त्वया वयम् । घृतपिण्ड इव स्त्यानमुदके हिमनिश्चय ॥३६७॥
इति श्रुत्वामभूपाल ऊचे सदेशहारकम् । श्रीधर्मोऽनुचित ब्रूयात् किं कदापि नराधिपः ॥३६८॥
पर किञ्चिदुपालभ्यमस्ति नार्ह सता हि यत् । अस्मिन्नवसरे वाच्यं प्रस्तावो दुर्लभो ध्रुवम् ॥३६९॥
विदुपस्सुहृदस्तस्याकारणव्याजतो ध्रुवम् । आयाम मिलितु तत्र स्फुट चास्माभिरीच्यत ॥३७०॥
तत्र 'वी ज उ रा–दो रा' वाक्याभ्या बन्धुरीतित । द्वितीयो राडिव द्वौ च राजानाविति सस्कृतात् ॥३७१॥
दर्शिते चाढकीपत्रे व्याख्याते बप्पभट्टिना । इद 'तू अ रि प त्त' ते अरिपत्राख्यसस्कृते ॥३७२॥
त्रिराख्यातेऽपि न ज्ञात भिया वा न स्फुटीकृतम् । न विद्मस्तत् तृतीयेऽपि वचसि प्रकटे नयत् ॥३७३॥
एतत्प्रकाशित यस्मादज्ञानात्पु नपु सकम् । ज्ञापितस्त्वत्प्रभुस्ते च विशिष्टा विदिता किल ॥३७४॥
तथापि चेज्जिगीषाऽस्ति मयि तु त्वदधीशितु । श्रद्धा ते पूरयिष्यामि भवत्वेतद्भवद्वचः ॥३७५॥
पर विजयिनो राज्ञः पराभूतक्षमाभुजा । सप्ताङ्गमपि राज्य स्वमर्पणीयमदर्पिना ॥३७६॥
ईदृश भवत स्वामी यदूरीकुरुते तदा । एवमस्त्वन्यथा किं न प्रयासेन फल विना ॥३७७॥
इत्याकर्ण्यावदद् दूत आमेत्याख्या त्वया निजा । सत्या कृता विशानाथ ! मतेरपरिपाकत ॥३७८॥
जडोऽपि को न वेत्तीति कथिते किं पुन पुन । अपरोऽपि गृहायात नृप शत्रुमपि ध्रुवम् ॥३७९॥

(प्रे०) "सिरिबप्प०" इत्यादि, "सिरिबप्पभट्टिसूरी" त्ति श्रिया=चारित्रलक्ष्म्या युक्तो बप्पनामा पिता भट्टिनाम्नी माता तयोः स्वनामाऽन्विततन्नामकरणाग्रहाद् गुरुणा कृतो बप्पभट्टिनामा, तथा च भणितं प्रभावकचरिते—

'स प्राह याचयामोऽहमेतदम्बैकपुत्रकः । आशाधारोऽयमावाभ्यां कथं मोक्तुं हि शक्यते ॥२५॥
निर्बन्धो यदि पूज्यानां तदा नावभिधा यदि । शिशुनां बप्पभट्टीति कुरुध्वे तत्सुनोऽस्तु च ॥२६॥' इति ।

तथा चोपदेशप्रसादेऽपि-'तदा पित्रोरभ्यर्थनया तस्य बप्पभट्टिरिति नामाऽकरोत इति ।

भद्रकीर्त्तिरित्यपरनामा स चाऽसौ सूरिः=तृतीयपदधारकः श्रीबप्पभट्टिसूरिर्मोढगच्छीयसिद्धसेनाचार्यशिष्यः "जगे" त्ति, जगति=चराचररूपे विश्वे "जयउ"त्ति, जयतु=विषयकषायादिजयनशीलोऽस्तु इति क्रियाऽन्वयः । किं विशिष्टः ? "आमरायबोहयरो" त्ति, आमः=आमनामा स चाऽसौ राजा इति आमराजो यशोवर्मसुयशोऽङ्गजः कन्याकुब्जाधिपतिस्तस्य, बोधनं=बोधस्तं करोतीत्येवंशीलः "हेतु तच्छीला०"(सि० ५-१-१०३) इत्यनेन टप्रत्यये बोधकरः, आमराजस्य बोधकरः=आमराजबोधकरः, यद्वा आमराजस्य बोधः=आमराजबोधस्तस्य करोतीति "अच्" (सि० ५-१-४९) इत्याचि प्रत्यये करः आमराजबोधस्य करः=आमराजबोधकरः ।

तथाचोक्तमुपदेशप्रसादे-

"दुर्बोध्यमाम नृपतिं प्रबोध्य द्विजा कवित्वादिगुणैरध कृता ।
प्राज्ञेषु चक्री बप्पभट्टिसूरिराट् कृत्वोन्नतिं प्राप दिवौकसां सुखम् ॥१॥" इति ।

तद्यथा-एकदाऽयं भद्रकीर्तिर्बालमुनिः स्थण्डिलार्थं बहिर्गतः, वृष्टौ सत्यामेकस्मिन् देवकुले प्रविष्टः तत्र पितुः शिक्षावशात्क्रुद्धो वर्षाकुलोऽसौ आमकुमारोऽप्यागतस्तेन तत्र शिलालेखगतकाव्यार्थः पृष्टः, बालमुनिना यथावस्थितः कथितः, ततः प्रीतोऽसौ वर्षोपरमे बालमुनिना सहोपाश्रये आगतस्तस्यैव सहाऽध्यायिको जातः पश्चाज्जातकन्याकुब्जनरेशोऽसौ नानाविधानि शासनप्रभावककार्याणि श्रीबप्पभट्टिसूरिसान्निध्येऽकरोत् । एवमुपदेशप्रसादेऽपि । विस्तरतस्तु प्रभावकचरित-चतुर्विंशतिप्रबन्धादिषु ।

"बालोऽवि" त्ति, बालः=शिशुरपि आस्तां तावदबालस्य वार्तेत्यपिशब्दार्थः, "अमिअतेजो" त्ति, मीयत इति मितं न मितम्=अमितं-प्रमाणाविषयीभूतं तेजः=ओजः प्रभावो वा यस्य सोऽमिततेजाः=अत्यन्तप्रभावशाली-यो हि एकशः श्रुतमात्रेणैकस्मिन्दिने श्लोकसहस्र दृढं धारयति स्म दुर्बोधशास्त्रेऽपि यस्य मतिरतिस्फुर्जत्तेजसी । "विज्जब्धी" त्ति, विद्यानां तिसृणां चतसृणां चतुर्दशानामष्टादशानां वा यद्वा द्वासप्ततिकलानवरसादिरूपाणां वा अब्धिः=समुद्रो=विद्याब्धिः । तथाहि-भूपसभादिष्वनेककूटप्रश्नसमस्यादिषु निष्प्रतिमप्रज्ञाप्रतिभः "लद्धबम्भिवरो" त्ति, लब्धः=प्राप्तः बम्भ्याः=सरस्वत्या वरः=वरदानं प्रसादो वा

एव नृपादिभि· सत्यगुणकीर्तनत· स्तुत । ब्रह्मप्रभावप्रागल्भ्याद् बप्पभट्टि प्रभुर्जयी ॥३४४॥
प्राकारबाह्यमन्येद्यु राजाध्वना चरन् । पश्चादोकसि गेहस्येक्षाञ्चके हालिकप्रियाम् ॥३४५॥
पञ्चाङ्गुलबृहत्पत्रसवृतस्तनविस्तराम् वृणुन्नवृतिरन्ध्रे णार्पयित्वा प्रियहस्तयो ॥३४६॥
लवित्र विस्मृत पश्चात्प्रयान्तीं गृहमन्तरा । उरोजबिम्बाकाराणि वहि पत्राणि वीक्ष्य च ॥३४७॥
गाथार्द्ध प्रोचिवान् कौतुहलाकृष्टमन क्रम । दृष्टिमेरण्ड उद्दण्डस्कन्धे न्यस्यन् चलाचलाम् । त्रिभिर्विशेषकम् ।
तच्च–वइविवरनिग्गयदलो एरडो साहइ व्व तरुणाण । तत्प्रात स्वगुरोरग्रेऽवदत्समसदि सस्थित ॥३४९॥
उत्तरार्द्धमवादीच्च तस्यानुपदमेव स । इत्थघरे हलियवहू इद्दहमित्तत्थणी वसई ॥३५०॥
इति श्रुत्वा यथादृष्टपूरक प्रभुमस्तवीत् । सिद्धसारस्वत कोऽपि कलौ नो मद्गुरु' विना ॥३५१॥
सायमैक्षत सोऽन्येद्यु रेका प्रोषितभर्तृकाम् । यान्तीं वासालये वक्रग्रीवा दीपकरा तदा ॥३५२॥
उत्तरार्द्ध विधायात्र गाथाया सुहृद पुर । प्रातराह ततोऽसौ च प्राग्दल प्राह सत्वरम् ॥३५३॥ तथाहि–
पिदसभरणपलुट्टतअसुधारानिवायभीयाए । दिज्जइ वकग्गीवाइ दीवओ पहियजायाए ॥३५४॥
इत्यनेकप्रबन्धाढ्यकाव्यगोष्ठीगरीयसा । काल सुखेन याति स्म गुरु-राज्ञो कियानपि ॥३५५॥
श्रीधर्मभूधनोऽन्येद्यु र्दूत प्रेपितवानथ । श्रीमदामस्य वामस्य दुष्कृताना सुधीनिधि ॥३५६॥
तत स भूपमानम्य सभायामुचितासन । सम्यग्व्यजिज्ञपत् सभ्यैर्विस्मितैर्वीक्षितानन ॥३५७॥
मम नाथ प्रभो ! तावकीनच्छेकत्वमङ्गिभि । सन्तुष्ट स्पष्टमाह स्म सविस्मयमन क्रम ॥३५८॥
भवत्कोविदकोटीररत्नश्रीबप्पभट्टिना । सत्यानृतकवित्वस्य व्याख्यानाच्छलिता वयम् ॥३५९॥
यदायातोऽपि गेहान्न आतिथ्यार्होऽपि नार्हित । आमो रामो धिया भूपोऽनुतापातिशय स न ॥३६०॥
हृल्लेखाधायि वैदग्ध्य साहस वाक्यपथातिगम् । वय चमत्कृतेर्हृष्टास्तद्दाम किमप्यहो ॥३६१॥
राज्ये न सौगतो विद्वान नाम्ना वर्द्धनकुञ्जर । महावादी दृढप्रज्ञो जितवादिशतोन्नत ॥३६२॥
देशसन्धौ समागत्य वादमुद्रा करिष्यति । सभ्यै सह वय तत्र समेष्याम कुतूहलात् ॥३६३॥ युग्मम् ।
य कोऽपि भवता वादकोविद सोऽपि तत्र च । आयातु सह विद्वद्भिर्घनाघन इवोन्नत ॥३६४॥
तद्वाक् सग्राम एवास्तु यस्य वादी विजीयते । जित एवाऽपरेणाऽसौ किं हतैर्बहुशस्त्रिभि ॥३६५॥
भुजे वाचि च शौर्य ते वादिनोऽप्यपराजिता । यद्यसौ सौगताचार्यो महावादी विजीयते ॥३६६॥
तस्मिन्जिते जिता एवायासबाह्य त्वया वयम् । घृतपिण्ड इव स्त्यानमुदके हिमनिश्चय ॥३६७॥
इति श्रुत्वामभूपाल ऊचे सदेशहारकम् । श्रीधर्म्मोऽनुचित ब्रूयात् किं कदापि नराधिपः ॥३६८॥
पर किञ्चिदुपालभ्यमस्ति नार्हं सता हि यत् । अस्मिन्नवसरे वाच्य प्रस्तावो दुर्लभो ध्रुवम् ॥३६९॥
विदुषस्सुहृदस्तस्याकारणव्याजतो ध्रुवम् । आयाम मिलितु तत्र स्फुट चास्माभिरीच्यत ॥३७०॥
तत्र 'वी ज उ रा-दो रा' वाक्याभ्या बन्धुरीतित । द्वितीयो राडिव द्वौ च राजानाविति सस्कृतात् ॥३७१॥
दर्शिते चाढकीपत्रे व्याख्याते बप्पभट्टिना । इद 'तू अ रि प त्त' ते अरिपत्राख्यसस्कृते ॥३७२॥
त्रिराख्यातेऽपि न ज्ञात भिया वा न स्फुटीकृतम् । न विद्मस्तत् तृतीयेऽपि वचसि प्रकटे नयत् ॥३७३॥
एतत्प्रकाशित यस्मादज्ञानात्पु नपु सकम् । ज्ञापितस्त्वत्प्रभुस्ते च विशिष्टा विदिता किल ॥३७४॥
तथापि चेज्जिगीषाऽस्ति मयि तु त्वदधीशितु । श्रद्धा ते पूरयिष्यामि भवत्वेतद्भवद्वचः ॥३७५॥
पर विजयिनो राज्ञ पराभूतक्ष्माभुजा । सप्ताङ्गमपि राज्य स्वमर्पणीयमदर्पिना ॥३७६॥
ईदृश भवत स्वामी यदूरीकुरुते तदा । एवमस्त्वन्यथा किं न प्रयासेन फल विना ॥३७७॥
इत्याकर्ण्यावदद् दूत आमेत्याख्या त्वया निजा । सत्या कृता विशानाथ ! मतेरपरिपाकत ॥३७८॥
जडोऽपि को न वेत्तीति कथिते किं पुन पुन । अपरोऽपि गृहायात नृप शत्रुमपि ध्रुवम् ॥३७९॥

(प्रे०) "सिरिबप्प०" इत्यादि, "सिरिबप्पभट्टिसूरी" त्ति श्रिया=चारित्रलक्ष्म्या युक्तो बप्पनामा पिता भट्टिनाम्नी माता तयोः स्वनामाऽन्विततन्नामकरणाग्रहाद् गुरुणा कृतो बप्पभट्टिनामा, तथा च भणितं प्रभावकचरिते—

'स प्राह याचयामोऽहमेतदस्मैकपुत्रकः । आशाधारोऽयमावाभ्यां कथं मोक्तुं हि शक्यते ॥२५॥
निर्बन्धो यदि पूज्यानां तदा नावभिधा यदि । विश्रुता बप्पभट्टीति कुरुध्वे तत्सुतोऽस्तु वः ॥२६॥' इति ।

तथा चोपदेशप्रसादेऽपि–'तदा पित्रोरभ्यर्थनया तस्य बप्पभट्टिरिति नामाऽकरोत् इति ।

भद्रकीर्तिरित्यपरनामा स चाऽसौ सूरिः=तृतीयपदधारकः श्रीबप्पभट्टिसूरिर्मोढगच्छीयसिद्धसेनाचार्यशिष्यः "जगे" त्ति, जगति=चराचररूपे विश्वे "जयउ"त्ति, जयतु=विषयकषायादिजयनशीलोऽस्तु इति क्रियाऽन्वयः । किं विशिष्टः ? "आमरायबोहयरो" त्ति, आमः=आमनामा स चाऽसौ राजा इति आमराजो यशोवर्मसुयशोऽङ्गजः कन्याकुब्जाधिपतिस्तस्य, बोधनं=बोधस्तं करोतीत्येवंशीलः "हेतुतच्छीला०"(सि० ५-१-१०३) इत्यनेन टप्रत्यये बोधकरः, आमराजस्य बोधकरः=आमराजबोधकरः, यद्वा आमराजस्य बोधः=आमराजबोधस्तस्य करोतीति "अच्" (सि० ५-१-४९) इत्याचि प्रत्यये करः आमराजबोधस्य करः=आमराजबोधकरः ।

तथाचोक्तमुपदेशप्रसादे–

"दुर्बोध्यमामं नृपतिं प्रबोध्य द्विजा कवित्वादिगुणैरधः कृताः ।
प्राज्ञेषु चक्री बप्पभट्टिसूरिराट् कृत्वोन्नतिं प्राप दिवौकसां सुखम् ॥१॥" इति ।

तद्यथा–एकदाऽयं भद्रकीर्तिर्बालमुनिः स्थण्डिलार्थं बहिर्गतः, वृष्टौ सत्यामेकस्मिन् देवकुले प्रविष्टः तत्र पितुः शिक्षावशात्क्रुद्धो वर्षाकुलोऽसौ आमकुमारोऽप्यागतस्तेन तत्र शिलालेखगतकाव्यार्थः पृष्टः, बालमुनिना यथावस्थितः कथितः, ततः प्रीतोऽसौ वर्षोपरमे बालमुनिना सहोपाश्रये आगतस्तस्यैव सहाऽध्यायिको जातः पश्चाज्जातकन्याकुब्जनरेशोऽसौ नानाविधानि शासनप्रभावककार्याणि श्रीबप्पभट्टिसूरिसान्निध्येऽकरोत् । एवमुपदेशप्रसादेऽपि । विस्तरतस्तु प्रभावकचरित-चतुर्विंशतिप्रबन्धादिषु ।

"बालोऽवि" त्ति, बालः=शिशुरपि आस्तां तावदबालस्य वार्तेत्यपिशब्दार्थः, "अमिअतेजो" त्ति, मीयत इति मितं न मितम्=अमितं-प्रमाणाविषयीभूतं तेजः=ओजः प्रभावो वा यस्य सोऽमिततेजाः=अत्यन्तप्रभावशाली-यो हि एकशः श्रुतमात्रेणैकस्मिन्दिने श्लोकसहस्रं दृढं धारयति स्म दुर्बोधशास्त्रेऽपि यस्य मतिरतिस्फुर्जत्तेजसी । "विज्जब्धी" त्ति, विद्यानां तिसृणां चतसृणां चतुर्दशानामष्टादशानां वा यद्वा द्वासप्ततिकलानवरसादिरूपाणां वा अब्धिः=समुद्रो=विद्याब्धिः । तथाहि–भूपसभादिष्वनेककूटप्रश्नसमस्यादिषु निष्प्रतिमप्रज्ञाप्रतिभः "लद्धबम्भिवरो" त्ति, लब्धः=प्राप्तः बम्भ्याः=सरस्वत्या वरः=वरदानं प्रसादो वा

श्रीमानामनृपोऽन्येद्युरूचे सूरिं कदा प्रभो ! । व्याघातो राजकार्याणां वादः सपूरयिष्यते ॥४१६॥
तत आह तदाचार्यो वाग्विनोदसुखाय व । इयत्काल हि नश्चेतस्यासीदिति कृतिप्रभो ! ॥४१७॥
बाधाविधायी यद्येष भवतस्तद् विलोकय । प्रभाते निग्रहीष्यामि विद्वन्मन्य हि भिक्षुकम् ॥४१८॥
प्राग्दत्त गुरुभिर्मन्त्र परावर्त्तयत सत । मध्यरात्रे गिरा देवी स्वर्गङ्गावेगिमध्यग ॥४१९॥
स्नान्ती तादृशरूपा च प्रादुरासीद्रहस्तदा । अहो मन्त्रस्य माहात्म्य यद्व्यपि विचेतना ॥४२०॥ युग्मम् ।
अनावृतशरीरा च सकृदीषद् ददर्श ताम् । सूरि सूर्य्यादिवास्य च परावर्त्तयति स्म स ॥४२१॥
स्व रूप विस्मरन्ती च प्राह वत्स ! कथ मुखम् । विवर्त्तसे भवन्मन्त्रजापात्तुष्टाहमागता ॥४२२॥
वर वृणिवति तत्रोक्तो बप्पभट्टिरुवाच च । मातर् ! विसदृश रूप कथ वीक्षे तवेदृशम् ॥४२३॥
स्वा तनु पश्य निर्वस्त्रमित्युक्ते स्व ददर्श सा । अहो निबिडमेतस्य ब्रह्मव्रतमिति स्फुटम् ॥४२४।
वीक्ष्य मामीदृशीं यन्न चेतोऽस्य विकृतिं ययौ । ध्यायन्तीति दृढ तोपात्तत्पुर समुपस्थिता ॥४२५॥ युग्मम् ।
वरेऽपि निस्पृहे त्वत्र दृढ चित्रादुवाच च । गत्यागत्योर्मम स्वेच्छा त्वदीया निवृ तो भव ॥४२६॥
तत सूरिर्गिरा देवीं तुष्टुवे सुष्ठुवाग्भरै । वृत्तैर 'ध रि ते त्या' द्यैश्चतुर्दशभिरद्भुतै ॥४२७॥
इमा स्तुतिं सुवर्णाढ्या कर्णकुण्डलरूपिणीम् । मानयन्त्यतिसन्तोषाद्भारती वाचमूचुषी ॥४२८॥
वत्स ! किं पृच्छसीत्युक्ते सूरिरूचे विवाद्यसौ । सत्य प्रज्ञाबलाज्जल्पेद् विज्ञानमथ किञ्चन ? ॥४२९॥
देवी प्राहामुना सप्तभवानाराधिताऽस्म्यहम् । प्रदत्ता गुटिकाक्षय्यवचनास्य मया तत ॥४३०॥
तत्प्रभावाद्वचो नाऽस्य हीयते यतिनायक ! । सोपालम्भमिवाहासौ सूरि श्रीश्रुतदेवताम् ॥४३१॥
पुष्णासि प्रत्यनीक किं शासनस्य जिनेशितु । सम्यग्दृष्टि पुराम्नायात् शुश्रुवे भवती ननु ॥४३२॥
सरस्वती पुन प्राह नाह जैनविरोधिनी । उपाय तेऽर्पयिष्यामि यथाऽसौ जीयते बुध ॥४३३॥
सर्वेऽपि मुखशौच ते विधाप्या पार्षदादय । ततोऽस्य कार्यमाणस्य गण्डूष मुञ्चतो मुखात् ॥४३४॥
भ्रष्टा चेद् गुटिकाऽवश्य युष्माभिर्जितमेव तत । चतुर्दशं पुनर्वृत्त न प्रकाश्य कदापि हि ॥४३५॥
यतस्तत्र श्रुते साक्षाद्भवितव्य मया ध्रुवम् । कियता हि प्रसीदामि निष्पुण्याना मुनीश्वर ! ॥४३६॥
इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देवी सूरिश्छन्नं जगौ पुर । विज्ञवाक्पतिराजस्य यदादिष्ट गिरा तदा ॥४३७॥
इत्यङ्गीकृत्य तेनाऽथ करक नीरपूरितम् । समानाय्य सभा सर्वा वक्त्रशुद्धिं व्यधाप्यत ॥४३८॥
तत्कुर्वतोऽथ तस्याऽपि गुटिका पतिता मुखात । भिक्षोरास्यजलैर्नुन्ना श्रीरिवापुण्यकर्मण ॥४३९॥
अविश्रान्तमिथोवादाध्वन्याध्वन्यतया तत । श्रान्ता विश्राममिच्छन्ती मूकस्येवास्य गी स्थिता ॥४४०॥
सदस्याश्च वच प्रोचुर्गुटिकैव वच क्षमा । अनेडमूक एवाय भिक्षुरन्वर्थनामभू ॥४४१॥
जिग्ये श्रीबप्पभट्टिस्त वा दि कु ञ्ज र के स री । बिरुद जुघुपे राज्ञा जज्ञे जयजयारव ॥४४२॥
धर्मराज्य गृहीतु च स्वबलात्सार्द्धवैभवम् । तदाम उपचक्राम स्वं पण कस्त्यजेज्जयी ॥४४३॥
उवाचाथ गुरुस्तस्य यदुक्त च पुर. पुरा । यद्राज्येन पण चक्रे धर्मभूपोऽधिकृत्य न ॥४४४॥
तत्तस्यैवोपकाराय भविष्यति कदाचन । तदस्य वचस कालो नृपनाथ ! समाययौ ॥४४५॥
इय प्रमाणशास्त्राणा मुद्रा यल्लिखिते तत । सम्बन्धे निग्रहो नैव यत्पराजय एव स ॥४४६॥
अस्य राज्य तदस्यैव सन्तिष्ठतु यथास्थितम् । अनित्यभवहेतो क शास्त्रमुद्रा विलुम्पति ॥४४७॥
गुरुभक्त्याऽभिरामोऽयमामोऽनिच्छुर्बलादपि । धर्मे धर्मस्थितो राज्यमनुमेने प्रसादत ॥४४८॥
तत आश्लिष्य बौद्ध त सूरिर्वर्द्धनकुञ्जरम् । तदासन्ने गोपगिरौ श्रीवीरभवनेऽनयत् ॥४४९॥
श्रीमहावीरबिम्ब स विलोक्य हृदि हर्षित । 'शा न्तो वे ष' इति स्तोत्र चक्रे प्रमुदितस्तदा ॥४५०॥
एव स्तुत्वा जिन स्वात्मनिन्दके सौगतप्रभौ । सूरिर्जैनरहस्यानि तस्य प्रादर्शयत्पुर ॥४५१॥

तथा च भणितं प्रभावकचरिते–

"विक्रमतः शून्यद्वयवसुवर्षे भाद्रपदतृतीयायाम् । रविवारे हस्तर्क्षे जन्माऽभूद् बप्पभट्टिगुरोः ॥७३९॥
षड्वर्षस्य व्रतं चैकादशे वर्षे च सूरिता । पञ्चाऽधिकनवत्या च प्रभोरायुः समर्थितम् ॥७४०॥
शर-नन्द-सिद्धिवर्षे (८९५) नभःशुद्धाष्टमीदिने । स्वातिभेऽर्जनि पञ्चत्वमामराजगुरोरिह ॥७४१॥" इति ।

श्रीविचारसारप्रकरणेऽपि-' तत्थ-ऽपुव्वकवी। तेरसवरिसएहिं अहिएहिं वि बप्पहट्टिपहू ॥५३३॥'इति ।

तथा श्रीतपागच्छपट्टावल्यामपि-"श्रीवीर०सप्तत्यधिकद्वादशशत१२७०वर्षे, वि० अष्टशत-८००वर्षे भाद्रशुक्लतृतीयायां बप्पभट्टेर्जन्म, येनामराजा प्रतिबोधितः । स च श्रीवी० पञ्चषष्ट्यधिकत्रयोदशशत१३६५वर्षे वि० पञ्चनवत्यधिकाऽष्टशत८९५वर्षे भाद्रशुक्लषष्ठ्यां स्वर्गभाक् ॥" इति ।

श्रीबप्पभट्टिसूरेर्विस्तरतः प्रबन्धः प्रभावकचरित एवम्–

बप्पभट्टिः श्रिये श्रीमान् यद्वृत्तगगनाङ्गणे । खेलति स्म गतायातै राजा सूरः कविर्बुधः ॥१॥
पीत्वा यद्गोरसं तृप्ता हृष्यन्तः कवितर्णकाः । विभ्राणाः शृङ्गितां विज्ञगोपालैरपि दुर्दमाः ॥२॥
तस्यैव चरितं किञ्चित् कीर्तयिष्ये यथाश्रुतम् । मत्प्रज्ञामुकुरी(रो?)द्योति साधुशृङ्गारभूषणम् ॥३॥
अस्ति स्वस्ति निधिः श्रीमान् देशो गूर्जरसञ्ज्ञया । अनुत्सेकविवेकाढ्यलोकः शोकाचलस्वरुः ॥४॥
यदेकाशप्रतिच्छन्दस्वरभ्रमुकुरस्थितम् । गौरीशमुनिबाहुल्यात् तत्पुरं पाटलाऽभिधम् ॥५॥
जितशत्रुर्महीनाथः पाथःपतिगरीरिमा । तत्रास्ति त्रासिताशेषबाह्यान्तररिपुव्रजः ॥६॥
चित्रशास्त्ररहस्यालिकन्दकन्दलनाम्बुदः । आश्लिष्टपरसब्रह्मामन्दपीयूषसागरः ॥७॥
मोढाख्यप्रौढगच्छश्रीविबोढानूढमूढतः । श्रीसिद्धसेन इत्यासीन्मुनीन्द्रस्तत्र विश्रुतः ॥८॥
विश्वविद्यावदातश्रीर्मान्यः क्षितिभृतामपि । मोढेरे श्रीमहावीरं प्रणन्तुं सोऽन्यदा ययौ ॥९॥
प्रणम्य विधिवत् तीर्थं पृथगाश्रयसंश्रितः । निशायां योगनिद्राभृद् ददर्श स्वप्नमीदृशम् ॥१०॥
उन्मीलल्लीलया नेत्रे यत्केसरिकिशोरकः । आरूढश्चैत्रशृङ्गऽमुत्फालः सत्त्वशालितः ॥११॥
इति दृष्ट्वा जजागारानगारपतिरद्भुतम् । प्रीतश्च श्रावयामास प्रातर्मुनिमतल्लिकाः ॥१२॥
कल्याणानामुपादानं हेतुत्वं विनयस्य तैः । ख्यापयद्भिर्नतैः पृष्टः आख्यादर्थं च तत्पुरः ॥१३॥
शिष्योऽन्यवादिकुम्भीन्द्रकुम्भनिर्भेदनोद्यमः । भाग्यैः सघस्य कोऽप्यद्य समेष्यति महामतिः ॥१४॥
भाविप्रभावसंसूचिस्वप्नानन्दाभिनन्दितैः । तैः समं सूरिरागच्छज्जैनालयमनालयः ॥१५॥
त्रिः प्रदक्षिणयित्वा च यावन्नाथं विवन्दिषुः । तावत्षड्वार्षिको बाल एकस्तत्पुर आगमत् ॥१६॥
कस्क कौतस्कुतस्त्वं भो! असौ पृष्टस्तदाऽवदत् । पञ्चालदेश्य-बप्पाख्यपुत्रोऽहं भट्टिदेहभूः ॥१७॥
सूरपालाख्यया शत्रून् निघ्नन् पित्रा निवारितः । अजाननेति वात्सल्यादहेतुर्विक्रमे वयः ॥१८॥
एकोऽस्वामप्यनापृच्छ्यानुशयातिशयात्ततः । आगमं प्रभुपादान्ते प्रान्ते स्वस्नेहतः स्थितः ॥१९॥
अस्याभानुष्यकं तेजो ध्यात्वेति गुरुभिस्ततः । किं त्वं नोऽन्तेऽवतिष्ठासुरित्यजल्प्यत हर्षतः ॥२०॥
मद्भाग्यैः फलितं पूज्या इत्युक्त्वा सोऽप्यवस्थितः । अलिः किं नाम नो तिष्ठेत् विकाशिनि सरोरुहे ॥२१॥
एकशः श्रुतमात्रेणावधारयति निश्चलम् । अनुष्टुभां सहस्रं तु प्रज्ञायां तस्य का कथा ॥२२॥
जडदुस्तर्कसंक्लिष्टा देवी वागधिदैवतम् । दुर्बोधशास्त्रहृद्भेदि सुहृत्त्वं यस्य वाञ्छति ॥२३॥
प्रेक्षाभियोगसंतुष्टाः प्रभवस्तस्य पैतृके । गत्वा डुबाउधीग्रामे पितरौ प्रार्थयन्त ते ॥२४॥
स प्राह यातयामोऽहमेतदस्मैकपुत्रका । आशाधारोऽयमावाभ्यां कथं मोक्तुं हि शक्यते ॥२५॥

यत्पुरो बठरत्वेन तत्र स्थितिमनिच्छत । शृङ्गाराय भवत्सख्य विदेशावस्थितेर्मम ॥४८३॥
इति वाचा चमत्कार धारयन्नब्रवीन्नृप । भवद्वच प्रतीतोऽपि प्रेक्षिष्ये कौतुक हि तत् ॥४८४॥
ततो वेषपरावर्त्तप्राप्तो गूर्ज्जरमण्डले । पुरे हस्तिजये जैनमन्दिरस्य समीपत ॥४८५॥
उपाश्रयस्थित भव्यकदम्बकनिषेवितम् । राजानमिव सच्छत्र चामरप्रक्रियान्वितम् ॥४८६॥
सिंहासनस्थित श्रीमन्नन्नसूरिं समैक्षत । उत्तानहस्तविस्तारसञ्ज्ञयाह किमप्ययं ॥४८७॥
एतद्विलोक्याचार्योपि मध्यमातर्जनीद्वयम् । पुरस्तस्य वितस्तार श्रृङ्गाकारेण तत्र च ॥४८८॥
इत्युत्थाय गते तत्र जनै पृष्टमिद किमु । तत प्रापञ्चयत्सूरि कोऽपि विद्वानसौ पुमान् ॥४८९॥
पृच्छति स्म यतीना किं राज्यलीला ततो मया । इत्युत्तर ददौ श्रृङ्गे भवतो भूपते किमु ॥४९०॥
निविष्टमन्यदा चैत्ये शास्त्र वा त्स्या य ना भिधम् । व्याख्यात प्रेक्ष्य त भूपो नमस्कृत्य जिन ययौ ॥४९१॥
ननाम न गुरु कामशास्त्रव्याख्यानत स च । विद्वानेष न चारित्री गुरुरित्थ विकल्पित ॥४९२॥
परिज्ञातेऽथ तत्तत्त्वे खेद दध्रे स कोविद । धिग्वैदग्ध्य हि नो नियंदपकीर्तिकलङ्किनम् ॥४९३॥
श्रीगोविन्द शशासैन खिद्यसे किं वच शृणु । आमभूपतिरेवाय गुप्तो नापर ईदृश ॥४९४॥
तत किंचिद्धर्मशास्त्र विधायातिरसोज्ज्वलम् । पार्श्वान्नटस्य कस्याऽपि बप्पभट्टिप्रभो पुर ॥४९५॥
प्रेषयैतद् यथातथ्य चाभिनायति तत्पुर । तत्रापररसावेश सोऽनुभूय प्रभोक्षते ॥ ॥४९६॥
तथेति प्रतिपद्याथ कृत्वा तच्च नटोत्तमान् । प्रैषयच्छिक्षितान् सम्यक् प्रायादामपुर च स ॥४९७॥
अमिलद् बप्पभट्टश्च तेन राज्ञोऽथ दर्शित । आदितीर्थकृतो वृत्तमभिनिन्ये स नूतनम् ॥४९८॥
विहित सन्धिबन्धेन रसाय नन्नसूरिणा । तत्कथा प्रथयन् नृत्यन्नाह प्राकृतरूपकम् ॥४९९॥-युग्मम् ।

कञ्चणड्डु सुवियड्डु गिरि वेयडढु वेहावइ ।

श्रीबप्पभट्टिराहेदमर्द्धेन रूपकद्वयम् । नर्मधर्म्मेण तच्चापि नटो व्यावृत्य तत्पुरे ॥५००॥
आगत्य तथ्यमाचख्यौ नन्नाचार्यकवे पुर । नैतद्रम्यमिद कार्यमिति सचिन्त्य हर्षत ॥५०१॥
ततो रूप परावृत्य स सिद्धगुटिकादिभि । प्रतस्थे कन्यकुब्जे च सह गोविन्दसूरिणा ॥५०२॥
प्राप्तोऽथ मिलितो बप्पभट्टे पट्टेश्वरस्य च । राजपर्षदि नृत्यश्च रस वीर वितेनिवान् ॥५०३॥
तद्धयानैकमना भूपश्चकर्ष क्षुरिका निजाम् । 'मारि मारी' ति शब्देन नदन् सिंह इव क्रुधा ॥५०४॥
अङ्गरक्षैस्ततो नाट्यमिदमित्थ निवारित । चैतन्ये सगते पश्चात्प्रतिवुद्धो गुरूक्तिभि ॥५०५॥
आह गोविन्दसूरिस्तद्भूप । युक्तं कथ कृतम् । केनाऽपि न पर शास्त्ररस सर्वोऽनुभूयते ॥५०६॥
ततो वात्स्यायने व्याख्यायमाने नन्नसूरिणा । सविकल्पो मनीषी त्वमन्य को न विकल्पयेत् ॥५०७॥
लज्जितेन ततो राज्ञा क्षमितौ कोविदाधिपौ । सत्य तद्वचन बाढ यदूचे सुहृदा मम ॥५०८॥
सयमेन सुशीलेन वृत्त्या विद्वत्तया तथा । तद्गुरुभ्रातरौ पूज्यौ भ्रान्तिर्मे क्षम्यतामिति ॥५०९॥
इत्याकर्ण्य तत प्रोचे श्रीमद्गोविन्दसूरिणा । तपो न न कलङ्कयेत त्वयि वृत्तानि पश्यति ॥५१०॥

भवन्तु ते दोषविद शिवाय विशेषस्तद्वचनैकनिष्ठा ।
येषा प्रवादादपवादभीता गुणार्जनोत्साहपरा नरा स्यु ॥५ १॥ तथा-

जे चारित्तिहिं निम्मला ते पचायणसीह । विसय कसाइहिं गजिआ ताह फुसिज्जइ लीह ॥
ताहं फुसिज्जइ लीह, इत्थ ते तुल्ल सीआलह । ते पुण विसयपिसायछलिय गय करिणिहि बालह ॥
ते पचायण सीह सत्ति उज्जलनियकित्तिहिं । ते नियकुलनहयलमयकनिम्मलचारित्तिहिं ॥५१२॥

श्रुत्वेति नृपतिस्तोषादुवाच सुहृद गुरु । धन्योऽहमेव यस्याभूद्गुरो कुलममूदृशम् ॥५१३॥
राज्ञाऽवस्थापितौ तत्र दिनान्यथ कियन्त्यपि । आपृच्छच्य बप्पभट्टिं तावागतौ स्वभुव तत ॥५१४॥

पठित लिखित सम्यग्गणित गीत-नर्त्तने वाद्य व्याकरण छन्दो ज्योतिष शिक्षया सह ॥६२॥
निरुक्त च तथा कात्यायन च सनिघण्टुकम् । पत्रच्छेद्य नखच्छेद्य सह रत्नपरीक्षया ॥६३॥
आयुधाभ्यासयोगश्च गजारोहणमेव च । तुरगारोहण शिक्षा तयो प्रत्येकमद्भुता ॥६४॥
मन्त्रवादो रसवाद खन्यवादस्तथैव च । रसायन च विज्ञानवादो मतिविवेचक ॥६५॥
तर्कवादश्च सिद्धान्तो विषनिग्रह गारुडे । शाकुने वैद्यक चैवाचार्यविद्या तथागमे ॥६६॥
प्रासादलक्षण चैव सामुद्रिकमथ स्मृति । पुराण इतिहासश्च तथा वेदविधिर्वर ॥६७॥
विद्यानुवाद-दर्शनसस्कारौ खेचरी कला । अमरीकरण चेन्द्रजाल पातालसिद्धिभृद् ॥६८॥
धूर्त्तानां शम्बल गन्धयुक्ति वृक्षचिकित्सया । कृत्रिममणिकर्माणि सर्ववस्तुकृतिस्तथा ॥६९॥
वशकर्म पुष्पकर्म चित्रकर्म कलाङ्कुरम् । काष्ठ-पाषाणयो कर्म लेपकर्म तथापि च ॥७०॥
चर्मकर्म यन्त्रकर्म तथा रसवतीविधि काव्यालङ्कारहसिते सस्कृत प्राकृते तथा ॥७१॥
पैशाचिक अपभ्रश कपट देशभाषया । धातुकर्म प्रयोगाणामुपाया केवलीविधि ॥७२॥
एवविधकलाना च द्वासप्ततिमधीतवान् । अनन्यसदृश कोविदाना पर्षदि सोऽभवत् ॥७३॥
तथा चाभ्यस्यतस्तस्य प्रज्ञादर्पणबिम्बित । ययौ लक्षणतर्कादिशास्त्रव्रात स्ववश्यताम् ॥७४॥
सब्रह्मचारितासख्याद् राजपुत्र प्रपन्नवान् । बप्पभट्टे ! प्रदास्यामि प्राप्त राज्य तव ध्रुवम् ॥७५॥
कालेन केनचित् तस्यातङ्किना जनकेन च । प्रधाना प्रेषिता पट्टाभिषेककृतिहेतव.(०वे)॥७६॥
कृच्छादापृच्छ्य त प्राप्तपुर राज्येऽभ्यषिच्यत । पित्रा स स्वर्गतैरस्य कृतवानौर्ध्वदेहिकम् ॥७७॥
लक्षद्वितयमश्वाना चतुर्दशशतानि च । रथाना हस्तिना पत्तिकोटी राज्यमसाधयत् ॥७८॥
स्वकीयसुहृद प्रैषीदाह्वानाय नरानथ । आमनामा नृप श्रीमानतिमानवविक्रम ॥७९॥
तेषा चात्यादरात् सघानुमत्या गुरवस्तत' । प्राहिण्वन् बप्पभट्टि त गीतार्थै परिवारितम् ॥८०॥
तीर्थप्रभावनोन्नत्यै शनै सयमयात्रया । जगामाध्यामधामश्रि पुरमाममहीशितु ॥८१॥
तदागमलसद्वर्णाकर्णनादर्णवो यथा । द्विजराजसमुद्योतादुद्वेल स तदाऽभवत् ॥८२॥
भूपः समग्रसामग्र्या समुखीनस्ततोऽगमत् । कुञ्जरारोहणे विद्वत्कुञ्जरस्यार्थना व्यधात् ॥८३॥
बप्पभट्टिरुवाचाथ भूप शमवता पति । सर्वसङ्गमुचा नोऽत्र प्रतिज्ञा हीयतेतमाम् ॥८४॥
राजोचे व: पुरा पूर्वं यन्मया प्रतिशुश्रुवे । राज्यमाप्त प्रदास्यामि तल्लक्ष्म वरवारण ॥८५॥
काममेवामुमाधत्त चेद् यूय तन्मम प्रभो ! । उक्तदोषार्त्तिदानेनासुख कर्तु न साम्प्रतम् ॥८६॥
इत्यारोप्य बलात् पट्टकुञ्जरे धरणीधर । जितकोवाद्यभिज्ञानधृतच्छत्रचतुष्टयम् ॥८७॥
विश्वस्य दर्शयन्त सच्चामरैर्वीजित प्रभुम् । प्रावेशयत् शमिश्रेणीश्वरमत्युत्सवात् पुरम् ॥८८॥ युग्मम् ।
राजचिह्नमद धुर्यैमिनि सिंहासनासनम् । सौधान्तरमनुत्वाह भूप मुनिरथावदत ॥८९॥
जाते सूरिपदेऽस्माक कल्प्य सिंहासनासनम् । इति तस्य वच श्रुत्वा खिन्नोऽन्यासन्यवीविशत् ॥९०॥
दिनानि कतिचित्तत्रावस्थाप्य गुरुसन्निधौ । प्राजीहयत् प्रधानौघै सम मुनिपर्ति नृप ॥९१॥
मोढेरकस्थित श्रीमत् सद्धसेनमुनीश्वरम् । प्रणम्य प्रह्वाणीभिरथ व्यज्ञपयन्नमी ॥९२॥
चकोरवदचन्द्रेऽभ्रे मराल इव पल्वले । वने मृगवदेकाकी स्तोकाम्भसि च मीनवत् ॥९३॥
मयूर इव घर्मर्तौ वर्षासु जलधिर्यथा । सग्रामे कातरो यद्वद् विद्वान् वैधेयमण्डले ॥९४॥
चन्द्रवत् कृष्णपक्षान्त क्षीयते विरहातुर । स्वामी न: प्रत्यह पूज्या । अनेन सुहृदा विना ॥९५॥ त्रिभिर्विशेषकम् ।
आचार्यत्वे प्रतिष्ठाप्य निष्ठाधिष्ठातृदैवतम् । अमु प्रेषयतास्माभि सह न स्वामिनो मुदे ॥९६॥
अस्योपदेशतो जैनमन्दिर प्रतिमादिभि. । निर्मितै सुकृतै राजा भव्याब्धि लङ्घयेद्यथा ॥९७॥

यत्पुरो बठरत्वेन तत्र स्थितिमनिच्छत । शृङ्गाराय भवत्सख्य विदेशात्रस्थितेर्मम ॥४८३॥
इति वाचा चमत्कार धारयन्नब्रवीन्नृप । भवद्भ्च प्रतीतोऽपि प्रेक्षिष्ये कौतुक हि तत् ॥४८४॥
ततो वेषपरावर्त्तप्राप्तो गूर्जरमण्डले । पुरे हस्तिजये जैनमन्दिरस्य समीपत ॥४८५॥
उपाश्रयस्थित भव्यकदम्बकनिषेवितम् । राजानमिव सच्छत्र चामरप्रक्रियान्वितम् ॥४८६॥
सिंहासनस्थित श्रीमन्नन्नसूरिं समैक्षत । उत्तानहस्तविस्तारसञ्ज्ञयाह किमप्यय ॥४८७॥
एतद्विलोक्याचार्योपि मध्यमातर्जनीद्वयम् । पुरस्तस्य वितस्नार शृङ्गाकारेण तत्र च ॥४८८॥
इत्युत्थाय गते तत्र जनै पृष्टमिद किमु । तत प्रापञ्चयत्सूरि कोऽपि विद्वानसौ पुमान् ॥४८९॥
पृच्छति स्म यतीना किं राज्यलीला ततो मया । इत्युत्तर ददौ शृङ्गे भवतो भूपते किमु ॥४९०॥
निविष्टमन्यदा चैत्ये शास्त्र वा त्स्या य ना भिधम् । व्याख्यात प्रेक्ष्य त भूपो नमस्कृत्य जिन ययौ ॥४९१॥
ननाम न गुरु कामशास्त्रव्याख्यानत स च । विद्वानेप न चारित्री गुरुरित्थ विकल्पित ॥४९२॥
परिज्ञातेऽथ तत्तत्त्वे खेद दध्रे स कोविद । धिग्वैदग्ध्य हि नो नियंदपकीर्तिकलङ्किनम् ॥४९३॥
श्रीगोविन्द शशासैन खिद्यसे किं वच शृणु । आमभूपतिरेवाय गुप्तो नापर ईदृश ॥४९४॥
तत किंचिद्धर्मशास्त्र विधायातिरसोज्ज्वलम् । पार्श्वान्नटस्य कस्याऽपि बप्पभट्टिप्रभो पुर ॥४९५॥
प्रेपयैतद् यथातथ्य चाभिनायति तत्पुर । तत्रापररसावेश सोऽनुभूय प्रभोक्षते ॥४९६॥
तथेति प्रतिपद्याथ कृत्वा तच्च नटोत्तमान् । प्रैपयच्छिक्षितान् सम्यक् प्रायादामपुर च स ॥४९७॥
अभिलद् बप्पभट्टश्च तेन राज्ञोऽथ दर्शित । आदितीर्थकृतो वृत्तमभिनिन्ये स नूतनम् ॥४९८॥
विहित सन्धिबन्धेन रसाय नन्नसूरिणा । तत्कथा प्रथयन् नृत्यन्नाह प्राकृतरूपकम् ॥४९९॥-युग्मम् ।

कञ्चणडड्ढ सुवियडड्ढ गिरि वेयडड्ढ वेहावइ ।

श्रीबप्पभट्टिराहेदमर्द्धेन रूपकद्वयम् । नर्मधर्म्मेण तच्चापि नटो व्यावृत्य तत्पुरे ॥५००॥
आगत्य तथ्यमाचख्यौ नन्नाचार्यकवे पुर । नैतद्रम्यमिद कार्यमिति सचिन्त्य हर्षित ॥५०१॥
ततो रूप परावृत्य स सिद्धगुटिकादिभि । प्रतस्थे कन्यकुब्जे च सह गोविन्दसूरिणा ॥५०२॥
प्राप्तोऽथ मिलितो बप्पभट्टे पट्टेश्वरस्य च । राजपर्षदि नृत्यश्च रस वीर वितेनिवान् ॥५०३॥
तद्वचानैकमना भूपश्चकर्ष क्षुरिका निजाम् । 'मारि मारी' ति शब्देन नदन् सिंह इव क्रुधा ॥५०४॥
अङ्गरक्षैस्ततो नाट्यमिदमित्थं निवारित । चैतन्ये सगते पश्चात्प्रतिबुद्धो गुरूक्तिभि ॥५०५॥
आह गोविन्दसूरिस्तद्भूप ! युक्त कथ कृतम् । केनाऽपि न पर शास्त्ररस सर्वोऽनुभूयते ॥५०६॥
ततो वात्स्यायने व्याख्यायमाने नन्नसूरिणा । सविकल्पो मनीषी त्वमन्य को न विकल्पयेत् ॥५०७॥
लज्जितेन ततो राज्ञा क्षमितौ कोविदाधिपौ । सत्य तद्वचन बाढ यदूचे सुहृदा मम ॥५०८॥
सयमेन सुशीलेन वृत्त्या विद्वत्तया तथा । तद्गुरुभ्रातरौ पूज्यौ भ्रान्तिर्मे क्षम्यतामिति ॥५०९॥
इत्याकर्ण्य तत प्रोचे श्रीमद्गोविन्दसूरिणा । तपो न न कलङ्कयेत त्वयि वृत्तानि पश्यति ॥५१०॥

भवन्तु ते दोषविद शिवाय विशेषतस्तद्वचनैकनिष्ठा ।
येषा प्रवादादपवादभीता गुणार्जनोत्साहपरा नरा स्यु ॥५११॥ तथा-

जे चारित्तिंहि निम्मला ते पचायणसीह । विसय कसाइहि गजिआ ताह फुसिज्जइ लीह ॥
ताह फुसिज्जइ लीह, इत्थ ते तुल्ल सीआलह । ते पुण विसयविसायछलिव गय करिर्णिहि बालह ॥
ते पचायण सीह सत्ति उज्जलनियकित्तिहिं । ते नियकुलनहयलमयकनिम्मलचारित्तिहिं ॥५१२॥

श्रुत्वेति नृपतिस्तोषादुवाच सुहृद गुरु । धन्योऽहमेव यस्याभूद्गुरो कुलममूदृशम् ॥५१३॥
राज्ञाऽवस्थापितौ तत्र दिनान्यथ कियन्त्यपि । आपृच्छय बप्पभट्टिं तावागतौ स्वभुव तत ॥५१४॥

विश्वकर्मविदस्तत्र विश्वकर्मसु कर्मठा । प्रारेभिरे महाभूत्या प्रासाद सुकृतोत्सवे ॥१३५॥
दिनै कतिपयै सैकशतहस्तोन्नतस्थिति । प्रासाद परिनिष्पेदे सर्वलोकमुदा समम् ॥१३६॥
पूर्णवर्णसुवर्णाष्टादशभारप्रमाणभृत् । श्रीमतो वर्द्धमानस्य प्रभोरप्रतिमानम् ॥१३७॥
निरमाप्यत सम्राप्यागण्यपुण्यभरैर्जनै । धार्मिकाणा संचरन्ती प्रतिमा प्रतिमानमम् ॥१३८॥–युग्मम् ।
श्रीबप्पभट्टिरेतस्या निर्ममे निर्ममेश्वर । प्रतिष्ठा स प्रतिष्ठासु परम पदमात्मन ॥१३९॥
तथा गोपगिरौ लेप्यमयबिम्बयुत नृप । श्रीवीरमन्दिर तत्र त्रयोविंशतिहस्तकम् ॥१४०॥
सपादलक्षसौवर्णटङ्कनिष्पन्नमण्डपम् । व्यधापयन्निज राज्यमिव सन्मत्तवारणम् ॥१४१॥–युग्मम् ।
एवमभ्यर्हितो राज्ञा गच्छन् सच्छत्रचामर । राजकुञ्जरमारूढो मुख्यसिंहासनासन ॥१४२॥
मिथ्यात्वध्यामलाभोगान् लोकान् मत्सरपूरितान् । बप्पभट्टिप्रभुश्चक्रे वक्रेतरनरस्तुत ॥१४३॥ युग्मम् ।
राजा पूज्यद्विजातीना ससर्गादनुवर्त्तक । अन्यदान्यन्महीपालासनमावत्त सूरये ॥१४४॥
ततस्तदाशय ज्ञात्वा विगताकारवैकृत । जगाद प्रतिबोधाय तस्यागाधैकसत्त्वभृत् ॥१४५॥
कृतप्राकृतसत्त्वाना मदादीना जनद्विषाम दम्भस्तम्भादियुक्ताना कथ लक्ष्या भवादृशा ॥१४६॥ तत, यदुक्तम्–
सर्दय मानमतङ्गजदर्प विनयशरीरविनाशनसर्पम्। क्षीणो दर्पाद्दशवदनोऽपि यस्य न तुल्यो भुवने कोऽपि ।१४७
इत्याकर्ण्य गिर धीरा बुद्ध्वा सूरि व्यजिज्ञपत् । प्रभो । तद्वाक्यमन्त्रैर्मेऽवलेपगरल हृतम् ॥१४८॥
प्रभव प्रभव क्षेत्रे मम धान्य हि सौहृदम् । स्यादन्नामत्र सपन्नभक्तपाकादिसस्कृतम् ॥१४९॥
अन्त पुरेऽन्यदा म्लानवक्त्रभा वल्लभा तदा । राजा दृष्ट्वाह गाथार्ध स्वेच्छयेति प्रभो पुर ॥१५०॥ तद्यथा–
'अज्ज वि सा परितप्पइ कमलमुही अत्तणो पमाएण ।' सारसारस्वतोद्गारसिद्धयाथ गुरुर्गिरा ॥१५१॥
गाथोत्तरार्धमाचख्यौ सख्यौ स्नेह वहन् नृतम् । **'सुत्तविउद्धेण. तए जीसे पच्छाइय अग** ॥१५२॥
हृद्भेदिवचसा तुष्ट प्रशसन् कविकर्म तत । तस्थौ किञ्चिदिव भ्रान्त पुनरभ्रान्तलोचन ॥१५३॥
नृपो निरुपमप्रेमनिधि शमभृता सह । अन्यदा ददृशे देवीं सचरन्तीं पदे पदे ॥१५४॥
व्यथ्यमानामिव क्वापि मुखभङ्गविकारिणीम् । कृपापरिष्कृतस्वान्त इत्र गाथार्धमब्रवीत ॥१५५॥ तद्यथा–
'बाला चकमती पए पए कीस कुणइ मुहभग ' । तत सत्यवचोवीचिबन्धुर प्राबदत्प्रभु ॥१५६॥
असूनृत न जल्पेत कल्पान्ते हि सिद्धवाक् । **'नून रमणपएसे मेहलया छिवइ नहपती'** ॥१५७॥
श्रुत्वेति भूपति किञ्चित सभ्रान्तो विकृत मुखम् । चक्र हिमोर्मिसक्लिष्टसरोरुहमिवाद्युति ॥१५८॥
इत्यालोक्य समुत्थाय प्रतिश्रयगतो मुनीन्द्र । बिहारहेतु सत्राह्यस्नेहमोहापराजित ॥१५९॥
काव्यमेतद्विलिख्याऽथ बहिर्द्वारकपाटयो । श्रीसघमप्यनापृच्छ्य निरगान्नगराद् बहि ॥१६०॥ युग्मम् । तद्यथा–
याम स्वस्ति तवास्तु रोहणगिरेर्मत्त स्थितिप्रच्युता, वर्तिष्यन्त इमे कथ कथमिति स्वप्नेऽपि मैव कृथा ।
श्रीमस्ते मणयो वय यदि भवल्लब्धप्रतिष्ठास्तदा, ते शृङ्गारपरायणा क्षितिभुजो मौलौ करिष्यन्ति न ॥१६१॥
दिनै कतिपयैर्गौडदेशान्तर्विहरन् गुरु । श्रीलक्षणावतीपुर्या प्रापारामावनीतलम् ॥१६२॥
तत्र वाक्पतिराजोऽस्ति श्रीधर्मक्ष्मापपर्षदि । विदुषा मौलिमाणिक्य प्रबन्धकविरद्भुत ॥१६३॥
प्रभोरागमन ज्ञात्वा जलदस्येव चन्द्रकी । तदागमनगीर्भि स भूपाल पर्यतोषयत् ॥१६४॥
वशे वाग्देवता यस्य कविर्मे प्राक्यसस्तुत । स इहागात्प्रभो पुण्यैर्बप्पभट्टिर्मुनीश्वर ॥१६५॥
ज्योत्स्नाप्रिय इवैणाङ्कोदयादेष विशापति । अजल्पदुद्बुषद्रोमा विद्वन्मण्डलमण्डनम् ॥१६६॥
विश्वकोविदकोटीरमेप जैनमुनीश्वर । ध्रुव यत्र समभ्येति कृतपुण्य स वासर ॥१६७॥ युग्मम् ।
पर मेऽस्त्यामराजेन दुर्ग्रहो विग्रहाग्रह । तदाह्वानाद् यदा पश्चात याति तन्मे तिरस्कृति ॥१६८॥
प्रष्टव्यस्तन्मुनिस्वामी स चेदागत्य मा नृप । साक्षादापृच्छते प्रस्थातव्य तन्नाऽन्यथा त्वया ॥१६९॥

आह श्रीबप्पभट्टिश्च स्थिराध र। स्थिरो भव । मा कोटिम्भरमात्मान नाशयेथा मुधा सखे। ॥५४८॥
उक्तश्चैकाग्रचित्तेन साहसानन्यवेश्मना । भवता कर्म चित्तेन वद्धमुन्मोचित त्वया ॥५४९॥
अस्य पापस्य मुक्तोऽसि कृष्णाभ्रादिव भास्कर द्योतिष्यसे सतामन्तमुर्ञ्च तत्कर्म दुष्करम् ॥५५०॥
आनन्दित प्रभोर्वाग्भिरिति तत्याज कुग्रहम् । इति ज्ञाते च हर्षोऽत्र पुनर्जात इवाऽभवत् ॥५५१॥
अमात्यैर्नगरे तत्र सर्वर्द्ध्यालकृते कृते । गजगन्धर्वसन्दोहरथ्यापादातिसवृत ॥५५२॥
पट्टहस्तिशिरस्थानाग्रासनस्थे मुनीश्वरे । रोमगुच्छातपत्रादिप्रक्रियाप्रकटप्रभे ॥५५३॥
प्रविवेश विशामीश स्वय श्रीश इव श्रिया। सुराणामप्यपूर्वेण पुरमत्युत्सवेन स ॥५५४॥ त्रिभिर्विशेषकम्।
इतो वाक्पतिराजश्च त दृष्ट्वा राजवैकृतम्। निर्बन्धान्नृपमापृच्छ्य वैराग्यान्मथुरा ययौ ॥५५५॥
धर्माख्यावसरेऽन्येद्यु प्रभुर्भूपालमूचिवान् । धर्मतत्त्वानि पार्षद्यमानितानि विवृत्य स ॥५५६॥
नवनीतसम विश्वधर्माणा करुणानिधिम् । सन्त्याद्यमार्हत धर्म परीक्षापूर्वक श्रय ॥५५७॥
राजा प्राहार्हतो धर्मो निर्वहत्येव मादृशाम् । परीक्षाया पर शैवधर्मे चेतोऽजगद् दृढम् ॥५५८॥
त्वदुक्तो नीरमानेष्ये कुम्भेनामेन रञ्जत । पर मा मामम धर्म त्याजयिष्यसि सौहृदान् ॥५५९॥
न मुञ्चे पैतृकाचार वच्मि किञ्चिच्च व पुर। चेद्रोप नहि धत्तात्र गुरुरोपाद्बिभी. श्रिये ॥५६०।
ब्रूतेति गुरुणा प्रोक्ते नृप प्राह स्मित दधन् । बोधयेयुर्भवन्तोऽपि बालगोपाङ्गनादिकम् ॥५६१॥
कोविद नैव शास्त्रार्थपरिकर्मितधीसखम् । रम्भाफल यथा भक्ष्य न तु निम्बफल तथा ॥५६२॥
शक्तिश्चेद् भवतामद्य मध्येमथुरमागतम् । पुराणपुरुप नित्य चित्ते ध्यायन्तमद्भुतम् ॥५६३॥
यज्ञोपवीतवीताङ्ग नासाग्रन्यस्तदृष्टिकम् । तुलसीमालया लीढवक्ष स्थलमिलास्थितम् ॥५६४॥
श्रीकृष्णगानसतृष्णवैष्णवब्राह्मणावृतम् । पुत्रजीवकमालाभिर्मण्डितोर स्थल किल ॥५६५॥
वराहस्वामिदेवस्य प्रासादान्तरवस्थितम् । वैराग्यातिशयात्तत्र कृतप्रायोपवेशनम् ॥५६६॥
प्रतिबोध्य तदा जैनमते स्थापयतद्रुतम् । वाक्पतिराजसामन्तं पर्यङ्कासनसस्थितम्। पञ्चभि कुलकम्।
तैश्चाऽभ्युपगतेऽशीतिं चतुर्भिरधिका तदा । सामन्ताना बुधाना च सहस्र प्रैपयन्नृप ॥५६८॥
आचार्यै सह ते प्रापुस्त्वरित शीघ्रवाहनै । मथुरा तत्र चाजग्मुर्वराहस्वामिमन्दिरे ॥५६९॥
पुर्वाख्यातोदितावस्थ परमात्मस्थचेतनम् । ददृशु सूरयो भूभृत्पुमासश्च तमादरात् ॥५७०॥
तत्र श्रीबप्पभट्टिश्च त्रयीस्तवनतत्परम् । काव्यवृन्दमुदाजह्रे तस्य चेत परीक्षितुम् ॥५७१॥ तथाहि-
रामो नाम बभूव हु तदबला सीतेति हु ता पितु-र्वाचा पञ्चवटीवने विचरतस्तस्याहरद् रावण ।
निद्रार्थं जननीकथामिति हरेर्हुंकारिण शृण्वत , पूर्वस्मर्तु रवन्तु कोपकुटिलभ्रूभङ्गुरा दृष्टय ॥५७२॥
दर्पणार्पितमालोक्य मायास्त्रीरूपमात्मन. । आत्मन्येवानुरक्तो व श्रिय दिशतु केशव ॥५७३॥
उत्तिष्ठन्त्या रतान्ते भरमुरगपतौ पाणिनैकेन कृत्वा, धृत्वा चान्येन वासो विगलितकबरीभारमसे वहन्त्या ।
सद्यस्तत्कायकान्तिद्विगुणितसुरतप्रीतिना शौरिणा व , शय्यामालिङ्ग्य नीत वपुरलसलसद्बाहुलक्ष्म्या पुनातु॥
सन्ध्या यत्प्रणिपत्य लोकपुरतो बद्धाञ्जलिर्याचते, धत्से यत्त्वपरा विलज्ज शिरसा तच्चापि सोढ मया ।
श्रीर्जातामृतमन्थने यदि हरे कस्माद्विष भक्षितम्, मा स्त्रीलम्पट! मा स्पृशेत्यभिहितो गौर्या हर पातु व॥
यदमोघमपामन्तरुप्त बीजमज त्वया । अतश्चराचर विश्व प्रभवस्तस्य गीयसे ॥५७६।

कुल पवित्र जननी कृतार्था वसुन्धरा पुण्यवती त्वयैव ।
अबाह्यसवित्सुखसिन्धुमग्न लग्न परे ब्रह्मणि यस्य चित्तम् ॥५७७॥

स कर्णकटुक तच्च श्रुत्वा शीर्ष व्यधूनयत् । आकूण्य नासिका वाच प्राहाथो दुर्मनायित ॥५७७॥
अमीषा रसकाव्याना प्रशसायाश्च किं सखे।। अ(इ)यं वेला कथं नाम सौहार्द तव चेदृशाम् ॥५७९॥

छायह कारणि सिरि धरिअ पच्चि वि भूमि पडति । पत्तह इहु पत्तत्तणु वरतरु काइ करंति ॥२०२॥
न गङ्गा गाङ्गेय सुयुवतिकपोलस्थलगत न वा शुदित मुक्तामणिरुरसिजास्वादरसिक ।
न कोटीरारूढ स्मरति च सवित्री वसु भुव ततो मन्ये विश्व स्वसुखनिरत स्नेहविरतम् ॥२०३॥
पाशुमलिनाङ्घ्रिजङ्घ कार्पटिको म्लानमौलिमुखशोभ ।यद्यपि गुणरत्ननिधिस्तथाऽपि पथिक पथि वराक ।
इत्याकर्ण्य गुरुस्तेषा पुर प्राह वच स्थिरम् । सौहृदे दौर्हृदे वाऽपि मत्तृजेन्मनमा मन ॥२०५॥
आमत्तामर्हीभर्तु र्भवद्भिर्वाचिक हि न' । निवेदनीयमार्यस्य द्रढ गाथाकदम्बकम् ॥२०६॥ तथाहि-
गयमाणसु चदणु समरु रयणायरु सिरि(ससि?) खडु । जड उन्छुय बप्पभट्टि किउ सत्तय गाहामडु ॥२०७॥
विंझेण विणा वि गया नरिंदभुवणेसु हुति गारविया । विझो न होइ अगओ गएहिं बहुएहिं वि गएहिं॥२०८॥
माणसरहिएहिं सुहाइ जइ न लब्भति रायहसेहिं । तह तस्स वि तेहि विणा तीरुच्छगा न सोहति ॥२०९॥
परिसेसियहसउल वि माणस माणस न सदेहो । अन्नत्थ वि जत्थ गया हसा वि बया न भन्नति ॥२१०॥
हंसा जहिं गय तहिं जि गय महिमडणा हवति । छेहउ ताह महासरह जे हसिहि मुच्चति ॥२११॥
मलओ सचदणो च्चिय नइमुहहीरतचदणदुमोहो । पब्भट्ठ पि हु मलयाओ चदण जायइ महग्घ ॥२१२॥
अग्घायन्ति महुयरा विमुक्ककमलायरा वि मयरद । कमलायरो वि दिट्ठो सुओ व किं महुअरविहीणो॥२१३॥
एक्केण कोत्थुहेण विणावि रयणायरुच्चिय समुद्दो।कोत्थुहरयण पि उरे जस्स ठिओ सो वि हु महग्घो॥२१४॥
खड विणावि अखडमडलो चेव पुण्णिमायदो । हरिसिरिगयपि सोहइ न नेय विमल ससिक्खड ॥२१५॥तथा-
पइँ मुक्काह वि वरतरु फिट्टइ पत्तत्तण न पत्ताह । तह पुण छाया जइ होइ तारिसी तेहिं पत्तेहिं ॥२१६॥
जड सव्वत्थ अह च्चिय उवरिं सुमणाणि मव्वरुक्खाण । वावे विवडति गुणा पहुपत्तिय पावए कोडिं ॥२१७॥
जे के वि पहू महिमडलम्मि ते उच्छुदडसारिच्छा । सरसा जडाण मज्झे विरसा पत्तेसु दीसति ॥२१८॥
इय उज्जुयसीलालकियाण पायपडियवयणसोहाण गुणवतयाण पहुणो पहूण गुणावलया दुलहा ॥२१९॥
तथा-अस्माभिर्यदि कार्य वस्तदा धर्मस्य भूपते । ससभ्या छन्नमागत्य स्वयमापृच्छ्यता द्रुतम् ॥२२०॥
जाते प्रतिज्ञानिर्वाहे यथा यामस्तवान्तिकम् । प्रधाना प्रहिता पूज्यैरिति शिक्षापुरस्सरम् ॥२२१॥
कान्यकुब्जमहीनाथमुपाजग्मुश्च तेऽप्यथ । सम्यग् व्यज्ञपयन् सूरेर्वचो माहात्म्यधाम तत् ॥२२२॥
अकुण्ठोत्कण्ठमामर्तै करभैर्विगतारिभी । गच्छन् गोदावरी तीरे ग्राम कचिदवाप स ॥२२३॥
तस्य पर्यन्तभूपीठे खण्डदेवकुले तदा । चक्रे वास कृतावासस्तद्दृव्याश्चेतसि स्थितम् ॥२२४॥
निशीथे सा समागत्य रूपाक्षिप्ता नरेश्वरम् । बुभुजे प्रार्थनापूर्व भाग्य जागर्ति सर्वत ॥२२५॥
प्रातरुत्थाय सन्मित्रायल्लकेन तरङ्गित । ययौ करममारुह्यानापृच्छ्यैव तदाथ ताम् ॥२२६॥
स प्राप प्रभुरादान्त प्रान्त विरहरुक्शुचाम् । काव्य जजल्प निर्वेदवह्निज्वालोपम नृप ॥२२७॥
निद्राजागरणादिकृत्यनिवहे नित्यानुवृत्तिस्पृशा, स्वप्नेऽप्यथ योगिनां नयनवच्चेष्टासु सूक्ष्मास्वपि ।
तत्तादृक् स्वहृदामिवेह सुहृदा निश्छेद्दशी स्याद्यदा, मित्राशापरिहारमाचर ततश्चेत प्रसीद प्रभो । ॥२२८॥
नृपो याथातथवच प्रतीतोऽप्यथ कौतुकात । गाथापरार्द्धमाचख्यौ पूर्वार्ध च गुरुस्तत ॥२२९॥ तद्यथा-
अज्जवि त सुमरिज्जइ को नेहो एगराईएँ । गोलानईएँ खडेउलमज्झे पहिअ ज न वसिओ सि ॥२३०॥
इत्युक्त्वा सूरिभिर्भूपो वाढ स परिषस्वजे । अविश्वास्य मनस्तस्यान्त' प्रविश्येव वीक्षितुम् ॥२३१॥
प्रकाममामभूपालस्तुष्टिं विभ्रत सखीक्षणे । इद काव्यमुवाचाथ नाथ कविकुलेषु य ॥२३२॥ तद्यथा-
अङ्गैरुत्पुलकै प्रमोदसलिलप्रस्यन्दिभिर्लोचनै-राकर्ण्याद्भुतसत्कथास्तव सुधीभर्तु: प्रसन्नात्मन ।
सौजन्यामृतनिर्झरे सुमहति स्नातु विपद्वारिधे पार गन्तुमपारपौरुष । वय त्वां द्रष्टुमभ्यागता ॥२३३॥
श्लोक विचित्रबन्धेन लिलेख स खटीदलात् । कौतुकादामभूपाल शालिसौहार्दरङ्गित ॥२३४॥ तथाहि-

श्रीबप्पभट्टिराहाथ शङ्का चेत्कर्मणां तव । मन'शुद्धिस्तत' कार्या व्यवहारोऽपि तादृशः ॥६०७॥
तत सन्यस्त एव त्व जैनमार्ग समाश्रय । श्रुत्वेति तै सहैवासावुदस्थाद्ब्वनात्तत ॥६०८॥
आजगामाथ पार्श्वस्य स्तूपे श्रीपार्श्वमन्दिरे । मिथ्यादर्शनवेष च विमुञ्चत्स्वीकृत पुरा ॥६०९॥
जैनर्षिवेषमास्थाय सयमाचारशिक्षक । ससारचरमप्रत्याख्यानी ध्यानैकतानभृत ॥६१०॥
अष्टादश तदा पापस्थानान्युत्सृज्य सर्वत । चतु शरणमादध्यौ निर्द्धूतान्तरकल्मषः ॥६११॥ युग्मम् ।
प्रशसागर्हणे प्राच्यसुकृतासुकृते व्यधात । परमेष्ठिपदाधीनमानसो मानशोपभू ॥६१२॥
दिनान्यष्टादश प्रायमुपाय दुष्कृतार्दने । एकावतारान्तरितो महानन्दपदस्तदा ॥६१३॥
सम्यगाराधनोपात्तपाण्डित्यमृतिरीतित । देहमुक्त्या गत साम्य प्राप प्राचीनबर्हिषा ॥६१४॥ युग्मम् ।
तत किंचित्सखिस्नेहगद्गद शमिनायक । उवाच विश्वसामन्तविद्वद्वृन्दस्य शृण्वतः ॥६१५॥ तथाहि–
पइ सग्गगए सामतराय अवरत्तउ न फिट्टिहइ । पढम चिय वरिय पुरदराइ सग्गस्स लच्छीए ॥६१६॥
तत्र गोकुलवासेऽस्ति पुरा नन्दनिवेशिते । श्रीशान्ति शान्तिदेवी च हेतुर्विश्वस्य शान्तिके ॥६१७॥
तत्र श्रीबप्पभट्टि श्रीतीर्थेश्वरनमस्कृतौ । गत्वा च तुष्टुवे शान्तिदेवतासहित जिनम् ॥६१८॥
'जयति जगद्रक्षाकर' इत्याद्य शान्तिदेवतास्तवनम् । अद्यापि वर्त्तते तच्छान्तिकर सर्वभयहरणम् ॥६१९॥
तत' सामाजिकस्तोमस्तुतो व्यावृत्य सययौ । कन्यकुब्जपुर बप्पभट्टि कतिपयैर्दिनै ॥६२०॥
पुरापि ज्ञातवृत्तान्तो नृपनिर्गूढपूरुषै । समुखीन पुरोपान्त गत्वा प्रावेशयद् द्रुतम् ॥६२१॥
गुरु समोपविष्ट च प्राह भूपश्चमत्कृत । अहो वो वाचसामर्थ्यं सोऽपि यत्प्रतिबोधित ॥६२२॥
प्रभु प्राहाथ का शक्तिर्मम यत् त्व न बुध्यसे । राजाह सम्यग् बुद्धोऽस्मि त्वद्धर्मोऽस्तीति निश्चितम् ।६२३॥
माहेश्वर पुनर्धर्म मुञ्चतो मे महाव्यथा । तत्प्राच्यभवसबद्ध इवाय किं करोम्यत ॥६२४॥
श्रुतज्ञाननिमित्तेन ज्ञात्वा प्रभुरुवाच च । तव प्राक्कृतकष्टस्य राज्यमल्पतरं फलम् ॥६२५॥
सविस्मयैस्तदा पर्षत्प्रधानैरौच्यत प्रभु । प्रसह्य कथ्यता राज्ञ प्राग्भवोऽस्मत्प्रबुद्धये ॥६२६॥
प्रभुराह तत सम्यग् विमृश्येति यथातथम् । प्रश्नचूडामणे शास्त्रादस्त्राघज्ञानशेवधि ॥६२७॥
शृणु भूमिपते । कालिञ्जराख्यस्य गिरेरध । शालिशालद्रमोर्द्ध्वस्थशाखाबद्धपदद्वय' ॥६२८॥
अधोमुखो जटाकोटिसस्पृष्टपृथिवीतल । द्व्यहने द्व्यहने मिताहारो हारी क्रोधादिविद्विषाम् ॥६२९॥
इति वर्षशत साग्र तपस्तप्त्वातिदुष्करम् । आयु प्रान्ते तनु त्यक्त्वाऽभवस्त्वं भूपनायक ॥६३०॥
यदि न प्रत्ययो राजन् । प्रेषय प्रवरान् नरान् । जटा अद्यापि तत्रस्था आनायय तरोस्तलात ॥६३१॥
इत्याचार्यकथास्मेरो नृपतिः प्रेष्य मानुषान् । जटा आनाययत् तत्र गत्वानीताश्च तास्तत ।६३२॥
मुनीन्द्रोऽय महाज्ञानी कलावपि कलानिधि । भूपाल कृतपुण्योऽसौ यस्येदृग् गुरुरद्भुत ॥६३३॥
पापेद्धा धूतमूर्द्धानस्त दुवृत्तोल्लाससशिन । पर्युपास्ति दधु. सूरिपादान्तभ्रान्तमौलय ।६३४॥
अन्यदा सौधमूर्द्धस्थो नृप कुत्रापि वेश्मनि । कलहान्तरिता रामा भिक्षार्थं गृहमागतम् ॥६३५॥
जैनभिक्षं परब्रह्मध्यानैकाग्रहसंग्रहम् । वृषस्यन्तीमवज्ञाता तेन निर्ग ता गृहात् ॥६३६॥
बाढ कपाटमाश्लिष्य प्रहारेऽह्ने समुद्यते । नूपुरं यतिपादाब्जप्रविष्ट कौतुकादिव ॥६३७॥
पश्यन्तीमथ सोत्प्रासा निर्लज्जा कामदामनीम् । गणयत्येष नेत्येव वदन्तीं च तदैक्षत ॥६३८॥ चतुर्भि कलापकम् ।
प्राकृतस्याथ वृत्तस्य पादमेकमुवाच स । गुरोरग्रे ततोऽवादीत स्वागेव पदत्रयम् ॥६३९॥ तच्च–
कवाडमासज्ज वरगणाए अब्भत्थिओ जुव्वणमत्तियाए । अमन्निए मुकपयप्पहारे स रो पव्वइयस्स पाओ॥
युवा भिक्षाचरोऽन्येद्यु प्रोपितप्रेयसीगृहे । दृष्ट प्रविष्टो भिक्षार्थं राज्ञा सौध रिणा ॥६४१॥
आनीयान्नभृता दर्व्वीमूर्द्ध्वाऽस्थात् सा तदास्यदृक् । सोऽपि तन्नाभिसौन्दर्यासक्तनेत्रस्तथा स्थित ॥६४२॥

सङ्गपरित्यागे सति योऽमरति मानुष पुरुष, देववत्सुखी भवति, तस्य क स्नेह सम्बन्धादिषु । निरो-रक उपरोध स उपरोधेन न गृह्यत इत्यर्थ । करणप्रवृत्तिदर्निश्चरत्वात्कर्णरीति । दोरा-दोषा राजते महाबाहु स आम एव । एवंविधमपि सूरिर्जनमिव प्राकृतमिव जानाति न किंचिदित्यर्थ ॥३॥

तथा-तत्त्वानि ईष्टे तत्त्वेशी, अत एव अली सङ्गनिषेधी, तस्य मेल संसर्ग तस्य अशोऽस्ति । 'स्वराणा स्वरा' इत्याकार । तथा, के ब्रह्मणि, ईहा चेष्टा यस्य स केह -परमब्रह्ममेच्छ । दीर्घ प्रास्वन । घनयुक्तानामावली श्रेणि । प्रिया अमन्दस्नेहा अत्यर्थप्रीतिर्भवति । विगतरागेषु हि सर्व प्रीतिमान ' घनवन्तोऽपि तत्रैव रतिं विदधति । तथा, वि पक्षी गरुड, स रथो यस्य स विरथो-विष्णुस्तस्मिन्नर्थात् चित्तस्थे, यो म्रियते तस्य को निभ सदृश । स च रा राजेव एव भवति । गुरौ चित्तस्थे मृत्युरपि श्लाघ्य तथा, जह्नुनद्या गङ्गाया सकाशात् का अन्या पवित्रा । अयमेव भगवान पूज्य । तथा, 'दो रा' द्वौ-राजानौ सगतौ यस्य स द्विराट्, सर्वसामर्थ्ययुक्तो भवानेव यदुचित तद्विधेहीति चतुर्थोऽर्थ ॥४॥

श्रीबप्पभट्टिना चैवमर्थाना साष्टक शतम् । व्याख्यात मतिमान्द्येन न जानीमो वय पुन ॥२४९॥
तत उत्थाय रात्रौ च वारवेश्यागृहेऽवसत । अमूल्य कङ्कण दत्त्वाऽस्यै प्रातर्निरगाद् गृहात् ॥२५०॥
द्वितीय राजसौधस्य द्वारि त्यक्त्वा खराशुरुक् । इन्द्रकीले ययौ तस्माद् बहिस्थाद् रहोवने ॥२५१॥
तत प्रातर्मुनिस्वामी सगत्य नृपते सभाम् । आपप्रच्छे नृप कन्यकुब्जप्रस्थानहेतवे ॥२५२॥
तेन पूर्णप्रतिज्ञायामज्ञाताया कथ त्विति । राज्ञा पृष्ट समाचख्यावामभूप इहागमत ॥२५३॥
विद्वत्कथनतस्तेन कथित यद्यदीदृश । ज्ञायता सैष एवेति 'दो रा' शब्दात्तथा पुन ॥२५४॥
द्वौ राजानौ इति स्पष्ट मातुलिङ्गस्य दर्शनात । इद किमिति पृष्टे च 'बी ज उ रा' त उत्तरात् ॥२५५॥
तथा 'तू अ रि प त्त' ति तवारिपत्रमित्यथ । संस्कृताद्भवतीत्येतत्तवाग्रे जगदे स्फुटम् ॥२५६॥
ततो विप्रतिसारोऽस्य प्रससार प्रकर्षत । धिगस्ति मम मूर्खत्व न ज्ञात कथितेऽपि यत् ॥२५७॥
ततोऽवसर एतस्मिन् वारवामा प्रभो पुर । कङ्कण मुमुचे रत्नरोचिरस्ततमस्तति ॥२५८॥
क्षत्ताऽपर समभ्येत्य भूपालाय व्यजिज्ञपत् द्वारेन्द्रकीले केनाऽपि मुक्त नाथ । न वेद्म्यहम् ॥२५९॥
यावत्पश्यति राजा तदामनामाथ दृष्टवान् । श्रीबप्पभट्टेरापृच्छय हेतुप्रत्यायक प्रभु ॥२६०॥
गृहागतो नृप शत्रुर्नार्चितो न च साधित । द्विधापि चिरवैरस्य निवृर्त्तिर्न प्रवर्तिता ॥२६१॥
तथा च विरह पूज्यैरुपतस्थेऽतिदु खद । यावल्लभ्य तु लभ्येत किं ब्रूम साप्रत प्रभो ! ॥२६२॥
गुरुराह महाराज ! मा खेदोऽत्र विधीयताम् । हंसा इव वय येनाप्रतिबद्धविहारिण ॥२६३॥
आपृष्टोऽस्ति महाबाहो याम स्व नाम सार्थकम् । कुर्याद्यथा परे लोका निर्मला स्यु सुहृत्तम ! ॥२६४॥
इत्युक्त्वाऽसौ निरीयागात् सगत्यामनृपेण च । करभीभिरभीषु भि सुरभियशसा गुरुः ॥२६५॥
मार्गे तदासनारूढ प्रभुणा सह सचरन् । पुलिन्दमेक कासारे क्षिप्तास्य वारिमध्यत ॥२६६॥
पिबन्त च छगलवद् दृष्ट्वा गुरुपुरस्तदा । आह प्राकृतकाव्यार्द्धमपूर्वेक्षासकौतुक ॥२६७॥ तथाहि-
पसु जेम पुलिदउ पीअइ जलु पथिउ कमणिहि कारणिण । इत्याकर्ण्य प्रभु प्राहोत्तरार्द्ध तत्क्षणादपि॥२६८॥
विलम्बन्ते न काव्येषु सिद्धसारस्वता क्वचित् । तच्च करबेवि करछिप कज्जलिण मुद्धहि असुनिवारणिण ॥
प्रत्ययार्थ पुलीन्द्रश्च समाकार्य स भूभुजा । पृष्टो लज्जानतास्योऽस्य यथावृत्तमथावदत् ॥२७०॥
नाथ ! प्रवसने युष्मद्वधू सान्त्वयत सत । साञ्जनाश्रुप्रमृष्टे मेऽभूता कज्जलितौ करौ ॥२७१॥
हर्षप्रकर्षमासाद्य वृत्तान्तेनाऽमुना नृप । सुरेन्द्र इव सौधर्मं द्राक् कन्याकुब्जमासदत् ॥२७२॥
प्रविवेशोत्सवेनैष प्राच्यात्सातिशयेन स । कोटिकोटिगुणामर्च्चामकार्षीच्च गुरोस्तथा ॥२७३॥
इतश्च श्रीसिद्धसेनसूरयो जरसा भृशम् । आक्रान्ता कृतकृत्यत्वात् स्वेच्छा प्रायोप्रवेशने ॥२७४॥

इति साहसवाचा स तुष्टो हिंसाग्रहात्तत । न्यवर्त्तत प्रशान्तात्मा सत्सङ्ग उपकारक· ॥६७८॥
मैत्रीं च प्रतिपेदे स यथादिष्टकर प्रभो । कियन्मे जीवित मित्र ! ज्ञानाद् दृष्ट्वा निवेदय ॥६७९॥
षण्मास्यामवशेषाया कथयिष्यामि तत्र च । इति जल्पन् तिरोवत्तावसरे च तदब्रवीत ॥६८०॥
गङ्गान्तर्मागधे तीर्थे नावाऽवतरत सत । मकाराद्यक्षरग्रामोपकण्ठे मृत्युरस्ति ते ॥६८१॥
निर्यद्धूम जलाद्दृष्ट्वाऽभिज्ञान भवता दृढम् । विज्ञेयमुचित यत्ते तत्प्रेत्यार्थ समाचर ॥६८२॥
तीर्थयात्रामसौ मित्रोपदेशादुपचक्रमे । अलस को हिते स्वस्य नेच्छेन् सद्गतिमात्मन' ॥६८३॥
प्रयाणे प्रवणै पुण्डरीकाद्रि प्राप भूपति । युगादिनाथमभ्यर्च्य कृतार्थ स्वममन्यत ॥६८४॥
ययौ रैवतकाद्रि च श्रीनेमि हृदि धारयन् । उपत्यकाभुव प्राप प्राप्तरेख सुधीपु य ॥६८५॥
तीर्थं प्रणन्तुमानेकानेकादश नरेश्वरान् । अपश्यन्नश्यदातङ्को हयायुतपरिच्छदान् ॥६८६॥
तथैकादशभि फल्गुवागडम्बरदिगम्बरै । राक्षसैरिव शाखोटान् कलिनिष्ठैरधिष्ठितान् ॥६८७॥ युग्मम् ।
स्वीकुर्वाणान्महातीर्थ शैलारोहनिषेधिन । असख्यसैन्यसख्यायतानाह्वयदिलापति ॥६८८॥
तान् दृष्ट्वा बप्पभट्टि श्रीसुहृद्भूपालमब्रवीत् । धर्मकर्मोद्यमे युद्धात्प्राणिन को जिघासति ॥६८९॥
वागाहवेन जेष्यामि विद्वत्पाशानिमान् नृप ! । नखच्छेद्ये ऽब्जिनीखण्डे कुठार क प्रयोजयेत् ॥६९०॥
ते जिता वादमुद्रायाममुद्रायासमन्तरा । दीपस्य शलभप्लोपे स्तुति सस्तूयते हि का ॥६९१॥
ततोऽपि तानभ्यमित्रानवादीद् विशदाम्बर । निर्जयादपि चेद्यूय शमिनो न व्रतादपि ॥६९२॥
असख्यव्यन्तराधीशचुम्बिताऽङ्घ्रिखावलि । अम्बा श्रीनेमिपादाब्जकादम्बा शासनामरी ॥६९३॥
आत्मनोरुभयोः कन्यायुग्म व्यत्ययत स्थितम् । देवी तदन्तरा येपामेता सजल्पयिष्यति ॥६९४॥
तीर्थं तदीयमेवास्तु यस्याम्बा क्रमतोऽमुत । समर्पयति तत्कि नु वादैरादीनवास्पदै ॥६९५॥ विशेषकम् ।
उभयाभिमतो जज्ञे व्यवहारोऽयमेतयो । पक्षयोरक्षयोदग्रप्रभावाम्बालये तत ॥६९६॥
तत· कुमारिका तेपा बप्पभट्टिरिहार्पयत । द्वादश प्रहारान् यावत्तैर्मन्त्रै साधिवासिता ॥६९७॥
एडमूकेव नाह स्म कथचिदथ तेऽवदन् । शक्तिश्चेद्यूयमप्यत्र कन्या जल्पयताद्य न' ॥६९८॥
तन्मूर्ध्नि बप्पभट्टिश्च कर कमलकोमलम् । ददावम्बा च तद्वक्त्रे स्थिता स्पष्टमुवाच च ॥६९९॥
उज्जितसेलसिहरे दिक्खा-नाण निसीहिया जस्स । त धम्मचक्कवट्टिं अरिट्ठनेमि नमसामि ॥७००॥
ततो जयजयध्वानमिश्रो दुन्दुभिरध्वनत् । रोदः कुक्षिम्भरि श्वेताम्बरपक्षोन्नतिप्रद ॥७०१॥
तत प्रभृति गाथेय चैत्यवन्दनमध्यत । सिद्धस्तवनकृद्गाथात्रितयादूर्ध्वमादृता ॥७०२॥
शक्रस्तववदाबालाङ्गनापाठ्याऽत्र मानिता । अष्टापदस्तुतिश्चाऽपि श्रुतवृद्धै पुरातनै ॥७०३॥
ततो रैवतकारोहात्समुद्रविजयाङ्गजम् । आनर्चासौ महाभक्त्या मानयन् जन्मन फलम् ॥७०४॥
दामोदरहार तत्राभ्यर्च्यागात् पिण्डतारके । तथा माधवदेवे च शङ्खोद्धारे च त स्थितम् ॥७०५॥
द्वारकायां तत श्रीमान् कृष्णमूर्त्तिं प्रणम्य च । तत्र दानादि दत्त्वा श्रीसोमेश्वरपुर ययौ ॥७०६॥
तत श्रीसोमनाथस्य हेमपूजापुरस्सरम् । तल्लोक प्रीणयामास वासवो जीवनैरिव ॥७०७॥
पुन स्वं नगर प्राप श्रीमानाममहीपति । याद‍ृच्छिक ददौ दान धर्मस्थानानि च व्यधात् ॥७०८॥
प्राप्ते काले सुत राज्ये दुन्दुक स न्यवेशयत् । प्रकृती क्षमयामास पूर्वमानन्दिता अपि ॥७०९॥
प्रयाण दत्तवान् गङ्गासरित्तीरस्थमागधम् । तीर्थ जिगमिषुर्नावमारूढश्च तदन्तरा ॥७१०॥
सूरिणा सह तन्मध्ये दृष्टवान् धूमनिर्गमम् । उपगङ्ग जनाज्जज्ञे मगटोडानिवेशनम् ॥७११॥
प्रतीते व्यन्तराख्याते सूरिराहामभूपतिम् । जैनधर्म प्रपद्यस्व प्रान्तेऽपि प्रत्ययोऽस्ति चेत् ॥७१२॥
राजाह प्रतिपन्नोऽस्मि सर्वज्ञ शरण मम । देवो गुरुर्ब्रह्मचारी धर्मश्चेत्कृपयोदित ॥७१३॥

तत प्राक् सिष्मिये सूरिस्तद्वाग्भिर्न विसिष्मिये । उवाच च गिर धीरा धैर्याधारधुरन्धर ॥३०९॥
हैम्नी पाञ्चालिका रिक्तान्तरालाशुचिपूरिता । बहिश्चन्दनचर्चादिभूषासुरभिरस्तु किम् ॥३१०॥
मलमूत्रादिपात्रेषु गात्रेषु मृगचक्षुषाम् । रतिं करोति को नाम सुधीर्वर्चोगृहेष्विव ॥३११॥
चक्षु सवृणु वक्रवीक्षणपर वक्ष समाच्छादय, रुन्द्धि स्फूर्जदनेकभङ्गिकुटिल रम्योपचार वच ।
अन्ये ते नवनीतपिण्डसदृशा वश्या भवन्ति स्त्रिया मुग्धे । किं परिखेदितेन वपुषा पाषाणकल्पा वयम् ॥३१२॥
इत्याकर्ण्याप्यकर्णेव न बुद्धा प्रत्युत प्रभो । स्वभावकठिनौ हस्तौ स्वगात्रेऽपत्रपा न्यधात् ॥३१३॥
ताभ्या च सर्गस्त्राभ्यामिव सा स्पर्शयेत् तत । स्मरकुञ्जरकुम्भाभौ मृदुस्पर्शावुरोरुहौ ॥३१४॥
तत शृङ्गारशिखरिखादिराङ्गारभारवत् । निर्दम्भशोकदम्भेन पूच्चकार मुनीश्वर ॥३१५॥
किं किमित्यूचिषी वक्षोजाग्रात् पाणिं विकृष्य स । अवरुद्धगद्गदाव्यक्तवाचोवाच कथञ्चन ॥३१६॥
अमूल्यातुल्यवात्सल्यवर्द्धिताऽस्माद्दृशाङ्गिनाम् । गुरुणा स्मारिता अद्य निजाङ्गस्पर्शनस्त्वया ॥३१७॥
तया कथमिति प्रश्ने कृते प्राह पुन प्रभु । रात्रौ स्वाध्यायकृत्यानन्तर विश्रामणा प्रभो ॥३१८॥
अह व्यरचय सर्वकाल सर्वाङ्गसङ्गिनीम् । कटीं विश्राम्य तत्प्रोथयुगल च समस्पृशम् ॥३१९॥ युग्मम् ।
तदद्य स्मृतिमानीत वृत्त-मार्दवसाम्यत । यादृक् तव कुचद्वन्द्व तादृक् तदपि चाऽभवत् ॥३२०॥
श्रुत्वेति सा परावृत्तरसा भग्नाशलानिधि । दध्यौ विधूतकामान्ध्या किं मे कर्मोदय ययौ ॥३२१॥
ग्रावा लोह कथ वज्र दुर्भिदोऽय सिताम्बर । वह्निटङ्कादिभिर्भेद्यो ग्रावा लोहश्च वह्निना ॥३२२॥
कुवलीकोमलफलक्षोदाद्यैर्वज्रमप्यथ । मिद्येतानन्यसामान्य काठिन्य किञ्चिदस्य तु ॥३२३॥
घृतपिण्डसमास्तेऽन्ये वह्निकुण्डसमासु ये । महिलासु विलीयन्ते सृष्टिरेवाऽपरस्य तु ॥३२४॥
वेधायमश्वकावस्य पुर कर्मोर्मिकिङ्करौ । कन्दर्पोऽप्यस्माद् बिभेतीव तीव्रब्रह्मव्रतस्पृश ॥३२५॥
रसे विरसमाधत्त मत्काममपि भग्नवान् । तिरश्चकार मा यस्तु तेन दैव हि जीयते ॥३२६॥
ध्यायन्तीति निदद्रौ सा मुनिद्रोहे गलाग्रहा । निद्रा हि विश्वदु खार्त्तौ विश्रामादुपकारिणी ॥३२७॥
प्रगे जागरिताचार्य पर्यङ्कासनसंस्थितम् । प्रणम्य प्राह नाद्युरह त्वद्विक्रनौ कृतीन् ॥३२८॥
वीतराग पुरा स्मेरस्मरमुख्यारिजित्वर । आसीस्त्वद्वृत्तत सत्यमिद ख्यातिं ययौ किल ॥३२९॥
तदापृच्छे प्रसाद्याशु पृष्ठे हस्त प्रदेहि मे । तव शापेन शक्रोऽपि भ्रश्यत्यन्यस्य का कथा ॥३३०॥
अथाह गुरुरज्ञानवागेषा ते वय पुन । रोषतोषभरातीता अज्ञा शापादिगोचरेऽपि ॥३३१॥
इति श्रुत्वा ययौ भूपसमीप वरवर्णिनी । उवाच तद्गुणग्रामतक्षणविद्रुतवैकृता ॥३३२॥
नाथ । पाथ पतिं बाहुदण्डाभ्या स तरत्यलम् । भिनत्ति च महाशैल शिरसा तरसा रसात् ॥३३३॥
पदाभ्या वह्निमास्कन्देत् सुप्त सिंह च बोधयेत् । श्वेतभिक्षु तव गुरु य एन हि विकारयेत् ॥३३४॥
इत्याकर्ण्याचलापाल प्राप्तरोमाञ्चकञ्चुक । स्वगुरोर्गुरुसत्त्वेन प्राह नृत्यन्मनोनट ॥३३५॥
न्युञ्छने यामि वाक्याय दृग्भ्या याम्यवतारणे । बलिर्विधीये सौहार्दहृद्याय हृदयाय च ॥३३६॥
असौ मही धरावार देश पुरमिद मम । भाग्यसौभाग्यभृद् यत्र बप्पभट्टिप्रभुस्थिति ॥३३७॥ त्रिभिर्विशेषकम् ।
स्वक्षेत्रभ्र शिन काम कामादिभिर्विसर्शित । परक्षेत्रगतास्तत्र लालसत्व हि तस्यगु ॥३३८॥
पशवोऽपि गजास्तस्मादहासीन् सर्वथा तु तान् । योऽस्मै ग ज व रे त्याख्या तत ख्यात ऽस्तु मद्गुरो ॥३३९॥
ततो ग ज व रो ब्र ह्म चा री च विरुदद्वयम् । तस्याऽभूद् भूत-सद्भाव भाविवेत्तु श्रुतागमात् ॥३४०॥
तथा किं विदवे तत्र त्वया पृष्टेति साऽवदत । कटाक्षक्षेपवक्षोजतत्करस्पर्शनादिभि ॥३४१॥
अजातबोधका चैक तदा दोधकमब्रवम् । तत्र प्रज्ञानुमानेन कवित्व हि प्रसर्पति ॥३४२॥ तथाहि-
गयवरकेरइ सत्थरइ पायपसारिउसुत्त । निच्चोरी गुजरात जिम्वनाह न केणइ भुत्त ॥३४३॥

स्वसुरद्वयसहारे जाते ते विद्विपन्पिता । जितमन्यो महापापी त्वत्प्रजा पीडयिष्यति ।।७४९।।
हृदयालु कृपालुश्च तत्त्व प्रार्थनया मम । कर्मतो विरमामुष्माद् हृदानन्दन नन्दन ! ।।७५०।।
इति मातुरलङ्घ्यत्वात् श्रीभोज साश्रुलोचन । उत्तरीय निचिक्षेप चिताया गुरुपृष्ठत ।।७५१।।
अस्तोकशोकसम्भारधारणाक्लान्तदेहरुक् । ऊ(औ?)द्धर्वदेहिकमाधत्त कृत्य पैतामह प्रभो ।।७५२।।
अन्यदा मातुलै साकमाकस्मिकदत्रोपम । तात शमयितु प्रायात्कन्यकुब्जमचिन्तित ।।७५३।।
प्रविष्टो गोपुरेणाथ द्राग् राजद्वारसनिधौ । मालाकार ददर्शाथ बीजपूरत्रयान्वितम् ।।७५४।।
तेन ढौकनक स्वामिपुत्रस्यास्य कृत तदा । त गृहीत्वा ययावन्त सौध रोध विशन्विशम् ।।७५५।।
सह कण्टिकया तत्रोपविष्ट प्रवरासने । जघान हृदये घातैस्त्रिभिस्तैर्बीजपूरकै ।।७५६।।
महाप्राणकृताघातादुभौ प्राणैर्वि(व्यु)युज्यताम् । प्राग्ध्यातपुत्रहत्याहोमीतैरिव विनिर्गतै ।।७५७।।
अपद्वारादबहि कृष्ट्वा क्रोष्टारमिव वेश्मन । दुन्दुक कन्दुकस्थित्या क्रीडया प्रेरित नरै ।।७५८।।
निस्वानस्वानपूर्व सोऽविशत्कण्ठीरवासने । प्रणत सर्वसामन्तै सपौरैर्मन्त्रिभिस्तथा ।।७५९।।
श्रीमदामविहाराख्यतीर्थ नन्तु ययौ नृप । तत्र शिष्यद्वय दृष्ट बप्पभट्टेर्महामुने ।।७६०।।
विद्याव्याक्षेपतस्ताभ्या न चक्रे भूमिपोचितम् । अभ्युत्थानादिसन्मान श्रीभोजोऽथ व्यचिन्तयत ।।७६१।।
अज्ञातव्यवहारौ हि शिष्यावेतौ प्रभो पदे । न युज्येते यतो विश्वे व्यवहारो महत्वभू ।।७६२।।
श्रीनन्नसूरिराचार्य श्रीमान् गोविन्द इत्यपि । आहूय पूजितौ राज्ञा पट्टे च स्थापितौ प्रभो ।।७६३।।
मोढेरे प्रहितो नन्नसूरि सूरिगुणोन्नत । पार्श्वे गोविन्दसूरिश्चावस्थाप्यत नृपेण तु ।।७६४।।
भोजराजस्ततोऽनेकराष्यराष्ट्रग्रहाग्रह । आमादभ्यधिको जज्ञे जैनप्रवचनोन्नतौ ।।७६५।।
ब प्प भ ट्टि र्भ द्र की र्ति र्वा दि कु ञ्ज र के स री ।
ब्र ह्म चा री ग ज व रो रा ज पू जि त इत्यपि ।।७६६।।

विख्यातो बिरुदैर्जैनशासनक्षीरसागरे । कौस्तुभ कृतसस्थान पुरुषोत्तमवक्षसि ।।७६७।।
जयताज्जगतीपीठे धर्मकल्पद्रुमाङ्कुर । इदानीमपि यन्नाममन्त्रो जाड्यविषापह ।।७६८।। त्रिभिर्विशेषकम् ।
इत्थ श्रीबप्पभट्टिप्रभुचरितमिद विश्रुत विश्वलोके, प्राग्विद्वत्ख्यातशास्त्रादधिगतमिह यत्किंचिदुक्त तदल्पम् ।
पूज्यै क्षन्तव्यमत्रानुचितमभिहित यत्तथा तत्प्रसादात, एतत्सर्वाभिगम्य भवतु जिनमतस्थैर्यपात्र ध्रुव च ।।
श्रीचन्द्रप्रभसूरिपट्टसरसीहसप्रभ श्रीप्रभा-चन्द्र सूरिरनेन चेतसि कृते श्रीरामलक्ष्मीभुवा ।
श्रीपूर्वर्षिचरित्ररोहणगिरौ श्रीबप्पभट्टे कथा श्रीप्रद्युम्नमुनीन्दुना विशदित शृङ्ग किलैकादश ।।७७०।।
दुष्कर्मजैत्र पुरुषोत्तमाङ्गाज्जन्माविशुद्धाक्षरहेतुमूर्त्ति । गिरीशतुङ्गाध्वपुर स्थितश्री प्रद्युम्नदेह शिवतातिरस्तु
श्रीकन्यकुब्जक्षितिपप्रबोधकर्त्तु स्तथा पूर्वगतश्रुतेन। विश्वे समस्यानवपाठबन्धै श्रीभद्रकीर्तेर्नरिनतिकीर्ति ।७७२।"

इति ।।१५३।।

इदानीं श्रीचरमशासनेशितुर्द्वात्रिंशत्तमपट्टमलङ्करिष्णोः श्रीप्रद्युम्नमुनिपतेर्विवदिषयाऽऽहो-पेन्द्रवज्राम्--

दि अट्ठपज्जुराणगुरू विभासी, भवीण पज्जुराणदवग्गिमेहो ।
विअट्ठपज्जुराणसमो गणिंदो, जसाइदेवस्स पईससेले ।।१५४।।(उविंदवज्जा)

तत प्राक् सिष्मिये सूरिस्तद्वाग्भिर्न विसिष्मिये । उवाच च गिर धीरा धैर्यधाराधुरन्धर. ॥३०९॥
हैम्नी पाञ्चालिका रिक्तान्तरालाशुचिपूरिता । बहिश्चन्दनचर्चादिभूषासुरभिरस्तु किम ॥३१०॥
मलमूत्रादिपात्रेषु गात्रेषु मृगचक्षुषाम् । रतिं करोति को नाम सुधीर्वर्चोगृहेष्विव ॥३११॥
चक्षु सवृणु वक्रवीक्षणपर वक्ष समाच्छादय, रुन्द्धि स्फूर्जदनेकभङ्गिकुटिल रम्योपचार वच ।
अन्ये ते नवनीतपिण्डसदृशा वश्या भवन्ति स्त्रिया मुग्धे । किं परिखेदितेन वपुषा पाषाणकल्पा वयम् ॥३१२॥
इत्याकर्ण्याप्यकर्णेव न बुद्धा प्रत्युत प्रभो । स्वभावकठिनौ हस्तौ स्वगात्रेऽपत्रपा न्यधात् ॥३१३॥
ताभ्या च सर्वगात्राभ्यामिव सा स्पर्शयेत् तत । स्मरकुञ्जरकुम्भाभौ मृदुस्पर्शावुरोरुहौ ॥३१४॥
ततः शृङ्गारशिखरिखादिराङ्गारभारवत् । निर्दम्भशोकदम्भेन पृच्चकार मुनीश्वर ॥३१५॥
किं किमित्यूचिषी वक्षोजाग्रात् पाणिं विकृष्य स । अथ गद्गदाव्यक्तवाचोवाच कथञ्चन ॥३१६॥
अमूल्यातुल्यवात्सल्यवद्भिरस्मादृशाङ्गिनाम् । गुरुणा स्मारिता अद्य निजाङ्गस्पर्शनस्त्वया ॥३१७॥
तया कथमिति प्रश्ने कृते प्राह पुन प्रभु । रात्रौ स्वाध्यायकृत्यानन्तर विश्रामणा प्रभो ॥३१८॥
अह व्यरचय सर्वकाल सर्वाङ्गसङ्गिनीम् । कटीं विश्राम्य तत्प्रोथयुगल च समस्पृशम् ॥३१९॥ युग्मम् ।
तदद्य स्मृतिमानीतं वृत्त-मार्दवसाम्यत । यादृक् तव कुचद्वन्द्व तादृक् तदपि चाऽभवत् ॥३२०॥
श्रुत्वेति सा परावृत्तरसा भग्नाशतानिधिः । दध्यौ विधूतकामान्ध्या किं मे कर्मोदय ययौ ॥३२१॥
ग्रावा लोह कथ वज्र दुर्भिदोऽय सिताम्बर । वह्निटङ्कादिभिर्भेद्यो ग्रावा लोहश्च वह्निना ॥३२२॥
कुवलीकोमलफलक्षोदाद्यै वज्रमप्यथ । भिद्येतानन्यसामान्य काठिन्य किञ्चिदस्य तु ॥३२३॥
घृतपिण्डसमास्तेऽन्ये वह्निकुण्डसमासु ये । महिलासु विलीयन्ते सृष्टिरेवाऽपरस्य तु ॥३२४॥
वेधायमश्वकावस्य पुर कर्मोर्मिकिङ्करौ । कन्दर्पोऽप्यस्माद् बिभेतीव तीव्रब्रह्मव्रतस्पृश ॥३२५॥
रसे विरसमाधत्त मत्काममपि भगवान् । तिरश्चकार मा यस्तु तेन दैव हि जीयते ॥३२६॥
ध्यायन्तीति निदद्रौ सा मुनिद्रोहे गताग्रहा । निद्रा हि विश्वदु खार्त्तौ विश्रामादुपकारिणी ॥३२७॥
प्रगे जागरिताचार्य पर्यङ्कासनसस्थितम् । प्रणम्य प्राह नाद्युरह त्वद्विकृतौ कृतीन् ॥३२८॥
वीतराग' पुरा स्मेरस्मरमुख्यारिजित्वर । आसीत्त्वद्वृत्तत सत्यमिद ख्यातिं ययौ किल ॥३२९॥
तदापृच्छे प्रसादाशु पृष्ठे हस्त प्रदेहि मे । तव शापेन शक्रोऽपि भ्रश्यत्यन्यस्य का कथा ॥३३०॥
अथाह गुरुरज्ञानवागेषा ते वय पुन । रोषतोषपरातीता अज्ञा शापादिगोचरेऽपि ॥३३१॥
इति श्रुत्वा ययौ भूपसमीप वरवर्णिनी । उवाच तद्गुणग्रामतक्षणाविद्रुतवैक्रृता ॥३३२॥
नाथ । पाथ पतिं बाहुदण्डाभ्या स तरत्यलम् । भिनत्ति च महाशैल शिरसा तरसा रसात् ॥३३३॥
पदाभ्या वह्निमास्कन्देत् सुप्त सिंह च बोधयेत् । श्वेतभिक्षु तव गुरु य एन हि विकारयेत् ॥३३४॥
इत्याकर्ण्याचलापाल प्राप्तरोमाञ्चकञ्चुक । स्वगुरोर्गुरुसत्त्वेन प्राह नृत्यन्मनोनट' ॥३३५॥
न्युञ्छने यामि वाक्याय दृग्भ्या याम्यवतारणे । बलिर्विधीये सौहार्दहृद्याय हृदयाय च ॥३३६॥
असौ मही धराधार देश पुरमिद मम । भाग्यसौभाग्यभृद् यत्र बप्पभट्टिप्रभुस्थिति ॥३३७॥ त्रिभिर्विशेषकम् ।
स्वक्षेत्रभ्र शिन काम कामादिभिर्विमर्शत । परक्षेत्रगतास्तत्र लालसत्व हि तत्यजु' ॥३३८॥
पशवोऽपि गजास्तस्मादहासीन् सर्वथा तु तान् । योऽस्मै ग ज व रे त्याख्या तत ख्यात ऽस्तु मद्गुरो ॥३३९॥
ततो ग ज व रो ब्र ह्म चा री च बिरुदद्वयम् । तस्याऽभूद् भूत-सद्भाव भाविवेत्तु श्रुतागमात् ॥३४०॥
तथा किं विदधे तत्र त्वया पृष्टेति साऽवदत् । कटाक्षक्षेपवक्षोजतत्करस्पर्शनादिभि ॥३४१॥
अजातबोधका चैक तदा दोधकमब्रुवम् । तत्र प्रज्ञानुमानेन कवित्व हि प्रसर्पति ॥३४२॥ तथा हि-
गयवरकेरइ सत्थरइ पायपसारिउसुत्त । निच्चोरो गुजरात जिम्वनाह न केणइ भुत्त ॥३४३॥

योजयेदातिथेये न भवांस्तु प्रकटीकृत । सत्काराय।पि नाम स्व सत्यापयति चेद्द्रिया ॥३८०॥
पलायमानो वाह्यानां हस्त्यारूढो विनश्यति।तदस्माकं प्रभोर्नामवेनाऽत्र जायते स्फुटम् ।३८१॥त्रिभिर्विशेषकम्।
निग्रहेऽपि स एवास्यादोषो राज्ञस्ततो नृप । । विमृश्य कारिता तत्र सैशास्यं काऽऽरराऽनति ॥३८२।
क्षमावलीबस्य तस्य त्व जितेऽस्मद्वादिना तत । पुमानप्यपमानस्य पात्र सर्वस्वनाशत ॥३८३॥
स्वाङ्गीकृतप्रसादस्य नास्त्येवास्य पराजय । वादिनो विमृशातस्त्वमविमर्शो हि नाशकृत ॥३८४॥
श्रुत्वेति बप्पभट्ट्यास्ये सहास्ये नृपवीक्षिते । मुनीशेन सदानन्दनिर्भर जगदे वच ॥३८५॥
को हि धर्मस्य नोत्कण्ठी पूर्व परिचितस्य च । यदि रागिग्रहो न स्यादस्य श्रेयोवहिस्कृत ॥३८६॥
अनित्यैकग्रहे रक्ते भिक्षौ कृतजयाग्रह । क्षण तदेव चेद्रागे जयो मोक्षस्तत कुत ।३८७॥
वैराग्य एव मुक्ति स्यात्सर्वदर्शनसमतम् । कार्या नात्रावृतिर्भिक्षुर्जयो मे तत्कृतोन्नति ॥३८८॥
धर्मराजस्य सम्यक् कुविचा।ादिदमाद्दनम् । मदाश्रितो यतो वादस्तस्यैगोप करिष्यति ॥३८९॥
कुत्राप्यवसरे तदस्मादस्तु वाकपूरतो रण । समान्य प्रेषय प्रेष्ठपुमास धर्मभूपते ॥३९०॥
आमराजेन कृत्वैतत्प्रहित समय भुवम् । व्यवस्थाप्य जगामासौ प्रोचे तत्स्वामिन पुर ॥३९१॥
वाग्विग्रहाय वादीन्द्र राजा वर्द्धनकुञ्जरम् । धर्म सवाह्यमास गीष्पतिं वासवो यथा ॥३९२॥
चतुर्दिगन्तविश्रान्तकीर्तय सुहृदस्तत । आहूयाभ्यर्च्य सभ्यत्वे वादेऽस्मिन् विहिता मुदा ॥३९३॥
परमारमहावशसम्भूत' क्षत्रियाग्रणी । तस्य वाक्पतिराजोऽस्ति विद्वान् निरुपमप्रभ ॥३९४॥
पूर्वं परिचितश्चासौ बप्पभट्टिप्रभोस्तत । तस्य वाग्मर्मविज्ञानहेतौ सत्राहितो मुदा ॥३९५॥
व्यवस्थितदिने प्राप प्रदेश देशसन्धिगम् । समापीशमहासभ्यै सम वर्द्धनकुञ्जर ॥३९६॥
कन्यकुब्जादपि श्रीमानाम काम सुधीनिधि । श्रीबप्पभट्टिना विद्वद्वृन्दसन्निधिना समम् ॥३९७।
भुव तामेव सप्रापातपत्राच्छादिताम्बर । आवासान् स्व पुरासासान् दत्त्वावस्थितवानथ ॥३९८॥
आजन्म सर्वदा दृष्टशस्त्राशास्त्रिश्लथादर । अदृष्टपूर्ववाग्युद्धप्रेक्षार्थै सकुतूहल ॥३९९॥
अहपूर्विकया सिद्ध विद्याधरसुरव्रज । समेतश्चापसरोवर्गै स्वर्गवद्गगनाङ्गणे ॥४००॥
कौतुकाकृष्टचेतोभीराजसभ्यैर्बहुश्रुतै । ईयतु. सगतौ तत्र तौ वादि-प्रतिवादिनौ ॥४०१॥
उपविष्टेषु सभ्येषु श्रुत्यधीनमनस्सु च । स्तिमितात्र सभा साभूदालेख्यलिखिता किल ॥४०२॥
निज निजं नराधीशमाशिषाभिनेनन्दतु । स्वस्वागमाविरोधेन सभ्यानुमतिपूर्वकम् ॥४०३॥
तत श्रीसौगताचार्यं पूर्वं वर्द्धनकुञ्जर । आशीर्वादमुदाजह्रे व्यथक द्वेषिपर्वदाम् ॥४०४॥ तथाहि–
शर्मणे सौगतो धर्म्म पश्य वाचयमेन य । आहत साधयत् विश्व क्षणक्षणविनश्वरम् ॥४०५॥
अथ श्वेताम्बराचार्यो बप्पभट्टि सुधीपति । अभ्यधत्ताशिष स्वीया भूपालाय यथा तथा ॥४०६॥
अर्हन् शर्मोन्नति देयान्नित्यानन्दपदस्थित । यद्वाचा विजिता मिथ्यावादा एकान्तमानिन ॥४०७॥

अथ सार्धगाथयाऽमुष्य जन्मादिवर्षान व्याहरति.. "जाओ" इत्यादि, "स" त्ति, सः=श्रीमाढरसम्भूतसूरिः "वीरा" त्ति, वीरात्=त्रैशलेयजिनेन्द्रात् अहोरत्तघडियागुहक्खिमिए" अहोरात्रघटिकाः षष्टिः, गुहाक्षीणि द्वादश, आभ्यामङ्काभ्यां वामगत्या १२६० सङ्ख्यया मितेऽहोरात्रघटिकागुहाक्षिमिते "वासे" त्ति, वर्षे=वत्सरे=वीरसंवत् १२६०तमे वर्षे "जाओ" त्ति, जातः=उत्पन्नः ।

"सत्तरिसुरगुरुहत्थे" त्ति, सप्ततिः=सप्तत्यङ्कः, सुरगुरुहस्ता द्वादश, एतावङ्कौ पश्चानुपूर्व्या संमीलितौ १२७० इति सङ्ख्या यस्य तादृशे सप्ततिसुरहस्ते=वीरसंवत् १२७० हायने "लहीअ वय" ति, व्रतं=संयममलभत=अवाप्नोत् ।

"अज्जजिणभवसयमिए" त्ति, आद्यजिनभवास्त्रयोदश, तावन्मितैः शतैर्मितो यस्तत्राऽऽद्यजिनभवशतमिते=वीरसंवत् १३००वर्षे "आसि उण जुगपहाणो" त्ति, युगप्रधानोऽभूत् ।

"खचक्किविस्से" त्ति, खं=शून्यम् , चक्रिणः=प्राकृतलोकप्रसिद्धा मान्धातृप्रमुखाः षट् , विश्वास्त्रयोदश, एतेऽङ्काः प्रातिलोम्येन लब्धाः १३६० इति सङ्ख्या यत्र तत्र वीरसंवत् १३६० शरदि "दिवं पत्तो" त्ति, दिवं=द्युलोकं प्राप्तः=लेभे ॥१५५-१५६॥

संप्रति श्रीचरमत्रिभुवननाथस्य वीरस्वामिनस्त्रयस्त्रिंशत्तमं पट्टं बिभ्रतं तृतीयं श्रीमानदेवसूरिं कथयितुमिच्छुरुपजातिं प्रकटयति--

जसत्तिमग्गाजलपूअवीसो सो माणदेवायरिओ गणेसो ।
सोहीअ, पज्जुण्णमुणिंदपट्टे, गंथो कओ जेणुवधाणवंचो ॥१५७॥

(उवजाई)

(प्रे०) "जस०" इत्यादि, "सो" त्ति, सः=प्रख्यातनामा "माणदेवायरिओ" त्ति, मानदेवः=मानदेवाऽभिधः स चासौ आचार्यः=सूरिः=मानदेवाचार्यः "पज्जुण्णमुणिदपट्टे" त्ति, प्रद्युम्नस्य=प्रद्युम्ननाम्नो मुनीन्द्रस्य=सूरेः पट्टे=पदे=प्रद्युम्नमुनीन्द्रपट्टे "सोहीअ" त्ति, अशोभत=राजते स्म इति क्रियासण्टङ्कः । कीदृक् ? "जसत्तिमग्गाजलपूअवीसो" त्ति, त्रयो मार्गाः=पन्थानो जलश्रोतोरूपा यस्या सा त्रिमार्गा=गङ्गानदी यश एव त्रिमार्गा=यशस्त्रिमार्गा तस्या जलेन पूतः=पवित्रीकृतो विश्वः=समस्तलोको येन स यशस्त्रिमार्गाजलपूतविश्वः=सकलविष्टपविश्रुतयशा इत्यर्थः । पुनः किंभूतः ? "गणेसो" त्ति, गणस्य गच्छस्य साधुसमुदायलक्षणस्येशः=अधिपतिः=गणेशः=गच्छनायकः । पुनरपि स कः ?

योजयेदातिथेये न भवांस्तु प्रकटीकृत । सत्कारायापि नाम स्व मत्यापयति चेद्द्विया ॥३८०॥
पलायमानो वाद्यानां हस्त्यारूढो विनश्यति।तदस्माक प्रभोर्नामैवेनाय जायते स्फुटम् ।३८१॥त्रिभिर्विशेषकम्।
निग्रहेऽपि स एवास्यादोपो राज्ञस्ततो नृप । विमृश्य कारिता तत्र सेवास्यैकाऽरराऽयति ॥३८२।
क्षमावल्लीबस्य तस्य स्व जितेऽस्मद्वादिना तत । पुमानप्यपमानस्य पात्रं सर्वस्वनाशत ॥३८३॥
बाह्मीकृतप्रसादस्य नास्त्येवास्य पराजय । वादिनो विमृशातस्त्वमविमर्शो हि नाशकृत ॥३८४॥
श्रुत्वेति बप्पभट्ट्यास्ये सहास्ये नृपवीक्षिते । मुनीशेन सदानन्दनिर्भर जगदे वच ।।३८५॥
को हि धर्मस्य नोत्कण्ठी पूर्वं परिचितस्य च । यदि रागिग्रहो न स्यादस्य श्रेयोबहिस्कृत ॥३८६॥
अनित्यैकग्रहे रक्ते भिक्षौ कृतजयाग्रह ।क्षण तदेव चेद्रागे जयो मोक्षस्तत कुत ।३८७॥
वैराग्य एवं मुक्ति स्यात्सर्वदर्शनसमतम् । कार्या नात्राधृतिर्भिक्षुर्जेयो मे तत्कृतोन्नति ॥३८८॥
धर्मराजस्य सम्यक् कुविचारादिदमाहतम् । मदाश्रितो यतो वादस्तस्यैवोपकरिष्यति ॥३८९॥
कुत्राप्यवसरे तदस्मादस्तु वाक्पूरतो रण । समान्य प्रेषय प्रेष्ठपुमास धर्मभूपते ॥३९०॥
आमराजेन कृत्वैतत्प्रहित' समय भुवम् । व्यवस्थाप्य जगामासौ प्रोचे तत्स्वामिन पुर' ॥३९१॥
वाग्विग्रहाय वादीन्द्रं राजा वर्द्धनकुञ्जरम् । धर्म सवाह्यमास गीष्पतिं वासवो यथा ।।३९२॥
चतुर्दिगन्तविश्रान्तकीर्तय सुहृदस्तत. । आहूयाभ्यर्च्य सभ्यत्वे वादेऽस्मिन् विहिता मुदा ॥३९३॥
परमारमहावशसम्भूत' क्षत्रियाग्रणी । तस्य वाक्पतिराजोऽस्ति विद्वान् निरुपमप्रभ ॥३९४॥
पूर्वं परिचितश्चासौ बप्पभट्टिप्रभोस्तत । तस्य वाग्मर्मविज्ञानहेतौ सवाहितो मुदा ॥३९५॥
व्यवस्थितदिने प्राप प्रदेश देशसन्धिगम् । समापीशमहासभ्यै सम वर्द्धनकुञ्जर ।।३९६॥
कन्यकुब्जादपि श्रीमानाम काम सुधीनिधि' । श्रीबप्पभट्टिना विद्वद्वृन्दसन्निधिना समम् ।३९७।
भुव तामेव सप्रापातपत्राच्छादिताम्बर । आवासान् स्व पुरामासान् दत्त्वावस्थितवानथ ॥३९८॥
आजन्म सर्वदा दृष्टशस्त्राशस्त्रिश्लथादर । अदृष्टपूर्ववाग्युद्धप्रेक्षायै सकुतूहल ॥३९९॥
अहपूर्विकया सिद्ध विद्याधरसुरव्रज । समेतश्चापसरोवर्गै स्वर्गवद्गगनाङ्गणे ॥४००॥
कौतुकाकृष्टचेतोभीराजसभ्यैर्बहुश्रुतै । ईयतु' सगतौ तत्र तौ वादि-प्रतिवादिनौ ॥४०१॥
उपविष्टेषु सभ्येषु श्रुत्यधीनमनस्सु च । स्तिमितात्र सभा साभूदालेख्यलिखिता किल ॥४०२॥
निजं निज नराधीशमाशिषाभिनेनन्दतु । स्वस्वागमाविरोधेन सभ्यानुमतिपूर्वकम् ॥४०३॥
तत' श्रीसौगताचार्य पूर्वं वर्द्धनकुञ्जर । आशीर्वादमुदाजह्रे व्यथक द्वेषिपर्पदाम् ॥४०४॥ तथाहि-
शर्मणे सौगतो धर्म्म पश्य वाचयमेन य. । आहृत साधयन् विश्व क्षणक्षणविनश्वरम् ॥४०५॥
अथ श्वेताम्बराचार्यो बप्पभट्टि सुधीपति । अभ्यधत्ताशिष स्वीया भूपालाय यथा तथा ॥४०६॥
अर्हन् शर्मोन्नतिं देयान्नित्यानन्दपदस्थित । यद्वाचा विजिता मिथ्यावादा एकान्तमानिन ॥४०७॥
उभयोराशिष श्लोकौ निरूचु पार्षदास्तदा । असौ धर्मो गत सम्यग्यमिता गीश्च वादिभि' ॥४०८॥
क्षणभङ्गि जगच्चोक्त भङ्गस्यैवानया गिरा । सौगतस्यानुमीयेत वाग्देवी सत्यवादिनी ॥४०९॥
नित्यानन्दपदश्रीदो देव एकान्तविग्रही । मिथ्यावादविजेत्री गी: श्वेतभिक्षोस्ततो जय' ॥४१०॥
इति निश्चित्य ते तस्थुर्यावन्मौने सभासद' । तावत्कस्तूरिका हस्ते कृत्वा बौद्धोऽब्रवीदिदम् ॥४११॥
'कसु तूरी उपगरइ' प्रोक्ते प्राकृत ऊचिवान् । आचार्य उपकर्त्रीय रजकस्येति विद्यताम् ॥४१२॥
इति तत्प्रसङ्केतादुत्तरेणाधरीकृते । तावद्रक्ताम्बर सर्वोनुमत पक्षमब्रवीत् ॥४१३॥
सर्वानुवादेनानूद्य ततस्तत्पक्षदूषकान् । उदाजहार व्याहारान् प्रामाणिकपतिर्मुन ॥४१४॥
उत्तरादुत्तर चैवमुक्ति-प्रयुक्तिरीतित. । षट व्यतीयुस्तदा मासास्तयोर्विवदमानयो. ॥४१५॥

ताभिर्लेशकाष्ठाभिरधिके अभ्यधिके क्रियास्थान१३शतेऽब्दे "होसी जुगप्पहाणो" त्ति, युगप्रधानोऽभवत् ।

"रयणसये" त्ति, रत्नानि=चतुर्दश, तावन्मितानि शतानि यत्र तत्र रत्नशते=वीरसंवत्-१४०० हायने 'देवलोगमिओ" त्ति देवलोकं=सुपर्वालयमितः=जगाम ।

इत्थश्चाऽसौ पश्चदश १५ वर्पाणि गृहस्थत्वे, विंशति२०वर्पाणि सामान्यसाधुपर्याये, चत्वारिंश४०द्वर्षाणि युगप्रधानत्वे चेति सर्वायुश्च पश्चसप्तति७५वर्पाणि उपभुज्य त्रिदशधाम प्रति प्रतस्थौ ॥१५८-१५९॥

साम्प्रतं सिद्धार्थकुलमानससरोहंसायमानस्य चरमशासनस्थापकस्य श्रीवर्धमानविभोश्चतुस्त्रिंशे पट्टे संजातस्य श्रीविमलचन्द्रसूरेश्चिख्यामया वसन्ततिलकां पठन्नाह—

अच्चीअ गोवगिरिमाणववासवो जं, सज्जं जिअम्मि सइ ही विसमे वि वाए
सो माणदेवपयपम्हमलंकरीअ, कल्लाणसिद्धिविमलिंदुगुरू विहुव्व ॥१६०॥

(वसंततिलया)

(प्रे०) "अच्चीअ" इत्यादि, "सो" त्ति, सः "कल्लाणसिद्धिविमलिंदुगुरू" त्ति, कल्याणस्य=हेम्नः सिद्धिः=विद्ययोत्पादकशक्तिविशेषः=कल्याणसिद्धिः, यद्वा कल्याणानां श्रेयसां सिद्धिः=निष्पत्तिर्यस्य स कल्याणसिद्धिः कल्याणानां=मङ्गलानां-शिवानां-श्रेयसां सिद्धिर्निष्पत्तिर्येन स कल्याणसिद्धिः, स चाऽसौ विमलेन्दुः=विमलचन्द्रनामा गुरुः=आचार्यः=कल्याणसिद्धिविमलेन्दुगुरुः "विहुव्व" त्ति, विधुवत्=चन्द्रवत् "माणदेवपयपम्हमलंकरीअ" त्ति, मानदेवसंज्ञकस्य सूरेः पदं=पट्ट एव पद्मम्=कमलं तत् मानदेवपदपद्ममलश्चकार=शोभय स । स कः ? इत्याह "जं" ति, य=श्रीविमलचन्द्रसूरिपुङ्गवं "विसमे वि वाए" त्ति, विषमे=कठिनेऽपि वादे=शास्त्रार्थचर्चाकरणलक्षणे, तर्हि सरलवादस्य का वार्तेत्यपिशब्दार्थः "सज्जं जिअम्मि सइ ही" त्ति, सद्यः=सहसा-अविलम्बेन झटिति जिते=परस्य पराभवे कृते सति हीत्याश्चर्यद्योतकोऽव्ययः, "गोवगिरिमाणववासवो" त्ति, मानवानां=मनुष्याणां वासवः=इन्द्रो

केचित्तु श्रीप्रद्युम्नसूरिमुपधानग्रन्थकर्तृश्रीमानदेवसूरिञ्च पट्टधरत्वेन न स्वीकुर्वन्ति । यदुक्त गुर्वावल्याम्-"प्रद्युम्नसूरिश्च ततो बभूव प्रद्युम्नदर्पानलवारिवाहः । प्रणीतसद्युक्त्युपधानवाच्यग्रन्थश्च तस्मादपि मानदेव ॥४३॥ (केचिदिद सूरिद्वयमिह न वदन्ति)' इति । तदपेक्षया-ऽसौ द्वात्रिंशत्तमपट्टभृद्भवति ।

मिथ्यात्वगरलं हृत्वा पियूषामलगीर्भरैः । परीक्षापूर्वमस्थापि तच्चित्ते धर्म आर्हतः ॥४५२॥
निद्राविद्राणचैतन्ये निशायामन्यदा गुरौ । प्रतिप्रहरमाह स्म ताथागतयतीश्वर ॥४५३॥
चतुरक्षरनिष्पन्नं समस्याना चतुष्टयम् । स चोत्तरप्नाथितेनेवापूरयत्सूरिपुङ्गव ॥४५४॥
मन्दाक्रान्तापदैर्मन्दाक्रान्तिक्षुण्णान्यतीर्थिकः । अपूरमपरैः सर्वप्रयत्नेनापि वाग्मिभि ॥४५५॥ युग्मम् ।
'एको गोत्रे' (१) 'सर्वस्य द्वे' (२) 'स्त्रीपुंवच्च' (३) वृद्धो यूना' ४) समस्या —
'एको गोत्रे' स भवति पुमान् य स्व बिभर्ति, 'सर्वस्य द्वे' सुगति कुगती पूर्वजन्मानुबद्धे ।
'स्त्री पु वच्च' प्रभवति यदा तद्धि गेह विनष्टम्, वृद्धो यूना' सह परिचयात्त्यजते कामिनीभि ॥४५६॥
सम्यक्त्व ग्राहित सोऽथ द्वादशव्रतशोभितम् । अश्लेषपूर्वमापृच्छ्य स्व स्थान प्रययौ ततः ॥४५७॥
पूर्ववैरपरीहारात् सगतौ सोदराविव । अन्योऽन्यप्राभृतैस्तुष्टौ पुर स्व स्व गतौ नृपौ ॥४५८॥
अन्यदा रहसि प्राह धर्मभूप स सौगतः । विजिग्ये बप्पभट्टिर्मा न तत्क्षूण मनस्यपि ॥४५९॥
यतो वाग्देवता तस्य यथोदितविधायिनी । स्व वदति तद्धे स्वप्ने जाग्रति चास्थिता ॥४६०॥
पर वाक्पतिराजेन त्वद्राज्यपरिभोगिणा । अस्मास्वपकृत भूरि मुखशौचविधापनात् ॥४६१॥
इति श्रुत्वापि बौद्धे स छलवादात् श्लथादरः । स्नेह वाक्पतिराजे च गुणगृह्ये मुमोच न ॥४६२॥
यशोवर्मनृपो धर्ममन्यदा चाऽभ्यषेणयत् । तस्माद्द्विगुणतन्त्रस्त भूप युद्धेऽवधीद्बली ॥४६३॥
तदा वाक्पतिराजश्च बद्धे तेन निवेशितः । काव्य गौडवध कृत्वा तस्माच्च स्वममोचयत् ॥४६४॥
कन्यकुब्जे समागत्य सगतो बप्पभट्टिना । स राजससद् नीतस्तुष्टुवे चेति भूपतिम् ॥४६५॥ तथाहि—
कूर्म पादोऽत्र यष्टिर्भुजगतनुलता भाजन भूतधात्री, तैलोत्पूर समुद्र कनकगिरिरय वृत्तवर्तिप्ररोह ।
अर्चि ण्डांशुरोचिर्गगनमलिनिमा कज्जल दह्यमाना, शत्रुश्रेणी पतङ्गो ज्वलतु नरपते! त्वत्प्रतापप्रदीपः॥४६६॥
चटच्चटिति चर्मणि च्छमिति चोच्छलिच्छोणिते, धगद्धगिति मेदसि स्फुटरवोऽस्थिषु ष्वाकृति ।
पुनातु भवतो हरेरमरवैरिनाथोरसि, क्वणत्करजपञ्जरक्रकचकाषजन्मानलः ॥४६७॥
पृथुरसि गुणै कीर्त्या रामो नलो भरतो भवान्, महति समरे शत्रुघ्नस्त्व सदैव युधिष्ठिरः ।
इति सुचरितै ख्याति बिभ्रच्चिरन्तनभूभृतां कथमसि न मान्धाता देव! त्रिलोकविजय्यपि ॥४६८॥
सन्मानातिशयो राज्ञा विदधे तस्य भूभृतः । गङ्गा गेहागता को हि पूज्येदलसोऽपि न ॥४६९॥
मन्यते कृतकृत्य स्व स्वर्गनाथोऽपि वाक्पतिम् । प्राप्य वाक्पतिराज तु नाधिकोऽद्य किमस्म्यतः ॥४७०॥
त्यागाद्धर्मस्य मा कार्षीर्मनस्यतुशय सखे ! । यद्गेहागतमत्पूजानाधानात्सोऽवमस्थिति ॥४७१॥
तवाधीनमिद राज्य विचिन्त्य सुखमास्व तत् । श्रीबप्पभट्टेर्मम च तृतीयस्त्व महामते ! ॥४७२॥
इत्यामराजव्यवहारामृतसारपरिप्लुतः । गङ्गोदक इव स्नातः प्रीतिपावित्र्यमाप सः ॥४७३॥
सहैवोत्थाय तत्रासौ नृपमित्रेण सूरिणा । उपाश्रयमनुप्राप्यातिप्रकृष्टपरमया मुदा ॥४७४॥
'गोडवघो' 'महुमहविजय' श्चेति तेन च । कृता वाक्पतिराजेन द्विशास्त्री कवितानिधिः ॥४७५॥
बौद्धकारिततद्द्वेषापोषके धर्मभूपतौ । सर्वत्र गुणिनः पूज्या गुरुरित्याह तत्पुरः ॥४७६॥
वृत्तौ कृत हैमटङ्कलक्ष तद्द्विगुणीकृतम् । नृपेणाऽसौ महासौख्यात्काल गमयति स्म सः ॥४७७॥-युग्मम् ।
सभायामन्यदा राजा सुखासीन गुरु प्रति । प्राह न त्वत्समो विद्वान् स्वर्गेऽपि किमु भूतले ॥४७८॥
गुरुराह पुराऽभूवन् पूर्व ते जैनशासने । श्रुतज्ञानमहाम्भोधेर्येत्प्रज्ञा पारदृश्वरो ॥४७९॥
शत सहस्र लक्ष वा पादानामेकत पदात् । अधिगच्छन्ति विद्वासोऽभूवन् केप्यधिका अपि ॥४८०॥
एदयुगीनकालेऽपि सन्ति प्रज्ञाबलाद्भुता । येषामह न चाप्नोमि पादरेणुतुलामपि ॥४८१॥
अस्मदीयगुरो शिष्य खेटकाधारमण्डले । विद्यते नन्नसूरि श्रीगोविन्दसूरिरित्यपि ॥४८२॥

तथा चाऽमुष्य प्रभावकचरिते वृत्तान्तविस्तर एवम्–

श्रीसिद्धर्षि श्रियो देयात धियामध्यामधामभू । निर्ग्रन्थग्रन्थतामापुर्यद्ग्रन्था' साम्प्रत भुवि ॥१॥
श्रीसिद्धर्षिप्रभो पान्तु वाच परिपचेलिमा । अनाद्यविद्यासस्कारा यदुपास्तेर्भिदेलिमा. ॥२॥
सुप्रभ पूर्वजो यस्य सुप्रभ प्रतिभावताम् । बन्धुर्बन्धुरभाग्यश्रीर्यस्य माघ कवीश्वर ॥३॥
चरित कीर्त्तयिष्यामि तस्य त्रस्यज्जडाशयम् । भूभृच्चक्रचमत्कारि वारिताखिलकल्मपम् ॥४॥
अजर्जरश्रिया धाम वेपालक्ष्यजरज्जर । अस्ति गूर्जरदेशोऽन्यसज्जराजन्यदुर्जर ॥५॥
तत्र श्रीमालमित्यस्ति पुर मुखमिव क्षिते । चैत्योपरिस्थकुम्भालिर्यत्र चूडामणीयते ॥६॥
प्रासादा यत्र दृश्यन्ते मत्तवारणराजिता । राजमार्गाश्च शोभन्ते मत्तवारणराजिता ॥७॥
जैनालयाश्च सन्त्यत्र नव धूपगम श्रिता । महर्षयश्च नि सङ्गा न बन्धूपगम श्रिता ॥८॥
तत्राऽस्ति हास्तिकाश्वीयापहस्तितरिपुव्रज । नृप श्रीवर्मलाताख्य' शत्रुमर्मभिदाक्षम ॥९॥
तस्य सुप्रभदेवोऽस्ति मन्त्री मित्र जगत्यपि । सर्वव्यापारमुद्राभृन्मुद्राकृद् दुर्जनानने ॥१०॥
देवार्योशनसौ यस्य नीतिरीतिमुदीक्ष्य तौ । अवलम्ब्य स्थितौ विष्णुपद कर्तु तप किल ॥११॥
तस्य पुत्रावुभावसाविव विश्वभरक्षमौ । आद्यो दत्त स्फुरद्वृत्तो द्वितीयश्च शुभङ्कर ॥१२॥
दत्तवित्तोऽनुजीविभ्यो दत्तश्चित्तस्थधर्मधी । अप्रवृत्त कुकृत्येषु तत्र सुत्रामवच्छ्रिया ॥१३॥
हर्म्यकोटिस्फुरत्कोटिध्वजजालान्तरस्थिता । जलजन्मतयेव श्रीर्यस्मादासीदनिर्गमा ॥१४॥
तस्य श्रीभोजभूपालबालमित्रं कृतीश्वर । श्रीमाघो नन्दनो ब्राह्मीस्यन्दन शीलचन्दन ॥१५॥
ऐदयुगीनलोकस्य सारसारस्वतायितम् । शि शु पा ल व ध काव्य प्रशस्तिर्यस्य शाश्वती ॥१६॥
श्रीमाघोऽस्ताघधी श्लाघ्य प्रशस्य कस्य नाऽभवत् । चित्र जाड्यहरा यस्य काव्यगङ्गोर्मिविप्रुष ॥१७॥
तथा शुभङ्करश्रेष्ठी विश्वविश्वप्रियङ्कर । यस्य दानाद्भुतैर्गीतैर्हर्यैश्वो हर्षभूरभूत् ॥१८॥
तस्याभूद्गेहिनी लक्ष्मीर्लक्ष्मीर्लक्ष्मीपतेरिव । यया सत्यापिता सत्य सीताद्या विश्वविश्रुता ॥१९॥
नन्दनो नन्दनोत्तस कल्पद्रुम इवाऽपर । यथेच्छादानतोऽर्थिभ्य' प्रथित सिद्धनामत ॥२०॥
अनुरूपकुला कन्या धन्या पित्रा विवाहित । भुङ्क्ते वैषयिक सौख्य दोगुन्दुग इवामर ॥२१॥
दुरोदरभरोदारो दाराचारपराङ्मुख । अन्यदा सोऽभवत्कर्म दुर्जय विदुषामपि ॥२२॥
पितृमातृगुरुस्निग्धबन्धुमित्रैर्निवारित । अपि नैव न्यवर्त्तिष्ट दुर्वार व्यसन यत ॥२३॥
अगूढातिप्ररूढेऽस्मिन्नहर्निशमसौ वश. । तदेकचित्तधूर्त्ताना सदाचारादभूद्बहि ॥२४॥
स पिपासाशनायातिशीतोष्णाद्यविमर्शत । योगीव लीनचित्तोऽत्र वित्रस्यत्साधुवाक्यत ॥२५॥
निशीथातिक्रमे रात्रावपि स्वकगृहागमी । वध्वा प्रतीक्ष्य एकस्यास्तया नित्य प्रतीक्ष्यते ॥२६॥
अन्यदा रात्रिजागर्यानिर्यातवपुरुद्यमाम् । गृहव्यापारकृत्येषु विलीनाङ्गस्थितिं तत ॥२७॥
ईदृग् ज्ञातेयसम्बन्धवशाकर्कशवाग्भरम् । श्वश्रूरश्रूणि मुञ्चन्ती वधू प्राह सगद्गदम् ॥२८॥ युग्मम् ।
मयि सत्या पराभूतिं कस्ते कुर्यात् तत: स्वय । खिद्यसे कुविकल्पैस्त्व गृहकर्मसु चालसा ॥२९॥
श्वशुरोऽपि च ते व्यग्रो यदा राजकुलादिह । आगन्ता च ततो देवावसरादावसर्जिते ॥३०॥
मामेवाक्रोक्ष्यति त्व तत्तथ्यं मम निवेदय । यथा द्राग् त्वदीयार्त्तिप्रतीकार करोम्यहम् ॥३१॥
सा न किंचिदिति प्रोच्य श्वश्रूनिर्बन्धतोऽवदत । युष्मत्पुत्रोऽर्द्धरात्रातिक्रमेऽभ्येति करोमि किम् ॥३२॥
श्रुत्वेत्याह तदा श्वश्रू किं नाग्रेऽजल्पि मे पुर । सुत त्व बोधयिष्यामि वचनै कर्कशप्रियै. ॥३३॥
अद्य स्वपिहि वत्से ! त्व निश्चिन्ताऽह तु जागरम् । कुर्वे सर्वं भलिष्यामि नात्र कार्याऽधृतिस्त्वया ॥३४॥
ओमित्यथ स्नुषा प्रोक्ते रात्रौ तद्धाम्नि तस्थुषी । विनिद्रा पश्चिमे यामे रात्रे. पुत्र समागमत ॥३५॥

धर्मव्याख्या सदाख्यानप्रश्नोत्तरादिभि । कियानपि ययौ काल समुदो सुहृदोस्तयो. ॥५१५॥
आययावन्यदा वृन्द गायनान्तावसायिनाम् । श्रव स्वादिमहानादरसनिर्जिततुम्बरु ॥५१६॥
तत्रैका किन्नरी साक्षान्मातङ्गी गीतभङ्गिभि । राजान रञ्जयामास रूपादपि रसादिभि. ॥५१७॥
प्रवाह्य प्रतिपक्षस्य राज्ञो रागद्विषन् जयी । चित्तवृत्तिमहापुर्यामवस्कन्द ददौ तदा ॥५१८॥
घास्तव्यानीन्द्रियाण्यस्य वहिर्भीत्येव निर्ययु । तैरिव प्रेरितो राजा वास बहिरचीकरत ॥५१९॥ उवाच च-
वक्त्र पूर्णशशी सुधाऽधरलता दन्ता मणिश्रेणय, कान्ति श्रीर्गमन गज परिमलस्ते पारिजातद्रुमा ।
वाणी कामदुघा कटाक्षलहरी तत्कालकूट विष, तत्कि चन्द्रमुखि । त्वदर्थममरैरामन्थि दुग्धोदधि ॥५२०॥
अन्तश्चरेभ्यो विज्ञातवृत्तान्त सूरिरप्यथ । दध्यौ स सादिनो दोपो यदश्वो विपथ व्रजेत् ॥५२१॥
आमभूपे विमार्गस्थे विश्वप्रकृतिपु ध्रुवम् । अपकीर्ति कलङ्कोऽय ममैवासञ्जति स्फुट ॥५२२॥
तदुपायाद्विनेयोऽसावति ध्यात्वा बहिर्गृहे । ययौ विलोमनव्याजात् कामार्तेरौपध स्मरन् ॥५२३॥
नव्येपु पट्टशालाया पट्टेपु खटिनीदलै । काव्यानि व्यलिखद् बोधवन्धुराणि ततो गुरु । युग्मम् । तथाहि-
शैत्य नाम गुणस्तवैव तदनु स्वाभाविकी स्वच्छता, किं ब्रूम शुचिता व्रजन्ति शुचय सङ्गेन यस्यापरे ।
किं चात परमस्ति ते स्तुतिपद त्व जीवित देहिनां, त्व चेन्नीचपथेन गच्छसि पय. कस्त्वा निषेद्धु क्षम ॥
सद्वृत्त सद्गुण महार्घ्य महार्ह कान्त कान्ताघनस्तनतटोचितचारुमूर्ति. ।
आ पामरीकठिनकण्ठविलग्नभग्न हा हार । हारितमहो भवता गुणित्वम् ॥५२६॥
उप्पहजायाएँ असोहरीइ फलकुसुमपत्तरहियाए । बोरीइँ वइँ दितो भो भो पामर न लज्जिहिसि ॥५२७॥
मायगासत्तमणस्स मेइणि तह य भुंजमाणस्स । अभिडइ तुज्झ ना या व लो य को नट्ठधम्मस्स ॥५२८॥
लज्जिज्जइ जेणि जणे मइलिज्जइ नियकुलक्कमो जेण । कठट्ठिएहि जीवे मा सु दर त कुणिज्जासु ॥५२९॥
जीय जलबिंदुसम सपत्तीओ तरगलोलाओ । सिविणयसम च पिम्म ज जाणह त करिज्जासु ॥५३०॥
लिखित्वा स्वाश्रय प्राप बप्पभट्टिप्रभुर्मुदा । द्वितीयेऽहनि भूपोऽपि तत्सद्म प्रेक्षितुं ययौ ॥५३१॥
अवाचयच्च काव्यानि हृल्लेखानि यथा यथा । तथा तथा भ्रमोऽनेशद् दुग्धाद्धत्तूरमोहवत् ॥५३२॥
अथान्वतप्यत श्रीमानाम श्याममुखाम्बुज. । व्यमृशच्च विना मित्रं कोऽन्य एव हि बोधयेत् ॥५३३॥
इदानीमहमप्रेक्ष्य स्वमास्यं दर्शये कथम् । तस्य व्यथाकर विश्वप्राणिना दोषकारणम् ॥५३४॥
साप्रत मे बृहद्भानुरेव शुद्धिं विधास्यति । कलङ्काङ्किलं त्याज्यमेवास्माक हि जीवितम् ॥५३५॥
इति ध्यात्वा स तत्रैवादिशत् प्रेष्यांश्चिताकृते । अनिच्छन्तोऽपि भूपालादेश तत्र व्यधुर्बलात् ॥५३६॥
राजलोक इद ज्ञात्वा पूच्चक्रे करुणस्वरम् । राजमित्रगुरोरग्रे ततोऽसौ तत्र जग्मिवान् ॥५३७॥
उवाचाऽथ गुरुर्भूप । प्रारब्धं स्त्रीजनोचितम् । किमिद विदुषा निन्द्य ततो राजाह तत्पुर. ॥५३८॥
मम प्रच्छन्नपापस्य मालिन्ये मनसा कृते । स्वदेहत्याग एवास्तु दण्डो दुष्कृतनाशन. ॥५३९॥
यथा दुष्कृतिलोकस्य वय दण्डमकुर्महि । तथा स्वस्यापि किं नैव कुर्मः कर्मच्छिदाकृते ॥५४०॥
गुरुराह स्मितेनाथ विमृश त्व हि चेतसा । निबद्ध कर्म चित्तेन चित्तेनैव विमोच्यते ॥५४१॥
स्मार्तानार्त्त (र्त्ति) भिदे पृच्छ प्रायश्चित्तानि पाप्मनाम् । यत स्मृतिषु सर्वेषां मोक्ष ऊचे मनीषिभि ॥५४२॥
वेदान्तोपनिपत्तत्त्वश्रुतिस्मृतिविशारदा । तत्राहूयन्त भूपेन स्तूपेन न्यायनाकिन ॥५४३॥
यथावृत्त मन शल्य जगदे तत्पुरस्तदा । ततस्ते स्मृतिवाचाला स्तथ्य शास्त्रानुग जगु ॥५४४॥
आयसीं पुत्रिका वह्निध्माता तद्वर्णरूपिणीम् । आश्लिष्यन्मुच्यते पापाच्चाण्डालीसङ्गसम्भवात् ॥५४५॥
श्रुत्वेति भूपति कारयित्वा तां कथितक्रमात । आनाय्य तत्र सज्जोऽभूत् तदालिङ्गनहेतवे ॥५४६॥
वेगादागत्य पाञ्चालीमाश्लिष्यंस्ता स्वसिद्धये । पुरोधो बप्पभट्टिभ्यां भूपतिर्भुजयोर्धृत ॥५४७॥

स प्राह तात! पर्याप्तं गेहागमनकर्मणि । मम लीनं गुरो पादारविन्दे हृदयं ध्रुवम् ॥७२॥
जैनदीक्षाधरो मार्गं मार्गं निष्प्रतिकर्मतः । आचरिष्यामि तन्मोहो भवद्भिर्मा विधीयताम् ॥७३॥
याया अपावृतद्वारे वेश्मनीत्यम्बिकावचः । शमिसंनिध्यवस्थानं मतं नस्तद् भवद्वचः ॥७४॥
यावज्जीवं हि विदधे यद्यहं तत्कुलीनताः । अक्षता स्यादिदं चित्ते सम्यक् तात! विचिन्तय ॥७५॥
अथाह सम्भ्रमाच्छ्रेष्ठी किमिदं वत्स! चिन्तितम् । असङ्ख्यध्वजविजेयं धनं कः सार्थयिष्यति ॥७६॥
विलस त्वं यथासौख्यं प्रदेहि निजयेच्छया । अविमुञ्चन् सदाचारं सतां श्लाघ्यो भविष्यसि ॥७७॥
एकपुत्रा तवाम्बा च निरापत्या वधूस्तथा । गतिस्तयोस्त्वमेवाऽसि जीर्णं माऽजीगणस्तु माम् ॥७८॥
पित्रेत्थमुदिते प्राह सिद्धः सिद्धशमस्थितिः । सपूर्णं लोभिवाणीभिरत्र मे श्रुतिरश्रुतिः ॥७९॥
ब्रह्मण्येव मनो लीनं ममातो गुरुपादयोः । निपत्य ब्रूहि दीक्षां हि पुत्रस्य मम यच्छत ॥८०॥
अतिनिर्बन्धतस्तस्य तथा चक्रे शुभङ्करः । गुरुः प्रादात् परिव्रज्यां तस्य पुण्ये स्वरोदये ॥८१॥
दिनैः कतिपयैर्मासमाने तपसि निर्मिते । शुभे लग्ने पञ्चमहाव्रतारोपणपर्वणि ॥८२॥
दिग्बन्धं श्रावयामास पूर्वतो गच्छसन्ततिम् । सत्प्रभुं शृणु वत्स! त्वं श्रीमान्वज्रप्रभुः पुरा ॥८३॥
तच्छिष्यवज्रसेनस्याऽभूद्विनेयचतुष्टयी । नागेन्द्रो निर्वृतिश्चन्द्रः ख्यातो विद्याधरस्तथा ॥८४॥
आसीन्निर्वृत्तिगच्छे च सूराचार्यो धिया निधिः । तद्विनेयश्च गर्गर्षिरह दीक्षागुरुस्तव ॥८५॥
शीलाङ्गानां सहस्राणि त्वयाऽष्टादश निर्भरम् । वोढव्यानि विविश्राममामिजात्यफलं ह्यदः ॥८६॥
ओमिति प्रतिपद्याऽथ तप उग्रं चरन्नसौ । अध्येता वर्त्तमानानां सिद्धान्तानामजायत ॥८७॥
स चो प दे श मा ला या वृत्तिं बालावबोधिनीम् । विदधेऽवहितप्रज्ञः सर्वज्ञ इव गीर्भरैः ॥८८॥
卐सूरिर्दाक्षिण्यचन्द्राख्यो गुरुभ्राताऽस्ति तस्य सः । कथां कुवलयमाला चक्रे शृङ्गारनिर्भराम् ॥८९॥
किञ्चित् सिद्धकृतग्रन्थसोत्प्रासं सोऽवदत्तदा । लिखितैः किं नवो ग्रन्थस्तदवस्थागमाक्षरैः ॥९०॥
शास्त्रं श्रीसमरादित्यचरितं कीर्त्यते भुवि । यद्रसोर्मिप्लुता जीवा क्षुत्तृडाद्यं न जानते ॥९१॥
अर्थोत्पत्तिरसाधिक्यसारा किञ्चित् कथापि मे । अहो ते लेखकस्येव ग्रन्थः पुस्तकपूरणः ॥९२॥
अथ सिद्धकविः प्राह मनोदूनोऽपि नो खरम् । वयोतिक्रान्तपाठानामीदृशी कविता भवेत् ॥९३॥
का स्पर्द्धा समरादित्यकवित्वे पूर्वसूरिणा । खद्योतस्येव सूर्येण मादृग्मन्दमतेरिह ॥९४॥
इत्थमुत्तेजितस्वान्तस्तेनाऽसौ निर्ममे बुधः । अङ्गदुर्बोधसम्बन्धां प्रस्तावाष्टकसम्भृताम् ॥९५॥
रम्यामुपमितिभवप्रपञ्चाख्यां महाकथाम् । सुबोधकविता विद्वदुत्तमाङ्गविधूननीम् ॥९६॥ युग्मम् ।
ग्रन्थं व्याख्यानयोग्यं यदेनं चक्रे शमाश्रयम् । अत प्रभृति सङ्घोऽस्य व्याख्या तृ बिरुदं ददौ ॥९७॥
दर्शिता चाऽस्य तेनाऽथ हसितुं स ततोऽवदत् । ईदृक्कवित्वमाधेयं त्वद्गुणाय मयोदितम् ॥९८॥
ततो व्यचिन्तयत्सिद्धो ज्ञायते यदपीह न । तेनाऽप्यज्ञानता तस्मादध्येतव्यं ध्रुवं मया ॥९९॥
तर्कग्रन्था मयाऽधीताः स्वपरेऽपीह ये स्थिताः । बौद्धप्रमाणशास्त्राणि न स्युस्तद्देशमन्तरा ॥१००॥
आपप्रच्छे गुरुं सम्यग्विनीतवचनैस्ततः । प्रान्तरस्थितदेशेषु गमनायोन्मनायितः ॥१०१॥
निमित्तमवलोक्याऽथ श्रौतेन विधिना ततः । सवात्सल्यमुवाचाऽथ नाथप्राथमकल्पिकम् ॥१०२॥
असन्तोषः शुभोऽध्याये वत्स! किञ्चिद्वदामि तु । स त्वमत्र न सत्त्वानां समये प्रमये धियाम् ॥१०३॥
भ्रान्तचित्तः कदापि स्याद् हेत्वाभासैस्तदीयकैः । अर्थी तदागमश्रेणेः स्वसिद्धान्तपराङ्मुखः ॥१०४॥
उपार्जितस्य पुण्यस्य नाशं त्वं प्राप्स्यसि ध्रुवम् । निमित्तत इदं मन्ये तस्मान्माऽत्रोद्यमी भव ॥१०५॥

卐एतच्चिह्नद्वयान्तर्गतपाठो विचारणीयः । यतः कुवलयमालाया विक्रमसंवत् ८३५ वर्षे उपमिति-भवप्रपञ्चायाश्च विक्रमसंवत् ९६२ वर्षे जायमानत्वेन द्वयोरन्तरालस्य सप्तविंशत्यधिकशत १२७ वर्षमानत्वात्। तथा बौद्धप्रमाणशास्त्राध्ययनार्थं गमनात्प्रागुपमितिभवप्रपञ्चाकथारचना या दर्शिता, साऽपि विमर्शनीया ।

इदं च श्रीबप्पभट्टिसदृशं भवतीह किम् ? । पारमार्थिकवाणीभिर्योग्यवेला ममाऽधुना ॥५८०॥
ततः प्राह गुरुः साधु साधु ते चेतना म्तुमः । प्रष्टव्यमस्ति किंचित्तु भवत्पार्श्वे सुहृत्तम ! ॥५८१॥
देवाना यन्मयाख्यायि स्वरूपं भवदग्रतः । तत्तथ्यं वितथं वाऽस्ते तथ्यं चेद् मेना कथम् ॥५८२॥
वितथ च कथ तत्स्यात् प्रत्यक्षे सदीहीत क । अत्र कार्ये प्रवृत्तिस्ते राज्यादीच्छावशादिह ॥५८३॥
परमार्थोपलम्भे वा ? विकल्पः प्रथमो यदि । समतं नस्तदाऽऽराद्धा देवा भूपतयोऽपि च ॥५८४॥
इष्टं प्रणयिनां दद्युः सामर्थ्यात्संशयोऽपि न । परमार्थे तु चेदिच्छा तत्त्वं तत्त्वं विचारय ॥५८५॥
समारोपाधिमग्लैश्चेत् सुरैर्मुक्तिः प्रदीयते । तन्नात्र मत्सरोऽस्माकं त्वयं निखिलवेद्यसि ॥ पञ्चभिः कुलकम् ।
श्रुत्वेति सद्गुरोर्वाचं पङ्कापनयवारिभाम् । अवलेपो ययौ तस्य हिक्काऽकस्माद्भयादिव ॥५८७॥
अहो पुण्यपरीपाको मम यत्सूनृतः सुहृत् ! सगतोऽत्रसरेऽमुत्र तत्तत्त्वोपकृतिं कुरु ॥५८८॥
इत्युक्त्वा विरते दत्तावधाने वाक्पतौ प्रभुः । धर्म-देव-गुरूणां च तत्त्वान्याख्यत्तदग्रतः ॥५८९॥ युग्मम् ।
त्रैकाल्यं द्रव्यषट्कं नवपदसहितं जीव-षट्काय-लेश्याः, पञ्चान्ये चास्तिकाया व्रत-समिति-गति-ज्ञान चरित्रभेदाः ।
इत्येतन्मोक्षमूलं त्रिभुवनमहितैः प्रोक्तमर्हद्भिरीशैः, प्रत्येति श्रद्दधाति स्पृशति च मतिमान् यः स वै शुद्धदृष्टिः ॥

अथ देवतत्त्वम्—

अर्हन् सर्वार्थवेदी यदुकुलतिलकः केशवः शंकरो वा, बिभ्रद्गौरीं शरीरे दधदनवरतं पद्मजन्माक्षसूत्रम् ।
बुद्धो वा लकृपालुः प्रकटितभुवनो भास्करः पावको वा, रागाद्यैर्यो न दोषैः कलुषितहृदयस्तं नमस्यामि देवम् ॥५९१॥

यत्र तत्र समये यथा तथा, योऽसि सोऽस्यभिधया यया तया ।
वीतदोषकलुषः स चेद् भवा-नेक एव भगवन् ! नमोऽस्तु ते ॥५९२॥
मदेन मानेन मनोभवेन, क्रोधेन लोभेन च ससदेन ।
पराजितानां प्रसभं सुराणां, वृथैव साम्राज्यरुजा परेषाम् ॥५९३॥

प्राइं मुणिहिं वि भ्रंतडी तिं मणिअडा गणंति । अखयनिरंजणि परमपइ अज्जवि तउ न लहंति ॥५९४॥

अथ गुरुतत्त्वम्—

पंचमहव्वयजुत्तउ पंचपरमिट्ठिहिं भत्तउ । पंचिंदियनिग्गहणु पंचविसय जु विरत्तउ ॥
पंचसमिइ निव्वहणु पगुणगुणु आगमसत्थिण । कुविहि कुग्गह परिहरइ भविय बोहिय परमत्थिण ॥
बालीसदोससुद्धासणिण छव्विह जीवह अभयकरु । निमच्छरु केसरि कहइ फुड तिगुत्तिगुत्तु सो मज्झ गुरु ॥५९५॥
कुक्खीसंबल चत्तधण निच्चुज्जलबियहत्थ । एहा कहवि गवेसि गुरु ते तारणह समत्थ ॥५९६॥

दोवि गिहत्था धडहड वच्चइ को किर कस्स य पत्तु भणिज्जइ ।
सारंभो सारंभ पुज्जइ कद्दमु कद्दमेण किम सुज्झइ ॥५९७॥

इत्यादिसद्गुरोर्वाक्यैः प्रीणितो हृदयङ्गमैः । ध्यानं प्रपार्य पप्रच्छ किंचित्सन्दिग्धमिव मे मनः ॥५९८॥
अनन्ताः प्राणिनो मुक्तिं यदि प्राप्ता नृलोकतः । रिक्तो भवेत्स पूर्णत्वान्मुक्तौ स्थानं च नास्ति तत् ॥५९९॥
गुरुराह महासत्त्वाज्ञातजैनगिरामयम् । आलापः शृणु दृष्टान्तमत्र श्राव्यं विपश्चिताम् ॥६००॥ तथाहि-
आससारं सरियासएहिं होरतरेणुनिवहेहिं । पुहवी न निट्ठिय च्चिय उदही वि थली न सजाओ ॥६०१॥
उल्लसत्पुलकाङ्कुरो दूरीकृतकुवासनः । प्राह वाक्पतिराजोऽथ राजा यो ब्रह्मवेदिनाम् ॥६०२॥
इयन्तं समयं यावद्भ्रान्ता स्मो मोहलीलया । परमार्थपरामर्शिधर्मतत्त्वबहिष्कृताः ॥६०३॥
चिरं परिचयः पूज्यैस्त्वादृशैरपि मेऽफलः । एतावन्ति दिनान्यासीद् धर्माख्यानविनाकृतः । उक्तं च तेन-
मयनाहिकलुसिएण इमिणा किं किर फलं निडालेण । इच्छामि अहं जिणवरपणामकिणकलुसियं काउं ॥६०५॥
मुमुक्षोर्मम यत्प्राय औचित्यं न विलङ्घयेत् । तदादिश यथादिष्टं विदधे कर्मनाशकम् ॥६०६॥

देवगुर्वाद्यवज्ञोत्थमहापापस्य मे तथा । प्रायश्चित्त प्रयच्छाद्य दुर्गतिच्छित्कृपा कुरु ॥१४२॥
अथोवाच प्रभुस्तत्र करुणाशरणाशय । आनन्दाश्रुपरिश्रुत्या परिक्लिन्नोत्तरीयक ॥१४३॥
मा खेद वत्स ! कार्षीस्त्व को वनीवच्यते न वा । पानशौण्डैरिवाभ्यस्तकुतर्कमदविह्वलै ॥१४४॥
नाह त्वा धूर्तित मन्ये यद्वचो विस्मृत न मे । मदेन विकल कोऽपि त्वा विना प्राक्श्रुत स्मरेत् ॥१४५॥
वेषादिधारण तेषा विश्वासायापि सम्भवेत् । अतिभ्रान्ति च नात्राह मानये तव मानसे ॥१४६॥
प्रख्यातवक्तृक प्रज्ञाज्ञातशास्त्रार्थमर्मक । क शिष्यरत्नादर्शो गच्छेऽनुच्छे मच्चित्तविश्रम ॥१४७॥
इत्युक्तिभिस्तमानन्द्य प्रायश्चित्त तदा गुरु । प्रददेऽस्मै निजे पट्टे तथा प्रातिष्ठिपच्च तम् ॥१४८॥
स्वय तु भूत्वा निस्सङ्गस्त्वङ्गद्रङ्गभुज तदा । हित्वा प्राग्यर्षिचीर्णाय तपसेऽरण्यमाश्रयत् ॥१४९॥
कायोत्सर्गी कदाप्यस्थादुपसर्गसहिष्णुधी । कदापि निर्निमेषाक्ष प्रतिमाभ्यासमाददे ॥१५०॥
कदाचित्पारणे प्रान्ताहारधारितसवर । कदाचिन्मासिकाद्यैश्च तपोभि कर्म सोऽक्षपत् ॥१५१॥
एवप्रकारमास्थाय चारित्र दुश्चर तदा । आयुरन्ते विधायाथानशन स्वर्ययौ सुधी ॥१५२॥
इतश्च सिद्धव्याख्याता विख्यात सर्वतोमुखे । पाण्डित्ये पण्डितमन्यपरशासनजित्वर ॥१५३॥
समस्तशासनोद्योत कुर्वन् सूर्य इव स्फुटम् । विशेषतोऽवदातैस्तु कृतनिर्वृतिनिर्वृति ॥१५४॥
असख्यतीर्थयात्रादिमहोत्साहै प्रभावना । कारयन धार्मिकै सिद्धो वच सिद्धि परा दधौ ॥१५५॥
श्रीमत्सुप्रभदेवनिर्मलकुलालङ्कारचूडामणि, श्रीमन्माघकवीश्वरस्य सहज प्रेक्षापरीक्षानिधि ।
तद्वृत्त परिचिन्त्य कुग्रहपरिष्वङ्ग कथचित्कलि-प्रागल्भ्यादपि सङ्गत त्यजत भो लोकद्वये शुद्धये ॥१५६॥
श्रीचन्द्रप्रभसूरिपट्टसरसीहसप्रभ श्रीप्रभा-चन्द्र सूरिरनेन चेतसि कृते श्रीरामलक्ष्मीभुवा ।
श्रीपूर्वर्षिचरित्ररोहणगिरौ सिद्धर्षिवृत्ताख्यया, श्रीप्रद्युम्नमुनीन्दुना विशदित श्रृङ्गो जगत्सख्यया ॥१५७॥

उपदेशप्रसादे पुनः श्रीहरिभद्रसूरेरन्तिकेऽसौ दीक्षितः, एकविंशतिकृत्वो बौद्धव्युद्ग्राहितश्चेत्यादिकं प्ररूपितम् । तथा च तद्ग्रन्थः—

"अत्रान्तरे मालपुरे धनश्रेष्ठी जैन' । तस्य सिद्धाख्य पुत्रो द्यूतकारैर्गर्ताया निक्षिप्त । पिता तद्देयं दत्त्वाऽमोचयत । ततस्त सर्वकार्याध्यक्ष कृत्वा पर्यणाययत । अथ सिद्धश्रेष्ठी कार्याणि समाप्य वासमन्दिरेऽतिकाल एति । एकदाऽस्य पत्नीमातरौ निद्राणेऽतिकाले द्वारमागत त समाहतु —
"यत्रेदानीं द्वाराण्युद्घाटितानि स्युस्तत्र व्रज"। तच्छ्रुत्वा स पुर्यां भ्रमन् सूरीणामुपाश्रये गत । तत्र च 'दीक्षा ललौ तत्र सूरिपार्श्वे जैन शास्त्र पठित्वा विशेषतस्तर्कानाजिघृक्षुर्बौद्धान्तिके व्रजन्त त हरिभद्र' प्राह—
"बौद्धसगेन यदि मन परावर्तो भवेत्तदाऽस्मद्वेषमत्रागत्यास्माक ददीथा" । तदनेनोररीचक्रे । पश्चात्स बौद्धान्तिक गत्वा पपाठ । तत्र बौद्धै कुतर्केण तस्य मन परावर्तितम् । ततो वेष दातु सूरिपार्श्वमागत । सूरिणा युक्त्या धर्मे स्थिरीकृत । तदा बौद्धवेष दातु तदन्तिके गत । तत्र बौद्धैर्व्युद्ग्राहित सूरिपार्श्वे आगत, एव त्रिसप्तकृत्वो जाते गुरुर्दध्यौ 'मा वराकस्याऽस्य कुदृष्टिना दुर्गतिभू यात्' इति ध्यात्वा सूरि सतर्का ललितविस्तरा रचयित्वा तस्मै ददौ । तेन तुष्ट स निश्चलमना प्राह—
"नमोऽस्तु हरिभद्राय तस्मै प्रवरसूरये । मदर्थ निर्मिता येन वृत्तिर्ललितविस्तरा ॥१॥'
ततस्तेन सिद्धर्षिणा षोडशसहस्रमिता उपमितिभवप्रपञ्चकथाऽरचि ।" इति ।

एवं प्रबन्धकोशादिष्वपि । किन्तु किञ्चिदन्यथा दृश्यते ॥१६१॥

प्रबन्धकोशे हि सिद्धाख्यो राजपुत्र, तस्य चोपकारको धनी श्रेष्ठीत्यादिक दर्शितम् ।

इदं च श्रीबप्पभट्टिसदृशं भवतीह किम् ? । पारमार्थिकवाणीभिर्वोधवेला ममाऽधुना ॥५८०॥
ततः प्राह गुरुः साधु साधु ते चेतना स्तुमः । प्रष्टव्यमस्ति किंचित्तु भवत्पार्श्वे सुहृत्तम ॥५८१॥
देवाना यन्मयाख्यायि स्वरूपं भवदग्रत । तत्तथ्य वितथं वाऽस्ते तथ्यं चेद् मेना कथम् ॥५८२॥
वितथं च कथं तत्स्यात् प्रत्यक्षे सदीहीत क । अत्र कार्ये प्रवृत्तिस्ते राज्यादीच्छावशादिह ॥५८३॥
परमार्थोपलम्भे वा ? विकल्पः प्रथमो यदि । संमत नस्तदाऽऽराद्धा देवा भूपतयोऽपि च ॥५८४॥
इष्टं प्रणयिना दद्युः सामर्थ्यात्संशयोऽपि न । परमार्थे तु चेदिच्छा तत्त्वं तत्त्व विचारय ॥५८५॥
समारोपाधिमग्नैश्चेत् सुरैर्मुक्तिः प्रदीयते। तन्नात्र मत्सरोऽस्माकं स्वयं निखिलवेद्यसि॥ पञ्चभिः कुलकम्।
श्रुत्वेति सद्गुरोर्वाच पङ्कापनयवारिमाम् । भवलेपो ययौ तस्य हिकाऽकस्माद्भयादिव ॥५८७॥
अहो पुण्यपरीपाको मम यत्सूनृत सुहृत् । सगतोऽवसरेऽमुत्र तत्तत्त्वोपकृतिं कुरु ॥५८८॥
इत्युक्त्वा विरते दत्तावधाने वाक्पतौ प्रभुः । धर्म-देव-गुरूणां च तत्त्वान्याख्यत्तदग्रत ॥५८९॥ युग्मम् ।
त्रैकाल्यं द्रव्यषट्कं नवपदसहितं जीव-षट्काय-लेश्या, पञ्चान्ये चास्तिकाया व्रत-समिति-गति-ज्ञान चरित्रभेदा
इत्येतन्मोक्षमूलं त्रिभुवनमहितैः प्रोक्तमर्हद्भिरीशैः, प्रत्येति श्रद्दधाति स्पृशति च मतिमान् यः स वै शुद्धदृष्टिः ॥

अथ देवतत्त्वम्—

अर्हन् सर्वार्थवेदी यदुकुलतिलकः केशवः शंकरो वा, बिभ्रद्गौरीं शरीरे दधदनवरत पद्मजन्माक्षसूत्रम् ।
बुद्धो चालकृपालुः प्रकटितभुवनो भास्करः पावको वा, रागाद्यैर्यो न दोषैः कलुषितहृदयस्तं नमस्यामि देवम् ॥५९१॥

यत्र तत्र समये यथा तथा, योऽसि सोऽस्यभिधया यया तया ।
वीतदोषकलुषः स चेद् भवा-नेक एव भगवन् ! नमोऽस्तु ते ॥५९२॥
मदेन मानेन मनोभवेन, क्रोधेन लोभेन च समदेन ।
पराजितानां प्रसभं सुराणां, वृथैव साम्राज्यरुजा परेषाम् ॥५९३॥

पाइं मुणिहि वि भ्रतडी तिं मणिअडा गणंति । अखयनिरंजणि परमपइ अज्जवि तउ न लहंति ॥५९४॥

अथ गुरुतत्त्वम्—

पंचमहव्वयजुत्त पंचपरमिट्ठिहिं भत्तउ । पंचिंदियनिग्गहणु पंचविसय जु विरत्तउ ॥
पंचसमिइ निव्वहणु पगुणगुणु आगमसट्ठिण । कुविहि कुगह परिहरइ भविय बोहिय परमट्ठिण ॥
बालीसदोससुद्धासणिण छव्विह जीवह अभयकरु। निमच्छरु केसरि कहइ फुड तिगुत्तिगुत्तु सो मज्झ गुरु॥५९५॥
कुक्खीसबल चत्तधण निच्चुवलवियहत्थ । एहा कहवि गवेसि गुरु ते तारणह समत्थ ॥५९६॥

दोवि गिहत्था धडहड वच्चइ को किर कस्स य पत्तु भणिज्जइ ।
सारंभो सारंभ पुज्जइ कद्दमु कद्दमेण किम सुज्झइ ॥५९७॥

इत्यादिसद्गुरोर्वाक्यैः प्रीणितो हृदयङ्गमैः । ध्यानं प्रपार्य पप्रच्छ किंचित्सन्दिग्धि मे मन ॥५९८॥
अनन्ता प्राणिनो मुक्तिं यदि प्राप्ता नृलोकत । रिक्तो भवेत्स पूर्णत्वान्मुक्तौ स्थानं च नास्ति तत् ॥५९९॥
गुरुराह महासत्त्वाज्ञातजैनगिरामयम् । आलापः शृणु दृष्टान्तमत्र श्राव्य विपश्चिताम् ॥६००॥ तथाहि-
आससार सरियासएहिं हीरतरेणुनिवहेहिं । पुहवी न निट्ठिय च्चिय उदही वि थलो न संजाओ ।६०१॥
उल्लसत्पुलकाङ्कुरो दूरीकृतकुवासन । प्राह वाक्पतिराजोऽथ राजा यो ब्रह्मवेदिनाम् ॥६०२॥
इयन्त समय यावद्भ्रान्ता स्मो मोहलीलया । परमार्थरसामर्शिधर्म्मतत्त्वबहिष्कृता ॥६०३॥
चिर परिचय पूज्यैस्त्वादृशैरपि मेऽफल । एतावन्ति दिनान्यासीद् धर्माख्यानविनाकृत. । उक्त च तेन-
मयनाहिकलुसिएण इमिणा किं किर फल निडालेण। इच्छामि अह जिणवरपणामकिणकलुसियं काउं ॥६०५॥
मुमुक्षोर्मम यत्प्राय औचित्य न विलङ्घयेत् । तदादिश यथादिष्टं विदधे कर्मनाशकम् ॥६०६॥

जयति = पराभवीकरोति "खमाअ" त्ति, क्षमया = क्षान्त्या = सहनशीलतारूपया "खमं" ति, क्षमां = पृथ्वीं जयति 'थिरयाअ" त्ति, स्थिरतया = धीरत्वेना-ऽकम्प्यरूपेण "मेरुगिरिं" ति मेरुगिरिं = स्वर्णाचलं जयति; "गभीरत्तेण" त्ति, गम्भीरत्वेन = उदरगतान्यसत्कगुप्त-रहस्याप्रकाशकत्वेन 'उदहिं' ति, उदधिं = समुद्र जयति; "सरीरलच्छीअ" त्ति, शरीरस्य= देहस्य लक्ष्म्या = शोभया शरीरलक्ष्म्या = वपुःकान्त्या "काम" ति, काम=स्मर जयति । अनेनाऽमुष्य सौम्यादिगुणाः प्रकटिताः ॥१६३॥

अथ श्रीमदुद्द्योतनसूरिमेव वर्णयन पथ्यार्या-शार्दूलविक्रीडितलक्षणं श्लोकद्वयं युग्ममाह-

वीरा इंदसर१४६४मिए वासे भूवा जुगंकतत्त९९४मिए ।
अब्बुयगिरिजत्तत्थं समागओ पुव्वभूमीओ ॥१६४॥ (पच्छाज्जा)

टेलीपट्टणसीमसंठिअबिहणग्गोहऽहो जो तया,
ठासी सीअपए मुहुत्तमतुलं णाऊण सूरी अड ।
साहाईहि विहव्वडस्स व जओ वड्ढी भवित्थाऽमुणो,
णामं तस्स बिहग्गणो वडगणो वा वुड्ढगच्छो तओ ॥१६५॥

(सद्दुलविक्कीडियं) (जुग्गं)

(प्रे०) "वीरा" इत्यादि, "वीरा" त्ति, वीरात्=त्रैशलेयमोक्षगमनकालात् "इंदसर-मिए" त्ति, इन्द्राः=वासवाश्चतुष्षष्टिः, तथाहि-भवनपतिसत्का विंशतिः व्यन्तरसम्बन्धिनः षोडश, वानव्यन्तरसत्काः षोडश, ज्योतिष्कसत्कौ जातिविवक्षया विवक्षितौ चन्द्र-सूर्यरूपौ द्वौ, वैमानिका दश चेति सर्वसङ्कलया चतुषष्टिरिन्द्रा आर्हच्छासने भणिताः । उक्तञ्च-"भवणवईण वीसा वतरबत्तीस दस य कप्पिदा । ससिसूरजोइसिंदा इय चउसट्ठी सुरिंदाण ।" इति । स्वराः = अकारादयो वर्णाश्चतुर्दश, एताभ्यामङ्काभ्यां पश्चानुपूर्व्या न्यस्ताभ्यां मिते=इन्द्र-स्वर१४६४मिते "वासे" त्ति, वर्षे=शारदे=वीरसंवत् १४६४ वर्षे तथा "भूवा" त्ति, भूपाद्=विक्रमादित्यराजतः "जुगंकतत्तमिए" त्ति, युगानि=सत्य-त्रेता-द्वापर-कलिलक्षणानि चत्वारि, अङ्का एकादयो नव, तत्त्वा=जीवा-ऽजीव-पुण्य-पापा-ऽऽश्रव-संवर-निर्जरा-बन्ध-मोक्षा-ऽऽत्मका नव, एतैरङ्कैः प्रातिलोम्येन स्थापितैर्मिते युगाङ्कतत्त्वमिते वर्षे=विक्रमसंवत् ९९४ वत्सरे "अब्बुयगिरिजत्तत्थं" त्ति, अर्बुदगिरेः=अर्बुदनाम्नस्तीर्थधामरूपस्य पर्वतविशेषस्य यात्रायै अर्बुदगिरियात्रार्थं "समागओ पुव्वभूमीओ" त्ति, पूर्वभूम्याः=पूर्वदिग्भावि-देशात्समागतः "जो" त्ति, यः=श्रीउद्द्योतनसूरिः "टेलीपट्टणसीमस अबिहणग्गोह

एकचित्ततया दानग्रहणास्मरणात्तदा । नृपस्तयोरेकदृशोर्ध्यानं पश्यन् जगौ स्मित ॥६४३॥ तद्यथा—
भिक्खयरो पिच्छइ नाहिमडल सा वि तस्स मुहकमल ।
श्रीबप्पभट्टिराकर्ण्य नृपाग्रे वाक्यमब्रवीत् । किं गण्यानीदृशान्यस्य पयोधेरिव बुद्बुदा ॥६४४॥
दुण्ह पि कवाल चट्टुय च काया विलु पति ॥६४५॥
श्रुत्वेति भूपतिस्तुष्ट प्राह कल्याणधीनिधिम् । विना मन्मित्रमेते क. पूरयेन्मन्मथेप्सितम् ॥६४६॥
इत्येव सत्यसौहार्दमार्दवार्द्रनमीतिभू । गुरुवक्त्राम्बुजे नित्य भृश भृङ्गीतुला व्यधात् ॥६४७॥
एकदा समगादेकच्छेको विश्वकलाश्रय । चित्रकृच्चित्रकर्मैककर्मणि कर्मठ. ॥६४८॥
पूर्वमालिखित सम्यक् तत. कर्पटवारितम् । रेखित रङ्गवर्णौघपूर्णक्षणमथ स्फुटम् ॥६४९॥
अलक्ष्यमपि मा चित्रभङ्गे जीववधो ध्रुव । इति सत्यापयन् वाच सजीवकलया स्वया (?) ॥६५०॥
स त्रयोदशभिर्मासैर्भूपरूप विधाय तत्। चित्रचूडामणि राज्ञो दर्शयन् विकटे पटे ॥६५१॥त्रिभिर्विशेषकम्।
राजा सुहृद्गुणग्रामरामणीयकलम्पट । अनास्थया समीक्ष्यास्य ददौ नोत्तरमप्यसौ ॥६५२॥
एव त्रिर्विहिते रूपे यदा नोत्तरमाप स । अवोचत्प्रेक्षकानन्यान् निर्वेदादतिदीनगी: ॥६५३॥
छिनद्मि स्वौ करौ किं वा ललाटं स्फोटये निजम् । कला यातु क्षय भाग्यहीनस्य मम किं ब्रुवे ॥६५४॥
बप्पभट्टि समीक्षस्वेत्युक्त कैश्चिद्दयालुभि । ततोऽसौ गुरवे जैन बिम्ब कृत्वा करे ददौ ॥६५५॥
प्राशसि च ततोऽसौ तैरेष चित्रकलानिधि । भूपालाग्रेऽथ सोऽप्यस्य टण्कलक्ष ददौ मुदा ॥६५६॥
श्रीवर्द्धमानबिम्बेन भास्वत्पटचतुष्टयम् । व्यधापयदधाच्चैक कन्यकुब्जपुरान्तरा ॥६५७॥
मथुरायां तथैक चाणहिल्लपुर एककम् । सत्तारकपुरे चैक प्रतिष्ठाप्य न्यधापयत् ॥६५८॥
श्रीपत्तनान्तरा मोढचैत्यान्म्लेच्छभङ्गत । पूर्वमासीत् तमैक्षन्त तदानीं तत्र धार्मिका ॥६५९॥
द्वापञ्चाशत्प्रबन्धाश्च कृतास्ता रा ग णा द य । श्रीबप्पभट्टिना शैक्षकविसारस्वतोपमा' ॥६६०॥
अथ राजगिरिं दुर्गमन्यदा रुरुधे नृप । समुद्रसेनभूपालाधिष्ठित निष्ठितद्विपत् ॥६६१॥
गजाश्वरथपादातपादपातादिसादितै शब्दाद्वैतमिव व्योम्नि प्रतितिष्ठित्सुमुन्नतम् ॥६६२॥
समग्रग्रासामग्रीजाग्रद्व्यग्रपरिग्रहम् । अपि प्रपञ्चलक्षाभिर्दुर्ग्रह विग्रहिद्विपाम् ॥६६३॥
भैरवादिमहायन्त्रयष्टिमुक्ताश्मगोलकै । बाह्यकुट्टिमकुट्टाकै: कुट्टिताट्टघटातटम् ॥६६४॥
अभ्र लिहद्वपद्भित्तिशिरस्थकपिशीर्षकै । सढिम्बै पलेशासचारं रवेस्तारापतेरपि ॥६६५॥
सुरङ्गाशूकरीमुख्यप्रपञ्चैरपि विद्विषाम् । प्रपतत्युष्णतैलौघप्लुष्टैर्विफलविक्रमम ॥६६६॥ षड्भि कुलकम् ।
पप्रच्छ बप्पभट्टि च निर्वेदादामभूपति । कथ कदा वा ग्राह्योऽय प्राकार क्ष्माधरोपम ॥६६७॥
प्रश्नचूडामणे साक्षात सुविचार्याब्रवीदिति । पौत्रस्ते भोजनामाऽमु ग्रहीष्यति न सशय ॥६६८॥
अभिमानादसौढेद राजा तत्रैव तस्थिवान । वर्षैर्द्वादशभिर्दुन्दुकस्य सूनो सुतोऽजनि ॥६६९॥
स च पर्यङ्किकान्यस्त प्रधानैर्जातमात्रक । आनिन्ये तस्य दम्भोलिरिव शैलच्छिदाविधौ ॥६७०॥
तद्दृष्टिदुर्गशृङ्गाग्रे मुख बालस्य तन्मुखम् । विधायापात्यतापित्ततैलज्वालासिरुक् ॥६७१॥
स कोट्ट कुट्टिताधस्थरणमण्डपमण्डल । स्फुटदट्टालकस्तोमभ्रश्यद्गोपुरादपि ॥६७२॥
मद्यमानमनुष्यस्त्रीगजाश्वमहिषीगवाम् । आर्त्ताक्रन्दरवै शब्दाद्वैत सर्वत्र पोषयन् ॥६७३॥
निर्घातचुण्णसामान्यपर्वतो महतामपि । गिरीणा प्रददद्भीतिं न्यपतन्नाकिलोकिन ॥६७४॥ त्रिभिर्विशेषकम् ।
समुद्रसेनभूपोऽपि धर्मद्वाराद् ययौ बहि । आमनामाथ भूपाल: श्रीराजगिरिमाविशत् ॥६७५॥
अधिष्ठाता तु दुर्गस्य यक्षोऽङ्गीकृतवैरत । आमाधिष्ठायिकै कुष्ट प्रतोलीस्थो हि तज्जनम् ॥६७६॥
इति लोकात्परिज्ञाय राजा तत्रागमत्तदा । तमाह प्राकृत लोक मुक्त्वा मामेव घातय ॥६७७॥

जयति = पराभवीकरोति "खमाअ" त्ति, क्षमया = क्षान्त्या = सहनशीलतारूपया "खमं" ति, क्षमां = पृथ्वीं जयति 'थिरयाअ" त्ति, स्थिरतया = धीरत्वेना-ऽकम्प्यरूपेण "मेरुगिरि" ति मेरुगिरिं = स्वर्णाचलं जयति; "गभीरत्तेण" त्ति, गम्भीरत्वेन = उदरगतान्यसत्कगुप्त-रहस्याप्रकाशकत्वेन 'उदहिं' ति, उदधि = समुद्र जयति; "सरीरलच्छीअ" त्ति, शरीरस्य= देहस्य लक्ष्म्या = शोभया शरीरलक्ष्म्या = वपुःकान्त्या "काम" ति, कामं=स्मरं जयति । अनेनाऽमुष्य सौम्यादिगुणाः प्रकटिताः ॥१६३॥

अथ श्रीमदुद्द्योतनसूरिमेव वर्णयन् पथ्यार्या-शार्दुलविक्रीडितलक्षणं श्लोकद्वयं युग्ममाह-

वीरा इंदसर१४६४मिए वासे भूवा जुगंकतत्त९९४मिए ।
अब्बुयगिरिजत्तत्थं समागओ पुव्वभूमीओ ॥१६४॥ (पच्छाज्जा)

टेलीपट्टणसीमसंठिअविहरणग्गोहऽहो जो तया,
ठासी सीअपए मुहुत्तमतुलं णाऊण सूरी अउ ।
साहाईहि विहव्वडस्स व जओ वड्ढी भवित्थाऽमुणो,
णामं तस्स बिहग्गणो वडगणो वा वुड्ढगच्छो तओ ॥१६५॥
(सद्दुलविक्कीडियं) (जुग्गं)

(प्रे०) "वीरा" इत्यादि, "वीरा" त्ति, वीरात्=शैलेयमोक्षगमनकालात् "इंदसर-मिए" त्ति, इन्द्राः=वासवाश्चतुष्षष्टिः, तथाहि-भवनपतिसत्का विंशतिः व्यन्तरसम्बन्धिनः षोडश, वानव्यन्तरसत्काः षोडश, ज्योतिष्कसत्कौ जातिविवक्षया विवक्षितौ चन्द्र-सूर्यरूपौ द्वौ, वैमानिका दश चेति सर्वसङ्ख्यया चतुषष्टिरिन्द्रा आर्हच्छासने भणिताः । उक्तञ्च- "भवणवईणं वीसा वतरबत्तीस दस य कप्पिंदा । ससिसूरजोइसिंदा इय चउसट्ठी सुरिंदाण ।" इति । स्वराः = अकारादयो वर्णाश्चतुर्दश, एताभ्यामङ्काभ्यां पश्चानुपूर्व्या न्यस्ताभ्यां मिते=इन्द्र-स्वर१४६४मिते "वासे" त्ति, वर्षे=शारदे=वीरसंवत् १४६४ वर्षे तथा "भूवा" त्ति, भूपाद्=विक्रमादित्यराजतः "जुगंकतत्तमिए" त्ति, युगानि=सत्य-त्रेता-द्वापर-कलिलक्षणानि चत्वारि, अङ्का एकादयो नव, तत्त्वा=जीवा-ऽजीव-पुण्य-पापा-ऽऽश्रव-संवर-निर्जरा-बन्ध-मोक्षा-ऽऽत्मका नव, एतैरङ्कैः प्रातिलोम्येन स्थापितैर्मिते युगाङ्कतत्त्वमिते वर्षे=विक्रमसंवत् ९९४ वत्सरे "अब्बुयगिरिजत्तत्थं" त्ति, अर्बुदगिरेः=अर्बुदनाम्नस्तीर्थधामरूपस्य पर्वतविशेषस्य यात्रायै अर्बुदगिरियात्रार्थं "समागओ पुव्वभूमीओ" त्ति, पूर्वभूम्याः=पूर्वदिग्भावि-देशात्समागतः "जो" त्ति, यः=श्रीउद्द्योतनसूरिः "टेलीपट्टणसीमस अविहण्णग्गोह

मुहूर्तमद्भुतमवेत्य टेलीग्रामस्य यः सीम्नि बृहद्वटाध ।
अस्थापयच्चैत्यतरोस्तलेऽष्टौ पार्श्वौ गणेन्द्रानिव काशिकुञ्जे ॥६५॥
शाखाप्रशाखाभिरमुष्य वृद्धिर्वृहद्वटस्यैव यतो भवित्री ।
ततो बृहद्गच्छ इतीह नामाऽपर गणस्य प्रकटीबभूव ॥६६॥' इति ।

तथा गुरुगुणरत्नाकरकाव्ये–' यो गच्छप्रभुरद्भुता-ऽतिशयभृद्विद्याब्धिरुद्द्योतन । स प्रापाऽर्बुदसन्निधौ वटतले दृष्ट्वा मुहूर्तं शुभ, तत्राऽष्टौ गणपानतिष्ठिपदथो यत् तद् वटाऽऽह्वो गण ॥३७॥'' इति।

तथा श्रीतपागच्छपट्टावल्यामपि न्यगादि—

"श्रीविमलचन्द्रसूरिपट्टे पञ्चत्रिंशत्तम· श्रीउद्योतनसूरिः । स चाऽर्बुदाचलयात्रार्थं पूर्वावनितः समागत । टेलिग्रामस्य सीम्नि पृथोर्वटस्य छायायामुपविष्टो निजपट्टोदयहेतु भव्यमुहूर्तमवगम्य श्रीवीरात् चतुष्पष्ट्यधिकचतुर्दशशत १४६४ वर्षे, वि० चतुर्नवत्यधिकनवशत ९९४ वर्षे निजपट्टे श्रीसर्वदेवसूरि-प्रभृतानष्टौ सूरीन् स्थापितवान् । केचित्तु सर्वदेवसूरिमेकमेवेति वदन्ति ॥

वटस्याध सूरिपदकरणात वटगच्छ इति पञ्चमनाम लोकप्रसिद्धम् । प्रधानशिष्यसततया ज्ञानादि-गुणै· प्रधानचरितैश्च बृहत्त्वाद् बृहद्गच्छ इत्यपि ॥' इति ।

श्रीसोमसौभाग्यकाव्ये पुनरसौ व्यतिकरः श्रीसर्वदेव रिसत्को दर्शितः । तथा च तद्ग्रन्थः–

"श्रीसर्वदेव स्मृतसार्वदेव सूरीश्वरोऽर्हन्मतभास्वरोऽभूत ॥१९॥
सर्वैनसा दत्तदृढप्रहार क्रमाद्विहार रचयन्धरायाम् ।
श्रीअर्बुदोर्वीभृदुपत्यकाया सर्वोत्तमाया स समाजगाम ॥२०॥
छायाभिरामस्य वटद्रुमस्य तले तदानीं स मुनिर्निविष्ट ।
सर्वोत्तम वीक्ष्य महामुहूर्तं मौहूर्तिकव्यूहवरेण्यकीर्तिः ॥२१॥
प्रावादुकोल्लासनिरासकर्मण्यष्टौ पटिष्ठौजस इद्धबुद्धीन् ।
अतिष्ठपत सूरिवरान् दिगष्टगरिष्ठगन्धेभनिभान् शुभाश्च॥२२॥ (युग्मम् ।)
ततो गण शिष्यततो वटाख्ययाख्यातोऽभवत क्वाऽपि बृहद्गणाह्व ।" इति ॥१६४-१६५॥

अथ तदानीं जातं षट्त्रिंशत्तमं द्वितीयोदयापेक्षया षोडशं युगप्रधानमाख्यन्पथ्यार्ये आह–

जेट्ठंगगणी सूरी हवीअ छत्तीसमो जुगप णो ।
वीराऽद्दे ऽस्स जणी णहपासफणिफणाइमजिणभवे[१३७०] ॥ १ ६ ६ ॥ (पच्छाज्जा)
दिक्खा णईतडपयोगुणतंबुलगुण[१३८२]मिए जुगपहाणो ।
आसि स गुणठाणसये[१४००] णयिदे[१४७१]अमरभुवणमिओ ॥ १ ६ ७॥
(पच्छाज्जा)

(प्रे०) "**जेट्ठंगगणी**" इत्यादि, "**जेट्ठंगगणी सूरी**" त्ति, ज्ये **णी** = तदाख्यः सूरिः = आचार्यः "**हवीअ** **मो जुगपहाणो**" त्ति, षट्त्रिंशो युगप्रधानो बभूव ।

(प्रे०) "**विअड्ढ०**" इत्यादि, "**जसाइदेवस्स पईससेले**" त्ति, यशः=यश इति पदमादौ पूर्वस्मिन् यस्य देवाभिधपदस्य स यशआदिः, स चाऽसौ देवश्च यशआदिदेवस्तस्य यशआदिदेवस्यैतावता यशोदेवस्य=श्रीयशोदेवनाम्नः सूरेः पदमेव=पट्ट एवेशशैलः=कैलासाद्रिस्तस्मिन् पदेशशैले, '**विअड्ढपज्जुण्णसमो**" त्ति, विदग्धः=भस्मीकृतः प्रद्युम्नः=रामो येन स विदग्धप्रद्युम्नः=शम्भुस्तस्य समः=तुल्यो विदग्धप्रद्युम्नसमः=हरवत् '**विअड्ढपज्जुण्णगुरू**" त्ति, विदग्धः=विद्वान् स चाऽसौ प्रद्युम्नगुरुः=प्रद्युम्ननामाचार्यः "**विभासी**" त्ति, व्यभात् ।

किंभूतः ? "**भवीण पज्जुण्णदवग्गिमेहो**" त्ति, भविनां=मुक्तिगमनार्हाणां प्राणिनां प्रद्युम्नः=कामदेवः, **यदुक्तममरकोशे**–'मदनो मन्मथो मार प्रद्युम्नो मीनकेतनः । ...'इति । **तथाऽभिधानचिन्तामणावपि**'मदनो--- ॥२२७॥ १७ प्रद्युम्नः १८ श्रीनन्दनश्च .....।' इति । स एव दवाग्निः=अरण्याऽनलस्तस्मिन् मेघः=वारिवाहः=प्रद्युम्नदवाग्निमेघः "**गणिंदो**" त्ति, गणस्य=गच्छस्येन्द्रः=स्वामी गणेन्द्रः=गच्छभृत् । महादेवपक्षे पुनः "**गणिंदो**" त्ति, गणानामेकादशानां प्रमथादीनां नन्द्यादीनां वा गणानामिन्द्रः=प्रभुः=गणेन्द्रः तथा "**विअग्घपज्जुण्णगुरू**" त्ति पदं श्लेषेण पुनरपि गृह्यते तदा विदग्धः=विशेषेण,भस्मीसात्कृतः प्रद्युम्नः=मदनो येन स विदग्धप्रद्युम्नः, स चाऽसौ गुरुः, विदग्धप्रद्युम्नगुरुः विषमेषुजयीत्यर्थः ।

यदुक्त गुर्वावल्याम्...प्रद्युम्नसूरिश्च ततो बभूव, प्रद्युम्नदर्पानलवारिवाह· ॥१५४॥

अथ चतुस्त्रिंशत्तमं युगप्रधान द्वितीयोदययन्त्रक्रमाऽपेक्षया च चतुर्दश श्रीमाढरसंभूतसूरिं निरूपयितुमनाः पथ्यागीति-पथ्यार्यालक्षणश्लोकद्वयेनाह—

माढरसंभूअगुरू होसी चउतीसमो जुगपहाणो ।
जाओ वीरा वासे स अहोरत्तघडियागुहक्खि१२६०मिए ॥१५५॥
(पच्छागीई)

सत्तरिसुरगुरुहत्थे १२७० लहीअ व सि उण जुगपहाणो ।
अज्जजिणभवसयमिए १३०० सचक्किविस्से१३६०दिवं पत्तो ॥१५६॥
(पच्छाज्ञा)

(प्रे०) "**माढर०**" इत्यादि, "**माढरसंभूअगुरू**" त्ति, माढरसम्भूतः=माढरसम्भूताह्वः स चाऽसौ गुरुः=आचार्यो माढरसम्भूतगुरुः "**होसी चउतीसमो जुगपहाणो**" त्ति, चतुस्त्रिंशो युगप्रधानो बभूव ।

"पहावगो" त्ति, प्रभावकः = स्वचरितेन शासनोन्नतिकारकः, पुनः किं विशिष्टः ! "अंग-विज्जण्णू" त्ति, अंगविद्याज्ञः = श्रुतज्ञानविशेषस्य वेत्ता,

पुनरपि स क ? इत्याह "जेण" त्ति, येन = श्रीवीरसूरिणा प्रभुणा "विरूवाणाहो" त्ति, विरूपानाथः = विरूपानाथसंज्ञको वलभीनाथापराभिधः "जक्खो" त्ति, यक्षः = देवजातिविशेषः किम्भूतः ? "महबलो" त्ति, महाबलः = प्रचण्डशक्तिमान् "पबोहिओ" त्ति, प्रबोधितः । तद्व्यतिकरस्त्वनन्तरवक्ष्यमाणप्रभावकचरिताज्ज्ञेयः ।

अथ द्वितीयगाथया जन्मादिवत्सरान् दर्शयति–"जम्मो" इत्यादि, "ऽस्स" त्ति, अस्य श्रीवीराचार्यस्य 'विक्कमा' त्ति, विक्रमात् = विक्रमादित्यभूपतितः "ऽद्दे पसुवइमुत्तिगुण-गहमिए" त्ति, पशुपतिमूर्तयः = शम्भुमूर्तयोऽष्टौ, यदुक्तं काव्यशिक्षायाम्—

"रुद्रमूर्तयः-१ क्षिति-२ जल ३ पवन ४ हुताशन ५ यजमाना ६ ऽऽकाश ७ सोम ८ सूर्या ।" इति ।

गुणाः=सत्त्व-रजस्तमोरूपा माधुर्यौजःप्रसादलक्षणा वा त्रयः, तथा चोक्तं काव्यशिक्षायाम्–

'गुणा माधुर्य-ओज-प्रसादाः, गुणा सत्व-रजस्तमोलक्षणा वा,' इति ।

ग्रहा मङ्गलाद्या नव, एतैरङ्कैः वामगतिभजनशीलैरष्टात्रिंशदुत्तरनवशत९३८संख्यया मिते पशुपतिमूर्तिगुणग्रहमितेऽब्दे = विक्रमसंवदष्टत्रिंशे नवशत९३८वर्षे "जम्मो" त्ति, जन्माऽभूत् ।

"मरुपहमयबलसंखे" त्ति, मरुत्पथः = सुराध्वो वायुमार्गो वा=आकाशः = शून्यम्, मदाः जात्यादिभेदभिन्ना अष्टौ, बलाः = बलदेवा नव, एतेषां वामगतिजुषां ९८० इति प्रमाणा संख्या यत्र तत्र मरुत्पथमदबलसङ्ख्येऽब्दे = विक्रमसंवदशीत्यधिकनवशत९८०वत्सरे "दिक्खा" त्ति, दीक्षा = सर्वविरत्यादानमभवत् ।

" " त्ति, सः=श्रीवीरसूरिः "विहुरसरसे" त्ति, विधुः=चन्द्र एकः, यद्वा विभुः= परमात्मैकः, रसाः = शृङ्गारादयो नव, यदुक्तमभिधनाचिन्तामणौ द्वितीये देवकाण्डे—

"शृङ्गार २ हास्य ३ करुणा-४ रौद्र-५ वीर ६ भयानका ॥२८४॥ ७ बीभत्सा-८ ऽद्भुत-९ शान्ताश्च रसा' इति

रसाः पूर्ववन्नव, एतैरङ्कैर्वामगतिमीलितैर्नवशतोत्तरैकनवति९९१सङ्ख्यया मितो योऽब्दो= वर्षो भवति तस्मिन् विधुरसरसेऽब्दे = विक्रमसंवदेकनवत्यधिकनवशत९९१वत्सरे "ग-मिओ" त्ति, स्वर्ग = नाकमितः = गतः ।

इत्थञ्चाऽस्य द्विचत्वारिंशद् ४२ वर्षाणि गृहपर्यायः, एकादश ११ वर्षाणि व्रतपर्यायश्चेति सम्पूर्णायुर्मानञ्च त्रिपञ्चाश५३द्वर्षाणि भवति स्म ।

इदन्तु जन्मादिसंवत्कालमानं प्रभावकचरित्रानुसारेण व्याख्यातम् ।

"पहावगो" त्ति, प्रभावकः = स्वचरितेन शासनोन्नतिकारकः, पुनः किं विशिष्टः ! "अंग-वि ण्णू" त्ति, अंगविद्याज्ञः = श्रुतज्ञानविशेपस्य वेत्ता,

पुनरपि स कः ? इत्याह "जेण" त्ति, येन = श्रीवीरसूरिणा प्रभुणा "विरूवाणाहो" त्ति, विरूपानाथः = विरूपानाथसंज्ञको वलभीनाथापराभिधः " खो" त्ति, यक्षः = देवजातिविशेपः किम्भूतः ? "महबलो" त्ति, महाबलः = प्रचण्डशक्तिमान "पवोहिओ" त्ति, प्रबोधितः । तद्व्यतिकरस्त्वनन्तरवक्ष्यमाणप्रभावकचरिताज्ज्ञेयः ।

अथ द्वितीयगाथया जन्मादिवत्सरान् दर्शयति–"जम्मो" इत्यादि, "ऽस्स" त्ति, अस्य श्रीवीराचार्यस्य 'विक्कमा' त्ति, विक्रमात् = विक्रमादित्यभूपतितः "ऽद्दे पसुवइमुत्तिगुण-गहमिए" त्ति, पशुपतिमूर्तयः = शम्भुमूर्तयोऽष्टौ, यदुक्त काव्यशिक्षायाम्—

"रुद्रमूर्तयः-१ क्षिति-२ जल ३ पवन ४ हुताशन ५ यजमाना ६ ऽऽकाश ७ सोम ८ सूर्या ।" इति ।

गुणाः=सत्त्व-रजस्तमोरूपा माधुर्यौजःप्रसादलक्षणा वा त्रयः, तथा चोक्त काव्यशिक्षायाम्–

'गुणा माधुर्य-ओज प्रसादा, · गुणाः सत्व-रजस्तमोलक्षणा वा,' इति ।

ग्रहा मङ्गलाद्या नव, एतैरङ्कैः वामगतिभजनशीलैरष्टात्रिंशदुत्तरनवशत९३८संख्यया मिते पशुपतिमूर्तिगुणग्रहमितेऽब्दे = विक्रमसंवदष्टत्रिंशे नवशत९३८वर्षे "जम्मो" त्ति, जन्माऽभूत् ।

"मरुपहमयबलसंखे" त्ति, मरुत्पथः = सुराध्वो वायुमार्गो वा=आकाशः = शून्यम्, मदाः जात्यादिभेदभिन्ना अष्टौ, बलाः = बलदेवा नव, एतेषां वामगतिजुषां ९८० इति प्रमाणा संख्या यत्र तत्र मरुत्पथमदबलसङ्ख्येऽब्दे = विक्रमसंवदशीत्यधिकनवशत९८०वत्सरे "दिक्खा" त्ति, दीक्षा = सर्वविरत्यादानमभवत् ।

" " त्ति, सः=श्रीवीरसूरिः "विहुरसरसे" त्ति, विधुः=चन्द्र एकः, यद्वा विभुः= परमात्मैकः, रसाः = शृङ्गारादयो नव, यदुक्तमभिधनाचिन्तामणौ द्वितीये देवकाण्डे—

"शृङ्गार १ हास्य ३ करुणा-४ रौद्र-५ वीर ६ भयानकाः ॥२६४॥ ७ बीभत्सा-८ ऽद्भुत-९ शान्ताश्च रसाः' इति

रसाः पूर्ववन्नव, एतैरङ्कैर्वामगतिमीलितैर्नवशतोत्तरैकनवति९९१सङ्ख्यया मितो योऽब्दो= वर्षो भवति तस्मिन् विधुरसरसेऽब्दे = विक्रमसंवदेकनवत्यधिकनवशत९९१वत्सरे " ग-मिओ" त्ति, स्वर्गं = नाकमितः = गतः ।

इत्थञ्चाऽस्य द्विचत्वारिंशद् ४२ वर्षाणि गृहपर्यायः, एकादश ११ वर्षाणि व्रतपर्याय-श्चेति सम्पूर्णायुर्मानञ्च त्रिपञ्चाश५३द्वर्षाणि भवति स्म ।

इदन्तु जन्मादिसंवत्कालमानं प्रभावकचरित्रानुसारेण व्याख्यातम् ।

इत्याह–"जेण" त्ति, येन=श्रीमानदेवसूरिणा "उवधाणवच्चो" त्ति, उपधानो वाच्यः=अभिधेयो यस्मिन् स उपधानवाच्यः=उपधानविषयकः "गंथो" त्ति, ग्रन्थो वाक्यसमूहात्मकशब्दसन्दर्भलक्षणः शास्त्रः "कओ" त्ति, कृतः=निर्मितः ।

तथा च न्यगादि–"प्रणीतसद्युक्त्युपधानवाच्यग्रन्थश्च तस्मादपि मानदेव ॥४३॥" इति ।

श्रीगुरुपर्वक्रमेऽपि–"श्रीमानदेवोऽप्युपधानवाचकग्रन्थप्रणेताऽजनि विश्वपावक ।" इति ॥१५७॥

अथ श्रीधर्मऋषिसूरेः पञ्चत्रिंशत्तमयुगप्रधानत्वं द्वितीयोदययन्त्रकमापेक्षया पञ्चदश-युगप्रधानत्वं निर्दिष्टुकामः पथ्यागीति-पथ्यार्यालक्षणश्लोकद्वयं वक्ति–

सिरिधम्मरिसी सूरी आसी पणतीसमो जुगपहाणो ।
किरियाठाणसयेऽद्दे वीरा जम्मोऽस्स भावणाहि १३२५ जुए ॥
चत्ताअ १३४० जुए स वयं लहीअ अहिअम्मि लेसकट्ठाहि १३६० ।
होसी जुगप्पहाणो रयणसये देवलोगमिओ ॥१५८॥ (पच्छाआर्या)

(प्रे०) "सिरिधम्म०" इत्यादि, "सिरिधम्मरिसी" त्ति, श्रिया=चारित्रादिलक्ष्म्या युतो धर्मर्षिः=तन्नामाचार्यः श्रीधर्मऋषिः "सूरी" त्ति, सूरिः=आचार्यः "आसी पणतीसमो जुगपहाणो" त्ति, पञ्चत्रिंशो युगप्रधान आसीत् ।

अथ सार्द्धश्लोकेनाऽस्य जन्मादिसत्कान् शब्दो दर्शयति–"किरिया०"इत्यादि, "ऽस्स" त्ति, अस्य श्रीधर्मर्षिसूरेः "वीरा" त्ति, वीरात्=चरमजिनेशात् "भावणाहि जुए" त्ति, भावनाभिः=महाव्रतसत्कभावनानां पञ्चविंशतित्वात् पञ्चविंशत्या युते "किरियाठाणसयेऽद्दे" त्ति, क्रियास्थानानि त्रयोदश, तावन्मितानि शतानि यत्र तत्र क्रियास्थानशतेऽब्दे=पञ्चविंशत्यधिकत्रयोदशशत१३२५तमे वीरसंवदि "जम्मो" त्ति, जन्म=जनिरभवत् ।

"स" त्ति, सः=श्रीधर्मर्षिसूरिः "चत्ताअ जुए" त्ति, चत्वारिंशता युते क्रियास्थान-१३शतेऽब्दे=चत्वारिंशदधिकशतत्रयोत्तरसहस्र१३४०तमे वीरसंवत्सरे "वय लहीअ" त्ति, व्रतं=सर्वविरतिं लेभे =प्राप ।

"अहिअम्मि लेसकट्ठाहिं" त्ति, लेशकाष्ठाः षष्टिः, लेशस्य कलाद्वयमानत्वात्, कलायाः पञ्चदशलवमितत्वात्, लवस्य च काष्ठाद्वयात्मत्वाल्लेशस्य काष्ठा यथोक्तमानाः सन्ति ।

यदुक्तमभिधानचिन्तामणौ–

"काष्ठाद्वय लव । कला तै पञ्चदशभिर्लेशस्तद्द्वितीयेन च ॥१२६॥" इति ।

इत्याकर्ण्य तदम्बा च तथैवास्थादजीविता । अहो अतुच्छं वात्सल्य मातुर्वाक्यपथातिगम् ॥२०॥
पितुर्भर्तु कलाचार्य-मित्रयोरुपकारिण । भवेत्कथञ्चिदानृण्य जनन्या न कथञ्चन ॥२१॥
तदा च चौरसघाताद् वीरो वीरप्रसादतः । स्वक्षेत्रेणाकृतेनागात् शालभादिव कर्पुक ॥२२॥
दृष्ट्वा स्वाम्बा गतप्राणा विस्मरन्निजसङ्कटम् । किमभूदित्यत पृच्छन् यथावृत्त तदाऽशृणोत् ॥२३॥
अनुतप्त प्रियाबन्धुर्वीरेणाऽभिदधे तदा । अस्थिमङ्ग कथ नर्म कृत मद्भाग्यदूपकम् ॥२४॥
स प्राह कोऽपि नर्मोक्त्या किं मातेव विपद्यते । शल्य बिलवकवन्मेऽभूदित्याजन्माप्यनिर्गमम् ॥२५॥
वीर प्राहाथ वैराग्याज्जनन्या मम च स्फुटम् । कीदृग्दूरतर स्नेहसम्बन्धे पश्यतान्तरम् ॥२६॥
हास्येन मन्मृति श्रुत्वा माता सत्येन सस्थिता । सत्येऽपि निधने तस्या वय किञ्चिन्मुचोऽपि न ॥२७॥
उक्त्वेति कोटिमेकैका कलत्रेभ्यः प्रदाय स । शेप (? प) श्रीसघपूजासु चैत्येष्वेवाव्ययद्धनम् ॥२८॥
परिग्रहपरित्याग कृत्वा गार्हस्थ्य एव सन् । गत्वा सत्यपुरे श्रीमद्वीरमाराधयन्मुदा ॥२९॥
उपवासान्सदा चाष्ट कृत्वा पारणक व्यधात् । समस्तविकृतित्यागादहो अस्य महत्तप ॥३०॥
प्रासुकाहारभोजी च स चतुर्विधपौषधी । पुरबाह्ये श्मशानादौ कायोत्सर्ग निशि व्यधात ॥३१॥
दिव्यमानुपतैरश्चोपसर्गेषु स सासहिः । तप्यमानस्तपस्तीव्रमभवत् तीर्थसन्निभ ॥३२॥
निजक्रियानुमानेन गुरोरुत्कण्ठित सदा । एकचित्तो महावीरपादान् ध्यायत्यमन्दधी· ॥३३॥
प्रदोषसमयेऽन्येद्यु प्रतिमार्थं बहिर्भुवि । गच्छन् दुरात्समायान्त मायान्त जङ्गम शमम् ॥३४॥
चारित्रमिव मूर्त्तिस्थ मथुरायाः समागतम् । स वर्षशतदेशीयमपश्यद्विमल गणिम् ॥३५॥
क्षितिपीठलुठन्मूर्द्धा सर्वाभिगमपूर्वकम् । ववन्दे नन्दितस्तेन धर्मलाभाशिषा च स ॥३६॥
अकाले नगराद् बाह्ये धर्मशील ? क्व गम्यते । इत्युक्ते प्रान्तभूमीषु व्युत्सर्गायेति सोऽवदत् ॥३७॥
गणि प्राहातिथिस्तेऽहमङ्गविद्योपदेशत । मिलित्वा ते स्वकालाय यामि शत्रुञ्जये गिरौ ॥३८॥
वीरोऽवदथ श्रेयो दिन मे यद्भवादृशा । प्रसादमसम कृत्वोत्कण्ठन्ते किल मादृशाम् ॥३९॥
निशा सफलयाम्यद्य तत्पूज्यवरिवस्यया । चिन्तामणिं करप्राप्त क· कुण्ठोऽप्यवमन्यते ॥४०॥
इत्युक्त्वा दर्शयन् स्वीयोपाश्रय तस्य सद्गुरो । शुश्रूषा च स्वय चक्रे देहविश्रामणादिकाम् ॥४१॥
ततश्चाह मुनीशोऽङ्गविद्या त्वमशठ पठ । प्रभावकः श्रुतज्ञानाद्भवितासि मते यथा ॥४२॥
वीर प्राह गृहस्थाना कथ सिद्धान्तवाचना । नाधीत पुनरायाति वृद्धत्वात् विदधे किमु ॥४३॥
अथाह गुरुरध्वन्यो भवान्तरगतावहम् । अङ्गविद्या महाविद्या तवायाता स्वयंवरा ॥४४॥
तदर्थं ज्ञापयिष्यामि शीघ्र तत्पुस्तक पुन । थारापद्रपुरे श्रीमान्नाभेयस्य जिनेशितु ॥४५॥
चैत्यस्य शुकनासेऽस्ति त गृहीत्वा च वाचये । इत्युक्त्वाऽदात्परिव्रज्या गुरुर्वीरस्य सादरम् ॥४६॥ युग्मम् ।
दिशन्ग्रन्थस्य तस्याथ दिनत्रयमवास्थित· । ततो जगाम स श्रीमान् विमलो विमलाचले ॥४७॥
तत्र श्रीवृषभ नत्वा तदेकध्यानमानस । सन्यासात् त्रिदिव प्राप पापमातङ्गकेसरी ॥४८॥
ततो गुरुनियोगेन वीरस्तत्र पुरे ययौ । स्थाने च तत्समादिष्टे श्राद्धेभ्यः प्राप पुस्तकम् ॥४९॥
अधीता तेन तत्राङ्गविद्या च गणिविद्यया । तस्या प्रसादत सोऽभूदुग्रशक्तिर्महातपा· ॥५०॥
अभूदथ परीवारस्तस्य प्राचीनपुण्यत । अबुद्धबोधने सैप नियम चाग्रहीत्तदा ॥५१॥
विजिहीर्षुर्गणिर्वीरोऽणहिल्लपुरसमुखम् । आजगाम स्थिरग्रामे विरूपानाथसश्रिते ॥५२॥
स चात्र वलभीनाथापराख्यो व्यन्तराधिप । रात्रौ देवगृहे सुप्त हन्ति मर्त्य महारुषा ॥५३॥
तद्बोधाय महामातृपीठान्तर्गणिविद्यया । अर्द्धतुर्यकरोन्मान कुण्ड कृत्वा महोदय ॥५४॥
तत्रस्थै स निषिद्धोऽपि महाशक्तिमरात्तत । अस्थादस्थानमीदृक्षमयानामक्षतव्रत ॥५५॥ युग्मम् ।

मानवासवः=भूपतिः, गोपगिरेः=तन्नाम्नो जनपदस्य मानववासवो गोपगिरिमानववासवः=गोपगिरिदेशनरेन्द्रः "अच्चीअ" त्ति, अर्चयामास=पूजयाञ्चकार ।

तथा च न्यगादि श्रीगुर्वावल्याम्—

तत प्रसिद्धोऽजनि चित्रकूटे स हेमसिद्धिर्विमलेन्दुसूरि' ४३ ।
अपूजयद् य विषमेऽपि वादे सद्यो जिते गोपगिरेर्नरेन्द्र ॥४४॥" इति ।

श्रीगुणरत्नसूरिभिरपि क्रियारत्नसमुच्चये गुरुपर्वक्रमं दर्शयद्भिः—

वादे जिते गोपगिरीशपूजित , सत्स्वर्णसिद्धिर्विमलेन्दुरत्यत ॥१७॥" इति ॥१६०॥

अथ श्रीसिद्धर्षिसूरिमभिधित्सुः पथ्यापूर्विकां मुखचपलामार्यां भणति—

□गग्गरिसिसूरिसीसो पहावगो आसि सिद्धरिसिसूरी ।
उवमिइभवप्पपंचक्खमहकहाईण णिम्माआ ॥१६१॥

(पच्छापुव्विगा मुहचवला-ऽज्जा)

(प्रे०) "**गग्गरिसि०**" इत्यादि, "**सिद्धरिसिसूरी**" त्ति, सिद्धर्षिसूरिः=सिद्धर्षिनामा मुनिनाथः "**आसी**" त्ति, बभूवेति क्रियासण्टङ्कः । किंविशिष्टः ? □"**गग्गरिसिसूरिसीसो**" त्ति, गर्गर्षिसूरेः शिष्यः = विनेयः । पुनः कीदृक् ? "**पहावगो**" त्ति, प्रभावकः = वीरप्रभुशासनोन्नतिकरः । पुनरपि किम्भूतः ? "**उवमिइभवप्पपंचक्खमहकहाईण णिम्माआ**" त्ति, उपमितिभवप्रपञ्चाख्यमहाकथा आदौ = प्रमुखे येषां ग्रन्थानां तेषामुपमितिभवप्रपञ्चाख्यमहाकथादीनां ग्रन्थानां निर्माता = विधाता । अत्रादिपदेनोपदेशमालालघु-बृहद्वृत्तिद्वय-चन्द्रकेवलिचरित्र-न्यायावतारवृत्तिप्रमुखाणां ग्रहणं कर्तव्यम् ।

□ प्रबन्धकोशो-पदेशरत्नाकर श्राद्धप्रतिक्रमणार्थदीपिकादिषु पुन सिद्धर्षिगणि साक्षाद्धरिभद्रसूरिशिष्यो दर्शित । तथा चोक्त प्रबन्धकोशे—

" श्रीहरिभद्रान् दृष्टवान् । सान्द्रचन्द्रिके नमसि देशना । बोध । व्रतम् । " इत्यादि ।

तथोपदेशरत्नाकरेऽपि—"ये पुन कुगुर्वादिसङ्गत्या सम्यग्दर्शनचारित्राणि वमन्ति ते शुभधर्मवास प्रतीत्य वाम्या । बौद्धसङ्गत्यैकविंशतिकृत्वोऽर्हद्धर्मत्यागिश्रीहरिभद्रसूरिशिष्यपश्चात्तदुपज्ञललितविस्तराप्रतिबुद्धश्रीसिद्धवत् ।" इति ।

तथा श्राद्धप्रतिक्रमणार्थदीपिकायामपि—"मिथ्यादृष्टिसंस्तवे हरिभद्रसूरिशिष्यसिद्धसाधुर्ज्ञातम् , स सौगतमतरहस्यमर्मग्रहणार्थं गत.। ततस्तैर्भावितो गुरुदत्तवचनत्वान्मुत्कलापनायागतो गुरुभिर्बोधितो बौद्धानामपि दत्तवचनत्वान्मुत्कलापनार्थं गत । एवमेकविंशतिवारान् गतागतमकारीति । तत्प्रतिबोधनार्थं गुरुकृतललितविस्तराख्यशक्रस्तववृत्त्या दृढ प्रतिबुद्ध , श्रीगुरुपार्श्वे तस्थौ ।" इति । किन्त्वेतद्विचारणीयमस्ति ।

वीरवंशावली तु श्रीहरिभद्रसूरिभागिनेयो दर्शित । तथा च तद्ग्रन्थ —"पून श्रीहरिभद्रसूरीना भाणेज श्रीसिद्धर्षि उपमितिभवप्रपञ्चा १, श्रीचन्द्रकेवलीचरित्र २, श्रीविजयचन्द्रकेवलीचरित्र ३ ना करणहार स्वर्ग हुओ" इति । तदपि चिन्त्यम् ।

इत्याकर्ण्य तदम्बा च तथैवास्थादजीविता । अहो अतुच्छ वात्सल्यं मातुर्वाक्यपथातिगम् ॥२०॥
पितुर्भर्तु कलाचार्य-मित्रयोरुपकारिणि । भवेत्कथञ्चिदानृण्य जनन्या न कथञ्चन ॥२१॥
तदा च चौरसघाताद् वीरो वीरप्रसादतः । स्वच्छेत्रेणाकृतेनागात् शालभादिव कर्पुक ॥२२॥
दृष्ट्वा स्वाम्बा गतप्राणा विस्मरन्निजसङ्कटम् । किमभूदित्यत पृच्छन् यथावृत्त तदाऽशृणोत् ॥२३॥
अनुतप्त प्रियाबन्धुर्वीरेणाऽभिदधे तदा । अस्थिमङ्ग कथ नर्म कृत मद्भाग्यदूषकम् ॥२४॥
स प्राह कोऽपि नर्मोक्त्या किं मातेव विपद्यते । शल्य बिल्वकवन्मेऽभूदित्याजन्माप्यनिर्गमम् ॥२५॥
वीर· प्राहाथ वैराग्याज्जनन्या मम च स्फुटम् । कीदृग्दूरतर स्नेहसम्बन्धे पश्यनान्तरम् ॥२६॥
हास्येन मन्मृति श्रुत्वा माता सत्येन सस्थिता । सत्येऽपि निधने तस्या वय किञ्चिन्मुचोऽपि न ॥२७॥
उक्त्वेति कोटिमेकैका कलत्रेभ्य· प्रदाय स. । शेप (? प) श्रीसघपूजासु चैत्येष्वेवाव्ययद्धनम् ॥२८॥
परिग्रहपरित्याग कृत्वा गार्हस्थ्य एव सन् । गत्वा सत्यपुरे श्रीमद्वीरमाराधयन्मुदा ॥२९॥
उपवासान्सदा चाष्ट कृत्वा पारणक व्यधात् । समस्तविकृतित्यागादहो अस्य महत्तप ॥३०॥
प्रासुकाहारभोजी च स चतुर्विधपौषधी । पुरबाह्ये श्मशानादौ कायोत्सर्गं निशि व्यधात ॥३१॥
दिव्यमानुषतैरश्चोपसर्गेषु स सासहि । तप्यमानस्तपस्तीव्रमभवत् तीर्थसन्निभ ॥३२॥
निजक्रियानुमानेन गुरोरुत्कण्ठित सदा । एकचित्तो महावीरपादान् ध्यायत्यमन्दधी· ॥३३॥
प्रदोषसमयेऽन्येद्यु प्रतिमार्थं बहिर्भुवि । गच्छन् दुरात्समायान्तं मायान्त जङ्गम शमम् ॥३४॥
चारित्रमिव मूर्त्तिस्थ मथुरायाः समागतम् । स वर्षशतदेशीयमपश्यद्विमल गणिम् ॥३५॥
क्षितिपीठलुठन्मूर्द्धा सर्वाभिगमपूर्वकम् । ववन्दे नन्दितस्तेन धर्मलाभाशिषा च स ॥३६॥
अकाले नगराद् बाह्ये धर्मशील ? क गम्यते । इत्युक्ते प्रान्तभूमीषु व्युत्सर्गायेति सोऽवदत् ॥३७॥
गणि प्राहातिथिस्तेऽहमङ्गविद्योपदेशत । मिलित्वा ते स्वकालाय यामि शत्रुञ्जये गिरौ ॥३८॥
वीरोऽवदथ श्रेयो दिन मे यद्भवादृशा । प्रसादमसम कृत्वोत्कण्ठन्ते किल मादृशाम् ॥३९॥
निशा सफलयाम्यद्य तत्पूज्यवरिवस्यया । चिन्तामणिं करप्राप्त क· कुण्ठोऽप्यवमन्यते ॥४०॥
इत्युक्त्वा दर्शयन् स्वीयोपाश्रय तस्य सद्गुरो । शुश्रूषा च स्वय चक्रे देहविश्रामणादिकाम् ॥४१॥
ततश्चाह मुनीशोऽङ्गविद्या त्वमशठ पठ । प्रभावक· श्रुतज्ञानाद्भवितासि मते यथा ॥४२॥
वीर प्राह गृहस्थाना कथ सिद्धान्तवाचना । नाधीत पुनरायाति वृद्धत्वात् विदधे किमु ॥४३॥
अथाह गुरुरध्वन्यो भवान्तरगतावहम् । अङ्गविद्या महाविद्या तवायाता स्वयंवरा ॥४४॥
तदर्थं ज्ञापयिष्यामि शीघ्र तत्पुस्तक पुन । थारापद्रपुरे श्रीमान्नाभेयस्य जिनेशितु ॥४५॥
चैत्यस्य शुकनासेऽस्ति त गृहीत्वा च वाचये·। इत्युक्त्वाऽदात्परिव्रज्यां गुरुर्वीरस्य सादरम् ॥४६॥ युग्मम् ।
दिशन्ग्रन्थस्य तस्यार्थ दिनत्रयमवास्थितः । ततो जगाम स श्रीमान् विमलो विमलाचले ॥४७॥
तत्र श्रीवृषभ नत्वा तदेकध्यानमानस । सन्यासात् त्रिदिव प्राप पापमातङ्गकेसरी ॥४८॥
ततो गुरुनियोगेन वीरस्तत्र पुरे ययौ । स्थाने च तत्समादिष्टे श्राद्धेभ्य· प्राप पुस्तकम् ॥४९॥
अधीता तेन तत्राङ्गविद्या च गणिविद्यया । तस्या प्रसादत सोऽभूदुग्रशक्तिर्महातपा· ॥५०॥
अभूदथ परीवारस्तस्य प्राचीनपुण्यत. । अबुद्धबोधने सैष नियम चाग्रहीत्तदा ॥५१॥
विजिहीर्षुर्गणिर्वीरोऽणहिल्लपुरसमुखम् । आजगाम स्थिरग्रामे विरूपानाथसश्रिते ॥५२॥
स चात्र वलभीनाथापराख्यो व्यन्तराधिप । रात्रौ देवगृहे सुप्त हन्ति मर्त्य महारुषा ॥५३॥
तद्बोधाय महामातृपीठान्तर्गणिविद्यया । अर्द्धतुर्यकरोन्मान कुण्ड कृत्वा महोदय ॥५४॥
तत्रस्थै स निषिद्धोऽपि महाशक्तिमरात्तत । अस्थादस्थानमीदृक्षमयानामक्षतव्रत ॥५५॥ युग्मम् ।

द्वार द्वारमिति प्रौढस्वरोऽसौ यावदूचिवान् । इयद्रात्रौ क आगन्ता माताऽवादीदिति स्फुटम् ॥३६॥
सिद्ध सिद्ध इति प्रोक्ते तेन सा कृतकक्रुधा । प्राह सिद्ध न जानेऽहमप्रस्तावविहारिणम् ॥३७॥
अधुनाऽह क यामीति सिद्धेनोक्ते जनन्यपि । अन्यदा शीघ्रमायाति यथाऽस्मात कर्कश जगौ ॥३८॥
एतावत्या निशि द्वारं विवृत यत्र पश्यसि । तत्र याया समुद्घाटद्वारा सर्वापि किं निशा ॥३९॥
भवत्वेवमिति प्रोक्ते सिद्धस्तस्मान्निरीय च । पश्यन्ननावृतद्वारो द्वारेऽगादनगारिणाम ॥४०॥
सदाप्यनावृतद्वारशालाया पश्यति स्म स. । मुनीन् विविधचर्यासु स्थितान्निष्पुण्यदुर्लभान् ॥४१॥
काश्चिद्दद्वैरात्रिक काल विनिद्रस्य गुरो पुर । प्रवेदयन्त उत्साहात् काश्चित्स्वाध्यायरङ्गिण ॥४२॥
उत्कटिकासनान् काश्चित काश्चिद्गोदोहिकासनान् । वीरासनस्थितान् काश्चित सोऽपश्यन्मुनिपुङ्गवान् ॥४३॥
अचिन्तयच्छमसुधानिर्झरे निर्जरा इव । सुस्नातशीतला एते तृष्णाभीता मुमुक्षव ॥४४॥
मादृशा व्यसनासक्ता अभक्ता स्वगुरुष्वपि । मनोरथद्रुहस्तेषा विपरीतविहारिण ॥४५॥
धिग् ! जन्मेदमिहामुत्र दुर्यशो दुर्गतिप्रदम् । तस्मात्सुकृतिनी वेला यत्रैते दृष्टिगोचरा ॥४६॥
अमीषा दर्शनात्कोपिन्याधि सूपकृत मयि । जनन्या क्षीरमुत्तममपि पित्त प्रणाशयेत् ॥४७॥
ध्यायन्नित्यग्रतस्तस्थौ नमस्तेभ्यश्चकार स. । प्रदत्तधर्मलाभाशीर्निर्ग्रन्थ प्रभुराह च ॥४८॥
को भवानिति तै प्रोक्ते प्रकट प्राह साहसी । शुभङ्करात्मज. सिद्धो द्यूतान्मात्रा निषेधित ॥४९॥
उद्घाटद्वारि याया स्त्वमोकसीयन्महानिशि । इत्यम्बावचनादत्राप्रावृतद्वारि सङ्गत ॥५०॥
अत प्रभृति पूज्यानां चरणौ शरण मम । प्राप्ते प्रवहणे को हि निस्तितीर्षति नाम्बुधिम् ॥५१॥
उपयोग श्रुते दत्त्वा योग्यताहृष्टमानसा । प्रभावक भविष्यन्त परिज्ञायाऽथ तेऽवदन् ॥५२॥
अस्मद्वेष विना नैवास्मत्पार्श्वे स्थीयतेतराम् । सदा स्वेच्छाविहाराणा दुर्ग्रह स भवादृशाम् ॥५३॥
धार्य ब्रह्मव्रत घोर दुश्चर कातरैर्नरै । कापोतिका तथा वृत्ति समुदानाऽपराभिधा ॥५४॥
दारुण केशलोचोऽथ सर्वाङ्गीणव्यथाकरः । सिकतापिण्डवच्चाय निरास्वादश्च सयमः ॥५५॥
उच्चावचानि वाक्यानि नीचाना ग्रामकण्टका. । सोढव्या दशनैश्चर्वणीया लोहमया यवा ॥५६॥
उग्र षष्ठाष्टमाद्य तत्तप कार्यं सुदुष्करम् । स्वाद्यास्वाद्येषु लब्धेषु रागद्वेषौ न पारणे ॥५७॥
इत्याकर्ण्याऽवदत्सिद्धो मत्सदृग्व्यसनस्थिता । छिन्नकर्णोष्ठनासादिबाहुपादयुगा नरा ॥५८॥
क्षुधाकरालिता भिक्षाचौर्यादिवृत्तिधारिण । अप्राप्तशयनस्थाना पराभूता निजैरपि ॥५९॥
नाथ ! किं तदवस्थाया अपि किं दुष्करो भवेत् । सयमो विश्ववन्द्यस्तन्मूर्ध्नि देहि कर मम ॥६०॥
यददत्त न गृह्णीमो वय तस्मात्स्थिरो भव । दिनमेक यथाऽनुज्ञापयाम पैतृक तव ॥६१॥
तत प्रमाणमादेश इत्युक्त्वा तत्र सुस्थिते । परं हर्ष दधौ सूरिः सुविनेयस्य लाभत. ॥६२॥
इत शुभङ्कर श्रेष्ठी प्रात पुत्र समाह्वयत् । शब्दादाने च सम्भ्रान्तोऽपश्यत्पत्नी नताननाम् ॥६३॥
अद्य रात्रौ कथ नागात् सिद्ध इत्युदिता सती । लज्जानम्रावदद् घूत शाक्षन ऽथ सुतो ययौ ॥६४॥
श्रेष्ठी दध्यौ महेलाया स्युरुत्तानधिषणा ध्रुवम् । न कर्कशवचोयोग्यो व्यसनी शिक्ष्यते शनै ॥६५॥
ईषत्कर तत प्राह प्रिये ! भव्य त्वया कृतम् । वय किं प्रवदामोऽत्र वणिजा नोचित ह्यद ॥६६॥
गृहाद्बहिश्च निर्याय प्रयासाङ्गीकृतस्थिति । व्यलोकयत्पुर सर्वमहो मोह पितु. सुते ॥६७॥
दृष्टश्चारित्रिशालायामसावुपशमोर्मिभि । आप्लुतोऽपूर्वसस्थान ततोऽवादि च तेन स ॥६८॥
यद्येव शमिसामीप्यस्थितिं पश्यामि ते सुत ! अमृतेनेव सिच्ये तन्नन्दनानन्दनस्थिते ! ॥६९॥
द्यूतव्यसनिना साध्वाचारातीतकुवेषिणाम् । सङ्गतो मम हृद्दु खहेतु केतुरिव ग्रह. ॥७०॥
आगच्छ वत्स ! सोत्कण्ठा तव माता प्रतीक्षते । किंचिन्मद्वचनैर्दूना सन्तप्ता निर्गमात्तव ॥७१॥

अथ स प्राह नाह्युस्त्वय्यह तद्वच' शृणु । मद्यात्रा तस्य पुर्णा स्याद्यस्त्वामत्र नमस्यति ॥९२॥
अन्यथाऽर्द्धफला सा स्यादित्युक्त्वा स्वाश्रय गत । वर्त्ततेऽद्यापि तत्तादृग् मद्वच को विलङ्घयेत् ॥९३॥
तत प्रभृत्यसौ ग्राम स्थिरमित्याख्ययाऽभवत् । मम शम्भोश्च वाचा हि स्थिरता न हि दुर्लभा ॥९४॥
इति न स्खलिता शक्तिर्मम मर्त्यै सुरैरपि । त्व तु श्वेताम्बराकारो दैव मत्तोऽपि शक्तिमान् ॥९५॥
नावमन्तुमह शक्त, समीक्षे दूरत स्थित । रेखाकुण्ड ज्वलच्चारवदिद शङ्कित पुमान् ॥९६॥
तुष्टस्तव तप शक्त्ते वाञ्छित प्रार्थय द्रुतम् । अक्षेपात्पूरयिष्ये तत्कल्पवृक्ष इव ध्रुवम् ॥९७॥
पारयित्वा ततो वीर परमेष्ठिनमस्कृते । जगाद नादरा अत्र सर्वसङ्गमुचो वयम् ॥९८॥
तथाऽपि किञ्चिन्मद्धक्तनेर्ग्राह्यमित्युदितेऽमुना । मुनिराह वय रक्ष तवाप्यायुर्विनश्वरम् ॥९९॥
दुर्गतौ पतने हेतुर्लोकेऽय प्राणिनां वध । तथाख्यातं पुरावृत्तैर्हर्षो मे नास्त्यहकृतै. ॥१००॥
महादानेषु सामर्थ्यमात्मनश्च त्वयोदितम् । जीवाभयप्रदान च सर्वेऽभ्योऽप्युत्तम पुन. ॥१०१॥
हर्षादाह स तथ्य ते वचो जानेऽहमप्यद । स्वेच्छाचारी परीवारो मम तस्य प्रिय त्विदम् ॥१०२॥
त्वद्वचोभि सुधासारसारैरित्यतिहर्षित । प्रासादजगतीमध्ये जीवाना रक्षये वधम् ॥१०३॥
श्रीवीरोऽप्याह भूयात्तद्राज्ञा ज्ञातमिद वच । आचन्द्रकालिक वृत्तमावयो पुण्यहेतवे ॥१०४॥
अणहिल्लपुरेऽवासीच्चक्रवर्ती च नूतन । श्रीमान् चामुण्डराजाख्यस्तत्रास्मिन् समये नृप ॥१०५॥
आज्ञापयदिद च श्रीविरूपानाथ एव तत् । प्रधानैस्तैर्नृपस्याऽथ हर्षात्तत्रायथौ च स ॥१०६॥
सत्कर्मणि चिकीर्षाऽऽत्र कस्य नो महतेत्यसौ । विज्ञाय जीवरक्षायै तच्छासनमचीकरत् ॥१०७॥
आहूतश्च ततो राज्ञा पुनरप्यायथौ तदा । अणहिल्लपुर धीरस्तत्राबोधानबोधयत् ॥१०८॥
आचार्यत्वप्रतिष्ठाऽस्य विदधे परमर्षिभि । सूरिभिर्वर्द्धमानाख्यैं सङ्घाऽध्यक्ष महोत्सवात् ॥१०९॥
तत्र श्रीवलभीनाथ श्रीवीरप्रभुभक्तित । प्रत्यक्षीभूय धर्माख्या शृणोत्यस्याग्रत स्थित ॥११०॥
पर क्रीडाप्रियत्वेन नर प्रेक्ष्य सलक्षणम् । अवतीर्यास्य देहे च क्रीडते पीडया विना ॥१११॥
श्रीमान् वीरोऽपि तद् दृष्ट्वाऽवादीदेव न साम्प्रतम् । व्यन्तराधीश । ते केलिं मनुष्या असहिष्णव ॥११२॥
एव निववृते चाऽसौ प्रभुणा स निषेधित' । तथाह मम तोषस्य फल किमपि नात्र व ॥११३॥
ऊवाच प्रभुरानन्दात् तव सामर्थ्यमस्ति किम् ? । अष्टापदाचले गन्तु श्रीजैनभवनोन्नते ॥११४॥
स देव' प्राह शक्तिर्नो गन्तु नावस्थितौ पुन । तत्र सन्ति यत सूरे । व्यन्तरेन्द्रा महाबला ॥११५॥
अवस्थातुं न शक्नोमि तत्तेज सोढुमक्षम । याममेक त्ववस्थास्ये चल चेत् कौतुक तव ॥११६॥
अधिक तु क्षण मित्र । त्वमस्थास्यसेऽथ चेत् । तत्तत्रैव भवानत्रागताऽह तु ध्रुव ह्यद ॥११७॥
मुनौ तत्प्रतिपेदाने धवल धवल तत । विकृत्यारोहयत् त च वस्त्रवेष्टितमस्तकम् ॥११८॥
क्षणेनैव ययौ तस्य गिरेर्मूर्ध्नि स उद्धवेग । वृपादुत्तारयामास चैत्यद्वारे ततो मुनिम् ॥११९॥
द्वारपाञ्चालिकाजानुपाश्चात्यशुषिरान्तरे । तस्थौ निलीय तत्रस्थदेवज्योतिरसासहि ॥१२०॥
गव्यूतत्रितयोच्छ्राय योजनायामविस्तरम् । चतुर्द्वार महाचैत्यमाद्यचक्रिविधापितम् ॥१२१॥
दृष्ट्वा प्रमाणवर्णैश्च प्रतिमास्ता यदो(थो)दितै । एकैकस्मान्नमस्कारा-च्छु(स्तु ?)त्वा स प्राणमन्मुदा ॥१२२॥
प्रभावनाविधित्सायैं तदभिज्ञानमानयन् । पञ्च शाल्यक्षतान् तस्मादग्रहीन्नाकिढौकितान् ॥१२३॥
निशाया प्रथमे यामे चलितस्तीर्थयात्रया । प्रागवत्स पुनरायाच्च द्वितीये घटिकाधिके ॥१२४॥
सौरभामोदत शालेरक्षतानामुपाश्रय । विमानमिव सौधर्म सुमन सवृतौ बभौ ॥१२५॥
पृष्टे मुनिभिराहाथ गुरुरष्टापदाचले । वन्दयध्व मुदा देवान् श्राद्धाऽग्रेऽकथयश्च तम् ॥१२६॥
चैत्यै च मिलित सङ्घ श्रीमान् भूमिपते स च । आख्यापयन् महाश्चर्य कौतुकादाययौ स च ॥१२७॥

अथ चेदवलेपस्ते गमने न निवर्त्तते । तथाऽपि मम पार्श्वं त्वमागा वाचा ममैकदा ॥१०६॥
रजोहरणमस्माकं व्रताङ्गं न समर्प्पये । इत्युक्त्वा मौनमातिष्ठेद् गुरुश्चित्तव्यथावर ॥१०७॥
प्राह सिद्धः श्रुती च्छादयित्वा शान्तं हि कल्मषम् । अमङ्गलं प्रतिहतमकृतज्ञः क ईदृश ॥१०८॥
चक्षुरुद्घाटितं येन मम ज्ञानमयं मुदा । पुनस्तद् ध्यामयेत् को हि धूमायितपरोक्तिभि ॥१०९॥
अन्त्यं वच कथं नाथ ! मयि पूज्यैरुदाहृतम् । क कुलीनो निजगुरुक्रमयुग्मं परित्यजेत् ॥११०॥
मन कदापि गुण्येत चेद् धत्तूरभ्रमादिव । तथापि प्रभुपादानामादेशं विदधे ध्रुवम् ॥१११॥
दुरध्येयानि बौद्धानां शास्त्राणीति श्रुतिश्रुति । स्वप्रज्ञाया प्रमाणं तल्लप्स्ये तद्गुपिलाध्वनि ॥११२॥
इत्युदित्वा प्रणम्याऽथ स जगाम यथेप्सितम् । महाबोधाऽभिधं बौद्धपुरमव्यक्तवेषभृत ॥११३॥
कुशाग्रीयमतेस्तस्याक्लेशेनाऽपि प्रबोधत । विदूहद् भेदशास्त्राणि तेषामासीच्चमत्कृति ॥११४॥
तस्याऽङ्गीकरणे मन्त्रस्तेषामासीद् दुरासद । तमभ्युद्योतको रत्नमाप्य माध्यस्थ्यमाश्रयेत् ॥११५॥
तादृग्वच प्रपञ्चैस्तैर्वृद्धकैर्गर्द्धकैरपि । त विप्रलम्भयामासुर्मौनिवद्धीवरा रसान् ॥११६॥
शनैर्भ्रान्तमनोवृत्तिर्बभूवासौ यथातथा । तदीयदीक्षामादत्त जैनमार्गातिनिस्पृश ॥११७॥
अन्यदा तैर्गुरुत्वेऽसौ स्थाप्यमानोऽवदन्ननु । एकवेलं मया पूर्वं सवीद्या गुरवो ध्रुवम् ॥११८॥
इति प्रतिश्रुतं यस्मात् तदग्रे तत्प्रतिश्रवम् । सत्यसन्धस्त्यजेत्तत् कस्तत्र प्रहिणुताथ माम् ॥११९॥
ति सत्यप्रतिज्ञत्वमतिचारु च सौगते । मन्यमानास्ततः प्रैषु स चागाद् गुरुसंनिधौ ॥१२०॥
गत्वाऽथोपाश्रये सिंहासनस्थं वीक्ष्य त प्रभुम् । ऊर्ध्वस्थानशुभा यूयमित्युक्त्वा मौनमास्थित ॥१२१॥
गर्गस्वामी व्यमृक्षच्च सञ्जज्ञे तदिदं फलम् । अनिमित्तस्य जैनी वाग् नान्यथा भवति ध्रुवम् ॥१२२॥
अस्माकं ग्रहवैषम्यमिदं जज्ञे यदीदृश । सुविनेयो महाविद्वान् परशास्त्रे प्रलम्भित ॥१२३॥
तदुपायेन केनाऽपि बोध्योऽसौ यदि भोत्स्यते । तदस्माकं प्रियं भाग्यैरुदितं किं बहूक्तिभि ॥१२४॥
ध्यात्वेत्युत्थाय गुरुभिस्त निवेश्यासनेऽर्पिता । चैत्यवन्दनसूत्रस्य वृत्तिर्ल**लित विस्तरा** ॥१२५॥
ऊचुश्च यावदायामं कृत्वा चैत्यनतिं वयम् । ग्रन्थस्तावदयं वीक्ष्य इत्युक्त्वा तेऽगमन् बहि ॥१२६॥
तत सिद्धश्च तं ग्रन्थं वीक्षमाणो महामनि । व्यमृशत् किमकार्यं तन्मया-ऽऽरब्धमचिन्तितम् ॥१२७॥
कोऽन्य एवंविधो मादृगविचारितकारक: । स्वार्थभ्रंशी पराख्यानैर्मणिं काचेन हारयेत् ॥१२८॥
महोपकारी स श्रीमान् **हरिभद्रप्रभुर्यत** । मदर्थमेव येनाऽसौ ग्रन्थोऽपि निरमाप्यत ॥१२९॥
"आचार्यो **हरिभद्रो** मे धर्मबोधकरो गुरु । प्रस्तावे भावतो हन्त स एवाद्ये निवेशित ॥१३०॥
अनागत परिज्ञाय चैत्यवन्दनसंश्रया । मदर्थं निर्मिता येन वृत्तिर्ललितविस्तरा ॥१३१॥

विषं विनिर्धूय कुवासनामयं व्यचीचरद्य कृपया मदाशये ।
अचिन्त्यवीर्येण सुवासनासुधां नमोऽस्तु तस्मै हरिभद्रसूरये ॥१३२॥"

किं कर्त्ता च मया शिष्याभासेनाथ गुरुर्मम । विज्ञायैतन्निमित्तेनोपकर्तुं त्वाह्वयन्मिषात ॥१३३॥
तदङ्घ्रिरजसा मौलिं पावयिष्येऽधुनानिशम् । आगः स्वं कथयिष्यामि गुरु स्यान्न ह्यनीदृश ॥१३४॥
तथागतमतभ्रान्तिर्गता मे ग्रन्थतोऽमुत । कोद्रवस्य यथा शस्त्राघाततो मदनभ्रम ॥१३५॥
एवं चिन्तयतस्तस्य गुरुर्बाह्यभुवस्तत: । आगतस्तद्दृश पश्यन् पुस्तकस्था मुद दधौ ॥१३६॥
नैषेधकीमहाशब्दं श्रुत्वोर्द्ध्वं सभ्रमादभूत् । प्रणम्य रूक्षयामास शिरसा तत्पदद्वयम् ॥१३७॥
उवाच किं निमित्तोऽयं मोहस्तव मयि प्रभो ! । कारयिष्यन्ति चैत्यानि पश्चात् किं मादृशोऽधमा ॥१३८॥
उन्मीलाद् दूषका स्फोटस्फुटा वदनविद्रुह । स्वादविघ्नाश्चला दन्ता कुशिष्याश्च गता शुभा ॥१३९॥
आहूतो मिलनव्याजाद् बोधायैव ध्रुवं प्रभो ! । हारिभद्रस्तथा ग्रन्थो भवता विदधे करे ॥१४०॥
मग्नभ्रमं कुशास्त्रेषु प्रभु विज्ञपये तत । स्वस्याऽन्तेवासिपाशस्य पृष्ठे हस्तं प्रदेहि मे ॥१४१॥

हित्वा देहं जरद्गेहमिव दिव्यभुव ययु । श्रीवीरप्रभवो बोधशक्तेराधारतां गता' ॥१६४॥
वसु-वह्निनिधौ (९३८) जन्म, व्रत व्योम-वसु ग्रहे (९८०)। इन्द्र-नन्द ग्रहे (९९१) वर्षेऽवसानमभवत्प्रभो ॥१६५॥
गार्हस्थ्य समभवत् तस्य द्विचत्वारिंशत समा । एकादशव्रतेऽथायुस्त्रिपञ्चाशत्समा अभूत ॥१६६॥
श्रीवीरसूरेर्विदित चरित्र कर्णावतस कुरुतात्र सन्त । उत्कण्ठते श्रीजिनबोधिलक्ष्मीर्यथा महानन्दसुखप्रबोधा॥
श्रीचन्द्रप्रभसूरिपट्टसरसीहसप्रभ श्रीप्रभा—चन्द्र सूरिरनेन चेतसि कृते श्रीरामलक्ष्मीभुवा ।
श्रीपूर्वर्षिचरित्ररोहणगिरौ वीरस्य वृत्त प्रभो, श्रीप्रद्युम्नमुनीन्दुना विशदित श्रृङ्गस्तिथीसख्यया ॥१६८॥
नवोऽय प्रद्युम्न शिवसहचर प्रीतिमतुला, ददौ सन्तोपाय प्रकटरिपवे यो रतिमपि ।
कवित्वक्षोदायामृतरुचिसखित्व च मनुते शुभध्यानोपाय परिहृतमदादि स जयतु॥१६९॥" इति॥१६८-१६९॥

संप्रति श्रीचरमशासनाधिपते : △षट्त्रिंशतमं पट्टधरं श्लोकचतुष्केण प्ररूपयितुमनाः प्रथममुपजातिवृत्तमाह—

णिजप्पहावा हयकामदेवो, सो सव्वदेवायरिओ गणिंदो ।
उज्जोअणस्सायरिअस्स पट्टे, राईअ सिगम्मि जिणालयो व्व ॥१७०॥
(उवजाई)

(प्रे०) "णिज०" इत्यादि, "सो" त्ति, सः=विश्रुताख्यः "सव्वदेवायरिओ" त्ति, सर्वदेवः=तन्नामा, स चाऽसौ आचार्यः=सूरिः=सर्वदेवाचार्यः, किं विशिष्टः ? "णिजप्पहावाऽऽहयकामदेवो" त्ति, निजस्य=स्वस्य प्रभावेण=माहात्म्येनाहतः=मारितः कामदेवः=स्मरो येन स=निजप्रभावाहतकामदेवः=मदनजयकृदित्यर्थः । पुनः किम्भूतः ? "गणिंदो" त्ति, गणस्य=गच्छस्येन्द्रः=शचीपतिः=स्वामीति यावद्गणेन्द्रः=गणाधिप इत्यर्थः । "उज्जोअणस्सायरिअस्स पट्टे राईअ" त्ति, उद्द्योतनस्य=उद्द्योतनाह्वस्याचार्यस्य=सूरेः पट्टे=पदेऽराजत्=शोभयामास, कस्मिन् क इव ? "सिगम्मि जिणालयो व्व" त्ति, शृङ्गे=गिरिशिखरे जिनालयः=अर्हच्चैत्यमिव=यथा शैलशिखरे जिनेन्द्रमन्दिरं राजते तथोद्द्योतनसूरिपट्टेऽयं श्रीसर्वदेवसूरी रेजे ॥१७०॥

अथाऽनन्तरप्रतिपादितः श्रीसर्वदेवसूरिः क आसीदित्येवं दर्शयन्निन्द्रवज्रावृत्तमाह—

जो सूरिमंताइसइड्ढिधारी, सिस्साण लद्धीअ हि गोयमाहो ।
णाणंबुही संयमिलद्धरेहो, चंदव्व भव्वज्जविबोहकारी ॥१७१॥ (इंदवज्जा)

△केचित्तु पट्टधरतया श्रीप्रद्युम्नसूरि-श्रीमानदेवसूरिद्वय नाङ्गीकुर्वन्तीति प्रागुक्तम्, तदपेक्षयाऽसौ चतुस्त्रिंशत्तम पट्टधरो बोध्य । यदुक्त श्रीतपागच्छपट्टावल्याम्–केचित्तु श्रीप्रद्युम्नसूरिमुपधानग्रन्थप्रणेतृश्रीमानदेवसूरिं च पट्टधरतया न मन्यन्ते तदभिप्रायेण चतुस्त्रिंशत्तम इति ।" इति ।

एतर्हि श्रीत्रिशलाकुक्षिसंभवस्याऽर्हतः पञ्चत्रिंशं पट्टं धारयन्तं श्रीउद्द्योतनमुनिनायकं श्लोकचतुष्टयेन व्याकर्तुमिच्छुरादौ मञ्जुभाषिणिं मञ्जुवादिनी-मञ्जुहासिनी-मन्दभाषिणी-सन्धिवर्षिणीत्याद्यपरनाम्नी कथयति--

गणाहिवो आसि विमलिंदुसूरिणोः पए स उज्जोअणमुणीसवासवो ।
उवस्समाणो मुणिसयेहि तीहि जोः वडक्खगच्छस्स हि अबीअभूसणो-
॥१६२॥ (मंजुभासिणी)

(प्रे०) "गणाहिवो" इत्यादि, "स" त्ति, सः 'उज्जोअणमुणीसवासवो" त्ति, मुनीनां=संयतानामीशः=प्रभुर्मुनीशः=सूरिः, तेषां तेषु वा वासवः=वज्रभृत् मुनीशवासवः=सूरिराट् सर्वदेवादिसूरीणामधिपत्वात् उद्द्योतनसंज्ञकः, स चाऽसौ मुनीशवासवः उद्द्योतनमुनीशवासवः= उद्द्योतनाभिधसूरिसम्राट् "विमलिंदु रिणो' त्ति, विमलेन्दुसूरेः=विमलचन्द्राख्यस्याचार्यस्य "पए" त्ति, पदे=पट्टे "गणाहिवो आसि" त्ति, गणाधिपो=गच्छनायको बभूव ।

स क इत्याह-"जो" त्ति, यः=श्रीउद्द्योतनसूरीश्वरः "उवस्समाणो मुणिसयेहि तीहि" त्ति, त्रिभिर्मुनिशतैः=त्रिशतसंयमिभिरुपास्यमानः=सेव्यमानः

"व खगच्छस्स हि अबीअभूसणो" त्ति, "वड" इत्याख्या=अभिधा यस्य स वडाख्यः=वडनामा स चाऽसौ गच्छः=गणः=वडाख्यगच्छस्तस्य वडाख्यगच्छस्य न विद्यते द्वितीयोऽस्य सोऽद्वितीयः=एक एव भूषणः=विभूषकोऽद्वितीयभूषणोऽभूत् ।

यदभाणि श्रीगुर्वावल्याम्-

"तत्पट्टभूषाकृदभूद् मुनीनां त्रिभि शतैः सेव्यपद सदापि ।
उद्योतनः सूरिरवद्यहीनविद्यानदीविश्रमसिन्धुनाथ ॥४५॥" इति ॥१६२॥

अथ तमेव स्तुवन्पथ्यार्यामाचष्टे—

सोम्मं सोम्मेण खमं खमाअ थिरयाअ जयइ मेरुगिरिं ।
गंभीरत्तेणुअहि सरीरलच्छीअ कामं जो ॥१६३॥ (पच्छा ज्जा)

(प्रे०) "सो " इत्यादि, "जो" त्ति, यः=श्रीउद्द्योतनसूरिचक्री "सोम्मेण" त्ति, सौम्येन सोमतया "सोमं" ति, सोमं=चन्द्रं "जयइ" त्ति, क्रियापदस्य सर्वत्र सम्बन्धा-

● "मञ्जुभाषिणी" इति हैमछन्दोऽनुशासने "ज्सौ स्जौ गो मञ्जुभाषिणी ॥२०६॥" इति हेमवचनात् । अन्यत्र तु अन्यनामाऽपि ।

वैराग्यवाहिन्या स्वभारत्या "बोहिअ" त्ति, बोधित्वा संसारासारतां प्रज्ञाप्य "दिक्खीअ" त्ति, अदीक्षयत्=प्राव्राजीत् । किं भूतं मन्त्रिणम् ? "कारिअपिहुतुंगजिणपसायवर" ति, कारितः=निर्मापितः पृथुः=विशालः तुङ्गश्च=उच्चः=उन्नतः=उच्छ्रितः=उदग्रः=उद्धुरो वा जिनस्य=सर्वज्ञविभोः प्रसादवरः=श्रेष्ठमन्दिरं येन तम् , कारितपृथुतुङ्गजिनप्रसादवरम्=अत्यन्तरमणीयश्रेष्ठार्हत्प्रभुभवननिर्मातारम् , पुनः किं विशिष्टम् ? "चंदावईणिवणयणभूअ" ति, चन्द्रावत्याः=चन्द्रावतीनाम्न्या नगर्या नृपस्य=अधिपतेर्नयनभूतः=लोचनकल्पो यस्तम् , चन्द्रावतीनृपनयनभूतं=नृपस्य तद्द्वारेणैव सर्वकार्यार्थानामालोचनीयत्वात्कार्यमार्गदर्शकमित्यर्थः ।

तथा चाऽत्र गुर्वावली--

'न्यग्रोधगच्छेऽथ बभूव तस्मिन् , श्रीसर्वदेव ३५ प्रथमो मुनीन्द्रः ।
श्रीसूरिमन्त्रातिशयर्द्धिधारी, विश्वोपकारी गणिसपदाढ्यः ॥५५॥
चरित्रशुद्धिं विधवज्जिनागमा द्विधाय भव्यानमित प्रबोधयन् ।
चकार जैनेश्वरशासनोन्नतिं, य शिष्यलब्ध्याऽभिनवोऽनु गौतम ॥५६॥
नृपाद् दशाग्रे शरदा सहस्रे, १०१० यो रामसैन्याह्वपुरे चकार ।
नाभेयचैत्येऽष्टमतीर्थराज-बिम्बप्रतिष्ठा विधिवत्सदर्च्य' ॥५७॥
चन्द्रावतीभूपतिनेत्रकल्प, श्रीकुङ्कुण मन्त्रिणमुच्चऋद्धिम् ।
निर्मापितोत्तुङ्गविशालचैत्य, योऽदीक्षयत शुद्धगिरा प्रबोध्य ॥५८॥" इति ।

तथा श्रीहीरसौभाग्येऽपि-

'माहात्म्यनम्रीकृतसर्वदेव , पदे तदीयेऽजनि सर्वदेव ।
तारापतिस्तारकपर्षदेव, गुणश्रिया य प्रभुरन्वयायि ॥६७॥
यो रामसेनाह्वपुरे व्रतीन्दु-र्लब्धिश्रिय गौतमवद्दधान ।
नाभेयचैत्ये महसेनसूनो र्जिनस्य मूर्तेर्विदधे प्रतिष्ठाम् ॥६८॥
चन्द्रावतीशस्य नृपस्य नेत्र, इवास योऽशेषविशेषदर्शी ।
त क्लृप्तचैत्य प्रतिबोध्य वाचा, प्राव्राजयत्कुङ्कुणमन्त्रिणं य ॥६९॥"इति ॥१७३॥

अथ सप्तत्रिंशत्तमं युगप्रधानं द्वितीयोदयक्रमाऽपेक्षया सप्तदशं युगप्रधानं श्रीफल्गुमित्रसूरिमाचिख्यासुरादिचपलापथ्यार्या-पथ्यागीतिरूपश्लोकद्वयेनाऽऽह—

सिरिफग्गुमित्तसूरी हवीअ सडतीसमो जुगपहाणो ।
पुरिसत्थबुद्धिकुलयर[१४४४]संखे जम्मोऽस्स वीराऽद्दे ॥१७४॥

(मुहचवला पच्छाज्जा)

दिक्खा विवाहसिवमुहरज्जु[१४५८]पमाणो स आसि जुगपवरो ।

ऽहो'' त्ति, टेलीपट्टणस्य=टेलीनाम्नो नगरविशेषस्य सीम्नि=सीमायां संस्थितस्य वृहन्न्यग्रोधस्य=विशालस्य वटद्रुमस्याऽधः=अधस्तात्=टेलीपट्टणसीमसंस्थितवृहन्न्यग्रोधाधः "तया" त्ति, तदा=तस्मिन्समये "अतुलं" ति, न विद्यते तुला=उपमा यस्य सोऽतुलस्तम्, अतुलम्=अनन्यम्=अद्वितीयं "मुहुत्त" ति, मुहूर्तम्=अवसरविशेषं "णाऊण" त्ति, ज्ञात्वा=अवबुध्य " अपए" त्ति, स्वीये=निजे पदे=पट्टे "अड" त्ति, अष्टौ=अष्टसङ्ख्याकान् "सूरी" त्ति, सूरीन्=आचार्यान् "ठासी" त्ति, स्थापयामास । केचित्तु सर्वदेवसूरिमेकमेव स्थापितवानिति मन्यन्ते । "जओ" त्ति, यतः=यस्मात्कारणात् "विहऽवडस्स व" त्ति, बृहद्वटस्येव=पृथुन्यग्रोधवृक्षस्येव "ऽमुणो" त्ति, अमुष्य=गच्छस्य "साहाईहि" त्ति, शाखादिभिरत्रादिशब्देन प्रशाखादयो ग्राह्यास्ततः शाखादिभिः=शाखाप्रशाखाप्रमुखैः "वड्ढी" त्ति वृद्धिः = पृथुता "भवित्था" त्ति, अभूत्, "तओ" त्ति, ततः = तस्मात्कारणात् "तस्स" त्ति, तस्य=गच्छस्य "णामं" ति, नाम = अभिधा "बिहग्गणो" त्ति, बृहद्गणः = बृहद्गच्छः, प्रधानशिष्यसंतत्या ज्ञानादिगुणैः प्रधानचरित्रैश्च बृहत्त्वात्, "वडगणो" त्ति, वटगणः = वटगच्छः = वटवृक्षस्याऽधस्तात् सूरिपदकरणात्, यद्वा वटपादपस्येव शाखा-प्रशाखादिभिः प्रवर्द्धमानत्वात् "वुड्ढगच्छो" त्ति, वृद्धगच्छः = वृद्धगणो वाऽभवत्, शिष्याणां ज्ञानादिगुणानाञ्च वृद्धिकारित्वात् ।

उक्तञ्च श्रीमुनिसुन्दरसूरिभिर्गुर्वावल्याम्—

"चतुर्नवत्याऽभ्यधिके शरच्छते श्रीविक्रमार्काद् नवमि स सूरिराट् ।
पूर्वावनीतो विहरन्नथागमद् यात्राकृते तस्य गिरेरुपत्यकाम् ॥५३॥
टेलीखेटकसीमसंस्थितवटस्याधः पृथोस्तत्र स,
प्राप्त श्रेष्ठतम मुहूर्त्तमतुलं ज्ञात्वा तदाऽतिष्ठिपत् ।
सूरीन् सौवकुलोदयाय भगवानष्टौ जगुस्त्वेकर्क,
केचिद् वृद्धगणोऽभवद्वटगणाभिख्यस्तदादि ९९४ स्वयम् ॥५४॥" इति ।

गुरुपर्वक्रमेऽपि—

"युगाङ्कनन्दप्रमिते ९९४ गतेऽब्दे श्रीविक्रमार्कात्सह सघलोकैः ।
पूर्वावनीतो विहरन् धरायामुद्योतन सूरिरथाऽर्बुदाध ॥१८॥
आगत्य टेलीपुरसीमसंस्थपद्मामसासन्नबृहद्वटाध ।
शुभे मुहूर्तेस्वपदेऽष्टसूरीनतिष्ठिपत्सौवकुलोदयाय ॥१९॥
ततो (३५) गणोऽयं वटगच्छसञ्ज्ञोऽप्यभूद् बृहद्गच्छ इति प्रसिद्ध ।' इति ।

तथा श्रीदेवविमलगणिना हीरसौभाग्ये—

"रेजेऽस्य पट्टे स्मररूपधेय, सूरीन्दुरुद्द्योतननामधेयः ।
दिग्वारेन्द्रा इव सूरिचन्द्रा, सजज्ञिरे यत्पदधारिणोऽष्टौ ॥६४॥

वैराग्यवाहिन्या स्वभारत्या "बोहिअ" त्ति, बोधित्वा संसारासारतां प्रज्ञाप्य "दिक्खीअ" त्ति, अदीक्षयत्=प्राव्राजीत् । किं भूतं मन्त्रिणम्? "कारिअपिहुतुंगजिणपसायवर" त्ति, कारितः=निर्मापितः पृथुः=विशालः तुङ्गश्च=उच्चः=उन्नतः=उच्छ्रितः=उदग्रः=उद्धुरो वा जिनस्य=सर्वज्ञविभोः प्रसादवरः=श्रेष्ठमन्दिरं येन तम्, कारितपृथुतुङ्गजिनप्रसादवरम्=अत्यन्तरमणीयश्रेष्ठार्हत्प्रभुभवननिर्मातारम्, पुनः किं विशिष्टम्? "चंदावईणिवणयणभूअ" त्ति, चन्द्रावत्याः=चन्द्रावतीनाम्न्या नगर्या नृपस्य=अधिपतेर्नयनभूतः=लोचनकल्पो यस्तम्, चन्द्रावतीनृपनयनभूतं=नृपस्य तद्द्वारेणैव सर्वकार्यार्थानामालोचनीयत्वात्कार्यमार्गदर्शकमित्यर्थः ।

तथा चाऽत्र गुर्वावली--

'न्यग्रोधगच्छेऽथ बभूव तस्मिन्, श्रीसर्वदेव ३५ प्रथमो मुनीन्द्रः ।
श्रीसूरिमन्त्रातिशयर्द्धिधारी, विश्वोपकारी गणिसपदाढ्य' ॥५५॥
चरित्रशुद्धिं विधवज्जिनागमा द्विधाय भव्यानमित. प्रबोधयन् ।
चकार जैनेश्वरशासनोन्नतिं, य शिष्यलब्ध्याऽभिनवोऽनु गौतम ॥५६॥
नृपाद् दशाग्रे शरदा सहस्रे, १०१० यो रामसैन्याह्वपुरे चकार ।
नाभेयचैत्येऽष्टमतीर्थराज-बिम्बप्रतिष्ठां विधिवत्सदर्च्ये ॥५७॥
चन्द्रावतीभूपतिनेत्रकल्प, श्रीकुङ्कुण मन्त्रिणमुच्चऋद्धिम् ।
निर्मापितोत्तुङ्गविशालचैत्य, योऽदीक्षयत शुद्धगिरा प्रबोध्य ॥५८॥' इति ।

तथा श्रीहीरसौभाग्येऽपि-

'माहात्म्यनम्रीकृतसर्वदेव, पदे तदीयेऽजनि सर्वदेव ।
तारापतिस्तारकपर्षदेव, गुणश्रिया य प्रभुरन्वयायि ॥६७॥
यो रामसेनाह्वपुरे व्रतीन्दु-र्लब्धिश्रिय गौतमवद्दधान ।
नाभेयचैत्ये महसेनसूनो र्जिनस्य मूर्तेर्विदधे प्रतिष्ठाम् ॥६८॥
चन्द्रावतीशस्य नृपस्य नेत्र, इवास योऽशेषविशेषदर्शी ।
त क्लृप्तचैत्य प्रतिबोध्य वाचा, प्राव्राजयत्कुङ्कुणमन्त्रिण य ॥६९॥'' इति ॥१७३॥

अथ सप्तत्रिंशत्तमं युगप्रधानं द्वितीयोदयक्रमाऽपेक्षया सप्तदशं युगप्रधानं श्रीफल्गुमित्रसूरिमाचिख्यासुरादिचवलापथ्यार्या-पथ्यागीतिरूपश्लोकद्वयेनाऽऽह—

सिरिफग्गुमित्तसूरी हवीअ सडतीसमो जुगपहाणो ।
पुरिसत्थबुद्धिकुलयर१४४४संखे जम्मोऽस्स वीराऽहे ॥१७४॥

(मुहचवला पच्छाञ्जा)

दिक्खा विवाहसिवमुहरज्जु१४५८पमाणो स आसि जुगपवरो ।

ऽहो'' त्ति, टेलीपट्टणस्य=टेलीनाम्नो नगरविशेषस्य सीम्नि=सीमायां संस्थितस्य बृहन्न्यग्रोधस्य=विशालस्य वटद्रुमस्याऽधः=अधस्तात्=टेलीपट्टणसीमसंस्थितबृहन्न्यग्रोधाधः "तया" त्ति, तदा=तस्मिन्समये "अतुलं" ति, न विद्यते तुला=उपमा यस्य सोऽतुलस्तम्, अतुलम्=अनन्यम्=अद्वितीयं "मुहुत्त" ति, मुहूर्तम्=अवसरविशेषं "णाऊण" त्ति, ज्ञात्वा=अवबुध्य "ऽपए" त्ति, स्वीये=निजे पदे=पट्टे "अठ" त्ति, अष्टौ=अष्टसङ्ख्याकान् "सूरी" त्ति, सूरीन्=आचार्यान् "ठासी" त्ति, स्थापयामास। केचित्तु सर्वदेवसूरिमेकमेव स्थापितवानिति मन्यन्ते। "जओ" त्ति, यतः=यस्मात्कारणात् "विहव्वडस्स व" त्ति, बृहद्वटस्येव=पृथुन्यग्रोधवृक्षस्येव "ऽमुणो" त्ति, अमुष्य=गच्छस्य "साहाईहिं" त्ति, शाखादिभिरत्रादिशब्देन प्रशाखादयो ग्राह्यास्ततः शाखादिभिः=शाखाप्रशाखाप्रमुखैः "वड्ढी" त्ति वृद्धिः = पृथुता "भवित्था" त्ति, अभूत्, "तओ" त्ति, ततः = तस्मात्कारणात् "तस्स" त्ति, तस्य=गच्छस्य "णामं" ति, नाम = अभिधा "विहग्गणो" त्ति, बृहद्गणः = बृहद्गच्छः, प्रधानशिष्यसंतत्या ज्ञानादिगुणैः प्रधानचरितैश्च बृहत्त्वात्, "वडगणो" त्ति, वटगणः = वटगच्छः = वटवृक्षस्याऽधस्तात् सूरिपदकरणात्, यद्वा वटपादपस्येव शाखा-प्रशाखादिभिः प्रवर्द्धमानत्वात् "वुड्ढगच्छो" त्ति, वृद्धगच्छः = वृद्धगणो वाऽभवत्, शिष्याणां ज्ञानादिगुणानाञ्च वृद्धिकारित्वात्।

उक्तञ्च श्रीमुनिसुन्दरसूरिभिर्गुर्वावल्याम्-

"चतुर्नवत्याऽभ्यधिकै शरच्छतै श्रीविक्रमार्काद् नवभि स सूरिराट्।
पूर्वावनीतो विहरन्नथागमद् यात्राकृते तस्य गिरेरुत्पत्यकाम् ॥५३॥
टेलीखेटकसीमसंस्थितवटस्याध पृथोस्तत्र स.,
प्राप्त श्रेष्ठतम मुहूर्त्तमतुलं ज्ञात्वा तदाऽतिष्ठिपत् ।
सूरीन् सौवकुलोदयाय भगवानष्टौ जगुस्त्वेकक,
केचिद् वृद्धगणोऽभवद्वटगणाभिख्यस्तदादि ९९४ त्वयम् ॥५४॥" इति।

गुरुपर्वक्रमेऽपि-

"युगाङ्कनन्दप्रमिते ९९४ गतेऽब्दे श्रीविक्रमार्कात्सह सघलोकै ।
पूर्वावनीतो विहरन् धरायामुद्योतन सूरिरथाऽर्बुदाध ॥१८॥
आगत्य टेलीपुरसीमसंस्थपद्यासमासन्नबृहद्वटाध ।
शुभे मुहूर्तेस्वपदेऽष्टसूरीनतिष्ठिपत्सौवकुलोदयाय ॥१९॥
ततो (३५) गणोऽय वटगच्छसञ्ज्ञोऽप्यभूद् बृहद्गच्छ इति प्रसिद्ध ।" इति।

तथा श्रीदेवविमलगणिना हीरसौभाग्ये-

"रेजेऽस्य पट्टे स्मररूपधेय, सूरीन्दुरुद्द्योतननामधेय ।
दिग्वारेन्द्रा इव सूरिचन्द्रा, सजज्ञिरे यत्पदधारिणोऽष्टौ ॥६४॥

"षडङ्गी वेदाश्चत्वारो, मीमांसाऽऽन्वीक्षिकी तथा। धर्मशास्त्रं पुराणं च, विद्या एताश्चतुर्दश ॥२५३॥" इति।

विनयचन्द्रसूरिविरचितकाव्यशिक्षायां तु धर्मशास्त्रं विहायेतिहासस्य ग्रहणं कृतमस्ति।

तथा च तद्ग्रन्थः–विद्यास्थानानि–शिक्षा-कल्प-–व्याकरण- छन्दो-–च(वि)चिति- ज्योतिष-निरुक्तानीति षडङ्गानि, चत्वारो वेदा, इतिहास-पुराण-मीमांसा-न्यायशास्त्र चेति। इति।*

एतेऽङ्काः 'अङ्काना वामतो गतिः' इति वचनात् प्रातिलोम्यक्रमन्यस्ता १४७१ सङ्ख्या यत्र तत्र कुनिरयविद्यास्थाने = वीरसंवत् १४७१ शरदि "**आसि जुगपवरो**" त्ति, युगप्रवरः = युगप्रधानो बभूव।

"**रावणऽक्खिसिद्धमिए**" त्ति, रावणाक्षीणि = दशमुखनेत्राणि विंशतिः, सिद्धाः= मुक्तिगतजीवभेदास्तीर्थसिद्धा-ऽतीर्थसिद्धादिभेदभिन्नाः पञ्चदश, आभ्यामङ्काभ्यां नामक्रम-गदिताभ्यां १५२० सङ्ख्यया मिते रावणाक्षिसिद्धमिते = वीरसंवत् १५२० संवत्सरे "**सग्ग-मिओ**" त्ति, स्वर्गं = नाकिलोकं गतः = प्राप्तः।

एवञ्चाऽसौ चतुर्दश १४वर्षाणि गृहित्वे, त्रयोदश१३वर्षाणि सामान्यव्रतित्वे, एकोन-पञ्चाशद्४९वर्षाणि युगप्रधानत्वे चेति षट्सप्तति७६वर्षाणि जीवित्वा-ऽमरपुरीं जगाम। ॥१७४-१७५॥

इदानीं सिद्धार्थकुलसरोऽब्जस्याऽर्हतः सप्तत्रिंशपट्टं धारयतः श्रीदेवसूरेर्विवदिषया स्रग्विणी पद्मिनी कामिनीमोहनं लक्ष्मीधरं वाऽभिधत्ते––

सीअदित्ती व जो पट्टवारीसरं, सव्वदेवस्स मोईअ सूरिंदुणो।
जेण रूवस्सिरी लद्धवाही णिवा, देवसूरी व सो देवसूरी गुरू ॥१७६॥

(सग्गिणी)

(प्रे०) "**सिअदित्ती**" इत्यादि, "**जो**" त्ति, यः = श्रीदेवसूरिः "**सीअदित्ती व**" त्ति, शीताः = शीतला दीप्तयः = कान्तयो यस्य स शीतदीप्तिः, शीतदीप्तिरिव = चन्द्र इव "**सव्वदेवस्स**" त्ति, सर्वदेवस्य = सर्वदेवनाम्नः "**सूरिंदुणो**" त्ति, सूरिषु = आचार्येषु इन्दुः= चन्द्रः शोभाकारित्वात् सूरीन्दुस्तस्य सूरीन्दोः = सूरीश्वरस्य "**पट्टवारीसरं**" ति, पट्ट एव = पदमेव वारीश्वर = समुद्रः, पट्टवारीश्वरस्तं पट्टवारीश्वरं = पटाम्बुनिधिं "**मोईअ**" त्ति, अमो-दयत् = मोदयाञ्चकार।

---

*तथा श्रीआर्यरक्षितचरितेऽपि विद्यास्थानानि चतुर्दश दर्शितानि। **तथा च तद्ग्रन्थः**–
"चतुर्दशा-ऽपि तत्रासौ विद्यास्थानान्यधीतवान्। अथागच्छद्दशपुरं राजाऽगात्तस्य सम्मुखम् ॥६७॥" इति।

अथाऽमुष्य जन्मादिसंवत्सराणां निरूपणं सार्धश्लोकेन कुर्वन्नाह–"वीरा" इत्यादि, "ऽस्स" त्ति, अस्य = श्रीज्येष्ठाङ्गगणिनः "वीरा" त्ति, वीरात् = सिद्धार्थाङ्गजनिर्वृत्तिगमन-कालात् "णहपासफणिफणाइमजिणभवे" त्ति, नभः = आकाशं = शून्यम्, पार्श्वफणि-फणाः सप्त, आदिमजिनभवाः = ऋषभदेवजिनेश्वरभवास्त्रयोदश, एतेऽङ्काः सव्यक्रमोदिता यत्र तत्र नभःपार्श्वफणिफणादिमजिनभवे "ऽद्दे" त्ति, अब्दे = वर्षे वीरसंवत् १३७० शरदि "जणी" त्ति, जनिः=जन्माऽभवत् ।

"णईतडपयोगुणतंबुलगुणमिए" त्ति, नदीतटौ द्वौ, पयोगुणा अष्टौ, यदुक्तम्–

"सुगन्धि अ (सु) व्यक्तरस तृष्णाघ्न शुचि शीतलम् । स्वच्छ (च) लघु हृद्यं च पयसोऽष्टौ गुणा स्मृता ।।" इति ।

ताम्बुलगुणास्त्रयोदश, यदाह—

"ताम्बूल कटु-तिक्तमुष्णमधुरं क्षार कषायाऽन्वित, पित्तघ्न कृमिनाशन द्युतिकरं दुर्गन्धनिर्नाशनम् । वक्त्रस्याभरण विशुद्धिकरण कामाग्निसंदीपन, ताम्बुलस्य सखे त्रयोदश गुणा स्वर्गेऽपि ते दुर्लभा "।। इति ।

एतैरङ्कैर्वामगतिमीलितैर्मिते नदीतटपयोगुणताम्बुलगुणमिते = वीरसंवत् १३८२ हायने "दिक्खा" त्ति, दीक्षाऽभूत् ।

"स" त्ति, सः = श्रीज्येष्ठाङ्गगणी "गुणठाणसये" त्ति; गुणस्थानानि मिथ्यात्वादीनि चतुर्दश तानि शतानि यत्र तत्र गुणस्थानशते = वीरसंवत् १४०० वत्सरे "जुगपहाणो आसि" त्ति, युगप्रधानो बभूव ।

"कुणयिंदे" त्ति; कुः = भूमिरेका, नया नैगमादयः सप्त, इन्द्राः = वासवाश्चतुर्दश, एतेऽङ्काः सव्येतरगतिन्यस्ता यस्य तादृशे कुनयेन्द्रे = वीरसंवत् १४७१ वर्षे "अमर-णमिओ" त्ति, अमरभुवनं = निर्जरालयमितः = ययौ ।

इत्थममुष्य द्वादश १२ वर्षाणि गृहवासे, अष्टादश १८ वर्षाणि सामान्यव्रतित्वे, एक-सप्तति ७१ वर्षाणि युगप्रधानत्वे चेति सर्वायुश्चैकोत्तरशतवर्षमानमभवत् ।।१६६-१६७।।

अथ श्रीवीराचार्यं विभणिषुः पथ्यार्याद्वयमभिधत्ते–

सो सिरिवीरायरिओ पहावगो जयउ अंगविज्जण्णू ।
जेण विरूवाणाहो पबोहिओ महबलो जक्खो ।।१६८।। (पच्छाज्जा)
जम्मोऽस्स विक्कमा-ऽद्दे पसुवइमुत्तिगुणगह[९३८]मिए दिक्खा ।
मरुपहमयबल[९८०]संखे सो सग्गमिओ विहुरसरसे[९९१/१०९१] ।।१६९।।

(पच्छाज्जा)

(प्रे०) "सो" इत्यादि, '`सिरिवीरायरिओ' त्ति, स श्रीवीराचार्यो विमलगणि-शिष्यः शिवनागाङ्गजः, पूर्णलतातनुसंभवः "जयउ" त्ति, जयतु इति क्रियाऽन्वयः । किंभूतः ?

पातु वो वा दि वे ता ल' कालो दुर्मन्त्रवादिनाम्। शान्तिसूरि प्रभु श्रीमान् प्रसिद्ध सर्वसिद्धिद ॥१॥
व्याचिख्यासा तदाख्याने दधे तद्भक्तिभावित । अनूरु सूरसेवात किं न व्योमाध्वजाङ्घिक' ॥२॥
अस्ति श्रीगूर्जरो देश कैलासाद्रिनिभ' श्रिया । धनदाधिष्ठितश्चारुमानसामानसङ्गम ॥३॥
अणहिल्लपुर तत्र नगर न गरप्रभम । वच प्रभु द्विजिह्वानां यत्र सद्वचनामृतै ॥४॥
श्रीभीमस्तत्र राजासीद् धृतराष्ट्रमवद्विपन् । सदाप्राप्तार्ज्जुनश्लोको लोकोत्तरपराक्रम ॥५॥
श्रीचन्द्रगच्छविस्तारिशुक्तिमुक्ताफलस्थिति । थारापद्र इति ख्यातो गच्छ स्वच्छधियानिधि ॥६॥
सच्चारित्रश्रिया पात्र सूरयो गुणभूरय । श्रीमद् विजयसिंहाख्या विख्याता सन्ति विष्टपे ॥७॥
श्रीमत्सपक्षचैत्यस्य प्रत्यासन्नाश्रयस्थिता । भव्यलोकारविन्दाना बोध विदधतेऽर्कवत् ॥८॥
तथा-श्रीपत्तनप्रतीचीनो लघुरप्यलघुस्थिति । उन्नतायुरितिग्राम उन्नतायुर्जनस्थिति ॥९॥
तत्रास्ति धनदेवाख्य श्रेष्ठी श्रीमालवशभू । अर्हद्गुरुपदद्वन्द्वसेवामधुकर कृती ॥१०॥
धनश्रीरिव मूर्तिस्था धनश्रीस्तस्य गेहिनी । तत्पुत्रो भीमनामाऽभूत् सीमा प्रज्ञाप्रभावताम् ॥११॥
कम्बुकण्ठच्छत्रमौलिराजानुभुजविस्तर । छत्रपद्मध्वजास्तीर्णपाणिपादसरोरुह ॥१२॥
सर्वलक्षणसपूर्ण पुण्यनैपुण्यशेवधि । विज्ञातो गुरुभि सङ्घभारधौरेयतानिधि ॥१३॥
अलचक्रर्विहारेण ग्राममग्राम्यबुद्धय । तत्ते वितन्द्रविज्ञानविज्ञातशुभसम्भवा ॥१४॥
श्रीनाभेय प्रणम्याथ चैत्ये तस्य गृह ययु । अर्थयाचक्रिरे भीमं धनदेवसमीपत ॥१५॥
कृतपुण्योऽस्मि मत्पुत्रश्चेत् पूज्यार्थप्रसाधकः । इत्युक्त्वा प्रददौ पुत्रममुत्रेह च शर्मणे ॥१६॥
एव तैस्तदनुज्ञातैरदीक्ष्यत शुभे दिने । भीमो मिथ्यादृशा भीम उदग्रप्रतिभाबल ॥१७॥
शान्तिरित्यभिधा तस्य वैधयस्य व्यधीयत । सकला स कला प्राप पूर्वसङ्केतिता इव ॥१८॥
समस्तशास्त्रपाथोधिपारदृश्वाऽभवत् क्रमात् । विचिन्त्येति निजे पट्टे प्रभवस्त न्यवेशयन् ॥१९॥
स्वगच्छभार विन्यस्य तत्र प्रायोपवेशनात । प्रेत्यार्थं साधयामासुस्तेऽथ सस्मृतिसहृती ॥२०॥
अणहिल्लपुरे श्रीमद्भीमभूपालससदि । शान्तिसूरि कवीन्द्रोऽभूद् वादिचक्रीति विश्रुत ॥२१॥
अन्यदाऽवन्तिदेशीय सि द्ध सा र स्व त कवि । ख्यातोऽभूद् धनपालाख्य प्राचेतस इवापर ॥२२॥
स गोरसे द्व्यहातीते साधुभिर्जीवदर्शनात् । यैरबोध्यत तत्पूज्यश्रीमहेन्द्रगुरोर्गिरा ॥२३॥
गृहीतदृढसम्यक्त्व कथा तिलकमञ्जरीम्। कृत्वा व्यजिज्ञपत् पूज्यान् क एना शोधयिष्यति ॥२४॥
विचार्य तै समादिष्ट सन्ति श्रीशान्तिसूरय । कथा ते शोधयिष्यन्ति सोऽथ पत्तनमागमत् ॥२५॥
तदा च सूरय सूरिसत्त्वस्मरणतत्परा । देवतावसरे ध्यानलीना आसन् मठान्तरा ॥२६॥
प्रतीक्ष्याणा प्रतीक्षायामुपयुक्त कवीश्वर । नूतनाध्ययन शिष्यमेकमद्भुतमब्रवीत ॥२७॥ तथाहि-
खचरागमने खचरो हृष्ट खचरेणाङ्कितपत्रधरः। खचरचर खचरश्चरति खचरमुखि । खचर पश्य ॥२८॥
इद व्याख्याहि चेद् वेत्सि लघु पण्डितमण्डन । इत्याकर्ण्य स च व्याख्यादिदं वृत्तमकृच्छ्रत ॥२९॥
श्रुत्वेति स कविस्वामी प्राह हृष्ट इद कियत । श्रीशान्त्याचार्यहस्तस्य प्रभावो बहुरीक्ष्यते ॥३०॥
उपन्यास प्रतिष्ठायास्तत्र सर्वज्ञ-जीवयो । ऊर्जस्विगर्जिपर्जन्यध्वनिना विदधेऽथ स ॥३१॥
सिंहासनमलचक्रे गुरुभिस्तावदाशु तै । अपरो मातृकापाठोचितशिष्यस्तथोक्यत ॥३२॥
इदानीं किं कृत वत्स ! स्तम्भावष्टम्भिना त्वया । स प्राहानेन यत्प्रोक्त तत्सर्वमवधारितम् ॥३३॥
धदेति प्रभुभि प्रोक्ते निस्वानध्वानधीरगी । उज्जग्राहातिकुग्राहव्यूहसहरणामह ॥३४॥
श्रुत्वेति धनपालोऽपि चमत्कारातिपूरित । उवाच भारती किं नु प्राप्ता बालपिरूपत ॥३५॥
प्रेषयध्व मया सार्धममुमेव धिया निधिम् । गुरुसन्देहसदोहशैलदम्भोलिविभ्रमम् ॥३६॥

तथा चोक्तं प्रभावकचरिते—

"वसुवह्निनिधौ ९३८ जन्म, व्रत व्योमवसुग्रहे ९८० । इन्द्रनन्दग्रहे ९९१ वर्षेऽवसानमभवत्प्रभो ।१६५॥
"गार्हस्थ्य समभूत्तस्य द्वि चत्वारिंशत समा । एकादश व्रतेऽथायुस्त्रिपञ्च शत्समा अभूत् ॥१६६॥" इति ।

यदि पुनः प्रभावकचरिते एवाऽमुष्य काले भिन्नमालनृपदेवराजा-ऽणहिल्लपुरभूपति चामुण्डराजवीरमन्त्र्यादीनां सम्बन्धो दर्शितः, स च यथोक्तकाले स्वर्गतिं मन्यमाने न घटामटाटयत इति कृत्वाऽमुष्य विक्रमसंवत्१०६१वर्षे स्वर्गतिः संभाव्यते कैश्चित् । तेषामभिप्रायेण **'विधुरसरसे'** त्ति, पदमित्थं व्याख्यातुं शक्यते–विधुः = शश्येकः, रसास्तिक्तादयः षट्, रसा गौडाभिमता शृङ्गारादयो दश, तथा चाह गौडः–

"शृङ्गारवीरौ बीभत्स रौद्रं हास्यं भयानकम् । करुणा चाऽद्भुत शान्त वात्सल्यं च रसा दश ॥१॥" इति ।

एतेऽङ्का वामगतिजुषो यत्र तत्र विधुरसरसे = विक्रमसंवत्१०६१वर्षे स्वर्गमितः । अतोऽप्यन्यथेदं पदं व्याख्यातुं शक्यम् । ततो यथालब्धशास्त्रादिसामग्र्यनुसारेण यथा घटमानं स्यात्तथेदं पदमन्यपदानि च व्याख्येयानि विद्वद्वर्यैः, न पुनरेकान्तेनाग्रहो विधेयः; अधुना निर्णेतुं विशेषसाधनसामग्र्यभावात् ।

अथ श्रीवीराचार्यस्य विस्तरतश्चरित्रं प्रभावकचरित इत्थम्—

आन्तरारिहरिध्वंसी दुष्कर्मगजयूथहृत् । अष्टापदोदयद्वर्णः श्रीवीरः स्वान्वयः श्रिये ॥१॥
श्रीमद्वीरगणिस्वामिपादाः पान्तु यदादरात् । कषायादिरिपुव्रातो भवेन्नागमनक्षमः ॥२॥
विबुधा विबुधा यस्योपदेशैरमृताश्रवै । स्वान्ययोरुपकाराय तस्य वृत्त प्रतन्यते ॥३॥
पुर **श्रीमाल**मित्यस्ति गभस्तिरपहस्तितः । यदुद्यानद्रुमै पूर्वपश्चिमावाश्रयद् गिरी ॥४॥
मन्दतामरसत्वं च यत्र बिभ्रति नो जना । मन्दतामरसत्व च दधते न सरास्यपि ॥५॥
श्रीधूमराजवंशीय कुमुदामोदिमण्डल । राजाऽत्र **देवराजो**ऽस्ति तरङ्गितनयोदधि ॥६॥
वणिक् प्राग्रहरस्तत्र **शिवनागा**भिध सुधी । यन्मन्त्रैर्ह्रियतेऽत्युग्रद्विजिव्हप्रभव विषम् ॥७॥
दृढानुरागी श्रीजैनधर्मे श्रीधरणाभिधम् । आरराध स नागेन्द्र तद्भक्तेरतुषच्च स ॥८॥
कलिकुण्डक्रम तस्य सर्वसिद्धिकर ददौ । विषापहारक सद्यो जपहोमादिकैर्विना ॥९॥
य फूत्कारकरस्पर्शैरष्टानामपि संहरेत् । विष नागकुलानां स मन्त्रो निष्पुण्यदुर्लभ ॥१०॥
स्तवन स तदा चक्रे तत्सन्दर्भप्रतापपरिपूतम् । स्मरणादपि दुरितहरं ख्यात धरणोरगेन्द्राख्यम् ॥११॥
तस्य पूर्णलतान्वर्था कान्ता धर्मद्रुमाश्रिता । कुलकन्दा वच पत्रा यश पुष्पा सह फला ॥१२॥
स्वस्ति **वीर**स्तयो पुत्रो रत्नदीप इव स्फुरन् । अक्षयाखिस्तमोहन्ता दिवसप्रकटप्रभ ॥१३॥
यस्य कोटिध्वजव्याजाद् वैजयन्त्य इवोर्जिता । सुमनस्थेन गीर्वाणान् जित्वा वीर कथ न स ॥१४॥
स सप्तोद्वाहित कन्या सप्ताना व्यवहारिणाम् । सप्ताब्धीनामिवामूल्यरत्नौघैर्मण्डिता. श्रिय ॥१५॥
श्रीवीर वन्दितु वीर श्रीमत्सत्यपुरे सदा । मृते पितरि वैराग्याद् याति पर्वसु सर्वदा ॥१६॥
अन्यदा तस्करैर्गच्छन् विद्रोतुमयशस्करै । अवेष्ट्यतारथान् शुष्कपत्रै कारस्करैरिव ॥१७॥
प्रणश्य च तदा श्याल श्रेष्ठिनो गृहमागमत् । अधृतेश्चागमन्माता गृहद्वारे जनश्रुतेः ॥१८॥
वीर कुत्र तया पृष्टे नर्मणा सोऽप्यभाषत । चारैर्वीरो मृषावीर प्रहत सत्त्ववर्जितः ॥१९॥

प्रमेया दु परिच्छेद्या बौद्धतर्कसमुद्भवा । तेनावधारिता सर्वेऽन्यप्रज्ञानवगाहिता ॥७३॥
अपुस्तक स ऊर्ध्वस्थो दिनान् पञ्चदशाऽशृणोत । तत्रागत्य तदध्यायध्यानधीरमनास्तदा ॥७४॥
बहुश कथ्यमानेऽपि प्रमेये दुर्घटेऽन्यदा । छात्रेष्वनभिगच्छत्सु पूज्या निर्वेदमागमन् ॥७५॥
भसिते हुतमित्युक्त्वा गुरवोऽत्र नि शश्वसु । तदा श्रीमुनिचन्द्राख्य सूरि पूज्यान् व्यजिज्ञपत् ॥७६॥
सपुस्तका पाठका ये प्रष्ठप्रज्ञाबलोन्नता । किं वदन्ति त एवात्र पुरा गुरुपुरस्कृता ॥७७॥
अपरो बहिरायात सर्वथानुपलक्षित । सोऽपि किं लभते वक्तु नवेत्यादिशत प्रभो ॥७८॥
श्रुत्वेति हृन्चमत्कारि तद्वच प्रभवोऽवदन । प्रज्ञाया पक्षपातो न शिष्याणा नान्यहेतुपु ॥७९॥
इतोऽह्नि षोडशेऽतीते यद् व्याख्यात सुदुर्घटम् । अस्माभिस्तदभिप्रायादद्योक्त सुविवेचनम् ॥८०॥
निशम्येत्यसौ प्राज्ञस्तदधीतदिनावधि । सर्वेष्वहस्सु यच्चोक्त तदुक्तव्य यथातथम् ॥८१॥
सद्यश्च तैर्यदाख्यात परप्राज्ञै सुदु श्रवम् । सर्वानुवादसवादमवादीद् विशद तत ॥८२॥
श्रीशान्तिसूरिभिस्तोषपोषत परिषस्वजे । प्रोचे च सनिवेश्याङ्के रत्न रेणुवृत भवान् ॥८३॥
वत्स ! प्रमाणशास्त्राणि पठाशठमतिर्मम । पार्श्वे नश्वरदेहस्य लाभमत्र गृहाण भो ॥८४॥
पुनर्व्यज्ञपयत सूरिर्मुनिचन्द्र प्रभो । कथम् । अध्येय स्थानकाभावे दुष्प्राप स्थानमत्र यत ॥८५॥
ततस्ते टङ्कशालाया पश्चाद्भागे समार्पयन् । आश्रयार्थ गृह चारु श्राद्धपार्श्वाद् विदूपणाम् ॥८६॥
षड्दर्शनप्रमाणाना शास्त्राण्यक्लेशतोऽथ स । अभ्यैष्ट ज्ञापक-ज्ञात्रोर्योगो दुर्लभ ईदृश ॥८७॥
तत सुविहिताना हि साधूनामाश्रया पुरे । बभूवुरत्र सवित्त्या सर्वसङ्घचरित्रिणाम् ॥८८॥
उ त्त रा ध्य य न ग्रन्थटीका श्रीशातिसूरिभि । विदधे वादिनागेन्द्रसन्नागदमनीसमा ॥८९॥
शिष्येण मुनिचन्द्रस्य सूरे श्रीदेवसूरिणा । तन्मध्यत उपन्यस्तस्त्रीनिर्वाणबलादिह ॥९०॥
पुर श्रीसिद्धराजस्य जितो वादे दिगम्बर । तदीयवचसा निश्चा विद्वद्, साधसाधिका ॥९१॥
अथान्येद्युर्जिते धर्मे धनपालेन मालवे । एक एव महीपीठे कविस्त्वमिति मानिते ॥९२॥
प्रोक्ते च धनपालेन बुधोऽणहिल्लपत्तने । अस्ति श्वेताम्बराचार्य शान्तिसूरि परो न हि ॥९३॥
दिनै कियद्भिरभ्यागात त द्रष्टु धर्मकोविद । स्वर्गश्रीगर्वसर्वस्वहर श्रीपत्तन पुरम् ॥९४॥
थारापद्रमहाचैत्यप्रत्यासन्नमठ तत । श्रुत्वागादपराह्णेऽसौ बुधदर्शनकौतुकी ॥९५॥
तदानीं स प्रभुर्देहे कण्डूपीडित औषधम् । विमृज्य पिहितद्वारास्तिदुचिताशुक ॥९६॥
सवीक्ष्य कुञ्चिकाछिद्राज्ज्ञापित यतिभिर्गुरुम् । पृच्छयैव विजेष्येऽमु धर्मो ध्यात्वेति त जगौ ॥९७॥
'कस्त्व' मत्रोत्तर सूरि प्रादाद् 'देव' इति स्फुटम् । 'देव क' इति तत्प्रश्ने त्व 'हमि' त्युत्तर ददौ ॥९८॥
'अह क' इति पृच्छाया श्वे' ति वाचमवोचत । 'श्वा क' एतादृशि प्रश्ने 'त्वमि' त्युत्तरमातनोत् ॥९९॥
पुन 'त्व क' इति प्रश्ने वितीर्ण प्राग्वदुत्तरम् । तयोश्चक्रकमेतद्धि जज्ञेऽनन्तमनन्तवत् ॥१००॥
ततश्चमत्कृत सोऽभूद् द्वार उद्घटिते सति । स तत्त्वोपप्लवग्रन्थाभ्यासोपन्यासमातनोत् ॥१०१॥
वितण्डाविरते चात्र श्रीशान्त्याचार्य उज्जगौ । कृतसर्वानुवादोऽत्र प्रतिज्ञस्त विवादिनम् ॥१०२॥
समार्पय निज वेष योगपट्टादिक तथा । अङ्गचेष्टा समस्तास्ते विधीयन्ते तथा तथा ॥१०३॥
तथा कृते च सर्वत्र धर्मोऽवादीतिविस्मित । पादावस्य प्रणम्याह नाहमीशो भवज्जये ॥१०४॥
बुधस्त्वमेव च श्रीमन् ! धनपालोदित वच । प्रतीतमेव मच्चित्ते तादृक्किमनृत वदेत् ॥१०५॥
इत्युक्त्वा प्रययौ स्थान निज स निरहकृति । अहकारश्रिया नामाभिचारपरमौषधि ॥१०६॥
अथ द्रविडदेशीयोऽन्यदा वादी समागमत् । अव्यक्त भैरवाशब्दानुकार किमपि ब्रुवन् ॥१०७॥
प्रभवस्तस्य भाषायामभिज्ञा अपि कौतुकात् । भित्तिस्थे घोटके हस्त दत्त्वाभिदधिरे स्फुटम् ॥१०८॥

तथा चोक्तं प्रभावकचरिते—

"वसुवह्निनिधौ ६३८ जन्म, व्रतं व्योमवसुग्रहे ६८० । इन्द्रनन्दग्रहे ६९१ वर्षेऽवसानमभवत्प्रभो ।।१६५।।
"गार्हस्थ्य सममूत्तस्य द्विचत्वारिंशत समा । एकादश व्रतेऽथायुस्त्रिपञ्च शतसमा अभूत् ।।१६६।।" इति ।

यदि पुनः प्रभावकचरिते एवाऽमुष्य काले भिन्नमालनृपदेवराजा-ऽणहिल्लपुरभूपति चामुण्ड-राजवीरमन्त्र्यादीनां सम्बन्धो दर्शितः, स च यथोक्तकाले स्वर्गतिं मन्यमाने न घटामटाट्यत इति कृत्वाऽमुष्य विक्रमसंवत्१०६१वर्षे स्वर्गतिः संभाव्यते कैश्चित् । तेषामभिप्रायेण 'विधुरसरसे' त्ति, पदमित्थं व्याख्यातुं शक्यते-विधुः = शश्येकः, रसास्तिक्तादयः षट्, रसा गौडाभिमता शृङ्गारादयो दश, तथा चाह गौडः—

"शृङ्गारवीरौ बीभत्स रौद्र हास्यं भयानकम् । करुणा चाऽद्भुत शान्त वात्सल्यं च रसा दश ।।१।।" इति ।

एतेऽङ्का वामगतिजुषो यत्र तत्र विधुरसरसे = विक्रमसंवत्१०६१वर्षे स्वर्गमितः । अतोऽप्यन्यथेदं पदं व्याख्यातुं शक्यम् । ततो यथालब्धशास्त्रादिसामग्र्यनुसारेण यथा घट-मानं स्यात्तथेदं पदमन्यपदानि च व्याख्येयानि विद्वद्वर्यैः, न पुनरेकान्तेनाग्रहो विधेयः; अधुना निर्णेतुं विशेषसाधनसामग्र्यभावात् ।

अथ श्रीवीराचार्यस्य विस्तरतश्चरित्रं प्रभावकचरित इत्थम्—

आन्तरारिहरिध्वंसी दुष्कर्मगजयूथहृत् । अष्टापदोदयद्वर्णः श्रीवीरः स्वान्वयः श्रिये ।।१।।
श्रीमद्वीरगणिस्वामिपादाः पान्तु यदादरात् । कषायादिरिपुव्रातो भवेन्नागमनक्षम ।।२।।
विबुधा विबुधा यस्योपदेशैरमृताश्रवै । स्वान्ययोरुपकाराय तस्य वृत्तं प्रतन्यते ।।३।।
पुरं **श्रीमाल**मित्यस्ति गभस्तिरपह्स्तितः । यदुद्यानद्रुमै पूर्वपश्चिमावाश्रयद् गिरी ।।४।।
मन्दतामरसत्व च यत्र बिभ्रति नो जनाः । मन्दतामरसत्व च दधते न सरास्यपि ।।५।।
श्रीधूमराजवंशीय कुमुदामोदिमण्डल । राजाऽत्र **देवराजो**ऽस्ति तरङ्गितनयोदधिः ।।६।।
वणिक् प्राग्रहरस्तत्र **शिवनागा**भिध सुधी । यन्मन्त्रैर्ह्रियतेऽत्युग्रद्विजिह्वप्रभव विषम् ।।७।।
दृढानुरागी श्रीजैनधर्मे श्रीधरणाभिधम् । आरराध स नागेन्द्र तद्भक्तेरतुषच्च स ।।८।।
कलिकुण्डक्रम तस्य सर्वसिद्धिकर ददौ । विषापहारक सद्यो जपहोमादिकैर्विना ।।९।।
य फूत्कारकरस्पर्शैरष्टानामपि सहरेत् । विषं नागकुलानां स मन्त्रो निष्पुण्यदुर्लभ ।।१०।।
स्तवन स तदा चक्रे तत्सन्दर्भप्रतापपरिपूतम् । स्मरणादपि दुरितहर ख्यात धरणोरगेन्द्राख्यम् ।।११।।
तस्य पूर्णलतान्वर्था कान्ता धर्मद्रुमाश्रिता । कुलकन्दा वच पत्रा यश पुष्पा महःफला ।।१२।।
स्वस्ति **वीर**स्तयो पुत्रो रत्नदीप इव स्फुरन् । अक्षयाखिस्तमोहन्ता दिवसप्रकटप्रभ ।।१३।।
यस्य कोटिध्वजव्याजाद् वैजयन्त्य इवोर्जिता । सुमनस्थेन गीर्वाणान् जित्वा वीर कथ न स ।।१४।।
स सप्तोद्वाहित कन्या सप्ताना व्यवहारिणाम् । सप्ताब्धीनामिवामूल्यरत्नौघैर्मण्डिता श्रिय ।।१५।।
श्रीवीर वन्दितुं वीर श्रीमत्सत्यपुरे सदा । मृते पितरि वैराग्याद् याति पर्वसु सर्वदा ।।१६।।
अन्यदा तस्करैर्गच्छन् विद्रोतुमयशस्करै । अवेष्ट्यतारथान् शुष्कपत्रै कारस्करैरिव ।।१७।।
प्रणश्य च तदा श्याल श्रेष्ठिनो गृहमागमत् । अधृतेश्चागमन्माता गृहद्वारे जनश्रुते ।।१८।।
वीर कुत्र तया पृष्टे नर्मणा सोऽप्यभाषत । चारैर्वीरो मृषावीर प्रहत सत्त्ववर्जितः ।।१९।।

प्रमेया तु परिच्छेद्या बौद्धतर्कसमुद्भवा । तेनावधारिता सर्वेऽन्यप्रज्ञानवगाहिता ॥७३॥
अपुस्तक स ऊर्ध्वस्थो दिनान् पञ्चदशाऽशृणोत । तत्रागत्य तदध्यायध्यानधीरमनास्तदा ॥७४॥
बहुश कथ्यमानेऽपि प्रमेये दुर्घटेऽन्यदा । छात्रेष्वनभिगच्छत्सु पूज्या निर्वेदमागमन् ॥७५॥
भसिते हुतमित्युक्त्वा गुरवोऽत्र नि शश्वसु । तदा श्रीमुनिचन्द्राख्य सूरि पूज्यान् व्यजिज्ञपत् ॥७६॥
सपुस्तका पाठका ये प्रष्ठप्रज्ञाबलोन्नता । किं वदन्ति त एवात्र पुरा गुरुपुरस्कृता ॥७७॥
अपरो बहिरायात सर्वथानुपलक्षित । सोऽपि किं लभते वक्तु नवेत्यादिशत प्रभो ! ॥७८॥
श्रुत्वेति हृच्चमत्कारि तद्वच प्रभवोऽवदन । प्रज्ञाया पक्षपातो न शिष्याणा नान्यहेतुषु ॥७९॥
इतोऽह्नि षोडशेऽतीते यद् व्याख्यात सुदुर्घटम् । अस्माभिस्तदभिप्रायादन्योक्त सुविवेचनम् ॥८०॥
निशम्येत्यसौ प्राज्ञस्तदधीतदिनावधि । सर्वेष्वहस्सु यच्चोक्त तद्वक्तव्य यथातथम् ॥८१॥
सद्यश्च तैर्यदाख्यात परप्राज्ञै सुदुश्रवम् । सर्वानुवादसवादमवादीद् विशद तत ॥८२॥
श्रीशान्तिसूरिभिस्तोषपोषत परिषस्वजे । प्रोचे च सनिवेश्याङ्के रत्न रेणुवृत भवान् ॥८३॥
वत्स ! प्रमाणशास्त्राणि पठाशठमतिर्मम । पार्श्वे नश्वरदेहस्य लाभमत्र गृहाण भो ! ॥८४॥
पुनर्व्यज्ञपयत सूरिर्मुनिचन्द्र प्रभो ! कथम् । अध्येय स्थानकाभावे दुष्प्राप स्थानमत्र यत ॥८५॥
ततस्ते टङ्कशालाया पश्चाद्भागे समार्पयन् । आश्रयार्थ गृह चारु श्राद्धपार्श्वाद् विदूपणाम् ॥८६॥
षड्दर्शनप्रमाणाना शास्त्राण्यक्लेशतोऽथ स । अध्यैष्ट ज्ञापक-ज्ञात्रोर्योगो दुर्लभ ईदृश ॥८७॥
तत सुविहिताना हि साधूनामाश्रया पुरे । बभूवुरत्र सवित्त्या सर्वसङ्घचरित्रिणाम् ॥८८॥
उत्तराध्ययन ग्रन्थटीका श्रीशातिसूरिभि । विदधे वादिनागेन्द्रसन्नागदमनीसमा ॥८९॥
शिष्येण मुनिचन्द्रस्य सूरे श्रीदेवसूरिणा । तन्मध्यत उपन्यस्तस्त्रीनिर्वाणबलादिह ॥९०॥
पुर श्रीसिद्धराजस्य जितो वादे दिगम्बर । तदीयवचसा निश्रा विद्वद् साधसाधिका ॥९१॥
अथान्येद्युर्जिते धर्मे धनपालेन मालवे । एक एव महीपीठे कविस्त्वमिति मानिते ॥९२॥
प्रोक्ते च धनपालेन बुधोऽणहिल्लपत्तने । अस्ति श्वेताम्बराचार्य शान्तिसूरि परो न हि ॥९३॥
दिनै कियद्भिरभ्यागात त द्रष्टु धर्मकोविद । स्वर्गश्रीगर्वसर्वस्वहर श्रीपत्तन पुरम् ॥९४॥
थारापद्रमहाचैत्यप्रत्यासन्नमठ तत । श्रुत्वागादपराह्णेऽसौ बुधदर्शनकौतुकी ॥९५॥
तदानीं स प्रभुर्देहे कण्डूपीडित औषधम् । विमृज्य पिहितद्वारारिस्तदुचिताशुक ॥९६॥
सवीक्ष्य कुञ्चिकाछिद्राज्ज्ञापित यतिभिर्गुरुम् । पृच्छयैव विजेष्येऽमु धर्मो ध्यात्वेति त जगौ ॥९७॥
'कस्त्व' मत्रोत्तर सूरि प्रादाद् 'देव' इति स्फुटम् । 'देव क' इति तत्प्रश्ने त्व 'हमि' त्युत्तर ददौ ॥९८॥
'अह क' इति पृच्छाया 'श्वे' ति वाचमवोचत । 'श्वा क' एतादृशि प्रश्ने 'त्वमि' त्युत्तरमातनोत् ॥९९॥
पुन 'त्व क' इति प्रश्ने वितीर्ण प्राग्वदुत्तरम् । तयोश्चक्रकमेतद्धि जज्ञेऽनन्तमनन्तवत् ॥१००॥
ततश्चमत्कृत सोऽभूद् द्वार उद्घटिते सति । स तत्त्वोपप्लवग्रन्थाभ्यासोपन्यासमातनोत् ॥१०१॥
वितण्डाविरते चात्र श्रीशान्त्याचार्य उज्जगौ । कृतसर्वानुवादोऽत्र प्रतिज्ञस्त विवादिनम् ॥१०२॥
समार्पय निज वेष योगपट्टादिक तथा । अङ्गचेष्टा समस्तास्ते विधीयन्ते तथा तथा ॥१०३॥
तथा कृते च सर्वत्र धर्मोऽत्यायतिविस्मित । पादावस्य प्रणम्याह नाहमीशो भवज्जये ॥१०४॥
बुधस्त्वमेव च श्रीमन् ! धनपालोदित वच । प्रतीतमेव मच्चित्ते तादृक्किमनृत वदेत् ॥१०५॥
इत्युक्त्वा प्रययौ स्थान निज स निरहकृति । अहकारश्रिया नामाभिचारपरमौषधि ॥१०६॥
अथ द्रविडदेशीयोऽन्यदा वादी समागमत् । अव्यक्त भैरवाशब्दानुकार किमपि ब्रुवन् ॥१०७॥
प्रभवस्तस्य भाषायामभिज्ञा अपि कौतुकात् । भित्तिस्थे घोटके हस्त दत्त्वाभिदधिरे स्फुटम् ॥१०८॥

(प्रे०) "जयउ" इत्यादि, "जयउ महिंदायरिओ" त्ति "पहावगो" त्ति पदं घण्टालालान्यायेनाऽत्रापि सम्बध्यते ततः प्रभावको महेन्द्राचार्यः=महेन्द्रसूरिः सिद्धान्तवार्द्धेः पारदृश्वा शोभनमुनेगुरुर्जयतु ।

अथ शोभनमुनिं स्तुवन्नाह "पहावगो सोहणो य तस्सीसो" त्ति अत्राऽपि गाथोत्तरार्धस्थं "पण्णू" त्ति पदं काकाक्षिगोलकन्यायेन सम्बध्यते, ततः तस्य=श्रीमहेन्द्रसूरेः शिष्यः=विनेयः तच्छिष्यश्च प्राज्ञः=प्रज्ञातिशयवान् प्रभावकः=चरमजिनराजतीर्थविभूषकः शोभनः=शोभनाभिधो मुनिर्जयतु ।

अमुयोर्धनपा वेश्च विस्तरतो वृत्तान्तः प्रभावकचरित्रादवसेयः । स चेत्थम्-

श्रीमन्महेन्द्रसूरिभ्यो नमस्कारं प्रशास्महे । सत्यकारमिवागण्यपुण्यपण्यस्थिरीकृतौ ॥१॥
श्रीमतो धनपालस्य सालस्य को गुणस्तुतौ । यस्याविचलविश्वासे ब्राह्मी तथ्यवच क्रमा ॥२॥
श्लाघ्य स धनपाल स्यात् काले आन्तरविद्विषाम् । यद्बुद्धिरेव सिद्धाज्ञा मिथ्यात्वगरलच्छिदे ॥३॥
तद्वृत्तो वाचमाधास्ये दास्ये तिष्ठन् गुरुक्रमे । विधास्ये स्वस्य नैर्मल्यमादास्ये जन्मन फलम् ॥४॥
अस्त्यवन्त्यभिधो देशो देशोन वाडवामुखम् । यस्य येन वसन्त्यत्र कुलानि नवभोगिनाम् ॥५॥
आधार पुरुषार्थानां पुरी धाराऽस्ति यत्पुर । दानकल्पद्रुबाहुल्यादसाध साऽमरावती ॥६॥
तत्र श्रीभोजराजोऽस्ति राजा निर्व्याजवैभव । अवैर यन्मुखाम्भोज भारती-श्रीनिवासयो ॥७॥
यद्यश स्वर्णदीतीरे प्रवृत्तव्योमविद्रवे । विधि पूजाविधौ नालिकेरवद्विधुमादधे ॥८॥
इतश्च मध्यदेशीयसकाश्यस्थानसश्रय । देवर्षिरस्ति देवर्षिप्रभावो भूमिनिर्जर ॥९॥
तस्य श्रीसर्वदेवाख्य सूनुरन्यूनसत्क्रिय । ब्राह्मण्यनिष्ठया यस्य तुष्टा शिष्टा विशिष्टया ॥१०॥
तस्य पुत्रद्वय जज्ञे विज्ञेशैरर्चितक्रमम् । आद्य श्रीधनपालाख्यो द्वितीय शोभन पुन ॥११॥
तत्रान्यदाऽऽययौ चान्द्रगच्छपुष्करभास्कर । श्रीमहेन्द्रप्रभु पारदृश्वा श्रुतपयोनिधे ॥१२॥
जनाना सशयोच्छेदमादधद् व्याख्यया तया । विश्रुत सर्वदेवेन द्विजराजेन स श्रुत ॥१३॥
स चास्योपाश्रये प्रायादुचित मानितश्च तै । दिनत्रयमहोरात्र तथैवास्थात् समाधिना ॥१४॥
प्रपच्छ प्रभुरप्येव परीक्षाहेतवे हि न' । सुधियो यूयमायाथ कार्य वाऽप्यस्ति किंचन ॥१५॥
स्वयम्भुवोऽपरा मूर्ति प्राहासौ द्विजसत्तम । महात्मना हि महात्म्यवीक्षणे सुकृतार्जनम् ॥१६॥
कार्य न किञ्चिदप्यन्यदस्ति तत्रार्थिनो वयम् । रहस्य यदनाख्येयमितरेषा गुणोदधे ॥१७॥
स्थित्वैकान्ते प्रभु प्राह ख्यात यत् कथनोचितम् । इति श्रुत्वा जगादासौ पिता न पुण्यवानभूत ॥१८॥
राजपूज्यस्ततो लक्षैर्दान प्रापदसौ सदा । गृहे मम निधे शङ्का तृष्णाविलसित ह्यद ॥१९॥
त सर्वज्ञातविज्ञाना यूय यदि ममोपरि । अनुग्रहधिया ख्यात परोपकरणोद्यता ॥२०॥
ब्राह्मण सकुटुम्बस्तत्स्वजनै सह खेलति । दानभोगैस्ततत श्रीमन् । प्रसीद प्रेक्षयस्व तद् ॥२१॥ युग्मम् ।
सूरिर्विमृश्य तत्रार्थोल्लाभ शिष्योत्तमस्य स । आह सम्यग भवत्कार्यं विधास्यामो धिया निधे । ॥२२॥
पर न किं भवान् दाता रह कथ्य हि नस्त्वया । सामिस्वामिन् । समस्तस्य दास्यामि तव निश्चितम् ॥२३॥
अह स्वरुचि भावत्कवस्तुनोऽर्ध समाददे । साक्षिणोऽत्र विधीयन्ता द्रव्यव्यतिकरो ह्ययम् ॥२४॥
व्याख्याता वेदवेदाङ्गशास्त्रेषु वितथ कथम् । वदाम्यत्र तथाप्यस्तु विश्वासाय प्रभोरिदम् ॥२५॥
साक्षीकृत्य ततस्तत्र स्थितान् मेने गुरुस्तदा । हृष्टेन गृहमागत्य पुत्रयोर्जगदे तथा ॥२६॥

झञ्झादिवातवद्विघ्नान्यवजानन् सुराद्रिवत् । कायोत्सर्गे स्थित काये निष्प्रकम्पो मनस्यपि ॥५६॥
उद्यत्किलिकिलारावैर्भीतिं वाह्येऽव्यय वदन् । आययौ वलभीनाथ आनङ्क विदवज्जने ॥५७॥
व्याकार्षीद्धस्तिन पूर्वं जङ्गमानिव पर्वतान् । तमाश्रितान् सुरेन्द्रेण सह वैरमथादिव ॥५८॥
तस्य रेखा न लङ्घन्ते मर्यादा सागरा इव । उन्नतावनतै शुण्डादण्डैरुद्गामरा अपि ॥५९॥
तत. प्रसर्पत सर्पान् सदर्पानैक्षयत्तराम् । दृष्टिनिर्यद्विषज्वालान् भस्मीभूतान्यदेहिन ॥६०॥
ता रेखामनतिक्रम्य स्थितास्तान् वीक्ष्य निर्जर । विलक्ष इव दध्यौ स महिमाऽस्य जनातिग ॥६१॥
ततो राक्षसरूपाणि भैरवाणि चकार स । क्षोभाय तस्य नाभूवन् प्रतिकूलानि तान्यपि ॥६२॥
अनुकूलैरथारम्भि मुमुक्षोर्विप्रलम्भनम् । माता पिता-कलत्राणि क्रन्दन्ति स समैक्षयत ॥६३॥
तत्त्वज्ञस्तान्यवाज्ञासीत् मोहविन्ध्यस्य कोन्नति । वीरे कुम्भोद्भवेऽमुत्र दक्षिणा दिशमाश्रिते ॥६४॥
कलावपि सुराचाल्य सत्त्व वीरतपोनिधे । द्रष्टु पूर्वाचल प्राप्ते कौतुकादिव भास्करे ॥६५॥
प्रत्यक्षीभूय गीर्वाण उवाचासौ तपोनिधिम् । अखर्वपर्वताध्वन्यध्वन्यवध्वस्तथाक्रमम् ॥६६॥
पूर्वं सुरनरेशाना मानभङ्गो मया दधे । त्वा विना नैव केनाऽपि शक्तेर्मे स्खलन कृतम् ॥६७॥
पूर्वास्थडक्करीपुर्यामागतोऽह शिवालये । भीमेश्वराख्ये तल्लिङ्गमप्रणम्यैव च स्थित ॥६८॥
चरणौ तज्जलाधारे न्यस्य सुप्तश्च तत्क्षणे । तत्रागत्य नृपोऽपृच्छन्मा सविस्मयमानस ॥६९॥
नमसि त्व न किं देवमज्ञानाच्छङ्कितोऽथवा । तदाऽवोचमह राजन् । हेतु ते कथये स्फुटम ॥७०॥
शिवोऽय शक्तिसम्बद्धो मा दृष्ट्वा लज्जया नत । भविष्यति यत पु सो लज्जा पु सोऽग्रतो भवेत् ॥७१॥
एव स्थितेऽपि देवेऽस्मिन् नमति प्राकृतो जन । पशूपमे जने तस्य का व्रीडास्या ममापि च ॥७२॥
चेत् ते कौतुकमत्राऽस्ति मत्प्रणामात् तदास्य चेत् । उत्पात कोऽपि जायेत तत्र दोषोऽणुमोऽपि मे ॥७३॥
इत्युक्त्वा विरते मय्यब्रवीद् भूमिपतिस्तत । वैदेशिका भवन्त्यत्र स्फारवाक्यक्रमा सदा ॥७४॥
चर्मदेह पुमान् देवसाम्य स्वस्येह मन्यते । हास्य सचेतनाना तद् वालाना विप्रलम्भनम् ॥७५॥
या काचिदस्ति ते शक्तिस्ता प्रयुङ्क्ष्व न ते पुन । दोषोऽणुरपि कार्येऽत्र नगर साक्षि वर्त्तताम् ॥७६॥
श्रुत्वेति प्रणतिं यावत्कुर्वे समेत्य सन्निधौ । त्राट्कृत्य तावत् पुस्फोट लिङ्ग लोकस्य पश्यत ॥७७॥
अथाहमवद भीतिसभ्रमभ्रान्तलोचनम् । भूपाल बालवत्कण्ठरोधाऽव्यक्तस्वर तदा ॥७८॥
मद्धुत्तेजनदम्भेन त्वया वैर प्रसाधितम् । लिङ्गेऽस्मिन्नर्चनाक्लेशैर्दूनेन चिरकालतः ॥७९॥
श्रुत्वेति पादयोर्मौलिं मेलयित्वा तु नीतिभू । राजा सपरिवारोऽयमाह देवस्त्वमेव न ॥८०॥
तीर्थं त्वयैव दत्त स्यादन्यथोक्तिन्नमेव तत् । शिवस्त्वमेव देहस्थ पाषाणा इतरे पुन ॥८१॥
एवमुक्ते योगपट्टेनावेष्ट्यमिद त्वहम् । सम्बद्धद्विदल तत्र लिङ्गमद्यापि पूज्यते ॥८२॥
महावोधे ततो बौद्धविहारशतपञ्चकम् । तान् विजित्य मया भग्न तत्र सामर्थ्यतो निजात् ॥८३॥
तथा मम प्रतिज्ञाऽस्ति समुख विजये ध्रुवम् । महाकालाख्यया शम्भुर्भीत्या मे कोणके स्थित ॥८४॥
सोमेश्वरजयार्थं च चलित्वागममत्र च । सोऽत्रागत्यामिलद्गीतो मम ब्राह्मणरूपत ॥८५॥
प्राहैतद् दारुण क्षेत्र पवित्र दत्तमत्र च । महोदयाय तद्याचे दातुमीशो भवान् यदि ॥८६॥
मयोचेऽह क्षमो दाने मार्गणाना यथेप्सितम् । घट-मूटक-टङ्काना लक्षैराज्यान्नहेमसु ॥८७॥
ततोऽसौ ब्राह्मणोऽवोचन् मम किंचिद् ददस्व तत् । याचस्वेति मदुक्ते च स प्राह श्रूयता तत ॥८८॥
अत्र क्षेत्रे स्थिरो भूत्वाऽवतिष्ठस्व महावल । । श्रुत्वेति ज्ञानतो यावदीक्षे तावत्स शङ्कर ॥८९॥
आतङ्कात् सोमनाथाख्य छलितु मा समाययौ । वामनो वलिभूपालमिव वृद्धद्विजच्छलात् ॥९०॥
दण्ड कमपि मे देहि यथा सत्य प्रतिश्रव । मम स्यादन्यथात्रापि स्थितस्तेऽस्मि व्ययाव्रह ॥९१॥

तदुत्तिष्ठ कुरु स्नान देवार्चनमथ क्रियाम् । वैश्वदेवादिका कृत्वा निर्वृन कुरु भोजनम् ॥६३॥
ततो मा तत्र नीत्वा च तेषामङ्के विनिक्षिप । पवित्रये निज जन्म यथा तत्पदसेवया ॥६४॥
इत्याकर्ण्य तदा विप्र आनन्दाश्रुपरिप्लुत । उत्तस्थौ बाढमाश्लिष्य मूर्ध्नि चुम्बितवान् सुतम् ॥६५॥
तत सर्वा क्रिया कृत्वा भोजनानन्तर द्विज । प्रायात् शोभनदेवेन सहाचार्यप्रतिश्रये ॥६६॥
अङ्कमारोपयामास स तेषा वल्लभ सुतम् । यावान् भाति विधातव्य पुण्यैस्तावानय सुत ॥६७॥
सूरयस्तमनुज्ञाप्यादीक्षयस्त सुत मुदा । तद्दिनान्त शुभे लग्ने शुभग्रहनिरीक्षते ॥६८॥
ते विजह्रु प्रभाते चापभ्राजनविशङ्किता । अणहिल्लपुर प्रापुर्विहरन्तो भुव शनै ॥६९॥
इतश्च धनपालेन सर्वदेव पृथक्कृत । विकर्मकृन्निधिद्रव्यात् पुत्र विक्रीतवानिति ॥७०॥
अन्तष्टव्यमुखास्ते च दीक्षापतितशूद्रका । कौतस्कुता शमव्याजात स्त्रीबालादिप्रलम्भका ॥७१॥
निर्वास्यते ततो देशादेपा पापण्डमद्भुतम् । ध्यात्वा विज्ञप्य राजान तच्चक्रे तेन रोपत ॥७२॥ युग्मम् ।
एव द्वादशवर्षाणि श्रीभोजस्याज्ञया तदा । न मालवे विजह्रे तच्छ्वेताम्बरदर्शनम् ॥७३॥
स्थिताना गूर्जरे देशे धारासघो व्यजिज्ञपत् । श्रीमन्महेन्द्रसूरीणां यथावृत्त यथातथम् ॥७४॥
इत शोभनदेवश्चाध्यापित सूरिभिस्तदा । विदधे वाचनाचार्य शक्रेणापि स्तुतो गुणै. ॥७५॥
अवन्तिसघविज्ञप्तिं श्रुत्वाख्यान् शोभनो विभु । यास्याम्यह निजभ्रातु प्रतिबोधाय सत्वरम् ॥७६॥
दौर्मनस्यमिदं सङ्घे मन्निमित्त समाययौ । अहमेव प्रतीकार तत्र सन्धातुमुत्सहे ॥७७॥
गीतार्थैर्मुनिभि सार्द्ध प्रभुभि प्रैष्यताथ स । धारापुरमथायात प्रयात प्रौढिमद्भुताम् ॥७८॥
प्राप्ते काले च साधून् स प्रैपीद् गोचरचर्यया । श्रीमतो धनपालस्य गृहे परिचिते चिरम् ॥७९॥
तत्र तावगतौ साधू विद्वदीशस्तदा च स । स्नानायोपविवेशाथ स्नेहाभ्यक्तवपुर्दृढम् ॥८०॥
व्याहृत्य धर्मलाभ तौ तस्थतु स्वस्थचेतसौ । सन्त्यस्तीनि विदधे धनपालप्रियोत्तरम् ॥८१॥
प्राह श्रीधनपालश्च किंचिद्देह्यनयो ध्रुवम् । गृहाद् यान्त्यर्थिनो रिक्ता अधर्मोऽय यतो महान् ॥८२॥
उपितान्न तयाऽऽनीत गृहीतेऽत्र ततो दधि । द्वितीयमाहृत पृष्ट तैरेतत किमहर्भवम् ॥८३॥
कि दध्नि पूतरा सन्ति नवा यूय दयाभृत । एतत्त्र्यहस्थित लात नोचेद् गच्छत शीघ्रत ॥८४॥
तावूचतुरिय रीतिरस्माक किमसूयसि । असूयया महान् दोष प्रियवाक्य हि सुन्दरम् ॥८५॥
अथ चेत् पृच्छसि भ्रान्तिं विना जीवस्थितिं ध्रुवम् । गोरसेऽह्नद्वयातीते नासत्य ज्ञानिना वच ॥८६॥
सुधीनाथस्ततोऽवादीत् तदानादीनव वच । दर्शयत प्रतीत्यै नो दध्नि जीवानमून्दृशि ॥८७॥
पूलिकालक्तकस्याथ ताभ्या तत्र व्यमोच्यत । जीवा दध्नस्ततस्तस्या द्रागेवारुरुहुस्तदा ॥८८॥
चलन्तस्ते हि चक्षुष्या अचक्षुष्या स्थिता पुन । तद्वर्णास्तद्रसा जीवास्तदा तेनेक्षिता स्फुटा ॥८९॥
मिथ्यात्वस्यावलेपोऽथ तद्वाक्येन विनिर्ययौ । तदा कृतीश्वरस्याहिनाथमन्त्रैर्विष यथा ॥९०॥
अचिन्तयदसौ धर्म एषा जीवदयोज्ज्वल । य एष पशुहिसादिरसौ मिथ्येव लक्ष्यते ॥९१॥ उक्त च तेन–

सव्वत्थ अत्थि धम्मो जा मुणिय ण जिण सासण तुम्ह ।
कणगाउराण कणग ससियपय अलभमाणाण ॥९२॥

विद्वन्नाथस्ततोऽवादीत् को गुरु कुत आगम । भवता कुत्र वा स्थाने शुद्धे यूयमवस्थिता. ॥९३॥
श्रुत्वेति वदतस्तौ च श्रूयतामवधानत । गूर्जराद् देशत श्रीमन्नायाता वयमत्र भो ॥९४॥
श्रीमन्महेन्द्रसूरीणा शिष्य श्रीशोभनो गुरु । नाभेयभुवनाभ्यर्णे स्थितोऽस्ति प्रासुकाश्रये ॥९५॥
इत्युक्त्वा जग्मतुस्तौ च निज स्थान महामुनी । सुस्नातो भुक्तिपूर्व च सुधी प्रायादुपाश्रये ॥९६॥
अथ श्रीशोभनो विज्ञोऽभ्युत्तस्थौ गुरुबान्धवम् । आलिलिङ्गे च तेनासौ सोदरस्नेहमोहत ॥९७॥

तेनाकार्यानुयुक्तोऽथाभिज्ञान पुनराह च । चतुर्विंशतिसंख्याना स्वभावाख्यानतोऽर्हताम् ॥१२८॥ तथाहि-
बे धउला बे सामला बे रत्तुप्पलवन्न । मरगयवन्ना विन्नि जिण सोलसकंचणवन्न ॥१२९॥
नियनियमाणिहि कारविय भरहि जि नयणाणंद । ते मइं भाविहिं वंदिया ए चउवीसजिणंद ॥१३०॥
राजाह स्वेष्टदेवाना स्वरूपकथने वरा । नास्ति प्रतीतिरस्माकमन्यत्किमपि कथ्यताम् ॥१३१॥
अक्षतान् दर्शयामास निःसामान्यगुणोदयान् । वर्णे सौरभविस्तारैरपूर्वान् मानवव्रजे ॥१३२॥
ते द्वादशाङ्गुलायामा अङ्गुल पिण्डविस्तरे । अवेष्ट्यन्त सुवर्णेन महीपालेन ते तत ॥१३३॥
पूर्वं तु रुक्कभङ्गस्य तेऽभूवंस्तदुपाश्रये । अपूज्यन्त च सङ्घेनाऽऽपदप्रतिविम्बवत् ॥१३४॥
एव चाऽतिशयै सम्यक् सामान्यजनदुस्तरैः । श्रीमान् वीरगणि सूरिर्विश्वपूज्यस्तदाऽभवत् ॥१३५॥
अन्यदा मन्त्रिण वीर रह प्राह महीपति । पूर्वादिष्टक्रमान्न्यायाद् राज्य पालयतो मम ॥१३६॥
सुमनोमण्डलाश्रेयो वच सिद्धिकुलालय वीरो । गुरुश्च मन्त्री च ममार्त्तीन्दुविधुन्तुद ॥१३७॥
एकश्चिन्ताज्वरोऽस्माक महाबाधानिबन्धनम् । श्रुत्वा प्रतिविधेहीद कस्याऽग्रेऽन्यस्य कथ्यते ॥१३८॥
अथाह वीरमन्त्रीश स्वामिन्नादिश्यता मम । क्रियते भृत्यलेशेन किं मयाऽन्यदधीशित ॥१३९॥
राजाह मम शुद्धान्तकान्ताना समवे सति । स्रावो भवति गर्भस्य तत्र प्रतिविधिं कुरु ॥१४०॥
इत्यादिष्टो महामात्य श्रीमद्वीरप्रभो पुर । व्यजिज्ञपत् तत सूरिमुरीकृत्य स चाऽब्रवीत् ॥१४१॥
अभिमन्त्रितवासैर्मे क्रियतामभिषेचनम् । अवरोधपुरन्ध्रीणा प्रजायन्ते सुता यथा ॥१४२॥
एव च विहिते मन्त्रीप्रभुणा वचने गुरो । श्रीमद्वल्लभराजाद्या नरेन्द्रस्याऽभवन् सुता ॥१४३॥
अष्टादशशतीदेशे विहरन्नन्यदा प्रभु । अगादुम्बरिणीग्रामे ग्राम्येतरनरान्विते ॥१४४॥
विशुद्धोपाश्रये तत्र स्थितो गत्वा निशागमे । व्युत्सर्गाय बहि प्रेतवनमाशिश्रिये मुदा ॥१४५॥
परमारवराम्नायसद्वंशाकाशहीरक । रुद्राभिधः स त दृष्ट्वा नमश्चक्रेऽतिभक्तित ॥१४६॥
उवाच च मुने । मास्था श्वापदव्रजसकुले । श्मशाने ग्राममध्ये न आगच्छ प्रासुकाश्रये ॥१४७॥
तिष्ठ सौख्यात् तदाकर्ण्य मुनि प्राह गुरो सदा । कायोत्सर्गे बहि पृथ्व्या कुर्वन्ति प्रभवस्तत ॥१४८॥
आवेद्या नाऽधृति राजपुत्र । श्रुत्वेति सोऽगमत् । निज धाम ततस्तस्य जम्बूपायनमागमत् ॥१४९॥
स सिष्वादयिषुर्जम्बूफलान्यत्रोटयत्तदा । वृन्त तत्र कृमिं दृष्ट्वा शूकया धूनयन् शिर ॥१५०॥
जगाद कृमय सूक्ष्मा फलेष्वपि यदाऽभवन् । अदृष्ट किञ्चिन्न स्वाद्य निशादौ हि विवेकिना ॥१५१॥
आहूय ब्राह्मणै पृष्टै प्रायश्चित्त प्रदेशितम् । विशुद्धये द्विजन्मभ्यो देय स्वर्णमय कृमि ॥१५२॥
दध्यौ श्रुत्वेति सकल्प्य द्वितीयोऽपि कृमिर्मया । हन्तव्यो नावगच्छामि ततो धर्ममसु हृदि ॥१५३॥
प्रष्टव्यश्च विचारोऽय कस्यापि शमिनो मुने । प्रातर्जैनमुनिं ग्राममध्यमागतमानमत् ॥१५४॥
तत प्रपच्छ सन्देह गुरुर्विस्तरतोऽवदत् । जीवा सर्वत्र तिष्ठन्ति द्विधा स्थावरजङ्गमा ॥१५५॥
स्थावरास्ते धरा-नीर-वह्नि-वात-महीरुह । जङ्गमास्ते परीज्ञेयास्ते द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रिया ॥१५६॥
पञ्चेन्द्रिया सुरास्तिर्यग्नरनैरयिका अपि । गजमीनमयूराद्या स्थलनिम्नाम्बरोपगा ॥१५७॥
वनस्पतिस्तथा जीवाधारो मूलफलादिके । उत्पद्यन्ते विपद्यन्ते यज्जीवास्तत्र भूरिश ॥१५८॥
धर्म कृपैव जीवाना विवेकस्थ ! विचारय । इति सयमिनो वाच स श्रुत्वा प्रत्यबुध्यत ॥१५९॥
सर्व हित्वाऽग्रहीद् दीक्षामक्षीणश्रेयसे स च । शास्त्रेष्वर्धतपूर्वी च जैनागममवाचयत् ॥१६०॥
महाविद्वान् स गीतार्थ क्रियाज्ञानद्वयेऽप्यभूत् । प्रदीप इव दीपेन गुरुणा समदीपिति ॥१६१॥
श्रुतज्ञानात्परिज्ञाय स्वायु पर्यन्तमन्यदा । गच्छभार च शिष्येशे रुद्रे श्रीवीरसूरय ॥१६२॥
श्रीचन्द्रसूरिरित्याख्या पूर्वक ते न्यवेशयन् । स्वय तु योगरोधेन तस्थुर्निष्कम्पसङ्गरा ॥१६३॥

इत्यन्योऽन्यविरुद्धचेष्टितमहो पश्यन्निजस्वामिनं,
भृङ्गी शुष्कशिरावनद्धमधिकं धत्तेऽस्थिशेषं वपुः ॥१३०॥

याज्ञवल्क्यस्मृतिं व्यासो बहिः पार्षदमण्डले । तारं व्याख्याति भूपश्च तत्र शुश्रूपुरासिवान् ॥१३१॥
व्यावृत्य स्थितमद्राक्षीद् वयस्यं च ततोऽवदत् । श्रुतिस्मृतिषु तेऽवज्ञाऽवहितो न शृणोषि यत् ॥१३२॥
सोऽजल्पन्नावगच्छामि तदर्थं व्यस्तलक्षणम् । प्रत्यक्षेण विरुद्धं हि शृणुयात् को मतिभ्रमी ॥१३३॥ कथम्-

स्पर्शोऽमेध्यभुजां गवामघहरो वन्द्या विसञ्ज्ञा द्रुमाः,
स्वर्गं छागवधाद्धिनोति च पितॄन् विप्रोपभुक्ताशनम् ।
आप्ताश्छद्मपराः सुराः शिखिहुतं प्रीणाति देवान् हविः,
स्फीतं फल्गु च वल्गु च श्रुतिगिरां को वेत्ति लीलायितम् ॥१३४॥

अथ निष्पद्यमाने च यज्ञे तत्र महापशोः । बद्धस्य हन्तुमश्रौषीद् दीनारावं महीपतिः ॥१३५॥
एष किं जल्पतीत्युक्ते कविचक्री ततोऽवदत् । भाषामेषां विजानामि तत्सत्यं शृणु तद्वचः ॥१३६॥ तथाहि-
अर्काहितदलोच्छेदी सत्त्वोल्लासतनुस्थितिः । नाम्ना गुणैश्च विष्णुर्यः स कथं वध्यतामजः ॥१३७॥
नाहं स्वर्गफलोपभोगतृषितो नाभ्यर्थितस्त्वं मया सन्तुष्टस्तृणभक्षणेन सततं साधो न युक्तं तव ।
स्वर्गं यान्ति यदि त्वया विनिहता यज्ञे ध्रुवं प्राणिनो । यज्ञं किं न करोषि मातृपितृभिः पुत्रैस्तथा बान्धवैः ॥
श्रीभोजः कुपितस्तस्यापसव्यवचनक्रमैः । दध्यावमुं हनिष्यामि विब्रुवन्तं द्विजब्रुवम् ॥१३९॥
साक्षादस्य हतौ किं चापवादः परमो भवेत् । रहः कुत्रापि वेलाया वध्योऽसावेष सश्रवः ॥१४०॥
तदा चागच्छतो राजपथि स्वं मन्दिरं प्रति । वृद्धा स्त्री दृक्पथं प्रायात् तटस्था बालिकान्विता ॥१४१॥
नवकृत्वः शिरो धूनयन्तीं वृद्धां विलोक्य सः । नृपः प्राह किमाहासौ ततोऽवादीत् कृतीश्वरः ॥१४२॥ तथाहि-

किं नन्दी किं मुरारिः किमु रतिरमणः किं हरः किं कुबेरः,
किं वा विद्याधरोऽसौ किमथ सुरपतिः किं विधुः किं विधाता ।
नायं नायं न चायं न खलु नहि न वा नापि नासौ न चैष,
क्रीडां कर्तुं प्रवृत्तः स्वयमिह हि हले ! भूपतिर्भोजदेवः ॥१४३॥

श्रुत्वाथ भूपतिर्दध्यौ नववारोचितान् किमु । विकल्पान्नवकृत्वोऽथ नत्वा पर्यहरत् ततः ॥१४४॥
ज्ञानिवद्वदिता कोऽन्य एतद् दुर्मापकं विना । निग्रहार्हः स किं श्रीमन्मुञ्जवर्द्धितविग्रहः ॥१४५॥
कदाचिद् भूपतिर्मित्रं पापर्द्धावाह्वयत् ततः । ययौ स खेटकास्तत्र शूकरं च व्यलोकयन् ॥१४६॥
कामं कर्णान्तविश्रान्तमाकृष्य किल कार्मुकम् । बाणं प्राणं दधद् हस्ते व्यमुञ्चन्न्यञ्चदास्यकः ॥१४७॥
पतितोऽसौ किरिर्घोरं घर्घरारावमारसन् । प्राहुर्विज्ञाः प्रभुर्योधः पार्थो वा नान्य ईदृशः ॥१४८॥
पण्डितेशे ततो दृष्टिः श्रीभोजस्यागमत् तदा । किंचिद् वदिष्यथेत्युक्ते स प्राह शृणुत प्रभो ! ॥१४९॥

तच्चेदम्-रसातलं यातु यदत्र पौरुषं क्व नीतिरेषा शरणो ह्यदोषवान् ।
निहन्यते यद् बलिनापि दुर्बलो हहा महाकष्टमराजकं जगत् ॥१५०॥

अन्यदा नवरात्रेषु लिम्बजागोत्रजार्चने । राज्ञाय विहिते हन्यमाने छागशते तथा ॥१५१॥
रक्ताक्षे घातरक्ताक्षे बद्ध्वा खड्गाद् द्विधाकृते । एकघातात् सदेशस्था प्रशशासुर्नृपं हतौ ॥१५२॥
धनपालो जगादाथ कारुण्यैकमहोदधिः । एतत्कर्मकृतो विज्ञाः प्रशंसाकारिणोऽपि च ॥१५३॥ यतः-
पसुवे रुडवि विहसियउ निसुणइ साहुक्कारु । तं जाणइ नरयहँ दुहहँ दिन्नउ कारु ॥१५४॥
अन्यदा श्रीमहाकाले पवित्रारोहपर्वणि । महामहेऽगमद् राजा वयस्यं प्रत्युवाच च ॥१५५॥

(प्रे०) "जो" इत्यादि, "जो" त्ति, यः=श्रीसर्वदेवसूरिरभूदिति क्रियापदमभ्याहार्यम् । किम्भूतः ? "सूरिमताइसइड्ढिधारी" त्ति, सूरिमन्त्रस्याऽतिशयर्द्धिं धारयतीत्येवं शीलः सूरिमन्त्रातिशयर्द्धिधारी "अजाते शीले' (सि० ५-१-१५४) इति णिन्प्रत्ययः, "सिस्साण लद्धीअ हि गोयमाहो" त्ति, शिष्याणां=विनेयानां लब्ध्या=प्राप्त्या शक्त्या वा गौतमस्य= इन्द्रभूतिसंज्ञकस्य=वीरविभुप्रथमगणधरस्य आभः=सदृशो गौतमाभः = गौतमसमः = गौतमवत सुशिष्यलब्धिमानित्यर्थः, "णाणवुही' त्ति, ज्ञानस्य = यथास्थिततत्त्वबोधलक्षणस्य अम्बुधिः = सागरो ज्ञानाम्बुधिः = शास्त्रविदित्यर्थः, 'संयमिलद्धरेहो" त्ति, संयमिषु = सुविहितसाधुषु लब्धा प्राप्ता रेखा=स्वनामाङ्किताऽक्षरपङ्क्तिरूपा येन स संयमिलब्धरेखः= सुसाधुतया विश्रुतकीर्तिरित्यर्थः, ' 'दव्व भव्वज्जविबोहकारी" त्ति, चन्द्र इव = इन्दुरिव भव्याः = सिद्धिसौधगमनार्हास्त एवाब्जानि = चन्द्रविकासानि पद्मानि, भव्याब्जानि, तेषां विबोधं = विकसनं करोतीत्येवंशीलो भव्याब्जविबोधकारी = उपदेशेन भव्यजनानां बोधकृ इत्यर्थः ॥१७१॥

अथ पुनरपि तमेव पथ्यापूर्विकयान्तचपलया गीत्या विशिनष्टि—

जो रामसइणउरे पइट्ठमट्ठमजिणस्स पडिमाए ।
णाहेयचेइअघरे करीअ वासे णिवंऽगदारदसे१०१०॥१७२॥

(पच्छापुव्विगा जहणचवलागीई)

(प्रे०) "जो" इत्यादि, "जो" त्ति, यः=अनन्तरोदितश्रीसर्वदेवसूरिः "रामसइणउरे" त्ति, रामसेनपुरे=रामसेनसंज्ञके नगरे "णाहेयचेइअघरे" त्ति, नाभेयस्य=प्रथमजिनेशितुश्चैत्यगृहे=जिनमन्दिरे=नाभेयचैत्यगृहे=ऋषभदेवजिनप्रासादे "पइट्ठमट्ठमजिणस्स पडिमाए" त्ति, अष्टमजिनस्य=चन्द्रप्रभनाम्नोऽष्टमस्य तीर्थकरस्य प्रतिमायाः=बिम्बस्य प्रतिष्ठां "करीअ" त्ति, अकरोत्=कारितवान् । कदा? "वासे णिवंऽगदारदसे" त्ति, नृपात्=विक्रमादित्यनराधिपतेः अङ्गद्वाराणि दश, दशाः=अवस्था दश, यद्वा दश=तावन्मात्री सङ्ख्या, एतावदङ्कौ यत्र तत्राङ्गद्वारदशे वर्षे=विक्रमसंवत् १०१० संवत्सरे ॥१७२॥

अथ श्रीसर्वदेवसूरेर्वर्णनं समापयन्नन्तिमां पथ्यार्यां ब्रूते—

बोहिअ कुंकुणमंति कारिअपिहुतुंगजिणपसायवरं ।
चंदावईणिवणायणभूअं सुगिराअ दिक्खीअ ॥१७३॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "बोहिअ" इत्यादि, "जो" त्ति, पूर्वतोऽनुवर्तते यः=श्रीसर्वदेवसूरिः "कुंकुणमंति" त्ति, कुङ्कुणमन्त्रिणं=कुङ्कुणनामानं प्रधानं "सुगिराअ" त्ति, सु=शोभनया गिरा=

शोष नीते जलौघे दिनकरकिरणैर्यान्त्यनन्ता विनाश,
तेनोदासीनभाव भजति यतिजन कूपवप्रादिकार्ये ॥१८७॥

राजाह सत्यमेवेद धर्म सत्यो जिनाश्रय. । व्यवहारस्थिनाना तु रुच्यो नैव कथचन ॥१८८॥
ततो राजसखा प्राह पित्राहमपि पाठित । किंचज्ज्ञात्वा मयाश्रायि कथा त्वबुधे जने ।॥१८९॥ यत –
त्याज्या हिंसा नरकपदवी नानृत भाषणीयं स्तेयं हेय विषयविरति सर्वसङ्गान्निवृत्ति ।
सैनो धर्म्मो यदि न रुचित. पापपङ्काबृतेभ्य-स्तत्किं न्यूनो घृतमवमत किं प्रमेह्यत्ति नो चेत् ॥१९०॥
धनपालस्तत' सप्तक्षेत्र्या वित्त व्ययेत् सुधी । आदौ तेषा पुनश्चैत्य ससारोत्तारकारणम् ॥१९१॥
विमृश्येति प्रभोर्नाभिसूनो' प्रासादमातनोत् । बिम्बस्यात्र प्रतिष्ठा च श्रीमहेन्द्रप्रभुर्दधौ ॥१९२॥
सर्वज्ञपुरतस्तत्रोपविश्य स्तुतिमादधे । 'ज य ज न्तु क प्पे' त्यादि गाथापञ्चशता मिताम् ॥१९३॥
एकदा नृपति· स्मार्त्तकथाविस्तरनिस्तुष । वयग्यमवदज्जैनकथा श्रावय कामपि ।१९४॥
द्वादशाथ सहस्राणि ग्रन्थमानेन ता तत । परिपूर्य ततो विद्वत्समूहैरवधारिताम् ॥१९५॥
यथार्थां काचदोषस्योद्धारात् तिलकमञ्जरीम् । रसेन कविताऽरूपचक्षूर्नैर्मल्यदायिनीम् ॥१९६॥
विद्वज्जनास्यकर्पूरपूराभा वर्णसम्भृताम् । सुधीर्विरचयाचक्रे कथा नवरसप्रथाम् ॥१९७॥ त्रिभिर्विशेषकम् ।
रसा नव परा कोटिं प्रापिता कविचक्रिणा । कथाया तत्समाप्तौ च तद्ध्याने परिवर्तते ॥१९८॥
स्वयूथ्यानामिवामीषा प्रस्ताव ते दधुधु्र्वम् । रसाना स तत पण्णामास्वादमबुधद् बुध' ॥१९९॥
दुहित्रा च तत. पृष्ट तात । ग्रन्थ समापि किम् । अहो स्पर्द्धा पितृध्याने सुताज्ञाने च चित्रकृत ॥२००॥
अथासौ गूर्जराधीशकोविदेशशिरोमणि: । वा दि वे ता ल वि श द श्रीशान्त्याचार्यमाह्वयत ॥२०१॥
अशोधयदिमा चासावुत्सूत्रादिप्ररूपणात । शब्दसाहित्यदोषास्तु सिद्धसारस्वतेषु किम् ॥२०२॥
तस्या व्याख्यायमानाया स्थाल हैममभोचयत् । भूपाल पुस्तकस्याधो रससंग्रहहेतवे ॥२०३॥
तत्र तद्रसपीयूप पूर्वमाहृतवान् नृप । आधिव्याधिसमुच्छेदहेतुमक्षयतृप्तिदम् ॥२०४॥
सम्पूर्णाया च तस्या स प्राह पृच्छामि किंचन । तथा त्वामर्थये किञ्चिच्चेन्न धारयसे रुषम् ॥२०५॥
पूर्वमेव कथारम्भे शिव. पावित्र्यमङ्गलम् । चतु स्थानपरावर्त तथा कुरु च मद्गिरा ॥२०६॥
धारासञ्ज्ञामयोध्यायां महाकालस्य नाम च । स्थाने शक्र वतारस्य शङ्कर वृषभस्य च ॥२०७॥
श्रीमेघवाहनाख्याया मम नाम कथा तत । आनन्दसुन्दरा विश्वे जीयादाचन्द्रकालिकम् ॥२०८॥
सुधी प्राह महाराज । न सुभ प्रत्युताशुभम् । परावर्ते कृतेऽमुष्मिन् सूनृत मद्वच. शृणु ॥२०९॥
पय पात्रे यथा पूर्णे श्रोत्रियस्य करस्थिते । अपावित्र्य भवेत् तत्र मद्यस्यैकेन बिन्दुना ॥२१०॥
एवमेपा विनिमये कृते पावित्र्यहानित । कुल मे ते ध्रुव राज्य राष्ट्रं च क्षीयतेतराम ॥२११॥
शेषे सेवाविशेष ये न जानन्ति द्विजिह्वताम् । यान्तो हीनकुला किं ते न लज्जन्ते मनीषिणाम् ॥२१२॥
अथ राजा रुषा पूर्ण पुस्तक तन्न्यधादसौ । अङ्गारशकटीवह्नौ जाड्यात् पूर्वं पुरस्कृते ॥२१३॥
ततो रोपाद् ब्रुवाणासौ गाथामेका नृपं प्रति । पुनर्नानेन वक्ष्यामीत्यभिसन्धि कठोरगी ॥२१४॥सा चेयम्–
मालविओ सि किमन्न भन्नसि कव्वेण निव्वुइ तसि । धणवाल पि न मु चसि पुच्छामि सवचणं कत्तो ॥२१५॥
अथ वेश्म निजं गत्वा दोर्मनस्येन पूरित । अवाङ्मुख स सुष्वाप तदाऽनास्तृततल्पके ॥२१६॥
न स्नानं देवपूजा न भुक्तेर्वार्तापि न स्मृता । वचन नैव निद्रापि पण्डितस्य तदाऽभवत् ॥२१७॥
मूर्त्तयेव सरस्वत्या नवहायनबालया । दुहित्रा मन्युहेतुं स पृष्टस्तस्य यथाह तत् ॥२१८॥
उत्तिष्ठ तात । चेद्राज्ञा पुस्तक पावके हुतम् । अक्षय हृदय मेऽस्ति सकला ते ब्रुवे कथाम् ॥२१९॥
स्नान देवार्चन भुक्ति कुरु शीघ्रं यथा तव । कथापाठ ददे हृष्टस्तत. सर्वं चकार स ॥२२०॥

णिरयविज्जाठाणो[१४७१]सग्गमिओ रावणऽक्खिसिद्ध[१५२०]मिए॥१७५॥

(पच्छागीई)

(प्रे०) "सिरिफग्गु०" इत्यादि, "सिरिफग्गुमित्तसूरी" त्ति, श्रिया=चारित्रलक्ष्म्याऽन्वितः फल्गुमित्रसूरिः=फल्गुमित्रनामाचार्यः श्रीफल्गुमित्रसूरिः "हवीअ सडतीसमो जुगपहाणो' त्ति, सप्तत्रिंशो द्वितीयोदयापेक्षया पुनः सप्तदशो युगप्रधानोऽभूत् ।

अथ सार्धगाथया जन्मादिपर्यायानाह–"पुरिस०" इत्यादि, "ऽस्स" त्ति, अस्य=श्रीफल्गुमित्रसूरेः "जम्मो" त्ति, जन्म=उद्भवः, "वीरा" त्ति, वीरात् = श्रीयशोदापतिनिर्वाणगमनकालात् "पुरिसत्थबुद्धिकुलयरसंखे" त्ति, पुरुपार्थो धर्मा-ऽर्थ-काम-मोक्षलक्षणाश्चत्वारः, बुद्धय औत्पत्तिकी★वैनयिकी कार्मिकी--पारिणामिकीरूपाश्चतस्रः, कुलकराश्चतुर्दश, एतेपामङ्कानां पश्चानुपूर्विस्थापितानां १४४४ प्रमाणं संख्या यस्य तस्मिन् पुरुपार्थबुद्धिकुलकरसङ्ख्ये "ऽद्दे" त्ति, अब्दे = शारदे = वीरसंवत् १४४४ वत्सरेऽजायत ।

"विवाहसिवमुहरज्जुपमाणे"त्ति, विवाहा ब्राह्मादयोऽष्टौ , शिवमुखाः=शम्भुमुखानि पञ्च, रज्जवश्चतुर्दश, लोकस्य चतुर्दशरज्जुमितत्वादेतेपामङ्कानां विपरीतक्रमन्यस्तानां १४५८ इति सङ्ख्य प्रमाणं यस्मिंस्तस्मिन् विवाहशिवमुखरज्जुप्रमाणे=वीरसंवत् १४५८ अब्दे "दिक्खा" त्ति, दीक्षा जायते स्म ।

"स" त्ति, सः = श्रीफल्गुमित्रसूरिः "कुणिरयविज्जाठाणे" त्ति, कुः = पृथ्व्येका, निरयाः=नरकभूमयो रत्नप्रभादयः सप्त, विद्यास्थानानि -शिक्षा-कल्पव्याकरण छन्दो-ज्योतिषनिरुक्तरूपपडङ्ग-यजुर्वेद-ऋग्वेदसामवेदा-ऽथर्ववेदलक्षणवेदचतुष्क–मीमांसा–न्यायशास्त्र-पुराणधर्मशास्त्रात्मकानि चतुर्दश, तथा चोक्तम्––

अङ्गानि चतुरो वेदा, मीमासा न्यायविस्तर । पुराण धर्मशास्त्र च, स्थानान्याहुश्चतुर्दश ॥१॥
शिक्षा कल्पो व्याकरण, निरुक्त ज्योतिष तथा । छदश्चेति पडङ्गानि प्राहुरेतानि कोविदा ॥२॥" इति

एवं श्रीहेमचन्द्रसूरिभिरभिधानचिन्तामणिकोशेऽपि न्यगादि–

★ केचित्तु "स्वभावजा' इत्यपि वदन्ति । उक्तञ्च काव्यशिक्षायाम्–"बुद्धय.–स्वभावजा औत्पत्तिकी कर्मजा पारिणामिकी चेति ।" इति ।

यदुक्त काव्यशिक्षायाम्–"अष्टौ विवाहा - अलङ्कृत्य कन्याप्रदान ब्राह्मो विवाह १, विभवविनियोगेन कन्याप्रदान प्राजापत्य २ गोदानमिथुनदानपूर्वं आर्ष ३, यज्ञार्थम् ऋत्विज कन्याप्रदानमेव दक्षिणा म दैवत ४, मातृपितृबन्धूनामप्रामाण्यात् परस्परानुरागेण मिथोयोजनाया स गान्धर्वः ५, पणबन्धेन कन्यादानमासुर ६,प्रसह्य कन्याग्रहणाद्राक्षस ७, सुप्तप्रमत्तकन्याग्रहणात् पैशाच. ८ इत्यादि ।" इति ।

निःशङ्कं मदिरां पिबन्ति नृपल खादन्ति ये निर्दया-
श्चण्डालीमपि यान्ति निर्घृणतया ते हन्त कौला वयम् ॥२५३॥

इत्युक्त्वा निर्ययौ गेहात् त्यक्त्वा स्वस्नेहमञ्जसा । अवन्तिदेशसारां स धारां प्राप पुरीं ततः ॥२५४॥
स राजमन्दिरद्वारि पत्रालम्ब प्रदत्तवान् । काव्यान्यमूनि चालेखीत् तत्र मानाद्रिमूर्द्धगः ॥२५५॥ तद्यथा-

शम्भुर्गौडमहामहीपकटके धारानगर्यां द्विजो;
विष्णुर्भट्टिअमण्डले पशुपतिः श्रीकन्यकुब्जे जितः ।
ये चान्येऽपि जडीकृताः कतिपये जल्पानिले वादिनः,
सोऽयं द्वारि समागतः क्षितिपते ! धर्मः स्वयं तिष्ठति ॥२५६॥

यः कोऽपि पण्डितमन्यः पृथिव्यां दर्शनेष्वपि । तर्क-लक्षण-साहित्योपनिषत्सु वदत्वसौ ॥२५७॥
अथ श्रीभोजभूपालपुरः समेत्य पर्षदम् । तृणाय मन्यमानोऽसौ साहकारां गिरं जगौ ॥२५८॥

गलत्विदानीं चिरकालसञ्चितो मनीषिणामप्रतिमल्लतामदः ।
उपस्थिता सेयमपूर्वरूपिणी तपोधनाकारधरा सरस्वती ॥२५९॥

क्षितिप तव समक्षं बाहुरूर्ध्वीकृतो मे, वदतु वदतु वादी विद्यते यस्य शक्तिः ।
मयि वदति वितण्डावादजल्पप्रवीणे, जलधिवलयमध्ये नास्ति कश्चिद् विपश्चित् ॥२६०॥
हेमाद्रेर्बलवत्प्रमाणपटुता तार्क्ष्यस्य पक्षो दृढः, शैलानां प्रतिवादिता दिविषदां पात्रावलम्बग्रहः ।
देशस्यैव सरस्वतीविलसितं किंवा बहु ब्रूमहे, धर्मे सञ्चरति क्षितौ कविबुधख्यातिर्ग्रहाणां यदि ॥२६१॥

बृहस्पतिस्तिष्ठतु मन्दबुद्धिः पुरन्दरः किं कुरुते वराकः ।
मयि स्थिते वादिनि वादिसिंहे नैवाक्षरं वेत्ति महेश्वरोऽपि ॥२६२॥

आचार्योऽहं कविरहमहं वादिराट् पण्डितोऽहं, दैवज्ञोऽहं भिषगहमहं मान्त्रिकस्तान्त्रिकोऽहम् ।
राजन्नस्यां जलधिपरिखामेखलायामिलाया-माज्ञासिद्धः किमिह बहुना सिद्धसारस्वतोऽहम् ॥२६३॥
इत्याडम्बरकाव्यानि तस्य श्रुत्वा महाधियः । अर्वाग्दृशोऽभवन् सर्वे भूपालो व्यमृशत् ततः ॥२६४॥
पुंसा तेन विना पर्षच्छून्येव प्रतिभासते । स कथं पुनरागन्ता य एवमपमानितः ॥२६५॥
पुनः प्राप्य कथंचित् स्यात् तदा प्रतिविधास्यते । एवं विचिन्त्य सर्वत्राप्रैषीद् विश्वास्यपूरुषान् ॥२६६॥
शोधितः सर्वदेशेषु तेषामेके तमाप्नुवन् । मरुमण्डलमध्यस्थे पुरे सत्यपुराभिधे ॥२६७॥
तैश्च वैनयिकीभिः स वाणीभिस्तत्र सान्त्वितः । औदासीन्ये स्थितः प्राह नायास्ये तीर्थसेव्यहम् ॥२६८॥
तैर्विज्ञप्ते यथावृत्ते भूपः पुनरचीकथत् । ततो(ऽवौ)दासीनताभासं वचोऽसावब्रवत्प्रियम् ॥२६९॥
श्रीमुञ्जस्य महीभर्तुः प्रतिपन्नसुतो भवान् । ज्येष्ठोऽहं तु कनिष्ठोऽसि तत्किं गण्यं लघोर्वचः ॥२७०॥
पुरा ज्यायान्महाराजस्त्वामुत्सङ्गोपवेशितम् । प्राहेति बिरुदं तेऽस्तु श्री कूर्चाल सरस्वती ॥२७१॥
त्यक्ता वयं त्वया वृद्धा राज्यमाप्तश्च भाग्यतः । जये पराजये वाप्यवन्तिदेशः स्थलं तव ॥२७२॥
ततो मत्प्रियहेतोस्त्वमागच्छागच्छ माऽथवा । जित्वा धारां त्वयं कौलः परदेशी प्रयास्यति ॥२७३॥
तत्ते रूपं विरूपं वा जानासि स्वयमेव तत् । अतः परं प्रवक्तुं न सांप्रतं नहि बुद्ध्यते ॥२७४॥
प्राकृतोऽपि स्वयं ज्ञातं कुरुते नेतरत् पुनः । किं पुनस्त्वं महाविद्वांस्तद् वाथारुचितं कुरु ॥२७५॥
धनपाल इति श्रुत्वा स्वभूमेः पक्षपाततः । तरसाऽगात् ततो ज्ञात्वा राजाभिमुखमागमत् ॥२७६॥
दृष्टे च पादचारेण भूपः समेत्य धीनिधिम् । दृष्टमाश्लिष्य चावादीत् क्षमस्वाविनयं मम ॥२७७॥
धनपालस्ततः साश्रुरवादीद् ब्राह्मणोऽप्यहम् । निःस्पृहो जैनलिङ्गश्चावश्यं तद्व्रतसस्पृहः ॥२७८॥
मयि मोहो महाराज विलम्बयति मामिह । भवेन्मानापमानोऽपि नह्युदासीनचेतसि ॥२७९॥

कुणिरयविज्जाठाणे[१४७१]सग्गमिओ रावणऽक्खिसिद्ध[१५२०]मिए॥१७५॥

(पच्छागीई)

(प्रे०) "सिरिफग्गु०" इत्यादि, "सिरिफग्गुमित्तसूरी" त्ति, श्रिया=चारित्रलक्ष्म्याऽन्वितः फल्गुमित्रसूरिः=फल्गुमित्रनामाचार्यः श्रीफल्गुमित्रसूरिः "हवीअ सडतीसमो जुगपहाणो' त्ति, सप्तत्रिंशो द्वितीयोदयापेक्षया पुनः सप्तदशो युगप्रधानोऽभूत् ।

अथ सार्धगाथया जन्मादिपर्यायानाह-"पुरिस०" इत्यादि, "ऽस्स" त्ति, अस्य=श्रीफल्गुमित्रसूरेः "जम्मो" त्ति, जन्म=उद्भवः, "वीरा" त्ति, वीरात्=श्रीयशोदापतिनिर्वाणगमनकालात् "पुरिसत्थबुद्धिकुलयरसखे" त्ति, पुरुषार्था धर्मा-ऽर्थ-काम-मोक्षलक्षणाश्चत्वारः, बुद्धय औत्पत्तिकी★वैनयिकी कार्मिकी--पारिणामिकीरूपाश्चतस्रः, कुलकराश्चतुर्दश, एतेपामङ्कानां पश्चानुपूर्विस्थापितानां १४४४ प्रमाणं संख्या यस्य तस्मिन् पुरुषार्थबुद्धिकुलकरसङ्ख्ये "ऽद्दे" त्ति, अब्दे=शारदे=वीरसंवत् १४४४ वत्सरेऽजायत ।

"विवाहसिवमुहरज्जुपमाणे"त्ति, ❂विवाहा ब्राह्मादयोऽष्टौ, शिवमुखाः=शम्भुमुखानि पञ्च, रज्जवश्चतुर्दश, लोकस्य चतुर्दशरज्जुमितत्वादेतेपामङ्कानां विपरीतक्रमन्यस्तानां १४५८ इति सङ्ख्यं प्रमाणं यस्मिंस्तस्मिन् विवाहशिवमुखरज्जुप्रमाणे=वीरसंवत् १४५८ अब्दे "दिक्खा" त्ति, दीक्षा जायते स्म ।

"स" त्ति, सः=श्रीफल्गुमित्रसूरिः "कुणिरयविज्जाठाणे" त्ति, कुः=पृथ्व्येका, निरयाः=नरकभूमयो रत्नप्रभादयः सप्त, विद्यास्थानानि -शिक्षा-कल्पव्याकरण छन्दो-ज्योतिपनिरुक्तरूपषडङ्ग-यजुर्वेद-ऋग्वेदसामवेदा-ऽथर्ववेदलक्षणवेदचतुष्क-मीमांसा-न्यायशास्त्र-पुराणधर्मशास्त्रात्मकानि चतुर्दश, तथा चोक्तम्--

अङ्गानि चतुरो वेदा, मीमासा न्यायविस्तर । पुराण धर्मशास्त्र च, स्थानान्याहुश्चतुर्दश ॥१॥
शिक्षा कल्पो व्याकरण, निरुक्त ज्योतिष तथा । छदश्चेति पडङ्गानि प्राहुरेतानि कोविदा ॥२॥" इति

एवं श्रीहेमचन्द्रसूरिभिरभिधानचिन्तामणिकोशेऽपि न्यगादि-

★ केचित्तु "स्वभावजा" इत्यपि वदन्ति । उक्तञ्च काव्यशिक्षायाम्-"बुद्धय.-स्वभावजा औत्पत्तिकी कर्मजा पारिणामिकी चेति ।" इति ।

❂ यदुक्त काव्यशिक्षायाम्-"अष्टौ विवाहा - अलङ्कृत्य कन्याप्रदान ब्राह्मो विवाह १, विभवविनियोगेन कन्याप्रदान प्राजापत्य. २ गोदानमिथुनदानपूर्वं आर्ष ३, यज्ञार्थम् ऋत्विज कन्याप्रदानमेव दक्षिणा म दैवत ४, मातृपितृबन्धूनामप्रामाण्यात् परस्परानुरागेण मिथोयोजनाया स गान्धर्वः ५, पणबन्धेन कन्यादानमासुर ६, प्रसह्य कन्याग्रहणाद्राक्षस ७, सुप्तप्रमत्तकन्याग्रहणात् पैशाच. ८ इत्यादि ।" इति ।

तस्मात्स एव मत्पार्श्वं शृङ्गारयतु सर्वदा । श्रुत्वेति धनपालोऽपि तुष्ट सन्मानन प्रभो ॥३१३॥
यथा स पत्तन प्राप्तो जित श्रीशान्तिसूरिभि । बुध्वाऽऽस्ते मानितास्तेन तज्ज्ञेय तच्चरित्रत ॥३१४॥
इतश्च शोभनो विद्वान् सर्वग्रन्थमहोदधि । यमकान्वितनतीर्थेशस्तुतीश्चक्रेऽतिभक्तित ॥३१५॥
तदेकध्यानत श्राद्धग्रहे त्रिर्भिक्षया ययौ । पृष्ट श्राविकया किं त्व त्रिरागा हेतुरत्र क ॥३१६॥
स प्राह चित्तव्याक्षेपान्न जाने स्वगतागते । श्राविकाऽऽस्यात परिज्ञाते गुरुभि पृष्ट एष नत ॥३१७॥
स प्राह न स्तुतिध्यानाज्जानेऽपश्यदथो गुरु । तत्काव्यान्यतिहर्षेण प्राशसत्त चमत्कृत ॥३१८॥
तदीयदृष्टिसङ्गेन तत्क्षण शोभनो ज्वरात् । आससाद पर लोक सघस्याभाग्यत कृती ॥३१९॥
तासा जिनस्तुतीना च सिद्धसारस्वत कवि । टीका चकार सौदर्यस्नेह चित्ते वहन् दृढम् ॥३२०॥
आयुरन्तं परिज्ञाय कोविदेशोऽन्यदा नृपम् । आपृच्छत पर लोक साधितु गुरुसनिधौ ॥३२१॥
श्रीमन्महेन्द्रसूरीणा पादाम्भोजपुरस्सरम् । तनु समलिखद् गेहिधर्म एव स्थित सदा ॥३२२॥
उग्रेण तपसा शुद्धदेह क्षिप्तान्तरद्विपन् । सम्यक्त्व निरतीचार पालयन्नालये गुरो॰ ॥३२३॥
तिष्ठन्निर्याप्यमान स स्थविरै श्रुतपारगै । अन्ते देह परित्यज्य श्रीसौधर्म्ममशिश्रयत् ॥३२४॥ युग्मम् ।
गुरवोऽपि तदा तस्य दृष्ट्वा छेकत्वमद्भुतम् । लोकद्वयेऽपि सन्यासपूर्व तेऽपि दिव ययौ ॥३२५॥
श्रीमन्महेन्द्रगुरुदीक्षितशोभनस्य, प्रज्ञाधनस्य धनपालकवेश्च वृत्तम् ।
श्रीजैनधर्म्मदृढवासनया लभन्ता, भव्यास्तमस्ततिहर ननु बोधिरत्नम् ॥३२६॥
श्रीचन्द्रप्रभसूरिपट्टसरसीहसप्रभ श्रीप्रभा-चन्द्र सूरिरनेन चेतसि कृते श्रीरामलक्ष्मीभुवा ।
श्रीपूर्वर्षिचरित्ररोहणगिरौ वृत्त महेन्द्रप्रभो श्रीप्रद्युम्नमुनीन्दुना विशदित शृङ्गो मुनीन्दुप्रभ ॥३२७॥
श्रीदेवानन्दसूरिर्दिशतु मुदमसौ लक्षणाद्येन हैमा-दुद्धृत्य प्राज्ञहेतोर्विहितमभिनव सिद्धसारस्वताख्यम् ।
शाब्द शास्त्र यदीयान्वयिकनकगिरिस्थानकल्पद्रुमश्च,श्रीमान् प्रद्युम्नसूरिर्विशदयति गिर न पदार्थप्रदाता ॥३२८॥" इति ।

अथ सूराचार्यं प्रकटयति–"पण्णू" इत्यादि, "सूरायरिओ जयउ" त्ति सूराचार्यः= सूरनामा सूरिर्द्रोणाचार्यस्य शिष्यो भ्रातृव्यश्च, भीमभूपतेश्च मातुलपुत्रो जयतु इति क्रियासंगतिः । किम्भूतः ? "पण्णू" त्ति प्रज्ञः प्राज्ञो वा पुनरपि किम्भूतः ? "विजिअभोअरायसहो" त्ति विशेषेण जिता=विजिता=पराभवीकृता भोजराजस्य=भोजाख्यस्य नृपतेः सभा=विद्वत्परिषद् येन स विजितभोजराजसभः ।

अमुष्यापि परिचयोऽसंक्षेपतः प्रभावकचरित एवम्—

सूराचार्य श्रिये श्रीमान् सुमन सघपूजित । यत्प्रज्ञया सुराचार्यो मात्राधिकतया जित ॥१॥
सूराचार्यप्रभोरत्र ब्रूम' किं गुणगौरवम् । येन श्रीभोजराजस्य सभा प्रतिभया जिता ॥२॥
चरित्र चित्रवित्तस्य सुधीहृद्भित्तिषु स्थितम् । ज्ञात्वा वर्णोज्ज्वल व्याख्यायते स्थैर्याय चेतस ॥३॥
अणहिल्लपुर नाम गुर्जरावनिमण्डनम् । अस्ति प्रशस्तिवत् पूर्वभूपालनयपद्धते ॥४॥
प्रतापाक्रान्तराजन्यचक्रश्चक्रेश्वरोपम । श्रीभीमभूपतिस्तत्राभवद् दु शासनार्दन ॥५॥
शास्त्रशिक्षागुरुर्द्रोणाचार्य सत्याक्षतव्रत॰ । अस्ति क्षात्रकुलोत्पन्नो नरेन्द्रस्यास्य मातुल ॥६॥
तस्य सग्रामसिंहाख्यभ्रातु पुत्रो महामति । महीपाल इति ख्यात प्रज्ञाविजितवाक्पति ॥७॥
तत्तातेऽस्तगते दैवाद् बाल्य एव प्रभो पुर । तन्माता भ्रातृपुत्र त्व प्रशाधीति प्रभु जगौ ॥८॥

"जेण" त्ति, येन = श्रीदेवसूरिणा 'णिवा" त्ति, नृपात् = गूर्जरदेशाधिपात् = कर्णदेवनाम्नो भूपात् 'रूवसिरि" त्ति, रूपश्री = रूपश्रीनाम्नी "उवाही" त्ति, उपाधिः=विरुदं लब्धा = प्राप्ता । **यदुक्तं गुर्वावल्याम्–** रूपश्रीरिति भूपदत्तविरुद श्रीदेवसूरि प्रभु ।" इति । **गुरुपर्वक्रमेऽपि–**' रूपश्रीविरुदख्यातो देवसूरिस्ततोऽभवत् ।" इति । यत्तदोर्नित्याऽभिसम्बन्धादाह– "**सो**" त्ति, सः=अनन्तरयत्पदोदितविशेषणविशिष्टः "**देवसूरी गुरू**" त्ति, देवश्चाऽसौ सूरिश्च= आचार्यो = देवसूरिः = देवनामा-ऽऽचार्यः "**देवसूरी व**" त्ति, देवानां = त्रिदशानां सूरिः= गुरुराचार्यः पण्डितोऽध्यापको वा देवसूरिः, देवसूरिरिव = बृहस्पतिरिव शुशुभे ॥१७६॥

अथ वादिवेतालसंज्ञकं विरुदं धारयतः श्रीशान्तिसूरेरभिधित्सया पथ्यार्यामाचष्टे—

जयउ सिरिसंतिसूरी सिद्धंतणिही स वाइवेयालो ।
मंताइ सत्तिजुत्तो दंसणतक्काइसत्थण्णू ॥१७७॥ (पच्छाआ)

(प्रे०) "**जयउ**" इत्यादि, '**स**' त्ति, सः = विश्रुतनामा "**सिरिसंतिसूरी**" त्ति, श्रीशान्तिसूरिः थारापद्रगच्छमुगटमणिः, श्रीविजयसिंहदेवसूरिशिष्यः, श्रीमालवंशीयो धनदेवसुतो धनश्रीकुक्षिभूः "**जयउ**" त्ति, जयतु इति क्रियासण्टङ्कः । किम्भूतः ? "**सिद्धतणिही**" त्ति सिद्धान्तानाम्=आगमशास्त्राणां निधिः=शेवधिः सिद्धान्तनिधिः "**वाइवेआलो**' त्ति वादिनां= प्रतिपक्षीभूतानां वादिनां वेताल इव वेतालो वादिवेतालः = मालवदेशाधिपभोजनृपस्य सभायां वादिनां चतुरशीतिं जित्वा मालवदेशभूमिनाथाल्लब्धयथोक्तविरुदः । "**मंताइसत्तिजुत्तो**" त्ति मन्त्रादिशक्तियुक्तः=मन्त्रप्रमुखशक्तिकलितः । पुनः किं विशिष्टः ? "**दंसणतक्काइसत्थण्णू**" त्ति दर्शनतर्कादिशास्त्रज्ञः = बौद्धादिदर्शन-न्याय प्रमाणप्रमुखशास्त्राणां ज्ञायकः ।

स च विक्रमसंवत् १०९६ वर्षे स्वर्गं गतः । **तथा चोक्तं प्रभावकचरिते–**

"समाधिना व्यतीत्याथ दिनाना पञ्चविंशतिम् । वैमानिकसुरावासमधिजग्मुर्जगन्नता ॥१२९॥
श्रीविक्रमवत्सरतो वर्षसहस्रे गते सपण्णवतौ ।
शुचिसितनवमीकुजकृत्तिकासु शान्तिप्रभोरभूदस्तम् ॥१३०॥" इति ।

तथा तपागच्छपट्टावल्यामपि–"विक्रमसंवत् पण्णवत्यधिकसहस्रवर्षे श्रीउत्तराध्यनटीकाकृत थिरापद्रगच्छीयवादिवेतालश्रीशान्तिसूरि स्वर्गभाक् ।" इति ।

तत्कृतयः (१) श्रीउत्तराध्ययन-पाइयटीका, (२) जीवविचारप्रकरणम्, (३) संघाचारचैत्यवंदनभाष्यम्, (४) धर्मरत्नप्रकरणम् (५) पर्वपञ्जिका इत्यादयः ।

श्रीउत्तराध्ययनपाइयटीकाऽऽलम्बनतो वादिदेवसूरिणा दिगम्बराचार्यकुमुदचन्द्रो वादे जितः ।

अमुष्य विस्तरकथनं प्रभावकचरित इत्थम्—

तस्मात्स एव मत्पार्श्वं शृङ्गारयतु सर्वदा । श्रुत्वेति धनपालोऽपि तुष्ट सन्मानन प्रभो ॥३१३॥
यथा स पत्तन प्राप्तो जित श्रीशान्तिसूरिभि । बुधाऽऽस्ते मानितास्तेन तज्ज्ञेय तच्चरित्रत ॥३१४॥
इतश्च शोभनो विद्वान् सर्वग्रन्थमहोदधि । यमकान्वितनतीर्थेशस्तुतीश्चक्रेऽतिभक्तित ॥३१५॥
तदेकध्यानत श्राद्धगृहे त्रिर्भिक्षया ययौ । पृष्ट श्राविकया किं त्व त्रिरागा हेतुरत्र क ॥३१६॥
स प्राह चित्तव्याक्षेपान्न जाने स्वगतागते । श्राविकाऽऽस्यात परिज्ञाते गुरुभि पृष्ट एष नतु ॥३१७॥
स प्राह न स्तुतिध्यानाज्जानेऽपश्यदथो गुरु । तत्काव्यान्यतिहर्षेण प्राशसत्त चमत्कृत ॥३१८॥
तदीयदृष्टिसङ्गेन तत्क्षण शोभनो ज्वरात् । आससाद पर लोक सवस्याभाग्यत कृती ॥३१९॥
तासा जिनस्तुतीना च सिद्धसारस्वत कवि । टीका चकार सौदर्यस्नेह चित्ते वहन् दृढम् ॥३२०॥
आयुरन्तं परिज्ञाय कोविदेशोऽन्यदा नृपम् । आपृच्छत परं लोक साधितु गुरुसनिधौ ॥३२१॥
श्रीमन्महेन्द्रसूरीणा पादाम्भोजपुरस्सरम् । तनु समलिखद् गेहिधर्मे एव स्थित सदा ॥३२२॥
उग्रेण तपसा शुद्धदेह क्षिप्तान्तरद्विपन् । सम्यक्त्व निरतीचार पालयन्नालये गुरो ॥३२३॥
तिष्ठन्निर्याप्यमान स स्थविरै श्रुतपारगै । अन्ते देह परित्यज्य श्रीसौधर्म्ममशिश्रयत् ॥३२४॥ युग्मम् ।
गुरवोऽपि तदा तस्य दृष्ट्वा छेकत्वमद्भुतम् । लोकद्वयेऽपि सन्यासपूर्वं तेऽपि दिव ययौ ॥३२५॥
श्रीमन्महेन्द्रगुरुदीक्षितशोभनस्य, प्रज्ञाधनस्य धनपालकवेश्च वृत्तम् ।
श्रीजैनधर्म्मदृढवासनया लभन्ता, भव्यास्तमस्ततिहर ननु बोधिरत्नम् ॥३२६॥
श्रीचन्द्रप्रभसूरिपट्टसरसीहसप्रभ श्रीप्रभा-चन्द्र सूरिरनेन चेतसि कृते श्रीरामलक्ष्मीभुवा ।
श्रीपूर्वर्षिचरित्ररोहणगिरौ वृत्त महेन्द्रप्रभो श्रीप्रद्युम्नमुनीन्दुना विशदित शृङ्गो मुनीन्दुप्रभ ॥३२७॥
श्रीदेवानन्दसूरिर्दिशतु मुदमसौ लक्षणात्येन हैमा-दुद्धृत्य प्राज्ञहेतोर्विहितमभिनव सिद्धसारस्वताख्यम् ।
शाब्द शास्त्र यदीयान्वयिकनकगिरिस्थानकल्पद्रुमश्च,श्रीमान् प्रद्युम्नसूरिर्विशदयति गिर न पदार्थप्रदाता ॥३२८॥" इति ।

अथ सूराचार्यं प्रकटयति-"पण्णू" इत्यादि, "सूरायरिओ जयउ" त्ति सूराचार्यः=सूरनामा सूरिर्द्रोणाचार्यस्य शिष्यो भ्रातृव्यश्च, भीमभूपतेश्च मातुलपुत्रो जयतु इति क्रियासंगतिः । किम्भूतः ? "पण्णू" त्ति प्रज्ञः प्राज्ञो वा पुनरपि किम्भूतः ? "विजिअभोअरायसहो" त्ति विशेषेण जिता=विजिता=पराभवीकृता भोजराजस्य=भोजाख्यस्य नृपतेः सभा=विद्वत्परिषद् येन स विजितभोजराजसभः ।

अमुष्यापि परिचयोऽसक्षेपतः प्रभावकचरित एवम्—

सूराचार्य श्रिये श्रीमान् सुमन सघपूजित । यत्प्रज्ञया सुराचार्यो मात्राधिकतया जित ॥१॥
सूराचार्यप्रभोरत्र ब्रूम किं गुणगौरवम् । येन श्रीभोजराजस्य सभा प्रतिभया जिता ॥२॥
चरित्र चित्रवित्तस्य सुधीहृद्भित्तिषु स्थितम् । ज्ञात्वा वर्णोज्ज्वल व्याख्यायते स्थैर्याय चेतस ॥३॥
अणहिल्लपुर नाम गूर्जरावनिमण्डनम् । अस्ति प्रशस्तिवत् पूर्वभूपालनयपद्धते ॥४॥
प्रतापाक्रान्तराजन्यचक्रश्चक्रेश्वरोपम । श्रीभीमभूपतिस्तत्राभवद् दु.शासनार्दन ॥५॥
शास्त्रशिक्षागुरुर्द्रोणाचार्य सत्याक्षतव्रत । अस्ति क्षात्रकुलोत्पन्नो नरेन्द्रस्यास्य मातुल ॥६॥
तस्य सग्रामसिंहाख्यभ्रातु पुत्रो महामति । महीपाल इति ख्यात प्रज्ञाविजितवाक्पति ॥७॥
तत्ताातेऽस्तगते दैवाद् बाल्य एव प्रभो पुर । तन्माता भ्रातृपुत्र स्व प्रशाधीति प्रभु जगौ ॥८॥

अथ ते सूरयः प्रोचु कालोऽस्य पठितु तत । क्लिष्टप्रमाणशास्त्राणि परग्रन्थेष्वधीतिन ॥३७॥
पात्र चेच्छास्त्रपाथोधेर्वादिकल्लोलित भवेत । इत्याशा नस्ततो नायमध्यायाद् व्यतिरिच्यते ॥३८॥
सिद्धसारस्वतो विद्वानथोचे प्रभुभिर्ध्रुवम् । देश श्रृङ्गारणीयोऽय मालव स्वक्रमाम्बुजै ॥३९॥
इत्याकर्ण्य प्रभु प्रोचे चेन्निर्ग्रन्थोऽयमत्र व । आपृष्टव्यस्तदा सघ प्रधानाचार्यसगत ॥४०॥
ततस्तदनुमत्या तेऽवन्तिदेशे व्यजीहरन् । वृता श्रीभीमभूपालप्रधानै मगरिच्छदै ॥४१॥
पथि सञ्चरता तेषा निशि समेत्य भारती । आदेश प्रददे वाचा प्रमादातिशयस्पृशा ॥४२॥
स्व-स्वदर्शननिष्णाता ऊर्ध्वे हस्ते त्वया कृते । चतुरङ्गसभाध्यक्ष विद्रविष्यन्ति वादिन ॥४३॥
सक्रोश योजन धारानगरीत समागमत् । तस्य तत्र गतस्य श्रीभोजो हर्षेण सम्मुख ॥४४॥
एकैकवादिविजये पण सविदधे तदा । मदीया वादिन केन जय्या इत्यभिसन्धिन ॥४५॥
लक्ष लक्ष प्रदास्यामि विजये वादिन प्रति । गूर्जरस्य बल वीक्ष्य श्वेतभिक्षोर्मया ध्रुवम् ॥४६॥ युग्मम् ।
विश्वदर्शनवादीन्द्रान् स राज्ञ पर्षदि स्थित । जिग्ये चतुरशीतिं च स्वस्वाम्युपगमस्थितान् ॥४७॥
अजैषीदूर्ध्वहस्तेन प्रत्येक प्रतिवासरम् । अनायासादसौ सारवक्ता न्यायैकनिष्ठधी ॥४८॥
लक्षास्तत्संख्यया दत्त्वा द्रव्यस्याथ महीपति । तत आह्वास्त तत्काल सिद्धसारस्वत कविम् ॥४९॥
ततोऽनुययुस्ते त स भीतो द्रव्यव्ययादत । पञ्चकोटिव्ययप्राप्तो वादिपञ्चशतीजये ॥५०॥
किं नामामुष्य जैनर्षेर्धनपालस्ततोऽब्रवीत् । शान्तिरित्यभिधा सूरेरस्य श्रुत्वेति भूपति ॥५१॥
शान्तिनाम्ना प्रसिद्धोऽस्ति वेतालो वादिना पुन । ततो वाद निषेध्यासौ सन्मान्याल प्रहीयते ॥५२॥
त (त्व ?) त्कथाशोधकत्वेन नामुमत्र विसृजये । अन्यथा मत्सभा जित्वा को यात्यक्षतविग्रह ॥५३॥
स्यु पञ्चदश लक्षेण सहस्रा गूर्जरावने । एवमङ्केऽथ तज्जज्ञे लक्षद्वादशक तत ॥५४॥
तथा षष्टिसहस्राश्च मया दत्तास्ततोऽधुना । कथा शोधयितव्याऽऽशु धनपालधियानिधे ॥५५॥
पर्यालोच्येति तेनाथ स्थापिता शान्तिसूरय । लक्षैर्द्वादशभिस्तत्र देशे चैत्यान्यचीकरत् ॥५६॥
अवशिष्टास्तथाषष्टि सहस्रा भूपदत्तत । थारापद्राभिधद्रङ्गे प्रहिता प्रभुभिस्तदा ॥५७॥
तत्रस्थादि प्रभोश्चैत्ये मूलनायकधामत । तैर्देवकुलिकाऽकारि सशालश्च रथो महान् ॥५८॥
कथा च धनपालस्य तैरशोध्यत निस्तुषम् । वादिवेताल बिरुद तदैषा प्रददे नृप ॥५९॥
कवीश्वरानुयाताश्च गूर्जरेशधरावधि । प्रत्यावृत्याथ ते प्रापु पत्तन श्रीनिकेतनम् ॥६०॥
अग्रे च तत्र वास्तव्यजिनदेवस्य धीमत । श्रेष्ठिनस्तनय पद्मनामा दष्टो महाहिना ॥६१॥
मान्त्रिकै सर्वपक्षीयैर्मन्त्रौषधविजृम्भितै । अत्यर्थ प्रतिकारेषु कृतेष्वपि न सज्जित ॥६२॥
तत उत्पाट्य गर्ताया निक्षिप्त स्वजनै सह । सर्पदष्टव्यवस्थेय पुनरुज्जीवनाशया ॥६३॥
इति विज्ञापिते शिष्यैर्जिनदेवगृहेऽगमन् । सम्बोधनार्थमाचाख्युरथ ते प्रभवस्तदा ॥६४॥
दष्ट दर्शयतास्माक प्रकाश्य क्षितिमध्यत । जिनदेवस्तदाकर्ण्य श्मशाने तै सम ययौ ॥६५॥
सुवमृत्स्नाय तस्मिंश्च दर्शिते गुरवोऽमृतम् । तत्त्व स्मृत्वाऽस्पृशन् देह दष्टश्चासौ समुत्थित ॥६६॥
गुरुपादौ नमस्कृत्य पद्म पद्मनिभानन । प्राहाह गुरव सस्वजना कथमिहागमन् ॥६७॥
प्राग्वृत्ते कथिते सद्यो जिनदेवेन हर्षत । उत्सवाद् गुरुभि सार्धं स स्व निलयमागमत् ॥६८॥
तत्पित्राभ्यर्चिता पूज्या निजमाश्रममाययु । गुरुर्वेश्मागतश्चोपकर्ता प्राप्येत केन स ॥६९॥
अथ प्रमाणशास्त्राणि शिष्यान् द्वात्रिंशत तदा । अध्यापयन्ति श्रीशान्तिसूरयश्चैत्यसंस्थिता ॥७०॥
सूरि श्रीमुनिचन्द्राख्य श्रीनड्डुलपुरादगात् । अणहिल्लपुरे चैत्यपरिपाटीविधित्सया ॥७१॥
सपत्सपत्तिरम्यश्रीश्रीसपकजिनालये । नत्वा श्रीवृषभ सूरिवृषभ प्राणमत् तत ॥७२॥

आवश्यकविधेः शास्त्रगुणनाच्चातु ते तत । अर्द्धरात्रिकफकालस्यावसरेऽपि विनिद्रकाः ॥४४॥
ज्येष्ठप्रभुक्रमाम्भोजसेवाहेवाकिनस्तत । नत्वा व्यजिज्ञपन् विश्रमयन्तश्चरणद्वयम् ॥४५॥
शरण्यं शरणायाता अश्रान्तस्रवदश्रव । शिरोभेदमृतेर्भीता उपाध्यायस्य चेष्टितम् ॥४६॥ त्रिभिर्विशेषकम् ।
श्रुत्वा प्रभुभिरादिष्ट वत्सा स्वच्छाशया ननु । एष वोऽह्राय पाठाय त्वरते ननु वैरत ॥४७॥
यद्योमयदण्डस्य सोऽर्थी तद्धि विरुध्यते । शिक्षिष्यते तथायं वो नाचरेद् विद्रव यथा ॥४८॥
इत्थमाश्वासितास्ते च स्वस्वस्थानेष्वसूषुपन् । सूराचार्योऽपि तत्रागाच्छुश्रूषाहेतवे प्रभो ॥४९॥
ददे कृतककोपात तैर्वन्दने नानुवन्दना । अप्रसादे ततो हेतु पप्रच्छाह प्रभु पुनः ॥५०॥
लोहदण्डो यमस्यैवायुध नहि चरित्रिणाम । घटते हिंस्रवस्तु स्यात् तथैव तु परिग्रहे ॥५१॥
आद्योऽपि कोऽप्युपाध्याय' पाठको न शिशुव्रजे। अहो ते स्फुरिता प्रज्ञा पुसां हृदयभेदिनी ॥५२॥
श्रुत्वेति व्यमृशच्छात्रवर्गादयमुपद्रव । उत्तस्थे च प्रभोरग्रेऽवादीत सविनय वच ॥५३॥
पूज्यहस्तसरोज न मौलौ किं व्यलसन्मम । एव निर्स्त्रिशताशङ्का मयि यूय व्यवत्त किम् ॥५४॥
काष्ठदण्डिकया देहे प्रहारो दीयते यथा । न तथा लोहदण्डेन ज्ञापनैव विधीयते ॥५५॥
मद्गुणा यदमीषां स्युरिति चिन्ता ममाभवत् । घृतपूर्णाश्चपलकैर्न स्यु सत्यमिद वच• ॥५६॥
अथ ज्येष्ठप्रभु प्राह सर्वेषा गुणसद्दति । कोट्यशेनापि नास्त्यत्र को मदस्तद्गुणेषु भो ! ॥५७॥
इत्याकर्ण्य तत सूराचार्य प्राज्यमतिस्थिति । प्राह नाहकृतोऽह को गर्वोऽनतिशयस्य मे ॥५८॥
अभिसन्धिर्ममाय तु चेन्मया पाठिता अमी । विहृत्य परदेशेषु जायन्ते वादिजित्वराः ॥५९॥
पूज्याना किरणा भूत्वा जनजाड्यहृतौ ननु । युष्माक सोऽपि शृङ्गार उन्नतिर्जिनशासने ॥६०॥
गुरव प्राहुरुत्तानमते बालेषु का कथा । किमागच्छसि लग्नस्त्व कृतभोजसभाजय ॥६१॥
श्रुत्वेत्याह स चादेश प्रमाण प्रभुसमित• । आदास्ये विकृती सर्वा कृत्वादेशममु प्रभो ॥६२॥
इत्युक्त्वा निजसस्तारेऽक्षिपत् शेषक्षण तत । सामर्ष सूरिशार्दूल शार्दूल श्रस्तफालवत् ॥६३॥
प्रात कृत्वाऽन्ववादीत् सोऽनध्यायोऽद्यास्तु पाठने । शिशुत्वाज्जहृषु शिष्या महोत्सव इवागते ॥६४॥
मध्याह्ने शुद्धमाहारमानीय यतिमण्डले । मिलिते सूरसूरि तमाह्वाययत सद्गुरु ॥६५॥
आययौ परिवेष्टे स गृह्णाति विकृतिं नहि । अनुनीतोऽपि गीतार्थै पूज्यैरप्युदिते दृढम् ॥६६॥
अमुञ्चन्नाग्रहं सङ्घेनाप्युक्ते इदमभ्यधात । मम पतिश्रवो हन्ताऽनाश्रवो मोच्यता पुन ॥६७॥
भणिष्यथाथ चेत किञ्चित्तन्ममानशन ध्रुवम् । तत सवाहयामासे गीतार्थै' सह साधुभि• ॥६८॥
तत उत्सङ्गमारोप्य शिशिक्षे तैरसौ सुधी । परदेशे विहर्ता त्व वत्स ! भूयात् सचेतन ॥६९॥
शास्त्र वंशो जाति प्रज्ञा कुलमनणुसयमा सन्ति । जयिनश्च यमा नियमास्तथापि यौवनमविश्वास्यम् ॥७०॥
इति पूज्योपदेशश्रीशृङ्गारै' स तरङ्गित । मानयन स्वान्यदेशीयलब्धवर्णांस्तपस्विन ॥७१॥
तत श्रीभीमभूपालपृच्छायै राजससदम् । सप्राप गुर्वनुज्ञातो राज्ञा ज्ञात पुरापि य ॥७२॥
सुवर्णमणिमाणिक्यमये पीठे च भूपति । न्यवेशयद् बुध बन्धु हेमान्यत सौरभाद्भुतम् ॥७३॥
तदा च मालवाधीशविशिष्टा पुनरायंयु । स्वरूपं निजनाथस्य भूपालाय व्यजिज्ञपन् ॥७४॥
देव ! त्वद्विदुषा प्रज्ञाप्रातिभै रञ्जितो नृप । श्रीभोज सम्यगुत्कण्ठा तेषु धारयते प्रभु ॥७५॥
तत प्रहिणुत प्रेक्षादक्षनाथ ! प्रसद्य तत । अन्योन्य कौतुक विद्वद्भूभृता विद्यते यथा ॥७६॥
राजा प्राह महाविद्वानास्ते मद्बान्धवो नव । परदेशे कथ नाम प्रस्थाप्योऽसौ स्वजीववत् ॥७७॥
प्रतिपत्ति ममेवास्य चेद्विधत्ते भवत्पति । प्रवेशादिषु मान च स्वयं दत्ते तदस्तु तत ॥७८॥
सूराचार्योऽपि दध्यौ च तोषाद् भाग्यमिहोदितम् । मम पूज्यप्रसादेन यत् तस्याह्वानमागमत् ॥७९॥

वद स्वमन्यदेशीयवादिना सह सङ्गतम् । अव्यक्तवादी पशुवद् योग्योऽयं तिर्यगाकृते ॥१०९॥
वदतीत्थं प्रभौ साक्रामिकसारस्वतोत्तरे । तुरङ्गमप्रतिकृतिस्तरल साऽवदद् भृशम् ॥११०॥
विकल्पैर्गहनै कष्टादप्यशक्यानुवादिभि । तथा निरुत्तर. पञ्चाकार स्व तेन लम्भित ॥१११॥
गते निर्विद्यतेऽस्मिश्च कादिशीके जनोऽवदत । अस्मिस्तपति नास्त्यन्यो वादी वाग्देवतावरात ॥११२॥
विहार कुर्वता तेषा थारापद्रपुरेऽन्यदा । देवी श्रीनागिनी व्याख्याक्षणे नित्य समृच्छति ॥११३॥
तत्पट्टे वासनिक्षेपमासनायाथ ते व्यधु । देव्या सह गुरोस्तस्य समयोऽय प्रवर्त्तते ॥११४।
अन्यदा वासनिक्षेप वैचित्त्यात् ते विसस्मरु । आसने प्रेपणे चात ऊर्ध्वस्था सा चिर स्थिता ॥११५॥
ध्यानस्थाना निशामध्ये सद्यो देवीस्वरूपिणी । मध्येमठमुपालम्भप्रदानायाययौ तदा ॥११६॥
उद्योत सूरयो दृष्ट्वा स्त्रिय चातिरतिस्थितिम् । प्रवर्त्तक मुनि प्रोचुर्नारी प्राप्ताऽत्र किं मुने । ॥११७॥
वेद्म्यह नेति तेनोक्तेऽवदद् देवी स्वय तथा । वासालाभान्ममायाहि सर्वथावृर्ध्वसस्थिते ॥११८॥
श्रुतज्ञानमयाङ्गाना भूयाश्चेद् वोऽपि विस्मृति । आयु पण्मासशेप तदभिज्ञानादत प्रभो ॥११९॥
स्वगच्छसस्थितिं कृत्वा प्रेत्य पथ्य विधत्त तत । ज्ञाते ममोचित ह्येतत् कालविज्ञापन प्रभो ॥१२०॥
इत्युक्त्वाऽन्तर्हिताया च देव्या प्रातर्निज गणम् । सघ च मन्त्रयित्वा द्वात्रिंशत्सत्रान्नमध्यत. ॥१२१॥
सुधीश्वरास्त्रय सूरिपदे तेन निवेशिता । श्रीवीरसूरि श्रीशालिभद्र सूरिस्तथापर ॥१२२॥
श्रीसर्वदेवसूरिश्च मूर्ता रत्नत्रयीव सा । सद्वृत्तलङ्कृता दीप्यमाना सत्तेजसा बभौ ॥१२३॥
नाऽभूत श्रीवीरसूरीणा कथचित् सूरिसन्तति' । तेपा राजपुरिग्रामे श्रीनेमि शाश्वत वपु ॥१२४।
शाखाद्वये परे विद्वत्कोटीरपरिवारिते । सूरयोऽद्यापि वर्त्तन्ते सघोद्धारधुरन्धरा ॥१२५॥
श्रीशान्तिसूरय श्रीमदुज्जयन्ताचल प्रति । यशोभिधानसुश्राद्धसुतसाढेन सगता ॥१२६॥
कृत्वा प्रयाणमल्पैश्च दिनैस्त गिरिमभ्ययु । श्रीनेमिं हृदये ध्यात्वा चक्रु. प्रायोपवेशनम् ॥१२७॥
धर्मध्यानाग्निनिर्दग्धभवार्तिविततैधस । अज्ञानक्षुत्तृपानिद्राप्रभृत्यन्त प्रतीतय ॥१२८॥
समाधिना व्यतीत्याथ दिनाना पञ्चविंशतिम् । वैमानिकसुरावासमधिजग्मुर्जगन्नता ॥१२९॥
श्रीविक्रमवत्सरतो वर्पसहस्रे गते सषण्णवतौ (१०९६) ।
शुचिसितिनवमीकुजकृत्तिकासु शान्तिप्रभोरभूदस्तम् ॥१३०॥
इत्थ श्रीशान्तिसूरेर्वरचरितमिद वादिवेतालनाम्न , पूर्वश्रीसिद्धसेनप्रभृतिसुचरितव्रातजातानुकारम् ।
अद्यप्रातीनविद्वज्जनपरिणमतामादधान श्रिये स्ता-दन्वाक्चाचन्द्रकाल विबुधजनशतै सम्यगभ्यस्यमानम् ॥
श्रीचन्द्रप्रभसूरिपट्टसरसीहसप्रभ' श्रीप्रभा-चन्द्र सूरिरनेन चेतसि कृते श्रीरामलक्ष्मीभुवा ।
श्रीपूर्वर्पिचरित्ररोहणगिरौ शृङ्गोऽगमत् पोडश , श्रीप्रद्युम्नमुनीन्दुना विशदित श्रीशान्तिसूरिप्रथ॥।१३२॥" इति

श्रीधनपालकविना विक्रमसंवत् १०२९ वर्षे देशीनाममाला रचिता ।

उक्तञ्च तपागच्छपट्टावल्याम्—

तथा विक्रमसवदेकोनत्रिशदधिकदशशत १०२९ वर्षे धनपालेन देशीनाममाला कृता ।" इति ॥१७७॥

अथ श्रीमहेन्द्रसूरिं तच्छिष्यश्रीशोभनमुनि तथा श्रीसूराचार्य व्याजिहीर्पु: पथ्यार्या वक्ति—

जयउ महिंदायरिओ पहावगो सोहणो य तस्सीसो ।
पराणू सूरायरिओ जयउ विजिअभोअरायसहो ॥१७८॥(पच्छाज्जा)

तस्मात् सर्वेऽपि सगत्य दर्शनस्थमनीपिण । कुरुध्वमेकमेवेद सन्दिहाम यथा नहि ॥११३॥
विज्ञप्त मन्त्रिमुख्यैस्तु भूप प्रान्त्योऽपि कोऽपि न । समर्थोऽपि विधाताऽऽसीदीदृक्षस्येह कर्मण ॥११४॥
भूपति प्राह किं कोऽपि परमारान्वये पुरा । आसीत् स्वशक्तितो भोषता सगौड दक्षिणापथम् ॥११५॥
तूष्णीकेष्विति विश्रुत्य तेपु भूपो निजैर्नरै । समपिण्डयदेकत्र वाटके तान् पशूनिव ॥११६॥
सहस्रसख्यया तत्र पु स स्त्रीरपि चानयत् । भोक्तु नादाच्च सर्वेपामैकमत्यचिकीर्षया ॥११७॥
अनादिसिद्धशास्त्रौघप्रमाणैश्च निजैनिजै । मतिरेका कथ तेपा वान्येष्वेको यथा रस ॥११८॥
क्षुधाबाधापरीणामादैकमत्य त्वजायत । जीवो निज कथ रक्ष्य इति चिन्तामहाज्वरे ॥११९॥
तन्मध्ये दर्शनस्थित्या सूराचार्योऽपि चागमत । सर्वैरैक्येन सोऽभाणि सान्त्वनापूर्वक तदा ॥१२०॥
भूपाल काल एवाय य एव दर्शनव्रजे । ऐक्यबुद्धि विधित्सुरतत्र भूत न भविष्यति ॥१२१॥
भवन्तो गूर्जराश्छेका वाक्प्रपञ्चेन केनचित् । निवर्त्तयध्वमेन कुविकल्पादमुतो द्रढात ॥१२२॥
पर सहस्रलोकाना भवन्त प्राणदानत । उपार्जयध्वमतुल्य पुण्य यद्गणनातिगम् ॥१२३॥
सूराचार्यस्तत प्राहातिथीना न किमागतौ । कार्य भवेन्महीशोऽपि न न प्रतिवदेत किमु ॥१२४॥
परन्तु दर्शनश्रेणिराराध्याऽनादिपद्धति । तदुक्तोपक्रम किञ्चित् करिष्यामो विमोचकम् ॥१२५॥
अमात्यपार्श्वतो भूपपुरतोऽख्यापयद् गुरु । आयातयातमस्माक नृपेण सह नाग्रत ॥१२६॥
पर दर्शनिलोकाना बहूनामनुकम्पया । किंचिद्वदामि चेद्भूपोऽवधारयति तत्त्वत ॥१२७॥
राजापि शीघ्रमायातु गूर्जर कविकुञ्जर । इत्युक्ते मन्त्रिभि सार्धं स ययौ राजमन्दिरम् ॥१२८॥
अवदद् भूपते । अभ्यागतानाभातिथ्यमद्भुतम् । उचित विदधे सम्यक् तप एव तपस्विनाम् ॥१२९॥
पर न न. स्वक कार्य दर्शनानि धृतानि यत् । तत्तु दूयेत तेनैव वय यामो भुव स्वकाम् ॥१३०॥
तत्रापि हि गता किं नु स्वरूप कथयेमहि । धारापुरश्च सस्थान पृच्छामो भवदन्तिके ॥१३१॥
राजाहाभ्यागताना वो नाह किमपि समुखम्. भणाम्येषा तु पार्थक्ये हेतु पृच्छामि निश्चितम् ॥१३२॥
स्वरूप मत्पुरो यूय श्रृणुताव्यग्रचेतस । चतुर्भिरधिकाशीतिः प्रासादानामिह स्थिता ॥१३३॥
चतुष्पथानि तत्सख्यानि च प्रत्येकमस्ति च । चतुर्विंशतिरट्टानामेव पुरि च सूत्रणा ॥१३४॥
सूरि प्राहैकमेकाट्ट कुरु किं बहुभि कृतै । एकत्र सर्व लभ्येत लोको भ्रमति नो यथा ॥१३५॥
राजाऽवदत पृथग्वस्त्वर्थिनामेकत्र मीलने । महाबाधा ततश्चक्रे पृथग् हट्टावली मया ॥१३६॥
इत्याकर्ण्यावदत सूरिर्भूरिर्विक्तृत्वकेलिपु । विद्वानपि महाराज । विचारयसि किं नहि ॥१३७॥
स्वकृतान्यपि हट्टानि भङक्तु न क्षमसे यदि । अनादिदर्शनानि त्व कथ ध्वस्तु समुद्यतः ॥१३८॥
दयार्थी जैनमास्थेयाद् रसार्थी कौलदर्शनम् । वेदाश्च व्यवहारार्थी मुक्त्यर्थी च निरञ्जनम् ॥१३९॥
चिरप्ररूढचित्तस्थावलेपै सकलो जन । एक कथ भवेत तस्मान्महीपाल । विचिन्तय ॥१४०॥
श्रुत्वेति भ्रष्टकुग्राहावलेपो भूपतिस्तदा । समान्य भोजयित्वा च दर्शनान्यमुचद् वृते ॥१४१॥
अवस्थेय भवद्भिश्च सागत्याग्रहमाह्वयम् । इत्थ बहुमतोऽगच्छन् निज सूरिरूपाश्रयम् ॥१४२॥
तत्र व्याकरण श्रीमद्भोजराजविनिर्मितम् । तच्च विद्यामठे छात्रै पठ्यतेऽहर्निश भृशम् ॥१४३॥
मिलन्ति सुधिय सर्वे तत्राकारणमागमत । तत प्रचलित सूरि श्रीमान् बूटसरस्वती ॥१४४॥
सहैष्यामो वयमपि सूराचार्येण जल्पिते । गूर्जरावनिविद्वत्ताशङ्कया च न्यषेधि तै ॥१४५॥
दर्शनार्थे परिश्रान्ता यूयमद्यावतिष्ठथ । सदोद्यत पुनरसौ प्राह तत्प्रेक्षणोत्सुक ॥१४६॥
तारुण्ये क श्रमो युष्मादृशविद्वन्निरीक्षणे । कुतूहलाद् विहारो न समागच्छाम एव तत् ॥१४७॥
अथ तेऽप्यनुमन्तारोऽप्रतिषेधेन तान् सह । नीतवन्तस्तदा पाठशालाया शङ्कितास्तदा ॥१४८॥

वद त्वमन्यदेशीयवादिना सह सङ्गतम् । अव्यक्तवादी पशुवद् योग्योऽय तिर्यगाकृते ॥१०९॥
वदतीत्थं प्रभौ साक्रामिकसारस्वतोत्तरे । तुरङ्गमप्रतिकृतिस्तरल साऽवदद् भृगम् ॥११०॥
विकल्पैर्गहनैः कष्टादप्यशक्यानुवादिभि । तथा निरुत्तर पञ्चाकार स्व तेन लम्भित ॥१११॥
गते निर्विद्यतेऽस्मिश्च कादिशीके जनोऽवदत् । अस्मिस्तपति नास्त्यन्यो वादी वाग्देवतावरात ॥११२॥
विहार कुर्वता तेषा थारापद्रपुरेऽन्यदा । देवी श्रीनागिनी व्याख्याक्षणे नित्य समभ्यति ॥११३॥
तत्पट्टे वासनिक्षेपमासनायाथ ते व्यधु । देव्या सह गुरोस्तस्य समयोऽय प्रवर्त्तते ॥११४॥
अन्यदा वासनिक्षेप वैचित्त्यात् ते विसस्मरु । आसने प्रेषणे चात ऊर्ध्वस्था सा चिर स्थिता ॥११५॥
ध्यानस्थाना निशामध्ये सद्यो देवीस्वरूपिणी । मध्येमठमुपालम्भप्रदानायाययौ तदा ॥११६॥
उद्योत सूरयो दृष्ट्वा स्त्रिय चातिरतिस्थितिम् । प्रवर्त्तक मुनिं प्रोचुर्नारी प्राप्ताऽत्र किं मुने । ॥११७॥
वेद्म्यह नेति तेनोक्तेऽवदद् देवी स्वय तथा । वासालाभान्ममायाही सव्यथावूर्ध्वसंस्थिते ॥११८॥
श्रुतज्ञानमयाङ्गाना भूयाच्चेद् वोऽपि विस्मृति । आयु षण्मासशेष तदभिज्ञानादत प्रभो ॥११९॥
स्वगच्छसस्थितिं कृत्वा प्रेत्य पथ्य विधत्त तत । ज्ञाते ममोचित ह्येतत कालविज्ञापन प्रभो ॥१२०॥
इत्युक्त्वाऽन्तर्हितायां च देव्या प्रातर्निज गणम् । सघ च मन्त्रयित्वा द्वात्रिंशतसत्पात्रमध्यत ॥१२१॥
सुधीश्वरास्त्रय सूरिपदे तेन निवेशिता । श्रीवीरसूरि श्रीशालिभद्र सूरिस्तथापर ॥१२२॥
श्रीसर्वदेवसूरिश्च मूर्ता रत्नत्रयीव सा । सद्वृत्तलङ्कृता दीप्यमाना सत्तेजसा बभौ ॥१२३॥
नाऽभूत श्रीवीरसूरीणा कथचित सूरिसन्तति । तेषा राजपुरिग्रामे श्रीनेमि शाश्वत वपु ॥१२४॥
शाखाद्वये परे विद्वत्कोटीरपरिवारिते । सूरयोऽद्यापि वर्त्तन्ते सघोद्धारधुरन्धरा ॥१२५॥
श्रीशान्तिसूरय श्रीमदुज्जयन्ताचल प्रति । यशोभिधानसुश्राद्धसुतसाढेन सगता ॥१२६॥
कृत्वा प्रयाणमल्पैश्च दिनैस्त गिरिमभ्ययु । श्रीनेमिं हृदये ध्यात्वा चक्रु प्रायोपवेशनम् ॥१२७॥
धर्मध्यानाग्निनिर्दग्धभवार्तिविततैधस । अज्ञानक्षुत्तृषानिद्राप्रभृत्यन्न प्रनीतय ॥१२८॥
समाधिना व्यतीत्याथ दिनाना पञ्चविंशतिम् । वैमानिकसुरावासमधिजग्मुर्जगन्नता ॥१२९॥
श्रीविक्रमवत्सरतो वर्षसहस्रे गते सषण्णवतौ (१०९६) ।
शुचिसितनवमीकुजकृत्तिकासु शान्तिप्रभोरभूदस्तम् ॥१३०॥

इत्थ श्रीशान्तिसूरेर्वरचरितमिद वादिवेतालनाम्न, पूर्वश्रीसिद्धसेनप्रभृतिसुचरितव्रातजातानुकारम् । अद्यप्राचीनविद्वज्जनपरिणमतामादधान श्रिये स्ता-न्न्याच्चाचन्द्रकाल विबुधजनशतैः सम्यग्भ्यस्यमानम् ॥
श्रीचन्द्रप्रभसूरिपट्टसरसीहसप्रभः श्रीप्रभा-चन्द्र सूरिरनेन चेतसि कृते श्रीरामलक्ष्मीभुवा । श्रीपूर्वर्षिचरित्ररोहणगिरौ शृङ्गोऽगमत् षोडश, श्रीप्रद्युम्नमुनीन्दुना विशदित श्रीशान्तिसूरिप्रथा॥१३२॥" इति

श्रीधनपालकविना विक्रमसंवत् १०२९ वर्षे देशीनाममाला रचिता ।

उक्तञ्च तपागच्छपट्टावल्याम्—

तथा विक्रमसवदेकोनत्रिंशदधिकदशशत १०२९ वर्षे धनपालेन देशीनाममाला कृता ।" इति ॥१७७॥

अथ श्रीमहेन्द्रसूरिं तच्छिष्यश्रीशोभनमुनिं तथा श्रीसूराचार्य व्याजिहीर्षुः पथ्यार्या वक्ति—

जयउ महिंदायरिओ पहावगो सोहणो य तस्सीसो ।
पराणू सूरायरिओ जयउ विजिअभोअरायसहो ॥१७८॥(पच्छाज्जा)

तस्मात् सर्वेऽपि सगत्य दर्शनस्थमनीपिण । कुरुध्वमेकमेवेदं मन्दिरनाम यथा नहि ॥११३॥
विज्ञप्त मन्त्रिमुख्यैस्तु भूप प्रान्योऽपि कोऽपि न । समर्थोऽपि विधानाऽऽसीदीन्दृशस्येह कर्मण ॥११४॥
भूपति प्राह किं कोऽपि परमारान्वये पुरा । आसीन् स्वशक्तितो मोपता सगौड दक्षिणापथम् ॥११५॥
तूष्णीकेष्विति विश्रुत्य तेषु भूपो निजैर्नरे । समपिण्डयदेकत्र वाटके तान पशूनिव ॥११६॥
सहस्रसख्यया तत्र पुस स्त्रीरपि चानयत । भोक्तु नादाच्च सर्वेषामेकमत्यचिकीर्षया ॥११७॥
अनादिसिद्धशास्त्रौघप्रमाणेऽच निजेनिज । मतिरेका कथ तेषा वान्योन्येको यथा रस ॥११८॥
क्षुधाबाधापरीणामादेकमत्य त्वजायत । जीवो निज कथ रक्ष्य इति चिन्तामहाज्वरे ॥११९॥
तन्मध्ये दर्शनस्थित्या सूराचार्योऽपि चागमत । सर्वरैक्येन सोऽभाणि सान्त्वनापूर्वक तदा ॥१२०॥
भूपाल काल एवाय य एव दर्शनव्रजे । ऐक्यबुद्धि विधित्सुस्तन्न भूत न भविष्यति ॥१२१॥
भवन्तो गूर्जराश्चैवा वाक्प्रपञ्चेन केनचित । निवर्त्तयध्वमेन कुविकल्पादमुतो नृपान ॥१२२॥
पर सहस्रलोकाना भवन्त प्राणदानत । उपार्जयध्वमत्युत्र पुण्य यद्गणनातिगम् ॥१२३॥
सूराचार्यस्तत प्राहातिथीना न किमागतौ । कार्यं भवेन्महीशोऽपि न न प्रतिवदेत किमु ॥१२४॥
परन्तु दर्शनश्रेणिराराध्याऽनादिपद्धति । तदुक्तोपक्रम किञ्चित् करिष्यामो विमोचकम् ॥१२५॥
अमात्यपार्श्वतो भूपपुरतोऽख्यापयद् गुरु । आयातयातमस्माक नृपेण सह नाग्रत. ॥१२६॥
पर दर्शनिलोकाना बहूनामनुकम्पया । किंचिद्वदामि चेद्भूपोऽवधारयति तत्त्वत. ॥१२७॥
राजापि शीघ्रमायातु गूर्जर कविकुञ्जर. । इत्युक्ते मन्त्रिभि सार्वं स ययौ राजमन्दिरम् ॥१२८॥
अवदद् भूपते । अभ्यागतानामातिथ्यमद्भुतम् । उचित विदधे सम्यक् तप एव तपस्विनाम् ॥१२९॥
पर न न. स्वक कार्यं दर्शनानि वृतानि यत् । तत्तु दूयेत तेनैव वय यामो भुव स्वकाम ॥१३०॥
तत्रापि हि गता किं नु स्वरूप कथयेमहि । धारापुरश्च सस्थान पृच्छामो भवदन्तिके ॥१३१॥
राजाहाभ्यागताना वो नाह किमपि समुखम् भणाम्येषा तु पार्थक्ये हेतुं पृच्छामि निश्चितम् ॥१३२॥
स्वरूप मत्पुरो यूय शृणुताव्यग्रचेतस । चतुर्भिरधिकाशीति. प्रासादानामिह स्थिता ॥१३३॥
चतुष्पथानि तत्सख्यानि च प्रत्येकमस्ति च । चतुर्विंशतिरट्टानामेव पुरि च सूत्रणा ॥१३४॥
सूरि प्राहैकमेकाट्ट कुरु किं बहुभि कृतै । एकत्र सर्वं लभ्येत लोको भ्रमति नो यथा ॥१३५॥
राजाऽवदत पृथग्वस्त्वर्थिनामेकत्र मीलने । महाबाधा ततश्चक्रे पृथग् हट्टावली मया ॥१३६॥
इत्याकर्ण्यावदत सूरिर्भूरिवक्तृत्वकेलिषु । विद्वानपि महाराज । विचारयसि किं नहि ॥१३७॥
स्वकृतान्यपि हट्टानि भङक्तु न क्षमसे यदि । अनादिदर्शनानि त्व कथ ध्वस्तुं समुद्यत ॥१३८॥
दयार्थी जैनमास्थेयाद् रसार्थी कौलदर्शनम् । वेदाश्च व्यवहारार्थी मुक्त्यर्थी च निरञ्जनम् ॥१३९॥
चिरप्ररूढचित्तस्थावलेपै. सकलो जन । एक कथं भवेत तस्मान्महीपाल । विचिन्तय ॥१४०॥
श्रुत्वेति भ्रष्टकुग्राहावलेपो भूपतिस्तदा । समान्य भोजयित्वा च दर्शनान्यमुचद् धृते ॥१४१॥
अवस्थेय भवद्भिश्च सागत्याग्रहमाह्वयम् । इत्थ बहुमतोऽगच्छन् निज सूरिरुपाश्रयम् ॥१४२॥
तत्र व्याकरण श्रीमद्भोजराजविनिर्मितम् । तच्च विद्यामठे छात्रै पठ्यतेऽहर्निश भृशम् ॥१४३॥
मिलन्ति सुधिय सर्वे तत्राकारणमागमत । तत प्रचलित सूरि श्रीमान् कूटसरस्वती ॥१४४॥
सहैष्यामो वयमपि सूराचार्येण जल्पिते । गूर्जरावनिविद्वत्ताशङ्कया च न्यषेधि तै ॥१४५॥
दर्शनार्थे परिश्रान्ता यूयमद्यावतिष्ठथ । सदोद्यत पुनरसौ प्राह तत्प्रेक्षणोत्सुक ॥१४६॥
तारुण्ये क श्रमो युष्मादृशविद्वन्निरीक्षणे । कुतूहलाद् विहारो न समागच्छाम एव तत् ॥१४७॥
अथ तेऽप्यनुमन्तारोऽप्रतिषेधेन तान् सह । नीतवन्तस्तदा पाठशालाया शङ्कितास्तदा ॥१४८॥

शुभेऽह्नि सूरिमाहूयास्त ज्ञानाज्ज्ञात्वा स तद्ध्रुवम् । निश्चित्योवाच तद्द्रव्यं स्थानचिन्ताऽऽप स द्विज ॥२७॥
चत्वारिंशत्सुवर्णस्य टङ्कलक्षा विनिर्ययुः । दृष्टेऽपि निःस्पृहोत्तमः सूरिः स्वोपाश्रयं ययौ ॥२८॥
श्रीमतः सर्वदेवस्य महेन्द्रस्य प्रभोस्तथा । दान-ग्रहणयोर्वादो वर्षं यावन् तदाऽभवत् ॥२९॥
अन्यदा सत्यसन्धत्वाद् ब्राह्मणः सूरिमाह च । देयद्रव्येऽत्र ते दत्ते स्वगृहं प्रविशाम्यहम् ॥३०॥
सूरिः प्राहाभिरुचितं ग्रहीष्ये वचनं मम । भवत्विदं ततो मित्र गृहाण त्वं द्विजोऽवदत् ॥३१॥
सूरिराह सुतद्वन्द्वाद् देह्येकं नन्दनं मम । सत्यप्रतिज्ञता चेत् ते न वा गच्छ गृहं निजम् ॥३२॥
इतिकर्तव्यतामूढो द्विजः कष्टेन सोऽवदत् । प्रदास्यामि ततो वेश्म निजं चिन्तातुरो ययौ ॥३३॥
तत्रानास्तृतखट्वायां शिश्येऽसौ निद्रया विना । दृष्टश्च धनपालेनागतेन नृपसौधतः ॥३४॥
विषादः किं निमित्तोऽयं नन्दने मयि तिष्ठति । यथादिष्टकरे तत् त्वमाख्याहि मम कारणम् ॥३५॥
ततः प्राह पिता वत्स । सत्पुत्रा हि भवादृशाः । पित्रादेशविधाने स्युरीदृग्गाढाभिसन्धयः ॥३६॥
ऋणात् पितरं पाति नरकादुद्धरत्यथ । सद्गतिं च प्रदत्ते यो वेदे प्रोक्तः सुतः स च ॥३७॥
श्रुति स्मृति-पुराणानामभ्यासस्य कुलस्य च । फलं तदेव युष्माकं यद् ऋणादस्मदुद्धृतिः ॥३८॥
ततः शृण्ववधानात् त्वं सन्ति जैना महर्षयः । महेन्द्रसूरयो यैस्ते द्रव्यमीदृक् प्रदर्शितम् ॥३९॥
यथाभिरुचितं चैषामर्धदेयं प्रतिश्रुतम् । ततः पुत्रद्वयादेकं याचन्ते करवै हि किम् ॥४०॥
सङ्कटादमुतो वत्स । त्वयैव ह्यधुना वयम् । मोच्यामहे ततस्तेषां शिष्यो मत्कारणाद् भव ॥४१॥
कोपगर्भं तदाह श्रीधनपालो धियां निधिः । तातोक्तं भवता यादृग् नेदृक् कोऽप्युचितं वदेत् ॥४२॥
साकाश्यस्थानसङ्काशाः वयं वर्णेषु वर्णिताः । चतुर्वेदविदः सङ्गपारायणभृतः सदा ॥४३॥
तथा श्रीमुञ्जराजस्य प्रतिपन्नसुतोऽभवत् (ऽभवम्) । श्रीभोजबालसौहार्दभूमिसुरो ह्यहम् ॥४४॥
तत्पूर्वजानिह स्वीयान् पुत्रो भूत्वा प्रपातये । श्वभ्रे पतितशूद्राणां दीक्षया ह्यवगीतया ॥४५॥
एकस्त्वमृणतो मोच्यः पात्याः सर्वेऽपि पूर्वजाः । इमं कुव्यवहारं नाधास्ये सज्जननिन्दितम् ॥४६॥
कार्येणानेन नो कार्यं मम स्वरुचितं कुरु । तातमित्यवमत्यामुं स तस्मादन्यतो ययौ ॥४७॥
अश्रुपूर्णाकुलाक्षोऽसौ निराशो गुरुसङ्कटे । यावदस्ति समायातस्तावदागात् सुतोऽपरः ॥४८॥
पृष्टस्तेनाऽपि दैन्येऽत्र निमित्तं स तदाऽवदत् । धनपालेन कुत्रापि कार्ये प्रतिहता वयम् ॥४९॥
भवान् बालस्ततः किंतु तत्र प्रतिविधास्यते । गच्छ स्वकर्मभोक्तारो भविष्याम स्वलक्षणैः ॥५०॥
निराशं वाक्यमाकर्ण्य तत्पितुः शोभनोऽवदत् । मा तात । विह्वलो भूया मयि पुत्रे सति ध्रुवम् ॥५१॥
धनपालो राजपूज्यः कुटुम्बभरणाक्षमः । निश्चितस्तत्प्रसादेन भवतादिष्टमाचरे ॥५२॥
वेद-स्मृति-श्रुतिस्तोमपारगः पण्डितोऽग्रजः । कृत्याकृत्येषु निष्णातः स वेवेक्तु यथारुचि ॥५३॥
अहं तु सरलो बाल्यादेतदेव विचारये । पित्रादेशविधेरन्यो न धर्मस्तनुजन्मनाम् ॥५४॥
अत्र कृत्यमकृत्यं वा नैवाहं गणयाम्यतः । कूपे क्षिप निपादानां मामर्पय यथारुचि ॥५५॥
श्रुत्वेति सर्वदेवश्च तं बाढं परिषस्वजे । मामृणान्मोचयित्वा त्वं समुद्धर महामते । ॥५६॥
ततः प्राग्युक्तकार्यं तच्छ्रावितोऽसौ सुतोत्तमः । अतिहर्षात् ततः प्राह कार्यमेतन् प्रियं प्रियम् ॥५७॥
श्रीजैना मुनयः सत्त्वनिधयस्तपसोज्ज्वलाः । तत्सन्निधाववस्थानं सद्भाग्यैरेव लभ्यते ॥५८॥
जीवानुकम्पया धर्मः स च तत्रैव तिष्ठति । चिह्नं यत्सत्यधर्मस्य ज्ञानमीदृक् प्रतीतिदम् ॥५९॥
क स्थास्यति गृहावासे विषये चिकिलाकुले । इदं कार्यमिदं कार्यमिति चिन्तार्तिजर्जरे ॥६०॥
बिभेत्युभयथा बन्धुर्वल्लभाया धनप्रियः । असन्तुष्टधियस्तिष्ठन्त्स्वपि भोग्येषु वस्तुषु ॥६१॥
भमापीदृग्गतिः कन्यासम्बन्धे भाविनो ध्रुवम् । तत्तात । मत्प्रिये कार्ये शङ्कसे किं निषेधतः ॥६२॥

तेन चार्द्धासने दत्तेऽग्रजे नोपाविशत्त तदा । ऊचे च पूज्य एव त्वमसु यो धर्ममाश्रय ॥९८॥
जिनेन्द्रदर्शन धर्ममूलं भोजनृपाज्ञया । यन्निर्वास्य मयोपार्जि नान्तस्तस्य महाहम ॥९९॥
सर्वदेव पिता त्व चानुज एतौ महामती । यावेन सुगुरु धर्ममाद्रियेथा भवच्छिदे ॥१००॥
वयमत्र पुनर्धर्माभासे धर्मतया श्रिते । स्थिता गति न जानीम कामपि प्रेत्य सश्रयाम् ॥१०१॥
तदाख्याहि मदाम्नायोदधिरत्नानुज स्फुटम् । धर्म शर्मकरं कर्ममर्मोच्छेदविधायिनम् ॥१०२॥
अथ श्रीशोभनो विद्वान बन्धौ स्नेहभर वहन् । उवाच त्व कुशाधा । शृणु धर्म कृपैव यत ॥१०३॥
देव-धर्म-गुरूणां च तत्त्वान्यवहित शृणु । देवो जिनो महामोहस्मरमुख्यारिजित्वर ॥१०४॥
स्वय मुक्त परान्मोचयितुं सामर्थ्यभूर्भृशम् । प्रदाता परमानन्दपदस्य भगवान् ध्रुवम् ॥१०५॥
शापानुग्रहकर्तारो मग्ना विषयकर्दमे । स्त्रीशस्त्राक्षस्रगाधारास्ते देवाः स्युर्नृपा इव ॥१०६॥
गुरु शमदमश्रद्धासयमश्रेयसा निधि । कर्मनिर्जरण सक्त सदा सचरिसवर ॥१०७॥
परिग्रहमहारम्भो जीवहिंसाकृतोद्यम । सर्वाभिलाषसम्पन्नो ब्रह्महीन कथ गुरु ॥१०८॥
सत्यास्तेयदयाशौचक्षमाब्रह्मतप क्रिया । मृदुत्वार्जवसन्तोषा धर्मोऽय जिनभाषित ॥१०९॥
अवद्यवस्तुदानेन भवेच्च पशुहिंसया । अधर्मो धर्मवत्ख्यातो नार्हे कृत्रिमवस्तुवत् ॥११०॥
समुवाच तत श्रीमान् धनपाल श्रियां निधि । प्रतिपन्नो मया जैनो धर्मे सद्गतिहेतवे ॥१११॥
तत श्रीसन्महावीरचैत्यं गत्वा ननाम च । वीतरागनमस्कारं श्लोकयुग्मेन सोऽब्रवीत् ॥११२॥ तथाहि-

बल जगद् ध्वसनरक्षणक्षम क्षमा च किं सगमके कृतागसि ।
इतीव सञ्चिन्त्य विमुच्य मानस रुषेव रोषस्तव नाथ निर्ययौ ॥११३॥

कतिपयपुरस्वामी कायव्ययैरपि दुर्ग्रहो, मितवितरिता मोहेनासौ पुरानुसृतो मया ।
त्रिभुवनविभुर्बुद्ध्याऽऽराध्योऽधुना स्वपदप्रद, प्रभुरधिगतस्तत्प्राचीनो दुनोति दिनव्यय ॥११४॥
अन्यदा पूर्णिमासन्ध्यासमये नृपमब्रवीत् । जैनदर्शनसचारहेतवे देशमध्यन ॥११५॥
राजस्तव यशोज्योत्स्नाधवलाम्बरविस्तर. । प्रकटस्तमसो हन्ता भूयादर्थप्रकाशक ॥११६॥
राजाऽवदन्मया ज्ञातोऽभिसन्धिर्मन्त्रिते तत । श्वेताम्बराश्चरन्त्वत्र देशे को दर्शन द्विषन् ॥११७॥
ततो धारापुरीसघ संगत्याज्ञापयत प्रभो । श्रीमन्महेन्द्रसूरेस्तत् तत्रायान्मङ्क्षु सोऽप्यथ ॥११८॥
क्रमेण धनपालश्च धर्मतत्त्वविचक्षण । दृढसम्यक्त्वनिष्ठाभिर्ध्वस्तमिथ्यामतिर्बभौ ॥११९॥

राज्ञा सह महाकालभवने सोऽन्यदा ययौ । तन्मण्डपगवाक्षे चोपाविशन्न शिवाग्रत ॥१२०॥
राज्ञाहूत स च द्वाराग्रत स्थित्वा झटित्यपि । व्यावृत्य त्रिस्ततो भूप पप्रच्छैन सविस्मय ॥१२१॥
सखे । किमिदमित्यत्र पृष्टे स प्राह सङ्घभृत । देवोऽस्ति शक्तिसम्बद्धो ब्रीडया न विलोक्यते ॥१२२॥
राजाह दिवसेष्वेतावत्सु किं त्वीदृशोऽर्चित । भवता प्राह सोऽह च बालत्वाल्लज्जितो नहि ॥१२३॥
दिनानीयन्ति लोकश्च भवन्तोऽपीदृशा यत । शुद्धान्तान्तर्वधूसक्ते त्वय्यपीक्षितुमक्षण ॥१२४॥
कामसेवापरै प्राच्यैरपि भूपैर्भवादृशै । बलित्वादर्चन त्वस्य प्रवर्तितमिहेदृश ॥१२५॥ यत —
अवरह देवह सिरु पुज्जिअइ महएवह पुणु लिगु । बलिआ ज जि प्रतिष्ठइ त जगु मन्नइ चगु ॥१२६॥
स्मित्वा दध्यौ च भूपालो हास्य सत्यसम ह्यद । पृच्छाम्यपरमप्यस्मिन्नेतदुत्तरसस्पृह ॥१२७॥
बहिर्भृङ्गिरिटेर्मूर्तिं दृष्ट्वा प्राह च कौतुकात् । एष किं दुर्बलो जल्प । सिद्धसारस्वतोऽसि भो । ॥१२८॥
अथाह धनपालोऽपि सत्योक्तौ भवति क्षण । अस्तु वा सत्यकथने को दोषो नस्तत शृणु ॥१२९॥ तथाहि-

दिग्वासा यदि तत्किमस्य धनुषा सास्त्रस्य किं भस्मना,
भस्माप्यस्य किमङ्गना यदि च सा काम परिद्वेष्टि किम् ।

युगादिनाथ श्रीनेमिचरिताद्भुतकीर्तनात् । इतिवृत्तं द्विसन्धानं व्यधात् स कविशेखरः ॥२५४॥
य· पूर्वं पिपठी शिष्यवर्गस्तमिह सूरिराट् । सम्यग् निष्पाद्य वादीन्द्रतया स समयोऽजयत् ॥२५५॥
श्रीद्रोणसूरिणोऽङ्गिन्या परलोके सुसाधिते । क्षितावक्षामचारित्रपवित्रः सूरसद्गुरुः ॥२५६॥
प्रभावनाभि श्रीसङ्घमुन्नमय्य श्रुतोदधि । शिष्यं निष्पाद्य सम्पाद्य जैनप्रवचनोन्नतिम् ॥२५७॥
योग्यं सूरिपदे न्यस्य भारमत्र निवेश्य च । प्रयोपवेशनं पञ्चत्रिंशद्दिनमितं दधौ ॥२५८॥
आत्मारामादरः सम्यग् योगत्रयनिरोधतः । श्रीभीमभूपतेर्बन्धुरुत्तमां गतिमाश्रयत्॥२५६॥चतुर्भिः कलापकम् ।
श्रीसूराचार्यवृत्तं व्यरचि परिचितं वादविद्याविनोद-क्षुभ्यद्वादिप्रवादं किमपि गुरुमुखादन्यतो वाथ किञ्चित्।
श्रेयो देयादमेयं जिनपतिवचनोद्योतनस्थैर्यहेतु । सेतुर्जाड्याम्बुराशेर्भवतु भवभृतामद्य विद्योद्यमाय ॥२६०॥
श्रीचन्द्रप्रभसूरिपट्टसरसीहंसप्रभः श्रीप्रभा-चन्द्रः सूरिरनेन चेतसि कृते श्रीरामलक्ष्मीभुवा ।
श्रीपूर्वर्षिचरित्ररोहणगिरौ श्रीसूरसूरे. कथा, श्रीप्रद्युम्नमुनीन्दुना विशदितः शृङ्गोऽयमष्टादश ॥२६१॥" इति ।
॥१७८॥

इदानीमष्टत्रिंशं द्वितीयोदयक्रमाऽपेक्षयाऽष्टादशं युगप्रधानमाचिख्यासुः पथ्यागीति-पथ्यार्यालक्षणं श्लोकद्वयं प्राह–

सिरिधम्मघोससूरी जुगपवरो अट्ठतीसमो होसी ।
से जणणं वीरा-ऽद्दे रज्जंगजिणज्जपिण्डपयडि[१४६७]मिए ॥१७६॥(पच्छागीई)
दिक्खाऽणुत्तरणहतिहि[१५०५]संखम्मि हवीअ सो जुगपहाणो ।
अंगुलिसिद्धे[१५२०]खमिओ पव्वयबलिकम्मभूमि[१५६८]मिए ॥१८०॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०) 'सिरिधम्म०" इत्यादि, "सिरिधम्मघोससूरी" त्ति, श्रिया=सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूपया युतो धर्मघोषसूरिः=धर्मघोषसंज्ञक आचार्यः श्रीधर्मघोषसूरिः "जुगपवरो अट्ठतीसमो होसी" त्ति, अष्टत्रिंशत्तमो युगप्रवरः=युगप्रधानोऽभवत् ।

अथ सार्द्धश्लोकेन जन्मादिवत्सरान् प्रकटयति–"से" इत्यादि, "से" त्ति, तस्य=श्रीधर्मघोषसूरेः "जणण" त्ति, जननं=जन्म "वीरा" त्ति वीरात्=वीरविभुनिर्वाणगमनात् "रज्जंगजिणज्जपिण्डपयडिमिए" त्ति, राज्याङ्गानि सप्त, यदुक्तम्–
"स्वामी जनपदोऽमात्यो, दुर्गं कोशो बलं सुहृत। परस्परोपकारीदं सप्ताङ्गं राज्यमुच्यते ॥६॥" इति ।
जिनाब्जानि=अर्हद्विहरणकाले देवकृतानि सुवर्णमयानि कमलानि नव पिण्डप्रकृतयो [१]गति [२]जाति- [३]शरीरा- [४]ऽङ्गोपाङ्ग-[५]संघयण- [६]संस्थान- [७]बन्धन- [८]संघातन-[९]खगत्या- [१०]ऽऽनुपूर्वी [११]वर्ण-[१२]गन्ध-[१३]रस-[१४]स्पर्शलक्षणाश्चतुर्दश, उक्तञ्चात्रैव बन्धविधाने मूलप्रकृतिबन्धे–
"गइजाइतणुउवगा बधणसघायणाणि सघयण । सठाणवण्णगधरसफासअणुपुव्विविहयगइ ॥१२॥
पिंडपयडित्ति चउदस " इति । तथैव देवेन्द्रसूरिपादैः कर्मविपाकाख्ये प्रथमकर्मग्रन्थेऽपि ।

सखे ! त्वदीयदेवाना कदापि न पवित्रकम् । अपवित्रास्ततस्ते स्यू राजमित्र ततोऽवदत् ॥१५६॥ तथा हि-
पवित्रमपवित्रस्य पावित्र्यायाधिरोहति । जिन' स्वय पवित्र किमन्यैस्तत्र पवित्रके ॥१५७॥
अपावित्र्यं शिवे चैतद्भक्तमप्याहत यत । लिङ्गार्चानन्तर ग्राह्यमानाभ्युपगमाद् ध्रुवम् ॥१५८॥
मूर्ति श्रीकामदेवस्य रतियुक्ता हसन्मुखा । तालिकाया प्रदानायोदितहस्ता नराधिप' ॥१५९॥
पश्यन् पण्डितचण्डाशुमाभाषत सकौतुक । किमेष तालिका दित्सुर्हसन् कथयति स्फुटम् ॥१६०॥
धनपालस्तत सिद्धसारस्वतवशात् तदा । अवदत् तथ्यमेवाशु ज्ञानी को हि विलम्बते ॥१६१॥ तच्चेदम्-
स एष भुवनत्रयप्रथितसयम शङ्करो, बिभर्ति वपुषाऽधुना विरहकातर कामिनीम् ।
अनेन किल निर्जिता वयमिति प्रियाया कर, करेण परिताडयन् जयति जातहास स्मर ॥१६२॥
अन्यदा नृपति प्राह तव सूनृतभाषणो । अभिज्ञान किमप्यस्ति सत्य कथय तन्मम ॥१६३॥
चतुर्द्वारोपविष्टाना केन द्वारेण निर्गम । स्यादस्माकमिदानीमित्याख्याहि कविवासव ! ॥१६४॥
ततोऽसौ पत्रकेऽलेखीदक्षराणि महामति । तत स मुद्रयित्वा च स्थगीवित्तस्य चार्पयत् ॥१६५॥
ध्यायन्निति नृपो द्वारचतुष्कस्येह मध्यत । एकेन केनचित् द्वारा गतिर्ज्ञाता भविष्यति ॥१६६॥
ज्ञानिनोऽप्यस्य वचनमत्र मिथ्या करिष्यते । ततो गते गृह मित्रे भुक्त्याह्वान समागमत ॥१६७॥
मण्डपोपरिभागे च छिद्र प्रापातयन्नरै' । तेन छिद्रेण निर्गत्य राजा स्वरुचितो ययौ ॥१६८॥
तन्मध्याह्ने कवीश तमाकार्यापृच्छदद्भुतम् । पत्रक कर्षयित्वा स स्थगीमध्याददर्शयन् ॥१६९॥
तत्र चोपरिभागेन निर्यास्यति नृपो ध्रुवम् । इति तथ्य वचस्तस्य ज्ञात्वा राजा चमत्कृत ॥१७०॥
अन्येद्यु सेतुबन्धेन प्राहिणोन्नृपतिर्नरान् । प्रशस्तिर्विद्यते यत्र विहिता श्रीहनूमता ॥१७१॥
तत्काव्यानयनार्थं ते मधूच्छिष्टस्य पट्टिका । निधायाम्भोनिधौ मत्स्यत्रसाञ्जितविलोचना ॥१७२॥
प्रशस्त्युपरि ता बाढ विन्यस्याथ पुनस्तत । उत्पाटयामासुस्तैलाक्तपट्टिकासु च मीलिता ॥१७३॥
ततोऽप्युद्धृत्य पत्राल्यामक्षराण्यलिखन्नरा' ।तानि रक्ष कुलानीव खण्डवृत्तान्यनोऽभवन् ॥ त्रिभिर्विशेषकम् ।
राज्ञालोक्यन्त तान्यत्राविशदर्थानि किं पुन । हट्टे शाकफलानीव खण्डितान्यरसान्यसु ॥१७५॥
पूरयन्ति निजै प्रज्ञाविशेषैस्ते महाधिय । पर राज्ञश्चमत्कारकरी कस्यापि नैव वाक् ॥१७६॥
द्विपदी त्रिपदी चैका तन्मध्याददर्शिता तत । श्रीमतो धनपालस्य बालस्य कविताविधौ ॥१७७॥ तथा हि-
(क) 'हरशिरसि शिरासि यानि रेजुर्हरि हरि तानि लुठन्ति गृध्रपादैः ।' तथा--
(ख)-'स्नाता तिष्ठति कुन्तलेश्वरसुता वारोङ्गराजस्वसु र्द्यूतेनाद्य जिता निशा कमलया देवी प्रसाद्याद्य च।
इत्यन्त पुरचारिवारवनिताविज्ञापनानन्तर' वचनानन्तर विद्वान् ते समस्ये अपूरयत् । तथाहि-
(क) 'अयि खलु विषम पुराकृताना विलसति जन्तुषु कर्मणा विपाक' ॥१७८॥ तथा--
(ख) 'स्मृत्वा पूर्वसुर विधाय बहुशो रूपाणि भूपोऽभजत्' ॥१७९॥
कीरविद्वान् हसन्नाह जैनोचितमिद वच ॥१८०॥
एषा मते परीपाक' कर्मणा हि प्रकथ्यते । समस्यापूरण ह्येतत् सौवीरामोदमेदुरम् ॥१८१॥
कवीन्द्र प्राह कीरस्य राग स्याद् वदने ध्रुव । मलिनाङ्गस्य सत्य तु सूर्य प्रकटयिष्यति ॥१८२॥
द्वापञ्चाशत्पले काले शुध्येच्चेन्मम मानुषम् । अत्रेदृशाक्षराण्येवावश्यमीदृक् प्रतिश्रवे ॥१८३॥
कौतुकादथ भूपालस्तत्तथैव व्यधापयत । राजमित्र तत काले शुद्ध शुद्धयशोनिधि ॥१८४॥
प्रतीत एव राजात्र सत्ये को नाम मत्सरी । अथान्येद्युरपृच्छत त सुधीश भोजभूपति ॥१८५॥
जैना जलाश्रयद्वार सुकृत किं न मन्वते । ततोऽवदत स तत्रापि सूनृत सूनृतव्रत ॥१८६॥ तथाहि--
सत्य वप्रेषु शीत शशिकरधवल वारि पीत्वा यथेच्छ,
विच्छिन्नाशेषतृष्णा प्रहसितमनस. प्राणिसार्था भवन्ति ।

कथा च सकला तेन सुश्रुवेऽत्र सुतामुखात । कदाचिन्न श्रुत यावत् तावन्नास्या समाययौ ॥२२१
सहस्रत्रितय तस्याः कथाया अत्रुटत् तदा । अन्यत सम्बन्धसम्बद्ध सर्वं न्यस्त च पुस्तके ॥२२२
अथापमानपूर्णोऽयमुच्चचाल तत पुर । मानाद्विनाकृता सन्त सन्तिष्ठन्ते न कर्हिचित ॥२२३
पश्चिमा दिशमाश्रित्य परिस्पन्द विनाचलत् । प्राप सत्यपुर नाम पुरं पौरजनोत्तरम् ॥२२४
तत्र श्रीमन्महावीरचैत्ये नित्ये पदे इव । दृष्टे स परमानन्दमाससाद विदावर ॥२२५
नमस्कृत्य स्तुतिं तत्र विरोधाभाससस्कृताम् । चकार प्राकृता 'देव निम्मले' त्यादि साऽस्ति च ॥२२६
दिनै' कतिपयैर्भोजभूजानिस्तमजूहवत् । नास्तीति ज्ञानवृत्तान्त किञ्चित्खेदवशोऽभवत ॥२२७
आह चेच्चिन्त्यते चित्ते कद्भदोऽस्मासु यात्वमौ । परस्तत्सदृशो नान्यस्त्व्यवाग् भारतीनिभ ॥२२८
ईदृक्पुरुषससर्गे मन्दभाग्या वय ननु । वेशन्तस्य कथ हसवासपुण्य विजृम्भते ॥२२९
इत्यस्य खिद्यमानस्य चकोरस्य कुहूष्विव । प्रायाद् धर्माभिध कौलो विद्वास्तद्वृत्तमुच्यते ॥२३०
तद्यथा-आधारोऽनन्तगौत्राणा पुरुषोत्तमसश्रयः । आकरोऽनेकरत्नाना लाटदेशोऽस्ति वार्द्धिवत् ॥२३१
तत्र मेकसकन्योर्मिनिचयो दर्शनाज्जनम् । पवित्रयेत तदस्ति श्रीभृगुकच्छाख्यया पुरम् ॥२३२
तत्रास्ति वेदवेदाङ्गपारगो वाडवाग्रणी । सूरदेव इति ख्यातो वेधा इव शरीरवान् ॥२३३
सतीशिरोमणिस्तस्य कान्ता कान्तनयस्थिति । सावित्रीत्याख्यया ख्यातिपात्रं दानेश्वरेषु या ॥२३४
तयोरुभावभूना च पित्राशानिलयौ सुतौ । धर्म शर्मश्च दुहिता गोमतीत्यभिधा तथा ॥२३५
धर्म स्वनामतो वाम शठत्वादनयस्थिति । पितु सन्तापकृज्जज्ञे सूर्यस्येव शनैश्चर ॥२३६
स पित्रोक्तो धन वत्स । जीविकार्थे समर्जय । मुधा न लभ्यते धान्य यत्ते जठरपूरकम् ॥२३७
निष्कलत्वात ततो नीचससर्गात् पाठवैरत । सर्वोपायपरिभ्रष्टोऽभूदिक्षुक्षेत्ररक्षक ॥२३८
तत्र श्रीक्षेत्रपालोऽस्ति न्यग्रोधाध सदैवत । तदर्चानिरतो धर्म सदासीद् भक्तिबन्धुर ॥२३९
स च स्वस्वामिनो गेहे गत' क्वचन पर्वणि । भुङ्क्ष्वात्रेति तदुक्त सन् प्रोवाच प्रकटाक्षरम् ॥२४०
न वल्भे क्षेत्रपालार्चा विनाऽह प्रलयेऽपि हि । क्षेत्र ययौ ततोऽभ्यर्च्य तमूर्ध्वो यावदास्थित ॥२४१
तावदैक्षिष्ट नग्ना स योगिनीं तद्वृतेर्बहिः । क्षेत्रपालप्रसादेन शङ्कित मूर्तिमतीमिव ॥२४२
तया चेक्षुलतामेका प्रार्थितेनातिभक्तिना । तद्युग्म रससर्वस्वपूर्णं तस्या' समर्प्यत ॥२४३
तदास्वादप्रमोदेन सप्रसादाऽथ माऽवदत् । किं त्व घृणायसे वत्स न वा सोऽप्यवदत् तत ॥२४४
न घृणाये महामाये सा तत पुनराह च । व्यादेहि वचन तेन तच्चक्रे सादर वचः ॥२४५
सा च तद्रसगण्डूष सुधावत्तन्मुखेऽक्षिपत । हस्त तन्मस्तके प्रादादायातस्य वृतेर्बहिः ॥२४६
तिरोधत्त क्षणेनैव सा देवी च गिरा तत । विमुच्य स च तत्सर्व तस्मान्निरगमद् द्रुतम् ॥२४७
शनैर्गच्छन् पुर प्राप पूर्वगङ्गातट तत' । अचिन्तितमवादीच्च काव्य सारस्वतोदयात् ॥२४८

तथाहि-

एते मेकलकन्यकाप्रणयिन पातालमूलस्पृश , सत्रास जनयन्ति विन्ध्यभिदुरा वारा प्रवाहा. पुर. ।
हेलोद्वर्त्तितनर्तितप्रतिहतव्यावर्त्तितप्रेरित त्यक्तस्वीकृतविह्नुतप्रकटितप्रोद्धूतत्तीरद्रुमा ॥२४९

तत उत्तीर्य नावासौ नगरान्त समागमत । निजावास जनन्या च स्नेहादस्पर्शि हस्तयो ॥२५०
अद्योत्सूरे कथ प्रागा इति पित्रोदितस्तथा । स्वसा सोऽनुजेनापि शिरसा हृदि पस्पृशे ॥२५१
जामिर्गद्गदशब्दाच्च भ्रातर्भ्रात पुन पुन । सर्वानप्येवमन्यासौ रूक्षाक्षरमथावदत् ॥२५२

मातर्मा स्पृश मा स्पृश त्वमपि मे मा तात तृप्त कृथा,
भ्रात किं भजसे वृथा भगिनि किं निःकारण रोदिषि ।

व्रतं=दीक्षां जग्राह । "वज्जनरखगससिकले" त्ति, त्याज्यनरा मूर्खादयोऽष्टौ, यदुक्तं काव्यशिक्षायाम्–"अष्टौ त्याज्या नरा –मूर्ख शठ क्लीब निर्घृण व्यसनी अतिशोभी गर्वित निष्ठुरश्चेति ।" इति, खगाः=ग्रहा नव, शशिकलाः=चन्द्रकलाः पञ्चदश, तावत्कलानां प्रकटीकरणादावरणाच्च, अत एव वक्ष्यमाणाभिः चन्द्रकलाभिः षोडशभिः सहास्य विरोधो नोद्भाव्यः, एतेऽङ्काः प्रातिलोम्येन १५९८ इति सङ्ख्या यत्र तत्र त्याज्यनरखगशशिकले=वीर-संवत् १५९८ हायने "आसि जुगपवरो" त्ति, युगप्रवरः=युगप्रधानो बभूव । जीवजोणि-लक्खणिवे" त्ति, जीवयोनिलक्षाश्चतुरशीतिः, नृपाः=षोडश, एतावङ्कौ प्रत्येतरक्रमन्यस्तौ यत्र तत्र जीवयोनिलक्षनृपे=वीरसंवत् चतुरशीत्यधिके षोडशशत १६८४ वर्षे "सग्गमिओ" त्ति, स्वर्गम्=अमरलोकमितः=जगाम ।

इत्थञ्चाऽसौ दश १० वर्षाणि गृहित्वे, एकोनविंशति १९ वर्षाणि सामान्यमुनिपर्याये, षडशीति ८६ वर्षाणि युगप्रधानत्वे चेति निखिलायुश्च *पञ्चदशं वर्षशतमुपभुज्य नाकिलोकं प्रति प्रयाणं चक्रे ॥१८४-१८५॥

अथ तदानीं जातस्य श्रीअभयदेवसूरेर्विवर्णयिषया-ऽऽह पथ्यापूर्विकामादिचपलामार्याम्–

सिरिअभयदेवसूरी जयेउ लोए णवंगवित्तियरो ।
स गओ तिदिवं भूवा रसदहणागिरीस ११३५।११३९मियवासे ॥१८६॥

(पच्छापुव्विगा मुहचवला-ऽज्जा)

(प्रे०) "सिरि०" इत्यादि, "सिरिअभयदेवसूरी" त्ति, श्रिया=चारित्रादिलक्ष्म्या युतोऽभयदेवः=अभयदेवनामा चाऽसौ सूरिः=आचार्यः श्रीअभयदेवसूरिः "जयेउ लोए" त्ति, लोके=विश्वे जयतु=अपराभवशीलो भवतु इति क्रियासण्टकः । किम्भूतः ? "णवंगवित्तियरो" त्ति, नवानामङ्गानां स्थानाङ्गादीनां वृत्तेः=टीकायाः करः=विधाता=नवाङ्गवृत्तिकरः श्रीशीला-ङ्काचार्येण कोट्याचार्येत्यपरनाम्ना प्रसिद्धिभूतेन पूर्वमेकादशानामङ्गानां वृत्तिः कृता-ऽऽसीत् । तन्मध्यादाद्याङ्गद्वयं विमुच्यान्याङ्गानां नवानां वृत्तिः कालानुभावतस्तदा व्यवच्छिन्नाऽऽसीत् । ततोऽनेन सूरिणा शेषाणां नवानामङ्गानां वृत्तिर्निर्मिता । यदुक्त प्रभावकचरिते–

"श्रीशीलाङ्क पुरा कोट्याचार्यनाम्ना प्रसिद्धिभू । वृत्तिमेकादशाङ्गया स विदधे धूतकल्मष ॥१०४॥
अङ्गद्वय विनान्येषा कालादुच्छेदमादधु । वृत्तयस्तत्र सघानुग्रहायाद्य कुरूद्यमम् ॥१०५॥" इति ।

अथाऽमुष्य स्वर्गमनकालं दर्शयन्नाह–"स" इत्यादि, "स" त्ति, सः=श्रीअभयदेवसूरिः

---

*अत्र पञ्चदशन्शब्दत "अधिक तत्सङ्ख्यमस्मिन् शत्-सहस्रे शति शद्-दशान्ताया ड "(सि०-७-१-१५४) इत्यनेन डप्रत्यय । एवमन्यत्रा-ऽपि यथासंभव ज्ञेयम् ।

अथ राजाह मे खेदो नाणुरप्यस्त्यसौ तव । त्वयि जीवति भोजस्य सभा यत्त परिभूयते ॥२८०॥
पराभवस्तवैवायमितिश्रुत्वा कृतिप्रभुः । प्राह मा खिद्यता भिक्षुरक्लेशाज्जेष्यते प्रगे ॥२८१॥
श्रुत्वेति हृदये तुष्टो ययौ श्रीभोजभूपतिः । विद्वानपि निज वेश्म चिरत्यक्त पुनर्ययौ ॥२८२॥
संमार्जनालिगे गेहे शशकाखुकृतैर्बिलैः । दृश्यनि सत्वयवल्मीकदुर्गमे प्राविशत् तत ॥२८३॥
राजा सौधे गत प्रात' पृष्टो भूपेन वेश्मन' । शुद्धिं विद्वत्प्रभु प्राह श्रूयता सूनृत वच ॥२८४॥ तच्चेदम्
पथुकार्तस्वरपात्र' भूषितनि शेषपरिजन देव ! । विलसत्करेणुगहन सप्रति सममावयो सदनम् ॥२८५॥
राज्ञा धर्म्मस्तदाहूत आस्थाने स्वसभोपमे । श्रूयता धनपालोऽयमाययौ वादिदर्पहृन ॥२८६॥
धर्मोऽथ छित्तप विज्ञ पूर्वं परिचितं तदा । दृष्ट्वा काव्यमदोऽत्रादीत् तदात्र्जनगर्भितम् ॥२८७॥

श्रीछित्तपे कर्द्दमराजशिष्ये सभ्ये सभाभर्त्तरि भोजराजे ।
सारस्वते स्रोतसि मे प्लवन्ता पलालकल्पा धनपालवाचः ॥२८८॥

धनपेति नृपस्यामन्त्रणे मे मम तद्गिर । आलवाच प्लवन्ता हि सिद्धसारस्वते भरे ॥२८९॥
इति भूपालमित्रेण शब्दखण्डनयाऽनया । अस्यैव प्रतिपत्त्यार्थोऽक्षरैस्तैरेव जल्पित ॥२९०॥
समस्यामर्पयामास सिद्धसारस्वतः कवि । धर्मस्ता च पुपूरेऽसौ चाराष्टोत्तर शतम् ॥२९१॥
तासामेकाऽपि निर्दोषा न विद्वच्चित्तहारिणी । पुपूरे चान्त्यवेलायामित्थ तेन मनीषिणा ॥२९२॥
'इय व्योमाम्भोधेस्तरमिव जवात् प्राप्य तपन, निशानौर्विश्लिष्टाघनघटितकाष्ठा विघटते'॥इति समस्या॥
'वणिकचक्रा क्रन्दत्विषि शकुलिकोलाहलगणे, निराधारास्तारास्तदनु च निमज्जन्ति मणय' ॥२९३॥
अतिश्रुतिकटुत्वेन चन्द्रास्तवर्णनेन च । न्यूनोक्तिदूषणाच्चापि सभ्यैर्नैषापि मानिता ॥२९४॥
ततो वक्त्र समस्याया' पतिस्त्विति च सोऽवदत् विलक्षो जयभग्नाश स मिथ्याडम्बरी कवि ॥२९५॥
तत श्रीधनपालेनापूरि विद्वन्मनोहरा । अनायासात् समस्येय यतोऽस्यैतत् कियत् किल ॥२९६॥
'असावप्यामूलत्रुटितकरसन्तानतनिकः । प्रयात्यस्त स्रस्तसितपट इव श्वेतकिरण' ॥२९७॥
भग्नो भग्न पराभूतिवारिधौ बोधतस्तत' । तरण्डाद्धर्म्म उद्दधे कवीन्द्रेणेति गाथया ॥२९८॥
आससार कइपु गर्वेहि पइदियहं गहियसारोवि । अज्जवि अभिन्नमुद्दो व्व जयइ वायापरिप्फंदो ॥२९९॥
तत श्रीभोजराजोऽपि कृतीशानुमतस्तदा । यच्छन् धर्म्मस्य वित्तस्य लक्ष तेनेत्यवार्यत ॥३००॥ तद्यथा-
ब्रह्माण्डोदरकोटरं कियदिद तत्रापि मृद्गोलक, पथ्वीमण्डलसञ्ज्ञक कुपतयस्तत्राप्यमी कोटिश' ।
तत्रैके गुरुवर्गगद्गदगिरो विश्राणयन्त्यर्थिना, हा हा हन्त वय तु वज्रकठिनास्तानेव याचेमहि ॥३०१॥
न ग्रहीष्ये ततो वित्तमसारकमशाश्वतम् । अभिमाने हृते जीवे पुरुष शवसन्निभ ॥३०२॥
स आह कविरेकोऽसि धनपाल धियानिधे । । इति प्रतीत मच्चित्ते बुधो नास्ति तु निश्चितम् ॥३०३॥
सविस्मय तत प्राह सिद्धसारस्वत कवि । नास्तीति नोच्यते विद्वन् । रत्नगर्भा वसुन्धरा ॥३०४॥
अणहिल्लपुरे श्रीमान् शान्तिसूरि' कृतिप्रभु । जैन ख्यातस्त्रिभुवने बुधस्तमवलोकय ॥३०५॥
स्नेहाद् विसर्जितो राज्ञा कवीशेनाप्यसौ तत । विजये तस्य भग्नाशो व्यभूशन्मानसान्तरा ॥३०६॥
अद्य पूर्वं न केनापि स्खलित वचन मम । ईदृग्मम वचो हन्ता साक्षाद् ब्राह्मी नतु द्विज ॥३०७॥
प्रयाण सुन्दर तस्माद् बुधालोकमिषादत । ध्यात्वेति गूर्जर देशं प्रति प्रस्थानमातनोत् ॥३०८॥
प्रात संसदि भूपालस्तमाह्वस्त विशारदम् । नास्तीति च परिज्ञाते धनपाल कविर्जगौ ॥३०९॥
'धर्मो जयति नाधर्म्म' इत्यलीकीकृत वच । इद तु सत्यता नीत 'धर्मस्य त्वरिता गति' ॥३१०॥
राजा प्राह यथा जीव विनाङ्गोऽवयवान्विते । सत्यपि स्यान्न सामर्थ्यमुत्तरेऽपि परागतौ ॥३११॥
तद्वदेक विना मित्र धनपाल कृतिप्रभुम् । मूकेव धर्म्मसद्माद्दे सभा श विनाकृता ॥३१२॥

अथाऽभयकुमारोऽसौ वैराग्येण तरङ्गित । आपृच्छ्य निजं तात तप श्रीसङ्घमोत्सुक ॥९५॥
अनुमत्या ततस्तस्य गुरुभि स च दीक्षित । ग्रहणासेवनारूपशिक्षाद्वितयमग्रहीत् ॥९६॥
स चावगाढसिद्धान्ततत्त्वप्रेक्षानुमतत । वभौ महाक्रियानिष्ठ श्रीसघाम्भोजभास्कर. ॥९७॥
श्रीवर्द्धमानसूरीणामादेशात्सूरिता ददौ । श्रीजिनेश्वरसूरिश्च ततस्तस्य गुणोदधे ॥९८॥
श्रीमानभयदेवाख्य. सूरि: पूरितविष्टप । यशोभिर्विहरन् प्राप पल्यपद्रपुर शनै ॥९९॥
आयुःप्रान्ते च संन्यासमवलम्ब्य दिव पुरीम् । अलचक्रु वर्द्धमानसूरयो भूरय क्रमात् ॥१००॥
सङ्क्षं तत्र दुर्भिक्षोपद्रवैर्देशदौस्थ्यत । सिद्धान्तस्तत्र टिमायामीदुच्छिन्ना वृत्तयोऽस्य च ॥१०१॥
ईषत्स्थित च यत्सूत्र प्रेक्षासुनिपुणैरपि । दुर्वोधदेश्यशब्दार्थं खिल जज्ञे ततश्च तत् ॥१०२॥
निशीथेऽथ प्रभुं धर्मस्थानस्थ शासनामरी । नत्वा निस्तन्द्रमाह स्माऽभयदेव मुनीश्वरम् ॥१०३॥
श्रीशीलाङ्क पुरा कोटचाचार्यनाम्ना प्रसिद्धिभू' । वृत्तिमेकादशाङ्गचा स विदधे धौतकल्मप ॥१०४॥
अङ्गद्वय विनाऽन्येषा कालादुच्छेदमाययु । वृत्तयस्तत्र सघानुग्रहायाद्य कुरूद्यमम् ॥१०५॥
सूरि. प्राह ततो मात । कोऽहमल्पमतिर्जड । श्रीसुधर्मकृतग्रन्थदर्शनेऽप्यसमर्थधी ॥१०६॥
अज्ञत्वात् क्वचिदुत्सूत्रे विवृते कल्मपार्जनम् । प्राच्यैरनन्तससारभ्रमिभृद् दर्शितं महत् ॥१०७॥
अनुल्लङ्घ्या च ते वाणी तदादिश करोमि किम् ? । इतिकर्तव्यतामूढो लेभे न किञ्चिदुत्तरम् ॥१०८॥
देवी प्राह मनीषीश । सिद्धान्तार्थविचारणे । योग्यता तव मत्वाऽहं कथयामि विचिन्तय ॥१०९॥
यत्र सन्दिह्यते चेत प्रष्टव्योऽत्र मया सदा । श्रीमान सीमन्धरस्वामी तत्र गत्वा धृतिं कुरु ॥११०॥
आरभस्व ततो ह्येतत माऽत्र सशय्यता त्वया । स्मृतमात्रा समायास्ये इहार्थे त्वत्पदो शपे ॥१११॥
श्रुत्वेत्यङ्गीचकाराऽथ कार्यं दुष्करमप्यद । आचामाम्लानि चारब्ध ग्रन्थसपूर्णतावधि ॥११२॥
अवलशनैव रूपाणि नवाङ्ग्या वृत्तयस्तत । निरवाह्यन्त देव्या च प्रतिज्ञा या कृता पुरा ॥११३॥
महाश्रुतधरै शोधितासु तासु चिरन्तनै । ऊरीचक्रे तदा [illegible] ॥११४॥
तत शासनदेवी च विजने तान् व्यजिज्ञपत् । प्रभो । मदीयद्रव्येण विधाप्या प्रथमा प्रति ॥११५॥
इत्युक्त्वा सा च समवसरणोपरि हैमनीम् । उत्तरीया निजज्योतिःक्षतहृष्टिरुचिं दधौ ॥११६॥
तिरोधत्त ततो देवी यतयो गोचरादथ । आगता ददृशु सूर्यबिम्बवत् तद्विभूषणम् ॥११७॥
चित्रीयितास्ततश्चित्ते पप्रच्छुस्ते प्रभून्मुदा । ते चाऽऽचख्युरुदन्त त श्राद्धानाह्वाययस्तथा ॥११८॥
आयातानां ततस्तेषा गुरव प्रैक्षयंश्च तत् । अजानन्तश्च तन्मूल्य श्रावका पत्तन ययु ॥११९॥
आदर्शि तैश्च सा तत्र स्थितरत्नपरीक्षिणाम् । अज्ञास्तेऽपि च तन्मूल्ये मन्त्र विदधुरीदृशम् ॥१२०॥
अत्र श्रीभीमभूपालपुरतो मुच्यतामियम् । तद्दत्तो निःक्रयो ग्राह्यो मूल्य निर्णीयते तु न ॥१२१॥
समुदायेन ते सर्वे पुरो राज्ञस्तदद्भुतम् । मुमुचु किल शक्रेण प्रणयात्प्राभृत कृतम् ॥१२२॥
तदुदन्ते च विज्ञप्ते तुष्ट प्रोवाच भूपति । तपस्विना विना मूल्य न गृह्णामि प्रतिग्रहम् ॥१२३॥
ते प्रोचु श्रीमुखेनास्य यमादिशसि निःक्रयम् । स एवास्तु प्रमाण नस्तत श्रीभीमभूपति ॥१२४॥
द्रम्मलक्षत्रय कोशाध्यक्षाद् दापयति स्म स । पुस्तकान् लेखयित्वा च सूरिभ्यो ददिरेऽथ तै ॥१२५॥
पत्तने ताम्रलिप्त्या चाशापल्यां धवलक्कके । चतुराश्चतुरशीति श्रीमन्त श्रावकास्तथा ॥१२६॥
पुस्तकान्यङ्गवृत्तीनां वासनाविशदाशया । प्रत्येक लेखयित्वा ते सूरीणा प्रददुर्मुदा ॥१२७॥ युग्मम् ।
प्रावर्त्तन्त नवाङ्गानामेव तत्कृतवृत्तय । श्रीसुधर्मोपदिष्टेष्टतत्त्वतालककुञ्चिका ॥१२८॥
पुर धवलक्क प्रापुरथ सयमयात्रया । स्थानेष्वप्रतिबन्धो हि सिद्धान्तोपासितलक्षणम् ॥१२९॥
आचामाम्लतप कष्टान्निशायामतिजागरात । अत्यायासात् प्रभोर्जज्ञे रक्तदोषो दुरायति ॥१३०॥

निमित्तातिशयाज्ज्ञात्वा त शासनविभूषणम् । आदराज्जगृहुर्भ्रातृजाया मन्तोऽस्य सागरे ॥९॥
शब्दशास्त्रप्रमाणानि साहित्यागमसहिता. । अमिलन् स्वयमेवास्य साक्षिमात्रे गुरौ स्थिते ॥१०॥
स्नेहादेव गुरो पार्श्वममुञ्चन् जगृहे व्रतम् । स्वपट्टे स्थापयेन्मद्रूचु नान्यथा नोचितातिगा ॥११॥
वार्त्तमानिकशास्त्राम्भोरुहभासुरभानुमान् । जनाज्ञानतमश्छेदी सूराचार्य स विश्रुत ॥१२॥
अथ श्रीभोजराजस्य वाग्देवीकुलसद्मन । कलासिन्धुमहासिन्धोर्विद्वल्लीलामहीक्रम ॥१३॥
प्रधाना आजग्मिवास श्रीभीमनृपपर्षदम् । गाथामेकाम जल्पश्च निजनाथगुणाद्भुताम् ॥१४॥ युग्मम् ।
तथाहि-हेलानिद्दलियगइदकुम्भपयडियपयावपसरस्स । सीहस्स मएण समं न विग्गहो नेय सधाणं ॥१५॥
हेलया तदवज्ञाय तेषा सन्मानमादधे । आवास-भुक्तिवृत्त्यार्थं भूपस्थान च ते ययु ॥१६॥
गतेषु तेषु भूपाल स्वप्रधानानिहादिशत् । शोध्य प्रत्युत्तरार्थं विपश्चित कश्चिदद्भुत ॥१७॥
स्वस्वमत्यनुमानेन प्रत्यार्या कविभि कृता । न चमत्कारिणी राज्ञस्तासामेकाऽपि चाऽभवत् ॥१८॥
सर्वदर्शनिशालासु चतुष्के चत्वरे त्रिके । हर्म्यचैत्येषु गच्छन्ति ते तत् प्रेक्षाकुतूहलात् ॥१९॥
श्रीमद्गोविन्दसूरीणा चैत्ये ते चान्यदा ययु । तदा पर्वणि कुत्रापि तत्रासीत् प्रेक्षणक्षण ॥२०॥
अङ्गहारप्रकारैश्च त्रिपताकादिहस्तकै । तत्र ननर्त्ति लास्येन ताण्डवेन च नर्त्तकी ॥२१॥
आतोद्यतालसवादसपत्नविषमासनै । श्रान्ता श्लक्ष्णोपलस्तम्भ स्पर्शे म्रक्षणसन्मृदुम ॥२२॥
आश्लिष्यत नटी स्वेदहृतये पवनार्थिनी । तत्काठिन्यप्रकर्षस्य द्रावणायेव निर्भरम् ॥२३॥ युग्मम् ।
व्यजिज्ञपन् विशिष्टाश्च श्रीगोविन्दाय सूरये । क्रमामीदृगवस्थाना वर्णयध्व प्रभो ! स्फुटम् ॥२४॥
सूराचार्य च तत्रस्थ तदुत्कीर्तनहेतवे । त तदा दिदिशु पूज्यास्तत्क्षणाच्चाय सोऽब्रवीत् ॥२५। तद्यथा-

यत् कङ्कणाभरणकोमलबाहुवल्लिसङ्गात् कुरङ्गकदृशोर्नवयौवनाया. ।
न स्विद्यसि प्रचलसि प्रविकम्पसे त्व तत् सत्यमेव दृषदा ननु निर्मितोऽसि ॥२६॥

तत्काल ते नृपायेद गत्वा हृष्टा व्यजिज्ञपन् । गोविन्दाचार्यपार्श्वेऽस्ति कवि प्रत्युत्तरक्षम ॥२७॥
भूपाल प्राह सौहार्दभूमि सूरिरसौ हि न । समानयत सम्मान्य सत्कर्त्रि त गुरु तत ॥२८॥
आदेशानन्तर ते श्रीगोविन्दस्याश्रय ययु । आजूहवश्च त सोऽपि भूपसंसदमाययौ ॥२९॥
सूराचार्य च पार्श्वेऽस्य दृष्ट्वा भूप प्रमोदभू । मन्मातुलस्य पुत्रोऽसौ सम्माव्य सर्वमत्र तत ॥३०॥
आशीर्वादोपविष्टश्च सूरिर्भूपार्हे आसने । श्रीभोजप्रहिता गाथा विद्वद्भि श्रावितस्तत ॥३१॥
तदनन्तरमेवाथ सूराचार्य उवाच च । कोऽवकाशो विलम्बस्य तादृक्पुण्योदये सति ॥३२॥ तथा हि-
अधयसुयाण कालो भीमो पुहवीइ निम्मिओ विहिणा । जेण सयं पि न गणिय का गणणा तुज्झ इक्कस्स ।३३॥
इत्यार्या भीमभूपाल श्रुत्वा रोमाञ्चकञ्चुकी । धाराधिपप्रधानाना दूत प्राजीहयत करे ।३४॥
श्रीभोजस्ता प्रवाच्याथ विममर्शेति चेतसि । ईदृक्कविभवो देश स कथ परिभूयते ॥३५॥
सूरि श्रीभीमराजेन सम्मान्येति व्यसृज्यत । किं कुर्यात् त्वयि पार्श्वस्थे श्रीभोजो विदुषा निधि ॥३६॥
अन्यदा गुरुभि शिष्याध्यापनेऽसौ न्ययोज्यत । वारयन्ति गुणा एव प्रतिष्ठा पुरुषाकृते ॥३७॥
कुशाग्रीयमति शास्त्ररहस्यानि पटुप्रभ । तथा दिशति जानन्त्येकश श्रुत्वापि ते यथा ॥३८॥
तारुण्यवयसा प्रज्ञापाटवेनाधिकेन च । किञ्चिद्दम्भ स्वशिष्याणा कुप्यत्यनवगच्छताम् ॥३९॥
ततस्तान् शिक्षयन्नेका रजोहरणदण्डिकाम् । नित्य भनक्ति कोपोऽरिस्तान्शानपि गञ्जयेत् ॥४०॥
एकदा स्ववलेपोऽपि स्वजातीयसहायताम् । कर्तुमत्राययौ स्वीयानुपदीनो न को भवेत् ॥४१॥
वैयावृत्त्यकर स्वीय खिन्नस्तन्नित्यभङ्गत । आदिशद्दण्डिका लौहा कार्याऽस्माक रजोहृतौ ॥४२॥
छात्रा वित्रासमापन्ना खिन्नखिन्नतनूभृत: । उपाध्यायात् कथचित् ते वासर निरयापयन् ॥४३॥

तदादेशादतोऽद्यापि त्रिंशद्वृत्तमिता स्तुति । सपुण्यै पठ्यमानाऽत्र क्षुद्रोपद्रवनाशिनी ॥१६७॥
तत प्रभृत्यदस्तीर्थं मनोवाञ्छितपूरणम् । प्रवृत्त रोगशोकादिदु'खदावघनाघन ॥१६८॥
अद्यापि कलशो जन्मकल्याणकमहामहे । आद्यो धवलकश्राद्ध स च स्नपयति प्रभुम् ॥१६९॥
बिम्बासनस्य पाश्चात्यभागेऽक्षरपरपरा । ऐतिह्यात् श्रूयते पूर्वकथितात्प्रथिता जने ॥१७०॥
नमेस्तीर्थकृतस्तीर्थे वर्षे द्विकचतुष्टये (२२२२) । आषाढ श्रावको गौडोऽकारयत् प्रतिमात्रयम् ॥१७१॥
श्रीमान् जिनेश्वर सूरिस्तथा श्रीबुद्धिसागर । चिरमायु प्रपाल्यैतौ सन्यासाद् दिवमीयतु ॥१७२॥
श्रीमानभयदेवोऽपि शासनस्य प्रभावना[म्]। पत्तने श्रीकर्णराज्ये धर्णोपास्तिशोभित ॥१७३॥
विधाय योगनीरोधधिक्कृतापरवासन । पर लोकमलचक्रे धर्मध्यानैकधीनिधि ॥१७४॥ युग्मम्।
वृत्तान्तो ऽभयदेवसूरिसुगुरोरीदृक् सतामर्चित, कल्याणैकनिकेतन कलिकलाशैलाग्रवज्रप्रभ ।
भूयाद् दुर्द्धरदुर्घटोदिततम प्रध्वससूर्योदय, श्रेय श्रीनिलयो लय दिशतु वो ब्रह्मण्यनन्तोदये ॥१७५॥
श्रीचन्द्रप्रभसूरिपट्टसरसीहसप्रभ श्रीप्रभा-चन्द्र सूरिरनेन चेतसि कृते श्रीरामलक्ष्मीभुवा ।
श्रीपूर्वर्षिचरित्ररोहणगिरौ प्रद्युम्नसूरीक्षितो वृत्तान्तोऽभयदेवसूरिसुगुरो शृङ्गो ग्रहेन्दुप्रभ ॥१७६॥
वरकरुणबन्धुजीवकनृतिलकनालीक रूपविजयश्च । श्रीप्रद्युम्नसुजाते सुमनश्चित्र नवकुलश्री ॥१७७॥"इति।

तत्कृतयश्चेमाः—स्थानाङ्गादीनां नवानामङ्गानां नववृत्तयः, उपपातिसूत्रटीका, प्रज्ञापना-सूत्रतृतीयपदसंग्रहणी, हारिभद्रीयपञ्चाशकटीका, छट्ठाणपगरणं, जिणेसरीयभाष्यम् , पंचणिग्गंथीय-पगरणं, आराधनाकुलकम् , जयतिहुयणथयं, आचार्यजिनचन्द्रगणिकृतनवतत्त्वप्रकरण-भाष्य-वृत्ती, सत्तरीग्रन्थभाष्यम् , महावीरथयं (जइज्जा समणो०) शातारिप्रकरणवृत्तिः (गाथाबद्धा), निगोदषट्त्रिंशिका, पुद्गलषट्त्रिंशिका, साहम्मियवच्छलकुलयं, वंदणयभासमित्यादयः ।

अत्रान्तराले कूर्चपुरगच्छीयचैत्यवासीजिनेश्वरसूरिविनेयो जिनवल्लभश्चित्रकूटे षट्कल्याणक-प्ररूपणया स्वकीयमतं प्रकटितम् ।

सम्प्रति चरमजिनेशचत्वारिंशत्तमपट्टे संजातं श्रीमुनिचन्द्रमुनिपतिं श्लोकपञ्चकेन विवर्ण-यिषुरादौ तावल्ललिताछन्द आह—

लिसीअ कालणेमिरिउव्व जो सूरिदाणं,
पट्टाद्धितणयं जसोभद्दणेमिचंदाणं ।
जस्स मणीसाअ खलु पराजिओ विबुहसूरी,
भवाण दिसउ सिवं सो मुणिचंदक्खो सूरी ॥१८७॥ (ललिया)

(प्रे०) "**लिसीअ**" इत्यादि, "**जो**" त्ति, यः=श्रीमुनिचन्द्राभिधसूरिः "**जसोभद्द-णेमिचंदाणं**" ति, यशोभद्रश्च=तन्नामाचार्यः नेमिचन्द्रश्च=तदाख्यो मुनीन्द्रः, यशोभद्रनेमिचन्द्रौ तयोः । यशोभद्रनेमिचन्द्रयोः "**सूरिदाण**" ति, सूरीन्द्रयोः=आचार्ययोः "**पट्टा-**

अथाह भूपते धाराधिनाथकृतिना मया । गाथया कविता दृष्टा तत्रोत्तरमदामहम् ॥८०॥
शमिना कौतुकं न किं विचित्रे जगति ध्रुवे । श्रीमद्भोजस्य चित्रार्थं गम्यते त्वदनुज्ञया ॥८१॥
राजाह तत्र मद्भ्राता त्वं किं त वर्णयिष्यसि । स प्राहाह मुनिर्भूप कुतो हेतो स्तुवे न न ॥८२॥
ऊरीकृते प्रधानैश्च तत्र मालवभूपते । प्रयाणायानुजज्ञे त विज्ञेश भीमभूपति ॥८३॥
गजमेकं ततः प्रैषीत् सप्तीना शतपञ्चकम् । पदातीना सहस्रं च स वन्द्यौ भक्तिनिर्भर ॥८४॥
शुभे मुहूर्ते नक्षत्र-वार-ग्रहबलान्विते । चरे लग्ने ग्रहे क्रूरे नत्रस्थे शुभवीक्षिते ॥८५॥
गुरुसङ्घाभ्यनुज्ञातो बहि प्रस्थानमातनोत् । पञ्चमेऽह्नि प्रयाण च चक्रे चक्रेश्वराकृति ॥८६॥ युग्मम् ।
ततः प्रयाणकस्तोकमेशासौ गूर्जरावने । सन्धिक्षोणिमवापाथ ससज्ज स च सज्जग ॥८७॥
धाराधिरूढप्रज्ञाभृद्धारापुरमवाप्तवान् । प्रधानैश्च प्रतिज्ञात ज्ञापित स्वप्रभुस्ततः ॥८८॥
तत सर्वर्द्धिसामग्र्या सैन्यमान्यमदैन्यभू । अवन्तिनायक सज्जयित्वाऽस्याभिमुखोऽचलत् ॥८९॥
दन्तावलै कलैर्विन्ध्य इव पर्यन्तपर्वतै । रथैर्ध्वजनिप्रयैरभ्रै रदभ्रै रभ्रवद् व्यभात ॥९०॥
शोभमानो वराश्वीयै कल्लोलैरिव वारिधि । पदातिराजिभिर्भेजे राजा राजेव तारकै ॥ त्रिभिर्विशेषकम् ।
राजामात्योपरोधेन व्रताचारव्यतिक्रमे । प्रायश्चित्तचिकीश्चित्ते सूरिरारूढवान गजम् ॥९२॥
दृग्गोचरे करिस्कन्धात् तावुत्तीर्य स्थितौ भुवि । राजा च मुनिराजश्च मिलितौ भ्रातराविव ॥९३॥
देशागतमहाविद्वदुचित नृपकोशत । प्रवालकमय पट्ट तदध्यक्षा समानयन् ॥९४॥
नियुक्तैश्चाथ तै स्थूलवेष्टनेभ्यो विवेष्ट्य च । कम्बिकाहस्तमानेन दैर्घ्यविस्तरयो सम ॥९५॥
अष्टाङ्गुलोच्छ्रय सूर्यबिम्बवत्तेजसा दृशा । दुर्दर्श शुद्धभूपीठे व्यमुच्यत नृपाज्ञया ॥९६॥ युग्मम् ।
अत्राध्वमिति भूपालानुज्ञाता प्रत्यलेखयन् । ते रजोहरणात् त्रिस्त तत्रोपविविशुस्तत. ॥९७॥
अथ श्रीभोज आह स्मौरणरोमालिपिच्छकात् । किं नु प्रमार्जित रेणुजीवा वात्र लसन्ति किम् ॥९८॥
उपविष्टस्तत. सूरि कम्पमानशरीरक । राज्ञा पृष्ट कथ कम्पो जज्ञे व प्राह सोऽप्यथ ॥९९॥
राजपत्तीन् विकोशास्त्रहस्तान वीक्ष्य बिभेम्यहम् । राज्ञोचेऽसौ स्थिती राज्ञा स प्राहासौ व्रतिस्थिति ॥१००।
अस्त्वेवमिति राज्ञोक्ते स जैनीमाशिष ददौ । भूपाज्ञायोत्तरस्थैर्यत्रर्षिताय कलानिधि ॥१०१॥

हुत्वा मन्त्री विधाता लवणमुडुगण सान्ध्यतेज कृशानौ
धात्रीपात्र विमोच्य द्विजनिनदमहामन्त्रघोषेण यावत् ।
आदायेन्दु घरट्ट कृषति मुहुरुषा शाकिनी ताम्रचूड-
ध्वानात् तावज्जय त्व वसुमतिसुमनोमण्डले भोजराज । ॥१०२॥

परस्पर प्रशसाभिनिर्गम्य कमपि क्षणम् । राजा स्व मन्दिर प्राप सूरि पूर्यन्तरीयिवान् ॥१०३॥
मध्ये नगरि तत्रास्ति विहारो द्वारवन् क्षिते । जनाद् विज्ञ य तत्रायात् सूराचार्य कलानिधि ॥१०४॥
सुवर्णमणिमाणिक्यपूजाभि प्रसरत्प्रभा । प्रतिमा वीतरागाणा ववन्दे भक्तिनिर्भरम् ॥१०५॥
लुठत्पाठकपाठाग्निकर्म्मठाशठपण्डिते । प्रणष्टवठरे प्रायान्मठे निष्ठितकल्मष: ॥१०६॥
तत्र वृटसरस्वत्याचार्योऽनार्यतमोऽर्यमा । अस्ति प्रशस्तिर्यस्यास्ति विश्वविद्वन्मुखे सदा ॥१०७॥
सर्वाभिगमपूर्वं च प्रणतस्तै प्रभुर्मुदा । तच्छिष्या प्राणमन्तामून् सौवागतिकयाणाय ॥१०८॥
तैस्तथातिथयो नैत्र गोचरे प्रहितास्तदा । आनीय शुद्धमाहार भोजिता भक्तिपूर्वकम् ॥१०९॥
साधर्म्मिकनृपश्राद्धकुशलप्रश्नकेलिभि । अत्राह्लोऽभवत तेषा परितोषभराल्लघु ॥११०॥
अवलेपश्च भूपस्य प्रभूतातिशयादभूत । तदा कदाचिदम्भोजादपि कीट प्रजायते ॥१११॥
असौ पश्यपि समीलय दर्शनानि तदाऽभणत् । भवद्भिर्भ्राम्यते लोक पृथगाचारसंस्थितै ॥१

साधूभवन्त एव "भूखंडा" त्ति, भूखण्डान्=षड् भूमिभागान्=भरतक्षेत्रस्य वैताढ्याख्याद्रिणा द्विधाकृतस्योत्तरार्ध-दक्षिणार्धसंज्ञकस्य भागद्वयस्य पुनरपि प्रत्येकं गङ्गा सिन्धुसरिद्भ्यां त्रिभिर्विभागैर्विभजनात् भरतक्षेत्रसत्कान् षट्संख्याकान् भागान् त्यजति । यदुक्तं गुर्वावल्याम्—

"सविग्नमौलिर्विकृतीः समस्तास्तत्याज देहेऽप्यममः सदा यः ।
विद्वद्विनेयालिवृत्तप्रभावः प्रभागुणौघैः किल गौतमाभः ॥६७॥" इति ।

तथा श्रीहीरसौभाग्येऽपि—

'भूपीठखण्डानिव चक्रवर्ती यतीभवन् षड्विकृतीर्जहौ यः ।
कदापि काये न दधन्ममत्वं पपौ पुनर्यः सकृदारनालम् ॥१०४॥ इति ।

पुनरपि किंभूतः ? इत्याह—"जो" त्ति, यः=श्रीमुनिचन्द्रसूरिः "दुद्दमसेववाइसरहं" ति, शैवः=शिवमतानुयायी, स चाऽसौ वादी—प्रतिपक्षी=शैववादी=शैवधर्मपक्षपाती स एव शरभः=अष्टापदोऽरण्यपशुविशेषः शैववादिशरभः, दुर्दमः = दुर्जयः, स चाऽसौ शैववादिशरभो दुर्दमशैववादिशरभस्तं दुर्दमशैववादिशरभं 'जेउ" त्ति, जित्वा=जयनविषयीकृत्य "सासणं" ति, शासनं=वीरविभुतीर्थं जैनदर्शनं वा "भूसीअ" त्ति, भूषयामास=भूषां प्रापयति स्म । अनन्तरं यत्पदेनोक्तमेव सूरिं तत्पदेनाह—"सो" त्ति, सः=अनन्तरयत्पदप्रतिपादितवक्ष्यमाण-गुणगणालङ्कृतः श्रीमुनिचन्द्रसूरिः, किंभूतः ? "तक्किकवासवो" त्ति, तार्किकेषु=न्यायशास्त्रज्ञेषु वासवः=इन्द्रः प्रधानभूतत्वात् तार्किकमुख्यः तार्किकशिरोमणिरितिख्यातिभागिति यावत् पुनः कीदृग् ! "उत्तिण्णसत्थंवुहो" त्ति, उत्तीर्ण=पारं नीतं शास्त्रमेव=सिद्धान्त एवाऽम्बुधिः=समुद्रो येन स उत्तीर्णशास्त्राम्बुधिः=सकलागमतत्त्वज्ञातेत्यर्थः "लोगे" त्ति, लोके=जगति "जयउ" त्ति. जयतु=जयवान् भवतु ।

यदभाणि मुनिसुन्दरसूरिभिः—

"षट्तर्की परितर्ककेलिरसिको य शैववादीश्वरं, प्रज्ञाऽथ कृतवाक्पतिं नृपसभे जित्वोग्रहेत्वाशुगैः ।
प्रत्यक्षं विदुषां चकार विजयश्रीभाजनं शासनं, वन्द्योऽसौ मुनिचन्द्रसूरिसुगुरुः केषां न मेधाजुषाम् ॥७०॥"
इति ॥१८८॥

पुनरपि मुनिचन्द्रसूरिवर्यस्य विशिष्टतां प्रदर्शयन् पथ्यार्यायुग्मेन्द्रवज्रात्मकं श्लोकत्रयं वक्ति—

हरिभद्दसूरिणा खलु रइआऽणेकंतजयपडागाई ।
जे दुग्गमाऽत्थि अहुणा इह विबुहाणं पि गंथाणा ॥१८९॥(पथ्याऽऽर्या)

उपाध्यायश्च तत्राहातिथय कुत आययु । ऊचे तत्र स्थिताचार्यैरणहिल्लपुरादिति ॥१४६॥
विशेषसम्भ्रमाच्चक्रेऽध्यापक स्वागतादिकम् । उपावीविशदेषोऽपि प्रधानासनि तद्‌द्वयम् ॥१५०॥
सूराचार्यस्तत प्राह ग्रन्थः कोऽत्र प्रवाच्यते । कृति. श्रीभोजराजस्य शब्दशास्त्र स चावदत् ॥१५१॥
प्रोच्यता तन्नमस्कार इत्युक्तेऽभ्यागतैर्मुदे । उपाध्याय सह च्छात्रै पटुस्वरमुवाच तम् ॥१५२॥ तद्यथा-
चतुर्मुखमुखाम्भोजवनहसवधूर्मम । मानसे रमता नित्य शुद्धवर्णा सरस्वती ॥१५३॥
सूराचार्यस्तत. प्राह किञ्चिदुत्प्रासगर्भितम् । एवजातीयविद्वासो देशेऽत्रैव न चान्यत ॥१५४॥
अस्माभिर्भारती पूर्वमश्रावि ब्रह्मचारिणी । कुमारी साम्प्रत तत्र व्यपदिष्टा वधूरिति ॥१५५॥
चित्रमश्रुतपूर्वं तदन्यत् पृच्छामि किञ्चन । मातुलस्य सुता गम्या यथाऽऽस्ते दक्षिणापथे ॥१५६॥
सुराष्ट्रायां भ्रातृजाया देवरस्य यथोचिता । भवद्देशे तथा गम्याऽनुजाज्ञवधू कथम् ॥१५७॥
यद्वधूशब्दसामीप्ये 'मानसे रमता मम' । प्रयुक्त तद् भवन्त्येव देशाचारा पृथग्विधा ॥१५८॥
अनुत्तर प्रतिहतश्चालयन्नन्यसंकथा. । काल विलम्बयामासेष्टानध्यायकृतादर ॥१५९॥
सन्ध्यावसरसप्राप्त श्रीभोजनृपते पुर । अपराह्णे तिवृत्त स जगौ विस्मयकारकम् ॥१६०॥
भूपश्च विस्मित प्राह सम्भाव्य गूर्जरावनौ । इद प्रातर्त्रिलोक्योऽसौ विद्वानाहूय निश्चितम् ॥१६१॥
तत्रस्थाचार्यपार्श्वे च भूपाल प्रैषयन्नरान् । आह्वातुमतिथिं ते च भक्तिपूर्वं तमाह्वयन् ॥१६२॥
ततो वृद्धसरस्वत्याचार्येण सह स प्रभु । ययौ श्रीभोजभूनाथसभा स्वर्गसमानिमाम् ॥१६३॥
राज्ञा नृपाङ्गणेऽग्रे च शिलैका निहिता तदा । गूर्जराग्रे निजप्राणस्फूर्तिदर्शनहेतवे ॥१६४॥
तत्र पूर्णं पुनश्छिद्र प्राग् विधाप्य पिधाय च । तद्वर्णसमकल्केन तादृशोऽपि छलार्थिन ॥१६५॥ युग्मम् ।
आगच्छन्त तदाऽऽलोक्य सूरिं शरभिज्ञापति । आकर्ण धनुराकृष्यामुचल्लक्ष्ये दृश दधन् ॥१६६॥
सूराचार्यश्च सूक्ष्मेक्षी कल्कालेप तदस्थितम् । बाणाग्रोत्कीर्णमालोक्य गर्भार्थं काव्यमब्रवीत् ॥१६७॥ तथाहि-

विद्धा विद्धा शिलेय भवतु परमत कार्मुकक्रीडितेन,
श्रीमन् पाषाणभेदव्यसनरसिकतां मुञ्च मुञ्च प्रसीद ।
वेधे कौतूहल चेत् कुलशिखरिकुल बाणलक्षीकरोषि,
ध्वस्ताधारा धरित्री नृपतिलक । तदा याति पातालमूलम् ॥१६८॥

इत्थमद्भुतसामर्थ्यवर्णनात् तोषितो नृप. । अधृष्यप्रश्नसेन श्रीधनपालोऽपि बुद्धवान् ॥१६९॥
व्यचिन्तयच्च बुद्ध्वैव विज्ञान भूपतेरियम् । गमितोक्तिरहो जैना जीयन्ते केन मेधया ॥१७०॥
निजाश्रय ययौ श्रीमान् सुराचार्यो नृपार्चित । राजाऽऽस्थानमथाऽऽस्थाय समस्तविदुषोऽवदत् ॥१७१॥
गूर्जरोऽयं महाविद्वानाययौ श्वेतचीवर । अनेन सार्धं कोऽपीह वादमुद्रा बिभर्तु व ॥१७२॥
पण्डितानां सहस्रार्धमध्ये सर्वेऽप्यवाङ्मुखा । मग्नागतप्रतिघातेन घनगर्ज्यार्भका इव ॥१७३॥
विलक्षो नृपति प्राह किं गेहेनर्दिन खलु । स्वय वृत्तिभुजोऽस्माकं विद्वज्जल्पा मुधा बुधा ॥१७४॥
तेषामेको महाप्राज्ञ' प्रादान्मन्त्र प्रभो । शृणु । मा वलक्ष्य प्रपद्येथा रत्नगर्भा वसुन्धरा ॥१७५॥
निर्जरा इव देहस्था गूर्जरा श्वेतभिक्षव । दुर्जयास्ततो मन्त्रसाध्य कार्यमिद प्रभो । ॥१७६॥
छात्र कोऽपि महाप्राज्ञ आषोडशसमावया । प्रमाणशास्त्रोपन्यास पाठ्यतामशठ सुधी ॥१७७॥
श्रुत्वेति भूपतिस्तुष्टिपुष्ट पण्डितवाक्यत । अस्त्वेवमित्यवादीत् तत त्वमेवैतत् कुरुष्व भो ॥१७८॥
एक पटुर्वटु सौम्य प्रज्ञावक्तृत्वशेवधि । तर्कशास्त्रसदभ्यासोपन्यास पाठतस्तत: ॥१७९॥
अतिव्यक्ताक्षर तेनादायि पाठो गुरो पुर । एतद् विज्ञाप्य राजान मुहूर्ते शोधित शुभ ॥१८०॥
ज्ञापित वादभूराग सूराचार्याय भूभुजा । समाहूय च वादार्थं स्थापितोऽसौ वरासने ॥१८१॥

साधूभवन्त एव "भूखंडा" त्ति, भूखण्डान्=षड् भूमिभागान्=भरतक्षेत्रस्य वैताढ्याख्याद्रिणा द्विधाकृतस्योत्तरार्ध-दक्षिणार्धसंज्ञकस्य भागद्वयस्य पुनरपि प्रत्येकं गङ्गा सिन्धुमरिद्भ्यां त्रिभि-र्विभागैर्विभजनात् भरतक्षेत्रसत्कान् षट्संख्याकान् भागान् त्यजति । यदुक्तं गुर्वावल्याम्—

"संविग्नमौलिर्विकृतीः समस्तास्तत्याज देहेऽप्यममः सदा यः ।
विद्वद्विनेयालिवृत्तप्रभावः प्रभागुणौघैः किल गौतमाभः ॥६७॥" इति ।

तथा श्रीहीरसौभाग्येऽपि—

'भूपीठखण्डानिव चक्रवर्ती यतीभवन् षड्विकृतीर्जहौ य' ।
कदापि काये न दधन्ममत्व पपौ पुनर्यः सकृदारनालम् ॥१०४॥ इति ।

पुनरपि किंभूतः ? इत्याह—"जो" त्ति, यः=श्रीमुनिचन्द्रसूरिः "दुद्दमसेववाइसरहं" त्ति, शैवः=शिवमतानुयायी, स चाऽसौ वादी—प्रतिपक्षी=शैववादी=शैवधर्मपक्षपाती स एव शरभः=अष्टापदोऽरण्यपशुविशेषः शैववादिशरभः, दुर्दमः = दुर्जयः, स चाऽसौ शैववादिशरभो दुर्दमशैववादिशरभस्तं दुर्दमशैववादिशरभ 'जेउ" त्ति, जित्वा=जयनविषयीकृत्य "सासणं" ति, शासनं=वीरविभुतीर्थं जैनदर्शनं वा "भूसीअ" त्ति, भूषयामास=भूषां प्रापयति स्म । अनन्तरं यत्पदेनोक्तमेव सूरिं तत्पदेनाह—"सो" त्ति, सः=अनन्तरयत्पदप्रतिपादितवक्ष्यमाण-गुणगणालङ्कृतः श्रीमुनिचन्द्रसूरिः, किंभूतः ? "तक्किकवासवो" त्ति, तार्किकेषु=न्यायशास्त्र-ज्ञेषु वासवः=इन्द्रः प्रधानभूतत्वात् तार्किकमुख्यः तार्किकशिरोमणिरितिख्यातिभागिति यावत् पुनः कीदृग् ! "उत्तिण्णसत्थंबुही" त्ति, उत्तीर्ण=पारं नीतं शास्त्रमेव=सिद्धान्त एवा-ऽम्बुधिः=समुद्रो येन स उत्तीर्णशास्त्राम्बुधिः=सकलागमतत्त्वज्ञातेत्यर्थः "लोगे" त्ति, लोके= जगति "जयउ" त्ति. जयतु=जयवान् भवतु ।

यदभाणि मुनिसुन्दरसूरिभिः—

"षट्तर्कीं परितर्ककेलिरसिको यः शैववादीश्वरं, प्रज्ञाऽध कृतवाक्पतिं नृपसभे जित्वोग्रहेत्वाशुगैः । प्रत्यक्ष विदुषां चकार विजयश्रीभाजनं शासनं, वन्द्योऽसौ मुनिचन्द्रसूरिसुगुरुः केषां न मेधाजुषाम् ॥७०॥"
इति ॥१८८॥

पुनरपि मुनिचन्द्रसूरिवर्यस्य विशिष्टतां प्रदर्शयन् पथ्यार्यायुग्मेन्द्रवज्रात्मकं श्लोकत्रयं वक्ति—

हरिभद्दसूरिणा खलु रइआऽणेकंतजयपडागाई ।
जे दुग्गमाऽत्थि ग्रहुणा इह विबुहाणं पि गंथणगा ॥१८९॥(पच्छाज्जा)

उपाध्यायश्च तत्राहातिथय कुत आययु । ऊचे तत्र स्थिताचार्यैरणहिल्लपुरादिति ॥१४६॥
विशेषसम्भ्रमाच्चक्रेऽध्यापक. स्वागतादिकम् । उपावीविशदेषोऽपि प्रधानासनि तद्द्वयम् ॥१५०॥
सूराचार्यस्तत प्राह ग्रन्थः कोऽत्र प्रवाच्यते । कृति. श्रीभोजराजस्य शब्दशास्त्र स चावदत् ॥१५१॥
प्रोच्यता तन्नमस्कार इत्युक्तेऽभ्यागतैर्बुधै । उपाध्याय सह च्छात्रै पटुस्वरमुवाच तम् ॥१५२॥ तद्यथा–
चतुर्मुखमुखाम्भोजवनहसवधूर्मम । मानसे रमता नित्य शुद्धवर्णा सरस्वती ॥१५३॥
सूराचार्यस्तत प्राह किञ्चिदुपहासगर्भितम् । एवञ्जातीयविद्वांसो देशेऽत्रैव न चान्यत ॥१५४॥
अस्माभिर्भारती पूर्वमश्रावि ब्रह्मचारिणी । कुमारी साम्प्रत तत्र व्यपदिष्टा वधूरिति ॥१५५॥
चित्रमश्रुतपूर्वं तदन्यत् पृच्छामि किञ्चन । मातुलस्य सुता गम्या यथाऽऽस्ते दक्षिणापथे ॥१५६॥
सुराष्ट्रायां भ्रातृजाया देवरस्य यथोचिता । भवद्देशे तथा गम्याऽनुजाङ्गजवधू कथम् ॥१५७॥
यद्वधूशब्दसामीप्ये 'मानसे रमता मम' । प्रयुक्त तद् भवन्त्येव देशाचारा पृथग्विधा ॥१५८॥
अनुत्तर प्रतिहतश्चालयन्नन्यसत्कथा' । काल विलम्बयामासेष्टानध्यायकृतादर ॥१५९॥
सन्ध्यावसरसम्प्राप्त' श्रीभोजनृपते पुरः । अपराह्णेतिवृत्तं स जगौ विस्मयकारकम् ॥१६०॥
भूपश्च विस्मित प्राह सम्भाव्य गूर्जरावनौ । इद प्रातर्विलोक्योऽसौ विद्वानाहूय निश्चितम् ॥१६१॥
तत्रस्थाचार्यपार्श्वे च भूपाल प्रैषयन्नरान् । आह्वातुमतिथिं ते च भक्तिपूर्व तमाह्वयन् ॥१६२॥
ततो वृद्धसरस्वत्याचार्येण सह स प्रभु । ययौ श्रीभोजभूनाथसभा स्वर्गसभानिभाम् ॥१६३॥
राज्ञा नृपाङ्गणेऽग्रे च शिलैका निहिता तदा । गूर्जराग्रे निजप्राणस्फूर्तिदर्शनहेतवे ॥१६४॥
तत्र पूर्णं पुनश्छिद्र प्राग् विधाप्य पिधाय च । तद्वर्णसमकल्केन तादृशोऽपि छलार्थिन ॥१६५॥ युग्मम् ।
आगच्छन्त तदाऽऽलोक्य सूरिं शरमिशासति । आकर्णं धनुराकृष्यामुचल्लक्ष्ये दृश दधन् ॥१६६॥
सूराचार्यश्च सूक्ष्मेक्षी कल्कालेप तदस्थितम् । बाणाग्रोत्कीर्णमालोक्य गर्भार्थ काव्यमब्रवीत् ॥१६७॥ तथाहि–

विद्धा विद्धा शिलेय भवतु परमत कार्मुकक्रीडितेन,
श्रीमन् पाषाणभेदव्यसनरसिकता मुञ्च मुञ्च प्रसीद ।
वेधे कौतूहल चेत् कुलशिखरिकुल बाणलक्ष्यीकरोषि,
ध्वस्ताधारा धरित्री नृपतिलक तदा याति पातालमूलम् ॥१६८॥

इत्थमद्भुतसामर्थ्यवर्णनात् तोषितो नृप । अधृष्यप्रश्नमेन श्रीधनपालोऽपि बुद्धवान् ॥१६९॥
व्यचिन्तयच्च बुद्धवैव विज्ञान भूपतेरियम् । गमितोक्तिरहो जैना जीयन्ते केन मेधया ॥१७०॥
निजाश्रय ययौ श्रीमान् सुराचार्यो नृपार्चित । राजाऽऽस्थानमथाऽऽस्थाय समस्तविदुषोऽवदत् ॥१७१॥
गूर्जरोऽय महाविद्वानायथौ श्वेतचीवर । अनेन सार्धं कोऽपीह वादमुद्रा बिभर्तु व ॥१७२॥
पण्डिताना सहस्रार्धमध्ये सर्वेऽप्यवाङ्मुखा । मग्नाप्तप्रतिघातेन घनगर्ज्याभेका इव ॥१७३॥
विलक्षो नृपति प्राह किं गेहेनर्दिन खलु । स्वय वृत्तिभुजोऽस्माक विद्वज्जल्पा मुधा बुधा ॥१७४॥
तेषामेको महाप्राज्ञ प्रादान्मन्त्र प्रभो । शृणु । मा वलक्ष्य प्रपद्येथा रत्नगर्भा वसुन्धरा ॥१७५॥
निर्जरा इव देहस्था गूर्जरा श्वेतभिक्षव । दुर्जेयास्तदतो मन्त्रसाध्य कार्यमिद प्रभो । ॥१७६॥
छात्र कोऽपि महाप्राज्ञ आषोडशसमावया । प्रमाणशास्त्रोपन्यास पाठ्यतामशठ सुधीः ॥१७७॥
श्रुत्वेति भूपतिस्तुष्टिपुष्ट. पण्डितवाक्यत । अस्त्वेवमित्यवादीत् तत त्वमेवैतत् कुरुष्व भो । ॥१७८॥
एक पटुर्वेटु सौम्य. प्रज्ञावक्तृत्वशेवधि । तर्कशास्त्रसदभ्यासोपन्यासं पाठतस्तत: ॥१७९॥
अतिव्यक्ताक्षर तेनादायि पाठो गुरो' पुर । एतद् विज्ञाप्य राजान मुहूर्त शोधित शुभ' ॥१८०
ज्ञापित वादसूराय सूराचार्याय भूभुजा । समाहूय च वादार्थं स्थापितोऽसौ वरासने ॥१८१॥

पदवी **"धरोअ"** त्ति, दधार=बभार । कस्मात् ? **"तदेगवारपाणा"** त्ति, तस्यैव=सौवीरस्यै-वैकवारपानात् सकृत्पानविषयीकरणात्; **यदुक्तं श्रीहीरसौभाग्ये**–"पपौ पुनर्य सकृदारनालम् ॥१०४॥" इति। **यद्वा 'तदेगवारपाणा'**त्ति, पदस्य स्थाने **'तदेगवारिपाणा'**इति पाठो बोध्यः, यतो गुर्वावल्यां तादृशो पाठोऽस्ति तदर्थव्याख्या चैवं कार्या–तस्यैव=सौवीरस्यैव एकस्य=अन्यप्रकाराणां वारीणां निरासनेनैकप्रकारस्य वारिणः=जलस्य पानात्=पानविषयीकरणात् ।

तथा चोक्तं गुर्वावल्याम्–

"सौवीरपायीति तदेकवारि-पानात् विधिज्ञो बिरुदं बभार ।
जिनागमाम्भोनिधिधौतबुद्धि-र्य शुद्धचारित्रिषु लब्धरेख ॥६६॥" इति ।

तथा गुर्वावल्युक्तपाठानुसार्यर्थकः श्रीगुरुपर्वक्रमोदितपाठस्त्वेवम्–

"नित्यं पपौ काञ्जिकमेकमम्भ-स्तत्याज सर्वा विकृतीश्च सम्यग् ।
जिगाय यो भावरिपूंश्च सोऽय, श्लाघ्यो न केषां मुनिचन्द्रसूरिः ॥२३॥" इति ।

अथवा गुर्वावल्यामपि **"वारि"**इति पाठस्य स्थाने **"वार"** इति पाठं सभाव्य पूर्वोक्त एवाऽर्थोऽनुसर्तव्यः । **"स"**त्ति सः=मुनिचन्द्रसूरिः **"णिवा"** त्ति नृपात्=विक्रमादित्यभूपतितः **"दिट्ठिसमुद्दसव्वे"** दृष्टयः=योगदृष्टयो मित्रा-तारा-बला-दीप्रा-स्थिरा-कान्ता-प्रभा-परालक्षणा अष्टौ,

यदुक्तं योगदृष्टिसमुच्चये– "योगदृष्टय उच्यन्ते, अष्टौ सामान्यतस्तु ता. ॥१२॥ मित्रा तारा बला दीप्रा, स्थिरा कान्ता प्रभा परा । नामानि योगदृष्टीना, लक्षण च निबोधत ॥१३॥ इति ।

समुद्राः सप्त, शर्वाः=रूद्राः=महादेवा एकादश, एतेऽङ्काः वामगतिन्यस्ता यत्र तत्र दृष्टि-समुद्रशर्वे=विक्रमसंवत् ११७८ **"वासे"** त्ति, वर्षे = हायने **"सग्ग"** ति, स्वर्गं = नाकिलोकं **"गओ"** त्ति, गतः = प्राप्तः; **"भवीणं"**ति, भविनां = मुक्तिरमागमनार्हाणां **"सं"** ति, शं = सौख्यं **"दाउ"** त्ति, ददातु = वितरतु । **तथा चाऽभाणि गुर्वावल्याम्–**"अष्टहयेशमिते ११७८ऽब्दे विक्रमकालात दिवं गतो भगवान् । श्रीमुनिचन्द्रमुनीन्द्रो ददातु भद्राणि सङ्घाय ॥७२॥"इति।

तत्कृतयश्चेमाः– [1]अनेकान्तजयपताकोद्योतदीपिका, [2]अनुशासनाङ्कुशम् , [3]स्वोपज्ञ-वृत्तिसहिता अङ्गुलसप्ततिका, [4]आवश्यकसप्ततिका, [5]वनस्पतिसप्ततिका, [6]उपदेशपञ्चाशिका, [7]उपदेशपञ्चविंशिका, [8]उपदेशपदटीका, [9]उपदेशामृतम् , [10]द्वितीयमप्युपदेशामृतनामकं कुल-कम् , [11]कालशतकम् , [12]कर्मप्रकृतिटीप्पनकम् , [13]कलिकुण्डपार्श्वनाथस्तवनम् , [14]गाथाकोश, [15]तित्थमालाथयम् , [16]धर्मबिन्दुविवृतिः, [17]पर्युषणापर्वविचारः, [18]प्रश्नावली, [19]प्रभातिक-स्तुतिः, [20]मोक्षोपदेशपञ्चाशकम् , [21]योगबिन्दुवृत्तिः, [22]रत्नत्रयकुलकम् , [23]ललितविस्तरा-पञ्जिका, [24]विषयनिन्दाकुलकम् , [25]शङ्खेश्वरपार्श्वनाथस्तवनम् , [26]श्रावकव्रतसंक्षेपः (द्वादश-

नात्रानिर्वृतिराधेया नयामः सपरिच्छदम्। यानारोहे वरे भुक्तौ निष्ठिवन्तौ वर्ततामसौ ॥२१८॥
श्रीमता धनपालेन दीनाराणां शतं ददे। अङ्गीकरणतोऽमीषां रङ्गमङ्गतरङ्गिणा ॥२१९॥
गुरुचोल्लकमध्ये च गुप्तं कृत्वा गुरुं तदा। पर्याणय वृषमान् शीघ्रं ते चेलुर्गूर्जरावनौ ॥२२०॥
स्वहीतदागमेन श्रीसूराचार्येण सद्गुरोः। विज्ञापितं नरैरात्मागमनं कौशलोत्तरम् ॥२२१॥
इतश्च विविशुश्चैत्यमपराह्णे भटाः स्वयम्। साधुं स्थूलोदरं दृष्ट्वा सिंहासन्युपवेशितम् ॥२२२॥
प्रधानवस्त्रसंवीतमुद्यन्मदकलाकृतिम्। एवमूचुर्नृपादेशान्निर्गच्छत जिनालयात् ॥२२३॥ युग्मम्।
मध्ये योऽत्र विलम्बः सोद्वले घातवञ्चना। उत्थाय सोऽग्रतो भूत्वाऽश्ववारैः सह जग्मिवान् ॥२२४॥
पार्थिवस्य पुरो भूत्वाऽवतस्थे मौनमास्थितः। विलक्षेण ततो राज्ञाऽऽह्वायका जल्पितास्तदा ॥२२५॥
कोऽयं भवद्भिरानीतो बठरः स्थूलदेहभृत्। गतोऽसौ गूर्जरश्छेको भवतामग्रतो ननु ॥२२६॥
अक्ष्णि रेणुं हि निक्षिप्य केनाप्यन्धाः कृताः कथम्। भवतां सदृशः कश्चिच्चेतनारहितो नहि ॥२२७॥
तेऽप्यूचुर्नाथ! नीरस्य ग्राहकं दुर्गतं मुनिम्। एकं मुक्त्वा न कस्यापि निर्गमोऽस्मत्पुरः प्रभो! ॥२२८॥
भूप आह परावृत्य वेषं वः पश्यतां ययौ। विजित्य नः सभां नान्यस्त्वत्तो विनोत्पन्नबुद्धिमान् ॥२२९॥
पुरस्थं प्राह राजा स्वमावासं गच्छ पुण्यवन्। मूर्खत्वं हि वरं श्लाघ्यं येनास्मत्तोऽपि जीवितः ॥२३०॥
इत्यसौ प्रहितो राज्ञा मठे व्यावृत्य चाययौ। मूर्ध्नि एव भ्रुवोर्नैवाक्षतवर्द्धनमुण्डने ॥२३१॥
इतः श्रीभीमभूपालः प्रजिघाय नरान् निजान्। आह्वायकान् निजभ्रातुर्मातुलो व्रतिभिः सह ॥२३२॥
स्वदेशे प्रकटो भूत्वा राजधानीमथाययुः। गुरवः सङ्घसंवीतास्तस्याभिमुखमागमन् ॥२३३॥
राजा च सर्वसामग्र्या प्रतिपन्थीव कः शुभे। आचार्यः स्वगुरोः पादौ प्रेक्ष्य ह्रीमानिवानमत् ॥२३४॥
प्रत्यासन्नश्च तेषां स सर्वाभिगमपूर्वकम्। योगीवाष्टाङ्गयोगेन प्रह्वोऽभिहितवान् वचः ॥२३५॥
सफलाऽद्य गुरोराशा सफला मातुराशिषः। प्रसन्ना दृक् च मातृक्षे श्रीसंघस्य फलेग्रहिः ॥२३६॥
अविमृश्य विधायी च गतो मालवके तदा। अक्षतोऽहमिहागच्छं यज्जित्वा भोजपर्षदम् ॥२३७॥ युग्मम्।
तथाऽन्तेवासिनोऽमी श्रीगुरुपादाग्रतो मम। क्ष (क्ष?) ण नाकथयिष्यन्नाशिक्षिष्यत न च प्रभुः ॥२३८॥
बालोऽहं यदि दर्पेण न व्यधास्यं प्रतिश्रवम्। गुरुमस्तकहस्तस्य कः प्रमाणमथोच्यते ॥२३९॥ युग्मम्।
इत्याकर्ण्य प्रभुर्द्रोणः शोणहृद इव स्थिरः। उवाच वाचमाचारचारुचारित्रचञ्चुरः ॥२४०॥
एवं प्रतिश्रवं क्लीबदुष्करं विदधीत कः। निर्वाहयेत च श्रीमन्! विना त्वामाप्तवाग्वरम् ॥२४१॥
सगच्छसङ्घाश्च वयमाचामाम्लैरुपस्थिताः। आभवद्दद्यालोकात् सम्यक् शासनदेवताम् ॥२४२॥
सगद्गदमुदित्वैव स बाढं परिषस्वजे। गुरुभिश्चाथ भूपोऽपि श्रीभीमः प्राह सादरम् ॥२४३॥
मनीषी विनयी छेकस्तत्कालोत्पन्नबुद्धिमान्। त्वां विना दृश्यते नान्यस्तेजस्वी दृढधैर्यभूः ॥२४४॥
श्रीभोजं छलयित्वा यत्तादृक्प्राज्ञपरिग्रहम्। आगत्याक्षतदेहस्त्वं मम तेजोऽभ्यवर्द्धय ॥२४५॥
किञ्चित् पृच्छामि सन्देहं नृपतिः स स्तुतो न वा। सूरसूरिरथ प्राह पयोवाहनिभध्वनिः ॥२४६॥
रसना मे महाराज! त्वां विना स्तौति नापरम्। मदुक्तस्य च काव्यस्य भावार्थं शृणु कौतुकात् ॥२४७॥
शिला विद्धा सती विद्धा छिद्रे शरमुचा हि कः। विक्रमः कार्मुकक्रीडा मुञ्च तद् व्याजतः कृताम् ॥२४८॥
व्यसने दृषदां भेदाद् भवता पूर्वजो गिरिः। अर्बुदस्तस्य भेदे तु व्यस्ताधारा धरित्र्यपि ॥२४९॥
पातालमूलं यान्तीयं शिक्षयेऽहमिति ब्रुवन्। अपि द्विषति सच्छिक्षा दातव्या शमजीविते ॥२५०॥
श्रीभीमः प्राह तच्छ्रुत्वा पुलकोद्भेदमेदुरः। मद्बन्धुना जिते भोजे का मे चिन्तास्ति तज्जये ॥२५१॥
स्वसमीपे समारोप्य गजराजवरासने। सूराचार्यस्य भूपालः प्रवेशोत्सवमातनोत् ॥२५२॥
सवीचारान् स विज्ञप्य गुरुपार्श्वे महामतिः। देशान्तरगतौ जातास्तपसाऽशोधयद् दृढम् ॥२५३॥

श्वरस्य=मुनिचन्द्रनाम्नो यतिनाथस्य "पयलच्छिमलकरीअ"त्ति, पदमेव = पट्ट एव लक्ष्मीः = अब्धितनया = विष्णुकान्ता पदलक्ष्मीस्तां पदलक्ष्मीमलञ्चकार, क इव ? "तक्ख-ज्झओ व"त्ति, ताक्ष्यः = गरुडो ध्वजे=केतौ यस्य स ताक्ष्र्यध्वजः, ताक्ष्र्यध्वज इव = विष्णुरिव यथा विष्णुः समुद्रपुत्री लक्ष्मीमलमकरोत् ।

यत्तदोर्नित्यसम्बन्धित्वेनाह-"जो" त्ति, यः "णामेण" त्ति, नाम्ना=संज्ञया "अजिअदेवगुरू" त्ति, अजितदेवः=अजितदेवनामा गुरुः=आचार्यः "हवीअ" त्ति, अभूत् । कस्मात् ? "जं" ति, यत्=यस्मात् कारणादुत्प्रेक्षते "णूणं" ति. नूनं=निश्चये "णो" त्ति, न=नैव "जिओ" त्ति, जितः=पराजयीभूतः, कैः ? "कउवसग्गसुरेहिं" त्ति, कृताः=विहिता उपसर्गाः=उपद्रवविशेषा यैस्ते कृतोपसर्गाः, ते चाऽमी सुराश्च=देवाश्च कृतोपसर्गसुरैरिति हेतोः "मण्णे" त्ति, मन्ये ।

यदुक्तं गुर्वावल्याम्---

"तस्मादभूतजितदेवगुरुर्गरीयान् , प्राच्यस्तप श्रुतनिधिर्जलधिर्गुणानाम् ।" इति ।

तथा श्रीहीरसौभाग्येऽपि न्यगादि---

"निर्जीयते स्म क्वचनापि नाऽस्य, कृतोपसर्गैरपि देववर्गैः ।
इतीव नाम्ना भुवि विश्रुतेन, जज्ञेऽस्य पट्टेऽजितदेवसूरि' ॥१०६॥" इति ।

विक्रमसंवच्चतुरधिकद्वादशशत१२०४वर्षे खरतरमतं प्रकटीबभूव । तथा विक्रमसंवत्-त्रयोदशोत्तरद्विशताधिकसहस्र१२१३संवत्सरे आञ्चलिकमतमुत्पन्नम् । विक्रमसंवदि षट्त्रिंशे द्वादशशत१२३६वर्षे सार्धपौर्णिमीयकमतोत्पत्तिर्जाता । विक्रमसंवत्पञ्चाशदुत्तरे द्विशताधिक-सहस्र१२५०वर्षे आगमिकमतं प्रवर्तितम् । तथा विक्रमसंवद्द्वाविंशद्वादशशत१२२२वर्षे वीरसंवद्द्विनवत्यधिकषोडशशत१६९२वर्षे च बाहडकृतशत्रुञ्जयोद्धारोऽभूत् ॥११३॥

अथ श्रीमुनिचन्द्रसूरेर्द्वितीयपट्टभृदन्तेवासिनं श्रीवादिदेवसूरिं पथ्यागीति-पथ्यापूर्विकादि-चपलार्यात्मकतया गाथाद्वय्याऽभिदधाति---

मुणिचंदसूरिसीसो बीओ वादिदेवसूरीसो ।
जगविक्खाओ जेआ दिगंबरायरिअकुमुअचंदस्स ॥११४॥ (पच्छागीई)
से वग्गवेअगिरिसे ११४३।११३४ जणी णिवा-ऽद्दे वयं च वीरसिवे ११५२।
कट्ठाऽस्सीसे ११७४ पयवी सग्गो तक्किहदसणाकप्पे १२२६ ॥११५॥
(पच्छापुव्विगा मुहचवलाऽज्जा)

"अतिष्ठपद् निर्वृतिमङ्गनाजने, विजित्य यो दिक्पटमागमोक्तिभि ।
विवादविद्याविदुर वदावदा, जयन्ति तेऽमी प्रभुदेवसूरय ॥
श्वेताम्बराणामपि येश्च दर्शन, स्थिरं कृत गुर्जरभूमिमण्डले ।
चलाचल दिक्पटवादवात्यया, मनोमुदे ते मम देवसूरय ॥ ॥" इति ।

मेरुतुङ्गसूरिभिः प्रबन्धचिन्तामणौ--

"नग्नो यत् प्रतिभाधर्मात कीर्तियोगपट त्यजन् । ह्रियेवा ऽत्याजि भारत्या देवसूरिर्मुदेऽस्तु व ॥ ॥
थ श्वेताम्बरशासनस्य विजिते नग्ने प्रतिष्ठागुरु । तद्देवाद् गुरुतोऽप्यमेयमहिमा श्रीदेवसूरिप्रभु ॥' इति ।

श्रीमुनिदेवाचार्यैः-

"वादविद्यावतोऽद्यापि लेखशालामनुज्झता । देवसूरिप्रभो साम्य कथ स्याद्देवसूरिणा ॥१॥" इति ।

श्रीउदयप्रभदेवैः-

"भेजेऽवकीर्णतां नग्न कीर्तिकन्या+मुपार्ज्य य । ता देवसूरिराच्छिद्य त निर्ग्रन्थ पुनर्व्यधान् ॥१॥" इति ।

तथा प्रद्युम्नसूरिभिः--

वस्त्रप्रतिष्ठाचार्याय नम श्रीदेवसूरये । यत्प्रसादमिवा✱ख्यान्ते ㉿सुखप्रश्नेपु साधव ॥ ॥" इति ।

अथ द्वितीयया पथ्यार्यात्मकया गाथयाऽमुष्य जन्मादिसंवत्सरान्निर्देष्टुमाह—

"से" इत्यादि, **"से"**त्ति, तस्य=श्रीवादिदेवसूरेः **"णिवा"**त्ति, नृपात्=विक्रमपृथ्वीपतितः **"वग्गवेअगिरिसे"**त्ति, वर्गाः-धर्मा-ऽर्थ-कामरूपास्त्रयः, वेदाः-ऋग्वेद-यजुर्वेद-शामवेदा-ऽथर्ववेदलक्षणाश्चत्वारः, गिरिशाः=रुद्राः=शम्भव एकादश, एतेऽङ्का "अङ्कानां वामतो गति" इति वचनमाश्रित्य प्रतिलोम्ना क्रमेण धारिता यत्र तत्र वर्णवेदगिरिशे ११४३ **"ऽद्दे"** त्ति, अब्दे=वर्षे=विक्रमसंवत् ११४३ वर्षे **"जणी"**त्ति, जनिः=जन्माऽभूत् **"वीरसिवे"**त्ति, वीरा द्विपञ्चाशत् शिवाः=नीलकण्ठा एकादश, एतावङ्कौ वामगत्या ११५२ संख्या यत्र तत्र वीरशिवे विक्रमसंवत् ११५२ हायने **"वयं"**ति, व्रतं=सर्वविरतिग्रहणलक्षणमजायत ।

"कट्ठास्सीसे"त्ति; काष्ठाः=दिशाः प्रसिद्धाः पूर्वाद्याश्चतस्रः, अश्वाः=वाजिनः सप्त, ईशाः=महेश्वरा एकादश, एते वामक्रमव्यवस्थिता ११७४ संख्या यस्य तादृशे काष्ठाश्वेशे=विक्रमसंवत् ११७४ शारदे **"पयवी"**त्ति; पदवी=सूरिपदवी जायते स्म ।

+ "॰मुपार्जयन्" इत्यपि पाठ । ✱ "॰ख्याति सुखप्रश्नेपु दर्शनम्" इत्यपि पाठ ।

㉿ गुरुवन्दनसूत्रे 'स्वामी शाता छे जी' इति प्रश्नस्योत्तरे 'देवगुरुपसाए'="देवगुरुप्रसादात्' इति साधवो वदन्ति । तत्र प्रस्तुतमाश्रित्य "देवगुरुप्रसादात्" इत्यत्र देवगुरुपदयो कर्मधारयसमासगर्भित-षष्ठीतत्पुरुषसमासमाश्रित्येदमुक्तम् । तदर्थश्चैवम्-देवनाम्नो गुरोरेतावता वादिदेवसूरे प्रसादात् । यथार्थार्थे पुनर्द्वन्द्वगर्भितषष्ठीतत्पुरुषसमासोऽस्ति । तदर्थश्च-देवस्य गुरोश्च प्रसादात् ।

सूरिश्वरः=आचार्यप्रष्ठः,स चाऽसौ सर्वदेवः=सर्वदेवाऽभिधः सूरीश्वरसर्वदेवस्तस्य सूरीश्वरसर्वदेवस्य= तन्नाम्नः स्वगुरोः "पट्टकणी" त्ति, पट्ट एव=पदमेव कनी=कन्या पट्टकनी "आलिद्धा" त्ति, आश्लिष्टा=आलिङ्गिता । काभ्यां का इव "ललणा करेहि दढमिव" त्ति, ललना इव=रमा इव यथा ललना=रामा कराभ्यां=हस्ताभ्यां दृढमाश्लिष्यते ॥१८३॥

अथैकोनचत्वारिंशं द्वितीयोदयनयुगप्रधानक्रममाश्रित्यैकोनविंशं युगप्रधान श्रीविनयमित्राख्यं प्रचिकटयिषुः पथ्यार्या-पथ्यागीतिलक्षणं श्लोकद्वयं प्राह—

आसि सिरिविणयमित्तो गुणचत्तालीसमो जुगपहाणो ।
तस्स जणी वीराऽब्दे हलिदिक्कुमरीरसा१५६९संखे॥१८४॥(पच्छाज्जा)
जिणपम्हवसणजोगे १५७९ स वयं गेण्हीअ आसि जुगपवरो ।
चउणरखगससिकले१५९८सग्गमिओ जीदजोगिलक्खणिवे१६८४॥१८५॥
(पच्छागीई)

(प्रे०) "आसि"इत्यादि, "सिरिविणयमित्तो"त्ति, श्रीविनयमित्रः=श्रीमान् विनयमित्रसंज्ञकः सूरिः "गुणचत्तालीसमो जुगपहाणो" त्ति, एकोनचत्वारिंशत्तमो युगप्रधानः "आसि" त्ति, अभूत् ।

अथ सार्द्धगाथयाऽमुष्य जन्मादिपर्यायवत्सरानाह— "तस्स" इत्यादि, "तस्स" त्ति, तस्य श्रीविनयमित्रनाम्नः सूरेः "वीरा" त्ति, वीरात्=महावीरप्रभुमोक्षगमनकालात् "हलिदिक्कुमरीरसासंखे"त्ति, हलिनः=बलदेवा नव, दिक्कुमार्यः षट्पञ्चाशत् ●, रसा=अवन्येका, इत्यङ्कैर्वामगतिस्थापितैः १५६९सङ्ख्या यत्रा-ऽब्दे तत्र हलिदिक्कुमारीरसासङ्ख्ये "ऽब्दे" त्ति, अब्दे=वर्षे=वीरसंवत्१५६९शारदे "जणी"त्ति, जनिः=जन्माऽभवत् । "जिणपम्हवसणजोगे" त्ति, जिनपद्मानि सुरक्तानि नव, व्यसनानि द्यूतादीनि सप्त, उक्तञ्च-"द्यूतं च मासं च सुरा च वेश्या,पापर्द्धिचोर्ये परदारसेवा । एतानि सप्त व्यसनानि लोके, घोरातिघोरं नरकं नयन्ति ॥ ॥"इति । वारा आदित्यादयः सप्त, योगाः=सत्यादिमनोयोगचतुष्क-वचनयोगचतुष्कौ-दारिकादिकाययोगसप्तकलक्षणाः पञ्चदश, एतेऽङ्काः पश्चानुपूर्व्या १५७९ इति संख्या यस्य वर्षस्य तस्मिन् जिनपद्मव्यसनयोगे=वीरसंवत् १५७९ शारदे "स वय गेण्हीअ" त्ति, सः=श्रीविनयमित्रसूरिः

● उक्तञ्च—"अहअट्ठमउड्ढअट्ठ य दचउदिसिरुयगाओ अट्ठ पत्तेयं ३२ ।
मज्झिमग ४ विदिसिरुयगाउ ४ चउचउ छप्पन्नकुमरीओ ॥
सवट्टम्मेहद् कयलीघर म आयसा य दीवतालियटा य म । चामर८जोई४ रक्ख४ करिंति एय कुमारीओ ॥ "इति ।

"अतिष्ठपद् निर्वृतिमङ्गनाजने, विजित्य यो दिक्पटमागमोक्तिभि ।
विवादविद्याविदुरं वदावदा, जयन्ति तेऽमी प्रभुदेवसूरय ॥
श्वेताम्बराणामपि येश्च दर्शन, स्थिर कृत गुर्जरभूमिमण्डले ।
चलाचल दिक्पटवादवात्यया, मनोमुदे ते मम देवसूरय ॥ ॥" इति ।

मेरुतुङ्गसूरिभिः प्रबन्धचिन्तामणौ--

"नग्नो यत् प्रतिभाधर्मात् कीर्तियोगपट त्यजन् । ह्रियेवा ऽत्याजि भारत्या देवसूरिर्मुदेऽस्तु व' ॥ ॥
य श्वेताम्बरशासनस्य विजिते नग्ने प्रतिष्ठागुरु ।तद्वाद गुरुतोऽप्यमेयमहिमा श्रीदेवसूरिप्रभु ॥' इति।

श्रीमुनिदेवाचार्यैः-

"वादविद्यावतोऽद्यापि लेखशालामनुज्झता । देवसूरिप्रभो साम्य कथ स्याद्देवसूरिणा ॥१॥" इति।

श्रीउदयप्रभदेवैः-

"भेजेऽवकीर्णतां नग्न कीर्तिकन्या+मुपार्ज्य य । तां देवसूरिराच्छिद्य त निर्ग्रन्थ पुनर्व्यधान् ॥१॥" इति ।

तथा प्रद्युम्नसूरिभिः--

वस्त्रप्रतिष्ठाचार्याय नम श्रीदेवसूरये । यत्प्रसादमिवा✱ख्यान्ते ☺सुखप्रश्नेपु साधव ॥ ॥" इति।

अथ द्वितीयया पथ्यार्यात्मकया गाथयाऽमुष्य जन्मादिसंवत्सरान्निर्देष्टुमाह—

"से" इत्यादि, **"से"**त्ति, तस्य=श्रीवादिदेवसूरेः **"णिवा"**त्ति, नृपात्=विक्रमपृथ्वीपतितः **"वग्गवेअगिरिसे"**त्ति, वर्गाः-धर्मा-ऽर्थ-कामरूपास्त्रयः, वेदाः-ऋग्वेद-यजुर्वेद-शामवेदा-ऽथर्ववेदलक्षणाश्चत्वारः, गिरिशाः=रुद्राः=शम्भव एकादश, एतेऽङ्का "अङ्काना वामतो गति" इति वचनमाश्रित्य प्रतिलोम्ना क्रमेण धारिता यत्र तत्र वर्णवेदगिरिशे ११४३ **"ऽद्दे"** त्ति, अब्दे=वर्षे=विक्रमसवत् ११४३ वर्षे **"जणी"**त्ति, जनिः=जन्माऽभूत् **"वीरसिवे"**त्ति, वीरा द्विपञ्चाशत् शिवाः=नीलकण्ठा एकादश, एतावङ्कौ वामगत्या ११५२ संख्या यत्र तत्र वीरशिवे विक्रमसंवत् ११५२ हायने **"वयं"**ति, व्रतं=सर्वविरतिग्रहणलक्षणमजायत ।

"कट्ठास्सीसे"त्ति; काष्ठाः=दिशाः प्रसिद्धाः पूर्वाद्याश्चतस्रः, अश्वाः=वाजिनः सप्त, ईशाः=महेश्वरा एकादश, एते वामक्रमव्यवस्थिता ११७४ संख्या यस्य तादृशे काष्ठाश्वेशे=विक्रमसंवत् ११७४ शारदे **"पयवी"**त्ति; पदवी=सूरिपदवी जायते स्म ।

+ "०मुपाजर्यन्" इत्यपि पाठ । ✱ "°ख्याति सुखप्रश्नेपु दर्शनम्" इत्यपि पाठ ।
☺ गुरुवन्दनसूत्रे 'स्वामी शाता छे जी' इति प्रश्नस्योत्तरे 'देवगुरुपसाए'="देवगुरुप्रसादात्' इति साधवो वदन्ति । तत्र प्रस्तुतमाश्रित्य "देवगुरुप्रसादात्" इत्यत्र देवगुरुपदयो कर्मधारयसमासगर्भितषष्ठीतत्पुरुषसमासमाश्रित्येदमुक्तम् । तदर्थश्चैवम्-देवनाम्नो गुरोरेतावता वादिदेवसूरे प्रसादात्। यथार्थार्थे पुनर्द्वन्द्वगर्भितषष्ठीतत्पुरुषसमासोऽस्ति । तदर्थश्च-देवस्य गुरोश्च प्रसादात् ।

'भूवा' त्ति, भूपात्=विक्रमादित्यभूमिपालतः "रसदहणगिरीसमिअवासे" त्ति, रसाः कार्मग्रन्थिकमते प्रसिद्धाः तिक्त-कटु-कषाया-ऽम्बल-मधुरलक्षणाः पञ्च, लवणरसस्य पुनर्मधुरादिरससंसर्गजन्यत्वेन पृथगविवक्षणात्, दहनाः=अग्नयस्त्रयः, गिरीशाः=महादेवा एकादश, एतैरङ्कैः पश्चानुपूर्व्या ११३५ इति सङ्ख्यया मितो यो वर्षः स रसदहनगिरीशमितः स चाऽसौ वर्षस्तस्मिन् रसदहनगिरीशमितवर्षे "गओ तिदिव" त्ति, त्रिदिवं=नाकं गतः=इतः ।

अत्र केचिदमुष्य स्वर्गमनं विक्रमसंवदेकोनचत्वारिंशैकादशशत११३९वर्षे मन्यन्ते । तदनुसारेण तन्मतसंग्रहार्थं वाऽनन्तरोक्तः "रस" इति पदमित्थं व्याख्येयम्-रसाः शृङ्गारादयो नव, शेषं सर्वं पूर्ववत् ।

तथा चाऽत्र प्रभावकचरितम्—

श्रीजैनतीर्थधम्मिलोऽभयदेव प्रभुः श्रिये । भूयात्सौमनसोद्भेदभास्वर सर्वमौलिम् ॥१॥
आद्दत्याष्टाङ्गयोग य स्वाङ्गमुद्धृत्य च प्रभुः । श्रुतस्य च नवाङ्गाना प्रकाशी स श्रिये द्विधा ॥२॥
वदन् बालो यथाऽव्यक्त मातापित्रोः प्रमोदकृत् । तद्वृत्तमिह वक्ष्यामि गुरुहर्षकृते यथा ॥३॥
अस्ति श्रीमालवो देश. सद्वृत्तरसशालित' । जम्बूद्वीपाख्यमाकन्दफल सद्वर्णवृत्तसू. ॥४॥
तत्राऽस्ति नगरी धारा मण्डलाग्रोदितस्थिति. । मूल नृपश्रियो दुष्टविग्रहद्रोहशालिनी ॥५॥
श्रीभोजराजस्तत्रासीद् भूपालः पालितावनि । शेषस्येवाऽपरे मूर्त्ती विश्वोद्धाराय यद्भुजौ ॥६॥
तत्र लक्ष्मीपतिर्नाम व्यवहारी महाधन । यस्य श्रिया जित श्रीद कैलासाद्रिमशिश्रयत् ॥७॥
अन्यदा मध्यदेशीयकृष्णब्राह्मणनन्दनौ । ब्रह्मप्रज्ञाबलाक्रान्तवेदविद्याविशारदौ ॥८॥
अधीतपूर्विणौ सर्वान् विद्यास्थानांश्चतुर्दश । स्मृत्यैतिह्यपुराणाना कुलकेतनता गतौ ॥९॥
श्रीधर श्रीपतिश्चेति नामानौ यौवनोद्यमात् । देशान्तरदिदृक्षायै निर्गतौ तत्र चागतौ । त्रिभिर्विशेषकम् ।
तौ पवित्रयत. स्मात्र लक्ष्मीधरगृहाङ्गणम् । सोऽपि भिक्षा ददौ भक्त्या तदाकृतिवशीकृतः ॥११॥
गेहाभिमुखभित्तौ च लिख्यते स्मास्य लेखकम् । टङ्कविंशतिलक्षाणां नित्य देहशालुश्च तौ ॥१२॥
सदा दर्शनत' प्रज्ञाबलादप्यतिसङ्कुलम् । तत्परिस्फुरित सम्यक् सदाभ्यस्तमिवाऽनयो ॥१३॥
जनो मत्पार्श्वतः सूपकारवत्सूनकारवान् । वर्त्तते निष्ठुर किं तु मम किञ्चिन्न यच्छति ॥१४॥
ब्राह्मणा अपि गीर्वाणान् मन्मुखादाहुतिप्रदाः । तर्पयन्तु फल तु स्यात् तत्कर्मकर्तैव मे ॥१५॥
इतीव कुपितो वह्निरह्ने केनाऽपि भस्मसात् । विदधे ता पुरीमूरीकृतप्रतिकूलक्रिय' ॥ त्रिभिर्विशेषकम् ।
लक्ष्मीपतिर्द्वितीयेऽह्नि न्यस्तहस्त- कपोलयो । सर्वस्वनाशतः खिन्नो लेख्यदाहाद्विशेषतः ॥१७॥
प्राप्ते काले गतौ भिक्षाकृते तस्य गृहाङ्गणे । ग्रामौ प्लुष्टं च तद्दृष्ट्वा विषण्णाविदमूचतु' ॥१८॥
यजमान । तवोन्निद्रकष्टेनावां सुदु खितौ । किं कुर्वहे क्षुधा किं तु सर्वेदु खातिशायिनी ॥१९॥
पुनरीदृक्शुचाक्रान्तसत्त्ववृत्तिर्भवान् किमु । धीरा' सत्त्व न मुञ्चन्ति व्यसनेषु भवादृशा' ॥२०॥
इत्याकर्ण्य तयोर्वाक्यमाह श्रेष्ठी निशम्यताम् । न मे धनान्नवस्त्रादिदाहाद् दु खं हि तादृशम् ॥२१॥
यादृग्लेख्यकनाशेन निर्धर्मेण जनेन यत । कलह सभवी ,धर्महानिकृत् क्रियते हि किम् ॥२२॥ युग्मम् ।
जजल्पतुश्च तावावा भिक्षावृत्ती तत्राऽपरम् । शक्नुवो नोपकर्तुं हि व्याख्यावो लेख्यक पुन ॥२३॥
श्रुत्वाऽतिहर्षभू श्रेष्ठी स्वपुरस्तौ वरासने । न्यवेशयज्जन स्वार्थपूरक ध्रुवमर्हति ॥२४॥

अस्ति गूर्जरदेशस्य नवनीतमिवोद्धृतम् । अष्टादशशतीनाम मण्डल स्वर्गखण्डलम् ॥५॥
तत्र मड्डाहृत नाम नगर नगराजिभि । ध्वान्तस्येव महादुर्गमगम्य सूर्यरोचिषाम् ॥६॥
सद्वृत्तोज्जीवनच्छायो राजमान स्वतेजसा । प्राग्वाटवशमुक्तासीद् वीरनागाभिधो गृही ॥७॥
तत्प्रिया सत्क्रियाधारा प्रियङ्करगुणावनि' । जिनदेवीति देवीव मेना हिमवतो वभौ ॥८॥
अन्यदा सा निशि स्वप्ने पियूषर्चिमैक्षत । प्रविशन्त मुखे पृथ्व्यामवतारेच्छया किल ॥९॥
अन्वये गुरवस्तस्य श्रीमुनिचन्द्रसूरय । सन्ति शान्तिकमन्त्रान्ते येषा नामाक्षराण्यपि ॥१०॥
प्रात सा तत्पुरो गत्वा नत्वा सत्त्वमहालया । अपृच्छन्मुदिताचार्य स्वप्नस्यातिशयस्पृश ॥११॥
देवश्चन्द्रनिभ कोऽप्यवततार तवोदरे । आनन्दयिष्यते विश्व येन ते चेत्थमादिशन् ॥१२॥
अथ सा समयेऽसूत सुत वज्रोपमद्युतिम् । यत्तेजसा कलि शैलश्चकम्पे भेदभीतित ॥१३॥
हृदयानन्दने तत्र वर्धमाने च नन्दने । चन्द्रस्वप्नात्पूर्णचन्द्र इत्याख्या तत्पिता व्यधात् ॥१४॥
कदाचिन्नगरे तत्राशिव जज्ञे जनान्तकृत । सहमैव यतो लोक प्रेक्ष्याप्रेक्ष्यत्रमादधौ ॥१५॥
वीरनागो विचिन्त्यैतद् दक्षिणा दिशमाश्रयत् । भृगुकच्छपुर प्राप लाटदेशविभूषणम् ॥१६॥
विहार जङ्गम तीर्थ श्रीमुनिचन्द्रसूरय । चक्रुस्तत्र तदादेशात् स्थापितोऽसौ सधर्मिभि ॥१७॥
वर्षाष्टकवया पूर्णचन्द्र इत्यस्य नन्दन । चक्रे सुवासिकादीना वाणिज्य शैशवोचितम् ॥१८॥
वित्तनौवित्तहर्म्येषु विकाशिचणकै समा । द्राक्षा अवापदर्भत्वेऽपि हि पुण्यानि जाग्रति ॥१९॥
कस्मिंश्चित् सदनेऽन्येद्यु गतो व्यञ्जनविक्रये । द्रम्मान् हेम च गेहेश पिटैरुज्झन्तमैक्षत ॥२०॥
भवाभाग्याद् घटश्लक्ष्णकर्कराङ्गाररूपत । पश्यति स्म तत पूर्णचन्द्र प्राहातिविस्मित ॥२१॥
किमुज्झसि महाद्रव्य नरसञ्जीवनौषधम् । इत्युक्ते स गृही दध्यौ चित्तेऽहो पुण्यवानसौ ॥२२॥
वत्स ! द्रव्यमिद वशपात्रे क्षिप्त्वा ममार्पय । इत्युक्त पूरयित्वाऽसौ पात्राण्यस्यार्पयत्तदा ॥२३॥
तत्करस्पर्शमाहात्म्यात्तद् द्रव्य पश्यति स्म स । अपुण्य-पुण्ययो साक्षादीदृग दृश्यतेऽन्तरम् ॥२४॥
सोऽन्तर्गेह क्षिपत्येव सर्वं निहितमन्तरा । एकासुखादिकाहेतो प्रसृतिस्तेन चार्प्यत ॥२५॥
हृष्टश्च पितुराख्याय ददौ तद् द्रविण मुदा । वीरनाग प्रभूणा च यथावृत्तमदोऽवदत् ॥२६॥
व्यमृशस्तेऽप्यवातार्षीत् किमेष पुरुषोत्तम । दर्शयन्ती स्वरूपाणि लक्ष्मीर्यस्याभिलाषुका ॥२७॥
रङ्गत्कुमुदचन्द्राशुप्रसराच्छादकोदय । विरोचनो विनेयश्चेदेषानन्तोन्नतिस्तदा ॥२८॥
ततस्तेऽप्यवदन् वाच शृणु नस्तव यद्वरम् । वस्तु सपद्यते कस्य भक्त्या तत्प्रतिपद्यते ॥२९॥
स प्राह नाथ ! पूज्याना कुले नो गुरुनाभूताम् । अह त्वेकसुतो जीर्णस्तदास्था मेऽत्र जीवितुम् ॥३०॥
व्यवसाये क्षम कीदृशेऽपि नाह जनन्यपि । अस्य नश्यत्तनुस्थेमाऽनन्यसूस्तद् वदामि किम् ॥३१॥
अत्र चेत्पूज्यपादानामाग्रहस्तन्मया न हि । विचारण हि कर्तव्य गृह्यतामेष नन्दन ॥३२॥ विशेषकम् ।
प्रभुराहाथ मे पञ्चशती चारित्रिणा गणे । सर्वेऽपि ते सुता सन्तु तवैकस्मादत प्रति ॥३३॥
अमी साधर्मिका यावज्जीव कशिपुदास्तव । धर्म धेह्यास्व निश्चिन्त परलोकैकशम्बलम् ॥३४॥
तदम्बा च यथादेशकारिणीमनुमान्य च । पूर्णचन्द्र दृढाभक्ति प्रभव समदीक्षयन् ॥३५॥

रामचन्द्राभिधा तस्य ददुरानन्दनाकृते । दर्शनोल्लासिन सद्धर्मसिन्धुवृद्धिविधायिन ॥३६॥
दुर्जेयत्वकलङ्कस्यापनोदादुपकारिणीम् । यत्प्रज्ञा दुर्गशास्त्राणामपि वाग्गोचर स किम् ॥३७॥
तर्क-लक्षण-साहित्यविद्यापारगत स च । अमूर्तत्वपरसिद्धान्ते वर्तमाने कषोपल ॥३८॥
शिवाद्वैत वदन् धन्ध पुरे धवलके द्विज । काश्मीर सागरो जिग्ये वादात्सत्यपुरे पुरे ॥३९॥
तथा नागपुरे क्षुण्णो गुणचन्द्रो दिगम्बर । चित्रकूटे भागवत शिवभूत्याख्यया पुन ॥४०॥

चन्द्रशाला निजा चन्द्रज्योत्स्नानिर्मलमानसः । स तयोरार्पयत् तत्र तस्थतुः सपरिच्छदौ ॥६०॥
द्विचत्वारिंशता भिक्षादोषैर्मुक्तमलोलुपौ । नवकोटीविशुद्धं चाघात भैक्षमभुञ्जताम् ॥६१॥
मध्याह्ने याज्ञिकस्मार्त्तदीक्षितानग्निहोत्रिणः । आहूय दर्शितौ तत्र निर्व्यूढौ तत्परीक्षया ॥६२॥
यावद् विद्याविनोदोऽयं विरिञ्चेरिव पर्षदि । वर्त्तते तावदाजग्मुर्नियुक्ताश्चैत्यमानुषाः ॥६३॥
ऊचुश्च ते झटित्येव गम्यतां नगराद् बहिः । अस्मिन्न लभ्यते स्थातुं चैत्यबाह्यसिताम्बरैः ॥६४॥
पुरोधाः प्राह निर्णयमिदं भूपसभान्तरे । इति गत्वा निजेशानामाख्यानमिह भाषितम् ॥६५॥
इत्याख्याते च तैः सर्वैः समुदायेन भूपतिः । वीक्षितः प्रातरायासीत् तत्र सौवस्तिकोऽपि सः ॥६६॥
व्याजहाराथ देवास्मद्गृहे जैनमुनी उभौ । स्वपक्षे स्थानमप्राप्नुवन्तौ समापतुस्ततः ॥६७॥
मया च गुणगृह्यत्वात् स्थापितावाश्रये निजे । भट्टपुत्रा अमीभिर्मे प्रहिताश्चैत्यपक्षिभिः ॥६८॥
अत्रादिशत मे क्षूणं दण्डं चात्र यथार्हतम् । श्रुत्वेत्याह स्मितं कृत्वा भूपालः समदर्शनः ॥६९॥
मत्पुरे गुणिनः कस्माद् देशान्तरत आगताः । वसन्तः केन वार्यन्ते को दोषस्तत्र दृश्यते ॥७०॥
अनुयुक्ताश्च ते चैवं प्राहुः शृणु महीपते ! । पुरा श्रीवनराजोऽभूच्चापोत्कटवरान्वयः ॥७१॥
स बाल्ये वर्द्धितः श्रीमद्देवचन्द्रेण सूरिणा । नागेन्द्रगच्छभूद्धारप्राग्वराहोपमास्पृशा ॥७२॥
पञ्चाश्रयाभिधस्थानस्थितचैत्यनिवासिना । पुरं स च निवेश्येदमत्र राज्यं ददौ नवम् ॥७३॥
वनराजविहारं च तत्रास्थापयत प्रभुः । कृतज्ञत्वादसौ तेषां गुरूणामर्हणं व्यधात् ॥७४॥
व्यवस्था तत्र चाकारि सङ्घेन नृपसाक्षिकम् । सम्प्रदायविभेदेन लाघवं न यथा भवेत् ॥७५॥
चैत्यगच्छयतिव्रातसम्मतो वसतान्मुनिः । नगरे मुनिभिर्नात्र वस्तव्यं तदसम्मतैः ॥७६॥
राज्ञा व्यवस्था पूर्वेषां पाल्या पाश्चात्यभूमिपैः । यदादिशसि तत्कार्यं राजन्नेवंस्थिते सति ॥७७॥
राजा प्राह समाचारं प्राग्भूपानां वयं दृढम् । पालयामो गुणवतां पूजां तूल्लङ्घयेम न ॥७८॥
भवादृशां सदाचारनिष्ठानामाशिषा नृपाः । एधन्ते युष्मदीयं तद् राज्यं नाऽत्रास्ति संशयः ॥७९॥
उपरोधेन नो यूयममीषां वसनं पुरे । अनुमन्यध्वमेवं च श्रुत्वा तेऽत्र तदा दधुः ॥८०॥
सौवस्तिकस्ततः प्राह स्वामिन्नेषामवस्थितौ । भूमिः काप्याश्रयस्यार्थे श्रीमुखेन प्रदीयताम् ॥८१॥
तदा समाययौ तत्र शैवदर्शनवासवः । ज्ञानदेवाभिधः क्रूरसमुद्रबिरुदार्ह(र्हि?)तः ॥८२॥
अभ्युत्थाय समभ्यर्च्य निविष्टं निज आसने । राजा व्यजिज्ञपत् किञ्चिदद्य विज्ञप्यते प्रभो ! ॥८३॥
प्राप्ता जैनर्षयस्तेषामर्पयध्वमुपाश्रयम् । इत्याकर्ण्य तपस्वीन्द्रः प्राह प्रहसिताननः ॥८४॥
गुणिनामर्चनं यूयं कुरुध्वे विधुतैनसाम् । सोऽस्माकमुपदेशानां फलपाकश्रिया निधिः ॥८५॥
शिव एव जिनो बाह्यत्यागात् परपदस्थितः । दर्शनेषु विभेदो हि चिह्नं मिथ्यामतेरिदम् ॥८६॥
निस्तुषव्रीहिहट्टानां मध्ये त्रिपुरुषाश्रिता । भूमिः पुरोधसा ग्राह्योपाश्रयाय यथारुचि ॥८७॥
विघ्नं स्वपरपक्षेभ्यो निषेध्यं सकलो मया । द्विजस्तच्च प्रतिश्रुत्य तदाश्रयमकारयत् ॥८८॥

तत: प्रभृति सञ्जज्ञे वसतीनां परंपरा ।
महद्भिः स्थापितं वृद्धिमश्नुते नाऽत्र संशयः ॥८९॥

श्रीबुद्धिसागरः सूरिश्चक्रे व्याकरणं नवम् । सहस्राष्टकमानं तत् श्रीबुद्धिसागराभिधम् ॥९०॥
अन्यदा विहरन्तश्च श्रीजिनेश्वरसूरयः । पुनर्धारापुरीं प्रापुः सपुण्यप्राप्यदर्शनाः ॥९१॥
श्रेष्ठी महाधरस्तत्र पुरुषार्थत्रयोन्नतः । मुक्त्वैकां स्वधने सङ्ख्यां यः सर्वत्र विचक्षणः ॥९२॥
तस्याऽभयकुमाराख्यो धनदेव्यङ्गभूरभूत् । पुत्रः सहस्रजिह्वोऽपि यद्गुणोक्तौ नहि प्रभुः ॥९३॥
सपुत्रः सोऽन्यदा सूरिं प्रणन्तुं सुकृती ययौ । संसारासारतामूलः श्रुतो धर्मश्चतुर्विधः ॥९४॥

वादिन । मा लक्ष्मी, तस्या इन स्वामी विष्णु, कमनो ब्रह्मा, इन आदित्य, मेनकमनेना । अल्पत्वात् कप्रत्यये मेनकमनेनका । तेऽपि विष्णु-ब्रह्म सूर्या मयि देवबोधे क्रुद्धे सति अज्ञानत्वान्न का न वादिन । यतो-देवान् बोधयति इति शब्दव्युत्पत्त्या तेऽपि मया बोधिता सुज्ञाना भवन्ति । ततो मानुषाणा पटु-वादिना विदुषामपि किं प्रमाणं का वार्ता ॥इति पत्रावलम्बव्याख्या ॥

अथाऽस्ति थाहडो नाम धनवान् धार्मिकाग्रणी । गुरुपादान्प्रणम्याथ चक्रे विज्ञापनामसौ ॥६७॥
आदिश्यतामतिश्लाघ्य कृत्य यत्र धन व्यये । प्रभुराहालये जैने द्रव्यस्य सफलो व्यय. ॥६८॥
आदेशानन्तर तेनाकार्यत श्रीजिनालय । हेमाद्रिधवलस्तुङ्गो दीप्यत्कुम्भमहामणि ॥ ६९ ॥
श्रीमतो वर्द्धमानस्याबीभरद् बिम्बमद्भुतम् । यत्तेजसा जिताश्चन्द्रसूर्यकान्तमणिप्रभा ॥ ७० ॥
शतैकादशके साष्टासप्ततौ विक्रमार्कत । वत्सराणा व्यतिक्रान्ते श्रीमुनिचन्द्रसूरय ॥ ७१ ॥
आराधनाविधिश्रेष्ठ कृत्वा प्रायोपवेशनम् । शमपीयूषकल्लोलप्लुतास्ते त्रिदिव ययु ॥ ७२ ॥ युग्मम् ।
वत्सरे तत्र चैकत्र पूर्णे श्रीदेवसूरीभि । श्रीवीरस्य प्रतिष्ठा स थाहडोऽकारयन्मुदा ॥ ७३ ॥
अथ नागपुरे श्रीमान् देवसूरिप्रभुर्ययौ । अभ्यागादत्र च श्रीमानाह्लादननरेश्वर ॥ ७४ ॥
प्रणनाम सहायात स च भागवतेश्वर । देवबोध इमामार्यामार्याचारोऽवदत्प्रभुम् ॥ ७५ ॥ सा चेयम्-
यो वादिनो द्विजिह्वान् साटोप विषममानमुद्गिरत । शमयति स देवसूरिर्नरेन्द्रवन्द्य कथ न स्यात् ।७६।
एव चासौ महाभक्त्या स्थापितो नगरान्तरा । राज्ञा विज्ञाततत्त्वार्थो भव्यान् बोधयति स्म स ॥ ७७ ॥
तच्च श्रीसिद्धराजोऽथ नगर रुरुधेतराम् । तत्रस्थ देवसूरिं च ज्ञात्वा व्यावर्तते तत ॥ ७८ ॥
मध्यस्थितेऽत्र तन्मित्रे दुर्गं लातु न शक्यते । इति ध्यात्वाऽऽह्वयद्भक्त्या नृप श्रीपत्तने प्रभुम् ॥ ७९ ॥
तत्र वर्षास्ववस्थाप्याश्विने त चाभ्यमित्रयत् । प्राकार जगृहे श्रीमान् सिद्धराजश्च सत्वरम् ॥ ८० ॥
अथ कर्णावतीसङ्घोऽन्येद्युरुत्कण्ठित प्रभो । आह्वाययन्महाभक्त्या चतुर्मासकहेतवे ॥ ८१ ॥
ततस्तत्राययु पूज्या सङ्घादेशपुरस्कृता । शुद्धोपाश्रयमासाद्यावस्थान प्रतिशुश्रुवु ॥ ८२ ॥
अरिष्टनेमिप्रासादे व्याख्यान च प्रतुष्टुवु । अबुध्यन्ताबुधा लोका यस्य श्रवणतो घना ॥ ८३ ॥
इतश्च दाक्षिणात्य श्रीकर्णाटनृपतेर्गुरु । श्रीजयकेशिदेवस्य श्रीसिद्धेशप्रसूपितु ॥ ८४ ॥
अनेकवादिनिर्जिष्णुर्वादिपुनकपद्धतिम् । वामपादे वहन् गर्वपर्वताधित्यकाश्रित ॥ ८५ ॥
जैनो जैनमतद्वेपिदर्पसर्पकरण्डिका । श्रीमान् कुमुदचन्द्राख्यो वादिचक्री दिगम्बर ॥ ८६ ॥
श्रीवासुपूज्यचैत्यस्थो वर्षानिर्वाहहेतवे । श्रीदेवसूरिधर्माख्याप्रभावामर्षणस्तदा ॥ ८७ ॥
दानान्मुखरयन् वन्दिवृन्दानि प्रजिघाय स । उद्दीपयन् वचोभिस्त सूरिं शमिकुलेश्वरम् ॥ पञ्चभि कुलकम् ।
वैतालिकपतिर्धर्म्मिपर्षदन्त प्रविश्य च । आह स्तुतिपरस्तस्य काव्यानि क्रोधदीप्तये ॥ ८९ ॥
गेय-वाङ्मययो पारदृश्वरीं प्रेक्ष्य यन्मतिम् । वीणापुस्तकभृद् ब्राह्मी विस्मिता तदपारगा ॥ ९० ॥
ततस्तद्ब्रह्ममास्थाय तदुपास्तितरास्तिका । सिताम्बरा परानन्दभाजो भवत किं न हि ॥ ९१ ॥ तथाहि-
हहो श्वेतपटा किमेष विकटाटोपोञ्चितसण्टङ्कितैं, ससारावटकोटरेऽतिविषमे मुग्धो जन पात्यते ।
तत्त्वातत्त्वविचारणासु यदि वो हेवाकलेशस्तदा, सत्य कौमुदचन्द्रमंह्रियुगल रात्रिदिव ध्यायत ॥९२॥
अथाह देवसूरीणा माणिक्याख्यो विनेयराट् । दर्शनप्रतिकूलाभिर्वाग्भी रोषाङ्कुर वहन् ॥९३॥ तद्यथा-
क कण्ठीरवकण्ठकेसरसटाभार स्पृशत्यङ्घ्रिणा, क कुन्तेन शितेन नेत्रकुहरे कण्डूयन काङ्क्षति ।
क सन्नह्यति पन्नगेश्वरशिरोरत्नावतंसश्रिये, य श्वेताम्बरदर्शनस्य कुरुते वन्द्यस्य निन्दामिमाम् ॥९४॥
माणिक्य शिष्यमाणिक्य जगदे देवसूरिभि । नात्र कोपावकाशोऽस्ति, खरवादिनि दुर्जने ॥ ९५ ॥
अथ बन्दिराज आह श्वेताम्बरचरणकतुरग इह वादी, श्वेताम्बरतमसोऽर्क, श्वेताम्बरमशकधूमोऽयम् ॥९६॥

अमर्षन्त जनास्तत्र प्रोचुरुत्सूत्रदेशनात् । वृत्तिकारस्य कुष्ठोऽभूत्कुपितैः शासनामरैः ॥१३१॥
निशम्येति शुचाक्रान्तः स्वान्तः प्रायाभिलापुकः । निशि प्रणिदधे पन्नगेन्द्रं श्रीधरणाभिधम् ॥१३२॥
लेलिहानेश्वर लेलिहानं देहमनेहसा । अचिरेणेक्षत श्रीमान् स्वप्ने मत्स्यकृपोपलः ॥१३३॥
कालरूपेण कालेन व्यालेनालीढविग्रहः । क्षीणायुरिति सन्न्यास एव मे साम्प्रतं ततः ॥१३४॥
इति ध्यायन् द्वितीयाह्नो निशि स्वप्ने स औक्ष्यत । धरणेन्द्रेण रोगोऽयं मयाऽऽलिह्य हृतस्ततः ॥युग्मम् ।
निशम्येति गुरुः प्राह नार्तिर्मे मृत्युभीतितः । रोगाद्वा पिशुना यत्तु कद्वदा तद्धि दुःसहम् ॥१३६॥
नागः प्राह धृतिर्नात्र कार्या जैनप्रभावनाम् । एकामद्य विधेहि त्वं हित्वा दैन्यं जिनोद्धृते ॥१३७॥
श्रीकान्तीनगरीसत्कधनेशश्रावकेण यत् । वारिधेऽन्तरा यानपात्रेण व्रजता सता ॥१३८॥
तदधिष्ठायकसुरस्तम्भिते वहने ततः । अर्चितव्यन्तरस्योपदेशेन व्यवहारिणा ॥१३९॥
तस्या भुवः समाकृष्टा प्रतिमाणां त्रयी क्षितिः । तेषामेका च चारूपग्रामे तीर्थं प्रतिष्ठितम् ॥१४०॥
अन्या श्रीपत्तने चिञ्चातरोर्मूले निवेशिता । अरिष्टनेमिप्रतिमा प्रासादान्तःप्रतिष्ठिता ॥१४१॥
तृतीया स्तम्भनग्रामे सेटिकातटिनीतटे । तरुजाल्यन्तरे भूमिमध्ये विनिहिताऽस्ति च ॥१४२॥
ता श्रीमत्पार्श्वनाथस्याप्रतिमा प्रतिमामिह । प्रकटीकुरु तत्रैतन्महातीर्थं भविष्यति ॥१४३॥षड्भिः कुलकम् ।
पुरा नागार्जुनो विद्यारससिद्धो धिया निधिः । रसमस्तम्भयद् भूम्यन्तःस्थबिम्बप्रभावतः ॥१४४॥
ततः स्तम्भनकाभिख्यस्तेन ग्रामो निवेशितः । तदेषा तेऽपि कीर्तिः स्याच्छाश्वती पुण्यभूषणा ॥ युग्मम् ।
अन्वेष्टाप्यै सूरी वृद्धारूपा ते मार्गदर्शका । श्वेतश्वान(?)स्वरूपतः क्षेत्रपालो गन्ता यथाग्रतः ॥१४६॥
उक्त्वेत्यन्तर्हिते तत्र सूरयः प्रमदोद्धुराः । व्याकुर्वन्ति स्म सङ्घस्य निशावृत्तं तदद्भुतम् ॥१४७॥
ततश्च संमदोत्ताले प्रक्रान्ता धार्मिकैस्तदा । यात्रा नवशती तत्र शकटाना चचाल च ॥१४८॥
अग्रे भूत्वा प्रभुर्वृद्धा-कौलेयकपदानुगः । श्रावकानुगतोऽचालीत्तृणकण्टकिना पथा ॥१४९॥
शनैस्तत्र ययुः सेटीतीरे तत्र तिरोहितौ । वृद्धा-श्वानौ ततस्तस्थुस्तत्राभिज्ञानतोऽमुतः ॥१५०॥
पप्रच्छुरग्रे गोपालान् पूज्य किमपि भो ! किमु । जाल्यामत्राऽस्ति तेष्वेकः प्रोवाच श्रूयतां प्रभो ! ॥१५१॥
ग्रामे महीणलाख्यस्य मुख्यपट्टकिलस्य गौः । कृष्णाऽऽगत्य क्षरेत्क्षीरमत्र सर्वैरपि स्तनैः ॥१५२॥
गृहे रिक्तैव सा गच्छेद् दुह्यमानाऽतिकष्टतः । मनाग्मुञ्चति दुग्धं न ज्ञायतेऽत्र न कारणम् ॥१५३॥
तत्र तैर्दर्शितं क्षीरमुपविश्यास्य सन्निधौ । श्रीमत्पार्श्वप्रभोः स्तोत्रं प्रोचे प्राकृतवस्तुकैः ॥१५४॥
'जय तिहुयणे'त्यादि वृत्तं द्वात्रिंशतं तदा । अवदन् स्तवनं तत्र नासाग्रन्यस्तदृष्टयः ॥१५५॥
बभूव प्रकटं श्रीमत्पार्श्वनाथप्रभोस्ततः । शनैरुन्निद्रतेजस्वि बिम्बं तत्प्रतिवस्तुकम् ॥१५६॥
प्रणतः सूरिभिः सङ्घसहितैरेतदञ्जसा । गतो रोगः समग्रोऽपि कायोऽभूत्कनकप्रभः ॥१५७॥
गन्धाम्भोभिः स संस्नप्य कर्पूरादिविलेपनैः । विलिप्य चार्चितः सौमनसैः सौमनसैस्तदा ॥१५८॥
चक्रे तस्योपरि च्छाया सच्छायाप्रतिसीरया । सत्रादधारितात्तत्र सङ्घो ग्राम्यानभोजयत् ॥१५९॥
प्रासादार्थं ततश्चक्रुः श्राद्धाद् द्रव्यस्य मीलनम् । अक्लेशेनाभिलक्षं ग्राम्यैरनुमता च भूः ॥१६०॥
श्रीमल्लवादिशिष्यश्च श्राद्धैराम्रेश्वराभिधः । महिषाख्यपुरावासः समाह्वायि धियां निधिः ॥१६१॥
अनुयुक्तः स समान्यः कर्मान्तरविचक्षणः । अथ प्रासादमारेभे सोऽचिरात्तत्पूर्यत ॥१६२॥
कर्माध्यक्षस्य वृत्तौ यद्द्रम्म एको दिनं प्रति । विहितो घृतकर्षश्च भुक्तौ तण्डुलमानकम् ॥१६३॥
विहृत्य भोजनात् तेन तेन द्रव्येण कारिता । स्वा देवकुलिका चैत्ये सा तत्राऽद्यापि दृश्यते ॥१६४॥
शुभे मुहूर्ते बिम्बं च पूज्यास्तत्र न्यवेशयन् । तद्रात्रौ धरणाधीशस्तेषामेतदुपादिशत् ॥१६५॥
स्तवनादमुतो गोप्यं मद्वाचा वस्तुकद्वयम् । कियता हि विपुण्यानां प्रत्यक्षीभूयते मया ॥१६६॥

वादिन । मा लक्ष्मी, तस्या इन स्वामी विष्णु, कमनो ब्रह्मा, इन आदित्य', मेनकमनेना । अल्पत्वात कप्रत्यये मेनकमनेनका । तेऽपि विष्णु-ब्रह्म सूर्या मयि देवबोधे क्रुद्धे सति अज्ञानत्वान्न का न वादिन । यतो-देवान् बोधयति इति शब्दव्युत्पत्त्या तेऽपि मया बोधिता सुज्ञाना भवन्ति । ततो मानुषाणा पटु-वादिना विदुषामपि किं प्रमाण का वार्ता ।।इति पत्रावलम्बव्याख्या ।।

अथाऽस्ति थाहडो नाम धनवान् धार्मिकाग्रणी । गुरुपादान्प्रणम्याथ चक्रे विज्ञापनामसौ ।।६७।।
आदिश्यतामतिश्लाघ्य कृत्य यत्र धन व्यये । प्रभुराहालये जैने द्रव्यस्य सफलो व्यय. ।।६८।।
आदेशानन्तर तेनाकार्यत श्रीजिनालय । हेमाद्रिधवलस्तुङ्गो दीप्यत्कुम्भमहामणि ।। ६६ ।।
श्रीमतो वर्द्धमानस्याबीभरद् बिम्बमद्भुतम् । यत्तेजसा जिताश्चन्द्रसूर्यकान्तमणिप्रभा ।। ७० ।।
शतैकादशके साष्टासप्ततौ विक्रमाकत । वत्सराणा व्यतिक्रान्ते श्रीमुनिचन्द्रसूरय ।। ७१ ।।
आराधनाविधिश्रेष्ठ कृत्वा प्रायोपवेशनम् । शमपीयूषकल्लोलप्लुतास्ते त्रिदिव ययु ।। ७२ ।। युग्मम् ।
वत्सरे तत्र चैकत्र पूर्णे श्रीदेवसूरीभि । श्रीवीरस्य प्रतिष्ठा स थाहडोऽकारयन्मुदा ।। ७३ ।।
अथ नागपुरे श्रीमान् देवसूरिप्रभुर्ययौ । अभ्यागादत्र च श्रीमानाह्लादननरेश्वर ।। ७४ ।।
प्रणनाम सहायात स च भागवतेश्वर । देवबोध इमामार्यामार्याचारोऽवदत्प्रभुम् ।। ७५ ।। सा चेयम्-
यो वादिनो द्विजिह्वान् साटोप विषममानमुद्गिरत' । शमयति स देवसूरिर्नरेन्द्रवन्द्य कथ न स्यात् ।७६।
एव चासौ महाभक्त्या स्थापितो नगरान्तरा । राज्ञा विज्ञाततत्त्वार्थो भव्यान् बोधयति स्म स' ।। ७७ ।।
तच्च श्रीसिद्धराजोऽथ नगर रुरुधेतराम् । तत्रस्थ देवसूरिं च ज्ञात्वा व्याववृते तत ।। ७८ ।।
मध्यस्थितेऽत्र तन्मित्रे दुर्गं लातु न शक्यते । इति ध्यात्वाऽऽह्वयद्भक्त्या नृप श्रीपत्तने प्रभुम् ।। ७६ ।।
तत्र वर्षास्ववस्थाप्याश्विने त चाभ्यमित्रयत् । प्राकार जगृहे श्रीमान् सिद्धराजश्च सत्वरम् ।। ८० ।।
अथ कर्णावतीसङ्घोऽन्येद्युरुत्कण्ठित. प्रभो । आह्वाययन्महाभक्त्या चतुर्मासकहेतवे ।। ८१ ।।
ततस्तत्रायायु पूज्या सङ्घादेशपुरस्कृता । शुद्धोपाश्रयमासाद्यावस्थान प्रतिशुश्रुवु ।। ८२ ।।
अरिष्टनेमिप्रासादे व्याख्यान च प्रतुष्टुवु । अबुध्यन्ताबुधा लोका यस्य श्रवणतो घना ।। ८३ ।।
इतश्च दाक्षिणात्य श्रीकर्णाटनृपतेर्गुरु । श्रीजयकेशिदेवस्य श्रीसिद्धेशप्रसूपितु ।। ८४ ।।
अनेकवादिनिर्जिष्णुर्वादिपुत्रकपद्धतिम् । वामपादे वहन् गर्वपर्वताधित्यकाश्रित ।। ८५ ।।
जैनो जैनमतद्वेपिदर्पसर्पकरण्डिका । श्रीमान् कुमुदचन्द्राख्यो वादिचक्री दिगम्बर ।। ८६ ।।
श्रीवासुपूज्यचैत्यस्थो वर्षानिर्वाहहेतवे । श्रीदेवसूरिधर्माख्याप्रभावामर्षणस्तदा ।। ८७ ।।
दानान्मुखरयन् बन्दिवृन्दानि प्रजिघाय स । उद्दीपयन् वचोभिस्त सूरिं शमिकुलेश्वरम् ।। पञ्चभि कुलकम् ।
वैतालिकपतिर्धर्म्मिपर्षदन्त प्रविश्य च । आह स्तुतिपरस्तस्य काव्यानि क्रोधदीप्तये ।। ८६ ।।
गेय-वाङ्मययो पारदृश्वरीं प्रेक्ष्य यन्मतिम् । वीणापुस्तकभृद् ब्राह्मी विस्मिता तदपारगा ।। ९० ।।
ततस्तद्ब्रह्ममास्थाय तदुपास्तितरास्तिका । सिताम्बरा परानन्दभाजो भवत किं न हि ।। ६१ ।। तथाहि-
हहो श्वेतपटा किमेष विकटाटोपोक्तिसण्टङ्कितै, ससारावटकोटरेऽतिविषमे मुग्धो जन पात्यते ।
तत्त्वातत्त्वविचारणासु यदि वो हेवाकलेशस्तदा, सत्य कौमुदचन्द्रमङ्घ्रियुगल रात्रिदिव ध्यायत ।।९२।।
अथाह देवसूरीणा माणिक्याख्यो विनेयराट् । दर्शनप्रतिकूलाभिर्वाग्भी रोषाङ्कुर वहन् ।।९३। तद्यथा-
क कण्ठीरवकण्ठकेसरसटाभार स्पृशत्यङ्घ्रिणा, क कुन्तेन शितेन नेत्रकुहरे कण्डूयन काङ्क्षति ।
क सन्नह्यति पन्नगेश्वरशिरोरत्नावतसश्रिये, य श्वेताम्बरदर्शनस्य कुरुते वन्द्यस्य निन्दामिमाम् ।।९४।।
माणिक्य शिष्यमाणिक्य, जगदे देवसूरिभि । नात्र कोपावकाशोऽस्ति, खरवादिनि दुर्जने ।। ६५ ।।
अथ बन्दिराज आह श्वेताम्बरचरणकतुरग इह वादी, श्वेताम्बरतमसोऽर्क , श्वेताम्बरमशकधूमोऽयम् ।।९६।।

द्वितणय" त्ति, अब्धेः=समुद्रस्य तनया=पुत्री=अब्धितनया=लक्ष्मीः, पट्ट एव=पदमेवाब्धि-तनया पट्टाब्धितनया ता पट्टाब्धितनयां=पट्टलक्ष्मी "लिसीअ" त्ति, अश्लि्ष्यत्, "कालणेमिरिउव्व" कालनेमेः=तन्नाम्नो रक्षसः रिपुः=अरिः कालनेमिरिपुस्तस्येव कालनेमिरिपुवत्=विष्णुवत्=यथा हरिरब्धितनयामाश्लिक्षत् ।

"जस्स" त्ति, यस्य श्रीमुनिचन्द्राख्ययतीश्वरस्य "मणीसाअ" त्ति, मनीषया=शेमुष्या "विबुहसूरो" त्ति, विबुधानां=देवानां सूरिः=गुरुराचार्यः पण्डितोऽध्यापको वा विबुधसूरिः=बृहस्पतिः "पराजिओ" त्ति, पराजितः=पराभवविषयीकृतः यत्तदोर्नित्यसापेक्षत्वादाह- "सो" त्ति, सः=अनन्तरयच्छब्दादिष्टो वक्ष्यमाणगुणगणाढ्यश्च 'मुणिचन्दक्खो सूरो" त्ति, मुनिचन्द्र इति आख्या=संज्ञा यस्य स मुनिचन्द्राख्यः सूरिः=नेमिचन्द्राभिधसूरिगुरुबान्धवस्य विनयचन्द्रोपाध्यायस्य शिष्यो मुनिचन्द्रसंज्ञकसूरिः, "भवाण" त्ति, भव्यानां=मुक्तिगमनार्हाणां "सिवं" ति शिवं=कल्याणं "दिसउ" त्ति, दिशतु=दर्शयतु ददातु वा ।

तथा चोक्तं गुर्वावल्याम्—

'ताभ्यामभूत श्रीमुनिचन्द्रसूरि ४१ स्वशेमुषीतर्जितनाकिसूरि ॥६३॥ उक्तञ्च-गुरुबन्धुविनयचन्द्राध्यापकशिष्य स नेमिचन्द्रगुरु । य गणनाथमकार्षीत्स जयति मुनिचन्द्रसूरिगुरु" इति॥ यशोभद्र च सम्प्राप्तो, यशोभद्रगणाधिप । चिन्तामणिमिव प्राप्य, य शिष्य भुवनोत्तमम ॥६४॥ श्रीविनयचन्द्र वाचकविन्ध्यगिरेस्ते जयन्तु किल पादा । भद्रगजकुलमलीला श्रीमुनिचन्द्रो दधौ येषु॥६५॥" इति श्रीगुरुपर्वक्रमेऽपि-'ततोऽजनि श्रीमुनिचन्द्रसूरि, प्रज्ञापराभूतसुपर्वसूरि ॥२२॥" इति ॥१८७॥

तमेव सूरिपुङ्गवं पुनः शार्दूलविक्रीडितछन्दसा स्तवीति—

जो संविग्गसिरोमणी छ विगई, साहूभवंतो चिम्र;
भूखंडा व्व चयीम्र चक्किणिवई, देहे वि चत्तच्छिहो ।
जेउं दुद्दमसेववाइसरहं, भूसीम्र जो सासणं;
लोगे तक्किकवासवो जयउ सो, उत्तिणासत्तंबुही ॥१८८॥ (सद्दूलविक्कीडिअं)

(प्रे०) "जो" इत्यादि, यः श्रीमुनिचन्द्राख्यसूरिः किम्भूतः ? "संविग्गसिरोमणी" त्ति, संविग्नेषु=सुविहितसाधुविशेषेषु शिरोमणिः=शिरोभूषणः, पुनः किंविशिष्टः ? "देहे वि चत्तच्छिहो" त्ति, देहेऽपि=स्वशरीरेऽपि त्यक्ता=निर्गता स्पृहा ममत्वरूपा येन स त्यक्तस्पृहः=निःस्पृहः "साहूभवतो चिअ" त्ति, साधूभवन्नेव=श्रमणभावं स्वीकुर्वन्नेव "छ विगई" त्ति, षट्=षट्सङ्ख्याका विकृतीः=घृत-तैल-दुग्ध-दधि पक्वान्न-गुडरूपाः "चयीअ" त्ति, अत्यजत् । क इव ? "चक्किणिवई" त्ति, चक्री=सार्वभौमः, स चाऽसौ नृपतिश्च=भूपश्च चक्रिनृपतिः=द्वात्रिंशद्देशसहस्रनृपनायकः "व्व" त्ति, इव=यथा चक्रवर्तिनः सनत्कुमारादयो नराधीशाः

स गत्वा चाह-वादीन्द्रो देवाचार्यो वदत्यद । मन्मुखेन व्रजन्नरिम पत्तनेऽङ्ग त्वमापते ॥१३२॥
सभाया सिद्धराजस्य पश्यता तत्सभासदाम् । स्वपराभ्यस्तवाणीना प्रमाण लभ्यते यथा ॥१३३॥
भवत्वेवमिति प्रोच्य स दिगम्बरसनिधौ । गत्वा प्रोवाच तत्सर्व श्रुत तेनावधानत ॥१३४॥
गमिष्यत इति प्रोक्ते वादिनाऽजायत क्षुतम् । तत्तस्याशकुन मत्वा समेत्याकथयद् गुरो ॥१३५॥
तत सूरिर्दिने शुद्धे मेषलग्ने रवौ स्थिते । सप्तमस्थे शशाङ्के च षष्ठे राहौ रिपुद्रुहि ॥१३६॥
प्रयाण कुर्वतस्तस्य निमित्त शकुना शुभा । स्फुरित दक्षिणेनाक्ष्णा शिर स्पन्दोऽप्यभूद् भृशम् ॥१३७॥
किकीदिविर्द्दिशोर्मार्गमाययौ चन्द्रकी व्यरौत् । मृगा प्रदक्षिण जग्मुर्विषमा विषमच्छिद ॥१३८॥
तथा रथ प्रभोस्तीर्थनाथस्याभ्यर्चितो जनै । अभ्यर्हितप्रतिमया बभूवाभिमुखस्तथा ॥१३९॥
इत्यादिभिर्निमित्तैश्च मन सौष्ठवमाश्रित । अक्षेपात्पत्तन प्राप प्राप्तरूपेश्वर प्रभु ॥१४०॥
प्रवेशोत्सवमाधत्त सङ्घ उत्कण्ठितस्तत । तत्र सिद्धाधिप भूपमपश्यच्च क्षणे शुभे ॥१४१॥
पुनश्च मागधाधीशो दिगम्बरपुरो गत । प्राह स्फुट वचोभि श्रीदेवाचार्यस्य वाचिकम् ॥१४२॥
मद मुञ्च यत पु सा दत्तेऽसौ व्यसन महत् । शलाकापुरुषस्यापि दशास्यस्य यथा पुरा ॥१४३॥
एवमुक्त्वा स्थिते वैतालिके दिग्वसनोऽवदत् । श्वेताम्बरा कथाभिज्ञा एषामेतद्धि जीवनम् ॥१४४॥
अह तु तत्कथातीत प्रीतो वादेन केवलम् । येन स्वस्य परस्यापि प्रमाण हि प्रतीयते ॥१४५॥
एकमेवोचित तेन जल्पित यन्नृपाग्रत । सगम्य वादमुद्राया तदेतत् क्रियता ध्रुवम् ॥१४६॥
तत्रागच्छाम शीघ्र च वयमप्यद्य निश्चितम् । प्रस्थास्नवस्तदित्युक्त्वाऽऽरुरोह च सुखासनम् ॥१४७॥
सम्मुख पुनरासीच्च क्षुत व्यमृशदत्र च । विकार श्लेष्मण शब्दस्तत्रास्था काऽस्तु मादृशाम् ॥१४८॥
स्याद् वाततोऽपि कण्डूतिर्जिह्वाया मे नरेण न । प्रतिहन्येत वादेन क्षुतमस्मान्निषेधकम् ॥१४९॥
याम एव तथाप्येवमुक्त्वा सञ्चरत सत । अवातरत् फणी श्याम कालरात्रे कटाक्षवत् ॥१५०॥
व्यलम्बत परीवारस्तस्याशकुनसम्भ्रमात् । आह च स्वामिनो नैव कुशल दृश्यते ह्यद ॥१५१॥
स प्राह पार्श्वनाथस्य तीर्थाधिष्ठायको मम । धरणेन्द्रो ददौ दर्श साहाय्यविधये ध्रुवम् ॥१५२॥
इत्याद्यशकुनैर्बाढ निषिद्धोऽपि दिगम्बर । अणहिल्लपुर प्राप तथा प्रावेशि कैरपि ॥१५३॥
इतश्च श्रीदेवसूरे पुर प्रविशत सत । थाहडो नागदेवश्चाययाते समुखो तदा ॥१५४॥
ताभ्या प्रणम्य विज्ञप्त दिगम्बरपराजये । दाप्यता स्वेच्छया द्रव्यमेतदर्थ तदर्जितम् ॥१५५॥
श्रीदेवसूरय प्राहुर्यदि ब्राह्मीप्रसादत. । न जयस्तत किमुत्कोचै सकोचै सत्यसविदाम् ॥१५६॥
अथाह थाहडो नाथाशाम्बरेण धनव्ययात् । तत्रथेन धनाध्यक्षाद्दर्शिता गाङ्गिलादय ॥१५७॥
ऊचुश्च प्रभवो देवा गुरवश्चात्र जाग्रति । कार्यो व्ययो न युष्माभिरस्थाने द्रविणस्य तत् ॥१५८॥
तत कुमुदचन्द्रेणागतेन नगरान्तरा । श्वेताम्बरजयोन्नत्यै कृत पत्रावलम्बनम् ॥१५९॥
दिनाना विंशर्ति प्रत्युपाश्रय यतिना तदा । नीर तृणानि मुक्त्वा च स पुरोगान्यवादयत् ॥१६०॥
केशवत्रितय तस्य पक्षे सभ्यतया स्थितम् । अन्येऽप्यर्वाग्दृश सर्वे तस्य पक्षस्पृशोऽभवन् ॥१६१॥
थाहडस्तस्य तत्पत्र राजद्वारविलम्बितम् । स्फाटयामास श्रृङ्गारमिव तस्य जयश्रिय ॥१६२॥
श्रीसिद्धाधीश्वरो राजा श्रीपालादधिगम्य च । वृत्तान्तमाह्वयत् तत्र श्वेताम्बर-दिगम्बरौ ॥१६३॥
सभाव्यवस्थामाधाय प्रैषीद् दूत च सत्वरम् । सम्बन्धकावताराय तयोर्गाङ्गिलमन्त्रिणे ॥१६४॥
तत श्रीकरणे सोऽथ श्रीदेवगुरुराह्वयन् । जातिप्रत्ययत किंचिद् विद्विष्टमिव चावदत् ॥१६५॥ तथाहि-

दन्ताना मलमण्डलीपरिचयान्स्थूल भविष्णुस्तति, कृत्वा भैक्षकपिण्डभक्षणविधि शौच किलाचाम्लत ।
नीर साक्षि शरीरशुद्धिविषये येषामहो कौतुक, तेऽपि श्वेतपटा. क्षितीश्वरपुर काक्षन्ति जल्पोत्सवम् ॥१६६॥

मंदमईणा वि सुगमा ते गंथा पंजियाइरयणाए ।
सव्वे वि कया जेणं पहुणा विस्सहिअबुद्धीए ॥११०॥(पच्छाज्जा)युग्मम् ।
सोवीरपायित्ति ★तदेगवारपाणा विहिणू विरुदं धरीअ ।
सग्गं गओ दट्टिसमुद्दसव्वे ११७८ वासे णिवा दाउ स सं भवीणं
॥१११॥(इंदवइरा) (इंदवज्जा)

(प्रे०) "हरिभद्दसूरिणा" इत्यादि, "हरिभद्दसूरिणा"त्ति, हरिभद्रनाम्ना विश्वविख्यातेन "याकिनीसूनु"इत्युपनामकेना-ऽऽचार्यपुङ्गवेन "रइआ" त्ति, रचिता=निर्मापिता "जे" त्ति, ये "ऽणेकन्तजयपडागाई" त्ति, अनेकान्तजयपताकादयोऽत्रादिपदेन योगबिन्दुप्रमुखा ग्रन्था ग्राह्याः, गंथणगा" त्ति, ग्रन्थाः=शास्त्राण्येव नगाः=पर्वताः सारभूतत्वात् ग्रन्थनगाः, "अहुणा" त्ति, अधुना=इदानीं "इह" त्ति, इह=भरतक्षेत्रे "विबुहाणं पि" त्ति, विबुधानामपि विदुषामपि "दुग्गमा" त्ति, दुःखेन=कृच्छ्रेण गम्यन्ते=ज्ञायन्ते ये ते दुर्गमा दुःखप्रवेशनीयाः कठिना इति यावत् "ऽत्थि" त्ति, सन्ति यत्तदोर्नित्याऽभिसम्बन्धात् "ते" त्ति, ते "सव्वे वि" त्ति, सर्वेऽपि=निःशेषा अपि "गंथा" त्ति, ग्रन्थाः=शास्त्राणि, "जेणं पहुणा" त्ति, येन=श्रीमुनिचन्द्रसूरिणा प्रभुणा=विभुना "विस्सहिअबुद्धीए" त्ति, विश्वस्य=भव्यप्राणिगणसमुदायस्य हितस्य=कल्याणस्य बुद्ध्या=धिया 'पंजियाइरयणाए" त्ति, पञ्जिका=पदभञ्जिका कठिनपदव्याख्यारूपवृत्तिविशेषात्मका आदौ येषां ते पञ्जिकादयस्तेषां रचनया=पञ्जिकादिरचनया "मंदमईण वि" त्ति, मन्दा=जडा मतिः=प्रज्ञा येषां तेषामपि मन्दमतीनामपि=मूढधियामपि '[सु]गमा' त्ति, सुष्ठु=सुखेन गम्यन्ते=अवबुध्यन्ते ये ते सुगमाः=सुबोधाः=सुखमाध्या इति यावत् 'कया' त्ति, कृताः=विहिताः ।

यदाह गुर्वावल्याम्-

"हरिभद्रसूरिरचिताः श्रीमदनेकान्तजयपताकाद्या । ग्रन्थनगा विबुधानामप्यधुना दुर्गमा येऽत्र ॥६८॥ सत्पञ्जिकादिपद्या विरचनया भगवता कृता येन। मन्दधियामपि सुगमास्ते सर्वे विश्वहितबुद्ध्या। ६९॥"इति

"जो" त्ति, अध्याहार्यः, यद्वा मण्डूकप्लुतिन्यायेन पूर्वगाथोक्तः "जो" त्ति, अनुवर्तते, यद्वा "जेण" त्ति, अनन्तरार्याभिहितस्य पदस्याऽत्राऽप्यनुवर्तमानात् , तस्य च "अर्थवशाद् विभक्तिविपरिणाम" इति न्यायात् तृतीयायाः प्रथमा विधीयते, यद्वाऽग्रे तच्छब्दस्योपादानादिह यच्छब्द आक्षिप्यते ततो यः=श्रीमुनिचन्द्रसूरिः "विहिण्णू" त्ति, विधिज्ञः=विदितशास्त्रविहितक्रियाविधानः "सोवीरपायि" त्ति, सौवीरपायीति=सौवीरपायिसंज्ञकं 'विरुदं' त्ति, विरुद=

★ "तद्देगवारिपाणा" इति पाठान्तरमपि बोध्यम् ।

थाहड स्वगुरुं व्यज्ञपयद् द्रव्येण भेदिता । सभ्या' श्रुता मया द्रव्यं तद्दास्ये द्विगुणं ध्रुवम् ॥२०२॥
प्रभावनाकृते स्वीयशासने तत्समादिश । अथावदद् गुरुर्द्रव्यव्यय कार्यो न हि त्वया ॥२०३॥
अद्य प्रभुभिरादिष्टं श्रीमुनिचन्द्रसूरिभि । स्वप्ने यद्वत्स वक्तव्य प्रयोग' स्त्रीषु मुक्तिकृत् ॥२०४॥
उ त्त रा ध्य य न ग्रन्थटीका श्रीशान्तिसूरिभि । कृता तदनुसारेण वक्तव्य जेष्यते रिपु ॥२०५॥
इत्युक्त्वा नृपतेराशीर्वादं दर्शनसङ्गतम् । अभ्यधात्सूरिरानन्दहेतु केतु विद्यादिनाम् ॥२०६॥
नारीणां विदधाति निर्वृतिपद श्वेताम्बरप्रोल्लसत् कीर्तिःफातिमनोहर नयपथप्रस्तारभङ्गीगृहम् ।
यस्मिन्केवलिनो विनिर्जितपरोत्सेका सदा दन्तिनो राज्यं तज्जिनशासन च भवतश्चौलुक्य ! जीयाच्चिरम् ॥
ऊचे कुमुदचन्द्रेण वादिना सिद्धभूपते । आशीरामीमभूमीश दन्तद्विजयशोभिन ॥२०८॥ मा चेयं-
खद्योतद्युतिमातनोति सविता जीर्णोर्णनाभालय-च्छायामाश्रयते शशी मशकतामायान्ति यत्राद्रय ।
इत्थ वर्णयतो नभस्तव यशो जात स्मृतेर्गोचर, तद्यत्र भ्रमरायते नरपते ! वाचस्ततो मुद्रिता ॥२०९॥
तस्मिन्महर्षिरुत्साह सागरश्च कलानिधि । प्रज्ञाभिरामो रामश्च नृपस्यैते समासद' ॥२१०॥
ते प्रोचुर्मुद्रिता वाच इति दिग्वासस क्षति । नारीमुक्तिर्ज्ञानिभुक्तिर्यत्र तत्र जयो ध्रुव. ॥२११॥
देवाचार्यश्च भामूश्च श्रीपालश्च महाकवि । पक्षे दैगम्बरे तत्र केशवत्रितय मतम् ॥२१२॥
तत्रोत्साहो महोत्साह उवाच प्रकटाक्षरम् । किंचिद्गुप्तासनागर्भं दृष्ट्वा दिग्वस्त्रपार्षदान् ॥२१३॥ तथाहि-
सवृत्तावयवमस्तदूषणं साधन सदसि दर्शयिष्यत । अस्य लुञ्चितकचस्य केवल केशवत्रितयमेति सम्यताम् ॥
महर्षिणा च विज्ञप्ते उपलक्ष्य प्रभुस्तत । प्रयोग उच्यतां सम्यगादिदेशेति कौतुकात् ॥२१५॥
ततोऽसौ नास्ति निर्वाणं स्त्रीभवस्थस्य देहिन' । तुच्छसत्त्वतया तस्य, यस्तुच्छो मुक्तिरस्य न ॥२१६॥
अत्रोदाहरण बाल पुमान् तुच्छोऽबलाभव । अतो न निर्वृत्तिस्तत्र प्रयोगममुमाह स ॥२१७॥
देवसूरिरथाह स्मासिद्ध धर्म्मिविशेषणम् । स्त्रीभवे निर्वृतिं प्राप मरुदेवाऽऽगमे मतम् ॥२१८॥
तत्राप्रसिद्धमेतच्चेदनेकान्त तत पठ । तस्य मार्गमतिक्रम्य दुर्नयो ह्यवधारणम् ॥२१९॥
तथा हेतुश्च ते दूष्योऽनैकान्तिकतया मत । स्त्रियोऽपि यन्महासत्त्वा प्रत्यक्षागमवीक्षिता' ॥२२०॥
सीताद्या आगमेऽध्यक्ष पुन साक्षान्महीपते । माता श्रीमयणल्लाख्या सत्त्वधर्मैकशेवधि ॥२२१॥
तथा व्याप्तिरलीकेय प्रतिव्याप्ते प्रढौकनात । या स्त्रियस्ता ध्रुव तुच्छा नैतत्सत्त्वदर्शनात ॥२२२॥
तथा तद्दर्शनात् तत्रोदाहृतिश्चापि दूषिता । बाल पुंसामभिज्ञानादतिमुक्तकसाधुवत् ॥२२३॥
तथास्योपनयोऽसिद्ध प्राक् सिद्धान्तात्सदूषणात । ननो निगमनं दूष्य प्रत्यनुमानमम्भवात् ॥२२४॥
अनूद्य दूषयित्वैव परपक्षमथ स्वकम् । पक्ष देवगुरु प्राह स्त्रीभवेऽस्य निर्वृति ॥२२५॥
प्राणिन सत्त्ववैशिष्ट्यात् स्त्रिय सत्त्वाधिका मया । दृष्टा कुन्ती-सुभद्राद्या अथोदाहृतिरागमे ॥२२६॥
महासत्त्वा स्त्रिय सन्ति मोक्षं गच्छन्ति निश्चितम् । इत्युक्त्वा विरते देवगुरावाशाम्बरोऽवदत ॥२२७॥
पुन पठ ततोऽवाचि तत्राऽप्यनवधारिते । त्रिरप्याह कृते नैवमबुद्ध्वा तमदूषयत ॥२२८॥
प्रतिवाद्याह वाचस्यामबोध प्रकटोत्तरम् । दिग्वासा प्राह जल्पोऽय कटित्रे लिख्यतामिह ॥२२९॥
महर्षि प्राह सपूर्णा वादमुद्राऽत्र दृश्यते । दिगम्बरो जित श्वेताम्बरो विजयमाप च ॥२३०॥
एव चानुमते राज्ञा प्रयोग केशवोऽलिखत् । बुद्ध्वा च दूषिते तत्र देवसूरिस्तथाऽवदत ॥२३१॥
अनूद्य दूषण भित्त्वा स्वपक्ष स्थापयन्निह । कोटाकोटीति शब्दं स प्रयुयोज विदूषणम् ॥२३२॥
अपशब्दोऽयमित्युक्ते वादिना पार्षदेश्वर । उत्साह प्राह शुद्धोऽय शब्द पाणिनिसूचितः ॥ उक्तं च-
कोटाकोटि कोटिकोटि कोटीकोटिरिति त्रय । शब्दा साधुतया हन्त समता. पाणिनेरमी ॥२३४॥
इत्थ निरनुयोज्यानुयोगो निग्रहभूमिका । तत्रैवैषा समायाता व्यावर्त्तस्व ततो महान् ॥२३५॥

मंदमईण वि सुगमा ते गंथा पंजियाइरयणाए ।
सव्वे वि कया जेणं पहुणा विस्सहिअबुद्धीए ॥११०॥(पच्छाज्जा)युग्मम् ।
सोवीरपायित्ति ★तदेगवारपाणा विहिराणू विरुद्धं धरीअ ।
सग्गं गओ दड्डिसमुद्दसव्वे ११७८ वासे णिवा दाउ स सं भवीणं
॥१११॥(इंदवइरा) (इंदवज्जा)

(प्रे०) "हरिभद्दसूरिणा" इत्यादि, "हरिभद्दसूरिणा"त्ति, हरिभद्रनाम्ना विश्वविख्यातेन "याकिनीसूनु"इत्युपनामकेना-ऽऽचार्यपुङ्गवेन "रइआ" त्ति, रचिता=निर्मापिता "जे" त्ति, ये "ऽणेकंतजयपडागाई" त्ति, अनेकान्तजयपताकादयोऽत्रादिपदेन योगबिन्दुप्रमुखा ग्रन्था ग्राह्याः, "गंथणगा" त्ति, ग्रन्थाः=शास्त्राण्येव नगाः=पर्वताः सारभूतत्वात् ग्रन्थनगाः, "अहुणा" त्ति, अधुना=इदानीं "इह" त्ति, इह=भरतक्षेत्रे "विबुहाणं पि" त्ति, विबुधानामपि विदुषामपि "दुग्गमा" त्ति, दुःखेन=कृच्छ्रेण गम्यन्ते=ज्ञायन्ते ये ते दुर्गमा दुःखप्रवेशनीयाः कठिना इति यावत् "ऽत्थि" त्ति, सन्ति यत्तदोर्नित्याऽभिसम्बन्धात् "ते" त्ति, ते "सव्वे वि" त्ति, सर्वेऽपि=निःशेषा अपि "गथा" त्ति, ग्रन्थाः=शास्त्राणि, "जेणं पहुणा" त्ति, येन=श्रीमुनिचन्द्रसूरिणा प्रभुणा=विभुना "विस्सहिअबुद्धीए" त्ति, विश्वस्य=भव्यप्राणिगणसमुदायस्य हितस्य=कल्याणस्य बुद्ध्या=धिया "पंजियाइरयणाए" त्ति, पञ्जिका=पदभञ्जिका कठिनपदव्याख्यारूपवृत्तिविशेषात्मका आदौ येषां ते पञ्जिकादयस्तेषां रचनया=पञ्जिकादिरचनया "मंदमईण वि" त्ति, मन्दा=जडा मतिः=प्रज्ञा येषां तेषामपि मन्दमतीनामपि=मूढधियामपि "सुगमा" त्ति, सुष्ठु=सुखेन गम्यन्ते=अवबुध्यन्ते ये ते सुगमाः=सुबोधाः=सुखमाध्या इति यावत् 'कया' त्ति, कृताः=विहिताः ।

यदाह गुर्वावल्याम्-

"हरिभद्रसूरिरचिता. श्रीमदनेकान्तजयपताकाद्याः । ग्रन्थनगा विबुधानामप्यधुना दुर्गमा येऽत्र ॥६८॥
सत्पञ्जिकादिपद्या विरचनया भगवता कृता येन । मन्दधियामपि सुगमास्ते सर्वे विश्वहितबुद्ध्या ॥६९॥" इति ।

"जो" त्ति, अध्याहार्यः, यद्वा मण्डूकप्लुतिन्यायेन पूर्वगाथोक्तः "जो" त्ति, अनुवर्तते, यद्वा "जेण" त्ति, अनन्तरार्याभिहितस्य पदस्याऽत्राऽप्यनुवर्तमानात् , तस्य च "अर्थवशाद् विभक्तिविपरिणाम" इति न्यायात् तृतीयायाः प्रथमा विधीयते, यद्वाऽग्रे तच्छब्दस्योपादानादिह यच्छब्द आक्षिप्यते ततो यः=श्रीमुनिचन्द्रसूरिः "विहिण्णू" त्ति, विधिज्ञः=विदितशास्त्रविहितक्रियाविधानः "सोवीरपायि" त्ति, सौवीरपायीति=सौवीरपायिसंज्ञकं 'विरुद्दं' ति, विरुदं=

★ "तद्देगवारिपाणा" इति पाठान्तरमपि बोध्यम् ।

अर्हितोऽपि भृशं शोकतप्तस्तस्मात्पराभवात् । ययौ कुमुदचन्द्रोऽयमदृश्यत्वममास्त्रिव ॥२६९॥
तुष्टिदानं ददानस्य राज्ञः सूरेरगृह्णतः । आशुकोऽन्ते गते मन्त्री राज्यारामशुकोऽब्रवीत् ॥२७०॥
देवैषां निःस्पृहाणां न धनेच्छा तज्जिनालयं । विधाप्यते यथामीषां पुण्यं तव च वर्धते ॥२७१॥
भवत्वेव नृपप्रोक्ते मन्त्री चैत्यमकारयत् । स्वेन तेनेतरेणापि स्वामिनाऽनुमतेन सः ॥२७२॥
दिनस्तोकं च सपूर्णं प्रासादोऽभ्रंलिहो महान् । मेरुचूलोपमं स्वर्णरत्नकुम्भध्वजालिभिः ॥२७३॥
श्रीनाभेयविभोर्बिम्बं पित्तलामयमद्भुतम् । दृशामगोचरं रोचिःपूरतः सूर्यबिम्बवत् ॥२७४॥
अनलाष्टशिवे वर्षे (११८३) वैशाखद्वादशीनिशि । प्रतिष्ठां विदधे तत्र चतुर्भिः सूरिभिस्तदा ॥२७५॥
एवं प्रभावनापूरप्लाविते धर्मिणां हृदि । क्षेत्रे वपन् बोधिबीजं चिरं च व्यहरत्प्रभुः ॥२७६॥
अन्यदा व्रजतोऽरण्ये नाम्ना पिप्पलवाटके । शार्दूलं गुरुशार्दूलो रेखया स न्यषेधयत् ॥२७७॥
बालवृद्धाकुलो गच्छो विहारे प्रान्तरावनौ । क्षुधादिबाधया तत्र क्लिष्टो दुःप्रतिकारया ॥२७८॥
तदीयचिन्तामात्रेण सार्थेऽकस्मादुपागते । प्रासुकैर्भक्तपानैस्तद्भव्यास्तं प्रत्यलाभयन् ॥२७९॥ युग्मम् ।
स्याद्वादपूर्वकं रत्नाकरं स्वादुवचोऽमृतम् । प्रमेयशतरत्नाढ्यममुक्त स किल श्रिया ॥२८०॥
पीतान् दृष्ट्वा पुरा कुम्भोद्भवेनाम्भोनिधीनिह । परवादिघटोद्भूतशतागम्यं व्यधान्नवम् ॥२८१॥ युग्मम् ।
इति श्रीदेवसूरीणामसंख्यातिशयस्पृशाम् । वर्षाणां त्र्यधिकाशीतिरत्यक्रामदतन्द्रिणाम् ॥२८२॥
श्रीभद्रेश्वरसूरीणां गच्छभारं समर्प्य ते । जैनप्रभावनास्थेमनिस्तुषश्रयसि स्थिताः ॥२८३॥
रसयुग्मरवौ वर्षे (१२२६) श्रावणे मासि सगते । कृष्णपक्षस्य सप्तम्यामपराह्णे गुरोर्दिने ॥२८४॥
मर्त्यलोकस्थितं लोकं प्रतिबोध्य पुरन्दरम् । बोधका इव ते जग्मुर्दिवं श्रीदेवसूरयः ॥२८५॥ त्रिभिर्विशेषकम् ।
शिखिवेदशिवे (११४३) जन्म दीक्षा युग्मशरेश्वरे (११५२)। वेदाश्वशंकरे वर्षे (११७४) सूरित्वमभवत्प्रभोः ॥
नवमे वत्सरे दीक्षा एकत्रिंशत्तमे तथा । सूरित्वं सकलायुश्च त्र्यशीतिवत्सरा अभूत् ॥२८७॥
इत्थं श्रीदेवसूरेश्चरितमधरितक्षुद्रवादिप्रवादं, नादं वर्द्धिष्णु जैनप्रवचनभविनां सत्त्वमुक्तैरसेव्यम् ।
श्रेष्ठश्रेयःप्रदं तद् भवतु भवभृतामद्य काले भवानां, नन्द्यादाचन्द्रकालं विबुधजनशतैर्नित्यमभ्यस्यमानम् ।।
श्रीचन्द्रप्रभसूरिपट्टसरसीहंसप्रभः श्रीप्रभा-चन्द्रः सूरिरनेन चेतसि कृते श्रीरामलक्ष्मीभुवा ।
श्रीपूर्वर्षिचरित्ररोहणगिरौ श्रीदेवसूरेः कथा, श्रीप्रद्युम्नमुनीन्दुना विशदितः शृङ्गः कुयुग्मक्रमः ॥२८९॥
अर्थं यच्छति संसृतिस्थितिमतां दुःखापनोदक्षमं, कल्पद्रुव्रजचिन्तिताश्मनिवहादप्यद्भुतं यः प्रभुः ।
स श्रीमान् कनकप्रभः कथमयं शक्यो मया वर्णितुं, प्रद्युम्नो यतिनायकश्च समभूद् यन्नाममन्त्रस्मृतेः ॥२९०॥"
इति ॥११५॥

अथ श्रीवीरसूरिं प्रभावकं पथ्यार्यया भणति--

बंभी कण्णाअ भणइ संकंता जस्स हत्थफासेणं ।
सो जयउ वीरसूरी गुणजलही वाइमिगसिंघो ॥११६॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "बंभी" इत्यादि, "जस्स"त्ति यस्य=श्रीवीरसूरेः "हत्थफासेण" ति, हस्तस्पर्शेन=करस्पर्शनमात्रेण "कण्णाअ"त्ति कन्यायां=पञ्चवर्षवयस्यां बालायां "संकंता"त्ति सङ्क्रान्ता सङ्क्रमीभूता "बंभी"त्ति ब्राह्मी=सरस्वती भारती वाग्देवी श्रुतदेवी वा "भणइ" त्ति वादकाले भणति=वक्ति यत्तदोर्नित्याभिसम्बन्धादाह--"सो"त्ति सः "वीरसूरी"त्ति वीरसूरि-विजयसिंहसूरिशिष्यः, श्रीगोविन्दाचार्यविद्याशिष्यः "जयउ"त्ति जयतु इति क्रियान्वेति। किम्भूतः

व्रतम्), [27]सम्यक्त्वोपायविधिः, [28]सामान्यगुणोपदेशकुलकम्, [29]सूक्ष्मार्थविचारलवः, [30]हितोपदेश इत्यादयः ॥१८९-१९१॥

अथ तेनैव दीक्षित्वा शिक्षित्वा कृताचार्यान् गुरुबान्धवान् स्तुवन्नाह पथ्यापूर्विकामादिचपलामार्याम्—

तब्बंधवा इह जगे जयंतु आणंदसूरिपमुहा ते।
तेण चिअ कयायरिआ दिक्खं सिक्खं च दाउं जे ॥११२॥

(पच्छापुव्विगाइचवलाज्जा)

(प्रे०) "तब्बधवा" इत्यादि, 'तेण चिअ"त्ति, तेनैव=श्रीमुनिचन्द्रसूरिणैव "जे"त्ति, ये "कयायरिआ दिक्ख सिक्खं च दाउं"ति, दीक्षां प्रव्रज्यां, शिक्षां=ग्रहणासेवनरूपां दत्त्वा=दानविषयीकृत्वा आचार्याः=सूरयः कृताः=विहिताः यत्तदोर्नित्याऽभिसम्बन्धादाह "ते" त्ति, ते "तब्बंधवा"त्ति, तस्य=श्रीमुनिचन्द्रसूरेर्बान्धवाः=गुरुबन्धवः "आणंदसूरिपमुहा"त्ति, आनन्दसूरिप्रमुखा "इह जगे जयंतु"त्ति, अस्मिन् जगति लोके जयन्तु=जयनशीला भवन्तु।

यदुक्तं गुर्वावल्याम्—

"आनन्दसूरिप्रमुखा मुनीश्वरा श्लाघ्या न केषामिह तस्य बन्धवः।
ये दीक्षिता श्रीमुनिचन्द्रसूरिणा प्रतिष्ठिता सूरिपदे च शिक्षिता ॥७१॥" इति।

तथा चाऽत्र विक्रमसंवदेकोनषष्ठ्यधिकशतोत्तरसहस्र११५९वर्षे पौर्णिमीयकमतं प्रादुर्बभूव। तत्प्रतिबोधनार्थं श्रीमुनिचन्द्रसूरिणा पाक्षिकसप्ततिका निर्मिता ॥११२॥

एतर्हि ज्ञातकुलावतंसार्हदेकचत्वारिंशपट्टस्य धारकं श्रीअजितदेवसूरिं विभाषिषुर्वसन्ततिलकामाह—

तक्खज्झओ व पयलच्छिमलंकरीअ, सूरीसरो स मुणिचंदमुणीसरस्स।
णामेण जो अजिअदेवगुरू हवीअ, जं णो जिओ कउवसग्गसूरेहि णूणं॥११३॥

(वसंततिलया)

(प्रे०) "तक्खज्झओ" इत्यादि, "स"त्ति, सः=ख्यातनामाऽनन्तरयत्पदाभिधास्यमाननामा च श्रीअजितदेवनामा "सूरीसरो"त्ति, सूरीणाम्=आचार्याणामीश्वरः=अधिपतिः सूरीश्वरः=गच्छनायक इति यावत् "मुणिचंदमुणीसरस्स"त्ति, मुनीनां=साधूनामीश्वरः=पतिर्मुनीश्वरः = सूरिर्मुनिचन्द्रश्चाऽसौ मुनीश्वरश्च = मुनिचन्द्रमुनीश्वरस्तस्य = मुनिचन्द्रमुनी-

परप्रवादिनस्तैश्च जितास्तेषां च भूपतिः । छत्र-चामरयुग्मादिराजचिह्नान्यदान्मुदा ॥३२॥
व्यावृत्याथ निजां भूमिमायान्तस्तेऽत्रतस्थिरे । पुरे नागपुरे तत्राप्यकार्षुश्च प्रभावना. ॥३३॥
ज्ञात्वाथ सिद्धराजेनाहूता भक्तिभृताऽथ ते । प्रैषु परिच्छद गोपगिरिराजसमर्पितम् ॥३४॥
विजह्रु सूरयस्तस्माच्छनैः सयममात्रया । अणहिल्लपुरासन्न चारूपग्राममागमन् ॥३५॥
अभ्युद्ययावथ श्रीमज्जयसिहनरेश्वर. । प्रवेशोत्सवमाधत्तान्दृष्टपूर्वं सुरैरपि ॥३६॥
अथात्र वादिसिहाख्य साङ्ख्यवादी समागमत् । पत्र प्रदत्तवानीदृक्लिखितश्लोकदुर्धरम् ॥३७॥ तथाहि-

उद्धृत्य बाहू किल रारटीति यस्यास्ति शक्ति स च वावदीतु ।
मयि स्थिते वादिनि वादिसिहे नैवाक्षर वेत्ति महेश्वरोऽपि ॥३८॥

श्रीमत्कर्णमहाराजबालमित्र यतीश्वर । गोविन्दाचार्य इत्यस्ति वीराचार्यकलागुरु ॥३९॥
रात्रौ रह समागत्य छन्नवेष क्षमाधिप । प्राह तं किमय भिचुरपि पूज्यै प्रतीक्ष्यते ॥४०॥
तै प्रोचे भवतामेव वाग् विलोक्याऽत्र भूपते ।। प्रभाते विवदिष्यन्त वीराचार्यो विजेष्यते ॥४१॥
प्रीतो राजा प्रभाते तमाह्वास्त नृपपर्षदि । स नि स्पृहत्वदम्भेन शान्तोऽवददिद तदा ॥४२॥
वय किमागमिष्यामो नि सङ्गा यदि भूपति । अस्मद्वाक्कौतुकी भूम्यासनोऽत्रायातु सोऽपि तत ॥४३॥
प्रात कुतूहली राजोररीकृत्य तदप्यथ । तदावासे समागच्छद्धुर्यामुर्व्यामुपाविशत् ॥४४॥
समाह्वयत गोविन्दसूरिं सूरिसभासदम । सोऽपरान् साकृतीनीषद् विदुषोऽपि पुरो दवे ॥४५॥
वीराचार्य महाप्रज्ञाप्रज्ञातानेकशास्त्रकम् । उद्यत्कवित्ववक्तृत्वावधि पश्चाच्चकार च ॥४६॥
समाययौ ततस्तत्रोपविष्ट कम्बलासने । राजाह को वदेदेषाममुना वादिना सह ॥४७॥
श्रीगोविन्दप्रभु स्माहानौचित्यज्वरसङ्गिना । अनेन शास्त्रगाथोचितरणक्षोपमधीजुष ॥४८॥
अज्ञेन सह लज्जन्ते वदन्तस्तत शिशु कृती । वीरो वदिष्यति प्राज्ञ श्रुत्वा वादी स चावदत् ॥४९॥
दुग्धगन्धमुखो मुग्ध किं वक्ष्यति मया सह । असमानो विग्रहोऽय नास्नाक भासते शुभ ॥५०॥
गङ्गोचे क्षीरकण्ठास्यादर्थपीयूषगन्वित । अस्मात त्वन्मदधत्तूरविभ्रम स हरिष्यति ॥५१॥
श्रुत्वेति स उपन्यासमवज्ञावशतो दधे । अर्धकूर्परहस्तस्थमस्तकस्तर्कसभवम् ॥५२॥
विरते तत्र चाजल्पत श्रीवीरो विदुषा प्रभु । वदामि गद्यात पद्यात् वा यच्चित्ते तव भासते ॥५३॥
स्वेच्छ तदुद्दिश छन्दोऽलकार च ममाग्रत । सर्वानुवादमर्थानुवाद वा सत्वर भवान् ॥५४॥
श्रुत्वेति स पुन प्राह गूर्जराडम्बर. पुर । मम न क्रियते बाल किं ज्ञास्यति भवानिह ॥५५॥
अथ शक्तिस्तवास्ते चेत पद्येन छन्दसा पुन । वद मत्तमयूरेणालकारान्निह्नवात तथा ॥५६॥
सर्वानुवादमाश्रित्य स निशम्येति त जगौ । उत्तिष्ठासनसस्थोऽस्था सावधानस्तत शृणु ॥५७॥
वय नहि गिरा देव्या अवहेला विदध्महे । अर्द्धसुप्तपुरो वादादाकर्ण्येनि स चोत्थित ॥५८॥
वाचि वीर ततो वीर यथा प्रागुक्तसश्रवात् । उपन्यस्यन्तमाकर्ण्यास्विद्यनोद्यतगीर्बल ॥५९॥
श्रीवीरे विरते जल्पादर्थतस्तस्य कुर्वत । अनुवाद जगादासौ जल्प सर्वानुवादत ॥६०॥
न शक्नोऽहमिति प्राह वादिसिहस्ततो नृप । स्वय बाहौ विधृत्यामु पातयामास भूतले ॥६१॥
वक्तु न शक्तश्चेदुच्चेरासने कथमासिवान् । तथा च कविराज श्रीश्रीपालो वाक्यमब्रवीत ॥६२॥
गुणैरुत्तुङ्गता याति नोच्चैरासनसस्थित । प्रासादशिखरस्थोऽपि काक किं गरुडायते ॥६३॥
ततो विडम्ब्यमान त दृष्ट्वा श्रीवीर ऊचिवान् । श्रूयता भूप मे वाणी प्राणी दर्पण जीयते ॥६४॥
यदनेन नराधीश । शुद्धन्यायैकनिष्ठधी. । सभाध्यक्षमवज्ञातो वर्णाश्रमगुरुर्भवान् ॥६५॥
स्वास्याम्बुजस्थिरावासप्रदानात् प्रीणिता दृढम् । त्वद्गृह्या कोपीभूरत्र देव्यदाद् वाचि मन्दताम् ॥ युग्मम् ।

(प्रे०) "मुणिचंदसूरिसीसो" इत्यादि, "मुणिचंदसूरिसीसो" त्ति, मुनिचन्द्रसूरेः वीरविभोश्चत्वारिंशं पट्टं बिभ्रतो मुनिचन्द्राख्यस्याचार्यस्य शिष्यः=विनेयः "बीओ" त्ति, द्वितीयः=प्रथमोक्ताऽजितदेवसूर्यपेक्षया द्वितीयः पट्टभृदन्तेवासी च, "वाइंददेवसूरीसो" त्ति, वादिनां वादिषु वेन्द्रः प्रधानभूतत्वात् वादीन्द्रः=सिद्धराजजयसिंहनृपस्य सभायां वादिनं जित्वा लब्धयथोक्तबिरुदः, स चाऽसौ देवसूरीशः=देवनामाचार्यवर्यः, वादीन्द्रदेवसूरीशोऽभूदिति क्रियासण्टङ्कः। किंविशिष्टः ? "जगविक्खाओ" त्ति, जगति=विश्वे विख्यातः=प्रथितो जगद्विख्यातः=वादिविजय-ग्रन्थरचनाद्यनेकगुणगणेन लोकप्रसिद्धिं गतः। पुनः किंभूतः ? "जेत्ता दिगंबरायरिअकुमुदचंदस्स" त्ति, दिगम्बराचार्यश्चाऽसौ कुमुदचन्द्रः=कुमुदचन्द्राख्यो दिगम्बराचार्यकुमुदचन्द्रस्तस्य दिगम्बराचार्यकुमुदचन्द्रस्य=चतुरशीतिवादावाप्तजयलक्ष्मीकस्य श्रीमदणहिल्लपुरनगरे सिद्धराजभूपतेरनेकविबुधजनसंकीर्णे आस्थाने "यदि श्वेताम्बरा हारयेरन् तदा तैः स्वशासनमुच्छिद्य दिगम्बरत्वं स्वीकरणीयम्, यदि दिगम्बराः पराभवं लभेरन् तर्हि तिरस्कृत्य ते पुराद्बहिर्निष्काशनीया" इत्येवंरूपकृतप्रतिज्ञे वादे,

तथा चोक्तं श्रीप्रभावकचरिते—

दिगम्बरो विजीयेत, चेत्तन्न्यत्कारपूर्वकम्। निर्वास्योऽत पुराद् वृत्वा, परिस्पन्द स चौरवत् ॥१८२॥
अथ श्वेताम्बरो हारयेत तत्तस्य शासनम्। उच्छिद्याशाम्बरत्वेनाऽवस्थाप्य तैं स्थिते किमु ॥१८३॥
इत्येव लेखयित्वात्र तद् राजकरणेऽमुचत्। कृतपक्षोऽपि सम्बन्धोऽनुमतस्तैर्वेलोन्नतैः ॥१८४॥" इति।

जेता=वादे निरुत्तरीकृत्य पराभवस्य विधायकः। तथा चोक्तं गुर्वावल्याम्—

"श्रीदेवसूरिरपरश्च जगत्प्रसिद्धो, वादीश्वरोऽस्तगुणचन्द्रमदोऽपि बाल्ये ॥७३॥
येनार्दितश्चतुरशीतिसुवादिलीला-लब्धोल्लसज्जयरमामदकेलिशाली।
वादाहवे कुमुदचन्द्रदिगम्बरेन्द्र श्रीसिद्धभूमिपतिसंसदि पत्तनेऽस्मिन् ॥७४॥
स्याद्वादरत्नाकरतर्कवेधा मुदे स केषां न हि देवसूरिः।
यतश्चतुर्विंशतिसूरिशाख यस्यैव नाम्ना विदित बभूव ॥७५॥" इति।

तथैव श्रीरत्नप्रभसूरिभिरुपदेशमालावृत्तिप्रशस्तौ—

आस्थाने जयसिंहदेवनृपतेर्येनास्तदिग्वाससा स्त्रीनिर्वाणसमर्थनेन विजयस्तम्भ समुत्तम्भित ॥३॥" इति।

कलिकालसर्वज्ञश्रीहेमचन्द्रसूरिपादैः स्वरचिते श्रीसिद्धहेमशब्दानुशासने—
"यदि नाम कुमुदचन्द्रं नाजेष्यद् देवसूरिरहिमरुचिः। कटिपरिधानमधास्यत् कतमः श्वेताम्बरो जगति? ।" इति।

एषैवोक्तिः श्रीप्रभावकचरित-प्रबन्धचिन्तामणि-राजगच्छपट्टावल्यादिष्वपि सङ्गृहीता दृश्यते।

वादिदेवसूरेरेव सन्तानीयैराचार्यश्रीमुनिभद्रपादैः श्रीशान्तिनाथमहाकाव्यप्रशस्तौ-

(प्रे०) 'सिरि०" इत्यादि, "सो" त्ति, सः = प्रसिद्धनामा **सिरिहेमचन्दसूरी मलधारी'** त्ति, मलधारगच्छे जातत्वान्मलधारी श्रीहेमचन्द्रसूरिः श्रीअभयदेवसूरिशिष्यः त्याजितमहामात्यपदादिविभवः "जयउ" त्ति, जयतु इति क्रियाऽन्वयः । किंभूतः ? 'बहुस्सुओ त्ति, बहुश्रुतः=अनेकशास्त्रपरिकर्मितमतिः, "गुणमणिरोहणसेलो" त्ति, गुणा एव मणयो गुणमणयस्तेषामुत्पत्तिस्थानत्वेन रोहणशैल इव रोहणशैलः=रोहणगिरिः=गुणमणिरोहणशैलः, "परमपसंतरसमुत्तिसमो" त्ति, प्रशान्तश्चाऽसौ रसश्च प्रशान्तरसः, परमः=श्रेष्ठः, स चासौ प्रशान्तरसश्च परमप्रशान्तरसस्तस्य मूर्तिः=आकृतिः = परमप्रशान्तरसमूर्त्तिस्तस्याः समः=तुल्यः सदृशः समानो वा परमप्रशान्तरसमूर्त्तिसमः = परमप्रशान्तरसस्य मूर्त्तिरिव ।

तत्कृतयश्चेमाः-(१) आवश्यक-टिप्पनकम्-आवश्यकप्रदेशव्याख्या, (२) शतककर्मग्रन्थविवरणम् , (३) अनुयोगद्वारसूत्रवृत्तिः, (४) उपदेशमाला (पुष्पमाला), (५) तद्वृत्तिः, (६) जीवसमासविवरणम् , (७) भवभावनामूलम् , (८) तद्वृत्तिः, (९) नन्दीसूत्रटिप्पनकम् , (१०) विशेषावश्यकबृहद्वृत्तिरित्यादयः ॥१९७॥

संप्रति तदानी सञ्जातस्य कलिकालसर्वज्ञस्य श्रीहेमचन्द्रसूरेः स्तवनात्मकं पथ्यार्या-पथ्यापूर्विकजघनचपलार्या-पथ्यार्या-पथ्यार्यालक्षणगाथाचतुष्कमाह—

एत्थ हवीअ तयाणि सीसो सिरिदेवचंदसूरिस्स ।
कलिकालसव्ववेत्ता सूरी सिरिहेमचंदक्खो ॥१९८॥ (पच्छाज्जा)
कोडितिगसिलोगाणं कत्ता जो सिद्धरायभूवस्स ।
पडिबोहगो तहा णिव-कुमारपालपमुहाणं पि ॥१९९॥
(पच्छापुव्विगाजहणचवलाज्जा)
वायरणकव्वकोस-च्छंद-अलंकारलिंगपमुहाणं ।
विसयाण जेण रइआ गंथा-ऽणेगा विउलमइणा ॥२००॥ (पच्छाज्जा)
जम्मोऽस्स विक्कमाऽद्दे जमसुरभीमे११४५वयं खपयरहरे११५० ।
सूरी स गुणंगुग्गे११६६णिहिसुइचक्किम्मि१२२९सग्गमिओ॥२०१॥(पच्छाज्जा)

(प्रे०) "एत्थ" इत्यादि, "तयाणि"त्ति, तदानी=श्रीअजितदेवसूरिकाले "एत्थ" त्ति, अत्र = भरतक्षेत्रे "सीसो सिरिदेवचंदसूरिस्स"त्ति, श्रीदेवचन्द्रसूरेः=श्रीमतो देवचन्द्राभिधस्याचार्यस्य शिष्यः = विनेयः, यत्तदोर्नित्यसापेक्षत्वात् यत्पदस्य च वक्ष्यमाणत्वात्तत्पदमा-

"तक्किहदसणकप्पे"त्ति, तर्काः षट्, इभदशनौ=गजदन्तौ द्वौ, कल्पाः=सौधर्मे-शान-सनत्कुमार-माहेन्द्र-ब्रह्मलोक-लान्तक-शुक्र-सहस्रारानत-प्राणता-ऽऽरणा-ऽच्युतलक्षणा द्वादश, एते अङ्का उत्क्रमन्यस्ता यत्र तत्र तर्कभदशनकल्पे=विक्रमसंवत् १२२६ वत्से श्रावणे मासे, कृष्णे पक्षे, सप्तम्यां तिथौ गुरौ वासरेऽपराह्णे "सग्गो"त्ति, स्वर्गः=स्वर्गमनं बभूव ।

तथा चोक्तं प्रभावकचरिते–

'रसयुगमरवौ वर्षे १२२६, श्रावणे मासे सगने । कृष्णपक्षस्य सप्तम्या-मपराह्णे गुरोर्दिने ॥ २८४ ॥
मर्त्यलोकस्थित लोक, प्रतिबोध्य पुरन्दरम् । बोधका इव ते जग्मु-र्दिवं श्रीदेवसूरय ॥ २८५ ॥
शिखिवेदशिवे११४३ जन्म, दीक्षा युग्मशरेश्वरे११५२। वेदाश्वशङ्करे ११७४वर्षे, सूरित्वमभवत्प्रभो ॥२८६॥
नवमे वत्सरे दीक्षा एकत्रिंशत्तमे तथा सूरित्व सकलायुश्च त्र्यशीतिवत्सरा अभूत ॥२८७॥" इति ।

△ तपागच्छपट्टावल्यां पुनर्महोपाध्यायधर्मसागरगणिभिरमुष्य जन्मसंवदन्यथा प्रतिपादि । **तथा च तद्ग्रन्थः**–"एषा च वि० चतुस्त्रिंशदधिके एकादशशत११३४वर्षे जन्म" इति ।

तदर्थमत्र पूर्वोक्तस्य "**वग्गवेअगिरिसे**"त्ति, पदस्य व्याख्याऽन्यथा कार्या । तथाहि– "**वग्गवेअरुद्दे**"त्ति, वर्गाः=धर्मा-ऽर्थ-काम-मोक्षलक्षणाश्चत्वारः, वेदाः-ऋग्वेद-यजुर्वेद-सामवेद-लक्षणास्त्रयः, अथर्ववेदस्यैतद्वेदत्रयादुत्पन्नत्वादेतेभ्यः स पृथग् न गण्यते । **उक्तञ्चाभिधान-चिन्तामणौ**–"वेदस्त्रयी पुन । ऋग्यजु सामवेदा स्युरथर्वा तु तदुद्भृति ॥२४६॥" इति । **यद्वा** वेदाः–स्त्री पुरुष-नपुंसकाऽभिधास्त्रयः गिरिशाः=रुद्राः=महादेवा एकादश, एतेषां वामगतिन्यस्तानां ११३४ संख्यया योऽब्दस्तस्मिन् वर्णवेदगिरिशे विक्रमसंवत् ११३४ शरदि जनिरभूत् । तत्त्व पुनस्तद्विदो विदुः ।

एवञ्चाऽसौ तपागच्छपट्टावल्यपेक्षयाऽष्टादश१८वर्षाणि, प्रभावकचरितानुसारेण नव ९ वर्षाणि गृहित्वे, द्वाविंशति २२ वर्षाणि सामान्यसाधुत्वे, द्विपञ्चाशद् ५२ वर्षाणि सूरित्वे चेति सर्वायुश्च पट्टावल्यपेक्षया द्विनवति९२वर्षाणिः प्रभावकचरितानुगमेन त्र्यशीति८३वर्षाणि परिपाल्यामरपुरीमलञ्चकार ।

अमुष्य वृत्तान्तो विस्तरतः **प्रभावकचरिते** भणितः । **तथा च तद्ग्रन्थः**

श्रीदेवसूरिर्व पातु य आक्रम्य दिगम्बरम् । कीर्तेरपि स्त्रिय सिद्धमूलधिष्ण्यमतिष्ठिपत् ॥१॥
देवाचार्य श्रिये भूयात्त केवलज्ञानशालिनाम् । विमोच्यामोजन येनाव्युच्छित्ति शासने कृता ॥२॥
जीवितानादिराजीवममध्यमहितोदयम् । अनन्तविधुरद्रोह वदन तस्य सस्तुम ॥३॥
भ्रान्तिसवर्तकभ्रान्तिदुर्वृत्तरजस शमे । अवारवारिवाहश्रि तद्वृत्त परिकीर्त्यते ॥४॥

△ अस्माकमपि तपागच्छट्टावलीमत सुष्ठु भाति, यत कुमुदचन्द्राख्यदिगम्बराचार्यै सह वादो यदा जातस्तदा श्रीहेमचन्द्रसूरयो लघुवया दर्शिता, तथा प्रभावकचरितानुसारेण हेमचन्द्रसूरितो द्विवर्षाधिकवयस्कत्वेन देवसूरयो-ऽपि लघुवयस्का भवेयु । न च तथा दर्शिता ।

सुराः=देवा भवनपति-व्यन्तर-ज्योतिष्क वैमानिकलक्षणाश्चत्वारः; उक्तश्चाभिधानचिन्तामणौ- "निकायभेदादेव स्युर्देवा किल चतुर्विधा ॥६४॥" इति। भीमाः=रुद्राः=महादेवा एकादश, एतेऽङ्का प्रतिलोम्येन स्थापिता यत्र तत्र यमसुरभीमे "ऽहे" त्ति, अब्दे=वर्षे विक्रमसंवत् ११४५वर्षे कार्तिक-पौर्णिमाख्यां निशायां बभूव। "वय"ति व्रतं=दीक्षा "खपयरहरे" त्ति, खं=गगनं=शून्यम्, प्रदराः=कामदेवस्य विशिखाः पञ्च, हराः=रुद्रा एकादश, एतेऽङ्का विपरीतन्यस्ता यस्य तादृशे खप्रदरहरे=विक्रमसंवत् ११५० वत्सरे माघमासे शुक्लायां चतुर्दश्यां तिथौ शनिवारे पुष्यनक्षत्रे कन्यालग्ने प्रथमभवने गुरुः, पञ्चमे नीतिधर्मभुवने बुधः, षष्ठे भुवने रविर्मङ्गलश्च, अष्टमे भुवने शुक्रः, नवमे धर्मभुवने शनिः, रोहिण्या एकादशमे भुवने चन्द्रः पुष्यस्येति ग्रहस्थितौ सत्यां जायते स्म। "स" त्ति, सः=श्रीहेमचन्द्रसूरिः "गुणगुग्गे" त्ति, गुणाः=सन्धि विग्रह-यान-स्थाना-ऽऽसन-द्वैधीभावरूपाः षट्, यदुक्तममरकोशे-

"[1]सधिर्ना[2]विग्रहो [3]यान[4]मासन [5]द्वैध[6]माश्रय।" इति। तथैवाऽभिधानचिन्तामणावपि-

"[1]सन्धि-[2]विग्रह-[3]याना[4]न्यासन[5]द्वैधा ऽऽ[6]श्रया अपि। षड् गुणा ... ... ॥७३५॥" इति।

अङ्गाः=जङ्घाद्वय-बाहुद्विक-शिरःकटीरूपाः लौकिकशास्त्रप्रसिद्धाः षट्, शिक्षा-कल्प व्याकरण-निरुक्त-छन्दो ज्योतिःशास्त्ररूपाः षट्, उग्राः=ईशाः=रुद्रा एकादश, एकस्यामवसर्पिण्यामुत्सर्पिण्यां वा तावतां रुद्राणां सद्भावाद् एतेऽङ्का वामगतिस्थापिता यस्मिंस्तस्मिन् गुणाङ्गोग्रे=विक्रमसंवत् ११६६हायने 'सूरी" त्ति, सूरिः=आचार्योऽभूत्। "णिहि इचक्किम्मि" त्ति, निधयः=निधानानि नव; श्रुती=श्रवसी=श्रवणे द्वे, चक्रिणः=चक्रवर्तिनृपतयो द्वादश, एकस्यामुत्सर्पिण्यामवसर्पिण्यां वा द्वादशानां चक्रिणां भवनात् एते पश्चानुपूर्व्या स्थिता यत्र तत्र निधिश्रुतिचक्रिणि=विक्रमसंवद्१२२९ शरदि " गमिओ"त्ति; स्वर्गम्=अमरालयम् इतः=प्राप्तः।

तथा चोक्त प्रभावकचरिते-

"शरवेदेश्वरे११४५वर्षे कार्तिके पूर्णिमानिशि। जन्माऽभवत्प्रभोर्व्योमबाणशम्भौ११५०व्रत तथा॥८५०॥
रसषट्केश्वरे ११६६सूरिप्रतिष्ठा समजायत। नन्दद्वयरवौ वर्षे१२२९ऽवसानमभवत्प्रभो ॥८५१॥"इति।

एवञ्च श्रीहेमचन्द्रसूरिपादाः पञ्च५वर्षाणि गृहे, षोडश १६वर्षाणि मुनित्वे, एकचत्वारिंशद्४१वर्षाणि सूरित्वे स्थित्वा सर्वायुश्च द्वाषष्टि६२वर्षाणि परिपाल्य मुक्तिगमनविश्रामस्थानभूतं त्रिदशलोकं प्रति प्रतस्थौ।

श्रीकलिकालसर्वज्ञहेमचन्द्रसूरेश्चरित्रं विस्तरतः प्रभावकचरिते इत्थम्—

श्रीहेमचन्द्रसूरीणामपूर्वं वचनामृतम्। जीवातुर्विश्वजीवाना राजचित्तावनिस्थितम् ॥१॥
पातकाः ।तङ्कस्पर्शदूषणपूषण । श्रीहेमचन्द्रसूरीणा वाच स्वर्णोदकच्युत ॥२॥
अनन्तागमविद्याभृन्मृतस्वोज्जीवनस्थिति । श्रीहेमसूरिरव्याद्व प्रतिश्रीपादलिप्तक ॥३॥
कृतिसद्वृत्तमुक्तास्रग्नायकश्चरित प्रभो । स्थाप्यतेऽन्त प्रकाशाय सता हृदयवेश्मसु ॥४॥

"तक्किहदसणकप्पे"त्ति, तर्काः षट्, इभदशनौ=गजदन्तौ द्वौ, कल्पाः=सौधर्मे-शान-सनत्कुमार-माहेन्द्र-ब्रह्मलोक-लान्तक-शुक्र-सहस्राराऽऽनत-प्राणता-ऽऽरणा-ऽच्युतलक्षणा द्वादश, एते अङ्का उत्क्रमन्यस्ता यत्र तत्र तर्केभदशनकल्पे=विक्रमसंवत् १२२६ वत्से श्रावणे मासे, कृष्णे पक्षे, सप्तम्यां तिथौ गुरौ वासरेऽपराह्णे "सग्गो"त्ति, स्वर्गः=स्वर्गमनं बभूव ।

तथा चोक्तं प्रभावकचरिते–

'रसयुग्मरवौ वर्षे १२२६, श्रावणे मासे सगते। कृष्णपक्षस्य सप्तम्या-मपराह्णे गुरोर्दिने ॥२८४॥
मर्त्यलोकस्थित लोक, प्रतिबोध्य पुरन्दरम् । बोधका इव ते जग्मु-र्दिवं श्रीदेवसूरयः ॥२८५॥
शिखिवेदशिवे११४३ जन्म, दीक्षा युग्मशरेश्वरे११५२। वेदाश्वशङ्करे ११७४वर्षे, सूरित्वमभवत्प्रभो ॥२८६॥
नवमे वत्सरे दीक्षा एकत्रिंशत्तमे तथा सूरित्वं सकलायुश्च त्र्यशीतिवत्सरा अभूत ॥२८७॥" इति ।

△ तपागच्छपट्टावल्यां पुनर्महोपाध्यायधर्मसागरगणिभिरमुष्य जन्मसंवदन्यथा प्रतिपादि । **तथा च तद्ग्रन्थः**–"एषा च वि० चतुस्त्रिंशदधिके एकादशशत११३४वर्षे जन्म" इति ।

तदर्थमत्र पूर्वोक्तस्य "**वग्गवेअगिरिसे**"त्ति, पदस्य व्याख्याऽन्यथा कार्या । तथाहि– "**वग्गवेअरुद्दे**"त्ति, वर्गाः=धर्मा-ऽर्थ-काम-मोक्षलक्षणाश्चत्वारः, वेदाः ऋग्वेद-यजुर्वेद-सामवेद-लक्षणास्त्रयः, अथर्ववेदस्यैतद्वेदत्रयादुत्पन्नत्वादेतेभ्यः स पृथग् न गण्यते । **उक्तञ्चाभिधान-चिन्तामणौ**–"वेदस्त्रयी पुनः । ऋग्यजुःसामवेदाः स्युरथर्वा तु तदुद्धृतिः ॥२४६॥" इति । **यद्वा** वेदाः–स्त्री पुरुष-नपुंसकाऽभिधास्त्रयः गिरिशाः=रुद्राः=महादेवा एकादश, एतेषां वामगतिन्य-स्तानां ११३४ संख्यया योऽब्दस्तस्मिन् वर्णवेदगिरिशे विक्रमसंवत् ११३४ शरदि जनिरभूत् । तत्त्वं पुनस्तद्विदो विदुः ।

एवञ्चाऽसौ तपागच्छपट्टावल्यपेक्षयाऽष्टादश१८वर्षाणि, प्रभावकचरितानुसारेण नव ९ वर्षाणि गृहित्वे, द्वाविंशति २२ वर्षाणि सामान्यसाधुत्वे, द्विपञ्चाशद् ५२ वर्षाणि सूरित्वे चेति सर्वायुश्च पट्टावल्यपेक्षया द्विनवति९२वर्षाणि प्रभावकचरितानुगमेन त्र्यशीति८३वर्षाणि परिपाल्यामरपुरीमलञ्चकार ।

अमुष्य वृतान्तो विस्तरतः **प्रभावकचरिते** भणितः । **तथा च तद्ग्रन्थः**

श्रीदेवसूरिर्वः पातु य आक्रम्य दिगम्बरम् । कीर्तेरपि स्त्रियः सिद्धमूलधिष्ण्यमतिष्ठिपत ॥१॥
देवाचार्यः श्रिये भूयात केवलज्ञानशालिनाम् । विमोच्याभोजनं येनाव्युच्छित्ति शासने कृता ॥२॥
जीवितानादिराजीवसमध्यमहितोदयम् । अनन्तविधुरद्रोह वदन तस्य सस्तुमः ॥३॥
भ्रान्तिसवर्तकभ्रान्तिदुर्वृत्तरजसः शमे । अवारवारित्राहश्रि तद्वृत्तं परिकीर्त्यते ॥४॥

△ अस्माकमपि तपागच्छपट्टावलीमतं सुष्ठु भाति, यतः कुमुदचन्द्राख्यदिगम्बराचार्यैः सह वादो यदा जातस्तदा श्रीहेमचन्द्रसूरयो लघुवयसा दर्शिता, तथा प्रभावकचरितानुसारेण हेमचन्द्रसूरितो द्विवर्षाधिकवयस्कत्वेन देवसूरयो-ऽपि लघुवयस्का भवेयुः । न च तथा दर्शिता ।

गीतार्थै साधुभिः सार्द्धं धाम विद्याब्रजस्य च । प्रस्थानं तामलिप्त्या. स ब्राह्मीदेशोपरि व्यधात् ॥४१॥
श्रीरैवतावतारे च तीर्थे श्रीनेमिनामन । सार्थे माधुमते तत्रावात्सीदवहितस्थिति ॥४२॥
निशीथेऽस्य विनिद्रस्य नासाग्रन्यस्तचक्षुष । आराधनात्समक्षाऽभूद् ब्राह्मी ब्रह्ममहोनिधे. ॥४३॥
वत्स स्वच्छमते ! यासीर्मा स्म देशान्तर भवान् । तुष्टा त्वद्भक्तिपुष्ट्याऽह सेत्स्यतीहितमत्र ते ॥४४॥
इत्युक्त्वा सा तिरोधत्त देवी वाचामधीश्वरी । स्तुत्या तस्या निशा नीत्वा पश्चादागादुपाश्रयम् ४५॥युग्मम् ।
सिद्धसारस्वतोऽक्लेशात्सोम सीमा विपश्चिताम् । अभूदभूमिरुन्निद्रान्नरवैरिकृतद्रुह ॥४६॥
प्रभावकधुराधुर्यममु सूरिपदोचितम् । विज्ञाय सघमामन्त्र्य गुरवोऽमन्त्रयन्निति ॥४७॥
योग्य शिष्य पदे न्यस्य स्वकार्यं कर्तुमौचिती । अस्मत्पूर्वेऽमुमाचार सदा विहितपूर्विण ॥४८॥
तदैव विज्ञदैवज्ञव्रजाल्लग्न व्यचारयत् । विमृश्य तेऽथ व्याचक्र सर्वोत्तमगुण क्षणम् ॥४९॥
जीव कर्के तनौ सूर्यो मेषे व्योम्नि बुधान्वित । चन्द्रो वृषे च लाभस्थो भौमो धनुषि षष्ठग ॥५०॥
धर्मस्थाने झषे शुक्र शनिरेकादशो वृषे । राहुस्तृतीय कन्याया विश्वविघ्नविनाशकः ॥५१॥
इति सर्वग्रहबलोपेत लग्नं समृद्धिकृत । होरा चान्द्री तत पूर्वा द्रेष्काणः प्रथमस्तथा ॥५२॥
वर्गोत्तम शशाङ्काशो नवमो द्वादशस्तथा । त्रिंशांशो वाक्पते षष्ठो लग्नेऽस्मिन्गुणमण्डिते ॥५३॥
प्रतिष्ठा यस्य जायेत पुरुषस्य सुरस्य च । राज्ञा ज्ञातो जगत्पूज्य स भवेद् विश्वशेखर ।५४।पञ्चभि कुलकम् ।
अथ वैशाखमासस्य तृतीयामध्यमेऽहनि । श्रीसङ्घनगराधीशविहितोत्सवपूर्वकम् ॥५५॥
मुहूर्त्ते पूर्वनिर्णीते कृतनन्दीविधिक्रमा । ध्वनत्तूर्यरवोन्मुद्रमङ्गलाचारबन्धुरम् ॥५६॥
शब्दाद्वैतेऽथ विश्रान्ते समये घोषिते सति । पूरकापूरितश्वासकुम्भकोद्धे दमेदुरा ॥५७॥
श्रवणेऽगरुकर्पूरचन्दनद्रवचर्चिते । कृतिन सोमचन्द्रस्य निष्ठानिष्ठान्तरात्मन. ॥५८॥
श्रीगौतमादिसूरीशैराराधितमबाधितम् । श्रीदेवचन्द्रगुरव सूरिमन्त्रमचीकथन् ॥५९॥ पञ्चभि कुलकम् ।
तिरस्कृतकलाकेलि कलाकेलिकुलाश्रय । हेमचन्द्रप्रभु श्रीमान्नाम्ना विख्यातिमाप स. ॥६०॥
तदा च पाहिनी स्नेहवाहिनी सुत उत्तमे । तत्र चारित्रमादत्ताविहस्ता गुरुहस्तत ॥६१॥
प्रवर्त्तिनीप्रतिष्ठा च दापयामास नम्रगी. । तदैवाभिनवाचार्यो गुरुभ्य सभ्यसाक्षिकम् ॥६२॥
सिंहासनासन तस्या अन्वमानयदेप च । कटरे जननीभक्तिरुत्तमाना कपोपल ॥६३॥
श्रीहेमचन्द्रसूरि श्रीसङ्घसागरकौस्तुभ । विजहारान्यदा श्रीमदणहिल्लपुर पुरम् ॥६४॥
श्रीसिद्धभूभृदन्येद्यु राजपाटिकया चरन् । हेमचन्द्र प्रभु वीक्ष्य तत्स्थविपणौ स्थितम् ॥६५॥
निरुध्य टिम्बिकासन्ने गजप्रसरमङ्कुशात् । किंचिद्भणिष्यतेत्याह प्रोवाच प्रभुरप्यथ ॥६६॥
कारय प्रसर सिद्ध । हस्तिराजमशङ्कितम् । त्रस्यन्तु दिग्गजा कि तैर्भूस्त्वयैवोद्धृता यत ॥६७॥
श्रुत्वेति भूपति प्राह तुष्टिपुष्ट सुधीश्वर । मध्याह्ने मे प्रमोदायागन्तव्य भवता सदा ॥६८॥
तत्पूर्वं दर्शन तस्य जज्ञे कुत्रापि सत्क्षणे । आनन्दमन्दिरे राज्ञा यत्राजर्यमभूत्प्रभो. ॥६९॥
अन्यदा सिद्धराजोऽपि जित्वा मालवमण्डलम् । समाजगाम तस्मै चाशिष दर्शनिनो ददु ॥७०॥
तत्र श्रीहेमचन्द्रोऽपि सूरिर्भूरिकलानिधि । उवाच काव्यमव्यग्रमतिश्चव्यनिदर्शनम् ॥७१॥ तथा हि—
भूमि कामगवि ! स्वगोमयरसैरासिञ्च रत्नाकरा !, मुक्तास्वस्तिकमातनुध्वमुडुप ! त्व पूर्णकुम्भो भव ।
धृत्वा कल्पतरोर्दलानि सरलैर्दिग्वारणास्तोरणान्याधत्त स्वकरैर्विजित्य जगती नन्वेति सिद्धाधिप ॥
व्याख्याविभूषिते वृत्ते वृत्ते इव विभोर्न्नत । आजुहावावनीपाल सूरिं सौधे पुन पुन. ॥७३॥
अन्यदावन्तिकोशीयपुस्तकेषु नियुक्तकै । दर्श्यमानेषु भूपेन प्रैक्षि लक्षणपुस्तकम् ॥७४॥
किमेतदिति पप्रच्छ स्वामी तेऽपि व्यजिज्ञपन् । भो ज व्या क र ण ह्येतच्छब्दशास्त्र प्रवर्त्तते ॥७५॥
असौ हि मालवाधीशो विद्वच्चक्रशिरोमणि. । शब्दालङ्कारदैवज्ञतर्कशास्त्राणि निर्ममे ॥७६॥

गङ्गाधरो गोपगिरौ धारायां धरणीधरः । पद्माकरो द्विजः पुष्करिण्यां वादमदोद्धुरः ॥४१॥
जितश्च श्रीभृगुक्षेत्रे कृष्णाख्यो ब्राह्मणाग्रणीः । एवं वादजयोन्मुद्रो रामचन्द्रः क्षितावभून् ॥४२॥
विद्वान् विमलचन्द्रोऽथ हरिचन्द्रः प्रभानिधिः । सोमचन्द्रः पार्श्वचन्द्रो विबुधः कुलभूषणः ॥४३॥
प्राज्ञः शान्तिस्तथाऽशोकचन्द्रश्चन्द्रोल्लसद्यशाः । अजायन्त सखायोऽस्य मेरोरिव कुलाचलाः ॥४४॥
ततो योग्यं परिज्ञाय रामचन्द्रं मनीषिणाम् । प्रत्यष्ठिपन् पदे दत्तदेवसूरिवराभिधम् ॥४५॥
पितुस्तस्य व्रतं वीरनागाख्यस्य स्वसुः पुनः । पुराप्तव्रतमुद्राया अमुद्राया महाव्रतं ॥४६॥
महत्तराप्रतिष्ठां च व्यधुर्विधुरिताहसः । श्रीमच्चन्दनबालेति नामास्याः प्रददुर्मुदा ॥४७॥ युग्मम् ।
अन्यदा गुर्वनुज्ञाता श्रीमन्तो देवसूरयः । विहारमादधुः पूज्याः पुरे धवलकाभिधे ॥४८॥
उदयो नाम तत्राऽस्ति विदितो धार्मिकाग्रणीः । श्रीमत्सीमन्धरस्वामिबिम्बं सैष व्यधापयत् ॥४९॥
स प्रतिष्ठाविधौ तस्यानिश्चिन्वन् सद्गुरुं ततः । श्रीमच्छासनदेवीं चाराध्नोत् त्र्यहमुपोषितः ॥५०॥
युगप्रधानकल्पेन श्रीमता देवसूरिणा । प्रतिष्ठापय बिम्बं स्वमित्युपादिशनाथ सा ॥५१॥
तत्तदर्थनया बिम्बप्रतिष्ठां विदधुस्तदा । ऊ दा व स ति नाम्ना तच्चैत्यमद्यापि विद्यते ॥५२॥
अथ नागपुरेऽन्येद्युः पभवो विजिहीर्षवः । गिरीन्द्रमर्बुदं प्रापुस्तत्राऽऽरुरुहुश्च तम् ॥५३॥
मन्त्रिणोऽम्बप्रसादस्य गिरिमारोहतः सह । गुरुभिः कमवैचित्र्यात् दन्दशूकोऽदशत् पदे ॥५४॥
ज्ञात्वा ते प्रेषयस्तस्य हेतुं पादोदकं तदा । धौतमात्रे तदा तेन दशोऽसौ निर्विषोऽभवत् ॥५५॥
श्रीनाभेयं नमस्कृत्य संसारार्णवतारणम् । तुष्टुवुः श्रीमदम्बां च प्रत्यक्षां शासनेश्वरीम् ॥५६॥
साऽवादीत्कथयिष्यामि किंचित्ते बहुमानतः । दूरे सपादलक्षे त्वं मा यासीन्मम वाक्यतः ॥५७॥
गुरुस्तवाष्टमासायुरस्मादेव दिनाद्यतः । व्यावर्तस्व ततो वेगादणहिल्लपुरं प्रति ॥५८॥
इत्याख्याय तिरोधाच्च देवी दध्यौ ततः प्रभुः । मय्यम्बाया इवाम्बाया वत्सलत्वमहो महत् ॥५९॥
व्यावृत्यायात् ततः पूज्यपुरं आख्यत सूरिवचः । आनन्दमसमं प्रापुस्ते कालज्ञानतो निजात् ॥६०॥
अन्यदा देवबोधाख्यः श्रीभागवतदर्शनी । भूरिवादजयोन्मुद्रः श्रीमत्पत्तनमाययौ ॥६१॥
अवालम्बत पत्रं च राजद्वारे मदोद्धुरः । तत्र श्लोकं दुरालोकं विबुधैरलिखच्च सः ॥६२॥ तथाहि–
एकद्वित्रिचतुःपञ्चषण्मेनकमने न काः । देवबोधे मयि क्रुद्धे षण् मेनकमनेनकाः ॥६३॥
ततः सर्वेऽपि विद्वांसः एनमालोक्य सूर्यवत् । दृशो विपरियन्ति स्म दुर्बोधं सुधियामपि ॥६४॥
षण्मासान्ते तदा चाम्बप्रसादो भूपतेः पुरः । देवसूरिप्रभुं विज्ञराजं दर्शयति स्म च ॥६५॥
स भूपालपुरः श्लोकं बिभेदोद्भेदधीनिधिः । कुलत्थजलवद्दण्डशैलं राज्ञा मतः सुहृत् ॥६६॥

अथास्य श्लोकस्य विवरणम्–कै गै रै शब्दे। कायन्तीति क्वचित् डप्रत्यये काः शब्देन वादिनः । ते षट्काः । सन्तीति क्रियाध्याहारे, षड्वादिनो न सन्ति । क्व सति–देवबोधे मयि क्रुद्धे सति । पुनः कथंभूते–एकद्वित्रिचतुःपञ्चषण्मेनकमने । माङ् माने, मानं मा क्विप् प्रमाणं । एकं प्रमाणं प्रत्यक्षरूपं येषां ते एकमाः, चार्वाकाः, एकप्रमाणवादिनः । तथा द्विमाः–द्वे प्रमाणे प्रत्यक्षानुमानरूपे येषां ते द्विमाः, द्विप्रमाणवादिनो बौद्धा वैशेषिकाश्च । तथा त्रिमाः–त्रीणि प्रमाणानि प्रत्यक्षानुमानागमरूपाणि येषां ते त्रिमाः, त्रिप्रमाणवादिनः साङ्ख्याः । चत्वारि प्रत्यक्षानुमानागमोपमानरूपाणि प्रमाणानि येषां ते चतुर्माः, चतुःप्रमाणवादिनो नैयायिकाः । तथा पञ्चमाः–पञ्च प्रत्यक्षानुमानागमोपमानार्थापत्तिरूपाणि प्रमाणानि येषां ते पञ्चमाः, पञ्चप्रमाणवादिनः प्राभाकराः । तथा षण्माः–षट् प्रत्यक्षानुमानागमोपमानार्थापत्त्यभावरूपाणि प्रमाणानि येषां ते षण्माः, षट्प्रमाणवादिनो मीमांसकाः । तेषामिनास्तद्वेत्तृत्वात्, तान् कमते अभिलषति, स एकद्वित्रिचतुःपञ्चषण्मेनकमनः, तस्मिन्मयि । तथा मेनकमनेनका अपि न काः न

प्रभुस्त दृष्टमात्रेण ज्ञाततत्त्वार्थमस्य च । शास्त्रस्य ज्ञापक चाशु विदधेऽध्यापक तदा ॥११३॥
प्रतिमास स च ज्ञानपञ्चम्या पृच्छनां दधौ । राजा च तत्र निर्व्यूढान् कङ्कणै समभूषयत् ॥११४॥
निष्पन्ना अत्र शास्त्रे च दुकूलस्वर्णभूषणै' । सुखासनातपत्रैश्च ते भूपालेन योजिता ॥११५॥
अन्यदा सत्प्रभोस्तस्य सभाया स्व पतेरिव । विबुधव्रातरोचिन्यामेकश्चारण आययौ ॥११६॥
अवज्ञया न कोऽप्यत्र समुख तस्य वीक्षते । रत्नेषु वीक्ष्यमाणेषु जरत्तृणमणेरिव ॥११७॥
अथ चासावपभ्रशादपाठीद् दोहक वरम् । तत्पुण्यदोहद ब्राह्मीप्रसाद प्रकट ननु ॥११८॥ तथाहि-
हेमसूरि अत्थाणि ते ईसर जे पडिया । लच्छि वाणि मुहकाणि सा पइ भागी मुह मरउ ॥११९॥
तारमुक्तेऽस्य पूर्वार्द्धे नाम्ना पूज्यप्रजल्पनात् । अवज्ञाकृतिनोऽभूवन् सभ्याना कोपतो दृश ॥१२०॥
माञ्जिष्ठाः सावधानेषु तेषु तस्य पदत्रयम् । उवाच चारणस्तच्च श्रुत्वा ते पुलक दधु ॥१२१॥-युग्मम् ।
अवितथश्च वाण्यस्य चमत्कारकृदुन्नता । बुधस्य हि स्थितिर्यत्र तत्र स्यान्महिमा गुरु ॥१२२॥
ऊचुर्मुदा ते सभूय पुन पठ पुन पठ । पठिते प्रमदोऽवोचन्निक्षोभस्त्रि पुन पठ ॥१२३॥
चतुष्कृत्वोऽपि पाठे तु मते कृतिभिरादरात् । कोपाभासमिवाबिभ्रद् विचाराच्चारणोऽवदत ॥१२४॥
यूय यथेष्टदातारो यदि तत्स्वानुमानत । गृह्णाम्यह गुरु भार वाहीक इव दुर्वहम् ॥१२५॥
त्रि पाठे दोहकस्यास्य यल्लब्ध तेन मे धृति । नैवाधिकेन कार्यं मे प्रत्युताहितहृद्रुजा ॥१२६॥
तस्यायुतत्रय पूज्या सभ्यपार्श्वाददापयन् । स ऊचे मे धन पूर्णमासप्तपुरुषावधि ॥१२७॥
अह प्रतिग्रह गृह्णे न चातोऽभ्यधिक किल । इत्युक्त्वा प्रययौ सोऽथ प्रदेश स्वसमीहितम् ॥१२८॥
राज्ञा श्रीसिद्धराजेनान्यदाऽनुयुयुजे प्रभु । भवता कोऽस्ति पट्टस्य योग्य शिष्यो गुणाधिक ॥१२९॥
तमस्माक दर्शयत चित्तोत्कर्षाय मामिव । अपुत्रमनुकम्पार्हं पूर्वं त्वा मा स्म शोचयन् ॥१३०॥
आह श्रीहेमचन्द्रश्च न कोऽप्येव हि चिन्तक । आद्योऽयभूदिलापाल सतराम्भोधिचन्द्रमाः ॥१३१॥
सज्ज्ञानमहिमस्थैर्यं मुनीना किं न जायते । कल्पद्रुमसमे राज्ञि त्वयीदृशि कृतस्थितौ ॥१३२॥
अस्त्यामुष्यायणो रामचन्द्राख्य कृतिशेखर । प्राप्तरेख प्राप्तरूप सघे विश्वकलानिधि ॥१३३॥
अन्यदाऽदर्शयस्तेऽमु क्षितिपस्य स्तुतिं च स । अनुक्तामाद्यविद्वद्भिर्हृल्लेखाधायिनी व्यधात् ॥१३४॥ तथाहि-
मात्रयाऽप्यधिक किञ्चिन्न सहन्ते जिगीषव । इतीव त्व धरानाथ ! धारानाथमपाकृथा ॥१३५॥
शिरोधूननपूर्वं च भूपालोऽत्र दृश दधौ । रामे वामेनराचारो विदुषा महिमस्पृशाम् ॥१३६॥
एकदृष्टिर्भवान् भूयाद्वत्स ! जैनेन्द्रशासने । महापुण्योऽयमाचार्यो यस्य त्व पदरक्षक ॥१३७॥
इत्युक्त्वा विरते राज्ञि रामस्यादुष्यदेककम् । नेत्र दृष्टिर्हि दुर्मृष्या सुकृतातिशयस्पृशाम् ॥१३८॥
उपाश्रयाश्रितस्यास्य महापीडापुर सरम् । व्यनशद् दक्षिण चक्षुर्न रत्नमनुपद्रवम् ॥१३९॥
कर्मप्रामाण्यमालोच्य ते शीतीभूतचेतस । स्थितास्तत्र चतुर्मासीमासीनास्तपसि स्थिरे ॥१४०॥
चतुर्मुखाख्यजैनेन्द्रालये व्याख्यानमद्भुतम् । श्रीनेमिचरितस्यामी श्रीसङ्घाग्रे प्रतुष्टुवु ॥१४१॥
सुधासारवच स्तोमाकृष्टमानसवासना । शुश्रूषव समायान्ति तत्र दर्शनिनोऽखिला ॥१४२॥
पाण्डवाना परिव्रज्याव्याख्याने विहितेऽन्यदा । ब्राह्मणा मत्सराध्माता व्याचख्युर्नृपतेरिदम् ॥१४३॥
स्वामिन् ! पुरा महाव्यास कृष्णद्वैपायनोऽवदत् । वृत्त युधिष्ठिरादीना भविष्यज्ज्ञानतोऽद्भुतम् ॥१४४॥
तत्रेदमुच्यते स्वायु प्रान्ते पाण्डो सुता अमी । हिमानीमहिते जग्मुर्हिमवद्भूधराध्वनि ॥१४५॥
श्रीकेदारस्थित शम्भु स्नानपूजनपूर्वकम् । आराध्य परमाभक्तिस्वान्ता स्वान्तमसाधयन् ॥ युग्मम् ।
अमी श्वेताम्बरा शूद्रा विद्रुतस्मृतिसूक्तय । तदुक्तवैपरीत्यानि जल्पन्ति निजपर्षदि ॥१४७॥
अनौचित्यकृताचारात् पुरे तेऽरिष्टमित्यद । भूभृता रक्षणीयाश्च दुराचारा प्रजाकृता ॥१४८॥

श्वेताम्बरप्रहसने स सूत्रधारः प्रभु कुमुदचन्द्र । किं वाच्यस्तव वाचा दिश किमिहान्यस्वागडम्बरैः ॥९७॥
स गुरु प्राह नाहयुर्व्रतमास्माकदर्शने । तत कथय मद्भ्रातु पुर एकं हि वाचिकम् ॥ ९८ ॥ तद्यथा-
दिगम्बरशिरोमणे । गुणपराङ्मुखो मा स्म भू-र्गुणग्रहफल हि तद्वसति यद्रमापङ्कजे ।
ततस्त्यज मद कुरु प्रशमसयतान् स्वान् गुणान्, दमो हि मुनिभूषण स च भवेन्मदव्यत्यये ॥ ९९ ॥
इत्येव कथिते बन्दिवरेणास्य पुरो मुने । वादिन सोऽवदन् मूर्खसाधूना शम उत्तरम् ॥ १०० ॥
उत्तेजनं किमप्येष क्रियते चित्तपीडनम् । अस्य विद्याकलामध्य ज्ञायते येन तत्त्वत. ॥ १०१ ॥
विमृश्येति निजे साधुवृन्दं रथ्यान्तरागतत । वैरानुबन्धचेष्टाभिरुपासर्जयदद्भुतम् ॥ १०२ ॥
इत्येवमुपसृष्टेऽत्र नि प्रकम्पे सुमेरुवत । दिग्वासा निजरूपाममविशिष्ट प्रचक्रमे ॥ १०३ ॥
निजचैत्याग्रतो यान्ती वृद्धा गोचरचर्यया । उपसर्गयितु साध्वीमारेभेऽन्येद्यु रुयत ॥१०४॥
अथ पल्लवकान् पल्लवकानिव तमस्तरो । प्रेष्य तां कुण्डके क्षिप्त्वा नर्त्तयामास साहसी ॥१०५॥
अहो साध्वीमसौ वृद्धा दर्शनिव्याजबुक्कस । विडम्बयति पापीति तस्यावर्णो जनेऽभवत ॥१०६॥
अथ सा मोचिता कैश्चिदनुकम्पापरैर्नरैः । सूरेरुपाश्रय प्रायादतिगद्गदशब्दभू ॥१०७॥
किंकृतस्तेऽपमानोऽयमिति पृष्टा च सूरिभि । जरामन्युभराव्यक्तस्वर प्राह तदग्रत ॥१०८॥
वर्द्धितोऽध्यापित सूरिपदे मद्गुरुभिर्भवान् । स्थापितोऽस्माद्दशामीदृग्विडम्बनकृते ध्रुवम् ॥१०९॥
दिगम्बरोऽय बीभत्सदर्शन' स्वचिटव्रजे । राजाध्वनि प्रयान्तीं मामनाथवद्दुपाद्रवत ॥११०॥
विद्वत्तया प्रभुत्वेन किं फल तेऽवकेशिना । किं करस्थेन शस्त्रेण यदि शत्रुर्न हन्यते ॥१११॥
शमशैत्यमहावल्लया फल परिभवो दृढ । ग्रस्यते मुच्यते वापि राहुणा स्वेच्छया शशी ॥११२॥
अद्य ते विक्रम काल पठितस्य फल ह्यद । धान्ये शुष्के घने चास्ते वर्षन् मेघ करोतु किम् ॥११३॥
देवसूरिरथो वाचमुवाच क्रोधदुर्द्धराम् । मा विषाद कुरुष्वार्ये दुर्विनीत पतिष्यति ॥११४॥
आर्याह दुर्विनीतोऽय पतिष्यति न वा पुन । त्वयि न्यस्तभर सङ्घ पतिष्यत्येव वेत्रवत ॥११५॥
प्रभुराह स्थिरीभूय चेद् विलोकयसे तत । मुक्तानामिह वेधो न समवी गुणयुक्तये ॥११६॥
अथ चोवाच माणिक्य । विज्ञप्तिं लिख मामिकाम् । श्रीमत्पत्तनसङ्घाय विनयातिशयस्पृशम् ॥११७॥
आदेशानन्तर सोऽथ लिखति स्म स्फुटाक्षरम् । अदर्शयत्प्रभो पश्चादथासौ प्रत्यवाचयत् ॥११८॥
'स्वस्ति नत्वा जिन श्रीमदणाहिल्लपुरे प्रभुम् । सघ कर्णावतीपुर्या श्रीमतो देवसूरय ॥११९॥
भक्त्या विज्ञपयन्त्यत्राशाम्बरेण विवादिना । शीघ्रमेवागमिष्याम कृतवादाश्रवा इति ॥१२०॥
अचिराध्वन्यपु सश्च हस्ते साऽथ समर्पिता । गूर्जराणा राजधानीं स प्राप प्रहरत्रयात् ॥१२१॥
दृष्ट्वा सघेन मर्त्योऽसौ भोजनाच्छादनादिभि । सम्मान्य प्रहित शीघ्र प्रतिलेख समर्प्य च ॥१२२॥
आयाद् देवगुरो पार्श्वे सघादेश ददौ मुदा । एन ललाटे विन्यस्य विवृत्यावाचयच्च स. ॥१२३॥
'स्वस्ति श्रीतीर्थनेतार नत्वा श्रीपत्तानात्प्रभु । सघ क र्णा व ती पु र्या परवादिजयोर्जितम् ॥१२४॥
श्री दे वो प प द सूरिं समादिशति सम्मदात् । आगन्तव्य झटित्येव भवता वादिपुङ्गव । ॥१२५॥
किं च श्री वा दि वे ता ल शा न्त्या चा र्य स्य सद्गुरो । पार्श्वेऽधीतस्य शैवाख्यवादिजेतुर्महामते ॥१२६॥
मु नि च न्द्र प्र भो किं न भवान् शिष्यशिरोमणि । कालेऽधुनातने सघोदयस्त्वय्येव तिष्ठते ॥१२७॥
तत श्री सि द्ध भू पा ल विज्ञप्त्यात्र सकौतुकम् । त्वत्कृत विजय स्वस्य वय वीक्षामहे ध्रुवम् ॥१२८॥
श्राद्धानां श्राविकाणा च शतानि त्रीणि सप्त च । विजयाय तव श्रीमन्नाचामाम्लानि तन्वते ॥१२९॥
प्रतिहन्तु प्रत्यनीकसुराणा वैभव लघु । देव्या श्रीशासनेश्वर्या बल दातुं स्वसत्त्वत. ॥१३०॥
तदर्थमिति विज्ञाय विश्ववन्द्य स बन्दिनम् । प्राहिणोद्द्वादिने धीमान् शिक्षयित्वा स्ववाचिकम् ॥१३१॥

आजगाम धियां धामाणहिल्लपुरमध्यतः । व्यजिज्ञपन्नियुक्ताश्च श्रीसिद्धाधिपतेः पुरः ॥१८३॥
ततः श्रीपालमामन्त्र्य कविराजं नराधिपः । रहो मन्त्रयते स्मासौ प्रतिपन्नसहोदरम् ॥१८४॥
देवबोधो महाविद्वान् द्रष्टव्योऽसौ कथं हि न । निस्पृहत्वादनागच्छन् समाया तपसोर्जितः ॥१८५॥
आत्मदेशे परो विद्वानागतो यन्न पूज्यते । तत्तूनमात्मनः केन निवार्यमयकीर्तिकृत् ॥१८६॥
अथाह कविराजोऽपि विद्वानाडम्बरी च यः । स कथं निस्पृहो लक्ष्मीं विना परिकरं कथम् ॥१८७॥
सा विद्वद्वल्लभैर्युष्मादृशैर्भूपैर्भवेदिह । दत्तैव नापरः कश्चिदुपायोऽस्याः समर्जने ॥१८८॥
परं श्रीभारतीभक्त्यात्यादरः स्वामिनो यदि । तत्सुधर्म्मांम्बर्म्मांया पर्षद्याहूयतामसौ ॥१८९॥
अस्त्वेवमिति राज्ञोक्ते प्रधानपुरुषास्ततः । प्राहीयन्त ततस्तेनाभिहितास्ते मदोद्धतम् ॥१९०॥
आह्वानायागता यूयं मम भूपनिदेशतः । भूपाले किं हि न कार्यं स्पृहाविरहितात्मनाम् ॥१९१॥
तथा काशीश्वरं कन्यकुब्जाधीशं समीक्ष्य च । गणयाम कथं स्वल्पदेशं श्रीगूर्जरेश्वरम् ॥१९२॥
परमस्मदिदृक्षायै भवता स्वामिनस्तदा । उपविष्टः क्षितौ सिंहासनस्थं मा स पश्यतु ॥१९३॥
एवं विसर्जितास्ते च यथावृत्तं व्यजिज्ञपन् । कविराजं नृपः प्राह तद्वाचातिचमत्कृतः ॥१९४॥
विना जैनमुनीन् शान्तान् को न नामावलिप्रधो । तारतम्याश्रिते ज्ञाने कोऽवकाशो मदस्य तत् ॥१९५॥
द्रष्टव्यमिदमप्यस्य चेष्टितं कौतुकात्ततः । सश्रीपालस्ततो भूपोऽन्यदागच्छत् तदालये ॥१९६॥
सिंहासनस्थमद्राक्षीद् विद्वद्वृन्दनिषेवितम् । मृगेन्द्रमिव दुर्धर्षं देवबोधं कवीश्वरम् ॥१९७॥
दृढभक्त्या नमश्चक्रे राजा विनयवामनः । गुणपूर्णे सतां चित्ते नावकाशो मदस्य यत् ॥१९८॥
प्रत्यक्षविश्वरूपं तं विश्वरूपवराशिषा । अभिनन्द्याऽवदत्पाणिसञ्ज्ञयाऽदर्शयन् भुवम् ॥१९९॥
अत्रोपविश्यतां राजन् । श्रुत्वेति क्ष्मापतिस्ततः । श्रीश्रीपालकृतं काव्यमुवाच प्रकटाक्षरम् ॥२००॥ यतः—
इह निवसति मेरुः शिखरी भूधराणा-मिह विनिहितभाराः सागराः सप्त चान्ये । इदमहिपतिदम्भस्तम्भसरम्भधीरं, धरणितलमिहैव स्थानमस्मद्विधानाम् ॥२०१॥
इत्युक्त्वाऽथ प्रतिहारपटास्तृतधरातले । उपाविशद्विशां नाथः प्रमाथो दोषविद्विषाम् ॥२०२॥
पर्षदोऽनुचितः कोऽयमिति हस्तेन दर्शिते । कविराजे नृपोऽवादीदनादीनवगीर्भरः ॥२०३॥
एकाहविहितस्फीतप्रबन्धोऽयं कृतीश्वरः । क वि रा ज इति ख्यातः श्रीपालो नाम मानभूः ॥२०४॥
श्रीदुर्लभसरोराजस्तथा रुद्रमहालये । अनिर्वाच्यरसैः काव्यैः प्रशस्तीरकरोदसौ ॥२०५॥
महाप्रबन्धं चक्रे च वैरोचनपराजयम् । विहस्य सद्भिरन्योऽपि नैवास्य तु किमुच्यते ॥२०६॥
श्रुत्वेति स्मितमाधाय देवबोधकविर्जगौ । काव्यमेकं लसद्वैपर्वताधित्यकासमम् ॥२०७॥ तथाहि—
शुक्रः कवित्वमापन्न एकाक्षिविकलोऽपि सन् । चक्षुर्द्वयविहीनस्य युक्ता ते कविराजता ॥२०८॥
अतिशीघ्रे तथा गुम्फे भिद्यन्ते पूरणाकृतौ । कोऽभिमानस्ततो धीमन्नेकमस्मद्वचः शृणु ॥२०९॥ तद्यथा—
भ्रातर्ग्रामकुविन्द । कन्दलतया वस्त्राण्यमूनि त्वया गोणीविभ्रमभाजनानि बहुशोऽप्यात्मा किमायास्यते । अप्येकं रुचिरं चिरादभिनवं वासस्तदासूत्र्यते, यन्नोज्झन्ति कुचस्थलात्क्षणमपि क्षोणीभृतां वल्लभा ॥२१०॥
समस्या दुर्गमा काचित्पृच्छतेति नृपोदिते । श्रीपालः कुचिवानेकः स्फुटं शिखरिणीपदम् ॥२११॥ तच्च—

'कुरङ्गः किं भृङ्गो मरकतमणिः किं किमशनिः'

तत्पाठपृष्ठ एवायमवदत् कविनायकः । चरणत्रितयं वृत्ते को विलम्बोऽप्ययमूदृशि ॥२१२॥ तद्यथा—
चिरं चित्तोद्याने चरसि च मुखाब्जं पिबसि च, क्षणादेणाक्षीणां विषयविषमुद्रां हरसि च । नृप त्वं मानाद्रिं दलयसि च किं कौतुककरः, कुरङ्गः किं भृङ्गो मरकतमणिः किं किमशनिः ॥२१३॥
गृहाण चैकं मत्पार्श्वे किंशब्दं व्यवहारतः । दौस्थ्यं यत्र भवेद् यस्याधमर्णो न स तत्र किम् ॥२१४॥

श्वेताम्बरप्रहसने स सूत्रधार प्रभु कुमुदचन्द्र'। किं वाच्यस्तव वाचा दिश किमिहान्यस्त्वागडमरै ॥९७॥
स गुरु प्राह नाहयुवतमास्माकदर्शने । तत कथय मद्भ्रातु पुर एकं हि वाचिकम् ॥ ९८ ॥ तद्यथा–
दिगम्बरशिरोमणे । गुणपराङ्मुखो मा स्म भू-र्गुणग्रहफल हि तद्वसति यद्रमापङ्कजे ।
ततस्त्यज मद कुरु प्रशममस्यतान् स्वान् गुणान्, दमो हि मुनिभूषण स च भवेन्मदव्यत्यये ॥ ९९ ॥
इत्येव कथिते बन्दिवरेणास्य पुरो मुने । वादिन सोऽवदन् मूर्खमाधूना शम उत्तमम् ॥ १०० ॥
उत्तेजनं किमप्येप क्रियते चित्तपीडनम् । अस्य विद्याकलामध्य ज्ञायते येन तत्त्वत. ॥ १०१ ॥
विमृश्येति निजै साधुवृन्दं रथ्यान्तरागतत । वैरानुबन्धचेष्टाभिरुपासर्जयदद्भुतम् ॥ १०२ ॥
इत्येवमुपसृष्टेऽत्र नि प्रकम्पे सुमेरुवत । दिग्वासा निजरूपाममविशिष्ट प्रचक्रमे ॥ १०३ ॥
निजचैत्याग्रतो यान्ती वृद्धा गोचरचर्यया । उपसर्गयितु साध्वीमारेभेऽन्येद्यु रुग्रत ॥१०४॥
अथ पल्लवकान् पल्लवकानिव तमस्तरो । प्रेष्य ता कुण्डके क्षिप्त्वा नर्त्तयामास साहसी ॥१०५॥
अहो साध्वीमसौ वृद्धा दर्शनिव्याजबुक्कस । विडम्बयति पापीति तस्यावर्णो जनेऽभवत ॥१०६॥
अथ सा मोचिता कैश्चिदनुकम्पापरैर्नरै । सूरेरुपाश्रय प्रायादतिगद्गदशब्दभू ॥१०७॥
किंकृतस्तेऽपमानोऽयमिति पृष्टा च सूरिभि' । जरामन्युभराव्यक्तस्वर प्राह तदग्रत ॥१०८॥
वर्द्धितोऽध्यापित सूरिपदे मद्गुरुभिर्भवान् । स्थापितोऽस्मादृशामीदृग्विडम्बनकृते ध्रुवम् ॥१०९॥
दिगम्बरोऽय बीभत्सदर्शन' स्वविटध्वजै । राजाध्वनि प्रयान्तीं मामनाथवदुपाद्रवत ॥११०॥
विदूत्तया प्रभुत्वेन किं फल तेऽवकेशिना । किं करस्थेन शस्त्रेण यदि शत्रुर्न हन्यते ॥१११॥
शमशैत्यमहावल्लया फल परिभवो दृढ । ग्रस्यते मुच्यते वापि राहुणा स्वेच्छया शशी ॥११२॥
अद्य ते विक्रम काल पठितस्य फल ह्यद । धान्ये शुष्के धने चास्ते वर्षन् मेघ करोतु किम् ॥११३॥
देवसूरिरथो वाचमुवाच क्रोधदुर्द्धराम् । मा विषाद कुरुष्वार्ये दुर्विनीत पतिष्यति ॥११४॥
आर्याह दुर्विनीतोऽय पतिष्यति न वा पुन । त्वयि न्यस्तभर सङ्घ पतिष्यत्येव वेत्रवत ॥११५॥
प्रभुराह स्थिरीभूय चेद् विलोकयसे तत । मुक्तानामिह वेधो न सम्भवी गुणयुक्तये ॥११६॥
अथ चोवाच माणिक्य । विज्ञप्ति लिख मामिकाम् । श्रीमत्पत्तनसङ्घाय विनयातिशयस्पृशम् ॥११७॥
आदेशानन्तर सोऽथ लिखति स्म स्फुटाक्षरम् । अदर्शयत्प्रभो पश्चादथासौ प्रत्यवाचयत् ॥११८॥
'स्वस्ति नत्वा जिन श्रीमदणाहिल्लपुरे प्रभुम् । सघ कर्णावतीपुर्या श्रीमतो देवसूरय ॥११९॥
भवत्या विज्ञपयन्त्यत्राशाम्बरेण विवादिना । शीघ्रमेवागमिष्याम कृतवादाश्चवा इति ॥१२०॥
अचिराध्वन्यपुसश्च हस्ते साऽथ समर्पिता । गूर्जराणा राजधानीं स प्राप प्रहरत्रयात् ॥१२१॥
दृष्ट्वा सघेन मर्त्योऽसौ भोजनाच्छादनादिभि । सम्मान्य प्रहित शीघ्र प्रतिलेख समर्प्य च ॥१२२॥
आयाद् देवगुरो पार्श्वे सघादेश ददौ मुदा । एन ललाटे विन्यस्य विवृत्यावाचयच्च स. ॥१२३॥
'स्वस्ति श्रीतीर्थनेतार नत्वा श्रीपत्तनात्प्रभु । सघ कर्णावतीपुर्या परवादिजयोर्जितम् ॥१२४॥
श्रीदेवोपपद सूरिं समादिशति सम्मदात् । आगन्तव्य झटित्येव भवता वादिपुङ्गव । ॥१२५॥
किं च श्रीवादिवेतालशान्त्याचार्यस्य सद्गुरो । पार्श्वेऽधीतस्य शैवाख्यवादिजेतुर्महामते ॥१२६॥
मुनिचन्द्रप्रभो किं न भवान् शिष्यशिरोमणि । कालेऽधुनातने सघोदयस्त्वय्येव तिष्ठते ॥१२७॥
तत श्रीसिद्धभूपाल विज्ञप्यात्र सकौतुकम् । त्वत्कृत विजय स्वस्य वयं वीक्षामहे ध्रुवम् ॥१२८॥
श्राद्धाना श्राविकाणा च शतानि त्रीणि सप्त च । विजयाय तव श्रीमन्नाचामाम्लानि तन्वते ॥१२९॥
प्रतिहन्तु प्रत्यनीकसुराणा वैभव लघु । देव्या. श्रीशासनेश्वर्या बल दातु स्वसत्त्वत ॥१३०॥
तदर्थमिति विज्ञाय विश्ववन्द्य स बन्दिनम् । प्राहिणोद्वादिने धीमान् शिक्षयित्वा स्ववाचिकम् ॥१३१॥

श्रीपालोऽप्यूचिवान् श्रीमज्जयसिंहनरेशितुः । अद्य दर्शयत श्यामोत्तगर्धे तत्र सगते ॥२४६॥
ओमिति प्रतिपन्ने च तैर्नृपाग्रे यथातथम् । व्यजिज्ञपदिदं सर्वं सिद्धसारस्वतः कविः ॥२४७॥
इत्याकर्ण्याह भूपाल सत्य चेन्मम दर्शय । इद हि न प्रतीयेत साक्षाद् दृष्टमपि स्फुटम् ॥२४८॥
ऊर्ध्वरात्रे ततो राजापसर्पं प्रेक्षिताध्वना । स्रवन्तीसैकत प्राप दुःप्रापं कातरैर्नरैः ॥२४९॥
वृक्षवल्लीमहागुल्मान्तरितो यावदीक्षते । भूपस्तावद् ददर्शामुमुन्मत्तानुचराश्रितम् ॥२५०॥
यथेच्छ गीयमानस्वादव्यक्तध्वनिसम्भृतम् । चपकास्यस्फुरन्मद्यप्लुतवक्त्रमखीसखम् ॥२५१॥-युग्मम् ।
प्रतीतः सिद्धराजोऽपि दृष्ट्वेदमतिवैशसम् । विचिकित्सा दधौ चित्ते नासाकूणनपूर्वकम् ॥२५२॥
अहो संसारवैचित्र्यं विद्वांसो दर्शनाश्रिताः । इत्थं विलुप्तमर्यादा कुर्वते कर्म कुत्सितम् ॥२५३॥
इदानीं यद्यहं साक्षादेन नो जल्पयाम्यथ । प्रातः किमेष मन्येत दुश्चरित्रमिद ननु ॥२५४॥
इति ध्यायत एवास्य वाणी भूपस्य कर्णयोः । प्राविशत्प्रस्फटा कोटिं रसप्राप्तातिकेलिनः ॥२५५॥
वीक्ष्य प्रान्तदशं स्वेशं तत्तेजःप्रसरोज्ज्वला । विभान्त्यनु प्रयाति स्म ज्योत्स्ना कटसतीस्थितिः ॥२५६॥
प्रसन्नास्वादमत्यन्तप्रसन्नास्वादमेककम् । विधायाथ निज स्थान गम्यतेऽथ विरम्यते ॥२५७॥
इतिस्मृतिमनु क्ष्माप प्रकट वदति स्म तम् । अपि न संविभागोऽस्तु कः स्वादेषु पराङ्मुखः ॥२५८॥
क्षण ध्यात्वा समुत्पन्नप्रतिभः प्रोचिवानिति । भवता निधिना भूप ! दिष्ट्या वर्धामहे वयम् ॥२५९॥
सौवर्णपात्रमापूर्यार्पितं तेनाथ भूभृता । यावत्समीक्ष्यते तावत्क्षीरपूर्णं व्यलोक्यत ॥२६०॥
पपावथामृतास्वाद व्यमृशद् भूपतिः क्षणम् । इद दुग्ध तु मद्य वा शक्त्यापावृत्तनद्रसम् ॥२६१॥
चेत्तरावृत्तमस्याहो शक्तिप्रातिभमद्भुतम् । ततो विसमृजेऽनेनावसरोऽस्य मनीषिणा ॥२६२॥
प्रातर्भूपसभां गत्वा देवबोधस्ततोऽवदत् । आपृच्छ्यसे महाराज ! वय तीर्थेयियासवः ॥२६३॥
श्रीसिद्धभूपतिः प्राह भवादृशमुनीश्वराः । देशम्य शान्तिनीर क प्रहेष्यति सकर्णक ॥२६४॥
आह सोऽप्यर्थवादेन कृत यत्र क्षितीश्वर । प्रत्येति खलभाषाभिः स्थितिस्तत्र न युज्यते ॥२६५॥
कुलविद्यावयोज्ञानशक्तयश्चेन्नरं न हि । व्यावर्तयन्ति सन्निन्द्यकर्मभ्यस्तत् परैर्हि किम् ॥२६६॥
देवा देव्यो महामन्त्रा विद्याश्चानेकशो वशे । येषा ता सिद्धयश्चाष्टौ कल्पास्तेऽर्वाग्जनैर्हि किम् ॥२६७॥
ततो भूपाल ! नास्माहृग्योग्या पर्दस्तत्र स्फुटम् । ईदृग्ग्रामनटग्राम्यसयोग सद्रशोऽस्तु वः ॥२६८॥
साकूतमवदद् भूपः श्रीपाल कविपुङ्गवम् । शुश्रुवे शमिनो वाक्य कोपगर्भ ननु त्वया ? ॥२६९॥
प्रज्ञाचक्षुः कविर्दध्यौ कार्यसन्मानदण्डितः । भिक्षुरेष क्रियाभ्रष्ट स्वस्तरूपो यथा भवेत् ॥२७०॥
उवाच च महाराजाऽचिन्त्यशक्तिभृतो ह्यमी । महाप्रभावा मुनयो न प्रहेया स्वदेशतः ॥२७१॥
न हि द्रव्येण विद्वांस आवर्ज्यन्ते न चाटुभिः । परिज्ञातस्वभावा हि सद्भावसत्येन केवलम् ॥२७२॥
श्रुत्वा श्रव्य वचस्तथ्य स्वशिरो मुनिपादयोः । स्पर्शयित्वा जगौ वाक्य राजा विनयसम्भृतम् ॥२७३॥
मुनिसद्वृत्तमाहात्म्यात् भूपाला पालकाः क्षितेः । वासवा इव शोभन्ते तत्र हेतुर्नहीतरः ॥२७४॥
अस्मद्देशान्तरा तिष्ठ क्रियानिष्ठमुनीश्वर ! अर्थिप्रणयभङ्ग हि महात्मानो न कुर्वते ॥२७५॥
इत्थं गिरा भरैः प्रीतोऽत्रातिष्ठत गुरुस्तदा । तिस्रः समाः समासन्नदारिद्र्यश्च शनैरभूत् ॥२७६॥
तस्य न क्रय विक्रय व्यवहाराद् धनागमः । राजदत्त हि भुज्येत तद्विना दौस्थ्यमाययौ ॥२७७॥
सूरे श्रीहेमचन्द्रस्य विदितं वृत्तमप्यभूत् । श्रीश्रीपालश्च तत्पार्श्वेऽमन्त्रयत्तदिद रहः ॥२७८॥
असौ भिक्षुर्निजाचारभ्रष्टो नष्टक्रियः कुधीः । निष्ठानिष्ठयतिव्यूहाद्रश्यवक्त्रः कुवृत्तभूः ॥२७९॥
दारिद्र्यराजधानीत्वादिदानीमृणजर्जरः । मदोद्धतमहालोललीलावशविनष्टभूः ॥२८०॥
अधुना सपरीवारो भिक्षया भुक्तिभाक् ततः । दर्शनी दर्शनाचारे स्थापितो निजलक्षणैः ॥२८१॥

आह देवगुरु स्फूर्त्या मीमासासक्ततांजुषः । धीवराश्चोचित तद्व शौचाचारविचारणम् । परमुक्त च-
विमृश विमृशाम्भोभि शक्योऽपसारयितु न यै-र्जठरपिठरीक्रोडस्थेमाप्यहो मनलेशक ।
कथमिव सदा तिष्ठन्नात्मन्यरूपिणि तैरहो, परिदलयितु पार्योऽनार्य स पातककर्दम ॥१६८॥
माणिक्य प्राह किंनाम द्विजस्यास्यास्ति दूषणम् । श्रीसिद्धेश उपालभ्य स विवेकबृहस्पति ॥१६९॥
सस्कारसूत्रपातेन चतुर्द्धा हृदयात्मनाम् । वपुर्मनोत्वच कार्यजानेऽन्यान्यरूपत ॥१७०॥
अकृत्य-कृत्ययोस्तुल्यकर्त्तव्यत्वस्पृशा सदा । द्विजन्मना प्रधानत्व दर्शनाना विडम्बनम् ॥१७१॥
इत्येवमूहापोहेन सम्बन्धो नार्पितस्तदा । प्रात समागत पृष्टो राजा सचिवगाङ्गिल ॥१७२॥
लिखितो भवता क सम्बन्ध किं वादिनोर्द्वयो । स प्राहैषामपावित्र्यान्नार्हा राजसमास्थिति ॥१७३॥
अतो मया न चालेखि सम्बन्धो नृपतिस्तत । अन्त कोपानल वभ्रे पयोधिरिव वाडवम् ॥१७४॥
एवं च सदसन्मर्त्यविशेषविदुपस्तव । व्ययस्य करण तेऽलकारोपस्तवोचित ॥१७५॥
प्रजाना गौरवर्णोऽपि काल एवावभासते । अल्पोऽप्यत्र न ते दोष सा ममैवाविचारता ॥१७६॥
पर दर्शनबाह्यत्वाद् ग्राम्यवन्नागरोऽपि सन् । नान्तर्मुखो गुणान् दोषीकृत्य यस्मात्प्रजल्पसि ॥१७७॥
अन्यदेक च ते भाग्य यत्तेन ब्रह्मचारिणा । एव विवदमानोऽपि शापाद् भस्मीकृतोऽसि न ॥१७८॥
समान्य चास्य सम्बन्धमधुनैव समर्पय । लिखित्वा वादिनोर्वादकाले जयपराजये ॥१७९॥
राजादेश गृहीत्वेति तेन प्रैषि निजोऽनुज । सान्त्वनाय प्रभो सोऽपि तत्कृत्वाह्वयदत्र तम् ॥१८०॥
प्रभुर्विजयसेनाख्य प्रैषीत्तत्र मनीषिणम् । नोचित गमन तत्र सचिवानागतौ स्वयम् ॥१८१॥
दिगम्बरो विजीयते चेत तन्न्यक्कारपूर्वकम् । निर्वास्योऽतः पुराद् धृत्वा परिस्पन्द स चौरवत् ॥१८२॥
अथ श्वेताम्बरो हारयेत् तत्तस्य शासनम् । उच्छिद्याशाम्बरत्वेनावस्थाप्य तै स्थितै किमु ॥१८३॥
इत्येव लेखयित्वाऽत्र तद् राजकरणेऽमुचत् । कृतपक्षोऽपि सम्बन्धोऽनुमतस्तैर्बलोन्नतै ॥१८४॥
प्रेषित सिद्धराजेन श्रीश्रीपाल कवीश्वर । शिक्षा दत्त्वातिवात्सल्याद् देवसूरिप्रभोरथ ॥१८५॥
स प्रणम्य नृपस्याह वाचिक तत्पुर स्फुरन् । स्वदेश-परदेशस्था अपि विज्ञा समाहिता ॥१८६॥
पर तथा त्वया बन्धो । वक्तव्य वादलीलया । यथा देशान्तरी जेय स्थेय श्रेय कृते मम ॥१८७॥
त्वय्येव मम चित्तस्य दृढावस्थितिरीदृशी । यथा व्रीडयसे नो न सभा कार्यस्तथा ध्रुवम् ॥१८८॥
अथ श्रीदेवसूरीश्च प्रददे प्रतिवाचिकम् । प्रतापस्ते महाराज । विदेशिबुधजित्वर ॥१८९॥
वय सहकृतस्तत्र पर मा दोलयना मन । गुरूपदिष्टपक्षौघैर्विजेष्ये त विवादिनम् ॥१९०॥
क ईदृग् विदुषा शास्ता तद्वच कौतुकी च क । भवानिव भवानिच्छुरप्यह येन वादकृत ॥१९१॥
इति तद्वच आख्याच्च श्रीपाल कविवासव । भूपालोऽपि मुद प्राप देवसूरिवचोऽमृतै ॥१९२॥
चन्द्राष्टशिववर्षेऽत्र (११८१) वैशाखे पूर्णिमादिने । आहूतौ वादशालाया तौ वादिप्रतिवादिनौ ॥१९३॥
वादी कुमुदचन्द्रश्चायय वाडम्बरस्थित । सुखासनसमासीनच्छत्रचामरशोभित ॥१९४॥
प्रतिहारेण मुक्तेऽत्र पट्टे चासावुपाविशत । आहाद्यापि न चायाति श्वेतभिक्षु कथ भिया ? ॥१९५॥
अथ श्रीदेवसूरिश्चाययौ भूपालससदम् । ऊचे कुमुदचन्द्रश्च स्वप्रज्ञाबलगर्वित ॥१९६॥ तथाहि-
श्वेताम्बरोऽय किं ब्रूयान्मम वादरणाङ्गणे । साप्रत साप्रत तस्माच्छीघ्रमस्य पलायनम् ॥१९७॥
सूरि प्रोवाच बन्धुर्मे किमसत्य वदत्यसौ । श्वेताम्बरो यत श्वायमस्मद्वादरणाङ्गणे ॥१९८॥
भपणे तस्य पर्याप्त रणे नाविकृति पुन । पर पलायन शीघ्र युक्त युक्त वदत्यद ॥१९९॥
श्रुत्वेति पार्षदा वाच शब्दखण्डनयानया । विस्मिता स्मितमाधाय दध्युरस्य जयो ध्रुवम् ॥२००॥
एकाग्रमानसौ तत्र शासने पक्षपातिनौ । थाहडो नागदेवश्च सह चाजग्मतुर्मुदा ॥२०१॥

अहो जितेन्द्रिया एते क्लिन्नमन्न हि नीरतः । आकृष्य गृह्णते तद् दुश्चरमेतत्तपो ध्रुवम् ॥३१८॥
अज्ञान एव लोकोऽप्यमभून् मिष्टान्नभोजिन । भक्तेरतिशयाद्भव्यलोकाना वदन्ति ध्रुवम् ॥३१९॥
ध्यात्वेत्याह भवद्देहव्यथोच्छेदाय कर्कशम् । नाभक्तेरुक्तमित्याग पुन्नाग ! क्षम्यता मम ॥३२०॥
सूरि प्राह महाराज ! कुर्याद् गी किं खरा प्रिया । भक्तनिर्दिष्टवृत्ताना नृपतेर्दुर्गतस्य वा ॥३२१॥ यत -
भुञ्जीमही वय भैक्ष जीर्ण वासो वसीमहि । शयीमहि महीपृष्ठे कुर्वीमहि किमीश्वरै ॥३२२॥
सम्मान्य तांस्ततो राजा स्थान सिंहपुराभिधम् । दत्त्वा द्विजेभ्य आरुढ श्रीमच्छत्रुञ्जये गिरौ ॥३२३॥
श्रीयुगादिप्रभु नत्वा तत्राभ्यर्च्य च भावत । मेने स्वजन्म भूपाल कृतार्थमतिहर्षभू ॥३२४॥
ग्रामद्वादशक तत्र ददौ तीर्थस्य भूमिप । पूजायै यन्महान्तस्ना स्वानुमानेन कुर्वते ॥३२५॥
ततश्च गिरिमार्गेणाचिराद् रैवतकाचलम् । निकषा निकष पुण्यवता भर्ता भुवोऽगमत ॥३२६॥
स प्रादापयदावासान् सकलीग्रामसन्निधौ । गिरिं तत्र स्थितोऽपश्यन्नेत्रामृतरसायनम् ॥३२७॥
तदा श्रीनेमिचैत्यस्य पर्वतोदूर्ध्वभुवि स्थिते । जीर्णोद्धारे कारिते च श्रीमत्सज्जनमन्त्रिणा ॥३२८॥
प्रासाद धवल दृष्ट्वा राज्ञा पृष्ट स चाब्रवीत । तीर्थप्रभावनाहर्षवशसम्फुल्ललोचन ॥३२९॥
देव ! यादववद्दशावतंसस्य जिनेशितु । प्रासाद स्वामिपादाना कृतिरेषा समीक्ष्यते ॥३३०॥ युग्मम् ।
नृपति प्राह जाने श्रीहेमचन्द्रोपदेशत । उज्जयन्तमहातीर्थ श्रीनेमिस्तत्र तीर्थकृत् ॥३३१॥
जगत्पूज्य कृतिर्मेऽस्तु कथमेषेति सशये । श्रुत्वेत्यमात्य आह स्मावधानादवधार्यताम् ॥३३२॥
अद्य प्राग् नवमे वर्षे स्वामिनाऽधिकृत कृत । आरुरोह गिरिं जीर्णमद्राक्ष च जिनालयम् ॥३३३॥
प्रतिवर्ष त्रिलक्षीं च व्ययित्वा चैत्यमुद्धृतम् । स्वामिपादैरनुमत चेत्प्रमाणमिद न चेत् ॥३३४॥
सप्तविंशतिलक्षाश्च द्रम्मान् गृह्णातु भूपति । इत्याकर्ण्य प्रभु प्राह पुलकोद्भेदमेदुर ॥३३५॥
कथमुक्तमिद मन्त्रिन् ! तुच्छ द्रव्यादशाश्वतात् । वपु स्थिर ममाकार्षी पुण्य कीर्तिमय महत् ॥३३६॥
त्वत्सम स्वजन कोऽस्ति ममेह-परलोकयो । सखा विषीद मा तस्मादस्मिन्नारुह्यते तत ॥३३७॥
वचोऽनुपदमीशश्चावित्यकाया ययौ गिरे । मण्डपे शुद्धमेदिन्यां स्थित्वाऽष्टाङ्ग नतो जिनम् ॥३३८॥
पीठेष्वानीयमानेषु न्यवारयत त जनम् । तीर्थेऽत्र नोपवेष्टव्य परेणाऽप्यासनादिके ॥३३९॥
स्वापस्तल्पे विधेयो न भुक्तौ नाङ्गुलिका तथा । स्त्रीसङ्ग सूतिकर्म्मापि न दध्नोऽथ विलोडनम् ॥३४०॥
इत्यादि सिद्धमर्यादा वर्ततेऽद्यापि शाश्वती । ततोऽभ्यर्च्य जिन स्वर्णरत्नपुष्पोत्करैर्वरै ॥३४१॥
ततोऽम्बाशिखर गत्वा ता सपूज्य ननाम च । अवलोकनशृङ्ग चारुरोह स कौतुकी ॥३४२॥
तत्र श्रीनेमिनाथ च नत्वा भक्तिभरानत । दिशोऽवलोकयामास तत ऊचे स चारण ॥३४३॥ यत -
मइ नाथ सोधेस ज चडिउ गिरनारसिरि । लईआ च्यारु देस अलयउ जोअइ कर्णऊत्र ॥३४४॥
पर्वतादवतीर्याथ श्रीसोमेश्वरपत्तनम् । ययौ श्रीहेमचन्द्रेण सहितश्च शिवालयम् ॥३४५॥
सूरिश्च तुष्टुवे तत्र परमात्मस्वरूपत । ननाम चाविरोधो हि मुक्ते॰ परमकारणम् ॥३४६। तथाहि-

यत्र तत्र समये यथा तथा, योऽसि सोऽस्यभिधया यया तया ।
वीतदोषकलुष स चेद्भवा-नेक एव भगवन्नमोऽस्तु ते ॥३४७॥

महादानानि दत्त्वा च पूजाश्च महिमाद्भुता । व्यावृत्त कोटिनगर प्रापदम्बिकयान्वितम् ॥३४८॥
अपत्यचिन्तयाऽऽक्रान्तोऽम्बिकामाराधयत्तत । श्रीहेमसूरिभिर्ब्रह्ममूलावासैरिहादरात ॥३४९॥
उपोष्य त्रिदिनीं ते चाह्वयस्ता शासनामरीम् । प्रत्यक्षीभूय साऽप्याह शृणु वाच मुने ! मम ॥३५०॥
नास्यास्ति सन्ततेर्भाग्य जीवोऽपीदृग् न पुण्यभू । समयेऽत्र कुमारस्य भूपभ्रातृसुतस्य च ॥३५१॥
स भावी भूपति पुण्यप्रतापमहिमोर्जित । राज्यान्तराणि जेताऽसौ भोक्ता च परमार्हत ॥३५२॥
णहिल्लपुर प्रायादनायासोत्सवोदयम् । अन्तर्दून सुताभावप्रजापीडनशङ्कित ॥३५३॥

अशक्नुवन्निति प्रत्युत्तरे देवगुरोस्तत । सर्वैलत्यमथाहस्मानुत्तर स दिगम्बर ॥२३६॥
महाराज ! महान् वादी देवाचार्य किमुच्यते । राजाह वद निस्तन्द्र कथयिष्यामि विस्मृतम् ॥२३७॥
अवदत्यन्यसभ्यैश्च हारिताला प्रपातिता । सम्बन्धकविधि भूप आदिशन्निजपूरुषै ॥२३८॥
जयपत्र प्रसादेन देवसूरेर्ददौ नृप । ततोऽवादीद् गुरुस्त च किमप्याचक्ष्महे वचः ॥२३९॥
शास्त्रीयवादमुद्राया निग्रहो यत्पराजय । तद्वादिनस्तिरस्कार कोऽपि नैव विरक्ष्यताम् ॥२४०॥
राजाह भवतां वाग्भिरिदमप्यस्तु किं पुन । आडम्बरापहारेण दर्शनित्वमवाप्यताम् ॥२४१॥
एव कृते तदा वज्रार्गलाख्या सिद्धयोगिनी । श्रीमत्कामाख्यया देव्या प्रहिता साग्रयौ रवात् ॥२४२॥
भूयास्त्वमक्षयस्कन्ध सिद्धाधीश ! तथा सुहृन् । तथा श्रीदेवसूरिश्चाशिषेत्यभिननन्द तौ ॥२४३॥
मषीकूर्चैकमालीय भाले न्यस्तो दिगम्बर । तत सा पश्यतामेव निश्चक्राम नभोध्वना ॥२४४॥
तुष्टिदाने ततो लक्षं द्रव्यस्य मनुजाधिप । ददन्न्यषेधि निर्ग्रन्थेश्वरेणास्पृहताजुषा ॥२४५॥
गणगन्धर्वसिद्धादिदेवै पूर्वमनीक्षित । राजादेशात्प्रवेशस्य सोऽवर्त्यत महोत्सव ॥२४६॥
समस्ततूर्यनिर्घोषपूर्वं सगीतमङ्गलै । कुलाङ्गनाकृतै. सूरिर्वसनौ प्रविवेश स ॥२४७॥
राजवैतालिकस्तत्र तारस्वरत आशिषम् । ददौ सदौचितीकृत्यविद देवगुरु प्रति ॥२४८॥

सन्तोष स्फारनि किञ्चनजनवचनैराहत प्रेक्ष्य नव्य
कामो हिंसादिकेभ्योऽप्यवगणिततम शत्रुपक्षे शमादौ ।
आविश्रो यस्य चेतो नृपतिपरिभवात् पुण्यपण्य प्रवेश्य
प्रायासीद् वालयित्वा शुचिमतिवहिका देवसूरिः स नन्द्यात् ॥२४९॥

श्री सि द्ध हे म च न्द्रा भि धा न शब्दानुशासने । सूत्रधार प्रभु श्रीमान् हेमचन्द्रप्रभुर्जगौ ॥२५०॥ तथाहि–
यदि नाम कुमुदचन्द्र नाजेष्यद् देवसूरिरहिमरुचि । कटिपरिधानमधास्यत कतम श्वेताम्बरो जगति ॥
श्रीचन्द्रसूरयस्तत्र सिद्धान्तस्यैव मूर्त्तय । शासनोद्धारकूर्माया शासन् श्रीदेवसूरये ॥२५२॥
श्रीमद्देवगुरौ सिंहासनस्थे सति भास्वति प्रतिष्ठाया न लग्नानि वृत्तानि महतामपि ॥२५३॥
तदा गच्छस्य सघस्य समस्तस्य विभावरी । विभावरीयसी चैषा विनिद्रत्वात् क्षणादगात् ॥२५४॥
प्रातश्च प्रत्युपेक्षायामुपधिं साधवस्तदा । अपश्यन खण्डशश्चूर्णीकृतामाखुभिरुद्धटै ॥२५५॥
प्रवर्तकेन विज्ञप्ते गुरूणा ते व्यचिन्तयन् । दिग्वासा स्वसम वेत्र ममापि हि चिकीर्षति ॥२५६॥
तत्र प्रतिविधौ शक्तिर्मम पूज्यप्रसादत । सौवीरपूर्ण आनाय्य कुम्भो यतिन एकत ॥२५७॥
गलपिण्डनत कण्ठ तस्य बद्ध्वाऽन्तराऽमुचन् । अभिमन्त्र्य तत साधूनाह सर्वत्र साहमी ॥२५८॥
खेद कमपि मा कार्षु भवन्त कौतुक महत । समीक्षत यदेतेषा भावि दुर्विनये फलम् ॥२५९॥
पादोनप्रहरे श्राद्धा नग्नस्याजग्मुरानता । प्रसादाद् गुरुमस्माक मुञ्चैनमिति भाषिण ॥२६०॥
मद्बन्धो का भवेद् बाधा न जानीमो वय ननु । अज्ञानदम्भत सर्वप्रकारैस्ते निषेधिता ॥२६१॥
सार्द्धयामे च सपूर्णे नग्नाचार्यस्तदागमत । नग्नाचार्य इवाहार्ये प्रशसा प्रकट दधत ॥२६२॥
आश्लिष्यार्द्धासने सूरिरुपावेशयदत्र तम् । भ्रात ! का तव पीडाऽस्ति ममाज्ञातमिद ध्रुवम् ॥२६३॥
स प्राह छिन्धि मा त्व मा भव मा दीर्घरोषभू । विमोचय निरोध मे तन्निरोधे मृतिर्ध्रुवम् ॥२६४॥
तस्यैतद्वचन दीन श्रुत्वाऽवददसौ प्रभु । भवान् सपरिवारोऽपि यातु मे वसतेर्बहि ॥२६५॥
तदादेशेन ते द्वारे स्थिता आध्माततुन्दका । तुलाया इव सपूर्णतिम्यदङ्गास्तदा बभु ॥२६६॥
साधो पार्श्वात्समानाय्य कुम्भ सौवीरपूरितम् । आच्छोटयन्मुख तेषा सञ्जज्ञे मुत्कल श्रव ॥२६७॥
अनिरोधे निरोधे सत्यसपत्राकृताश्च ते । नृजलस्य प्रवाहेण जन सर्वोऽपि विस्मित ॥२६८॥

इत्युक्त्वा प्रययौ देशान्तरं गूढो नराधिपः । घनं घनाघनैश्छन्न इव पार्वणचन्द्रमाः ॥३९०॥
कापालिकव्रते कौले शैवे चित्रपटोत्तरे । चरन् कदापि कुत्रापि कृत्रिमे कृत्रिमक्रमः ॥३९१॥
ततो वर्षाणि सप्तापि दिनानीवात्यवाहयत् । गुरुवाक्यैर्मनो बिभ्रत्सङ्कटेऽपि विसङ्कटम् ॥३९२॥
तस्य भोपलदेवीति कलत्रमनुगाऽभवत् । छायेव सर्वावस्थास्वमुञ्चन्ती सविधे स्थितिम् ॥३९३॥
द्वादशस्वथ वर्षाणां शतेषु विरतेषु च । एकोनेषु महीनाथे सिद्धाधीशे दिवं गते ॥३९४॥
ज्ञात्वा कुतोऽपि सत्त्वाढ्यः कुमारोऽगान्निजं पुरम् । अस्याऽऽसन्नदेशस्थो वासके श्रीतरोरथ ॥३९५॥
दुर्गादेव्याः स्वरं तत्र मधुरं शुश्रुवे सुधीः । तामाजुहाव भाग्यस्य जिज्ञासुः प्रमितिं तदा ॥३९६॥
मम पश्यसि चेद्राज्यं देवि ज्ञाननिधे ! ततः । उपविश्यैव मे मूर्ध्नि स्वरं श्रुतिसुखं कुरु ॥३९७॥
वचनान्तरं साऽपि तथैवाधादतिस्फुटम् । 'तू राज' इति मराव तच्चेत सौधदीपकम् ॥३९८॥
आयात्पुरान्तरा श्रीमत्साम्बस्य मिलितस्ततः । चित्ते सन्दिग्धराज्याप्तिनिमित्तान्वेषणान्तः ॥३९९॥
स तेन सह संगत्य पार्श्वे श्रीहेमसुप्रभोः । तन्निषद्यावृते पट्टे उपविष्टो विशिष्टधीः ॥४००॥
भविष्यत्येव ते राज्यं यन्निविष्टोऽस्मदासने । एतदेव निमित्तं न इत्यमुष्य गुरुर्जगौ ॥४०१॥
राज्येच्छया पादपातीति विगानभिया नहि । ततोऽहमिति शङ्क्यो न प्रभो दुर्विनयो मयि ॥४०२॥
तत्राऽस्ति कृष्णदेवाख्यः सामन्तोऽश्वायुतस्थितिः । स्वसुः पतिः कुमारस्य मिलितो निशितस्य च ॥ युग्मम् ।
श्रीसिद्धराजमेरौ च संजग्मुः शिवमन्दिरे । प्रधाना राज्यसर्वस्वं राज्ययोग्यपरीक्षिणः ॥४०४॥
कुमारोऽपि पुरस्यान्तराऽऽजगाम चतुष्पथे । एकत्र संगतानां च प्रधानानां तदाऽमिलन् ॥४०५॥
कृष्णः प्रवेशयामास प्रासादे तं करे कृतम् । तत्रापरौ च तस्थाते राजपुत्रौ प्रवेशितौ ॥४०६॥
तयोरेकः प्रणम्यात्र पार्थिवान् स उपाविशत् । अपरोऽपि स्वसव्यानपटं मुत्कुलमातनोत् ॥४०७॥
अथ श्रीकृष्णदेवेनोपविशेत्युदिते सति । संवृत्य वस्त्रयुग्मं स्वमुपाविशद्वरासने ॥४०८॥
व्यचारयन्त नीतिज्ञा एकस्तावत्कृतानतिः । निस्तेजाः परिभूयेत स्वैः परैरपि निन्द्यधीः ॥४०९॥
सम्भ्रान्तलोचनः पश्यन्नपरो मुत्कलाञ्चलः । तस्य पार्श्वात्परैर्भूपैर्विश्वं राज्यं ग्रहीष्यते ॥४१०॥
असौ कुमारपालश्च दैवज्ञानुमतः पुरा । धीरः पश्यन्निहायातः संवृत्याञ्चलमण्डलम् ॥४११॥
निग्रहीता विपक्षाणां विग्रहीता दिगन्तरान् । भविष्यति महाभाग्यः सार्वभौमसमः श्रिया ॥४१२॥
अभिषेकमिहैवास्य विदध्वं ध्वस्तदुर्धियः । आसमुद्रावधिं पृथ्वीं पालयिष्यत्यसौ ध्रुवम् ॥४१३॥
अथ द्वादशधा तूर्यध्वनिडम्बरिताम्बरम् । चक्रे राज्याभिषेकोऽस्य भुवनत्रयमङ्गलम् ॥४१४॥
प्रविवेशोत्सवै राजा राजसौधं नृपासनि । निविष्टो गोत्रवृद्धाभिरक्षतैरभ्यवर्द्धयत ॥४१५॥
कृतप्रशमनाचारः प्रतापोग्रः परंतपः । कुमारपालभूपालः पालयामास मेदिनीम् ॥४१६॥
सपादलक्षभूमीशमर्णोराजं मदोद्धतम् । निग्रहीतुमनाः सेनामसावेनामसज्जयत् ॥४१७॥
हास्तिकाश्वीयपादातरथ्याभिरभितो वृतः । धिष्ण्यग्रहोपवीतारानिकरैरिव चन्द्रमाः ॥४१८॥
चचाल लघु सामन्तमण्डलीकमहाधरैः । अन्यैश्च क्षत्रियैः सेव्यपादाम्भोजयुगस्ततः ॥४१९॥
दिनैः कतिपयैरेवाजयमेरुं सुदुर्ग्रहम् । लङ्कादुर्गमिवागम्य नृपः प्राकारमासदत् ॥४२०॥ विशेषकम् ।
परितोऽस्य च बब्बूलबदिरीखदिरद्रुमैः । करीरैर्गुपिलं नृणां दुर्गमं योजनद्वयम् ॥४२१॥
बहुधा बहुभिर्मर्त्यैश्छिद्यमानमपि क्षयम् । प्राप्नोति न ततः खिन्नो व्यावर्त्तत नराधिपः ॥४२२॥
उपवर्षं समागत्याणहिल्लपुरमध्यतः । चतुर्मास्यां पुनः सैन्यं जातशोपमपोषयत ॥४२३॥
प्रावर्त्तत च तस्यान्ते पुनर्ग्रीष्मे न्यवर्त्तत । एवमेकादश समा व्यतीयुः पृथिवीपतेः ॥४२४॥
मम पीतपराम्भोधेरपि भाग्याधिकः कथम् । अर्णोराज इति ध्यायन् क्षणं तस्थौ नराधिपः ॥४२५॥

स: १ "गुणजलहो"त्ति गुणानां = सम्यग्ज्ञानादिलक्षणानां जलधिः = समुद्रो गुणजलधिः "वाइमिगसिंघो"त्ति वादिनः = प्रतिवादिन एव मृगा = हरणा वादिमृगास्तेषु तेषां वा सिंहः = केसरी वादिमृगसिंहः ।

अस्य चासमासतो व्यतिकरः प्रभावकचरित एवम्–

वीराचार्य श्रिये वोऽस्तु सन्त क्रोधाद्यरिक्षयम् । यदभ्यासे कृताभ्यासा कर्तुमिच्छन्ति साम्प्रतम् ॥१॥
यत्करस्पर्शमात्रेण कन्यादिष्वपि सक्रमम् । विधाय भारती वक्ति कथ वीर स वर्ण्यते ॥२॥
बहुश्रुतमुखाच्छ्रुत्वा तद्वृत्त कियदप्यहम् । वर्णयिष्यामि बाल किं न वक्ति स्वानुमानत ॥३॥
श्रीमच्चन्द्रमहागच्छसागरे रत्नशैलवत । अवान्तराख्यया गच्छ' षडिल्ल इति विश्रुत ॥४॥
श्रीभावदेव इत्यासीत् सूरिरत्र च रत्नवत् । पात्रे स्नेहादिहीनोऽपि सदा लोकहिते रत ॥५॥
श्रीमद्विजयसिंहाख्या सूरयस्तत्पदेऽभवन् । प्रतिवादिद्विपघटाकटपाटनलम्पटाः ॥६॥
तत्पट्टमानससरोहसा' **श्रीवीरसूरय** । बभूवुर्गति-शब्दाभ्यामनन्यसदृशश्रिय ॥७॥
राजा **श्रीसिद्धराजस्**तान् मित्रत्वे स्थापयन् गुणै । स्वभावविशदे ह्येष ददाति कुमुदे मुदम् ॥८॥
अथ मित्र सभासीनो नृपतिर्नर्मणाऽवदत् । श्रीवीराचार्यमुनीन्द्र तेजो व क्षितिपाश्रयात् ॥९॥
अथाहु· सूरय स्वीयप्रज्ञाभाग्यैर्विजृम्भते । प्रतिष्ठा नान्यत श्वा किं सिंहौजस्वी नृपान्तत· ॥१०॥
राजाह मत्सभा मुक्त्वा भवन्तोऽपि विदेशगा । अनाथा इव भिक्षाका बाह्यभिक्षाभुजो ननु ॥११॥
सूरिराह भवत्प्रेम सन्दानमिव नोऽभवत् । दिनानीयन्ति गच्छाम आपृष्ट साम्प्रत भवान् ॥१२॥
भूप प्राह न दास्यामि गन्तु निजपुरात् तु व । सूरिराह निषिध्यामो यान्त केन वय ननु ॥१३॥
इत्युक्त्वा स्वाश्रय प्रायात् सूरिर्भूरिकलानिधि । रुरोध नगरद्वार सर्वान् नृपतिर्नरै ॥१४॥
इतश्च गुरव सान्ध्य धर्मकृत्य विधाय ते । विधिवद् विदधुर्ध्यानं श्रीपर्णीपट्टकासना ॥१५॥
अध्यात्मयोगत प्राणनिरोधाद् गगनाध्वना । विद्याबलाच्च ते प्रापु पुरीं पल्लीतिसञ्ज्ञया ॥१६॥
प्रातर्विलोकिते तत्रादृष्टे राजा व्यचिन्तयत । किं मित्र गत एवाय सदा शिथिलमोहधी' ॥१७॥
ईदृक् पुन कथ प्राप्योऽनेकसिद्धिकुलावनि । सिद्धस्नेहे वय मन्दपुण्या' धिष्ण्याकृसनिभा ॥१८॥
इतश्च **ब्राह्मणै' पल्लीवासै श्रीपत्तने पुरे** । विज्ञाप्यततरा श्रीमज्जयसिंहनरेशितु ॥१९॥
तिथि नक्षत्र वारावासरव्यक्तियुते दिने । श्रीवीरसूरिरायात सगतो न इति स्फुटम् ॥२०॥
श्रुत्वेति विममर्शाथ भूपाल केलिरीदृशी । विकृता यत्स एवैष प्रेमोहापोहवासर ॥२१॥
ययावाकाशमार्गेण तद्रात्रावेव स ध्रुवम् । नर्मलीलाद्वितीयेऽह्नि तद्द्विजाना स सगत' ॥२२॥ युग्मम् ।
उत्कण्ठारसपूर्णोऽथ प्रधानान् प्राहिणोन्नृप । आह्वानाय महाभक्त्या ययुस्ते तत्र मङ्क्षु च ॥२३॥
नृपस्यानुनय सान्द्रीकृत्य तैश्च प्रकाशित· । औदासीन्यस्थितास्ते च प्रोचु· प्रचुरसयमा ॥२४॥
निज विद्याबल ज्ञातु वय हि विजिहीर्षव' । देशान्तर पुराप्यत्मस्थानस्थैर्ज्ञायते न तत् ॥२५॥
कारण सहकार्यत्र राज्ञ उच्चावच वच । तस्माद् विहृत्य देशेषु यद्येष्यामो भवत्पुरे ॥२६॥
दुर्लभ मानुष जन्म व्रत विद्या बलं श्रुतम् । मुधा नराधिपस्नेहे मोहैः को नाम हारयेत ॥२७॥
इत्याकर्ण्याथ ते प्रोचुरेकं शृणुत भूपते· । वच सिद्धत्वमस्माक त्वत्सङ्गात तव्यतास्पदम् ॥२८॥
भविष्यति पुन कालमियन्त पितृनाम तत् । सिद्धे भवति पार्श्वस्थे वय सिद्धा हि नान्यथा ॥२९॥
श्रुत्वेति बहुमानाद्रेरिव तैराददे वच । आयास्यते पुरे तत्र मा चिन्ताऽत्र विधीयताम् ॥३०॥
महाबोधपुरे बौद्धान् वादे जित्वा बहूनथ । **गोपालगिरिमागच्छन्** राज्ञा तत्रापि पूजिता ॥३१॥

पाथेय कृपया किंच न दद्याद् यद्यसौ प्रभु । राज्य क प्राप्स्यदानन्दि भवत्सगमसुन्दरम् ॥४६२॥
तथा तद्वचन तथ्यमभूद् दैवतवाक्यवत् । अद्यापि ध्वनति ध्मानघण्टाटङ्कारवद्दृढम् ॥४६३॥
बिम्बम्यास्य प्रतिष्ठातृव्याजात्म्मारयता गुरुम् । ममोपकृतमत्यर्थ कृतवेदी नराधम ॥४६४॥
तथा श्रीसिद्धराजोऽपि हत्वा खगारभूपतिम् । तज्जातीयबहुत्वेन शक्तो देश न वासितुम् ॥४६५॥
इदानीं त्वत्पितुर्बु द्धया शत्रवस्ते विनाशिता । सर्वेऽपि च यथा तेपा नामापि न हि बुध्यते ॥४६६॥
भुक्तौ न्यक्षेपि देशश्च मुक्तास्तत्राधिकारिण । ईदृग्धीमान्भवद्भ्रा स्वामिभक्तिफल हि तत् ॥४६७॥
कीर्तिपालकुमारोऽसौ पदातिर्विग्रहादिषु । अबुध सायुगीनेन त्वत्पित्रैव बुध कृत ॥४६८॥
तीर्थोद्धारश्च सन्दिष्टस्तेन ते तदपीह न । कार्य तनोऽधुनेवायमादेशो भवतात्तव ॥४६९॥
राजकोशात्समादाय धनान्यापूर्णतावधि । पूर्यं तस्य प्रधानस्य म्वस्यास्माक च वाञ्छितम् ॥४७०॥
इदानी स्वस्य देवस्य बिम्ब मे दर्शय द्रुतम् । पुण्यैर्लभ्य समभ्यर्च्य प्रस्थान कुर्महे तत ॥४७१॥
तत सदर्श्यमानाध्वा श्रीमद्वाग्भटमन्त्रिणा । सचचालाचलाधीश प्राप चास्य जिनालयम् ॥४७२॥
श्रीमन्त पार्श्वनाथ प्रागानतो मूलनायकम् । ददर्श मन्त्रिणा ख्यातमजित तदनु प्रभुम् ॥४७३॥
कुङ्कुमागुरुकर्पूरकस्तूरीचन्दनद्रवै । सुगन्धकुसुमैश्चार्चा विदधे वासनावशात ॥४७४॥
व्यजिज्ञपच्च तीर्थेश त्वत्प्रभावान्नृप रिपुम् । अस्मिन्नवसरे नाथ । विजेष्ये त्वत्प्रसादत ॥४७५॥
ततो मम भवानेव देवो माता गुरु पिता । अत्र साक्षी भवान् मन्त्रिन् । पाल्यमेतद्वचो मया ॥४७६॥युग्मम्।
इत्युक्त्वाऽऽनम्य त भूप पुलकाङ्कितविग्रह । तदा विजययात्रायै सैन्यानि समग्राहयत् ॥४७७॥
उपचन्द्रावति प्रायात प्रयाणैरप्रमाणकै । आवासान्दापयामास तत्र भूवासवो मुदा ॥४७८॥
तत्र विक्रमसिंहोऽस्ति राज्ये मुख्यमहाधर । राज्ञ कटकसेवाया निर्विण्णो गमनागमना ॥४७९॥
प्रशस्तै स महामात्यैर्निजै सममन्त्रयत् । वय खेद पर प्राप्ता निर्जीवनृपसेवया ॥४८०॥
क प्रतापो बल किं वा भ्रान्तदेशान्तरे नरे । अत्र चित्रपटाजीवे नमस्कारोऽतिदुष्कर ॥४८१॥
भस्माधार पुटीपात्र जटा मूर्ध्नि शिवार्चनम् । एव वेषे प्रणामो न काऽत्र राज्यविडम्बना ॥४८२॥
तस्मात्कथचिदत्रैव यद्यसौ साध्यते नृप । असौ हि शशक खञ्जो रुणत्निष्पाववाटकम् ॥४८३॥
कोऽपि चौलुक्यवशीय क्षात्रतेजोभिरद्भुत । राज्ये निवेश्यतेऽस्माक तदाज्ञा कर्तु मौचिती ॥४८४॥
प्राहुस्तस्य प्रधानाश्च नोचित भवता कुले । स्वामिद्रोहो यतोऽधीशसिद्धाधिपपदस्थित ॥४८५॥
अस्माक सर्वथाराध्यो युद्धेष्वनियतो जय । दुर्गरोधविशेषेण विमृश्य तदिद घनम् ॥४८६॥
उवाच च कथ वध्यो भूपालोऽसौ भविष्यति । कृत कोऽपरशिक्षाभिरुपाय वदत ध्रुवम् ॥४८७॥
वय हि तस्य वक्तार स्वामिना करणे पुन । प्रमाण स्वरुचिर्नाथ । तत्कुरु प्रतिभासितम् ॥४८८॥
अथाह विक्रमो वह्नियन्त्र प्रकुरुताधुना । मत्सौधेऽसौ यथावश्यमक्लेशेन विनश्यति ॥४८९॥
व्यचारयन्निमित्त ते निजावासेऽग्निदीपनम् । प्रागल्भ्यात्कुमतेरेतद्विनाशस्यैव सूचकम् ॥४९०॥
किं च प्रविद्धामोऽत्र दुर्लङ्घ्या भवितव्यता । राज्योच्छेदोऽस्य सपन्नो भूपालो विजयी पुन ॥४९१॥
श्रीसिद्धाधीशपट्टे य प्राच्यपुण्यैर्निवेशित । एतत्सदृशभृत्याना नाऽसौ योग्यो भविष्यति ॥४९२॥
एव विमृश्य तेऽप्योचन् हस्तस्पृष्टललाटका । स्वाम्यादेश प्रमाण न कार्या नाऽत्र विचारणा ॥४ ३॥
सूत्रधारैस्ततो भूम्यन्तरा सौध निवेशितम् । ऊर्द्ध्व च स्तम्भपट्टादि चल वस्त्राञ्चलोपमम् ॥४९४॥
तस्योपरि प्रतिसीराप्रावारास्तरणास्तृता । मण्डिता विततोल्लोचाऽवचूलै पञ्चकैस्तथा ॥४९५॥
मौक्तिकै कुसुमैर्गुच्छैर्विच्छन्दकशतैरपि । सुन्दरा तत्र शय्या च सूत्रतन्तुमयाऽरचि ॥४९६॥–युग्मम् ।
एकत्र कीलके कृष्टे तत्सर्व गर्तमन्दिरे । खदिराङ्गारसपूर्णे भस्मीभवति तत्क्षणात् ॥४९७॥

वाचा रणे तु चास्माकं प्राभूत् समयो ह्ययम् । वादी निगृह्यमाणो हि मरुध्य प्रतिवादिना ॥६७॥
ततो विमुच्यतां श्रीमन् ! मदान्धोऽस्म कृपास्पदम् । निशम्येति नृपेणासौ मुक्तो दृष्ट्वा ततो बहिः ॥६८।
जयपत्रार्पणादस्याददे तेजः परं तदा । द्रव्यं तु निःस्पृहत्वेन स्पृशत्यपि पुनर्न स ॥६९॥
अन्यदा जययात्रायां चलिते गूर्जरेशितु । चतुरङ्गचमूचक्रे रेणुच्छादितभानुनि ॥७०॥
श्रीवीराचार्यचैत्यस्य पुरतः सञ्चरिष्णुनि । नृपमीक्षितुमाप्ते च कवीन्द्रे तत्र विश्रुते ॥७१॥
क्रमात् तत्र च सप्राप्त श्रीसिद्धाधीशभूपतिः । तं समीक्ष्य कविं कश्चित् समस्यापदमभ्यधात् ॥७२॥
तदुद्दिश्य कवौ वीराचार्ये दृष्टिं व्यधान्नृप । अनायासात् ततोऽपूरि कृतिना तेन सत्वरम् ॥ तथाहि–

कालिन्दि ब्रूहि कुम्भोद्भवजलधिरहं नाम गृह्णासि कस्मा-
च्छत्रोर्मे नर्मदाऽहं त्वमपि मम सपत्न्याश्च गृह्णासि नाम ।
मालिन्यं तर्हि कस्मादविरलविगलत्कज्जलैर्मालवीना
बाष्पाम्भोभिः किमासां समजनि चलितो गूर्जराणामधीश. ॥७४॥

श्रुत्वेति भूप आचख्यौ तव सिद्धगिराऽनया । मालवेशं ग्रहीष्यामि संशयो नात्र मे हृदि ॥७५।
त्वया बलानकस्थेनाशिष्टो मे शत्रुनिग्रहः । विजयस्य पताकेयं ततस्तत्राम्तु सा न्वहम् ॥७६॥
श्रीभावाचार्यचैत्यस्य पताकाऽभूद् बलानके । महता विहितं यस्मात्किवरेणापि न नश्यति ॥७७॥
वादी कमलकीर्त्याख्य आशाम्बरयतीश्वर । वादमुद्राभृदभ्यागादवज्ञातान्यकोविद. ॥७८॥
आस्थानं सिद्धराजस्य जिह्वाकण्डूययार्दित' । वीराचार्यं स आह्वास्त व्रह्मास्त्र विदुषां रणे ॥७९॥
पञ्चवर्षीयबाला स महादाय समागमत् । अवज्ञया वादिनं तं वीक्ष्य न्यविशदासने ॥८०॥
स चोपन्यस्तवान् सर्वसामर्थ्येन गुरुस्तत । श्रीवीरो बालया सार्द्धमस्त कुतुकादिव ॥८१॥
स तं दृष्ट्वाऽब्रवीद् वादी भूपते । भवतः सभा । नोचिता विदुषा बालक्रीडाविप्लवसम्भृता ॥८२।
राजाऽऽह स्वप्रमाणेन क्रीडत्येष बुधेश्वर. । इत्युक्त्वा प्रेक्षितो वीरो नृपेण प्राह सस्मितं ॥८३॥
समानवयसोर्वादो विमृश्येति मया ततः । एषा बाला समानिन्ये वस्त्रावृतिनिरादरा ॥८४॥
एष वाद्यपि नग्नत्वाद् दृश्यते डिम्भसन्निभ' । उभयोरेतयोरस्तु वादो व्रीडात्वनेन नः ॥८५॥
स्त्रीनिर्वाणनिषेधेनान्यथैवास्य च विग्रहः । विधेयस्तदसौ वादमुद्रयाऽमु विजेष्यते ॥८६॥
अस्पृष्टहस्तं तन्मौलौ प्रदायोचे यतीश्वर । तां जल्प वादिनानेन स्थापय स्त्रीषु निर्वृतिम् ॥८७॥
ततः सा निपुणाधीतप्रमाणविदुषामिव । वाग्भरे स्थापयामास तेनाशक्यस्थिरोत्तरैः ॥८८॥
अनेडमूकतां प्राप्ते तत्र वित्रस्तमानसे । सस्त्रुर्जयजयारावा. सभ्यानां नृपतेरपि ॥८९॥
भूपाल प्राह को जेता मत्सभां तपति प्रभौ । श्रीवीरे वादिवीरेऽत्र सिद्धेऽनेकासु सिद्धिषु ॥९०॥
यदीयहस्तस्पर्शेन सङ्क्रान्ता यत्र तत्र च । वाग्देवी भाषतेऽजस्रं स शक्य केन वर्णितुम् ॥९१।
एवं युगप्रधानामगुणव्यूता पटा इव । श्रीवीरसूरय पान्तु भव्यजाड्यापहारिणः ॥९२॥
श्रीमत्कालकसूरीणामनिर्वाच्य प्रभाद्भुतम् । अद्यापि यत्कुले वीरा प्राग्वीरान् भासयन्त्यमी ॥९३॥
श्रीचन्द्रप्रभसूरिपट्टसरसीहंसप्रभ श्रीप्रभाचन्द्र सूरिरनेन चेतसि कृते श्रीरामलक्ष्मीभुवा ।
श्रीपूर्वर्षिचरित्ररोहणगिरौ श्रीवीरवृत्ताद्भुत, श्रीप्रद्युम्नमुनीन्दुना विशदित शृङ्ग स विंशोऽभवत् ॥९४॥'
इति ॥१९६॥

अथ श्रीमलधारिहेमचन्द्रसूरिमेकया पथ्यार्यया ब्रूते–

सिरिहेमचन्दसूरी मलधारी सो बहुस्सुओ जयउ ।
गुणमणिरोहणसेलो परमपसंतरसमुत्तिममो ॥११७॥(पच्छाज्जा

पर्वताधित्यकाभूमिं गत्वा तूर्यरवान्समम् । व्यस्तारयत्तथा चक्रे भूप सूकरिकास्तथा ॥५३४॥
तदा च वाग्भटामात्यस्तेनादिष्ट समानय । आप्रमानातनखशतीमार्द्राणां सैरिभत्वचाम् ॥५३५॥
तेनानीताश्च ता सत्कर्म्मिणोऽथ रथमण्डप' । खण्डा प्रपातयामासुस्तन्मध्यस्था भटोत्कटाः ॥५३६॥
एके च दशनै खड्गान्युत्पाट्याऽरुरुहुर्द्रुतम् । प्राकारकपिशीर्षाणि नक्रशीर्षाणीव विक्रमात ॥५३७॥
व्यद्रवन्नथ तेऽन्तस्था विहिते सम्प्रसारणे । ह्रस्वीकृता कुमारेण भूपेनाख्यानवेदिना ॥५३८॥
विवृत्य गोपुरद्वार बहिर्निरसरत्प्रगे । अर्णोराजोऽपि तत्राजौ स्वजीवे विगतस्पृहः ॥५३९॥
वाद्यमानेषु सग्रामतूर्येषु प्रतिशब्दितैः । शब्दाद्वैत बभूवात्र पक्षयोरुभयोरपि ॥५४०॥
कातराणा तदा तत्र देहान्नाशाक्षमानिव । परित्यज्य ययु प्राणा पाताल शरणार्थिन ॥५४१॥
तत प्रववृते युद्ध खड्गाखड्गि शराशरि । बाहूबाहवि सर्वत्रादृश्यमानजनास्यकम् ॥५४२॥
शूरस्क्रान्तिकाले च भूधरा अस्मया इव । बहुश' खण्ड्यमानाङ्गा अदृश्यन्त गजेश्वराः ॥५४३॥
पक्वकूष्माण्डकानीवाखण्ड्यन्तात्र तुरङ्गमा । शालिपर्पटवद्रथ्या समचूर्यन्त निर्भरम् ॥५४४॥
परिपक्विमकालिङ्गवत्पत्तिजठरावलि' । पाटिता तत्र कालेयप्लीहफुप्फुससकुला ॥५४५॥
विचेरुर्गगने गृध्रा नून मांसाभिलाषुका । विमानस्थाप्सरो दूता इव प्राणेशसङ्गमे ॥५४६॥
इत्येवमन्वयख्यातिनाम दूघट्टनपूर्वकम् । युद्धे भवति शान्तासु धूलीषु मदवारिभि ॥५४७॥
पट्टवारणयोस्तत्र दन्तादन्ति विलग्नयो । दृष्टश्चारुभटो राज्ञाऽरिनिपादितया स्थित ॥५४८॥
श्यामलाधोरणस्तत्र हस्तिहक्काभयापहृत् । उत्कील्याच्छपटीं द्वि स कृत्वा तस्य श्रुती व्यधात् ॥५४९॥
ततश्चारुभटो गर्वाद्धस्तिदन्ते पद दधौ । यत कियान् प्रतिमातङ्ग इति चेतसि चिन्तयन् ॥५५०॥
पक्षयोर्गूर्जरेशोऽपि लोचने सन्यवीविशत । बल विघटित सर्व महाधरमुख तदा ॥५५१॥
शङ्कितेन तदाऽजल्पि शामल । त्वमपीह किम् ? । भेदिनो वारण पश्चाद् व्यावर्त्तयसि यत्सखे ॥५५२॥
स प्राह नाथ ! नो शङ्क्य स्वप्नेऽपि त्रयभेदनम् । निषादी श्यामल स्वामी गज कलभकेसरी ॥५५३॥
पश्चात्क्रमैर्गतो नीचैस्तत प्रतिगजात्पतन् । शत्रुराज्यस्य सर्वस्व ग्राह्यश्चारुभटस्त्वया ॥५५४॥
यावदेव वदत्येष तावद्विघटितौ रदौ । अन्तर्द्वयोर्जवात् तत्रापतत् स्वस्वामितेजसा ॥५५५॥
जगृहे तलवर्गीयै सुभटै सयतश्च स । अर्णोराजश्च राज्ञापि कुन्तेन निहतोऽलिके ॥५५६॥
प्रणाशाभिमुख कादिशीकश्चारुभट विना । व्यावर्त्तयद्गज सेनाऽप्यस्य व्याजुघुटे तत ॥५५७॥
जतं जितमिति प्रोच्य पटमभ्रमयत्प्रभु । मन्यमानश्च राजान स्व तदा विक्रमोर्जितात् ॥५५८॥
सामन्ताश्चाययु सर्वे भङ्क्तु त पर्यवारयन् । जितो भवद्भिरेवासावित्यावर्जयदत्र तान् ॥५५९॥
देश कोशश्च लुण्टाकैस्तस्य सेनाऽप्यलुण्ट्यत । सुलूषणा सत्त्वहीना युद्धे पृष्ठप्रदायिन ॥५६०॥
ततश्चभूचरा सर्वे तदीयद्रविणैर्घनै । स्वय ग्रहणतोऽतृप्यन्नासप्तपुरुषावधि ॥५६१॥
जितकाशी ततो भूपो न्यवर्त्तत पुरं प्रति । यच्छन् यथार्थेन दानमर्थिभ्य कल्पवृक्षवत् ॥५६२॥
अष्टादशशतीदेशप्रत्यपत्तनमासदत् । पूर्ववत् वृत्तमत्युग्र तदीशस्य, स्वबुध्यत ॥५६३॥
नृपतिर्विजये सौविदल्लान् मल्लानथादिशत । ततो निमन्त्रणायाः पश्चाद्बाहुन्र्ययन्त्यत ॥५६४॥
प्रेष्य प्रेष्यान् निजास्तस्य मन्दिर मन्दुरावरम् । अज्वालयत्क्षणादेव यथाभवदसत्सदृक् ॥५६५॥
शकटेऽनास्तृते क्षिप्र स्वस्थानाच्चालिताङ्गक । हुंकारेऽप्यनल भूष्णु सोऽभूत्का वचने कथा ॥५६६॥
नद्युत्तारेषु पाषाणोद्घाटसकटभूमिषु । अभूदसृग्विलिप्ताक्ष स षट्कारस्फुरच्छिरा ॥५६७॥
परमारान्वयै राजपुत्रैरुत्तार्य भूपति । सम्यक् प्रणम्य विज्ञप्तोऽवमन्यत तृणास्तृतिम् ॥५६८॥
मञ्चातिमञ्चकलितमुत्तुङ्गकृततोरणम् । अणहिल्लपुर प्राप क्ष्माप प्राप्तजयोदय ॥५६९॥

क्षिप्यते ततः स "सिरिहेमचदक्खो" त्ति हेमचन्द्र इत्याख्या=संज्ञा यस्य स श्रीहेमचन्द्राख्यः श्रिया = अपूर्वज्ञानादिलक्षणया लक्ष्म्या युक्तो हेमचन्द्राख्यः=श्रीहेमचन्द्राख्यः "सूरी" त्ति, सूरिः = आचार्यः "हवीअ" त्ति, अभूत् इति क्रियासम्बन्धः । किंभूतः ? "कलिकालसव्ववेत्ता" त्ति, सर्वस्य = निरवशेषस्य वस्तुसंघातस्य वेत्ता = ज्ञाता सर्ववेत्ता कलिकाले = दुष्षमसंज्ञके पञ्चमारकरूपे कालविशेषे सर्ववेत्ता इव सर्ववेत्ता, कलिकालसर्ववेत्ता = कलिकाले सर्ववित्समानः कलिकालसर्वज्ञाख्यबिरुदधारीति यावत् , पुनः कीदृगित्याह-"कोडि०" इत्यादि, "कोडितिगसिलोगाणं कत्ता जो" त्ति, यः = श्रीहेमचन्द्रसूरिः, कोटिः = लक्षशतम् , तासाम् , कोटीनां शतलक्षसङ्ख्यारूपाणां त्रिकं = त्रयं कोटित्रिकम् = कोटित्रिकसङ्ख्याकाश्च ते श्लोकाश्च कोटित्रिकश्लोकास्तेषाम् , कोटित्रिकश्लोकानां कर्ता = रचयिता । पुनः कथंभूतः ? "सिद्धरायभूवस्स पडिबोहगो" त्ति, सिद्धराजभूपस्य=सिद्धराजाभिधस्य 'जयसिंह' इत्यपरनाम्नो भूपस्य=नृपतेः प्रतिबोधकः=उपदेशदानेन सद्धर्मप्रापकः; "तहा णिव-कुमारपालपमुहाणं पि" त्ति, तथा=तथैव नृपः = भूमिपालः, स चासौ कुमारपालश्च = तत्संज्ञकः, नृपकुमारपालः स प्रमुखे = प्राधान्ये = आदौ वा येषां ते नृपकुमारपालप्रमुखास्तेषामपि, नृपकुमारपालप्रमुखाणामपि = न केवलं सिद्धराजभूपतेः प्रतिबोधक इत्यपिशब्दार्थः पुनरपि किंविशिष्टः ? इत्याह-"वायरण०" इत्यादि, "जेण" त्ति, येन = श्रीहेमचन्द्रसूरिणा कीदृशा ? "विउलमइणा" त्ति; विपुला=विशाला मतिः=बुद्धिर्यस्य तेन विपुलमतिना "वायरणकव्वकोसच्छंदअलकारलिंगपमुहाणं" त्ति; व्याकरणम्=लघुबृहद्वृत्तिबृहन्न्यासयुतं सिद्धहेमसंज्ञकं शब्दानुशासनम् , काव्यानि=सवृत्तिक-सिद्धराजजयसिंह-कुमारपालभूपवर्णात्मक--संस्कृत--प्राकृतश्लोकबद्धद्व्याश्रयमहाकाव्यप्रमुखाणि, कोशः=शब्दकोशः सव्युत्पत्तिकोऽभिधानचिन्तामणिसंज्ञकः, छन्दः=छन्दःशास्त्रं सिद्धहेमछन्दोऽनुशासननामकम् , अलङ्कारः=अलङ्कारशास्त्रम् , अलङ्कारचूडामण्याख्यया वृत्त्या युतं सिद्धहेमकाव्यानुशासनाभिधम् , लिङ्गः=लिङ्गानुशासनं सिद्धहेमलिङ्गानुशासनम् , व्याकरणञ्च काव्यानि च कोशश्च छन्दश्चाऽलङ्कारश्च लिङ्गश्च व्याकरणकाव्यकोशछन्दोऽलङ्कारलिङ्गाः, ते प्रमुखे=आदौ येषां तेषां व्याकरणकाव्यकोशछन्दोलङ्कारलिङ्गप्रमुखाणाम् , अत्र प्रमुखशब्देन वादानुशासन-प्रमाणमीमांसा-बलाबलवादनिर्णयादीनां ग्रहणं द्रष्टव्यम् , "विसयाण" त्ति, विषयाणां=गोचराणाम् । 'गथाऽणेगा' त्ति अनेकाः=बहवो ग्रन्थाः=शास्त्राणि "रइआ" त्ति, रचिताः=निर्मापिताः ।

अथ चतुर्थ्याऽन्तिमया पथ्यार्ययाऽमुष्य जन्मादिसमयं प्रकटयन्नाह-"जम्मो" इत्यादि, "ऽस्स" त्ति, अस्य=श्रीहेमचन्द्रसूरेः "जम्मो" त्ति; जन्म=गर्भनिष्क्रान्तिः "विक्कमा" त्ति, विक्रमात्=विक्रमादित्यभूपालतः "जमसुरभोमे" त्ति, यमाः=अहिंसादीनि=महाव्रतानि पञ्च

पर्वताधित्यकाभूमिं गत्वा तूर्यरवान्समम् । व्यस्तारयत्तथा चक्रे भूप' सूकरिकास्तथा ॥५३४॥
तदा च वाग्भटामात्यस्तेनादिष्ट समानय । आप्रमानात्पञ्चशतीमार्द्राणा सैरिभत्वचाम् ॥५३५॥
तेनानीताश्च ता' सत्कर्मिणोऽथ रथमण्डप । खण्डा प्रपातयामासुस्तन्मध्यस्था भटोत्कटा. ॥५३६॥
एके च दशनै खड्गान्युत्पाट्याररुहुर्द्रुतम् । प्राकारकपिशीर्षाणि नक्षीर्पाणीव विक्रमात् ॥५३७।
व्यद्रवन्नथ तेऽन्तस्था विहिते सम्प्रसारणे । हस्तीकृता कुमारेण भूपेनाख्यानवेदिना ।५३८।
विवृत्य गोपुरद्वार बहिर्निरसरत्प्रगे । अर्णोराजोऽपि तत्राजौ स्वजीवे विगतस्पृह ॥५३९॥
वाद्यमानेषु सग्रामतूर्येषु प्रतिशब्दिते । शब्दाद्वैत बभूवात्र पक्षयोरुभयोरपि ॥५४०॥
कातराणा तदा तत्र देहान्नाशाक्षमानिव । परित्यज्य ययु प्राणा पाताल शरणार्थिन ॥५४१॥
तत प्रववृते युद्ध खड्गाखड्गि शराशरि । बाहूबाहवि सर्वत्रादृश्यमानजनास्यकम् ॥५४२॥
शूरसक्रान्तिकाले च भूधरा अस्मया इव । बहुश' खण्ड्यमानाङ्गा अदृश्यन्त गजेश्वरा' ॥५४३॥
पक्वकूष्माण्डकानीवाखण्ड्यन्तात्र तुरङ्गमा । शालिपर्पटवद्रथ्या समचूर्यन्त निर्भरम् ॥५४४॥
परिपक्त्रिमकालिङ्गवत्पत्तिजठरावलिः । पाटिता तत्र कालेयप्लीहफुप्फुससकुलाः ॥५४५॥
विचेरुर्गगने गृध्रा नून मांसाभिलाषुका । विमानस्थाप्सरो दूता इव प्राणेशसङ्गमे ॥५४६॥
इत्येवमन्वयख्यातिनाम द्घट्टनपूर्वकम् । युद्धे भवति शान्तासु धूलीषु मदवारिभि ।५४७।
पट्टवारणयोस्तत्र दन्तादन्ति विलग्नयो । दृष्टश्चारुभटो राज्ञाऽरिनिपादितया स्थित ॥५४८॥
श्यामलाधोरणस्तत्र हस्तिहक्काभयापहृत । उत्कील्याच्छपट्टीं द्वि स कृत्वा तस्य श्रुती व्यधात् ।५४९॥
ततश्चारुभटो गर्वाद्धस्तिदन्ते पद दधौ । यत कियान् प्रतिमातङ्ग इति चेतसि चिन्तयन् ।५५०॥
पक्षयोर्गूर्जरेशोऽपि लोचने सन्यवीविशत् । बल विघटित सर्वं महाधरमुख तदा ॥५५१॥
शङ्कितेन तदाऽजल्पि शामल । त्वमपीह किम् ? । भेदिनो वारण पश्चाद् व्यावर्त्तयसि यत्सखे । ५५२॥
स प्राह नाथ ! नो शङ्क्य स्वप्नेऽपि त्वयभेदनम् । निषादी श्यामल स्वामी गज कलभकेसरी ।५५३॥
पश्चात्क्रमैर्गतो नीचैस्नत प्रतिगजात्पतन् । शत्रुराज्यस्य सर्वस्व ग्राह्यश्चारुभटस्त्वया ॥५५४॥
यावदेव वदत्येष तावद्विघटितौ रदौ । अन्तर्द्वयोर्जवात् तत्रापतत् स्वस्वामितेजसा ॥५५५॥
जगृहे तलवर्गीयै सुभटै सयतश्च स । अर्णोराजश्च राज्ञापि कुन्तेन निहतोऽलिके ॥५५६॥
प्रणाशाभिमुख कादिशीकश्चारुभट विना । व्यावर्त्तयद्गज सेनाऽप्यस्य व्याजुघुटे तत ॥५५७॥
जितं जितमिति प्रोच्य पटमभ्रमयत्प्रभु । मन्यमानश्च राजान स्व तदा विक्रमोर्जितात् ॥५५८॥
सामन्ताश्चाययु सर्वे मङ्क्षु त पर्यवारयन् । जितो भवद्भिरेवासावित्यावर्जयदत्र तान् ॥५५९॥
देश कोशश्च लुण्टाकैस्तस्य सेनाऽप्यलुण्ठ्यत । सुलूषणा सत्त्वहीना युद्धे पृष्ठप्रदायिन ॥५६०॥
ततश्चमूचरा सर्वे तदीयद्रविणैर्धनै । स्वयं ग्रहणतोऽतृप्यन्नासप्तपुरुषावधि ।५६१॥
जितकाशी ततो भूपो न्यवर्त्तत पुर प्रति । यच्छन् यथार्थन दानमर्थिभ्य कल्पवृक्षवत् ॥५६२॥
अष्टादशशतीदेशप्रख्यपत्तनमासदत् । पूर्ववत् वृत्तमत्युग्र तदीशस्य. प्रबुध्यत ॥५६३॥
नृपतिर्विजये सौविदल्लान् मल्लानथादिशत् । ततो निमन्त्रणाया पश्चाद्बाहुर्न्ययन्त्र्यत ॥५६४॥
प्रेष्य प्रेष्यान् निजास्तस्य मन्दिर मन्दुरावरम् । अज्वालयत्क्षणादेव यथाभवदसत्सदृक् ॥५६५॥
शकटेऽनास्तृते क्षिप्र स्वस्थानाच्चालिताङ्गक । हुकारेऽप्यनल भूष्णु सोऽभूत्का वचने कथा ॥५६६॥
नद्युत्तारेषु पाषाणोद्घाटसकटभूमिषु । अभूदसृग्विलिप्ताक्ष· स षट्कारस्फुरच्छिरा ॥५६७॥
परमारान्वयै राजपुत्रैरुत्तार्य भूपति । सम्यक् प्रणम्य विज्ञप्तोऽवमन्यत तृणास्तृतिम् ।५६८॥
मञ्चातिमञ्चकलितमुत्तुङ्गकृततोरणम् । अणहिल्लपुर प्राप क्ष्माप प्राप्तजयोदय ॥५६९॥

अस्ति श्रीगूर्जरो देश क्लेशावेशवियुक्तभू । पुरुषार्थत्रयश्रीषु स्वर्गोऽपीच्छति यत्तुलाम् ॥५॥
अणहिल्लपुर नाम कामधुक् प्रणयिव्रजे । अस्ति प्रासादराजीभिर्नगर नगरङ्गभू ॥६॥
संक्रन्दनसुपर्वारिद्विजिह्वा यस्य नोपमाम् । सुरासुरोरगाधीशा प्रापुर्लोकेश्वरा अपि ॥७॥
स तत्र वाक्सुधासारसम्प्रीणितचकोरक । राजा सिद्धाधिप सिद्धाधिपगीतयशा अभूत् ॥८॥
सत्पूजाभोगशृङ्गारप्रभावद्दढरङ्गभू । वन्धूकमिव धन्धूक देशे तत्राऽस्ति सत्पुरम् ॥९॥
व्यूढमोढान्वयप्रौढ उद्गूढमहिमा दृढ । बाढमाढौकयद् दार्ढ्यं प्रौढिषु प्रौढचेतसाम् ॥१०॥
उत्कोचकृतसङ्कोच उल्लोच सत्त्वमण्डपे । श्रेष्ठी तत्राभवच्चाच प्रत्याच पूजयन् सदा ॥११॥ युग्मम् ।
गेहिनी पाहिनी तस्य देहिनी मन्दिरेन्दिरा । यस्या सीता-सुभद्राद्या सत्य सत्या सतीव्रत ॥१२॥
सा स्त्रीचूडामणिश्चिन्तामणि स्वप्नेऽन्यदैक्षत । दत्त निजगुरूणा च भक्त्यावेशनिवेशत ॥१३॥
चान्द्रगच्छसर पद्म तत्रास्ते मण्डितो गुणै । ॒ नसूरिशिष्य श्रीदेवचन्द्रमुनीश्वर ॥१४॥
आचख्यौ पाहिनी प्रात स्वप्नमस्वप्नसूचितम् । तत्पुर स तदर्थं च शास्त्रदृष्ट जगौ गुरु ॥१५॥
जैनशासनपाथोधिकौस्तुभ सम्भवी सुत । तव स्तवकृतो यस्य देवा अपि सुवृत्तत ॥१६॥
श्रीवीतरागबिम्बाना प्रतिष्ठादोहद दधौ । अन्यदा सा स चापूरि सत्पत्या भूरिपुण्यत ॥१७॥
असूत सा च पुण्येऽह्नि जितवह्निप्रभ रुचा । मलयाचलचूलेव चन्दन नन्दन मुदा ॥१८॥
नानाविधध्वनत्तूर्यभरडम्बरिताऽम्बरै । वर्द्धापने व्यतीते च द्वादशाहे मुदा तदा ॥१९॥
अभिधाविधिमाधित्सु सनाभीन् भक्तितो निजान् । आहूय व्याहरच्चाच सदाचरणबन्धुर ॥२०॥
अस्मद्गृहेऽवतीर्णेऽत्र प्रतिष्ठादोहदोऽजनि । एतन्मातुस्तया रम्या पूजाभि स्यु सुरा अपि ॥२१॥
तच्चङ्गदेव इत्यस्य स्थानभृन्नाम सान्वयम् । विदधे विश्ववस्तूना यत सत्य शुभायति ॥ चतुर्भि कलापकम् ।
क्रमुकै क्रोडकर्पूरै पत्रै सौरभनिर्भरै । दत्त्वा नागरखण्डैश्च ताम्बूल तान् व्यसर्जयत् ॥२३॥
वर्द्धमानो वर्द्धमान इवासौ मङ्गलाश्रय । शिशुत्वेऽप्यशिशुप्रज्ञ सोऽभूदक्षलदक्षतः ॥२४॥
तस्याऽथ पञ्चमे वर्षे वर्षीयस इवाभवत । मति सद्गुरुशुश्रूषाविधौ विधुरितैनस ॥२५॥
अन्यदा मोढचैत्यान्त प्रभूणा चैत्यवन्दनम् । कुर्वता पाहिनी प्रायात्सपुत्रा तत्र पुण्यभू ॥२६॥
सा च प्रदक्षिणा दत्त्वा यावत्कुर्यु स्तुतिं जिने । चङ्गदेवो निषद्याया तावन्निविविशे द्रुतम् ॥२७॥
स्मरसि त्व महास्वप्न सकृदालोकयिष्यसि । तस्याभिज्ञानमीक्षस्व स्वय पुत्रेण यत्कृतम् ॥२८॥
इत्युक्त्वा गुरुभि पुत्र सघनन्दननन्दन । कल्पवृक्ष इवाप्रार्थि स जनन्या समीपन ॥२९॥
सा प्राह प्रार्थ्यतामस्य पिता युक्तमिद ननु । ते तदीयाननुज्ञाया भीता किमपि नाभ्यधु ॥३०॥
अलङ्घ्यत्वाद् गुरोर्वाचामाचारस्थितया तया । दूनयापि सुत स्नेहादार्प्यत स्वप्नसस्मृते ॥३१॥
तमादाय स्तम्भतीर्थे जग्मु श्रीपार्श्वमन्दिरे । माघे सितचतुर्दश्या ब्राह्मे धिष्ण्ये शनेर्दिने ॥३२॥
धिष्ण्ये तथाष्टमे धर्मस्थिते चन्द्रे वृषोपगे । लग्ने बृहस्पतौ शत्रुस्थितयो सूर्यभौमयो ॥३३॥
श्रीमानुदयनस्तस्य दीक्षोत्सवमकारयत । सोमचन्द्र इति ख्यात नामास्य गुरवो दधु ॥३४॥
सचस्करु परिस्कारान् प्रजाप्य परमाक्षरै । आर्हतैस्तेऽर्हमर्हाणा तमेकप्रणिधानत ॥३५॥
अथैत्य मिलिते कोपकलिते कटुभाषिणि । चाचे प्राचेतसामस्तमय प्राशमयत्स्वयम् ॥३६॥
सोमचन्द्रस्ततश्चन्द्रोज्ज्वलप्रज्ञाबलादसौ । तर्क-लक्षण-साहित्यविद्या पर्यच्छिनद् द्रुतम् ॥३७॥
अन्यदाऽचिन्तयत्पूर्वं परो लक्षपदानुग । आसीदेकपदात्तस्माद्धिगस्मानल्पमेधस ॥३८॥
तत आराधयिष्यामि देवीं काश्मीरवासिनीम् । चकोरद्विजरोचिष्णु ज्योत्स्नामिव कलावतः ॥३९॥
इति व्यज्ञपयत् प्रात प्रभु विनयनम्रवाक् । सम्मुखीनागम देव्या ध्यात्वा सोऽप्यन्वमन्यत् ॥४०॥

प्राभृतेऽप्रावृते तत्र मूर्तं चिन्तामणाविव । सर्वतो व्यकसद्राजा पूर्णमासीनिशीथवत् ।।६०६।।
ततो मन्त्रिणमाकार्य प्रसादविशदानन । कुत्राप्यमात्य ! कार्येऽहमधमर्णो भवामि व ।।६०७।।
इत्याकर्ण्य स च प्राह प्राणा स्वामिवशा मम । परिच्छदो धन भूमिरास्था कान्येषु वस्तुषु ।।६०८।।
राजाह प्राञ्जलिर्याचे प्रासादो मे प्रदीयताम् । सनाथ करवै मित्र ! यथा प्रतिमयानया ।।६०९।।
महाप्रसादो मे नाथ ! भवत्वेव धृतिर्मम । श्रीकुमारविहारोऽत पर स्वाम्याख्ययाऽस्तु तत् ।।६१०।।
किञ्चिच्च स्वामिने विज्ञपये तदवधार्यताम् । श्रीकीर्तिपालत पित्रा सन्दिष्ट मम यद्वच ।।६११।।
श्रीशत्रुञ्जयतीर्थस्य प्रासाद श्रेयसे मम । जीर्णशीर्णस्त्वयोद्धार्य इति मे कृत्यमस्त्यद ।।६१२।।
प्रभुपादैस्तथादिष्ट यात्राया प्रक्रमे तदा । देवतास्मृतिवेलाया कीर्तिपालप्रतिश्रुतात ।।६१३।।
अस्मत्कोशधन लात्वा कार्या चैत्योद्धृतिस्त्वया । स आदेशो ममास्तु स्वै पितुरानृण्यहेतवे ।।६१४।।
श्रुत्वेत्याह नृपोऽस्माक कार्येऽस्मिन्सोदरादरात । एवमप्यस्त्वनुल्लङ्घ्यवचनस्त्व हि न सखे ।।६१५।।
स्वामिन् ! महाप्रसादोऽयमित्युक्त्वा तत्र धीसख । विमलाद्रौ ययौ श्रेष्ठिव्यापारिपरिवारित ।।६१६।।
तत्र तीर्थे प्रभु नत्वा नाभेय भक्तिनिर्भर । गुरुदरान्प्रदाप्यास्थात्प्रतिसीराश्च सर्वत ।।६१७।।
विमानकानि मञ्चाश्च प्रादात्करभिकास्तथा । वाटिकानि चतुष्पाटी पट्टशाटकमण्डिता ।।६१८।।
चञ्चच्चतुरकाश्चापि स्वर्विमानोपमद्युतीन् । अनेकभटसघातसकीर्णीकृतपर्वतान् ।।६१९।। विशेषकम् ।
तत्र चैको वणिक् प्रत्यासन्नग्रामात्समागत । निधिर्दौस्थ्यस्य घृष्टातिपटच्चरयुग दधत ।।६२०।।
पट्द्रम्मनीविकस्तैश्च क्रीताज्यकुतप वहन् । कटके ग्राहकव्यूहवाहल्याद् रूपकाधिकम् ।।६२१।।
द्रम्म स चार्जयित्वाऽतितुष्ट श्रीवृषभप्रभुम् । कुसुमै रूपकक्रीतै पूजयामास भक्तित ।।६२२।।
सप्त द्रम्मान् सप्त लक्षानिव ग्रन्थौ वहन्मुदा । वीक्षक सचिवाधीशतत्कण्टीद्वारमागमत् ।।६२३।।
ददृशे तेन मन्त्रीन्दुरीपज्जवनिकान्तरात् । कूर्मेनेव ह्रदे बद्धजालशैवलरन्ध्रत ।।६२४।।
स व्यमृक्षत्प्राच्यपुण्य-पापयोरेतदन्तरम् । पुरुषत्वे समेऽमुष्य मम चानीदृगाकृति ।।६२५।।
स्वर्णमौक्तिकमाणिक्याभरणाशुदुरीक्ष्यरुक् । व्यापारि-व्यवहार्यस्त्रजीवि-व्रातपरिच्छद ।।६२६।।
चक्रीव मुकुटाबद्धमण्डलाभ्यर्चितक्रम । श्रीनाभेयमहातीर्थजीर्णोद्धारमनोरथ ।।६२७।।
अह तु स्वगृहिण्याप्यभिभूतो निर्धनत्वत । सन्ध्यावध्यपि सन्दिग्धाहारप्राप्तिर्मुधाश्रम ।।६२८।।
कुनपोद्वहनक्लिष्टशिरा आशैशवादपि । एकरूपकलाभेन धन्यमन्यो दिन प्रति ।।६२९।।
एव विचिन्तयन् द्वारपालेन परत कृत । श्रीमद्वाग्भटदेवेन मन्त्रिणादर्शि दैवत ।।६३०।।
वणिगाहूयतामेषेत्युक्ते स द्वारपालक । दूरप्रयातमपि तमाह्वास्तादेशत प्रभो ।।६३१।।
तत्पुर पर्षदन्त स ऊर्ध्वोऽस्थात्स्थाणुवत्स्थिर । अनभिज्ञ प्रणामादौ ग्रामणीत्वाद् ऋजुस्थिति ।।६३२।।
कस्त्वमित्युक्तिभाजि श्रीमन्त्रिणि प्रकटाक्षरम् । प्रागुक्तनिजवृत्त स आख्यदक्षामदुखभृत ।।६३३।।
मन्त्रीश्वर पुन प्राह धन्यस्त्व क्लेशतोऽर्जितम् । यद्रूपक व्ययित्वार्चा श्रीजिनस्य समाचर ।।६३४।।
इत्युक्त्वा स करे धृत्वा स्वार्द्धासनि निवेशित । धर्मबन्धुर्भवान्मे तत्कार्यं किञ्चिद् ब्रवीहि भो ।।६३५।।
सोऽस्य प्रभो प्रियैर्वाक्यै प्रीणितोऽचिन्तयन्मुदा । सप्रापित परा कोटिमनेनाकिञ्चनोऽप्यहम् ।।६३६।।
तदा साधर्मिकास्तत्र व्यवहारिनियोगिन । इष्टे तीर्थसमुद्धारेऽनन्तपुण्यभरार्थिन ।।६३७।।
वहिका मण्डयामासुर्द्रव्यमीलनिकाकृते । प्रागमन्त्रिणस्ततो ज्येष्ठानुक्रमादभिधा व्यधु ।।६३८।।
दृष्ट्वा नामान्यसौ दध्यौ चेद् द्रम्मा सप्त मामका । कार्येऽस्मिन्नुपकुर्वन्ति तत्र धन्यो मया सम ।।६३९।।
वक्तुकामोऽसि किञ्चित् किमित्युक्ते मन्त्रिणा स च । प्राह मम गृहीत्वाऽमून् द्रम्मान् प्रीणय मा प्रभो ! ।।६४०।।
तदाचारात्परानन्दमेदुर सचिवोऽवदत् । त्व मे धर्मसुहृद् भ्रातस्तत्तानर्पय सत्वरम् ।।६४१।।

चिकित्सा-राजसिद्धान्त-रस-वास्तूदयानि च । अङ्क-शाकुनकाध्यात्म-स्वप्न-सामुद्रिकाण्यपि ।।७७।।
ग्रन्थान् निमित्तव्याख्यान-प्रश्नचूडामणीनिह । विवृतिं चायसद्भावेऽर्घकाण्डं मेघमालया ।।७८।।
भूपालोऽप्यवदन्किं नास्मत्कोशे शास्त्रपद्धतिः । विद्वान् कोऽपि कथं नास्ति देशे विश्वेऽपि गूर्जरे ।।७९।।
सर्वे सम्भूय विद्वांसो हेमचन्द्रं व्यलोकयन् । महाभक्त्या च राज्ञाऽसावभ्यर्थ्य प्रार्थितः प्रभुः ।।८०।।
शब्दव्युत्पत्तिकृच्छास्त्रं निर्मायास्मन्मनोरथम् । पूरयस्व महर्षे ! त्वं विना त्वामत्र कः प्रभुः ।।८१।।
संक्षिप्तश्च प्रवृत्तोऽयं समयेऽस्मिन् कलापकः । लक्षणं तत्र निष्पत्तिः शब्दानां नास्ति तादृशी ।।८२।।
पाणिनिर्लक्षणं वेदस्याङ्गमित्यत्र च द्विजाः । अवलेपादसूयन्ति कोऽर्थस्तैरुन्मनायितैः ।।८३।।
यशो मम तव ख्यातिः पुण्यं च मुनिनायक ! । विश्वलोकोपकाराय कुरु व्याकरणं नवम् ।।८४।।
इत्याकर्ण्याभ्यधात्सूरिर्हेमचन्द्रः सुधीनिधिः । कार्येषु नः किलोक्तिर्वः स्मारणायैव केवलम् ।।८५।।
परं व्याकरणान्यष्टौ वर्तन्ते पुस्तकानि च । तेषां श्रीभारतीदेवीकोश एवास्ति तद् ध्रुवम् ।।८६।।
आनाययतु काश्मीरदेशात्तानि स्वमानुषैः । महाराजो यथा सम्यक् शब्दशास्त्रं प्रतन्यते ।।८७।।
इति तस्योक्तिमाकर्ण्य तत्क्षणादेव भूपतिः । प्रधानपुरुषान् प्रैषीद् वाग्देवीदेशमध्यतः ।।८८।।
प्रवराख्यपुरे तत्र प्राप्तास्ते देवतां गिरम् । चन्दनादिभिरभ्यर्च्य तुष्टुवुः पाठनस्तवैः ।।८९।।
समादिक्षत्ततस्तुष्टा निजाधिष्ठायकान् गिरा । मम प्रसादवित्तः श्रीहेमचन्द्रः सिताम्बरः ।।९०।।
ततो मूर्त्यन्तरस्येव मदीयस्यास्य हेतवे । समर्प्य प्रेष्यतां प्रेष्यवर्गं पुस्तकसञ्चयम् ।।९१।।
ततः सत्कृत्य तान् सम्यग्भारतीसचिवा नरान् । पुस्तकान्यर्पयामासुः प्रैषुश्चोत्साहपण्डितम् ।।९२।।
अचिरान्नगरं स्वीयं प्रापुर्देविप्रसादिताः । हर्षप्रकर्षसम्पन्नपुलकाऽङ्कुरपूरिताः ।।९३।।
सर्वं विज्ञपयामासुर्भूपालाय गिरोदितम् । निष्ठानिष्ठे प्रभौ हेमचन्द्रे तोषमहादरम् ।।९४।।
इत्याकर्ण्य चमत्कारं धारयन् वसुधाधिपः । उवाच धन्यो मद्देशोऽहं च यत्रेदृशः कृती ।।९५।।
श्रीहेमसूरयोऽप्यत्रालोक्य व्याकरणव्रजम् । शास्त्रं चक्रुर्नवं श्रीमत् सिद्धहेमाख्यमद्भुतम् ।।९६।।
द्वात्रिंशत्पादसम्पूर्णमष्टाध्यायगुणादिमत् । धातुपारायणोपेतं रङ्गल्लिङ्गानुशासनम् ।।९७।।
सूत्रसद्वृत्तिसन्नाममालानेकार्थसुन्दरम् । मौलिं लक्षणशास्त्रेषु विश्वविद्वद्भिरादृतम् ।।९८।। त्रिभिर्विशेषकम् ।
आदौ विस्तीर्णशास्त्राणि न हि पाठ्यानि सर्वतः । आयुषा सकलेनापि पुमर्थस्खलनानि तत् ।।९९।।
सङ्कीर्णानि च दुर्बोधदोषस्थानानि कानिचित् । एतत्प्रमाणितं तस्माद्विद्वद्भिरधुनातनैः ।।१००।।
श्रीमूलराजप्रभृतिराजपूर्वजभूभुजाम् । वर्णवर्णनसम्बद्धं पादान्ते श्लोकमेककम् ।।१०१।।
तच्चतुष्कं च सर्वान्ते श्लोकैस्त्रिंशद्भिरद्भुता । पञ्चाधिकैः प्रशस्तिश्च विहिताऽवहितैस्तदा ।।१०२।। युग्मम् ।
राज्ञः पुरः पुरोगैश्च विद्वद्भिर्वाचितं ततः । चक्रे तस्य वर्षं राज्ञा पुस्तकलेखने ।।१०३।।
राजादेशान्नियुक्तैश्च सर्वस्थानेभ्य उद्यतैः । तदा चाहूय सच्चक्रे लेखकानां शतत्रयम् ।।१०४।।
पुस्तका समलेख्यन्त सर्वदर्शनिनां ततः । प्रत्येकमेवादीयन्ताध्येतॄणामुद्यमस्पृशाम् ।।१०५।। विशेषकम् ।
अङ्ग-वङ्ग कलिङ्गेषु लाट कर्णाट-कुङ्कणे । महाराष्ट्र-सुराष्ट्रासु वत्से कच्छे च मालवे ।।१०६।।
सिन्धु-सौवीर-नेपाले पारसीक मुरण्डयोः । गङ्गापारे हरिद्वारे काशि-चेदि-गयासु च ।।१०७।।
कुरुक्षेत्रे कन्यकुब्जे गौड-श्रीकामरूपयोः । सपादलक्षवज्जालन्धरे च खसमध्यतः ।।१०८।।
सिंहलेऽथ महाबोधे चौडे मालव कौशिके । इत्यादिविश्वदेशेषु शास्त्रं व्यस्तार्यत स्फुटम् । चतुर्भिः कलापकम् ।
अस्य सोपनिबन्धानां पुस्तकानां च विंशतिः । प्राहीयत नृपेन्द्रेण काश्मीरेषु महादरात् ।।११०।।
एतत्तत्र गतं शास्त्रं स्वीयकोशे निवेशितम् । सर्वां निर्वाहयेन्न स्वेनादृतं देव्यास्तु का कथा ।।१११।।
काकलो नाम कायस्थकुलकल्याणशेखरः । अष्टव्याकरणाध्येता प्रज्ञाविजितभोगिराट् ।।११२।।

प्राभृतेऽप्रावृते तत्र मूर्तं चिन्तामणाविव । सर्वतो व्यक्तसद्राज्ञा पूर्णमासीनिशीथवत् ।६०
ततो मन्त्रिणमाकार्य प्रसादविशदानन । कुत्राप्यमात्य ! कार्येऽहमधमर्णो भवामि व ॥६०
इत्याकर्ण्य स च प्राह प्राणा स्वामिवशा मम । परिच्छदो धन भूमिरास्था कान्येषु वस्तुषु ॥६०
राजाह प्राञ्जलिर्याचे प्रासादो मे प्रदीयताम । सनाथ करवै मित्र ! यथा प्रतिमयानया ॥६०
महाप्रसादो मे नाथ ! भवत्वेव धूनिर्मम । श्रीकुमारविहारोऽन पर स्वाम्याख्ययाऽस्तु तत् ॥६१
किञ्चिच्च स्वामिने विज्ञपये तदवधार्यताम् । श्रीकीर्तिपालत पित्रा सन्दिष्ट मम यद्वच ॥६१
श्रीशत्रुञ्जयतीर्थस्य प्रासाद श्रेयसे मम । जीर्णशीर्णस्त्वयोद्धार्य इति मे कृत्यमस्त्यद ।६१
प्रभुपादैस्तथादिष्ट यात्राया प्रक्रमे तदा । देवतास्मृतिवेलाया कीर्तिपालप्रतिश्रुनात ॥६१
अस्मत्कोशधन लात्वा कार्या चैत्योद्धृतिस्त्वया । स आदेशो ममास्तु स्वै पितुरानृण्यहेतवे ॥६१
श्रुत्वेत्याह नृपोऽस्माक कार्येऽस्मिन्सोदरादरात् । एवमप्यस्त्वनुल्लङ्घ्यवचनस्त्व हि न सखे ॥६१
स्वामिन् ! महाप्रसादोऽयमित्युक्त्वा तत्र धीसख । विमलाद्रौ ययौ श्रेष्ठिव्यापारिपरिवारित ॥६१
तत्र तीर्थे प्रभु नत्वा नाभेय भक्तिनिर्भर । गुरूदरान्प्रदाप्यास्थात्प्रतिसीराश्च सर्वत ॥६१
विमानकानि मञ्चाश्च प्रादात्करभिकास्तथा । वाटिकानि चतुष्पाटी पट्टशाटकमण्डिता ॥६१
चञ्चच्चतुरकाश्चापि स्वर्विमानोपमद्युतीन् । अनेकभटसघातसकीर्णीकृतपर्वतान् ॥६१६॥ विशेषक॥
तत्र चैको वणिक् प्रत्यासन्नग्रामात्समागत । निधिर्दौस्थ्यस्य घृष्टातिपटच्चरयुग दधत ।६२
षट्द्रम्मनीविकस्तैश्च क्रीताज्यकुतप वहन् । कटके ग्राहकव्यूहबाहुल्याद् रूपकाधिकम् ॥६२
द्रम्म स चार्जयित्वाऽतितुष्ट श्रीवृषभप्रभुम् । कुसुमै रूपकक्रीतै पूजयामास भक्तित ॥६२
सप्त द्रम्मान् सप्त लक्षानिव ग्रन्थौ वहन्मुदा । वीक्षक सचिवाधीश तत्कण्टीद्वारमागमत ॥६२
ददृशे तेन मन्त्रीन्दुरीपज्जवनिकान्तरात । कूर्मेनेव ह्रदे बद्धजालशैवलरन्ध्रत ॥६२
स व्यमृक्षत्प्राच्यपुण्य-पापयोरेतदन्तरम् । पुरुषत्वे समेऽमुष्य मम चानीदृगाकृति ॥६२
स्वर्णमौक्तिकमाणिक्याभरणाशुदुरीक्ष्यरुक् । व्यापारि-व्यवहार्यस्त्रजीवि-व्रातपरिच्छद ॥६२
चक्रीव मुकुटाबद्धमण्डलाभ्यर्चितक्रम । श्रीनाभेयमहातीर्थजीर्णोद्धारमनोरथ ॥६२
अह तु स्वगृहिण्याप्यभिभूतो निर्धनत्वत । सन्ध्यावध्यपि सन्दिग्धाहारप्राप्तिर्मुधाश्रम ॥६२
कुतपोद्वहनक्लिष्टशिरा आशैशवादपि । एकरूपकलाभेन धन्यमन्यो दिन प्रति ॥६२
एव विचिन्तयन् द्वारपालेन परत कृत । श्रीमद्वाग्भटदेवेन मन्त्रिणादर्शि दैवत ॥६३
वणिगाहूयतामेषेत्युक्ते स द्वारपालक । दूरप्रयातमपि तमाह्वास्ताद्देशत प्रभो ॥६३
तत्पुर पर्षदन्त स ऊर्ध्वोऽस्थात्स्थाणुवत्स्थिर । अनभिज्ञ प्रणामादौ ग्रामणीत्वाद् ऋजुस्थिति ॥६३
कस्त्वमित्युक्तिभाजि श्रीमन्त्रिणि प्रकटाक्षरम् । प्रागुक्तनिजवृत्त स आख्यदक्षामदु खभृत ॥६३
मन्त्रीश्वर पुन प्राह धन्यस्त्व क्लेशतोऽर्जितम् । यद्रूपक व्ययित्वार्चा श्रीजिनस्य समाचर ॥६३
इत्युक्त्वा स करे धृत्वा स्वार्द्धासनि निवेशित । धर्मबन्धुर्भवान्मे तत्कार्यं किञ्चिद् ब्रवीहि भो ॥६३
सोऽस्य प्रभो प्रियैर्वाक्यै प्रीणितोऽचिन्तयन्मुदा । सम्प्रापित परा कोटिमनेनाकिञ्चनोऽप्यहम् ॥६३६
तदा साधर्मिकास्तत्र व्यवहारिनियोगिन । इष्टे तीर्थसमुद्धारेऽनन्तपुण्यभरार्थिन ॥६३
वहिका मण्डयामासुर्द्रव्यमीलनिकाकृते । प्रागमन्त्रिणस्ततो ज्येष्ठानुक्रमादभिधा व्यधु ॥६३८
दृष्ट्वा नामान्यसौ दध्यौ चेद् द्रम्मा सप्त मामका । कार्येऽस्मिन्नुपकुर्वन्ति तत्र धन्यो मया सम ॥६३६
वक्तुकामोऽसि किञ्चित् किमित्युक्ते मन्त्रिणा स च । प्राह सप्त गृहीत्वाऽमून् द्रम्मान् प्रीणय मा प्रभो ॥६४
तदाचारात्परानन्दमेदुर सचिवोऽवदत् । त्व मे धर्मसुहृद् भ्रातस्तत्तानर्पय सत्वरम् ॥६४१

विचार्य हृदि कार्याणि विचारक ! विधेहि तत् । इत्युक्त्वा विरराम।सौ द्विजव्यूहोऽतिधीरगीः ॥१४६॥
राजाऽप्याह न भूपाला अविमृश्य विधायिन । दर्शनाना तिरस्कारमविचार्य न कुर्वते ॥१५०॥
अनुयोज्या अमी चाऽत्र दद्युश्चेत् सत्यमुत्तरम् । तन्मे गौरविता एव न्याय एवात्र न सुहृत् ॥१५१॥
हेमाचार्योऽपि निर्ग्रन्थ सङ्गत्यागी महामुनि । असत्यं कथ ब्रूयाद् विचार्य तदिद बहु ॥१५२॥
एव भवन्त्विति प्रोचु. प्रवीणा ब्राह्मणा अपि । आजुहाव ततो राजा हेमचन्द्र मुनीश्वरम् ॥१५३॥
अपृच्छदथ माध्यस्थ्यात् सर्वसाधारणो नृप । शास्त्रे चार्हती दीक्षा किं गृहीता पाण्डवै. किमु ॥१५४॥
सूरिरप्याह शास्त्रे न इत्यूचे पूर्वसूरिभि. । हेमाद्रिगमन तेषा महाभारत मध्यत ॥१५५॥
परमेतन्न जानीमो ये न (त ?) शास्त्रेषु वर्णिता । त एव व्यासशास्त्रेऽपि कीर्त्यन्तेऽथ परेऽपरे ॥१५६॥
राजाह तेऽपि बहवः पूर्वं जाता. कथ मुने ! । अथावोचद् गुरुस्तत्र श्रूयतामुत्तर नृप ! ॥१५७॥
व्याससन्दर्भिताख्याने श्रीगाङ्गेय पितामह । युद्धप्रवेशकालेऽसावुवाच स्व परिच्छदम् ॥१५८॥
मम प्राणपरित्यागे तत्र सस्क्रियतां तनु. । न यत्र कोऽपि दग्ध प्राग्भूमिखण्डे सदा शुचौ ॥१५६॥
विधाय न्याय्यसंग्रामं मुक्तप्राणे पितामहे । विमृश्य तद्वचस्तेऽङ्गमुत्पाट्यास्य ययुर्गिरौ ॥१६०॥
अमानुषप्रचारे च शृङ्गे कुत्राऽपि चोन्नते । अमुञ्चन् देवतावाणी क्वापि तत्रोच्चयौ तदा ॥१६१॥ तथाहि-
अत्र भीष्मशत दग्ध पाण्डवानां शतत्रयम् । द्रोणाचार्यसहस्र तु कर्णसंख्या न विद्यते ॥१६२॥
एतद्वयमिहाकर्ण्य व्यमृशाम स्वचेतसि । बहूना मध्यत. केऽपि चेद् भवेयुर्जिनाश्रिता ॥१६३॥
गिरौ शत्रुञ्जये तेषा प्रत्यक्षा सन्ति मूर्तय । श्रीनासिक्यपुरे सन्ति श्रीमच्चन्द्रप्रभालये ॥१६४॥
केदारे च महातीर्थे कोऽपि कुत्राऽपि तद्व्रत. । बहूना मध्यतो धर्म तत्र ज्ञानं न न. स्फुटम् ॥१६५॥
स्मार्त्ता अप्यनुयुज्यन्ता वेदविद्याविशारदा । ज्ञानं कुत्रापि चेद् गङ्गा नहि कस्यापि पैतृकी ॥१६६॥
राजा श्रुत्वाह तत्सत्य वक्ति जैनर्षिरेष यत । अत्र ब्रूतोत्तर तथ्य यद्यस्ति भवता मते ॥१६७॥
अत्र कार्ये हि युष्माभिरेकं तथ्यं वचो ननु । अजल्पि यद्विचार्येव कार्यं कार्यं क्षमाभुजा ॥१६८॥
तथाहमेव कार्येऽत्र दृष्टान्तः समदर्शन. । समस्तदेवप्रासादसमूहस्य विधापनात् ॥१६६॥
उत्तरानुदयात् तत्र मौनमाशिश्रियस्तदा । स्वभावो जगतो नैव हेतुः कश्चिन्निरर्थकः ॥१७०॥
राज्ञा सत्कृत्य सूरिश्चाभाष्यत स्वागमोदितम् । व्याख्यानं कुर्वता सम्यग् दूषण नास्ति वोऽण्वपि ॥१७१॥
भूपेन सत्कृतश्चैव हेमचन्द्रप्रभुस्तदा । श्रीजैनशासनव्योम्नि प्रचकाशे गभस्तिवत् ॥१७२॥
राज्ञ सौवस्तिकोऽन्येद्यु रामिगाख्यो वृथा रुषम् । वहन् जजल्प सूरिं त निविष्ट राजपर्षदि ॥१७३॥
धर्मे व शमकारुण्यशोभिते न्यूनमेककम् । व्याख्याने कृतशृङ्गारास्त्रिय आयान्ति सर्वदा ॥१७४॥
भवन्निमित्तमकृत प्रासुक ददते च ता. । विकारसारम हार तद्ब्रह्म क्व स्थित हि व ॥१७५॥ यतः-
विश्वामित्रपराशरप्रभृतयो ये चाम्बुपत्राशना-स्तेऽपि स्त्रीमुखपङ्कज सुललितं दृष्ट्वैव मोह गता ।
आहार सुदृढ पुनर्बलकर ये भुञ्जते मानवा-स्तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेद् विन्ध्य प्लवेत्सागरे ॥१७६॥
अथ सूरिरुवाचात्र नेद विद्वज्जनोचितम् । अविमर्शपुरस्कार वच शुचि पुरोहित ! ॥१७७॥
यतो विचित्रा विश्वेऽस्मिन्प्राणिना चित्तवृत्तय । पशूनामपि चैतन्यवतां नृणा तु किं पुन ॥१७८॥ यत -
सिंहो बली हरिणशूकरमांसभोजी, संवत्सरेण रतिमेति किलैकवारम् ।
पारापत खरशिलाकणभोजनोऽपि, कामी भवत्यनुदिन वद कोऽत्र हेतु ॥१७६॥
श्रुत्वेति भूपति प्राहाविसाहसमिदं नृणाम् । य उत्तराय नाऽस्यास्य यद्वदति पर्षदि ॥१८०॥
इति भूपालसन्मान्यो वदान्य. सुकृतार्थिनाम् । श्रीहेमसूरि मज्ञज्ञे सङ्घोद्धारधुरन्धर ॥१८१॥
अथाऽन्यदा महाविद्वान् श्रीभागवतदर्शनी । देवबोधाख्यया साङ्क्रामिकसारस्वतोत्तर ॥१८२॥

प्रासादशुकनासे च भूपतिर्मोक्षिकाभिधम् । छिद्रं विमोचयामास विश्वोपकृतितत्पर ॥६७८॥
पूर्णमासीनिशीथे च रोगिप्रार्थनया तत । प्रकटीकृततच्छिद्रेऽमृतमस्त्रावि विम्बत ॥६७९॥
तच्क्ष रादिरोगाणामपहार जनेऽन्नोत् । उपचक्रे क एव हि नृपति सर्वतो मुखम् ॥६८०॥
प्रासादे सप्तहस्तैश्च यथावर्णैर्महीपति । द्वात्रिंशत विहाराणा साराणा निरमापयत् ॥६८१॥
द्वौ शुभ्रौ श्यामलौ द्वौ च द्वौ रक्तोत्पलवर्णकौ । द्वौ नीलौ षोडशाथ स्यु प्रासादा कनकप्रभा ॥६८२॥
चतुर्विंशतिचैत्येषु श्रीमन्तो ऋषभादय । सीमन्धरादयाश्चत्वारश्चतुर्षु निलयेषु च ॥६८३॥
श्रीरोहिणिश्च समवसरण प्रभुपादुका । अशोकविटपी चैव द्वात्रिंशत्स्थापिनासदा ॥६८४॥
द्वात्रिंशत पुरुषाणामनृणोऽस्मीति गर्भितम् । व्यजिज्ञपत्प्रभोर्भूप पूर्ववाक्यानुसारत ॥६८५॥
सपञ्चविंशतिशताङ्गुलमानो जिनेश्वर । श्रीमत्तिहुणपालाख्ये पञ्चविंशतिहस्तके ॥६८६॥
विहारेऽस्थाप्यत श्रीमान्नेमिनाथोऽपरैरपि । समस्तदेशस्थानेषु जैनचैत्यानचीकरत ॥६८७॥ युग्मम् ।

क्षणे धर्म्मोपदेशस्य सप्तव्यसनवर्णनम् । घनदौर्गत्यदुर्योनिभवभ्रमणकारणम् ॥६८८॥
उपादिक्षत्प्रभू राज्ञे स्वदेशेऽसौ न्यषेधयत । अचीकरदमारिं च पटहोद्घोषपूर्वकम् ॥६८९॥
पुरा देशभ्रमिस्थेन राज्ञा मृतवणिक्प्रिया । सपादलक्ष ऐक्षिष्ट खेदिता राजपूरुषै ॥६९०॥
तदा निषेध जग्राह तस्या एवानुकम्पया । निर्वीरास्वेन नो कार्यं राज्य चेन्मे भविष्यति ॥६९१॥
अधुनाऽत्र मृते क्वापि व्यवहारिणी विश्रुते । अपुत्रे तद्धन कान्तानीयतास्याधिकारिभि ॥६९२॥
स्वामी पप्रच्छ तान् कस्य विपुत्रश्रीर्भवेदियम् । तेऽवदन् रूढिरेषाऽस्ति तत्पुत्रस्य नृपस्य वा ॥६९३॥
स्मिन्वाऽऽह भूप पूर्वेषा राज्ञामेषाऽविवेकधी । यत्कौटिल्य विना वाच्या दोषा निजगुरोरपि ॥६९४॥
अशाश्वतश्रिय सर्वाधीनाया हेतवे नृपा । उत्तमाधममध्याना पुत्रतामनुयान्ति यत् ॥६९५॥
तस्मान्नाह भविष्यामि विश्वलोकस्य नन्दन । विश्वस्यानन्दतो भावी निर्वीराधन उज्झिते ॥६९६॥
मृतभर्तृसुताद्रव्यमित्यौज्झत भूपति सुधी । अमुक्त नल-रामाद्यैरपि प्राक्कालराजभि ॥६९७॥
प्रभुर्निजोपदेशना सत्यत्वात्परितोषवान् । भूपवृत्तलसद्वृत्तिस्थेम्ने वृत्तमुदाहरन् ॥६९८॥ तद्यथा—

नयन्मुक्त पूर्वैरघुनघुषनाभागभरत-प्रभृत्युर्वीनाथैः कृतयुगकृतोत्पत्तिभिरपि ।
विमुञ्चन् सतोषात्तदपि रुदतीवित्तमधुना, कुमारक्ष्मापाल ! त्वमसि महता मस्तकमणि ॥६९९॥
एव सान्त पुरो राजा प्रत्याख्यानी निरन्तरम् । राज्य बभारदेवेन्द्र इव स्फीत विकण्टकम् ॥७००॥

अन्येद्युर्जैनधर्मस्थ भूपाल प्रणिधिव्रजै । बलहीन द्विधा ज्ञात्वा कल्याणकटकाधिप ॥७०१॥
भूपोऽभ्यमित्र्यन्नाधात्प्रयाण बलकोटिभि । कुमारपालस्तज्ज्ञात्वा चारैश्चिन्तामवाप च ॥७०२॥
विज्ञप्त च प्रभूणा तत प्रभोर्जैनस्य मे किमु । अस्मात्पराभवो भावी प्राप्तशासनलाघव ॥७०३॥
प्रभुराह महाराज ! त्वा श्रीशासनदेवता । पान्ति जानाति लग्नस्तत्सप्तमे वासरे भवान् ॥७०४॥
श्रुत्वेति सचमत्कार ययौ भूप स्वमन्दिरम् । अध्यायद्रजनौ सूरिर्विधिना परमाक्षरम् ॥७०५॥
तदधिष्ठायकस्तस्यादेश साक्षाद्ददौ तदा । भाग्यात्कुमारपालस्य शत्रुरस्तगतोऽद्य स ॥७०६॥
सप्तमे वासरे चारैररिमृत्यो स वर्द्धित । नृपोऽवददहो ज्ञान मद्गुरोर्नापरत्र तत ॥७०७॥

अन्यदालिख्यमाने च स्वगुरुग्रन्थसञ्चये । प्राग्रीत्या शास्त्रविस्तारविधये निधये धियाम् ॥७०८॥
ताडपत्रत्रुटिर्जज्ञे शलभेभ्यो दवेन च । देशान्तरादनायातैस्तैश्चिन्ता भूपतेरभूत् ॥७०९॥
मद्गुरो करणे शक्तिर्लेखनेऽपि न मे पुन । शास्त्राणा व्रीडिता अद्य ततस्ते पूर्वजा मया ॥७१०॥
गत्वारामे निजे तालजाले स्थित्वाऽस्य पूजनम् । गन्धद्रव्यैर्व्यधाद्भूप सुगन्धकुसुमैस्तथा ॥७११॥
उवाच तृणराज ! त्व पूज्यो ज्ञानोपकारत । सर्वदर्शनिशास्त्राणामाधारस्त्व दलै कलै ॥७१२॥

निगद्यन्ते समस्याश्चामूदृश्यो विषमार्थका । एकपादा द्विपादा च त्रिपदी च बुधोचिता ॥२१५॥
किंशब्दबहुलास्त्वेना शून्यप्रश्ननिभा नृप । सदृक्षा भणितेरस्य निन्द्या ससदि धीमताम् ॥२१६॥ तथाहि-

(१) पौत्र सोऽपि पितामह ।

(२) सहस्रशीर्षा पुरुष सहस्राक्ष सहस्रपात् ।

(३) नभ कर्पूरपूराभ, चन्द्रो विद्रुमपाटल· । कज्जल क्षीरसङ्काश · · ·

वाचाऽनुपदमेवामी ता पुपूरे कवीश्वर । सिद्धसारस्वताना हि विलम्बकर्षिता कुत ॥२१७॥ तथाच-
मूर्तिमेका नमस्याम शम्भोरम्भोमयीमिमाम् । अब्जोत्पन्नतया यस्या (१) पौत्र सोऽपि पितामह ।
चलितश्चकितो भीतस्तव देव । प्रयाणके । (२) सहस्रशीर्षा पुरुष सहस्राक्ष सहस्रपात् ॥२१९।
(३) नभ कर्पूरपूराभ चन्द्रो विद्रुमपाटल । कज्जल क्षीरसङ्काश करिष्यति शनै शनै ॥२२०॥
इत्थ गोष्ठ्या महाविन्दुशिर कम्पकृता तदा । कियन्तमपि निर्वाह्य क्षण सौध ययौ नृप ॥२२१॥
अन्यदा श्री वसूरिजितवादक्षणे मुदा । दत्ते वित्ते नरेन्द्रेण लक्षसख्ये तदुद्धृते ॥२२२॥
अपरेणाऽपि वित्तेन जैनप्रासाद उन्नते । विधापिते ध्वजारोपविधानाख्यमहामहे ॥२२३॥
देवबोधोऽपि सत्पात्रं तत्राहूयत हर्षत । समायातेन भूपेन धर्मे ते स्यु समा यत ॥२२४॥
श्रीजयसिंहमेवाख्यमहेशभुवनाग्रत । आगच्छन् शङ्कर दृष्ट्वा शार्दूलपदमातनोत् ॥२२५॥

यत -एको रागिषु राजते प्रियतमादेहार्द्धहारो हरो

श्रीमद्राजविहारेऽसावाययावुत्सवोन्नते । दृष्ट्वाऽर्हन्त द्वितीय च पद प्रणिजगाद स ॥२२६॥

नीरागेषु जिनो विमुक्तललनासङ्गो न यस्मात्पर ।

ततस्तत्र महापर्षत्पर्षद्यान् बुधशेखरान् । सावहेल समीक्ष्याह स्वज्ञानाशावलिप्तधी ॥२२७॥ तद्यथा-
दुर्वारस्मरघस्मरोरगविषव्यासङ्गमूढो जन । शेष कामविडम्बितो न विषयान् भोक्तु न मोक्तु क्षम ॥
भद्रासने समासीन शक्तिप्रकटनाकृते । आह भूप नर कञ्चिदानायय्त पामरम् ॥२२९॥
राज्ञाऽऽदिष्ट प्रतीहारस्तत्क्षणादानयद् द्रुतम् । श्रीसिद्धाधीशकासारात् कञ्चित्कासारवाहकम् ॥२३०॥
भगवानपि पप्रच्छ किं ते परिचयोऽक्षरे । कियानप्यस्ति स प्राह स्वज्ञातिसदृश वच· ॥२३१॥
स्वामिन्न जन्म नो शिक्षे 'था जा' इत्यक्षरे विना । रक्ताक्षवाहे रक्ताक्षस्तत्पुच्छास्यगतागतान् ॥२३२॥
उवाच विदुषा नाथो देवबोधस्तदीयके । उत्तमाङ्गे कर न्यस्यामुष्य वाक् श्रूयतां जनै. ॥२३३॥
ततो दत्तावधानेषु सभ्येषु स्थिरवीरगी । काव्याभ्यासीव महिषीमहामात्योऽब्रवीदिदम् ॥२३४॥
त नौमि यत्करस्पर्शाद् व्यामोहमलिने हृदि । सद्य सपद्यते गद्यपद्यबन्धविदग्धता ॥२३५॥
इत्याकर्ण्य सकर्णेषूत्कर्णेष्वतिचमत्कृते । द्रव्यलक्ष ददौ सिद्धाधीश्वरोऽस्य कवीशितु ॥२३६॥
आप्राक् तदीयवैरस्यात श्रीपालोऽपि कृतिप्रभु । वृत्तान्यन्वेषयत्यस्यासूयागर्भमना मनाक् ॥२३७॥
अन्यदात्यद्भुत चौरैर्भगवच्चरित किल । महन्निन्द्यमवज्ञेय सम्यग् विज्ञातमौच्यत ॥२३८॥
अश्रद्धेय वच श्रद्धातव्यमस्मत्प्रतीतित । प्रत्यक्ष यद्दृशा दृष्टमपि सन्देहयेन्मन ॥२३९॥
वेदगर्भ सोमपीथी दग्ध्वा यज्ञोपवीतकम् । अपिबद् गाङ्गनीरेण प्राप्तभागवतव्रत ॥२४०॥
असौ यत्याश्रमामासाचार सारस्वते तटे । निशीथे स्वपरीवारवृत पिबति वारुणीम् ॥२४१॥
राजा बुध कवि शूरो गुरुर्वक्र शनैश्चर । अस्त प्रयाति वारुण्यासङ्गी चित्रमय तु न ॥२४२॥
अथाह कविराजोऽपि सम्भ्रमोद्भ्रान्तलोचन । कथ हि जाघटीत्येतच्छ्रद्दधेय नापि वीक्ष्य यत् ॥२४३॥
अस्य तुर्याश्रमस्थस्य भोगैर्व्यवहृतैरपि । नार्थस्तद्दर्शनाचारविरुद्धैस्तु किमुच्यते ॥२४४॥
तेऽप्यूचु स्वदृशाऽऽलोक्य वय ब्रूमो न चाऽन्यथा । यस्यादिशत तस्याथ वीक्षयाम प्रतिज्ञया ॥२४५॥

प्रासादशुकनासे च भूपतिर्मोक्षिकाभिधम् । छिद्रं विमोचयामास विश्वोपकृतितत्पर ॥६७८॥
पूर्णमासीनिशीथे च रोगिप्रार्थनया तत । प्रकटीकृततच्छिद्रेऽमृतमम्बावि विम्वत ॥६७९॥
तच्क्षरादिरोगाणामपहार जनेऽननोत् । उपचक्रे क एव हि नृपति सर्वज्ञो मुवम् ॥६८०॥
प्रासादे सप्तहस्तैश्च यथावर्णैर्महीपति । द्वात्रिंशत विहाराणा सारागा निरमापयत् ॥६८१॥
द्वौ शुभ्रौ श्यामलौ द्वौ च द्वौ रक्तोत्पलवर्णकौ । द्वौ नीलौ षोडशाथ स्यु प्रासादा कनकप्रभा ॥६८२॥
चतुर्विंशतिचैत्येषु श्रीमन्तो ऋषभादय । सीमन्धराद्याश्चत्वारश्चतुर्षु निलयेषु च ॥६८३॥
श्रीरोहिणिश्च समवसरण प्रभुपादुका । अशोकविटपी चैव द्वात्रिंशत्स्थापिनास्तदा ॥६८४॥
द्वात्रिंशत पुरुषाणामनृणोऽस्मीति गर्भितम् । व्यजिज्ञपत्प्रभोर्भूप पूर्ववाक्यानुसारत ॥६८५॥
सपञ्चविंशतिशताङ्गुलमानो जिनेश्वर । श्रीमत्तिहुणपालाख्ये पञ्चविंशतिहस्तके ॥६८६॥
विहारेऽस्थाप्यत श्रीमान्नेमिनाथोऽपरैरपि । समस्तदेशस्थानेषु जैनचैत्यानचीकरत ॥६८७॥ युग्मम् ।
क्षणे धर्म्मोपदेशस्य सप्तव्यसनवर्णनम् । घनदौर्गत्यदुर्योनिभवभ्रमणकारणम् ॥६८८॥
उपादिक्षत्प्रभू राज्ञे स्वदेशेऽसौ न्यषेधयत् । अचीकरदमारिं च पटहोद्घोषपूर्वकम् ॥६८९॥
पुरा देशभ्रमिस्थेन राज्ञा मृतवणिक्प्रिया । सपादलक्ष ऐक्षिष्ट खेदिता राजपूरुषै ॥६९०।
तदा निषेध जग्राह तस्या एवानुकम्पया । निर्वीरास्वेन नो कार्यं राज्य चेन्मे भविष्यति ॥६९१॥
अधुनाऽत्र मृते क्वापि व्यवहारिणी विश्रुते । अपुत्रे तद्धन कान्तानीयतास्याधिकारिभि ॥६९२॥
स्वामी पप्रच्छ तान् कस्य विपुत्रश्रीर्भवेदियम् । तेऽवदन् रूढिरेषाऽस्ति तत्पुत्रस्य नृपस्य वा ॥६९३॥
स्मिन्वाऽऽह भूप पूर्वेषा राज्ञामेषाऽविवेकधी । यत्कौटिल्य विना वाच्या दोषा निजगुरोरपि ॥६९४॥
अशाश्वतश्रिय सर्वाधीनाया हेतवे नृपा । उत्तमाधममध्याना पुत्रतामनुयान्ति यत् ॥६९५॥
तस्मान्नाह भविष्यामि विश्वलोकस्य नन्दन । विश्वस्यानन्दतो भावी निर्वीराधन उज्झिते ॥६९६॥
मृतभर्तृसुताद्रव्यमित्यौज्झत् भूपति सुधी । अमुक्त नल-रामाद्यैरपि प्राक्कालराजभि ॥६९७।
प्रभुर्निजोपदेश ना सत्यत्वात्परितोषवान् । भूपवृत्तलसद्वृत्तिस्थेम्ने वृत्तमुदाहरन् ॥६९८॥ तद्यथा–
नयन्मुक्त पूर्वैरघुनघुषनाभागभरत-प्रभृत्युर्वीनाथै कृतयुगकृतोत्पत्तिभिरपि ।
विमुञ्चन् सतोषात्तदपि रुदतीवित्तमधुना, कुमारक्ष्मापाल ! त्वमसि महता मस्तकमणि ॥६९९॥
एव सान्त पुरो राजा प्रत्याख्यानी निरन्तरम् । राज्य बभारदेवेन्द्र इव स्फीत विकण्टकम् ॥७००।
अन्येद्यु जैनधर्मस्थ भूपाल प्रणिधिव्रजै । बलहीन द्विधा ज्ञात्वा कल्याणकटकाधिप ॥७०१॥
भूपोऽभ्यमित्रयन्नाधात्प्रयाण बलकोटिभि । कुमारपालस्तज्ज्ञात्वा चारैश्चिन्तामवाप च ॥७०२॥
विज्ञप्त च प्रभूणा तत् प्रभोर्जैनस्य मे किमु । अस्मात्पराभवो भावी प्राप्तशामनलाघव ॥७०३॥
प्रभुराह महाराज ! त्वा श्रीशासनदेवता । पान्ति जानाति लग्नस्तत्सप्तमे वासरे भवान् ॥७०४॥
श्रुत्वेति सचमत्कार ययौ भूप स्वमन्दिरम् । अध्यायद्रजनौ सूरिर्विधिना परमाक्षरम् ॥७०५॥
तदधिष्ठायकस्तस्यादेश साक्षाद् ददौ तदा । भाग्यात्कुमारपालस्य शत्रुरस्तगतोऽस्य स ॥७०६॥
सप्तमे वासरे चारैररिमृत्यो स वर्द्धित । नृपोऽवददहो ज्ञान मद्गुरोर्नापरत्र तत ॥७०७॥
अन्यदालिख्यमाने च स्वगुरुग्रन्थसञ्चये । प्राप्रीत्या शास्त्रविस्तारविधये निधये धियाम् ॥७०८॥
ताडपत्रत्रुटिर्जज्ञे शलभेभ्यो दवेन च । देशान्तरादनायातैस्तैश्चिन्ता भूपतेरभूत् ॥७०९॥
मद्गुरो करणे शक्तिर्लेखनेऽपि न मे पुन । शास्त्राणा व्रीडिता अद्य ततस्ते पूर्वजा मया ॥७१०॥
गत्वारामे निजे तालजाले स्थित्वाऽस्य पूजनम् । गन्धद्रव्यैर्व्यधाद्भूप सुगन्धकुसुमैस्तथा ॥७११॥
उवाच तृणराज ! त्व पूज्यो ज्ञानोपकारत । सर्वदर्शनिशास्त्राणामाधारस्त्व दलै कलै ॥७१२॥

सिद्धीनामष्टसंख्यानां षड् ययुस्तस्य सद्गुणैः । अणिमा लघिमा च द्वे येऽपि प्रापतुरद्भुतम् ॥२८२॥
श्रीसिद्धाधीश्वरः मूर्त्तः देवेन्द्र इव तेजसा । सौधर्मौलिस्थकाकोल इव सिंहासने स्थितः ॥२८३॥
वर्णाश्रमगुरुः भूमावुपदेशयति स्म यः । निर्विवेकस्य तस्यैतन्माहात्म्यं ज्ञातताकृतम् ॥२८४॥
मया चाश्रावि तन्मन्त्रो यन्नोपद्रके हि न । राजपन्थ्य हेमचन्द्र विना न प्रतिहन्यते ॥२८५॥
तदसौ चेत्समायाति पूज्यपार्श्वे ततोऽपि न । मान्योऽसौ पतितस्यास्य वक्त्रं कः प्रेक्षते सुधीः ॥२८६॥
अथोचुर्गुरवो यूयं यज्जल्पत तदेव तत् । एकस्त्वस्य गुणो नम्तु बहुमानं परत्र न ॥२८७॥
दृश्यतेऽनन्यसामान्यं सांक्रामिकगुणोत्तरम् । सारस्वतं न कुत्रापि समयेऽस्मिन्नमुं विना ॥२८८॥
ततोऽसौ निर्विषः सर्प इव चेदागमिष्यति । म्लानमानः कुतो धीमान् लभ्याऽनेनापि सत्कृतिः ॥२८९॥
अथाह कविराजोऽपि गुणमेवेक्षते महान् । कृष्णवत्कृष्णमुक्तासु श्वदन्तधवलत्ववत् ॥२९०॥
स्वामिप्रायो मया प्रोचे पुनः पूज्यैर्बहुश्रुतैः । यथाविचारं कार्याणि कार्याणि गरिमोचितम् ॥२९१॥
अन्यदाभिनवग्रन्थगुम्फाकुलमहाकवौ । पट्टिकापट्टसंघाततलिख्यमानपदव्रजे ॥२९२॥
शब्दव्युत्पत्तयेऽन्योऽन्यं कृतोहापोहबन्धुरे । पुराणकविसन्दृब्धदृष्टान्तीकृतशब्दके ॥२९३॥
ब्रह्मोल्लासनिवासेऽत्र भारतीपितृमन्दिरे । श्रीहेमचन्द्रसूरीणामास्थाने सुस्थकोविदे ॥२९४॥
चतुरातुरपरिवारप्रेरितः स परेऽह्नि । अपराह्णे समागच्छत् प्रतीहारनिवेदितः ।२९५। चतुर्भिः कलापकम् ।
अभ्युत्तस्थुश्च ते देवबोधविद्वन्मतल्लिकाम् । मन्त्रोपविप्रभास्तव्यत्रह्निरुच्छोतनेजसम् ॥२९६॥
स्वागतं स्वागतं विद्वत्कोटीर जगती श्रुतः । कृतपुण्यं दिनं यत्र ज्ञानस्त्व लोचनातिथिः ॥२९७॥
तदलं क्रियतामर्द्धासनं न कलानिधे । मकरेष्वपि निर्व्यूढकलाप्रागल्भ्यभूषित ॥२९८॥
श्रुत्वेति देवबोधोऽपि दध्यौ मे मर्म वेत्त्यसौ । कथनात्कथनातीतकलानां वा न विद्महे ॥२९९॥
यथातथा महाविद्वानसौ भाग्यश्रियोर्जितः । अत्र कौ मत्सरः स्वच्छे बहुमानं शुभोदयः ॥३००॥
समयेऽद्यतने कोऽस्य समानः पुण्यविद्ययोः । गुणेषु कः प्रतिद्वन्द्वी तस्मात्प्राञ्जलतोचिता ॥३०१॥
अथोपाविशदेतेनानुमतेऽर्द्धासने कृती । मनसा मन्यमानश्च पुरुषा तां सरस्वतीम् ॥३०२॥
सविस्मयं गिरं प्राह सारस्वतोज्ज्वलाम् । पार्षद्यपुलकाङ्कूरवनाघनघनप्रभाम् ॥३०३॥ तथाहि-
पातु वो हेमगोपालः कम्बलं दण्डमुद्वहन् । षड्दर्शनपशुग्रामं चारयन् जैनगोचरे ॥३०४॥
व्याधूतशिरसः श्लोकमेनं सामाजिका हृदा । श्रुत्वा सत्यार्थपुष्टिं च तेऽतुलं विस्मयं दधुः ॥३०५॥
ततः श्रीपालसाकाद्यैर्यास्नेह्यत तेन स प्रभुः । आद्यो धर्मो व्रतस्थानां विरोधोपशमः खलु ॥३०६॥
अस्य वृत्तं ततः श्रीमज्जयसिंहनरेशितुः । ज्ञापयित्वा च तत्पार्श्वाद् द्रव्यलक्षमदापयत् ॥३०७॥
अन्यदर्शनरुद्धर्द्धिवद्वत्प्रणतितस्तदा । प्रक्षीणभाग्यशक्त्याशु स्थितिं स्वं सुविमृश्य सः ॥३०८॥
तत्रतत्रनृणो भूत्वा देवबोधो महामतिः । तेन द्रव्येण गङ्गाया गत्वाऽसाध्नोत्परं भवम् ॥३०९॥ युग्मम् ।

अन्यदा सिद्धभूपालो निरपत्यतयार्दितः । तीर्थयात्रां प्रचक्रामानुपानत्पादचारतः ॥३१०॥
हेमचन्द्रप्रभुस्तत्र सहानीयत तेन च । विना चन्द्रमसं किं स्यान्नीलोत्पलमतन्द्रितम् ॥३११॥
द्विधा चरणचारेण प्रभुर्गच्छन्नदृश्यत । शनैर्यान् जीवरक्षार्थं मूर्तिमानिव संयमः ॥३१२॥
अर्थितैर्वाहनारोहे निषिद्धश्चरितस्थितेः । किञ्चिदूनो जडा यूयमिति तानाह सौहृदात् ॥३१३॥
प्राकृतेनोत्तरं प्रादाद् यद् वयं निजडा इति । राजा चमत्कृते दध्यावूचेऽसौ सजडा जडा ॥३१४॥
वयं तु सुधियः स्वीयमाचारं दधतो ननु । निजडा इत्यहो सूरेर्ध्वनिव्याख्यातिचातुरी ॥३१५॥
दिनत्रयं न मजग्मुर्नृपस्याध्वनि सोऽपि च । कुपितानिव विज्ञाय सान्त्वनाय तदागमम् ॥३१६॥
प्रतिसीरान्तरस्थानामाचामाम्लेन भुञ्जताम् । तामपावृत्य भूपालोऽपश्यत्तदशने विधिम् ॥३१७॥

सिद्धीनामष्टसंख्याना षड् ययुस्तस्य सद्गुणै । अणिमा लघिमा च द्वे पोप प्रापतुरद्भुतम् ॥२८२॥
श्रीसिद्धाधीश्वर मूर्त्त देवेन्द्रमिव तेजसा । सौधर्मौलिस्थकाकोल इव सिंहासने स्थित. ।२८३।
वर्णाश्रमगुरु भूमावुपदेशयति स्म य । निर्विवेकस्य तस्यैतन् मान्यावज्ञालताकरम् ॥२८४॥
मया चाश्रावि तन्मन्त्रो यत्पोपद्रके हि न । रानपुंस्य हेमचन्द्र विना न प्रतिहन्यते ॥२८५।
तदसौ चेत्समायाति पूज्यपार्श्वे ततोऽपि न । मान्योऽसौ पतितस्यास्य वक्त्र क प्रेक्षते सुधी ॥२८६॥
अथोचुर्गुरवो यूय यज्जल्पत तदेव तत । एकत्रास्य गुणे नस्तु बहुमान परत्र न ॥२८७॥
दृश्यतेऽनन्यसामान्यं सांक्रामिकगुणोत्तरम । सारस्वत न कुत्रापि समयेऽस्मिन्नमु विना ॥२८८॥
ततोऽसौ निर्विष सर्प इव चेदागमिष्यति । म्लानमान कुतो धीमान् लभ्याऽनेनापि सत्कृति ॥२८९।
अथाह कविराजोऽपि गुणमेवेक्षते महान् । कृष्णवत्कृष्णमुक्तासुश्वदन्तधवलत्वचन ॥२९०॥
स्वाभिप्रायो मया प्रोचे पुन पूज्यैर्बहुश्रुतै । यथाविचार कार्याणि कार्याणि गरिमोचितम् ॥२९१॥
अन्यदाभिनवग्रन्थगुम्फाकुलमहाकवौ । पट्टिकापट्टमवातलिख्यमानपदव्रजे ॥२९२॥
शब्दव्युत्पत्तयेऽन्योऽन्य कृतोहापोहबन्धुरे । पुराणकविसन्दृब्धदृष्टान्तीकृतशब्दके ॥२९३॥
ब्रह्मोल्लासनिवासेऽत्र भारतीपितृमन्दिरे । श्रीहेमचन्द्रसूरीणामास्थाने सुस्थकोविदे ॥२९४॥
चतुरातुरपरिवारप्रेरित स परेद्यवि । अपराह्णे समागच्छत प्रतीहारनिवेदित ।२९५। चतुर्भि कलापकम् ।
अभ्युत्तस्थुश्च ते देवबोधविद्वन्मतल्लिकाम् । मन्त्रोपविप्रभास्तव्यत्रहिरच्छोतनेजसम् ॥२९६॥
स्वागत स्वागत विद्वत्कोटीर जगती श्रुत । कृतपुण्य दिन यत्र जातस्त्व लोचनातिथि ॥२९७॥
तदल क्रियतामद्यार्द्धासन न कलानिधे ।। मकरदेष्वपि निर्व्यूढकलाप्रागल्भ्यभूषित । ॥२९८॥
श्रुत्वेति देवबोधोऽपि दध्यौ मे मर्म वेत्त्यसौ । कथनात्कथनातीतकलानो वा न विद्महे ॥२९९॥
यथातथा महाविद्वानसौ भाग्यश्रियोर्जित । अत्र को मत्सर. स्वच्छे बहुमान शुभोदय ॥३००॥
समयेऽद्यतने कोऽस्य समान पुण्यविद्ययो । गुणेषु क प्रतिद्वन्द्वी तस्मात्प्राञ्जलतोचिता ॥३०१॥
अथोपाविशदेतेनानुमतेऽर्द्धासने कृती । मनसा मन्यमानश्च पुरुषा ता सरस्वतीम् ॥३०२॥
सविस्मय गिर प्राह सारम्भास्वतोज्ज्वल । पार्षद्यपुलकाङ्कूरवनाघनघनप्रभाम् ॥३०३॥ तथाहि-
पातु वो हेमगोपाल कम्बल दण्डमुद्वहन् । षड्दर्शनपशुग्राम चारयन् जैनगोचरे ॥३०४॥
व्याधूतशिरस श्लोकमेन सामाजिका हृदा । श्रुत्वा सत्यार्थपुष्टिं च तेऽतुल विस्मय दधु ॥३०५॥
तत श्रीपालसाकार्य्यास्नेह्यत तेन स प्रभु । आद्यो धर्मो व्रतस्थाना विरोधोपशम खलु ॥३०६।
अस्य वृत्त तत श्रीमज्जयसिंहनरेशितु । ज्ञापयित्वा च तत्पार्श्वाद् द्रव्यलक्षमदापयत् ॥३०७।
अन्यदर्शनलब्धर्द्धिबद्धलक्षणतितस्तदा । प्रहीणसाम्यशक्त्यायु स्थितिं स्व सुविमृश्य स ॥३०८॥
तत्रतत्र नृणो भूत्वा देवबोधो महामति । तेन द्रव्येण गङ्गाया गत्वाऽसाध्नोत्पर भवम् ॥३०९॥ युग्मम् ।
अन्यदा सिद्धभूपालो निरपत्यतयार्दित । तीर्थयात्रा प्रचक्राम्ानुपानत्पादचारत ॥३१०॥
हेमचन्द्रप्रभुस्तत्र सहानीयत तेन च । विना चन्द्रमस किं स्यान्नीलोत्पलमतन्द्रितम् ॥३११॥
द्विधा चरणचारेण प्रभुर्गच्छन्नदृश्यत । शनैर्यान् जीवरक्षार्थ मूर्तिमानिव सयम ॥३१२॥
अर्थितैर्वाहनारोहे निषिद्धश्चरितस्थितै । किञ्चिद् नो जडा यूयमिति तानाह सौहृदात ।३१३॥
प्राकृतेनोत्तर प्रादाद् यद् वय निजडा इति । राजा चमत्कृते दध्यावूचेऽसौ सजडा जडा ॥३१४॥
वय तु सुधिय स्वीयमाचार दधतो ननु । निजडा इत्यहो सूरेर्ध्वनिव्याख्यातिचातुरी ॥३१५॥
दिनत्रय न मजग्मुर्नृपस्याध्वनि सोऽपि च । कुपितानिव विज्ञाय सान्त्वनाय तदागमम् ॥३१६॥
प्रतिसीरान्तरस्थानामाचामाम्लेन भुञ्जताम् । तामपावृत्य भूपालोऽपश्यत्तदशने विधिम् ॥३१७॥

अनाकुल गणी प्रोचे हेमसूरिस्तवाङ्गणे । आयासीदतिदूरेण पादचारेण कष्टभू ॥७४९॥
अभ्युत्थानादिका पूजा कर्तुं समुचिता तव । एषोऽर्चितो यत सर्वै पीठैर्जालन्धरादिभि ॥७५०॥
एव वदत एवास्य चलच्चञ्चलकुण्डला । पुर श्रीसैन्धवीदेव्यस्थाद्योजितकरद्वया ॥७५१॥
आतिथ्यमतिथीना नो विधेहि विबुधेश्वरि । अम्बड मोचय स्वीयगरित्राराद् बलादपि ॥७५२॥
श्रुत्वेति सद्गुरोर्वाक्य प्राह सा परमर्थ्यताम् । सहस्रधाविभक्तश्च स पर योगिनीगणै ॥७५३॥
गण्यथाह महाक्षेपादित्थमाग्यस्तु चेत्तव । व्यावृत्य निजके स्थाने उपवेष्टु समर्थता ॥७५४॥
प्रभो श्रीहेमचन्द्रस्य दीयता मानमद्भुतम् । ततो यथोभयो रूपमवतिष्ठेत मण्डले ॥७५५॥
इत्याकर्ण्य भयोद्भ्रान्ता देवी शब्द दधौ गुरुम् । यदाहूत सूरीवर्गोऽमुञ्चदहाय मन्त्रिणम् ॥७५६॥
प्रदापयामि वाचो व किं देव्येत्युदिते सति । ब्रह्मादिव गिमरास्था का परब्रह्मनिधे प्रभो ॥७५७॥
भवत्या प्राभृत किञ्चिद्विधास्याम पुन प्रगे । विसृज्येति सुरीं स्थान स्व ययौ प्रभुरप्यत ॥७५८॥
श्रीमदम्बडमन्त्रीन्दोर्निद्रा रात्रौ तदाययौ । प्रात साहस्रिक भोग स श्रीदेव्या व्यधापयत् ॥७५९॥
इत्थ श्रीसैन्धवीदेव्या प्रभुभिर्मोचितोऽम्बड । श्रीमत्सुव्रतचैत्यस्य जीर्णोद्धारमकारयत् ॥७६०॥
हस्त द्वादशक चैत्यमप्रतिच्छन्दघाटभृत् । अनेकदेववेश्माढ्य बभौ हेमाद्रिकूटवत् ॥७६१॥
ध्वजारोपोत्सव तत्राकारयत्सचिवाग्रणी । त समीदयाशिष प्रादाद् गुरुस्तुष्टिभरैर्गुरु ॥७६२॥ तथा हि-
कि कृतेन न यत्र त्व, यत्र त्व तत्र क कलि । कलौ चेद्भवतो जन्म, कलिरस्तु कृतेन किम् ॥७६३॥
तज्जयाचन्द्रसूर्य त्व निजवश्यमनोरथान् । पूरयन् चूरयन्नन्तर्बहि शात्रवमण्डलम् ॥७६४॥
तमापृच्छ्य समागत्य स्वस्थाने भूपतिं प्रभु । प्रधानायु प्रदानेन विदधे मेदुर मुदा ॥७६५॥
दुस्साधसाधिका यस्य गुरोरीदृगमानुपी । शक्तिस्तत्कृतपुण्यत्व मन्येवेति नृपोऽवदत ॥७६६॥
अन्येद्यु रुपदिष्टे च सम्यक्त्वे सघसाक्षिकम् । राजा गृहीते गुरुभिर्गाथामेना स जल्पित ॥७६७॥तथा हि-
तुम्हाण किंकरो ह तुम्हे नाहा भवोयहिगयस्स । सयलधणाइसमेओ मइँ तुम्ह समप्पिओ अप्पा ॥७६८॥
व्याख्यातायामथैतस्यामर्थं सत्यापयन्नृप । राज्य समर्पयामास जगद्गुरवस्तत ॥७६९॥
निस्सङ्गाना निरीहाणा नार्यो राज्येन नो नृप । आपिबाम कथ भोगान् वान्नाननुचित ह्यद ॥७७०॥
एव विवादसबाधे दानाग्रहणकारणे । गुरु-भूपालयोर्मन्त्री वैशिष्ठ्यमकरोदिदम् ॥७७१॥
सर्वाणि राजकार्याणि कार्याण्यश्रावितानि न । अत पर प्रभो राज्ये भूयादनुमत ह्यद ॥७७२।
प्रतिपन्ने तत श्राद्धव्रतमद्ध्यानहेतवे । भूपस्याऽध्यात्मतत्त्वार्थावगमाय च स प्रभु ॥७७३॥
यो ग शा स्त्र सुशास्त्राणा शिरोरत्नसम व्यधात । अध्याप्य त स्वय व्यक्त तत्पुरश्च व्यचारयत् ।युग्मम्।
जग्राह नियम राजा दर्शनी जिनदर्शने । यादृशस्तादृशो वा मे वन्द्यो मुद्रैव भूयते ॥७७५॥
चतुरङ्गचमूमध्ये राजा राजाध्वना व्रजन् । गजारूढोऽन्यदाऽद्राक्षीज्जैनर्षि वेश्यया समम् ॥७७ ॥
क्षुरलूनशिर केश सितनवैकक्षकावृतम् । कस्तीरास्तीर्णसध्वानपन्नद्धारूढपादकम् ॥७७७॥
अतुल्यफणभृद्वल्लीदलवीटकहस्तकम् । आलम्बितभुजादण्डमसेऽस्या मन्दिराद् बहि ॥७७८॥ त्रिभिर्विशेषकम्।
कुम्भयोनेर्यस्य मूर्द्धान त ननाम महीपति । पृष्ठासनस्थितश्चक्रे नड्डूलनृपति स्मितम् ॥७७९॥
ददर्श वाग्भटामात्यस्तत्प्रभोश्च न्यवेदयत् । ततो राज्ञ पुर पूज्या इत्थ धर्मकथा व्यधु ॥७८०॥ तथा हि-
पासत्थाइ वदमाणस्स नेव कित्ती न निज्जरा होइ । कायकिलेस एमेव कुणइ तह कम्मबध वा ॥७८१॥
व्यमृशद् भूपति केनाऽप्यद्य वृत्त निवेदितम् । व्यजिज्ञपच्च पूज्याना शिक्षाभिर्निर्वृतोऽस्म्यहम् ॥७८२॥
इतश्च पृथिवीशक्रनमस्कारमुदीक्ष्य स । दध्याववध्यामचैतन्य का मत्यस्ति नमस्यता ॥७८३॥
विध्वस्तवीतरागाज्ञे त्यक्तभोगपुनर्ग्रहे । अदृश्यास्ये प्रतिज्ञाया भ्रष्टे दुर्माह्यनामनि ॥७८४॥ युग्मम् ।

इतः श्रीकर्णभूपालबन्धुः क्षत्रशिरोमणिः । देवप्रसाद इत्यासीत्प्रासाद इव सम्पदाम् ॥३५४॥
तत्पुत्रः श्रीत्रिभुवनपालः पालितसद्व्रतः । कुमारपालस्तत्पुत्रो राज्यलक्षणलक्षितः ॥३५५॥
अथ श्रीसिद्धभूमीशः पुत्राशाभङ्गदुर्मनाः । आह्वाययत दैवज्ञान् परमज्ञानिमनिभान् ॥३५६॥
ग्रहचारायसद्भाव-प्रश्नचूडामणिक्रमैः । केवलीभिश्च सवाद्य तेऽप्याचख्युः प्रभो पुरः ॥३५७॥
स्वामिन् कुमारपालोऽसौ युष्मद्बन्धुसुतो ध्रुवम् । अलंकरिष्यते राज्यमनुत्वा न चलेदिदम् ॥३५८॥
प्रतापाक्रान्तदिक्चक्रोऽनेकभूपालजित्वरः । भविष्यति पुनस्तस्य पश्चाद्राज्यं विनङ्क्ष्यति ॥३५९॥
श्रुत्वेति भूपतिर्मौन्य भवनीति विदन्नपि । तत्र द्वेषं परं बोढा वधेच्छुरभवत्तत ॥३६०॥
कथंचिदिति स ज्ञात्वाऽपसृत्य शिवदर्शने । जटामुकुटवान् भस्मोद्धूलनसत्तगो दधे ॥३६१॥
विज्ञप्तमन्यदा चारैर्जटाधरशतत्रयम् । अभ्यागादस्ति तन्मध्ये भ्रातृपुत्रो भवद्रिपुः ॥३६२॥
भोजनाय निमन्त्र्यन्ते ते सर्वेऽपि तपोधनाः । पादयोर्यस्य पद्मानि ध्वजश्छत्रं स ते द्विषन् ॥३६३॥
श्रुत्वेत्याह्वाय्य तान् राजा तेषां प्राक्षालयत् स्वयम् । चरणौ भक्तितो यावत्तस्याप्याप्यवसरोऽभवत् ॥३६४॥
पद्मेषु दृश्यमानेषु पदयोर्दृष्टिसंज्ञया । ख्यातेऽत्र तेर्नृपो ज्ञानात्कुमारोऽपि बुबोध तत् ॥३६५॥
ततः कमण्डलुं हस्ते कृत्वा प्रश्रावदम्भतः । बहिर्भूय नृपावासादुपलक्षणभीर्दिने ॥३६६॥
वसतिं हेमसूरीणां त्रस्तः स्मरतवपुर्बलः । आययौ भूपतो रक्ष रक्षेत्याख्यन् स्खलद्गिरा ॥३६७॥
प्रभुभिः साहसात् ताडपत्रलक्षान्तराहितः । राजमर्त्यैः पदायातैर्व्यालोकि नतु चेक्षितः ॥३६८॥-युग्मम् ।
निश्याकृष्य प्रेषितश्च प्रायात् देशान्तरं पुनः । प्राग्वदागाद् साहसिक्यमहो भाग्यस्य लक्षणम् ॥३६९॥
तथा निर्गत्य तस्मात्तु वामदेवतपोवने । तत्तीर्थस्नानदम्भेन जटी प्रायादपायभीः ॥३७०॥
आलिनाम्नः कुलालस्य यावदालयसन्निधौ । आययौ पृष्ठतो लग्नान् सादिनस्तावदैक्षत ॥३७१॥
आह प्रजापते ! रक्ष शरणागतवत्सल ! मा सकटादतो रक्ष तन्त्रमागतमेव यत् ॥३७२॥
स च सञ्चितनिवाहकोणे संस्थाप्य तं तदा । मुमोच वह्निमह्नाय विमुच्य तदवस्थितिम् ॥३७३॥
स तुरङ्गिभिरायातैः पृष्टः कोऽपि जटाधरः । तत्रायातो नवाऽजल्पि न व्यग्रत्वान्मयैक्ष्यत ॥३७४॥
निर्विद्यानादराच्चैते व्यावृत्य प्रययुस्तदा । रात्रौ सोऽपि बहिः कृष्टस्तेन देशान्तरेऽचलत् ॥३७५॥
स्तम्भतीर्थपुरं प्रायाद् द्विजेनानुगतस्ततः । तदा वोसरिणा श्रीमान्कुमारः स्फारवृत्तभूः ॥३७६॥
श्रीमालवंशभूस्तत्र व्यवहारी महाधनः । समस्त्युदयनाभिख्यस्तस्य पार्श्वेऽगमद् बटु ॥३७७॥
एकान्तेऽस्य स्ववृत्तान्ते तेन सत्ये निवेदिते । अवादीद् वणिजां श्रेष्ठ किंचित्प्रार्थितशम्बलः ॥३७८॥
अनभीष्टो महीशस्य यस्तेनार्थो न नः स्फुटम् । तद् द्रागपसरेह त्वां मा द्राक्षुः राजपूरुषाः ॥३७९॥
बटो ! स्वामिनमात्मीयं पुरः सीमां प्रहापय । एवमुक्तः स नैराश्यं प्राप प्राप्तभयोदय ॥३८०॥
श्रुत्वा कुमारपालोऽपि तत्पुरं प्राविशन् निशि । बुभुक्षाक्षामकुक्षिः सन् चतुर्थे लङ्घने तदा ॥३८१॥
सूरिः श्रीहेमचन्द्रश्च चतुर्मासकमास्थितः । तदा चारित्रसज्ज्ञानलब्धिभिर्गौतमोपमः ॥३८२॥
उद्यद्व्याख्यानलीलाभिर्वारिदस्येव वृष्टिभिः । शीतीकुर्वन् सदा भव्यमनोभूमिं शमिप्रभुः ॥३८३॥
कथंचिदपि तत्रागात्कुमारोऽपीक्षितश्च तैः । आकृत्या लक्षणैश्चायमुपालक्षि विचक्षणैः ॥३८४॥
चरासन्युपवेश्योच्चैः राजपुत्रास्त्व निर्वृतः । अमुनः सप्तमे वर्षे पृथ्वीपालो भविष्यसि ॥३८५॥
स प्राह पूज्यपादानां प्रसादेन भविष्यति । सर्वं कथं तु स प्राप्यः कालो निःकिंचनैः क्षुधा ॥३८६॥
द्वात्रिंशतमथ द्रम्मानस्य श्रावकपार्श्वतः । दापयित्वा पुनः प्राहुः शृण्वेकं नो वचः स्थिरम् ॥३८७॥
अद्यप्रभृति दारिद्र्यं नायाति तव सन्निधौ । व्यवहारैरमोन्योऽसि भाजनाच्छादनादिभिः ॥३८८॥
एवं भावीति चेद्राज्ये प्राप्ते मम कृतं विभो ! । अवलोक्यमिदानीं तु बहूक्तैः फल्गुभिः किमु ॥३८९॥

तथा लोलार्कचैत्यस्याग्रतः क्षेत्राधिपालये । अपश्यदामिषापूर्णं शराव तण्डकाधिप ॥८२१॥
तेन त्रिलोचनस्येव सहर्त्तु रनयस्पृशाम् । तत् त्रिलोचननाम्नश्च तलारक्षस्य दर्शितम् ॥८२२॥
असंख्यजनसचारानुपलब्धपदस्तत । अन्वेषयन्नुपाय स लेभे मतिमता वर ॥८२३॥
कुलालवृन्दमाकार्य प्रत्येक तदुदैक्षयत् । शराव घटित केन पप्रच्छेति कुशाग्रधी ॥८२४॥
एकस्तेषामभिज्ञाय व्याहरद् घटित मया । अचीकरच्च तं लक्षो नड्डूलेशस्थगीधर ॥८२५॥
विसृज्य तान् महीशाय तलारक्षो व्यजिज्ञपत् । व्याजह्रे तत्क्षणान्नाथ( ) केल्हण मण्डलेश्वरम् ॥८२६॥
आज्ञाभङ्गापराधेन देश श्रीकरणे त्वया । उद्गण्यता स चावादीन्न जाने किमिद प्रभो ॥८२७॥
द्वारावलगकाख्याते स्थगीशचरिते तत । लक्ष विलक्ष हत्वा च तोप चक्रे प्रभोरसौ ॥८२८॥
चैत्रमाघाश्वयुग्मासमहेष्वपि सुरीगण । अहिंसया मुद प्राप गुणे को मत्सर वदेत् ॥८२९॥
कर्पूरप्रमुखैर्भोगैर्बलिभिर्मोदकादिभि । तुष्टोऽसौ मद्य-मासेषु पिच्छिलेपु श्लथादर ॥८३०॥
शैवाचार्या अपि तदा मिथ्याधर्मेष्वनादृता । जटान्तः स्थापनाचार्यमवहन् कृतिकर्मणे ॥८३१॥
श्रीवीतरागमभ्यर्च्य परमेष्ठिनमङ्कृती । परावर्त्तन्त धर्म्मोऽपि राजार्च्ये क्रियते जनै. ॥८३२॥

चराचरवपुर्भृतामभयदानदानेश्वरो, जडाखिलदृगापगाचरणरत्नराशिप्रद ।
लसन्निजपरागमाप्रकटतत्त्वपारगम, शशाङ्ककुलशेखरो जयति हेमचन्द्रप्रभु ॥८३३॥

व्याकरण पञ्चाङ्ग प्रमाणशास्त्र प्रमाणमीमासा । छन्दोऽलङ्कृतिचूडामणी च शास्त्रे विभुर्व्यधित ॥८३४॥
एकार्थानेकार्था देश्या निघण्ट इति च चत्वार । विहिताश्च नामकोशा शुचिकवितानद्युपाध्याया ॥८३५॥
त्र्युत्तरषष्टिशलाकानरेत्तिवृत्त गृहिव्रतविचारे । अध्यात्मयोगशास्त्र विदधे जगदुपकृतिविधित्सु ॥८३६॥
लक्षण-साहित्यगुण विदधे च द्व्याश्रय महाकाव्यम् । चक्रे विंशतिमुच्चै सवीतरागस्तवाना च ॥८३७॥
इति तद्विहितग्रन्थसख्यैव न हि विद्यते । नामापि न विदन्त्येषा मादृशा मन्दमेधस ॥८३८॥
व्याख्यायामन्यदा श्रीमच्छत्रुञ्जयगिरे स्तवम् । श्रीमद्रैवतकस्यापि प्रभुराह नृपाग्रत ॥८३९॥
उपदेशप्रदीपेन विध्वस्तान्तस्तमा नृप । तीर्थयात्रा ततश्चक्रे शक्रेभोज्ज्वलकीर्त्तिभृत् ॥८४०॥
प्रयाणै पञ्चगव्यूतै पादचारेण सोऽन्यदा । अनुपानत्कगुरुणा प्रापोपवलभि द्रुतम् ॥८४१॥
तत्रास्ति स्थाप ईर्ष्यालुरिति भूमिधरद्वयम् । तदधो गुरव प्रीता प्रातरावश्यक दधु ॥८४२॥
भूपतिस्तत्र चागत्य वासनामोदमेदुर । प्रभुत्वान्निर्जितात्मीयगुरुनिष्ठाविशिष्टधी ॥८४३॥
प्रणनाम प्रभो पादौ प्रक्रान्तेऽत प्रयाणके । प्रासादौ कारयामास भूपोऽत्र गुरुभक्तित ॥८४४॥
श्रीनाभेय-त्रयोविंशजिनबिम्बे विधाप्य च । प्रतिष्ठाप्य प्रभो पार्श्वादस्थापयत चात्र स ॥८४५॥
विमलाद्रौ जिनाधीश नमश्चक्रेऽतिभक्तित । निजानुमानतोऽभ्यर्च्य ययौ रैवतकाचलम् ॥८४६॥
दुरारोह गुरु पद्यभावाद् दृष्ट्वा स वाग्भटम् । मन्त्रिण तद् विधानाय समादिक्षत स ता दधौ ॥८४७॥
तत्र छत्रशिलाशङ्कावशाच्छैलाधिरोहणम् । राज्ञो विघ्नाय तदधोभूय श्रीनेमिमार्चयत् ॥८४८॥
ततो व्यावृत्य स प्राप नगर स्व नराधिप । जैनयात्रोत्सव कृत्वा मेने स्व पुण्यपूरितम् ॥८४९॥
शर-वेदेश्वरे(११४५)वर्षे कार्तिके पूर्णिमानिशि । जन्माऽभवत्प्रभोर्व्योम बाण-शम्भौ(११५०)व्रत तथा ॥८५०॥
रस-षट्केश्वरे(११६६) सूरिप्रतिष्ठा समजायत । नन्द द्वय-रवौ वर्षे (१२२९)ऽवसानमभवत्प्रभो ॥८५१॥
इत्थ श्रीजिनशासनाभ्रतरणे श्रीहेमचन्द्रप्रभो-रज्ञानान्धतम प्रचारहरण मात्रादृशा मादृशाम् ।
विद्यापङ्कजिनीविकाशि विदित राज्ञोऽतिवृद्ध्यै स्फुरद्, वृत्त विश्वविबोधनाय भवताद् दुष्कर्मभेदाय च ॥८५२॥
श्रीचन्द्रप्रभसूरिपट्टसरसीहसप्रभ श्रीप्रभा-चन्द्र सूरिरनेन चेतसि कृते श्रीरामलक्ष्मीभुवा ।
श्रीपूर्वर्षिचरित्ररोहणगिरौ श्रीहेमचन्द्रप्रथा,श्रीप्रद्युम्नमुनीन्दुना विशदित श्रृङ्गो द्विकद्विप्रम ॥८५३॥” इति।

तस्य वाग्भटदेवोऽस्ति मन्त्री मन्त्रीव नाकिनाम् । नीत्या क्षत्रेण मन्त्रेणोदयनस्याङ्गभूस्तदा ॥४२६॥
अपृच्छत्तं नराधीश सङ्कटेऽस्मिन्समागते । अस्ति सप्रत्यय कश्चित्सुरो यक्षोऽथवा सुरी ॥४२७॥
प्रातिहार्यप्रभावेण भवामो जितकाशिन. । यस्य तस्य मनोऽत्रश्य वश्यं नो भवतु ध्रुवम् ॥४२८।
व्यजिज्ञपदथ श्रीमान् वाग्भटस्तनय वाग्भट । अवधार्य वच. सावधानेन प्रभुणा मम ॥४२९॥
यदा श्रीस्वामिपादानामादेशात्प्रभुसोदर । कीर्तिपालो महाबाहु सुराष्ट्रामण्डल ययौ ॥४३०॥
तद्देशाधीश्वर. निग्रहीतु नवघनाभिधम् । अनेकशो विग्रहैश्च खेदिताद्यनराधिपम् ॥४३१॥
तदा मज्जनकस्तत्र श्रीमानुदयनाभिध । स्तम्भतीर्थपुरावासी जज्ञे सैन्यबलप्रद ॥४३२॥
अन्यदा गच्छता तत्र पुण्डरीकाद्रिरुद्धुर । दृष्टव्यस्याविधेर्न्द्रष्टस्तेन दुष्प्राप्यदर्शन ॥४३३॥
आचख्ये च निजेशस्य तस्य माहात्म्यमद्भुतम् । धर्मश्रद्धाश्रिताश्चर्यादथ सोऽप्यारुरोह तम् ॥४३४॥
श्रीमद्युगादिनाथं च नमस्कृत्यातिभक्तित । मेने कृतार्थमात्मान स ध्यानादनुज प्रभो ॥४३५॥
प्रासाद आलुलोके च तेना सोऽप्यतिजर्जर । तत श्रीकीर्तिपालेन प्रोचेऽसौ भाण्डशालिक ॥४३६॥
प्रासादस्यास्य नश्चेतस्युद्दिधीर्षा स्थिता ध्रुवम् । जित्वामु विग्रह प्रत्यावृत्तै सर्वे विधास्यते ॥४३७॥
पर्वतादवतीर्याथ प्रतस्थे पुरतोऽधिप । अभ्यमित्रीणता प्राप नृप सोऽपि मदोद्धत ॥४३८॥
तत आसीन्महायुद्ध कुन्ताकुन्ति गदागदि । सैन्ययोरुभयो शौर्यावेशादज्ञातवातवान् ॥४३९॥
तस्मिन्नुदयनोऽपि स्वस्वामिन पुरत स्थित । प्रजह्रे प्रहृतश्चासौ न्यपतद् भूमिमण्डले ॥४४०॥
युद्धे जिते हते शत्रौ शोध्यमाने रणे प्रभु । निरीक्ष्योदयन श्वासावशेषायुषमूचिवान् ॥४४१॥
अनित्यो भौतिको देह स्थिरेण यशसा त्वया । व्यक्रीयत स्फुट साधु वणिग्व्यवहृतिं कट ॥४४२॥
किंचिद्यदस्ति ते चित्ते शल्य खुरखुरायितम् । ब्रूहि तद्विदधानोऽह किंचित्ते स्यामृणातिग ॥४४३॥
अथ स प्राह नाथ स्मो वय स्वामिवशा. स्थिता । तत्कार्यादपर नैव जानीमोऽनन्यचेतना ॥४४४॥
श्रीमत्सिद्धाधिपाद् बिभ्यद्भ्रवद्बन्धु क्षितीश्वर । बटुमेकं समीपे मे वैपीत्स न्यक्कृतो मया ॥४४५॥
श्रीमान् कुमारपालोऽपि क्षूण मयि तदा घनम् । अधारयिष्यदत्युग्रमूरीचक्रे मयापि तत् ॥४४६॥
इदानीं तु त्वदहीणामग्रेऽसूनमुञ्चतो मम । उभौ लोकौ निजाम्नाय श्रुत शील पवित्रितम् ॥४४७॥
मृत्यौ विप्रतिसारो नास्माक विज्ञापयामि तु । किंचिन्मन्नन्दनस्यास्य वाग्भटाख्यस्य कथ्यताम् ॥४४८॥
शत्रुञ्जयमहातीर्थे प्रासादस्य प्रतिश्रुत. । जीर्णोद्धारस्तत श्रेयोहेतुर्मे स विधीयताम् ॥४४९॥
ओमित्युक्त्वा तत. कीर्तिपालेनाङ्गीकृते तदा । परासुरभवत्तत्र श्रीमानुदयन शमी ॥४५०॥
कृते तत्रानृणो वस्तुरह स्यामधुना पुन । स्वा देवकुलिकामेका नगरान्तर्व्यधापयम् ॥४५१॥
तथाऽत्रैव पुरे वासी व्यवहारी महाधन । श्रीछड्डुक इत्याख्य श्रेष्ठी नवतिलक्षक ॥४५२॥
मन्मैत्र्या तेन चाकारि धर्मस्थानेऽत्र खत्तकम् । श्रीमत्तत्राजितस्वामिबिम्ब चास्थाप्यतामुना ।४५३॥
प्रतिष्ठित च श्रीहेमसूरिभिर्ज्ञानभूरिभि । तदीयहस्तमन्त्राणा माहात्म्यात्सकल ह्यभूत् ॥४५४॥
तत्रोपयाचित स्वामी चेदिच्छलि ततो ध्रुवम् । विजयोऽस्याभिधाऽपीदृगपरजितताकरी ॥४५५॥
इति विज्ञापना श्रुत्वा मामका नायको भुव. । विदधातु विचार्यैव ननु प्रभुपुरो मति ॥४५६।
विज्ञप्तेऽत्रावनीनेता ध्यातामात्यवच क्रम । ऊचे मन्त्रिन् ! भवद्वाक्यात् कार्यजात मया स्मृतम् ॥४५७॥
सखे ! शृणु यदा पूर्व वय सामान्यवृत्तय । स्तम्भतीर्थमगच्छाम दिनत्रयमुपोषिता ॥४५८॥
वोसरिबटुरस्माभि प्रैष्यतोदयनान्तिके । अकृतार्थस्ततश्चागात् तदाग स्फुरित न मे ॥४५९॥
एतेऽहो ! स्वामिनो भक्ता इति चेतस्यभून्मम । परेषु रोषण' स्वीयाभाग्यदर्शी कृती न स ॥४६०॥
तथा श्वेताम्बराचार्यो हेमसूरिर्मया तदा । प्रदोषसमयेऽदर्शि कल्पद्रुमसमः श्रिया ॥४६१॥

तथा लोलार्कचैत्यस्याग्रतः क्षेत्राधिपालये । अपश्यदामिषापूर्णं शराव तण्डकाधिप ॥८२१॥
तेन त्रिलोचनस्येव सहर्त्तुरनयस्पृशाम् । तत् त्रिलोचननाम्नश्च तलारक्षस्य दर्शितम् ॥८२२॥
असंख्यजनसंचारानुपलब्धपदस्तत. । अन्वेषयन्नुपाय स लेभे मतिमतां वर ॥८२३॥
कुलालवृन्दमाकार्य प्रत्येक तदुदैक्षयत् । शराव घटित केन पप्रच्छेति कुशाग्रधी ॥८२४॥
एकस्तेषामभिज्ञाय व्याहरद् घटित मया । अचीकरच्च त लक्षो नड्डूलेशस्थगीधर' ॥८२५॥
विसृज्य तान् महीशाय तलारक्षो व्यजिज्ञपत् । व्याजह्रे तत्क्षणान्नाथ( ) केल्हण मण्डलेश्वरम् ॥८२६॥
आज्ञाभङ्गापराधेन देश श्रीकरणे त्वया । उद्गण्यता स चावादीन्न जाने किमिद प्रभो ! ॥८२७॥
द्वारावलगकाख्याते स्थगीशाचरिते तत । लक्ष विलक्ष हत्वा च तोप चक्रे प्रभोरसौ ॥८२८॥
चैत्रमाघाश्वयुग्मासमहेष्वपि सुरीगण । अहिंसया मुद प्राप गुणे को मत्सर वदेत् ॥८२९॥
कर्पूरप्रमुखैर्भोगैर्बलिभिर्मोदकादिभि । तुष्टोऽसौ मद्य-मासेषु पिच्छिलेपु श्लथादर ॥८३०॥
शैवाचार्या अपि तदा मिथ्याधर्मेष्वनादृता । जटान्तः स्थापनाचार्यमवहन् कृतिकर्मणे ॥८३१॥
श्रीवीतरागमभ्यर्च्य परमेष्ठिनमस्कृती । परावर्त्तन्त धर्म्मोऽपि राजार्च्य. क्रियते जनै. ॥८३२॥

चराचरवपुर्भृतामभयदानदानेश्वरो, जडाखिलदृगापगाचरणरत्नराशिप्रद ।
लसन्निजपरागमाप्रकटतत्त्वपारगम, शशाङ्ककुलशेखरो जयति हेमचन्द्रप्रभु ॥८३३॥

व्याकरण पञ्चाङ्ग प्रमाणशास्त्र प्रमाणमीमासा । छन्दोऽलङ्कृतिचूडामणी च शास्त्रे विभुर्व्यधित ॥८३४॥
एकार्थानेकार्था देश्या निघण्ट इति च चत्वार । विहिताश्च नामकोशा शुचिकवितानद्युपाध्याया ॥८३५॥
त्र्युत्तरषष्टिशलाकानरेत्तिवृत्त गृहिव्रतविचारे । अध्यात्मयोगशास्त्र विदधे जगदुपकृतिविधित्सु ॥८३६॥
लक्षण-साहित्यगुण विदधे च द्व्याश्रय महाकाव्यम् । चक्रे विंशतिमुच्चै सवीतरागस्तवाना च ॥८३७॥
इति तद्विहितग्रन्थसख्यैव न हि विद्यते । नामापि न विदन्त्येषा मादृशा मन्दमेधस ॥८३८॥

व्याख्यायामन्यदा श्रीमच्छत्रुञ्जयगिरे स्तवम् । श्रीमद्रैवतकस्यापि प्रभुराह नृपाग्रत ॥८३९॥
उपदेशप्रदीपेन विध्वस्तान्तस्तमा नृप' । तीर्थयात्रा ततश्चक्रे शक्रेभोज्ज्वलकीर्त्तिभृत् ॥८४०॥
प्रयाणै पञ्चगव्यूतै पादचारेण सोऽन्यदा । अनुपानत्कगुरुणा प्रापोपवलभि द्रुतम् ॥८४१॥
तत्रास्ति स्थाप ईर्ष्यालुरिति भूमिधरद्वयम् । तदधो गुरव प्रीता प्रातरावश्यक दधु ॥८४२॥
भूपतिस्तत्र चागत्य वासनामोदमेदुर । प्रभुत्वान्निजितात्मीयगुरुनिष्ठाविशिष्टधी ॥८४३॥
प्रणनाम प्रभो पादौ प्रक्रान्तेऽत प्रयाणके । प्रासादौ कारयामास भूपोऽत्र गुरुभक्तित ॥८४४॥
श्रीनाभेय-त्रयोविंशजिनबिम्बे विधाप्य च । प्रतिष्ठाप्य प्रभो पार्श्वादस्थापयत चात्र स ॥८४५॥
वि द्रौ जिनाधीश नमश्चक्रेऽतिभक्तित । निजानुमानतोऽभ्यर्च्य ययौ रैवतकाचलम् ॥८४६॥
दुरारोह गुरु पद्यमावाद् दृष्ट्वा स वाग्भटम् । मन्त्रिण तद् विधानाय समादिक्षत स ता दधौ ॥८४७॥
तत्र छत्रशिलाशङ्कावशाच्छैलाधिरोहणम् । राज्ञो विघ्नाय तदधोभूस्थ श्रीनेमिमार्चयत् ॥८४८॥
ततो व्यावृत्य स प्राप नगर स्व नराधिप । जैनयात्रोत्सव कृत्वा मेने स्व पुण्यपूरितम् ॥८४९॥
शर-वेदेश्वरे(११४५)वर्षे कार्तिके पूर्णिमानिशि । जन्माऽभवत्प्रभोर्व्योम बाण-शम्भौ(११५०)व्रत तथा ॥८५०॥
रस-षट्केश्वरे(११६६) सूरिप्रतिष्ठा समजायत । नन्द-द्वय-रवौ वर्षे (१२२९)ऽवसानमभवत्प्रभो ॥८५१॥

इत्थ श्रीजिनशासनाभ्रतरणे श्रीहेमचन्द्रप्रभो-रज्ञानान्धतम प्रचारहरण मात्रादृशा मादृशाम् ।
विद्यापङ्कजिनीविकाशि विदित राज्ञोऽतिवृद्धयै स्फुरद्, वृत्त विश्वविबोधनाय भवताद् दुष्कर्मभेदाय च ॥८५२॥
श्रीचन्द्रप्रभसूरिपट्टसरसीहंसप्रभ श्रीप्रभा-चन्द्र सूरिरनेन चेतसि कृते श्रीरामलक्ष्मीभुवा ।
श्रीपूर्वर्षिचरित्ररोहणगिरौ श्रीहेमचन्द्रप्रथा, श्रीप्रद्युम्नमुनीन्दुना विशदित श्रृङ्गो द्विकद्विप्रम ॥८५३॥" इति ।

एवं निवेद्य ते नेत्रे नेत्रे बाष्पप्लुते दधुः । तन्नायकोऽप्युनाचैवं मतिः कार्यप्रसाधिका ॥४९८॥
असौ यथा तपस्वीदृक्शय्याया चङ्क्रमक्रिमिः । अक्षिप्ताक्षो निवेश्येत तदास्यार्धागते मृतिः ॥४९९॥
इति प्रातर्विचिन्त्यायमाया किंचिविरमध्यत । राजपादान् नमश्चक्रेऽपनीलुठनपूर्वकम् ॥५००॥
विज्ञो विज्ञपयामास मारवो मण्डलेश्वरः । दम्भात्सुधा मुखे बिभ्रद् विषपूर्णो घटो यथा ॥५०१॥
अलङ्कुरुत हर्म्यं मे प्रसादः क्रियतां प्रभो ! । तत्र प्रत्यवसानेनावसानेनाद्य तु स्थितेः ॥५०२॥
ध्यात्वेति धीनिधिर्भूपो मारवेषु न विश्वसेत् । प्राह न परिवारं प्राग् भुङ्क्तामनु वयं ततः ॥५०३॥
क एव हि हितान्वेषी स्वामिभक्तश्च दृश्यते । परमारकुलोद्भूतं मयन्तमभयं विना ॥५०४॥
तत्र कः प्रतिषेद्धाऽस्ति शुभे कार्ये महाधर ! । अस्माकं भवदावास एव योग्यो विलोकितुम् ॥५०५॥
स्वास्यादेशः प्रमाणं मे इति प्रोक्य परिच्छदम् । भक्तोऽसौ भोजयाचक्रेऽपराह्णावध्यवाक्यया ॥५०६॥
अङ्गरक्षास्ततः स्वामिमूर्त्तिरक्षामदोद्यता । आहूतास्तत्समस्तं च कुट्टिमं प्रकटीकृतम् ॥५०७॥
यत्रासन्नः पुमानेको वृद्धो मतिमतां पतिः । आजिघ्रन् गन्धमत्युग्रं ध्माताङ्गारगणस्य सः ॥५०८॥
विममर्श निजस्वान्ते विज्ञानं किंचिदद्भुतम् । तत्रास्ते वह्निसम्बद्धं प्रभुद्रोहस्य कारणम् ॥५०९॥
ततस्तं विक्रमं साभिप्रायं दृष्टिविकारतः । परिज्ञायातिसक्तश्चक्रे वक्राशयशिरोमणिः ॥५१०॥
ययौ विक्रमसहोऽथ सह तेनैव मन्दिरम् । राज्ञः प्राह च मत्सौधे नाथ ! पादोऽवधार्यताम् ॥५११॥
अथ भ्रूसञ्ज्ञया तेन न्यषेधि गमनं प्रति । भूपतिः प्राह तन्त्रं मे समस्तं भोजितं त्वया ॥५१२॥
वयं तु प्राकृत्रियामायां चिन्ताजागरपीडिताः । अधुनाऽभ्यवहारेषु नाभिलाषुकचेतनम् ॥५१३॥
मुहूर्तश्चापि दैवज्ञैः प्रयाणाय विचारितः । सप्रत्येव ततो ढक्का वाद्या प्रस्थीयते यथा ॥५१४॥
त्वमपि स्वां चमूं सज्जीकृत्य कृत्यविशारद ! । शीघ्रमागच्छ न च्छेका जृम्भायन्ते त्वरायिते ॥५१५॥
अन्तःशङ्का वहन्नोमित्युक्त्वा च प्रययौ स्वकम् । धाम ज्ञानमिवाय स्व विमृशन् चेतसि क्षणम् ॥५१६॥
झटित्येव प्रतस्थे च स्कन्धावारः प्रभोस्तदा । अचिराद् रिपुदुर्गस्योपकण्ठे शिबिरं दधौ ॥५१७॥
स यथास्थानमातस्थौ शिबिरस्य निवेशनम् । अहर्दिवं प्रहरके जाग्रदुग्रभटोद्धुरम् ॥५१८॥
अर्णोराजोऽप्यजानान सिद्धकुम्भमवव्रतम् । अवमेनेऽवलेपोग्रव्याहारोर्मिभिरेव तम् ॥५१९॥
अथैकादश वर्षाणि विजुगोप पदोरव । ममाथ द्वादशेऽप्यस्तु काऽत्र भूपालकल्पना ॥५२०॥
हतसत्त्वोद्वृत्तैर्मन्त्रिया कृत्रिमैरपि दर्शने । जीव जीवेति जल्पद्भिर्मतो राजा स्वसेवकैः ॥५२१॥
तथा चारुभटः श्रीमत्सिद्धराजस्य पुत्रकः । हक्काढक्कास्वरभ्रान्तहस्ती सामुपतिष्ठते ॥५२२॥
इत्यनल्पविकल्पैः स यन्त्रान् नासज्जयत्तदा । दुर्गे स्वर्गे इवासीन उदासीनोऽकुतोभयः ॥५२३॥
कुन्तलोसरशक्त्याद्यैः पूर्णेष्वट्टालकेष्वपि । विलेभे न भटव्रातः निजभाग्यकदर्थितः ॥५२४॥
श्रीमान्कुमारपालोऽपि ज्ञात्वेति प्रणिधिव्रजैः । अनीकिनीं निजां दानमानाद्यैः समपूजयत् ॥५२५॥
गजानां प्रतिमानानि शृङ्खलान्मुकुरास्तथा । अश्वानां कण्ठिका-वल्गा-दामपल्ययनानि च ॥५२६॥
रथानां किङ्किणीजालचक्राङ्गयुगशम्बिकाः । योधानां हस्तिकावीरवलयानि च चन्द्रकान् ॥५२७॥
सुवर्णरत्नमाणिक्यसूचीमुखमयान्यपि । चतुरङ्गेऽपि सैन्येऽसौ भूषणानि ददौ मुदा ॥५२८॥ विशेषकम् ।
रोहणद्रुमकर्पूरकश्मीरजविलेपनैः । स्वयं विलिप्य वक्त्राणि भटानां पटुताभृताम् ॥५२९॥
सहस्रपत्रचापेयजातीविचिकिलस्रजः । कामं धम्मिल्लमालासु बबन्ध स्वयमीशिता ॥५३०॥-युग्मम् ।
हेमन्तसितरात्राभैः शातकुम्भसमैरसौ । स्कन्धानभ्यर्चयच्चोभप्रधानानां प्रमोदतः ॥५३१॥
सान्धकारे निशीथे च राजा तेजःप्रतापभूः । तानुत्साह्य सुधासध्रीचीभिर्वचनवीचिभिः ॥५३२॥
चचाल समदोत्तालकलकेलिकुञ्जाधनिः । अतूर्यवक्त्रनिर्घोषं रहो योगीव निर्ध्वनिः ॥५३३॥

श्रीजिनमण्डनगणिभिरमुष्य किञ्चिद्वृत्तान्त एवं दर्शितः कुमारपालप्रबन्धे—

"एकदा श्रीगुरूनापृच्छ्या-ऽन्यगच्छीयदेवेन्द्रसूरि मलयगिरिभ्यां सह कलाकलापकौशलाद्यर्थं गौडदेशं प्रति प्रस्थिता खिल्लूरग्रामे च त्रयो जना गता। तत्र ग्लानो मुनिर्वैयावृत्यादिना प्रतिचरित। स श्रीरैवतकतीर्थे देवनमस्करणकृतार्त्ति । यावद् ग्रामाध्यक्षश्राद्धेभ्य सुखासन प्रगुणीकृत्य ते रात्रौ सुप्तास्तावत् प्रत्यूषे प्रबुद्धा स्व रैवतके पश्यन्ति । शासनदेवता प्रत्यक्षीभूय कृतगुणस्तुति 'भाग्यवता भवतामत्र स्थितानां सर्वं भावि' इति। गौडदेशे गमन निषिध्य महौषधीरनेकान् मन्त्रान् नाम-प्रभावा व्याख्यानपूर्वमाख्याय स्वस्थान जगाम।

एकदा श्री गुरुभि सुमुहूर्त्ते दीपोत्सवचतुर्दशीरात्रौ श्रीसिद्धचक्रमन्त्र साम्नाय समुपदिष्ट । स च पद्मिनीस्त्रीकृतोत्तरसाधकत्वेन साध्यते तत सिध्यति, याचित वर दत्ते, नान्यथा । ते च त्रय कृतपूर्वकृत्या श्रीअम्बिकाकृतसान्निध्या शुभध्यानधीरधिय श्रीरैवतदेवतदृष्टौ त्रियामिन्यामाह्वाना-ऽवगुण्ठन-मुद्राकरण मन्त्रन्यास--विसर्जनादिभिरुपचारैर्गुरूक्तविधिना समीपस्थपद्मिनीस्त्रीकृतोत्तरसाधकक्रिया श्रीसिद्धचक्रमन्त्रमसाधयन् । तत इन्द्रसामानिकदेवोऽस्याधिष्ठाता श्रीविमलेश्वरनामा यक्षीभूय पुष्पवृष्टि विधाय 'स्वेप्सित वर वृणुत' इत्युवाच । तत श्रीहेमसूरिणा राजप्रतिबोध, देवेन्द्रसूरिणा निजावदातकरणाय कान्तीनगर्या प्रसाद एकरात्रौ ध्यानबलेन सेरीसकग्रामे समानीत इति जनप्रसिद्धि., मलयगिरिसूरिणा सिद्धान्तवृत्तिकरणवर इति । त्रयाणा वर दत्त्वा देव स्वस्थानमगात्," इति । अत एवानेका वृत्तयस्तैररचि ।

यद्वा "**बहुगंथसुबोधविसयटीगारयणाइलद्धवरो**" त्ति समस्तपदं गृह्यते, तदा चेत्थं व्याख्येयम्, बहुग्रन्थसुबोधविशदटीकारचनादौ=प्रमुखे येषां तानि बहुग्रन्थसुबोधविशदटीकारचनादीनि तेषां तेषु वा लब्धो वरो येन स बहुग्रन्थसुबोधविशदटीकारचनादिलब्धवरः । अत्रादिपदेन स्वोपज्ञशब्दानुशासनरचनादीनि ग्राह्याणि ।

तत्कृतयश्चेमाः (१) भगवतीद्वितीयशतकवृत्तिः, (२) रायपसेणीसूत्रवृत्तिः, (३) जीवाजीवाभिगमसूत्रवृत्तिः, (४) प्रज्ञापनासूत्रवृत्तिः, (५) चन्द्रप्रज्ञप्तिवृत्तिः, (६) सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः, (७) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिवृत्तिः, (८) नन्दीसूत्रवृत्तिः, (९) बृहत्कल्पसूत्र-पिठिकावृत्तिः (अपूर्णाः श्रीक्षेमकीर्तिसूरिणा संपूर्णा कृता), (१०) व्यवहारसूत्रवृत्तिः, (११) ज्योतिष्ककरण्डकवृत्तिः, (१२)

● श्रीप्रबन्धचिन्तामणिसत्कसिद्धराजप्रबन्धान्तर्गत(D)सञ्ज्ञकपाठे पुनरन्यथा दर्शितम् । तत्र हि पूज्यमलयगिरिस्थाने पद्माकरनामेत्यादि पठितमस्ति । तथा च तद्ग्रन्थ –" अन्यगच्छीयदेवचन्द्र-पद्माकराभ्या सह श्रीकाश्मीर प्रति । मार्गे नडोलग्रामे सप्तमोपवासे श्रीसरस्वती प्रसन्ना जाता निज-मूर्तिर्दर्शिता मित्रयोर्निवेदिते श्लोकसप्तशत्या ग्रामो वर्णित । मित्रद्वयस्य कार्यसिद्धिहेतो स्तम्भतीर्थे प्रविशन्त केना-ऽपि देशान्तरिणा ऽऽकार्य विद्या समर्पिता । इत्युक्त च । मम मरणसमये मम शवोपरि त्रिभि-र्नाभिमण्डले मन्त्र स्मरणीय शवो वर दास्यति । एव कृते स्मशाने मध्यरात्रौ शवेनोत्थाप्य वरो दत्त । श्रीहेमचन्द्रेण राजप्रबोधो याचित । देवचन्द्रेण हस्तसिद्धेराकृष्टिविद्या । पद्माकरेण पाण्डित्यम् ।" इत्यादि । तदत्र तत्त्व केवलिनो विदन्ति ।

महोत्सवे प्रवेशस्य गजारूढ सुरेन्द्रवत । वाग्भटस्य विहार स दन्शे नृरनारायणम् ॥५७०॥
तत्र प्रविश्य श्रीमन्तमजितस्वामिन नृप । आर्चयत्सुरभिद्रव्यैरत्यामन्नोपकारिणम् ॥५७१॥
श्रीपार्श्वमथ च स्मृत्वा सपूज्य च ततोऽवदत । प्रागुक्त यन्मया नाथ ! तत्तथैवात्रधार्यताम् ॥५७२॥
तत प्रणम्य सोत्कण्ठ कण्ठीरववरासने । पट्टकुञ्जरकुम्भस्थे स्थितोऽगाद् भूभृदालयम् ॥५७३॥
गोत्रवृद्धाङ्गनावर्गसङ्गीतस्फुटमङ्गल । प्रतिच्छन् शिरसा वर्द्धापनान्यनुबभूव स ॥५७४॥
ततो विक्रमसिहस्य स्थाने सन्वीन्निवेश्य च । आनाय्यानतिदूरे त भूपाल प्राह सस्मित. ॥५७५॥
भो विक्रमाग्नियन्त्रेण भूपाला एव पञ्चताम् । प्रायान्ति नैव सामन्ता इति त्व केन शिक्षित ॥५७६॥
तत्रैव यद्यह त्वा भो ! वह्नौ होता ततो भवान् । भस्मीभूत' क नृग्येन सपुत्रशुत्रान्वव ॥५७७॥
यादृशाश्च भवन्त स्युगृहकर्मकरा मम । मलिना न वय नाथास्तादृशास्तदसून् वह ॥५७८॥
अद्येपि बन्दिशालाया ततोऽसौ निजकर्मत । इह लोके हि भोग्यन्ते राजभिस्तामसास्तम ॥५७९॥
तथा श्रीरामदेवाख्यतद्भ्रातुर्नन्दन नृ । श्रीयशोधवल चन्द्रावत्यामेप न्यवीविशत ॥५८०॥
अन्येद्यु वाग्भटामात्य धर्मात्यन्तिकवासन । अपृच्छदार्हताचारोपदेष्टार गुरु नृप' ॥५८१॥
सूरे श्रीहेमचन्द्रस्य गुणगौरवसौरभम । आख्यदक्षामविद्यौघमध्यामोपशमश्रियम् ॥५८२॥
शीघ्रमाहूयतामुक्तो राज्ञा वाग्भटमन्त्रिणा । राजवेश्मन्यनीयन्त सूरयो बहुमानत ॥५८३॥
अभ्युत्थाय महीशेन ते दत्तासन्युपाविशन् । राजाह सुगुरो ! धर्म दिश जैन तमोहरम् ॥५८४॥
अथ त च दयामूलमाचख्यौ स मुनीश्वर । असत्यस्तेनताब्रह्मपरिग्रहविवर्जनम् ॥५८५॥
निशाभोजनमुक्तिश्च मामाहारस्य हेयता । श्रुति स्मृति-स्वसिद्धान्तनियामकशतैर्दृढा । उक्त च योगशास्त्रे-
चिखादिषति यो मास प्राणिप्राणापहारत । उन्मूलयत्यसौ मूल दयाख्य धर्मशाखिन ॥५८७॥
अशनीयन् सदा मास दया यो हि चिकीर्षति । ज्वलति ज्वलने वल्ली स रोपयितुमिच्छति ॥५८८॥
हन्ता पलस्य विक्रेता सस्कर्ता भक्षकस्तथा । क्रेताऽनुमन्ता दाता च घातका एव यन्मनु ॥५८९॥
'अनुमन्ता विशसिता नियन्ता क्रयविक्रयी । सस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातका ' ॥५९०॥
नाकृत्वा प्राणिना हिंसा मासमुत्पद्यते क्वचित् । न च प्राणिवध स्वर्ग्यस्तस्मान्मास विवर्जयेत् ॥५९१॥
इत्यादिसर्वहेयाना परित्यागमुपादिशत् । तथेति प्रतिजग्राह तेषा च नियमान् नृप ॥५९२॥
श्रीचैत्यवन्दनस्तोत्रस्तुतिमुख्यमधीतवान् । वन्दनक्षामणालोचप्रतिक्रमणकान्यपि ॥५९३॥
प्रत्याख्यानानि सर्वाणि तथा गाथाविचारका । नित्य द्व्यशनमाधत्त पर्वस्वेकाशन तथा ॥५९४॥
स्नात्राचारप्रकार चारात्रिकस्य च शिक्षन । जैन विधि समभ्यस्य चिरश्रावकवद् बभौ ॥५९५॥
प्राक्कृते चामिषाहारे परमानुशय गत । उवाचावाच्यमेतन्मे पातक स्वभ्रपातकम् ॥५९६॥
निष्क्रयोऽस्याहमो नास्ति पुनरेतद् ब्रवीम्यहम् । अपराधी निगृह्येत राजनीतेरिति स्थितिः ॥५९७॥
दशनान् पातयाम्यद्य मासाहारपरान्विन । सर्वत्र सहते कर्त्ता दृष्टमित्थं स्मृतावपि ॥५९८॥
गुरुराह महाराज ! रुढ स्थूलमिद वच । सकृद्देहापदा न स्यान्निष्कृति कृतकर्मण ॥५९९॥
तत आर्हतधर्मेच्छापवित्रितमना भवान । प्रवर्त्तता तथा पङ्क समस्त क्षाल्यते यथा ॥६००॥
दन्ता द्वात्रिंशत पाप्ममोक्षाय त्व विधापय । द्वात्रिंशत विहाराणा हाराणामिव तेऽवने ॥६०१॥
निजवप्तुस्त्रिभुवनपालस्य सुकृताय च । मेरुशृङ्गोन्नत चैत्य श्रीजैनेन्द्र विधापय ॥६०२॥
अथाह मेदिनीपाल सुरीतिरियमुज्ज्वला । भवकान्तारनिस्तार एतदेव च शम्बलम् ॥६०३॥
अथो परमया भक्त्या प्राहिणोत्प्रभुमालये । अपरेद्युश्च सप्राप वाग्भटस्य जिनालयम् ॥६०४॥
तत्रायातस्य भूपस्य ययौ नेपालदेशत । श्रीबिम्बमेकविंशत्यङ्गुल चान्द्रमणीमयम् ॥६०५॥

तुल्यो मदनसमः, मदनसमोऽपि=कामदेवसमानोऽपि न तत्तुल्याचरणोऽसाविति अपिशब्दार्थः, किन्तु "जिइंदियो" त्ति, जितानि=स्ववशीकृतानीन्द्रियाणि=करणानि श्रोतःप्रमुखाणि येन स जितेन्द्रियः=स्वाधीनाक्षः "बंभ" ति, ब्रह्म=ब्रह्मचर्यं ब्रह्मव्रतं वा "पालीअ" त्ति, अपालयत् ।

"जो" त्ति, काकाक्षिगोलकन्यायेन पुनरप्यत्र संबध्यते यः "विहू" त्ति, विभुः=प्रभुः= विजयसिंहसूरिप्रभुः पुनरपि किंविशिष्टः ? "णिस्सगो" त्ति, निर्गतः=निर्यातः सङ्गः ममत्वादि-रूपः=निःसङ्गः=सङ्गरहितः "तवस्सी" त्ति, तपस्वी "भविदुहतावसुहायरो" त्ति, दुःखानि जन्म-जरा-मरणलक्षणानि, तान्येव तापः=ऊष्णता दुःखतापः, भविनां मुक्तिवध्वा सह करपीडनार्हाणा दुःखतापो भविदुःखतापस्तस्मिन्=तस्य हरणे सुधाकर=सुधायुक्ताः=अमृतयुताः कराः=किरणा यस्य स सुधाकरः=चन्द्रः, भविदुःखतापे=भविदुःखतापहरणे सुधाकरः, भविदुःख-तापसुधाकरः=भव्यलोकदुःखसंतापहारीति ।

यदुक्तं गुर्वावल्याम्—"तेष्वादिमाद्विजयसिंहगुरु४३र्वमासे, विद्यातपोभिरमित —" इति ॥२०३॥

एतर्हि चतुर्विंशतितमतीर्थनाथस्य त्रिचत्वारिंशत्तमे पट्टे संजातयोः श्रीसोमप्रभसूरि-श्रीमणिरत्नसूरिपुङ्गवयोर्विवर्णयिषया द्विपदीमाह—

हरन्तु ते भवीण भवदुक्खं जे सोहीअ गणहरा,
विजयसिंहगुरुपयबंभीअ दुवे मिव घणपयोहरा ।
तह पढमो सयत्थिगो खाओ सोमप्पहमुणीसरो,
बीओ संघवच्छलो सोम्मो य मणिरयणमुणीसरो ॥२०४॥ (दुवई)

(प्रे०) "हरन्तु" इत्यादि, "जे" त्ति, यौ=श्रीसोमप्रभसूरि-मणिरत्नसूरिपुङ्गवौ, किंविशिष्टौ ? "गणहरा" त्ति, गणस्य=गच्छस्य मुनिसमुदायरूपस्य धरौ=धारकौ गणधरौ "विजयसिंहगुरुपयबंभीअ" त्ति, विजयसिंहगुरोः पदमेव=पट्ट एव बम्भी=सरस्वती विजय-सिंहगुरुपदबम्भी तस्याः विजयसिंहगुरुपदबम्भ्याः "दुवे" त्ति, द्वौ=द्विसङ्ख्याकौ "घणपयो-हरा" त्ति, घनौ=पीनौ तौ च तौ पयोधरौ=स्तनौ घनपयोधरौ "मिव" त्ति, इव "सोहीअ" त्ति, अशोभताम्=व्यराजताम् "ते" त्ति, तौ=श्रीसोमप्रभसूरिपुरन्दर-मणिरत्नसूरिपुरन्दरौ "भवीण" त्ति; भविनां=भव्यप्राणिनां "भवदुक्खं" ति, भवः=संसारो जन्मजरामरणादिपरम्परा-रूपः, स एव दुःखम्=व्यथा-पीडा-बाधा-अर्त्तिः-कष्टं-वेदना कृच्छ्रं वा भवदुःखं तद् भवदुःखं= संसारकारावासं "हरन्तु" त्ति, हरताम्=दूरं नीयताम् । "तह" त्ति, तत्र=तयोर्द्वयोर्मध्ये "पढमो"

महोत्सवे प्रवेशस्य गजारूढ सुरेन्द्रवत । वाग्भटस्य विहार स दत्गे नृपसत्तमम् ॥५७०॥
तत्र प्रविश्य श्रीमन्तमजितस्वामिन नृप । आर्चयत्सुरभिद्रव्यैरत्यामनोपकारिणम् ॥५७१॥
श्रीपार्श्वमथ च स्मृत्वा सपूज्य च ततोऽवदत । प्रागुक्त यन्मया नाथ ! तत्तथैवात्रधार्यताम् ॥५७२॥
तत प्रणम्य सोत्कण्ठ कण्ठीरववरासने । पट्टकुञ्जरकुम्भस्थे स्थितोऽगाद् भूभृदालयम ॥५७३॥
गोत्रवृद्धाङ्गनावर्गसङ्गीतस्फुटमङ्गल । प्रतिच्छन् शिरसा वर्द्धापनान्यनुवभूव स ॥५७४॥
ततो विक्रमसिहस्य स्थाने सन्धीन्निवेश्य च । आनाय्यानतिदूरे त भूपाल प्राह सस्मित ॥५७५॥
भो विक्रमाग्नियन्त्रेण भूपाला एव पञ्चताम् । प्रायान्ति नैव सामन्ता इति त्व केन शिक्षित ॥५७६॥
तत्रैव यद्यह त्वा भो ! वह्नौ होता ततो भवान् । भस्मीभूत क वन्येन सपुत्रान्शुभान्वव ॥५७७॥
यान्स्नाश्च भवन्त स्युगृर्हकर्मकरा मम । मलिना न वय नाथास्तान्स्वाम्तदमून् वद ॥५७८॥
अद्वेषि बन्दिशालाया ततोऽसौ निजकर्मत । इह लोके हि भोज्यन्ते राजभिस्तामसाम्तम ॥५७९॥
तथा श्रीरामदेवाख्यतद्भ्रातुर्नन्दन नृप । श्रीयशोधवल चन्द्रावत्यामेप न्यवीविशत ॥५८०॥
अन्येद्युर्वाग्भटामात्य धर्मात्यन्तिकवासन । अपृच्छदार्हताचारोपदेष्टार गुरु नृप ॥५८१॥
सूरे: श्रीहेमचन्द्रस्य गुणगौरवसौरभम् । आख्यदक्षामविद्यौघमध्यामोपशमश्रियम् ॥५८२॥
शीघ्रमाहूयतामुक्तो राज्ञा वाग्भटमन्त्रिणा । राजवेश्मन्यनीयन्त सूरयो बहुमानत ॥५८३॥
अभ्युत्थाय महीशेन ते दत्तासन्युपाविशन् । राजाह सुगुरो ! धर्म दिश जैनं तमोहरम् ॥५८४॥
अथ त च दयामूलमाचख्यौ स मुनीश्वर । असत्यस्तेनताब्रह्मपरिग्रहविवर्जनम ॥५८५॥
निशाभोजनमुक्तिश्च मासाहारस्य हेयता। श्रुति स्मृति स्वसिद्धान्तनियामकशतैर्दृढा । उक्त च योगशास्त्रे-
चिखादिषति यो मास प्राणिप्राणापहारत । उन्मूलयत्यसौ मूल दयाख्य धर्मशाखिन ॥५८७॥
अशनीयन् सदा मास दया यो हि चिकीर्षति । ज्वलति ज्वलने वल्ली स रोपयितुमिच्छति ॥५८८॥
हन्ता पलस्य विक्रेता सस्कर्ता भक्षकस्तथा । क्रेताऽनुमन्ता दाता च घातका एव यन्मनु ॥५८९॥
'अनुमन्ता विशसिता नियन्ता क्रयविक्रयी । सस्कर्त्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातका ।' ॥५९०॥
नाकृत्वा प्राणिना हिसा मासमुत्पद्यते क्वचित् । न च प्राणिवध स्वर्ग्यस्तस्मान्मास विवर्जयेत् ॥५९१॥
इत्यादिसर्वहेयाना परित्यागमुपादिशत् । तथेति प्रतिजग्राह तेषा च नियमान् नृप ॥५९२॥
श्रीचैत्यवन्दनस्तोत्रस्तुतिमुख्यमधीतवान् । वन्दनक्षामणालोचप्रतिक्रमणकान्यपि ॥५९३॥
प्रत्याख्यानानि सर्वाणि तथा गाथाविचारका । नित्य द्व्यशनमाधत्त पर्वस्वेकाशन तथा ॥५९४॥
स्नात्राचारप्रकार चारात्रिकस्य प्रशिक्षन । जैन विधि समभ्यस्य चिरश्रावकवद् बभौ ॥५९५॥
प्राक्कृते चामिषाहारे परमानुशय गत । उवाचावाच्यमेतन्मे पातक श्वभ्रपातकम् ॥५९६॥
निष्क्रयोऽस्याहसो नास्ति पुनरेतद् ब्रवीम्यहम । अपराधी निगृह्येत राजनीतेरिति स्थिति ॥५९७॥
दशनान् पातयाम्यत्र मासाहारापराधिन । सर्वत्र सहते कर्त्ता दृष्टमित्थं स्मृतावपि ॥५९८॥
गुरुराह महाराज ! रुढ स्थूलमिद वच । सकृद्देहापदा न स्यान्निष्कृति कृतकर्मणा ॥५९९॥
तत आर्हतधर्मेच्छापवित्रितमना भवान । प्रवर्त्तता तथा पङ्क समस्त क्षाल्यते यथा ॥६००॥
दन्ता द्वात्रिंशत पाप्ममोक्षाय त्व विधापय । द्वात्रिंशत विहाराणा हाराणामिव तेऽवने ॥६०१॥
निजवप्तुस्त्रिभुवनपालस्य सुकृताय च । मेरुशृङ्गोन्नत चैत्य श्रीजैनेन्द्र विधापय ॥६०२॥
अथाह मेदिनीपाल सुरीतिरियमुज्ज्वला । भवकान्तारनिस्तार एतदेव च शम्बलम् ॥६०३॥
अथो परमया भक्त्या प्राहिणोत्प्रभुमालये । अपरेद्युश्च सप्राप वाग्भटस्य जिनालयम् ॥६०४॥
तत्रायातस्य भूपस्य ययौ नेपालदेशत । श्रीबिम्बमेकविंशत्यङ्गुल चान्द्रमणीमयम् ॥६०५॥

आजीवायंबिली जो अइविमलजसो णिप्पिहो सोम्ममुत्ती,
भव्वाणं दाउ रम्मा चरणगुणमणी सो जगच्चंदसूरी ॥२०८॥ (सद्धरा)

(प्रे०) "मग्ग" इत्यादि, "सो जगच्चदसूरी" त्ति, स जगच्चन्द्रसूरिः "भव्वाणं" ति, भव्यानां=मुक्तिपुरिगमनार्हाणां "रम्मा" त्ति, रम्यान्=मनोहरान् "चरणगुणमणी" त्ति चरणगुणाः=संयमगुणा एव मणयः=रत्नानि चरणगुणमणयस्तान् चरणगुणमणीन् "दाउ" त्ति ददातु=दानविषयीकरोतु । स क इत्याह–"जो" त्ति य.=श्रीजगच्चन्द्रसूरिः "पहू" त्ति, प्रभुः= गच्छनायको गुर्वाज्ञया, "देवभद्द"ति, देवभद्रं=देवभद्रनामानं "तुरियपयधर"ति तूर्यस्य= चतुर्थस्य पदस्य=स्थानस्याधिकारविशेषलक्षणस्य धरतीति "अच्' (सि० ५-१४६) इति सूत्रे- णाच्प्रत्ययः, तूर्यपदधर.=उपाध्यायपदवीधारकस्तम् , तूर्यपदधरं "गणेस" ति, गणस्य= गच्छस्येशः=नायकः, गणेशस्तम् , गणेशं=चैत्यगच्छाधिपं "बीअं सहाय" ति द्वितीयं सहाय= द्वितीयवृर्यवत्साहाय्यकरं "किच्चा" त्ति, कृत्वा=विधाय "सेढि पके" शैथिल्यः=शिथिलता प्रमादादिजन्यरूपा, सैव पङ्कः=चिक्खल्लो जम्बालः कर्दमश्चिकिलः शादो निषद्वरः, शैथिल्यपङ्क- स्तस्मिन् शैथिल्यपङ्के=प्रमादादिजन्यमाध्वाचारस्खलनारूपकर्दमे "मग्गं" ति, मग्नं=निमग्नं "चरणगुणरह"ति, चरणस्य=चारित्रस्य गुणाः=अप्रमत्तादिरूपास्त एव रथस्तम् "उद्धरीअ' त्ति उद्धार । उक्तञ्च श्रीहीरसौभाग्ये–

"श्रीमज्जगच्चन्द्र इदपदश्री-ललामलीलापितमातलान ।
येनौज्झि शैथिल्यपथस्तटाको, घनाविलो मानसवासिनेव ॥१०८॥" इति ।

तथा गुर्वावल्यामपि–

"अथ कलिघनदुर्दिनावतारे, प्रसरदसज्जडसचये समन्तात ।
प्रतिहतजिनराजभानुतेजो–महिमभरेऽनवबोध्य मुक्तिमार्गे ॥८२॥
निजगणसरणौ प्रमादपङ्के, चरणरथ प्रविलोक्य गाढमग्नम् ।
गुरुरयमसमस्तमुद्दिधीर्षु–र्वृषभ इवाऽपरमीक्षते सहायम् ॥८३॥ (युग्मम्)" इति ।

पुनरपि स क इत्याह--"जो" त्ति यः=श्रीजगच्चन्द्रसूरिः किम्भूतः ? "आजीवायं- बिलो" त्ति आ जीवादिति आजीवं=जीवं यावज्जीवनपर्यन्तमित्यर्थः । आचाम्ली=आचाम्ला ख्यतपोविशेषवान् आजीवाचाम्ली=स्वशेषायुर्यावदाचाम्लतपोविधायी "अइविमलजसो"त्ति, विमलमतिक्रान्तम्=अतिविमलम्=अतिशयोज्वलं यशः=कीर्तिर्यस्य स अतिविमलयशाः "णिप्पिहो" त्ति निःस्पृहः=ममतारहितः, देहेऽपि निर्गम इति यावत् "सोम्ममुत्तो" त्ति सौम्या=शान्त- स्वभावा मूर्तिः=आकारो यस्य स सौम्यमूर्तिः, यद्वा सौम्यस्य=आत्मगुणविशेषस्य मूर्तिः=

श्रीतीर्थजीर्णोद्धारस्य निष्पत्त्याशाऽद्य मेऽभवत् । नीर्वी जीवितवत्स्वीया यदस्मै तत्समर्पय ॥६४२॥
वहिकादौ च तन्नाम लिखित्वाऽथ निजाभिधाम् । अवमन्य ततो नामान्यन्येषां रमतां जिनाम् ॥६४३॥
वयं तु कोटिसङ्ख्यस्य द्रव्यस्य खरकर्मभिः । उपात्तस्य व्यये तन्द्राभृतोऽन्यजनभिन्नकाः ॥६४४॥
स्वकीयकोपादाहार्षीत्तत पट्टांशुकत्रयम् । द्रम्मपञ्चशतीं चैव प्राहैनद्धि गृहाण भोः ॥६४५॥
मन्त्रीशेन स चेत्युक्तः स्मित्वाऽवादीदसौ वणिक् । न विक्रीणे ध्रुवं पुण्यमस्थिरद्रव्यलेशतः ॥६४६॥
भवन्तः स्वामिनः प्राच्यपुण्यसम्भवैभवाः । कुर्वन्ति किं न लभन्ते मादृशा विप्रलम्भनम् ॥६४७॥
इत्याकर्ण्योद्धृषद्रोमा मन्त्रीन्दुः प्राह वाणिजम् । मत्तो धन्यस्त्वमेवासि यन्नैतन्निस्पृहं मनः ॥६४८॥
ततः केलिसुपूगैः सपत्रैर्नागरखण्डकैः । वीटकं प्रददावस्य कर्पूरपरिपूरितम् ॥६४९॥
तद् गृहीत्वा स सम्मानपूरितः स्वं गृहं ययौ । गेहिन्या बिभ्यदस्यास्तद्दुर्वाक्याशीकुलक्षिते ॥६५०॥
अकस्मात्सा च तं स्वादुवचनैः पर्यतोषयत् । आजन्मादृष्टपूर्वं तद् दृष्ट्वा विस्मयमाप सः ॥६५१॥
तेनोक्ते च यथावृत्ते साऽवादीत्पारितोषिकम् । यन्न त्वया गृहीतं तन्निर्वृतिं मे व्यधाद् घनम् ॥६५२॥
यदि त्वं मन्त्रिणः पार्श्वे लोहटङ्कार्धमप्यहो । अग्रहीष्यस्ततो नाहमस्थास्यं त्वद्गृहे ध्रुवम् ॥६५३॥
धेनुयोग्यं ततः स्थाणुं श्लथं गाढं कुरुष्व तत् । तयेत्युक्तः कुशीं प्राप्य दरमत्राखनत्ततः ॥६५४॥
खाते चाल्पे खनित्रं च खटत्कृतमतः स तु । भार्यामाकार्य कथयामास सा च ततोऽवदत् ॥६५५॥
रात्रौ निर्व्यञ्जने किंचिद्विधेयं ननु साम्प्रतम् । वेला विलम्ब्य तत्तस्मात्तदाऽकृष्यत यत्नतः ॥६५६॥
चत्वारि हैमटङ्कानां सहस्राणि स चासदत् । अल्पाया अपि पूजायाः फलमेतज्जिनेशितुः ॥६५७॥
अर्पयिष्याम्यहं मन्त्रिवाग्भटस्य धनं ह्यद । ईदृशि व्ययितं तीर्थे तद्धि कोटिगुणं भवेत् ॥६५८॥
पत्न्याप्यनुमतः प्रातर्गिरिमारुह्य मन्त्रिणम् । वीक्ष्य तद्दर्शयामास गृहीतेत्यवदच्च तम् ॥६५९॥
श्रुत्वेति धीसखस्वामी प्राह मद्वचनं शृणु । सत्त्वात्ते सप्तभिर्द्रम्मैः पूर्णो मम मनोरथः ॥६६०॥
अतः परं भवद्द्रव्यं ग्रहीतुं नाहमीशिता । अनेन भविता यस्मात्सौवर्णः सकलो गिरिः ॥६६१॥
अभिसन्धिर्न मे सोऽस्ति तत्स्वं द्रव्यं यथारुचि । व्ययं वर्धय भुङ्क्ष्वाथ धर्मे वाऽऽधेहि शीघ्रतः ॥६६२॥
स प्राह कुनपोद्वाहभाग्यस्य कनकं किमु । स्थाता मे निलये तत्कः क्लेशोऽङ्गीक्रियतेऽस्य तु ॥६६३॥
भवान् यथातथाकर्तुमिमं शक्तः प्रभुत्वतः । तत्प्रमद्य गृहाणेदं तुष्टोऽस्तु कुतपो मम ॥६६४॥
प्राह मन्त्री ततो द्रव्यं न गृह्णामि निरर्थकम् । एनं भारं न वोढास्मि वाहीक इव दुर्वहम् ॥६६५॥
एवं विवदतोर्मन्त्रिवणिजोर्दिनमत्यगात् । रात्रौ च श्रीकपर्दीशः साक्षाद् वाणिजमभ्यधात् ॥६६६॥
श्रीयुगादिप्रभो रूपकार्चातुष्टो धनं ह्यद । अहं प्रादर्शयं ते तत् त्वं व्ययस्व निजेच्छया ॥६६७॥
क्षयं यास्यति नैवैतद् दानभोगैर्घनैरपि । अन्यस्येदं हि नाधीनमत्रान्यन्मा विचारयेवाम् ॥६६८॥
अत्र चैतदभिज्ञानं त्वत्पत्नी दुर्मुखाऽप्यलम् । अकस्मात्प्रियवाक्याऽभूद् भक्तिप्रह्वा च विद्धि तत् ॥६६९॥
इदं समीक्ष्य च प्रातः श्रीनाभेयप्रभुं स च । सुवर्णरत्नपुष्पाद्यैः सनद्धचानः समपूजयत् ॥६७०॥
अभ्यर्च्य श्रीकपर्दीशं ततः स्वगृहमागमत् । स्वकृतैः सुकृतैर्जन्म पवित्रं व्यतनोत्तराम् ॥६७१॥
श्रीमद्वाग्भटदेवोऽपि जीर्णोद्धारमकारयत् । सदेवकुलिकस्यास्य प्रासादस्यातिभक्तितः ॥६७२॥
धनद्रव्यव्ययाचिन्तावशादक्षेपतस्तदा । पर्यपूर्यन्त कुम्भश्चात्रारुरोह मुदा सह ॥६७३॥
शिखीन्दुरविवर्षे च (१२१३) ध्वजारोपे व्यधापयत् । प्रतिष्ठां सप्रतिष्ठां स श्रीहेमचन्द्रसूरिभिः ॥६७४॥
इतश्च स्वर्विमानश्रीस्ततः प्रभृति विश्रुतः । श्रीकुमारविहारोऽयं भव्यद्रक्पुण्यलक्षणम् ॥६७५॥
पटुस्फटिकश्रेणिरटत्नाकोटिटङ्किनम् । बिम्बं श्रीपार्श्वनाथस्य निष्पन्नं रम्यतावधि ॥६७६॥
प्रतिष्ठिपत्शुभे लग्ने मन्त्री श्रीहेमसूरिभिः । अतिचिन्तामणिं प्राणिवाञ्छितातीतवस्तुदम् ॥६७७॥

"वीराच्छरेष्वश्वधरामितेऽब्दे १७५५, श्रीचन्द्रगच्छस्य ततो बभूव ।
ताद्दक्तपस्कर्मत एव तस्य, गुरोस्तपानाम जगत्प्रसिद्धम् ॥६७॥" इति ।

"**तत्तो**" त्ति ततः=श्रीमज्जगच्चन्द्रसूरेः "**तपा**" इति विरुदस्य प्राप्तितः "**आरभिऊण**" त्ति आरभ्य=प्रभृति "**गच्छस्स**" त्ति गच्छस्य=साधुसमुदायरूपस्य गणस्य '**वटगच्छ**' इति '**बृहद्गच्छ**' इति वा सञ्जातपञ्चमनाम्नः षष्ठी "**तवत्ति**" त्ति "**तपा**" इति "**सण्णा**" त्ति संज्ञा=षष्ठं नाम "**हवीअ**" त्ति अभूत्=प्रादुरभवत् । क इव ? इत्याह—"**जाओ**" इत्यादि, "**जह**" त्ति यथा "**मंतकोडिजवा**" त्ति मन्त्रस्य=सूरिमन्त्रस्य कोटेः=शतलक्षलक्षितायाः, कोटिशः कोटिं यावत्-कोटिवारान् जपात्=रटनात् "**गच्छो**" त्ति गच्छः=साधुसमुदायो निर्ग्रन्थ इत्याद्याह्वः "**कोडिगसण्णो**" त्ति कोटिक इति संज्ञा यस्य स कोटिकसंज्ञः='**कोटिक**' इति द्वितीयसंज्ञकः "**जाओ**" त्ति जातः=जायते स्म । **तथा चोक्तं गुर्वावल्याम्**—

"यावज्जीवितमाचाम्लतपोऽभिग्रही न्यधात तानि । द्वादशवर्षाण्यङ्गोऽप्यममोऽसौ श्लाघ्यधीर्भगवान् ॥६५॥

"तदादि बाणद्विपभानुवर्षे १२८५, श्रीविक्रमात्प्राप तदीयगच्छ ।
बृहद्गणाह्वोऽपि तपेतिनामा, श्रीवस्तुपालादिभिरर्च्यमान ॥६६॥" इति ।

श्रीहीरसौभाग्येऽपि—

"आचाम्लकैर्द्वादशहायनान्ते तपेत्यवापद्विरुद मुनीन्दु ।
महाहवैर्वैरिविनिर्नयान्ते मर्तेव भूमेर्जितकाशिसञ्ज्ञाम् ॥११०॥
अस्मात्तत प्रादुरभूत्तपाख्या नेत्रादिवात्रेर्द्विजराजलेखा ।
अदीपि यस्माच्च मुमुक्षुलक्ष्म्या वसन्तमासादिव मानुमासा ॥१११॥" इति ॥२०९-२१०॥

सम्प्रति पश्चिमजिनराजः पञ्चचत्वारिंशत्तमं पट्टमलङ्करिष्णुं श्रीमद्देवेन्द्रसूरिं श्लोकद्वयेन स्तुवन् शार्दूलविक्रीडितमाह—

विस्साणाणतमच्चयेगतरणी सो वाइघूत्तिओ,
देविंदो जगचंदसूरिपयखे सूरी भवज्जप्पिओ ।
लोगा बोहिअ भूवमंतिपमुहा भूसीअ जो सासणं,
गंथा णूअणकम्मगंथपमुहा जेणं अणेगा कया ॥२११॥ (सद्दूलविक्कीडिअं)

(प्रे०) "**विस्सा०**" इत्यादि, "**जगचंदसूरिपयखे**" त्ति, जगच्चन्द्रसूरेः पदमेव पट्ट एव खम् आकाशं तस्मिन् जगच्चन्द्रसूरिपदखे " " त्ति सः "**सूरी**" त्ति सूरिः=आचार्यः सूर्यो वा "**देविंदो**" त्ति देवेन्द्रनामा-ऽशोभत । किं विशिष्टः ? । "**विस्साणाणतमच्चयेग-**

श्रीतीर्थजीर्णोद्धारस्य निष्पत्त्याशाऽत्र मेऽभवत । नीवीं जीवितवत्स्वीयां यदक्लेशतरमव्यय ॥६४२॥
वहिकादौ च तन्नाम लिखित्वाऽथ निजाभिधाम् । अधस्तस्य ततो नामान्यन्येषां धनशालिनाम् ॥६४३॥
वय तु कोटिसख्यस्य द्रव्यस्य खरकर्मभि । उपात्तस्य व्यये तन्त्राभूनोऽन्यवनभिकत्र ॥६४४॥
स्वकीयकोपादाहार्पीत्तत पट्टांशुकत्रयम् । द्रम्मपञ्चशतीं चैव प्राहैनद्धि गृहाण भो ॥६४५॥
मन्त्रीशेन स चेत्युक्त स्मित्वाऽवादीदसौ वणिक् । न विक्रीणे ध्रुव पुण्यमस्थिरद्रव्यलेशत ॥६४६॥
भवन्त स्वामिन प्राच्यपुण्यसपन्नवैभवा । कुर्वन्त किं न लज्जन्ते मादृशा विप्रलम्भनम् ॥६४७॥
इत्याकर्ण्योद्भुपद्रोमा मन्त्रीदु प्राह वाणिजम् । मत्तो धन्यस्त्वमेवासि यस्येदृग् नि स्पृह मन ॥६४८॥
तत केलिसपूगै सपत्रैर्नागरखण्डकै । वीटक प्रददावस्य कर्पूरपरिपूरितम् ॥६४९॥
तद् गृहीत्वा स सम्मानपूरित स्व गृह ययौ । गेहिन्या बिभ्यदभ्यस्तदुर्वाक्यालीकुलक्षिते ॥६५०॥
अकस्मात्सा च त स्वादुवचनै पर्यतोषयत । आजन्मादृष्टापूर्व तद् दृष्ट्वा विस्मयमाप स ॥६५१॥
तेनोक्ते च यथावृत्ते साऽवादीत्पारितोषिकम् । यन्न त्वया गृहीत तन्निर्वृ तिं मे व्यधाद् घनम् ॥६५२॥
यदि त्व मन्त्रिण पार्श्वे लोहटङ्कार्धमप्यहो । अग्रहीष्यत्ततो नाहमस्यास्य त्वद्गृहे ध्रुवम् ॥६५३॥
धेनुयोग्य तत स्थाणु श्लथ गाढ कुरुष्व तत । तयेत्युक्त कुशीं प्राप्य दरमत्राखनत्तत ॥६५४॥
खाते चाल्पे खनित्र च खटत्कृतमत स तु । भार्यामाकार्य कथयामास सा च ततोऽवदत ॥६५५॥
रात्रौ निर्व्यञ्जने किंचिद्विधेय नतु साप्रतम् । वेला विलम्ब्य तत्तस्मात्तदाऽकृष्यत यत्नत ॥६५६॥
चत्वारि हैमटङ्काना सहस्राणि स चासदत । अल्पाया अपि पूजाया फलमेतज्जिनेशितु ॥६५७॥
अर्पयिष्याम्यह मन्त्रिवाग्भटस्य धन ह्यद । ईदृशि व्ययित तीर्थे तद्धि कोटिगुण भवेत् ॥६५८॥
पत्न्याप्यनुमत प्रातर्गिरिमारुह्य मन्त्रिणम् । वीक्ष्य तद्दर्शयामास गृहीतेत्यवदच्च तम् ॥६५९॥
श्रुत्वेति धीसखस्वामी प्राह मद्वचन शृणु । सत्त्वात्ते सप्तभिर्द्रम्मै पूर्णो मम मनोरथ ॥६६०॥
अत परं भवद्द्रव्य ग्रहीतु नाहमीशिता । अनेन भविता यस्मात्सौवर्ण सकलो गिरि ॥६६१॥
अभिसन्धिर्न मे सोऽस्ति तत्त्वं द्रव्य यथारुचि । व्यय वर्धय भुङ्क्ष्वाथ धर्मे चाऽऽधेहि शीघ्रत ॥६६२॥
स प्राह कुनपोद्वाहसाग्रम्य कनक किमु । स्थाता मे निलये तत्क क्लेशोऽङ्गीक्रियतेऽस्य तु ॥६६३॥
भवान् यथातथाकर्तुमिम शक्त प्रभुत्वत । तत्प्रसद्य गृहाणेद तुष्टोऽस्तु कृतपो मम ॥६६४॥
प्राह मन्त्री ततो द्रव्य न गृह्णामि निरर्थकम् । एत भार न वोढास्मि वाहीक इव दुर्वहम् ॥६६५॥
एव विवदतोर्मन्त्रिवणिजोर्दिनमत्यगात । रात्रौ च श्रीकपर्दीश साक्षाद् वाणिजमभ्यधात ॥६६६॥
श्रीयुगादिप्रभो रूपकार्चातुष्टो धनं ह्यद । अहं प्रादर्शयं ते तत् त्व व्ययस्व निजेच्छया ॥६६७॥
क्षय यास्यति नैवैतद् दानभोगैर्धनैरपि । अन्यस्येद हि नाधीनमत्रान्यन्मा विचार्यताम् ॥६६८॥
अत्र चैतदभिज्ञान त्वत्पत्नी दुर्मुखाऽप्यलम् । अकस्मात्प्रियवादिन्याऽभूद् भक्तिप्रह्वा च विद्धि तत् ॥६६९॥
इद समीक्ष्य च प्रात श्रीनाभेयप्रभु स च । सुवर्णरत्नपुष्पाद्यै स्तद्धयान समपूजयत् ॥६७०॥
अभ्यर्च्य श्रीकपर्दीश तत स्वगृहमागमत् । स्वकृतै सुकृतैर्जन्म पवित्र व्यतनोत्तराम् ॥६७१॥
श्रीमद्वाग्भटदेवोऽपि जीर्णोद्धारमकारयत् । सदेवकुलिकस्यास्य प्रासादस्यातिभक्तित ॥६७२॥
धनद्रव्यव्ययाचिन्तावशादक्षेपतस्तदा । पर्यपूर्यन्त कुम्भश्चात्रारुरोह मुदा सह ॥६७३॥
शिखीन्दुरविवर्षे च (१२१३) ध्वजारोपे व्यधापयत् । प्रतिष्ठा सप्रतिष्ठा स श्रीहेमचन्द्रसूरिभि ॥६७४॥
इतश्च स्वर्विमानश्रीस्तत प्रभृति विश्रुत । श्रीकुमारविहारोऽय भव्यैकपुण्यलक्षणम् ॥६७५॥
पटुवैकटिकश्रेणिघटनाकोटिटङ्किनम् । बिम्ब श्रीपार्श्वनाथस्य निष्पन्न रम्यतावधि ॥६७६॥
प्रतिष्ठिपत्शुभे लग्ने मन्त्री श्रीहेमसूरिभि । अतिचिन्तामणिं प्राणिवाञ्छितातीतवस्तुदम् ॥६७७॥

सो पायालउरोयगारवधरा-[१३२७]वासे णिवा खं गओ ॥२१२॥
(सद्दूलविक्कीडियं)

(प्रे०) "**वक्खाणे**" इत्यादि, "**जो**"त्ति यः=श्रीदेवेन्द्रसूरिर्गुरुः किम्भूतः ? "**सपरागमत्थणिवुणो**" त्ति, स्वेषां निजानामर्हत्प्रणीततत्त्वरूपाणां परेषाञ्च=अन्येषां जिनेतरभणितार्थानामागमानां=शास्त्राणामर्थे=बोधलक्षणे ज्ञाने निपुणः=कुशलः स्वपरागमार्थनिपुणः स्वपरसिद्धान्तविदित्यर्थः "**णायतक्कग्गणी**"त्ति ज्ञाताः=अवबुद्धास्तर्काः=षट्तर्का षड्दर्शनानि वा यैस्ते ज्ञानतर्काः=नैयायिका दार्शनिका वा तेषु तेषां वाऽग्रणीः=मुख्यो ज्ञाततर्काग्रणीः "**वक्खाणे**" त्ति व्याख्याने=उपदेशसभायां तत्त्वविवेचने "**जुत्तीहिं**" त्ति युक्तिभिः=सद्धेतुभिः "**मिच्छादंसणं**" ति मिथ्यादर्शनमतथ्यमतं नास्तिकादिरूपं कीदृशं ? । **अप्पदुग्गइयर**" ति आत्मनो=जीवस्य दुर्गतिम्=अधोगतिं दुरवस्थाप्रापणरूपं करोतीत्येवंशीलः 'हेतुतच्छीला-ऽनुकूले (सि० ५-१-१०३) इत्यनेन टप्रत्यये, दुर्गतिकरस्तम् , आत्मदुर्गतिकरं "**दूरं करीअ**"त्ति दूरमकरोत्=परास्तश्चकार-निरास्यदिति यावत् ।

"**से**"त्ति अस्य=श्रीदेवेन्द्रसूरेः "**कित्तिरमणी**" त्ति कीर्तिरेव रमणी=निजस्त्री कीर्तिरमणी, किम्भूता ? "**अदिण्णायरा**' त्ति, न दत्तः=विहित आदरः=सत्कारस्तदाकाङ्क्षालक्षणो यस्याः साऽदत्तादरा=कीर्तिनिरपेक्षत्वेन सूरिणाऽदत्तसन्माना "**विस्से**" त्ति विश्वे=त्रिविष्टपे "**भंता**" त्ति भ्रान्ता=भ्रमणशीला जाता । का इव ? । "**कुलटाव्व**" त्ति कुलटेव यथा कुलटा =स्वैरिणी भ्रमणशीलाऽस्ति तद्वदस्या कीर्तिरमण्यपि । अस्य कीर्तिर्निःशेषजगति व्याप्तेतिभावः ।

"**सो**" त्ति सः=देवेन्द्रसूरिः "**णिवा**" त्ति नृपात्=विक्रमादित्यभूपतितः "**पायालउरोयगारवधरावासे**" त्ति पातालाः सप्त, उरोजौ=स्तनौ प्रसिद्धौ वामेतररूपौ द्वौ, गारवाः=ऋद्धि-रस-शातलक्षणास्त्रयः, धरा=भूमिरेका एतैरङ्कैर्वामगतिन्यस्तैर्मितो वर्षो द्वन्द्वसमासं कृत्वा 'मयूरव्यंसकेत्यादय ' (सि० ३-१-११६) इति सूत्रेण मध्यमपदलोपिसमासन्तेन पातालोरोजगारवधरावर्षे=विक्रमसंवत् १३२७ वर्षे ' **ख गओ**" खम्=नाकिनिकेततं गतः=प्राप्तः ।

तदा च वस्तुपालमन्त्रिगृहे केनचिदपराधेन कारागृहे प्रक्षिप्तो लेख्यकर्मकृद्विजयचन्द्राभिधः श्रीदेवभद्रोपाध्यायैश्चारित्रग्रहणप्रतिज्ञया विमोच्य श्रीजगच्चन्द्रसूरेरन्तिके प्रव्राजितः । स च प्राज्ञत्वेन बहुश्रुतीभूतो वस्तुपालमन्त्रिणा निषिद्धोऽपि वाचकश्रीदेवभद्रोपरोधात् श्रीजगच्चन्द्रसूरिभिः श्रीदेवेन्द्रसूरेः सहायो भविष्यतीति विचार्य सूरिपदे न्यस्तः । स च गुरौ स्वर्गते कियन्तं कालं श्रीदेवेन्द्रसूरौ गणनायके विनयवान् बभूव । अथान्यदा-श्रीदेवेन्द्रसूरिर्मालवे चिरं विहृत्य यदा स्तम्भतीर्थे समायातः । तदा स'(१)गीतार्थानां पृथग् पृथग् वस्त्रपुट्टलिकादानम् , (२) नित्य-

पुस्तकावस्थितौ चेन्मे भाग्य जागर्ति निर्भरम् । तदा भवन्तु श्रीताला सर्वेऽमी तालभूरुह ॥७१३॥
इत्युक्त्वा ग्रथितं मुक्तामाणिक्यै' स्वर्णनिर्मितम् । ग्रैवेयक तरो स्कन्धे न्यवेशयदशङ्कधी ॥७१४॥
व्यावृत्य सौधमूर्द्धानमधितस्थौ नराधिप. । प्राप्त प्रावर्द्धयस्ते चारामपाला प्रभु मुदा ॥७१५॥
सर्वे श्रीताडता जग्मु स्वामिन्नत्र तलद्रुमा । यथेच्छ लेखकै शास्त्रसमूहो लिख्यता तत ॥७१६॥
वस्त्राभरणभोज्यादि तेषा सत्पारितोषिकम् । ददावदैन्यद दानमनादीनवचेतन ॥७१७॥
ततः प्रववृते पुस्तकाना लेख्यविधिस्तदा । भूपालयशसा भाग्यमघात इव संगत ॥७१८॥
राजा सान्तःपुरो गेहिव्रतं बिभ्रदनिन्दितम् । सम्यग्बभार साम्राज्य स चक्रीव त्रयोदश ॥७१९॥
अन्यदा भूपतिं श्रीमदजितस्वामिसस्तवम । कुर्वन्त प्राग् रिपूच्छेदसकल्पपरिपूरित ॥७२०॥
तत्प्रासादविधानेच्छु प्रभुरादिक्षत स्फुटम् । गिरौ तारङ्गनागाख्येऽनेकसिद्धोन्नतस्थितौ ॥७२१॥
विहार उचित श्रीमन्नक्षय्यस्थानवैभवात । शत्रुञ्जयापरामूर्तिर्गिरिरेषोऽपि मृश्यताम ॥७२२॥
चतुर्विंशतिहस्तोच्चप्रमाण मन्दिरं ततः । बिम्ब चैकोत्तरशताङ्गुल तस्य न्यवापयत् ॥७२३॥
अद्यापि त्रिदशव्रातनरेन्द्रस्तुतिशोभित । आस्ते सघजनैर्दृश्य प्रासादो गिरिशेखर ॥७२४॥
आसीदुदयनस्यापि द्वितीयो नन्दनाग्रणी । अम्बडाभिधया श्रीमानमानवपराक्रम ॥७२५॥
श्रीमत्कुमारपालस्यादेशतो नृपतेरसौ । कुङ्कणाधिपतेर्मल्लिकार्जुनस्याच्छिनच्छिर ॥७२६॥
लाटमण्डल-भम्भेरी सहस्रनवक तथा । कुङ्कणा नन्दपद्र च राष्ट्र पल्लीवनानि च ॥७२७॥
भुङ्क्ते देशानिमान् स्वामिप्रसादान्निजविक्रमात्। 'रा ज सं हा र' इत्युग्रं सान्वय विरुद वहन् ।७२८। युग्मम् ।
अथ श्रीभृगुकच्छेऽसौ श्रीसुव्रतजिनालयम । चिरतन काष्ठमयं जर्जर परिदृष्टवान् ॥७२९॥
घूणोत्कीर्णजरत्काष्ठगतच्चूर्णास्तृतावनि (नि ?) । श्लथाय.कीलकभ्रश्यत्पट्टकच्छाद्यकावृत्तम् ॥७३०॥
अतिवृष्टिगलत्तोय पतद्भित्तिव्रज तदा। गर्भागारेऽपि निश्च्योतदाशातितजिनेश्वरम् ।॥७३१॥ त्रिभिर्विशेषकम्।
पूर्वप्रासादमुत्कील्य स्वस्थानस्थ प्रभु तत । प्रक्रान्तजीर्णोद्धारश्च गर्तापूरमचीखनत् ॥७३२॥
अत्रान्तरे छले कस्मिंश्चिदस्मिन् योगिनीगण । द्वात्रिंशल्लक्षणत्वेनाच्छलयन् श्रीमदम्बडम् ॥७३३॥
सर्वाङ्गीणव्यथाक्रान्तस्तत प्रभृति रुग्णरुक् । अक्षूत्तृष्णो विलीनाङ्ग केवलं क्षीयतेतराम् ॥७३४॥
पद्मावतीति तन्मात्राऽऽराद्धा पद्मावती सुरी । उपादिशदिद स्वप्ने शृणु सत्य वच' सुते । ॥७३५॥
महापीठमिद विश्वयोगिनीरङ्गसगते' । तद्ग्रस्त मोचयेन्नान्यो हेमचन्द्र गुरु विना ॥७३६॥
तत' प्रात. प्रभोरेषाकारणायादिशन्नरान् । वेगात्तेऽपि प्रभु दृष्ट्वा यथादेश व्यजिज्ञपन् ॥७३७॥
क्षते नष्टे मातुरेव शरणं नापरस्तत । जीवितव्य सपुत्राया मम देहि पभो । तत ॥७३८॥
श्रुत्वेति गुरुराश्वेव यशश्चन्द्रसमन्वित । आययौ पादचारेण समीपेऽम्बडमन्त्रिण. ॥७३९॥
गणी गणितनिष्णातश्चेष्टामैक्षिष्ट तस्य च । चित्ते विचिन्त्य तन्मातुर्ददौ शिक्षामलक्ष्यधी ॥७४०॥
नर निशीथे विश्वासपात्र प्रैषय मेऽन्तिके । चपलान्नबलिव्यग्रकर सौगन्धसगतम् ॥७४१॥
प्रातौलिकानामादेशे दापिते निशि सूरय' । दुर्गाद् वहि. प्रचेलुस्ते गणिना सह तेन च ॥७४२॥
उद्घाट्य गोपुरद्वारा तत्र निर्गत्य ते तत । गच्छन्तो ददृशुर्मार्गे कलविङ्ककदम्बकम् ॥७४३॥
चगाचगिति शब्दाढ्ये तन्मुखे बलिमक्षिपन् । यशश्चन्द्रस्ततो दृष्टनष्ट तत्तत्क्षणादभूत ॥७४४॥
गच्छन्ति कियदध्वानं तावत्ते कपिपेटकम् । अद्राक्षमैङ्क्ष् तत्रापि सपर्यक्षिपदक्षतान् ॥७४५॥
असत्तुल तदाभूत्तत् ततोऽप्यग्रे च ते ययु । श्रीमैन्धवीसूरीवेश्मपाश्वे कातरभीषणाम् ॥७४६॥
अग्रे व्यलोकयन् यावत् तावन्मार्जारमण्डलम् । अविच्छिन्नमहारौद्रशब्दभीपितबालकम् ॥७४७॥
पुष्पाणि तत्र रक्तानि चिक्षेपाथ ननाश तत् । तोरणाग्रे महादेव्या प्रभुरुद्र्वदम' स्थित ॥७४८।

देवेन्द्रसूरिर्भरतोत्तमो गुरुर्युगौत्तमाभो भविता महान्वय ।
तमेव सेवस्व यदीहसे शिव, तमादिदेशेति च देवता निशि ॥१३८॥' इति ।

तथा श्रीमुनि न्दरसूरिदर्शितविजयचन्द्रसूरिपट्टपरम्परा चेत्थम्—

(४६) विजयचन्द्रसूरिपट्टे (१) आचार्यवज्रसेनसूरिः (२) आचार्यपद्मचन्द्रसूरिः (३) क्षेमकीर्तिसूरिश्चेति त्रय आचार्या अभूवन् ।

(४७)	क्षेमकीर्तिसूरिपट्टे	हेमकलशसूरिः ।	(५३)	तत्पट्टे	ज्ञानचन्द्रसूरिः
(४८)	तत्पट्टे	यशोभद्रसूरिः	(५४)	,,	अभयसिंहसूरिः
(४९)	,,	रत्नाकरसूरिः	(५५)	,,	हेमचन्द्रसूरिः
(५०)	,,	रत्नप्रभसूरिः	(५६)	,,	जयतिलकसूरिः
(५१)	,,	मुनिशेखरसूरिः	(५७)	,,	जिनतिलकसूरिः
(५२)	,,	धर्मदेवसूरिः	(५८)	,,	माणिक्यसूरिः

तथा चोक्तं गुर्वावल्याम्-

"गुरोर्विजयेन्द्रोश्च त्रय पट्टे ॥१४०॥
श्रीवज्रसेनसूरि पद्मेन्दु क्षेमकीर्तिसूरिश्च । रदविश्वमिते १३३२ वर्षे विक्रमत कल्पटीकाकृत् ॥१४१॥
अथ हेमकलशसूरिस्तत्पदमौलिगुरुर्यशोभद्र । रत्नाकरस्ततोऽपि च शिष्यो रत्नप्रभश्चास्य ॥१४२॥
मुनिशेखरस्तदीय. शिष्य' श्रीधर्मदेवसूरिरपि । श्रीज्ञानचन्द्रसूरि सूरि श्रीअभयसिंहश्च ॥१४३॥
अथ हेमचन्द्रसूरिर्जयतिलका सूरयस्ततो विदिता । जिनतिलकसूरयोऽपि च सूरिर्माणिक्यनामा च ॥१४४॥
कालानुभाववशात शाखापार्थक्यचेतसो ह्यधुना । सर्वे ते गुणवन्तो ददता भद्राणि मुनिपतय ॥१४५॥"
इति ॥२१२॥

अथैकचत्वारिंशं द्वितीयोदययुगप्रधानयन्त्रक्रमानुसारेणैकविंशतितमं युगप्रधानं श्रीरेवतिमित्राभिधं सूरिमाविष्कर्तु कामः पथ्यामुखचपलार्यात्मकेन गाथाद्वयेनाह—

रेवइमित्तो सूरी जुगपवरो आसि एगचत्तालो ।
वीराऽस्य जणी अहिए विहिसवभुवणेहि संजमसयेऽद्दे १७३८॥२१३॥(पच्छागीई)
णायलोगपालजुत्ते१७४७**वयं सलायामहापुरिसजुत्ते**१७६३ ।
स हवीअ जुगपहाणो गओ दिवमिलाकलाराए१८४१ ॥२१४॥

(पच्छापुव्विगाइचवलाज्जा)

(प्रे०) 'रेवइमित्तो" इत्यादि, "रेवइमित्तो सूरी" त्ति रेवतिमित्रः = रेवतिमित्रनामा सूरिः=आचार्यः "जुगपवरो'आसि एगचत्तालो" त्ति एकचत्वारिंशत्तमो युगप्रवरः= युगप्रधानोऽभूत् ।

पुस्तकावस्थितौ चेन्मे भाग्य जागर्ति निर्भरम् । तदा भवन्तु श्रीताला सर्वेऽमी तालभूरुहा ॥७१३॥
इत्युक्त्वा ग्रथितं मुक्तामाणिक्यै स्वर्णनिर्मितम् । ग्रैवेयक तरो स्कन्धे न्यवेशयदशङ्कधी ॥७१४॥
व्यावृत्य सौधमूर्द्धानमधितस्थौ नराधिप. । प्रात प्राबद्र्धयस्ते चारामपाला प्रभु मुदा ॥७१५॥
सर्वे श्रीताडता जग्मु स्वामिन्नत्र तलद्रुमा । यथेच्छ लेखकै शास्त्रसमूहो लिख्यता तत ॥७१६॥
वस्त्राभरणभोज्यादि तेषा सत्पारितोषिकम् । ददावदन्यद दानमनादीनप्रचेतन ॥७१७॥
ततः प्रववृते पुस्तकाना लेख्यविधिस्तदा । भूपालयशसा साम्यमयान इव सगत ॥७१८॥
राजा सान्तःपुरो गेहिव्रतं बिभ्रदनिन्दितम् । सम्यग्बभार साम्राज्य स चक्रीव त्रयोदश ॥७१९॥
अन्यदा भूपतिं श्रीमदजितस्वामिसस्तवम् । कुर्वन्त प्राग् रिपूच्छेदसंकल्पपरिपूरित ॥७२०॥
तत्प्रासादविधानेच्छु प्रभुरादिक्षत स्फुटम् । गिरौ तारङ्गनागाख्येऽनेकसिद्धोन्नतस्थितौ ॥७२१॥
विहार उचित श्रीमन्नक्षय्यस्थानवैभवात । शत्रुञ्जयापरामूर्तिर्गिरिरेषोऽपि मृग्यताम् ॥७२२॥
चतुर्विंशतिहस्तोच्चप्रमाण मन्दिरं तत । बिम्ब चैकोत्तरशताङ्गुल तस्य न्यधापयत् ॥७२३॥
अद्यापि त्रिदशव्रातनरेन्द्रस्तुतिशोभित । आस्ते सघजनैर्दृश्य. प्रासादो गिरिशेखर ॥७२४॥
आसीदुदयनस्यापि द्वितीयो नन्दनाग्रणी । अम्बडाभिधया श्रीमानमानपराक्रम. ॥७२५॥
श्रीमत्कुमारपालस्यादेशतो नृपतेरसौ । कुङ्कणाधिपतेर्मल्लिकार्जुनस्याच्छिनच्छिर ॥७२६॥
लाटमण्डल-भम्भेरी सहस्रनवकं तथा । कुङ्कणा नन्दपद्र च राष्ट्रं पल्लीवनानि च ॥७२७॥
भुङ्क्ते देशानिमान् स्वामिप्रसादान्निजविक्रमात । 'रा ज सं हा र' इत्युग्र सान्वय विरुद वहन् ॥७२८॥ युग्मम् ।
अथ श्रीभृगुकच्छेऽसौ श्रीसुव्रतजिनालयम् । चिरतन काष्ठमयं जर्जर परिदृष्टवान् ॥७२९॥
घूणोत्कीर्णजरत्काष्ठरतश्चूर्णास्तृतावनि (नि ?) । श्लथाय कीलकभ्रश्यत्पट्टकच्छाद्यकावृत्तम् ॥७३०॥
अतिवृष्टिगलत्तोय पतद्भित्तिव्रज तदा । गर्भागारेऽपि निश्च्योतदाशाततजिनेश्वरम् ॥७३१॥ त्रिभिर्विशेषकम् ।
पूर्वप्रासादमुत्कील्य स्वस्थानस्थ प्रभुं तत । प्रक्रान्तजीर्णोद्धारश्च गर्तापूरमचीखनत् ॥७३२॥
अत्रान्तरे छले कस्मिंश्चिदस्मिन् योगिनीगण । द्वात्रिंशल्लक्षणत्वेनाच्छलयन् श्रीमदम्बडम् ॥७३३॥
सर्वाङ्गीणव्यथाक्रान्तस्तत प्रभृति रुग्णरुक् । अक्षुत्तृष्णो विलीनाङ्ग केवल क्षीयतेतराम् ॥७३४॥
पद्मावतीति तन्मात्राऽऽराद्धा पद्मावती सुरी । उपादिशदिद स्वप्ने शृणु सत्य वच सुते ॥७३५॥
महापीठमिदं विश्वयोगिनीरङ्गसगते. । तदग्रस्त मोचयेन्नान्यो हेमचन्द्र गुरु विना ॥७३६॥
तत प्रातः प्रभोरेषाकारणायादिशन्नरान् । वेगात्तेऽपि प्रभु दृष्ट्वा यथादेश व्यजिज्ञपन् ॥७३७॥
क्षते नष्टे मातुरेव शरणं नापरस्तत । जीवितव्य सपुत्राया मम देहि प्रभो । तत ॥७३८॥
श्रुत्वेति गुरुरारवेव यशश्चन्द्रसमन्वित । आययौ पादचारेण समीपेऽम्बडमन्त्रिण ॥७३९॥
गणी गणितनिष्णातश्चेष्टामैक्षिष्ट तस्य च । चित्ते विचिन्त्य तन्मातुर्ददौ शिक्षामलक्ष्यधी ॥७४०॥
नर निशीथे विश्वासपात्र प्रैषय मेऽन्तिके । चपलान्नबलिव्यग्रकर सौगन्धसगतम् ॥७४१॥
प्रातौलिकानामादेशे दापिते निशि सूरय । दुर्गाद् बहि प्रचेलुस्ते गणिना सह तेन च ॥७४२॥
उद्घाट्य गोपुरद्वारा तत्र निर्गत्य ते तत । गच्छन्तो ददृशुर्मार्गे कलविङ्ककदम्बकम् ॥७४३॥
चगाचगिति शब्दाढ्यो तन्मुखे बलिमक्षिपन् । यशश्चन्द्रस्ततो दृष्टनष्ट तत्तत्क्षणादभूत् ॥७४४॥
गच्छन्ति कियदध्वान तावत्ते कपिपेटकम् । अद्राक्षमंक्षु तत्रापि सपर्यक्षिपदक्षतान् ॥७४५॥
असत्तुल तदाभूत्तत् ततोऽप्यग्रे च ते ययु । श्रीसैन्धवीसूरीवेश्मपार्श्वं कातरभीषणम् ॥७४६॥
अग्रे व्यलोकयन् यावत् तावन्मार्जारमण्डलम् । अविच्छिन्नमहारौद्रशब्दभीषितबालकम् ॥७४७॥
पुष्पाणि तत्र रक्तानि चिक्षेपाथ ननाश तत् । तोरणाग्रे महादेव्या प्रभुरुद्धूर्वदमः स्थित ॥७४८॥

अथ श्रीदेवेन्द्रसूरेः प्रथमं पट्टधरशिष्यं प्रकटयितुकामः शार्दूलविक्रीडितद्वयं प्राह—

विज्जाणंदभिहो मुणीसरवरो तस्सऽज्जसिस्सुत्तमो,
जाओ जस्स जसोजलेण णिखिलो लोगो सिणाईकयो।
वाई जेण कया भयाउलमणा सीहेण कुंभी जहा,
दब्भं वागरणं सभिहगं सुत्तप्पमत्थाययं ॥२१५॥ (सद्दूलविक्कीडियं)
से दिक्खा गयदंतअंबरदसाखोणीपमाणे णिवा,
वासे वेअसमऽग्गिखग्गपमिए पत्तो स सूरित्तणं।
किं सोडुं अखमो गुरूण विरहं जाए गुरुस्सग्गये,
धस्से तेरपमे गओ सुरगइं खेत्तक्खिविस्से [१]३२७स वि ॥२१६॥
(सद्दूलविक्कीडियं)

(प्रे०) "विज्जाणंद०" इत्यादि, "तस्स" त्ति तस्य=श्रीदेवेन्द्रसूरेः "अज्जसिस्सुत्तमो" त्ति शिष्याणां शिष्येषु वोत्तमः शिष्योत्तमः=श्रेष्ठान्तेवासी,आद्यः=प्रथमः, आदिमपट्टभृदिति यावत् स चासौ शिष्योत्तमः, आद्यशिष्योत्तमः=प्रथमपट्टधरो विनेयावतंस इत्यर्थः "मुणीसरवरो" त्ति मुनीश्वराः=सूरयस्तेषु वरः=श्रेष्ठः, मुनीश्वरवरः=आचार्यपुङ्गवः "विज्जाणंदभिहो" त्ति विद्यानन्द इत्यभिधा यस्य स विद्यानन्दाभिधो विद्यानन्दनामा बभूव।

"जस्स" त्ति यस्य=श्रीविद्यानन्दसूरेः "जसोजलेण" त्ति यशः=कीर्तिविशेषः, यशः सर्वदिग्गामि, कीर्तिरेकदेशगामिनीति यशःकीर्त्योर्विशेषः, यश एव जलं=सलिलं यशोजल तेन यशोजलेन "सणाईकयो" त्ति अस्नातः स्नातः कृतः स्नातीकृतः=मलापगमेन स्वच्छीकृतः "णिखिलो लोगो" त्ति, निखिलः=समस्तो लोकः=विश्वः "जाओ" त्ति जातः=अभवत्।

"जेण" त्ति येन=श्रीविद्यानन्दसूरिणा "वाई" त्ति वादिनः=प्रतिपक्षाः "भयाकुलमणा" त्ति भयेन भयैर्वा-ऽऽकुलं=व्याक्षिप्तं मनः=चित्तं येषां ते भयाकुलमनसः=भयाकुलमनसो यथा स्युस्तथा पराजयभयविह्वलचेतसः "कया" त्ति कृताः=विहिताः। केन के इव ?। "सीहेण कुंभी जहा" त्ति यथा सिंहेन=केसरिणा वनभूपतिना कुम्भिनः=दन्तिनो भयाकुलमनसः क्रियन्ते।

"जेण" त्ति पूर्वतोऽनुवर्तते ततो येन=प्रभुणा श्रीविद्यानन्दसूरिणा "णवं" नवं=नूतनं "वागरणं" ति व्याकरण=शब्दानुशासनं "दब्भ" ति दब्भं=रचितम्, विभूतम्? "सभिहगं" ति स्वाभिधा=नाम यस्मिन् तद् स्वाभिधकं=स्वसंज्ञकं-विद्यानन्दाख्यमिति यावत् पुनः

अमुचद् भुजमस्याश्च चापतुल्यं मनोभुवः । कुधिया पेटकं वाथ वीटकं व्रतकण्टकम् ॥७८५॥
नरकाध्वनि यानाभे मुमोचायमुपानहौ । विरागी स्वाश्रयेऽगच्छदतुच्छं म्लपमर्तृकं ॥७८६॥
पुनर्व्रतं समुच्चार्य गुरूपान्ते महामनाः । सङ्गत्यागादनशनप्रत्याख्यानी बभूव सः ॥७८७॥
निर्जरनेकधाऽप्युक्तो दृढो नाऽसौ निजाग्रहात् । पश्चाद् व्याजुघुटे द्रोणीमध्यौ लब्धा हि कस्त्यजेत् ॥७८८॥
अनशन्याश्रयास्तत्र प्रावर्त्तन्त प्रभावना । वरिवस्या तपस्याया श्रेयोऽर्थी कं करोति न ॥७८९॥
विज्ञप्तेऽधिकृतैस्तत्र भूपो नन्तु तपोनिधिम् । अभ्यायायौ प्रमोदेन सान्तःपुरपरिच्छदः ॥७९०॥
यावत्पश्यति तद्वक्त्रं तावद् दृष्टः स एव यः । पण्याङ्गनागृहद्वारे कुवेषोऽपि नतस्तदा ॥७९१॥
तद्गुरून् मुनिवर्गं च नत्वा भूपालपुङ्गवः । तत्पादौ प्रणमंस्तेन निषिद्धो भुजधारणात् ॥७९२॥
महाराज ! गुरुस्त्वं मे भवाब्धेस्तारितस्त्वया । तत्र विश्वेऽपि वन्द्यस्य प्रणामो ह्यतिदुर्जरः ॥७९३॥
मादृशा भ्रष्टचारित्रा विराधितजिनोक्तयः । आराधकाः कथं नु स्युः स्फुरन्नरकदोहृदाः ॥७९४॥
भवादृशः पृथिव्यां चेन्नाथोऽपूर्वपितृप्रभुः । न स्याल्लोकद्वयापायसहर्ता प्राणभृद्गणे ॥७९५॥-युग्मम् ।
अवन्द्यं वन्द्यमानेन मा निस्तारयितुं त्वया । पुपूरे समसवेगवासना सङ्गमोचिनी ॥७९६॥
निर्जैर्गृहस्थैर्यतिभिरभियुक्तोऽपि जीवितुम् । क्लीबो व्रतस्य कष्टानि न सोढा प्रायमासदम् ॥७९७॥
उवाच भूपतिर्धीमन् ! मुनीश कस्त्वया समः । निमित्तादेकतस्त्यक्तसङ्गः प्रत्येकबुद्धवत् ॥७९८॥
तीर्थकृद्दर्शनाधारं प्रणामं मे स्वभावजम् । मानयन्नुपकाराय कृतज्ञमुकुटायसे ॥७९९॥
ममाथ वन्दनामात्रार्जितमप्यप्रतीच्छया । अदित्सन् सुकृतं संविभागार्हं मा न मन्यसे ॥८००॥
उदरंभरिता युक्ता सतां नैतदिति ब्रुवन् । तद्वचोऽवसरादानात्प्रणनाम बलादपि ॥८०१॥
अथाहानशनी धन्यो देशः पुण्यश्रियः प्रजाः । क्षाल्यते यत्र पङ्कस्त्वद्दर्शनामृतवृष्टिभिः ॥८०२॥
श्रुत्वेत्यानन्दसम्भेदगद्गदाक्षः क्षमापतिः । प्रभोः श्रीहेमचन्द्रस्य गत्वा वृत्तमथावदत् ॥८०३॥
युष्माभिरुपदिष्टानां नियमानां प्रपालना । प्रभो ! कामदुघेवेयं समस्तहृदभीष्टदा ॥८०४॥
अवोचन् गुरवः पुण्यदशेयं तव जाग्रती । प्रकाशयति वस्तूनि गुरुभक्त्यर्चिर्चर्चिता ॥८०५॥
एवं कृतार्थयन् जन्म सप्तक्षेत्र्यां धनं वपन् । चक्रे सप्रतिबज्जैनभवनैर्मण्डितां महीम् ॥८०६॥
श्रीशलाकानृणां वृत्तं स्वोपज्ञं प्रभवोऽन्यदा । व्याचख्युर्नृपतेर्धर्मस्थिरीकरणहेतवे ॥८०७॥
श्रीमहावीरवृत्तं च व्याख्यान्तः सूरयोऽन्यदा । देवाधिदेवसम्बन्धं व्याचख्युर्भूपतेः पुरः ॥८०८॥
यथा **प्रभावती देवी** भूपालोदयनप्रिया । श्रीचेटकावनीपालपुत्री तस्या यथा पुरा ॥८०९॥
वारिधौ व्यन्तरः कश्चिद् यानपात्रं महालयम् । स्तम्भयित्वाऽर्पयच्छ्राद्धस्याद्यं सपुटं दृढम् ॥८१०॥
एनं देवाधिदेवं य उपलक्षयिता प्रभुम् । स प्रकाशयिता नान्य इत्युक्त्वाऽसौ तिरोदधे ॥८११॥
पुरे **वीतभये** यानपात्रे सघटिते यथा । अन्यैर्नोद्घाटितं देव्या वीराख्याया प्रकाशितम् ॥८१२॥
यथा **प्रद्योतराजस्य** हस्तं सा प्रतिमा गता । दास्या तत्प्रतिबिम्बं च मुक्तं पश्चात्पुरे यथा ॥८१३॥
ग्रन्थगौरवभीत्या च न तथा वर्णिता कथा । श्रीवीरचरिताज्ज्ञेया तस्याः श्रुतिसकौतुकैः ॥षड्भिः कुलकम् ।
तां श्रुत्वा भूपतिः कल्पहस्तान्निपुणवीरसौ । प्रेष्य **वीतभये** शून्येऽचीखनत्तद्भुवं क्षणात् ॥८१५॥
र.जर्मान्दिरा ।लोक्य भुवोऽन्तस्तेऽतिहर्षतः । देवतावसरस्थानं प्रापुर्बिम्बं तथार्हतः ॥८१६॥
आनीतं च विभोः राजधानीमतिशयोत्सवैः । स प्रवेशं दधे तस्य सौधदैवतवेश्मनि ॥८१७॥
प्रासादः स्फाटिकस्तत्र तद्योग्यः पृथिवीभृता । प्रारेभेऽथ निषिद्धश्च प्रभुमिर्मोविवेदिभिः ॥८१८॥
राजप्रासादमध्ये च नहि देवगृहं भवेत् । इत्थमाज्ञामनुल्लङ्घ्य न्यवर्त्तत ततो नृपः ॥८१९॥
एकातपत्रतां जैनशासनस्य प्रकाशयन् । मिथ्यात्वशैलवज्रं श्रीहेमचन्द्रप्रभुर्बभौ ॥८२०॥

अथ श्रीदेवेन्द्रसूरेः प्रथमं पट्टधरशिष्यं प्रकटयितुकामः शार्दूलविक्रीडितद्वयं प्राह—

विज्जाणंदभिहो मुणीसरवरो तस्सऽज्जसिस्सुत्तमो,
जाओ जस्स जसोजलेण णिखिलो लोगो सिणाईकयो ।
वाई जेण कया भयाउलमणा सीहेण कुंभी जहा,
दब्भं वागरणं सभिहगं सुत्तप्पमत्थाययं ॥२१५॥ (सदूलविक्कीडियं)
से दिक्खा गयदंतअंबरदसाखोणीपमाणे णिवा,
वासे वेअसमऽग्गिखग्गगमिए पत्तो स सूरित्तणं ।
किं सोढुं असमो गुरूण विरहं जाए गुरुस्सग्गये,
घस्से तेरसमे गओ सुरगइं खेत्तक्खिविस्से[३२७]स वि ॥२१६॥
(सदूलविक्कीडियं)

(प्रे०) "विज्जाणंद०" इत्यादि, "तस्स" त्ति तस्य=श्रीदेवेन्द्रसूरेः "अज्जसिस्सुत्तमो" त्ति शिष्याणां शिष्येषु वोत्तमः शिष्योत्तमः=श्रेष्ठान्तेवासी,आद्यः=प्रथमः, आदिमपट्टभृदिति यावत् स चासौ शिष्योत्तमः, आद्यशिष्योत्तमः=प्रथमपट्टधरो विनेयावतंस इत्यर्थः "मुणीसरवरो" त्ति मुनीश्वराः=सूरयस्तेषु वरः=श्रेष्ठः, मुनीश्वरवरः=आचार्यपुङ्गवः "विज्जाणदभिहो" त्ति विद्यानन्द इत्यभिधा यस्य स विद्यानन्दाभिधो विद्यानन्दनामा बभूव ।

"जस्स" त्ति यस्य=श्रीविद्यानन्दसूरेः "जसोजलेण" त्ति यशः=कीर्तिविशेषः, यशः सर्वदिग्गामि, कीर्तिरेकदेशगामिनीति यशःकीर्त्योर्विशेषः, यश एव जलं=सलिलं यशोजलं तेन यशोजलेन "सणाईकयो" त्ति अस्नातः स्नातः कृतः स्नातीकृतः=मलापगमेन स्वच्छीकृतः "णिखिलो लोगो" त्ति, निखिलः=समस्तो लोकः=विश्वः 'जाओ' त्ति जातः=अभवत् ।

"जेण" त्ति येन=श्रीविद्यानन्दसूरिणा "वाई" त्ति वादिनः = प्रतिपक्षाः "भयाकुलमणा" त्ति भयेन भयैर्वा-ऽऽकुल=व्याक्षिप्तं मनः=चित्तं येषां ते भयाकुलमनसः=भयाकुलमनसो यथा स्युस्तथा पराजयभयविह्वलचेतसः "कया" त्ति कृताः=विहिताः । केन के इव ? । "सीहेण कुंभी जहा" त्ति यथा सिंहेन=केसरिणा वनभूपतिना कुम्भिनः=दन्तिनो भयाकुलमनसः क्रियन्ते ।

"जेण" त्ति पूर्वतोऽनुवर्तते ततो येन=प्रभुणा श्रीविद्यानन्दसूरिणा "णवं" नवं=नूतनं "वागरणं" ति व्याकरण=शब्दानुशासनं "दब्भ" तिं दब्भं=रचितम् , किम्भूतम् ? "सभिहगं" ति स्वाभिधा=नाम यस्मिन् तद् स्वाभिधकं=स्वसंज्ञकं-विद्यानन्दाख्यमिति यावत् पुनः

एवं प्रबन्धचिन्तामणि-चतुर्विंशतिप्रबन्धाऽपरनामप्रबन्धकोश-कुमारपालप्रबन्ध-कुमारपालचरितादिष्वपि श्रीहेमचन्द्रसूरिप्रमुखाणां वृत्तान्तो लभ्यते । किन्तु तत्र तत्र किञ्चिदन्यथा-ऽप्युपलभ्यते ।

तत्कृतयश्च (१) सिद्धहेमशब्दानुशासनम् , (२) तल्लघुवृत्तिः, (३) तद्बृहद्वृत्तिः (तत्त्वप्रकाशिका), (४) तद्बृहन्न्यासः (शब्दमहार्णवन्यासः), (५) लिङ्गानुशासनम् , (६) तद्वृत्तिः, (७) गणपाठः, (८) उणादिगणपाठः, (९) तद्वृत्तिः, (१०) धातुपारायणं, (११) तद्वृत्तिः, (१२) प्राकृतव्याकरणम् , (१३) तद्वृत्तिः, (१४) बालभाषाव्याकरणम् , (१५) तद्वृत्तिः, (१६) अभिधानचिन्तामणिकोशः, (१७) तद्वृत्तिः, (१८) तत्शेषः, (१९) अनेकार्थसंग्रहः, (२०) तद्वृत्तिः, (२१) निघण्टुशेषः, (२२) देशीनाममाला, (२३) तद्वृत्तिः, (२४) काव्यानुशासनम् (२५) तद्वृत्तिः, (अलङ्कारचूडामणिः), (२६) काव्यानुशासनसत्कविवेकसंज्ञकविवरणम् , (२७) छन्दोऽनुशासनम् , (२८) तद्वृत्तिः, (२९) संस्कृतद्वाश्रयमहाकाव्यम् , (३०) प्राकृतद्वाश्रयमहाकाव्यम् , (३१) त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरितम् , (३२) परिशिष्टपर्व (३३) सकलार्हत्स्तोत्रम् , (३४) अयोगव्यवच्छेदिका द्वात्रिंशिका (३५) अन्ययोगव्यवच्छेदिका द्वात्रिंशिका, (३६) वीतरागस्तोत्रम् , (३७) महादेवस्तोत्रम् , (३८) प्रमाणमीमांसा (३९) तद्वृत्तिः (४०) बलाबलवादनिर्णयः (४१) तद्बृहद्वृत्तिः (४२) वेदाङ्कुशः (द्विजवदनचपेटा) (४३) योगशास्त्रम् (४४) तद्वृत्तिरित्यादयः ।

तथाऽर्हन्नामसहस्रसमुच्चया-ऽर्हन्नीति-रहस्यवृत्तिप्रमुखा अपि तत्कृताः पठ्यन्ते ॥१९८-२०१॥

अथ श्रीमलयगिरिपादान् विवर्णयिषुः पथ्यार्यां वक्ति—

स सिरिमलयगिरिसूरी पुज्जो भव्वाण दिसउ परमसिवं ।
बहुगंथसुबोधविसयटीगारयणाइ लद्धवरो ॥२०२॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "स" इत्यादि, "स सिरिमलयगिरिसूरी पुज्जो" त्ति, स श्रीमलयगिरिसूरिः पूज्यः "भव्वाण" त्ति, भव्यानां मुक्तिरमणीगमनार्हाणां जीवानां "परमसिव" त्तिः परमशिवं=श्रेष्ठकल्याणं "दिसउ" त्ति, दिशतु=दर्शयतु, किम्भूतः श्रीमलयगिरिसूरिः ? "बहुगंथसुबोधविसयटीगारयणाइ लद्धवरो" त्ति बहूनाम्=अनेकानां ग्रन्थानां=शास्त्राणां सुबोधाः=सुखेनावगन्तुं योग्या विशदा=विशालाः टीकाः=वृत्तयः, 'इदमुक्तं भवति' 'अयम्भावः' 'इदमत्र हृदयम्' इत्यादिना विशेषस्पष्टीकरणादनेकसाक्षिग्रन्थैः पुष्टीकरणाच्च, तासां रचनाया रचनायां वा=प्रणयनस्य प्रणयने वा लब्धः=प्राप्तो वरः=वरदानं येन स लब्धवरः ।

अथ सोत्प्रेक्षं स्वर्गगमनकालं दर्शयन्नाह—"किं" इत्यादि; "किं" ति किमित्युत्प्रेक्षाद्योतकोऽव्ययः, किम् "गुरूण विरह" ति गुरूणां=श्रीदेवेन्द्रसूरिपूज्यानां स्वदीक्षागुरूणां विरह=सान्निध्याभावरूपं 'सोढुं' ति सोढुं =सहितुं "अखमो" त्ति अक्षमः=अशक्तः "जाए गुरुस्सग्गये" त्ति, गुरोः=निजदीक्षागुरोः स्वर् = देवलोके गते=गमने स्वर्गते = देवलोकप्रापणे-इहलोके तनुत्यागलक्षणे मरणे "जाए" त्ति जाते = भूते "धस्से तेरसमे" त्ति त्रयोदशमे धस्रे = दिवसे विद्यापुरे "खेत्तऽक्खिविस्से" त्ति क्षेत्राणि = सत्पात्राणि-अर्हत्प्रतिमा चैत्य-जिनागम-साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविकारूपाणि सप्त, यद्वा क्षेत्राणि भरतादीनि सप्त। अक्षिणी = नेत्रे प्रसिद्धे वामेतररूपे द्वे विश्वाः=विश्वदेवास्त्रयोदश, यदुक्तं श्रीहेमचन्द्रसूरिभिः शेषनाममालायाम्—"विश्वदेवास्त्रयोदश।" (गा५) इति।

एतेङ्का विपरीतक्रमस्थिता यत्र तत्र क्षेत्राक्षिविश्वे = विक्रमसंवत्१३२७वर्षे 'स वि" त्ति सोऽपि=आचार्यश्रीविद्यानन्दोऽपि 'सुरगई" ति, सुरगतिं=देवलोकं 'गओ" त्ति गतः = प्राप्तः।

तथा चोक्तं श्रीतपागच्छपट्टावल्याम्—

"विक्रमात् सप्तविंशत्यधिकत्रयोदशशत१३२७वर्षे मालवक एव देवेन्द्रसूरयः स्वर्गं जग्मुः ॥ दैवयोगाद् विद्यापुरे श्रीविद्यानन्दसूरयोऽपि त्रयोदशदिनान्तरिताः स्वर्गभाजः।" इति।

तथा चामुष्य व्यतिकरं गुर्वावल्यां श्रीमुनिचन्द्रसूरिभिरित्थं प्रदर्शितम्—

"अथागमत्सूरिरयं विदूरय-स्तमस्ततिं मालवमण्डलावनौ ।
तत्रोज्जयिन्यां जिनचन्द्रसंज्ञया-ऽभवन्महेभ्यो जिनसाधुभक्तिभृत् ॥१५२॥
अस्ति वीरधवलाह्वयस्य स, स्वाङ्गजस्य करपीडनोत्सवम् ।
कारयन्नसमरूपया समं, यावदिभ्यगजपालकन्यया ॥१५३॥
तावदेत्र स गुरोः समागमं, संनिशम्य नतयेऽगमत्सुतः ।
संनिपीय च सुदेशनासुधां, मोहतापविलयात्प्रबुद्धवान् ॥१५४॥
भीतो भवात्तस्य गुरोः पदान्ते, समानयित्वा पितरौ प्रवीणः ।
ततः प्रवव्राज विहाय जम्बू-रिव स्वबन्धून् रमणीं व्रता च ॥१५५॥

विद्यानन्दाभिधः पाणिखविश्वाब्दे १३०२ स दीक्षितः । क्रमाद्विद्याम्बुधिर्जज्ञे गणिमान्यतदा मुनिः ॥१५६॥
भीमसिंहोऽनुजोऽप्यस्य गुरुणा तेन बोधितः । दीक्षितो धर्मकीर्त्याह्वो मुनिरासीद्गुणोदधिः ॥१५७॥
धरासारतरे तुङ्गचङ्गचैत्यालिशालिनि । प्रह्लादनपुरेऽथागात् स गुरुर्विहरन् क्रमात् ॥१५८॥
श्रीकरीयुतसुखासनयाना कुर्वते चतुरशीतिमितेभ्या । तत्र तद्गणपतेरुपदेशाद् धर्मकर्म विविध जनताश्च॥१५९॥
प्रह्लादनविहारे तु सौवर्णकपिशीर्षके । तदा मूढकमानाश्चाक्षता प्रत्यहमागमन् ॥१६०॥
प्रतिगोणि तु देवस्य दायं पूगीफलं जनाः । ददतो ददिरे प्रायो मणान्यहनि षोडश ॥१६१॥
भोगं पाञ्चशतीसंख्यवीसलप्रियिकं तथा । प्रत्यहं ससृजुः श्राद्धाः पूजामित्यपरामपि ॥१६२॥

एवं प्रबन्धचिन्तामणि-चतुर्विंशतिप्रबन्धाऽपरनामप्रबन्धकोश-कुमारपालप्रबन्ध-कुमारपालचरितादिष्वपि श्रीहेमचन्द्रसूरिप्रमुखाणां वृत्तान्तो लभ्यते । किन्तु तत्र तत्र किञ्चिदन्यथा-ऽप्युपलभ्यते ।

तत्कृतयश्च (१) सिद्धहेमशब्दानुशासनम् , (२) तल्लघुवृत्तिः, (३) तद्बृहद्वृत्तिः (तत्त्वप्रकाशिका), (४) तद्बृहन्न्यासः (शब्दमहार्णवन्यासः), (५) लिङ्गानुशासनम् , (६) तद्वृत्तिः, (७) गणपाठः, (८) उणादिगणपाठः, (९) तद्वृत्तिः, (१०) धातुपारायणं, (११) तद्वृत्तिः, (१२) प्राकृतव्याकरणम् , (१३) तद्वृत्तिः, (१४) बालभाषाव्याकरणम् , (१५) तद्वृत्तिः, (१६) अभिधानचिन्तामणिकोशः, (१७) तद्वृत्तिः, (१८) तत्शेषः, (१९) अनेकार्थसंग्रहः, (२०) तद्वृत्तिः, (२१) निघण्टुशेषः, (२२) देशीनाममाला, (२३) तद्वृत्तिः, (२४) काव्यानुशासनम् (२५) तद्वृत्तिः, (अलङ्कारचूडामणिः), (२६) काव्यानुशासनसत्कविवेकसंज्ञकविवरणम् , (२७) छन्दोऽनुशासनम् , (२८) तद्वृत्तिः, (२९) संस्कृतद्वाश्रयमहाकाव्यम् , (३०) प्राकृतद्वाश्रयमहाकाव्यम् , (३१) त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरितम् , (३२) परिशिष्टपर्व (३३) सकलार्हत्स्तोत्रम् , (३४) अयोगव्यवच्छेदिका द्वात्रिंशिका (३५) अन्ययोगव्यवच्छेदिका द्वात्रिंशिका, (३६) वीतरागस्तोत्रम् , (३७) महादेवस्तोत्रम् , (३८) प्रमाणमीमांसा (३९) तद्वृत्तिः (४०) बलाबलवादनिर्णयः (४१) तद्बृहद्वृत्तिः (४२) वेदाङ्कुशः (द्विजवदनचपेटा) (४३) योगशास्त्रम् (४४) तद्वृत्तिरित्यादयः ।

तथाऽर्हन्नामसहस्रसमुच्चया-ऽर्हन्नीति-रहस्यवृत्तिप्रमुखा अपि तत्कृताः पठ्यन्ते ॥१९८-२०१॥

अथ श्रीमलयगिरिपादान् विवर्णयिषुः पथ्यायां वक्ति—

स सिरिमलयगिरिसूरी पुज्जो भव्वाण दिसउ परमसिवं ।
बहुगंथसुबोधविसयटीगारयणाइ लद्धवरो ॥२०२॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "**स**" इत्यादि, "**स सिरिमलयगिरिसूरी पुज्जो**" त्ति, स श्रीमलयगिरिसूरिः पूज्यः "**भव्वाण**" त्ति, भव्यानां मुक्तिरमणीगमनार्हाणां जीवानां "**परमसिव**" त्ति, परमशिवं=श्रेष्ठकल्याणं "**दिसउ**" त्ति, दिशतु=दर्शयतु, किम्भूतः श्रीमलयगिरिसूरिः ? "**बहुगंथसुबोधविसयटीगारयणाइ लद्धवरो**" त्ति बहूनाम्=अनेकानां ग्रन्थानां=शास्त्राणां सुबोधाः=सुखेनावगन्तुं योग्या विशदा=विशालाः टीकाः=वृत्तयः, 'इदमुक्तं भवति' 'अयम्भावः' 'इदमत्र हृदयम्' इत्यादिना विशेषस्पष्टीकरणादनेकसाक्षिग्रन्थैः पुष्टीकरणाच्च, तासां रचनाया रचनायां वा=प्रणयनस्य प्रणयने वा लब्धः=प्राप्तो वरः=वरदानं येन स लब्धवरः ।

स क ? इत्याह–"**जस्स**" त्ति यस्मै=श्रीधर्मघोषसूरये कौतुकान्मणिदर्शनोत्कण्ठया वा "**सीसाणं पत्थणाए रइअजलणिहि-त्थोत्तमतप्पहावा**" त्ति शिष्याणां=निजविनेयानां प्रार्थनया=विज्ञप्त्या याञ्चयाऽऽग्रहेण वा जलनिधेः=समुद्रस्य स्तोत्रं=स्तुतिर्जलनिधिस्तोत्रं, रचितश्च तज्जलनिधिस्तोत्रम्, तदेव मन्त्रः, रचितजलनिधिस्तोत्रमन्त्रस्तस्य प्रभावात्=माहात्म्याद् रचितजलनिधिस्तोत्रमन्त्रप्रभावात्=सागरमुद्दिश्य विहितस्य मन्त्रमयस्य स्तवस्यानुभावात् "ऽब्धी" त्ति, अब्धिः=पारावारीणः "वीईकरेहि" ति वीच्यः=ऊर्मयः, त एव कराः=पाणयस्तैर्वीचीकरैः= तरङ्गहस्तैः "**भूवदेय मिव**" त्ति दातुम्=अर्पयितुं योग्यं=देयं भूपाय=नृपाय देयं भूपदेयं भूपदेयमिव=राज्ञोऽर्पणार्हमिव "**रयणुवद**" ति रत्नानां=विविधमणीनामुपदां=प्राभृतं रत्नोपदां= नानाविधरत्नोपढौकनं "**देइ**" त्ति ददाति=प्रयच्छति गुरुवर्याणां निर्ग्रन्थत्वेन ग्रहणासम्भवाज्जलधिः स्वतरङ्गहस्तोपरि रत्नानि दर्शयामासेत्यर्थः। **तथा चोक्तं गुर्वावल्याम्–**

"शिष्यार्थनाविहितमन्त्रनुतिप्रभावाद्रत्नाकरोऽप्यकृतमण्युपदा तरङ्गैः।
स्थानेऽस्य तत्तदतिथेः पुरुषोत्तमस्य गम्भीरताभिभवनाद् लुठत पदाग्रे ॥२१८॥" इति।

तथा श्रीहीरसौभाग्येऽपि–

'शिष्यार्थनानिर्मितसस्तवस्यानुभावतो देवकपत्तनेऽब्धिः।
भूपस्य शुश्रूषुरिवास्य रत्नं तरङ्गहस्तैरुपदीचकार ॥११५॥' इति।

"**जो**" त्ति यः=श्रीधर्मघोषसूरिः "**जक्खं जिण्ण कवड्डिं**" ति जीर्ण=पुरातनं कपर्दिनं= तन्नामानं गोमुखापरपर्यायं जावडिकृतश्रीशत्रुञ्जयोद्धारसमये श्रीवज्रस्वामिमाहात्म्यान्नवीनकपर्दियक्षेण त्याजितविमलगिरिस्थानं "**जक्ख**" ति यक्षः=देवजातिविशेषस्तस्मिञ्जातत्वाद् यक्षस्तं यक्षं "**उवइसिअ**" त्ति उपदिश्य=उपदेशेन प्रबोध्य "**पुण**" त्ति पुनः "**पुव्वठाणे**" त्ति पूर्वस्थाने=विमलाद्रौ ऋषभजिनमूर्तेरधिष्ठायकलक्षणे पूर्वाधिकारविशेषे "**ठवीअ**" त्ति, अस्थापयत्=न्यवीविशत्। **तथा च भणितं गुर्वावल्याम्–**

"सोमेशपत्तनगतः स्मरणानुभावात्, सोऽप्यक्षतागमितजीर्णकपर्दिराजम्।
मिथ्यात्वतो भवगमी चिरसेष मा भू-रेव प्रबोध्य विदधे श्रितजैनबिम्बम्॥२१७॥' इति।

तथा श्रीहीरसौभाग्येऽपि–

"मिथ्यामतोत्सर्पणवद्धकक्षं, प्रेक्ष्य क्षितौ जीर्णकपर्दिनं यः।
प्रबोध्य वाचा जिनराजबिम्बा-धिष्ठायकं पूर्वमिव व्यधत्त ॥११४॥" इति।

तथा श्रीगुरुपर्वक्रमेऽपि–

"दुष्टस्त्रीदमनः सुशास्त्ररचनः श्रीधर्मघोषः पुनः, पाथोधिप्रकटीकृताद्भुतमणिः श्रीगोमुखोद्बोधकृत् ॥३१॥"
इति ॥२१७॥

अथ तमेव विशेष्टुमनाः पथ्यार्यामाह–

आवश्यकवृत्तिः (अपूर्णा), (१३) ओघनिर्युक्तिवृत्तिः, (१४) पिण्डनिर्युक्तिवृत्तिः, (१५) विशेषावश्यकवृत्तिः (१६) कर्मप्रकृतिवृत्तिः (१७) क्षेत्रसमासवृत्तिः (१८) बृहत्संग्रहणीवृत्तिः, (१९) हारिभद्रीयधर्मसंग्रहणीवृत्तिः (२०) धर्मसारवृत्तिः (२१) चन्द्रप्रभमहत्तरकृतपञ्चसंग्रहवृत्तिः, (२२)षडशीतिवृत्तिः, (२३) सप्ततिकावृत्तिः, (२४) देवेन्द्र-नरकेन्द्रप्रकरणवृतिः, (२५) स्वोपज्ञवृत्तिसहितं मुष्टिव्याकरणम् (२६) तत्त्वार्थाधिगमसूत्रवृत्तिरित्यादयः ।

तत्र जम्बुद्वीपप्रज्ञप्तिवृत्त्यो-घनिर्युक्तिवृत्ति-विशेषावश्यकवृत्ति तत्त्वार्थाधिगमसूत्रवृत्ति-धर्मसारप्रकरणवृत्ति-देवेन्द्रनरकेन्द्रप्रकरणवृत्तिप्रमुखा अलभ्याः सन्ति । देशीनाममाला-ऽपि तत्कृता-ऽधुना पुनरलभ्या संभाव्यते ॥२०२॥

अथ वीरस्वामिनो द्विचत्वारिंशत्तमं पट्टधरं प्रकटयन् माधवीलतामाह—

सेलेसो जंबुदीवे, व अजिअदेवमुणिंदुणो पए;
सूरी वाईहसीहो, स विजयसिंहगुरू विभाअसी ।
बंभं पालीअ रूवे, मयणसमो वि जिइंदियो गुरू;
जो णिस्संगो तवस्सी, भविदुहतावसुहायरो विहू ॥२०३॥ (माहवीलया)

(प्रे०) "**सेलेसो**" इत्यादि, "**अजिअदेवमुणिंदुणो**" त्ति, मुनिषु=साधुषु इन्दुरिव शशीव शोभाभूतत्वादाह्लादकत्वात्सर्वप्रधानस्थानस्याप्तत्वाद्वा मुनीन्दुः=आचार्यः अजितदेवः '**अजितदेव**' इति संज्ञकः, स चाऽसौ मुनीन्दुः=अजितदेवमुनीन्दुस्तस्य अजितदेवमुनीन्दोः "**पए**" त्ति पदे=पट्टे "**स**" त्ति, सः "**विजयसिंहगुरू**" त्ति, विजयसिंहगुरुः=विजयसिंहनामा गुरुर्विवेकमञ्जरीशुद्धिकृत् "**विभाअसी**" त्ति, व्यभात्=राजते स्म । कस्मिन् क इव ? "**सेलेसो जंबुदीवे व**" त्ति, जम्बूद्वीपे=तन्नाम्नि सर्वद्वीपमध्यवर्तिनि द्वीपे शैलानां=नगानामीशः=अधिपतिः सर्वतस्तुङ्गत्वात्, सर्वमध्यवर्तित्वाद्, जिनाभिषेकमिषेण तस्य मूर्ध्न्यधिपत्वेनाभिषिञ्चनाद्वा शैलेशः शैलेश इव=मेरुगिरिरिव=यथा जम्बूद्वीपे सुरभूधरो विभाति । किंविशिष्टो-ऽसौ विजयसिंहगुरुः ? "**सूरी**"त्ति, सूरिः=आचार्यः पण्डितो वा, पुनः किंविशिष्टः ? "**वाईहसीहो**" त्ति, वादिन एवेभाः=द्विपास्ते वादीभास्तेषु तेषां वा सिंहः=केसरी जयनशीलत्वात्स्वयमजेयत्वाच्च वादीभसिंहः=वादिविजेता ।

यत्तदोर्नित्यमापेक्षत्वात्स कः ? इत्याह-"**जो**" त्ति, यः=श्रीविजयसिंहनामा "**गुरू**" त्ति, गुरुः "**रूवे**" त्ति, रूपे=रूपविषये "**मयणसमो वि**" त्ति, मदनस्य रतिपतेः समः=

त्ति, प्रथमः=आद्यपट्टधरः "**सोमप्पहमुणीसरो**" त्ति, मुनीनां=संयमिनामीश्वरः=अधिपति-र्मुनीश्वरः=आचार्यः, सोमप्रभः=सोमप्रभनामा चाऽसौ मुनीश्वरः सोमप्रभमुनीश्वरः "**सय-त्थिगो**" त्ति, शतार्थिकः=शतमर्थानि यस्य सन्ति स शतार्थी शतार्थ्येव शतार्थिकः "यावदि-य क" (सि० ७ ३-१५) इति सूत्रे बहुवचनस्याकृतिगणत्वात्स्वार्थे कप्रत्ययः, यद्वा प्राकृते "स्वार्थे कश्च वा" (सि० ८-२-१६४) इति सूत्रेण कप्रत्ययः ततः संस्कृते शतार्थी शतार्थकाव्यकरणात् 'ओ'त्ति,ख्यातः=प्रसिद्धिभाग् जातः,"**कल्याणसारसवितानहरेक्षमोह-कान्तारवारण-समानजयाद्यदेव। धर्मार्थ मदमहोदयवीरधीर-सोमप्रभावपरमागमसिद्धसूरेः।।**" इत्येवंरूपस्यैकस्य वसन्ततिलकाख्यश्लोकस्य शतार्थाभिधायकस्य स्वोपज्ञवृत्त्युपेतस्य रचनात्शता-र्थित्वेन जगति विश्रुतवानित्यर्थः ।

"**बीओ**" त्ति, द्वितीयः=द्वितीयपट्टभृद् "**मणिरयणमुणीसरो**"त्ति, मणिरत्नः=मणि-रत्ननामा चाऽसौ मुनीश्वरः=सूरिः; मणिरत्नमुनीश्वरोऽभूत् । किंविशिष्टः '**संघवच्छलो**'त्ति, संघे=साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविकारूपे चतुर्विधे वत्सलः=वात्सल्यवान् संघवत्सलः=संघहितकारी, पुनरपि "**सोम्मो**" त्ति, सौम्यः=सौम्याकृतिः शान्तस्वभाव इति यावत् ।

भणितं च गुर्वावल्याम्-

" · प्रथमोऽथ तस्मात्।सोमप्रभो ४४ मुनिपतिर्विदित शतार्थीत्यासीद् गुणी च मणिरत्नगुरुर्द्वितीय " इति।

तथा गुरुपर्वक्रमे-

"ततः शतार्थिक ख्यात' श्रीसोमप्रभसूरिराट्। सूरि श्रीमणिरत्नश्च भारत्यास्तनयाविव ॥ ॥" इति।

अन्यत्राऽपि च-"यस्य प्रथम शिष्य , शतार्थितया विख्यात. ।

श्रीसोमप्रभसूरि , द्वितीयस्तु मणिरत्नसूरि. ॥१॥" इति ॥२०४॥

अथ चत्वारिंशत्तमं द्वितीयोदयक्रमाऽपेक्षया विंशं युगप्रधानं श्रीशीलमित्राह्वं भणन्पथ्या-गीति-पथ्यार्यारूपगाथाद्वयं भणति--

चत्तालो जुगपवरो हवीअ सिरिसीलमित्तसूरिवरो ।
वीरा विज्जादेवीसये जुएऽस्स तिसरेहिं१६१३जम्मोऽह्ने ॥२०५॥(पच्छागीई)
इत्थीकलाहिं१६६४दिक्खा मेरुवणाकरीहिं१६५४आसि जुगपवरो ।
स सलागापुरिसुत्तमसंजममाणम्मि सग्गमिओ१७६३॥२०६॥(पच्छाज्जा)

(प्रे०) "**चत्तालो**" इत्यादि, "**सिरिसीलमित्तसूरिवरो**" त्ति, श्रीशीलमित्रसूरिवरः श्रीयुक्तः शीलमित्राभिध आचार्यपुङ्गवः "**चत्तालो जुगपवरो हवीअ**" त्ति, चत्वारिंशो युग-प्रवरः=युगप्रधानो द्वितीयोदयापेक्षया पुनर्विंशतितमो युगप्रधानोऽभूत् ।

ततो ऽयमुच्चद्‌गुरुचक्रवर्ती तं योगिनं योजितपाणिपद्मम् ।
यतो मनः साम्यभृता नितान्तं कान्तं घृणासान्द्ररसैः प्रशस्यैः ।।४५।।" इति ।

तद्व्यतिकरो विस्तरेण तु गुर्वावल्यामेवम्--

वल्गद्‌वेतालमालाविदलनकुशलः सिद्धझोण्टीङ्गवृन्द-
स्तन्त्रैर्मन्त्रैरमात्रैः समजनि त्रिकटैश्चटकैश्चोत्कटोऽथ ।
योगी कोऽप्युज्जयिन्यां नृपसचिवमुखैः पूजितः सर्वलोकै-
र्नानाशिष्यैः परीतोदधदणिमवशित्वेशताद्याश्च शक्तीः ।।२२१।।
स्वर्णाद्रिं शिरसा भिनद्मि निखिलानाकर्षयामि ग्रहान्,
फूत्कृत्यादिवमुत्क्षिपामि च गिरीन् संशोषयाम्यम्बुधीन् ।
त्रैलोक्यं स्ववशीकरोमि विदधे स्वर्भूर्भुवो व्यत्ययं,
देवेन्द्रैः सह लोठयामि पदयोर्ब्रह्मेशनारायणान् ।।२२२।।
भो भो दर्शनिनः ! समस्ति पटुता कस्यापि चेत्तन्मया, सार्द्धं वादरणं करोत्वभिमतं कृत्वा पणं सोऽधुना !
नोचेत्त्यक्तमदा मदीयमखिला सेवध्वमङ्घ्रिद्वयं, दूरं यात पलाय्य वाऽपि सकलान्नोचेद्गिलाम्येष वः ।।२२३।।
इति प्रतिज्ञां प्रवदन् मदात्तदा जगत्त्रयेऽप्यप्रतिमल्लतां विदन् ।
वित्रासिताऽन्याखिलदर्शनिव्रजो, नैवोज्जयिन्यां न ससाह सयनान् ।।२२४।।
श्रीधर्मघोष प्रभुरन्यदाऽगमत्, स तत्र धात्र्यां विहरन् महर्षिभुक् ।
अमुष्य शिष्यांश्च स वीक्ष्य वर्त्मनि, क्रुधा क्रूधीर्दष्टरदच्छदोऽवदत् ।।२२५।।
इहागताः किं नु पुरे सिताम्बराः !, विहाय मूढाः ! विपुलं धरातलम् ।
मुमूर्षुगोधा तु निपादपाटकं, न वीक्षितश्चेत्तदहं श्रुतोऽपि न ।।२२६।।
पलाय्य तद्गच्छत मर्षयाम्यहं, स रङ्कुकाणामपराधमेककम् ।
भ्रूक्षेपमात्रादपि कम्पितामरो-ऽन्यथा पतङ्गिष्यथ मे रुषानले ।।२२७।।
जगुर्मुनीन्द्राः प्रभवन्ति दुर्मते !, सर्वज्ञपुत्रेषु न ते विभीषिकाः ।
मृगेषु सिंहस्य यथा हि विक्रमः, स्फुरेत्तथा नो शरभार्भकेष्वपि ।।२२८।।
न योगिराजा-ऽन्यकुदर्शनिव्रजैः, समानतां बिभ्रति सूनवोऽर्हतः ।
करैरपि ध्वान्तरिपोर्विलुप्यते, न तारकाणामुदितैः किमु प्रभा ? ।।२२९।।
प्रभुः किमद्यापि न नः श्रुतो जयी, गुरुर्भवद्दर्पतमोदिवाकरः ।
यमेव विद्या निखिला समं श्रिता, सरित्पतिं सिन्धुगणा इवाधुना ।।२३०।।
गतं गजेन्द्रस्य यथा न जम्बुकै-र्नवा मृगैः शौर्यविजृम्भितं हरेः ।
नभःप्लुतिर्नो मशकैर्गरुत्मतो, रवेर्न खद्योतकरैर्नुता भरम् ।।२३१।।
नगैर्न गाङ्गेयगिरेर्यथोच्चता, जलाशयैर्नो जलधेरगाधताम् ।
द्रुमैः प्रभावं न च कल्पशाखिनो, न दुर्गतैः श्रीस्फुरितं च चक्रिणः ।।२३२।।
यथा न भूतैर्ललितं सुरेशितु-र्न तीर्थिकैस्तीर्थकृतोऽर्थदेशनाम् ।
समग्रविद्याविदुरैर्न नो गुरो-स्तथाऽनुकर्त्तुं चरितं प्रगल्भ्यते ।।२३३।।
ततो मुधा गर्जसि गर्वपर्वते, मन्यामहे त्वां न तृणाय दुर्मते ! ।
अस्मद्‌गुरोर्मन्त्रसमीरणोद्धुतो न तूलकल्पः स्थिरतां प्रयास्यसि ।।२३४।।

आकारः सौम्यमूर्तिः, आत्मगुणानामनाकारत्वेऽपि किमयं सौम्यलक्षणेनात्मगुणेन देहो धृत इति लक्ष्यते ॥२०८॥

अथ जगच्चन्द्रसूरेः "तपा" इति विरुदं तथा गच्छस्य षष्ठीमाह्वां भणन्नाह पथ्याजघन-चपला-पथ्यामुखचपलाऽऽर्याद्वयम्–

जो किच्चा आयंबिलसरणतवमखंडबारवासमिअं ।
जमदीवरासिवासे[१२८५]तवत्ति बिरुदं लहीअ णिवा ॥२०९॥

(पच्छापुव्विगा जहणचवलाज्जा)

आरंभिऊण तत्तो हवीअ सरणा तवत्ति गच्छस्स ।
जाओ कोडिगसरणो गच्छो जह मंतकोडिजवा ॥२१०॥

(पच्छापुव्विगा मुहचवलाज्जा)

(प्रे०) "जो" इत्यादि, "जो" त्ति यः=श्रीजगच्चन्द्रसूरिः "**आयंबिलसण्णतव-मखंडबारवासमिअं**" ति अखण्डैः=निरन्तरैर्द्वादशभि=तावत्संख्याकैर्वर्षैः=वत्सरैर्मितम्, अखण्डद्वादशवर्षमितम्, यद्वा अखण्डानि=सम्पूर्णानि द्वादश=तावत्संख्याकानि वर्षाणि मितं=मानं यस्य तदखण्डद्वादशवर्षमितम्, यद्वा अखण्डानां=द्वादशानां वर्षाणां मितं मानं यस्य तद् अखण्डद्वादशवर्षमितम्, आचाम्ल इति संज्ञा=अभिधा यस्य तद् आचाम्लसंज्ञम्, तच्च तत्तप आचाम्लसंज्ञतपः "**किच्चा**" त्ति कृत्वा=विधाय "**णिवा**" त्ति नृपात्=मेदपाट-(=मेवाड)नृपतेर्जैत्रसिंहसंज्ञकात् "**तवत्ति बिरुद**" ति तपेति "**महातवा**" इति यावद् विरुदं=पदवी "**णिवा**" त्ति, पदस्य श्लेषद्वारेण पुनरपि योजनान्नृपात्=विक्रमादित्यभूमीशात् "**जमदीपरासिवासे**" त्ति यमाः=महाव्रतानि प्राणातिपातविरमणादीनि पञ्च, द्वीपाः= अन्तरीपा अष्टौ, राशयः=मेष-वृषभ-मिथुन-कर्क-सिंह-कन्या तुला वृश्चिक-धन-मकर कुम्भ-मीनरूपा द्वादश, एतेङ्का विपरीतक्रमस्थिता यत्र स यमद्वीपराशिः, स चासौ वर्षः=अब्द-स्तस्मिन् यमद्वीपराशिवर्षे=विक्रमसंवत् १२८५ वर्षे वीरसंवत् १७५५ वत्सरे "**लहीअ**" त्ति अलभ्यत=प्राप्नोत्

तथाहि–यावज्जीवमभिग्रहीताचाम्लतपसः श्रीमज्जगच्चन्द्रसूरेस्तत्तपसो द्वादशस्वब्देषु जातेष्वाकर्णितगुरुगुणो मेदपाटनृपः 'जैत्रसिंह' इति नामा तं वन्दनार्थमागतस्तेन तपसा भव्यमोजस्वन्त गुरोर्मुखकमलं दृष्ट्वा "**महातपा**" इति विरुदं दत्तम् ।

तथा चोक्तं गुर्वावल्याम्–

अबुद्धतत्त्वस्य मुधाऽभिमानिनो, ममाऽसि बुद्ध सुचिराज्जगद्गुरु ।
त्वदीयपादाऽब्जरजोऽणुनाऽपि चे त्तुला लभे तर्हि भजे कृतार्थताम् ॥२४८।
समग्रविद्याविभवात्मकस्य ते, पुरोऽणवत्येष सुसिद्धिमागपि ।
बिभर्त्ति यस्माल्लघिमानमुच्चकै, पुर सुमेरोर्निखिलोऽपि भूधर' ॥२४९॥
इति स्वनिन्दामुखर सविस्मय, सुभक्तिभाक् सर्वजनस्य पश्यत ।
स्तुवन्मुदाऽऽनम्य गुरु सहानुगैं र्जगाम विद्वान् स्वपद स योगिराट् ॥२५०॥
अहो । जयत्याऽऽर्हतशासन प्रभु र्गु रु स यस्येदृशशक्तिमानयम् ।
इति स्तुवन्तोऽपि जना यथागत, गता व्यहार्षीद् गुरुरप्ययथाऽन्यत ॥२५१॥'' इति ।

तथैव श्लोकचतुर्दशकेन गुरुपर्वक्रमेऽपि तदुदन्तो दर्शितः ॥२१८॥

अथ पुनः पथ्यार्यामाह—

साकिणिमुद्धडपट्टं कयमंतियवडगदाणसरभंगा ।
दुट्ठित्थी थंभिअ पुण जेण दयाईहि मुत्ता ता ॥२१९॥(पच्छाज्जा)

(प्रे०) ''**साकिणि०**'' इत्यादि, ''**जेण**''त्ति येन=श्रीधर्मघोषसूरिणा ' **साकिणिमुद्धड-पट्ट**'' त्ति उद्धृतं=उत्पाटितं पट्टं=शयनाधारं यया ताम्, उद्धृतपट्टां शाकिनी=स्त्रीदेव-जातिविशेषां, जातिविवक्षायामेकवचन ततः शाकिन्य इति यावत् तथा ''**दुट्ठित्थी**'' त्ति दुष्टाः=दुश्चरिताः स्त्रियो दुष्टस्त्रियस्ता दुष्टस्त्रीः किम्भूताः ? ''**कयमंतियवडगदाणसर-भंगा**'' त्ति मन्त्रितानां=मन्त्राधिष्ठितकृतानां वटकानां=खाद्यविशेषाणां दानम्=अर्पणं मन्त्रित-वटकदानम्, तथा स्वरस्य=मुखध्वनेर्भङ्गः=स्वरभङ्गः, मन्त्रितवटकदानञ्च स्वरभङ्गश्च मन्त्रितवटक-दानस्वरभङ्गौ कृतौ=विहितौ मन्त्रितवटकदानस्वरभङ्गौ याभिस्ताः कृतमन्त्रितवटकदानस्वरभङ्गाः= मन्त्राधिष्ठितवटकदायिनीस्तथा स्वरभङ्गविधायिनी दुष्टाचाराः स्त्रीः ' **थंभिअ**'' त्ति, स्तम्भित्वा ''**दयाईहि**'' त्ति दया=करुणा आदौ येषां तैर्दयादिभिरत्रादिपदेन तत्प्रार्थनादयो बोध्याः ''**ता**'' त्ति ताः=अनन्तरोदिताः शाकिनी-दुष्टस्त्रियः ''**मुत्ता**'' त्ति मुक्ता=बन्धनरहिताः कृताः ।

तथाहि क्वचिन्नगरे शाकिनीभीत्या रजन्या द्वाराण्युपाश्रयस्य स्थगीयन्तेऽन्यदा विस्मृते सति निशायां शाकिनीभिर्गुरुपट्टमुत्पाटितम्, तं वीक्ष्य गुरुस्तान् स्तम्भित्वा ततो बहुविधप्रार्थनयोपद्रवकरणप्रतिषेधपूर्वकं मुमोच ।

तथाऽन्यदा गुरवः काभिर्दुष्टस्त्रीभिर्मुनीनां विहारितान् कार्मणोपेतान् वटकानत्याजयत्, ते च द्वितीयदिने प्रभाते पाषाणा अभवन् । ततो गुरुभिरभिमन्त्र्यार्पितपट्टकासनास्ताः स्तम्भिताः, तदनु नतास्ता दयया विमुक्ताः । एवं विद्यापुरेऽपि तथाविधाभिः पक्षान्तरीयाभि-र्दुष्टस्त्रीभिर्मात्सर्याद् गुरूणां व्याख्यानरसे स्वरभङ्गाय गले केशगुच्छके कृते गुरुभिर्विज्ञाताचरणा-

तरणी" त्ति विश्वस्य = जगतोऽज्ञानमेव तमांसि = अन्धकाराणि, तेषामत्यये = नाश एकः =अद्वितीयस्तरणिः = सूर्यो विश्वाज्ञानतमोऽत्ययैकतरणिः = लोके ज्ञानोद्योतकारी "**वाइघूकत्तिओ**" त्ति वादिनः = परदर्शनिन एव घूकाः = उलूका दिनान्धपक्षिविशेषाः, तेषामर्त्ति= पीडां ददाति = प्रयच्छतीति "आतो डो ऽह्वा-वा-म." (स० ५-१-७६) इति सूत्रेण डप्रत्यये वादिघूकार्त्तिदः=वादिकौशिकारतिकरः । "**भवज्जप्पिओ**" त्ति भव्या भविनो वा पूर्वोक्तस्वरूपा त एवाब्जानि = सूर्यविकासीनि कमलानि भव्याब्जानि भव्यब्जानि वा तेषां प्रियः = इष्टः, भव्याब्जप्रियो भव्यब्जप्रियो वा ।

यथा हि सूर्योऽन्धकारनाशकः काकारिपीडाकरः, कमलबोधकश्च भवति । तथाऽयमप्यज्ञानतमोहर्ता, वादिपेचकाप्रीतिजनको भव्यप्राणिपद्मबोधी चाभवत् ।

स कः ? इत्याह–"**जो**" त्ति यः=श्रीदेवेन्द्रसूरिः "**भूवमतिपमुहा**" त्ति भूपाः=नृपा मेदपाटनृपजैत्रसिंहः-नृपतितेजसिंह-समरसिंह गुर्जरराजवीरधवलादयः, मन्त्रिणः=सचिवा वस्तुपालादयः, भूपाश्च मन्त्रिणश्च भूपमन्त्रिणः, ते प्रमुखे=आदौ येषां तान् भूपमन्त्रिप्रमुखानत्र प्रमुखपदेन द्विजादयो ग्राह्याः । "**लोगा**" त्ति लोकान् = जनान् "**बोहिअ**" त्ति बोधयित्वा = उपदेशेन सम्यग्ज्ञानमवापय्य "**सासणं**" ति शासनं = चरमतीर्थेशतीर्थं "**भूसीअ**" त्ति अभूषयत्= भूषयाश्चकार । "**जेण**" त्ति येन = श्रीदेवेन्द्रसूरिणा "**णूयणकम्मगंथपमुहा**" त्ति नूतनाः= नव्याः, ते चामी कर्मग्रन्थाः प्रमुखे = आदौ येषां ग्रन्थानां ते नूतनकर्मग्रन्थप्रमुखाः, अत्र प्रमुखशब्देन सिद्धपञ्चाशिका-तद्वृत्त्यादयो बोध्याः "**अणेगा**" त्ति अनेके = बहवः "**गंथा**" त्ति ग्रन्थाः=शास्त्राणि "**कया**" त्ति कृताः=निर्मिताः

तथा च **तत्कृतकृतय इमाः**–(१) सटीकपञ्चनव्यकर्मग्रन्थाः (२) वन्दारुवृत्तिः('वंदित्तु' सूत्रटीका), (३) श्रीधर्मरत्नप्रकरणटीका, (४) सुदंसणाचरियं (सुदर्शनाचरितम्), (५) सिद्धपञ्चाशिका, (६) तद्वृत्तिः, (७) भाष्यत्रयम्, (८) श्राद्धदिनकृत्यसूत्रम्, (९) तद्वृत्तिः, (१०) सिद्धदण्डिका, (११) 'चत्तारि अट्ठ दस'–गाथाविवरणम्, (१२) सासणजिणथयं 'सिरिउसहवद्धमाण' इत्यादयः स्तवनादयः ॥२११॥

तमेव श्रीदेवेन्द्रसूरि शार्दूलविक्रीडितेन विशिशिक्षुराह–

वक्खाणे सपरागमत्थणिवुणो, जो णायतक्कग्गणी;
मिच्छादंसणमप्पदुग्गइयरं, जुत्तीहि दूरं करीअ ।
से विस्से लटा व्व कित्तिरमणी, भंता अदिणायरा;

तथैव श्रीमन्महामहोपाध्यायधर्मसागरगणिभिरपि तपागच्छपट्टावल्यामुक्तमस्ति ॥२२०॥

अथ चतुर्थपथ्यार्यात्मकं पञ्चमश्लोकमाह—

अहिदंसाउ सदंसिअकट्ठभरत्थविसअगडसज्जतणू ।
पच्चूहे चयइ तओऽखिलविगई उग्गतेओ जो ॥२२१॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "अहिदसाउ" इत्यादि, "जो" त्ति, यः=श्रीधर्मघोषसूरिः, किम्भूतः? "उग्गतेओ" त्ति उग्रं=प्रचण्डं तेजो यस्य स उग्रतेजाः=महाप्रतापवान् इत्यर्थः, "अहिदसाउ" त्ति अहेः=सर्पस्य दशात्=दष्टाद्-अहिदंशात्=सविषफणिना दष्टे सति उत्सर्पत्तद्विषवशेनाऽन्तरा-ऽन्तरा मूर्च्छनाद् इति यावत् । 'पच्चूहे' त्ति प्रत्यूहे=प्रभाते "सदंसिअकट्ठभरत्थविसअगडसज्जतणू' त्ति स्वेन=निजेन-आत्मना दर्शितेन=भणितेन काष्ठानां=दलिकानां भरे=समूहे-भारिकायामिति यावत्तिष्ठतीति स्थस्तेन स्थेन=अन्तर्गतेन विषस्य=क्ष्वेडस्यागडेन=औषधिना सज्जा=निर्विषत्वेन पटुः पट्वी वा तनुः=देहो यस्य स स्वदर्शितकाष्ठभरस्थविषागडसज्जतनुः=अहिदंशानन्तरं तदुपायविधुरमर्दितं सङ्घ प्रति "**प्रातः प्राचीनप्रतोल्यां कस्यचित्पुरुषस्य मूर्ध्नि स्थितायाः काष्ठभारिकाया मध्ये विषापहा लता समेष्यति सा च घृष्टा दंशे देया**" इत्येवंरूपमुपायं स दर्शितवान्, ततस्तथैव सङ्घेन कृते सति जातपटुशरीरोऽसौ "**तओ**" त्ति ततः=जातपटुकायानन्तरमेव "पच्चूहे" त्ति प्रत्यूहे=प्रभाते "ऽखिलविगई" त्ति अखिलाः=समस्ताः—षट्संख्याकास्ताश्च ता विकृतयः=घृत तैलादयः, अखिलविकृतयस्ताः, अखिलविकृतीः "चयइ" त्ति त्यजति=तत्याजेति यावत् । **तथा चोदितं गुर्वावल्याम्**—

"दष्टोऽन्यदाऽथ स गुरु. फणिना विषेण मूर्च्छन्नुपायविधुरं निशि सघमूचे ।
प्रात समेष्यति लता विषहृत् प्रतोल्या, पु मौलिकाष्ठभरबन्धनकृद् विशुद्धा ॥२५२॥
देयास्त दशवदने मम ता प्रघृष्ये-त्येव च तेन विहिते पटिमानमाप्त ।
सत्यक्तसर्वविकृतिर्भगवांस्तदादि, चक्रे जिनमतोन्नतिमुग्रतेजा ॥२५३॥" इति ।

श्रीहीरसौभाग्येऽपि—

"दशादहेर्ग्राहितकाष्ठभार-विषौषधीसज्जतनुर्निशान्ते ।
महात्मवद्यो विकृतीर्विहाय, वृत्तिं व्यधादेव युगधरीमि ॥११९॥" इति ।

तथैव तपागच्छपट्टावल्यामपि भणितमस्ति ॥२२१॥

पुनरपि पथ्यागीति-पथ्यार्यालक्षणं श्लोकद्वयं प्राह—

जो पुहवीहरसड्ढं पबोहिअ ससम्मवयगहणकाले ।
पडिसिज्झइ णियमंतं लक्खमणाइं वि तं तिकालणणू ॥२२२॥

(पच्छागीई)

विकृत्यनुज्ञा, (३) चीवरक्षालनानुज्ञा, (४) फलशाकग्रहणम्, (५) साधु-साध्वीनां निर्विकृतिकप्रत्याख्याने निर्विकृतिकग्रहणम्, (६) आर्यिकासमानीताऽशनादिभोगानुज्ञा, (७) प्रत्यहं द्विविधप्रत्याख्यानम्, (८) गृहस्थावर्जननिमित्तं प्रतिक्रमणकारणानुज्ञा, (९) संविभागदिने तद्गृहे गीतार्थेन गन्तव्यम्, (१०) लेपसंनिध्यभावः (११) तत्कालेनोष्णोदकग्रहणम्, इत्यादिना क्रियाशैथिल्यरूचीन् कतिपयान् मुनीन् स्वायत्तीकृत्य पूर्वं श्रीजगच्चन्द्रसूरिभिः सदोषत्वेन परित्यक्तायामपि विशालयां पौषधशालायां लोकाग्रहवशेन द्वादश वर्षाणि यावद् गुर्वाज्ञां विनैव स्थितोऽसौ गुरोर्वन्दनार्थमपि नागतः। "कथमेकस्यां वसतौ द्वादश वर्षाणि स्थित" इति गुरुणा ज्ञापितोऽसौ **"निर्ममनिरंहकारा..."** इत्यादि प्रत्युत्तरति।

तदा श्रीदेवेन्द्रसूरिः संविग्नानेकसाधुपरिवृत उपाश्रये एव स्थितवान्। उपाश्रयस्य च वृद्धपौषधशालापेक्षया लघुत्वेन तस्य मुनिसमुदायस्य 'लघुशालिक' इतरस्य च 'वृद्धशालिक' इति संज्ञा मुग्धलोकैर्विहिता तथैव श्रीतपागच्छपट्टावल्यां प्रतिपादितमस्ति।

तथा चात्र गुर्वावलीकारः—

योऽभूत्तदीयोऽथ लघु सतीर्थ्यस्तदाग्रहादाप्तपदप्रतिष्ठः।
सूरि' सुविद्वान् विजयेन्दुनामा, प्रावर्त्तयत्सोऽथ पृथक् स्वशाखाम् ॥१२१॥

पुराविजयचन्द्रोऽभूद्वस्तुपालस्य मन्त्रिण । सचिवो लेख्यके देये क्षिप्त• कारागृहेऽन्यदा ॥१२२॥
देवभद्रगणीना स द्विधा शिक्षाकृतेऽर्पित । नाम्ना विजयचन्द्रोऽभूत् प्राक् तदाप्याप्तशास्त्रवित् ॥१२३॥
श्रीजगच्चन्द्रगच्छेशै• शिष्यवात्सल्यशालिभि । न्यस्त सूरिपदे देवभद्रगण्युपरोधत• ॥१२४॥
साहाय्यायाऽपि देवेन्द्र सूरीन्द्राणा गणावने । अहयुत्वान्निषिद्धोऽपि वस्तुपालेन मन्त्रिणा ॥१२५॥
श्रीजगच्चन्द्रसूरीन्द्रे स्वर्गतेऽसावनेहसम् । कियन्त विनयी जज्ञे श्रीदेवेन्द्रगणेश्वरे ॥१२६॥
विहरत्यन्यदा तस्मिन् गणेन्द्रे मालवे चिरम् । तस्थौ श्रीस्तम्भतीर्थेऽसौ पूजित पूर्वसस्तुतै ॥१२७॥
चैत्यादिद्रव्यसस्कारदूषिता बृहतीति या । प्रसिद्धा तत्र शालाऽभूद् वृद्धगच्छगुरुस्थिते ॥१२८॥
पार्श्वस्थाऽवस्थता भुक्ता त्यक्ता शुद्धक्रियादृतौ । श्रीजगच्चन्द्रसूरीन्द्रैर्देवेन्द्रगुरुणाऽपि सा ॥१२९॥
तस्यां लोकानुरोधेन नित्यवासप्रमादभाक् । आत्मसात्कृतलोकोऽसौ तस्थौ द्वादशवत्सरीम् ॥१३०॥
सामाचारीं स दुष्पाला किंचिच्छिथिलयन्नपि । गच्छमावर्जयामासानुकूलाचरणादिभिः ॥१३१॥
गुर्वादेश विना दीक्षादीनि कार्याणि चाऽसृजत आगतेऽथ गणाधीशे विनय नाकारोत्तथा ॥१३२॥
नोदितो नित्यवासेऽपि निर्ममेत्यादि सोऽपठत्। आचारभ्र शभीरुस्तत श्रीदेवेन्द्रगणाधिप ॥१३३॥
सविग्नपरिकराढ्यो बोधानर्हं प्रमादिन ज्ञात्वा॥पुस्तकशालादियुत त मुक्त्वाऽस्थात्पृथग्वमतौ ॥१३४॥युग्मम्।
देवेन्द्रसूरिसुगुरो ख्याता शिष्यास्तु वृद्धशाखाया• । सविग्नत्वाच्च गुरुर्विज्ञैरच्यं स एवासीत् ॥१३५॥
विजयेन्दुविनेयाश्च ख्याता मुग्धेषु वृद्धशालाया• । विज्ञाः पुनर्जगुस्तान् लघुगुरुशालाभवान् युक्तम् ॥१३६॥

सग्रामसौवर्णिकपूर्वजस्तदा, पार्थक्यमालोक्य गुरुद्वयस्य तत।
श्रयामि कं नन्विति संशयाकुल, सदेवत बिम्बमुपास्थिताऽर्हतः ॥१३७॥

अथ सार्धगाथयाऽमुष्य जन्मादिवत्सरान्भणति–"वीरा" इत्यादि, 'ऽस्स" त्ति अस्य श्रीरेवतिमित्राख्यस्य सूरेः "जणी" त्ति जनिः=जन्म "वीरा" त्ति वीरात्=त्रिशलानन्दनवजिनात् 'विहिसवलाएहि' त्ति विधिश्रमिः=ब्रह्मकर्मा अष्टौ, भुवनानि=स्वर्ग-मर्त्य पातालरूपाणि ऊर्ध्वा-ऽध-स्तिर्यग्लोकलक्षणानि वा त्रीणि, अत एव चोक्तम्– "भुवनानि निबध्नीयात् त्रीणि सप्त चतुर्दश" इति तैर्विधिश्रमोभुवनैः पश्चानुपूर्व्याऽष्टात्रिंशता "अहिए" त्ति अधिके "संजमसयेऽद्दे" त्ति संयमाः सप्तदश, तावन्मानानि शतानि यस्मिंस्तस्मिन् संयमशतेऽब्दे एतावताऽष्टात्रिंशदधिके सप्तदशशते वीरसंवदि भवति स्म। "णयलोगपालजुत्ते" त्ति, नया नैगमादयः सप्त, लोकपालाः पूर्वादिदिग्स्वामिनः सोमादयश्चत्वारः, तथा चोक्तमुपदेशपदवृत्तौ–
"सोमो जमो य वरुणो वेसमणो विय कमेण चत्तारि। तस्सत्थि लोगपाला पुव्वाइदिसासु कयनिलया॥"
इति। आस्यामङ्कास्या प्रातिलोम्येन सप्तचत्वारिंशत्सङ्ख्या युक्ते नयलोकपालयुक्ते संयमशतेऽब्दे=वीरसंवत् सप्तचत्वारिंशे सप्तदशशत१७४७वत्सरे "वयं" ति व्रतं=प्रव्रज्याऽभवत्।

"स" त्ति सः=श्रीरेवतिमित्रसूरिः "सलागामहापुरिसजुत्ते" त्ति शलाकामहापुरुषाश्चतुर्विंशतिजिन-द्वादशचक्रि-नववासुदेव-नवप्रतिवासुदेव-नवबलदेवलक्षणास्त्रिषष्टिः, तैर्युक्ते शलाकामहापुरुषयुक्ते संयमशतेऽब्दे एतावता त्रिषष्ट्युत्तरसप्तदशशत१७६३ तमे वीरसंवदि "हवीअ जुगपहाणो" त्ति युगप्रधानोऽभूत्।

"इलाकलाराए" त्ति इला=पृथ्व्येका, कलाश्चतुरशीतिः☆, यद्यपि यदा पुरुषकला विवक्ष्यन्ते तदा द्वासप्ततिराप्यते, किन्तु सा-ऽत्र न गृह्यन्ते जन्मतः प्रागेव मरणस्यासम्भवात्, एवं स्त्रीकलापेक्षया चतुःषष्टिः, चन्द्रकलापेक्षया च षोडश पञ्चदश वा-ऽपि नैवेहादीयते। राजा=चन्द्र एकः, एतेङ्का वामगत्या १८४१ इति सङ्ख्या यत्र तत्रेलाकलाराजे=वीरसंवदेकचत्वारिंशेऽष्टादशशतवर्षे 'गओ दिवं" ति दिवं=सुरलोकं गतः=प्राप्तः।

इत्थञ्चास्य नव९वर्षाणि गृहपर्यायः, षोडश१६वर्षाणि सामान्यव्रतपर्यायः, अष्टासप्तति-७८वर्षाणि युगप्रधानपर्यायश्चेति सम्पूर्णायुर्मानं त्र्यधिकवर्षशतमभूत् ॥२१३ २१४॥

☆ यदुक्तं काव्यशिक्षायाम्–चतुरशीतिः कलाः,–चतुरशीतिर्विज्ञानानि-हेतुविज्ञान तत्त्व मोहन कर्म धर्म ५ लक्ष्मी योग शब्द दन्त काला १० गुटिका रसायन वचन कवित्व मन्त्र १५ यन्त्र तन्त्र मर्दन नेपथ्य खत्रकर्म २० इष्ट लेप सूत्र चित्रक रङ्ग २५ सूचिकर्म शकुनकर्म छद्म कर्मकर राग ३० गन्धयुक्ति आगार शैल काच काम्य ३५ काष्ठ कुम्भ लोह पत्र वश ४० नख देश तृण प्रासाद धातु ४५ विभूषण स्वरोदय द्यूत अध्यात्म अग्नि ५० विद्वेषण उच्चाटन स्तम्भन मोहन वशीकरण ५५ वस्तु स्वयम्भू हस्ति अश्व पक्षि ६० स्त्री चक्र वस्त्र पाशुपाल्य कृषि ६५ वाणिज्य लक्षण काल शस्त्रबन्ध युद्धकरण ७० वियुद्धकरण अ खेटक कुतूहल कोशपुष्प७५ इन्द्रजाल पान अशन शयन विनोद ८० जन रत्न सौभाग्य शौच ८४ इत्यादि। केषाञ्चिन्मते विनय नीति आयुध वाद व्यापार धारणि विज्ञान चेति।" इति।

विस्तरतः श्रीमन्मुनिसुन्दरसूरिभिर्गुर्वावल्याम्–

अथान्यदा मालवमण्डलावने-र्विभूषणे मण्डपदुर्गनामनि ।
पुरे स पृथ्वीधरसाधुमार्हत, प्राबूबुधद्धर्ममुदारधीर्गुरु ॥१७७॥
त्रिकालवेत्ता भगवान् स पञ्चम-व्रतेऽपि लक्षा द्रविणस्य मुत्कला ।
अनाढ्यमप्येतमचीकरत्प्रभु, प्रपन्नसम्यक्त्वचतुस्त्रिकव्रतम् ॥१७८॥
स च क्रमान्मालवमण्डलेशितु, प्रजाभिरर्च्यं सचिवत्वमाश्रित ।
बभूव ऋद्ध्या धनदोपमो हि किं, न ज्ञानिना भाग्यवताञ्च गोचरे ? ॥१७९॥
भुव स चैत्यैर्हृदयानि सद्गुणै-र्मनीषिणा व्याप च कीर्त्तिभिर्दिश ।
धनैश्च कोशान् प्रशशास च प्रभू नपि क्षमाया विदितोरुषड्गुण ॥१८०॥
स षट्सहस्राधिकजीर्णटङ्का-ऽयुतत्रयस्याथ मुदा व्ययेन ।
श्रीधर्मघोषे स्वगुरौ समेते-ऽन्यदा प्रवेशोत्सवमाननान ॥१८१॥
प्रसेदुषाऽसौ गुरुणाऽर्पितक्रम, क्रमाऽववुद्धद्रविणव्ययास्पद ।
अचीकरच्चैत्यचतुष्टयाधिका-शीर्तिं स्फुरच्छारदवारिदभ्रमाम् ॥१८२॥
अनुत्तरैस्तै किल चिन्तनातिगै-रुदारधीरैश्चरितैरमस्मरत् ।
चिराद् व्यनीत हरिषेणचक्रिण, स सम्प्रति चापि कुमारभूपतिम् ॥१८३॥
मौक्तिकश्रीसमायुक्त-जिननायकमण्डिता' । हारा इव विहारास्ते, भान्ति भूभामिनीहृदि ॥१८४॥
कोटाकोटिरिति प्रसिद्धमहिमा शान्तेश्च शत्रुञ्जये, श्रीपृथ्वीधरसञ्ज्ञया सुरगिरौ श्रीमण्डपाद्रौ तथा ।
प्रासादा बहव परेपि नगरग्रामादिषु प्रोन्नता, भ्राजन्ते भुवि तस्य मुक्तिवलभीनि श्रेणिदण्डा इव ॥१८५॥

अत्र श्रीपृथ्वीधरसाधुकारितप्रासादस्थानसख्यामूलनायकजिननामादि वाच्यम्,

पूज्यगुरुश्रीसोमतिलकसूरिपादै कृत स्तोत्रमवतार्य पठनीयम्, तच्चेदम्–

श्रीपृथ्वीधरसाधुना सुविधिना दीनादिपूद्दानिना, भक्तश्रीजयसिंहभूमिपलिना स्वौचित्यसत्यापिना ।
अर्हद्भक्तिपुषा गुरुक्रमजुषा मिथ्यामनीषामुषा, सच्छीलादिपवित्रितात्मजनुषा प्राय प्रणश्यद्रुषा ॥१८६॥
नैका पौषधशालिका सुविपुला निर्मापयित्रा सता, मन्त्रस्तोत्रविदीर्णलिङ्गविवृत्तश्रीपार्श्वपूजायुता ।
विद्युन्मालिसुरर्विनिर्मितलसद्बोधिदेवाह्वय-ख्यातज्ञानतनूरुहपतिकृतिस्फुर्जत्सपर्यासृजा ॥१८७॥
त्रि काले जिनराजपूजनविधि नित्य द्विरावश्यक, सार्धौ धार्मिकमात्रकेऽपि महती भक्ति विरक्ति भवे ।
तन्वानेन सुपर्वपौषधवता साधर्मिकाणा सदा, वैयावृत्यविधायिना विदधता वात्सल्यमुच्चैर्मुदा ॥१८८॥
श्रीमत्सप्रतिपार्थिवस्य चरित श्रीमत्कुमारक्षमा-पालस्याप्यथ वस्तुपालसचिवाधीशस्य पुण्याम्बुधे ।
स्मार स्मारमुदारसमदसुधासिन्धूर्मिपूर्मज्जता, श्रेय काननसेचनस्फुरदुरुप्रावृड्भवाम्भोमुचा ॥१८९॥
सम्यङ्न्यायसमर्जितोर्जितधनै सुस्थानसस्थापितै-र्ये ये यत्र गिरौ तथा पुरवरे ग्रामेऽथवा यत्र ये ।
प्रासादा नयनप्रसादजनका निर्मापिता शर्मदा-स्तेषु श्रीजिननायकानभिधया सार्द्ध स्तुवे श्रद्धया। पञ्चभि कुलकम्
श्रीमद्विक्रमतस्त्रयोदशशतेष्वष्टेष्वतीतेष्वथो, विंशत्याऽप्यधिकेषु मण्डपगिरौ शत्रुञ्जयभ्रातरि ।
श्रीमानादिजिन १ शिवाङ्गजजिन श्रीउज्जयन्तायिते, निम्बस्थूरनगेऽथ तत्तलभुवि श्रीपार्श्वनाथ ३ श्रिये॥
जीयादुज्जयिनीपुरे फणिशिरा श्रीविक्रमाख्ये पुरे,
श्रीमान्नेमिजिनो ५ जिनौ मुकुटिकापुर्यां च पार्श्वादिमौ ७ ।
मल्लि शल्यहरोस्तु विन्धनपुरे ८ पार्श्वस्तथाऽऽशापुरे ९,
नाभेयो वत ! घोषकीपुरवरे १० शान्तिर्जिनोऽर्यापुरे ११ ॥१९२॥
श्रीधारानगरेऽथ वर्द्धनपुरे श्रीनेमिनाथ पृथक् १२, १३,

किंविशिष्टम् ? "सुत्तप्पमत्थायय" त्ति सूत्रैः=अर्थाभिधायकैर्व्याकरणनियमलक्षणैरल्पं = अल्पप्रमाणं सूत्राल्पं तथाऽपि अर्थै=सूत्राभिधेयैराततं=विस्तीर्णमर्थायत=अर्थबृहन्मानमिति ।

यदुक्तम्–

'विद्यानन्दाभिधं येन, कृतं व्याकरणं नवम् । भाति सर्वोत्तमं स्वल्प-सूत्रं बह्वर्थसंग्रहं ॥ ॥" इति ।

अथ द्वितीयेन शार्दूलविक्रीडितेन दीक्षादिकालमाह–"से" इत्यादि, "से" त्ति तस्य= विद्यानन्दसूरेः "दिक्खा" त्ति दीक्षा=प्रव्रज्या "णिवा" त्ति, नृपात्=विक्रमादित्यभूमिपालतः "गयदंतअंबरदसाखोणीपमाणे" त्ति गजदन्तौ=प्रसिद्धौ सव्येतररूपौ द्वौ, अम्बरं=वियच्छून्यम्, दशाः=अवस्थाः = बाल-युव-वृद्धलक्षणास्तिस्रः, क्षोणी=भूम्येका एतैरङ्कैः सव्येतरक्रमन्यस्तैर्द्व्यधिकत्रयोदशशत१३०२सङ्ख्यं प्रमाणं=परिमाणं यत्र तत्र गजदन्ताम्बरदशाक्षोणीप्रमाणे=विक्रमसंवत् १३०२ तमे "वासे" त्ति वर्षे=संवत्सरेऽभूत् । यदुक्तं गुर्वावल्याम्–

"विद्यानन्दाभिधः पाणिखविश्वाऽब्दे १३०२ स दीक्षित. ।" इति ।

'स' त्ति सः=श्रीविद्यानन्दसूरिः "वेअसमऽग्गिखग्गपमिए" त्ति वेदाः=स्त्री-पुरुष-नपुंसकलक्षणास्त्रयः, यद्वा ऋग्वेदादयस्त्रयः, मूलवेदानां त्रयत्वाच्छमौ=हस्तौ सुप्रसिद्धौ दक्षिणेतरौ द्वौ, अग्नयः=पावकास्त्रयः, खड्गः=गण्डकशृङ्ग एकः, एतैरङ्कैः पश्चानुपूर्व्या व्यवस्थितैः प्रमितं यत्र तत्र वेदशमाग्निखड्गप्रमिते=विक्रमसंवत् १३२३ वर्षे "सूरित्तणं" ति सूरित्वम्=आचार्यत्वं "पत्तो" त्ति प्राप्तः=लब्धः । क्वचिद् विक्रमसंवत् १३०४ वर्षे सूरिपदप्राप्तिर्दृश्यते । तदर्थम्– "वेअसमग्गिखग्गपमिए" इति पदमित्थं व्याख्येयम्–वेदाः=ऋग्वेदादयश्चत्वारः, समं= गगनं=शून्यम्, अग्नयः=हुताशनास्त्रयः, खड्गः=खड्गिशृङ्ग एकः, एतैरङ्कैः प्रातिलोम्यस्थितैः प्रमितं यस्मिंस्तस्मिन् वेदसमाग्निखड्गप्रमिते=विक्रमसंवत्१३०४वर्षे सूरित्वं प्राप ।

तथा चोक्तं श्रीतपागच्छपट्टावल्यां श्रीमन्महोपाध्यायधर्मसागरगणिभिः–

'गुरुभिस्तु तथाविधमौचित्यं विचार्य प्रल्ह(ह्ला)दनविहारे वि० त्रयोविंशत्यधिके त्रयोदशशते १३२३ वर्षे क्वचिच्चतुरधिके १३०४ श्रीविद्यानन्दसूरिनाम्ना वीरधवलस्य सूरिपददानम्' इति ।

तथैव श्रीमन्मुनिसुन्दरसूरिभिर्गुर्वावल्याम्–

"अथान्यदा प्रौढविचित्रपुण्यप्रवीणसङ्घप्रथितार्थनाभिः ।
गणाधिनेताऽभिमतं स विद्यानन्दं मुनीन्द्रं गुणलक्ष्मिपात्रम् ॥१६३॥
श्राद्धैर्महेन्द्रैरिव निर्मितोत्सवे प्रमोदि विश्वं स्वपदे न्यवीविशत् ।
प्रह्लादनोर्वीपतिचैत्यमण्डपे त्रिदन्तभूमीमितवत्सरे१३२३ नृपात् ॥१६४॥
केचित् १३०४ प्राहु, तथा च–वेदाभ्रवह्निक्षितिवत्सरे १३०४ नृपात् ॥१६४॥ इति पाठः ।
विशेषनिर्णयं तु विशेषज्ञा विदन्ति" इति ।

विस्तरतः श्रीमन्मुनिसुन्दरसूरिभिर्गुर्वावल्याम्–

अथान्यदा मालवमण्डलावने-र्विभूषणे मण्डपदुर्गनामनि ।
पुरे स पृथ्वीधरसाधुमार्हत, प्राबूबुधद्धर्ममुदारधीर्गुरु ॥१७७॥
त्रिकालवेत्ता भगवान् स पञ्चम-व्रतेऽपि लक्षा द्रविणस्य मुत्कला ।
अनाढ्यमप्येतमचीकरत्प्रभु, प्रपन्नसम्यक्त्वचतुस्त्रिकव्रतम् ॥१७८॥
स च क्रमान्मालवमण्डलेशितु, प्रजाभिरन्यैं सचिवत्वमाश्रित ।
बभूव ऋद्धया धनदोपमो हि किं, न ज्ञानिना भाग्यवताञ्च गोचरे ? ॥१७९॥
भुव स चैत्यैर्हृदयानि सद्गुणै-र्मनीषिणा व्याप च कीर्त्तिभिर्दिश ।
धनैश्च कोशान् प्रशशास च प्रभू नपि क्षमाया विदितोरुषड्गुण ॥१८०॥
स षट्सहस्राधिकजीर्णटङ्का-ऽयुतत्रयस्याथ मुदा व्ययेन ।
श्रीधर्मघोषे स्वगुरौ समेते-ऽन्यदा प्रवेशोत्सवमाननान ॥१८१॥
प्रसेदुषाऽसौ गुरुणाऽर्पितक्रम, क्रमाऽववुद्धद्रविणव्ययास्पद ।
अचीकरच्चैत्यचतुष्टयाधिका-शीर्ति स्फुरच्छारदवारिदभ्रमाम् ॥१८२॥
अनुत्तरैरेतै किल चिन्तनातिगै-रुदारधीरैश्चरितैरमस्मरत् ।
चिराद् व्यतीत हरिषेणचक्रिण, स सम्प्रति चापि कुमारभूपतिम् ॥१८३॥
मौक्तिकश्रीसमायुक्त-जिननायकमण्डिता । हारा इव निहारास्ते, भान्ति भूभामिनीहृदि ॥१८४॥
कोटाकोटिरिति प्रसिद्धमहिमा शान्तेश्च शत्रुञ्जये, श्रीपृथ्वीधरसञ्ज्ञया सुरगिरौ श्रीमण्डपाद्रौ तथा ।
प्रासादा बहव परेपि नगरग्रामादिषु प्रोन्नता, भ्राजन्ते भुवि तस्य मुक्तिवलभीनि श्रेणिदण्डा इव ॥१८५॥

अत्र श्रीपृथ्वीधरसाधुकारितप्रासादस्थानसख्यामूलनायकजिननामादि वाच्यम्,

पूज्यगुरुश्रीसोमतिलकसूरिपादै कृत स्तोत्रमवतार्य पठनीयम्, तच्चेदम्–

श्रीपृथ्वीधरसाधुना सुविधिना दीनादिषूद्दानिना, भक्तश्रीजयसिंहभूमिपतिना स्वौचित्यसत्यापिना ।
अर्हद्भक्तिपुषा गुरुक्रमजुषा मिथ्यामनीषामुषा, सच्छीलादिपवित्रितात्मजनुषा प्राय प्रणश्यद्रुषा ॥१८६॥
नैका पौषधशालिका सुविपुला निर्मापयित्रा सता, मन्त्रग्गोत्रविदीर्णलिङ्गविवृत्तश्रीपार्श्वपूजायुता ।
विद्युन्मालिसुरर्वनिर्मितलसद्बोधिदेवाह्वय-ख्यातज्ञातनन्दनरुहप्रतिकृतिस्फुर्जत्सपर्यास्रजा ॥१८७॥
त्रि काले जिनराजपूजनविधि नित्य द्विरावश्यक, सार्धौ धार्मिकमात्रकेऽपि महती भक्ति विरक्ति भवे ।
तन्वानेन सुपर्वपौषधवता सार्मिकाणा सदा, वैयावृत्यविधायिना विदधता वात्सल्यमुच्चैर्मुदा ॥१८८॥
श्रीमत्सप्रतिपार्थिवस्य चरित श्रीमत्कुमारक्षमापालस्याप्यथ वस्तुपालसचिवाधीशस्य पुण्याम्बुधे ।
स्मार स्मारमुदारसमदसुधासिन्धूर्मिपूरमज्जता, श्रेय काननसेचनस्फुरदुरुप्रावृड्भवाम्भोमुचा ॥१८९॥
सम्यङ्न्यायसमर्जितोर्जितधनै सुस्थानसस्थापितै-र्ये ये यत्र गिरौ तथा पुरवरे ग्रामेऽथवा यत्र ये ।
प्रासादा नयनप्रसादजनका निर्मापिता शर्मदा-स्तेषु श्रीजिननायकानभिधया सार्द्ध स्तुवे श्रद्धया। पञ्चभि कुलकम्
श्रीमद्विक्रमनस्त्रयोदशशतेष्वब्देष्वतीतेष्वयो, विंशत्याभ्यधिकेषु मण्डपगिरौ शत्रुञ्जयभ्रातरि ।
श्रीमानादिजिन १ गिराङ्कजजिन श्रीउज्जयन्तायिते, निम्बस्थूरनगेऽथ तत्तलभुवि श्रीपार्श्वनाथ ३ श्रिये ॥
जीयादुज्जयिनीपुरे फणिशिरा श्रीविक्रमाख्ये पुरे,
श्रीमान्नेमिजिनो ५ जिनौ मुकुटिकापुर्यां च पार्श्वादिमौ ७ ।
मल्लि शल्यहरोस्तु विन्धनपुरे ८ पार्श्वस्तथाऽऽशापुरे ९,
नाभेयो वत ! घोषकीपुरवरे १० शान्तिर्जिनोऽर्यापुरे ११ ॥१९२॥
श्रीधारानगरेऽथ वर्द्धनपुरे श्रीनेमिनाथ पृथक् १२, १३,

किंविशिष्टम् ? "सुत्तप्पमत्थाययं" त्ति सूत्रैः=अर्थाभिधायकैर्व्याकरणनियमलक्षणैरल्पं = अल्पप्रमाणं सूत्राल्पं तथाऽपि अर्थै=सूत्राभिधेयैराततं=विस्तीर्णमर्थायतं=अर्थबृहन्मानमिति ।

यदुक्तम्-

'विद्यानन्दाभिधं येन, कृतं व्याकरणं नवम् । भाति सर्वोत्तमं स्वल्पं सूत्रं बह्वर्थसङ्ग्रहम् ॥ ॥" इति ।

अथ द्वितीयेन शार्दूलविक्रीडितेन दीक्षादिकालमाह-"से" इत्यादि, "से" त्ति तस्य= विद्यानन्दसूरेः "दिक्खा" त्ति दीक्षा=प्रव्रज्या "णिवा" त्ति, नृपात्=विक्रमादित्यभूमिपालतः "गयदंतअबरदसाखोणीपमाणे" त्ति गजदन्तौ=प्रसिद्धौ सव्येतररूपौ द्वौ, अम्बरं=वियच्छून्यम्, दशाः=अवस्थाः = बाल-युव-वृद्धलक्षणास्तिस्रः, क्षोणी=भूम्येका एतैरङ्कैः सव्येतर-क्रमन्यस्तैर्द्व्यधिकत्रयोदशशत१३०२सङ्ख्यं प्रमाणं=परिमाणं यत्र तत्र गजदन्ताम्बरदशाक्षोणी-प्रमाणे=विक्रमसंवत् १३०२ तमे "वासे" त्ति वर्षे=संवत्सरेऽभूत् । यदुक्तं गुर्वावल्याम्-

"विद्यानन्दाभिधः पाणिखविश्वाऽब्दे १३०२ स दीक्षितः ।" इति ।

'स' त्ति सः=श्रीविद्यानन्दसूरिः "वेअसमऽग्गिखग्गपमिए" त्ति वेदाः=स्त्री-पुरुष-नपुंसक-लक्षणास्त्रयः, यद्वा ऋग्वेदादयस्त्रयः, मूलवेदानां त्रयत्वाच्छमौ=हस्तौ सुप्रसिद्धौ दक्षिणेतरौ द्वौ, अग्नयः=पावकास्त्रयः, खड्गः=गण्डकशृङ्ग एकः, एतैरङ्कैः पश्चानुपूर्व्या व्यवस्थितैः प्रमितं यत्र तत्र वेदशमाग्निखड्गप्रमिते=विक्रमसंवत् १३२३ वर्षे "सूरित्तणं" ति सूरित्वम्=आचार्यत्वं "पत्तो" त्ति प्राप्तः=लब्धः । क्वचिद् विक्रमसंवत् १३०४ वर्षे सूरिपदप्राप्तिर्दृश्यते । तदर्थम्- "वेअसमग्गिखग्गपमिए" इति पदमित्थं व्याख्येयम्-वेदाः=ऋग्वेदादयश्चत्वारः, समं= गगनं=शून्यम्, अग्नयः=हुताशनास्त्रयः, खड्गः=खड्गिशृङ्ग एकः, एतैरङ्कैः प्रातिलोम्यस्थितैः प्रमितं यस्मिँस्तस्मिन् वेदसमाग्निखड्गप्रमिते=विक्रमसंवत्१३०४वर्षे सूरित्वं प्राप ।

तथा चोक्तं श्रीतपागच्छपट्टावल्यां श्रीमन्महोपाध्यायधर्मसागरगणिभिः-

'गुरुभिस्तु तथाविधमौचित्यं विचार्य प्रल्ह(ह्ला)दनविहारे वि० त्रयोविंशत्यधिके त्रयोदशशते १३२३ वर्षे क्वचिच्चतुरधिके १३०४ श्रीविद्यानन्दसूरिनाम्ना वीरधवलस्य सूरिपददानम्" इति ।

तथैव श्रीमन्मुनिसुन्दरसूरिभिर्गुर्वावल्याम्-

"अथान्यदा　प्रौढविचित्रपुण्यप्रवीणसङ्घप्रथितार्थनाभिः　।
गणाविनेताऽभिमतं स विद्यानन्दं मुनीन्द्रं गुणलक्ष्मिपात्रम् ॥१६३॥
श्राद्धैर्महेन्द्रैरिव निर्मितोत्सवे प्रमोदि विश्वं स्वपदे न्यवीविशत् ।
प्रह्लादनोर्वीपतिचैत्यमण्डपे त्रिदन्तभूमीमितवत्सरे१३२३ नृपात् ॥१६४॥
केचित् १३०४ प्राहुः, तथा च-वेदाभ्रवह्निक्षितिवत्सरे १३०४ नृपात् ॥१६४॥ इति पाठः ।
विशेषनिर्णयं तु विशेषज्ञा विदन्ति" इति ।

नभोगङ्गा रङ्गद्ध्वजसितपताकालिकलिता, स्रवच्चन्द्राश्माऽद्रिं स्फटिककलशेन्दु च विशदः ।
शिर कोटौ बिभ्रद्मरकतमणीनीलितगल , श्रयेत्तस्य ज्योत्स्नाहरविलसितं चैत्यनिकरः ॥२०२॥

कि वर्ण्यतेऽसौ मुहुरेकविंशते-र्व्ययाद् घटीना कनकस्य यो मुदा ।
अचीकरद्धैममयादिमप्रभो , शत्रुञ्जये सद्म सुमेरुशृङ्गवत् ॥२०३॥

उदारमाख्यान्त्वथवाऽमितम्पच, तदङ्गज झण्झणदेवमुत्तमा ।
शत्रुञ्जये रैवतकेऽप्यहो ! ददौ, सुवर्णरूप्यध्वजमेकमेव य ॥२०४॥

केचिदाहु सुवर्णस्य स षट्पञ्चाशत घटी । व्ययित्वा लीलयाऽपीन्द्रमाला परिदधौ मुदा ॥२०५॥

दिशा त्रये कूर्मवराहशेषा , पृथ्वी दधाना वहुकष्टभाज ।
तस्याश्चतुर्थ्यां दिशि धारक त, पृथ्वीधर प्राप्य मुद दधुस्ते ॥२०६॥

कैवल्यदानप्रतिभूजिनोक्त समग्रशास्त्रावलिलेखनेन ।
अबीभरत सप्त स सारकोशान् , सरस्वतीकेलिगृहानिवोच्चै ॥२०७॥

श्रीस्तम्भतीर्थे निवसन् प्रभावको वेष स भीम प्रजिघाय सङ्घराट् ।
पृथ्वीधरस्याप्युचित समर्चयन् , शीलप्रपत्तौ निखिलान् सधर्मकान् ॥२०८॥

युत सुपत्न्या प्रथमिन्यभिख्यया, तथैव साधर्मिकता विभावयन् ।
द्वात्रिंशवर्षोऽपि भटो जितस्मर , प्रपद्य शील तमथो सपर्यधात् ॥२०९॥

प्रियाऽपि साऽस्य प्रथमिन्यभिख्या, ख्याता सतीषु प्रथमाऽऽत्तरेखा ।
कदापि या क्वापि न पुण्यकृत्यै-रहीयताऽस्माद् गुरुदेवभक्ता ॥२१०।

नित्य त्रिर्जिनपूजन गुरुनति साधर्मिकाभ्यर्चन, दीनाद्युद्धरण सुशास्त्रपठन पर्वस्वथो पौषध ।
कृत्यानीति गुरूपदेशवशग स द्वि प्रतिक्रान्तिकृत्, भूपालार्पितमालवाऽवनमहाचिन्तोऽप्यहो निर्ममे ॥२११॥

अनुत्तरोदारसमग्रसद्गुण , स षड्विधावश्यकतत्पर सदा ।
नृरत्नमर्हद्गुरुभक्तिभाग् मत-प्रभावकोऽलङ्करण भुवोऽभवत ॥२१२॥

इति ॥२२२-२२३॥

इदानी श्रीधर्मघोषसूरेर्दीक्षादिकालं प्रदर्श्य तत्सत्कां वक्तव्यतां समापयन्नन्तिममष्टमं श्लोकं शार्दूलविक्रीडितेन छन्दसा निर्वक्ति--

से भूवा वरिसम्मि तेरससये, वेएहि[१३०२] जुत्ते वयं;
जुत्ते वेअसमेहि[१३०४/१३२३]वायगपयं, सूरी जया सोयरो ।
सूरी माउकुआहिए[१३२७।१३२८]सगुरुणो, काला छमासंतरे;
संविग्गो स सगोत्तसूरिविहिओ, से बंधहेऊहि[१३५७]खं ॥२२४॥(सद्दूलविक्कीडिअं)

(प्रे०) "से" इत्यादि, "से" त्ति तस्य=श्रीधर्मघोषसूरेः "वय" ति व्रतम्=दीक्षा= प्रव्रज्या "भूवा" त्ति भूपात्=विक्रमादित्यपृथ्वीशितुः 'वेएहि जुत्ते" त्ति वेद्याभ्यां=शाता-शातरूपाभ्यां द्वाभ्यां युक्ते=सहिते "वरिसम्मि तेरससये" त्ति त्रयोदश शतानि यत्र वर्षे तत्र त्रयोदशशते वर्षे=विक्रमसंवत् द्व्यधिके त्रयोदशशते=१३०२ वर्षेऽजायत ।

अथान्यदा प्रौढविचित्रपुण्य प्रवीणसङ्घप्रथितार्थनामि ।
गणाधिनेताऽभिमत स विद्यानन्द मुनीन्द्र गुणलक्ष्मिपात्रम् ॥१६३॥
श्राद्धैर्महेन्द्रैरिव निर्मितोत्सवे प्रमोदि विश्व स्वपदे न्यवीविशत् ।
प्रह्लादनोर्वीपतिचैत्यमण्डपे त्रिदन्तभूमीमितवत्सरे १३२३ नृपात् ॥१६४॥
केचित् १३०४ प्राहु, तथा च-वेदाऽभ्रवह्निक्षितिवत्सरे १३०४ नृपादिति पाठ ।
विशेषनिर्णय तु विशेषज्ञा विदन्ति ।
गुरोर्विनेयस्य च तैर्गुणैस्तदा सुरै प्रहृष्टैर्महिमा व्यधीयत ।
यत्कुङ्कुमाम्भ स ववर्ष मण्डप-स्तदार्चिलीन वसनेषु कोविद ॥१६५॥
अम्बा पात्रावतीर्णाविक् सहिमानं सुरैः कृतम् । तज्जने भ्यस्तदा प्रीता गुणैस्तद्गुरुशिष्ययो ॥
विन्यस्य त शासनभासनेन्दु मिव प्रबोधाय गत स भास्वान् ।
क्षेत्रान्तर स्वर्गमिपाक्लिव च, सघस्य देवेन्द्रगुरुस्तनोतु ॥१६७॥
तादृग् गुणस्य स गुरो स्वर्गतिमवगत्य सत्यभक्त्याऽस्मिन् ।
सङ्घाधिपभीमोऽन्न वर्षाणि द्वादशात्याक्षीत ॥१६८॥
तत्पट्टेऽथो स प्रसिद्धप्रभाव श्रीमान विद्यानन्दसूरि. ४७ श्रिये स्तात ।
नव्योद्भिन्न य द्विष वीक्ष्य मोह-श्छन्नश्छन्न क्वापि भीतश्चचार ॥१६९॥
विद्यानार्यो हृदयभवनेऽस्यास्तसख्या. समन्ता-दालिङ्ग्यैता कथमपि गुणास्तद्दूराश्राप्यत्र
तत्सम्भूतास्त्वतिबहुतया सद्यशोऽपत्यसङ्घास्त्रैवेऽप्यस्मिन् जगति न ममु स्थानयोगाद्विवृद्धि
विद्यानन्दाभिध तेन कृत व्याकरण नवम् । भाति सर्वोत्तम स्वल्पसूत्र बह्वर्थसग्रहम्
वेलेवोल्लासिनी तद्धीस्त्रैविद्यापारसागरे । चिक्षेप प्रोन्मदान् दूरं वादिनः कर्करानिव ।
इति ॥२१५-२१६॥

एतर्हि सिद्धार्थात्मजस्य षट्चत्वारिंशत्तमं पट्टभूतं विविवरीषुः श्लोकाष्टकेनादौ ताव
रामाह—

जस्सऽद्धी भूवदेयं, मिव रयणुवदं, देइ वीईकरेहिं,
सीमाणं पत्थणाए, रइअजलणिहि-स्थोत्तमंतप्पहावा ।
जक्खं जिणाणं कवद्दि, पुणुवइसिअ जो, पुव्वठाणे ठवीअ;
सूरी देविंदसूरि-प्पयखदिणमणी, धम्मघोसो स भासी ॥२१७॥

(प्रे०) "जस्स" इत्यादि, "स" त्ति सः "धम्मघोसो" त्ति धर्मघोषः=श्र
सूरिशिष्यो विद्यानन्दसूरेः सहोदरो लघुगुरुभ्राता च धर्मघोषनामा "सूरी" त्ति सूरिः=
"देविंदसूरिप्पयखदिणमणी" त्ति देवेन्द्रसूरेः पदमेव=पट्ट एव खं=गगनं देवेन्
खम्, तस्मिन् दिनमणिः=सूर्यो देवेन्द्रसूरिपदखदिनमणिः=श्रीदेवेन्द्रसूरिविभोः प
शुमालीव "भासी" त्ति अभात्=राजते स्म ।

"माहेन्द्री चैव ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा वाराही चामुण्डा सप्त मातर ॥" इति ।

कुचौ=स्तनौ प्रसिद्धौ वामेतरौ द्वौ, एताभ्यामङ्काभ्यां प्रातिलोम्येन स्थापिताभ्यां २८।२७ इति सङ्ख्ययाऽधिके मातृकुचाधिके त्रयोदशशते वर्षे=विक्रमसंवत् १३२८ । २७ वा वर्षे "**सगोत्तसूरिविहिओ**" त्ति स्वगोत्रसूरिणा=निजगोत्रीयेणाचार्येण विहितः=कृतः "**सूरी**" त्ति सूरिः=आचार्यः "**स**" त्ति सः=श्रीधर्मघोपसूरिः, पुनः किंविशिष्टः ? । "**संविग्गो**" त्ति **संविग्नः**=भवभीरुः ।

"**से**" त्ति तस्य=श्रीधर्मघोपसूरेः '**खं**" ति खं=स्वर्ग "**बंधहेऊहिं**" त्ति बन्धहेतवो मिथ्यात्वपञ्चका-ऽविरतिद्वादशक-कषायपञ्चविंशतिक-योगपञ्चदशकात्मकाः सप्तपञ्चाशत्, तैः=बन्धहेतुभिः=सप्तपञ्चशता=५७ इति सङ्ख्यया युक्ते त्रयोदश शते वर्षे=विक्रमसंवत् १३५७ हायनेऽभूत् ।

तत्कृतयश्चेमाः–(१) संघाचारचैत्यवन्दनभाष्यविवरणम्, (२) सुअधम्मेतिस्तवः, (३) कायस्थितिप्रकरणस्तवः (४) देहस्थितिस्तवः (५) दुष्षमकालसमणसंघथय सावचूरिकम्, (६) प्रस्ताशर्मेत्यादिस्तोत्रम्, (७) 'देवेन्द्रैरनिशं०" इति श्लेषस्तोत्रम्, (८) "यूय. यूवां त्वम्" इति श्लेषस्तुतिः, (९) "जयवृषभ०" अष्टयमकस्तुतिः, (१०) श्राद्धजीतकल्पः (सड्ढजीयकप्पो) (११) योनिस्तवः, (१२) सत्तुञ्जयमहातित्थकप्पो, (१३) गिरनारतीर्थकल्पः (१४) अष्टापदतीर्थकल्पः, (१५) समवसरणप्रकरणम्, (१६) लोकनालिका, (१७) ऋषिमण्डलस्तोत्रं (१८) पूर्वार्धसंस्कृतभाषोत्तरार्धप्राकृतभाषामयस्तवनमित्यादयः ॥२२४॥

सम्प्रति चतुर्विंशस्य तीर्थपतेः सप्तचत्वारिंशत्तमे पट्टे जातस्य श्रीसोमप्रभसूरेः श्लोकचतुष्टयेन विवर्णयिषया प्रथमं शार्दूलललितं प्राह—

अग्घायुज्जलसजमत्थसुरहिं, सोमप्पहगुरुं
सूरिं थोअमि धम्मघोमसुणिवा-पट्टऽज्जभसलं ।
गेगहीअ च ण मंतपोत्थयमम्, चारित्तसुइणो
अज्जुज्जे वि गओ पडिक्कमिअ जो, णाएसपलयो ॥२२५॥(सद्दूललुलियं)

(प्रे०) "अग्घायु०" इत्यादि, "**सोमप्पहगुरुं**" ति, सोमप्रभनामानं गुरुं "**सूरिं**" ति सूरिं=आचार्यं "**थोअमि**" त्ति, स्तौमि=स्तवनविपयीकरोमीति क्रियाऽन्वयः, किम्भूतम् ? **अग्घायुज्जलसजमत्थसुरहिं**" ति आघ्रातः=घ्राणेन्द्रियेण स्पृष्टः, उज्वले=निर्मले

जो बज्झुज्जयिणित्थं मंताइपचंडसत्तिहरजोगिं ।
कउवद्दवमुणिमद्दिअ मंतेहि मुईअ णमिरं तं ॥२१८॥(पच्छाजा)

(प्रे०) "जो" इत्यादि, "जो" त्ति यः=श्रीधर्मघोषसूरिः "मंताइपचंडसत्तिहरजोगिं" ति मन्त्रः=पाठसिद्धो देवताधिष्ठितः, स आदौ येषां ते मन्त्रादयः, आदिपदेन चात्र विद्या-तन्त्रप्रमुखाणां ग्रहणम्, त एव, तेषां वा प्रचण्डा=तीक्ष्णा उग्रा वा शक्तिः=सामार्थ्य-विशेषो मन्त्रादिप्रचण्डशक्तिस्तस्या धरः, धृधातोः "अच्" (सि ५ १-४६) इति सूत्रेण अच्प्रत्ययः, मन्त्रादिप्रचण्डशक्तिधरः, स चासौ योगी मन्त्रादिप्रचण्डशक्तिधरयोगी तम्, मन्त्रादिप्रचण्ड-शक्तिधरयोगिनम्, किम्भूतम्? "बज्झुज्जयिणित्थ" ति, बाह्या चासौ उज्जयिनी=पुष्प-करण्डिनी बाह्योज्जयिनी=अवन्तीनगरीसत्कबाह्यदेशः, तां तिष्ठतीति बाह्योज्जयिनीस्थः "कालाध्व-भाव-देश वाकर्म चाकर्मणाम्" (सि०२-२-२३) इत्यनेनाधारस्य कर्मत्वे प्राप्ते सति 'आतो डोऽह्वा-वा-मः' (सि० ५-१-७६) इति सूत्रेण डप्रत्ययः, तम्, बाह्योज्जयिनीस्थं = बाह्यायां विशालायां नगर्यां स्थितम्, यद्वा तिष्ठतीति "तुदादिविषिगुहिभ्य कित्" (सि० उणा०-५) इत्यनेन किद् अप्रत्यये स्थः, बाह्योज्जयिनीपुरे = बाह्य उज्जयिनीनाम्नि नगरे स्थो बाह्योज्जयिनीपुरस्थस्तम्, बाह्योज्जयिनीपुरस्थम् = अवन्तीनगरीबहिःस्थम्। पुनः किं विशिष्टम्?। "कउवद्दवमुणि" ति कृतः = विहित उपद्रवः = उपप्लवो मुनिषु = साधुषु येन तम्, कृतोपद्रवमुनिम्, "अद्दिअ" त्ति अर्दित्वा=निपीडय कैः? "मंतेहिं" त्ति मन्त्रैः=प्रागुक्तस्वरूपैः "णमिरं तं" ति नम्रं= नमनशीलं जातं तं = योगिनं "मुईअ" त्ति अमुञ्चत्।

तथा चोक्तं श्रीहीरसौभाग्यकाव्ये श्रीदेवविमलगणिभिः—

"यो योगिनं पुष्पकरण्डिनीस्थं दुश्चेष्टितैर्भापनबद्धकक्षम् ।
पादात्रनम्रं विदधेऽन्तिमोऽर्हन्निवास्थिकग्रामिकशूलपाणिम् ॥११७॥ इति ।

तथा श्रीसोमसौभाग्यकाव्येऽपि—

"गुरूत्रतिं लोकनतिप्रसूतामतिप्रभूतां पुरि वीक्ष्य कश्चित् ।
योगी विपश्चित् कुपितः समागाद् गुर्वाश्रमं सश्रितः आत्तशिष्यैः ॥४१॥
सर्पान् सदर्पान् वदनोत्थतारफूत्कारवारैर्भरितान्तरिक्षान् ।
परं सहस्रान् स मुमोच विद्याकृतानि चान्यान्यपि वैकृतानि ॥४२॥
पद्मासने ध्यानमथ प्रपूर्य सूरिप्रणीर्गेयगुणोऽनपीयः ।
विनेयवृन्दैः सह तं बबन्ध स कौशिकन्व बुधसार्वभौमः ॥४३॥
म्रिये म्रियेऽहं सह शिष्यलक्षैर्मा मुञ्च सच सद्गुरो प्रसद्य ।
कारुण्यपुण्य श्रितसाम्यकाम्यस्त्वं वर्तसे यद् व्रतिनामिनश्च ॥४४॥

पुण्णासेसंगपाठी, म्हयकरचरणो, कित्तिसंपुण्णलोगो;
सूरी सोमप्पहक्खो, स वियरउ महं, सव्वकल्लाणसिद्धी ॥२२६॥(मद्धरा)

(प्रे०) "वादी०" इत्यादि, 'जेण" त्ति, येन, श्रीसोमप्रभसूरिणा, किम्भूतेन ? "वाईहव्वायकुम्भप्पदलणहरिणा" त्ति, वादिनः = प्रतिपक्षास्त एवेभाः = करटिनस्तेषां व्रातः = व्रजस्तस्य कुम्भाः = कलशाकाराः कुञ्जरदेहावयवविशेषास्तेषां प्रदलने = व्यापादने भेदने हरिः = सिंहः, वादीभव्रातकुम्भप्रदलनहरिस्तेन वादीभव्रातकुम्भप्रदलनहरिणा "चित्तकूडे" त्ति, चित्रकूटनाम्नि देशीभाषया 'चित्तोड' इति नाम्नि देशे "सहाए" त्ति, सभायां = नृपसंसदि "वाए" त्ति वादे "विज्जाणहेहि" त्ति, विद्यैव नखाः = नखराः विद्यानखास्तैर्विद्यानखैः "द्विजहरणगणो" त्ति, द्विजाः = विप्रा एव हरणाः = मृगाः = द्विजहरणास्तेषां गणः = समुदायो द्विजहरणगणः "छिण्णप्पहावो" त्ति छिन्नो = विनाशितः प्रभावः = महिमा यस्य स छिन्नप्रभाव = नष्टतेजा अभवत् ।

तथा च प्रत्यपादि गुर्वावल्याम्—

"भास्वान् सच्चरणश्रिया विशदया विश्वोत्तरप्रोल्लस-च्चातुर्वैद्यरमाविलासनिलय श्रीचित्रकूटाचले । कृत्वाऽऽशु द्विजराजमण्डलमसौ छन्नप्रभ गोभरैः, सपेद्‌पेम जीजनद् जिनमतानन्तप्रकाशोदयम् ॥२५६॥" इति ।

"स" त्ति, यत्तदोर्नित्यमापेक्षत्वात्स "सोमप्पहक्खो" त्ति, सोमप्रभाख्यः = सोमप्रभनामा "सूरी" त्ति, सूरिः = आचार्यः "मह" ति, मे "सव्वकल्लाणसिद्धी" त्ति, सर्वेषां = समस्तानां कल्याणानां = श्रेयसां सिद्धीः = प्राप्तीः, सर्वकल्यणसिद्धीः, यद्वा सर्वाः = निखिलास्ताश्च ताः कल्याणानां शिवानां सिद्धयः = निष्पत्तयः = सर्वकल्याणसिद्धयस्ताः सर्वकल्याणसिद्धीः, यद्वा कल्याणाः = विशिष्टफलदा हितकरा वा ताश्चः ताः सिद्धयश्च=कल्याणसिद्धयः सर्वाः = सकलाः ताश्च ताः कल्याणसिद्धयश्च, ताः सर्वकल्याणसिद्धीः "वियरउ" त्ति, वितरतु = ददातु ।

स कः ? । "पुण्णासेसंगपाठी" त्ति, पूर्णानि = अर्थैर्भृतानि, अशेषाणि = निखिलानि, अङ्गानि = आचाराङ्गादिसूत्राणि, अशेषाणि च तान्यङ्गान्यशेषाङ्गानि = सर्वाङ्गानि, पूर्णानि च तान्यशेषाङ्गानि, पूर्णाशेषाङ्गानि, तानि पठतीत्येवंशीलः' अजात शीले" (सि ५-१-१५४) इत्यनेन णिन्प्रत्यये पूर्णाऽशेषाङ्गपाठी=कण्ठगतैकादशाङ्गसूत्रार्थः । **तथा चोक्तं गुर्वावल्याम्**—

"सर्वाङ्गपाठी निखिलागमार्थान् विनापि वृत्त्यादि हि सोऽव्ययादत । ' इति । (गा. २६२)

पुनः किं विशिष्टः ? "म्हयकरचरणो" त्ति, स्मयस्य = आश्चर्यस्य करम् = जनकम्, चरणं = चारित्रं यस्य स स्मयकरचरणः = विस्मयविधायकाचारः "कित्तिसपुण्णलोगो" त्ति,

मृगस्य सिंहस्तमसश्च भानुमा-नसिर्मृणालस्य तृणस्य चाऽनलः ।
अहेर्गरुत्मानिव लीलयाऽप्यलं, तवापहर्तुं मदजीवितं गुरुः ॥२३५॥
निशम्य योगीति रुपा स लब्ध्या, जान्वायतस्थूलरदास्यमीष्मम् ।
विधाय रूपं विकृतं जिघत्सु-रिवाभ्ययावत चलयन् भुवं तान् ॥२३६॥
मुमुक्षवस्तद्रदपानसूचिनीं, कफोणिमुद्भूर्य पलाय्य च द्रुतम् ।
सकम्पगात्रास्तरलेक्षणा भयाद्, गुरुं वसत्यां शरणं प्रपेदिरे ॥२३७॥
मा भैष्ट मा भैष्ट कुतो नु वो भयं, मयि प्रभौ त्रातरि हे विनेयकाः ! ।
इतीरिताः श्रीगुरुणाथ सम्भ्रमा-दाश्वस्य वृत्तं मुनयोऽपि तज्जगुः ॥२३८॥
यावत्तदाकर्ण्य करोति रोपतो, भ्रुवं ललाटप्रणयोद्धुतां गुरुः ।
तावत्प्रदोषे विचकार दूरगो-प्यहो स योगीह विभीषिका इमाः ॥२३९॥ तथाहि–
स्फारैः स्फूत्कारवारैर्भरितसुरपथा भूमिपीठे समन्ता-
द्भीष्मा भोगीन्द्रभाराः फणमणिकिरणैर्द्योतिताशाः प्रसस्रुः ।
शालान्तःपुस्तकाद्योपकरणबलकस्तम्भमुख्याऽखिलार्थान्,
खादन्तो वज्रतुण्डा भयदपृथुवपुर्मूषकाश्चोपरिष्टात् ॥२४०॥
फेत्कारान् स्फोरयन्तो बहिरथ वसतेश्चण्डफेरण्डसङ्घा-
वल्गन्मार्जारवाराः पृथुरदवदना मण्डलाश्चाप्यसङ्ख्याः ।
दृष्ट्वा तान् भीमरेणो-त्तरलितनयना कम्प्रगात्रा न नष्टुं,
स्थातुं वाऽशक्नुवन्तो निजगुरुमवदन् पाहि पाहीति शिष्याः ॥२४१॥
त्राताय वोऽस्मि विश्वप्रकटमहिमभृद् भैष्ट मा भैष्ट मा भो !,
आश्वास्यैवं विनेयान् गुरुरपि विगतक्षोभशङ्कः सदापि ।
यावद् ध्यानावलम्बी जपति जयकरं सिद्धमन्त्रं स तावत्,
सर्प्याद्या क्वापि जग्मुः प्रमुदितमनसः साधवश्चाप्यभूवन् ॥२४२॥
योगी सोप्युग्रबन्धैरविषयिविपर्यैर्हा ! म्रिये रे ! म्रिये रे !,
शिष्याः ! बद्धाखिलाङ्गं कुरुत कुरुत भो ! काश्चनाऽऽशूपचारान् ।
आस्तावद् यत्नसिद्धा अपि हि विफलतां भेजिरे चेटकाद्याः,
सर्वे मन्त्राश्च दैवं धिगहह ! किममूद्धीरिय मेऽधुनाऽचैः ॥२४३॥
क्रन्दन्नित्युग्रकष्टं सकलपुरजनैर्दृश्यमानो विमानो,
धावद्भिर्व्याकुलैः स्वैर्निखिलपरिजनैश्चापि हाहारवाढ्यैः ।
आकृष्टो जैनमन्त्रैः स्मृतिमपि गमितैश्चेटकाद्यैरशक्य-
स्त्रातुं व्योम्ना समागाद् गुरुपदकमलोपान्तमानम्रमौलिः ॥२४४॥
उवाच योगी भगवन् दयानिधेऽपराधमेकं मम मर्षयाधुना ।
विमुञ्च मामेष पतामि पादयोर्न वो विरुद्धं विदधे ह्यतः परम् ॥२४५॥
जगुर्जनाश्चापि न धर्त्तुमर्हसि प्रभो ! प्रकोपं प्रणते दयास्पदे ।
व्यधादथ स्वक्रमरेणुना गुरुः शमीस्वभावस्थमिमं लसद्दयः ॥२४६॥
त्वं शङ्करः स्वजनेष्टकर्त्ता ब्रह्मा त्वमेवाखिलब्रह्मनिष्ठः ।
त्वमेव सत्यः पुरुषोत्तमोऽसि त्वमेव बुद्धः सकलार्थवेदिन् ! ॥२४७॥

न्द्रिय-रसेन्द्रिय स्पर्शेन्द्रिय-ज्ञान दर्शन-चारित्र तपो-वीर्यलक्षणैर्दशभिः, **तथा चोक्तं स्थानाङ्गे दशमे स्थाने** "दसविहे बले पन्नत्ते। तजहा सोइंदियबले-जाव फासिंदियबले णाणबले-दसणबले-चरित्तबले-तवबले वीरियबले" इति । **यद्वा** बलैः=प्राणैः=स्पर्शेन्द्रिय -रसेन्द्रिय--घ्राणेन्द्रिय-चक्षुरिन्द्रिय-श्रोत्रेन्द्रिय--मनोयोग -वचोयोग--काययोग---श्वासोच्छ्वासा--ऽऽयुष्कलक्षणैर्दशभिः

यदुक्तम्--"दसहा जियाण पाणा इंदिय ऊसास आउ बल रूआ ॥ ॥" इति ।

"अहिए" त्ति, अधिके **"विस्ससये"** त्ति, विश्वाः = विश्वदेवास्त्रयोदश तावन्मितानि शतानि यस्य वर्षस्य तादृशे विश्वशते **'वासे'** त्ति, वर्षे = विक्रमसंवद्दशाधिकत्रयोदशशत १३१० तमे शरदि जाता । **"वयं"** ति, व्रतं = संयमादानं **' अप्पक्खोहिं"** त्ति **'भूवा' 'अहिए' 'विस्ससये' 'वासे'** त्ति, पदचतुष्टयीहोत्तरत्र चाऽनुवर्तते ततो विक्रमभूपात् आत्मा = क्षेत्रज्ञ एकः, **उक्तश्च स्थानाङ्गे**–"एगे आया" (सू० २) इति । अक्षिणी द्वे, आभ्यामङ्काभ्यां पश्चानुपूर्व्या लब्धाभ्यामेकविंशति २१ सङ्ख्ययाऽधिके विश्वशते १३०० वर्षे विक्रमसंवदेकविंशत्रयोदशशत१३२१शरद्यभवत् । **' पयं"** ति, पदं=सूरिपदं **"रएहिं"**त्ति, विक्रमराजतो **रदैः**=दन्तैः= द्वात्रिंशताऽधिके विश्व१**३शते** वर्षे=विक्रमसंवद्द्वात्रिंशदुत्तरत्रयोदशशत१३३२वर्षेऽजायत ।

"सो" त्ति, सः=श्रीसोमप्रभसूरिः **"जगस्सेहिं"** त्ति, विक्रमतो जगदश्वैः=त्र्यङ्क-सप्ताङ्कलक्षणैर्वामगतिन्यस्तैरधिके विश्वशते वर्षे=विक्रमसंवत्१३७३तमे हायने **"अज्ज"** ति, आद्य=प्रथमं **"खं"** ति, सुरलोकं **"इओ"** त्ति, इतः=गतः=प्राप्तः ।

यदभ्याणि गुर्वावलीकृता---

"दिग्विश्ववर्षे १३१० जननं कृपाणि-विश्वे १३२१ व्रतं प्राप्य रदत्रिचन्द्रे १३३२ ।
पदप्रतिष्ठां च गुरुर्जगाम, त्रिसप्तविश्वे १३७३ च स देवधाम ॥२६६॥" इति ॥२२७॥

एवञ्चैकादश११वर्षाणि गृहस्थत्वे, एकादश११वर्षाणि सामान्यसाधुव्रते, एकचत्वारिंशद् ४१ वर्षाणि सूरिपदं उषित्वा सकलायुश्च त्रिषष्टि६३वर्षाणि परिभुज्य स्वर्गभाग् बभूव ।

अथ पथ्यागीतिमाह—

^सुरगइ समयेऽस्स पसिद्धं, सुरकयउज्जोयणाइमहिममहो ।
सग्गागयं विमाणं, गुरुणोऽस्स त्ति भणिअं जणेहि तया ॥२२८॥ (पच्छागीई)

(प्रे०) **"सुरगइ०"** इत्यादि, **"ऽस्स"** त्ति, अस्य श्रीसोमप्रभाख्यसूरेः **"सुरगइ-समये"** त्ति, सुरगतेः=देवलोकगमनस्य समये=अवसरे **"सुरकयउज्जोयणाइमहिमं"** ति, सुरैः=देवैः कृत=विहितं, उद्योतनादिमहिमानं=जाज्वल्यमाननभालोकादिकमाहात्म्यं सुरकृतो-

^ एते द्वे (२२८-२२९) गाथे श्री तपागच्छपट्टावल्यपेक्षयात्र पठिते ज्ञेये । गुर्वावल्यपेक्षया ऽग्रेऽभिधास्येते ।

मृगस्य सिंहस्तमसश्च भानुमा-नसिर्मृणालस्य तृणस्य चाऽनल ।
अहेर्गरुत्मानिव लीलयाऽप्यल, तवापहर्तुं मदजीवितं गुरु ॥२३५॥
निशम्य योगीति रुषा स लब्ध्या, जान्वाथतस्थूलरदास्यमीषमम ।
विधाय रूप विकृत जिघत्सु-रिवाभ्यधावत चलयन भुव तान् ॥२३६॥
मुमुक्षवस्तद्रदपातसूचिनीं, कफोणिमुद्भूर्य पलाय्य च द्रुतम् ।
सकम्पगात्रास्तरलेक्षणा भयाद्, गुरु वसत्या शरण प्रपेदिरे ॥२३७॥
मा भैष्ट मा भैष्ट कुतो नु वो भय, मयि प्रभौ त्रातरि हे विनेयका ! ।
इतीरिता श्रीगुरुणाथ सम्भ्रमा-दाश्वस्य वृत्त मुनयोऽपि तज्जगु ॥२३८॥
यावत्तदाकर्ण्य करोति रोषतो, भ्रुव ललाटप्रणयोद्धुता गुरु ।
तावत्प्रदोषे विचकार दूरगो-प्यहो स योगीह विभीषिका इमा ॥२३९॥ तथाहि–

स्फारै स्फूत्कारवारैर्भरितसुरपथा भूमिपीठे समन्ता-
द्भीष्मा भोगीन्द्रभारा फणमणिकिरणैर्द्योतिताशा प्रसस्रु ।
शालान्त पुस्तकाद्योपकरणवलकस्तम्भमुख्याऽखिलार्थान,
खादन्तो वज्रतुण्डा भयदपृथुवपुर्मूषकाश्चोपरिष्टात ॥२४०॥

फेत्कारान् स्फोरयन्तो बहिरथ वसतेश्चण्डफेरण्डसङ्घा-
वल्गन्मार्जारवारा. पृथुरदवदना मण्डलाश्चाप्यसङ्ख्या ।
दृष्ट्वा तान् भीभरेणो-त्तरलितनयना कम्प्रगात्रा न नष्टु,
स्थातु वाऽशक्नुवन्तो निजगुरुमवदन् पाहि पाहीति शिष्या ॥२४१॥

त्राताय वोऽस्मि विश्वप्रकटमहिमभृद् भैष्ट मा भैष्ट मा भो !,
आश्वास्यैवं विनेयान् गुरुरपि विगतक्षोभशङ्क सदापि ।
यावद् ध्यानावलम्बी जपति जयकर सिद्धमन्त्र स तावत,
सर्प्याद्या. क्वापि जग्मु प्रमुदितमनस साधवश्चाप्यभूवन् ॥२४२॥

योगी सोप्युग्रबन्धैरविषयिविषयैर्हा ! म्रिये रे ! म्रिये रे !,
शिष्या ! बद्धाखिलाङ्ग कुरुत कुरुत भो ! काश्चनाऽऽशूपचारान् ।
आस्तावद् यत्नसिद्धा अपि हि विफलता भेजिरे चेटकाद्या,
सर्वे मन्त्राश्च दैव धिगहह ! किममूद्धीरिय मेऽधुनाऽघै ॥२४३॥

क्रन्दन्नित्युग्रकष्ट सकलपुरजनैर्दृश्यमानो विमानो,
धावद्भिर्व्याकुलै स्तैर्निखिलपरिजनैश्चापि हाहारवाढ्यै. ।
आकृष्टो जैनमन्त्रै स्मृतिमपि गमितैश्चेटकाद्यैरशक्य-
स्त्रातु व्योम्ना समागाद् गुरुपदकमलोपान्तमानम्रमौलि ॥२४४॥

उवाच योगी भगवन् दयानिधेऽपराधमेक मम मर्षयाधुना ।
विमुञ्च मामेष पतामि पादयोर्न वा विरुद्ध विदधे ह्यत परम् ॥२४५॥
जगुर्जनाश्चापि न धर्त्तुमर्हसि प्रभो ! प्रकोप प्रणते दयास्पदे ।
व्यधादथ स्वक्रमरेणुना गुरु शमीस्वभावस्थमिम लसद्दय ॥२४६॥
त्व शङ्कर स्वजनेष्टकर्त्ता ब्रह्मा त्वमेवाखिलब्रह्मनिष्ठ ।
त्वमेव सत्य पुरुषोत्तमोऽसि त्वमेव बुद्ध सकलार्थवेदिन् ! ॥२४७॥

प्रासादे 'थभव्व" त्ति, स्तम्भा इव=गृहाधारविशेषा इव "ते" त्ति, अनन्तरोक्तसोमप्रभसूरिशिष्याः, "भव्वजणाघहारा" त्ति, भव्यजनानां=सिद्धार्हाणामघहाराः=पापापहाः=भव्यजनाघहाराः, "जयतु" त्ति, जयन्तु=अस्मिँल्लोके जयनशीलाः सन्तु ।

तथा चोक्त श्रीमन्मुनिसुन्दरसूरिभिः-

"चत्वारस्तस्य गुरो शिष्या ख्याते पद च सकलदिक्षु । आसन् जिनपतिशासनसौधोद्धाराय तु स्तम्भा. ॥२६८॥" इति ।

तथैव गुरुपर्वक्रमे

"तेषा विनेया वरभागधेया-श्चत्वार आसन् स्वगुणैरमेया ।
चतुर्गतिभ्योऽसुमता सुखेनो-द्धाराय धर्मस्य वपु पि कि नु ॥४७॥" इति ॥२३०॥

ते क इत्याकाङ्क्षायां पथ्यार्याद्वयमाह—

सिरिविमलप्पहसूरी मिच्छतमहरो दयंबुही पढमो ।
सिरिपरमानंदगुरू परमानंदप्पदो बीओ ॥२३१॥ (पच्छाजा)
सिरिपम्हतिलगसूरी तइओ फुडसुद्धसंयमिद्धिणिही ।
सिरिसोमतिलगणामो सूरी विस्सुत्तसो तुरिओ ॥२३२॥ (पच्छाजा)

(प्रे०) "सिरिविमल०" इत्यादि, "पढमो" त्ति, प्रथमः=श्रीसोमप्रभसूरेराद्यः शिष्यः "सिरिविमलप्पहसूरी" त्ति, श्रिया युक्तो विमलप्रभस्तन्नामा सूरिः=आचार्यः= श्रीविमलप्रभसूरिरभूत् । किंभूतः ? "मिच्छतमहरो" त्ति, मिथ्यात्वमेव तमस्तद् हरतीत्येवं= शीलो = मिथ्यात्वतमोहरः "दयंबुही" त्ति, दयानां = करुणानामम्बुधिः = समुद्रः = दयाम्बुधिः = कारुण्यसागरः ।

अमुष्य सूरिपदप्रतिष्ठा यस्मिन्वर्षे श्रीधर्मघोषसूरयः स्वर्ययुस्तस्मिन् विक्रमसंवत्कीर्तिकाव्यस्थानक्रियास्थान१३५७मिते=सप्तपञ्चाशत्रयोदशशत१३५७तमे विक्रमसंवदि सोमप्रभसूरिभिश्चक्रे ।

"दुइओ" त्ति, द्वितीयः शिष्यः "सिरिपरमानदगुरु" त्ति, श्रिया=ज्ञानादिलक्ष्म्याऽन्वितः परमानन्दः=तन्नामा गुरुः=आचार्यः श्रीपरमानन्दगुरुरासीत् । कीदृक् ? "परमानन्दप्पदो" त्ति, परमः=सर्वश्रेष्ठश्चासौ आनन्दः=आह्लादः=परमानन्दस्तं प्रददातीति "उपसर्गादातो डोऽश्य' (सि०५-१-५६) इति डप्रत्यये प्रदः=प्रदायकः=परमानन्दप्रदः दर्शनमात्रेण प्रह्लादक इति यावत्, अस्मै च सूरिपदं सोमप्रभसूरिभिर्विश्वाश्वनाभेयभव१३७८३तमे विक्रमसंवदि दत्तम्,

स्ताः प्रागवत्स्तम्भनं कृत्वा-"ऽतः पर भवदीये गच्छे उपद्रव न करिष्याम" इति कृतावचनास्ताः संघाग्रहाद् विमोक्षं प्रापिताः । तथा चोक्त गुर्वावल्याम्-

'प्रबोधकोऽथास्य गुरु स चान्यदा दुष्प्राङ्गनाभिर्वटकान् सकार्मणान ।
विहारितान् साधुजनैरनल्यजन प्रगे शिलाखण्डमयाश्च तेऽभवन् । २१३।
ततोऽभिमन्त्र्यार्पितपट्टकासनास्ता स्तम्भयित्वा दययाऽमुचन्नना ।
तथैव विद्यापुरदेशगुल्मकृत स्त्रियोऽथ सघार्थनया मुमोच स । २१४॥
क्वचित्पुरे द्वार्निशि शाकिनीभयाऽभिमन्त्र्य दीयेत ततोऽस्मृनेऽन्यदा ।
गुरुस्तदुत्पाटितपट्टिवीक्षणे सस्तभ्य वाचा वशिना मुमोच ता ॥२१५॥" इति ।

तथा श्रीहीरसौभाग्येऽपि-

'विद्यापुरे योऽखिलशाकिनीनामुपद्रव द्रावयति स्म सूरि ।
श्रीहेमचन्द्रो भृगुकच्छसञ्ज्ञे, पुरे यथा दुर्द्धरयोगिनीनाम् ॥२१६॥" इति ॥२१६॥

अथ पुनरपि पथ्यार्यामाह—

एकाअ च्चिअ णिसाए जो किच्चाऽट्ठजमया जिणथुईए ।
बंभीलद्धपसायो गुज्जरसइवं पबोहीअ ॥२२०॥

(प्रे०) "एकाअ" इत्यादि, "जो" त्ति, यः=श्रीधर्मघोषसूरिः, किम्भूतः "बम्भीलद्ध-पसायो" त्ति ब्राह्म्याः=सरस्वत्याः लब्धः=प्राप्तः प्रसादः=कृपा येन स ब्राह्मीलब्धप्रसादः=सिद्ध-सारस्वतः "एकाअ च्चिअ णिसाए" त्ति एकस्यामेव निशायां वा=यामिन्यां "जिणथुईए" त्ति जिनस्य=अर्हतः स्तुतेः=स्तवनस्य जिनस्तुतेः=अर्हद्गुणोत्कीर्तनश्लोकरचनायाः "ऽट्ठज-मया" त्ति अष्टौ=अष्टसंख्याकानि यमकानि=शब्दाऽलङ्कारास्तथोपचाराच्छब्दालङ्कारमयानि काव्यानीति यावत् "किच्चा" त्ति कृत्वा = विधाय "गुज्जरसइव"ति गुर्ज्जरस्य = गुर्ज्जर-नाम्नो देशस्य सचिवं = प्रधानं गुर्ज्जरसचिवं "पबोहीअ" त्ति प्रबोधयाञ्चकार ।

तथाहि-एकदा गुर्जरदेशस्य मन्त्री अष्टयमकं काव्यं भणित्वाऽवदत्, साम्प्रतमीदृक्का-व्य कर्तु केनाऽपि न शक्यमिति, तदनन्तरं गुरुणोदितम् · तदस्तित्वस्य निषेधनं न कर्तव्यम्, तेनाप्युक्तं त कवि दर्शयत, गुरुणा प्रोक्तं ज्ञास्यते, तत एकस्यां रात्रौ 'जय वृषभ० — " इत्यादि वृषभजिनस्तुत्यात्मकमष्टयमकं काव्यं निर्माय भित्तिलिखितं दर्शितम्, ततो विस्मयी-भूतः स प्रतिबोधितः ।

तथा च प्रतिपादितं गुर्वावल्याम्-

"श्रीशारदालब्धवरो निशैकया-ऽष्टभि स कृत्वा यमकैरलंकृता ।
स्तुतीर्जिनाना अमदच्चरौषवी-स्ववुधद् गुर्जरराजमन्त्रिणम् ॥२२०॥

"इंदुहरा-ऽबंभमिए" त्ति, इन्दुधराः = शम्भवः = रुद्रा एकादश, यद्वा-इन्दुः = चन्द्र एकः, धरा = अवनिरेका, अब्रह्माण्यष्टादश, अब्रह्मणो-ऽष्टादशविधत्वात्, **यदुक्तम्**–
"ओरालिय च दिव्व मणवयकाएण करणजोएण । अणुमोयणकारवणे करणेणट्ठारस अबंभ ॥" इति ।
आभ्यामङ्काभ्यामेभिर्वा-ऽङ्कैः पश्चानुपूर्विक्रमलब्धया १८११ इति सङ्ख्यया मिते इन्दुधराब्रह्ममिते **"ऽद्दे"** त्ति, अब्दे = हायने वीरसंवत् १८११ शरदि **"आसि"** त्ति अभूत् । **"इंदियपणगविसयसुइमिए"** त्ति, इन्द्रियपञ्चकविषयाः शीतो-ष्ण-रूक्ष-स्निग्ध-गुरु-लघु कर्कश-मृदुरूपस्पर्शाष्टक-तिक्त-कटु कषायाम्ल-मधुरलक्षणरसपञ्चक-सुरभि-दुर्गभिगन्धद्वय श्वेत-रक्त-पीत-नील कृष्णरूपवर्णपञ्चक-सचित्ता-ऽचित्त-मिश्ररूपशब्दत्रयात्मकास्त्रयोविंशतिः, स्मृतयः श्रुतयो वा=अष्टादश । **यदुक्तम्**–"दधौ च धर्मं श्रुतिभि पुराणै-र्विस्पष्टमष्टादशभि प्रणीतम् ॥ ॥" इति ।

एताभ्यामङ्काभ्यां वामक्रमलब्धाभ्यां १८१३ इति सङ्ख्यया मिते इन्द्रियपञ्चकविषय स्मृतिमिते=वीरसंवत् १८२३ वर्षे **"वयं"** ति, व्रतं = संयमादानमभवत् ।

"स" त्ति सः=श्रीसुमिणमित्रसूरिः **"हत्थिकरपहरविज्जे"** त्ति, हस्तिकरः = शुण्' एका, प्रहराः = यामाश्चत्वारः, विद्या = अष्टादश, **न्यगादि च**–"अष्टादशा-ऽप्यैष्ट सुधी विद्यास्त्व०" इति । इमेऽङ्काः प्रातिलोम्यस्थापिता १८४१ इति प्रमाणं यत्र तत्र हस्तिकरप्रहरवि वीरसंवत् १८४१ संवत्सरे **"आसि जुगवरो"** त्ति, युगवरः = युगप्रधानोऽभूत् ।

"सो" त्ति, पदमिहाऽपि डमरुकमणिन्यायेन योज्यते, ततः स = श्रीसुमिणमित्रसू **"बलकाकक्खिगहकुम्मि"** त्ति बलाः = बलदेवा नव, काकाक्षि = काकनेत्रमेकम्, ग्रहाः मङ्गल-बुध-गुरु-शुक्र-शनि-रवि-सोम राहु-केतुलक्षणा नव, कुः = भूमिरेका, एतेऽङ्का वामक्र न्यस्ता १९१९ इति सङ्ख्या यस्य तादृशे बलकाकाक्षिग्रहकौ = वीरसंवत् १९१९ शा **"दिव"** ति दिवं त्रिदशधाम **"गओ"** त्ति, गतः = ययौ ।

एवञ्चाऽमुष्य द्वादश १२ वर्षाणि गृहवासे, अष्टादश १८ वर्षाणि सामान्यव्रतपर्याये अष्टासप्तति ७८ वर्षाणि युगप्रधानत्वे चेति सर्वायुश्चाऽष्टोत्तरवर्षशतकमभवत् ॥२३३-२३४॥

इदानी श्रीमन्महावीरप्रभुपट्टेऽष्टाचत्वारिंशत्तमे भूतं श्रीसोमतिलकसूरि श्लोकद्वयेन स्तुव न्निन्दुवदनां ब्रूते--

सो अगुमहद्दहसिआ वयणगंगा; जस्स भवतावअवहाऽथमलसोही ।
सोमतिलगव्व गुरुसोमतिलगो सो; सोमपहसूरिपयसंभुगिरिसोही ॥२३५॥

(इदुवयणा)

सूरी सो जयसत्तिणाहिअभवे[१३७३], भ्राणांहिलोए[१४२४]दिवं ॥२३६॥

(सद्दूलविक्कीडिय)

(प्रे०) "जो" इत्यादि, "जो" त्ति. यः = श्रीसोमतिलकसूरिः "बालो वि अबालतेअ-णियरो" त्ति, बालोऽपि = क्षुल्लकोऽपि अबालानां = प्रौढाना = प्रचण्डानामिति यावत् तेजसां प्रभाणां निकरः = समूहः = अबालतेजोनिकरः=उग्रप्रतापवान्, 'जो" त्ति यः पूर्ववत् "वाइ-तूलासुगो" त्ति, वादिनः = प्रतिपक्षा एव तूलाः पिचवस्तेषु = आशुगः = पवनः = वादि-तूलाशुगः = वादिविजेतेत्यर्थः, "रायच्चो" त्ति, राज्ञां = नरेन्द्राणाम् अर्च्यः = पूजनीयः = राजार्च्यः = भूपसेवितपादकमलः, "सुगुणेहि गोयमतुलो" त्ति, सुगुणैः = संयमादिलक्षणै-र्गौतमस्य = महावीरप्रभोः प्रथमगणधरस्य तुला = तुलना = उपमा यस्य यस्मिन्वा स गौतम-तुलो = इन्द्रभूतिसमानः, "वितिण्णकित्तिव्वजो त्ति, विस्तीर्णः = वितत', कीर्तेः = यशो-वादस्य व्रजः = समुदायो यस्य सः = विस्तीर्णकीर्तिव्रजः = यशसा विश्वव्याप्यसौ बभूवेत्यर्थः ।

तथा गुर्वावल्यामपि—

सूरीन्द्रसोमप्रभपट्टभास्करो, बालोऽप्यसौ प्राप्तपदप्रभोदय ।
क्ष्माभृता मौलिनिघृष्टपादभृद्, विदिद्युते स्फारयश प्रतापवान् ॥२७४॥
अथ निजै सूरिगुणैरनुत्तरै, सूरिर्न कैरप्युपमामशिश्रियत ।
येनोपमीयेत सरोऽम्बुराशिना, न चाऽम्बुराशि सरसाम्बुऋद्धिभि ॥२७५॥
अल्पायुष्ट्वात्सूरित्रितयस्यैकोऽप्यसावपाद्गच्छम् । रक्षत्येकोऽपि वन सिंहो न तु लक्षशोऽपि मृगा ॥२७६॥
न कैर्गज सङ्घपति प्रशस्यते स जङ्घरालव्यवहारिमण्डन ।
यष्टङ्कसार्द्धायुतयामल २५००० व्ययादचीकरत्तत्पदमद्भुतोत्सवै ॥२७७॥
क्षोणीभूषणजङ्घरालनगरालङ्कारवीरालये, प्राप्ताचार्यपदस्य तस्य सुमहोभाग्यस्य दृष्ट्वाप्यहो ! ।
भूतप्रेतकुशाकिनीच्छलरिपुच्चाटस्फुरत्कार्मणा-द्युत्थोपद्रवमण्डलानि निखिलान्याशु प्रणेशुर्नृणाम् ॥२७८॥
नो दुष्टा पशव स्वभावरिपव प्राबोभुवुर्नो खला-स्तस्योत्कृष्टयश प्रतापसुगुणा व्यापुश्च सर्वा दिश ।
तत्तन्निर्जितका इवापरमहासूरीश्वराणा च ते, दूर क्वाऽपि पलायिता बुबुधिरे कैश्चिद् यथा नो पुन ॥२७९॥
षट्तर्कीपरितर्ककर्कशमतिप्रोत्सर्पिदर्पोत्कर स्फुर्जद्दुर्दमवादिसमदमदापस्मारविस्मारके ।
एतस्मिन्नवति प्रभौ जिनमत तद्द्वेषिण क्वाप्यगु-श्छिन्नोत्साहमतिप्रभावरुचय कष्ट जिजीवु परम् ॥२८०॥
विश्वव्यापिनि तस्य विश्रुतयश पद्माकरे सर्वत, कम्पाङ्कोत्पतदम्बुशीकरतुलारूढोडुमालाचितम् ।
नीलाम्भोजति तावदम्बरतल स्फेष्टाष्टकाष्टादल, सूर्याचन्द्रमसौ मरालतुलनादोलामथारोहत ॥२८१॥
तस्याखिलश्वेतपटाधिपस्य, शक्नोति क श्वेतपटान् प्रमातुम् ।
एको यश श्वेतपटो यदस्य, दिगङ्गनाङ्गाऽऽवरण विधत्ते ॥२८२॥ किं बहुना—
ध्वस्ता वादिमदा हत कलिमलो मिथ्यात्वमुग्र तम-श्छिन्न मण्डलमण्डलप्रसृमर प्राप्त नृपेभ्योऽर्चनम् ।
क्लृप्ता शासनभा युगोत्तमगुणैराऽऽप्ता तुला गौतमी-त्युद्यल्लब्धिगुणप्रभावचरितै सूरि समोऽन्योऽस्य न ॥
वृद्धक्षेत्रसमाससप्ततिशतस्थानादिशास्त्रैर्नवै, पात्रैरागमवारिवैरतिगुरो पूर्णो स्वधीगाहितात् ।

श्रीनाभेयजिनोऽथ चन्द्रकपुरीस्थाने १४ स जीरापुरे १५ ।
श्रीपार्श्वो जलपद्र १६ दाहडपुरस्थानद्वये १७ संपदम्,
देयाद्वीरजिनश्च हसलपुरे १८ मान्धातृमूलेऽजिन १९ ॥१९३॥
आदीशो धनमातृकाभिधपुरे २० श्रीमङ्गलाख्ये पुरे २१,
तुर्यस्तीर्थकरोऽथ चिक्खलपुरे श्रीपार्श्वनाथ श्रिये २२ ।
श्रीवीरो जयसिंहसञ्जितपुरे २३ नेमिस्तु सिंहानके २४,
श्रीवामेयजिन सलक्षणपुरे २५ पार्श्वस्तथैन्द्रीपुरे २६ ॥१९४॥
शान्त्यै शान्तिजिनोऽस्तु ताल्हणपुरेऽ २७रो हस्तनाम्ने पुरे २८,
श्रीपार्श्वे करहेटके २९ नलपुरे ३० दुर्गे च नेमीश्वर ३१ ।
श्रीवीरोऽथ विहारके ३२ स च पुन श्रीलम्बकर्णीपुरे ३३
खण्डोहे किल कुन्थुनाथ ३४ ऋषभ श्रीचित्रकूटाचले ३५ ॥१९५॥
आद्य पर्णविहारनामनि पुरे ३६ पार्श्वश्च चन्द्रानके ३७
वङ्क्यामादिजिनोऽ३८थ नीलकपुरे जीयाद् द्वितीयो जिन ३९ ।
आद्यो नागपुरे ४०ऽथ मध्यकपुरे श्रीअश्वसेनात्मज ४१,
श्रीदर्भावतिकापुरेऽष्टमजिनो ४२ नागह्रदे श्रीनमि ४३ ॥१९६॥
श्रीमल्लिर्धवलक्कनामनगरे ४४ श्रीजीर्णदुर्गान्तरे ४५,
श्रीसोमेश्वरपत्तने च फणभृल्लक्ष्मा ४६ जिनो नन्दतात् ।
विंश शङ्खपुरे जिन ४७ स चरम सौवर्त्तके ४८ वामन-
स्थल्या नेमिजिन ४९ शशिप्रभजिनो नासिक्यनाम्न्या पुरि ५० ॥१९७॥
श्रीसोपारपुरेऽ५१थ रूपनगरेऽ५२थो कुङ्कलेऽ५३थ प्रति-
ष्ठाने पार्श्वजिन ५४ शिवात्मजजिन श्रीसेतुबन्धे ५५ श्रिये ।
श्रीवीरो वटपद्र५६नागलपुरे ५७ ऽष्टक्वारिकाया ५८ तथा,
श्रीजालन्धर५९देवपालपुरयो ६० श्रीदेवपूर्वे ६१ ॥१९८॥
चारुपे मृगलाञ्छनो जिनपति६२र्नेमि श्रिये द्रोणने ६३,
नेमी रत्नपुरेऽ ६४ जितोऽर्बुकपुरे ६५ मल्लिश्च कोरण्टके ६६ ।
पार्श्वो ढोरसमद्रनीवृति ६७ सरस्वत्याह्वये पत्तने,
कोटाकोटिजिनेन्द्रमण्डपयुत ६८ शान्तिश्च शत्रुञ्जये ६९ ॥१९९॥
श्रीतारापुर७०वर्द्धमानपुरयो ७१ श्रीनाभिभूसुव्रतौ,
नाभेयो वटपद्र७२गोगपुरयो७३श्चन्द्रप्रभ पिच्छने ७४ ।
ओङ्कारेऽद्भुततोरण ७५ जिनगृह मान्धातारि त्रिक्षण ७६,
नेमिर्विक्कननाम्नि ७७ चेलकपुरे श्रीनाभिभू७८र्भूतये १५ ॥२००॥
इत्थं पृथ्वीधरेण प्रतिगिरिनगरग्रामसीम जिनाना-
मुच्चैश्चैत्येषु विष्वग् हिमगिरिशिखरै स्पर्द्धमानेषु यानि ।
बिम्बानि स्थापितानि क्षितियुवतिशिर शेखराण्येष वन्दे,
तान्यप्यन्यानि यानि त्रिदशनरवरै कारिताऽकारितानि ॥२०१॥

इति पृथ्वीधरसाधुकारितचैत्यस्तोत्र १६ काव्य पूज्यश्रीसोमतिलकसूरिकृतम् ।

सुरकृतोद्योतनादिमहिमानं "**पसिअ**" ति, दृष्ट्वा "**नया**" त्ति, तदा = तस्मिन्काले "**जणेहिं**" त्ति, जनैः=लोकैः "**भणिअं**" ति, भणितम्=कथितम् "**अहो**" त्ति, अहो=विस्मये "**ऽस्स**" त्ति, अस्य=श्रीसोमतिलकनाम्नः "**गुरुणो**" त्ति, गुरोः "**सग्गा**" त्ति, स्वर्गात्=अमरलोकतः "**विमाणं**" ति, विमानं=देवयानं "**आगअ**" ति, आगतम् । **तथा चोक्त गुर्वावल्याम्**–

"तस्य स्वर्गतिसमये सुरकृतखोद्योतनादिमहिमानम् । वीक्ष्य जना प्रोचुरहो । विमानमागाद् गुरोरस्य ॥२६२॥" इति ॥२३७॥

卐जत्तावतिएणदेवो, भणीअ मेरुम्मि मे सुरेहि सुअं ।
सोहम्मिंदसमाणा, जाएए सिरितवायरिआ ॥२३८॥

(प्रे०) "**जत्ता०**" इत्यादि, "**जत्तावतिण्णदेवो**" त्ति, यात्रायै=तीर्थधामदर्शनार्थम् अवतीर्णः=अधो यातः चासौ देवश्च=सुरश्च=यात्राऽवतीर्णदेवः=यात्रार्थमागतोऽमरः "**भणीअ**" त्ति, अभणत् यद् "**मे**" त्ति, मया "**मेरुम्मि**" त्ति, मेरौ=सुरगिरौ "**सुरेहिं**" त्ति, सुरेभ्यः=देवेभ्यः '**सुअं**" ति, श्रुतम्=आकर्णितम् , "**एए**" त्ति, एते "**सिरितवायरिआ**" त्ति, श्रीतपाचार्याः=श्रीतपगच्छसूरयः "**सोहम्मिदसमाणा**" त्ति, सौधर्मेन्द्रसमानाः=प्रथमकल्पवासवतुल्यविभवाः सौधर्मेन्द्रैः=प्रथमकल्पवासवैः समानाः=तुल्यविभवाः सौधर्मेन्द्रसमानाः=आद्ये देवलोके सामानिकसुराः "**जाआ**" त्ति, जाताः=अभवन् । **तथा चोक्त गुर्वावल्याम्**–

"यात्राऽवतीर्णदेवो जगौ सुरेभ्य श्रुत मया मेरौ । सौधर्मेन्द्रसमाना जज्ञुरिमे श्रीतपाचार्या ॥२६३॥" इति ।

अमुष्य कृतयश्चेमाः–बृहन्नव्यक्षेत्रसमाससूत्रम् , 'सत्तरिसयठाणं' 'यत्राऽखिल०' 'जयवृषभ०' 'सुस्ताशर्म०'प्रमुखस्तववृत्तयः, 'श्रीतीर्थराजः०' 'चतुर्थास्तुतिस्तद्वृत्तिः' 'शुभभावानव०' 'श्रीमद्वीरस्तुवे' इत्यादिकमलवन्धस्तवः, 'शिवमिरसि०' 'श्रीनाभिसंभव०' 'श्रीशैवेय०' इत्यादीनि वहूनि स्तवनानि च । २३८॥

अधुनाऽस्य श्रीसोमतिलकसूरेस्त्रीन् शिष्यान् श्लोकचतुष्टयेन प्रतिपादयन्नादौ तावच्छार्दूलविक्रीडितं पठति—

से किं बोधिउमेगया तिभुवणं, जाआ तिसीसुत्तमा;
तत्थऽज्जो सिरिचंदसेहरगुरू, सूरी तिविज्जंबुही ।
सिस्सज्झावणपेसलो सुचरणो, मोहागछेएगिहो;
सोम्मद्धी कइलोगमोययकिई, सो देउ संघस्स सं ॥२३९॥(सद्दूलविक्कीडियं)

卐 इमे द्वे गाथे (२३७-२३८) गुर्वावल्यभिप्रायेणेह भणिते, तपागच्छपट्टावल्यभिप्रायेण पुन प्राक् सोमप्रभसूरिप्रस्तावे २२८-२२९ गाथात्वेन दर्शिते इति । यद्वा गुर्वावल्यभिप्रायेणेमे द्वे गाथे अनन्तरवक्ष्यमाणश्रीचन्द्रशेखरसूरिसत्के व्याख्येये स्याताम् ।

श्रीनाभेयजिनोऽथ चन्द्रकपुरीस्थाने १४ स जीरापुरे १५ ।
श्रीपार्श्वो जलपद्र १६ दाहडपुरस्थानद्वये १७ मपदम,
देयाद्वीरजिनश्च हसलपुरे १८ मान्धातृमूलेऽजित' १९ ॥१९३॥
आदीशो धनमातृकाभिधपुरे २० श्रीमङ्गलाख्ये पुरे २१,
तुर्यस्तीर्थकरोऽथ चिकखलपुरे श्रीपार्श्वनाथ श्रिये २२ ।
श्रीवीरो जयसिंहसञ्ज्ञितपुरे २३ नेमिस्तु सिंहानके २४,
श्रीवामेयजिन सलक्षणपुरे २५ पार्श्वस्तथेन्द्रीपुरे २६ ॥१९४॥
शान्त्यै शान्तिजिनोऽस्तु ताह्लणपुरे ऽ २७रो हस्तनाद्ये पुरे २८,
श्रीपार्श्व' करहेटके २९ नलपुरे ३० दुर्गे च नेमीश्वर ३१ ।
श्रीवीरोऽथ विहारके ३२ स च पुन श्रीलम्बकर्णीपुरे ३३,
खण्डोहे किल कुन्थुनाथ ३४ ऋषभ श्रीचित्रकूटाचले ३५ ॥१९५॥
आद्य पर्णविहारनामनि पुरे ३६ पार्श्वश्च चन्द्रानके ३७,
वङ्क्यामादिजिनोऽ३८ थ नीलकपुरे जीयाद् द्वितीयो जिन ३९ ।
आद्यो नागपुरे ४०ऽथ मध्यकपुरे श्रीअश्वसेनात्मज ४१,
श्रीदर्भावतिकापुरेऽष्टमजिनो ४२ नागह्रदे श्रीनमि ४३ ॥१९६॥
श्रीमल्लिर्धवलक्कनामनगरे ४४ श्रीजीर्णदुर्गान्तरे ४५,
श्रीसोमेश्वरपत्तने च फणभृल्लक्ष्मा ४६ जिनो नन्दतात् ।
विंश शङ्खपुरे जिन ४७ स चरमः सौवर्त्तके ४८ वामन-
स्थल्या नेमिजिनः ४९ शशिप्रभजिनो नासिक्यनाम्न्या पुरि ५० ॥१९७॥
श्रीसोपारपुरेऽ५१थ रूपनगरेऽ५२थो रुद्गलेऽ५३थ प्रति-
ष्ठाने पार्श्वजिन ५४ शिवात्मजजिन' श्रीसेतुबन्धे ५५ श्रिये ।
श्रीवीरो वटपद्र५६नागलपुरे ५७ ऽष्टक्वारिकाया ५८ तथा,
श्रीजालन्धर५९देवपालपुरयो ६० श्रीदेवपूर्वे ६१ ॥१९८॥
चारूप्ये मृगलाञ्छनो जिनपति६२र्नेमि' श्रिये द्रोणने ६३,
नेमी रत्नपुरेऽ ६४ जितोऽर्बुकपुरे ६५ मल्लिश्च कोरण्टके ६६ ।
पार्श्वो ढोरसमद्रनीवृति ६७ सरस्वत्याह्वये पत्तने,
कोटाकोटिजिनेन्द्रमण्डपयुत ६८ शान्तिश्च शत्रुञ्जये ६९ ॥१९९॥
श्रीतारापुर७०वर्द्धमानपुरयो ७१ श्रीनाभिभूसुव्रतौ,
नाभेयो वटपद्र७२गोगपुरयो७३श्चन्द्रप्रभ पिच्छने ७४ ।
ओङ्कारेऽद्भुततोरण ७५ जिनगृह मान्धातारि त्रिक्षण ७६,
नेमिर्विक्कननाम्नि ७७ चेलकपुरे श्रीनाभिभू७८र्भूतये १५ ॥२००॥
इत्थ पृथ्वीधरेण प्रतिगिरिनगरग्रामसोम जिनाना-
मुच्चैश्चैत्येपु विष्वग् हिमगिरिशिखरै स्पर्द्धमानेषु यानि ।
बिम्बानि स्थापितानि क्षितियुवतिशिर-शेखराण्येप वन्दे,
तान्यप्यन्यानि यानि त्रिदशनरवरै कारिताऽकारितानि ॥२०१॥
इति पृथ्वीधरसाधुकारितचैत्यस्तोत्र १६ काव्य पूज्यश्रीसोमतिलकसूरिकृतम् ।

इत्यनेन डप्रत्यये मोददा=आह्लाददा यद्वा मोदयतीति सा मोदकी=आनन्ददायिनी कृतिः= काव्यादिरचना यस्य सः कविलोकमोददकृतिः कविलोकमोदककृतिर्वा=विद्वज्जनप्रमोदकर-उषितभोजनकथा-यमराजर्षिकथा-श्रीमत्स्तम्भनकहारबन्धस्तवनादिभव्यग्रन्थकारीत्यर्थः, "सो" त्ति, स=अनन्तरोक्तविशेषणकलितः "संघस्स" त्ति, संघाय=साध्व्यादिचतुर्विधलक्षणाय "सं" ति, शं=शर्म कल्याणं वा "देउ" त्ति, ददातु=वितरतु ।

प्रतिपादितश्च श्रीगुणरत्नसूरिभिर्गुरुपर्वक्रमे—

"सक्षुब्धसागरगभीररवेण नित्य-मावर्जिताखिलजगज्जनमानसालि ।
श्रीचन्द्रशेखरगुरुर्गरिमैकधाम-विद्याविलासवसित प्रथमो बभूव ॥५२॥" इति ।

तथा चाऽभ्यधायि गुर्वावल्यामपि—

"शिष्यास्त्रीन् समतास्थपन्निजपदे प्राज्ञान् स तेष्वादिम, ख्यात श्रीगुरुचन्द्रशेखर इति त्रैवैद्यगारानिधि ।
प्रौर्णोनोत् किल चन्द्रशेखरमहो । नाम्नाऽपि पास्पर्द्धत, योऽसोढा भुवने स्वकीर्तिपटलैर्निर्माय शोकल्याद्वयम् ।।
अभिमन्त्रितरजसाऽपि हि गृहहरिकादुर्द्धरश्च मृगराज । दूरं नेशुर्यस्मात सपरिकारान् महिमवारिनिधे ।२८६।
न क्षीरं गोक्षीरं न मधु मधुरं किं तु विधुरं, मनः साक्षाद् द्राक्षा न हरति सुधा साऽपि हि मुधा ।
न सान्द्रा वा चान्द्रा न वमरुचय साधुशुचय, श्रुता चेद्यद्वाणी भवरिपुकृपाणी नवरसा ॥२८७॥
वासिकभोज्यकथानक-शत्रुञ्जयरैवतस्तुतिप्रमुखा । चित्राकृतिर्यदीया, कविकुलमोदप्रदा जयति ॥२८८॥"

इति ॥२३९॥

श्रीचन्द्रशेखरसूरेर्जन्मादिकालं दर्शयन्पथ्या-ऽऽर्यामाह—

विट्ठवभयविस्सेऽद्दे१३७३**जम्मोऽस्स वयमिसुपीलुवसहभवे**१३८५ ।
सूरी पविरसविस्से१३९३**स गओ खं सलिहरयसरे**१४२३॥२४०॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "विट्ठव०" इत्यादि, "ऽस्स" त्ति, अस्य=श्रीचन्द्रशेखरसूरेः "जम्मो" त्ति, जन्म=जननं "विट्ठवभयविस्से" त्ति, विष्टपानि=भुवनानि=स्वर्ग-मृत्यु-पाताललक्षणानि त्रीणि, भयानि=इहलोक-परलोकादीनि सप्त, विश्वाः=विश्वदेवास्त्रयोदश, एतेऽङ्का वामतो मिलिता यत्र तत्र विष्टपभयविश्वे "ऽद्दे" त्ति, अब्दे=हायने=विक्रमसंवत् १३७३ वर्षे बभूव ।

"वय" ति, व्रतं श्रीचन्द्रशेखरसूरेर्दीक्षा "इसुपीलुवसहभवे" त्ति, इषवः=शराः पञ्च, पीलवः=हस्तिनो दिग्गजा इति यावदष्टौ, वृषभभवाः=आद्यजिनपतेर्भवास्त्रयोदश ।

एतेऽङ्का यत्र तत्रेषुपीलुवृषभभवे प्रातिलोम्यक्रमागते विक्रमसंवत् १३८५ संवत्सरेऽभूत् ।

"स" त्ति, स=श्रीचन्द्रशेखरगुरुः "पविरसविस्से" त्ति, पवयः=अनलास्त्रयः, रसाः= काव्यरसाः शृङ्गार-हास्य-करुण रौद्र-वीर भयानक-बीभत्सा-ऽद्भुत-शान्तरूपा नव, तथा च भणितमभिधानचिन्तामणिकोशे—"१शृङ्गार-२हास्य-३करुणा-४रौद्र-५वीर-६भयानका ॥२६४। ७बीभत्सा-८ऽद्भुत-९शान्ताश्च रसा" इति, तथैवाऽन्यत्र चन्द्रलोकादावपि, विश्वाः=त्रयोदश,

इदञ्च 'तदनु तदनन्तरमपि प्रव्राज्य' इति तपागच्छपट्टावलीवचनमाश्रित्य कतिचिद्वासराणां मासानां वा व्यवधानेनामुष्य व्रतग्रहणं सम्भाव्योक्तम् । यदि वर्षादिव्यवधानेनाऽप्यमुष्य दीक्षा सम्भाव्येत स्याद्वा तर्हि तदपेक्षया मूलगाथास्थ "वेगहिं" इति पदमन्यथाऽपि व्याख्यातुं शक्यते । ततो विपश्चिद्भिर्यथासम्भवं व्याख्येयम्, न पुनरेकान्ताग्रहो विधेयः, गुर्वावली-पट्टावल्यादिषु विशेषानुपलम्भात् । मतान्तरेणामुष्य वाचकपदवी तज्ज्येष्ठभ्रातोः सूरि-पदवी च विक्रमसंवत् १३०४ वर्षे गुर्वावली तपागच्छपट्टावल्यादिषु दर्शिताऽस्ति । यद्यपीद मतमधिकं न भाति तथाऽपि तदपेक्षया चास्य विक्रमसंवत्१३०२वर्षे यद्वा १३०३वर्षे दीक्षा सुष्ठुतरां सम्भाव्यते ।

'भूवा वरिसम्मि तेरससये' इति पदत्रयं सर्वत्र, तथा **'से'** इति पदमत्रानुवर्तनीयम् ।

"जुत्ते वेअसमेहि वायगपयं"ति, अमुष्य विक्रमभूमिपतो वेदशमैः=त्र्यङ्कद्वयङ्क-लक्षणैर्वामगत्या त्रयोविंशतिसङ्ख्यया मतान्तरेण वेदशमैः=चतुरङ्कशून्याङ्करूपैः पश्चानुपूर्व्या चतुःसङ्ख्यया युक्ते=अन्विते त्रयोदशशते वर्षे=विक्रमसंवत् १३२३ वर्षे मतान्तरे १३०४ हायने वाचकपदं=उपाध्यायपदवी तदाऽजायत **"सूरी जया सोयरो"** त्ति यदा चास्य सोदरः=संसारपक्षे निजवृद्धभ्राता, अत्रापि ज्येष्ठगुरुभ्राता सूरिः=आचार्योऽभूत् ।

"स" त्ति सः=श्रीधर्मघोषसूरिः **"सगुरुणो कालो छमासंतरे"** त्ति स्वस्य=निजस्य गुरोः कालात्=कालगमनात् षण्मासान्तरे = षण्मासस्य व्यवधाने **'माउकुआहिए"** त्ति मातरः=प्रवचनमातरः=सुप्रसिद्धाः पञ्चसमितित्रिगुप्तिलक्षणा अष्टौ, **यद्वा** ब्राह्मी-माहेश्वरी-चण्डी-वाराही-वैष्णवी कौमारी-चामुडा--चर्चिकालक्षणा अष्टौ, **तथा चोक्तम्-**

"ब्राह्मी माहेश्वरी चण्डी, वाराही वैष्णवी तथा । कौमारी चैव चामुण्डा, चर्चिकेत्यष्ट मातरः ॥" इति ।

अथवा-मातरः=हरमातरो ब्रह्माणी -सिद्धा माहेश्वरी- कौमारी-वैष्णवी--वाराही चामुण्डा-लक्षणाः सप्त, **तथा चोक्तं काव्यशिक्षायां बीजव्यावर्णननाम्नि चतुर्थे परिच्छेदे-**

"अथ मातरः -ब्रह्माणी-सिद्धा-माहेश्वरी-कौमारी-वैष्णवी-वाराही चामुण्डा इति सप्त मातरः,

तथाऽभिधानचिन्तामणावपि । तदक्षराणि त्वेवम्-"ब्राह्म्याद्या मातरः सप्त, ॥२०१॥' इति ।

यदुक्तमन्यत्रापि-

"स्मृताद्या ब्रह्माणी सिद्धा माहेश्वरी च कौमारी । वैष्णव्यथ वाराही चामुण्डा मातरः सप्त ॥१॥" इति ।

तथा च सिद्धास्थानेऽन्यत्रैन्द्री दृश्यते ।

तथा चोक्तं काव्यशिक्षायामेवान्यस्थले लोककौशल्याख्ये तृतीये परिच्छेदे-

"मातरः७ ब्रह्माणी माहेश्वरी कौमारी वैष्णवी वाराही ऐन्द्राणी चामुण्डा ।' इति ।

अन्यत्राऽपि च-

इत्यनेन डप्रत्यये मोददा=आह्लाददा यद्वा मोदयतीति सा मोदकी=आनन्ददायिनी कृतिः=काव्यादिरचना यस्य सः कविलोकमोददकृतिः कविलोकमोदककृतिर्वा=विद्वज्जनप्रमोदकर-उषितभोजनकथा-यमराजर्षिकथा-श्रीमत्स्तम्भनकहारबन्धस्तवनादिभव्यग्रन्थकारीत्यर्थः, "सो" त्ति, स=अनन्तरोक्तविशेषणकलितः "संघस्स" त्ति, संघाय=साध्व्यादिचतुर्विधलक्षणाय "सं" ति, शं=शर्म कल्याण वा "देउ" त्ति, ददातु=वितरतु ।

प्रतिपादितश्च श्रीगुणरत्नसूरिभिर्गुरुपर्वक्रमे—

"सक्षुब्धसागरगभीररवेण नित्य-मावर्जिताखिलजगज्जनमानसालि ।
श्रीचन्द्रशेखरगुरुर्गरिमैकधाम-विद्याविलासवसित प्रथमो बभूव ॥५२॥" इति ।

तथा चाऽभ्यधायि गुर्वावल्यामपि--

"शिष्यास्त्रीन् समतास्थपन्निजपदे प्राज्ञान् स तेष्वादिम , ख्यात श्रीगुरुचन्द्रशेखर इति त्रैवैद्यगारानिधि । प्रौर्णोनोत् किल चन्द्रशेखरमहो ! नाम्नाऽपि पास्पर्द्धत, योऽसोढा भुवने स्वकीर्तिपटलैर्निर्माय शोक्ल्याद्वयम् ॥ अभिमन्त्रितरजसाऽपि हि गृहहरिकादुर्द्धरश्च मृगराज । दूरं नेशुर्यस्मात सपरिकारान् महिमवारिनिधे ।२८६। न क्षीरं गोक्षीरं न मधु मधुरं किं तु विधुरं, मनः साक्षाद् द्राक्षा न हरति सुधा साऽपि हि मुधा । न सान्द्रा वा चान्द्रा न वमरुचय साधुशुचय, श्रुता चेद्यद्वाणो भवरिपुकृपाणी नवरसा ॥२८७॥ वासिकभोज्यकथानक-शत्रुञ्जयरैवतस्तुतिप्रमुखा । चित्राकृतिर्यदीया, कविकुलमोदप्रदा जयति ॥२८८॥"

इति ॥२३९॥

श्रीचन्द्रशेखरसूरेर्जन्मादिकालं दर्शयन्पथ्या-ऽऽर्यामाह—

विट्ठवभवविस्सेऽद्दे १३७३जम्मोऽस्स वयमिसुपीलुवसहभवे १३८५ ।
सूरी पविरसविस्से १३९३स गओ खं सलिहरयसरे १४२३॥२४०॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "विट्ठव०" इत्यादि, "ऽस्स" त्ति, अस्य=श्रीचन्द्रशेखरसूरेः "जम्मो" त्ति, जन्म=जननं "विट्ठवभयविस्से" त्ति, विष्टपानि=भुवनानि=स्वर्ग-मृत्यु-पाताललक्षणानि त्रीणि, भयानि=इहलोक-परलोकादीनि सप्त, विश्वाः=विश्वदेवास्त्रयोदश, एतेऽङ्का वामतो मिलिता यत्र तत्र विष्टपभयविश्वे "ऽद्दे" त्ति, अब्दे=हायने=विक्रमसंवत् १३७३ वर्षे बभूव ।

"वय" ति, व्रतं श्रीचन्द्रशेखरसूरोर्दीक्षा "इसुपोलुवसहभवे" त्ति, इषवः=शराः पञ्च, पीलवः=हस्तिनो दिग्गजा इति यावदष्टौ, वृषभभवाः=आद्यजिनपतेर्भवास्त्रयोदश ।

एतेऽङ्का यत्र तत्रेपुपीलुवृषभभवे प्रातिलोम्यक्रमागते विक्रमसंवत् १३८५ संवत्सरेऽभूत् ।

"स" त्ति, स=श्रीचन्द्रशेखरगुरुः "पविरसविस्से" त्ति, पवयः=अनलास्त्रयः, रसाः=काव्यरसाः शृङ्गार-हास्य-करुण रौद्र-वीर भयानक-बीभत्सा-ऽद्भुत-शान्तरूपा नव, **तथा च भणितमभिधानचिन्तामणिकोशे**–"१शृङ्गार-२हास्य-३करुणा--४रौद्र-५वीर- ६भयानका ॥२६४। ७बीभत्सा८ऽद्भुत-९शान्ताश्च रसा" इति, तथैवाऽन्यत्र चन्द्रलोकादावपि, विश्वाः=त्रयोदश,

इदञ्च 'तदनु तद्भ्रातरमपि प्रव्राज्य' इति तपागच्छपट्टावलीवचनमाश्रित्य कतिचिद्वासराणां मासानां वा व्यवधानेनामुष्य व्रतग्रहणं सम्भाव्योक्तम् । यदि वर्षादिव्यवधानेनाप्यमुष्य दीक्षा सम्भाव्येत स्याद्वा तर्हि तदपेक्षया मूलगाथास्थं "वेग्हि" इति पदमन्यथाऽपि व्याख्यातुं शक्यते । ततो विपश्चिद्भिर्यथासम्भवं व्याख्येयम्, न पुनरेकान्ताग्रहो विधेयः, गुर्वावली-पट्टावल्यादिषु विशेषानुपलम्भात् । मतान्तरेणामुष्य वाचकपदवी तज्ज्येष्ठभ्रातोः सूरिपदवी च विक्रमसंवत् १३०४ वर्षे गुर्वावली तपागच्छपट्टावल्यादिषु दर्शिताऽस्ति । यद्यपीद मतमधिकं न भाति तथाऽपि तदपेक्षया चास्य विक्रमसंवत्१३०२वर्षे यद्वा १३०३वर्षे दीक्षा सुष्ठुतरां सम्भाव्यते ।

'भूवा वरिसम्मि तेरससये' इति पदत्रयं सर्वत्र, तथा **'से'** इति पदमत्रानुवर्तनीयम् ।

"जुत्ते वेअसमेहि वायगपयं'ति, अमुष्य विक्रमभूमिपतो वेदशर्मैः=त्र्यङ्कद्वयङ्कलक्षणैर्वामगत्या त्रयोविंशतिसङ्ख्यया मतान्तरेण वेदशर्मैः=चतुरङ्कशून्याङ्करूपैः पश्चानुपूर्व्या चतुःसङ्ख्यया युक्ते=अन्विते त्रयोदशशते वर्षे=विक्रमसंवत् १३२३ वर्षे मतान्तरे १३०४ हायने वाचकपदं=उपाध्यायपदवी तदाऽजायत **"सूरी जया सोयरो"** त्ति यदा चास्य सोदरः=संसारपक्षे निजवृद्धभ्राता, अत्रापि ज्येष्ठगुरुभ्राता सूरिः=आचार्योऽभूत् ।

"स" त्ति सः=श्रीधर्मघोषसूरिः **"सगुरुणो कालो छमासंतरे"** त्ति स्वस्य=निजस्य गुरोः कालात्=कालगमनात् षण्मासान्तरे=षण्मासस्य व्यवधाने **'माउकुआहिए"** त्ति मातरः=प्रवचनमातरः=सुप्रसिद्धाः पञ्चसमितित्रिगुप्तिलक्षणा अष्टौ, यद्वा ब्राह्मी-माहेश्वरी चण्डी-वाराही-वैष्णवी कौमारी-चामुडा -चर्चिकालक्षणा अष्टौ, **तथा चोक्तम्–**

"ब्राह्मी माहेश्वरी चण्डी, वाराही वैष्णवी तथा । कौमारी चैव चामुण्डा, चर्चिकेत्यष्ट मातरः ॥" इति ।

अथवा-मातरः=हरमातरो ब्रह्माणी -सिद्धा माहेश्वरी- कौमारी-वैष्णवी--वाराही चामुण्डा-लक्षणाः सप्त, **तथा चोक्तं काव्यशिक्षायां बीजव्यावर्णननाम्नि चतुर्थे परिच्छेदे-**

"अथ मातरः -ब्रह्माणी-सिद्धा-माहेश्वरी-कौमारी-वैष्णवी-वाराही चामुण्डा इति सप्त मातरः, **तथाऽभिधानचिन्तामणावपि । तदक्षराणि त्वेवम्-**"ब्राह्म्याद्या मातरः सप्त, ॥२०१॥"इति ।

यदुक्तमन्यत्रापि-

"स्मृताद्या ब्रह्माणी सिद्धा माहेश्वरी च कौमारी । वैष्णव्यथ वाराही चामुण्डा मातरः सप्त ॥१॥" **इति** ।

तथा च सिद्धास्थानेऽन्यत्रैन्द्री दृश्यते ।

तथा चोक्तं काव्यशिक्षायामेवान्यस्थले लोककौशल्याख्ये तृतीये परिच्छेदे–

"मातरः ७ ब्रह्माणी माहेश्वरी कौमारी वैष्णवी वाराही ऐन्द्राणी चामुण्डा ।" इति ।

अन्यत्राऽपि च–

द्दशोऽतीतान् स्फीतान्, नयति यतिराट् य स्मृतिपथम्, गुणैश्चन्द्रोन्निद्रै-र्गिरिशगिरिशुभ्रै रिह शुभैः ॥५७॥
सदर्पं कन्दर्पः, प्रसृमरभुजौजा: स समरे-ऽवधि क्रोधो योधो, निकृतिमदमात्सर्यसहित ।
जयानन्दश्रीमद्-गुरुभिरपरेऽपीह रिपवो-ऽन्तरङ्गास्तेऽखर्वा-स्सपदि हृतगर्वा विदधिरे ॥५८।
ये श्रीमद्गुरवो रवोर्जित-प्रावृट्घना श्रीघना, श्रीमद्गौतमसन्निभा हृदि निभा-न्मुक्ताश्च युक्ता गुणैः ।
विश्व कीर्तिजलैः समुज्ज्वलतरैः, प्रक्षालयन्त स्फुर-न्मूर्तिस्फूर्तिजुष सृजन्ति सुकृत-श्रीप्राज्यराज्य श्रितौ॥" इति।

"अस्स" त्ति; अस्य=श्रीजयानन्दसूरेः **"जणी"** त्ति, जनिः=उद्भवः=प्रसवः **"खदिव-पिहुबुहे"** त्ति, खं=शून्यं द्विपाः=गजा=अष्टौ, पृथवः=अग्नयस्त्रयः, बुधः=इन्दुरेकः, एतैर-ङ्कैर्वामगत्या न्यस्तैर्यो वर्षो भवति तस्मिन्=खद्विपपृथुबुधे=विक्रमसंवत् १३८० **"वासे"** त्ति वर्षे=शरदि जायते स्म ।

"दिक्खा" त्ति, दीक्षा=श्रीजयानन्दसूरेः प्रव्रज्या **"ऽक्खिहरिविस्से"** त्ति, अक्षिणी द्वे, हरयः=वासुदेवा नव, विश्वाः=त्रयोदश, एतैरङ्कैः पश्चानुपूर्विमीलितैर्यैः संवत्सरो जायते तत्राऽक्षिहरिविश्वे=विक्रमसंवत्१३९२वर्षेऽभवत् ।

"सो" त्ति, स=श्रीजयानन्दगुरुः **"णहरयणे"** त्ति, नखरत्नाः विंशति-चतुर्दशरूपा विपरीतक्रमेण गृहीता यत्र वर्षे वर्तते तत्र नखरत्ने=विक्रमसंवत्१४२०**"वासे"** त्ति, वर्षे= संवत्सरे **"सूरी"** त्ति, सूरिः=तृतीयपदधारको बभूव ।

"कुवेदिंदे" त्ति, कुवेदेन्द्राः=एकाङ्क-चतुरङ्क-चतुर्दशाङ्का यत्र तत्र कुवेदेन्द्रे विक्रमसंवत्१४४१शारदे **"सग्गं"** ति, स्वर्गम्=अमरलोकं **"गओ"** त्ति, गतः=प्राप्तः

तथा चोक्त गुर्वावल्याम्--

"शिष्यो द्वितीयस्त्वभवत् तदीय, श्रीमान् जयानन्दगुरु स योऽभूत् ।
कलिद्विषः क्लृप्तजयाद् विधायाऽऽ-नन्द सता सार्थकनामधेय ॥२६४॥
जातोऽन्तरिक्षद्विपविश्ववत्सरे १३८०, द्विनन्दवह्नीन्दुषु १३९२ योऽभवत् व्रती ।
स्नेहात् निषेधप्रवणोऽग्रजन्मनि, प्रबोधिते देवतया प्रभावक ॥२६५॥
पद श्रित सोत्तरसूरिभद्रो-मनुष्व१४२०मेयातिशयश्रिया निधि ।
चकार रम्य शकटालजन्मनो, वृत्त गमी द्या कुयुगाब्धिगोषु १४४२ य ॥२६६॥" इति ।

तथा च द्वादश१२वर्षाणि गृहे, अष्टाविंशति२८वर्षाणि साधुव्रते, एकविंशति २१ वर्षाणि सूरिपर्याये चेति सम्पूर्णायुश्चैकषष्टि६१वर्षाणि पूरयित्वाऽमरलोकं शोभयामास ।

तत्कृतग्रन्थाः-श्रीस्थूलभद्रचरित्रम्, "देवाः प्रभोऽयं०" प्रभृतिस्तवनानि ।

अथ तृतीयशिष्यमाह-**"सिरिदेव०"** इत्यादि, **"तइओ"** त्ति, तृतीयः=श्रीसोमतिलक सूरेस्तृतीयः शिष्यः **"सिरिदेवसुन्दरगुरू"** त्ति, श्रिया=ज्ञानादिनानाप्रकारशोभया युक्तः देव सुन्दरः=देवसुन्दरनामा गुरुः=आचार्यः=श्रीदेवसुन्दरगुरुः **"जुगपवरसमो"** त्ति, युगे=काल

संजमे = चारित्रे स्थः = स्थितः सुरभिः = आमोदो येन तम् = आघ्रातोज्ज्वलसंयमसुगन्धम् = विमलचरणगुणवन्तमित्यर्थः। पुनरपि कीदृशम् ? "धम्मघोसमुणिवापट्टाज्जभसलं" ति मुनीन् = साधून् पाति = रक्षतीति "मन्-वन्-क्वनिप्-विच्-क्वचित्" (सि० ५-१-१४७) इति विच्प्रत्यये मुनिपाः = सूरिः, धर्मघोषः—तन्नामा चासौ मुनिपाश्च धर्मघोषमुनिपान्तस्य=धर्मघोषमुनिपः पट्टः = पदमेवाऽब्जम् = कमलं तस्मिन् भसलः = द्विरेफस्तम्। धर्मघोषमुनिपापट्टाब्जभसलं = धर्मघोषसूरिपट्टभूतमिति भावः। यथा भ्रमरोऽब्जे तिष्ठत्यामोदश्चाजिघ्रति तद्वदयमपि।

"अमू" त्ति, असौ = श्रीसोमप्रभसूरिः "चारित्तसुइणो" त्ति, चारित्रस्य = संयमस्य शुचये = शुद्ध्यै "मंतपोत्थय" ति, मन्त्रपुस्तकं = मन्त्रपोथी "ण" त्ति, न "च्च" त्ति, एव "गेण्हीअ" त्ति, जग्राह = स्वीचकार। ततोऽन्यस्य तदर्हस्याऽभावात् सा जलसात्कृता।

तथा चोक्तं गुर्वावल्याम्—

"तदीयपट्टाम्बरभासनोद्यत, सोमप्रभसूरिवरो ४८ बभूव स।
यो दीयमाना गुरुणाऽपि नाऽग्रही-च्चारित्रशुद्ध्यै किल मन्त्रपुस्तिकाम् ॥२५७॥' इति।

"जो" त्ति, यः श्रीसोमप्रभसूरिः किं विशिष्टः ? "णाएसपलयो" त्ति, ज्ञातः अवगतः, एष्यो = भावी प्रलयः = संहारः सर्वनाशो वा येन स ज्ञातैष्यप्रलयः = भीमपल्ल्यां नगर्यां देशीभाषया 'भीलडी' इत्याख्यायां वर्षासु परैकादशभिराचार्यैरनवबुद्धमस्या भीमपल्ल्या भविष्यद्विनाशं श्रुतातिशायिनाऽनेन ज्ञातम्, ततः किं? "अज्जुज्जे वि" त्ति, आद्यः = प्रथमश्चासौ ऊर्जश्च = कार्तिको मासः = आद्योर्जस्तस्मिन् आद्योर्जेऽपि = आदिमबाहुलमासेऽपि = चतुस्त्रिंशदधिकत्रयोदशशतस्य वर्षस्याऽऽद्ये कार्तिकमासे 'पडिक्कमिअ' त्ति, प्रतिक्रम्य = चातुर्मासिकं प्रतिक्रमणं कृत्वा "गओ" त्ति गतः = अगच्छत् = विजहार। तदनु तद्भङ्गोऽजायत। ते चैकादशाचार्या अकृतगुरुवचना भङ्गमध्येऽपतन्। **तथा चोक्तं गुर्वावल्याम्—**

'श्रुतातिशायी पुरि भीमपल्ल्या, वर्षासु चाद्येऽपि हि कार्तिकेऽसौ।
अगात्प्रतिक्रम्य विबुद्ध्य भावि, भङ्गं परैकादशसूर्यबुद्धम् ॥२६३॥" इति।

तथैव श्री गुरुपर्वक्रमे भणितम्—

श्रीसोमप्रभसूरयोऽजनिषताऽथैकादशाङ्गीस्फुरत्सूत्रार्था किल कार्तिके समधिके कृत्वा चतुर्मासकम्।
अन्याचार्यगणे नेषधति भृशं ये भीमपल्ल्या यद्यु-भङ्गं भाविनमीक्ष्य मन्त्रनिवहं नालुर्गुरुभ्यश्च ये ॥४६॥"
इति ॥२२५॥

अथ तमेव विशिशिक्षुः स्रग्धरयाऽऽह—

वाईहव्वायकुम्भ-प्पदलणहरिणा, जेण विज्जाणहेहिं
वाए छिण्णप्पहावो, दिअहरणगणो, चित्तकूटे सहाए।

दृशोऽतीतान् स्फीतान्, नयति यतिराट् यः स्मृतिपथम्, गुणैश्चन्द्रोन्निद्रै-र्गिरिशगिरिशुभ्रै रिह शुभै ॥५७॥
सदर्पं कन्दर्पं, प्रसृमरभुजौजाः स समरे-ऽवधि क्रोधो योधो, निकृतिमदमात्सर्यसहित ।
जयानन्दश्रीमद्-गुरुभिरपरेऽपीह रिपवो-ऽन्तरङ्गास्तेऽखर्वा-स्सपदि हतगर्वा विदधिरे ॥५८॥
ये श्रीमद्गुरवो खोर्जित-प्रावृट्घना श्रीघना, श्रीमद्गौतमसन्निभा हृदि निभा-न्मुक्ताश्च युक्ता गुणै ।
विश्व कीर्तिजलै समुज्ज्वलतरै, प्रक्षालयन्त स्फुर-न्मूर्तिस्फूर्तिजुष सृजन्ति सुकृत-श्रीप्राज्यराज्य श्रितौ॥" इति ।

"**अस्स**" त्ति; अस्य=श्रीजयानन्दसूरेः "**जणी**" त्ति, जनिः=उद्भवः=प्रसवः "**खदिव-पिहुवुहे**" त्ति, खं=शून्यं द्विपाः=गजा=अष्टौ, पृथवः=अग्नयस्त्रयः, बुधः=इन्दुरेकः, एतैर-ङ्कैर्वामगत्या न्यस्तैर्यो वर्षो भवति तस्मिन्=खद्विपपृथुबुधे=विक्रमसंवत् १३८० "**वासे**" त्ति वर्षे=शरदि जायते स्म ।

"**दिक्खा**" त्ति, दीक्षा=श्रीजयानन्दसूरेः प्रव्रज्या "**ऽक्खिहरिविस्से**" त्ति, अक्षिणी द्वे, हरयः=वासुदेवा नव, विश्वाः=त्रयोदश, एतैरङ्कैः पश्चानुपूर्विमीलितैर्यः संवत्सरो जायते तत्राऽक्षिहरिविश्वे=विक्रमसंवत्१३९२वर्षेऽभवत् ।

"**सो**" त्ति, स=श्रीजयानन्दगुरुः "**णहरयणे**" त्ति, नखरत्नाः विंशति-चतुर्दशरूपा विपरीतक्रमेण गृहीता यत्र वर्षे वर्तते तत्र नखरत्ने=विक्रमसंवत्१४२०"**वासे**" त्ति, वर्षे= संवत्सरे "**सूरी**" त्ति, सूरिः=तृतीयपदधारको बभूव ।

"**कुवेदिंदे**" त्ति, कुवेदेन्द्राः=एकाङ्क-चतुरङ्क-चतुर्दशाङ्का यत्र तत्र कुवेदेन्द्रे विक्रमसंवत्१४४१शारदे "**सग्गं**" ति, स्वर्गम्=अमरलोकं "**गओ**" त्ति, गतः=प्राप्तः ।

तथा चोक्तं गुर्वावल्याम्—

"शिष्यो द्वितीयस्त्वभवत् तदीय, श्रीमान् जयानन्दगुरु स योऽभूत् ।
कलिद्विषः क्लृप्तजयाद् विधायाऽऽ-नन्द सता सार्थकनामधेय ॥२६४॥
जातोऽन्तरिक्षद्विपविश्ववत्सरे १३८०, द्विनन्दवह्नीन्दुषु १३९२ योऽभवत् व्रती ।
स्नेहात् निषेधप्रवणेऽग्रजन्मनि, प्रबोधिते देवतया प्रभावक ॥२६५॥
पद श्रित सोत्तरसूरिरभ्रदो-र्मनुष्व१४२०मेयातिशयश्रिया निधि ।
चकार रम्य शकटालजन्मनो, वृत्त गमी द्या कुयुगाब्धिगोषु १४४२ य ॥२६६॥" इति ।

तथा च द्वादश१२वर्षाणि गृहे, अष्टाविंशति२८वर्षाणि साधुव्रते, एकविंशति २१ वर्षाणि सूरिपर्याये चेति सम्पूर्णायुश्चैकषष्टि६१वर्षाणि पूरयित्वाऽमरलोक शोभयामास ।

तत्कृ न्थाः—श्रीस्थूलभद्रचरित्रम्, "देवाः प्रभोऽयं०" प्रभृतिस्तवनानि ।

अथ तृतीयशिष्यमाह-"**सिरिदेव०**" इत्यादि, "**तइओ**" त्ति, तृतीयः=श्रीसोमतिलक-सूरेस्तृतीयः शिष्यः "**सिरिदेवसुन्दरगुरू**" त्ति, श्रिया=ज्ञानादिनानाप्रकारशोभया युक्तः देव-सुन्दरः=देवसुन्दरनामा गुरुः=आचार्यः=श्रीदेवसुन्दरगुरुः "**जुगपवरसमो**" त्ति, युगे=काल-

कीर्तिभि = यशोभिः संपूर्णः = पूरितो लोको = विष्टपो येन स कीर्तिसंपूर्णलोकः ।

उक्तञ्च श्रीसोमसौभाग्यकाव्यपट्टावलौ--

"तस्य क्षमाभृत्प्रणतस्य पट्टे, सोमप्रभ(') सोमसमानकीर्ति ।
सूरिर्बभौ यो भुवि सच्चकोर-लोक चकाराऽमममस्तशोकम् ॥४०॥
गलत्कलङ्क भुवि यो निजाङ्क, काव्यप्रभ काव्यनिवद्धशास्त्रम ।
घनं विपश्चिज्जनरञ्जन तन्द्विनिर्ममे निर्गलनिममेश. ॥४१॥" इति ॥२२६॥

तमेव पुनरपि विशेषयन् तदीयाञ्जन्मादिवत्सान दर्शयंश्च शार्दूलविक्रीडितमाह—

जो कत्ता जइजीअकप्पपमुहग्गंथाण णाणंवुही;
जेणं अंबुअलाहहिंसणभया, चत्ता मरू कुंकणा ।
वासे विस्ससये बलेहि[१३१०]अहिए, भूवा जणी से वयं;
अप्पऽक्खीहि[१३२१]पयं रएहि[१३३२]खमिओ, अज्जं जगस्सेहि[१३७३]सो ॥२२७॥

(सद्दूलविक्कीडियं)

(प्रे०) "जो" इत्यादि, "जो" त्ति, यः श्रीसोमप्रभसूरिः, कीदृक् ? "जइजीअ-कप्पपमुहग्गंथाण" त्ति, यतिजीतकल्पः=तन्नामा छेदसूत्रसत्को ग्रन्थविशेषः स प्रमुखः= प्रधानो येषु ग्रन्थेषु ते यतिजीतकल्पप्रमुखाः ते च ते ग्रन्थाश्च यतिजीतकल्पप्रमुखग्रन्थास्तेषां यतिजीतकल्पप्रमुखग्रन्थानां "कत्ता" त्ति, कर्ता=निर्माता। "णाणंवुही" त्ति, ज्ञानाऽम्बुधिः = विद्यासागरः । पुनरपि किम्भूतः ? "जेण" त्ति, येन श्रीसोमप्रभसूरिणा "अवुअलाहहिंसण-भया" त्ति, अलाभः=अप्राप्तिः, हिंसनस्य=घातस्य भयः=भीतिः=हिंसनभयः, अलाभस्य हिंसनभयस्य च समाहारे द्वन्द्वे कृते अलाभहिंसनभयं, अम्बूनां=जलानामलाभहिंसनभयम्= अम्ब्वलाभहिंसनभयं तस्मात्कारणादम्ब्वलाभहिंसनभयात् , "मरू" त्ति, मरवः=दशेरकाः, "कुंकुणा" त्ति, कुङ्कुणाः=कुङ्कुणनामा देशः, "चत्ता" त्ति, त्यक्ताः । तथाहि मरुदेशे शुद्धजलदुर्लभत्वात्तथा कुङ्कुणदेशे बहुजलत्वेनाऽप्कायविराधनाभयान्मुनीनां विहारो निषिद्धः ।

तथा चाऽभाषि गुर्वावल्याम्--

"शुद्धाऽम्ब्वलाभाऽम्बुविराधनाभ्या सोऽमूमुचत स्वैर्मरुकुङ्कुणेर्याम् ॥२६४॥" इति ।

अथाऽमुष्य जन्मादिपर्यायसत्कानि वर्षाणि दर्शयति—

"वासे" इत्यादि, "से" त्ति, तस्य=श्रीसोमप्रभसूरेः "जणो" त्ति, जनिः=उत्पत्तिः "भूवा" त्ति भूपात्=विक्रमादित्यनृपात् "बलेहि" त्ति, बलैः=वज्र-काय-बुद्धि-सन्तोष-स्थान सुहृज्जन-शस्त्र मन्त्र-देवता-राजलक्षणैर्दशभिः, यद्वा बलैः=श्रोत्रेन्द्रिय-चक्षुरिन्द्रिय-घ्राणे-

सोमतिलगसूरिपट्टसिहासणम्मि देवसुंदरो सूरी;
किमु णव्वतणुं धरिउं इहागओ देवाण सुंदरो सूरी ॥२४३॥(दण्डकला)

(प्रे०) "सव्व०" इत्यादि, "सोमतिलगसूरिपट्टसिहासणम्मि" त्ति, सोमतिलकस्य = सोमतिलकनाम्नः सूरेः = मुनिनायकस्य पट्ट एव सिंहासनं नृपार्हमासनविशेषं तस्मिन् सोमतिलकसूरिपट्टसिंहासने "देवसुंदरो" त्ति, देवसुन्दरः = देवसुन्दराख्यः 'सूरी" त्ति, सूरिः = आचार्यः "भासो" त्ति, अभात् = शुशुभे। किंविशिष्टः ? "परिवरिओ" त्ति, परिवृतः = वेष्टितः = परिकलितो = युक्तः। कैः ? "सूरिउवज्झयपण्णाससाहुआईहि" त्ति, सूरयः = आचार्याः, उपाध्यायाः = सूत्राऽध्यापकास्तुर्यपदधारकाः, पन्न्यासाः = पदविशेषभृतो मुनयः, साधवः = सामान्यमुनयः, तेषां द्वन्द्वसमासे सूर्युपध्यायपन्न्याससाधवस्त आदौ येषां तैः = सूर्युपाध्यायपन्यासससाध्वाभिः। ततस्तैः परिवृतः श्रीसोमसुन्दरसूरिः सोमतिलकपट्टसिंहासने शोभते स्म। क इव ? 'सव्वधरणिणाहो व" त्ति, सर्वस्य = निःशेषस्य षट्खण्डात्मकस्य धरणेः = अवनेर्नाथः = स्वामी = सर्वधरणिनाथः = चक्रवर्त्ती भूप इव यथा चक्रभृन्नृपः "सचिअसेणाणीणिवसामन्ताईहिं" ति, सचिवाः = प्रधानाः = मुख्यमन्त्रिण इति यावत् सेनान्यः = सैन्यनायका', नृपाः = तत्तद्देशाऽधिपा राजानः; सामन्ताः = तत्तन्मण्डलेशाः, एतेषां द्वन्द्वे कृते = सचिवसेनानीनृपसामन्तास्ते आदौ येषां तैः = सचिवसेनानीनृपसामन्तादिभिः परिवृतः राजसिंहासने राजते तद्वत्।

अथोत्प्रेक्षा कुर्वन्नाह "किमु" इत्यादि, 'किमु" त्ति, किम्वित्यव्यय उत्प्रेक्षाद्योतनादिषु वर्तते, अत्रोत्प्रेक्षाद्योतने समस्ति, ततः, अस्मिन् देवसुन्दरसूरौ शङ्कते किमु = किम्, "देवाण सुन्दरो सूरी" त्ति, देवानां = सुराणां, सुन्दरः = शोभनः सूरिः = गुरुः पण्डितो वा "णव्वतणु" ति; नव्यतनुं = नूतनदेहं "धरिउं" ति, धृत्वा = गृहीत्वा "इह" त्ति; इह = अस्मिन् लोके "आगओ" त्ति, आगतः = आयातः ॥२४३॥

अथ श्रीदेवसुन्दरगुरोर्यशः सोत्प्रेक्षां वदन् शार्दूलविक्रीडितमाह—

पुरिणंदू करकंदुगो हिमगिरी, कीडाविहारत्थली;
खीरद्धी घरदीहिआ पिअसही, अच्चुत्तमा भारती।
सेज्जाऽऽसागयरम्मदंतवलही, से कित्तिकण्णाकए;
पंचालीजुगलं पि संकरसिवा-रूवं कयं संभुणा ॥२४४॥(सद्दूलविक्कीडियं)

द्योतनादिमहिमानं "पसिअ" त्ति, दृष्ट्वा "नया" त्ति, तदा=तस्मिन्काले "जणेहिं" त्ति, जनैः=लोकैः "भणिअं" ति, भणितं=कथितम् "अहो" त्ति, अहो=विस्मये "ऽस्स" त्ति, अस्य=श्रीसोमप्रभनाम्नः "गुरुणो" त्ति, गुरोः "सग्गा" त्ति, स्वर्गात्=अमरलोकतः "विमाणं" ति, विमानं=देवयानं "आगअं" ति, आगतम् ।

तथा चोक्तं तपागच्छपट्टावल्याम्—"तदानीं च स्तम्भतीर्थे तेषामालिगवसतिस्थत्वेन तत्रत्याः प्रत्यासन्ना लोका आकाशोद्योताद्यालोक्योक्तवन्तो यदेतेषां गुरूणां स्वर्गाद्विमानमागादिति ।।" इति ।।२२८।।

अथ मुखचपलापथ्याऽऽर्यामाह—

जत्तावतिरागदेवो, भणीअ मेरुम्मि मे सुरेहि सुअं ।
सोहम्मिंदसमाणा, जाएए सिरितवायरिआ ।।२२९।। (मुहचवला पच्छाजा)

(प्रे०) "जत्ता०" इत्यादि, "जत्तावतिण्णदेवो" त्ति, यात्रायै=तीर्थधामदर्शनार्थम् अवतीर्णः=अधो यातः स चासौ देवः=सुरः, यात्राऽवतीर्णदेवः = यात्रार्थमागतोऽमरः "भणीअ" त्ति, अभणत् यद् "मे" त्ति मया "मेरुम्मि" त्ति, मेरौ=सुरगिरौ "सुरेहिं" त्ति, सुरेभ्यः=देवेभ्यः "अं" ति = श्रुतं = आकर्णितम् "एए" त्ति, एते "सिरितवायरिआ" त्ति, श्रीतपाचार्याः=श्रीतपगच्छसूरयः "सोहम्मिदसमाणा" त्ति, सोधर्मेन्द्रसमानाः=प्रथमकल्पवासवतुल्यविभवाः सोधर्मेन्द्रैः=प्रथमकल्पवासवैः समानाः=तुल्यविभवाः=सौधर्मेन्द्रसमानाः=आद्ये देवलोके सामानिकसुराः "जाआ" त्ति, जाताः=अभवन् । **तथा च प्रतिपादितं तपागच्छपट्टावल्याम्**-"अन्यत्र च क्वाऽपि पुरे तद्दिने यात्राऽवतीर्णदेवत्येत्युक्तं 'यत्तपाचार्याः सौधर्मेन्द्रसामानिकत्वेन समुत्पन्ना' इति प्रवादोऽधुना मया मेरौ देवमुखाच्छ्रुत इति ।।" इति ।।२२९।।

अथाऽमुष्य सोमप्रभसूरेः शिष्यसत्कां वक्तव्यतां श्लोकत्रयेण दर्शयन्नुपजातिमाह—

चत्तारि सीसा गुरुणोऽस्स आसी; दिसासु सव्वासु विखाअणामा ।
थंभाव्व वीरप्पहुसासणोए; जयंतु ते भव्वजणाघहारा ।।२३०।। (उवजाई)

(प्रे०) "चत्तारि" इत्यादि, "ऽस्स" त्ति; अस्य=श्रीसोमप्रभसूरेः "गुरुणो" त्ति, गुरोः "चत्तारि" त्ति, चत्वारः=चतुःसङ्ख्याकाः "सीसा" त्ति, शिष्याः=विनेयाः "आसी" त्ति, आसन् किंभूताः ? "सव्वा" त्ति, सर्वासु = समस्तासु "दिसासु" त्ति, दिशासु=आशासु "विखाअणामा" त्ति, विख्यातं=प्रसिद्धं नाम=आह्वा येषां ते विख्यातनामानः=जगत्ख्यातकीर्तयः पुनः किं विशिष्टाः ? "वीरप्पहुसासणोए" त्ति, वीरस्य=चरमतीर्थपतेः प्रभोः=स्वामिनः शासनं=तीर्थमेवौकः=गृहं तस्मिन् वीरप्रभुशासनौकसि=महावीरस्वामिविभुतीर्थ-

सोमतिलगसूरिपट्टसिंहासणम्मि देवसुंदरो सूरी;
किमु णव्वतणुं धरिउं इहागओ देवाण सुंदरो सूरी ॥२४३॥(दण्डकला)

(प्रे०) "सव्व०" इत्यादि, "सोमतिलगसूरिपट्टसिंहासणम्मि" त्ति, सोमतिलकस्य = सोमतिलकनाम्नः सूरेः = मुनिनायकस्य पट्ट एव सिंहासनं नृपार्हासनविशेषं तस्मिन् सोमतिलकसूरिपट्टसिंहासने "देवसुंदरो" त्ति. देवसुन्दरः = देवसुन्दराख्यः 'सूरी" त्ति, सूरिः = आचार्यः "भासी" त्ति, अभात् = शुशुभे । किंविशिष्टः ? "परिवरिओ" त्ति, परिवृतः = वेष्टितः = परिकलितो = युक्तः । कैः ? "सूरिउवज्झायपण्णाससाहुआईहिं" ति, सूरयः = आचार्याः, उपाध्यायाः = सूत्राऽध्यापकास्तुर्यपदधारकाः, पन्न्यासाः = पदविशेषभृतो मुनयः, साधवः = सामान्यमुनयः, तेषां द्वन्द्वसमासे सूर्युपध्यायपन्न्याससाधवस्त आदौ येषां तैः = सूर्युपाध्यायपन्न्याससाध्वाभिः । ततस्तैः परिवृतः श्रीसोमसुन्दरसूरिः सोमतिलकपट्टसिंहासने शोभते स्म । क इव ? 'सव्वधरणिणाहो व" त्ति, सर्वस्य = निःशेषस्य षट्खण्डात्मकस्य धरणेः = अवनेर्नाथः = स्वामी = सर्वधरणिनाथः = चक्रवर्त्ती भूप इव यथा चक्रभृन्नृपः "सचिवसेणाणीणिवसामंताईहिं" ति, सचिवाः = प्रधानाः = मुख्यमन्त्रिण इति यावत् सेनान्यः = सैन्यनायकाः, नृपाः = तत्तद्देशाऽधिपा राजानः; सामन्ताः = तत्तन्मण्डलेशाः, एतेषां द्वन्द्वे कृते = सचिवसेनानीनृपसामन्तास्ते आदौ येषां तैः = सचिवसेनानीनृपसामन्तादिभिः परिवृतः राजसिंहासने राजते तद्वत् ।

अथोत्प्रेक्षा कुर्वन्नाह "किमु" इत्यादि, 'किमु" त्ति, किम्वित्यव्यय उत्प्रेक्षाद्योतनादिषु वर्तते, अत्रोत्प्रेक्षाद्योतने समस्ति, ततः, अस्मिन् देवसुन्दरसूरौ शङ्कते किमु = किम्, "देवाण सुन्दरो सूरी" त्ति, देवानां = सुराणां, सुन्दरः = शोभनः सूरिः = गुरुः पण्डितो वा "णव्वतणु" ति; नव्यतनुं = नूतनदेहं "धरिउं" ति, धृत्वा = गृहीत्वा "इह" त्ति; इह = अस्मिन् लोके "आगओ" त्ति, आगतः = आयातः ॥२४३॥

अथ श्रीदेवसुन्दरगुरोर्यशः सोत्प्रेक्षं वदन् शार्दूलविक्रीडितमाह—

पुरिणंदू करकंदुगो हिमगिरी, कीडाविहारत्थली;
खीरद्धी घरदीहिआ पिअसही, अच्चुत्तमा भारती ।
सेज्जाऽऽसागयरम्मदंतवलही, से कित्तिकण्णाकए;
पंचालीजुगलं पि संकरसिवा-रूवं कयं संभुणा ॥२४४॥(सद्दूलविक्कीडियं

"तइओ" त्ति, तृतीयोऽन्तेवासी "सिरिपम्हतिलगसूरी" त्ति, श्रीपद्मतिलकसूरिरभूत्। किं विशिष्टः ? "फुडसुद्धसंयमिद्धिणिही" त्ति, स्फुटानां=व्यक्तानां शुद्धानां=पवित्राणां संयमस्य=चारित्रस्य ऋद्धीनां=सम्पदां निधिः=शेवधिः=स्फुटशुद्धसंयमर्द्धिनिधिः = समित्यादिषु परमयतनापरायण इति यावत्। अयं च श्रीसोमतिलकसूरिभिः सूरिर्विहितः।

"तुरिओ" त्ति, तुर्यः = चतुर्थोऽन्तेषद् "सिरिसोमतिलगनामो" त्ति, श्रीसोमतिलकनामा "सूरी" त्ति, सूरिः = आचार्योऽभवत्। कीदृशः ? "विस्सुत्तमो" त्ति, विश्वे= विष्टपे उत्तमः श्रेष्ठतमः। तथा चोक्तं गुर्वावल्याम्—

"श्रीमानिहाऽऽद्यो विमलप्रभोऽभवत्, प्रवोधलब्ध्योद्धृतवान् दयाम्बुधिः।
स्वदेशनावाणिगणान् वितत्य यो, मिथ्यात्वकूपाद् गृहिणां शतत्रयम् ॥२६९॥
श्रीमत्परमानन्दः, परमानन्दप्रदः स्वमूर्त्याऽपि। गुरुरद्वितीयमाग्यो, जज्ञे शिष्यो द्वितीयस्तु ॥२७०॥
आसीत्सुविहितमुकुटः, स्फुटसयमशुद्धिरिद्धिगुणजलधिः। श्रीपद्मतिलकसूरि-स्तार्तीयीकस्तु तच्छिष्यः ॥२७१॥
श्रीसोमतिलकनामा सूरिर्विश्वोत्तमश्च तुर्योऽभूत्। महिमाम्बुधौ यदीये, लीनास्त्रिजगन्मनोमीनाः ॥२७२॥" इति।

तथैव गुरुपर्वक्रमे—

"श्रीविमलप्रभसूरिः, श्रीपरमानन्दसूरिगुरुराजः। वचनातिगयतनावान्, सूरिः श्रीपद्मतिलकगुरुः ॥४८॥
श्रीसोमतिलकाख्याश्च, सूरयो यद्यशोऽर्णवे। ज्योत्स्ना जलं ग्रहाः फेन-पिण्डा वेलावलिर्दिशः ॥४९॥ (युग्मम्)"

इति ॥२३१-२३२॥

इदानीं तत्काले सञ्जातस्य द्विचत्वारिंशस्य द्वितीयोदययुगप्रधानयन्त्रक्रमाऽपेक्षया द्वात्रिंशस्य युगप्रधानस्य श्रीसुमिणमित्रसूरेरभिधित्सया पथ्यार्याश्लोकद्वयमाह—

सिरिसुमिणमित्तसूरी, बायालीसइमजुगपहाणो तो।
आसि जणी इंदुहरा-ऽबंभमिए तस्स वीरा-ऽद्दे ॥२३३॥ (पच्छाजा)
इंदियपणगविसयसुइ १८२३—मिए वयं हत्थिकरपहरविज्जे १८४१।
आसि जुगवरो स गओ, बलकाकक्खिगहक्कम्मि १९१९ दिवं ॥२३४॥ (पच्छाजा)

"सिरिसुमिण०" इत्यादि, "तो" त्ति, तदा "बायालीसइमजुगपहाणो" त्ति, द्विचत्वारिंशत्तमो युगप्रधानः "सिरिसुमिणमित्तसूरी" श्रिया = चारित्रादिलक्ष्म्या युक्तः सुमिणमित्रनामा सूरिः "आसि" त्ति, उत्तरार्धस्थपदं देहलीदीपकन्यायेनेहाऽपि सम्बध्यते आसीत् = बभूव।

अथाऽमुष्य जन्मादिवत्सरानाह—"आसि" इत्यादि, "तस्स" त्ति, तस्य = श्रीसुमिणमित्रसूरेः "जणी" त्ति, जनिः=उत्पत्तिः "वीरा" त्ति, वीरात् = वीरप्रभुनिर्वाणगमनकालात्

(प्रे०) "जो" इत्यादि, "जो" त्ति, यः = श्रीदेवसुन्दरगुरुः "खुड्डो" त्ति, क्षुल्लकोऽपि= लघुवयस्कोऽपि यद्वा क्षुल्लोऽपि-लघुवयस्को वालोऽपि "गणभारुद्धरण जोग्गपत्तत्थं" ति, गणस्य = गच्छस्य भारस्य उद्धरणे = वहने योग्यपात्रस्य अर्हपात्रस्यार्थं = योग्यपात्राय = अर्ह-पात्राय योग्यताभाजनायेति यावत् गणभारोद्धरणयोग्यपात्रार्थं=गच्छसंचालनकुशलशिष्यज्ञानार्थं "झाणत्थगुरुणं" ति, ध्यानस्थास्ते च ते गुरवः = ध्यानस्थगुरवस्तेभ्यस्तेषां ध्यानस्थ-गुरुभ्यः ध्यानस्थगुरूणाम् "अविक्कुत्तो" त्ति, अम्बिकया तत्संज्ञिकया शासनदेव्योक्तः भणितः = अम्बिकोक्तः, किं विशिष्टोऽसौ ? "विसयगुणो" त्ति, विशदाः = अवदाता गुणा यस्य स विशदगुणः = निर्मलगुणौघभाक् । पुनरपि किंभूतः ? "ऽणतभग्गजुओ" त्ति अनन्तैः = अकलितमानैः भाग्यैः = भागधेयैः युतः=कलितो-ऽनन्तभागयुतः = अपरिमितदैववा-नित्यर्थः । **तथा चाऽगादि गुर्वावल्याम्—**

"कोटीनाराह्वपुरे, गणभृच्छ्रीसोमतिलकसूरीणाम् । गणभारोद्धरणपटु, पात्रं जिज्ञासमानानाम् ॥३०४॥
सुध्यानलीनमनसा, विशदगुणैर्भाविनो युगवराभा ।
क्षुल्लत्वेऽपि च कथिता येऽम्बिकयानन्तभाग्ययुज ॥३०५॥ युग्मम् ॥" इति ।

तथा चैषां गुणविशदताऽपि तत्रैव गुर्वावल्यामित्थं प्रतिपादिता—

"न विद्यया नैव तपोभिरग्रिमै—र्नैवा महिम्ना न च भाग्यसम्पदा ।
गुणर्द्धिभिर्वाप्यधिक स्समोऽथवा, न कोऽपि तेषामधुनेह वीक्ष्यते ॥३२५॥" इति ।

तथैव श्रीगुरुपर्वक्रमेऽपि—

"वैराग्य विमल शमोऽतिविशद शास्त्रज्ञता चाऽद्भुता, सिद्धान्तैकरुचिर्मनोहरतरा भव्योपकार परः ।
चारित्र त्रिजगत्यनुत्तरतम भाग्य ह्यसाधारण, येषा श्रीयुतदेवसुन्दरवरा ख्यातास्तुनीयास्तु ते ॥५४॥
एकद्वित्रिमुखैर्गुणै कृतमदा देहेऽपि गेहेऽपि ये, नो मान्ति प्रचुरा नरा जगति ते सन्तु प्रकाम परे ।
ये सर्वेषु गुणेषु सत्स्वपि मद कुर्वन्ति नो कर्हिचित, तेऽमी श्रीयुतदेवसुन्दरवरा सन्त्येक एवावनौ ॥५५॥
न यन्निन्दास्तुती कर्तुं, शक्येते खलसज्जनै. । असद्भावेन दोषाणा, गुणानाञ्चाऽप्रमाणत ॥५६॥" इति ॥२४५॥

पुनरप्यस्य गुरोर्विशिष्टतामिन्द्रवज्रयाऽऽह—

धाराभिहस्सावगपुंगवेणं, पक्खोववासेहि वसीकयेणं ।
देवेण पुट्ठो तिभवेहि मुत्तिं, साहीअ सीमंधरकेवली से ॥२४६॥ (इंदवज्जा)

(प्रे०) "धारा०" इत्यादि, "धाराभिहस्सावगपुंगवेण" ति, धाराऽभिधेन=धारा-ख्येण श्रावकपुङ्गवेन=उत्तमश्रमणोपासकेन "पक्खोववासेहि" त्ति, पक्षोपवासैः=पञ्चदश दिवसानां कृताऽभक्तप्रत्याख्यानेन "वसीकयेण" ति, वशीकृतेन=स्वायत्ता नीतेन "देवेण" त्ति, देवेन=विबुधेन "पुट्ठो" त्ति, पृष्टः=प्रश्नीकृतः "सीमंधरकेवली" त्ति, सीमन्धरकेवली= सीमन्धरनामा सर्वज्ञः प्रभुर्वर्तमानकालविहरमाणविंशतितीर्थकृन्मध्यादेको भरतक्षेत्रसर्वनिकटवर्ती

(प्रे०) "**सीअगु०**" इत्यादि, "**सो**" त्ति, सः "**गुरुसोमतिलगो**" त्ति, गुरुः=आचार्यश्चासौ सोमतिलकश्च = सोमतिलकनामा गुरुसोमतिलकोऽभूत् । क इव । "**सोमतिलगव्व**" त्ति, सोमः=चन्द्रो मुखशोभाकारित्वेन तिलकमिव तिलकं=शिरोभूषणं यस्य स सोमतिलक इव=महादेव इव तस्य मस्तके इन्दोः शोभाकारित्वेन इन्दुमौलिः चन्द्रशेखर इत्यादिशब्दैरप्यधीयमानत्वात्सोमतिलक इत्यप्यभिहितो ग्रन्थकृता । कस्मादिति चेत् ? यथा शम्भोः कैलासः=पर्वतो निवासत्वेन तापहरा मलशुद्धिकरी गङ्गानदी स्वशिरःस्थायित्वेनाऽस्ति तद्वदस्याऽपि प्रभोरिति हेतोः, तदेवाह-"**सोमपहसूरिपयसंभुगिरिसोही**" त्ति, सोमप्रभसूरेः पदं=पट्ट एव शम्भोः=हरस्य गिरिः = पर्वतः शम्भुगिरिः=कैलासभूधरस्तं शोभयति = विभूषयतीत्येवं शीलः "अजाते शीले" (सि० ५-१-१५४) इति सूत्रेण णिन्प्रत्यये सोमप्रभसूरिपदशम्भुगिरिशोभी = सोमप्रभसूरेः पट्टभृदित्यर्थः । "**जस्स**" त्ति यस्य = श्रीसोमतिलकसूरेः "**सीअगुमुहद्दहस्सिआ**" त्ति, शीताः = शीतलाः गावः किरणा यस्य स शीतगुः = चन्द्रः शीतगुरिवाह्लादको मुखः = वदनः शीतगुमुखः स एव द्रहः = ह्रदः = शीतगुमुखद्रहस्तस्मिन् श्रिता = आश्रिता = शीतगुमुखद्रहश्रिता सौम्यवदनरूपह्रदनिर्गता इति यावत् "**वयणगंगा**" त्ति, वचनान्येव गङ्गा = सुरसरित् वचनगङ्गा= उपदेशरूपभागीरथीति यावद् , "**भवतावअवहा**" त्ति, भवस्य = संसारस्य तापः भवतापः, यद्वा भव एव=संसारमेव तापः=आतापः सन्तापो वा भवतापस्तमपहन्तीति "क्लेशादिभ्योऽपात्" (सि० ५-१-८१)इति डप्रत्यये भवतापाऽपहस्ततः स्त्रियामाप्प्रत्यये भवतापापहा=संसारदुःखविनाशिनी "**अघमलसोही**" त्ति, अघ एव मलं=अघमलं तत् शोधयति=प्रक्षालयति=निर्मलीकरोति वेत्येवं शीलो यस्य सोऽघमलशोधी=पूर्ववत्प्रत्ययः । **यदभ्यधायि श्रीसोमसौभाग्यकाव्ये-**

"श्रीसोमकीर्तिनिकर करणौघजेता, श्रीयुक्तसोमतिलकाऽभिधसूरिराज ।
तत्पट्टपूर्वसुधाधरतुङ्गश्रृङ्ग , विध्वस्ततामसभरोऽरचयद्रुचाढ्यम् ॥५२॥
श्रीसोमसौलिसुरमौलिमलङ्करोति, स्माऽसौ नमोङ्गणविभूषणतुल्यसोम ।
श्रीसोमपुण्ड्रसुगुरुस्त्वकरोत्सवासं, स्फूर्जन्मन सुमनसा विगतैनसा स ॥५३॥
दीव्यद्दया सहृदया हृदयावदान-विद्योदया घनतरा भुवनेष्वभूवन् ।
श्रीस्तौमसोमतिलकस्य मुनीश्वरस्य, साम्य न केऽपि तु दधुर्दधिशुभ्रकीर्तेः॥५४॥" इति ॥२३५॥

अथ शार्दूलविक्रीडितमाह--

जो बालो वि अबालतेअणियरो, जो वाइतुलासुगो;
रायच्चो सुगुणोहि गोयमतुलो, वित्तिराणकित्तिव्वजो ।
से जम्मो तणुकंडविस्स१३५५वरिसे, णांदंगविस्से१३६६ वयं;

पंचेसुद्दिवभेअपंचवयणा, सीसाऽस्स पंचऽग्गिमा;
तत्थऽज्जो सिरिणाणसायरगुरू, णाणंबुही णिप्पिहो।
सूरी साम्मसुहण्णवो सुवयणो, वेरग्गवारंणिही;
भव्वज्जुण्हगुसासणुण्णइयरो, साहूण विज्जागुरू ॥२४८॥ (सद्दूलविक्कीडिय)

(प्रे०) "पञ्चे ०" इत्यादि, "ऽस्स" त्ति, अस्य = श्रीदेवसुन्दरसूरेः "अग्गिमा" त्ति, अग्रिमाः = मुख्याः "पंच" त्ति, पञ्च = पञ्चसङ्ख्याकाः "सीसा" त्ति, शिष्याः = विनेया अभवन्।

किम्भूताः ? । "पंचेसुद्दिवभेअपचवयणा" त्ति, पञ्च = पञ्चसङ्ख्याका इषवः = शरा यस्य सः = पञ्चेषुः = कामदेवः स एव द्विपः = स्तम्बेरमस्तस्य भेदे = विदारणे पञ्चं= विस्तीर्णं वदनम् = आस्यं येषां ते पञ्चवदनाः = सिंहाः पञ्चेषुद्विपभेदपञ्चवदनाः = कामजयनकरा आसन्नित्यर्थः । यदुक्तं गुरुपर्वक्रमे—

"तच्छिष्या सूरय पञ्च, मेरुपञ्चकसन्निभा । सुवर्णभरविख्याता, विद्यन्ते गरिमास्पदम् ॥५७॥" इति ।

तथा श्रीमहोपाध्यायविनयविजयगणिभिरप्यभिहितम्—

"श्रीदेवसुन्दरगुरोरथ पञ्च शिष्या, श्रीज्ञानसागरगुरु कुलमण्डनश्च ।
चञ्चद्गुणश्च गुणरत्नगुरुर्महात्मा, श्रीसोमसुन्दरगुरुर्गुरुसाधुरत्न ॥१८॥" इति।

"तत्थ" त्ति; तत्र = पञ्चसु प्रधानशिष्येषु मध्ये "अज्जो" त्ति; आद्यः = प्रथमः- "सिरिणाणसायरगुरु" त्ति; श्रिया = ज्ञानाद्यनेकगुणगणशोभया सहितः ज्ञानसागरस्तन्नामा चासौ गुरुः = श्रीज्ञानसागरगुरुरभूत् । कीदृक् ? "सूरी" त्ति; सूरिः = आचार्यः पुनः किम्भूतः । "णाणबुहो" त्ति ज्ञानस्य = स्वपरसिद्धान्तादिलक्षणस्य अम्बुधिः = पारावारः = ज्ञानाम्बुधिः चतुर्विद्यादिज्ञानभाग् बभूव । "णिप्पिहो" त्ति, निस्पृहः = ममताहीनः = ग्राम कुल-शरीरादिषु निर्ममः "साम्मसुहण्णवो" त्ति, साम्यं = समता तदेव सुधा = अमृत=साम्यसुधा, तस्या अर्णवः=सागरः=साम्यसुधार्णवः=समतावानित्यर्थः । "सुवयणो" त्ति सौम्यत्वेन शोभनं सुन्दरं वा वदन = मुखं यस्य स सुवदनः = सौम्याकृतिः = सौम्यतावानिति यावत् । "वेरग्गवारणिही" त्ति, विगतो रागो यस्य स विरागस्तस्य भावः ष्यणप्रत्यये वैराग्यं = ज्ञानगर्भितसंसारोद्वेगलक्षणं तस्य वारांनिधिः = समुद्रः = वैराग्यवारांनिधिः = ज्ञानगर्भितवैराग्यवान्=संसारस्वरूपं ज्ञात्वा ततो विरक्तवानिति यावत् "भव्वज्जुण्हगुसासणुण्णइयरो" त्ति, भव्याः = सिद्धिवध्वा सह विवाह्याः, त एव अब्जाः = सूर्यविकासिनः कमलास्तेषु तेषां वा उष्णा गावो यस्य स उष्णगुः = रविः, भव्याब्जोष्णगुः तथा

उद्धृत्यार्थसुधारसान् सुमनसः संसारतापापहान्, सोऽपीप्यत् पुरुषोत्तमः स्वतिशयप्रौढिश्रिया सश्रित ॥८८॥''
इति ।

"से" त्ति, तस्य = श्रीसोमतिलकसूरेः "जम्मो" त्ति, जन्म "तणुकंडविस्स-वरिसे" त्ति, तनवः = शरीरा औदारिकादयः पञ्च, काण्डाः = शराः पञ्च, कामदेवस्य शराणां पञ्चत्वात्, विश्वाः = त्रयोदश, एतेऽङ्का यत्र स चासौ वर्षस्तस्मिन् = तनुकाण्डविश्ववर्षे विक्रमसंवत् १३५५ वत्सरे बभूव ।

"वयं" ति, व्रतम् = दीक्षा "णंदंगविस्से" त्ति, नन्दाङ्गविश्वाः = नवाङ्कषडङ्कत्रयोदशाङ्का यत्र तत्र नन्दाङ्गविश्वे पश्चानुपूर्विक्रमप्राप्ते विक्रमसंवत् १३६९ हायनेऽभूत् ।

"सो" त्ति, सः = श्रीसोमतिलकसूरिः "जयसत्तिणाहिअभवे" त्ति, जगन्ति = भुवनानि = ऊर्ध्वाऽधस्तिर्यग्रूपाणि त्रीणि, यद्वा स्वर्ग मृत्यु-पाताललक्षणानि त्रीणि, सप्तयः = घोटकाः सप्त, नाभेः = तन्नाम्नः कुलकरात् जातः = उत्पन्नः = नाभिजः = ऋषभदेवस्तस्य भवाः-सम्यक्त्वप्राप्तित आरम्य जाता मनुष्यादिगत्यादिभवनरूपास्त्रयोदश ।

एतेऽङ्काः प्रातिलोम्येन मीलिता १३७३ इति सङ्ख्या यत्र तत्र जगत्सप्तिनाभिजभवे = विक्रमसंवत् १३७३ शरदि "सूरी" त्ति, सूरिः = आचार्यो जातः ।

"झाणंहिलोए" त्ति, ध्यानानि = पिण्डस्थ-पदस्थ-रूपस्थ-रूपातीतरूपाणि चत्वारि, यद्वा आर्त-रौद्र-धर्म-शुक्ललक्षणानि चत्वारि, अंही = पादौ द्वौ, लोकाः = भुवनानि चतुर्दश, एतेऽङ्का यस्मिंस्तस्मिन् = ध्यानांहिलोके = विक्रमसंवत् १४२४ वर्षे "दिव" ति, दिव = निर्जरधाम जगाम । **तथा चोक्तं गुर्वावल्याम्**—

"स बाणबाणत्रिकुवर्षे १३५५ माघे, जातः पदाभ्यामनुकूलखेटैः ।
नन्दाङ्गविश्वे १३६९ व्रतमाप्य भेजे, वह्न्यश्वविश्वे १३७३ऽपि पदप्रतिष्ठाम् ॥२७३॥
श्रीसोमतिलकसूरिस्तस्य गुरुस्तदनु चैकवर्षेण। जिनभुवने १४२४ स्वर्गमितस्तनोतु सङ्घाय कल्याणम् ॥२६१॥"

इति । इत्थञ्च चतुर्दश वर्षाणि गार्हस्थ्ये, चत्वारि वर्षाणि व्रते, एकपञ्चाशद्वर्षाणि सूरित्वे स्थित्वा सर्वायुश्चैकोनसप्ततिं वर्षाणि परिपाल्य स्वर्ययौ ॥२३६॥

अथ पथ्यागीतिमाह—

सुरगइसमयेऽस्स पसिद्ध सुरकयउज्जोयणाइमहिममहो ।
सग्गागयं विमाणं गुरुणोऽस्स त्ति भणिअं जणेहि तया ॥२३७॥ (पच्छागीई)

(प्रे०) "**सुरगइ०**" इत्यादि, "**ऽस्स**" ति, अस्य = श्रीसोमतिलकाख्यसूरेः "**सुरगइ-समये**" त्ति, सुरगतेः = देवलोकगमनस्य समये = अवसरे "**सुरकयउज्जोयणाइमहिमं**" ति, सुरैः = देवैः कृतं = विहितं उद्योतनादिमहिमानं = जाज्वल्यमाननभालोकादिकमाहात्म्यं

चैत्योद्धारविधापनैर्वितरणै, क्षेत्रेषु सप्तस्वपि, प्रौढै पुण्यभरैः प्रभावपदवीं, येनाऽऽप्यते शासनम् ॥३४८॥

सर्वेभ्यमालामुकुटस्य तस्य, श्रीपातसाहोच्छ्रितमाननस्य ।
कर्णावतीमण्डनचाचसूनो, सङ्घाधिपेन्दोर्गुणराजनाम्न ॥३४९॥

बन्धु प्रबुद्धो वचनैर्गुरूणा, तेषा महामोहतमोवृतोऽपि ।
आम्र प्रवव्राज विमुच्य पत्नीपुत्रादिकानद्भुतभाश्च लक्ष्मी ॥३५०॥

श्यामलनामसहेभ्यस्तेभ्यो वृद्धश्च नव्यरूपवया । प्राव्राजीत्परिमुच्याऽनुरागरूपोत्तरा जायाम् ॥३५१॥

मुनीशितारोऽर्द्धचतुर्थविंशा, प्रबोध्य चाऽन्येऽपि हि दीक्षितास्तै ।
गुणर्द्धिपात्राणि विचित्रचञ्च्ज्ञानादिसम्पत्पदवीं भजन्ते ॥३५२॥

मेदपाटपतिलक्षभूमिभृद्रक्ष्यदेवकुलपाटके पुरे । मेघवीसलसकेल्लहेमसद्धीमनिम्बकटुकाद्यपासके ॥३५३॥
श्रीतपागुरुगुरुत्ववृद्धिभि कारित तदुपदेशसश्रुते । तै प्रतिष्ठितमथाऽऽदिमार्हतो मन्दिर हरनगोपम श्रिया ॥
कान्ताया गणिसम्पदो गणभृतस्तत्पूर्वजस्याऽभव-त्तस्मिन् सिद्धिमिते सतीव्रतजुषो या नो कमप्यस्पृशन् ।
ता योगातिजरा बलाज्जगृहिरे तै कीर्तिकन्याश्च तत, सयोगे जनितास्तथाऽपि चरित तेषामहो श्लाघ्यते॥३५५॥
किञ्चिच्छान्तमपि प्रमाणपठनैर्जाड्य पुरा वादिना, भैषज्यैरिव लब्धलर्कविषवद्वादे पुन प्रास्फुरत् ।
नव्याब्देष्विव तेषु दुर्द्धरतरस्याद्वादगर्जारव वर्षत्स्वाप्तमहोन्नतिष्वनुपमोपन्यासपूरामृतम् ॥३५६॥
पीत्वा विनाशिताम्भोधिं पीताब्धि क प्रशसति ? । पीतस्याऽब्धेर्न यस्याऽस्थादुदरे बिन्दुरप्यहो ! ॥३५७॥
चन्द्रशेखरसूरीणा ज्ञानाब्धिस्तैस्त्वशेषत । पीत्वा हृदि धृत सर्वं स्वादुर्दत्तोऽप्यवर्द्धत ॥३५८॥ युग्मम् ।
स्त्रीषु साद्याकृतिभिरुदिते बाह्यरूपैरविद्या-शक्त्या भातैस्तदपगमतश्चिन्मयैकात्मलीनम् ।
सत्तामात्र न यदुपगत तत्त्वतोऽस्मिन् विवर्त्ते चित्त तेषा तदपि विषयग्रामबद्ध कथ स्यात् ? ॥३५९॥
साम्यारामे स्थिरतरलयान्सर्वदोन्मीलदेका-नन्दास्वादेऽपसृतसकलोपाधिजव्याकुलत्वे ।
शान्त्याश्लेषप्रणयिनि यदात्मन्युदेतीह सौख्य, रम्भाभोगोद्भवमिव हरिस्तत्त एवान्वभूवन् ॥३६०॥
मूलग्रन्थचतुर्दिक्षु, शासनौकोऽर्थदीपिका । दीपिका इव राजन्ते, तत्प्रणीताऽवचूर्णय ॥३६१॥
तत्कृतिवेला जल्पति पीतत्रैवैद्यवार्द्धिगाम्भीर्यम् । भृगुपुरघोघातीर्थस्तोत्रमुखा विहितचित्तसुखा ॥३६२॥

ते सत्पदोन्नतिभृत सुगभीरघोषा निर्वापिताखिलजनाऽघनिदाघतापा ।
प्राप्ता घनागमरमाममृत ददाना, द्योस्था भवन्तु भुवि मङ्गलवल्लिपुष्ट्यै ॥३६३॥" इति ॥२४८॥

अथाऽस्यैव श्रीज्ञानसागरसूरेर्जन्मादिकालं पथ्यागीत्याऽऽह—

पंडवविआसिले१४०५ऽइ-ऽस्स जणी वाइसिअयरहरिम्मि१४१७वयं ।
सूरिदुविहिमुहसरे१४४१,स रिउदिवसणीइकम्मि१४६०तुरिअदिवं ॥२४९॥

(पच्छागीई)

(प्रे०) "पडव०" इत्यादि, "ऽस्स" त्ति, अस्य=श्रीज्ञानसागरसूरेः " " त्ति, जनिः=गर्भनिष्क्रान्तिः=मातुरुदराद्बहिरागमनं "पंडवविआसिले" त्ति, पाण्डवाः=युधिष्ठिर-भीमा-ऽर्जुन-सहदेव-नकुललक्षणाः पञ्च, वियत्=गगन=शून्यम्, आशाः=दिशाः=पूर्व-दक्षिण-

(प्रे०) "से" इत्यादि, "से" त्ति, अस्य=श्रीसोमतिलकसूरेः "तिसीसा" त्ति, त्रिसङ्ख्याकाः शिष्याः=विनेयाः=त्रिशिष्याः=त्रयोऽन्तेवासिनः "जाआ" त्ति, जाता=अभूवन् ।

किम्भूताः ? "उत्तमा" त्ति, उत्तमाः=श्रेष्ठाः। अत्रोत्प्रेक्षते "किं" ति, किमित्यव्यय उत्प्रेक्षाद्योतको वर्तते, किं=नूनं "एगया" त्ति, एकदा=एकस्मिन्काले युगपदिति यावत् "तिभुवनं" ति, त्रयाणाम्=स्वर्गमृत्यु-पाताललक्षणानां भुवनानां समाहारः = त्रिभुवनम् = स्वर्गादिलोकत्रयम् "बोधिउं" ति, बोधितुम् "बुध् अवगमने" इति भ्वाद्यन्तर्गतज्वलादिगण-स्थः परस्मैपदी बुध्धातुरगवमने=ज्ञापनेऽर्थे वर्तते, स ग्राह्यः; न तु "बुधृग् बोधने" इति भ्वादि-गणस्थित उभयपदी तथा "बुधिं मनिंच् ज्ञाने" इति दिवादिगणगत आत्मनेपदी "बुध्" धातु-स्तयोर्ज्ञानार्थत्वात् णिगि सति ज्ञापनाऽर्थस्य लाभात् । यद्वा ज्वलादिबुध्धातोस्तथा प्रेरक-प्रत्ययान्तस्य भ्वादेरुभयपदिनो दिवादेश्च बुध्धातोः प्राकृते हेत्वर्थकृदन्ते तुम्प्रत्यये तुल्यरूपत्वात् त्रयाणामपि ग्रहणं कर्तव्यम् , किन्तु तेषां संस्कृतच्छायाया क्रमेण बोधितुं बोधयितुमिति रूपं ग्राह्यम्, ततो बोधितुं=बोधयितुं-सम्यग्ज्ञानवत् कर्तुं अस्य सूरेस्त्रयः शिष्याः संजाता इति मन्ये ।

न्यगादि च गुरुप मे-

"तेषां शिष्यास्त्रय. ख्याता, अभूवन्नद्भुतैर्गुणैः । ज्ञानदर्शनचारित्र-(त्र)यी मूर्तिमती किल ॥५१॥" इति ।

"तत्थ" त्ति, तत्र तेषु त्रिषु शिष्येषु "ऽज्जो" त्ति, आद्यः=प्रथमः "सिरिचंदसेहर-गुरू" त्ति, श्रिया = रत्नत्रयलक्ष्म्या युक्तः चन्द्रशेखरः = तन्नामा गुरुः = आचार्यः = श्री-चन्द्रशेखरगुरुः, किं विशिष्टः ? 'सूरी' त्ति, सूरिः = पण्डितो = बुद्धः = आचार्यः "तिविज्जं बुही" त्ति, तिस्रो विद्याः समाहृताः = त्रिविद्यास्तस्या अम्बुधिः = सागरः, तद्वत्तस्याऽ-परिमितत्वात् त्रिविद्याऽम्बुधिः "सिस्सऽज्झवणपेसलो" त्ति, शिष्याणां=विनेयानाम् अध्यापने = पाठने = शिक्षापणे पेशलः = दक्षः पटुश्चतुर उष्ण उष्णकः सूत्थानो वा शिष्या-ध्यापनपेशलः = विद्यार्थिविनेयजनानामद्भुतविद्याप्रापकः । "सुचरणो" त्ति, सुष्ठु = शोभनं = सुन्दरं वा चरणं यस्य स सुचरणः = विशुद्धचारित्रवानित्यर्थः । "मोहागछेए-गिहो" त्ति, मोह एवाऽगः = वृक्षो मोहागस्तस्य छेदे = लवने = भञ्जने = नाशने = उन्मूलने वा एकः = अद्वितीयश्चासौ इभश्च = दन्तावलो मोहागछेदैकेभः = मोहरिपुदमन-कारी । "सोम्मब्धी" त्ति, सौम्यानाम्=समतानामब्धिः=अम्बुनिधिः=सौम्याम्बुधिः=शान्त-स्वभावः=सौम्याकृतिः=आह्लादकजनकदर्शनो वेत्यादिभावः । "कइलोगमोययकिई" त्ति, कविलोकानां = पण्डितजनानां = काव्यकृज्जनानां वा मोदनं=मोदः' भावाऽकर्त्रोः " (सि०५-३-१८) इति भावे घञ्प्रत्ययः, मोदम्=आनन्द हर्षं वा ददातीति "आतो डोऽह्वा वा-म " (सि० ५-१-७६)

सूरीसो कुलमंडणाभिहगुरू, उस्सग्गमग्गाणुगो;
वाइव्वायगिरिप्पभंगवइरो, सिद्धंतपारंगमी ।
चक्कंगो इव विस्समाणससरे, भासी जईयो जसो;
सो बीओ वि अबीअभग्गणिहरो, मे होउ भद्द करो ॥२५०॥

(सद्दूलविक्कीडियं)

(प्रे०) "**सूरीसो**" इत्यादि, "**सो**" त्ति, सः "**बीओ वि**" त्ति, द्वितीयोऽपि=श्रीदेवसुन्दराणां शिष्यत्वेन द्वितीयोऽपि "**अबीअभग्गणिहरो**" त्ति, अद्वितीयानाम्=अनन्यानां भाग्यानां निभरः=धारकः=अद्वितीयभाग्यनिभरः="**कुलमण्डणाभिहगुरू**" त्ति, कुलमण्डनाभिधः='कुलमण्डन' इति नामा चासौ गुरुः=आचार्य=कुलमण्डानाभिधगुरुः "**सूरीसो**" त्ति, सूरीणाम् = आचार्याणामीशः=ईश्वरः=सूरीश्वरः=सूरिनायकः "**मे**" त्ति, युष्माकं "**भद्दकरो**" त्ति, भद्रं करोतीति "क्षेमप्रियमद्रभद्रात खाण्" (सि०५-१-१०५) इति खप्रत्यये भद्रङ्करः "**होउ**" त्ति, भवतु ।

किं विशिष्टः ? "**उस्सग्गमग्गाणुगो**" त्ति, उत्सर्गः=उत्कृष्टश्चासौ मार्गश्च=पन्थाः संयमपथः, उत्सर्गमार्गस्तस्याऽनुगच्छतीति डप्रत्यये अनुगः=अनुचरः, उत्सर्गमार्गानुगः=उत्कृष्टचारित्रभृत् । "**वाइव्वायगिरिप्पभंगवइरो**" त्ति वादिनां=प्रतिपक्षाणां व्रातः=समूहः= वादिव्रातः, स एव गिरिः=पर्वतस्तस्य प्रभङ्गे=प्रस्फोटने वज्रः=पविः=कुलिशः=वादिव्रातगिरिप्रभङ्गवज्रः=वादिवृन्दपराजयकरः "**सिद्धंतपारगमी**" त्ति, सिद्धान्तस्य=आप्तोक्ते· पारं=समाप्तिं सम्पूर्णतां गच्छति=प्राप्नोति "वत्स्र्यति गम्यादि" (सि ५-३ १) इति सूत्रेणेन्प्रत्ययान्तोनिपातः ।

पुनरपि किम्भूतः ? "**जईओ**" त्ति, यदीयं = यत्सम्बन्धि = श्रीकुलमण्डनसूरिसत्कं "**जसो**" त्ति, यशः "**विस्समाणससरे**" त्ति, विश्वो मानससर इव मानससरस्तस्मिन् विश्वमानससरसि "**चक्कंगो इव**" त्ति, चक्राङ्ग इव = हंस इव "**भासो**" अभात् ।

यदभाणि श्रीगुणरत्नसूरिभिः—

"दाक्षिण्यैकपयोधयश्चतुरसच्चेतश्चमत्कृद्गुणा,
सिद्धाऽन्तार्णवगाहनैकरसिका उत्सर्गमार्गाध्वगा ।
प्रागल्भ्यप्रवरास्तपोविधिरता सन्मत्युदाराशया,
आसन् श्रीकुलमण्डनाह्वयगुरूत्तसा द्वितीया इमे ॥५९॥" इति ।

तत्कृता ग्रन्थाश्चेमाः–सिद्धान्तालापकोद्धारः, विश्वश्रीधरेत्यादि अष्टादशारचक्रवन्धस्तव-गरीयो०हारबन्ध-स्तवादयश्च ॥२५०॥

एतेऽङ्का यत्र तत्र पविरसविश्वे विक्रमसंवत् १३९३ शारदे "सूरी" त्ति, सूरिः=आचार्यो जातवान् ।

"सल्लिहरयसरे" त्ति, शल्याः=माया-निदान-मिथ्यात्वरूपास्त्रयः, इभरदो=द्विपदन्तौ द्वौ, स्वराः=अकारादयश्चतुर्दश । तथा च प्रत्यपादि श्रीमहामहोपाध्यायविनयविजय-गणिभिर्हैमप्रकाशमहाव्याकरणे स्वरचितकारिकायाम्—

"औकारान्ता अकाराद्या स्वरा वर्णाश्चतुर्दश ॥६॥ अ-आ-इ-ई-उ-ऊ-ऋ-ॠ-ऌ-ॡ-ए-ऐ-ओ-औ-१४' इति,

एतेऽङ्काः पश्चानुपूर्विन्यस्ता १४२३ इति सङ्ख्या यत्र तत्र शल्येभरदस्वरे= विक्रमसंवत् १४२३ वर्षे 'ख" ति, ख=सुरधाम ययौ ।

तथा चोक्त गुर्वावल्याम्—

"अग्न्यश्ववह्नीन्दुमिताब्जजात १३७३, शरेभविश्वे१३८५यमितामवाप्य ।
द्विनन्दविश्वे १३९२ च पदप्रतिष्ठां, त्रिदोर्मनुष्व१४२३ष च य सुरौक ॥८८॥" इति ॥२४०॥

अथ पथ्या ऽऽर्याद्वयेन श्रीसोमतिलकसूरेर्द्वितीय तृतीयशिष्ययोर्विवर्णयिषयाऽऽह—

बीओ य जयाणंदो, सूरी णाणवुही सुचरणणिही ।
सदिवपिहुबुहे१३८०स्स जणी, वासे दिक्खाऽक्खिहरिविस्से१३९२॥२४१॥
(पच्छाज्जा)

सो सूरी णहरयणे१४२०,वासे सग्गं गओ कुवेददे१४४१ ।
सिरिदेवसुंदरगुरू, तइओ आसि जुगपवरसमो ॥२४२॥(पच्छाज्जा)

(प्रे०) "बीओ" इत्यादि, "बीओ" त्ति, द्वितीयः=श्रीसोमतिलकसूरेर्द्वितीयः शिष्यः 'जयाणदो" त्ति, जयानन्दः=जयानन्दनामा "सूरी" त्ति, सूरिः=आचार्यो जातः, किंभूतः? "णाणवुहो" त्ति, ज्ञानस्य=हेयो-पादेय-ज्ञेयात्मकवस्तुविषयकाऽवगमरयाऽम्बुधिः=सागरः= ज्ञानाम्बुधिः=शास्त्रज्ञातेत्यर्थः । "सुचरणणिहो" त्ति, शोभनस्य=सुन्दरस्य वा चरणस्य=स-यमस्य निधिः=शेवधिः=सुचरणनिधिः=शुद्धचारित्रवानित्यर्थः **तथा चाऽभाणि गुरुपर्वक्रमे—**

"भव्यप्राणिशिवश्रियो परिणये सावत्सराधीश्वरा, गाम्भीर्यादिगुणैर्निर्जैरुदधियत्केनाऽप्यलब्धान्तरा ।
तेऽजायन्त यतीश्वरा इह जयानन्दा द्वितीया क्रमात्, येषा देवतया करेण निहतो भ्राताऽनुमेने व्रतम् ।' इति ।

तथैव श्रीसोमसौभाग्यकाव्ये तृतीयसर्गे—

"जयानन्द सूरि-स्त्रिदशपतिसूरिर्निजधिया, विनेयस्तस्यासी-न्नयविनयसौभाग्यकलितः ।
अभङ्ग वैराग्यं, दृढतमतमस्तोममथन, यदीयाङ्गे चाङ्गे, प्रणयवशतो वासमकरोत् ॥५५॥
गुरौ यस्मिन् स्मेरद्युतिदिनकरे सयमरमा-लसद्रामापाणि ग्रहणमहमातन्वतितराम् ।
लघुभ्राता देव्या, जिनमतजुषा मूर्ध्नि निहत-श्चपेटाभि प्रादा दनुमतिमसौ तद्ग्रहणजाम् ॥५६॥
सुधर्मश्रीजम्बू-प्रभृतिसुगुरुन् धीधनगुरून्, महौन्नत्यान् नित्या ऽभ्युदयजयसत्कीर्तिकलितान् ।

पतिविम्बमस्तकस्य सर्पस्फटाः पञ्च, एताभ्यामङ्काभ्यां स्थापिताभ्यां पञ्चपञ्चाशताऽधिके चतुर्दशशतवर्षे = विक्रमसंवत् १४५५ वर्षे श्रीकुलमण्डनसूरेः "दिव" ति दिवं=स्वर्लोकोऽजायत ।

उक्तञ्च गुर्वावल्याम्—

"जन्माङ्कखैरभ्यधिकेषु शक्रे-ष्व१४०९ष्वौषधीशैर्व्रतमक्षिवेदैः १४४२ ।
सूरेः पदं चाप शरेषुभि१४५५स्ते, चैत्रे ययुः स्वर्जगतामभाग्यात् । ३६८।।" इति ।।२५१।।

अथ श्रीदेवसुन्दरसूरेस्तृतीयशिष्यं भणितुकामः पथ्या-ऽऽर्यामाह—

तइओ सुविमलचरणो, गुणरयणणिही स गुणरयणसूरी ।
वाइमिगारी जयउ ति-कालविओ सपरसमयण्णू ।।२५२।।(पच्छाज्जा)

(प्रे०) "तइओ" त्ति, तृतीयः=श्रीदेवसुन्दरसूरिपट्टधरत्वेन तृतीयस्तेषामेव स्वविनयत्वेनाद्यः "स" त्ति सः=विश्वख्यातनामा "गुणरयणसूरी" त्ति, गुणरत्नः=गुणरत्ननामा चासौ सूरिः=आचार्यो गुणरत्नसूरिः=गुणरत्नसञ्ज्ञक आचार्यः "जयउ" त्ति जयतु=जयनकरशीलो भवतु इति क्रियाऽन्वयः, किम्भूतः ? "सुविमलचरणो" त्ति, सु=शोभनं विमलं=पवित्रं चरणं=संयमो यस्य स सुविमलचरणः=निर्मलचारित्रवानित्यर्थः "गुणरयणणिही" त्ति, गुणाः=ग्रन्थरचनादिरूपपरोपकारादयस्त एव रत्नानि=मणयस्तेषां निधिः=कुनाभिर्गुणरत्ननिधिः=अनेकगुणालङ्कृतः "वाइमिगारी" वादिषु=प्रतिपक्षेषु मृगारिः=सिंहो वादिमृगारिः=वादिजयनशील इत्यर्थः "ति [का]लविओ" त्ति, त्रयाणां भूतभवद्भविष्यलक्षणानां कालानां = तत्समयभाविभावानां विद् = ज्ञाता=त्रिकालविद्=भूतादिभाविपदार्थज्ञः, "सपरसमयण्णू" त्ति, स्वस्य = निजस्याऽर्हत्प्रणीतलक्षणस्य परस्य = इतरदर्शनिदर्शितस्य समयस्य = शास्त्रस्य जानातीति 'नाम्युपान्त्य प्री कृ-गृ-ज्ञः कः" (सि० ५-१-५४) इति सूत्रेण कप्रत्यये ज्ञः = वेत्ता, स्वपरसमयज्ञः स्वेतरागमानामवगमकः ।

तथा चाऽसौ गुणरत्नसूरिः स्वकृतगुरुपर्वक्रमे श्रीक्रियारत्नसमुच्चयप्रशस्तिलक्षणे श्रीदेवसुन्दरसूरीणां मुख्यशिष्यपञ्चकं दर्शयन् स्वस्य तृतीयत्वेन प्रकटयन्नाह—

"भूतभाविभवत्सूरि-क्रमरेणुकणोपम । सूरि श्रीगुणरत्नाह्व-स्तृतीय समजायत ।।६०।।" इति ।

तथा चाऽत्र गुर्वावलीकारः—

"आद्या जयन्ति गुणरत्नमुनीन्द्रचन्द्रा, सूरीश्वरा सुगुणरत्नविभूषणैर्ये ।
सा काऽप्यवापि सुभगत्वरमा यया तान् श्लिष्यन्ति सर्वबुधमानसवृत्तिनार्यः ।।३७७।।

तेषां निर्जितवादिराजिकुयशोजम्बालजालाविले, भ्रान्त्वा भूवलयेऽखिलेऽथ चलिता स्व स्वर्गदण्डाध्वना । स्वान्ती

एतेऽङ्का यत्र तत्र पविरसविश्वे विक्रमसंवत् १३९३ शारदे "सूरी" त्ति, सूरिः=आचार्यो जातवान् ।

"सल्लिहरयसरे" त्ति, शल्याः=माया-निदान-मिथ्यात्वरूपास्त्रयः, इभरदौ=द्विपदन्तौ द्वौ, स्वराः=अकारादयश्चतुर्दश । **तथा च प्रत्यपादि श्रीमहामहोपाध्यायविनयविजयगणिभिर्हैमप्रकाशमहाव्याकरणे स्वरचितकारिकायाम्—**

"औकारान्ता अकाराद्या स्वरा वर्णाश्चतुर्दश ॥६॥ अ-आ-इ-ई-उ-ऊ-ऋ-ॠ-ऌ-ॡ-ए-ऐ-ओ-औ-१४" इति,

एतेऽङ्काः पश्चानुपूर्विन्यस्ता १४२३ इति सङ्ख्या यत्र तत्र शल्येभरदस्वरे=विक्रमसंवत् १४२३ वर्षे 'खं" ति, खं=सुरधाम ययौ ।

तथा चोक्त गुर्वावल्याम्—

"अग्न्यश्ववह्नीन्दुमिताब्दजातः १३७३, शरेभविश्वे१३८५यमितामवाप्य ।
द्विनन्दविश्वे १३९२ च पदप्रतिष्ठां, त्रिदोर्मनुष्वा१४२३प च यः सुरौक ॥२८६॥" इति ॥२४०॥

अथ पथ्या ऽऽर्याद्वयेन श्रीसोमतिलकसूरेर्द्वितीय तृतीयशिष्ययोर्विवर्णयिषयाऽऽह—

बीओ य जयाणंदो, सूरी णाणबुही सुचरणणिही ।
खदिवपिहुबुहे१३८०स्स जणी, वासे दिक्खाऽक्खिहरिविस्से१३९२॥२४१॥
(पच्छाज्जा)

सो सूरी णहरयणे१४२०,वासे सग्गं गओ कुवेदिदे१४४१ ।
सिरिदेवसुंदरगुरू, तइओ आसि जुगपवरसमो ॥२४२॥(पच्छाज्जा)

(प्रे०) **"बीओ"** इत्यादि, **"बीओ"** त्ति, द्वितीयः=श्रीसोमतिलकसूरेर्द्वितीयः शिष्यः 'जयाणदो" त्ति, जयानन्दः=जयानन्दनामा "सूरी" त्ति, सूरिः=आचार्यो जातः, किंभूतः? **"णाणबुहो"** त्ति, ज्ञानस्य=हेयो-पादेय-ज्ञेयात्मकवस्तुविषयकाऽवगमस्याऽम्बुधिः=सागरः=ज्ञानाम्बुधिः=शास्त्रज्ञातेत्यर्थः । **"सुचरणणिहो"** त्ति, शोभनस्य=सुन्दरस्य वा चरणस्य=संयमस्य निधिः=शेवधिः=सुचरणनिधिः=शुद्धचारित्रवानित्यर्थः **तथा चाऽभाणि गुरुपर्वक्रमे—**

"भव्यप्राणिशिवश्रियो परिणये सावत्सराधीश्वरा, गाम्भीर्यादिगुणैर्निर्जैरुदधियत्केनाऽप्यलब्धान्तरा ।
तेऽजायन्त यतीश्वरा इह जयानन्दा द्वितीया क्रमात्, येषा देवतया करेण निहतो भ्राताऽनुमेने व्रतम् ।' इति ।

तथैव श्रीसोमसौभाग्यकाव्ये तृतीयसर्गे—

"जयानन्द सूरि-स्त्रिदशपतिसूरिर्निजधिया, विनेयस्तस्यासी-न्नयविनयसौभाग्यकलित' ।
अभङ्ग वैराग्य, दृढतमतमस्तोममथन, यदीयाङ्गे चाङ्गे, प्रणयवशतो वासमकरोत ॥५५॥
गुरौ यस्मिन् स्मेरद्युतिदिनकरे सयमरमा-ल्लसद्रामापाणि ग्रहणमहमातन्वतितराम् ।
लघुभ्राता देव्या, जिनमतजुषा मूर्ध्नि निहत-श्चपेटाभि प्रादा-दनुमतिमसौ तद्ग्रहणजाम् ॥५६॥
सुधर्मश्रीजम्बू-प्रभृतिसुगुरून् धीधनगुरून्, महौन्नत्यान् नित्या ऽभ्युदयजयसत्कीर्तिकलितान् ।

पतिबिम्बमस्तकस्य सर्पस्फटाः पञ्च, एताभ्यामङ्काभ्यां स्थापिताभ्यां पञ्चपञ्चाशताऽधिके चतुर्दशशतवर्षे = विक्रमसंवत् १४५५ वर्षे श्रीकुलमण्डनसूरेः "दिव" ति दिवं=स्वर्लोकोऽजायत ।

उक्तञ्च गुर्वावल्याम्—

"जन्माङ्कखैरभ्यधिकेषु शके-ष्व१४०१इत्त्वौषधीशैत्र्रे तमक्षिवेदै १४४२ ।
सूरे पद चाप शरेषुभि१४५५स्ते, चैत्रे ययु स्वर्जगतामभाग्यात् । ३६८॥" इति ॥२५१॥

अथ श्रीदेवसुन्दरसूरेस्तृतीयशिष्यं भणितुकामः पथ्या-ऽऽर्यामाह—

तइओ सुविमलचरणो, गुणरयणणिही स गुणरयणसूरी ।
वाइमिगारी जयउ ति-कालविओ सपरसमयण्णू ॥२५२॥(पच्छाज्जा)

(प्रे०) "तइओ" त्ति, तृतीयः=श्रीदेवसुन्दरसूरिपट्टधरत्वेन तृतीयस्तेषामेव स्वविनयत्वेनाद्यः "स" त्ति सः=विश्वख्यातनामा "गुणरयणसूरी" त्ति, गुणरत्नः=गुणरत्ननामा चासौ सूरिः=आचार्यो गुणरत्नसूरिः=गुणरत्नसञ्ज्ञक आचार्यः "जयउ" त्ति जयतु=जयनकरशीलो भवतु इति क्रियाऽन्वयः, किम्भूतः ? "सुविमलचरणो" त्ति, सु=शोभनं विमलं=पवित्रं चरणं=संयमो यस्य स सुविमलचरणः=निर्मलचारित्रवानित्यर्थः "गुणरयणणिही" त्ति, गुणाः=ग्रन्थरचनादिरूपपरोपकारादयस्त एव रत्नानि=मणयस्तेषां निधिः=कुनाभिर्गुणरत्ननिधिः=अनेकगुणालङ्कृतः "वाइमिगारी" वादिषु=प्रतिपक्षेषु मृगारिः=सिंहो वादिमृगारिः=वादिजयनशील इत्यर्थः "तिकालविओ" त्ति, त्रयाणां भूतभवद्भविष्यलक्षणानां कालानां = तत्समयभाविभावानां विद् = ज्ञाता=त्रिकालविद्=भूतादिभाविपदार्थज्ञः, "सपरसमयण्णू" त्ति, स्वस्य = निजस्याऽर्हत्प्रणीतलक्षणस्य परस्य = इतरदर्शनिदर्शितस्य समयस्य = शास्त्रस्य जानातीति 'नाम्युपान्त्य प्री कृ-गृ-ज्ञ -क" (सि० ५-१-५४) इति सूत्रेण कप्रत्यये ज्ञः = वेत्ता, स्वपरसमयज्ञः स्वेतरागमानामवगमकः ।

तथा चाऽसौ गुणरत्नसूरिः स्वकृतगुरुपर्वक्रमे श्रीक्रियारत्नसमुच्चयप्रशस्तिलक्षणे श्रीदेवसुन्दरसूरीणां मुख्यशिष्यपञ्चकं दर्शयन् स्वस्य तृतीयत्वेन प्रकटयन्नाह—

"भूतभाविभवत्सूरि-क्रमरेणुकणोपम । सूरि श्रीगुणरत्नाह्व-स्तृतीय समजायत ॥६०॥" इति ।

तथा चाऽत्र गुर्वावलीकारः—

"आद्या जयन्ति गुणरत्नमुनीन्द्रचन्द्रा , सूरीश्वरा सुगुणरत्नविभूषणैर्यैः ।
सा काऽप्यवापि सुभगत्वरमा यया तान् श्लिष्यन्ति सर्वबुधमानसवृत्तिनार्य ॥३७७॥
तेषा निर्जितवादिराजिकुयशोजम्बालजालाविले, भ्रान्त्वा भूवलयेऽखिलेऽथ चलिता स्व स्वर्गदण्डाध्वना । स्नान्ती श्रान्तिहृतीच्छयेन्दुसरसि स्वैरं सुधाशीकरान्, कीर्तिर्यान् विकिरत्यमी प्रतिनिश दृश्या ग्रहादिच्छलात्॥३७८॥

विशेषे प्रवरः=श्रेष्ठः=युगप्रवरः=युगप्रधानस्तस्य समः=सदृशः=युगप्रवरसमः=युगप्रधान-तुल्यः "आसि" त्ति, आसीत् । तथाहि-असौ लक्षणवेदिबुधैरनेकशक्तिकलित-त्रिशत-श्रेष्ठयोगिवृत-राजमन्त्र्यादिबहुजनपूजितयोगिना च लक्षणैस्तथा सारङ्गमन्त्रिणा देवयचनेना-ऽन्यै-रपि बहुजनैर्ज्ञातयुगवराभो बभूव । तथा चोक्तं गुर्वावल्याम्-

"बाल्येऽपि येषां किल मञ्चिकाजुषा, सुलक्षणे लक्षणवेदिन पदौ ।
समीक्ष्य केचिद् विबुधा जगु परा, श्रिर पवित्री महनीयता भुव ॥३०३॥"
"अभूत त्रिशत्या वरयोगिना वृतो-ऽन्यदोदयीपाभिवयोगिनायक ।
कृतस्थिति' पत्तनगुञ्जडीसर-स्यनेकमन्त्रादिसमृद्धिमन्दिरम् ॥३०६॥
हरन् गरान् स्थावरजङ्गमानय, जलानलव्यालहरीममीहर ।
अनागतातीतविदद्भुतास्पद, नृपेभ्यमन्त्र्याद्यखिलप्रजार्चित. ॥३०७॥
निरीक्ष्य दूरादपि यानरियूतो, मुदाशु दण्डवनकृत सहानुगै ।
अवन्दत व्यञ्जितभक्तिडम्बर, प्रजासमक्ष बहुधा स्तुवन् गुरून् ॥३०८॥
सङ्घाधिपनरियाद्यै पृष्टो नमनादिहेतुमाख्यच्च ।
गुरुरादिदेश दिव्यज्ञानर्द्धि कणयरीपा माम् ॥३०९॥
पद्माक्षदण्डपरिकरचिह्नै रुपलक्ष्य सूरयो वन्द्याः । भवता युगप्रधाना शिवदा इत्यादि तद् व्यनमम् ॥३१०॥"
"सारङ्गमन्त्री वटपद्रवासभाग्, द्विषन् जिनोक्तीरपि पूर्वजक्रमात ।
निबुध्य देवस्य गिरा युगोत्तमा-नभिग्रहात सिद्धपुरेऽभिगम्य यान् ॥३१२॥
वेदादिशास्त्रै कृतनैकनोदन, सप्रत्ययैर्यैर्द्वचनामृतैर्मुदा ।
विधूय मिथ्यात्वगर नतिस्तुती, सृजन् प्रबुद्धो जिनधर्ममग्रहीन् ॥३१३॥
महाधन श्राद्धवर प्रभावक, सुदर्शनासुव्रनभृत्सुशास्त्रवित् ।
दिने चतुष्प्रासुकद्रव्यभोजन-व्रतोऽस्ति नानाद्भुतपुण्यकर्मठ ॥३१४॥
गुणर्द्धिसत्वादिसुपर्वमासितै-रपीति तेष्वेव युगप्रधानताम् ।
निश्चित्य युक्त गुरुधीनिवेशन, शिवाय चित्रैरधुना प्ररूप्यते ॥३१५॥"
'कोवेदयिष्यत्तुलनामतीतान् श्रीगौतमादीन् गणिनो व्यतीतान ।
युगोत्तमास्ते यदि नाऽभविष्यन् निदर्शयन्त स्वगुणश्रिया तान् ॥३२२॥
वीरेण ये शासनधारका महा-चार्या स्वनिर्वाणपदादनूदिता ।
एतेऽवगम्या खलु ते गुणोच्चयै राज्ञैतदीयैव शिवाय तत्कृता ॥३२३॥"इति ॥२४१-२४२॥

साम्प्रतं श्रीवीरविभुपट्टे एकोनपञ्चाशत्तमे संभूतं तथा श्रीसोमतिलकसूरेः शिष्यं पट्ट-भृतञ्च श्रीदेवसुन्दरसूरिं श्लोकपञ्चकेन चिकथयिषुरादौ तावद्दण्डकलां वक्ति--

सव्वधरणिणाहो व सचिअसेणाणीणिवसामंताईहिं,
परिवरिओ भासी सूरिउवज्झयपरणाससाहुआईहिं ।

(प्रे०) "**तुरिओ**" इत्यादि, "**तुरिओ**" त्ति, तुर्यः=देवसुन्दरसूरेः पट्टधारित्वेन चतुर्थः स्वविनेयत्वेन च द्वितीयो गच्छभृच्च "**सोमसुन्दरसूरी**" त्ति, सोमसुन्दरसूरिः=सोमसुन्दर-नामाऽऽचार्यः श्रीमुनिसुन्दरसूरिगुरुः "**सोमस्स**" त्ति, सोमस्य=चन्द्रस्य "**सोमागिइव्व**" त्ति, सौम्याकृतिरिव=शान्तमूर्तिरिव बभूव ।

तथा चोक्तं श्रीक्रियारत्नसमुच्चयप्रशस्तौ—

"श्रीसोमसुन्दर इति प्रथिताऽभिधाना, सौभाग्यभाग्यविशदा क्षमया प्रधाना ।
तुर्या सुधामधुरिमाञ्चितवाग्विलासा, सूरीश्वरा गुणिगुणे कृतनित्यवासा ॥६१॥" इति ।

तथा च व्याहारि रत्नशेखरसूरिभिः श्राद्धविधिकल्पकौमुद्यामपि—

"श्रीसोमसुन्दरगुरुप्रवरास्तुर्या अहार्यमहिमान । येभ्य सन्ततिरुच्चैर्भवति द्वेधा सधर्मभ्यः॥" इति ।

अस्य विशेषवक्तव्यतां गणभृत्त्वेनाग्रे वक्ष्यते ।

"**स**" त्ति, सः=विश्रुतिभाक् "**सिरिसाहुरयणसूरी**" त्ति, श्रिया=चारित्रादिलक्ष्म्या युक्तः साधुरत्नः=साधुरत्ननामा सूरिः=आचार्यः=श्रीसाधुरत्नसूरिः "**पंचमो**" त्ति, श्रीदेव-सुन्दरसूरेः पद्धारित्वेन पञ्चमः शिष्यत्वे च तृतीयोऽभूत् , किंविशिष्टः ? "**गोयमसरिच्छो**" त्ति, गौतमसदृशः=शासनप्रभावकादिलब्ध्येन्द्रभूतेः समानः ।

"**दीहक्खो**" त्ति, दीर्घं=विस्तीर्णमक्षि=दृष्टिर्यस्य स दीर्घाक्षिः=दीर्घदृष्टिः=कार्यपरि-णामवेत्ता "**णाणब्धी**" त्ति, ज्ञानाब्धिः=ज्ञानसागरः "**पहावगो**" त्ति, प्रभावकः=शासनो-न्नतिकारी "**गुणणिही**" गुणानां=क्षमादिलक्षणानां निधिः=निधानं=गुणनिधिः "**महावाइ**" त्ति, महावादी=वादिष्वप्रतिहतप्रभावशालीत्यर्थः, **यदुक्त गुरुपर्वक्रमे—**

"श्रीसाधुरत्नाश्च ततो मुनीन्द्रास्तदद्भुत यत्सुगुणा यदीया ।
नाऽन्यत्र सन्तोऽपि जगज्जनाना सर्वत्र कर्णातिथयो भवन्ति ॥६२॥" इति ।

"**से**" त्ति, अस्य=श्रीसाधुरत्नसुरेः "**पयपइट्ठा**" त्ति, पदस्य=सूरिपदलक्षणस्य प्रतिष्ठा= स्थापना=पदप्रतिष्ठा=सूरिपदप्राप्तिः "**भूएससुत्तिआगम मे**" त्ति भूतेशमूर्तयः=शम्भुमूर्तयः क्षिति-जल पवन-हुताशन-यजमान व्योमे-न्दु-रविरूपा अष्टौ, △आगमाः पञ्चचत्वारिंशत् ,

---

△ **विचारसारप्रकरणे--चैवम्**—सपइ आगमपणयालीससखा वट्ट तत्ति

'आयारो १ सूयगडे २ ठाण ३ समवाय ४ भगवईअग ।
नायाधम्मकहाओ ६ उवासगदसाओ ७ सत्तमय ॥३४४॥
अतगडाण च दसा ८ अणुत्तरोववाइया दसा ९ तत्तो ।
पण्हावागरण १० तह इक्कारसम विवागसुय ११ ॥३४५॥
'अट्ठारसहस्साइ पमाण इह होइ पढममग तु । सेसाइ अगाइ हवति इह दुगुणदुगुणाइ ॥३४६॥
ओवइ १२ रायपसेणीय १३ जीवाभिगमो १४ तहेव पन्नवणा ।
चदस्स १६ य सूरस्स १७ य जबुदीवस्स पन्नत्ती १८ ॥३४७॥

विशेषे प्रवरः=श्रेष्ठः=युगप्रवरः = युगप्रधानस्तस्य समः = सदृशः = युगप्रवरसमः = युगप्रधान-तुल्यः "आसि" त्ति, आसीत् । तथाहि-अमौ लक्षणवेदिबुधैरनेकशक्तिकलित-त्रिंशत-श्रेष्ठयोगिवृत-राजमन्त्रादिबहुजनपूजितयोगिना च लक्षणैस्तथा मारङ्गमन्त्रिणा देवबचनेना-ऽन्यै-रपि बहुजनैर्ज्ञातयुगवराभो बभूव । तथा चोक्त गुर्वावल्याम्-

आसि हरिमित्तसूरी तेआलीसइमजुगपहाणो ता ।
अणलमयपुराणमिए[१८८३]वीरसिवाऽहम्मि तस्स जणी ॥२५५॥(पच्छाज्जा)
कालणहंकरविमिए,[१९०३]वयं गहीअ स हवीअ जुगपवरो ।
णायज्झयणणिहिबुहे[१९१६]सग्गमिओ जोगिणीगहिले[१९६४]॥२५६॥(पच्छाज्जा)

(प्रे०) "आसि" इत्यादि, "ता" त्ति, तदा=प्रथम द्वितीयोदययुगप्रधानयन्त्रप्रदर्शित कालापेक्षया श्रीदेवसुन्दरसूरेर्निकटसमये "**तेआलीसइमजुगपहाणो**" त्ति, त्रयश्चत्वारिंशो युगप्रधानो "**हरिमित्तसूरी**" त्ति, हरिमित्रनामाचार्यः "**आसि**" त्ति, आसीत् = बभूव ।

अथा-ऽमुष्य जन्मादिसत्कवर्षाणि दर्शयति-"**तस्स**" त्ति, तस्य = श्रीहरिमित्रसूरेः "**जणी**" त्ति, जनिः = उद्भवः "**वीरसिवा**" त्ति, वीरशिवात् = चरमतीर्थपतिमोक्षगमन-कालात् "**अणलमयपुराणमिए**" त्ति, अनलाः = अग्नयस्त्रयः, मदाः = जाति-लाभ-कुलै-श्वर्य-बल-रूप-तपः-श्रुतलक्षणा अष्टौ, **तथा चोक्तं योगशास्त्रे चतुर्थे प्रकाशे**-

"जाति-लाभ-कुलै-श्वर्य-बल-रूप-तप-श्रुतै । कुर्वन्मद पुनस्तानि हीनानि लभते जन ॥२३॥" इति ।

पुराणानि=मत्स्यपुराणादीन्यष्टादश-मत्स्य-कूर्म-लिङ्ग-शिव-स्कन्दा-ग्निनामतामसपुराण-षट्क विष्णु-नारद-भागवत-गरुड-पद्म-वराहाख्यसात्विकपुराणषट्क-ब्रह्माण्ड-ब्रह्मवैवर्त-मार्कण्डेय-भविष्य-वामन-ब्रह्माह्वराजसपुराणषट्कलक्षणान्यष्टादश, एतैरङ्कैर्वामगतिमिलितैः १८८३ इति संख्यया मिते=अनलमदपुराणमिते "ऽहम्मि" त्ति, अब्दे=वर्षे वीरसंवत् १८८३ वर्षेऽभवत् ।

"**स**" त्ति, पदस्य काकाक्षिगोलकन्यायेनेहाऽप्यन्वयात् सः=श्रीहरिमित्रसूरिः "**काल-णहंकरविमिए**" त्ति, कालाः=भूत-वर्तमान-भविष्यलक्षणास्त्रयः, नभः=आकाशम्=शून्यम्, अङ्काः-१.२.३.४.५.६.७.८.९ इत्येवं रूपा नव, रविः=आदित्य एकः, **यदुक्तं काव्य-कल्पलतायाम्**-"आदित्यमेरु ... ॥२५०॥ एकैक एवाऽमी सुकविभिर्वर्ण्या ॥२५१॥" इति ।

एभिरङ्कैः पश्चानुपूर्व्या १९०३ इति सङ्ख्यया मिते=कालनभोऽङ्करविमिते=वीरसंवत् १९०१ वत्से "गहीअ" त्ति व्रतं=प्रव्रज्यां जग्राह ।

"**स**" त्ति, सः=श्रीहरिमित्रसूरिः "**णायज्झयणणिहिबुहे**" त्ति, ज्ञाताध्ययन-निधि-बुधाः=एकोनविंशति-नवै-काङ्कलक्षणा वामगत्या १९१९ इति संख्या यस्य तत्र ज्ञाताध्ययन-निधिबुधे=वीरसंवत् १९१९ शरदि "**हवीअ जुगपवरो**" त्ति, युगप्रवरः=युगप्रधानोऽभवत् ।

"**स**" त्ति, अनुवर्तते ततः सः=श्रीहरिमित्रसूरिः "**जोगिणीगहिले**" त्ति, योगिन्य-श्चतुःषष्टिः, ग्रहा नव, इला=भूमिरेका, एतेङ्काः १९६४ इति संख्या यत्र तत्र योगिनीग्रहेले = वीरसंवत्१९६४शारदे "**सग्गमिओ**" त्ति, स्वर्गं = देवलोकमितः = गतः ।

(प्रे०) "पुण्णिंदू" इत्यादि, "से" त्ति, अस्य = श्रीदेवसुन्दरसूरेः "कित्तिकण्णाकए" त्ति, कीर्तिरेव कन्या = कीर्तिकन्या = कीर्तिरमणी तस्याः कृते = कीर्तिकन्याकृते "संभुणा" त्ति, शम्भुना = ब्रह्मणा "करकंदुगो" त्ति, करस्य = हस्तस्य कन्दुकः = गेन्दुकः करकन्दुकः = पाणिभ्यां क्रीडितुं योग्यो गेन्दुकः "पुण्णिंदू" त्ति, पूर्णश्चासाविन्दुश्च पूर्णः = सकलः = सपूर्णकलश्चासाविन्दुश्च = चन्द्रः = पूर्णेन्दुः=सकलकलविधुः कृतः "कीडाविहारत्थली" त्ति, क्रीडानां नानाविधानां खेलानां लीलानां वा विहारस्य=परिसर्पस्य = ईरियायाः= गतेर्वा स्थली = स्थानं क्रीडाविहारस्थली=केलियोग्यस्थानं "हिमगिरी" हिमगिरिः = कैलासाद्रिः क्रियते स्म । "घरदीहिआ" गृहे = गृहसमीपे दीर्घिका = वापी जलाशयविशेषरूपा गृहदीर्घिका = खीरद्धी" त्ति, क्षीराब्धिः = क्षीरसमुद्रो व्यधीयत 'पिअसही" त्ति, प्रिया = प्रेयसी चासौ सखी = सध्रीची वयस्या वा प्रियसखी = वल्लभालिः "अच्चुत्तमा भारती" त्ति, अत्युत्तमा = उच्चैस्तमा श्रेष्ठतमा भारती = सरस्वती विहिता । "सेज्जा" त्ति, शय्या "ऽऽगयर दंतवलही" त्ति, आशागजानां = दिक्कुञ्जराणां रम्याणां = मनोज्ञानां दन्तानां = रदाना वलभ्यः = वलभयो = गोपानस्यः यस्यां साऽऽशागजरम्यदन्तवलभी, यद्वा आशागजानां=दिक्कुञ्जराणां रम्याः=मनोज्ञाः दन्ताः = रदा एव वलभ्यो यस्यां साऽऽशागजरम्यदन्तवलभी तादृशी "सेज्जा" त्ति शय्या = शयनविशेषा कृता । "पंचालीजुगल पि" त्ति, पञ्चालीयुगलं = पुत्रिकायुग्मं देशीयभाषया 'पूतली' इति संज्ञकं द्वयं 'सकरसिवारूवं' ति, शङ्करशिवारूपं=महादेवपार्वतीलक्षणं "कयं" त्ति, कृतं = विहितम् । निखिलविष्टपव्याप्तयशा इति भावः । तथा चोक्तं गुर्वावल्याम्—

"सर्वत्र प्रसरभाञ्जि यशांसि, क्षीरनीरनिचयन्ति यमीशाम् ।
तानि तत्र परसूरिततीना, शीकरावलिरिवाथ विभान्ति ॥३१९॥
तेषां परेषामथ सूरिराजा, चिकीर्षिता विश्वकृता यशांसि ।
उन्मानवीजानि विचिक्रिरे प्राक्, पूर्णेन्दुबिम्बं किल तारकाश्च ॥३२०॥
उत्कल्लोलैर्द्विरदरदनच्छेदकुन्दावदातैः, शुक्लाद्वैत त्रिजगति गमिते तैर्यशोभिः प्रपूर्य ।
अन्येषा चेद्भविवृतति तदा तल्लवा नैव लभ्या, सत्ता यस्माद्विरमति सरिता सिन्धुना सङ्गतानाम् ॥३२१॥
नाऽल यस्याहिनेता हरगिरिरमल कर्णिकाबन्धबन्धु-र्माद्यद्दिगदन्तिदन्ता दलततिरतुला पूर्णचन्द्रश्च कोश ।
ज्योत्स्नापूर पराग सितकरकिरणा केसरालीव भान्ति, स्फीत तत्तद्यशोऽब्ज त्रिभुवनसरसि व्योमभृङ्गानुषङ्गि ॥३२४॥" इति ॥२४४॥

अथ श्रीदेवसुन्दरसूरिमेव स्तुवन्पथ्या-ऽऽर्यारूपं तृतीयश्लोकमाह—

जो झाणत्थगुरूणं, गणभारुद्धरणजोग्गपत्तत्थं ।
खुड्डो वि थंविकुत्तो, विसयगुणोऽणंतभागजुओ ॥२४५॥(पच्छाज्जा)

यतते तावच्चन्द्रोद्योते जाते सति निद्रालुभिरपि श्रीगुरुभीरजोहरणेन प्रमृज्य पार्श्वं परावर्तितम्, तद् दृष्ट्वा अहो। निद्रायामपि क्षुद्रपाणिकृपापरमेनमपराध्य 'कस्या गतौ मे गति" इति विचारणया परलोकभीतो गुरुपादयोर्निपत्य "क्षमध्व मेऽपराध" मिति वचसा गुरुं प्रबोध्य निजव्यतिकरं कथितवान्। सोऽपि गुरुभिर्मधुरवाचा तथोदीरितो यथा प्रव्रजित इति वृद्धवच।" इति। **तथैव श्रीहीरसौभाग्येऽपि—**

"घूकैरर्कमिव द्विषद्भिरुदये हन्तुं परै प्रेषित, कश्चिच्चन्द्ररुचा प्रमादविमुख स्वापेऽपि दृष्ट्वा प्रभुम्। क्षाम्यन्त गदिताखिलव्यतिकरं संबोध्य यो दीक्षयान्, स श्रीमानथ सोमसुन्दरगुरुर्भेजे तदीयं पदम्॥१२३॥" इति।

यत्तदोर्नित्याऽभिसम्बन्धात् **"सो"** त्ति, सः **"सोमसुन्दरमुणीसवई"** त्ति सोमसुन्दरः = सोमसुन्दरसंज्ञकश्चासौ मुनीनां=यतीनामीशः=प्रभुः=मुनीशः=सूरिस्तेषां पति=स्वामी= मुनीशपतिः=सूरीश्वरः सोमसुन्दरमुनीशपतिः **'देवाइ 'दरमुणीसपयज्जहंसो"** त्ति, देव आदौ यस्य सुन्दर इति नाम्नः पदस्य स देवादिः=देवपूर्वः स चासौ सुन्दरश्च देवादिसुन्दरः= देवसुन्दर इत्यर्थः स चासौ मुनीशः=सूरिर्देवादिसुन्दरमुनीशस्तस्य पदं = पट्ट एवाऽब्जं = कमलं तस्मिन् देवादिसुन्दरमुनीशपदाब्जे हंसः=मरालः=देवादिसुन्दरमुनीशपदाब्जहंसः=श्रीदेवसुन्दरसूरेः पट्टरूपे कमले हंससमानः, एतावता श्रीदेवसुन्दरसूरिपट्टभृदिति भावः **"जयउ"** त्ति, जयतु=मोहादिरिपुजयनशीलोऽस्तु। **तथा च प्रतिपादितम्—**

"श्रीजैनशासनसमुद्धरणैकधीरा, श्रीदेवसुन्दरयुगप्रवरा विरेजु।
तेषा पदे जनमुदे विहिताऽवतारा, श्रीसोमसुन्दरगुरुप्रवरा जयन्ति॥ ॥
श्रीचन्द्रगच्छगगणाङ्गणभानुमन्त, सौभाग्यभाग्यविलसद्गुणऋद्धिमन्त.।
श्रीसोमसुन्दरगुरुप्रवरा जयन्ति, यानादरेण मुनय स्तवन जयन्ति॥" इति।

तथा चोक्तं गुर्वावल्याम्--

"बिभ्रतेऽथ नवता जयिन' श्री-सोमसुन्दरगुरुक्रमपद्मा' ५१।
सस्मृता अपि विदध्युरनन्त, शीतिमानमघतापहृतेर्ये॥३९१॥
सरस्वतीमाऽऽगमवार्द्धिसङ्गता-मवाप्य - येषा सुरसोर्मिवर्मिताम्।
पुपूषया स्वस्य नु सन्मनोगण स्त्यजेन्न तीर्थं प्रियमेलक विदन्॥३९२॥
न नाममात्रादपि तु स्फुरत्प्रभै-र्गुणप्रभावैर्नरसिंह एव स।
महोत्सवैर्य कलिदैत्यहिंसनात, क्षमाभृतोऽमून् सुपदे १४५७ न्यवीविशत्॥३९३॥
तान् दूत्येवात्मकीर्त्या विशदसुभगताख्यापनादुत्सुकत्व,
दत्त्वा नीता भजन्ते सकलसुमनसा यन्मनोवृत्तिनार्य।
लब्ध्वागस्तद्गुरुणा निजनुतिसमयावाड्मुखत्वावलोका
क्रुद्धा प्रोद्यद्गुणौघा निगदितुमिव तत्कर्णपङ्क्तौ विशन्ति॥३९४॥
सौभाग्यतस्तेऽभ्यधिका हरे पितु-र्वैताढ्यविद्याधरसेव्यताजुष।
भजन्ति वामा न पर क्षमाभृता, ध्यायन्ति यत्तान् सुमनोऽवला अपि॥३९५॥
तै पाल्यमाने जिनशासनेऽधुना, नेशा विधातु कुमतव्रजा व्यथाम्।
प्रकाशित पद्मवन विवस्वता, पराभिभूयेत तमोभरैर्न यत॥३९६॥

(प्रे०) "पुण्णिंदू" इत्यादि, "से" त्ति, अस्य = श्रीदेवसुन्दरसूरेः "कित्तिकण्णाकए" त्ति, कीर्तिरेव कन्या = कीर्तिकन्या = कीर्तिरमणी तस्याः कृते = कीर्तिकन्याकृते "संभुणा" त्ति, शम्भुना = ब्रह्मणा "करकंदुगो" त्ति, करस्य = हस्तस्य कन्दुकः = गेन्दुकः करकन्दुकः = पाणिभ्यां क्रीडितुं योग्यो गेन्दुकः "पुण्णिंदू" त्ति, पूर्णश्चासाविन्दुश्च पूर्णः = सकलः = सपूर्णकलश्चासाविन्दुश्च = चन्द्रः = पूर्णेन्दुः=सकलकलविधुः कृतः "कीडाविहारत्थली" त्ति, क्रीडानां नानाविधानां खेलानां लीलानां वा विहारस्य=परिसर्पस्य = ईरियायाः= गतेर्वा स्थली = स्थानं क्रीडाविहारस्थली=केलियोग्यस्थानं "हिमगिरी" हिमगिरिः = कैलासाद्रिः क्रियते स्म । "घरदीहिआ" गृहे = गृहसमीपे दीर्घिका = वापी जलाशयविशेषरूपा गृहदीर्घिका = खीरब्धी" त्ति, क्षीराब्धिः = क्षीरसमुद्रो व्यधीयत 'पिअसही" त्ति, प्रिया = प्रेयसी चासौ सखी = सध्रीची वयस्या वा प्रियसखी = वल्लभालिः "अच्चुत्तमा भारती" त्ति, अत्युत्तमा = उच्चैस्तमा श्रेष्ठतमा भारती = सरस्वती विहिता । "सेज्जा" त्ति, शय्या "ऽऽगयर दतवलही" त्ति, आशागजानां = दिक्कुञ्जराणां रम्याणां = मनोज्ञानां दन्तानां = रदाना वलभ्यः = वलभयो = गोपानस्यः यस्यां साऽऽशागजरम्यदन्तवलभी, यद्वा आशागजानां=दिक्कुञ्जराणां रम्याः=मनोज्ञाः दन्ताः = रदा एव वलभ्यो यस्यां साऽऽशागजरम्यदन्तवलभी तादृशी "सेज्जा" त्ति शय्या = शयनविशेषा कृता । "पंचालीजुगल पि" त्ति, पञ्चालीयुगलं = पुत्रिकायुग्मं देशीयभाषया 'पूतली' इति संज्ञकं द्वयं 'सकरसिवारूवं' ति, शङ्करशिवारूपं=महादेवपार्वतीलक्षणं "कयं" ति, कृतं = विहितम् । निखिलविष्टपव्याप्तयशा इति भावः । तथा चोक्तं गुर्वावल्याम्--

"सर्वत प्रसरभाञ्जि यशासि, क्षीरनीरनिधयन्ति यमीशाम् ।
तानि तत्र परसूरिततीना, शीकरावलिरिवाथ विभ्रान्ति ॥३१९॥
तेषा परेषामथ सूरिराजा, चिकीर्पिता विश्वकृता यशासि ।
उन्मानबीजानि विचिक्रिरे प्राक्, पुर्णेन्दुबिम्बं किल तारकाश्च ॥३२०॥
उत्कल्लोलैर्द्विरदरदनच्छेदकुन्दावदातै, शुक्लाद्वैत त्रिजगवि गमिते तैर्यशोभि प्रपूर्य ।
अन्वेषा चेद्वरिवृतति तदा तलवा नैव लभ्या, सत्ता यस्माद्विरमति सरितां सिन्धुना सङ्गतानाम् ॥३२१॥
नाऽल यस्याहिनेता हरगिरिरमल कर्णिकाबन्धबन्धु-र्माद्यद्दिगदन्तिदन्ता दलततिरतुला पूर्णचन्द्रश्च कोश ।
ज्योत्स्नापूर पराग सितकरकिरणा केसरालीव भान्ति, स्फीत तत्तद्यशोऽब्ज त्रिभुवनसरसि व्योमभृङ्गानुषङ्गि ॥३२४॥" इति ॥२४४॥

अथ श्रीदेवसुन्दरसूरिमेव स्तुवन्पथ्या-ऽऽर्यारूपं तृतीयश्लोकमाह--

जो झाणत्थगुरूणं, गणभारुद्धरणजोग्गपत्तत्थं ।
खुड्डो वि अंविकुत्तो, विसयगुणोऽणंतभागजुओ ॥२४५॥(पच्छाज्जा)

सारूपाणि चतुर्दश, **यदुक्तमभिधानचिन्तामणौ**–"...... पूर्वाणि चतुर्दशाऽपि पूर्वगते ॥२४६॥
उत्पादपूर्वमग्रायणीयमथ वीर्यत प्रवाद स्यात । अस्तेर्ज्ञानात् सत्यात् तदा-ऽऽत्मन कर्मणश्च परम्। ।२४७॥
प्रत्याख्यानं विद्या-प्रवाद-कल्याणनामधेये च । प्राणावाय च क्रिया-विशालमथ लोकबिन्दुसारमिति ॥" इति।

आभ्यामङ्काभ्यां पश्चानुपूर्व्या स्थापिताभ्यां १४३० इति सङ्ख्यया प्रमिते विक्रम-संवत् १४३० "**वासम्मि**" त्ति, वर्षे = हायने "**जाओ**" त्ति, जातः = उत्पन्नः ।

'**स तिमोलिमोलिविदिसाखोणीमिए**" त्ति, शक्राश्वास्यानि=इन्द्रवाजिमुखानि सप्त, तिमौलिमौलयस्त्रयः, विदिशः = आग्नेयी-नैऋ्ती-वायव्यै--शानीरूपाश्चतस्रः क्षोणी= भूमिरेका, एतैरङ्कैः प्रातिलोम्येन न्यस्तैर्मिते = शक्राश्वास्यत्रिमौलिमौलिविदिक्क्षोणीमिते = विक्रमसंवत्१४३७ वर्षे "**स** " त्ति, संयमी = व्रती बभूव ।

उक्तञ्च श्रो मसौभाग व्ये चतुर्थसर्गे–

"अद्रीश्वराग्न्यम्बुधिचन्द्रसमिते, भूते प्रमोदप्रकरेण वत्सरे ।
सम भगिन्या गिरिदेवताद्यता, सोमेन दीक्षा जगृहे महामहै ॥५६॥" इति।

"**णहणीलकंठवयणब्बम्हस्सधारीमिए**" त्ति, नभः = व्योम = शून्यम् , नीलकण्ठ-वदन नि = रुद्रमुखानि पञ्च, ब्रह्मास्यानि = विधातृमुखाश्चत्वारः, धात्री = भूरेका, एतैरङ्कैः पश्चानुपूर्विक्रमस्थितैः १४५० इति सङ्ख्यया मितो यो वर्षस्तस्मिन् = नभोनीलकण्ठवदन ।-ऽस्यधात्रीमिते = विक्रमसंवत् १४५० शरदि "**उज्झायो**" त्ति, उपाध्यायः = पाठकः चतुर्थ-पदवीघर इति यावत्संजातः । **तथा चोक्त श्रीसोमसौभाग्यकाव्ये पञ्चमसर्गे**--

"श्रीवाचकोत्तमपद खशराब्धिचन्द्र सवत्सरे विगतमत्सरचित्तवृत्तो ।
अब्दे समस्य समभूत नखसंमिताऽब्दे, शाब्देन सन्मधुरिमाऽतिशयेन तस्य॥१४॥" इति ।

"**वार बरीइवसुहे**" त्ति, वाराः = आदित्य-सोम-भोम-बुद्ध-गुरु-शुक्र-शनि-लक्षणाः सप्त, कलम्बाः = शराः पञ्च, रीतयः = वैदर्भी-गौडी-पाञ्चाली-लाटीलक्षणाश्चतस्रः, वसुधा = पृथ्व्येका, एतेऽङ्काः सव्येतरक्रमेण लब्धा यत्र तत्र वारकलम्बरीतिवसुधे = विक्रम-संवत् १४५७ वर्षे "**सूरी**" त्ति, सूरिः = आचार्यो भवति स्म ।

तथा चाऽभ्यधायि सोमसौभाग्यकाव्यप सर्गे–

"श्रीदेवसुन्दरगुरुर्गरिमाभिराम , श्रीवाचकस्य कलिशत्रुभयानकस्य ।
कर्णेसकर्णमुकुटस्य स सूरिमन्त्र, संन्यस्यति स्म भुवि विस्मयकारिशक्ति ॥५०॥
वर्षे कुलागलशिलीमुखवारिराशि-पीयूषदीधितिमितेऽप्रमिते प्रमोदै ।
श्रीसोमसुन्दरगुणोज्ज्वलवाचकानामा-चार्यवर्यपदमद्भुतकारि जज्ञे ॥५१॥" इति ।

"**णदकविज्जे**" त्ति, नन्दा नव, अङ्का नव, विद्याः षडङ्गादिलक्षणाश्चतुर्दश,

तथा चाऽभ्यधायि श्रीहेमचन्द्रसूरिभिः स्वनिर्मितेऽभिधानचिन्तामणौ–

"से" त्ति, अस्य=श्रीदेवसुन्दसुरेः "तिभवेहिं मुत्ति" ति, त्रिभवैः=त्रिभिर्भवैर्मुक्तिं=मोक्षं "साहीअ" त्ति, अकथयत् ।

। चाऽत्र गुर्वावली—

धाराभिधश्रावकपुङ्गवेन, पक्षोपवासैर्वशित सुपर्वा ।
प्रपृच्छय सीमन्धरसार्वमाख्यत्, त्रिभिर्भवैर्मुक्तिपदं हि येषाम् ॥३११॥" इति ॥२४६॥

अथ देवसुन्दरसुरेर्जन्मादिकालमानमाह पथ्यार्यया—

लेसंकहरक्खिखमे-ऽद्दे[१३९६] जाओ स विकहऽब्भवेकुंठे
साहू हवीअ सूरी, रावणकरपिंडपयडिमिए[१४२०]॥२४७॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०) 'लेसं०" इत्यादि, "स" त्ति, स=श्रीदेवसुन्दरसूरिः "लेसंकहरक्खिखमे" त्ति, लेश्याः=कृष्ण-नील-कापोत-तेजः-पद्म-शुक्लाख्याः षट्, अङ्काः—एक-द्वि त्रि-चतुः-पञ्च-षट्-सप्ता-ऽष्ट-नवसङ्ख्यात्मका नव, हराक्षीणि=महादेवनेत्राणि त्रीणि, क्ष्मा क्षमा वा=पृथ्व्येका, एतेऽङ्का विपरितक्रमलब्धा यत्र तत्र लेश्याङ्कहराक्षिक्ष्मे लेश्याङ्कहराक्षिक्षमे वा=विक्रमसंवत् १३९६ "ऽद्दे" त्तिः अब्दे=हायने "जाओ" त्ति, जातः=जन्मभाग्बभूव ।

"विकहऽब्भवेकुंठे" त्ति विकथाः=भक्तकथा—देशकथा-राजकथा-स्त्रीकथारूपाश्चतस्रः, अभ्रं=गगनं=शून्यं, वैकुण्ठाश्चतुर्दश, यदुक्तमभिधानचिन्तामणिसत्कशेषनाममालायाम्—"चतुर्दश तु वैकुण्ठाः" इति । एतैरङ्कैः पश्चानुपूर्व्या न्यस्तैर्यः संवत्सरो जायते तत्र विकथाऽभ्रवैकुण्ठे=विक्रमसंवत् १४०४ शरदि "साहू" त्ति, साधुः=यतिः "हवीअ" त्ति, अभूत् ।

"रावणकरपिंडपयडिमिए" त्ति, रावणकराः=दशमुखहस्ता विंशतिः, पिण्डप्रकृतयः=गति-जाति-शरीराङ्गोपाङ्ग-बन्धन-संघातन--संघयण-संस्थान खगत्या-ऽऽनुपूर्वि-वर्ण--गन्ध-रस-स्पर्शलक्षणाश्चतुर्दश, आभ्यामङ्काभ्यां वामगतिगदिताभ्यां १४२० इति संख्यया मितं यत्र तत्र रावणकरपिण्डप्रकृतिमिते=विक्रमसंवत् १४२० वर्षे "सूरी" त्ति, सूरिः=आचार्यः "हवीअ" त्ति, पदं घण्टालालान्यायेनाऽत्राऽपि सम्बन्धात् "हवीअ" त्ति, अभवत् ।

तथा च प्रत्यपादि मुनिसुन्दरसूरिभिः—

"पणनवाग्निविधुवत्सर१३९६जाता, प्राव्रजन् जलधिखाब्धिमहीपु १४०४ ।
ये महेश्वरपुरे नखरत्ने १४२०, पत्तने च पदसम्पदमापु ॥३०१॥" इति ॥२४७॥

अथ श्रीदेवसुन्दरसूरेः श्रीदेवसुन्दरसूरिणा स्वपदे सूरित्वेन स्थापितं प्रधानशिष्यपञ्चकं श्लोकसप्तकेनाऽऽविष्कुर्वन्नादौ तावत्शार्दूलविक्रीडितं निगदन्नाह—

णिसुंदराभिहोऽज्जो सूरी जयसुंदराभिहो बीओ ।
तइओ य भुवणसुंदरणामो जिणसुंदरक्खोऽन्तो ॥२६०॥

(पच्छाज्ञा) (जुग्गं)

(प्रे०) "चउरो" इत्यादि, "ऽस्स" त्ति, अस्य श्रीसोमसुन्दरसूरेः "चत्तारो" त्ति, चत्वारः=चतुःसङ्ख्याकाः "सीसा" त्ति, शिष्याः=विनेयाः "आसि" ति आसन् ।

अथोत्प्रेक्षते "चउरो दिसा" त्ति, चतस्रो दिशः=आशाः "जुगव" त्ति, युगपद्=एकस्मिन्नेव काले "विजेउं" त्ति, विजेतुम्=स्वायत्तीकर्तुमिव चत्वारः शिष्या अभूवन् ।

किम्भूताः ? "वाईहभंजनहरी" त्ति, वादिनः=प्रतिपक्षिण एवेभाः=स्तम्बेरमास्तेषां भञ्जने=विनाशने=व्यापादने हरयः=केशरिणो वादीभभञ्जनहरयः "णाणद्धी" त्ति, ज्ञानानां=मोक्षसाधनानां सम्यग्ज्ञानानामब्धयः=समुद्रा ज्ञानाब्धयः "णेगगथयरा" त्ति, नैकानां=बहूनां ग्रन्थानां शास्त्राणां कराः=रचयितारः=नैकग्रन्थकराः । के च ते ? "मुणिसुंदराभिहोऽज्जो ूो" त्ति, "सूरी" त्ति पदमुत्तरत्राऽपि प्रत्येकमभिसम्बध्यते, आद्यः=तेषां चतुर्णां मध्ये प्रथमः मुनिसुन्दराऽभिधः=मुनिसुन्दरसंज्ञकः सूरिः=आचार्यो बभूव । "बीओ" त्ति, द्वितीयः "जय दराभिहो" त्ति, जयसुन्दराभिधः=जयसुन्दराह्वः कृष्णसरस्वतीबिरुदधारकः "तइओ य भुवणसुंदरणामो" त्ति, तृतीयो भुवनसुन्दरनामा महाविद्याविडम्बनटिप्पनकारकः चकारश्चोत्तरत्र योज्यः । "जिणसु दरक्खोऽन्तो" त्ति, अन्त्यश्च जिनसुन्दराख्यः=जिनसुन्दरनामा कण्ठगतैकादशाङ्गीसूत्रधारको दीपावलिकाकल्पादिकारकश्चाऽभूत् ॥२५९-२६०॥

एतर्हि श्रीत्रैशलेयप्रभोरेकपञ्चाशत्तमं पट्टधरं व्याजिहीर्षुः श्रीसोमसुन्दरसूरिपट्टभृतं तच्छिष्यञ्च श्लोकचतुष्टयेन स्तुवन्नादौ शार्दूलविक्रीडितमाह--

अत्तं कालिसरस्सइ त्ति बिरुदं, जेणं पबुद्धव्वजा;
णाआ वट्टुलिगाणऽडुत्तरसयं, साहीअ जो धीणिही ।
सूरीसो मुणिसुंदराभिहगुरू, संविग्गमोलीसरो,
सो भासी गुरुसोमसुन्दरपए, हारव्व वच्छत्थले ॥२६१॥ (सद्दूलविक्कीडियं)

(प्रे०) 'अत्त" इत्यादि, "सो" त्ति, सः=प्रसिद्धिभाक् "मुणिसुंदराभिहगुरू" त्ति, मुनिसुन्दराभिधः=मुनिसुन्दरनामा गुरुः=मुनिसुन्दराऽभिधगुरुः "सूरीसो" त्ति, सूरि--

शासनस्या = ऽर्हत्प्रवचनस्य उन्नतिं = विभूतिं करोतीत्येवं शीलः = उन्नतिकरः = प्रभावनाकारी शासनोन्नतिकरः=जनबोध-दीक्षा-प्रतिष्ठाद्यनेकविधकार्यकरणेन चरमतीर्थपतेस्तीर्थस्य विभूषक इति यावत्=भव्यव्जोष्णगुश्चासौ शासनोन्नतिकरः=भव्याव्जोष्णगुशासनोन्नतिकरः, "साहूण विज्जा-गुरू" त्ति, साधूनां = सोमसुन्दरसूरि-मुनिसुन्दरसूरिप्रमुखाणां विद्यागुरुः = ज्ञानदानप्रद आसीत्।

उक्तञ्च गुरुपर्वक्रमे-

"यद्वैराग्यमखण्डितं वहुविध नित्य तपो यत्परं, बाहुश्रुत्यमुदारविस्मयकरं यच्चच शान्त मन ।
योऽन्यो वाऽप्यभवत् गुणो गुरुवरे श्रीज्ञानत सागरे, तत्सर्वं नहि वीक्ष्यते गणिगणेऽन्यस्मिन् कदाऽपि क्वचित ॥५८॥" इति ।

तथैव चाऽभाणि गुर्वावलीकृता--

"श्रीज्ञानसागरगुरुप्रभवो ५१ बभूवु-राद्या यदीक्षक्बुधा इति चिन्तयन्ति ।
मुक्तोऽपि गौतमगुरु समवातरत्त्व, वीक्ष्याऽन्वय सुगतवत् किल दु.स्थमेव ॥३२७॥
अन्त साम्यसुधाह्रदप्रसृमरा किं प्रोच्चवीचीचया, हेलापीतजिनागमाम्बुधिभुव प्रोद्गारमाला: किमु ? ।
कवा वक्त्रसुधाद्यु तेर्द्यु तिभरा पीयूषदिग्धा सता-मेवं स्मोदयते विकल्पनिकरो यद्देशनागीर्व्रहो । ॥३२८॥
संमील्याऽखिलसाम्यकाम्यकणकान् विश्वस्य किं योगिना,
सारान् काञ्चन वा निचित्य जगता पीयूषवीचीकणान् ।
सर्वद्वीपसुधांशुमण्डलमिलतसौम्यत्वलक्ष्मीलवान्,
किंवाऽऽदाय विनिर्मितेयमिति यन्मूर्त्तिर्बु धैस्तर्किता ॥३२९॥
शरण समसूरिसम्पदा हरण कल्मपसहते सताम् । वरण खलु निर्वृ तिश्रिया न मुदे कस्य यदीयदर्शनम् ॥
असमा जगति श्रुतश्रियो न पथे सयमशुद्धना गिराम् ।
समतीततुला च सौम्यतेत्यभवस्ते जगदुत्तरा गुणै ॥३३१॥
किं मूर्तिं नवम श्रितो रसपति सिद्धान्ततत्त्वश्रिया, कोश किं गुणसम्पदा मितिमुचाचन्द्रद्यु ता किं निधि ? ।
जीवातु कलिविद्विपा प्रतिहत श्रीजैनधर्मस्य किं दुर्ग किं भवभीतजन्तुनिवहस्येत्यूहितास्ते बुधै ? ॥३३२॥
न ग्रामे न कुले तनौ न न मुनौ, तेषा मनो बन्धभाक्,
शय्याऽन्नौपधपानकादि नितरा, तै शुद्धमेवाऽऽहृतम् ।
चातुर्वैद्यरमा ह्यधारि भुवनोत्कृष्टा न चैनन्मद-
स्तत्त्व तेन वदाम्यहो । जिनमतस्याऽऽसूपमास्तेऽभवन् ॥३३३॥
श्रीसोमसुन्दरगुरुप्रमुखास्तदीय त्रैवैद्यसागरसगाधमिहावगाह्य ।
प्राप्योत्तरार्थमणिराशिमनर्घ्यलक्ष्मी-लीलापद प्रदधते पुरुपोत्तमत्वम् ॥३४५॥
न स्थैर्य सुमन पथे प्रविदधद्, नैवाऽपि वर्णोज्ज्वल,
प्रोद्यच्चापल उल्लसज्जडतया, यो निम्नगोल्लासकृत ।
यद् गर्ज्जत्यपि मादृशो जलदवत् सोच्चै पद सश्रित,
तत्त्रैवैद्यमहाब्धिशीकरकणाऽऽदानस्य तज्जृम्भितम् ॥३४६॥
सारस्वते प्रवाहे तेषा शोप गतेऽधुना कालात् । शिष्यैरुरीक्रियन्ते विद्याम्भकूपकैर्लोका ॥३४७॥
दीनाद्युद्धरणात्पदोत्सवकृते-स्तीर्थेपु यात्रादिभि, सत्रैर्दु स्समये गुरुप्रणमनै-र्भक्त्या सदाऽऽवश्यकैः ।

त्ति, अधारयत्=वहति स्म सहस्रावधानानीत्यर्थः । क इव ? "रविव्व" त्ति, रविरिव = यथा रविः = सूर्यो बाल्येऽपि "रस्सी" त्ति, रश्मीन् = किरणानि सहस्रं रश्मीन् धारयति ।

तथा च प्रत्यपादि श्रीदेवविमलगणिभिः--

"बाल्येऽपि रश्मीन्सरसीजबन्धुरिवावधानानि वहन् सहस्रम् ॥" इति ।

"जो" त्ति, यः = श्रीमुनिसुन्दरप्रभुः "विहिणा" त्ति, विधिना शास्त्रोक्ताऽनुष्ठानेन प्रकारविशेषेण 'सूरिमंतस्स' त्ति, सूरिमन्त्रस्य 'आराहण' त्ति, आराधनां = 'जिणिंदवार" त्ति, जिनेन्द्रवारं = चतुर्विंशतिवारं "करीअ" त्ति, चकार = विदधाति स्म ।

तत्रा-ऽपि चतुर्दशवारं तदुपदेशेन स्वस्वदेशेषु चम्पकराजदेप(य)धारादिराजभिरमारिः प्रवर्तिता । सीरोहीदिशि सहस्रमल्लराजेनामारिप्रवर्तने कृते मुनिसुन्दरसूरिणा तिड्डुकोपद्रवो निवारितः ।

तथा चोक्तं तपागच्छपट्टावल्यां महोपाध्यायधर्मसागरगणिभिः-

"..... चतुर्विंशतिवार२४विधिना सूरिमन्त्राराधक । तेष्वपि चतुर्दशवार यदुपदेशत स्वस्वदेशेषु चम्पकराजदेप(य)धारादिराजभिरमारि प्रवर्तिता ॥ सिरोहीदिशि सहस्रमल्लराजेनाऽप्यमारिप्रवर्तने कृते येन तिड्डुकोपद्रवो निवारित' ॥" इति ।

तथा सोमसौभाग्ये दशमे सर्गेऽपि-

"श्रीसोमसुन्दरयुगोत्तमसूरिपट्टे, श्रीमान् रराज मुनिसुन्दरसूरिराज ।
श्रीसूरिमन्त्रवरसस्मरणैकशक्ति र्यस्याभवद् भुवनविस्मयदानदक्षा ॥ ॥
श्रीरोहिणीति विदिते नगरे ततेति-पश्चात्कृते किल चमत्कृतहृत् पुरेश ।
ऊरीचकारमृगयाकरणे निषेध, प्रावर्तयन्निखिलनीवृति चाप्यमारिम् ॥ ॥" इति ॥२६२॥

पुनरपि तमेव स्तुवन्नुपजातिं निर्वक्ति-

वारीअ जो संतियरत्थवेणं । दुज्जोगिणीकारिअमारिरोगं ।
जहंकुसेणं करडिं णिसादी । पचंडसामत्थपयावपुंजो ॥२६३॥(उवजाई)

(प्रे०) "वारीअ" इत्यादि, "जो" त्ति, यः = श्रीमुनिचन्द्रसूरिः "पचंडसामत्थपयावपुंजो" त्ति, प्रचण्डानाम् = उग्राणां सामर्थ्यानां शक्तिविशेषाणां प्रतापानां=तेजसाञ्च पुञ्जः=उत्करः=प्रचण्डसामर्थ्यप्रतापपुञ्जः = प्रौढशक्तिशाली = उग्रौजस्वीश्चेत्यर्थः "संतियरत्थवेण" ति, शान्तिकरस्य "संतिकरं संतिजिणं"मित्यादि शान्तिकरनाम्नः स्तवेन=स्तोत्रेण=स्तवनमाहात्म्येन=शान्तिकरस्तवेन = शान्तिकरसञ्ज्ञकस्तुतिप्रभावेण "दुज्जोगिणीकारिअमारिरोग" ति, दुर् = दुष्टा चासौ योगिनी दुर्योगिनी = दुराशयव्यन्तरी देवीविशेषा ताभिः कारितः = उत्पादितो मारेः = मरकस्य-जनसंहारलक्षणस्य रोगः = दुर्योगिनी-

पश्चिमो-त्तररूपाश्चत्वारः, इला=भूमिरेका, एतेऽङ्का वामगतिमिलिता १४०५ इति सङ्ख्या यत्र तत्र पाण्डवबियदाशैले=विक्रमसंवत् १४०५ "ऽद्दे" त्ति, अब्दे=संवत्सरेऽभूत ।

"वयं" ति, व्रतं=दीक्षा "वाइसिअयरहरिम्मि" त्ति, वाजिनः=वाहाः सप्त, सितकरः= चन्द्र एकः, हरयः=इन्द्राश्चतुर्दश, एतैरङ्कैः प्रातिलोम्येन भणितैर्योऽब्द उत्पद्यते तस्मिन्=वाजि-सितकरहरौ=विक्रमसंवत् १४१७ शरद्यजायत ।

"स" त्ति, स=श्रीज्ञानसागरसूरिः "इंदुविहिमुहसरे" त्ति, इन्दुरेकः, विधिमुखाः= ब्रह्मास्यानि चत्वारि, स्वराः=अकारादयश्चतुर्दश, एतेऽङ्का यत्र तत्रेन्दुविधिमुखस्वरे वामगति-मिलिते १४४१ वर्षे "सूरी" त्ति, सूरिः=आचार्यो बभूव ।

"रिउदिवसणीइकुम्मि" त्ति, ऋतुदिवसानि षष्टिः, एकस्यर्तोर्मासद्वयात्मकत्वात्, नीतयः=उपायाः=साम-दाम-भेद-दण्डात्मकाश्चतस्रः, न्यगादि **श्रीहेमचन्द्रसूरिभिर्हैम्याम्**– "साम-दाम–भेद–दण्डा उपाया" इति । **तथैवाऽमरकोशेऽपि**–"सामदाने भेददण्डावित्युपाय-चतुष्टयम्" इति । कुः=धरण्येका, एभिरङ्कैः पश्चानुपूर्व्या स्थापितैर्यो वर्षो भवति तत्र ऋतुदिव-सनीतिकौ=विक्रमसंवत् १४६० वर्षे "तुरिअदिव" ति, तुर्यदिवं=चतुर्थदेवलोकमयाञ्चकार ।

तथा च कथितं मुनिसुन्दरपादैः–

'ते लेभिरे जन्म मनुप्रमाऽब्द-शतेषु यातेष्वधिकेषु बाणै १४०५ ।
हयेन्दुभि १४१७ सयममिन्दुवेदै १४४१, पदं खतर्कैस्त्रिदिव १४६० च तुर्यम् ॥३३५॥
स्वमायुरन्ते स्वयमाकलय्य ते, निषिध्य भक्त बहुसङ्घसाक्षिकम् ।
सवर्मिता साम्यसुधारसोर्मिभि-र्यद्योगिमुद्रा विशदा दधुस्तदा ॥३३६॥
यच्छ्वासकासौ च कफाऽन्वितौ द्रुत, व्यनेशता कोटिगयोगविद्रुतौ ।
तेषा हि गम्या तदनुत्तरागति, सवादमात्र त्रिदशोक्तय पुन ॥३३७॥ ताश्चेमा -
खरतरपक्षश्राद्धो, मन्त्रिवरो गोवल सकलरात्रिम् । अनशनसिद्धौ भक्त्या, गुरुकर्पूरादिभोगकर ॥३३८॥
ईषन्निद्रामाप्यापश्यत्स्वप्ने सुदिव्यरूपधरान् । तानिति वदतस्तुर्ये, कल्पे स्म शक्रसमविभवा ॥३३९॥ युग्मम् ।
श्रीगुणरत्नगुरून् ये, स्वप्ने स्वरराजरूपिणो दृष्टा । शिष्टाशिष्टविशेषा-द्युपलम्भ लम्भयामासु ॥३४०॥
नैमित्तिकोऽपि वीरो-ऽपश्यत तुर्यस्वरिन्द्रसमविभवान् । तदनुत्तरगतिलाभाद्, युगोत्तमास्तान् विनिश्चिनुम ॥३४१॥" इति ॥२४९॥

तत्कृतग्रन्थाश्चेमे–'श्रीआवश्यकौघनिर्युक्त्याद्यनेकग्रन्थाऽवचूर्णयः, श्रीमुनिसुव्रतस्तव-घनौघनवखण्डपार्श्वनाथस्तवादि च ।

अथ देवसुन्दरसूरेर्द्वितीयशिष्यं श्लोकद्वयेन चिकथयिषुरादौ शार्दूलविक्रीडितमाह–

त्ति, अधारयत्=वहति स्म सहस्रावधानानीत्यर्थः । क इव ? "रविव्व" त्ति, रविरिव = यथा रविः = सूर्यो बाल्येऽपि "रस्सी" त्ति, रश्मीन् = किरणानि सहस्रं रश्मीन् धारयति ।

तथा च प्रत्यपादि श्रीदेवविमलगणिभिः--

"बाल्येऽपि रश्मीन्सरसीजबन्धुरिवावधानानि वहन् सहस्रम् ।।" इति ।

"**जो**" त्ति, यः = श्रीमुनिसुन्दरप्रभुः "**विहिणा**" त्ति, विधिना शास्त्रोक्ताऽनुष्ठानेन प्रकारविशेषेण '**सूरिमंतस्स**' त्ति, सूरिमन्त्रस्य 'आराहण' ति, आराधनां = '**जिणिंदवार**" ति, जिनेन्द्रवारं = चतुर्विंशतिवारं "**करीअ**" त्ति, चकार = विदधाति स्म ।

तत्रा-ऽपि चतुर्दशवारं तदुपदेशेन स्वस्वदेशेषु चम्पकराजदेप(य)धारादिराजभिरमारिः प्रवर्तिता । सीरोहीदिशि सहस्रमल्लराजेनामारिप्रवर्तने कृते मुनिसुन्दरसूरिणा तिड्डकोपद्रवो निवारितः ।

तथा चोक्तं तपागच्छपट्टावल्यां महोपाध्यायधर्मसागरगणिभिः--

"..... चतुर्विंशतिवार२४विधिना सूरिमन्त्राराधकः । तेष्वपि चतुर्दशवारं यदुपदेशतः स्वस्वदेशेषु चम्पकराजदेप(य)धारादिराजभिरमारिः प्रवर्तिता ।। सिरोहीदिशि सहस्रमल्लराजेनाऽप्यमारिप्रवर्तने कृते येन तिड्डकोपद्रवो निवारितः ।।" इति ।

तथा सोमसौभाग्ये दशमे सर्गे-ऽपि--

"श्रीसोमसुन्दरयुगोत्तमसूरिपट्टे, श्रीमान् रराज मुनिसुन्दरसूरिराजः ।
श्रीसूरिमन्त्रवरसस्मरणैकशक्तिर्यस्याभवद् भुवनविस्मयदानदक्षा ।। ।।
श्रीरोहिणीति विदिते नगरे ततेति-पश्चात्कृते किल चमत्कृतहृत् पुरेशः ।
ऊरीचकारमृगयाकरणे निषेधं, प्रावर्तयन्निखिलनीवृति चाप्यमारिम् ।। ।।" इति ।।२६२।।

पुनरपि तमेव स्तुवन्नुपजातिं निर्वक्ति--

वारीअ जो संतियरत्थवेणं । दुज्जोगिणीकारिअमारिरोगं ।
जहंकुसेणं करडि णिसादी । पचंडसामत्थपयावपुंजो ।।२६३।।(उवजाई)

(प्रे०) "**वारीअ**" इत्यादि, "**जो**" त्ति, यः = श्रीमुनिचन्द्रसूरिः "**पचंडसामत्थपयावपुंजो**" त्ति, प्रचण्डानाम् = उग्राणां सामर्थ्यानां शक्तिविशेषाणां प्रतापानां=तेजसाञ्च पुञ्जः=उत्करः=प्रचण्डसामर्थ्यप्रतापपुञ्जः = प्रौढशक्तिशाली = उग्रौजस्वीश्चेत्यर्थः "**संतियरत्थवेणं**" ति, शान्तिकरस्य "**संतिकरं संतिजिणं**"मित्यादि शान्तिकरनाम्नः स्तवेन= स्तोत्रेण=स्तवनमाहात्म्येन=शान्तिकरस्तवेन = शान्तिकरसञ्ज्ञकस्तुतिप्रभावेण "**दुज्जोगिणीकारिअमारिरोग**" ति, दुर् = दुष्टा चासौ योगिनी दुर्योगिनी = दुराशयव्यन्तरी देवीविशेषा ताभिः कारितः = उत्पादितो मारेः = मरकस्य-जनसंहारलक्षणस्य रोगः = दुर्योगिनी-

अथाऽस्य श्रीकुलमण्डनसूरेर्जन्मादिसमयमानं दर्शयितुं पथ्या-ऽऽर्यामाह--

सुमिणसयेऽद्दे अहिए, बलेहि[१४०९]जम्मोऽस्स संजमेहि[१४१७]वयं ।
गोयरिदोसेहि[१४४२]पयं, करणसुपासजिणफणिफणाहि[१४५५]दिवं ॥२५१॥
(पच्छागीई)

(प्रे०) "मिण०" इत्यादि, "ऽस्स" त्ति, अस्य = कुलमण्डनसूरेः "जम्मो" त्ति, जन्म "मिणसये" त्ति, स्वप्नाः जिनेश्वराणां चक्रवर्तिनां वा मातृणां तद्गर्भागमने काले तत्प्रभावाद् दृश्याः स्वप्नाः गजादयश्चतुर्दश, यदुक्तमुपदेशपदे--

" माया जिणाण चक्कीण करिवराईए । पासेइ चउदस इमे सुणिणे कयमगलकलावे ॥१५॥
गय--वसह-सीह-अभिसेय-दाम-ससि--दिणयर झय कुंभु ।
पउमसर-सागर-विमाणभवण रयणुच्चय-सिहिं च ॥१६॥" इति ।

स्वप्नाः = चतुर्दश तावन्मितानि शतानि यस्याऽब्दस्य तादृशे स्वप्नशते किम्भूते ? "अहिए" त्ति, अधिके = अभ्यधिके, कैः ? "बलेहि" त्ति, बलाः = बलदेवा नव, तैः = बलैः=नवभिरधिके चतुर्दशशते "द्दे" त्ति, अब्दे = वर्षे = विक्रमसंवत् १४०९ शारदेऽभूत् ।

"सुमिणसयेऽद्दे अहिए" त्ति, पदत्रय्युत्तरस्थलत्रिकेऽप्यनुवर्तते ।

"संजमेहि" त्ति संयमाः सप्तदश, तैरधिके स्वप्नशते = चतुर्दशशतेऽब्दे = वर्षेऽर्थात् विक्रमसंवत् १४१७ वर्षे "वय" ति व्रतं = प्रव्रज्याऽभूत् ।

"गोयरिदोसेहि" त्ति △गोचरीदोषैः = षोडशोद्गम--षोडशोत्पादन--दशैषणा लक्षणैर्द्विचत्वारिंशता△ऽधिके चतुर्दशशते वर्षे = विक्रमसंवत् १४४२ वर्षे "पय" ति पदं = सूरिपद संजातम् ।

"करणसुपासजिणफणिफणाहि" त्ति करणानि = शरीराणि औदारिकादीनि पञ्च, यद्वा करणानि = इन्द्रियाणि = स्पर्शनादीनि पञ्च, सुपार्श्वजिनफणिफणाः सुपार्श्वाख्यसप्तमजिन-

---

△उक्तञ्च-"सोलस उग्गमदोसा सोलस उप्पायणा य दोसा य । दस एसणा य दोसा बायालीस इय हवति ॥ आहाकम्मु१द्दे सिय२पूईकम्मे३य मीसजाए४य । ठवणा ५पाहुडियाए६ पाओयर७ कीय८ पामिच्चे ९ ॥ परियट्टिए १० अभिहडे ११ उब्भिन्ने १२ मालोहडे १३ य अच्छिज्जे १४ । अणिसिट्ठ १५ अज्झोयरए १६ सोलस पिंडुग्गमे दोसा ॥ धाई १ दूई २ निमित्ते ३ आजीव ४ वणीमगे ५ तिगिच्छा ६ य । कोहे ७ माणे ८ माया ९ लोभे १० य हवति दस एए ॥ पुव्विं पच्छासथव ११ विज्जा १२ मते १३ य चुन्न १४ जोगे १५ य । उप्पायणा य दोसा सोलसमे मूलकम्मे १६ य ॥ सकिय १ मक्खिय २ निक्खित्त ३ पिहिय ४ साहरिय ५ दायगुम्मीसे ७ अपरिणय ८ लित्त ९ छड्डिय १० एसणदोसा दस हवति ॥" इति ।

सम्यक्त्व--संज्ञया--हारिलक्षणानि चतुर्दश, एतैरङ्कैर्वामगतिभणितै१४३६मिते=विक्रमसंवत् १४३६ हायने "जाओ" त्ति, जातः=जन्मभाक्त्वेन व्यवहृतः ।

"लोगऽब्धि के" त्ति, लोकाः=स्वर्ग-मृत्यु-पाताललक्षणास्त्रयः, ततो लोकाब्धि-शक्राः=त्र्यङ्क-चतुरङ्क-चतुर्दशाङ्काः पश्चानुपूर्विक्रमाः पूर्यन्ते यस्मिन् वैक्रमे वर्षे तस्मिन् लोकाब्धिशक्रे विक्रमसंवत् १४४३ वर्षे "वई" त्ति, व्रती=संयमी=साधुरिति यावद्बभूव ।

"उउवज्जकोणरयणे" त्ति, ऋतुवज्रकोणरत्नानि–षट्-षट्-चतुर्दशाङ्कलक्षाणानि प्रति-लोमक्रमोपन्यस्तानि यत्र तत्र ऋतुवज्रकोणरत्ने=विक्रमसंवत् १४६६ शरदि "उज्झायो" त्ति, उपाध्यायः पञ्चपरमेष्ठ्यन्तर्गत-चतुर्थपदस्य धारको जातः ।

"णागद्धिविस्सम्मि" त्ति, नागाः=हस्तिनोऽष्टौ, यद्वा नागाः=नागकुलानि=अहि-कुलान्यष्टौ, अब्धयः=समुद्राः सप्त, विश्वानि=भुवनानि चतुर्दश, यद्वा विश्वशब्देन देवताविशेषा-गृह्यन्ते तदाऽपि चतुर्दश **श्रीहैमलिङ्गानुशासनवृत्तिदुर्गपदप्रबोधा**पेक्षयाभवन्ति, **तथा च तद्ग्रन्थः**–"विश्वे देवाश्चतुर्दश" इति । तत एतेऽङ्का वामतो मीलिता १४७८ इति सङ्ख्या यत्र तत्र नागाब्धिविश्वे=विक्रमसंवत् १४७८ शारदे द्वात्रिंशत्सहस्र ३२,००० टङ्कव्ययेन वृद्धनगरीवास्तव्येन देवदासेन कृतमहोत्सवे "सूरी" त्ति, सूरिः=आचार्यः जायते स्म ।

नन्वत्रैवानन्तरमब्धिशब्दः चतुरङ्कवाचित्वेन भणितः, इह पुनः सप्ताङ्काऽभिधायक-त्वेनोक्तः, ततः कथं न विरोध इति चेद् ? न, लोके केचन चत्वारोऽब्धयः, एके तु सप्त ।

यदुक्तं मत्स्यपुराणे सप्तसागरान् दर्शयता ग्रन्थकृता—

"नवनीत सुरासर्पिर्दधिदुग्धजलान्तका — · · " इति ।

तथा वाग्भटालङ्कारे प्रथमपरिच्छेदे एकोनविंशतितमश्लोके–'चतुर सप्त चाम्बुधीन् ।" इति ।

अन्ये पुनरष्टौ द्वीपवन्मन्यन्ते । ततोऽब्धिशब्दस्तत्पर्यायवाचकाः समुद्रजलधिप्रमुखाश्च यथायोगं चतुः-सप्त-ऽष्टाङ्कानां वाचकाः सन्ति । अर्हत्सिद्धान्ते पुनरसङ्ख्याता विद्यन्ते ।

एवं विवक्षयाऽपि भिन्नभिन्नाङ्कवाचकाः शब्दा भवन्ति । यथा दिशाशब्देन यदा पूर्वाद्याश्चत्वारो दिशा विवक्ष्यन्ते तदा चतुरङ्कस्य, यदा विदिशा अपि गृह्यन्ते तदाऽष्टाङ्कस्य ऊर्ध्वाऽधोदिशे अपि विवक्षाविषयीभवतस्तदा दशाङ्कस्य प्रतिपादको दिशाशब्दो भवति ।

उक्तञ्च वाग्भटाऽलङ्कारे–"चतस्र कीर्तयेद्वाष्टौ दश वा ककुभ क्वचित् ॥१६ ।" इति ।

आगमे तु प्रज्ञापकादिभेदैरष्टादशविधा अपि दिशा निरूपिताः सन्ति ।

तथैवाङ्गशब्देन यदा देहा विवक्ष्यन्ते तदौदारिकादिभेदभिन्नाः पञ्चाङ्गा भवन्ति, यदा सेनाङ्गविवक्षा तदा हस्त्य-श्व-रथ-पदातिलक्षणानि चत्वार्यङ्गानि भवन्ति, **यद्वाऽङ्गशब्देन** यदा

यज्जाता हिमभूभृतः पशुपतेः पत्नीति कः प्रत्ययः स्तत्कीर्तिर्जनिताऽमुनेति तु सता नूनं प्रतीतेः पथः ।
एषा यद्धवला हिमाऽपि जनयेन् म्लानिञ्जवाद्वादिना, वक्त्राम्भोजगणेषु निर्दहति च प्रोद्दामदर्पद्रुमान् । ३७९॥
ग्रन्थेषु येषु न परस्य धियां प्रवेशोऽप्येतेष्वऽपि प्रसरतीह तदीयबुद्धिः ।
वेमाययत्यपि तटाश्रितमन्यमब्धिर्यं सोऽपि दैत्यरिपुणा किमु नो ममन्थे ? ॥३८०॥
जगदुत्तरो हि तेषां, नियमोऽत्रष्टम्भरोषविकथानाम् ।
आसन्ना मुक्तिरमां, वदति चरित्रातिनैर्मल्यात् ॥३८१॥
सिद्धत्वात्सार्ववैद्यस्य ते सिद्धपुरुषोत्तमाः । तदाप्ततरकणाः शिष्याः यद्वशीकुर्वते जगत् ॥३८२॥
सर्वव्याकरणावदातहृदयाः साहित्यसत्यासवो, गम्भीरागमदुग्धसिन्धुलहरीपानैकपीताध्वयः ।
न्यायोज्योतिषनिस्तुषाः प्रदधतस्तर्केषु चाऽऽचार्यकं, वादे तेऽत्र जयन्त्यशेषविदुषां त्रैवैद्यदर्पोष्मलान् ॥३८३॥
उत्कल्लोलं दिशि दिशि बुधाः कर्णपात्रैः पिबन्तः, स्फीतं गोतं सुकृतिततिभिस्तद्यशः क्षीरपूरम् ।
तेषां शुद्धाः चरणकमला बिभ्रता श्रीगुरूणां, सृष्ट्या स्रष्ट्रा जगदुपकृतं मन्यते साम्प्रतं वै ॥३८४॥
परमेष्ठिमन्त्रतत्त्वाम्नायस्मरणेन दैवतादेशैः । पारत्रिकैहिकीस्ते, प्रायो जानन्ति कार्यगती ॥३८५॥
स्वदर्शने वा परदर्शनेषु वा ग्रन्थः स विद्यासु चतुर्दशस्वपि ।
समीक्ष्यते नैव सुदुर्गमेऽप्यहो ! यत्र प्रगल्भा न तदीयशेमुषी ॥३८६॥
या ज्ञानाद्युद्यमप्रौढिर्या च नित्याऽप्रमादिता । या चैषा स्मरणाशक्तिः, साऽन्यत्र श्रूयतेऽपि न ॥३८७॥
चक्रुष्टीकाशलाकां ते, षट्दर्शनसमुच्चये । ज्ञाननेत्राञ्जनायेव, सतां तत्त्वार्थदर्शिनीम् ॥३८८॥
उद्धृत्य ये व्याकरणाऽम्बुराशितो, विलोड्य बुद्धिप्रसरामराद्रिणा ।
शुद्धक्रियारत्नसमुच्चयं सतामाश्चर्यभूतं विबुधालये ददुः ॥३८९॥
लोकोत्तरां सच्चरणश्रियं मुदा, सदा भजन्तश्च सरस्वतीं प्रियाम् ।
दुष्कर्मदैत्यव्यथका जयन्तु ते, गुरुप्रवेका पुरुषोत्तमाश्चिरम् ॥३९०॥युग्मम्॥" इति ।

तत्कृतग्रन्था:–△क्रियारत्नसमुच्चयः, षड्दर्शनसमुच्चयबृहद्वृत्त्यादयः ॥२५२॥

अथ देवसुन्दरसूरेः पट्टधरत्वेन चतुर्थं शिष्यत्वेन च द्वितीयं गच्छनायकञ्च श्रीसोमसुन्दरसूरिं तथा पट्टभृत्त्वेन पञ्चममन्तेवासितया च तृतीयं श्रीसाधुरत्नसूरिं निजिगदिषु पथ्याऽऽर्याद्वयमाह—

तुरिओ य सोमसुन्दर-सूरी सोम्मागिइव्व सोमस्स ।
सिरिसाहुरयणसूरी, स पंचमो गोयमसरिच्छो ॥२५३॥ (पच्छाज्जा)
दीहरखी णाणदी, पहावगो गुणणिही महावाई ।
सूरिसमुत्तिआगम-सोमे१४५८ऽहे से पयपइट्ठा ॥२५४॥ (पच्छाज्जा)

△ अयञ्च ग्रन्थो विक्रमसंवत् १४६६ वर्षे रचितः । तथा चोक्तं क्रियारत्नसमुच्चयप्रशस्तौ–"काले षट्रसपूर्वे १४६६ वत्सरमिते, श्रीविक्रमार्काद्गते, गुर्वादेशवशाद्विमृश्य च सदा, स्वान्योपकारं परम् । ग्रन्थं श्रीगुणरत्नसूरिरतनोत्, प्रज्ञाविहीनोऽप्यमुं, निर्हेतूपकृतिप्रधानजननैः, शोध्यस्त्वयं धीधनैः ॥६३" इति ।

तद्ग्रन्थः–"विश्वेदेवास्त्रयोदश" इति । तथा चात्रा-ऽपि ग्रन्थे विश्वशब्देन मुख्यवृत्त्या त्रयोदशसङ्ख्या गृहीता, तथा गुर्वावल्यामपि श्रीमन्मुनिसुन्दरसूरिपादैर्विश्वशब्देन त्रयोदशसङ्ख्या प्रतिपादिता । एवमन्यत्रा-ऽपि बोध्यम् ।

साध्यशब्देन हि द्वादश त्रयोदश वा । तत्रामरकोशवृत्त्यभिप्रायेण द्वादश, तथाचोक्तम्–"साध्या द्वादश विख्याता, रुद्रा एकादश स्मृता ॥"इति। तत्रैव पुनरपि-"साध्या द्वादश।"इति। हैमलिङ्गानुशासनवृत्तिदुर्गपदप्रबोधे तु त्रयोदश, यदुक्तम्-"साध्यास्त्रयोदश प्रोक्ता" इति।

एवं चक्रिशब्देन लौकिकचक्रवर्तिनो गृह्यन्ते तदा मान्धातृ प्रभृतयः षड् भवन्ति, अथा-ऽर्हच्छास्त्रोक्ताः प्रतिपाद्यन्ते तदा द्वादश चक्रवर्तिनो भवन्ति, एकस्यामुत्सर्पिण्यामवसर्पिण्यां वा तावतामेव चक्रिनृपाणां भवनात् यौगिकार्थेन यदि चक्रित्वेन वासुदेवा अपि विषयीक्रियन्ते तदा नव चक्रभृतो भवन्ति इत्यादिविविधाङ्कवाचकाः शब्दा भवन्ति ।

तथैवाऽन्ये खा-ऽक्ष-गुप्ति-शक्ति-स्मृति-गुण-विद्या क्षेत्र-सूर्य-काल-पर्वत वर्णा-ऽवस्थाप्रमुखाः शब्दा अपि यथायोगं विवक्षार्थादिवशेन विभिन्नाङ्कविषया जायन्ते ।

तथा प्राकृते विद्यमानस्य 'रयण' इति शब्दस्य संस्कृते रत्नरदनरूपौ द्वौ शब्दौ भवतः तत्र यदि रत्नशब्दस्य ग्रहणं भवति तदा ज्ञान-दर्शनचारित्ररूपाणि त्रीणि, यद्वा चक्रिसत्कानि सप्त पञ्चेन्द्रिय-सप्तैकेन्द्रियात्मकानि चतुर्दश रत्नानि भवन्ति ।

यद्वा विक्रमनृपसभासत्कानि धन्वन्तर्यादीनि नव रत्नानि यदुक्तम्—

"धन्वन्तरि--क्षपणका-मर- सिंह--शङ्कु-वेतालभट्ट--घटकर्पर-कालिदासा ।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपते सभाया, रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य ॥" इति ।

यदा पुना रदनशब्द उपादानविषयो विद्यते तदा सामान्यतो रदाना=दन्तां द्वात्रिंशत्वेन रदनशब्दो द्वात्रिंशदङ्कस्याऽभिधायको भवति, अथेभसामान्यस्य रदौ द्वौ भवतः । एरावणेभस्य रदाश्चत्वारः सन्ति ।

एवं प्राकृतस्थाः 'सर' प्रभृतयः शब्दा अपि ज्ञेयाः । इति दिक् ।

अथ प्रस्तुते सप्ताङ्कवाचकोऽब्धिशब्दः कृतविवक्षो वर्तते यदि चाऽत्र चतुरङ्कवाचकोऽधिक्रियेत तदा उपाध्यायपदपश्चाद्भाविन आचार्यपदस्योपाध्यायपदपूर्वभवनरूपाऽऽपत्तिर्जायते तस्मान्नाऽत्र चतुरङ्काऽभिधेयोऽब्धिशब्दः । इत्यलं चर्चया ।

एवमन्यत्राऽपि स्वधिया यथायोग्य विभावनीयम् ।

"सत्तिविहायसिद्धपमिए" त्ति, शक्तयः=राजनीतौ प्रभुता-मन्त्रो-त्साहरूपास्तिस्रः, यदुक्तममरकोशे–"शक्तयस्तिस्र, प्रभावोत्साहमन्त्रजा ।" इति। अभिधानचिन्तामणावपि-

यज्जाता हिमभूभृतः पशुपते पत्नीति कः प्रत्यय-स्तत्कीर्तिर्जनिताऽमुनेति तु सता नून प्रतीते पथ ।
एषा यद्धवला हिमाऽपि जनयेन् म्लानिञ्जवाद्वादिना, वक्त्राम्भोजगणेषु निर्दहति च प्रोद्दामदर्पद्रुमान् ।।३७९।।
ग्रन्थेषु येषु न परस्य धिया प्रवेशोऽप्येतेष्वत्रऽपि प्रसरतीह तदीयबुद्धि ।
वेमाययत्यपि तटाश्रितमन्यमब्धि-र्य सोऽपि दैत्यरिपुणा किमु नो ममन्थे ? ।।३८०।।
जगदुत्तरो हि तेषां, नियमोऽवष्टम्भरोषविकथानाम् ।
आसन्ना मुक्तिरमां, वदति चरित्रातिनैर्मल्यात् ।।३८१।।
सिद्धत्वात्सार्ववैद्यस्य ते सिद्धपुरुषोत्तमा । तदाप्ततरकणा शिष्या यद्वशीकुर्वते जगत ।।३८२।।
सर्वव्याकरणावदातहृदया साहित्यसत्यासवो, गम्भीरागमदुग्धसिन्धुलहरीपानैकपीताब्धय ।
न्यायोज्योतिषनिस्तुषा प्रदधतस्तर्केषु चाऽऽचार्यक, वादे तेऽत्र जयन्त्यशेषविदुषा त्रैवैद्यदर्पोष्मलान् ।।३८३।।
उत्कल्लोल दिशि दिशि बुधा कर्णपात्रै पिबन्त, स्फीत गोतं सुकृततितिभिस्तद्यश क्षीरपूरम् ।
तेषा शुद्धा चरणकमला बिभ्रता श्रीगुरूणा, सृष्ट्या स्रष्ट्रा जगदुपकृत मन्यते साम्प्रत वै ।।३८४।।
परमेष्ठिमन्त्रतत्त्वा-म्नायस्मरणेन दैवतादेशै । पारत्रिकैहिकीस्ते, प्रायो जानन्ति कार्यगती ।।३८५।।
स्वदर्शने वा परदर्शनेषु वा ग्रन्थ स विद्यासु चतुर्दशस्वपि ।
समीक्ष्यते नैव सुदुर्गमेऽप्यहो ! यत्र प्रगल्भा न तदीयशेमुषी ।।३८६।।
या ज्ञानाद्युद्यमप्रौढि-र्या च नित्याऽप्रमादिता । या चैषा स्मरणाशक्ति, साऽन्यत्र श्रूयतेऽपि न ।।३८७।।
चक्षुष्टीकाशलाका ते, षड्दर्शनसमुच्चये । ज्ञाननेत्राञ्जनायेव, सता तत्त्वार्थदर्शिनीम् ।।३८८।।
उद्धृत्य ये व्याकरणाऽम्बुराशितो, विलोड्य बुद्धिप्रसरामराद्रिणा ।
शुद्धक्रियारत्नसमुच्चय सतामाश्चर्यभूत विबुधालये ददु ।।३८९।।
लोकोत्तरा सच्चरणश्रिय मुदा, सदा भजन्तश्च सरस्वतीं प्रियाम् ।
दुष्कर्मदैत्यव्यथका जयन्तु ते, गुरुप्रवेका पुरुषोत्तमाश्चिरम् ।।३९०।।युग्मम्।।" इति ।

तत्कृतयश्चेमाः–△क्रियारत्नसमुच्चयः, षड्दर्शनसमुच्चयबृहद्वृत्त्यादयः ।।२५२।।

अथ देवसुन्दरसूरेः पट्टधरत्वेन चतुर्थं शिष्यत्वेन च द्वितीयं गच्छनायकश्च श्रीसोमसुन्दरसूरिं तथा पट्टभृत्त्वेन पञ्चममन्तेवासितया च तृतीयं श्रीसाधुरत्नसूरिं निजिगदिषु पथ्याऽऽर्याद्वयमाह—

तुरिओ य सोमसुन्दर-सूरी सोम्मागिइव्व सोक्खस्स ।
सिरिसाहुरयणसूरी, स पंचमो गोयमसरिच्छो ।।२५३।। (पच्छाज्जा)
दीहक्खी णाणाही, पहावगो गुणणिही महावाई ।
सूएसमुत्तिआगम-सोमे[१४५८ऽद्दे] से पयपइट्ठा ।।२५४।। (पच्छाज्जा)

△ अयञ्च ग्रन्थो विक्रमसवत १४६६ वर्षे रचित । तथा चोक्त क्रियारत्नसमुच्चयप्रशस्तौ–"काले षट्रसपूर्वे १४६६ वत्सरमिते, श्रीविक्रमार्काद्गते, गुर्वादेशवशाद्विमृश्य च सदा, स्वान्योपकार परम् । ग्रन्थं श्रीगुणरत्ननूरिरतनोत्, प्रज्ञाविहीनोऽप्यमु, निर्हेतूपकृतिप्रधानजननै, शोध्यस्त्वय धीधनै ।।६३" इति ।

सुन्दरसूरेः पट्ट एव पट्टकस्तस्मिन् पट्टके=पदे=मुनिसुन्दराचार्यपट्टके "जयेउ" त्ति, जयतु=जयनशीलो भवत्वित्यन्वयः।

स क इत्याह–"जस्स" त्ति, यस्य=श्रीरत्नशेखरसूरेः "सेमुसीअ" त्ति, शेमुष्या=बुद्धि-प्रतिभया "विजिओ" त्ति, विजितः=पराभवं प्राप्तः "धिसणो" त्ति, धिषणः=वाचस्पतिः सुराचार्यः "जणाण" त्ति, जनानां=मृत्युलोकवासिनां लोकानां "गोयरो" त्ति, गोचरो=दृष्टिविषयः 'ण' त्ति, न "हवीउ" त्ति, अभूत्।

पुनः किं विशिष्टः सः ? "जो" त्ति, यः=श्रीरत्नशेखरगुरुः, "वाइसिंधुरकदंबगस्स" त्ति, वादिनः=प्रतिपक्षिण एव सिन्धुराः=हस्तिनस्तेषां कदम्बकस्य=समूहस्य = वादिसिन्धुर-कदम्बकस्य "विआरणे" त्ति, विदारणे = नाशने "मिगवई" त्ति, मृगपतिः=हर्यक्षः "पहवीअ" त्ति, प्राभूत्।

"मुणिणायगो" त्ति. 'जो' त्ति, पूर्वतोऽनुवर्तते ततो यो मुनिनायकः = सूरिः "विबुहवंबिबम्हणा" त्ति, विबुधः = विद्वान् चासौ वाम्बी = तन्नामा ब्राह्मणः=द्विजः तस्मात्=विबुधवाम्बीब्राह्मणात्=स्तम्भतीर्थे विदुषो बाम्बीनाम्नो भट्टस्य सकाशात् "बालबंभि-बिरुद" त्ति, बालब्राह्मी = बालसरस्वतीति बिरुदं=पदवी "लहीअ" त्ति, अलभत = स्तम्भतीर्थे बाम्बीनाम्ना द्विजवरेणायं बालसरस्वतीति भणितः, तत आरभ्य बालसरस्वतीनामा बिरुदं बिभराञ्चकार। उक्तञ्च श्रीहीरसौभाग्ये–

"सूरेस्ततोऽजायत रत्नशेखर श्रीपुण्डरीको वृषभध्वजादिव ।
बाम्बीति नाम्ना द्विजपुङ्गवेन न्यगादि यो बालसरस्वतीति ॥१२८॥" इति ॥२६५॥

अथाऽमुष्य श्रीरत्नशेखरसूरेर्जन्मादिकालमानं शार्दूलविक्रीडितेनाह–

से जम्मो चरणासवेहि१४५७/१४५८अंहिए, वासम्मि विज्जासये;
भूवाला विरइं गहीअ तिसिरोमोलिप्पमाणेहि१४६३सो ।
पणासो तिमयेहि१४८३विट्ठवजिणाऽम्भोजेहि१४९३उज्झायगो,
सूरी दोहि१५०२महकउक्खिइसये, खं संजमेहि१५१७गओ ॥२६६॥

(सद्दूलविक्कीडियं)

(प्रे०) "से" इत्यादि, "से" त्ति, तस्य=श्रीरत्नशेखरसूरेः " मो" त्ति, जन्म=जननं "भूवाला" त्ति, भूपालात्=विक्रमभूपात् "चरणासवेहि" त्ति, चरणानि=चारित्राणि सामायिक-छेदोपस्थापनीय-परिहारविशुद्धि-सूक्ष्मसंपराय-यथाख्यात-देशविरत्य-विरतिलक्षणानि सप्त, यद्वा

तद्यथा–एकादशाङ्गानि, द्वादशोपाङ्गानि, दश प्रकीर्णकानि, छेदसूत्रषट्कम्, मूलसूत्रचतुष्कम्, अनुयोगद्वारम्, नन्दीसूत्रं चेति△, सोमः=चन्द्र एकः, एतैरङ्कैर्वामगत्या मीलितैः १४५८ इति सङ्ख्याको योऽब्दो भवति, तस्मिन् भूतेशमूर्त्या-ऽऽगमसोमे=विक्रमसंवत् १४५८ "ऽब्दे" त्ति, अब्दे=शारदे बभूव ।

अस्य कृतयस्त्विमाः–यतिजीतकल्पवृत्त्यादिकाः ।

तथा चाऽत्र न्यगादि गुर्वावलिकारैः—

"श्रीसाधुरत्नगुरुविस्तृतभाभरोऽस्य, श्रीगच्छमौलिरमल समलङ्करोति ।
श्रीजैनशासननृप निहतारिवर्ग-स्फुर्ज्जत्प्रतापमहिमाप्तजगत्प्रभुत्वम् ॥४०७॥
वेलेवोल्लासिनी तद्गी-स्त्रैवैद्याऽपरसागरे । दूर विक्षिपते दुष्य-वादिन कर्करानिव ॥४०८॥
भाकौशलधर काव्यो-ऽप्यानैपुणधरो गुरु । तेषा विद्यासु नैपुण्या-दाचातुर्यमय जगत ॥४०९॥
प्रभावकाणा प्रथम' प्रसिद्धिभाक्, स सङ्घनेता प्रथम प्रशस्यते ।
अचीकरद्योऽद्भुततत्पदोत्सव श्रीपत्तनेऽष्टेन्द्रियरत्नवत्सरे १४५८ ॥४१०॥
आहेमचन्द्रत्रिदिव विधाय प्रभावकोत्पत्तिकथादरिद्रम् ।
स्रष्ट्रानुसृष्ट्या पुनरेव तेषा जैनेश्वर शासनमन्वकम्पि ॥४११॥
वर्षत्सून्नतवारिदोष्विव मुहु र्वादेषु तर्काऽमृतम्, तैषूच्चै पदसङ्गतेषु भुवि या, कीर्ति· सरिज्जायते ।
संपूर्णोत्तममानसानि विदुषा-मुन्मूल्य दर्पद्रुमान्, मिथ्यात्वोरुदवोपशान्तिमपि सा, कृत्वाऽब्धिमालिङ्गति ॥
कलन्दिकासौरभभृत्पदाम्बुजा-ऽऽश्रितस्य तेषा व्यथते न मूर्खिमा ।
न नैशमन्धातमस प्रगल्भते विलेप्तुमुष्णांशुकराम्बुज यत ॥४१३॥
यतिजीतकल्पवृत्ति वृ`त्तिरिव चारित्रकल्पवृक्षस्य । तन्निर्मिता विजयते-ऽतिचारचौरादिचारहरा ॥४१४॥
उत्फुल्लाक्षैस्तनुलवणिमालोकनात्स्मेरचित्तै-र्ध्यानाद्धाग्यार्पितगुणततेर्वाक्श्रुते· प्रीतकर्णै· ।
ये मन्यन्ते विबुधनिकरैर्गौतमस्याऽवतार, श्रेयःश्रेणीं ददतु जगते ते जयश्रीपरीता ॥४१५॥"

इति ॥२५३-२५४॥

साम्प्रतं त्रयश्चत्वारिंशत्तमस्य द्वितीयोदययुगप्रधानक्रमविवक्षया त्रयोविंशतितमस्य द्वितीयोदयान्तिमस्य युगप्रधानस्य विभणिषया पथ्यार्याश्लोकद्वयं प्रकटयन्नाह—

निरयावलिया १९ कप्पिय २० पुप्फिय २१ तह पुप्फचूलिओवग २२ ।
वण्हिदसा २३ दीवसागरपन्नत्ती २४ मयविसेसेण ॥३४८॥
कप्प २५ निसीह २६ दसासुय २७ ववहारो २८ उत्तरज्झयणसुत्तं २९ ।
रिसिभासिय ३० दसयालिय ३१ आवस्सय ३२ भगवज्जाइ ॥३४९॥
तदुलवेयालियया ३३ चदाविज्झय ३४ तहेव गणिविज्जा ३५ ।
निरयविभत्ती ३६ आउरपच्चक्खाणा ३७ इय पइन्ना ॥३५०॥
गणहरवलय ३८ देविंदनरिंदा ३९ मरण ४० झाणमत्तीओ ४१ ।
पक्खिय ४२ नदी ४३ अणुओगदारा ४४ देविंदसयवण ४५ ॥३५१॥
इय पणयाली सुत्ता " इति । △

इत्थञ्च षडेकादश वा ६-११ वर्षाणि गृहस्थत्वे, विंशति २० वर्षाणि मुनित्वे, दश १० वर्षाणि पन्न्यासत्वे, नव ९ वर्षाणि वाचकत्वे, पञ्चदश १५ वर्षाणि सूरित्वे उषित्वा सर्वायुश्च षष्टिं ६० पञ्चषष्टिं ६५ वा वर्षाणि अनुभूयोर्ध्वलोकं जगाम ।

तत्कृतग्रन्थाश्च–∧ १श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्रस्यार्थदीपिकाख्यवृत्तिः, 卐 २विधिकौमुदीसंज्ञकस्वोपज्ञवृत्तिसहितं श्राद्धविधिप्रकरणम्, ३आचारप्रदीपश्चेत्यादयः ❋ ।

तदानीं लुम्पकाख्याल्लेखकाद् विक्रमसंवदष्टाधिकपञ्चदशशत१५०८ वर्षे जिनप्रतिमोत्थापनपरं लुङ्कामतं प्रवृत्तम् । तन्मते वेषधरास्तु (साधवस्तु) विक्रमसंवत् त्रयस्त्रिंशदधिकपञ्चदशशत१५३३वर्षे जाताः । तत्र प्रथमो वेषभृद् भाणाख्योऽभूत् ॥२६६॥

इदानीमन्तिमतीर्थराजस्त्रिपञ्चाशत्तमे पट्टे सञ्जातं श्रीलक्ष्मीसागरसूरिं श्लोकद्वयेन विभणिषुरादौ दण्डकलामाह—

हरी सहस्सक्खी धरइ जस्स कित्ति वट्टुं वत्ततिलोगं;
लच्छीसायरसूरी स रयणसेहरसूरिपट्टसुरलोगं ।
भूसीअ परीओ सूरिउवज्झायपणासंसाहुआईहिं;
हरी व सामाणियलोगपालतायत्तीसदेवाईहि ॥२६७॥ (दंडकला)

(प्रे०) "हरी" इत्यादि, " स" त्ति; यस्य = श्रीलक्ष्मीसागरसूरेः "कित्ति" ति, कीर्तिं = गुणवर्णनरूपां किम्भूताम्? ' वत्ततिलोग" ति, व्याप्तं = पूरितं त्रिलोकं = त्रिलोकीं

∧ इय वृत्तिर्विक्रमसवत् १४९६ वर्षे रचिता, यदुक्त तत्प्रशस्तौ—
"एषा श्रीसुगुरूणा प्रसादतोऽब्दे षडङ्कविश्व१४९६मिते ।
श्रीरत्नशेखरगणिर्वृत्तिमिमामकृत कृतितुष्ट्यै ॥११॥" इति ।

卐 इदञ्च विक्रमसवत १५०६ वर्षे प्रणीतम् । उक्तञ्च तत्प्रशस्तौ-
"एषा श्रीसुगुरूणा प्रसादत षट्खतिथिमिते १५०६ वर्षे ।
श्राद्धविधिसूत्रवृत्तिं, व्यधित श्रीरत्नशेखर सूरि ॥१२॥" इति ।

अयञ्च ग्रन्थो विक्रमसवत १५१६ वर्षे विहित । आह च तत्प्रशस्तौ-
"एषा श्रीसुगुरूणा प्रसादत षट्कुतिथिमिते १५१६ वर्षे ।
जग्रन्थ ग्रन्थमिम सुगम श्रीरत्नशेखर सूरि ॥१२॥" इति ।

❋ अत्रादिशब्देन नवखण्डपार्श्वस्तव–नवग्रहस्तवगर्भितपार्श्वस्तव-भाषात्रयसमचतुर्विंशतिस्तवप्रमुखा ज्ञेया ।

इत्थञ्चाऽसौ विंशति २० वर्षाणि गृहे, षोडश १६ वर्षाणि सामान्यव्रते, पञ्चचत्वारिंशद् ४५ वर्षाणि युगप्रधानत्वे चेति सर्वायुश्चैकाशीति=१ वर्षाणि परिपाल्य स्वर्गभाग्जातः ।

तथा च प्रथमद्वितीयोदयद्वयगतानां त्रिचत्वारिंशतो युगप्रधानानां नामानि श्रीदुषमा लश्रमणसंघस्तवे (सिरिदुसमाकालसमणसघथये) श्रीधर्मघोषसूरिणा गाथाषट्केणेत्थ प्रतिपादितानि–

"वदे सुहम्म जंबू, पमव सिज्जभवं च जसमद्द । सभूयविजय मिरिमद्द-बाहु सिरिथूलमद्द च ॥१०॥
महगिरि सुहत्थि गुणसु दर च सामज्जखदिलायरिअ । रेवइमित्त धम्मं, च मद्दगुत्त सिरिगुत्त ॥११॥
सिरिवयरमज्जरक्खिअ-सूरिं पणमामि पूममित्त च । इअ सत्तकोडिनामे, पढमुदए वीस जुगपवरे ॥१२॥
बीए तिवीस वइर च नागहत्थि च रेवईमित्त । सीह नागज्जुण, भूइदिन्नय कालय वदे ॥१३॥
सिरिसच्चमित्त हारिल, जिणमद्द वंदिमो उमासाइ । पुसमित्त सभूई, माढरसभूइ धम्मरिसिं ॥१४॥
जिट्ठ ग फग्गुमित्त, धम्मघोस च विणयमित्त च । सिरिसीलमित्त रेवइ-मित्त सूरि सुमिणमित्त हरिमित ॥
॥१५॥" इति ॥२५५-२५६॥

इदानीमपश्चिमतीर्थस्वामिनः पञ्चाशत्तमं पट्टभृतं श्लोकद्वयेन वदन्नादौ वसन्ततिलकां प्राह–

र इम्मि कोऽपि पहिओ मईहि हंतुं,
दिक्खीअ तं पि य पबोहिअ जो दयद्धी ।
सो सोमसुन्दरगुणीसवई जयेउ,
देवाइसुन्दरगुणीसपयज्जहंसो ॥२५७॥ (वसंततिलया)

(प्रे०) "**राइम्मि**" इत्यादि, "**जो**" त्ति, यः=श्रीसोमसुन्दरसूरिः "**मईहि**" त्ति, त्ति, कु=कुत्सिता दुष्टा इति यावद् मतिः=बुद्धिर्येषां तैः=कुमतिभिः=दुष्टैर्द्रव्यलिङ्गिभिः "हतु" ति, हन्तु=व्यापादयितु "**राइम्मि**" त्ति, रात्रौ " वि" कोऽपि=पञ्चशतद्रविणदानेन शस्त्रसज्जः कोऽपि पुरुषः "**पहिओ**" त्ति, प्रहितः=प्रेषित आसीत् "**त पिय**" त्ति, तमपि च=वधायागतं मनुष्यमपि "**दयद्धी**" त्ति, दयाब्धिः=करुणासागरः "**जो**" त्ति, यः सोमसुन्दरगुरुः "**पबोहिअ**" त्ति, प्रबुध्य=मधुरगिरोपदिश्य "**दि अ**" त्ति, अदीक्षत्=दीक्षयामास । इदं वृद्धवचः ।

तथा चाऽभ्यधायि तपागच्छपट्टावल्यां श्रीमन्महोपाध्यायधर्मसागरगणिभिः–

"यमष्टादशशत १८०० साधुपरिकरित सत्क्रियापरायण महामहिमालय गुरु दृष्ट्वा दुष्टैर्द्रव्यलिङ्गिभिरेक पञ्चशतद्रविणदानेन सशस्त्र पुमास्तद्वधायोदीरित । स च दुर्धिया वसतौ प्रविष्टो यावदनुचितकरणाय

इत्थञ्च षडेकादश वा ६-११ वर्षाणि गृहस्थत्वे, विंशति २० वर्षाणि मुनित्वे, दश १० वर्षाणि पन्न्यासत्वे, नव ९ वर्षाणि वाचकत्वे, पञ्चदश १५ वर्षाणि सूरित्वे उषित्वा सर्वायुश्च षष्टिं ६० पञ्चषष्टिं ६५ वा वर्षाणि अनुभूयोर्ध्वलोकं जगाम ।

तत्कृतग्रन्थाश्च–∧ १श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्रस्यार्थदीपिकाख्यवृत्तिः, 卐 २विधिकौमुदीसंज्ञक-स्वोपज्ञवृत्तिसहितं श्राद्धविधिप्रकरणम्, ३आचारप्रदीपश्चेत्यादयः ❋ ।

तदानीं लुम्पकाख्याल्लेखकाद् विक्रमसंवदष्टाधिकपञ्चदशशत१५०८ वर्षे जिनप्रति-मोत्थापनपरं लुङ्कामतं प्रवृत्तम् । तन्मते वेषधरास्तु (साधवस्तु) विक्रमसंवत् त्रयस्त्रिंशदधिक-पञ्चदशशत१५३३वर्षे जाताः । तत्र प्रथमो वेषभृद् भाणाख्योऽभूत् ॥२६६॥

इदानीमन्तिमतीर्थराजस्त्रिपञ्चाशत्तमे पट्टे सञ्जातं श्रीलक्ष्मीसागरसूरिं श्लोकद्वयेन बिभणिषुरादौ दण्डकलामाह—

हरी सहस्सक्खी धरइ जस्स कित्ति दट्ठुं वत्ततिलोगं;
लच्छीसायरसूरी स रयणसेहरसूरिपट्टसुरलोगं ।
भूसीअ परीओ सूरिउवज्झायपरणंससाहुआईहिं;
हरी व सामाणियलोगपालतायत्तीसदेवाईहिं ॥२६७॥ (दंडकला)

(प्रे०) "हरी" इत्यादि, " स" त्ति; यस्य = श्रीलक्ष्मीसागरसूरेः "कित्ति" त्ति, कीर्तिं = गुणवर्णनरूपां किम्भूताम् ? ' वत्ततिलोग" त्ति, व्याप्तं = पूरितं त्रिलोकं = त्रिलोकी

∧ इयं वृत्तिर्विक्रमसंवत् १४९६ वर्षे रचिता, यदुक्तं तत्प्रशस्तौ—
"एषा श्रीसुगुरूणां प्रसादतोऽब्दे षडङ्कविश्व१४९६मिते ।
श्रीरत्नशेखरगणिर्वृत्तिमिमामकृत कृतितुष्टयै ॥११॥" इति ।

卐 इदञ्च विक्रमसंवत् १५०६ वर्षे प्रणीतम् । उक्तञ्च तत्प्रशस्तौ-
"एषा श्रीसुगुरूणां प्रसादतः षट्खतिथिमिते १५०६ वर्षे ।
श्राद्धविधिसूत्रवृत्तिं, व्यधित श्रीरत्नशेखर सूरिः ॥१२॥" इति ।

अयञ्च ग्रन्थो विक्रमसंवत् १५१६ वर्षे विहितः । आह च तत्प्रशस्तौ-
"एषा श्रीसुगुरूणां प्रसादतः षट्कुतिथिमिते १५१६ वर्षे ।
जग्रन्थ ग्रन्थमिमं सुगमं श्रीरत्नशेखर सूरिः ॥१२॥" इति ।

❋ अत्रादिशब्देन नवखण्डपार्श्वस्तव-नवग्रहस्तवगर्भितपार्श्वस्तव-भाषात्रयसमचतुर्विंशतिस्तव-प्रमुखा ज्ञेयाः ।

आराध्य देवानपि या दुरापा, वाणी परैस्तेषु निसर्गत सा ।
दुरा सदाऽन्यैर्विविधैरुपायैर्या श्रीर्हरे' सानुचरी स्वभावात ॥३९७॥
किं मोहाऽहिविषोर्मिमूर्च्छितजगज्जीवातवोऽमू सुधा-धारा स्वागमदुग्धवारिधिभवा' स्फारा लहर्य किमु? ।
किंवा शासनसौधभासनचणा दीप्रा प्रदीपश्रिय ?, सर्वध्वान्तमिद सतामिति मतिं तद्दे शनास्तन्वते ॥३९८॥
त एव धर्तु जिनशासन पतत तद् षमापङ्कभरेऽधुनेशते ।
युगान्तवातोद्धतवार्द्धिविप्लुता महावराहान्नपरो दधाति गाम् ॥३९९॥
क्षमापरा इत्यपि साहसिक्यान, समारतो जेष्यति ते प्रवादान् ।
दन्दह्यते वा शिशिरेनिबुद्ध्या ऽप्यालिङ्गिताब्जानि न किं हिमानी ? ॥४००॥
उपतदमपि सश्रिते विनेये, विलसति वाग् सुमनोमनोऽपहर्त्री ।
गुणवति रमणे तदाश्रिते वा, भवति रति' किल योषिता समाना ॥४०१॥
प्रभवति महिमा यथा तदीयो, जगति न कस्यचनापरस्य तद्वत् ।
प्रसरति तरणेर्मरीचिचक्र, वियति यथा न तथाहि तारकाणाम् ॥४०२॥
नित्य विवृद्धिगकला सदखण्डवृत्ता', प्राप्तोदयाः स्मरहृतोऽस्तकुरङ्गसङ्गा' ।
भ्रान्त्युज्झिता विदलयन्ति तमस्तथापि, श्रीसोमसुन्दरतया प्रथिता अहो ! ते ॥४०३॥
ते शीतिमानमतुल दधते भवस्या-ध कारकारककलावरवृत्तताढ्याः ।
सन्दर्शितामृतरसा निजगोविलासै , श्रीसोमसुन्दरतया प्रथिताः सुयुक्तम् ॥४०४॥
नानागोचरमारवस्थलततिभ्रान्त्युत्थतापोतृष , सौख्येच्छा- मृगतृष्णिकाम्भसि न के ताम्यन्ति चेतोमृगा ?।
खेलत्यात्मवने लयी स परमानन्दादिदुर्वाङ्कुरा-स्वादी साम्यसुधाह्रदे प्लवनकृत्तुष्यस्तदीय पुनः ॥४०५॥
जितद्राक्षा व्याख्या,वचनललित, साम्यकलित, गुरुस्फूर्त्तिमूर्त्ति-र्लवणिमकला-दोषविकला ।
अहो ! येषा पोषा ऽङ्कितसुचरण सिद्धिवरण, विमुद्र ते भद्र, ददतु भवतां, धीधनवताम् ॥४०६॥" इति ।

अमुष्य विशेषस्य ज्ञातुमिच्छुभिः सोमसौभाग्यकाव्यप्रमुखा ग्रन्था द्रष्टव्याः ॥२५७॥

अथ सोमसुन्दरसूरेर्जन्मादिपर्यायकालमानमाह शार्दूलविक्रीडितेन—

सोऽहोरत्तमुहुत्तपुव्व१४३०पमिए, वासम्मि जाओ णिवा;
सक्कस्सस्सतिमोलिमोलिविदिसा-खोणी१४३७मिए संजमी ।
उज्झायो णहणीलकंठवयणाब्बम्हस्सधारी१४५०मिए,
सूरी वारकलंबरीइवसुहे१३५७णांदंकविज्जे१४५५दिवं ॥२५८॥(सद्दूल विक्कीडियं)

(प्रे०) "**सो**" इत्यादि, "**सो**" श्रीसोमसुन्दरगुरुः श्रीवीरप्रभुपश्चाशत्तमपट्टभृत् "**णिवा**" त्ति, नृपात्=विक्रमभूपतितः "**ऽहोरत्तमुहुत्तपुव्वपमिए**" त्ति, अहोरात्रमुहूर्ताः त्रिंशद् , उक्तश्चाभिधानचिन्तामणौ–"मुहूर्त्तैस्तद्द्वयेन च ॥१३७॥ त्रिंशता तैरहोरात्रस्० · ·" इति ।

पूर्वाणि = उत्पादा--ऽग्रायणीय–वीर्यप्रवादा–ऽस्तिनास्तिप्रवाद--ज्ञानप्रवाद–सत्यप्रवादा-ऽऽत्मप्रवाद-कर्मप्रवाद-प्रत्याख्यानप्रवाद-विद्याप्रवाद-कल्याण-प्राणायाम-क्रियाविशाल-लोकबिन्दु-

उज्झायो विहुणा१५०१जुए तिहिसये, कम्मेहि१५०८सूरी स हि;
गच्छीसो तुरगायलाहि१५१७अहिए, वारासमेहि१५४७दिवं ॥२६८॥

(सद्दूलविक्कीडियं)

(प्रे) "वासे" इत्यादि, "ऽस्स" त्ति, अस्य=श्रीलक्ष्मीसागरसूरेः "जणणं" ति, जननं=जन्म "इत्थीकलाहिं" ति, स्त्रीकलाः नृत्यादयश्चतुःषष्टिः। ताभिः स्त्रीकलाभिः= चतुःषष्ट्या "जुए" त्ति, युते = सहिते, 'वज्जिसये'' त्ति, वज्रिनः = शक्राः चतुर्दश, तावन्मानानि शतानि यत्र तत्र शक्रशते "वासे" त्ति, वर्षे = विक्रमसंवत् १४६४ तमेऽब्दे भाद्रपदमासे द्वितीयायां कृष्णायां तिथौ अभूत् ।

उक्तञ्च गुरुगुणरत्नाकरकाव्ये प्रथमे सर्गे–

"श्रीमद्विक्रमतोऽब्धिरागविगिरासङ्ख्याधरे वत्सरे, मासे भाद्रपदे प्रदोषसमये कृष्णद्वितीयातिथौ । अश्विन्याह्वयभे तथा सति शुभे लग्नेऽत्र कुम्भाभिधे, जन्माजायत यस्य कस्य न विश स स्यात् प्रशस्य शिशु ? ॥२३॥" इति ।

"वयं" ति, व्रतं=संयमादानं "वोमब्धीहि" त्ति, अत्रोत्तरत्र च षट्स्वपि स्थानेषु "वासे" त्ति, पदमनुवर्तते तथेहोत्तरत्र चेति स्थानद्वय्यां "वज्जिसये" त्ति, पदमतोऽग्रे स्थानचतुष्टयार्थं "तिहिसये" त्ति, पदं वक्ष्यते । इह पुनः "जुए" त्ति, पदस्याऽप्यनुकर्षणं क्रियते; ततो व्योम = आकाश = शून्यम्, अब्धयः = समुद्राः सप्त, आभ्यामङ्काभ्यां सप्तत्या युते शक्रशते वर्षे = विक्रमसंवत् १४७० शरदि भवति स्म । उक्त श्च सर्गे गुरुगुणरत्नाकरे–

"दीक्षा वदेऽस्य मुनिसुन्दरसूरिपादै-रब्देऽम्बराऽम्बुनिधिवेदविधुप्रमाणे ॥८३॥
लक्ष्मीवदत्र भविकाऽमितसातदाता, गम्भीरतादिगुणरत्नरमारतिश्च ।
भाव्येष सागर इवेति विभाव्य लक्ष्मी-युक्सागरेति विदधेऽस्य ततोऽभिधा तै ॥८४॥" इति ।

"पण्ण सण्णं पयं" ति, पन्न्याससंज्ञं=पन्न्यासनाम पदम् "रिउग्गहेहि अहिए" त्ति, ऋतवः षट्, "यद्वा" रिपवः = आन्तरशत्रवः षट्, ग्रहा भौमादयो नव, आभ्यामङ्काभ्यां पश्चानुपूर्व्या मीलिताभ्यां ९६ इति सङ्ख्ययाऽधिके शक्रशते वर्षे = विक्रमसंवत् १४९६ वत्सरेऽभवत् । उक्तञ्च गुरुगुणरत्नाकरकाव्ये प्रथमे सर्गे–

"श्रीसोमसुन्दरगुरुप्रवरैः प्रदत्त, येभ्य सुपण्डितपद प्रथिते महेऽत्र ।
आगत्य देवगिरित कृतिना महादे-नाम्ना महीयसि रसग्रहदिग्प्रसाब्दे ॥८६॥" इति ।

"ऽस्स" त्ति, पदमत्राऽप्यनुवर्तते किन्त्वत्र "अर्थवशाद्विभक्तिपरिणाम" इति न्यायमाश्रित्य षष्ठ्यन्तः सन्नपि प्रथमान्तो ज्ञेयः, ततोऽय=श्रीलक्ष्मीसागरसूरिः, यद्वोत्तरस्थः "स" त्ति, पदमिहाऽपि सम्बध्यते ततः सः=श्रीलक्ष्मीसागरसूरिः "विहुणा" त्ति, विधुना = चन्द्रेण =

"षडङ्गी वेदाश्चत्वारो मीमासाऽऽन्वीक्षिकी तथा। धर्मशास्त्र पुराण च विद्या एताश्चतुर्दश ॥२५३॥" इति

एतेऽङ्काः वामक्रममीलिता यत्र तत्र नन्दाङ्कविद्ये विक्रमसंवत् १४९६ संवत्सरे "दिव" ति, दिवं=स्वर्गं प्राप्तः। निगदितश्च श्रीसोमसौभाग्यकाव्ये नवमे सर्गे–

"वर्षे नन्दनिधानवारिधिहिमज्योनिर्मिते स्वर्ययु । केचित्सातिशया वदन्त्विति मुनिश्रेष्ठा गरिष्ठा धिया ।
श्रीसीमन्धरतीर्थनाथचरणाम्भोरुट्पवित्रीकृते । जाताः पूर्वमहाविदेहनगरे ते सूरय सत्कुले ॥१॥" इति ।

तथा चाऽवाचि   न्महोपाध्यायधर्मसागरगणिभिः पट्टावल्याम्—

श्रीदेवसुन्दसूरिपट्टे पञ्चाशत्तम श्रीसोमसुन्दरसूरि. । तस्य वि० त्रिंशदधिके चतुर्दशशत १४३० वर्षे मा० व० चतुर्दश्या १४ शुक्रे जन्म, सप्तत्रिंशदधिके व्रतम्, पञ्चाशदधिके १४५० वाचकपदम्, सप्तपञ्चाशदधिके १४५७ सूरिपदम् ॥–अनेकभव्यप्रतिबोधादिना प्रवचनमुद्भाव्य वि० नवनवत्यधिकचतुर्दश– १४९९वर्षे स्वर्गभाक् ॥" इति ।

अनेन श्रीसोमसुन्दरसूरिणा स्वशिष्यादिपरिवारयुता राणपुरे श्रीधरणचतुर्मुखविहारे श्रीऋषभाद्यनेकशतजिनबिम्बानां प्रतिष्ठा कृता ।

चोक्तं श्रीगुरुगुणरत्नाकरकाव्ये प्र सर्गे श्रीसोमसुन्दरसूरिवर्णनावसरे-

"निर्मापित नगरराणपुरे यदुच्च, चैत्यं चतुर्मुखमथो धरणास्तिकेन ।
यद्वारकेऽत्र करणीयचतुष्कमेतज्जात चमत्कृतिकर चतुराङ्गभाजाम् ॥६१॥

तथैव श्रीतपागच्छपट्टावल्य पि–

"तै. परिकरितो राणपुरे श्रीधरणचतुर्मुखविहारे ऋषभाद्यनेकशतबिम्बप्रतिष्ठाकृत्" इति ।

तथा चासां ज्ञान-वैराग्यादिगुणशेवधीनां परपक्षेऽपि गुणावली सुप्रसिद्धा, यद्वशेन ते परपक्षा अप्येतत्समीपे आलोचनामाददुः । उक्तञ्च गुरुगुणरत्नाकरकाव्ये–

"आकर्ण्य यद्गुणगण गृहिण प्रहृष्टा-लेखेन दुष्कृततीरतिदुरदेशात् ।
विज्ञाप्य केऽपि कृतिन परपक्षिभाजो-ऽप्यालोचना जगृहुरास्यकजेन येषाम् ॥६२॥" इति ।

तत्कृतयश्चेमाः–योगशास्त्रोपदेशमालाषडावश्यकनवतत्त्वादिबालावबोधभाष्यावचूर्णि-कल्याणस्तोत्रादिन्यः । उक्तञ्च गुरुगुणरत्नाकरकाव्ये–

"ये योगशास्त्रलघुभाष्यगुरूपदेश-मालादिकप्रकरणावलिबालबोधात् ।
कल्याणकादिविविधस्तवमुख्यशास्त्रा-ण्यस्नाक्षुरक्षितशमाः स्वपरोपकृत्यै॥५७॥" इति।

तथैव तपागच्छपट्टावल्यामपि दर्शितमस्ति ॥२५८॥

अथ श्रीसोमसुन्दरसूरेः शिष्यचतुष्कं दर्शयन्पथ्या-ऽऽर्याद्विकमाह—

चउरो दिसा विजेउं जुगवं सीसाऽस्स आसि चत्तारो ।
वाइहभंजनहरी णाणड्ढी योगगंथयरा ॥२५९॥ (पच्छाज्ञा)

रत्तो जो हि जिणपडिमातित्थालयागमावे,
सोम्मद्धी समदमणिही गच्छेक्कदत्तचित्तो ।
सो सूरी सिरिसुमइसाहू सूरिणो पयम्मि,
लच्छीसायरगुरुवरस्सऽज्जे सिरिव्व भाही ॥२६१॥ (सुरयललिया)

(प्रे०) "रत्तो" इत्यादि, 'सो' त्ति, सः="सिरिसुमइसाहू" त्ति, श्रिया=चारित्रादिलक्ष्म्या युक्तः सुमतिसाधुः=तन्नामा गुरुः=श्रीसुमतिसाधुः "सूरी" त्ति, सूरिः=आचार्यः "सूरिणो" त्ति, सूरेः=आचार्यस्य "लच्छीसायरगुरुवरस्स" लक्ष्मीसागरः=तदाख्यः गुरुवरः=उत्तमगुरुः=लक्ष्मीसागरगुरुवरस्तस्य=लक्ष्मीसागरगुरुवरस्य=लक्ष्मीसागरनाम्नः स्वगुरोः "पयम्मि" त्ति, पदे=पट्टे "भाही" त्ति, अभात्=रेजे। कथम्? "सिरिव्व" त्ति, श्रीरिव=लक्ष्मीरिव यथा पद्मा "ऽज्जे" त्ति; अब्जे=कमले भाति।

स कः? "जो" त्ति, यः=श्रीसुमतिसाधुसूरिः "जिणपडिमातित्थालयागमावे" त्ति, जिनप्रतिमाः=अर्हद्बिम्बानि, तीर्थानि=विशिष्टयात्रादियोग्यपवित्रस्थानानि, आलयाः=पदैकदेशे पदसमुदायस्योपचाराज्जिनालयाः=जिनमन्दिराणि; आगमाः=सिद्धान्तशास्त्राणि, एतेषां द्वन्द्वसमासे विहिते=जिनप्रतिमातीर्थालयागमास्तेषामवे=रक्षणे=जिनप्रतिमातीर्थालयागमावे △'रत्तो' त्ति, रक्तः=निरतः, पुनः किं विशिष्टः? "सोम्मद्धी" त्ति, सौम्याब्धिः सौम्यानां=शान्तस्वभावानामब्धिः=सागरः=सौम्याकृतिरित्यर्थः "समदमणिही" त्ति, शमदमनिधिः समदमनिधिर्वा, शमानां=शान्तविकाराणां मुनीनां विकारशमनलक्षणानां गुणानां वा यद्वा समानां=शत्रुमित्रादौ समदृशां यतीनां शत्रुमित्रादिसमदर्शनात्मकानां गुणाना वा दमानाञ्च=दमितेन्द्रियाणां साधूनाम् इन्द्रियदमनरूपाणां गुणाना वा निधिः=भाण्डागारः "गच्छेक्कदत्तचित्तो" त्ति, गच्छस्य=समुदायस्य ऐक्ये=संघट्टने दत्त=प्रवर्तितं चित्तं=मनो येन स गच्छैक्यदत्तचित्तो गच्छैक्यार्थं प्रयत्नशील इत्यर्थः।

तथा चाऽभाणि श्रीहीरसौभाग्यकाव्ये चतुर्थे सर्गे–

"सुमतिसाधुरभूदथ तत्पदे, त्रिजगतीजननेत्रसुधाञ्जनम् ।
समकुचत् त्रपया हृदि यद्गिरा, मधुरिमाधरिता किमु गोस्तनी ॥१३०॥" इति ॥२६१॥

अथाऽस्य जन्मादिकालमाह पथ्यागीत्या–

△ अत्रादिस्थस्य 'जिन'शब्दस्य प्रत्येकमभिसम्बद्ध्य शक्यत्वाज्जिनप्रतिमा-जिनतीर्थ-जिनालय जिनागमावे इत्यप्यर्थो भवति ।

आचार्याणामीशः=प्रभुः=सूरीशः=सूरिराट् पुनः कीदृग्? "**संविग्गमोलीसरो**" त्ति, संविग्नाः=संवेगयुताः=उत्तमसाधवस्तेषु तेषां वा मौलय इव मौलयः=मुगटानि शोभाकारित्वात् संविग्नमौलयस्तेषामीश्वरः=स्वामी=संविग्नमौलीश्वरः "**गुरुसोमसुंदरपए**" त्ति, गुरुः=आचार्यः स्वगुरुर्वा स चासौ सोमसुन्दरः गुरुसोमसुन्दरस्तस्य पदे=पट्टे=गुरुसोमसुन्दरपदे "**भासी**" त्ति, बभौ=शोभयामास। क इव? "**हारव्व**" त्ति, हार इव यथा हारः "**वच्छत्थले**" त्तिः वक्षस्थले=उरःस्थाने भाति।

यदुक्तं जयानन्दचरित्रप्रशस्तौ पञ्चांशरत्नचन्द्रगणिभिः—

"चन्द्रकुले तपागच्छे श्रीसोमसुन्दरगुरूणा। पट्टप्रतिष्ठिता श्रीमुनिसुन्दरसूरिराजेन्द्र ॥१॥" इति।

स कः? इत्याह "**अत्तं**" इत्यादि, "**जेण**" त्ति, येन श्रीमुनिचन्द्रसूरिणा "**पवुद्धव्वजा**" त्ति, प्रवुद्धव्रजात् = विद्वद्वृन्दात् "**कालिसरस्सइत्ति विरुदं**" ति, कालिसरस्वतीति विरुदं कालिसरस्वतीसञ्ज्ञकं प्रदवी "**अत्त**" ति, आप्तं लब्धम्।

यदभाणि-श्रीदेवविमलगणिभिर्हीरसौभाग्ये—

अलम्भि याम्यां दिशि येन कालीसरस्वतीद विरुद बुधेभ्य।
रवेरुदीच्यामिव तत्र तेजोऽतिरिच्यते यत्पुनरत्र चित्रम् ॥१२७॥" इति।

पुनः किं विशिष्टः सः? " " त्ति, यः श्रीमुनिचन्द्रसूरिः। कीदृग्? "**धीणिही**" त्ति, धियो=निधिः=धीनिधिः=धीमानित्यर्थः "**वट्टुलिगाण**" त्ति, वर्तुलिकानां=कच्चोलिकानां देशीभाषया 'वाटका कच्चोली' इति नाम्ना ख्यातिमतां "**अट्ठुत्तरसयं**" ति, अष्टोत्तरशतम्=अष्टाधिकशतसङ्ख्याकान् "**णाआ**" त्ति, नादान्=शब्दध्वनीः " होअ" अकथयत्=पृथक् पृथग्विभज्य वक्ति स्म, अनया च शक्त्या शिशुनाऽप्यमुना पत्तने राजसभायां वादे पण्डितद्विजवरः षण्मासान्ते विजिग्ये। **तथा चोक्तं श्रीहीरसौभाग्ये—**

अष्टोत्तर वर्तुलिकानिनाद-शत स्म वेवेक्ति धिया निधिर्य ॥१२६॥" इति ॥२६१॥

तमेव विशेषयन्नुपजातिमाह—

अहोऽवधाणाणि सहस्समेस; बल्ले वि धारीअ रविव्व रस्सी।
जो सूरिमंतस्स जिणिदवारं आराहणं वे विहिणा करीअ॥२६२॥ (उवजाई

(प्रे०) "**अहो**" इत्यादि, "**अहो**" त्ति, अहो = आश्चर्याऽर्थेऽव्ययः "**एस**" ति, एषः श्रीमुनिसुन्दरसूरिः "**बल्ले वि**" त्ति, बाल्येऽपि=क्षुल्लकत्वेऽपि "**सहस्स**" ति, सहस्रं=सहस्रसङ्ख्याकानि "**ऽवधाणाणि**" त्ति, अवधानानि = बहुप्रकारधारणाविशेषान् "**धारीअ**"

(प्रे०) "वितन०" इत्यादि, "हेमविमलसूरिरयणीयरो" त्ति, हेमविमलसूरिः = हेमविमलाख्य आचार्यः, रजनीचरः = चन्द्र इव "उपमेय व्याघ्राद्यै साम्यानुक्तौ" (सि० ३-१-१०२) इति सूत्रेण कर्मधारयसमासः = हेमविमलरजनीचरः "सुमइसाहुसूरिपट्टगगणे" त्ति, सुमतिसाधुसूरेः = सुमतिसाधुनाम्न आचार्यस्य पट्टः = पदमेव गगनं = विष्णुचरणः = व्योम तस्मिन् = सुमतिसाधुपट्टगगने "भासी" त्ति, बभौ = शोभयामास इति सण्टङ्कः । किम्भूतः ? "विततमुणिभगणेण" ति, मुनयः = साधवः, भानीव = नक्षत्राणीव "उपमेय व्याघ्राद्यैः साम्यानुक्तौ" (सि० ३-१-१०२)इति सूत्रेण कर्मधारयतत्पुरुषसमासः, मुनिभानि तेषां गणः = समुदायः = मुनिभगणः, विततः = विशालश्चासौ मुनिभगणो = विततमुनिभगणस्तेन = वितत-मुनिभगणेन "परिकलिओ" त्ति, परिकलितः = परिवृतः । पुनरपि कीदृशः ? "भवियपम्ह-विआसयरो" त्ति, भव्याः पद्मानीव पद्मानि=चन्द्रविकासानि कमलानि भव्यपद्मानि तेषां विकासं=विकस्वरतां करोति=निर्वर्तयति' कर्मणोऽण्" (सि० ५ १ ७२) इत्यण्प्रत्यये=विकासकरः= प्रबोधकारी भव्यपद्मविकासकरः = भविलोककमलविबोधनविधाता ।

"अस्स" त्ति, अस्य = श्रीहेमविमलनाम्नः "मुणिपुंगवस्स" त्ति, मुनिपुङ्गवस्य = साधुवर्यस्य सूरेरिति यावत् "जसकित्तीए" त्ति, यशःकीर्त्याः "जा" त्ति, या णिरुवमा" त्ति, निरुपमा = अनन्या "अवदाअया" त्ति, अवदातता = उज्ज्वलता "से" त्ति, यत्तदो-र्नित्यसापेक्षत्वात्तस्याः "तुल्लया" त्ति, तुल्यता=समानता "केहि वि" कैरपि "कप्पुररअय-चंदाईहिं" ति, कर्पुर-रजत-चन्द्रादिभिः=श्वेतवर्णोपलक्षितवस्तुविशेषैः "ण लहिज्जेइ" त्ति, न=नैव लभ्यते = प्राप्यते । यदुक्तं श्रीहीरसौभाग्ये—

"शीलेन जम्बुगणनाथ इवात्र वज्र-स्वामी पर किमथ वा महिमोदयेन ।
जज्ञे नवद्वयशतव्रतिसेव्यमाना, नाम्नाऽथ हेमविमल प्रभुरस्य पट्टे ॥१३१॥" इति ॥२७१॥

अथ तस्यैव स्तुतिं जन्मादिकालमानप्रदर्शनं च चिकीर्षुः शार्दूलविक्रीडितमाचष्टे—

लद्धं वाइविडंबणक्खबिरुदं, जेणुच्चसंवेगिणा;
जम्मो तस्स समक्कसेहि१५२०/१५२२अहिए, मिच्छत्तखोणिसये।
वासे विक्कमभूवओ वयहरो, जोगंगवेएहि१५२८/१५३८सो,
सूरी सिद्धिकहाहि१५४८देवनिलयं, जोगद्दिवेहि१५८३गओ ॥२७२॥

(सद्दूलविक्कीडियं)

(प्रे०) "लद्ध" इत्यादि, "जेण" त्ति, येन=श्रीहेमविमलसूरिणा, किम्भूतेन ? "उच्चसंवेग्गिणा" उच्चसंवेगिना=श्रेष्ठसंवेगवता प्रभुणा "वाइविडंबणक्खबिरुदं" ति,

कारितमारिरोगस्तं दुर्योगिनीकारितमारिरोगं = दुष्टाभिर्योगिनीभिर्जनितं मरकोपद्रवं "वारीअ" त्ति, अवारयत्=निहतवान्। क इव ? "जह" त्ति, यथा 'णिसादी" त्ति, निषादी=हस्तिपः "अंकुसेणं" ति अङ्कुशेन = सृणिणा लोहमयशस्त्रविशेषेण "करटिं" ति, करटिनं=द्विरदं वारयति=वशं नयति।

तथा चोदीरितं श्रीहीरसौभाग्ये चतुर्थे सर्गे श्रीदेवविमलगणिभिः-

"योगिनीजनितमार्युपप्लव　येन　शान्तिकरसस्तवादिह　।
वर्षणादिव　तपतु तप्तयो　नीरवाहनिवहेन　जघ्निरे　॥१२५॥"

तथा सोमसौभाग्यकाव्ये दशमसर्गेऽपि-

"प्रागेव देवकुलपाटकपत्तने यो, मारेरुपद्रवदल दलयाञ्चकार ।
श्रीशान्तिकृत्स्तवनतोऽवनतोत्तमाङ्गभूपालमौलिमणिघृष्टपदारविन्दः ॥　॥" इति ।

तथा हेमहंसगणिभिर्न्यायार्थमञ्जुषायामपि-

"मारिर्येन निवारिता सुरकृता, ससूत्र्य शान्तिस्तव, स श्रीमान मुनिसुन्दराभिधगुरुर्दीक्षागुरुर्मेऽभवत्।" इति।

तथा रत्नशेखरसूरिभिरप्याचारप्रदीपे-

△"मारीत्यवमनिराकृति-सहस्रनामस्मृतिप्रभृतिकृत्यै ।
श्रीमुनिसुन्दरगुरव-श्चिरन्तनाचार्यमहिमभृत, ॥८॥" इति ॥२६३॥

अथ मुनिसुन्दरसूरेर्जन्मादिपर्यायकालं निरूपयितुं शार्दूलविक्रीडितमाह--

वीरा अंतरसत्तुखंकक्कु१९०६मिए, वासे णिवा विक्कमा;
सो जाओऽलिपयऽग्गिमग्गणमिए१४३६, लोगच्छिसक्के१४४३वई ।
उज्झायो उउवज्जकोणरयणो१४६६,णागच्छिविस्सम्मि१४७८च;
सूरी सत्तिविहायसिद्ध१५०३प्पमिए, आइच्चलोगं गओ ॥२६४॥

(सद्दूलविक्कीडिय)

(प्रे०) "वीरा" इत्यादि, "सो" त्ति, सः=श्रीमुनिसुन्दरसूरिर्वीरप्रभोरेकपञ्चाशत्तमपट्टधरः "वीरा" त्ति, वीरात्=श्रीमहावीरस्वामिमोक्षगमनकालात् "अंतरसत्तुखंकक्कुमिए" त्ति, आन्तरशत्रुखाङ्ककुभिः=षडङ्क-शून्याङ्क-नवाङ्कैकाङ्कलक्षणाभिः पश्चानुपूर्विस्थापिताभिर्मित=मानम्=आन्तरशत्रुखाङ्ककुमिते वीरसंवत् १९०६ "वासे" त्ति वर्षे "विक्कमा" त्ति विक्रमात् पदैकदेशे पदसमुदायस्योपचारात् विक्रमादित्यान्=तन्नाम्नः 'णिवा" त्ति, नृपात्=भूपालात् "ऽलिपयऽग्गिमग्गणमिए" त्ति, अलिपदानि द्विरेफपदाः षट्, अग्नयः=हुताशनास्त्रयः, मार्गणाः=मार्गणास्थानानि-गती--न्द्रिय काय-योग- वेद-कषाय ज्ञान-संयम दर्शन--लेश्या-भव्य-

△ एषैव गाथा तै श्राद्धप्रतिक्रमणवृत्ति-श्राद्धविधिवृत्तिद्वयेऽपि पठिता ।

तदानीं विक्रमसंवत् द्वाषष्ट्यधिकपञ्चदश१५६२वर्षे **"सम्प्रति साधवो न दृग्पथमायाति"** इत्यादिप्ररूपणापरकटुकनाम्नो गृहस्थात् त्रिस्तुतिकमतवासितात्कटुकमतोत्पत्तिः; देशीयभाषया **"कडुआ"** इति संज्ञकमतोत्पत्तिः ।

तथा विक्रमसंवत् सप्तत्यधिकपञ्चदशशत१५७०वर्षे लुङ्कामतान्निर्गत्य वीजाख्यसाधुवेषभृता **"वीजामती"** नामकं मतं प्रवर्तितम् । तथा विक्रमसंवत् द्विसप्तत्यधिकपञ्चदशशत१५७२वर्षे नागपुरीयतपागणान्निर्गत्योपाध्यायपार्श्वचन्द्रेण स्वनाम्ना मतं प्रादुष्कृतम् । अधुना **"पायचन्दगच्छ"** इति नाम्ना प्रसिद्धिभाक् ॥२७२॥

एतर्हि चरमजिनपतेः पट्पञ्चाशं पट्टभृतं श्रीआनन्दविमलसूरिं श्लोकद्वयेन शंसितुकाम आदौ तावन्मधुकरीं पठति—

अरिहवाणिमूलो चरणरंगसहस्समुणिदलो,
वेरग्गकेसरो आणंदविमलसूरिकमलो ।
सुद्धाचरणकण्णिगो चउव्विहसंघमुणालो,
जयउ सिरिहेमविमलसूरिपयसरट्ठिअणालो ॥२७३॥ (महुयरी)

(प्रे०) **"अरिह०"** इत्यादि, **"आणदविमलसूरिकमलो"** त्ति, आनन्दविमलसूरिः=आनन्दविमलनामा आचार्यपुङ्गवः कमल इव कमलः=पद्म आनन्दविमलसूरिकमलः "उपमेयं व्याघ्राद्यैः साम्यानुक्तौ" (सि० ३-१-१०२) इति समासः **"जयउ"** त्ति, जयतु=जगत्यजेयोऽस्तु इति सम्बन्धः । यथा कमलस्य मूल-दल-केसर-कर्णिका-मृणाल-सरोवरस्थितयो भवन्ति तथाऽस्याऽपि श्रीआनन्दविमलसूरिलक्षणकमलस्याऽप्यस्तीति दर्शयन्नाह—**"अरिहवाणिमूलो"** त्ति, अर्हतो=जिनेश्वरस्य वाणी=वचनमर्हद्वाणी सा एव मूलं यस्य यस्मिन् वा सोऽर्हद्वाणीमूलः, अनेनाऽस्य भगवदाज्ञाकारिता प्रकटिता, पुनरपि **"चरणरंगसह मुणिदलो"** त्ति, चरणे=संयमे रङ्गः=रागः प्रीतिर्येषां ते चरणरङ्गाः ते च सहस्रं=सहस्रसङ्ख्याका मुनयः=साधवः=चरणरङ्गसहस्रमुनयः, त एव दलाः=पत्राः, यस्य सः=चरणरङ्गसहस्रमुनिदलः, दलपत्रशब्दौ पुन्नपुंसकलिङ्गकौ वर्तेते, यदुक्तं **श्रीहैमलिङ्गानुशासने पुन्नपुंलिङ्गविधायके पञ्चमे श्लोके**—"छदे दल" इति तथैव **षड्विंशतिश्लोके पत्रशब्दोऽपि दर्शितः** । यद्वा मुनयो=यतय एव दलानि=पत्राणि=मुनिदलानि, सहस्रं=सहस्रसङ्ख्याकानि मुनिदलानि=सहस्रमुनिदलानि, चरणं=चारित्रमेव रङ्गः=वर्णो येषां तानि चरणरङ्गानि,

कारितमारिरोगस्तं दुर्योगिनीकारितमारिरोगं = दुष्टाभिर्योगिनीभिर्जनितं मरकोपद्रवं "वारीअ" त्ति, अवारयत्=निहतवान। क इव? "जह" त्ति, यथा 'णिसादी" त्ति, निषादी=हस्तिपः "अंकुसेणं" ति अङ्कुशेन = सृणिना लोहमयशस्त्रविशेषेण "करटि" ति, करटिनं=द्विरदं वारयति=वशं नयति।

तथा चोदीरितं श्रीहीरसौभाग्ये चतुर्थे सर्गे श्रीदेवविमलगणिभिः-

"योगिनीजनितमार्युपप्लव　येन　शान्तिकरसस्तवादिह　।
वर्षणादिव　तपर्तुतप्रयो　नीरवाहनिवहेन　जघ्निरे　॥१२५॥"

तथा सोमसौभाग्यकाव्ये दशमसर्गे-ऽपि-

"प्रागेव देवकुलपाटकपत्तने यो, मारेरुपद्रववदल दलयाञ्चकार ।
श्रीशान्तिकृत्स्तवनतोऽवनतोत्तमाङ्गभूपालमौलिमणिघृष्टपदारविन्द ॥　॥" इति।

तथा हेमहंसगणिभिर्न्यायार्थमञ्जुषायामपि-

"मारिर्येन निवारिता सुरकृता, ससूत्र्य शान्तिस्तव, स श्रीमान मुनिसुन्दराभिधगुरुर्दीक्षागुरुर्मेऽभवत्।"इति।

तथा रत्नशेखरसूरिभिरप्याचारप्रदीपे-

△"मारीत्यवमनिराकृति-सहस्रनामस्मृतिप्रभृतिकृत्यै ।
श्रीमुनिसुन्दरगुरव-श्चिरन्तनाचार्यमहिमभृत, ॥८॥" इति॥२६३॥

अथ मुनिसुन्दरसूरेर्जन्मादिपर्यायकालं निरूपयितुं शार्दूलविक्रीडितमाह--

वीरा अंतरसत्तुखंककु१९०६मिए, वासे णिवा विक्कमा;
सो जाओऽलिपयऽग्गिमग्गणमिए१४३६, लोगद्धिसक्के१४४३व्वई ।
उज्झायो उउवज्जकोणरयणो१४६६,णागद्धिविस्सम्मि१४७८वा;
सूरी सत्तिविहायसिद्ध१५०३पमिए, आइच्चलोगं गओ ॥२६४॥

(सद्दूलविक्कीडिय)

(प्रे०) "वीरा" इत्यादि, "सो" त्ति, सः=श्रीमुनिसुन्दरसूरिर्वीरप्रभोरेकपञ्चाशत्तमपट्ट-धरः "वीरा" त्ति, वीरात्=श्रीमहावीरस्वामिमोक्षगमनकालात् "अंतरसत्तुखंककुमिए" त्ति, आन्तरशत्रुखाङ्ककुभिः=षडङ्क-शून्याङ्क-नवाङ्कै-काङ्कलक्षणाभिः पश्चानुपूर्विस्थापिता-भिर्मित=मानम्=आन्तरशत्रुखाङ्ककुमिते वीरसंवत् १९०६ "वासे" त्ति वर्षे "विक्कमा" त्ति विक्रमात् पदैकदेशे पदसमुदायस्योपचारात् विक्रमादित्यात्=तन्नाम्नः 'णिवा" त्ति, नृपात्=भू-पालात् "ऽलिपयऽग्गिमग्गणम्मिए" त्ति, अलिपदानि द्विरेफपदाः षट्, अग्नयः=हुताशनास्त्रयः, मार्गणाः=मार्गणास्थानानि-गती--न्द्रिय काय-योग- वेद-कषाय ज्ञान-संयम दर्शन--लेश्या-भव्य-

△ एषैव गाथा, तै श्राद्धप्रतिक्रमणवृत्ति-श्राद्धविधिवृत्तिद्वये-ऽपि पठिता।

चे कर्णाभरणीबभूवुरनिशं विश्वत्रयीजन्मिना, सान्द्रोन्निद्रितचन्द्रिका इव शुचीचक्रुस्त्रिलोकीमपि ।
यान्संस्तोतुमिवाभवद्भुजगराट्जिह्वासहस्रद्वयस्तेषां सूरिपुरन्दरः स समभूदेको गुणानां निधिः ॥१४१॥
अश्रोत्रैः श्रोतुकामैर्भुजगपरिवृढैर्यज्जगद्गीतकीर्तिः शब्दाधिष्ठानसृष्ट्यै शतदलनिलयो याचितस्तां चिकीर्षुः ।
न्याय्या नासौ मयातिक्रमितुमिह जगत्सर्गभङ्गीव्यवस्था, शक्तिं शब्दं ग्रहीतुं किमिति स कृतवानेव तद्दृष्टिमर्गे ॥१४२॥
भूरेषा किमु चन्द्रचन्द्रनरसैरालिप्यते सर्वतो, दुग्धाब्धिप्रसरत्तरङ्गितपयः पूरैरिवाप्लाव्यते ।
क्षोदैर्मौक्तिकजैर्विलीनतुहिनैः कुन्दैरुतापूर्यते, यत्कीर्तिः प्रसृता विभाव्य विबुधैरित्यन्तरा रेक्यते ॥१४३॥"
इति ॥२७३॥

अथ पुनरपि तमेव विशेषयन्नस्यैव च जन्मादिपर्यायकालमानं प्रदर्शयन् शार्दूलविक्रीडितं भणितुमुपक्रमते—

सो संवेगतरंगपुण्णजलही, चंदव्व सोम्मागिई;
भव्वाणंदयरो हवीअ किरिया-उद्धारकारी गुरू१५४७ ।
जम्मोऽद्दे ऽस्सऽहिए पमायकुसये, वाहंबुहीहि१५४७णिवाः
पक्खऽक्खेहि१५५२वयं पयं सुरपहस्सेहि१५७०रसंकेहि१५९६खं ॥२७४॥
(सद्दूलविक्कीडिअं)

(प्रे०) "सो" इत्यादि, "सो" त्ति, सः=श्रीआनन्दविमलनामा "गुरू" त्ति, गुरुः= आचार्यः "हवीअ" त्ति, बभूव इति सण्टङ्कः । किम्भूतः ? "संवेगतरंगपुण्णजलही" त्ति, संवेगा एव तरङ्गाः=ऊर्मयः=संवेगतरङ्गास्तैः पूर्णः=भृतः=पूरितो वा जलधिरिव जलधिः= समुद्रः=संवेगतरङ्गपूर्णजलधिः "चंदव्व सोम्मागिई" त्ति, चन्द्रवत्=सोम इव सौम्याकृतिः= प्रशान्तमुद्राभृत् "भव्वाणंदयरो" त्ति, भव्यानां=मोक्षपुरिगमनार्हाणामानन्दं = प्रह्लादं करोति=जनयतीत्येवं शीलः "हेतुतच्छील (सि० ५-१०३१) इति टप्रत्यये यद्वा आनन्दस्य= हर्षस्य करोतीति "अच्" (सि० ५-१-४९) इत्यचि करः = जनकः=भव्यानन्दकरः ।

तथा चोक्तं श्रीधर्मसागरगणिभिः कुपक्षकौशिकसहस्रकिरणप्रवचनपरीक्षायाम्—

"जेण दुस्समसमये कुपक्खबहुले भारहे वासे । अच्छिन्नं पिअतित्थं पभाविअं पुण्णचरियाए ॥२॥
चंदुव्व सोमलेसो सयलविहारेण लोअअणंदो । आणंदविमलसूरी सविग्गो सव्वविक्खाओ ॥३॥" इति ।

"किरियाउद्धारकारी" त्ति, क्रियायाः = साधुसामाचारिपालनरूपाया उद्धारं = शैथिल्यापनयनरूपं करोति = निर्वर्तयतीत्येव शीलः "अजाते शीले" (सि० ५-१-१५४) इति णिनि क्रियोद्धारकारी ।

व्याकरणाङ्गानीष्यन्ते, तदा सूत्र-गणो-णादि-परिभाषा-लिङ्गानुशासनलक्षणानि पञ्चाङ्गानि भवन्ति, यदा वेदाङ्गान्यधिक्रियन्ते तदा १शिक्षा-२कल्प-३व्याकरण-४छन्दो-५ज्योति-६निरुक्तिरूपाणि षडङ्गानि भवन्ति, **तथाचोक्तमभिधानचिन्तामणौ–**

"शिक्षा-कल्पो-व्याकरणं छन्दो ज्योति-निरुक्तयः ॥२५०॥" इति

यदा राज्याङ्गानां ग्रहणं क्रियते तदा १ स्वामि-२जनपदा-३ऽमात्य-४दुर्ग-५कोश ६बल-७सुहृल्लक्षणानि सप्ताङ्गानि भवन्ति, **यदुक्तं––**

"स्वामिजनपदोऽमात्यो दुर्गं कोशो बलं सुहृत् । परस्परोकारीदं सप्ताङ्गं राज्यमुच्यते ॥ ॥" इति,

तथैव हैम्याम्–

"१ स्वाम्य २ मात्य ३ सुहृत् ४ कोशो ५ राष्ट्र-६दुर्ग-७ बलानि च । राज्याङ्गानि" इति,

यदा देहाङ्गानि भण्यन्ते तदा १मस्तको-२उर-३उदर-४पृष्ठ-६ दोर्द्वयो-८ रुद्वयात्मकान्यष्टाङ्गानि, **उक्तञ्च बृहत्कर्मविपाके–**"सीसमुरोयरपिट्ठी दो बाहू ऊरुया य अट्ठ गा" ।इति,

यदा योगाङ्गानि कथ्यन्ते तदाऽपि यम-नियमा-ऽऽसन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधि-रूपाण्यष्टाङ्गानि प्राप्यन्ते, यदा१ऽऽचाराङ्ग-२सूत्रकृताङ्ग-३स्थानाङ्ग-४समवायाङ्ग५विवाहप्रज्ञ-प्त्यङ्ग-६ज्ञाताधर्मकथाङ्गो-७पासकदशाङ्गा-८ऽन्तकृद्दशाङ्गा-९ऽनुत्तरोपपातिकदशाङ्ग-१०प्रश्नव्या-करणाङ्ग-११विपाकसूत्रलक्षणानि ग्रहणविषयीक्रियन्ते तदैकादशाङ्गानि संपद्यन्ते, एतेषां सोपा ङ्गत्वेन साहचर्यत्वे सति दृष्टिवादस्य पृथग्भूतत्वाद् यदि दृष्टिवादोऽ-प्यत्र प्रक्षिप्यते तदा द्वादशा-ङ्गानि जायन्ते, **तथा चोदितमभिधानचिन्तामणौ–**

"आचाराङ्गं सूत्रकृतं, स्थानाङ्गं समवाययुक् । पञ्चमं भगवत्यङ्गं, ज्ञाताधर्मकथा च ॥२४३॥
उपासकान्तकृदनु-त्तरोपपातिकाद् दशा । प्रश्नव्याकरणं चैव, विपाकश्रुतमेव च ॥२४४॥
इत्येकादश सोपाङ्गा-न्यङ्गानि द्वादश पुनः । दृष्टिवादो द्वादशाङ्गी, " ॥२४५॥" इति ।

भुवनानि हि त्रीणि, वा सप्त वा चतुर्दश वा विवक्षया भवन्ति । तेन भुवनशब्देन त्रीणि वा सप्त वा चतुर्दश वा यथासम्भवं प्राप्यते । **यदुक्तं वाग्भटालङ्कारे प्रथमपरिच्छेदेऽष्टा-दशमे श्लोके–**"भुवनानि निबध्नीयात् त्रीणि सप्त चतुर्दश । " इति ।

एवं विश्वशब्देना-ऽपि त्रीणि सप्त चतुर्दश वा भवन्ति । तथा दश त्रयोदशाऽपि प्राप्यन्ते । तत्र विश्वशब्देन यदा देवताविशेषा विवक्ष्यन्ते तदा-ऽमरकोशवृत्त्यपेक्षया दश भवन्ति । **यदुक्तममरकोशवृत्तौ**"विश्वे देवा दश स्मृताः ।" इति । **तत्रैव पुनरपि** विश्वे दश ।"इति ।

हेमलिङ्गानुशासनवृत्तिदुर्गपदप्रबोधे पुनश्चतुर्दश दर्शिताः । **तथा च तद्ग्रन्थः–**

"साध्यास्त्रयोदश प्रोक्ता विश्वे देवाश्चतुर्दशेत्यत्र विश्वे इति छान्दसत्वात्सञ्ज्ञायामपि 'जस इ' (१-४ ९)" इति । **तथा शेषनाममालायां श्रीमद्धेमचन्द्रसूरिपादैस्तु** त्रयोदश भणिताः । **तथा च**

ये कर्णाभरणीबभूवुरनिशं विश्वत्रयीजन्मिना, सान्द्रोन्निद्रितचन्द्रिका इव शुचीचक्रुस्त्रिलोकीमपि ।
यान्संस्तोतुमिवाभवद्भुजगराट् जिह्वासहस्रद्वय स्तेषा सूरिपुरन्दर स समभूदेको गुणाना निधि ॥१४१॥
अश्रोत्रैः श्रोतुकामैर्भुजगपरिवृढैर्यज्जगद्गीतकीर्ति शब्दाधिष्ठानसृष्ट्यै शतदलनिलयो याचितस्ता चिकीर्षु ।
न्याय्या नासौ मयातिक्रमितुमिह जगत्सर्गभङ्गीव्यवस्था, शक्ति शब्द ग्रहीतु किमिति स कृतवानेव तन्दृष्टिसर्गे ॥१४२॥
भूरेषा किमु चन्द्रचन्द्रनरसैरालिप्यते सर्वतो, दुग्धाब्धिप्रसरत्तरङ्गितपय पूरैरिवाप्लाव्यते ।
क्षोदैर्मौक्तिकजैर्विलीनतुहिनै कुन्दैरुतापूर्यते, यत्कीर्ति प्रसृता विभाव्य विबुधैरित्यन्तरा रेक्यते ॥१४३॥"
इति ॥२७३॥

अथ पुनरपि तमेव विशेषयन्नस्यैव च जन्मादिपर्यायकालमानं प्रदर्शयन् शार्दूलविक्रीडितं भणितुमुपक्रमते—

सो संवेगतरंगपुण्णजलही, चंदव्व सोम्मागिई;
भव्वाणंदयरो हवीअ किरिया-उद्धारकारी गुरू१५४७ ।
जम्मोऽद्दे ऽस्सऽहिए पमायकुसये, वाहंबुहीहि१५४७णिवा;
पक्खऽक्खेहि१५५२वयं पयं सुरपहस्सेहि१५७०रसंकेहि१५९६क्खं ॥२७४॥
(सद्दूलविक्कीडिअं)

(प्रे०) "सो" इत्यादि, "सो" त्ति, सः=श्रीआनन्दविमलनामा "गुरू" त्ति, गुरुः=आचार्यः "हवीअ" त्ति, बभूव इति सण्टङ्कः । किम्भूतः ? "संवेगतरंगपुण्णजलही" त्ति, संवेगा एव तरङ्गाः=ऊर्मयः=संवेगतरङ्गास्तैः पूर्णः=भृतः=पूरितो वा जलधिरिव जलधिः=समुद्रः=संवेगतरङ्गपूर्णजलधिः "चंदव्व सोम्मागिई" त्ति, चन्द्रवत्=सोम इव सौम्याकृतिः=प्रशान्तमुद्राभृत् "भव्वाणंदयरो" त्ति, भव्यानां=मोक्षपुरिगमनार्हाणामानन्दं=प्रह्लादं करोति=जनयतीत्येवं शीलः "हेतुतच्छील · (सि० ५-१०३१) इति टप्रत्यये यद्वा आनन्दस्य=हर्षस्य करोतीति "अच्" (सि० ५-१-४९) इत्यचि करः=जनकः=भव्यानन्दकरः ।

तथा चोक्तं श्रीधर्मसागरगणिभिः कुपक्षकौशिकसहस्रकिरणप्रवचनपरीक्षायाम्-

"जेण दुस्समसमये कुपक्खबहुले भारहे वासे । अच्छिन्न पिअतित्थं पभाविअ पुण्णचरियाए ॥२॥
चदुव्व सोमलेसो सयलविहारेण लोअअणंदो । आणंदविमलसूरी संविग्गो सव्वविक्खाओ ॥३॥" इति ।

"किरियाउद्धारकारी" त्ति, क्रियायाः=साधुसामाचारिपालनरूपाया उद्धारं=शैथिल्यापनयनरूपं करोति=निर्वर्तयतीत्येवं शीलः "अजाते शीले" (सि० ५-१-१५४) इति णिनि क्रियोद्धारकारी ।

प्रभुत्वोत्साहमन्त्रजा. ।७३५॥' इति । ततः शक्तिविहायःसिद्धाः-त्रि-शून्य-पञ्चदशाङ्कलक्षणा वाममीलता १५०३ इति सङ्ख्या यत्र वर्षे तत्र शक्तिविहायस्सिद्धे वर्षे विक्रमभवत् १५०३ वत्सरे कार्तिकसितप्रतिपत्तिथौ "आइच्चलोगं" ति, आदित्यलोकं=सुपर्वालयं 'गओ' त्ति, गतः=प्राप्तः । **तथा च गदितं तपागच्छपट्टावल्यां महोपाध्यायधर्मसागरगणिभिः-**

"श्रीमुनिसुन्दरसूरेर्वि० षट्त्रिंशदधिके चतुर्दशशत१४३६वर्षे जन्म त्रिचत्वारिंशदधिके १४४३ व्रतम्, षट्षष्ट्यधिके १४६६ वाचकपदम् , अष्टसप्तत्यधिके १४७८ द्वात्रिंशत्सहस्र ३२००० टङ्कव्ययेन वृद्धनगरीय-स० देवराजेन सूरिपदं कारितं त्र्युत्तरपञ्चदशशत१५०३वर्षे का०शु० प्रतिपत् १ दिने स्वर्गभाक् ॥ 'इति ।

इत्थञ्च सप्त७वर्षाणि गृहस्थपर्याये, त्रयोविंशति२३वर्षाणि साधुपर्याये, द्वादश१२-वर्षाणि वाचकपर्याये, पञ्चविंशति२५वर्षाणि सूरिपर्याये स्थित्वा समस्तायुश्च सप्तषष्टि६७-वर्षाणि सम्पूर्य देवपुरीमलञ्चकार ।

तत्कृतयश्चेमाः-(१) अध्यात्मकल्पद्रुमः, (२) उपदेशरत्नाकरः, (३) △गुर्वावली-प्रमुखाः । **उक्तञ्च गुरुगुणरत्नाकरे प्रथमसर्गे श्रीसोमचारित्रगणिभिः-**

"अध्यात्मकल्पद्रुमवल्गुगुर्वा-वलीविचित्रास्तपतिस्तवादीन् ।
ग्रन्थान् बहून् ग्रेथुरजिह्ममत्या, येऽपास्तवाचस्पतिदर्पदीप्त्या ॥८७॥" इति ।

विशेषजिज्ञासुना पुनः **सोमसौभाग्य-गुरुगुणरत्नाकरप्रमुखा** ग्रन्था अवलोकनीयाः ॥२६४॥

अधुना श्रीत्रैशलेयजिनेशितुर्द्विपञ्चाशत्तमं पट्टमलङ्करिष्णुं श्रीरत्नशेखरसूरिं श्लोकद्वयेना-विष्कुर्वन्नादौ चित्रकमाह-

सेमुसीअ विजिओ हि जस्स धिसणो हवीअ ण जणाण गोयरो;
वाइसिंधुरकदंबगस्स पहवीअ जो मिगवई विआरणो ।
बालबंभिबिरुदं लहीअ मुणिणायगो विबुहचंदबिंबम्हणा,
सो जयेउ मुणिसुंदरायरिअपट्टगे रयणसेहराहिहो ॥२६५॥(चित्तगं)

(प्रे०) "**सेमुसीअ**" इत्यादि, "**सो**" त्ति, सः "**रयणसेहरशहिहो**" रत्नशेखरा-ऽभिधः = रत्नशेखरनामाः सूरिः "**मुणिसुंदरायरिअपट्टगे**" त्ति, मुनिसुन्दराचार्यस्य=मुनि-

△ अयं ग्रन्थो विक्रमसंवत् १४६६ वर्षे दृब्ध इति तत्प्रान्ते दर्शितं । तथा च तद्ग्रन्थः -"रस-रस मनुमितवर्षे १४६६ मुनिसुन्दरसूरिणा कृता पूर्वम् । मध्यस्थैरवधार्या गुर्वावलीयं जयश्रीदा ।।४६३।।"इति ।
किन्त्वियमार्या तैरेवान्यैर्वा पश्चात्प्रक्षिप्ता सम्भाव्यते, यतोऽस्यामार्याया 'मुनिसुन्दरसूरिणा' इत्युक्तमस्ति सूरिपदञ्चैषां विक्रमसंवत् १४७८ वर्षे जातमिति ।

ये कर्णाभरणीबभूवुरनिशं विश्वत्रयीजन्मिनां, सान्द्रोन्निद्रितचन्द्रिका इव शुचीचक्रुस्त्रिलोकीमपि ।
यान्स्तोतुमिवाभवद्भुजगराट् जिह्वासहस्रद्वयस्तेषां सूरिपुरन्दरः स समभूदेको गुणानां निधिः ॥१४१॥
अश्रोत्रे श्रोतुकामैर्भुजगपरिवृढैर्यज्जगद्गीतकीर्तिं शब्दाधिष्ठानसृष्ट्यै शतदलनिलयो याचितस्तां चिकीर्षुः ।
न्याय्या नासौ मयातिक्रमितुमिह जगत्सर्गभङ्गीव्यवस्था, शक्तिं शब्दं ग्रहीतुं किमिति स कृतवानेव तन्दृष्टिमर्गे ॥१४२॥
भूरेषा किमु चन्द्रचन्दनरसैरालिप्यते सर्वतो, दुग्धाब्धिप्रसरत्तरङ्गितपयःपूरैरिवाप्लाव्यते ।
क्षोदैर्मौक्तिकजैर्विलीनतुहिनैः कुन्दैरुतापूर्यते, यत्कीर्तिं प्रसृतां विभाव्य विबुधैरित्यन्तरा रेक्यते ॥१४३॥"
इति ॥२७३॥

अथ पुनरपि तमेव विशेषयन्नस्यैव च जन्मादिपर्यायकालमानं प्रदर्शयन् शार्दूलविक्रीडितं भणितुमुपक्रमते—

सो संवेगतरंगपुण्णजलही, चंदव्व सोम्मागिई;
भव्वाणंदयरो हवीअ किरिया-उद्धारकारी गुरू१५४७ ।
जम्मोऽद्दे ऽस्सऽहिए पमायकुसये, वाहंबुहीहि१५४७णिवा;
पक्खऽक्खेहि१५५२वयं पयं सुरपहस्सेहि१५७०रसंकेहि१५९६क्खं ॥२७४॥
(सद्दूलविक्कीडिअं)

(प्रे०) "सो" इत्यादि, "सो" त्ति, सः=श्रीआनन्दविमलनामा "गुरू" त्ति, गुरुः=आचार्यः "हवीअ" त्ति, बभूव इति सण्टङ्कः । किम्भूतः ? "संवेगतरंगपुण्णजलही" त्ति, संवेगा एव तरङ्गाः=ऊर्मयः=संवेगतरङ्गास्तैः पूर्णः=भृतः=पूरितो वा जलधिरिव जलधिः=समुद्रः=संवेगतरङ्गपूर्णजलधिः "चंदव्व सोम्मागिई" त्ति, चन्द्रवत्=सोम इव सौम्याकृतिः=प्रशान्तमुद्राभृत् "भव्वाणंदयरो" त्ति, भव्यानां=मोक्षपुरिगमनार्हाणामानन्दं=प्रह्लादं करोति=जनयतीत्येवं शीलः "हेतुतच्छील · (सि० ५-१०३१) इति टप्रत्यये यद्वा आनन्दस्य=हर्षस्य करोतीति "अच्" (सि० ५-१-४९) इत्यचि करः=जनकः=भव्यानन्दकरः ।

तथा चोक्तं श्रीधर्मसागरगणिभिः कुपक्षकौशिकसहस्रकिरणप्रवचनपरीक्षायाम्—

"जेण दुस्समसमये कुपक्खबहुले भारहे वासे । अच्छिन्नं पिअतित्थं पभाविअं पुण्णचरियाए ॥२॥
चदुव्व सोमलेसो सयलविहारेण लोअअणंदो । आणंदविमलसूरी संविग्गो सव्वविक्खाओ ॥३॥" इति ।

"किरियाउद्धारकारी" त्ति, क्रियायाः=साधुसामाचारिपालनरूपाया उद्धारं=शैथिल्यापनयनरूपं करोति=निर्वर्तयतीत्येवं शीलः "अजाते शीले" (सि० ५-१-१५४) इति णिनि क्रियोद्धारकारी ।

चरणौ प्रसिद्धौ सव्येतरलक्षणौ द्वौ, आश्रवाः=इन्द्रिया-ऽव्रत-कषाय-योग-क्रियात्मकाः पञ्च, **यद्वा** मिथ्यात्वा ऽविरति-कषाय-योग-प्रमादाख्याः पञ्च, एताभ्यामङ्काभ्यां वामगतिस्थापिताभ्यां **"अहिए"** त्ति, अधिके=अभ्यधिके **"विज्जासये"** त्ति, विद्याः = शिक्षादयश्चतुर्दश, तावन्मितानि शतानि यस्य तादृशे विद्याशते **'वासे"** त्ति, वर्षे=शारदे = विक्रमसंवत् १४५७ १४५२ वा वर्षे **"आसि"** त्ति, आसीत् = अभत् ।

'सो" त्ति, सः = श्रीरत्नशेखरसूरिः **"तिसिरोमोलिप्पमाणेहि"** त्ति **"अहिए वासम्मि विज्जासये भूवाला"** इति पदचतुष्कस्याऽनुवर्तनात् विक्रमभूपतः त्रिशिरसो देवविशेषस्य मौलयो मूर्धानस्त्रयः, प्रमाणानि-प्रत्यक्ष-परोक्षा-ऽनुमानो-पमान-ऽर्थापत्त्या ऽऽप्तवचनरूपाणि षट्, आभ्यामङ्काभ्यां वामजुड्भ्यां त्रिषष्टि६३सङ्ख्यया **"अहिए वासम्मि विज्जासये"** अधिके विद्याशते १४०० वर्षे = विक्रमसंवत् त्रिषष्टियुतचतुर्दशशत१४६३तमे वर्षे **"विरइं"** ति, विरतिं = प्रव्रज्यां **'गहीअ"** त्ति, जग्राह ।

"तिमयेहि" त्ति, त्रयः = त्र्यङ्कः, मदाः = जाति लाभ-कुलै-श्वर्य-बल-रूप-तपः-श्रुतलक्षणा अष्टौ, **यद्वा** मदाः = गर्वा ज्ञानादिविषया अष्टौ, **तथा च गदितं काव्यशिक्षायाम्-**

'अष्टविधाऽभिमानलक्षणम्-ज्ञाने दाने धर्मेऽर्थे कामे बले शत्रुघाते समारम्भे ।" **इति** ।

आभ्यामङ्काभ्यां वामन्यस्ताभ्यां त्र्यशीति ८३ सङ्ख्ययाऽधिके विद्याशत१४००वर्षे = विक्रमसंवत् १४८३ शारदे **"पण्णासो"** त्ति, पन्न्यासो जातः ।

"विट्ठवजिणाऽम्भोजेहि" त्ति, विष्टपाः = लोकाः—स्वर्ग-मृत्यु-पाताललक्षणास्त्रयः, जिनाऽम्भोजानि = अर्हद्विहरणकाले देवकृतानि सुवर्णमयानि पद्मानि नव, आभ्यामङ्काभ्यां वामपार्श्वमीलिताभ्यां त्रिनवत्यधिके विद्याशते १४०० वर्षे, विक्रमसंवत् १४९३ तमेऽब्दे **"उज्झायगो"** त्ति, उपाध्यायः=पाठको बहुश्रुतत्वनिबन्धनपदवीविशेषधरो बभूव ।

"दोहि" त्ति, द्वाभ्यामधिके **"महक्कउक्खिइसये"** त्ति, महाक्रतवो = महायज्ञाः-ब्रह्म-देव-पितृ-नृ-भूतरूपाः पञ्च, क्षितिः पृथ्वीरेका, एतौ अङ्कौ वामक्रमाऽऽप्तौ १५ इति सङ्ख्याप्रमाणानि शतानि यस्य तादृशे महाक्रतुक्षितिशते=विक्रमसंवत् १५०२ हायने **"सूरी"** त्ति, सूरिः = आचार्यो जायते स्म ।

"संजमेहि" ति, संयमैः = पृथ्व्यप्तेजोवायुवनस्पति५-द्वीन्द्रिय६- त्रीन्द्रिय७- चतुरिन्द्रिय८- पञ्चेन्द्रिया९- ऽजीव१०- मनो११- वचन१२- काय१३- प्रेक्षो१४-पेक्षा१५-प्रमार्जना१६- परिष्ठापना१७- लक्षणैः सप्तदशभिरधिके महाक्रतुशते १५०० वर्षे=विक्रमसंवत् १५१७ शरदि पोषमासे श्यामषष्ठीदिने **"ख"** ति; खं=देवधाम जगाम **"गओ"** त्ति, गतः प्राप्तः ।

"वयं" ति, व्रतं=दीक्षा="ऽद्दे" "ऽहिए" "पमायकुसये" "णिवा" त्ति, पदचतुष्टयमिहोत्तरत्र पूर्वतोऽनुवर्तते ततो विक्रमभूपात् "पक्खऽक्खेहिं" त्तिः पक्षौ प्रसिद्धौ वामेतरौ वा शुक्लेतरौ वा पूर्वोत्तरौ वा द्वौ, अक्षाणि=इन्द्रियाणि पञ्च, आभ्यामङ्काभ्यां पश्चानुपूर्व्या स्थापिताभ्यां द्विपञ्चाशत्५२संख्ययाऽधिके प्रमादकुशतेऽब्दे=विक्रमसंवत् द्विपञ्चाशदधिकपञ्चशतोत्तरसहस्र१५५२-तमे संवत्सरेऽजायत ।

"पय" ति, पदं=सूरिपदं "सुरपहऽस्सेहिं" ति, सुरपथा-ऽश्वैः=शून्याङ्क-सप्ताङ्करूपैः प्रातिलोम्यक्रमेण सप्तति७०सङ्ख्ययाऽधिके प्रमादकुशते १५००ऽब्दे=विक्रमसंवत्सप्तत्यधिकपञ्चदशशत१५७०तमे हायने भवति स्म ।

"खं" ति, खं=स्वर्गमनं "रसकेहिं" त्ति, रसा-ऽङ्कैः=षडङ्क-नवाङ्करूपैर्वामगत्या षण्णवत्याऽधिके प्रमादकुशतेऽब्दे=विक्रमसंवत्षण्णवत्यधिकपञ्चशतोत्तरसहस्र१५९६तमे वत्सरेऽजनि ।

इत्थञ्च पञ्च ५ वर्षाणि गृहित्वे, अष्टादश १८ वर्षाणि साधुत्वे, षड्विंशति२६वर्षाणि सूरित्वे चेति सम्पूर्णायुष्कमेकोनपञ्चाशद्वर्षमितं सम्पूर्य नाकमयामास ॥२७४॥

इदानीं श्रीदानसूरिं श्रीआनन्दविमलसूरिपट्टभृतं श्रीवीरविभोः सप्तपञ्चाशे पट्टे स्थितं श्लोकद्वयेन दिदिक्षुरादौ तावच्छार्दूलविक्रीडितेन वदन्नाह—

अणाणं जस्स सिरे धरीअ मुणिणो, सेसं जिणिंदस्स व;
दट्ठा वाइमिगा गआ अदरिसं, जं केसरिं आगअं ।
पंचक्खी जइउं व पंच विगई, जेणं जदा सव्वयाः
पट्टं तस्स अलंकरीअ विजयो, सो दाणसूरी गुरू ॥२७५॥

(सद्दूलविक्कीडियं)

(प्रे०) "अण्ण" इत्यादि, "तस्स" त्ति, तस्य=श्रीआनन्दविमलसूरेः "पट्टं" ति, पट्टं=पद "सो" त्ति, सः "वि यो" त्ति, विजयः=विजयपदपूर्वः "दाणसूरो" त्ति, दानसूरिः=विजयदानसूरिरित्यर्थः "गुरू" त्ति, गुरुः=गच्छनायकः "अलंकरीअ" त्ति, अलञ्चकार=शोभयाञ्चकार, स कः? "जस्स" त्ति, यस्य=श्रीदानसूरेः "अण्ण" ति, आज्ञाम्=आदेशं "सिरे" त्ति, शिरसि=मूर्ध्नि "मुणिणो" त्ति, मुनयः=साधवः "धरीअ" त्ति, दधार=दधौ । कमिव? "सेस" ति, शेषां=शीर्षा=निर्माल्यद्रव्यं "व" त्ति, इव=यथा "जिणिंद-

यया तां व्याप्तत्रिलोकां "दट्ठु" ति, द्रष्टुम्=अवलोकितुं "सहस्सक्खो" त्ति, सहस्राक्षीणि=सहस्रं नेत्राणि 'धरइ" त्ति, धरति=धारयति स्म ध्रियते स्म वा ।

तथा चोक्तं श्रीहीरसौभाग्य ग्रन्थे–

"लक्ष्मीसागरसूरिशीतमहसा लक्ष्मीरवापे ततो, द्वीपेनेव गुणोदयं कलयता ज्योतिर्बृहद्भानुतः ।
गायन्ती सुरसुन्दरीगुणगणान्यस्याष्टदिक्सङ्गिनी-विज्ञायाऽष्ट विनिर्ममे किमु विधिः श्रोतुं श्रुतिरात्मनः ॥"इति

यत्तदोर्नित्याऽभिसम्बन्धादाह–"स" त्ति, सः "लच्छीसायरसूरी" त्ति, लक्ष्मीसागरसूरिः=लक्ष्मीसागरसञ्ज्ञक आचार्यः किम्भूतः ? "सूरिउवज्झपपण्णससाहुआईहिं" ति, सूरयः=आचार्याः, उपाध्यायाः=पाठकाः, बहुश्रुतत्वप्रदर्शकपदवीविशेषभाजः तुरीयपदधराः, पन्न्यासाः=पदविशेषधारकाः, साधवो=मुनयः एतेषां द्वन्द्वे सूर्युपाध्यायपन्न्याससाधवस्ते आदौ येषां तैः=सूर्युपाध्यायपन्न्याससाध्वादिभिः, अत्राऽऽदिपदेन साध्वी-श्रावक-श्राविकादीनां ग्रहणम् । तैः "परीओ" त्ति, परीतः=परिगतः=परिवेष्टित इति यावत् "रयणसेहरसूरिपट्ट रलोगं" ति, रत्नशेखरसूरेः पट्टः=पदमेव सुरलोकः=स्वर्गो रत्नशेखरसूरिपट्टसुरलोकस्तम्=रत्नशेखरसूरिपट्टसुरलोकम्, "भूसीअ" त्ति भूषयाञ्चकार=अलङ्करोति स्म, क इव "हरी व" त्ति, हरिरिव=इन्द्र इव यथेन्द्रः "सामाणियलोगपालतायत्तीसदेवाईहिं" ति, सामानिकाः=इन्द्रसमानविभवा देवविशेषाः, लोकपालाः=सोम-यम वरुण-कुबेरलक्षणाश्चत्वारः क्रमेण पूर्व-दक्षिण पश्चिमो-त्तरदिक्स्वामिनो देवविशेषाः, त्रायस्त्रिंशाः=इन्द्रस्याऽपि पूज्यस्थानिकत्वे महत्तरपदधारका देवविशेषाः, तेषां त्रयस्त्रिंशत्त्वात् 'त्रायस्त्रिंशा' इति सार्थकनामानः, एतेषां द्वन्द्वे=सामानिक-लोकपाल-त्रायस्त्रिंशास्ते च ते देवाश्च=सामानिक-लोकपाल-त्रायस्त्रिंशदेवाः, ते आदौ येषां तैः=सामानिक-लोकपालत्रायस्त्रिंशदेवादिभिः, अत्राऽऽदिशब्देन स्वपट्टदेवी सेनापतिसप्तकाऽऽत्मरक्षकदेवाभ्यन्तरादिपर्षद्देवप्रमुखा ग्राह्याः, तथा द्वन्द्वाऽन्ते श्रूयमाणपदस्य प्रत्येकमभिसम्बन्धात् सामानिकदेव-लोकपालदेव-त्रायस्त्रिंशदेवप्रभृतिभिः परिकलितो राजते तद्वत् ॥२६७॥

अथाऽमुष्य जन्मादिपर्यायकालं भणन् शार्दूलविक्रीडित वृत्ते—

वासे वज्जिसये जुएऽस्स जणणं इत्थीकलाहि[१४६४]वयं,
वोमच्छीहि[१४७७]रिउग्गहेहि[१४९६]अहिए पण्णाससराणं पयं ।

● श्रीलक्ष्मीसागरसूरिसत्कमाचार्यादिपरिवारं ज्ञातुमिच्छुभिर्गुरुगुणरत्नाकरसत्को द्वितीय सर्गो द्रष्टव्य ।

"अणञेकञ् -" (सि०७-४-२०) इति डीप्रत्यये च=आर्द्राब्दिकी=आर्द्धवर्षिकी=पाण्मासिकी= षण्मासान् यावदित्यर्थः, किमर्थम् ?, "सेअत्थ" ति श्रेयोऽर्थं=स्व परोभयकल्याणनिमित्तम् ।

तथा च प्रत्यपादि श्रीदेवविमलगणिभिः—

"यद्वाचा गलराजमन्त्रिमुकुटो निर्माप्य षाण्मासिकीं,
मुक्ति सिद्धगिरौ व्यधाद्धरतवद्यात्रीं सम यात्रिकैः ।" इति ।

"से" त्ति, तस्य श्रीविजयदानसूरेः " कक्खेहि" त्ति शुक्राः=अग्नयस्त्रयः, शुक्र-शब्दोऽग्निवाचको **हैमलिङ्गानुशासने** पुन्नपुंसकलिङ्गोऽस्ति, **तथा चोक्त पुन्नपुंसकलिङ्ग-द्वयप्रतिपादकप्रकरणगते चतुर्थे श्लोके**–शुक्रोऽग्निमासयो ।।४।।" इति । **गौडस्तु** पुंस्येव **तथा चाह**–"ज्येष्ठाग्निकाव्यशुभ्रे ना शुक्र रेतोऽक्षिरोगयो"। इति, अक्षाणि = विषयीणि पञ्च, आभ्यामङ्काभ्यां वामक्रमोदिताभ्यां त्रिपञ्चाशत्५३सङ्ख्यया "जुए" त्ति, युते "तिहि-सये" त्ति, तिथयः पञ्चदश तावन्मितानि शतानि यत्र तत्र तिथिशते "ऽद्दे" त्ति, अब्दे = शरदि = विक्रमसंवत् त्रिपञ्चाशे पञ्चदशशते १५५३ वर्षे "जणी" त्ति, जनिः = जन्म बभूव ।

"पयगेहि य दिक्खा" त्ति, पदौ = पादौ प्रसिद्धौ सव्येतरौ द्वौ, अङ्गानि प्राग्वत् शिक्षादीनि वेदाङ्गानि, जङ्घाद्वयादीनि देहाङ्गानि वा षट्, आभ्यामङ्काभ्यां पश्चानुपूर्व्या द्विषष्टि-६२सङ्ख्यया "जुए तिहि सयेऽद्दे" त्ति, पदत्रय्या अनुवर्तनात्, युते तिथिशतेऽब्दे = विक्रम-संवत् द्विषष्ट्युत्तरपञ्चशताऽधिकसहस्र१५६२तमे हायने दीक्षा = महाव्रतग्रहणं समजायत ।

"धाउवसूहि सूरिपयवी" त्ति, पूर्ववदिहोत्तरत्र चाऽनुवर्तते ततो धातवः = देहस्था रसादयः सप्त, उक्तञ्च—

"रसासृग्मांसमेदोऽस्थिमज्जान शुक्रसयुता । शरीरस्था इमे ज्ञेया पण्डितै सप्त धातव ।।" इति ।
वसवोऽष्टौ, **उक्तञ्च शेषनाममालायाम्**– 'वसवोऽष्टौ" इति ।

आभ्यामङ्काभ्यां प्रातिलोम्येन लब्धाभ्यां ८७ इति सङ्ख्यया युते तिथिशतेऽब्दे = विक्रमसंवत् १५८७ शारदे सूरिपदवी = आचार्यपदवी संजाता ।

"कण्णक्खिभूवे दिवं" ति, कर्णौ = श्रवसी द्वे, अक्षिणी = नेत्रे द्वे, भूपाः = नृपतयः षोडश, एतेऽङ्का वामगतिमीलिता यस्य तादृशे विक्रमसंवत्१६२२ तमेऽब्दे द्यौः = स्वर्गम्, अर्थात् स्वःप्राप्तिरभवत् ।

तथा च सति नव ९ वर्षाणि गृहस्थत्वे, पञ्चविंशति२५वर्षाणि सामान्यव्रतित्वे, पञ्च-त्रिंशत् ३५ वर्षाणि सूरित्वे चेति सर्वायुरेकोनसप्तति६९वर्षाणि परिभुज्य त्रिविष्टपं जगाम ।

तेन श्रीदानसूरिणा प्रभुणा स्तम्भतीर्था-ऽहम्मदावाद-पत्तन महीशानक-गन्धारबन्दिरा-दिषु महामहोत्सवपुरस्सरमनेकजिनबिम्बशतानि प्रतिष्ठितानि ।

यया तां व्याप्तत्रिलोकां "दट्ठु" त्ति, द्रष्टुम् = अवलोकितु "सहस्सक्खो" त्ति, सहस्राक्षीणि = सहस्र' नेत्राणि 'धरइ" त्ति, धरति = धारयति स्म ध्रियते स्म वा ।

तथा चोक्त श्रीहीरसौभाग्य ग्रन्थे-

"लक्ष्मीसागरसूरिशीतमहसा लक्ष्मीरवापे ततो, द्वीपेनेव गुणोदय कलयता ज्योतिर्वृहद्भानुत । गायन्ती सुरसुन्दरीगुणगणान्यस्याष्टदिक्सङ्गिनी-विज्ञायाऽष्ट विनिर्ममे किमु विधि श्रोतु श्रुतिरात्मन ॥"इति

यत्तदोर्नित्याऽभिसम्बन्धादाह-"स" त्ति, सः "लच्छीसायरसूरी" त्ति, लक्ष्मीसागरसूरिः=लक्ष्मीसागरसञ्ज्ञक आचार्यः किम्भूतः ? "सूरिउवज्झयपण्णससाहुआईहि" ति, सूरयः=आचार्याः, उपाध्यायाः=पाठकाः, वहुश्रुतत्वप्रदर्शकपदवीविशेषभाजः तुरीयपदधराः, पन्न्यासाः=पदविशेषधारकः, साधवो=मुनयः एतेषां द्वन्द्वे सूर्युपाध्यायपन्न्याससाधवस्ते आदौ येषां तैः=सूर्युपाध्यायपन्न्याससाध्वादिभिः, अत्राऽऽदिपदेन साध्वी-श्रावक-श्राविकादीनां ग्रहणम्। तैः "परीओ" त्ति, परीतः=परिगतः=परिवेष्टित इति यावत् "रयणसेहरसूरिपट्ट रलोगं" ति, रत्नशेखरसूरेः पट्टः=पदमेव सुरलोकः=स्वर्गो रत्नशेखरसूरिपट्टसुरलोकस्तम्=रत्नशेखरसूरिपट्टसुरलोकम्, "भूसीअ" त्ति भूषयाञ्चकार=अलङ्करोति स्म, क इव "हरी व" त्ति, हरिरिव=इन्द्र इव यथेन्द्रः "सामाणियलोगपालतायत्तीसदेवाईहि" ति, सामानिकाः=इन्द्रसमानविभवा देवविशेषाः, लोकपालाः=सोम-यम वरुण-कुबेरलक्षणाश्चत्वारः क्रमेण पूर्व-दक्षिण पश्चिमो-त्तरदिक्स्वामिनो देवविशेषाः, त्रायस्त्रिंशाः=इन्द्रस्याऽपि पूज्यस्थानिकत्वे महत्तरपदधारका देवविशेषाः, तेषां त्रयस्त्रिशत्त्वात् 'त्रायस्त्रिशा' इति सार्थकनामानः, एतेषां द्वन्द्वे=सामानिक-लोकपाल-त्रायस्त्रिशास्ते च ते देवाश्च=सामानिक-लोकपाल-त्रायस्त्रिशदेवाः, ते आदौ येषां तैः=सामानिक-लोकपालत्रायस्त्रिशदेवादिभिः, अत्राऽऽदिशब्देन स्वपट्टदेवी सेनापतिसप्तकाऽऽत्मरक्षकदेवाभ्यन्तरादिपर्षद्देवप्रमुखा ग्राह्याः, तथा द्वन्द्वाऽन्ते श्रूयमाणपदस्य प्रत्येकमभिसम्बन्धात् सामानिकदेव-लोकपालदेव-त्रायस्त्रिशदेवप्रभृतिभिः परिकलितो राजते तद्वत् ॥२६७॥

अथाऽमुष्य जन्मादिपर्यायकालं भणन् शार्दूलविक्रीडित ब्रूते—

वासे वज्जिसये जुएऽस्स जणणं इत्थीकलाहि१४६४वयं,
वोमद्धीहि१४७७रिउग्गहेहि१४६६अहिए पण्णासस्सराणं पयं।

● श्रीलक्ष्मीसागरसूरिसत्कमाचार्यादिपरिवार ज्ञातुमिच्छुभिर्गुरुगुणरत्नाकरसत्को द्वितीय. सर्गो द्रष्टव्य ।

चारित्तस्स मिश्रा ण जस्स सिश्रया, केणां पि चंदाइणा,
वच्चा से ण गुणा जया अवि विही, कुज्जा सहस्सं मुहा ॥२७८॥
(सद्दूलविक्कीडियं)

(प्रे०) "जो" इत्यादि, "जो" त्ति, यः=श्रीहीरसूरिः "धम्मे" त्ति, धर्मे=श्रीमदर्हद्दर्शने "जवणाहिवं" ति यवनानां=जातिविशेषणाम्, अधिपम्=अधिपतिं=यवनाधिपम्=अकब्बर-नामानं भारतस्य सम्राजं "पि" त्ति, अपि=अन्येषामपि धर्मे स्थापितत्वस्य ख्यापनार्थोऽपिशब्दः, यद्वा एनं यवनाधिपमपि धर्मे स्थापितवान् तह्यन्येषां का कथेत्यपिशब्दार्थः, "ठविउ" ति स्थापयित्वा "बहू" त्ति, बहून्=पुष्करान् "अत्था" त्ति, अर्थान्=कार्याणि शासनोन्नति-कराणि "कारीअ" त्ति, कारयामास ।

पुनरपि कीदृग्? इत्युत्प्रेक्षयाऽऽह- "जस्स" त्ति, यस्य=श्रीहीरसूरेः "तवप्पहाअ" त्ति, तपःप्रभया "विजिओ" त्ति, विजितः "भाणू" त्ति, भानुः=रविः "थेरिअ" ति, स्थैर्यं "णो" त्ति, न=नैव "पावीअ" त्ति, प्राप ।

पुनरप्याह सोत्प्रे य चारित्रशुक्लतामाह-"जस्स" त्ति, यस्य श्रीहीरसूरेः "चारित्तस्स" त्ति, चारित्रस्य=संयमस्य "सिअया" त्ति, सितता = शुक्लता "केणं पि चंदाइणा" त्ति. केनाऽपि चन्द्रादिना = इन्दुप्रमुखेणाऽत्राऽऽदिपदेन कर्पूर-हिम-रजत-कर्पासप्रमुखश्वेतवर्ण-वद्वस्तुग्रहणं द्रष्टव्यम् । "ण" त्ति, न = नैव "मिआ" त्ति, मिता = मीयते स्म ।

गुणानुत्प्रेक्षते "से" त्ति, अस्य = श्रीहीरसूरेः "गुणा" त्ति, गुणाः "ण" त्ति, न= नैव 'वच्चा' त्ति, वाच्याः = वक्तुं शक्याः "जया अवि" त्ति, यदा-ऽपि 'विही' त्ति, विधिः=ब्रह्मा "सह '' ति, सहस्रं=सहस्रसङ्ख्याकान्=दशशतप्रमाणान् "मुहा" त्ति न्= ज्जा" त्ति कुर्यात् = विदध्यात् ॥२७८॥

अथ श्रीजगद्गुरोर्हीरसूरेर्जन्मादिपर्यायकालमानमाख्यातुकामः शार्दूलविक्रीडितमाह-

सेऽद्दे सिद्धसये जणी तिहजुए, १५८३दिक्खा रमंकाहिए१५९६;
विज्जादेविसये रिसीहि१६०७अहिए, सो पंडिओ वायगो ।
भीहि१६०८अहिए दिसाहि१६१०अहिए, सूरी णिवाऽकब्बरा;
सिगऽद्धीहि१६४२जगगुरुत्ति बिरुदं, पत्तो दुगत्तेहि१६५२खं ॥२७९॥
(सद्दूलवि डिअं)

(प्रे०) "से" इत्यादि, "से" त्ति, अस्य = श्रीहीरसूरेः "तिहजुए" त्ति, त्रिशब्द-स्त्र्यङ्कवाचकः, इभाः=दिग्गजा अष्टौ, आभ्यामङ्काभ्यां वामगतिमीलिताभ्यां ८३ इति सङ्ख्यया

एकेन "जुए" त्ति, युते "तिहिसये" त्ति, तिथयः = पञ्चदश, तावन्मात्राणि शतानि यस्य तादृशे तिथिशते वर्षे = विक्रमसंवत् १५०१ वर्षे "उज्झायो" त्ति, उपाध्यायो जातः ।

उक्तञ्च गुरुगुणरत्नाकरकाव्ये प्रथमे सर्गे–

"मुण्डस्थलेऽथ मुनिसुन्दरसूरिभिर्यै–र्ये स्थापिता तदनु वाचकतापदव्याम् ।
भीमेन सङ्घपतिना निजबान्धवेना–ऽऽरब्धोद्भवे विधुवियद्दसुधाऽङ्कवर्षे ॥६०॥" इति ।

"स" त्ति, स = श्रीलक्ष्मीसागरसूरिः **"कम्मेहि"** त्ति, कर्मभिः=ज्ञानावरणादिमूल-कर्मलक्षणैरष्टभिः "जुए" त्ति, युते **"तिहिसये"** त्ति तिथिशते = पञ्चदशशते वर्षे = विक्रम-संवदष्टाधिकपञ्चदशशते १५०८ वर्षे "सूरी" त्ति, सूरिः = आचार्यो बभूव ।

उक्तञ्च गुरुगुणरत्नाकरकाव्ये प्रथमे सर्गे–

"तस्याग्रहाच्च वयजाह्वसुहृद्युतस्य, श्रीविक्रमाद् वसुखपुङ्खशशाङ्कवर्षे ।
श्रीलक्ष्मिसागरसुवाचकनायकाना, प्रादायि सूरिपदवी गणमोदकानाम् ॥१०६॥" इति ।

"तुरगायलाहि" त्ति, तुरगाः = अश्वाः सप्त, अचला = भूरेका, आभ्यामङ्काभ्यां प्रातिलोम्यक्रमलब्धाभ्यां १७ इति सङ्ख्यया **"अहिए"** त्ति, अधिके **"तिहिसये"** त्ति, तिथिशते = विक्रमसंवत्सप्तदशाधिकपञ्चदशशत१५१७तमे वर्षे **"गच्छेसो"** त्ति, गच्छेशः = गच्छनायकोऽजायत । **तथा चोक्त श्रीगुरुगुणरत्नाकरकाव्ये द्वितीये सर्गे—**

"अश्वश्वेतज्योतिरक्षक्षमाऽब्दे पौषे मासे विक्रमाद् यावदासन् ।
ये सूरिश्रीरत्नयुक्शेखराणा पट्टे लक्ष्मीसागरा गच्छनाथा. ॥३॥" इति ।

"वारासमेहिं" ति, वाराः = वासरा आदित्यादयः सप्त; आश्रमाः=ब्रह्मचारि-गृहि-वानप्रस्थ-भिक्षुलक्षणाश्चत्वारः, **उक्तञ्चाभिधानचिन्तामणौ**-"ब्रह्मचारी गृही वानप्रस्थो भिक्षु-रिति क्रमात् ॥८०७॥ चत्वार आश्रमास्तत्र " इति आभ्यामङ्काभ्यां वामक्रमोदिताभ्यां ४७ सङ्ख्य-याऽधिके तिथिशते १५०० वर्षे=विक्रमसंवत् १५४७ वर्षे **"दिव"** ति, दिवं=स्वर्गतिं जगाम ।

एवञ्च षड् ६वर्षाणि गार्हस्थ्ये, षड्विंशति२६वर्षाणि सामान्यमुनित्वे, पञ्च ५ वर्षाणि पन्न्यासत्वे, सप्त ७ वर्षाणि वाचकत्वे, नव ९ वर्षाणि सूरित्वे, त्रिंशद् ३० वर्षाणि गच्छ-नायकत्वे चेति निखिलायुस्त्र्यशीति ८३ वर्षाणि परिपाल्य त्रिदशालयं भजते स्म ।

विशेषजिज्ञासुना **गुरुगुणरत्नाकरकाव्यप्रमुखा** निरीक्षणीया ॥२६८॥

साम्प्रतं श्रीमहावीरप्रभुपट्टे भूतस्य चतुःपञ्चाशत्तमस्य श्रीसुमतिसाधुसूरेः श्लोकद्वयेन विभणिषयाऽऽह प्रथमं सुगतललिताम्–

चारित्तस्स मिश्रा ण जस्स सिश्रया, केणं पि चंदाइणा,
वच्चा से ण गुणा जया श्रवि विही, कुज्जा सहस्सं मुहा ॥२७८॥
(सद्दूलविक्कीडियं)

(प्रे०) "जो" इत्यादि, "जो" त्ति, यः=श्रीहीरसूरिः "धम्मे" त्ति, धर्मे=श्रीमदर्हद्दर्शने "जवणाहिवं" ति यवनानां=जातिविशेषणाम् , अधिपम्=अधिपतिं=यवनाधिपम्=अकब्बर-नामानं भारतस्य सम्राजं "पि" त्ति, अपि=अन्येषामपि धर्मे स्थापितत्वस्य ख्यापनार्थोऽपिशब्दः, यद्वा एनं यवनाधिपमपि धर्मे स्थापितवान् तह्यन्येषां का कथेत्यपिशब्दार्थः, "ठविउ" ति स्थापयित्वा "बहू" त्ति, बहून्=पुष्करान् "अत्था" त्ति, अर्थान्=कार्याणि शासनोन्नति-कराणि "कारिअ" त्ति, कारयामास ।

पुनरपि कीदृग् ? इत्युत्प्रेक्षयाऽऽह- "जस्स" त्ति, यस्य=श्रीहीरसूरेः "तवप्पहाअ" त्ति, तपःप्रभया "विजिओ" त्ति, विजितः "भाणू" त्ति, भानुः=रविः "थेरिअ" ति, स्थैर्यं "णो" त्ति, न=नैव "पाविअ" त्ति, प्राप ।

पुनरप्याह सोत्प्रेक्षमस्य चारित्रशुक्लतामाह-"जस्स" त्ति, यस्य श्रीहीरसूरेः "चारित्तस्स" त्ति, चारित्रस्य=संयमस्य "सिअया" त्ति, सितता = शुक्लता "केणं पि चंदाइणा" त्ति. केनाऽपि चन्द्रादिना = इन्दुप्रमुखेणाऽत्राऽऽदिपदेन कर्पूर-हिम-रजत-कर्पासप्रमुखश्वेतवर्ण-वद्वस्तुग्रहणं द्रष्टव्यम् । "ण" त्ति, न = नैव "मिआ" त्ति, मिता = मीयते स्म ।

गुणानुत्प्रेक्षते "से" त्ति, अस्य = श्रीहीरसूरेः "गुणा" त्ति, गुणाः "ण" त्ति, न= नैव 'वच्चा' त्ति, वाच्याः = वक्तुं शक्याः "जया अवि" त्ति, यदा-ऽपि 'विही' त्ति, विधिः=ब्रह्मा "सह " ति, सहस्रं=सहस्रसङ्ख्याकान्=दशशतप्रमाणान् "मुहा" त्ति न्= ज्जा" त्ति कुर्यात् = विदध्यात् ॥२७८॥

अथ श्रीजगद्गुरोर्हीरसूरेर्जन्मादिपर्यायकालमानमाख्यातुकामः शार्दूलविक्रीडितमाह-

सेऽद्दे सिद्धसये जणी तिहजुए, १५८३दिक्खा रसंकाहिए१५९६;
विज्जादेविसये रिसीहि१६०७ग्रहिए, सो पंडिश्रो वायगो ।
भीहि१६०८ग्रहिए दिसाहि१६१०ग्रहिए, सूरी णिवाऽकब्बरा;
सिगऽद्धीहि१६४२जगग्गुरुत्ति बिरुदं, पत्तो दुगत्तेहि१६५२रवं ॥२७९॥
(सद्दूलविक्कीडिअं)

(प्रे०) "से" इत्यादि, "से" त्ति, अस्य = श्रीहीरसूरेः "तिह " त्ति, त्रिशब्द-स्त्र्यङ्कवाचकः, इभाः=दिग्गजा अष्टौ, आभ्यामङ्काभ्यां वामगतिमीलिताभ्यां ८३ इति सङ्ख्यया

जम्मोऽस्स विक्कमाऽद्दे जुगणिहिरज्जुम्मि१४९४पक्खदिवससये ।
रुद्देहि१५११जुए स वयी सूरी वसुभूहि१५१८ससिकरीहि१५८१दिवं ॥२७०॥

(पच्छागीई)

(प्रे०) "जम्मो" इत्यादि, "ऽस्स" त्ति, अस्य=श्रीसुमतिसाधुसूरेः "जम्मो" त्ति, जन्म "वि " त्ति, विक्रमात्=विक्रमभूपतेः "जुगणिहिरज्जुम्मि" त्ति, युगानि=कृत-त्रेता-द्वापर-कलिनामकानि चत्वारि, निधयो नव, रज्जवश्चतुर्दश एतेऽङ्का वामगतिभणिता यत्र तत्र युगनिधिरज्जौ 'ऽद्दे" त्ति, अब्दे=वर्षे विक्रमसंवत् १४९४ वर्षेऽभूत् ।

"स" त्ति, सः=श्रीसुमतिसाधुसूरिः "रुद्देहि" त्ति, रुद्रैः=एकादशभिः "जुए" त्ति, युते=युक्ते "पक्खदिवससये" त्ति, पक्षदिवसाः=एकपक्षसम्बन्धिदिनाः पञ्चदश, ताव-न्मितानि शतानि यस्य तत्र पक्षदिवसशते १५०० वर्षे=विक्रमसंवत् १५११ शरदि "वयी" त्ति, व्रती=संयमी जातः ।

"व भूहि" त्ति, वसुभूमिः=अष्टै काङ्कलक्षणाभिः पश्चानुपूर्व्या मिलिताभिरष्टदश-१८सङ्ख्यया युते पक्षदिवसशतेऽब्दे=विक्रमसंवत् १५१८ संवत्सरे 'सूरि' त्ति, सूरिः=आचार्यः सञ्जातः ।

"ससिकरीहि" त्ति, शशिकरिभिः=एकाङ्का-ऽष्टाङ्कलक्षणैर्वामगत्यैकाशीति८१--सङ्ख्यया युते पक्षदिवसशतेऽब्दे=विक्रमसंवत् १५८१ शरदि 'दिवं" ति, दिवम्=अमर-नगरी गतः ।

एवञ्च सप्तदश१७वर्षाणि गार्हस्थ्ये, सप्त ७ वर्षाणि सामान्यसाधुपर्याये, त्रिषष्टि६३-वर्षाणि सूरित्वे चेति सर्वायुश्च सप्ताऽशीति ८७ वर्षाणि परिभुज्य त्रिदशलोकं भूषयाञ्चकार॥२७०॥

सम्प्रति वर्धमानविभोः पञ्चपञ्चाशपट्टविभूषकं श्रीहेमविमलसूरिं श्लोकद्वयेन निरूप-यिपुरादौ मालागलितां भणति–

ततमुणिभगणोणं परिकलिओ हेमविमलसूरिरयणीयरो,
भासी सुमइसाहुसूरिपट्टगगणो भवियपम्हविआसयरो ।
जा मुणिपुंगवस्स अस्स जसकित्तीए णिरुवमा अवदाअया,
ण लहिज्जेइ केहि वि कप्पुररयअचंदाईहि से तुलया ॥२७१॥

(मालागलिया)

वादिविडम्बनाख्यबिरुदं=वादिविडम्बन इति नाम्नीं पदवीं "**लद्धं**" ति, लब्धं=प्राप्तम् ।

अथाऽस्य जन्मादिपर्यायसत्कान् वर्षानाह–"**जम्मो**" इत्यादि, "**तस्स**" त्ति, तस्य= श्रीहेमविमलसूरेः "**जम्मो**" त्ति, जन्म "**विक्कमभूवओ**" त्ति, विक्रमभूपतः=विक्रमादित्य-नृपतितः "**समक्कमेहि**" त्ति, समम्=आकाशम्=शून्यम् , क्रमौ=पादौ प्रसिद्धौ वामेतरौ द्वौ, यदुक्तम्–'क्रम शक्तौ परीपाट्यां क्रमश्चरणकल्पयो' "इति । आभ्यामङ्काभ्यां वामगतिन्यस्ताभ्यां विंशति२०सङ्ख्यया यद्वा शमौ=हस्तौ द्वौ विवक्ष्यते तदा द्वाविंशति२२सङ्ख्यया "**अहिए**" त्ति, अधिके "**मिच्छत्तखोणीसये**" त्ति; मिथ्यात्वानि=अनाभोगिका-ऽऽभि-ग्रहिकाऽनाभिग्रहिका-ऽऽभिनिवेशिक-सांशयिकलक्षणानि पञ्च, क्षोणी=भूरेका, एतौ अङ्कौ वाम-गतिमीलितौ पञ्चदश १५ इति सङ्ख्याप्रमाणानि शतानि यत्र तत्र मिथ्यात्वक्षोणीशते "**वासे**" त्ति, वर्षे=विक्रमसंवत् १५२० (२२) वर्षेऽजायत ।

" " त्ति, सः=श्रीहेमविमलसूरिः " **गगवेएहि**" त्ति, "मिच्छत्तखोणीसये विक्कम-भूवओ" त्ति, पदत्रयस्येहोत्तरत्र चानुवर्तनात् विक्रमभूपतो योगाङ्गाः=१यम-२ नियमा-३ऽऽसन-४ प्राणायाम-५ प्रत्याहार-६ धारणा-७ ध्यान ८ समाधिरूपाण्यष्टौ वेद्यौ=साताऽसातलक्षणौ शाता-ऽशातरूपौ सदसद्रूपौ द्वौ, अथवा वेदाः पुरुष स्त्री-नपुंसकलक्षणास्त्रयः, यद्वा ऋग्वेद-यजु-र्वेद-सामवेदात्मकास्त्रयः, आभ्यामङ्काभ्यां पश्चानुपूर्व्या भणिताभ्यां २८/३८ सङ्ख्ययाऽधिके "**मिच्छत्तखोणीसये**" इत्याद्यनुवर्तते=मिथ्यात्वक्षोणीशते वर्षे=विक्रमसंवत् १५२८-३८ वर्षे "**वयहरो**" त्ति व्रतधरः=साधुरभवत् ।

"**सिद्धिकहाहि**" त्ति, विक्रमभूपतः सिद्धिकथाभिः=अष्टचतुरङ्करूपाभिर्वामगतिमीलिता-भिरधिके मिथ्यात्वक्षोणीशते वर्षे=विक्रमसंवत् १५४८वर्षे "**सूरी**" त्ति, सूरिः=आचार्यः संजातः ।

"**जोगद्दिवेहि**" त्ति, योगाः=मनोवाकायरूपास्त्रयः, यद्वा इच्छा-शास्त्र-सामर्थ्यलक्षणा-स्त्रयः, अथवा भक्ति–ज्ञान-वैराग्यात्मकास्त्रयः, द्विपा अष्टौ, योगद्विपैः=त्र्यङ्क-ष्टाङ्कलक्षणैरधिके क्षोणीशतेऽब्दे विक्रमसंवत् १५८३ शरदि "**देवनिलयं**" ति, देवनिलयं=सुरालयं "**गओ**" त्ति, गतः=प्राप्तः ।

एवञ्चाऽष्टौ ८ वर्षाणि गार्हस्थ्ये, विंशति२०वर्षाणि मुनित्वे, पञ्चत्रिंश३५द्वर्षाणि सूरित्वे चेति निजजीवनं त्रिषष्टिवर्षमितमनुभूयाऽमरलोकं बोद्धुमिव तत्प्रति प्रतस्थौ ।

अथवा ये विक्रमसंवत् १५२२ वर्षे जन्म मन्येयुस्तदपेक्षया षट् ६ वर्षाणि गृहे, यदि पुनर्दीक्षा विक्रमसंवत् १५३८ वर्षे स्वीकुर्युस्तर्हि गृहस्थत्वे षोडशा ऽष्टादश-१६-१८ वा वर्षाणि, मुनिव्रते च दश १० वर्षाणि भवेयुः ।

"णाणतवतेअतुट्ठा" त्ति, ज्ञानञ्च तपश्च=ज्ञानतपसी, तयोस्तेजः=ओजः=प्रभावः=ज्ञानतपस्तेजस्तेन तुष्टात्=तोषमुपागतात्=ज्ञानतपस्तेजस्तुष्टात् "साहिणिवजहंगीरा" त्ति, शाहिनृपजहांगीरात्=जहांगीराऽभिधात् शाहिभूपतेः "महातव त्ति बिरुदं" ति, 'महातपा' इति बिरुद = महातपासंज्ञकां पदवी 'पावीअ' त्ति, प्राप्नोत्=लब्धवान् ।।२८३।।

अथ श्रीविजयदेवसूरिसत्कान् जन्मादिवत्सरान् व्याचिकीर्षु पथ्यागीत्या वदति–

जम्मोऽस्स णिवसयेऽद्दे अहिएऽतिसयेहि[१६३४]तिअयरेहि[१६४३]वयं ।
पणणासो सरिसूहि[१६५५]स सूरी दीवेहि[१६५६]खं तिकुणयबुहे[१७१३]।। २८४।।

(पच्छागीई)

(प्रे०) "जम्मो" इत्यादि, "ऽस्स" त्ति, अस्य=श्रीविजयदेवसूरेः "जम्मो" त्ति, जन्म "अतिसयेहि" त्ति, अतिशयैः=श्रीअर्हत्प्रभोरतिशयैश्चतुस्त्रिंशता–

तथा चोक्तमभिधानचिन्तामणौ–

"तेषा च १ देहोऽद्भूतरूपगन्धो निरामय स्वेदमलोज्झितश्च ।
२ श्वासोऽब्जगन्धो ३ रुधिरामिष तु गोक्षीरधाराधवल ह्यविस्रम् ।।५७।।
४ आहारनिहारविधिस्त्वदृश्यश्चत्वार एतेऽतिशया सहोत्था ।
क्षेत्रे स्थितिर्योजनमात्रकेऽपि, नृदेवतिर्यग्जनकोटिकोटे ।।५८।।
६ वाणी नृतिर्यक्सुरलोकभाषा सवादिनी योजनगामिनी च ।
७ भामण्डल चारु मौलिपृष्ठे विडम्बिताहर्पतिमण्डलश्रि ।।५९।।
साग्रे च गव्यूतिशतद्वये रुजा ९ वैरेतयो १० मार्यति११वृष्ट्य१३वृष्टय ।
१४ दुर्भिक्षमन्यस्वकचक्रतो १५ भय स्यान्नैत एकादश कर्मघातजा ।।६०।।
खे धर्मचक्र चमरा सपादपीठं मृगेन्द्रासनमुज्ज्वल च ।
छत्रत्रय रत्नमयो ध्वजोऽङ्घ्रि-न्यासे च चामीकरपङ्कजानि ।।६१।।
वप्रत्रय चारु चतुर्मुखाङ्गता, चैत्यद्रुमोऽधोवदनाश्च कण्टका ।
द्रुमानतिर्दुन्दुभिनाद उच्चकै-र्वातोऽनुकूल शकुनाः प्रदक्षिणा ।।६२।।
गन्धाम्बुवर्षं बहुवर्णपुष्प-वृष्टि कचश्मश्रुनखाप्रवृद्धि ।
चतुर्विधाऽमर्त्यनिकायकोटि र्जघन्यभावादपि पार्श्वदेशे ।।६३।।
ऋतूनामिन्द्रियार्थानामनुकूलत्वमित्यमी । एकोनविंशतिर्दैव्याश्चतुस्त्रिंशच्च मीलिता ।।६४।।" इति ।

ततश्चतुस्त्रिंशता "जुए" त्ति, युते "णिवसये" त्ति, नृपाः=षोडश तावन्मात्राणि शतानि यस्य तादृशे नृपशते "ऽद्दे" त्ति, अब्दे = वर्षे = विक्रमसंवत् चतुस्त्रिंशपञ्चदशशत १६३४ तमे शरदि पोषशुक्लत्रयोदश्यां रवौ वासरे इलादुर्गेऽभवत् ।

'वयं" ति, व्रतं = प्रव्रज्या "तिअयरेहि" त्ति, त्र्यतरैः = त्र्यङ्क-चतुरङ्करूपैः पश्चानुपूर्व्या लब्धैः त्रिचत्वारिंशत् ४३ सङ्ख्यया "णिवसयेऽद्दे जुए" त्ति, स्थानत्रये पदत्रयमनु-

तानि च तानि सहस्रमुनिदलानि=यस्य स चरणरङ्गसहस्रमुनिदलः, एतावता सुसंयमिसहस्रमुनिपरिवृत इत्यर्थः ।

तथा चोक्तं श्रीविजयलक्ष्मीसूरिभिरुपदेशप्रासादे—

"श्रीहेमविमलसूरि-र्दूरीकृतकलमष स सूरिगुणम् । ज्ञात्वा योग्य तूर्णं, धर्मस्याऽभ्युदयसंसिद्ध्यै ॥१३॥
सौभाग्यभाग्यपूर्णं, सवेगतरङ्गरङ्गनीरनिधिम् । आनन्दविमलसूरिं, स्वपट्टे स्थापयामास ॥१४॥" इति।

"वेरग्गकेसरो" त्ति, वैराग्यं=विरागता एव केसरः=किञ्जल्कं यस्य सः=वैराग्यकेशरः=वैराग्यवानित्यर्थः " **द्धाचरणकण्णिगो"** त्ति, शुद्धं=पवित्रं=निर्मलमाचरणम्=आचारः=क्रियाकलापः=शुद्धाचरणम् , तदेव कर्णिका=बीजकोशो यस्य स=शुद्धाचरणकर्णिकः=सम्यक्क्रियाकाण्डकारीति भावः, **"चउव्विहसघमुणालो"** त्ति, चतुर्विधः=साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविकारूपश्चासौ सङ्घश्च=समुदायः=चतुर्विधसङ्घः, स एव मृणालः=बिसतन्तवो यस्य सः चतुर्विधसङ्घमृणालः=चतुर्विधसङ्घकलितो राजते स्मेति हृदयम् । **"सिरिहेमविमलसूरिपयसरट्ठिअणालो"** त्ति, श्रीहेमविमलसूरेः पदं=पट्टः=सर इव सरस्तडागकं=श्रीहेमविमलसूरिपदसरस्तस्मिन् स्थितो=नालः=कमलदण्डो यस्य सश्रीहेमविमलसूरिपदसरःस्थितनालः=श्रीहेमविमलसूरिपट्टभृदित्यर्थः ।

तथा च न्यगादि श्रीहीरसौभाग्ये चतुर्थे सर्गे—

"विभूषामद्वैतामकलयदथानन्दविमले, व्रतीन्द्रे विद्राणाखिलकुदृशि तत्पट्टकमला ।
वसन्ते वासन्तीततिरिव पुनर्धर्मजयिनि, क्षितीन्द्रे राज्यश्रीरिव विजितविश्वप्रतिभटे ॥१३२॥
त्यक्त्वाशेषकुपक्षिकाश्च कुदृश किंपाकभूमिरुहान्शैलम्बैरिव पारिजातशिखरी यो जन्मिभि शिश्रिये ।
येनात्मा शिथिलीभवन्मुनिपथादप्युद्धृत सूरिणा, ससाराम्बुनिधेरिवोद्धतकुदृग्यादोव्रजव्याकुलात् ॥१३३॥

शुद्धा क्रियामुद्धरतोऽस्य भाविनीमद्भुतप्रवृद्धिस्तमितीव शसितुम् ।
स्वप्नेऽनुयुक्तेरनु कस्यचिज्जिनः प्रातुर्द्वितीयेन्दुरदर्शि निजम् ॥१३४॥

जैनार्चाश्रमणाद्यभावभणनाम्भ प्लाव्यमानात्मना, जज्ञे द्वीप इव व्रतीशितुरिहोद्धार क्रियाया नृणाम् ।
विद्यासागरनामवाचकवरो यस्याथ दुर्दम्गणा-न्सेनानीरिव चक्रिणो रिपुनृपान् प्राक्स्वस्य वश्यान् व्यधात् ॥
प्रात साधुवृतस्त्वदापणपुरो यो याति सूरीशिता, सम्यक्सयमवान्स पूर्वगणिवत्सेव्यस्त्वयाहर्निशम् ।
स्वप्नेऽम्बपनगिरेति य निजगृहे नीत्वातिभक्त्या प्रभु, श्राद्ध कृश्चत मण्डपाद्रिवसतिर्भेजे सगोत्रै समम् ॥१३६

तमस्तोमप्राये कुनयनगणैर्दारुणतमे, कलौ श्रीसूरीन्दु शरणमभवद्यो जनिमताम् ।
मृगारातिव्यालद्विरदशबरव्यूहबहुले, गिरेर्दु सचारे गहन इव सार्थ पथिजुषाम् ॥१३७॥
गभीरिम्णा पाथोनिधिरिव महिम्नाऽपरमरु-द्गिरिश्चेतोजन्मप्रतिभटतया वा गगनजित् ।
प्रसारै रश्मीना सरसिरुहिणीनामिव पति, पवित्रीचक्रे यो विहृतिभिरशेषा अपि दिश ॥१३८॥

यो दक्षिणावर्त इव स्रवन्तीपतिप्लवे कम्बुकदम्बकेन । वाचयमाना निवहेन पृथ्वीपीठे परीतो विजहार सूरी।
मागीरथीव यद्वाह्मी पुनीते भुवनत्रयम् । पर विशेष कोऽप्यस्या निम्नगा न कदाचन ॥१४०॥

मन्दिरे दिव्यदुकूलकमनीयमण्डपं शक्रमण्डपमिव निर्माय विज्ञप्ता श्रीविजयसेनसूरयो वैशाखशुद्धचतुर्थ्यां चतुर्थे रवियोगे मृगाङ्कमृगशिर सयोगाद् अमृतसिद्धियोगेऽपि च श्रीविजयदेवसूरिरिति नामस्थापनपूर्वक सूरिपद ददु । अथ श्रीमल्लसाधुना सतुष्टेन सघभक्तिस्तथाचक्रे यथा कल्पवृक्ष एवायमिति मेने । किंबहुना तस्मिन्मह्ने सा० श्रीमल्लेन दशसहस्ररूप्यकव्यय कृत । ततस्तदग्रेतनदिने तत्रत्येन ठक्करकीकाख्येन तत्पदोत्सवनिमित्तमेवाष्टसहस्ररूप्यकव्ययपूर्वं प्रतिष्ठा कारिता । एव सर्वसख्यया श्रीविजयदेवसूरीणा पदमहे पञ्चाशत्सहस्रप्रमिता महिमुन्दिका व्ययिता । तत १६५८ वर्पे पत्तने परीक्षकसहस्रवीरसज्ञेन पञ्चसहस्रमहिमुन्दिकाव्ययपूर्वक गच्छानुज्ञानन्दिमहश्चक्रे । अथ श्री विजयदेवसूरयोऽहम्मदावादे प्रतिष्ठाद्वय, पत्तने प्रतिष्ठाचतुष्टय, स्तम्भतीर्थे प्रतिष्ठात्रय बहुद्रव्यव्ययपूर्वक कृत्वा स्वजन्मभूमौ श्रीइलादुर्गे चतुर्मासीं चक्रु ।" इति ।

"**ति णयबुहे**" त्ति, त्रिकुनयबुधाः=त्र्यङ्कै-काङ्क-सप्ताऽङ्कै-काङ्कलक्षणा वामक्रमभणिता यत्र तत्र त्रिकुनयबुधे=विक्रमसंवत्त्रयोदशोत्तरसप्तदशशत१७१३तमे संवत्सरे आषाढमासे शुक्लायामेकादश्यां देवशयनैकादशीसंज्ञायां तिथौ ऊन्नतनगरे "**खं**" ति, खं=स्वर्लोकं जगाम ।

इत्थश्च नव ९ वर्षाणि गृहे, द्वादश १२ वर्षाणि व्रते, एकं वर्षं पन्न्यासे, सप्तपञ्चाशद् ५७ वर्षाणि सूरित्वे चेति समस्तमायुश्चैकोनशीति७९वर्षाणि परिपाल्य देवान् संबोद्धुमिव ताविषं ययौ ।

विशेषजिज्ञासुना पुनः खरतरगच्छीयश्रीवाचनाचार्यश्रीवल्लभकृतवि**देव**ह्वात्म्यकाव्यश्रीमेघविजयगणिकृत**देवानन्द**काव्यप्रमुखा ग्रन्था नेत्रपथमानेतव्याः ।

तत्समये विक्रमसंवत् नवाऽधिके सप्तदशशत१७०९वर्षे गुर्जरदेशे लूम्पाकपूज्यस्य बजरङ्गर्षेः शिष्याल्लवजीवकात् मुखपट्टीबन्धा मूर्तिद्वेषिणो ढूण्ढका जातास्तस्य प्रथमोपसर्गाऽऽपातिदषदनुसारेण मतभेदेन वा "**बावीसटोला**" इति नामाऽन्तरम् । तन्मूलभेदौ षडष्टकौटिकौ ॥२८४॥

इदानीं श्रीज्ञातनन्दनजिनेन्द्रस्यैकषष्टं पट्टधरं श्रीविजयदेवसूरेः शिष्यं पट्टभृतश्च श्रीविजयसिहसूरि श्लोकत्रयेण निर्देष्टुकाम पूर्वं मनोरमां ब्रवीति—

रइअरो भविप्पयाण जो, जयउ सो गणीसरो गुरू ।
विजयसिहसूरिपुंगवो, विजयदेवसूरिणो पए ॥२८५॥ (मणोरमा)

(प्रे०) "**रइअरो**" इत्यादि, "**विजयदेवसूरिणो**" त्ति, विजयदेवसूरेः "**पए**" त्ति, पदे=पट्टे "**सो**" त्ति, सः=प्रसिद्धिभाक् "**गणीसरो**" त्ति, गणेश्वरः=गच्छनायकः "**विजय-**

तथाहि–यो भगवान् श्रीआनन्दविमलसूरिः क्रियाशिथिलबहुयतिजनकलितोऽपि संवेगरङ्गभावितमतिर्जिनप्रतिमाप्रतिषेधसाधुजनाऽभावप्रमुखोत्सूत्रप्ररूपणप्रबलजलप्लाव्यमानं जनसमूहं दृष्ट्वा करुणारसाऽवलिप्तचेतो गुर्वाज्ञया कतिचित्संविग्नसाधुसहायो विक्रमसंवत् द्व्यशीत्यधिकपञ्चदशशत१५८२वर्षे शिथिलाचारपरिहाररूपक्रियोद्धारणयानपात्रेण तमुद्धृतवान्, अनेकानि चेभ्यानामिभ्यपुत्राणाञ्च शतानि कुटुम्बधनादिमोहं संत्याज्य प्रव्राजितानि।

"यो वादे जयी स नगरादौ स्थास्यति नाऽन्यः" इति सुराष्ट्राधिपतिनामाङ्कितलेखमादाय सुराष्ट्रे साधुविहारनिमित्तं यदीयश्रावकः, सुरत्राणदत्तपर्यस्तिकावाहनः पातिमाहिप्रदत्त **"मलिकश्रीनगदल"** विरुदः सा० **"तूर्णसिंहाख्यः"** श्रीआनन्दविमलसूरेर्विज्ञप्तिं कृत्वा सम्प्रतिभूपतिरिव पन्न्यासजगर्षिप्रमुखसाधुविहारं कारितवान्।

तथा जेसलमेर्वादिमरुभूमौ जलदौर्लभ्याद् दुष्करोऽयमिति धिया श्रीसोमप्रभसूरिभिर्यो विहारः प्रतिषिद्ध आसीत् सोऽपि व्यवहारः कुमतव्याप्तिभिया तत्रत्यजनानुकम्पया चाऽनेन प्रभुणा भूयोलाभहेतवे पुनरप्यनुज्ञातः। तत्राऽपि प्रथमं लघुवया अपि शीलेन श्रीस्थूलभद्रकल्पो वैराग्यनिधिर्निःस्पृहावधिर्यावज्जीवं जघन्यतोऽपि षष्ठतपोऽभिग्रही पारणकेऽप्याचाम्लादितपोविधायी महोपाध्यायश्रीविद्यासागरगणिर्विहृतवान्। तेन च जेसलमेर्वादौ खरतरान् मेवातदेशे च बीजामतीप्रभृतीन् मोरव्यादौ (मोरव्यादौ) लुङ्कादीन् प्रतिबोध्य सम्यक्त्वबीजमुप्तं सदनेकधा वृद्धिमुपागतमद्याऽपि प्रतीतम्।

तथा पार्श्वचन्द्रव्युद्ग्राहिते वीरमग्रामे पार्श्वचन्द्रमेव वादे निरुत्तरीकृत्य भूयान् जनो जैनधर्मं प्रापितः। एवं मालावकेऽप्युज्जयिनीप्रभृतिषु। किं बहुना ? संविग्नत्वादिगुणैर्यत्कीर्तिपताका पुनरद्यापि सज्जनवचोवातेनेतस्तत उद्धूयमाना प्रवचनप्रासादशिरपरे समुल्लसति।

क्रियोद्धारणकरणाऽन्तरञ्च श्रीआनन्दविमलसूरिश्चतुर्दश१४वर्षाणि जघन्यतोऽपि नियततपोविशेषं विहाय षष्ठतपोऽभिग्रही, चतुर्थषष्ठाभ्यां विंशतिस्थानकाराधनाद्यनेकविकृष्टतपःकारी बभूव।

"ऽस्स" त्ति, अस्य = श्रीआनन्दविमलसूरेः **"जम्मो"** त्ति, जन्म=उत्पत्तिः **"निवा"** त्ति, नृपात्=विक्रमभूपतः **"वाहंबुहीहि"** ति, वाहा–ऽम्बुधिभिः सप्ताङ्क–चतुरङ्कलक्षणैर्वामगतिमीलितैः सप्तचत्वारिंशत् ४७ सङ्ख्यया **"ऽहिए"** त्ति, अधिके **"पमायकुसये"** त्ति, = प्रमादाः = मद्य–विषय–कषाय–निद्रा–विकथात्मकाः पञ्च, कुः = भूमिरेका, एतावङ्कौ पश्चानुपूर्व्या लब्धौ पञ्चदश१५सङ्ख्या तावन्मितानि शतानि यस्य तादृशे प्रमादकुशते **"ऽद्दे"** त्ति, अब्दे = वर्षे = विक्रमसंवत् सप्तचत्वारिंशदधिकपञ्चदशशत१५४७तमे शारदे इलादुर्गेऽभूत्।

"गोसिद्धगुणेहि" त्ति, गौः=भूम्येका, यदुक्तमनेकार्थकोशे–"गौरुदके दृशि । स्वर्गे दिशि पशौ रश्मौ वज्रे भूमाविषौ गिरि ॥६॥" इति । तथा-ऽन्यत्रा-ऽपि–"गोशब्दश्च 'स्वर्गेषुपशुवाग्वज्रदिग्नेत्रघृणिभूर्जले' इति । सिद्धगुणाः=अनन्तज्ञाना-ऽनन्तदर्शना-ऽव्याबाधसुखा-ऽनन्तचारित्रा-ऽक्षयस्थित्य--रूपित्वा ऽगुरुलघ्व-नन्तवीर्यरूपा अष्टौ, आभ्यामङ्काभ्यां पश्चानुपूर्विक्रमलब्धाभ्यामेकाशीति८१सङ्ख्ययाऽधिके कषायशतमङ्ख्ये वर्षे = विक्रमसंवत् १६८१ वत्से वैशाखमासे सितायां षष्ठ्यां तिथौ इलादुर्गे सा० "सहजू" कृतमहोत्सवे "आयरिओ" त्ति, आचार्यः = सूरिः "हवीअ" त्ति, पदं डमरुकमणिन्यायादत्राऽपि योज्यते ततोऽभूत् ।

उक्तञ्च श्रीउपाध्यायमेघविजयगणिभिः–"कालान्तरे च 'इला'दुर्गेऽभ्येत्य सा० 'सहजू' कृतमहोत्सवेन स० १६८१वर्षे वैशाखसितषष्ठ्या श्रीविजयसिंहसूरीन् यौवराज्येऽस्थापयत ।" इति।

अमुष्य च विक्रमसंवत् १६८४ वर्षे जयमल्लमन्त्रिणा सहस्रशो रूप्यकव्ययेन गच्छानुज्ञानन्दिमहोत्सवः कारितः । उक्तञ्चोपाध्यायमेघविजयगणिभिः–"स० १६८४ वर्षे सहस्रशोरूप्यकव्ययेन श्रीविजयसिंहसूरीणा गणानुज्ञानन्दिमहोत्सव कारित' ।" इति ।

"रसडसुज्ञस गमिए" त्ति, रसाः = शृङ्गारादयोऽष्टौ, यदुक्तं काव्य शे–

"१ शृङ्गार २ हास्य-३ करुण-४ रौद्र-५ वीर-६ भयानका ।
७ बीभत्सा-८ ऽद्भुतसञ्ज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसा स्मृता" इति ।

तथैव श्रीअमरकोशेऽपि–"शृङ्गार-वीर-करुणा-ऽद्भुत-हास्य-भयानका बीभत्स-रौद्रौ च रसा" इति

अण्डः = कोशः = शून्यं वृत्ताकारत्वात्, सूर्याश्वाः = मार्तण्डताक्ष्यार्ः सप्त, खड्गः = खड्गिशृङ्ग एकः, एतैरङ्कैः पश्चानुपूर्व्या लब्धैः १७०८ इति सङ्ख्यया मिते रसाण्डसूर्याश्वखड्गमिते = विक्रमसंवत् १७०८ वर्षे आषाढमासे श्वेतायां द्वितीयायां तिथौ अमदावादस्य निकटवर्तिनि नवीनपुरे गुरौ विद्यमान एवाऽमरलोके ययौ ।

तथा चोक्त श्रीतपागच्छपट्टावलीसूत्रवृत्त्यनुसन्धाने श्रीउपाध्यायमेघविजयगणिभिः–"श्रीविजयसिंहसूरीणा स० १६४४ वर्षे जन्म, स० १६५४ व्रतम्, स० १६७२ वाचकपदम्, स० १६८१ सूरिपदम्, ते सूरय परमक्षमापात्र यावज्जीव गुर्वाज्ञाराधका विवेकाद्यनेकगुणोदधयोऽष्टाविंशतिवर्षाणि सूरिपद प्रपाल्य सर्वातीचारालोचनपूर्वमनशनेन स० १७०८ वर्षे अहम्मदावादपार्श्वस्थनवीनपुरे आषाढसितद्वितीयाया श्रीविजयसिंहसूरय स्वर्जग्मु" इति ।

तथा श्रीउपाध्यायगुणविजयगणिभिरपि श्रीतपागणपतिगुणपद्धतौ श्रीविजयसिंहसूरेः विक्रमसंवत् १६८१ वर्षे सूरिपदम्, विक्रमसवत् १६८४ वर्षे च गच्छानुज्ञा दर्शिता तथा च तद्ग्रन्थः–

तथाहि–यो भगवान् श्रीआनन्दविमलसूरिः क्रियाशिथिलबहुयतिजनकलितोऽपि संवेगरङ्गभावितमतिर्जिनप्रतिमाप्रतिषेधसाधुजनाऽभावप्रमुखोत्सूत्रप्ररूपणप्रबलजलप्लाव्यमानं जनममृहं दृष्ट्वा करुणारसाऽवलिप्तचेतो गुर्वाज्ञया कतिचित्संविग्नसाधुसहायो विक्रमसंवत् द्व्यशीत्यधिकपञ्चदशशत१५८२वर्षे शिथिलाचारपरिहाररूपक्रियोद्धारणयानपात्रेण तमुद्धृतवान्, अनेकानि चेभ्यानामिभ्यपुत्राणाञ्च शतानि कुटुम्बधनादिमोहं संत्याज्य प्रव्राजितानि।

"**यो वादे जयी स नगरादौ स्थास्यति नाऽन्यः**" इति सुराष्ट्राधिपतिनामाङ्कितलेखमादाय सुराष्ट्रे साधुविहारनिमित्तं यदीयश्रावकः, सुरत्राणदत्तपर्यस्तिकावाहनः पातिमाहिप्रदत्त "**मलिकश्रीनगदल**" विरुदः सा० "**तूर्णसिंहाख्यः**" श्रीआनन्दविमलसूरेर्विज्ञप्तिं कृत्वा सम्प्रतिभूपतिरिव पन्न्यासजगर्षिप्रमुखसाधुविहारं कारितवान्।

तथा जेसलमेर्वादिमरुभूमौ जलदौर्लभ्याद् दुष्करोऽयमिति धिया श्रीसोमप्रभसूरिभिर्यो विहारः प्रतिषिद्ध आसीत् सोऽपि व्यवहारः कुमतव्याप्तिभिया तत्रत्यजनानुकम्पया चाऽनेन प्रभुणा भूयोलाभहेतवे पुनरप्यनुज्ञातः। तत्राऽपि प्रथमं लघुवया अपि शीलेन श्रीस्थूलभद्रकल्पो वैराग्यनिधिर्निःस्पृहावधिर्यावज्जीवं जघन्यतोऽपि षष्ठतपोऽभिग्रही पारणकेऽप्याचाम्लादितपोविधायी महोपाध्यायश्रीविद्यासागरगणिर्विहृतवान्। तेन च जेसलमेर्वादौ खरतरान् मेवातदेशे च वीजामतीप्रभृतीन् मोरव्यादौ (मोरव्यादौ) लुङ्कादीन् प्रतिबोध्य सम्यक्त्ववीजमुप्तं सदनेकधा वृद्धिमुपागतमद्याऽपि प्रतीतम्।

तथा पार्श्वचन्द्रव्युद्ग्राहिते वीरमग्रामे पार्श्वचन्द्रमेव वादे निरुत्तरीकृत्य भूयान् जनो जैनधर्मं प्रापितः। एवं मालावकेऽप्युज्जयिनीप्रभृतिषु। किं बहुना? संविग्नत्वादिगुणैर्यत्कीर्तिपताका पुनरद्यापि सज्जनवचोवातेनेतस्तत उद्धूयमाना प्रवचनप्रासादशिरपरे समुल्लसति।

क्रियोद्धारणकरणाऽन्तरञ्च श्रीआनन्दविमलसूरिश्चतुर्दश१४वर्षाणि जघन्यतोऽपि नियततपोविशेषं विहाय षष्ठतपोऽभिग्रही, चतुर्थषष्ठाभ्यां विंशतिस्थानकाराधनाद्यनेकविकृष्टतपःकारी बभूव।

"**ऽस्स**" त्ति, अस्य = श्रीआनन्दविमलसूरेः "**जम्मो**" त्ति, जन्म=उत्पत्तिः "**निवा**" त्ति, नृपात्=विक्रमभूपतः "**वाहंबुहीहिं**" ति, वाहा–ऽम्बुधिभिः सप्ताङ्क-चतुरङ्कलक्षणैर्वामगतिमीलितैः सप्तचत्वारिंशत् ४७ सङ्ख्यया "**ऽहिए**" त्ति, अधिके "**पमायकुसये**" त्ति, = प्रमादाः = मद्य-विषय-कषाय-निद्रा-विकथात्मकाः पञ्च, कुः = भूमिरेका, एतावङ्कौ पश्चानुपूर्व्या लब्धौ पञ्चदश१५सङ्ख्या तावन्मितानि शतानि यस्य तादृशे प्रमादकुशते "**ऽद्दे**" त्ति, अब्दे = वर्षे = विक्रमभवत् सप्तचत्वारिंशदधिकपञ्चदशशत१५४७तमे शारदे इलादुर्गेऽभूत्।

वीअ जं गुणणिहि, मुणिणो पण्णाससच्चविजयगणी ।
सो किरिउद्धारयरो, तप्पट्टे जयउ परमसंवेगी ॥२८८॥ (पच्छागीई)

(प्रे०) "सेवीअ" इत्यादि, "मुणिणो" त्ति, मुनयः=साधवः, "जं" ति, यं श्रीसत्य-विजयगणि किंभूतम् ? "गुणणिहि" ति, गुणानां=ज्ञान-तपस्त्याग-संवेगादीनां निधिः=शेवधिः=गुणनिधिस्तं गुणनिधि "सेवीअ" त्ति, असेवत, अयं भावः-तदानीं कालदोषात् प्रमादबहुलाः शिथिलक्रिया निर्ग्रन्थाः संजाताः, तद् दृष्ट्वा दूनमना असौ महात्मा परमसंवेगी घोरतपस्वी सूरेराज्ञयोपाध्यायश्रीविनयविजयोपाध्यायश्रीयशोविजयादिभिः सह क्रियोद्धार चकार ।

तदा च 'ये क्रियोद्धारं शिश्रियुस्ते साधवोऽन्ये तु यतयः' इति ख्यातिरभूत् । तदा साधवो यतिभेदचिह्नं काषायिकं वस्त्रं दधुः, यतयस्तु सितवस्त्रधारिणः परि-ग्रहिणोऽभवन् । तथा च यतिभ्यः पृथग्भूताः साधवः पण्डितसत्यविजयगणि भजन्ति स्म ।

ततो मुनिभिः सूरिपदग्रहणाय मताऽन्तरेण सर्वनायकपदग्रहणाय विज्ञप्तोऽसौ जगाद- "यस्मिन्नधिरूढा गणधरास्तत्र मादृशो लघुर्नार्हो मा भूत्तस्य पूज्यपदस्याऽऽतना अहं मुनिरेव श्रेयान्" इति कृत्वा न स्वीचकार सूरिपदमिति श्रूयते ।

यत्तदोर्नित्याभिसम्बन्धादाह "सो" त्ति सः "पण्णाससच्चविजयगणी" त्ति, पन्न्याससत्यविजयगणी "तप्पट्टे" त्ति, तस्य=श्रीविजयसिंहसूरेः पट्टे=पदे "जयउ" त्ति जयतु=जयनशीलोऽस्तु, किंभूतः ? "किरिउद्धारयरो" त्ति, क्रियोद्धारकरः, पुनः किं-विशिष्टः ? "परमसवेगी" त्ति, परमसंवेगी=परमसंवेगरङ्गवान् ।

विस्तरलिप्सुभिः श्रीजिनहर्षकृतस्तत्सत्कनिर्वाणरासोऽवलोकनीयः ॥२८८॥

अथ श्रीसत्यविजयगणिनो जन्मादिसवत्सरान् दर्शयन्नाह पथ्यागीतिम्—

खमहातित्थरसे१६८०ऽस्स, जम्मोऽस्स हरिक्कणाहिचन्दकले१६६४ ।
दिक्खा बलसवसंजम-१७२६मिए पयं अङ्गइसुणागबुहे१७५६/१७५७खं ॥२८९॥
(पच्छागीई)

(प्रे०) "खमहा०" इत्यादि, "ऽस्स" त्ति, अस्य=श्रीसत्यविजयगणिनः " ो" त्ति, जन्म=उद्भवः "खमहातित्थरसे" त्ति, खम्=आकाशम्=शून्यम्, महातीर्थान्यष्टषष्टिः, △

△ यदुक्त काव्यशिक्षायाम्-"अष्टषष्टिर्महातीर्थानि-प्रभास-ॐकार-अमरेश्वर-विश्वेश्वर महाकाल-कनखल-कुरुक्षेत्र-मरु-चण्डीश-भस्मगात्रप्रभृतीनि ।" इति ।

तथाहि–यो भगवान् श्रीआनन्दविमलसूरिः क्रियाशिथिलबहुयतिजनकलितोऽपि संवेगरङ्गभावितमतिर्जिनप्रतिमाप्रतिषेधसाधुजनाऽभावप्रमुखोत्सूत्रप्ररूपणप्रबलजलप्लाव्यमानं जनसमूहं दृष्ट्वा करुणारसाऽवलिप्तचेतो गुर्वाज्ञया कतिचित्संविज्ञसाधुसहायो विक्रमसंवत् द्व्यशीत्यधिकपञ्चदशशत१५८२वर्षे शिथिलाचारपरिहाररूपक्रियोद्धारणयानपात्रेण तमुद्धृतवान्, अनेकानि चेभ्यानामिभ्यपुत्राणाञ्च शतानि कुटुम्बधनादिमोहं संत्याज्य प्रव्राजितानि।

"यो वादे जयी स नगरादौ स्थास्यति नाऽन्यः" इति सुराष्ट्राधिपतिनामाङ्कितलेखमादाय सुराष्ट्रे साधुविहारनिमित्तं यदीयश्रावकः, सुरत्राणदत्तपर्यस्तिकावाहनः पातिसाहिप्रदत्त **"मलिकश्रीनगदल"** बिरुदः सा० **"तूर्णसिंहाख्यः"** श्रीआनन्दविमलसूरेर्विज्ञप्तिं कृत्वा सम्प्रतिभूपतिरिव पन्न्यासजगर्षिप्रमुखसाधुविहारं कारितवान्।

तथा जेसलमेर्वादिमरुभूमौ जलदौर्लभ्याद् दुष्करोऽयमिति धिया श्रीसोमप्रभसूरिभिर्यो विहारः प्रतिषिद्ध आसीत् सोऽपि व्यवहारः कुमतव्याप्तिभिया तत्रत्यजनानुकम्पया चाऽनेन प्रभुणा भूयोलाभहेतवे पुनरप्यनुज्ञातः। तत्राऽपि प्रथमं लघुवया अपि शीलेन श्रीस्थूलभद्रकल्पो वैराग्यनिधिर्निःस्पृहावधिर्यावज्जीवं जघन्यतोऽपि षष्ठतपोऽभिग्रही पारणकेऽप्याचाम्लादितपोविधायी महोपाध्यायश्रीविद्यासागरगणिर्विहृतवान्। तेन च जेसलमेर्वादौ खरतरान् मेवातदेशे च बीजामतीप्रभृतीन् मोरव्यादौ (मोरव्यादौ) लुङ्कादीन् प्रतिबोध्य सम्यक्त्वबीजमुप्तं सदनेकधा वृद्धिमुपागतमद्याऽपि प्रतीतम्।

तथा पार्श्वचन्द्रव्युद्ग्राहिते वीरमग्रामे पार्श्वचन्द्रमेव वादे निरुत्तरीकृत्य भूयान् जनो जैनधर्मं प्रापितः। एवं मालवकेऽप्युज्जयिनीप्रभृतिषु। किं बहुना ? संविग्नत्वादिगुणैर्यत्कीर्तिपताका पुनरद्यापि सज्जनवचोवातेनेतस्तत उद्धूयमाना प्रवचनप्रासादशिखरे समुल्लसति।

क्रियोद्धारणकरणाऽनन्तरञ्च श्रीआनन्दविमलसूरिश्चतुर्दश१४वर्षाणि जघन्यतोऽपि नियततपोविशेषं विहाय षष्ठतपोऽभिग्रही, चतुर्थषष्ठाभ्यां विंशतिस्थानकाराधनाद्यनेकविकृष्टतपःकारी बभूव।

"ऽस्स" त्ति, अस्य = श्रीआनन्दविमलसूरेः **"जम्मो"** त्ति, जन्म=उत्पत्तिः **"निवा"** त्ति, नृपात्=विक्रमभूपतः **"वाहंबुहीहि"** त्ति, वाहा–ऽम्बुधिभिः सप्ताङ्क-चतुरङ्कलक्षणैर्वामगतिमीलितैः सप्तचत्वारिंशत् ४७ सङ्ख्यया **"ऽहिए"** त्ति, अधिके **"पमाय सये"** त्ति, = प्रमादाः = मद्य-विषय-कषाय-निद्रा-विकथात्मकाः पञ्च, कुः = भूमिरेका, एतावङ्कौ पश्चानुपूर्व्या लब्धौ पञ्चदश१५सङ्ख्या तावन्मितानि शतानि यस्य तादृशे प्रमादकुशते **"ऽद्दे"** त्ति, अब्दे = वर्षे = विक्रमसंवत् सप्तचत्वारिंशदधिकपञ्चदशशत१५४७तमे शारदे इलादुर्गेऽभूत्।

"**कयलोगपगासाइग्गंथो उज्झायविणयविजयगणी**" त्ति, कृताः = निर्मिताः लोकप्रकाशादयो ग्रन्था येन स = कृतलोकप्रकाशादिग्रन्थोऽत्राऽऽदिपदेन हेमलघुप्रक्रिया-हेमप्रकाशाभिधहेमबृहत्प्रक्रिया—नयकर्णिका—शान्तसुधारसभावना—सुबोधिकानामकल्पवृत्ति-श्रीपालरास-सूर्यपुरचैत्यस्तवादयो ग्राह्याः, ततः पूर्वोक्तविशेषणविशिष्टः उपाध्यायविनयविजयगणी= श्रीहीरविजयसूरिशिष्यवाचकोत्तमकीर्तिविजयशिष्यः काश्यामुपाध्यायशोविजयगणिनः सहाऽध्यायी परमसौम्यतावान् नित्यत्रिशतीश्लोककण्ठाऽग्रशक्तिरभूत् । स चाऽष्टात्रिंशदधिके सप्तदशशते १७३८ विक्रमाऽब्दे रान्देरग्रामे स्वर्गमनमकरोत् ।

"**णायविसारयवायगजसविविजयगणो अणेगगथयरो**" त्ति, न्यायविशारदः न्यायशास्त्रकुशलो न्यायाचार्य इति यावत्, वाचकः = उपाध्यायः, न्यायविशारदश्चासौ वाचकश्च = न्यायविशारदवाचकः, स चासौ यशोविजयगणी = यशोविजयनामा गणी नित्यपञ्चशतश्लोककण्ठाग्रकरणशक्तिः सवेगी बालब्रह्मचारी पण्डितदीयमानोद्भिन्नयौवनसुरूपकन्यात्यागी द्विघट्यामेव दैवशिकप्रतिक्रमणस्मृतिकारी परमतार्किकः प्रतिक्रमणादेश एव "**भगवती**स्वाध्याय-**समकितसडसट्ठी**स्वाध्याय"रचिताऽनौष्ठ्यवादी अष्टोत्तरशतन्यायग्रन्थप्रणेता द्विलक्षप्रमाणग्रन्थविधाता युगैकस्तम्भः सिद्धैङ्कारमन्त्रोऽवधानपटुः प्रकाण्डशासनरागी श्रुतकेवलिप्रतीतिजनकः, न्यायविशारदवाचकयशोविजयगणी = न्यायविशारद-न्यायाचार्य-महामहोपाध्यायेत्यादिविरुद्-धरः श्रीयशोविजयगण्यभवत् ।

पुनः किंविशिष्टः ? अनेकग्रन्थकरः = अनेकानां = बहुसङ्ख्याकानां ग्रन्थानां करः = कारकः = अनेकग्रन्थकरः ।

तत्कृतग्रन्थाश्चेमाः—आत्मख्यातिः, आदिजिनस्तवनम्, अध्यात्ममतखण्डन-तद्वृत्ती, अध्यात्ममतपरीक्षा-तद्वृत्ती, अध्यात्मसारः, अध्यात्मोपदेशः, अध्यात्मोपनिषद्, अनेकान्तव्यवस्था, अलङ्कारचूडामणिवृत्तिः, अष्टसहस्रीवृत्तिः, आराधकविराधकचतुर्भङ्गी, उपदेशरहस्य-तद्वृत्ती, ऐन्द्रस्तुति-तद्वृत्ती, कर्मप्रकृतिवृत्तिः, काव्यप्रकाशवृत्तिः, कूपदृष्टान्तः, गुरुतत्त्वनिर्णय-तद्वृत्ती, छन्दश्चूडामणिवृत्तिः, जैनतर्कपरिभाषा, तत्त्वलोकवृत्तिः, तत्त्वविवेकः, तत्त्वार्थवृत्तिः, देवधर्मपरीक्षा, द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिका-तद्वृत्ती, धर्मपरीक्षा तद्वृत्ती, धर्मसङ्ग्रहटीप्पनकम्, नयप्रदीपः, नयोपदेश-तद्वृत्ती, न्यायखण्डनखण्डखाद्यम् न्यायालोकः, पञ्चनिर्ग्रन्थि, परमज्योतिः पञ्चविंशिका, परमात्मविंशतिका, पातञ्जलयोगसूत्रचतुर्थपादवृत्तिः, प्रतिमाशतक-तद्वृत्ती, प्रतिमास्थापनन्यायः, मङ्गलवादः, मार्गशुद्धिः, यतिदिनचर्या, यतिलक्षणसमुच्चयः, योगविंशिकावृत्तिः, विचारबिन्दुः, विधिवादः, वीरस्तव-तद्वृत्ती, वेदान्तनिर्णयः, वैराग्यकल्पलता, सामाचारी-

स्स" त्ति, जिनेन्द्रस्य=अर्हद्भिभोः शेषां मस्तके जना धारयन्ति तथा मुनयोऽपि श्रीदान-सूरेराज्ञां मौलौ दधते स्म ।

"ज" ति, यं=श्रीदानसूरिं "केसरिं" ति, केशरिणं=नखरायुधं=सिंहसमानमिति यावत् "आगअं" ति, आगतम्=आयातं "दट्ठा" दृष्ट्वा=आलोक्य "वाइमिगा" त्ति, वादि-मृगाः=वादिकुरङ्गाः "अदरिस" त्ति, अदर्शम्=अदर्शनं=नयनाविषयं "गआ" त्ति, गताः=प्राप्ताः=नष्टा इति भावः ।

"जेणं" ति, येन = श्रीदानसूरिणा "पञ्च" त्ति, पञ्च = पञ्चसङ्ख्याकानि "ऽक्खी" त्ति, अक्षीणि "जइउं" ति, जेतुं=स्ववशीकर्तुं "व" त्ति, इव "पंच" त्ति, पञ्च "विगई" त्ति, विकृतयः "स० ।" त्ति, सर्वदा = आजीवनं "जढा" त्ति, त्यक्ताः = विसर्जनीकृताः पञ्चविकृतित्यागवानिति भावः । यत्कथितं श्रीहीरसौभाग्ये–

"पञ्चाक्षीं दमितुं च पञ्चविकृतीस्तत्याज य सर्वदा । प्राणश्यस्तरणेर्ग्रहा इव पुनर्यस्योदये दुर्दृशः ॥१४७॥" इति ॥२७५॥

अथ तमेव विशेषितुकामस्तथा तत्सत्कान् जन्मादिवत्सान् निर्देष्टुमनाः पुनरपि शार्दूल-विक्रीडितेनाऽऽह—

सोउं देसणमस्स सिद्धगिरिणो, जत्ता ससंघा कया;
सेअत्थं गलरायमंतिमणिणा, सुक्कुज्झिआऽद्धद्दिई ।
सुक्कक्खेहि१५५३जणी जुए तिहिसयेऽद्दे से पयंगेहि१५६२य;
दिक्खा धाउवसूहि१५८७सूरिपयवी, कराणऽक्खिभूवे१६२२दिवं ॥२७६॥

(सद्दूलविक्कीडिअं)

(प्रे०) "सोउं" इत्यादि, "अस्स" त्ति, अस्य = श्रीविजयदानसूरेः "देसणं" ति, देशनाम् = उपदेशं "सोउं" ति, श्रुत्वा = श्रवणविषयीकृत्वा "गलरायमंतिमणिणा" त्ति, मन्त्रिषु = अमात्येषु मणिः = रत्नः = मन्त्रिमणिः गलराजः = तन्नामा चासौ मन्त्रिमणिश्च = गलराजमन्त्रिमणिस्तेन = गलराजमन्त्रिमणिना "सिद्धगिरिणो जत्ता" त्ति, सिद्धगिरेः = श्रीशत्रुञ्जयमहातीर्थस्य यात्रा "कया" त्ति, कृता = विहिता, किम्भूता ? "ससंघा" त्ति, सङ्घेन सहिता=ससङ्घा पुनरपि किंविशिष्टा ? "सुक्कुज्झिआऽद्धद्दिई" त्ति, शुल्केन = करेणोज्झिता = रहिता = शुल्कोज्झिता–अयं भावः–यात्रिकानां पार्श्वाद्यात्राकरोऽधिपेन गृह्यते त स्वयं दत्त्वा "अद्धद्दिई" अर्द्धाऽब्दे भवाः"वर्षाकालेभ्य" (सि० ५-३-८०) इतीकणि

तथा च श्रीआनन्दविमलसूरिशिष्यप्रज्ञांशहर्षविमलशिष्यजयविमलशिष्यकीर्तिविमलशिष्य विनयविमलशिष्य-धीरविमलगणिशिष्यः श्रीज्ञानविमलसूरिः साधुवन्दनरास-कल्याणमन्दिरस्तवन चैत्यपरिपाटी-चैत्यवन्दन-स्तव-स्वाध्याय-स्तुत्यादिकृद् बभूव ।।२९०-२९१।।

संप्रति श्रीपरमार्हतस्त्रिषष्टिपट्टं बिभ्रतं प्रज्ञांशपदान्वितं श्रीकर्पूर(कपुर)विजयगणिं श्लोकद्वयेन शिशासिषुरादौ तावदेकां पथ्या-ऽऽर्यामाह—

हत्थिम्मि समारूढो, णिवो व पण्णंसकपुरविजयगणी।
सोहीअ तस्स पट्टे, स सिवसुहं दिसउ भव्वाणं ।।२९२।। (पच्छाजा)

(प्रे०) "हत्थिम्मि" इत्यादि, "तस्स" त्ति, तस्य = श्रीसत्यविजयगणिनः "पट्टे" त्ति, पट्टे = पदे "पण्णंसकपुरविजयगणी" त्ति, यत्तदोर्नित्यसम्बन्धात् "जो" इत्याक्षिप्यते ततो यः प्रज्ञांशकर्पूर(कपुर)विजयगणी "सोहीअ" त्ति, अशोभत = राजते स्म।

क इव ? "णिवो व" त्ति, नृप इव = राजेव-यथा "हत्थिम्मि" त्ति, हस्तिनि समारूढो नृपः शोभते। "स" त्ति, सः=श्रीकर्पूर(कपुर)विजयगणी "भव्वाण" त्ति, भव्यानां= भव्यसत्त्वानां "सिवसुहं" ति, शिवसुखं=मोक्षानन्दं "दिसउ" त्ति, दिशतु=दर्शयतु ।।२९२।।

अथ श्रीकर्पूर(कपुर)विजयगणिनो व्रतग्रहणस्वर्गगमनसम्बन्धिनौ वत्सरौ प्रकटितुं मुखचपलां पथ्या-ऽऽर्यामाह—

दिक्खाऽस्स कोसिहदसणविभंगविस्सम्मि१७२०विक्कमणिवाऽद्दे।
स गओ तिदिसं आसव-लोगभुवणमेइणीमाणे१७७५ ।।२९३।।

(मुहचवलापच्छाज्जा)

(प्रे०) "दिक्खा" इत्यादि, "ऽ " त्ति, अस्य=श्रीकर्पूर(कपुर)विजयगणिनः "विक्कमणिवा" त्ति, विक्रमनृपात् "कोसिहदसणविभंगविस्सम्मि" त्ति, कोषः कोशो वा = अण्डः=शून्यम्, वृत्ताकृतित्वात्; इभदशनौ=करिरदनौ द्वौ, विभङ्गानि=पदैकदेशे पदसमुदायस्योपचारात् विभङ्गज्ञानानि सप्त, तथा चोक्तं पाक्षिकसूत्रे-"सत्तविहं चेव नाणविब्भंग" इति। तथा च तद्वृत्तिग्रन्थः—तथा सप्तविधमेव सप्तप्रकारमेव नाणविब्भंगन्ति पूर्वापरनिपातनात् विभङ्गज्ञानम्, इत्यादि, विश्वा = वसुधा एका, एतेऽङ्काः वामगतिसाधिताः १७२० इति सङ्ख्या यस्य तादृशे कोशेभदशनविभङ्गविश्वे कोषेभदशनविभङ्गविश्वे वा "ऽद्दे" त्ति, अब्दे= वर्षे विक्रमसंवत् १७२० संवत्सरे "दिक्खा" त्ति, दीक्षा = प्रव्रज्याऽभूत्।

तथा तदुपदेशपरायणैर्गान्धारीयसा० रामजी-अहम्मदावादसत्क सं० कूंअरजीप्रभृतिभिः शत्रुञ्जये चतुर्मुखाऽष्टापदादिप्रासादा देवकुलिकाश्च कारिताः, जीर्णप्रासादोद्धारश्चोज्जयन्तगिरौ कारितः । स दानसूरिर्भगवान् सिद्धान्तपारगामी अखण्डितप्रतापाङ्गोऽप्रमत्ततया रूपश्रिया च श्रीगौतमप्रतिमो-गुर्जर-मालव-मरुस्थली-कुङ्कणादिदेशेष्वशेषेष्वप्रतिवद्धविहारी षष्ठाऽष्टमादितपः-कारी शिष्याणां श्रुतादिदाने वैश्रमणानुकारी अनेकवारैकादशाङ्गपुस्तकशुद्धिकारी । किं बहुना ? तत्काले तीर्थंकर इव हितोपदेशादिना परोपकारी सर्वजनप्रसिद्धोऽभूत् ॥२७६॥

सम्प्रत्यन्तिमतीर्थस्वामिनोऽष्टपञ्चाशत्तमे पट्टे संभूतस्य श्रीदानसूरिपट्टधरस्याऽकब्बर-भूपादिप्रतिबोधकस्य श्रीहीरसूरेः श्लोकत्रयेण व्याचिख्यासया पूर्वं वसन्ततिलकां प्ररूपयति—

सो सावलीसरिपरिक्कयगच्छगंगा

जम्हुग्गआ हयतिविट्ठवपावपंका ।

सोहीअ पट्टहिमवंतगिरिम्मि तस्स

पम्हद्दहव्व स गुरू सिरिहीरसूरी ॥२७७॥ (वसंततिलया)

(प्रे०) "सीसा०" इत्यादि, "तस्स" त्ति, तस्य=श्रीदानसूरेः "पट्टहिमवंतगिरिम्मि" त्ति, पट्टः=पदम् एव हिमवद्गिरिस्तस्मिन् पट्टहिमवद्गिरौ पूर्ववत्कर्मधारयसमासः=पट्टहिमवदद्रौ "पम्हद्दहव्व" त्ति, पद्महृद इव=पद्मनामा ह्रद इव "स गुरू सिरिहीरसूरी" त्ति, सः=प्रसिद्धाह्वो गुरुः श्रीहीरसूरिः=श्रीहीरसंज्ञक आचार्यः "सोहीअ" शुशुभे=राजते स्म ।

स कः ? "जम्हा" त्ति, यस्मात् "उग्गआ" त्ति, उद्गता=प्रकटीभूता "सीसावली-सरिपरिक्कयगच्छगंगा" त्ति, शिष्याणां = विनेयानामावल्यः = पङ्क्तयः शिष्यावल्यः, ता एव सरिता = नद्यः शिष्यावलीसरितस्ताभिः परिष्कृता = विभूषिता गच्छः = गण एव गङ्गा = सुरापगा = शिष्यावलीसरित्परिष्कृतगच्छगङ्गा, किंभूता ? "हयतिविट्ठवपावपंका" त्ति, हतानि=विनाशितानि त्रिविष्टपस्य=त्रिलोक्याः पापान्येव पङ्कानि यया सा हतत्रिविष्टप-पापपङ्का=जगत्त्रयपवित्रकारिणीत्यर्थः ॥२७७॥

अधुना श्रीजगद्गुरुं हीरसूरिमेव स्तुवन् शार्दूलविक्रीडितं प्राह—

जो धम्मे जवणाहिवं पि ठविउं, कारीअ अत्था बहू;

भाणू जस्स तवप्पहाअ विजिओ, पावीअ णो थेरिअं ।

तथा च श्रीआनन्दविमलसूरिशिष्यप्रज्ञांशहर्षविमलशिष्यजयविमलशिष्यकीर्तिविमलशिष्य-विनयविमलशिष्य-धीरविमलगणिशिष्यः श्रीज्ञानविमलसूरिः साधुवन्दनरास-कल्याणमन्दिरस्तवन-चैत्यपरिपाटी-चैत्यवन्दन-स्तव-स्वाध्याय-स्तुत्यादिकृद् बभूव ।।२६०-२६१।।

संप्रति श्रीपरमार्हतस्त्रिषष्टिपट्टं बिभ्रतं प्रज्ञांशपदान्वितं श्रीकर्पूर(कपुर)विजयगणिनं श्लोकद्वयेन शिशासिषुरादौ तावदेकां पथ्या-ऽऽर्यामाह—

हत्थिम्मि समारूढो, णिवो व पराणसकपुरविजयगणी।
सोहीअ तस्स पट्टे, स सिवसुहं दिसउ भव्वाणं ।।२६२।। (पच्छाजा)

(प्रे०) "हत्थिम्मि" इत्यादि, "तस्स" त्ति, तस्य = श्रीसत्यविजयगणिनः "पट्टे" त्ति, पट्टे = पदे "पण्णसकपुरविजयगणी" त्ति, यत्तदोर्नित्यसम्बन्धात् "जो" इत्याक्षिप्यते ततो यः प्रज्ञांशकर्पूर(कपुर)विजयगणी "सोहीअ" त्ति, अशोभत = राजते स्म।

क इव ? "णिवो व" त्ति, नृप इव = राजेव-यथा "हत्थिम्मि" त्ति, हस्तिनि समारूढो नृपः शोभते। "स" त्ति, सः=श्रीकर्पूर(कपुर)विजयगणी "भव्वाण" त्ति, भव्यानां= भव्यसत्त्वानां "सिवसुहं" ति, शिवसुखं=मोक्षानन्दं "दिसउ" त्ति, दिशतु=दर्शयतु ।।२६२।।

अथ श्रीकर्पूर(कपुर)विजयगणिनो व्रतग्रहणस्वर्गगमनसम्बन्धिनौ वत्सरौ प्रकटितुं मुखचपलां पथ्या-ऽऽर्यामाह—

दिक्खाऽस्स कोसिहदसणविभंगविस्सम्मि१७२०विक्कमणिवाऽद्दे।
स गओ तिदिसं आसव-लोगभुवणमेइणीमाणे१७७५ ।।२६३।।

(मुहचवलापच्छाजा)

(प्रे०) "दिक्खा" इत्यादि, "ऽस्स" त्ति, अस्य=श्रीकर्पूर(कपुर)विजयगणिनः "विक्कमणिवा" त्ति, विक्रमनृपात् "कोसिहदसणविभंगविस्सम्मि" त्ति, कोषः कोशो वा = अण्डः=शून्यम्, वृत्ताकृतित्वात्; इभदशनौ=करिरदनौ द्वौ, विभङ्गानि=पदैकदेशे पदसमुदायस्योपचारात् विभङ्गज्ञानानि सप्त, तथा चोक्तं पाक्षिकसूत्रे-"सत्तविह चेव नाणविब्भंग" इति। तथा च तद्वृत्तिग्रन्थः—तथा सप्तविधमेव सप्तप्रकारमेव नाणविब्भंगन्ति पूर्वापरनिपातनात् विभङ्गज्ञानम्, इत्यादि, विश्वा = वसुधा एका, एतेऽङ्काः वामगतिसाधिताः १७२० इति सङ्ख्या यस्य तादृशे कोशेभदशनविभङ्गविश्वे कोषेभदशनविभङ्गविश्वे वा "ऽद्दे" त्ति, अब्दे= वर्षे विक्रमसंवत् १७२० संवत्सरे "दिक्खा" त्ति, दीक्षा = प्रव्रज्याऽभूत्।

युते त्रीभयुते "सिद्धसये" त्ति, सिद्धाः=पञ्चदश तावन्ति ानि शतानि यत्र तत्र सिद्धशते "ऽद्दे" त्ति, अब्दे = वर्षे = वि वत्१५८३ हायने 'जणी' त्ति, जनिः = जन्म अभूत् ।

"रसंकाहिए:' त्ति, "ऽद्दे सिद्धसये" इति पदद्वयमिहनुवर्तते. ततो रसाङ्कैः=षडङ्क-नवाङ्कलक्षणैः पश्चानुपूर्व्या लब्धैः षण्णवति९६सङ्ख्ययाऽधिके सिद्धशतेऽब्दे=विक्रमसंवत १५९६ वर्षे "दिक्खा" त्ति, दीक्षा = प्रव्रज्याऽजायत ।

' " त्ति, सः=श्रीहीरसूरिः "रिसीहिं अहिए" त्ति, ऋषिभिः=सप्तभिरधिके "विज्जा-देविसये" त्ति प्राकृतत्वात्, "दीर्घह्रस्वौ मिथो वृत्तौ" (सि ८-१-४) इत्यनेन ह्रस्वः ततो विद्या-देव्यः = रोहिणी-प्रज्ञप्ति--वज्रशृङ्खला--वज्राङ्कुशी--चक्रेश्वरी-पुरुषदत्ता--काली-महाकाली--गौरी-गान्धारी-सर्वास्त्रा-महाज्वाला-मानवी--वैरोट्या-अछुप्ता-मानसी--महामानसीलक्षणा षोडश,

तथा चोक्त श्रीबृहच्छान्तिस्तवने-

ॐ रोहिणी-प्रज्ञप्ति-वज्रशृङ्खला-वज्राङ्कुशी-अप्रतिचक्रा-पुरुषदत्ता-काली-महाकाली-गौरी गान्धारी-सर्वास्त्रा-महाज्वाला-मानवी-वैरोट्या अछुप्ता-मानसी-महामानसी षोडश विद्यादेव्यो रक्षन्तु वो नित्यं स्वाहा ॥" इति । त तिजयपहुत्तनाम्नि स्तोत्रे-नयथा-

ॐरोहिणी पन्नत्ति वज्जसिंखला तह य वज्जअकुसिआ । चक्केसरी नरदत्ता काली महाकाली तह गोरी ॥७॥
गंधारि महज्जाला माणवि वइरुट्ट तहय अच्छुत्ता
माणसि महमाणसिआ विज्जादेवीओ रक्खतु ॥८॥" इति ।

एवमभिधानचिन्तामण्यादिष्वपि ः षोडशसङ्ख्यामितानि शतानि वर्तन्ते यस्मिन् वर्षे तस्मिन् विद्यादेवीशते १६०० वर्षे = विक्रमसंवत् १६०७ वत्से "पंडिओ" त्ति, पण्डितः = पण्डितनामपदवीभाक् जातः

" रुभीहिं" ति, कुम्भिभिः=दन्तावलैः=अष्टभिः-दिग्गजानामष्टसङ्ख्यत्वात् 'अहिए" त्ति, अधिके "विज्जादेविसये" त्ति, 'वासे" त्ति, च पदद्वयमिहोत्तत्र च पूर्वतोऽनुवर्तते ततो विद्यादेवीशते१६००वर्षे = विक्रमसंवत् १६०८ शरदि "वायगो" त्ति, वाचकः = पाठकः = उपाध्याय इति यावद्बभूव ।

"दिसाहि" त्ति, दिशाभिः=आशाभिरैन्द्र्या-ऽऽग्नेयी-याम्या-नैऋती-वारुणी-वायव्या-कौवेर्यै-शान्यू-र्ध्वा-ऽधोरूपाभिर्दशभिः "अहिए" त्ति, अधिके = विद्यादेवीशते १६०० वर्षे= विक्रमसंवत् १६१० मवत्सरे 'सूरी" त्ति, सूरिः = आचार्योऽभवत् ।

"सिंगब्धीहि" त्ति, शृङ्गे = विषाणे-प्रसिद्धे वामेतरलक्षणे द्वे, अब्धयः = समुद्राः चत्वार', तैः=शृङ्गाऽब्धिभिः वामगतिभणितैः=द्विचत्वारिंशताऽधिके विद्यादेवीशते वर्षे=विक्रम-संवत् १६४२ वर्षे "ऽकब्बरा" त्ति, अकबरात्=अकबरनाम्नः "णिवा" त्ति, नृपात्=भूपालतः

ऽरति-स्त्री चर्या-नैषेधिकी-शय्या-ऽऽक्रोश-वध-याचना-ऽलाभ-रोग-तृणस्पर्श-मल-सत्कार-पुरस्कार-प्रज्ञा-ऽज्ञान-सम्यक्त्वरूपा द्वाविंशतिः, यदुक्तम् —

"खुहा पिवासा सीउण्ह दसाचेलारइत्थिओ । चरियानिसीहिया सेज्जा अक्कोस वह जायणा ॥१॥ अलाभ रोग तणफासा मलसक्कारपरीसहा । पण्णा अण्णाणसम्मत्त इइ बावीस परीसहा ॥२॥" इति ।

तेन द्वाविंशत्यङ्कः, पिण्डेषणाः = भक्तग्रहणप्रकाराः सप्त, तथा चोक्तम्-

"१ ससट्ठा-२मससट्ठा ३ उद्धड तह ४ अप्पलेविया चेव ।
५ उग्गहिया-६ पग्गहिया ७ उज्झियधम्मा य सत्तमिया ॥१॥" इति ।

इला=भूमिरेका, एतैरङ्कैर्वामगतिभणितैः १७२२ इति सङ्ख्यया मिते परीषहपिण्डैषणेलामिते = विक्रमसंवत् १७२२ "वासे" त्ति, वर्षे = संवत्सरे "जणी" त्ति, जनिः = जन्म "हवीअ" त्ति, अभूत् ।

"धीवड्ढिणरयिले" त्ति, धीवार्द्धिनरकेलाः=चतुश्चतुःसप्तैकाङ्करूपा यत्र तत्र धीवार्द्धिनरकेले वामगतिमीलिते चतुश्चत्वारिंशदधिकसप्तदशशत१७४४तमे विक्रमसंवदि "वयं" ति, व्रतं = दीक्षाऽजायत ।

'सो' त्ति, सः = श्रीक्षमाविजयगणी "रसमयस्सबुहे" त्ति, रसमदाश्वबुधाः=षडष्टसप्तैकाङ्कात्मका यत्र तत्र रसमदाश्वबुधे = विक्रमसवत् षडशीत्यधिकसप्तशतोत्तरसहस्र१७८६-तमे हायने " गमिओ" त्ति, स्वर्गं = त्रिदशधाम गतः = ययौ ।

एवञ्च द्वाविंशति २२ वर्षाणि गृहे, द्विचत्वारिंशद् ४२ वर्षाणि व्रते चेति सर्वायुश्चतुःषष्टि६४वर्षाण्यभूत् ॥२९५॥

इदानी श्रीत्रिशलात्मजस्याऽर्हतः पञ्चषष्टं पट्टं धारयतः पन्न्यासश्रीजिनविजयगणेर्दिदृक्षया पथ्या-ऽऽर्याद्वयं प्राह—

वि जयउ जिणविजयगणी, पण्णांसपयंकिओ पए तस्स ।
से णंदिसरमंदिरसंजम१७५२वासे णिवा जम्मो ॥२९६॥ (पच्छाज्झा)
बिदुभयणायहरे१७७०ऽद्दे, दिक्खा पयमिदुकुंभिमुणिकु१७८१मिए ।
बीए१७८२गच्छाणुणा,सेवहिणंदस्स म्मि१७९९दिवं ॥२९७॥ (पच्छाज्झ

(प्रे०) "विजयउ" इत्यादि, "तस्स" त्ति, तस्य = श्रीक्षमाविजयगणिनः "पए" त्ति, पदे = पट्टे "पण्णांसपयकिओ" त्ति, प्रज्ञांशपदाङ्कितः = प्रज्ञांशपदभूषित इत्यर्थः,

ोभयुते "सिद्धसये" त्ति, सिद्धाः=पञ्चदश तात्रन्मितानि शतानि यत्र तत्र सिद्धशते
" त्ति, अब्दे = वर्षे = वि मसंवत् १५८३ हायने 'जणी' त्ति, जनिः = जन्म अभूत् ।

"रसंकाहिए:' त्ति, "ऽद्दे सिद्धसये" इति पदद्वयमिहनुवर्तते. तनो रसाङ्कैः=षडङ्क-
ङ्कलक्षणैः पश्चानुपूर्व्या लब्धैः षण्णवति९६सङ्ख्यया‌ऽधिके सिद्धशतेऽब्दे=विक्रमसंवत १५९६
'दिक " त्ति, दीक्षा = प्रव्रज्याऽजायत ।

' " त्ति, सः=श्रीहीरसूरिः "रिसीहि अहिए" त्ति, ऋषिभिः=मप्तभिरधिके "विज्जा-
सये" त्ति प्राकृतत्वात्, "दीर्घह्रस्वौ मिथो वृत्तौ" (सि ८-१-४) इत्यनेन ह्रस्वः ततो विद्या-
ः = रोहिणी-प्रज्ञप्ति-- शृङ्खला--वज्राङ्कुशी--चक्रेश्वरी-पुरुषदत्ता--काली-महाकाली--गौरी-
धारी- स्त्रा-महाज्वाला-मानवी--वैरोटया-अच्छुप्ता-मानसी--महामानसीलक्षणा षोडश,

चोक्त श्रीबृहच्छान्तिस्तवने—

ॐ रोहिणी-प्रज्ञप्ति-वज्रशृङ्खला-वज्राङ्कुशी-अप्रतिचक्रा-पुरुषदत्ता-काली-महाकाली-गौरी गान्धारी-
स्त्रा-महाज्वाला-मानवी-वैरोट्या अच्छुप्ता-मानसी-महामानसी षोडश विद्यादेव्यो रक्षन्तु वो नित्यं
ा ॥" इति । त तिजयपहुत्तनाम्नि स्तोत्रे-नथ —

ोहिणी पन्नत्ति वज्जसिं । तह य वज्जअकुसिआ । चक्केसरी नरदत्ता कालो महाकाली तह गोरी ॥७॥
गंधारि महज्जाला माणवि वइरुट्ट तहय अच्छुत्ता
माणसि महमाणसिआ विज्जादेवीओ रक्खतु ॥८॥" इति ।

एवमभिधानचिन्तामण्यादिष्वपि ः षोडशसङ्ख्या ानि शतानि वर्तन्ते यस्मिन्
वर्षे तस्मिन् विद्यादेवीशते १६०० वर्षे = वि संवत् १६०७ वत्से "पंडिओ" त्ति,
प तः = पण्डितनामपदवीभाक् जातः

" ोहि" त्ति, कुम्भिभिः=दन्त ः= भिः—दिग्गजानामष्टसङ्ख्यत्वात् 'अहिए"
त्ति, अधिके "विज्जादेविसये" त्ति, 'वासे" त्ति, च पदद्वयमिहोत्तरत्र च पूर्वतोऽनुवर्तते
ततो विद्यादेवीशते१६००वर्षे = वि मंवत् १६०८ शरदि "वायगो" त्ति, वाचकः =
पाठकः = उपाध्याय इति यावद्बभूव ।

"दिसाहि" त्ति, दिशाभिः=आशाभिरैन्द्र्या-ऽऽग्नेयी-याम्या-नैऋती-वारुणी-वायव्या-
कौवेर्यै-शान्यू-र्ध्वा-ऽधोरूपाभिर्दशभिः "अहिए" त्ति, अधिके = विद्यादेवीशते १६०० वर्षे=
विक्रमसंवत् १६१० संवत्सरे 'सूरी" त्ति, सूरिः = आचार्योऽभवत् ।

"सिंगब्धोहि" त्ति, शृङ्गे = विषाणे-प्रसिद्धे वामेतरलक्षणे द्वे, अब्धयः = स ाः
चत्वारः, तैः=शृङ्गाऽब्धिभिः वामगतिभणितैः=द्विचत्वारिं ऽधिके विद्यादेवीशते वर्षे=विक्रम-
संवत् १६४२ वर्षे "ऽकब्बरा" त्ति, अकबरात्=अकबरनाम्नः "णिवा" त्ति, नृपात्=भूपालतः

दिक्खा दिट्ठिणिहाणा-ऽस्स-स्सेअंसु[१७९६]मिअवच्छरे ।
वासे वाहऽक्खिसेलिंदु[१८२७]-प्पमिए सो दिवं गओ ॥२११॥ (अणुट्टुभं)

(प्रे०) "जयउ" इत्यादि, "तप्पट्टगगणमत्तंडो" त्ति, तस्य = श्रीजिनविजयगणिनः पट्ट एव गगनं तस्मिन् पट्टगगने मार्तण्डः=सूर्य इव "सिरिउत्तमविजयो" त्ति, श्रीउत्तमविजयः= श्रीउत्तमविजयनामा लालचन्द-माणेकदेवीसमुद्भवः "गणी" त्ति; गणभृत् "जयउ" त्ति, जयतु।

अथ जन्मादिपर्यायाऽब्दानाह—"तस्स" त्ति, तस्य = श्रीउत्तमविजयगणिनः "विक्कम-णिवा" त्ति, विक्रमनृपात् = विक्रमादित्यनृपतेः "खभूखडऽब्धिकुमिए" त्ति, खं= शून्यम्, भूखण्डाः = चक्रिनृपजेया वैताढ्यनगेन द्विधाकृतस्य दक्षिणोत्तरसंज्ञकस्य पुनरपि प्रत्येकाऽर्धस्य गङ्गासिन्धुनदीभ्या रक्ता-रक्तवतीनदीभ्यां वा त्रिधा भवनात् षट्, अब्धयः = समुद्राः सप्त, लोके केषाञ्चिन्मतेन सप्तत्वात्, कुः = भूमिरेका, एभिरङ्कैर्वामप्रदक्षिणाऽऽप्तैः १७६० सङ्ख्यया मिते "ऽद्दे" त्ति अब्दे = वर्षे एतावता विक्रमसंवत् षष्ट्यधिकसप्तशतसहस्र-वर्षेऽहमदावादे "जणी" त्ति, जनिः = जन्माऽजनि ।

"दिट्ठिणिहाणस्सरस्सेअं मिअवच्छरे" त्ति, दृष्टयो = दर्शनानि जैन-बौद्ध-साङ्ख्य-मीमांस शिव-नास्तिकलक्षणानि षट्, तथा चोक्तम्—

"जैन बोद्ध तथा साङ्ख्य, मीमास च तथा पर। शिव लोकायित चेति, षडेते दृष्टयो मता ॥" इति, अन्यत्र पुनरेवम्–' बौद्धं नैयायिक साख्य जैन वैशेषिक तथा। जैमिनीय च नामानि दर्शनानाममून्यहो।" इति।

ततो दृष्टिनिधानाश्वश्वेतांशुभिः-षडङ्क-नवाङ्क-सप्ताङ्कै-काङ्कैः प्रातिलोम्येन स्थापितैः १७९६ इति सङ्ख्यया मितः = दृष्टिनिधानाश्वश्वेतांशुमितः, स चासौ वत्सरश्च तस्मिन् दृष्टिनिधानाश्व-श्वेतांशुमितवत्सरे = विक्रमसंवत् १७९६ तमे शरदि वैशाखकृष्णषष्ठ्यां "दिक्खा" त्ति, दीक्षा = प्रव्रज्या जाता ।

"सो" त्ति, सः = श्रीउत्तमविजयगणी "वाहक्खिसेलिंदुप्पमिए" त्ति, वाहाः = अश्वाः = सप्त, अक्षिणी = नेत्रे द्वे, शैलाः = कुलपर्वता अष्टौ, इन्दुः = चन्द्र एकः, एतैरङ्कै-र्वामक्रमैः प्रमिते वाहाक्षिशैलेन्दुप्रमिते = विक्रमसंवत् १८२७ संवत्सरे माघमासे शुक्ला-ष्टम्यां राजनगरे "दिव" ति, दिवम् = अमरपुरी "गओ" त्ति, गतः = जगाम ।

एवञ्च षट्त्रिंशद् ३६ वर्षाणि गृहवासे, एकत्रिंशद् ३१ वर्षाणि व्रते, चेति सर्वायुश्च सप्तषष्टि ६७ वर्षाणि जायते स्म ।

तत्कृतयश्च–श्रीजिनविजयनिर्वाणरासः, अष्टप्रकारीपूजा ।

वीसंभोजप्पबोहे, विजयदेवमुणिंदगोवई;
होही ंरि ज्भदेवो, सुविजयसेणमुणीसपट्टखे ।
णिस्सेसं जस वत्तं, सुइजसणीररयेहि वि वं,
णूणं तं चेव दट् ं, धरइ सहस्समुहा रावगा ॥२८२॥ माहवीलया)

(प्रे०) "वीसंभोज०" इत्यादि, " विजयसेण णीसपट्टखे" त्ति, सुः=शोभनश्चासौ विजयसेनश्च=विजयसेननामा सुवि सेनः, स चासौ मुनीशश्च=आचार्यः=सुविजयसेनमुनीशस्तस्य पट्ट एव खं= नं तस्मिन्=सुविजयसेनमुनीशपट्टखे "वीसंभोजप्पबोहे" त्ति, विश्वः=भव्यलोकः, स एवाऽम्भोजः=रविविकासिकमलो विश्वाम्भोजस्तस्य प्रबोधे=विकासने विश्वाम्भोजप्रबोधे "स" त्ति; सः=विश्रुतः "विजयदेव णिंदगोवई" त्ति, विजयदेवः=तन्नामा चासौ मुनीन्द्रश्च=सूरिर्विजयदे नीन्द्रः, स चासौ गोपतिः=सूर्यो विजयदेवमुनीन्द्रगोपतिः "होही" त्ति, बभूव । किम्भूतः ? "सणिज्झदेवो" त्ति, सान्निध्ये=नैकटये देवः=सुरो वर्तते यस्य स सानिध्यदेवः=यस्य सान्निध्यकारी देवः ।

अथाऽस्य यश उत्प्रेक्षयाऽऽह–"णिस्सेसं" इत्यादि, "ज " त्ति, यस्य = श्रीविजयदेवसूरेः " इजसणीररयेहि" त्ति, शुचीनि=पवित्राणि च तानि यशांस्येव नीराणि=जलानि-शुचियशोनीराणि तेषां रयैः=पूरैः=शुचियशोनीरपूरैः=निर्मलयशोरूपपयःप्रवाहैः "णिस्सेसं" ति, निःशेषं=निखिलं=समस्त "वि " ति, विष्टपं=लोकः "वत्त" ति, व्याप्तं=संपूरितम् । अथोत्प्रेक्ष्यते "णूणं" ति, नूनमित्युत्प्रेक्षाद्योतकोऽव्ययः नूनं = किमु "तमेव" त्ति, तदेव = तद्यशोव्याप्तजगदेव " ट्ठुं" ति, द्रष्टुम्=आलोकितुं "सरावगा" त्ति, स्वरापगा=भागीरथी= गङ्गा "सहस्स ा" त्ति, सह ान्=सहस्रमङ्ख्यानि मुखानि "धरइ" त्ति, धरति॥२८२॥

अथाऽमुमेव विशेषयन्पथ्या-ऽऽर्यां यति–

णाणतवतेअतुट्ठा पावीअ महातव त्ति बिरुदं जो ।
साहिणिवजहंगीरा अणेगसासणपहावयरो ॥२८३॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "णाण०" इत्यादि, 'जो' त्ति, यः=श्रीविजयदेवसूरिः, किम्भूतः ? "अणेगसणपहावयरो" अनेकान्=बहून् शासनस्य=अर्हत्प्रवचनस्य प्रभावान्=उन्नतिप्रकार-विशेषान् करोतीत्येवं शीलः=अनेकशासनप्रभावकरः=अर्हच्छासनप्रभावकः ।

सप्तदश, संयमस्य सप्तदशविधत्वात्, एतैरङ्कैर्वामगत्या १७६२ इति सङ्ख्यया मिते "हायणे" त्ति, उत्तरागाथास्थं पदमत्राऽपि संबध्यते हायने = वर्षे = विक्रमसंवद् द्विनवत्यधिकसप्तदशशत-१७६२वर्षे राजनगरेऽभूत्।

"दिक्खा" त्ति, दीक्षा=संयमादानं "अणुत्तरामरवोममयंगयधरासंखे" त्ति, अनुत्तरसुराः=विजय-वैजयन्त-जयन्ता-ऽपराजित-सर्वार्थसिद्धरूपाः पञ्च, व्योम=अभ्रं=शून्यम्, मतङ्गजाः = हस्तिनोऽष्टौ धरा = पृथ्व्येका एतेषामङ्कानां पश्चानुपूर्व्या मीलितानां १८०५ इति सङ्ख्या यत्र तत्राऽनुत्तराऽमरव्योममतङ्गजधरासङ्ख्ये=विक्रमसंवत् १८०५ तमे वर्षे वसन्त-पञ्चम्यां राजनगरेऽभूत्।

"पयपइट्ठा" त्ति, पदप्रतिष्ठा=राधनपुरे विजयधर्मसूरिहस्तेन पन्न्यासपदप्राप्तिः "दसकंठकंठपावट्ठाणमिए हायने" त्ति, दशकण्ठस्य=रावणस्य कण्ठाः=गला दशकण्ठ-कण्ठाः=दशग्रीवनिगरणा दश, पापस्थानानि=प्राणातिपाद मृषावादा-ऽदत्तादान-मैथुन-परिग्रह-क्रोध-मान-माया-लोभ-राग-द्वेष-कलहा ऽभ्याख्यान--पैशुन्य-रत्यरति-परपरिवाद-मायामृषावाद-मिथ्यात्वरूपाण्यष्टादश, आभ्यामङ्काभ्यां प्रातिलोम्योदिताभ्यां १८१० इति सङ्ख्यया मिते=दशकण्ठकण्ठपापस्थान१८१०मिते हायने=विक्रमसंवद् दशाधिकाष्टादशशत१८१०वर्षे जाता।

"देवगई" त्ति, देवगतिः=स्वर्गमन "रामसुअवीगइकुंजर गपमाणम्मि" त्ति, रामसुतौ=कुशीलवौ=कुश-लवनामानौ द्वौ, दर्शनानि प्राग्दर्शितानि षट्, करटिनः=कुञ्जरा अष्टौ, खड्गः=खड्गिशृङ्गः=वाध्रीणसशृङ्गः=गण्डकशृङ्ग एकः, एषामङ्कानां वामक्रमावाप्तानां १८६२ इति प्रमाणं यस्य तादृशे=रामसुतविकृतिकुञ्जरखड्गप्रमाणे=विक्रमसंवद् द्विषष्ट्यधिकाष्टादशशत-१८६२तमे शरदि चैत्रशुक्लचतुर्थ्यां राजनगरे समजायत।

इत्थञ्चाऽस्य गुरोस्त्रयोदश१३वर्षाणि गृहपर्यायः, पञ्च५वर्षाणि सामान्यसाधुपर्यायः, द्वापञ्चाश५२द्वर्षाणि पन्न्यासपर्यायश्चेति सर्वायुश्च सप्तति७०वर्षाणि भवति स्म ॥३०१-३०२॥

एतर्हि श्रीसिद्धार्थकुलावतंसस्य प्रभोरष्टषष्टपट्टशोभिनं श्रीरूपविजयगणिनं प्रकटयन् पथ्यार्यामाह—

णरलोगे मेरुगिरी जह राईअ तह तस्स पट्टम्मि।
मुणिगणसेविअपाओ पसंसो रूवविजयगणी ॥२०३॥ (पच्छाजा)

वर्तते ततो युते नृपशतेऽब्दे = विक्रमसंवत् १६४३ वर्षे माघे मासे शुक्लदशम्यां तिथौ राजनगरे जनन्या सार्द्धं श्रीविजयहीरसूरिपाणिनाऽभूत् ।

"**स**" त्ति, सः=श्रीविजयदेवसूरिः "**सरिसूहि**" शरेषुभिः=पञ्चपञ्चाशता युते नृपशते=षोडशशतेऽब्दे = विक्रमसंवत् पञ्चपञ्चाशदधिकषोडशशत१६५५तमे हायने सिकन्दरपुरे श्रीशान्तिजिनप्रतिष्ठायां "**पण्णासो**" त्ति, पन्न्यासः पण्डितो वा बभूव ।

"**दीवेहि**" त्ति, द्वीपैः=अन्तरद्वीपैः षट्पञ्चाशता जुते नृपशतेऽब्दे=विक्रमसंवत् १६५६ तमे वर्षे वैशाखमासे शुक्लचतुर्थ्यां तिथौ चतुर्थे रवियोगे कुमारयोगे मृगाङ्कमृगशिरःसंयोगाद् अमृतसिद्धियोगेऽपि च कुङ्कुमपत्रिकाप्रेषणाकारितमहस्रजने सर्वव्यवहारिशिरोमणिना श्रीमल्लसाधुना स्वभ्रातृ**सोमा**न्वितेन सर्वसङ्घभोजनपरिधापनादिप्रभावनया दशसहस्ररूप्यकव्ययेन निर्मितमहामहोत्सवेऽत्यन्तसुशोभितसभामण्डपे "**सूरी**" त्ति, सूरिः=आचार्यः, उपलक्षणेन तदैवोपाध्यायः सूरिश्च मुनिसप्तशतीपरिवृतेन श्रीविजयसेनसूरिणा विहितः ।

तदा च तदुत्सवनिमित्तमेवाष्टसहस्ररूप्यकव्ययेन ठक्करकीकाख्येन प्रतिष्ठा कारिता । विक्रमसंवत् १६५८ वर्षे पुनः परीक्षकसहस्रवीरेण पञ्चसप्तमहसन्दिकाव्ययेन पत्तने कृतमहोत्सवे श्रीविजयदेवसूरीश्वराणां महान् गणानुज्ञानन्दिमहश्चक्रे । तथा श्रीविजयदेवसूरिभिः प्रतिष्ठाद्वयं राजनगरे, प्रतिष्ठाचतुष्टयं पत्तने प्रतिष्ठात्रयं स्तम्भतीर्थे सातिशयमहोत्सवपूर्वं चक्रे । **उक्तञ्च श्रीमहोपाध्यायमेघविजयगणिभिः**—"श्रीमतामेषा गुरूणा सूरिपदोत्सवे स्तम्भतीर्थेऽनेकदेशग्रामनगरसघाह्वानेन सप्तशतीमुनिपरिवृत्तान् श्रीविजयसेनसूरीन् बहुधा विज्ञप्य स्ववेश्मनि द्विधापि विमानश्रियं दधाने सुपर्वशोभाभासुरे प्रचण्डमण्डपाडम्बरेण विचित्रराजवादित्रनिर्घोषैर्नभसि गर्जति सति सर्वसघभोजनपरिधापनादिभि श्रीमल्लनामश्रेष्ठिना स्वभ्रातृसोमान्वितेन दशसहस्ररूप्यकव्ययेन महती प्रभावना चक्रे सुमुहूर्ते श्रीगुरुभि सूरिपद प्रदाय श्रीविजयदेवसूरि' इति नाम सदधे । तदा पुनस्तदुत्सवनिमित्तमेवाष्टसहस्ररूप्यकव्ययेन ठक्करकीकाख्येन प्रतिष्ठा कारिता पुनश्चैषा स० १६५८ वर्षे परीक्षकसहस्रवीरेण पञ्चसहस्रमहमून्दिकाव्ययेन कृतोत्सवपत्तने गणानुज्ञानन्दिमहो महान् जज्ञे । तथा श्रीविजयदेवसूरिभि प्रतिष्ठाद्वय राजनगरे, प्रतिष्ठाचतुष्टय पत्तने प्रतिष्ठात्रय स्तम्भतीर्थे सातिशयमहोत्सवपूर्वं चक्रे ।" इति ।

तथैव श्रीमहोपाध्यायगुणविजयगणिभिरपि—

सर्वव्यवहारिश्रेणिशिरोमणी सा० श्रीमल्लनामा ●स्वभ्रातृजन्मना सा० सोमाख्येन सह श्रीआचार्यपदस्थापनार्थमर्थव्यय कर्तुकाम प्रकामप्रमोदेन मरुमेदपाटलाटसौराष्ट्रकच्छकुङ्कणादिदेशेषु गुर्जरदेशे च प्रतिग्राम प्रतिनगर कुङ्कुमपत्रिकाप्रेषणापूर्वं सङ्घलोकान् सहस्रश समाहूय तपागणयतियतिनीसप्तशतीमितपरिकरमाकारितवान् । अथ सकलसघमिलनानन्तर श्रीमल्लसाधुना बन्धुरताऽवरीकृतसुरमन्दिरे निज-

● श्री उपाध्यायगुणविजयगणिभिस्तु-"स्वभ्रातृजन्मना सा० सोमाख्येन सह" इत्युक्तम् ।

इदानीं श्रीज्ञातकुलमौलिमुगुटमणेः प्रभोः सप्ततितमस्य पट्टस्य विभूषकं श्रीकस्तुरविजय-गणिनं श्लोकद्वयेन वक्तुमिच्छुरादावेकां पथ्यार्यामाह—

इसिवसहो पणांसो कत्थुरविजयो गणी विभूसीअ ।
चक्किस्स पंचसाहं चक्कं मिव तस्स पट्टसिरिं ॥३०६॥

(प्रे०) "**इसिवसहो**" इत्यादि, "**तस्स**" त्ति तस्य=श्रीकीर्तिविजयगणिनः "**पट्ट-सिरिं**" ति पट्टश्रियं=पदलक्ष्मी "**इसिवसहो पण्णंसो कत्थुरविजयो गणो**" त्ति ऋषिषु=मुनिषु वृषभः=उत्तम ऋषिवृषभः=श्रेष्ठसाधुः प्रज्ञांशः कस्तुरविजयः=कस्तुरविजयनामा गणी "**विभूसीअ**" त्ति व्यभूषयत्=अलमकरोत् । किमिव ? । "**चक्कं मिव**" त्ति चक्कमिव=जहा चक्रम् "**चक्किस्स पचसाहं**"ति चक्रिनः=चक्रवर्तिनो नृपस्य पञ्चशाखं=हस्तं भूषयति ॥३०६॥

अथ श्रीकस्तुरविजयगणिनो जन्म-दीक्षासत्कौ संवत्सरौ विभणिषुर्द्वितीयां पथ्यार्या विदधाति ।

वासम्मि सत्तदलदलहरहयपुरलिवि[१८३७]मिए णिवा तस्स ।
जम्मो हवीअ दिक्खा सुन्निदस्सवयणपुराणे[१८७०]॥३०७॥ (पच्छाजा)

(प्रे०) "**वासम्मि**" इत्यादि, " " त्ति तस्य=श्रीकस्तुरविजयगणिनः "**जम्मो**" त्ति जन्म=जननं "**णिवा**" त्ति नृपात् विक्रमादित्यसंज्ञकाद् राज्ञः "**सत्तदलदलहरहयपुर-लिविमिए**" त्ति सत्तदलदलानि=सप्तपर्णपर्णानि सप्त, हरहयपुराणि = महादेवजितनगराणि त्रीणि, लिपयो=हंसलिप्यादयोऽष्टादश, **यदुक्तम्**—

"१हंसलिवी २भूयलिवी ३जक्खी तह ४रक्खसी य बोद्धव्वा ।
५उड्डी ६जवणि७तुरुक्की ८कीडी ९दविडी य १०सिंधविया ॥१॥
११मालविणी १२नडि १३नागरि १४लाडलिवी १५पारसी य बोद्धव्वा ।
तह १६अनिमित्ता णेया १७चाणक्की १८मूलदेवी य ॥२॥' **इति** ।

एतैरङ्कैर्वामक्रमन्यस्तैः १८३७ इति सङ्ख्यया मिते, यद्वा एषामङ्काना वामक्रमन्यस्य-तानां १८३७ इति मितं=मानं यस्य तादृशे सप्तदलदलहरहयपुरलिपिमिते "**वासम्मि**" त्ति वर्षे=हायने विक्रमसंवत् १८३७वर्षे प्रह्लादनपुरे "**हवीअ**" त्ति अभूत् । "**दि**" त्ति दीक्षा=प्रव्रज्या "**सुन्निदस्सवयणपुराणे**" त्ति शून्यम्=शून्याङ्कः, इन्द्राश्ववदनानि=शक्रहयमुखानि

सिंहसूरिपुंगवो'' त्ति, विजयसिंहसूरिपुङ्गवः=विजयसिंहनामा सूर्युत्तम ओशवंशीयो नथु-मल्लनायकदेतनुजः, **''गुरु''** त्ति, गुरुः **''जयउ''** त्ति, जयतु=जयनशीलो भवतु । स कः ? **''जो''** त्ति, यः=श्रीविजयसिंहसूरिः **''भविप्पयाण''** त्ति, भविप्रजानां=भव्यजनानां **''रइयरो''** त्ति, रतिकरः=प्रीतिदायको वर्तते ॥२८५॥

अथाऽमुष्य जन्मादिसत्कानां संवत्सराणां निर्दिदिक्षया पथ्या-ऽऽर्याद्वयमाह--

बंधासमेहि१६४४अहिए, भूवा वासे कसायसयसंखे ।
जम्मो अमुस्स होसी, दिक्खा सेणंगणाणेहिं१६५४॥२८६॥ (पथ्याऽऽर्या)
वेअरयणायरेहिं,१६७२उज्झायो सो हवीअ आयरिओ ।
गोसिद्धगुणेहिं१६८१दिवं, रसंडसुज्जस्स खग्गमिए१७०९ ॥२८७॥ (पथ्याऽऽर्या)

(प्रे०) **''बंधा०''** इत्यादि, **''अमुस्स''** त्ति, अमुष्य=श्रीसिंहसूरेः **''भूवा''** त्ति, भूपात्=विक्रमभूपतः **''बंधासमेहि''** बन्धाः=प्रकृति-स्थिति-रस-प्रदेशभेदाश्चत्वारः, आश्रमाः= वर्णि-गृहस्थ-वैखानस-तापसलक्षणाश्चत्वारः, आभ्यामङ्काभ्यां चतुश्चत्वारिंशत्४४सङ्ख्यया **''अहिए''** त्ति, अधिके **''कसायसयसंखे''** त्ति, कषायाः=अनन्तानुबन्ध्य-प्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान-संज्वलनभेदभिन्नक्रोध-मान-माया-लोभलक्षणाः षोडश, तावतां शतानां सङ्ख्या यस्य तादृशे=कषायशतसङ्ख्ये **''वासे''** त्ति, वर्षे=विक्रमसंवत् चतुश्चत्वारिंशषोडशशत१६४४तमे वत्सरे **''जम्मो''** त्ति, जन्म=उत्पत्तिः **''होसि''** त्ति, अभूत् ।

''सेणंगणाणेहिं'' ति, **''अहिए''** इत्यादिपदचतुष्टयमत्राऽप्यनुवर्तते, ततो भूपात् सेनाङ्गानि=हस्त्यादीनि चत्वारि, **यदुक्तममरकोशे**-''हस्त्यश्वरथपादातं सेनाङ्गं स्याच्चतुष्टयम्'' इति । **तथा श्रीअभिधानचिन्तामणावपि**-''गजो वाजी रथः पत्ति सेनाङ्ग स्याच्चतुर्विधम्'' इति । ज्ञानानि=मति श्रुता-ऽवधि मनःपर्यव-केवललक्षणानि पञ्च, आभ्यामङ्काभ्यां व्यक्रमो-दिताभ्यां चतुःपञ्चाशत्५४सङ्ख्ययाऽधिके कषायशतसङ्ख्ये वर्षे=विक्रमसंवत् १६५४ शारदे **''दिक्खा''** त्ति, दीक्षा=संयमादानं **''होसि''** त्ति, पदं देहलीदीपकन्यायेनेहाऽपि संबध्यते ततः **''होसी''** त्ति, अभवत् ।

''सो'' त्ति स = श्रीविजयसिंहसूरिः **''वेअरयणागरेहिं''** ति, वेद्यौ = सदसद्रूपौ द्वौ, वेद्यौ = शाताऽशातलक्षणे वेदनीयकर्मणी द्वे, रत्नाकराः = समुद्राः सप्त, आभ्यामङ्काभ्यां वाम-गतिन्यस्ताभ्यां द्विसप्तति७२संख्ययाऽधिके कषायशतसङ्ख्ये वर्षे = विक्रमसंवत् १६७२ वर्षे **''उज्झायो''** त्ति, उपाध्यायः **''हवीअ''** त्ति, बभूव ।

"**वयमद्धिवद्धिविज्जे**" त्ति अब्धयः=समुद्राः सप्त, लौकिकमते सप्तसङ्ख्यत्वात् । **यदुक्तमभिधानचिन्तामणौ**--द्वीपान्तरा असङ्ख्यास्ते सप्तैवेति तु लौकिका ॥१०७४॥" इति । ते च लवणवारि-क्षीरवारि-दधिवारि-आज्यवारि-सुरावारि-इक्षुवारि-स्वादुवारिनामानो लावण-रसमय-सुरोदक-सार्पिष-दधिजल-पयःपयः स्वादुवारिसंज्ञका वा सप्त, वार्द्धयः=समुद्राः पूर्ववत् सप्त, विद्याः=अष्टादश, **तथा चाभाणि काव्यकल्पलतायाम्**–"सप्तदश सयमाश्चाष्टा-दश विद्या पुराणानि ।" इति । **यदुक्तञ्च**–"अष्टादशाऽध्यैष्ट सुधी स विद्यास्त्वष्टादशद्वीपनृपान् विजिग्ये ।" इति । एतेऽङ्का यस्य तादृशे वामगतिसाधिते अब्धिवार्द्धिविद्ये=विक्रमसंवद् १८७७ संवत्सरे पालीग्रामे व्रतं=प्रव्रज्या-ऽभवत् ।

"**वयगुणसयणगुणकुम्मि दिव**" ति वचोगुणाः=अर्हद्वाग्गुणाः पञ्चत्रिंशत्, ते च प्राक्पञ्चचत्वारिंशत्तमगाथावृत्तौ दर्शिताः । यद्वा व्रतानि=महाव्रतानि पञ्च, गुणाः प्राग्वत् त्रयः, शयनगुणा नव, **यदुक्त काव्यशिक्षायाम्**–नव शयनगुणा-अनग्नशायी, प्रसारित-गात्र, श्वेतवसनाच्छादन अशब्दविशायी, असम्बन्धविशायी, असम्बाधविशायी, समुखशायी अह-मितशायी स्मृतदेवगुरुशायी ।" इति । कुः=भूमिरेका, एतेऽङ्का विपरीतक्रमा यस्य तादृशे व्रता-ग्निशयनगुणकौ=विक्रमसंवत्१९३५तमेऽब्दे आश्विने मासे सितायामष्टम्यां तिथौ अहमदावादे द्यौः=स्वर्गः=देवलोकगमनमिति यावत् समजायत ॥३०९॥

अधुना श्रीसिंहलक्ष्मभृतो श्रीद्विसप्ततिवर्षायुष्कस्य जिनेश्वरस्य द्विसप्ततितमे पट्टे शोभ-मानं श्रीबुद्धिविजयगणिनं निर्देष्टुमिच्छुरार्यामाह–

◆

धुरसंविग्गमणो तत्तरुई णिप्पिहोऽस्स पट्टधुरं ।
पण्णांसो बुद्धिविजयगणी वहीअ जह भुं सेसो ॥३१०॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "बधुर०" इत्यादि, "ऽस्स पट्टधुरं" ति अस्य श्रीमणिविजयगणिनः पट्टधुरां "**पण्णांसो बुद्धिविजयगणी वहीअ**" त्ति प्रज्ञांशः=पण्डितो बुद्धिविजयगणी लोके 'बुटेरायजी महाराजा" इति नाम्ना प्रसिद्धो-ऽवहत्=धारयामास इति सण्टङ्कः किम्भूतः ? । '**बधुरसविग्ग-**ो **तत्तरुई णिप्पिहो**" त्ति बन्धुरसंविग्नमनाः परमसंवेगवान्नित्यर्थः तत्त्वरुचिः=परमतत्त्वा-नन्दी निःस्पृहः=स्पृहारहितो महान् योगी पञ्चनदे सवेगमतद्योतकेष्वाद्यः, मुहपत्तिचर्चाग्रन्थ-कृत् । कथमवहदित्याह–"जह भुं ` `" त्ति यथा शेषः=शेषनागः भुवं=पृथ्वी वहति तथाऽयं पट्टधुरामवहत् ॥३१०॥

अथामुष्य जन्मादिवर्षाण्येकया-ऽन्तवचपलया पथ्यार्यया प्राह—

"कालाऽन्तरेण च इलादुर्गे श्रीकल्याणमल्लनरेन्द्राग्रहादागत्य तत्रस्थ सा० सहजूगृहे महामहेन १६८१ वर्षे वैशाखशुद्धषष्ठ्या श्रीविजयसिंहसूरीन् स्वपदेऽस्थापत् । १६८४ वर्षे पुनर्जयमल्लमन्त्रिणा सहस्रशो रूप्यकव्ययेन विजयसिंहसूरीणां गच्छानुज्ञानन्दिकारिता" इति ।

मुनिश्रीचारित्रविजयकृतायां श्रीतपागच्छपट्टावलीसूत्रवृत्त्यनुसन्धानरूपायां श्रीगु ालायां पुनर्वाचकपद-सूरिपद-स्वर्गमनसंवद्धेकं वर्षमधिकं दृश्यते, तदक्षराणि त्वेवम्—

६१ तत्पट्टे एकषष्ठितम श्रीविजयसिंहसूरि ॥ तस्स वि० चतुश्चत्वारिंशदधिके षोडशशतवर्षे १६४४ मेदनीपुरे ओसवशे पितृनत्थुमल्ल-मातृनायकदेगृहे जन्म, चतु' पञ्चाशदधिके १६५४ दीक्षा, त्रिसप्तत्यधिके १६७३ वाचकपदम्, वि० द्व्यशीत्यधिके १६८२ माघशुक्लषष्ठीसोमे इलादुर्गे सूरिपदम, नवाऽधिके सप्तदशवर्षे १७०६ सूरौ विद्यमान एव सुरपदम् ।" इति ।

तदर्थं तृतीयागाथेत्थं व्याख्येया–"सो" त्ति, सः=श्रीविजयसिंहसूरिः **"वेअ-रयणागरेहिं"** ति, वेदाः–ऋग्यजुःसामलक्षणास्त्रयः, रत्नाकराः=समुद्राः सप्त, आभ्यामङ्काभ्यां प्रातिलोम्यक्रमन्यस्ताभ्यां त्रिसप्तति७३संख्ययाऽधिके कषायशतसङ्ख्ये वर्षे=विक्रमसंवत् १६७३ हायने **"उज्झायो"** त्ति, उपाध्यायः=वाचकः **"हवीअ"** त्ति, बभूव ।

"गोसिद्धगुणेहिं" त्ति, गोशब्देन नेत्रौ द्वौ, सिद्धगुणा अष्टौ, आभ्यामङ्काभ्यां पश्चानुपूर्विक्रमलब्धाभ्यां द्व्यशीति ८२ सङ्ख्ययाऽधिके कषायशतसङ्ख्ये वर्षे=विक्रमसंवत् १६८२ वत्से माघमासे शुक्लषष्ठ्यां तिथौ सोमवारे इलादुर्गे । **"आयरिओ"** त्ति, आचार्यः= सूरिः **"हवीअ"** त्ति, पदं 'डमरुकमणि' न्यायादत्राऽपि योज्यते ततोऽभूत् ।

"रसंड ज्जस्सखग्गमिए" त्ति, रसाः=शृङ्गारादयो नव, **यदुक्तं हैम्याम्–**

"१शृङ्गार२ हास्य३-करुणा४ रौद्र५-वीर६-भयानका' ॥२६४॥ ७ बीभत्सा८-ऽद्भुत९-शान्ताश्च रसा" इति **तथा चान्यत्राऽपि–**"शृङ्गारवीरकरुणाद्भुतहास्यभयानका । बीभत्सरौद्रौ च रसा, शान्तश्च" इति । अण्डः=शून्यम्, वृत्ताकारत्वात्, सूर्याश्वाः सप्त, खड्गः=खड्गिशृङ्ग एकः ।

एतैरङ्कैः पश्चानुपूर्व्या लब्धैः १७०९ इति सङ्ख्यया सिते=रसाऽण्डराज्याङ्गखड्गमिते= विक्रमसवत् १७०९ तमे वर्षे गुरौ विद्यमाने एव **"दिव"** त्ति, दिवम्=अमरपुरी ययौ ।

एवञ्च दश १० वर्षाणि गार्हस्थ्ये, अष्टादश १८ नवदश १९ वा वर्षाणि व्रते, नव ९ वर्षाणि वाचकत्वे, सप्तविंशतिरष्टाविंशतिर्वा २७/२८ वर्षाणि सूरित्वे चेति समस्तजीवनं चतुः-षष्टिः पञ्चषष्टिर्वा ६४-६५ वा वर्षाणि जीवित्वा सुरसद्म प्रविवेश ॥२८७॥

अधुना श्रीसिद्धार्थकुलप्रासादध्वजस्य श्रीजिनेश्वरस्य द्विषष्टे पट्टे संजातं श्रीपन्न्यास-सत्यविजयगणिनं श्लोकद्वयेन निरूपयितुमिच्छयाऽऽदौ पथ्यागीतिमाह—

तप्पट्टागाससोहो, मुणिभगणवुत्रो, णाणदित्तीत्र दित्तो,
सो सिद्धंतिदुकंता, सिवपहग्रमित्रं, भारमाणो भवत्थं ॥३१२॥ (सद्धरा)

(प्रे०) "धत्थ०" इत्यादि, "तप्पट्टागाससोहो" त्ति तस्य=श्रीवुद्धिविजयगणिनः पट्ट एवाकाशस्तस्मिन् पट्टाकाशे=पदगगने=शोभत इति 'अच्' (सि० ५-१-४९) इत्यचि शोभः=शोभकः=शोभावान् । यद्वा तप्पट्टाकाशं शोभयतीति "कर्मणोऽण्" इत्यण्प्रत्यये तत्पट्टाकाशशोभः=श्रीबुद्धिगणिपदरूपगगनशोभाकारीत्यर्थः, "सो" त्ति सः=प्रसिद्धनामा "चंदो वि वि जुओ आणंदसूरी" त्ति चन्द इव=शशीव विजययुतो=विजयपदेन संयुक्त आनन्दसूरिरेतावता विजयानन्दसूरिरासीत्=बभूव । यथा चन्द्रोऽन्धकारनाशकरः किरणवान् समुद्राह्लादजनको भगणवृतो दीप्तिमान् चन्द्रकान्तमणितोऽमृतस्य क्षारकश्चास्ति तथाऽयमप्यासीदिति दर्शयन्नाह–"धत्थण्णाणंधगारो" त्ति ध्वस्तः=विनाशितः=व्यापादितो-ऽज्ञानमेवान्धकारः=नो येन स ध्वस्ताज्ञानान्धकारः=अज्ञाननाशकर इत्यर्थः, "पवयणकिरणो" त्ति प्रवचनं=जिनागम एव किरणानि = रश्मयो यस्य स प्रवचनकिरणः, यद्वा प्रवचनानि = जिनोक्तागमानुसारीणि वचनान्येव किरणानि यस्य स प्रवचनकिरणः = जिनसिद्धान्तानुसारेणोपदेशदातेत्यर्थः, "भव्वलोगवुहीए दायाऽऽणद " त्ति भव्याश्च ते लोकाश्च भव्यलोकाः = सिद्धिगमनार्हाः, त एवाम्बुधिः = समुद्रो भव्यलोकाम्बुधिः, तस्मै तस्य तस्मिन् वा भव्यलोकाम्बुधये भव्यलोकाम्बुधेः भव्यलोकाम्बुधौ वा-ऽऽनन्दस्य = प्रह्लादस्य दाता = प्रदानकर्ता "मुणिभगणवुओ" त्ति मुनयः=साधव एव भानि नक्षत्राणि मुनिभानि तेषां गणः = समुदायो मुनिभगणस्तेन वृतः = वेष्टितो मुनिभगणवृतः = मुनिगणाधिप इत्यर्थः " दित्तीअ दित्तो" त्ति ज्ञानमेव दीप्तिः=प्रकाशो ज्ञानदीप्तिस्तया ज्ञानदीप्त्या दीप्तः=प्रकाशितः = शोभितः "सिद्धतिं- ता सिवपहअमिअं झारमाणो भवत्थ" ति भव्यार्थं = भव्यलोकाय सिद्धान्तः = आगम एवेन्दुकान्तः = चन्द्रकान्तो मणिविशेषस्तस्मात् सिद्धान्तेन्दुकान्तात् शिवपथो = मोक्षमार्ग एवामृतं = सुधा शिवपथामृतं तद् शिवपथामृतं क्षारयमाणः ॥३१२॥

इदानी श्रीविजयानन्दसूरेर्जन्मादिवर्षान् दर्शयितुकामः शार्दूलविक्रीडितं पठति–

से वेसाणरकेसवऽद्दिधरणी-माणे णिवा-ऽद्दे जणी;
दुग्गा-ऽऽइच्चसयम्मि दंतग्रहिए, दिक्खा य संवेगिणी ।
भूएसिक्खणगोपएहि ग्रहिए, होहीग्र सूरी स उ;
रामापच्चहराणणेहि ग्रहिए, पत्तो सुपञ्चालयं ।।३१३॥ (सद्दूलविक्कीडिअं)

रसा=पृथ्व्येका, एतेङ्का वामगतिमीलिता १६८० इति सङ्ख्या यत्र तत्र खमहातीर्थरसे=१६८० तमे "ऽब्दे" त्ति, अब्दे=वर्षे विक्रमसंवत् १६८० तमे शरदि जातम् ।

"**हरिक णाहिचंदकले**" त्ति, हरितः=दिशाः पूर्वाद्याश्चतस्रः, कुनाभयः=निधानानि नव, चन्द्रकलाः षोडश ▽, एतेऽङ्काः पश्चानुपूर्व्या लब्धा हरित्कुनाभि १६९४ इति सङ्ख्या यत्र तत्र=विक्रमसंवत् १६९४ वर्षे "**दिक्ख**" दीक्षाऽभूत् ।

"**बलसवसंजममिए**" त्ति, बलाः=बलदेवा नव, श्रवसी=कर्णौ=श्रोत्रे द्वे, संयमाः सप्तदश, संयमस्य सप्तदशविधत्वात् , एभिरङ्कैः प्रतिलोमक्रमगदितैरेकोनत्रिंशसप्तदशशतैर्मिते=बलश्रवःसंयममिते=विक्रमसंवत्१७२९तमे हायने "**पयं**" ति, पदं=पन्न्यासपदप्रतिष्ठाऽजायत ।

"**अङ्गइ णगबुहे**" त्ति, अङ्गानि=व्याकरणादीनि वेदाङ्गानि षट्, यद्वाऽङ्गानि=राज्याङ्गानि स्वाम्यादीनि सप्त, इषवः=शराः पञ्च, नगाः=पर्वता सप्त, बुधः=चन्द्र एकः, एतेऽङ्का उत्क्रमन्यस्ता यत्र तत्र=अङ्गेषुनगबुधे=विक्रमसंवत् १७५६।१७५७ वा वर्षे "**खं**" ति, खं=स्वर्गं=देवलोकगमनमभवत् ।

एवञ्च चतुर्दश १४ वर्षाणि गृहपर्याये, पञ्चत्रिंशद् ३५वर्षाणि मुनिव्रते, सप्तविंशतिरष्टाविंशतिर्वा २७/२८ वर्षाणि पण्डितपर्याये पन्न्यासपर्याये वा चेति सर्वायुश्च षट्सप्ततिवर्षप्रमितं सप्तसप्ततिवर्षप्रमाणं वाऽनुभूय स्वर्ययौ ॥२८९॥

अथ तत्कालजातान् श्रीआनन्दघनादीन् मुनिपुङ्गवान् सिस्मारिषुरार्याभेदलक्षणपथ्यागीतिद्वयं प्राह—

अज्झप्परयणिरीहो, आणंदघणो मुणी हवीअ तया ।
कयलोगपगासाइ-ग्गंथो उज्झायविणयविजयगणी ॥२८९॥(पच्छागीई)
णायविसारयवायग-जसविजयगणी अणेगगंथयरो ।
तह आसि धम्मसंगह-यरवायगमाणविजयगणिपमुहा ॥२९०॥(पच्छागीई)

(प्रे०) "**अज्झप्प०**" इत्यादि, "**तया**" त्ति, तदा = पन्न्यासश्रीसत्यविजयगणिकाले "**अज्झप्परयणिरीहो आणंदघणो मुणी हवीअ**" त्ति, अध्यात्मरतश्चासौ निरीहश्च = अध्यात्मरतनिरीहः, आनन्दघनः = आनन्दघननामा मुनिर्बभूव । यो हि उपाध्यायश्रीयशोविजयगणिभिः कृतबहुमानस्तव आसीत् । तत्कृतयश्च चतुर्विंशतिस्तव-द्विसप्ततिपदसङ्ग्रहादयः ।

▽ अत एवाभिधानचिन्तमणावुक्तम्-"षोडशोंऽशः कला" इति (श्लोक-१०६) (द्वि० अ० श्लोक-२०)

तप्पट्टागाससोहो, मुणिभगणावुत्रो, णाणदित्तीत्र दित्तो,
सो सिद्धंतिंदुकंता, सिवपहअमिअ, झारमाणो भवत्थं ॥३१२॥ (सद्धरा)

(प्रे०) "धत्थ०" इत्यादि, "तप्पट्टागाससोहो" त्ति तस्य=श्रीवुद्धिविजयगणिनः पट्ट एवाकाशस्तस्मिन् पट्टाकाशे=पदगगने=शोभत इति 'अच्' (सि० ५-१-४९) इत्यचि शोभः=शोभकः=शोभावान् । यद्वा तप्पट्टाकाशं शोभयतीति "कर्मणोऽण्" इत्यण्प्रत्यये तत्पट्टाकाशशोभः=श्रीबुद्धिगणिपदरूपगगनशोभाकारीत्यर्थः, "सो" त्ति सः=प्रसिद्धनामा "चंदो वि विजयजुओ आणंदसूरी" त्ति चन्द इव=शशीव विजययुतो=विजयपदेन संयुक्त आनन्दसूरिरेतावता विजयानन्दसूरिरासीत्=बभूव । यथा चन्द्रोऽन्धकारनाशकरः किरणवान् समुद्राह्लादजनको भगणवृतो दीप्तिमान् चन्द्रकान्तमणितोऽमृतस्य क्षारकश्चास्ति तथाऽयमप्यासीदिति दर्शयन्नाह–"धत्थण्णाणंधगारो" त्ति ध्वस्तः=विनाशितः=व्यापादितो-ऽज्ञानमेवान्धकारः=तमो येन स ध्वस्ताज्ञानान्धकारः=अज्ञाननाशकर इत्यर्थः, "पवयणकिरणो" त्ति प्रवचनं=जिनागम एव किरणानि = रश्मयो यस्य स प्रवचनकिरणः, यद्वा प्रवचनानि = जिनोक्तागमानुसारीणि वचनान्येव किरणानि यस्य स प्रवचनकिरणः = जिनसिद्धान्तानुसारेणोपदेशदातेत्यर्थः, "भव्वलोगवुहीए दायाऽऽणदस्स" त्ति भव्याश्च ते लोकाश्च भव्यलोकाः = सिद्धिगमनार्हाः, त एवाम्बुधिः = समुद्रो भव्यलोकाम्बुधिः, तस्मै तस्य तस्मिन् वा भव्यलोकाम्बुधये भव्यलोकाम्बुधेः भव्यलोकाम्बुधौ वा-ऽऽनन्दस्य = प्रह्लादस्य दाता = प्रदानकर्ता "मुणिभगणवुओ" त्ति मुनयः=साधव एव भानि नक्षत्राणि मुनिभानि तेषां गणः = समुदायो मुनिभगणस्तेन वृतः = वेष्टितो मुनिभगणवृतः = मुनिगणाधिप इत्यर्थः "णाणदित्तीअ दित्तो" त्ति ज्ञानमेव दीप्तिः=प्रकाशो ज्ञानदीप्तिस्तया ज्ञानदीप्त्या दीप्तः=प्रकाशितः = शोभितः "सिद्धतिंदुकता सिवपहअमिअं झारमाणो भवत्थ" ति भव्यार्थं = भव्यलोकाय सिद्धान्तः = आगम एवेन्दुकान्तः = चन्द्रकान्तो मणिविशेषस्तस्मात् सिद्धान्तेन्दुकान्तात् शिवपथो = मोक्षमार्ग एवामृतं = सुधा शिवपथामृतं तद् शिवपथामृतं क्षारयमाणः ॥३१२॥

इदानीं श्रीविजयानन्दसूरेर्जन्मादिवर्षान् दर्शयितुकामः शार्दूलविक्रीडितं पठति–

से वेसाणरकेसवऽद्दिधरणी-मासे णिवा-ऽद्दे जणी;
दु .।-ऽऽइच्चसयम्मि दंतअहिए, दिक्खा य संवेगिणी ।
भूएसिक्खणगोपएहि अहिए, होहीअ सूरी स उ;
रामापच्चहराणणेहि अहिए, पत्तो सुपञ्चालयं ।।३१३।। (सदूलविक्कीडिअं)

प्रकरण-तद्वृत्ती, सिद्धान्ततर्कपरिष्कारः, सिद्धान्तमञ्जरीवृत्तिः, स्याद्वादमञ्जूषा, श्रीगोडीपार्श्वनाथस्तोत्रम्, श्रीशङ्खेश्वरनाथस्तोत्रम, श्रीसमीपार्श्वनाथस्तोत्रम्, स्तोत्रसङ्ग्रहः, शठप्रकरणम्, षोडशप्रकरणवृत्तिः, ज्ञानबिन्दुः, ज्ञानाऽर्णवः, ज्ञानसारः, नयरहस्यम्, भाषारहस्यम्, स्याद्वादरहस्यम्, प्रमादरहस्यमित्यादिरहस्यपदाङ्कितग्रन्थानामष्टोत्तरशतञ्चेति संस्कृतग्रन्थाः ।

गौर्जरभाषायां पुनः-अध्यातममतपरीक्षास्तवक-आनन्दघनस्तुतिअष्टक-उपदेशमाला-जशविलास-जम्बूस्वामिरास-तत्त्वार्थसूत्रस्तबक-द्रव्यगुणपर्यायरास--तत्स्तवक-दिग्पटचोराशीबोल-पञ्चपरमेष्ठिगीता--ब्रह्मगीता--लोकनालि-तत्स्तवक- विचारबिन्दु--तत्स्तवक-श्रीपालरासअन्त्यभाग-समाधिशतक-समताशतक-समुद्रवहाणसंवाद-सम्यक्त्वचोपाइ--साधुवन्दनमाला-ज्ञानसारस्तवक-इत्यादिग्रन्थाः ।

कुमतिखण्डनस्तवन-त्रणचोवीशी-वीशी--दशमतस्तवन-नयगर्भितशान्तिजिनस्तवन-निश्चय-व्यवहारगर्भितस्तवन--पार्श्वनाथस्तवनद्विक-महावीरस्तवन-मौनएकादशीस्तवन--वीरहुंडीस्तवन-श्रीसीमन्धरचैत्यवन्दन-श्रीसीमन्धरविनति-श्रीसीमन्धरस्वामिबृहत्स्तवन-आवश्यकस्तवन -इत्यादि-स्तवाः ।

अंगउपांगस्वाध्याय-अढारपापस्थानकस्वाध्याय-अमृतवेली-आठदृष्टि-आत्मप्रबोध-उपशमश्रेणि-चडतापडतानिस्वाध्याय-चारआहार-ज्ञानक्रिया-पाञ्चमहा भावना-पाञ्चकुगुरु-प्रतिक्रमणगर्भहेतु-प्रतिमास्थापन-यतिधर्मबत्रीशी-स्थापनाकल्प-सुगुरु-संयमश्रेणी-समकितनासडसठबोलनीस्वाध्याय-हरियाली-हितशिक्षा-इत्यादिस्वाध्यायाः ॥ इति ।

"तह आसि य संगहयरवायगमाणविजयगणिपमुहा" त्ति, तथाशब्दः समुच्चये धर्मसंग्रहस्य=तन्नाम्नो ग्रन्थस्य करः=निर्माता, वाचकः=उपाध्यायः, धर्मसंग्रहकरश्चासौ वाचकश्च=धर्मसंग्रहकरवाचकः, स चासौ मानविजयगणी=मानविजयनामा गणी-श्रीहीरविजयसूरि-पट्टधरश्रीविजयसेनसूरि-पट्टधरश्रीविजयतिलकसूरि-पट्टधरविजयानन्दसूरि पट्टधरविजयराजसूरि-राज्यवर्ती श्रीविजयानन्दसूरि-शिष्यश्रीशान्तिविजय शिष्यः, धर्मसग्रहकरो वाचको मानविजयगणी स प्रमुखे=आदौ येषां ते=धर्मसङ्ग्रहकरवाचकमानविजयगणीप्रमुखाः, अत्र प्रमुखशब्देन उपाध्याय-मेघविजयगण्यादयो ग्राह्याः, स च श्रीमेघविजयगणी-श्रीहीरसूरिशिष्योपाध्यायकनकविजय-शिष्यशीलविजयशिष्यसिद्धिविजयशिष्यकृपाविजयशिष्यः **"आसि"** त्ति, आसन्=अभवन् ।

तत्र मेघविजयगणिकृतग्रन्थाश्चेमाः—देवानन्दाऽभ्युदयकाव्य--श्रीशान्तिनाथचरित्र-सप्तसन्धानमहाकाव्य चन्द्रप्रभाव्याकरण-मेघदूतसमस्या-युक्तिप्रबोध- त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र-मेघमहोदय ब्रह्मबोध-मातृकाप्रसाद-श्रीपार्श्वनाथनाममालादयः ।

"रामा०" इत्यादि, स विजयानन्दसूरिः "रामापच्चहराणणेहि" त्ति रामा-ऽपत्य-हराननाः=द्वयङ्क-पञ्चाङ्कलक्षणाः, तै रामापत्य-हराननैः=द्विपञ्चाशता "अहिए" त्ति अधिके=युते दुर्गा-ऽऽदित्यशतेऽब्दे = विक्रमसंवत् द्वापञ्चाशदधिकनवशतोत्तरसहस्र१९५२तमे शरदि ज्येष्ठमासे शुक्लायां△सप्तम्या तिथौ रात्रिसमये पञ्चनदे गुजरानवालायां "सुपव्वालयं" ति सुपर्वालय=देवलोकं "पत्तो" त्ति प्राप्तः = गतः ।

तत्कृतयस्तु तत्त्वनिर्णयप्रासाद-जैनतत्त्वादर्शा-ऽज्ञानतिमिरभास्कर-सम्यक्त्वशल्योद्धार जैन-मतवृक्ष-चिकागोप्रश्नोतर-जैनप्रश्नोत्तरसंग्रहेत्यादयः ।।३१३।।

साम्प्रतं श्रीमिहलाञ्छनधरस्यार्हतश्चतुःसप्ततस्य पट्टधरस्य श्रीविजयकमलसूरेः श्लोकद्वयेन विवर्णयिषयाऽऽदौ चन्द्रोद्योतं प्राह-

वि जयकमलसूरी, तप्पट्टपम्हागरे;
मुणिअलिगणकिणो, संसारपंकुब्भवो ।
अणुरइजलजो ही, संसाररागुज्झिओ;
हवउ कमलकप्पो, भव्वाणं सो सुक्खयो ॥३१४॥ (चंदुज्जोअ)

(प्रे०) "विजय०" इत्यादि, "तप्पट्टपम्हागरे" त्ति तस्य=श्रीविजयानन्दसूरेः पट्टः=पदमेव पद्माकरः = सरस्तत्पट्टपद्माकरस्तस्मिन् तत्पट्टपद्माकरे ': लकप्पो" त्ति कमलकल्पः=कमलसमानः "सो" त्ति सः = प्रसिद्धख्यातिः "विजयकमलसूरी" त्ति विजयकमलसूरिः "भव्वाणं" ति भव्यानां = भव्यजनां "सुक्खयो' त्ति सौख्यदः = शर्मकरः "हवउ" त्ति भवतु इति क्रियान्वयः यथा कमलो भ्रमरगणकलितः, पङ्कनीराभ्यां जातोऽपि तद्रहितो भवति=तद्द्वय त्यक्त्वोपरितिष्ठति तथाऽयमपीत्याह-"मुणिअलिगणकिण्णो" त्ति मुनयः=साधव एवालयो = द्विरेफास्तेषां गणः = वृन्दं मुन्यलिगणस्तेन कीर्णः = व्याप्तः, मुन्यलिगणकीर्णः=मुनिपरिवारयुत इत्यर्थः "ससारपंकुब्भवो" संसारः=भवः, स एव पङ्कः=चिकिलः संसारपङ्क-स्तस्मिन् उद्भवः = जातः संसारपङ्कोद्भवः "अणुरइजलणो" त्ति अनुरतिः = रागः, सा एव जलं = सलिलं अनुरतिजलं, तस्मात् तस्मिन् वा जातः अनुरतिजलजः, "हो" त्ति, 'ही' इत्यव्ययमाश्चर्येऽर्थे वर्तते । आश्चर्यश्चायं संसारपङ्कोद्भवो-ऽप्यनुरतिजलजो ऽपि चासौ "ससार-रागुज्झिओ" त्ति मंसाररागोज्झितः ।।३१४।।

एतर्हि श्रीविजयकमलसूरेर्जन्मादिकालमान प्ररूपयन्नाह शार्दूलविक्रीडितेन छन्दसा—

पृष्ठ ५४३ तमे द्रष्टव्यम् । △ कुत्रचित्पुनरष्टमी तिथिरपि लिखिता दृश्यते ।

"**आसवलोगभुवणमेइणीमाणे**" त्ति, आश्रवाः–मिथ्यात्वा-ऽविरति-कषाय--योग-प्रमादलक्षणाः पञ्च, यद्वा इन्द्रिया-ऽव्रत-कषाय-योग-क्रियारूपाः पञ्च, लोकाः=*भूरादयः सप्त, *भुवनानि पूर्ववत्सप्त, उदितश्च **वाग्भटालङ्कारे प्रथमपरिच्छेदेऽष्टादशमश्लोके**–★ 'भुवनानि निबध्नीयत त्रीणि सप्त चतुर्दश इति। एवमेव **काव्यशिक्षायामपि**। मेदिनी = वसुन्धरा एका, एतेषामङ्कानां पश्चानुपूर्व्या १७७५ इति सङ्ख्यामानं यत्र तत्र = आश्रवलोकभुवनमेदिनीमाने = विक्रमसंवत् १७७५ तमे हायने श्रावणे मासे कृष्णायां चतुर्दश्यां तिथौ पञ्चपञ्चाशद्वर्षमितं संयमपर्यायं पालयित्वा "**स**" त्ति सः=श्रीकपूर(कपुर)विजयगणी "**तिविसं**" ति, तिविषं= सुरालयं "**गओ**" त्ति, गतः = प्राप्तः।

एवं पञ्चपञ्चाशद्५५वर्षाणि संयममनुपाल्याऽमरधाम भूषयति स्म ॥२९३॥

एतर्हि श्रीमहावीरविभोश्चतुःषष्टं पट्टभृतं प्रज्ञांश(पन्न्यास)श्रीक्षमाविजयगणिनं श्लोकद्वयेन निरूपयिषया पूर्वमेकां पथ्यामार्यां वक्ति--

रक्खणयरो भवाणं, पणणं(णा)सखमाविजयगणिमुणिंदो।
पट्टे पणणंसकपुर-विजयगणीणं विराईअ ॥२९४॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "**रक्खण०**" इत्यादि, "**पण्णंसकपुरविजयगणीणं**" ति, प्रज्ञांशकपुरविजयगणिनां "**पट्टे**" त्ति, पट्टे=पदे "**पण्णं(णा)सखमाविजयगणिमुणिंदो**" त्ति, प्रज्ञांशः= पण्डितः (पन्न्यासो वा)क्षमाविजयगणिमुनीन्द्रः, पोयन्द्राग्रामवासी कलोशाह-ननान्देजः चामुण्ड-गोत्रीय ओशवंशोत्पन्नः "**विराईअ**" त्ति, व्यराजत=अशोभत। किं भूतः ? "**भव्वाणं**" ति, भव्यानां=भव्यप्राणिनां "**रक्खणयरो**" त्ति, रक्षणकरः = रक्षाविधायकः ॥२९४॥

अथ श्रीक्षमाविजयगणिनो जन्मादिपर्यायसत्कानि वर्षाणि प्ररूपयितुमिच्छुः पथ्याऽऽर्या-माह--

परिसहपिडेसणिला१७२२मिएऽस्स वासे जणी हवीअ वयं।
धीवड्ढिणरयिले१७४४सो, सग्गमिओ रसमयऽस्सबुहे१७८६ ॥२९५॥

(पच्छाज्जा)

(प्रे०) "**परिसह०**" इत्यादि, "**ऽस्स**" त्ति, अस्य=श्रीक्षमाविजयगणिनः "**परिसहपिंडेसणिलामिए**" त्ति, परिषहाः = परीषहाः = क्षुधा-पिपासा शीतो-ष्ण दंशमशका-ऽचेला-

---

* भूर्लोक भुवर्लोक-स्वर्लोक-महर्लोक-जनलोक-तपोलोक-सत्यलोकरूपा। भुवनान्यप्येवमेव।

अथ उपाध्यायश्रीवीरविजयगणिनं श्लोकद्वयेन स्तुतिकर्तुकाम आदौ पथ्यायां भणति–

विजयाणंदायरिअसु-सिस्सो सिद्धवयणो जयउ लोए ।
विम्हयजणगचरित्तो, उज्झायो वीरविजयगणी ॥३१६॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "वि ०" इत्यादि, "**विजयाणदायरिअसुसिस्सो**" त्ति विजयानन्दाऽऽचार्यस्य=तन्नाम्नः सूरेः सु=शोभनः शिष्यः=विनेयो विजयानन्दाचार्यसुशिष्यः=विजयानन्दसूरेरन्तेवासी "**उज्झायो वीरविजयगणी**" त्ति उपाध्यायो वीरविजयगणी=वीरविजयनामा गणी "**लोए**" त्ति लोके=विश्वे "**जयउ**" त्ति जयतु=सर्वातिशयवान् भवतु। इति क्रियासण्टङ्कः।

किम्भूतः ? "**सिद्धवयणो**" त्ति सिद्धं वचनं यस्य स सिद्धवचनः । तथाहि–यद्वचनेनाऽवागपि पोपटसंज्ञको जनोऽमूको जात इत्यादि ।

पुनरपि किम्भूतः ? "**विम्हयजणगचरित्तो**" त्ति विस्मयस्य=आश्चर्यस्य जनकं=कारकं चरित्रं=जीवनं यस्य स विस्मयजनकचरित्रः। तेषां जीवने ह्यनेकान्याश्चर्याण्यभवन् △॥३१६॥

अथामुष्य जन्मादिवत्सरान् पथ्यागीत्या प्राह—

णिहिकुसयेऽस्स णिवा-ऽद्दे जम्मो-ऽद्दीहि अहिए वयगुणेहि ।
दिक्खा उज्झायपयं हयिसूहि जुअम्मि इसुहयेहि दिवं ॥३१७॥

(पच्छागीई)

(प्रे०) "**णिहि०**" इत्यादि, "**ऽस्स**" त्ति अस्य=श्रीउपाध्यायवीरविजयस्य "**ज ो**" त्ति जन्म=जनिः **सौराष्ट्रदेशे पडवाग्रामे 'मीठाभाई'** तो **'रामबाइ'**कुक्षौ "**णिवा**" त्ति नृपात्=विक्रमादित्यनरेन्द्रात् "**ऽद्दोहि अहिए**" त्ति अद्रिभिः=अष्टभिरधिके "**णिहिकुशये**" त्ति निधिकवः=नवाङ्कै-काङ्कलक्षणाः प्रातिलोम्यन्यस्ता १९ सङ्ख्याः तावन्मानानि शतानि यत्र तत्र निधिकुशते=१९०० "**द्दे**" त्ति अब्दे=वर्षे=विक्रमसंवदष्टयुतनवशतोत्तरस १९०८तमे ▽वत्सरेऽभूत् । **उक्तञ्च वीरवाचकगुणस्तुत्यष्टके–**

"भवोदन्वन्मज्जद्भविजनतते रक्षणकृते, श्रियोपेत जन्माश्रयत विबुधासेव्यचरण ।
गजाभ्राङ्केन्द्वब्दे (१९०८) हरिरिव मुनिर्यः क्षितितल, उपाध्याय वन्दे तमनुदिवस वीरविजयम् ॥" इति ।

△विशेषजिज्ञासुना पुन **'बाबुजी सुमेरमलजी सुराना'** द्वारा प्रकाशित श्रीवीरविजयजी महाराजनु **'जीवनचरित्र'** सज्ञक पुस्तक गुर्जरभाषाया विरचित विलोकनीयम् ।

▽ अस्मद्गुरुपादश्रीप्रेमसूरीश्वरनिर्मितसक्रमकरणपुस्तकद्वयगतप्रतिकृतौ तथोपरि दर्शितपुस्तके 卐 वि० स० १९०७ वर्षे जन्म प्रदर्शितमस्ति। तदर्थं "ऽद्दीहि" त्ति अब्धिभि =सप्तभिरिति व्याख्येयम् ।

"**आसवलोगभुवणमेइणीमाणे**" त्ति, आश्रवाः–मिथ्यात्वा-ऽविरति-कषाय--योग-प्रमादलक्षणाः पञ्च, यद्वा इन्द्रिया-ऽव्रत-कषाय-योग-क्रियारूपाः पञ्च, लोकाः=*भूरादयः सप्त, *भुवनानि पूर्ववत्सप्त, उदितञ्च **वाग्भटालङ्कारे प्रथमपरिच्छेदेऽष्टादशमश्लोके**–★ 'भुवनानि निबध्नीयत त्रीणि सप्त चतुर्दश इति। एवमेव **काव्यशिक्षायामपि**। मेदिनी = वसुन्धरा एका, एतेषामङ्कानां पश्चानुपूर्व्या १७७५ इति सङ्ख्यामानं यत्र तत्र = आश्रवलोकभुवनमेदिनीमाने = विक्रमसंवत् १७७५ तमे हायने श्रावणे मासे कृष्णायां चतुर्दश्यां तिथौ पञ्चपञ्चाशद्वर्षमितं संयमपर्यायं पालयित्वा "**स**" त्ति सः=श्रीकर्पूर(कपुर)विजयगणी "**तिविसं**" ति, तिविषं= सुरालयं "**गओ**" त्ति, गतः = प्राप्तः।

एवं पञ्चपञ्चाशद् ५५वर्षाणि संयममनुपाल्याऽमरधाम भूषयति स्म ॥२९३॥

एतर्हि श्रीमहावीरविभोश्चतुःषष्टं पट्टभृतं प्रज्ञांश(पन्न्यास)श्रीक्षमाविजयगणिनं श्लोकद्वयेन निरूपयिषया पूर्वमेकां पथ्यामार्यां वक्ति--

रक्खणयरो भव्वाणं, पण्णं(ण्णा)सखमाविजयगणिमुणिंदो।
पट्टे पण्णांसकपुर-विजयगणीणं विराईअ ॥२९४॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "**रक्खण०**" इत्यादि, "**पण्णंसकपुरविजयगणीणं**" ति, प्रज्ञांशकपुरविजयगणिनां "**पट्टे**" त्ति, पट्टे=पदे "**पण्णं(ण्णा)सखमाविजयगणिमुणिंदो**" त्ति, प्रज्ञांशः= पण्डितः (पन्न्यासो वा)क्षमाविजयगणिमुनीन्द्रः, पोयन्द्राग्रामवासी कलोशाह-वनान्देजः चामुण्ड-गोत्रीय ओशवंशोत्पन्नः "**विराईअ**" त्ति, व्यराजत=अशोभत। किं भूतः? "**भव्वाणं**" ति, भव्यानां=भव्यप्राणिनां "**रक्खणयरो**" त्ति, रक्षणकरः = रक्षाविधायकः ॥२९४॥

अथ श्रीक्षमाविजयगणिनो जन्मादिपर्यायसत्कानि वर्षाणि प्ररूपयितुमिच्छुः पथ्याऽऽर्यामाह--

परिसहपिडेसणिला१७२७मिएऽस्स वासे जणी हवीअ वयं।
धीवड्ढिणारयिले१७४४सो, सग्गमिओ रसमयऽसबुहे१७८६ ॥२९५॥
(पच्छाज्जा)

(प्रे०) "**परिसह०**" इत्यादि, "**ऽस्स**" त्ति, अस्य=श्रीक्षमाविजयगणिनः "**परिसहपिडेसणिलामिए**" त्ति, परिषहाः = परीषहाः = क्षुधा-पिपासा शीतो-ष्ण दंशमशका-ऽचेला-

---

* भूर्लोक भुवर्लोक-स्वर्लोक-महर्लोक-जनलोक-तपोलोक-सत्यलोकरूपा। भुवनान्यप्येवमेव।

जिणणिहिससहर[१९२४]वासे भूवा जम्मोऽस्स भींभुवाडक्खे।
गामे कत्तिअमासे तिहीअ सुद्धचउदसमीए ॥३१९॥ (पच्छाज्जा)
सव्वसहादसरहसुअणारयखत[१९४१]द्दमग्गसिरमासे ।
सुक्काअ पंचमीए तिहीअ घो(गो)घक्खवंदिरे दिक्खा॥३२०॥ (पच्छागीई)
णयणमहुयरचरणवपुदारुव्वी[१९६२]संखवासमहमासे ।
सुक्केगारसमीए तिहीअ थंभणपुरे स पराणासो ॥३२१॥ (पच्छागीई)
भवइसिहरितणुछिद्दकु[१९८१]मिअवस्से मग्गसीसमासम्मि।
सिअपंचमीदिणे सो हवीअ छाणीपुरे सूरी ॥३२२॥ (पच्छाज्जा)
सिधुत्थहरिहलिमही[१९९१]पमाणवासम्मि माहमासम्मि।
सिअपक्खदुइअदिवसे सग्गमिओ पाडडीगामे ॥३२३॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "**जिण०** " इत्यादि, "**णिवा**" त्ति, नृपात्=विक्रमादित्यराजतः "**जिणणिहिससहरवासे**" त्ति जिननिधिशशधराः=चतुर्विंशति-नवै-काङ्कलक्षणा वामक्रमलब्धा १९२४ संख्या यत्र, तच्च तद्वर्षं च, तत्र जिननिधिशशधरवर्षे=विक्रमसंवत् १९२४ वर्षे "**कत्तिअमासे**" त्ति कार्तिकमासे "**सुद्धचउदसमीए**" त्ति शुद्धिचतुर्दश्यां "**तिहीअ**" त्ति तिथौ "**झींझुवाडक्खे गामे**" त्ति 'झींझुवाडा' इत्याख्ये ग्रामे "**ऽस्स**" त्ति अस्य=श्रीमद्विजयदानसूरेः "**जम्मो**" त्ति जन्माऽभूत्।

अथास्य दीक्षायाः समयं स्थानञ्च द्वितीयया पथ्यागीत्या दर्शयन्नाह—"**सव्व०**" इत्यादि, "**ऽस्स**" त्ति पूर्वतोऽत्रानुवर्तनात् श्रीविजयदानसूरेः "**दिक्खा**" त्ति दीक्षा=चारित्रग्रहणं "**सव्वसहादसरह अणारयखंतद्दमग्गसिरमासे**" त्ति, सर्वसहा=पृथिव्येका, दशरथसुता राम-लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्नरूपाश्चत्वारः, नारदा नव, क्षान्ता=धरण्येका, वामगत्या १९४१ संख्या यत्र, तच्च तदब्दम्, तस्य मार्गशिरमासे=मार्गशीर्षमासे सर्वसहादशरथसुतनारदक्षान्ताऽब्दमार्गशिरमासे=विक्रमसंवत् १९४१ वर्षे सहे मासे "**सुक्काअ पंचमीए तिहीअ**" त्ति, शुक्लायां पञ्चम्यां तिथौ "**घो(गो)घक्खवंदिरे**" त्ति घो(गो)घाख्यवन्दिरेऽभवत्।

अथ तृतीयां पथ्यागीतिं वदन् श्रीमद्विजयदानसूरेः पन्न्यासपदस्य समयं स्थलं प्रकटयति—"**णयण०**" इत्यादि, "**णयणमहुयरचरणवपुदारुव्वीसंखवासमहमासे**" त्ति, नयनौ=अक्षिणी सुप्रसिद्धे द्वे, मधुकरचरणाः=भृङ्गिपादाः षट्, वपुदाराणि=देहछिद्राणि नव,

"**जिणविजयगणी**" त्ति, जिनविजयगणी श्रीमालज्ञातिधर्मदासात्मजो लाडकुमारीकुक्षिसंभवः "**विजयउ**" त्ति, विजयताम् = जयनशीलो भवतु ।

"**से**" त्ति, तस्य = श्रीजिनविजयगणिनः "**णिवा**" त्ति, नृपात् विक्रमादित्यभूपतितः "**णंदीसरमंदिरसंजमवासे**" त्ति नन्दीश्वरमन्दिराणि=नन्दीश्वरसंज्ञकाष्टमद्वीपगता जिनालया द्विपञ्चाशत्, संयमाः सप्तदश, एतावङ्कौ यस्य वर्षस्य यत्र वर्षे वा तद् नन्दीश्वरसंजमम्, तच्च तद्वर्षं च नन्दीश्वरमन्दिरसंजमवर्षं तस्मिन् = नन्दीश्वरमन्दिरसंयमवर्षे = विक्रमसंवत् द्विपञ्चाशदधिकसप्तदशशत१७५२तमे शारदेऽहमदाबादे नगरे "**जम्मो**" त्ति, जन्म = उत्पत्तिरभूत् ।

"**बिंदुभयणयहरे**" त्ति, बिन्दुभयनयधराः, शून्य-सप्त सप्तै-काङ्कलक्षणा वामक्रमाप्ता यत्र तत्र बिन्दुभयनयधरे=विक्रमसंवत् सप्तत्यधिकसप्तशतसहस्र१७७०तमे "**ऽद्दे**" त्ति, अब्दे= हायने कार्तिककृष्णषष्ठ्यामहमदाबादे '**दिक्खा**' त्ति, दीक्षा=व्रतग्रहणमजायत ।

"**इंदुदंतिमुणिकुमिए**" त्ति, इन्दुदन्तिमुनिकवः=एका-ऽष्ट सप्तै-कात्मकास्ताभिर्वामगत्यैकाशीत्यधिकसप्तदश१७८१सङ्ख्यया मिते=इन्दुदन्तिमुनिकुमिते=विक्रमसंवद् एकाशीत्युत्तरसप्तदशशत१७८१वर्षे "**पय**" ति, पदं=पण्डितपदं जम्बूसरे संजातम् ।

"**बीए**" त्ति, द्वितीये वर्षे=विक्रमसंवत्१७८२वर्षे "**गच्छाणुण्णा**" त्ति, गच्छानुज्ञा जाता।

"**सेवहिणं म्मि**" त्ति शेवधयः=निधयो नव, ततः शेवधिनन्दाश्वकवः=नव-नव-सप्तै-काङ्करूपाः पश्चानुपूर्व्या गृहीता १७९९ इति सङ्ख्या यत्र तत्र शेवधिनन्दाश्वकौ= विक्रमसंवत् १७९९ हायने श्रावणशुक्लदशम्यां पादराग्रामे "**दिव**" ति, द्यौः=स्वर्गलोको जातः।

इत्थ ऽमुष्य गृहस्थपर्यायो-ऽष्टादश१८वर्षाणि, सामान्यमुनिव्रतपर्याय एकादश ११ वर्षाणि, प्रज्ञांशपदपय यः पण्डितपदपर्यायो वैकवर्षम्, गच्छनायकपर्यायः सप्तदश १७ वर्षाणि, इत्येवं सर्वायुश्च सप्तचत्वारिंशत् ४७ वर्षाण्यासीत् ॥२९६-२९७॥

साम्प्रतं श्रीअपश्चिमशासननायकस्य प्रभोः षट्षष्टे पट्टे उत्पन्नं श्रीउत्तमविजयगणिनं स्तुवन्पथ्या-ऽऽर्याऽनुष्टुबात्मकं श्लोकद्वयं जल्पति—

जयउ गणी सिरिउत्तम-विजयो तप्पट्टगगणमत्तंडो ।
तस्स खभूखंडऽद्धिकु-मिए(१७६०)जणी विक्कमणिवाऽद्दे ॥२९८॥

(पच्छ)

जिणणिहिससहर¹⁹²⁴वासे भूवा जम्मोऽस्स झींझुवाडक्खे ।
गामे कत्तिअमासे तिहीअ सुद्धचउदसमीए ॥३१९॥ (पच्छाज्जा)
सव्वसहादसरहसुअणारयखत¹⁹⁴¹द्दमग्गसिरमासे ।
सुक्काअ पंचमीए तिहीअ घो(गो)घक्खबंदिरे दिक्खा ॥३२०॥ (पच्छागीई)
णयणमहुयरचरणवपुदारुव्वी¹⁹⁶²संखवासमहमासे ।
सुक्केगारसमीए तिहीअ थंभणपुरे स पण्णासो ॥३२१॥ (पच्छागीई)
भवइसिहरितणुछिद्दकु¹⁹⁸¹मिअवस्से मग्गसीसमासम्मि ।
सिअपंचमीदिणे सो हवीअ छाणीपुरे सूरी ॥३२२॥ (पच्छाज्जा)
सिधुत्थहरिहलिमही¹⁹⁹¹पमाणवासस्सि माहमासम्मि ।
सिअपक्खदुइअदिवसे सग्गमिओ पाडडीगामे ॥३२३॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "जिण० " इत्यादि, "णिवा" त्ति, नृपात्=विक्रमादित्यराजतः "जिणणिहिससहरवासे" त्ति जिननिधिशशधराः=चतुर्विंशति-नवै-काङ्कलक्षणा वामक्रमलब्धा १९२४ संख्या यत्र, तच्च तद्वर्षं च, तत्र जिननिधिशशधरवर्षे=विक्रमसंवत् १९२४ वर्षे "कत्तिअमासे" त्ति कार्तिकमासे "सुद्धचउदसमीए" त्ति शुद्धिचतुर्दश्यां "तिहीअ" त्ति तिथौ "झींझुवाडक्खे गामे" त्ति 'झीझुवाडा' इत्याख्ये ग्रामे "ऽस्स" त्ति अस्य=श्रीमद्विजयदानसूरेः "जम्मो" त्ति जन्माऽभूत् ।

अथास्य दीक्षायाः समयं स्थानञ्च द्वितीयया पथ्यागीत्या दर्शयन्नाह-"सव्व०" इत्यादि, "ऽस्स" त्ति पूर्वतोऽत्रानुवर्तनात् श्रीविजयदानसूरेः "दिक्खा" त्ति दीक्षा=चारित्रग्रहणं "सव्वसहादसरह अणारयखंतद्दमग्गसिरमासे" त्ति, सर्वसहा=पृथिव्येका, दशरथसुता राम-लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्नरूपाश्चत्वारः, नारदा नव, क्षान्ता=धरण्येका, वामगत्या १९४१ संख्या यत्र, तच्च तदब्दम्, तस्य मार्गशिरमासे=मार्गशीर्षमासे सर्वसहादशरथसुतनारदक्षान्ताऽब्दमार्गशिरमासे=विक्रमसंवत् १९४१ वर्षे सहे मासे "सुक्काअ पचमीए तिहीअ" त्ति, शुक्लायां पञ्चम्यां तिथौ "घो(गो)घक्खबंदिरे" त्ति घो(गो)घाख्यबन्दिरेऽभवत् ।

अथ तृतीयां पथ्यागीतिं वदन् श्रीमद्विजयदानसूरेः पन्न्यासपदस्य समयं स्थलं प्रकटयति-"णयण०" इत्यादि, "णयणमहुयरचरणवपुदारुव्वीसंखवाससहमासे" त्ति, नयनौ=अक्षिणी सुप्रसिद्धे द्वे, मधुकरचरणाः=भृङ्गिपादाः षट्, वपुदाराणि=देहछिद्राणि नव,

तत्समये अष्टादशाऽधिकाऽष्टादशदश १८१८ वर्षे रघुनाथशिष्यात् ढुण्ढकमतात् 'भीखमजी' तो जिनप्रतिमाद्वेष्यनुकम्पाविरोधकारी मुखपट्टचन्धस्तेरापन्थः प्रादुर्बभूव ॥२९८-२९९॥

अधुना श्रीनन्दिवर्धनभ्रातुरर्हतः सप्तषष्टं पट्टमलङ्करिष्णोः पन्न्यासश्रीपद्मविजयगणिनः श्लोकत्रयेण शिशंसिषया प्रथमं पथ्यामार्यामाह—

एअस्स पए भासी, इन्दूमिव इन्दुसेहरस्स सिरे ।
परमद्दहत्ति खाओ, पराणासो पम्हविजयगणी ॥३००॥ (पच्छाजा)

(प्रे०) "एअस्स" इत्यादि, "एअस्स" त्ति, एतस्य=श्रीउत्तमविजयगणिनः "पए" त्ति, पदे=पट्टे "परमद्दह'त्ति खाओ" त्ति, 'परमद्दह' इति ख्यातः=प्रसिद्धिं गतः "पण्णासो पम्हविजयगणी" त्ति, पन्न्यासः पद्मविजयगणी गणेशतनयो झमकुकुक्ष्युद्भवः सकलशास्त्रपारावारपारीणः पञ्चपञ्चाशत्सहस्रग्रन्थनिर्माता वर्धानपुरे ढुण्ढकैः सह लब्धजयवादो जिनप्रतिष्ठादिक्रियापरायणः क्रियारुचिः परमसंवेगी कविशेखरः सततविहारी "भासी" त्ति, अभात्=अशोभत ।

क इव ? "इन्दूमिव" त्ति, इन्दुरिव=चन्द्र इव यथा "इन्दुसेहरस्स सिरे" त्ति, इन्दुः=शशी, शेखरे=मस्तके यस्य तस्य इन्दुशेखरस्य=महादेवस्य शिरसि=मूर्ध्नि विधू राजते ।

तत्कृतयश्च—रास-पूजा-देववन्दन-चैत्यवन्दन-स्तवन-स्तुत्याद्याः ॥३००॥

अथ श्रीपद्मविजयगणिनो जन्मादिसंवत्सरान् दर्शयितुमिच्छुः पथ्या-ऽऽर्याद्वयं प्रतिपादयति—

सिदुररयगेवेज्जय-विमाणसंजम१७९२मिए णिवाऽस्स जणी ।
दिक्खा अणुत्तरामर-वोममयंगयधरासंखे१८०५॥३०१॥(पच्छाजा)
दसकंठकंठपाव-ट्ठाण१८१०मिए हायणे पयपइट्ठा ।
रामसुअदंसणकरटि-खग्ग१८६२पमाणम्मि देवगई ॥३०२॥(पच्छाजा)(जुग्ग)

(प्रे०) "सिदुर" इत्यादि, "अस्स" त्ति अस्य=श्रीपद्मविजयगणिनः "जणी" त्ति, जनिः=गर्भनिष्क्रान्तिः "णिवा" त्ति, नृपात्=विक्रमादित्यभूपतः "सिदुररयगेवेज्जयविमाणसजममिए" त्ति, सिन्दुररदौ=गजदन्तौ द्वौ, ग्रैवेयकविमानानि सुदर्शन-सुप्रतिबद्ध-मनोरम-सर्वतोभद्र-सुविशाल--सुमनस--सौमनस--प्रियङ्कर -नन्दीकरलक्षणानि नव, संयमाः

त्ति अक्षराः=वर्णाः ''जे'' त्ति ये ''ऽत्थि'' त्ति उत्तरार्धस्थोऽप्यत्र सम्बध्यते यद्वा ''अत्थि'' त्ति पदमध्याहार्यम् ततः सन्ति=विद्यन्ते '·ते'' त्ति यत्तदोर्नित्यसम्बधादनन्तरं यत्पदेन येऽक्षरा उत्पादिता तेऽत्र तत्पदेन ग्राह्यास्ततः ते=त आद्या अक्षराः ''ग्रन्थस्स'' त्ति ग्रन्थस्य ''से'' त्ति तस्य=ग्रन्थस्य ''कत्तुणो'' त्ति कर्तुः, ''से'' त्ति तस्य=ग्रन्थकर्तुः ''गुरुआईण'' त्ति गुर्वादीनां ''पच्चया'' त्ति प्रत्ययाः=बोधका ज्ञापका वा ''ऽत्थि'' त्ति सन्ति।

अयम्भावः—श्रीवीरविभोः षट्सप्ततेः पट्टभृताश्चाऽऽदिमश्लोकप्रथमचरणसत्काद्याक्षरैः सप्तसप्तत्या श्रीदानसूरेरारभ्य ग्रन्थकर्तारं यावद् गुरुशिष्याणां षण्णां नामानि ग्रन्थस्य च बन्धविधानमिति नाम च दर्श्यते ।

तद्यथा—'सिरिमंतविजअदाणसूरिसीससिरिमंतविजअपेमसूरिसीस卐पंणासहेमंतविजअगणिसीसललितसेहरविजअसीसराअसेहरविअअसीसवीरसेहरविजएण रइअं बंधविहाणं' इति ।

तथा च तच्छाया—श्रीमद्विजयदानसूरिशिष्य- श्रीमद्विजयप्रेमसूरिशिष्य--卐पन्न्यास-हेमन्तविजयगणिशिष्य-ललितशेखरविजयशिष्य--राजशेखरविजयशिष्य--वीरशेखरविजयेन रचितं बन्धविधानमित्यर्थः ॥३२४॥

सम्प्रति श्रीवर्धमानस्वामिनश्चतुर्विंशतितमजिनेश्वरस्य षट्सप्ततं पट्टं परां शोभामानयतः सुविशालगच्छाधिपतेः श्रीप्रेमसूरेः श्लोकसप्तदशकेन बिभणिषयाऽऽदौ तावत्स्रग्धरां प्रकटयति—

◆

वंदे पेमसूरिं, पहिअसुचरणं, दाणसूरिस्स सीसं;
पट्टव्वोमंसुमालिं, रसतुरग७६मिते, वीरपट्टे णिविट्ठं ।
बद्धो बालप्पबुद्ध-प्पहुडिमुणिगणो, पेमपासेहि जेणं;
किं लज्जाए अदिस्सो, मइविहवजिओ जस्स देवाण सूरी ॥३२५॥

(सद्धरा)

(प्रे०) ''णं'' इत्यादि, ''णं'' ति तं ''पेमसूरिं'' ति प्रेमसूरिं ''वंदे'' त्ति वन्दे = प्रणमामि इति क्रियान्वयः किम्भूतं तम् ? । ''पहिअसुचरण'' ति प्रथितं = ख्याति गतं शोभनं चरणं = चारित्रं यस्य तम् प्रथितसुचरणं ''दाणसूरिस्स सीसं पट्टव्वोमंसुमालिं'' ति दानसूरेः शिष्यं = विनेयं 'दाणसूरिस्स' त्ति इहाऽपि सम्बन्धात् दानसूरेः चैव पट्टः = पदमेव

इदञ्च ग्रन्थनिर्माणकाल-वृत्तिप्रणयणसमयापेक्षया बोध्यम्, अधुना पुनर्मुद्रणावसरे सूरिपदे स्थितत्वादाचार्यदेवश्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वरपट्टविभूषका-ऽऽचार्यश्रीमद्विजयहीरसूरीश्वरा इति नाम्ना व्यपदिश्यते ।

सो सिद्धंतमहोअ्रही मुणिवई, मे दाउ सिद्धि परं;
तं वंदेह खमानिहाणसमया-पेऊसवारांणिहि ।
तेणं हं पि जडो भिसं उवकयो, चारित्तदाणाइणा;
तस्साहिट्ठपयाण कप्पतरुणो भावुल्लसेणं णमो ॥३२८॥ (सद्दूलविक्कीडिअं)

तत्तो पूअ्रसुसंजमा भविगणो, पावेउ इट्ठं लहुं;
तस्संही फरिसन्ति भत्तिणिहरा, भव्वा सिवाकंखिणो ।
तस्सिं मंदसमाहिदाणकुसले, उक्किट्ठचायालये;
कम्मग्गंथरहस्सचारचउरे, थोउं गुणा को अ्रलं ॥३२९॥(सद्दूलविक्कीडिअं)

(प्रे०) "जो" इत्यादि, श्रीप्रेमसूरिवाचकस्य यत्शब्दस्य सप्तभिर्विभक्तिभिः प्ररूपयन् प्रथमयाह- "जो" त्ति यः = श्रीप्रेमसूरिः "वच्छल्लणिहो" त्ति वत्सलस्य=स्निग्धस्य भावः पति-राजान्त-गुणाङ्ग-राजादिभ्य कर्मणि च (सि० ७ २ ६०) इति ट्यणि वात्सल्यम् = स्नेहः प्रेम तेषां निधिः = शेवधिः वात्सल्यनिधिः, तथा "णिरीहजलही" त्ति निर्=निर्गता ईहा = स्पृहा निरीहा=निरीहता=निःस्पृहता तासां जलधिः=समुद्रः, निरीहाजलधिः, मूले प्राकृतत्वाद्-ध्रस्वत्वं भवति । निःस्पृहतावान्, "चारित्तचूडामणी" त्ति चारित्रस्य=संयमस्य चूडामणिः= मौलिरत्नश्चारित्रचूडामणिः, यद्वा चारित्रं = सयम एव चूडा=मौलिश्चारित्रचूडा तस्यां मणिः= रत्नश्चारित्रचूडामणिः ।

द्वितीयया विभक्त्या-ऽऽह- "जं" त्ति यं = श्रीप्रेमसूरिं "दट्ठुं पि" त्ति दृष्ट्वाऽपि "पाएण दुट्ठा वि हो" त्ति प्रायो दुष्टा = दुर्बुद्धयोऽपि "हो" इत्यव्ययमाश्चर्यार्थे "परमं" परमां = प्रकृष्टां "मुय" ति मुदां = हर्षं "अइन्ति" त्ति 'गमेरई अइच्छ (सि० ८-४-१६२) इति गम् धातोरादेशः, गच्छन्ति=प्राप्नोति ।

तृतीयया विभक्त्याह- "जेण" ति येन = श्रीप्रेमसूरिणा किम्भूतेन संयम एव रज्जुर्यस्य तेन संयमरज्जुणा "स रकूवा" त्ति संसारः=भव एव कूपः = उदपानः संसारकूपस्तस्मात् संसारकूपात् = संसृत्यन्धोः "भविगणो" त्ति भविनां = मुक्तिगमनार्हाणां गणः = समुदायो भविगणः = भव्यलोकः "उद्धयो" त्ति उद्धृतः = उद्धारञ्चक्रे ।

चतुर्थ्या विभक्त्या-ऽऽह- "जस्स" त्ति यस्मै = श्रीप्रेमसूरये अत्र चतुर्थी विभक्तिस्तु "स्पृहेर्व्याप्यं वा" (सि २-२ २६) इति सूत्रेण स्पृह्धातोर्व्याप्यस्य विकल्पेन सम्प्रदान-

सप्त, पुराणानि मत्स्य-कूर्म लिङ्ग--शिव-स्कन्दा- ऽग्निसंज्ञतामसपुराणषट्क-विष्णु-नारद--भागवत-गरुड पद्म-वराहाख्यसात्त्विकपुराणषट्क-ब्रह्माण्ड--ब्रह्मवैवर्त-मार्कण्डेय--भविष्य-वामन--ब्रह्माभिध-राजसपुराणषट्कलक्षणान्यष्टादश, एतेऽङ्काः सव्येतरक्रममीलिता यत्र तत्र शून्येन्द्राश्ववदनपुराणे=विक्रमसंवत् १८७० वर्षेऽजायत । एवञ्च गृहवासे त्रिचत्वारिंशद् ४३ वर्षाण्यजायन्त ॥३०७॥

सम्प्रति श्रीसिद्धायिकादेवीसेविताऽङ्घ्रेरर्हत एकसप्तते पट्टे राजमानस्य श्रीमणिविजय-गणिनः श्लोकद्वयेन प्रतिपिपादिषया प्रथमां पथ्यार्यामाह—

अंबुधरो काणणमिव से पट्टमलंकरीअ सोम्मड्ढी ।
पंडिअमणिविजयगणी महातवस्सी अपडिबद्धो ॥३०८॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "अबुधरो" इत्यादि, "से" त्ति तस्य=श्रीकस्तुरविजयगणिनः " " त्ति पट्टं=पदं "पडिअमणिविजयगणी" त्ति पण्डितमणिविजयगणी=पण्डितपदालङ्कृतः श्रीमणि-विजयनामा गणी जीवणदासाङ्गरुह गुलाबबाइकुक्षिरत्नः "अलंकरीअ" त्ति अलञ्चकार=शोभ-यामास किम्भूतः । "सोम्मड्ढी" त्ति सौम्याब्धिः=प्रशान्तमुखसमुद्रः 'महातवस्सी' त्ति महातपस्वी "अपडिबद्धो" त्ति अप्रतिबद्धः=ग्रामादिषु ममतारहितत्वेनाप्रतिबद्धविहारो=उग्र-विहारवानित्यर्थः कः किमिव । "अंबुधरो काणणमिव" त्ति अम्बुधरः=वारिवाहः काननं=वनमिव=यथा जलधरो वनमलङ्करोति तथा ॥३०८॥

अथामुष्य जन्मादिसत्काब्दानादेष्टुकाम आदिचपलापथ्यार्यामाह—

जम्मोऽस्स विक्कमाऽद्दे किवाणधारपरमेट्ठिपयडि१८५२मिए ।
वयमड्ढिवड्ढिविज्जे१८७७वयगुणसयणगुणक्कम्मि१९३५दिवं ॥३०९॥

(मुहचवलापच्छाज्जा)

(प्रे०) "जम्मो" इत्यादि, "ऽस्स" त्ति अस्य=श्रीमणिविजयगणिनः " " त्ति जन्म=जनुः "विक्कमा" त्ति विक्रमात्=विक्रमादित्यभूपालात् "किवाणधारपरमेट्ठिपयडि-मिए" त्ति कृपाणधारौ=असिधारौ द्वौ, परमेष्ठिनोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसाधुलक्षणाः=पञ्च, प्रकृतयो ऽष्टादश, तथा चोक्तं काव्यशिक्षायाम्—"अष्टादश प्रकृतय सूत्रधारु सुवर्णकारु-लोहकारु-चर्मकार--मालिय -तम्बोलिय-छिपा-सुईय-खात्रिय सालवी -तेरमा--मोचिय-ओड--गान्छा--वरड-चित्रकार--कुम्भकार--नापितप्रकृतय ।" इति । एभिरङ्कैः प्रातिलोम्यलब्धैः १८५२ इति मङ्ख्यया मिते कृपाणधारपरमेष्ठिप्रकृतिमिते=विक्रमसंवत् १८५२ वर्षेऽभूत् ।

सो सिद्धंतमहोग्रही णिवई, मे दाउ सिद्धि परं;
तं वंदेह खमानिहाणसमया-पेऊसवारांणिहि ।
तेणां हं पि जडो भिसं उवकयो, चारित्तदाणाइणा;
तस्साहिट्ठपयाणकप्पतरुणो भावुल्लसेणं णमो ॥३२८॥ (सद्दूलविक्कीडिअं)

तत्तो पूअसुसंजमा भविगणो, पावेउ इट्ठं लहुं;
तस्संही फरिसन्ति भत्तिणिहरा, भव्वा सिवाकंखिणो ।
तस्सिं मंदसमाहिदाणकुसले, उक्किट्ठचायालये;
कम्मग्गंथरहस्सचारचउरे, थोउं गुणा को अलं ॥३२९॥(सद्दूलविक्कीडिअं)

(प्रे०) "**जो**" इत्यादि, श्रीप्रेमसूरिवाचकस्य यत्शब्दस्य सप्तभिर्विभक्तिभिः प्ररूपयन् प्रथमयाह- "**जो**" त्ति यः = श्रीप्रेमसूरिः "**वच्छल्लणिही**" त्ति वत्सलस्य=स्निग्धस्य भावः पति-राजान्त-गुणाङ्ग-राजादिभ्य कर्मणि च (सि० ७-१६०) इति ट्यणि वात्सल्यम् = स्नेहः प्रेम तेषां निधिः = शेवधिः वात्सल्यनिधिः, तथा "**णिरीहजलही**" त्ति निर्=निर्गता ईहा = स्पृहा निरीहा=निरीहता=निःस्पृहता तासां जलधिः=समुद्रः, निरीहाजलधिः, मूले प्राकृतत्वाद्-ह्रस्वत्वं भवति । निःस्पृहतावान् , "**चारित्तचूडामणी**" त्ति चारित्रस्य=संयमस्य चूडामणिः= मौलिरत्नश्चारित्रचूडामणिः, यद्वा चारित्रं = सयम एव चूडा=मौलिश्चारित्रचूडा तस्यां मणिः= रत्नश्चारित्रचूडामणिः ।

द्वितीयया विभक्त्या-ऽऽह-"**जं**" त्ति यं = श्रीप्रेमसूरिं "**दट्ठुं पि**" त्ति दृष्ट्वाऽपि "**पाएण दुट्ठा वि हो**" त्ति प्रायो दुष्टा = दुर्बुद्धयोऽपि "**हो**" इत्यव्ययमाश्चर्यार्थे "**परमं**" परमां = प्रकृष्टां "**मुय**" ति मुदां = हर्षं "**अइन्ति**" त्ति 'गमेरई अइच्छ (सि० ८-४-१६२) इति गम् धातोरादेशः, गच्छन्ति=प्राप्नोति ।

तृतीयया विभक्त्याह-"**जेण**" ति येन = श्रीप्रेमसूरिणा किम्भूतेन संयम एव रज्जुर्यस्य तेन संयमरज्जुणा "**ससारकूवा**" त्ति संसारः=भव एव कूपः = उदपानः संसारकूपस्तस्मात् संसारकूपात् = संसृत्यन्धोः "**भविगणो**" त्ति भविनां = मुक्तिगमनार्हाणां गणः = समुदायो भविगणः = भव्यलोकः "**उद्धयो**" त्ति उद्धृतः = उद्धारश्चक्रे ।

चतुर्थ्या विभक्त्या-ऽऽह-" " त्ति यस्मै = श्रीप्रेमसूरये अत्र चतुर्थी विभक्तिस्तु "स्पृहेर्व्याप्य वा" (सि २-२-२६) इति सूत्रेण स्पृह्धातोर्व्याप्यस्य विकल्पेन सम्प्रदान-

साधूनां पतिः=स्वामी मुनिपतिः=गच्छाधिपतिः " " त्ति "**सिद्धिं परं**" ति परां= प्रकृष्टां सिद्धिं=लब्धिं '**दाउ**" त्ति ददातु=दानविषयीकरोतु ।

द्वितीयामाह-'**त**" ति तं=श्रीप्रेमसूरिं '**वंदेह**" वन्दध्वं=नमतेति क्रियासम्बन्धः । किम्भूतं तम्? । "**खमाणिहाणसमयापेऊसवारांणिहिं**" ति क्षमनं ।, त म्, क्षमानाम्= आत्मगुणविशेषाणां परदोषसहनरूपाणां निधान = कुनाभिः क्षमानिधानम्, एव पीयूषं स पीयूषं तस्य वारांनिधिः = समुद्रः तापीयूषवारांनिधिः क्षमानिधानश्चासौ स पीयूष- वारांनिधिः क्षमानिधानसमतापीयूषवारांनिधिस्तम् ।निधानसमतापीयूषवारांनिधिं = • वन्तं स वन्तञ्चेत्यर्थः ।

ीयामाह-"**तेणं**" ति तेन – श्रीप्रेमसूरिणा णा "**चारित्तदाणाइणा**" त्ति चारित्रस्य=संयमस्य दानं = प्रदानं = चारित्रदानं तदादौ यस्य तेन चारित्रदानादिना "**हं पि**" अहमपि=मुनिर्धीरशे ोऽपि न केवलोऽहमित्यपिशब्दार्थः किम्भूतोऽहम् । " ो" त्ति :=सारासारविवेकरहितः "**भिसं उवकयो**" त्ति भृशं=बाढं-अत्यन्तं उप : = ऋणीकृतः ।

चतुर्थीमाह-"**तस्स**" त्ति तस्मै = श्रीप्रेमसूरये किंविशिष्टायेत्याह "**अहिट्ठपयाण- कप्पतरुणो**" त्ति अभीष्टानां = मनोवाञ्छितानां प्रदाने=कल्पतरुः = कल ाखी अभीष्टप्रदान- कल मै अभीष्टप्रदानकल्पतरवे "**भावुल्ल णं**" ति भावानाम् = आत्म ामा- मुल्लासेन = विकसितरोमराजिव्यङ्ग्येन भावोल्लासेन=प्र मनसा मूलश्लोके तु प्राकृतत्वा- द्ध्रस्वत्वं ज्ञेयम्, "**ण**" त्ति नमः=नमस्कारोऽस्तु ।

पञ्चमीमाह-"**तत्तो**" त्ति तस्मात् = श्रीप्रेमसूरेः किम्भूतादित्याह-"**पूअ स ा**" त्ति पूतः = पवित्रः सु = शोभनं संयमः = चारित्रं यस्य स पूतसुसंयमस्तस्मात् पूतसु- संयमात्=निर्मलचारित्रात् "**भविगणो**" त्ति भविनां = मोक्षगमनशीलानां गणः = वृन्दो भविगणः "**इट्ठं**" ति इष्टं=स्वाभिलषितं "**लहुं**" ति लघु=शीघ्रं "**पावेउ**" त्ति प्राप्नोतु ।

षष्ठीमाह-"**तस्स**" त्ति तस्य = श्रीप्रेमसूरेः "**अंह्री**" त्ति अंह्री = चरणौ "**भव्वा**" त्ति भव्याः = भव्यजनाः "**फरिसन्ति**" त्ति स्पृशन्ति स्वोत्तमाङ्गेन टयन्ति किम्भूताः? "**भत्तिणिब्भरा**" त्ति भक्तीनां = वरिवस्यानां = सेवानां वा निभराः=धारका भक्तिनिभराः= भक्तिवन्त इत्यर्थः । पुनः किंविशिष्टाः । "**सिवाकंखिणो**" त्ति शि ं = कल्याणानामा- काङ्क्षा = वाञ्छा शिवाऽऽकाङ्क्षा, साऽस्ति येषां ते शिवाका :, यद्वा शिवानि = श्रेयांसि आकाङ्क्षन्ते=अभिलषन्त इत्येवंशीलाः "अजाते शीले" (सि० ५-१-१५४) इति णिन्प्रत्यये

(प्रे०) "से" इत्यादि, "से" त्ति तस्य=विजयानन्दसूरेः "जणी" त्ति जनिः=जन्म 'पञ्चनदे'देशीभाषया पंजाब' संज्ञके देशे लहेराग्रामे गणेशरामतो रूपाकुक्षौ "णिवा" त्ति, नृपात्=विक्रमादित्यभूपा : "वेसाणरकेसवऽद्दिधरणीमाणे" त्ति वैश्वानराः=अग्नयस्त्रयः, केशवाः=वासुदेवा नव, अद्रयः=पर्वता अष्टौ, धरणी=पृथिव्येका, एतेषामङ्कानां वामगतिमीलितानां १८९३ इति सङ्ख्या मानं यत्र तत्र वैश्वानरकेशवाद्रिधरणीमाने "द्दे" त्ति अब्दे=वर्षे=विक्रमसंवत्त्रिनवत्युत्तराष्टशताधिकसहस्र१८९३तमे संवत्सरे चैत्यशुक्लप्रतिपत्तिथौ गुरुवारेऽभूत् ।

"दुग्गो" इत्यादि, 'से' 'णिवा-द्दे' त्ति पदत्रयीहानुवर्तते, ततोऽस्य श्रीविजयानन्दसूरेः "संवेगिणी" त्ति संवेगिनी=संवेगजननी "दिक्खा" त्ति दीक्षा=संयमग्रहणं "दंतअहिए" त्ति दन्तैः=रदैः=द्वात्रिंशताऽधिके=अभ्यधिके "दुग्गाइच्चसयम्मि" त्ति इदं पदमुतरत्रा-ऽप्यनुवर्तनीयम् , दुर्गाः=चण्डिका नव△, आदित्यः=रविरेकः, एतावङ्कौ वामन्यस्तौ१९ इति सङ्ख्या तावन्मानानि शतानि यत्र तत्र दुर्गा-ऽऽदित्यशते वर्षे=विक्रमसंवद् द्वात्रिंशदुत्तरैकोनविंशतिशत१९३२तमे★ वत्सरेऽहम्मदावादेऽभवत् ।

अमुष्य ढुण्ढकदीक्षा पुनः पञ्चनददेशे 'जीरा' इत्याख्ये ग्रामे (नगरे) विक्रमसंवद् दशोत्तरनवशताधिकसहस्र१९१०तमे★ वर्षे मार्गशीर्षशुक्लपञ्चमीदिनेऽजायत ।

"भूएस०" इत्यादि, "स" त्ति सः=श्रीविजयानन्दसूरिः "भूएसिक्खणगोपएहि अहिए" त्ति भूतेशेक्षणाः=हरनेत्राणि त्रीणि, गोपदानि=गोचरणानि चत्वारि, एभिर्वामगत्या त्रिचत्वारिंशताऽधिके दुर्गा-ऽऽदित्यशते=एकोनविंशति१९शते-ऽब्दे=विक्रमसंवत् त्रिचत्वारिंशदुत्तरनवशताधिकसहस्र१९४३तमे卐वत्से कार्तिकमासे कृष्णपञ्चमीदिने पादलिप्तीये देशीभाषया 'पालिताणा' इति संज्ञके पुरे "सूरी" त्ति सूरिः=आचार्यः "होहीअ" त्ति अभूत् ।

△उक्तञ्च-"प्रथम शैलपुत्री च द्वितीयं ब्रह्मचारिणी। तृतीय चन्द्रघण्टेति कुष्माण्डेति चतुष्टयम् ॥ पञ्चम स्कन्दमातेति षष्ठ कात्यायनीति च । सप्तम कालरात्रिश्च महागौरीति चाष्टमम् ॥ नवम सिद्धिदा प्रोक्ता नव दुर्गा' प्रकीर्तिता । उक्तान्येतानि नामानि ब्रह्मणैव महात्मना ॥" इति ।

★ गुरुमालाया पुन -"वि० एकादशाधिके एकोनविंशतिशतवर्षे १९११ मृगशिर्षपचम्या ढुंढकमतदीक्षा, एकत्रिंशदधिके १९३१ राजनगरे जैनदीक्षा," इति ।

मुनिश्री चतुरविजय- पुण्यविजयसम्पादितबृहत्कल्पसूत्रपीठिकारूपप्रथमाशान्तर्गतप्रतिकृतौ-"स्थानकवासी दीक्षा-सवत १९१० मालेरकोटला (पजाब)" " स्वर्गगमन-सवत १९५२ गुजरानवाला (पजाव)" इति ।

卐 अस्मद्गुरुपादश्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वररचितसक्रमकरणपुस्तकद्वयान्तर्गतप्रतिकृतौ पुन "आचार्यपद-वि स १९४२, पालीताणा (काठियावाड)" इति। तत्रैव द्वितीयभागप्रस्तावनाया पुन '१९४३तमे' । इति

स्थाने = पदे सूरिस्थाने "जोग्गो" त्ति योग्यः "णिच्छमाणो वि" त्ति तत्स्थानमनिच्छन्नपि "विइअगुरुणा" त्ति सुविदितः = सुज्ञातः = यथायमस्य स्थानस्य योग्य इति सुष्ठ्ववगतः स चासौ गुरुश्च सुविदितगुरुस्तेन सुविदितगुरुणा, "णत्थो" त्ति न्यस्तः = तत्स्थाने स्थापितः ।

यत्तदोर्नित्यसाक्षेपत्वेनाह–"सो" त्ति सः "पुज्जो" त्ति पूज्यः "पेमसूरी" त्ति प्रेमसूरिः=श्रीप्रेमसूरिगुरुवर्यः, किम्भूतः ? "धीरलोगत्तरेहो" त्ति धीराः = कोविदाः, ते च ते लोकाः = जनाश्च धीरलोकास्तेष्वाप्ता = लब्धा रेखा = स्वनामाऽक्षराङ्कितरूपा येन, स धीरलोकाप्तरेखः = धीरपुरुषत्वेन ख्यातिमानित्यर्थः "हवउ सिवयरो" त्ति शिवकरः=कल्याणकारको भवतु ॥३३०॥

पुनरपि तमेव स्तोतुमिच्छुः शार्दूलविक्रीडितं ब्रूते—

णेगा सुद्धगवेसगा अदुइआ, वेरग्गवारंणिही
गीयत्थुग्गतवा सुसंजमरया, सिद्धंतपारंगआ ।
विज्जदी उवएसदाणसला, उक्किट्ठचायासिआ
गच्छे जस्स मुणी जयेउ तिजगे, सो पेमसूरी सया ॥३३१॥

(सद्दूलविक्कीडिअं)

(प्रे०) "णेगा" इत्यादि "गच्छे जस्स" त्ति यस्य=श्रीप्रेमसूरेर्गच्छे=समुदाये "णेगा" त्ति नैकाः,-न च 'नैक' इति शब्दप्रयोगो न व्याकरणसूत्रनिष्पन्नः, "नञ्" (सि० ३-१-५२) इति सूत्रेण समासे कृते "अन् स्वरे" (सि० ३-२-१२९) इत्यनेन नञोऽनादेशे सति 'अनेक' इति शब्दस्य निष्पन्नत्वात् नखादिगणेऽदर्शनाच्चेत्याशङ्कनीयम् , यतोऽत्र न सानुबन्धो नञ्शब्दो गृहीतः, किन्तर्हि निरनुबन्धो निषेधार्थवाचको नशब्दः सङ्गृहीतः; तस्यापि सद्भावात् । तथा च न्यगादि श्रीहेमचन्द्रसूरिपादैः स्वकृतश्रीसिद्धहेमशब्दमहार्णवन्यासे–नञ्वते बाहुलकाद् डकारे न, वियोगे च नञ्, एते सर्वेऽपि निषेधे" इति । ततो न-एकः नैकस्ते, अत्र च "नाम नाम्नैकार्थ्ये समासो बहुलम्" (सि० ३-१-१८) इत्यनेन समासः, ततो न 'अन् स्वरे' (सि०, ३-२-१२९) इति सूत्रेणानादेशः, "नञ्" (सि० ३-१-५१) इति सूत्रेण यत्र सानुबन्धस्य "नञ्" सत्कस्य नशब्दस्य समासस्तत्रैव 'अन् स्वरे" (सि० ३-२-१२९) इति सूत्रस्य प्रवृत्तत्वात् । न चायं कपोलकल्पितमस्ति । यतः श्रीमन्मलधारिहेमचन्द्रसूरिपादैर्नैगमशब्दस्य व्युत्पत्ति चिकी-

(प्रे०) "से" इत्यादि, "से" त्ति तस्य=विजयानन्दसूरेः "जणी" त्ति जनिः=जन्म 'पञ्चनदे'देशीभाषया पंजाब' संज्ञके देशे लहेराग्रामे गणेशरामतो रूपाकुक्षौ "णिवा" त्ति, नृपात्=विक्रमादित्यभूपतितः "वेसाणरकेसवऽद्दिधरणीमाणे" त्ति वैश्वानराः=अग्नयस्त्रयः, केशवाः=वासुदेवा नव, अद्रयः=पर्वता अष्टौ, धरणी=पृथिव्येका, एतेषामङ्कानां वामगतिमीलितानां १८९३ इति सङ्ख्या मानं यत्र तत्र वैश्वानरकेशवाद्रिधरणीमाने "द्दे" त्ति अब्दे=वर्षे=विक्रमसंवत्त्रिनवत्युत्तराष्टशताधिकसहस्र१८९३तमे सवत्सरे चैत्रशुक्लप्रतिपत्तिथौ गुरुवारेऽभूत् ।

"दुग्गो" इत्यादि, 'से' 'णिवा-द्दे' त्ति पदत्रयीहानुवर्तते, ततोऽस्य श्रीविजयानन्दसूरेः "संवेगिणी" त्ति संवेगिनी=सवेगजननी "दिक्खा" त्ति दीक्षा=संयमग्रहणं 'दतअहिए" त्ति दन्तैः=रदैः=द्वात्रिंशताऽधिके=अभ्यधिके "दुग्गाइचसयम्मि" त्ति इदं पदमुतरत्रा-ऽप्यनुवर्तनीयम् , दुर्गाः=चण्डिका नव△, आदित्यः=रविरेकः, एतावङ्को वामन्यस्तौ १९ इति सङ्ख्या तावन्मानानि शतानि यत्र तत्र दुर्गा-ऽऽदित्यशते वर्षे=विक्रमसंवद् द्वात्रिंशदुत्तरैकोनविंशतिशत१९३२तमे★ वत्सरेऽहम्मदावादेऽभवत् ।

अमुष्य ढुण्ढकदीक्षा पुनः पञ्चनददेशे 'जीरा' इत्याख्ये ग्रामे (नगरे) विक्रमसंवद् दशोत्तरनवशताधिकसहस्र१९१०तमे★ वर्षे मार्गशीर्षशुक्लपञ्चमीदिनेऽजायत ।

"भूएस०" इत्यादि, "स" त्ति सः=श्रीविजयानन्दसूरिः "भूएसिक्खणगोपएहिअहिए" त्ति भूतेशेक्षणाः=हरनेत्राणि त्रीणि, गोपदानि=गोचरणानि चत्वारि, एभिर्वामगत्या त्रिचत्वारिंशताऽधिके दुर्गा-ऽऽदित्यशते=एकोनविंशति१९शते-ऽब्दे=विक्रमसंवत् त्रिचत्वारिंशदुत्तरनवशताधिकसहस्र१९४३तमे卐वत्से कार्तिकमासे कृष्णपञ्चमीदिने पादलिप्तीये देशीभाषया 'पालिताणा' इति संज्ञके पुरे "सूरी" त्ति सूरिः=आचार्यः "होहोअ" त्ति अभूत् ।

△उक्तञ्च–"प्रथम शैलपुत्री च द्वितीय ब्रह्मचारिणी । तृतीय चन्द्रघण्टेति कुष्माण्डेति चतुष्टयम् ॥ पञ्चम स्कन्दमातेति षष्ठ कात्यायनीति च । सप्तम कालरात्रिश्च महागौरीति चाष्टमम् ॥ नवम सिद्धिदा प्रोक्ता नव दुर्गा' प्रकीर्तिता । उक्तान्येतानि नामानि ब्रह्मणैव महात्मना ॥" इति ।

★ गुरुमालाया पुन –"वि० एकादशाधिके एकोनविंशतिशतवर्षे १९११ मृगशिर्षपचम्या ढु ढकमतदीक्षा, एकत्रिंशदधिके १९३१ राजनगरे जैनदीक्षा," इति ।

मुनिश्री चतुरविजय- पुण्यविजयसम्पादितबृहत्कल्पसूत्रपीठिकारूपप्रथमाशान्तर्गतप्रतिकृतौ– "स्थानकवासी दीक्षा–सवत १९१० मालेरकोटला (पजाब) स्वर्गगमन–सवत् १९५३ गुजरानवाला (पजाब)" इति ।

卐 अस्मद्गुरुपादश्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वररचितसक्रमकरणपुस्तकद्वयान्तर्गतप्रतिकृतौ पुन "आचार्यपद-वि.स. १९४२, पालीताणा (काठियावाड)" इति । तत्रैव द्वितीयभागप्रस्तावनाया पुन '१९४३तमे' । इति ।

(प्रे०) "वच्छल्लं०" इत्यादि, वच्छल्लंबुणिहीहिं" त्ति वात्सल्यानां = प्रीतिविशेषणामम्बुनिधिभिः = पारावारैः वात्सल्याम्बुनिधिभिः "जेहिं" त्ति यैः = आराध्यपादैः श्रीमद्वि य-प्रेमसूरीश्वरगुरुवर्यैः "हं" ति अहं = मुनिवीरशेखरविजयः "गंथकरणे" ग्रन्थस्य = बन्धविधान-संज्ञकस्य शास्त्रस्य करणे = रचने ग्रन्थकरणे ' संपेरिओ" त्ति सम्प्रेरितः = प्रेरणाविषयीभूतः " ण" त्ति येषां = कारुण्यनिधीनां श्रीमद्विजयप्रेमसूरिश्वरपादानां "किवाअ" त्ति कृपया= प्रसादेन "गंथो " त्ति एष ग्रन्थो बन्धविधाननामा "मे" त्ति मया = मुनिवीरशेखर-विजयेन "रइओ" त्ति रचितः = निर्मि : "जेहिं" त्ति यैः = पूज्यपादश्रीमद्विजयप्रेम-सूरिश्वरगुरुवर्यैः "संसोहिओ" त्ति संशोधितः=एष बन्धविधानाभिधो ग्रन्थः स्वचक्षुर्भ्यामालोक-विषयीकृत्य शास्त्रदृष्ट्या स्वधियाऽशुद्धीनां प्रमार्जनविषयीकृतः ।

"जइ हं" हं = मुनिवीरशेखरविजयः "सहस्सवयणो" त्ति सहस्राणि वदनानि=मुखानि यस्य स स्रवदनः = सहस्रास्यधा :, सेलाउ " त्ति शैल इव = पर्वत इव आयु = जीवनमस्य स शैलायुष्कश्च "य" त्ति अन्तस्थश्चकारोऽत्राभिसम्बध्यते "भूयासं" ति भूयासं= भवेयम् "तो वि" त्ति तदाऽपि " " त्ति येषां = गच्छाधिपतीनां वर्तमानकाले धिकशिष्यपरिवाराणां कर्मशास्त्रनिष्णातानां सिद्धान्तमहोदधीनां संघकौशल्यधाम्नां तपा-गच्छ नदिनमणीना पुण्यनामधेयानां श्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वरगुरुवर्याणां ' उवक्किई" त्ति त्ति उ ीः = उपकारान् "व उ" ति वर्णितुम् = व विषयीकर्तुम् "ण" त्ति न = नैव "चयामि" त्ति शक्नोमि=शक्तिविषयी मि ।

यत्तदोर्नित्याभिसम्बन्धत्वेनाह-"ते" त्ति ते " " त्ति गुरवः = श्रीमद्विजयप्रेम-सूरीश्वराः "अम्ह" ति अस्मान् पान्तु = रक्षन्तु ॥१३२॥

अधुना श्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वराणां गुरूणां जन्मादिकालादीन् श्लोकनवकेन वक्तुकामो ग्रन्थकार आदौ तावज्जन्मसत्‌ लादिप्रतिपादक श्लोकत्रयं प्रारभते । तत्र मं स्रग्धरया सवदादि प्रदर्श्य पथ्यार्याद्वये द्वादशभवनविभागेन जन्मग्रहान् दर्शयति-

सेअस्सऽस्सऽद्धिहत्थि-हि २४१०मिअ वरिसे, वद्धमाणावबग्गा;
णाकूवारणंद-ऽप्प१६४०पमिअवरिसे, विक्कमाइच्चभूवा ।
से ही फग्गुणक्खे, परमगुरुजणी, पुरिणमाए तिहीए;
वारे भोम्माभिधाने, दुइअचरणगे, उत्तराफग्गुणीभे ॥१३३॥ (सद्धरा)

जम्मो से बलदेवगोवइसये, वासे णिवा विक्कमा;
लोगेगस्सवणेहि आसि अहिये, संवेगिदिक्खा पुणो।
संजुत्ते रयणेहि सूरिपदवी, अस्सासुगेहि जुए;
सो धूमद्धयकुंजरेहि अहिए, निव्वाणलोग गओ ॥३१५॥

(सद्दूलविक्कीडिअ)

(प्रे०) "जम्मो" इत्यादि, "से" त्ति अस्य=श्रीकमलसूरेः "जम्मो" त्ति जन्म "णिवा विक्कमा" त्ति विक्रमात्=विक्रमादित्यान्नृपात् "लोगेगस्सवणेहि" त्ति लोकेश-श्रवणानि=ब्रह्मकर्णा अष्टौ, तैर्लोकेशश्रवणैः=अष्टभिः "अहिए" त्ति अधिके "बलदेवगोवइ-सये" बलदेवा=मुशलिनो नव, गोपतिः=सूर्य एकः, एतौ प्रातिलोम्यक्रममीलितावेकोनविंशति-१९ सङ्ख्या तावन्मानानि शतानि यत्र तत्र बलदेवगोपतिशते "वासे" त्ति, वर्षे=विक्रमसंवत् अष्टोत्तरैकोनविंशतिशत१९०८तमे परिवत्सरे **पञ्चनददेशे** देशीभाषया **'पंजाब'** इत्याख्ये देशे **'सरसा'** इत्यभिधे ग्रामे **"आसि"** त्ति आसीत्=बभूव।

"संवेगि०" इत्यादि, **"से बलदेवगोवइसये वासे णिवा विक्कमा"** इतिपदपञ्चक-मिहानुवर्तते, यथासम्भवमुत्तरत्रा-ऽपि। ततोऽस्य श्रीकमलसूरेः **पञ्चनददेशे** विक्रमसंवत्१९२० वर्षे यतिदीक्षा, ततो विक्रमसंवत् १९२९ वर्षे **पञ्चनददेशे 'जिरा'** इत्याह्वे नगरे ढुण्ढकदीक्षा **"संवेगिदिक्खा पुणो"** त्ति ततः पुनः संवेगिदीक्षा **"रयणेहि"** त्ति रदनैः=दन्तैः=द्वात्रिं-शता **"संजुत्ते"** त्ति संयुक्ते=सहिते=मीलिते बलदेवगोपतिसये=१९०० वर्षे=विक्रमसंवद् द्वात्रिंशदुत्तरनवदशशत१९३२तमे शारदेऽहम्मदाबादे-ऽभूत्।

"सूरि०" इत्यादि, **"अस्सासुगेहि"** ति अश्वाः=हयाः सप्त, आशुगाः=बाणाः पञ्च, एतावङ्कौ वामक्रमस्थापितौ ५७ इति सङ्ख्या, तैरश्वा-ऽऽशुगैः=सप्तपञ्चाशता "जुए" त्ति युते= सहिते बलदेवगोपतिशते वर्षे=विक्रमसंवत् १९५७ तमे हायने माघमासे पूर्णिमायां तिथौ पत्तने नगरे श्रीविजयकमलसूरेः **"सूरिपदवी"** त्ति सूरिपदवी=आचार्यपदमभवत्।

"सो" इत्यादि, '...'' त्ति सः=श्रीविजयकमलसूरिः **"धूमद्धयकुंजरेहि अहिए"** त्ति धूमध्वजाः=अग्नयस्त्रयः, कुञ्जराः=हस्तिनोऽष्टौ, एतौ वामक्रमौ ८३ इति सङ्ख्या, तैर्धूम-ध्वजकुञ्जरैरधिके बलदेवगोपतिशते वर्षे=विक्रमसंवत् त्र्यशीत्यधिकैकोनविंशतिशत१९८३तमे-ऽब्दे **'जलालपुर'** इत्यभिधे नगरे **"णिव्वाणलोग गओ"** त्ति निर्वाणलोक गतः=देवलोकं प्राप्तः ॥३१५॥

(प्रे०) "वच्छल्लं०" इत्यादि, वच्छल्लंबुणिहीहि" त्ति वात्सल्यानां = प्रीतिविशेषणामम्बुनिधिभिः = पारावारैः वात्सल्याम्बुनिधिभिः "जेहि" त्ति यैः = आराध्यपादैः श्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वरगुरुवर्यैः "हं" ति अहं = मुनिवीरशेखरविजयः "गंथकरणे" ग्रन्थस्य = बन्धविधानसंज्ञकस्य शास्त्रस्य करणे = रचने ग्रन्थकरणे 'संपेरिओ" त्ति सम्प्रेरितः = प्रेरणाविषयीभूतः " ण" त्ति येषां = कारुण्यनिधीनां श्रीमद्विजयप्रेमसूरिश्वरपादानां "किवाअ" त्ति कृपया = प्रसादेन "गंथो " त्ति एष ग्रन्थो बन्धविधाननामा "मे" त्ति मया = मुनिवीरशेखरविजयेन "रइओ" त्ति रचितः = निर्मि : "जेहि" त्ति यैः = पूज्यपादश्रीमद्विजयप्रेमसूरिश्वरगुरुवर्यैः "संसोहिओ" त्ति संशोधितः = एष बन्धविधानाभिधो ग्रन्थः स्वचक्षुर्भ्यामालोकविषयीकृत्य शास्त्रदृष्ट्या स्वधियाऽशुद्धीनां प्रमार्जनविषयीकृतः ।

"जइ हं" यद्यहं = मुनिवीरशेखरविजयः 'सहस्सवयणो" त्ति सहस्राणि वदनानि = मुखानि यस्य स स्रवदनः = सहस्रास्यधा :, सेलाउगो" त्ति शैल इव = पर्वत इव आयु = जीवनमस्य स शैलायुष्कश्च "य" त्ति अन्तस्थश्चकारोऽत्राभिसम्बध्यते "भू सं" ति भूयामं = भवेयम् "तो वि" त्ति तदाऽपि " " त्ति येषां = गच्छाधिपतीनां वर्तमानकाले ाधिकशिष्यपरिवाराणां कर्मश निष्णातानां सिद्धान्तमहोदधीनां संघकौशल्यधाम्नां तपागच्छ नदिनमणीना पुण्यनामधेयानां श्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वरगुरुवर्याणां 'उवक्किई" त्ति त्ति उ ाीः = उपकारान् "व ेउ" ति वर्णितुम् = व विषयीकर्तुम् "ण" त्ति न = नैव "चयामि" त्ति शक्नोमि = शक्तिविषयीभवामि ।

यत्तदोर्नित्याभिसम्बन्धत्वेनाह–"ते" त्ति ते " " त्ति गुरवः = श्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वराः "अम्ह" ति अस्मान् पान्तु = रक्षन्तु ॥१३२॥

अधुना श्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वराणां गुरूणां जन्मादिकालादीन् श्लोकनवकेन वक्तुकामो ग्रन्थकार आदौ तावज्जन्मसत्ककालादिप्रतिपादकं श्लोकत्रयं प्रारभते । तत्र मं स्रग्धरया सवदादि प्रदर्श्य पथ्यार्याद्वये द्वादशभवनविभागेन जन्मग्रहान् दर्शयति–

सेअस्सऽस्सऽद्धिहत्थि-द्दि २४१०मिअ वरिसे, वद्धमाणाववग्गा;
राणाकूवारणंद-ऽप्प१९४०पमिअवरिसे, विक्कमाइच्चभूवा ।
से ही फग्गुणक्खे, परमगुरुजणी, पुण्णिमाए तिहीए;
वारे भोम्माभिधाने, दुइअचरणगे, उत्तराफग्गुणीभे ॥२३३॥ (स्रद्धग)

"वयगुणेहिं" ति वचोगुणाः=अर्हद्वाग्गुणाः पञ्चत्रिंशत्, यद्वा व्रतानि पञ्च, गुणास्त्रयः, तैर्व्रतगुणैः=पञ्चत्रिंशताऽधिके निधिकु१९शतेऽब्दे=विक्रमसंवत् १९३५ वर्षे कार्तिककृष्णपञ्चमीदिने **पञ्चनद**देशे 'अवाला' इत्याख्ये ग्रामे उपाध्यायश्रीवीरविजयस्य **"दिक्खा"** त्ति दीक्षा= ग्रहणं बभूव ।

"उज्झायपयं" ति उपाध्यायश्रीवीरविजयस्योपाध्यायपदं **"हयिसूहि जुअम्मि"** त्ति हयेषुभिः=सप्तपञ्चाशता युते निधिकु१९शतेऽब्दे=विक्रमसंवत् सप्तपञ्चाशदधिकैकोनविंशति-१९५७तमे संवत्सरे तपसि मासे पौर्णमास्यां तिथौ पत्तने नगरेऽभूत् ।

"इसुहयेहि दिव" ति, इषुहयैः=पञ्चसप्तत्या युते निधिकु१९शतेऽब्दे=विक्रमसंवत्सप्तत्यधिकैकोनविंशति१९७५तमे हायने मार्गकृष्णाष्टमीदिने स्तम्भनपुरेऽमुष्य दिवं=स्वरभूत् ॥३१७॥

इदानीं श्रीचरमशासनपतेः पञ्चसप्ततितमस्य पट्टस्य विभूषकं श्रीविजयकमलसूरिपट्टभृतमुपाध्यायश्रीवीरविजयगणिशिष्यं श्रीदानसूरिं श्लोकषट्केन प्रतिपादयितुमिच्छुर्वसन्ततिलकां भणति–

हारव्व जो पयगले अमुणो विभाही;
उज्झायवीरविजयऽक्खगुरुस्स सीसो ।
जेणं यं विरइबोहिपभीइदाणं;
वीसस्सुओ जयउ सो सिरिदाणसूरी ॥३१८॥ (वसंततिलया)

(प्रे०) **"हारव्व"** इत्यादि, **"सो सिरिदाण री"** त्ति स श्रीदानसूरिः **"जयउ"** त्ति जयतु=जयनशीलोऽस्तु इति सण्टङ्कः । किम्भूतः ? । **"वीसस्सुओ"** त्ति विश्वश्रुतः=जगत्प्रसिद्धः । यत्तदोर्नित्याभिसम्बन्धात् स क इत्याह–**"जो"** त्ति यः=श्रीदानसूरिः **"उज्झायवीरवि यक्खगुरुस्स सीसो"** त्ति उपाध्यायवीरविजयाख्यस्य=वीरविजयनाम्नो गुरोरुपाध्यायवीरविजयाख्यगुरोः शिष्यः=विनेयः, **'अमुणो"** त्ति अमुष्य=श्रीकमलसूरेः **"पयगले'** त्ति पदं=पट्ट एव गलः=कण्ठः पदगलस्तस्मिन् पदगले=पट्टनिगरणे **"हारव्व"** त्ति हार इव मुक्तावलीव **'विभाही"** त्ति व्यभात्=राजते स्म । पुनरपि स कः । **'जेणं"** ति येन=श्रीदानसूरिणा **"विरइबोहिपभीइदाणं"** ति विरतिः=संयमः, बोधिः=सम्यक्त्वम्, विरतिश्च बोधिश्च विरतिबोधी, तौ प्रभृति=आदौ यस्य स विरतिबोधिप्रभृति तस्य दानं विरतिबोधिप्रभृतिदानं अत्र प्रभृतिशब्देन देशविरत्यादि णम् **"कयं"** ति कृतं=विहितम् ॥३१८॥

इदानीममुष्य जन्मादिवत्सरादीन् पथ्यार्यादिपञ्चकेन भणितुकाम आदौ प्रथमया पथ्यार्ययाऽस्य जन्मकाल-स्थले निरूपयति—

सू. बु
११
१०
९
८
शु के. १
श्री
७ राहु
श. २
३
४ गु म
५
६ च

इति जन्मकुण्डलिकाग्रहाः ॥३३३-३३५॥

अथैकया पथ्यागीत्याऽमुमेव दीक्षाकालादिना वर्णयति—

पालित्ताणे णयरे वासे मुणिसरगहावणी१९५७संखे ।
बहुलाए छट्टीए तिहीअ मासम्मि कत्तिए दिक्खा ॥३३६॥ (पच्छागीई)

(प्रे०) "पालि०" इत्यादि, "पालित्ताणे णयरे" त्ति पादलिप्तीये देशीभाषया "पालिताणा" संज्ञके सिद्धक्षेत्रात्यन्तनिकटवर्तिनि, नगरे "मुणिसरगहावणीसखे" त्ति, मुनि-शर-ग्रहा-ऽवन्यः=सप्ताङ्क-पञ्चाङ्क-नवाङ्कै-काङ्कलक्षणाः, एतेषां वामजुषां १९५७ संख्या यत्र तत्र मुनिशरग्रहावनीसङ्ख्ये "वासे" त्ति वर्षे, "कत्तिए" त्ति कार्तिके "मासे" त्ति मासे "बहुलाए छट्टीए तिहीअ" त्ति, बहुलायां = कृष्णायां षष्ठ्यां तिथौ = कार्तिकमास-कृष्णपक्षषष्ठीदिवसे सुमुहूर्ते श्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वरस्य गुरोः "दिक्खा" त्ति दीक्षा = चारित्रग्रहणमजायत ॥३३६॥

अथैकया पथ्यार्ययाऽमुष्योपस्थापनाकालादिकं दर्शयति—

उवठ्ठवणा सामाए एगारसमीअ कम्मवाडीए ।
पोसे मासे ऊंझाणयरे तम्मि च्च वासम्मि ॥३३७॥ (पच्छाज्ज

मुंबापुरीअ वायग-पयं णिवा तुरगिहंककु१९८७मिए-ऽद्दे ।
जाअं कत्तिअमासे, तइआअ तिहीअ सामाए ॥३४०॥ (मुहचवलापच्छाज्जा)

(प्रे०) "मुंबा०" इत्यादि, "मुंबापुरीअ" त्ति मुम्बापुर्यां "णिवा" त्ति नृपात् = विक्रमादित्यभूमीपालात् "तुरगिहककुमिए-ऽद्दे" त्ति तुरगेभाङ्ककुभिर्वामगत्या १९८७ सङ्ख्यया मिते तुरगेभाङ्ककुमिते-ऽब्दे=विक्रमसंवत् १९८७ वर्षे 'कत्तिअमासे" त्ति कार्तिक-मासे "तइआअ तिहीअ सामाए" त्ति श्यामाया=कृष्णायां तृतीयायां तिथौ=कार्तिकिक-मासकृष्णपक्षतृतीयादिने श्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वरस्य गुरोः "वायगपयं" ति वाचकपद=पाठक-पदम्=उपाध्यायपदं "जाअ" ति जातम्=अभवत् ।

उपलक्षणात् सिद्धान्तमहोदधिपदमपि तदानीं स्वगुरुणाऽस्मै प्रदत्तं ज्ञेयम् ॥३४०॥

अथैकया जघनचपलापथ्यार्ययाऽमुष्य सूरिपदसत्ककालादीन पठति—

राहणपुरक्खणयरे, सुक्कचउद्दसतिहिम्मि महुमासे ।
भूवा ससंकगहणिहि-सुहायराद्दम्मि १९९१सूरिपयं ॥३४१॥
(अतचवलापच्छाज्जा)

(प्रे०) "राहण०" इत्यादि, "राहणपुरक्खणयरे" त्ति राधनपुराख्यनगरे गूर्जरदेशा-ऽन्तर्वर्तिनि राधनपुरसञ्ज्ञके नगरे "भूवा" त्ति भूपात्=विक्रमादित्यधरणीनाथात् "ससक-गहणिहिसुहायराद्दम्मि" त्ति शशाङ्क ग्रह निधि सुधाकराः=एक-नव-नवै-काङ्करूपा वामजुषः १९९१ सङ्ख्या यत्र, तद् , तच्च तदब्दम् , तत्र शशाङ्कग्रहनिधिसुधाकराब्दे=विक्रमसंवत्१९९१ वर्षे "महुमासे" त्ति मधुमासे=चैत्रमासे " क्कचउद्दसतिहिम्मि" त्ति शुक्ले चतुर्दशे तिथौ=चैत्रिकमासशुक्लपक्षचतुर्दशीदिवसे श्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वरस्य गुरोः "सूरिपय" ति सूरिपदं=सूरिपदप्रतिष्ठाऽभवत् ॥३४१॥

अधुना मुद्रणकालापेक्षया सवृत्तिका चेय वक्ष्यमाणा गाथा ऽत्र प्रक्षेपेण योजनीया । तद्यथा—
अथ श्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वराणा सुगुरूणा स्वर्गगमनकालादीनाविष्कुर्वन् पथ्यागीतिमाह—

थभणपुरेऽस्स सग्गो, हवीअ भूवाउ जिणणह२०२४मिअद्दे ।
रयणीअ राहमासे तिहीअ एगारसीअ बहुलाए । ॥३४१B॥ (पच्छागीई)

(प्रे०) "थभण०" इत्यादि, "थभणपुरे" त्ति स्तम्भनपुरे देशीभाषया 'खभात'सञ्ज्ञके नगरे 'भूवाउ" त्ति भूपात्=विक्रमादित्यसञ्ज्ञकावनीपालात "जिणणहमिअद्दे" त्ति, जिननखमिताब्दे=विक्रम-सवत् २०२४ वर्षे "राहमासे" त्ति राधमासे=वैशाखमासे "तिहीअ एगारसीअ बहुलाए" त्ति बहुलायाम्=असितायामेकादश्या तिथौ=वैशाखमासकृष्णपक्षैकादश्या तिथौ "रयणीए' त्ति रजन्या=रात्रौ प्रथमप्रहरे "अस्स" त्ति अस्य=श्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वरस्य गुरो "सग्गो" त्ति स्वर्ग =देवलोक "हवीअ' त्ति अभूत ॥ ॥३४१ B॥

उर्वी=अवन्येका, एतेषां प्रातिलोम्यस्थापितानां १९६२ संख्या यत्र, तच्च तद्वर्षम्, तस्य, सहमासे=आग्रायणीमासे=नयणमधुकरचरणवपुद्वारोर्वीमङ्ख्यवर्षसहमासे=विक्रमसंवत १९६२ वर्षे मार्गशीर्षमासे "सुक्केगारसमीए तिहीअ" त्ति शुक्लायामेकादश्यां तिथौ "थम्भणपुरे" त्ति स्तम्भनपुरे देशीभाषया 'खंभात' इत्याह्वे नगरे "स" त्ति सः=श्रीमद्विजयदानसूरिः "पण्णासो" त्ति पन्न्यासः=पन्न्यासमंज्ञकपदालङ्कृतो बभूव ।

अथामुष्य सूरिपदव्याः कालं स्थानञ्चाविष्कर्तुकामश्चतुर्थीं पथ्यार्यामाह–"भवइ०" इत्यादि, "सो" त्ति सः श्रीमद्विजयदानसूरिः "भवइसिहरितणुछिद्दकुमिअवासे" त्ति भपतिः=चन्द्र एकः, शिखरिणः=पर्वता अष्टौ, तनुछिद्राणि=शरीरद्वाराणि नव, कुः=भूरेका, एतैरङ्कैर्वाममीलितैः १९८१ सङ्ख्यया मितं यद्, तच्च तद्वर्षम्, तस्मिन् भपतिशिखरितनुछिद्रकुमितवर्षे "मग्गसीसमासम्मि" त्ति मार्गशीर्षमासे=आग्रहायणिकमासे "सिअपचमीदिणे" त्ति सितायाः=शुक्लायाः पञ्चम्याः तिथेर्दिने=दिवसे "छाणीपुरे" त्ति 'छाणी' इत्यभिधे पुरे=नगरे " री" त्ति सूरिः=आचार्यः=आचार्यपदप्रतिष्ठितः "हवीअ" त्ति अभूत् ।

अथान्तिमपञ्चमपथ्यार्यया स्वर्गगमनकालस्थले दर्शयति–"सिंधुत्थ०" इत्यादि, "सिंधुत्थहरिहलिमहीपमाणवासम्मि" त्ति सिन्धुत्थहरिहलिमह्यः=एक-नव नवै-काङ्करूपाः, एतेषां वामगतिलब्धानां १९९१ इति सङ्ख्या प्रमाणं यत्र, तच्च तद्वर्षम्, सिंधुत्थहरिहलिमहीपमाणवर्षे=विक्रमसंवत् १९९१ वर्षे "माहमासम्मि" त्ति माघमासे=तपसि मासे "सिअपक्खबुइअदिवसे" त्ति शुक्लपक्षस्य द्वितीये दिवसे=शुक्लायां द्वितीयायां तिथौ दिने "पाडडीगामे" त्ति 'पाटडी' इत्याख्ये ग्रामे "सो" त्ति पूर्वतोऽत्र सम्बन्धात् सः=श्रीमद्विजयदानसूरिः "सग्गमिओ" त्ति स्वर्गं=देवलोकमितः=ययौ ॥३१९–३२३॥

इदानीं श्रीवीरप्रभुत आरभ्य श्रीप्रेमसूरिं यावत् श्रीवीरतत्पट्टधरसत्काद्यश्लोकप्रथमाक्षरैः सप्तसप्तत्या ग्रन्थस्य ग्रन्थकर्तुर्ग्रन्थकर्तृगुर्वादीनाञ्च नामानि दर्शितानि सन्तीत्येतत् पथ्यागीत्याऽऽविष्कर्तुमिच्छुराह–

वीरा पट्टहराणं अज्जसिलोगाण अक्खराऽज्जा जे ।
गंथस्स कत्तुणो से से गुरुआईण पचया तेऽत्थि ॥३२४॥ (पच्छागीई)

(प्रे०) "वीरा" इत्यादि, "वीरा" त्ति अत्राऽऽविश्लेषेण अभिविधिवृत्तिराङ् प्राप्यते तद्योगे च "आङावधौ (सि० २-२-७०) इति सूत्रेण वीरशब्दात् पञ्चमीविभक्तिस्ततो वीराद् आ=वीरादारभ्य वीरमभिव्याप्येति यावत् "पट्टहराणं" त्ति पट्टधराणां=पट्टभृत्सत्काणां "अज्जसिलोगाण" त्ति आद्यश्लोकानां=प्रथमवृत्तानां "ऽज्जा" त्ति आद्याः=आदिमाः "अक्खरा"

मुंबापुरीअ वायग-पयं णिवा तुरगिहंककु१९८७मिए-ऽद्दे ।
जाअं कत्तिअमासे, तइआअ तिहीअ सामाए ॥३४०॥ (मुहचवलापच्छाज्जा)

(प्रे०) "मुंबा०" इत्यादि, "मुंबापुरीअ" त्ति मुम्बापुर्यां "णिवा" त्ति नृपात् = विक्रमादित्यभूमीपालात् "तुरगिहंककुमिए-ऽद्दे" त्ति तुरगेभाङ्ककुभिर्वामगत्या १९८७ सङ्ख्यया मिते तुरगेभाङ्ककुमिते-ऽब्दे=विक्रमसंवत् १९८७ वर्षे "कत्तिअमासे" त्ति कार्तिकमासे "तइआअ तिहीअ सामाए" त्ति श्यामायां=कृष्णायां तृतीयायां तिथौ=कार्तिकिकमासकृष्णपक्षतृतीयादिने श्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वरस्य गुरोः "वायगपयं" ति वाचकपद=पाठकपदम्=उपाध्यायपदं "जाअ" ति जातम्=अभवत् ।

उपलक्षणात् सिद्धान्तमहोदधिपदमपि तदानीं स्वगुरुणाऽस्मै प्रदत्तं ज्ञेयम् ॥३४०॥

अथैकया जघनचपलापथ्यार्ययाऽमुष्य सूरिपदसत्ककालादीन् पठति—

राहणपुरक्खणयरे, सुक्कचउद्दसतिहिम्मि महुमासे ।
भूवा ससंकगहणिहि-सुहायराद्दम्मि १९९१सूरिपयं ॥३४१॥
(अतचवलापच्छाज्जा)

(प्रे०) "राहण०" इत्यादि, "राहणपुरक्खणयरे" त्ति राधनपुराख्यनगरे गूर्जरदेशाऽन्तर्वर्तिनि राधनपुरसंज्ञके नगरे "भूवा" त्ति भूपात्=विक्रमादित्यधरणीनाथात् "ससंकगहणिहिसुहायराद्दम्मि" त्ति शशाङ्क ग्रह निधि सुधाकराः=एक-नव-नवै-काङ्करूपा वामजुषः १९९१ सङ्ख्या यत्र, तद् , तच्च तदब्दम् , तत्र शशाङ्कग्रहनिधिसुधाकराब्दे=विक्रमसंवत् १९९१ वर्षे "महुमासे" त्ति मधुमासे=चैत्रमासे " क्कचउद्दसतिहिम्मि" त्ति शुक्ले चतुर्दशे तिथौ=चैत्रिकमासशुक्लपक्षचतुर्दशीदिवसे श्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वरस्य गुरोः "सूरिपय" ति सूरिपदं=सूरिपदप्रतिष्ठाऽभवत् ॥३४१॥

अधुना मुद्रणकालापेक्षया सवृत्तिका चेय वक्ष्यमाणा गाथा ऽत्र प्रक्षेपेण योजनीया । तद्यथा– अथ श्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वराणा सुगुरूणा स्वर्गगमनकालादीनाविष्कुर्वन् पथ्यागीतिमाह–

थभणपुरेऽस्स सग्गो, हवीअ भूवाउ जिणणह२०२४मिअद्दे ।
रयणीअ राहमासे तिहीअ एगारसीअ बहुलाए । ॥३४१B॥ (पच्छागीई)

(प्रे०) "थभण०" इत्यादि, "थभणपुरे" त्ति स्तम्भनपुरे देशीभाषया 'खभात'सञ्ज्ञके नगरे 'भूवाउ" त्ति भूपात्=विक्रमादित्यसञ्ज्ञकावनीपालात् 'जिणणहमिअद्दे' त्ति, जिननखमिताब्दे=विक्रमसवत् २०२४ वर्षे "राहमासे" त्ति राधमासे=वैशाखमासे "तिहीअ एगारसीअ बहुलाए" त्ति बहुलायाम्= असितायामेकादश्या तिथौ=वैशाखमासकृष्णपक्षैकादश्या तिथौ "रयणीए' त्ति रजन्या=रात्रौ प्रथमप्रहरे "अस्स" त्ति अस्य=श्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वरस्य गुरो "सग्गो" त्ति स्वर्ग =देवलोक "हवीअ' त्ति अभूत ॥ ॥३४१ B॥

व्योम = गगनं पट्टव्योम तस्मिन्नंशुमालि = सूर्ये पट्टव्योमांशुमालि "रसतुरगमिए वीरपट्टे-णिविट्ठ" ति रसाः=तिक्तादयः षट्, तुरगाः = अश्वाः सप्त, आभ्यामङ्काभ्यां "अङ्कानां वामतो गति" इति वचनात् वामगतिन्यस्ताभ्यां=षट्सप्तति७६सङ्ख्यया मिते रसतुरगमिते=षट्सप्तते वीरस्य = चरमशासनपतेर्महावीरप्रभोः पट्टे = पदे निविष्टं = स्थितम् ।

यत्तदोर्नित्यमम्बन्धात् "जेण" ति येन = श्रीप्रेमसूरिणा "पेमपासेहि" ति प्रेमैव= प्रीतिरेव पाशाः=बन्धनानि तैः प्रेमपाशैः "बालप्पबुद्धप्पहुडिमुणिगणो" त्ति बालाः=शिशवो वयोऽपेक्षया नतु गुणाऽपेक्षया, यतश्चारित्रादिगुणानधिकृत्य ते तद्गुणोज्झितानां वृद्धानामपि पूजनीयाः सन्ति, तेषां तद्गुणविकलत्वेन वृद्धत्वे सत्यपि तदपेक्षया बालत्वात् ते च प्रबुद्धाश्च= विद्वांसश्च बालप्रबुद्धाः, ते प्रभृति = आदौ यस्य मुनिगणस्य स बालप्रबुद्धप्रभृतिः स चासौ मुनिगणः = मुनीनां = साधूना गणः = समुदायः, बालप्रबुद्धप्रभृतिमुनिगणः, अत्र प्रभृतिशब्देन युवान-प्रौढ-वृद्धप्रमुखाणां ग्रहणम् ततो बाल-विबुध-युवान-प्रौढ-वृद्धादिसाधुगच्छः "बद्धो" त्ति बद्धः = आत्मसात्कृतः । पुनरपि स कः इत्याह–"जस्स" त्ति यस्य = श्रीप्रेमसूरेगुरोः "मइ-हवजिओ" त्ति मतेः=बुद्ध्या विभवेन=सम्पदा जितः=पराभूतः "देवाण सूरी" त्ति देवानां = सुराणां सूरिः = पण्डितो गुरुर्बृहस्पतिरिति यावत् "किं" ति किंशब्देनात्रोत्प्रे-या द्योतनं क्रियते, किम् = नूनं "लज्जाए" त्ति लज्जया = ह्रिया "अदिस्सो" त्ति अदृश्यः=नयनागोचरोऽभूत् अन्तिमचरणद्वयेन श्रीप्रेमसूरेर्नाम्नो यथार्थता दर्शिता ॥३२५॥

अथ तमेव विशेषेण वर्णयितुमिच्छुरादौ तावद् यत्तत्शब्दयोः सप्तविभक्तिभिरन्वितं शार्दूलविक्रीडितचतुष्कं प्राह—

जो वच्छल्लणिही णिरीहजलही, चारित्तचूडामणी;
जं दट्ठुं पि मुयं अइन्ति परमं, पाएण दुट्ठा वि ही ।
जेणं संजमरज्जुणा भविगणो, संसारकूवुद्धयो;
जस्साणेगगुणालयस्स सिहिरे, लोगा गुणा लिच्छुणो ॥३२६॥
(सद्दूलविक्कीडिअं)

जत्तो साहुगणावगा पयडिआ, भव्वाहकिट्टावहा;
जस्सुत्ती अविलंबसिद्धिफलया-ऽऽसी एगंतखेमंकरा ।
जस्सिं संकइ जणो गुरुवरो मुत्तो, वि किं गोयमो;
लोए ओअरिओ दुहाकुलकुलं, दट्ठूण बुद्धो जहा ॥३२७॥ (सद्दूलविक्कीडिअं)

पुनरपि किम्भूतः ? "पहावतेएण जिअभाणू" त्ति प्रभावस्य = प्रतापस्य तेजसा = उद्योतेन जितः = पराभवीकृतो भानुः = भुवने द्योतकारी सूर्यो येन स जितभानुः = नम्रीकृतभानुः । यद्वा प्रभावेन = प्रतापेन तेजसा = उद्योतेन द्विधा-ऽपि जितः = पराभूतो भानुः = भुवने द्योतकारी सूरिर्येन स जितभानुः ॥३४३॥

पुनरपि किम्भूत इति दर्शयन्नाह जवनचपलापथ्यागीति-मुखचपलापथ्यार्याद्वयम्-

णेगविहगच्छकज्जे, गुरुपासे कुसलसिट्ठमंतिसमो ।
गीयत्थमोलिमुगडो, णिरीहजयणापरायणो धीरो ॥३४४॥
(अंतचवलापच्छागीई)

गच्छहिअचितनपरो, उवट्ठिएसुं पि विग्घविंदेसुं ।
णीडरअमुत्तसत्तो, फुडभासी य दढसंकप्पो ॥३४५॥ (आदिचवलापच्छाज्ञा)

(प्रे०) 'णेग०' इत्यादि, "णेगविहगच्छकज्जे" त्ति नैकविधगच्छकार्ये=नानाप्रकारसमुदायसत्कविचारणादिकृत्ये "गुरुपासे" त्ति गुरुपार्श्वे=स्वगुरोः=श्रीप्रेमसूरीश्वरस्य समीपे "कुसलसिट्ठमंतिसमो" त्ति कुशलः=निपुणः श्रेष्ठः=वरः=श्लाघ्यः, तादृशो यो मन्त्री=सचिवः=प्रधानः, कुशलश्रेष्ठमन्त्री, तत्समः=तत्समानोऽभूत् । पुनः कीदृक् ? "गीयत्थमोलिमुगडो" त्ति, गीतार्थेषु=विशिष्टशास्त्रवित्सु मौलिमुगट इव मौलिमुगटः=मस्तकशोभाकारिकिरीटः, गीतार्थमौलिमुकुटः, "णिरीहजयणापरायणो" त्ति णिरीहः=निःस्पृहश्चासौ यतनापरायणः=जीवरक्षातत्परो निरीहयतनापरायणः, "धीरो" त्ति धीरः=धीरतावान् "गच्छहिअचितनपरो" त्ति, गच्छस्य=समुदायस्य हितस्य=कल्याणस्य चिन्तने=विचारणे परः=दत्तैकचित्तो गच्छहितचिन्तनपरः = समुदायकल्याणचिन्ताकारी,, पुनरपि "उवट्ठिएसुं पि विग्घविंदेसुं णीडरअमुत्तसत्तो फुडभासी य दढसकप्पो" त्ति उपस्थितेष्वपि विघ्नवृन्देषु निर्दरः = निर्भयः न मुक्तं सत्त्वं येन स अमुक्तसत्त्वः स्फुटभाषी=स्पष्टवक्ता, दृढं सकल्प=मनश्चिन्तितकार्यकरणरूपं यस्य स दृढसंकल्पः = चिन्तितकार्यकारी चास्ति ॥३४४-३४५॥

अथ श्लोकषट्केनामुष्य जन्मादिवत्सादीन् प्रचिकटयिषुरादौ पथ्यार्याद्वयेन जन्मस्थानजन्मवर्षादीनाह--

तस्स जणी सणिवारे, पणामपरमेट्ठिगहमही[१९५३]संखे ।
भूवा वासे वीरा, मुद्दाचक्खुजिणा[२४२३]मिअवासे ॥३४६॥ (पच्छाज्ञा)

भवनात् किम्भूतायेत्याह—"**ऽणेगगुणालयस्स**" अनेकानां = बहूनां गुणानां = ज्ञानादीना-मालयः = मन्दिरम् अनेकगुणालयस्तस्मै अनेकगुणालयाय = ज्ञानादिभूरिगुणवते "**गुणा लिच्छुणो**" त्ति गुणान् = ज्ञानदर्शनचारित्रादिलक्षणान् लिप्सवः=प्राप्तुमिच्छवः "**लोगा**" त्ति लोकाः = जनाः "**सिहिरे**" त्ति स्पृहयन्ति ।

पञ्चम्या विभक्त्या-ऽऽह "**जत्तो**" त्ति यस्मात् = श्रीप्रेमसूरेः "**साहुगणावगा**" त्ति साधूनां=मुनीनां गणो=वृन्दः साधुगणः स एवापगा=नदी साधुगणापगा "**पयडिआ**" त्ति प्रकटिता=प्रादुर्भूता किंविशिष्टा ? । "**भव्वाहकिट्टावहा**" त्ति भव्यानां=सिद्धियोग्यार्हाणां अघानि=पापानि एव किट्टानि=मलानि भव्याघकिट्टानि तेषामपहा=विनाशकारिणी भव्याघकिट्टापहा ।

षष्ठ्या विभक्त्या-ऽऽह "**जस्स**" त्ति यस्य=श्रीप्रेमसूरेः "**उत्ती**" त्ति उक्तिः=वचनं = वाक् "**अविलबसिद्धिफलया**" त्ति सिद्धिः=निष्पत्तिरेव फलं सिद्धिफलं तद्ददातीति "आतो डोऽह्वा-वा-मः" (सि० ५-१-७६) इत्यनेन डप्रत्यये 'आत्' (सि० २-४-१८) इति स्त्रियामापि च सिद्धि-फलदा न विद्यते विलम्बः=कालव्यवधानम् अविलम्बः=द्रुतम् तेन सिद्धिफलदा अविलम्बसिद्धि-फलदा । पुनरपि कीदृशी ? "**एगतखेमकरी**" त्ति क्षेमं करोतीति 'क्षेम प्रिय-मद्रे भद्रात्खाण्' (सि० ५-१-१०५) इति खे, "खित्यनव्यय योऽरुषो मोऽन्तो ह्रस्वश्च" (सि० ३ २-१११) इति मागमे "आत्"(सि० २-४-१८) इति आप्प्रत्यये च क्षेमङ्करा=कल्याणकारिणी एकान्तेन=नियमेन क्षेमङ्करी=एकान्त-क्षेमङ्करा=एकान्तहितावहेत्यर्थः "**ऽऽसी**" त्ति आसीत्=अभूत् ।

सप्तम्या विभक्त्या–ऽऽह–"**जस्सि**" ति यस्मिन्=श्रीप्रेमसूरौ "**ही**" त्ति आश्चर्ये "**जणो**" ति जनो=लोकः "**संकइ**" त्ति शङ्कते "**किं**" किमित्यव्ययं प्रश्नार्थे किमु "**मुत्तो वि**" त्ति मुक्तोऽपि=सिद्धिं गतोऽपि "**गोयमो**" त्ति गौतमः इन्द्रभूतिनामा प्रथम-गणधरः "**गुरुवरो**" त्ति गुरुषु=आचार्येषु=वरः=श्रेष्ठो गुरुवरः "**दुहाकुलकुलं दट्ठूण**" त्ति दुःखेन=पीडया आकुलं=व्याप्तं कुलम्=अन्वयम् दुहाकुलकुलं दृष्ट्वा=आलोक्य "**लोए**" त्ति लोके=अस्मिन् जगति "**ओअरिओ**" त्ति अवतरितः=अवतारं=जन्म गृहीतवानित्यर्थः क इव "**बुद्धो जहा**" त्ति यथा बुद्धः=सौगतो दुःखाकुलं निजान्वयं दृष्ट्वाऽवतरति । इयश्च कवेरुत्प्रेक्षा ।

यत्तदोर्नित्यसापेक्षत्वेन श्रीप्रेमसूरिवाच्यस्य तच्छब्दस्य सप्त विभक्तीर्दर्शयन्प्रथमामाह—"**सो**" त्ति सः=श्रीप्रेमसूरिः, किम्भूतः ? "**सिद्धंतमहोअही**" त्ति सिद्धान्तमहोदधिः=सिद्धा-न्तानाम्=आगमानां महाश्चासौ उदधिः=समुद्रः । पुनरपि किंविशिष्टः । "**मुणिवई**" त्ति मुनीनां=

=बलदेवा नव, पृथिवी=भूमिरेका, एतेषामङ्कानां वामक्रमभणितानां १९८८ इति सङ्ख्या= मानं यत्र तत्र महाग्रहमुशलिपृथिवीमाने=विक्रमसंवद् अष्टाशीत्युत्तरनवशताऽधिकसहस्र१९८८-तमे "ऽद्दे" त्ति अब्दे=वर्षे "वेसाहमासम्मि" त्ति वैशाखमासे=माधवमासे "सुक्काअ सत्तमीए तिहीअ" त्ति शुक्लायां सप्तम्यां तिथौ=शुक्लपक्षसत्के सप्तमीदिने "अहमया०" इत्यादिपदत्रयमिहा-ऽपि घण्टालालान्यायेन सम्बध्यते ततस्तत्रैवामदावादे "हवीअ" त्ति अभूत् ॥३४८॥

अथा-ऽऽदिचपलापथ्यार्यार्धेनोपस्थानाकालं शेपसार्धगाथया गणिपदवीसत्कसमयादीन् भणति–

सुक्काअ जेट्ठमासे, चउद्दसीए तिहीअ उवठवणा ।
सोलसतित्थयरभव-रावणलोयण[२०१२]पमाणे-ऽद्दे ॥३४९॥(मुहचवलापच्छाज्झा)
फग्गुणमासे एगा-रसीअ बहुलाअ कम्मवाडीए ।
दत्ता पुणापुरे से, गणिपयवी सगुरुसकरेणं ॥३५०॥ (पच्छाज्झा)

(प्रे०) "सुक्काअ" इत्यादि, तस्य पन्न्यासश्रीहेमन्तविजयगणिनस्तत्रैवा-ऽहम्मदावादे नगरे तस्मिन्नैव वर्षे "जेट्ठमासे" त्ति ज्येष्ठमासे=शुक्रमासे "सुक्काअ" त्ति शुक्लायां= शुक्लपक्षसत्कायां "चउद्दसीए तिहीअ" त्ति चतुर्दश्यां तिथौ=चतुर्दशीदिवसे "उवठवणा" त्ति उपस्थापना=महाव्रतारोपणमभवत् ।

अथ शेपसार्द्धगाथयाऽमुष्य गणिपदसत्कां वक्तव्यतां दर्शयति–"सोलस०" इत्यादि, "सोलसतित्थयरभवरावणलोयणपमाणे-ऽद्दे" त्ति षोडशतीर्थंकरभवाः=शान्तिजिनभवा द्वादश, रावणलोचनानि=दशमुखनेत्राणि विंशतिः, एतयोरङ्कयोर्वामगत्या २०१२ सङ्ख्या प्रमाणं यत्र तत्र षोडशतीर्थंकरभवरावणलोचनप्रमाणे ऽब्दे=वर्षे=विक्रमसंवद्द्वादशोत्तरसहस्र-द्वयतमे वत्सरे "फग्गुणमासे एगारसीअ बहुलाअ कम्मवाडीए" त्ति फाल्गुनमासे= तपस्यवति मासे बहुलायां=कृष्णायामेकादश्यां कर्मवाटचा=कृष्णपक्षीयैकादशे तिथौ दिने "पुणापुरे" त्ति 'पुना'संज्ञके पुरे=नगरे "सगुरुसकरेणं" ति स्वगुरुस्वकरेण=स्वगुरुश्रीप्रेम-सूरीश्वरस्वहस्तेन "से" त्ति अस्मै=पन्न्यासश्रीहेमन्तविजयगणिने "गणिपयवी" त्ति गणिपदवी= गणीत्याह्वपदविशेषः "दत्ता" त्ति दत्ता=प्रदानीकृता ॥३४९-३५०॥

अरजा ७०, विरजा ७१, अशोक ७२, वीतशोक ७३, वितत ७४, वित्रस्त्र ७५, विशाल ७६, शाल ७७ सुव्रत ७८, अनिवृत्ति ७९, एकजटी८०, द्विजटी ८१, कर ८२, करक ८३, राजा ८४, अर्गल ८५, पुष्प ८६, भाव ८७, केतु ८८, इत्यष्टाशीतिग्रहा ।" इति

भवनात् किम्भूतायेत्याह–"ऽणेगगुणालयस्स" अनेकानां = बहूनां गुणानां = ज्ञानादीना-मालयः = मन्दिरम् अनेकगुणालयस्तस्मै अनेकगुणालयाय = ज्ञानादिभूरिगुणवते "गुणा लिच्छुणो" त्ति गुणान् = ज्ञानदर्शनचारित्रादिलक्षणान् लिप्सवः=प्राप्तुमिच्छवः "लोगा" त्ति लोकाः = जनाः "सिहिरे" त्ति स्पृहयन्ति ।

पञ्चम्या विभक्त्या-ऽऽह "जत्तो" त्ति यस्मात् = श्रीप्रेमसूरेः "साहुगणावगा" त्ति साधूनां=मुनीनां गणो=वृन्दः साधुगणः स एवापगा=नदी सा गुणापगा "पयडिआ" त्ति प्रकटिता=प्रादुर्भूता किंविशिष्टा ? । "भव्वाहकिट्टावहा" त्ति भव्यानां=सिद्धिगमनार्हाणां अघानि=पापानि एव किट्टानि=मलानि भव्याघकिट्टानि तेषामपहा=विनाशकारिणी भव्याघकिट्टापहा ।

षष्ठ्या विभक्त्या-ऽऽह "जस्स" त्ति यस्य=श्रीप्रेमसूरेः "उत्ती" त्ति उक्तिः=वचनं = वाक् "अविलंबसिद्धिफलया" त्ति सिद्धिः=निष्पत्तिरेव फलं सिद्धिफलं तद्ददातीति "आतो डोऽह्वा-वा म" (सि० ५-१-७६) इत्यनेन डप्रत्यये 'आत्' (सि० २-४-१८) इति स्त्रियामापि च सिद्धि-फलदा न विद्यते विलम्बः=कालव्यवधानम् अविलम्बः=द्रुतम् तेन सिद्धिफलदा अविलम्बसिद्धि-फलदा । पुनरपि कीदृशी । "एगतखेमंकरी" त्ति क्षेमं करोतीति 'क्षेम प्रिय-मद्रे मद्रात्खाण्' (सि० ५-१-१०५) इति खे, "खित्यनव्य योऽरुषो मोऽन्तो ह्रस्वश्च" (सि० ३-२-१११) इति मागमे "आत्"(सि० २-४-१८) इति आप्प्रत्यये च क्षेमङ्करा=कल्याणकारिणी एकान्तेन=नियमेन क्षेमङ्करी=एकान्त क्षेमङ्करा=एकान्तहितावहेत्यर्थः "ऽऽसी" त्ति आसीत्=अभूत् ।

सप्तम्या विभक्त्या–ऽऽह–"जस्सि" ति यस्मिन्=श्रीप्रेमसूरौ "ही" त्ति आश्चर्ये "जणो" ति जनो=लोकः "संकइ" त्ति शङ्कते "कि" किमित्यव्ययं प्रश्नार्थे किमु "मुत्तो वि" त्ति मुक्तोऽपि=सिद्धिं गतोऽपि "गोयमो" त्ति गौतमः इन्द्रभूतिनामा प्रथम-गणधरः "गुरुवरो" त्ति गुरुषु=आचार्येषु=वरः=श्रेष्ठो गुरुवरः "दुहाकुलकुल दट्ठूण" त्ति दुःखेन=पीडया आकुलं=व्याप्तं कुलम्=अन्वयम् दुहाकुलकुल दृष्ट्वा=आलोक्य "लोए" त्ति लोके=अस्मिन् जगति "ओअरिओ" त्ति अवतरितः=अवतारं=जन्म गृहीतवानित्यर्थः क इव "बुद्धो जहा" त्ति यथा बुद्धः=सौगतो दुःखाकुलं निजान्वयं दृष्ट्वाऽवतरति । इयञ्च कवेरुत्प्रेक्षा ।

यत्तदोर्नित्यसापेक्षत्वेन श्रीप्रेमसूरिवाच्यस्य तत्शब्दस्य सप्त विभक्तीर्दर्शयन्प्रथमामाह– "सो" त्ति सः=श्रीप्रेमसूरिः, किम्भूतः ? "सिद्धंतमहोअही" त्ति सिद्धान्तमहोदधिः=सिद्धान्तानाम्=आगमानां महाश्चासौ उदधिः=समुद्रः । पुनरपि किंविशिष्टः । "मुणिवई" त्ति मुनीनां=

सीसोऽस्स ललिअसेहर-विजयो विज्जो जयेउ सोम्मद्धी ।
वेरग्गवासिअमणो, वेयावच्चाइणेगगुणजुत्तो ॥३५२॥ (पच्छागीई)

(प्रे०) "सीसो" इत्यादि, "ऽस्स" त्ति अस्य = श्रीपन्न्यासहेमन्तविजयगणिनः "सीसो" त्ति शिष्यः=अन्तेपद् "ललिअसेहरविजयो" त्ति ललितशेखरविजयः = ललितशेखरविजयनामा श्रेष्ठि'मेघजी'सुतः 'वेजीबाई' कुक्षिसमुद्भवः "जयेउ" त्ति जयतु=आन्तरशत्रुविजयी भवतु इति क्रियासण्टङ्कः । कीदृक्? "विज्जो" त्ति विद्वान्=शास्त्रविद् "सोम्मद्धी" त्ति सौम्याब्धिः = शान्तरसाम्बुधिः शान्तस्वभाव इति यावत्, पुनः किम्भूतः? "वेरग्गवासिअमणो" त्ति वैराग्येन = संसारासारताज्ञानोद्भवेन वासितं = पूरितं-भावितं-संस्कारितं वा मनः = अन्तःकरणं यस्य स वैराग्यवासितमनाः पुनरपि किम्भूतः? 'वेयावच्चाइणेगगुणजुत्तो" त्ति वैयावृत्त्य = गुरु-साध्वादीना शुश्रुषा-सेवा तदादौ = प्रमुखे येषा ते वैयावृत्त्यादयः, नैकाः = बहवः, ते च ते गुणाश्च नैकगुणाः, वैयावृत्त्यादयश्च ते नैकगुणाश्च वैयावृत्त्यादिनैकगुणाः, तैर्युक्तः=सहितो वैयावृत्त्यादिनेकगुणयुक्तः । अत्रादिपदेन तपआदिगुणान्वित इति बोध्यः ॥३५२॥

अथामुष्य जन्मादिवत्सरादीनि गाथाचतुष्केन दर्शयन्नादौ पथ्यागीति–मुखचपलापथ्योपगीतिलक्षणगाथाद्वयेन जन्मसमयमाह–

वीरविहूओ अंबरछेअरसुअमूलसुत्तगाअ२४६०मिए ।
आगासपयत्थबहिरगंठिद्धिंखक्खिगोलग१९९०प्पमिए॥३५३॥(पच्छागीई)
विक्कमभूवालाओ वासम्मि णहस्समासम्मि ।
बहुलाअ पंचमीए तिहीअ आसी अमुस्स जणी ॥३५४॥
(मुहचवला पच्छोवगीई)

णहपाडिहेरसासय-पडिमालोयणमिए वीरा ।
संवच्छरे णिवा उण कप्पद्दुमविहरमाणजिणे ॥३५५॥ (पच्छोवगीई)
दिक्खा-ऽऽसि सहे मासे सिआअ तइआअ कम्मवाडीए ।
तवमासम्मि समुज्जलतुरिअतिहिम्मि उण उवठवणा ॥३५६॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "वीर०" इत्यादि, "अमुस्स" त्ति, अमुष्य = श्रीललितशेखरविजयस्य गुरोः "जणी" त्ति जनिः = जन्म "वीरविहूओ" त्ति वीरविभो =महावीरस्वामिनिर्वाणगमन-

मीमाह-"तम्मिं" ति तस्मिन्=श्रीप्रेमसूरौ किम्भूते "मदस हिदाणकुसले" त्ति मन्दानां=ग्लानानां समाधेः=चित्तसौष्ठवस्य दाने=वितरणे=विश्राणने कुशलः=चतुरो मन्दसमाधिदानकुशलस्तस्मिन् मन्दसमाधिदानकुशले=ग्लानसाधूनां वैयावृत्त्यादिना सङ्क्लेशरहितस्य : करणे निपुणे, पुनः किंविशिष्टे ? "उक्किट्ठचायालये" त्ति उत्कृष्टाः=श्रेष्ठाः ते च ते त्यागाः = मिष्टान्नादिविशिष्टवस्तुभक्ष्यादिविसर्जनरूपा उत्कृष्टत्यागास्तेषामालयः = गृहमुत्कृष्टत्यागालयस्तस्मिन्नुत्कृष्टत्यागालये पुनरपि " कम्मगंथरहस्सचारचउरे" त्ति कर्मग्रन्थानां = कर्मविषयकशास्त्राणां रहस्यस्य = हार्दस्य-ऐदम्पर्यस्य चारे = मीमांसायां चतुरः = निपुणः कर्मग्रन्थरहस्यचारचतुरस्तस्मिन् कर्मग्रन्थचारचतुरे = कर्मशास्त्रविषये कुशलमतौ "गुणा" त्ति गुणान् "थोउं" ति स्तोतुं = स्तवविषयीकर्तुं " " त्ति को जनः "अलं" ति अलं = स : काकुवचनत्वान्न कोऽपि र्थ इत्यर्थः ॥३२६-३२९॥

अथ प्रस्तुतमेव वर्णयन्स्रग्धरामाह—

सूरीसो धारए जो, तिसयमुणिजुअं, गच्छमेकायवत्तं;
भूवालाणं अहीसो, जह छद्दलमहिं, रज्जमेकायवत्तं।
जोग्गो जो सूरिठाणे, सुविइअगुरुणा, णिच्छमाणो वि णत्थो;
सो पुज्जो पेमसूरी, हवउ सिवयरो, धीरलोयत्तरेहो ॥३३०॥ (स्रग्धरा)

(प्रे०) "सूरीसो" इत्यादि, जो त्ति यः = श्रीप्रेमनामा "सूरीसो"त्ति सूरीणाम् = आचार्याणामीशः = स्वामी, सूरीशः "तिसयमणिजुअ गच्छमे यवत्तं" ति एकातपत्रम्= ए त्रं त्रिभिः=त्रिसङ्ख्याकैः शतैः मुनिभिः=साधुभिर्युतं=युक्तं त्रिशतमुनियुतं=साधुशतत्रयकलितं गच्छं = समुदायं "धारए" त्ति धारयति। अत्र च वर्तमानकालता तेषां = प्रेमसूरीश्वराणां गुरुवर्याणां सद्भावकाले मूलग्रन्थस्य निष्पन्नत्वाद् वृत्तावपि तदपेक्षया तथैव वर्तमानकालता दर्शिता। यद्वा वृत्तेरपि बहुभागस्य निष्पन्नत्वाद् वृत्तावपि तेषां वर्तमानका सिद्धा। यद्वा वृत्तौ "सत्सामीप्ये सद्वद् वा (सि० ५-४-१) इति सूत्रमवलम्ब्य स्थूलदेहत्वेन तेषां वृत्तिरचनाकालेऽसद्भावेऽपि सूत्ररचनाकाले विद्यमानत्वाद् वर्तमानकालता ज्ञेया। यद्वा वृत्तौ धारयति स्मेति भूतकालता भणनीया, प्रस्तुतश्लोकस्य वृत्तिरचनाकाले तेषामत्रा-ऽविद्यमानत्वात्। क इव ?। "भूवालाण अहीसो जह" त्ति यथा भूपालानां = नृपाणां अधीशः=प्रभुरेतावता चक्री "छ महिं मेकायवत्तं" ति एकातपत्रम्=एकछत्रं षड्दलमहिं षट्खण्डपृथ्वीं राज्यं धारयति स्म। तथा "जो" त्ति यः = श्रीप्रेमसूरिः "सूरि णे" त्ति सूरेः = आचार्यस्य

सीसोऽस्स ललिअसेहर-विजयो विज्जो जयेउ सोम्मद्धी ।
वेरग्गवासिअमणो, वेयावच्चाइणेगगुणजुत्तो ॥३५२॥ (पच्छागीई)

(प्रे०) "सीसो" इत्यादि, "ऽस्स" त्ति अस्य = श्रीपन्न्यासहेमन्तविजयगणिनः "सीसो" त्ति शिष्यः=अन्तेपद् "ललिअसेहरविजयो" त्ति ललितशेखरविजयः = ललितशेखरविजयनामा श्रेष्ठि'मेघजी'सुतः 'वेजीबाई' कुक्षिसमुद्भवः "जयेउ" त्ति जयतु=आन्तरशत्रुविजयी भवतु इति क्रियासण्टङ्कः । कीदृक् ? "विज्जो" त्ति विद्वान्=शास्त्रविद् "सोम्मद्धी" त्ति सौम्याब्धिः = शान्तरसाम्बुधिः शान्तस्वभाव इति यावत्, पुनः किम्भूतः ? "वेरग्गवासिअमणो" त्ति वैराग्येन = संसारासारताज्ञानोद्भवेन वासितं = पूरितं-भावितं-संस्कारितं वा मनः = अन्तःकरणं यस्य स वैराग्यवासितमनाः पुनरपि किम्भूतः ? 'वेयावच्चाइणेगगुणजुत्तो" त्ति वैयावृत्त्यं = गुरु-साध्वादीनां शुश्रुषा-सेवा तदादौ = प्रमुखे येषां ते वैयावृत्त्यादयः, नैकाः = बहवः, ते च ते गुणाश्च नैकगुणाः, वैयावृत्त्यादयश्च ते नैकगुणाश्च वैयावृत्त्यादिनैकगुणाः, तैर्युक्तः=सहितो वैयावृत्त्यादिनेकगुणयुक्तः । अत्रादिपदेन तपआदिगुणान्वित इति बोध्यः ॥३५२॥

अथामुष्य जन्मादिवत्सरादीनि गाथाचतुष्केन दर्शयन्नादौ पथ्यागीति–मुखचपलापथ्योपगीतिलक्षणगाथाद्वयेन जन्मसमयमाह–

वीरविहूओ अंबरछेअरसुअमूलसुत्तणाअ२४६०मिए ।
आगासपयत्थबहिरगंठिद्धंखक्खिगोलग१९९०प्पमिए॥३५३॥(पच्छागीई)
विक्कमभूवालाओ वासम्मि णहस्समासम्मि ।
बहुलाअ पंचमीए तिहीअ आसी अमुस्स जणी ॥३५४॥
(मुहचवला पच्छोवगीई)

णहपाडिहेरमासय-पडिमालोयणमिए वीरा ।
संवच्छरे णिवा उण कप्पइ मविहरमाणजिणे ॥३५५॥ (पच्छोवगीई)
दिक्खा-ऽऽसि सहे मासे सिआअ तइआअ कम्मवाडीए ।
तवमासम्मि समुज्जलतुरिअतिहिम्मि उण उवठवणा ॥३५६॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "वीर०" इत्यादि, "अमुस्स" त्ति, अमुष्य = श्रीललितशेखरविजयस्य गुरोः "जणी" त्ति जनिः = जन्म "वीरविहूओ" त्ति वीरविभो = महावीरस्वामिनिर्वाणगमन-

पूज्यैर्विशेषावश्यकभाष्यवृत्तौ प्रत्यपादि-"न एकं नैक प्रभूतानीत्यर्थ" इति । तथा कलिकालसर्वज्ञहेमचन्द्रसूरिभिरपि स्वोपज्ञाऽभिधानचिन्तामणिवृत्तौ निगदितम्-"न एको नैक, निरनुबन्धोऽत्र न "नाम नाम्नैकार्थ्ये" इतिसमास ।" इति । ततो नेकाः=बहवः "मुणी" त्ति मुनयः=साधवः-अन्तेवासिन इति यावत् सन्तीति क्रिया-ऽध्याहार्या । किम्भूताः ? । "सुद्धगवेसगा" त्ति अत्र घण्टालालान्यायेन "अद्दुइआ" त्ति पदस्य सम्बन्धात् अद्वितीयाः = अनन्याः शुद्धानाम् = आधाकर्मादिदोपरहितानां साधुयोग्यानामन्न-पान-वस्त्र-पात्रादीनां गवेपकाः = अन्वेपका मार्गकाः शोधका वा शुद्धगवेपकाः = शुद्धैपणादियुता इत्यर्थः "अदुइआ वेरग्गवारंणिही" त्ति अद्वितीयाः = अनन्याः, विगतो रागो=स्त्र्यादिष्वभिष्वङ्गलक्षणो यस्य स विरागस्तस्य भावः "पतिराजान्तगुणाङ्गराजादिभ्य कर्मणि च" (सि० ७-१-६०) इत्यनेन गुणाङ्गत्वात् ट्यणि वैराग्यम् = भवोद्वेगता तेपां वारांनिधयः = समुद्राः-वैराग्यवारांनिधयः "गीअत्थ" त्ति "अदुइआ" त्ति पदं सर्वत्रानुवर्तनीयम् ततोऽद्वितीया = अनन्या गीतार्थाः = सिद्धान्तलब्धरहस्याः "उग्गतवा" त्ति उग्रतपसः आचाम्लादिघोरतपस्विनः सु = शोभनेषु संयमेषु = चारित्रेषु रता = आह्लादितमनाः " संजमरया" त्ति सुसंयमरताः = सम्यक्साध्वाचारवन्तः "सिद्धंतपारंगया" त्ति सिद्धान्ते = जिनोदितागमे पारङ्गताः= निपुणीभूताः सिद्धान्तपारङ्गताः = सम्यग्ज्ञाः, "विज्जही" त्ति विद्यानां व्याकरण-तर्क-ज्योतिःशास्त्रप्रमुखाणामब्धयः = समुद्रा विद्याब्धयः = व्याकरण--न्याय--ज्योतिषादिशास्त्रविदः "उवएसदाणकु " त्ति उपदेशदाने = भव्यजनबोधकरणे कुशलाः = प्रवीणा उपदेशदानकुशलाः = समर्थव्याख्यानकारा इत्यर्थः, "उक्किट्ठचायालया" त्ति उत्कृष्टान् = प्रकृष्टानान् त्यागानाश्रिताः= संश्रिता उत्कृष्टत्यागाश्रिताः=श्रेष्ठत्यागिन इत्यर्थः ।

यत्तदोर्नित्याभिसम्बन्धात् " " त्ति स " सूरी" त्ति प्रेमसूरिः = श्रीविजयप्रेमसूरिनामा गुरुः "सया" त्ति सदा = सर्वस्मिन् काले "ति " त्ति त्रिजगति=त्रैलोक्यां "जयेउ" त्ति जयतु = जयनस्वभावोऽस्तु ॥३३१॥

अथ तमेव सूरिपुङ्गवं ग्रन्थकारः स्वात्यन्तोपकारित्वेन दर्शयन्नाह शार्दूलविक्रीडितम्-

विहरमाणजिने=विक्रमसवत् २०१० वर्षे "**सहे सिआअ तइआअ क वाडीए**" त्ति सहे = मार्गशीर्षे मासे = सितायां = शुक्लायां तृतीयायां कर्मवाख्यां = तिथौ एतावता मार्गशीर्षमाससत्कशुक्लपक्षीयतृतीयतिथौ मुम्बापुर्याः शाखापुरे दादरसञ्ज्ञके समहेन सहानुजेन च "**दिक्खाऽऽसि**" त्ति दीक्षा=प्रव्रज्याऽस्य मुनिश्रीललितशेखरस्य मे पितृव्यस्य प्रगुरोश्च (दादागुरोः) अभवत् ।

अथ शेषगाथार्द्धेनोपस्थापनासमयमाह-"**तवमासम्मि**" इत्यादि, "**तवमासम्मि**" त्ति तपसि=माघे मासे "**समुज्जलतुरिअतिहिम्मि**" त्ति समुज्ज्वले = शुक्ले = चतुर्थे तिथौ= माघमाससत्कशुक्लपक्षचतुर्थीदिने **मुम्बापुर्या** एकदेशे **दादरा**ऽभिधेऽन्यमुमुक्षिभिर्दीक्ष्यमाणैः सह सस्वशिष्यस्य संसारपक्षे च सस्वानुजस्य "**उवठवणा**" त्ति उपस्थापना=महाव्रतारोपणं देशीभाषया "**वडीदीक्षा**" अजायत ।।३५३–३५६।।

इदानी ग्रन्थकारः स्वगुरुं पूज्यमुनिवर्यश्रीराजशेखरविजयसंज्ञकं श्लोकचतुष्केण प्रतिपिपादयिषुरादौ पथ्या-ऽऽर्यामाह–

तस्स सिरिरायसेहर-विजयो सीसो सहोयरयरोऽत्थि ।
संवेगरंगरजिअ-मणो गयछिवो णिवुणबुद्धी ।।३५७।। (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "**तस्स**" इत्यादि, "**तस्स**" त्ति तस्य=श्रीललितशेखरविजयस्य "**सीसो सहोयरयरो**" त्ति शिष्यः=विनेयः सहोदरचरश्च=भ्राता=संसारपक्षे लघुभ्राता "**सिरिरायसेहरविजयो**" त्ति श्रिया=चारित्रादिलक्ष्म्या युतो राजशेखरविजयः=तन्नामा "**ऽत्थि**" त्ति अस्ति= विद्यते। इति क्रियासम्बन्धः। किम्भूतः ? "**संवेगरगरजिअमणो**" त्ति संवेगः=मोक्षाभिलाषः= संसारभयरूपः, स एव रङ्गः=रागो वर्णो वा तेन रञ्जितं=रक्तं पुलकितं वा मनो यस्य स संवेगरङ्गरञ्जितमनाः यद्वा संवेगस्य रङ्गः=प्रीतिः तेन रञ्जितं पूरितं मनो यस्य स संवेगरङ्गरञ्जितमनाः संवेगीत्यर्थः । पुनः किम्भूतः ? "**गयछिवो**" त्ति गता=निर्गता स्पृहा=ईहा यस्माद् यस्य वा स गतस्पृहः=निःस्पृहीति भावः । पुनरपि "**णिवुणबुद्धी**" त्ति निपुणा=कुशला गहनविषये बुद्धिर्यस्य स निपुणबुद्धिः = चातुर्यवानित्यर्थः ।।३५७।।

अथ श्लोकत्रयेणामुष्य जन्मादिकालस्य बिभणिषया-ऽऽ-दौ सार्धगाथया जन्मकालं प्रकटयति–

वासे भूवा-ऽक्खरसुअगेविज्जयणेमिणाहभवराए [१९९३]।
वीरा जोणितिमत्थयलोयणाअणुओगगंध[२४६३]मिए ।।३५८।। (पच्छाज्जा)

लग्गे मयराभिक्खे, कण्णारासिट्ठियम्मि चंदम्मि ।
भाभिहरासिम्मि य, आइच्चदसस्ससूनूसु ॥२३४॥ (पच्छाज्ञा)

सुक्कस्सेसाभूसु मेसगएसु णिम्मि वसहठिए ।
गुरुमंगले कक्कत्थे तुलाअ उण राहुम्मि ॥२३५॥ (पच्छाज्ञा)

(प्रे०) "सेअस्स०" इत्यादि, 'परमगुरुजणो' त्ति परमगुरोः=श्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वरस्य जनिः=जन्म मरुदेशे देशीभाषया 'मारव ' देशे "नाडिया" संज्ञके ग्रामे (नन्दिवर्धनपुरे) श्रेष्ठि-'भगवा ो' तः 'कङ्कुबाइ' कुक्षौ "वद्ध व गा" त्ति वर्धमानापवर्गात्=महावीर-स्वामिप्रभुनिर्वा मनात् "सेअस्ससस्सऽब्धिहत्थिदिअमिअवरिसे" त्ति, श्वेताश्वाश्वाः= चन्द्रवाजिनो दश, अब्धयः=समुद्राश्चत्वारः, हस्तिद्विजौ=कुञ्जरदन्तौ द्वौ, एतैर्वामजुषा २४१० सङ्ख्यया मितं यद्वर्षम्, , तद्वर्षम्, तस्मिन् श्वेताश्वाश्वाब्धिहस्तिद्विजमितवर्षे = वीर-संवत् २४१० तमे वर्षे "विक्कमाइच्च " त्ति विक्रमादित्यभूपात् = विक्रमादित्यसंज्ञक-भूमीपालतः "सुण्णाकूवारणंदप्पपमिअवरिसे" त्ति शून्यम् = बिन्दुस्थानीयम्, अकूपारा अकूवारा वा पारावारीणाश्चत्वारः, नन्दा , आत्मा एकः, एतैः प्रातिलोम्येन १९४० सङ्ख्या प्रमिते वर्षे शून्याकूपारनन्दप्रमि वर्षे = विक्र वत् १९४० तमे वत्सरे " गुणक्खे" त्ति फाल्गुनाख्ये = स्यसंज्ञके "मासे" त्ति मासे "पुण्णि ए तिहीए" त्ति पूर्णिमायां तिथौ= पौर्णमास्यां वाथ्यां "भोमाभिधाने" त्ति भोमाभिधाने=मङ्गलनाम्नि 'वारे' त्ति वारे "उत्तराफग्गु भे" त्ति राफाल्गुनीभे=उत्तरफल्गुनीन "दुइअचरणगे" त्ति द्वितीय-गे = द्वितीयचरणगते "मयराभिक्खे" त्ति मकराभिख्ये=मकरनाम्नि मे "लग्गे" त्ति लग्ने वहमाने सति " ारासिठिअम्मि चंदम्मि" त्ति कन्याराशिस्थिते चन्द्रे = चन्द्रमसि लग्नाद् मे भवने सति, कुम्भाभिहरासिम्मि य इच्चदसस्ससूनूसु" त्ति भाभिधराशौ = लग्नाद् द्वितीये भवने आदित्य-दशाश्वसून्वोः = सूर्य-बुधयोः नोः "सुक्कस्सेसाभू मेसगए " त्ति ा-ऽश्लेषाभ्वोः = दैत्यगुरु-केत्वोर्मेषगतयोः = मेषराशिस्थयोः = लग्नाच्चतुर्थे केन्द्र ने सतोः "सणिम्मि वसहठिए" त्ति शनौ = श्चरे मस्थिते = भराशिगते = लग्नात्पञ्चमभवने स्थिते " मगले कक्कत्थेसु" त्ति गुरु-मङ्गलयोः = बृहस्पति—लोहिताङ्गयोः स्थयोः = कर्कराशिगतयोः = लग्नात्सप्तमे भवने स्थितयोः "तुलाअ उण राहुम्मि" त्ति तुलायां = तुलाराशौ वर्तमाने पुनः राहौ = सैं केये सति = लग्नाद् दशमे भवने राहौ सति बभूव ।

मासे "**सिअतइअतिहिम्मि**" त्ति सिततृतीयतिथौ = शुक्ले तृतीये तिथौ = मार्गमास-सम्बन्धिशुक्लपक्षसत्कतृतीयादिने **मुम्बापुर्या** तदेकदेशे **दादर**नाम्नि समहोत्सवेन स्वगुरुणा ससारपक्षे च ज्येष्ठभ्रात्रा साकं "**दिक्खा**" त्ति श्रीराजशेखरविजयस्य मम गुरोः ससारपक्षे च पितृव्यस्य दीक्षा = प्रव्रज्या जाता ।

अथ शेषसाधिकार्धगाथयोपस्थानाकालं प्ररूपयति- "**तम्मि**" इत्यादि, "**तम्मि चेवऽद्दे**" त्ति तस्मिन्नैवाब्दे = विक्रमसवत् २०१० वर्षे "**माहमासम्मि**" त्ति माघमासे "**सुक्कचउत्थ-तिहीए**" त्ति शुक्लचतुर्थतिथौ माघमासशुक्लपक्षसत्कचतुर्थीदिवसे मुम्बापुर्येकदेशे दादराख्ये स्वगुरुणा सार्द्धमन्यैश्च दीक्ष्यमाणैः सहास्य गुरोः श्रीराजशेखरविजयाभिधस्य "**उवठवणा**" त्ति उपस्थापना = महाव्रतारोपणक्रियाऽभवत् ॥३५८-३६०॥

साम्प्रतं ग्रन्थकारः स्वस्य शिष्यसम्बन्धदर्शनपूर्वकं स्वस्य जन्म-दीक्षो-पस्थापनासमयं पथ्यार्या-पथ्यागीत्यात्मकश्लोकद्वयेन निर्दर्शयति—

तस्स विणेएणं सिअ-दुवालसतिहीअ कामसहमासे ।
जाएण विहुदिणे-ऽद्धि-ग्गहंकचंदे१९९४णिवा वासे ॥३६१॥ (पच्छाज्जा)
संभुणहे२०११तवमासे, सिअदसमतिहिम्मि गहिअदिक्खेणं ।
जाउवठवणेण य उण, माहवमाससिअसत्तमीदिवसे ॥३६२॥ (पच्छागीई)

(प्रे०) "**तस्स**" इत्यादि, "**तस्स**" त्ति तस्य=श्री**राजशेखर**विजयस्य "**विणेएणं**" ति विनेयेन=अन्तेषदा संसारपक्षे पुनर्भ्रातृव्येन मुनि**वीरशेखर**वि येन, किम्भूतेन ? "**जाएण**" त्ति जातेन=उत्पन्नेन=**सौराष्ट्र**देशे तदेकदेशरूपे '**हालार**' देशे '**नवागाम**' संज्ञके ग्रामे ` '**रासङ्गपुर**'नामग्रामवास्तव्यश्रेष्ठि'**देवशी**'तः '**जमनाबाइ**'कुक्षौ समुद्भवेन, कदा ?– "**णिवा**" त्ति नृपात्=विक्रमादित्यधरणीनाथात् "**ऽद्धिग्गहंकचंदे**" त्ति, अब्धि-ग्रहाङ्कचन्द्राश्चतुरङ्क-नवाङ्क-नवाङ्कैकाङ्कलक्षणा वामजुषो यत्र तत्राऽब्धिग्रहाङ्कचन्द्रे '**वासे**" त्ति वर्षे=शारदे=विक्रमसंवच्चतुर्नवत्यधिकनवशतोत्तरसहस्र१९९४वर्षे "**कामसहमासे**" त्ति कामसखमासे=चैत्यमासे "**सिअदुवालसतिहीअ**" त्ति सितद्वादशतिथौ=श्वेतायां द्वादश्यां कर्मवाटयां=शुक्लपक्षद्वादशीदिने "**विहुदिणे**" त्ति विधुदिने=सोमवारे वासरे चतुर्थप्रहरे,

पुनः किम्भूतेन ! "**गहियदिक्खेण**" ति गृहीता **दीक्षा** येन, स गृहीतदीक्षस्तेन गृहीतदीक्षेण=प्रव्रजितेन=**मुम्बापुर्याः** शाखापुरे **दादर**संज्ञके श्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वरगुरु-हस्तेन लब्धचारित्रेण, कस्मिन् समये ?–"**संभुणहे**" त्ति '**णिवा वासे**' इति पदद्वयीहा-ऽपि

लग्गे मयराभिक्खे, कराणारासिट्ठिअम्मि चंदम्मि ।
भाभिहरासिम्मि य, आइच्चदसस्ससूनूसु ॥३३४॥ (पच्छाजा)

सुक्कसेसाभूसु मेसगएसु णिम्मि वसहठिए ।
गुरुमंगलेसु कक्कत्थे तुलाअ उण राहुम्मि ॥३३५॥ (पच्छाज्ञा)

(प्रे०) "सेअस्स०" इत्यादि, 'परमगुरुजणो" त्ति परमगुरोः=श्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वरस्य जनिः=जन्म मरुदेशे देशीभाषया 'मारव ' देशे "नाडिया" के ग्रामे (नन्दिवर्धनपुरे) श्रेष्ठि-'भगवा ण' तः 'कङ्कुबाइ' कुक्षौ "वद्ध व गा" त्ति वर्धमानापवर्गात्=महावीर-स्वामिप्रभुनिर्वा त् "सेअस्सस्सऽब्धिहत्थिद्दिअमिअवरिसे" त्ति, श्वेताश्वाब्धाः= चन्द्रवाजिनो दश, अब्धयः=समुद्राश्चत्वारः, हस्तिद्विजौ=कुञ्जरदन्तौ द्वौ, एतैर्वामिजुपा २४१० सङ्ख्यया मितं यद्वर्षम् , , वर्षम् , तस्मिन् श्वेताश्वाश्वाब्धिहस्तिद्विजमितवर्षे=वीर-संवत् २४१० तमे वर्षे "विक्कमाइच्च " त्ति विक्रमादित्यभूपात्=विक्रमादित्यसंज्ञक-भूमीपालतः "सुण्णाकूवारणंदप्पपमिअवरिसे" त्ति शून्यम्=विन्दुस्थानीयम् , अकूपारा अकूवारा वा पारावारीणाश्चत्वारः, नन्दा नव, आत्मा एकः, एतैः प्रातिलोम्येन १९४० सङ्ख्या प्रमिते वर्षे शून्याकूपारनन्दप्रमि वर्षे=विक्र वत् १९४० तमे वत्सरे " गुणक्खे" त्ति फाल्गुनाख्ये=तपस्यसंज्ञके "मासे" त्ति मासे "पुण्णि ए तिहीए" त्ति पूर्णिमायां तिथौ= पौर्णमास्यां वार्यां "भोमाभिधाने" त्ति भोमाभिधाने=मङ्गलनाम्नि 'वारे" त्ति वारे "उत्तराफग्गुणीभे" त्ति राफाल्गुनीभे=उत्तरफल्गुनीनक्षत्रे "दुइअचरणगे" त्ति द्वितीय-च गे=द्वितीयचरणगते "मयराभिक्खे" त्ति मकराभिख्ये=मकरनाम्नि मे "लग्गे" त्ति लग्ने वहमाने सति " रासिठिअम्मि चंदम्मि" त्ति कन्याराशिस्थिते चन्द्रे= चन्द्रमसि लग्नाद् मे भवने सति, कुम्भाभिहरासिम्मि य इच्चदसस्ससूनूसु" त्ति भाभिधराशौ=लग्नाद् द्वितीये भवने आदित्य-दशाश्वसून्वोः=सूर्य-बुधयोः नोः " साभू मेसगए " शुक्रा-ऽश्लेषाभ्वोः=दैत्यगुरु-केत्वोर्मेषगतयोः= मेषराशिस्थयोः=लग्नाच्चतुर्थे केन्द्र ने सतोः "सणिम्मि वसहठिए" त्ति शनौ= श्चरे मस्थिते=वृषभराशिगते=लग्नात्पञ्चमभवने स्थिते "गुरुमंगले कक्कत्थेसु" त्ति गुरु-मङ्गलयोः=बृहस्पति–लोहिताङ्गयोः स्थयोः=कर्कराशिगतयोः=लग्नात्सप्तमे भवने स्थितयोः "तुलाअ उण राहुम्मि" त्ति तुलायां=तुलाराशौ वर्तमाने पुनः राहौ=सैं केये सति=लग्नाद् दशमे भवने राहौ सति बभूव ।

जडमइणा वि विरइअं, देवगुरुक्किवाअ विजयअंतेणं ।
मुणिवीरसेहरेणं, बंधविहाणं महासत्थं ॥३६४॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "जडमइणा" इत्यादि, "जडमइणा वि" त्ति जडमतिनाऽपि अल्पमेधमाऽपि मूढबुद्धिनाऽपि "विजयअंतेण" ति 'विजय' इति पदमन्ते यस्य तेन विजयान्तेन "मुणि-वीरसेहरेणं" ति 'मुनिवीरशेखरेण' एतावता मुनिवीरशेखरविजयेन "देवगुरुक्किवाअ" त्ति देवश्च गुरुश्च देवगुरू, तत्र देवोऽर्हत्सिद्धरूपो गुरुश्चाचार्यादिलक्षणः, गणधरादि-श्रीप्रेम-सूरीश्वरादिस्वगुरुपर्यन्तो वा तयोः कृपया=प्रसादेन देवगुरुकृपया "बधविहाणं महासत्थ' ति बन्धविधानं=बन्धविधाननामक महाशास्त्रं=महागमं "विरइअ" ति विरचितं=प्रणीतं ॥३६४॥

अथ ग्रन्थसमाप्तिसमयं स्थलञ्च दर्शयन्नाह शार्दूलविक्रीडितम्—

जाउम्हाणपुरे वरे जिणगिहे, जाहे पइट्ठा सुहा;
ताहे फग्गुणमाससुक्कतइआ-ऽहे गुज्जरेऽग्गे पुरे ।
भूवा दोऽक्खिणहे करग्गहजिणे, वीरा गए हायणे;
गंथोऽमू सिरिवालपुव्वणायर-त्थेणं समत्तो मया ॥३६५॥
(सद्दूलविक्कीडिअं)

(प्रे०) "जा०" इत्यादि, "जाहे" त्ति यस्मिन् समये "उम्हाणपुरे" त्ति उष्मानपुरे देशीभाषया 'उष्मानपरा' इत्याख्यायाममदावादनगरनिकटवर्तिन्याममदावादनगरस्यैवैकदेश भागलक्षणायां पुर्या "वरे जिणगिहे" त्ति वरे=उत्तमे जिनगृहे=जिनभवने "पइट्ठा सुहा" त्ति शुभा=कल्याणकरी प्रतिष्ठा=अर्हत्प्रतिमास्थापनाविधिः "जाआ" त्ति जाता=अभूत्=आचार्य-विजयनेमिसूरिशिष्याचार्यविजयोदयसूरि--आचार्यविजयदानसूरिशिष्याचार्यविजयप्रेमसूरिभ्यामेक-हृदयाभ्यां जिनबिम्बप्रतिष्ठा विहितेति यावत् "ताहे" त्ति तस्मिन काले "फग्गुणमाससुक्कतइआ-ऽहे" त्ति फाल्गुनमासस्य शुक्लतृतीयासत्केऽहनि=वासरे "भूवा" त्ति भूपात्=विक्रमनृपतः "दोऽक्खिणहे" त्ति दोरक्षिनखा=द्व्यक्षिनखा वा=द्वि-द्वि-विंशत्यङ्करूपाः 'अङ्कानां वामतो गतिः' इति न्यायाद्वामगतिन्यस्ता यत्र तत्र दोरक्षिनखे द्व्यक्षिनखे वा "वीरा" त्ति वीरात् महा-वीरप्रभुमोक्षगमनतः "करग्गहजिणे" त्ति करग्रहजिनाः=द्वि-नव-चतुर्विंशत्यङ्कलक्षणाः पश्चानु-पूर्वीक्रमलब्धा यस्य तादृशे करग्रहजिने "हायणे" त्ति हायने=वर्षे "गए" त्ति गते=व्यतीते= विक्रमसंवत् द्विविंशसहस्रद्वय२०२२तमे वर्षे वीरसवत्द्विनवत्युत्तरचतुर्विंशतिशत२४९२तमे शरदि'फग्गुणमाससुक्कतइआ-ऽहे' त्ति फल्गुनमासस्य शुक्लतृतीयासत्केऽहनि=वासरे "गुज्जरेऽग्गे पुरे" गुर्जरे=गुर्जरदेशेऽग्रे=मुख्ये पुरे=नगरे एतावताऽमदावादनगरे=जैनपुर्या

(प्रे०) "**उवठवणा**" इत्यादि, श्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वरस्य गुरोः "**उवठवणा**" त्ति उपस्थापना = महाव्रतारोपणं देशीभाषया 'वडीदीक्षा' "**तम्मि च वासम्मि**" त्ति तस्मिन्नेव वर्षे=विक्रमसंवत् १९५७ तम एव वर्षे "**पोसे मासे**" त्ति पौषे मासे=सहस्यमासे "**सामाए एगारसमोअ कम्मवाडोए**" त्ति श्यामायां=कृष्णायामेकादश्यां कर्मवाट्यां=तिथौ=कृष्णपक्षैकादशतिथौ "**ऊ झाणयरे**" त्ति ऊञ्झानगरे = ऊञ्झासंज्ञके पुरेऽभूत् ॥३३७॥

अथैकया पथ्यार्ययैतस्यैव गणिपदकालादीनभिधत्ते—

दब्भावईपुरे गणि-पयवी वक्खाऽस्सणंदविहु[१९७६]**वासे ।**
आसि तिहीअ सिआए, दसमीए आसिणे मासे ॥३३८॥ (पञ्छाज्जा)

(प्रे०) "**दब्भा०**" इत्यादि, "**दब्भावईपुरे**" त्ति दर्भावतीपुरे=दर्भावत्यां नगर्यां देशीभाषया "**डभोइ**" इत्याख्ये नगरे "**वक्खाऽस्सणंदविहुवासे**" त्ति व्याख्याः षट्, उक्तञ्च–"संहिता च पदं चैव, पदार्थः पदविग्रहः । चालना प्रत्यवस्थानं व्याख्या तन्त्रस्य षड्विधा ॥" इति । ततो व्याख्या-ऽश्व-नन्द-विधवः=षडङ्क-सप्ताङ्क-नवाङ्कैकाङ्करूपा वामगतिलब्धा १९७६ संख्या यत्र वर्षे, तच्च तद्वर्षम्, तस्मिन् व्याख्याश्वनन्दविधुवर्षे = विक्रमसंवत् १९७६ वर्षे "**आसिणे मासे**" त्ति आश्विने = इषे मासे "**तिहीअ सिआए दसमीए**" त्ति सितायां= शुक्लायां दशम्यां तिथौ = शुक्ले दशमे तिथौ = आश्वयुजमाससत्कशुक्लपक्षदशमीदिने श्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वरस्य गुरोः "**गणिपयवी**" त्ति गणिपदवी "**आसि**" त्ति अभूत् ॥३३८॥

अथैकया पथ्यार्ययाऽमुष्य पन्न्यासपदवर्षादीनाह—

भूवा कुगयणिहिधरा[१९८१]**-संखे वासे अहम्मयावाए ।**
पण्णासपयं मग्गे, मासे सिअपंचमीदिवसे ॥३३९॥ (पञ्छाज्जा)

(प्रे०) "**भूवा**" इत्यादि, "**अहम्मयावाए**" त्ति, अहम्मदावादे "**भूवा कुगयणिहिधरासंखे वासे**" त्ति, भूपात्=विक्रमादित्यनरेशात् कु-गज-निधि-धराः=एकाङ्काऽष्टाङ्क-नवाङ्कैकाङ्कलक्षणाः, एतेषां वामस्थानां १९८१ संख्या यत्र तत्र कुगजनिधिधरासङ्ख्ये वर्षे= विक्रमसंवत् १९८१ वत्सरे "**मग्गे मासे**" त्ति मार्गे = मार्गशीर्षे मासे "**सिअपंचमीदिवसे**" त्ति सितपञ्चमीदिवसे = शुक्लपक्षे पञ्चम्यां तिथौ "**पण्णासपयं**" ति पन्न्यासपदं= श्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वरस्य गुरोः पन्न्यासपदं बभूव ॥३३९॥

अथैकया-ऽऽदिचपलापथ्यार्ययाऽस्य वाचकपदस्य कालादीनां निर्देशं करोति—

अथ वृत्तिकृत्प्रशस्तिः

धायं धायं, भवजलनिधौ, जन्तुवृन्दं पतन्तः क्षायं दायं, प्रवहणनिभान् , संयमादीन् भवाब्धौ ।
पायं पाय, भविगुणमणीन् , रागचौराद्यरिभ्यः, हायं हायं भविगणमल भाति विश्वे जिनेन्द्रः ॥१॥

(मन्दाक्रान्ता) △

पार्श्वः सुरासुरनरेन्द्रनताङ्घ्रिपद्मो, हस्तागतामलकवत्समभावदर्शी ।
वाणीप्रबुद्धनृसुरासुरतिर्यगोघो, जीयात्परास्तसमदुर्दमकर्मशत्रुः ॥२॥

(वसन्ततिलका) ★

वीरः कर्मविणासणो विजयते, वीरं णुमो भावतः,
वीरेणोद्धृत आत्मसंश्रितजनो, वीराय नित्यं नमः ।
वीराज्ज्ञाननदी सृता-ऽघहरणी, वीरस्य वागद्भुता;
वीरे भव्यजनौघभक्तिरतुला, वीर ! श्रितान् रक्ष नः ॥३॥

(शार्दूलविक्रीडितम्)

दूष्पारेऽनाद्यनन्ते, प्रतिघदवभये, रागपञ्चास्यभीमे;
मायाचिक्खल्लपूर्णे, मदहरिडमरे, लोभपारिन्द्रभीष्णे ।
मिथ्यात्वध्वान्तघोरे, पृथुलभववने, मोहलुण्टाकभीदे;
मोक्षाध्वभ्रष्टभव्यान् , हृतचरणधनान् , रक्ष वीरस्वयम्भूः ॥४॥ (स्रग्धरा) 卐

शङ्कोच्छेदछलेन यैर्भगवतः, सम्यक्त्वमासादित;
श्रीवीरात्त्रिपदीमवाप्य रचिता, यैर्द्वादशाङ्ग्योऽद्भुताः ।
कृत्वा वीरविभोरुपास्तिमतुलां, यैर्मुक्तिदारा वृताः;
सिद्धान् नौमि सुभावतो गणधरान् , तान् रुद्रसंख्यामितान् ॥५॥

(शार्दूलविक्रीडितम्)

आरूढोऽष्टापदं यो, दिनकरकिरणै-र्निर्णयाय स्वमुक्तेः;
तत्तल्लिप्सुर्हि नाम, स्मरति बुधजनो, यस्य लब्ध्येकधाम्नः ।
दीक्षाव्याजेन नीतो, निजविततगणो, येन सिद्धिप्रसादः
भावोल्लासेन नौमि, प्रथमगणधरं, तं सदा गौतमाख्यम् ॥६॥ (स्रग्धरा) 卐

△ मन्दाक्रान्ता, जलधिषडगै-र्म्भौ नतौ ताद् गुरू चेत । SSSS,IIIIIS SISSISS वृत्तरत्नाकरे तृतीयोऽध्याय ।
★ उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ ग । SSISIIISIISISS, ” ” ”
सूर्याश्वैर्मसजा स्तता सगुरव , शार्दूलविक्रीडितम् । SSSIISIS IIS,SSISSIS, ” ” ”
म्रभ्नैर्यानां त्रयेण, त्रिमुनियतियुता, स्रग्धरा कीर्तितेऽयम् । SSSSISS,IIIIIIS SISSISS, ” ” ”

अधुनेहानुक्तानन्यानपि ज्ञाताज्ञातसूरिप्रमुखान सामान्येन प्रतिपादयितुमिच्छयैकां मुखचपलापथ्यार्यां दिशति—

सासणपहावगाऽएणे, वि अज्जमवहि अणायणामाई ।
जाआ णेगा सूरी, तह मुणिणो ते जयन्तु जगे ॥३४२॥(आइचवलापच्छाज्जा)

(प्रे०) "सासण०" इत्यादि, "अज्जमवहि" ति अद्यावधि=श्रीवीरप्रभोः शासनेऽपि वर्तमानकालं यावत् "अण्णे वि" त्ति अन्येऽपि=इहोक्तेभ्यो व्यतिरिक्ता अपि "सासणपहावगा" त्ति शासनस्य=भगवन्महावीरप्रभोस्तीर्थस्य प्रभावकाः=उन्नतिकराः "अणायणामाई" त्ति अज्ञातानि=अनवबुद्धानि नामादीनि=नाम-गोत्र-कुलादीनि येषां तेऽज्ञातनामादयः यद्वा अज्ञातम्=अविदितं नाम=संज्ञा येषां तेऽज्ञातनामानः, त आदौ येषां तेऽज्ञातनामादयः, अत्रादिपदेन ज्ञातनामादयो गृह्यन्ते ते क इत्याह–"सूरी तह मुणोणो" त्ति सूरयः=आचार्यास्तथा मुनयः=साधवः "जाआ णेगा" त्ति नैका=बहवो जाताः=सम्भूताः ।

यत्तदोर्नित्यसम्बन्धादाह–"ते" त्ति ते=ते सूरयस्तथा मुनयः "जगे" त्ति जगति=लोके विश्वे "जयन्तु" त्ति जयन्तु=जयनशीला भवन्तु ॥३४२॥

एतर्हि ग्रन्थकारः श्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वरगुरुभ्यः स्वगुरुपरम्परां प्रचिकटयिषुरादौ तावत् श्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वरशिष्याणां श्रीमत्पन्न्यासहेमन्तविजयगणिवर्याणां श्लोकनवकेन विवर्णयिषया प्रथममेकां पथ्यार्यामाह—

सिरिपेमसूरिसीसो, हेमंतविजयगणी जयेउ जगे ।
भूसिअपण्णासपओ, पहावतेएण जिअभाणू ॥३४३॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "सिरि०" इत्यादि, "सिरिपेमसूरिसीसो" त्ति, श्रिया=ज्ञानादिलक्ष्म्या युतः प्रेमसूरिः श्रीप्रेमसूरिः, तस्य शिष्यः श्रीप्रेमसूरिशिष्यः, यद्वा प्रेमसूरेः शिष्यः प्रेमसूरिशिष्यः श्रिया युतः प्रेमसूरिशिष्यःश्रीप्रेमसूरिशिष्यः 'भूसिअपण्णासपओ" त्ति भूषितम्=अलङ्कृतं पन्न्यासपदं=स्वगुरुदत्त पन्न्यासमंज्ञकपद येन स विभूषितपन्न्यासपदः "हेमंतविजयगणी" त्ति हेमन्तविजयगणी, एतावता श्रीयुतप्रेमसूरिशिष्यः पन्न्यासो हेमन्तविजयनामा गणी卐 "जगे" त्ति जगति=विश्वे "जयेउ" त्ति जयतु = अतिशयवान् भवतु ।

卐एतच्च नाम ग्रन्थरचना-वृत्तिनिर्माणकालापेक्षया -ऽधुना मुद्रणकालापेक्षया तु सूरिपदारूढत्वाद् आचार्यदेवेशश्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वरपट्टप्रभावका आचार्यदेव श्रीमद्विजयहीरसूरीश्वरा इति व्यवह्रियते ।

तदनु [२८]विबुध⊙प्रभसूरिस्ततो [२९]जयानन्दसूरिश्च ।
तदनु [३०]रविप्रभसूरिस्ततो [३१]यशोदेवसूरिवरः ।।१७।। (पथ्योपगीतिः) #
तस्मात्[३२]प्रद्युम्नसूरिस्ततोऽप्यभूद् [३३]मानदेवसूरिगुरुः ।
तस्माच्च [३४]विमलचन्द्रस्तस्मा[३५]दुद्योतनाचार्यः ।।१८।।(मुखचपलापथ्यार्या)× †
तस्माच्च [३६]सर्वदेवः सूरि[३७]र्देवश्च [३८]सर्वदेवश्च ।
क्रमशोऽजायन्त ततः सूरि[३९]यशोभद्रनेमिचन्द्राख्यौ ।।१९।। (पथ्यागीतिः) ▽
तदनु [४०]मुनिचन्द्रसूरिर्बभूव सूरिस्ततोऽ[४१]प्यजितदेवः ।
तस्माच्च [४२]विजयसिंहस्ततो-ऽपि [४३]सोम⊙प्रभमणिरत्नौ ।।२०।। (पथ्यार्याः) ×
तस्माच्च [४४]जगच्चन्द्रः सूरिस्तस्माच्च [४५]सूरिदेवेन्द्रः ।
तस्माच्च [४६]धर्मघोषः सूरिः [४७]सोमप्रभस्तदनु ।।२१।। (पथ्यार्या) ×
तदनु क्रमेण सूरी [४८]सोमतिलक[४९]देवसुन्दरौ तस्मात् ।
क्रमशश्च [५०]सोमसुन्दर[५१]मुनिसुन्दर[५२]रत्नशेखराचार्याः ।।२२।।(पथ्यागीतिः)▽
तस्मा[५३]ल्लक्ष्मीसागरसूरिः सूरिस्ततः [५४]सुमतिसाधुः ।
क्रमशश्च [५५]हेमविमलः सूरिश्चा[५६]-ऽऽनन्दविमलश्च ।।२३।। (पथ्यार्या) ×
तस्मात्क्रमेण जाताः सूरिविजय[५७]दान[५८]हीर[५९]सेनाख्याः ।
तस्मात्क्रमशः स्यातां सूरि[६०]विजयदेव[६१]सिंहाख्यौ ।।२४।। (पथ्यार्या) ×
प्रज्ञांश[६२]सत्यविजयो गणिस्ततोऽभूत् ततः क्रमादासन् ।
प्रज्ञांशाः[६३]कर्पूर[६४]क्षमा[६५]जिनो[६६]त्तमविजयगणिनः ।।२५।। (पथ्यार्या) ×
तस्मात्प्रज्ञांशाः[६७]पद्म[६८]रूप[६९]कीर्तिविजयाः क्रमात्तस्मात् ।
पंडित[७०]कस्तूर[७१]मणिविजयौ ततो[७२]बुद्धिविजयगणी ।।२६।।(विपुलार्या) ✶
पट्टे शस्तस्य शिष्यः, शिखिजलधि[७३]मिते, त्रैशलेयस्य पट्टे,
न्यायाम्भोधिः सुवक्ता जयतु स[७३]विजयानन्दसूरिः सुधीशः ।
आत्मारामेति नाम्नेह जगति विततां सुप्रसिद्धिं गतो यः;
लुम्पाकादीन् जनान् यः स्खलयति प्रतिमार्चादिसिद्ध्यागमोक्त्या ।।२७।।
(स्रग्धरा) 卐

⊙ रेफसयोगत्वेन पूर्ववर्ती स्वरो-ऽत्र गुरुर्न गणित ।

आर्यापरार्धतुल्ये दलद्वये प्राहुरुपगीतिम् ।।८।। प्रथमगणत्रयविरतिर्दलयोरुभयो प्रकीर्तिता पथ्या ।

.. .. .. ।।४।। पू० उ०-४-४-४, ४-४ ४-१-४-ऽ, छन्दोमञ्जर्यां पञ्चम स्तबक- ।

विपुला-ऽन्या-ऽऽद्यन्तसर्वभेदात् ।। हैमछन्दो०-४ अध्या०-४ सूत्रम् ।

मासम्मि मग्गसीसे, चउदसमीए तिहीअ सुक्काए ।
आसि अहमयावाए, गुज्जरदेसस्स मुक्खपुरे ॥३४७॥ (पच्छज्जा)

(प्रे०) "**तस्स**" इत्यादि, "**तस्स जणी**" त्ति तस्य = श्रीपन्न्यासहेमन्तविजयगणिनः जनिः = जन्म "**भूवा**" त्ति भूपात् = विक्रमादित्यनृपात् "**पणामपरमेट्ठिगहमहीसंखे**" त्ति प्रमाणपरमेष्ठि-ग्रह-मह्यः = त्रि-पञ्च-नवै-काङ्कलक्षणाः, एतेषां वामक्रमजुषां १९५३ इति सङ्ख्या यत्र तत्र प्रमाण-परमेष्ठि ग्रहमहीसङ्ख्ये = विक्रमसंवत् १९५३ तमे तथा "**वीरा**" त्ति, वीरप्रभुमोक्षगमनात् "**मुद्दाचक्खुजिणमिअसंखे**" त्ति मुद्रा-चक्षु-र्जिनाः = त्रि-द्वि-चतुर्विंशत्यङ्करूपाः, तैर्वामगत्या मिता २४२३ संख्या यत्र तत्र मुद्राचक्षुर्जिनमितसङ्ख्ये = वीरसंवत त्रयोविंशत्यधिकचतुर्विंशतिशत२४२३तमे "**वासे**" त्ति वर्षे = संवत्सरे "**मासम्मि मग्गसीसे**" त्ति, मार्गशीर्षे मासे "**चउदसमीए तिहीअ [ ]क्काए**" त्ति शुक्लाया चतुर्दश्यां तिथौ = शुक्लपक्षसत्कचतुर्दशीदिने "**सणिवारे**" त्ति शनौ वारे "**आसि अहमयावाए गु[ ]रदेसस्स मुक्खपुरे**" त्ति गूर्जरदेशस्य मुख्यपुरे = प्रधाननगरे = पाटनगरे इति यावत् अहमदावादे = अमदावादेऽभूत् ॥३४६-३४७॥

अथैकया-ऽन्तचपलापथ्यार्यया दीक्षावत्सरादीन् प्राह—

दिक्खा महागहमुसलि पुहवी[१९८८]**माणे हवीअ भूवा-ऽद्दे ।**
सुक्काअ सत्तमीए, तिहीअ वेसाहमासम्मि ॥३४८॥ (जहणचवला पच्छाज्जा)

(प्रे०) "**दिक्खा**" इत्यादि, "**तस्स**" इति पदमिहा-ऽपि सम्बध्यते, ततः तस्य पन्न्यासश्रीहेमन्तविजयगणिनः "**दिक्खा**" त्ति दीक्षा=चारित्रादानं "**भूवा**" त्ति भूपात्= विक्रमादित्यभूपतितः "**महागहमुसलिपुहवीमाणे**" त्ति महाग्रहा अष्टाशीतिः△, मुशलिनः

△तथा चोक्त सुबोधिकाख्यकल्पसूत्रवृत्तौ-' तत्रा-ऽष्टाशीतिग्रहा, ते चेमे—अङ्गारको १. विकालको २, लोहिताक्ष ३, शनैश्वर ४, आधुनिक ५, प्राधुनिक ६, कण ७, कणक ८, कणकणक ९ कणवितानक १०, कणसन्तानक ११, सोम १२, सहित १३, आश्वासन १४, कार्योपग १५, कर्बुरक १६, अजकरक १७, दुन्दुभक १८, शङ्ख १९, शङ्खनाभ २० शङ्खवर्णाभ २१, कंस २२, कंसनाभ २३, कंसवर्णाभ २४, नील २५, नीलावभास २६, रूपी २७, रूपावभास २८ भस्म २९, भस्मराशि ३०, तिल ३१, तिलपुष्पवर्ण ३२, दक ३३, दकवर्ण ३४, कार्य ३५, वन्ध्य ३६, इन्द्राग्नि ३७, धूमकेतु ३८, हरि ३९, पिङ्गल ४०, बुध ४१, शुक्र ४२, बृहस्पति ४३, राहु ४४, अगस्ति ४५, माणवक ४६, कामस्पर्श ४७, धुर ४८, प्रमुख ४९, विकट ५०, विसन्धिकल्प ५१, प्रकल्प ५२, जटाल ५३, अरुण ५४, अग्नि ५५, काल ५६, महाकाल ५७, स्वस्तिक ५८, सौवस्तिक ५९, वर्धमान ६०, प्रलम्ब ६१ नित्यालोक ६२, नित्योद्योत ६३, स्वयम्प्रभ ६४, अवभास ६५, श्रेयस्कर ६६, क्षेमङ्कर ६७, आभङ्कर ६८, प्रभङ्कर ६९,

तदनु [२८]विबुध⊙प्रभसूरिस्ततो [२९]जयानन्दसूरिश्च ।
तदनु [३०]रविप्रभसूरिस्ततो [३१]यशोदेवसूरिवरः ॥१७॥ (पथ्योपगीतिः) #
तस्मात्[३२]प्रद्युम्नसूरिस्ततोऽप्यभूद् [३३]मानदेवसूरिगुरुः ।
तस्माच्च [३४]विमलचन्द्रस्तस्मा[३५]दुद्योतनाचार्यः ॥१८॥(मुखचपलापथ्यार्या)× †
तस्माच्च [३६]सर्वदेवः सूरि[३७]र्देवश्च [३८]सर्वदेवश्च ।
क्रमशोऽजायन्त ततः सूरि[३९]यशोभद्रनेमिचन्द्राख्यौ ॥१९॥ (पथ्यागीतिः) ▽
तदनु [४०]मुनिचन्द्रसूरिर्बभूव सूरिस्ततोऽ[४१]प्यजितदेवः ।
तस्माच्च [४२]विजयसिंहस्ततो-ऽपि [४३]सोम⊙प्रभमणिरत्नौ ॥२०॥ (पथ्यार्याः) ×
तस्माच्च [४४]जगच्चन्द्रः सूरिस्तस्माच्च [४५]सूरिदेवेन्द्रः ।
तस्माच्च [४६]धर्मघोषः सूरिः [४७]सोमप्रभस्तदनु ॥२१॥ (पथ्यार्या) ×
तदनु क्रमेण सूरी [४८]सोमतिलक[४९]देवसुन्दरौ तस्मात् ।
क्रमशश्च [५०]सोमसुन्दर[५१]मुनिसुन्दर[५२]रत्नशेखराचार्याः ॥२२॥(पथ्यागीतिः)▽
तस्मा[५३]ल्लक्ष्मीसागरसूरिः सूरिस्ततः [५४]सुमतिसाधुः ।
क्रमशश्च [५५]हेमविमलः सूरिश्चा[५६]-ऽऽनन्दविमलश्च ॥२३॥ (पथ्यार्या) ×
तस्मात्क्रमेण जाताः सूरिविजय[५७]दान[५८]हीर[५९]सेनाख्याः ।
तस्मात्क्रमशः स्यातां सूरि[६०]विजयदेव[६१]सिंहाख्यौ ॥२४॥ (पथ्यार्या) ×
प्राज्ञांश[६२]सत्यविजयो गणिस्ततोऽभूत् ततः क्रमादासन् ।
प्राज्ञांशाः[६३]कर्पूर[६४]क्षमा[६५]जिनो[६६]त्तमविजयगणिनः ॥२५॥ (पथ्यार्या) ×
तस्मात्प्राज्ञांशाः[६७]पद्म[६८]रूप[६९]कीर्तिविजयाः ात्तस्मात् ।
पंडित[७०]कस्तूर[७१]मणिविजयौ ततो[७२]बुद्धिविजयगणी॥२६॥ (मुखविपुलार्या) ✶
पट्टे शस्तस्य शिष्यः, शिखिजलधि[७३]मिते, त्रैशलेयस्य पट्टे,
न्यायाम्भोधिः सुवक्ता जयतु स[७३]विजयानन्दसूरिः सुधीशः ।
आत्मारामेति नाम्नेह जगति विततां सुप्रसिद्धिं गतो यः
लुम्पाकादीन् जनान् यः स्खलयति प्रतिमार्चादिसिद्ध्यागमोक्त्या ॥२७॥
(स्रग) 卐

⊙ रेफसयोगत्वेन पूर्ववर्ती स्वरो-ऽत्र गुरुर्न गणित ।

आर्यापरार्धतुल्ये दलद्वये प्राहुरुपगीतिम् ॥८॥ प्रथमगणत्रयविरतिर्दलयोरुभयो प्रकीर्तिता पथ्या ।
॥४॥ पू० उ०-४-४-४, ४-४ ४-१-४-ऽ, छन्दोमञ्जर्यां पञ्चम स्तबक ।
विपुला-ऽन्या-ऽऽद्यन्तसर्वभेदात् ॥ हैमछन्दो०-४ अध्या०-४ सूत्रम् ।

मासम्मि मग्गसीसे, चउदसमीए तिहीअ सुक्काए ।
आसि अहमयावाए, गुज्जरदेसस्स मुक्खपुरे ॥३४७॥ (पच्छज्जा)

(प्रे०) "तस्स" इत्यादि, "तस्स जणी" त्ति तस्य = श्रीपन्न्यासहेमन्तविजयगणिनः जनिः = जन्म "भूवा" त्ति भूपात् = विक्रमादित्यनृपात् "पणामपरमेट्ठिगहमहीसङ्खे" त्ति प्रमाणपरमेष्ठि-ग्रह-मह्यः = त्रि-पञ्च-नवै-काङ्कलक्षणाः, एतेषां वामक्रमजुषां १९५३ इति सङ्ख्या यत्र तत्र प्रमाण-परमेष्ठि ग्रहमहीसङ्ख्ये = विक्रमसंवत् १९५३ तमे तथा "वीरा" त्ति, वीरप्रभुमोक्षगमनात् "मुद्दाचक्खुजिणमिअसंखे" त्ति मुद्रा-चक्षु-जिनाः = त्रि-द्वि-चतुर्विंशत्यङ्करूपाः, तैर्वामगत्या मिता २४२३ संख्या यत्र तत्र मुद्राचक्षुर्जिनमितसङ्ख्ये = वीरसंवत् त्रयोविंशत्यधिकचतुर्विंशतिशत२४२३तमे "वासे" त्ति वर्षे = संवत्सरे "मासम्मि मग्गसीसे" त्ति, मार्गशीर्षे मासे "चउदसमीए तिहीअ [सु]क्काए" त्ति शुक्लायां चतुर्दश्यां तिथौ = शुक्लपक्षसत्कचतुर्दशीदिने "सणिवारे" त्ति शनौ वारे "आसि अहमयावाए गु[ज्ज]रदेसस्स मुक्खपुरे" त्ति गूर्जरदेशस्य मुख्यपुरे = प्रधाननगरे = पाटनगरे इति यावत् अहमदावादे = अमदावादेऽभूत् ॥३४६-३४७॥

अथैकया-ऽन्तचपलापथ्यार्यया दीक्षावत्सरादीन् प्राह--

दिक्खा महागहमुसलि पुहवी१९८८माणे हवीअ भूवा-ऽद्दे ।
सुक्काअ सत्तमीए, तिहीअ वेसाहमासम्मि ॥३४८॥ (जहणचवला पच्छाज्जा)

(प्रे०) "दिक्खा" इत्यादि, "तस्स" इति पदमिहा-ऽपि सम्बध्यते, ततः तस्य पन्न्यासश्रीहेमन्तविजयगणिनः "दिक्खा" त्ति दीक्षा=चारित्रादानं "भूवा" त्ति भूपात्= विक्रमादित्यभूपतितः "महागहमुसलिपुहवीमाणे" त्ति महाग्रहा अष्टाशीतिः△, मुशलिनः

△तथा चोक्तं सुबोधिकाख्यकल्पसूत्रवृत्तौ-' तत्रा-ऽष्टाशीतिग्रहा , ते चेमे-अङ्गारको १ विकालको २, लोहिताक्ष ३, शनैश्चर ४, आधुनिक ५, प्राधुनिक ६, कण ७, कणक ८, कणकणक ९ कणवितानक १०, कणसन्तानक ११, सोम १२, सहित १३, आश्वासन १४, कार्योपग १५, कर्बुरक १६, अजकरक १७, दुन्दुभक १८, शङ्ख १९, शङ्खनाभ २० शङ्खवर्णाभ २१, कंस २२, कंसनाभ २३, कंसवर्णाभ २४, नील २५, नीलावभास २६, रूपी २७, रूपावभास २८ भस्म २९, भस्मराशि ३०, तिल ३१, तिलपुष्पवर्ण ३२, दक ३३, दकवर्ण ३४, कार्य ३५, वन्ध्य ३६, इन्द्राग्नि ३७, धूमकेतु ३८, हरि ३९, पिङ्गल ४०, बुध ४१, शुक्र ४२, बृहस्पति ४३, राहु ४४, अगस्ति ४५, माणवक ४६, कामस्पर्श ४७, धुर ४८, प्रमुख ४९, विकट ५०, विसन्धिकल्प ५१, प्रकल्प ५२, जटाल ५३, अरुण ५४, अग्नि ५५, काल ५६, महाकाल ५७, स्वस्तिक ५८, सौवस्तिक ५९, वर्धमान ६०, प्रलम्ब ६१ नित्यालोक ६२, नित्योद्योत ६३, स्वयम्प्रभ ६४, अवभास ६५, श्रेयस्कर ६६, क्षेमङ्कर ६७, आभङ्कर ६८, प्रभङ्कर ६९,

तच्छिष्यो गुणरत्नरोहणगिरि-र्वैराग्यभृन्न्यायविद् ,
ज्ञातव्याकरणो ह्यधीतसमय-स्तत्त्वाब्धिकुम्भोद्भवः ।
यः संवेगतरङ्गरङ्गजलधिः, छिन्नस्पृहापादपः,
जीयात् श्रीयुत[७६]राजशेखरमुनि-स्तातानुजो मे गुरुः ॥३६॥ (शार्दूलविक्रीडितम्)
रचिता च [८०]वीरशेखरविजयेन खलु मुनिना तदन्तिपदा ।
स्वरचितबन्धविधान⊙प्रशस्तेः प्रेमप्रभावृत्तिः ॥३७॥ (पथ्यार्या) ×
वृत्तिश्च समाप्तैषा विक्रमनृपतो युगाक्षिनख२०२४सङ्ख्ये ।
वर्षे वीरशिवाच्चा-ऽब्धिव्याघ्रीस्तनजिन२४९४प्रमिते ॥३८॥ (पथ्यार्या) ×
श्रीमत्पन्न्यासपदविभूषितहेमन्तविजयगण्याद्यैः ।
संशोधिता-ऽपि चैषा परोपकारव्यसनभाग्भिः ॥३९॥ (जघनचपलापथ्यार्या) ×↑
प्रायोऽन्यशास्त्रलभ्यः सर्वो-ऽप्यर्थो मया ऽत्र संदृब्धः ।
न पुनः स्वमनीषिकया तथा-ऽपि यत्किञ्चिदिह वितथम् ॥४०॥ (पथ्यार्या) ×
सूत्रमतिलङ्घ्य भूया-च्छोध्यं तदनुग्रहं विधाय मयि ।
परदोषगुणजलपयस्त्यागग्रहणविधिकुशलकलहंसैः ॥४१॥ (पथ्यागीतिः)▽
स्खलति न छद्मस्थस्य हि कर्माधीनस्य कस्य बुद्धिरिह ।
सद्बुद्धिविरहितानां विशेषतो मादृशासुमतां ॥४२॥ (पथ्यार्या) × (त्रिभिर्विशेषकम्)
शिशुचेष्टा-ऽपि ममैषा, न स्याद्धास्यास्पदं प्रबुद्धानां ।
यद्धि यथाशक्ति शुभे, प्रवर्तितव्यमिति ते हि कथयन्ति ।४३॥ (पथ्यागीतिः) ▽
यावत्सिद्धशिला-ऽत्र लोकपुरुषे, मौलीयते विद्यते;
ग्रैवेयो गलभूषणः सुरगणः, पुण्ड्रायते ऽनुत्तरः ।
यावद्धारति शेषदेवनिकरः काञ्चीयते सागरः;
तावद्बन्धविधानवृत्तिरवतु हि, स्वोपज्ञप्रेमप्रभा ॥४४॥ (शार्दूलविक्रीडितम्)
बन्धविधान⊙प्रशस्तेः स्वोपज्ञाया विरचनया वृत्तेः ।
यदवापि मया कुशलं तेनास्त्वखिलजगतः कुशलं ॥४५॥ (पथ्यार्या) ×

॥ इति वृत्तिकृत्प्रशस्ति समाप्ता ॥

⊙ रेफसंयोगत्वेनेह पूर्ववर्ती स्वरो गुरुर्न गण्यते ।

अथैकया-ऽन्तिमया पथ्यार्यया्ऽमुष्य पन्न्यासपदसम्बन्धिवर्षादीन् प्रदर्श्य प्रस्तुतपन्न्यास-श्रीहेमन्तविजयगणिसत्कां वक्तव्यतां समापयति—

पण्णासपयं विहियं, तिहिणह२०१५वासे सुरिंदणयरम्मि ।
सुक्काए छट्ठीए, तिहीअ से राहमासम्मि ॥३५१॥ (पच्छाआ)

(प्रे०) "पन्नास०" इत्यादि, "सगुरुसकरेण" इति पूर्वगाथान्तस्थं पदं काकाक्षिगोलकन्यायेनेहा-ऽपि सम्बध्यते ततः स्वगुरुस्वकरेण "से" त्ति अस्य=पन्न्यासश्रीहेमन्तविजयगणिनः "तिहिणहवासे" त्ति तिथिनखाः=पञ्चदशाङ्क-विंशत्यङ्करूपाः प्रातिलोम्यक्रमलब्धा २०१५ सङ्ख्या यत्र, तच्च तद्वर्षम्, तस्मिन् तिथिनखवर्षे=विक्रमसंवत्पञ्चदशोत्तरद्विसहस्र-२०१५ तमे वर्षे "राहमासम्मि" त्ति राधमासे=वैशाखमासे " क्काए छट्ठीए तिहीअ" त्ति, शुक्लायां षष्ट्यां तिथौ=शुक्लपक्षे षष्ठे तिथौ "सुरिंदणयरम्मि" त्ति सुरेन्द्रनगरे=सुरेन्द्रनगर-संज्ञके सौराष्ट्रदेशसत्के पुरे "पण्णासपयं विहियं" ति, पन्न्यासपदं=पन्न्यासाभिध उपाधि-विशेषः, विहितं=कृतं=पन्न्यासपदेनासौ विभूषीकृत इति भावः ॥३५१॥ △

सम्प्रति ग्रन्थकारः स्वप्रगुरोर्मुनिश्रीललितशेखरविजयस्य श्लोकपञ्चकेन वर्णयितुकामः पूर्वमेकां पथ्यार्यामारभते—

△अधुना मुद्रणसमयापेक्षाऽस्य सूरिपदसमयादिप्रतिपादिके द्वे गाथे सवृत्तिकेऽत्र प्रक्षेपणीये । तद्यथा-
अथामुष्य सूरिपदकालादिकमाह पथ्यार्याद्विकेन—

गुज्जरसण्णगदेसे, अहम्मयावाअरायहाणीए
से सूरिपयपइट्ठा, गुरुम्मि वारे सुहमुहुत्ते ॥३५१ B॥ (पच्छाज्जा)
मासम्मि मग्गसीसे, पडिहरिणेत्तदसवत्तणेत्तद्दे ।
आसी समुज्जलाए, दुइआए कम्मवाडीए ॥३५१ C॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "गुज्जर०" इत्यादि, "से" त्ति तस्य=पन्न्यासश्रीहेमन्तविजयगणिन "सूरिपयपइट्ठा" त्ति सूरे=आचार्यस्य पदम्=पदवी सूरिपदम् तस्य प्रतिष्ठा=स्थापना सूरिपदप्रतिष्ठा=आचार्यपदप्राप्तिरिति यावत् "गुज्जरसण्णगदेसे" त्ति गुर्जरसञ्ज्ञकदेशे=गुर्जरनाम्नि देशीभाषया "गुजरात" इत्याख्ये देशे "अहम्मयावाअरायहाणीए" त्ति अहम्मदावादराजधान्या=अहम्मदावादाभिधे मुख्यनगरे (पाटनगरे) "पडिहरिणेत्तदसवत्तणेत्तद्द" त्ति प्रतिहरय=प्रतिवासुदेवा नव, नेत्रे=चक्षुषी द्वे, दशवक्त्रनेत्राणि=रावणस्य नयनानि विंशतिः, एते प्रातिलोम्येन मीलिता यत्र, तच्च तदब्दम्, तस्मिन् प्रतिहरिनेत्रदशवक्त्रनेत्राब्दे=विक्रमसंवत् २०२९ वर्षे "मग्गसीसे" त्ति मार्गशीर्षे 'मासे' त्ति मासे "समुज्जलाए दुइआए कम्मवाडीए" समुज्ज्वलाया=सिताया द्वितीयाया कर्मवाट्या=तिथौ=शुक्लपक्षद्वितीयादिने "गुरुम्मि वारे सुहमुहुत्ते" त्ति गुरौ=बृहस्पतौ वारे=वासरे शुभमुहूर्ते 'आसी" त्ति अभूत् ॥३५१B-C॥

इति

धावल्लारो

स्वोपज्ञ-

'प्रेमप्रभा' टीका-समलङ्कृता

पसत्थी

(स्तिः)

समाप्ता

कालात् "अंबरछेअसुअमूलसुत्तपाअमिए" त्ति, अम्बरम्=आकाशं=शून्यम् , छेदश्रुतं=छेदसूत्राणि निशीथ-महानिशीथ-बृहत्कल्प-व्यवहारदशाश्रुतस्कन्ध-जीतकल्पलक्षणानि षट् , मूलसूत्राणि दशवैकालिका-ऽऽवश्यको-त्तराध्ययनौ-△घनिर्युक्तिरूपाणि चत्वारि, पादौ=अङ्घ्री द्वौ सुप्रसिद्धौ सव्येतरौ, एतैरङ्कैर्वामगत्या २४६० इति सङ्ख्यया मितेऽम्बरछेदश्रुतमूलसूत्रपादमिते=वीरसंवत्षट्च्चत्वारचतुर्विंशतिशत२४६०तमे वर्षे "विक्कमभूवालाओ" त्ति विक्रमभूपालात्=विक्रमादित्यनृपतः "आगासपयत्थबहिरगंठिद्धंखऽक्खिगोलगप्पमिए" त्ति, आकाशं=गगनं=शून्यम् , पदार्थाः=तत्त्वानि जीवाजीवादीनि नव, तथा चोक्तं प्रशमरतौ-
'जीवाजीवा पुण्यं पापास्रवसंवराः सनिर्जरणाः । बन्धो मोक्षश्चैते सम्यक्चिन्त्या नवपदार्थाः ॥" इति । बाह्यग्रन्थयः=बाह्यपरिग्रहा १धन-२धान्य-३ क्षेत्र-४ वास्तु ५ रूप्य ६ सुवर्ण-७ कुप्य-८ द्विपद-९ चतुष्पदरूपा नव, ध्वाङ्क्षाक्षिगोलकः=वायसचक्षुर्गोलक एकः, एतैरङ्कैर्वामक्रमलब्धैः १९९० सङ्ख्यया प्रमितं यत्र तत्रा-ऽऽकाशपदार्थबाह्यग्रन्थिध्वाङ्क्षगोलकप्रमिते=विक्रमसंवद्नवत्युत्तरैकोनविंशतिशत१९९०तमे "वासे" त्ति वर्षे 'णहस्समासम्मि" त्ति नभस्यमासे=भाद्रपदमासे "बहुलाअ पचमीए तिहीअ आसी" त्ति बहुलायाम्=असितायां पञ्चम्यां तिथौ कृष्णपक्षसम्बन्धिनि पञ्चमीदिने सौराष्ट्रदेशे तदेकदेशभूते 'हालार' इत्यभिधे देशे रासङ्गपुरसंज्ञके ग्रामेऽभूत् ।

अथ सार्धगाथया-दीक्षाकालमाह-"णह०" इत्यादि, "वीरा" त्ति वीरात्=वीरप्रभुनिर्वाणात् "णहपाडिहेरसासयपडिमालोयणमिए" त्ति नभः=आकाशं=शून्यम् , प्रातिहार्याणि = अशोकवृक्ष-सुरपुष्पवृष्टि-दिव्यध्वनि-चामरा-ऽऽसन- भामण्डल दुन्दुभ्या-ऽऽतपत्रलक्षणान्यष्टौ, उक्तञ्च-

अशोकवृक्ष सुरपुष्पवृष्टि-र्दिव्यध्वनिश्चामरमासनं च ।
भामण्डलं दुन्दुभिरातपत्रं, सत्प्रातिहार्याणि जिनेश्वराणाम् ॥" इति ।

तथा-ऽन्यत्रा ऽपि-

"किंकिल्ली १ कुसुमवुट्ठी २, दिव्वझुणी ३ चामरा ४ ऽऽसणाइं ५ च ।
भामंडल ६ भेरि ७ छत्तं ८, जयंति जिणपाडिहेराइं ॥" इति ।

शाश्वतप्रतिमा ऋषभ चन्दानन-वारिषेण-वर्धमानाभिधाश्चतस्रः, लोचने=नेत्रे द्वे, एतैर्वामगत्या २४८० सङ्ख्यया मिते नभःप्रातिहार्यशाश्वतप्रतिमालोचनमिते 'संवच्छरे" संवत्सरे = वीरसंवत् २४८० तमे वर्षे "णिवा" त्ति नृपात् = विक्रमादित्यनरेन्द्रात् "उण" त्ति पुनः "कप्पदुमविहरमाणजिणे" त्ति, कल्पद्रुमाः=कल्पवृक्षा दश, विहरमाणजिनाः=साम्प्रतमपि पञ्चमहाविदेहक्षेत्रेषु विहरमाणास्तीर्थकरा विंशतिः, एतावङ्कौ प्रातिलोम्यमीलितौ यत्र तत्र कल्पद्रुम-

△ केचित्तु पिण्डनिर्युक्तिमोघनिर्युक्तिस्थाने पठन्ति ।

कालात् "अबरछेअस्सुअमूलसुत्तपाअमिए" त्ति, अम्बरम्=आकाशं=शून्यम्, छेदश्रुतं=छेदसूत्राणि निशीथ-महानिशीथ-बृहत्कल्प-व्यवहारदशाश्रुतस्कन्ध-जीतकल्पलक्षणानि षट्, मूलसूत्राणि दशवैकालिका-ऽऽवश्यको-त्तराध्ययनौ-△घनिर्युक्तिरूपाणि चत्वारि, पादौ=अंह्री द्वौ सुप्रसिद्धौ सव्येतरौ, एतैरङ्कैर्वामगत्या २४६० इति सङ्ख्यया मितेऽम्बरछेदश्रुतमूलसूत्रपाद-मिते=वीरसंवत्षष्ट्युत्तरचतुर्विंशतिशत२४६०तमे वर्षे "विक्कमभूवालाओ" त्ति विक्रमभू-पालात्=विक्रमादित्यनृपतः "आगासपयत्थबहिरगंठिद्धंक्खऽक्खिगोलगप्पमिए" त्ति, आकाशं=गगनं=शून्यम्, पदार्थाः=तत्त्वानि जीवाजीवादीनि नव, तथा चोक्तं प्रशमरतौ-

'जीवाजीवा पुण्यं पापास्रवसंवरा सनिर्जरणा । बन्धो मोक्षश्चैते सम्यक्चिन्त्या नवपदार्थाः ॥" इति ।

बाह्यग्रन्थयः=बाह्यपरिग्रहा १धन-२धान्य-३ क्षेत्र-४ वास्तु ५ रूप्य ६ सुवर्ण-७ कुप्य-८ द्विपद-९ चतुष्पदरूपा नव, ध्वाङ्क्षाक्षिगोलकः=वायसचक्षुर्गोलक एकः, एतैरङ्कैर्वामक्रमलब्धैः१९९० सङ्ख्यया प्रमितं यत्र तत्रा-ऽऽकाशपदार्थबाह्यग्रन्थिध्वाङ्क्षगोलकप्रमिते=विक्रमसंवद्नवत्युत्तरै-कोनविंशतिशत१९९०तमे "वासे" त्ति वर्षे 'णहस्समासम्मि" त्ति नभस्यमासे=भाद्र-पदमासे "बहुलाअ पंचमीए निसीअ आसी" त्ति बहुलायाम्=असितायां पञ्चम्यां तिथौ कृष्णपक्षसम्बन्धिनि पञ्चमीदिने सौराष्ट्रदेशे तदेकदेशभूते 'हालार' इत्यभिधे देशे रासङ्ग-पुरसंज्ञके ग्रामेऽभूत् ।

अथ सार्धगाथया-दीक्षाकालमाह-"णह०" इत्यादि, "वीरा" त्ति वीरात्=वीरप्रभु-निर्वाणात् "णहपाडिहेरसासयपडिमालोयणमिए" त्ति नभः=आकाशं=शून्यम्, प्रातिहार्याणि = अशोकवृक्ष-सुरपुष्पवृष्टि-दिव्यध्वनि-चामरा-ऽऽसन-भामण्डल दुन्दुभ्या-ऽऽतपत्र-लक्षणान्यष्टौ, उक्तञ्च-

अशोकवृक्षः सुरपुष्पवृष्टि-र्दिव्यध्वनिश्चामरमासनं च ।
भामण्डलं दुन्दुभिरातपत्रं, सत्प्रातिहार्याणि जिनेश्वराणाम् ॥" इति ।

तथा-ऽन्यत्रा ऽपि-

"किंकिल्ली १ कुसुमवुट्ठी २, दिव्वझुणी ३ चामरा ४ ऽऽसणाइं ५ च ।
भामंडल ६ भेरि ७ छत्तं ८, जयंति जिणपाडिहेराइं ॥" इति ।

शाश्वतप्रतिमा ऋषभ चन्दानन-वारिषेण-वर्धमानाभिधाश्चतस्रः, लोचने=नेत्रे द्वे, एतैर्वाम-गत्या २४८० सङ्ख्यया मिते नभःप्रातिहार्यशाश्वतप्रतिमालोचनमिते 'संवच्छरे" संवत्सरे = वीरसंवत् २४८० तमे वर्षे "णिवा" त्ति नृपात् = विक्रमादित्यनरेन्द्रात् "उण" त्ति पुनः "कप्पदुमविहरमाणजिणे" त्ति, कल्पद्रुमाः=कल्पवृक्षा दश, विहरमाणजिनाः=साम्प्रतमपि पञ्चमहाविदेहक्षेत्रेषु विहरमाणास्तीर्थकरा विंशतिः, एतावङ्कौ प्रातिलोम्यमीलितौ यत्र तत्र कल्पद्रुम-

△ केचित्तु पिण्डनिर्युक्तिमोघनिर्युक्तिस्थाने पठन्ति ।

अगं जेसिं, पणमइ पहु, कम्मसत्तू णासन्ति,
कल्लाणत्थं, मइ गणहरा, होंतु ते गोअमाई ॥८॥
(मंदक्कता)

माणो वि चारित्तलाहस्स जस्स, रागोवि णाहस्स सेवाअ जस्स।
सोगो वि केवल्लणाणस्स जस्स, चित्तं चरित्त अहो गोअमस्स ॥९॥
(लयग्गाहिं)

स कप्पद्दुमाईहि ओमिज्जए किं, मणोवछिआ पुरए जस्स णाम।
सहत्थेण दिक्खाछलेण विवाहो, कयो जेण मुत्तीअ सद्ध भवीण ।१०।
(भुजगप्पयाय)

स गिहत्थे पण्णासं, वासा तीस वयम्मि सव्वविए ।
बारस ठाउं सिद्धो, वीरसिवाऽद्दे दुवालसमे ॥११॥
(पच्छाज्जा)

रिसिंदू गच्छीसो, पढमजुगवरो, वीरपट्टाहिसित्तो,
सुहम्मो सो आसी, कयभविपया, जोगखेमो णिवोव्व ।
सुई जम्हा जाया, इह खलु मरहे, सतई सासण जा,
सुवित्तिण्णाऽग्गेऽग्गे, भविविमलयरी, रायए जण्हइव्व ॥१२॥
(सोहा)

सो गिहवासे वासा, पण्णास तह वये दुआलीसा ।
अड केवलिम्मि ठाउ, वीरसिवा सिवमिओ णइमिअऽद्दे ॥१३॥
(पच्छागीई)

मंडित्था इदुवत्तं, तिलयमिव पय, तस्स सो जबुसामी,
सोहम्मकक्केण फुल्ल, पवयणवसुणा, जस्स वेरग्गपोम्म ।
रम्मा कन्ना णवोढा, अड णवणवतिं, हेमकोडी य जो हि,
चिच्चा सप्पव्व, कासी वसमभिअरम, कामुइ पसुलं पि ॥१४॥

(सद्धरा)

णत्थि विवेगो को वि य, जबूसामिस्स ज अदासी जो ।
सजमसिरिं सिवयर, चोराण वि दडजोग्गाणं ॥१५॥
(पच्छाज्जा)

सो घरवासे सोलस, वासा वीस वये जुगपहाणे ।
अजपयवण्णा पूरिअ, वीरसिवाउ सिवमजपयगद्दे ॥१६॥
(पच्छागीई)

तत्तो मणपरमावहि-पुलागआहारखवगुवसमा य ।
कप्पतिसजमकेवलि-सिवगमण त्ति दस वुच्छिण्णा ॥१७॥
(पच्छाज्जा)

सुक्काअ पंचमीए, तिहीअ जम्मोऽस्स भद्दवयमासे ।
वासम्मि सच्चभासा-ऽसमाहिठाणे२०१० णिवा दिक्खा ॥३५९॥
(सव्वचवला पच्छाज्जा)

मासम्मि मग्गसीसे, सिअतइअतिहिम्मि तम्मि चेवऽह्ने ।
सुक्कचउत्थतिहीए, उवठवणा माहमासम्मि ॥३६०॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "वासे" इत्यादि. "वीरा" त्ति, वीरात् = चरमतीर्थराजनिर्वाणकालात् "जोणितिमत्थयअणुओगगंधमिए" त्ति, योनयः = सचित्ता-ऽचित्त-मिश्ररूपास्त्रयः, यद्वा शीतो-ष्ण-शीतोष्णलक्षणास्त्रयः, अथवा शंखावर्त्त-कूर्मोन्नत-वंशीपत्ररूपास्तिस्रः,

उक्तञ्च लोक श्री द्रव्यलोके तृतीयसर्गे--

"शीता चोष्णा च शीतोष्णा तत्तत्स्पर्शान्वयात त्रिधा । सचित्त चित्तमिश्रेति भेदतोऽपि त्रिधा भवेत ॥ योनिस्त्रिधा मनुष्याणा शखावर्त्तादिभेदत । यस्या शङ्ख इवावर्त्त शङ्खावर्त्ता तु तत्र सा ॥५६॥ कूर्मोन्नता भवेद्योनि कूर्मपृष्ठमिवोन्नता । वशीपत्रा तु सयुक्तवशीपत्रद्वयाकृति ॥५७॥" इति ।

त्रिमस्तकलोचनानि = त्रिशिरोनयनानि षट्, अनुयोगाः = चरणकरण-धर्मकथा गणित-द्रव्यरूपाश्चत्वारः, गन्धौ सुरभि-दुरभिलक्षणौ द्वौ, एतैरङ्कैर्वामगत्या२४६३मङ्ख्यया मिते योनित्रिमस्तकलोचनानुयोगगन्धमिते = वीरसंवत् २४६३ तमे तथा 'भूवा" त्ति, भूपात्= विक्रमादित्यनरपतितः "अक्खरसुअगेविज्जयणेमिणाहभवराए" त्ति अक्षरश्रुतानि संज्ञा-व्यञ्जनलब्धिरूपाणि त्रीणि, उक्तञ्च-'त सन्नावजणलद्धिसन्निय तिविहमक्खर भणिय ।' इति । ग्रैवेयका = ग्रैवयकदेवलोका नव, नेमिनाथभवा नव, राजा = चन्द्र एकः, एते प्रातिलोम्य-क्रमेण मीलिता ११९३ सङ्ख्या यत्र तत्राऽक्षरश्रुतग्रैवेयकनेमनाथभवराजे = विक्रमसंवत् ११९३ तमे "वासे" त्ति वर्षे = शारदे । "भद्दवयमासे" त्ति भाद्रपदे = प्रौष्ठपदे मासे "सुक्काअ पचमीए तिहीअ" त्ति शुक्लायां पञ्चम्या तिथौ=भाद्रमासशुक्लपक्षपञ्चमतिथि-दिने सौराष्ट्रदेशैकदेशे 'हालार'संज्ञके देशे रासङ्गपुरनाम्नि ग्रामे श्रेष्ठि'मेघजी'तः 'वेजोबाइ'कुक्षौ "ऽस्स" त्ति अस्य=श्रीमुनिराजशेखरविजयस्य "जम्मो" त्ति जन्माऽभूत् ।

अथ शेषसार्धगाथया दीक्षो-पस्थापनासमयं निर्दिशति-"वासम्मि" इत्यादि, "णिवा" त्ति नृपात्=विक्रमादित्यनरेश्वरतः 'सच्चभा ऽसमाहिठाणे" त्ति सत्यभाषा दश, यदुक्तम्-"जणवयसम्मयठवणा नामे रूवे पडुच्च सच्चे य । ववहारभावजोगे दसमे ओवम्मसच्चे य ॥" इति । असमाधिस्थानानि विंशतिः, उक्तञ्च श्रमणसूत्रे-"वीसाए असमाहिठाणेहिं" इति । एतौ वामगत्या यत्र तत्र सत्यभाषा-ऽसमाधिस्थाने "वासम्मि" त्ति वर्षे=शरदि=विक्रमसंवत् दशो-त्तरद्विसहस्र२०१०तमे वर्षे "मग्गसीसे" त्ति मार्गशीर्षे = आग्रहायणिके "मासे" त्ति

जाओ स रसग६६मिए-ऽद्दे पणपरमेट्ठिगुण१०८मिअम्मि वयी ।
जुगपवरो सिद्धिभुवण१४८-सखे-खमिओ रसतिहि१५६मिए ॥२७॥
(पच्छाज्जा)

भद्दबाहू सतित्थो, सो तस्स बीओ जयेउ,
गोरसाओ जहऽज्जं, पुव्वुद्धिओ जेण कप्पो ।
भव्वलोगाण जेण, सिद्धतसोह गमेउ,
णिम्मिआओ अणेगा, दारुव्व णिज्जुत्तिकाओ ।२८॥
(चदलेहा)

कीरीअ जेण उवसग्गहरक्खथोत्त, घायस्स देवकयमारिउवद्दवस्स ।
सघावणस्सऽखिलविग्घविणासकारिं, स दाउ मे स सुअकेवलिभद्दबाहू ॥
॥२६॥ (वसततिलया)

जम्मोऽस्स जुगक ६४ मिए, वासे वीरा वय च णिहिविस्से १३६ ।
स जुगपहाणो रसतिहि१५६-मिए खसजम१७०पमाणे ख ॥३०॥
(पच्छाज्जा)

दोया सिद्धीअ मे सो, हवउ गुणणिही, थुल्लभद्दो गणिंदो,
तप्पट्टाराममाली, गुणकुसुमजुआ, भव्वदू जो कुणीअ ।
वीरो एगो च्च एसो, मयणजयवरो, णेमिणाहाइगओ,
जेणं काउ पवेस, मयणअहिबिले, कामसप्पो जिओ जं ॥३१॥
(सद्धरा)

बारहवासदुकाला, तदा मुणिगणस्सिओ तओ गमणा ।
जाया सुत्तज्झयणे, महई खलणा तदुवसते ॥३२॥
(पच्छाज्जा)

सघेण कारिआ सुअ-अवणत्थ सुत्तवायणा पढमा ।
पाडलिपुत्ते समये, गुरुणो सिरिथूलभद्दस्स ॥३३॥
(पच्छाज्जा) (जुग्ग) ।

से जणण णिवकु ११६ मिए, वीरसिवाऽद्दे वय रसिंद १४६ मिए ।
जुगपवरो स खसजम१७०-मिए गओ ख तिहिसम२१५मिए ॥३४॥
(पच्छाज्जा)

तत्तो चउरो अंतिम-पुव्वाइ च महपाणझाण च ।
समचउरस च वइर-रिसहणराय च वुच्छिन्न ॥३५॥
(पच्छाज्जा)

णट्ठजिणकप्पविहिसतुलणयरो, णिप्पिहसिरोरयणअज्जमहगिरी ।
रकणिवकारगसुहत्थिमुणिवई, से रविविहू विव सहीअ पयणहे ॥३६॥
(इदुवयणा)

पूर्वगाथा-ऽन्तस्था डमरुकमणिन्यायेन वा घण्टालालान्यायेन वा काकाक्षिगोलकन्यायेन वा सम्बध्यतेऽनुवर्तते वा ततो नृपात्=विक्रमादित्याभिधानात् पृथ्वीपालात् "सभुणहे" त्ति शम्भुनखाः=एकादशाङ्क-विंशत्यङ्करूपा प्रातिलोम्यक्रममीलिता २०११ सङ्ख्या यत्र तत्र शम्भुनखे वर्षे=विक्रमसंवदेकादशोत्तरद्विसहस्र२०११तमे शरदि "तवमासे" त्ति तपसि मासे=माघे मासे "सिअदसमतिहिम्मि" त्ति सिते=शुक्ले=श्वेते दशमे तिथौ=शुक्लपक्षदशमीदिवसे विजये मुहूर्ते;

पुनरपि किंभूतेन ?–"जाउवठवणेण" त्ति जाता उपस्थापना=महाव्रतारोपणक्रिया देशीभाषया 'वडीदीक्षा' यस्य तेन जातोपस्थापनेन=महाराष्ट्रदेशे 'पुना' संज्ञके देशे लब्धमहाव्रतेन, कदा ?–" हवमाससिअसत्तमीदिवसे" त्ति माधवमासे=राधमासे सितायाः=समुज्ज्वलायाः सप्तम्या दिवसे=दिने=वैशाखमासशुक्लसप्तमीतिथौ वासरे ॥३६१-३६२॥

अथास्मिन् ग्रन्थे पदार्थविषये सहायभूतौ पूज्यमुनिवर्यौ श्रीजयघोषविजय-श्रीधर्मानन्दविजयौ स्मृतिपथमानेतुमिच्छुर्ग्रन्थकारः कृतज्ञत्वेन पथ्यार्यां निबध्नाति—

आलोइउं पयत्था, कम्मगंथाइसत्थकुसलेहि ।
मुणिवरजयघोसविजय-धम्माणंदविजयेहि सह ॥३६३॥ (पच्छाज्जा)

(प्रे०) "आलोइउं" इत्यादि, "कम्मगंथाइसत्थकुसलेहि" त्ति कर्मणि=कर्मविषयका ग्रन्थाः=शास्त्राणि कर्मग्रन्थास्ते आदौ येषां शास्त्राणां तानि कर्मग्रन्थादीनि अत्रादिपदेनागमप्रभृतिग्रन्था ग्राह्याः, तानि च तानि शास्त्राणि च कर्मग्रन्थादिशास्त्राणि तेषु कुशलौ=निपुणौ कर्मग्रन्थादिशास्त्रकुशलौ ताभ्यां कर्मग्रन्थादिशास्त्रकुशलाभ्यां "**मुणिवरजयघोसविजय-धम्माणदविजयेहि सह**" त्ति मुनिषु=यतिषु वरौ=मुनिवरौ, तौ च जयघोषविजयधर्मानन्दविजयौ मुनिवर-जयघोषविजय-धर्मानन्दविजयौ ताभ्यां मुनिवर**जयघोषविजय-धर्मानन्दविजयाभ्यां**=परमपूज्यगच्छाधिपतिसिद्धान्तमहोदधिकर्मसाहित्यनिष्णाताचार्यदेव**श्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वर**शिष्यरत्नविद्वद्वर्यन्यायविशारदवर्धमानतपोनिधिपन्न्यास **भानुविजयगणिवर्य**-शिष्यप्रशान्तमूर्ति**धर्मघोषविजय**शिष्यविद्वद्वर्यगीतार्थमुनि × **जयघोषविजयो**–क्षपन्यासवर्यशिष्यविद्वद्वर्यगीतार्थमुनि×**धर्मानन्दविजयाभ्यां** सह "**पयत्था**" त्ति पदार्थान्=मया प्राक् कर्मप्रकृतिप्रमुखग्रन्थेभ्य उद्धृतानस्य बन्धविधानाख्यस्य ग्रन्थस्यान्तर्गतान् पदार्थान् "आलोइउं" ति आलोच्य=वाचनादिना कर्मग्रन्थादिशास्त्रानुसारेण सम्यग्निश्चित्य न तु स्वमतिकल्पनया ॥३६३॥

ततः किमित्याह पथ्यार्याम्—

卐 अधुना पुनराचार्यदेवश्रीमद्विजयभुवनभानुसूरीश्वरा । × अधुना पुनर्गणिपदवीविभूषिताभ्या ।

जाओ स रसग६६मिए-ऽद्दे पणपरमेट्ठिगुण१०८मिअम्मि वयी ।
जुगपवरो सिद्धिभुवण१४८-सखे-खमिओ रसतिहि१५६मिए ॥२७॥
(पच्छाज्जा)

भद्दबाहू सतित्थो, सो तस्स बीओ जयेउ,
गोरसाओ जहऽज्ज, पुव्वुद्धिओ जेण कप्पो ।
भव्वलोगाण जेण, सिद्धतसोह गमेउ,
णिम्मिआओ अणेगा, दारव्व णिज्जुत्तिकाओ ।२८॥
(चदलेहा)

कीरीअ जेण उवसग्गहरक्खथोत्त, घायस्स देवकयमारिउवद्दवस्स ।
सघावणस्सऽखिलविग्घविणासकारिं, स दाउ मे स सुअकेवलिभद्दबाहू ॥
॥२६॥ (वसततिलया)

जम्मोऽस्स जुगक ६४ मिए, वासे वीरा वय च णिहिविस्से १३६ ।
स जुगपहाणो रसतिहि१५६-मिए खसजम१७०पमाणे ख ॥३०॥
(पच्छाज्जा)

दाया सिद्धीअ मे सो, हवउ गुणणिही, थुल्लभद्दो गणिदो,
तप्पट्टाराममाली, गुणकुसुमजुआ, भव्वदू जो कुणीअ ।
वीरो एगो च्च एसो, मयणजययरो, णेमिणाहाइगओ,
जेण काउ पवेस, मयणअहिबिले, कामसप्पो जिओ ज ॥३१॥
(सद्धरा)

बारहवासदुकाला, तदा मुणिगणस्सिओ तओ गमणा ।
जाया सुत्तज्झयणे, महई खलणा तदुवसते ॥३२॥
(पच्छाज्जा)

सघेण कारिआ सुअ-अवणत्थ सुत्तवायणा पढमा ।
पाडलिपुत्ते समये, गुरुणो सिरिथूलभद्दस्स ॥३३॥
(पच्छाज्जा) (जुग्ग) ।

से जणण णिवकु ११६ मिए, वीरसिवाऽद्दे वय रसिंद १४६ मिए।
जुगपवरो स खसजम१७०-मिए गओ ख तिहिसम२१५मिए ॥३४॥
(पच्छाज्जा)

तत्तो चउरो अतिम-पुव्वाइ च महपाणझाणं च ।
समचउरस च वइर-रिसहणराय च वुच्छिन्न ॥३५॥
(पच्छाज्जा)

णट्ठजिणकप्पविहिसतुलणयरो, णिप्पिहसिरोरयणअज्जमहगिरी।
रकणिवकारगसुहत्थिमुणिवई, से रविविहू विव सहीअ पयणहे ॥३६॥
(इदुवयणा)

पाटनगरेऽमदावादे "सिरिपालपुव्वणयरत्थेण" श्रीपालपूर्वनगरस्थेन='श्रीपालनगर' इत्याख्यायाममदावादसोसायट्यां वसता "मया" त्ति मया=मुनिवीरशेखरविजयेन "गंथोऽमू" त्ति असौ ग्रन्थः=बन्धविधाननामा ग्रन्थः=शास्त्रम् "समत्तो" त्ति समाप्तः=समाप्तिं नीतः=पूर्णतामानीतः ॥३६५॥

अथास्मिन् ग्रन्थे यैर्महात्मभिर्येन केनाऽपि प्रकारेण यत् किमपि साहय्यं कृतं तेषामुपकारं मन्यमानो ग्रन्कारः कृतज्ञत्वेन पथ्यार्यामुपदिशति–

परउवयाररयेहि जेहि पयारेण जेण केण वि जं ।
कि साहज्जमिह कयं, मे मण्णे हं सिमुवयारं ॥३६६॥ (पच्छाज्ञा)

(प्रे०) "परउव०" इत्यादि, "परउवयाररयेहि" ति परेषाम्=अन्येषामुपकारेषु=उपष्टम्भेषु रतैः=रमणशीलैस्तत्परैर्वा परोपकाररतैः "जेहि" त्ति यै र्वृत्तिकाराद्यैः "पयारेण जेण केण वि" त्ति येन केनाऽपि वृत्तिरचनाऽशुद्धिप्रमार्जनादिरूपेण प्रकारेण "ज कि साहज्ज" ति यत्किमपि साहय्यं "इह" त्ति अस्मिन् ग्रन्थे "कयं मे" त्ति मम कृतं=विहितमस्ति "सिं" ति तेषां "हं" ति अहं=मुनिवीरशेखरविजयाभिधो ग्रन्थकारः "उवयारं" ति उपकारं "मण्णे" त्ति मन्ये ॥३६६॥

इदानी ग्रन्थकारः स्वस्य छद्मस्थत्वेन किञ्चित्स्खलनमपि भूयात्तस्य शुद्धिमिच्छुः स्वस्यौद्धत्यं परिहरन् लघुताञ्च दर्शयन् तथा बहुश्रुतेषु बहुमानं प्रकटयन् विज्ञप्तिञ्च तन्वन् पथ्यार्यामाह–

एत्थ सिआ छउमत्था, मंतिमदा वा जमागमविरुद्धं ।
किचि ब सुआ तं मयि, काऊण किवं विसोहन्तु ॥३६७॥ (पच्छाज्ञा)

॥ इति मूलग्रन्थ ॥

(प्रे०) "एत्थ" इत्यादि, "एत्थ" त्ति अत्र=अस्मिन् बन्धविन्धानाख्ये महाग्रन्थे "छउमत्था मतिमदा वा" त्ति छद्मस्थात्= स्थदोषात् मतिमान्द्यात्=अल्पमेधस्त्वाद्वा "जमागमविरुद्धं किचि" त्ति यत्किञ्चिदागमविरुद्धं=श्रीअर्हत्सिद्धान्तासहं "सिआ" त्ति स्यात् "तं" ति तत् स्खलनं अपसिद्धान्तलक्षणं "मयि काऊण किवं" ति मयि=ममोपरि=मुनिवीरशेखरविजयस्योपरि कृपां=प्रसादं कृत्वा=विधाय "ब आ" बहुश्रुता=आगमज्ञा "विसोहन्तु" त्ति विशोधयन्तु=अशुद्धपदस्यापनयेन शुद्धपदस्थापनेन चेत्येवंविधं सम्मार्जनं कुर्वन्तु, यतो बहुश्रुता हि परिपूर्णज्ञानसारसन्दोहसम्पत्तिभृतहृदयत्वेन परोपकारकरणैकरसिकमानसा भवन्ति ॥३६७॥

॥ इति मूलग्रन्थवृत्तिः समाप्ता ॥

॥ इति बन्धविधाने मूलग्रन्थे प्रशस्ति समाप्ता ॥

तत्तो जुगप्पहाणो, वारसमो आसि वायणायरिओ ।
सामायरिओ कत्ता, पण्णवणाऽक्खस्स सुत्तस्स ॥४८॥
(पच्छाऽज्जा)

इदग्गे सीमधर-पहू वि संसीअ जम्स सुअणाण ।
सो जाओ वीराऽद्दे, सुरपइसिद्धगुणसवर२८०सङ्खे ॥४६॥
(पच्छाऽज्जा)

तिसये३०० वासे दिक्ख, गिण्हीअ समिइकिसाणुवेअ३३५मिए।
जुगपवरो तिदसमिओ, लेसारज्जगजोग३७६मिए ॥५०॥
(पच्छाऽज्जा)

रिसिंदुणा पट्टसिरी विभासी, ताणिंददिण्णेण स ताअ भासी।
जहा णिसा भाइ णिसायरेणं, णिसाअ भाएइ णिसायरो वि ॥५१॥
(उवजाई)

तस्समये गुरुबंधू, पिअगयक्खो पहावगो सूरी ।
कयबम्हणपडिबोहो, जयेउ सच्चरणगुणनिलयो ॥५२॥
(पच्छाऽज्जा)

सीसे मोलिठव सोहीअ, इददिण्णस्स सूरिणो ।
पट्टम्मि सिरिदिण्णक्खो, गणिंदो सूरिपुगवो ॥५३॥
(अणुट्ठुभ)

तस्स पढमो विणेयो, अज्जम्मिसिरिसतिसेणिआयरिओ ।
मूल आसि चउण्ह, साहाण सेणिआईण ॥५४॥
(पच्छाऽज्जा)

आसि तयाणि अणेगा, पहावगा तेसु वायणायरिओ ।
तेरसमो जुगपवरो, 卐सडिलसूरी य अज्जजीअहरो ॥५५॥
(पच्छागीई)

तस्सगखदडेऽद्दे, जणी वय हत्थिहत्थवण्हिमिए ।
अगणिरयरामे जुग-वरो स वेअकुजुगम्मि दिव ॥५६॥
(पच्छाऽज्जा)

तो आसि जुगपहाणो, चउदसमो सूरिरवेतीमित्तो ।
वीराऽस्स जणी वारण-रयणग्गिसिहगुत्ति ३५२ सखेऽद्दे ॥५७॥
(पच्छाऽज्जा)

णरखेत्तेगदिसारवि-सल्ल३६६पमाणे वय जुगपहाणो ।
सुअभेअसुरिहदसणे ४१४,स गओ खविसयगइम्मि ४५० दिव ॥५८॥
(पच्छाऽज्जा)

आसी अज्जसमुद्दो, समुद्दगभीरवायणायरिओ ।
तिसमुद्दखायकित्ती, दीवसमुद्देसु गहिअपेआलो ॥५६॥
(पच्छागोई)

卐 ' खडिलसूरी" इति वा ।

परमश्रेयोमूलं ज्ञेयोपादेयहेयतत्त्वयुता ।
पूर्णश्रुतावगाहा सकलपदार्थप्रकाशकरा ॥७॥ (पथ्यार्या) ×
भूतभवद्भाविसमयभावाभावावभासिनी रम्या ।
येन रचिता प्रवृत्ता भरतेऽत्र द्वादशाङ्गी तु ॥८॥ (पथ्यार्या) ×
यः पट्टधरः प्रथमो युगप्रधानोऽपि वीरपट्टेऽभूत् ।
स खलु [१]सुधर्मस्वामी पञ्चमगणभृज्जयतु लोके ॥९॥ (पथ्यार्या)×(त्रिभिर्विशेषकम्)
तत्पट्टे [२]श्रीजम्बूस्वामी [३]प्रभवप्रभुश्च तत्पट्टे ।
[४]शय्यम्भवस्ततोऽपि च ततो [५]यशोभद्रसूरिगुरुः ॥१०॥ (पथ्यार्या) ×
तस्मात्[६]सम्भूतविजयसूरिश्चाचार्य[६]भद्रबाहुश्च ।
तत [७]आर्यस्थूलभद्रस्तस्मा[८]दार्यौ महागिरिसुहस्ती ॥११॥ (विचित्रा) +
तस्मात् [९]सुस्थितसुप्रतिबद्धाचार्यौ ततोऽपि सजातः ।
[१०]श्रीइन्द्रदिन्नसूरिस्तस्मात् [११]श्रीदिन्नसूरिवरः ॥१२॥ (पथ्यार्या) ×
तत आर्यः [१२]सिंहगिरि [१३]र्वज्रस्वामी प्रभुस्ततस्तस्मात् ।
[१४]श्रीवज्रसेनसूरिस्ततोऽप्यभूत् [१५]चन्द्रसूरिश्च ॥१३॥ (जघनचपलापथ्यार्या) × †
[१६]सामन्तभद्रसूरिस्ततस्ततो [१७]वृद्धदेवसूरिवरः ।
[१८]श्रीप्रद्योतनसूरिस्ततस्ततो [१९]मानदेवसूरिगुरुः ॥१४॥ (मुखचपलापथ्यागीतिः) ▽ †
तस्माच्च [२०]मानतुङ्गः सूरीशस्तदनु [२१]वीरसूरिवरः ।
तदनु [२२]जयदेवसूरि[२३]र्देवानन्दस्ततः सूरिः ॥१५॥ (पथ्यार्या) ×
तस्मा[२४]द्विक्रमसूरिस्ततोऽपि [२५]नरसिंहसूरिवरः ।
तस्मात् [२६]समुद्रसूरिस्तस्मादपि [२७]मानदेवसूरिगुरुः ॥१६॥ (पथ्योद्गीतिः) —

× लक्ष्मैतत्सप्तगणा गोपेता भवति नेह विषमे ज । षष्ठो जश्च न लघु वा प्रथमार्धे नियतमार्यया ॥१॥ षष्ठे द्वितीयलात्परकेन्ले मुखलाच्च सयतिपदनियम । चरमेऽर्धे पञ्चमके तस्मादिह भवति षष्ठो ल ॥२॥ प्रथमगणत्रयविरतिर्दलयोरुभयो प्रकीर्तिता पथ्या । ॥४॥
पू०-४ ४-४, ४-४-४-४-ऽ, उ०-४-४-४, ४-४-१-४ ऽ, छन्दोमञ्जर्यां पञ्चमः स्तबक. ।

+ षष्ठ त्रिनेष्टपैर्विचित्रा । हैमच्छन्दो०-४ अध्या० १२ सूत्रम् ।

▽ आर्याप्रथमार्धसमं यस्या परार्धमीरिता गीति । ॥८॥ प्रथमगणत्रयविरतिर्दलयोरुभयोः प्रकीर्तिता पथ्या । ~ ॥४॥ पू०-४-४-४,४-४-४-४-ऽ,उ०-४-४-४,४-४-४-४-ऽ, छन्दोमञ्जर्यां पञ्चम स्तबक । —आर्याशकलद्वितये-विपरीते पुनरिहोद्गीति । ॥६॥प्रथमगणत्रयविरतिर्दलयोरुभयो. प्रकीर्तिता पथ्यार्या ॥४॥ पू-४-४-४, ४ ४-१-४-ऽ, उ०-४-४-४, ४,-४-४-४ ४ ऽ, छन्दोमञ्जर्यां पञ्चम स्तबक ।

† गमध्ये द्वितीयतुर्यौ जौ चपला ॥५॥ हैमच्छदो० ४ अध्याय ।

~३

स सीहसूरी गुरुदिण्णपट्टे, सोहीअ इंदूमिव अंतरिक्खे ।
भवीण अण्णाणरिउस्स सीस, छिंदीअ खग्गो इव जस्स वाणी ॥७२॥
(उवजाई)

विज्जागुरू सिरिवइर-सामिस्स य भद्दगुत्तसूरिंदो ।
जयउ जगे दसपुव्वी, ता सोलसमो जुगपहाणो ॥७३॥
(पच्छाज्जा)

तस्स जणी वीराऽद्दे, विअद्धसुरयावसाणजम्मजामे४२८ ।
णक्खत्तवीहिसायर-जोयणकोसे ४४६ स आसि वयी ॥७४॥
(पच्छाज्जा)

अभिणयसत्तिदिसे४६४ 'जुग-पवरो आसायणिदिये५३२ खमिओ ।
वंदे ह विज्जहिं, सिरितोसलिपुत्तमायरिअ ॥७५॥
(पच्छाज्जा)

जयउ सिरिगुत्तसूरी, लोए सत्तरसमो जुगपहाणो ।
वीरा करिजलधिजुगे४४८-ऽद्दे जम्मोऽस्स वयमग्गिवसुवेए४८३॥७६॥
(पच्छागीई)

स हवीअ जुगपहाणो, लिंगऽग्गिसरे५३३दिव गयऽद्दिसरे५४८ ।
हवउ मम मतविज्जा-कुसलो सिवदो समिअसूरी ॥७७॥
(पच्छाज्जा)

सिअयरो भविकुमुदविकासे स जयेउ वइरविहू,
वइरसाहा जम्हा पहवीअ जहिसिरोत्ता विहू ।
ज ससुअमालिंगिउमुल्लसीअ साहुरयणेहिं,
जुओ सिहगिरिगुरुपयऽद्धी सिरिवेलाकरेहिं ॥७८॥
(चितलेहा)

हिंडोलगत्थो वि छमासियो जो, एगादसंगिं सुअपुव्वजम्मो ।
पढीअ बालो वि अबालतेजो, किं दुक्कर अत्थि महापुमाणं ॥७९॥
(उवजाई)

अक्खोहिओ रायसहाअ माउ-प्पलोहणेहिं मुणिसत्तमो जो ।
परिक्खिवउ जस्स सुरेण दत्ता, वेउव्वलद्धी णहगामिविज्जा ॥८०॥
(उवजाई)

सघो ठवेऊण पटम्मि णीओ, दुब्भिक्खदेसाउ सुभिक्खदेस ।
दयाऽद्धिणा जेण भवाउ मोक्ख, खित्ता विमाणे विणिणीसुणाव्व ॥८१॥
(उवजाई)

सुवण्णकोडीजुअरुप्पिणिं जो, दिक्खीअ सबुज्झ सरागकण्ण ।
पबोहिओ बोद्धमयाणुसारी, भूवो वि जेण पउरेहि सद्ध ॥८२॥
(उवजाई)

तत्पट्टसागरविधुः[७४]कमलाख्यसूरिः, लोके सदा जयतु निःस्पृहतापयोधिः ।
चारित्ररोहणगिरिः शमभृद्वरेण्यः,विश्वश्रुतो विबुधलोकसमर्च्यपादः ॥२८॥(वसन्ततिलका)★

यः पट्टे परमेष्ठिघोटकमिते श्रीवर्धमानप्रभोः;
आद्योऽभूत् कमलाख्यसूरिनृपतेः पट्टाधिराज्येश्वरः ।
चित्रश्रेष्ठचरित्रवीरविजयो- पाध्यायशिष्याग्रणीः; ।
स श्रीमान्[७५]विजयादिदानमुनिपा भूयात्सदा श्रेयसे ॥२९॥ (शार्दूलविक्रीडितम्)

यो विस्तीर्णतपाख्यगच्छखचरो, यं साधुपादाः श्रिताः;
येन प्रोल्लसिता च भव्यनलिना, यस्मै नमः सर्वदा ।
यस्मान्नश्यति भीतपापतिमिरो, यस्याद्भुतं ज्योतिषं;
यस्मिन् स्फारमतिप्रभा विजयते, सूरिः स दानाभिधः ॥३०॥ (शार्दूलविक्रीडितम्)

विस्तीर्णे हि तपाख्यगच्छगगने, साधुग्रहाद्यैर्वृतः;
आह्लादीकृतसद्गुणौघजलधिः, संरुद्धमिथ्यातमः ।
भव्यप्राणिकुवेलबोधरसिको, ज्ञानप्रकाशान्वितः;
चन्द्रो-ऽप्यस्ति स निष्कलङ्कचरणः,[७६]श्रीप्रेमसूरीश्वरः ॥३१॥ (शार्दूलविक्रीडितम्)

विस्तीर्णव्रतिभावलीप्रकलितो, दुर्वादिघूकार्त्तिदः;
घोराज्ञानतमोविनाशनकरो ज्ञानादितेजोयुतः ।
भव्याम्भोजविबोधनैकचतुरो, दीप्रस्तपःसंयमैः,
श्रीमद्दानमुनीशपट्टगगनेऽभूत्प्रेमसूरी रविः ॥३२॥ (शार्दूलविक्रीडितम्)

+पन्न्यासस्तद्विनेयो, विजयपदयुतः, सोऽस्ति[७७]हेमन्तनामा;
वैराग्यावारपारो, विदितसुचरणो, लब्धगीतार्थरेखः ।
प्राज्ञेशो दीर्घदर्शी, सुगहनविषये-ऽपि प्रकृष्टप्रभावः;
कर्त्तव्ये गच्छसत्के, भवति बहुविधे, यो महामन्त्रिकल्पः ॥३३॥ (स्रग्धरा)

तच्छिष्यः सिद्धान्तज्योतिषशास्त्रनिपुणस्तपश्चारी ।
व्याकरणप्रकरणवित् प्रशान्तमूर्तिर्जिताक्षगणः ॥३४॥ (पथ्यार्या) ×
पित्रनुजः स[७८]मुनिललितशेखरविजयो गुरोरपि गुरुर्मे ।
गुरुवैयावृत्यकरः परोपकाररसिको जयतु ॥३५॥ (पथ्यार्या) × (युग्मम्)

+ मुद्रणकालापेक्षया पुनरिदं चरणमिह बोध्यम्-तच्छिष्य पट्टशोभी, विजयपदयुतो, हीरसूरीश्वर स,

णामो गच्छस्स चंदकुलो खलु जओ जाओ,
भागीरही व सुरणईअ भागीरहणिवाओ ॥९४॥
(ललिता)

तमहरो भवियलोगस्स सामतभद्दसूरी,
जयउ स गुरू चंदसूरीसपट्टवोमसूरी ।
कुरंगारी व विसया विरत्तो वणे वसीअ ।
तओ वणवासी गणस्स जाउ णामो हवीअ ॥९५॥
(महुयरी)

विमुत्तिपहदंसी जो जओ व मासी, सामंतभद्दसूरीसपट्टधामे ।
स खतत्तगेऽहे वुड्ढदेवसूरी, जयउ परिठविअकोरंटगवीरच्चो ॥९६॥
(नत्तगई)

तइ सिरिजज्जगसूरी, वीरपइट्ठ कुणीअ सच्चउरे ।
णाहडकयजिणभवणे, वीरा खहयीइमिअवासे ॥९७॥
(पच्छाज्जा)

जगम्मि अण्णाणतमस्स णासगो, ससोसगो दुण्णयकद्दमाण जो ।
भवज्जरासीअ पबोहगो गुरू, पज्जोयणोऽधीअ स देवपट्टखे ॥९८॥
(सखणिही सुणंदिणी वा)

अज्ज त माणदेव, गुणगणणिलय, पासिऊण वरीअ,
णेच्छंती पट्टकण्णा, इयरपइवर, सूरिपज्जोयणस्स ।
असुण्पि वभिलच्छी, पयविहिसमये, विक्ख से माविभसो,
एव खिण्ण गुरू जो, कलिअ छ विगई, भत्तभिक्ख चयीअ ॥९९॥
(सद्धरा)

दट्ठु ज पउमाइसेविअपय, सक्ख थिजुत्ती अय,
एव कोऽवि विमूढसकिअमणो, ताहिं णरो सिक्खिओ ।
णड्डूलक्खपुरत्थिओ वि सरये, वारीअ सतित्थवा;
जो सागभरिपट्टणुत्थमरय, तत्थुल्लसद्धत्थणा ॥१००॥
(सद्दूलविक्कीडियं)

तेवीसमो जुगवरो, स वायणायरिअरेवतीमित्तो ।
वीराऽहेऽस्स जणी जिण कमलअत्रत्थाऽलिपयइ३९सखे ॥१०१॥
(पच्छापुव्विगा मुहचवलाज्जा)

गेण्हीअ स दिक्ख णो-ऊसायमहजागवइरकोण (६५९) मिए ।
जुगपवरो खगिहरसे (६८९), खमिओ णगलोगपालणये (७४८) ॥१०२॥
(पच्छाज्जा)

पेऊससुव्व सोम्मो, स णयइ हरिस, माणदेवाहिवस्स,
वत्ती पट्टहिसिंगे, भविगणजलहिं, माणतु गक्खसूरी ।

तत्पट्टसागरविधुः[७४] कमलाख्यसूरिः, लोके सदा जयतु निःस्पृहतापयोधिः ।
चारित्ररोहणगिरिः शमभृद्वरेण्यः, विश्वश्रुतो विबुधलोकसमर्च्यपादः ॥२८॥ (वसन्ततिलका)★

यः पट्टे परमेष्ठिपोटकमिते श्रीवर्धमानप्रभोः;
आद्योऽभूत् कमलाख्यसूरिनृपतेः पट्टाधिराज्येश्वरः ।
चित्रश्रेष्ठचरित्रवीरविजयो- पाध्यायशिष्याग्रणीः; ।
स श्रीमान्[७५] विजयादिदानमुनिपो भूयात्सदा श्रेयसे ॥२९॥ (शार्दूलविक्रीडितम्)

यो विस्तीर्णतपाख्यगच्छखचरो, यं साधुपादाः श्रिताः;
येन प्रोल्लसिता च भव्यनलिना, यस्मै नमः सर्वदा ।
यस्मान्नश्यति भीतपापतिमिरो, यस्याद्भुतं ज्योतिषं;
यस्मिन् स्फारमतिप्रभा विजयते, सूरिः स दानाभिधः ॥३०॥ (शार्दूलविक्रीडितम्)

विस्तीर्णे हि तपाख्यगच्छगगने, साधुग्रहाद्यैर्वृतः;
आह्लादीकृतसद्गुणौघजलधिः, संरुद्धमिथ्यातमः ।
भव्यप्राणिकुवेलबोधरसिको, ज्ञानप्रकाशान्वितः;
चन्द्रो-ऽप्यस्ति स निष्कलङ्कचरणः,[७६] श्रीप्रेमसूरीश्वरः ॥३१॥ (शार्दूलविक्रीडितम्)

विस्तीर्णव्रतिभावलीप्रकलितो, दुर्वादिघूकार्त्तिदः;
घोराज्ञानतमोविनाशनकरो ज्ञानादितेजोयुतः ।
भव्याम्भोजविबोधनैकचतुरो, दीप्रस्तपःसंयमैः,
श्रीमद्दानमुनीशपट्टगगनेऽभूत्प्रेमसूरी रविः ॥३२॥ (शार्दूलविक्रीडितम्)

+पन्न्यासस्तद्विनेयो, विजयपदयुतः, सोऽस्ति[७७] हेमन्तनामा;
वैराग्याबारपारो, विदितसुचरणो, लब्धगीतार्थरेखः ।
प्राज्ञेशो दीर्घदर्शी, सुगहनविषये-ऽपि प्रकृष्टप्रभावः;
कर्त्तव्ये गच्छसत्के, भवति बहुविधे, यो महामन्त्रिकल्पः ॥३३॥ (स्रग्धरा)

तच्छिष्यः सिद्धान्तज्योतिषशास्त्रनिपुणस्तपश्चारी ।
व्याकरणप्रकरणवित् प्रशान्तमूर्तिर्जिताक्षगणः ॥३४॥ (पथ्यार्या) ×

पित्रनुजः स[७८] मुनिललितशेखरविजयो गुरोरपि गुरुर्मे ।
गुरुवैयावृत्यकरः परोपकाररसिको जयतु ॥३५॥ (पथ्यार्या) × (युग्मम्)

+ मुद्रणकालापेक्षया पुनरिद चरणमिह शोध्यम्-तच्छिष्य पट्टशोभी, विजयपदयुतो, हीरसूरीश्वर स,

वीराऽग्गिणिहिहयेण७९३ऽद्दे, जाओ सो दिक्खिओ हयब्भमयेद०७।
रागयणिहे ८२६ जुगवरो, हवीअ खमिओ जुगणहके ९०४ ॥११५।
(पच्छापुव्विगातचवलाज्जा)

रिद्धि पर णयीअ सूरिजयदेवपट्टसिरिं
देवाणंदसूरिवरो जह वरदुमगणो गिरिं ।
जस्स पसरिअकित्तिअच्छायणेण छण्णामरा,
ण हवन्ति लोगाण चम्मच्छीण णयणगोअरा ॥११६॥
(कुसुमिया)

सिरिमल्लवाइसूरी, तया हवीअ महवाइजिअबोद्धो ।
कत्ता सम्मइटीगा पम्हचरित्तणयचक्काण ॥११७।
(पच्छापुव्विगा मुहचवलाज्जा)

छव्वीसमो जुगवरो, स वायणायरिअभूअदिण्णगुरू ।
वीराऽस्स जोगिणीवसुद६४-सखे वासे हवीअ जणी ॥११८॥
(पच्छाज्जा)

करिदससिद्धिसिंदुर८८२-मिए लहीअ स वय जुगपहाणो ।
पुरिसत्थबिंदुतत्ते ६०४, रामागम्मविलयाखगे ९८३ खमिओ ॥११९॥
(पच्छागीई)

सीअसू वासतेइं, सप्पिय णादएव्व,
जो देवाणदसूरि--स्सामिणो पट्टलच्छि ।
हतुं किं मोहसेण, विक्कमो देहधारी,
सो सूरी विक्कमक्खो, दाउ सोक्ख भवाण ॥१२०॥ (लच्छी)

सिरिसिवसम्मायरिओ, कम्मपयडिबधसयगणिम्माआ ।
विज्जाही पुव्वहरो, जयउ तयाऽणेगवायलद्धजयो ॥१२१॥
(पच्छागीई)

सिरिचदरिसिमहत्तर-गुरू जयउ पचसगहक्खं जो ।
गथं रयीअ सगह-रूव पचसयगाईण ॥१२२॥
(पच्छाज्जा)

स आगमविदो णरसिहसूरी, हवीअ सिरिविक्कमसूरिपट्टे ।
अमुस्स उवएसगिराअ जक्खो, चयीअ णरसिंहपुरम्मि मासं ॥१२३॥
(कोल)

पंचासो तमसिंधुरम्मि तिलगं, खोमाणरायण्णये,
सो आसी णरसिंहपट्टकमले, सूरी समुद्दाभिहो ।

द्रव्यसहायकः

पूर्वार्धे

शेठ मोतीशा लालबाग जैन चेरीटीझः

उत्तरार्धे

दशा पोरवाड जैन संघः



भव्यानां परमानन्द-कन्दोद्भेदनवाम्बुदः ।
स्याद्वादामृतनिस्यन्दी शीतलः पातु वो जिनः ॥ (अनुष्टुप्)

दशापोरवाड जैनसंघव्यतिकरस्त्वेवम्—

अत्र भारते गुर्जरसंज्ञको देशो बुद्धिमत्तादिगुणगौरवेण तिरस्कृतसकलदेशो वर्तते । तस्मिन् च शिरोभूषणमिवा-ऽहमदावादाख्यः पाटनगरोऽस्ति । तस्यैकदेशरूपा दशापोरवाडसोसायटी विद्यते।

तत्र च पूज्यसिद्धिसूरीश्वर(बापजी)हस्तसरोजवासनिक्षेपपूर्वकेन मणिलालसूनुना 'बकुभाइ'संज्ञकेन श्राद्धवर्येण विक्रमसंवदङ्का-ङ्क-खग-रस१९९६प्रमाणे वर्षे जिनालयस्य शीलास्थापनविधिः कृता । तस्मिन् च जिनालये पूज्यप्रेमसूरीश्वरैः पूज्यरामचन्द्रसूरीश्वरैश्च कोल्हापुरनगरे कृतप्राणप्रतिष्ठानि नगनिधिनन्दशितांशु१९९८प्रमिते वैक्रमवर्षे पूज्यसिद्धिसूरीश्वरैः प्रतिष्ठापितानि शीतलनाथ-महावीरस्वामी-पार्श्वनाथानां बिम्बानि, पूज्यरामचन्द्रसूरीश्वरैः पावापुर्यां नगर्यां कृताऽञ्जनशलाके विक्रमाब्दे शिखि वसुधा विष्णुपद-नेत्र२०१३ सङ्ख्ये पूज्यमनोहरसूरीश्वरैः कृतप्रतिष्ठे वासुपूज्यस्वामि मुनिसुव्रतस्वामिबिम्बे, पूज्यरामचन्द्रसूरीश्वरैः सावरकुण्डलायां नगर्यां विहितप्राणप्रतिष्ठे वैक्रमे शरदि रस-रामसुत-बिन्दु-कर२०२६-मिते पूज्यकस्तूरसूरीश्वरैः प्रतिष्ठे सुविधिनाथा-ऽनन्तनाथसत्के बिम्बे चेति सर्वसङ्ख्यया सप्त बिम्बानि पाषाणमयानि सन्ति । शीतलनाथप्रभुप्रतिमा च मूलनायकत्वेन वर्तते ।

दशापोरवाडसोसायटीजैनसंघस्थापना पुनर्विक्रमसंवद् गुण-चन्द्र-नभो-हस्ताङ्किते२०१३ वर्षेऽजायत। तेन श्रीदशापोरवाडसोसायटीजैनसंघेन दशसहस्ररूप्यकव्ययेना ऽयं ग्रन्थो मुद्रापितः ।
रदना-ऽऽकाश-नेत्र२०३२प्र-मिते वैक्रमवत्सरे । प्राकाश्यमुपनीतोऽयं, ग्रन्थो हर्षातिरेकतः ॥१॥
(अनुष्टुप्)

॥ शुभं भूयात् ॥

पावीअ मंदविगय सुइसूरिमत, जो विस्सविस्सुअजसो तवसबिकास्सा
॥१३५॥　(वसततिलगा)

जयउ हरिभद्दसूरी, तया पहावी अपुव्वमइपइहो ।
जलआसयजललआसय-मणुगथयरो विजिअबोद्धो ॥१३६॥
(पच्छाज्जा)

वासे लहीअ सग्ग, सो तक्किकमोलिभूसणो वीरा ।
सरिसुसमबुहपमाणे, बाणगयासुगमिए भूवा ॥१३७॥
(पच्छाज्जा)

जुगपवरो तीसइमो, **जिणभद्दगणी** गुरू खमासमणो ।
जयउ तयागमवाई, कत्ता झाणसयगाइगथाण ॥१३८॥
(पच्छागीई)

हरसयसये जुएऽद्दे-ऽस्स जणी रुद्दे हि१०११भावणाहि१०२५ वय ।
सरिसूहि१०५५ हवीअ स जुग-पवरो खमिओ य सिद्धगणे१११५ ॥१३६॥
(पच्छाज्जा)

समाणदेवाभिहसूरिपट्टे, राईअ सूरी विबुहप्पहक्खो ।
भव्वज्जबोधेकविभावरीसो, पावीअ सिट्ठ विबुहप्पह जो ॥१४०॥
(उवजाई)

हेमगिरिम्मि पडुगवणमिव दिप्पए, **जयाणदसूरी** सो विबुहपहपए।
अगाधमज्झो समयद्धी वित्तिण्णो, अभगभगो गहणो जेणुत्तिण्णो ॥१४१॥
(आवली)

आसी स **साइसूरी**, तयाणि इगतीसमो जुगपहाणो ।
जम्मोऽस्स खसिद्धिजुए १०८०, वीरा-ऽद्दे सभुकण्णसये ॥१४२॥
(पच्छापुव्विगा मुहचवला अज्जा)

सकरसयम्मि११०० दिक्खा, परमाहम्मिअमहीसर१११५पमाणे ।
स हवीअ जुगपहाणो-ऽब्भतत्तसद्धपडिमे ११६० खमिओ ॥१४३॥
(पच्छाज्जा)

मंमथो तिरक्कओ सिरीए, जस्सगस्स हवीअ कि अणगो ।
जयउ जयाणन्दसूरिपट्टे, **रविपहसूरी** सो गणस्स सामी ॥१४४॥
(ओवछदसय)

णड्डूलपुरम्मि कया, जेण सिरिणेमिचेइअपइट्ठा ।
भूवा सत्तसयेऽद्दे७००, वीरा गुरुपयजिणाहिअसहस्से११७० ॥१४५॥
(पच्छागीई)

उत्तिण्णसत्तजलही, स जयउ **आयरिअसिद्धसेणगणी** ।
जो तक्किकमोलिमणी, रईअ नत्तत्थटीगाई ॥१४६॥
(पच्छाज्जा)

अथ

पञ्चदश

परिशिष्टानि

सिरिधम्मरिसी सूरी, आसी पणतीसमो जुगपहाणो ।
किरियाठाणसयेऽहे, वीरा जम्मोऽस्स मावणाहि १३२५ जुए ॥१५८॥
(पच्छागीई)

चत्ताअ१३४० जुए स वय, लहीअ अहिभम्मि लेसकट्ठाहिं १३६०।
होसी जुगप्पहाणो, रयणसये देवलोगमिओ ॥१५९॥
(पच्छाज्जा)

अत्तीअ गोवगिरिमाणववासओ जं,
सज्जं जिअम्मि सइ ही विसमे वि वाए
सो माणदेवपयपम्हमलकरीअ,
कल्लाणसिद्धिविमलिंदुगुरू विहुव्व ॥१६०॥
(वसततिलगा)

गग्गरिसिसूरिसीसो, पहावगो आसि सिद्धरिसिसूरी ।
उवमिइमवप्पपच-क्खमहकहाईण णिम्माआ ॥१६१॥
(पच्छापुव्विगा मुहचवलाऽज्जा)

गणाहिवो आसि विमलिंदुसूरिणो,
पए स उज्जोअणमुणीसवासओ ।
उवस्समाणो मुणिसयेहि तीहि जो,
वडक्खगच्छस्स हि अवीअभूसणो ॥१६२॥
(मजुभासिणी)

सोम्मं सोम्मेण खम, खमाअ थिरयाअ जयइ मेरुगिरिं ।
गभीरत्तेणुअहिं, सरीरलच्छीअ काम जो ॥१६३॥
(पच्छाज्जा)

वीरा इदसर १४६४ मिए, वासे भूवा जुगकतत्त ६६४ मिए ।
अव्बुयगिरिजत्तत्थ, समागओ पुव्वभूमीओ ॥१६४॥
(पच्छाज्जा)

टेलीपट्टणसीमसठिअविह--ण्णग्गोहऽहो जो तया,
ठासी सीअपए मुहुत्तमतुल, णाऊण सूरी अड ।
साहाईहि विहव्वस्स व जओ, वड्ढी भवित्थाऽमुणो,
णाम तस्स बिहग्गणो वडगणो, वा वुड्ढगच्छो तओ ॥१६५॥
(सद्दूलविक्कीडिय। (जुग्ग)

जेट्ठ गगणी सूरी, हवीअ छत्तीसमो जुगपहाणो ।
वीराऽहेऽस्स जणी णह-पासफणिफणाइमजिणभवे १३७० ॥१६६॥
(पच्छाज्जा)

प्रथमं परिशिष्टम्

मूलगाथा

इह भरहे चउवीसा, अरहा अवसप्पिणीअ एआए ।
जाआ धम्मागरा, अउलबला ते जयन्तु जगे ॥१॥ (पच्छाज्जा)

सिरिणाहुव्भववस-व्वोमाइच्चो अण्णाणतमघाई ।
जयउ कुणयपकहरो, जिणीसरो बोहिअभवज्जो ॥२॥ (पच्छाज्जा)

विस्सेऽखिले पहिअविस्सठिईअ कत्ता,
लोगीसरो चउमुहो सिरिणाहिजम्मो ।
मे दाउ सोक्खमजिओ पुरिसुत्तमो सो,
कदप्पदप्पजइसव्वविओ विसको ॥३॥ (वसततिलगा)

कामग्घो रित्तदोसो, अहतरुदहणो, जो मिअङ्को वि सामी,
जेणोगस्सिं भवेऽत्त, परमपयदुग, चक्कितित्थंयरक्खं ।
माहप्पा जस्स सत, पुरगयमसिव, गब्मआयायमेत्ता,
कम्मारी जेण सता, स खलु हवउ वो, सतिदो सतिणाहो ॥४॥
(सद्धरा)

जेण पाणिगहच्छला पावभवी-पीईअ राईमई,
सकेअ करिऊण मुत्तिगमणे, मुक्खा कया साहुणी ।
जाओ जस्स हरि त्ति सत्थगऽमिहो, बाहासिहाए हरी,
भव्वाण वितरेउ मगलसिरिं, सो नेमिणाहो जिणो ॥५॥
(सद्दूलविक्कीडिय)

जेण झाणाउहेणा-ऽभिअवलवइणा, णासिओ कम्मपासो,
आही जो सव्ववेई, सुरअसुरणर-स्सामिसघातपासो, ।
जक्खो पायज्जजुग, भवजलहितरिं, जस्स सेवीअ पासो,
भव्वाण विग्घवुद, हरउ दुहयर, तित्थणाहो स पासो ॥६॥
(सद्धरा)

सिरिवीरो चरणगुलेण फुसिअं, कम्पीअ देवायल,
हरिसक अवणोइउ जणिमहे, उप्पण्णमेत्तो वि जो ।
जयए जस्स दुहाकुले कलिजुगे, णिव्वाणद सासणं;
मम सो दाउ सिवं भवज्जतरणी, तूईसरो अंतिमो ॥७॥
(मत्तेहविक्कीडियं)

वीरा जेहिं, गहिअ तिवइं, गुम्हिआ बारसगी;
पट्टो वीर-ज्जुमणिउदये, जाणऽणाण धयारो ।

जयउ **महिंदायरिओ**, पट्टावगो **सोहणो** य तस्सीसो ।
पण्णू **सूरायरिओ**, जयउ विजिअमोअरायसहो ॥१७८॥
(पच्छाऽज्जा)

सिरिधम्मघोससूरी, जुगपवरो अट्ठतीसमो होसी ।
से जणण वीरा-ऽद्दे, रज्जगजिणज्जपिण्डपयडि १४९७ मिए॥१७९॥
(पच्छागीई)

दिक्खाऽणुत्तरणइतिहि १५०५-सखम्मि हवीअ सो जुगपहाणो ।
अगुलिसिद्धे १५२० खमिओ, पव्वयवलिकम्मभूमि १५९८ मिए॥१८०॥
(पच्छाऽज्जा)

सव्वदेवक्खसूरिंदो, पट्टम्मि देवसूरिणो ।
जणप्पिओ विराईअ, पम्हव्व पउमागरे ॥१८१॥
(अणुट्ठुभ)

मूलऽट्ठकम्मसत्तू, जेउ णूण महाभडा अट्ठ ।
अट्ठ जसोभद्दाई, सूरी तेण विहिआ सपए॥१८२॥
(पच्छाऽज्जा)

तुलना करेहि दढमिव, **सूरिजसोभद्दणेमिचदेहि** ।
आलिद्धा पट्टकणी, सूरीसरसव्वदेवस्स ॥१८३॥
(पच्छाऽज्जा)

आसि **सिरिविणयमित्तो**, गुणचत्तालीसमो जुगपहाणो ।
तस्स जणी वीराऽद्दे, हलिदिक्कुमरीरसा१५६९सखे ॥१८४॥
(पच्छाऽज्जा)

जिणपम्हवसणजोगे १५७६, स वय गेण्हीअ आसि जुगपवरो ।
चज्जणरखगससिकले १५६८, सग्गमिओ जीवजोणिलक्खणिवे १६८४॥
॥१८५॥ (पच्छागीई)

सिरिअभयदेवसूरी, जयेउ लोए पावगविच्तियरो ।
स गओ तिदिव भूवा, रसदहणगिरीस ११३५ । ११३९ मिअवासे॥१८६॥
(पच्छापुव्विगा मुहचवलाऽज्जा)

लिसीअ कालणेमिरिउव्व जो सूरिंदाण,
पट्टाद्धितणाय जसोभद्दणेमिचदाण ।
जस्स मणीसाअ खलु पराजिओ विबुहसूरी,
भवाण दिम्मउ सिव सो **मुणिचदक्खो** सूरी ॥१८७॥
(ललिया)

जो सविग्गसिरोमणी छ विगई, साहूसवतो चिअ,
भूखडा व्व चयीअ चक्किणिवई, देहे वि चत्तच्छिहो ।

तव्वट्ट, पहवपट्ट णयीअ सोहं;
भूवालो णिअपिउणो णिवासण व्व ।
चोरेसो वि भविजणाण दावसी जो;
सत्थेसो इव सिवलच्छिमेत्थ चित्त ॥१८॥ (पहम्सिणी)

थुव्वइ पभवपहुस्स किं-मपुव्वभग्गणिहिणो अहोभग्ग ।
हरिउ गओ जडसिरिं, जा ता लहइ स अपुव्वचरणसिरिं ॥१९॥
(पच्छागीई)

स गिहेऽणंगदसाऽद्दा, कहंगपमिआ वये जुगपहाणे ।
अगमिआ ठाउ ख, वीरसिवाऽद्दे सरिसिसखे ॥२०॥
(पच्छाज्जा)

विस्सक्खायवरो पएऽस्स स पहू, सोहीअ सय्यभवो,
णिक्कासीअ मुणिंदुसेअवयसा, सच्चेसणे तप्परो ।
जूवाहत्थिअसंतिणाहपडिम, वेरग्गसमवुहिं;
मोक्खाऽद्धादरिस धराअहठिअं, गिहाण व्व जो ॥२१॥
(सद्दूलविक्कीडिअं)

दसजुअं कयं, जेण वेआलिय; मनक्कसूणुणो, सत्थमोगाहिउं ।
जह णरायणो, अवुहिं मंथिउ; अमरससिणो, उद्धरीआमय ॥२२॥
(मेहावली)

वीरसिवाऽस्स जणी रस-विस्स (३६) मिएऽद्दे वय जुगग(६४)मिए ।
स जुगपहाणो भूइसि-(७५) मिए गओ दिवमिहणिहि (९८) मिए ॥२३॥
(पच्छाज्जा)

जसोभद्दो सूरी, स जयउ पए से गणवई,
जसोवण्णेण से, सइ सयललोगे धवलिए ।
हरी अद्धि सभू, रयणगिरिमिंदो करिवर;
विहु राहू हस, विसमविसिहो मग्गइ अहो ॥२४॥
(सिहरिणी)

तस्य जनी वीराद्दे, दोचक्कि ६२ मिए वय जुगिह ८४ सखे ।
स जुगपहाणो वसुणिहि ९८-मिए दिवमिओ गयमणु १४८ मिए ॥२५॥
(पच्छाज्जा)

अज्जो तस्स पए हवीअ विजओ, सभूअपुव्वो गुरू;
कम्हेण अमुणो पयावमुवमी कत्तुं कयो तावणो ।
जस्सऽस्सहहणिग्गआ वयणई, भव्वाहपंकावहा;
देवीगीअजस धरीअ कमणो, सोउ च्च अट्ठसुइ ॥२६॥
(सद्दूलविक्कीडिअं)

कोडितिगसिलोगाण, कत्ता जो सिद्धरायभूवस्स ।
पडिबोहगो तहा णिव-कुमारपालपमुहाण पि ॥१९९॥
(पच्छापुव्विगानचवलाज्जा)

वायरणकव्वकोस--च्छंद--अलंकारलिंगपमुहाण ।
विसयाण जेण रइआ, गथाऽणेगा विउलमइणा ॥२००॥
(पच्छाज्जा)

जम्मोऽस्स विक्कमाऽद्दे, जमसुरभीमे ११४५ वय खपयरहरे ११५० ।
सूरी स गुणंगुग्गे११६६, णिहिसुइचक्किम्मि १२२९ सग्गमिओ ॥२०१॥
(पच्छाज्जा)

स सिरिमलयगिरिसूरी, पुज्जो भव्वाण दिसउ परमसिव ।
बहुगथसुबोधविसय-टीगारयणाइ लद्धवरो ॥२०२॥
(पच्छाज्जा)

सेलेसो जवुदीवे, व अजिअदेवमुणिंदुणो पए,
सूरी वाईइसीहो, स विजयसिहगुरू विभाभसी ।
बभ पालीअ रूवे, मयणसमो वि जिइदियो गुरू,
जो णिस्सगो तवस्सी, भविदुहतावसुहायरो विहू ॥२०३॥
• (माहवीलया)

हरन्तु ते भवीण भवदुक्ख जे सोहीअ गणहरा,
विजयसिंहगुरुपयबभीअ दुवे मिव घणपयोहरा ।
तह पढमो सयत्थिगो खाओ सोमप्पहमुणीसरो,
बीओ सघवच्छलो सोम्मो य मणिरयणमुणीसरो ॥२०४॥
(दोवई)

चत्तालो जुगपवरो, हवीअ सिरिसीलमित्तसूरिवरो ।
वीरा विज्जादेवी-सये जुएऽस्स तिसरेहि १६१३ जम्मोऽद्दे ॥२०५॥
(पच्छागीई)

इत्थीकलाहि १६६४ दिक्खा, मेरुवणकरीहि १६५४ आसि जुगपवरो ।
स सलागापुरिसुत्तम-सजममाणम्मि सग्गमिओ ॥२०६॥
(पच्छाज्जा)

रुद्धन्तण्णू गणिंदो, जिअकरणगणो, जो दुतीसा गणिंदा,
वाए आसवराण, विजइअ विरुद, पत्थिवा होरलत्ति ।
रम्म चारित्तलच्छि, वरइ मुणिहरी, मथिउ जो सुअहि,
होसी वीरप्पहूओ, ककुहुदहिपए, सो जगच्चदसूरी ॥२०७॥
(सद्धरा)

जो संपई भूमिवई विहार, मुणीण कारीअ अणज्जदेसे ।
तिखडभूमिं जिणमदिराण, सपाअलक्खेण अलकरीअ ॥३७॥
(उवजाई)

काराविआ णिवेण, वीआगमवायणा अवतीए ।
णिग्गथाण परिसं, मेलिय तेण सुअरक्खत्थ ॥३८॥
(पच्छाउज्जा)

महगिरिणो वाणिदे १४५, वीरसिवाद्दे जणी सरिसिकु १७५-मिए ।
दिक्खा स जुगपहाणो, तिहिहत्थे २१५ दिवमिसुजिण २४५ मिए ॥३९॥
(पच्छाउज्जा)

जम्मो सुहत्थिणोऽद्दे, कुणिहिविहु १६१ मिए वय खगकरथणे ।
जुगपवरत्त सरजिण २४५-मिए दिव भूणिहिसय २९१ मिए ॥४०॥
(पच्छाउज्जा)

अज्जसुहत्थिगुरुं जा, हवीअ गच्छाहिवा च्च आयरिआ ।
सव्वे जुगप्पहाणा, पुव्वहरा वायणादाऊ ॥४१॥
(पच्छाउज्जा)

सूरिमतस्स जवकोडिओ, गच्छणामो जओ कोडिओ,
णिग्गओ इक्खुगहणा जिणा, आइमिक्खागुवसो जहा ।
लोअणाइ मिव सुहत्थिणो, पट्टवत्तम्मि सोहीअ जे,
सुट्ठिअवखो सुपडिबुद्धगो, ते गुरू दिन्तु भव्वाण स ॥४२॥
(वल्लकी)

वीराऽग्गिजुगकर २४३ मिए-ऽद्दे सुट्ठिअसूरिणो जणी दिक्खा ।
गइणक्खत्ते २७४ सूरी, कुणिहिकरे २९१ स खगवण्हिवस्से ३३६ ख ॥
॥४३॥ (पच्छागीई)

कुमरगिरिम्मि मुणीण, तइआगमवायणा उ सिं काले ।
सुअसगहस्स काराविआ कलिंगणिवभिक्खुराएण ॥४४॥
(अतविपुलाजहणचवलागीई)

सिरिगुणसुन्दरसूरी, एगारसमो तया जुगपहाणो ।
वीरसिवाऽद्दे जिणवय-गुणथणसखेऽस्स आसि जणी ॥४५॥
(पच्छाउज्जा)

णदुज्झायगुरुणमिए, स दिक्खिओ भूमिगहमुजपमाणे ।
होसी जुगप्पहाणो, सग्गमिओ विसयमुइकाले ॥४६॥
(पच्छाउज्जा)

अज्जमहागिरिसीसा, बहुलबलिसहा उ वायणायरिआ ।
आसि जमलमाऊ तो, वायगवरसाइसूरीसो ॥४७॥
(पच्छाउज्जा)

कोडितिगसिलोगाणं, कत्ता जो सिद्धरायभूवस्स ।
पडिबोहगो तहा णिव-कुमारपालपमुहाण पि ॥१९९॥
(पच्छापुव्विगानचवलाज्जा)

वायरणकव्वकोस--च्छद--अलकारलिंगपमुहाण ।
विसयाण जेण रइआ, गथाऽणेगा विउलमइणा ॥२००॥
(पच्छाज्जा)

जम्मोऽस्स विक्कमाऽद्दे, जमसुरभीमे ११४५ वय खपयरहरे ११५० ।
सूरी स गुणगुग्गे११६६, णिहिसुइचक्किम्मि १२२९ सग्गमिओ ॥२०१॥
(पच्छाज्जा)

स सिरिमलयगिरिसूरी, पुज्जो भव्वाण दिसउ परमसिव ।
बहुगथसुबोधविसय-टीगारयणाइ लद्धवरो ॥२०२॥
(पच्छाज्जा)

सेलेसो जवुदीवे, व अजिअदेवमुणिंदुणो पए,
सूरी वाईहसीहो, स विजयसिहगुरू विभाअसी ।
बभ पालीअ रूवे, मयणसमो वि जिइदियो गुरू,
जो णिस्सगो तवस्सी, भविदुहतावसुहायरो विहू ॥२०३॥
• (माहवीलया)

हरन्तु ते भवीण भवदुक्ख जे सोहीअ गणहरा,
विजयसिंहगुरुपयवभीअ दुवे मिव घणपयोहरा ।
तह पढमो सयत्थिगो खाओ सोमप्पहमुणीसरो,
बीओ सघवच्छलो सोम्मो य मणिरयणमुणीसरो ॥२०४॥
(दोवई)

चत्तालो जुगपवरो, हवीअ सिरिसीलमित्तसूरिवरो ।
वीरा विज्जादेवी-सये जुएऽस्स तिसरेहि १६१३ जम्मोऽद्दे ॥२०५॥
(पच्छागीई)

इत्थीकलाहि १६६४ दिक्खा, मेरुवणकरीहि १६५४ आसि जुगपवरो ।
स सलागापुरिसुत्तम-सजममाणम्मि सग्गमिओ ॥२०६॥
(पच्छाज्जा)

रुद्धन्तण्णू गणिंदो, जिअकरणगणो, जो दुतीसा गणिंदा,
वाए आसबराण, विजइअ बिरुद, पत्थिवा होरलत्ति ।
रम्म चारित्तलच्छि, वरइ मुणिहरी, मथिउ जो सुअद्दि,
होसी वीरप्पहूओ, ककुहुदहिपए, सो जगच्चदसूरी ॥२०७॥
(सद्धरा)

जेण तइअपाहुडओ, पंचमपुव्वस्स दसमवत्थुस्स ।
रइअं कसायपाहुड-सुत्तं जयउ खलु स गुणधरसूरी ॥६०॥
(पच्छागीई)

स भवउ कालअसूरी, मम सिवदो गद्दभिल्लछेअयरो ।
जेण कयं महपव्वं, चोत्थीए पंचमीहिन्तो ॥६१॥
(पच्छाऽज्जा)

विज्जासिद्धो जेआ, धमणप्पबोद्धाण खउडसूरी सो ।
जयउ जगे तस्सीसो, महिंदसूरी वि सिद्धवज्झायो ॥६२॥
(पच्छागीई)

सिरिरुद्ददेवसूरी, जगे जयउ जोणिपाहुडसुअण्णू ।
सिरिसमणसिंहसूरी, णिमित्तविज्जापडू जयउ ॥६३॥
(पच्छापुव्विगा सव्वचवलाऽज्जा)

भणगो करगो झरगो, पहावगो जयउ वायणायरिओ ।
सिरिअज्जमगुसूरी, उत्तीणागाहसुअजलही ॥६४॥
(पच्छाऽज्जा)

स महाविज्जासिद्धो, अपुव्वसुयसागरो णहोगामी ।
जयउ महग्गुणी पण्णू, पालित्तो बालवयसूरी ॥६५॥
(पच्छाऽज्जा)

वुड्ढत्तेण वि जेण किय, सरस्सईअ लहिऊण कुसुमजुअं ।
मुसलं पि कयं खाओ, सो सूरी वुड्ढवाइ त्ति ॥६६॥
(पच्छाऽज्जा)

सीसो तस्स गुणणिही, महाकवी विततसासणपहावो ।
उत्तिण्णसमयजलही, पबोहगो विक्कमाइभूवाणं ॥६७॥
(पच्छागीई)

सिवलिंगफोडणं जो, विहाय कल्लाणमंदिरथवेणं ।
पयडीअ महपहावग-भवतिपासपहुणो बिंबं ॥६८॥
(मुहचवलापच्छाऽज्जा)

सम्मइतक्काइगपायगंथाण कारगो अणेगाणं
जयउ जगम्मि स सूरी, दिवायरो सिद्धसेनगुरू ॥६९॥
(पच्छाऽज्जा)

ताउ सिरिधम्मसूरी, हवीअ पंचदसमो जुगपहाणो ।
जम्मोऽस्स वीरमोक्खा, सयंकपावगरे१२पमासेऽद्दे ॥७०॥
(पच्छापुव्विगा महाचवलाऽज्जा)

विगइजुएऽहिसयमिए, गेण्हीअ वयं म खऽक्खगइ४५०माणे ।
जुगपवरो आसि गओ, सग्गं गोत्थणखगकसाये४६४ ॥७१॥
(पच्छाऽज्जा)

किं सोढु अखमो गुरूण विरहं, जाए गुरुस्सग्गये,
वस्से तेरसमे गओ सुरगइ, खेत्तक्खिविस्से १३२७ स वि ॥२१६॥
(सद्दूलविक्कीडिय)

जस्सऽद्धी भूवदेयं, मिव रयणुवदं, देइ वीईकरेहिं,
सीसाण पत्थणाए, रइअजलणिहि-स्थोत्तमतप्पहावा ।
जक्ख जिण्ण कवहिं, पुणुवइसिअ जो, पुव्वठाणे ठवीअ,
सूरी देविंदसूरि-प्पयखदिणमणी, धम्मघोसो स मासी ॥२१७॥
(सद्धरा)

जो वञ्कुज्जयिणित्थ, मताइपचडसत्तिहरजोगिं ।
कउवद्दवमुणिमद्दिदअ, मतेहि मुईअ णमिर त ॥२१८॥
(पच्छाज्जा)

साकिणिमुद्दडपट्ट, कयमतियखडगदाणसरभगा ।
दुट्ठित्थी थभिअ पुण, जेण दयाईहि मुत्ता ता ॥२१९॥
(पच्छाज्जा)

एकाअ चिअ णिसाए, जो किच्चाऽट्ठजमया जिणथुईए ।
वमीलद्धपसायो, गुज्जरसइव पवोहीअ ॥२२०॥
(पच्छाज्जा)

अहिदसाउ सदसिअ कट्ठभरत्थविसअगडसज्जतणू ।
पच्चूहे चयइ तओऽखिलविगई उग्गतेओ जो ॥२२१॥
(पच्छाज्जा)

जो पुहवीहरसड्ढ, पबोहिअ ससम्मवयगहणकाले ।
पडिसिज्झइ णियमत, लक्खमणड्ढ वि त तिकालण्णू ॥२२२॥
(पच्छागीई)

पच्छा स मालवीसर सचिवो जाओ कमा कुवेरुवमो ।
कयचुलसीइ८४जिणचइअ -गुरुप्पवेसाइबहुकज्जो ॥२२३॥
(पच्छाज्जा)

से भूवा वरिसम्मि तेरससये, वेएहि १३०२ जुत्ते वय,
जुत्ते वेअसमेहि १३०४। १३२३ वायगपय, सूरी जया सोयरो।
सूरी माउकुआहिए १३२७। १३२८ सगुरुणो, काला छमासतरे,
सविग्गो स सगोत्तसूरिविहिओ, से बधहेऊहि १३५७ ख ॥२२४॥
(सद्दूलविक्कीडिअ)

अग्घायुज्जलसजमत्थसुरहिं, सोमप्पहगुरु,
सूरिं थोअमि धम्मघोसमुणिवा-पट्टऽज्जभसल ।
गेण्हीअ च्च ण मतपोत्थयममू, चारित्तसुद्दणो,
अज्जज्जे वि गओ पहिक्कमिअ जो, णाएसपलयो ॥२२५॥

जेण तइअपाहुडओ, पचमपुव्वस्स दसमवत्थुस्स ।
रइअं कसायपाहुड-सुत्त जयउ खलु स गुणधरसूरी ॥६०॥
(पच्छागीई)

स भवउ कालअसूरी, मम सिवदो गद्दभिल्लछेअयरो ।
जेण कय महपव्व, चोत्थीए पचमीहिन्तो ॥६१॥
(पच्छाज्जा)

विज्जासिद्धो जेआ, धमणबोद्धाण खउटसूरी सो ।
जयउ जगे तस्सीसो, महिदसूरी वि सिद्धुवज्झायो ॥६२॥
(पच्छागीई)

सिरिरुद्ददेवसूरी, जगे जयउ जोणिपाहुडसुभण्णू ।
सिरिसमणसिहसूरी, णिमित्तविज्जापढ्डू जयउ ॥६३॥
(पच्छापुव्विगा सव्वचवलाज्जा)

भणगो करगो झरगो, पहावगो जयउ वायणायरिओ ।
सिरिअज्जमगुसूरी, उत्तीणागाहसुभजलही ॥६४॥
(पच्छाज्जा)

स महाविज्जासिद्धो, अपुव्वसुयसागरो णहोगामी ।
जयउ महगुणी पण्णू, पालित्तो बालवयसूरी ॥६५॥
(पच्छाज्जा)

वुड्ढडेण वि जेण किव, सरस्सईअ लहिऊण कुसुमजुअं ।
मुसलं पि कय खाओ, सो सूरी वुड्ढवाइ त्ति ॥६६॥
(पच्छाज्जा)

सीसो तस्स गुणणिही, महाकवी विततसासणपहावो ।
उत्तिण्णसमयजलही, पबोहगो विक्कमाइभूवाणं ॥६७॥
(पच्छागीई)

सिवलिंगफोडण जो, विहाय णामंदिरथवेणं ।
पयडीअ महपहावग-भवतिपासपहुणो बिंब ॥६८॥
(मुहचवलापच्छाज्जा)

सम्मइतक्काइगणय-गंथाण कारगो अणेगाणं
जयउ जगम्मि स सूरी, दिवायरो सिद्धसेनगुरू ॥६९॥
(पच्छाज्जा)

ताउ सिरिधम्मसूरी, हवीअ पचदसमो जुगपहाणो ।
जम्मोऽस्स वीरमोक्खा, सयंकपावगरे६२पमाणेऽद्दे ॥७०॥
(पच्छापुव्विगा महाचवलाज्जा)

विगइजुएऽद्दिसयमिए, गेण्हीअ वय म खऽक्कखगइ४५०माणे ।
जुगपवरो आसि गओ, सग्ग गोत्थणखगकसाये४६५ ॥७१॥
(पच्छाज्जा)

किं सोढुं अखमो गुरूण विरह, जाए गुरुस्सग्गये,
धस्से तेरसमे गओ सुरगइ, खेत्तक्खिविस्से १३२७ स त्ति ॥२१६॥
(सद्दूलविक्कीडिय)

जस्सऽद्धी भूवदेयं, मिव रयणुवद, देइ वीईकरेहिं,
सीसाण पत्थणाए, रइअजलणिहि-त्थोत्तमत्तप्पहावा ।
जक्ख जिण्ण कर्वाद्दि, पुणुवइसिअ जो, पुव्वठाणे ठवीअ,
सूरी देविंदसूरि-प्पयखदिणमणी, धम्मघोसो स मासी ॥२१७॥
(सद्धरा)

जो वज्झुज्जयिणित्थ, मताइपचडसत्तिहरजोगिं ।
कउवद्दवमुणिमद्दिअ, मतेहि मुईअ णमिर त ॥२१८॥
(पच्छाज्जा)

साकिणिमुद्धडपट्ट, कयमतियवडगदाणसरभगा ।
दुट्ठित्थी थभिअ पुण, जेण दयाईहि मुत्ता ता ॥२१९॥
(पच्छाज्जा)

एकाअ चिअ णिसाए, जो किच्चाऽट्ठजमया जिणथुईए ।
वमीलद्धपसायो, गुज्जरसइव पबोहीअ ॥२२०॥
(पच्छाज्जा)

अहिदसाउ सदसिअ कट्ठमरत्थविसअगडसज्जतणू ।
पच्चूहे चयइ तओऽखिलविगई उग्गतेओ जो ॥२२१॥
(पच्छाज्जा)

जो पुहवीहरसद्ध, पबोहिअ ससम्मवयगहणकाले ।
पडिसिज्झइ णियमत, लक्खमणड्ढ वि त तिकालण्णू ॥२२२॥
(पच्छागीई)

पच्छा स मालवीसर-सचिवो जाओ कमा कुबेरुवमो ।
कयचुलसीइन४जिणचइअ-गुरुप्पवेसाइबहुकज्जो ॥२२३॥
(पच्छाज्जा)

से भूवा वरिसम्मि तेरससये, वेएहि १३०२ जुत्ते वय,
जुत्ते वेअसमेहि १३०४। १३२३ वायगपय, सूरी जया सोयरो।
सूरी माउकुआहिए १३२७। १३२८ सगुरुणो, काला छमासतरे,
सविग्गो स सगोत्तसूरिविहिओ, से बधहेऊहि १३५७ ख ॥२२४॥
(सद्दूलविक्कीडिअ)

अग्घायुज्जलसजमत्थसुरहिं, सोमप्पहगुरु,
सूरिं थोअमि धम्मघोसमुणिवा-पट्टऽज्जभसल ।
गेण्हीअ च्चण मतपोत्थयममू, चारित्तसुइणो,
अज्जुज्जे वि गओ पडिक्कमिअ जो, णाएसपलयो ॥२२५॥
(सद्दूललललिअ)

वीराऽहे रसणिहिजुग (४९६)-मिए जणी से वय वलखअंगे (४९६।५०४)
मइगुणसघसरे (५४८) जुग-पवरो स दिव जुगगयसरे (५८४) ॥८३॥
(पच्छाऽज्जा)

चरमो अवि दसपुव्वी, सो दसपुव्वीण अचरमो जाओ ।
तो वुच्छिण्णाणि तुरिअ-आगिइसघयणदसमपुव्वाणि ॥८४॥
(पच्छागीई)

आसी तयाऽज्जरक्खिअ-सूरी गुणवीसमो जुगपहाणो ।
जेण विहत्तो चउहा, अणुओगो कालमासिज्ज ॥८५॥
(पच्छाऽज्जा)

वीरा सवसमखेऽहे, जम्मोऽस्स वय च वेअवेअसरे ।
थमिहसरे५८४जुगवरो, स गओ दिवमस्सणिहिभूए५९७ ॥८६॥
(पच्छाऽज्जा)

तो वीसमो जुगवरो, दुब्बलिआपुप्फमित्तसूरिवरो ।
जम्मोऽस्स वीरमोक्खा-ऽहे णहसायवविसयि५५०मारो॥८७॥ (पच्छाऽज्जा)
गेण्हीअ स पव्वज्ज, सायरपज्जत्तिहरमुह५६७पमारो ।
जुगपवरोऽस्सणिहिसरे ५९७,हवीअ सजमरिउम्मि६१७दिव ॥८८॥
(पच्छाऽज्जा)

अइकुसलं रयणत्तय-पचाचारेसु वायणायरिअ ।
नमिऊणत्थवकारं, वदे त णविलायरिअ ॥८९॥
(पच्छाऽज्जा)

रिउजयस्स णिवस्स सेणाअ इवंगचउक्क,
हवीअ जस्स णिजचउविणेयाण कुलचउक्कं ।
जयउ वइरसेणो स णिवइणा मिव रज्जधुरा,
ऊढा जेण पहुणा वज्जसामिपट्टधुरा ॥९०॥
(चदलेहा)

वीराक्खिणिहिजुगे ४९२ ऽहे , जाओ सो दिक्खिओ कुगगणसरे ५०१ ।
सजमरसे ६१७ जुगवरो, हवीअ खमिओ णहगुहसुहे ६२० ॥९१॥
(पच्छापुव्विगा अतचवलाऽज्जा)

ताउ अखिलकम्मविसय णाणहरो णागहत्थिसूरिवरो ।
बावीसमो जुगवरो, जयउ जगे वायणायरिओ ॥९२॥
(पच्छापुव्विगा जहणचवलाऽज्जा)

वीराऽग्गिहयसरे ५७३ऽहे , जाओ सो दिक्खिओ करकसरे ५९२ ।
णहविगइम्मि६२० जुगवरो, आसि दिवमिओ णिहिगयरसे६८९॥९३ ।
(पच्छाऽज्जा)

मंदरणगे सुरतरुव्व सोहीअ विग्घहरो,
पट्टम्मि वइरसेणस्स स चदसूरीसरो ।

जो बालो वि अबालतेअणियरो, जो वाइतुलासुगो,
रायच्चो सुगुणेहि गोयमतुलो, वित्तिण्णकित्तिव्वजो ।
से जम्मो तणुकडविस्स १३५५ वरिसे, णदगविस्से १३६६ वय,
सूरी सो जयसन्तिणाहिअभवे १३७३, झाणहिलोए १४२४ दिव ॥२३६॥
(सद्दूलविक्कीडिअ)

卐 सुरगइसमयेऽस्स पसिअ, सुरकयउज्जोयणाइमहिममहो ।
सग्गागय विमाण, गुरुणोऽस्स त्ति भणिअ जणेहि तया ॥२३७॥
(पच्छागीई)

जत्तावतिण्णदेवो, भणीअ मेरुम्मि मे सुरेहि सुअ ।
सोहम्मिदसमाणा, जाएए सिरितवायरिआ ॥२३८॥
(मुहचवला पच्छाज्जा)

से कि बोधिउमेगया तिभुवण, जाआ तिसीसुत्तमा,
तत्थऽज्जो सिरिचदसेहरगुरू, सूरी तिविज्जबुही ।
सिस्सज्झावणपेसलो सुचरणो, मोहागछेएगिहो,
सोम्मद्धी कइलोगमोययकिई, सो देउ सघस्स स ॥२३६॥
(सद्दूलविक्कीडिय)

विहुवभवविस्सेऽद्दे १३७३, जम्मोऽस्स वयमिसुपीलुवसहभवे १३८५ ।
सूरी पविरसविस्से १३६३, स गओ ख सल्लिहरयसरे १४२३ ॥२४०॥
(पच्छाज्जा)

बीओ य जयाणदो, सूरी णाणंबुही सुचरणणिही ।
खदिवपिहुवुद्दे १३८० स्स जणी, वासे दिक्खाऽक्खिवहरिविस्से १३६२॥
॥२४१॥ (पच्छाज्जा)

सो सूरी णहरयणे १४२०, वासे सग्ग गओ कुवेदिंदे १४४१ ।
सिरिदेवसुदरगुरू, तइओ आसि जुगपवरसमो ॥२४२॥
(पच्छाज्जा)

सव्वधरणिणाहो व सचिअसेणाणीणिवसामताईहिं,
परिवरिओ भासी सूरिउवज्झयपण्णाससाहुआईहिं ।
सोमतिलगसूरिपट्टसिंहासणम्मि देवसुदरो सूरी,
किसु णव्वतणु धरिउ इहागओ देवाण सुदरो सूरी ॥२४३॥
(दण्डकला)

पूण्णिदू करकदुगो हिमगिरी, कीडाविहारत्थली,
खीरद्धी घरदीहिआ पिअसही, अच्चुत्तमा भारती ।

卐 गुर्वावल्यपेक्षया ।

भूवं बोहीअ मत्ता, तगुठिअणिगडा, चित्तिअ पडिग्गहिं,
थोत्ता मत्तामरा जो, जह मयऽइसया, पाअपासा करेणू ॥१०३॥
(सद्धरा)

जेणं कयो भीइहरो जणाण, रक्खाअ थोत्तो नमिऊणसण्णो ।
पउट्ठदेवाइकओद्दवेहिं, दुग्गोव्व भूवेण रिउद्दवेहिं ॥१०४॥
(उवजाई)

चउवीसमो जुगवरो, स वायणायरिअसिहसूरिवरो ।
जम्मोऽस्सऽद्दे वीरा, हरवाहुतुरगम७१०पमाणो ॥१०५॥
(पच्छापुव्विगाइचवलाज्जा)

गेण्हीअ संजमं सो, आयारपकप्पवाह७२८सखेऽद्दे ।
मगलुवायहये ७४८ जुग-वरो गओ ख रसकरगये ८२६ ॥१०६॥
(पच्छाज्जा)

वायगवरो सिरिउमासाई, तत्तत्थसुत्तआईण ।
कत्ता गोगाण जयउ, पुव्वविदो घोसणदिपट्टहरो ॥१०७॥
(पच्छागीई)

मउलिव्व वरेण्णग, विभूसीअ पइदिरं ।
माणतुंगक्खसूरिस्स, वीरसूरी गणीसरो ॥१०८॥
(अणुट्ठुभं)

पइट्ठ णमिपासाए, णागपुरे करीअ जो ।
वीरा सुरद्धपायाल-क्खेत्तऽद्दे किंचिसाहिए ॥१०९॥
(अणुट्ठुभं)

सूरीसरो सो जयदेवसण्णो, दूरीकयासेसकुवाइवुंदो ।
भूसीअ वीरायरिअस्स पट्टं, जहा सुको चूअतरुस्स साहं ॥११०॥
(उवजाई)

महुराअ वायणाए, कत्ता सो जयउ खदिलायरिओ ।
जस्स इमो अणुओगो, पयरइ अड्ढभरहेऽज्जावि ॥१११॥
(पच्छाज्जा)

तत्तत्थभासकारो, जयेउ एगादसगवित्तियरो ।
सिरिमहुमित्तविणेयो-ऽज्जगंधहत्थी तिपुव्वण्णू ॥११२॥
(मुहचवलापच्छाज्जा)

हिमवतखमासमणो, पुव्वविओ जयउ वायणायरिओ ।
विक्कतबहुपएसो, कालिअसुअधारगो धीरो ॥११३॥
(पच्छाज्जा)

सिरिणागज्जुणसूरी, जयेउ पणवीसमो जुगपहाणो ।
ओहसुअसमायारी, चरणणिही वायणायरिओ ॥११४॥
(पच्छाज्जा)

दीहक्खी णाणड्ढी, पहावगो गुणणिही महावाई ।
भूएसमुत्तिआगम-सोमे १४५८ - ऽद्दे से पयपइट्ठा ॥२५४॥
(पच्छाज्जा)

आसि हरिमित्तसूरी, तेआलीमइमजुगपहाणो ता ।
अणलमयपुराण१८८३मिए, वीरसिवाद्दम्मि तस्स जणी ॥२५५॥
(पच्छाज्जा)

कालणहकरवि१९०३मिए, वय गहीअ स हवीअ जुगपवरो ।
णायज्झयणणिहिवुद्दे १६१९, सग्गमिओ जोगिणीगहिले १९६४ ॥२५६॥
(पच्छाज्जा)

राइम्मि कोऽपि पहिओ कुमईहि हतुं,
दिक्खीअ त पि य पबोहिअ जो दयड्ढी ।
सो सोमसुन्दरमुणीसवई जयेउ,
देवाइसुन्दरमुणीसपयज्जहंसो ॥२५७॥
(वसततिलया)

सोऽहोरत्तमुहुत्तपुव्व१४३०पमिए, वासम्मि जाओ णिवा,
सक्कस्सस्सतिमोलिमोलिविदिसा-खोणी१४३७मिए संजमी ।
उज्झायो णहणीलकठवयण--ब्बम्हस्सधारी१४५०मिए,
सूरी वारकलबरीइवसुद्दे १३५७, णदकविज्जे १४५५ दिव ॥२५८॥
(सद्दूलविक्कीडिअ)

चउरो दिसा विजेउ, जुगव सीसाऽस्स आसि चत्तारो ।
वाईहभंजनहरी, णाणड्ढी गंगगथयरा ॥२५९॥
(पच्छाज्जा)

मुणिसु दराभिहोऽज्जो, सूरी जयसुंदराभिहो बीओ ।
तइओ य भुवणसु दर-णामो जिणसु दरक्खोतो ॥२६०॥
(पच्छाज्जा) (जुग्ग)

अत्त कालिसरस्सइ त्ति बिरुदं, जेणं पबुद्धव्वज्जा,
णाआ बट्टुलिगाणऽड्डुत्तरसय, साहीअ जो धीणिही ।
सूरीसो मुणिसु दराभिहगुरू, सविग्गमोलीसरो,
सो भासी गुरुसोमसुन्दरपए, हारव्व वच्छत्थले ॥२६१॥
(सद्दूलविक्कीडिअ)

अहोऽवधाणाणि सहस्समेस, बल्ले वि धारीअ रविव्व रस्सी ।
जो सूरिमतस्स जिणिंदवार, आराहण वे विहिणा करीअ ॥
(उव

वाए जेण दिगसुगा विजइउ, णागद्दहे मंदिरं,
आणीअ सवस णिवेणिव गढो, सत्तू जइत्ता रणे ॥१२४॥
(सद्दूलविक्कीडीय)

सिरिलोहिच्चायरिओ, णाया णायागमाइसत्ताण ।
तत्तपरूवणकुसलो, जयउ जगे वायणायरिओ ॥१२५॥
(पच्छाज्जा)

पाडिच्छियसयकलिथं, मिउमहुरगिरं णमामि दूसगणि,
सुअअणुअयोगरपडु', पावयणिगवायणायरिअ ॥१२६॥
(पच्छाज्जा)

सगवीसमो जुगवरो, कालिअसूरी स वायणायरिओ ।
तस्स जणी वीराऽइं, गणीसगेविज्जयविमाणे ९११ ॥१२७॥
(पच्छाज्जा)

सूयगडऽज्झयणवले ६२३, दिक्ख गेण्हीअ सो जुगपहाणो ।
हवणवसुगहे ९८३ सग्ग, गओ दिसाविण्हुवूहखगे ६६५ ॥१२८॥
(पच्छाज्जा)

सुत्तत्थरयणरोहण--गिरिं खमादमणमद्दवगुणड्ढिं ।
देवड्ढिखमासमण, वदे त वायणायरिअ ॥१२९॥
(पच्छाज्जा)

जेण कओ पाठाण, समण्णओ वायणादुगगयाणं ।
वलहीअ वायणाए, पहुणा सह कालगज्जेणं ॥१३०॥
(पच्छाज्जा)

अडवीसमो जुगवरो, अतिमपुव्वहरसच्चमित्तगुरू ।
से जम्मो वीराऽइं, दिसक्खविक्कमसहारयणे ६४४ ॥१३१॥
(पच्छाज्जा)

इत्थीकलाणिहि६६४ मिए, वय लहीअ स हवीअ जुगपवरो ।
चउमुहमुहगुत्तिगहे ६९४, गओ दिव इगसहस्समिए १००१।० ॥१३२॥
(पच्छापुव्विगा मुहचवलाऽज्जा)

सिरिहारिलसूरिवरो, हवीअ गुणतीसमो जुगपहाणो ।
जम्मो तस्स अवत्था-जामणिहाणम्मि ६४३-६५४ वीराऽइं ॥१३३॥
(पच्छाज्जा)

सो खतुरगमणं दे६७१।६७०, दिक्खं गेण्हीअ खणहसुण्णबुहे १००१।० ।
होसी जुगप्पहाणो, दिवं गओ भूइसुखचदे १०५५ ॥१३४॥
(पच्छापुव्विगा जघणचवलाऽज्जा)

णाणबुही मुणिवई हरिभद्दमित्त, पट्टे समुद्दगुरुणो गुरुमाणदेवो।

जम्मोऽस्स विक्कमाऽद्दे, जुगणिहिरज्जुम्मि १४६४पक्खदिवससये।
रुद्दे हि१५११जुए स वयी, सूरी वसुभूहि१५१८ससिकरीहि१५८१ दिव।
॥२७०॥ (पच्छागीई)

वितत्मुणिभगणेण परिकलिओ हेमविमलसूरिरयणीयरो,
आसी सुमइसाहुसूरिपट्टगगणे भवियपम्हविआसयरो ।
जा मुणिपुंगवस्स अस्स जसकित्तीए णिरुवमा अवदाअया,
ण लहिज्जेइ केहि वि कप्पुररयअचंदाईहिं से तुल्लया ॥२७१॥
(मालागलिया)

लद्धं वाइविडंबणक्खविरुदं, जेणुच्चसंवेगिणा;
जम्मो तस्स समक्कमेहि १५२०।१५२२ अहिए, मिच्छत्तखोणिसये।
वासे विक्कमभूवओ वयहरो, जोगगवेएहिं १५२८।१५३८ सो,
सूरी सिद्धिकहाहि १५४८ देवनिलयं, जोगद्दिवेहिं १५८३ गओ॥२७२॥
(सद्दूलविक्कीडिअ)

अरिहवाणिमूलो चरणरगसहस्समुणिदलो,
वेरग्गकेसरो आणंदविमलसूरिकमलो ।
सुद्धाचरणकण्णिगो चउविहसंघमुणालो,
जयउ सिरिहेमविमलसूरिपयसरट्ठिअणालो ॥२७३॥
(महुयरी)

सो संवेगतरंगपुण्णजलही, चंदव्व सोम्मागिई,
भव्वाणंदयरो हवीअ किरिया उद्धारकारी गुरू ।
जम्मोऽद्देऽस्सऽहिए पमायकुसये, वाहबुद्दीहिं १५४७ णिवा,
पक्खऽक्खेहि १५५२ वयं पयं सुरपह-रसेहिं १५७० रसकेहि १५६६खं।
॥२७४॥ (सद्दूलविक्कीडिअ)

अण्णं जस्स सिरे धरीअ मुणिणो, सेसं जिणिंदस्स व,
दट्ठा वाइमिगा गआ अदरिसं, जं केसरिं आगअं ।
पंचक्खी जइउ व पंच विगई, जेणं जढा सव्वया,
पट्टं तस्स अलंकरीअ विजयो, सो दाणसूरी गुरू ॥२७५॥
(सद्दूलविक्कीडिअ)

सोउं देसणमस्स सिद्धगिरिणो, जत्ता ससंघा कया,
सेअत्थं गलरायमतिमणिणा, सुक्कुज्झिआऽद्धद्दिई ।
सुक्ककक्खेहि १५५३ जणी जुए तिहिसये-ऽद्दे से पयगेहि १५६२य,
दिक्खा धाउवसूहि १५८७ सूरिपयवी, कण्णऽक्खिभूवे १६२२ दिवं ।
॥२७६॥ सद्दूलविक्कीडिअ)

सिरिपुप्फमित्तसूरी, हवीअ बत्तीसमो जुगपहाणो ।
तस्स जणी वीराऽद्दे, करवयवीरगणईरमाणे ११५२ ॥१४७॥
(पच्छापुव्विवगाइवल्लुज्जे)

थोमविगइगण ११६० सखे, पव्वज्जा सुण्णवीरगणरुद्दे ११६० ।
स हवीअ जुगपहाणो, सग्गमिओ णहसरक्क१२५०मिए ॥१४८॥
(पच्छाज्जा)

तेरलुव्व स जसोदेवो सरस्सइकठभूसणो,
गुरू सोहीअ रविप्पहसूरिपयहारभूसणो ।
कुवाईण अवजसकद्दमेहिं खलु सामीकया,
दिसा जस्स जसोगगाणीरेहिं विमलीकया ॥१४६॥
(चित्तलेहा)

सिरिसंभूयमुणिंदो, हवीअ तेत्तीसमो जुगपहाणो ।
तस्स सबलमुणिपडिमा१२२१-सखे वासे जणी वीरा ॥१५०॥
(पच्छाज्जा)

सिद्धाइगुणगिहिवये १२३१, गेण्हीअ वय स आसि जुगपवरो ।
बिंदुसमिइतवमाणे १२५०, सग्गमिओ सुण्णदुगविस्से १३०० ॥१५१॥
(पच्छाज्जा)

सिरिबप्पभट्टिसूरी, जगे जयउ आमरायबोहयरो ।
बालो वि अमियतेजो, विज्जड्ढी लद्धबभिवरो ॥१५२॥
(मुइचवलापच्छाज्जा)

जम्मोऽस्स मयसये८००ऽद्दे, णिवा लहीअ स वयं मुणीहि ८०७ जुए
सम्भूहि ८११ आसि सूरी, खमिओ रुद्दासगुत्तीहिं ८९५ ॥१५३॥
(पच्छाज्जा)

विअड्ढपज्जुण्णगुरू विभासी, भवीण पज्जुण्णदवग्गिमेहो ।
विअड्ढपज्जुण्णसमो गणिंदो, जसाइदेवस्स पईससेले ॥१५४॥
(उविंदवज्जा)

माढरसभूअगुरू, होसी चउतीसमो जुगपहाणो ।
जाओ वीरा वासे, स अहोरत्तघडियागुहक्खि१२६०मिए ॥१५५॥
(पच्छागीई)

सत्तरिसुरगुरुहत्थे १२७०, लहीअ वयमासि उण जुगपहाणो ।
अज्जजिणभवसयमिए १३००, खचक्किविस्से १३६० दिव पत्तो ॥१५६॥
(पच्छाज्जा)

जसत्तिमग्गाजलपूअवीसो, सो माणदेवायरिओ गणीसो ।
सोहीअ पज्जुण्णमुणिंदपट्टे, गयो कओ जेणुवधाणवच्चो ॥१५७॥
(उवजाई)

रइअरो भविप्पयाण जो, जयउ सो गणीसरो गुरू ।
विजयसिंहसूरिपुंगवो, विजयदेवसूरिणो पए ॥२८५॥
(मणोरमा)

बधासमेहि १६४४ अहिए, भूवा वासे कसायसयसखे ।
जम्मो अमुस्स होसी, दिक्खा सेणंगणाणेहिं १६५४ ॥२८६॥
(पच्छाज्जा)

वेअरयणायरेहिं १६७३, उज्झायो सो हवीअ आयरिओ ।
गोसिद्धगुणेहि १६८१ दिव, रसडसुज्जस्सखग्ग१७०६मिए ॥२८७॥
(पच्छाज्जा)

सेवीअ जं गुणणिहिं, मुणिणो पण्णाससच्चविजयगणी ।
सो किरिउद्धारयरो, तप्पट्टे जयउ परमसवेगी ॥२८८॥
(पच्छागीई)

खमहातित्थरसे१६८०ऽद्दे, जम्मोऽस्स हरिक्खुणाहिचन्दकले१६६४ ।
दिक्खा बलसवस्जम१७२६-मिए पय अङ्गइसुणगवुहे १७५६।१७५७ खं ॥
॥२८९॥ (पच्छागीई)

अज्झप्परयणिरीहो, आणदघणो मुणी हवीअ तया ।
कयलोगपगासाइ-गथो उज्झायविणयविजयगणी ॥२९०॥
(पच्छागीई)

णायविसारयवायग-जसविजयगणी अणेगगथयरो ।
तह आसि धम्मसगह-यरवायगमाणविजयगणिपमुहा ।२९१॥
(पच्छागीई)

हत्थिम्मि समारूढो, णिवो व पण्णसकपुरविजयगणी ।
सोहीअ तस्स पट्टे, स सिवसुह दिसउ भव्वाण ॥२९२॥
(पच्छाज्जा)

दिक्खाऽस्स कोसिहदसण-विभगविरसम्मि१७२०विक्कमणिवाऽद्दे ।
स गओ तिविस आसव-लोगभुवणमेइणीमाणे १७७५ ॥२९३॥
(मुहचवलापच्छाज्जा)

रक्खणयरो भवाण, पण्ण(णा)सखमाविजयगणिमुणिंदो ।
पट्टे पण्णसकपुर-विजयगणीणं विराईअ ॥२९४॥
(पच्छाज्जा)

परिसहपिडेसणिला१७७२-मिएऽस्स वासे जणी हवीअ वय ।
छीवट्ठिणारयिन्ते १७५४ सो. सग्गमिओ रसमयऽस्सवुहे १७८६॥२९५॥

दिक्खा णईतडपयो-गुणतवुलगुण १३८२ मिए जुगपहाणो ।
आसि स गुणठाणमये १४००, कुणयिंदे १४७१ अमरभुवणमिओ ॥१६७॥
(पच्छाउज्जा)

सो सिरिवीरायरिओ, पट्टावगो जयउ अगविज्जण्णू ।
जेण विरुत्ताणाहो, पवोहिओ महबलो जक्खो ॥१६८॥
(पच्छाउज्जा)

जम्मोऽस्स विक्कमाऽद्दे, पसुवइमुत्तिगुणगह ६३८ मिए दिक्खा ।
मरुपहमयवल ६८० सखे, सो सग्गमिओ विहुरसरसे ६६१।१०६१॥
॥१६९॥ (पच्छाउज्जा)

णिजप्पहावा हयकामदेवो, सो सव्वदेवायरिओ गणिंदो ।
उज्जोअणस्सायरिअस्स पट्टे, राईअ सिंगम्मि जिणालयोऽत्र ॥१७०॥
(उवजाई)

जो सूरिमताइसइड्ढिधारी, सिस्साण लद्धीअ हि गोयमाहो ।
णाणवुहो सयमिलद्धरेहो, चदव्व भव्वज्जविवोहकारी ॥१७१॥
(इदवइरा)

जो रामसइण्णाउरे, पइट्ठमट्ठमजिणस्स पडिमाए ।
णाहेयचेइअधरे, करीअ वासे णिवऽगदारदसे १०१०॥१७२॥
(पच्छापुव्विगा जहणचवलागीई)

बोहिअ कुकुणमतिं, कारिअपिहुतुंगजिणायसायवर ।
चंदावईणिवणयण-भूअ सुगिराअ दिक्खीअ ॥१७३॥
(पच्छाउज्जा)

सिरिफग्गुमित्तसूरी, हवीअ सडतीसमो जुगपहाणो ।
पुरिसत्थवुद्धिकुलयर१४४४ सखे जम्मोऽस्स वीराऽद्दे ॥१७४॥
(मुहचवला पच्छाउज्जा)

दिक्खा विवाहसिवमुह-रज्जु१४५८पमाणो स आसि जुगपवरो ।
कुणिरयविज्जाठाणे १४७१, सग्गमिओ रावणऽक्खिसिद्ध१५२० मिए
॥१७५॥ (पच्छागीई)

सीअदित्ती व जो पट्टवारीसर, सव्वदेवस्स मोईअ सूरिंदुणो।
जेण रूवस्सिरी लद्धुवाही णिवा, देवसूरी व सो देवसूरी गुरु ॥१७६॥
(सम्मिणी)

जयउ सिरिसतिसूरी, सिद्धतणिही स वाइवेयालो ।
मताइसत्तिजुत्तो, दंसणतक्काइसत्थण्णू ॥१७७॥
(पच्छाउज्जा)

रइअरो भविप्पयाण जो, जयउ सो गणीसरो गुरू ।
विजयसिंहसूरिपुंगवो, विजयदेवसूरिणो पए ॥२८५॥
(मणोरमा)

बधासमेहि १६४४ अहिए, भूवा वासे कसायसयसखे ।
जम्मो अमुस्स होसी, दिक्खा सेणंगणाणेहिं १६५४ ॥२८६॥
(पच्छाउज्जा)

वेअरयणायरेहिं १६७३, उज्झायो सो हवीअ आयरिओ ।
गोसिद्धगुणेहि १६८१ दिव, रसङसुज्जसखग्ग१७०६मिए ॥२८७॥
(पच्छाउज्जा)

सेवीअ जं गुणणिहिं, मुणिणो पण्णाससच्चविजयगणी ।
सो किरिउद्धारयरो, तप्पट्टे जयउ परमसवेगी ॥२८८॥
(पच्छागीई)

खमहातित्थरसे१६८०ऽद्दे, जम्मोऽस्स हरिक्खुणाहिचन्दकले१६६४ ।
दिक्खा बलसवसजम१७२६-मिए पय अङ्गइसुणगवुद्दे १७५६।१७५७ खं॥
॥२८९॥ (पच्छागीई)

अज्झप्परयणिरीहो, आणदघणो मुणी हवीअ तया ।
कयलोगपगासाइ-गथो उज्झायविणयविजयगणी ॥२९०॥
(पच्छागीई)

णायविसारयवायग-जसविजयगणी अणेगगथयरो ।
तह आसि धम्मसगह-यरवायगमाणविजयगणिपमुहा ।२९१॥
(पच्छागीई)

हत्थिम्मि समारूढो, णिवो व पण्णसकपुरविजयगणी ।
सोहीअ तस्स पट्टे, स सिवसुह दिसउ भव्वाण ॥२९२॥
(पच्छाउज्जा)

दिक्खाऽस्स कोसिहदसण-विभगविस्सम्मि१७२०विकमणिवाऽद्दे ।
स गओ तिविसं आसव-लोगभुवणमेइणीमाणे १७७५ ॥२९३॥
(मुहचवलापच्छाउज्जा)

रक्खणयरो भवाण, पण्ण(णा)सखमाविजयगणिमुणिंदो ।
पट्टे पण्णसकपुर-विजयगणीणं विराईअ ॥२९४॥
(पच्छाउज्जा)

परिसहपिंडेसणिला१७२२-मिएऽस्स वासे जणी हवीअ वय ।
धीवद्धिणरयिले १७४४ सो, सग्गमिओ रसमयऽस्सवुद्दे १७८६॥२९५॥
(पच्छाउज्जा)

जेउ दुद्दमसेववाइसरह, भूसीअ जो सासण,
लोगे तक्किकवासवो जयउ सो, उत्तिण्णसत्तवुही ॥१८८॥
(सद्दूलविक्कीडिअ)

हरिभद्दसूरिणा खलु, रइआऽणेकतजयपडागाई ।
जे दुग्गमाऽत्थि अहुणा, इह विबुहाण पि गयणगा ॥१८९॥
(पच्छाज्जा)

मदमईण वि सुगमा, ते गथा पजियाइरयणाए ।
सव्वे वि कया, जेण पहुणा विस्सहिअबुद्धीए ॥१९०॥
(पच्छाज्जा) (जुग्ग)

सोवीरपायिप्ति तदेगवार-पाणा विहिण्णू विरुद धरीअ ।
सग्ग गओ दट्ठिसमुद्दसव्वे ११७८, वासे णिवा स स भचीण ॥१९१॥
(इदवइरा इदवज्जा)

तव्वधवा इह जगे, जयतु आणदसूरिपमुहा ते ।
तेण चिअ कयायरिआ, दिक्ख सिक्ख च दाउ जे ॥१९२॥
(पच्छापुव्विगाइचवलाज्जा)

तक्खज्झओ व पयलच्छिमलकरीअ,
सूरीसरो स मुणिचदमुणीसरस्स ।
णामेण जो अजिअदेवगुरू हवीअ,
ज णो जिओ कउवसग्गसूरेहि णूण ॥१९३॥
(वसततिलया)

मुणिचदसूरिसीसो, बीओ वादिदेवसूरीसो ।
जगविक्खाओ जेआ, दिगबरायरिअकुमुअचदस्स ॥१९४॥
(पच्छागीई)

से वग्गवेअगिरिसे ११४३।११३४,जणी णिवाऽद्दे वय च वीरसिवे ११५२।
कट्ठाऽस्सीसे ११७४ पयवी, सग्गो तक्किहदसणकप्पे १२२६ ॥१९५॥
(पच्छापुव्विगा मुहचवलाऽज्जा)

वमी कण्णाअ भणइ, सकता जस्स हत्थफासेण ।
सो जयउ वोरसूरी, गुणजलही वाइसिगसिंघो ॥१९६॥
(पच्छाज्जा)

सिरिहेमचन्दसूरी, मलधारी सो बहुस्सुओ जयउ ।
गुणमणिरोहणसेलो, परमपसतरसमुत्तिसमो ॥१९७॥
(पच्छाज्जा)

एत्थ हवीअ तयाणि, सीसो सिरिदेवचदसूरिस्स ।
कलिकालसव्ववेत्ता, सूरी सिरिहेमचदक्खो ॥१९८॥
(पच्छाज्जा)

वासम्मि सत्तदलदल-हरहयपुरलिवि१८३७मिए णिवा तस्स ।
जम्मो हवीअ दिक्खा, सुन्निदस्सवयणपुराणे १८७० ॥३०७॥
(पच्छाज्जा)

श्रुंबुधरो काणणम्मिव, से पट्टमलकरीअ सोम्मद्दी ।
पडिअमणिविजयगणी, महातवस्सी अपडिवद्धो ॥३०८॥
(पच्छाज्जा)

जम्मोऽस्स विक्कमाऽद्दे, किवाणधारपरमेट्ठिपयडि१८५२मिए ।
वयमद्धिवद्धिविज्जे १८७७,वयगुणमयणगुणकुम्मि १९३५ दिव ॥३०९॥
(मुहचवलापच्छाज्जा)

बुंधुरसविग्गमणो, तत्तरुई णिप्पिहोऽस्स पट्टधुर ।
पण्णसो बुद्धिविजय गणी वहीअ जह मु सेसो ॥३१०॥
(पच्छाज्जा)

जम्मोऽस्सऽद्दे सिहिरस-पयडिम्मि१८६३उवगविण्हुकुम्मि१९१२वय ।
स गओ विअद्धसुरया-वसाणजलणबलिले १९३८ सग्ग ॥३११॥
(जहणचवलापच्छाज्जा)

धत्थण्णाणधगारो, पवयणकिरणो, भव्वलोगवुहीए,
दायाऽणदस्स चदो, मिव विजयजुओ, आसि आणदसूरी ।
तप्पट्टागाससोहो, मुणिभगणवुओ, णाणदित्तीअ दित्तो,
सो सिद्धतिंदुकता, सिवपहअमिअ, झारमाणो भवत्थ ॥३१२॥
(सद्धरा)

से वेसाणरकेसवऽद्धिधरणी१८६३-माणे णिवाऽद्दे जणी,
दुग्गाऽऽइच्चसयम्मि दतअहिए १९३२, दिक्खा य सवेगिणी ।
भूएसिक्खणगोपएहि, अहिए१९४३, होहीअ सूरी स उ,
रामापच्चहराणणेहि अहिए १९५२, पत्तो सुपव्वालय ॥३१३॥
(सद्दूलविक्कीडिअ)

विजयकमलसूरी, तप्पट्टपम्हागरे, मुणिअलिगणकिण्णो, ससारपकुब्भवो ।
अणुरइजलजो ही, ससाररागुज्झिओ, हवउ कमलकप्पो, भव्वाण सो सुक्खयो ॥३१४॥ (चदुज्जोओ)

जम्मो से बलदेवगोवइसये, वासे णिवा विक्कमा,
लोगेसरस्सवणेहि १९०८ आसि अहिये, सवेगिदिक्खा पुण ।
सजुत्ते रयणेहि १९३२ सूरिपयवी, अस्सासुगेहिं १९५७ जुए,
सो धूमद्धयकुजरेहिं अहिए १९८३, निव्वाणलोग गओ ॥३१५॥
(सद्दूलविक्कीडिअ)

मग्ग सेढिल्लपंके, चरणगुणरह, जो पहू उद्धरीअ,
किच्चा बीअ सहाय, तुरियपयधरं, देवभद्द गणेस ।
आजीवायविली जो, अइविमलजसो, णिप्पिहो मोक्खमुत्ती,
भव्वाण दाउ रम्मा, चरणगुणमणी, सो जगच्चदसूरी ॥२०८॥
(सद्धरा)

जो किच्चा आयविल-सण्णानवमखडवारवासमिअ ।
नमदीवरासिवासे १२८५, तवत्ति विरुद लहीअ णिवा ॥२०९॥
(पच्छापुव्विगा जहणचवलाज्जा)

आरभिऊण तत्तो, हवीअ सण्णा तवत्ति गच्छस्स ।
जाओ कोडिगसण्णो, गच्छो जह मतकोडिजवा ॥२१०॥
(पच्छापुव्विगा मुहचवलाज्जा)

विस्साण णनमच्चयेगतरणी, सो वाइघूकत्तिओ,
देविंदो जगचदसूरिपयखे, सूरी भवज्जपिओ ।
लोगा बोहिअ भूवमतिपमुहा, भूसीअ जो सासण,
गंथा णूअणकम्मगथपमुहा, जेण अणेगा कया ॥२११॥
(सद्दूलविक्कीडिअ)

चक्खाणे सपरागमत्थणिवुणो, जो णायलक्कग्गणी,
मिच्छादसणमप्पदुग्गइयर, जुत्तीहि दूर करीअ ।
से विस्से कुलटा व्व कित्तिरमणी, भता अदिण्णायरा,
सो पायालउरोयगारवधरा१३२७-वासे णिवा ख गओ ॥२१२॥
(सद्दूलविक्कीडिअ)

रेवइमित्तो सूरी, जुगपवरो आसि एगचत्तालो ।
वीराऽस्स जणी अहिए, विहिसवसुवणेहि सजमसयेऽद्दे १७३८॥२१३॥
(पच्छागीई)

णयलोगपालजुत्ते १७४७, वय सत्तायामहापुरिसजुत्ते १७६३ ।
स हवीअ जुगपहाणो, गओ दिवमिलाकलाराए १८४१॥२१४॥
(पच्छापुव्विगाइचवलाज्जा)

विज्जाणदभिहो मुणीसरवरो, तस्सऽज्जसिस्सुत्तमो,
जाओ जस्स जसोजलेण णिखिलो, लोगो सिणाईकयो ।
वाई जेण कया भवाउलमणा, सीहेण कुंभी जहा,
दब्भं वागरण समिहग, सुत्तप्पमत्थायय ॥२१५॥
(सद्दूलविक्कीडिअ)

से दिक्खा गयदतअवरदसा-खोणी१३०२पमाणे णिवा,
वासे वेअसमऽग्गिखग्ग१३०४/१३२३पमिए, पत्तो स सूरित्तण ।

जेणं संजमरज्जुणा भविगणो, संसारकूवुद्धयो;
जस्साणेगगुणालयस्स सिहिरे, लोगा गुणा लिच्छुणो ॥३२६॥
(सद्दूलविक्कीडिअ)

जत्तो साहुगणावगा पयडिआ, भव्वाहृविट्टावहा,
जस्सुत्ती अविलवसिद्धिफलया-ऽऽसो एगतखेमकरा ।
जस्सि सकइ जणो गुरुवरो, मुत्तो वि किं गोयमो,
लोए ओअरिओ ढुहाकुलकुल, दट्ठूण वुद्धो जहा ॥३२७॥
(सद्दूलविक्कीडिअ)

सो सिद्धनमहोअही मुणिवई, मे दाउ सिद्धिं पर,
तं वदेह रवमानिहाणसमया-पेऊसवाराणिहिं ।
तेण ह पि जडो भिस उवकयो, चारित्तदाणाइणा,
तस्साहिट्ठपयाणकप्पतरुणो, मावुल्लसेण णमो ॥३२८॥
(सद्दूलविक्कीडिअं)

तत्तो पूअसुसंजमा भविगणो, पावेउ इट्ठ लहु,
तस्सही फरिसन्ति भत्तिणिहरा, भव्वा सिवाकखिणो ।
तस्सि मदसमाहिदाणकुमले, उक्किट्ठचायालये,
कम्मग्गथरहस्सचारचउरे, थोउ गुणा को अल ॥३२९॥
(सद्दूलविक्कीडिअं)

सूरीसो धारए जो, तिसयमुणिजुअ, गच्छमेकायवत्त,
भूवालाण अहीसो, जह छदलमहिं, रज्जमेकायवत्तं ।
जोग्गो जो सूरिठाणे, सुविइअगुरुणा, णिच्छमाणो वि पत्थो;
सो पुज्जो पेमसूरी, हवउ सिवयरो, धीरलोयत्तरेहो ॥३३०॥
(सद्धरा)

णेगा सुद्धगवेसगा अदुइआ, वेरग्गवारणिही,
गीयत्थुग्गतवा सुसजमरया, सिद्धतपारगआ ।
विज्जद्दी उवएसदाणकुसला, उक्किट्ठचायासिआ;
गच्छे जस्स मुणी जयउ तिजगे, सो पेमसूरी सया ॥३३१॥
(सद्दूलविक्कीडिअ)

वच्छल्लबुणिहीहि गथकरणे, हं जेहि संपेरिओ,
गथो एस किवाअ जाण रइओ, मे जेहि संसोहिओ ।
भूयास जइ हं सहस्सवयणो, सेलाउगो तो वि य;
वण्णेउं ण चयामि जाणुवकिइ, ते पंतु अम्ह गुरू ॥३३२॥
(सद्दूलविक्कीडिअं)

सेअस्सऽस्सऽद्धिहत्थि-द्दिअ२४१०मिअ वरिसे, वद्धमाणाववग्गा,
[illegible] ऽप१९९०पमिअवरिसे. विक्कमाइच्चभूवा ।

मग्ग सेढिल्लपक्के, चरणगुणरह, जो पहू उद्धरीअ,
किच्चा वीअ सहाय, तुरियपयधर, देवभद्द गणेस ।
आजीवायविली जो, अइविमलजसो, णिप्पिहो मोक्खमुत्ती,
भव्वाण दाउ रम्मा, चरणगुणमणी, सो जगच्चदसूरी ॥२०८॥
(सद्धरा)

जो किच्चा आयविल-सण्णतवमखडबारवासमिअ ।
जमदीवरासिवासे १२८५, तवत्ति विरुद लहीअ णिवा ॥२०९॥
(पच्छापुव्विगा जहणचवलाज्जा)

आरभिऊण तत्तो. हवीअ सण्णा तवत्ति गच्छस्स ।
जाओ कोडिगसण्णो, गच्छो जह सतकोडिजवा ॥२१०॥
(पच्छापुव्विगा मुहचवलाज्जा)

विस्साणाणतमच्चयेगतरणी, सो वाइपूकत्तिओ,
देविंदो जगचदसूरिपयखे, सूरी भवज्जपिओ ।
लोगा वोहिअ भूवमतिपमुहा, भूसीअ जो सासण,
गंथा णूअपाकम्मगथपमुहा, जेण अणेगा कया ॥२११॥
(सद्दूलविक्कीडिअ)

वक्खाणे सपरागमत्थणिवुणो, जो णायतक्कग्गणी,
मिच्छादसणमप्पदुग्गइयर, जुत्तीहि दूर करीअ ।
से विस्से कुलटा व्व कित्तिरमणी, भता अदिण्णायरा,
सो पायालउरोयगारवधरा१३२७-वासे णिवा ख गओ ॥२१२॥
(सद्दूलविक्कीडिअ)

रेवइमित्तो सूरी, जुगपवरो आसि एगचत्तालो ।
वीराऽस्स जणी अहिए, विहिसवभुवणेहि सजमसयेऽद्दे १७३८॥२१३॥
(पच्छागीई)

णयलोगपालजुत्ते १७४७, वय सलायामहापुरिसजुत्ते १७६३ ।
स हवीअ जुगपहाणो, गओ दिवमिलाकलाराए १८४१॥२१४॥
(पच्छापुव्विगाइचवलाज्जा)

विज्जाणदभिहो मुणीसरवरो, तस्सऽज्जसिस्सुत्तमो,
जाओ जस्स जसोजलेण णिखिलो, लोगो सिणाईकयो ।
वाई जेण कया मवाउलमणा, सीहेण कुंभी जहा,
दब्भं वागरण सभिहग, सुत्तप्पमत्थायय ॥२१५॥
(सद्दूलविक्कीडिअ)

से दिक्खा गयदतअबरदसा-खोणी१३०२पमाणे णिवा,
वासे वेअसमऽग्गिखग्ग१३०४/१३२३पमिए, पत्तो स सूरित्तण ।

जेणं संजमरज्जुणा मविगणो, संसारकूवुद्धयो,
जस्साणेगगुणालयस्स सिहिरे, लोगा गुणा लिच्छुणो ॥३२६॥
(सद्दूलविक्कीडिअ)

जत्तो साहुगणावगा पयडिआ, भव्वाहनिट्ठावहा,
जस्सुत्ती अविलवसिद्धिफलया-ऽऽसो ग्गतखेमकरा ।
जस्सि सकइ जणो गुरुवरो, मुत्तो वि किं गोयमो,
लोए ओअरिओ दुहाकुन्तकुल, दट्ठूण बुद्धो जहा ॥३२७॥
(सद्दूलविक्कीडिअ)

सो सिद्धन्तमहोअही मुणिवई, मे दाउ सिद्धिं पर,
तं वदेह रवमानिहाणसमया-पेऊसवाराणिहिं ।
तेण ह पि जडो भिस उवकयो, चारित्तदाणाइणा,
तस्साहिट्ठपयाणकप्पतरुणो, मावुल्लसेणं णमो ॥३२८॥
(सद्दूलविक्कीडिअ)

तत्तो पूअसुसजमा मविगणो, पावेउ इट्ठ लहु,
तस्सही फरिसन्ति मत्तिणिहरा, भव्वा सिवाकखिणो ।
तस्सि मदसमाहिदाणकुमले, उक्किट्ठचायालये,
कम्मगंथरहस्सचारचउरे, थोउं गुणा को अलं ॥३२९॥
(सद्दूलविक्कीडिअ)

सूरीसो धारए जो, तिसयमुणिजुअ, गच्छमेकायवत्त,
भूवालाण अहीसो, जह छदलमहिं, रज्जमेकायवत्तं ।
जोग्गो जो सूरिठाणे, सुविइअगुरुणा, णिच्छमाणो वि णत्थो;
सो पुज्जो पेमसूरी, हवउ सिवयरो, धीरलोयत्तरेहो ॥३३०॥
(सद्धरा)

णेगा सुद्धगवेसगा अदुइआ, वेरग्गवारणिही,
गीयत्थुग्गतवा सुसजमरया, सिद्धतपारगआ ।
विज्जही उवएसदाणकुसला, उक्किट्ठचायासिआ;
गच्छे जस्स मुणी जयउ तिजगे, सो पेमसूरी सया ॥३३१॥
(सद्दूलविक्कीडिअ)

वच्छल्लवुणिहीहि गथकरणे, हं जेहि संपेरिओ,
गथो एस किवाअ जाण रइओ, मे जेहि ससोहिओ ।
भूयासं जइ हं सहस्सवयणो, सेलाउगो तो वि य,
वण्णेउं ण चयामि जाणुवकिइ, ते पतु अम्ह गुरू ॥३३२॥
(सद्दूलविक्कीडिअ)

सेअस्सऽस्सऽद्धिहत्थि-द्दिअ२४१०मिअ वरिसे, वद्धमाणाववग्गा,
सुण्णाकूवारणदऽप्प१६४०पमिअवरिसे, विक्कमाइच्चभूवा ।

वाईहव्वायकुम्भ-प्पदलणहरिणा, जेण विज्जाणहेहिं,
वाए छिण्णप्पहावो, दिअहरणगणो, चित्तकूडे सहाए ।
पुण्णासेसगपाठी, म्हयकरचरणो, कित्तिसपुण्णलोगो,
सूरी सोमप्पहक्खो, स वियरउ मह, सव्वकल्लाणसिद्धी ॥२२६॥
(सद्धरा)

जो कत्ता जइजीअकप्पपमुह-गथाण णाणबुही,
जेण अवुअलाहहिंसणभया, चत्ता मरू कुकणा ।
वासे विस्ससये बलेहि १३१० अहिए, भूवा जणी से वय,
अप्पऽक्खीहि १३२१ पय रएहि १३३२ खमिओ, अज्ज जगस्सेहि
१३७३ सो ॥२२७॥ (सद्दूलविक्कीडिअ)

△सुरगइ समयेऽस्स पसिभ, सुरकयउज्जोयणाइमहिमहो ।
सग्गागय विमाण, गुरुणोस्स त्ति भणिअ जणेहि तया ॥२२८॥
(पच्छागीई)

△जत्तावतिण्णदेवो, भणीअ मेरुम्मि मे सुरेहि सुअ ।
सोहम्मिदसमाणा, जाएद सिरितवायरिआ ॥२२९॥
(मुहचवला पच्छाज्जा)

चत्तारि सीसा गुरुणोऽस्स आसी, दिसासु सव्वासु विखाअणामा ।
थंभाव्व वीरप्पहुसासणोए, जयतु ते भव्वजणाघहारा ॥२३०॥
(उवजाई)

सिरिविमलप्पहसूरी, मिच्छतमहरो दयबुही पढमो ।
सिरिपरमानदगुरू, परमानदप्पदो बीओ ॥२३१॥
(पच्छाज्जा)

सिरिपम्हतिलगसूरी, तइओ फुडसुद्धसयमिद्धिणिही ।
सिरिसोमतिलगणामो, सूरी विस्सुत्तमो तुरिओ ॥२३२॥
(पच्छाज्जा)

सिरिसुमिणमित्तसूरी, बायालीसइमजुगपहाणो तो ।
आसि जणी इदुहरा-ऽबभमिए तस्स वीरा-ऽद्दे ॥२३३॥
(पच्छाज्जा)

इदियपणगविसयसुइ १८२३-मिए वय हत्थिकरपहरविज्जे १८४१ ।
आसि जुगवरो स गओ, बलकाकक्खिगहकुम्मि १९१६ दिव ॥२३४॥
(पच्छाज्जा)

सीअगुमहद्दहसिआ वयणगगा, जस्स मवताव अवहाऽघमलसोही ।
सोमतिलगव्व गुरुसोमतिलगो सो, सोमपहसूरिपयसभुगिरिसोही ॥
॥२३५॥ (इदुवयणा)

△ तपागच्छपट्टावल्यपेक्षया

सिरिपेमसूरिसीसो, हेमन्तविजयगणी जयेउ जगे ।
भूसिअपण्णासपओ, पद्मावतेएण जिअमाणू ॥३४३॥
(पच्छाज्जा)

णोगविहगच्छकज्जे, गुरुपासे कुसलसिट्ठमतिसमो ।
गीयत्थमोलिमुगडो, णिरीहजयणापरायणो धीरो ॥३४४॥
(अंतचवलापच्छागीई)

गच्छहिअचिंतनपरो, उवट्ठिएसु पि विग्घविंदेसु ।
णीडरअमुत्तसत्तो, फुडभासी य दढसकप्पो ॥३४५॥
(आइचवलापच्छाज्जा)

तस्स जणी सणिवारे, पणामपरमेट्ठिगहमही१९५३सखे ।
भूधा वासे वीरा, मुद्दाचक्खुजिण२४२३मिअवासे ॥३४६॥
(पच्छाज्जा)

मासम्मि मग्गसीसे, चउदसमीए तिहीअ सुक्काए ।
आसि अहमयावाए, गुज्जरदेसस्स मुक्खपुरे ॥३४७॥
(पच्छाज्जा)

दिक्खा महागहमुसलि-पुहवी१९८८माणे हवीअ भूवा-ऽद्दे ।
सुक्काअ सत्तमीए, तिहीअ वेसाहमासम्मि ॥३४८॥
(जहणचवलापच्छाज्जा)

सुक्काअ जेट्ठमासे, चउद्दसीए तिहीअ उवठवणा ।
सोलसतित्थयरभव--रावणलोयण२०१२वमाणे--ऽद्दे ॥३४९॥
(मुहचवलापच्छाज्जा)

फग्गुणमासे एगा-रसीअ बहुलाअ कम्मवाडीए ।
दत्ता पुणापुरे से, गणिपयवी सगुरुसकरेणं ॥३५०॥
(पच्छाज्जा)

पण्णासपय विहिय, तिहिणइ२०१५वासे सुरिदणयरम्मि ।
सुक्काए छट्ठीए, तिहीअ से राहमासम्मि ॥३५१॥×
(पच्छाज्जा)

मुद्रणसमयापेक्षया प्रक्षिप्ते गाथे —
× गुज्जरसण्णगदेसे, अहम्मयावाअरायहाणीए ।
से सूरिपयपइट्ठा, गुरुम्मि वारे सुहमुहुत्ते ॥३५१B॥
(पच्छाज्जा)

मासम्मि मग्गसीसे, पडिहरिणेत्तदसवत्तणेत्तद्दे २०२९ ।
आसी समुज्जलाए, दुइआए कम्मवाडीए ॥३५१C॥
(पच्छाज्जा)

वाईहत्थायकुम्भ-प्पदलणहरिणा, जेण विज्जाणहेहिं,
वाए छिण्णप्पहावो, दिअहरणगणो, चित्तकूडे सहाए ।
पुण्णासेसगपाठी, म्हयकरचरणो, कित्तिसपुण्णलोगो,
सूरी सोमप्पहक्खो, स वियरउ मह, सव्वकल्लाणसिद्धी ॥२२६॥
(सद्धरा)

जो कत्ता जइजीअकप्पपमुह-गथाण णाणवुही,
जेण अबुअलाहहिंसणभया, चत्ता मरू कुकणा ।
मासे विस्ससये बलेहि १३१० अहिए, भूवा जणी से वय,
अप्पऽक्खीहि १३२१ पय रएहि १३३२ खमिओ, अज्ज जगस्मेहि
१३७३ सो ॥२२७॥ (सद्दूलविक्कीडिअ)

△सुरगइ समयेऽस्स पसिअ, सुरकयउज्जोयणाइमहिममहो ।
सग्गागय विमाण, गुरुणोस्स त्ति भणिअ जणेहि तया ॥२२८॥
(पच्छागीई)

△जत्तावतिण्णदेवो, भणीअ मेरुम्मि मे सुरेहि सुअ ।
सोहम्मिदसमाणा, जाएद सिरितवायरिआ ॥२२६॥
(मुहचवला पच्छाज्जा)

चत्तारि सीसा गुरुणोऽस्स आसी, दिसासु सव्वासु विखाअणामा ।
थंभाव्व वीरप्पहुसासणोए, जयतु ते भव्वजणाघहारा ॥२३०॥
(उवजाई)

सिरिविमलप्पहसूरी, मिच्छतमहरो दयवुही पढमो ।
सिरिपरमानंदगुरू, परमानदप्पदो बीओ ॥२३१॥
(पच्छाज्जा)

सिरिपम्हतिलगसूरी, तइओ फुडसुद्धसयमिद्धिणिही ।
सिरिसोमतिलगणामो, सूरी विस्सुत्तमो तुरिओ ॥२३२॥
(पच्छाज्जा)

सिरिसुमिणमित्तसूरी, बायालीसइमजुगपहाणो तो ।
आसि जणी इट्ठहरा-ऽबंभमिए तस्स वीरा-ऽद्दे ॥२३३॥
(पच्छाज्जा)

इंदियपणगविसयसुइ १८२३-मिए वय हत्थिकरपहरविज्जे १८४१ ।
आसि जुगवरो स गओ, बलकाकक्खिगहकुम्मि १६१६ दिव ॥२३४॥
(पच्छाज्जा)

सीअगुमहद्रहसिआ वयणगगा, जस्स भवतावभवहाऽघमलसोही ।
सोमतिलगव्व गुरुसोमतिलगो सो, सोमपहसूरिपयसभुगिरिसोही ॥
॥२३५॥ (इट्ठुवयणा)

△ तपागच्छपट्टावल्यपेक्षया

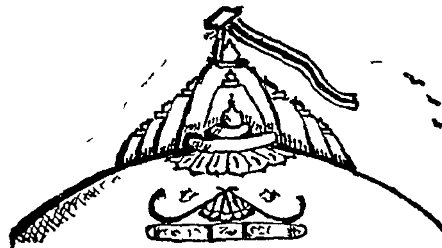
आलोइअ पयत्था, कम्मगंथाइमत्थकुसलेहिं ।
मुणिवरजयघोसविजय-धम्माणदविजयेहि सह ॥३६३॥
(पच्छाज्जा)

जडमइणा वि विरइअ, देवगुरुकिवाअ विजयअंतेण ।
मुणिवीरसेहरेण, बधविहाण महासत्थ ॥३६४॥
(पच्छाज्जा)

जाउम्हाणपुरे वरे जिणगिहे, जाहे पइट्ठा सुहा,
ताहे फग्गुणमाससुक्कतइआ-ऽहे गुज्जरेऽग्गे पुरे ।
भूवा दोऽक्खिणहे २०२२करग्गहजिणे २४९२, वीरा गए हायणे,
गथोऽभू सिरिपालपुव्वणयर-त्थेण समत्तो मया ॥३६५॥
(सद्दूलविक्कीडिअ)

परउवयाररयेहिं, जेहि पयारेण जेण केण वि ज ।
किं साहज्जमिह कय, मे मण्णे ह सिमुवयार ॥३६६॥
(पच्छाज्जा)

एत्थ सिआ छउमत्था, मतिमदा वा जमागमविरुद्ध ।
किंचि बहुसुआ त मयि, काऊण किव विसोहन्तु ॥३६७॥
(पच्छाज्जा)



सेज्जाऽऽसागयरम्मदनवलही, 'से कित्तिकण्णाकए,
पचालीजुगल पि सकरसिवा-रूव कय समुणा ॥२४४॥
(सद्दूलविक्कीडिअ)

जो झाणत्थगुरूण, गणभारुद्धरणजोग्गपत्तत्थ ।
खुड्डो वि अविकुत्तो, चिसयगुणोऽणतभागजुओ ॥२४५॥
(पच्छाउज्जा)

धाराभिहस्सावगपुगवेण, पक्खोववासेहि वसीकयेण ।
देवेण पुट्ठो तिभवेहि मुत्ति, साहीअ सीमधरकेवली से ॥२४६॥
(इदवइरा)

लेसकहरविखखमे-ऽद्दे १३९६ जाओ स विकहण्भवेकुठे १४०४ ।
साहू हवीअ सूरी, रावणकरपिंडपयडि१४२०मिए ॥२४७॥
(पच्छाउज्जा)

पचेसुद्दिवभेअपचवयणा, सीसाऽस्स पचऽग्गिमा,
तत्थऽज्जो सिरिणाणसायरगुरू, णाणवुद्दी णिप्पिहो ।
सूरी साम्मसुहण्णवो सुवयणो, वेरग्गवारंणिही,
भव्वज्जुणहगुसासणुण्णइयरो, साहूण विज्जागुरू ॥२४८॥
(सद्दूलविक्कीडिअ)

पडववि‌आसिले१४०५ऽद्दे -ऽस्स जणी वाइसिअयरहरिम्मि१४१७वय ।
सूरिंदुविहिमुहसरे १४४१, सरिउदिवसणीइकुम्मि १४६० तुरिअदिव ।
॥२४९॥ (पच्छागीई)

सूरीसो कुलमडणाभिहगुरू, उस्सग्गमग्गाणुगो,
वाइव्वायगिरिप्पभगवइरो, सिद्धतपारगमी ।
चक्कंगो इव विस्समाणससरे, भासी जईयो जसो,
सो बीओ अबीअमग्गणिहरो, मे होउ मद्दकरो ॥२५०॥
(सद्दूलविक्कीडिअ)

सुमिणसयेऽद्दे अहिए, बलेहि १४०९जम्मोऽस्स सजमेहि१४१७ वय ।
गोयरिदोसेहि १४४२ पय, करणसुपासजिणफणिफणाहि १४५५ दिव ।
॥२५१॥ (पच्छागीई)

तइओ सुविमलचरणो, गुणरयणणिही स गुणरयणसूरी ।
वाइमिगारी जयउ ति-कालविओ सपरसमयण्णू ॥२५२॥
(पच्छाउज्जा)

तुरिओ य सोमसुन्दर-सूरी सोम्माणिइव्व सोमस्स ।
सिरिसाहुरयणसूरी, स पचमो गोयमसरिच्छो ॥२५३॥
(पच्छाउज्जा)

वारीअ जो संतियरत्थवेण, दुज्जोगिणीकारिअमारिरोग
जहकुसेणं करहिं णिसादी, पचडसामत्थपयावपुंओ ॥२६३॥
(उवजाई)

वीरा अंतरसत्तुखक्कु१६०६मिए, वासे णिवा विक्कमा,
सो जाओऽलिपयऽग्गिमग्गणमिए १४३६, लोगद्धिसक्के १४४३ वई ।
उज्झायो उउवज्जक्कोणरयणे १४६६, णागद्धिविस्सम्मि १४७८ च,
सूरी सत्तिविहायसिद्ध१५०३पमिए, आइक्कचलोग गओ ॥२६४॥
(सद्दूलविक्कीडिअ)

सेमुसीअ विजिओ हि जस्स धिसणो हवीअ ण जणाण गोयरो,
वाइसिंधुरकदंबगस्स पइवीअ जो मिगवई विआरणे ।
बालवभिबिरुद लहीअ मुणिणायगो विबुहववित्रम्हणा,
सो जयेउ मुणिसुंदरायरिअपट्टगे रयणसेहराहिहो ॥२६५॥
(चित्तग)

से जम्मो चरणासवेहि १४५७।१४५२ अहिए, वासम्मि विज्जासये,
भूवाला विरइं गहीअ तिसिरो-मोलिप्पमाणेहि १४६३ सो ।
पण्णासो तिमयेहि १४८३ विट्ठवजिणा-ऽम्भोजेहि १४९३ उज्झायगो,
सूरी दोहि १५०२ महक्कडक्खिइसये, ख सजमेहिं १५१७ गओ ॥२६६॥
(सद्दूलविक्कीडिअ)

हरी सहस्सक्खी धरइ जस्स किर्त्ति दट्ठुं वत्तिलोग,
लच्छीसायरसूरी स रयणसेहरसूरिपट्टसुरलोग ।
भूसीअ परीओ सूरिउवज्झायपण्णससाहुआईहिं,
हरी व सामाणियलोगपालतायत्तीसदेवाईहिं ॥२६७॥
(दुडकला)

वासे वज्जिसये जुएऽस्स जणण, इत्थीकलाहिं १४६४ वय,
वोमद्धीहि १४७७ रिउग्गहेहि १४९६ अहिए, पण्णासण्ण पय ।
उज्झायो विहुणा १५०१ जुए तिहिसये, कम्मेहि १५०८ सूरी स हि,
गच्छीसो तुरगायलाहि १५१७ अहिए, वारासमेहिं १५४७ दिव ॥२६८॥
(सद्दूलविक्कीडिअ)

रत्तो जो हि जिणपडिमातित्थालयागमावे,
सोम्मद्धी समदमणिही गच्छेक्कदत्तचित्तो ।
सो सूरी सिरिसुमइसाहू सूरिणो पयम्मि,
लच्छीसायरगुरुवरस्सऽज्जे सिरिव्व भाही ॥२६९॥
(सुरयललिया)

(सि०-८।१।१७७) इत्यनेन लोपः। ततः प्रथमा सिविभक्तिः, सौ परे 'अक्लीबे सौ' (सि० ८।३।१९) इत्यनेन दीर्घः विभक्तिसकारस्य 'अन्त्यव्यञ्जनस्य' (सि०-८।१।११) इत्यनेन लोपः।

'जयउ' त्ति जिधातोर्बाहुलकाद् इकारस्यायादेशस्ततः सप्तम्यर्थे 'दु सु मु विध्यादिष्वेकस्मिस्त्रयाणाम्' (सि०-८।३।१७३) इत्यनेन तृतीयपुरुषैकवचने दुप्रत्ययः, तस्य च दकारस्य पूर्ववत् 'क-ग-च-ज' इत्यनेन लोपः। यद्वा सिद्धसंस्कृतरूपस्य 'जयतु' इत्यस्य पूर्वोक्तेन 'क-ग-च-ज' इत्यनेन यकार तकारयोर्लोपस्ततः 'अवर्णो यश्रुति' (सि०-८ १।१८०) इत्यनेन लघुप्रयत्नतरयकारश्रुतिर्भवति।

'कुणयपंकहरो' त्ति अत्र संस्कृतवत्समासः सिद्धः, नकारस्य णकारः, यलोपः, लघुप्रयत्नतरयश्रुतिश्च पूर्वोक्तलक्षणैः कार्यः। ङकारस्य 'ङ-ञ-ण-नो व्यञ्जने' (सि०-८।१।२५) इत्यनेनानुस्वारस्ततः पूर्ववत्प्रथमा विभक्तिः।

'जिणीसरो' त्ति अत्रापि संस्कृतवत्समासः, तथा पूर्वोक्तवद् नकारस्य णकारः, तत्सत्कस्याकारस्य च ईश्वरसत्के स्वरे ईकारे परे सति 'लुक्' (सि० ८।१।१०) इत्यनेन लोपः। संयुक्तस्य वकारस्य च 'सर्वत्र ल-ब-रामवन्द्रे' (सि० ८।२।७९) इत्यनेन लोपः, शकारस्य 'शषो स' (सि०-८।१।२६०) इत्यनेन पूर्वोक्तवत् सकारः। ततः पूर्वोक्तवत् प्रथमा विभक्तिः।

'बोहिअभवज्जो' त्ति समासस्तु संस्कृतवत्, संस्कृतसिद्धरूपस्य बोधितशब्दस्य धकारस्य "ख-घ-थ-ध-भाम्" (सि० ८।१।१८७)" इत्यनेन हकारः, तकारस्य च "क-ग-च-ज-त-द" इत्यनेन लोपः, संयुक्तबकारस्य 'सर्वत्र ल ब-रामवन्द्रे' (सि०-८।२।७९) इत्यनेन लोपस्ततः 'अनादौ शेषादेशयोर्द्वित्वम्' (सि०-८।२।८९) इत्यनेन द्वित्वम्। ततः प्रथमा विभक्तिः ॥२॥

> विस्सेऽखिले पहिअविस्सठिईअ वत्ता, लोगीसरो चउमुहो सिरिणाहिजम्मो।
> मे दाउ सोक्खमजिओ पुरिसुत्तमो सो, कदप्पदप्पजइसव्वविओ विसंको ॥३॥
> (वसततिलका)

(हे०) 'विस्से' त्ति विश्वे 'सर्वत्र ल ब रामवन्द्रे' (सि०-२।२ ७९) इत्यनेन लोपः, शकारस्य च 'शषो स' (सि० ८।१।२६०) इत्यनेन सः, द्वित्वं च प्राग्वत्, सप्तम्येकवचनस्य ङिप्रत्ययस्य 'ङे म्मि ङे' (सि०-८।३।२७) इत्यनेन ङिदेकारादेशः, प्रत्ययस्य ङित्त्वेन नाम्नोऽन्त्यस्याऽकारस्य लोपः।

'ऽखिले' त्ति पूर्ववत्सप्तम्येकवचनम्, आदेरकारस्य संस्कृतलक्षणेन 'एदोत पदान्तेऽस्य लुक्' (सि०-१।२।२७) इत्यनेन लोपः।

'पहिअविस्सठिईअ' त्ति संस्कृतवत्समासः, संयुक्तस्य रकारस्य सर्वत्र' (सि० ८।२।७९) इत्यनेन लोपः, थकारस्य 'ख-घ थ-ध-भाम्' (सि०-८।१।१८७) इत्यनेन हकारः, 'क-ग-च ज'

सीसावलीमरिणरिक्कयगच्छगगा, जम्हुग्गआ हयतिविद्धत्रपावपंका।
सोहीअ पट्टहिमवतगिरिम्मि तस्स, पम्हद्दहव्व स गुरू सिरिहीरसूरी ॥
॥२७७॥ (वसततिलया)

जो धम्मे जवणाहिव पि ठविउ, कारीअ अत्था बहू,
भाणू जस्स तवप्पहाअ विजिओ, पावीअ णो थेरिअ ।
चारित्तस्स सिआ ण जस्स सिअया, केण पि चदाइणा,
वच्चा से ण गुणा जया अवि विही, कुज्जा सहस्स मुहा ॥२७८॥
(सद्दूलविक्कीडिअ)

सेऽद्दे सिद्धसये जणी तिहजुए, १५८३ दिक्खा रसक्काहिए १५९६;
विज्जादेविसये रिसीहि १६०७ अहिए, सो पडिओ वायगो ।
कुंभीहिं १६०८ अहिए दिसाहि १६१० अहिए, सूरी णिवाऽकब्बरा;
सिंगऽद्धीहि१६४२जगग्गुरुत्ति विरुद, पत्तो दुगत्तेहि १६५२ ख ॥२७९॥
(सद्दूलविक्कीडिअ)

सद्दुण्णहिवईसरो, सिव स हीरसूरिंदुणो,
हवीअ पयसदणे, विजयसेणसूरी ठिओ ।
खमाइविविहायुहो, विपुलसाहुसेणाजुओ,
कुवाइरिउभीसणो, भविअलोगरक्खायरो ॥२८०॥
(पुहवी)

वाए वाइगणप्पिअं जयसिरिं, घेत्तुं सहामडवे,
जेण कालिसरस्सइ त्ति विरुदं, लद्ध णिवाऽकब्बरा ।
खे देवीसयगे जणी मइजुए १६०४, वासेऽग्गिवीसाहिए १६१३,
दिक्खा भेहि जुअम्मि १६२८ सूरिपयवी, सग्गो छमाऽस्साहिए १६७१ ॥
॥२८१॥ (सद्दूलविक्कीडिअ)

वीसभोजप्पबोहे, स विजयदेवमुणिंदगोवई;
होही सणिज्झदेवो, सुविजयसेणमुणीसपट्टखे ।
णिस्सेस जस्स वत्त, सुइजसणीररयेहि विद्धवं;
णूण त चेव दठ्ठुं, धरइ सहस्समुहा सरावगा ॥२८२॥
(माहवीलया)

णाणतवतेअतुट्ठा, पावीअ महातव त्ति विरुद जो ।
साहिणिवजहगीरा, अणेगसासणपहावयरो ॥२८३॥
(पच्छाज्जा)

जम्मोऽस्स णिवमयेऽद्दे, अहिए ऽतिमयेहि१६३४ तिअयरेहि १६४३ वयं ।
पण्णासो सरिसूहि १६५५ स, सूरी दीवेहि १६५६ ख तिकुणयवुहे १७१३ ।
॥२८४॥ (पच्छागीई)

रात्' (सि०- ८।२।९२) इत्यनेन निषेधेऽपि बाहुलकाद् 'अनादौ शेषादेशयोर्द्वित्वम्' इत्यनेन शेषस्य खस्य द्वित्वम्, ततः 'द्वितीय-तुर्ययोरुपरि पूर्वः' (स -८।२।९०) इत्यनेन खस्य कत्वम्। यद्वा सौख्यशब्दस्य 'ह्रस्व संयोगे' (सि०-८।१।०४) इत्यनेन पूर्वमेवौकारस्योकारः, ततः पूर्ववद् यकार-लोपः, शेषखकारस्य द्वित्वम् कत्वञ्च, ततः 'ओत्संयोगे' (८।१।११६) इत्यनेनोकारः, ततो द्वितीयै-कवचनेऽम्प्रत्ययः, तस्याकारस्य अमोऽस्य' (सि०-८।३।५) इत्यनेन लोपः, ततः 'वा स्वरे मश्च' (सि० ८।१।२४) इत्यनेन मस्यानुस्वाराभावपक्षे लुबपवादो मकारादेशः। तथाऽजितशब्दस्य तकारस्य 'क ग-च० ' (सि०-८।१।१७७) इति लोपः।

"पुरिसुत्तमो" त्ति पुरुषोत्तमशब्दस्य रेफगतस्योकारस्य 'पुरुषे रोः' (सि०-८-१-१११) इत्यनेन इकारो भवति, अकारस्य च स्वरे परे सति 'लुक्' (सि०-८-१ १०) इत्यनेन लोपो भवति, ततः पूर्ववत्प्रथमा विभक्तिः।

"सो" त्ति तच्छब्दस्यान्त्यनकारस्य 'अन्त्यव्यञ्जनस्य' (सि०-८।१।११) इत्यनेन लुग्भवति, ततः प्रथमा सिविभक्तिः, तस्याश्च 'वैतत्तदः' (सि०-८।३।३) इत्यनेन विकल्पेन 'डो' इत्यादेशः, तकारस्य च 'तदश्च तः सोऽक्लीबे' (सि०-८ ३ ८६) इत्यनेन सः, ततः पूर्ववद् रूपसिद्धिः।

"कंदप्पदप्पजइसव्वविओ" त्ति कन्दर्पदर्पजयिसर्ववित्सामासिकशब्दस्य नकारस्य 'मोऽनुस्वारः (सि०-८।१।२३) इत्यनेनानुस्वारः, संयुक्तरकारत्रयस्य 'सर्वत्र ल-ब०' (सि ८।२।७९) इत्यनेन लोपः, ततः 'अनादौ शेषादेशयोर्द्वित्वम्' (सि० ८।२।८९) इत्यनेन शेषपकारवकारयो-र्द्वित्वम्' 'क ग-च० , इत्यनेन यलोपः, ततः शरदादेरत्' (सि०-८।१।१८)इत्यनेनान्त्यव्यञ्जनस्य अदादेशः, ततः पूर्ववत्प्रथमा विभक्तिः।

"विसंको" त्ति वृषाङ्कशब्दस्य ऋतः'इत्कृपादौ' (सि० ८।१।१२८) इत्यनेन कृपादिगण-स्याऽऽकृतिगणत्वाद् बाहुलकाद्वा, इदादेशः, षस्य 'शषोः सः' (सि०-८।१।२६०) इत्यनेन दन्त्य-सकारः, 'ङ-ञ-ण-नो व्यञ्जने' (सि-८।१।२५)इत्यनेन ङस्यानुस्वारः, ततः पूर्ववत्प्रथमा विभक्तिः ॥३॥

कामग्घो रित्तदोसो, अहतरुदहणो, जो भिभङ्को विसामी, जे ऽगेग स्सि भवेऽत्त, परमपयदुग, चक्किकतित्थयरक्ख। माहप्पा जस्स सत, पुरगयमसिव, गब्भआयायमेत्ता, कम्मारी जेणसना, स खलु हवउ वो, सतिदो सतिणाहो। ॥४॥ (सद्धरा)

(हे०) "कामग्घो" त्ति कामघ्नशब्दस्य नस्य 'अधो म-न-याम्' (सि०-८।२।७८) इत्यनेनेन लोपः, शेषस्य घकारस्य'अनादौ शेषादेशयोर्द्वित्वम्' (सि० ८ २।८९)इति द्वित्वम्, द्वित्व-भूतघस्य 'द्वितीय-तूर्ययोरुपरि पूर्वः' (सि०-८।२।९०) इत्यनेन गत्वम्, ततः प्रथमा सिवि-भक्तिः, तस्याश्च 'अत सेर्डोः' (सि०-८।३।२) इत्यनेन 'डो' इत्यादेशः, ततो डित्वात् 'डित्यन्त्य-स्वरादेः' (सि०-२।१।११४) इत्यनेन प्रत्ययपूर्ववर्तिनो नाम्नोऽन्त्यस्य अकारस्य लोपे रूपनिष्पत्तिः।

विजयउ जिणविजयगणी, पण्णसपयंकिओ पए तस्स ।
से णदीसरमदिर-सजम१७५२वासे णित्रा जम्मो ॥२९६॥
(पच्छाज्जा)

बिंदुभयणयहरे १७७० ऽद्दे, दिक्खा पयमिंदुकु भिमुणिकु१७८१मिए।
चीए १७८२ गच्छाणुण्णा, सेवहिणवस्सकुम्मि १७९९ दिव ॥२९७॥
(पच्छाज्जा)

जयउ गणी सिरिउत्तम-विजयो तप्पट्टगगणमत्ताहो ।
तस्स खभूखडऽद्धिकु(१७६०)-मिए जणी विक्कमणित्राऽद्दे ॥२९८॥
(पच्छाज्जा)

दिक्खा दिट्ठिणिहाण-ऽस्स-रसेअसु१७३६मिअवच्छरे ।
वासे वाहऽक्खिसेलिंदु१८२७-८मिए सो दिव गओ ॥२९९॥
(अणुटठुभ)

एअस्स पए भासी, इन्दूमिव इन्दुमेहरम्स सिरे ।
परमद्दहत्ति खाओ, पण्णासो पम्हविजयगणी ॥३००॥
(पच्छाज्जा)

सिंदुररयगेवेज्जय-विमाणसजम१७९२मिए णित्राऽस्स जणी ।
दिक्खा अणुत्तरामर-वोममयगयधरासखे १८०५ ॥३०१॥
(पच्छाज्जा)

दसकंठकंठपाव-ट्ठाण१८१०मिए हायणे पयपइट्ठा ।
रानसुअदसणकरटि-खग्ग१८६२पमाणम्मि देवगई ॥३०२॥
(पच्छाज्जा) (जुग्ग)

णरलोगे मेरुगिरी, जह राईअ तह तस्स पट्टम्मि ।
मुणिगणसेविअपाओ, पण्णंसो रूवविजयगणी ॥३०३॥
(पच्छाज्जा)

रविणा णहमिव पट्टो, गणिणो पण्णसरूवविजयस्स ।
भूसीअहीअ गणिणा, पंडिअसिरिकित्तिविजएणं ॥३०४॥
(पच्छाज्जा)

विउलाजीवणिकाय-प्पवयणमायासुहायरपमाणे ।
भूवाऽद्दे वयमासी, से बहुसिस्सपरिवारो वि ॥३०५॥
(पच्छाज्जा)

ईसिवसहो पण्णसो, कत्थुरविजयो गणी विभूसीअ ।
चक्किस्स पचसाह, चक्क मिव तस्स पट्टसिरिं ॥३०६॥
(पच्छाज्जा)

'परमपयदुग' त्ति सामासिकस्य परमपदद्विकशब्दस्य दस्य 'क-ग-च.' (सि० ८।१।१७७) इति लोपः, 'अवर्णो यश्रुतिः' (सि०-८।१।१८०) इति लघुप्रयत्नतरयश्रुतिः, सयुक्तवकारस्य 'सर्वत्र ल-ब-रामवन्द्रे' सि०-८।२।७९) इत्यनेन लोपे शेषस्य दस्य 'समासे वा' (सि०-८।२।९७) इत्यनेन विकल्पतो द्वित्वाभावः, इकारस्य च 'द्विन्योरुत' (सि०-८।१।९४) इत्यनेन उकारः, कस्य बाहुलकाद् गत्वम्, ततः पूर्ववद् नपुंसकलिङ्गे प्रथमा सिविभक्तिः ।

'चक्कितित्थकरक्ख' ति समासिकस्य चक्रितीर्थङ्कराख्यशब्दस्य 'ह्रस्व सयोगे' (सि०-८।१।८४) इतीकारो ह्रस्वः, संयुक्तरेफयोः 'सर्वत्र ल व ' (सि०-८।२।७९) इति लोपः, शेषयोः क-थयोः 'अनादौ० ' (सि०-८।२।८९) इति द्वित्वम्, द्वित्वस्य थस्य 'द्वितीय-तूर्ययोरुपरि पूर्वं' (सि०-८।२।९०) इत्यनेन तो भवति, ङस्य 'ङ-ञ-ण नो व्यञ्जने' (सि०-८।१।२५) इत्यनेनानुस्वारः, संयुक्तस्य यस्य 'अधो म-न-याम्' (सि०-८।२।७८) इति यलोपः, ततः शेषस्य खस्य 'अनादौ' इति द्वित्वम्, 'द्वितीय- तूर्ययोरुपरि पूर्वं' इति द्विरुक्तस्य खस्य कत्वम्, ततः पूर्ववन्नपुंसके प्रथमा विभक्तिः ।

'माहप्पा' ति माहात्म्यशब्दस्य 'ह्रस्व सयोगे (सि०-८।१।८४) इत्यनेन ह्रस्वः, 'अधो म-न-याम्' (सि०-८।२।७८) इत्यनेन यलोपः, ततः 'भस्मात्मनोः पो वा' (सि०-८।२।५१) इत्यनेन त्मस्य पो भवति, ततः 'अनादौ' इति द्वित्वम्, ततः पञ्चम्या विभक्तेर्ङसेः 'ङसेस् त्तो-दो-दु-हि-हिन्तो लुक' (सि-८।३।९) इत्यनेन 'लुग्' इत्यादेशः, 'जस्-शस्-ङसि-त्तो-दो-द्वामि दीर्घ' (सि०-८।३।१२) इत्यनेन दीर्घः ।

'पुरगयमशिव' ति सामासिकस्य पुरगतशब्दस्य बाहुलकाद् वाक्यविभक्त्यपेक्षया पदादित्वाद् वा गस्य लोपाभावः, तस्य पुनः 'क-ग-च० ' इति लोपे 'अवर्णो यश्रुति' (सि०-८।१।१८०) इति लघुप्रयत्नतरयश्रुतिः, ततो नपुंसके पूर्ववत्प्रथमा विभक्तिः, ततोऽशिवशब्दे परे 'वा स्वरे मश्च' (सि०-८।१।२४) इत्यनेन विभक्तिरूपस्य मस्यानुस्वाराभावपक्षे लुगपवादो मकारो भवति । अशिवशब्दात्पूर्ववन्नपुंसकलिङ्गे प्रथमा विभक्तिः ।

'गब्भआयायमेत्ता' त्ति सामासिकस्य गर्भायातमात्रशब्दस्य 'पदयो सन्धिर्वा' (सि०-८।१।५) इत्यनेन पदयोः सन्ध्यभावः । संयुक्तरेफयोः 'सर्वत्र ल-ब० ' (सि०-८।२।७९) इतिलोपः, शेषयोर्भतयोः 'अनादौ० ' (सि०-८।२।८९) इति द्वित्वम्, तत्राऽपि तस्य 'न दीर्घानुस्वारात्' (सि०-८।२।९२) इति निषेधेऽपि बाहु ाद् द्वित्वम्, 'द्वितीय-तूर्ययो० ' (सि०-८।२।९०) इति भस्य बत्वम्, 'मात्राटि वा' (सि०-८।२।८१) इति सूत्रेण बाहुलकाद् मात्रशब्दस्याकारस्याऽपि एकारः, ततः पञ्चम्येकवचनस्य ङसेः 'ङसेस् त्तो-दो-दु-हि-हिन्तो लुक' (सि०-८।३।८) इति लुगादेशः,

विजयउ जिणविजयगणी, पण्णसपयक्किओ पए तस्स ।
से णदीसरमदिर-सजम१७५२वासे णिवा जम्मो ॥२९६॥
(पच्छाज्जा)

बिंदुभयणयहरे १७७० ऽई, दिक्खा पयमिंदुकुभिमुणिकु१७८१मिए।
चीए १७८२ गच्छाणुण्णा, सेवहिणवसकुम्मि १७९९ दिव ॥२९७॥
(पच्छाज्जा)

जयउ गणी सिरिउत्तम-विजयो तप्पट्टगगणमत्ताहो ।
तस्स खभूखडऽद्धिकु(१७६०)-मिए जणी विक्कमणिवाऽहे ॥२९८॥
(पच्छाज्जा)

दिक्खा दिट्ठिणिहाण-ऽस्स-रसेअसु१७३६मिअवच्छरे ।
वासे वाहऽक्खिसेलिंदु१८२७-प्पमिए सो दिव गओ ॥२९९॥
(अणुट्ठुभ)

एअस्स पए भासी, इन्दूमिव इन्दुमेहरम्स सिरे ।
परमद्दहत्ति खाओ, पण्णासो पम्हविजयगणी ॥३००॥
(पच्छाज्जा)

सिंदुररयगेवेज्जय-विमाणसजम१७९२मिए णिवाऽस्स जणी ।
दिक्खा अणुत्तरामर-वोममयगयधरासखे १८०५ ॥३०१॥
(पच्छाज्जा)

दसकठकंठपाव-ट्ठाण१८१०मिए हायणे पयपइट्ठा ।
राभसुअदसणकरटि-खग्ग१८६२पमाणम्मि देवगई ॥३०२॥
(पच्छाज्जा) (जुग्ग)

णरलोगे मेरुगिरी, जह राईअ तह तस्स पट्टम्मि ।
मुणिगणसेविअपाओ, पण्णसो रूवविजयगणी ॥३०३॥
(पच्छाज्जा)

रविणा णहमिव पट्टो, गणिणो पण्णसरूवविजयस्स ।
भूसीअहीअ गणिणा, पंडिअसिरिकित्तिविजएणं ॥३०४॥
(पच्छाज्जा)

विउलाजीवणिकाय-प्पवयणमायासुहायरपमाणे ।
भूवाऽहे वयमासी, से बहुसिस्सपरिवारो वि ॥३०५॥
(पच्छाज्जा)

ईसिवसहो पण्णसो, कस्थुरविजयो गणी विभूसीअ ।
चक्किस्स पचसाहं, चक्क मिव तस्स पट्टसिरिं ॥३०६॥
(पच्छाज्जा)

'परमपयदुग' त्ति सामासिकस्य परमपदद्विकशब्दस्य दस्य 'क-ग-च ' (सि० ८।१।१७७) इति लोपः, 'अवर्णो यश्रुति॰' (सि०-८।१।१८०) इति लघुप्रयत्नतरयश्रुतिः, सयुक्तवकारस्य 'सर्वत्र ल-ब-रामवन्द्रे' सि०-८।२।७९) इत्यनेन लोपे शेपस्य दस्य 'समासे वा' (सि०-८।२।९७) इत्यनेन विकल्पतो द्वित्वाभावः, इकारस्य च 'द्विन्योरुत' (सि०-८।१।९४) इत्यनेन उकारः, कस्य बाहुलकाद् गत्वम्, ततः पूर्ववद् नपुंसकलिङ्गे प्रथमा सिविभक्तिः ।

'चक्कितित्थकरक्ख' ति समासिकस्य चक्रितीर्थङ्कराख्यशब्दस्य 'ह्रस्व सयोगे' (सि०-८।१।८४) इतीकारो ह्रस्वः, संयुक्तरेफयोः 'सर्वत्र ल व ' (सि०-८।२।७९) इति लोपः, शेपयोः क-थयोः 'अनादौ० ' (सि०-८।२।८९) इति द्वित्वम्, द्वित्वस्य थस्य 'द्वितीय-तूर्ययोरुपरि पूर्व ' (सि०-८।२।९०) इत्यनेन तो भवति, ङस्य 'ङ-ञ-ण नो व्यञ्जने' (सि०-८।१।२५) इत्यनेनानुस्वारः, संयुक्तस्य यस्य 'अधो म-न-याम्' (सि०-८।२।७८) इति यलोपः, ततः शेपस्य खस्य 'अनादौ ' इति द्वित्वम्, 'द्वितीय- तूर्ययोरुपरि पूर्वे-' इति द्विरुक्तस्य खस्य कत्वम्, ततः पूर्ववन्नपुंसके प्रथमा विभक्तिः ।

'माहप्पा' ति माहात्म्यशब्दस्य 'ह्रस्व सयोगे (सि०-८।१।८४) इत्यनेन ह्रस्वः, 'अधो म-न-याम्' (सि०-८।२।७८) इत्यनेन यलोपः, ततः 'भस्मात्मनोः पो वा' (सि०-८।२।५१) इत्यनेन त्मस्य पो भवति, ततः 'अनादौ' इति द्वित्वम्, ततः पञ्चम्या विभक्तेर्ङसेः 'ङसेस् त्तो-दो-दु-हि-हिन्तो लुक' (सि-८।३।९)इत्यनेन 'लुग्' इत्यादेशः, 'जस्-शस्-ङसि त्तो-दो-द्वामि दीर्घ ' (सि०-८।३।१२) इत्यनेन दीर्घः ।

'पुरगयमशिव' ति सामासिकस्य पुरगतशब्दस्य बाहुलकाद् वाक्यविभक्त्यपेक्षया पदादित्वाद् वा गस्य लोपाभावः, तस्य पुनः 'क-ग-च० ' इति लोपे 'अवर्णो यश्रुति ' (सि०-८।१।१८०) इति लघुप्रयत्नतरयश्रुतिः, ततो नपुंसके पूर्ववत्प्रथमा विभक्तिः, ततोऽशिवशब्दे परे 'वा स्वरे मश्च' (सि०-८।१।२४) इत्यनेन विभक्तिरूपस्य मस्यानुस्वाराभावपक्षे लुगपवादो मकारो भवति । अशिवशब्दात्पूर्ववन्नपुंसकलिङ्गे प्रथमा विभक्तिः ।

'गब्भआयायमेत्ता' त्ति सामासिकस्य गर्भायातमात्रशब्दस्य 'पदयो सधिर्वा' (सि०-८।१।५) इत्यनेन पदयोः सन्ध्यभावः । संयुक्तरेफयोः 'सर्वत्र ल-ब० ' (सि०-८।२।७९) इतिलोपः, शेषयोर्भतयोः 'अनादौ० ' (सि०-८।२।८९) इति द्वित्वम्, तत्राऽपि तस्य 'न दीर्घानुस्वारात्' (सि०-८।२।९२) इति निषेधेऽपि बाहुलकाद् द्वित्वम्, 'द्वितीय-तूर्ययो० ' (सि०-८।२।९०)इति भस्य बत्वम्, 'मात्राटि वा' (सि०-८।२।८१) इति सूत्रेण बाहुलकाद् मात्रशब्दस्याकारस्याऽपि एकारः, ततः पञ्चम्येकवचनस्य ङसेः 'ङसेस् त्तो-दो-दु-हि-हिन्तो लुक' (सि०-८।३।८) इति लुगादेशः, जस्-शस्-ङसि त्तो-दो-द्वामि दीर्घ ' (सि०-८।३।१२) इति दीर्घः ।

विजयाणदायरिअसु-सिस्सो सिद्धवयणो जयउ लोए ।
विम्हयजणगचरित्तो उज्झायो वीरविजयगणी ॥३१६॥
(पच्छाज्जा)

णिहिकुसयेऽस्स णिवा-ऽद्दे, जम्मोऽद्दीहि १९०८ ओहए वयगुणेहि १९२५ ।
दिक्खा उज्झायपय, हयिसूहि १९५७ जुअम्मि इसुहयेहि १९७५ दिव ॥
॥३१७॥ (पच्छागीई)

दाणव जो पयगले अमुणो त्रिमाही, उज्झायवीरविजयऽक्खगुरुस्स सीसो ।
जेण कय विरद्धबोहिपभीइदाण, त्रीसस्सुओ जयउ सो सिरिदाणसूरी ॥
॥३१८॥ (वसततिलया)

जिणणिहिससहर १९२४ वासे, भूवा जम्मोऽस्स झीकु वाडक्खे ।
गामे कत्तिअमासे, तिहीअ सुद्धचउदसमीए ॥३१९॥
(पच्छाज्जा)

सव्वसहादसरहसुअ-णारयखत१९४१द्दमग्गमिरमासे ।
सुक्काअ पचमीए, तिहीअ घो(गो)घक्खवदिरे दिक्खा ॥३२०॥
(पच्छाज्जा)

णायणमहुयरचरणवपु-दारव्वी१९६२सखवाससहमासे ।
सुक्केगारसमीए, तिहीअ थभणपुरे स पण्णासो ॥३२१॥
(पच्छागीई)

भवइसिहरितणुछिद्दकु१९८१-मिअवस्से मग्गसीसमासम्मि ।
सिअपचमीदिणे सो, हवीअ छाणीपुरे सूरी ॥३२२॥
(पच्छाज्जा)

सिंधुत्थहरिहलिमही१९९१-पमाणगसम्मि माहमासम्मि ।
सिअपक्खदुइअदिवसे, सग्गमिओ पाडडीगामे ॥३२३॥
(पच्छाज्जा)

चीरा पट्टहराणं, अज्जसिलोगाण अक्खराऽज्जा जे ।
गयस्स कत्तुणो से, से गुरुभाईण पच्चया तेऽत्थि ॥३२४॥
(पच्छागीई)

णं वदे पेमसूरिं, पहिअसुचरण, दाणसूरिस्स सीसं,
पट्टव्वोमसुमालिं, रसतुरग७६मिते, वीरपट्टे णिविट्ठ ।
वद्धो बाला‍वुद्ध-प्पहुइसुणिगणो, पेमपासेहि जेण;
कि लज्जाए अदिस्सो, मइविहवजिओ, जस्स देवाण सूरी ॥३२५॥
(सद्धरा)

जो वच्छल्लणिही णिरीहजलही, चारित्तचूडामणी;
ज दट्ठुं पि मुय अइन्ति परम, पाएण दुट्ठा वि ही ।

(हे०) **'जेणं'** ति यच्छब्दस्य यकारस्य 'आदेर्यो ज' (सि०-८।१।२४५) इत्यनेन जः, अन्त्यव्यञ्जनस्य च 'अन्त्यव्यञ्जनस्य' (सि०-८।१।११) इति लोपः, ततस्तृतीयैकवचनस्य टाप्रत्ययस्य 'टा-ऽऽमोर्णः' (सि०-८।१।६) इत्यनेन 'ण' इत्यादेशः, ततः 'क्त्वा स्यादेर्णस्वोर्वा' (सि०-८।१।२७) इत्यनेन विकल्पतोऽनुस्वारागमो भवति ।

'पाणिगहच्छला' त्ति संयुक्तसत्करेफस्य 'सर्वत्र ल ' (सि०-८।२।७९) इति लोपः । ततः शेषस्य गस्य 'समासे वा' (सि०-८।२।९७) इति सूत्रेण विकल्पतो द्वित्वाभाव । तथाऽनेनैव सूत्रेण बाहुलकादशेषादेशभूतस्याऽपि छस्य द्वित्वम् , ततः 'द्वितीय-तूर्य ' इति चत्वम् , ततः पञ्चम्येकवचनस्य ङसिप्रत्ययस्य 'ङसेस् त्तो दो दु-हि-हिन्तो-लुकः' (सि०-८।३।८) इत्यनेन लुग्, 'जस्-शस्-ङसि—' (सि०-८।३।१२) इत्यनेन दीर्घश्च ।

'णवभवीपीईअ' त्ति सस्कृतवत्कृतसमासस्य नवभवीप्रीतिशब्दस्य 'वादौ' (सि० ८।१।२२९) इत्यनेन विकल्पतो नस्य णत्वम्, 'सर्वत्र ल ' इति संयुक्तरेफो लोपः, ततः 'न दीर्घानुस्वारात्' (सि० ८।२।९२) इति 'समासे वा' (सि० ८।२।९८) इति वा द्वित्वाभावः, ततस्तृतीयैकवचनस्य टाप्रत्ययस्य 'टा-ङस ङेरदादिदेद्वा तु ङसे' (सि०-८।३।२९) इत्यनेन अदादेशो दीर्घश्च भवति ।

'राईमई' त्ति राजीमतीशब्दस्य जतयोः 'क-ग च० -' सि०-८।१।१७७) इति लोपः, ततः प्रथमैकवचने सिविभक्तिः, तस्याः सस्य 'अन्त्यव्यञ्जनस्य' (सि०–८।१।११) इति लोपः ।

'संकेअं' ति सङ्केतशब्दस्य ङस्य 'ङ ञ-ण०—' इत्यनुस्वारः, यद्वा संस्कृते-ऽपि संकेतशब्दः सानुस्वारो भवति। तथाहि—समुपसर्गस्यापि पदसंज्ञालाभाद् 'तौ मु-मौ व्यञ्जनेस्वौ' (सि०-१।३।१४) इत्यनेन अनुस्वारानुनासिकयोः पर्यायेण भवनादनुस्वारोऽपि भवति, ततः संस्कृतवदपि सिध्यति। तस्य च 'क-ग-च० ' इति लोपः, ततो द्वितीयैकवचनेऽम्प्रत्ययः, तस्याकारस्य 'अमोऽस्य' (सि०-८।३।५) इत्यनेन लोपः, 'मोऽनुस्वारः' (सि०८।१।२३) इत्यनेन मस्यानुस्वारः ।

'करिऊण' त्ति 'डुकृग् करणे' इति कृधातोः 'ऋवर्णस्यार' (सि०-८।४।२३४) इत्यनेन अरादेशः, भूतार्थस्य क्त्वाप्रत्ययस्य 'क्त्वस्तुमत्तूण-तुआणाः' (सि०-८।२।१४६ इत्यनेन तूणादेशः, तस्य तकारस्य 'क-ग-च० -' इति लोपः, तत्पूर्ववर्तिनोऽस्य 'एच्च क्त्वा-तुम् तव्य-भविष्यत्सु' (सि०-८।३।१५७) इतीकारो भवति ।

'मुत्तिगमणे' त्ति सामासिकस्य मुक्तिगमनशब्दस्य संयुक्तस्य कस्य 'क-ग ट०—' (सि० ८।२।७७) इत्यनेन लोपः, शेषस्य तस्य 'अनादौ०' (सि०-८।२।८९) इति द्वित्वम् , नस्य 'नो ण'

मासे हो फग्गुणक्खे, परमगुरुजणी, पुण्णिमाए तिहीए,
वारे भोमाभिधाने, दुइअचरणगे, उत्तराफग्गुणीभे ॥३३३॥
(सद्धरा)

लग्गे मयराभिक्खे, कण्णारासिट्ठिअम्मि चंदम्मि ।
कुम्भाभिहरासिम्मि य, आइच्चदसस्ससूनूसु ॥३३४॥
(पच्छाज्जा)

सुक्कस्सेसाभूसु, मेसगएसु सणिम्मि वसहठिए ।
गुरुमगलेसु कक्क-त्थेसु तुलाअ उण राहुम्मि ॥३३५॥
(पच्छाज्जा)

पालित्ताणे णयरे, वासे मुणिसरगहात्रणी१६५७सखे ।
बहुलाए छट्ठीए, तिहीअ मासम्मि कत्तिए दिक्खा ॥३३६॥
(पच्छागीई)

उवठवणा सामाए, एगारसमीअ कम्मवाडीए ।
पोसे मासे उज्झा णयरे तम्मि च्च वासम्मि ॥३३७॥
(पच्छाज्जा)

वब्भावईपुरे गणि-पयवी, वक्खऽस्सणदचिहु१६७६वासे
आसि तिहीअ सिआए, दसमीए आसिणे मासे ॥३३८॥
(पच्छाज्जा)

भूवा कुगयणिहिधरा१९८९-सखे वासे अहम्मयावाए ।
पण्णासपय मग्गे, मासे सिअपंचमीदिवसे ॥३३९॥
(पच्छाज्जा)

मुबापुरीअ वायग-पय णिवा तुरगिहक्कु१६८७मिए-ऽट्टे ।
जाअ कत्तिअमासे, तइआअ तिहीअ सामाए ॥३४०॥
(मुहचवलापच्छाज्जा)

राहणपुरवखणयरे, सुक्कचउद्दसतिहिम्मि महुमासे ।
भूवा ससकगहणिहि-सुहायराइम्मि १६६१ सूरिपय ॥३४१॥△
(अतचवलापच्छाज्जा)

सासणपहावगाऽण्णो, वि अज्जमर्वाह अणायणामाई ।
जाआ रोगा सूरी, तह मुणिणो ते जयन्तु जगे ॥३४२॥
(पच्छाज्जा)

मुद्रणसमयापेक्षया प्रक्षिप्ता गाथा—

△थभणपुरेऽस्स सग्गो, हवीअ भूवाउ जिणणाह२०२४मिअट्ठे ।
रयणीअ राहमासे, तिहीअ एगारसीअ बहुलाए ॥३४१B॥
(पच्छागीई)

'हरी' त्ति पूर्ववत् । **'भव्वाणं'** ति भव्यशब्दस्य 'अधो-म-न याम्' इति संयुक्तयलोपः, 'अनादौ०' इति शेषस्य वस्य द्वित्वम्, ततः षष्ठीबहुवचनस्याम्प्रत्ययस्य 'टा-ऽऽमोर्णः' (सि०-८।३।६) इत्यनेन णः, 'क्त्वा-स्यादेर्ण स्वोर्वा (सि०-८।१।२७) इत्यनुस्वारागमः, 'जस्-शस्-ङसि त्तो-दो द्वामि दीर्घः' (सि०-८।३।१२) इति दीर्घः ।

'वितरेउ' त्ति विपूर्वकस्य तृधातोः 'ऋवर्णस्यार' (सि-८।४।२३४) इत्यनेन अरादेशः, ततः पञ्चम्यर्थैकवचने 'दु-सु-मु—' (सि०-८।३।) इति दुप्रत्ययः, तस्य दस्य 'क ग च० .' इति लोपः, धातोरन्त्यस्याकारस्य 'वर्तमाना-पञ्चमी-शतृषु वा' इत्यनेन विकल्पत एकारो भवति ।

'मंगलसिरिं' ति मङ्गलश्रीशब्दस्य ङस्य 'ङ-ञ-ण-नो व्यञ्जने' (सि० ८।१।२५) इत्यनेनाऽनुस्वारः, 'ह्री-श्री ' (सि०-८।२।१०४) इत्यनेन संयुक्तरेफस्य पूर्वं इकारागमः, ततो द्वितीयैकवचनेऽम्प्रत्ययः, ततः 'शेषेऽदन्तवत्' (सि०-८।३।१२४) इति लक्षणवशात् 'अमोऽस्य' (सि०-८।३।५) इत्यनेनामोऽकारस्य लोपः, 'ह्रस्वोऽमि' (सि०-८।३।३६) इत्यनेन ह्रस्वश्च ।

'सो' त्ति तच्छब्दस्य 'अन्त्यव्यञ्जनस्य' (सि०-८।१।११) इत्यनेना-ऽन्त्यव्यञ्जनलोपः, ततः प्रथमैकवचने सिविभक्तिः, तस्याः, 'वैतत्तदः' (सि०-८।३।३) इत्यनेन विकल्पतः 'डो' इत्यादेशः डित्त्वादस्य लोपः, 'तदश्च तः सोऽक्लीबे' (सि०-८।३।८६) इत्यनेन तस्य सः ।

'नेमिणाहो' त्ति 'नो णः' (सि०-८।१।२२८) इत्यनेन द्वितीयस्य नस्य णः, यद्वा वाक्य-विभक्त्यपेक्षया यदा तस्यादित्वं विवक्ष्यते तदाऽपि 'वादौ' (सि०-८।१।२२९) इत्यनेनापि विकल्पतो भवति । तथा 'वादौ' इत्यनेनादेर्नस्य विकल्पत्वान्न प्रथमस्य नस्य णत्वम्, 'ख-घ-थ-ध-भाम्' (सि०-८।१।१८७) इत्यनेन थस्य हः, ततः पूर्वोक्तवत्प्रथमैकवचने सिविभक्तिः ।

'जिणो' त्ति जिनशब्दस्य नस्य 'नो णः' इति णत्वम्, ततः पूर्ववत्प्रथमा विभक्तिः ॥५॥

जेण झाणाउहेणा-ऽमिअबलवइणा, णासिओ कम्मपासो, भाही जो सव्ववेई, सुरअसुरणर-स्सामिसघातपासो । जक्खो पायज्जजुग्ग, भवजलहितरिं, जस्स सेवीअ पासो, भव्वाण विग्घवु द, हरउ दुहयर, तित्थणाहो स पासो । ॥६॥ (सद्धरा)

(हे०) **'जेणं'** ति यच्छब्दस्य तृतीयैकवचनान्तस्य पूर्वोक्तवद् रूपसिद्धिः ।

'झाणाउहेणामिअबलवइणा' त्ति सामासिकस्य ध्यानायुधशब्दस्य संयुक्तस्य 'साध्वस-ध्य-ह्यां झः' (सि० ८।२।२६) इत्यनेन झः, नस्य 'नो णः' (सि० ८।१।२२८) इति णः, 'क-ग-च ' इति यलोपः, 'ख घ ' इति धस्य हः, ततस्तृतीयैकवचने टाप्रत्ययः, तस्य 'टा-ऽऽमोर्णः' (सि० ८।३।६) इत्यनेन णादेशः, 'टाण शस्येत्' (सि०-८।३।१४) इत्यनेनास्य एकारः । सामासिकस्य अमितबलपतिशब्दस्य तकारयोः 'क-ग-च० ' इति लोपः, 'पो वः' (सि०-८।१।२३१) इत्यनेन पस्य वत्वम्, ततः तृतीयैकवचने

मासे द्वी फग्गुणक्खे, परमगुरुजणी, पुण्णिमाए तिहीए,
वारे भोमाभिधाने, दुइअचरणगे, उत्तराफग्गुणीभे ॥३३३॥
(सद्धरा)

लग्गे मयराभिक्खे, कण्णारासिट्ठिअम्मि चंदम्मि ।
कुम्भामिहरासिम्मि य, आइच्चदसस्ससूनूसु ॥३३४॥
(पच्छाउज्जा)

सुक्कस्सेसाभूसु, मेसगएसु सणिम्मि वसहठिए ।
गुरुमगलेसु कक्क-रथेसु तुलाअ उण राहुम्मि ॥३३५॥
(पच्छाउज्जा)

पालित्ताणे णयरे, वासे मुणिसरगहाबणी१९७७सखे ।
बहुलाए छट्ठीए, तिहीअ मासम्मि कत्तिए दिक्खा ॥३३६॥
(पच्छागीई)

उवठवणा सामाए, एगारसमीअ कम्मवाडीए ।
पोसे मासे उञ्झा णयरे तम्मि च्च वासम्मि ॥३३७॥
(पच्छाउज्जा)

वब्भावईपुरे गणि-पयवी, वक्खऽस्सणदविहु१९७६वासे
आसि तिहीअ सिआए, दसमीए आसिणे मासे ॥३३८॥
(पच्छाउज्जा)

भूवा कुगयणिहिघरा१९८९-सखे वासे अहम्मयावाए ।
पण्णासपय मग्गे, मासे सिअपंचमीदिवसे ॥३३९॥
(पच्छाउज्जा)

मुंबापुरीअ वायग-पय णिवा तुरगिहक्कु१९८७मिए-ऽद्दे ।
जाअ कत्तिअमासे, तइआअ तिहीअ सामाए ॥३४०॥
(मुहचवलापच्छाउज्जा)

राहणपुरक्खणयरे, सुक्कचउद्दसतिहिम्मि महुमासे ।
भूवा ससकगहणिहि-सुहायराइम्मि १९९१ सूरिपय ॥३४१॥△
(अतचवलापच्छाउज्जा)

सासणपहावगाऽण्णे, वि अज्जमवहि अणायणामाई ।
जाआ योगा सूरी, तह मुणिणो ते जयन्तु जगे ॥३४२॥
(पच्छाउज्जा)

मुद्रणसमयापेक्षया प्रक्षिप्ता गाथा—
△थभणपुरेऽस्स सग्गो, हवीअ भूवाउ जिणणह२०२४मिअद्दे ।
रयणीअ राहमासे, तिहीअ एगारसीअ बहुलाए ॥३४१B॥
(पच्छागीई)

'उप्पण्णमेत्तो वि' त्ति उत्पन्नमात्रशब्दे 'क-ग-ट० ' इति संयुक्तस्यादेस्तस्य लोपः, 'अनादौ०' इति शेषस्य पस्य द्वित्वम्, 'अधो म-न-याम्' (सि०-८।२।७८) इति संयुक्तस्य नस्य लोपः, 'नो ण' इति शेषस्य नस्य णत्वम्, 'अनादौ' इति द्वित्वञ्च; 'मात्रटि वा' (सि०-८।१।८१) इति सूत्रेण बाहुलकान्मात्रशब्दस्याऽप्याकारस्य एकारः, संयुक्तस्य रस्य 'सर्वत्र०' इति लोपः, 'न दीर्घा०' इति निषेधेऽपि बाहुलकात् 'अनादौ०' इति शेषस्य तस्य द्विरुक्तिः। ततः पूर्ववत्प्रथमा विभक्तिः। अपिशब्दस्यादेरकारस्य पदादपेर्वा (सि०-८।१।४१) इति लोपः, बहुलाधिकारादादेरपि पस्य 'पो व.' (सि०-८।१।२३१) इति वत्वम्।

'जो' त्ति यच्छब्दस्यान्त्यव्यञ्जनस्य 'अन्त्य०' इति लोपः, 'आदेर्यो ज' इति जत्वम्, ततः प्राग्वत्प्रथमा सिविभक्तिः।

'जयए' त्ति जिधातोर्बाहुलकादिकारस्य अयादेशः, ततो वर्तमानकालतृतीयपुरुषैकवचने 'त्यादीनामाद्यत्रयस्याद्यस्येचेचौ' (८।३।१३९) इत्यनेन एच्प्रत्ययः।

'जस्स' त्ति पूर्ववदन्त्यव्यञ्जनलोप-जकारौ, ततः षष्ठ्येकवचनस्य ङस्प्रत्ययस्य 'ङस स्स' (सि०-८।३।१०) इत्यनेन स्सादेशः,

'दुहाकुले' त्ति दुःखाकुलशब्दे 'दु ख ' (सि०-८।१।७२) इति संयुक्तस्य हः, बाहुलकाद् 'क-ग-च०-' इति प्राप्तोऽपि कलोपो न, यद्वा 'क-ग-च० 'इत्यत्र प्रायोग्रहणात्कलोपो न, ततः पूर्ववत् सप्तम्येकवचनम्।

'कलिजुगे' त्ति कलियुगशब्दे वाक्यविभक्त्यपेक्षया यकारस्यादित्वेन 'आदेर्यो ज' (सि०-८।१।२४५) इति यस्य जत्वम्, ततः पूर्ववत्सप्तम्येकवचनम्।

'णिव्वाणदं' ति निर्वाणदशब्दस्य 'वादौ' (सि०-८।१।२२९) इति नस्य णत्वम्, संयुक्तस्य रेफस्य 'सर्वत्र० ' इति लोपः, 'अनादौ०—' इति शेषस्य वस्य द्वित्वम्, दस्य वाक्यविभक्त्यपेक्षया पदादित्वेन लोपाभावः, ततः पूर्ववद् द्वितीयैकवचनम्।

'सासण' ति शासनशब्दस्य शस्य 'श-षो स' इत्यनेन स', 'नो ण' इत्यनेन नस्य णः, ततः पूर्ववद् द्वितीयैकवचनम्।

'मम' त्ति अस्मच्छब्दस्य षष्ठ्येकवचनेन ङस्प्रत्ययेन सह 'मे मइ मम मह मह मज्झ मज्झ अम्ह अम्ह ङसा' (सि०-८।३।११३) इत्यनेन निपातः (आदेशः)।

'सो' त्ति तच्छब्दस्य पूर्ववत्।

'दाउ' त्ति दाधातोः 'दु सु मु०..' इति पञ्चम्यर्थे दुप्रत्ययः, तत्सत्को दः 'क-ग-च०—' इत्यनेन लुप्यते।

सीसोऽस्स ललिअसेहर-विजयो विज्जो जयेउ सोम्मद्दी ।
वेरग्गवासिअमणो, वेयावच्चाइसोगगुणजुत्तो ॥३५२॥
(पच्छागीई)

वीरविहूओ अवर—छेअस्सुअमूलसुत्तपाअ२४६०मिए ।
आगासपयत्थअट्टि-गठिद्धसक्किगोलग१६६०२मिए ॥३५३॥
(पच्छागीई)

विक्कमभूवालाओ, वासम्मि णहम्मसासम्मि ।
बहुलाअ पचमीए, तिहीअ आसी अमुस्स जणी ॥३५४॥
(जहणचवलापच्छोवगीई)

णहपाडिहेरसासय-पडिमालोयण२४८०मिए वीरा ।
सवच्छरे णिवा उण, कप्पद्दुमविहरमाणजिणे २०१० ॥३५५॥
(पच्छोवगीई)

दिक्खा-ऽऽसि सहे मासे, सिआअ तइआअ कम्मवाडीए ।
तवमासम्मि समुज्जल-तुरिअतिहिम्मि उण उवठवणा ॥३५६॥
(पच्छाज्जा)

तस्स सिरिरायसेहर-विजयो सीसो सहोयरयरोऽत्थि ।
सवेगरगरजिअ-मणो गयछिवो णिवुणबुद्धी ॥३५७॥
(पच्छाज्जा)

वासे भूवा ऽक्खरसुअ-गेविज्जयणोमिणाहभवराए १६६३ ।
वीरा जोणितिसत्थय-लोयणअणुओगग व२४६३मिए ॥३५८॥
(पच्छाज्जा)

सुक्काअ पचमीए, तिहीअ जम्मोऽस्स भद्दवयमासे ।
वासम्मि सव्वसासा-ऽसमाहिठाणे २०१० णिवा दिक्खा ॥३५९॥
(सव्वचवलापच्छाज्जा)

मासम्मि मग्गसीसे, सिअतइअतिहिम्मि तम्मि चेवऽद्दे ।
सुक्कचउत्थतिहीए, उवठवणा माहमासम्मि ॥३६०॥
(पच्छाज्जा)

तस्स विणेएण सिअ-दुवालसतिहीअ कामसहमासे ।
जाएण विहुदिसोऽद्धि-गहकचदे १९९४ णिवा वासे ॥३६१॥
(पच्छाज्जा)

सभुणहे २०११ तवमासे, सिअदसमतिहिम्मि गहिअदिक्खेण ।
जाउवठवणेण य उण, माहवमाससिअसत्तमीदिवसे ॥३६२॥
(पच्छागीई)

'गुम्हिआ' त्ति गुम्फधातोः 'व्यञ्जनाददन्ते' (सि०-८।४।२३९) इत्यनेन धातोरन्तेऽदागम', संयुक्तस्य च बाहुलकाद् म्हादेशः, ततः कर्मणि भूतार्थे क्तप्रत्ययः, 'क्ते' (८।३।१५६) इत्यनेनाऽस्य इत्वम्, प्रत्ययसत्कस्य तकारस्य 'क-ग-च०' इति लोपः, ततः 'शेष संस्कृतवत्सिद्धम्' (सि०-८।४।४४८) इति प्राकृतलक्षणवशात् 'आत्' (२।४।१८) इत्यनेन स्त्रियामाप्प्रत्ययः, यद्वा सिद्धसंस्कृतस्य गुम्फिताशब्दस्य बाहुलकात् संयुक्तस्य म्हादेशः, 'क-ग-च०' इति तलोपश्च, ततः प्रथमा सिविभक्तिः, तस्याः 'अन्त्य०' इति लोपः।

'बारसंगी' त्ति द्वादशाङ्गीशब्दे संयुक्तस्य दस्य 'क-ग-ट०' (सि०-८।२।७७) इति लोपः, 'वबयोरैक्यम्' इति वचनात् 'वबयोरभेद' इति वचनाद्वा वकारस्य बकारः, तथाहि-'सर्वत्र-ल-ब-रा०' इति सूत्रे बकारस्यैव केवलस्य ग्रहणे सत्यऽपि वकारे तत्कार्यं भवत्येव। 'सख्या-गद्गदे र' (सि०-८।१।२१९) इति दस्य रादेशः, 'दश-पाषाणे ह' (सि०-८।१।२६२) इति सूत्रे दशशब्दस्य शस्य हादेशविकल्पितत्वादत्र न हादेशः, ततः 'श षो स' इति सः, तद्गतस्याऽकारस्य 'ह्रस्व सयोगे (सि०-८।१।८४) इति ह्रस्वः, 'ङ-ञ०' इत्यनेन ङस्यानुस्वारः, ततः प्रथमा सिविभक्तिः, तस्याः सस्य 'अन्त्य०' इति लोपः।

'णट्ठो' त्ति नष्टशब्दस्य 'वादौ' (सि० ८।१।२२९) इति विकल्पतो नस्य णत्वम्, सयुक्तस्य 'ष्टस्यानुष्ट्रेष्टासदष्टे' (सि०-८।२।३४) इत्यनेन ठादेशः, 'अनादौ०' इति ठस्य द्वित्वम्, द्वित्वभूतस्य ठस्य 'द्वितीयतूर्ययो०' इत्यनेन टः, ततः पूर्ववत्प्रथमा सिविभक्तिः।

'वीरऽज्जुमणिउदये' त्ति सामासिकस्य वीरद्युमण्युदयशब्दस्य संयुक्तस्य द्यस्य 'द्य-य्य र्यां ज' (सि०-८।३।२४) इत्यनेन जादेशः, तस्य च 'अनादौ०' इति द्वित्वम्, 'पदयो संधिर्वा' (सि० ८।१।५) इति सन्धिविकल्पनादसन्धिः, ततः सप्तम्येकवचनस्य ङिप्रत्ययस्य 'ङे म्मि ङे' (सि०-८।३।११) इत्यनेन ङिदेकारादेशः।

'जाण' यच्छब्दस्य पूर्ववदन्त्यव्यञ्जनलोप-जकारादेशौ, ततः षष्ठीबहुवचनस्य आम्प्रत्ययस्य स्थाने 'टा-ऽऽमोर्णः' (सि०-८।३।६) इत्यनेन णः, 'जस-शस्' (सि०-८।३।१२) इति दीर्घः।

'ऽण्णाणंधयारो' त्ति अज्ञानान्धकारशब्दस्य 'म्नज्ञोर्णः' (सि०-८।२।४२) इत्यनेन ज्ञस्य णः, 'समासे वा' (सि० ८।२।९७) इत्यनेन शेषादेशयोर्द्वित्वस्य विकल्पनात् द्वित्वाभावः, 'नो ण' (सि०-८।१।२२८) इत्यनेन नस्य णः, 'ह्रस्व. सयोगे' (सि०-८।१।८४) इत्यनेना-ऽऽकारस्य अकारः, 'ङ-ञ-०' (सि०-८।१।२५) इत्यनुस्वारः, 'क-ग-च०' इति कलोपः, ततः पूर्ववत्प्रथमा सिविभक्तिः।

द्वितीयं परिशिष्टम्

स्वोपज्ञा हेमन्तप्रभा प्राकृतसाधनिका

नत्वा वीरं प्राकृतसाधनिकां स्तौमि बालबोधाय।
गुरुगुरुकृपया स्वरचितबन्धविधानप्रशस्तेरहं ॥ १ ॥

इह भरहे चउवीसा, अरहा अवसप्पिणीअ एआए। जाआ धम्मागरा, अउलबला ते जयन्तु जगे ॥१॥
(पक्कप्पाउआ)

(हे०) 'इह' त्ति 'शेष संस्कृतवत्सिद्धम्' (सि०-८।४।४४८) इति प्राकृतलक्षणवशात् 'क्व-कुत्रा-त्रेह' (सि०-७।२।९३) इत्यनेन संस्कृतलक्षणेन त्रप्रत्ययान्तस्य 'इदम्'शब्दस्य निपातः। यद्वा 'इदम्'शब्दस्य सप्तम्येकवचने ङिप्रत्यये परे 'इदम इम' (सि० ८।३।७२) इत्यनेन 'इम' इत्यादेशस्ततः 'ङेर्मेन ह' (सि०-८।३।७५) इत्यनेन मकारेण सहितस्य सप्तम्येकवचनस्य 'ह' इत्यादेशः।

'भरहे' त्ति भरतशब्दस्य तकारस्य 'वितस्ति-वसति-भरत-कातर-मातुलिङगे ह' (सि० ८।१।२१४) इत्यनेन हकारादेशस्ततः सप्तम्येकवचनस्य ङिप्रत्ययस्य 'ङे म्मि ङे' (सि०-८।३।११) इत्यनेन ङिदेकारादेशस्ततो ङित्वात् 'ङित्यन्त्यस्वरादे' (सि०-२।१।११४) इत्यनेन संस्कृतलक्षणेन पूर्वस्या-ऽकारस्य लोपः।

'चउवीसा' त्ति चतुर्विंशतिशब्दान्तर्गतस्य 'चतुर्'शब्दस्य 'क-ग-च-ज-त-द-प-य-वा प्रायो लुक्' (सि०-८।१।१७७) इत्यनेन तलोपः, वाक्यविभक्त्यपेक्षया-ऽन्त्यव्यञ्जनस्य रेफलक्षणस्य 'अन्त्यव्यञ्जनस्य' (सि०-८।१।११) इत्यनेन लोपः, विंशतेरनुस्वारस्य 'विंशत्यादेर्लुक्' (सि०-८।१।२८) इत्यनेन लोपः, 'ईर्जिह्वा-सिंह-त्रिंशद्विंशतौ त्या' (सि०-८।१।९२) इत्यनेन विंशतेरादेरिकारस्य दीर्घत्वं तिलोपश्च, 'श-षोः स' (सि०-८।१।२६०) इत्यनेन शकारस्य सकारस्ततः 'शेष संस्कृतवत्सिद्धम्' (सि०-८।४।४४८) इति लक्षणवशात् विंशत्यादिनवनवतिपर्यन्तसङ्ख्यावाचिशब्दानां हैमलिङ्गानुशासने स्त्रीलिङ्गप्रकरणे 'विंशत्याद्याशतात्' इति वचनेन स्त्रीलिङ्गे पठितत्वात् 'आत्' (सि० २।४।१८) इत्यनेन संस्कृतलक्षणेन स्त्रियामाप्प्रत्ययः, ततः प्रथमैकवचनस्य सिप्रत्ययसत्कस्य सकारस्य 'अन्त्यव्यञ्जनस्य' (सि० ८।१।११) इत्यनेनैव लोपः।

'अरहा' त्ति अर्हच्छब्दस्या-ऽन्त्यव्यञ्जनस्य 'अन्त्यव्य०' (सि०-८।१।११) इत्यनेन तकारस्य लोपः, संयुक्तात् हकारात्पूर्वो रेफात्परश्च 'उच्चार्हति' (सि०-८।२।१११) इत्यनेनाकारागमः,

'ते' त्ति तच्छब्दस्यान्त्यव्यञ्जनस्य 'अन्त्यव्यञ्जनस्य' (सि०-८।१।११) इति लोपः, ततः प्रथमाबहुवचनस्य जस्प्रत्ययस्य स्थाने 'अत सर्वादेर्डेर्जस' (सि०-८।३।५८) इत्यनेन 'डे' इत्यादेशः, ततो डित्त्वाद् 'डित्यन्त्य०' (सि०-२।१।११४) इति अलोपः।

'गोयमाई' त्ति सामासिकस्य गौतमादिशब्दस्य 'औत ओत्' (सि०-८।१।१५९) इत्यनेन औकारस्य ओकारः, 'क-ग-च०' (सि० ८।१।१७७) इत्यनेन त-द्योर्लोपः, ततः प्रथमाबहुवचने जस्प्रत्ययः, तस्य च 'शेषेऽदन्तवत्' इति लक्षणवशात् 'पुंसि जसो डउ डओ वा' (सि० ८।।२०) इत्यस्य विकल्पपक्षे 'जस्-शसोर्लुक्' (सि० ८।३।४) इत्यनेन जस्लोपः, 'जस्-जस्-ङसि-' (सि०-८।३।१२) इति दीर्घश्च ॥८॥

माणो वि चारित्तलाहस्स जस्स, रागोवि णाहस्स सेवाअ जस्स।
सोगो वि केवल्लणाणस्स जस्स, चित्त चरित्त अहो गोअमस्स ॥९॥ (लयग्गाहिं)

(हे०) 'माणो वि' त्ति मानशब्दस्य 'नो ण' इत्यनेन नस्य णः, ततः पूर्ववत्प्रथमा सिविभक्तिः, अपिशब्दस्याऽकारस्य 'पदादपेर्वा' (सि०-८।१।४१) इति सूत्रेण लोपः, बाहुलकादादेरपि पस्य 'पो व' (सि०-८।१।२३१) इत्यनेन वः।

'चारित्तलाहस्स' त्ति सामासिकस्य चारित्रलाभशब्दस्य 'सर्वत्र०' (सि०-८।२।७९) इति संयुक्तरेफस्य लोपः, 'अनादौ०' (सि०-८।२।८९) इति सूत्रेण शेषस्य तस्य द्वित्वम्, 'ख-घ-०' (सि०-८।१।१८७) इति भस्य हत्वम्, ततः 'चतुर्थ्या षष्ठी' (सि०-८।३।१३१) इत्यनेन चतुर्थ्येकवचनस्य स्थाने जातस्य षष्ठ्येकवचनस्य ङस्प्रत्ययस्य 'ङस स्स' (सि०-८।३।१०) इति सूत्रेण स्सादेशः।

'जस्स' त्ति यच्छब्दस्य 'आदेर्यो ज' (सि०-८।१।२३१) इत्यनेन यस्य जः, 'अन्त्य०' (सि० ८।१।११) इत्यन्त्यव्यञ्जनलोपः, ततः षष्ठ्येकवचनस्य ङस्प्रत्ययस्य स्थाने 'ङस स्स' इति स्सः।

'रागो वि' त्ति रागशब्दात्पूर्ववत्प्रथमा सिविभक्तिः, तथाऽपिशब्दस्यापि पूर्ववत्।

'णाहस्स' त्ति नाथशब्दस्य 'वादौ' (सि०-८।१।२२९) इत्यनेन नस्य णः, 'ख-घ' (सि०-८।१।१८७) इत्यनेन थस्य हः, ततः पूर्ववत्षष्ठ्येकवचनम्।

'सेवाअ' त्ति सेवाशब्दात् 'चतुर्थ्या षष्ठी' इति सूत्रेण चतुर्थ्याः स्थाने षष्ठ्या विभक्तेरेकवचनस्य ङस्प्रत्ययस्य 'टा ङस् ङेरदादिदेद्वा तु ङसे' (सि०-८।३।२९) इत्यनेन 'अ' इत्यादेश'।

'जस्स' त्ति पूर्ववत्। "सोगो वि" त्ति शोकशब्दस्य शस्य 'श षो स' (सि०-८।१।२६०) इति सः, कस्य बाहुलकाद् गत्वम्ः शेषं पूर्ववत्।

'केवल्लणाणस्स' त्ति कैवल्यज्ञानशब्दस्य ऐकारस्य 'ऐत एत्' (सि०-८।१।१४८) इत्यनेन एकारः, 'अधो-म-न-याम्' (सि०-८।२।७८) इत्यनेन संयुक्तयलोपः, शेषस्य लस्य 'अनादौ०'

(है०) '**सिरिणाहुब्भववसव्वोमाइच्चो**' त्ति 'शेषं संस्कृतवत्सिद्धम्'' (सि० ८।४।४४८) इति प्राकृतलक्षणबलात्संस्कृतलक्षणैः कृतसमासं 'श्रीनाभ्युद्भववंशव्योमादित्य' इति 'श्रीनाथोद्भववंश-व्योमादित्य' इति वाऽनेकशब्दसमूहात्मकं सामासिकमेकपदं भवति। तत्र 'र्ह-श्री-ह्री कृत्स्न ' (सि० ८।२।१०४) इत्यनेन श्रीशब्दस्य रेफात्पूर्वं इकारागमो भवति तथा 'दीर्घ-ह्रस्वौ मिथो वृत्तौ' (सि०-८।१।४)इत्यनेन श्रीशब्दस्यैव दीर्घस्येकारस्य ह्रस्वादेशो भवति। नाथशब्दस्य नाभिशब्दस्य वा नकारस्य 'नो णः' (सि०-८।१।२२८) इत्यनेन णकारो भवति। यदि पुनरन्तर्वर्तिविभक्त्य-पेक्षया नाथशब्दस्य नाभिशब्दस्य वा पदत्वं स्वीकृत्य पदादिभूतो नकारो गण्यते तदाऽपि "वादौ' (सि०-८।१।२२९) इत्यनेन विकल्पतोऽपि णकारः प्राप्यते। नाथशब्दस्य थकारस्य नाभि-शब्दस्य भकारस्य वा 'ख-घ-थ-ध-भाम्' (सि०-८।१।१८७) इत्यनेन हकारस्ततो नाथशब्दस्या-कारस्य तथा नाभिशब्दस्येकारस्य यद्यपि 'न युवर्णस्यास्वे' (सि०-८।१।६) इत्यनेन सन्धिनिषेध-स्तथाऽपि बाहुलकात् उद्भवसत्क उकारे परे 'लुक्' (सि० ८।१।१०) इत्यनेन लोपो भवति। उद्भवशब्दस्य संयुक्तस्य दकारस्य 'क-ग-ट-ड-त-द ' (सि०-८।२।७७)इत्यनेन लोपस्ततः 'अनादौ शेषादेशयोर्द्वित्वम्' (सि०८।२।८९) इत्यनेन भकारस्य द्वित्वम्, ततः 'द्वितीय-तुर्ययोरुपरि पूर्वः' (सि० ८।२।९०)इत्यनेन द्वित्वभूतस्य भकारस्य बकारो भवति। वंशशब्दस्य शकारस्य 'श-षोः सः' (सि०-८।१।२६०) इत्यनेन सकारः। व्योमशब्दसत्कस्य संयुक्तस्य यकारस्य 'अधो म-न-याम्' (सि०-८।२।७८) इत्यनेन लोपस्ततः 'समासे वा' (सि०-८।२।९७) इत्यनेन शेषस्य वकारस्य द्वित्वम्, तत आदित्यशब्दसत्कस्याकारे परे सति व्योमशब्दस्याकारस्य 'लुक्' (सि० ८।१।१०) इत्यनेन लोपो भवति। यद्वा 'शेषं संस्कृतवत्सिद्धम्' (सि० ८।४।४४८) इति प्राकृतलक्षणवशात् 'समानानां तेन दीर्घः' (सि०-१।२।१) इत्यनेन अकारा-ऽऽकारयोरुभयस्थाने आकारो भवति। आदित्यसत्कस्य दकारस्य 'क-ग-च-ज ' (सि०-८।२।७७)इत्यनेन लोपः, तथा संयुक्तस्य त्यस्य 'त्योऽचैत्ये' (सि० ८।२।१२) इत्यनेन चादेशस्ततः 'अनादौ शेषादेशयोर्द्वित्वम्' (सि०-८।२।८९) इत्यनेन द्वित्वम्, ततः प्रथमा सिविभक्तिस्तस्याः 'अतः सेर्डोः' (सि०-८।३।२) 'डो' इत्यादेशः, ततस्तस्य डित्वात् शब्दस्यान्त्यस्याकारस्य लोपः।

'**अण्णाणतमघाई**' त्ति समासस्तु संस्कृतवत् अज्ञानसत्कस्य ज्ञस्य 'म्नज्ञोर्णः' (सि०-८।२।४२) इत्यनेन णकारादेशस्तस्य च 'समासे वा' (सि० ८।२।९७) इत्यनेन विकल्पतो द्वित्वाभावः, नकारस्य च 'नो णः' (सि०-८।१।२२८)इत्यनेन णकारः। तथा यदि तमशब्दः सकारान्तो गृह्यते तदा तस्य वाक्यविभक्त्यपेक्षयाऽन्त्यसकारस्य 'अन्त्यव्यञ्जनस्य' (सि० ८।१।११) इत्यनेन लोपो भवति। तथाऽनेनैव सूत्रेण घातिन्शब्दस्यान्त्यनकारस्यापि लुग्भवति। तथा तकारस्य 'क-ग-च-ज '

'जस्स' त्ति पूर्ववत् । **'णामं'** ति नामन्शब्दस्यान्त्यव्यञ्जनस्य 'अन्त्यव्य०' (सि०-८।१।११) इति लोपः, 'नो ण' इत्यनेन नस्य णः, 'स्नमदाम शिरो-नम' (सि०-८।१।३२) इत्यनेन पुंल्लिङ्ग-विधानेऽपि बाहुलकाद्'लिङ्गमतन्त्रम्' (सि०-८।४।४५) इति वचनाद्वा नपुंसकलिङ्गः, ततः प्रथमा सिविभक्तिः, तस्याश्च 'क्लीबे स्वरान्म् से.' (सि०-८।४।२५) इत्यनेन मादेशः, 'मोऽनुस्वार' (सि०-८।१।२३) इत्यनुस्वारः ।

'सहत्थेण' त्ति सामासिकस्य स्वहस्तशब्दस्य 'अधो म-न-याम्' (सि० ८।२।७८) इत्यनेन संयुक्तस्य वस्य लोपः स्तस्य'स्तस्य थोऽसमस्त-स्तम्बे' (सि० ८।२।४५) इत्यनेन थादेशः, 'अनादौ०' (सि०-८।२।८९) इति द्वित्वम् , द्वितीय-तूर्ययो०' (सि०-८।२।९०) इति द्वित्वभूतस्य थस्य तः, ततस्तृतीयैकवचनस्य टाप्रत्ययस्य 'टा-ऽऽमोर्ण' (सि०-८।३।६) इति णादेशः, 'टाण शस्येत्' (सि०-८।३।१४) इत्येत्वं भवति ।

'दिक्खाछलेण' ति सामासिके दीक्षाछलशब्दे 'ह्रस्व संयोगे' (सि०-८।१।८४) इति ह्रस्वः, क्षस्य 'क्ष ख क्वचित्तु छ झौ' (सि०-८।२।३) इति खादेशः, 'अनादौ०' (सि०-८।२ ८९) इति द्वित्वम् , 'द्वितीय-तूर्ययो०' (सि०-८।२।९) इत्यनेन खस्य कः, ततः पूर्ववत्तृतीयैकवचनम् , क्त्वा-स्यादेर्णस्वोर्वा' (सि०-८।१।२७) इत्यनेनानुस्वारागमः ।

'विवाहो' त्ति विवाहशब्दात् पूर्ववत्प्रथमा सिविभक्तिः ।

'कयो' त्ति कृतशब्दस्य 'ऋतोऽत्' (सि०-८।१।१२६) इत्यनेन ऋकारस्याकारः, तस्य 'क-ग-च०' (सि०-८।१।१७७) इति लोपः, अवर्णो०' इति यश्रुतिः, ततः पूर्ववत्प्रथमा सिविभक्तः ।

'जेण' त्ति पूर्ववत् । **'मुत्तीअ'** त्ति मुक्तिशब्दस्य 'क-ग-ट०' (सि०-८।२।७७) इत्यनेन संयुक्तस्य कस्य लोपः, 'अनादौ०' (सि०-८ २।८९) इत्यनेन शेषस्य तस्य द्वित्वम् , ततस्तृतीयैकवचनस्य टाप्रत्ययस्य स्थाने 'टा-ङस्-ङेरदादिदेद्वा तु ङसे' (सि०-८।३।२९) इत्यनेन 'अ' इत्यादेशो दीर्घश्च । **'सड्ढ'** ति सार्द्धशब्दस्य 'सर्वत्र०' (सि०-८।२।७९) इति संयुक्तरेफो लोपः ।

'भवीणं' ति भविन्शब्दस्य 'अन्त्यव्यञ्जनस्य' (सि० ८।१।११) इत्यनेनान्त्यस्य नस्य लोपः, ततः षष्ठीबहुवचनस्याम्प्रत्ययस्य 'शेषेऽदन्तवत्' (सि०-८।३।१२४) इतिलक्षणवशात् 'टाऽऽमोर्ण' (सि०-८।३।६) इत्यनेन 'ण' इत्यादेशः, 'जस्-शस्-ङसि०' (सि०-८।३।१२) इति दीर्घश्च, 'क्त्वा स्यादेर्णस्वोर्वा' (सि०-८।१।२) इत्यनेन विकल्पतोऽनुस्वारागमः ॥१०॥

स गिहत्थे पण्णास, वासा तीस वयम्मि सव्वविए । बारस ठाउं सिद्धो, वीरसिवाऽद्दे दुवालसमे ॥११॥
(पच्छाऽज्जा)

(हे०) **'स'** ति पूर्ववत् । **'गिहत्थे'** त्ति गृहस्थशब्दस्य 'इत्कृपादौ' (सि०-८।१।१२८) इत्यत्र कृपादेराकृतिगणत्वाद् बाहुलकाद्वा ऋकारस्य इकारः, 'क-ग ट०' (सि० ८।२।७७) इत्य-

इत्यनेन तलोपः। संयुक्तस्य वकारस्य 'अधो म-न-याम' (सि०-८।२।७८) इत्यनेन लोपस्ततः शेषस्य शकारस्य 'श-षो स' (सि०-८।१।२६०) इत्यनेन सकारः 'अनादौ शेषादेशयोर्द्वित्वम्' (सि०-८।२।८९) इत्यनेन द्वित्वम्। स्थितिशब्दगतस्य स्थाधातोः स्थष्ठा थक्क-चिट्ठ-निरप्पा। (सि० ८।४।१६) इत्यनेन ठादेशभवनात्तथा तकारस्य 'क-ग च - —' इतिपूर्वोक्तसूत्रेण लोपः, ततः षष्ठ्येकवचनस्य ङसः स्थाने 'टा-ङस्-ङेरदादिदेद्वा तु ङसे' (सि०-८।३।२९) इत्यनेना-ऽकारादेशः।

' ।' त्ति कर्तृशब्दस्य संयुक्तस्य रकारस्य 'सर्वत्र ल-व-रामवन्द्रे' (सि०-८।२।७९)इत्यनेन लोपस्ततः शेषस्य तकारस्य 'अनादौ शेषादेशयोर्द्वित्वम्' (सि०-८।२।८९) इत्यनेन द्वित्वम्। ततः प्रथमासिविभक्तौ परायां सत्यामृकारस्य 'आ सौ नवा' (सि०-८।३।४८) इत्यनेना-ऽऽकारः, तथा विभक्तिसकारस्य 'अन्त्यव्यञ्जनस्य' (सि०-८।१।११) इत्यनेन लोपः।

'लोगीसरो' त्ति लोकेश्वरः, अत्र बाहुलकात्कस्य गत्वम्, तत्सत्कस्या-ऽकारस्यैकारे परे 'लुक्' (सि० ८।१।१०) इत्यनेन लोपः, संयुक्तस्य वकारस्य 'सर्वत्र ल-व० ' (सि० ८।२।७९) इत्यनेन लोपः शेषस्य शकारस्य च 'शषो. स' (सि०-८।१।२६०) इत्यनेन सत्वम्, ततः प्रथमा सिविभक्तिः, तस्याः 'अत सेर्डो (सि०-८।३।२) इत्यनेन 'डो' इत्यादेशः, ततो डित्त्वात् 'डित्यन्त्यस्वरादे" (सि०-२।१।११४) इति संस्कृतलक्षणेन प्रत्ययपूर्ववर्तिनोऽकारस्य लोपः।

'चउमुहो' त्ति चतुर्मुखशब्दस्य तकारस्य 'क-ग-च ' (सि०-८।१।१७७) इत्यनेन लोपः। रेफस्य च वाक्यविभक्त्यपेक्षयाऽन्त्यत्वात् 'अन्त्यव्यञ्जनस्य' (सि०-८।१।११) इत्यनेन लुक्। खकारस्य 'ख-घ थ-ध भाम्' (सि० ८।१।१८७) इत्यनेन हकारः, ततः पूर्ववत् प्रथमा सिविभक्तिः।

'सिरिणाहिजम्मो' त्ति श्रीनाभिजन्मन्शब्दस्य संयुक्तस्य रेफस्य पूर्वे 'र्हे-श्री-ही .. (सि०-८।२।१०४) इत्यनेन इदागमः, श्रीसत्कस्य दीर्घेकारस्य च 'दीर्घ-ह्रस्वौ मिथो वृत्तौ" सि०-८।१।४)इत्यनेन ह्रस्वः, नस्य 'नो ण' (सि० ८।१।२२८)इत्यनेन णत्वम्, 'ख-ख ' (सि० ८।१।१८७) इत्यनेन भस्य हादेशः, संयुक्तस्य न्मस्य न्मो म (सि०-८।२।६१) इत्यनेन मादेशस्ततः 'अनादौ शेषादेशयोर्द्वित्वम्' (सि०-८।२।८९) इत्यनेन द्वित्वम्, अन्त्यस्य नस्य 'अन्त्यव्यञ्जनस्य' (सि० ८।१।११) इत्यनेन लोपः। ततः पूर्ववत्प्रथमा विभक्तिः।

'मे' त्ति अस्मच्छब्दस्य षष्ठ्येकवचनेन ङस्प्रत्ययेन सह 'मे मइ मम मह - ' (सि०-८३।१।२३) इत्यनेन सूत्रेण 'मे' इत्यादेशः।

'दाउ' त्ति दाधातोस्तत्पुरुषैकवचने पञ्चम्यर्थे 'दु सु मु विध्यादिष्वेकस्मिंस्त्रयाणाम्' (सि०-८३।१।७३) इत्यनेन दुप्रत्ययः, प्रत्ययसत्कस्य दकारस्य च 'क ग-च –'इत्यनेन लोपः।

'सोक्खमजिओ' त्ति सौख्यशब्दस्य औकारस्य 'औत ओत्' (सि०-८।१।१५९) इत्यनेन ओकारः 'अधो म-न याम्' (सि०-८।२।७८ इत्यनेन संयुक्तस्य यकारस्य लोपस्ततो 'न दीर्घानुस्वा-

'ठाउं' ति स्थाधातोः 'स्थष्ठा थक्क-चिट्ठ निरप्पा' (सि०-८।४।१६) इत्यनेन 'ठा' इत्यादेशः, ततः 'शेषं संस्कृतवत्सिद्धम्' (सि०-८।४।४४८) इति लक्षणवशात् तुल्यकर्तृके प्राक्कालेऽर्थे 'प्राक्काले' (सि०-५।४।४७) इत्यनेन क्त्वाप्रत्ययः, तस्य च 'क्त्वस्तुमत्तूण-तुआणा' (सि०-८।२।१४६) इत्यनेन तुमादेशः, प्रत्ययसत्कस्य तस्य 'क ग०' (सि० ८।१।१७७) इत्यनेन तलोपः, मस्य च 'मोऽनुस्वार' (सि०-८।१।२३) इत्यनुस्वारः।

'सिद्धो' त्ति सिद्धशब्दात् पूर्ववत्प्रथमा सिविभक्तिः। **'वीरसिवा'** त्ति सामासिकस्य वीरशिवशब्दस्य शस्य 'श-षो स' (सि०-८।१।२६०) इति सत्वम्, ततः पञ्चम्येकवचने ङसि-प्रत्ययस्य स्थाने 'ङसेस् त्तो-दो०' (सि० ८।३।८) इत्यनेन लुगादेशः, 'जस्-शस् ङसि०' (सि०-८।३।१२) इत्यनेन दीर्घश्च।

'ऽद्दे' त्ति अब्दशब्दस्य बस्य 'सर्वत्र०' (सि०-८।२।७९) इति लोपः, 'अनादौ०' (सि०-८।२।८९) इत्यनेन शेषस्य दस्य द्वित्वम्, ततः पूर्ववत् सप्तम्येकवचनम्, आदेरकारस्य पूर्वस्थितेना-ऽऽकारेण सह दीर्घः, 'समानानां तेन दीर्घः' (सि०-१।२।१) इति संस्कृतवचनात्।

'दुवालसमे' त्ति द्वादशशब्दस्य बाहुलकादुकारागमे दस्य लत्वे मप्रत्ययागमे च, तथा 'श-षो स' (सि०-८।१।२६०) इत्यनेन शस्य सत्वे यथोक्तशब्दसिद्धिः, ततः पूर्ववत् सप्तम्येकवचने ङिप्रत्ययः ॥११॥

रिसिंदू गच्छीसो, पढमजुगवरो, वीरपट्टहिसित्तो, सुहम्मो सो आसी, कयभविपया-जोगखेमो णिवोव्व। सुई जम्हा जाया, इह खलु भरहे, सतई सासण जा, सुचिन्तिण्णाऽग्गेऽग्गे, भविविमलयरी, रायए जण्हइव्व॥ ॥१२॥ (सोद्दा)

(हे०) **'रिसिंदू'** त्ति सामासिकस्य ऋषीन्दुशब्दस्य ऋकारस्य 'ऋणर्ज्वृषभर्त्वृषौ वा' (सि०-८।१।१४१) इत्यनेन रिरादेशः, 'श-षो स' (सि०-८।१।२६०) इत्यनेन षस्य सः, 'ह्रस्वः संयोगे' (सि०-८।१।८४) इति ह्रस्वः, 'ङ-ञ-ण-नो व्यञ्जने' (सि० ८।१।२५) इत्यनेनानुस्वारः, ततो द्वितीयश्लोकान्तर्गते 'अणाणतमघाई' इत्यत्र यथा प्रथमैकवचनं प्रतिपादितं तथैवात्रापि बोध्यम्।

'गच्छीसो' त्ति सामासिकस्य गच्छेशशब्दस्य पूर्वपदस्यान्त्यस्याकारस्योत्तरपदसत्क ईकारे परे सति 'लुक्' (सि०-८।१।१०) इत्यनेन लोपो भवति, शस्य 'श-षो स' (सि०-८।१।२६०) इत्यनेन सः, ततः पूर्ववत्प्रथमा सिविभक्तिः।

'पढमजुगवरो' त्ति सामासिकस्य प्रथमयुगवरशब्दस्य 'सर्वत्र०' (सि०-८।२।७९) इत्यनेन संयुक्तस्य रेफस्य लोपः, थस्य 'मेथि-शिथिर-शिथिल-प्रथमे थस्य ढ' (सि० ८।१।२१५) इति ढः, 'आदेर्यो ज' (सि०-८।१।२४५) वाक्यविभक्त्यपेक्षया पदादित्वेन यस्य जः, ततः पूर्ववत्प्रथमा सिविभक्तिः।

'रित्तदोसो' त्ति रिक्तदोषशब्दस्य संयुक्तस्य कस्य 'क-ग-ट ' (सि०-८।२।७७) इत्यनेन लोपे शेषस्य तस्य 'अनादौ शेषा.' (सि०-८।२।८९) इत्यनेन द्वित्वम्, षस्य च 'शषो: स' (सि० ८।१।२६०) इति सत्वम्, ततः पूर्ववत्प्रथमा विभक्तिः ।

'अहतरुदहणो' त्ति अघतरुदहनशब्दस्य घ-नयोः क्रमेण 'ख घ-थ-ध-भाम्' (सि०-८।१।१८७) 'नो ण' (सि०-८।१।२२८) इति सूत्राभ्यां क्रमेण ह-णौ भवतः, ततः पूर्ववत्प्रथमा विभक्तिः ।

'जो' त्ति यच्छब्दस्यान्त्यव्यञ्जनस्य 'अन्त्यव्यञ्जनस्य' (सि०-८।१।११) इत्यनेन लोपः, यकारस्य च 'आदेर्यो जः, (सि०-८।१।२४५) इत्यनेन जत्वम्, ततः पूर्ववत्प्रथमा विभक्तिः ।

'मिअङ्को वि' त्ति मृगाङ्कशब्दस्य ऋतः 'मसृण-मृगाङ्क-मृत्यु-शृङ्ग-धृष्टे वा' (सि०-८।१।१३०) इत्यनेन विकल्पत इकारो भवति, गकारस्य च 'क ग-च ' (सि०-८।१।१७७) इत्यनेन लोपः, ङस्य 'ङ-ञ ण नो व्यञ्जने' (सि०-८।१।२५) इत्यनेनानुस्वारः, ततः पुनरनुस्वारस्य 'वर्गे-ऽन्त्यो वा' (सि०-८।१।३०) इत्यनेन विकल्पतो 'ङो' भवति । ततः पूर्ववत् प्रथमा विभक्तिः । अपिशब्द-स्याकारस्य 'पदादपेर्वा' (सि०-८।१।४१) इत्यनेन विकल्पतो लोपः, ततः 'पो व ' (सि०-८।१।२३१) इत्यनेन बाहुलकादादेरपि पस्य वत्वम् ।

'सामी' त्ति 'स्वामिन्' इतिशब्दस्यान्त्यस्य नस्य 'अन्त्यव्यञ्जनस्य' (सि०-८।१।११) इति लोपः, संयुक्तस्य वकारस्य च 'अधो म-न-याम्' (सि०-८।२।७८) इति लोपः, ततः प्रथमा सिविभक्तिः, ततः 'अक्लीबे सौ' (सि० ८।३।१९) इत्यनेन दीर्घः, ततः सिविभक्तेः 'अन्त्यव्यञ्जन-स्य' (सि०-८।१।११) इति लोपः ।

'जेण' त्ति यच्छब्दस्य पूर्ववद् जत्वान्त्यव्यञ्जनलोपे सति तृतीयैकवचनस्य टाप्रत्ययस्य 'टा-ऽऽमोर्णः' (सि०.८।३।६) इत्यनेन 'ण' इत्यादेशो भवति ।

'एगस्सि' ति एकशब्दस्य कस्य बाहुलकाद् गत्वम्, ततः सप्तम्येकवचने ङिप्रत्ययः, तस्य चैकशब्दस्य सर्वादिगणान्तर्गतत्वेन 'ङे स्सि म्मि त्थाः' (सि० ८।३।५९) इत्यनेन 'स्सि' इत्या-देशः । ततोऽस्मिन् पदे परे सति 'जेण' इतिपदस्यान्त्याकारस्य 'लुक्' (सि०-८।१।१०) इत्यनेन लोपः

'भवे' त्ति भवशब्दात् सप्तम्येकवचनस्य ङिप्रत्ययस्य 'ङे म्मि ङे.' (सि०-८।३।११) इत्यनेन 'ङे' इत्यादेशः, ततः पूर्ववद् ङित्वादकारस्य लोपे रूपसिद्धिः ।

'ऽत्तं' ति आप्तशब्दस्य 'ह्रस्वः संयोगे' (८।१।८४) इत्यनेन ह्रस्वः, ततः 'क-ग-ट ' (सि०-८।२।७७) इत्यनेन पस्य लोपे सति शेषस्य तस्य 'अनादौ ' (सि०-८।२।८९) इति द्वित्वम्, ततो नपुंसकलिङ्गे प्रथमा सिविभक्तिः, तस्याश्च 'क्लीबे स्वरान्म् से' (सि०-८।३।२५) इत्यनेन 'म्' इत्यादेशः, तस्य च 'मोऽनुस्वारः' सि०-८।१।२३) इत्यनेनानुस्वारः ।

स्तीर्णा'इतिशब्दस्य 'ह्रस्वः संयोगे' (सि०-८।१।८४) इत्यनेन दीर्घ ईकारो ह्रस्वो भवति । संयुक्तसस्य 'क-ग-ट-ड०' (सि० ८।२।७७) इति लोपः, 'सर्वत्र०' इत्यनेन संयुक्तरकारलोपः, उभयत्र शेषयोस्तकार-णकारयोः 'अनादौ०' (सि०-८।२।८९) इति द्वित्वम्, ततः पूर्ववत्प्रथमा सिविभक्तिः। 'ऽग्गेऽग्गे' त्ति अग्रशब्दस्य 'सर्वत्र०' इति रेफलोपः, 'अनादौ०' इति द्वित्वम्, ततः पूर्ववत्सप्तम्येकवचनम्, ततः 'शेषं संस्कृतवत्सिद्धम्' (८।४।४४८) इतिप्राकृतलक्षणवशात् 'वीप्सायाम्'(सि०-७।४।८०) इत्यनेन वीप्सार्थे द्विरुक्तिः, ततः पूर्वाकारस्य समानानां तेन दीर्घः' (सि०-१।२।१) इत्यनेन द्वितीयाकारस्य च 'एदोतः पदान्तेऽस्य लुक्' (सि०-१।२।२७) इत्यनेनादर्शनम्। 'भविविमलयरी' त्ति सामासिकस्य भविविमलकरीशब्दस्य कस्य 'क-ग-च०' इति कलोपः, ततः पूर्ववत्प्रथमा सिविभक्तिः।

'रायए' त्ति 'राजृग् टुभ्राजि दीप्तौ' 'राज्' धातोः 'व्यञ्जनाददन्ते' (सि०-८।४।२३९) इत्यनेन अकारागमः, 'क-ग-च०' इति जलोपः, 'अवर्णो०' इति यश्रुतिः, ततो वर्तमानातृतीयपुरुषैकवचने 'त्यादीनामाद्यत्रयस्याद्यस्येचेचौ' (सि०-८।३।१३९) इत्यनेन एच्प्रत्ययः।

'जण्हइव्व' त्ति सिद्धसंस्कृतस्य जाह्नवीवच्छब्दस्य वत्प्रत्ययस्य 'वतेर्व्वः' (सि०-८।२।१५०) इत्यनेन व्वो भवति, 'ह्रस्वः संयोगे' (सि०-८।१।८४) इत्यनेन आदीच ह्रस्वः, 'सूक्ष्म-श्न-ष्ण-स्न-ह्न-ह्ण-क्ष्णां ण्हः' (सि०-८।२।७५) इत्यनेन संयुक्तस्य ण्हादेशः, 'क-ग-च०' इत्यनेन वलोपः ॥१२॥

सो गिहवासे वासा, पण्णास तह वये दुआलीसा। अड केवलिम्मि ठाउं, वीरसिवा सिवमिओ पाइमिअऽद्दे॥
॥१३॥ (पच्छागीई)

(हे०) 'सो' त्ति 'वा ' त्ति 'पण्णास' ति 'ठाउं' ति 'वीरसिवा' त्ति च पूर्ववत्।

'गिहवासे' त्ति सामासिकस्य गृहवासशब्दस्य ऋकारस्य 'ऋतोऽत्' (सि० ८।१।१२६) इत्यनेनाकारप्राप्तेऽपि बाहुलकात् कृपादेराकृतिगणत्वाद्वा 'इत्कृपादौ' (सि०-८।१।१२८) इत्यनेन इकारोऽपि भवति, ततः पूर्ववत्सप्तम्येकवचनम्। 'तह' त्ति तथाशब्दस्य 'ख-घ-थ-ध-भाम्' (सि०-८।१।१८७) इत्यनेन थस्य हादेशः, 'वाऽव्ययोत्खातादावदातः' (सि०-८।१।६७) इत्यनेन विकल्पत आकारस्य अकारादेशः। 'वये' त्ति व्रतशब्दस्य रेफस्य 'सर्वत्र०' इति लोपः, 'क-ग-च०' इति तलोपः, 'अवर्णो०' इति यश्रुतिश्च, ततः पूर्ववत्सप्तम्येकवचनम्।

'दुआलीसा' त्ति द्विचत्वारिंशच्छब्दस्य द्विसत्कस्य संयुक्तवकारस्य 'सर्वत्र०' इति लोपः, इकारस्य च 'द्विन्योरुत्' (सि०-८।१।९४) इत्यनेन उकारः, तथा चत्वारिंशच्छब्दस्य 'गोणादयः' (सि०-८।२।१७४) इति लक्षणवशेन निपातनादिष्टरूपनिष्पत्तिः। 'अड' त्ति अष्टन्शब्दस्य 'अन्त्य०' इत्यनेनान्त्यव्यञ्जनलोपः, संयुक्तषस्य च 'क-ग-ट०' इति लोपे बाहुलकाद् द्वित्वाभावे सति

'कम्मारी' त्ति कर्मारिशब्दस्य रेफस्य 'सर्वत्र ल व-रा०...' इति लोपः, शेषस्य मस्य 'अनादौ० ' (सि०-८।२।८९) इति द्वित्वम्, ततः प्रथमाबहुवचने जस्प्रत्ययः, तस्य च 'शेषेऽदन्तवत्' (सि०-८।४।४४८)इति लक्षणवशात् 'जस् शसोर्लुक्' (सि०-८।३।४) इत्यनेन शस्लोपः 'जस्-शस्० .' (सि०-८।१।१२) इत्यनेन दीर्घश्च ।

'जेण' त्ति पूर्वोक्तवत् । 'संता' त्ति शान्तशब्दस्य शस्य 'श-षो स', (सि०-८।१।२६०) इत्यनेन सः, 'ह्रस्व संयोगे' (८।१।८४) इति ह्रस्वः, 'ङ-ञ-ण-नो व्यञ्जने' (सि०-८।१।२५) इत्यनुस्वारः, ततः प्रथमा बहुवचने जस्प्रत्ययः, तस्य च 'जस्-शसोर्लुक्' (सि०-८।३।४) इत्यनेन जस्लोपः, 'जस्-शस्-ङसि-त्तो-दो-द्वामि दीर्घः' (सि०८।३।१२) इत्यनेन दीर्घः ।

'स' त्ति तच्छब्दस्यान्त्यव्यञ्जनस्य 'अन्त्यव्यञ्जनस्य' (सि०-८।१।११) इत्यनेन लोपः, ततः प्रथमा सिविभक्तिः, तस्यां परायां सत्यां तस्य 'तदश्च त सो-ऽक्लीबे' (सि०-८।३।८६) इत्यनेन सः, ततः सिविभक्तेः 'वैतत्तदः' इत्यनेन विकल्पतः 'डो' अभवनेन 'अन्त्यव्यञ्जनस्य' (सि० ८।१।११) इत्यनेन लोपः ।

' ' त्ति खलुशब्दः संस्कृतसमः (संस्कृतवत्सिद्धः) ।

'हवउ' त्ति भूधातोः 'भुवेर्हो-हुव हवा' (सि०-८।४।६०) इत्यनेन हवादेशः, ततः पञ्चमी-तृतीयपुरुषैकवचने 'दु सु मु० ' (सि०-८।३।१७३) इत्यनेन दुप्रत्ययः, तत्सत्कदकारस्य क ग-च ' (सि०-८।१।१७७) इत्यनेन लोपः ।

'वो' त्ति युष्मच्छब्दस्य षष्ठीबहुवचनेनाम्प्रत्ययेन सह 'तु वो भे —' सि०-८।३।१००) इत्यनेन 'वो' इत्यादेशः ।

'सतिदो' त्ति शान्तिदशब्दस्य 'श-षो स' (सि०-८।१।२६०) इत्यनेन सः, नस्य 'ङ-ञ-ण-नो व्यञ्जने' [८।१।२५] इत्यनेनानुस्वारः वाक्यविभक्त्यपेक्षया पदत्वस्य विवक्षणाद् दकारस्य लोपाभावः, ततः पूर्ववत्प्रथमा सिविभ :।

'संतिणाहो' त्ति सकारानुस्वारौ पूर्ववद् नस्य 'नो ण' (सि०-८।१।२२८) इत्यनेन णः, यदा वाक्यविभक्त्यपेक्षया पदादित्वं वक्ष्यते तदाऽपि 'वादौ' (सि० ८।१।२२९) इत्यनेन विकल्पतो णत्वं प्राप्यते । थस्य 'ख-घ-थ-ध-भाम्' (सि०-८।१।१८७) इत्यनेन हत्वम् । ततः पूर्ववत् प्रथमा सिविभक्तिः ॥४॥

जेण पाणिग्गहच्छला पत्तमची-पीईअ राईमई, सक्केअं करिऊण मुत्तिगमणे, मुक्खा कया साहुणी ।
जाओ जस्स हरि त्ति सत्थगऽभिहो,बाहासिहाए हरी, मव्वाण वितरेउ मंगलसिरिं, सो नेमिणाहो जिणो ॥
॥५॥ (सद्दूलविक्कीडिअं)

८।१।११) इत्यनेनान्त्यव्यञ्जनलोपे पूर्ववत्षष्ठ्येकवचनम् । **'सो'** त्ति पूर्ववत् । **'जंबुसामी'** त्ति 'जम्बुस्वामिन्' शब्दस्य मस्य 'मोऽनुस्वार:' (सि० ८।१।२३) इत्यनुस्वारः, 'सर्वत्र ल-ब०' इति संयुक्तवकारलोपः, शेषस्य सस्य 'समासे वा' (सि०-८।२।९७) इति विकल्पतो द्वित्वाभावः, 'अन्त्य०' इति नलोपः, ततः पूर्ववत्प्रथमासिविभक्तिः । **'सोहम्मकप्पेण'** त्ति सामासिकस्य सौधर्मार्कशब्दस्य सुधर्मार्कशब्दस्य वा औकारस्य 'औत ओत्' (सि० ८।१।१५९) इति सूत्रेण, यदि उकारो गृह्यते तदा बाहुलकाद् उकारस्य ओकारो भवति, 'ह्रस्व संयोगे' (सि०-८।१।८४) इत्यनेन आकारो ह्रस्वो भवति । 'सर्वत्र०' इति संयुक्तरेफयोर्लोपः, शेषयोर्मकार-ककारयोः 'अनादौ शेषा०' इति द्वित्वम् , ततः पूर्ववत्तृतीयैकवचनम् । **'फुल्ल'** ति फुल्लशब्दस्संस्कृतसमः, ततो नपुंसके प्रथमैकवचनम् । **'पवयणवसुणा'** त्ति कृतबहुव्रीहिसमासस्य प्रवचनवसुशब्दस्य संयुक्तरेफस्य 'सर्वत्र०' इति लोपः, शेषस्य पस्यादित्वाद् द्वित्वाभावः, चस्य लोपः, 'अवर्णो यश्रुति' (सि०-८।१।१८०) इति लघुप्रयत्नतरयश्रुतिश्च, नस्य 'नो ण' (सि०-८।१।२२८) इत्यनेन नस्य णो भवति, ततः तृतीयैकवचने टाप्रत्ययः, तस्य च 'टो णा' (सि०-८।३।२४) इत्यनेन 'णा' इत्यादेशः, यथा षष्ठश्लोके 'अमिअबलवइणा' इत्यत्रादेशः । **'जस्स'** त्ति पूर्ववत् । **'वेरग्गपोम्मं'** ति सामासिकस्य वैराग्यपद्मशब्दस्य 'ऐत एत्' (सि० ८।१।१४८) इत्यनेन ऐकारस्य एकारः, 'ह्रस्व संयोगे' (सि० ८।१।८४) इत्यनेन ह्रस्वः, 'अधो म-न-याम्' (सि० ८।२।७८) इत्यनेन संयुक्तयकारलोपः, शेषस्य गस्य 'अनादौ०' इति द्वित्वम् , 'क-ग-ट०' (सि०-८।२।७७) इति संयुक्तस्य दस्य लोपः, शेषस्य मस्य च 'अनादौ०' (सि०-८।२।८९) इति द्वित्वम् , 'ओत्पद्मे' (सि० ८।१।६१) इत्यनेन पकारगतस्या-ऽकारस्य ओकारो भवति, ततः पूर्ववन्नपुंसकलिङ्गे प्रथमै चनम् । **'रम्मा'** त्ति आबन्तस्य रम्याशब्दस्य 'अधो म०' इति संयुक्तयलोपः, 'अनादौ०' इति शेषस्य मस्य द्वित्वम्, ततो द्वितीयाबहुवचने शस्प्रत्ययः, तस्य च 'शेषेऽदन्तवत्' (सि० ८।३।१२४) इत्यनेन लक्षणवशेन 'स्त्रियामुदोतौ वा' (सि० ८।३।२७) इत्यस्य विकल्पपक्षे 'जस्-शसोर्लुक्' (सि०-८ ३।४) इति शसो लोपः, दीर्घस्त्वाबन्तत्वादेव; यद्वा 'पर्जन्यवल्लक्षणप्रवृत्ति' इति परिभाषया 'जस्-शस्०' (सि०-८।३।१२) इत्यनेन आकारस्यापि दीर्घो भवति । ' ा' त्ति कन्याशब्दस्य 'अधो म०' इत्यनेन संयुक्तयलोपः, 'अनादौ०' इत्यनेन शेषस्य नस्य द्वित्वम् , ततः पूर्ववद् द्वितीयाबहुवचनम् । **'णवोढा'** त्ति कृतसमासस्य आबन्तस्य नवोढाशब्दस्य नस्य 'वादौ' (सि० ८।१।२२९) इति णः, शेषं पूर्ववत् । **'अड'** त्ति पूर्ववत् । **'णवणवति'** ति नवनवतिशब्दस्य पूर्ववद् 'वादौ' 'नो ण' इति सूत्रद्वयेन क्रमेण द्वयोर्नयोर्णो भवति, ततो द्वितीयैकवचने पूर्ववदम्प्रत्ययः । **'हेमकोडी'** त्ति हेमकोटिशब्दस्य हेमकोटीशब्दस्य वा टस्य 'टो ड.' (सि०-८।१।१९५) इत्यनेन टस्य डो भवति, ततो द्वितीयाबहुवचने शस्प्रत्ययः,

८।१।११) इत्यनेनान्त्यव्यञ्जनलोपे पूर्ववत्षष्ठ्येकवचनम् । **'सो'** त्ति पूर्ववत् । **'जंबुसामी'** त्ति 'जम्बुस्वामिन्' शब्दस्य मस्य 'मोऽनुस्वार' (सि० ८।१।२३) इत्यनुस्वारः, 'सर्वत्र ल-व०' इति संयुक्तवकारलोपः, शेषस्य सस्य 'समासे वा' (सि०-८।२।९७) इति विकल्पतो द्वित्वाभावः, 'अन्त्य०' इति नलोपः, ततः पूर्ववत्प्रथमासिविभक्तिः । **'सोहम्मकेण'** त्ति सामासिकस्य सौधर्मार्कशब्दस्य सुधर्मार्कशब्दस्य वा औकारस्य 'औत ओत्' (सि० ८।१।२५९) इति सूत्रेण, यदि उकारो गृह्यते तदा बाहुलकाद् उकारस्य ओकारो भवति, 'ह्रस्व संयोगे' (सि०-८।१।८४) इत्यनेन आकारो ह्रस्वो भवति । 'सर्वत्र०' इति संयुक्तरेफयोर्लोपः, शेषयोर्मकार-ककारयोः 'अनादौ शेषा०' इति द्वित्वम् , ततः पूर्ववत्तृतीयैकवचनम् । **'फुल्ल'** त्ति फुल्लशब्दस्संस्कृतसमः, ततो नपुंसके प्रथमैकवचनम् । **'पवयणवसुणा'** त्ति कृतबहुव्रीहिसमासस्य प्रवचनवसुशब्दस्य संयुक्तरेफस्य 'सर्वत्र०' इति लोपः, शेषस्य पस्यादित्वाद् द्वित्वाभावः, चस्य लोपः, 'अवर्णो यश्रुति' (सि०-८।१।१८०) इति लघुप्रयत्नतरयश्रुतिश्च, नस्य 'नो ण' (सि०-८।१।२२८) इत्यनेन नस्य णो भवति, ततः तृतीयैकवचने टाप्रत्ययः, तस्य च 'टो णा' (सि०-८।३।२४) इत्यनेन 'णा' इत्यादेशः, यथा षष्ठश्लोके 'अमिअबलवइणा' इत्यत्रादेशः । **'जस्स'** त्ति पूर्ववत् । **'वेरग्गपोम्मं'** ति सामासिकस्य वैराग्यपद्मशब्दस्य 'ऐत एत्' (सि० ८।१।१४८) इत्यनेन ऐकारस्य एकारः, 'ह्रस्व संयोगे' (सि० ८।१।८४) इत्यनेन ह्रस्वः, 'अधो म-न-याम्' (सि० ८।२।७८) इत्यनेन संयुक्तयकारलोपः, शेषस्य गस्य 'अनादौ०' इति द्वित्वम् , 'क-ग-ट०' (सि०-८।२।७७) इति संयुक्तस्य दस्य लोपः, शेषस्य मस्य च 'अनादौ०' (सि०-८।२।८९) इति द्वित्वम् , 'ओत्पद्मे' (सि० ८।१।६१) इत्यनेन पकारगतस्या-ऽकारस्य ओकारो भवति, ततः पूर्ववन्नपुंसकलिङ्गे प्रथमैकवचनम् । **'रम्मा'** त्ति आबन्तस्य रम्याशब्दस्य 'अधो म०' इति संयुक्तयलोपः, 'अनादौ०' इति शेषस्य मस्य द्वित्वम् , ततो द्वितीयाबहुवचने शस्प्रत्ययः, तस्य च 'शेषेऽदन्तवत्' (सि० ८।३।१२४) इत्यनेन लक्षणवशेन 'स्त्रियामुदोतौ वा' (सि० ८।३।२७) इत्यस्य विकल्पपक्षे 'जस्शसोर्लुक्' (सि०-८ ३।४) इति शसो लोपः, दीर्घस्त्वाबन्तत्वादेव; यद्वा 'पर्जन्यवल्लक्षणप्रवृत्ति' इति परिभाषया 'जस्-शस्०' (सि०-८।३।१२) इत्यनेन आकारस्यापि दीर्घो भवति । ' ा' त्ति कन्याशब्दस्य 'अधो म०' इत्यनेन संयुक्तयलोपः, 'अनादौ०' इत्यनेन शेषस्य नस्य द्वित्वम् , ततः पूर्ववद् द्वितीयाबहुवचनम् । **'णवोढा'** त्ति कृतसमासस्य आबन्तस्य नवोढाशब्दस्य नस्य 'वादौ' (सि० ८।१।२२९) इति णः, शेषं पूर्ववत् । **'अड'** त्ति पूर्ववत् । **'णवणवति'** ति नवनवतिशब्दस्य पूर्ववद् 'वादौ' 'नो ण' इति सूत्रद्वयेन क्रमेण द्वयोर्नयोर्णो भवति, ततो द्वितीयैकवचने पूर्ववदम्प्रत्ययः । **'हेमकोडी'** त्ति हेमकोटिशब्दस्य हेमकोटीशब्दस्य वा टस्य 'टो ड.' (सि०-८।१।१९५) इत्यनेन टस्य डो भवति, ततो द्वितीयाबहुवचने शस्प्रत्ययः,

(सि०-८।१।२२८) इति णत्वम् । ततः सप्तम्येकवचने ङिप्रत्ययः, तस्य 'डे म्मि ङे' (सि०-८।३।११) इत्यनेन ङिदेकारादेशः, ततो ङित्त्वात्पूर्वस्याकारस्य लोपे इष्टरूपसिद्धिः ।

'मुक्खा' त्ति 'आबन्तस्य मुख्याशब्दस्य 'अधो म-न याम्' इति संयुक्तस्य यस्य लोपे शेषस्य खस्य 'अनादौ०-' इति द्वित्वम्, द्वित्वस्य खस्य 'द्वितीय तूर्ययो ' (सि०-८।२।९०) इति कत्वम्, ततः प्रथमा सिविभक्तिः, तस्याः 'अन्त्यव्यञ्जनस्य' (सि० ८।१।११) इति लोपः ।

'कया' त्ति आबन्तस्य कृतशब्दस्य ऋकारस्य 'ऋतोऽत्' (सि० ८।१।१२६) इत्यनेनाऽकारादेशः, ततः पूर्ववत्प्रथमा सिविभक्तः, तस्या लोपश्च ।

'साहुणी' त्ति साध्वीशब्दस्य बाहुलकाद् रूपनिष्पत्तिः ।

'जाओ' त्ति जातशब्दस्य तस्य 'क-ग-च . ' इति लोप, ततः पूर्ववत्प्रथमा सिविभक्तिः ।

'ज ' त्ति यच्छब्दस्य पूर्ववद् जकारा-ऽन्त्यव्यञ्जनलोपौ, ततः षष्ठ्येकवचनस्य ङस्प्रत्ययस्य ङस स्स ' (सि ८।३।१०) इत्यनेन स्सादेशः ।

'हरि त्ति' त्ति 'हरिरिति' इत्येवंरूपं पदद्वयम्, हरिशब्दात् प्रथमैकवचनस्य सिप्रत्ययस्य सस्य 'अन्त्य०' (सि०-८।१।११) इति लोपः, 'अक्लीबे सौ' (सि० ८।३।१९) इति दीर्घश्च, तत इतिसत्कस्येकारस्य 'इते स्वरात् तश्च द्वि' (सि०-८।१।४२) इत्यनेन लोपः, तस्य च द्वित्वम्, ततः 'ह्रस्व सयोगे' (सि० ८।१।८४) इति ह्रस्वः ।

'सत्थगऽभिहो' त्ति सामासिकस्य सार्थकाभिधशब्दस्य 'ह्रस्व सयोगे' (सि०-८।१।८४) इत्यनेन ह्रस्वः, 'सर्वत्र ल० ' इति संयुक्तरेफलोपः, 'अनादौ०' इति थस्य द्वित्वम्, द्वित्वस्य थस्य 'द्वितीय-तूर्य०' इति तत्वम्, कस्य बाहुलकाद् गत्वम्, तद्गतस्याकारस्य च 'लुक्' (सि० ८।१।१०) इति लोपः, धस्य च 'ख घ थ ध-भाम्' (सि० ८ १।१८७) इति हः, भस्य तु बाहुलकान्न भवति, ततः पूर्वत्प्रथमा सिविभक्तिः ।

'बाहासिहाए' त्ति सामासिकस्य बाहुशिखाशब्दस्यान्तर्गतो बाहुशब्दः पुंस्त्रीलिङ्गवाचकोऽस्ति । **तथा चोक्तं स्त्रीपुंसलिङ्गप्रकरणं यद्भिः हेमचन्द्रसूरिभिः'**
किष्कुर्बाहुर्गवेधू रा गौर्भा ॥१२॥' इति । ततोऽत्र स्त्रीलिङ्गवाचको गृहीतः, ततः 'बाहोरात्'(सि०-८।१।३६) इत्यनेन उकारस्य आकारः, यद्वा बाहाशब्दोऽपि संस्कृते बाहुवाचकोऽस्ति, **यदुक्तम्**-बाहा बाहौ पुमान् मानभेदे वृषतुरङ्गयो ' इति, ततो बाहाशिखाशब्दस्य वा शस्य 'श षो स ' (सि०।८।१।२६०) इति सः, खस्य 'ख घ-थ-ध भाम्' (सि० ८।१।१८७) इति हः । ततः सप्तम्येकवचनस्य ङिप्रत्ययस्य 'टा-ङस्-ङेरदादिदेद्वा तु ङसे ' (सि०-८।३।२९) इत्यनेनैकारादेशो भवति ।

तस्य च 'अनादौ शेषादेश०' (सि०-८।२।८९) इति द्वित्वम्, द्वित्वे पूर्वस्य 'द्वितीय तूर्ययोरुपरि पूर्व' (सि०-८।२।९०) इत्यनेन तो भवति 'विवेगो' त्ति विवेकशब्दस्य कस्य बाहुलकाद् यद्वा-ऽपभ्रंशे 'अनादौ स्वरादसयुक्ताना क-ख-त-थ प फा ग-घ-द ध-ब-भा' (सि०-८।४।३९६) इति सूत्रेण गत्वम्, ततः पूर्ववत्पुँल्लिङ्गे प्रथमैकवचनम्। 'को' त्ति किम्शब्दात् पुँल्लिङ्गे प्रथमैकवचने सिविभक्तिः, ततः किम्शब्दस्य 'किम कस्त्र-तसोश्च' (सि०-८।३।७१) इत्यनेन कादेशः, शेषं पूर्ववत्।

'वि' त्ति, 'य' त्ति 'जो' त्ति पदानि पूर्ववत्। 'जंबूसामिस्स' त्ति जम्बूस्वामिन्शब्दस्यानुस्वारादिकं पूर्ववत्, ततः षष्ठ्येकवचने ङस्विभक्तिः, तस्याश्च 'शेषेऽदन्तवत्' (सि०-८।३।१२४) इत्यतिदेशेन 'ङस स्स' (सि०-८।३।१०) इति स्सादेशः। 'ज' ति 'यत्' इत्यव्ययस्यादेर्यकारस्य 'आदेर्यो ज' (सि० ८।१।२४५) इत्यनेन जः' अन्त्यतकारस्य च लोपस्य प्राप्तौ सत्यामपि बाहुलकाद् 'मोऽनुस्वार' (सि० ८।१।२३) इत्यनेनानुस्वारः। 'अदासी' त्ति सिद्धसंस्कृतस्याद्यतनतत्पदवाच्यप्रथमपुरुषैकवचनान्तस्य दाधातुरूपस्य 'अदासीत्' इत्ययेवंलक्षणस्य 'अन्त्य०' इत्यनेनान्त्यव्यञ्जनस्य तस्य लोपः। शेषपदानि पूर्ववत्स्वयं साध्यानि। केवलं 'सजमसिरि' इत्यत्र संयमश्रीशब्दस्य यकारस्यानादित्वेऽपि 'बहुल' (सि०-८।१।२) इति सूत्रतो बहुलाधिकारस्यानुवर्तनाद् जो भवति। तथा 'सिवयर' इत्यत्राबन्त' शिवकराशब्दो बोध्यः। 'दडजोग्गाण' इत्यत्र दण्डयोग्यशब्दस्य 'अधो म-न-याम्' (सि०-८-२-७८) इति यलोपः, ततः शेषस्य गस्य द्वित्वम्। 'चोराण' इत्यत्र यदि स्वार्थिकाणप्रत्ययान्तः चौरशब्दो गृह्यते तदा 'औत ओत' (सि०-८।१।१९६) इत्यनेनौकारस्य ओकारः ॥१५॥

सो घरवासे सोलस, वासा वीस वये जुगपहाणे। अजपयवण्णा पूरिअ, वीरसिवाउ सिवमजपयंगद्दे ॥१६॥
(पच्छागीई)

(हे०) 'सो' इत्यादि सर्वं पूर्ववत्स्वयं साधनीयम्। किन्तु 'घरवासे' त्ति अत्र गृहवासशब्दान्तर्गतस्य गृहशब्दस्य 'गृहस्य घरोऽपतौ' (सि०-८।२।१४४) इति सूत्रेण घरादेशः। 'सोलस' त्ति षोडशन्शब्दस्य ष-शयोः सत्वं नलोपश्च पूर्ववत्साध्यः, डस्य लत्वं पुनः 'डो ल' (सि०-८।१।२०२) इति सूत्रेण विज्ञेयम्, ततः एकादशगाथोक्तद्वादशशब्द-त्रयोदशगाथोक्ताष्टशब्दवत्शरप्रत्ययविधिः। 'वीसं' ति विंशतिशब्दस्य प्रथमश्लोकोक्तानुसारेणाऽऽबन्तशब्दसिद्धिस्ततो द्वितीयैकवचनम्। 'पूरिअ' त्ति पूर्धातोर्व्यञ्जनान्तत्वादकारागमे 'क्त्वस्तुमत्तूणतुआणा' (सि०-८।२।१४६) इति क्त्वाप्रत्ययस्य 'अ' आदेशः, प्रत्ययस्य पूर्वस्थस्य अस्य 'एच्च क्त्वा-तुम्-तव्य-भविष्यत्सु' (सि०-८।३।१५७) इत्यनेन इदादेशः ॥१६॥

तत्तो मणपरमावहि-पुलागआहारखवगुवसमा य। कप्पतिसजमकेवलि-सिवगमण ति दस वुच्छिण्णा ॥१७॥
(पच्छाज्जा)

टाप्रत्ययः, तस्य च 'टो णा' (सि०-८।३।२४) इत्यनेन 'णा' इत्यादेशः, । ततः 'शेषं संस्कृतवत्सिद्धम्' (सि० ८।४।४४८) इति प्राकृतलक्षणवशात् 'समानानां तेन दीर्घः' (सि० १।२।१) इत्यनेन पदद्वयस्याकारयोः स्थाने आकारः ।

'**णासिओ**' त्ति नाशितशब्दस्य 'वादौ' (सि०-८।१।२२९) इत्यनेन नस्य णत्वम्, 'श-षो स' (सि०-८।१।२६०) इत्यनेन शस्य सः, तस्य 'क-ग-च०' इति लोपः । ततः पूर्ववत्प्रथमा विभक्तिः ।

'**कम्मपासो**' त्ति कर्मपाशशब्दस्य संयुक्तस्य रेफस्य 'सर्वत्र ल-व० -' इति लोपः, 'अनादौ' इति द्वित्वम्, शस्य 'शषो स' इति सत्वम्, ततः पूर्ववत्प्रथमा विभक्तिः ।

'**भाही**' त्ति भाधातोर्भूतार्थे 'सी ही हीअ भूतार्थस्य' (सि०-८।३।१६२) इत्यनेन हीप्रत्ययः ।

'**जो**' त्ति यच्छब्दस्य पूर्ववत्प्रथमैकवचनम् ।

'**सव्ववेई**' त्ति सामासिकस्य सर्ववेदिन्शब्दस्य संयुक्तस्य रेफस्य 'सर्वत्र ल-व०' इति लोपः, 'अनादौ०' इति द्वित्वम् दस्य 'क-ग-च०' इति लोपः, नस्य 'अन्त्यव्यञ्जनस्य' (सि०-८।१।११) इति लोपः, ततः प्रथमैकवचने सिविभक्तिः, तस्याः सस्य 'अन्त्यव्यञ्जनस्य' इति लोपः, 'अक्लीबे सौ' (सि०-८।३।१९) इति दीर्घश्च ।

'**सुरअ रणरस्सामिसङ्घातपासो**' त्ति सामासिकस्य सुरासुरनरस्वामिसङ्घातपार्श्वशब्दस्य 'पदयोः सन्धिर्वा' (सि०-८।१।५) इत्यनेन सन्धेर्विकल्पनात् सुरासुरपदयोर्न संधिः, नस्य 'नो णः' इति 'वादौ' इति वा सूत्रेण णः, संयुक्तयोर्वकारयोः संयुक्तस्य रेफस्य 'सर्वत्र ल०' इति लोपः, 'अनादौ' इति शेषस्य सस्य द्वित्वम्, ङस्य 'ङ-ञ-ण-नो व्यञ्जने' (सि०-८।१।२५) इत्यनेनाऽनुस्वारः, तस्य पुनः 'वर्गेऽन्त्यो वा' (सि०-८।१।३०) इत्यनेन विकल्पतो ङो भवति, पार्श्वसत्कशेषस्य शस्य 'श-षो स' (सि० ८।१।२६०) इति सः, 'न दीर्घानुस्वारात्' (सि०-८।२।९२) इत्यनेनः द्वित्वाभावश्च, ततः पूर्ववत्प्रथमा विभक्तः ।

'**जक्खो**' यक्षशब्दस्य 'आदेर्यो जः' (सि०-८।१।२४५) इत्यनेन जत्वम्, संयुक्तस्य 'क्ष खः क्वचित्तु छ-झौ' (सि०-८।२।३) इत्यनेन खः, 'अनादौ ·' इति द्वित्वम्, ततः पूर्ववत्प्रथमा सिविभक्तिः ।

'**पायज्जजुग्ग**' ति सामासिकस्य पादाब्जयुग्मशब्दस्य दस्य 'क-ग-च०' इति लोपः, 'ह्रस्वः संयोगे' (सि० ८।१।८४) इति ह्रस्वः, 'सर्वत्र-ल' इति संयुक्तस्य बस्य लोपः, 'अनादौ०—' इत्यनेन शेषस्य जस्य द्वित्वम्, यस्य वाक्यविभक्त्यपेक्षया-ऽऽदित्वाद् 'आदेर्यो ज'

'अन्त्य०' इति लोपे सप्तम्येकवचनस्य ङिप्रत्ययस्य 'ङे स्सि-म्मि-त्था' (सि०-८।३।५६) इत्यनेन त्थादेशः, ततः 'त्थे च तस्य लुक्' (सि०-८।३।८३) इत्यनेन सस्वरतकारलोपः ॥१८॥

थुव्वइ पभवपहुस्स कि-मपुव्वभग्गणिहिणो अहोभग्ग ।
हरिउं गओ जडसिरिं, जा ता लहइ स अपुव्वचरणसिरिं ॥१९॥ (पच्छागीई)

(हे०) 'थुव्वइ' त्ति स्तुधातोः 'स्तस्य थोऽसमस्त-स्तम्बे' (सि०-८।२।४५) इत्यनेन संयुक्तव्यञ्जनयोः स्थाने थादेशः, ततः कर्मणि 'नवा कर्म-भावे व्व क्यस्य च लुक्' (सि०-८।४।२४२) इत्यनेन व्वागमः क्यप्रत्ययस्य च लोपः, ततः पूर्ववद्वर्तमानकालतत्पदवाच्यप्रथमपुरुषैकवचनम् । 'पहवपहुस्स' त्ति प्रभवप्रभुशब्दस्य रेफलोपादिकं पूर्ववत्, ततः षष्ठ्येकवचने ङस्प्रत्ययः, तस्य च 'शेषेऽदन्तवत्' (सि०-८।१।२२४) इत्यतिदेशसूत्रवशात् 'ङस स्स' (सि०-८।३।१०) इत्यनेन स्सादेशः 'कि' त्ति किमिति संस्कृतसमोऽव्ययः । 'अपुव्वभागणिहिणो' त्ति अपूर्वभाग्यनिधिशब्दस्य ह्रस्वादिकं पूर्ववत्, ततः षष्ठ्येकवचने ङस्प्रत्ययः, तस्य च ङसि-ङसो पु क्लीबे' (सि०-८।३।२३) इति 'णो' भवति । 'हरिउं' ति हृधातोः 'ऋवर्णस्यार' (सि०-८।४।२३४) इति अरादेशस्ततस्तुम्प्रत्ययः, 'एच्च क्त्वा-तुम०' (सि०-८।३।१५७) इत्यनेन अस्य इदादेशः । 'जा ता' त्ति यावत्तावच्छब्दयोः 'अन्त्य०' इत्यनेनान्त्यव्यञ्जनलोपः, 'यावत्तावज्जीविता०' (सि० ८।१।२७१) इत्यनेन विकल्पतः सस्वरवकारलोपः । अत्र सर्वत्रानुक्तं तथा शेषं सर्वं पूर्ववद्योजनीयम् ॥१९॥

स गिहेऽणगदसाऽद्दा, कह गपमिआ वये जुगपहाणे । अगमिआ ठाउ ख, वीसिवाऽहे सरिसिसखे ॥२०॥
(पच्छाज्जा)

(हे०) 'स' इत्यादि सर्वं पूर्वोक्तनीत्या स्वयं साधनीयम् । विशेषस्त्वेवम्–'गिहे' त्ति गृहशब्दस्य 'इत्कृपादौ' (सि०-८।१।१२८)इति सूत्रे कृपादेराकृतिगणत्वाद् ऋकारस्य इकारः । 'एक्कारस' त्ति एकादशन्शब्दस्यैकादशे श्लोके द्वादशन्शब्दस्य यथा साधनिका कृता तथैव यथासंभवं कर्तव्या, नवरमत्र बाहुलकात् कस्य गत्वं । 'सरिसिसखे' इत्यत्र ऋषिशब्दस्य ऋकारस्य 'ऋणर्त्वृषभर्त्वृषौ' (सि०-८।१।१४१) इत्यनेन रिकारादेशस्य विकल्पत्वात् कृपादिगणे ऋषिशब्दस्य पाठाच्च 'इत्कृपादौ' सि० ८।१।१२८) इत्यनेन इकारादेशः ॥२०॥

विस्सक्खायवरो पएऽस्स स पहू, सोहीअ सय्यभवो, णिक्कासीअ मुणिंदुसेअवयसा, सच्चेसणे तप्परो ।
जूवाहत्थिअसतिणाहपडिम, वेरग्गसमबुहिं, मोक्खाऽद्धादरिस धराअहठिअ, णिहाण व्व जो ॥२१॥
(सद्दूलविक्कीडिअ)

(हे०) विस्सक्खायवरो' इत्यादि, अत्रावक्ष्यमाणं सर्वं पूर्वोदितरीत्या स्वयं कथनीयम् । 'ऽस्स' त्ति इदम्शब्दस्स षष्ठ्येकवचने ङस्प्रत्ययः, तस्य च पूर्ववत्स्सादेशः, तत इदम्शब्दस्य

'**सिवं**' ति शिवशब्दस्य शस्य 'श-षो स.' इति सः, ततः प्राग्वद् द्वितीयैकवचनम् ।

"**भवज्जतरणी**" त्ति भव्य-ऽब्जतरणिशब्दान्तर्गतस्य कृतनलोपस्य भविशब्दस्य इकारस्य 'न युवर्णस्यास्वे' (८।१।६) इति सन्धिनिषेधेऽपि बाहुलकात् 'लुक्' (सि-८।१।१०) इति लोपः, संयुक्तस्य बस्य 'सर्वत्र०' इति लोपे शेषस्य जस्य 'अनादौ०' इति द्वित्वम् , ततः सिविभक्तिः, 'अक्लीबे सौ' (सि०-८।१।१६) इति दीर्घः, अन्त्यव्य०' इति विभक्तेः सस्य लोपः ।

"**तूहेसरो**" त्ति सामासिकस्य तीर्थेश्वरशब्दस्य पूर्वस्य संयुक्तस्य 'दु'ख-दक्षिण-तीर्थे वा' इत्यनेन हः, ततः 'तीर्थे हे' (सि०-८।१।१०४) इत्यनेन ईकारस्य ऊकारः, बाहुलकाद् 'लुक्' इति सूत्रस्याप्रवर्तनात् , सिद्धसंस्कृतसामासिकशब्दस्य ग्रहणाद्वा-ऽकारस्यालोपः, सयुक्तस्य वस्य 'सर्वत्र०' इति लोपः, शेषस्य शस्य 'श-षो स ' इति सत्वम् , 'न दीर्घानु०' इति द्वित्वाभावश्च, ततः पूर्ववत्प्रथमा सिविभक्तिः ।

"**अंतिमो**" त्ति अन्तिमशब्दस्य नस्य 'ङ-ञ-ण-नो०' इत्यनुस्वारः, ततः प्राग्वत्प्रथमा सिविभक्तिः ॥७॥

वीरा जेहिं, गहिअ तिवइ, गुम्हिआ बारसगी, पट्टो वीर-ज्जुमणिउदये, जाणऽणाण धयारो ।
अग जेसिं, पणमइ पहु, कम्मसत्तू णसन्ति, कल्लाणत्थं, मइ गणहरा, होंतु ते गोअमाई ॥८॥
(मदक्कता)

(हे०) "**वीरा**" त्ति वीरशब्दात् पञ्चम्येकवचने ङसिप्रत्ययः, तस्य च 'ङसेस् त्तो-दो-दु-हि-हिन्तो-लुक ' (सि०-८।३।८) इति लुगादेशः, 'जस्-शस्-ङसि त्तो-दो-द्वामि दीर्घ ' (सि०-८।३।१२) इति दीर्घः ।

"**जेहिं**" ति यच्छब्दस्य 'आदेर्यो ज ' (सि०-८।१।२४५।) इति यस्य जत्वम् , 'अन्त्य०' (सि०-८।१।११) इत्यन्त्यव्यञ्जनलोपः, ततस्तृतीयाबहुवचनस्य भिस्प्रत्ययस्य स्थाने 'भिसो हि हिँ हिं' (सि०-८।३।७) इत्यनेन हिमित्यादेशः, ततः 'भिस्भ्यस्सुपि' (सि०-८।३।१५) इत्यनेनास्य एत्वम् ।

'**गहिअ**' त्ति ग्रह्धातोः संयुक्तरेफस्य 'सर्वत्र०' इति लोपः, 'व्यञ्जनाददन्ते' (सि०-८।४।२३९) इत्यनेनाऽदागमः, 'क्त्वस्तुमत्तूण तुआणा ' (सि०-८।२।१४६) इत्यनेन क्त्वाप्रत्ययस्य स्थाने 'अ' इत्यादेशः, 'एच्च क्त्वा-तुम्-तव्य-भविष्यत्सु (सि०-८।३।१५७) इत्यनेन अस्य इत्वं भवति ।

'**तिवइ**' ति त्रिपदीशब्दस्य सयुक्तरेफस्य 'सर्वत्र०' इति लोपः, 'पो व ' (सि०-८।१।२३१) इति पस्य वत्वम् , 'क-ग-च० ..' इति दलोपः, ततो द्वितीयैकवचनेऽम्प्रत्ययः, 'शेषेऽदन्नवत्' (सि०-८।३।१२४) इति लक्षणवशात् 'अमोऽस्य'(सि०-८।३।५)इत्यनेनामोऽकारस्य लोपः, ह्रस्वोऽमि' (सि०-८।३।३६) इत्यनेन दीर्घेकारस्य ह्रस्वः ।

'अन्त्य०' इति लोपे सप्तम्येकवचनस्य ङिप्रत्ययस्य 'ङे स्सि-म्मि-त्था' (सि०-८।३।५६) इत्यनेन त्थादेशः, ततः 'त्थे च तस्य लुक्' (सि०-८।३।८३) इत्यनेन सस्वरतकारलोपः ॥१८॥

थुव्वइ पभवपहुस्स कि-मपुव्वभग्गणिहिणो अहोभग्ग ।
हरिउं गओ जडसिरिं, जा ता लहइ स अपुव्वचरणसिरिं ॥१९॥ (पच्छागीई)

(हे०) 'थुव्वइ' त्ति स्तुधातोः 'स्तस्य थोऽसमस्त-स्तम्बे' (सि०-८।२।४५) इत्यनेन संयुक्तव्यञ्जनयोः स्थाने थादेशः, ततः कर्मणि 'नवा कर्म-भावे व्व क्यस्य च लुक्' (सि०-८।४।२४२) इत्यनेन व्वागमः क्यप्रत्ययस्य च लोपः, ततः पूर्ववद्वर्तमानकालतत्पदवाच्यप्रथमपुरुषैकवचनम् । 'पहवपहुस्स' त्ति प्रभवप्रभुशब्दस्य रेफलोपादिकं पूर्ववत्, ततः षष्ठ्येकवचने ङस्प्रत्ययः, तस्य च 'शेषेऽदन्तवत्' (सि०-८।३।२२४) इत्यतिदेशसूत्रवशात् 'ङस स्स' (सि०-८।३।१०) इत्यनेन स्सादेशः 'कि' ति किमिति संस्कृतसमोऽव्ययः । 'अपुव्वभागणिहिणो' त्ति अपूर्वभाग्यनिधिशब्दस्य ह्रस्वादिकं पूर्ववत्, ततः षष्ठ्येकवचने ङस्प्रत्ययः, तस्य च ङसि-ङसो पुं क्लीबे' (सि०-८।३।२३) इति 'णो' भवति । 'हरिउं' ति हृधातोः 'ऋवर्णस्यार' (सि०-८।४।२३४) इति अरादेशस्ततस्तुम्प्रत्ययः, 'एच्च क्त्वा-तुम०' (सि०-८।३।१५७) इत्यनेन अस्य इदादेशः । 'जा ता' त्ति यावत्तावच्छब्दयोः 'अन्त्य०' इत्यनेनान्त्यव्यञ्जनलोपः, 'यावत्तावज्जीविता०' (सि० ८।१।२७१) इत्यनेन विकल्पतः सस्वरवकारलोपः । अत्र सर्वत्रानुक्तं तथा शेषं सर्वं पूर्ववद्योजनीयम् ॥१९॥

स गिहेऽणगदसाऽद्दा, कहगपमिआ वये जुगपहाणे । अगमिआ ठाउ ख, वीरसिवाऽहे सरिसिसखे ॥२०॥
(पच्छाज्जा)

(हे०) 'स' इत्यादि सर्वं पूर्वोक्तनीत्या स्वयं साधनीयम् । विशेषस्त्वेवम्—'गिहे' त्ति गृहशब्दस्य 'इत्कृपादौ' (सि०-८।१।१२८)इति सूत्रे कृपादेराकृतिगणत्वाद् ऋकारस्य इकारः । 'एकारस' त्ति एकादशन्शब्दस्यैकादशे श्लोके द्वादशन्शब्दस्य यथा साधनिका कृता तथैव यथासंभवं कर्तव्या, नवरमत्र बाहुलकात् कस्य गत्वं । 'सरिसिसखे' इत्यत्र ऋषिशब्दस्य ऋकारस्य 'ऋणज्वृर्षभर्त्वृ षौ' (सि०-८।१।१४१) इत्यनेन रिकारादेशस्य विकल्पत्वात् कृपादिगणे ऋषिशब्दस्य पाठाच्च 'इत्कृपादौ' सि० ८।१।१२८) इत्यनेन इकारादेशः ॥२०॥

विस्सक्खायवरो पएऽस्स स पहू, सोहीअ सय्यभवो, णिक्कासीअ मुणिंदुसेअवयसा, सच्चेसणे तप्परो । जूवाहत्थिअसतिणाहपडिम, वेरग्गसमबुहिं, मोक्खाऽद्धादरिस धराअहठिअ, णिहाण व्व जो ॥२१॥
(सद्दूलविक्कीडिअ)

(हे०) विस्सक्खायवरो' इत्यादि, अत्रावक्ष्यमाणं सर्वं पूर्वोदितरीत्या स्वयं कथनीयम् । 'ऽ ' त्ति इदम्शब्दस्स षष्ठ्येकवचने ङस्प्रत्ययः, तस्य च पूववत्स्सादेशः, तत इदम्शब्दस्य

'अंग' ति अङ्गशब्दस्य ङस्य 'ङ ञ ण नो व्यञ्जने' (सि०-८।१।२५) इत्यनुस्वारः, ततो द्वितीयैकवचनेऽम्प्रत्ययः, 'अमोऽस्य' (सि०-८।३।५) इत्यमोऽकारस्य लोपः, 'मोऽनुस्वार' (सि०-८।१।२३) इत्यनुस्वारः।

'जेसिं' ति यच्छब्दस्य पूर्ववदन्त्यव्यञ्जनलोप-जकारौ, ततः षष्ठीबहुवचनस्य आम्प्रत्ययस्य स्थाने 'आमो डेसिं' (सि०-८।३।६१) इत्यनेन डेसिं भवति, डित्त्वात् 'डित्यन्त्य स्वरादे' (सि०-२।१।११४) इति अलोपः।

'पणमइ' त्ति प्रपूर्वकस्य नम्धातोः 'नो ण' (सि० ८।१।२२८) इति, 'वादौ'(सि०-८।१।२२९) इति वा नस्य णः, 'व्यञ्जनाददन्ते' (सि०-८।४।२३९) इत्यनेन धातोरन्तेऽकारागमः, ततो वर्तमानकालतृतीयपुरुषैकवचनस्य स्थाने 'त्यादीना०' (सि० ८।३।१३९) इत्यनेन इच्प्रत्ययः।

'पहुं' ति प्रभुशब्दस्य संयुक्तस्य रेफस्य 'सर्वत्र०' (सि०-८।२।७९) इति लोपः, 'ख-घ०' (सि०-८।१।१८७) इति भस्य हादेशः, ततो द्वितीयैकवचनेऽम्प्रत्ययः, 'शेषेऽदन्तवद्' (सि०८।३।१२४) इति लक्षणवशात् अमोऽस्य' (सि०-८।३।५) इत्यनेनामोऽकारस्य लोपः, 'मोऽनुस्वार' (सि-८।१।२३) इति मस्यानुस्वारः।

'कम्मसत्तू' त्ति सामासिकस्य कर्मशत्रुशब्दस्य संयुक्तरेफयोः 'सर्वत्र०' (सि०-८।२।७९) इति लोपः, 'अनादौ०' इति शेषयोर्म-तयोर्द्वित्वम्, 'श-षो स' इति शस्य सः, ततः प्रथमाबहुवचनस्य जस्प्रत्ययस्य 'जस्-शसोर्लुक्' (सि०-८।३।४) इति लोपः 'शेषेऽदन्तवत' (सि०-८।३।१२४) इति लक्षणवशाद् 'जस-शस्०' (सि०-८।३।१२) इति दीर्घः।

'णासन्ति' त्ति नश्धातोः 'वादौ' (सि०-८।१।२२९) इति नस्य णः, 'व्यञ्जनाददन्ते' (सि-८।४।२३९) इति धातोरन्तेऽकारागमः, 'श-षो स' (सि०-८।१।२६०) इति शस्य सः, ततो वर्तमानकालतृतीयपुरुषबहुवचने 'बहुष्वाद्यस्य न्ति न्ते इरे' (सि०-८।३।१४२) इति न्तिप्रत्ययः।

'कल्लाणत्थ' ति सामासिकस्य कल्याणार्थशब्दस्य 'अधो-म न याम्' (सि०-८।२।७८) इति संयुक्तयलोपः, 'अनादौ०' (सि०-८।२।८९) इति शेषस्य लस्य द्वित्वम् 'नो ण' इति नस्य णः, 'सर्वत्र ल०' (सि०-८।२।७९) इति संयुक्तरेफस्य लोप', शेषस्य थस्य 'अनादौ०' इति द्वित्वम्, द्वित्वभूतस्य थस्य 'द्वितीय-तुर्ययो०' इत्यनेन तः, ततः पूर्ववद् द्वितीयैकवचनम्।

'मइ' त्ति अस्मच्छब्दस्य षष्ठ्यैकवचनेन ङस्प्रत्ययेन सह'मे मइ मम०'इत्यनेन निपातः।

'गणहरा' त्ति गणधरशब्दस्य धस्य 'ख घ थ०' इति हकारादेशः, ततः प्रथमाबहुवचने जस्प्रत्ययः, तस्य 'जस्-शसोर्लुक्' (सि० ८।३।४) इति लोपः, 'जस्-शस्०' (सि०-८।३।१२) इति दीर्घः।

'होन्तु' त्ति भूधातोः 'भुवेर्हो-हुव-हवा' (सि०-८।४।६०) इत्यनेन 'हो' इत्यादेशः, ततः पञ्चमीतृतीयपुरुषबहुवचने 'बहुषु न्तु ह मो' (सि०-८।३।१७६) इत्यनेन 'न्तु' इत्यादेशः।

अयमप्यन्तरोदितवत्, णवरं इदम्शब्दस्यादेशो बोध्यः। 'अद्धि' ति 'रययगिरि' ति 'विहुं' ति स्थलत्रयेऽप्यष्टमश्लोके 'पहु' इत्यत्र यथा द्वितीयाया विभक्तेः साधनिका दर्शिता तथा कार्या ॥२४॥

तस्य जनी वीराद्दे, दोचक्कि ६२ मिए वय जुगिह ८४ सखे।
स जुगपहाणो वसुणिहि ९८-मिए दिवभिओ गयमणु १४८ मिए ॥२५॥ (पच्छाज्जा)

(हे०) 'तस्स' इत्यादि, निगदसिद्धा; परं 'दोचक्किमिए' त्ति अत्र यदा दोष्शब्दो गृह्यते तदा दोष्शब्दस्य षस्य 'अन्त्य०' इत्यनेन वाक्यविभक्त्यपेक्षया भिन्नपदत्वेनाऽन्त्यव्यञ्जनत्वाल्लोपः, यद्वा समासमाश्रित्यैकपदं मन्यते तदा 'क-ग-ट०' इत्यनेन षस्य लोपः, शेषस्य चस्य च 'समासे वा' (सि०-८।२।९७) इत्यनेन द्वित्वस्य विकल्पनाद् द्विरुक्तेरभावः। यदा पुनर्द्विशब्दो गृह्यते तदा वस्य तु 'सर्वत्र०' इति लोपः, इकारस्य च 'द्विन्योरुत्' (सि०-८।१।९४) इत्यनेन उत्वे प्राप्तेऽपि बाहुलकादोत्वम्, यथा'द्विवचन' मित्यस्य स्थाने 'दोवयण' इति। 'दिव' ति दिवशब्दात् बाहुलकाद् अकारागमः ॥२५॥

अज्जो तस्स पए हवीअ विजओ, सब्भूअपुव्वो गुरू, बम्हेण अमुणो पयावमुवमी-कत्त कयो तावणो।
जस्सऽस्सद्दहणिग्गआ वयणई, भव्वाहपकावहा, देवीगीअजस धरीअ कमणो, सोउ च्च अट्ठस्सुइ ॥२६॥
(सद्दूलविक्कीडिअ

(हे०) 'अज्जो' इत्यादि, सामान्यतः पूर्ववत्सर्वं विज्ञेयम्। विशेषतस्तु 'अज्जो' त्ति अत्र आद्यशब्दस्य आर्यशब्दस्य वा संयुक्तस्य 'द्य-य्य र्यां ज' (सि०-८।२।२४) इत्यनेन जादेशः, ततो द्वित्वम्। 'बम्हेणं' ति अत्र ब्रह्मन्शब्दस्य संयुक्तस्य ह्मस्य 'पक्ष्म-श्म-ष्म-स्म-ह्मां म्हः' (सि०-८।२।७४) इत्यनेन म्हादेशः। 'अमुणो' त्ति अत्र अदम्शब्दस्य 'अन्त्य०' इति सलोप', ततः षष्ठ्येकवचने ङस्प्रत्यये परे सति 'मु स्यादौ' (सि०-८।३।८८) इत्यनेन दस्य मुरादेशः, ङस्प्रत्ययस्य च 'ङसि-ङसोः पुं क्लीबे वा' (सि० ८।३।२३) इत्यनेन विकल्पतः 'णो'इत्यादेशो भवति। 'ऽस्सद्दहणिग्गआ' त्ति आस्यद्रहनिर्गताशब्दस्य 'ह्रस्वः संयोगे' (सि० ८।१।८४) इत्यनेन पूर्वं ह्रस्वः, ततो यलोपः, सस्य द्विरुक्तिश्च पूर्ववत्, द्रस्य रेफस्य 'द्रे रो नवा' (सि०-८।२।८०) इत्यनेन विकल्पतो लोपः, ततः शेषस्य दस्य 'समासे वा' (सि० ८।२।९७) इति वचनाद् द्वित्वम्, निर्गतशब्दस्थस्य निरुपसर्गस्य रेफलोपादिकमेकविंशे श्लोके 'निक्कासीअ' इत्यत्र यथाविहितं तथैवात्राऽपि स्वयं साधनीयम्। 'सोउं' ति श्रोतुमितिसिद्धसंस्कृतरूपस्य रेफलोपादिके कृते सिध्यति, यद्वा श्रुधातोर्रेफस्य लोपे शस्य सत्वे कृते 'चि-जि-श्रु०' (सि०-८।४।२४१) इत्यनेन प्राप्तोऽपि णकारागमो न भवति, ततः 'शेषं संस्कृतवत्सिद्धम्' (सि०-८।४।४४८) इति वचनात् 'क्रियायां क्रियार्थायां तुम०' (सि०-५।३।१३) इति संस्कृतवचनेन तुम्प्रत्ययः, तस्मिन्

(सि० ८।२।८९) इति द्वित्वम्; ज्ञस्य 'म्नज्ञोर्णः' (सि०-८।२।४२) इत्यनेन णादेशः, तस्य च 'समासे वा' (सि०-८।२।९७) इत्यनेन द्वित्वविकल्पनाद् द्वित्वाभावः, नस्य 'नो ण' (सि० ८।१।२२८) इति णः, ततः पूर्ववच्चतुर्थीविभक्तिस्थाने षष्ठी विभक्तिः । 'जस्स' त्ति पूर्ववत् ।

'चित्त' ति चित्रशब्दस्य 'सर्वत्र०' (सि०-८।२।७९) इति संयुक्तरेफलोपः शेषस्य तस्य 'अनादौ०' इति द्वित्वम्, ततो नपुंसकलिङ्गे प्रथमा सिविभक्तिः, तस्याश्च 'क्लीबे स्वरान्म् से' (सि०-८।३।२५) इत्यनेन मादेशः, ततः 'मोऽनुस्वारः' (सि०-८।१।२३) इत्यनेन मस्यानुस्वारः ।

'चरित्तं' ति चरित्रशब्दस्यानन्तरोक्तवत्संयुक्तरेफलोपस्तकारद्विरुक्तिश्च, तथा प्रथमा सिविभक्तिः । 'अहो' त्ति संस्कृतसमः । 'गोअमस्स' त्ति, गौतमशब्दस्य 'औत ओत्' (सि० ८।१।१५९) इति औत ओत्, तस्य 'क-ग-च०' (सि०-८।१।१७७) इति लोपः, ततः पूर्ववत् षष्ठ्येकवचनम् ॥९॥

स कप्पद्दुमाईहि ओमिज्जए किं, मणोवञ्छिआ पुरए जस्स णाम ।
सहत्थेण दिक्खाछलेण विवाहो, कयो जेण मुत्तीअ सद्ध भवीण ॥१०॥ (भुजगप्रयाय)

(हे०) 'स' त्ति तच्छब्दस्य 'अन्त्य०' (सि०-८।१।११) इत्यन्त्यव्यञ्जनलोपः, ततः प्रथमा सिविभक्तिः, 'तदश्च तः सोऽक्लीबे' (सि०-८।३।८६) इत्यनेन तस्य सः, 'वैतत्तदः' (सि०-८।३।३) इत्यनेन 'डो' प्रत्ययस्य विकल्पनात्तदभावपक्षे 'अन्त्य०' इति विभक्तेः सस्य लोपः ।

'कप्पद्दुमाईहि' त्ति सामासिकस्य कल्पद्रुमादिशब्दस्य संयुक्तयोर्ल-रयोः 'सर्वत्र०' (सि०-८।२।७९) इति लोपः, शेषयोः प-दयोः 'अनादौ०' इति द्वित्वम्, दस्य 'क-ग-च०' (सि०-८।१।१७७) इति लोपः, ततस्तृतीयाबहुवचने 'भिसो हि-हिँ-हिं' (सि०-८।३।७) इति 'हि' आदेशः, 'इदुतो दीर्घः' (सि०-८।३।१६) इति दीर्घः ।

'ओमिज्जए' त्ति उपोपसर्गपूर्वकात् माधातोः 'ईअ-इज्जौ क्यस्य' (सि०-८।३।१६०) इत्यनेन कर्मणि क्यप्रत्ययस्य स्थाने इज्जप्रत्ययः, उपोपसर्गस्य च 'ऊच्चोपे' (सि०-८।१।१७३) इत्यनेन 'ओ' इत्यादेशः, ततो वर्तमानकालतृतीयपुरुषैकवचने 'त्यादीनामाद्यत्रयस्याद्यस्येचेचौ' (सि०-८।३।१३९) इत्यनेन एच्प्रत्ययः ।

'किं' ति किम्शब्दस्य मस्य 'मोऽनुस्वारः' (सि०-८।१।२३) इत्यनुस्वारः ।

'मणोवञ्छिआ' त्ति सामासिकस्य मनोवाञ्छितशब्दस्य 'नो णः' (सि०-८।१।२२८) इत्यनेन नस्य णः, 'ह्रस्वः संयोगे' इत्यनेना ऽऽकारस्या-ऽकारः, ञस्य 'ङ-ञ०' (सि० ८।१।२५) इत्यनुस्वारः, ततो द्वितीयाबहुवचने शस्प्रत्ययः, तस्य 'जस्-शसोर्लुक्' (सि०-८।३।४) इति लोपः, 'जस्-शस्-ङसि०' (सि०-८।३।१२) इति दीर्घश्च ।

'पूरए' त्ति पूर्धातोः 'व्यञ्जनाददन्ते' (सि०-८।४।२३९) इत्यनेन धातोरन्तेऽकारागमः, ततो वर्तमानकालतृतीयपुरुषैकवचने 'त्यादीना०' इत्यनेन एच्प्रत्ययः ।

दाया सिद्धीअ मे सो, हवउ गुणणिही, थुल्लभद्दो गणिंदो;
तप्पट्टाराममाली, गुणकुसुमजुआ, मव्वद्दू जो कुणीअ ।
वीरो एगो च्च एसो, मयणजयपरो, णेमिणाहाइगाओ,
जेण काउ पवेस, मयणअहिविले, कामसप्पो जिओ ज ॥३१॥ (सद्धरा)

(हे०) 'दाया' इत्यादि, साधनिका उक्तप्राया, केवलं 'दाया' त्ति अत्र दातृशब्दस्य ऋकारस्य प्रथमैकवचने सौ परे 'आ सौ न वा' (सि०-८।३।४८) इत्यनेन आकारादेशः । 'मे' त्ति 'मे मइ०' (सि०-८ ३।११३) इत्यनेन षष्ठ्येकवचनेन ङस्प्रत्ययेन सहास्मच्छब्दस्य निपातः । 'कुणीअ' त्ति 'कृगे कुण' (सि० ८।४।६५) इत्यनेन कृधातोः कुणादेशः ।

'एसो' त्ति अत्र एतच्छब्दस्यान्त्यव्यञ्जनस्य 'अन्त्य०' इति लोपः, प्रथमै चने सिप्रत्यये परे 'तदश्च त सो-ऽक्लीबे' (सि०-८ ३।८६) इत्यनेन तकारस्य सकारः, सिप्रत्ययस्य च 'वैतत्तद' (सि०-८।३।३) इत्यनेन विकल्पतः 'डो' इत्यादेशः ।

ननु 'एसो' इतिरूपं 'अत सेर्डो' (सि०-८।३।२) इत्यनेनैव सिध्यति, किमर्थ 'वैतत्तद' (सि०-८।३।३) इति सूत्रे एतच्छब्दस्य ग्रहणम् ? न च 'अत सेर्डो' (सि०-८।३।२) इत्यनेन सिप्रत्ययस्य 'डो' इत्यादेशस्य नियमतो भवनेन 'एस' इति रूपं न सिध्येत्, तदर्थं 'वैतत्तद' इति सूत्रेऽस्योपादानं कृतमिति वाच्यम्, यतः 'वैसेणमिणमो सिना' (सि०-८।३।८५) इत्यनेन सामान्यतो लिङ्गत्रयेऽपि 'एस-इणंइ-णमो' इत्यादेशत्रयस्य सिविभक्त्या सहैतच्छब्दस्य विधानादत्र पुंलिङ्गेऽपि 'एस' इति रूप जायते, तस्य च विकल्पपक्षे 'अत सेर्डो' इत्यनेन 'एसो' इति रूपमपि भवितुमर्हतीति चेत्, उच्यते-अतो-ऽत्र विषये 'द्विबद्ध सुबद्ध' इति परिभाषासूत्रातिरिक्तं समाधानमस्माकं स्मरणपथे नावतरति, अज्ञप्रायत्वात् । ततोऽस्मिन् शङ्कास्थले प्रश्नस्थाने वा कः समाधिर्युज्यते स विद्यैकरसिकैः परोपकृतिव्यसनैः सह्लयावद्भिः परामर्शनीयः, मय्यनुग्रहं विधाय विज्ञापनीयश्चेति प्रार्थये कृतिनो दाक्षिण्यमहानिधीनिति ।

'काउं' ति कृधातोः 'शेषं सस्कृतवत्सिद्धम्' (सि०-८।४।४४८) इति प्राकृतल　　त्संस्कृतलक्षणेन 'क्रियाया क्रियार्थाया०' (सि०-५।३।१३) इत्यनेन तुम्प्रत्ययः, ततः कृधातुमत्कस्य　　रस्य 'आ कृगो भूत-भविष्यतोश्च' (सि०-८।४।२२४) इत्यनेन आकारादेशः, 'जं' ति 'यद्' इत्यव्ययस्यान्त्यस्य तकारस्यापि बाहुलकादनुस्वारः ॥३१॥

बारहवासदुकाला, तदा मुणिगणस्सिओ तओ गमणा । जाया सुत्तज्झयणे, महई खलणा तदुवसंते ॥३२।
(पच्छाज्जा)

सघेण कारिआ सुअ-अवणत्थ सुत्तवायणा पढमा । पाडलिपुत्ते समये, गुरुणो सिरिथूलभद्दस्स ॥३३॥
(पच्छाज्जा) (जुग्ग ।)

नेन संयुक्तस्य सस्य लोपः, 'अनादौ०' (सि०-८।२।८९) इति शेषस्य थस्य द्वित्वम् , 'द्वितीय तूर्यं-योः०' (सि० ८।२।९०) इति थस्य तः, ततः पूर्ववत्सप्तम्येकवचनम् ।

'पण्णासं' ति पञ्चाशत्शब्दस्य संयुक्तस्य 'पञ्चाशत्पञ्चदश दत्ते' (सि०-८।२।४३) इत्यनेन 'ण' इत्यादेशः, 'अनादौ०' (सि०-८।२।८९) इति द्वित्वम् । शस्य 'श षो स' (सि.-८।१।२६०) इत्यनेन सः, अन्त्यव्यञ्जनस्य च 'अन्त्य०' (सि० ८।१।११) इति लोपः, ततो नपुंसकलिङ्गे द्वितीयैक-वचने अम्प्रत्ययः, 'अमोऽस्य' (सि० ८।३।५) इत्यनेनामोऽकारस्य लोपः, मस्य च 'मोऽनुस्वार' (सि०-८।१।२३) इत्यनेनानुस्वारः । यदा स्त्रिलिङ्गवाची गृह्यते तदा 'शेष संस्कृतवत्सिद्धम्' (सि०-८।४। ४४८) इति लक्षणवशात् 'आत्' (सि०-२।४।१८) इत्यनेनाप्रत्ययः, ततो द्वितीयैकवचनेऽम्प्रत्ययः, 'शेषेऽदन्तवत्' (सि०-८।३।१२४) इत्यलक्षणवशात् 'अमोऽस्य' (सि० ८।३।५) इत्यनेनामोऽकार-लोपः, 'ह्रस्वोऽमि (सि०-८।३।३६) इत्यनेन आकारो ह्रस्वो भवति ।

'वा ' त्ति वर्षशब्दस्य संयुक्तस्य रेफस्य 'सर्वत्र०' (सि०-८।२।७९) इति लोपः, 'लुप्त-य-र-व-श-ष-सा श-ष-सा दीर्घ' (सि०-८।१।४३) इति वकारगतोऽकारो दीर्घः, 'श-षो स' (सि०-८।१।२६०) इत्यनेन षस्य सः, ततो द्वितीयाबहुवचने शस्प्रत्ययः, 'जस् शसोर्लुक्' (सि०-८।३।४) इति शस्लोपः, 'जस्-शस्-ङसि०' (सि०-८।३।१२) इति दीर्घः ।

'तीसं' ति त्रिंशत्छब्दस्यान्त्यव्यञ्जनस्य 'अन्त्य०' (सि०-८।१।११) इति लोपः, 'सर्वत्र०' (सि०-८।२।७९) इत्यनेन संयुक्तस्य रेफस्य लोपः, 'विंशत्यादेर्लुक्' (सि०-८।१।२८) इत्यनेनानुस्वार-लोपः, 'ईर्जिह्वा सिंह त्रिंशद्विंशतौ त्या' (सि०-८।१।९२) इत्यनेन इकारस्य दीर्घत्वम् , 'श-षो सः' (सि०-८।१।२६०) इत्यनेन शस्य सः, ततः पूर्ववद् द्वितीयैकवचनेऽम्प्रत्ययः ।

'वयम्मि' त्ति व्रतशब्दस्य रेफस्य 'सर्वत्र०' (सि०-८।२।७९) इति लोपः, तस्य 'क-ग-च०' (सि०-८।१।१७७) इति लोपः, ततः सप्तम्येकवचनस्य ङिप्रत्ययस्य स्थाने 'ङे म्मि ङे' (सि०-८।३।११) इत्यनेन 'म्मि' इत्यादेशो भवति ।

'सव्वविए' त्ति सर्वविच्छब्दस्य रेफस्य 'सर्वत्र०' (सि०-८।२।७९) इति लोपः, 'अनादौ०' (सि०-८।२।८९) शेषस्य वस्य द्वित्वम् , 'शरदादेरत्' (सि०-८।१।१८) इत्यनेनाऽन्त्यदस्याऽकारो भवति, ततः सप्तमी विभक्तिः ।

'बारस' त्ति द्वादशन्शब्दस्य 'क ग-ट०' (सि०-८।२।७७) इत्यनेन संयुक्तस्य दस्य लोपः, बवयोरैक्यात् वस्य बत्वम् , 'सङ्ख्या-गद्गदे र' (सि०-८।१।२१९) इत्यनेन दस्य रः, 'श-षो स' (सि०-८।१।२६०) इत्यनेन शस्य सः, ततो वक्ष्यमाणत्रयोदशश्लोकस्थाष्टशब्दवत्शस्प्रत्ययनिष्पत्तिः कार्या ।

धातोरादेरकारस्य आत्रप्रत्यये परेऽप्याकारादेशः, क्तप्रत्यये परे सति 'क्ते' (सि०-८।३।१५६) इत्यनेन आत्रप्रत्ययस्या-ऽकारस्य इकारादेशः, क्तप्रत्ययस्य तकारस्य 'क-ग-च०' इत्यादिना प्राग्वल्लोपः। 'णिवेणं' इत्यत्र ऋकारस्य इकारादेशो द्वादशतमे श्लोके दर्शितनीत्या, 'टा-ऽऽमोर्ण' (सि०-८।३।६) इत्यनेन तृतीयाविभक्त्यादेशश्चतुर्थ-पञ्चमादिश्लोकदर्शितरीत्या साधनीयः। 'बीआ०' इत्यत्र द्वितीयशब्दस्य 'बीअ' इत्यादेशः २८तमे श्लोके यथा दर्शितस्तथा ज्ञेयः ॥३८॥

महगिरिणो वाणिंदे १४५ वीरसिवाहे जणी सरिसिकु१७५-मिए।
दिक्खा स जुगपहाणो, तिहिहत्थे २१५ दिवमिसुजिणः४५मिए॥३९॥ (पच्छाज्जा)

(हे०) 'महगिरिणो' इत्यादि, भणितरीत्या दर्शितसाधनिका, ॥३९।

जम्मो सुहत्थिणोऽद्दे, कुणिहिविहु१६१मिए वय खगकरथणे ।
जुगपवरत्त सरजिण२४५ मिए दिव भूणिहिसय२९१मिए ॥४०॥ (पच्छाज्जा)

(हे०) 'जम्मो' इत्यादि, भणितप्राया। केवलं 'जुगपवरत्तं' ति अत्र सिद्धसंस्कृत शब्दस्य त्वप्रत्ययान्तस्य संयुक्तवलोपे द्वित्वे चेष्टरूपसिद्धिः ॥४०॥

अज्जसुहत्थिगुरु जा, हवीअ गच्छाहिवा च्च आयरिआ।सव्वे जुगप्पहाणा पुव्वहरा वायणादाऊ ॥४१॥ (पच्छाज्जा)

(हे०) 'अज्ज०' इत्यादि, कण्ठ्या। केवलं 'आयरिआ' त्ति अत्र आचार्यशब्दस्य चकारगतस्य आकारस्य 'आचार्ये चोच्च' (सि०-८।१।७३) इत्यनेन अकारादेशः, तथा संयुक्तय-कारस्य पूर्व इकारागमः 'स्याद्-भव्य-चैत्य-चौर्यसमेपु यात्' (सि०-८।२।१०७) इत्यनेन, सलोपादिकं तु पूर्ववत्। 'वायणादाऊ' त्ति अत्र वाचनादातृशब्दात् प्रथमाबहुवचने जस्प्रत्ययः, तस्मिन् परे 'ऋतामुदस्यमौसु वा' (सि०-८।३।४४) इत्यनेन ऋकारस्य उकारादेशः, ततश्चतुर्थश्लोके 'कम्मारी' इत्यत्र दर्शितरीत्यनुसारेण जस्प्रत्ययलोप-दीर्घादिकं साधनीयम् ॥४१॥

सूरिमितस्स जवकोडिओ, गच्छणामो जओ कोडिओ, णिग्गओ इक्खुगहणा जिणा, आइमिक्खागुवंसो जहा। लोअणाइ भिव सुहत्थिणो, पट्टवत्तम्मि सोहीअ जे, सुट्ठिअक्खो सुपडिबुद्धगो, ते गुरू दिन्तु भव्वाण स ॥ ॥४२॥ (वल्लकी)

(हे०) 'सूरि०' इत्यादि, निरूपितप्राया साधनिका। केवलं 'जवकोडिओ' त्ति अत्र जपकोटिशब्दात् 'शेष संस्कृतवत्सिद्धम्' (सि०-८।४।४४८) इति प्राकृतलक्षणवशात्संस्कृतलक्षणेन तस्प्रत्ययः, यद्वा सिद्धसंस्कृतशब्दस्य तस्प्रत्ययान्तस्य जपकोटितः इत्येवंरूपस्य विसर्गस्य 'अतो विसर्गस्य डो' (सि०-८।१।३७) इत्यनेन 'डो' इत्यादेशः, एवं 'जओ' इत्यत्रापि भाव-नीयम्। 'इक्खागुवंसो' त्ति अत्र बाहुकात् इक्ष्वाकुशब्दस्य कस्य गत्वम्। 'जे' त्ति यच्छब्दस्य जकारादिकृते सति प्रथमाबहुवचने जस्प्रत्ययः, तस्य च 'अत सर्वादेर्डेर्जस' (सि० ८।३।५८) इत्यनेन जस्प्रत्ययस्य 'डे' इत्यादेशः ॥४२॥

'वीरपट्टाहिसित्तो' त्ति सामासिके वीरपट्टाभिषिक्तशब्दे भस्य 'ख-घ-थ०' (सि०-८।१।१८७) इति हः, षस्य 'श षो स' (सि०-८।१।२६०) इति सः, 'क-ग-ट०' (सि०-८।२।७७) इति संयुक्तकलोपः, 'अनादौ०' (सि०-८।२।८९) इति द्वित्वम्, ततः पूर्ववत्प्रथमा सिविभक्तिः।

'हम्मो' त्ति सुधर्मन्शब्दस्यान्त्यव्यञ्जनस्य 'अन्त्य०' (सि०-८।१।११) इति लोपः, 'ख-घ-थ०' (सि०-८।१।१८७) इत्यनेन धस्य हकारः, 'सर्वत्र०' (सि०-८।२।७९) इति रेफलोपः, 'अनादौ०' (सि०-८।२।८९) इति द्वित्वम्, ततः पूर्ववत् प्रथमा सिविभक्तिः।

'सो' त्ति पूर्ववत्। **'आसी'** त्ति अस्धातोः सिद्धसंस्कृतरूपस्य 'आसीत्' इत्येवंरूपस्यान्त्यस्य तस्य 'अन्त्य०' इति लोपः।

'कयभविपयाजोगक्खेमो' त्ति कृतसमासस्य कृतभविप्रजायोगक्षेमशब्दस्य 'ऋतोऽत्' (सि०-८।१।१२६) इत्यनेन ऋकारस्य अकारः, 'क-ग-च०' इति तलोपः, 'अवर्णो यश्रुति' इति लघुप्रयत्नतरयकारागमः, 'सर्वत्र०' इति संयुक्तरेफलोपः, 'क-ग-च०' इति जलोपः, 'अवर्णो०' इति यश्रुतिश्च, वाक्यविभक्त्यपेक्षया यकारस्यादित्वेन 'आदेर्यो ज' (सि० ८।१।२४५) इत्यनेन यस्य जत्वम्, क्षस्य 'क्ष ख क्वचित्तु छ-झौ' (सि०-८।२।३) इति खः, ततः पूर्ववत्प्रथमा सिविभक्तिः।

'णिवो व्व' त्ति नृपशब्दस्य 'वादौ' (सि०-८।१।२२९) इति नस्य णः, 'इत्कृपादौ' (सि०-८।१।१२८) इत्यनेन ऋकारस्य इदादेशः, 'पो व' (सि०-८।१।२३१) इति पस्य वः, ततः पूर्ववत्प्रथमा सिविभक्तिः, 'मिव पिव विव व्व व विअ इवार्थे वा' (सि० ८।१।१८२) इत्यनेन इवार्थे 'व्व' इति निपातः।

'सुई' त्ति शुचिशब्दस्य शस्य 'शषो स' इति सः, ततः पूर्ववत्प्रथमा सिविभक्तिः।

'जम्हा' त्ति यच्छब्दस्य 'आदेर्यो ज' इति यस्य जत्वम्, 'अन्त्य०' इति अन्त्यव्यञ्जनलोपः, ततः पञ्चम्येकवचनस्य ङसिप्रत्ययस्य 'ङसेर्म्हा' (सि०-८।३।६६) इति म्हादेशः।

'जाया' आबन्तस्य जाताशब्दस्य 'क-ग-च०' इति तलोपः, 'अवर्णो०' इति यश्रुतिः, ततः पूर्ववत्प्रथमा सिविभक्तिः।

'इह' त्ति पूर्ववत्। **'खलु'** त्ति संस्कृतसमोऽव्ययः। **'भरहे'** त्ति पूर्ववत्। **'संतई'** त्ति सन्ततिशब्दस्य 'ङ-ञ-ण-नो व्यञ्जने' (सि०-८।१।२५) इत्यनुस्वारः, 'क-ग-च०' इति तलोपः, ततः पूर्ववत्प्रथमा सिविभक्तिः, **'सासण'** ति शासनशब्दस्य शस्य 'श-षो स,' (सि०-८।१।२६०) इति सः, नस्य 'नो णः' (सि०-८।१।२२८) इति णः, ततः पूर्ववद् द्वितीयैकवचनेऽम्प्रत्ययः। **'जा'** त्ति यावच्छब्दस्य 'आदेर्यो ज' इति यस्य जः, 'अन्त्य०' इति अन्त्यतलोपः, 'यावत्तावज्जीवि०' (सि०-८।१।२७१) इत्यनेन विकल्पतः सस्वरस्य वस्य लोपः। **'सुविक्खिपणा'** त्ति आबन्तस्य 'सुवि-

(हे०) 'तत्तो' इत्यादि, कण्ठ्या केवलं 'पण्णवण०' इत्यत्र संयुक्तस्य ज्ञस्य 'म्नज्ञोर्णः' (सि०-८।२।४२) इत्यनेन णादेशः। 'गिण्हीअ' त्ति ग्रहधातोः 'ग्रहो वल-गेण्ह-हर-पङ्ग-निरुवाराहिपच्चुआः' (सि०-८।४।२०६) इत्यनेन गेण्हादेशः, 'ह्रस्वः संयोगे' (सि०-८।१।८४) इत्यनेन ह्रस्वश्च ॥४८-५०॥

रिसिदुणा पट्टसिरी विभासी, ताणिंददिण्णेण स ताअ भासी।
जहा णिसा माइ णिसायरेणं, णिसाअ माएइ णिसायरो वि ॥५१॥ (उवजाई)

(हे०) "रिसिदुणा" इत्यादि, उक्तार्था। केवलं 'रिसिदुणा' इत्यत्र तृतीयैकवचनं चतुर्दशे श्लोके 'पवयणवसुणा' इत्यत्र यथा साधितं तथैवात्राऽपि साधनीयम्। 'ताअ' त्ति तच्छब्दस्यान्त्यव्यञ्जनस्य लोपे 'शेषं संस्कृतवत्सिद्धम्' इति लक्षणवशेन 'आत्' (सि०-२।४।१८) इत्यनेन स्त्रियामाप्प्रत्ययः, ततस्तृतीयैकवचने टाप्रत्ययः, तस्य च 'टा-ङस्-ङेरदादिदेद्वा तु ङसेः' (सि०-८।३।२९) इत्यनेन टाप्रत्ययस्य अदादेशः। एवं "णिसाअ" इत्यत्रा-ऽपि ॥५१॥

तस्समये गुरुबधू पिअगथक्खो पह्मावगो सूरी। कयबम्हणपडिबोहो, जयेउ सच्चरणगुणनिलयो ॥५२॥
(पच्छाज्जा)

(हे०) "तस्समये" इत्यादि, पूर्वोक्तसाधनिकया शिष्टप्राया। केवलं 'पह्मावगो' त्ति अत्र बाहुलकात् कस्य गत्वम्। 'कयबम्हणपडिबोहो' त्ति अत्र संयुक्तस्य ह्मस्य 'पक्ष्म-श्म-ष्म-स्म-ह्मां म्हः' (सि०-८।२।७४) इत्यनेन म्हादेशः, प्रतेरुपसर्गस्य तकारस्य च 'प्रत्यादौ डः' (सि०-८।१।२०६) इत्यनेन डकारः ॥५२॥

सीसे मोलिव्व सोहीअ, इददिण्णस्स सूरिणो। पट्टम्मि सिरिदिण्णक्खो, गणिंदो सूरिपुंगवो ॥५३॥
(अणुट्टुभ)

(हे०) "सीसे" इत्यादि, [illegible]र्था ॥५३॥

तस्स पढमो विणेयो, अज्जसिरिसितिसेणिआयरिओ। मूल आसि चउण्ह, साहाण सेणिआईण ॥५४॥
(पच्छाज्जा)

(हे०) "तस्स" इत्यादि, सुगमा ॥५४॥

आसि तयाणि अखेगा, पह्मावगा तेसु वायणायरिओ। तेरसमो जुगपवरो, 卐सडिलसूरी य अज्जजीअहरो ॥
॥५५॥ (पच्छागीई)

(हे०) "आसि" इत्यादि, कण्ठ्या। किन्तु 'तयाणि' त्ति अत्र सिद्धसंस्कृतस्य तदानीशब्दस्य ईकारस्य 'पानीयादिष्वित्' (सि०-८।१।१०१) इत्यनेन इकारः, बाहुलकादनुस्वारलोपः, तकारलोप-णत्वादिकं पूर्ववत् ॥५५॥

तस्सगखदडेऽहे, जणी वय हत्थिहत्थवण्हिमिए। अंगणिरयरामे जुग-वरो स वेअकुजुगम्मि दिव ॥५६॥
(पच्छाज्जा)

卐 'खडिलसूरी" इति वा।

'टो डः' (सि०-८।१।१९५) इत्यनेन टस्य ड', ततो द्वितीयाबहुवचने शस्प्रत्ययः, तस्य च 'जस् शसोर्लुक्' (सि०-८।३।४) इत्यनेन लोपे बाहुलकाद् दीर्घस्य एकारस्य चाभावः, यद्वा 'शेषं संस्कृतवत्सिद्धम्' (सि०-८।४।४४८) इत्यनेन लक्षणवशेन 'डति-ष्ण सङ्ख्याया लुप्' (सि०-१।४।५४) इत्यनेन संस्कृतलक्षणेन शस्-शसोर्लोपे सति दीर्घाद्यभावः।

'केवलिम्मि' त्ति केवलिन्शब्दस्य 'अन्त्य०' इत्यन्त्यव्यञ्जनस्य लोपः, ततः सप्तम्येकवचने ङिप्रत्ययः, तस्य च 'शेषेऽदन्तवत्' (सि०-८।३।१२४) इति लक्षणवशात् 'ङे म्मि ङे'(सि०-८।३।११) इति सूत्रेण 'म्मि' इत्येवादेशः 'ङे' इत्यादेशस्य तु 'ङेर्डे' (सि०-८।३।१२८) इत्यनेन प्रतिषेधात्। **'सिवमिओ'** त्ति शिवशब्दस्य शस्य 'श-षो स' (सि०-८।१।२६०) इति स', ततः पूर्ववद् द्वितीयैकवचनम्; इतशब्दस्य तस्य क-ग-च०' इति लोपः, ततः पूर्ववत्प्रथमा सिविभक्तिः, ततः पूर्वपदस्य मस्यानुस्वारविकल्पपक्षे 'वा स्वरे मश्च' (सि०-८।१।२४) इत्यनेन मकारः। **'णहमिअ-ऽद्दे'** त्ति कृतसमासस्य नखमिताब्दशब्दस्य 'वादौ' (सि०-८।१।२२९) इत्यनेन विकल्पतो नस्य णः, 'ख-घ-थ-ध भाम्' (सि०-८।१।१८७) इत्यनेन हादेशः, 'क-ग-च०' इति तलोपः, 'ह्रस्वः संयोगे' (सि० ८।१।८४) इति ह्रस्वः, 'सर्वत्र०' इति संयुक्तस्य बस्य लोपः, 'बवयोरैक्यम्' इति वचनात्, शेषस्य दस्य च 'अनादौ०' इति द्वित्वम्, ततः, पूर्ववत्सप्तम्येकवचनम्।।१३।।

मंडित्था इदुवत्त, तिलयमिव पय, तस्स सो जबुसामी, सोहम्मकक्केण फुल्ल, पययणवसुणा, जस्स वेरग्गपोम्मं। रम्मा कन्ना णवोढा, अड णवणवतिं, हेमकोडी य जो हि, चिच्चा सापव्व, कासी वसममिअरम, कामुइ पसुल पि ।।१४।। (सद्धरा)

(हे०) **मंडित्था'** त्ति 'मडु भूषायाम्' इति भ्वादिगणस्थः, 'मडुण् भूषायाम्' इति चुरादिगणान्तर्गतो वा धातुः, तस्य च उदितत्वात् 'उदित स्वराम्नोन्त' (सि०-४-४-९८) इति नागमः, ततो 'मण्ड्'धातोः 'व्यञ्जनाददन्ते' (सि० ८।४।२३९) इत्यनेनान्ते अकारागमः, ततः 'आर्षम्' (सि० ८।१।३) इति सूत्रवशात् आर्षे भूतार्थे त्थाप्रत्ययः, अकारस्य च इकारो भवति। **'इदुवत्तं'** ति सामासिकस्य इन्दुवक्त्र-त्राशब्दस्य नस्य 'ङ-ञ-ण नो व्यञ्जने (सि०-८।१।२) इत्यनेनाऽनुस्वारः, संयुक्तककाररकारयोः क्रमेण 'क-ग-ट०' (सि० ८।२।७७) 'सर्वत्र०' (सि०-८।२।७९) इति सूत्रद्वयेन लोपः, ततः शेषस्य तकारस्य 'अनादौ शेषा०' (सि०-८।२।८९) इति द्विरुक्तिः, ततः पूर्ववद् द्वितीयैकवचनम्। **'तिलयमिव'** त्ति तिलकशब्दस्य कस्य 'क-ग-च०' इति लोपः तिलकशब्दः पुण्ड्रवाची पुन्नपुंसकलक्षणोभयलिङ्गवाचकोऽस्ति, ततो नपुंसकलिङ्गे पूर्ववत्प्रथमैकवचनम्, 'वा स्वरे मश्च' (सि०-८।१।२४) इत्यनेन इवशब्दस्य इकारे परे मस्यानुस्वाराभावपक्षे लोपापवादो मादेशः, इवशब्दः संस्कृतसमः। **'पयं'** ति पदशब्दस्य दस्य 'क-ग च०' इति लोपः, ततो नपुंसकलिङ्गे पूर्ववद् द्वितीयैकवचनम्। **'तस्स'** त्ति तच्छब्दस्य 'अन्त्यव्यञ्जनस्य' (सि०-

(हे०) 'तत्तो' इत्यादि, कण्ठ्या केवलं 'पण्णवण०' इत्यत्र संयुक्तस्य ज्ञस्य 'म्नज्ञोर्णः' (सि०-८।२।४२) इत्यनेन णादेशः । 'गिण्हीअ' त्ति ग्रहधातोः 'ग्रहो वल-गेण्ह-हर-पङ्ग-निरुवारा-हिपच्चुआ.' (सि०-८।४।२०६) इत्यनेन गेण्हादेशः, 'ह्रस्व सयोगे' (सि० ८।१।८४) इत्यनेन ह्रस्वश्च ॥४८-५०॥

रिसिंदुणा पट्टसिरी विभासी, ताणिंददिण्णेण स ताअ भासी।
जहा णिसा माइ णिसायरेणं, णिसाअ भाएइ णिमायरो वि ।५१॥ (उवजाई)

(हे०) "रिसिंदुणा" इत्यादि, उक्तार्था। केवलं 'रिसिंदुणा' इत्यत्र तृतीयैकवचनं चतुर्दशे श्लोके 'पवयणवसुणा' इत्यत्र यथा साधितं तथैवात्राऽपि साधनीयम् । 'ताअ' त्ति तच्छब्दस्यान्त्यव्यञ्जनस्य लोपे 'शेष संस्कृतवत्सिद्धम्' इति लक्षणवशेन 'आत' (सि०-२।४।१८) इत्यनेन स्त्रियामाप्प्रत्ययः, ततस्तृतीयैकवचने टाप्रत्ययः, तस्य च 'टा-ङस्-ङेरदादिदेद्वा तु ङसे' (सि०-८।३।२९) इत्यनेन टाप्रत्ययस्य अदादेशः । एवं "णिसाअ" इत्यत्रा-ऽपि ॥५१॥

तस्समये गुरुबधू पिअगथक्खो पहावगो सूरी । कयबम्हणपडिबोहो, जयेउ सच्चरणगुणनिलयो ॥५२॥
(पच्छाज्जा)

(हे०) "तस्समये" इत्यादि, पूर्वोक्तसाधनिकया शिष्टप्राया । केवलं 'पहावगो' त्ति अत्र बाहुलकात् कस्य गत्वम् । 'कयबम्हणपडिबोहो' त्ति अत्र संयुक्तस्य ह्मस्य 'पक्ष्म-श्म-ष्म-स्म-ह्मां म्हः' (सि०-८।२।७४) इत्यनेन म्हादेशः, प्रतेरुपसर्गस्य तकारस्य च 'प्रत्यादौ ड' (सि०-८।१।२०६) इत्यनेन डकारः ॥५२॥

सीसे मोलिठ्ठ सोहीअ, इददिण्णस्स सूरिणो । पट्टम्मि सिरिदिण्णक्खो, गणिंदो सूरिपुंगवो ॥५३॥
(अणुट्ठुभ)

(हे०) "सीसे" इत्यादि, गतार्था ॥५३॥

तस्स पढमो विणेयो, अज्जसिसरिसतिसेणिआयरिओ। मूल आसि चउण्ह, साहाण सेणिआईण ॥५४॥
(पच्छाज्जा)

(हे०) "तस्स" इत्यादि, सुगमा ॥५४॥

आसि तयाणि अणेगा, पहावगा तेसु वायणायरिओ। तेरसमो जुगपवरो, 卐सडिलसूरी य अज्जजीअहरो ॥
॥५५॥ (पच्छागीई)

(हे०) "आसि" इत्यादि, कण्ठ्या। किन्तु 'तयाणि' त्ति अत्र सिद्धसंस्कृतस्य तदानी-शब्दस्य ईकारस्य 'पानीयादिष्वित्' (सि०-८।१।१०१) इत्यनेन इकारः, बाहुलकादनुस्वारलोपः, तकारलोप-णत्वादिकं पूर्ववत् ॥५५॥

तस्सगखदडेऽद्दे, जणी वय हत्थिहत्थवण्हिमिए । अगणिरयरामे जुग-वरो स वेअकुजुगम्मि दिव ॥५६॥
(पच्छाज्जा)

卐 'खडिलसूरी" इति वा ।

तस्य च पूर्ववत् 'शेषेऽदन्तवत्' (सि०-८।३।१२४) इति लक्षणवशात् 'स्त्रियामुदोतौ वा' (सि०-८।३।२७) इति सूत्रस्य विकल्पपक्षे 'जस् शसोर्लुक्' (सि०-८।३।४) इत्यनेन लोपः, तत इकारस्य 'जस्-शस्' (सि०-८।३।१२) इति दीर्घश्च, 'य' त्ति समुच्चयार्थे चशब्दः, तस्य च बाहुलकादादेरपि चकारस्य लोपः। 'जो' त्ति पूर्ववत्' 'हि' त्ति संस्कृतसमो 'हि' इत्यव्ययः। 'चिच्चा' त्ति सिद्धसंस्कृतकृत्प्रत्ययान्तस्य त्यक्त्वाशब्दस्य 'त्योऽचैत्ये' (सि०-८।२।१३) इत्यनेन त्यस्य चादेशः, 'क-ग-ट०' सि०-८।१।७७) इत्यनेन संयुक्तकलोपः, ततः शेषस्य संयुक्तस्य त्वस्य 'त्व-थ्व द्व ध्वा च-छ-ज झाः क्वचित्' (सि०-८।२।१५) इत्यनेन चादेश', तस्य च 'अनादौ शेषादेशयोर्द्वित्वम्' (सि०-८।२।८९) इति द्विरुक्तिः, 'इ स्वप्नादौ' (सि०-८।१।४६) इत्यत्र स्वप्नादेराकृतिगणत्वादस्य आदेरकारस्य इकारः, तथैव तत्प्रयोगदर्शनात्, तथा चोक्तं कल्पसूत्रे—'चिच्चा हिरण्ण चिच्चा सुवण्ण चिच्चा धण ' इत्यादि। 'सप्पव्व' त्ति सर्पवच्छब्दस्य वत्प्रत्ययस्य 'वतेर्व्वः' (सि० ८।२।१५०) इत्यनेन व्वादेशः, संयुक्तरेफस्य 'सर्वत्र०' इति लोपे शेषस्य पस्य 'अनादौ०' इति द्वित्वम्। 'कासी' त्ति कृधातोः 'सी ही हीअ भूतार्थस्य' (सि०-८।३।१६२) इत्यनेन भूतार्थे सीप्रत्ययः, 'आ कृगो भूत-भविष्यतोश्च' (सि०-८।४।२१४) इत्यनेन भूतार्थे धातोः स्वरस्य आकारादेशः। 'वसममिअरम' ति पदद्वयं तत्र वशशब्दस्य शस्य 'श-षो स' (८।१।२६०) इति सः, ततः क्रियाविशेषणत्वान्नपुंसकलिङ्गद्वितीयैकवचनम् पूर्ववत्साध्यम्, ततोऽस्य मस्य उत्तरपदसत्के स्वरे परे 'वा स्वरे मश्च' (सि०-८।१।२४) इत्यनेनानुस्वारादेशं विकल्प्य अनुस्वाराभावपक्षे लोपापवादो मादेशः। अमृतरमाशब्दस्य ऋकारस्य 'ऋतोऽत्' (सि०-८।१।१२६) इत्यनेनाकारादेशे प्राप्तेऽपि 'इत्कृपादौ' (सि०-८।१।१२८) इति सूत्रेण बाहुलकादिकारादेशोऽपि भवति, तस्य 'क-ग-च०' (सि०-८।१।१७७) इति लोपः, ततः पूर्ववद् द्वितीयैकवचनम्। 'कामुइ' ति कामुकीशब्दस्य कस्य 'क-ग-च०' (सि०-८।१।१७७) इति लोपः, ततः पूर्ववद् द्वितीयैकवचनम्। 'पसुल पि' त्ति पांसुलाशब्दस्य मांसादिष्वनुस्वारे' (सि०-८।१।७०) इत्यनेनादेराकारस्य अकारो भवति, ततः पूर्ववद् द्वितीयैकवचनम्, अपेरकारस्य 'पदादपेर्वा' (सि०-८।१।४१) इत्यनेन लोपः ॥१४॥

णत्थि विवेगो को वि य, जंबूसामिस्स ज अदासी जो। सजमसिरिं सिवयर, चोराण वि दढजोग्गाण ॥१५॥

(पच्छाज्जा)

(हे०) 'णत्थि' त्ति निषेधार्थकस्य नस्य 'वादौ' (सि०-८।१।२२९) इत्यनेन नो णादेशः, अस्धातोः वर्तमानातत्पदवाच्यप्रथमपुरुषैकवचनेन तिवा 'अत्थिस्त्यादिना' (सि०-८।३।१४८) इत्यनेन 'अत्थि' आदेशः, तत्पूर्ववर्तिनो नकारगतस्याकारस्य 'लुक्' (सि०-८।१।१०) इत्यनेन लोपः। यद्वा सिद्धसंस्कृतस्य नास्तिशब्दस्य 'नो ण' इति नस्य णत्वम्, 'ह्रस्व संयोगे' (८।१।८४) इत्यनेनाऽऽकारस्य अकारः, संयुक्तस्य स्तस्य 'स्तस्य थोऽसमस्त-स्तम्बे' (सि०-८।२।४५) इति थादेशः,

(हे०) "सिरि०" इत्यादि, सुगमा। केवलं 'जोणिपाहुड अण्णू' इत्यत्र ज्ञकार-स्थस्य अकारस्य 'ज्ञो णत्वेऽभिज्ञादौ' (सि०-८।१।५६) इत्यनेन उकारः, 'म्नज्ञोर्णः' (सि०-८।२।४२) इत्यनेन णत्वे कृते भवति ॥६३॥

भणगो करगो झरगो, पहावगो जयउ वायणायरिओ। सिरिअज्जमगुसूरी, उत्तीणागाहसुअजलही ॥६४॥
(पच्छाऽऽज्जा)

(हे०) 'भणगो' इत्यादि, सुगमा ॥६४॥

स महाविज्जासिद्धो, अपुव्वसुयसागरो णहोगामी। जयउ महगुणी पण्णू, पालित्तो बालवयसूरी ॥६५॥
(पच्छाऽऽज्जा)

(हे०) 'स' इत्यादि, कण्ठ्या। किन्तु 'णहोगामी' त्ति सिद्धसंस्कृतस्य नभोगामिन्शब्दस्य रूपम्, 'महगुणी' इत्यत्र 'महागुणिन्शब्दस्य आकारस्य 'दीर्घ-ह्रस्वौ मिथो वृत्तौ' (सि०-८।१।४) इत्यनेन ह्रस्वत्वम्। 'पालित्तो' त्ति अत्र पादलिप्तशब्दस्य दकारलोपे शेषस्य अकारस्य 'स्वरस्योद्वृत्ते' (सि०-८।१।८) इत्यनेन सन्धिनिषेधेऽपि बाहुलकात् सन्धिः ॥६५॥

वुड्ढेण वि जेण किव, सरस्सईअ लहिऊण कुसुमजुअ। मुसल पि कय खाओ, सो सूरी वुड्ढवाइ त्ति ॥६६॥
(पच्छाऽऽज्जा)

(हे०) 'वुड्ढेण' इत्यादि, गतार्था। केवलं 'वुड्ढेण' इत्यत्र वृद्धशब्दस्य ऋकारस्य 'उदृत्वादौ' (सि०-८।१।१३१) इत्यनेन उकारः, एवं 'वुड्ढवाइ' इत्यत्रापि। 'किवं' इत्यत्र कृपाशब्दस्य ऋकारस्य 'इत्कृपादौ' (सि०-८।१।१२८) इत्यनेन इकारः। 'लहिऊण' त्ति लभ्धातोः 'व्यञ्जनाददन्ते' (सि०-८।४।२३९) इत्यनेनान्ते अकारागमः, क्त्वाप्रत्ययस्य च 'क्त्वस्तुमत्तूण-तुआणा' (सि० ८।२।१४६) इत्यनेन तूणादेशः, धातोरन्त्यस्य अकारस्य च 'एच्च क्त्वा-तुम्-तव्य-भविष्यत्सु' (सि०-८।३।१५७) इत्यनेन इकारादेशः। 'वुड्ढवाइ त्ति' इत्यत्र इति शब्दस्यादेरिकारस्य 'इते स्वरात् तश्च द्विः' (सि०-८।१।४२) इत्यनेन लोपः, तस्य च द्वित्वम्। ततः 'ह्रस्वः संयोगे' इत्यनेन 'वुड्ढवाई' इत्यस्य ईकारस्य ह्रस्वत्वम् ॥६६॥

सीसो तस्स गुणणिही, महाकवी वितत्तसासणपहावो। उत्तिण्णसमयजलही, पबोहगो विक्कमाइभूवाण ॥
॥६७॥ (पच्छागीई)

सिवलिंगफोडण जो, विहाय कल्लाणमंदिरथवेण। पयडीअ महपहावग-भवतिपासपहुणो बिंब ॥६८॥
(मुहचवलापच्छाऽऽज्जा)

सम्मइनकाइगणय गथाण कारगो असोगाण। जयउ जगम्मि स सूरी, दिवायरो सिद्धसेनगुरू ॥६९॥
(पच्छाऽऽज्जा)

(हे०) 'सीसो' इत्यादि, गाथात्रयस्यापि साधनिका गतार्था ॥६७-६८-६९॥

ताउ सिरिधम्मसूरी, हवीअ पचदसमो जुगपहाणो। जम्मोऽस्स वीरमोक्खा, सयकपावगरे६२पमाणेऽद्दे
॥७०॥ (पच्छापुव्विगा जहणचवलाऽऽज्जा)

तस्य च पूर्ववत् 'शेषेऽदन्तवत्' (सि०-८-३।१२४) इति लक्षणवशात् 'स्त्रियामुदोतौ वा' (सि०-८।३।२७) इति सूत्रस्य विकल्पपक्षे 'जस् शसोर्लुक्' (सि०-८।३।४) इत्यनेन लोपः, तत इकारस्य 'जस्-शस्' (सि०-८।३।१२) इति दीर्घश्च, 'य' त्ति समुच्चयार्थे चशब्दः, तस्य च बाहुलकादादेरपि चकारस्य लोपः। 'जो' त्ति पूर्ववत्' 'हि' त्ति संस्कृतसमो 'हि' इत्यव्ययः। 'चिच्चा' त्ति सिद्धसंस्कृतकृत्प्रत्ययान्तस्य त्यक्त्वाशब्दस्य 'त्योऽचैत्ये' (सि०-८।२।१३) इत्यनेन त्यस्य चादेशः, 'क-ग-ट०' सि०-८।१।७७) इत्यनेन संयुक्तकलोपः, ततः शेषस्य संयुक्तस्य त्वस्य 'त्व-थ्व-द्व-ध्वां च-छ-ज-झाः क्वचित्' (सि०-८।२।१५) इत्यनेन चादेश', तस्य च 'अनादौ शेषादेशयोर्द्वित्वम्' (सि०-८।२।८९) इति द्विरुक्तिः, 'इ स्वप्नादौ' (सि०-८।१।४६) इत्यत्र स्वप्नादेराकृतिगणत्वादस्य आदेरकारस्य इकारः, तथैव तत्प्रयोगदर्शनात्, तथा चोक्तं कल्पसूत्रे–'चिच्चा हिरण्णं चिच्चा सुवण्णं चिच्चा धणं ' इत्यादि। 'सप्पव्व' त्ति सर्पवच्छब्दस्य वत्प्रत्ययस्य 'वतेर्व्वः' (सि० ८।२।१५०) इत्यनेन व्वादेशः, संयुक्तरेफस्य 'सर्वत्र०' इति लोपे शेषस्य पस्य 'अनादौ०' इति द्वित्वम्। 'कासी' त्ति कृधातोः 'सी ही हीअ भूतार्थस्य' (सि०-८।३।१६२) इत्यनेन भूतार्थे सीप्रत्ययः, 'आ कृगो भूत-भविष्यतोश्च' (सि०-८।४।२१४) इत्यनेन भूतार्थे धातोः स्वरस्य आकारादेशः। 'वसममिअरम' ति पदद्वयं तत्र वशशब्दस्य शस्य 'श-षो स' (८।१।२६०) इति सः, ततः क्रियाविशेषणत्वान्नपुंसकलिङ्गद्वितीयैकवचनम् पूर्ववत्साध्यम्, ततोऽस्य मस्य उत्तरपदसत्के स्वरे परे 'वा स्वरे मश्च' (सि०-८।१।२४) इत्यनेनानुस्वारादेशं विकल्प्य अनुस्वाराभावपक्षे लोपापवादो मादेशः। अमृतरमाशब्दस्य ऋकारस्य 'ऋतोऽत्' (सि०-८।१।१२६) इत्यनेनाकारादेशे प्राप्तेऽपि 'इत्कृपादौ' (सि०-८।१।१२८) इति सूत्रेण बाहुलकादिकारादेशोऽपि भवति, तस्य 'क-ग-च०' (सि०-८।१।१७७) इति लोपः, ततः पूर्ववद् द्वितीयैकवचनम्। 'कामुइ' ति कामुकीशब्दस्य कस्य 'क-ग-च०' (सि०-८।१।१७७) इति लोपः, ततः पूर्ववद् द्वितीयैकवचनम्। 'पंसुल पि' त्ति पांसुलाशब्दस्य मांसादिष्वनुस्वारे' (सि०-८।१।७०) इत्यनेनादेराकारस्य अकारो भवति, ततः पूर्ववद् द्वितीयैकवचनम्, अपेरकारस्य 'पदादपेर्वा' (सि०-८।१।४१) इत्यनेन लोपः ॥१४॥

णत्थि विवेगो को वि य, जंबूसामिस्स ज अदासी जो। सजमसिरिं सिवयर, चोराण वि दङजोग्गाण ॥१५॥

(पच्छाज्जा)

(हे०) 'णत्थि' त्ति निषेधार्थकस्य नस्य 'वादौ' (सि०-८।१।२२९) इत्यनेन नो णादेशः, अस्धातोः वर्तमानातत्पदवाच्यप्रथमपुरुषैकवचनेन तिवा 'अत्थिस्त्यादिना' (सि०-८।३।१४८) इत्यनेन 'अत्थि' आदेशः, तत्पूर्ववर्तिनो नकारगतस्याकारस्य 'लुक्' (सि०-८।१।१०) इत्यनेन लोपः। यद्वा सिद्धसंस्कृतस्य नास्तिशब्दस्य 'नो ण' इति नस्य णत्वम्, 'ह्रस्व संयोगे' (८।१।८४) इत्यनेनाऽऽकारस्य अकारः, संयुक्तस्य स्तस्य 'स्तस्य थोऽसमस्त-स्तम्बे' (सि०-८।२।४५)इति थादेशः,

'रुप्पिणीत्ता' इत्यत्र पिशब्दसत्कस्य ऋकारस्य 'इत्कृपादौ' (सि०-८।१।१२८) इत्यनेन इकारः। एवमन्यत्राप्यृकारस्यानुक्त इकारोऽनेन सूत्रेण बोध्यः। 'रयणेहिं' इत्यत्र रत्नशब्दस्य संयुक्तस्य नस्य पूर्वेऽकारागमः 'क्ष्मा-श्लाघा-रत्नेऽन्त्यव्यञ्जनात्' (सि०-८।२।१०१) इत्यनेन भवति ।।७८।।

हिंडोलगत्थो वि छमासिओ जो, एगादसंगि सुअपुव्वजम्मो।
पढीअ बालो वि अबालतेजो, किं दुक्करं अत्थि महापुमाण ।।७९।। (उवजाई)

(हे०) "हिंडोलगत्थो" इत्यादि, साधनिका गतप्राया। केवलं 'छमासियो' इत्यत्र षण्मासिकशब्दस्य षस्य 'षट्-शमी-शाव०…' (सि०-८।१।२६५) इत्यनेन छादेशः, णस्य च वाक्यविभक्त्यपेक्षयाऽन्त्यत्वेन 'अन्त्य०' इत्यनेन लोपः, 'पढीअ' त्ति अत्र पठ्धातोः ठस्य 'ठो ढः' (सि०-८।१।१९९) इत्यनेन ढादेशः, ।।७९।।

अक्खोहिओ रायसहाअ माउ-प्पलोहणेहिं मुणिसत्तमो जो।
परिक्खिउ जस्स सुरेण दत्ता, वेउव्वलद्धी णहगामिविज्जा ।।८०।। (उवजाई)

(हे०) "अक्खोहिओ" इत्यादि, सुगमा। किन्तु 'माउप्पलोहणेहि' इत्यत्र 'गौणान्त्यस्य' (सि०८।१।१३४) इत्यनेन मातृशब्दस्य ऋकारस्य उकारः।

संघो ठवेऊण पडम्मि णीओ, दुब्भिक्खदेसाउ सुभिक्खदेसं।
दयाऽड्ढिणा जेण भवाउ मोक्खं, खित्ता विमाणे विणिणीसुणाण ।।८१।। (उवजाई)

(हे०) 'संघो' इत्यादि, पूर्वोक्तसाधनिकयोक्तप्राया। केवलं 'ठवेऊण' त्ति अत्र णिग्प्रत्ययान्तस्य स्थाधातोर्बाहुलकाद् ठवादेशः, क्त्वाप्रत्ययस्य च 'क्त्वस्तुम०' इत्यनेन तूणादेशः, अकारस्य 'एच्च क्त्वा०' (सि० ८।३।१५७) इत्यनेन एकारः 'खित्ता' सिद्धसंस्कृतस्य क्त्वाप्रत्ययान्तस्य क्षिप्धातोरूपम् ।।८१।।

सुवण्णकोडीजुअरुप्पिणिं जो, दिक्खीअ संबुज्झ सरागकण्णं।
पबोहिओ बोद्धमयाणुसारी, भूवो वि जेण पउरेहि सद्धं ।।८२।। (उवजाई)

(हे०) "सुवण्ण०" इत्यादि, सुगमा। केवलं "सुवण्णकोडीजुअरुप्पिणिं" इत्यत्र रुक्मिणीशब्दगतस्य संयुक्तव्यञ्जनस्य 'ड्म-क्मोः' (सि०-८।२।५२) इत्यनेन पादेशः। 'संबुज्झ' इत्यत्र सम्बोध्य-सम्बुध्ययोरन्यतरस्य सिद्धसंस्कृतरूपस्य संयुक्तस्य ध्यस्य 'साध्वस-ध्य-ह्यां झः' (सि० ८।२।२६) इत्यनेन झो भवति। 'पउरेहि' इत्यत्र हि पौरशब्दस्य औकारस्य 'अउ पौरादौ च' (सि०-८।१।१६२) इत्यनेन 'अउ' इत्यादेशः ।।८२।।

वीराऽद्दे रसणिहिजुग(४९६)-मिए जणी से वय बलखअगे (४९६।५०४)।
मइगुणसघसरे (५४८) जुग-पवरो स दिवं जुगगयसरे (५८४) ।।८३।। (पच्छाज्जा)

(हे०) **'ततो'** त्ति पूर्ववत्तच्छब्दस्यान्त्यव्यञ्जनलोपे पञ्चम्येकवचनस्य ङसिप्रत्ययस्य 'ङसेस् त्तो-दो-दु-हि-हिन्तो लुक' (सि०-८।३।८) इति त्तो भवति । **'मणपरमावहिपुलाग-आहारखवगुवसमा'** त्ति कृतद्वन्द्वसमासस्य मनःपरमावधिपुलाकाहारक्षपकोपशमशब्दस्य 'अन्त्य०' (सि०-८।१।११) इति विसर्गलोपः, न-ध-क-क्ष-प-क-प-शानां क्रमशो ण-ह-ग-ख-व ग-वाः पूर्ववत्साध्याः, 'पदयो 'सन्धिर्वा' (सि०-८ १।५) इत्यनेनासन्धिः, 'लुक्' (सि०-८।१।१०) इत्यनेनाकारलोपश्च, ततः पूर्ववत्प्रथमाबहुवचनम् । **'य'** त्ति पूर्ववत् । **'कप्पतिसजमकेवलि-सिवगमणं'** ति कृतसमाहारद्वन्द्वसमासस्य कल्पत्रिसंयमकेवलिशिवगमनशब्दस्य 'सर्वत्र०' इति संयुक्तलकाररेफयोर्लोपः' शेषं सर्वं पूर्ववत् । **'ति'** त्ति इतिशब्दस्य 'इते स्वरात् तश्च द्वि'' (सि० ८।२।४२) इत्यनेन इकारलोपः । **'दस'** त्ति दशन्शब्दस्य सत्व-नलोपौ पूर्ववत्, ततस्त्रयो-दशे श्लोके प्रतिपादिताष्टशब्दस्य शस्प्रत्ययवदत्र जस्प्रत्ययविधिर्वाच्यः । **'वुच्छिन्ना'** त्ति व्यु-च्छिन्नशब्दस्य 'अधो म०' इति यलोपः, ततः पूर्ववत्प्रथमाबहुवचनम्, अथवा व्यवच्छिन्नशब्द-स्यान्तर्गतस्य 'अव' उपसर्गस्य 'अवापोते' (सि०-८।१।१७२) इत्यनेन 'ओ' इत्यादेशो भवति, 'लुक्' (सि०-८।१।१०) इत्यनेन 'वि' उपसर्गस्य इकारस्य लोपः, ततो 'वोच्छिन्न' इतिशब्द-निष्पतिः, तस्यापि 'ह्रस्व सयोगे' (सि०-८।१।८४) इत्यनेन ओकारस्य ह्रस्वस्यापि भवनाद् यथोक्तशब्दसिद्धिस्ततः पूर्ववत् ॥१७॥

तप्पट्ट, पहवपहू णयीअ सोहं, भूवालो णिअपिउणो णिवासण व्व ।
चोरेसो वि भविजणाण दावसी जो, सत्थेसो इव सिवलच्छिमेत्थ चित्त ॥१८॥ (पहस्सिणी)

(हे०) **'तप्पट्ट'** इत्यादि, अत्रानुक्तसर्वविधिः पूर्ववत्स्वयं प्रसाध्य बोध्यः, विशेष-विधिस्तु दर्श्यते **'तप्पट्ट'** इत्यत्र तत्पट्टशब्दस्य संयुक्ततकारः 'क ग ट०' इति लुप्यते, **'णयीअ'** इत्यत्र नीधातोः 'युवर्णस्य गुण' (सि०-८।४।२३७) इति गुणे प्राप्तेऽपि बाहुलका-दयादेशः, 'व्यञ्जनादीअ' (सि०-८।३।१६३) इत्यनेन भूतार्थे ईअप्रत्ययः । **'णिअपिउणो'** इत्यत्र निजपितृशब्दसम्बन्धिनौ जतौ 'क-ग-च-ज०' इति लुप्येते, (णत्वं पूर्ववत्) ततः षष्ठ्येक-वचने ङस्प्रत्ययः, तस्मिन् परे नाम्नोऽन्त्यस्य ऋकारस्य 'ऋतामुदस्यमौसु वा' इत्यनेन विक-ल्पत उदादेशः । ततो ङस्प्रत्ययस्य 'ङसि-ङसो पु क्लीबे वा' (सि०-८।३।२३) इत्यनेन **'णो'** इत्यादेशः । **'णिवासणं'** इत्यत्र 'इत्कृपादौ' (सि०-८।१।१२८) इत्यनेन ऋकारस्य इकारः । **'दावसी'** त्ति दाधातोः 'णेरदेदावावे' (सि०-८।३।१४९) इत्यनेन प्रेरकणिप्रत्ययस्य स्थाने आवादेशः, ततो भूतार्थे 'सी-ही-हीअ भूतार्थस्य' (सि०-८।३।१६२) इत्यनेन सीप्रत्ययः । **'इव'** त्ति संस्कृतसमः । **'सिवलच्छिमेत्थ'** त्ति सामासिकस्य शिवलक्ष्मीशब्दस्य संयुक्तस्य 'छोऽक्ष्यादौ' (सि०-८।२।१७) इति सूत्रेण खापवादः छादेशः । एतच्छब्दस्यान्त्यस्य दस्य

'इसिणेत्ता' इत्यत्र ऋषिशब्दसत्कस्य ऋकारस्य 'इत्कृपादौ' (सि०-८।१।१२८) इत्यनेन इकारः। एवमन्यत्राप्यृकारस्यानुक्त इकारोऽनेन सूत्रेण बोध्यः। ' रयणेहिं' इत्यत्र रत्न-शब्दस्य संयुक्तस्य नस्य पूर्वेऽकारागमः 'क्ष्मा-श्लाघा-रत्ने-ऽन्त्यव्यञ्जनात्' (सि०-८।२।१०१) इत्यनेन भवति ।।७८।।

हिंडोलगत्थो वि छमासिओ जो, एगादसगिं सुअपुव्वजम्मो।
पढीअ बालो वि अबालतेजो, किं दुक्करं अत्थि महापुमाण ।।७९।। (उवजाई)

(हे०) "हिंडोलगत्थो" इत्यादि, साधनिका गतप्राया। केवलं 'छमासियो' इत्यत्र षण्मासिकशब्दस्य षस्य 'षट्-शमी-शाव० ' (सि०-८।१।२६५) इत्यनेन छादेशः, णस्य च वाक्य-विभक्त्यपेक्षयाऽन्त्यत्वेन 'अन्त्य०' इत्यनेन लोपः, ' अ' त्ति अत्र पठ्धातोः ठस्य 'ठो ढः' (सि०-८।१।१९९) इत्यनेन ढादेशः, ।।७९।।

अक्खोहिओ रायसहाअ माउप्पलोहणेहिं मुणिसत्तमो जो।
परिक्खिवउ जस्स सुरेण दत्ता, वेउव्वलद्धी णहगामिविज्जा ।।८०।। (उवजाई)

(हे०) "अक्खोहिओ" इत्यादि, सुगमा। किन्तु 'माउप्पलोहणेहिं' इत्यत्र 'गौणा-न्त्यस्य' (सि०८।१।१३४) इत्यनेन मातृशब्दस्य ऋकारस्य उकारः।

संघो ठवेऊण पटम्मि णीओ, दुब्भिक्खदेसाउ सुभिक्खदेसं।
दयाऽड्ढिणा जेण भवाउ मोक्खं, खित्ता विमाणे विणिणीसुणाव्व ।।८१।। (उवजाई)

(हे०) 'सघो' इत्यादि, पूर्वोक्तसाधनिकयोक्तप्राया। केवलं 'ठवे ' त्ति अत्र णिग्-प्रत्ययान्तस्य स्थाधातोर्बाहुलकाद् ठवादेशः, क्त्वाप्रत्ययस्य च 'क्त्वस्तुम०' इत्यनेन तूणादेशः, अकारस्य 'एच्च क्त्वा०' (सि०-८।३।१५७) इत्यनेन एकारः 'खित्ता' सिद्धसंस्कृतस्य क्त्वाप्रत्य-यान्तस्य क्षिप्धातोरूपम् ।।८१।।

सुवण्णकोडीजुअरुप्पिणिं जो, दिक्खीअ सबुज्झ सरागकण्णं।
पबोहिओ बोद्धमयाणुसारी, भूवो वि जेण पउरेहि सद्धं ।।८२।। (उवजाई)

(हे०) " ण०" इत्यादि, सुगमा। केवलं " ण्णको अरुप्पिणिं" इत्यत्र रुक्मिणीशब्दगतस्य संयुक्तव्यञ्जनस्य 'ड्म-क्मोः' (सि०-८।२।५२) इत्यनेन पादेशः। 'संबुज्झ' इत्यत्र सम्बोध्य-सम्बुध्ययोरन्यतरस्य सिद्धसंस्कृतरूपस्य संयुक्तस्य ध्यस्य 'साध्वस-ध्य ह्या झः' (सि० ८।२।२६) इत्यनेन ज्झो भवति। 'पउरेहि' इत्यत्र हि पौरशब्दस्य औकारस्य 'अउ पौरादौ च' (सि०-८।१।१६२) इत्यनेन 'अउ' इत्यादेशः ।।८२।।

वीराऽद्दे रसणिहिजुग(४९६)-मिए जणी से वय बलखअगे (४९६।५०४)।
महगुणसघसरे (५४८) जुग-पवरो स दिवं जुगगयसरे (५८४) ।।८३।। (पच्छाज्जा)

स्सि स्सयोरत् (सि०-८।३।७४) इत्यनेन 'अ' इत्यादेशो भवति। यद्वा इदम्शब्दात् षष्ठ्येकवचने ङस्प्रत्ययः, तस्मिन् परे स्सविषयत्वात् 'स्सि स्सयोरत्' (सि०-८।३।७४) इत्यनेन 'अ' इत्यादेशः, ततः 'ङस स्स.' (सि०-८।३।१०) इत्यनेन ङस्प्रत्ययस्य स्सादेशः। अथवा इदम्शब्दस्यान्त्यव्यञ्जनलोपे, ङस्प्रत्ययस्य स्सादेशस्ततो 'स्सि-स्सयोरत्' (सि०-८।३।७४) इति 'अ' इत्यादेशः।

'सोहीअ' त्ति, अत्र 'स्वराणां स्वराः' (सि०-८।४।२३८) इत्यनेन उकारस्य ओकारः, 'व्यञ्जनादीअ' (सि०-८।३।१६३) इत्यनेन भूतार्थे ईअप्रत्ययः। **'णिक्कासीअ'** त्ति अत्र 'निर्दुरोर्वा' (सि०-८।१।१३) इत्यनेन निरुपसर्गस्य रेफस्य विकल्पतो लोपाभावे 'लुंकि निरः' (सि०-८।१।९३) इत्यनेन दीर्घाभावः, ततः 'सर्वत्र०' (सि०-८।२।७९) इत्यनेन रेफस्य लोपः, ततः शेषस्य कस्य 'अनादौ०' (सि०-८।२।८९)इति द्वित्वम्। **'मुणिंदुसेअवयसा'** त्ति अत्र तृतीयैकवचनं संस्कृतवत्सिद्धम् ॥२१॥

दसजुअ कय, जेण वेआलिय, मनकसूणुणो, सत्थमोगाहिउं।
जह णारायणो, अबुहिं मथिउ, अमररासिणो, उद्धरीआमय ॥२२॥ (मेहावली)

(हे०) **'दसजुअ'** इत्यादि, सर्वा-ऽपि साधनिका पूर्ववत्स्वयं कार्या। नवरं **'मनकसूणुणो'** अत्र 'चतुर्थ्याः षष्ठी' (सि०-८।३।२३२) इत्यनेन चतुर्थ्याः स्थाने षष्ठी विभक्तिः। **'ओगाहिउं'** ति अत्र अवोपसर्गस्य 'अवापोते' (सि०-८।१।१७२) इत्यनेन आदेः स्वरस्य परेण सस्वरव्यञ्जनेन सह ओदादेशस्य विधानाद् **'ओ'** इत्यादेशो भवति। **'अमररासिणो'** त्ति अत्रानन्तरोक्तवच्चतुर्थ्याः स्थाने षष्ठी विभक्तिः। **'उद्धरीअ'** त्ति 'उद्' उपसर्गपूर्वकस्य धृधातोः 'ऋवर्णस्यार.' (सि०-८।४।२३४) इत्यनेन धातोर् ऋकारस्या-ऽरादेशः, 'व्यञ्जनादीअ' (सि०-८।३।१६३) इत्यनेन भूतार्थे ईअप्रत्ययश्च ॥२२॥

वीरसिवाऽस्स जणी रस-विस्स(३६)मिएऽद्दे वयं जुगंग(६४)मिए।
स जुगपहाणो भूइसि-(७५)मिए गओ दिवमिहणिहि(९८)मिए ॥२३॥ (पच्छाऽज्जा)

(हे०) **'वीरसिवा'** इत्यादि सुगमम्। णवरं **'भूइसिमिए'** त्ति अत्र भूतशब्दस्य तस्य लोपे 'लुक्' (सि०-८।१।१०) इत्यनेन शेषस्याकारस्य लोपः। यद्वा पूर्वं 'लुक्' इत्यनेनाकारलोपः, पश्चात्तस्य लोपः ॥२३॥

जसोभद्दो सूरी, स जयउ पए से गणवई, जसोवण्णेण से, सइ सयललोगे धवलिए।
हरी अद्धिं सभू, रयणगिरिमिंदो करिवरं, विहु राहू हंस, त्रिसमविसिद्धो मग्गइ अहो ॥२४॥ (सिहरिणी)

(हे०) **'जसोभद्दो'** इत्यादि, साधनिका गतप्राया। केवलं **'से'** त्ति 'वेदं तदेतदो ङसाम्भ्यां से सिमौ' (सि०-८।३।८१) इत्यनेन इदमादिशब्दत्रयस्य षष्ठ्येक-बहुवचनप्रत्ययाभ्यां सह क्रमशः से सिमित्यादेशकरणादत्र षष्ठ्येकवचनेन ङस्प्रत्ययेन सह तच्छब्दस्यादेशः। **'से'** त्ति

अज्ज त माणदेव, गुणगणणिलय, पासिऊणं वरीअ,
गेच्छंती पट्टकण्णा, इयरपइवर, सूरिपज्जोयणस्स ।
अवुप्पिं वम्भिलच्छी, पयविहिसमये, विक्ख से माचिभसो,
एव णिण्ण गुरु जो, कलिअ छ विगई भत्तभिक्ख चयीअ ॥९९॥ (सद्धरा)

(हे०) "अज्जं०" इत्यादि पठितप्राया । केवलं 'पासिऊण' त्ति दृश्धातोः 'दृशो निअच्छ ' (सि०-८।४।१८१) इत्यनेन पासादेशः, शेषं पूर्ववत् । 'गेच्छंती' त्ति इष्धातोः 'गमिष्यमासा छ ' (सि०-८।४।२१५) इत्यनेनान्त्यव्यञ्जनस्य छादेशः, 'ई च स्त्रियाम्' (सि०-८।३। १८२) इत्यनेन वर्तमानकालविहितस्य कृत्प्रत्ययस्य शत्रोः स्थाने स्त्रियां न्तादेशः, ङीप्रत्ययश्च । 'उप्पि' ति उपरिशब्दस्य बाहुलकाद् निपातः । 'वम्भिलच्छी' त्ति ब्राह्मीशब्दस्य रेफलोपाऽकारौ च पूर्ववत्कर्तव्यौ ततः संयुक्तस्य ह्मस्य 'पक्ष्म०' इत्यनेन म्हादेशे प्राप्तेऽपि बाहुलात्पूर्ववत् म्भादेशः, ततो मस्य 'मोऽनुस्वार ' (सि०-८।१।२३) इत्यनेनानुस्वारः, ईकारस्य च 'दीर्घ-ह्रस्वौ मिथो वृत्तौ' (सि०-८।१।४) इत्यनेन ह्रस्वत्वम् । 'विक्ख' त्ति सिद्धसंस्कृतस्य कृत्प्रत्ययान्तस्य वीक्ष्यशब्दस्य रूपम् ॥९९॥

दट्ठुं ज पउमाइसेविअपयं, सक्ख थिजुत्तो अयं, एव कोऽवि विमूढसकिअमणो, ताहिं णरो सिक्खिओ ।
णड्डूलक्खपुरत्थिओ वि सरये, वारीअ सतित्थवा, जो सागभरिपट्टणुत्थमरयं, तत्थुल्लसद्धत्थणा ॥१००॥
(सद्दूलविक्कीडिअ)

(हे०) "दट्ठुं" इत्यादि, साधनिका पूर्वोक्तप्रकारेण दर्शितप्राया । केवलं 'दट्ठुं' ति दृश्धातोः 'ऋतोऽत' (सि०-८।१।१२६) इत्यनेन ऋकारस्य अकारः, ततः सस्कृतवत् क्त्वाप्रत्ययः, तस्य च 'क्त्वस्तुम०' (सि०-८।२।१४६) इत्यनेन तुमादेशः, धातोरन्त्यस्य शस्य तुम्प्रत्ययस्य तकारेण सह 'दृशस्तेन ट्ठ ' (सि० ८।४।२१३) इत्यनेन ट्ठादेशः, मस्यानुस्वारश्च । 'पउमाइसेविअपयं' ति अत्र पद्मशब्दे संयुक्तस्यान्त्यव्यञ्जनस्य पूर्वं इकारागमः 'पद्म-छद्म-मूर्ख द्वारे वा' (सि०-८।२।११२) इत्यनेन, ततः 'क-ग-च०' इति दलोपः । 'सक्खं' ति साक्षाच्छब्दस्य 'ह्रस्व सयोगे' इत्यनेन ह्रस्वे कृते 'क्ष ख क्वचित्तु छ-झौ' (सि०-८।२।३) इत्यनेन संयुक्तस्य खादेशः, 'अनादौ०' इति द्वित्वम् , ततो द्वित्वे पूर्ववर्तिनः खस्य 'द्वितीय-तुर्य०' इत्यनेन कत्वम्, अन्त्यव्यञ्जनस्य च बाहुलकादनुस्वारः । 'थिजुत्तो' त्ति अत्र स्त्रीशब्दस्य 'सर्वत्र०' इति रेफलोपे 'स्तस्य थोऽसमस्त-स्तम्बे' (सि०-८।२।४५) इत्यनेन शेषस्य संयुक्तस्य स्तस्य थादेशः, 'दीर्घ-ह्रस्वौ मिथो वृत्तौ' (सि०-८।१।४) इति ह्रस्वश्च । 'अयं' ति इदम्शब्दस्य प्रथमैकवचने सौ परे पुंल्लिङ्गे 'पुं-स्त्रियोर्नवा-ऽयमिमिआ सौ' सि०-८।३।७३) इत्यनेन विकल्पेन अयमित्यादेशः । 'ताहिं' ति 'शेषेऽदन्तवत्' (सि० ८।३।१२४) इत्यतिदेशेन 'भिसो हि हिँ हिं' (सि०-८।३।७) इत्यनेन तृतीयाबहुवचनस्य भिस्प्रत्ययस्य स्थाने हिमित्यादेशः । 'सरये' त्ति शरच्छब्दस्यान्त्य-

स्सि स्सयोरत् (सि०-८।३।७४) इत्यनेन 'अ' इत्यादेशो भवति। यद्वा इदम्शब्दात् षष्ठ्येकवचने ङस्प्रत्ययः, तस्मिन् परे स्सविषयत्वात् 'स्सि स्सयोरत्' (सि०-८।३।७४) इत्यनेन 'अ' इत्यादेशः, ततः 'ङस स्स.' (सि०-८।३।१०) इत्यनेन ङस्प्रत्ययस्य स्सादेशः। अथवा इदम्शब्दस्यान्त्यव्यञ्जनलोपे, ङस्प्रत्ययस्य स्सादेशस्ततो 'स्सि-स्सयोरत्' (सि०-८।३।७४) इति 'अ' इत्यादेशः।

'सोहीअ' त्ति, अत्र 'स्वराणां स्वराः' (सि०-८।४।२३८) इत्यनेन उकारस्य ओकारः, 'व्यञ्जनादीअ' (सि०-८।३।१६३) इत्यनेन भूतार्थे ईअप्रत्ययः। **'णिक्कासोअ'** त्ति अत्र 'निर्दुरोर्वा' (सि०-८।१।१३) इत्यनेन निरुपसर्गस्य रेफस्य विकल्पतो लोपाभावे 'लुकि निरः' (सि०-८।१।९३) इत्यनेन दीर्घाभावः, ततः 'सर्वत्र०' (सि०-८।२।७९) इत्यनेन रेफस्य लोपः, ततः शेषस्य कस्य 'अनादौ०' (सि०-८।२।८९) इति द्वित्वम्। **'मुणिंदुसेअवयसा'** त्ति अत्र तृतीयैकवचनं संस्कृतवत्सिद्धम् ॥२१॥

दसजुअ कय, जेण वेआलिय, मनकसूणुणो, सत्थमोगाहिउं।
जह णारायणो, अबुहिं मथिउ, अमररासिणो, उद्धरीआमय ॥२२॥ (मेहावली)

(हे०) **'दसजुअ'** इत्यादि, सर्वाऽपि साधनिका पूर्ववत्स्वयं कार्या। नवरं **'मनकसूणुणो'** अत्र 'चतुर्थ्याः षष्ठी' (सि०-८।३।१३१) इत्यनेन चतुर्थ्याः स्थाने षष्ठी विभक्तिः। **'ओगाहिउं'** ति अत्र अवोपसर्गस्य 'अवापोते' (सि०-८।१।१७२) इत्यनेन आदेः स्वरस्य परेण सस्वरव्यञ्जनेन सह ओदादेशस्य विधानाद् 'ओ' इत्यादेशो भवति। **'अमररासिणो'** त्ति अत्रानन्तरोक्तवच्चतुर्थ्याः स्थाने षष्ठी विभक्तिः। **'उद्धरीअ'** त्ति 'उद्' उपसर्गपूर्वकस्य धृधातोः 'ऋवर्णस्यारः' (सि०-८।४।२३४) इत्यनेन धातोर् ऋकारस्या-ऽरादेशः, 'व्यञ्जनादीअ' (सि०-८।३।१६३) इत्यनेन भूतार्थे ईअप्रत्ययश्च ॥२२॥

वीरसिवाऽस्स जणी रस-विस्स(३६)मिएऽहे वयं जुगंग(६४)मिए।
स जुगपहाणो भूइसि-(७५)मिए गओ दिवमिहणिहि(९८)मिए ॥२३॥ (पच्छाउज्जा)

(हे०) **'वीरसिवा'** इत्यादि सुगमम्। णवरं **'भूइसिमिए'** त्ति अत्र भूतशब्दस्य तस्य लोपे 'लुक्' (सि०-८।१।१०) इत्यनेन शेषस्याकारस्य लोपः। यद्वा पूर्वं 'लुक्' इत्यनेनाकारलोपः, पश्चात्तस्य लोपः ॥२३॥

जसोभद्दो सूरी, स जयउ पए से गणवई, जसोवण्णेण से, सइ सयललोगे धवलिए।
हरी अद्धि सभू, रयणगिरिमिंदो करिवर; विहु राहू हंस, त्रिसमविसिहो सग्गइ अहो ॥२४॥ (सिहरिणी)

(हे०) ' ोभद्दो' इत्यादि, साधनिका गतप्राया। केवलं **'से'** त्ति 'वेदं तदेतदो ङसाम्भ्यां से सिमौ' (सि०-८।३।८१) इत्यनेन इदमादिशब्दत्रयस्य षष्ठ्येक-बहुवचनप्रत्ययाभ्यां सह क्रमशः से सिमित्यादेशकरणादत्र षष्ठ्येकवचनेन ङस्प्रत्ययेन सह तच्छब्दस्यादेशः। **'से'** त्ति

(हे०) "वायगवरो" इत्यादि, सुगमा । केवलं ' त्तआईण' इत्यत्रासन्धिस्तु 'पदयो सन्धिर्वा' (सि०-८।१।५) इत्यनेन सन्धिविकल्पनात् । पुव्वविदो' त्ति पूर्वविच्छब्दे "शरदादेरत' (सि०-८।१।१८) इत्यनेना-ऽन्त्यदकारस्या-ऽकारे प्राप्ते अन्त्यव्यञ्जनस्य' (सि०-८।१।११) इत्यनेन लोपे वा प्राप्ते बाहुलकाद् अकारान्तो दकारः ॥१०७॥

मउलिव्व वरेण्णग, विभूसीअ पइदिर । माणतुंगक्खसूरिस्स, वीरसूरी गणीसरो ॥१०८॥ (अणुट्ठुभ)
पइट्ठ णमिपासाए, णागपुरे करीअ जो । वीरा सुरद्धपायाल-क्खेत्त७७०ऽद्दे किंचिसाहिए ॥१०९॥ (अणुट्ठुभं)

(हे०) "मउलिव्व" इत्यादि, गाथाद्वयस्यपि माधितसाधनिका । केवलं 'मउलिव्व' त्ति मौलिशब्दस्य औकारस्य 'अउ पौरादौ च' (सि० ८।१।१६२) इत्यनेन अउरादेशः ॥१०८-१०६॥

सूरीसरो सो जयदेवसण्णो, दूरीकयासेसकुवाइवुदो ।
भूसीअ वीरायरिअस्स पट्टं, जहा सुको चूअतरुस्स साहं ॥११०॥ (उवजाई)

(हे०) 'सूरीसरो' इत्यादि, साधनिका सुगमा ॥११०॥

महुराअ वायणाए, कत्ता सो जयउ खंदिलायरिओ । जस्स इमो अणुओगो, पयरइ अड्ढभरहेऽज्जावि ॥१११॥ (पच्छाऽज्जा)

(हे०) "म राअ" इत्यादि, भणितसाधनिका । केवलं ' राअ वायणाए' त्ति मथुराशब्दात् परस्य षष्ठ्येकवचनस्य ङस्प्रत्ययस्य सप्तम्येकवचनस्य ङिप्रत्ययस्य वा, वाचनाशब्दात् परस्य षष्ठ्येकवचनस्य ङस्प्रत्ययस्य 'टा ङस् ङेरदादिदेद्वा तु ङसे ' (सि०-८।३।२) इत्यनेन क्रमेण अकारैकारादेशौ । 'इमो' त्ति इदम्शब्दस्य पुंल्लिङ्गे प्रथमैकवचने सिप्रत्यये 'पु-स्त्रियोर्नवा-ऽयमिमिआ सौ' (सि०-८।१।७३) इत्यनेन अयमादेशस्य विकल्पनात् तद्विकल्पपक्षे 'इदम इम ' (सि०-८।३।७२) इत्यनेन इदम्शब्दस्य इमादेशे सिविभक्तेश्च अतः सेर्डो.' (सि०-८।३।२) इत्यनेन 'डो' इत्यादेशे च यथोक्तरूपसिद्धिः । 'अड्ढभरहे' त्ति अर्धशब्दस्य संयुक्तव्यञ्जनस्य 'श्रद्धर्द्धिमूर्धार्धेन्ते वा' (सि० ८।१।४१) इत्यनेन ढादेशः ॥

तत्तत्थभासकारो, जयेउ एगादसगवित्तियरो । सिरिमहुमित्तविणेयो-ऽज्जगवहत्थी तिपुव्वण्णू ॥११२॥ (मुहचवलापच्छाऽज्जा)

(हे०) "तत्तत्थ०" इत्यादि, सुगमा ॥११२॥

हिमवंतखमासमणो, पुव्वविओ जयउ वायणायरिओ । विक्कतबहुपएसो, कालिअसुअधारगो धीरो ॥११३॥ (पच्छाऽज्जा)

(हे०) "हिमवंत०" इत्यादि, साधनिका कण्ठ्या । किन्तु 'पुव्वविओ' त्ति पूर्वविच्छब्दस्यान्त्यव्यञ्जनस्य 'शरदादेरत्' (सि०-८।११८) इत्यनेन अदादेशः ॥११३॥

सिरिणागज्जुणसूरी, जयेउ पणवीसमो जुगपहाणो । ओहसुअसमायारी, चरणणिही वायणायरिओ ॥११४॥ (पच्छाऽज्जा)

सति 'युवर्णस्य गुण' (सि०-८।४।२३७) इत्यनेन गुणः, ततः पूर्ववत्तलोपे मस्यानुस्वारश्च । 'च' त्ति 'णइ चेअ चिअ च्च अवधारणे' (सि०-८।२।१८४) इत्यनेनावधारणार्थे निपातिताऽव्ययः ॥२६॥

जाओ स रसणंदमिए-ऽद्दे पणपरमेट्ठिगुण१०८मिअम्मि ययी ।
जुगपवरो सिद्धिभुवण१४८-सखे खमिओ रसतिहि१५६मिए ॥२७॥ (पच्छाज्जा)

(हे०) 'जाओ' इत्यादि, सुगमा । केवलं 'पणपरमेट्ठिगुणमिअम्मि' त्ति अत्र पञ्चन्शब्दस्य 'गोणादय' (सि०-८।२।१७४) इत्यनेन बाहुलकाद्वा 'पण' इत्यादेशो निपात्यते । संयुक्तस्य ष्ठस्य च 'क-ग-ट०' (सि० ८।२।७७) इत्यनेन षस्य लोपः, शेषस्य ठस्य द्वित्वं पूर्वस्य ठस्य टत्वञ्च पूर्ववत् ॥२७॥

भद्दबाहू सतित्थो, सो तस्स बीओ जयेउ, गोरसाओ जहऽज्ज, पुव्वुद्धिओ जेण कप्पो ।
भव्वलोगाण जेणं, सिद्धंतसाहू गमेउ, णिम्मिआओ अणेगा, दारव्व णिज्जुत्तिकाओ ॥२८॥ (चंदलेहा)

(हे०) 'भद्दबाहू' इत्यादि, निगदसिद्धा साधनिकोपपत्तिः पूर्वोक्तरीत्या । तत्रापि केवलं 'बीओ' त्ति बाहुलकाद् द्वितीयस्य 'द्विन्योरुत्' (सि०-८।१।९८) इत्याद्यभवनादिना भवति । 'गोरसाओ' त्ति अत्र 'ङसेस् त्तो-दो०' (सि० ८।३।८) इत्यनेन पञ्चम्येकवचनस्य ङसप्रत्ययस्य 'दो' इत्यादेशः । 'कप्पो' त्ति 'सर्वत्र०' इति ललोपः । 'गमेउ' ति अत्र गम्धातोः प्रेरकप्रत्ययस्य णेः 'णेरदेदावावे' (सि०-८।३।१४९) इत्यनेन एकारादेशो अकारादेशो वा, यदा अकारादेशस्तदा 'एच्च क्त्वा-तुम-तव्य भविष्यत्सु' (सि०-८।३।१५७) इत्यनेन अस्य एत्वम् ।

'णिम्मिआओ' त्ति अत्र आबन्ताद् निर्मितशब्दात् प्रथमाबहुवचने जस्प्रत्ययः, तस्य च 'स्त्रियामुदोतौ वा' (सि०-८।३।२७) इत्यनेन ओकारादेशः । 'णिज्जुत्तिकाओ' त्ति अत्र 'द्य य्य र्यां ज' (सि०-८।२।२४) इत्यनेन संयुक्तस्य जादेशः ॥२८॥

कीरीअ जेण उवसग्गहरक्खथोत्त, घायस्स देवकयमारिउवद्दवस्स ।
सघावणस्सऽखिलविग्घविणासकारिं, स दाउ मे स सुअकेवलिभद्दबाहू ॥२९॥ (वसततिलया)

(हे०) 'कीरीअ' इत्यादि, साधनिका गतप्राया । केवलं 'कीरीअ' त्ति अत्र कृधातोः 'ह कृ-तृ-ज्रा-मीर' (सि०-८।४।२५०) इत्यनेन ऋकारस्य ईरादेशः । 'घायस्स' त्ति सघावणस्स' त्ति चोभयत्र पूर्ववच्चतुर्थ्याः स्थाने षष्ठी विभक्तिः ॥२९॥

जम्मोऽस्स जुगक६४मिए, वासे वीरा वय च णिहिविस्से १३९ ।
स जुगपहाणो रसतिहि१५६-मिए खसजम१७०पमाणे ख ॥३०॥ (पच्छाज्जा)

(हे०) 'जम्मो' इत्यादि, गतसाधनिका ॥३०॥

(हे०) "वायगवरो" इत्यादि, सुगमा । केवलं 'सुत्तआईण' इत्यत्रासन्धिस्तु 'पदयो सन्धिर्वा' (सि०-८।१।५) इत्यनेन सन्धिविकल्पनात् । पुव्वविदा' त्ति पूर्वविच्छब्दे "शरदादेरत' (सि०-८।१।१८) इत्यनेना-ऽन्त्यदकारस्या-ऽकारे प्राप्ते अन्त्यव्यञ्जनस्य' (सि०-८।१।११) इत्यनेन लोपे वा प्राप्ते बाहुलकाद् अकारान्तो दकारः ॥१०७॥

मउलिव्व वरेण्णग, विभूसीअ पइदिर । माणतु गक्खसूरिस्स, वीरसूरी गणीसरो ॥१०८॥ (अणुट्ठुभ)
पइट्ठ णमिणासाए, णागपुरे करीअ जो । वीरा सुरद्धपायाल-क्खेत्त७७०ऽद्दे किंचिसाहिए ॥१०९॥ (अणुट्ठुभ)

(हे०) "मउलिव्व" इत्यादि, गाथाद्वयपि माधितसाधनिका । केवलं 'मउलिव्व' त्ति मौलिशब्दस्य औकारस्य 'अउ पौरादौ च' (सि०-८।१।१६२) इत्यनेन अउरादेशः ॥१०८-१०९॥

सूरीसरो सो जयदेवसण्णो, दूरीकयासेसकुवाइवुदो ।
भूसीअ वीरायरिअरस पट्ट, जहा सुको चूअतरुस्स साह ॥११०॥ (उवजाई)

(हे०) 'सूरीसरो' इत्यादि, साधनिका सुगमा ॥११०॥

महुराअ वायणाए, कत्ता सो जयउ खदिलायरिओ । जस्स इमो अणुओगो, पयरइ अड्ढभरहेऽज्जावि ॥१११॥ (पच्छाज्जा)

(हे०) "म ाअ" इत्यादि, भणितसाधनिका । केवलं ' राअ वायणाए' त्ति मथुराशब्दात् परस्य षष्ठ्येकवचनस्य ङस्प्रत्ययस्य सप्तम्येकवचनस्य ङिप्रत्ययस्य वा, वाचनाशब्दात् परस्य षष्ठ्येकवचनस्य ङस्प्रत्ययस्य 'टा ङस् ङेरदादिदेद्वा तु ङसे' (सि०-८।३।२) इत्यनेन क्रमेण अकारैकारादेशौ । 'इमो' त्ति इदम्शब्दस्य पुंल्लिङ्गे प्रथमैकवचने सिप्रत्यये 'पुं-स्त्रियोर्नवा-ऽयमिमिआ सौ' (सि०-८।१।७३) इत्यनेन अयमादेशस्य विकल्पनात् तद्विकल्पपक्षे 'इदम इम' (सि०-८।३।७२) इत्यनेन इदम्शब्दस्य इमादेशे सिविभक्तेश्च अतः सेर्डोः' (सि०-८।३।२) इत्यनेन 'डो' इत्यादेशे च यथोक्तरूपसिद्धिः । 'अड्ढभरहे' त्ति अर्धशब्दस्य संयुक्तव्यञ्जनस्य 'श्रद्धद्धिमूर्धार्धेन्ते वा' (सि० ८।१।४१) इत्यनेन ढादेशः ॥

तत्तत्थभासकारो, जयेउ एगादसगवित्तियरो । सिरिमहुमित्तविणेयो-ऽज्जगघहत्थी तिपुव्वण्णू ॥११२॥ (मुहचवलापच्छाज्जा)

(हे०) "तत्तत्थ०" इत्यादि, सुगमा ॥११२॥

हिमवतखमासमणो, पुव्वविओ जयउ वायणायरिओ । विक्कतबहुपएसो, कालिअसुअधारगो धीरो ॥११३॥ (पच्छाज्जा)

(हे०) "हिमवत०" इत्यादि, साधनिका कण्ठ्या । किन्तु 'पुव्वविओ' त्ति पूर्वविच्छब्दस्यान्त्यव्यञ्जनस्य 'शरदादेरत्' (सि०-८।१।१८) इत्यनेन अदादेशः ॥११३॥

सिरिणागज्जुणसूरी, जयेउ पणवीसमो जुगपहाणो । ओहसुअसमायारी, चरणणिही वायणायरिओ ॥११४॥ (पच्छाज्जा)

(हे०) 'बारह' इत्यादि, कण्ठ्योक्तनीत्या । केवलं 'बारह' इत्यत्र द्वादशशब्दस्य शस्य 'दश-पाषाणे ह' (सि०-८।१।२६२) इत्यनेन विकल्पतो हकारः, 'तदा' त्ति सिद्धसंस्कृतस्य तदा-शब्दस्य 'क-ग-च०' इति सूत्रे प्रायोग्रहणाद् बहुलाधिकाराद्वा दस्य लोपाभावः । 'इओ तओ' त्ति सिद्धसंस्कृतरूपयोः 'इतः' 'ततः' इत्येवंरूपयोर्विसर्गस्य 'अतो डो विसर्गस्य' (सि० ८।१।३७) इत्यनेन 'डो' इत्यादेशः । 'तज्झयणे' त्ति सयुक्तस्य ध्यस्य 'साध्वस-ध्य-ह्यां झः' (सि०-८।२।२६) इत्यनेन झादेशः, ततो द्विरुक्तिः, द्वित्वे पूर्वस्य चतुर्थस्य च तृतीय इत्यादिकं पूर्ववत् । 'खलणा' त्ति स्खलनाशब्दस्य संयुक्तस्य सस्य 'क-ग-ट०' (सि०-८।२।७७) इति लोपः ॥३२-३३॥

से जणण णिवकु११६मिए, वीरसिवाऽद्दे वय रसिंद१४६मिए ।
जुगपवरो स खसजम१७०-मिए गओ ख तिदिसम२१५मिए ॥३४॥ (पच्छाज्जा)

(हे०) "से" इत्यादि, दर्शितरीत्या निगदसिद्धा ॥३४॥

तत्तो चउरो अंतिम-पुव्वाइ च महपाणझाण च । समचउरस च वइर-रिसहणरायं च वुच्छिन्न ॥३५॥ (पच्छाज्जा)

(हे०) "तत्तो" इत्यादि, साधितप्राया ॥३५॥

णट्ठजिणकप्पविहिसतुलणयरो, णिप्पिहसिरोरयणअज्जमहगिरी ।
रंकणिवकारगसुहत्थिमुणिवई, से रविविहू विव सहीअ पयणहे ॥३६॥ (इदुवयणा)

(हे०) "णट्ठ०" इत्यादि, पूर्वोक्तसाधनिकया गतार्था । केवलं 'णिप्पिह०' त्ति निःस्पृह-शब्दस्य बहुलाधिकारात् 'स्पृहायाम्' (सि०-८।२।२३) इत्यनेन संयुक्तस्य प्राप्तमपि छादेशम-भूत्वा 'क ग-ट०' इति संयुक्तस्य सस्य लोपः, ततः पूर्ववद् द्वित्वादिकम् । 'सहीअ' त्ति राज्-धातोः 'राजेरग्घ-छज्ज सह-रीर-रेहाः' (सि० ८।४।१००) इत्यनेन सहादेशः ॥३६॥

जो सपई भूमिवई विहार, मुणीण कारीअ अणज्जदेसे । तिखडभूमिं जिणमदिराण, सपाअलक्खेण अलकरीअ ॥३७॥ (उवजाई)

(हे०) "जो" इत्यादि, सुगमा । केवलं 'कारीअ' त्ति अत्र कृधातोः परस्य प्रेरकणिग्-प्रत्ययस्य णेः स्थाने 'णेरदेदावावे' (सि०-८।३।१४९) इत्यनेन अदादेशः, 'ऋवर्णस्यार' (सि०-८।४।२३४) इत्यनेन अरादेशः, ततो धातोरादेरकारस्य 'अदेल्लुक्यादेरत आः' (सि०-८।३।१५३) इत्यनेना-ऽऽकारः ॥३७॥

काराविआ णिवेण, बीआगमवायणा भवतीए । णिग्गथाण परिसं मेलिय तेण सुअरक्खत्थ ॥३८॥ (पच्छाज्जा)

(हे०) "काराविआ" इत्यादि, कण्ठ्या । केवलं 'काराविआ' त्ति इह कृधातोः परस्य प्रेरकणिग्प्रत्ययस्य णेः स्थाने 'णेरदेदावावे' (सि०-८।३।१४९) इत्यनेनानन्तरगाथायां दर्शितेन सूत्रेण 'आव' इत्यादेशः, तथाऽनन्तरगाथायामुदितेन 'ऋवर्णस्यार' इत्यनेना-ऽरादेशः, तथा बाहुलकाद

(हे०) "वायगवरो" इत्यादि, सुगमा। केवलं 'सुत्तआईण' इत्यत्रासन्धिस्तु 'पदयोः सन्धिर्वा' (सि०-८।१।५) इत्यनेन सन्धिविकल्पनात्। 'पुव्वविदो' त्ति पूर्वविच्छब्दे "शरदादेरत्' (सि०-८।१।१८) इत्यनेना-ऽन्त्यदकारस्या-ऽकारे प्राप्ते 'अन्त्यव्यञ्जनस्य' (सि०-८।१।११) इत्यनेन लोपे वा प्राप्ते बाहुलकाद् अकारान्तो दकारः ॥१०७॥

मउलिव्व वरेण्णग, विभूसीअ पइदिर। माणतुंगक्खसूरिस्स, वीरसूरी गणीसरो ॥१०८॥ (अणुट्टुभ)
पइट्ठ णमिपासाए, णागपुरे करीअ जो। वीरा सुरद्धपायाल-क्खेत्त७७०ऽद्दे किंचिसाहिए ॥१०९॥ (अणुट्टुभं)

(हे०) "मउलिव्व" इत्यादि, गाथाद्वयपि साधितसाधनिका। केवलं 'मउलिव्व' त्ति मौलिशब्दस्य औकारस्य 'अउ पौरादौ च' (सि० ८।१।१६२) इत्यनेन अउरादेशः ॥१०८-१०९॥

सूरीसरो सो जयदेवसण्णो, दूरीकयासेसकुवाइवुदो।
भूसीअ वीरायरिअस्स पट्ट, जहा सुको चूअतरुस्स साह ॥११०॥ (उवजाई)

(हे०) 'सूरीसरो' इत्यादि, साधनिका सुगमा ॥११०॥

महुराअ वायणाए, कत्ता सो जयउ खदिलायरिओ। जस्स इमो अणुओगो, पयरइ अड्ढभरहेऽज्जावि ॥१११॥ (पच्छाज्जा)

(हे०) "महुराअ" इत्यादि, भणितसाधनिका। केवलं ' राअ वायणाए' त्ति मथुराशब्दात् परस्य षष्ठ्येकवचनस्य ङस्प्रत्ययस्य सप्तम्येकवचनस्य ङिप्रत्ययस्य वा, वाचनाशब्दात् परस्य षष्ठ्येकवचनस्य ङस्प्रत्ययस्य 'टा ङस् ङेरदादिदेद्वा तु ङसे' (सि०-८।३।२) इत्यनेन क्रमेण अकारैकारादेशौ। 'इमो' त्ति इदम्शब्दस्य पुंल्लिङ्गे प्रथमैकवचने सिप्रत्यये 'पुं-स्त्रियोर्नवा-ऽयमिमिआ सौ' (सि०-८।१।७३) इत्यनेन अयमादेशस्य विकल्पनात् तद्विकल्पपक्षे 'इदम इम' (सि०-८।३।७२) इत्यनेन इदम्शब्दस्य इमादेशे सिविभक्तेश्च 'अतः सेर्डोः' (सि०-८।३।२) इत्यनेन 'डो' इत्यादेशे च यथोक्तरूपसिद्धिः। 'अड्ढभरहे' त्ति अर्धशब्दस्य संयुक्तव्यञ्जनस्य 'श्रद्धर्द्धिमूर्धा-र्धेन्ते वा' (सि० ८।१।४१) इत्यनेन ढादेशः ॥

तत्तत्थभासकारो, जयेउ एगादसगवित्तियरो। सिरिमहुमित्तविणेयो-ऽज्जगयहत्थी तिपुव्वण्णू ॥११२॥ (मुहचवलापच्छाज्जा)

(हे०) "तत्तत्थ०" इत्यादि, सुगमा ॥११२॥

हिमवतखमासमणो, पुव्वविओ जयउ वायणायरिओ। विक्कतबहुपएसो, कालिअसुअधारगो धीरो ॥११३॥ (पच्छाज्जा)

(हे०) "हिमवत०" इत्यादि, साधनिका कण्ठ्या। किन्तु 'पुव्वविओ' त्ति पूर्वविच्छब्दस्यान्त्यव्यञ्जनस्य 'शरदादेरत्' (सि०-८।१।१८) इत्यनेन अदादेशः ॥११३॥

सिरिणागज्जुणसूरी, जयेउ पणवीसमो जुगपहाणो। ओहसुअसमायारी, चरणणिही वायणायरिओ ॥११४॥ (पच्छाज्जा)

वीराऽग्गिजुगकर२४३मिए-ऽद्दे सुट्ठिअसूरिणो जणी दिक्खा ।
गइणक्खत्ते २७४ सूरी, कुणिहिकरे २९१ स खगवणिहिविस्से ३२६ ख ॥४३॥ (पच्छागीई)

(है०) 'वीरा०' इत्यादि, पूर्वसाधनिकया गतार्था ॥४३॥

कुमरगिरिम्मि मुणीणं, तइआगमवायणा उ सिं काले । सुअसंगहस्स काराविआ कलिंगणिवभिक्खुराण्णं ॥
॥४४। (अतविपुला जहणचवलागीई)

(है०) 'मर०' इत्यादि, भणितसाधनिका । केवलं 'सिं' ति इह हि षष्ठीबहुवचनेन आम्प्रत्ययेन सह तच्छब्दस्य 'वेद तदेतदो ङसाम्भ्या से-सिमौ' (सि०-८।३।८१) इत्यनेन सिमित्यादेशः, द्विवचनस्य स्थाने बहुवचनं पुनः 'द्विवचनस्य बहुवचनम्' (सि०-८।३।१३०) इति सूत्रवचनात् ॥४४॥

सिरिगुणसुन्दरसूरी, एगारसमो तया जुगपहाणो ।
वीरसिवाऽद्दे जिणवय-गुणथण २३५ सखेऽस्स आसि जणी ॥४५॥ (पच्छाज्जा)
णवूज्झायगुण २५६ मिए, स दिक्खिओ भूमिगहभुज २९१ पमाणे ।
होसी जुगप्पहाणो, सग्गमिओ विसयभुइकाले ३३५ ॥४६॥ (पच्छाज्जा)

(है०) 'सिरि०' इत्यादि, निगदसिद्धा । केवलं 'आसि' त्ति अस्धातोर्भूतार्थेन प्रत्ययेन सह 'तेनास्तेरास्यहेसी' (सि० ८।३।१६४) इत्यनेन निपात आदेशो वा, । 'णवूज्झाय०' त्ति अत्र उपाध्यायशब्दस्य उकारस्य परेण सस्वरव्यञ्जनेन सह 'ऊच्चोपे' (सि०-८।१।१७३) इत्यनेन ऊकारादेशः ॥४५-४६॥

अज्जमहागिरिसीसा, बहुलबलिसहा उ वायणायरिआ । आसि जमलभाऊ तो, वायगवरसाइसूरीसो ॥
॥४७॥ (पच्छाज्जा)

(है०) 'अज्ज०' इत्यादि, कथितप्राया । केवलं 'तो' त्ति तच्छब्दात् परस्य पञ्चम्येकवचनस्य ङसिप्रत्ययस्य 'तदो डो' (सि०-८।३।६७) इत्यनेन 'डो' इत्यादेशे सिध्यति । यद्वा तस्प्रत्ययान्तस्य तच्छब्दस्य 'ततः' इत्येवंसिद्धरूपस्य 'अतो विसर्गस्य डो' (सि०-८।१।३७) इत्यनेन विसर्गस्य 'डो' इत्यादेशे तकारलोपे च 'तओ' इति भवति । ततः 'स्वरस्योद्वृत्ते' (सि०-८।१।८) इत्यनेन सन्धिनिषेधेऽपि बाहुलकात् तकारगतस्याकारस्यापि 'लुक्' (सि० ८।१।१०) इत्यनेन लोपः ॥४७॥

तत्तो जुगप्पहाणो, बारसमो आसि वायणायरिओ । सामायरिओ कत्ता, पण्णवणाऽक्खस्स सुत्तस्स ॥४८॥
(पच्छाज्जा)

इदग्गे सीमधर-पहू वि ससीअ जस्स सुअणाण । सो जाओ वीराऽद्दे, सुरपइसिद्धगुणसव२८०सङ्खे ॥४९॥
(पच्छाज्जा)

तिसये ३०० वासे दिक्खं, गिण्हीअ समिइकिसाणुवेअ३३५मिए ।
जुगपवरो तिदसमिओ, लेसाज्जगजोग३७६मिए ॥५०॥ (पच्छाज्जा)

सिरिसिवसम्मायरिओ, कम्मपयडिवधसयगणिम्माआ । विज्जाही पुव्वहरो, जयउ तयाऽणेगवायलद्धजयो ॥१२१॥ (पच्छागीई)

(हे०) "**सिरिसिव०**" इत्यादि, उक्तानुसारेण साधनिका कण्ठया ॥१२१॥

सिरिचदरिसिमहत्तर-गुरु जयउ पचसगहक्खं जो । गथं रयीअ सगह-रूव पचसयगाईण ॥१२२॥ (पच्छाऽज्जा)

(हे०) "**सिरिचंदरिसि०**" इत्यादि, निगदसिद्धा । केवलं '**सिरिचदरिसि०**' इत्यत्र ऋषिशब्दसत्कस्य ऋकारस्य पूर्ववत् 'रि केवलस्य' (सि०-८।१।१४०) इत्यनेन रिकारादेशः ॥१२२॥

स आगमविदो णरसिंहसूरी, हवीअ सिरिविक्कमसूरिपट्टे ।
अमुस्स उवएसगिराअ जक्खो, चयीअ णरसिंहपुरम्मि मास ॥१२३॥ (कोलो)

(हे०) '**स**' इत्यादि, अत्र साधनिका भणितानुसारेण पाठसिद्धा । केवलं, '**अमुस्स**' त्ति अदस्शब्दस्य 'अन्त्य०' (सि-०८।१।११) इत्यनेनान्त्यसकारलोपे सति दस्य षष्ठ्येकवचने ङस्प्रत्यये परे 'मु स्यादौ' (सि०-८।३।८८) इत्यनेन मुरादेशः, ततः 'शेषेऽदन्तवत्' इत्यतिदेशात् 'ङस स्स' इत्यनेन विभक्तेः स्सादेशः । '**उवएसगिराअ**' त्ति उपदेशशब्दस्यान्त्यरकारस्य 'रो रा' (सि०-८।१।१६) इत्यनेन रादेशः ॥१२३॥

पंचासो तमसिंधुरम्मि तिलग, खोमाणरायण्णये, सो आसी णरसिंहपट्टकमले,सूरी **समुद्दाभिहो** ।
वाए जेण दिगसुगा विजइउ, णागद्रहे मदिर, आणीअ सवस णिवेणिव गढो, सत्तू जइत्ता रणे ॥१२४॥ (सद्दूलविक्कीडीअ)

(हें०) '**पंचासो**' इत्यादि, साधनिका साधितप्राया । केवलं '**तमसिधुरम्मि**' त्ति अत्र तमस्शब्दस्य सकारस्य वाक्यविभक्त्यपेक्षया-ऽन्त्यत्वेन 'अन्त्य०' इति लोपः । '**खोमाणरायण्णये**' त्ति अत्र राजन्यकसत्कस्य 'अधो मनयाम्' (सि०-८।२।७८) इत्यनेन यलोपे शेषस्य नस्य बाहुलकात् पूर्वं 'नो ण' (सि०-८।१।२२८) इत्यनेन णत्वे कृते पश्चात् 'अनादौ०' इति द्वित्वम्, यद्वा नस्यैव पूर्वं द्वित्वे कृते पश्चाद् द्वयोरपि नकारयोर्बाहुलकाद् णत्वम् । '**जइत्ता**' त्ति जिधातोः क्त्वाप्रत्ययान्तस्य आर्षप्रयोगः ॥१२४॥

सिरिलोहिच्चायरिओ, णाया णायागमाइसत्ताण । तत्तपरूवणकुसलो, जयउ जगे वायणायरिओ ॥१२५॥ (पच्छाऽज्जा)

(हे०) "**सिरिलोहिच्चा०**" इत्यादि, साधनिका निगदसिद्धा । तथा-ऽपि किञ्चिदुच्यते '**णाया**' इत्यत्र 'म्नज्ञोर्ण' (सि०-८।२।४२) इत्यनेन ज्ञस्य णादेशः, '**णायागमा०**' इत्यत्र तु न्यायशब्दसत्कस्य 'अधो म-न-याम्' इति यलोपे शेषस्य नस्य 'वादौ' (सि०-८।१।२२८) इत्यनेन बाहुलकात्सयुक्तसत्कस्या-ऽपि णत्वम् ॥१२५॥

(हे०) "तस्स" इत्यादि, गतसाधनिका ॥५६॥

तो आसि जुगपहाणो, चउदसमो सूरिरेवतीमित्तो। वीराऽस्स जणी वारण-रयणग्गिसिहगुत्ति ३५२ सखेऽहे ॥
॥५७॥ (पच्छाज्जा)

णरखेत्तेगदिसारवि-सल्ल३६६पमाणे वय जुगपहाणो ।
सुअभेअसुरिहदसणे ४१४, स गओ खविसयगइम्मि ४५० दिव ॥५८॥ (पच्छाज्जा)

(हे०) "तो" इत्यादि, साधितसाधनिका ॥५७-५८॥

आसी अज्जसमुद्दो, समुद्दगभीरवायणायरिओ । तिसमुद्दखायकित्ती, दीवसमुद्दे सु गहिअपेआलो ॥५६॥
(पच्छागोई)

(हे०) "आसो" इत्यादि, पूर्वोदितानुसारेण साधनिका स्वयं विज्ञेयाः सुगमत्वात् । केवलं 'गहिअपेआलो' इत्यत्र 'पेआल' इति देशीयशब्दः प्रमाणादिवाची ॥५९॥

जेण तइअपाहुडओ, पचमपुव्वस्स दसमवत्थुस्स। रइअ कसायपाहुड-सुत्त जयउ खलु स गुणधरसूरी ॥६०॥
(पच्छागीई)

(हे०) "जेण" इत्यादि, गतप्राया। केवलं, 'तइअपाहुडओ' इत्यत्र तस्प्रत्ययः ॥६०॥

स भवउ कालअसूरी, मम सिवदो गद्दभिल्लछेअयरो । जेण कय महपव्व, चोत्थीए पचमीहिन्तो ॥६१॥
(पच्छाज्जा)

(हे०) "स भवउ" इत्यादि, सुगमा । परन्तु "चोत्थीए" त्ति चतुर्थशब्दस्य रकार-लोपादिके कृते चकारगतस्य अकारस्य परेण तकारसहितेन उकारेण 'न वा मयूरव-लवण-चतुर्गुण-चतुर्थ-चतुर्दश-चतुर्वार-सुकुमार-कुतूहलोदूखलोलूखले' (सि० ८।१।१७१) इत्यनेन विकल्पत ओकारादेशः, 'शेषसंस्कृतवत्सिद्धम्' इति वचनाद् पूरणार्थस्य थट्प्रत्ययस्य टित्त्वाच्च 'अणञेयेकण्-नञ्-स्नञ्-टिताम्' (सि०-२।४।२०) इत्यनेन ङीप्रत्ययः, ततः सप्तम्येकवचने ङिप्रत्ययः, तस्य च 'टा-ङस्-ङेरदादिदेद्वा तु ङसे.' (सि०-८।३।२९) इत्यनेन एकारादेशः । 'पंचमोहिन्तो' इत्यत्र पञ्चमी-शब्दात् प येकवचने ङसिप्रत्ययः, तस्य च 'टा-ङस् ' इत्यनेन अदाद्यादेशविकल्पनात् तद्विकल्पपक्षे 'शेष-ऽदन्तवत्' वचनेन 'ङसेस्_त्तो-दो० ·· ' इत्यनेन 'हिन्तो' इत्यादेशः ॥६१॥

विज्जासिद्धो जेआ, बमणवोद्धाण खउडसूरी सो ।
जयउ जगे तस्सीसो, महिंदसूरी वि सिद्धुवज्झायो ॥६२॥ (पच्छागीई)

(हे०) "विज्जासिद्धो" इत्यादि, साधितप्राया । के ' 'बंभणबोद्धाण' इत्यत्र ब्राह्मण-शब्दस्य संयुक्तस्य ह्मस्य 'पक्ष्म-श्म-ष्म-स्म-ह्मा म्हः' इत्ययेन 'म्ह' इत्यादेशस्य प्राप्तौ सत्यामपि क्वचिद् 'म्भ' इत्यादेशोऽपि भवति यथा ब्रह्मचर्यशब्दस्य 'बम्भचेरं', तथा-ऽत्रापि ॥६२॥

सिरिरुद्ददेवसूरी, जगे जयउ जोणिपाहुडसुभण्णू। सिरिसमणसिहसूरी, णिमित्तविज्जापडू जयउ ॥६३॥
(पच्छाज्जा)

सिरिहारिल्लसूरिवरो, हवीअ गुणतीसमो जुगपहाणो ।
जम्मो तस्स अवत्था-जामणिहाणम्मि ६४३-६५४ वीराऽद्दे ॥१३३॥ (पच्छाऽज्जा)
सो खतुरगमणदे६७१।६७०, दिक्ख गेण्हीअ खणहसुण्णवुहे १।००१०।
होसी जुगप्पहाणो, दिव गओ भूइसुखचदे १०५५॥१३४॥
(पच्छापुव्विगा जहणचवला-ऽज्जा)

(हे०) "सिरि०" इत्यादि, गाथायुगलमस्का साधनिका पूर्वदर्शितनीत्या स्वयं सिद्धा। केवलं 'गुणतीसमो' त्ति पूरणप्रत्ययान्तस्यैकोनत्रिंशशब्दस्य बाहुलकेन निपातनादिष्टशब्दसिद्धिः ॥१३३-१३४॥

णाणवुही मुणिवई हरिभद्दमित्तं, पट्टे समुद्दगुरुणो गुरुमाणदेवो ।
पावीअ मदविगय सुइसूरिमत, जो बिस्सविस्सुअजसो तवसविकास्सा ॥१३५॥

(हे०) "णाणंवुही" इत्यादि, साधितसाधनिका। केवल 'तवसबिकास्सा' त्ति सकारान्तस्य तपस्शब्दस्य संस्कृतसिद्धतृतीयैकवचनान्तस्य रूपम् ततस्तस्याकारस्य 'लुक्' (सि०-८।१।१०) इत्यनेन अम्बिकाशब्दसत्के अकारे परे सति लोपः, यद्वा 'समानाना तेन दीर्घ' (सि०-१।२।१) इत्यनेन दीर्घे कृते 'ह्रस्व सयोगे' (सि०-८।१।८४) इत्यनेन ह्रस्वः ॥१३५॥

जयउ हरिभद्दसूरी, तया पहावी अपुव्वमइपइहो ।
जलआसयजलआसय-मणुगथयरो विजिअबोद्धो ॥१३६॥ (पच्छाऽज्जा)
वासे लहीअ सग्ग, सो तक्किकमोलिभूसणो वीरा ।
सरिसुसमबुह१०५५/१२५५पमाणे, बाणगयासुग५८५/७८५मिए भूवा ॥१३७॥ (पच्छाऽज्जा)

(हे०) 'जयउ' इत्यादि, गाथे द्वे अपि गतसाधनिके। केवलम् 'जलआसयजलआसय०' इत्यत्र यदि जलाशयशब्दो गृह्यते तदा 'पदयो सन्धिर्वा' (सि०-८।१।५) इत्यनेन पदयोः सन्धिविकल्पनाद् असन्धिः, यदा पुनर्जलदाशयशब्द आदीयते तदा तु 'क-ग-च०' इत्यनेन दकारलोपे सिध्यति ॥१३६-१३७॥

जुगपवरो तीसइमो, जिणभद्दगणी गुरू खमासमणो। जयउ तयागमवाई, कत्ता झाणसयगाइगथाण ॥१३८॥
(पच्छागीई)

... ...

एत्थ सिआ छउमत्था, मंतिमदा वा जमागमविरुद्ध। किंचि बहुसुआ त मयि काऊण किब विसोहन्तु ॥
॥३६७॥ (पच्छाऽज्जा)

(हे०) 'जुगपवरो' इत्यादि, १३८ त आरभ्य ३६७ पर्यन्ता गाथा दर्शितरीत्या गतसाधनिकाः। केवलं १३९तमगाथायां १५८तमगाथायां च 'भावणाहि' इत्यत्र तृतीयाबहुवचनस्य भिस्प्रत्ययस्य 'शेषेऽदन्तवत्' (सि०-८।३।१२४) इति लक्षणवशात् 'भिसो हि-हिँ-हिं' (सि०-८।३।७) इत्यनेन 'हि' इत्यादेशः । १४५तमगाथायां 'चेइअ' त्ति चैत्यशब्दे 'स्याद्-भव्य-

(हे०) **"तस्स"** इत्यादि, गतसाधनिका ॥५६॥

तो आसि जुगपहाणो, चउदसमो सूरिरेवतीमित्तो। वीराऽस्स जणी धारण-रयणगिरिसिहगुत्ति ३५२ सखेऽदे ॥
॥५७॥ (पच्छाज्जा)

णारखेत्तेगदिसारवि-सल्लइ६६पमाणो वय जुगपहाणो ।
सुअभेअसुरिहदसणे ४१४, स गओ खविसयगइम्मि ४५० दिव ॥५८॥ (पच्छाज्जा)

(हे०) **"तो"** इत्यादि, साधितसाधनिका ॥५७-५८॥

आसी अज्जसमुद्दो, समुद्दगभीरवायणायरिओ । तिसमुद्दखायकित्ती, दीवसमुद्दे सु गहिअपेआलो ॥५६॥
(पच्छागीई)

(हे०) **"आसी"** इत्यादि, पूर्वोदितानुसारेण साधनिका स्वयं विज्ञेयाः सुगमत्वात् । केवलं **'गहिअपेआलो'** इत्यत्र 'पेआल' इति देशीयशब्दः प्रमाणादिवाची ॥५९॥

जेण तइअपाहुडओ, पचमपुव्वस्स दसमवत्थुस्स। रइअ कसायपाहुड-सुत्त जयउ खलु स गुणधरसूरी ॥६०॥
(पच्छागीई)

(हे०) **"जेण"** इत्यादि, गतप्राया। केवलं, **'तइअपाहुडओ'** इत्यत्र तस्प्रत्ययः ॥६०॥

स भवउ कालअसूरी, मम सिवदो गद्दभिल्लछेअयरो । जेण कय मइपव्व, चोत्थीए पचमीहिन्तो ॥६१॥
(पच्छाज्जा)

(हे०) **"स भवउ"** इत्यादि, सुगमा । परन्तु **"चोत्थीए"** त्ति चतुर्थशब्दस्य रकारलोपादिके कृते चकारगतस्य अकारस्य परेण तकारसहितेन उकारेण 'न वा मयूख-लवण चतुर्गुण-चतुर्थ-चतुर्दश-चतुर्वार-सुकुमार-कुतूहलोदूखलोलूखले' (सि० ८।१।१७१) इत्यनेन विकल्पत ओकारादेशः, 'शेष संस्कृतवत्सिद्धम्' इति वचनाद् पूरणार्थस्य थट्प्रत्ययस्य टित्त्वाच्च अणञेयेकण्-नञ्-स्नञ्-टिताम्' (सि०-२।४।२०) इत्यनेन ङीप्रत्ययः, ततः सप्तम्येकवचने ङिप्रत्ययः, तस्य च 'टा ङस्-ङेरदादिदेद्वा तु ङसे' (सि०-८।३।२९) इत्यनेन एकारादेशः । **'पंचमीहिन्तो'** इत्यत्र पञ्चमीशब्दात् प येकवचने ङसिप्रत्ययः, तस्य च 'टा-ङस् ' इत्यनेन अदाद्यादेशविकल्पनात् तद्विकल्पपक्षे 'शेष-ऽदन्तवत्' वचनेन 'ङसेस्-त्तो-दो० ·· ' इत्यनेन **'हिन्तो'** इत्यादेशः ॥६१॥

विज्जासिद्धो जेआ, बभणबोद्धाण **खउडसूरी** सो ।
जयउ जगे तस्सीसो, **महिंदसूरी** वि सिद्धुवज्झायो ॥६२॥ (पच्छागीई)

(हे०) "वि ासिद्धो" इत्यादि, साधितप्राया । के ' **'बंभणबोद्धाण'** इत्यत्र ब्राह्मणशब्दस्य संयुक्तस्य ह्मस्य 'पक्ष्म-श्म-ष्म-स्म-ह्मा म्हः' इत्ययेन 'म्ह' इत्यादेशस्य प्राप्तौ सत्यामपि क्वचिद् 'म्भ' इत्यादेशोऽपि भवति यथा ब्रह्मचर्यशब्दस्य 'बम्भचेरं', तथा-ऽत्रापि ॥६२॥

सिरिरुद्ददेवसूरी, जगे जयउ जोणिपाहुडसुभण्णू। सिरिसमणसिंहसूरी, णिमित्तविज्जापडू जयउ ॥६३॥
(पच्छाज्जा)

अनेकशोऽग्रे साधितत्वात् । २०४ तमगाथायां '०चच्छलो' त्ति वत्मलशब्दस्य संयुक्तस्य 'ह्रस्वात् थ्य-श्च त्स प्सामनिश्चले' (सि०-८।२।२१) इत्यनेन छादेशः, शेषं सुगमम् । २०५ तमगाथायां 'चत्तालो' त्ति पूरणप्रत्ययान्तस्य चत्वारिंशशब्दस्य 'गोणादय' (सि०-८।२।१७४) इति वचनात् बाहुलकाद् वा रिंलोपे शस्य लत्वे च कृते सिध्यति । एवमुत्तरत्रा-ऽपि । २०८ तमगाथायां 'किच्चा' त्ति क्त्वाप्रत्ययान्तस्य सिद्धसंस्कृतस्य कृधातोः कृत्वारूपस्य बाहुलकात् कृपादेराकृतिगणत्वाद् वा 'इत्कृपादौ' (सि०-८।१।१२८) इत्यनेन ऋकारस्य इकारः, संयुक्तस्य च त्व-थ्व-द्व-ध्वा च-छ-ज-झा क्वचित्' (सि०-८।२।१५) इत्यनेन चादेशः । 'णिप्पिहो' त्ति बहुलाधिकारात् निःस्पृहशब्दस्य संयुक्तस्य 'स्पृहायाम्' (सि०-८।२।२३) इत्यनेन छादेशस्याभवनेन 'क-ग-ट-ड०' (सि०-८।२।७७) इत्यनेन संयुक्तसस्य लोपे शेषस्य पस्य द्वित्वे च प्राकृतशब्दनिष्पत्तिस्तत्रापि णत्वादिकं पूर्ववत्साध्यम् । 'इत्कृपादौ' (सि०-८।१।१२८) इत्यनेन ऋकारस्य इत्वम् । २०९ तमगाथायां 'तवत्ति' त्ति 'तपा इति' एवंरूपयोर्द्वयोः शब्दयोः 'इते स्वरात् तश्च द्वि' (सि०-८।१।४२) इत्यनेन इतेरिकारस्य लोपः, तस्य द्वित्वञ्च; ततः तपाशब्दस्य आकारस्य 'ह्रस्व' संयोगे' (सि०-८।१।८४) इत्यनेन ह्रस्वत्वम् । २१० तमगाथायां 'आरंभिऊण' त्ति अत्र आङ्पूर्वकाद् रभ्धातोः संस्कृतलक्षणवशेन नागमः, क्त्वाप्रत्ययस्य च 'क्त्वस्तुमत्तूण तूआणा' (सि०-८।२।१४६) इत्यनेन तूणादेशः, 'व्यञ्जनाददन्ते' (सि०-८।४।२३९) इत्यनेन धातोरन्ते प्राप्तस्या-ऽकारस्य 'एच्च क्त्वा-तुम्-तव्य-भविष्यत्सु' (सि०-८।३।१५७) इत्यनेनेकारः । २११ तमगाथायां 'बोहिअ' त्ति क्त्वाप्रत्ययस्य 'क्त्वस्तुमत्तूण तुआणा' (सि०।८।२।१४६) इत्यनेन 'अ' इत्यादेशः । २१२ तमगाथायां 'जुत्तोहिं' त्ति अत्र तृतीयाबहुवचनस्य भिस्प्रत्ययस्य 'शेषेऽदन्तवत्' (सि०-८।३।१२४) इति लक्षणवशात् भिसो हि हिँ हिं (सि०-८।३।७) इत्यनेन 'हिं' इत्यादेशः, ततः 'इदुतो दीर्घः' (सि०-८।३।१५) इत्यनेन दीर्घश्च । २१५ तमगाथायां 'सिणाईकयो' त्ति स्नातीकृतशब्दस्य संयुक्तस्य नस्य पूर्वं इकाराऽऽगमो बाहुलकाद् भवति, यद्वा 'र्य-स्न-ष्टां रिय-सिन-सटा क्वचित् (सि०-८।४।३१४) इति पैशाचीभाषालक्षणेन स्नस्य सिनादेशेन सिध्येत् । २१६ तमगाथायां 'सूरित्तणं' ति अत्र त्वप्रत्ययस्य 'त्वस्य डिमा-त्तणौ वा' (सि०-८।२।१५४) इत्यनेन त्तणादेशः । 'सोढु' ति संस्कृतसमः । २१७ तमगाथायां 'देविंदसूरिप्पयब्भदिणमणी' त्ति अत्र 'समासे वा' (सि०-८।२।९७) इत्यनेन बहुलाधिकारादशेषादेशस्यापि पस्य द्वित्वम् । २१८ तमगाथायां 'बज्झु०' त्ति बाह्यशब्दस्य 'ह्रस्व संयोगे' (सि०-८।१।८४) इत्यनेन ह्रस्वे कृते 'साध्वस-ध्य-ह्यां झः' (सि०-८।२।२६) इत्यनेन संयुक्तस्य झादेशस्ततो द्वित्वादिक पूर्ववत्सिद्धम् । २१९ तमगाथायां 'डपट्ट' ति अत्र बाहुलकाद् प्रत्यादेराकृतिगणत्वाद्वा 'प्रत्यादौ डः' (सि०-८।१।२०६) इत्यनेन तस्य डादेशः । २२२ तमगाथायां 'पडिसिज्झइ' त्ति

विगइजुएऽहिसयमिए, गेण्हीअ वय म रवऽक्कखगइ१५०माणे ।
जुगपवरो आसि गओ, सग्ग गोत्थणवगकसाये४६४ ॥७१॥ (पच्छाउज्जा)

(हे०) 'ताउ' इत्यादि, साधितप्राया पूर्वभणितसाधनिकया। परन्तु 'ताउ' इत्यत्र तच्छब्दस्य अन्त्यदकारलोपे पञ्चम्येकवचनस्य डसिप्रत्ययस्य 'ङसेस् त्तो-दो-दु० ' सि०-८।३।८) इत्यनेन 'दु' इत्यादेशः, 'जस्-शस्-ङसि ' इति दीर्घश्च ॥७०-७१॥

स सोहसूरी गुरुदिण्णपट्टे, सोहीअ इदूमिव अतरिक्खे ।
भवीण अण्णाणरिउस्स सीस, छिंदीअ खग्गो इव जस्स वाणी ॥७२॥ (उवजाई)

(हे०) 'स' इत्यादि, सुगमा। केवलं 'मिव' इति तु इवार्थे 'मिव-पिव विव-व्व-व-विअ इवार्थे वा' (सि०-८।२।१८२) इत्यनेन निपातितोऽव्ययः ॥७२॥

विज्जागुरू सिरिवइर-सामिस्स य भद्दगुत्तसूरिंदो। जयउ जगे दसपुव्वी, ता सोलसमो जुगपहाणो ॥७३॥
(पच्छाउज्जा)

(हे०) 'वि ०' इत्यादि, निगदसिद्धा ॥७३॥

तस्स जणी वीराऽद्दे, विअद्धसुरयावसाणजमजामे ४२८ ।
णक्कगत्तवीहिसायर-जोयणकोसे ४४६ स आसि वयी ॥७४॥ (पच्छाउज्जा)
अभिणयसत्तिदिसे ४६४ जुग-पवरो आसायणिंदिये ५३३ खमिओ ।
वदे ह विज्जहिं, खिरितोसलिपुत्तमायरिअ ॥७५॥ (पच्छाउज्जा)

(हे०) 'तस्स' इत्यादि, पूर्वप्रदर्शितनीत्या गाथे द्वे अपि साधिते। केवलं 'विअद्ध०' इत्यत्र विदग्धशब्दस्य सयुक्तस्य गस्य 'क-ग-ट०' इति लोपे शेषस्य घस्य 'अनादौ०' इत्यनेन द्वित्वे सति पूर्वस्य धस्य 'द्वितीय-तूर्य०' इत्यनेन दादेशः। 'वदे' त्ति सिद्धसंस्कृतरूपस्य वर्तमानकालोत्तमपुरुषैकवचनम् ॥७४-७५॥

जयउ सिरिगुत्तसूरी, लोए सत्तरसमो जुगपहाणो ।
वीरा करिजलधिजुगे४४८-ऽद्दे जम्मोऽस्स वयमग्गिवसुवेए४८३॥७६॥ (पच्छागीई)
स हवीअ जुगपहाणो, लिंगऽग्गिसरे ५३३ दिव गयऽहिसरे ५४८ ।
हवउ मम मतविज्जा-कुमलो सिवदो समिअसूरी ॥७७॥ (पच्छाउज्जा)

(हे०) 'जयउ' इत्यादि गाथाद्वयमपि कण्ठ्या ॥७६ ७७॥

सिअयरो भविकुमुदविकासे स जयेउ वइरविहू, वइरसाहा जम्हा पहवीअ जहिसिरोत्ता विहू ।
ज ससुअमालिंगिउमुल्लसीअ साहुरयणेहि, जुओ सिंहगिरिगुरुरयऽद्धी सिरिवेळाकरेहिं॥७८॥ (चित्तलेहा)

(हे०) 'सिअयरो' इत्यादि, साधनिका भणितप्राया। केवलं 'वइरविहू' त्ति 'वइरसाहा' त्ति उभयत्रापि वज्रशब्दे संयुक्तस्य रेफस्य पूर्व इकारागमो 'र्श-र्ष-तप्त-वज्रे वा' (सि०-८।२।१०५) इत्यनेन भवति ।

इत्यनेन संयुक्तनकारात्पूर्वे इकारागमे 'स्वप्न-नीव्योर्वा (सि०-८।१।२५९) इत्यनेन वस्य मकारविकल्पात् **'सिमिण०'** इति, **'सिविण०'** इति वा सिध्यति । आर्षे ' **विण०**' इत्यपि भवति । २५७ तमगाथायां **'राइम्मि'** त्ति रात्रिशब्दस्य रेफ-तकारयोर्लोपे 'शेषे-ऽदन्तवत्' (सि०-८।३।२२४) इति वचनबलात् सप्तम्येकवचनस्य ङिप्रत्ययस्य 'ङे म्मि ङे' (सि०-८।३।११) इत्यनेन 'म्मि' इत्यादेशः । 'हंतु' ति संस्कृतवत्सिद्धस्य रूपम् ।

२५८ तमगाथायां **'०धारोमिए'** त्ति अत्र धात्रीशब्दस्य संयुक्तस्य तस्य 'धात्र्याम्' (सि०-८।२।८१) इत्यनेन रेफलोपविकल्पनाद् रेफलोपाभावपक्षे 'क ग-ट-ड०' (सि०-८।२।७७) इत्यनेन लोपः, ततः शेषस्य रेफस्य 'रहो' (सि०-८।२।९३)इत्यनेन द्वित्वनिषेधाद् द्वित्वाभावः ।

ननु 'न दीर्घानुस्वारात्' (सि०-८।२।९२) इत्यनेनैवात्र द्वित्वं न भविष्यति, किमर्थं 'रहो' (सि० ८।२।९३) इत्यत्र रेफस्योपादानम्, न चा-ऽन्यत्र शेषा-ऽऽदेशसत्कस्य रेफस्य निषेधार्थं भवतु को दोषः ? इति वाच्यम्, यतः संयुक्ताधिकारे 'ब्रह्मचर्य तूर्य-सौन्दर्य-शौण्डीर्ये र्यो र' (सि०-८।२।६३), 'धैर्ये वा' (सि०-८।२।६४), 'एत पर्यन्ते' (सि०-८।२।६५) 'आश्चर्ये' (सि०-८।२।६६) इति सूत्रचतुष्टयेन यत्संयुक्तस्य रेफादेशविधानं कृतम्, तत् दीर्घस्वरस्य पश्चाद्भावि, ततः 'न दीर्घानुस्वारात्' (सि०-८।२।९२) इत्यनेनैव तस्य द्वित्वाभावः । अथ धैर्यशब्दस्य 'ह्रस्व संयोगे' (सि० ८।१।८४) इत्यनेन पूर्वमेव ह्रस्वे कृते 'न दीर्घानुस्वारात्' (सि०-८।२।९२) इति सूत्रस्याप्रवर्तनेन रेफस्य द्विरुक्तिर्भवेत्, तथैव ब्रह्मचर्यादिशब्देष्वपि, तन्मा भवत्विति हेतो रेफ उपात्त इत्यपि न, धिरेत्यादिरूपाणां शब्दानामदर्शनात्, न चानिष्टरूपसिद्ध्यर्थं शास्त्रं प्रवर्तते, 'ना-ऽनिष्टार्था शास्त्रप्रवृत्ति' इति परिभाषासूत्रवचनात्, न च 'सप्ततौ रः' (सि०-८।१।२१०) इति सूत्रेण तकारस्य रेफादेशविधाने सति रेफस्य ह्रस्वस्वरपरवर्तित्वात् 'न दीर्घा०' इति द्वित्वप्रतिषेधो न स्यादतस्तस्य प्रतिषेधार्थमत्र 'रहो' इति सूत्रे रेफाभिधानमस्तीत्यप्या ऽऽशङ्कनीयम्, तस्या-ऽसंयुक्ताधिकारे पठितत्वेन संयुक्ताधिकारस्य बाह्यत्वाद् द्वित्वप्राप्तिरेव नास्ति, संयुक्ताधिकारसत्कयोरेव शेषाऽऽदेशयोः 'अनादौ०' इति सूत्रेण द्वित्वाभिधानाद्; तथा शेषरेफस्य पुनः प्रश्नावकाश एव नास्ति, यतः शेषरेफस्याभाव एव 'रहो' इति सूत्रवृत्तौ दर्शितः, **तथा च तद्ग्रन्थः**–'रेफ शेषो नास्ति' इति, किन्तु 'धात्र्याम्' (सि०-८।२।८१) इत्यनेन धात्रीशब्दस्य तकारलोपे शेषरेफस्य लाभोऽस्ति, ततस्तस्य क्वचिदेव प्राप्त्या 'न दीर्घा०' इति सूत्रेणैव द्वित्वनिषेधलाभेनाविवक्षादेः कुतो-ऽपि हेतोः 'रेफ शेषो नास्ति' इत्युक्तमस्ति, परमस्माभिः स आशयो हेतुर्वा बुद्धिजाड्यादिहेतुना न सम्यगवगम्यते, सो-ऽपि लब्धवर्णलब्धवर्णैः कैश्चिदैरनुग्रहकरणशीलैः परामृश्य विज्ञापनविषयः करणीय इति विज्ञपयामि । ततो यद्यपि रेफस्य

चरमो अवि दसपुव्वी, सो दसपुव्वीण अचरमो जाओ ।
तो वुच्छिण्णाणि तुरिअ-आगिइसवयणदसमपुव्वाणि ॥८४॥ (पच्छागीई)
आसी तयाऽज्जरक्खिअ सूरी गुणवीसमो जुगपहाणो ।
जेण विहत्तो चउहा, अणुओगो कालमासिज्ज ॥८५॥ (पच्छाज्जा)
वीरा सवसमखे५२२/५०७ऽहे, जम्मोऽस्स वय च वेअवेअसरे ५४४/५३३/५२४ ।
थमिहसरे५८४जुगवरो, स गओ दिवमस्सणिहिभूए ५९७ ॥८६॥ (पच्छाज्जा)
तो वीसमो जुगवरो, दुब्बलिआपुप्फमित्तसूरिवरो ।
जम्मोऽस्स वीरमोक्खा-ऽहे णहसायवियिमयि५५०माणे ॥८७॥ (पच्छाज्जा)
गेण्हीअ स पव्वज्जं, सायरपज्जत्तिहरमुह५६७माणे ।
जुगपवरोऽस्सणिहिसरे ५९७, हवीअ सजमरिउम्मि ६१७/० दिव ॥८८॥ (पच्छाज्जा)
अइकुसलं रयणत्तय-पचाचारेसु वायणायरिअ । नमिऊणत्थवकार, वदे त णदिलायरिअ ॥८९॥ (पच्छाज्जा)
रिउजयस्स णिवस्स सेणाअ इवंगचउक्क, हवीअ जस्स णिजचउविणेयाण कुलचउक्कं ।
जयउ वइरसेणो स णिवइणा मिव रज्जधुरा, ऊढा जेण पहुणा वज्जसामिपट्टधुरा ॥९०॥ (चदलेहा)
वीराक्खिणिहिजुगे ४९२ ऽहे, जाओ सो दिक्खिओ कुगगणमरे ५०१ ।
संजमरसे ६१७ जुगवरो, हवीअ खमिओ णहगुहमुहे ६२० ॥९१॥ (पच्छाज्जा)
ताउ अखिलकम्मविसय णाणहरो णागहत्थिसूरिवरो । बावीसमो जुगवरो, जयउ जगे वायणायरिओ ॥९२॥ (पच्छज्जा)
वीराऽग्गिहयसरे ५७३ऽहे, जाओ सो दिक्खिओ करकसरे ५९२ ।
णहविगइम्मि ६२० जुगवरो, आसि दिवमिओ णिहिगयरसे ६८९ ॥९३॥ (पच्छाज्जा)
मंदरणगे सुरतरुव्व सोहीअ विग्घहरो, पट्टम्मि वइरसेणस्स स चदसूरीवरो ।
णामो गच्छस्स चदकुलो खलु जओ जाओ, भागीरही व सुरणईअ भागीरहणिवाओ ॥९४॥ (ललिता)
तमहरो भवियलोगस्स सामतभद्दसूरी, जयउ स गुरू चदसूरीसपट्टवोमसूरी ।
कुरंगारी व विसया विरत्तो वणे वसीअ । तओ वणवासी गणस्स जाउ णामो हवीअ ॥९५॥ (महुयरी)
विमुत्तिपहदसी जो जओ व आसी, सामतभद्दसूरीसपट्टधामे ।
स खतसंगेऽहे वुड्ढदेवसूरी, जयउ परिठविअकोरटगवीरच्चो ॥९६॥ (नत्तगई)
तइ सिरिजज्जगसूरी, वीरपइट्ठ कुणीअ सच्चउरे । णाहडकयजिणभवणे, वीरा खहयीइ६७०मिअवासे ॥९७॥ (पच्छाज्जा)
जगम्मि अण्णाणतमस्स णासगो, ससोसगो दुण्णयकद्दमाण जो ।
भवज्जरासीअ पबोहगो गुरू, पज्जोयणोऽज्जीअ स देवपट्टखे ॥९८॥
(सखणिही सुणदिणी वा)

(हे०) "वीरा" इत्यादि कण्ठ्याः । केवलं ९७तमगाथायां 'तइ' त्ति तदाशब्दस्य बाहुलकाद् निपातः ॥८३-९८॥

इत्यादेशः । 'इसीहि' त्ति ऋषिशब्दस्य ऋकारस्य 'ऋणर्जृ षभर्त्वृ षौ वा' (सि०-८।१।१४१)इत्यनेन रिकारादेशविकल्पविधानात् ऋषिशब्दस्य कृपादिगणे पाठाच्च 'इत्कृपादौ' (सि० ८।१।१२८)इत्यनेन इकारादेशः । 'सिग०' त्ति शृङ्गशब्दस्य ऋकारस्य प्राग्वत् 'मसृण-मृगाङ्क-मृत्यु-शृङ्ग धृष्टे वा' (सि०-८।१।१३०) इत्यनेन इकारः । २८१ तमगाथायां 'घेत्तु'' ति ग्रह्धातोः 'क्त्वा-तुम्-तव्येषु घेत्' (सि०-८।४।२१०) इत्यनेन क्त्वाप्रत्यये परे 'घेत्' इत्यादेशे क्त्वाप्रत्ययस्य तुमादेशे च यथोक्तरूपसिद्धिः । ''वीसाहिए' त्ति अत्र विश्वशब्दस्य 'सर्वत्र ल-व-रामवन्द्रे' (सि०-८।२।७९) इत्यनेन सयुक्तस्य वकारस्य लोपः, ततः शेषस्य शस्य 'शषो स' (सि०-८।१।२६०) इत्यनेन सत्वम्, 'लुप्त-य र-व-श-ष-सा श-ष-सा दीर्घ ' (सि०-८।१।४३) इत्यनेन इकारस्य दीर्घत्वम् । २८९तमगाथाया 'अज्झप्परयणिरोहो' त्ति अत्र अध्यात्मशब्दस्य सयुक्तस्य ध्यस्य 'साध्वस-ध्य-ह्यां झ ' (सि०-८।२।२६) इत्यनेन झादेशः, त्मस्य च 'भस्मात्मनो पो वा' (सि० ८।२।५१) इत्यनेन पादेशः, ततो द्वित्वादिकं पूर्ववत् । २९२ तमगाथायां 'व' त्ति इवार्थे 'मिव-पिव-विव व्व व विअ इवार्थे वा' (सि०-८।२।१८२) इत्यनेन निपातितोऽव्ययः । ३०४ तमगाथायां 'भूसीअहीअ' त्ति भूधातोः कर्मणि विहितस्य क्यप्रत्ययस्यस्थाने 'ईअ इज्जौ क्यस्य' (सि०-८।३।१६०) इत्यनेन 'ईअ' इत्यादेशः, ततो भूतार्थे 'सी-ही-हीअभूतार्थस्य' (सि०-८।३।१६२) इत्यनेन हीअप्रत्ययः । ३०६ तमगाथायां 'किवाण०' त्ति कृपाणशब्दस्य ऋकारस्य 'इत्कृपादौ' (सि०-८।१।१२८)इत्यनेन इकारादेशः । ३२५ तमगाथायां 'णं' ति तच्छब्दस्य 'तदो ण स्यादौ क्वचित्' (सि०-८।३।७०) इत्यनेन णादेशः । ३५५ तमगाथायां 'पाडिहेर०' त्ति प्रातिहार्यशब्दस्या-ऽऽकारस्य बाहुलकादार्षत्वाद्वा हकारस्थिताऽऽकारस्य एत्वं भवति ।।१३८-३६७।।

मुनिवीरशेखरेण श्रीविजयप्रेमसूरिवरराज्ये ।
विजयान्तेन स्वरचितवन्धविधानप्रशस्तेरिमां ॥ ।। (पथ्यार्या)

प्राकृतपदसाधनिकां हेमन्तप्रभाभिधां च तत्कृपया ।
निर्मायावाप्तं यत्कुशलं तेन कुशलं भवतु जगतः ।। ।। (पथ्यागीतिः) (युग्मम्)

।। इति मुनिवीरशेखरविजयविहितबन्धविधानप्रशस्ते स्वोपज्ञा हेमन्तप्रभाख्या प्राकृतसाधनिका ।।

व्यञ्जनस्य 'शरदादेरत्' (सि०-८।१।१८) इत्यनेन अकारादेशः, 'अवर्णो यश्रुति' (सि०-८।१।१८०) इत्यनेन लघुप्रयत्नतरो यकारश्रुतिश्च । 'तत्थुल्ल०' त्ति तत्रशब्दाद्भवेऽर्थे 'डिल्ल-डुल्लौ भवे' (सि०-८।२।१६३) इत्यनेन डुल्लप्रत्ययः ॥१००॥

तेवीसमो जुगवरो, स वायणायरिअरेवतीमित्तो ।
वीराऽइऽस्स जणी जिणकमलअवत्थाऽलिपय६३६सखे ॥१०१॥ (पच्छाज्जा)
गेण्हीअ स दिक्ख णो-कसायमहजागवइरकोण६५९मिए ।
जुगपवरो खगिहरसे६८९, खमिओ णागलोगपालणग्गे७४८ ॥१०२॥ (पच्छाज्जा)

(हे०) "तेवीसमो" इत्यादि, गाथाद्वयस्यापि साधनिका गतार्था ॥१०१-१०२॥

पेऊससुव्व सोम्मो, स णयइ हरिस, माणदेवाहिवस्स,
वत्ती पट्टिसिंगे, भविगणजलहिं, माणतुगक्खसूरी ।
भूव बोहीअ भत्ता, तणुठिअणिगडा चिन्तिअ पडिएहिं,
थोत्ता भत्तामरा जो, जह मयऽइसया, पाअपासा करेणू ॥१०३॥ (सद्धरा)

(हे०) "पेऊसं व्व" इत्यादि साधनिका पठितप्राया । केवलं पीयूषांशुवच्छन्दस्यादेरीकारस्य 'एत्पीयूषापीड-बिभीतक कीदृशे' (सि०-८।१।१०५) इत्यनेनैकारादेशः । 'पट्टसिंगे' इत्यत्र भृङ्गशब्दस्य ऋकारस्य 'मसृण-मृङ्गाक-मृत्यु-शृङ्ग-धृष्टे वा' (सि०-८।१।१३०) इत्यनेन विकल्पत इकारः । 'भत्ता' त्ति 'भक्त्वा' इत्येवंरूपस्य सिद्धसंस्कृतस्य रूपम् । 'पंडिएहिं' इत्यत्र पूर्ववत् 'द्विवचनस्य बहुवचनम्' (सि०-८।३।१३०) इत्यनेन द्विवचनस्य स्थाने बहुवचनम् ॥१०३॥

जेण कयो भीइहरो जणाण, रक्खाअ थोत्तो नमिऊणसण्णो । पउट्ठदेवाइकओद्दवेहिं, दुग्गोव्व भूवेण रिउद्दवेहिं ॥ ॥१०४॥ (उवजाई)

(हे०) "जेण" इत्यादि साधनिका सुगमा, केवलं "रक्खाअ' इत्यत्र पूर्ववत् चतुर्थ्याः स्थाने षष्ठी विभक्तिः ॥१०४॥

चउवीसमो जुगवरो, स वायणायरिअसिहसूरिवरो । जम्मोऽस्सऽइ वीरा, हरबाहुतुरगम७१०पमाणे ॥१०५॥ (पच्छाज्जा)

गेण्हीअ संजम सो, आयारपकप्पवाह७२८सखेऽइ । मंगलुवायहये ७४८ जुग-वरो गओ ख रसकरगये ८२६॥ ॥१०६॥ (पच्छाज्जा)

(हे०) "चउवीसमो" इत्यादि, गाथे द्वे अपि गतसाधनिके । केवलं '०तुरंगमपमाणे' इत्यत्र रेफलोपे-ऽपि शेषस्य पस्य द्वित्वाभावस्तु 'समासे वा' (सि०-८।१।) इति द्वित्वस्य विकल्पनात् । 'मगलुवायहये' इत्यत्र लकारस्थस्य अकारस्य 'लुक्' (सि० ८।१।१०) इत्यनेन पूर्ववल्लोपः ॥१०५ १०६॥

वायगवरो सिरिउमासाई, तत्तत्थसुत्तआईण । कत्ता लोगाण जयउ, पुव्वविदो घोसणदिपट्टहरो ॥१०७॥ (पच्छागीई)

अनुक्रम	गाथानुक्रम	छन्दोनाम	मात्रा	अक्षर	लक्षणम्		प्रस्तार.	गाथाङ्का
६	४७	जघनचपला-पथ्यागीति	३०		" " ग्मध्ये द्वितीयतुर्यौ जौ चपला।	है०-४अ०-५सू०	॥	३२०, (३४१,B),
७	१८	अन्तविपुलाजघन-चपलागीति.	३०		" " विपुलान्याद्यन्तसर्वभेदात त्रेधा।	है०-४अ०-४सू०	॥	४४,
८	४६	पथ्योपगीति	२७		आद्यचियति पथ्या। परार्धमुपगीति।	है०-४अ०-७सू०	४-४-४,-४-४-।-४-ऽ,	३५५,
६	४८	जघनचपला-पथ्योपगीति	२७		" " ग्मध्ये द्वितीयतुर्यौ जौ चपला।	है०-४अ०-५सू०	॥	३५४,
१०	१६	अनुष्टुप्		८	श्लोके षष्ठ गुरु ज्ञेय, सर्वत्र लघु पञ्चमम्। द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्व, सप्तम दीर्घमन्ययो॥	श्रुतावबोध. श्लोक. १०		५३,१०८,१०९,१८१ २६६
११	३१	आवली	२०		सान्ते दोनावली।	है -४अ -५८ सू०	६-४-४-४-२,	१४१,
१२	१५	इन्दुवदना		१४	लगौ चेदिन्दुवदना। (भजम्नाद्' इत्यनुवर्तते।)	है -२अ.-२३८सू.	ऽ॥ऽ॥ऽ॥।ऽ,	३६, २३५,
१३	३५	इन्द्रवज्रा		११	तौ जो गाविन्द्रवज्रा।	है -२अ -१५४सू.	ऽऽ।ऽऽ॥ऽ।ऽऽ,	१७१,१९१,२४६,
१४	१६	उपजाति.		११	एतयोः परयोश्च सकर उपजातिश्चतुर्दशधा। सर्वजातीनामपीति वृद्धा (है -२अ -१५७सू.)	है.-२अ -१५६सू.	ऽऽ।ऽऽ॥ऽ।ऽऽ/।ऽ।ऽऽ॥ऽ।ऽऽ,	३७,५१ ७२,७६,८०,८१,८२,१०४,११०,१४०,१५७,१७०,२३०,२६२ २६३
१५	३३	उपेन्द्रवज्रा		११	जतजा गावुपेन्द्रवज्रा।	है -२अ.-१५५सू.	।ऽ।ऽऽ॥ऽ।ऽऽ,	१५४
६	३२	औपच्छन्दसकम्	१६/१८		र्यान्ता औपच्छन्दसकम्। (समे पादे षल्लघवो निरन्तरा न भवन्ति।)	है -३अ -५४सू०	ओजे-६ ऽ।ऽ।ऽऽ, समे ८-ऽ।ऽ।ऽऽ,	१४४,

व्यञ्जनस्य 'शरदादेरत्' (सि०-८।१।१८) इत्यनेन अकारादेशः, 'अवर्णो यश्रुति' (सि० ८।१।१८०) इत्यनेन लघुप्रयत्नतरो यकारश्रुतिश्च । 'तत्थुल्ल०' त्ति तत्रशब्दाद्भवे ऽर्थे 'डिल्ल-डुल्लौ भवे' (सि०-८।२।१६३) इत्यनेन डुल्लप्रत्ययः ॥१००॥

तेवीसमो जुगवरो, स वायणायरिअरेवतीमित्तो ।
वीराऽइ ऽस्स जणी जिण कमलअत्तत्थाऽलिपय६३६सखे ॥१०१॥ (पच्छाउज्जा)
गेण्हीअ स दिक्ख णो-कसायमहजागवइरकोण६५९मिए ।
जुगपवरो खगिहरसे६८९, खमिओ णागलोगपालणये७४८ ॥१०२॥ (पच्छाउज्जा)

(हे०) "तेवीसमो" इत्यादि, गाथाद्वयस्यापि साधनिका गतार्था ॥१०१-१०२॥

पेऊससुव्व सोम्मो, स णयइ हरिस, माणदेवाहिवस्स,
वत्ती पट्टद्दिसिंगे, भविगणजलहिं, माणतु गक्खसूरी ।
भूव बोहीअ भत्ता, तणुठिअणिगडा चित्तिअ पडिएहिं,
थोत्ता भत्तामरा जो, जह मयऽइसया, पाअपासा करेणू ॥१०३॥ (सद्धरा)

(हे०) "पेऊसं व्व" इत्यादि साधनिका पठितप्राया । केवलं पीयूषांशुवच्छन्दस्यादेरीकारस्य 'एत्पीयूषापीड-बिभीतक कीदृशे' (सि०-८।१।१०५) इत्यनेनैकारादेशः । 'पट्टद्दिसिंगे' इत्यत्र भृङ्गशब्दस्य ऋकारस्य 'मसृण-मृङ्गाक-मृत्यु-शृङ्ग-धृष्टे वा'(सि०-८।१।१३०) इत्यनेन विकल्पत इकारः । 'भत्ता' त्ति 'भक्त्वा' इत्येवंरूपस्य सिद्धसंस्कृतस्य रूपम् । 'पडिएहिं' इत्यत्र पूर्ववत् 'द्विवचनस्य बहुवचनम्' (सि०-८।३।१३०) इत्यनेन द्विवचनस्य स्थाने बहुवचनम् ॥१०३॥

जेण कयो भीइहरो जणाण, रक्खाअ थोत्तो नमिऊणसण्णो । पडट्ठदेवाइकओद्दवेहिं, दुग्गोव्व भूवेण रिउद्दवेहिं ॥ ॥१०४॥ (उवजाई)

(हे०) "जेण" इत्यादि साधनिका सुगमा, केवलं "रक्खाअ' इत्यत्र पूर्ववत् चतुर्थ्याः स्थाने षष्ठी विभक्तिः ॥१०४॥

चउवीसमो जुगवरो, स वायणायरिअसिहसूरिवरो । जम्मोऽस्सऽइ वीरा, हरबाहुतुरगम७१०पमाणे ॥१०५॥ (पच्छाउज्जा)

गेण्हीअ संजमं सो, आयारपकप्पवाह७२८सखेऽइ । मंगलुवायहये ७४८ जुग-वरो गओ ख रसकरगये ८२६॥ ॥१०६॥ (पच्छाउज्जा)

(हे०) "चउवीसमो" इत्यादि, गाथे द्वे अपि गतसाधनिके । केवलं '०तुरंगमपमाणे' इत्यत्र रेफलोपे-ऽपि शेषस्य पस्य द्वित्वाभावस्तु 'समासे वा' (सि०-८।१।) इति द्वित्वस्य विकल्पनात् । 'मगलुवायहये' इत्यत्र लकारस्थस्य अकारस्य 'लुक्' (सि०-८।१।१०) इत्यनेन पूर्ववल्लोपः ॥१०५ १०६॥

वायगवरो सिरिउमासाई, तत्तत्थसुत्तआईण । कत्ता रोगाण जयउ, पुव्वविदो घोसणदिपट्टहरो ॥१०७॥ (पच्छागीई)

अनु-क्रम०	गाथा-नुक्रम	छन्दोनाम	मात्रा	अक्षर.	लक्षणम्		प्रस्तार.	गाथाङ्का
२९	८	भुजङ्गप्रयातम् ❀		१२	यीर्भुजङ्गप्रयातम्	हे -२अ -१७०सू.	ISSISSISS'SS,	१०,
३०	३४	मञ्जुभाषिणी ⊙		१३	स्जौ स्जौ गो मञ्जुभाषिणी	हे -२अ -२०६सू.	ISISSIIISISIS,	१६२,
३१	५	मत्तेभविक्रीडितम्		२०	स्भौ नौं म्यौ ल्गौ मत्तेभविक्रीडितं डैः	हे २अ -३३६सू.	IISSIISISIIIS,SSISSIS,	७
३२	२५	मधुकरी	२५		पञ्चभिर्मधुकरी	हे -४अ -८३सू०	५-५ ५-५ ५	६५, २७३,
३३	४५	मनोरमा		१०	न्रज्गा मनोरमा	हे -२अ -११६सू.	IIIS'SISIS,	२८५
३४	६	मन्दाक्रान्ता		१७	मो भ्नौ तौ गौ मन्दाक्रान्ता घचैः	हे -२अ -२६०सू.	SSSS,IIIIIS,SISSISS,	८
३५	३७	माधवीलता		१९	म्रौ म सौ ज्गौ माधवीलता छैः,	हे. २अ -३३२सू.	SSSSISS,IIIIS''SISIS.	२०३, ८८२
३६	४३	मालागलिता	३३		चपचापचाल्गा मालागलिता	हे ४अ ३८सू०	४ ५-४-४ ५ ४ ४ल ग	२७१
३७	१२	मेघावली		१२	नो रिर्मेघावली	हे.-२अ -१८८सू.	IIIS'SSISSIS,	३२
३८	२९	लक्ष्मी 卐		१४	म्रौ तौ गौ लक्ष्मी । (छैः) इत्यनुवतते।	हे -२अ -२२५सू.	SSSSISS,SISSISS,	१२०
३९	७	लयग्राहि ★		११	तिर्गौ लयग्राहि	हे -२अ -१२६सू.	SSISSISSISS,	९
४०	२४	ललिता	२४		चापचपदा ललिता	हे -४अ ४४सू०	४-४-५-४-५-२,	६४, १८७

❀'अप्रमेया' इत्यपि। ⊙'मञ्जुवादिनी मञ्जुहासिनी मन्दभाषिणी सन्निवर्षिणी वा' इत्यपि। 'वसन्ता' इत्यपि।

卐'चन्द्रशाला' इत्यपि। ★'विध्यङ्गमाला' इत्यपि।

चतुर्थं परिशिष्टम्

अकारादिक्रमेण मूलगाथानामाद्यांशानां सूचिः

चतुर्थं रिशिष्टम्

अकारादिक्रमेण मूलगाथानामाद्यांशानां सूचिः

वीराऽग्गिणिहिइये७१३ऽई , जाओ सो विक्खिओ इयभमयेन८०७।
रागधणिहे ८२६ जुगवरो, हवीअ खमिओ जुगणह के १०४ ॥११५॥ पच्छाज्जा)

'सिरिणाग०' इत्यादि, गाथाद्विके साधनिका सुगमा ॥११४-११५॥

रिद्धिं परं पावीअ सूरिजयदेवपट्टसिरिं: देवाणदसूरिवरो जह वरदुमगणो गिरिं ।
जस्स पसरिअकित्तिअच्छायणेण छण्णामरा, ण हवन्ति लोगाण चम्मच्छीण णयणगोअरा ॥११६॥
(कुसुमिया)

(हे०) ' द्धिं' इत्यादि, सुगमा। केवलं **'रिद्धिं'** त्ति ऋद्धिशब्दस्य ऋकारस्य 'रि केवलस्य' (सि०-८।१।१४०) इत्यनेन रिरादेशः । **'जह'** त्ति यथाशब्दस्य 'वा-ऽव्ययोत्खातादावदात.' (सि०-८।१।६७) इत्यनेन आतोऽद् भवति । **'छण्णा'** त्ति बाहुलकात् संयुक्तयोर्नकारयोर्णकारः । यद्वा 'अधो मनयाम्' (सि० ८।२-१८) इत्यनेनैकस्य नकारस्य लोपः, ततो बाहुलकाद् 'नो ण.' (सि०-८।१।२२८) इत्यनेन शेषस्य नस्य णत्वम् , ततः 'अनादौ०, इति द्वित्वम् । **'चम्मच्छीण'** त्ति अत्रान्तर्गताक्षिशब्दसत्कसंयुक्तव्यञ्जनस्य छो-ऽक्ष्यादौ' (सि०-८।२।१७) इत्यनेन छादेशः ॥११६॥

सिरिम ाइसूरी, तया हवीअ महवाइजिअबोद्धो । कत्ता सम्मइटीगा पम्हचरित्तणयचक्काण ॥११७॥
(पच्छाज्जा)

(हे०) **"सिरिमल्ल०"** इत्यादि, पूर्वरीत्या साधनिका गतप्राया तथा-ऽपि स्थानाशून्यार्थं किञ्चिदुच्यते **'महवाइ'** त्ति अत्र हकारगतस्य आकारस्य 'दीर्घ-ह्रस्वौ मिथो वृत्तौ' (सि० ८।१।४) इत्यनेन अकारो भवति । **'०पम्हचरित्त०'** त्ति पद्मशब्दसत्कस्य संयुक्तव्यञ्जनस्य बाहुलकाद् म्हादेशः ॥११७॥

छव्वीसमो जुगवरो, स वायणायरिअभूअदिण्णगुरू । वीराऽस्स जोगिणीवसु८६४-सखे वासे हवीअ जणी ॥११८॥ (पच्छाज्जा)

करिदससिद्धिसिंदुर८८२-मिए लहीअ स वय जुगपहाणो ।
पुरिसत्थबिंदुतत्ते ६०४, रामागम्मविलयाखगे ९८३ खमिओ ॥११९॥ (पच्छागीई)

(हे०) **"छव्वीसमो"** इत्यादि, गाथाद्वयामपि पूर्वनीत्या साधनिका स्वयं विज्ञेया; सुकरत्वात् । केवलं **'पुरिसत्थ०'** त्ति पुरुषशब्दसत्कस्य रकारस्थस्य उकारस्य 'पुरुषे रोः' (सि०-८।१।१११) इत्यनेन इकारो भवति । **'०ि याखगे'** त्ति अत्र वनिताशब्दस्य 'वनिताया विलया' (सि० ८।२।१२८) इत्यनेन 'विलया' इत्यादेशः ॥११८-११९॥

सीअमू वासतेइ, सप्पियं णदएव्व, जो देवाणदसूरि--स्सामिणो पट्टलच्छि ।
हवु किं मोहसेणं, विक्कमो देहधारी, सो सूरी विक्कमक्खो, दाउ सोक्खं भवाण ॥१२०॥ (लच्छी)

(हे०) **"सोअंसू"** इत्यादि, पूर्वेण गतसाधनिका केवलं **'पट्टलच्छि'** इत्यत्र लक्ष्मीशब्दस्य संयुक्तव्यञ्जनस्य 'छो-ऽक्ष्यादौ' (सि०-८।२।१७) इत्यनेनाष्टादशश्लोकवत् छादेशो विज्ञेयः ॥१२०॥

पाडिच्छियसयकलिअ, मिउमहुरगिर णमामि दूसगणि,
सुअअणुओगयरपडु, पावयणिगवायणायरिअ ॥१२६॥ (पच्छाऽज्जा)

(हे०) "पाडिच्छिय०" इत्यादि, सुगमा । केवलं 'पाडिच्छय०' अत्र प्रातीच्छिक-शब्दस्य तकारस्य 'प्रत्यादौ डः' इत्यनेन डादेशः । 'मिउमहुर०' त्ति अत्र मृदुशब्दस्य 'इत्कृपादौ' (सि०-८।१।१२८) इत्यत्र कृपादेराकृतिगणत्वात् बाहुलकाद् वा इकारादेशः ॥१२६॥

सगवीसमो जुगवरो, कालिअसूरी स वायणायरिओ ।
तस्स जणी वीराऽद्दे, गणीसगेविज्जयसुपव्वे ९११ ॥१२७॥ (पच्छाऽज्जा)
सूयगडऽज्झयणबले ६२३ दिक्ख गेण्हीअ सो जुगपहाणो ।
हवणत्तसुगहे ९८३ सग्ग, गओ दिसाविण्हुवूहखगे ६६५ ॥१२८॥ (पच्छाऽज्जा)

(हे०) "सगवीसमो" इत्यादि, गाथाद्वयेऽपि साधनिका गतप्राया । केवलं '०गेविज्जय०' त्ति ग्रैवेयकशब्दस्य 'सर्वत्र०' इति रेफलोपः, 'ऐत एत्' (सि०-८।१।१४८) इत्यनेन ऐकारस्य एकारः, यस्य च बाहुलकाद् 'वोत्तरीयानीय कृद्ये ज्ज' (सि०-८।१।२४८) इत्यनेन ज्जादेशः, 'क-ग-च०' इति कलोपश्च । 'सूयगड' सूत्रकृतशब्दस्य रेफस्य लोपे सति 'न दीर्घानुस्वारात्' (सि०-८।२।९२) इत्यनेन शेषस्य तस्य द्वित्वाभावे सति 'क-ग-च०' इत्यनेन लोपः, कस्य बाहुलकाद् गत्वम्, यथा (श्रावकः=) सावगो, (अमुकः=) अमुगो इत्यादि, 'ऋतोऽत्' सि० ८।१।१२६) इत्यनेन ऋकारस्य अकारः, तस्य च 'प्रत्यादौ ड' (सि०-८।१।२०६) इत्यनेन बाहुलकाद् वा डादेशो भवति, यथा 'कडेमाणे कडे'। '०विण्हु०' त्ति अत्र विष्णुशब्दस्य संयुक्तव्यञ्जनस्य 'सूक्ष्म-श्न-ष्ण-स्न-ह्न-ह्ण-क्ष्णां ण्हः' (सि०-८।२।७५) इत्यनेन ण्हादेशः ॥१२८॥

सुत्तत्थरयणरोहण-गिरिं खमादमणमद्दवगुणड्ढिं । देवड्ढिखमासमण, वन्दे त वायणायरिअ ॥१२९ (पच्छाऽज्जा)
जेण कओ पाठाण, समण्णओ वायणादुगगयाण । वलहीअ वायणाए पहुणा सह कालगज्जेण ॥१३०॥ (पच्छाऽज्जा)

(हे०) "सुत्तत्थ०" इत्यादि, गाथाद्विकमुक्तरीत्या सिद्धसाधनिकम् । केवलं 'वायणादुग०' इत्यत्र द्विकसत्कस्य इकारस्य 'द्विन्योरुत्' (सि०-८।१।९४) इत्यनेन उकारः ॥१२९-१३०॥

अडवीसमो जुगवरो, अतिमपुव्वहरसच्चमित्तगुरू ।
से जम्मो वीराऽद्दे, दिसकव्विक्कमसहारयणे ६५४ ॥१३१॥ (पच्छाऽज्जा)
इत्थीकलाणिहि६६४मिए, वय लहीअ स हवीअ जुगपवरो ।
चउमुहमुहगुत्तिगहे ६९४, गओ दिव इगसहस्समिए १००१।० ॥१३२॥ (पच्छाऽज्जा)

(हे०) "अडवीसमो" इत्यादि, गाथायुग्मे साधनिका पाठसिद्धा । केवलं 'इत्थी०' त्ति स्त्रीशब्दस्य 'स्त्रिया इत्थी' (सि०-८।२।१३०) इत्यनेन 'इत्थी' इत्यादेशः । 'चउमुह०' त्ति चतुर्मुखशब्दस्य रेफस्य वाक्यविभक्त्यपेक्षया-ऽन्त्यत्वेन 'अन्त्यव्यञ्जनस्य' (सि०-८।१।११) इत्यनेन लोपः ॥१३१-१३२॥

पञ्चमं परिशिष्टम्

(1) एकादिक्रमेण गाथाक्रमेण चाऽत्र प्रयुक्तानामङ्कवाचकशब्दानां सूचिः

अनु. क्रम	एकाङ्कवाचकशब्दा. प्राकृता	संस्कृता	गाथाङ्का.
१	कु	कु	३४, ३६,४०,४३,५६, ६१, १६७ १७५ २३४ २४२, २५६, २६४, २७४२८४ २६७,२९७ २६८,३०६,३११,३१७, ३२२, ३३६, ३४०,
२	विहु	विधु	४०, १६९,२६८ ३३८
३	खग	खग	४०
४	कर	कर	४०
५	भू	भू	४०, २७०
६	भूमि	भूमि	४६
७	हत्थ	हस्त	५६
८	इग	एक	१३२
९	ख	ख	१३४, १३४
१०	बुह	बुध	१३४,१३७२४१,२५६ २८४, २८९, २९५,
११	चद	चन्द्र	१३४, ३६१
१२	रसा	रसा	१८४, २८६
१३	धरा	धरा	२१२, ३०१, ३३६
१४	इला	इला	२१४,२४९,२५६२६५ २९५, ३११
१५	राअ	राजन्	२१४, ३५८
१६	खोणी	क्षोणी	२१६, २५८, २७२,
१७	खग्ग	खड्ग	२१६, २८७, ३०२,
१८	अप्प	आत्मन्	२२७, ३३३
१९	इदु	इन्दु	२३३,२४९,२६७,२९९
२०	हरा	धरा	२३३, २६७,
२१	हत्थिकर	हस्तिकर	२३४
२२	काकक्खि	काकाक्षि	२३४
२३	खमा	क्षमा/क्ष्मा	२४७
२४	सिअयर	सितकर	२४९
२५	सोम	सोम	२५४
२६	रवि	रवि	२५६
२७	धारी	धात्री	२५८
२८	वसुहा	वसुधा	२५८
२९	०खिवइ	०क्षिति	२६६
३०	अयला	अचला	२६८
३१	ससि	शशिन्	२७०
३२	वीसा	विश्वा	२८१
३३	छमा	क्षमा/क्ष्मा	२८१
३४	गो	गो	२८७
३५	विस्सा	विश्वा	२९३
३६	मेइणी	मेदिनी	२९३
३७	सेअसु	श्वेतांशु	२९६
३८	विउला	विपुला	३०५
३९	सुहायर	सुधाकर	३०५, ३५१.
४०	धरणी	धरणी	३१३
४१	आइच्च	आदित्य	३१३
४२	गोवइ	गोपति	३१५
४३	ससहर	शशधर	३१६
४४	सव्वसहा	सर्वसहा	३२०
४५	खता	क्षान्ता	३२०
४६	उव्वी	ऊर्वी	३२१
४७	भवइ	भपति	३२२
४८	सिंधुत्थ	सिन्धूत्थ	३२३
४९	मही	मही	३२३, ३४६,
५०	अवणी	अवनी	३३६
५१	ससक	शशाङ्क	३४१
५२	पुहवी	पृथिवी	३४८
५३	०द्धखक्खि- गोलग	०ध्वाङ्क्षाक्षि- गोलक	३५३

अनु क्रम	द्व्यङ्कवाचकशब्दा प्राकृता	संस्कृता	गाथाङ्काः
१	दो	दोस्	२५, ३६५

चैत्य-चौर्यसमेषु यात्' (सि०-८।२।१०७) इत्यनेन इकारागमः, शेषं तु सुगमम्। १५४ तमगाथायां **'विअड्डपज्जुण्ण०'** त्ति विदग्धशब्दस्य संयुक्तस्य 'दग्ध-विदग्ध-वृद्धि वृद्धे ढ' इत्यनेन ढादेशः प्रद्युम्नशब्दस्य संयुक्तस्य म्नस्य 'म्नज्ञोर्णः' (सि०-८।२।४२) इत्यनेन णादेशः, शेषं सुगमम्। १५९ तमगाथायां **'रयणसये'** त्ति रत्नशब्दे 'क्ष्मा-श्लाघा- रत्ने-ऽन्त्यव्यञ्जनात्' (सि०-८।२।१०१) इत्यनेन अकारागमः। १६५ तमगाथायां **'विहुण्णगोह०'** त्ति समासान्तर्गतस्य सामाि शब्दस्य ऋकारस्य 'इत्कृपादौ०' (सि०-८।१।१२८) इत्यनेन बाहुलकादाकृतिगणत्वाद्वा इकारादेशः, संयुक्तलोप शेषद्वित्वादिकं सुगमम्। **'णाऊण'** त्ति ज्ञाधातोः 'म्नज्ञोर्णः' (सि०-८।२।४२) इत्यनेन संयुक्तस्य णादेशः, क्त्वाप्रत्ययस्य च 'क्त्वस्तुमत्तूण-तुआणाः' (सि०-८।२।१४६) इत्यनेन तूणादेशे इष्टरूपसिद्धिः। १६८ तमगाथायां **'अंगविज्जणू'** त्ति अङ्गविद्याज्ञशब्दस्य ज्ञस्य पूर्ववत् 'म्नज्ञोर्णः' (सि०-८।२।४२) इत्यनेन णत्वे द्वित्वे च कृते तत्सत्कस्य अकारस्य 'ज्ञो णत्वेऽभिज्ञादौ' (सि०-८।१।१५६) इत्यनेन उकारः। **'महवलो'** त्ति महाबलशब्दस्य 'दीर्घ-ह्रस्वौ मिथो वृत्तौ' (सि०-८।१।४) इत्यनेन आकारस्य ह्रस्वत्वम्। १७१ तमगाथायां **'इसइड्ढि'** इत्यत्र ऋद्धिशब्दसत्कस्य ऋकारस्य 'इत्कृपादौ' (सि०-८।१।१२८) इत्यनेन इकारादेशः, अतिशयशब्दस्य चान्त्याकारस्य 'लुक्' (सि०-८।१।१०) इत्यनेन लोपः। १७२ तमगाथायां **'रामसइण्णउरे'** त्ति अत्र रामसैन्यसत्कस्य ऐकारस्य 'अइर्दैत्यादौ च' (सि० ८।१।१५१) इत्यनेन 'अइ' इत्यादेशः। १७६ तमगाथायां **'रूवस्सिरी'** त्ति सामासिकस्य रूपश्रीशब्दस्य 'र्ह-श्री-ह्री-कृत्स्न क्रिया-दिष्ट्यास्वित्' (सि०-८।२।१०४) इत्यनेन इकारागमः, बहुलाधिकाराद् 'समासे वा' (सि०-८।२।९७) इत्यनेन शेषादेशरहितस्यापि शस्थानिभूतस्य सस्य द्वित्वम्। १८१ तमगाथायां **'पम्हव्व'** त्ति पद्मशब्दस्य संयुक्तस्य बाहुलकाद् म्हादेशः। **'पउमागरे'** त्ति पद्माकरशब्दस्य संयुक्तस्या-ऽन्त्यव्यञ्जनस्य पूर्वं उकारागमः 'पद्म-छद्म-मूर्ख-द्वारे वा' (सि०-८।२।११२) इत्यनेन भवति। १८२ तमगाथायां १८८ तमगाथायां च **'जेउं'** ति जिधातोः 'युवर्णस्य गुणः' (सि०-८।४।२३७) इत्यनेन गुणः, संस्कृतवत्तुम्प्रत्ययश्च। १८३ तमगाथायां **'आलिद्धा'** त्ति आश्लिष्टशब्दस्य संयुक्तयोर्यथाक्रम 'ल-ध' इत्यादेशौ 'आश्लिष्टे ल-धौ' (सि०-८-२-४९) इत्यनेन भवतः, शेषं द्वित्वाभाव-द्वित्वादिकं सुगमम्। १८५ तमगाथायां **'चज्ज०'** त्ति त्याज्यशब्दस्य आकारस्य 'ह्रस्व सयोगे' (सि०-८।१।८४) इत्यनेन ह्रस्वे कृते 'त्योऽचैत्ये' (सि०-८।२।१३) इत्यनेन आद्यस्य संयुक्तस्य चादेशः, 'अधो-म-न-याम्' (सि०-८।२।) इत्यनेन संयुक्तस्य यस्य लोपे शेषस्य जस्य द्वित्वम्। १९२ तमगाथायां **'च्चिअ'** त्ति 'णइ चेअ चिअ च्च अवधारणे' (सि०-८।२।१८४) इत्यनेनाऽवधारणार्थे निपातितो-ऽव्ययः १९३तमगाथायां **'तक्खज्झओ'** त्ति तार्क्ष्यध्वजशब्दस्य सयुक्तस्य ध्वस्य 'ध्वजे वा' (सि०-८।२।२७) इत्यनेन झादेशः, शेषं तु सुगमम्,

२०	गुण	गुण	१६९ ३०९, ३१७
२१	दहण	दहन	१८६
२२	वग्ग	वर्ग	१९५
२३	तिग	त्रिक	१९९
२४	गारव	गारव	२१२
२५	भुवण	भुवन	२१३
२६	जग	जगत्	२२७
२७	जय	॥	२३६
२८	विट्ठव	विष्टप	२४०, २६६
२९	पवि	पवि	२४०
३०	पिहु	पृथु	२४१
३१	हरक्खि	हराक्षि	२४७
३१	अणल	अनल	२५५
३३	तिमोलिमोलि	त्रिमौलिमौलि	२५८
३४	लोग	लोक	२६४
३५	सत्ति	शक्ति	२६४
३६	तिसिरोमोलि	त्रिशिरोमौलि	२६६
३७	सुक्क	शुक्र	२७६
३८	हरहयपुर	हरहतपुर	३०७
३९	सिखि	शिखिन्	३११
४०	जलण	ज्वलन	३११
४१	वेसाणर	वैश्वानर	३१३
४२	भूएसिक्खण	भूतेशेक्षण	३१३
४३	धूमद्धय	धूमध्वज	३१५
४४	पणाम	प्रणाम	३४६
४५	मुद्दा	मुद्रा	३४६
४६	अक्खरसुअ	अक्षरश्रुत	३५८
४७	जोणि	योनि	३५८

अनु-चतुरङ्कवाचकशब्दा-

क्रम.	प्राकृताः ।	संस्कृताः	गाथाङ्काः
१	अजपय	अजपद	१६, १६,
२	वण्ण	वर्ण	१६,
३	कहा	कथा	२०, २७२
४	अग	अङ्ग	२०, ८३
५	जुग	युग	२३, २५, ३०, ४३, ५६, ७६, ८३, ८३, ९१, ११५, २७०,
६	गइ	गति	४३, ५८, ७१
७	वेअ	वेद	५६, ७६, ८६, ८६, १९५ २१६ २२४, २४२
८	सुरिहदसण	सुरेभदशन	५८
९	अद्धि	अब्धि	७१, ७७, २६४ २७१, २९८, ३३३, ३६१,
१०	गोत्थण	गोस्तन	७१,
११	कसाय	कषाय	७१
१२	जाम	याम	७४, १३३
१३	सायर	सागर	७४
१४	जोयणकोस	योजनकोश	७४
१५	अभिणय	अभिनय	७५
१६	दिसा	दिशा	७५, १२८, १३१
१७	जलहि	जलधि	७६
१८	बल	बल	८३
१९	सध	सद्म	८३
२०	थभ	स्तम्भ	८६
२१	लोगपाल	लोकपाल	१०२, २१४
२२	उवाय	उपाय	१०६,
२३	पुरिसत्थ	पुरुषार्थ	११९, १७४,
२४	चउमुहमुह	चतुर्मुखमुख	१३२
२५	अवत्था	अवस्था	१३३
२६	जलआसय	जलाशय	१३६, १३६,
२७	बुद्धि	बुद्धि	१७४,
२८	वग्ग	वर्ग	१९५
२९	कट्ठा	काष्ठा	१९५
३०	सुर	सुर	२०१
३१	मेरुवण	मेरुवन	२०६
३२	ककुहा	ककुभ् । ककुभा	२०७
३३	उदहि	उदधि	२०७
३४	चत्तारि	चतुर्	२३०
३५	पहर	पहर	२३४,
३६	झाण	ध्यान	२३६,
३७	विकहा	विकथा	२४७
३८	आसा	आशा	२४९
३९	विहिमुह	विधिमुख	२५८

अत्र सिध्धातोरन्त्यस्य 'युध बुध-गृध क्रुध-सिध-मुहां ज्झः' (सि०-८।४।२१७) इत्यनेन ज्झादेशो भवति। 'णियमंतं' ति निपूर्वकात् यम्धातोः शतृप्रत्ययस्य स्थाने 'शत्रानशः' (सि० ८।३।१८१) इत्यनेन न्तादेशः। २२४ तमगाथायां 'माउक्कुआहिए' त्ति अत्र मातृशब्दस्य ऋकारस्य 'गौणा-ऽन्त्यस्य' (सि०-८।१।१३४) इत्यनेन उकारादेशः। २२५ तमगाथायां 'च्च' त्ति 'णइ चेअ चिअ च्च अवधारणे' (सि०-८।२।१८४) इत्यनेनावधारणार्थे निपातितोऽव्ययः। २२६ तमगाथाया 'म्हयकरचरणो' त्ति स्मयशब्दस्य संयुक्तस्य 'पक्ष्म श्म-ष्म-स्म-ह्मां म्हः' (सि०-८।२।७४) इत्यनेन म्हादेशः। 'मह' ति अस्मच्छब्दस्य षष्ठ्येकवचनेन ङस्प्रत्ययेन सह 'मे-मइ-मम-मह-मह मज्झ-मज्झ अम्ह-अम्ह ङसा' (सि०-८।३।११३) इत्यनेन 'मह' इत्यादेशः। २२९ तमगाथायां 'मे' त्ति अस्मच्छब्दस्य षष्ठ्येकवचनेन ङस्प्रत्ययेन सह 'मे मइ मम ० ०' (सि०-८।३।११३) इत्यनेन निपातः। 'एए' त्ति एतच्छब्दस्यान्त्यव्यञ्जनलोपे प्रथमाबहुवचनस्य जस्प्रत्ययस्य स्थाने 'अत सर्वादेर्डेर्जसः' (सि०-८।३।५८) इत्यनेन 'डे' इत्यादेशः, शेषं सुगमम्। २४० तमगाथाया ' ारि' त्ति चतुःशब्दस्य प्रथमाबहुवचनेन जस्प्रत्ययेन सह 'चतुरश्चत्तारो चउरो चत्तारि' (सि०-८।३।१२२) इत्यनेनादेशः। २३५ तमगाथायां '०द्रह०' त्ति ह्रदशब्दस्य 'ह्रदे हदो' (सि० ८।२।१२०) इत्यनेन ह-दयोर्व्यत्यये सिध्यति। यद्वा द्रहशब्दोऽपि संस्कृतेऽस्ति, तदपेक्षया संस्कृतसमो द्रहशब्दः प्राकृतेऽपि बोध्यः। तस्य रेफस्य 'द्रे रो नवा' (सि०-८।२।८०) इत्यनेन विकल्पलोपविधानाद् लोपाभावः। २४२ तमगाथायां 'णहरयणे' त्ति अत्र रत्नशब्दस्य संयुक्तस्य नस्य पूर्वे 'क्ष्मा-श्लाघा-रत्ने-ऽन्त्यव्यञ्जनात्' (सि०-८।२।१०१) इत्यनेना-ऽकारागमः। २४३ तमगाथायां 'उवज्झय०' त्ति अत्र उपाध्यायशब्दसत्कध्यकारगत आकारो बाहुलकाद् ह्रस्वो भवति। 'धरिउं' ति धृधातोः क्त्वाप्रत्ययस्य 'क्त्वस्तुमत्तूण तुआणाः' (सि०-८।२।१४६) इत्यनेन तुमादेशः, 'ऋवर्णस्यारः' (सि०-८।४।२३४) इत्यनेन धातुसत्कस्य ऋकारस्य अरादेशः, अकारस्य च 'एच्च क्त्वा-तुम् तव्य-भविष्यत्सु' (सि०-८।३।१५७) इत्यनेन इकारादेशः। २४४ तमगाथायां 'घरदीहिआ' त्ति पूर्ववत् 'गृहस्य घरोऽपतौ' (सि०-८।१।१४४) इत्यनेन गृहस्य घरादेशः। रेफलोपादिकं तु सुगमम्। 'सेज्जा' त्ति शय्याशब्दस्य अकारस्य 'एच्छय्यादौ' (सि० ८।१।५७) इत्यनेन एकारः। २५० तमगाथायां 'जसो' त्ति यशस्शब्दस्य नपुंसकलिङ्गस्या-ऽपि सकारान्तत्वेन 'स्नमदाम-शिरो नभः' (सि०-८।१।३२) इत्यननेन पुंल्लिङ्गता बोध्या। 'भे' त्ति युष्मद्शब्दस्य षष्ठीबहुवचना-ऽऽम्प्रत्ययसहितस्य 'तु वो भे तुब्भ तुब्भं ०' (सि०-८।३।१००) इत्यनेना-ऽऽदेशः। २५१ तमगाथायां ' मिण०' त्ति आर्षत्वादादेरकारस्योत्वे सिध्यति, उक्तश्च 'इः स्वप्नादौ' (सि०-८।१।४६) इति सूत्रवृत्तौ-'आर्षे उकारोऽपि। सुमिणो।' इति। अन्यथा 'इः स्वप्नादौ' इति सूत्रेणाऽऽदेरकारस्य इकारे कृते 'स्वप्ने नात्' (सि०-८।२।१०८)

अनु-क्रम	षडङ्कवाचकशब्दा प्राकृता।	संस्कृता.	गाथाङ्का
१	अग	अङ्ग	१६, २०, २३, २७, ५६, ५६, ६६, २०१, २३६, २७६, २८९,
२	रस	रस	१३, २७, २७, ३०, ३४, ८३, ६१, ३६, १०२, १०६, १६६, २७४, २७६, २६५, ३११, ३२५,
३	चक्कि	चक्रिन्	२५, १५६
४	लेसा	लेश्या	५०, २४७
५	विगइ	विकृति	७१, ६३, १४८
६	पज्जत्ति	पर्याप्ति	८८
७	रिउ	ऋतु	८८, २६८
८	गुहमुह	गुहमुख	९१
६	ईइ	ईति	९७
१०	छ	पट्	६९, १८८, २२४,
११	अलिपय	अलिपद	१०१, २६४,
१२	वइरकोण	वज्रकोण	१०२
१३	राग	राग	११५
१४	तक्क	तर्क	१९५
१५	गुण	गुण	२०१
१६	अतरसत्तु	आन्तरशत्रु	२६४
१७	उउ	ऋतु	२६४
१८	वज्जकोण	वज्रकोण	२६४
१६	पमाण	प्रमाण	२६६
२०	भूखड	भूखण्ड	२६८
२१	दिट्ठि	दृष्टि	२६९
२२	दसण	दर्शन	३०२
२३	जीवनिकाय	जीवनिकाय	३०५
२४	महुयरचरण	मधुकरचरण	३२१
२५	वक्खा	व्याख्या	३३८
२६	छेअस्सुअ	छेदश्रुत	३५३
२७	तिमत्थय-लोयण	त्रिमस्तक-लोचन	३५८

अनु-क्रम	सप्ताङ्कवाचकशब्दाः प्राकृता	संस्कृता	गाथाङ्का
१	अग	अङ्ग	१६, २८६
२	इसि	ऋषि	२०, २३, ३९
३	रज्जग	राज्याङ्ग	५०, १७९
४	णिरय	निरय	५६, १७५
५	अस्स	अश्व	८६, ८८, १९५, २२७ २७४, २८१, २६५, २६७, २६६, ३१५, ३३८
६	सायर	सागर	८८
७	हय	हय	६३, ६६, १०६, ११५ ३१७, ३१७,
८	णय	नय	१०२, १६७, २१४, २८४, २६७
९	तुरगम	तुरङ्गम	१०५, १३४
१०	वाह	वाह	१०६, २७४, २९६,
११	पायाल	पाताल	१०६, २१२
१२	खेत्त	क्षेत्र	१०६, २१६
१३	०हय	०भय	११५
१४	आसुग	आशुग	१३७
१५	सत्त	सप्त	१४५
१६	मुणि	मुनि	१५३, २६७, ३३६
१७	पासफणिफणा	पार्श्वफणिफणा	१६३
१८	वसण	व्यसन	१८५
१६	समुद्द	समुद्र	१६१
२०	माउ	मातृ	२२४
२१	सत्ति	सप्ति	२३६
२२	भय	भय	२४०, २६७
२३	वाइ	वाजिन्	२४६
२४	सक्कस्सस्स	शक्राश्वास्य	२५८
२५	वार	वार	२५८, २६८
२६	अद्धि	अब्धि	२६४, २६८, २९८, ३०९
२७	चरण	चरण	२६६
२८	तुरग	तुरग	२६८, ३२५, ३४०
२६	धाउ	धातु	२७६
३०	रिसि	ऋषि	२७९

शेषः 'धारी' इत्यत्रा-ऽस्ति, तथा-ऽपि तस्य 'न दीर्घानु०' इत्यनेनैव द्वित्वनिषेधस्य निर्वाहो भवति, न च धात्रीशब्दस्य आकारस्य 'ह्रस्व संयोगे' (सि०-८.१।८४) इत्यनेन पूर्वमेव ह्रस्वे कृते 'धात्र्या वा' (सि०-८।२।८१) इत्यनेन 'एकदेशविकृतमनन्यवत्' इति परिभाषां न्यायं वा समाश्रित्य तलोपे शेषस्य रेफस्य द्वित्वा-ऽवाप्तिरिति वाच्यम्, तथाविधप्रयोगादर्शनात्, अतः 'रहो.' इतिसूत्रे रेफस्य किं निमित्तं ग्रहणमिति चेत्, सत्यम्, किन्तु 'द्विर्बद्ध सुबद्ध' इति परिभाषापरिज्ञापनार्थम्; प्राकृते हि बहुलाधिकारस्य प्रवर्तमानत्वेन बहुलाधिकारा-दप्यस्य दीर्घस्वरस्य पश्चाद्भाविनो द्वित्वं मा भवत्वित्येतदर्थम्, 'न दीर्घानु०' इत्यस्य सूत्रस्यैव प्रपञ्चार्थं वेत्यादिकं कमप्याशयविशेषमधिकृत्य भणितं भवेत्। स चाशयोऽस्माकं दुरवबोधः, विशेषज्ञानाभावात्। ततस्तद्विद्भिः प्राज्ञशेखरैः परोपकारकरणैकचित्तैः स प्रदानविषयीकरोतु।

२६१ तमगाथायां 'साहीअ' त्ति कथ्धातोः 'कथेर्वज्जर-पज्जरो प्पाल-पिसुण संघ-बोल्ल-चव-जम्प-सीस-साहा' (सि० ८।४।२) इत्यनेन साहादेशः। 'वच्छत्थले' त्ति वक्षस्स्थलशब्दस्य क्षस्य छो-ऽक्ष्यादौ' (सि०-८।२।१७) इति छादेशः। २६४ तमगाथायां 'उउवज्जकोणरयणे' त्ति अत्र ऋतुशब्दस्य ऋकारस्य 'उदृत्वादौ' (सि०-८।१।१३१) इत्यनेन उत्वम्, तथा वज्रशब्दे 'र्श र्ष-तप्त-वज्रे वा' (सि०-८।२।१०५) इत्यनेन इकारागमविकल्पविधानादिकारागमाभावः। २६५ तमगाथायां 'सेमुसोअ' त्ति 'टा-ङस्-ङेरदादिदेद् वा तु ङसे' (सि० ८।३।२६) इत्यनेन तृतीयैकवचनस्य टाप्रत्ययस्य अदादेशः। २७३ तमगाथायां 'अरिहवाणिमूलो' त्ति अत्र 'अर्हत्' शब्दस्य 'अन्त्य०' इत्यनेन अन्त्यव्यञ्जनलोपः, 'र्ह-श्री ह्री०' (सि०-८।२।१०४) इत्यनेन संयुक्तस्य हस्य पूर्वं इकारागमः। 'किरियाउद्धारकारो' त्ति अत्रा-ऽपि क्रियाशब्दे पूर्वसूत्रेणैव संयुक्तस्य रस्य पूर्वं इकारागमः। २७५ तमगाथायां 'अण्णं' ति आज्ञाशब्दस्य पूर्वस्य आकारस्य 'ह्रस्व संयोगे' (सि०-८।१।८४) इत्यनेन पूर्वमेव ह्रस्वे कृते म्न-ज्ञोर्णः' (सि०८।२।४२) इत्यनेन णादेशः, ततो द्वित्वादिकं पूर्ववत्सिद्धम्। 'मुणिणो' त्ति मुनिशब्दात्-प्रथमाबहु-वचनस्य जस्प्रत्ययस्य 'जस् शसोर्णो वा' (सि०-८।३।२२) इत्यनेन 'णो' इत्यादेशः। 'जढा' त्ति क्तप्रत्ययान्तस्यज्धातुनिष्पन्नस्य त्यक्तशब्दस्य 'क्तेना-ऽप्फुण्णादय' (सि०-८।४।२५८) इत्यनेन निपातः, आप्प्रत्ययादिकं पूर्ववत्साध्यम्। २७६ तमगाथायां 'सोउं' ति श्रुधातोः 'चि-जि-श्रु०' (सि०-८।४।२४१) इत्यनेन प्राप्तोऽपि णकारागमो बहुलाधिकाराद् न भवति, 'युवर्णस्य गुण' (सि०-८।४।२३७) इत्यनेन गुणे तुम्प्रत्यये च कृते उक्तरूपसिद्धिः। यद्वा सिद्धसंस्कृतस्य 'श्रोतुम्' इत्येवं रूपस्य रूपम्। २७८ तमगाथायां 'ठविउ' ति बाहुलकाद् णिप्रत्ययान्तस्य स्थाधातोः ठवादेशे कृते सिध्यति। २७६ तमगाथायां 'से' त्ति 'इदम्शब्दस्य षष्ठ्येकवचनेन ङस्प्रत्ययेन सह 'से'

तृतीयं परिशिष्टम्

अत्र मूलप्रशस्तिग्रन्थे प्रयुक्तानां छन्दसा सलक्षणादीना सूची। तत्रा-ऽऽदौ आर्यभेदाना नवक प्रदर्श्या-ऽकारादिक्रमेण तानि दर्श्यन्ते।

अनुक्रम	गाथानुक्रम	छन्दोनाम	मात्रा	अक्षर	लक्षणम्		प्रस्तार	गाथाङ्का
१	१	पथ्या-ऽऽर्या	पूर्वा० ३०- उत्त० २७		चगौ पञ्चो जो न्लौ वा पूर्व-ऽर्धे-ऽपरे षष्ठो लार्या गाथा। षष्ठे न्ले लाद् द्वितीयात्सप्तमे त्वाद्यात्पदमन्यार्धे च पञ्चमे। आद्यचियति पथ्या।	है०-४अ०-१सू० ॥ -।।॥ -२ ॥ ॥ -।।॥ -३ ॥	पू०-४-४-४,-४-४-४-४-ऽ, उ०-४-४-४,-४-४-१-४-ऽ,	१, २, ११ १५, १७ २०, २३, २५, २७, ३०, ३२, ३३, ३४, ३५, ३८ ३९, △
२	५०	सर्वचपलापथ्यार्या	„		„ „गमध्ये द्वितीयतुर्यौ जौ चपला।	है०-४अ०-५सू०	॥	३५६
३	२०	मुखचपला पथ्यार्या	„		„ „ „	॥	॥	६८ ११२,११७,१४७ २१०, २१४, २२६, २३८, ३०१, ३४६,
४	२१	अन्तचपला पथ्यार्या	„		„ „ „	॥	॥	७०,१३ ,३२०,३४८,
५	१०	पथ्यागीतिः	३०		द्वि पूर्वार्धं गीति। आद्यचियति पथ्या।	है०-४अ०-६सू० ॥ -।।॥ -३ ॥	४-४-४, ४-४-४-४-ऽ,	१३,१६,१६,४३,५५, ५९,६० ६२ ६७,७३ ×

△४०, ४१, ४५, ४६, ४७, ४८, ४९, ५०, ५२, ५४, ५६, ५७, ५८, ६१, ६३ ६४, ६५, ६६, ६९, ७१, ७३, ७४, ७५, ७७ ८३,८५,८६,८७,८८ ८९, ९१,९२,९३,९७, १०१, १०२, १०५, १०६, १११, ११३, ११४, ११५, ११८, १२२, १२५,१२६. १२७,१२८, १२९, १३०, १३१, १३२, १३३, १३६, १३७, १३९,१४०, १४३, १४६, १४८, १५०, १५१, १५२.१५३, १५५, १५९, १६१,१६३, १६४,१६६, १६७, १६८, १६९, १७३, १७४, १७७, १७८,१८०,१८२, १८३, १८४, १८६, १८९, १९०, १९२, १९५ १९६, १९७, १९८, १९९, २००, २०१, २०२, २०६, २०९, २१८, २१९, २२०, २२१, २२२, २३१, २३२, २३३, २३४, २४०, २४१, २४२, २४५, २४७, २५२, २५३, २५४, २५५, २५६, २५९, २६०, २८३ २८६, २८७, २९२, २९३, २९४, २९५, २९६, २९७, २९८, ३००, ३०१, ३०२, ३०३, ३०४, ३०५, ३०६, ३०७, ३०८,३१०, ३११,३१६,३१९,३२३, ३३४, ३३५, ३३७, ३३८, ३३९,३४०, ३४१,३४२, ३४३, ३४५,३४६,३४७, ३५०,३५१,(३५१ B),(३५१C),३५६,३५७,३५८ ३६०,३६१,३६३,३६४,३६६ ३६७, ×८४,१०७,११९,१२१,१३८,१४४,१५५, १५८,१७२,१७५,१७९,१८५,१९४,२०५,२१३,२२२,२२८,२३७,२४९,२५१,२७०,२८४,२८८,२८९,२९०,२९१,३१७,३२१,३२४,३३६,३४४,३५२,३५३,३६२,

५ रयण	रत्न	१५६, २४२, २६४
६ सर	स्वर	१६४, २४०, ·४६
७ गुणठाण	गुणस्थान	१६७
८ कुलकर	कुलकर	१७४
९ रज्जु	रज्जु	१७५ २७०
१० विज्जाठाण	विद्यास्थान	१७५
११ पिण्डपयडि	पिण्डप्रकृति	१७६ २४७
१२ लोअ	लोक	२३६
१३ वेकुठ	वैकुण्ठ	२४७
१४ हरि	हरि	२४६
१५ सुमिण	स्वप्न	२५१
१६ पुव्व	पूर्व	२५८
१७ विज्जा	विद्या	२५८, २६६
१८ मग्गणा	मार्गणा	२६४
१९ सक्क	शक्र	२६४
२० विस्स	विश्व	२६४
२१ वज्जि	वज्रिन्	२६८

अनु-पञ्चदशाङ्कवाचकशब्दा गाथाङ्का

क्रम प्राकृता ।	संस्कृताः	
१ तिहि	तिथि	२७, ३०, ३४, ३६, १८०,२६८,२७६, ३५१,
२ सिद्ध	सिद्ध	१३६, १७५, १८०, २६४, २७६,
३ परमाहम्मिअ	परमाधार्मिक	१४३
४ कम्मभूमि	कर्मभूमि	१८०
५ जोग	योग	१८५
६ ससिकला	शशिकला	१८५
७ पक्खदिवस	पक्षदिवस	२७०

अनु-षोडशाङ्कवाचकशब्दा गाथाङ्का

क्रम प्राकृता ।	संस्कृताः	
१ सोलस	षोडश	१६
२ णिव	नृप	३४, १८५, २८४
३ विज्जादेवी	विद्यादेवी	२०५, २७६
४ भूव	भूप	२७६
५ देवी	देवी	२८१
६ कसाय	कषाय	२८६
७ चन्दकला	चन्द्रकला	२८९

अनु-सप्तदशाङ्कवाचकशब्द. गाथाङ्का

क्रम प्राकृत ।	संस्कृत	
१ सञम	सयम	३०, ३४, ८८, ९१, २०६, २१३, २५१, २६६,२८६,२६६,३०१

अनु- दशाङ्कवाचकशब्दा. गाथाङ्का

क्रम प्राकृता ।	संस्कृता	
१ अवम	अब्रह्म	२३३
२ सुइ	स्मृति	२३४
३ विज्जा	विद्या	२३४, ३०६
४ पुराण	पुराण	२५५, ३०७
५ पावट्ठाण	पापस्थान	३०२
६ लिवि	लिपि	३०७
७ पयडि	प्रकृति	३०६, ३११

अनु-एकोनविंशत्यङ्कवाचकशब्द गाथाङ्का

क्रम प्राकृत ।	संस्कृतः	
१ णायज्झयण	ज्ञाताध्ययन	२५६

अनु-विंशत्यङ्कवाचकशब्द गाथाङ्का

क्रम प्राकृत	' र ।:	
१ णह	नख	१३, ९१, ९३, २४२, (३४१B),३५१,३६२,३६५
२ वीस	विंशति	१६
३ रावणऽक्खि	रावणाक्षि	१७५
४ अगुलि	अङ्गुलि	१८०
५ रावणकर	रावणकर	२४७
६ रावणलोयण	रावणलोचन	३४९
७ दसवत्तणेत्त	दशवक्त्र नेत्र	३५१
८ विहरमाणजिण	विहरमानजिन	३५५
९ असमाहिठाण	असमाधिस्थान	३५६

अङ्क-अङ्कवाचकशब्दाः गाथाङ्का

सख्या प्राकृता ।	संस्कृता	
२१ सबल	शबल	१५०
२२ परिसह	परिषह	२६५
२३ सूयगडज्झयण	सूत्रकृदध्ययन	१२८
२४ इंदियपणगविसय	इन्द्रियपञ्चकविषय	२३४
२४ जिण	जिन	३६,४०, ३१६, (३४१B),३४६,३६५

अनुक्रम	गाथानुक्रम	छन्दोनाम	मात्रा	अक्षर.	लक्षणम्		प्रस्तारः	गाथाङ्का
१७	२८	कुसुमिता	२५		चादिः कुसुमिता।	है.-४ अ -६३सू०	४-३-३-४-४-४-३,	११६,
१८	३०	कोल		१२	ज्सौ स्यौ कोल ।	है -२अ -१९३सू.	ISIIISIISISS,	१२३,
१९	१४	चन्द्रलेखा		१५	'राह्वा' (रम्ययाश्चन्द्रलेखा छै) इति पूर्वे-तोऽनुपर्वते ।	है -२अ -२५१सू.	SISSISS,SSISSISS,	२८,
२०	२३	चन्द्रलेखा	२४		षचीदाश्चन्द्रलेखा।	है -४अ -६८सू	६-४-४-४-४ २,	१०,
२१	४६	चन्द्रोद्योत		१५	नौ मो रौ चन्द्रोद्योत । (जैरिति वर्तते)	है -२अ -२४७सू	IIIIISS SSISSIS,	३१४,
२२	४१	चित्रकम्		२३	त्री र्नौ र्ल्गाश्चित्रकम्।	है -२अ -३६२सू.	SISIISIS IISISIIISISIS,	२६५,
२३	२२	चित्रलेखा	२६		आदौ पश्चित्रलेखा।	है -४अ -७६सू	५ ४-४-४-४-५,	७८, १४६,
२४	४०	दण्डकल	३२		कु तअरु धणुद्धरु हअअरु गयवरु छकलु बिबि पाइकदले, बत्तीसह मत्तह पअ सुपसिद्धउ जाणह बुहअण हिअअतले । सउवीस अढग्गल कलसपुण्णउ रूअउ फणि भासिअ भुअणो, दडभल णिरुत्तउ गुरु सजुत्तउ पिंगल अं जपत मणो ॥१-१७९॥		४-४-४-४-६-४-४-S. (पिङ्गल०)	२४३, २६७,
२५	३८	द्विपदी	२८		षश्चुगौ द्वितीयषष्ठौ जो लीर्वा द्विपदी।	है -४अ -६४सू०	६-४-४-४-४-४ S,	२०४
२६	२६	नृत्तगति	२०		चौ गौ चो गौ नृत्तगतिष्ठै ।	है ३-अ -७२सू०	४-४-SS,-४-SS,	९६
२७	४४	पृथ्वी		१७	ज्सजस्यल्गा' पृथ्वी जै ।	है -२अ -२८७सू	ISIIISIS.IIISISSIS,	२८०
२८	११	प्रहर्षिणी		१३	म्नौ ज्रौ ग प्रहर्षिणी गै ।	है.-२अ -१९७सू०	SSS,IIIISISISS,	१८

अनुक्रम०	गाथानुक्रम	छन्दोनाम	मात्रा	अक्षर	लक्षणम्		प्रस्तार	गाथाङ्का०
४१	१७	वल्लकी		१९			SISSIIISIS,SISSISSIS,	४२,
४२	२	वसन्ततिलका		१४	तभौ जौ गौ वसन्ततिलका।	है.-२अ-२३१सू.	SSISIIISIISISS,	३,२९,१३५,१६०,१६३,२५७,२७७,३१८
४३	२७	शङ्खनिधि ⊙		१२		ज -३अ २१सू०	ISISSIISISIS | SSISSIISISIS	९८,
४४	३९	शार्दूलललितम्		१८	म्सौ ज्सौ त्सौ शार्दूलललित ठे ।	है -२अ -३१०सू.	SSSIISISIIIS,SSIIIS,	२२५,
४५	४	शार्दूलविक्रीडितम्		१९	अतिधृत्या म्सौ ज्सौ तौ ग. शार्दूलविक्रीडित ठे ।	है.-२अ.-३२१सू.	SSSIISISIIIS,SSISSIS,	५,२१,२६,१००,१२४,१६५,१८८,२११,२१२ २१५ॐ
४६	१३	शिखरिणी		१७	अत्यष्टौ यम्नस्भलगा शिखरिणी चै०।	है २अ -२८६सू.	ISSSSS,IIIIISSIIIS,	२४,
४७	६	शोभा		२०	य्मौ नौ तौ गौ शोभा चछै ।	है.-२अ -३३८सू.	ISSSSS,IIIIIIS,SISSISS,	१२,
४८	४२	सुरतललिता		१६	म्नस्तगा सुरतललिता।	है -२अ -२८०सू.	SSSIIIIISSSISISS,	२६६,
४९	३	स्रग्धरा		२१	प्रकृतौ म्रौ भ्नौ यि स्रग्धरा छछै.।	है -२अ -३४५सू.	SSSSISS,IIIIIIS,SISSISS,	४,६,१४,३१,६६,१०३ २०७
५०	३६	स्रग्विणी ★		१२	री. स्रग्विणी।	है -२अ -१७१सू.	SISSISSISSIS,	१७६,

⊙'सुनन्दिनी' इत्यपि ।हेमछन्दोनुशासनापेक्षया पुनरुपजातिरेव (है -२अ -सू०१५६-१५८-१७६)

ॐ२१६,२२४,२२७,२३६,२३९,२४४,२४८,२५०,२५८,२६१,२६४,२६६,२६८,२७२,२७४,२७५,२७६,२७८,२७९,२८१,३१३,३१५,३२६,३२७ ३२८,३२९,३३१ ३३२,३६५,२०८,२१७,२२६,३१२,३२५,३३०,३३३

★'पद्मिनी लक्ष्मीधर कामिनीमोहन' इत्यपि ।

पञ्चमं परिशिष्टम्

(ii) एकादिक्रमेणा-ऽकारादिक्रमेण चात्र प्रयुक्तानामङ्कवा शब्दानां सूचि'

अनु-क्रम	एकाङ्कवाचकशब्दाः प्राकृता।	संस्कृता	गाथाङ्काः
१	अप्प	आत्मन्	२२७, ३३३
२	अयला	अचला	२६८
३	अवणी	अवनी	३३६
४	आइच्च	आदित्य	३१३
५	इदु	इन्दु	२३३,२४९,२६७,२९९
६	इग	एक	१३२
७	इला	इला	२१४,२४९,२५६२६५ २९५, ३११
८	उव्वी	ऊर्वी	३२१
९	कर	कर	४०
१०	काकक्खि	काकाक्षि	२३४
११	कु	कु	३४, ३९,४०,४३,५६, ६१,१६७,१७५,२३४ २४२, २४६, २६४, २७४२८४ २६७,२९७ २९८,३०६,३११,३१७, ३२२, ३३६, ३४०,
१२	०क्खिइ	०क्षिति	२६६
१३	ख	ख	१३४, १३४
१४	खता	क्षान्ता	३२०
१५	खग	खग	४०
१६	खग्ग	खड्ग	२१६, २८७, ३०२,
१७	खमा	क्षमा/क्ष्मा	२४७
१८	खोणी	क्षोणी	२१६, २५८, २७२,
१९	गो	गो	२८७
२०	गोवइ	गोपति	३१५
२१	चद	चन्द्र	१३४, ३६१
२२	छमा	क्षमा/क्ष्मा	२८१
३	०द्धखक्खि-गोलग	०ध्वाङ्क्षाक्षि-गोलक	३५३
४	धरणी	धरणी	३१३
२५	धरा	धरा	२१२, ३०१, ३३९
२६	धारी	धात्री	२५८
२७	पुहवी	पृथिवी	३३८
२८	बुह	बुध	१३४,१३७२४१,२५६ २८४, २८९, २९५,
२९	भवइ	भपति	३२२
३०	भू	भू	४०, २७०
३१	भूमि	भूमि	४६
३२	मही	मही	३२३, ३४६,
३३	मेइणी	मेदिनी	२६३
३४	रवि	रवि	२५६
३५	रसा	रसा	१८४, २८९
३६	राअ	राजन्	२१४, ३५८
३७	वसुहा	वसुधा	२५८
३८	विउला	विपुला	३०५
३९	विस्सा	विश्वा	२९३
४०	विहु	विधु	४०, १६९,२६८,३३८
४१	वीसा	विश्वा	२८१
४२	सव्वसहा	सर्वसहा	३२०
४३	ससक	शशाङ्क	३४१
४४	ससहर	शशधर	३१९
४५	ससि	शशिन्	२७०
४६	सिअयर	सितकर	२४९
४७	सिंधुत्थ	सिन्धूत्थ	३२३
४८	सुहायर	सुधाकर	३०५, ३४१,
४९	सेअसु	श्वेतांशु	२६९
५०	सोम	सोम	२५४
५१	हत्थ	हस्त	५६
५२	हत्थिकर	हस्तिकर	२३४
५३	हरा	धरा	२३३, २६७,

अनु-क्रम	द्व्यङ्कवाचकशब्दाः प्राकृता।	संस्कृता.	गाथाङ्का.
१	अहि	अहि	२३६

२१	दसा	दशा	२०, २१६,
२२	दहण	दहन	१८६
२३	धूमद्धय	धूमध्वज	३१५
२४	पणाम	प्रणाम	३४६
२५	पवि	पवि	२४०
२६	पावग	पावक	७०
२७	पिहु	पृथु	२४१
२८	भुइ	भुजि	४६
२९	भुवण	भुवन	२१३
३०	भूएसिक्खण	भूतेशेक्षण	३१३
३१	मुद्दा	मुद्रा	३४६
३२	राम	राम	५६, ११६,
३३	लिंग	लिङ्ग	७७
३४	लोग	लोक	२६४
३५	वग्ग	वर्ग	१९५
३६	विट्ठव	विष्टप	२४०, २६६
३७	वण्हि	वह्नि	४३, ५६,
३८	विस्स	विश्व	२३, ४३,
३९	वेअ	वेद	५०, ८६, ८६,१६५, २१६,२२४,२७२,२८७
४०	वेसाणर	वैश्वानर	३१३
४१	सत्ति	शक्ति	२६४
४२	सल्ल	शल्य	५८, २४०,
४३	सिखि	शिखिन्	३११
४४	सुक्क	शुक्र	२७६
४५	हरक्खि	हराक्षि	२४७
४६	हरहयपुर	हरहतपुर	३०७
४७	हवण	हवन	१२८

अनु-क्रम.	चतुरङ्कवाचकशब्दा प्राकृता ।	संस्कृताः	गाथाङ्का
१	अग	अङ्ग	२०, ८३
२	अबुहि	अम्बुधि	२७४
३	अकूवार	अकूपार	३३३
४	अजपय	अजपद	१६, १६,
५	अणुओग	अनुयोग	३५८
६	अद्धि	अब्धि	७१, ७७,२६४२७१,२९८, ३३३, ३६१,
७	अभिणय	अभिनय	७५
८	अयर	अतर	२८४
९	अवत्था	अवस्था	१३३
१०	आसम	आश्रम	२६८, २८६
११	आसा	आशा	२४९
१२	उदहि	उदधि	२०७
१३	उवाय	उपाय	१०६,
१४	ककुहा	ककुभ् । ककुभा	२०७
१५	कट्ठा	काष्ठा	१९५
१६	कसाय	कषाय	७१
१७	कहा	कथा	२०, २७२
१८	गइ	गति	४३,५८,७१
१९	गोत्थण	गोस्तन	७१,
२०	गोपअ	गोपद	३१३
२१	चउमुहमुह	चतुर्मुखमुख	१३२
२२	चउरो	चतुर	२५६,
२३	चत्तारि	चतुर्	२३०
२४	चत्तारो	चतुर्	२५६
२५	जलआसय	जलाशय	१३६, १३६,
२६	जलहि	जलधि	७६
२७	जाम	याम	७४, १३३
२८	जुग	युग	२३, २५, ३०, ४३, ५६, ७६, ८३, ८३, ९१, ११५, २७०,
२९	जोयणकोस	योजनकोश	७४
३०	झाण	ध्यान	२३६,
३१	णीई	नीति	२४६,
३२	थभ	स्तम्भ	८६
३३	दसरहसुअ	दशरथसुत	३२०
३४	दिसा	दिशा	७५, १२८, १३१
३५	धी	धी	२९५
३६	पहर	पहर	२३४,
३७	पुरिसत्थ	पुरुषार्थ	११९, १७४,
३८	बध	बन्ध	२८६
३९	बम्हस्स	ब्रह्मास्य	२५८
४०	बल	बल	८३

अनु-क्रम	षडङ्कवाचकशब्दा प्राकृताः।	संस्कृता.	गाथाङ्का.
१	अंग	अङ्ग	१६, २०, २३, २७, ५६, ५६, ६६, २०१, २३६, २७६, २८१,
२	अंतरसत्तु	आन्तरशत्रु	२६४
३	अलिपय	अलिपद	१०१, २६४,
४	ईइ	ईति	९७
५	उउ	ऋतु	२६४
६	गुण	गुण	२०१
७	गुहमुह	गुहमुख	९१
८	चक्कि	चक्रिन्	२५, १५६
९	छ	षट्	६१, १८८, २२४,
१०	छेअस्सुअ	छेदश्रुत	३५३
११	जीवनिकाय	जीवनिकाय	३०५
१२	तक्क	तर्क	१९५
१३	तिमत्थय-लोयण	त्रिमस्तक-लोचन	३५८
१४	दसण	दर्शन	३०२
१५	दिट्ठि	दृष्टि	२६१
१६	पज्जत्ति	पर्याप्ति	८८
१७	पमाण	प्रमाण	२६६
१८	भूखड	भूखण्ड	२६८
१९	महुयरचरण	मधुकरचरण	३२१
२०	रस	रस	२३, २७, २७, ३०, ३४, ८३, ६१, ६३, १०२, १०६, १६६, २७४, २७६, २६५, ३११, ३२५,
२१	राग	राग	११५
२२	रिउ	ऋतु	८८, २६८
२३	लेसा	लेश्या	५०, २४७
२४	वइरकोण	वज्रकोण	१०२
२५	वक्खा	व्याख्या	३३८
२६	वज्जकोण	वज्रकोण	२६४
२७	विगइ	विकृति	७१, ६३, १४८

अनु-क्रम	सप्ताङ्कवाचकशब्दाः प्राकृता ।	संस्कृता	गाथाङ्का
१	अग	अङ्ग	१६, २८६
२	अद्धि	अब्धि	२६४, २६८, २९८, ३०१
३	अस्स	अश्व	८६, ८८, १९५, २२७, २७४, २८१, २६५, २६७, २६६, ३१५, ३३८
४	आसुग	आशुग	१३७
५	इदस्सवयण	इन्द्राश्ववदन	३०७
६	इसि	ऋषि	२०, २३, ३१
७	खेत्त	क्षेत्र	१०६, २१६
८	चरण	चरण	२६६
९	णग	नग	२८६
१०	णय	नय	१०२, १६७, २१४, २८४, २६७
११	णरय	नरक	२६५
१२	णिरय	निरय	५६, १७५
१३	तुरगम	तुरङ्गम	१०५, १३४
१४	तुरग	तुरग	२६८, ३२५, ३४०
१५	धाउ	धातु	२७६
१६	पायाल	पाताल	१०६, २१२
१७	पासफणिफणा	पार्श्वफणिफणा	१६३
१८	पिंडेसणा	पिण्डैपणा	२६५
१९	भय	भय	२४०, २६७
२०	भुवण	भुवन	२६३
२१	माउ	मातृ	२२४
२२	मुणि	मुनि	१५३, २६७, ३३६
२३	रज्जग	राज्याङ्ग	५०, १७१
२४	रयणायर	रत्नाकर	२८७
२५	रिसि	ऋषि	२७९
२६	लोग	लोक	२९३
२७	वसण	व्यसन	१८५
२८	वद्धि	वार्द्धि	३०६,
२९	वाइ	वाजिन्	२४६
३०	वार	वार	२५८, २६८
३१	वाह	वाह	१०६, २७४, २९६,

ह

५ गह	ग्रह	४६,१२८,१३२,१६६, २३४, २५६, २६८, ३३६, ३४१, ३४६, ३६१,३६५,
६ गुत्ति	गुप्ति	१२०, १५३
७ गेविज्जय	ग्रैवेयक	३५८
८ गेविज्जय-सुपव्व	ग्रैवेयक-सुपर्व	१२७, ३०१
९ जिणकमल	जिनकमल	१०१
१० जिणऽज्ज	जिनाब्ज	१७९
११ जिणपम्ह	जिनपद्म	१८५
१२ जिणाम्भोज	जिनाम्भोज	२६६
१३ णंद	नन्द	४६,१३४,२३६,२५८, २९७, ३२३, ३३५,
१४ णक्खत्तवीहि	नक्षत्रवीथि	७४
१५ णारय	नारद	३२०
१६ णिहाण	निधान	१३३, २६९
१७ णिहि	निधि	२३, २५, ३०, ४०, ४०, ४३,८३,८६, ८८, ९१, ९३, ११५, १३२, २०१, २५६, २७०, ३१७,३१९,३३९ ३४१
१८ णेमिणाहभव	नेमिनाथभव	३५८
१९ णोकसाय	नोकषाय	१०२
२० तणुछिद्द	तनुछिद्र	३२२
२१ तत्त	तत्त्व	९६, ११९,१४३,१६४
२२ दुग्गा	दुर्गा	३१३
२३ पडिहरि	प्रतिहरि	(३५१ C)
२४ पयत्थ	पदार्थ	३५३
२५ बल	बल	८३,१२८,१६९,२३४, २५१, २८९, ३११
२६ बलदेव	बलदेव	३१५
२७ बलि	बलिन्	१८०
२८ बहिरग्गंठि	ब्राह्मग्रन्थि	३५३
२९ मुसलि	मुशलिन्	३४८
३० रस	रस	१६६, १६९, १८६, २४०, २८७
३१ वपुदार	वपुद्वार	३२१
३२ विक्कमसहा-रयण	विक्रमसभा-रत्न	१३१
३३ विण्हु	विष्णु	३११
३४ विण्हुवूह	विष्णुव्यूह	१२८
३५ वीरगण	वीरगण	१४८
३६ सत्ति	शक्ति	७५
३७ सयणगुण	शयनगुण	३०६
३८ सेवहि	शेवधि	२९०
३९ हरि	हरि	२४१, ३२३
४० हलि	हलिन्	१८४, ३२३

अनु-क्रम शून्याङ्कवाचकशब्दाः प्राकृताः।	संस्कृताः	गाथाङ्काः
१ अंड	अण्ड	२८७
२ अंबर	अम्बर	२१६, ३५३
३ अजपय	अजपद	१६, १६
४ अणंग	अनङ्ग	२०
५ अब्भ	अभ्र	११५, १४३, २४७
६ आगास	आकाश	३५३
७ कोस	कोश	२९३
८ ख	ख	३०,३४,५६,५८, ७१, ८३, ९६, ९७, १३४, १३४, १३४, १४२, १५६, २०१, २४१, २६४, २८६, २९८
९ गगण	गगन	९१
१० जलआसय	जलदाशय	१३६, ३३६
११ णह	नभ	८७,११५,१३४,१४८, १६६, १८०, २५६, २५८, ३५५
१२ बिंदु	बिन्दु	११९, १५१, २९७
१३ मरुपह	मरुत्पथ	१६९
१४ विभ	वियत	२४९
१५ विहाय	विहायस्	२६४
१६ वोम	व्योम	१४८, २६८, ३०१
१७ सम	सम	८६,१२७,२१६,२२४, २७२

२ ,,	द्वि	२५, २६६, ३६५
३ सम	शम	३४, ८६, १२७, २१६ २२४, २७२
४ हत्थ	हस्त	३९, ५६
५ कर	कर	४०, ४३, ९३; १०६, १४७, ३६५,
६ थण	स्तन	४०, ४५, ११५
७ सय	शय	४०, ७०
८ भुज	भुज	४६
९ सव	श्रवस्/श्रव	४९, ८६, २८९,
१० वेअ	वेद्य	५६, ८६, २२४, २७२ २८७
११ वारणरयण	वारणरदन	५७
१२ जम	यम	७४
१३ अक्खि	अक्षि	९१,२१६,२२७,२४१, २७६, २९९, ३६५
१४ करिदस	करिदश	११९
१५ दुग	द्विक	१३०, १५१,
१६ णईतड	नदीतट	१६७
१७ इहदसण	इभदशन	१९५, २६३
१८ सुइ	श्रुति	२०१
१९ उरोय	उरोज	२१२
२० गयदत	गजदन्त	२१६
२१ कुअ	कुच	२२४
२२ अहि	अह्नि	२३६
२३ इहरय	इभरद	२४०
२४ चरण	चरण	२६६
२५ ०क्कम	०क्रम	२७२
२६ पक्ख	पक्ष	२७४
२७ पय	पद	२७६
२८ कण्ण	कर्ण	२७६
२९ सिंग	शृङ्ग	२७९
३० दु	द्वि	२७९
३१ गो	गो	२८७
३२ सिंदुररय	सिन्दुररद	३०१,
३३ रामसुअ	रामसुत	३०२
३४ किवाणवार	कृपाणवार	३०९
३५ रामापच्च	रामापत्य	३१३
३६ णयण	नयन	३२१
३७ हत्थिद्दिअ	हस्तिद्विज	३३३
३८ चक्खु	चक्षुस्	३४६
३९ णेत्त	नेत्र	(३५१ C)
४० पाअ	पाद	३५३
४१ लोयण	लोचन	३५५
४२ गध	गन्ध	३५८

अनु ञ्यङ्कवाचकशब्दा क्रम प्राकृता । संस्कृता		गाथाङ्का
१ दसा	दशा	२०, २१६,
२ विस्स	विश्व	२३, ४३,
३ अग्गि	अग्नि	४३, ७६, ७७, ९३, ११५, २१६, २६४, २८१,
४ वण्हि	वह्नि	४३, ५६,
५ सुइ	शुचि	४६
६ काल	काल	४६, २५६
७ ति	त्रि	५०, ११२, १६२, २०५, २२७, २३६, २३९, २३९, २४६, २५२, २६६, २६६, २६७, २७०, २७७, २७९, २८४, २८४, ३३०,
८ किसाणु	कृशानु	५०
९ वेअ	वेद	५०, ८६, ८६, १९५ २१६, २२४, २७२, २८
१० जोग	योग	५०, २७२
११ दड	दण्ड	५६
१२ राम	राम	५६, ११९,
१३ गुत्ति	गुप्ति	५७
१४ सल्ल	शल्य	५८, २४०,
१५ पावग	पावक	७०
१६ लिंग	लिङ्ग	७७
१७ तत्त	तत्त्व	९९
१८ अवत्था	अवस्था	१०१, १३३
१९ हवण	हवन	१२८

५	गह	ग्रह	४६,१२८,१३२,१६६, २३४, २५६, २६८, ३३६, ३४१, ३४६, ३६१,३६५,
६	गुत्ति	गुप्ति	१३०, १५३
७	गेविज्जय	ग्रैवेयक	३५८
८	गेविज्जय-सुपव्व	ग्रैवेयक-सुपर्व	१२७, ३०१
९	जिणकमल	जिनकमल	१०१
१०	जिणऽज्ज	जिनाब्ज	१७९
११	जिणपम्ह	जिनपद्म	१८५
१२	जिणाम्भोज	जिनाम्भोज	२६६
१३	णद	नन्द	४६,१३४,२३६,२५८, २९७, ३२३, ३३५,
१४	णक्खत्तवीहि	नक्षत्रवीथि	७४
१५	णारय	नारद	३२०
१६	णिहाण	निधान	१३३, २९९
१७	णिहि	निधि	२३, २५, ३०, ४०, ४०, ४३,८३,८६, ८८, ९१, ९३, ११५, १३२, २०१, २५६, २७०, ३१७,३१९,३३९,३४१
१८	णेमिणाहभव	नेमिनाथभव	३५८
१९	णोकसाय	नोकषाय	१०२
२०	तणुछिद्द	तनुछिद्र	३२२
२१	तत्त	तत्त्व	९६, ११९,१४३,१६४
२२	दुग्गा	दुर्गा	३१३
२३	पडिहरि	प्रतिहरि	(३९१ C)
२४	पयत्थ	पदार्थ	३५३
२५	बल	बल	८३,१२८,१६९,२३४, २५१, २८९, ३११
२६	बलदेव	बलदेव	३१५
२७	बलि	बलिन्	१८०
२८	बहिरगठि	ब्राह्मग्रन्थि	३५३
२९	मुसलि	मुशलिन्	३४८
३०	रस	रस	१६९, १६९, १८६, २४०, २८७
३१	वपुदार	वपुद्वार	३२१
३२	विक्कमसहा-रयण	विक्रमसभा-रत्न	१३१
३३	विण्हु	विष्णु	३११
३४	विण्हुवूह	विष्णुव्यूह	१२८
३५	वीरगण	वीरगण	१४८
३६	सत्ति	शक्ति	७५
३७	सयणगुण	शयनगुण	३०९
३८	सेवहि	शेवधि	२९०
३९	हरि	हरि	२४१, ३२३
४०	हलि	हलिन्	१८४, ३२३

अनु-क्रम	शून्याङ्कवाचकशब्दाः प्राकृताः ।	संस्कृताः	गाथाङ्काः
१	अंड	अण्ड	२८७
२	अंबर	अम्बर	२१६, ३५३
३	अजपय	अजपद	१६, १६
४	अणग	अनङ्ग	२०
५	अब्भ	अभ्र	११५, १४३, २४७
६	आगास	आकाश	३५३
७	कोस	कोश	२९३
८	ख	ख	३०,३४,५६,५८, ७१, ८३, ९६, ९७, १३४, १३४, १३४, १४२, १५६, २०१, २४१, २६४, २८९, २९८
९	गगण	गगन	९१
१०	जलआसय	जलदाशय	१३६, ३३६
११	णह	नभ	८७,११५,१३४,१४८, १६६, १८०, २५६, २५८, ३५५
१२	बिंदु	बिन्दु	११९, १५१, २९७
१३	मरुपह	मरुत्पथ	१६९
१४	विअ	वियत	२४९
१५	विहाय	विहायस्	२६४
१६	वोम	व्योम	१४८, २६८, ३०१
१७	सम	सम	८६,१३७,२१६,२२४, २७२

४	पिण्डपयडि	पिण्डप्रकृति	१७६, २४७
५	पुव्व	पूर्व	२५८
६	भुवण	भुवन	२७
७	मग्गणा	मार्गणा	२६४
८	मणु	मनु	२५
९	रज्जु	रज्जु	१७५, २७०
१०	रयण	रत्न	१५६, २४२, २६४
११	लोअ	लोक	२३६
१२	वज्जि	वज्रिन्	२६८
१३	विज्जा	विद्या	२५८, २६६
१४	विज्जाठाण	विद्यास्थान	१७५
१५	विस्स	विश्व	२६४
१६	वेकुंठ	वैकुण्ठ	२४७
१७	सक्क	शक्र	२६४
१८	सर	स्वर	१६४, २४०, २४६
१९	सुअभेअ	श्रुतभेद	५८
२०	सुमिण	स्वप्न	२५१
२१	हरि	हरि	२४६

अनु-पञ्चदशाङ्कवाचकशब्दा. गाथाङ्का.

क्रम	प्राकृता ।	संस्कृता.	
१	कम्मभूमि	कर्मभूमि	१८०
२	जोग	योग	१८५
३	तिहि	तिथि	२७, ३०, ३४, ३६, १८०, २६८, २७६, ३५१,
४	पक्खदिवस	पक्षदिवस	२७०
५	परमाहम्मिअ	परमाधार्मिक	१४३
६	ससिकला	शशिकला	१८५
७	सिद्ध	सिद्ध	१३६, १७५, १८०, २६४, २७६,

अनु-षोडशाङ्कवाचकशब्दा गाथाङ्का

क्रम	प्राकृता ।	संस्कृता	
१	कसाय	कषाय	२८६
२	चन्दकला	चन्द्रकला	२८१
३	णिव	नृप	३४, १८५, २८४
४	देवी	देवी	२८१
५	भूव	भूप	२७६
६	विज्जादेवी	विद्यादेवी	२०५, २७६
७	सोलस	षोडश	१६

अनु-सप्तदशाङ्कवाचकशब्द गाथाङ्का

क्रम	प्राकृत ।	संस्कृत	
१	संजम	संयम	३०, ३४, ८८, ६१, २०६, २१३, २५१, २६६, २८६, २६६, ३०१

अनु-अष्टादशाङ्कवाचकशब्दा गाथाङ्का.

क्रम	प्राकृता ।	संस्कृता	
१	अबंभ	अब्रह्म	२३३
२	पयडि	प्रकृति	३०६, ३११
३	पावट्ठाण	पापस्थान	३०२
४	पुराण	पुराण	२५५, ३०७
५	लिवि	लिपि	३०७
६	विज्जा	विद्या	२३४, ३०६
७	सुइ	स्मृति	२३४

अनु-एकोनविंशत्यङ्कवाचकशब्द गाथाङ्का

क्रम	प्राकृत ।	संस्कृत	
१	णायज्झयण	ज्ञाताध्ययन	२५६

अनु-विंशत्यङ्कवाचकशब्दा गाथाङ्काः

क्रम	प्राकृता ।	संस्कृता	
१	अंगुलि	अङ्गुलि	१८०
२	असमाहिठाण	असमाधिस्थान	३५६
३	णह	नख	१३, ९१, ९३, २४२, (३४१B), ३५१, ३६२, ३६५
४	दसवत्तणेत्त	दशवक्त्रनेत्र	(३५१C)
५	रावणकर	रावणकर	२४७
६	रावणऽक्खि	रावणाक्षि	१७५
७	रावणलोयण	रावणलोचन	३४९
८	विहरमाणजिण	विहरमानजिन	३५५
९	वीस	विंशति	१६

अङ्क-अङ्कवाचकशब्दा गाथाङ्का.

संख्या	प्राकृता ।	संस्कृता	
२१	सबल	शबल	१५०
२२	परिसह	परिषह	२६५
२३	सूयगडज्झयण	सूत्रकृदध्ययन	१२८
२४	इंदियपणगविसय	इन्द्रियपञ्चकविषय	२३४

षष्ठं परिशिष्टम्

अकारादिक्रमेण बन्धविधानप्रशस्तिवृत्ति-टिप्पणान्तर्गताना साक्षितया समुद्धृतानां ग्रन्थनाम्ना सूचि –

△ ( ) एतच्चिह्न(कौस)न्तर्गता अङ्का टीप्पणसत्का पृष्ठाङ्का बोद्धव्या । एवमग्रेऽपि ।

१९ कोस	कोश	२६३
२० सुन्न-	शून्य-	३०७
२१ आगास	आ	३५३

अनु-दशाङ्कवाचकशब्दा·

क्रम प्राकृता.	सस्कृता	गाथाङ्का.
१ अणगदसा	अनङ्गदशा	२०
२ विगइ	विकृति	७१
३ संजम	सयम	८८
४ हरबाहु	हरबाहु	१०५
५ हरसव	हरश्रव/श्रवस्	१३१
६ सभुकण्ण	शम्भुकर्ण	१४२
७ रस	रस	१६६
८ अगदार	अङ्गद्वार	१७२
९ दसा	दसा	१७२
१० बल	बल	२२७
११ दिसा	दिशा	२७६
१२ दसकठकठ	दशकण्ठकण्ठ	३०२
१३ सेअस्सस्स	श्वेताश्वाश्व	३३३
१४ कप्पद्दुम	कल्पद्रुम	३५९
१५ सच्चभासा	सत्यभाषा	३५६

अनु-एकादशाङ्कवाचकशब्दा

क्रम प्राकृता।	सस्कृता·	गाथाङ्का.
१ अग	अङ्ग	२०,
२ गणीस	गणेश	१२७
३ रुद्द	रुद्र	१३९, १४८ २७०,
४ गण	गण	१३९, १४८,
५ सकर	शङ्कर	१४३
६ महीसर	महेश्वर	१४३
७ सद्धपडिमा	श्राद्धप्रतिमा	१४३
८ वीरगणहर	वीरगणधर	१४७
९ सभू	शम्भू	१५३, २६२,
१० गिरीस	गिरीश	१८६
११ सव्व	शर्व	१९१
१२ गिरिस	गिरिश	१९५
१३ सिव	शिव	१९५
१४ ईस	ईश	१९५ २०१

१६ हर	हर	२०१
१७ उग्ग	उग्र	२०१
१८ इदुहर	इन्दुधर	२३३

अनु-द्वादशाङ्कवाचकशब्दा

क्रम प्राकृता ।	सस्कृता	गाथाङ्का
१ बारस	द्वादशन्	११
२ अक्क	अर्क	१४८
३ मुणिपडिमा	मुनिप्रतिमा	१५०
४ गिहिवय	गृहिव्रत	१५१
५ तव	तपस्	१५१
६ गुहक्खि	गुहाक्षि	१५५
७ सुरगुरुहत्थ	सुरगुरुहस्त	१५६
८ कप्प	कल्प	१८६
९ चक्कि	चक्रिन्	२०१
१० बार	द्वादशन्	२०९,
११ रासि	राशि	२०६
१२ उवग	उपाङ्ग	३११
१३ सोलस-तित्थंयरभव	षोडशतीर्थङ्करभव	३ ९

अनु-त्रयोदशाङ्कवाचकशब्दा.

क्रम प्राकृता.।	सस्कृता	गाथाङ्का
१ विस्स= विस्सदेव	विश्व= विश्वदेव	३०, १५१, १५६, २१६, २२७, २३६, २३६, २४०, २४०, २४१
२ अज्जजिणभव	आद्यजिनभव	१५६
३ किरियाठाण	क्रियास्थान	१५८
४ आइमजिनभव	आदिमजिनभव	१६६
५ तबुलगुण	तम्बुलगुण	१६७
६ तेरस	त्रयोदश	२२४
७ णाहिभभव	नाभिजभव	२३६
८ वसहभव	वृषभभव	२४०

अनु-चतुर्दशाङ्कवाचकशब्दा

कम प्राकृता ।	सस्कृता.	गाथाङ्का
१ मणु	मनु	२५
२ भुवण	भुवन	२७
३ इद	इन्द्र	३४, ३६, १६७, २४२
४ सुअभेअ	श्रुतभेद	५८

षष्ठं परिशिष्टम्

अकारादिक्रमेण बन्धविधानप्रशस्तिवृत्ति-टिप्पणान्तर्गतानां साक्षितया समुद्धृताना ग्रन्थनाम्ना सूचि –

△ ( ) एतच्चिह्न(कौस)ान्तर्गता अङ्का टीप्पणसत्का पृष्ठाङ्का बोद्धव्या । एवमग्रेऽपि ।

❀१४२, १४३, १४५, १५३,१५६ १५८, १५६, १६२ १६७, २०५, २१३, २२४, २२७, २५१, २६१, २६६, २६६, २६८, २६८, २७०, २७२, २७४, २७६, २७६, २७९, २८४, २८६, ३१३, ३१५, ३१७, ३३०,

२४	जिणिंद	जिनेन्द्र	२६२
२५	उवज्झायगुण	उपाध्यायगुण	४६
२५	भावणा	भावना	१३६, १५८
२७	णक्खत्त	नक्षत्र	४३
२८	आयारपकप्प	आचारप्रकल्प	१०६
२८	भ	भ	२८१
३०	तीस	त्रिंशत्	११
३०	अहोरत्तमुहुत्त	अहोरात्रमुहूर्त	२५८
३१	सिद्धाइगुण	सिद्धादिगुण०	१५१
३२	दुतीसा	द्वात्रिंशत्	२०७
३२	रअ	रद	२२७
३२	दत	दन्त	३१३
३२	रयण	रदन	३१५
३३	आसायणा	आशातना	७५
३४	अतिसय	अतिशय	२८४
३५	जिणवयगुण	जिनवचोगुण	४५
३५	वयगुण	वचोगुण	३०६, ३१७
४०	चत्ता	चत्वारिंशत्	१५६
४२	दुआलीसा	द्विचत्वारिंशत्	१३
४२	गोयरिदोस	गोचरिदोष	२५१
४५	आगम	आगम	२५४
५०	पण्णास	पञ्चाशत्	११, १३
५२	वीर	वीर	१९५
५२	णंदीसरमदिर	नन्दीश्वरमन्दिर	२६६
५६	दिक्कुमरी	दिक्कुमारी	१८४
५६	दीव	द्वीप	२८४
५१	वधहेउ	बन्धहेतु	२२४
६०	अहोरत्तघडिया	अहोरात्रघटिका	१५५
६०	लेसकट्ठा	लेशकाष्ठा	१५६
६०	रिउदिवस	ऋतुदिवस	२५६
६३	सलागापुरिसुत्तम	शलाकापुरुषोत्तम	२०६
६३	सलायामहा-पुरिस	शलाका-महापुरुष	२१४
६४	जोगिणी	योगिनी	११८, २५६
६४	इत्थीकला	स्त्रीकला	१३२,२०६,२६८
६४	इद	इन्द्र	१६४
६६	णरखेत्तेग-दिसारवि	नरक्षेत्रैक-दिग्रवि	५८
६८	महातित्थ	महातीर्थ	२८६
७०	सत्तरि	सप्तति	१५६
८४	जीवजोणिलक्ख	जीवयोनिलक्ष	१८५
८४	कला	कला	२१४
८४	चुलसीइ	चतुरशीति	२२३
८८	महागह	महाग्रह	३४८
१००	सय	शत	५०, ७१, १३९,*
१००	सयग	शतक	२८१
१०८	परपरमेट्ठिगुण	पञ्चपरमेष्ठिगुण	२७
१७०	गुरुपयजिण	गुरुपदजिन	१४५
१०००	सहस्स	सहस्र	१३२,१४५२६२ २७८, ३३२
१०००००	लक्ख	लक्ष	२२२
१००००००	कोडी	कोटी	८२
१००००००	कोडि	कोटि	१९१

*१४१, १४३, १४५, १५३,१५६ १५८, १५६, १६२ १६७, २०५, २१३, २२४, २२७, २५१, २६१, २६६, २६६, २६८, २६८, २७०, २७२, २७४, २७६, २७६, २७१, २८४, २८६, ३१३, ३१५, ३१७, ३३०,

१	अक्खि	अक्षि	६१,२१६,२२७,२४१, २७६, २९६, ३६५
३	इहदसण	इभदशन	१६५, २६३
४	इहरय	इभरद	२४०
५	उरोय	उरोज	२१२
६	कण्ण	कर्ण	२७६
७	कर	कर	४०, ४३, ९३, १०६, १४७, ३६५,
८	करिदंस	करिदश	११६
९	किवाणधार	कृपाणधार	३०६
१०	कुभ	कुच	२२४
११	०	०क्रम	२७२
१२	गध	गन्ध	३५८
१३	गयदत	गजदन्त	२१६
१४	गो	गो	२८७
१५	चक्खु	चक्षुस्	३४६
१६	चरण	चरण	२६६
१७	जम	यम	७९
१८	णईतड	नदीतट	१६७
१९	णयण	नयन	३२१
२०	णेत्त	नेत्र	(३५१ C)
२१	थण	स्तन	४०, ४५, ११५
२२	दु	द्वि	२७९
२३	दुग	द्विक	१३०, १५१,
२४	दो	दोस्	२५, ३६५
२५	,,	द्वि	२५, २६६, ३६५
२६	पक्ख	पक्ष	२७४
२७	पय	पद	२७६
२८	पाअ	पाद	३५३
२९	भुज	भुज	४६
३०	रामसुअ	रामसुत	३०२
३१	रामापच्च	रामापत्य	३१३
३२	लोयण	लोचन	३५५
३३	वारणरयण	वारणरदन	५७
३४	वेअ	वेद	५६, ८६, २२४, २७२ २८७
३५	सय	शय	४०, ७०
३६	सम	शम	३४, ८६, १३७, २१६ २२४, २७२
३७	सव	श्रवस्/श्रव	४९, ८६, २८६,
३८	सिंग	शृङ्ग	२७९
३९	सुइ	श्रुति	२०१
४०	सिंदुररय	सिन्दुररद	२०१,
४१	हत्थ	हस्त	२९, ५६
४२	हत्थिद्दिअ	हस्तिद्विज	२३२

अनु-त्र्यङ्कवाचकशब्दाः क्रम	प्राकृता।	संस्कृताः	गाथाङ्का
१	अक्खरसुअ	अक्षरश्रुत	३५८
२	अग्गि	अग्नि	४३, ७६, ७७, ९३, ११५, २१६, २६४, २८१,
३	अणल	अनल	२५५
४	अवत्था	अवस्था	१०१, १२३
५	काल	काल	४६, २५६
६	किसाणु	कृशानु	५०
७	गारव	गारव	२१२
८	गुण	गुण	१६९ ३०६, ३१७
९	गुत्ति	गुप्ति	७०
१०	जग	जगत्	२२७
११	जय	॥	२३६
१२	जलण	ज्वलन	३११
१३	जोग	योग	५०,२७२
१४	जोणि	योनि	३५८
१५	तत्त	तत्त्व	९६
१६	ति	त्रि	५०, ११२, १६२, २०५, २२२, २३६, २३६, २३६, २४६, २५२, २६६, २६६, २६७, २७७, २७७, २७९, २८४, २८४, ३३०,
१७	तिग	त्रिक	१९९
१८	तिमोलिमोलि	त्रिमौलिमौलि	२५८
१९	तिसिरोमोलि	त्रिशिरोमौलि	२६६
२०	दंड	दण्ड	५६

नवमं परिशिष्टम्

अत्र बन्धविधानप्रशस्तिग्रन्थवृत्ति-टिप्पणान्तर्गताना व्याकरणसूत्राणा सूचि –

द मं परिशिष्टम्

अकारादिक्रमेण बन्धविधानप्रशस्तिवृत्ति-टिप्पणान्तर्गतानां धातुपाठानां सूची–

१८ सुण्ण	शून्य	१३४,१४८,१५१,३३३
१९ सुन्न-	शून्य-	३०७
२० सुरद्ध	सुराध्वन्	१०९
२१ सुरपह	सुरपथ	४९, २७४

अनु क्रम	दशाङ्कवाचकशब्दा प्राकृता ।	संस्कृता	गाथाङ्का
१	अगदार	अङ्गद्वार	१७२
२	अणगदसा	अनङ्गदशा	२०
३	कप्पद्दुम	कल्पद्रुम	३५९
४	दसकठकठ	दशकण्ठकण्ठ	३०२
५	दसा	दसा	१७२
६	दिसा	दिशा	२७६
७	बल	बल	२२७
८	रस	रस	१६६
९	विगइ	विकृति	७१
१०	संजम	सयम	८८
११	सम्भुकण्ण	शम्भुकर्ण	१४२
१२	सच्चभासा	सत्यभाषा	३५६
१३	सेअस्सस्स	श्वेताश्वाश्व	३३३
१४	हरबाहु	हरबाहु	१०५
१५	हरसव	हरश्रव/श्रवस्	१३६

अनु क्रम	एकादशाङ्कवाचकशब्दा प्राकृता ।	संस्कृता	गाथाङ्काः
१	अग	अङ्ग	२०,
२	इदुहर	इन्दुधर	२३३
३	ईस	ईश	१६५
४	उग्ग	उग्र	२०१
५	गण	गण	१३९, १४८,
६	गणीस	गणेश	१२७
७	गिरिस	गिरिश	१६५
८	गिरीस	गिरीश	१८६
९	भीम	भीम	२०१
१०	महीसर	महेश्वर	१४३
११	रुद्द	रुद्र	१३९, १४८ २७०,
१२	वीरगणहर	वीरगणधर	१४७
१३	सकर	शङ्कर	१४३
१४	सभू	शम्भू	१५३, ३६२,
१५	सद्धपडिमा	श्राद्धप्रतिमा	१४३
१६	सव्व	शर्व	१६१
१७	सिव	शिव	१६५
१८	हर	हर	२०१

अनु क्रम	द्वादशाङ्कवाचकशब्दा प्राकृता ।	संस्कृता	गाथाङ्का
१	अक	अर्क	१४८
२	उवग	उपाङ्ग	३११
३	कप्प	कल्प	१६९
४	गिहिवय	गृहिव्रत	१५१
५	गुहक्खि	गुहाक्षि	१५५
६	चक्कि	चक्रिन्	२०१
७	तव	तपस्	१५१
८	बार	द्वादशन्	२०९,
९	बारस	द्वादशन्	११
१०	मुणिपडिमा	मुनिप्रतिमा	१५०
११	रासि	राशि	२०६
१२	सुरगुरुहत्थ	सुरगुरुहस्त	१५६
१३	सोलस-तित्थंयरभव	षोडशतीर्थङ्करभव	३०६

अनु क्रम	त्रयोदशाङ्कवाचकशब्दा प्राकृता ।	संस्कृता	गाथाङ्का
१	अज्जजिणभव	आद्यजिनभव	१५६
२	आइमजिनभव	आदिमजिनभव	१६६
३	किरियाठाण	क्रियास्थान	१५८
४	णाहिभभव	नाभिजभव	२३६
५	तबुलगुण	तम्बुलगुण	१६७
६	तेरस	त्रयोदश	२२४
७	वसहभव	वृषभभव	२४०
८	विस्स=विस्सदेव	विश्व=विश्वदेव	३०, १५१, १५६, २१६, २२७, २३६, २३६, २४०, २४०, २४१

अनु क्रम	चतुर्दशाङ्कवाचकशब्दा प्राकृता ।	संस्कृता	गाथाङ्का
१	इद	इन्द्र	३४, ३६, १६७, २४२
२	कुलकर	कुलकर	१७४
३	गुणठाण	गुणस्थान	१६७

द्वादशं

पट्टधर-युगप्रधान-वाचनाचार्य-प्रभावकाचार्यादीना

सामान्यक्रम	पट्टपरम्परा क्रम	पट्टधरनामानि	युगप्रधानक्रम	युगप्रधाननामानि	वालभीक्रम	माथुरीक्रम	वाचनाचार्य-नामानि	प्रभावकाचार्या-दिनामानि
१	१	सुधर्मस्वामी	१		१	१		
२	२	जम्बूस्वामी	२		२	२		
३	३	प्रभवस्वामी	३		३	३		
४	४	शय्यम्भवस्वामी	४		४	४		
५	५	यशोभद्रसूरि	५		५	५		
६	६A	सम्भूतसूरि	६		६	६		
७	६B	भद्रबाहुस्वामी	७		७	७		
८	७	स्थूलभद्रस्वामी	८		८	८		
९	८A	आर्यमहागिरि	९		९	९		
१०	८B	आर्यसुहस्तिसूरि	१०		१०	१०		
११	९A	आर्यसुस्थितसूरि						
१२	९B	आर्यसुप्रतिबुद्धसूरि						
१३			११	गुणसुन्दरसूरि	११			
१४						११ (१०)	आर्यबहुलबलिस्सहौ यमलभ्रातरौ	
१५						१२ (११)	वाचकस्वातिसूरि	
१६			१२	आर्यश्यामाचार्य	१२	१३ (१२)		
१७	१०	आर्येन्द्रदिन्नसूरि						

१८	सुण्ण	शून्य	१३४,१४८,१५१,२३३
१९	सुन्न-	शून्य-	३०७
२०	सुरद्ध	सुराध्वन्	१०६
२१	सुरपह	सुरपथ	४९, २७४

अनु-दशाङ्कवाचकशब्दा

क्रम	प्राकृता ।	संस्कृता	गाथाङ्का
१	अगदार	अङ्गद्वार	१७२
२	अणगदसा	अनङ्गदशा	२०
३	कप्पद्दुम	कल्पद्रुम	३५५
४	दसकठकठ	दशकण्ठकण्ठ	३०२
५	दसा	दसा	१७२
६	दिसा	दिशा	२७६
७	बल	बल	२२७
८	रस	रस	१६६
९	विगइ	विकृति	७१
१०	संजम	सयम	८८
११	सभुकण्ण	शम्भुकर्ण	१४२
१२	सच्चभासा	सत्यभाषा	३५६
१३	सेअस्सस्स	श्वेताश्वाश्व	३३३
१४	हरबाहु	हरबाहु	१०५
१५	हरसव	हरश्रव/श्रवस्	१३६

अनु-एकादशाङ्कवाचकशब्दा

क्रम	प्राकृता ।	संस्कृता	गाथाङ्का.
१	अग	अङ्ग	२०,
२	इदुहर	इन्दुधर	२३३
३	ईस	ईश	१६५
४	उग्ग	उग्र	२०१
५	गण	गण	१३९, १४८,
६	गणीस	गणेश	१२७
७	गिरिस	गिरिश	१६५
८	गिरीस	गिरीश	१८६
९	भीम	भीम	२०१
१०	महीसर	महेश्वर	१४३
११	रुद	रुद्र	१३९, १४८ २७०,
१२	वीरगणहर	वीरगणधर	१४७
१३	सकर	शङ्कर	१४३
१४	सभू	शम्भू	१५३, ३६२,
१५	सड्ढपडिमा	श्राद्धप्रतिमा	१४३
१६	सव्व	शर्व	१६१
१७	सिव	शिव	१६५
१८	हर	हर	२०१

अनु-द्वादशाङ्कवाचकशब्दा

क्रम	प्राकृता ।	संस्कृता	गाथाङ्का
१	अक	अर्क	१४८
२	उवग	उपाङ्ग	३११
३	कप्प	कल्प	१६५
४	गिहिव्वय	गृहिव्रत	१५१
५	गुहक्खि	गुहाक्षि	१७५
६	चक्कि	चक्रिन्	२०१
७	तव	तपस्	१५१
८	बार	द्वादशन्	२०९,
९	वारस	द्वादशन्	११
१०	मुणिपडिमा	मुनिप्रतिमा	१५०
११	रासि	राशि	२०६
१२	सुरगुरुहत्थ	सुरगुरुहस्त	१५६
१३	सोलस-तित्थयरभव	षोडशतीर्थङ्करभव	३८६

अनु-त्रयोदशाङ्कवाचकशब्दा

क्रम	प्राकृता ।	संस्कृता	गाथाङ्का
१	अज्जजिणभव	आद्यजिनभव	१५६
२	आइमजिनभव	आदिमजिनभव	१६६
३	किरियाठाण	क्रियास्थान	१५८
४	णाहिभभव	नाभिजभव	२३६
५	तबुलगुण	तम्बुलगुण	१६७
६	तेरस	त्रयोदश	२२४
७	वसहभव	वृषभभव	२४०
८	विस्स=विस्सदेव	विश्व=विश्वदेव	३०, १५१, १५६, २१६, २२७, २३६, २३६, २४०, २४०, २४१

अनु-चतुर्दशाङ्कवाचकशब्दा.

क्रम	प्राकृता ।	संस्कृता	गाथाङ्का
१	इद	इन्द्र	३४, ३६, १६७, २४२
२	कुलकर	कुलकर	१७४
३	गुणठाण	गुणस्थान	१६७

❀१४२, १४३, १४५, १५३,१५६ १५८, १५६, १६२ १६७, २०५, २१३, २२४, २२७, २५१, २६१, २६६, २६६, २६८, २६८, २७०. २७२. २७४, २७६, २७६, २७१, २८४, २८६, ३१३, ३१५, ३१७, ३३०,

सामान्यक्रमः	पट्टपरम्पराक्रम	पट्टधरनामानि	युगप्रधानक्रम	युगप्रधाननामानि	वालभीक्रमः	माथुरीक्रमः	वाचनाचार्यनामानि	प्रभावकाचार्यादिनामानि
१८								प्रियग्रन्थसूरि
१९	११	आर्यदिन्नसूरि						
२०								शान्तिसूरि
२१			१३	पाण्डिल्यसूरि (स्कन्दिलसूरि)	१३	१४ (१३)		
२२			१४	रेवतीमित्रसूरि	१४			
२३						१५ (१४)	आर्यसमुद्रसूरि	
२४								गुणधरसूरि
२५								कालकसूरि
२६								खपुटसूरिः
२७								महेन्द्रसूरि
२८								रुद्रसूरि
२९								श्रमणसिंहसूरि
३०						१६ (१५)	आर्यमङ्गुसूरि	
३१								पादलिप्तसूरि
३२								वृद्धवादिदेवसू०
३३								सिद्धसेनसूरि
३४			१५	धर्मसूरि	१५			
३५	१२	सिंहगिरिसूरि						

सामान्यक्रमः	पट्टपरम्पराक्रम	पट्टधरनामानि	युगप्रधानक्रम	युगप्रधाननामानि	वालभीक्रम	माथुरीक्रम.	वाचनाचार्यनामानि	प्रभावकाचार्यादिनामानि
३६			१६	भद्रगुप्तसूरि	१६			
३७								श्रीतोसलिपुत्रसूरि
३८			१७	गुप्तसूरि	१८			
३९								समितसूरिः
४०	१३	श्रीवज्रस्वामी	१८		१८			
४१			१९	श्रीरक्षितसूरि	१९			
४२			२०	श्रीदुर्वलिकापुष्पमित्रसूरि	२०			
४३						१७ (१६)	श्रीनन्दिलसूरि	
४४	१४	वज्रसेनसूरि	२१		२१			
४५			२२	श्रीनागहस्तिसूरि	२२	१८ (१७)		
४६	१५	श्रीचन्द्रसूरि						
४७	१६	श्रीसामन्तभद्रसूरि						
४८	१७	श्रीवृद्धदेवसूरि						
४९								जज्जगसूरि
५०	१८	श्रीप्रद्योतनसूरि						
५१	१९	श्रीमानदेवसूरि						
५२			२३	श्रीरेवतीमित्रसूरि	२३	१९ (१८)	श्रीरेवतीनक्षत्रसूरि	
५३	२०	श्रीमानतुङ्गसूरि						

卐



सामान्यक्रम	पट्टपरम्पराक्रम	पट्टधरनामानि	युगप्रधानक्रम	युगप्रधाननामानि	वालभीक्रम	माथुरीक्रम	वाचनाचार्य-नामानि	प्रभावकाचार्यादिनामानि
५४			२४	श्रीसिंहसूरि	२४	२० (१९)		
५५								उमास्वाति
५६	२१	श्रीवीरसूरि						
५७	२२	श्रीजयदेवसूरि						
५८						२१ (२०)	स्कन्दिलाचार्य	
५९								आर्यगन्धहस्तिसूरि.
६०						२२ (२१)	हिमवन्ताचार्य	
६१			२५	श्रीनागार्जुनसूरि	२५	२३ (२२)		
६२	२३	श्रीदेवानन्दसूरि						
६३								मल्लवादिसूरि
६४						(२३)	(गोविंदाचार्य)	
६५			२६	श्रीभूतदिन्नसूरि	२६	२४		
६६	२४	श्रीविक्रमसूरि						
६७								शिवशर्मसूरि
६८								चन्द्रर्षिमहत्तर.
६९	२५	श्रीनरसिंहसूरि						
	२६	श्रीसमुद्रसूरि						
						२५	लोहित्याचार्य	

अष्टमं परिशिष्टम्

अत्र बन्धविधानप्रशस्तिग्रन्थवृत्ति-टिप्पणान्तर्गताना ग्रन्थकृन्नाम्ना सूची–

卐

सामान्यक्रम	पट्टपरम्पराक्रम	पट्टधरनामानि	युगप्रधानक्रम	युगप्रधाननामानि	वालभीक्रम	माथुरीक्रम	वाचनाचार्य-नामानि	प्रभावकाचार्यादिनामानि
७२						२६	दूष्यगणी	
७३			२७	श्रीकालिकसूरि ३	२७			
७४						२७	देवर्द्धिगणी	
७५			२८	सत्यमित्रसूरि				
७६			२९	श्रीहारिलसूरि				
७७	२७	श्रीमानदेवसूरि						
७८								श्रीहरिभद्रसूरि
७९			३०	जिनभद्रगणि				
८०	२८	श्रीविबुधप्रभसूरि						
८१	२९	श्रीजयानन्दसूरि						
८२			३१	श्रीस्वातिसूरि				
८३	३०	श्रीरविप्रभसूरि						
८४								सिद्धसेनगणि
८५			३२	पुष्यमित्रसूरि				
८६	३१	श्रीयशोदेवसूरि						
८७			३३	श्रीसम्भूतसूरि				
८८								श्रीबप्पभट्टिसूरि
८९	३२	श्रीप्रद्युम्नसूरि						

सामान्यक्रम	पट्टपरम्पराक्रम	पट्टधरनामानि	युगप्रधानक्रम	युगप्रधाननामानि	प्रभावकाचार्यादिनामानि	सर्वायु	गृहस्थपर्याय	सामान्यव्रतपर्याय	उपाध्यायपर्याय	सूरिपर्याय
१०८			३६	विनयमित्रसूरि		११५	१०	९९		
१०९					अभयदेवसूरि					
११०	४०	श्रीमुनिचन्द्रसूरि								
१११	४१	अजितदेवसूरि								
११२					वादिदेवसूरि	६२ / ८३	१८ / ६	२२		५२
११३					श्रीवीराचार्य					
११४					श्रीमल्लधारि-हेमचन्द्रसूरि					
११५					हेमचन्द्रसूरि	८४	५	१६		६३
११६					मलयगिरिसूरि					
११७	४२	विजयसिंहसूरि								
११८	४३	सोमप्रभ-मणिरत्नसूरी								
११९			४०	शीलमित्रसूरि		११०	११	२०		
१२०	४४	जगच्चन्द्रसूरि								
१२१	४५	देवेन्द्रसूरि								
१२२			४१	रेवतीमित्रसूरि		१०३	६	१६		
१२३					विद्यानन्दसूरि					
१२४	४६	धर्मघोषसूरि							२३ / ४	३०
१२५	४७	श्रीसोमप्रभसूरि				६३	११	११		४१

अनु. धातुपाठः पृष्ठाङ्क

२५ नाथृङ् उपतापैश्वर्याशी षु च २५
२६ नृश् नये ३०
२७ प्रथिप् प्रख्याने २४
२८ बुध् अवगमने ४६३
२९ बुधि मनिंच् ज्ञाने ४६३
३० बुधृग् बोधने ४६३
३१ मकुङ् मण्डने १५
३२ मङ्क भूषायाम् १५
३३ मदुङ् स्तुति-मोद-मद-स्वप्न-गतिषु १५
३४ मदेच् हर्षे १५
३५ मनिंच् ज्ञाने १५
३६ मलि मल्लि धारणे ६६
३७ महीङ् वृद्धौ पूजायाञ्च १५
३८ माक् माने ६६
३९ मृच्लृंती मोक्षणे ५५

अनु. धातुपाठ पृष्ठाङ्क

४० राक् दाने ३०, ३२
४१ राजृग् टुभ्राजि दीप्तौ ३०, ३२
४२ लाक् आदाने १५
४३ लोकृङ् दर्शने २४
४४ विंशत् प्रवेशने २४
४५ व्यधच् ताडने ५८
४६ शमू-दमूच् उपशमे २५, ५५, ६४
४७ शूर वीरणि विक्रान्तौ ३१
४८ शूर वीर विक्रान्तौ (पाणि०) ३१, ६७
४९ षम ष्टम वैक्लव्ये ५५
५० षुंगट् अभिषवे ३०
५१ ष्ठा गतिनिवृत्तौ २४
५२ सुरत् ऐश्वर्यदीप्त्योः ३०
५३ हनक् हिंसागत्योः ५८
५४ हृग् हरणे ५८

एकादशं परिशिष्टम्

अत्र बन्धविधानप्रशस्तिग्रन्थवृत्ति-टिप्पणान्तर्गतानां न्यायानां सूचि -

अनु न्याय पृष्ठाङ्क

१ अङ्काना वामतो गति ४४, ५७४
२ अनुमानव्यवस्थानात् तत्संयुक्तं प्रमाण स्यात् (जैमि०-१-३-१५) १३
३ अर्थवशाद् विभक्तिविपरिणाम ३७३, ५००
४ काकाक्षिगोलकन्याय. ३४२, ४२२, ४८२, ५६७, ५७३
५ घण्टालालान्याय ५३७, ५६६, ५७३
६ डमरुकमणिन्याय ११७, ४५८, ५२४, ५२५, ५७३
७ देहलीदीपकन्याय ४५७

अनु न्यायः पृष्ठाङ्क:

८ द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पद प्रत्येकमभिसम्बध्यते ३०
९ पदैकदेशे पदसमुदायोपचार (५), ६५, ११७, १४६, ५०२
१० पदैकदेशेऽपि पदसमुदायो वर्तते ७३
११ मामा सत्यभामा ४८, ११८
१२ भीमो भीमसेन २६, ४६, ४७, १३५, २२८
१३ मण्डूकप्लुतिन्याय ३७३
१४ सर्वे गत्यर्था ज्ञानार्था ३९
१५ सविशेषणे हि विधिनिषेधौ १२

सामान्यक्रम	पट्टपरम्पराक्रम	पट्टधरनामानि	प्रभावकाचार्यादि-नामानि	सर्वायु	गृहस्थपर्याये	सामान्यव्रतपर्याये	पन्न्यासत्वे	उपाध्यायत्वे	सूरिपर्याये	गच्छनायकत्वे
१४४	५२	रत्नशेखरसूरि		६०/६५	६/११	२०	१०	९	१५	१५
१४५	५३	लक्ष्मीसागरसूरि		८३	६	२६	५	७	३१	३०
१४६	५४	सुमतिसाधुसूरि		[illegible]	१७	७			६३	
१४७	५५	हेमविमलसूरि		[illegible]	[illegible]	२०/१०			३५	
१४८	५६	आनन्दविमलसूरि		४६	५	१८			२६	
१४९	५७	विजयदानसूरि								
१५०	५८	विजयहीरसूरिः △		६९	१३	११	१	२	४२	३०
१५१	५९	विजयसेनसूरि		६७	९	१३	२		४३	१६
१५२	६०	विजयदेवसूरि		७६	९	१२	१		५७	
१५३	६१	विजयसिंहसूरि		६४/६५	१०	१८/१९		९	२७/२८	
१५४	६२	सत्यविजयगणि		६६/६७	१४	३५	२७/२८			
१५५			आनन्दघनमुनि							
१५६			उपाध्यायविनय-विजयगणि							
१५७			उपाध्याययशो-विजयगणि							
१५८			उपाध्यायमान-विजयगणि							
१५९	६३	कपुरविजयगणि								
१६०	६४	क्षमाविजयगणि			२२					
१६१	६५	जिणविजयगणिः		४७	१८	११	१८			१७

△ वीरसवत् १६४२ वर्षे जगद्गुरुपदम् ।

सर्वायु	गृहस्थपर्याय	सामान्यव्रतपर्याय	सूरिपर्याय	युगप्रधानपर्याय	जन्म		दीक्षा		सूरित्वम्		युगप्रधानत्वम्		स्वर्गगमनम्		गाथाङ्का.
					वीरसंवत्	विक्रमसंवत्	वीरसंवत्	विक्रमसंवत्	वीरसंवत्	विक्रमसंवत्	वीरसंवत्	विक्रमसंवत्	वीरसंवत्	विक्रमसंवत्	
															५२
															५३
															५४
१०८/१०६	[illegible]	५८/४८		३८/३६	३०६/२८८		३२८/३१८				३७६/३७८		४१४/४१२		५५-५६
६८	१४	४८		३६	३५२		३६६				४१४		४५०		५७-५८
															५६
															६०
															६१
															६२
															६२
															६३
															६३
															६४
															६५
															६६
१०७	१४/१८	४५/४०		४४	३६२		४०६/४१०								६७-६९
											४५०		४९४		७०-७१

पट्टपरम्पराक्रम	पट्टधरनामानि	प्रभावकाचार्यादि-नामानि	सर्वायु	गृहस्थपर्याये	सामान्यव्रतपर्याये	गणित्वे	पन्न्यासत्वे	उपाध्यायत्वे	सूरित्वे	गच्छनायकत्वे
६६	उत्तमविजयगणि		६७	३६						
६७	पद्मविजयगणि		७०	१३	५		५२			
६८	रूपविजयगणि									
६९	कीर्तिविजयगणि									
७०	कस्तूरविजयगणि			३३						
७१	मणिविजयगणि		८३	२५						
७२	+ बुद्धिविजयगणि		७५							
७३	❀विजयानन्दसूरि		५९						६	
७४	△ विजयकमलसूरि		७५						२६	
		उपाध्याय-वीरविजय	६७					१८		
७५	विजयदानसूरि		६७	२२	१६		११		१०	८
७६	⊙ विजयप्रेमसूरि		८४	१७	१२	५	६	४	३३	३३
७७	विजयहीरसूरि			३५	२४	३	१४			
		ललितशेखरविजय		२०						
		राजशेखरविजय		१७					ॐ	

+ बुटेरायजीति नाम्ना ढुण्ढकदीक्षा विक्रमसंवत् १८८८ वर्षे, शुद्धधर्मश्रद्धान वि स १९०३ वर्षे।
❀ ढुढकदीक्षा-वि स १९१०। △ यति दीक्षा वि स १९२०, ढुण्ढकदीक्षा वि स १९२६।
स्वगुरुदत्त सिद्धान्तमहोदधिपदम्-वि स १९८७ का व ३।

——

सामान्यक्रम	पट्टपरम्पराक्रम	पट्टधरनामानि	प्रभावकाचार्यादि-नामानि	सर्वायु	गृहस्थपर्याये	सामान्यव्रतपर्याये	गणित्वे	पन्न्यासत्वे	उपाध्यायत्वे	सूरित्वे	गच्छनायकत्वे
१६२	६६	उत्तमविजयगणि		६७	३६						
१६३	६७	पद्मविजयगणि		७०	१३	५		५२			
१६४	६८	रूपविजयगणि									
१६५	६९	कीर्तिविजयगणि									
१६६	७०	कस्तूरविजयगणि			३३						
१६७	७१	मणिविजयगणि		८३	२५						
१६८	७२	+ बुद्धिविजयगणि		७५							
१६९	७३	❀ विजयानन्दसूरि		५९						९	
१७०	७४	△ विजयकमलसूरि		७५						२६	
१७१			उपाध्याय-वीरविजय	६७					१८		
१७२	७५	विजयदानसूरि		६७	२२	१६		१९		१०	८
१७३	७६	⊙ विजयप्रेमसूरि		८४	१७	१६	५	६	४	३३	३३
१७४	७७	विजयहीरसूरि			३५	२४	३	१४			
१७५			ललितशेखरविजय		२०						
१७६			राजशेखरविजय		१७					[illegible]	

+ बुदेरायजीति नाम्ना ढुण्ढकदीक्षा विक्रमसंवत् १८८८ वर्षे, शुद्धधर्मश्रद्धान वि स १९०३ वर्षे।
❀ ढुंढकदीक्षा-वि स १९१०। △ यति दीक्षा वि स १९२०, ढूण्ढकदीक्षा वि स १९२९।
⊙ स्वगुरुदत्त सिद्धान्तमहोदधिपदम्-वि स १९८७ का व ३।

सर्वायुः	गृहस्थपर्यायः	सामान्यव्रतपर्यायः	सूरिपर्यायः	युगप्रधानपर्यायः	जन्म वीरसंवत्	जन्म विक्रमसंवत्	दीक्षा वीरसंवत्	दीक्षा विक्रमसंवत्	सूरित्वम् वीरसंवत्	सूरित्वम् विक्रमसंवत्	युगप्रधानत्वम् वीरसंवत्	युगप्रधानत्वम् विक्रमसंवत्	स्वर्गगमनम् वीरसंवत्	स्वर्गगमनम् विक्रमसंवत्	गाथाङ्का
१०५	२१	४५			३१		४२८		४४१		४६४		५३३		७३-७५
															७५
१००	३५	५०			१५		४४८		४८३		५३३		५४८		७६-७७
															७७
८८	३/८	४६ ४४			३६		४६६		४६६ ५०४		५४८		५८४		७८ ८३
७५ ६५	२२ ११	४० ५१ ६०			१३		५२२ ५०२		५४४ ५३७ ५२४		५८४		५९७		८५-८६
६७ ६०	१७	३०			२० १३		५५०		५६७		५९७		६१७ ६१०		८७-८८
															८९-९०
१२८	९	११६			३		४९२		५०१		६१७		६२०		९०-९१
११६	१९	२८			६९		५७३		५९२		६२०		६८९		९२-९३
															९४
															९५
															९६
															९७
															९८
															९९-१००
१०९	७०	३०		७	५९		६३९		६५९		६८९		७४८		१०१ १०२
															१०३-१०४

त्रयोदशं परिशिष्टम्

अकारादिक्रमेण पट्टधराद्याचार्यादिनाम्ना प्रदर्शनम्

सर्वायुः	गृहस्थपर्यायः	सामान्यव्रतपर्यायः	सूरिपर्यायः	युगप्रधानपर्यायः	जन्म		दीक्षा		सूरित्वम्		युगप्रधानत्वम्		स्वर्गगमनम्		गाथाङ्काः
					वीरसंवत्	विक्रमसंवत्	वीरसंवत्	विक्रमसंवत्	वीरसंवत्	विक्रमसंवत्	वीरसंवत्	विक्रमसंवत्	वीरसंवत्	विक्रमसंवत्	
११६	१८	३०			७८		७१०		७७८		७४८		८२६		१०५-१०६
															१०७
															१०८-१०९
															११०
															१११
															११२
															११३
१११	१४	१९			७८		७९३		८०७		८२६		९०४		११४-११५
															११६
															११७
															११८
११९	१८	३२			७९		८६४		८८२		९८४			९८३	११९
															१२०
															१२१
															१२२
															१२३
															१२४
															१२५

अनु.	नाम	गाथाङ्क	पृष्ठाङ्क
१३३	विमलचन्द्रसूरि	१६०	३१४-३१५
१३४	विमलप्रभसूरि	२३१	४५६
१३५	वीरसूरि	१०८-१०९	२२० २२१
१३६	वीरसूरि'	१९६	३८९-३९१
१३७	वीराचार्य	१६८-१६९	३२५-३३२
१३८	वृद्धदेवसूरि	९६-९७	२०१-२०३
१३९	वृद्धवादिसूरि	६६	१३३-१३४
१४०	शय्यम्भवस्वामी	२१-२३	५४-५७
१४१	शाण्डिल्य(स्कन्दिल)सूरि'	५५ ५६	१०३-१०६
१४२	शिवशर्माचार्य	१२१	२३५-२३६
१४३	शीलमित्रसूरि	२०५-२०६	४२३ ४२४
१४४	शोभनमुनि	१७८	३४१ ३५२
१४५	श्यामाचार्य	४८ ५०	९८-१०१
१४६	श्रमणसिंहसूरि	६३	१२१-१२३
१४७	सत्यमित्रसूरि	१३१-१३२	२४७ २४८
१४८	सत्यविजयगणि	२८८-२८९	५२६-५२७
१४९	समितसूरि	७७	१५१-१५२
१५०	समुद्रसूरि	१२४	२३७-२३८
१५१	सम्भूतविजयसूरि	२६-२७	५९-६२
१५२	सम्भूतसूरि	१५०-१५१	२८३-२८४
१५३	सर्वदेवसूरि	१७० १७३	३३२-३३४
१५४	सर्वदेवसूरि	१८१ १८२	३६१-३ २
१५५	साधुरत्नसूरि	२५३-२५४	४७९ ४८१
१५६	सामन्तभद्रसूरि	९५	२००-२०१
१५७	सिंहगिरिसूरि	७२	१४६-१४७
१५८	सिंहसूरि	१०५-१०६	२१८-२१९
१५९	सिद्धर्षिसूरि	१६१	३१५-३२०
१६०	सिद्धसेनगणि	१४६	२८०
१६१	सिद्धसेनदिवाकरसूरि	६७-६९	१३४-१४४
१६२	सुधर्मस्वामी	१२-१३	४० ४२
१६३	सुप्रतिबद्धसूरि	४२	८९-९०
१६४	सुमतिसाधुसूरि	२६९-२७०	५०२-५०३
१६५	सुमिणमित्रसूरि	२३३ २३४	४५७-४५८
१६६	सुस्थितसूरि	४२-४३	८९-९१
१६७	सूराचार्य	१७८	३५२-३६०
१६८	सोमतिलकसूरि	२३२-२३५-२३८	४५६-४६२
१६९	सोमप्रभसूरि	२०४	४२२ ४२३
१७०	सोमप्रभसूरि	२२५-२२६	४५०-४५५
१७१	सोमसुन्दरसूरि	२५३-२५७-२५८	४७९-४८० ४८३-४८७
१७२	स्कन्दिलसूरि	१११	२२१-२२३
१७३	स्थूलभद्रस्वामी	३१ ३४	६६-७२
१७४	स्वातिसूरि	१४०	२७७-२७८
१७५	हरिभद्रसूरि	१३६-१३७	२५२-२७४
१७६	हरिमित्रसूरि	२५५-२५६	४८२-४८३
१७७	हारिलसूरि	१३३ १३४	२४९-२५०
१७८	हिमवदाचार्य	११३	२२३-२२४
१७९	हीरसूरि	२७७-२७९	५१३-५१६
१८०	हेमविमलसूरि	२७१-२७२	५०३-५०६



सर्वायु.	गृहस्थपर्याय	सामान्यव्रतपर्याय	सूरिपर्याय	युगप्रधानपर्याय	जन्म		दीक्षा		सूरित्वम्		युगप्रधानत्वम्		स्वर्गगमनम्		गाथाङ्का
					वीरसंवत्	विक्रमसंवत्	वीरसंवत्	विक्रमसंवत्	वीरसंवत्	विक्रमसंवत्	वीरसंवत्	विक्रमसंवत्	वीरसंवत्	विक्रमसंवत्	
११६	१८	२०			७८		७१०		७२८		७४८		८७६		१०५–१०६
															१०७
															१०८–१०९
															११०
															१११
															११२
															११३
१११	१४	१६			७८		७६३		८०७		८२६		९०४		११४–११५
															११६
															११७
															११८
११९	१८	२२			७९		८६४		८८२		९०४			९८३	११९
															१२०
															१२१
															१२२
															१२३
															१२४
															१२५

पञ्चदशं परिशिष्टम्

गच्छनामानि

गच्छनाम	कृत	संवत्	गाथाङ्का	पृष्ठाङ्कः
(१) निर्ग्रन्थ	सुधर्मस्वामित	वीरसंवत्पूर्वे ३०/०		(८९)
(२) कौटिक	सुस्थित-सुप्रतिबुद्धत	वीरसंवत् २९१	४२	८६
वज्रशाखा	वज्रस्वामित	„ ५४८	७८	१५३
(३) चन्द्रकुलम्	चन्द्रसूरीश्वरत	„ ६२१	९४	२००
(४) वनवासी	सामन्तभद्रसूरित	„	९५	२०१
(५) बृहद्गच्छो वा वटगच्छो वा वृद्धगच्छो वा	सर्वदेवसूरित	„ १४६४	१६५	३२३
(६) तपागच्छ.	जगच्चन्द्रसूरित.	„ १५५४	२१०	४२८

इति

पञ्चदश

परिशिष्टानि समाप्तानि



सर्वायु	गृहस्थपर्याय	सामान्यव्रतपर्याय	सूरित्वपर्याय	युगप्रधानपर्याय	जन्म		दीक्षा		सूरित्वम्		युगप्रधानत्वम्		स्वर्गगमनम्		गाथाङ्का
					वीरसंवत्	विक्रमसंवत्	वीरसंवत्	विक्रमसंवत्	वीरसंवत्	विक्रमसंवत्	वीरसंवत्	विक्रमसंवत्	वीरसंवत्	विक्रमसंवत्	
															१२६
८३	१२	६०		११	६११		६२३				६८३		६९४		१२७-१२८
															१२९-१३०
४७	१०	३०		७	९५४		९६४				९९४		१००१		१३१-१३२
१०१ / ११२	१७ / २७	३० / ३१		५४	९५४ / ९४३		९७१ / ९७०				१००१		१०५५		१३३-१३४
															१३५
													१०५५ / १२५५	५८५ / ७८५	१३६-१३७
१०४	१४	३०		६०	१०११		१०२५				१०५५		१११५		१३८-१३९
															१४०
															१४१
११०	२०	१५		७५	१०८०		११००				१११५		११९०		१४२-१४३
															१४४-१४५ △
															१४६
९८	८	३०		६०	११५२		११६०				११९०		१२५०		१४७-१४८
															१४९
७६ / ७८	१०	११		५० / ४१	१२२१		१२३१				१२५०		१३०० / १२९९		१५०-१५१
९५	७	४	८४			८००		८०७		८११				८६५	१५२-१५३
															१५४

△ वीरसंवत् ११७० विक्रमसंवत ७०० वर्षे रविप्रभसूरिणा नड्डूलपुरे नेमिचैत्ये प्रतिष्ठा विहिता।

शुद्धिपत्रकम्

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धि	शुद्धि
३५	१७	अनुजाणामि	अनुजानामि
३५	३०	त्यशीतिशब्दाः	त्यशीत्यब्दा
३५	३०	अखिल युश्च	अखिलायुश्च
३६	९	ऋपि०	ऋपि०
३६	११	जीवन	जीवनम्
३६	१६	०पुर्यां	०पुर्यां
३७	१८	०पदे	०पेदे
३७	२०	०मक्त्ये	०मक्त्यै
३७	३१	गृह्णन्ति	गृह्णन्ति
३८	२६	समुप्पण्णा	समुप्पण्णो
३९	११	श्रद्धानो	श्रद्दधानो
३९	१८	प्रदशो	प्रदेशो
३९	२२	वक्तव्व	वत्तव्व
४०	१७	विशिष्ठ	विशिष्ट
४१	८	(स०-५-१-१०३	(सि०-५-१-१०३)
४२	२	चोक्त	चोक्त
४२	१४	ऋपभ०	ऋपभ०
४२	१५	०बह्नचारी	ब्रह्मचारी
४२	१८	१२३	१-२३
४२	२१	६१	१८
४३	६	०कुश'	०कुश
४३	१६	०क्षद्र०	०क्षुद्र०
४३	१९	११	२१
४४	६	किम्भूतेभ्य ?	किम्भूतेभ्य ?
४४	७	०सिरि	०सिरिं
४४	२२	०सवच्छ०	०सवच्छ०
४५	१६	सम्पूण	सम्पूर्ण
४५	२५	व्यच्छिन्नानि	व्यवच्छिन्नानि
४५	३०	निदिष्टा	निर्दिष्टा
४६	१	०णिर्वाणा०	०निर्वाणा०
४६	५	इणक्	इणक्
४८	१	०णिर्वाणा०	०निर्वाणा०
४८	१४	५ १८	५-३-१८)
४९	५	सि० ७-२ ६)	(सि०७-२-६)
४९	१३	कवल	केवल
४९	२२	स्वर्गगमना०	शिवगमना०
४९	२५	०ठाण इ	०ठाणाइं
५०	८	५ ३ ३३)	५-३-२३)
५०	१५	६५	१६५
५०	२३	तमेव	तमेव
५१	६	ए-३-६७	५-३-८७
५१	१०	नहि	न हि
५१	१८	०त्रय	०त्रय
५१	२८	कहग	कहग
५२	३	वण्यते	वर्ण्यते
५२	२५	एतावन्नेव	एतावानेव
५३	१२	गहस्थपर्याय	गृहस्थपर्यायः
५३	१३	०मित, ०ञ्च	०मित , ०श्च
५३	२८	ऽल्प/०वप०	ऽस्य/०वर्ष०
५४	१२	०समबुहिं,	सोम्मबुहिं,
५५	२	०त्तदाने	०त्तरदाने
५५	३	यूसु०	युसु०
५५	९	किदृशीम्	कीदृशीम्
५६	१८	उद्धीरअ	उद्धरीअ
५८	२२	पृका०	पृका०
५८	२४-२५	हस/वध	हस/०वद्य-
५८	२५-२९	५३४/१४६	५६४-१४८
५९	११	स्मृता	स्मृता
६०	१३	उणा०	
६०	१४	०तोत्पेक्षा	०तोत्प्रेक्षा
६०	१७	०घाङ्घ०	०घङ्घाघ०
६१	५	जासो	जाओ
६१	१६	वह्नि०	वह्नि०
६१	२५	भन्यन्ते	मन्यन्ते
६२	१	सम्भत	सम्भूत
६३	२	नीनु०	नीनू०
६३	७	ति	त्ति
६३	८	"जेण" त्ति	"जेण"ति
६३	१०	प्रसाद	प्रासाद
६३	११	द्वारव्व	दारव्व
६३	२२	"कीरीअ"	(प्रे०) "कीरीअ
६३	२८	अखिला=समस्ता	अखिला = समस्ता.,

सर्वायु	गृहस्थपर्याये	सामान्यव्रतपर्याये	सूरिपर्याये	युगप्रधानपर्याये	जन्म		दीक्षा		सूरित्वम्		युगप्रधानत्वम्		स्वर्गगमनम्		गाथाङ्का
					वीरसंवत्	विक्रमसंवत्	वीरसंवत्	विक्रमसंवत्	वीरसंवत्	विक्रमसंवत्	वीरसंवत्	विक्रमसंवत्	वीरसंवत्	विक्रमसंवत्	
१००	१०	३०		६०	१२६०		१२७०				१३००		१३६०		१५५-१५६
															१५७
७५	१५	२०		४०	१३२५		१३४०				१३६०		१४००		१५८-१५९
															१६०
															१६१
															१६२-१६५
१०१	१२	१८		७१	१३७०		१३८२				१४००		१४७१		१६६-१६७
	४२					९३८		९८०					९६१ / १०६१		१६८-१६९
															१७०-१७३
७६	१४	१३		४९	१४४४		१४५८				१४७१		१५२०		१७४-१७५
															१७६
															१७७
															१७८
															१७८
															१७८
१०१	८	१५		७८			१४६७		१५०५		१५२०		१५९८		१७९-१८०
															१८१-१८२
															१८३

शुद्धिपत्रकम्

पृष्ठम्	पङ्क्ति	अशुद्धि	शुद्धि
३५	१७	अनुजाणामि	अनुजानामि
३५	३०	ऽयशीतिशब्दाः	ऽयशीत्यब्दा
३५	३०	अखिल युश्च	अखिलायुश्च
३६	९	ऋषि०	ऋषि०
३६	११	जीवन	जीवनम्
३६	१६	०पुर्या	०पुर्या
३७	१८	०पदे	०पेदे
३७	२०	०भक्त्ये	०भक्त्यै
३७	३१	गृहणन्ति	गृह्णन्ति
३८	२६	समुप्पण्ण	समुप्पण्णो
३९	११	श्रद्धानो	श्रद्दधानो
३९	१८	प्रदशो	प्रदेशो
३९	२२	वक्तव्वं	वत्तव्व
४०	१७	विशिष्ठ	विशिष्ट
४१	८	(स०-५-१-१०३	(सि०-५-१-१०३)
४२	२	चोक्त	चोक्त
४२	१४	ऋषभ०	ऋषभ०
४२	१५	०बह्नचारी	ब्रह्मचारी
४२	१८	१२३	१-२३
४२	२१	६१	१८
४३	६	०कृश'	०कृश
४३	१६	०क्षद्र०	०क्षुद्र०
४३	१९	११	२१
४४	६	किम्भूतेभ्य ?	किम्भूतेभ्य ?
४४	७	०सिरि	०सिरि
४४	२२	०सवच्छ०	०सवच्छ०
४५	१६	सम्पूण	सम्पूर्ण
४५	२५	व्यच्छिन्नानि	व्यवच्छिन्नानि
४५	३०	निदिष्टा	निर्दिष्टा
४६	१	०णिर्वाणा०	०निर्वाणा०
४६	५	इणक्	इणक्
४८	१	०णिर्वाणा०	०निर्वाणा०
४८	१४	५ १८	५-३-१८)
४९	५	सि० ७-२ ६)	(सि०७-२-६)
४९	१३	कवल	केवल
४९	२२	स्वर्गगमना०	शिवगमना०
४९	२५	०ठाण इ	०ठाणाइं
५०	८	५ ३ ३३)	५-३-३३)
५०	१५	६५	१६५
५०	२३	तमेव	तमेव
५१	६	ए-३-९७	५-३-८७
५१	१०	नहि	न हि
५१	१८	०त्रय	०त्रयं
५१	२८	कहग	कहग
५२	१३	वण्यते	वर्ण्यते
५२	२५	एतावन्नेव	एतावानेव
५३	१२	गहस्थपर्याय	गृहस्थपर्यायः
५३	१३	०मित, ०ब्ध	०मित, ०ब्ध
५३	२८	ऽल्प/०वप०	ऽस्य/०वर्ष०
५४	१२	०समबुहिं,	सोम्मबुहिं,
५५	२	०त्तदाने	०त्तरदाने
५५	३	यूसु०	युसु०
५५	९	किद्दशीम्	कीदृशीम्
५६	१८	उद्धीरअ	उद्धरीअ
५८	२२	पृक्का०	पृक्का०
५८	२४-२५	हस/वध	हस/०वध-
५८	२५-२९	५३४/१४६	५६४-१४८
५९	११	स्मृता	स्मृता.
६०	१३	उणा०	
६०	१४	०तोत्पेक्षा	०तोत्प्रेक्षा
६०	१७	०घाडघ०	०घडघाघ०
६१	५	जासो	जाओ
६१	१६	वह्नि०	वहि्न०
६१	२५	मन्यन्ते	मन्यन्ते
६२	१	सम्भत	सम्भूत
६३	२	नीनु०	नीनू०
६३	७	ति	त्ति
६३	८	"जेण" त्ति	"जेण"ति
६३	१०	प्रसाद	प्रासाद
६३	११	द्वारव्व	दारव्व
६३	२२	"कीरीअ"	(प्रे०) "कीरीअ"
६३	२८	अखिला=समस्ता	अखिला = समस्ता.,

	गच्छनायकपर्यायः	जन्म		दीक्षा		पन्न्यासत्वम्		उपाध्यायत्वम्		सूरित्वम्		युगप्रधानत्वम्		स्वर्गगमनम्		गच्छनायकत्वम्		गाथाङ्क
		वीरसवत्	विक्रमसवत्	वीरसवत्	विक्रमसवत्	वीरसवत्	विक्रमसवत्	वीरसवत्	विक्रमसवत्	वीरसवत्	विक्रमसवत्	वीरसवत्	विक्रमसवत्	वीरसवत्	विक्रमसवत्	वीरसवत्	विक्रमसवत्	
...		१५६६			१५७६							१५६८		१६८५				१८४-१८५
															११३५/११३१			१८६
															११७८			१८७-१९२
																		१९३
			११३४/११४३	११५२						११७४					१२२६			१९४-१९५
																		१९६
																		१९७
			११४५		११५०						११६६				१२२१			१९८-२०१
																		२०२
६३																		२०३
																		२०४
७९		१६५३	११८३	१६६४	११९४							१६८४	१२१४	१७६३	१२९३			२०५-२०६
																		२०७-२१०*
															१३२७			२११-२१२
७८		१७३८	१२६८	१७४७	१२७७							१७६३	१२९३	१८४१	१३७१			२१३-२१४
					१३०२						१३२३/१३०४				१३२७			२१५-२१६
					१३०२				१३०३/१३०५		१३२७/१३२८				१३५७			२१७-२२४
	१६		१३१०		१३७१					१३३२					१३७३	१३५७		२२५-२२९

* विक्रमसवत १२८५ वर्षे वीरसवत् १७८४ वर्षे 'महातपा' इति मेदपाट(मेवाड)नृपाल्लब्धम् ।
\+ विक्रमसवत १२०४ वर्षे [illegible] चयो प्रतिष्ठा कृता। तथा आरासणे श्रीनेमिनाम प्रतिष्ठा कृता।

शुद्धिपत्रकम्

पृष्ठम्	पङ्क्ति'	अशुद्धिः	शुद्धि
१०२	१६	०वप०	०वर्प०
१०२	२५	अणुट्टुभ	अणुट्ठुभ
१०३	१	०कायार्य-	०काचार्य-
१०३	२	मुगुट०	मुकुट०
१०३	८	०सति०	०सति०
१०३	११	०र-पि०	०र-र्पि०
१०३	१७	०सेहितो	०सेहिंतो
१०३	२८	०सवत	०सव्वत
१०४	११	घृ ग् घारणे	धृ ग् धारणे
१०४	१६	शिष्य	शिष्या
१०४	२७	सूत्रण	सूत्रेण
१०४	३१	'घृण'। हैम०	'घृण ०। हैम०
१०५	२०	षड्त्रिंशत्	षट्त्रिंशत्
१०६	३	०रूपा । युगा	०रूपाणि ।युगानि
१०६	४	०लक्षणा	०लक्षणानि
१०७	२७	श्रो०	श्री०
१०७	२८	स्वग०	स्वर्ग०
१०८	४	श्र	श्री
१०८	१६	॥६१॥	॥६१॥(पच्छाज्जा)
१०९	१३	विशुद्धि	विशुर्द्धि
१११	३१	०चार्या	०चार्यो
११२	१५	विंक्रम०	०विक्रम०
११२	३४	०वल्या०	०वल्य०
११३	४	०विष्ट	०विष्टे
११३	११	०मगिनि	०मगिनीं
११३	१३	अधीति	अधीती
११३	२४	सघेन।०दारूठो	सघेन।०दारूढो
११३	२५	धोरा	घोरा
११३	२६	०पम्राजिता	पभ्राजिना
११३	३३	षड्मि०	षड्भि०
११३	३६	०यथा	०र्यथा
११४	२	०रुठितो	०रुढितो
११४	१०	विमज्य	विभज्य
११४	१९	राजा०	गजा०
११४	२३	गर्दमी०	गर्दभी०
११४	२९	आवासान	आवासान्

पृष्ठम	पङ्क्ति'	अशुद्धि	शुद्धिः
११४	३४	गर्द०	गर्द०
११५	२	०द्दहा०	द्रहा०
११५	११	०कच्छ	०कच्छं
११५	१७	०नीर्थ०	०तीर्थ०
११५	२१	०श्वेत्	०श्चेत्
११५	२३	करु	कुरु
११५	२८	दृष्ट्वा	दृष्ट्वा
११५	३५	पष्ठया	पष्ठ्या
११६	१२	०मरें	०भरैं
११६	१७	०शङ्गारान	०शृङ्गारात्
११६	१९	०नाादको	०नादिको
११६	२७	स्थाने	स्थाने स्थाने
११६	३५	०समुद्धारि०	०समुद्धारादि०
११६	३६	०काल०	०कालक०
११६	३७	श्रीसघस्य	श्रीसघस्य
११७	१	०खपट०	०खपुट०
११७	१५	बौधा	बौद्धा
११८	१०	शिष्यांश्च	शिष्यांश्च
११९	८	०घात०	०घाट०
११९	१०	०मित्र०	०मित्र०
११९	१५	०शैन्य०।विश्रुता	०सैन्य०।विश्रुता
११९	२५	जभ्रे	जज्ञे
११९	३४	संघो	सघो
१२०	१	०आय०	०आर्य०
१२०	१३	०पुत्रवृ०।निक०	०पुत्रवृ०।०र्निक०
१२०	१७	ददो।० शत ।	ददौ । शत् ।
१२०	१८/२२	सधाय। सधो	सघाय। सघो
१२०	२३	सधेन	सघेन
१२०	२९	०सनेपु	सनेषु
१२०	३१	पृष्ठे चाभ्राम्यत्	पृष्टे चाभ्रामयत्
१२१	१२	०रासीद	रासीद्
१२१	१७	गुरू	गुरु
१२१	१८	भार्जा०	मार्जा०
१२१	२५	१२९	२२९
१२१	३१	पथ्यापूर्विका	पथ्यामा०
		[illegible]	

पृष्ठम्	पङ्क्ति	अशुद्धि	शुद्धि
१४०	१५	०शास्त्रा०	०शास्त्रा०
१४०	३५	दरस्थै०	दूरस्थै०
१४१	३	०घिप	०धिप·
१४१	६	०र्निघृष्या०	०र्निघृष्या०
१४१	१२	वायपत्येष	वाचयत्येप
१४१	३५	०यु खण्डानि	०यु खण्डानि
१४१	३७	०र्चय	०र्चय
१४२	६	अवगाहसे	अवगाहसे
१४२	१८	वोघेन	बोघेन
१४२	२२	जार्येत	जीर्येत
१४३	५	पारञ्चि०	पाराञ्चि०
१४३	८	०विहेरन्तु०	०र्विहरन्तु०
१४३	१५	०केम्य	०केभ्य
१४३	२३	देवा	देवा
१४३	३३	वृत्त/साघ्य	वृत्त|साध्र
१४४	१६	०नामेय०	०नाभेय०
१४४	२०	०मिमन्त्र्या०	०भिमन्त्र्या०
१४४	२७	स वादीत	सावादीत्
१४४	२६	सद्गति	सद्गर्ति
१४५	१	०वृत्यु०	०वृत्त्यु०
१४५	३	मह्य०	जघन०
१४५	५	मह्य०	जहण०
१४५	२८	केचना आ०	केचना०
१४६	१	०सिरि०	०गिरि०
१४६	१४	०ह्यिय०	०हिय०
१४८	४	चोक्त/विजय०	चोक्त/विनय०
१४८	५	०रदि०	०रादि०
१४८	२२	३द्धा ४ चार्यो- ५पाध्याय-साधु	द्धा-३ चार्यो-४- पाध्याय-५ साधु
१४९	१७	०पूर्वाघ०	०पूर्वार्ध०
१४९	२७	वर्पे,	वर्षे,
१५०	११	वय	वय
१५०	१५	चतु	चतु
१५०	२३	०द्धोषणा	०द्घोषणा।
१५२	६	मद्ध०	मुद्ध०
१५४	६	०रूपणाद्रपक०	रूपणाद्रूपक०
१५४	२८	हिडो	हिंडो
१५५	१	वर्णनम	वर्णनम्
१५६	१४	मोक्ख	मोक्ख
१५६	२४	वज्र०	वज्र०
१५७	२३	त्रिवापिंवो	त्रिवार्पिको
१५७	३०	एवमुपदेशपद- वृत्तावपि	
१५९	५	समन्त्रिय	समन्त्रिय
१५६	९	०सङग्रह०	०सङ्ग्रह०
१५९	२६	पाण्मासिक	पाण्मासिक
१६१	३	सघ	सघ
१६३	१६	१२८	२१८
१६४	६	२४४	२४७
१६६	१	वध०	वध०
१६६	३४	न्यध तू	न्यधात्
१६७	२०	व	वर्पे
१६९	१	०प्रमा०	०प्रमा०
१७०	२५	युजु	यजु
१७१	१८	तथावाल०।	तथा बाल०
१७१	२२	श्रीदुप्ष०	श्रीदुष्प०
१७१	२८	निर्यामण	निर्यामण
१७२	३३	दशपूर्वी	दशपूर्वी
१७५	१	०पुष्फ०	०पुष्प०
१७५	५	१८०	१६०
१७५	१६	।।८७।।	।।८७।। (पच्छाज्जा)
१७५	१८	।।८८।।	।।८८।। (पच्छाज्जा)
१७७	१०	पूर्वविदा	पूर्वविदो
१७७	१३	०ऽन्तर	०ऽनन्तरं
१७७	२०	०तद्वय०	०तद्द्वय०
१७८	४	उन०	ऊन०
१७९	१६-१७	अत्रातरे	अत्राऽन्तरे
१७७	३०	गाथा	गाथा
१८०	३	०यस्स	०यस्य
१८१	२६	०पत्ति	०पत्ति
१८२	२६	०पर्यार्ये	०पर्याये
१८३	२	त्वेतद	त्वेतद

जन्म		दीक्षा		पन्न्यासत्वम्		उपाध्यायत्वम्		सूरित्वम्		गच्छनायकत्वम्		स्वर्गगमनम्		
वीरसंवत्	विक्रमसंवत्	वीरसंवत्	विक्रमसंवत्	वीरसंवत्	विक्रमसंवत्	वीरसंवत्	विक्रमसंवत्	वीरसंवत्	विक्रमसंवत्	वीरसंवत्	विक्रमसंवत्	वीरसंवत्	विक्रमसंवत्	गाथाङ्क
	१४५७/१४५२		१४६३		१४८३		१४९३		१५०२		१५०३		१५१७	२६५-२६६
	१४६४		१४७०		१४९९		१५०१		१५०८		१५१७		१५४७	२६७-२६८
	१४९४		१५११						१५१८				१५८१	२६९-२७०
	१५२०/१५२२		१५२८/१५३८						१५४८				१५८३	२७१-२७२
	१५४७		१५५२						१५७०				१५९६	२७३-२७४
	१५५३		१५६२						१५८७				१६२२	२७५-२७६
	१५८३		१५९६		१६०७		१६०८		१६१०		१६२०		१६५२	२७७-२७९
	१६०४		१६१३		१६२६				१६२८		१६५८		१६७१	२८०-२८१
	१६३४		१६४०		१६५५			१६५६	१६५६				१७१३	२८२-२८४
	१६४४		१६५४				१६७२/१६७३		१६८१/१६८२				१७०८/१७०९	२८५-२८७
	१६८०		१६९४		१७२९								१७५६/१७५७	२८८-२८९
														२९०
														२९०
														२९१
														२९१
			१७२०										१७७५	२९२-२९३
	१७२२		१७४४										१७८६	२९४-२९५
	१७५२		१७७०		१७८१						१७८२		१७९९	२९६-२९७

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
२१४	३२	०वेदा०	०वेदा०
२१४	३५	०गुज्झितं	०मुज्झित
२१४	३६	दैवात्	दैवाद्
२१५	१०	०भङ्गीमि०	०भङ्गीमि०
२१५	१२	०मघुना	०मधुना
२१५	१३	०मुक्स्वा	०मुक्त्वा
२१६	११	हर्पो०	हर्षो०
२१६	१३	प्राज्ञ०	प्राज्ञ०
२१६	३७	द्रत०	द्रुत०
२१७	७	जगो	जगौ
२१७	१५	०सौघ	सौध
२१८	२०	शोघ्य	शोध्य
२१८	२५	पथ्यापूर्विका-दिचपलार्या-	
२१८	२६	(पच्छापुव्विगा-इचवलाज्जा)	(पच्छाज्जा)
२१९	३	०मुगट०	०मुकुट०
२१९	६	इस्यादि	इत्यादि
२१९	२७/२८	पन्यास०/वर्पे	पन्न्यास०/वर्षे
२२०	१२/१४	(अणुट्टुभ)	(अणुट्टुभ
२२०	१८	मोलि०/मुगुट०	मौलि०/मुकुट०
२२१	१	भत	भृत्
२२१	५	रिन्द्रवज्रा	रुपजाति
२२१	९	(इदवज्जा)	(उवजाई)
२२१	२२	०चार्य	०चार्यं
२२२	१२	खदिला०	खदिला०
२२२	२४	जन	जिन
२२२	३३	सजानि	सजातानि
२२३	११	०स्कन्द्रिल० पथ्यार्या०	०स्कन्दिल० मुखचपलापथ्यार्या०
२२३	१३	।।११२।।	।।११२।। (मुखचवलापच्छाज्जा)
२२३	२६	।।११३।।	।।११३।।(पच्छाज्जा)
२२४	२	विक्रान्त	विक्रान्त.
२२६	४,५	पथ्यापूर्विका-न्तचपलार्या	

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
२२६	८	०मये	०गये
२२६	१०	पच्छापुव्वि-गातचवलाज्जा)	(पच्छाज्जा) ।
२२६	२५	०रूपा	०रूपा
२२७	१७	०वरा	०वरो
२२७	२४	०पेक्षा	०प्रेक्षा
२२९	८	मल०	मल्ल०
२३१	१६	०पूर्वर्पि०	०पूर्वर्षि०
२३१	३२	०चार्ये०	०चार्ये०
२३१	३६	ताकिकाऽभवन्	तार्किका अभवन्
२३२	१	बध०	वध०
२३२	९	०पद	०पदवृत्ता
२३३	४	।	।।११७।।
२३३	२३	जलहरा	जलहरी
२३३	२४	निल०	नील०
२३४	१	०वणनम्	०वर्णनम्
२३४	३	अप्राप्नोत	अवाप्नोत्
२३४	५	तत्त्वा /०र्था	तत्त्वानि/०र्थानि
२३४	१३	अलश्चकार	अलञ्चकार
२३६	१७	केचना	केचन
२३६	१३	(कोल)	(कोलो)
२३६	२५	नामान	नाम्न
२३७	६	शादुल०	शार्दूल०
२३७	११	सद्‌ुल०	सद्दूल०
२३७	१६	गोत्राक्ष	गोत्रोक्ष०
२३७	२५	तान्	कास्तान्
२३८	११	।	।।१२४।।
२३८	२४	।	।।१२५।।
२३९	१६	।	।।१२६।।
२३९	२०	०विमाणे	०सुपव्वे
२४०	२	०विमानानि सुपर्वाणो	
२४०	१८	वर्पाणि	वर्षाणि
२४०	२१	।	।।१२७-१२८।।
२४०	२६	सन्यते	मन्यन्ते
२४१	५	भद्द०	भद्द०
२४१	१२	०णाम०	०नाम०

जन्म		दीक्षा		गणित्वम्		पन्न्यासत्वम्		उपाध्यायत्वम्		सूरित्वम्		गच्छनायकत्वम्		स्वर्गगमनम्		गाथाङ्काः
वीरसंवत्	विक्रमसंवत्	वीरसंवत्	विक्रमसंवत्	वीरसंवत्	विक्रमसंवत्	वीरसंवत्	विक्रमसंवत्	वीरसंवत्	विक्रमसंवत्	वीरसंवत्	विक्रमसंवत्	वीरसंवत्	विक्रमसंवत्	वीरसंवत्	विक्रमसंवत्	
	१७६०		१७९६												१८२९	२९८-२९९
	१७९७		१८०५				१८१०								१८६२	३००-३०२
																३०३
			१८६१													३०४-३०५
	१८३७		१८७०													३०६-३०७
	१८५२		१८७७												१९३५	३०८-३०९
	१८६३		१९१७												१९३८	३१०-३११
	१८९३		१९३७								१९४३				१९५२	३१२-३१३
	१९०८		१९३२								१९५७				१९८२	३१४-३१५
	१९०८		१९३५						१९५७						१९७५	३१६-३१७
	१९२४		१९४६				१९६२				१९८१		१९८३		१९९१	३१८-३२३
२४१०	१९४०		१९५७		१९७६		१९८१		१९८७		१९९१		१९९१		२०२४	३२५-३४१
२४२३	१९५३		१९८८		२०१२		२०१५				२०२९					३४३-३५१
२४६०	१९९०	२४८०	२०१०													३५२-३५६
२४६३	१९९३		२०१०													३५७-३६०

पृष्ठम्	पङ्क्ति	अशुद्धि	शुद्धि
२७७	१८-१९	पथ्यापूर्विका ऽऽदिचपलार्या-	
२७७	२०	०पिङ्ग०	०पिङ्ग०
२७७	२२	(पच्छापुव्विगा मुहचवला	(पच्छा
२७८	१८	तत्त्वा जीवादयो	तत्त्वानि जीवादीनि
२७९	३	०पेक्षा०	०प्रेक्षा०
२८०	६	दार्शिनिकेपु	दार्शनिकेषु
२८०	६	मुगट०	मुकुट०
२८०	१०	मुगटा	मुकुटा
२८४	२८	पथ्यापूर्विकादि-चपल मा०	पथ्यामा०
२८४	३१	(मुहचवलापच्छाज्जा)	(पच्छाज्जा)
२८५	१४	इत्याचि	इत्यचि
२८६	१०	प्र०	प्रे०
२८७	२१	०चैत्रशृङ्ग०	०चैत्यशृङ्गा०
२९०	१८	सघे०	सघे०
२९१	२५	चक्र	चक्रे
२९४	२३	मानुप	मानुपं
२९४	२८	यस्ते	यैस्ते
२९५	७	घन०	घन०
२९५	१४	बहिस्थाद्	बहिरस्थाद्
२९६	५	त	त
२९७	१०	०गद्रदा	०गद्गदा
२९९	५	०बलीब०	०क्लीब०
२९९	८	०बहिस्कृत०	०बहिष्कृत
२९९	६	क्षण	क्षूण
३०३	८।११	०दुधा।०वति	०दुघा।०विति
३०३	१२	बोघ०	बोध०
३०४	८	०मीश	०मीशा
३०४	२३	शीध्र०	शीघ्र०
३०४	२४	पुर्वा०	पूर्वा०
३०४	३०	०बाहुलक्ष्म्या	०बाहु लक्ष्म्या.
३०४	३२	स्त्री०	स्त्री०
३०४	३६	५७७	५७८
३०६	१७	समो०	सभो०

पृष्ठम्	पङ्क्ति	अशुद्धिः	शुद्धि
३०६	३१	०मिक्ष	०मिचु
३०६	३५	मुक०	मुक्त०
३०८	१६	तत्कि	तत्किं
३१०	२२	द्रमा०	द्रुमा०
३१५	६	पथ्यापूर्विका मुख-चपलामार्या	पथ्यामार्या
३१५	१२	(पच्छापुव्विगा मुह-चवलाज्जा)	(पच्छाज्जा)
३१५	२०	०क्रमणाथ०	०क्रमणार्थ०
३१८	१६	शङ्गार०	शृङ्गार०
३१६	५	चक्ष०	चक्षु०
३१९	१६	ति	इति
३२०	१७	तद्वृत्तं	तद्वृत्तं
३२१	२६	हेम-	हैम-
३२२	८	शार्दुल०	शार्दूल०
३२२	१५	(सद्दुल०	(सद्दूल०
३२२	१६	चतुषष्टि०। आर्हच्छासने	चतु षष्टि० अर्हच्छासने।
३२२	२४	तत्त्वा	तत्त्वानि
३२२	२५	ऽऽत्मका।०मिते	ऽऽत्मकानि।०र्मिते
३२२	२६	त्ति	ति
३२४	२३	अतिष्ठपत्	अतिष्ठिपत
३२५	२०	णमिओ	भुवणमिओ
३२६	१४	कै वाम०	कैर्वाम०
३२६	२१	०धना०	०धान०
३२७	४	पञ्च शत्	पञ्चाशत्
३२८	२१	ऽवदथ	ऽवददथ
३२९	१	०वर्णम्	०वर्णनम्
३३०	७	द्रत	द्रुतम्
३३०	१५	श्रीभान्	श्रीमान्
३३२	१०	०तम	०त्तम
३३२	२७	०कुर्वन्तीति	०कुर्वन्तीति
३३३	६	वत	वत्
३३३	६	रेरव	रेख
३३३	१४	पथ्यापूर्विकयान्त-चपलया	पथ्यया

जन्म		दीक्षा		गणित्वम्		पन्न्यासत्वम्		उपाध्यायत्वम्		सूरित्वम्		गच्छनायकत्वम्		स्वर्गगमनम्		गाथाङ्क
वीरसंवत्	विक्रमसंवत्	वीरसंवत्	विक्रमसंवत्	वीरसंवत्	विक्रमसंवत्	वीरसंवत्	विक्रमसंवत्	वीरसंवत्	विक्रमसंवत्	वीरसंवत्	विक्रमसंवत्	वीरसंवत्	विक्रमसंवत्	वीरसंवत्	विक्रमसंवत्	
	१७९०		१७९६												१८२६	२९८-२९९
	१७९२		१८०५				१८१०								१८९२	३००-३०२
																३०३
			१८६१													३०४-३०५
	१८३७		१८७२													३०६-३०७
	१८५२		१८७७												१९३५	३०८-३०९
	१८६३		१९१२												१९३८	३१०-३११
	१८९३		१९३२								१९४३				१९५२	३१२-३१३
	१९०८		१९३२								१९५७				१९८३	३१४-३१५
	१९०८		१९३५						१९५७						१९७५	३१६-३१७
	१९२४		१९४६				१९६२				१९८१		१९८३		१९९१	३१८-३२३
२४१०	१९४०		१९५७		१९७६		१९८१		१९८७		१९९१		१९९१		२०२४	३२५-३४१
२४२३	१९५३		१९८८		२०१२		२०१५				२०२१					३४३ ३५१
२४६०	१९९०	२४८०	२०१०													३५२ ३५६
२४६३	१९९३		२०१०													३५७ ३६०

पृष्ठम्	पङ्क्ति	अशुद्धि	शद्धि
३७५	८	(पच्छापुठिवगाइ चवलाज्जा)	(पच्छाज्जा)
३७५	१७	०पघ्य०	०पद्य०
३७६	१३	०भूत०	०भूद०
३७६	२२।२३	पथ्यापूर्विकादि चपलार्या०	पथ्यार्या०
३७६	२५	०विवस्खासो	०विवक्खाओ
३७६	२८	(पच्छापुठिवगा मुहचवलाऽज्जा)	(पच्छाउज्जा)
३७७		स्वरचिते।० ने	रचितश्री०।०नै
३७८	१६	वर्ण०	वर्ग०
३७६	१४	०रुद्दे	०गिरिसे
३७९	२४	वृतान्तो	वृत्तान्तो
३७६	२६	०ट्टावली/०चार्ये	०पट्टावली०चार्यै
३८२	१५	कथ	कथं
३८६	२६	श्रत्वे०	श्रुत्वे०
३६०	३३	०दुक्चे०	०दुक्चै०
३६१	८	दृष्टि	दृष्टि०
३६२	१४/१५	पथ्यार्या-पथ्यर्या-पूर्विकजघनचपलार्यापथ्यार्या	
३६२	२०	(पच्छापुठिवगा तचवलाज्जा)	(पच्छाज्जा)
३६३	५	०वेता	०वेत्ता
३९३	१०	श्ल काश्च	श्लोकाश्च
३६३	१८	शब्दानुश सनम् ,	शब्दानुशासनम्
३६३	१६	०भप०	०भूप०
३६३	२८	प्रकट्यन्	प्रकटयन्
३६४	४	ऽङ्का प्रतिलोम्येन	ऽङ्का प्रातिलाम्ये
३६४	५	वय	वय
३६४	१६	०सर्पण्यामवसप०	०सर्पिण्यामवसर्पि०
३६४	२४।२५	एकचत्वारिंशद् ४१ त्रिषष्टि ६३/।द्वाषष्टि ६२	चतुरशीति ८४
३९५	१६	०त्तर्य०	०त्तूर्य०
३९५	३७	०मन्यत्	०मन्यत
३९७	३	ग्रन्थान	ग्रन्थान्

पृष्ठम	पङ्क्ति	अशुद्धि	शुद्धि
३९७	२२	०मष्ट ध्या०	०मष्टाध्या०
३६७	२२	०पार यणो०	०पारायणो०
३९७	२३	त्रिद्गूभि	विद्गद्धि
३६८	३	पृच्छाना	प्रच्छना
३६८	२८	चक्ष०	चक्ष०
३६६	६	कीत्यन्ते	कीर्त्यन्ते
४००	२०	शिखरो	शेखरो
४०१	११	०विन्द्वशि०	विद्वन्शि०
४०१	१२	श्रा व०	श्रीदेव०
४०	११३	।०प्रामाद	०प्रासाद
४०१	३३	मासा०	०भासा०
४०१	३६	०व्यव०	०व्यय०
४०२	३५	भिक्षुनिजा०	भिक्षुर्निजा०
४०४	१३	घवल	धवलं
४०४	३१	०भिघया	०भिधया
४०५	१	०कुमाल०	०कुमार०
४०५	६	कथ	कथ
४०५	२७	द्राक्ष	द्राक्ष्
४०५	३६	भाजना०	भोजना०
४०६	१०	वचनान्तर	वचनानन्तरं
४०६	२२	०लोचन	०लोचन
४०७	२१	पैषीत्	प्रैषीत्
४०७	३२	श्रत्वा	श्रुत्वा
४०८	६	इदानी	इदानीं
४०८	६	०धुने०	०धुनै०
४०६	३२	ऽऽपि	ऽपि
४१०	२६	जतं	जितं
४१०	३२	०णाया	०णायातः
४११	१०	०गृह्कम०	०गृहकर्म०
४११	२०	मास	मास
४११	२७	०कस्य०	०कस्याऽ०
४१२	७	०धायैता	०धार्यताम्
४१२	२०	०शेवल०	०शेवाल०
४१२	२६	वृत्त	वृत्त
४१३	३७	प्रतिष्ठिपत्	प्रातिष्ठिपत्

अनु	नाम	गाथाङ्क	पृष्ठाङ्क
६२	देवेन्द्रसूरि'	२११-२१२	४२८ ४३०
६३	धर्मघोषसूरि	१७९-१८०	३६०-३६१
६४	धर्मघोषसूरि	२१७-२२१, २२४	४३७ ४५०
६५	धर्मर्षिसूरि'	१५८ १५९	३१३-३१४
६६	धर्मसूरि'	७०-७१	१४५-१४६
६७	नन्दिलसूरि'	८९	१९०-१९५
६८	नरसिंहसूरि	१२३	२३६-२३७
६९	नागहस्तिसूरि'	९२-९३	१९८-१९९
७०	नागार्जुनसूरि'	११४-११५	२२६-२२७
७१	नेमिचन्द्रसूरि	१८३	३६२-३६७
७२	पद्मतिलकसूरि	२३२	४५६-४५७
७३	पद्मविजयगणि	३००-३०२	५३५ ५३६
७४	परमानन्दसूरि	२३१	४५६
७५	पादलिप्तसूरि	६५	१२५-१३३
७६	पुष्पमित्रसूरि	१४७-१४८	२८०-२८१
७७	प्रद्युम्नसूरि	१५४	३१०-३११
७८	प्रद्योतनसूरि	९८	२०३-२०४
७९	प्रभवस्वामी	१८ २०	५०-५४
८०	प्रियग्रन्थसूरि	५२	१०१-१०२
८१	फल्गुमित्रसूरि'	१७४-१७५	३३४-३३६
८२	बप्पभट्टिसूरि	१५२-१५३	२८४ ३१०
८३	बुद्धिविजयगणि	३१०-३११	५४१-५४१
८४	भद्रगुप्तसूरि	७३-७५	१४७-१४९
८५	भद्रबाहुस्वामी	२८-३०	६२-६६
८६	भुवनसुन्दरसूरि	२६०	४८४
८७	भूतदिन्नसूरि	११८-११९	२३३-२३४
८८	मणिरत्नसूरि	२०४	४२२-४२३
८९	मणिविजयगणि	३०८-३०९	५३९-५४०
९०	मलधारिहेमचन्द्रसूरि	१९७	३९१-३९२
९१	मलयगिरिसूरि	२०२	४१९-४२१
९२	मल्लवादिसूरि	११७	२२८-२३१
९३	महेन्द्रसूरि'	६२	११७-१२१
९४	महेन्द्रसूरि'	१७८	३४१-३५२
९५	माढरसम्भूतसूरि	१५५-१५६	३११ ३१२
९६	मानतुङ्गसूरि	१०३-१०४	२१२-२१८

अनु॰	नाम	गाथाङ्क	पृष्ठाङ्कः
९७	मानदेवसूरि (आद्य)	९९-१००	२०४-२१०
९८	मानदेवसूरि (द्वितीय)	१३५	२५० २५२
९९	मानदेवसूरि (तृतीय)	१५७	३१२-३१३
१००	मुनिचन्द्रसूरि	१८७-१९१	३७०-३७५
१०१	मुनिसुन्दरसूरि	२६०-२६४	४८८-४९५
१०२	मेघविजयगणिः		५२९
१०३	यशोदेवसूरिः	१४९	२८१-२८२
१०४	यशोभद्रसूरि	२४-२५	५७ ५९
१०५	यशोभद्रसूरि	१८३	३६२-३६३
१०६	रत्नशेखरसूरिः	२६५ २६६	४९५-४९८
१०७	रविप्रभसूरि	१४४ १४५	२७८ २७९
१०८	रुद्रदेवसूरि	६३	१२१-१२३
१०९	रूपविजयगणि	३०३	५३६-५३७
११०	रेवतिमित्रसूरि	२१३-२१४	४३२-४३३
१११	रेवतीमित्रसूरि	५७-५८	१०६-१०७
११२	रेवतीमित्रसूरि	१०१-१०२	२१०-२११
११३	लक्ष्मीसागरसूरि	२६७-२६८	४९८-५०१
११४	लोहित्याचार्यः	१२५	२३८-२३९
११५	वज्रसेनसूरिः	९०-९१	१९६-१९८
११६	वज्रस्वामी	७८ ८३	१५३-१६७
११७	वाचकस्वातिसूरि	४७	९८
११८	वादिदेवसूरि	१९४-१९५	३७६-३८८
११९	वादिवेतालशान्तिसूरि	१७७	३३७-३४१
१२०	विक्रमसूरि	१२०	२३४-२३५
१२१	विजयकमलसूरि.	३१४-३१५	५४४-५४५
१२२	विजयचन्द्रसूरि		४३०-४३२
१२३	विजयदानसूरि	३१८-३२३	५४७ ५४९
१२४	विजयदेवसूरि'	२८२-२८४	५१९-५२२
१२५	विजयप्रेमसूरि'	३२५-३४१	५५०-५६२
१२६	विजयसिंहसूरि	२०३	४२१-४२२
१२७	विजयसिंहसूरि	२८५-२८७	५२२-५२५
१२८	विजयसेनसूरि	२८०-२८१	५१६-५१८
१२९	विजयानन्दसूरि.	३१२-३१३	५४१-५४४
१३०	विद्यानन्दसूरि.	२१५-२१६	४३४-४३७
१३१	विनयमित्रसूरि	१८४-१८५	३६३-३६४
१३२	विबुधप्रभसूरिः	१४०	२७६

पृष्ठम्	पङ्क्ति	अशुद्धि	शुद्धि
४५१	८	ओस	असौ
४५१	२२	श्रुतात०	श्रुनाति०
४५२	१८	०कल्यण०	०कल्याण०
४५२	२३	अथै०	अर्थै०
४५२	२५	अजात	अजाते
४५३	७	०रेञ्जन	०रञ्जन
४५३	१०	कु कणा	कु कुणा
४५३	२०	मय,	मयम्,
४५३	२१	अम्बत्र०	अम्ब्त्र०
४५३	२१	०दम्ब्र०	०दम्ब्त्र०
४५४	६	जियाणा	जियाण
४५४	६	इआ	रुआ
४५४	१६	अञ्ज	अज्ज
४५४	२६	सुरग	सुरगइ
४५४	२८	विहित,	विहितम्,
४५५	१४	श्रुत=	श्रुतम्=
४५४	१६	साध०	सौध०
४५५	२४	सङख्याका	सङ्ख्याका
४५६	४	अस्मिंल्लोके	अस्मिँल्लोके
४५६	१८	०भूत	०ऽभून
४५६	२७	१३७८३	१३७३
४५७	१	प्रेम	प्रेमप्रभा
४५७	२४	"सिरि०	(प्रे०) "सिरि०
४५८	१	०रिं०	०रिंश०
४५८	७	क्ष्र्-सिग्ध-	रुक्ष स्निग्ध-
४५८	११	१८१३	१८२३
४५८	२६	१६४१	१८४१
४५९	५	०त्यघी०	०त्यभिधी०
४५६	१६	ससारमेव	ससार एव
४६०	२६	श्वेट०	श्वेत०
४६१	१८	यस्मिं०	यस्मिँ०
४६१	३०	विहित उ	विहितमु
४६२	८		अथ मुखचपला पथ्यार्यामाह-
४६२	१०	॥२३८॥	॥२३८॥ (मुहच-वला-पच्छज्जा)

पृष्ठम्	पङ्क्ति	अशुद्धि	शुद्धि
४६३	८	०रगव०	०रवग०
४६४	१६	०मत्र०	०मय०
४६४	२०	१४२३	१४२३
४६४	३०	शङ्गार	श्रृङ्गार
४६६	१८	स्वगम्	स्वर्गम्
४६६	२५	१४४२	१४४१
४६७	३	-त्रिशत-	-त्रिशत-
४६७	१४	सङ्गा०	सङ्घा०
४६७	२३	०भासिते०	०भाषिते०
४६७'८	३०\३	०कला\(०कला)	०कल ०अलो)
४६८	१०	सूयु प०	सूयु पा०
४६८	११	पन्यास साध्वाभि	पन्न्यास साध्वादिभि
४६८	११	०सुन्द०	०सुन्दर०
४६८	२३	पुर्णेन्दु०	पूर्णेन्दु०
४६६	२६	०हिग०	०हिग्०
४७०	३१	०निक०	०निकट०
४७१	२०	-सघयण-	-सहनन-
४७२	२१	-निस्पृह -	-नि स्पृह
४७३	४	भव्य०	भव्या०
४७७	८	०पदे	०पदवृत्तौ
४७८	१८	त्रिकाला०	त्रिकाल०
४७९	२	कीति	कीर्ति
४७६	२४	०दिषु	०दिषु
४७९	३०	०रनत्न०	०रत्न०
४८०	८	तुर्या	तुर्या
४८०	१२	०माक	०माक्
४८१	६	०स्फुर्ज्जत्प्र०	०स्फूर्ज्जत्प्र०
४८१	१०	०ऽपर०\०	०ऽपार०
४८१	१०	०वादिन	०द्वादिन
४८१	१६	०वारिदो० तैषूरुचै प०	०वारिदे० तेषूरुचै
४८१	१८	०यधते	०यथते
४८१	२२	०गौतम०	०गौतम०
४८२	२०	१ ३.३	१.२ ३
४८३	१२	हरिमिन	[illegible]

चतुर्दशं परिशिष्टम्

अनुक्रम	संवत		मतम्	स्थापक	पृष्ठाङ्क
१	वीरसवत्	पूर्वे १६ वर्षे	बहुरत	प्रथमनिह्नवो जमालि	३८-३९
२	,,	,, १४ ,,	एकान्त्यप्रदेशजीव	द्वितीयनिह्नवस्तिष्यगुप्त	३९-४०
३	वीरसवत्	२१४ ,,	अव्यक्तवाद (सामुच्छेदिक)	तृतीयनिह्नव आषाढाचार्य-शिष्यगण	७३-७४
४.	,,	२२० ,,	क्षणिकवाद	चतुर्थनिह्नवो-ऽश्वमित्र	८७-८८
५.	,,	२२८ ,,	युगपत्क्रियाद्वयानुभववाद	पञ्चमनिह्नव आर्यगङ्ग	८८-८९
६.	,,	५४४ ,,	त्रैराशिकमतम्	षष्ठनिह्नवो रोहगुप्तः	१५०-१५१
७	,,	५८४ ,,	'स्पृष्टमबद्धं कर्म' 'अपरिमाणकृत प्रत्याख्यान' इति मतम्	सप्तमनिह्नवो गोष्ठामाहिल	१७६-१७७
८	,,	६०९ ,,	बोटिकमतम् (दिगम्बरमतम्) (क्षपणक)	शिवभूति	१७७-१७८
९.	विक्रमसवत्	११३० त ११५० वर्षमध्ये	षट्कल्याणकमतम् (विधिसङ्घ)	जिनवल्लभ (कूर्चपुरीयगच्छवासी चैत्यनिवासी)	३७०
१०	विक्रमसवत्	११५९ वर्षे	पौर्णिमीयकमतम्	चन्द्रप्रभाचार्य (बृहद्गच्छान्निर्गत)	३७५
११.	,,	१२०४ ,,	खरतरमतम् (औष्ट्रिकनाम) (चामुण्डिकनाम वा)	जिनदत्तसूरि	३७६
१२.	,,	१२१३ ,,	आञ्चलिकमतम् (स्तनिकपक्ष)	नरसिंह (पौर्णमीयकान्निर्गत)	३७६
१३.	,,	१२३६ ,,	सार्धपौर्णिमीयकमतम्	सुमतिसिंहसूरि (पौर्णमीयकपक्षान्निर्गत)	३७६
१४.	,,	१२५० ,,	आगमिकमतम् (त्रिस्तुतिकमतम्)	शीलगण-देवभद्राचार्यौ	३७६
१५	,,	१५०८ ,,	लुङ्कामतम् (लुम्पाकमतम्)	लुम्पकाख्यो लेखक	४९८
	,,	१५३३/(१),,	,, ,, (प्रतिमाद्वेषी)	भाणाख्य प्रथमो वेषभृत्	४९८
१६	,,	१५६२/४ ,,	कटुकमतम् (कडुआ) (साधुद्वेषी)	कटुकनामा गृही	५०६
१७	,,	१५७० ,,	बीजामतीमतम्	बीजाख्य साधुवेषभृत् (लुम्पकान्निर्गत)	५०६
१८	,,	१५७२ ,,	पायचन्दगच्छ (पाशचन्द्रमतम्)	उपाध्यायपार्श्वचन्द्र. (नागपुरीयतपागणान्निर्गत.)	५०६
१९	,,	१७०९ ,,	ढूण्ढकमतम् (बावीशटोला)	लवजीवकः (लुम्पकान्निर्गत.)	५२२
२०	,,	१८१८ ,,	तेरापन्थ (अनुकम्पाविरोधी)	भीखमजी (ढूण्ढकान्निर्गत)	५३५

वीरसवत् ८८२ वर्षे चैत्यवासिन । वीरसवत् १६९२ वर्षे शत्रुञ्जयोद्धारो बाहडेन कृत. । विक्रमसवत १५८२ वर्षे क्रियोद्धार आनन्दविमलसूरिणा विहित ।

विशेषजिज्ञासुना विशेषावश्यकभाष्य-प्रवचनपरीक्षाप्रमुखा ग्रन्था अवलोकनीया ।

॥ शुद्धिपत्रकम् ॥

पृष्ठम्	पङ्क्ति	अशुद्धि	शुद्धि
१	२२	शादूर्ल०	शार्दूल०
२	१८	चतुस्त्रिश०	चतुस्त्रिंश०
२	२१	०काडि०	०गाडि०
२	२५	घम्मध०	घम्मम०
३	२	पार्श्व	पार्श्वे
३	३	५२२)	५२३)
३	५	०मावनिति	०भावानिति
३	१७	०सन्वा०	०सत्त्वा०
३	२२	ते	तै
५	३७	०कत्	०कृत्
७	३	सवत्ते	सघत्ते
९	२१	०र्वयै०	०षेयै०
९	२२	पूर्वकेन	पूर्वकेण
११	१२	०गोरव०	०गौरव०
१२	१३	वयति	वयव्यति
१३	२०	०नेत०	नैत०
१४	२५	शास्त्र०	शास्त्र०
१५	७	मङ्ग	मङ्गल
१५	२९	श्रोतृणा	श्रोतॄणा
१६	२५	कुर्वाणा	कुर्वाणाः
१७	६	०घृतश्च	०घृतश्च
१७	१२	उच्च०	उच्चै०
१७	१३	०दैर्घ्याभ्या	०दैर्घ्याभ्या
१७	१६	०वाऽऽसादि०	०ऽऽवासादि०
१७	१९	रूचका०	रुचका०
१७	२६	०घातकी०	०घातकी०
१८	११	ओसर्प्पिणी	ओसप्पिणी
१८	१२	क्षीयते	क्षीयन्ते
१८	२२	०जम्बू०	०जम्बूद्वीप०
१८	३०	प्रथमाराक०	प्रथमारक०
१९	१४	जिनेशतु०	जिनेशितु०
१९	१७	न्नैवारे	न्नेवारे
२१	१५	अत्तीरि०	अत्तीरि०

पृष्ठम्	पङ्क्ति	अशुद्धि	शुद्धि
२२	४	साक्षेपत्वात्	सापेक्षत्वात्
२२	११	तथव	तथैव
२३	१७	०ऋषम०	०ऋषभ०
२४	५	मेमहा	मे महा
२४	१०	११	६१
२५	१७	०मशिव	०मसिव
२५	२५	शीपु	शी पु
२६	८	५ १ ७६)	५-१-७६)
२६	१७	हनो हनो	हनो हनो
२६	२७	स०	सि०
२६	२९	६	७
२७	१०	-२-	-१-
२७	११	त्यण०	त्थण०
२७	१४	०मशिव	०मसिव
२७	१५	ह्रस्व०/उणा	ह्रस्व०/उणा०
२७	१९	इडामावो	इडभावो
२७	२४	(सद्दुल०	(सद्दूल०
२७	२७	३	३-
२८	२५	दृष्ट्वा	दृष्ट्वा
२९	१	स्वोपज्ञमे०	स्वोपज्ञभे०
२९	४	नेमी	नेमी
२९	२०	स०	सि०
२९	२०	२ १०८	२-१०८
३०	५	अभित	अमित
३१	१६	०वृत्या	०वृत्त्या
३२	६	ऋज्य०	ऋज्य०
३२	३०	वत्स्यति	वर्त्स्यति
३३	८	राअसेहरविजअ	राअसेहरविअअ
३३	१०	विरचित	रचित
३३	१८	ते होंतु	होंतु ते
३४	७	०धमयो०	०धर्मयो०
३५	१४	वज्ज०	वञ्ज०

पृष्ठम्	पङ्क्ति	अशुद्धि	शुद्धि
६४	७	तथाहीर०	तथा हीर०
६५	२९	(पथ्या)	(पथ्यार्या)
६५	३०	०माभिप्रायेण	०मभिप्रायेण
६६	१३	०ङ्गओ;	०ङ्गाओ,
६६	२३	०कत्रो	०कर्त्रौ
६७	१०	'जिओ' ति	'जिओ' त्ति
६७	३०	अयमपि	इयमपि
६८	१४	०स्त्रसो०	०स्वसु०
६८	१७	०स्थुल०	०स्थूल०
६९	२८	उक्कोसा	उवक्रोसा
६९	३५	सड्या०	सङ्घा०
७०	५	०पूर्वी	०पूर्वी
७०	१२	दशित०	दर्शित०
७०	२७	चेमा	चेयम्
७०	३२	अहमं	अहम
७०	,,	विसुग्ग०	विभुग्ग०
७२	१७	शकाश्च	शक्राश्च
७२	२८	त्वमुनो	त्वमुष्य
७३	२६	आषाढचार्यो	आपाढाचार्यो
७३	२६	चैकस्या	एकस्या च
७४	२४/२५	०रूपा/नष्टा	०रूपो/नष्ट
७४	२५	०आचा/०स्या	०श्चा० ०स्य
७५	४	न	। तं
७५	१७	०मुणोर्वि०	०मुयोर्वि०
७६	१	आर्यहा०	आर्यमहा०
७६	२६	सह सु	सहासु
७८	३३	२१४	११४
७९	७	११४	१२४
८१	४	श्रो	श्री
८२	३	०णिवे०	०णिवे०
८२	१४	शकाश्च०	शक्राश्च०
८२	२३	०विंशति ,	०विंशति ,
८३	१९	युग०	जुग०
८४	१६	मन्त्रेण	मत्रेण
८४	२९	०ग्र थ	०ग्रन्थ
८५	२१	०गोत्र+य	०गोत्रेभ्य
८६	१७	श्चतसः	श्चतस्र
८६	१८	विद्यनागरी	विद्यानागरी
८७	१३	हित्र	सेहित्र
८७	२६	०हत्थि गुरु	०हत्थिगुरू
८७	३१	तद्यथ	तद्यथा
८८	१६	द्रष्टव्या	द्रष्टव्याः
८९	६	नीया	नीया.
९०	२५	अगिग०	अग्नि०
९०	२६	ऽऽद्रा	ऽऽद्री
९०	३०	आयाहि०	आर्याहि०
९१	२	त्ति त्ति,	त्ति,
९१	५	०वण्हि०	०वह्नि०
९१	६	०सूरेक०	०सूरेरेक०
९३	११	०वर्पेसु	०वर्षेषु
९३	१४	स्थापित्वा	स्थापयित्वा
९३	१७	०नेयेण कोणिकेण	०नेयेन कोणिकेन
९५	९	०दायग	०दायग
९५	१०	०गाठ-णिग्ग०	०गाठ-णिग्ग०
९५	१७	०तित्थर०	०तित्थयर०
९५	२५	घित्तण	घित्तूण
९६	२६	०धर्मं०	धर्म०
९७	१	वाचनार्य	वाचनाचार्य-
९७	२१	केचना	केचन
९७	२५	०चार्यो	०चार्यौ
९८	७	कतृ०	कर्तृ०
९८	२५	०स्थवि०	०स्थविर०
९९	२४	०कतृत्व	०कर्तृत्व
९९	३१	०गाध०	०गणध०
१००	८	०लक्षणा	०लक्षणाः
१००	१२	तेज	तेज
१००	१२	०सुह	०सुह
१००	१३	०ऽष्टा०	०ऽष्टा०
१००	२६	उद्भावबनीय	उद्भावनीय
१०२	९	कप्प०	कल्प०

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
१२१	३४	(पच्छापुठिवगा सठवचवलाञ्जा)	(पच्छाञ्जा)
१२२	१५।१६	बन्धु० । घीवरो	बन्धु० । धीवरो
१२३	३	विस्मत	विस्मित
१२३	७	दशर्यताम्	दर्श्यताम्
१२३	७	०कस्य	०कँस्य
१२३	१०	सॉ	सा
१२३	१७	विमिष्मये	विसिष्मिये
१२३	२८	केचना आचार्या	केचनाचार्या
१२३	२८	०कुवन्ति	०कुर्वन्ति
१२५	२९	०सासि०	०साल्हि०
१२७	१६	शुश्रुषा	शुश्रूषा
१२७	१८	विज्ञेयो	विज्ञेशो
१२७	२५	०सिद्ध्यां	०सिद्ध्या
१२७	२६	कषपदे	कषपट्टे
१२७	२७	मथुराया	मथुराया
१२७	२७	प्रैसीद०	प्रैषीद०
१२७	२९	भिलत्त०	भिलत्त०
१२७	३०	०वीक्षाणो०	०वीक्षणो०
१२७	३४	अग्रे मूले	अग्रमूले
१२८	२	०श्चिन्तियते	०श्चिन्तयते
१२८	३९	०द्दक्षै /शाम्येत्	०द्दक्षै /शाम्येन
१२८	६	मूर्च्नो०	मूर्च्नो०
१२८	११	युग्गम्	युग्मम्
१२८	१९	०त्तत	०त्तत
१२८	२०	०माय	०माय
१२८	२२	स्म स	स्म स
१२८	२५	ध्यात्वेति	ध्यात्वेति
१२८	२६	स	स
१२८	२८	धनवा०	धनमा०
१२८	३०	वदन	वदन्
१२८	३६	दण्ड	दण्ड
१२९	१	०वृपेता	०युपेता
१२९	१६	०वचो भङ्ग्या	०वचोभङ्ग्या०
१२९	२३	०महल	०मडल
१३०	७	२४६	२४८
१३०	११	विंदा०	विदा०
१३०	२३	चक्रे	चक्रे च
१३०	२६	०स्मद०	०स्मद्०
१३१	१	०प्रमात्त्यु०	०प्रभावृत्त्यु०
१३१	५	चरणा०	चरणा०
१३१	१८	०मयरन्द०	०मयरन्द
१३१	२५	०जुअलेण'	०जुअलेणे'
१३१	२७	०चरित्र	०चरित
१३१	२६	प्रक्ष्यते	प्रेक्ष्यते
१३१	३५	०मन्दिरे	०मन्दिरे
१३२	२	मज्यन्ते	मज्यन्ते
१३२	७	जीणे	जीर्णे
१३२	११	शकरो	शङ्करो
१३२	१२	गगने चरा	गगनेचरा
१३२	१४	०माप्र०	०माप्र०
१३२	१७	सूचा	सूची
१३२	२४	साघू०	साधू०
१३२	२६	सूनत०	सूनृत०
१३२	३०	०गिंरा	०गिंरा
१३२	३२	०हँद्द्मुासदा०	०हँद्दोद्यु सदा०
१३२	३७	विध्या०	विध्या०
१३३	२६	कात्यान०	कात्यायन०
१३४	१५	चेक	चैक
१३४	१६	समैक्षन्त	समैक्षत
१३४	२१	भविष्यती	भविष्यति
१३७	१४	महात्मा-	महात्म-
१३७	२३	०विम्बा्कटी	०बिम्ब/प्रकटी
१३७	२४	द्वादशामे	द्वादशे
१३७	२८	ग्राह्याञ्चक्रिरे	ग्राहयाञ्चक्रिरे
१३९	७	०श्रोत पारा०	०श्रोत पारा०
१३९	१८	विध्न०	विघ्न०
१३९	२३	निध्व०	निध्वे०
१३९	२७	०वलीवन्	०वल्लीवन्
१३९	३१	निहृुत	निह्नुत
१३९	३५	स्वव०	स्वव०
१४०	५	पासुकै०	प्रासुकै०
१४०	१४	०विंद्वान्	विंद्वान्

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धि
१८३	४	०वप०	०वर्प०
१८४	२३	०शतर्षेपु	०शतवर्षेपु
१८५	२५	०सवत्सर	०सवत्सर
१८६	६	०युक्तया	०युक्त्या
१८७	४	०वपेषु	०वर्षेषु
१८७	८	०व्यतीतषु	०व्यतीतेषु
१८८	१०	०विविध०	०विविध०
१८८	२१	०राल्य०	०रावल्य०
१८९	१	स्योपज्ञ०	स्वोपज्ञ०
१८९	३	नहो०	नभो०
१८६	१२	मगु०	भृगु०
१८६	१७	केचना	केचन
१८६	१९	पाठ	पाठ
१८६	१६	०क्रियते	०कुर्वन्ति
१८६	३१	०तीर्थो०	०तीर्थो०
१९०	२५	०कालओ	०कालाओ
१९०	२७	०पर्याय०	०परपर्याय०
१९१	५	व्यतिप०	व्यति०
१९१	७	चेमा	चेयम्
१९१	१२	पुनगर्हं०	पुनर्गर्हं०
१९१	१९	०प्राप्तिर	०प्राप्ति
१९१	२०	सम्बधिपु	सम्बन्धिषु
१९१	२१	प्रवृत्तिश्च	प्रवृत्तिश्च
१९१	२२	चेमा	चेय
१९२	१०	(पच्छज्जा)	(पच्छाज्जा)
१९२	२८	०भोदन०	०भोजन०
१९३	१३	नमिऊण	नमिऊण
१९४	६	श्लाध्यते	श्लाघ्यते
१९५	२	वैरोत्ये	वैरोत्ये ति
१९५	२०	०ज्वलम्	०ज्ज्वलम्
१९५	२५	व्यघात्	व्यधात्
१९७	२२	पथ्यापूर्विकया पथ्यार्यया जघनचपलार्यया	
१९७	२५	(पच्छापुव्विगा (पच्छाज्जा) जघनचवलाज्जा)	
१९८	१६	पथ्यापूर्विकान्त्यचपलार्या-	
१९८	१९	,पच्छापुव्विगा (पच्छाज्जा) जघनचवलाज्जा)	
१९९	२४	चदसूरिसरो स चदसूरीसरो	
२००	१०	पूर्वं तच्छन्द- इत्यानुक्तेऽपी यच्छन्दस्य भणिष्यमाणत्वेन	
२००	११	०त्वात्तच्छन्द स्यात् आक्षिप्यते तत	
२०४	१	०सूर्यं०	०सूर्यं०
२०५	२४	च	स
२०५	२६	०प्रघोत०	०प्रद्योत०
२०६	१४	शार्दुल०	शार्दूल०
२०६	१९	सद्दल०	सद्दूल०
२०६	२३	दृष्ट्वा	दृष्ट्वा
२०८	१२	०छत्रुञ्चये	०छत्रुञ्जये
२०८	१३	प्रद्यातेन	प्रद्योतन
२०८	२०	२०	२१
२०८	२४	प्रभावा ब०	प्रभावाद् ब्र०
२०८	२४	०दव्यौ	०देव्यौ
२०८	२७	यत्रौषघ	यत्रौषध
२०८	३०	भयकरा	भयकराः
२०८	३१	३१	३२
२०८	३७	०घीयेत	०धीयेत
२०९	६	०वरक	०वरक
२०९	११	तूणे	तूणे
२०९	२८	शस्याना	सस्याना
२१०	७	०रद्भूत	०रद्भुतः
२१०	१८-१९	पथ्यापूर्विकादिचपलार्या-	
२१०	२२	(पच्छापुव्विगा (पच्छाज्जा) मुखचवलाज्जा)	
२१२	२६	पादित्त	पादित
२१४	३	चारुकीर्तिमहा०	चारुकीर्तिमह०
२१४	६	तदगृह०	तद्गृह०
२१४	१६	श्थिता	स्थिता
२१४	२८	०मघ्या०	०मध्या०
२१४	३१	न	स

पृष्ठम्	पङ्क्ति	अशुद्धि	शुद्धि
२४१	१२	वाल०	बालम०
२४१	१२	वाचनवा०	वाचनाऽऽ०
२४१	२५	०भ स्वामी	०भद्रस्वामी
२४१	२६	०गि र	०गिरि
२४१	३२	सभूयस्सऽठ्ठ	सभूयस्सऽट्ठ
२४३	५	०द्रूयस्यामपि	०द्रूयस्या-ऽपि
२४३	९	०चार्यो.	०चार्ययो
२४४	२१	०गुत्त	०गुत्ते
२४५	१३	अते०	अते०
२४५	२६	भवति	भवन्ति
२४५	३२	३२	३२ तत
२४७	१४	६४४	९४४
२४७	१७	(पच्छापुव्विगा (पच्छाज्जा) मुहूचवलाज्जा)	
२४८	१८	हेम०	हैम०
२४८	१८	०नान्तर	०नाऽनन्तरं
२४९	१४	प्रहारा०	प्रहरा०
२५०	४	शून्थ	शून्य
२५०	११	सङ्खयया	सङ्ख्यया
२५१	२१	०सूसि०	०सूरिभि०
२५१	२८	सरवा	सखा
२५२	●	॥१३६॥	॥१३६॥(पच्छाज्जा)
२५४	६	०लक्ष्मीसागरसू.	०लक्ष्मीसू०
२५४	१४	०लघु०	०लघु०
२५४	३२	शास्त्र०	शास्त्र०
२५५	२	षोडश०	षोडश०
२५७	६	०पदे	०पदवृत्तौ
२५७	२३	०ज्ञाव०	०ज्ञाव०
२५७	२४	पढत्सु	पठत्सु
२५७	३१	०णार्थं०	०णार्थं०
२५८	३	हृरि०	हरि०
२५८	१६	विभिन्ते	विभिन्ते
२५८	२२	जम्बू०	जम्बू०
२५८	२४	मन्यने	मन्यते
२५८	२६	०कर्दमम०	०कर्दम०
२५९	५/११	०शृणो०शृणु	०शृणो०।शृणु
२५९	१४	०विधौ	०विधौ

पृष्ठम्	पङ्क्ति	अशुद्धि	शुद्धि
२५९	१६	दध्यौ	दध्यौ
२५९	२८	हरिमित्र	हरिमित्र
२६०	४	तथा	तया
२६०	२०	प्रमृति	प्रभृति
२६०	२९	०हसम०	०हसम०
२६१	३४	उदमि०	उदमि०
२६२	२२	०समागता०	०समागता०
२६२	३६	लघु०	लघु०
२६३	४	प्रणाव०	प्रणाम०
२६३	१३	०र्मतिसुर०	०पतिसूर०
२६३	३६	०भत्रुट	०मत्रुट०
२६४	७	०मूर्द्धव्०	०मूर्द्ध व०
२६४	३२	०मदभुत	०मद्भुत०
२६४	३५	मत०	परमत०
२६५	२२	०मङ्ग	०भङ्ग
२६५	२४	लक्ष्य	लक्ष्य (क्ष)
२६६	२०	०द्रूमेन	०द्रूमेन
२६६	३०	०रिहबौद्ध०	०रिह बौद्ध०
२६६	३७	०निगदति०	०निगदित०
२६८	६	प्रजिधाय	प्रजिघाय
२६९	२४	०बुल०	०बुस०
२७०	१२	०मनध	०मनघ
२७०	१४	०दभुतम्,	०द्भुतम्,
२७१	९	पञ्च	पञ्च
२७३	११	०शताङ्घ्या	०शताङ्घ्या
२७३	२०	माविनपि	भाविनमपि
२७३	२१	०यते	०यन्ते
२७३	३४	पूर्वषि०/केवली०	पूर्वर्षि०/केवलि०
२७४	३	०पादयिषु	०पिपादयिषु
२७४	१९	शक्रराज्ञ	शक्रराज्ञ (जस्य)
२७४	२१	०सूरि०	०सूरी०
२७४	२३	जिण०	जिन०
२७४	२६	०हित्वा०	०हि ।०
२७५	१४	०जिण०	०जिन०
२७५	१५-१६	रुद्राना	रुद्राणा
२७५	१७	०इट्टो४/य३	०इट्टो५।यद्ध।
२७६	१	०सूये०	०सूर्य०

पृष्ठम्	पङ्क्ति	अशुद्धि	शुद्धि
३३३	१७	(पच्छापुव्विगा जहणचवलागीई)	(पच्छागीई)
३३३	१७	पच्छापुव्विगा जहणचवला	पच्छा
३३४	५	प्रसाद०/०प्रसाद०	प्रासाद / प्रासाद
३३४	२६	०ख्यासुरादिचपला	०ख्यासु
३३४	२६	(मुहचवला पच्छाऽज्जा	(पच्छाऽज्जा)
३३५	१५	यस्मिं	यस्मिँ
३३५	२१	पुराण	पुराण
३३५	२२	छद०	छन्द०
३३६	६	सङ्ख्या	सङ्ख्या
३३६	२५	वारीश्वर	वारीश्वर
३३६	२७	०स्थानाति	०स्थानानि
३३७	२१	वैभा०	वैमा०
३३७	२४	०ध्यन०	०ध्ययन०
३३७	२५	स्वर्गमाक	स्वर्गभाक्
३३७	२७	०वदन०	०वन्दन०
३३८	१८	भीभो	भीमो
३३८	३१	प्रमावो	प्रभावो
३४१	२६	०नान०	०नाम०
३४३	५	०गृड	गृह
३४४	२८	चक्ष०	चक्षु०
३४६	७	स्पर्शो	स्पर्शो
३४६	२८	०घोर	०घोर
३४७	८	वपुसा	वपुषा
३४७	२६	पूव०	पूर्व०
३४८	२	जलौघे	जलौघे
३४८	६	सर्व०	सर्व०
३४९	१२	०गौत्राणा	०गोत्राणा
३४९	२२	वल्मे	वल्भे
३५२	१६	०विहित०	०विहित०
३५२	२२	०र्दोणा०	०द्रोणा०
३५३	२०	स्त्रियति ।त्व	स्त्रियसि ।त्वं
३५४	१२	पज्य०	पूज्य०
३५५	२५-२६	०निर्गम्य/विज्ञ य	०निर्गम्य।विज्ञाय
३५६	७	०ज्ञे	०ज्ञैः
३५७	२७	सुरा०	सूरा०
३५७	२९	भग्नाप्त०	भग्नास्त०
३५८	३१	०दृष्छिपथा०	०दृष्टिपथा०
३५९	२	सपरि-च्छदम	सूपरिच्छदम्
३५९	२२	(क्ष?)	(क्षू?)
३६०	१३	०मष्ट०	०मष्टा०
३६०	२१	अष्ट०	अष्टा०
३६०	२६	बघणा०	वघणा०
३६१	२४	ख्य पु	ख्य , सूरिषु
३६१	२५	सूरीन्द्र =	सूरीन्द्रश्च
३६२	१५	माह्या	माह्या
३६२	२४	०चदेहि	०च देहि
३६३	२	सूरिश्वर	सूरीश्वर
३६३	२०	मास	मासं
३६४	१४	पथ्यापूर्विका-मादिचपला०	पथ्या०
३६४	१७	(पच्छापुव्विगा मुहचवला-ऽज्जा)	(पच्छाऽज्जा)
३६६	८	०पुर	०पुरं
३६६	१४	पर्व	पूर्व
३६६	३४	०चक्ष	०चक्षुः
३६६	३६	जैन	जैन
३६७	२४	कुर०	कूर०
३६७	२९	०श्रीहि०	०त्रीहि०
३६७	३३	श्रीबुद्धिमागर'	श्रीबुद्धिसागरः
३७१		च॰ वाचक०	०चन्द्रवाचक०
३७१	२५	त्त	त्ति
३७३	५	दट्ठि०	दिट्ठि०
३७५	१	०सूर०	
३७५	४/५	पथ्यापूर्विकामा-दिचपला०	पथ्या०

पृष्ठम्	पङ्क्ति	अशुद्धि	शुद्धि•	पृष्ठम्	पङ्क्ति	अशुद्धिः	शुद्धि
४१५	२३	अक्षत्तण्णो	अक्ष्त्तृण्णो	४३२	१४	०येन्द्रोश्च	०येन्दोश्च
४१५	३४	अद्राक्ष०	अद्राक्ष्०	४३२	२४	ऽस्य	ऽस्स
४१६	६|१४	सूरीवर्गो|हस्तष्टा	सुरिवर्गो/हस्ताष्टा	४३३	११	सङ्ख्या	सङ्ख्यया
४१६	१५	०स्तुष्टि०	•स्तुष्टि०	४३३	१८	गृह्यन्ते	गृह्यते
४१८	१	चन्चन्द्र	चन्द्र	४३३	१९	०दीयते	०दीयन्ते
४१९	८	तदुद्वृत्ति	तद्वृत्ति'	४३३	२५	१७	१०
४१९	१२।१३	०द्वाश्रय०	०द्वयाश्रय०	४३४	६	दब्भ	दद्धं
४१९	१३	०शालाका०	०शलाका०	४३४	१०	घस्से	घस्से
४१९	१४	०र्लाहृत०	ऽर्लाहृत्०	४३४	२७	दब्भ\दब्भ	दद्ध \दब्ध
४२०	२६	०र्गतत०	०न्तर्गत०	४३५	३	अर्थ	अर्थ
४२१	१८	पटटे	पट्टे	४३५	५	सग्रहं	सग्रहम्
४२३	४	यावदि०	यावादि०	४३५	२१	०तपट्टा०	०तपा०
४२३	१०	०वाग्नि०	०वानि०	४३६	६	घस्से/त्रयोदशमे	घस्स/त्रयोवशे
४२३	२४|२५	१६१३|१६५४	१६५ ३|१६८४	४३६	७	घस्रे	घस्रे
४२४	१	पञ्च०	चतुर	४३९	२८	०सार्वमोमः	सार्वमौम'
४२४	८	चतुषष्ठ्य	चतु षष्ठ्य	४४०	६	०चटकै०	०चेटकै०
४२४	२७	१६	७६	४४०	३१	जलाशयौ	जलाशयै
४२५	१५	हरि=	हरि =	४४१	९	इतीरिता	इतीरिता.
४२५	१८	शास्त्र	शास्त्र	४४२	२	०तत्वस्य	०तत्त्वस्य
४२६	२१	०मार्ग	०मार्ग	४४२	२७	कार्भिदु०	काभिदु०
४२६	२७	०ज्वल	०ज्ज्वलं	४४२	२७	०जयत्	०जयन्
४२६	२८	निर्गम|०मुत्तो	निर्मम|०मुत्ती	४४३	२	प्राग	प्राग्
४२७	४|५	पच्याजघनचपला	पच्या-	४४३	३	कृता	कृत
४२७	६	किञ्चिचा	किञ्चा	४४३	१५	॥२२०॥	॥२२०॥(पच्छाङ्जा)
४२७	८	(पच्छापुडिवगा जहणचवलाज्जा)	(पच्छाज्जा)	४४४	२१	दश०	दश०
४२९	५	स०	सि०	४४४	२२	०गर्वा०	०गर्वा०
४३०	७	०तर्का	०तर्का'	४४४	२२	०मतो०	०प्रवचनो०
४३०	१८	०दस्या	०दस्य	४४५	२५	शासान०	शासन०
४३०	१९	देवेन्द्रि०	देवेन्द्र ०	४४५	२९	०र्मिद०	०मिद०
४३०	२२	मयूरख्यस०	मयूरव्यस	४४६	२५	०युता	०युजा
४३०	२३	निकेतत	निकेतन	४४७	८	तथे०	तथै०
४३१	७	विशालया	विशालाया	४४९	१	धर्मधोष	धर्मघोष
४३१	९	प्रत्यु०	प्रत्यु०	४४९	१४	पदं	पदम्
४३१	१९	देवेन्द्र सूरी०	देवेन्द्र( )सूरी०	४४९	१९	चामुडा	चामुण्डा
				४५१	२	सजमे	सयमे